पृष्ठ ९०३-१९१२ शब्द २१७६१

["च" से "न" तक]

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[दूसरा भाग]



संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल जगन्मोहन वर्म्मा

अमीरसिंह भगवानदीन

रामचंद्र वर्म्मा



प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२०

इण्डियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

मूल्य १२) डाकव्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेज़ी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित्, अर्थात् इस का प्रयोग बहुत कम देखने में आया है
खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)

गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुंल्लिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी

पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ़० = फ़रासीसी भाषा
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंड बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरा
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ

लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा; अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्र-प्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल० = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

ꙮ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

कारने, हरि सों बैठा तोरि। माया करक कदीम है, केता गया चँचोरि।—कबीर।

चंट—वि० [सं० चंड] (१) चालाक। होशियार। सयाना। (२) धूर्त्त। छटा हुआ।

चंड—वि० [सं०] [स्त्री० चंडा] (१) तेज़। तीक्ष्ण। उग्र। प्रखर। प्रबल। घोर। (२) बलवान्। दुर्दमनीय। (३) कठोर। कठिन। विकट। (४) क्रोधी। उग्र स्वभाव का। उद्धत। गुस्सावर।

संज्ञा पुं० [सं० चंड] (१) ताप। गरमी। (२) एक यम दूत। (३) एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। (४) कार्त्तिकेय। (५) एक शिवगण। (६) एक भैरव। (७) इमली का पेड़। (८) विष्णु का एक पारिषद्। (९) राम की सेना का एक बंदर। (१०) सम्राट् पृथ्वीराज का एक सामंत जिसे साधारण लोग "चौंड़ा" कहते थे। (११) पुराणों के अनुसार कुबेर के आठ पुत्रों में से एक जो शिव-पूजन के लिये सूँघ कर फूल लाया था, और इसी पर पिता के शाप से जन्मांतर में कंस का भाई हुआ था और कृष्ण के हाथ से मारा गया था।

चंडकर—संज्ञा पुं० [सं०] (तीक्ष्ण किरणवाला) सूर्य। उ०—जयति बालकपि केलि कौतुक उदित चंडकर मंडल ग्रास-कर्त्ता।—तुलसी।

चंडकौशिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मुनि का नाम। (२) एक नाटक जिसमें विश्वामित्र और हरिश्चंद्र की कथा है। (३) जैन पुराणानुसार एक विषधर साँप जिसने महावीर स्वामी का दर्शन कर डसना आदि छोड़ दिया था और जो बिल में मुहँ डाले पड़ा रहता था, यहाँ तक कि जब उसे चींटियों ने घेरा तब भी उसने उनके दबने के डर से करवट तक न बदली।

चंडता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उग्रता। प्रबलता। घोरता। (२) बल। प्रताप। उ०—तुलसी लषन राम रावन बिबुध बिधि चक्रपानि चंडीपति चंडता सिहात हैं।—तुलसी।

चंडतुंडक—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

चंडत्व—संज्ञा पुं० [सं०] उग्रता। प्रबलता।

चंडदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

चंडनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) तांत्रिकों की अष्ट नायिकाओं में से एक जो दुर्गा की सखी मानी जाती है।

चंडभार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] च्यवन वंशी एक ऋषि जो महाराज जन्मेजय के सर्पयज्ञ के होता थे।

चंडमुंड—संज्ञा पुं० [सं०] दो राक्षसों के नाम जो देवी के हाथों से मारे गए।

चंडमुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामुंडा देवी।

चंडमुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महास्थान स्थित तांत्रिकों की एक देवी।

चंडरसा—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण-वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। इसी को चौबंसा, शशिवदना और पादाकुलक भी कहते हैं। उ०—नय धरु एका, न भजु अनेका। गहुपन साखो, शशिवदना सो।

चंडरुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सिद्धि जो अष्ट नायिकाओं के पूजन से प्राप्त होती है। (तांत्रिक)

चंडवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) अष्ट नायिकाओं में से एक।

चंडवृष्टिप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण (।।।) और सात रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। उ०—न नर गिरि धरै तजै भूलि कै राख जो चंडवृष्टि प्रपाता-कुलै गोकुलै।

चंडांशु—संज्ञा पुं० [सं०] (तीक्ष्ण किरणवाला) सूर्य्य। उ०—भरे अतर के अमल बिराजत राजत कनक पराता। चारु चंद्र चंडांशु अकारहि धार विविध अवदाता।—रघुराज।

चंडा—वि० स्त्री० [सं०] उग्र स्वभाव की। कर्कशा। दे० "चंड"। संज्ञा स्त्री० (१) अष्ट नायिकाओं में से एक। (२) चोर नामक गंध-द्रव्य। (३) केवाँच। कौंछ। (४) सफ़ेद दूब। (५) सौंफ। (६) सोवा। (७) एक प्राचीन नदी का नाम।

चँड़ाई*—संज्ञा स्त्री० [सं० चंड = तेज] (१) शीघ्रता। जल्दी। फुरती। चटपटी। उतावली। उ०—(क) देखहु जाइ कहा जेवन कियो जसुमति रोहिनि तुरत पठाई। मैं अन्हवाए देति दुहुन कों तुम भीतर अति करौ चँड़ाई।—सूर। (ख) छुद्रा-वली उतारति कटि तें सैंति धरति मनहीं मन वारति। रोहिनि भोजन करहु चँड़ाई बार बार कहि कहि करि आरति। —सूर। (ग) जननी मथति दधि गो दुहत कन्हाई। सखा परस्पर कहत स्याम सों हमहूँ ते तुम करत चँड़ाई। दुहन देहु कछु दिन अरु मोकों तब करिहौ मों सम सरिआई। जब लौं एक दुहौगे तब लौं चारि दुहौं तौ नंद दोहाई। झूठहिं करत दुहाई प्रातहिं देखहिंगे तुमरी अधिकाई। सूर स्याम कह्यो कालि दुहेंगे हमहूँ तुम मिलि होड़ लगाई। —सूर। (घ) कहा भयो जो हम पैं आई कुल की रीति गमाई। हमहूँ कों विधि को डर भारी अजहूँ जाहु चँड़ाई।—सूर। (२) प्रबलता। जबरदस्ती। अधम अत्याचार। उ०—करत चँड़ाई फिरत हो नागर नंदकिशोर।

चंडात—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित घास या पौधा।

चंडातक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की चोली या कुरती।

चंडाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चंडालिन, चंडालिनी] चाँडाल। श्वपच। डोम।

विशेष—दे० "चांडाल"

चंडालकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक कंद जो कफ-पित्त-नाशक, रक्त-

शोधक और विघ्न माना जाता है। पत्तियों की संख्या के हिसाब से इसके पाँच भेद माने गए हैं।

चंडालता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंडाल होने का भाव। (२) नीचता। अधमता।

चंडालत्व—संज्ञा पुं० दे० "चंडालता"।

चंडाल पक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौवा। उ०—सठ स्वपच्छ तव हृदय विसाला। सपदि होहु पच्छी चंडाला।—तुलसी।

चंडाल बाल—संज्ञा पुं० [हिं० चंडाल + बाल] वह कड़ा और मोटा बाल जो किसी के माथे पर निकल आता है और बहुत अशुभ माना जाता है।

चंडाल वल्लकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चंडालवीणा"।

चंडाल वीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तँबूरा वा चिकारा।

चंडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा (२) चंडालवीणा। (३) एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ आदि दवा के काम में आती हैं।

चंडालिनी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंडाल वर्ण की स्त्री। (२) दुष्टा स्त्री। पापिनी स्त्री। (३) एक प्रकार का दोहा जो दूषित माना जाता है। जिस दोहे के आदि में जगण पड़े उसको चंडालिनी दोहा कहते हैं। उ०—जहाँ विषम चरनति परै, कहुँ जगण जो आन। बखानना चंडालिनी, दोहा दुख की खान।

विशेष—प्रथम और तृतीय चरण के आदि के एक ही शब्द में जगण पड़े तो दूषित है, यदि आदि के शब्द में जगण पूरा न हो और दूसरे शब्द से अक्षर लेना पड़े तो उसमें दोष नहीं है। पर यदि यह भी बचाया जा सके तो और भी उत्तम है।

चंडावल—संज्ञा पुं० [सं० चंड + आवलि] (१) सेना के पीछे का भाग। पीछे रहनेवाले सिपाही। 'हरावल' का उलटा। (२) वीर योद्धा। बहादुर सिपाही। (३) संतरी। पहरेदार। चौकीदार।

चंडाहू—संज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े की तरह का एक मोटा कपड़ा।

चंडिआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का देसी लोहा।

चंडिकघंट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

चंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) लड़ाकी स्त्री। कर्कशा स्त्री। (३) गायत्री देवी।

वि० लड़ाकी। कर्कशा।

चंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर के वध के लिये धारण किया था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण में लिखी है। दुर्गा। (२) कर्कशा और उग्र स्त्री। (३) तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें दो नगण, दो सगण और एक गुरु होता है। उ०—न नसु सिगरि नर। आयु तु अल्पा। निसि दिन भजत विलासिनि तल्पा। कुबुध कुजन अध औवन दंडी। भजहु भजहु जनपालिनि चंडी।

चंडीकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर।

चंडीपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

चंडीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

चंडीसुर—संज्ञा पुं० [सं० चंडीश्वर] एक तीर्थ का नाम।

चंडु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा। (२) एक प्रकार का छोटा बंदर।

चंडू—संज्ञा पुं० [सं० चंड = तीक्ष्ण ?] अफ़ीम का क़िवाम जिसका धुआँ नशे के लिये एक नली के द्वारा पीते हैं।

क्रि० प्र०—पीना।

विशेष—चीनी लोग चंडू बहुत पीते हैं। अफ़ग़ानिस्तान से चंडू बन कर हिंदुस्तान में आता है। वहाँ चंडू बनाने के लिये अफ़ीम को ताल करके कई बार ताव दे दे कर छानते हैं।

चंडूखाना—संज्ञा पुं० [हिं० चंडू + खाना] वह घर वा स्थान जहाँ लोग इकट्ठे होकर चंडू पीते हैं।

मुहा०—चंडूखाने की गप = मतवालों की झूठी बकवाद। बिलकुल झूठी बात।

चंडूबाज़—संज्ञा पुं० [हिं० चंडू + फ़ा० बाज (प्रत्य०)] चंडू पीनेवाला। चंडू पीने का व्यसनी।

चंडूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक ख़ाकी रंग की छोटी चिड़िया जो पेड़ों और झाड़ियों में बहुत सुंदर घोंसला बनाती है और बहुत अच्छा बोलती है।

मुहा०—पुराना चंडूल = बेडौल, भद्दा या बेवक़ूफ़ आदमी। (*बाज़ारू*)।

चंडेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तवर्ण शरीरधारी शिव का एक रूप।

चंडोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता के समझाने के लिये नियत किया था।

चंडोल—संज्ञा पुं० [सं० चंद्र + दोल] (१) एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे वा अँबारी के आकार की होती है और जिसे चार आदमी उठाते हैं। (२) मिट्टी का एक खिलौना जिसे चौघड़ा भी कहते हैं।

चंद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "चंद्र"। (२) हिंदी के एक अत्यंत वा सब से प्राचीन कवि जो दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की सभा में थे। इनका बनाया हुआ पृथ्वीराज रासो बहुत बड़ा काव्य है। ये लाहौर के रहनेवाले थे।

वि० [फ़ा०] (१) थोड़े से। कुछ। उ०—अभी चंद रोज़ उन्हें आए हुए। (२) कई एक। कुछ उ०—चंद आदमी वहाँ बैठे हैं।

चंदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) चाँदनी। (३) एक प्रकार की छोटी चमकीली मछली। चाँद मछली (४) माथे पर पहनने का एक अर्द्धचंद्राकार गहना जिसके बीच में नग और किनारे पर मोती जड़े रहते हैं। सिर में यह तीन जगह से बँधा रहता है। (५) नथ में पान के आकार की बनावट जिसमें उसी आकार का नग वा हीरा बैठाया रहता है और किनारे पर छोटे छोटे मोती जड़े रहते हैं।

चंदकपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। (२) दे० "चंद्रकला"।

चंदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और जो दक्षिण भारत के मैसूर, कुर्ग, हैदराबाद, करनाटक, नीलगिरि, पश्चिमी घाट आदि स्थानों में बहुत होता है। उत्तर भारत में भी कहीं कहीं यह पेड़ लगाया जाता है। चंदन की लकड़ी औषध तथा इत्र तेल आदि बनाने के काम में आती है। हिंदू लोग इसे घिस कर इसका तिलक लगाते हैं और देव पूजन आदि में इसका व्यवहार करते हैं।

विशेष—चंदन की कई जातियाँ होती हैं जिसमें मलयागिरि वा श्रीखंड (सफ़ेद चंदन) ही असली चंदन समझा जाता है और सब से सुगंधित होता है। इसका पेड़ २०, ३० फुट ऊँचा और सदाबहार होता है। पत्तियाँ इसकी डेढ़ इंच लंबी और बेल की पत्तियों के आकार की होती हैं। फूल, पत्तियों से अलग निकली हुई टहनियों में तीन तीन चार चार के गुच्छों में लगते हैं। यह पेड़ प्रायः सूखे स्थानों में ही होता है। इसके हीर की लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफेद होती है जिसमें से बड़ी सुंदर महक निकलती है। यह महक एक प्रकार के तेल की होती है जो लकड़ी के भीतर होता है। जड़ में यह तेल सब से अधिक होता है इससे तेल वा इत्र खींचने के लिये इसकी जड़ की बड़ी माँग रहती है। चंदन की लकड़ी के चौखटे, नक्काशीदार संदूक आदि बहुत से सामान बनते हैं जिनमें सुगंध के कारण घुन नहीं लगते। हिंदू लोग इसकी लकड़ी को पत्थर पर पानी के साथ घिस कर तिलक लगाते हैं। इसका बुरादा धूप के समान सुगंध के लिये जलाया जाता है। चीन, बरमा आदि देशों के मंदिरों में चंदन के बुरादे की धूप बहुत जलती है। चंदन का पेड़ वास्तव में उस जाति के पेड़ों में है जो दूसरे पौधों के रस से अपना पोषण करते हैं (जैसे, बाँदा, कुकुरमुत्ता आदि)। इसी से यह घास, पौधों और छोटी छोटी झाड़ियों के बीच में अधिक उगता है। कौन कौन पौधे इसके आहार के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं इसका ठीक ठीक पता न चलने से इसे लगाने में कभी कभी उतनी सफलता नहीं होती। यों ही अच्छी उपजाऊ ज़मीन में लगा देने से पेड़ बढ़ता तो खूब है पर उसकी लकड़ी में उतनी सुगंध नहीं होती। सरकारी जंगल-विभाग के एक अनुभवी अफसर की राय है कि चंदन के पेड़ के नीचे खूब घास पात उगने देना चाहिए, उसे काटना न चाहिए। घास पात के जंगल के बीच में बीज पड़ने से जो पौधा उगेगा और बढ़ेगा उसकी लकड़ी में अच्छी सुगंध होगी। श्रीखंड वा असली चंदन के सिवाय और बहुत से पेड़ हैं जिनकी लकड़ी चंदन कहलाती है। जंजिबार (अफ्रिका) से भी एक प्रकार का श्वेत चंदन आता है जो मलयागिरि के समान व्यवहृत होता है। हमारे यहाँ रंग के अनुसार चंदन के कुछ भेद किए गए हैं। जैसे, श्वेत चंदन, पीत चंदन, रक्त चंदन इत्यादि। श्वेत चंदन और पीत चंदन एक ही पेड़ से निकलते हैं। रक्त चंदन का पेड़ भिन्न होता है। उसकी लकड़ी कड़ी होती है और उसमें महँक भी वैसी नहीं होती। निघंटुरत्नाकर आदि वैद्यक के ग्रंथों में चंदन के दो भेद किए गए हैं एक बेट, दूसरा सुकडि। मलयागिरि के अंतर्गत कुछ पर्वत हैं जो बेट कहलाते हैं। अतः उन पर्वतों पर होनेवाले चंदन को बेट कहते हैं। राजनिघंटु में एक शबर नामक चंदन का भी उल्लेख है जिसे कैरातक भी कहते हैं। संभव है कि यह किरात देश (आसाम और भूटान) से आता रहा हो। चंदन के विषय में अनेक प्रकार के प्रवाद लोगों में प्रचलित हैं। ऐसा कहा जाता है कि चंदन के पेड़ में बड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं। चंदन अपनी सुगंध के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। अरबवाले पहले भारतवर्ष, लंका आदि से चंदन पश्चिम के देशों में ले जाते थे। भारतवर्ष में यद्यपि दक्षिण ही की ओर चंदन विशेष होता है पर उसके इत्र और तेल के कारखाने कन्नौज ही में हैं। पहले लखनऊ और जौनपुर में भी कारखाने थे। तेल निकालने के लिये चंदन को खूब महीन कूटते हैं, फिर इस बुकनी को दो दिन तक पानी में भिगो कर उसे भभके पर चढ़ाते हैं। भाप होकर जो पानी टपकता है उसके ऊपर तेल तैरने लगता है। इसी तेल को काढ़ कर रख लेते हैं। एक मन चंदन में से २ से ३ सेर तक तेल निकलता है। अच्छे चंदन का तेल मलयागिरि कहलाता है और बढ़िया मेल का कटिया या जहाज़ी। चंदन औषध के काम में भी बहुत आता है। क्षत या घाव इससे बहुत जल्दी सूखते हैं। वैद्यक में चंदन शीतल और कड़ुआ तथा दाह, पित्त, ज्वर, छर्दि, मोह, तृषा आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—श्रीखंड। चंद्रकांत। गोशीर्ष। भोगिवल्लभ। भद्रसार। मलयज। गंधसार। भद्रश्री। एकांग। पटीर। वर्णक। महार्घ्य। सेव्य। रौहिण। ग्राम्य। सर्पेष्ट। पीतसार। महार्ह। मलयोद्भव। गंधराज। सुगंध। सर्पावास। शीतल। शीतगंध। तैलपर्णिक। चंद्रद्युति। मितहिम, इत्यादि।

(२) चंदन की लकड़ी। चंदन की लकड़ी वा टुकड़ा।

क्रि० प्र०—घिसना।—रगड़ना।

मुहा०—चंदन उतारना = पानी के साथ चंदन की लकड़ी को घिसना जिसमें उसका अंश पानी में घुल जाय।

(३) वह लेप जो पानी के साथ चंदन को घिसने से बने। घिसे हुए चंदन का लेप।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—चंदन चढ़ाना = घिसे हुए चंदन को शरीर में लगाना।

(४) गंधपसार। पसरन। (५) राम की सेना का एक बंदर। (६) छप्पय छंद के तेरहवें भेद का नाम। (७) एक प्रकार का बड़ा तोता जो उत्तरीय भारत, मध्य भारत, हिमालय की तराई, कांगड़ा आदि में पाया जाता है।

चंदनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मलयाचल पर्वत।

चंदनगोह—संज्ञा पुं० [हिं० चंदन + गोह] एक प्रकार की गोह जो बहुत छोटी होती है।

चंदनधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो पुत्र द्वारा सौभाग्यवती मृत माता के उद्देश्य से चंदन से अंकित करके दी जाती है। यह दान वृषोत्सर्ग के स्थान में होता है क्योंकि पिता की उपस्थिति में पुत्र को वृषोत्सर्ग का अधिकार नहीं है।

चंदनपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन का फूल। (२) लौंग। लवंग।

चंदनयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षयतृतीया। वैशाख सुदी तीज।

चंदनवती—वि० स्त्री० [सं०] चंदन से युक्त।

संज्ञा स्त्री० केरल देश की भूमि।

चंदनशारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शारिवा जिसमें चंदन की सी सुगंध होती है।

चंदनसार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रक्षार। नौसादर। (२) घिसा हुआ चंदन।

चंदनहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + हिं० हार] एक प्रकार की गले में पहनने की माला जो कई प्रकार की होती है। दे० "चंद्रहार"।

चंदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदनशारिवा।

चंदनादि तैल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन के योग से बननेवाला आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल जो शरीर के अनेक रोगों पर चलता है और शरीर में नई कांति लानेवाला माना जाता है।

विशेष—रक्त चंदन, अगर, देवदारु, पद्मकाठ, इलायची, केसर, कपूर, कस्तूरी, जायफल, शीतलचीनी, दालचीनी, नागकेसर इत्यादि को पानी के साथ पीस कर तेल में पकाते हैं और पानी के जल जाने पर तेल छान लेते हैं।

चंदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है।

†संज्ञा स्त्री० दे० "चाँदनी"।

चंदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरोचन।

चंदनौता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लहँगा। उ०—चँदनौता जो खर दुख भारी। बाँसपूर झिलमिल की सारी।—जायसी।

चंद्रबान—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रबाण] एक प्रकार का बाण। इस बाण के सिरे पर अर्द्धचंद्राकार लोहे की गाँसी वा फल लगा रहता है। इस बाण को उस समय काम में लाते हैं जब किसी का सिर काटना होता है। उ०—चले चंद्रबान, घनबान औ कुहूकबान।—भूषण।

चँदराना†—क्रि० स० [देश०] (१) फुसलाना। झूठा बनाना। बहलाना। (२) जान बूझ कर कोई बात पूछना। जान बूझ कर अनजान बनना।

चँदला—वि० [हिं० चांद = खोपड़ी] जिसकी चांद के बाल झड़ गए हों। गंजा। खल्वाट।

चँदवा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रा वा चंद्रोदय] एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं के सिंहासन वा गद्दी के ऊपर चाँदी वा सोने की चार चोबों के सहारे ताना जाता है। चँदोवा। चंदरछत। वितान। उ०—ऊपर राता चँदवा छावा। औ भुइँ सुरँग बिछाव बिछावा।—जायसी।

विशेष—इसकी लंबाई चौड़ाई दो ढाई गज़ से अधिक नहीं होती और यह प्रायः मखमल रेशम आदि का होता है जिस पर कारचोब का काम बना रहता है। इसके बीच में प्रायः गोल काम रहता है।

संज्ञा पुं० [सं० चंद्रक] (१) गोल आकार की चकती। गोल थिगली वा पैवंद। जैसे, टोपी का चँदवा। (२) [स्त्री० चँदिया] तालाब के भीतर का गहरा गड्ढा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं (३) मोर की पूँछ पर का अर्द्धचंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल के बीच में होता है। मोर पंख की चंद्रिका। उ०—(क) मोरन के चँदवा माथे बने राजत रुचिर सुदेस री। बदन कमल ऊपर अलिगन मानो घूँघरवारे केस री।—सूर। (ख) सोहत हैं चँदवा सिर मोर के जैसिय सुंदर पाग कसी है।—रसखान। (४) एक प्रकार की मछली।

चंदा—संज्ञा पुं० [सं० चंद्र वा चंद] चंद्रमा। उ०—ज्यों चकोर चंदा को निरखै इत उत दृष्टि न जाहि। सूर स्याम बिन छिन छिन युग सम क्यों करि रैन बिहाहि।—सूर।

मुहा०—चंदा मामा = लड़कों को बहलाने का एक वाक्य। जैसे 'चंदा मामा दौरि आ। दूध भरी कटोरिया' इत्यादि।

संज्ञा पुं० [फा० चंद = कई एक] (१) वह थोड़ा थोड़ा धन जो कई आदमियों से उनके इच्छानुसार किसी कार्य्य के लिये लिया जाय। बेहरी। उगाही। बरार। (२) किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदि का वार्षिक वा मासिक मूल्य। (३) वह

धन जो किसी सभा सोसायटी आदि को उसके सदस्यों वा सहायकों द्वारा नियत समय पर दिया जाय।

चंदावत–संज्ञा पुं० [सं० चंद्र] क्षत्रियों की एक जाति वा शाखा।

चंदावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्री राग की सहचरी एक रागिनी।

चंदिका–संज्ञा स्त्री० दे० "चंद्रिका"।

चंदिनि, चंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० चंद] चाँदनी। चंद्रिका। उ०—चैत चतुरदसी चंदिनि अमल उदित निसिराजु। उड़गन अवलि लसीँ दस दिसि उमगत आनँद आजु।—तुलसी।

वि० चाँदनी। उजेली। उ०—तिन्हहिँ सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिँ चंदिनि रात न भावा।—तुलसी।

चँदिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) खोपड़ी। सिर का मध्य भाग।

मुहा०—चँदिया पर बाल न छोड़ना = (१) सिर के बाल तक न छोड़ना। सब कुछ ले लेना। सर्वस्व हरण कर लेना। (२) सिर पर जूते लगाते लगाते बाल उड़ा देना। खूब जूते उड़ाना। चँदिया से परे सरक = सिर के ऊपर से अलग जाकर खड़ा हो। पास से हट जा। चँदिया मूँड़ना = (१) सिर मूड़ना। हजामत बनाना। (२) लूट कर खाना। धोखा देकर किसी का धन आदि ले लेना। (३) सिर पर खूब जूते लगाना। चँदिया खाना = (१) बकवाद से तंग करना। सिर खाना। सिर में दर्द पैदा करना। (२) सब कुछ हरण करके दरिद्र बना देना। चँदिया खुजाना = (१) सिर खुजलाना। (२) मार वा जूते खाने को जी चाहना। मार खाने का काम करना।

(२) छोटी सी रोटी। बचे हुए आटे की टिकिया। पिछली रोटी। (३) किसी ताल में वह स्थान जहाँ सब से अधिक गहराई हो। उ०—इस साल तो ऐसी कम वर्षा हुई कि तालों की चँदिया भी सूख गईं। (४) चाँदी की टिकिया।

चंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। उ०—(क) रच्यो विश्वकर्मा सो मंदिर। परम प्रकाशित मानहु चंदिर।—रघुराज। (ख) हेम कलश कल कोट कँगूरे कहुँ मंदिर चंदिर सम रूरे।—रघुराज। (२) हाथी।

चँदेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चेदि वा हिं० चंदेल] एक प्राचीन नगर जो ग्वालियर राज्य के नरवार जिले में है। आज कल की बस्ती से ४,५ कोस पर पुरानी इमारतों के खँडहर हैं। पहले यह नगर बहुत समृद्ध दशा में था पर अब कुछ उजड़ गया है। यहाँ की पगड़ी प्रसिद्ध है। चँदेरी में कपड़े (सूती और रेशमी) अब भी बहुत अच्छे बुने जाते हैं। यहाँ एक पुराना किला है जो ज़मीन से २३० फुट की ऊँचाई पर है। इसका फाटक 'ख़ूनी दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि पहले यहाँ अपराधी किले की दीवार पर से ढकेले जाते थे। रामायण महाभारत और बौद्ध ग्रंथों के देखने से पता लगता है कि प्राचीन काल में इसके आस पास का प्रदेश चेदि, कलचुरि वा हैहय वंश के अधिकार में था और चेदि देश कहलाता था। चंदेलों का जब प्रताप चमका तब उनके राजा यशोवर्म्मा (संवत ९८२ से १०१२ तक) ने कलचुरि लोगों के हाथ से कालिंजर का किला तथा आस पास का प्रदेश ले लिया। इसी से कोई कोई चँदेरी शब्द की व्युत्पत्ति 'चंदेल' से बतलाते हैं। अलबरूनी ने चँदेरी का उल्लेख किया है। सन् १२५१ ईसवी में गयासुद्दीन बलबन ने चंदेरी पर अधिकार किया। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के अधिकार में गया। सन् १५२० में चित्तौर के राणा साँगा ने इसे जीत कर मेदिनी राव को दे दिया। मेदिनीराव से इस नगर को बाबर ने लिया। सन् १५८६ के उपरांत बहुत दिनों तक यह नगर बुंदेलों के अधिकार में रहा और फिर अंत में सन् १८११ में यह ग्वालियर राज्य के अधिकार में आया। उ०—राव चंदेरी को भूपाल। जाको सेवत सब भूपाल।—सूर।

चंदेरीपति–संज्ञा पुं० [सं०] चंदेरी का राजा, शिशुपाल।

चंदेल–संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक शाखा जो किसी समय कालंजर और महोबे में राज्य करती थी। परमर्दिदेव वा राजा परमाल इसी वंश के थे, जिनके सामंत आल्हा और ऊदल प्रसिद्ध हैं। संस्कृत लेखों में यह वंश चंद्रात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—चंदेलों की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि काशी के राजा इंद्रजित् के पुरोहित हेमराज की कन्या हेमवती बड़ी सुंदरी थी। वह एक कुंड में स्नान कर रही थी। इसी बीच में चंद्र देव ने उस पर आसक्त हो कर उसे आलिंगन किया। हेमवती ने जब बहुत कोप प्रकट किया तब चंद्रदेव ने कहा "मुझसे तुम्हें जो पुत्र होगा वह बड़ा प्रतापी राजा होगा और उसका राजवंश चलेगा।" जब उसे कुमारी अवस्था ही में गर्भ रह गया तब चंद्रमा के आदेशानुसार उसने अपने पुत्र को ले जाकर खजुराहो के राजा को दिया। राजा ने उसका नाम चंद्रवर्म्मा रखा। कहते हैं कि चंद्रमा ने राजा के लिये एक पारस पत्थर दिया था। पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ। उसने महोबा नगर बसाया और कालंजर का किला बनवाया। खजुराहो के शिलालेखों में लिखा है कि मरीचि के पुत्र अत्रि को एक चंद्रात्रेय नाम का पुत्र था। उसी के नाम पर यह चंद्रात्रेय नाम का वंश चला। ईसवी सन् ८०० से ले कर १५४५ तक इस वंश का प्रबल राज्य बुंदेलखंड और मध्य भारत में रहा। परमर्दिदेव के समय से इस वंश का प्रताप घटने लगा।

चँदोया–संज्ञा पुं० दे० "चँदवा"।

चँदोवा–संज्ञा पुं० दे० "चँदवा"।

चंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा।

विशेष—समास में इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक होता है, जैसे मुखचंद्र, चंद्रमुखी। कहीं कहीं यह श्रेष्ठ का अर्थ भी देता है, जैसे, पुरुषचंद्र। दे० "चंद्रमा"।

(२) संख्या सूचित करने की काव्य शैली में एक की संख्या। (३) मोर की पूँछ की चंद्रिका। उ०—मदन मोर के चंद्र की झलकनि निदरति तन जोति।—तुलसी। (४) कपूर। (५) जल। (६) सोना। स्वर्ण। (७) रोचनी नाम का पौधा। (८) पौराणिक भूगोल के १८ उपद्वीपों में से एक। (९) वह बिंदी जो सानुनासिक वर्ण के ऊपर लगाई जाती है। (१०) लाल रंग का मोती। (११) पिंगल मे टगण का दसवाँ भेद (॥ऽ॥)। उ०—मुरलीधर। (१२) हीरा। (१३) मृगशिरा नक्षत्र। (१४) कोई आनंददायक वस्तु। (१५) नैपाल में एक पर्वत। (१६) चंद्रभागा में गिरनेवाली एक नदी।

वि० (१) आह्लादजनक। आनंददायक। (२) सुंदर। रमणीय।

चंद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) चंद्रमा के ऐसा मंडल वा घेरा। (३) चंद्रिका। चाँदनी। (४) मोर की पूँछ की चंद्रिका। (५) नह। नाखून। (६) एक प्रकार की मछली। (७) कपूर। उ०—करि उपचार यकी चढ़ो चलि उताल नँदनंद। चंद्रक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद।—शृं० सत। (८) मालकोश राग का पुत्र। (संगीत)। (९) सफेद मिर्च। (१०) सहजन।

चंद्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमंडल का सोलहवाँ अंश। दे० "कला"। (२) चंद्रमा की किरण वा ज्योति। उ०—धनि द्वैज की चंद्रकला अबला सो लला की सजीवन मूरि भई है।—सेवक। (३) एक वर्णवृत्त जो आठ सगण और एक गुरु का होता है। इसका दूसरा नाम सुंदरी भी है। यह एक प्रकार का सवैया है। उ०—सब सों गहि पाणि मिले रघुनंदन भेंटि कियो सब को बड़ भागी। (४) माथे पर पहनने का एक गहना। (५) ढोटा ढोल। (६) एक प्रकार की मछली जिसे बचा भी कहते। (७) एक प्रकार की बँगला मिठाई। (८) एक प्रकार का सात-ताला ताल जिसमें तीन गुरु और तीन प्लुत के बाद एक लघु होता है। इसका बोल यह है,—तक्किट किट तक्किट किट धिक तां तां तां धिम धिक तां तां तां धिम धिक तां तां तां धिम धा।

चंद्रकलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

चंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन ग्रंथों के अनुसार एक मणि वा रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह चंद्रमा के सामने करने से पसीजता है और उससे बूँद बूँद पानी टपकता है। (२) एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है। (३) चंदन। (४) कुमुद। (५) लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु की राजधानी का नाम।

चंद्रकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) रात्रि। रात। (३) मल्लभूमि की एक नगरी जहाँ लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु राज्य करते थे। (४) पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति।

चंद्रकांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी।

चंद्रकाम—संज्ञा पुं० [सं०] वह पीड़ा जो किसी पुरुष को उस समय होती है जब कोई स्त्री उसे वशीभूत करने के लिये मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग करती है।

चंद्रकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रकिन्] वह जिसे चंद्रक हो। मोर। मयूर।

चंद्रकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का पुत्र, बुध। (२) बौद्धों के एक थानक का नाम।

चंद्रकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की एक नदी का प्राचीन नाम।

चंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] कामरूप प्रदेश का एक पर्वत जिसका बहुत कुछ माहात्म्य कालिका पुराण में लिखा है।

चंद्रकूप—संज्ञा पुं० [सं०] काशी का एक प्रसिद्ध कुआँ जो तीर्थस्थान माना जाता है।

चंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम जिन्हें भरत के कहने से राम ने उत्तर का चंद्रकांत प्रदेश दिया था।

चंद्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या।

चंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नैपाल का एक पर्वत जो काठमाँडू के पास है। इसकी ऊँचाई ८२०० फुट है।

चंद्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रगुप्त जो यम की सभा में रहते हैं। (२) *मगध देश का प्रथम मौर्यवंशी राजा जिसकी* राजधानी पाटलिपुत्र थी और जिसने बलख के यूनानी (यवन) राजा सील्यूकस पर विजय प्राप्त करके उसकी कन्या ब्याही थी। कौटिल्य चाणक्य की सहायता से महानंद तथा और नंदवंशियों को मार इसने मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था, जिसकी कथा विष्णु, ब्रह्म, स्कंद, भागवत आदि पुराणों में मिलती है। इसी कथा को लेकर संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस बना है। चंद्रगुप्त बड़ा प्रतापी राजा था। इसने पंजाब आदि स्थानों से यवनों (यूनानियों) को निकाल दिया था। यह ईसा से ३२१ वर्ष पूर्व मगध के राजसिंहासन पर बैठा और २४ वर्ष तक रहा। (३) गुप्त वंश का एक बड़ा प्रतापी राजा जिसे विक्रम वा विक्रमादित्य भी कहते थे। इसका विवाह लिच्छवीराज की कन्या कुमारी देवी से हुआ था। शिलालेखों से जाना जाता है कि इस राजा ने सन् ३१८ के लगभग समस्त उत्तरीय भारत पर साम्राज्य स्थापित किया था। लोगों का अनुमान है कि इसी प्रथम चंद्रगुप्त ने गुप्त संवत् चलाया था। (४) गुप्त वंश का एक दूसरा राजा जो प्रथम चंद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त का पुत्र था। इसकी माता का नाम दत्तदेवी था। इसे विक्रमांक और

देवराज भी कहते थे। इसने अपना विवाह नैपाल के राजा की कन्या ध्रुवदेवी के साथ किया था। इसने दिग्विजय करके बहुत से देशों में अपनी कीर्त्ति स्थापित की थी। शिलालेखों से पता लगता है कि इसने ईसवी सन् ४०० से ४१३ तक इसने राज्य किया।

चंद्रगृह–संज्ञा पुं० [सं०] कर्कराशि।

विशेष—चंद्र वा उसके किसी पर्य्यायवाची शब्द में गृह वा उसके किसी पर्य्यायवाची शब्द के लगने से 'कर्कराशि' अर्थ होता है।

चंद्रगोल–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमंडल।

चंद्रगोलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रिका। चाँदनी।

चंद्रग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का ग्रहण। दे० "ग्रहण।"

चंद्रचंचल–संज्ञा पुं० [सं०] खरसा मछली।

चंद्रचित्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

चंद्रचूड़–संज्ञा पुं० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव।

चंद्रचूड़ामणि–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ग्रहों का एक योग। जब नवम स्थान का स्वामी केंद्रस्थ हो तब यह योग होता है। उ०—केंद्री है नवयें कर स्वामी योग चंद्र चूड़ामणि। गुरु द्विज भक्त सकल गुण सागर दाता शूर शिरोमणि।

चंद्रज–संज्ञा पुं० [सं०] बुध (जो चंद्रमा के पुत्र माने जाते हैं)।

चंद्रजोत–संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र+ज्योति] (१) चंद्रमा का प्रकाश। (२) महताबी नाम की आतशबाज़ी।

चंद्रताल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बारहताला ताल जिसे परम भी कहते हैं।

चंद्रदारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ नक्षत्र जो पुराणानुसार दक्ष की कन्याएँ हैं और चंद्रमा को ब्याही हैं।

चंद्रद्युति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश वा किरण। (२) चंदन।

चंद्रधनु–संज्ञा पुं० [सं०] वह इंद्रधनुष जो रात को चंद्रमा के प्रकाश के पड़ने के कारण दिखाई पड़ता है।

चंद्रधर–संज्ञा पुं० [सं०] (चंद्रमा को धारण करनेवाले) महादेव। शिव।

चंद्रपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता।

चंद्रपुली–संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र+देश० पूर] एक बँगला मिठाई जो गरी से बनाई जाती है।

चंद्रपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदनी। (२) बकुची। (३) सफ़ेद भटकटैया।

चंद्रप्रभ–वि० [सं०] चंद्रमा के समान ज्योतिवाला। कांतिवान्।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनों के आठवें तीर्थंकर। इनके पिता का नाम महासेन और माता का नाम लक्ष्मणा था। (२) तक्षशिला के राजा एक बोधिसत्त्व जो बड़े दानी थे। एक बार एक ब्राह्मण ने आ कर इनसे इनका मस्तक माँगा। इन्होंने बहुत धन देकर उसे संतुष्ट करना चाहा पर जब उसने न माना तब इन्होंने अपने मस्तक पर से राजमुकुट उतार उसके आगे रखा। तब ब्राह्मण इन्हें एकांत में ले गया और वहाँ जाकर उसने इनका सिर काट लिया।

चंद्रप्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की ज्योति। चाँदनी। चंद्रिका। (२) बकुची नाम की ओषधि। (३) कचूर। (४) वैद्यक की एक प्रसिद्ध गुटिका जो अर्श भगंदर आदि रोगों पर दी जाती है।

चंद्रबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का भाई, शंख (क्योंकि चंद्रमा के साथ वह भी समुद्र में से निकला था)। (२) कुमुद।

चंद्रवधूटी–संज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रवधू = इंद्रवधू] बीरबहूटी। उ०—नाथ लट्ट भए लालन जू लखि भामिनि भाल की चंदन बूटी। चोप सों चारु सुधारस लोभ बिधी बिधु में मनो चंद्रवधूटी।—नाथ।

चंद्रबाण–संज्ञा पुं० [सं० चंद्रबाण] अर्द्धचंद्रबाण जो सिर काटने के लिये छोड़ा जाता था। (इसका फल अर्द्धचंद्राकार बनता था जिसमें गले में पूरा पूरा बैठ जाय।) उ०—चले चंद्रबान, घनबान औ कुहूकबान।—भूषण।

चंद्रबाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) चंद्रमा की किरण। (३) बड़ी इलायची।

चंद्रबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

चंद्रबिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] अर्द्ध अनुस्वार की बिंदी। अर्द्ध चंद्राकार चिह्न युक्त बिंदु जो सानुनासिक वर्ण के ऊपर लगता है। जैसे "गाँव" में 'गा' के ऊपर।

चंद्रबिंब–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया और हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

चंद्रबोड़ा–संज्ञा० पुं० [सं० चंद्र+दे० बोड़ा] एक प्रकार का अजगर।

चंद्रभवन–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

चंद्रभस्म–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

चंद्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। (२) सफ़ेद भटकटैया।

चंद्रभाग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) सोलह की संख्या। (३) हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत वा शिखर का नाम जिससे चंद्रभागा वा चेनाब निकली है। ऐसी कथा है कि किसी समय ब्रह्मा ने इसी पर्वत पर बैठ कर देवताओं और पितरों के निमित्त चंद्रमा के भाग किए थे।

चंद्रभागा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की चनाब नाम की नदी जो हिमालय के चंद्रभाग नामक खंड से निकल कर सिंधु नदी में मिलती है। दे० "चनाब"।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के आदेश से

चंद्रभाग पर्वत से शीता नाम की नदी उत्पन्न हुई। यह नदी चंद्रमा को दुवाती हुई एक सरोवर में गिरी। चंद्रमा के प्रभाव से इसका जल अमृतमय हो गया। इसी जल से चंद्रभागा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसे समुद्र ने ब्याहा। चंद्रमा ने अपनी गदा की नोक से पहाड़ में दरार कर दिया जिससे होकर चंद्रभागा नदी बह निकली। उ०—शुभ कुरुखेत, अयोध्या, मिथिला, प्राग, त्रिवेनी न्हाए। पुनि शतद्रु औरहु चँद्रभागा, गंग ब्यास अन्हवाए।—सूर।

चंद्रभाट—संज्ञा पुं० सं० चद्र + हिं० भट] एक प्रकार के भिक्षुक साधु जो शिव और काली के उपासक होते हैं। ये अपने साथ, गाय, बैल, बकरी और बंदर आदि लेकर चलते हैं। ये प्रायः गृहस्थ होते हैं और खेती बारी करते हैं।

चंद्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा के १० पुत्रों में से सातवें पुत्र का नाम। उ०—भानु स्वभाव तथा अतिभानू। वृहद्भानु स्वरभानु प्रभानू। चंद्रभानु श्रीरवि प्रतिभानू। भानुमान सह दस मतिमानू।—गोपाल।

चंद्रमाल—संज्ञा पुं० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव।

चंद्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी।

चंद्रभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। उ०—स्मित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं।—तुलसी।

चंद्रमणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत मणि। उ०—(क) चौकी हेम चंद्रमणि लागी हीरा रतन जराय खची। भुवन चतुर्दश की सुंदरता राधे के मुख मनहि रची।—सूर। (ख) केती सोमकला करो, करो सुधा को दान। नहीं चंद्रमणि जो द्रवै, वह तेलिया पखान।—दीनदयाल। (२) उल्लाला छंद का एक नाम।

चंद्रमस्—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

चंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमस्] आकाश में चमकनेवाला एक उपग्रह जो महीने में एक बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है और सूर्य से प्रकाश पा कर चमकता है।

विशेष—यह उपग्रह पृथ्वी के सब से निकट है अर्थात् यह पृथ्वी से २३८८०० मील की दूरी पर है। इसका व्यास २१६२ मील है और इसका परिमाण पृथ्वी का $\frac{1}{49}$ है। इसका गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का $\frac{1}{80}$ वाँ भाग है। इसे पृथ्वी के चारों ओर घूमने में २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनिट और ११$\frac{1}{2}$ सेकंड लगते हैं, पर व्यवहार में जो महीना आता है वह २९ दिन, १२ घंटा, ४४ मिनिट और २·७ सेकंड का होता है। चंद्रमा के परिक्रमण की गति में सूर्य की क्रिया से बहुत कुछ अंतर पड़ता रहता है। चंद्रमा अपने अक्ष पर महीने में एक बार के हिसाब से घूमता है इससे प्रायः उसका एकही पार्श्व पृथ्वी की ओर सदा रहता है। इसी विलक्षणता को देख कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ था कि यह अक्ष पर घूमता ही नहीं है। चंद्रमंडल में बहुत से धब्बे दिखाई देते हैं जिन्हें पुराणानुसार जन साधारण कलंक आदि कहते हैं। पर एक अच्छी दूरबीन के द्वारा देखने से ये धब्बे गायब हो जाते हैं और इनके स्थान पर पर्वत, घाटी, गर्त ज्वालामुखी पर्वतों के विवर आदि अनेक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा का अधिकांश तल पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों से पूर्ण किसी प्रदेश का सा है। चंद्रमा में वायुमंडल नहीं जान पड़ता और न बादल या जल ही के कोई चिह्न दिखाई पड़ते हैं। चंद्रमा में गरमी बहुत थोड़ी दिखाई पड़ती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के मत से भी चंद्रमा एक ग्रह है जो सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। भास्कराचार्य्य के मत से चंद्रमा जलमय है, इसमें निज का कोई तेज नहीं है। उसका जितना भाग सूर्य्य के सामने पड़ता है उतना दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार धूप में घड़ा रखने से उसका एक पार्श्व चमकता है और दूसरा पार्श्व उसी की छाया से अप्रकाशित रहता है। जिस दिन चंद्रमा के नीचे के भाग पर अर्थात् उस भाग पर जो हम लोगों की ओर रहता है, सूर्य्य का प्रकाश बिलकुल नहीं पड़ता उस दिन अमावास्या होती है। ऐसा तभी होता है जब सूर्य्य और चंद्र एक राशिस्थ अर्थात् सम सूत्र में होते हैं। चंद्रमा बहुत शीघ्र सूर्य्य की सीध से पूर्व की ओर हट जाता है और उसकी एक एक कला क्रमशः प्रकाशित होने लगती है। चंद्रमा सूर्य्य की सीध (सम सूत्रपात) से जितना ही अधिक हटता जायगा उसका उतना ही अधिक भाग प्रकाशित होता जायगा। द्वितीया के दिन चंद्रमा के पश्चिमांश पर सूर्य्य का जितना प्रकाश पड़ता है, उतना भाग प्रकाशित दिखाई पड़ता है। सूर्य्यसिद्धांत के मतानुसार जब चंद्रमा सूर्य्य की सीध से ६ राशि पर चला जाता है तब उसका समग्र आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमा का पूरा चंद्रमा दिखाई पड़ता है। पूर्णिमा के अनंतर ज्यों ज्यों चंद्रमा बढ़ता जाता है त्यों त्यों सूर्य्य की सीध से उसका अंतर कम होता जाता है अथात् वह सूर्य की सीध की ओर आ जाता है और प्रकाशित भाग क्रमशः अंधकार में पड़ता जाता है। अनुपात के मतानुसार प्रकाशित और अप्रकाशित भागों की ह्रस ह्रास और वृद्धि का हिसाब जाना जा सकता है। यही मत आर्य्यभट, श्रीपति, ज्ञानराज, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि सभी पुराने ज्योतिषियों का है। चंद्रमा में जो धब्बे दिखाई पड़ते हैं उनके विषय में सूर्य्यसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि, वृहत्संहिता इत्यादि में कुछ नहीं लिखा है। हरिवंश में लिखा है कि ये धब्बे पृथ्वी की छाया हैं। कवि लोगों ने चकोर और कुमुद को चंद्रमा पर अनुरक्त वर्णन किया है। पुराणानुसार

चंद्रमा समुद्र-मथन के समय निकले हुए चौदह रत्नों में से हैं और देवताओं के बीच गिने जाते हैं। जब एक असुर देवताओं की पंक्ति में चुपचाप बैठ कर अमृत पी गया तब चंद्रमा ने यह वृत्तांत विष्णु से कह दिया। विष्णु ने उस असुर के दो खंड कर दिये जो राहु और केतु हुए। वही पुराना वैर लेकर राहु ग्रहण के समय चंद्रमा को ग्रसा करता है। चंद्रमा के धब्बे के विषय में भी भिन्न भिन्न कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग कहते हैं कि दक्षप्रजापति के शाप से चंद्रमा को राजयक्ष्मा रोग हुआ, उसी की शांति के लिये वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं। किसी किसी के मत से चंद्रमा ने अपनी गुरु-पत्नी के साथ गमन किया था इसी कारण शापवश उनके शरीर पर काला दाग पड़ गया है। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि जब इंद्र ने अहल्या का सतीत्व भंग किया था तब चंद्रमा ने इंद्र की सहायता दी थी। गौतम ऋषि ने क्रोध वश उन्हें अपने कमंडल और मृगचर्म्म से मारा जिसका दाग उनके शरीर पर पड़ गया।

पर्य्या०—हिमांशु। इंदु। कुमुदबांधव। विधु। सुधांशु। शुभ्रांशु। ओषधीश। निशापति। अज। जैवातृक। सोम। ग्लौ। मृगांक। कलानिधि। द्विजराज। शशधर। नक्षत्रराज। क्षपाकर। दोषाकर। निशानाथ। शर्वरीश। एणांक। शीतरश्मि। सारस। श्वेतवाहन। नक्षत्रनेमि। उडुप। सुधासूति। तिथिप्रणी। अमति। चंदिर। चित्राचीर। पक्षधर। रोहिणीश। अत्रिनेत्रज। पत्रज। सिंधुजन्मा। दशाश्व। तारापीड़। निशामणि। मृगलांछन। दाक्षायणीपति। लक्ष्मीसहज। सुधाकर। सुधाधार। शीतभानु। तमोहर। तुषारकिरण। हरि। हिमद्युति। द्विजपति। विश्वप्सा। अमृतदीधिति। हरिणांक। रोहिणीपति। सिंधुनंदन। तमोनुद। एणतिलक। कुमुदेश। क्षीरोदनंदन। कांत। कलावान्। यामिनीपति। सिप्र। सुधानिधि। तुंगी। पक्षजन्मा। समुद्रनवनीत। पीयूषमहा। शीतमरीचि। त्रिनेत्रचूड़ामणि। सुधांग। परिज्ञा। तुंगीपति। पर्व्वधि। क्लेदु। जयंत। तपस। खचमस। विकस। दशवाजी। श्वेतवाजी। अमृतसू। कौमुदीपति। कुमुदिनीपति। दक्षजापति। कलामृत। शशभृत्। एणभृत्। छायाभृत्। निशारत्न। निशाकर। रजनीकर। क्षपाकर। अमृत। श्वेतद्युति। शशि। शश लांछन। मृगलांछन।

चंद्रमात्रा—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में तालों के १४ भेदों में से एक।

चंद्रमाललाट—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रमा + ललाट] (वह जिस के माथे पर चंद्रमा हो) शिव। महादेव।

चंद्रमाललाम संज्ञा पुं० [सं० चंद्रमा + ललाम = तिलक, मस्तक पर का चिह्न] महादेव। शंकर! शिव। उ०—तहाँ दसरथ के समरथ नाथ तुलसी के चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमाललाम को। —तुलसी।

चंद्रमाला—संज्ञा पुं० [सं०] (१) २८ मात्राओं का एक छंद। उ०—नृपहि महाभट गुणि अति रिस करि अगणित सायक मारयो। (२) चंद्रहार। एक प्रकार का हार।

चंद्रमास—संज्ञा पुं० दे० "चांद्रमास"।

चंद्रमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] (मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले) शिव। महादेव। उ०—तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू।—तुलसी।

चंद्ररेखा. चंद्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) चंद्रमा की किरन। (३) द्वितीया का चंद्रमा। (४) बकुची। (५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में म र म य य (ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ) होता है। उ०—मैं री मैया यही लैहों चंद्रलेखा खिलौना।

चंद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का लोक। उ०—चंद्रलोक दीन्हेहो शशि को तब फगुआ में हरि आप। सब नक्षत्र को राजा कीन्हो शशि मंडल में छाप।—सूर।

चंद्रवंश—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों के दो आदि और प्रधान कुलों में से एक जो पुरूरवा से आरंभ हुआ था।

चंद्रवंशी—वि० [सं० चंद्रवंशिन्] चंद्रवंश का। जो क्षत्रियों के चंद्रवंश में उत्पन्न हुआ हो।

चंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] बीरबहूटी।

विशेष—जान पड़ता है कि इंद्रवधू को किसी कवि ने 'इंदुवधू' समझ कर ही इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है।

चंद्रवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण, और सगण (ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ।।ऽ) होते हैं। उ०—रे नभा सिव ललाट शशि समा। जानि त्यागहु धतूर हिय तमा।

चंद्रवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

चंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोमलता। (२) माधवी लता। (३) प्रसारिणी। पसरन।

चंद्रवार—संज्ञा पुं० [सं०] सोमवार।

चंद्रवाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

चंद्रवेप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। उ०—जहँ चंद्रवेप करि कै वनिता को ह्वै रहे।—लल्लू।

चंद्रव्रत—संज्ञा पुं० दे० "चांद्रायण"।

चंद्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदनी। चंद्रिका। (२) अटारी। धुर ऊपर की कोठरी। सबसे ऊपर का बँगला। उ०—(क) चंद्रशाला, केलिशाला, पानशाला, पाकशाला, गजशाला हेम की जड़ी मनी।—रघुराज। (ख) धाक चंद्रशाला छवि-माला। रजत कनक की बनी दिवाला।—रघुराज। (ग) चढ़ी उतंग चंद्रशाला में लखी अयोध्या नगरी।—रघुराज।

चंद्रशूर—संज्ञा पुं० [सं०] चंसुर। हालों या हालिम नाम का पौधा।

चंद्रशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] द्वितीया के चंद्रमा के दोनों नुकीले छोर।

चंद्रशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका शिरोभूषण चंद्रमा है। शिव। महादेव। (२) एक पर्वत का नाम। (आराकान में इस नाम का एक पर्वत है)। (३) एक पुराण-प्रसिद्ध नगर का नाम। (४) संगीत में अष्टतालों में से एक। एक प्रकार का सात ताला ताल जिसका बोल इस प्रकार है—•••••••••झें झें। तक धी तक••• ऽ •••दिधि तक दिगिदां ऽ थोंगा। गिड़ि थों।

चंद्रस†-संज्ञा पुं० [देश०] गंधाबिरोज़ा।

चंद्रसरोवर-संज्ञा पुं० [सं०] व्रज का एक तीर्थस्थान जो गोवर्द्धन गिरि के समीप है।

चंद्रहार-संज्ञा पुं० [सं०] गले में पहनने का एक गहना या माला जिसमें अर्द्धचंद्राकार क्रमशः छोटे बड़े अनेक मनके होते हैं। बीच में पूर्ण चंद्र के आकार का गोल पनवा होता है। यह हार सोने का बनता है और प्रायः जड़ाऊ होता है। नौलखा हार।

चंद्रहास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड्ग। तलवार। (२) रावण की तलवार का नाम। उ०—चंद्रहास हर मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं।—तुलसी। (३) चाँदी।

चंद्रहासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

चंद्रांकित-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

चंद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी इलायची। (२) वितान। चँदवा। चँदोवा। (३) गुड़ूची। गुर्च।

संज्ञा स्त्री० [सं० चद्र] मरने के समय की वह अवस्था जब टकटकी बँध जाती है, गला कफ से रुँध जाता है और बोला नहीं जाता। उ०—उधर बाप को चंद्रा लग रही थी इधर बेटे का ब्याह हो रहा था।

क्रि० प्र०—लगना।

चंद्रागति-घात-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृदंग की एक थाप। उ०—ताल धरे वनिता मृदंग चंद्रागतिघात बजै थोरी थोरी।

चंद्रातप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाँदनी। चंद्रिका। (२) चँदवा। वितान।

चंद्रापीड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) काश्मीर का एक राजा जिसका दूसरा नाम वज्रादित्य था। यह प्रतापादित्य का ज्येष्ठ पुत्र था और उसकी मृत्यु के उपरांत ६०४ शकाब्द में सिंहासन पर बैठा था। यह अत्यंत उदार और धर्मात्मा राजा हुआ।

चंद्रायण*-संज्ञा पुं० दे० "चांद्रायण"।

चंद्रायतन-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रशाला।

चंद्रार्द्धचूड़ामणि-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

चंद्रालोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। (२) जयदेव नामक कवि रचित अलंकार का एक संस्कृत ग्रंथ। (अधिकांश लोगों का मत है कि चंद्रालोककार जयदेव, गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं।)

चंद्रावर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद में ४ नगण पर १ सगण होता है और ८+७ पर विराम। विराम न होने से 'शशिकला' (मणि गुण शरभ) वृत्त होता है। इसका दूसरा नाम 'मणि-गुण-निकर' है। उ०—नचहु सुखद यशुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह सखि सुख अमिता।

चंद्रावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण में अनुरक्त एक गोपी का नाम जो चंद्रभानु की कन्या थी।

चंद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। ज्योत्स्ना। कौमुदी। (२) मोर की पूँछ के पर का गोल चिह्न या आँख। मोर की पूँछ पर का वह अर्द्ध चंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल से घिरा होता है। उ०—सोभित सुमन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम।—सूर। (३) बड़ी इलायची। (४) चाँदा नाम की मछली। (५) चंद्रभागा नदी। (६) छोटी इलायची। (७) कर्णस्फोटा। कनफोटा घास। (८) जूही या चमेली। (९) सफ़ेद फूल की भटकटैया। (१०) मेथी। (११) चंद्रशूर। चनसुर। (१२) एक देवी। (१३) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नन तन ग (।।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽ) और ७+६ पर यति होती है। उ०—न नित लगि कहु आन को धाव रे। भजहु हर घरी राम को बावरे। (१४) वासपुष्पा। (१५) संस्कृत व्याकरण का एक ग्रंथ। (१६) माथे पर का एक भूषण। बेंदी। बेंदा। उ०—यहि भाँति नाचत गोपिका सब थकित ह्वै झुकि झुकि रहीं। कहिं माल पायल चंद्रिका खसि परी नकबेसर कहीं।—विश्राम। (१७) स्त्रियों का एक प्रकार का मुकुट या शिरोभूषण जिसे प्राचीन काल की रानियाँ धारण करती थीं। चंद्रकला।

चंद्रिकाभिसारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्लाभिसारिका नायिका।

चंद्रिकोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] शरदोत्सव। शरत् पूनो का उत्सव।

चंद्रिल-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

चंद्रोदय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा का उदय। (२) वैद्यक में एक रस जो गंधक, पारे और सोने को भस्म कर के बनाया जाता है। यह रस बड़ा उत्तेजक होता है। मरणासन्न मनुष्य को देने से उसकी बेहोशी थोड़ी देर के लिये दूर हो जाती है। इसे पुष्टई की तरह भी लोग खाते हैं। (३) चँदवा। चँदोवा। वितान।

चंद्रोपराग-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रग्रहण।

चंद्रोपल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांतमणि।

चंद्रौल–संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र] राजपूतों की एक जाति वा शाखा।

चंप–संज्ञा पुं० [सं० चंपक] (१) चंपा। (२) कचनार। कोविदार वृक्ष।

चंपई–वि० [हिं० चंपा] चंपा के फूल के रंग का। पीले रंग का।

चंपक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा। (२) चंपा केला। (३) सांख्य में एक सिद्धि जिसे रम्यक भी कहते हैं। दे० "रम्यक"। (४) संपूर्ण जाति का एक राग जिसके गाने का समय तीसरा पहर है। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है।

चंपकमाला–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंपा के फूलों की माला। (२) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पाद में भगण मगण सगण और एक गुरु (ऽ।। ऽऽऽ ।।ऽ ऽ) होता है। उ०—भूमि लगी काहू कर नाहीं। कृष्ण सगा साँचो जग माहीं।

चंपकालु–संज्ञा पुं० [सं०] कटहल या रोटीफल का पेड़।

चंपत–वि० [देश०] चलता। गायब। अंतर्द्धान।

क्रि० प्र०—बनना।—होना।

चँपना–क्रि० अ० [सं० चप्] (१) दबना। बोझ से दबना। (२) लज्जा से दबना। लज्जित होना। (३) उपकार से दबना। एहसान से दबना।

चंपा–संज्ञा पुं० [सं० चंपक] (१) एक मझोले कद का पेड़ जिसमें हलके पीले रंग के फूल लगते हैं। इन फूलों में बड़ी तीव्र सुगंध होती है। चंपा दो प्रकार का होता है। एक साधारण चंपा, दूसरा कटहलिया चंपा। कटहलिया चंपा के फूल की महक पके कटहल से मिलती हुई होती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपा के फूल पर भौंरे नहीं बैठते। जंगलों में चंपे के जो पेड़ होते हैं वे बहुत बड़े और ऊँचे होते हैं। इसकी लकड़ी पीली, चमकीली और मुलायम, पर बहुत मज़बूत होती है और नाव, टेबुल, कुरसी आदि बनाने और इमारत के काम में आती है। हिमालय की तराई, नैपाल, बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत के जंगलों में यह अधिकता से पाया जाता है। चित्रकूट में इसकी लकड़ी की मालाएँ बनती हैं। (२) एक पुरी जो प्राचीन काल में अंगदेश की राजधानी थी। यह वर्त्तमान भागलपुर के आस पास कहीं रही होगी। कर्ण यहीं का राजा था। (३) एक जाति का मीठा केला जो बंगाल में होता है। (४) घोड़े की एक जाति। (५) एक प्रकार का कुसियार या रेशम का कीड़ा जिसके रेशम का व्यवहार पहले आसाम में बहुत होता था। (६) एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो दक्षिण-भारत में अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी कुछ पीलापन लिए बहुत मज़बूत होती है और इमारत के काम के अतिरिक्त गाड़ी, पालकी, नाव आदि के बनाने के काम में भी आती है। इसे "सुलताना चंपा" भी कहते हैं।

चंपाकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चंपा + कली] गले में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जिसमें चंपा की कली के आकार के सोने के दाने रेशम के तागे में गुँथे रहते हैं।

चंपानेर–संज्ञा पुं० [हिं० चंपा + नगर] एक पुराना नगर जिसके खँड़हर अब तक बंबई के पंचमहाल ज़िले के अंतर्गत हैं। ईसा की १५ वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक यह एक राजपूत सरदार के अधिकार में था। पर सन् १४८२ में अहमदाबाद के बादशाह महमूद ने राजपूतों के आक्रमण से तंग आकर इसे ले लिया और इसके पास ही महम्मदाबाद चंपानेर बसाया। इस नगर को हुमायूँ ने सन् १५३३ में उजाड़ दिया। सन् १८०३ तक इसमें ४००–५०० आदमियों की बस्ती थी। पर अब दो चार घर रह गए हैं।

चंपारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक जंगल जो कदाचित् उस स्थान पर रहा हो जिसे आज कल चंपारन कहते हैं।

चंपारन–संज्ञा पुं० [सं० चंपारण्य] बिहार प्रांत का एक प्रदेश वा ज़िला।

चंपू–संज्ञा पुं० [सं०] गद्यपद्यमय काव्य। वह काव्यग्रंथ जिसमें गद्य के बीच बीच में पद्य भी हों।

चँपौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँपना] जुलाहों के करघे की भँजनी में एक पतली लकड़ी जो दूसरी भाँज को दबाने के लिये लगी रहती है।

चंबल–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मण्वती] (१) एक नदी जो विंध्य पर्वत से निकल कर इटावे से १२ कोस पर जमुना में जा मिली है। (२) नहरों वा नालों के किनारे पर लगी हुई लकड़ी जिससे सिँचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाते हैं।

संज्ञा पुं० पानी की बाढ़।

मुहा०—चंबल लगना = ख़ूब पानी बढ़ना। जलमय होना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चुंबक] (१) भीख माँगने का कटोरा या खप्पर। (२) चिलम का सरपोश।

चंबली–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चुंबक] एक प्रकार का छोटा प्याला।

चंबी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कागज़ या मोमजामे का एक तिकोना टुकड़ा जो कपड़ों पर रंग छापते समय उन स्थानों पर रक्खा जाता है जहाँ रंग चढ़ाना मंजूर नहीं होता। पट्टी। कतरनी।

चंबू–संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का धान जो पहाड़ों में बिना सींची जमीन पर चैत में होता है। (२) ताँबे, पीतल या और किसी धातु का छोटे मुँह का सुराहीनुमा बरतन जिससे हिंदू देवमूर्त्तियों पर जल चढ़ाते हैं। (३) एक प्रकार का लोटा जो विशेष कर औरंगाबाद में बनता है। इसका फूल बहुत उत्तम होता है।

चँबेलिया†–वि० दे० "चमेलिया"।

चँबेली–संज्ञा स्त्री० दे० "चमेली"।

चँवर–संज्ञा पुं० [सं० चामर] [स्त्री० अल्पा० चँवरी] (१) सुरा

गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो काठ, सोने, चाँदी आदि की डाँड़ी में लगा रहता है। यह राजाओं या देव-मूर्त्तियों के सिर पर, पीछे या बगल से डुलाया जाता है जिसमें मक्खियाँ आदि न बैठने पावें। कभी कभी यह खस का भी बनता है। मोर की पूँछ का जो बनता है उसे मोर-छल कहते हैं। चँवर प्रायः तिब्बती और भोटिया ले आते हैं। (२) घोड़े और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगी। उ०—तैसे चँवर बनाए औ घाले गल झंप। बँधे सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप।—जायसी।

चँवरढार—संज्ञा पुं० [हिं० चँवर+ढारना] चँवर डोलानेवाला सेवक। उ०—चँवरढार दुइ चँवर डोलावहिँ।—जायसी।

चँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चँवर] लकड़ी के बेंट या डाँड़ी में लगा हुआ घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जिससे घोड़े के ऊपर की मक्खियाँ उड़ाई जाती हैं।

चंसुर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसुर] हालों या हालिम नाम का पौधा जो लगभग २ फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते पतले और कटावदार गुलदाउदी के पत्तों के से होते हैं। पत्तों का लोग साग खाते हैं। पौधे के बीज को भी चंसुर कहते हैं।

च—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कच्छप। कछुआ। (२) चंद्रमा। (३) चोर। (४) दुर्जन।

चइ—[अनु०] महावतों की बोली का एक शब्द जिसका व्यवहार हाथी को घुमाने के लिये किया जाता है।

चइत†—संज्ञा पुं० दे० "चैत"।

चइन†—संज्ञा पुं० दे० "चैन"।

चई—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] पिपरामूल की जाति का और लता की तरह का एक प्रकार का पेड़ जो दक्षिण भारत तथा अन्य स्थानों में नदियों और जलाशयों के किनारे होता है। इसकी जड़ जल्दी नष्ट नहीं होती और यदि वृक्ष काट भी लिया जाय तो उसमें फिर पत्ते निकल आते हैं। इसके पत्तों का आकार पान का सा होता है। इसकी जड़ तथा लकड़ी दवा के काम में आती है। दे० "चाव"।

चउँहान—संज्ञा पुं० दे० "चौहान"।

चउक†—संज्ञा पुं० दे० "चौक"।

चउकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकी"

चउतरा—संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा"।

चँउथा—वि० दे० "चौथा"।

चउदस†—संज्ञा स्त्री० दे० "चौदस"।

चउदह†—वि० दे० "चौदह"।

चउपाई†*—० संज्ञा स्त्री० दे० "चौपाई"।

चउपारि†—संज्ञा स्त्री दे० "चौपाल"।

चउर*†—संज्ञा पुं० [हिं० चँवर] चँवर। मोरछल। उ०—धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिये। चउर चीर उपहार हार मनिगन लिये।—तुलसी।

चउरा—संज्ञा पुं० दे० "चौरा"।

चउहट्ट—संज्ञा पुं० [हिं०] चौहट्ट। चौराहा।

चऊतरा—संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा"।

चक—[सं० चक्र] (१) चकई नाम का खिलौना। उ०—इत आवन दै जात दिखाई ज्यों भँवरा चक डोर। उत तें सूत न टारत कतहूँ मोसों मानत कोर।—सूर। (२) चक्रवाक पक्षी। चकवा। उ०—संपति चकई भरत चक, मुनि-आयसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनसार।—तुलसी। (३) चक्र नामक अस्त्र। (४) चक्का। पहिया। (५) जमीन का बड़ा टुकड़ा। भूमि का एक भाग। पट्टी।

यौ०—चकबंदी।

मुहा०—चक काटना = भूमि का विभाग करना। जमीन की हद बाँधना।

(६) छोटा गाँव। खेड़ा। पट्टी। पुरवा। (७) करघे की बैसर के कुलवाँसे से लटकती हुई रस्सियों से बँधा हुआ डंडा जिसके दोनों छोरों पर से चकडोर नीचे की ओर जाती है। (जुलाहे)। (८) किसी बात की निरंतर अधिकता। तार।

मुहा०—चक बँधना = बराबर बढ़ता जाना। एक पर एक अधिक होता जाना। तार बँधना। उ०—यहाँ आकर काम करो, देखो रुपयों का चक बँध जाता है।

(९) अधिकार। दखल।

मुहा०—चक जमना = रंग जमना। अधिकार होना।

(१०) सोने का एक गहना जिसका आकार गोल और उभारदार होता है। इसका चलन पंजाब में है। चौक।

वि० भरपूर। अधिक। ज्यादा। उ०—(क) इन्होंने चक माल मारा है। (ख) उनकी चक छनी है। (भंगड़)।

वि० [सं०] भ्रांत। चकपकाया हुआ। भौचक्का। उ०—चक चकित चित्त चरबीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत।—पद्माकर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधु। (२) खल।

चकई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चकवा] मादा चकवा। मादा सुरखाब। दे० "चकवा"। उ०—(क) सीतैं सिय दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] घिरनी या गड़ारी के आकार का एक छोटा गोल खिलौना जिसके घेरे में डोरी लपेटी रहती है। इसी डोरी के सहारे लड़के इसे फिराते या नचाते हैं। उ०—(क) भौंरा चकई लाल पाट को लेंडुआ माँगु खेलौना।—सूर। (ख) इतनैं उत उतनैं इतैं छिन न कहूँ ठहराति। जक न परति चकई भई, फिरि आवति फिरि जाति।—बिहारी।

वि० गोल बनावट का। जैसे, चकई आड़ू।

चकचकाना–क्रि० अ० [देश०] (१) पानी, खून, रस या और किसी द्रव पदार्थ का सूक्ष्म कणों के रूप में किसी वस्तु के भीतर से निकलना। रस रस कर ऊपर आना। उ०—जहाँ जहाँ बेत लगा है, खून चकचका आया है। (२) भींग जाना। उ०—चक चकित चित्त चरबीन चुभि चकचकाइ चंडी रहत।—पद्माकर।

चकचकी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] करताल नाम का बाजा।

चकचाना*†–क्रि० [देश०] चौंधियाना। चकाचौंध लगना। उ०—तो पद चमक चकचाने चंद्रचूड़ चष चितवत एकटक जंक बँध गई है।—चरण।

चकचाल†–संज्ञा पुं० [सं० चक्र+हिं० चाल] चक्कर। भ्रमण। फेरा। उ०—माया मत चकचाल करि चंचल कीये जीव। माया माते मद पिया दादू बिसरा पीव।—दादू।

चकचाव†*–संज्ञा पुं० [देश०] चकाचौंध। उ०—गोकुल के चष सें चकचाव गो चोर लों चौकि अयान बिसासी।

चकचून–वि० [सं० चक्र+चूर्ण] चूर किया हुआ। पिसा हुआ। चकनाचूर। उ०—पान, सुपारी खैर कहँ मिलै करै चकचून। तब लगि रंग न राचै जब लगि होय न चून।—जायसी।

चकचौंध–संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध"।

चकचौंधना–क्रि० अ० [सं० चक्षुस्+अंध] आँख का अत्यंत अधिक प्रकाश के सामने ठहर न सकना। अत्यंत प्रखर प्रकाश के सामने दृष्टि स्थिर न रहना। आँख तिलमिलाना। चकाचौंध होना।

क्रि० स० आँख में चमक उत्पन्न करना। आँखों में तिलमिलाहट पैदा करना। चकाचौंधी उत्पन्न करना। उ०—(क) अंध धुंध अंबर ते गिरि पर मानो परत बज्र के तीर। चमकि चमकि चपला चकचौंधति स्याम कहत मन धीर।—सूर। (ख) चकचौंधति सी चितवै चित मैं चित सोवत हूँ महँ जागत है।—केशव।

चकचौंधी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध"।

चकचौह*–संज्ञा स्त्री० [देश०] चकाचौंध।

चकचौहना*–क्रि० स० [देश०] चाह से देखना। आशा लगाए टक बाँध कर देखना। उ०—जनु चातक मुख बूँद सेवाती। राजा चकचौंहत तेहि भाँती।—जायसी।

चकड़वा–संज्ञा पुं० दे० "चकरवा"।

चकडोर–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) चकई की डोरी। चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत। उ०—(क) खेलत अवध खोरि गोली भँवरा चकडोरि मूरति मधुर बसै तुलसी के हिय रे।—तुलसी। (ख) दे मैया भँवरा चकडोरी। जाइ लेहु आरे पर राखे काल्हि मोल लै राखे कोरी।—सूर। (२) जुलाहों के करघे में वह डोरी जो चक वा नचनी में लगी हुई नीचे लटकती है और जिसमें बेसर बँधी रहती है।

चकताई–संज्ञा पुं० दे० "चकत्ता"।

चकत्त–संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] चकोटा। दाँत की पकड़।

मुहा०—चकत मारना = दाँत से मांस आदि नोच लेना। चकोटा मारना। दाँतों से काट खाना।

चकती–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रवत्] (१) किसी चद्दर के रूप की वस्तु का छोटा गोल टुकड़ा। चमड़े, कपड़े आदि में से काटा हुआ गोल वा चौकोर छोटा टुकड़ा। पट्टी। गोल वा चौकोर धज्जी। उ०—इस पुराने कपड़े में से एक चकती निकाल लो। (२) किसी कपड़े, चमड़े, बरतन इत्यादि के फटे वा फूटे हुए स्थान पर दूसरे कपड़े, चमड़े वा धातु (चद्दर) इत्यादि का टँका वा लगा हुआ टुकड़ा। किसी वस्तु के फटे फूटे स्थान को बंद करने वा मूँदने के लिये लगी हुई पट्टी वा धज्जी। थिगली।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—बादल में चकती लगाना = अनहोनी बात करने का प्रयत्न करना। असंभव कार्य्य करने का आयोजन करना। बहुत बढ़ी चढ़ी बात कहना।

(३) दुंबे भेंड़े की गोल और चौड़ी दुम।

चकत्ता–संज्ञा पुं० [सं० चक्र+वत्त] (१) शरीर के ऊपर बड़ा गोल दाग़। चमड़े पर पड़ा हुआ धब्बा वा दाग़। (रक्तविकार के कारण चमड़े के ऊपर लाल, नीले वा काले चकत्ते पड़ जाते हैं।) (२) खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच पड़ी हुई चिपटी और बराबर सूजन जो उभड़ी हुई चकती की तरह दिखाई देती है। ददोरा। (३) दाँतों से काटने का चिह्न। दाँत चुभने का निशान।

क्रि० प्र०—डालना।

मुहा०—चकत्ता भरना = दाँतों से काटना। दाँतों से मांस निकाल लेना। चकत्ता मारना = दाँतों से काटना।

संज्ञा पुं० [तु० चग़ताई] (१) मोग़ल वा तातार अमीर चग़ताई खाँ जिसके वंश में बाबर अकबर आदि भारतवर्ष के मोग़ल बादशाह थे। उ०—मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय सीस, खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की।—भूषण। (२) चग़ताई वंश का पुरुष। उ०—मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीनो सरजा सुरेस ज्यों दुचित्त ब्रजराज को।—भूषण।

चकदार–संज्ञा पुं० [हिं० चक+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह जो दूसरे की ज़मीन पर कुआँ बनवावे और उस ज़मीन का लगान दे।

चकना*–क्रि० अ० [सं० चक = भ्रांत] (१) चकित होना। भौंचक्का होना। चकपकाना। विस्मित होना। उ०—(क) चित्त चितेरी रही चकि सी जकि एक तें है गई है तस्वीर सी।—बेनी प्रवीन। (ख) यदुबंसी धनि धनि सुर कहहीं हरि की रीति देखि चकि रहहीं।—रघुराज। (२) चौंकना

आशंकायुक्त होना । उ०—(क) चित्र लिये लल को फेर मैं। भवन अकेली हूँ भरमैं। संग सखीनहुँ सों चकि कै। यों समता मिलवै तकि कै।—गुमान। उ०—(ख) फूलत फूल गुलाबन के चटकाहटि चौंकि चकी चपला सी।—पद्माकर। (ग) अचकी लची चौंकी चकी मुख फेरि तरेरि बड़ी अँखियाँ चितई।—बेनी।

चकनाचूर—वि० [हिं० चक = भरपूर + चूर] (१) जिसके टूट फूट कर बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो गए हों। चूर चूर। खंड खंड। चूर्णित। उ०—साहब का घर दूर है जैसी लंबी खजूर। चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरै तो चकनाचूर।—कबीर। (२) बहुत थका हुआ। श्रम से शिथिल। अत्यंत श्रांत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चकपक—वि० [सं० चक = भ्रांत] भौंचक्का। चकित। हक्काबक्का। स्तंभित।

चकपकाना—क्रि० अ० [हिं० चक = भ्रांत] (१) आश्चर्य से इधर उधर ताकना। विस्मित होकर चारों ओर देखना। भौंचक्का होना। (२) आशंका से इधर उधर ताकना। चौंकना।

चकफेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चक + हिं० फेरी] किसी वृत्त वा मंडल के चारों ओर फिरने की क्रिया। परिक्रमा। भँवरी।

क्रि० प्र०—करना।—फिरना।—होना।

चकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चक + फा० बंदी] भूमि को कई भागों में विभक्त करने की क्रिया। ज़मीन की हदबंदी।

चकबस्त—संज्ञा पुं० [फा०] ज़मीन की हदबंदी। किश्तवार। संज्ञा पुं० काश्मीरी ब्राह्मणों का एक भेद।

चकमक—संज्ञा पुं० [तु०] एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर चोट पड़ने से बहुत जल्दी आग निकलती है।

विशेष—पहले यह बंदूकों पर लगाया जाता था और इसी के द्वारा आग निकाल कर बंदूक छोड़ी जाती थी। दियासलाई निकलने के पहले इसी पर सूत रख कर और एक लोहे से चोट देकर आग झाड़ते थे।

चकमा—संज्ञा पुं० [सं० चक = भ्रांत] (१) भुलावा। धोखा। उ०—कल तो तुमने उसको गहरा चकमा दिया।

मुहा०—चकमा खाना = धोखा खाना। भुलावे में आना। चकमा देना = धोखा देना। भुलवाना। भ्रांत करना।

(२) हानि। नुकसान।

क्रि० प्र०—उठाना।—देना।

(३) लड़कों के एक खेल का नाम।

संज्ञा पुं० [देश०] बबून नामक बंदर की एक जाति।

चक़माक़—संज्ञा पुं० दे० "चक्मक़"।

चक़माक़ी—वि० [तु० चक्मक़] चकमक का। जिसमें चकमक लगा हो।

संज्ञा स्त्री० बंदूक। (लश०)

चकर†*—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) चक्रवाक पक्षी। चकवा। (२) दे० "चक्कर"।

यौ०—चकर मकर = धोखा। भुलावा। झाँसा। (लश०)

चकरबा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] (१) चक्कर। फेर। कठिन स्थिति। ऐसी अवस्था जिसमें यह न सूझे कि क्या करना चाहिए। असमंजस। (२) झगड़ा। बखेड़ा। टंटा।

क्रि० प्र०—में पड़ना।

चकरसी—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो पूरबी बंगाल आसाम और चटगाँव में होता है। इसके हीर की चमकीली और मज़बूत लकड़ी, मेज़, कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती है। इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

चकरा†—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पानी का भँवर।

वि० [स्त्री० चौड़ी] चौड़ा। विस्तृत। उ०—सौ योजन विस्तार कनकपुरि चकरी जोजन बीस।—सूर।

चकराना—क्रि० अ० [सं० चक्र] (१) (सिर का) चक्कर खाना। (सिर) घूमना। उ०—देखते ही मेरा सिर चकराने लगा। (२) भ्रांत होना। चकित होना। भूलना। उ०—वहाँ जाते ही तुम्हारी बुद्धि चकरा जायगी। (३) आश्चर्य से इधर उधर ताकना। चकपकाना। चकित होना। हैरान होना। घबड़ाना।

क्रि० स० आश्चर्य में डालना। चकित करना। हैरान करना।

चकरानी—संज्ञा स्त्री० [फा० चाकर] दासी। सेवकिनी। टहलुई।

चकरिया†‡—संज्ञा पुं० [फा० चाकरी + इया (प्रत्य०)] चाकरी करनेवाला। नौकर। सेवक। टहलुवा।

चकरिहा†‡—संज्ञा पुं० दे० "चकरिया"।

चकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री] (१) चक्की। (२) चक्की का पाट। उ०—जँतइत के मन हरिनि ललइच कोदइत के मन दौरा हो। दुइ चकरी जिन दरन पसारहु तब पैहौ ठिक ठौरा हो।—कबीर। (३) चकई नाम का लड़कों का खिलौना। उ०—बोलि लिये सब सखा संग के खेलत स्याम नंद की पौरी। तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक कर भौंरा चकरीन की जोरी।—सूर।

वि० चक्की के समान इधर उधर घूमनेवाला। भ्रमित। अस्थिर। चंचल। उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी। मन क्रम बचन नंद नंदन उर यह दृढ़ करि पकरी। जागत सोवत स्वप्न दिवस निसि 'कान्ह कान्ह' जक री। सुनत हिये लागत हमैं ऐसो ज्यों करुई ककरी। सु तौ ब्याधि हमको लै आए देखी सुनी न करी। यह तौ सूर तिन्हैं लै सौंपो जिनके मन चकरी।—सूर।

वि० स्त्री० चौड़ी। दे० "चकरा"।

चकरीगिरह—संज्ञा स्त्री० [जहाजी] बँवड़े में लगी हुई रस्सी की गाँठ जो उसे रोक रखती है। (लश०)

चकल—संज्ञा पुं० [हिं० चक्का] (१) किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ने की क्रिया।

(२) वह मिट्टी की पींड़ी जो पौधे को दूसरी जगह लगाने के लिये उखाड़ते समय जड़ के आस पास लगी रहती है।

क्रि० प्र०—उठाना।

चकलई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चकला] चौड़ाई।

चकला-संज्ञा पुं० [सं० चक्र, हिं० चक + ला (प्रत्य०)] (१) पत्थर या काठ का गोल पाटा जिस पर रोटी बेली जाती है। चौका। (२) चक्की। (३) देश का एक विभाग जिसमें कई गाँव या नगर होते हैं। इलाक़ा। ज़िला।

यौ०—चकलेदार। चकलाबंदी।

(४) व्यभिचारिणी स्त्रियों का अड्डा। कसबीखाना। रंडियों के रहने का घर या महल्ला।

वि० [स्त्री० चकली] चौड़ा।

चकलाना-क्रि० स० [हिं० चकल] किसी पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ना। चकल उठाना।

क्रि० स० [हिं० चकला] चौड़ा करना।

चकली-संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र, हिं० चक] (१) घिरनी। गड़ारी। (२) छोटा चकला या चौका जिस पर चंदन घिसते हैं। होरसा।

वि० स्त्री० चौड़ी।

चकलेदार-संज्ञा पुं० [देश०] किसी प्रदेश का शासक वा कर संग्रह करनेवाला। किसी सूबे का हाकिम वा मालगुज़ारी वसूल करनेवाला।

विशेष—अवध में नवाब की ओर से जो कर्मचारी मालगुज़ारी वसूल करने के लिये नियुक्त होते थे वे चकलेदार कहलाते थे।

चकवँड़-संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ डंठल की ओर नुकीली और सिरे की ओर गोलाई लिए हुए चौड़ी होती हैं। पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के झड़ जाने पर इसमें पतली लंबी फलियाँ लगती हैं। फलियों के भीतर उरद के दाने के ऐसे बीज होते हैं जो खाने में बहुत कड़ुए होते हैं। इसकी पत्ती, जड़, छाल, बीज सब औषध के काम में आते हैं। वैद्यक में यह पित्त-वात-नाशक, हृदय को हितकारी तथा श्वास, कुष्ट, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। पमार। पवाड़।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र = चाक + भांड] कुम्हारों का वह बरतन जो पानी से भरा हुआ चाक के पास रखा रहता है। पानी हाथ में लगा कर चाक पर चढ़े हुए बरतन के लोंदे को चिकना करते हैं।

चकवा-संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] [स्त्री० चकई] एक पक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयों के किनारे दिखाई देता है और बैसाख तक रहता है। अधिक गरमी पड़ते ही यह भारतवर्ष से चला जाता है। यह दक्षिण को छोड़ और सारे भारतवर्ष में पाया जाता है। यह पक्षी प्रायः झुंड में रहता है। यह हंस की जाति का पक्षी है। इसकी लंबाई हाथ भर तक होती है। इसके शरीर पर कई भिन्न भिन्न रंगों का मेल दिखाई पड़ता है। पीठ और छाती का रंग पीला तथा पीछे की ओर का खैरा होता है। किसी किसी के बीच बीच में काली और लाल धारियाँ भी होती हैं। पूँछ का रंग कुछ हरापन लिए होता है। कहीं कहीं इन रंगों में भेद भी होता है। डैनों पर कई रंगों का गहरा मेल दिखाई पड़ता है। यह अपने जोड़े से बहुत प्रेम रखता है। बहुत काल से इस देश में ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय वह अपने जोड़े से अलग रहता है। कवियों ने इसके रात्रिकाल के इस वियोग पर अनेक उक्तियां बांधी हैं। इस पक्षी को सुरख़ाब भी कहते हैं। उ०—चकवा चकई दो जने, इन मत मारो कोय। ये मारे करतार के, रैन बिछोहा होय।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) हाथ से कुछ बढ़ाई हुई आटे की लोई। (२) जुलाहों की चरखी तथा नटाई में लगी हुई बाँस की छड़ी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत तथा चटगाँव की ओर बहुत मिलता है। इसके हीर की लकड़ी बहुत मज़बूत और छाल कुछ स्याही लिए सफ़ेद वा भूरी होती है। इसके पत्ते चमड़ा सिझाने के काम में आते हैं।

चकवाना*†-क्रि० [देश०] चकपकाना। हैरान होना। चकित होना। उ०—मुखचंद की देखि प्रभा दिन में चकवा चकई चकवाने रहैं।—देव।

चकवाह*-संज्ञा पुं० दे० "चकवा"।

चकवी-संज्ञा स्त्री० दे० "चकई", "चकवा"।

चकसेनी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] काकजंघा।

चकहा†*-संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया। चक्का। उ०—महा उतंग मनि जोतिन के संग आनि कैयो रंग चकहा गहत रवि रथ के।—भूषण।

चकाँड़ू-संज्ञा पुं० [हिं०] चकैया आँडू। चिपटा आँडू।

चका†*-संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पहिया। चक्का। चाक। उ०—बदन बहल कुंडल चका भौंह जुवा हय नैन। फेरत चित मैदान में बहलवान वह मैन।—रसनिधि।

चकाकेवल-संज्ञा स्त्री० [हिं० चक वा चक्का] काले रंग की मिट्टी जो सूखने पर चिटक जाती और पानी पड़ने से लसदार होती है। यह कठिनता से जोती जाती है।

चकाचक-संज्ञा स्त्री० [अनु०] तलवार आदि के लगातार शरीर पर पड़ने का शब्द।

वि० तर। तराबोर। लथपथ। डूबा हुआ। जैसे घी में चकाचक।

क्रि० वि० [सं० चक = तृप्त होना] खूब। भरपूर। अघा कर। पेट भर। उ०—आज उनकी चकाचक छनी है।

चकाचौंध–संज्ञा स्त्री० [सं० चक् = चमकना + चौ = चारों ओर + अंध] अत्यंत अधिक चमक वा प्रकाश के सामने आँखों की झपक। अत्यंत प्रखर प्रकाश के कारण दृष्टि की अस्थिरता। कड़ी रोशनी के सामने नज़र का न ठहरना। तिलमिलाहट। तिलमिली।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

चकाचौंधी–संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध"।

चकातरी–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।

चकाना*–क्रि० अ० [सं० चक = भ्रांत] चकपकाना। चकराना। अचंभे से ठिठक जाना। हैरान होना। घबराना। उ०—(क) रही कहाँ चकयाइ चित चल पिय सादर देख। लोहा कंचन होत तहँ पारस परस विसेख।—रसनिधि। (ख) दुराधर्ष हर्षी दोऊ युद्ध ठाने। लरैं राक्षसौ वानरौ ते चकाने।—रघुराज।

चकाबू–संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी व्यक्ति वा वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारों ओर एक के पीछे एक कई मंडलाकार पंक्तियों में सैनिकों की स्थिति।

विशेष—इसकी रचना ऐसी चक्करदार होती थी कि इसके भीतर मार्ग पाना बड़ा कठिन होता था। यह एक प्रकार की भूलभुलैयाँ थी। दे० "चक्रव्यूह"।

मुहा०—चकाबू में पड़ना वा फँसना = फेर में पड़ना। चक्कर में पड़ना। ऐसी स्थिति में होना जिसमें कर्त्तव्य न सूझ पड़े।

चकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्णमाला में छठा व्यंजन वर्ण। (२) दुःख वा सहानुभूति सूचक शब्द। उ०—वह वहाँ खड़ा सब देखता था पर उसके मुँह से चकार तक न निकला।

चकावल–संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़ों के अगले पैर में गामचे की हड्डी का उभार।

चकित–वि० [सं०] (१) चकपकाया। विस्मित। आश्चर्यान्वित। दंग। हक्काबक्का। भौचक्का। भ्रांत। (२) हैरान। घबराया हुआ। उ०—(क) अजित रूप ह्वै शैल धरो हरि जलनिधि मथिबे काज। सुर अरु असुर चकित भए देखे किये भक्त के काज।—सूर। (ख) लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित भए भ्रम हृदय विशेषा।—तुलसी। (ग) जागैं बुध विद्या हित पंडित चकित चित जागैं लोभी लालची धरनि धन धाम के।—तुलसी। (३) चौकन्ना। सशंकित। डरा हुआ। (४) डरपोक। कायर।

संज्ञा पुं० (१) विस्मय। (२) आशंका। व्यर्थ भय। (३) कायरता।

चकितवंत*–वि० [सं० चकित + वंत (प्रत्य०)] आश्चर्ययुक्त। विस्मित। भ्रांत। उ०—अब अति चकितवंत मन मेरो। आयो हौं निर्गुन उपदेसन भयौं सगुन को चेरो।—सूर।

चकिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में गणों का क्रम इस प्रकार होता है—SII IIS SSS SSI III S उ०—मो सुमति। न गोविंदा जानो निपट नरा। देखति जिन गोपि ग्वाल के जो गिरिहिँ धरा।

चकुंदा†–संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] चकवड़। पमाड़। दे० "चकवड़"।

चकुरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] छोटी हाँड़ी।

चकुला†*–संज्ञा पुं० [देश०] चेंटुवा। चिड़िया का बच्चा। उ०—खंजन के मनो मंडल मध्य तें ह्वै निकसे चकुला चकवा के।—गंग।

चकुलिया–संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रकुल्या] एक प्रकार का पौधा वा झाड़ी।

चकृत*–वि० दे० "चकित"।

चकेठ–संज्ञा पुं० [सं० चक्र + यष्टि] बाँस वा लकड़ी का एक नोकदार डंडा जिससे कुम्हार अपना चाक घुमाते हैं। कुलालदंड।

चकोटना–क्रि० स० [हिं० चिकोटी] चुटकी से मांस नोचना। चुटकी काटना। उ०—चंचल चपेट चोट चरन चकोटि चाहें हहरानी फौज भहरानी जातुधान की।—तुलसी।

चकोतरा–संज्ञा पुं० [सं० चक्र = गोला] एक प्रकार का बड़ा जँबीरी नीबू जिसका स्वाद खट्टापन लिए मीठा होता है। इसकी फाँकों का रंग हलका सुनहला होता है। यह फल जाड़े के दिनों में मिलता है। बड़ा नीबू। महानीबू। सदाफल। सुगंधा। मातुलंग। मधुककटी।

चकोता–संज्ञा पुं० [हिं० चकत्ता] एक रोग जिसमें घुटने के नीचे छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं और बढ़ती चली जाती हैं।

चकोर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चकोरी] (१) एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर जो नैपाल, नैनीताल आदि स्थानों तथा पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में बहुत मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है जिस पर सफ़ेद सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफ़ेदी लिए होता है चोंच और आँखें इसकी बहुत लाल होती हैं। यह पक्षी झुंडों में रहता है और बैसाख जेठ में बारह बारह अंडे देता है। भारतवर्ष में बहुत काल से प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमा का बड़ा भारी प्रेमी है और उसकी ओर एकटक देखा करता है, यहाँ तक कि यह आग की चिनगारियों को चंद्रमा की किरनें समझ कर खा जाता है। कवि लोगों ने इस प्रेम का उल्लेख अपनी उक्तियों में बराबर किया है। लोग इसे पिंजरे में पालते भी हैं। उ०—(क) नयन रात निसि मारग जागे। चख चकोर जानहुँ ससि लागे।—जायसी। (ख) सरद ससिहिँ जनु चितव चकोरी।—तुलसी। (२) एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण, एक गुरु और एक लघु होता है। यह यथार्थ में एक प्रकार का

सवैया है । उ०—आसत ग्वाल सखीगन में हरि राजत तारन में जिमि चंद ।

चकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा चकोर ।

चकोह—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाह] प्रवाह में घूमता हुआ पानी । भँवर ।

चकौंड़ा—संज्ञा पुं० दे० "चकवड़" ।

चकौंध*—संज्ञा स्त्री० दे० "चकाचौंध" । उ०—सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहु नहिँ सकुचाहीँ ।—हरिश्चंद्र ।

चकौटा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का लगान जो बीघे के हिसाब से नहीँ होता । (२) वह पशु जो ऋण के बदले में दिया जाय । इसे 'मुलवन' कहते हैं ।

चक्क—संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा । दर्द ।

*संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) चक्रवाक । चकवा । (२) कुम्हार का चाक । (३) दिशा । प्रांत । उ०—(क) पैज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहूँ चक्क को अमाल भयो दंडक जहान को ।—भूषण । (ख) भूषन भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो पातसाहि चक्क ताकि छाती माँहिँ छेवा है ।—भूषण ।

चक्कर—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] (१) पहिये के आकार की कोई (विशेषतः घूमनेवाली) बड़ी गोल वस्तु । मंडलाकार पटल । चाक । उ०—उस मशीन में एक बड़ा चक्कर है जो बराबर घूमता रहता है । (२) गोल वा मंडलाकार घेरा । वृत्ताकार परिधि । मंडल । (३) मंडलाकार मार्ग । गोल सड़क वा रास्ता । घुमाव का रास्ता । उ०—उस बगीचे में जो चक्कर है उसके किनारे किनारे बड़ी सुंदर घास लगी है । (४) मंडलाकार गति । परिक्रमण । फेरा । (५) पहिये के ऐसा भ्रमण । अक्ष पर घूमना ।

मुहा०—चक्कर काटना = वृत्ताकार परिधि में घूमना । परिक्रमा करना । मँडराना । चक्कर खाना = (१) पहिये की तरह घूमना । अक्ष पर घूमना । (२) घुमाव फिराव के साथ जाना । सीधे न जाकर टेढ़े मेढ़े जाना । उ०—(क) उतना चक्कर कौन खाय, इसी बगीचे से निकल चलो । (ख) यह रास्ता बहुत चक्कर खा कर गया है । (३) भटकना । भ्रांत होना । हैरान होना । उ०—घंटों से चक्कर खा रहे हैं, यह सवाल नहीं आता है । चक्कर देना = (१) मंडल बाँध कर घूमना । परिक्रमा करना । मँडराना । (२) दे० "चक्कर खाना (२)" । चक्कर पड़ना = जाने के लिये सीधा न पड़ना । घुमाव वा फेर पड़ना । उ०—उधर से क्यों जाते हो, बड़ा चक्कर पड़ेगा । चक्कर बाँधना = मंडलाकार मार्ग बनाना । वृत्त बनाते हुए घूमना । चक्कर मारना = (१) पहिये की तरह अक्ष पर घूमना । (२) वृत्ताकार परिधि में घूमना । परिक्रमा करना । (३) चारों ओर घूमना । इधर उधर फिरना । उ०—दिन भर तो चक्कर मारते ही रहते हो, थोड़ा बैठ जाओ । चक्कर में आना = चकित होना । भ्रांत होना । हैरान होना । दंग रह जाना । उ०—सब लोग उनकी अद्भुत वीरता देख चक्कर में आ गये । चक्कर में डालना = (१) चकित करना । हैरान करना । (२) कठिनता वा असमंजस में डालना । फेर में डालना । ऐसी स्थिति में करना जिसमें यह न सूझ पड़े कि क्या करना चाहिए । हैरान करना । चक्कर में पड़ना = (१) असमंजस में पड़ना । दुबधे में पड़ना । कठिन स्थिति में पड़ना । (२) हैरान होना । माथा खपाना । चक्कर लगाना = (१) परिक्रमा करना । मँडराना । (२) चारों ओर घूमना । इधर उधर फिरना । फेरा लगाना । आना जाना । घूमना फिरना । उ०—(क) हम बड़ी दूर का चक्कर लगा कर आ रहे हैं । (ख) तुम इनके यहाँ नित्य एक चक्कर लगा जाया करो ।

(६) घुमाव । पेँच । जटिलता । दुरूहता । फेरफार । उ०—यह बड़े चक्कर का सवाल है ।

मुहा०—किसी के चक्कर में आना या पड़ना = किसी के धोखे में आना या पड़ना । भुलावे में आना ।

(७) सिर घूमना । घुमरी । घुमटा । बेहोशी । मूर्छा ।

क्रि० प्र०—आना ।

(८) पानी का भँवर । जंजाल । (९) चक्र नामक अस्त्र ।

मुहा०—चक्कर पड़ना = वज्रपात होना । विपत्ति आना । (स्त्री०) ।

(१०) कुश्ती का एक पेंच जिसमें अपने दोनों हाथ पेट में घुसे हुए विपक्षी के दोनों मोढ़ों पर रख कर उसकी पीठ अपने सामने कर लेते हैं और फिर टाँग मार कर उसे चित कर देते हैं ।

चक्कवइ*—वि० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती (राजा) । सार्वभौम (राजा) । उ०—ससुर चक्कवइ कोसल राऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ।—तुलसी ।

चक्कवत*—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवत्] चक्रवर्ती राजा ।

चक्कवा*—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] चकवा । चक्रवाक । उ०—रघुवर कीरति सज्जननि सीतल खलनि सु ताति । ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चंदिनि राति ।—तुलसी ।

चक्कवै*—वि० [सं० चक्रवर्ती, प्रा० चक्कवत्ती, चक्कवइ] चक्रवर्ती (राजा) । आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा ।

चक्कस—संज्ञा पुं० [फ़ा० चक़स] बुलबुल, बाज़ आदि पक्षियों के बैठने का अड्डा ।

चक्का—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] (१) पहिया । चाका । (२) पहिये के आकार की कोई गोल वस्तु । (३) बड़ा चिपटा टुकड़ा । बड़ा कतरा । जैसे, मिट्टी का चक्का, दही का चक्का । (४) जमा हुआ कतरा । थक्का । थंकी । चक्का । जैसे, चक्का दही । (५) ईंटों या पत्थरों का ढेर जो माप या गिनती के लिये क्रम से लगाया गया हो ।

क्रि० प्र०—बाँधना।

चक्की-संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री, प्र० चक्की] (१) नीचे ऊपर रखी हुई पत्थर के दो गोल और भारी पहियों का बना हुआ यंत्र जिसमें आटा पीसा जाता है या दाना दला जाता है। आटा पीसने या दाल दलने का यंत्र। जाँता।

यौ०—पनचक्की।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—चक्की का पाट = चक्की का एक पत्थर। चक्की की माली = (१) चक्की के नीचे के पाट के बीच में गड़ी हुई वह खूँटी जिस पर ऊपर का पाट घूमता है। (२) ध्रुव। ध्रुव तारा। चक्की छूना=(१) चक्की में हाथ लगाना। चक्की चलाना आरंभ करना। चक्की चलाना। (२) अपना चरखा शुरू करना। अपना वृत्तांत आरंभ करना। अपनी कथा छेड़ना। बीती सुनाना। चक्की पीसना = (१) चक्की में डाल कर गेहूँ आदि पीसना। चक्की चलाना। (२) कड़ा परिश्रम करना। बड़ा कष्ट उठाना। चक्की रहाना = चक्की को टाँकी से खोद खोद कर खुरदरा करना जिसमें दाना अच्छी तरह पिसे। चक्की कूटना।

(२) [सं० चक्रिका] पैर के घुटने की गोल हड्डी। (३) ऊँटों के शरीर पर का गोल घट्टा।*† चाकी। बिजली। वज्र।

चकीरहा-संज्ञा पुं० [हिं० चक्की + रहना] चक्की को टाँकी से कूट कर खुरदरी करनेवाला।

चक्कू†-संज्ञा पुं० दे० "चाकू"।

चक्खी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाट। स्वाद के लिये चरपरी खाने की चीज़। (२) बटेरों की चुगाई।

चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहिया। चाका। (२) कुम्हार का चाक। (३) चक्की। जाँता। (४) तेल पेरने का कोल्हू। (५) पहिये के आकार की कोई गोल वस्तु। (६) लोहे के एक अस्त्र का नाम जो पहिये के आकार का होता है।

विशेष—इसकी परिधि की धार बड़ी तीक्ष्ण होती है। शुक्रनीति के अनुसार चक्र तीन प्रकार का होता है, उत्तम, मध्यम और अधम। जिसमें आठ आर (आरे) हों वह उत्तम, जिसमें छः हों वह मध्यम, जिसमें चार हों वह अधम है। इसके अतिरिक्त तौल का भी हिसाब है। विस्तार भेद से १६ अंगुल का चक्र उत्तम माना गया है। प्राचीन काल में यह युद्ध के अवसर पर नचा कर फेंका जाता था। यह विष्णु भगवान् का विशेष अस्त्र माना जाता है। आज कल भी गुरु गोविंदसिंह के अनुयायी सिख अपने सिर के बालों में एक प्रकार का चक्र लपेटे रहते हैं।

मुहा०—चक्र गिरना या पड़ना = वज्रपात होना। विपत्ति आना।

(७) पानी का भँवर। (८) वातचक्र। बवंडर। (९) समूह। समुदाय। मंडली। (१०) दल। झुंड। सेना। (११) एक प्रकार का व्यूह या सेना की स्थिति। दे० "चक्रव्यूह"। (१२) ग्रामों या नगरों का समूह। मंडल। प्रदेश। राज्य। (१३) एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश। आसमुद्रांत भूमि।

यौ०—चक्रवर्त्ती।

(१४) चक्रवाक पक्षी। चकवा। (१५) तगर का फूल। गुलचाँदनी। (१६) योग के अनुसार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि शरीरस्थ ६ पद्म। (१७) मंडलाकार घेरा। वृत्त। जैसे, राशिचक्र। (१८) रेखाओं से घिरे हुए गोल या चौखूँटे खाने जिनमें अंक, अक्षर, शब्द आदि लिखे हों। जैसे, कुंडली चक्र।

विशेष—तंत्र में मंत्रों के उद्धार तथा शुभाशुभ विचार के लिये अनेक प्रकार के चक्रों का व्यवहार होता है जैसे, अकडम चक्र, अकथ चक्र, कुलाल चक्र। रुद्रयामल आदि तंत्र-ग्रंथों में महाचक्र, राजचक्र, दिव्यचक्र आदि अनेक चक्रों का उल्लेख है। मंत्र के उद्धार के लिये जो चक्र बनाए जाते हैं उन्हें यंत्र कहते हैं।

(१९) हाथ की हथेली या पैर के तलवे में घूमी हुई महीन महीन रेखाओं का चिह्न जिनसे सामुद्रिक में अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल निकाले जाते हैं। (२०) फेरा। भ्रमण। घुमाव। चक्कर। उ०—कालचक्र के प्रभाव से सब बातें बदला करती हैं। (२१) दिशा। प्रांत। उ०—कहै पदमाकर चहौं तो चहूँ चक्रन को चीरि डारौं पल में पलैया पैज पन हौं।—पद्माकर। (२२) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक भगण, तीन नगण और फिर लघु, गुरु होते हैं। उ०—भौननि लगन न कतहुँ टिकनवाँ। राम विमुख रहि सुख मिल कहवाँ। (२३) धोखा। भुलावा। जाल। फरेब।

यौ०—चक्रधर = बाजीगर।

चक्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नव्य न्याय में एक तर्क। (२) एक प्रकार का सर्प।

चक्रकारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नखी नामक गंधद्रव्य। (२) हाथ का नाखून।

चक्रकुल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपर्णी लता। पिठवन।

चक्रगज-संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़।

चक्रगुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

चक्रगोप्ता-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति। (२) राज्यरक्षक। (३) वह कर्मचारी या योद्धा जो रथ, चक्र आदि की रक्षा करे।

चक्रचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेली। (२) कुम्हार।

चक्रजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार।

चक्रताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चौताला ताल

जिसमें तीन लघु, लघु की एक मात्रा, एक गुरु और गुरु की दो मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—ताहं। धिमि धिमि। तकितां। धिधिगन थों। (२) एक प्रकार का चौदह-ताला ताल जिसमें क्रम से चार द्रुत, द्रुत की आधी मात्रा, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक द्रुत, द्रुत की आधी मात्रा, एक लघु और लघु की आधी मात्रा होती है। इसका बोल यह है—जग० जग० नक० थै० तार्थे। थरि० कुकु० धिमि० दांथै। दां० दां० धिधिकिट। धिधि० गनथा।

चक्रतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण में वह तीर्थ स्थान जहाँ ऋष्यमूक पर्वतों के बीच तुंगभद्रा नदी घूम कर बहती है। उ०—चक्रतीर्थ महँ परम प्रकासी। बसैं सुदर्सन प्रभु छवि रासी।—रघुराज। (२) नैमिषारण्य का एक कुंड।

विशेष—महाभारत तथा पुराणों में अनेक चक्रतीर्थों का उल्लेख है। काशी, कामरूप, नर्मदा, श्रीक्षेत्र, सेतुबंध, रामेश्वर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों में एक एक चक्रतीर्थ का वर्णन है। स्कंदपुराण में प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत चक्रतीर्थ का बड़ा माहात्म्य लिखा है। उसमें लिखा है कि एक बार विष्णु ने बहुत से असुरों का संहार किया जिससे उनका चक्र रक्त से रँग उठा। उसे धोने के लिये विष्णु ने तीर्थों का आह्वान किया। इस पर कई कोटि तीर्थ वहाँ आ उपस्थित हुए और विष्णु की आज्ञा से वहीं स्थित हो गए।

चक्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह गोल होता है।

चक्रदंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कसरत जिसमें ज़मीन पर दंड करके झट दोनों पैर समेट लेते हैं और फिर दहने पैर को दहनी ओर और बाएँ को बाईं ओर चक्कर देते हुए पेट के पास लाते हैं।

चक्रदंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दंती वृक्ष। (२) जमालगोटा।

चक्रदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

चक्रधर—वि० [सं०] जो चक्र धारण करे।

संज्ञा पुं० (१) वह जो चक्र को धारण करे। (२) विष्णु भगवान। (३) श्रीकृष्ण। (४) बाज़ीगर। इंद्रजाल करनेवाला। (५) कई ग्रामों या नगरों का अधिपति। (६) सर्प। साँप। (७) गाँव का पुरोहित। (८) नट राग से मिलता जुलता षाडव जाति का एक प्रकार का राग जो षड्ज स्वर से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर नहीं लगता। यह संध्या समय गाया जाता है।

चक्रधारी—संज्ञा पुं० दे० "चक्रधर"।

चक्रनख—संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नामक ओषधि। बघनहाँ।

चक्रनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडकी नदी।

चक्रनाम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) माक्षिक धातु। सोनामक्खी। (२) चकवा पक्षी।

चक्रनायक—संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनख नाम की ओषधि।

चक्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन।

चक्रपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] (हाथ में चक्र धारण करनेवाले) विष्णु।

चक्रपाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी। रथ। (२) हाथी।

चक्रपानि*—संज्ञा पुं० दे० "चक्रपाणि"।

चक्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रदेश का शासक। सूबेदार। चकलेदार। (२) वह जो चक्र धारण करे। (३) वृत्त। गोलाई। (४) शुद्ध राग का एक भेद।

चक्रपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक विधि।

चक्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जिसमें गोल फल लगा रहता है।

चक्रबंध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें एक चक्र या पहिये के चित्र के भीतर पद्य के अक्षर बैठाए जाते हैं।

चक्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

चक्रबांधव—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। (सूर्य्य के प्रकाश में चकवा चकई एक साथ रहते हैं।)

चक्रभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चक्र धारण करे। (२) विष्णु।

चक्रभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि। (रात में चकवा चकई का जोड़ा अलग हो जाता है।)

चक्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रह की वह गति जिसके अनुसार वह एक स्थान से चल कर फिर उसी स्थान पर प्राप्त होता है। इसे परिवर्त भी कहते हैं।

चक्रभ्रमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

चक्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य जिसमें नाचनेवाला चक्र की तरह घूमता है। इस प्रकार के नृत्य में शरीर के प्रायः सब अंगों का संचालन होता है।

चक्रमंडली—संज्ञा पुं० [सं०] अजगर साँप।

चक्रमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़।

चक्रमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैष्णवों की चक्र मुद्रा धारण करने की विधि। (२) विजयेंद्र स्वामी रचित एक ग्रंथ जिसमें चक्र मुद्रा धारण की विधि आदि लिखी है।

चक्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

चक्रमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्र आदि विष्णु के आयुधों के चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु तथा और अंगों पर छपाते हैं।

चक्र मुद्रा दो प्रकार की होती है, तप्त मुद्रा और शीतल मुद्रा। जो चिह्न आग में तपे हुए चक्र आदि के ठप्पों से शरीर पर दागे जाते हैं उन्हें तप्त मुद्रा कहते हैं। जो चंदन आदि से शरीर पर छापे जाते हैं उन्हें शीतल मुद्रा कहते हैं। तप्त मुद्रा का प्रचार रामानुज संप्रदाय के वैष्णवों में विशेष है। तप्तमुद्रा द्वारका में ली जाती है। उ०—मूँड़े मूँड़, कंठ बनमाला मुद्राचक्र दिए। सब कोउ कहत गुलाम स्याम को सुनत सिरात हिए।—सूर। (२) तांत्रिकों की एक अंग-मुद्रा जो पूजन के समय की जाती है। इसमें दोनों हाथों को सामने खूब फैला कर मिलाते और अंगूठे को कनिष्ठा उँगली पर रखते हैं।

चक्रयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक यंत्र।

चक्ररिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वक। बगला।

चक्रलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच। गुडूची।

चक्रलिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में राशिचक्र का कलात्मक भाग अर्थात् २१६०० भागों में से एक भाग।

चक्रवर्ती—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] [स्त्री० चक्रवर्तिनी] आसमुद्रांत भूमि पर राज्य करनेवाला। सार्वभौम।
संज्ञा पुं० (१) एक चक्र का अधीश्वर। एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक की पृथ्वी का राजा। आसमुद्रांत भूमि का राजा। उ०—चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे।—तुलसी। (२) किसी दल का अधिपति। समूह का नायक। (३) बथुआ। वास्तुक नामक शाक।

चक्रवर्त्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी दल वा समूह की अधीश्वरी। (२) जनी नामक गंध-द्रव्य। पानड़ी।

चक्रवाक—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० चक्रवाकी] चकवा पक्षी।
यौ०—चक्रवाकबंधु = सूर्य।

चक्रवाड़—संज्ञा पुं० दे० "चक्रवाल"।

चक्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] ववंडर। वेग से चक्कर खाती हुई वायु। वातचक्र। उ०—तृणावर्त विपरीति महाखल सो नृप राय पठायो। चक्रवात ह्वै सकल घोष में रज धुंधर ह्वै छायो।—सूर।

चक्रवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौराणिक पर्वत का नाम जो चौथे समुद्र के बीच स्थित माना गया है। यहीं विष्णु-भगवान् ने हयग्रीव और पंचजन नामक दैत्यों को मार कर चक्र और शंख दो आयुध प्राप्त किये थे।

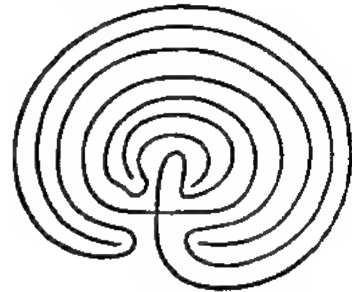
चक्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पुराण-प्रसिद्ध पर्वत जो भूमंडल के चारों ओर स्थित तथा प्रकाश और अंधकार (दिन रात) का विभाग करनेवाला माना गया है। लोकालोक पर्वत। (२) मंडल। घेरा।

चक्रविरति—संज्ञा स्त्री० दे० "चक्रवृत्ति"।

चक्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण तीन नगण और अंत में लघु गुरु होते हैं।

चक्रवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का सूद वा ब्याज जिसमें उत्तरोत्तर ब्याज पर भी ब्याज लगता जाता है। सूद दर सूद।
विशेष—मनु ने इसे अत्यंत निंदनीय ठहराया है।
(२) गाड़ी आदि का भाड़ा।

चक्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी व्यक्ति वा वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारों ओर कई घेरों में सेना की कुंडलाकार स्थिति। इसकी रचना इतनी चक्करदार होती थी कि इसके भीतर प्रवेश करना अत्यंत कठिन होता था। महाभारत में द्रोणाचार्य्य ने यह व्यूह रचा था जिसमें अभिमन्यु मारे गए थे। इसका आकार इस प्रकार का माना जाता है।



चक्रशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद घुँघची। (२) काकतुंडी।

चक्रशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजशृंगी। मेढ़ासींगी।

चक्रसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंग धातु। राँगा। (२) चकवा पक्षी।

चक्रसंवर—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

चक्रांक—संज्ञा पुं० [सं०] चक्र का चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु आदि पर दगवाते हैं।

चक्रांकित वि० [सं०] जिसने चक्र का चिह्न दगवाया हो। जिसने चक्र का छाप लिया हो।
संज्ञा पुं० वैष्णवों का एक संप्रदाय भेद। इस संप्रदाय के लोग चक्र का चिह्न दगवाते हैं।

चक्रांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवा। (२) रथ या गाड़ी। (३) हंस। (४) कुटकी नाम की ओषधि। (५) एक प्रकार का शाक। हिलमोचिका।

चक्रांगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकड़ासिंगी। (२) सुदर्शना लता।

चक्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। (२) हंसिनी। मादा हंस

(३) एक प्रकार का शाक। हुल हुल। हुर हुर। हिलमोचिका। (४) मजीठ। (५) काकड़ासिंगी। (६) वृषपर्णी। मूसाकरनी।

चक्रांत–संज्ञा पुं० [सं०] किसी अनुचित कार्य्य वा किसी के अनिष्टसाधन के लिये कई मनुष्यों की गुप्त मंत्रणा। षट्चक्र। षड्यंत्र। गुप्त अभिसंधि।

चक्रांतर–संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

चक्रांश–संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र का ३६० वाँ अंश।

चक्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागर मोथा। (२) काकड़ासिंगी।

चक्राकार–वि० [सं०] पहिये के आकार का। मंडलाकार। गोल।

चक्राकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिनी। मादा हंस।

चक्राट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदारी। साँप पकड़नेवाला। (२) साँप का विष झाड़नेवाला। (३) धूर्त्त। धोखेबाज। (४) सोने का एक सिक्का। दीनार।

चक्राथ–संज्ञा पुं० [सं०] एक कौरव योद्धा का नाम।

चक्राधिवासी–संज्ञा पुं० [सं० चक्राधिवासिन्] नारंगी।

चक्रायुध–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

चक्रावल–संज्ञा पुं० [सं० चक्रावलि] घोड़ों का एक रोग जिस में घोड़ों के पैरों में घाव हो जाता है। इससे कभी कभी वे लँगड़े भी हो जाते हैं।

चक्राह्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवा पक्षी। चक्रवाक। (२) चकवँड़।

चक्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] चक्र धारण करनेवाला।

चक्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] घुटने पर की गोल हड्डी। चक्की।

चक्रित–*वि० दे० "चकित"।

चक्री–संज्ञा पुं० [सं० चक्रिन्] (१) वह जो चक्र धारण करे। (२) विष्णु। (३) ग्रामजालिक। गाँव का पंडित वा पुरोहित। (४) चक्रवाक। चकवा। (५) कुलाल। कुम्हार। (६) सर्प। (७) सूचक। गोइंदा। जासूस। मुख़बिर। दूत। चर। (८) तेली। (९) चकरा। (१०) चक्रवर्त्ती। (११) चक्रमर्द। चकवँड़। (१२) तिनिश वृक्ष। (१३) व्याघ्रनख नाम का गंध-द्रव्य। बघनहाँ (१४) काक। कौवा। (१५) गदहा। गधा। (१६) वह जो रथ पर चढ़ा हो। रथ का सवार। (१७) चंद्रशेखर के मत से आर्य्या छंद का २२ वाँ भेद जिसमें ६ गुरु और ४५ लघु होते हैं। (१८) एक वर्णसंकर जाति जिसका उल्लेख औशनस के 'जातिविवेक' में है।

चक्रेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्रवर्ती। (२) तांत्रिकों के चक्र का अधिष्ठाता।

चक्रेश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की महाविद्याओं में से एक।

चक्षण–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गजक। चाट। मद्य के ऊपर खाने की वस्तु। (२) कृपादृष्टि। अनुग्रह। (३) कथन।

चक्षम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) उपाध्याय।

चक्षुःश्रवा–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुःश्रवस्] (जो आँख ही से सुने) साँप। सर्प।

चक्षु–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] (१) दर्शनेंद्रिय। आँख। (२) अजमीढ़ वंशी एक राजा जिसके पिता का नाम पुरुजानु और पुत्र का नाम हर्यश्व था। (विष्णुपुराण)। (३) एक नदी का नाम जिसे आज कल आक्सस वा जेहूँ कहते हैं। वेदों में इसी का नाम वंक्षुनद है। विष्णुपुराण में लिखा है कि गंगा जब ब्रह्मलोक से गिरी तब चार नदियों के रूप में चार ओर प्रवाहित हुई। जो नदी केतुमाल पर्वत के बीच से होती हुई पश्चिम सागर में जाकर मिली उसका नाम चक्षुस् हुआ।

चक्षुरिंद्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इंद्रिय। आँख।

चक्षुर्दर्शनावरण–संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र में वह कर्म जिसके उदय होने से चक्षु द्वारा सामान्य बोध की लब्धि का विघात हो।

चक्षुर्वर्द्धनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी।

चक्षुर्वहन–संज्ञा पुं० [सं०] अजशृंगी। मेढ़ासींगी।

चक्षुर्हन्–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार का सर्प जिसके देखते ही जीव जंतुओं की आँखें फूट जाती हैं।

चक्षुष्पति–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

चक्षुष्य–वि० [सं०] (१) जो नेत्रों को हितकारी हो (औषधि आदि)। (२) सुंदर। प्रियदर्शन। (३) नेत्रों से उत्पन्न। नेत्र संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) केतकी। केवड़ा। (२) शोभांजन। सहजन का पेड़। (३) अंजन। सुरमा। (४) खपरिया। तूतिया।

चक्षुष्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वनकुलथी। चाकसू। (२) मेढ़ासींगी। अजशृंगी।

चक्षुस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख। (२) आक्सस या जेहूँ नदी जो मध्य एशिया में है।

चख*–संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] आँख।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० चखिया] झगड़ा। तकरार। कलह टंटा।

यौ०—चख चख = तकरार। बकबक। झकझक। कहा सुनी।

चखना–क्रि० स० [सं० चष] स्वाद लेना। स्वाद लेने के लिये मुँह में रखना। स्वाद वा मज़ा लेते हुए खाना उ०—साहय का घर दूर है जैसे लँबी खजूर। चढ़े तो चाखै प्रेम-रस गिरै तो चकनाचूर।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

चखचौंधा*–संज्ञा स्त्री० दे० "चकचौंध"।

चखाचखी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चख = झगड़ा] लागडाँट। विरोध वैर।

क्रि० प्र०—चलना।—होना।

चखाना–क्रि० स० [हिं० 'चखना' का प्रे०] खिलाना । स्वाद दिलाना ।

चखिया–वि० [फा० चख = झगड़ा] झगड़ालू । तकरार करनेवाला । झकझक करनेवाला ।

चखु–संज्ञा पुं० दे० "चक्षु" ।

चखोड़ा†–संज्ञा पुं० [हिं० चख + ओड़] दिठौना । डिठौना । मस्तक पर काजल की लंबी रेखा जो बच्चों को नज़र से बचाने के लिये लगाई जाती है । उ०—(क) लट लटकनि सिर चारु चखोड़ा सुठि शोभा सी है शिशु भाल ।—सूर । (ख) अंजन दोउ दृग भरि दीनो । भुव चारु चखोड़ा कीनो ।—सूर ।

चखौती–संज्ञा स्त्री० [हिं० चखना] चटपटा खाना । तीक्ष्ण स्वाद का भोजन ।

चगड़–वि० [देश०] चालाक । चतुर ।

चगताई–संज्ञा पुं० [तु०] मध्य एशिया-निवासी तुर्कों का एक प्रसिद्ध वंश जो चग़ताई खाँ से चला था । बाबर, अकबर आदि भारत के मोगल बादशाह इसी वंश के थे ।

चगताई खाँ–संज्ञा पुं० [तु०] प्रसिद्ध मोगल विजेता चंगेज़ खाँ का एक पुत्र जो अत्यंत न्यायशील और धार्मिक था । चंगेज़ खाँ ने १२२७ ई० में इसे बलख, बदख्शाँ, काशगर आदि प्रदेशों का राज्य दिया था । सन् १२४१ में इसकी मृत्यु हुई । बाबर इसी के वंश में था ।

चगर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) घोड़ों की एक जाति । (२) एक चिड़िया ।

चगुनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और बिहार की नदियों में पाई जाती है । यह १८ इंच लंबी होती है ।

चचर–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह ज़मीन जो बहुत दिन परती रह कर एक वर्ष की बोई जोती हो ।

चचरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

चचा–संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० चची] बाप का भाई । पितृव्य ।

मुहा०—चचा बनाना = यथोचित दंड देना । खूब बदला लेना । दुरुस्त करना । चचा बना कर छोड़ना = खूब बदला लेकर छोड़ना ।

चचिया–वि० [हिं० चचा] चाचा के बराबर का संबंध रखनेवाला ।

यौ०—चचिया ससुर = पति या पत्नी का चाचा । चचिया सास = पति या पत्नी की चाची ।

चचींडा †–संज्ञा पुं० [सं० चिचिंड] (१) तोरई की तरह की एक बेल जिस में हाथ हाथ भर लंबे और दो दो अंगुल मोटे साँप की तरह के फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी होती है । इसे कहीं कहीं पावल भी कहते हैं ।

विशेष—चचींडा बरसात के आरंभ में बोया जाता है और भादों कुआर में फलता है । इस में सफ़ेद रंग के पतले लंबे फूल लगते हैं । इसे चढ़ाने के लिये टट्टियाँ लगानी पड़ती हैं । इसकी कुछ जातियाँ बहुत कड़ुई होने के कारण खाई नहीं जातीं । वैद्यक में यह वात-पित्त-नाशक, बलकारक, पथ्य और शोष रोग को दूर करनेवाला माना जाता है ।

(२) अपामार्ग । चिचड़ी ।

चची–संज्ञा स्त्री० [हिं० चचा] चाचा की स्त्री ।

चचेंड़ा †–संज्ञा पुं० दे० "चचींड़ा" ।

चचेरा–वि० [हिं० चचा] चाचा से उत्पन्न । चाचाजाद । जैसे, चचेरा भाई । चचेरी बहिन ।

चचोड़ना–क्रि० स० [अनु० वा देश०] दाँत से खींच खींच या दबा दबा कर रस या सार चूसना । दबा दबा कर चूसना उ०—कुत्ता हड्डी चचोड़ रहा है ।

चचोड़वाना–क्रि० स० [हिं० 'चचोड़ना' का प्रे०] चचोड़ने का काम कराना । चचोड़ने देना । दबा दबा कर चूसने देना ।

चट–क्रि० वि० [सं० चटुल = चंचल] जल्दी से । झट । तुरंत । फ़ौरन । शीघ्र ।

यौ०—चटपट ।

मुहा०—चट से = जल्दी से । शीघ्र ।

*†संज्ञा पुं० [सं० चित्र, हिं० चित्ती, दाग़] (१) दाग़ । धब्बा । (२) गरमी के घाव या ज़ख़म का दाग़ । घाव का चकत्ता ।

† (३) कलंक । दोष । ऐब ।

संज्ञा [अनु०] (१) वह शब्द जो किसी कड़ी वस्तु के टूटने पर होता है । जैसे, लकड़ी चट से टूट गई ।

यौ०—चट चट ।

विशेष—'खट, पट' आदि इस प्रकार के और शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' के साथ ही क्रि० वि० पद के समान होता है । अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है । यौ० 'चट चट' शब्द को स्त्री० मानेंगे ।

(२) वह शब्द जो उँगलियों को मोड़ कर दबाने से होता है । उँगली फूटने का शब्द । उ०—तुव जस शीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ । अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन 'चट' अलियाँ ।—हरिश्चंद्र ।

वि० [हिं० चटना] चाट पोंछ कर खाया हुआ ।

मुहा०—चट कर जाना = (१) सब खा जाना । (२) पचा जाना । हज़म कर लेना । दूसरे की वस्तु ले कर न देना ।

चटक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चटका] (१) गौरा पक्षी । गौरवा । गौरैया । चिड़ा ।

यौ०—चटकाली = गौरों की पंक्ति । गौरों का झुंड ।

(२) पिपरामूल ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चटुल = सुंदर] चटकीलापन । चमक दमक । कांति । उ०—(क) मुकुट लटक अरु भ्रकुटि मटक, देखो । कुंडल की चटक सों अटकि परी दृगनि लपटि ।—सूर । (ख) जो चाहै चटक न घटै मैलो होय न मित्त । रस राजस न छुवाइए, नेह चीकने चित्त ।—बिहारी ।

यौ०—चटक मटक ।

† वि० चटकीला । चमकीला । शोख़ । उ०—ऐसो माई एक कोद को हेत । जैसे बसन कुसुँभ रँग मिलि कै नेकु चटक पुनि स्वेत ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चटुल = चंचल] तेज़ी । फुरती । शीघ्रता । क्रि० वि० चटपट । तेज़ी से । शीघ्रता से । तुरंत । उ०—भरि जल कलस कंध धरि पाछे चल्यो चटक जग-मीता ।—रघुराज ।

† वि० फुरतीला । तेज़ । आलस्यहीन ।

वि० चटपटा । चटकारा । चरपरा । तीक्ष्ण स्वाद का । नमक, मिर्च खटाई आदि से तेज़ किया हुआ । मज़ेदार ।

संज्ञा पुं० छपे हुए कपड़ों को साफ़ करके धोने की रीति ।

विशेष—भेड़ी की मेंगनी और पानी में कपड़ों को कई बार सौंद सौंद कर सुखाते हैं ।

चटकई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटक] तेज़ी । फुर्ती ।

चटकदार—वि० [हिं० चटक + फ़ा० दार (प्रत्य०)] चटकीला । भड़कीला । चमकीला ।

चटकन—संज्ञा पुं० दे० "चटकना" ।

चटकना—क्रि० अ० [अनु० चट] (१) 'चट' शब्द करके टूटना या फूटना । बिना किसी प्रबल बाहरी आघात के फटना या फूटना । हलकी आवाज़ के साथ टूटना । तड़कना । कड़कना । जैसे, आँच से चिमनी चटकना, हांड़ी चटकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) कोयले, गँठीली लकड़ी आदि का जलते समय चट चट करना । (३) चिड़चिड़ाना । बिगड़ना । झुँझलाना । क्रोध से बोलना । झल्लाना । जैसे, चटक कर बोलना । (४) धूप वा खुली हवा में पड़ी रहने के कारण लकड़ी या और किसी वस्तु में दरज पड़ना । स्थान स्थान पर फटना । (५) उँगलियों का मोड़ कर दबाने पर चटचट शब्द करना । उँगली फूटना । (६) कलियों का फूटना वा खिलना । प्रस्फुटित होना । उ०—तुव जस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियां । अति सुख पाइ असीस देत सोइ, करि अँगुरिन चट अलियां । —हरिश्चंद्र । (७) अनबन होना । खटकना । उ०—उन दोनों में आज कल चटक गई है ।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग 'खटकना' की तरह स्त्री० ही में होता है क्योंकि इसका कर्ता 'बात' लुप्त है ।

संज्ञा पुं० [अनु० चट] चपत । तमाचा । थप्पड़ ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

चटकनी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चट] किवाड़ों को बंद रखने वा अड़ाने के लिये लगी हुई छड़ । सिटकिनी । अगरी ।

चटक मटक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटक + मटक] बनाव सिंगार । वेशविन्यास और हावभाव । नाज़ नखरा । ठसक । चमक । दमक । जैसे, चटक मटक से चलना ।

चटकवाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटक + वाही (प्रत्य०)] शीघ्रता । जल्दी । फुरती ।

चटका†—संज्ञा पुं० [हिं० चट] फुरती । जल्दी । शीघ्रता । उ०—प्रभु हौं बड़ी बेर को ठाढ़ो । और पतित तुम जैसे तारे तिनहीं में लिखि गाढ़ो । जुग जुग यहै बिरद चलि आयो टेरि कहत हौं या ते । मरियत लाज पाँच पतितन में होय कहा चटकाते । कै प्रभु हार मानि कै बैठहु कै करो बिरद सही । सूर पतित जौ झूठ कहत है देखौ खोजि बही ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [देश०] चने का वह हरा ढोंढ़ जिस में अच्छी तरह दाने न पड़े हों । पपटा ।

संज्ञा पुं० [सं० चित्र, हिं० चित्ती, चट्टा] दाग़ । धब्बा । चकत्ता ।

संज्ञा पुं० [हिं० चाट] (१) चरपरा स्वाद । चटकारा । (२) चसका ।

चटकाना—क्रि० स० [अनु० चट] (१) तोड़ना । ऐसा करना जिसमें कोई वस्तु चटक जाय । (२) उँगलियों को खींच कर वा मोड़ते हुए दबा कर चट चट शब्द निकालना । उँगलियाँ फोड़ना । (३) एक वस्तु पर किसी दूसरी चीमड़ वस्तु को बार बार टकराना जिससे चट चट शब्द निकले । जैसे, गेंद चटकाना, जूतियां चटकाना ।

मुहा०—जूतियां चटकाना = फटा हुआ या चट्टी जूता पहन कर इधर उधर घूमना जिसमें तला बार बार एँड़ी से लग कर चट चट शब्द करे । जूता घसीटते हुए फिरना । बुरी दशा में इधर उधर पैदल फिरना । मारा मारा फिरना । उ०—अपने पास का सब खो कर अब वह गली गली जूतियां चटकाता फिरता है ।

(४) छुड़ाना । अलग करना । दूर करना । छोड़ना । (५) चिढ़ाना । कुपित करना । उ०—तुमने उसे नाहक चटका दिया नहीं तो कुछ और बातें होतीं ।

चटकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

चटकारा—वि० [सं० चटुल] (१) चटकीला । चमकीला । (२) चंचल । चपल । तेज़ । उ०—अटपटात अलसात पलक पट मूँदत कबहूँ करत उघारे । मनहुँ मुदित मरकत मनि आंगन खेलत खंजरीट चटकारे ।—सूर ।

वि० [अनु० चट] वह शब्द जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को खाते समय तालू पर जीभ लगने से निकलता है । स्वाद से जीभ चटकाने का शब्द ।

मुहा०—चटकारे का = चरपरा। मजेदार। तीक्ष्ण स्वाद का। जैसे, चटकारे का सालन। चटकारे का भुरता। चटकारे भरना = खूब जीभ से चाट चाट कर स्वाद लेना। ओंठ चाटना।

चटकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक + आलि] (१) गौरों की पंक्ति। गौरैया नाम की चिड़ियों का झुंड। (२) चिड़ियों की पंक्ति वा समूह।

चटकादिरा—संज्ञा पुं० [सं०] पिपरामूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटकना] (१) चटकने वा फूटने का शब्द। (२) चटकने या तड़कने का भाव। (३) कलियों के खिलने का अस्फुट शब्द। कलियों के प्रस्फुटित होने का भाव।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] बुलबुल की तरह की एक चिड़िया जो ८ या १० अंगुल लंबी होती है और पंजाब और राजपूताने को छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमालय की ओर चली जाती है और वहीं चट्टानों के नीचे वा पेड़ों पर अंडे देती है।

चटकीला—वि० [हिं० चटक + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० चटकीली] (१) जिसका रंग फीका न हो। खुलता। शोख। भड़कीला। जैसे, चटकीला रंग। उ०—चटकीलो पट लपटानो कटि बंसीवट जमुना के तट, नागर नट।—सूर। (२) चमकीला। चमकदार। आभायुक्त। उ०—चटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति।—बिहारी। (३) जिसका स्वाद फीका न हो। जिसका स्वाद नमक, खटाई, मिर्च आदि के द्वारा तीक्ष्ण हो। चरपरा। चटपटा। मजेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० चटकीला + पन (प्रत्य०)] (१) चमक दमक। आभा। शोख़ी। (२) चरपरापन।

चटखना—क्रि० स० दे० "चटकना"।
संज्ञा पुं० दे० "चटकना"।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० दे० "चटकनी"।

चटखौता—संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] भालुओं का चरखा कातने का खेल। (कलंदर)।
क्रि० प्र०—कातना।

चट चट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। (२) जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। (३) वह शब्द जो उँगलियों को खींचने वा मोड़ कर दबाने से निकलता है। उँगली फूटने का शब्द।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—चट चट बलैया लेना = किसी प्रिय व्यक्ति (विशेषतः बच्चे) की विपत्ति बाधा दूर करने वा मंगल के लिये उँगलियाँ चटका कर प्रार्थना करना। (स्त्रियाँ किसी शत्रु का नाश मनाती हुई हाथों की उँगलियाँ चटकाती हैं। जब बच्चों को नज़र लगती है तब प्रायः ऐसा करती हैं जिसका अभिप्राय यह होता है कि नज़र लगानेवाले का नाश हो जाय।)

चटचटाना—क्रि० अ० [सं० चट = भेदन] (१) चटचट करते हुए टूटना वा फूटना। उ०—गर्व वचन प्रभु सुनत तुरत ही तनु बिस्तारयो। हाय हाय करि अरग बारही बार पुकारयो। शरन शरन अब मरत हौं मैं नहिं जान्यों तोहिं। चटचटात अँग फूटहीं राखु राखु प्रभु मोहिं।—सूर (२) गँठीली लकड़ी, कोयले आदि का चटचट शब्द करते हुए जलना।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटना] (१) चाटने की चीज़। वह गीली वस्तु जिसे एक उँगली से थोड़ा थोड़ा उठा कर जीभ पर रख सकें। अवलेह। (२) वह गीली चरपरी वस्तु जो पुदीना, हरी धनियाँ, मिर्च, खटाई आदि को एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीक्ष्ण करने के लिये थोड़ी थोड़ी खाई जाती है।
मुहा०—चटनी करना = (१) बहुत महीन पीसना। (२) पीस डालना। चूर चूर कर देना। मार डालना। खा जाना। चटनी होना = (१) खूब पिस जाना। (२) चट हो जाना। चट पट खा लिया जाना। खाने भर को न होना। (३) चुक जाना। खतम हो जाना। उड़ जाना।
(३) काठ का चार पाँच अंगुल का एक खिलौना जिसे छोटे बच्चे मुँह में डाल कर चाटते वा चूसते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। जलदी। तुरंत। झटपट। तत्क्षण। तत्काल। फ़ौरन।
मुहा०—चटपट की गिरह = वह फंदा जिसे खींच लेने से चट से गाँठ पड़ जाय। सरकफुंदी। (लश०)। चटपट होना = चटपट मर जाना। थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में मर जाना।

चटपटा—वि० [हिं० चाट] [स्त्री० चटपटी] चरपरा। तीक्ष्ण स्वाद का। मज़ेदार।

चटपटाना—क्रि० अ० [हिं० चटपट] जल्दी करना। हड़बड़ी मचाना।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] [वि० चटपटिया] (१) आतुरता। हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता।
क्रि० प्र०—पड़ना।—मचाना।—होना।
(२) घबराहट। व्यग्रता। आकुलता। (३) उत्सुकता। आकुलता। वह बेचैनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। छटपटी। उ०—(क) देखे बिना चटपटी लागति कछु मूँद पढ़ि पर ज्यों।—सूर। (ख) नैनन चटपटी मेरे तब तें लागी रहति कहाँ प्राण प्यारे निर्धन को धन।—सूर।
वि० स्त्री० दे० "चटपटा"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपटा] चटपटी चीज़। जैसे, कचालू आदि।

चटर—संज्ञा पुं० [अनु०] चटचट शब्द। किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर बार बार पड़ने का शब्द।

मुहा०—चटर करना = मस्तूल आदि को घुमाना वा फेरना। चक्कर देना। (लश०)।

चटरजी—संज्ञा पुं० [बं०] बंगदेश के ब्राह्मणों की एक शाखा। चट्टोपाध्याय।

चटरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी नाम का कुधान्य। लतरी। चिपटैया।

चटवाना—क्रि० स० [हिं० चाटना का प्रे०] (१) चाटने का काम कराना। चाटने में प्रवृत्त करना। चटाना। (२) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना। सान पर चढ़वाना।

चटशाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट + सं० शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। छोटी पाठशाला। मकतब।

चटसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० चट्टा = चेला + सार = शाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला। मकतब। उ०—अब समझी हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार।—सूर।

चटसाल—संज्ञा स्त्री० दे० "चटशाला"। उ०—तिनके सँग चटसाल पठायो। राम नाम सों तिन चित लायो।—सूर।

चटाई—संज्ञा स्त्री० [सं० कट = चटाई ?] वह बिछावन जो घास फूस, सींक, ताड़ के पत्तों, बाँस की पतली फट्टियों आदि का बनता है। साथरी। तृण का डासन।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] चाटने की क्रिया।

चटाक—संज्ञा [अनु०] लकड़ी आदि के टूटने, उँगली के चटकने वा चपत के पड़ने आदि का शब्द। जैसे, चटाक से छड़ी टूटना, उँगली फूटना, चपत लगाना इत्यादि। उ०—महा भुजदंड द्वै अंडकटाह चपेट के चोट चटाक दै फोरौं।—तुलसी।

विशेष—चट, खट आदि अन्य अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० पद के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

यौ०—चटाक पटाक = चटाक वा चट चट शब्द के साथ।

संज्ञा पुं० [हिं० चट्टा] चकत्ता। दाग। धब्बा। (विशेषतः शरीर पर का, जैसे, कुष्ठ आदि का)।

चटाकर—संज्ञा पुं० [हिं०] एक पेड़ जिसका फल खट्टा होता है। यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है।

चटाका—संज्ञा पुं० [अनु०] लकड़ी या और किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—चटाके का = बहुत तेज। उग्र। प्रचंड। जैसे, चटाके की धूप। चटाके की प्यास। (इसका प्रयोग गरमी तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं।)

चटाख—संज्ञा पुं० दे० "चटाक"।

चटाचट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द।

चटाना—क्रि० स० [हिं० चाटना का प्रे०] (१) चाटने का काम कराना। जीभ लगा कर किसी वस्तु का थोड़ा थोड़ा अंश मुँह में डालने देना। (२) थोड़ा थोड़ा किसी दूसरे के मुँह में डालना। खिलाना। जैसे, अन्न चटाना। (३) कुछ घूस देना। रिशवत देना। उ०—उन्होंने कुछ चटाया होगा, तब नौकरी मिली है। (३) छुरी, तलवार आदि पर सान धरवाना। सान पर चढ़वाना।

चटापटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चटपट] (१) शीघ्रता। जल्दी। फुरती। (२) किसी संक्रामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी जल्दी मृत्यु।

क्रि० प्र०—होना।

चटावन—संज्ञा पुं० [हिं० चटाना] बच्चे को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। अन्नप्राशन।

चटिक—क्रि० वि० [हिं० चट] चट पट। उसी समय। तत्क्षण। तत्काल। उ०—सुनत भूप भाषित चतुरानन। चले चटिक प्रिवव्रत जेहि कानन।—रघुराज।

चटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिपरामूल।

चटियल—वि० [देश०] अनावृत। खुला हुआ (मैदान)। जिसमें पेड़ पौधे न हों। निचाट।।

चटिहाट—वि० [देश०] जड़। मूर्ख। उजड्ड।

चटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चटसार। पाठशाला। उ०—मुनिवृंद जहाँ जिहि वेदपठी शुक सारस हंस चकोर चटी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] एक प्रकार की जूती, जो एँड़ी की ओर खुली होती है।

चटीचरि—संज्ञा पुं० [देश०] पेच विशेष।

चटु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाटु। प्रिय वाक्य। खुशामद। चापलूसी। (२) व्रतियों का एक आसन। (३) उदर। पेट।

चटुल—वि० [सं०] (१) चंचल। चपल। चालाक। (२) सुंदर। प्रियदर्शन। मनोहर। उ०—(क) छवि छः राग रस रागिनी हरि होरी है। ताल तान बंधान अहो हरि होरी है। चटुल चारु रतिनाथ के हरि होरी है। सीखत होइ अधान अहो हरि होरी है।—सूर। (ख) मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन।—भूषण। (ग) मोती लटकन को नवल नट नाचै नयन निरत पट वानि की चटुल चटसार में।—देव।

चटुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

चटोरा–वि० [हिं० चट + ओरा (प्रत्य०)] (१) जिसे अच्छी अच्छी चीज़ें खाने का व्यसन हो। जिसे स्वाद का व्यसन हो। स्वादिष्ट वस्तु खाने का लालची। स्वादलोलुप। जैसे, चटोरा आदमी, चटोरी ज़ुबान। (२) लोलुप। लोभी। उ०—अधर दोर वैसी सु निल छवि जल वसुधा चाल। रूप चटोरा मीन दृग आइ फँसत ततकाल।—मुबारक।

चटोरापन–संज्ञा पु० [हिं० चटोरा + पन (प्रत्य०)] अच्छी अच्छी चीज़ें खाने का व्यसन। स्वादलोलुपता।

चट्ट–वि० [हिं० चटना] (१) चाट पोंछ कर खाया हुआ। (२) समाप्त। नष्ट। ग़ायब। उ०—दया चट्ट हो गई धर्म धँसि गयो धरणि में।

चट्टा–संज्ञा पु० [सं० चेटक = दास] चेला। शिष्य।

संज्ञा पु० [सं० कट = चटाई ?] बाँस की चटाई।

संज्ञा पु० [?] चटियल मैदान। सूखा मैदान। ऐसा मैदान जिसमें पेड़ आदि न हों।

संज्ञा पु० [हिं० चकत्ता] शरीर पर कुष्ठ आदि के कारण निकला हुआ चकत्ता। दाग़।

क्रि० प्र०—निकलना।—पड़ना।

चट्टान–संज्ञा स्त्री० [हिं०] पहाड़ी भूमि के अंतर्गत पत्थर का चिपटा बड़ा टुकड़ा। विस्तृत शिलाखंड। शिलाखंड।

चट्टाबट्टा–संज्ञा पु० [हिं० चट्टू = चाटने का खिलौना + बट्टा = गोला] (१) छोटे बच्चों के खेलने के लिये काठ के खिलौनों का समूह जिसमें चट्टू, झुनझुने और गोले इत्यादि रहते हैं। (२) गोले और गोलियाँ जिन्हें बाज़ीगर एक थैली में से निकाल कर लोगों को तमाशा दिखाते हैं।

मुहा०—एक ही थैली के चट्टे बट्टे = एक ही गुट के मनुष्य। एक ही स्वभाव और रुचि के लोग। एक ही मत के आदमी। एक ही विचार के लोग। चट्टे बट्टे लड़ाना = इधर की उधर लगा कर लड़ाई कराना। चुटकुला छोड़ना। ऐसी बात कहना जिसमें कुछ लोग आपस में लड़ जांय। उ०—तुम्हें बहुत चट्टे बट्टे लड़ाना आता है।

चट्टी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) टिकान। पड़ाव। मंज़िल। उ०—सो कछु आगे द्वीर लखाई। तहँ एक चट्टी परम सुहाई।—रघुराज। (२) फर्रुखाबाद के ज़िले में पैर में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा वा अनु० चट चट] पँड़ी की ओर खुला हुआ जूता। स्लिपर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चँटा = चपत] (१) हानि। घाटा। टोटा। नुकसान। तावान।

मुहा०—चट्टी भरना = हानि पूरी करना।

(२) दंड। जुरमाना।

मुहा०—चट्टी धरना = दंड लगाना।

चट्टू–वि० [हिं० चट] स्वादलोलुप। चटोरा।

संज्ञा पुं० [हिं० चट्टन वा अनु० चट] पत्थर का बड़ा खरल।

संज्ञा पु० [हिं० चटना] काठ का एक खिलौना जिसे लड़के मुहँ में डाल कर चाटते हैं।

चड़–संज्ञा [अनु०] सूखी लकड़ी आदि के फटने का शब्द।

विशेष—चट, पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

चड़कपूजा–संज्ञा स्त्री० दे० "चरखपूजा"।

चड़चड़–संज्ञा पु० [अनु०] सूखी लकड़ी के टूटने वा जलने का शब्द।

चड़बड़–संज्ञा स्त्री० [अनु०] टें टें। बक बक। निरर्थक प्रलाप।

मुहा०—चड़बड़ चड़बड़ करना = बकवाद करना।

चड़सी–संज्ञा पु० [देश०] चरस पीनेवाले लोग। चरसबाज़। चरस का नशा करनेवाले लोग।

चड़ी–संज्ञा स्त्री० [म० चरप ?] वह लात जो उछल कर मारी जाय।

क्रि० प्र०—जमाना।—मारना।—लगाना।

चड्डा–संज्ञा पु० [देश०] जाँघ की जड़। जंघे का ऊपरी भाग।

वि० गावदी। मूर्ख।

चड्डी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लँगोट।

चड्ढी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] लड़कों का वह खेल जिसमें एक लड़का दूसरे की पीठ पर चढ़ कर चलता है। (जो लड़का हारता है उसी की पीठ पर सवारी की जाती है।)

क्रि० प्र०—चढ़ना।

मुहा०—चड्ढी देना = (१) हार कर पीठ पर चढ़ाना। (२) गुदामैथुन कराना।

चढ़त–संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] किसी देवता को चढ़ाई हुई वस्तु। देवता की भेंट।

चढ़ता–वि० [हिं० चढ़ना] (१) निकलता और ऊपर आता हुआ। बराबर ऊपर की ओर जाता हुआ। जैसे, चढ़ता चाँद। (२) आरंभ होता और बढ़ता हुआ। अग्रसर होता हुआ। जैसे, चढ़ती जवानी, चढ़ती वैस।

चढ़न*–संज्ञा स्त्री० [हिं०] चढ़ने की क्रिया या भाव। चढ़ाई।

चढ़नदार–संज्ञा पु० [हिं० चढ़ना + फा० दार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसे व्यापारी गाड़ी नाव आदि पर माल के साथ रक्षा के लिये भेजते हैं। (लश०)

चढ़ना–क्रि० अ० [सं० उच्चलन, प्रा० उच्चडन, चड्डन] (१) नीचे से ऊपर को जाना। ऊँचाई पर जाना। ऊँचे स्थान पर जाना। 'उतरना' का उलटा। जैसे, सीढ़ी पर चढ़ना, पहाड़ पर चढ़ना, पेड़ पर चढ़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—सूरज या चाँद का चढ़ना = सूर्य वा चंद्रमा का उदय हो कर क्षितिज के ऊपर आना। दिन चढ़ना = (१) दिन का प्रकाश फैलना। (२) दिन वा काल व्यतीत होना। जैसे, चार घड़ी दिन चढ़ा। दे० "दिन"।

(२) ऊपर उठना। उड़ना। उ०—गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। —तुलसी। (३) किसी नीचे तक लटकती हुई वस्तु का सिकुड़ वा खिसक कर ऊपर की ओर हो जाना। ऊपर की ओर सिमटना। जैसे, आस्तीन चढ़ना, बाहीं चढ़ना, पायजामा चढ़ना, पायचा चढ़ना, मोहरी चढ़ना। (४) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु का सटना। मढ़ा जाना। आवरण के रूप में लगना। ऊपर से टँकना। जैसे, किताब पर जिल्द या कागज़ चढ़ना, छाते पर कपड़ा चढ़ना, तकिये पर खोल वा गिलाफ चढ़ना, गोट चढ़ना। (५) बढ़ना। उन्नति करना।

मुहा०—चढ़ बढ़ कर या बढ़ चढ़ कर होना = श्रेष्ठ होना। अधिक महत्त्व का होना। चढ़ा बढ़ा या बढ़ा चढ़ा = श्रेष्ठ। अधिक बड़ा वा अच्छा। अधिक। विशेष। चढ़ बनना = मनोरथ सफल होना। सुयोग मिलना। लाभ का अवसर हाथ आना। उ०—उनकी आज कल खूब चढ़ बनी है। चढ़ बजना = बात बनना। पौ बारह होना। खूब चलती होना। उ०—अधर रस मुरली लूटि करावति। आपुन बार बार लै अँचवति जहां तहां ढरकावति। आजु महा चढ़ि बाजी बाकी जोइ कोइ करै बिराजै। करि सिंहासन पैठि अधर सिर छत्र धरे वह गाजै।—सूर।

(६) (नदी या पानी का) बाढ़ पर आना। बढ़ना। उ०—(क) बरसात के कारण नदी खूब चढ़ी थी। (ख) आज तीन हाथ पानी चढ़ा है। (७) आक्रमण करना। धावा करना। चढ़ाई करना। किसी शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित जाना।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—दौड़ना।

(८) बहुत से लोगों का दल बाँध कर किसी काम के लिये जाना। साज बाज के साथ चलना। गाजे बाजे के साथ कहीं जाना। उ०—आपके साथ मैं सारे इंदरलोक को समेट कुँवर उदयभान को ब्याहने चढ़ूँगा।—इंशाअल्ला। (९) मँहगा होना। भाव का बढ़ना। उ०—आज कल घी बहुत चढ़ गया है। (१०) स्वर का तीव्र होना। सुर ऊँचा होना। आवाज तेज होना। (११) नदी वा प्रवाह में उस ओर को चलना जिधर से प्रवाह आता हो। धारा वा बहाव के विरुद्ध चलना। (१२) ढोल, सितार आदि की डोरी या तार का कस जाना। तनना। जैसे, ढोल चढ़ना, तासा चढ़ना।

मुहा०—नस चढ़ना = नस का अपने स्थान से हट जाने के कारण तन जाना।

(१३) किसी देवता, महात्मा आदि को भेंट दिया जाना। देवार्पित होना। जैसे, माला फूल चढ़ना, बलि चढ़ना, बकरा चढ़ना। (१४) सवारी पर बैठना। सवारी करना। सवार होना। जैसे, घोड़े पर चढ़ना, गाड़ी पर चढ़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—बैठना।

(१५) किसी निर्दिष्ट काल-विभाग जैसे, वर्ष, मास, नक्षत्र आदि का आरंभ होना। जैसे, असाढ़ चढ़ना, महीना चढ़ना, दशा चढ़ना। उ०—(क) चढ़ा आसाढ़ दुँद घन गाजा। (ख) चढ़ति दसा यह उतरत जाति निदान। कहहुँ न कबहूँ करकस भौंह कमान।—तुलसी।

विशेष—वार तिथि वा उससे छोटे काल-विभाग के लिये 'चढ़ना' का प्रयोग नहीं होता।

(१६) किसी के ऊपर ऋण होना। कर्ज होना। पावना होना। जैसे, ब्याज चढ़ना। उ०—इधर कई महीनों के बीच में उस पर सैकड़ों रुपये महाजनों के चढ़ गए। (१७) किसी पुस्तक बही वा कागज आदि पर लिखा जाना। टँकना। दर्ज होना। (यह प्रयोग ऐसी रकम, वस्तु वा नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है।) जैसे, (क) ५) आज आए हैं, वे बही पर चढ़े कि नहीं? (ख) रजिस्टर पर लड़के का नाम चढ़ गया। (१८) किसी वस्तु का बुरा और उद्वेगजनक प्रभाव होना। बुरा असर होना। आवेश होना। जैसे, क्रोध चढ़ना, नशा चढ़ना, भूत चढ़ना, ज्वर चढ़ना।

मुहा०—पाप चढ़ना = पाप के प्रभाव से बुद्धि का ठिकाने न रहना।

(१९) पकने वा आँच खाने के लिये चूल्हे पर रखा जाना। जैसे, दाल चढ़ना, भात चढ़ना, हाँडी चढ़ना, कड़ाह चढ़ना। (२०) लेप होना। लगाया जाना। पोता जाना। जैसे, (अंग पर) दवा चढ़ना, वारनिश चढ़ना, रोगन चढ़ना, रंग चढ़ना। दे० "रंग"।

मुहा०—रंग चढ़ना = रंग का किसी वस्तु पर आना। रंग का खिलना। दे० "रंग"। उ०—सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग।—सूर।

(२१) किसी मामले को लेकर अदालत तक जाना। कचहरी तक मामला ले जाना। उ०—चार आदमी जो कह दें, मान लो, कचहरी चढ़ने क्यों जाते हो?

चढ़वाना-क्रि० स० [हिं० चढ़ना का प्रे०] चढ़ाने का काम कराना।

चढ़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चढ़ना] (१) चढ़ने की क्रिया या भाव। (२) ऊँचाई की ओर ले जानेवाली भूमि। वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो और जिस पर चलने में पैर कुछ उठा कर रखने के कारण अधिक परिश्रम

झुकाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना] (१) झुकाने की क्रिया या भाव। (२) झुकाने की मजदूरी।

झुकाना–क्रि० स० [हिं० झुकना] (१) किसी खड़ी चीज के ऊपरी भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना। निहुराना। नवाना। जैसे, पेड़ की डाल झुकाना। (२) किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना। जैसे, बेंत झुकाना, छड़ झुकाना। (३) किसी खड़े या सीधे पदार्थ को किसी ओर प्रवृत्त करना। (४) प्रवृत्त करना। रुजू करना। (५) नम्र करना। विनीत बनाना।

झुकामुखी–संज्ञा स्त्री० दे० "झुकमुख" उ०—जानि झुकामुखी भेष छपाय कै गागरी लै घर तें निकरी ती।—ठाकुर।

झुकार†–संज्ञा पु० [हिं० झकोरा] हवा का झोंका। झकोरा।

झुकाव–संज्ञा पुं० [हिं० झुकना] (१) किसी ओर लटकने, प्रवृत्त होने या झुकने की क्रिया। (२) झुकने का भाव। (३) ढाल। उतार। (४) प्रवृत्ति। मन का किसी ओर लगना।

झुकावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना + आवट (प्रत्य०)] (१) झुकने या नम्र होने की क्रिया या भाव। (२) प्रवृत्ति। चाह। झुकाव।

झुटपुटा–संज्ञा पु० [अनु०] कुछ अँधेरा और कुछ उँजेला समय। ऐसा समय जब कि कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश हो। झुकमुक।

झुटुंग–वि० [हिं० झोंटा] जिसके खड़े खड़े और बिखरे हुए बाल हों। झोंटेवाला। जटावाला। दे० "झोटंग"। उ०—योगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापस से तीर तीर बैठी हैं समरसरि खोरि कै।—तुलसी।

झुट्ठा†–वि० दे० "झूठा"।

झुठकाना–क्रि० स० [हिं० झूठ] (१) झूठी बात कह कर अथवा और किसी प्रकार (विशेषतः बच्चों आदि को) धोखा देना। (२) दे० "झुठलाना"।

झुठलाना–क्रि० स० [हिं० झूठ + लाना (प्रत्य०)] (१) झूठा ठहराना। झूठा प्रमाणित करना। झूठा बनाना। (२) झूठ कह कर धोखा देना। झुठकाना।

झुठाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूठ + आई (प्रत्य०)] झूठापन। असत्यता। झूठ का भाव। उ०—(क) जानि परत नहिं साँच झुठाई धेन चरावत रहे झुरैया।—सूर। (ख) आधि मगन मन व्याधि विकल तन वचन मलीन झुठाई।—तुलसी।

झुठाना–क्रि० स० [हिं० झूठ + आना (प्रत्य०)] झूठा ठहराना। झूठा साबित करना। झुठलाना।

झुठामूठी– क्रि० वि० दे० "झूठमूठ"।

झुठालना–क्रि० स० दे० "झुठलाना"।

झुन–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की चिड़िया। (२) दे० "झुनझुनी"।

झुनक–संज्ञा पु० [अनु०] नूपुर का शब्द।

झुनकना–क्रि० अ० [अनु०] झुनझुन शब्द करना। झु... बोलना या बजना।

संज्ञा पु० दे० "झुनझुना"।

झुनका†–संज्ञा पु० [?] धोखा। छल।

झुनकारा†–वि० [हिं० झीना] [स्त्री० ...नकारी] किंचि... झीना। महीन। बारीक। ... सितभारी की सेदकनी कुच...

झुनझुन–संज्ञा पु० [अनु०] ... बजने से होता है। उ... झुनझुन करत पाय... नि...

झुनझुना–संज्ञा पु० [हिं० झुनझु... एक प्रकार का खिलौना ... कागज आदि से बनाया ... प्रकार का होता है; पर स... एक डंडी होती है जिसके ... लट्टू होता है। इसी लट्टू ... छोटे दाने भरे होते हैं जि... झुनझुन शब्द होता है। ...

झुनझुनाना–क्रि० अ० [अनु०... जैसा बोलना।

क्रि० स० झुनझुन शब... निकालना।

झुनझुनियाँ–संज्ञा स्त्री० [अ...

संज्ञा स्त्री० [अनु०] (... झुनझुन शब्द करे। (...

क्रि० प्र०—पहनना।—...

झुनझुनी–संज्ञा स्त्री० [हिं०... तक एक स्थिति में झु... प्रकार की सनसनाहट...

क्रि० प्र०—चढ़ना।...

झुनी†–संज्ञा स्त्री० [देश०...

झुपझुपी–संज्ञा स्त्री० दे...

झुपरी†–संज्ञा... नासाकट... राव।...



झुप्पा–सं...

झुब...

झुमका-संज्ञा पुं० [हिं० झूमना] (१) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना जो छोटी गोल कटोरी के आकार का होता है। इस कटोरी का मुँह नीचे की ओर होता है और इसकी पेंदी में एक कुंदा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में नीचे की ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के तार में गुथे हुए मोतियों आदि की झालर लगी होती हैं। यह सोने चाँदी या पत्थर आदि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है। यह अकेला भी कान में पहना जाता है और करणफूल के नीचे लटका कर भी। (२) एक प्रकार का पौधा जिसमें झुमके के आकार के फूल लगते हैं। (३) इस पौधे का फूल।

वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला। हिलनेवाला।

पुं० [देश०] वह बैल जो अपने खूँटे पर बँधा हुआ पिछले पैर उठा उठा कर झूमा करे। यह एक कुल- ।

० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या री हथौड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निका- ाता है।

० [देश०] (१) काठ की मुँगरी। (२) गच औज़ार। पिटना।

० झूमना] झूमनेवाला। जो झूमता है।

[हिं० झूमना का स० रूप] किसी को झूमने ना। किसी चीज़ के ऊपरी भाग को चारों ओर लाना।

नु०] (१) मुरझाया हुआ। सूखा हुआ। (२) ा।

। पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे े हैं।

० "खेड़ी"।

नु०] दुबला पतला। कृश।

पुं० [हिं० झड़ + कण] किसी चीज़ के बहुत छोटे कड़े। चूर।

ा स्त्री० [अनु०] (१) कँपकँपी जो जूड़ी के पहले आती) कँपकँपी।

अ० [हिं० धूल, या चूर] (१) सूखना। सुरक होना। ुराना"। उ०—हाड़ भई झुरि किंगड़ी नसें भईं सब । रोंव रोंव तन धुन उठै कहौं बिथा केहि भाँति।— । (२) बहुत अधिक दुखी होना या शोक करना। क) साँझ भई झुरि झुरि पँथ हेरी। कौन घरी ी फेरी।—जायसी। (ग) बैसोइ रथ बैसोइ घोड़ उतरी तें। झुरि झुरि मरत बिरह गोपीजन फीते।—सूर। (ग) इनका बोझ आपके सिर है; आप इनकी खबर न लेंगे तो संसार में इनका कहीं पता न लगेगा। वे बेचारे यों ही झुर झुर कर मर जायगे।—श्रीनिवासदास। (३) बहुत अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुर्बल होना। घुलना। उ०—(क) ए दोऊ मेरे गाइचँरैया। मोल बिसाहि लये तुम को तब दोउ रहे नन्हैया।......जानि परत नहिं साँच झुठाई धेनु चरावत रहे झुरैया। सूरदास प्रभु कहति यशोदा मैं चेरी कहि लेत बलैया।—सूर। (ख) सूनो कै परम पद, ऊनो कै अनंत मद नूनो कै नदीस नद इंदिरा झुरै परी।—देव। (ग) सिद्धिन की सिद्धि दिगपालन की रिद्धि वृद्धि वेधा की समृद्धि सुरसदन झुरै परी।—रघुराज।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना। (क्व०)

झुरमुट-संज्ञा पुं० [सं० झुंट = झाड़ी] (१) कई झाड़ों या पत्तों आदि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय। एक ही में मिले हुए या पास पास कई झाड़ या क्षुप। डाल पत्तियों की आड़ (२) बहुत से लोगों का समूह। गरोह। उ०—रान इक मँह झुरमुट होइ बीता। दर मँह चढ़े रहै सो जीता।—जायसी। (३) चादर या ओढ़ने आदि से शरीर को चारों ओर से छिपा या ढक लेने की क्रिया।

मुहा०—झुरमुट मारना = चादर या ओढ़ने आदि से सारा शरीर इस प्रकार ढक लेना कि जिसमें जल्दी कोई पहचान न सके।

झुरवन-संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना + वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज के सूखने के कारण उसमें से निकल जाता है।

झुरवाना-क्रि० स० [हिं० झुरना] (१) सुखाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना। † (२) झुराना। सुखाना।

झुरसना-क्रि० अ०। स० दे० "झुलसना"।

झुरसाना-क्रि० स० दे० "झुलसाना"।

झुरहुरी-संज्ञा स्त्री० दे० "झुरझुरी"।

झुराना-क्रि० स० [हिं० झुरना] सुखाना। सुरक करना।

क्रि० अ० (१) सूखना। (२) दुःख या भय से घबरा जाना। दुःख से स्तब्ध होना। उ०—यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भए मानो बिन पानी।—सूर। (३) दुबला होना। क्षीण होना।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—दे० "झुरना"।

झुरावन-संज्ञा पुं० [हिं० झुराना + वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज़ को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है।

के पास एक राजा, एक हाथी, एक घोड़ा, एक नाव और चार वट्टे या पैदल होते थे। पूर्व की ओर की गोटियाँ लाल, पश्चिम की पीली, दक्षिण की हरी और उत्तर की काली होती थीं। चलने की रीति प्रायः आज ही कल के ऐसी थी। राजा चारों ओर एक घर चल सकता था, वट्टे या पैदल यों तो केवल एक घर सीधे जा सकते थे पर दूसरी गोटी मारने के समय एक घर आगे तिरछे भी जा सकते थे। हाथी चारों ओर (तिरछे नहीं) चल सकता था। घोड़ा तीन घर तिरछे जाता था। नौका दो घर तिरछे जा सकती थी। मोहरे आदि बनने का क्रम प्रायः वैसा ही था जैसा आज कल है। हार जीत भी कई प्रकार की होती थी, जैसे, सिंहासन, चतुराजी, नृपाकृष्ट, षट्पद, काककाष्ठ, बृहन्नौका इत्यादि।

चतुरंगिणी—वि० स्त्री० [सं०] चार अंगोंवाली (विशेषतः सेना)।
संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल ये चारो अंग हों।

चतुरंगिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरंगिणी"।

चतुरंगुल—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

चतुरंगुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतली लता।

चतुरंत—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] पृथिवी।

चतुर—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० चतुरा] (१) टेढ़ी चाल चलनेवाला। वक्रगामी। (२) फुरतीला। तेज। जिसे आलस्य न हो। (३) प्रवीण। होशियार। निपुण। (४) धूर्त्त। चालाक।
संज्ञा पुं० (१) शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो अपनी चातुरी से प्रेमिका के संयोग का साधन करे। इसके दो भेद हैं; क्रियाचतुर, और वचनचतुर। (२) हाथीखाना। वह स्थान जहाँ हाथी रहते हों। (३) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा।

चतुरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चतुराई] चतुरता। चतुराई।
क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—सीखना।
मुहा०—चतुरई छोलना = चालाकी करना। धोखा देना। उ०—जाहु चले गुन प्रगट सूर प्रभु कहा चतुरई छोलत हो।—सूर। चतुरई तोलना = चालाकी करना। उ०—यदुनायकी आनु में जानी कहा चतुरई तोलत हो।—सूर।

चतुरक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर।

चतुरक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें दो गुरु, दो प्लुत और इनके बाद एक गुरु होता है। यह ३२ अक्षरों का होता है और इसका व्यवहार शृंगार-रस में होता है।

चतुरजाति—संज्ञा स्त्री० दे० "चतुर्जातक"।

चतुरता—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर + ता (प्रत्य०)] चतुर का भाव। चतुराई। प्रवीणता। होशियारी।

चतुरनीक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुरानन। ब्रह्मा।

चतुरपन—संज्ञा पुं० [हिं० चतुर + पन] चतुराई। चतुरता।

चतुरबीज—संज्ञा पुं० दे० "चतुर्बीज"।

चतुरभुज—संज्ञा पुं० दे० "चतुर्भुज"।

चतुरमास—संज्ञा पुं० दे० "चातुर्मास"।

चतुरमुख—संज्ञा पुं० दे० "चतुर्मुख"।

चतुरम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत, इमली, जँबीरी और कागज़ी नीबू, इन चार खटाइयों का समूह। (वैद्यक)

चतुरशीति—वि० [सं०] चौरासी।

चतुरश्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मसंतान नामक केतु। (२) ज्योतिष में चौथी या आठवीं राशि।
वि० जिसके चार कोने हों। चौकोर।

चतुरसम—संज्ञा पुं० दे० "चतुस्सम"। उ०—मंगलमय निज निज भवन लोगन रचे बनाय। बीथी सींची चतुरसम चौकें चारु पुराय।—तुलसी।

चतुरस्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का तिताला ताल जिसमें क्रम से एक गुरु, गुरु की दो मात्राएँ, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक प्लुत और प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—धरिकुकु थों थांऽधिगदां। धिमि धिमि धिधिगन थों थों दे। (२) नृत्य में एक प्रकार का हस्तक।

चतुरह—संज्ञा पुं० [सं०] वह याग जो चार दिनों में हो।

चतुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य में धीरे धीरे भौहें कँपाने की क्रिया।
संज्ञा पुं० [हिं० चतुर] [स्त्री० चतुरी] (१) चतुर। प्रवीण। (२) धूर्त। चालाक।

चतुराई—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर + आई (प्रत्य०)] (१) होशियारी। निपुणता। दक्षता। (२) धूर्त्तता। चालाकी।

चतुरात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) विष्णु।

चतुरानन—संज्ञा पुं० [सं०] चार मुखवाला, ब्रह्मा।

चतुरापन—संज्ञा पुं० [हिं० चतुरा + पन (प्रत्य०)] चतुराई। होशियारी। उ०—फिर बात चले चतुरापन की चित चात्र चढ्यो सुधि वारि दई।—रघुनाथ।

चतुराम्ल—संज्ञा पुं० दे० "चतुरम्ल"।

चतुरिंद्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] चार इंद्रियोंवाले जीव।
विशेष—प्राचीन काल के भारतवासी मक्खी, भौंरे, साँप आदि की श्रवणेंद्रिय नहीं मानते थे इसी से उन्हें चतुरिंद्रिय कहते थे। (वैद्यक)

चतुरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्रायः एक ही लकड़ी में खोद कर या और किसी प्रकार बनाई जाती है।

चतुरूषण–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, मिर्च, पीपर और पिपरामूल, इन चार गरम पदार्थों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्–वि० [सं०] चार।
संज्ञा पुं० चार की संख्या।
विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग केवल समस्तपदों ही में होता है। जैसे, चतुरंगिणी, चतुरानन।

चतुर्गति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कछुआ। (२) विष्णु। (३) ईश्वर।

चतुर्गुण–वि० [सं०] (१) चौगुना। (२) चार गुणोंवाला।

चतुर्जातक–संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल), तेजपत्ता (पत्ता), नागकेसर (फूल), इन चार पदार्थों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्णवत्–वि० [सं०] चौरानवेवाँ।

चतुर्णवति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौरानवे की संख्या।
वि० चौरानवे।

चतुर्थ–वि० [सं०] चार की संख्या पर का। चौथा। जैसे, चतुर्थ परिच्छेद।
संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल।

चतुर्थक–संज्ञा पुं० [सं०] चौथिया बुखार। वह बुखार जो हर चौथे दिन आवे।

चतुर्थकाल–संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र के अनुसार वह काल जिस में भोजन करने का विधान है। भोजन का समय। दोपहर वा उसके लगभग का समय।

चतुर्थभक्त–संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थकाल।

चतुर्थभाज्–वि० [सं०] प्रजा के उत्पन्न किए हुए अन्न आदि में से कर स्वरूप एक चौथाई अंश लेनेवाला (राजा)।
विशेष—मनु के मत से कोई विशेष आवश्यकता या आपत्ति आ पड़ने के समय, केवल प्रजा के हितकर कामों में ही लगाने के लिये, राजा को अपनी प्रजा से उसकी उपज का एक चौथाई तक अंश लेने का अधिकार है।

चतुर्थांश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी चीज़ के चार भागों में से एक। चौथाई। (२) चार अंशों में से एक अंश का अधिकारी। एक चौथाई का मालिक।

चतुर्थाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास।

चतुर्थिकर्म्म–संज्ञा पुं० दे० "चतुर्थी (२)"।

चतुर्थिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक का एक परिमाण जो ४ कर्ष के बराबर होता है। पल।

चतुर्थी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष की चौथी तिथि। चौथ।
विशेष—(क) इस तिथि की रात, और किसी किसी के मत से रात के पहले पहर में अध्ययन करना शास्त्रों में निषिद्ध बतलाया गया है। (ख) भादों शुक्ल चतुर्थी को चंद्रमा के दर्शन करने का निषेध है। कहते हैं, उस दिन चंद्रमा के दर्शन करने से किसी प्रकार का मिथ्या कलंक या अपवाद आदि लगता है।
(२) वह विशिष्ट कर्म्म जो विवाह के चौथे दिन होता है और जिससे पहले वर-वधू का संयोग नहीं हो सकता। गंगा प्रभृति नदियों और ग्राम देवता आदि का पूजन इसी के अंतर्गत है (३) एक रसम जिसमें किसी प्रेत-कर्म्म करनेवाले के यहाँ मृत्यु से चौथे दिन बिरादरी के लोग एकत्र होते हैं। चौथा। (४) तांत्रिक मुद्रा।

चतुर्दंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) कार्त्तिकेय की सेना। (३) एक राक्षस का नाम।

चतुर्दंत–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी, जिसके चार दाँत हैं।

चतुर्दश–संज्ञा पुं [सं०] चौदह।

चतुर्दशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि। चौदस।

चतुर्दिक–संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ।
क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्दिश–संज्ञा पुं० [सं०] चारों दिशाएँ।
क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्दोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार डंडों का हिंडोला या पालना। (२) वह सवारी जिसे चार आदमी कंधों पर उठावें। जैसे—पालकी, नालकी आदि। (३) चंडोल नाम की सवारी।

चतुर्धाम–संज्ञा पुं० [सं०] चारों धाम। चार मुख्य तीर्थ। दे० "धाम"।

चतुर्बाहु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) विष्णु।

चतुर्भद्र–संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म्म, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों का समुच्चय।
वि० अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष-युक्त।

चतुर्भुज–वि० [सं०] [स्त्री० चतुर्भुजा] चार भुजाओंवाला। जिसमें चार भुजाएँ हों।
संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) वह क्षेत्र जिसमें चार भुजाएँ और चार कोण हों। जैसे,
यौ०—सम चतुर्भुज = चार भुजाओंवाला वह क्षेत्र जिसमें चार समकोण हों और जिसकी चारों भुजाएँ समान हों। जैसे,

चतुर्भुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक विशिष्ट देवी। (२) गायत्री रूपधारिणी महाशक्ति।

चतुर्भुजी–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज + ई (प्रत्य०)] (१) एक वैष्णव संप्रदाय जिसके आचार व्यवहार आदि रामानंदियों से मिलते जुलते होते हैं।

विशेष—लोग कहते हैं कि इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक किसी साधु ने एक बार चार भुजाएँ धारण की थीं, इसी से उसके संप्रदाय का नाम चतुर्भुजी पड़ा।

(२) इस संप्रदाय का अनुयायी।

वि० चार भुजाओंवाला, जैसे, चतुर्भुजी मूर्त्ति।

चतुर्मास–संज्ञा पुं० [सं० चातुर्मास] बरसात के चार महीनों (आषाढ़, सावन, भादों, कुआर) का चौमासा।

चतुर्मुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें क्रम से एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक गुरु, गुरु की दो मात्राएं, एक लघु, लघु की एक मात्रा, एक प्लुत और प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं। इसका बोल यह है—तांह। तकि तकि तांह ऽ थकि थरि। तकि तकि दिधि गन थों डे। (२) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। (३) विष्णु।

वि० [स्त्री० चतुर्मुखी] जिसके चार मुख हों। चार मुँह-वाला।

क्रि० वि० चारों ओर।

चतुर्मूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] विराट, सूत्रात्मा, अव्याकृत और तुरीय इन चारों अवस्थाओं में रहनेवाला, ईश्वर।

चतुर्युगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों युगों का समय। उतना समय जितने में चारो युग एक बार बीत जांय, अर्थात्, ४३२०००० वर्ष का समय। चौजुगी। चौकड़ी।

चतुर्वक्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] चार मुँहवाले, ब्रह्मा।

चतुर्वर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

चतुर्वर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

चतुर्वाही–संज्ञा पुं०] [सं०] चार घोड़ों की गाड़ी। चौकड़ी।

चतुर्विंश–संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग।

वि० चौबीसवां।

चतुर्विंशति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौबीस।

चतुर्विद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] चारों वेदों की विद्या।

वि० चारों वेद जाननेवाला।

चतुर्वीज–संज्ञा पुं० [सं० चतुर् + बीज] काला जीरा, अजवाइन, मेथी और हालिम इन चार प्रकार के दानों या बीजों का समूह। (वैद्यक)

चतुर्वीर–संज्ञा पुं० [सं०] चार दिनों में होनेवाला एक प्रकार का सोमयाग।

चतुर्वेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। ईश्वर। (२) चारों वेद।

वि० चारों वेद जाननेवाला।

चतुर्वेदी–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदिन्] (१) चारो वेदों का जानने-वाला पुरुष। (२) ब्राह्मणों की एक जाति।

चतुर्व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार मनुष्यों अथवा पदार्थों का समूह। जैसे, (क) राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। (ख) कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। (ग) संसार, संसार का हेतु, मोक्ष और मोक्ष का उपाय। (२) विष्णु।

विशेष—विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार के अनुसार विष्णु के शरीर-पुरुष, छंदःपुरुष, वेदपुरुष और महापुरुष ये चार रूप हैं; और पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि के कार्यों के लिये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार रूपों में अवतार लिया था, इसलिये इन्हें चतुर्व्यूह कहते हैं।

(३) योगशास्त्र। (४) चिकित्साशास्त्र।

चतुर्होत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु।

चतुल–संज्ञा पुं० [सं०] स्थापन करनेवाला। स्थापक।

चतुश्चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार तांत्रिक लोग मंत्रों के शुभ या अशुभ होने का विचार करते हैं।

चतुश्चत्वारिंश–वि० [सं०] चौवालीसवां।

चतुश्चत्वारिंशत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौवालीस की संख्या।

चतुःशृंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके चार सींग हों। (२) पुराणों के अनुसार कुशद्वीप के एक वर्ष के पर्वत का नाम।

चतुष्क–वि० [सं०] जिसके चार अंग वा पार्श्व हों। चौपहल।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का घर। (२) एक प्रकार की छड़ी वा डंडा।

चतुष्कर, चतुष्करी–संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके चारों पैरों के आगे के भाग हाथ के समान हों। पंजेवाले जानवर।

चतुष्कर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

चतुष्कल–वि० [सं०] चार कलाओंवाला। जिसमें चार मात्राएँ हों। जैसे, छंदःशास्त्र में चतुष्कल गण, संगीत में चतुष्कल ताल।

चतुष्की–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुष्करिणी का एक भेद। (२) मसहरी। (३) चौकी।

चतुष्कोण–वि० [सं०] चार कोणवाला। चौकोर। चौकोना।

संज्ञा पुं० वह जिसमें चार कोण हों।

चतुष्टय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार की संख्या। (२) चार चीज़ों का समूह। जैसे, अंतःकरणचतुष्टय। (३) जन्मकुंडली में केंद्र, लग्न और लग्न से सातवां तथा दसवां स्थान।

चतुष्टोम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार स्तोत्रवाला एक यज्ञ। (२) अश्वमेध यज्ञ का एक अंग। (३) वायु।

चतुष्पंचाश–वि० [सं०] चौवनवाँ।

चतुष्पंचाशत्–संज्ञा स्त्री०[सं०] चौवन की संख्या।

चतुष्पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुसना नाम का साग। दे० "चतुष्पर्णी"।

चतुष्पथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौराहा। चौमुहानी। (२) ब्राह्मण।

चतुष्पथरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

चतुष्पद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार पैरोंवाला जीव या पशु। चौपाया।

यौ०—चतुष्पदवैकृत।

(२) ज्योतिष में एक प्रकार का करण। फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला दुराचारी, दुर्बल और निर्धन होता है। (३) वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक इन चारों का समूह।

वि० चार पदोंवाला। जिसमें अथवा जिसके चार पद हों।

चतुष्पदवैकृत–संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति के चौपायों का दूसरी जाति के चौपायों से गमन करना, उनको स्तनपान कराना अथवा इसी प्रकार का और कोई नियम-विरुद्ध कार्य्य करना।

विशेष—फलित-ज्योतिष में इस प्रकार की क्रिया को अशुभ और अमंगल-सूचक माना है और ऐसा करनेवाले पशुओं के त्याग का विधान किया गया है।

चतुष्पदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपैया छंद, जिसका प्रत्येक चरण ३० मात्राओं का होता है। जैसे, भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी, मुनि मन हारी, अद्भुत रूप निहारी।—तुलसी।

चतुष्पदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चौपाई छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं। जैसे, राम रमापति तुम मम देव। मम दिशि देखो यह यश लेव। (२) चार पाद का गीत।

चतुष्पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी अमलोनी। (२) सुसना नामक साग जो पानी के किनारे होता है और जिसमें चार चार पत्तियाँ होती हैं।

चतुष्पाटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

चतुष्पाठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यार्थियों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला।

चतुष्पाणि–वि० [सं०] जिसके चार हाथ हों। चार हाथोंवाला। संज्ञा पुं० विष्णु।

चतुष्फल–वि० [सं०] जिसमें चार फल हों। चौपहला।

चतुष्फला–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवला नामक ओषधि।

चतुस्तन–संज्ञा स्त्री० [सं०] चार स्तनोंवाली, गाय।

चतुस्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें तीन द्रुत और एक लघु (० ० ० ।) होता है। इसका बोल यह है, (१) था० थरि० धिमि० थिरिधा। अथवा (२) था० धधि० गण० धों ई।

चतुस्त्रिंश–वि० [सं०] चौंतीसवाँ।

चतुस्त्रिंशत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंतीस की संख्या।

चतुस्सन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सनक, सनत्कुमार, सनंदन और सनातन ये चार ऋषि। (२) विष्णु।

चतुस्सम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक औषध जिसमें लौंग, ज़ीरा, अजवाइन और हड़ बराबर सम भाग होते हैं। यह पाचक, भेदक और आमशूल-नाशक होती है। (२) एक गंध-द्रव्य जिसमें २ भाग कस्तूरी, ४ भाग चंदन, ३ भाग कुंकुम और ३ भाग कपूर का रहता है।

चतुस्सूत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यासदेव कृत वेदांत के पहले चार सूत्र जो बहुत कठिन हैं और जिन पर भाष्यकारों का बहुत कुछ मत-भेद है। ये चारों सूत्र पढ़ने के लिये लोग प्रायः बहुत अधिक परिश्रम करते हैं।

चतुःपंचाश–वि० [सं०] चौवनवाँ।

चतुःपंचाशत्–संज्ञा पुं० [सं०] चौवन की संख्या।

चतुःषष्ट–वि० [सं०] चौंसठवाँ।

चतुःषष्ठि–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंसठ की संख्या या अंक।

चतुःसंप्रदाय–संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों के चार प्रधान संप्रदाय— श्री, माध्व, रुद्र और सनक संप्रदाय।

चतुःसप्तत्–वि० [सं०] चौहत्तरवाँ।

चतुःसप्तति–संज्ञा स्त्री० [सं०] चौहत्तर की संख्या या अंक।

चतूरात्र–संज्ञा पुं० [सं०] चार रात्रियों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

चत्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौमुहानी। चौरस्ता। (२) वह स्थान जहाँ भिन्न भिन्न देशों से लोग आकर रहें। (३) होम के लिये साफ़ किया हुआ स्थान।

चत्वरवासिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

चत्वारिंश–वि० [सं०] चालीसवाँ।

चत्वारिंशत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] चालीस की संख्या।

चत्वाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) होम-कुंड। (२) कुश नाम की घास। (३) गर्भ। (४) वेदी। चबूतरा।

चदरा–संज्ञा पुं० दे० "चादर"।

चदिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर। (२) चंद्रमा। (३) हाथी। (४) साँप।

चद्दर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चादर] (१) चादर। (२) किसी धातु का लंबा चौड़ा चौकोर पत्तर।

क्रि० प्र०—काटना।—जड़ना।

(३) नदी आदि के तेज़ बहाव में पानी का वह बहता हुआ अंश जिसका ऊपरी भाग कुछ विशेष अवस्थाओं में बिलकुल समतल हो जाता है।

विशेष—इस प्रकार की चद्दर में ज़रा भी लहर नहीं उठती और यह चद्दर बहुत भयानक समझी जाती है। यदि नाव या मनुष्य किसी प्रकार इस चद्दर में पड़ जाय तो उसका निकलना बहुत कठिन हो जाता है।

मुहा०—चद्दर पड़ना = नदी के बहते हुए पानी के कुछ अंश का एकदम समतल हो जाना।

विशेष—दे० "चादर"।

चनक†-संज्ञा पुं० [सं० चणक] चना। उ०—जानत हौं चारो फल चार ही चनक कौ।—तुलसी।

चनकना†-संज्ञा पुं० [देश०] शलजम।

चनकना†-क्रि० अ० दे० "चटकना"। उ०—विरह आँच नहिं सहि सकी सगी भई बेताब। चनकि गई सीसी गयो छिरकन छुनकि गुलाब।—शृं० सत०।

चनकास्ल-संज्ञा पुं० दे० "चणकाम्ल"।

चनखना†-क्रि० अ० [?] चिढ़ना। खफा होना। चिटकना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज बिहारी सों प्यारी जब तू बोलत चनख चनख।—हरिदास।

चनचना-संज्ञा पुं० [अनु०] एक कीड़ा जो तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है। यह तमाखू के पत्तों की नसों में छेद कर देता है जिससे पत्ते सूख जाते हैं। इसे झनझना भी कहते हैं।

चनन-संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] चंदन। संदल। उ०—श्रोंठ की चनन कँवरिया जो हांबाट। उड़िगो सोन चिरैया पिंजर हाथ।—रहीम।

चनसित-संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ। महान्।

विशेष—वैदिक काल में सम्मान के लिये नाम के पहले इस शब्द को लगा कर ब्राह्मणों को संबोधन करते थे।

चना-संज्ञा पुं० [सं० चणक] चैती फसल का एक प्रधान अन्न जिसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। इसकी छोटी कोमल पत्तियाँ कुछ खटाई और खार लिए होती हैं और खाने में बहुत स्वादिष्ट होती हैं। इस अन्न के दाने प्रायः गोल होते हैं और इसके ऊपर का छिलका उतार देने पर अंदर से दो दालें निकलती हैं जो और दालों की तरह उबाल कर खाई जाती हैं। यह अनेक प्रकार से खाने के काम में आता है। ताजा चना लोग कच्चा भी खाते हैं और सूखा चना भाड़ में भून कर खाया जाता है। इससे कई तरह की मिठाइयाँ और खाने की नमकीन चीजें बनती हैं। यह बहुत बलवर्द्धक और पुष्टिदायक समझा जाता है, पर कुछ गुरुपाक होता है। भारत में यह घोड़ों और दूसरे चौपायों को बलिष्ट करने के लिये दिया जाता है। वैद्यक में इसे मधुर, रूखा, और मेद, कृमि और रक्त-पित्त नाशक, दीपन, और रुचि तथा बलकारक माना गया है। इसे बूट, छोला और रहिला भी कहते हैं।

पर्य्या०—हरिमंथ। चणा। सुगंध। कृष्णचंचुक। बालभोज्य। राजिभक्ष्य। कंचुकी।

मुहा०—चने का मारा मरना = इतना दुर्बल होना कि बहुत जरा सी चोट से मर जाय। नाकों चने चबवाना = बहुत तंग करना। बहुत दिक या हैरान करना। नाकों चने चबाना = बहुत हैरान होना। लोहे का चना = अत्यंत कठिन काम। दुष्कर कार्य्य। विकट कार्य। लोहे का चना चबाना = अत्यंत कठिन कार्य्य करना।

चनाखार-संज्ञा पुं० [हिं० चना + खार] चने के डंठलों और पत्तियों आदि को जला कर निकाला हुआ खार।

चनाब-संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की पाँच नदियों में से एक जो लद्दाख के पर्वतों से निकल कर सिंध में जा गिरी है। यह प्रायः ६०० मील लंबी है।

चनार-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो उत्तर-भारत, विशेषतः काश्मीर में बहुत अधिकता से होता है। इसके पत्ते पंजे के आकार के होते हैं और जाड़े में बिलकुल झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी पीलापन लिए सफ़ेद रंग की और बहुत मज़बूत होती है, बहुत देर में जलती है और मेज़ कुरसियाँ आदि बनाने के काम में आती है।

चनियारी-संज्ञा स्त्री० [?] एक जल-पक्षी जो साँभर झील के निकट और बरमा में अधिकता से पाया जाता है। इसके पर बहुत सुंदर होते हैं और मेमों की टोपियों में लगाने और गुलूबंद बनाने के काम में आते हैं। इसे 'हरगीला' भी कहते हैं।

चनुअरी-संज्ञा स्त्री० दे० "चनौरी"।

चनेठ-संज्ञा पुं० [हिं० चना] (१) एक प्रकार की घास जिसकी पत्ती चने की पत्ती से मिलती जुलती होती है। यह बहुधा पशुओं की ओषधि में काम आता है। (२) इस घास से बनाई हुई ओषधि जो प्रायः पशुओं को दी जाती है।

चनौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चँद] वह भेड़ जिसके सारे शरीर के रोएँ सफ़ेद हों। (गड़ेरिया)

चन्हारिन-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली चिड़िया।

चप-संज्ञा स्त्री० [देश०] घोली हुई वस्तु। जैसे, चूने का चप।

चपकन-संज्ञा स्त्री० [हिं० चपकना] (१) एक प्रकार का अंगा। अंगरखा। (२) लोहे या पीतल का एक साज जिसे किवाड़, संदूक आदि में इसलिये लगाते हैं जिसमें बंद संदूक या किवाड़ के पल्ले अँटके रहें और झटके आदि से खुल न सकें। इसी के कोंढ़े में ताला लगाया जाता है। (३) एक छोटी कील जो हल की हरिस में आगे की ओर लगी होती है।

चपकना–क्रि० अ० दे० "चिपकना"।

चपका–संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] एक प्रकार का कीड़ा।

चपकाना–क्रि० स० दे० "चिपकाना"।

चपकुलिस–संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) अड़चन। फेर। कठिनाई। झंझट। कठिन स्थिति। अंडस।
क्रि० प्र०—में पड़ना।
(२) कसामसी। बहुत भीड़भाड़। अंडस।

चपट–संज्ञा पुं० [सं०] चपत। तमाचा।

चपटना†–क्रि० अ० दे० "चिपकना", "चिमटना"।

चपटा†–वि० दे० "चिपटा"।

चपटा-गाँजा–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा + गाँजा] दबाया हुआ गाँजा। बालूचर गाँजा।

चपटाना†–क्रि० स० दे० "चिपकाना", "चिमटाना"।

चपटी†–वि० स्त्री० दे० "चिपटी"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] (१) एक प्रकार की किलनी जो चौपायों को लगती है। (२) ताली। थपोड़ी। (३) योनि। भग।
मुहा०—चपटी खेलना = दो स्त्रियों का परस्पर योनि मिला कर रगड़ना। चपटी लड़ाना = दे० "चपटी खेलना"।

चपड़गट्टू–वि० [देश०] आफ़त का मारा।
वि० गुत्थमगुत्था।

चपड़ चपड़–संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो कुत्तों के मुँह से खाते वा पानी पीते समय निकलता है।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

चपड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] (१) साफ़ की हुई लाख का पत्तर। साफ़ की हुई काम में लाने योग्य लाख। (२) लाल रंग का एक कीड़ा वा फतिंगा जो प्रायः पाखानों तथा सीड़ लिए हुए गंदे स्थानों में होता है। (३) कोई पिटी हुई या चिपटी वस्तु। पत्तर।

चपड़ा लेना–क्रि० अ० [हिं० चपड़ा] मस्तूल के जोड़ पर रस्सी लपेटना। (लश०)

चपड़ी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] (१) तख़्ती। पटिया। (२) दे० "चिपड़ी"।

चपत–संज्ञा पुं० [सं० चपट] (१) तमाचा। थप्पड़। (जो सिर या गाल पर मारा जाय)।
विशेष—कुछ लोग चपत केवल उसी थप्पड़ को कहते हैं जो सिर पर लगे।
क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।—बैठना।—मारना।—लगाना।
मुहा०—चपत झाड़ना या धरना = चपत मारना।
यौ०—चपतगाह = खोपड़ा। गुद्दी।
(२) धक्का। हानि। नुक़सान। उ०—बैठे बैठाये चार रुपये का चपत बैठ गया।
क्रि० प्र०—पड़ना।—बैठना।

चपती–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपटा] काठ की वह चिपटी छड़ जिससे लड़के सीधी लकीरें खींचते हैं।

चपदस्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह घोड़ा जिसका अगला दहिना पैर सफ़ेद हो।

चपना–क्रि० अ० [सं० चपन = कूटना, कुचलना] (१) दबना। दाब में पड़ना। कुचल जाना। (२) लज्जा से गड़ जाना। लज्जित होना। शरमाना। झेंपना। सिर नीचा करना। छिप जाना। † (३) चौपट होना। नष्ट होना।

चपनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना] (१) छिछला कटोरा। कटोरी।
मुहा०—चपनी भर पानी में डूब मरना = लज्जा के मारे किसी को मुँह न दिखाना।
(२) एक प्रकार का कमंडल जो दरियाई नारियल का होता है। (३) वह लकड़ी जिसमें गड़रिये ताना बाँध कर कंबल की पट्टियाँ बुनते हैं। (४) हाँडी का ढकन।
मुहा०—चपनी चाटना = बहुत थोड़ा अंश पाकर रह जाना।
(५) घुटने की हड्डी। चक्की।

चपरउनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] लोहारों का एक औज़ार जिससे बालटू पीट कर फैलाया जाता है।

चपरगट्टू–वि० [हिं० चौपट + गटपट] (१) सत्यानाशी। चौपटा। आफत का मारा। अभागा। (२) गुत्थमगुत्था। एक में उलझा हुआ।

चपरना†*–क्रि० स० [अनु० चपचप] (१) किसी गीली या चिपचिपी वस्तु को दूसरी वस्तु पर फैला कर लगाना। दे० "चुपड़ना"। उ०—ऊधो जाके माथे भागु। अबलन योग सिखावन आए चेरिहि चपरि सोहागु।—सूर। (२) परस्पर मिलाना। सानना। ओत प्रोत करना। उ०—विषय चिंता दोउ हैं माया। दोउ चपरि ज्यों तरुवर छाया।—सूर। ‡ (३) भाग जाना। खिसक जाना।

चपरनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] मुजरा। गाना। (वेश्याओं की बोली)।

चपरा–संज्ञा पुं० दे० "चपड़ा"।
†वि० कोई बात कह कर या कोई काम करके उससे इनकार करनेवाला। मुकर जानेवाला। झूठा।
अव्य० [हिं० चपाना] हठात्। मान न मान। ख्वाहमख्वाह। जैसे हो तैसे। उ०—देरा भाला तोपची चपरा मैंयद दौर।

चपराना†–क्रि० स० [देश०] झूठा बनाना। झुठलाना।

चपरास–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपरासी] (१) पीतल आदि धातुओं की एक छोटी पट्टी जिसे पेटी या परतले में लगा कर

सिपाही, चौकीदार, अरदली आदि पहनते हैं और जिस पर उनके मालिक, कार्य्यालय आदि के नाम खुदे रहते हैं। बल्ला। बैज। (२) मुलम्मा करने की कलम। (३) मालखंभ की एक कसरत जो दुवाली के समान होती है। दुवाली में पीठ पर से बेंत आता है और इसमें छाती पर से आता है। (४) बढ़इयों के आरे के दाँतों का दहिने और बाएँ झुकाव। (बढ़ई आरे के कुछ दांतों को दहिनी ओर कुछ को बाईं ओर थोड़ा मोड़ देते हैं जिसमें आरे के पत्ते की मोटाई से चिराव के दरज की मोटाई कुछ अधिक हो और लकड़ी आरे को पकड़ने न पावे।) (५) कुरतों के मोढ़े पर की चौड़ी धज्जी।

चपरासी–संज्ञा पु० [फ़ा० चप = बायाँ + रास्त = दाहना] सिपाही। प्यादा। मिरदहा। अरदली। वह नौकर जो चपरास पहने हो और मालिक के साथ रहे।

चपरि*–क्रि० वि० [सं० चपल] फुरती से। चपलता से। तेजी से। जोर से। सहसा। एक बारगी। उ०—(क) जीवन तें जागी आगि चपरि चौगुनी लागि तुलसी बिलोकि मेघ चले मुँह मोरि कै।—तुलसी। (ख) तहाँ दसरथ के समर्थ नाथ तुलसी को चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा ललाम को।—तुलसी (ग) राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन।—तुलसी। (घ) चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु। —तुलसी। (च) कियो छुड़ावन विविध उपाई। चपरि गह्यो तुलसी बरियाई।—रघुराज।

चपरि–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] खेसारी। चिपटिया। एक कदन्न या घास जिसमें चिपटी चिपटी फलियाँ लगती हैं।

चपरैला–संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे कूरी भी कहते हैं।

चपल–वि० [सं०] (१) चंचल। तेज़। फुरतीला। चुलबुला। *कुछ काल तक एक स्थिति में न रहनेवाला। बहुत हिलने* डोलनेवाला। उ०—(क) भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाय।—तुलसी। (ख) लाज अपजस देखति नहीं, देखति साँवल गात। कहा करौं लालच भरे, चपल नैन ललचात।—बिहारी। (२) क्षणिक। बहुत काल तक न रहनेवाला। (३) उतावला। हड़बड़ी मचानेवाला। जल्दबाज़। (४) अभिप्राय साधन में उद्यत। अवसर न चूकनेवाला। चालाक। धृष्ट। उ०—मधुर सुम कान्ह ही की कही क्यों न कही है ? यह चनकही चपल चेरी की निपट चरेरी और ही है।—तुलसी।

संज्ञा पु० (१) पारा। पारद। (२) मछली। मत्स्य। (३) चातक। पपीहा। (४) एक प्रकार का पत्थर। (५) चोर नामक सुगंधि द्रव्य। (६) राई। (७) एक प्रकार का चूहा।

चपलता–संज्ञा स्त्री०] [सं०] (१) चंचलता। तेज़ी। जल्दी। (२) उतावली। धृष्टता। ढिठाई। उ०—चूक चपलता मेरियै तूँ बड़ी बड़ाई। बंदि छोर बिरदावली निगमागम गाई।—तुलसी।

चपलत्व–संज्ञा पु० [सं०] चपलता। चंचलता।

चपलफाँटा–संज्ञा पु० [सं० चपल + हिं० फट्टा = धज्जी] जहाज़ के फर्श के तख़्तों के बीच की खाली जगह में खड़े बैठाए तख़्ते या पच्चड़ जिनसे मस्तूल इत्यादि फँसे रहते हैं।

चपलस–संज्ञा पु० [देश०] एक ऊँचा पेड़। इसके भीतर की लकड़ी पीलापन लिए भूरी और बहुत ही मज़बूत होती है। इससे सजावट के सामान, चाय के संदूक, नाव, तख़्ते आदि बनते हैं। यह ज्यों ज्यों पुरानी होती है त्यों त्यों कड़ी और *मज़बूत होती जाती है।*

चपला–वि० स्त्री० [सं०] चंचल। फुरतीली। तेज़।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) बिजली। चंचला। (३) आर्य्या छंद का एक भेद। जिस आर्य्यादल के प्रथम गण के अंत में गुरु हो, दूसरा गण जगण हो, तीसरा गण दो गुरु का हो, चौथा गण जगण हो, पाँचवें गण का आदि गुरु हो, छठा गण जगण हो, सातवाँ जगण न हो, अंत में गुरु हो, उसे चपला कहते हैं। परंतु केदारभट्ट और गंगादास का मत है कि जिस आर्या में दूसरा और चौथा गण जगण हो वही चपला है। जैसे, 'रामा भजौ समेमा, सुमति पैहौ सुमुक्तिहू पैहौ।' इसके तीन भेद हैं— (क) मुख-चपला। (ख) जघन-चपला। (ग) महा-चपला। (४) पुंश्चली स्त्री। (५) पिप्पली। पीपल। (६) जीभ। जिह्वा। (७) विजया। भाँग। (८) मदिरा। (९) प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ हाथ ऊँची होती थी और केवल नदियों में चलती थी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चप्पड़] जहाज़ में लोहे या लकड़ी की *पट्टी जो पतवार के दोनों ओर उसकी रोक के लिये लगी रहती* है। (लश०)

चपलाई*–संज्ञा स्त्री० [सं० चपल] चपलता। उ०—रही बिलोकि बिचारि चारु छवि परमिति पार न पाई री। मंजुल तारन की चपलाई चितु चतुरानन करषै री।—सूर।

चपलान–संज्ञा पु० [हिं० चप्पड़] *जहाज़ की गलही के बगल* बगल के कुंदे जो धक्के सँभालने के लिये लगाए जाते हैं। (लश०)

चपलाना*–क्रि० अ० [सं० चपल] चलना। हिलना। डोलना।

क्रि० स० चलाना। हिलाना। डोलाना।

चपली†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपटा] जूती। चट्टी।
चपाट–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] वह जूता जिसकी एँड़ी उठी न हो। चपार जूता।
चपाती–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्पटी] वह पतली रोटी जो हाथ से बढ़ाई जाती है।
मुहा०—चपाती सा पेट = वह पेट जो बहुत निकला हुआ न हो। कृशोदर।
चपातीसुमा–वि० [उ०] रोटी के ऐसे सुमवाला (घोड़ा)।
चपाना–क्रि० स० [हिं० चपना] (१) एक रस्सी के सूत को दूसरी रस्सी के सूत के साथ बुन कर जोड़ना वा फँसाना। रस्सी जोड़ना। (२) दबवाना। दबाने का काम कराना। (३) लज्जा से दबाना। लज्जित करना। झिपाना। शरमिंदा करना।
चपेकना†–क्रि० स० दे० "चिपकाना"।
चपेट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना = दबाना] (१) झोंका। रगड़ा। धक्का। आघात। घिस्सा। रगड़ के साथ वह दबाव जो किसी भारी वस्तु के वेगपूर्वक चलने से पड़े। उ०—चारिहु चरन की चपेट चपिट चापे चिपटिगो उचकि चारि आँगुल अचलुगो।—तुलसी। (२) झापड़। थप्पड़। तमाचा। उ०—याको फल पावहुगो आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे।—तुलसी। (३) दबाव। संकट।
चपेटना–क्रि० स० [सं० चपेट] (१) दबाना। दबोचना। दबाव में डालना। रगड़ा देना। (२) बलपूर्वक भगाना। आघात पहुँचाते हुए हटाना। उ०—सिख लोग शत्रुओं की सेना को चारों ओर से चपेटने लगे। (३) डाँटना। फटकार बताना। उ०—आने दो, उसको हम ऐसा चपेटेंगे कि वह भी क्या समझेगा।
चपेटा–संज्ञा पुं० (१) दे० "चपेट"। (२) दोगला। वर्णसंकर।
चपेटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी छठ। भाद्रपद की शुक्ला षष्ठी। स्कंदपुराण में संतान के हितार्थ पूजन के लिये गिनाई हुई द्वादश षष्ठियों में से एक।
चपेरना‡–संज्ञा पुं० [हिं० चापना = दबाना] चापना। दबाना। उ०—दुर्मति केर दोहागिनि मेटै ढोटै चापि चपेरै। कह कबीर सांई जन मेरा घर की रारि निबेरै।—कबीर।
चपेहर–संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम।
चपोटसिरीस–संज्ञा स्त्री० [देश०] सिरीस वा सीसम की जाति का एक पेड़ जो शिशिर में अपनी पत्तियाँ झाड़ देता है और जमुना के पूर्व हिमालय की तराई में होता है। यह मध्य भारत, दक्षिण तथा बंबई प्रांत में भी होता है। इसके बीजों में से तेल निकलता है और इसकी पत्ती तथा छाल दवा के काम में आती है। इस पेड़ में से बहुत मज़बूत और लंबी धरन निकलती है जो इमारत आदि के काम में आती है।
चपौटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना-वा चिपटा] छोटी टोपी। सिर में जमी हुई टोपी।
चपौर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक जल पक्षी जो शरद ऋतु में बंगाल तथा आसाम में दिखाई पड़ता है। इसकी चोंच और पैर पीले तथा सिर गर्दन और छाती हलकी भूरी होती है। †(२) [हिं० चपटा] वह जूता जिसकी एड़ी उठी न हो। चपाट जूता।
चप्पड़–संज्ञा पुं० दे० "चिप्पड़"।
चप्पन–संज्ञा पुं० [हिं० चपना = दबना] छिछला कटोरा। दबी हुई वा नीची बारी का कटोरा।
चप्पल–संज्ञा पुं० [हिं० चपटा] (१) एक प्रकार का जूता जिसकी एड़ी चिपटी होती है। वह जूता जिसकी एड़ी पर दीवार न हो। (२) वह लकड़ी जिस पर जहाज़ की पतवार या और कोई खंभा जड़ा होता है। (लश०)
चप्पल-सेहुँड़–संज्ञा पुं० [हिं चपटा + सेहुँड़] नागफनी।
चप्पा–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद, प्रा० चउप्पाव] (१) चतुर्थांश। चौथाई भाग। चौथाई हिस्सा। (२) थोड़ा भाग। न्यून अंश। (३) चार अंगुल वा चार बालिश्त जगह। (४) थोड़ी जगह। उ०—इस राज तक अधर में छत सी बाँध दो, चप्पा चप्पा कहीं न रहे, जहाँ धूम धड़क्का भीड़ भड़क्का न हो।—इंशाअल्ला।
चप्पी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चपना = दबना] धीरे धीरे हाथ पैर दबाने की क्रिया। चरणसेवा।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
चप्पू–संज्ञा पुं० [हिं० चाँपना] कलवारी। एक प्रकार का डाँड़ जो पतवार का काम भी देता है।
क्रि० प्र०—मारना।
चफाल†–संज्ञा पुं० [हिं० चँ + फाल] वह भूमि जिसके चारों ओर कीचड़ वा दलदल हो।
चबक–संज्ञा स्त्री० [देश०] रह रह कर उठनेवाला दर्द। चिलक। टीस। हूल। पीड़ा।
वि० [हिं० चपना] दब्बू। डरपोक।
चबकना–क्रि० अ० [देश०] रह रह कर दर्द करना। टीसना। चमकना। चिलकना। हूल मारना। पीड़ा उठना।
चबकी– संज्ञा स्त्री० [देश०] सूत या ऊन की वह गुथी हुई रस्सी जिससे स्त्रियाँ केश बाँधती हैं। परांदा। मुड़बँधना। चँवरी।
चबनी हड्डी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चबाना + हड्डी] वह हड्डी जो भुरभुरी और पतली हो।
चबला†–संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं के मुँह का एक रोग। नाल रोग।

चबवाना-क्रि० स० [हिं० चबना का प्रे०] चबाने का काम कराना।

चबाना-क्रि० स० [सं० चर्वण] (१) दाँतों से कुचलना। जुगालना।

मुहा०—चबा चबा कर बातें करना = स्वर बना बना कर एक एक शब्द धीरे धीरे बोलना। मठार मठार कर बातें करना। चबे को चबाना = एक ही काम को बार बार करना। किए हुए काम को फिर फिर करना। पिष्टपेषण करना। उ०—करम पचासक लौं विषय ही में बाम कियो तऊ ना उदास भये चबे को चबाइए।—प्रिया०।

† (२) दाँत से काटना। दरदरना।

चबारा-संज्ञा पुं० [हिं० चौबारा] चौबारा। घर के ऊपर का बँगला। उ०—उज्ज्वल अखंड खंड सातएँ महल महामंडल चबारो चंद मंडल की चोट ही।—देव।

चबाव-संज्ञा पुं० दे० "चवाव"।

चबूतरा-संज्ञा पुं० [सं० चत्वाल हिं० चौतरा] (१) चौतरा। बैठने के लिये चौरस बनाई हुई ऊँची जगह। † (२) कोतवाली। बड़ा थाना।

चबेना-संज्ञा पुं० [हिं० चबना] चबा कर खाने के लिये सूखा भुना हुआ अनाज का दाना। चर्वण। भूँजा।

चबेनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चबना] (१) तली दाल मिठाई आदि जो बरातियों को जल-पान के लिये दी जाती है। (२) जलपान का सामान। (३) जलपान का मूल्य।

चब्बा†-संज्ञा पुं० दे० "चौवा"।

चब्बू†-वि० [हिं० चबना] बहुत चबानेवाला। बहुत खानेवाला।

चभ्भू†-वि० दे० "चब्बू"।

चभोक†-संज्ञा पुं० [हिं० चमकना] दूसरे का दिया हुआ गोता। डुब्बी। डुबकी।

क्रि० प्र०—देना।

चभक-संज्ञा [अनु०] पानी में किसी वस्तु के डूबने का शब्द।

विशेष—'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् आता है।

† संज्ञा स्त्री० [देश०] काटने वा डंक मारने की क्रिया।

चभड़ चभड़-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) वह शब्द जो किसी वस्तु को खाते समय मुँह के हिलने आदि से होता है। (२) कुत्ते, बिल्ली आदि के जीभ से पानी पीने का शब्द।

चभाना-क्रि० स० [हिं० 'चाभना' का प्रे०] खिलाना। भोजन कराना।

चभोका†-संज्ञा पुं० [देश०] बेवकूफ। मूर्ख। गावदी।

चभोकना†-क्रि० स० [हिं० चुभकी] (१) डुबाना। गोता देना। (२) भिगोना। तर करना।

चभोरना-क्रि० [हिं० चुभकी] (१) डुबोना। गोता देना। (२) आप्लावित करना। तर करना। भिगोना। उ०—(क) घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड उपर तर बोरे।—सूर। (ख) माँडे अति कोमल हैं नीके। ताते तुरत चभोरे घी के।—सूर।

चमंक-संज्ञा पुं० दे० "चमक"।

चमक-संज्ञा स्त्री० [सं० चमत्कृत] (१) प्रकाश। ज्योति। रोशनी। जैसे, आग या सूर्य की चमक, बिजली की चमक। (२) कांति। दीप्ति। आभा। झलक। दमक। जैसे, सोने की चमक, कपड़े की चमक।

यौ०—चमक दमक। चमक चाँदनी।

मुहा०—चमक देना वा मारना = चमकना। झलकना। चमक लाना = चमक उत्पन्न करना। झलकाना।

(३) कमर आदि का वह दर्द जो चोट लगने या एक बारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है। लचक। चिक। झटका। जैसे, उसकी कमर में चमक आ गई है।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

चमक-चाँदनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक + चाँदनी] बनी ठनी रहनेवाली दुश्चरित्रा स्त्री।

चमक दमक-संज्ञा स्त्री० (१) दीप्ति। आभा। झलक। तड़क भड़क। (२) ठाट बाट। तक दक। उ०—दरबार की चमक दमक देख कर लोग दंग हो गए।

चमकदार-वि० [हिं० चमक + फ़ा० दार] जिसमें चमक हो। चमकीला। भड़कीला।

चमकना-क्रि० अ० [हिं० चमक] (१) प्रकाश वा ज्योति से युक्त दिखाई देना। प्रकाशित होना। देदीप्यमान होना। प्रभामय होना। जगमगाना। जैसे, सूर्य का चमकना, आग का चमकना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) कांति वा आभा युक्त होना। झलकना। भड़कीला होना। दमकना। जैसे, सोने चाँदी का चमकना, कपड़े का चमकना। (३) कीर्त्ति लाभ करना। प्रसिद्ध होना। समृद्धि लाभ करना। श्रीसम्पन्न होना। उन्नति करना। उ०—देखो, वहाँ जाते ही वे कैसे चमक गए। (४) वृद्धि प्राप्त करना। बढ़ना। बढ़ती पर होना। समृद्ध होना। तरक्की पर होना। जोर पर होना। उ०—आज कल उनकी वकालत खूब चमकी है।

मुहा०—किसी की चमकना = किसी की अभिवृद्धि होना। किसी की बढ़ती और कीर्त्ति होना।

(५) चौंकना। भड़कना। चंचल होना। (घोड़े आदि के लिये) उ०—चमक तमक हाँसी सिसक मसक झपट लपटानि। जेहि रति सों राते मुकत और मुकति अति हानि।—बिहारी। (६) फुरती से खसक जाना। झट से निकल जाना। उ०—सखा साथ के चमकि गए सब गह्यो श्याम कर धाइ। और न जानि आन मैं दीनो तुम कहँ जाहु पराइ।—सूर।

(७) एक बारगी दर्द हो उठना। हिलने डोलने में किसी अंग की स्थिति में विपर्य्यय या गड़बड़ होने से उस अंग में सहसा तनाव लिए हुए पीड़ा उत्पन्न होना। उ०—बोझ उठाने में उसकी कमर चमक गई है। (८) मटकना। उँगलियाँ आदि हिला कर भाव बताना (जैसा कि स्त्रियां प्रायः करती हैं)। (९) मटक कर कोप प्रकट करना (१०) लड़ाई ठनना। झगड़ा होना। उ०—आज कल उन दोनों के बीच खूब चमक रही है। (११) कमर में चिक आना। अधिक बल पड़ने या चोट पहुँचने के कारण कमर में दर्द उठना। झटका लगना। लचक आना। उ०—बोझ इतना भारी था कि उसे उठाने में कमर चमक गई।

क्रि० प्र०—जाना।

चमकनी—वि० स्त्री० [हिं० चमकना] (१) चमक जानेवाली। जल्दी चिढ़ वा भड़क जानेवाली। (२) हावभाव करनेवाली।

चमकवाना—क्रि० स० ['चमकाना' का प्रे०] चमकाने का काम कराना।

चमकाना—क्रि० स० [हिं० चमकना] (१) चमकीला करना। चमक लाना। दीप्तिमान् करना। कांति लाना। ओपना। झलकाना। (२) उज्वल करना। निर्मल करना। साफ़ करना। झक करना। (३) भड़काना। चौंकाना। (४) चिढ़ाना। खिझाना। (५) घोड़े को चंचलता के साथ बढ़ाना। (६) भाव बताने के लिये उँगली आदि हिलाना। मटकाना। जैसे, उँगली चमकाना।

चमकारा—संज्ञा पुं० [सं० चमत्कार] चमक। प्रकाश। चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला प्रकाश।

चमकारी*—संज्ञा स्त्री० [सं० चमत्कार] चमक। प्रकाश। उ०—अधरबिंब दसनन की सोभा दुति दामिनि चमकारी।—सूर। वि० चमकीली।

चमकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक] कारचोबी में रुपहले सुनहले तारों के छोटे छोटे गोल या चौकोर चिपटे टुकड़े जो ज़मीन भरने के काम में आते हैं। सितारे। तारे।

चमकीला—वि० [हिं० चमक + ईला (प्रत्य०)] (१) जिसमें चमक हो। चमकनेवाला। चमकदार। ओपदार। (२) भड़कदार। भड़कीला। शानदार।

चमकौवल—संज्ञा पुं० [हिं० चमक + औवल (प्रत्य०)] (१) चमकाने की क्रिया। (२) मटकाने की क्रिया।

चमको—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमकना] (१) चमकने मटकनेवाली स्त्री। चंचल और निर्लज्ज स्त्री। (२) कुलटा स्त्री। व्यभिचारिणी स्त्री। (३) जल्दी चिढ़ जानेवाली स्त्री। झगड़नेवाली स्त्री। झगड़ालू स्त्री।

चमगादड़—संज्ञा पुं० [सं० चर्मचटका, पं० चमचिचड़ी, हिं० चमगीदड़ी] एक उड़नेवाला बड़ा जंतु जिसके चारों पैर परदार होते हैं। यह ज़मीन पर अपने पैरों से चल फिर नहीं सकता, या तो हवा में उड़ता रहता है या किसी पेड़ की डाल में चिपटा रहता है। दिन के प्रकाश में यह बाहर नहीं निकलता, किसी अँधेरे स्थान में पैर ऊपर और सिर नीचे करके औंधा लटका रहता है। इनके झुंड के झुंड पुराने खंडहरों आदि में लटके पाए जाते हैं। इस जंतु के कान बड़े बड़े होते हैं और उनमें आहट पाने की बड़ी शक्ति होती है। यद्यपि यह जंतु हवा में बहुत ऊपर तक उड़ता है पर इसमें चिड़ियों के लक्षण नहीं हैं। इसकी बनावट चूहे की सी होती है, इसे कान होते हैं और यह अंडा नहीं देता, बच्चा देता है। अगले पर बहुत लंबे होते हैं और उनके छोरों के पास से पतली हड्डियों की तीलियाँ निकली होती हैं, जिनके बीच में झिल्ली मढ़ी होती है। यही झिल्ली पर का काम देती है। तीलियों के सहारे से यह जंतु झिल्ली को छाते की तरह फैलाता और बंद करता है। चमगादड़ प्रायः कीड़े मकोड़े और फल खाता है। चमगादड़ अनेक प्रकार के होते हैं कुछ तो छोटे छोटे होते हैं और कुछ इतने बड़े होते हैं कि परों को दोनों ओर फैला कर नापने से वे गज़ डेढ़ गज़ ठहरते हैं।

चमचम—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बँगला मिठाई जो दूध फाड़ कर उसके छेने से बनती है।
क्रि० वि० दे० "चमाचम"।

चमचमाना—क्रि० अ० [हिं० चमक] चमकना। प्रकाशमान होना। दीप्तिमान होना। झलकना। दमकना। उ० --बादर घुमड़ि घुमड़ि आए ब्रज पर बरषत कारे धूम घटा अति ही जल। चपला अति चमचमाति ब्रज-जन सब डर डरात टेरत शिशु पिता मात ब्रज गलबल।—सूर।
क्रि० स० चमकाना। झलकाना। चमक लाना। दमक लाना।

चमचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० । सं० चमस] [स्त्री० अल्पा० चमची] (१) डाँड़ी लगी हुई एक प्रकार की छोटी कटोरी या पात्र जिससे दूध, चाय आदि उठा उठा कर पीते हैं। एक प्रकार की छोटी कलछी। चम्मच। डोई। कफ़चा। † (२) चिमटा। (३) नाव में डाँड़ का चौड़ा अग्रभाग। हाथा। हलेसा। पँगई। बैठा। (४) कोयला निकालने का एक प्रकार का फावड़ा। ढूँगा। (५) जहाज़ के दरज़ों में अलकतरा डालने की चोंचदार कलछी। (लश०)

चमचिचड़—वि० [हिं० चम + चिचड़ी] चिचड़ी या किलनी की तरह चिपटनेवाला। पिंड या पीछा न छोड़नेवाला।

चमची—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमचा] (१) छोटा चम्मच। (२) आचमनी। (३) छोटा चिमटा। (४) घुला हुआ चूना और कत्था निकालने और पान पर फैलाने की चिपटे और चौड़े मुँह की सलाई।

चमजुई—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मयूका] (१) एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं और कभी कभी मनुष्यों के शरीर पर उत्पन्न हो जाता है। एक प्रकार की बहुत छोटी किलनी। चिचड़ी। (२) चिचड़ी की तरह चिमटनेवाली वस्तु। पीछा न छोड़नेवाली वस्तु। जल्दी न जानेवाली वस्तु या व्यक्ति। उ०—जगमगी जोन्हैं ज्वाल जालन सों जारती न चमजोई जामिनि जुगत सम ह्वै जाती क्यों ?—देव।

चमजोई—संज्ञा स्त्री० दे० "चमजुई"।

चमटना†—क्रि० स० दे० "चिमटना"।

चमटा—संज्ञा पु० दे० "चिमटा"।

चमड़ा—संज्ञा पु० [सं० चर्म] (१) प्राणियों के सारे शरीर का वह ऊपरी आवरण जिसके कारण मांस नसें आदि दिखाई नहीं देतीं। चर्म। त्वचा। जिल्द।

विशेष—चमड़े के दो विभाग होते हैं, एक भीतरी दूसरा ऊपरी। भीतरी ऐसे तंतु पात्र के रूप में होता है जिसके भीतर रक्त, मज्जा आदि रहते और संचरित होते हैं। इसमें छोटी छोटी गुलथियाँ होती हैं। स्वेदधारक गुलथियाँ एक नली के रूप में होती हैं जिसका ऊपरी मुँह बाहरी चमड़े के ऊपर तक गया रहता है और निचला भाग कई फेरों में घूमी हुई गुलझटी के रूप में होता है। इसका अंश न पिचल कर अलग होता है और न छिलके के रूप में छूटता है। बाहरी चमड़ा या तो समय समय पर झिल्ली के रूप में छूटता या पिचल कर अलग होता है। यह वास्तव में चिपटे कोशों से बनी हुई सूखी कड़ी झिल्ली है जो झड़ती है और जिसके नाखून, पंजे, खुर, बाल आदि बनते हैं।

मुहा०—चमड़ा उधेड़ना या खींचना = (१) चमड़े को शरीर से अलग करना। (२) बहुत मार मारना।

विशेष—दे० "खाल"।

(२) प्राणियों के मृत शरीर पर से उतारा हुआ चर्म जिससे जूते, बैग आदि बहुत सी चीजें बनती हैं। खाल। चरसा।

विशेष—काम में लाने के पहले चमड़ा सिझा कर नरम किया जाता है। सिझाने की क्रिया एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है जिसमें टर्नीन, फिटकिरी, कसीस आदि द्रव्यों के संयोग से चर्मस्थित द्रव्यों में परिवर्तन होता है। भारतवर्ष में चमड़े को सिझाने के लिये उसे बबूल, बहेड़े, कत्थे, बलूत आदि की छाल के काढ़े में डुबाते हैं। पशु भेद से चमड़ों के भिन्न भिन्न नाम होते हैं। जैसे, बरदी (बैल का), भैंसौरी (भैंस का), गोरा (गाय का), किरकिल, कीमुख्त (गदहे या घोड़े का दानेदार), मुरदारी (मरी लाश का), साबर, हुलानी इत्यादि।

मुहा०—चमड़ा सिझाना = चमड़े को बबूल की छाल, सज्जी, नमक आदि के पानी में डाल कर मुलायम करना।

(३) छाल। छिलका।

चमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमड़ा] चर्म। त्वचा। खाल।

मुहा०—दे० "खाल"।

चमत्करण—संज्ञा पु० [सं०] चमत्कार करने या होने की क्रिया।

चमत्कार—संज्ञा पु० [सं०] [वि० चमत्कारी, चमत्कृत] (१) आश्चर्य। विस्मय। (२) आश्चर्य का विषय। वह जिसे देख कर चित्त में विस्मययुक्त आह्लाद उत्पन्न हो। अद्भुत व्यापार। विचित्र घटना। असाधारण और अलौकिक बात। करामात। (३) अनूठापन। विचित्रता। विलक्षणता। उ०—इस कविता में कोई चमत्कार नहीं है। (४) डमरू। (५) अपामार्ग। चिचड़ा।

चमत्कारक—वि० [सं०] चमत्कार उत्पन्न करनेवाला। आश्चर्यजनक। विलक्षण। अनूठा।

चमत्कारी—वि० [सं०] [स्त्री० चमत्कारिणी] (१) जिसमें चमत्कार हो। जिसमें कुछ विलक्षणता हो। अद्भुत। (२) चमत्कार दिखानेवाला। अद्भुत दृश्य उपस्थित करनेवाला। विलक्षण बातें करनेवाला। करामाती।

चमत्कृत—वि० [सं०] आश्चर्यित। विस्मित।

चमत्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्चर्य। विस्मय।

चमन—संज्ञा पु० [फ़ा०] (१) हरी क्यारी। (२) फुलवारी। घर के भीतर का छोटा बगीचा। (३) गुलज़ार बस्ती। रौनकदार शहर।

चमर—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० चमरी] (१) सुरागाय। (२) सुरागाय की पूँछ का बना चँवर। चामर। (३) एक दैत्य का नाम।

चमरख—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम + रक्षा] मूँज या चमड़े की बनी हुई चकती जो चरखे के आगे की ओर छोटी पिढ़ई के आस पास की खूँटियों में लगी रहती है और जिसमें से होकर तकला या टेकुआ घूमता है। चरखे की गुड़ियों में लगाने की चकती। उ०—(क) एक टका के चरखा बनावल टेकुवहिं टेकुआ चमरख लावल।—कबीर। (ख) और कुबड़ी कमर हो गई सिर हो गया दगला। मुँह सूख के चमरख हुआ तन हो गया तकला।—नज़ीर।

वि० स्त्री० दुबली पतली (स्त्री०)। उ०—वह तो सूख कर चमरख हो गई है।

चमरखा—संज्ञा पु० [सं० चर्मकषा] एक सुगंधित जड़ जो उबटन आदि में पड़ती है।

चमर-जुलाहा—संज्ञा पु० [हिं० चमार + जुलाहा] हिंदू कपड़ा बुननेवाला। हिंदू जुलाहा। कोरी।

चमर-बकुलिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "चमरबगली"।

चमरवगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार + वगला] बगले की जाति की एक काले रंग की चिड़िया ।

चमरशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर + शिखा] घोड़ों की कलगी । उ०—जबहिं रास ढीली मैं कीनी । तानि देह अगली इन लीनी । चलत कनौती लई दबाई । चमरशिखा हूँ हलन न पाई ।—लछमणसिंह ।

चमरस—संज्ञा पुं० [हिं० चाम] वह घाव जो चमड़े वा जूते की रगड़ से हो जाय ।

चमराखारी—संज्ञा पुं० [हिं० चमार + खारी] खारी नमक ।

चमरावत—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार] चमड़ा वा मोट आदि बनाने की मज़दूरी जो जिमींदार वा कारतकार की ओर से चमारों को मिलती है ।

चमरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कचनार का पेड़ ।

चमरिया सेम—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की सेम । सेम का एक भेद ।

चमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरागाय । (२) चँवरी । (३) मंजरी ।

चमरू—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़ा । खाल । चरसा । (लश०)

चमरौर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जिसकी छाया बहुत घनी होती है ।

चमरौट—संज्ञा पुं० [हिं० चमार + औट (प्रत्य०)] खेत, फसल आदि का वह भाग जो गाँव में चमारों को उनके काम के बदले में मिलता है ।

चमरौधा—संज्ञा पुं० दे० "चमौवा" ।

चमला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० चमली] भीख मांगने का ठीकरा । भिक्षापात्र ।

चमस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० चमसी] (१) सोमपान करने का चम्मच के आकार का एक यज्ञपात्र जो पलाश आदि की लकड़ी का बनता था । (२) कलछा । चम्मच । (३) पापड़ । (४) लड्डू । (५) उर्द का आटा । धुआँस । (६) एक ऋषि का नाम । (७) नौ योगीश्वरों में से एक ।

चमसा—संज्ञा पुं० [सं० चमस] चमचा । चम्मच । यज्ञपात्र ।
‡ संज्ञा पुं० दे० "चौमासा" ।

चमसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चम्मच के आकार का लकड़ी का का एक यज्ञपात्र । (२) उर्द, मूँग, मसूर आदि की पीठी ।

चमसोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभासक्षेत्र के पास का एक तीर्थ ।
विशेष—महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी यहीं अदृश्य हुई है । यहाँ पर स्नान करने का बड़ा फल लिखा है ।

चमाऊ*—संज्ञा पुं० [सं० चामर] चमर । चामर । चँवर । उ०—हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै ।—भूषण ।
संज्ञा पुं० दे० "चमौवा" ।

चमाचम—वि० [हिं० चमकना का अनु०] उज्ज्वल कांति के सहित । झलक के साथ । उ०—देखो बरतन कैसे चमाचम चमक रहे हैं ।

चमार—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकार] [स्त्री० चमारिन, चमारी] चमड़े का काम करनेवाला । एक नीच जाति जो चमड़े का काम बनाती है ।
यौ०—चमार चौदस = (१) चमारों का उत्सव । (२) वह धूम-धाम जो छोटे और दरिद्र लोग इतरा कर करते हैं । चार दिन का जलसा ।

चमारनी†—संज्ञा स्त्री० दे० "चमारी" ।

चमारिन†—संज्ञा स्त्री० दे० "चमारी" ।

चमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमार] (१) चमार जाति की स्त्री । चमार की स्त्री । (२) चमार का काम । (३) कमल का वह फूल जिसमें कमलगट्टे के ज़ीरे ख़राब हो जाते हैं ।

चमियारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पद्मकाठ ।

चमीकर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक खान जिससे सोना निकलता था । (इसी से सोने को चामीकर कहते हैं ।)

चमू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना । फ़ौज । (२) नियत संख्या की सेना जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सवार और ३६४५ पैदल होते थे ।

चमूकन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की किलनी जो चौपायों के शरीर में चिमटी रहती है ।

चमूचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिपाही । (२) सेनापति ।

चमूरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग ।

चमूहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चमेठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पालकी के कहारों की एक बोली ।
विशेष—सवारी लेकर जब कहार खेतों में चलता है और रास्ते में अरहर, गेहूँ, तीसी आदि की खूँटियां पड़ती हैं तो उनसे बचने के लिये अगला कहार, 'चमेठी' 'चमेठी' कह कर पिछले कहारों को सावधान करता है ।

चमेलिया—वि० [हिं०] चमेली के रंग का । सोनज़र्द ।

चमेली—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकवेलि । यद्यपि वैद्यक के निघंटु में नवमेली शब्द आया है पर वह संस्कृत नहीं प्रतीत होता] (१) एक झाड़ी वा लता जो अपने सुगंधित फूलों के लिये प्रसिद्ध है । इसमें लंबी पतली टहनियां निकलती हैं जिसके दोनों ओर पतली सींकों में लगी हुई छोटी छोटी पत्तियां होती हैं । चमेली दो प्रकार की होती है । एक साधारण चमेली जिसमें सफ़ेद रंग के फूल लगते हैं और दूसरी ज़र्द चमेली जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं । फूलों की महक बड़ी मीठी होती है । चमेली के फूलों से तेल बासा जाता है जो चमेली का तेल कहलाता है । (२) मालाओं की बोली में पानी की एक बरेह

जो ऊँची लहर उठने के कारण दोनों ओर लगती है और जिसके कारण प्रायः नावें डूब जाती हैं।

चमोई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल से नैपाली कागज़ बनाया जाता है। इसे धनकोटा, सनपूरा, सतबरसा इत्यादि भी कहते हैं। यह पेड़ सिक्किम से भूटान तक होता है।

चमोटा–संज्ञा पुं० [हिं० चाम + औटा (प्रत्य०)] पाँच छः अंगुल मोटे चमड़े का टुकड़ा जिस पर नाई छुरे को उसकी धार तेज़ करने के लिये बार बार रगड़ते हैं।

चमोटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम + औटा (प्रत्य०)] (१) चाबुक। कोड़ा। उ०—(क) माखन चोर री मैं पायो। मैं जु कही सखी होतु कहा है भाजन लगत भुकायो। जौ चाहौ तो जान कयों पैहै बहुत दिननु है खायो। बार बार है ढूँका लागी मेरी घात न आयो। नोई नैन की करों चमोटी घूँघट में डरवायो। बिहँसत निकसि रही दो दतियाँ तब लै कंठ लगायो। मेरे लाल को मारि सकै को रोहिनि गहि हलरायो। सूरदास प्रभु बालक लीला बिमल बिमल यश गायो।—सूर। (ख) खोटी परै उघटै सिर चोटी चमोटी लगैं मनो काम गुरू की। (२) पतली छड़ी। कमची। बेंत। उ० —चमोटी लगैं छमाछम विद्या आवै कमाकम।—पाठशाला के लड़के। (३) वह चमड़ा जिसे कैदियों की बेड़ियों में लोहे की रगड़ से बचने के लिये लगाते हैं। (४) चमड़े का वह टुकड़ा जिस पर नाई छुरे की धार घिसते हैं। (५) चमड़े का चार पाँच हाथ लंबा तस्मा जो खराद वा सान में लपेटा रहता है और जिसे खींचने से खराद वा सान का चक्कर घूमता है।

चमौवा–संज्ञा पुं० [हिं० चाम] वह भद्दा जूता जिसका तल्ला चमड़े से सिया गया हो। चमरौधा।

चम्मच–संज्ञा पुं० [फा० । सं० चमस्] एक प्रकार की हलकी कलछी जिससे दूध, चाय तथा और भी खाने पीने की चीजें चलाते और निकालते हैं।

चम्मल–संज्ञा पुं० दे० "चमला"।

चम्मोरानी–संज्ञा पुं० [?] लड़कों का एक खेल जिसे 'सात समुंदर' भी कहते हैं।

चम्रिष–संज्ञा स्त्री० [सं०] चम्मच में रक्खा हुआ अन्न या खाने की वस्तु।

चम्रीष–वि० [सं०] चम्मच में रक्खा हुआ।

चय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। ढेर। राशि। (२) धुस्स। टीला। दूह। (३) गढ़। किला। (४) किसी किले या शहर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई हुई दीवार। धुस्स। कोट। चहार-दीवारी। प्राकार। (५) बुनियाद जिसके ऊपर दीवार बनाई जाती है। नींव। (६) चबूतरा। (७) चौकी। ऊँचा आसन। (८) कफ, वात या पित्त की विशेष अवस्था। (९) यज्ञ के लिये अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार। चयन।

चयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इकट्ठा करने का कार्य्य। संग्रह। संचय। (२) चुनने का कार्य्य। चुनाई। (३) यज्ञ के लिये अग्नि का संस्कार। (४) क्रम से लगाने की क्रिया। चुनने की क्रिया।

*†संज्ञा पुं० दे० "चैन"।

चर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा की ओर से नियुक्त किया हुआ वह मनुष्य जिसका काम प्रकाश या गुप्त रूप से अपने अथवा पराये राज्यों की भीतरी दशा का पता लगाना हो। गूढ़ पुरुष। उ०—पठये अवध चतुर चर चारी।—तुलसी। (२) किसी विशेष कार्य्य के लिये कहीं भेजा हुआ आदमी। दूत। क़ासिद। (३) वह जो चले। जैसे—अनुचर, खेचर, निशिचर। (४) ज्योतिष में देशांतर जिसकी सहायता दिनमान निकालने में ली जाती है (५) खंजन पक्षी। (६) कौड़ी। कपर्दिका। (७) मंगल। भौम। (८) पासे से खेला जानेवाला एक प्रकार का जूआ। (९) नदियों के किनारे या संगमस्थान पर की वह गीली भूमि जो नदी के साथ बह कर आई हुई मिट्टी के जमने से बनती है। (१०) दलदल। कीचड़। (११) नदियों के बीच में बालू का बना हुआ टापू। (१२) छिछला पानी। (लश०) (१३) नदी का तट। (लश०) (१४) नाव वा जहाज़ में एक गूढ़े (आड़ी लगी हुई लकड़ी का बाहर की ओर निकला हुआ भाग) से दूसरे गूढ़े के बीच का स्थान। (लश०)

वि० [सं०] (१) आप से आप चलनेवाला। जंगम। जैसे–चर जीव, चराचर। (२) एक स्थान पर न ठहरनेवाला। अस्थिर। जैसे, चर राशि। चर नक्षत्र। (३) खानेवाला। आहार करनेवाला।

संज्ञा [अनु०] काग़ज़ कपड़े आदि के फटने का शब्द।

विशेष—खट, पट, चट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है, अतः इसका लिंगविचार व्यर्थ है।

चरई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चारा] पत्थर पर ईंट आदि का बना हुआ वह गहरा गड्ढा जिसमें जानवरों को चारा या पानी दिया जाता है।

चरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत। क़ासिद। चर। (२) गुप्तचर। भेदिया। जासूस। (३) वैद्यक के एक प्रधान आचार्य्य जो शेषनाग के अवतार माने जाते हैं, और जिनका रचा हुआ 'चरकसंहिता' वैद्यक का सर्वमान्य ग्रंथ है। (४) मुसाफ़िर। बटोही। पथिक। (५) दे० "चटक"। (६)

चरकसंहिता नाम का ग्रंथ। (७) बौद्धों का एक संप्रदाय। (८) भिखमंगा। भिक्षुक।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली। उ०—मारे चरक चाल्ह पर हासी। जल तजि कहाँ जाय जलवासी।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं० चक्र] कुष्ट का दाग। सफ़ेद दाग। फूल।

चरकटा—संज्ञा पुं० [हिं० चारा + काटना] (१) ऊँट या हाथी के लिये चारा काट कर लानेवाला आदमी। (२) तुच्छ मनुष्य। छोटे चित्त का आदमी।

चरकसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक मुनि का बनाया हुआ वैद्यक संबंधी एक प्रसिद्ध और सर्वमान्य ग्रंथ।

चरका-संज्ञा पुं० [फ़ा० चरक] (१) हलका घाव। ज़ख्म।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) गरम धातु से दागने का चिह्न। (३) हानि। नुकसान। धक्का।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा पुं० [देश०] मडुआ नामक अन्न का एक भेद।

चरकाल-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्योतिष के अनुसार समय का कुछ विशेष अंश जिसका काम दिनमान स्थिर करने में पड़ता है। (२) वह समय जो कि ग्रह को एक अंश से दूसरे अंश पर जाने में लगता है।

चरख-संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] (१) पहिए के आकार का अथवा इसी प्रकार का और कोई घूमनेवाला गोल चक्कर। चाक।

विशेष—इस प्रकार के चक्कर की सहायता से कूएँ से पानी खींचा जाता है, आतिशबाज़ी छोड़ी जाती है और इसी प्रकार के और बहुत से काम होते हैं।

(२) खराद।

यौ०—चरखकश।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

(३) लकड़ी का एक ढांचा जिस में चार अंगुल की दूरी पर दो छोटी चरखियां लगी रहती हैं और जिनके बीच में रेशम या कलाबत्तू लपेटा जाता है। (४) सूत कातने का चरखा। (५) कुम्हार का चाक। (६) गोफन। ढेलवाँस। (७) वह गाड़ी जिस पर तोप चढ़ी रहती है। उ०—चरखिनु आकरषें सदज्ज बरषें परदल धरषें भले भले।—सूदन। (८) तेंदुए की जाति का लकड़बग्घा नाम का जानवर। (९) बाज की जाति की एक शिकारी चिड़िया।

चरखकश-वि० [फ़ा० चर्खकश] (१) खराद की डोरी या पट्टा खींचनेवाला। (२) खराद चलानेवाला।

चरखपूजा-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चर्ख + पूजा] एक प्रकार की पूजा जो चैत की संक्रांति को होती है। इसका आयोजन ७ या ८ दिन पहले से होता है। यह पूजा शिव को प्रसन्न करने के लिये की जाती है। इस में भक्त लोग गाते बजाते और नाचते हुए भक्ति में उन्मत्त से हो जाते हैं, यहां तक कि कोई कोई अपनी जीभ छेदते हैं, कोई लोहे के कांटे पर कूदते हैं और कोई अपनी पीठ को बरछे से नाथ कर चारों ओर घूमते हैं। जिस खंभे पर इस बरछे को लगा कर चारों ओर घूमते हैं उसे चरख कहते हैं। ये सब क्रियाएं एक प्रकार के संन्यासी करते हैं। सरकारी कानून के कारण अब ये क्रियाएँ बहुत संक्षिप्त होती हैं। वृहद्धर्म्मपुराण नामक ग्रंथ में इस पूजा का विधान और फल लिखा हुआ है। ऐसी कथा है कि चैत्र की संक्रांति को बाण नामक एक शैव राजा ने भक्ति के आवेश में अपने शरीर का रक्त चढ़ा कर शिव को प्रसन्न किया था।

चरखा-संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ख] (१) पहिए के आकार का अथवा इसी प्रकार का कोई और घूमनेवाला गोल चक्कर। चरख। (२) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से ऊन, कपास या रेशम आदि को कात कर सूत बनाते हैं। इसमें एक ओर बड़ा गोल चक्कर होता है जिसे चरखी कहते हैं और जिसमें एक ओर एक दस्ता लगा रहता है। दूसरी ओर लोहे का एक बड़ा सूआ होता है जिसे तकुआ या तकला कहते हैं। जब चरखी घुमाई जाती है तब एक पतली रस्सी की सहायता से जिसे माला कहते हैं, तकुआ घूमने लगता है। उसी तकुए के घूमने से उसके सिरे पर लगे हुए ऊन या कपास आदि का कत कर सूत बनता जाता है। रहट।

क्रि० प्र०—कातना।—चलाना।

(३) कुएँ से पानी निकालने का रहट। (४) ऊख का रस निकालने के लिये बनी हुई लोहे की कल। (५) एक प्रकार का बेलन जिससे पेंटिए तार खींचते हैं। (६) सूत लपेटने की गराड़ी। चरखी। रील। (७) गराड़ी। घिरनी। (८) बड़ा या बेडौल पहिया। (९) रेशम खोलने का 'उढ़ा' नाम का औज़ार। (१०) गाड़ी का वह ढांचा जिसमें जोत कर नया घोड़ा निकालते हैं। खड़खड़िया। (११) वह स्त्री या पुरुष जिसके सब अंग बहुत बुढ़ापे के कारण शिथिल हो गए हों। (१२) झगड़े बखेड़े या झंझट का काम।

क्रि० प्र०—निकालना।

(१३) कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) नीचे होता है। इसमें जोड़ की दाहिनी ओर बैठ कर और अपनी बाईं टांग जोड़ की दाहिनी टांग में भीतर से डाल कर निकालते हैं और अपनी दाहिनी टांग जोड़ की गरदन में डाल कर दोनों पैर मिला कर ऐंठ करते हैं जिससे जोड़ चित हो जाता है।

चरखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चरखा का स्त्री० अल्पा०] (१) पहिए की तरह घूमनेवाली कोई वस्तु। (२) छोटा चरखा।

(३) कपास ओटने की चरखी। बेलनी। ओटनी। (४) सूत लपेटने की फिरकी। (५) धनुष के आकार का लकड़ी का एक यंत्र जिसमें एक खूँटी लगी रहती है और जिस की सहायता से मोटी रस्सियाँ बनाई जाती हैं। (६) कुएँ से पानी खींचने आदि की गराड़ी। घिरनी। (७) पतली कमाचियों से बना हुआ जोलाहों का एक औज़ार जिस की सहायता से कई सूत एक में लपेटे जाते हैं। (८) कुम्हार का चाक। (९) एक प्रकार की आतिशबाज़ी जो छूटने के समय खूब घूमती है।

चरखे का गलखोड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी उलटे उखाड़ से फेंकना चाहता है तब उसकी पीठ पर से चरखे के समान करवट ले कर अपनी टाँग उसकी गर्दन पर चढ़ाते हैं और उसका एक हाथ और एक पाँव गलखोड़े से बाँध कर उसे गिरा देते हैं। इसी को चरखे का गलखोड़ा कहते हैं।

चरग†–संज्ञा पुं० [फा० चरग] (१) बाज़ की जाति की एक शिकारी चिड़िया। चरख। उ०—चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर।—तुलसी। (२) लकड़बग्घा नामक जंतु जो कुत्तों का शिकार करता है।

चरगृह, चरगेह–संज्ञा पुं० दे० "चर राशि"।

चरचना–क्रि० स० [सं० चर्चन] (१) देह में चंदन आदि लगाना। उ०—चरचति चंदन अंग हरन अति ताप पीर के।—व्यास। (२) लेपना। पोतना। (३) भाँपना। अनुमान करना। समझ लेना। उ०—चरचहिं चेष्टा परखहिं नारी। निपट नाहिं औषध तहँ वारी।

क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजन करना। उ०—तबहिं नंद जू कही श्याम सों हमरे सुरपति पूजा। गोधन गिरि पै चाहि चरचिहै यह है मुखपूजा।—सूदन।

चरचरा–संज्ञा पुं० [अनु०] खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी छाती सफ़ेद होती है और जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर चारखानेदार धारियाँ होती हैं। यह प्रायः ६ से १० अंगुल तक लंबा होता और समस्त भारत में पाया जाता है। इसका अंडा देने का कोई निश्चित समय नहीं है। इसके मुनिया (लाल, हरा, तेलिया आदि) और सिंघाड़ा आदि अनेक भेद हैं।

†वि० दे० "चिड़चिड़ा"।

चरचराना–क्रि० अ० [अनु० चरचर] (१) चर चर शब्द के साथ टूटना या जलना। उ०—तागड़ गड़ गड़ान्यो खंभ फाट्यो चरचराय कै निकस्यो नर नाहर को रूप अति भयानो है। (२) घाव आदि का खुश्की से तनना और दर्द करना। चर्राना।

क्रि० स० चर चर शब्द के साथ (लकड़ी आदि) तोड़ना।

चरचराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरचराना + हट (प्रत्य०)] (१) चरचराना का भाव। (२) चर चर शब्द के साथ किसी चीज़ के टूटने या फटने का शब्द।

चरचा–संज्ञा स्त्री० दे० "चर्चा"। उ०—(क) हरिजन हरिचरचा जो करै। दासी सुत सो हिरदै धरै।—सूर। (ख) निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालहीं।—तुलसी। (ग) पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की इस चरचा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मणसिंह।

चरचारी*–संज्ञा पुं० [हिं० चरचा] (१) चरचा चलानेवाला। (२) निंदक। शिकायत करनेवाला। उ०—हौं हारी समुझाइ कै चरचारीहि डरै न। लगैं लगौहैं नैन ये नित चित करत अचैन।—शृं० सत०।

चरचित–वि० दे० "चर्चित"।

चरज–संज्ञा पुं० [फा० चरग] चरख नाम का पक्षी। उ०—हारिल चरज आय बंद परे। बनकुकरी जलकुकरी धरे।—जायसी।

चरजना*–क्रि० अ० [सं० चर्चन] (१) बहकाना। भुलावा देना। बहाली देना। उ०—चंचला चमाकैं चहुँ ओरन ते चाय भरी चरजि गई ती फेर चरजन लागी री।—पद्माकर। (२) अनुमान करना। अंदाज़ से लगाना। उ०—अरज गरज सुनि चरजि चित महँ हरज मरज बरकाई।—रघुराज

चरट–संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी।

चरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पग। पैर। पाँव। कदम।

यौ०—चरणपादुका। चरणपीठ। चरणसेवा।

मुहा०—चरण छूना = दंडवत या प्रणाम आदि करना। बड़े का अभिवादन करना। चरण देना = पैर रखना। उ०—जेहि गिरि चरण देइ हनुमंता।—तुलसी। चरण पड़ना = आगमन होना। कदम जाना। जैसे, जहँ जहँ चरण पड़ैं संतन के तहँ तहँ बंटाधार। चरण लेना = पैर पड़ना। पैर छूकर प्रणाम करना। चरण सेवा = (बड़ों की) सेवा शुश्रूषा।

(२) बड़ों का सान्निध्य। बड़ों की समीपता। बड़ों का संग उ०—ग्वाल सखा कर जोरि कहत हैं हमहिं श्याम तुम जनि बिसरायहु। जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौ तहाँ तहाँ जनि चरण छुड़ायहु।—सूर।

क्रि० प्र०—में आना।—में रखना।—में रहना।—छोड़ना।—छूटना।

(३) किसी छंद, श्लोक या पद्य आदि का एक पद। दल।

यौ०—चरणगुप्त।

(४) किसी पदार्थ का चतुर्थांश। किसी चीज़ चौथाई का भाग। जैसे, नक्षत्र का चरण, युग का चरण आदि। (५)

मूल । जड़ । (६) गोत्र । (७) क्रम । (८) आचार । (९) विचरण करने का स्थान । घूमने की जगह । (१०) सूर्य्य आदि की किरण । (११) अनुष्ठान । (१२) गमन । जाना । (१३) भक्षण । चरने का काम ।

चरणकरणानुयोग-संज्ञा पुं० [सं०] जैन साहित्य में वह ग्रंथ आदि जिसमें किसी के चरित्र पर बहुत ही सूक्ष्म रूप से विचार या व्याख्या की गई हो ।

चरणगुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके कई भेद होते हैं । इसमें कोष्टक बना कर अक्षर भरे जाते हैं जिनके पढ़ने के क्रम भिन्न भिन्न होते हैं । उ०—

इं	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
द्र	त	गी	लै	ये	म	स	न
छु	गी	सं	त	भ	का	ब	दी

(दो०—इंद्रजीत संगीत लै किये राम रस लीन ।
छुद्र गीत संगीत लै भये काम बस दीन ।)

रा	का	रा	ज
मा	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	सु

(दो०—राकाराज जराकारा मासमास समासमा ।
राधा मीत तमी धारा साल सीसु सुसील सा ।)

चरणचिह्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैरों के तलुए की रेखा । पाँव की लकीरें । (२) कीचड़ । धूल या बालू आदि पर पड़ा हुआ पैर का निशान । (३) पत्थर आदि पर बनाया हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है ।

चरणतल-संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलुवा ।

चरणदास-संज्ञा पुं० दिल्ली के रहनेवाले एक महात्मा साधु का नाम जो जाति के दूसर बनिये थे । इनका जन्म १७६० सं० वि० में और शरीरांत सं० १८३९ में हुआ था । इनके बनाए हुए कई एक ग्रंथ हैं जिनमें से 'स्वरोदय' बहुत प्रसिद्ध है । इन्होंने अपना एक पृथक् संप्रदाय चलाया था । इस संप्रदाय के साधु अब तक पाए जाते हैं और चरणदासी साधु कहलाते हैं ।

चरणदासी-वि० [चरणदास] महात्मा चरणदास के संप्रदाय का । चरणदास का अनुयायी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + दासी] (१) स्त्री । पत्नी । (२) जूता । पनही ।

चरणपर्व्वण-संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ । एड़ी ।

चरणपादुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड़ाऊँ । पावड़ी । (२) पत्थर आदि पर बना हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका प्रायः पूजन होता है । चरणचिह्न ।

चरणपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] चरणपादुका । पांवड़ी । खड़ाऊँ । उ०—(क) तुलसी प्रभु निज चरनपीठ मिस भरत प्रान रखवारो ।—तुलसी । (ख) सिंहासन सुभग राम चरनपीठ धरत चालत सब राज काज आयसु अनुसरत । —तुलसी ।

चरणसेवा-संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + सेवा] पैर दबाना बड़ों की सेवा ।

चरणा-संज्ञा पुं० [हिं० चरण] काछा ।

विशेष—दे० "चरना" ।

क्रि० प्र०—काछना ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की योनि का एक रोग । इस रोग में मैथुन के समय स्त्री का रज बहुत जल्दी स्खलित हो जाता है ।

चरणाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अक्षपाद । गौतम ।

चरणाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] चुनार नामक स्थान जो काशी और मिर्ज़ापुर के बीच में है । यहाँ एक छोटा सा पहाड़ है जिसकी एक शिला पर बुद्धदेव का चरण-चिह्न है । आज कल यह शिला एक मसजिद में रक्खी हुई है और मुसलमान उस पर के चिह्न को "क़दमेरसूल" बतलाते हैं ।

चरणानुग-वि० [सं०] (१) अनुगामी । किसी बड़े के साथ या उसकी शिक्षा पर चलनेवाला । (२) शरणागत ।

चरणामृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पानी जिस में किसी महात्मा या बड़े के चरण धोये गये हों । पादोदक ।

मुहा०—चरणामृत लेना = किसी महात्मा या बड़े के चरण धो कर पीना ।

(२) एक में मिला हुआ दूध, दही, घी, शक्कर और शहद जिसमें किसी देवमूर्त्ति को स्नान कराया गया हो ।

विशेष—हिंदू लोग बड़े पूज्य भाव से चरणामृत पीते हैं । चरणामृत बहुत ही थोड़ी मात्रा में पीने का विधान है ।

क्रि० प्र०—लेना ।

मुहा०—चरणामृत लेना = बहुत ही थोड़ी मात्रा में कोई तरल पदार्थ पीना ।

चरणायुध-संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा । कृकवाकु ।

चरणार्द्ध–वि० [सं०] (१) चरण या चतुर्थांश का आधा। किसी चीज का आठवाँ भाग। (२) किसी श्लोक या छंद के पद का आधा भाग।

चरणि–संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य।

चरणोदक–संज्ञा पुं० [सं०] चरणामृत।

चरत–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

विशेष—दे० "चीनी मोर"।

चरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चलने का भाव। (२) पृथ्वी।

चरतिरिया†–संज्ञा स्त्री० [देश०] मिरजापुर के जिले में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास जो मामूली होती है।

चरती–संज्ञा पुं० [हिं० चरना = खाना] वह जो व्रत न हो। व्रत के दिन उपवास न करनेवाला।

यौ०—वरती चरती।

चरत्व–संज्ञा पुं० [सं०] चलने का भाव।

चरथ–वि० [सं०] चलनेवाला। जंगम।

चरदास–संज्ञा स्त्री० [?] मथुरा जिले में होनेवाली एक प्रकार की कपास जो कुछ घटिया होती है।

चरन–संज्ञा पुं० दे० "चरण"।

विशेष—"चरन" के यौगिक आदि के लिये देखो "चरण" के यौगिक।

चर-नक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण और घनिष्ठा आदि कई नक्षत्र जिनकी संख्या भिन्न भिन्न आचार्यों के मत से अलग अलग है।

चरनचर†–संज्ञा पुं० [सं० चरणचर] पैदल सिपाही।

चरनदासी–संज्ञा स्त्री० [सं० चरण+दासी] जूता। पनही। (साधु)

चरनबरदार–संज्ञा पुं० [सं० चरण+फ़ा० बरदार] बड़े आदमियों का जूता उठाने और रखनेवाला नौकर।

चरना–क्रि० स० [सं० चर = चलना। मि० फ़ा० चरीदन] पशुओं का खेतों या मैदानों में घूम घूम कर घास चारा आदि खाना।

मुहा०—अक्ल का चरने जाना = दे० "अक्ल" के मुहावरे।

क्रि० अ० [सं० चर = चलना] घूमना फिरना। विचरना। उ०—जोहि तें विपरीत क्रिया करिये। दुख से सुख मानि सुखी चरिये।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० चरण = पैर] काछा। उ०—इस बात के सुनते ही राजा ने चरना काछ कर उस देव को ललकारा।—लल्लू।

संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों का एक औज़ार जिससे नकाशी करने में सीधी लकीर या लंबा चिह्न बनाया जाता है।

चरनायुध–संज्ञा पुं० दे० "दे० चरणायुध"। उ०—परै न पहर चरनायुध करैं न सोर परसैं न प्राची ओर कर दिनकर को।—रघुनाथ।

चरनि*–संज्ञा स्त्री० [सं० चर = गमन] चाल। गति। उ०—लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि।—तुलसी।

चरनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] (१) पशुओं के चरने का स्थान। चरी। चरागाह। (२) वह नाँद जिसमें पशुओं को खाने के लिये चारा दिया जाता है। (३) चौतरे के आकार का बना हुआ वह लंबा स्थान जिस पर पशुओं को चारा दिया जाता है। (४) पशुओं का आहार, घास चारा आदि। उ०—कमल बदन कुम्हिलात सबन के गोवन छाँड़ी तृन की चरनी।—सूर।

विशेष—कहीं कहीं चरही शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चरन्नी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चवन्नी"।

चरपट–संज्ञा पुं० [सं० चर्पट] (१) चपत। तमाचा। थप्पड़। (२) किसी की वस्तु उठा कर भाग जानेवाला। चाई। उचक्का। उ०—(क) जौ लौं जीवै तौ लौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि। द्योस चारि के हला भला तूँ कहा लेइगो लादि। धनमद जोवनमद राजमद भूल्यो नगर विवादि। कहि हरिदास लोभ चरपट यों काहे की लगै फिरादि।—स्वामी हरिदास। (ख) चरपट चोर गाँठिछोरा मिले रहहिं तेहि नाँच। जो तेहि हाट सजग रहइ गाँठि ताकरि गइ बाँच।—जायसी। (३) एक प्रकार का छंद। चर्पट। उ०—तोमर तनहूस चरपट साना। हरियक आठ भुजंगप्रयाता।—विश्राम।

चरपनी–संज्ञा० स्त्री० [देश०] वेश्या का गाना। मुजरा। (वेश्याओं और सपर्दाइयों की परिभाषा)

चरपर–वि० दे० "चरपरा"।

चरपरा–वि० [अनु०] झालदार। तीता। स्वाद में तीक्ष्ण। (नमक, मिर्च, खटाई आदि के संयोग से यह स्वाद उत्पन्न होता है। उ०—(क) खंडहि कीन्ह आंब चरपरा। लौंग इलाची सो खँडवरा।—जायसी। (ख) मीठे चरपरे उज्ज्वल कौरा। हौंस होइ तो ल्याऊँ औरा।—सूर।

वि० [सं० चपल] चुस्त। तेज। फुरतीला।

चरपराना–क्रि० अ० [हिं० चरचर] घाव का चर्राना। घाव में खुश्की के कारण तनाव लिए हुए पीड़ा होना।

चरपराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरपरा] (१) स्वाद की तीक्ष्णता। झाल। (२) घाव आदि की जलन। (३) द्वेष। डाह। ईर्ष्या।

चरफरा†–वि० दे० "चरपरा"।

चरफराना†*–क्रि० अ० [अनु०] तड़फड़ाना। तड़पना। उ०—चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग मनहु आनि रथ जोरे।—तुलसी।

चरख–वि० [फ़ा० चर्ख] तेज । तीखा । उ०—समर सरख से चरख शस्त्र सत परख सरिस धरि ।—गोपाल ।

यौ०—चरख जवानी = (१) बहुत अधिक और जल्दी जल्दी बोलना । (२) चिकनी चुपड़ी बातें करना । खुशामद करना ।

चरखना–संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] भूना हुआ अन्न । चबैना । दाना ।

चरखांक,चरखाक–वि० [फ़ा० चर्ख = तेज़] (१) चतुर । चालाक । होशियार । (२) शोख । निर्भय । निडर । चंचल । उ०—राखे है सु(मदन ये ऐसे ही चरखांक । पैनी मोहन की दरी अब नैननि कौं बांक ।—रसनिधि ।

मुहा०—चरखांक दीदा = (१) जिसकी दृष्टि चंचल हो । चंचल नेत्रवाला । (२) ढीठ । निडर । शोख ।

चरखा–संज्ञा पुं० [फ़ा० चरखः] प्रतिमूर्त्ति । नकल । खाका ।

मुहा०—चरखा उतारना = (१) खाका खींचना । नक़शा उतारना । चित्र खींचना । (२) किसी की नकल करना ।

चरखाना–क्रि० स० [सं० चर्म] ढोल पर चमड़ा मढ़ाना ।

चरबी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सफ़ेद या कुछ पीले रंग का एक चिकना गाढ़ा पदार्थ जो प्राणियों के शरीर में और बहुत से पौधों और वृक्षों में भी पाया जाता है । वैद्यक के अनुसार यह शरीर की सात धातुओं में से एक है और मांस से बनता है । अस्थि इसी का परिवर्त्तित और परिवर्द्धित रूप है । पाश्चिमात्य रासायनिकों के अनुसार सब प्रकार की चरबियां गंध और स्वाद-रहित होती हैं और पानी में घुल नहीं सकतीं । बहुत से पशुओं और वनस्पतियों की चरबियां प्रायः दो या अधिक प्रकार की चरबियों के मेल से बनी होती हैं । इसका व्यवहार औषध के रूप में खाने, मरहम आदि बनाने, साबुन और मोमबत्तियां तैयार करने, इंजिनों या कलों में तेल की जगह देने और इसी प्रकार के दूसरे कामों में होता है । शरीर से बाहर निकाली हुई चरबी गरमी में पिघल और सरदी में जम जाती है । मेद । वपा । पीह ।

मुहा०—चरबी चढ़ना = मोटा होना । चरबी छाना = (१) (किसी मनुष्य या पशु आदि का) बहुत मोटा हो जाना । शरीर में मेद बढ़ जाना । (ऐसी अवस्था में केवल शरीर की मोटाई बढ़ती है, उसमें बल नहीं बढ़ता ।) (२) मदांध होना । गर्व के कारण किसी को कुछ न समझना । आंखों में चरबी छाना = दे० "आंख" के मुहावरे ।

चरभ–संज्ञा पुं० [सं०] चर राशि । चर गृह ।

चरभवन–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में चर राशि ।

चरम–वि० [सं०] अंतिम । हद दरजे का । सबसे बढ़ा हुआ । चोटी का । पराकाष्ठा का ।

संज्ञा पुं० (१) पश्चिम । (२) अंत ।

संज्ञा पुं० दे० "चर्म" ।

चरमकाल–संज्ञा पुं० [सं०] अंतकाल । मृत्यु का समय ।

चरमदृष्टि–संज्ञा स्त्री० दे० चर्मदृष्टि" ।

चरमर–संज्ञा पुं० [अनु०] किसी से तनी हुई या चीमड़ वस्तु (जैसे, जूता, चारपाई) के दबने वा मुड़ने का शब्द । उ०—उनका जूता खूब चरमर बोलता है ।

चरमरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे तकड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—दे० "तकड़ी" ।

वि० [हिं० चरमराना अनु०] चरमर शब्द करनेवाला । जिससे चरमर शब्द निकले । जैसे, चरमरा जूता ।

चरमराना–क्रि० अ० [अनु०] चरमर शब्द होना । जैसे जूते का चरमराना ।

क्रि० स० [अनु०] किसी चीज़ में से चरमर शब्द उत्पन्न करना ।

चरमवती–संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मण्वती] चंबल नदी ।

चर राशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेष, कर्क, तुला और मकर राशि ।

चरलीता–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काष्ठौषध । उ०—चव चिराइता चित्रक चीता । चोक चोव चीनी चरलीता ।—सूदन ।

चरवांक–वि० दे० "चरखांक" ।

चरवा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया और मुलायम चारा जो खेत या खेत की ज़मीन में बारहो मास अधिकता से उत्पन्न होता है । बैल और घोड़े इसे बड़े चाव से खाते हैं । कहीं कहीं यह गायों और भैंसों को उनका दूध बढ़ाने के लिये भी दिया जाता है । धम्मन ।

चरवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चराना] (१) चराने का काम (२) चराने की मज़दूरी ।

चरवाना–क्रि० स० [हिं० चराना का प्रे०] चराने का काम कराना ।

चरवाहा–संज्ञा पुं० [हिं० चरना + वाहा = वाहक] गाय भैंस आदि चरानेवाला । पशुओं को चराई पर लेजानेवाला । वह जो पशु चरावे । चौपायों का रक्षक ।

चरवाही–संज्ञा स्त्री० [सं० चर + वाही] (१) पशु चराने का काम । (२) वह धन या वेतन जो पशु चराने के बदले में दिया जाय । चराने की मज़दूरी ।

चरवी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कहारों का एक सांकेतिक शब्द । इससे आगेवाला कहार पीछेवाले कहार को इस बात की सूचना देता है कि रास्ते में गाड़ी एक्का आदि हैं ।

चरवैया–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) चरनेवाला । (२) चरानेवाला ।

चरव्य–वि० [सं०] चरु बनाने योग्य ।

चरस–संज्ञा पुं० [सं० चर्म्म] (१) भैंस या बैल आदि के चमड़े से बना हुआ बड़ा थैला। (२) चमड़े का बना हुआ वह बहुत बड़ा डोल जिससे प्रायः खेत सींचने के लिये पानी निकाला जाता है। इसमें पानी बहुत अधिक आता है और उसे खींचने के लिये प्रायः एक या दो बैल लगते हैं। चरसा। तरसा। पुर। मोट। उ०—चिबुक कूप, रसरी अलक, तिल सु चरस दृग बैल। बारी बैस गुलाब की, सींचत मनमथ छैल। (३) भूमि नापने का एक परिमाण जो किसी किसी के मत से २१०० हाथ का होता है। गोचर्म्म। (४) गांजे के पेड़ से निकला हुआ एक प्रकार का गोंद या चेप जो देखने में प्रायः मोम की तरह का और हरे अथवा कुछ पीले रंग का होता है और जिसे लोग गांजे या तमाकू की तरह पीते हैं। नशे में यह प्रायः गांजे के समान ही होता है। यह चेप गांजे के डंठलों और पत्तियों आदि से उत्तर पश्चिम हिमालय में नेपाल, कमाऊँ, काश्मीर से अफ़ग़ानिस्तान और तुर्किस्तान तक बराबर अधिकता से निकलता है, और इन्हीं प्रदेशों का चरस सबसे अच्छा समझा जाता है। बंगाल, मध्य-प्रदेश आदि देशों में और योरप में भी, यह बहुत ही थोड़ी मात्रा में निकलता है। गांजे के पेड़ यदि बहुत पास पास हों तो उनमें से चरस भी बहुत ही कम निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि चरस का चेप केवल नर पौधों से ही निकलता है। गरमी के दिनों में गांजे के फूलने से पहले ही इसका संग्रह होता है। यह गांजे के डंठलों को हावन दस्ते में कूट कर या अधिक मात्रा में निकलने के समय उस पर से खरोच कर इकट्ठा किया जाता है। कहीं कहीं चमड़े का पायजामा पहन कर भी गांजे के खेतों में खूब चक्कर लगाते हैं जिसमें वह चेप उसी चमड़े में लग जाता है, पीछे उसे खरोच कर उस रूप में ले आते हैं जिसमें वह बाज़ारों में बिकता है। ताजा चरस मोम की तरह मुलायम और चमकीले हरे रंग का होता है पर कुछ दिनों बाद वह बहुत कड़ा और मटमैले रंग का हो जाता है। कभी कभी व्यापारी इसमें तीसी के तेल और गांजे की पत्तियों के चूर्ण की मिलावट भी देते हैं। इसे पीते ही तुरंत नशा होता है और आंखें बहुत लाल हो जाती हैं। यह गांजे और भांग की अपेक्षा बहुत अधिक हानिकारक होता है और इस के अधिक व्यवहार से मस्तिष्क में विकार आ जाता है।

विशेष—पहले चरस मध्य एशिया से चमड़े के थैलों या छोटे छोटे चरसों में भर कर आता था। इसी से उसका नाम चरस पड़ गया।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चर्ज़] आसाम प्रांत में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। इसे बन-मोर या चीनी मोर भी कहते हैं।

चरसा–संज्ञा पुं० [हिं० चरस] (१) भैंस बैल आदि का चमड़ा। (२) चमड़े का बना हुआ बड़ा थैला। (३) चरस। मोट। पुर। (४) भूमि का एक परिमाण। गोचर्म।

विशेष—दे० "चरस"।

संज्ञा पुं० दे० "चरस" पक्षी।

चरसिया–संज्ञा पुं० दे० "चरसी"।

चरसी–संज्ञा पुं० [हिं० चरस + ई (प्रत्य०)] (१) वह जो चरस की सहायता से कूएँ से पानी निकालता हो। चरस द्वारा खेत सींचनेवाला। (२) वह जो चरस पीता हो। चरस का नशा करनेवाला। जैसे, चरसी यार किसके ? दम लगाया खिसके।—कहावत।

चरही †–संज्ञा स्त्री० दे० "चरनी"।

चराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] (१) चरने का काम। चरने की क्रिया। (२) चराने का काम। (३) चराने की मज़दूरी।

चराऊ ‡–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] वह स्थान जहां पशु चरते हैं। चरागाह। चरनी।

चराक–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

चराग †–संज्ञा पुं० दे० "चिराग"।

चरागाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मैदान या भूमि जहां पशु चरते हों। पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरी।

चराचर–वि० [सं०] (१) चर और अचर। जड़ और चेतन। स्थावर और जंगम। उ०—त्रिभुवन हार सिंगार भगवती सलिल चराचर जाके ऐन। सूरजदास विधाता के तप प्रगट भई संतन सुखदैन।—सूर। (२) जगत। संसार। (३) कौड़ी।

चराचरगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) परमेश्वर।

चरान–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चौपायों के चरने की भूमि।

संज्ञा पुं० [हिं० चर = दलदल] समुद्र के किनारे का वह दलदल जिसमें से नमक निकाला जाता है।

चराना–क्रि० स० [हिं० चरना] (१) पशुओं को घास खिलाने के लिये खेतों या मैदानों में ले जाना। जैसे, गाय चराना, भैंस चराना। (२) किसी को धोखा देना। बातों में बहलाना। मूर्ख बनाना। जैसे, हम तुम्हारे सरीखे सैकड़ों को रोज चराया करते हैं।

चराव–संज्ञा पुं० [सं० चर] पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरागाह।

चरावना †–क्रि० स० दे० "चराना"।

चरावर †*–संज्ञा स्त्री० [देश०] व्यर्थ की बात। बकवाद। उ०—फागुन में एक प्रेम को राज है काहे बेकाज करो हो चरावर।

चरिंदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] चरनेवाला जीव। जैसे, गाय, भैंस, बैल, आदि। पशु। हैवान।

चरि–संज्ञा पुं० [सं०] पशु ।

चरित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहन सहन । आचरण । (२) काम । करनी । करतूत । कृत्य । जैसे, अभी आप उनके चरित नहीं जानते । (३) किसी के जीवन की विशेष घटनाओं वा कार्य्यों आदि का वर्णन । जीवनी । जीवन-चरित । जैसे, लघुमति मोरि चरित अवगाहा ।—तुलसी ।

विशेष—किसी किसी के मत से चरित दो प्रकार का होता है एक अनुभव, दूसरा लीला । पर यह भेद सर्वसम्मत नहीं है ।

चरितनायक–संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रधान पुरुष जिसके चरित्र-का आधार ले कर कोई पुस्तक लिखी जाय ।

चरितवान्–वि० दे० "चरित्रवान्" ।

चरितव्य–वि० [सं०] आचरण करने योग्य । करने योग्य ।

चरितार्थ–वि० [सं०] (१) जिसके उद्देश्य वा अभिप्राय की सिद्धि हो चुकी हो । कृतकृत्य । कृतार्थ । (२) जो ठीक ठीक घटे । जो पूरा उतरे । जैसे, आपवाली कहावत यहीं चरितार्थ होती है ।

चरित्तर–संज्ञा पुं० [सं० चरित्र] मिस । बहाना । नखरेबाज़ी । धूर्त्तता की चाल । नकल । उ०—यह सब स्त्रियों के चरित्तर हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

चरित्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वभाव । (२) कार्य्य । वह जो किया जाय । (३) करनी । करतूत । (४) चरित ।

विशेष—दे० "चरित" ।

चरित्रनायक–संज्ञा पुं० दे० "चरितनायक" ।

चरित्रवान्–वि० [सं०] [स्त्री० चरित्रवती] अच्छे चरित्रवाला । उत्तम आचरणोंवाला । अच्छे चाल चलनवाला । सदाचारी ।

चरित्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली का पेड़ ।

चरिष्णु–वि० [सं०] चलनेवाला । जंगम ।

चरी–संज्ञा स्त्री० [सं० चर वा हिं० चारा] (१) वह ज़मीन जो किसानों को अपने पशुओं के चारे के लिये जमींदार से बिना लगान मिलती है । (२) वह प्रथा या नियम जिसके अनुसार किसान ऐसी ज़मीन जमींदार से लेता है । (३) वह खेत या मैदान जो इस प्रथा के अनुसार चारे के लिये छोड़ दिया गया हो (४) छोटी ज्वार के हरे पेड़ जो चारे के काम में आते हैं । कड़वी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० चर = दूत] (१) दूती । संदेसा ले जानेवाली । (२) मजदूरनी । दासी । नौकरानी ।

चरु–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चरव्य] (१) हवन या यज्ञ की आहुति के लिये पकाया हुआ अन्न । हव्यान्न । हविष्यान्न । उ०—हाँड़ी हाटक घटित चरु रांधे स्वाद सुनाज ।—तुलसी । (२) वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाय । (३) मिट्टी के कसेरे में पकाया हुआ चार मुट्ठी चावल । (४) बिना माँड़ पसाया हुआ भात । वह भात जिसमें माँड़ मौजूद हो । (५) पशुओं के चरने की ज़मीन । (६) वह महसूल जो ऐसी ज़मीन पर लगाया जाय । (७) यज्ञ । (८) बादल । मेघ ।

चरुआ†–संज्ञा पुं० [सं० चरु] [स्त्री० अल्प० चरुई] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन । खास कर वह बरतन जिसमें प्रसूता स्त्री के लिये कुछ औषध मिला जल पकाया जाता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

चरुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धान । चरक ।

चरुखला†–संज्ञा पुं० [हिं० चरखा] सूत कातने का चरखा । उ०—जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै । मैं कातौं सूत हजार चरुखला ना जरै ।—कबीर ।

चरुचेली–संज्ञा पुं० [सं० चरुचेलिन्] शिव ।

चरुपात्र–ज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा वा पकाया जाय ।

चरुव्रण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान । एक प्रकार का पूआ जिसमें चित्र बने रहते हैं ।

चरुस्थाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा वा पकाया जाय । चरुपात्र ।

चरू*†–संज्ञा पुं० दे० "चरु" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "चरी" ।

चरेरु†–वि० दे० "चरेरा" ।

चरेरा–वि० [चरचर से अनु०] [स्त्री० चेरेरी] (१) कड़ा और खुरदुरा । (२) कर्कश । रूखा । उ०—मधुप तुम कान्ह ही की कही क्यों न कही हैं । यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीए रही है ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है । इसके हीर की लकड़ी कुछ ललाई लिए हुए सफ़ेद रंग की और बहुत मजबूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है । इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है ।

चरेरू–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] चिड़िया । पक्षी ।

चरेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना ?] ब्राह्मी बूटी ।

चरैया†–संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) चरानेवाला । (२) चरनेवाला ।

चरैला–संज्ञा पुं० [हिं० चार + ऐल = चूल्हे का मुहँ] एक प्रकार का चूल्हा जिस पर एक साथ चार चीज़ें पकाई जा सकती हैं ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जाल जिसमें झील या तालाब के किनारे रहनेवाले पक्षी पकड़े जाते हैं ।

चरोखर†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चारा + खर] पशुओं के चरने की जगह । चरी ।

चरोतर–संज्ञा पुं० [सं० चिरोत्तर] वह भूमि जो किसी मनुष्य को उसके जीवन भर के लिये दी गई हो।

चरौवा†–संज्ञा पुं० [हिं० चराना] (१) पशुओं के चरने का स्थान। चरी।

चर्क–संज्ञा पुं० [देश०] जहाज़ का मार्ग। रूस। (लश०)।

चर्ख–संज्ञा पुं० दे० "चरख"।

चर्खकश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) खराद की डोरी या पट्टा खींचनेवाला। (२) खराद चलानेवाला।

चर्खा–संज्ञा पुं० दे० "चरखा"।

चर्खी–संज्ञा स्त्री० दे० "चरखी"।

चर्च–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मंदिर जिसमें ईसाई प्रार्थना करते हैं। गिरजा। (२) ईसाई धर्म्म का कोई संप्रदाय।

विशेष—ईसाई धर्म्म में अनेक संप्रदाय हैं और प्रत्येक संप्रदाय के चर्च या प्रार्थना-मंदिर भिन्न भिन्न होते हैं। जो ईसाई जिस संप्रदाय का होता है वह उसी संप्रदाय के चर्च में जाता और फलतः उसी चर्च का अनुयायी कहलाता है।

चर्चक–संज्ञा पुं० [सं०] चर्चा करनेवाला।

चर्चन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चर्चा। (२) लेपन।

चर्चर–वि० [सं०] गमनशील। चलनेवाला।

चर्चरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह गान जो किसी एक विषय की समाप्ति और जवनिका-पात होने पर और किसी दूसरे विषय के आरंभ होने और जवनिका उठने से पहले होता रहता है। इस बीच में पात्र तैयार होते हैं और दर्शकों के मनोरंजन के लिये यह गान होता है।

विशेष—(क) कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक में अनेक चर्चरिकाएँ हैं। (ख) आधुनिक नाटकों में केवल किसी अंक की समाप्ति पर ही पात्रों को तैयार होने का समय मिलता है, गर्भांक या दृश्य की समाप्ति पर दूसरा अंक आरंभ होने से पहले जो गान होता है वह भी चर्चरिका ही है।

चर्चरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का गाना जो वसंत में गाया जाता है। फाग। चांचर। (२) होली की धूम धाम। होली का उत्सव। होली का हुल्लड़। (३) एक वर्णवृत्त जिसमें रगण, सगण, दो जगण और तब फिर रगण (र, स, ज, ज, भ, र) होता है। उ०—वैन ये सुनि कै चली मिथिलेशजा हरषाय कै। हाँकि कै पहुँचे रथै सुरआपगा तिय जाय कै। (४) करतल-ध्वनि। ताली बजाने का शब्द। (५) ताल के मुख्य ६० भेदों में से एक। (६) चर्चरिका। (७) प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल या बाजा जो चमड़े से मढ़ा हुआ होता था। (८) आमोद-प्रमोद। क्रीड़ा। (९) गाना बजाना। नाचना कूदना। आनंद की धूम।

चर्चरीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाकाल भैरव। (२) साग। भाजी। (३) केशविन्यास। बाल सँवारने की क्रिया।

चर्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर की नौ निधियों में से एक।

चर्चा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जिक्र। वर्णन। बयान। उ०—(क) हरिजन हरिचरचा जो करैं। दासी सुत सो हिरदै धरैं।—सूर। (ख) निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालहीं।—तुलसी। (२) वार्त्तालाप। बातचीत। (३) किंवदंती। अफ़वाह। उ०—पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की इस चर्चा ने प्रत्येक पुरवासी को हर्षित किया।—लक्ष्मणसिंह।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—छिड़ना।—उठना।—होना।

(४) लेपन। पोतना। (५) गायत्री रूपा महादेवी। (६) दुर्गा।

चर्चिक–वि० [सं०] वेद आदि जाननेवाला।

चर्चिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चर्चा। जिक्र। (२) दुर्गा। (३) एक प्रकार का सेम।

चर्चित–वि० [सं०] (१) लेपित। लगा या लगाया हुआ। पोता हुआ। जैसे, चंदनचर्चित नीलकलेवर पीतवसन वनमाली। (२) जिसकी चर्चा हो।

संज्ञा पुं० लेपन।

चर्नाद्रि†–दे० "चरणाद्रि" या "चुनार"।

चर्पट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चपत। थप्पड़। (२) हाथ की खुली हुई हथेली।

वि० विपुल। अधिक।

चर्पटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी छठ।

चर्पटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या चपाती।

चर्परा–वि० दे० "चरपरा"।

चर्बण–संज्ञा पुं० दे० "चर्वण"।

चर्बित–वि० दे० "चर्वित"।

चर्बी–संज्ञा स्त्री० दे० "चरबी"।

चर्भट–संज्ञा पुं० [सं०] ककड़ी।

चर्भटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चर्चरी गीत। (२) चर्चा। (३) आनंद। क्रीड़ा। (४) आनंद ध्वनि।

चर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमड़ा।

यौ०—चर्मकार।

(२) ढाल। सिपर।

चर्मकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक सुगंधि-द्रव्य। (२) मांसरोहिणी लता। रोहिनी।

चर्मकशा, चर्मकषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का

सुगंधि-द्रव्य । चमरखा । (२) माँसरोहिणी नाम की लता । (३) एक प्रकार का थूहड़ जिसे सातला कहते हैं ।

चर्मकार–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०चर्मकारी] चमार । चमड़े का काम करनेवाली जाति ।

विशेष—मनु के अनुसार निषाद पुरुष और वैदेही स्त्री के गर्भ से इस जाति की उत्पत्ति है । पराशर ने तीवर और चांडाली से चर्मकार की उत्पत्ति मानी है ।

पर्य्या०—चमार । कारावर । पादुकृत् । चर्मकृत । चर्मक । कुवट । पादुकाकार ।

चर्मकार्य–संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार का काम । चमड़े के जूते, जीन आदि की सिलाई का काम ।

चर्मकील–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बवासीर । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार का नुकीला मसा निकल आता है और जिसमें कभी कभी बहुत पीड़ा होती है । न्यच्छ ।

चर्मग्रीव–संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

चर्मचक्षु–संज्ञा पुं० [सं०] साधारण चक्षु । ज्ञान-चक्षु का उलटा ।

चर्मचटका, चर्मचटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

चर्मचित्रक–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कुष्ट । कोढ़ का रोग ।

चर्मज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोआँ । रोम । (२) लहू । खून ।

चर्मण्वती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंबल नदी जो विंध्याचल पर्वत से निकल कर इटावे के पास यमुना से मिलती है । इसका दूसरा नाम शिवनद भी है । (२) केले का पेड़ ।

चर्मतरंग–संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े पर पड़ी हुई शिकन । झुर्री ।

चर्मदंड–संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक ।

चर्मदल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़ जिसमें पहले किसी स्थान पर बहुत सी फुंसियाँ हो जाती हैं और तब वहाँ का चमड़ा फट जाता है । इसमें बहुत पीड़ा होती है और दूषित स्थान किसी प्रकार छूआ नहीं जा सकता ।

चर्मदूषिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दाद का रोग ।

चर्मदृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण दृष्टि । ज्ञान-दृष्टि का उलटा । आँख ।

चर्मदेहा–संज्ञा पुं० [सं०] मशक के ढंग का एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में मुँह से फूँक कर बजाया जाता था ।

चर्मद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़ ।

चर्मनालिका, चर्मनासिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक ।

चर्मपत्रा, चर्मपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

चर्मपादुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जूता ।

चर्मपीड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शीतला (रोग) जिसमें रोगी का गला बंद हो जाता है ।

चर्मपुट, चर्मपुटक–संज्ञा पुं० [सं०] तेल घी आदि रखने का चमड़े का बना हुआ कुप्पा ।

चर्मप्रभेदिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा काटने का औज़ार । सुतारी ।

चर्मबंध–संज्ञा पुं० [सं०] चाबुक ।

चर्ममंडल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है ।

चर्ममसूरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूरिका रोग का एक भेद जिसमें रोगी के शरीर में छोटी छोटी फुंसियाँ या छाले निकल आते हैं, कंठ रुक जाता है और अरुचि, तंद्रा, प्रलाप तथा विकलता होती है ।

चर्ममुंडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

चर्ममुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें बाँयाँ हाथ फैला कर उँगली सिकोड़ लेते हैं ।

चर्मयष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कोड़ा या चाबुक ।

चर्मरंग–संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक देश जो कूर्मखंड के पश्चिम-उत्तर में है ।

चर्मरंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे आवर्त्तकी और भगवद्वल्ली भी कहते हैं ।

चर्मरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका फल बहुत विषैला होता है । इसकी गणना स्थावर विषों में की गई है ।

चर्मरु–संज्ञा पुं० [सं०] चमार ।

चर्मवंश–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता था ।

चर्मवसन–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

चर्मवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़ ।

चर्मसंभवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची ।

चर्मसार–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में शरीर के अंतर्गत चमड़े के भीतर रहनेवाला वह रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है ।

चर्मांत–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का उपयंत्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चीर फाड़ आदि में होता था ।

चर्मांभस–संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े में का रस । चमड़े के अंदर होनेवाला रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है । चर्म-सार ।

चर्माख्य–संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ रोग का एक भेद ।

चर्मानला–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम ।

चर्मार–संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार । चमार ।

चर्मिक, चर्मी–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ढाल हाथ में लेकर लड़े । हाथ में ढाल लेकर लड़नेवाला योद्धा ।

चर्य्य–वि० [सं०] (१) जो करने योग्य हो । (२) जिसका करना आवश्यक हो । कर्तव्य ।

चर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो किया जाय। आचरण। जैसे, व्रतचर्य्या, दिनचर्य्या आदि। (२) आचार। चाल चलन। (३) काम काज। (४) वृत्ति। जीविका। (५) सेवा। (६) विहित कार्य्य का अनुष्ठान और निषिद्ध का त्याग। (७) भक्षण। खाने की क्रिया या भाव। (८) गमन। चलने की क्रिया या भाव।

चर्य्यापरीषह–संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान पर न रहना, बल्कि निर्द्वंद्वतापूर्वक चारों ओर विचरना। (जैन धर्म)।

चर्राना–क्रि० अ० [अनु०] (१) लकड़ी आदि का टूटने या तड़कने के समय चर चर शब्द करना। (२) शरीर के थोड़ा छिल जाने या घाव पर जमी हुई पपड़ी आदि के उखड़ जाने के कारण खुजली या सुरसुरी मिली हुई हलकी पीड़ा होना। (३) खुश्की और रुखाई के कारण (जैसा कि प्रायः जाड़े में होता है) किसी अंग में तनाव और हलकी पीड़ा होना। उ०—बहुत दिनों से तेल नहीं लगाया इससे बदन चर्राता है। (४) किसी बात की वेगपूर्ण इच्छा होना। किसी बात की आवश्यकता से अधिक और बेमौके बड़ी चाह होना। जैसे, शौक चर्राना, मुहब्बत चर्राना।

चर्रा–संज्ञा स्त्री० [हिं० चर्राना] लगती हुई व्यंग्यपूर्ण बात। चुटीली बात।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—सुनाना।

चर्वण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चर्व्य] (१) किसी चीज़ को मुँह में रख कर दाँतों से बराबर तोड़ने की क्रिया। चबाना। (२) वह वस्तु जो चबाई जाय। (३) भूना हुआ दाना आदि जो चबा कर खाया जाता है। चबैना। बहुरी। दाना।

चर्वित–वि० [सं०] चबाया हुआ। दाँतों से कुचला हुआ।

चर्वितचर्वण–संज्ञा पुं० [सं०] जो हो चुका हो उसे फिर से करना। किसी किए हुए काम या कही हुई बात को फिर से करना या कहना। पिष्टपेषण।

चर्विल–संज्ञा पुं० [अं०] गाजर की तरह की एक अंगरेजी तरकारी जो कुआर कातिक में क्यारियों में बोई जाती है।

चर्व्य–वि० [सं०] (१) चबाने योग्य। (२) जो चबा कर खाया जाय।

चर्षणि–संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य। आदमी।

संज्ञा स्त्री० कुलटा स्त्री।

चर्षणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्य जाति। मानव जाति।

चर्स–संज्ञा पुं० दे० "चरस"।

चलंता–वि० [हिं० चलना] (१) चलता हुआ। (२) चलनेवाला।

चलंदरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चलन+दरी] पौसला। प्याऊ।

चल–वि० [सं०] चंचल। अस्थिर। चलायमान। उ०—चलन लगे में चल पलन दगा दई।

यौ०—चलदल।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) दोहा छंद का एक भेद जिसमें ११ गुरु और २६ लघु मात्राएँ होती हैं। जैसे, जन्म सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक।—तुलसी। (३) शिव। महादेव। (४) विष्णु। (५) कंपन। काँपना। (६) दोष। ऐब। नुक्स। (७) भूल। चूक। (८) धोखा। छल। कपट। (९) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें हाथ के इशारे से किसी को बुलाया जाता है। (१०) नृत्य में शोक, चिंता, परिश्रम या उत्कंठा दिखलाने के लिये कुछ गहरी साँस लेना।

चलकना–क्रि० [अनु०] (१) चमकना। उ०—नर नारिन के मुख कमलन की शोभा दूनी चलकि उठी।—देव स्वामी। (२) दे० "चिलकना"।

चलकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथिवी से ग्रहों का स्वाभाविक अंतर। (२) वह जिसके कान सदा हिलते रहें। (३) हाथी।

चलका–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की साधारण नाव।

चलकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष केतु या पुच्छल तारा जो पश्चिम दिशा में उदय होता है। इसमें दक्षिण की ओर उठी हुई एक चोटी भी होती है। उदय होने के उपरांत यह क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ता और पीछे आकाश में किसी स्थान में अस्त हो जाता है। कभी कभी यह उत्तरी ध्रुव, सप्तर्षि-मंडल या अभिजित् नक्षत्र तक भी पहुँच जाता है। फलित के अनुसार किसी के मत से इसके उदय होने के दस महीने और किसी के मत से अठारह महीने बाद देश में दुर्भिक्ष और कई प्रकार का अनिष्ट होता है।

चलचंचु–संज्ञा पुं० [सं०] चकोर।

चलचलाव–संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) प्रस्थान। यात्रा। चलाचली। (२) महाप्रस्थान। मृत्यु। मौत।

चलचाल–क्रि० वि० [सं०] चल विचल। चंचल। अस्थिर। उ०—होन न देहुँ कहूँ चलचाल सुराननि हिये पै मिलाय कै मालहि।

चलचूक–संज्ञा [सं० चल=चंचल] धोखा। छल। कपट। उ०—जो चलचूक गने कछु या महँ तौ यह न्याव अनंग के आगे।—गुमान।

चलता–वि० [हिं० चलना] [स्त्री० चलती] (१) चलता हुआ। गमन करता हुआ। गतिवान्। जैसे, चलती गाड़ी।

मुहा०—चलता करना=(१) हटाना। भगाना। भेजना। उ०—(क) अब इन्हें क्यों बैठाये हो ? चलता करो। (ख) इस कागज़ को आज चलता करो। (२) किसी प्रकार निपटाना। झगड़ा दूर करना। उ०—किसी प्रकार इस मामले को चलता करो। चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना=होते हुए कार्य्य में बाधा डालना। चलता पुरज़ा=व्यवहारकुशल।

चालाक । चुस्त । व्यवहारतत्पर । चलता बनना = चल देना । प्रस्थान करना । उ०—तुम तो वहाँ से चलते बने, पकड़े गए हम । चलता होना = चल देना । प्रस्थान करना ।

(२) जिसका क्रमभंग न हुआ हो । जो बराबर जारी हो ।

मुहा०—चलता लेखा या खाता = वह हिसाब जिसके संबंध का लेन देन बराबर होता रहे और जिसकी बाक़ी न गिराई गई हो ।

(३) जिसका चलन अधिक हो । जिसका रवाज बहुत हो । प्रचलित । उ०—यह चलती चीज़ है, दूकान पर रख लो ।

मुहा०—चलता गाना = वह गाना जो शुद्ध राग रागिनियों के अंतर्गत न हो पर जिसका प्रचार सर्व साधारण में हो । जैसे दादरा, ख्याल, लावनी इत्यादि ।

(४) काम करने योग्य । जो अशक्त न हुआ हो । जैसे चलता बैल । (५) व्यवहार में तत्पर । व्यवहारपटु । चालाक । चुस्त ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी, बहुत मज़बूत और अंदर से लाल होती है । यह बंगाल, मदरास और मध्यभारत में बहुत अधिकता से उत्पन्न होता है । इसकी लकड़ी प्रायः इमारत के काम में आती है और पानी में जल्दी नहीं सड़ती । इसके पुराने पत्तों से हाथीदाँत साफ़ किया जाता है । इसमें बेल के आकार का बड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है । फल में रेशा बहुत अधिक होता है इसलिये उसे कच्चा या तरकारी बनने पर चूस चूस कर खाते हैं । (२) रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो । (कहारों की परि०) (३) कवच । झिलम ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] चलने का भाव । चंचलता । अस्थिरता ।

चलती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] मान मर्य्यादा । प्रभाव । अधिकार । उ०—आज कल उस दरबार में उनकी बड़ी चलती है ।

चलतू—वि० [हिं० चलना] (१) दे० "चलता" । (२) (भूमि) जो जोती बोई जाती हो । आबाद ।

चलदंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे झींगा कहते हैं ।

चलदल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष । उ०—चलदल-पत्र पताक-पट दामिनि कच्छप माघ । भूत दीप दीपक शिखा त्यों मन वृत्ति अनाय ।

चलन—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) गति । चाल । चलने का भाव ।

यौ०—चलनहार ।

(२) रिवाज । रस्म । व्यवहार । रीति ।

मुहा०—चलन से चलना = अपने पद और मर्य्यादा आदि के अनुकूल काम करना । उचित रीति से व्यवहार करना ।

(३) किसी चीज़ का व्यवहार, उपयोग या प्रचार । जैसे, (क) आज कल ऐसी टोपी का बहुत चलन है । (ख) बादशाही ज़माने के रुपयों का चलन अब उठ गया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—चलना ।—होना ।

यौ०—चलनसार ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक क्रांतिपात गति अथवा विषुवत् की उस समय की गति जब दिन और रात दोनों बराबर होते हैं ।

यौ०—चलन कलन ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) गति । भ्रमण । (२) काँपना । कंपन । (३) हिरन । (४) चरण । पैर । (५) नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा ।

चलन कलन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का गणित जिसके द्वारा पृथ्वी की गति के अनुसार दिन रात के घटने बढ़ने का हिसाब लगाया जाता है ।

चलनदरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलन + दर] वह स्थान जहाँ रास्ता चलनेवालों को पुण्यार्थ जल पिलाया जाता हो । पौसरा ।

चलन समीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया । दे० "समीकरण" ।

चलनसार—वि० [हिं० चलन + सार (प्रत्य०)] (१) जिसका उपयोग या व्यवहार प्रचलित हो । जैसे, चलनसार सिक्का । †(२) जो अधिक दिनों तक काम में लाया जा सके । जो बहुत दिनों तक चले । जैसे, चलनसार कपड़ा ।

चलना—क्रि० अ० [सं० चलन] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना । गमन करना । प्रस्थान करना ।

विशेष—यद्यपि 'जाना' और 'चलना' दोनों क्रियाएँ कभी कभी समान अर्थ में प्रयुक्त होती हैं पर दोनों के भावों में कुछ अंतर है । 'जाना' क्रिया में स्थान की ओर विशेष लक्ष्य रहता है पर 'चलना' में गति की ओर विशेष लक्ष्य रहता है । जैसे, 'चलती गाड़ी पर सवार होना ठीक नहीं है' । 'चलना' क्रिया से भूतकाल में भी क्रिया की समाप्ति अर्थात् किसी स्थान पर पहुँचने का बोध नहीं होगा, जैसे, 'वह दिल्ली चला' । पर 'जाना' से भूतकाल में पहुँचने का बोध हो सकता है, जैसे 'वह गाँव में गया' । वक्ता अपने साथ प्रस्थान करने के संबंध में जब किसी से प्रश्न या अनुरोध करेगा तब वह 'चलना' क्रिया का प्रयोग करेगा, 'जाना' का नहीं ; जैसे, तुम मेरे साथ चलोगे ?, 'अब यहाँ से चलो' ।

(२) गति में होना । हिलना डोलना । हरकत करना । जैसे, नाड़ी चलना, कल चलना, पुर्ज़ा चलना, घड़ी चलना ।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—किसी का चलना=किसी का काम चलना। गुज़र होना। निर्वाह होना। उ०—इतने में हमारा नहीं चल सकता। पेट चलना=(१) दस्त आना। (२) निर्वाह होना। गुज़र होना। उ०—इतने में पेट कैसे चलेगा? मन चलना या दिल चलना=इच्छा होना। लालसा होना। किसी वस्तु के लिये चित्त चंचल होना। प्राप्ति की इच्छा होना। उ०—(क) जिस किसी की वस्तु हुई उसी पर तुम्हारा मन चल जाता है। (ख) उसका मन पराई स्त्री पर कभी नहीं चलता। मुँह चलना=(१) खाते समय मुँह का हिलना। खाया जाना। भक्षण होना। उ०—जब देखो तब उसका मुँह चलता रहता है। (२) मुँह से बकवाद वा अनुचित शब्द निकलना। उ०—तुम्हारा मुँह बहुत चलता है, तुमसे चुप नहीं रहा जाता। मुँह पेट चलना=कै दस्त होना। हाथ चलना=मारने के लिये हाथ उठना। चल बसना=मर जाना। अपने चलते=भरसक। यथाशक्ति। उ०—(क) अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।—तुलसी। (ख) अपने चलते तो हम ऐसा कभी न होने देंगे।

(३) निभना। कार्य्य-निर्वाह में समर्थ होना। उ०—यह लड़का इस दर्जे में चल जायगा।

मुहा०—चल निकलना=किसी कार्य्य में उन्नति करना। किसी विषय में क्रमशः आगे बढ़ना। उ०—उन्हें काम सीखते थोड़े ही दिन हुए पर वे चल निकले।

(४) प्रवाहित होना। बहना। जैसे, मोरी चलना, हवा चलना। (५) वृद्धि पर होना। बाढ़ पर होना। जैसे, अब यह पौधा भी चला। (६) किसी कार्य्य में अग्रसर होना। किसी कार्य्य का आगे बढ़ना। किसी युक्ति का काम में आना। उ०—सब उपाय करके तो तुम हार गए, अब चलो। (७) आरंभ होना। छिड़ना। जैसे, बात चलना, जिक्र चलना, चर्चा चलना। (८) बराबर बना रहना। जारी रहना। क्रम वा परंपरा का निर्वाह होना। जैसे, वंश चलना, नाम चलना। उ०—जब तक रामचरितमानस रहेगा, तब तक तुलसीदास जी का नाम चला जायगा। (९) खाने पीने की वस्तु का परसा जाना। खाने के लिये रक्खा जाना। उ०—इसके बाद अब मिठाई चलेगी। (१०) बराबर काम देना। टिकना। ठहरना। सटाना। उ०—यह जूता कुछ भी न चला। (११) व्यवहार में आना। लेन देन के काम में आना। उ०—यह रुपया यहाँ नहीं चलेगा। (१२) प्रचलित होना। प्रचार पाना। जारी होना। रवाज पाना। जैसे, रीति चलना, चाल चलना। उ०—(क) रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई।—तुलसी। (ख) कुछ दिनों तक गोल टोपी खूब चली अब उसकी चाल उठती जाती है। (१३) प्रयुक्त होना। व्यवहृत होना। काम में लाया जाना। जैसे, तलवार चलना, घूँसा चलना, लाठी चलना, कलम चलना, फावड़ा चलना। (१४) अच्छी तरह काम देना। उपयोग वा व्यवहार के अनुकूल होना। उ०—कलम चलती नहीं। (१५) तीर, गोली आदि का छूटना। (१६) लड़ाई झगड़ा होना। विरोध होना। शत्रुता होना। उ०—आज कल उन दोनों में खूब चल रही है। (१७) किसी व्यवसाय की वृद्धि होना। किसी व्यापार का बढ़ना। काम चमकना। उ०—(क) यह दूकान खूब चली। (ख) कुछ दिनों तक लाख का काम खूब चला था।

मुहा०—चल निकलना=किसी काम का ढर्रे पर आना। किसी कार्य्य का निर्वाह होने लगना। किसी कार्य्य में सफलता होना। उ०—अब तो तुम्हारा रोजगार चल निकला।

(१८) पढ़ा जाना। बाँचा जाना। उचरना। उ०—यह लिखावट तो हमसे नहीं चलती। (१९) कृतकार्य्य होना। सफल होना। प्रभाव करना। कारगर होना। उपाय लगना। वश चलना। उ०—(क) यहाँ तुम्हारी एक भी न चलेगी। (ख) उस पर जादू टोना कुछ भी नहीं चल सकता।

मुहा०—किसी की चलना=(किसी का) उपाय लगना। वश चलना। प्रयत्न सफल होना। उ०—श्याम निरखि अनंग लज्जित सकै नहिं ठहराय। एक की कहा चलै शत शत कोटि रहत लजाय।—सूर।

(२०) आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—बड़ों के आज्ञानुसार चलने से कभी धोखा नहीं होता। (२१) गले के नीचे उतरना। निगला जाना। खाया जाना। उ०—अब बिना घी के एक कौर नहीं चलता है? (२२) थान पर से कपड़ा उतारते समय कपड़े का बीच में मोटा सूत आदि पड़ जाने के कारण सीधा न फटना, कुछ इधर उधर हो जाना। (बजाज) (२३) †बासी होना। सड़ना। जैसे, सालन चल गया, दाल चल गई।

क्रि० स० शतरंज या चौसर आदि खेलों में किसी मोहरे या गोटी आदि को अपने स्थान से बढ़ाना या हटाना; अथवा ताश या गंजीफे आदि खेलों में किसी पत्ते को खेल के कामों के लिये सब खेलनेवालों के सामने फेंकना। जैसे, हाथी चलना, वज़ीर चलना, दहला चलना, एक्का चलना आदि।

संज्ञा पुं० [हिं० चलनी] (१) बड़ी चलनी वा छलनी। (२) चलनी की तरह का लोहे का एक बड़ा कलछुला या डोई जिससे खँड़सार में उबलते हुए रस के ऊपर का फेन, मैल आदि साफ़ करते हैं। (३) हलवाइयों का एक औज़ार जो छेददार डोई के समान होता है और जिससे शीरा वा चाशनी इत्यादि साफ़ की जाती है। झना।

चलनि*—संज्ञा स्त्री० दे० "चलन"।

चलनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों के पहनने का घाघरा। (२) रेशमी झालर।

चलनी†—संज्ञा स्त्री० दे० "छलनी"।
संज्ञा स्त्री० दे० "चलनिका"।

चलनौस†—संज्ञा पुं० [हिं० चालना + औंस (प्रत्य०)] वह पदार्थ जो चालने से छलनी में रह जाय। चोकर। चालन।

चलनौसन†—संज्ञा पुं० दे० "चलनौस"।

चलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष।

चलवाँक—वि० (१) दे० "चर्वाक"। (२) "चरवाँक"।
वि० [हिं० चलना + बाँका] तेज चलनेवाला। शीघ्रगामी।

चलविचल—वि० दे० "चलविचल"।

चलवंता*—संज्ञा पुं० [सं० चल + वंत] पैदल सिपाही। प्यादा।

चलवाना—क्रि० स० [हिं० चलाना का प्रे०] चलाने का कार्य्य दूसरे से कराना।

चलविचल—वि० [सं० चल + विचल] (१) जो अपने स्थान से हट गया हो। जो ठीक जगह से इधर उधर हो गया हो। उखड़ा पुखड़ा। अंडबंड। बेठिकाने। उ०—(क) उतने ऊपर से कूदते हो, कोई हड्डी चलविचल हो जायगी तो रह जाओगे। (ख) उसका सब काम चलविचल हो गया। (२) जिसके क्रम वा नियम का उल्लंघन हुआ हो। अव्यवस्थित।
संज्ञा स्त्री० किसी नियम वा क्रम का उल्लंघन। व्यतिक्रम। नियमपालन में त्रुटि। उ०—जहाँ ज़रा सी चलविचल हुई, कि सब काम बिगड़ जायगा।
विशेष—इस शब्द को कहीं कहीं पुं० भी बोलते हैं।

चलवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला।

चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। दामिनी। (२) पृथ्वी। भूमि। (३) लक्ष्मी। (४) पिप्पली। पीपल। (५) शिला-रस नाम का गंध-द्रव्य।
† संज्ञा पुं० [हिं० चाल वा चलना] (१) व्यवहार। प्रचार। रिवाज। चाल। रीति रस्म। दस्तूर। (२) अधिकार। प्रभुत्व। स्वामित्व। उ०—अभी तो ऐसा नहीं हो सकता, जब तुम्हारा चला हो तब तुम जो चाहे सो करना।

चलाऊ—वि० [हिं० चलना] (१) चिरस्थायी। जो बहुत दिनों तक चले। मज़बूत। टिकाऊ। (२) बहुत चलने फिरने या घूमनेवाला।

चलाक†—वि० दे० "चालाक"।

चलाकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "चालाकी"।

चलाका*—संज्ञा स्त्री० [सं० चला = बिजली] बिजुली। विद्युत्। तड़ित्। उ०—सुंदर कसौटी बीच ललित लकीर जिमि मेघ में चलाका जैसे शोभा प्रेम जाल की।

चलाचल*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) चलाचली। (२) गति। चाल। उ०—उपदेव विराट भिरे बल सों। पुरई धुनि चाप चलाचल सों।—गोपाल।
वि० [सं०] चंचल। चपल। उ०—नैनिन की गति गूढ़ चलाचल केशवदास अकास चढ़ैंगी।—केशव।

चलाचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) चलने के समय की घबराहट, धूम या तैयारी। चलने की हड़बड़ी। रवारवी। (२) बहुत से लोगों का प्रस्थान। बहुत से लोगों का किसी एक स्थान से चलना। उ०—हय चले, हाथी चले, संग छाँड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।—भूषण। (३) चलने की तैयारी या समय।
वि० जो चलने के लिये तैयार हो। चलनेवाला। उ०—विरह विपति दिन परत ही तजे सुखन सब अंग। रहि अवलौं अब दुखौ भए चलाचली जिय संग।—बिहारी।

चलातंक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग, जिसमें हाथ पाँव आदि अंग काँपने लगते हैं। कंपवाई। रासा।

चलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना] (१) भेजे जाने या चलने की क्रिया। (२) भेजने या चलाने की क्रिया। (३) किसी अपराधी का पकड़ा जा कर न्याय के लिये न्यायालय में भेजा जाना। जैसे, कल संध्या को वह पकड़ा गया और आज उसकी चलान हो गई। (४) माल असबाब आदि का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाना। जैसे, आज यहाँ से दस चोरों की चलान हो गई है, आठ दिन में माल आपको वहाँ मिल जायगा। (५) एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा या आया हुआ माल। जैसे, हाल में एक नई चलान आई है, उसमें आप के काम की बहुत सी चीज़ें हैं।
क्रि० प्र०—आना।—भेजना।—मँगाना।
(६) वह कागज जिसमें किसी की सूचना के लिये भेजी हुई चीज़ों की सूची या विवरण आदि हो। रवन्ना।
विशेष—(क) इस प्रकार की चलान प्रायः सरकारी खज़ानों या तहसीलों आदि से दूसरे दफ़्तरों में भेजे जानेवाले रुपए के साथ भेजी जाती है। (ख) यह चलान चुंगी आदि के संबंध में माल के लिये राहदारी के परवाने का भी काम देती है।
क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—लिखना, आदि।
विशेष—(क) उर्दूवालों ने इस शब्द को "चालान" बना लिया है। (ख) पश्चिम में यह शब्द प्रायः पुंल्लिंग माना जाता है।

चलानदार—संज्ञा पुं० [हिं० चलान + फ़ा० दार] वह मनुष्य जो माल की चलान के साथ उसकी रक्षा के लिये जाता है।

चलाना—क्रि० स० [हिं० चलना] (१) किसी को चलने में लगाना। चलने के लिये प्रेरित करना। जैसे, गाड़ी, घोड़ा, नाव या

रेल आदि चलाना। (२) गति देना। हिलाना डुलाना। हरकत देना। जैसे, चरखा चलाना, (कलछी आदि से) दाल भात चलाना, घड़ी चलाना।

मुहा०—(किसी) की चलाना = प्रसंग वश किसी का ज़िक्र करना। किसी के बारे में कुछ कहना। जैसे, हम और किसी की नहीं चलाते, अपने बारे में ही कह सकते हैं। पेट चलाना = (१) दस्त लाना। जैसे, यह दवा एक दम पेट चला देगी। (२) निर्वाह करना। गुज़र करना। मन या दिल चलाना = इच्छा करना। लालसा करना। जैसे, यह चीज़ तुम्हें मिलने की नहीं, क्यों व्यर्थ मन चलाते हो। मुँह चलाना = खाना। भक्षण करना। जैसे, तुम खाली क्यों बैठे हो, धीरे धीरे मुँह चलाते चलो। मुँह व पेट चलाना = कै दस्त लाना। हाथ चलाना = मारने के लिये हाथ उठाना। मारना। पीटना।

(३) कार्य्य निर्वाह में समर्थ करना। निभाना। जैसे, हम इन्हें भी जैसे तैसे अपने साथ चला ले जायँगे। (४) प्रवाहित करना। बहाना। जैसे, मोरी चलाना, हवा चलाना। (५) वृद्धि करना। उन्नति करना। (६) किसी कार्य्य को अग्रसर करना। किसी काम को जारी या पूरा करना। जैसे, (क) हमने इस काम को चला दिया है, (ख) काम चलाने भर को इतना बहुत है। (७) आरंभ करना। छेड़ना। जैसे, बात चलाना, ज़िक्र चलाना। (८) बराबर बनाए रखना। जारी रखना। जैसे, वंश चलाना, नाम चलाना। कारखाना चलाना। (९) खाने पीने की वस्तु परोसना। खाने की चीज आगे रखना। (१०) बराबर काम में लाना। टिकाना। जैसे, यह कोट अभी आप तीन बरस और चलावेंगे। (११) व्यवहार में लाना। लेन देन के काम में लाना। जैसे, इन्होंने वह खोटा रुपया भी चला दिया। (१२) प्रचलित करना। प्रचार करना। जैसे, रीति चलाना, धर्म चलाना। उ०—(क) आप तो यह एक नई रीति चलाते हैं। (ख) मुहम्मद साहब ने मुसलमानी धर्म चलाया था। (१३) व्यवहृत करना। प्रयुक्त करना। जैसे, तलवार चलाना, लाठी चलाना, कलम चलाना, हाथ पैर चलाना। (१४) तीर गोली आदि छोड़ना। किसी वस्तु को किसी ओर लक्ष्य करके वेग के साथ फेंकना। जैसे, ढेला या गुलेला चलाना, किसी वस्तु से प्रहार करना। किसी चीज़ से मारना। जैसे, हाथ चलाना, डंडा चलाना। (१५) किसी व्यवसाय या व्यापार की वृद्धि करना। काम चमकाना। जैसे, जब सब लोग हार गए तो उन्होंने कारखाना चला कर दिखला दिया। (१७) आचरण कराना। व्यवहार कराना। (१८) थान में से कपड़ा उतारते समय उसे सीधा न फाड़ कर असावधानी आदि के कारण टेढ़ा या तिरछा फाड़ना। (बज़ाज़)

चलायमान—वि० [सं०] (१) चलनेवाला। जो चलता हो। (२) चंचल। (३) विचलित।

चलावा†—संज्ञा पु० [हिं० चलना] (१) चलने का भाव। यात्रा। प्रयाण। पयान। रवानगी। उ०—तरावंत छाला लिख दीन्हा। वेग चलाव चहूँ दिसि कीन्हा।—जायसी। (२) दे० "चलावा"।

चलावना‡—क्रि० स० दे० "चलाना"।

चलावा—संज्ञा पु० [हिं० चलाना] (१) रीति। रस्म। रिवाज।

क्रि० प्र०—चलाना।

(२) द्विरागमन। गौना। मुकलावा। (३) एक प्रकार का उतारा जो प्रायः गावों में भयंकर बीमारी पड़ने के समय किया जाता है। इसे लोग बाजा बजाते हुए अपने गाँव की सीमा के बाहर ले जाकर किसी दूसरे गाँव की सीमा पर रख आते हैं और समझते हैं कि बीमारी इस गाँव से निकल कर उस गाँव में चली गई।

चलासन—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के मत से एक प्रकार का दोष जो सामयिक व्रत में आसन बदलने के कारण होता है।

चलित—वि० [सं०] (१) अस्थिर। चलायमान। (२) चलता हुआ।

यौ०—चलित ग्रह।

संज्ञा पु० नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें ठोड़ी की गति से क्रोध या क्षोभ प्रकट होता है।

चलित ग्रह—संज्ञा पु० [सं०] वह ग्रह जिसके फल का कुछ अंश भोगा जा चुका हो और कुछ भोगने को बाकी रह गया हो। (ज्यो०)।

चलैया†—संज्ञा पु० [हिं० चलना] चलनेवाला।

चलौना—संज्ञा पु० [हिं० चलाना] (१) वह कलछा या लकड़ी का डंडा जिससे दूध, पानी या और कोई द्रव पदार्थ हिलाया जाता है। (२) वह लकड़ी का टुकड़ा जिससे चरखा चलाया जाता है।

चलौवा—संज्ञा पु० दे० "चलावा" (३)।

चल्ली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन आदि। कुकड़ी।

चवकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकी"।

चवन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ (चार का अल्प०) + आना + ई (प्रत्य०)] चार आने मूल्य का चाँदी का सिक्का।

चवपैया—संज्ञा स्त्री० दे० "चौपैया"।

चवर—संज्ञा पु० दे० "चँवर"।

चवरा—संज्ञा पुं० [सं० चवल] लोबिया।

चवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चवर्गीय] च से ञ तक के अक्षरों का समूह। इन अक्षरों का उच्चारण तालु से होता है।

चवल—संज्ञा पु० [सं०] लोबिया।

चवा*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौवाई] चारों ओर से चलनेवाली हवा। एक साथ सब दिशाओं से बहनेवाली वायु उ०—लागि दवारि पहार ढही ढहकी कपि लंक यथा खरखौकी। चारु चवा चहुँ ओर चली झपटी लपटैं सो तमीचर तौंकी।—तुलसी।

चवाई‡—संज्ञा पुं० [हिं० चवाव] [स्त्री० चवाइन] (१) बदनामी की चर्चा फैलानेवाला। कलंकसूचक प्रवाद फैलानेवाला। दूसरों की बुराई करनेवाला। निंदक। उ०—(क) मैं तरुनी तुम तरुन तन चुगल चवाई गाँव। मुरली लै न बजाइयो कबहुँ हमारे गाँव।—पद्माकर। (ख) चौचंद चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं. विरचैं करि हाँसी। (ग) धार चवाइनै लै दुरबीनन धाओ न आज तमाशे लखात हैं।—हरिश्चंद्र। (२) झूठी बात कहनेवाला। व्यर्थ इधर की उधर लगानेवाला। चुगलखोर। उ०—सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत। सूरश्याम मोहिँ गोधन की सौं हौं माता तू पूत।—सूर।

चवाउ‡—संज्ञा पुं० दे० "चवाव"।

चवालीस—संज्ञा पुं० दे० "चौवालीस"।

चवाव—संज्ञा पुं० [हिं० चौवाई] (१) चारों ओर फैलनेवाली चर्चा। प्रवाद। अफ़वाह। (२) चारों ओर फैली हुई बदनामी। निंदा की चर्चा। किसी की बुराई की चर्चा। उ०—(क) नैनन तें यह भई बड़ाई। घर घर यहै चवाव चलावत हम सों भेंट न माई।—सूर। (ख) ये घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस निवाज हमैं दहती हैं। बातैं चवाव भरी सुनि कै रिस लागति पै चुप ह्वै रहती हैं।—निवाज। (ग) ज्यों ज्यों चवाव चलै चहुँ ओर धरैं चित चाव ये त्योंहि त्यों चोखे।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—चलाना।

(३) पीठ पीछे की निंदा। चुगलखोरी।

चवि, चविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चव्य नाम की ओषधि।

विशेष—दे० "चव"।

चवैया‡—संज्ञा पुं० [हिं० चौवायु] दे० "चवाई"।

चव्य, चव्यका—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओषधि। दे० "चाव"।

चव्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपीपल।

चव्या—संज्ञा स्त्री० दे० "चव्य"।

चशाक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चसका] वह भोजन जो साहबों के यहाँ से किसी विशेष अवसर पर बावर्चियों को मिलता है।

चशम—संज्ञा स्त्री० दे० "चश्म"।

विशेष—चशम के यौ० आदि के लिये देखो "चश्म"।

चशमा—संज्ञा पुं० दे० "चश्मा"।

चश्म—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] नेत्र। आँख। लोचन। नयन।

यौ०—चश्मदीद। चश्मनुमाई, आदि।

मुहा०—चश्म बद दूर=बुरी नजर दूर हो। बुरी नजर न लगे।

विशेष—इस वाक्य का व्यवहार किसी चीज़ की प्रशंसा करते समय उसे नज़र लगने से बचाने के अभिप्राय से किया जाता है।

चश्मक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चश्म] (१) मनमोटाव। वैमनस्य। ईर्ष्या। द्वेष। (२) चश्मा। ऐनक। (३) आँख का इशारा।

चश्मदीद—वि० [फ़ा०] जो आँखों से देखा हुआ हो।

यौ०—चश्मदीद गवाह=वह साक्षी जो अपनी आँखों से देखी घटना कहे। वह गवाह जो चश्मदीद माजरा बयान करे।

चश्मनुमाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घूर कर किसी के मन में भय उत्पन्न करना। धमकी या घुड़की। आँख दिखाना।

चश्मपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आँख चुराना। सामने न होना। कतराना।

चश्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा] (१) कमानी में जड़ा हुआ शीशे या पारदर्शी पत्थर के तालों का जोड़ा जो आँखों पर उनका दोष दूर करने, दृष्टि बढ़ाने अथवा धूप, चमक या गर्द आदि से उनकी रक्षा करने और उन्हें ठंढा रखने के अभिप्राय से लगाया जाता है। ऐनक।

विशेष—चश्मे के ताल हरे, लाल, नीले, सफेद और कई रंगों के होते हैं। दूर की चीज़ें देखने के लिये नतोदर और पास की चीज़ें देखने के लिये उन्नतोदर तालों का चश्मा लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—चश्मा लगना=आँखों में चश्मा लगाने की आवश्यकता होना। जैसे, अब तो उनकी आँख कमजोर हो गई है, चश्मा लगता है।

(२) पानी का सोता। स्रोत। (३) नदी। छोटा दरिया। (४) कोई जलाशय।

चष*—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] नेत्र। आँख।

यौ०—चषचोल।

चषक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य पीने का पात्र। वह बरतन जिसमें शराब पीते हैं। उ०—प्राण ये मन रसिक ललिता धी लोचन चषक पिवति मकरंद सुख रासि अंतर सची।—सूर। (२) मधु। शहद। (३) एक विशेष प्रकार की मदिरा।

चषचोल*—संज्ञा पुं० [हिं० चष+चोल=वस्त्र] आँख की पलक। आँख का परदा। उ०—चलिगो कुंकुम गात तें दलि गो नयो निचोल। दुरै दुरायो क्यों सुरत सुरत सुरत चषचोल।—शृं० सत०।

चषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन। भक्षण। (२) वध करना। (३) क्षय करना।

चषाल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के यूप में लगी हुई पशु बाँधने की गराड़ी।

चस—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी किनारदार कपड़े में किनारे के ऊपर वा नीचे की ओर बनी हुई कलाबत्तून वा किसी दूसरे रंग के रेशम वा सूत की पतली लकीर या धारी।

चसक—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) हलका दर्द। कसक। (२) गोटे या अतलस आदि की पतली गोट जो संजाफ या मगजी के आगे लगाई जाती है।

* संज्ञा पु० दे० "चषक"।

चसकना—क्रि० अ० [हिं० चसक] हलकी पीड़ा होना। मीठा दर्द होना। टीसना।

चसका—संज्ञा पु० [सं० चषण] (१) किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ आनंद जो प्रायः उस चीज़ के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है। शौक। चाट। (२) इस प्रकार पड़ी हुई आदत। लत। उ०—उसे शराब पीने का चसका लग गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।

चसना—क्रि० अ० [सं० चषण] (१) मरना। प्राण त्यागना। (२) फंदे में फँस कर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी गाहक का माल खरीदना। (दलालों की परि०)

क्रि० अ० [हिं० चसनी] दो चीज़ों का एक में सटना। लगना। चपकना। उ०—ज्यों नाभी सर एक नाल नव कनक कमल चिवि रहे चसी री।—सूर।

चसम†—संज्ञा पु० दे० "चश्म"।

संज्ञा पु० [देश०] रेशम का लुच्छा। रेशम के तागों में निकला हुआ निकम्मा अंश।

चसमा†—संज्ञा पु० दे० "चश्मा"।

चस्का—संज्ञा पु० दे० "चसका"।

चस्पाँ—वि० [फा०] चिपकाया हुआ। सटाया हुआ। लेई आदि से लगाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चस्सी—संज्ञा पु० [देश०] हथेली और तलवों की खुजली।

चह—संज्ञा पु० [सं० चय] नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियाँ गाड़ कर और घास फूस और बालू आदि से पाट कर बनाया हुआ चबूतरा जिस पर से होकर मनुष्य और पशु आदि नावों पर चढ़ते हैं। पाट।

क्रि० प्र०—बाँधना।

* † संज्ञा स्त्री० [फा० चाह] गड्ढा। गर्त।

यौ०—चहबच्चा।

चहक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहकना] "चहकना" का भाव। लगातार होनेवाला पक्षियों का मधुर शब्द। चिड़ियों का चहचह शब्द।

† संज्ञा पु० दे० "चहला"।

चहकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) पक्षियों का आनंदित होकर मधुर शब्द करना। चहचहाना। (२) उमंग वा प्रसन्नता से अधिक बोलना। (बाज़ारू)।

चहका—संज्ञा पु० [सं० चय] ईंट या पत्थर का फ़र्श।

संज्ञा पु० [देश०] जलती हुई लकड़ी। लुआठी। लूका।

मुहा०—चहका देना वा लगाना = लूका लगाना। आग लगाना। जलाना। (स्त्रियों की गाली)।

(३) बनेठी।

संज्ञा पु० [हिं० चहला] (१) कीचड़। चहला।

चहकार—संज्ञा स्त्री० दे० "चहक"।

चहकारना—क्रि० अ० दे० "चहकना"।

चहचहा—संज्ञा पु० [हिं० चहचहाना] (१) 'चहचहाना' का भाव। चहक। (२) हँसी दिल्लगी। ठट्ठा। चुहलबाज़ी।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

वि० (१) जिसमें चहचह शब्द हो। उल्लास शब्द युक्त। उ०—चहचही चुहिल चहूँकित अलीन की।—रसखान। (२) आनंद और उमंग उत्पन्न करनेवाला। बहुत मनोहर। उ०—चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।—पद्माकर। (३) ताजा। हाल का।

चहचहाना—क्रि० अ० [अनु०] पक्षियों का चह चह शब्द करना। चहकना। चहकारना।

चहटा†—संज्ञा पु० [अनु०] कीचड़। पंक।

चहता†—संज्ञा पु० [स्त्री० चहती] दे० "चहेता"।

चहनना†—क्रि० स० [हिं० चहलना] चहलना। दबाना। रौंदना।

मुहा०—चहन कर खाना = बहुत अच्छी तरह खाना। कस कर खाना। उ०—लुचुईं पोइ पोइ घी भेईं। पाछे चहन खाँड सों जेईं।—जायसी।

चहना†—क्रि० स० दे० "चाहना"।

चहनि†*—संज्ञा स्त्री० दे० "चाह"।

चहबच्चा—संज्ञा पु० [फा० चाह = कुआँ + बचा] (१) पानी (विशेषतः गंदा या नल आदि का) भर रखने का छोटा गड्ढा या हौज़। (२) धन गाड़ने या छिपा रखने का छोटा तहखाना।

विशेष—कुछ लोग इसे "चौबच्चा" भी कहते हैं।

चहर†*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल] (१) आनंद की धूम। आनंदोत्सव। रौनक। उ०—द्वारा भए नँद करत बधाई दान देत कहा कहौं महर की। पंच शब्द ध्वनि बाजत नाचत गावत मंगलचार चहर की।—सूर।

(२) जोर का शब्द। शोर गुल। हल्ला। उ०—मथति दधि अनुमति मथानी धुनि रही घर घहरि। श्रवन सुनति न महरि

वातें जहाँ तहाँ गई चहरि ।—सूर । (२) उपद्रव । उत्पात । उ०—सुत को बरजि राखौ महरि ।..............जमुन तट हरि देख ठाढ़े डरनि आवें बहुरि । सूर स्यामहिँ नेक बरजौ करत हैं अति चहरि ।—सूर ।

वि० (१) बढ़िया । उत्तम । (२) चुलबुला । तेज । उ०—गूढ़ गिरि गिरी गुलगुल से; गुलाब रंग चहर चगर चटकीले हैं चलक के ।—सूदन ।

चहरना †*–क्रि० अ० [हिं० चहर] आनंदित होना । प्रसन्न होना । उ०—आनंद भरी जसोदा उमगि अंग न समाति, आनंदित भईं गोपी गावति चहरि के ।—सूर ।

चहराना †*–क्रि० अ० (१) दे० "चहरना" । (२) "चर्राना" ।

क्रि० अ० [देश०] दरकना । फटना । तड़कना । चटकना ।

चहरुम–वि० दे० "चहारुम" ।

चहल–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कीचड़ । कीच । कर्दम । उ०—चहचही चहल चहूँधा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब ।—पद्माकर । (२) कीचड़ मिली हुई कड़ी चिकनी मिट्टी की ज़मीन जिसमें बिना हल चलाए जोताई होती है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चहचहाना] आनंद की धूम । आनंदोत्सव । रौनक़ ।

यौ०—चहल पहल ।

चहलक़दमी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहल + फ़ा० क़दम] धीरे धीरे टहलना, घूमना या चलना ।

चहल पहल–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी स्थान पर बहुत से लोगों के आने जाने की धूम । आबादानी । (२) बहुत से लोगों के आने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली रौनक़ । आनंदोत्सव । आनंद की धूम ।

क्रि० प्र०—मचना ।—होना ।

चहला †–संज्ञा पुं० [सं० चिक्लिल] कीचड़ । पंक । उ०—चंदन के चहला में परी परी पंकज की पँखुरी नरमी में ।

चहली †–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुएँ से पानी खींचने की चरखी । गराड़ी । घिरनी ।

चहलुम–संज्ञा पुं० दे० "चेहलुम" ।

चहारदीवारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी स्थान के चारों ओर की दीवार । प्राचीर । कोट । परिखा ।

चहारुम–वि० [फ़ा०] किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग । चतुर्थांश । चौथाई ।

चहुँ*–वि० [हिं० चार] चार । चारों ।

विशेष—यह शब्द यौगिक के पहले आता है । जैसे, चहुँघा, चहुँचक्र (चारों ओर) आदि ।

चहुँक–संज्ञा स्त्री० दे० "चिहुँक" ।

चहुरा †–वि० पुं० (१) दे० "चौंवरा" । (२) "चौहरा" ।

चहुरी †–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहु] एक पात्र या मान ।

चहुवान–संज्ञा पुं० दे० "चौहान" ।

चहूँ–वि० दे० "चहुँ" ।

चहूँटना †–क्रि० अ० [हिं० चिमटना] सटना । लगना । मिलना । उ०—डोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम । चित्त चहूँटा राम सों, याही केवल धाम ।—कबीर ।

चहेटना–क्रि० स० [?] (१) किसी चीज को दबाकर उसका रस या सार भाग निकालना । गारना । निचोड़ना । उ०—चंद चहेटि समेटि सुधारस कीन्हों तबै तिय के अधरान को । (२) दे० "चपेटना" ।

चहेता–वि० [हिं० चाहना + एता (प्रत्य०)] [स्त्री० चहेती] जिसके साथ प्रेम किया जाय । जिसे चाहा जाय । प्यारा ।

चहेती–वि० स्त्री० [हिं० चाहना] प्यारी । जिसे चाहा जाय । जैसे, चहेती स्त्री ।

चहेल †–संज्ञा स्त्री० [हिं० चहला] (१) चहला । कीचड़ । (२) वह भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो । दलदली भूमि ।

चहोरना †–क्रि० स० [देश०] (१) धान या अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाना । रोपना । बैठाना । (२) सहेजना । सँभालना । देख भाल कर सुरक्षित करना । उ०—काटी कूटी माछरी छींके धरी चहोरि । कोइ एक आँगुन मन बसा दह में परी बहोरि ।—कबीर ।

क्रि० स० दे० "चगोरना" ।

चहोरा–संज्ञा पुं० [हिं० चहोरना] जड़हन धान, जिसे रोपुवा धान भी कहते हैं ।

चाँई–वि० [सं० चंचुर = दक्ष वा देश० चाई = नैपाल की एक जंगली जाति जो डाका डालती है] (१) ठग । उचक्का । (२) होशियार । छली । चालाक ।

संज्ञा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जिनसे बाल झड़ जाते हैं ।

वि० जिसके बाल झड़ गये हों । गंजा ।

चाँई चूँई–संज्ञा स्त्री० [?] सिर में होनेवाली एक प्रकार की फुंसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं ।

चाँक–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + अंक = चिह्न] (१) काठ की वह थापी जिस पर अक्षर या चिह्न खुदे होते हैं और जिससे खलियान में अन्न की राशि पर ठप्पा लगाते हैं । (२) खलियान में अन्न की राशि पर डाला हुआ चिह्न । (३) टोटके के लिये शरीर के किसी पीड़ित स्थान के चारों ओर खींचा हुआ घेरा । गोंठ ।

चाँकना–क्रि० स० [हिं० चाँक] (१) खलियान में अनाज की राशि पर मिट्टी, राख या ठप्पे से छापा लगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय तो मालूम हो जाय । उ०—तुलसी

तिलोक की समृद्धि सौज संपदा सकेलि चाँकि राखी राशि जाँगरु जहान भो।—तुलसी। (२) सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा वा चिह्न खींच कर चारों ओर से घेरना। हद खींचना। हद बाँधना। उ०—सकल भुवन शोभा जनु चाँकी।—तुलसी। (३) पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चाँका-संज्ञा पु० दे० "चाँक"।

चाँगड़ा-संज्ञा पु० [देश०] तिब्बत देश का एक प्रकार का बकरा।

चाँगला-वि० [सं० चंग, हिं० चंगा] (१) स्वस्थ। तंदुरुस्त। हृष्ट। पुष्ट। (२) चतुर। चालाक।

संज्ञा पुं० घोड़ों का एक रंग।

चाँगेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टी लोनी। अमलोनी जिसका साग होता है।

चाँचर, चाँचरि-संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] वसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत, होली, फाग, लेद इत्यादि माने जाते हैं। उ०—तुलसिदास चाँचरि मिसु, कहे राम गुण ग्राम।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह ज़मीन जो एक वर्ष तक वा कई वर्षों तक बिना जोती बोई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई ज़मीन। (२) एक प्रकार की मटियार भूमि।

संज्ञा पुं० [देश०] टट्टी वा परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय।

चांचल्य-संज्ञा पुं० [सं०] चंचलता। चपलता।

चाँचिया गलवत, चाँचिया जहाज-संज्ञा पु० [हिं० चाँई ?] डाकुओं का जहाज़ जो समुद्र में सौदागरी के जहाज़ों को लूटता है।

चाँचु*-संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] चोंच। उ०—बकासुर रचि रूप माया रह्यो छल करि आइ। चाँचु पकरि पुहुमी लगाई इक अकास समाइ।—सूर।

चाँट-संज्ञा पुं० [हिं० छींटा] (१) हवा में उड़ता हुआ जल कण का प्रवाह जो तूफ़ान आने पर समुद्र में उठता है। (लश०)

मुहा०—चाँट मारना = जहाज़ के बाहरी किनारे के तख़्तों पर या पाल पर पानी छिड़कना। (यह पानी इस लिये छिड़का जाता है जिसमें तख़्ते धूप की गरमी से न चिटकें या पाल कुछ भारी हो जाय।

चाँटा†-संज्ञा पु० [हिं० चिमटना] [स्त्री० चाँटी] चींटा। चिउँटा। उ०—(क) नेरे दूर फूल जस काँटा। दूर जो नेरे जस गुर चाँटा।—जायसी। (ख) मरन कहाँ प्रथमैं जस होई। चाँटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी।

संज्ञा पु० [अनु० चट वा सं० चट = तोड़ना] थप्पड़। तमाचा। चपत।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

चाँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँटा] (१) चींटी। उ०—कीन्हेसि लावा, इंदुर, चाँटी।—जायसी। (२) वह कर जो पहले कारीगरों पर लगाया जाता था। (३) तबले की संजाफ़दार मगजी जिस पर तबला बजाते समय तर्जनी उंगली पड़ती है। (४) तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उंगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़-वि० [सं० चंड] (१) प्रबल। बलवान। उ०—दान कृपान बुद्धिबल चाँडे।—लाल। (२) उग्र। उद्धत। शोख़। उ०—धीर धरहु फल पावहुगे। अपने ही पिय के मुख चाँडे कबहूं तो बस आवहुगे।—सूर। (३) बढ़ा चढ़ा। श्रेष्ठ। (४) तृप्त। संतुष्ट। अघाया हुआ। अफरा हुआ। उ०—ऊधो तुम्हरी बात इमि जिमि रोगी हित माँड़। जो जेंवत है सेर भर सो किमि होवै चाँड़।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० [सं० चंड = प्रबल] (१) टेक। थूनी। भार सँभालने का खंभा।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) भारी जरूरत। किसी ऐसी बात की आवश्यकता जिसके बिना कोई काम तुरंत बिगड़ता हो। तात्कालिक आवश्यकता। किसी अभावपूर्ति के निमित्त आकुलता। गहरी चाह। भारी लालसा। उ०—तुम्हें जब रुपए की चाँड़ लगती है तब हमारे पास आते हो।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—चाँड़ सरना = इच्छा पूरी होना। काम पूरा होना। लालसा पूरी होना। उ०—तोरे धनुष चाँड़ नहिँ सरई। जीवत हमहिँ कुँवरि को बरई।—तुलसी। चाँड़ सराना = इच्छा पूरी करना। लालसा मिटाना। उ०—पुरुष भँवर दिन चारि आपने अपनो चाँड़ सरायो।—सूर।

(३) दबाव। संकट। उ०—तुम जब गहरी चाँड़ लगाओगे तभी रुपया निकलेगा। (४) प्रबल इच्छा। गहरी चाह। छटपटी। दे० "चाड़"। (२) प्रबलता। अधिकता। बढ़ती। उ०—मोज बली रतनेस भए मतिराम सदा यश चाँड़न ही में।—मतिराम।

चाँड़ना-क्रि० स० [?] (१) खोदना। खोदकर गिराना। खोद कर गहरा करना। (२) उखाड़ना। उजाड़ना। उ०—प्रविशि वाटिका चाँड़न लागे। घुरघुरात रखवारे भागे।—विश्राम।

चांडाल-संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री चांडाली, चांडालिन] (१) अत्यंत नीच जाति। डोम। श्वपच।

विशेष—मनु के अनुसार चांडाल शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हैं और अत्यंत नीच माने गए हैं। इनकी बस्ती ग्राम के बाहर होनी चाहिए, भीतर नहीं। इनके लिये सोने चाँदी आदि के बरतनों का व्यवहार निषिद्ध है। वे जूटे बरतनों में भोजन कर सकते हैं। चाँदी सोने के बरतनों को छोड़ और किसी बरतन में यदि चांडाल भोजन कर ले तो

वह किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता। कुत्ते गदहे आदि पालना, मुरदे का कफन आदि लेना, तथा इधर उधर फिरना इनका व्यवसाय ठहराया गया है। यज्ञ वा और किसी धर्मानुष्ठान के समय इनके दर्शन का निषेध है। इन्हें अपने हाथ से भिक्षा तक न देनी चाहिए, सेवकों के हाथ से दिलवानी चाहिए। रात्रि के समय इन्हें बस्ती में न निकलना चाहिए। प्राचीन काल में अपराधियों का वध इन्हीं के द्वारा कराया जाता था। लावारिसों की दाह आदि क्रिया भी ये ही करते थे।

पर्य्या०—श्वपच। प्लव। मातंग। दिवाकीर्त्ति। जनंगम। निषाद। श्वपाक। अंतेवासी। पुक्कस। निष्क।

(२) पतित मनुष्य। कुकर्म्मी, दुष्ट, दुरात्मा, क्रूर या निठुर मनुष्य।

चांडाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांडाल जाति की स्त्री। वह स्त्री जो चांडाल जाति की हो।

चांड़िला*—वि० [सं० चंड] [स्त्री० चाँड़िली] (१) प्रचंड। प्रबल। उग्र। उद्धत। नटखट। शोख़। उ०—नंद सुत लाड़िले प्रेम के चांड़िले सैंहु दै कहत हैं नारि आगे।—सूर। (२) बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। उ०—मोती नग हीरन गहीरन बनत हार चीरन चुनत चितै चोप चित चाड़िली।—देव।

चांडू—संज्ञा पुं० दे० "चंडू"।

चांढा—संज्ञा पुं० [हिं० संधि] जहाज की बनावट में वह स्थान जहाँ दो तख्ते आकर मिलते हैं।

चांद—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] (१) चंद्रमा।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—चांद का कुंडल वा मंडल बैठना = बहुत हलकी बदली पर प्रकाश पड़ने के कारण चंद्रमा के चारों ओर एक वृत्त वा घेरा सा बन जाना। चांद का खेत करना = चंद्रोदय का प्रकाश क्षितिज पर दिखाई पड़ना। चंद्रमा के निकलने के पहले उसकी आभा का फैलना। चांद का टुकड़ा = अत्यंत सुंदर मनुष्य। चांद चढ़ना = चंद्रमा का ऊपर आना। चांद दीखे = शुक्ल द्वितीया के पीछे। जैसे, चांद दीखे आना तुम्हारा हिसाब चुकता हो जायगा। चांद पर थूकना = किसी महात्मा पर कलंक लगाना जिसके कारण स्वयं अपमानित होना पड़े। (ऊपर की ओर थूकने से अपने ही मुहँ पर थूक पड़ता है इसी से यह मुहा० बना है।) चांद पर धूल डालना = किसी निर्दोष पर कलंक लगाना। किसी साधु वा महात्मा पर दोषारोपण करना। चांद सा मुखड़ा = अत्यंत सुंदर मुख। किधर चांद निकला है? = आज कैसे दिखाई पड़े? क्या अनहोनी बात हुई जो आप दिखाई पड़े? (जब कोई मनुष्य बहुत दिनों पर दिखाई पड़ता है तब उसके प्रति इस मुहा० का प्रयोग किया जाता है।)

(२) चांद्रमास। महीना। उ०—एक चांद के अंदरै तुम्हैं आवना रास। यह लिखि सुतुर सवार को भेज्यो दखिनिन पास।—सूदन।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

(३) द्वितीया के चंद्रमा के आकार का एक आभूषण। (४) ढाल के ऊपर की गोल फुलिया। ढाल के ऊपर जड़ा हुआ गोल फूलदार कांटा। (५) चांदमारी का वह काला दाग जिस पर निशाना लगाया जाता है। (६) टीन आदि चमकीली धातुओं का वह गोल टुकड़ा जो लंप की चिमनी के पीछे प्रकाश बढ़ाने के लिये लगा रहता है। कमरखी। (७) घोड़े के सिर की एक भौंरी का नाम। (८) एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियों की कलाई के ऊपर गोदा जाता है। (९) भालू की गरदन में नीचे की ओर सफ़ेद बालों का एक घेरा। (कलंदर)। संज्ञा स्त्री० (१) खोपड़ी का मध्य भाग। खोपड़ी का सबसे ऊँचा भाग। (२) खोपड़ी।

मुहा०—चांद पर बाल न छोड़ना = (१) सिर पर इतने जूते लगाना कि बाल झड़ जांय। सिर पर खूब जूते लगाना। (२) खूब मूँडना। सर्वस्व हरण करना। सब कुछ लेलेना।

चांदतारा—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की बारीक मलमल जिस पर चांद और तारों के आकार की बूटियां बनी हों। (२) एक प्रकार की पतंग या कनकौवा जिसमें रंगीन काग़ज़ के चांद और तारे बना कर चिपका देते हैं।

चांदना—संज्ञा पुं० [हिं० चांद] (१) प्रकाश। उजाला। (२) चांदनी।

चांदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चांद] (१) चंद्रमा का प्रकाश। चंद्रमा का उजाला। चंद्रिका। ज्योत्स्ना। कौमुदी।

यौ०—चांदनी रात = वह रात जिसमें चंद्रमा का प्रकाश हो। उजाली रात। शुक्ल पक्ष की रात्रि।

मुहा०—चांदनी खिलना वा छिटकना = चंद्रमा के स्वच्छ प्रकाश का खूब फैलना। शुभ्र ज्योत्स्ना का फैलना। चांदनी का खेत = चंद्रमा का चारों ओर फैला हुआ प्रकाश। चांदनी मारना = (१) चांदनी का बुरा प्रभाव पड़ने के कारण घाव या जख्म का अच्छा न होना। (कुछ लोगों में यह प्रवाद प्रचलित है कि घाव पर चांदनी पड़ने से वह जल्दी अच्छा नहीं होता।) (२) चांदनी पड़ने के कारण घोड़ों को एक प्रकार का आकस्मिक रोग हो जाना, जिसमें उनका शरीर ऐंठने लगता है और वे तड़फ तड़फ कर मर जाते हैं। कहते हैं कि यह रोग किसी पुरानी चोट के कारण होता है। चार दिन की चांदनी = थोड़े दिन रहनेवाला सुख वा आनंद। क्षणिक समृद्धि।

(२) बिछाने की बड़ी सफ़ेद चद्दर। सफ़ेद फ़र्श। (३) ऊपर तानने का सफ़ेद कपड़ा। छतगीर। (४) गुल-चांदनी। तगर।

चांदबाला—संज्ञा पुं० [हिं० चांद + बाला] कान में पहनने का एक प्रकार का बाला जो अर्द्धचंद्राकार होता है।

चाँदमारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद + मारना] बंदूक के निशाना लगाने का अभ्यास। दीवार या कपड़े पर बने हुए चिह्नों को लक्ष्य करके गोली चलाने का अभ्यास।

चाँदला–वि० [हिं० चाँद] (१) (दूज के चंद्रमा के समान) टेढ़ा। वक्र। कुटिल। (२) दे० "चँदला"।

चाँद सूरज–संज्ञा पुं० [हिं० चाँद + सूरज] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ चोटी में गूँध कर पहनती हैं।

चाँदा–संज्ञा पुं० [हिं० चाँद] (१) वह लक्ष्य स्थान जहाँ दूरबीन लगाई जाती है। (२) पैमाइश या भूमि की नाप में वह विशेष स्थान जिसकी दूरी को लेकर हदबंदी की जाती है। (३) छप्पर का पाखा।

चाँदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँद] (१) एक सफ़ेद चमकीली धातु जो बहुत नरम होती है। इसके सिक्के, आभूषण और बरतन इत्यादि बनते हैं। यह खानों में कभी शुद्ध रूप में, कभी दूसरे खनिज पदार्थों में गंधक, संखिया, सुरमा आदि के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका गुरुत्व सोने के गुरुत्व का आधा होता है। इसका अम्लक्षार बड़ी कठिनता से बनता है। चाँदी के अम्लक्षार को नौसादर के पानी में घोल कर सुखाने से ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार होता है जो हलकी रगड़ से भी बहुत जोर से भड़कता है। वैद्य लोग इसे भस्म करके रसौषध बनाते हैं। हकीम लोग भी इसका वरक रोगियों को देते हैं। चाँदी का तार बहुत अच्छा खिँचता है जिससे कारचोबी के अनेक प्रकार के काम बनते हैं। चाँदी से कई एक ऐसे क्षार बनाए जाते हैं जिन पर प्रकाश का प्रभाव बड़ा विलक्षण पड़ता है। इसी से उनका प्रयोग फोटोग्राफी में होता है।

पर्य्या०—रौप्य। रजत। चामीकर।

मुहा०—चाँदी कर डालना या देना = जला कर राख कर डालना। उ०—तुम तो तमाकू को चाँदी कर डालते हो तब दूसरे को देते हो। चाँदी का जूता = वह धन जो किसी को अपने अनुकूल या वश में करने को दिया जाता है। जैसे, घूस, इनाम आदि। चाँदी काटना = (१) खूब रुपया पैदा करना। खूब माल मारना। (२) स्त्री से प्रथम समागम करना। चाँदी का पहरा = सुख समृद्धि का समय। सौभाग्य की दशा। धन-धान्य की पूर्णता की अवस्था।

(२) धन की आय। आर्थिक लाभ। उ०—आज कल तो उनकी चाँदी है। (३) खोपड़ी का मध्य भाग। चाँद। चँदिया।

मुहा०—चाँदी खोलवाना = चाँद के ऊपर के बाल मुड़ाना।

(४) एक प्रकार की मछली जो दो या तीन इंच लंबी होती है।

चांद्र–वि० [सं०] चंद्रमा संबंधी। जैसे, चांद्रमास। चांद्रवत्सर।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) चांद्रायण व्रत। (२) चंद्रकांत मणि। (३) अदरख। (४) मृगशिरा नक्षत्र। (५) लिंगपुराण के अनुसार कुशद्वीप का एक पर्वत।

चांद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

चांद्रपुर–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक नगर जिसमें एक प्रसिद्ध शिवमूर्त्ति के होने का उल्लेख है।

चांद्रमस–वि० [सं०] चँद्रमा संबंधी।
संज्ञा पुं० मृगशिरा नक्षत्र।

चांद्रमसायन–संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह।

चांद्रमाण–संज्ञा पुं० [सं०] काल का वह परिमाण जो चँद्रमा की गति के अनुसार निर्धारित किया गया हो।

चांद्रमास–संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जो चँद्रमा की गति के अनुसार हो। उतना काल जितना चंद्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा करने में लगता है।

विशेष—चांद्रमास दो प्रकार का होता है। एक गौण, दूसरा मुख्य। कृष्ण प्रति पदा से लेकर पूर्णिमा तक का काल गौण वा पूर्णिमांत और शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावास्या तक का काल मुख्य वा अमांत चांद्रमास कहलाता है।

चांद्रवत्सर–संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ष जो चँद्रमा की गति के अनुसार हो।

चांद्रव्रतिक–वि० [सं०] जो चांद्रायण व्रत करे।
संज्ञा पुं० राजा।

चांद्रायण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चांद्रायणिक] (१) महीने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चँद्रमा के घटने बढ़ने के अनुसार आहार घटाना बढ़ाना पड़ता है।

विशेष—मिताक्षरा के अनुसार इस व्रत का करनेवाला शुक्ल प्रतिपदा के दिन त्रिकाल स्नान करके केवल एक ग्रास मोर के अंडे के बराबर का खा कर रहे। द्वितीया को दो ग्रास खाय। इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य बढ़ाता हुआ पूर्णिमा के दिन पंद्रह ग्रास खाय। फिर कृष्ण प्रतिपदा को चौदह ग्रास खाय। द्वितीया को तेरह, इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य घटाता हुआ कृष्ण चतुर्दशी के दिन एक ग्रास खाय और अमावस्या के दिन कुछ न खाय, उपवास करे। इस व्रत में ग्रासों की संख्या आरंभ और अंत में कम तथा बीच में अधिक होती है, इसी से इसे यवमध्य चांद्रायण कहते हैं। इसी व्रत को यदि कृष्ण प्रतिपदा से पूर्वोक्त क्रम से (अर्थात् प्रतिपदा को चौदह ग्रास, द्वितीया को तेरह इत्यादि) आरंभ करे और पूर्णिमा को पूरे पंद्रह ग्रास खा कर समाप्त करे तो वह पिपीलिका-तनुमध्य चांद्रायण होगा। कल्पतरु के मत से एक यति चांद्रायण होता है, जिसमें एक महीने तक नित्य तीन तीन ग्रास खा कर रहना पड़ता है। सुभीते

के लिये चांद्रायण व्रत का एक और विधान भी है। इसमें महीने भर के सब ग्रासों को जोड़ कर तीस से भाग देने से जितने ग्रास आते हैं उतने ग्रास नित्य खा कर महीने भर रहना पड़ता है। महीने भर के ग्रासों की संख्या २२५ होती है जिसमें ३० का भाग देने से ७½ ग्रास होते हैं। पल प्रमाण का एक ग्रास लेने से पाव भर के लगभग अन्न होता है। अतः इतना ही हविष्यान्न नित्य खा कर रहना पड़ता है। मनु, पाराशर, बौद्धायन इत्यादि सब स्मृतियों में इस व्रत का उल्लेख है। गौतम के मत से इस व्रत के करनेवाले को चंद्रलोक की प्राप्ति होती है। स्मृतियों में पापों और अपराधों के प्रायश्चित्त के लिये भी इस व्रत का विधान है।

(२) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं। पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रगण होना चाहिए। उ०—हरि हर कृपा-निधान, परम पद दीजिए। प्रभु जू दया निकेत, शरण रख लीजिए।

चांद्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री। (२) चाँदनी। ज्योत्स्ना। (३) सफेद भटकटैया।

वि० चंद्रमा संबंधी।

चाँप-संज्ञा पुं० दे० "चाप"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चँपना] (१) चप वा दब जाने का भाव। दबाव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) बंदूक का वह पुरजा जिसके द्वारा कुंदे से नली जुड़ी रहती है। (३) पैर की आहट। पैर जमीन पर पड़ने का शब्द। दे० "चाप"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

†*संज्ञा पुं० [हिं० चँपा] चँपा का फूल। उ०—कोई परा भँवर होय बास कीन जनु चाँप। कोइ पतंग भा दीपक कोई अधजर तन काँप।—जायसी।

चाँपना-क्रि० स० [सं० चपन = मींडना] (१) दबाना। मींड़ना। उ०—बड़ भागी अंगद हनुमाना। चाँपत चरणकमल विधि नाना।—तुलसी। (२) जहाज का पानी निकालने के लिये पंप का पेच चलाना। —(लश०)।

चाँयँ चाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

चावँ चावँ—संज्ञा स्त्री० दे० "चाँयँ चाँयँ"

चांसलर—संज्ञा पुं० [अं०] विश्वविद्यालय का प्रधान अधिकारी जो बी० ए०, एम० ए० आदि की उपाधि देता है।

चा-संज्ञा स्त्री० दे० "चाय"।

चाउ †*—संज्ञा पुं० दे० "चाव"।

चाउर†—संज्ञा पुं० दे० "चावल"।

चाऊ—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट या बकरे का बाल। (पहाड़ी बोली)।

चाक—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] (१) पहिये की तरह का वह गोल (मंडलाकार) पत्थर जो एक कील पर घूमता है और जिस पर मिट्टी का लोंदा रख कर कुम्हार बरतन बनाते हैं। कुलालचक्र।

विशेष—इसके किनारे पर एक जगह रुपये के बराबर एक छोटा सा गड्ढा होता है जिसे कुम्हार 'चित्ती' कहते हैं। इसी चित्ती में डंडा अटका कर चाक घुमाते हैं।

(२) गाड़ी वा रथ का पहिया। उ०—बिबिधि कता के लगे पताके छुवैं जे रविरथ चाके।—रघुराज। (३) गराड़ी। घिरनी। चरखी जिस पर कुएँ से पानी खींचने की रस्सी रहती है। (४) मिट्टी की वह गोल थरिया जिसमें मिस्त्री जमाते हैं। (५) थापा जिससे खलियान की राशि पर छापा लगाते हैं। दे० "चाकना" (६) सान जिस पर छुरी, कटार आदि की धार तेज़ की जाती है। (७) ढेंकली के पिछले छोर पर बोझ के लिये रक्खी हुई मिट्टी की पिंडी। (८) मिट्टी का वह बरतन जिससे ऊख का रस कड़ाह में पकने के लिये डाला जाता है। (९) मंडलाकार चिह्न की रेखा। गोंड़ला।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) दरार। चीड़।

मुहा०—चाक करना वा देना = चीरना। फाड़ना। चाक होना = चीरा जाना। फाड़ा जाना।

(२) आस्तीन का खुला हुआ मोहरा।

वि० [तु० चाक] (१) दृढ़। मजबूत। पुष्ट। (२) हृष्ट पुष्ट। तंदुरुस्त। चुस्त।

यौ०—चाक चौबंद = हृष्ट पुष्ट। तगड़ा। (२) चुस्त। चालाक। फुरतीला। तत्पर।

संज्ञा पुं० [अं०] दुद्धी। खरिया मिट्टी।

यौ०—चाक प्रिंटिंग = एक प्रकार की सफ़ेद रंग की छपाई जो प्रायः पुस्तकों के टाइटिल पेज (आवरणपत्र) आदि पर होती है। इसकी स्याही खरिया के योग से बनती है।

चाकचक—वि० [तु० चाक + सं० चक्र] चारों ओर से सुरक्षित। दृढ़। मजबूत। उ०—चाकचक चमू के अचाकचक चहूँ ओर चाक सी फिरत धाक चंपति के लाल की।—भूषण।

चाकचक्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमक दमक। चमचमाहट। उज्वलता। (२) शोभा। सुंदरता।

चाकट†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मट्ठा जो हाथ में पहना जाता है।

चाकदिल—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बुलबुल।

चाकना-क्रि० स० [हिं० चाँक] (१) सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा वा चिह्न खींच कर चारों ओर से घेरना। हद खींचना। उ०—सकल भुवन शोभा जनु चाकी।—तुलसी। (२) खलियान में अनाज की राशि पर मिट्टी वा राख से छापा लगाना जिसमें यदि अनाज निकाला जाय तो मालूम हो जाय। उ०—तुलसी तिलोक की समृद्धि सौज संपदा सकेलि चाकि राखी रासि जाँगरु जहान भो।—तुलसी। (३) पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

चाकर-संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० चाकरानी] दास। भृत्य। सेवक। नौकर।

चाकरनी-संज्ञा स्त्री० दे० "चाकरानी"।

चाकरानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चाकर का स्त्री०] नौकरानी। दासी। लौंडी।

चाकरी-संज्ञा स्त्री० [फा०] सेवा। नौकरी। टहल। खिदमत।
क्रि० प्र०—करना।
मुहा०—चाकरी बजाना = सेवा करना। खिदमत करना।

चाकल †वि० दे० "चकला"।

चाकसू-संज्ञा पुं० [सं० चक्षुष्या] (१) बनकुलथी का पौधा। (२) बनकुलथी का बीज।
विशेष—ये बीज बहुत छोटे और काले काले होते हैं। औषध के रूप में ये पीस कर आँख में डाले जाते हैं।

चाका-संज्ञा पुं० दे० "चाक (२)"।

चाकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चाक] चक्की। आटा पीसने का यंत्र।
संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] (१) बिजली। वज्र।
क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।
(२) पटे की एक चोट जो सिर पर की जाती है।

चाकू-संज्ञा पुं० [तु०] कलम, फल तथा और छोटी मोटी चीज़ों को काटने छीलने आदि का औज़ार। छुरी।

चाक्रायण-संज्ञा पुं० [सं०] चक्र नामक ऋषि के वंशधर जिनका उल्लेख छांदोग्य उपनिषद् में है।

चाक्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरों की स्तुति गानेवाला। चारण। भाट।
विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में चाक्रिक के अन्नभोजन का निषेध है।
(२) तेली। (३) गाड़ीवान। (४) कुम्हार। (५) अनुचर। सहचर।
वि० (१) चक्राकार। (२) चक्र संबंधी। (३) किसी चक्र या मंडली से संबंध रखनेवाला।

चाक्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम।

चाक्षुष-वि० [सं०] (१) चक्षु संबंधी। (२) आँख से देखने का। जिसका बोध नेत्रों से हो। चक्षुर्ग्राह्य।
संज्ञा पुं० (१) न्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण का एक भेद। ऐसा प्रत्यक्ष जिसका बोध नेत्रों द्वारा हो। (२) छठे मनु का नाम।
विशेष—भागवत के मत से ये विश्वकर्मा के पुत्र थे। इनकी माता का नाम आकृति और स्त्री का नाम नड्वला था। पुरु, कृत्स्न, अमृत, द्युमान्, सत्यवान्, धृत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक इनके पुत्र थे। जिस मन्वंतर के ये स्वामी थे उसके इंद्र का नाम मंत्रद्रुम था। मत्स्यपुराण में पुत्रों के नामों में कुछ भेद है। मार्कंडेय पुराण में चाक्षुष मनु की बड़ी लंबी चौड़ी कथा आई है। उस में लिखा है कि अनमित्र नामक राजा को उनकी रानी भद्रा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन रानी उस पुत्र को लेकर बहुत प्यार कर रही थी इतने में पुत्र एकबारगी हँस पड़ा। जब रानी ने कारण पूछा तब पुत्र ने कहा—"मुझे खाने के लिये एक बिल्ली ताक में बैठी है। मैं तुम्हारी गोद में ८—९ दिन से अधिक नहीं रहने पाऊँगा, इसीसे तुम्हारा मिथ्या स्नेह देख कर मुझे हँसी आई"। रानी यह सुनकर बड़ी दुखी हुई। उसी दिन विक्रांत नामक राजा की रानी को भी एक पुत्र हुआ। भद्रा कौशल से अपने पुत्र को विक्रांत की रानी की चारपाई पर रख आई और उसका पुत्र लाकर आप पालने लगी। विक्रांत राजा ने उस पुत्र का नाम आनंद रखा। जब आनंद का उपनयन होने लगा तब आचार्य्य ने उसे उपदेश दिया कि "पहले अपनी माता की पूजा करो"। आनंद ने कहा "मेरी माता तो यहाँ है नहीं अतः जिसने मेरा पालन किया है, उसीकी पूजा करता हूँ।" आनंद ने सब व्यवस्था कह सुनाई। पीछे राजा रानी को ढाढ़स बँधा कर वे स्वयं तपस्या करने लगे। आनंद की तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे मनु बना दिया और उसका नाम चाक्षुष रक्खा।
(३) स्वयंभुव मनु के पुत्र का नाम। चौदहवें मन्वंतर के एक देवगण का नाम।

चाख-संज्ञा पुं० दे० "चाष"।

चाखना †-क्रि० स० दे० "चखना"।

चाचपुट-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। इसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत स्वर होते हैं।

चाचर, चाचरि-संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] (१) होली में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, भेद आदि माने जाते हैं। उ०—तुलसिदास चाचरि मिस कहे राम गुन ग्राम।—तुलसी। (२) होली में होनेवाले खेल तमाशे। होली का स्वांग और हुल्लड़। होली की धमार। हर्षक्रीड़ा। उ०—(क) श्रुति, पुराण बुध सम्मत चाचरि चरित मुरारि।—तुलसी। (ख) तैसी ये बसंत पाँचैं धाय सों चाचरि माँचै, रंग राचैं कीच माचै

केसर के नीर की ।—देव । †(३) उपद्रव । दंगा । हलचल । हल्ला गुल्ला ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

चाचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] योग की एक मुद्रा । उ०—महदाकाश चाचरी मुद्रा शक्ती जाना ।—कबीर ।

चाचा—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० चाची] काका । पितृव्य । बाप का भाई ।

विशेष—दे० "चचा" ।

चाची—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाचा] चाचा की स्त्री । काकी ।

चाट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाटना] (१) चटपटी चीजों के खाने वा चाटने की प्रबल इच्छा । स्वाद लेने की इच्छा । मजे की चाह । (२) एक बार किसी वस्तु का आनंद लेकर फिर उसी का आनंद लेने की चाह । चसका । शौक़ । लालसा ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(३) प्रबल इच्छा । कड़ी चाह । लोलुपता । उ०—तुम्हें तो बस रुपये की चाट लगी है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

(४) लत । आदत । बान । टेव । धत । (५) मिर्च, खटाई, नमक आदि डाल कर बनाई हुई चरपरे स्वाद की वस्तु । चरपरी और नमकीन खाने की चीज़ें । जैसे, सेव, दही-बड़ा, दालमोठ इत्यादि । गज़क । (ऐसी चीज़ें शराब पीने के पीछे ऊपर से प्रायः खाई जाती हैं) उ०—चाट की दूकान ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वासघाती चोर । वह जो किसी का विश्वासपात्र बन कर उसका धन हरण करे । ठग । (स्मृतियों में ऐसे व्यक्ति का दंडविधान है ।) (२) उचक्का । चाँई । उ०—चाट, उचाट सी चेटक सी चुटकी भृकुटीन जम्हाति अमेठी ।—देव ।

चाट की टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० कुश्ती का एक पेंच जो उस समय काम में लाया जाता है जब प्रतिपक्षी (जोड़) पहलवान के पेट के नीचे घुस आता है और अपना बायाँ हाथ उसकी कमर पर लाता है । इसमें पहलवान अपने बाएँ हाथ से प्रतिपक्षी का बायाँ हाथ (जो पहलवान की कमर पर होता है) दबाते हुए उसकी दाहनी कलाई को पकड़ता है और अपना दाहना हाथ और पैर बढ़ा कर बाईं जांघ और पिंडली पर धक्का मार कर उसे गिराता है ।

चाटना—क्रि० स० [अनु० चट चट = जीभ चटने का शब्द] (१) खाने या स्वाद लेने के लिये किसी वस्तु को जीभ से उठाना । किसी पतली वा गाढ़ी चीज़ को जीभ से पोंछ पोंछ कर मुँह में लेना । जीभ लगा कर खाना । जैसे, शहद चाटना, अवलेह चाटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।—डालना ।

(२) पोंछ कर खा लेना । चट कर जाना । उ०—इतना हलुआ था सब चाट गए ।

मुहा०—चाट पोंछकर खाना = सब खा जाना । कुछ भी न छोड़ना ।

(३) (प्यार आदि से) किसी वस्तु पर जीभ फेरना । उ०—गाय अपने बछड़े को चाट रही है ।

यौ०—चूमना चाटना = प्यार करना ।

(४) कीड़ों का किसी वस्तु को खा जाना । उ०—जितना कागज़ था सब दीमक चाट गए ।

चाटपुट—संज्ञा पुं० [सं०] तबले का एक ताल । दे० "चाचपुट" ।

चाटा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० चाटी] वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है । नाँद ।

चाटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मिट्टी की मटकी जिसका दल ख़ूब मोटा हो ।

चाटु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीठी बात । प्रिय बात । (२) झूठी प्रशंसा वा विनय से भरी हुई ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न वा अनुकूल करने के लिये कही जाय । ख़ुशामद । चापलूसी ।

चाटुकार—संज्ञा पुं० [सं०] ख़ुशामद करनेवाला । ख़ुशामदी । झूठी प्रशंसा करनेवाला । चापलूस ।

चाटुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटुकार + ई (प्रत्य०)] झूठी प्रशंसा वा ख़ुशामद करने का काम । चापलूसी ।

चाटुपटु—संज्ञा पुं० [सं०] भंड । भाँड़ ।

चाड़*—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाँड़ सं० चंड = प्रबल ?] गहरी चाह । चाव । प्रेम । उ०—(क) हित पुनीत सब स्वारथहि अरि अशुद्ध बिन चाड़ । निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ।—तुलसी । (ख) कुच गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली दीठि मुख चाड़ । फिरि न टरी परिये रही परी चिबुक के गाड़ ।—बिहारी । (ग) काहे को काहू को दीजै उराहनो आवै इहां हम आपनी चाड़ैं ।

क्रि० प्र०—लगना ।

विशेष—दे० "चाँड़" ।

चाड़िला—वि० दे० "चाँड़िला" ।

चाड़ी †—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटु] पीठ पीछे की निंदा । चुग़ली ।

क्रि० प्र०—खाना ।

चाढ़ा†*—संज्ञा पुं० [हिं० चाड़] [स्त्री० चाढ़ी] (१) प्रेमपात्र । प्यारा । प्रिय । उ०—धन्य धन्य भक्तन के चाढ़े ।—सूर । (२) चाहनेवाला । प्रेमी । आशिक । आसक्त । उ०—(क) तुम हम पर रिस करनि हौ हम हैं तुव चाढ़े । निठुर भए हौ लाड़िली कब के हम ठाढ़े ।—सूर । (ख) दिन थोरी भोरी अति गोरी देखत ही जु स्याम भये चाढ़े ।—सूर ।

चाणक्य-संज्ञा पुं० [सं०] चणक ऋषि के वंश में उत्पन्न एक मुनि जिनके रचे हुए अनेक नीति ग्रंथ प्रचलित हैं। ये पाटलिपुत्र के सम्राट् चंद्रगुप्त के मंत्री थे और कौटिल्य नाम से भी प्रसिद्ध हैं। मुद्राराक्षस के अनुसार इनका असली नाम विष्णुगुप्त था।

विशेष—विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों तथा कथा सरित्सागर आदि संस्कृत ग्रंथों में तो चाणक्य का नाम आया ही है, बौद्ध-ग्रंथों में भी इनकी कथा बराबर मिलती है। बुद्धघोष की बनाई हुई विनयपिटक की टीका तथा महानाम स्थविर रचित महावंश की टीका में चाणक्य का वृत्तांत दिया हुआ है। चाणक्य तक्षशिला (एक नगर जो रावलपिंडी के पास था) के निवासी थे। इनके जीवन की घटनाओं का विशेष संबंध मौर्य्य चंद्रगुप्त की राज्यप्राप्ति से है। ये उस समय के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे, इसमें कोई संदेह नहीं। चंद्रगुप्त के साथ इनकी मैत्री की कथा इस प्रकार है। पाटलिपुत्र के राजा नंद वा महानंद के यहाँ कोई यज्ञ था। उसमें ये भी गए और भोजन के समय एक प्रधान आसन पर जा बैठे। महाराज नंद ने इनका काला रंग देख इन्हें आसन पर से उठवा दिया। इस पर क्रुद्ध हो कर इन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं नंदों का नाश न कर लूँगा तब तक अपनी शिखा न बाँधूँगा। उन्हीं दिनों राजकुमार चंद्रगुप्त राज्य से निकाले गये थे। चंद्रगुप्त ने चाणक्य से मेल किया और दोनों आदमियों ने मिलकर म्लेच्छ राजा पर्वतक की सेना लेकर पटने पर चढ़ाई की और नंदों को युद्ध में परास्त कर के मार डाला। नंदों के नाश के संबंध में कई प्रकार की कथाएँ हैं। कहीं लिखा है कि चाणक्य ने शकटार के यहाँ निर्माल्य भेजा जिसे छूते ही महानंद और उनके पुत्र मर गए। कहीं विषकन्या भेजने की कथा लिखी है। मुद्राराक्षस नाटक के देखने से जाना जाता है कि नंदों का नाश करने पर भी महानंद के मंत्री राक्षस के कौशल और नीति के कारण चंद्रगुप्त को मगध का सिंहासन प्राप्त करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ पड़ीं। अंत में चाणक्य ने अपने नीतिबल से राक्षस को प्रसन्न किया और उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बनाया। बौद्ध ग्रंथों में भी इसी प्रकार की कथा है, केवल महानंद के स्थान पर धननंद है। दे० "चंद्रगुप्त"। चाणक्य के शिष्य कामंदक ने अपने "नीतिसार" नामक ग्रंथ में लिखा है कि विष्णुगुप्त चाणक्य ने अपने बुद्धिबल से अर्थशास्त्र रूप महोदधि को मथ कर नीति शास्त्र रूपी अमृत निकाला। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' संस्कृत में राजनीति विषय पर एक विलक्षण ग्रंथ है। इनके नीति के श्लोक तो घर घर प्रचलित हैं। पीछे से लोगों ने इनके नीति ग्रंथों से घटा बढ़ा कर वृद्धचाणक्य, लघुचाणक्य, बोधिचाणक्य आदि कई नीति ग्रंथ संकलित कर लिए। चाणक्य सब विषयों के पूर्ण पंडित थे। 'विष्णुगुप्त सिद्धांत' नामक इनका एक ज्योतिष का ग्रंथ भी मिलता है। कहते हैं कि आयुर्वेद पर भी इनका लिखा वैद्यजीवन नाम का एक ग्रंथ है। न्याय भाष्यकार वात्स्यायन और चाणक्य को कोई कोई एक ही मानते हैं पर यह भ्रम है जिसका मूल हेमचंद्र का यह श्लोक है—वात्स्यायनो, मल्लनागः, कौटिल्यश्चणकात्मजः। द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः।

चाणूर-संज्ञा पुं० [सं०] कंस का एक मल्ल जिसे धनुष यज्ञ के समय श्रीकृष्ण ने मारा था।

चातक-संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० चातकी] एक पक्षी जो वर्षाकाल में बहुत बोलता है। पपीहा। दे० "पपीहा"।

विशेष—इस पक्षी के विषय में प्रसिद्ध है कि यह नदी तड़ाग आदि का संचित जल नहीं पीता, केवल बरसता हुआ पानी पीता है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि यह केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों ही से अपनी प्यास बुझाता है। इसी से यह मेघ की ओर देखता रहता है और उससे जल की याचना करता है। इस प्रवाद को कवि लोग अपनी कविता में बहुत लाए हैं। तुलसीदासजी ने तो अपनी सतसई में इसी चातक को लेकर न जाने कितनी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं।

पर्य्या०—स्तोकक। सारंग। मेघजीवन। तोकक।

यौ०—चातकानंदवर्द्धन = (१) मेघ। बादल। (२) वर्षाकाल।

चातकानंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्षाकाल। (२) मेघ।

चातर-संज्ञा पुं० [हिं० चादर] (१) मछली पकड़ने का बड़ा जाल। (२) षड्यंत्र। साज़िश।

†वि० दे० "चातुर" वा "चतुर"।

चातुर-वि० [सं०] (१) नेत्रगोचर। (२) चतुर। (३) खुशामदी। चापलूस।

संज्ञा पुं० (१) *गोल तकिया या मसनद*। (२) चार पहियों की गाड़ी।

चातुरई†-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरई"।

चातुरता†-संज्ञा स्त्री० दे० "चतुरता"।

चातुराश्रम्य-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास नामक चार आश्रम।

चातुरिक-संज्ञा पुं० [सं०] सारथी। रथवान।

चातुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चतुरता। चतुराई। व्यवहार-दक्षता। (२) चालाकी। धूर्त्तता।

चातुर्जात, चातुर्जातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकाश के अनुसार चार सुगंध द्रव्य—नागकेसर, इलायची, तेजपात और दालचीनी। (२) गुजरात के प्राचीन राजाओं के प्रधान कर्मचारी की उपाधि। प्रधान शासक।

चातुर्थक, चातुर्थिक–संज्ञा पुं० [सं०] चौथे दिन आनेवाला ज्वर। चौथिया बुख़ार।
वि० चौथे दिन होनेवाला।

चातुर्दश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) वह जो चतुर्दशी को उत्पन्न हो।

चातुर्भद्र, चातुर्भद्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार पदार्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। (२) वैद्यक के अनुसार ये चार ओषधियाँ—नागरमोथा, पीपल (पिप्पली), अतीस और काकड़ासिंगी। कोई कोई चक्रदत्त के अनुसार इन चार चीज़ों को लेते हैं—जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल।

चातुर्भद्रावलेह–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध अवलेह जो जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीपल को एक साथ पीस कर शहद मिलाने से बनता है। चौहद्दी।
विशेष—यह अवलेह श्वास, कास, अतीसार और ज्वर में उपकारी है और बच्चों को बहुत दिया जाता है।

चातुर्महाराजिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुभगवान्। (२) बुद्ध का एक नाम।

चातुर्मास–वि० [सं०] चार महीनों में होनेवाला। चार महीने का।

चातुर्मासिक–वि० [सं०] चार महीने में होनेवाला (यज्ञ, कर्म आदि)।

चातुर्मासी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर्णमासी।

चातुर्मास्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार महीने में होनेवाला एक वैदिक यज्ञ।
विशेष—कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय ५ में इस यज्ञ का पूरा विधान लिखा है। सूत्र के अनुसार फाल्गुनी पौर्णमासी से इस यज्ञ का आरंभ होना चाहिए, पर भाष्य और पद्धति में लिखा है कि इसका आरंभ फाल्गुन, चैत्र वा वैशाख की पूर्णिमा से हो सकता है। इस यज्ञ के चार पर्व हैं—वैश्वदेव, वरुणप्रघास, शाकमेध और सुनाशीरीय।
(२) चार महीने का एक पौराणिक व्रत जो वर्षा काल में होता है।
विशेष—वराह के मत से आषाढ़ शुक्ल द्वादशी वा पूर्णिमा से इस व्रत का आरंभ करके कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी वा पूर्णिमा को इसका उद्यापन करना चाहिए। मत्स्यपुराण में इस व्रत के अनेक विधान और फल लिखे हैं, जैसे, गुड़ त्याग करने से स्वर मधुर होता है, मद्य मांस त्याग करने से योग सिद्धि होती है, बटलोई में पका भोजन त्यागने से संतान की वृद्धि होती है, इत्यादि इत्यादि। यह विष्णुभगवान् का व्रत है अतः 'नमो नारायणाय' मंत्र के जप का भी विधान है। सनत्कुमार के मत से इस व्रत का आरंभ आषाढ़ शुक्ल एकादशी, पूर्णिमा या कर्क की संक्रांति से होना चाहिए। इन चार महीनों में काठक गृह्यसूत्र के मत से यतियों को एक ही स्थान पर जम कर रहना चाहिए। इस नियम का पालन बौद्ध भिक्षु (यति) भी करते हैं।

चातुर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई। निपुणता। दक्षता।

चातुर्वर्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। (२) चारों वर्णों का अनुष्ठेय धर्म, जैसे, ब्राह्मण का धर्म यजन, याजन, दान, अध्यापन, अध्ययन और प्रतिग्रह, क्षत्रिय का धर्म बाहुबल से प्रजापालन इत्यादि।

चातुर्होत्र–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चातुर्होत्रिय] वह यज्ञ जो चार होताओं द्वारा संपन्न हो।

चात्र–संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमंथन यंत्र का एक अवयव। यह बारह अंगुल की खैर की लकड़ी होती है जिसके अगले छोर में लोहे की एक कील लगी होती है और पीछे की ओर एक छेद होता है।

चात्रिक*–संज्ञा पुं० दे० "चातक"।

चात्वाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हवनकुंड। (२) उत्तर वेदी। (३) दर्भ। डाभ वा कुश। (४) गड्ढा।

चादर–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) कपड़े का लंबा चौड़ा टुकड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है। हलका ओढ़ना। चौड़ा दुपट्टा। पिछौरी।
मुहा०—चादर उतारना = बेपर्द करना। इज्ज़त उतारना। अपमानित करना। मर्यादा बिगाड़ना। (स्त्रियों के संबंध में इसे उसी अर्थ में बोलते हैं जिस अर्थ में पुरुषों के लिये 'पगड़ी उतारना' बोलते हैं)। चादर ओढ़ाना या डालना = किसी विधवा को रख लेना। चादर छिपौवल = लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के के ऊपर चादर डाल देते हैं और दूसरी ओर के लड़कों से उसका नाम पूछते हैं। जो ठीक नाम बता देता है वह चादर से ढके लड़के को खींच कर ले जाता है। चादर रहना या लाज की चादर रहना = इज्ज़त रहना। कुल की मर्यादा रहना। प्रतिष्ठा का बना रहना। उ०—लाज बिनु कैसे लाज चादर रहेगी आज कादर करत आय चादर नये नये।—श्रीपति। चादर से बाहर पैर फैलाना = (१) अपनी हद से बाहर जाना। (२) अपने वित्त से अधिक खर्च आदि करना। चादर हिलाना = युद्ध में शत्रुओं से घिरे हुए सिपाही का युद्ध रोकने वा आत्म समर्पण करने के लिये कपड़ा हिलाना। युद्ध रोकने का झंडा दिखाना।
(२) किसी धातु का बड़ा चौखूँटा पत्तर। चद्दर। (३) पानी की चौड़ी धार जो कुछ ऊपर से गिरती हो। (४) चढ़ी हुई नदी या और किसी वेग से बहते हुए प्रवाह में स्थान स्थान पर पानी का वह फैलाव जो बिलकुल बराबर होता है अर्थात् जिसमें भँवर या हिलोरा नहीं होता। (५) फूलों की राशि जो किसी देवता या पूज्य स्थान पर चढ़ाई जाती है। जैसे, मज़ार पर चादर चढ़ाना

चादरा–संज्ञा पुं० [हिं० चादर] मरदानी चादर। बड़ी चादर।

चानक*–क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०—हरिनी जनु चानक जाल परी। जनु सोन चिरी अबहीं पकरी।—गुमान।

चानस–संज्ञा पुं० [अं० चांस] ताश का एक खेल।

चाप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। (२) गणित में आधा वृत्तक्षेत्र।

विशेष—सूर्यसिद्धांत में ग्रहादि के चाप निकालने की क्रिया दी हुई है।

(३) वृत्त की परिधि का कोई भाग। (४) धनु राशि।

संज्ञा स्त्री० [सं० चाप = धनुष] (१) दबाव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) पैर की आहट। पैर ज़मीन पर पड़ने का शब्द। उ०—इतने में किसी के पाँव की चाप सुनाई दी।

चापजरीब–संज्ञा पुं० [हिं० चाप + फ़ा० जरीब] किसी ज़मीन की सीधी नाप। लंबाई की नाप।

चापट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपटना] दाने की वह भूसी जो आटा पीसने पर निकलती है। चोकर।

वि० दे० "चापड़"।

चापड़–वि०[सं० चिपिट, हिं० चिपटा, चपटा] (१) जो दब कर चिपटा हो गया हो। जो कुचले जाने के कारण ज़मीन के बराबर हो गया हो (२) बराबर। समतल। हमवार। (३) मटियामेट। चौपट। उजाड़। उ०—ऐसी बाढ़ आई कि कई गाँव चापड़ हो गए।

संज्ञा स्त्री० चोकर। भूसी।

चापदंड–संज्ञा पुं० [सं०] वह डंडा जिससे कोई वस्तु आगे की ओर ठेली जाय।

चापना–क्रि० स० [सं० चाप = धनुष] दबाना। मीड़ना। उ०—चापत चरण लखन उर लाये। समय सप्रेम परम सचुपाये।—तुलसी।

चापरी–वि० दे० "चापड़"।

चापल–संज्ञा पुं० [सं०] चंचलता। अस्थिरता।

*वि० [हिं० चपल] चंचल।

चापलता*–संज्ञा स्त्री० [हिं० चापल + ता (प्रत्य०)] चंचलता। ढिठाई। उ०—जसुमति चापलता कवि छमहू।—तुलसी।

चापलूस–वि० [फ़ा०] [संज्ञा चापलूसी] खुशामदी। लल्लो चप्पो करनेवाला। चाटुकार।

चापलूसी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] खुशामद। वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रसन्न और अनुकूल करने के लिये की जाय। चाटुकारी।

चापी–संज्ञा पुं० [सं० चापिन्] (१) धनुर्धर। वह जो धनुष धारण करे। (२) शिव। (३) धनु राशि।

चापू–संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय के आस पास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत लंबे और मुलायम होते हैं। इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं।

चाफंद–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + फंदा] मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल।

चाब–संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] (१) गजपिप्पली की जाति का एक पौधा जिसकी लकड़ी और जड़ औषध के काम में आती है। एशिया के दक्षिण और विशेषतः भारत में यह पौधा या तो नदियों के किनारे आपसे आप उगता है या लकड़ी और जड़ के लिए बोया जाता है। इसकी जड़ में बहुत दिनों तक पनपने की शक्ति रहती है और पौधे को काट लेने पर उसमें से फिर नया पौधा निकलता है। इसमें काली मिर्च के समान छोटे फल लगते हैं जो पहले हरे रहते और पकने पर लाल हो जाते हैं। यदि कच्चे फल तोड़ कर सुखा लिए जाँय तो उनका रंग काला हो जाता है। ये फल भी औषध के काम में आते और "चव" कहलाते हैं। कुछ लोग भूल से इसीके फल को "गजपिप्पली" कहते हैं। पर "गजपिप्पली" इससे भिन्न है। बंगाल में इसकी लकड़ी और जड़ से कपड़े आदि रँगने के लिये एक प्रकार का पीला रंग निकाला जाता है। डाक्टरों के मत से "चव" फल के गुण बहुत से अंशों में काली मिर्च के समान ही हैं। वैद्यक में चाब को गरम, चरपरी, हलकी, रोचक, जठराग्निप्रदीपक और कृमि, श्वास, शूल और क्षय आदि को दूर करनेवाली और विशेषतः गुदा के रोगों को दूर करनेवाली माना है।

पर्य्या०—चविका। चव्य। चवी। रसावली। तेजोवती। कोला। नाकुली। कोलवल्ली। कुटिल। सप्तक। छूकर।

(२) इस पौधे का फल। (३) चार की संख्या (डिं०)। (४) कपड़ा (डिं०)।

संज्ञा पुं० [सं० चप = एक प्रकार का बाँस] एक प्रकार का बाँस।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाबना] (१) दाढ़। चौभड़। वे चौखूँटे दाँत जिनसे भोजन कुचल कर खाया जाता है। (२) बच्चे के जन्मोत्सव की एक रीति जिसमें संबंध की स्त्रियाँ गाती बजाती और खिलौने कपड़े आदि लेकर आती हैं।

चाबना–क्रि० स० [सं० चर्वण, प्रा० चव्वण] (१) दाँतों से कुचल कुचल कर खाना। चबाना। जैसे, चने चाबना। उ०—चाबत पान चली झमकि पुतनिका मदमान।—सुकवि।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।—लेना।

(२) खाना। खूब भोजन करना।

चाबी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाप = दबाव वा पुर्त्त० चेव] (१) कुंजी। ताली।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—चाबी देना = (१) कुंजी ऐंठ कर ताला बंद करना। (२) कुंजी के द्वारा किसी कल की कमानी को ऐंठ कर कसना जिसमें झटके के कारण उसके सब पुरजे फिर ज्यों के त्यों चलने लगें। जैसे, घड़ी में चाबी देना। चाबी भरना = दे० "चाबी देना"।

(२) कोई ऐसा पचड़ जिसे दो जुड़ी हुई वस्तुओं की संधि में ठोंक देने से जोड़ दृढ़ हो जाय।

क्रि० प्र०—भरना।

चाबुक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कोड़ा। हंटर। सांटा।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—फटकारना।—मारना।—लगाना।

यौ०—चाबुकसवार।

(२) कोई ऐसी बात जिससे किसी कार्य्य के करने की उत्तेजना उत्पन्न हो। उ०—तुम्हारी व्यंग्य भरी बात ही उसके लिये चाबुक हो गई।

चाबुकसवार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा चाबुकसवारी] घोड़े को विविध प्रकार की चालें सिखानेवाला। घोड़े की चाल दुरुस्त करनेवाला। घोड़े को निकालनेवाला।

चाबुकसवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चाबुक सवार का काम वा पेशा।

चाभ—संज्ञा स्त्री० दे० "चाब"।

चाभना—क्रि० स० [हिं० चाबना] खाना। भक्षण करना।

मुहा०—माल चाभना = अनेक प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक पदार्थ खाना। बढ़िया बढ़िया चीजें खाना।

चाभा—संज्ञा पुं० [हिं० चाबना] बैलों का एक रोग जिसमें उनकी जीभ पर कांटे से उभड़ आते हैं और उनसे कुछ खाते नहीं बनता।

चाभी—संज्ञा स्त्री० दे० "चाबी"।

चाम—संज्ञा पुं० [सं० चर्म] चमड़ा। खाल। चमड़ी।

मुहा०—चाम के दाम = चमड़े के सिक्के। (ऐसा प्रसिद्ध है कि निज़ाम नामक एक भिश्ती ने हुमायूँ को डूबने से बचाया था और इसके बदले में आधे दिन की बादशाही पाई थी। उसी आधे दिन की बादशाहत में उसने चमड़े के सिक्के चलाए थे।) चाम के दाम चलाना = अपनी जबरदस्ती के भरोसे कोई काम करना। अन्याय करना। अंधेर करना। उ०—(क) ऊधो अब कछु कहत न आवै। सिर पै सौति हमारे कुबजा चाम के दाम चलावै।—सूर। (ख) बतियान सुनाय के सौतिन की छतियान में साल सलाय ले री। सपनेहू न कीजिय मान अरे अपने जोबना की बलाय ले री। परमेस जू रूप तरंगन सों अंग अंगन रूप रलाय ले री। दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार में चाम के दाम चलाय ले री।—परमेश।

चामचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाम + चोरी] गुप्त रूप से पर-स्त्री-गमन।

चामड़ो†—संज्ञा स्त्री० दे० "चमड़ी"।

चामर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौंर। चँवर। चौंरी। (२) मोरछल। (३) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण होते हैं। उ०—रोज रोज राधिका सखीन संग आइ कै। खेल रास कान्ह संग चित्त हर्ष लाइ कै। बाँसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाय कै। कृष्ण ही रिझावहीं सु चामरै डुलाइ कै।

चामरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कॉस। (२) सुपारी का पेड़। (३) केतकी। (४) आम।

चामरिक—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर डुलानेवाला।

चामरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरागाय।

चामिल†—संज्ञा स्त्री० दे० "चंबल" उ०—चामिल तेरे वालों आये।—लाल।

चामीकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) धतूरा।

वि० स्वर्णमय। सुनहरी।

चामुंडराज—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात का एक राजा जो चापोत्कट वंशीय सामंतराज का भांजा था। इसकी मृत्यु १०२५ ईसवी में हुई।

चामुंडराय—संज्ञा पुं० [सं०] महाराज पृथ्वीराज के एक सामंत राजा जिनका वर्णन पृथ्वीराज रासो में आया है।

चामुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम जिन्होंने चंडमुंड नामक शुंभ निशुंभ के दो सेनापति दैत्यों का वध किया था।

पर्य्या०—चर्विका। चर्ममुंडा। मार्जारकर्णिका। कर्णमोटी। महागंधा। भैरवी। कापालिनी।

चाय—संज्ञा स्त्री० [चीनी चा] एक पौधा वा झाड़ जो प्रायः दो से चार हाथ तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियां १०-१२ अंगुल लंबी, ३-४ अंगुल चौड़ी और दोनों सिरों पर नुकीली होती हैं। इसमें सफ़ेद रंग के चार पांच दलों के फूल लगते हैं जिनके झड़ जाने पर एक, दो, या तीन बीजों से भरे फल लगते हैं। यह पौधा कई प्रकार का होता है। इसकी सुगंधित और सुखाई हुई पत्तियों को उबाल कर पीने की चाल अब संसार भर में फैल गई है।

विशेष—चाय पीने का प्रचार सब से पहले चीन देश में हुआ। वहाँ से क्रमशः जापान, बरमा, स्याम आदि देशों में हुआ। चीन देश में कहीं कहीं यह कहानी प्रचलित है कि धर्म नामक कोई ब्राह्मण चीन देश में धर्मोपदेश करने गया। वहाँ वह एक दिन चलते चलते थक कर एक स्थान पर सो गया। जागने पर उसे बड़ी सुस्ती मालूम हुई। इस पर क्रुद्ध होकर वह अपनी भौं के बाल नोच नोच कर फेंकने

लगा। जहाँ जहाँ उसने बाल फेंके वहाँ वहाँ कुछ पौधे उग आए, जिनकी पत्तियों को खाने से वह आध्यात्मिक ध्यान में मग्न हो गया। वे ही पौधे चाय के नाम से प्रसिद्ध हुए। चीन में पहले औषध के रूप में इसका व्यवहार चाहे बहुत प्राचीन काल में रहा हो पर इस प्रकार उबाल कर पीने की चाल वहाँ ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी के पहले नहीं थी। भारतवर्ष में आसाम तथा मनीपुर आदि प्रदेशों में यह पौधा जंगली होता है। नागा की पहाड़ियों पर भी इसके जंगल पाए गए हैं, पर इसके पीने की प्रथा का प्रचार भारतवर्ष में नहीं था। चीन से चाय मँगा मँगा कर जब से ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोप को भेजने लगी तभी से इसकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ और भारत में उसके लगाने का भी उद्योग आरंभ हुआ। पहले पहल यहाँ मलाबार के किनारे पर चीन से बीज मँगा कर चाय उत्पन्न करने की चेष्टा अँगरेजों द्वारा की गई, क्योंकि तब तक यह नहीं ज्ञात था कि यह पौधा भारतवर्ष में भी जंगली होता है। पर यह चाय उस चाय से भिन्न थी जो आसाम में होती है। लुशाई चाय की पत्तियाँ सब से बड़ी होती हैं। नागा चाय की पत्तियाँ पतली और छोटी होती हैं। चाय की पत्तियाँ यों ही सुखा कर नहीं पी जाती हैं। वे अनेक प्रक्रियाओं से सुगंधित और प्रस्तुत की जाती हैं। चाय के अनेक प्रकार के जो नाम आज कल प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश क्षुप-भेद-सूचक नहीं हैं, केवल प्रक्रिया के भेद से या पत्तियों की अवस्था के भेद से रक्खे गए हैं। साधारणतः चाय के दो भेद प्रसिद्ध हैं, काली चाय और हरी चाय। यद्यपि चीन में कहीं कहीं पत्तियों में यह भेद देखा जाता है जैसे, कियाङ्सू पर्वत की हरी चाय जिसे सुंगलो कहते हैं और कानटन की घटिया काली चाय, पर अधिकतर यह भेद भी अब प्रक्रिया पर निर्भर है। काली चायों में पीको, योहिया काँगो, सूचंग, बहुत प्रसिद्ध हैं और हरी चायों में से ट्वांके, हैसन, बारूद आदि प्रसिद्ध हैं। काली चायों में से पीको सब से स्वादिष्ट और उत्तम होती है और हरी चायों में से बारूद चाय सब से बढ़िया मानी जाती है। नारंगी पीको में बहुत अच्छी सुगंध होती है। ये दोनों प्रकार की चायें पहली चुनाई की होती हैं, जब कि पत्तियाँ बिलकुल नए कल्लों के रूप में रहती हैं। चाय बीजों से उत्पन्न की जाती है।

संज्ञा स्त्री० चाय उबाला हुआ पानी। चाय का काढ़ा।

क्रि० प्र०—पीना।—बनाना।—लेना।

यौ०—चाय पानी = जलपान'।

संज्ञा पु० दे० "चाव"।

चायक-*संज्ञा पुं० [हिं० चाय] चाहनेवाला। प्रेमी। उ०—जय यदुकुल उडु इंदु सत चकोर चायक चतुर।—रघुराज।

संज्ञा पु० [सं०] चुननेवाला। चयन करनेवाला।

चार-वि० [सं० चतुर्] (१) जो गिनती में दो और दो हो। तीन से एक अधिक। जैसे, चार आदमी।

मुहा०—चार आँखें करना = आँखें मिलाना। देखा देखी करना। सामने आना। साक्षात्कार करना। मिलना। उ०—अब वह हमारे सामने चार आँखें नहीं करता। चार आँखें होना = नज़र से नज़र मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। चार चाँद लगना = (१) चौगुनी प्रतिष्ठा होना। (२) चौगुनी शोभा होना। सौंदर्य्य बढ़ना। (स्त्रि०)। चार के कंधे पर चढ़ना वा चलना = मर जाना। श्मशान को जाना। चार ताल = चौताला। तबले वा मृदंग के एक ताल का नाम। चार पगड़ी करना = जहाज का लँगर डालना। जहाज को ठहराना। (लश०)। चार पाँच = (१) इधर उधर की बात। हीला-हवाला। (२) हुज्जत। तकरार। चार पाँच करना = हीला हवाला करना। इधर उधर करना। बातें बढ़ाना। हुज्जत करना। तकरार करना। चार पाँच लाना = दे० "चार पाँच करना"। चारों फूटना = चारों आँखें फूटना (दो हिये की, दो ऊपर की)। अंधा होना। उ०—आछो गात अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमल लोचन सों जन्म जुवा ज्यों हारयो। निसि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गईं तव चारयो।—सूर। चार मग़ज़ = हकीमी में चार वस्तुओं के बीजों की गिरी—खीरा, ककड़ी, कद्दू और खरबूजा। चारों खाने चित्त गिरना वा पड़ना = (१) ऐसा चित्त गिरना जिससे हाथ पाँव फैल जाँय। हाथ पाँव फैलाए पीठ के बल गिरना। (२) किसी दारुण संवाद को पाकर स्तंभित होना। अकस्मात् कोई प्रतिकूल बात सुन कर ठक रह जाना। विमुख होना। सकपका उठना।

(२) कई एक। बहुत से। उ०—चार आदमी जो कहें उसे मानो। (३) कुछ। थोड़ा बहुत। जैसे, चार आँसू गिराना।

मुहा०—चार तार = चार थान कपड़े या गहने। कुछ कपड़ा लत्ता और ज़ेवर। चार दिन = थोड़े दिन। कुछ दिन। उ०—चार दिन की चाँदनी, फिर अँधेरा पाख। चार पैसे = कुछ धन। कुछ रुपया पैसा। उ०—जब चार पैसे पास रहेंगे तब सब 'हाँजी हाँजी' करेंगे।

संज्ञा पु० चार की संख्या। चार का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है।—४।

संज्ञा पु० [सं०] [वि० चारित, चारी] (१) गति। चाल। गमन। (२) बंधन। कारागार। (३) गुप्त दूत। चर। जासूस। (४) दास। सेवक। उ०—लोभी यश चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी।—तुलसी। (५) चिरौंजी का पेड़। पियार। अचार। (६) कृत्रिम विष जैसे,

मछली फँसाने की कँटिया में लगा चारा, चिड़ियों को बेहोश करने की गोली आदि। (७) आचार। रीति। रस्म। जैसे, व्याहचार, द्वारचार। उ०—(क) फेरे पान फिरा सब कोई। लाग्यो व्याहचार सब होई।—जायसी। (ख) भइ भाँवरि न्योछावरि राज चार सब कीन्ह।—जायसी। (ग) औरहु चार करावहु मुनिवर शशि सूरज सुत देखै।—रघुराज। (घ) अर्द्ध रात्रि लौं सकल चार करि आय जाहु जनवासे।—रघुराज।

चार आइना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का कवच या बकतर जिसमें लोहे की चार पटरियाँ होती हैं; एक छाती पर, एक पीठ पर और दो दोनों बगलों में (भुजा के नीचे)।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय भैंस चरानेवाला। चरवाहा। (२) चलानेवाला। संचारक। (३) गति। चाल। (४) चिरौंजी का पेड़। पियाल। (५) कारागार। (६) गुप्त चर। जासूस। (७) सहचर। साथी। (८) अश्वारोही। सवार। (९) घूमनेवाला ब्राह्मण छात्र वा ब्रह्मचारी। (१०) मनुष्य। (११) चरकनिर्मित ग्रंथ या सिद्धांत।

चारकाने—संज्ञा पुं० [हिं० चार + काना = मात्रा] चौसर वा पासे का एक दाँव।

विशेष—यह उस समय होता है जब नर्द बाज़ी के तीनों पासे इस प्रकार पड़ते हैं कि एक पासे में तो दो चित्ती और बाकी दोनों पासों में एक एक चित्ती ऊपर की ओर दिखाई पड़ती है।

चारख़ाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंगीन धारियों के द्वारा चौखूँटे घर बने रहते हैं।

चारचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चारचक्षुस्] वह जो दूतों ही के द्वारा सब बातों की जानकारी प्राप्त करे। राजा।

चारज—संज्ञा पुं० [अं० चार्ज] (१) कार्य्यभार। काम की जिम्मेदारी।

मुहा०—चारज देना = किसी काम को छोड़ते समय उसका भार अपने स्थान पर आए हुए मनुष्य को सहेज कर देना। चारज लेना = किसी कार्य्य के भार को उससे अलग होनेवाले मनुष्य से सहेज कर लेना।

(२) सुपुर्दगी। निगरानी। संरक्षा का भार।

चारजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चमड़े वा कपड़े का बना हुआ वह आसन जिसे घोड़े की पीठ पर कस कर सवारी करते हैं। ज़ीन। पलान। काठी।

चारटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नली नामक गंध-द्रव्य।

चारटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मचारिणी वृप। भूम्यामलकी।

चारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाट। वंश की कीर्त्ति गानेवाला। बंदीजन। (२) राजपूताने की एक जाति।

विशेष—सह्याद्रिखंड में लिखा है कि जिस प्रकार वैतालिकों की उत्पत्ति वैश्य और शूद्रा से है उसी प्रकार चारणों की भी है, पर चारणों का ग्रूपलत्व कम है। इनका व्यवसाय राजाओं और ब्राह्मणों का गुण वर्णन करना तथा गाना बजाना है। चारण लोग अपनी उत्पत्ति के संबंध में अनेक अलौकिक कथाएँ कहते हैं।

(३) भ्रमणकारी।

चारणविद्य, चारणवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का एक अंश।

चारदा—संज्ञा पुं० [हिं० चार + दा (प्रत्य०)] (१) चौपाया। (२) (कुम्हारों की बोली में) गदहा।

चारदीवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह दीवार जो किसी स्थान की रक्षा के लिये उसके चारों ओर बनाई जाय। घेरा। हाता। (२) शहरपनाह। प्राचीर। कोट।

चारन—संज्ञा पुं० दे० "चारण"।

चारना*†—क्रि० स० [सं० चारण] चराना। उ०—(क) गो चारत मुरली धुनि कीन्हा। गोपी जन के मन हरि लीन्हा।—गोपाल। (ख) जहँ गोचारत नित गोपाला। संग लिये ग्वालन की माला।

चार ना चार—क्रि० वि० [फ़ा०] विवश होकर। लाचार होकर। मजबूरन।

चारपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार + पाया] खाट। छोटा पलंग। खटिया। मंजी। माचा।

मुहा०—चारपाई पर पड़ना = (१) चारपाई पर लेटना। (२) बीमार होना। अस्वस्थ होना। रोगग्रस्त होना। चारपाई धरना, पकड़ना वा लेना = (१) इतना बीमार होना कि चारपाई से उठ न सके। अत्यंत रुग्ण होना। (२) चारपाई पर लेटना। सोना। उ०—तुम खाते ही चारपाई पकड़ते हो। चारपाई में कान निकलना = चारपाई का टेढ़ा होना। चारपाई में कन्न पड़ना। चारपाई से (किसी की) पीठ लगना = बीमारी के कारण चारपाई से उठ न सकना। (किसी का) चारपाई से लगना = दे० "चारपाई से पीठ लगना"।

चारपाया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चौपाया। चार पाँववाला पशु। जानवर।

चारबाग़—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चौखूँटा बगीचा। (२) वह चौखूँटा शाल वा रूमाल जो भिन्न भिन्न रंगों के द्वारा चार बराबर खानों में बँटा होता है।

चारबालिश—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का गोल तकिया।

चारयारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार + फा० यार] (१) चार मित्रों की मंडली। (२) मुसलमानों में सुन्नी संप्रदाय की एक मंडली जो अबूबक्र, उमर, उसमान और अली इन्हीं चारों को खलीफ़ा मानती है। (३) चाँदी का एक चौकोर सिक्का जिस पर मुहम्मद साहब के चार मित्रों वा खलीफ़ों के नाम अथवा कलमा लिखा रहता है। यह सिक्का अकबर और जहाँगीर के समय में बना था। इस सिक्के वा रुपये के बराबर चावल तौल कर उन लोगों को खिलाते हैं जिन पर कोई वस्तु चुराने का संदेह होता है और कह देते हैं कि जो चोर होगा उसके मुहँ से ख़ून निकलने लगेगा। इस धमकी में आकर कभी कभी चुरानेवाले चीज़ों को फेंक वा रख जाते हैं। उ०—चारयारी का रुपया।

चारवा—संज्ञा पुं० [हिं० चार + पाँव] चौपाया। पशु। जानवर।

चारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्म की गरम हवा। लू।

चारा—संज्ञा पुं० [हिं० चरना] (१) पशुओं के खाने की घास, पत्ती, डंठल आदि। (२) चिड़ियों, मछलियों या और जीवों के खाने की वस्तु। (३) आटा या और कोई वस्तु जिसे कटिया में लगा कर मछली फँसाते हैं।

संज्ञा पुं० [फा०] उपाय। इलाज। तदबीर।

चाराजोई—संज्ञा स्त्री० [फा०] दूसरे से पहुँची हुई वा पहुँचनेवाली हानि के प्रतिकार वा बचाव का उपाय। नालिश। फ़रियाद। जैसे, अदालत से चाराजोई करना।

चारायण—संज्ञा पुं० [सं०] काम-शास्त्र के एक आचार्य जिनके मत का उल्लेख वात्स्यायन ने किया है।

चारि*—वि० दे० "चार"।

चारिणी—वि० स्त्री० [सं०] आचरण करनेवाली। चलनेवाली।

संज्ञा स्त्री० [सं०] करुणी वृक्ष।

चारित—वि० [सं०] (१) जो चलाया गया हो। चलाया हुआ। (२) भबके द्वारा खींचा हुआ। उतारा हुआ। (अर्क)

चारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल-क्रमागत आचार। (२) चाल चलन। व्यवहार। स्वभाव। (३) संन्यास (जैन)।

यौ०—चारित्र धर्म = सन्यास धर्म।

(४) मरुद्गणों में से एक।

चारित्रविनय—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र द्वारा नम्र वा विनीत भाव प्रदर्शन। शिष्टाचार। नम्रता।

चारित्रमार्गणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारित्र की खोज। चारित्र का अनुसरण (जैन)। चारित्र ५ प्रकार का है—(क) सामयिक, (ख) छेदोपस्थापनीय, (ग) परिहारविशुद्धि, (घ) सूक्ष्म-सांपराय, (च) यथाख्यात। इनके विरुद्ध संयम और असंयम हैं।

चारित्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि।

चारित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

चारित्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र।

चारिवाच्—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी।

चारी—वि० [सं० चारिन्] [स्त्री० चारिणी] (१) चलनेवाला। जैसे, आकाशचारी। (२) आचरण करनेवाला। व्यवहार करनेवाला। जैसे, स्वेच्छाचारी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग हिंदी में प्रायः समास ही में होता है।

संज्ञा पुं० (१) पदाति सैन्य। पैदल सिपाही। (२) संचारी भाव।

संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य का एक अंग।

विशेष—शृंगार आदि रसों का उद्दीपन करनेवाली मधुर गति को चारी कहते हैं। किसी किसी के मत से एक या दो पैरों से नाचने का ही नाम चारी है। चारी के दो भेद हैं—एक भूचारी, दूसरी आकाशचारी। भूचारी १६ प्रकार की होती है, यथा—समनखा, नूपुरविद्धा, तिर्य्यङ्मुखी, सरला, कातरा, कुवीरा, विश्लिष्टा, रथचक्रिका, पांर्ष्णिरेचिनका, तलदर्शिनी, गजहस्तिका, परावृत्ततला, चारुताड़िता, अर्द्धमंडला, स्तंभक्रीड़नका, हरिणत्रासिका, चारुरेचिका, तलोद्वृत्ता, संचारिता, स्फुरिका, लंघितजंघा, संघट्टिता, मदालसा, उत्कुंचिता, अतितिर्य्यक्कुंचिता, और अपकुंचिता,। मतांतर से भूचारी १६ प्रकार की होती हैं—समपादस्थिता, विद्धा, शकटास्यिका, विच्यावा, ताड़िता, आबद्धा, एड़का, क्रीड़िता, वस्तूत्ता, छंदिता, जनिता, स्पंदिता, स्पंदितावती, समतन्वी, समोत्सारितमट्टिता और उच्छुंदिता। आकाशचारी १६ प्रकार की होती हैं—विक्षेपा, अधरी, अंचिताड़िता, भ्रमरी, पुरःक्षेपा, सूचिका, अपक्षेपा, जंघावर्त्ता, विद्धा, हरिणप्लुता, उरुजंघांदोलिता, जंघा, जंघनिका, विद्युत्क्रांता, भ्रमरिका, और दंडपार्श्वा। मतांतर से—विभ्रांता, अतिक्रांता, अपक्रांता, पार्श्वक्रांतिका, ऊर्द्धजानु, दोलापादा, पादोद्वृत्ता, नूपुरपादिका, भुजंगत्रासिका, क्षिप्ता, आविद्धा, ताला, सूचिका, विद्युत्क्रांता, भ्रमरिका और दंडपादा।

चारु—वि० [सं०] सुंदर। मनोहर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र। (३) कुंकुम। केसर।

चारुक—संज्ञा पुं० [सं०] सरपत के बीज जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, रूखे, रक्त-पित्त-नाशक, शीतल, वृष्य, कसैले और वात उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं।

चारुकेशरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागरमोथा। (२) तरुणी पुष्प। सेवती का फूल।

चारुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चारुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता। मनोहरता। सोहावनापन

चारुदेष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र जिन्होंने निकुंभ आदि दैत्यों के साथ युद्ध किया था। (हरिवंश) (२) गंडूप के एक पुत्र का नाम।

चारुधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पत्नी शची।

चारुधिष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

चारुनालक—संज्ञा पुं० [सं०] कोकनद। रक्त कमल।

चारुनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हरिण।
वि० सुंदर नेत्रवाला।

चारुपद—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार पुरुवंशी राजा मनुष्यु का एक पुत्र।

चारुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारणी। पसरन। गंधपसार।

चारुपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक।

चारुफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर वा दाख की एक बेल। द्राक्षा लता।

चारुबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

चारुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण की एक पुत्री। (हरिवंश)

चारुयश—संज्ञा पुं० [सं० चारुयशस्] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (महाभारत अनुशासन पर्व)

चारुरावा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राणी। शची।

चारुविंद—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र। (हरिवंश)

चारुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र। (हरिवंश)

चारुश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चारुश्रवस्] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र।
वि० सुंदर कानवाला।

चारुहासी—वि० [सं०] [स्त्री० चारुहासिनी] सुंदर हँसनेवाला।

चारुहासिनी—वि० स्त्री० [सं०] सुंदर हँसनेवाली। मनोहर मुसकानवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) मनोहर मुसकानवाली स्त्री। (२) वैताली छंद का एक भेद।

चारोली—संज्ञा पुं० [देश०] गुठली।

चार्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्यवैश्य द्वारा सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति। (मनु)

चार्वाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक अनीश्वरवादी और नास्तिक तार्किक।
पर्या०—बार्हस्पत्य। नास्तिक। लोकायतिक।
विशेष—ये नास्तिक मत प्रवर्त्तक बृहस्पति के शिष्य माने जाते हैं। बृहस्पति और चार्वाक कब हुए इसका कुछ भी पता नहीं है। बृहस्पति को चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में अर्थशास्त्र का एक प्रधान आचार्य माना है। सर्वदर्शन-संग्रह में इनका मत दिया हुआ मिलता है। पद्मपुराण में लिखा है कि असुरों को बहकाने के लिये बृहस्पति ने वेद-विरुद्ध मत प्रकट किया था। नास्तिक मत के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि जब धर्मबल से दैत्य बहुत प्रबल हुए तब देवताओं ने विष्णु के यहाँ पुकार की। विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह नामक एक पुरुष उत्पन्न किया जिसने नर्मदा तट पर दिगंबर रूप में जा कर तप करते हुए असुरों को बहका कर धर्म मार्ग से भ्रष्ट किया। मायामोह ने असुरों को जो उपदेश किया वह सर्वदर्शन-संग्रह में दिए हुए चार्वाक मत के श्लोकों से बिलकुल मिलता है। जैसे मायामोह ने कहा—"यदि यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग जाता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार डालता?" इत्यादि। लिंगपुराण में त्रिपुरविनाश के प्रसंग में भी शिव प्रेरित एक दिगंबर मुनि द्वारा असुरों के इसी प्रकार बहकाए जाने की कथा लिखी है जिसका लक्ष्य जैनों पर जान पड़ता है। रामायण (अयोध्या०) में महर्षि जाबालि ने रामचंद्र को वनवास छोड़ अयोध्या लौट जाने के लिये जो उपदेश दिया है वह भी चार्वाक के मत से बिलकुल मिलता है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि नास्तिक मत बहुत प्राचीन है। इसका आविर्भाव उसी समय से समझना चाहिए जब वैदिक कर्मकांडों की अधिकता लोगों को कुछ खटकने लगी थी। चार्वाक ईश्वर और परलोक नहीं मानते। परलोक न मानने के कारण ही इनके दर्शन को लोकायत भी कहते हैं। चार्वाक के मत से सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है। संसार में दुःख भी है, यह समझ कर जो सुख नहीं भोगना चाहते वे मूर्ख हैं। मछली में काँटे होते हैं, तो क्या इससे कोई मछली ही न खाय? चौपाए खेत चर जायँगे इस डर से क्या कोई खेत ही न बोवे? इत्यादि। (सर्वदर्शनसंग्रह)। चार्वाक आत्मा को पृथक कोई पदार्थ नहीं मानते। उनके मत से जिस प्रकार गुड़, तंडुल आदि के संयोग से मद्य में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों के संयोग-विशेष से चेतनता उत्पन्न हो जाती है। इनके विश्लेषण या विनाश से "मैं" अर्थात् चेतनता का भी नाश हो जाता है। इस चेतन शरीर के नाश के पीछे फिर पुनरागमन आदि नहीं होता। ईश्वर, परलोक आदि विषय अनुमान के आधार पर हैं। पर चार्वाक प्रत्यक्ष को छोड़ अनुमान को प्रमाण में नहीं लेते। उनका तर्क है कि अनुमान व्याप्तिज्ञान का आश्रित है। जो ज्ञान हमें बाहरी इंद्रियों के द्वारा होता है उसे भूत और भविष्य तक बढ़ा कर ले जाने का नाम व्याप्ति-ज्ञान है, जो असंभव है। मन में यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है,

यह कोई प्रमाण नहीं क्योंकि मन अपने अनुभव के लिये इंद्रियों ही का आश्रित है। यदि कहो कि अनुमान के द्वारा व्याप्तिज्ञान होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है। क्योंकि व्याप्तिज्ञान को ले कर ही तो अनुमान को सिद्ध किया चाहते हो। चार्वाक का मत सर्वदर्शन-संग्रह, सर्वदर्शन-शिरोमणि और वृहस्पतिसूत्र में देखना चाहिए। नैषध के १७ वें सर्ग में भी इस मत का विस्तृत उल्लेख है।

(२) एक राक्षस जो कौरवों के मारे जाने पर ब्राह्मण वेश में युधिष्ठिर की राजसभा में जा कर उनको राज्य के लोभ से भाई बंधुओं को मारने के लिये धिक्कारने लगा। इस पर सभास्थित ब्राह्मण लोग हुंकार छोड़ कर दौड़े और उन्होंने उस छद्मवेशधारी राक्षस को मार डाला।

चार्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। (२) चांदनी। ज्योत्सना। (३) दीप्ति। आभा। (४) सुंदर स्त्री। (५) कुबेर-पत्नी। (६) दारु हलदी।

चाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना, सं० चर] (१) गति। गमन। चलने की क्रिया। उ०—इस गाड़ी की चाल बहुत धीमी है। (२) चलने का ढंग। चलने का ढब। गमन प्रकार। जैसे, यह घोड़ा बहुत अच्छी चाल चलता है। उ०—रहिमन सूधी चाल तें प्यादा होत वजीर। फ़रज़ी मीर न ह्वै सकै, टेढ़े की तासीर।—रहीम। (३) आचरण। चलन। बर्त्ताव। व्यवहार। जैसे, अपनी इन्हीं बुरी चाल से तुम कहीं नहीं टिकने पाते। उ०—अपने सुत की चाल न देखत उलटी तू हम पै रिस ठानति।—सूर।

यौ०—चाल चलन। चाल ढाल।

मुहा०—*चाल सुधारना = आचरण ठीक करना।*

(४) आकार प्रकार। ढब। बनावट। आकृति। गढ़न। जैसे, इस चाल का लोटा हमारे यहाँ नहीं बनता। (५) चलन। रीति। रवाज। रस्म। प्रथा। परिपाटी। जैसे, हमारे यहाँ इसकी चाल नहीं है। (६) गमन-मुहूर्त्त। चलने की सायत। चाला। उ०—पोथी काढ़ि गवन दिन देखै कौन दिवस है चाल।—जायसी। (७) कार्य्य करने की युक्ति। कृतकार्य्य होने का उपाय। ढंग। तदबीर। ढब। जैसे, किसी चाल से यहाँ से निकल चलो। (८) धोखा देने की युक्ति। चालाकी। कपट। छल। धूर्त्तता। उ०—जोग कथा पठई व्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चालबाजी।

मुहा०—चाल चलना = धोखा देने की युक्ति का कृतकार्य होना। धूर्त्तता से कार्य सिद्ध होना। जैसे, यहाँ तुम्हारी चाल नहीं चलेगी। चाल चलना (सकर्मक) = धोखा देने का आयोजन करना। चालाकी करना। धूर्त्तता करना। जैसे, हमसे चाल चलते हो, बचा। चाल में आना = धोखे में पड़ना। धोखा खाना। प्रतारित होना।

(९) ढंग। प्रकार। विधि। तरह। जैसे, मैंने उसे कई चाल से समझाया पर उसकी समझ में न आया। (१०) शतरंज, चौसर, ताश आदि के खेल में गोटी को एक घर से दूसरे घर में ले जाने अथवा पत्ते या पासे को दांव पर डालने की क्रिया। जैसे, देखते रहो, मैं एक ही चाल में मात करता हूँ।

क्रि० प्र०—चलना।

(११) हलचल। धूम। आंदोलन। उ०—मातहू पताल काल सबद कराल राम भेदे सात ताल चाल परी सात सात में।—तुलसी। (१२) आहट। हिलने डोलने का शब्द। खटका। उ०—देखो सब वृक्ष निश्चल हो गए, मृग और पक्षियों की कुछ भी चाल नहीं मिलती।

मुहा०—चाल मिलना = हिलने डोलने का शब्द सुनाई देना। *आहट मिलना।*

(१३) वह मकान जिसमें बहुत से किरायेदार टिकते हों। किराए का बड़ा मकान। (बंबई)

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का छप्पर या छत। छाजन। (२) स्वर्णचूड़ पक्षी।

चालक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] (१) चलानेवाला। संचालक। (२) वह हाथी जो अंकुश न माने। नटखट हाथी। (३) नृत्य में भाव बताने या सुंदरता लाने के लिये हाथ चलाने की क्रिया।

संज्ञा पुं० [हिं० चाल = धूर्त्तता] चाल चलनेवाला। धूर्त्त। छली। उ०—घरघाल, चालक, कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।—तुलसी।

चालकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] चिलका नाम की झील जो उड़ीसा में है।

चाल चलन—संज्ञा पुं० [हिं० चाल + चलन] आचरण। व्यवहार। चरित्र। शील। जैसे, उसका चाल चलन अच्छा नहीं है।

चाल ढाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल + ढाल] (१) आचरण। व्यवहार। (२) ढंग। तौर तरीका।

चालन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलाने की क्रिया। परिचालन। (२) चलने की क्रिया। गति। गमन। (३) चलनी। छलनी।

संज्ञा पुं० [हिं० चलना] भूसी या चोकर जो आटा चालने के पीछे रह जाता है। चलनौस।

चालनहार*†—संज्ञा पुं० [हिं० चलन + हार (प्रत्य०)] चलानेवाला। ले जानेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० चलना] चलनेवाला । उ०—तौ दिसि उत्तर चालनहार के मारग केतोइ फेर परै किन । वा उज्जयनि के आछे अटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन ।—लछमणसिंह ।

चालना‡–क्रि० स० [सं० चालन] (१) चलाना । परिचालित करना । (२) एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । (३) बिदा करा के ले आना । (वहू) । (४) हिलाना । डोलना । इधर उधर फेरना । उ०—चालति न भुज बल्ली बिलोकनि बिरह बस भइ जानकी ।—तुलसी । (५) कार्य्य निर्वाह करना । भुगताना । उ०—चलत सब राज काज आयसु अनुसरत । —तुलसी । (६) बात उठाना । प्रसंग छेड़ना । उ०—बनमाली दिसि सैन कै ग्वाली चाली बात । (७) आटे को छलनी में रख कर इधर उधर हिलाना जिसमें महीन आटा नीचे गिर जाय और भूसी या चोकर छलनी में रह जाय । छानना ।

क्रि० अ० [सं० चलन] (१) चलना । गति में होना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना ।

यौ०—चालनहार = चलनेवाला ।

(२) बिदा हो कर आना । चाला होना । (नववधू) उ०—पाखहू न बीत्यो चालि आए हमें पीहर ते नीके कै न जानी सासु ननद जेठानी है ।—शिवराम ।

चालनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चलनी । छलनी ।

चालबाज़–वि० [हिं० चाल + फ़ा० बाज़] धूर्त । छली ।

चालबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चालबाज़] चालाकी । छल । धोखेबाज़ी । धूर्त्तता ।

चाला–संज्ञा पुं० [हिं० चाल] (१) प्रस्थान । कूच । रवानगी । (२) नई बहू का पहले पहल मायके से ससुराल वा ससुराल से मायके जाना । (३) यात्रा का मुहूर्त्त । प्रस्थान के लिये शुभ दिन । चलने की सायत । जैसे, आज पूरब का चाला नहीं है ।

मुहा०—चाला देखना = यात्रा का मुहूर्त विचारना । चाला निकालना = मुहूर्त निश्चित करना ।

चालाक–वि० [फ़ा०] (१) चतुर । व्यवहारकुशल । दक्ष । (२) धूर्त्त । चालबाज़ ।

चालाकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) चतुराई । व्यवहारकुशलता । दक्षता । पटुता । (२) धूर्त्तता । चालबाज़ी ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—चालाकी खेलना = चालाकी करना ।

(३) युक्ति । कौशल ।

चालान–संज्ञा पुं० [हिं० चलना] (१) भेजे हुए माल की फिहरिस्त । बीजक । इनवायस । (व्यापारी) । (२) भेजा हुआ माल या रुपया अथवा उसका ब्योरेवार हिसाब ।

यौ०—चालानदार । चालान बही ।

(३) रवन्ना । चले जाने वा माल आदि ले जाने का आज्ञापत्र (४) मुजरिमों का विचार के लिये अदालत में भेजा जाना । अपराधियों का सिपाहियों के पहरे में थाने वा न्यायालय की ओर प्रस्थान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चालानदार–संज्ञा पुं० [हिं० चलान + फ़ा० दार] (१) वह व्यक्ति जो भेजे हुए माल के साथ जाता है और जिसकी जिम्मेदारी पर माल भेजा जाता है । चढ़नदार । जमादार । (२) जिसके जिम्मे वा जिसके पास चालान का कागज़ हो ।

चालान बही–संज्ञा स्त्री० [हिं० चलान + बही] वह बही जिसमें बाहर से आनेवाले या बाहर जानेवाले माल का ब्योरा लिखा जाता है ।

चालिया–[हिं० चाल = इया (प्रत्य०)] चालबाज । धूर्त्त । छली । धोखेबाज ।

चालिस‡–वि० दे० "चालीस" ।

चाली–वि० [हिं० चल] (१) चालिया । धूर्त्त । चालबाज । (२) चंचल । नटखट । शरीर । उ०—जनम को चाली ए री अद्भुत है ख्याली आजु काली की फनाली पै नचत बनमाली है ।—पद्माकर ।

चालीस–वि० [सं० चत्वारिंशत्, प्रा० चत्तालीस] जो गिनती में बीस और बीस हो । तीस से दस अधिक । जैसे, चालीस दिन ।

संज्ञा पु० बीस और बीस की संख्या । बीस और बीस का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४० ।

चालीसवाँ–वि० [हिं० चालीस] जिसका स्थान उनतालीसवें के आगे हो । जिसके पीछे उनतालीस और हों । जो क्रम में उनतालीस वस्तुओं के आगे पड़ता हो । जैसे, चालीसवाँ प्रकरण ।

संज्ञा पुं० [हिं० चालीस] मृतक कर्म करने में चालीसवें दिन का कृत्य । चहलुम । (मुसलमान) ।

चालीसा–संज्ञा पुं० [हिं० चालीस] [स्त्री० चालीसी] (१) चालीस वस्तुओं का समूह । जैसे, चालीसा चूरन (जिसमें चालीस चीजें पड़ती हैं) । (२) चालीस दिन का समय । चिल्ला (३) चालीस वर्ष का समय । (४) चालीस पद्यों का ग्रंथ वा काव्य । जैसे, हनुमानचालीसा ।

चालुक्य–संज्ञा पुं० दक्षिण का एक अत्यंत प्रबल और प्रतापी राजवंश जिसने शक ४११ से ले कर ईसा की १२वीं शताब्दी तक राज्य किया ।

विशेष—विल्हण के विक्रमांकचरित में लिखा है कि चालुक्य वंश का आदि पुरुष ब्रह्मा के चुलुक (चुल्लू) से उत्पन्न हुआ था । पर चालुक्य नाम का यह कारण केवल

कवि-कल्पित ही है। कई ताम्रपत्रों में लिखा पाया गया है कि चालुक्य चंद्रवंशी थे और पहले अयोध्या में राज्य करते थे। विजयादित्य नाम के एक राजा ने दक्षिण पर चढ़ाई की और वह वहीं त्रिलोचन पल्लव के हाथ से मारा गया। उसकी गर्भवती रानी ने अपने कुल-पुरोहित विष्णु भट्ट सोमयाजी के साथ मूड़िवेमु नामक स्थान में आश्रय ग्रहण किया। वहीं उसे विष्णुवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने गंग और कादंब राजाओं को परास्त करके दक्षिण में अपना राज्य जमाया। विष्णुवर्द्धन का पुत्र पुलिकेशी (प्रथम) हुआ जिसने पल्लवों से वातापी नगरी (आज कल की बादामी) को जीत कर उसे अपनी राजधानी बनाया। पुलिकेशी (प्रथम) शक ४११ में सिंहासन पर बैठा। पुलिकेशी (प्रथम) का पुत्र कीर्तिवर्म्मा हुआ। कीर्त्तिवर्म्मा के पुत्र छोटे थे इससे कीर्त्तवर्म्मा की मृत्यु के उपरांत उसके छोटे भाई मंगलीश गद्दी पर बैठे। पर जब कीर्त्तिवर्म्मा का जेठा लड़का सत्याश्रय बड़ा हुआ तब मंगलीश ने राज्य उसके हवाले कर दिया। वह पुलिकेशी द्वितीय के नाम से शक ५३१ में सिंहासन पर बैठा और उसने मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण, कांची आदि को अपने राज्य में मिलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ। समस्त उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करनेवाले कन्नौज के महाराज हर्षवर्द्धन तक ने दक्षिण पर चढ़ाई करके इस राजा से हार खाई। चीनी यात्री हुएनसांग ने इस राजा का वर्णन किया है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि फ़ारस के बादशाह ख़ुसरो (दूसरा) से इसका व्यवहार था, तरह तरह की भेंट लेकर दूत आते जाते थे। पुलिकेशी के उपरांत चंद्रादित्य, आदित्यवर्म्मा, विक्रमादित्य क्रम से राजा हुए। शक ६०१ में विनयादित्य गद्दी पर बैठा। यह भी प्रतापी राजा हुआ और शक ६१८ तक सिंहासन पर रहा। शक ६७८ में इस वंश का प्रताप मंद पड़ गया, बहुत से प्रदेश राज्य से निकल गए। अंत में विक्रमादित्य (चतुर्थ) के पुत्र तैल (द्वितीय) ने फिर राज्य का उद्धार किया और चालुक्य वंश का प्रताप चमकाया। इस राजा ने प्रबल राष्ट्रकूटराज को दमन किया। शक ८११ में महाप्रतापी त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य (छठाँ) के नाम से राजसिंहासन पर बैठा और इसने चालुक्य विक्रम-वर्ष नाम का संवत् चलाया। इस राजा के समय के अनेक ताम्रपत्र मिलते हैं। विल्हण कवि ने इसी राजा को लक्ष्य करके विक्रमांकदेवचरित नामक काव्य लिखा है। इस राजा के उपरांत थोड़े दिनों तक तो चालुक्य वंश का प्रताप अखंड रहा पर पीछे घटने लगा। शक ११११ तक वीर सोमेश्वर ने किसी प्रकार राज्य बचाया, पर अंत में मैसूर के हयसाल वंश के प्रबल होने पर वह धीरे धीरे हाथ से निकलने लगा। इस वंश की एक शाखा गुजरात में और एक शाखा दक्षिण के पूर्वीय प्रांत में भी राज्य करती थी।

चाल्ह–संज्ञा स्त्री० [देश०] चेल्हवा मछली। उ०—बात कहत भइ देस गुहारी। केवटहि चाल्ह समुँद महँ मारी।—जायसी।

चाल्ही–संज्ञा स्त्री० [!] नाव में वह स्थान जो मरिया के पास ही बाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेनेवाले मल्लाह बैठते हैं।

चावँ चावँ–संज्ञा पु० दे० "चाँयँ चाँयँ"।

चाव–संज्ञा पुं० [हिं० चाह] (१) प्रबल इच्छा। अभिलाषा। लालसा। अरमान। उ०—(क) चित्रकेतु पृथ्वीपति राव। सुतहित भयो तासु हिय चाव।—सूर। (ख) चहौं दीप वह देखा, सुनत उठा तस चाव।—जायसी।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—होना।

मुहा०—चाव निकालना = लालसा पूरी करना।

(२) प्रेम। अनुराग। चाह। उ०—ज्यों ज्यों चवाव चलै चहुँ ओर धरैं चित चाव ये त्यों ही त्यों चोरे। (३) शौक़। उत्कंठा। उ०—चोप घटी कि मिटो चित चाव, कि आलस नींद, कि बेपरवाही ? (४) लाड़ प्यार। दुलार। नखरा।

यौ०—चाव चोचला।

(५) उमंग। उत्साह। आनंद। उ०—यहि विधि जासु प्रभाव, श्री दसरथ महिपाल मणि। और सबै चित चाव, सुत बिन तापित रहत हिय।—रघुराज।

चावड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पथिकों के उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावड़ा–संज्ञा पु० [देश०] गुजरात का एक प्रसिद्ध और प्राचीन राजपूत वंश जिसने कई शताब्दियों तक गुजरात में राज्य किया। इस वंश की राजधानी अनहलवाड़ा थी। जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था उस समय सोमनाथ चावड़ा राजा के अधिकार में था। इस वंश की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं है। कोई कोई चावड़ों को विदेश से आया बतलाते हैं पर अधिकांश लोग इन्हें विस्तृत प्रमार वंश की शाखा मानते हैं। इनके सब से प्राचीन पूर्वज का नाम वज्रराज मिलता है। वज्रराज दीव या दीउ नामक स्थान में राज्य करते थे। वज्रराज के पुत्र वेग्गीराज के समय में जब दीउ टापू का अधिकांश समुद्र-मग्न हो गया तब उनकी रानी वहाँ से चंदू नामक स्थान में भागी जहाँ उनके गर्भ से वनराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ और डाकुओं का बड़ा भारी दल इकट्ठा करके इधर उधर लूट मार करने लगा। अंत में अनहल नामक चरवाहे ने पट्टन नगर के खँडहरों में प्रमारों का बहुत सा संचित धन उसे दिखा दिया। इसी धन के बल से उसने उसी स्थान पर संवत् ८०२ में अनहलवाड़ा नामक नगर बसाया।

चावर†–संज्ञा पुं० दे० "चावल"।

चावल–संज्ञा पुं० [सं० तंडुल] (१) एक प्रसिद्ध अन्न। धान के बीज की गुठली। तंडुल।

मुहा०—चावल चबवाना = जिन जिन पर किसी वस्तु के चुराने का संदेह हो उन्हें चारयारी रुपया भर चावल यह कह कर चबवाना कि जो चोर होगा उसके मुँह से थूकने पर ख़ून निकलेगा। यह वास्तव में एक प्रकार की धमकी है जिससे डर कर कभी कभी चोर चीजें फेंक देते हैं।

(२) राँधा चावल। भात। (३) छोटे छोटे बीज के दाने जो किसी प्रकार खाने के काम में आवें। जैसे, लटजीरा के चावल, जवाइन के चावल, इत्यादि। (४) एक रत्ती का आठवाँ भाग या उसके बराबर की तौल।

मुहा०—चावल भर = रत्ती के आठवें भाग के बराबर।

चाशनी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) चीनी, मिस्री या गुड़ का रस जो आँच पर चढ़ा कर गाढ़ा और मधु के समान लसीला किया गया हो। चाशनी में डुबा कर बहुत सी मिठाइयाँ बनती हैं।

मुहा०—चाशनी में पागना = मीठा करने के लिये चाशनी में डुबाना।

(२) किसी वस्तु में थोड़े से मीठे आदि की मिलावट। जैसे, तमाकू में खमीरे की चाशनी।

क्रि० प्र०—देना।

(३) चसका। मज़ा। जैसे, अब उसे इसकी चाशनी मिल गई है। (४) नमूने का सोना जो सुनार को गहने बनाने के लिये सोना देनेवाला गाहक अपने पास रखता है और जिससे वह बने हुए गहनों के सोने का मिलान करता है।

विशेष—जब किसी सुनार को बहुत सा सोना ज़ेवर बनाने के लिये दिया जाता है तब बनानेवाला उसमें का थोड़ा सा (लगभग १ माशा) सोना निकाल कर अपने पास रख लेता है और जब सुनार ज़ेवर बना कर लाता है तब वह उस ज़ेवर के सोने को कसौटी पर कस कर अपने पास के नमूने से मिलाता है। यदि ज़ेवर का सोना नमूने से न मिला तो समझा जाता है कि सुनार ने सोना बदल लिया या उसमें कुछ मिला दिया।

चाष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलकंठ पक्षी। उ०—चाषा चाषु बाम दिसि लेई। मनो सकल मंगल कहि देई।—तुलसी। (२) चाहा पक्षी।

*संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] आँख। नेत्र। उ०—अचरज देखि चाष लागैं न निमेष कहूँ।—प्रिया।

चास†–संज्ञा स्त्री० [देश० चसना] जोत। चाह।

चासना†–क्रि० अ० [हिं० चस] जोतना।

चासनी–संज्ञा स्त्री० दे० "चाशनी"।

चासा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। (२) हलवाहा। हल जोतनेवाला। (३) किसान। खेतिहर।

चाह–संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा। (आद्यन्त विपर्यय) च्छाइ, हिं० चाहि। अथवा सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] (१) इच्छा। अभिलाषा। (२) प्रेम। अनुराग। प्रीति। (३) पूछ। आदर। क़दर। उ०—अच्छे आदमी की सब जगह चाह है। (४) माँग। ज़रूरत। आवश्यकता।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० चाल = आहट] ख़बर। समाचार। गुप्त भेद। मर्म। उ०—(क) राव रंक जहँ लग सब जाती। सब की चाह लेइ दिन राती।—जायसी। (ख) पुर घर घर आनँद महा सुनि चाह सोहाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "चाय", "चाव"।

चाहक*–संज्ञा पुं० [हिं० चहना] चाहनेवाला। प्रेम करनेवाला।

चाहत–संज्ञा स्त्री० [हिं० चाह] चाह। प्रेम।

चाहना–क्रि० स० [हिं० चाह] (१) इच्छा करना। अभिलाषा करना। (२) प्रेम करना। स्नेह करना। प्यार करना। (३) लेने वा पाने की इच्छा प्रकट करना। माँगना। उ०—हम तुमसे रुपया पैसा कुछ नहीं चाहते। (४) प्रयत्न करना। ज़ोर करना। कोशिश करना। उ०—उसने बहुत चाहा कि हाथ छुड़ा कर निकल जाँय पर एक न चली। (५) चाह से देखना, ताकना, निहारना। उ०—पुनि रूपवंत बखानौं काहा। जावत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी। (६) ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चाहना] चाह। ज़रूरत। उ०—जाकी यहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है, जाकी यहाँ चाह ना है ताकी वहाँ चाह ना।

चाहा–संज्ञा पुं० [चाष] जल के निकट रहनेवाला बगले की तरह का एक पक्षी जिसका सारा शरीर गुलदार और पीठ सुनहरी होती है। यह जल अथवा कीचड़ के कीड़े मकोड़े खाता है। इसका लोग मांस के लिये शिकार करते हैं। यह पक्षी कई प्रकार का होता है, जैसे, चाहा करमाठी = गर्दन सफ़ेद, शेष सब काला। चाहा चुक्का = चोंच और पैर लाल, शेष सब खाकी। चाहा बगाधी = पैर लाल, शेष सब शरीर चितकबरा। चाहा लमगोड़ा = चितकबरा, चोंच और पैर कुछ अधिक लंबे।

चाहि*–अव्य० [सं० चैव = और भी ?] अपेक्षाकृत (अधिक)। बनिस्बत। से (बढ़ कर)। उ०—(क) ससि चौदस जो दई सँवारा। ताहू चाहि रूप उजियारा।—जायसी। (ख) भेवहिँ चाहि अधिक वे कारे। भयो अनूप देखि अँधियारे।—जायसी। (ग) जीव चाहि सो अधिक पियारी। माँगे जीव देउँ बलिहारी।—जायसी। (घ) कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि।—तुलसी।

चाहिए–अव्य० [हिं० चहना] उचित है। उपयुक्त है। मुनासिब

है। उ०—लड़कों को चाहिए कि अपने माँ-बाप का कहना मानें।

विशेष—यह शब्द 'विधि' सूचित करने के लिये संयो० क्रि० की भाँति क्रियाओं में भी लगता है, जैसे, करना चाहिए, आना चाहिए, इत्यादि। उ०—तुम्हें ऐसा कभी नहीं करना चाहिए।

चाही-वि० स्त्री० [हिं० चाह] चाही हुई। जो चाही जाय। चहेती। प्यारी।

वि० [फा० चाह = कुआँ] कुँआ संबंधी। (वह भूमि) जो कुँवें से सींची जाय।

चाहे-अव्य० [हिं० चाहना] (१) जी चाहे। इच्छा हो। मन में आवे। उ०—(क) तुम जहाँ चाहे वहाँ जाओ, मुझ से मतलब ?-(ख) इनमें से चाहे जिसको लो। (२) यदि जी चाहे तो। जैसा जी चाहे। या तो। उ०—चाहे यह लो चाहे वह। (३) होना चाहता हो। होनेवाला हो। उ०—चाहे जो हो, हम वहाँ अवश्य जायँगे।

चिँआँ-संज्ञा पु० [सं० चिंचा = इमली] इमली का बीज। उ०—तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी चिआँ रे।—तुलसी।

मुहा०—चिँआँ सी = छोटी। बहुत छोटी। जैसे, चिँआँ सी आँख।

चिँउँटा-संज्ञा पु० [हिं० चिमटा] एक कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और जिस चीज़ को चिमटता है उसे जल्दी नहीं छोड़ता। चींटा।

मुहा०—गुड़ चिँउँटा होना = एक दूसरे से गुथ जाना। परस्पर चिमट जाना। गुत्थमगुत्था होना। चिँउँटे के पर निकलना = ऐसा काम करना जिससे मृत्यु हो। मरने पर होना। (चिँउँटों के जब पर निकलते हैं तब वे हवा में उड़ते हैं और गिर पड़ कर मर जाते हैं।)

चिँउँटिया रेँगान-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिउँटी + रेंगना] (१) बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल। अत्यंत मंद गमन। ढीले ढाले चलना। (२) सिर के बालों की बड़ी बारीक कटाई जिसमें चिँउँटी रेंगती हुई देख पड़े। (नाई)

चिँउँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटना] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और अपने नुकीले मुँह से काटता और चिमटता है। चींटी। पिपीलिका।

विशेष—चिँउँटियों के मुँह के दोनों किनारों पर दो निकली हुई नोकें होती हैं, जिनसे वे काटती या चिमटती हैं। इनकी जीभ एक नली के रूप में होती है जिससे वे रसीली चीजें चूसती हैं। चिँउँटी की अनेक जातियाँ होती हैं। मधुमक्खियों के समान चींटियों में भी नर, मादा के अतिरिक्त क्लीव होते हैं जो केवल कार्य्य करते हैं, संतानोत्पत्ति नहीं करते। चिँउँटियाँ झुंड में रहती हैं। इनके झुंड में व्यवस्था और नियम का अद्भुत पालन होता है। समुदाय के लिये भोजन संचित करके रखना, स्थान को रक्षित बनाना आदि कार्य्य बड़ी तत्परता के साथ किए जाते हैं। इनका श्रम और अध्यवसाय प्रसिद्ध है।

मुहा०—चिँउँटी की चाल = बहुत सुस्त चाल। मंद गति।

चिंगट-संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अल्प० चिंगटी] एक प्रकार की मछली। झींगा। झिंगा।

विशेष—यह मछली केकड़े की जाति के अंतर्गत है। दे० "झिंगा"।

चिंगड़ा-संज्ञा पु० [हिं० झींगा] झींगा मछली।

चिंगना-संज्ञा पुं० [देश०] (१) किसी पक्षी, विशेषतः मुरगी का छोटा बच्चा। (२) छोटा बालक। बच्चा।

चिंगारी-संज्ञा स्त्री० दे० "चिनगारी"।

चिँगुरना-क्रि० अ० [हिं० चंग] बहुत देर तक एक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का जल्दी न फैलना। नसों का इस प्रकार संकुचित होना कि हाथ पैर जल्दी फैलाते न बने।

चिँगुरा-संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बगुला।

संज्ञा पु० [हिं० चिँगुरना] बहुत देर तक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का ऐसा संकोच कि वह फैलाने से जल्दी न फैले।

क्रि० प्र०—लगना।

चिँगुला-संज्ञा पु० [देश०] (१) बच्चा। बालक। (२) किसी पक्षी का छोटा बच्चा।

चिंघाड़-संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार] (१) चीख़ मारने का शब्द। किसी जंतु का घोर शब्द। चिल्लाहट। (२) हाथी की बोली।

क्रि० प्र०—मारना।

चिंघाड़ना-क्रि० अ० [सं० चीत्कार] (१) चीखना। चिल्लाना। (२) हाथी का चिल्लाना।

चिंचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इमली। (२) इमली का चिँआँ।

चिंचाटक-संज्ञा पुं० [सं०] चेंच साग।

चिंचाम्ल-संज्ञा पु० [सं०] चूका नाम का साग।

चिंचिनी*-संज्ञा स्त्री० [सं० चिंचिणी] (१) इमली का पेड़। (२) इमली का फल। उ०—तेरी महिमा तें चलैं चिंचिनी चिँआँ रे।—तुलसी।

चिंची-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघुची।

चिंचोटक-संज्ञा पुं० [सं०] चेँच साग।

चिंजा*-संज्ञा पु० [सं० चिरंजीव] [स्त्री० चिंजी] लड़का। पुत्र। बेटा। उ०—गिरत गर्भ कोई गर्भन चिंजी चिंजा डर।—भूषण।

चिंजी*-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिंजा] लड़की। कन्या।

चिंड-संज्ञा पु० [सं०] नृत्य का एक भेद। नाच का एक ढंग। उ०—उलथा टेंकी आलम सदिंड। पद पलटि हुरमयी निशंक चिंड।—केशव।

चिंत-संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्ता] चिंतना। चिंता। ध्यान। याद। सोच। फिक्र। उ०—सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा।—तुलसी।

चिंतक-वि० [सं०] (१) चिंतन करनेवाला। ध्यान करनेवाला। उ०—(क) जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्ह की गति प्रगट देखाई। अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तव पाई।—तुलसी। (ख) सिय पद चिंतक जे जग माहीं। साधु सिद्धि पावहिँ सक नाहीं।—रामाश्वमेध। (२) सोचनेवाला। विचार करनेवाला। ध्यान करनेवाला।

यौ०—हितचिंतक = ख़ैरख़्वाह।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में अधिक होता है।

चिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिंतनीय, चिंतित, चिंत्य] (१) ध्यान। बार बार स्मरण। किसी बात के। बार बार मन में लाने की क्रिया। उ०—श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहीं ठौर कहूँ।—तुलसी। (२) विचार। विवेचना। ग़ौर।

चिंतना*-क्रि० स० [सं०] (१) चिंतन करना। ध्यान करना। स्मरण करना। उ०—सनक शंकर ध्यान ध्यावत निगम अबरन बरन। शेष शारद ऋषि सुनारद संत चिंतत चरन।—सूर। (२) सोचना। समझना। ग़ौर करना। विचारना।
संज्ञा स्त्री० [सं० चिंतन] (१) ध्यान। स्मरण। भावना। (२) चिंता। सोच।

चिंतनीय-वि० [सं०] (१) चिंतन करने योग्य। ध्यान करने योग्य। भावनीय। (२) चिंता करने योग्य। जिसकी फ़िक्र करना उचित हो। (३) विचार करने योग्य। सोचने समझने योग्य।

चिंतवन*-संज्ञा पुं० दे० "चिंतन"।

चिंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ध्यान। भावना। (२) वह भावना जो किसी प्राप्त दुःख वा दुःख की आशंका आदि से हो। सोच। फ़िक्र। खटका। उ०—चिंता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुवाँ नहिं देखिए, उर अंतर धुँधुआय।—गिरधर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चिंता लगना = चिंता का बराबर बना रहना। जैसे, मुझे दिन रात इसी की चिंता लगी रहती है। कुछ चिंता नहीं = कुछ परवाह नहीं। कोई खटके की बात नहीं।

विशेष—साहित्य में चिंता करुण रस का व्यभिचारी भाव माना जाता है, अतः वियोग की दस दशाओं में से चिंता दूसरी दशा मानी गई है।

चिंताकुल-वि० [सं०] चिंता से व्यग्र।

चिंतातुर-वि० [सं०] चिंता से घबराया हुआ।

चिंतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कल्पित रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देता है। उ०—राम चरित चिंतामणि चारू। संत-सुमत तिय सुभग सिँगारू।—तुलसी। (२) ब्रह्मा। (३) परमेश्वर। (४) एक बुद्ध का नाम। (५) घोड़े के गले की एक शुभ भौंरी। (६) वह घोड़ा जिसके कंठ में उक्त भौंरी हो। (७) स्कंद-पुराण (गणपतिकल्प) के अनुसार एक गणेश जिन्होंने कपिल के यहां जन्म लेकर महाबाहु नामक दैत्य से उस चिंतामणि का उद्धार किया था जिसे उसने कपिल से छीन लिया था। (८) यात्रा का एक योग। (९) वैद्यक में एक रस जो पारा, गंधक, अभ्रक और जयपाल के योग से बनता है। (१०) सरस्वती देवी का मंत्र जिसे लोग बालक की जीभ पर विद्या आने के लिये लिखते हैं।

चिंतावेश्म-संज्ञा पुं० [सं० चिंतावेश्मन्] सलाह करने का घर वा स्थान। मंत्रणागृह। गोष्ठीगृह।

चिंति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश। (२) उस देश का निवासी।

चिंतीड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

चिंतित-वि० [सं०] जिसे चिंता हो। चिंतायुक्त। फ़िक्रमंद।

चिंत्य-वि० [सं०] भावनीय। विचारणीय। विचार करने योग्य।

चिंदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] टुकड़ा।

मुहा०—चिंदी चिंदी करना = किसी वस्तु को ऐसा तोड़ना कि उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जांय। हिंदी की चिंदी निकालना = अत्यंत तुच्छ भूल निकालना। कुतर्क करना।

चिंपा-संज्ञा पुं० [देश०] एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तमाखू को खा डालता है।

चिंपांज़ी-संज्ञा पुं० [अं० शिंपैंज़ी] अफ्रीका का एक बनमानुस जिसकी आकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है। इसका सिर ऊपर से चिपटा, माथा दबा हुआ, मुँह बहुत चौड़ा, कान बड़े और उभड़े हुए, नाक चिपटी तथा शरीर के बाल काले और मोटे होते हैं। इसके सिर, कंधे और पीठ पर बाल घने और पेट और छाती पर कम होते हैं। इसका मुख बिना रोएँ का और रंग गहरा ऊदा होता है। दोनों ओर के गलमुच्छे काले होते हैं। इसका क़द भी मनुष्य के बराबर ही होता है। चिंपांजी झुंड में रहते हैं।

चिउड़ा-संज्ञा पुं० [सं० चिपिट, प्रा० चिपिड़] एक प्रकार का चर्बन जो हरे, भिगोए या उबाले हुए धान को कूटने से बनता है। चिड़वा। चूरा।

चिउरा†-संज्ञा पुं० (१) दे० "चिउड़ा"। उ०—लै चिउरा निधि दई सुदामहि जदपि बाल मिताई।—तुलसी। (२) चिड़ली।

चिउली–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस पास भूटान तक होता है। इसका पतझड़ होता है। इसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है जो मक्खन की तरह जम जाता है। इस तेल के जमे हुए कतरों को चिउरा या चिउली का घीना या फुलवा भी कहते हैं। नैपाल आदि में इसे घी में मिलाते हैं। (२) एक प्रकार का रंगीन रेशमी कपड़ा।

पर्य्या०—चिउरा। फुलवारा। चार चूरी।

(२) [सं० चिपिट, प्रा० चिविड, चिविल] चिकनी सुपारी।

चिक–संज्ञा स्त्री० [तु० चिक] (१) बाँस या सरकंडे की तीलियों का बना हुआ झँझरीदार परदा। चिलमन। (२) पशुओं को मार कर उनका मांस बेचनेवाला। बूचर। बकर कसाई (बूचरों की दुकान पर चिक टँगी रहती है इसी से यह शब्द बना है)। उ०—जाट जुलाहा जुरे दरजी मरजी पै चढ़े चिक चोर चमारे।

संज्ञा स्त्री० [देश०] कमर का वह दर्द जो एक बारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है। चमक। चिलक। झटका। लचक।

संज्ञा स्त्री० [अं०] चेक। हुंडी। किसी बंक या महाजन के नाम वह कागज़ जिसमें रुपया देने का आदेश रहता है।

चिकट–वि० [सं० चिक्कट] (१) चिकना और मैल से गंदा। जिसपर मैल जमा हो। मैला कुचैला। (२) लसीला चिपचिपा।

संज्ञा पु० [देश०] (१) एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा। (२) वे कपड़े जिन्हें भाई अपनी बहिन को उस समय देता है जब बहिन की संतान का विवाह होता है।

चिकटना–क्रि० अ० [हिं० चिकट वा चिकट] जमी हुई मैल के कारण चिपचिपा होना।

चिकटा–वि० दे० "चिकट"।

चिकड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय पर ८००० फुट की ऊँचाई तक मिलता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत और कुछ पीलापन लिए होती है। अल्मोड़े में इसकी कंघियाँ बहुत अच्छी बनती हैं। कठौत आदि बनाने के काम में भी यह लकड़ी आती है। पत्तों की खाद बनती है। फूलों में मीठी सुगंध होती है।

चिकन–संज्ञा पु० [फ़ा०] एक प्रकार का महीन सूती कपड़ा जिसपर उभड़े हुए फूल या बूटे बने रहते हैं। कसीदा काढ़ा हुआ कपड़ा। सूज़नकारी का कपड़ा।

यौ०—चिकनकारी। चिकनगर।

चिकनकारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चिकन बनाने का काम।

चिकनगर, चिकनदोज़–संज्ञा पु० [फ़ा०] चिकन काढ़नेवाला। चिकन का काम करनेवाला।

चिकना–वि० [सं० चिक्कण] [स्त्री० चिकनी] (१) जो छूने में खुरदुरा न हो। जो ऊबड़ खाबड़ न हो। जिस पर उँगली फेरने से कहीं उभाड़ आदि न मालूम हो। जो साफ़ और बराबर हो। जैसे चिकनी चौकी, चिकनी मेज़। (२) जिस पर पैर आदि फिसले। जिस पर सरकने में कुछ रुकावट न जान पड़े। जैसे, यहाँ की मिट्टी बड़ी चिकनी है, पैर फिसल जायगा।

मुहा०—चिकना देख फिसल पड़ना = केवल सौंदर्य या धन देख कर रीझ जाना। धन या रूप पर लुभा जाना।

(३) जिसमें रुखाई न हो। जिसमें तेल आदि का गीलापन हो। जिसमें तेल हो या लगा हो। स्निग्ध। तेलिया। तेलौंस।

मुहा०—चिकना घड़ा = (१) वह जिस पर अच्छी बातों का कुछ असर न पड़े। बेहया। निर्लज्ज। बेहया। (२) वह जिसके पेट में कोई बात न पचे। क्षुद्र स्वभाव का। चिकने घड़े पर पानी पड़ना = किसी पर किसी अच्छी बात या उपदेश का प्रभाव न पड़ना।

(४) साफ़ सुथरा। सँवारा हुआ। जैसे, तुम्हारा चिकना मुँह देख कर कोई रुपया नहीं दिए देता।

मुहा०—चिकना चुपड़ा = बना ठना। छैल चिकनिया। सँवार सिंगार किए हुए। चिकनी चुपड़ी = दे० "चिकनी चुपड़ी बातें।" चिकनी चुपड़ी बातें = मीठी बातें जो किसी को प्रसन्न करने, बहकाने या धोखा देने के लिये कही जायँ। बनावटी स्नेह से भरी बातें। कृत्रिम मधुर भाषण। उ०—उसकी चिकनी चुपड़ी बातों में मत आना। चिकना मुँह = सुंदर और सँवारा हुआ चेहरा। चिकने मुँह का ठग = ऐसा धूर्त जो देखने में और बात चीत से भलामानुस जान पड़ता हो। वंचक।

(५) चिकनी चुपड़ी बातें कहनेवाला। केवल दूसरों को प्रसन्न करने के लिये मीठी बातें कहनेवाला। लल्लो चप्पो करनेवाला। चाटुकार। खुशामदी। (६) स्नेही। अनुरागी। प्रेमी। उ०—जे नर रूखे विषय रस चिकने राम सनेह। तुलसी ते प्रिय राम के कानन बसहिं कि गेह।—तुलसी।

संज्ञा पु० तेल, घी, चरबी आदि चिकने पदार्थ। जैसे, इसमें चिकना बहुत कम देना।

चिकनाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना + ई (प्रत्य०)] (१) चिकना होने का भाव। चिकनापन। चिकनाहट। (२) स्निग्धता। सरसता। (३) घी, तेल, चरबी इत्यादि चिकने पदार्थ।

चिकनाना–क्रि० स० [हिं० चिकना + ना (प्रत्य०)] (१) चिकना करना। खुरदुरा न रहने देना। बराबर करके साफ़ करना। (२) रूखा न रहने देना। तेलौंस करना। स्निग्ध करना। (३) मैल आदि साफ़ करके निखारना। साफ़ सुथरा करना। सँवारना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

क्रि० अ० (१) चिकना होना। (२) स्निग्ध होना। (३) चरबी से युक्त होना। हृष्ट पुष्ट होना। मोटाना। जैसे, देखो ये जब से यहाँ रहने लगे हैं, कैसे चिकना आए हैं। (४) स्नेहयुक्त होना। प्रेमपूर्ण होना। अनुरक्त होना। उ०—नहिँ नचाइ चितवति दृगनि नहिँ बोलति मुसुकाय। ज्यों ज्यों रूख रूखो करति त्यों त्यों चित चिकनाय।—बिहारी।

चिकनापन—संज्ञा पुं० [हिं० चिकना + पन (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव। चिकनाई। चिकनाहट।

चिकनावट—संज्ञा स्त्री० दे० "चिकनाहट"।

चिकनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकना + हट (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव। चिक्कणता। चिकनापन।

चिकनिया—वि० [हिं० चिकना] छैला। शौकीन। बाँका। बना-ठना। उ०—(क) सबही ब्रज के लोग चिकनिया मेरे भाएँ घास। अब तो इहैं बसी री माई नहिँ मानौंगी त्रास।—सूर। (ख) सूरदास प्रभु वाके बस परि अब हरि भए चिकनियाँ।—सूर। (ग) या माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरा हो। चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारै काहु न राखै नेरा हो।—कबीर।

चिकनी—वि० स्त्री० दे० "चिकना"।

संज्ञा स्त्री० चिकनी सुपारी।

चिकनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकनी + मिट्टी] (१) काले रंग की लसदार मिट्टी जो सिर मलने आदि के काम में आती है। करैली मिट्टी। काली मिट्टी।

विशेष—चना अलसी, जौ आदि इस मिट्टी में बहुत अच्छे होते हैं।

(२) पीले वा सफ़ेद रंग की साफ़ लसीली मिट्टी जो बड़ी नदियों के ऊँचे करारों में होती है और लीपने पोतने के काम में आती है।

चिकनी सुपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिक्कणी] एक प्रकार की उबाली हुई सुपारी जो चिपटी होती है। चिकनी डली।

विशेष—दक्षिण के कनारा नामक प्रदेश में यह सुपारी उबाल कर बनाई जाती है, इसी से इसे दक्खिनी सुपारी भी कहते हैं।

चिकरना—क्रि० अ० [सं० चीत्कार, प्रा० चिक्कार, चिक्कार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना। चीखना। ज़ोर से चिल्लाना।

चिकवा—संज्ञा पुं० [तु० चिक + वा] बकर कसाब। मांस बेचने-वाला। बूचड़। चिक।

चिकार—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार, प्रा० चिक्कार] चीत्कार। चिल्लाहट। चिंघाड़। उ०—(क) परयो भूमि करि घोर चिकारा।—तुलसी। (ख) मरत असुर चिकार पारयो मारयो नँद-कुमार।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

चिकारना—क्रि० अ० [हिं० चिकार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना।

चिकारा—संज्ञा पुं० [हिं० चिकार] [स्त्री० अल्प० चिकारी] (१) सारंगी की तरह का एक बाजा जिसमें नीचे की ओर चमड़े से मढ़ा कटोरा रहता है और ऊपर डाँड़ी निकली रहती है। चमड़े के ऊपर से गए हुए तारों वा घोड़े के बालों को कमानी से रेतने से शब्द निकलता है। (२) हिरन की जाति का एक जंगली जानवर जो बहुत फुरतीला होता है। इसे छिकरा भी कहते हैं।

चिकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिकारा] (१) छोटा चिकारा। (२) मच्छड़ की तरह का एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।

चिकित—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चिकितान—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चिकितायन—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित ऋषि के वंशज।

चिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] रोग दूर करने का उपाय करने-वाला। वैद्य।

चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकित्सित, चिकित्स्य] (१) रोग दूर करने की युक्ति वा क्रिया। शरीर स्वस्थ वा नीरोग करने का उपाय। रोग शांति का विधान। रोगप्रतीकार। इलाज।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—आयुर्वेद के दो विभाग हैं, एक तो निदान जिसमें पह-चान के लिये रोगों के लक्षण आदि का वर्णन रहता है और दूसरा चिकित्सा जिसमें भिन्न भिन्न रोगों के लिये भिन्न भिन्न औषधों की व्यवस्था रहती है। चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गई है, दैवी, आसुरी और मानुषी। जिसमें पारे की प्रधानता हो वह दैवी, जो छः रसों के द्वारा की जाय वह मानवी और जो अस्त्र प्रयोग वा चीर फाड़ के द्वारा हो वह आसुरी कहलाती है।

(२) वैद्य का व्यवसाय वा काम।

चिकित्सालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ रोगियों की आरोग्यता का प्रयत्न किया जाय। शफ़ाख़ाना। अस्पताल।

चिकित्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा की गई हो। जिसकी दवा हुई हो।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

चिकित्सु—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सक।

चिकित्स्य—वि० [सं०] जो चिकित्सा के योग्य हो। साध्य।

चिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] कीचड़। पंक।

चिकीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकीर्षित, चिकीर्ष्य] करने की इच्छा। जैसे, नाना-कर्म-चिकीर्षा।

चिकुटी*—संज्ञा स्त्री० दे० "चिकोटी", "चुटकी"। उ०—भृकुटी नचाइ भाल त्रिकुटी उचाइ कर चिकुटी बजाइ नित नाचन सुनति फिरै।—देव।

चिकुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केश। सिर के बाल। (२) पर्वत। (३) सरीसृप। साँप आदि रेंगनेवाले जंतु। (४) एक पेड़ का नाम। (५) एक पक्षी का नाम। (६) एक सर्प का नाम। (७) छछूँदर। (८) गिलहरी। चिखुरा।

वि० चंचल। चपल।

चिकुला–संज्ञा पुं० [सं० चिकुर ?] चिड़िया का बच्चा।

चिकूर–संज्ञा पुं० दे० "चिकुर"।

चिकोटी–संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी", "चिमटी"

चिक्क–वि० [सं०] चिपटी नाकवाला।

संज्ञा पुं० छछूँदर।

चिक्कट–संज्ञा पुं० [हिं० चिकना + कीट वा काट] गर्द, तेल आदि का मैल जो कहीं जम गया हो। कीट।

वि० जिस पर मैल जमा हो। मैला कुचैला। गंदा।

चिक्कण–वि० [सं०] चिकना।

संज्ञा पुं० (१) सुपारी का पेड़ या फल। (२) हड़। हर्रे। (३) आयुर्वेद में पाक या आँच की तीन अवस्थाओं में से एक। कुछ तेज आँच।

चिक्कणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

चिक्कणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुपारी। (२) हड़।

चिक्कदेव–संज्ञा पुं० [सं०] मैसूर के एक यादववंशी राजा का नाम जिसने ई० १६७२ से लेकर १७०४ तक राज्य किया था।

चिक्कना–वि० दे० "चिकना", "चिक्कण"।

चिक्करना–क्रि० अ० [सं० चीत्कार] चीत्कार करना। चिंघाड़ना। चीखना। जोर से चिल्लाना। उ०—चिक्करहिं दिग्गज, डोल महि, अहि, कोल, कूरम कलमले।—तुलसी।

चिक्कस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जौ का आटा। (२) हलदी और तेल मिला हुआ जौ का आटा जो जनेऊ या ब्याह में उबटन की तरह मला जाता है।

संज्ञा पुं० [देश०] लोहे पीतल आदि के छड़ का बना हुआ वह अड्डा जिस पर बुलबुल, तोते आदि बैठाए जाते हैं।

चिक्का–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।

संज्ञा पुं० † दे० "चक्का"।

संज्ञा पुं० † [सं०] चूहा। मूसा।

चिक्कार–संज्ञा पुं० दे० "चिकार"।

चिक्कारा–संज्ञा पुं० दे० "चिकारा (२)"।

चिक्किर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चूहा जिसके काटने से सूजन और सिर में पीड़ा आदि होती है। (२) चिखुरा। गिलहरी।

चिखर †–संज्ञा पुं० [देश०] चने का छिलका। चने की भूसी। चने की कराई।

चिखुरन–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह घास जो खेत को निरा कर निकाली जाती है।

चिखुरना–क्रि० स० [देश०] जोते हुए खेत में से घास निकाल कर बाहर करना।

चिखुरा †–संज्ञा पुं० [सं० चिक्किर वा चिकुर] [स्त्री० चिखुरी] गिलहरी।

चिखुराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिखुरना] (१) चिखुरने का काम या भाव। (२) चिखुरने की मजदूरी।

चिखुरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिखुरा] गिलहरी।

चिखौनी †–संज्ञा स्त्री० [हिं० चखना] (१) चीखने या चखने की क्रिया। स्वाद लेने या देखने की क्रिया। (२) चखने की वस्तु। स्वाद लेने की वस्तु। चटपटे स्वाद की थोड़ी सी वस्तु।

चिचड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) डेढ़, दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। गाँठों के दोनों ओर पतली टहनियाँ या पत्तियाँ लगी होती हैं। पत्तियाँ दो तीन अंगुल लंबी, नसदार और गोल होती हैं। फूल और बीज लंबी लंबी सींकों में गुछे होते हैं। बीज जीरे के आकार के होते हैं और कुछ नुकीले और रोएँदार होने के कारण कपड़ों में कभी कभी लिपट जाते हैं। इस पौधे की जड़ मूसला होती है। इसकी जड़, पत्ती आदि सब दवा के काम में आती है। ऋषि-पंचमी का व्रत रहनेवाले इसकी दतुअन करते हैं। कर्मकांडी इसे बहुत पवित्र मानते हैं। यह पौधा बरसात में और घासों के साथ उगता है और बहुत दिनों तक रहता है।

पर्य्या०—अपामार्ग। ओंगा। अंझाझार। लटजीरा।

(२) किलनी या किल्ली नाम का कीड़ा जो पशुओं के शरीर में चिमट कर उनका रक्त पीता है।

चिचड़ी–संज्ञा स्त्री० [?] एक कीड़ा जो चौपायों तथा कुत्तों बिल्लियों के शरीर में चिमटा रहता है और उनका खून पिया करता है। किलनी। किल्ली।

मुहा०—चिचड़ी सा चिमटना = पीछा न छोड़ना। साथ में बना रहना। पिंड न छोड़ना।

चिचान *–संज्ञा पुं० [सं० सचान] बाज पक्षी। उ०—आज कालि पल छिनक में मारग मेला दित। काल चिचाना नर चिड़ा औजड़ औ औचित।—कबीर।

चिचिंगा–संज्ञा पुं० दे० "चचींड़ा"।

चिचिंड़–संज्ञा पुं० [सं०] चचींड़ा। चिचिंडा।

चिचिंडा–संज्ञा पुं० दे० "चचींड़ा"।

चिचियाना †–क्रि० अ० [अनु० चीं चीं] चिल्लाना। चीखना। हल्ला करना।

चिचियाहट †–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिचियाना] चिल्लाहट।

चिचुकना–क्रि० अ० दे० "चुचुकना"।

चिचोंड़ा †–संज्ञा पुं० दे० "चचोंड़ा"।

चिचोड़ना †–क्रि० स० दे० "चचोड़ना"।

चिचोड़वाना–क्रि० स० दे० "चचोड़वाना"।

चिच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक देश का नाम (२) उस देश का निवासी।

चिजारा—संज्ञा पुं० [?] कारीगर। मेमार। उ०—(क) कबिरा देवल ढहि परा, भई ईंट सँहार। कोई चिजारा चूनिया, मिला न दूजी बार।—कबीर। (ख) करी चिजारा प्रीतड़ी ज्यों ढहै न दूजी बार।

चिट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीटना] (१) कागज़ का टुकड़ा। (२) पुरज़ा। रुक्का। छोटा पत्र। (३) कपड़े आदि का छोटा टुकड़ा।

क्रि० प्र०—निकलना।—फटना।

चिटकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) सूख कर जगह जगह पर फटना। खरा हो कर दरकना। रुखाई के कारण ऊपरी सतह में दराज़ पड़ना। जैसे, चौकी धूप में मत रक्खो, चिटक जायगी। (२) गठीली लकड़ी आदि का जलते समय 'चिट चिट' शब्द करना। (३) चिढ़ना। चिड़चिड़ाना। बिगड़ना। जैसे, तुम्हें तो मैं कुछ कहता नहीं, तुम क्यों चिड़चिड़ाते हो।

चिटका—संज्ञा पुं० [हिं० चिता] चिता।

चिटकाना—क्रि० स० [अनु०] (१) किसी सूखी हुई चीज़ को तोड़ना या तड़काना। (२) गठीली लकड़ी आदि को जला कर उसमें से "चट चट" शब्द उत्पन्न करना। (३) खिझाना। ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े।

चिटनवीस—संज्ञा पुं० [हिं० चिट + फ़ा० नवीस] चिट्ठी पत्री, हिसाब किताब लिखनेवाला। लेखक। मुहर्रिर। कारिंदा।

चिटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चांडाल वेषधारिणी योगिनी जिसकी उपासना वशीकरण के लिये की जाती है।

चिटुकी—संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी"।

चिट्ट—संज्ञा स्त्री० दे० "चिट"।

चिट्टा—वि० [सं० सित, प्रा० चित] [स्त्री० चिट्टी] सफ़ेद। धवला। श्वेत।

संज्ञा पुं० कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के ऊपर का सीप के आकार का बहुत सफ़ेद छिलका या पपड़ी। यह दुअन्नी से ले कर रुपए तक के बराबर होता है और इससे रेशम के लिये माँड़ी तैयार की जाती है।

संज्ञा पुं० रुपया। (दलाल)

संज्ञा पुं० [?] झूठा बढ़ावा। वह उत्तेजना जो किसी को कोई ऐसा काम करने के लिये दी जाय जिसमें उसकी हानि या हँसी हो।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—चिट्टा लड़ाना = झूठा बढ़ावा देना।

चिट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० चिट] (१) हिसाब की बही। खाता। लेखा। जमा खर्च वा लेन देन की किताब।

मुहा०—चिट्ठा बाँधना = लेखा तैयार करना।

(२) वह कागज़ जिस पर वर्ष भर का हिसाब जाँच कर नफ़ा नुकसान दिखाया जाता है। फ़र्द। (३) किसी रकम की सिलसिलेवार फिहरिस्त। सूची। टिप्पो। जैसे, चंदे का चिट्ठा। उ०—चिट्ठा सकल नरेसन केरे। आवहिं चले दुसासन नेरे।—सबल। (४) वह रुपया जो प्रति दिन, प्रति सप्ताह वा प्रति मास मजदूरी वा तनख़ाह के रूप में बाँटा जाय। उ०—दिय चिट्ठा चाकरी चुकाई। बसे सबै सेवा मन लाई।—कबीर।

क्रि० प्र०—चुकाना।—बँटना।—बाँटना।

(५) खर्च की फिहरिस्त। उन वस्तुओं की मूल्य सहित सूची जो किसी कार्य्य के लिये आवश्यक हों। लगनेवाले खर्च का ब्योरा। जैसे, इस मकान में तुम्हारा अधिक नहीं लगेगा, बस २००) का चिट्ठा है। (६) ब्योरा। विवरण।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा = पूरा और ठीक ठीक गुप्त वृत्तांत। ऐसा सविस्तर वृत्तांत जिसमें कोई बात छिपाई न गई हो। कच्चा चिट्ठा खोलना = गुप्त बातों को पूरे ब्योरे के साथ प्रकट करना। गुप्त वृत्तांत कहना। रहस्य उद्घाटित करना।

(७) रसद। सीधा जो बाँटा जाय।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—बँटना।—बाँटना।—मिलना।

चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिट] (१) वह कागज़ जिस पर, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये, किसी प्रकार का समाचार आदि लिखा हो। पत्र। ख़त।

क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—मँगाना।—पढ़ना, आदि।

यौ०—चिट्ठीरसाँ।

(२) वह छोटा पुरज़ा जो किसी माल विशेषतः कपड़े आदि के साथ रहता है और जिस पर उस माल का दाम लिखा रहता है। (३) कोई छोटा पुरजा या कागज़ जिस पर कुछ लिखा हो। (४) एक क्रिया जिसके द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि कोई माल पाने या कोई काम करने का अधिकारी कौन बनाया जाय।

विशेष—जितने आदमी अधिकारी बनाने के योग्य होते हैं उन सब के नाम या संकेत अलग अलग कागज़ के छोटे टुकड़ों पर लिख कर उनकी गोलियाँ एक में मिला कर उनमें से कोई गोली उठा ली जाती है। जिसके नाम की गोली होती है वही उस माल के पाने या उस काम के करने का अधिकारी समझा जाता है। इस क्रिया से लोग प्रायः यह भी निश्चय किया करते हैं कि कोई काम (जैसे, विवाह आदि) करना चाहिए या नहीं।

क्रि॰ प्र॰—उड़ाना।—डालना।—पड़ना।

(५) किसी बात का आज्ञा-पत्र।

मुहा॰—चिट्ठी करना = किसी के नाम की हुंडी करना। किसी को रुपए दे देने की लिखित आज्ञा देना।

(६) किसी प्रकार का निमंत्रण-पत्र।

क्रि॰ प्र॰—बँटना।

चिट्ठीपत्री—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चिट्ठी + पत्री] (१) पत्र। खत। जैसे, यहाँ से कोई चिट्ठीपत्री आती है? (२) पत्र व्यवहार। खत किताबत। जैसे, आप से उनसे चिट्ठीपत्री है।

क्रि॰ प्र॰—होना।

चिट्ठीरसाँ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिट्ठी + फा॰ रसाँ] चिट्ठी बाँटनेवाला। डाकिया। हरकारा। पोस्टमैन।

चिड़चिड़ा—संज्ञा पुं॰ दे॰ "चिचड़ा"।

संज्ञा पुं॰ [अनु॰] एक छोटा पक्षी जिसका रंग भूरा होता है।

वि॰ [हिं॰ चिड़चिड़ाना] शीघ्र चिढ़नेवाला। थोड़ी सी बात पर अप्रसन्न हो जानेवाला। तुनक मिज़ाज। जैसे, चिड़चिड़ा आदमी, चिड़चिड़ा स्वभाव।

चिड़चिड़ाना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] (१) गठीली लकड़ी, पानी मिले हुए तेल आदि के जलने में चिड़चिड़ शब्द होना। (२) सूख कर जगह जगह से फटना। खरा होकर दरकना। रुखाई के कारण ऊपरी सतह का पपड़ी की तरह हो जाना। जैसे, जाड़े की हवा से ओंठ चिड़चिड़ाना, रुखाई से बदन चिड़चिड़ाना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

(३) चिढ़ना। बिगड़ना। क्रोध लिए हुए बोलना। झुँझलाना।

संयो॰ क्रि॰—उठना।

चिड़चिड़ाहट—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चिड़चिड़ाना + हट (प्रत्य॰)] (१) चिड़चिड़ाने का भाव। (२) चिढ़ने का भाव।

चिड़वा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ चिपिट] हरे, भिगोए, या कुछ उबाले हुए धान को भाड़ में भून कर और फिर कूट कर बनाया हुआ चिपटा दाना। चिउड़ा। (बहु॰ में "चिड़वे" अधिक बोलते हैं।)

विशेष—इसे लोग सूखा तथा दूध, दही में भिगो कर भी खाते हैं।

चिड़ा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ चटक] गौरा पक्षी। गौरैया का नर।

चिड़ारा—संज्ञा पुं॰ [देश] नीची ज़मीन का खेत जिसमें अड़हन बोया जाता है। डबरी।

चिड़िया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ चटक, हिं॰ चिड़ा] (१) आकाश में उड़नेवाला जीव। वह प्राणी जिसे ऊपर उड़ने के लिये पर हों। पक्षी। पखेरू। पंछी।

यौ॰—चिड़ियाखाना।

मुहा॰—चिड़िया का दूध = अप्राप्य वस्तु। अलभ्य वस्तु। ऐसी वस्तु जिसका होना असंभव हो। चिड़िया के छिनाले में पकड़ा जाना = व्यर्थ की आपत्ति में फँसना। नाहक झंझट में पड़ना। चिड़िया-नोचन = चारों ओर का तकाज़ा। चारों ओर की माँग। बहुत से लोगों का किसी बात के लिये अनुरोध या दबाव। जैसे—घर से रुपया आ जाता तो हम इस चिड़िया-नोचन से छुट्टी पाते। चिड़िया फँसाना = (१) किसी स्त्री को बहका कर सहवास के लिये राज़ी करना। (अशिष्ट)। (२) किसी देनेवाले धनी आदमी को अपने अनुकूल करना। किसी मालदार को दाँव पर चढ़ाना। सोने की चिड़िया = (१) खूब धन देनेवाला असामी। (२) अत्यंत सुंदर या प्रिय व्यक्ति।

(२) अँगिया की वह सीवन जिससे कटोरियाँ मिली रहती हैं। (३) चिड़िया के आकार का गढ़ा हुआ काठ का टुकड़ा जो टेक देने के लिये कहारों की लकड़ी, लँगड़ों की बैसाखी, मकानों के खंभों आदि पर लगा रहता है। आड़ा लगा हुआ काठ का टेढ़ा टुकड़ा जिसका एक सिरा ऊपर की ओर चिड़िया की गरदन की तरह उठा हो। (४) पायजामे या लहँगे का वह नली की तरह का पोला भाग जिसमें इज़ारबंद या नाला पड़ा रहता है। (५) ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पत्तियों की बूटी बनी होती है। चिड़ी। (६) लोहे का टेढ़ा अँकुड़ा जो तराज़ू की डाँड़ी में लगा रहता है। (७) गाड़ी में लगा हुआ लोहे का टेढ़ा कोंढ़ा या अँकुड़ा जिसमें रस्सी लगा कर पैंजनी बाँधते हैं। (८) एक प्रकार की सिलाई जिसमें पहले कपड़े आदि के दोनों पल्लों को सीकर तब सिलाई की ओरवाले उनके दोनों सिरों को अलग अलग उन्हीं पल्लों पर उलट कर इस प्रकार बखिया कर देते हैं कि उसमें एक प्रकार की बेल सी बन जाती है।

चिड़ियाखाना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़िया + फा॰ खाना] वह स्थान या घर जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी और पशु आदि देखने के लिये रखे जाते हैं। पक्षिशाला।

चिड़ियावाला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़िया + वाला] उल्लू। गावदी। मूर्ख। जड़। (बाज़ारू)

चिड़िहार*—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़िया + हार (प्रत्य॰)] चिड़ीमार। बहेलिया। चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध।

चिड़ी—संज्ञा स्त्री॰ (१) दे॰ "चिड़िया"। (२) ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पत्तियों की काली बूटी बनी रहती है।

चिड़ीमार—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ चिड़ी + मारना] बहेलिया। चिड़िया पकड़नेवाला। व्याध।

चिढ़—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ चिड़चिड़ाना] चिढ़ने का भाव। क्रोध लिए हुए घृणा। विरक्ति। अप्रसन्नता। कुढ़न। खिजलाहट। नफ़रत। उ॰—मुझे ऐसी बातों से बड़ी चिढ़ है।

मुहा॰—चिढ़ निकालना = ढूँढ़ कर ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े। चिढ़ाने की युक्ति निकालना। छेड़ने का ढंग

निकालना। कुढ़ाना। खिझाना। उ०—यदि इस बात से इतना चिढ़ोगे तो लड़के चिढ़ निकाल लेंगे।

चिढ़कना–क्रि० अ० दे० "चिढ़ना"।

चिढ़काना†–क्रि० स० दे० "चिढ़ाना"।

चिढ़ना–क्रि० अ० [हिं० चिड़चिड़ाना] (१) अप्रसन्न होना। विरक्त होना। खिन्न होना। नाराज़ होना। बिगड़ना। कुढ़ना। खीजना। झल्लाना। उ०—(क) तुम थोड़ी सी बात पर भी क्यों चिढ़ जाते हो।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) द्वेष रखना। बुरा मानना। उ०—न जाने क्यों मुझसे वह बहुत चिढ़ता है।

चिढ़वाना–क्रि० स० [चिढ़ाना का प्रे०] दूसरे से चिढ़ाने का काम कराना।

चिढ़ाना–क्रि० स० [हिं० चिढ़ना] (१) अप्रसन्न करना। नाराज़ करना। खिझाना। कुढ़ाना। कुपित और खिन्न करना। उ०—ऐसी बात कह कर मुझे बार बार क्यों चिढ़ाते हो?

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी को कुढ़ाने के लिये मुहँ बनाना, हाथ चमकाना या इसी प्रकार की और कोई चेष्टा करना। खिझाने के लिये किसी की आकृति, चेष्टा, वा ढंग की नक़ल करना।

मुहा०—मुहँ चिढ़ाना = किसी को छेड़ने वा खिजाने के लिये विलक्षण आकृति बनाना। बिराना।

(३) कोई ऐसा प्रसंग छेड़ना जिसे सुन कर कोई लज्जित हो। कोई ऐसी बात कहना वा ऐसा काम करना जिससे किसी को अपनी असफलता, अपमान आदि का स्मरण हो। उपहास करना। ठट्ठा करना।

चित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैतन्य। चेतना। ज्ञान।

यौ०—चिदाकाश। चिदानंद। चिन्मय।

(२) चित्तवृत्ति।

संज्ञा पुं० (१) चुननेवाला। बीननेवाला। इकट्ठा करनेवाला। (२) अग्नि।

प्रत्य० [सं०] संस्कृत का एक अनिश्चयवाचक प्रत्यय जो कः किम् आदि सर्वनाम शब्दों में लगता है। जैसे, कश्चित्, किंचित्।

चित—वि० [सं०] (१) चुन कर इकट्ठा किया हुआ। ढेर करके लगाया हुआ। (२) ढका हुआ। आच्छादित।

संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त। मन। दे० "चित्त"।

*संज्ञा पुं० [हिं० चितवन] चितवन। दृष्टि। नज़र। उ०—चित जानकी अध कों कियो। हरि तीन हूँ अवलोकियो।—केशव।

वि० [सं० चित = ढेर किया हुआ] इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो और पीठ, चूतड़ आदि पीछे का भाग नीचे की ओर किसी आधार से लगा हो। पीठ के बल पड़ा हुआ। 'पट' या 'औंधा' का उलटा। जैसे, चित कौड़ी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—चितपट।

मुहा०—चित करना = कुश्ती में पछाड़ना। कुश्ती में पटकना। चारों खाने (या शाने) चित = (१) हाथ पैर फैलाए बिलकुल पीठ के बल पड़ा हुआ। (२) हक्का बक्का। स्तंभित। ठक। जड़ीभूत। चित होना = बेसुध होकर पड़ जाना। बेहोश होना। उ०—इतनी भाँग में तो तुम चित हो जाओगे।

क्रि० वि० पीठ के बल। जैसे, चित गिरना, चित पड़ना, चित लेटना।

चितउर*–संज्ञा पुं० दे० "चित्तौर"।

चितकबरा–वि० [सं० चित्र + कर्बुर] [स्त्री० चितकबरी] सफ़ेद रंग पर काले, लाल वा पीले दाग़वाला। काले, पीले या और किसी रंग पर सफ़ेद दाग़वाला। रंग बिरंगा। कबरा। चितला। शबल।

विशेष—दे० "कबरा"।

संज्ञा पुं० चितकबरा रंग।

चितकूट*–संज्ञा पुं० दे० "चित्रकूट"।

चितगुपित*–संज्ञा पुं० दे० "चित्रगुप्त"।

चितचोर–संज्ञा पुं० [हिं० चित + चोर] चित्त को चुरानेवाला। जी को लुभानेवाला। मनोहर। मनभावना। मन को आकर्षित करनेवाला। प्यारा। प्रिय।

चितपट–संज्ञा पुं० [हिं० चित + पट] (१) एक प्रकार का खेल या बाज़ी जिसमें किसी फेंकी हुई वस्तु के चित वा पट पड़ने पर हार जीत का निश्चय होता है। (लोग प्रायः कौड़ी, पैसा, जूता आदि फेंकते हैं।) (२) कुश्ती। मल्लयुद्ध।

चितग्राहु–संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ०—आविद्ध निर्मर्याद कुल चितग्राहु निस्सृत रिपु दुरै।—रघुराज।

चितभंग–संज्ञा पुं० [सं० चित + भंग] (१) ध्यान न लगना। उचाट। उदासी। उ०—(क) मेरो मन हरि चितवन अरुझानो। यह रस-मगन रहति निसि बासर हार जीत नहिं जानो। सूरदास चितभंग होत क्यों जो जेहि रूप समानो।—सूर। (ख) कमल, खंजन, मीन मधुकर होत हैं चितभंग।—सूर। (ग) देव मान मन भंग चितभंग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन भर्त्ता।—तुलसी। (२) बुद्धि का लोप। होश का ठिकाने न रहना। मति-भ्रम। भौंचक्कापन। चकपकाहट।

चितरना*–क्रि० स० [सं० चित्र] चित्रित करना। चित्र बनाना। नक़्क़ाशी करना। बेल बूटे बनाना।

चितरवा–संज्ञा पु० [सं० चित्रक] एक चिड़िया जिसका रंग ईंट का सा लाल होता है। इसके डैनों पर काली काली चित्तियाँ पड़ी होती हैं और आँखें अनारदाने के समान सफेद और लाल होती हैं।

चितरोख–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया का नाम। चितरवा। उ०—धौरी पांडुक कहि पिय ठाऊँ। जो चितरोखन दूसर नाऊँ।—जायसी।

चितला–वि० [सं० चित्रल] कबरा। चितकबरा। रंग बिरंगा।
संज्ञा पु० (१) लखनऊ का एक प्रकार का खरबूजा जिस पर चित्तियाँ पड़ी होती हैं। (२) एक प्रकार की बड़ी मछली जो लंबाई में तीन चार हाथ और तौल में डेढ़ दो मन होती है। इसकी पीठ बहुत उठी हुई होती है और उस पर पूँछ के पास पर होते हैं। इसमें काँटे बहुत होते हैं। गले से लेकर पेट के नीचे तक ४१ काँटों की पंक्ति होती है। इस मछली की पीठ का रंग कुछ मटमैला और तामड़ा और बगल का चाँदी की तरह सफेद होता है। यह मछली बंगाल, उड़ीसा, आसाम और सिंध में होती है। इसमें से तेल बहुत अधिक निकलता है जो खाने और जलाने के काम में आता है।

चितवन–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] ताकने का भाव वा ढंग। अवलोकन। दृष्टि। कटाक्ष। नज़र। निगाह। उ०—(क) चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाँकी।—तुलसी। (ख) तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत राम कृपा चितवनि चितये।—तुलसी। (ग) अनियारे दीरघ दगनि किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरै कछू जिहि बस होत सुजान।—बिहारी।
मुहा०—चितवन चढ़ाना = त्योरी चढ़ाना। भौं चढ़ाना। कुपित दृष्टि करना। क्रोध की दृष्टि से देखना।

चितवना †*–क्रि० स० [हिं० चेतना] देखना। ताकना। निगाह करना। अवलोकन करना। दृष्टि डालना। उ०—(क) चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।—तुलसी। (ख) सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।—तुलसी।
संयो० क्रि०—देना।—लेना।

चितवनि †*–संज्ञा स्त्री० दे० "चितवन"।

चितवाना †*–क्रि० स० [हिं० चितवना का प्रे०] दिखाना। तकाना। उ०—चितवैं चितवाए हँसाए हँसैं औ बोलाए से बोलो रहैं मति मानै।—केशव।

चिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चुन कर रक्खी हुई लकड़ियों का ढेर जिस पर रख कर मुरदा जलाया जाता है। मृतक के शव-दाह के लिये बिछाई हुई लकड़ियों की राशि।
क्रि० प्र०—बनाना।—लगाना।
पर्य्या०—चित्या। चिति। चैत्य। काष्ठमटी।
यौ०—चितापिंड = वह पिंडदान जो शवदाह के उपरांत होता है।
मुहा०—चिता चुनना = शवदाह के लिये लकड़ियों को नीचे ऊपर क्रम से रखना। चिता साजना। चिता तैयार करना। चिता पर चढ़ना = मरना। चिता में बैठना = सती होने के लिये विधवा का मृत पति की चिता में बैठना। मृत पति के शरीर के साथ जलना। सती होना। चिता साजना = दे० = "चिता चुनना।"
(२) श्मशान। मरघट। उ०—भीख माँगि भव खाहिं चिता नित सोवहिं। नाचहिं नगन पिशाच, पिसाचिन जोवहिं।—तुलसी।

चिताना–क्रि० स० [हिं० चेतना] (१) सचेत करना। सावधान करना। होशियार करना। ख़बरदार करना। किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान दिलाना।
संयो० क्रि०—देना।
(२) स्मरण कराना। याद दिलाना। सुध दिलाना।
संयो० क्रि०—देना।
(३) आत्मबोध कराना। ज्ञानोपदेश करना। (४) (आग) जगाना। (आग) सुलगाना। जलाना। (साधु) ।

चिताभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान।

चितारी †–संज्ञा पु० दे० "चितेरा"।

चितावनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिताना] चिताने की क्रिया। सतर्क या सावधान करने की क्रिया। वह सूचना जो किसी को किसी आवश्यक विषय की ओर ध्यान देने के लिये दी जाय। सावधान रहने की पूर्व-सूचना।
क्रि० प्र०—देना।

चितासाधन–संज्ञा पु० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चिता या श्मशान के ऊपर बैठ कर इष्ट मंत्र का अनुष्ठान जो चतुर्दशी या अष्टमी को डेढ़ पहर रात गए किया जाता है।

चिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिता। (२) समूह। ढेर। (३) चुनने या इकट्ठा करने की क्रिया। चुनाई। (४) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि का एक संस्कार। (५) यज्ञ में ईंटों का एक संस्कार। इष्टक संस्कार। (६) दीवार में ईंटों की चुनाई। ईंटों की जोड़ाई। (७) चैतन्य। (८) दुर्गा। (९) दे० "चित्ती"।

चितिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करधनी। मेखला। (२) दे० "चिति"

चितिया गुड़–संज्ञा पु० [देश०] खजूर की चीनी की जूसी से जमाया हुआ गुड़।

चितिव्यवहार–संज्ञा पु० [सं०] गणित की वह क्रिया जिसके द्वारा किसी दीवार या मकान में लगनेवाली ईंटों या पटियों की संख्या और नाप आदि का निश्चय होता है।
विशेष—लीलावती के अनुसार दीवार का क्षेत्रफल निकाल

कर इसमें ईंट के क्षेत्रफल का भाग देने से जो फल होगा वही ईंटों की संख्या होगी। इसी प्रकार की और और क्रियाएं स्तर आदि निकालने के लिये हैं।

चितु *–संज्ञा पुं० दे० "चित्त"

चितेरा–संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार] [स्त्री० चितेरिन] चित्रकार। चित्र बनानेवाला। तसवीर खींचनेवाला। मुसौवर। कमंगर। उ०—चकित भई देखें ढिग ठाढ़ी। मनो चितेरे लिखि लिखि काढ़ी।—सूर।

चितेरिन, चितेरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चितेरा] (१) चित्र बनानेवाली स्त्री। (२) चित्रकार की स्त्री।

चितैला †–संज्ञा पुं० दे० "चितेरा"।

चितौन–संज्ञा स्त्री० दे० "चितवन"।

चितौना†–क्रि० स० "दे० चितवना"।

चितौनि–संज्ञा स्त्री० दे० "चितवन"।

चितौनी–संज्ञा स्त्री० दे० "चितावनी"।

चित्कार–संज्ञा पुं० दे० "चीत्कार"।

चित्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतःकरण का एक भेद। अंतःकरण की एक वृत्ति।

विशेष—वेदांतसार के अनुसार अंतःकरण की चार वृत्तियां हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को मन, निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि और इन्हीं दोनों के अंतर्गत अनुसंधानात्मक वृत्ति को चित्त और अभिमानात्मक वृत्ति को अहंकार कहते हैं। पंचदशी में इंद्रियों के नियंता मन ही को अंतःकरण माना है। आंतरिक व्यापार में मन स्वतंत्र है पर बाह्य व्यापार में इंद्रियां परतंत्र हैं। पंचभूतों की गुणसमष्टि से अंतःकरण उत्पन्न होता है जिसकी दो वृत्तियां हैं, मन और बुद्धि। मन संशयात्मक और बुद्धि निश्चयात्मक है। वेदांत में प्राण को मन का कारण कहा है। मृत्यु होने पर मन इसी प्राण में लय हो जाता है। इस पर शंकराचार्य्य कहते हैं कि प्राण में मन की वृत्ति लय हो जाती है, उसका स्वरूप नहीं। क्षणिकवादी बौद्ध चित्त ही को आत्मा मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि अपने को प्रकाशित करके दूसरी वस्तु को भी प्रकाशित करती है उसी प्रकार चित्त भी करता है। बौद्ध लोग चित्त के चार भेद करते हैं—कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर और लोकोत्तर। चार्वाक के मत से भी मन ही आत्मा है। योग के आचार्य्य पतंजलि चित्त को स्वप्रकाश नहीं स्वीकार करते। वे चित्त को दृश्य और जड़ पदार्थ मान कर उसका एक अलग प्रकाशक मानते हैं जिसे आत्मा कहते हैं। उनके विचार में प्रकाश्य और प्रकाशक के संयोग से प्रकाश होता है, अतः कोई वस्तु अपने ही साथ संयोग नहीं कर सकती। योगसूत्र के अनुसार चित्तवृत्ति पांच प्रकार की है—प्रमाण, विपर्य्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—प्रमाण; एक में दूसरे का भ्रम—विपर्य्यय; स्वरूप ज्ञान के बिना कल्पना—विकल्प; सब विषयों के अभाव का बोध—निद्रा और कालांतर में पूर्व अनुभव का आरोप—स्मृति कहलाता है। पंचदशी तथा और दार्शनिक ग्रंथों में मन वा चित्त का स्थान हृदय वा हृत्पद्म गोलक लिखा है। पर आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान अंतःकरण के सारे व्यापारों का स्थान मस्तिष्क में मानता है जो कि सब ज्ञानतंतुओं का केंद्रस्थान है। खोपड़ी के भीतर जो टेढ़ी मेढ़ी गुरियों की सी बनावट होती है वही अंतःकरण है। इसी के सूक्ष्म मज्जा-तंतुजाल और कोशों की क्रिया द्वारा सारे मानसिक व्यापार होते हैं। भूतवादी वैज्ञानिकों के मत से चित्त, मन वा आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल व्यापारविशेष का नाम है, जो छोटे जीवों में बहुत ही अल्प परिमाण में होता है और बड़े जीवों में क्रमशः बढ़ता जाता है। इस व्यापार का प्राणरस (प्रोटोप्लाज़्म) के कुछ विकारों के साथ नित्य संबंध है। प्राण-रस के ये विकार अत्यंत निम्नश्रेणी के जीवों में प्रायः शरीर भर में होते हैं पर उच्च प्राणियों में क्रमशः इन विकारों के लिये विशेष स्थान नियत होते जाते हैं और उनसे इंद्रियों और मस्तिष्क की सृष्टि होती है।

(२) अंतःकरण। जी। मन। दिल। वह मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना आदि की जाती है।

मुहा०—चित्त उचटना = जी न लगना। विरक्ति होना। चित्त करना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—ऐसा चित्त करता है कि यहां से चल दें। चित्त चढ़ना = दे० "चित्त पर चढ़ना।" उ०—तब चित चढ़ यो जो शंकर कहेऊ।—तुलसी। चित्त चुराना = मन मोहना। मोहित करना। चित्त आकर्षित करना। उ०—नैन सैन दै चितहिं चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि।—सूर। चित्त देना = ध्यान देना। मन लगाना। गौर करना। उ०—चित दै सुनो हमारी बात।—सूर। चित्त धरना = (१) ध्यान देना। मन लगाना। उ०—कहौं सो कथा सुनौ चित धार। कहै सुनै सो लहै सुख सार।—सूर। (२) मन में लाना। उ०—हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।—सूर। चित्त पर चढ़ना = (१) ध्यान पर चढ़ना। मन में बसना। बार बार ध्यान में आना। उ०—तुम्हारे तो वही चित्त पर चढ़ा हुआ है। (२) ध्यान में आना। स्मरण होना। याद पड़ना। चित्त बँटना = चित्त एकाग्र न रहना। ध्यान दो ओर हो जाना। एक विषय की ओर ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान इधर उधर होना। चित्त बँटाना = ध्यान इधर उधर करना। ध्यान एक ओर न रहने देना। चित्त में धँसना या जमना = दे० "चित्त में बैठना"। चित्त में बैठना = जी में जमना। हृदय में दृढ़ होना। मन में धँसना। हृदयंगम होना। उ०—अब हमारे चित बैठी यह पद होनी होउ सो होउ।—

सूर। चित्त में होना, या चित्त होना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—यह चित होत जाउँ मैं अबहीं यहाँ नहीं मन लागत।—सूर। चित्त लगना = मन लगना। जी न घबड़ाना। जी न ऊबना। मन की प्रवृत्ति स्थिर रहना। उ०=(क) काम में तुम्हारा चित्त नहीं लगता। (ख) अब यहाँ हमारा चित्त नहीं लगता है। चित्त लेना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—अपना चित्त ले चले आओ। चित्त से उतरना = (१) ध्यान में न रहना। भूल जाना। उ०—सूर स्याम चित तें नहिं उतरत वह बन कुंज गली।—सूर। (२) दृष्टि से गिरना। प्रिय या आदरणीय न रह जाना। विरक्ति-भाजन होना। चित्त से न टलना = ध्यान में बराबर बना रहना। न भूलना। उ०—सूर चित तें टरति नाहीं राधिका की प्रीति।—सूर। (३) नृत्य में एक प्रकार की दृष्टि जिसका व्यवहार शृंगार में प्रसन्नता प्रकट करने के लिये होता है।

विशेष—दे० "चित १"

चित्तगर्भ—वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्तज—संज्ञा पुं० [सं०] (चित्त से उत्पन्न) कामदेव।

चित्तप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] योग में चित्त का संस्कार जो मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा आदि के उपयुक्त व्यवहार द्वारा होता है। जैसे, किसी को सुखी देख उससे मित्रभाव रखना, दुखी के प्रति करुणा दिखाना, पुण्यवान को देख प्रसन्न होना, पापी के प्रति उपेक्षा रखना। इस प्रकार के साधन से चित्त में राजस और तामस की निवृत्ति हो कर केवल सात्विक धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

चित्तभू—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

चित्तभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में चित्त की अवस्थाएँ। व्यास के अनुसार ये पाँच हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। क्षिप्त अवस्था वह है जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहे, मूढ़ वह है जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त वा स्तब्ध हो, विक्षिप्त वह है जिसमें चित्त अस्थिर रहे पर कभी कभी स्थिर भी हो जाय, एकाग्र वह है जिसमें चित्त किसी एक विषय की ओर लगा हो। निरुद्ध वह है जिसमें सब वृत्तियों का निरोध हो जाय, केवल संस्कार मात्र रह जाय। इनमें से पहली तीन अवस्थाएँ योग के अनुकूल नहीं हैं। पिछली दो योग वा समाधि के उपयुक्त हैं। समाधि की भी चार भूमियाँ हैं—मधुमती, मधुप्रतीका, विशोका और ऋतंभरा जिनके लिये दे० "समाधि"।

चित्तवान्—वि० [सं०] [स्त्री० चित्तवती] उदार चित्त का।

चित्तविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की चंचलता या अस्थिरता जो योग में बाधक हैं। इसके नौ भेद हैं—जैसे, व्याधि, स्त्यान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद (त्रुटि), आलस्य, अविरति (वैराग्य का अभाव), भ्रांतिदर्शन (मिथ्या अनुभव), अलब्ध भूमिकत्व (समाधि की अप्राप्ति), अनवस्थितत्व (चित्त का न टिकना)।

चित्तविद्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चित्त की बात जाने। (२) बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त के भेदों और रहस्यों को जाननेवाला पुरुष।

चित्तविप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] उन्माद।

चित्तविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रांति। भ्रम। भौचक्कापन। (२) उन्माद।

चित्तवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की गति। चित्त की अवस्था।

विशेष—योग में चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की मानी गई है—प्रमाण, विपर्य्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन सब के भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो दो भेद हैं। अविद्या आदि क्लेश-हेतुक वृत्ति क्लिष्ट और उससे भिन्न अक्लिष्ट है।

चित्तल—संज्ञा पुं० [सं० , वा सं० चित्रल] एक प्रकार का मृग। चीतल।

चित्तापहारक—वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धिवृत्ति। (२) ख्याति। (३) कर्म। (४) अथर्व ऋषि की पत्नी का नाम।

चित्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र, प्रा० चित्त] (१) छोटा दाग या चिह्न। छोटा धब्बा। बुँदकी।

यौ०—चित्तीदार = जिस पर दाग या धब्बे हों।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—चित्ती पड़ना = बहुत खरी सेंकने के कारण रोटी में स्थान स्थान पर जलने का काला दाग पड़ना।

(२) कुम्हार के चाक के किनारे पर का वह गड्ढा जिसमें डंडा डाल कर चाक घुमाया जाता है। (३) मादा लाल। मुनिया। (४) अजगर की जाति का एक मोटा साँप जिसके शरीर पर चित्तियाँ होती हैं। चीतल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चित = पीठ के बल पड़ा हुआ] वह कौड़ी जिसकी पीठ चिपटी और खुरदरी होती है। टैयाँ।

विशेष—यह फेंकने पर चित्त अधिक पड़ती है, इसी से इसे चित्ती कहते हैं। जुआरी इससे जूए के दाँव फेंकते हैं। उ०—अंतर्यामी यहौ न जानत जो मो उरहि बिती। ज्यों जुआरि रस बीधि हारि गथ सोचत पटकि चिती।

चित्तौर—संज्ञा पुं० [सं०] [चित्रकूट, प्रा० चित्तऊड़, चितउड़] एक इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगर जो उदयपुर के महाराणाओं की प्राचीन राजधानी था। अलाउद्दीन के समय में प्रसिद्ध महाराणी पद्मावती या पद्मिनी यहीं कई सहस्र क्षत्राणियों के साथ चिता में भस्म हुई थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि राणाओं के पूर्व-पुरुष बाप्पा रावल ने ही ईसवी सन ७२८ में चित्तौर का गढ़ बनवाया और नगर

बसाया था। सन् १५६८ तक तो मेवाड़ के राणाओं की राजधानी चित्तौर ही रही, इसके पीछे जब अकबर ने चित्तौर का क़िला ले लिया तब महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नामक नगर बसाया। चित्तौर का गढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर है जिसके नीचे चारों ओर प्राचीन नगर के खँडहर दिखाई पड़ते हैं। हिंदूकाल के बहुत से भवन अभी यहाँ टूटे फूटे खड़े हैं। क़िले के भीतर भी बहुत से देवमंदिर, कीर्त्तिस्तंभ, प्रासाद आदि हैं जिनमें राणा कुंभ का कीर्त्तिस्तंभ, खवासिन-स्तंभ, सिंगारचौरी आदि प्रसिद्ध हैं। राणा कुंभ ने संवत् १५०५ में गुजरात और मालवा के सुलतान को परास्त करके यह कीर्त्तिस्तंभ स्मारक स्वरूप बनवाया था। यह १२२ फुट ऊँचा और नौ खंडों का है।

चित्य—वि० [सं०] (१) चुनने वा इकट्ठा करने योग्य। (२) चिता संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) चिता। (२) अग्नि।

चित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चित्रित] (१) तिलक। चंदन आदि से माथे पर बनाया हुआ चिह्न। (२) विविध रंगों के मेल से बनी हुई नाना वस्तुओं की आकृति। किसी वस्तु का स्वरूप वा आकार जो काग़ज़, कपड़े, लकड़ी, शीशे आदि पर क़लम और रंग आदि के द्वारा बनाया गया हो। तसवीर। उ०—(क) चित्र लिखित कपि देखि डराती।—तुलसी। (ख) राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।—तुलसी।
यौ०—चित्रकला। चित्रविद्या।
क्रि० प्र०—उरेहना*।—खींचना।—बनाना।—लिखना।
मुहा०—चित्र उतारना=(१) चित्र बनाना। तसवीर खींचना। (२) वर्णन आदि के द्वारा ठीक ठीक दृश्य सामने उपस्थित कर देना।
(३) काव्य के तीन अंगों में से एक जिसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती। अलंकार। (४) काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पद्यों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि हाथी, घोड़े, खड्ग, रथ, कमल आदि के आकार बन जाते हैं। (५) एक प्रकार का वर्णवृत्त जो सामानिका वृत्ति के दो चरणों को मिलाने से बनता है। (६) आकाश। (७) एक प्रकार का कोढ़ जिसमें शरीर में सफ़ेद चित्तियाँ वा दाग़ पड़ जाते हैं। (८) एक यम का नाम। (९) चित्रगुप्त। (१०) रेंड़ का पेड़। (११) अशोक का पेड़। (१२) चीते का पेड़। चित्रक। (१३) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक।
वि० (१) अद्भुत। विचित्र। आश्चर्यजनक। विस्मयकारी। (२) चितकबरा। कबरा। (३) रंग बिरंगा। कई रंगों का। (४) अनेक प्रकार का। कई तरह का।

चित्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर। कपोत। परेवा।

चित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिलक। (२) चीते का पेड़। चित्त। (३) चीता। बाघ। (४) शूर। बलवान्। (५) रेंड़ का पेड़। (६) चिरायता। (७) मुचकुंद का पेड़। (८) चित्रकार।

चित्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्र बनानेवाला। चित्रकार। (२) ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति विश्वकर्मा पुरुष और शूद्रा स्त्री से है। (३) तिनिश का पेड़।

चित्रकर्मी—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकर्म्मिन्] (१) चित्रकार। मुसौवर। कमंगर। (२) विचित्र कार्य्य करनेवाला। (३) तिनिश वृक्ष।

चित्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। तसवीर बनाने का हुनर।
विशेष—चित्रकला का प्रचार चीन, मिस्र, भारत, आदि देशों में अत्यंत प्राचीन काल से है। मिस्र से ही चित्रकला यूनान में गई, जहाँ उसने बहुत उन्नति की। ईसा से १४०० वर्ष पहले मिस्र देश में चित्रों का अच्छा प्रचार था। लंदन के ब्रिटिश म्युज़ियम में ३००० वर्ष तक के पुराने मिस्री चित्र हैं। भारतवर्ष में भी अत्यंत प्राचीन काल से यह विद्या प्रचलित थी। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। रामायण में चित्रों, चित्रकारों और चित्रशालाओं का वर्णन बराबर आया है। विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र में लिखा है कि स्थापक, तक्षक शिल्पी आदि में से शिल्पी ही को चित्र बनाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने में प्राचीन भारतीय चित्रकार कितने निपुण होते थे इसका कुछ आभास भवभूति के उत्तररामचरित के देखने से मिलता है, जिसमें अपने सामने लाए हुए वनवास के चित्रों को देख सीता चकित हो जाती हैं। यद्यपि आज कल कोई ग्रंथ चित्रकला पर नहीं मिलते हैं पर प्राचीन काल में अवश्य थे। काश्मीर के राजा जयादित्य की सभा के कवि दामोदर गुप्त ने आज से ११०० वर्ष पहले अपने 'कुट्टनीमत' नामक ग्रंथ में 'चित्रसूत्र' नामक चित्र विद्या के एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। अजंटा गुफा के चित्रों में प्राचीन भारतवासियों की चित्रनिपुणता देख चकित रह जाना पड़ता है। बड़े बड़े विज्ञ यूरोपीयनों ने इन चित्रों की प्रशंसा की है। इन गुफाओं का बनना ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से आरंभ हुआ था और आठवीं शताब्दी तक कुछ न कुछ गुफाएँ नई खुदती रहीं। अतः डेढ़ दो हज़ार वर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण तो ये चित्र अवश्य हैं। चित्र विद्या सीखने के लिये पहले प्रत्येक प्रकार की सीधी, टेढ़ी, वक्र आदि रेखाएँ खींचने का अभ्यास करना चाहिए, इसके उपरांत रेखाओं ही के द्वारा वस्तुओं के स्थूल ढाँचे बनाने चाहिएँ। इस विद्या में दूरी आदि के सिद्धांतों का पूरा अनुशीलन किए बिना निपुणता नहीं प्राप्त हो सकती। दृष्टि के समानांतर या ऊपर नीचे के विस्तार का अंकन तो सहज है पर आँखों के ठीक सामने दूर तक गया हुआ विस्तार अंकित करना

कठिन विषय है। इस प्रकार की दूरी के विस्तार को प्रदर्शन करने की क्रिया को (Perspective) पर्सपेक्टिव कहते हैं। किसी नगर की दूर तक सामने गई हुई सड़क, सामने को बही हुई नदी आदि के दृश्य बिना इसके सिद्धांतों को जाने नहीं दिखाए जा सकते। किस प्रकार निकट के पदार्थ बड़े और साफ़ दिखाई पड़ते हैं, और दूर के पदार्थ क्रमशः छोटे और धुँधले होते जाते हैं यह सब बात अंकित करना पड़ता है। उदाहरण के लिये एक दूर पर रक्खा हुआ चौखूँटा संदूक लीजिए। मान लीजिए कि आप उसे एक ऐसे किनारे से देख रहे हैं जहाँ से उसके दो पार्श्व वा तीन कोण दिखाई पड़ते हैं। अब चित्र बनाने के निमित्त यदि हम एक पेंसिल आँखों के समानांतर लेकर एक आँख दबा कर देखेंगे तो संदूक की सब से निकटस्थ खड़ी कोण रेखा (ऊँचाई) सबसे बड़ी दिखाई देगी, जो पार्श्व अधिक सामने रहेगा उसके दूसरे ओर की कोण रेखा उससे छोटी और जो पार्श्व कम दिखाई देगा उसके दूसरे ओर की कोण रेखा सबसे छोटी दिखाई पड़ेगी। अर्थात् निकटस्थ कोण रेखा से लगा हुआ उस पार्श्व का कोण जो कम दिखाई देता है अधिक दिखाई पड़नेवाले पार्श्व के कोण से छोटा होगा।



दृष्टि के समानांतर रेखा

दूसरा सिद्धांत आलोक और छाया का है जिसके बिना सजीवता नहीं आ सकती। पदार्थ का जो अंश निकट और सामने रहेगा वह (आलोकित) खुलता और स्पष्ट होगा और जो दूर वा बगल में पड़ेगा वह अस्पष्ट और कालिमा लिए होगा। पदार्थों का उभाड़ और गहराई आदि भी इसी आलोक और छाया के नियमानुसार दिखाई जाती है। जो अंश उठा वा उभड़ा होगा वह अधिक खुलता होगा, और जो धँसा वा गहरा होगा वह कुछ स्याही लिए होगा। इन्हीं सिद्धांतों को न जानने के कारण बाज़ारू चित्रकार शीशे आदि पर जो चित्र बनाते हैं वे खेलवाड़ से जान पड़ते हैं। चित्रों में रंग एक प्रकार की कूँची से भरा जाता है जिसे चित्रकार कलम कहते हैं। पहले यहाँ गिलहरी की पूँछ के बालों की यह कलम बनती थी। अब विलायती ब्रश काम में आते हैं।

चित्रकाय—संज्ञा पुं० [सं०] चीता।

चित्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र बनानेवाला। चितेरा।

चित्रकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्रकार + ई] (१) चित्रविद्या। चित्र बनाने की कला। (२) चित्रकार का काम। चित्र बनाने का व्यवसाय।

चित्रकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का काव्य जिसके अक्षरों को विशेष क्रम से लिखने से कोई विशेष चित्र बन जाता है। ऐसा काव्य अधम समझा जाता है।

चित्रकुंडल—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध रमणीय पर्वत जहाँ वनवास के समय राम और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था। यह तीर्थस्थान बाँदा जिले में है और प्रयाग से २७ कोस दक्षिण पड़ता है। इस पहाड़ के नीचे पयोष्णी नदी बहती है जिसमें मंदाकिनी नाम की एक और छोटी नदी मिलती है। रामनवमी और दिवाली के अवसर पर यहाँ बहुत दूर दूर से तीर्थयात्री आते हैं। वाल्मीकि ने रामायण में इस स्थान को भारद्वाज के आश्रम से साढ़े तीन योजन दक्षिण की ओर लिखा है। (२) चित्तौर। (शिलालेखों में चित्तौर का यही नाम आता है)। (३) हिमवत् खंड के अनुसार हिमालय के एक शृंग का नाम।

चित्रकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़।

चित्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास चित्रित पताका हो। (२) भागवत के अनुसार लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम। (३) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (४) वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम। (५) कंसा के गर्भ से उत्पन्न देवभाग यादव का एक पुत्र। (६) भागवत के अनुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे पुत्रशोक से संतप्त देख नारद ने मंत्रोपदेश दिया था।

चित्रकोण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुटकी। (२) काली कपास।

चित्रगंध—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

चित्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमराजों में से एक जो प्राणियों के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं।

विशेष—चित्रगुप्त के संबंध में पद्मपुराण, गरुड़पुराण, भविष्यपुराण आदि पुराणों में कथाएँ मिलती हैं। स्कंदपुराण के प्रभासखंड में लिखा है कि चित्र नाम के कोई राजा थे, जो हिसाब-किताब रखने में बड़े दक्ष थे। यमराज ने चाहा कि इन्हें अपने यहाँ लेखा रखने के लिये ले जांय। अतः एक दिन जब राजा नदी में स्नान करने गए तब यमराज ने उन्हें वहाँ मँगाया और अपना सहायक बनाया। इस पर राजा की एक बहिन अत्यंत दुःखी हुई और चित्ररथा नाम की नदी होकर

चित्र को ढूँढ़ने समुद्र की ओर गई। भविष्यपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा सृष्टि बनाकर ध्यान में मग्न हुए तब उनके शरीर से एक विचित्र-वर्ण पुरुष कलम दवात हाथ में लिए उत्पन्न हुआ। जब ब्रह्मा का ध्यान भंग हुआ तब उस पुरुष ने हाथ जोड़ कर कहा "महाराज! मेरा नाम और काम बताइए"। ब्रह्माजी ने संतुष्ट होकर कहा कि 'तुम हमारे शरीर से उत्पन्न हुए हो इसलिये तुम कायस्थ हुए और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ। तुम प्राणियों के पाप-पुण्य का लेखा रखने के लिये यमराज के यहाँ रहो'। भट, नागर, सेनक, गौड़, श्रीवास्तव्य, माथुर, अहिष्ठान, शैकसेन और अंबष्ट ये चित्रगुप्त के पुत्र हुए। यह कथा पीछे की गढ़ी हुई जान पड़ती है क्यों कि ऊपर जो नाम दिए हैं वे प्रायः देश-भेद-सूचक हैं। गरुड़पुराण के चित्रकल्प में तो लिखा है कि यमपुर के पास ही एक चित्रगुप्तपुर है जहाँ चित्रगुप्त के अधीनस्थ कायस्थ लोग बरादर काम किया करते हैं। बिहार, संयुक्त और मध्य प्रदेश आदि के सब कायस्थ अपने को चित्रगुप्त के वंशज बतलाते हैं। यमद्वितीया के दिन कायस्थ लोग चित्रगुप्त और कलम दावात की पूजा करते हैं।

चित्रघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी जो नौ-दुर्गाओं में मानी जाती हैं।

चित्रचाप—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रजल्प-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में रस के अंतर्गत एक वाक्य-भेद। वह भावपूर्ण और अभिप्राय-गर्भित वाक्य जो नायक और नायिका रूठ कर एक दूसरे के प्रति कहते हैं। चित्रजल्प के दस भेद किए गए हैं, यथा—प्रजल्प, परिजल्पित, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्पित, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

चित्रजात—संज्ञा पुं० दे० "चित्ररोग"।

चित्रतंडुल—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग।

चित्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें दो द्रुत, एक प्लुत, फिर एक द्रुत और तब द्रुत की आधी मात्रा होती है। इसका बोल यह है,—द्रुगु० द्रुगु० धुमि धिमि धधिधा तक तक ऽ थों।

चित्रतैल—संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ी या अंडी का तेल।

चित्रत्वक्, चित्रत्वच्—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

चित्रदंडक—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन।

चित्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] पंचदशी नामक वेदांत ग्रंथ के अनुसार एक दीप। पट के ऊपर बने हुए चित्र के समान चैतन्य में जगत के विविध रूपों का आभास जिसे मायामय और मिथ्या समझना चाहिए।

चित्रदेव—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का अनुचर।

चित्रदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महेंद्रवारुणी लता। (२) शक्ति वा देवी का एक भेद।

चित्रधर्मा—संज्ञा पुं०[सं०] एक दैत्य का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चित्रधाम—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में पृथ्वी पर बनाया हुआ एक चौखूंटा चक्र जो चारखाने की तरह होता था और जिसके खानों को भिन्न भिन्न रंगों से भरते थे। सर्वतो-भद्र मंडल।

चित्रनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तित्तिर पक्षी। तीतर।

चित्रपट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कपड़ा, कागज़ वा पटरी जिस पर चित्र बनाया जाय या बना हो। चित्राधार। (२) वह वस्त्र जिस पर चित्र बने हों। छींट।

चित्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली के पीछे का भाग जिस पर किरण पड़ने से पदार्थों के रूप दिखाई पड़ते हैं। वि० विचित्र पत्र युक्त। रंग बिरंगे परवाला (पक्षी)।

चित्रपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपित्थपर्णी वृक्ष। (२) द्रोणपुष्पी। गूमा।

चित्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

चित्रपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभास तीर्थ के अंतर्गत ब्रह्मकुंड के पास की एक छोटी नदी जो अब सूख गई है, केवल बरसात में कुछ बहती है। दे० "चित्रगुप्त"।

चित्रपदा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २ भगण और २ गुरु होते हैं। उ०—रूपहि देखत मोहैं। ईश कहौ नर को हैं। संभ्रम चित्त अरूझै। रामहिं यों सब बूझै।—केशव। (२) मैना चिड़िया। सारिका। (३) छुईमुई। लजाधुर। लजालू नाम की लता।

चित्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मँजीठ। (२) कर्णस्फोट लता। कनफोड़ा। (३) जलपिप्पली। (४) द्रोणपुष्पी। गूमा।

चित्रपादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रपिच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रपुंख—संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

चित्रपुट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छः ताला ताल जिसमें दो लघु, दो द्रुत, एक लघु, और एक प्लुत होता है इसका बोल यह है—दिगिदां। धिमितक। दां० दां० तक थों। किट धरि धिधिगन थों ऽ।

चित्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] रामसर नाम की शर जाति की घास।

चित्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमड़ा।

चित्रपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] गौरा पक्षी। गौरैया।

चित्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चितला मछली। (२) तरबूज।

चित्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) बैंगन। (३)

कंटकारि। भटकटैया। (४) लिंगिनी लता। (५) महेंद्रवारुणी। (६) फलुई मछली।

चित्रबर्ह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

चित्रबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रभानु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य्य। (३) चित्रक। चीते का पेड़। (४) अर्क। मदार। (५) भैरव। (६) अश्विनीकुमार। (७) साठ संवत्सरों के जो बारह युग होते हैं उनमें से चौथे युग के पहले वर्ष का नाम। (८) मणिपुर के राजा जो अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता थे।

चित्रभेषजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कठगूलर। कठूमर।

चित्रमद–संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में किसी स्त्री का अपने पति या प्रेमी का चित्र देख कर विरह-सूचक भाव दिखलाना।

चित्रमृग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हिरन जिसकी पीठ पर सफ़ेद सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। चीतल।

चित्रमेखल–संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रयोग–संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक, अर्थात् बुड्ढे को जवान और जवान को बुड्ढा या नपुंसक बना देने की विद्या। दे० "कला"।

चित्रयोधी–वि० [सं०] विचित्र युद्ध करनेवाला। भारी योद्धा।
संज्ञा पुं० (१) अर्जुन। (२) अर्जुन का पेड़।

चित्ररथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) एक गंधर्व का नाम जो कश्यप और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे। ये कुबेर के सखा माने जाते हैं। ये गंधर्वराज, अंगारपर्ण, दग्धरथ और कुबेरसख भी कहलाते हैं। (३) श्रीकृष्ण के पुत्र गद के एक पुत्र का नाम। (४) महाभारत के अनुसार अंग देश के एक राजा का नाम। (५) एक यदुवंशी राजा जो विष्णुपुराण के अनुसार रुषद्गु और भागवत के अनुसार विशद्गुरु के पुत्र थे। (६) महाभारत के अनुसार ऋषद्गुरु नामक राजा के एक पुत्र।
वि० विचित्र रथवाला।

चित्ररथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत (भीष्म) में वर्णित एक नदी।

चित्ररश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] मरुतों में से एक।

चित्ररेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणासुर की कन्या ऊषा की एक सहेली। दे० "चित्रलेखा"।

चित्ररेफ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार शाकद्वीप के राजा प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि के सात पुत्रों में से एक। (मेधातिथि ने अपने सात पुत्रों को सात वर्ष बाँट दिए थे जिनके नामों के अनुसार ही उन वर्षों के नाम पड़े।) (२) एक वर्ष या भूविभाग का नाम।

चित्रल–वि० [सं०] चितकबरा। रंग बिरंगा। चितला।

चित्रलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] मँजीठ।

चित्रला–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरख इमली।

चित्रलिखन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुंदर लिखावट। खुशखती। (मनु०)। (२) चित्र बनाने का कार्य्य।

चित्रलेखनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तसवीर बनाने की कलम। कूँची।

चित्रलेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १ मगण, १ भगण, १ नगण, और तीन यगण होते हैं। उ०—मैं भीनी यों गुणनि सुनु यथा कामरी पाइ बारी। बोलो ना आलि! कहत तुमसों दीन ह्वै वारि वारी। (२) बाणासुर की कन्या ऊषा की एक सखी जो कुष्मांड की लड़की थी। यह चित्रकला में बड़ी निपुण थी। (३) एक अप्सरा का नाम। (४) चित्र बनाने की कलम। तसवीर बनाने की कूँची।

चित्रलोचना–संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रवदल–संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मछली।

चित्रवन–संज्ञा पुं० [सं०] गंडकी के किनारे का पुराण-प्रसिद्ध एक वन।

चित्रवर्मा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (२) मुद्राराक्षस के अनुसार कुलूत देश के एक राजा का नाम।

चित्रवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचित्र लता। (२) महेंद्रवारुणी।

चित्रवहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी।

चित्रवाण–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] मणिपुर का एक नाग राजा। (महाभारत)

चित्रविचित्र–वि० [सं०] (१) रंग बिरंगा। कई रंगों का। (२) बेल बूटेदार। नक्काशीदार।

चित्रविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। दे० "चित्रकला"।

चित्रवीर्य्य–वि० [सं०] विचित्र बली।
संज्ञा पुं० लाल रेंड़। रक्त एरंड।

चित्रवेगिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

चित्रशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह घर जहाँ चित्र बनते हों या विक्रयार्थ रखे जाते हों। (२) वह घर जहाँ चित्र रखे हों। वह घर जिसमें बहुत सी तसवीरें टँगी हों। (३) वह स्थान जहाँ चित्रकारी सिखाई जाती हो।

चित्रशिखंडिज–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

चित्रशिखंडी–संज्ञा पुं० [सं० चित्रशिखंडिन्] सप्त ऋषि। मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ—ये सात ऋषि।

चित्रशिर–संज्ञा पुं० [सं० चित्रशिरस्] (१) एक गंधर्व का नाम। (२) सुश्रुत के अनुसार मल मूत्र से उत्पन्न एक विष। गंदगी का ज़हर।

चित्रसंग—संज्ञा पुं० [सं०] १६ अक्षरों का एक वर्णवृत्त ।

चित्रसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] चीतल साँप ।

चित्रसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र + शाला] (१) वह घर जहाँ चित्र टँगे हों वा दीवार पर बने हों । (२) रंगमहल । सजा हुआ सोने का कमरा । विलासभवन ।

चित्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (२) एक गंधर्व का नाम । (३) एक पुरुवंशी राजा जो परीक्षित के पुत्रों में से थे । (४) शंबरासुर के एक पुत्र का नाम । (हरिवंश)

चित्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] वार का एक हाथ । हथियार चलाने का एक हाथ (महाभारत) ।

चित्रांग—वि० [सं०] [स्त्री० चित्रांगी] जिसका अंग विचित्र हो । जिसके अंग पर चित्तियाँ, धारियाँ आदि हों ।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक । चीता । (२) एक प्रकार का सर्प । चीतल । (३) ईंगुर । (४) हरताल ।

चित्रांगद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा शांतनु के एक पुत्र । ये विचित्रवीर्य्य के छोटे भाई थे । (२) देवी भागवत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । (३) दशार्ण देश के एक प्राचीन राजा । (महाभारत, अश्व०)

चित्रांगदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मणिपुर के राजा चित्रवाहन की कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी । (२) रावण की एक स्त्री जो वीरबाहु की माता थी ।

चित्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ । (२) कनसलाई नाम का कीड़ा । कनखजूरा ।

चित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्ताईस नक्षत्रों में से चौदहवाँ नक्षत्र । इसकी तारा-संख्या एक मानी गई है पर यह योग-तारा भी दिखाई देता है । इसकी कला ४० और विक्षेप दो कला है । इसका कलांश १३ है अर्थात् यह सूर्य्य कक्षा के तेरहवें अंश के बीच अस्त और तेरहवें अंश पर उदय होता है । यह पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता है । (सूर्य्य सिद्धांत) । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुंदर और चित्र विचित्र होने के कारण ही इसे चित्रा कहते हैं । फलित में यह पार्श्वमुख नक्षत्र माना गया है । इसमें गृहारंभ, गृहप्रवेश, हाथी, रथ, नौका, घोड़े आदि का व्यवहार शुभ है । इस नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह राक्षस गण में माना जाता है, विवाह की गणना में उसका मेल मनुष्य गण के साथ नहीं होता । रात्रिमान को १५ भागों में बाँट देने से एक एक मुहूर्त्त निकल आता है । इनमें से १४ वें मुहूर्त्त को चित्रा का मुहूर्त्त मान लेना चाहिए, चाहे और कोई दूसरा नक्षत्र भी हो । जो जो कार्य्य चित्रा नक्षत्र में हो सकते हैं वे सब चित्रा मुहूर्त्त में भी हो सकते हैं । (२) मूषिकपर्णी । (३) ककड़ी या खीरा । (४) दंती वृक्ष । (५) गंड दूर्वा । (६) मजीठ । (७) बायविडंग । (८) मूसाकानी । आखुकर्णी । (९) अजवाइन । (१०) सुभद्रा । (११) एक सर्प का नाम । (१२) एक नदी का नाम । (१३) एक अप्सरा का नाम । (१४) एक रागिनी जो भैरव राग की पाँच स्त्रियों में मानी जाती है । (१५) संगीत में एक मूर्छना का नाम । (१६) पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें पहले तीन नगण, फिर दो यगण होते हैं । उ०—मो मो माया याही जानो याहि छाड़े विना ना, पावै कोऊ प्यारे भौ सिंधू कवौं पार जाना । (१७) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है । इसकी पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा लघु होती है । यह चौपाई का एक भेद है । उ०—इतनहि कहि निज सदनै आई । (१८) प्राचीन काल का एक बाजा जिसमें तार लगे होते थे । (१९) चितकबरी गाय ।

चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० [स्त्री० चित्राक्षी] विचित्र या सुंदर नेत्रवाला ।

चित्राक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्राटीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) शिव का अनुचर घंटाकर्ण ।

चित्रादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभास क्षेत्र में चित्रगुप्त की स्थापित सूर्य्य मूर्त्ति । (स्कंदपु० प्रभा०)

चित्रान्न—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी के दूध में पकाया और बकरी के कान के रक्त में रँगा हुआ जौ और चावल ।

चित्रायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात । लोहा ।

चित्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलक्षण अस्त्र । (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० विलक्षण अस्त्रयुक्त ।

चित्राल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रालय ?] काश्मीर के पश्चिम एक पहाड़ी प्रदेश ।

चित्रावसु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों से मंडित रात्रि ।

चित्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवान् का एक नाम ।

चित्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत का महीना ।

चित्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मिनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में से एक ।

विशेष—डील डौल न बहुत भारी न बहुत छोटा, नाक तिल के फूल की सी, नेत्र कमलदल के समान, मुँह तिल, बिंदी आदि से सँवारा हुआ, येही सब इसके लक्षण हैं । यह विविध कलाओं तथा शृंगार-चेष्टा में निपुण होती है । इस जाति की स्त्री के साथ मृग जाति के पुरुष का जोड़ उपयुक्त होता है ।

चित्रित—वि० [सं०] (१) चित्र में खींचा हुआ । चित्र द्वारा दिखाया हुआ । जिसका रंग-रूप चित्र में दिखाया गया हो ।

जैसे, इसमें एक व्याघ्र चित्रित है। (२) जिस पर चित्र बने हों। जिस पर बेल बूटे आदि बने हों। जिस पर नक्काशी हो। (३) जिस पर चित्ति-याँ वा रंग की धारियाँ आदि हों।

चित्रेश–संज्ञा पु० [सं०] (चित्रा नक्षत्र के पति) चंद्रमा।

चित्रोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश। (२) अलंकृत भाषा में कथन।

चित्रोत्तर–संज्ञा पु० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न ही के शब्दों में उत्तर हो या कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो। उ०—(क) कोकहिये जल सों सुखी काकहिये परधाम। काकहिये जे रस बिना कोकहिये सुख बाम। इसमें 'कोक', 'काक', 'बाम' आदि उत्तर दोहे के शब्दों ही में निकल आते हैं। (ख) गाड पीठ पर लेहु अंग राग अरु हार कह। गूढ़ प्रकाश कर देहु कान्ह कह्यो "सारँग नहीं"। यहां 'सारँग नहीं' से सब प्रश्नों का उत्तर हो गया। (ग) को शुभ अक्षर? कौन युवति जो धन वश कीनी? विजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौने दीनी? कंसराज यदुवंश बसत कैसे केशवपुर? बट सों कहिये कहा? नाम जानहु अपन उर। कहि कौन युवति जग जनन किय कमल नयन सूक्षम बरणि? सुन वेद पुराणन में कही सनकादिक शंकरतरुणि। इसे "प्रश्नोत्तर" भी कहते हैं।

चित्रोत्पला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उड़ीसा की एक नदी जिसे आज कल 'चितरतला' कहते हैं। (२) मत्स्य, मार्कंडेय और वामन पुराण के अनुसार एक नदी जो ऋक्षपाद पर्वत से निकली है।

चित्रोपला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चित्य–वि० [सं०] (१) पूज्य। (२) चुनने वा इकट्ठा करने योग्य।

चिथड़ा–संज्ञा पुं० [सं० चर्प्प = फटा हुआ। वा चीर] फटा पुराना कपड़ा। कपड़े की धज्जी। लत्ता। लुगरा।

यौ०—चिथड़ा गुदड़ा = फटे पुराने कपड़े।

मुहा०—चिथड़ा लपेटना = फटे पुराने कपड़े पहनना।

चिथाड़ना–क्रि० स० [सं० चर्प] (१) चीरना। फाड़ना। कपड़े, चमड़े, कागज़ आदि चद्दर के रूप की वस्तुओं को फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी करना। (२) धज्जियाँ उड़ाना। अपमानित करना। लज्जित करना। नीचा दिखाना। जलील करना।

चिदाकाश–संज्ञा पु० [सं०] आकाश के समान निर्लिप्त और सब का आधारभूत ब्रह्म। परब्रह्म।

चिदात्मा–संज्ञा पु० [सं०] चैतन्य स्वरूप परब्रह्म।

चिदानंद–संज्ञा पु० [सं०] चैतन्य और आनंदमय परब्रह्म।

चिदाभास–संज्ञा पु० [सं०] (१) चैतन्य स्वरूप परब्रह्म का आभास या प्रतिबिंब जो महत्तत्व या अंतःकरण पर पड़ता है। (२) जीवात्मा।

विशेष—अद्वैतवादियों के मत से अंतःकरण में ब्रह्म का आभास पड़ने से ही ज्ञान होता है। माया के संयोग से यह ज्ञान अनेक रूप विशिष्ट दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार स्फटिक पर जिस रंग की आभा पड़ती है वह उसी रंग का दिखाई पड़ता है।

चिद्रूप–संज्ञा पु० [सं०] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म। ज्ञानमय परमात्मा।

चिद्विलास–संज्ञा पु० [सं०] (१) चैतन्य स्वरूप ईश्वर की माया। उ०—तुलसिदास कह चिद्विलास जग बूझत बूझत बूझै।—तुलसी। (२) शंकराचार्य के एक शिष्य। बहुतों का विश्वास है कि शंकरविजय नामक ग्रंथ इन्हीं का लिखा है, जिसमें चिद्विलास वक्ता और विज्ञानकंद श्रोता हैं।

चिन–संज्ञा पु० [देश०] (१) एक बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो हिमालय पर शिमले के आस पास बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और इमारतों में लगती है। (२) एक घास जिसे चौपाए बड़ी रुचि से खाते हैं। यह घास खेतों के किनारे होती है। इसे सुखा कर भी रख सकते हैं।

चिनक–संज्ञा पु० [हिं० चिनगी] (१) जलन लिए हुए पीड़ा। चुनचुनाहट। (२) मूत्रनाली की जलन वा पीड़ा जो सूजाक में होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिनगा†–संज्ञा पु० दे० "चिनक"।

चिनगारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हिं० चुन + अंगार] (१) जलती हुई आग का छोटा कण वा टुकड़ा। जैसे, एक चिनगारी आग इस पर रख दो। (२) दहकती हुई आग में से छूट छूट कर उड़नेवाले कण। अग्निकण। स्फुलिंग।

क्रि० प्र०—उड़ना।—छूटना।

मुहा०—आँखों से चिनगारी छूटना = क्रोध से आँखें लाल लाल होना। चिनगारी छोड़ना = धीरे से ऐसी बात कह बैठना जिससे किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा हो जाय। कोई ऐसी बात कह देना जिससे लोगों में लड़ाई झगड़ा हो जाय। ऐसी चाल चलना जिससे एक नई बात खड़ी हो जाय। चिनगारी डालना = (१) आग लगाना। (२) दे० "चिनगारी छोड़ना"।

चिनगी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हिं० चुन + अग्नि, प्र० अग्गि] (१) अग्निकण। दे० "चिनगारी"। (२) चुस्त और चालाक लड़का। (३) वह लड़का जो नटों के साथ रहता है। (नट)

चिनली†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेना] चेना की रोटी।

चिनाई दौड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना + दौड़] जहाज़ की घुमाव फिराव की चाल। जहाज़ का चक्कर। (लश०)

चिनाना†*–क्रि० स० [सं० चयन] (१) चुनवाना। चिनवाना। (२) ईंट आदि की जोड़ाई कराना। दीवार वा घर उठवाना।

उ०—कंचन महल चुनाइया सुवरन कली ढुलाय। ते मंदिर खाली परे रहे मसाना जाय।—कबीर।

चिनाव–संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की एक नदी। चंद्रभागा।

चिनिया–वि० [हिं० चीनी] (१) चीनी के रंग का। सफ़ेद। (२) चीन देश का। चीनी।

चिनिया केला–संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया + केला] छोटी जाति का एक केला जो बंगाल में होता है। यह खाने में बहुत मीठा होता है।

चिनिया घोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० चीन वा चीनी] वह घोड़ा जिसके चारों पैर सफ़ेद हों और सारे बदन में लाल और कुछ सफ़ेद खिचड़ी बाल हों।

चिनिया-बत–संज्ञा पुं० [हिं० चिनिया + बत] बतक की तरह की एक चिड़िया।

चिनिया बदाम–संज्ञा पुं० [हिं० चीन + बादाम] मूँगफली।

चिनियारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चुचु ?] सुसना का साग।

चिन्न–संज्ञा पुं० [सं०] चना।

चिन्मय–वि० [सं०] ज्ञानमय।

संज्ञा पुं० परमेश्वर।

चिन्ह–संज्ञा पुं० दे० "चिह्न"।

चिन्हवाना†–क्रि० स० [हिं० "चीन्हना" का प्रे०] पहचनवाना। परिचित कराना। ठीक लक्षण बता देना। पहचान करा देना।

चिन्हाना†–क्रि० स० [हिं० "चीन्हना" का प्रे०] पहचनवाना। परिचित कराना।

चिन्हानी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] (१) चीन्हने की वस्तु। पहचान। लक्षण। (२) स्मारक। यादगार। ऐसी वस्तु जिससे किसी बात वा मनुष्य का स्मरण हो। (३) चिह्न। रेखा। धारी। लकीर।

चिन्हार†–वि० [हिं० चिन्ह] जान पहचान का। परिचित। जिससे जान पहचान हो।

क्रि० प्र०—खींचना।

चिन्हारी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिन्ह] जान पहचान। भेंट मुलाकात। परिचय। उ०—कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी।—तुलसी।

चिन्हित ∗–वि० दे० "चिह्नित"

चिपकना–क्रि० अ० [सं० चिपिट = चिपटा। वा अनु० चिपचिप] (१) बीच में किसी लसीली वस्तु के कारण दो वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सकें। सटना। चिमटना। श्लिष्ट होना। जैसे, इस पुस्तक के पन्ने चिपक गए हैं।

क्रि० प्र०—जाना।

(२) लिपटना। प्रगाढ़ रूप से संयुक्त होना। (३) स्त्री पुरुष का संयोग होना। स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम में फँसना। (४) रोज़गार से लगना। किसी काम में लगना।

चिपकाना–क्रि० स० [हिं० चिपकना] (१) किसी लसीली वस्तु को बीच में देकर दो वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार जोड़ना कि वे जल्दी अलग न हो सकें। चिमटाना। श्लिष्ट करना। चस्पाँ करना। जैसे, इस काग़ज़ पर टिकट चिपका दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) लिपटाना। प्रगाढ़ आलिंगन करना।

संयो० क्रि०—लेना।

(३) नौकरी लगाना। किसी काम धंधे में लगाना।

चिपचिप–संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द वा अनुभव जो किसी लसदार वस्तु को छूने से होता है।

क्रि० प्र०—करना।

चिपचिपा–वि० [अनु० चिपचिप। वा हिं० चिपकना] जिसे छूने से हाथ चिपकता हुआ जान पड़े। लसदार। लसीला। जैसे, गोंद, शहद, चाशनी आदि वस्तु।

चिपचिपाना–क्रि० अ० [हिं० चिपचिप] छूने में चिपचिपा जान पड़ना। लसदार मालूम होना। जैसे, स्याही में गोंद अधिक है, इसीसे चिपचिपाती है।

चिपचिपाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपचिपा] चिपचिपाने का भाव। लसीलापन। लस। लसी।

चिपटना–क्रि० अ० [सं० चिपिट = चिपटा] चिपकना। सटना। चिमटना। इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सके।

चिपटा–वि० [सं० चिपिट] [स्त्री० चिपटी] जो कहीं से उठा या उभड़ा हुआ न हो। जिसकी सतह दूरी ओर बराबर फैली हुई हो। जिसके पृष्ठ पर कहीं उभाड़ न हो। बैठा या धँसा हुआ। जैसे, चिपटी नाक, चिपटा दाना, चिपटे बीज। उ०—पेड़ पर से गिर कर फल चिपटा हो गया।

चिपटाना–क्रि० स० [हिं० चिपटना] (१) चिपकाना। सटाना। (२) लिपटाना। आलिंगन करना।

चिपटी–वि० स्त्री० दे० "चिपटा"।

संज्ञा स्त्री० (१) कान में पहनने की एक प्रकार की बाली जिसे नैपाली स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) भग। योनि।

मुहा०—चिपटी खेलना = दो स्त्रियों का आपस में परस्पर योनि से योनि घिसना। उ०—आयौ पड़ोसिन चिपटी खेलि, मेरे तो बेगार भली। चिपटी लड़ाना = दे० "चिपटी खेलना"।

चिपड़ा†–वि० [हिं० कीचड़] जिसकी आँख में अधिक कीचड़ रहता हो। जिसकी आँख से अधिक कीचड़ निकलता हो।

चिपड़ी, चिपरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपड़] गोबर के पाथे हुए चिपटे टुकड़े। उपली। गोहँठी।

क्रि० प्र०—पाथना।

चिपिट-वि० [सं०] चिपटा।

संज्ञा पुं० (१) चिउड़ा। चिड़वा। (२) चिपटी नाकवाला मनुष्य। (इसका दर्शन अशुभ माना जाता है)। (३) दृष्टि की चकपकाहट जो आँखों को उँगली आदि से दबाने से हो। (इस प्रकार की चकपकाहट से कभी एक के दो तीन पदार्थ दिखाई देते हैं, कभी पदार्थ नीचे या ऊपर हटे हुए दिखाई पड़ते हैं)।

चिपिटनासिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो कैलास पर्वत के उत्तर पड़ता है। तातार वा मंगोल देश जहाँ के निवासियों की नाक चिपटी होती है। (२) इस देश के निवासी, तातार या मंगोल।

वि० चिपटी नाकवाला।

चिपीटक-संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा। चिड़वा।

चिपुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] चेल्हवा मछली।

चिप्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक नख रोग जिसमें नाखून के नीचे मांस में जलन और पीड़ा होती है। कभी कभी नाखून पक भी जाता है।

चिप्पड़-संज्ञा पुं० [सं० चिपिट] (१) छोटा चिपटा टुकड़ा। उ०—इसके ऊपर कागज का एक चिप्पड़ लगा दो। (२) सूखी लकड़ी आदि के ऊपर की छूटी हुई छाल का टुकड़ा। पपड़ी। (३) किसी वस्तु के ऊपर से छील कर निकाला हुआ टुकड़ा।

चिप्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक रात्रिचर जंतु। (२) एक चिड़िया का नाम। उ०—दाँमा, बटेर, लव औ सिचान। धूती रु चिप्पिका चटक मान।—सूर।

चिप्पी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिप्पड़] (१) छोटा चिप्पड़। (२) उपली। गोहँठी। (३) वह बटलरा जिससे सीधा तौला जाता है। (४) सीधा। जिंस। (साधु)

चिबिल्ला†-वि० दे० "चिलबिला"।

चिबुक-संज्ञा पुं० [सं०] ठुड्डी। ठोड़ी।

चिमगादड़†-संज्ञा पुं० दे० "चमगादड़"।

चिमटना-क्रि० अ० [हिं० चिपटना] (१) चिपकना। सटना। लस जाना। (२) लिपटना। प्रगाढ़ आलिंगन करना। उ०—वह अपने भाई को देखते ही उससे चिमट कर रोने लगा। (३) हाथ पैर आदि सब अंगों को लगा कर दृढ़ता से पकड़ना। कई स्थानों पर कस कर पकड़ना। गुथना। जैसे, चींटों का चिमटना। उ०—शेर को देखते ही वह एक पेड़ की डाल से चिमट गया। (४) पीछे पड़ जाना। पीछा न छोड़ना। पिंड न छोड़ना।

चिमटवाना-क्रि० स० [हिं० चिमटना का प्रे०] दूसरे से चिमटाने का काम कराना।

चिमटा-संज्ञा पुं० [हिं० चिमटना] [स्त्री० अल्प० चिमटी] लोहे पीतल आदि की दो लंबी और लचीली पटियों का बना हुआ एक औज़ार जिससे उस स्थान पर की वस्तुओं को पकड़ कर उठाते हैं जहाँ हाथ नहीं ले जा सकते। दस्तपनाह।

चिमटाना-क्रि० स० [हिं० चिमटना] (१) चिपकाना। सटाना। लसना। (२) लिपटाना। आलिंगन करना।

चिमटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चिमटा] (१) छोटा चिमटा। (२) सुनारों का एक औज़ार जिससे तार आदि मोड़ने और महीन रवे उठाने का काम लिया जाता है। और भी कई पेशेवाले इस नाम के औज़ार का प्रयोग करते हैं। इसे चिमोटी वा चिकोटी भी कहते हैं।

चिमड़ा-वि० दे० "चीमड़"।

चिमनी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ऊपर उठी हुई शीशे की वह नली जिससे लंप का धुआँ बाहर निकलता और प्रकाश फैलता है। (२) किसी मकान के ऊपर का वह छेद जिससे धुआँ बाहर निकलता है।

विशेष—चिमनी कई प्रकार की बनाई जाती है। रहने के मकानों में जो चिमनी बनती है वह बहुत ऊपर उठी हुई नहीं होती। पर कल कारखानों (जैसे, पुतलीघर) में जो चिमनियाँ होती हैं वे बहुत ऊँची उठाई जाती हैं जिसमें धुआँ बहुत ऊपर जाकर आकाश में फैल जाय।

चिमोटा-संज्ञा पुं० दे० "चमोटा"।

चिमोटी-संज्ञा स्त्री० दे० "चिमटी"।

चिरंजीव-वि० [सं०] चिरजीवी।

विशेष—इस शब्द से दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है। यह शब्द पुत्र वाचक भी है। जैसे, आपके चिरंजीव ने ऐसा कहा है।

चिरंजीवी-वि० दे० "चिरजीवी"।

चिरंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सयानी लड़की जो पिता के घर रहे। (२) युवती।

चिरंतन-वि० [सं०] पुरातन। पुराना। बहुत दिनों का।

चिरंभ, चिरंभण-संज्ञा पुं० [सं०] चील।

चिर-वि० [सं०] बहुत दिनों का। दीर्घकालवर्ती। जैसे, चिरकाल, चिरायु। उ०—होएहु संतत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी।—तुलसी।

क्रि० वि० बहुत दिन। अधिक समय तक। दीर्घ काल तक। जैसे, चिरस्थायी। चिरजीवी। उ०—चिरजीवहु सुत चारि चक्रवर्त्ति दशरत्थ के।—तुलसी।

नैरयिक—वि० [सं०] नरक में रहनेवाला।
नैरर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] निरर्थकता।
नैराश्य—संज्ञा पुं० [सं०] निराशा का भाव। नाउम्मेदी।
नैरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाण छोड़ने का एक मंत्र।
नैरुक्त—वि० [सं०] निरुक्त संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) निरुक्त संबंधी ग्रंथ। (२) निरुक्त का जानने या अध्ययन करनेवाला।
नैरुक्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निरुक्तवेत्ता।
नैर्ऋत—वि० [सं०] निर्ऋति संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) निर्ऋति का पुत्र। राक्षस। (२) पश्चिम-दक्षिण कोण का स्वामी।
विशेष—ज्योतिष के मत से इस दिशा का स्वामी राहु है।
(३) मूल नक्षत्र।
नैर्ऋती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण-पश्चिम के मध्य की दिशा। दक्खिन और पश्चिम के बीच का कोन।
नैर्ऋतेय—संज्ञा पुं० [सं०] निर्ऋति का वंशज।
नैर्ऋत्य—वि० [सं०] निर्ऋति देवता का (पशु आदि)।
नैर्गुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निर्गुणता। अच्छी सिफत का न होना। (२) कला-कौशल आदि का अभाव। (३) सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का न होना। त्रिगुणशून्यता। (नैर्गुण्य होने से ब्रह्म की प्राप्ति कही गई है)।
नैर्मल्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निर्मलता। (२) विषयों से वैराग्य।
नैर्लज्ज—संज्ञा पुं० [सं०] निर्लज्जता।
नैर्वाहिक—वि० [सं०] निर्वाहयोग्य। जो निर्वाह के लिये हो।
नैवासी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निवास-साधु। (२) वृक्ष पर रहनेवाला देवता।
नैविड्य—संज्ञा पुं० [सं०] निविड़ता। घनत्व।
नैवेद्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निवेदन के लिये भोज्य द्रव्य। वह भोजन की सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय। देव-बलि। भोग।
विशेष—घी चीनी, श्वेताल, दधि, फल इत्यादि नैवेद्य द्रव्य कहे गए हैं। नैवेद्य देवता के दक्षिण भाग में रखना चाहिए आगे या पीछे नहीं। कुछ ग्रंथों का मत है कि पक्व नैवेद्य देवता के बाएँ और कच्चा दहिने रखना चाहिए। देवता को भोग लगा हुआ प्रसाद खाने का बड़ा फल लिखा है। पर शिव को चढ़ा हुआ निर्माल्य खाने का निषेध है। चढ़ाए जाने के उपरांत नैवेद्य द्रव्य निर्माल्य कहलाता है।
नैशिक—वि० [सं०] निशा संबंधी। रात का।
नैषदिक—वि० [सं०] (१) उपदेशनकारी। बैठनेवाला। (२) निषद-देश संबंधी। निषद का।
नैषध—वि० [सं०] (१) निषध-देश संबंधी। निषध देश का। (२) नल जो निषध-देश के राजा थे। (३) श्रीहर्ष-रचित एक संस्कृत काव्य जिसमें राजा नल की कथा का वर्णन है।
नैषध्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा नल का पुत्र या वंशज।
नैष्किंचन्य—संज्ञा पुं० [सं०] निष्किंचनता। दरिद्रता।
नैष्किक—वि० [सं०] (१) निष्क-संबंधी। (२) निष्क द्वारा मोल लिया हुआ।
संज्ञा पुं० टकशाला का अध्यक्ष। टकसाल घर का अफसर।
नैष्कृतिक—वि० [सं०] परवृत्ति-छेदन में तत्पर। दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन निकालनेवाला। स्वार्थी।
नैष्ठिक—वि० [सं०] [स्त्री० नैष्ठिकी] (१) निष्ठावान्। निष्ठा-युक्त। (२) मरण-काल में कर्त्तव्य (कर्म)।
संज्ञा पुं० ब्रह्मचारियों का एक भेद। वह ब्रह्मचारी जो उपनयन-काल से लेकर मरण-काल तक ब्रह्मचर्य्य-पूर्वक गुरु के आश्रम पर ही रहे।
विशेष—याज्ञवल्क्य-स्मृति में लिखा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी को यावज्जीवन गुरु के पास रहना चाहिए। गुरु यदि न हों तो उनके पुत्र के पास, और आचार्य-पुत्र भी न हो तो आचार्यपत्नी की सेवा में, आचार्यपत्नी के अभाव में अग्निहोत्र की अग्नि के पास उसे जीवन बिताना चाहिए। इस प्रकार का जितेंद्रिय ब्रह्मचारी अंत में मुक्ति पाता है।
नैष्ठुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] निठुराई। क्रूरता।
नैसर्गिक—वि० [सं०] स्वाभाविक। प्राकृतिक। स्वभावसिद्ध। क़ुदरती।
नैसर्गिकी—वि० स्त्री० [सं०] प्राकृतिक।
नैसर्गिकी दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक दशा।
नैसा*—वि० [सं० अनिष्ट] अनैसा। बुरा। खराब। उ०—(क) सूरदास प्रभु के गुण ऐसे। भक्तन भल, दुष्टन को नैसे।—सूर। (ख) कहु राधा हरि कैसे हैं। तेरे मन भाये की नाहीं, की सुंदर की नैसे हैं ?—सूर।
नैहर—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, णाइ=पिता+हिं० घर] स्त्री के पिता का घर। माँ-बाप का घर। मायका। पीहर।
नोआ†—संज्ञा पुं० [हिं० नोवना] [स्त्री अल्प० नोई] दूध दुहते समय गाय के पैर बाँधने की रस्सी। बंधी।
नोइनी†—संज्ञा स्त्री० दे० "नोई"।
नोई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोवना] दूध दुहते समय गाय के पैर बाँधने की रस्सी। बंधी।
नोक—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० नुकीला] (१) उस ओर का सिरा जिस ओर कोई वस्तु बराबर पतली पड़ती गई हो। सूक्ष्म अग्रभाग। शंकु के आकार की वस्तु का महीन या पतला छोर। अनी। जैसे, सूई की नोक, काँटे की नोक, भाले की नोक, खूँटे की नोक, जूते की नोक।
यौ०—नोक झोंक।

(४) दृष्टांत-वाक्य जिसका व्यवहार लोक में कोई प्रसंग आ पड़ने पर होता है। कोई विलक्षण घटना सूचित करनेवाली उक्ति जो उपस्थित बात पर घटती हो। कहावत।

ऐसे न्याय या दृष्टांत-वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं जिनमें से कुछ अकारादि क्रम से दिए जाते हैं—

(१) अजाकृपाणीय न्याय—कहीं तलवार लटकती थी, नीचे से बकरा गया और वह संयोग से उसकी गर्दन पर गिर पड़ी। जहाँ दैवसंयोग से कोई विपत्ति आ पड़ती है वहाँ इसका व्यवहार होता है।

(२) अजातपुत्रनामोत्कीर्त्तन न्याय—अर्थात् पुत्र न होने पर भी नामकरण होने का न्याय। जहाँ कोई बात न होने पर भी आशा के सहारे लोग अनेक प्रकार के आयोजन बाँधने लगते हैं वहाँ यह कहा जाता है।

(३) अध्यारोप न्याय—जो वस्तु जैसी न हो उसमें वैसे होने का (जैसे रज्जु में सर्प होने का) आरोप। वेदांत की पुस्तकों में इसका व्यवहार मिलता है।

(४) अंधकूपपतन न्याय—किसी भले आदमी ने अंधे को रास्ता बतला दिया और वह चला, पर जाते जाते एक कूएँ में गिर पड़ा। जब किसी अनधिकारी को कोई उपदेश दिया जाता है और वह उस पर चलकर अपने अज्ञान आदि के कारण चूक जाता है या अपनी हानि कर बैठता है तब यह कहा जाता है।

(५) अंधगज न्याय—कई जन्मांधों ने हाथी कैसा होता है यह देखने के लिये हाथी टटोला। जिसने जो अंग टटोल पाया उसने हाथी का आकार उसी अंग का सा समझा। जिसने पूँछ टटोली उसने रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खंभे के आकार का समझा। किसी विषय के पूर्ण अंग का ज्ञान न होने पर उसके संबंध में जब अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न बातें कही जाती हैं तब इस उक्ति का प्रयोग करते हैं।

(६) अंधगोलांगूल न्याय—एक अंधा अपने घर के रास्ते से भटक गया था। किसी ने उसके हाथ में गाय की पूँछ पकड़ाकर कह दिया कि यह तुम्हें तुम्हारे स्थान पर पहुँचा देगी। गाय के इधर उधर दौड़ने से अंधा अपने घर तो पहुँचा नहीं, कष्ट उसने भले ही पाया। किसी दुष्ट या मूर्ख के उपदेश पर काम करके जब कोई कष्ट या दुःख उठाता है तब यह कहा जाता है।

(७) अंधचटक न्याय=अंधे के हाथ बटेर।

(८) अंधपरंपरा न्याय—जब कोई पुरुष किसी को कोई काम करते देख कर आप भी वही काम लगे तब वहाँ यह कहा जाता है।

(९) अंधपंगु न्याय—एक ही स्थान पर जानेवाला एक अंधा और एक लँगड़ा यदि मिल जायँ तो एक दूसरे की सहायता से दोनों वहाँ पहुँच सकते हैं। सांख्य में जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही गई है।

(१०) अपवाद न्याय—जिस प्रकार किसी वस्तु के संबंध में ज्ञान हो जाने से भ्रम नहीं रह जाता उसी प्रकार। (वेदांत)

(११) अपराह्णच्छाया न्याय—जिस प्रकार दोपहर की छाया बराबर बढ़ती जाती है उसी प्रकार सज्जनों की प्रीति आदि के संबंध में कहा जाता है।

(१२) अपसारिताग्निभूतल न्याय—ज़मीन पर से आग हटा लेने पर भी जिस प्रकार कुछ देर तक ज़मीन गरम रहती है उसी प्रकार धनी धन के न रह जाने पर भी कुछ दिनों तक अपनी अकड़ रखता है।

(१३) अरण्यरोदन न्याय—जंगल में रोने के समान बात। जहाँ कहने पर कोई ध्यान देनेवाला न हो वहाँ इसका प्रयोग होता है।

(१४) अर्कमधु न्याय—यदि मदार से ही मधु मिल जाय तो उसके लिये अधिक परिश्रम व्यर्थ है। जो कार्य्य सहज में हो उसके लिये इधर उधर बहुत श्रम करने की आवश्यकता नहीं।

(१५) अर्द्धजरतीय न्याय—एक ब्राह्मण देवता अर्थ-कष्ट से दुखी हो नित्य अपनी गाय ले कर बाजार में बेचने जाते पर वह न बिकती। बात यह थी कि अवस्था पूछने पर वे उसकी बहुत अवस्था बतलाते थे। एक दिन एक आदमी ने उनसे न बिकने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा मैंने समझा जिस प्रकार आदमी की अवस्था अधिक होने पर उसकी कदर बढ़ जाती है उसी प्रकार मैंने गाय के संबंध में भी समझा था। उसने आगे ऐसा न कहने की सलाह दी। ब्राह्मण ने सोचा कि "एक बार गाय को बुड्ढी कहकर अब फिर जवान कैसे कहूँ"। अंत में उन्होंने स्थिर किया कि आत्मा तो बुड्ढी होती नहीं देह बुड्ढी होती है। अतः इसे मैं आधी बुड्ढी आधी जवान कहूँगा। जब किसी की कोई बात इस पक्ष में भी और उस पक्ष में भी हो तब यह उक्ति कही जाती है।

(१६) अशोकवनिका न्याय—अशोक वन में जाने के समान (जहाँ छाया सौरभ आदि सब कुछ प्राप्त हो) जब किसी एक ही स्थान पर सब कुछ प्राप्त हो जाय और कहीं जाने की आवश्यकता न हो तब यह कहा जाता है।

(१७) अश्मलोष्ट न्याय—अर्थात् तराजू पर रखने के लिये पत्थर तो ढेले से भी भारी है। यह विषमता सूचित करने के अवसर पर ही कहा जाता है। जहाँ दो वस्तुओं में सापेक्षिकता सूचित करनी होती है वहाँ पाषाणेष्टक न्याय कहा जाता है।

मुहा०—नोक की लेना = बढ़ बढ़कर बातें करना। डींग हाँकना। तपाक की बातें कहना। गर्व दिखाना। नोक दुम भागना = जी छोड़कर भागना। बेतहाशा भागना। नोक रह जाना = (१) आन की बात रह जाना। टेक या प्रतिज्ञा का निर्वाह हो जाना। बात रह जाना। मर्यादा रह जाना। प्रतिष्ठा बनी रह जाना। नोक बनाना = बनाव सिंगार करना। रूप सँवारना।

(२) किसी वस्तु के निकले हुए भाग का पतला सिरा। किसी ओर को बढ़ा हुआ पतला अग्रभाग। जैसे, जमीन की एक नोक पानी के भीतर तक गई है। (३) कोण बनानेवाली दो रेखाओं का संगमस्थान या बिंदु। निकला हुआ कोना। जैसे, दीवार की नोक।

नोक झोंक—संज्ञा स्त्री० [फा० नोक + हिं० झोंक] (१) बनाव सिंगार। ठाटबाट। सजावट। जैसे, कल तो वे बड़ी नोक झोंक से चिपटद देखने निकले थे। (२) तपाक। तेज। आतंक। दर्प। जैसे, कल तो वे बड़ी नोक झोंक से बातें करते थे। उ०—शरद घटान की छुटान सी सुगंधधार धारयो है जटान काम कीन्हों नोक झोंक के।—रघुराज। (३) चुभनेवाली बात। व्यंग्य। ताना। आवाज़ा। जैसे, उनकी नोक झोंक अब नहीं सुनी जाती। (४) छेड़छाड़। परस्पर की चोट। जैसे, आजकल उन दोनों में खूब नोक झोंक चल रही है।

क्रि० प्र०—चलना।

नोकना—क्रि० स० [?] ललचना ? उ०—चितै रही राधा हरि को मुख। उत ही श्याम एकटक प्यारी छवि अँग अँग अवलोकत। रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोउ नोकत। सखिन कह्यो वृषभानु-सुता सों देखे कुँवर कन्हाई। सूर श्याम पर्इ हैं व्रज में जिनकी होति बड़ाई। —सूर।

नोकदार—वि० [फा०] (१) जिसमें नोक हो। (२) चुभनेवाला। पैना। (३) चित्त में चुभनेवाला। दिल में असर करनेवाला। (४) शानदार। तड़क भड़क का। ठसक का।

नोकपलक—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोक + पलक] आँख नाक आदि की गढ़न। चेहरे की बनावट।

मुहा०—नोकपलक से ठीक = चारों ओर से सुडौल। नख से सिख तक सुंदर।

नोकपान—संज्ञा पु० [फा० नोक + हिं० पान] जूते की नोक और एड़ी पर लगा हुआ कीमुख्ती चमड़ा जो पान के आकार का होता है। जूते की काट छाँट, सुंदरता और मजबूती। (जूतेवाले)। जैसे, ज़रा इस जूते का नोकपान देखिए।

नोका झोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोकझोंक] (१) छेड़छाड़। परस्पर व्यंग्य आदि द्वारा आक्रमण। ताना। आवाज़ा। (२) परस्पर की चोट। विवाद। झगड़ा।

क्रि० प्र०—चलना।

नोकीला†—वि० दे० "नुकीला"।

नोखा†—वि० [हिं० अनोखा] [स्त्री० अनोखी] अद्भुत। विचित्र। विलक्षण। अनूठा। अपूर्व।

नोच—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोचना] (१) नोचने की क्रिया या भाव। (२) छीनने या लेने की क्रिया। कई ओर से कई आदमियों का झपाटे के साथ छीनना या लेना। लूट।

यौ०—नोच खसोट। नोचा खसोटी। नोचानाची।

(३) कई ओर से कई आदमियों का माँगना। चारों ओर की माँग। बहुत से लोगों का तकाज़ा। जैसे, चारों ओर से नोच है किसका किसका रुपया दें।

क्रि० प्र०—मचना।—होना।

नोच खसोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोचना खसोटना] झपाटे के साथ लेना या छीनना। जबरदस्ती खींच खाँच कर के लेना। छीनाझपटी। लूट।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

नोचना—क्रि० स० [सं० लुंचन] (१) किसी जमी या लगी हुई वस्तु को झटके से खींचकर अलग करना। उखाड़ना। जैसे, बाल नोचना, दाढ़ी नोचना, पत्ती नोचना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(२) किसी वस्तु में दाँत नख या पंजा धँसाकर उसका कुछ अंश खींच लेना। नख आदि से विदीर्ण करना। जैसे, चीता शिकारी का मांस नोचता हुआ निकल गया।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—नोचना खसोटना = खींच खाँचकर लेना। झपाटे से छीनना। लूटना।

(३) शरीर पर इस प्रकार हाथ या पंजा लगाना कि नाखून धँस जायँ। खरोंचना। खरोंच डालना।

संयो० क्रि०—लेना।

(४) बार बार तंग करके लेना। दुखी और हैरान करके लेना। पीछे पड़कर किसी की इच्छा के विरुद्ध उससे लेना। जैसे, तीर्थों में पंडे और कचहरियों में अमले नोच डालते हैं।

संयो० क्रि०—डालना।

(५) बार बार तंग करके माँगना। ऐसा तकाज़ा करना कि नाक में दम हो जाय। जैसे, उसे चारों ओर से महाजन नोच रहे हैं किसका किसका देगा ?

नोचानाची—संज्ञा स्त्री० दे० "नोच खसोट"।

नोचू—संज्ञा पु० [हिं० नोचना] (१) नोचनेवाला। (२) छीना झपटी करके लेनेवाला। नोचने खसोटनेवाला। (३) तंग करके लेनेवाला। घेरकर या पीछे पड़कर जहाँ तक मिल सके लेनेवाला। (४) बार बार माँगकर तंग करनेवाला। तकाज़ों के मारे नाकों दम करनेवाला।

(१८) अस्नेहदीप न्याय—बिना तेल के दीये की सी बात। थोड़े ही काल रहनेवाली बात देखकर यह कहा जाता है।

(१९) अहिकुंडल न्याय—सर्प के कुंडल मारकर बैठने के समान। किसी स्वाभाविक बात पर।

(२०) अहि-नकुल न्याय—साँप नेवले के समान। स्वाभाविक विरोध या बैर सूचित करने के लिये।

(२१) आकाशापरिच्छिन्नत्व न्याय—आकाश के समान अपरिच्छिन्न।

(२२) आभाणक न्याय—लोकप्रवाद के समान।

(२३) आम्रवण न्याय—जिस प्रकार किसी वन में यदि आम के पेड़ अधिक होते हैं तो उसे 'आम का वन' ही कहते हैं, यद्यपि और भी पेड़ उस वन में रहते हैं, उसी प्रकार जहाँ औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही उल्लेख किया जाता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(२४) उत्पाटितदंतनाग न्याय—दाँत तोड़े हुए साँप के समान। कुछ करने धरने या हानि पहुँचाने में असमर्थ हुए मनुष्य के संबंध में।

(२५) उदकनिमज्जन न्याय—कोई दोषी है या निर्दोष इसकी एक दिव्य परीक्षा प्राचीन काल में प्रचलित थी। दोषी को पानी में खड़ा करके किसी ओर बाण छोड़ते थे और बाण छोड़ने के साथ ही अभियुक्त को तब तक डूबे रहने के लिये कहते थे जब तक वह छोड़ा हुआ बाण वहाँ से फिर छूटने पर लौट न आवे। यदि इतने बीच में डूबनेवाले का कोई अंग बाहर न दिखाई पड़ा तो उसे निर्दोष समझते थे। जहाँ सत्यासत्य की बात आती है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(२६) उभयतःपाशारज्जु न्याय—जहाँ दोनों ओर विपत्ति हो अर्थात् दो कर्त्तव्य पक्षों में से प्रत्येक में दुःख हो वहाँ इसका व्यवहार होता है। "साँप-छछूँदर की गति"।

(२७) ऊषरवृष्टि न्याय—किसी बात का जहाँ कोई फल न हो वहाँ कहा जाता है।

(२८) उष्ट्रकंटकभक्षण न्याय—जिस प्रकार थोड़े से सुख के लिये ऊँट काँटे खाने का कष्ट उठाता है उसी प्रकार जहाँ थोड़े से सुख के लिये अधिक कष्ट उठाया जाता है वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(२९) कंठचामीकर न्याय—गले में सोने का हार हो और उसे इधर उधर ढूँढता फिरे। आनंद स्वरूप ब्रह्म अपने में रहते भी अज्ञानवश सुख के लिये अनेक प्रकार के दुःख भोगने के दृष्टांत में वेदांती कहते हैं।

(३०) कदंबगोलक न्याय—जिस प्रकार कदंब के गोले में सब फूल एक साथ हो जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ कई बातें एक साथ हो जाती हैं वहाँ इसे कहते हैं। कुछ नैयायिक शब्दोत्पत्ति में कई वर्णों के उच्चारण एक साथ मानकर उसके दृष्टांत में यह कहते हैं।

(३१) कदलीफल न्याय—केला काटने ही पर फलता है इसी प्रकार नीच सीधे कहने से नहीं सुनते।

(३२) कफोनिगुड़ न्याय—सूत न कपास जुलाहों से लट्ठमलट्ठा।

(३३) करकंकण न्याय—'कंकण' कहने से ही हाथ के गहने का बोध हो जाता है, 'कर' कहने की आवश्यकता नहीं। पर कर-कंकण कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'हाथ में पड़ा हुआ कड़ा'। इस प्रकार का जहाँ अभिप्राय होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(३४) काकतालीय न्याय—किसी ताड़ के पेड़ के नीचे कोई पथिक लेटा था और ऊपर एक कौवा बैठा था। कौवा किसी ओर को उड़ा और उसके उड़ने के साथ ही ताड़ का एक पका हुआ फल नीचे गिरा। यद्यपि फल पककर आपसे आप गिरा था पर पथिक दोनों बातों को साथ होते देख यही समझा कि कौवे के उड़ने से ही तालफल गिरा। जहाँ दो बातें संयोग से इस प्रकार एक साथ हो जाती हैं वहाँ उनमें परस्पर कोई संबंध न होते हुए भी लोग संबंध समझ लेते हैं। ऐसा संयोग होने पर यह कहावत कही जाती है।

(३५) काकदध्युपघातक न्याय—"कौवे से दही बचाना" कहने से जिस प्रकार "कुत्ते बिल्ली आदि सब जंतुओं से बचाना" समझ लिया जाता है उसी प्रकार जहाँ किसी वाक्य का अभिप्राय होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(३६) काकदंतगवेषण न्याय—कौवे का दाँत ढूँढना निष्फल है अतः निष्फल प्रयत्न के संबंध में यह न्याय कहा जाता है।

(३७) काकाक्षिगोलक न्याय—कहते हैं कौवे के एक ही पुतली होती है जो प्रयोजन के अनुसार कभी इस आँख में कभी उस आँख में जाती है। जहाँ एक ही वस्तु दो स्थानों में कार्य्य करे वहाँ के लिये यह कहावत है।

(३८) कारणगुणप्रक्रम न्याय—कारण का गुण कार्य में भी पाया जाता है। जैसे सूत का रूप आदि उससे बुने कपड़े में।

(३९) कुशकाशावलंबन न्याय—जैसे डूबता हुआ आदमी कुश-काँस जो कुछ पाता है उसी को सहारे के लिये पकड़ता है, उसी प्रकार जहाँ कोई दृढ़ आधार न मिलने पर लोग इधर उधर की बातों का सहारा लेते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है। डूबते को तिनके का सहारा बोलते भी हैं।

नोट—संज्ञा पुं० [अं०] (१) टाँकने या लिखने का काम। ध्यान रहने के लिये लिख लेने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) लिखा हुआ परचा। पत्र। चिट्ठी।

यौ०—नोट-पेपर।

(३) टिप्पणी। आशय या अर्थ प्रकट करनेवाला लेख। (४) सरकार की ओर से जारी किया हुआ वह कागज जिस पर कुछ रुपयों की संख्या रहती है और यह लिखा रहता है कि सरकार से इतना रुपया मिल जायगा। सरकारी हुंडी।

विशेष—हिंदुस्तान में नोट दो प्रकार का होता है एक करेंसी, दूसरा प्रामिसरी। करेंसी नोट बराबर सिक्कों के स्थान पर चलता है और उसका रुपया जब चाहें तब मिल सकता है। प्रामिसरी नोट पर केवल सूद मिलता रहता है। सरकार माँगने पर उसका रुपया देने के लिये बाध्य नहीं है। प्रामिसरी नोट का भाव घटता बढ़ता है।

नोट-पेपर—संज्ञा पुं० [अं०] चिट्ठी लिखने का कागज।

नोट-बुक—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कापी या बही जिस पर कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय।

नोटिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) विज्ञप्ति। सूचना। (२) विज्ञापन। इश्तिहार।

विशेष—इस शब्द को कुछ लोग पुंलिंग भी बोलते हैं।

नोदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेरणा। चलाने या हाँकने का काम। (२) बैलों को हाँकने की छड़ी या कोड़ा। प्रतोद। पैना। औंगी। उ०—मीनरथ सारथी के नोदन नवीने हैं।—केशव। (३) खंडन।

नोन—†संज्ञा पुं० [सं० लवण, हिं० लोन] नमक।

नोनचा—संज्ञा पुं० [हिं० नोन+फा० अचार] (१) नमकीन अचार। (२) नमक में डाली हुई आम की फाकों की खटाई।

संज्ञा पुं० [हिं० नोन+क्षार] वह भूमि जहाँ लोनी बहुत हो। लोनी जमीन।

नोनछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोन+क्षार] लोनी मिट्टी।

नोनहरा—संज्ञा पुं० [?] पैसा। (गंधर्वों की बोली)

नोना—संज्ञा पुं० [सं० लवण, हिं० नोन] [स्त्री० नोनी] (१) नमक का अंश जो पुरानी दीवारों तथा सीड़ की जमीन में लगा मिलता है। (२) लोनी मिट्टी। † (३) शरीफा। सीताफल। आत। (४) एक कीड़ा जो नाव या जहाज के पेंदे में लग कर उसे कमजोर कर देता है। उधई कीड़ा।

† वि० [स्त्री० नोनी] (१) नमक मिला। खारा। जैसे, नोना पानी, नोनी मिट्टी। (२) लावण्यमय। सलोना। सुंदर। (३) अच्छा। बढ़िया।

क्रि० स० दे० "नोवना"।

नोना चमारी—संज्ञा स्त्री० एक प्रसिद्ध जादूगरनी जिसकी दोहाई अब तक मंत्रों में दी जाती है। ऐसा माना जाता है कि यह कामरूप देश की थी।

नोनिया—संज्ञा पुं० [हिं० नोना] लोनी मिट्टी से नमक निकालनेवाली एक जाति।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० नोन] एक भाजी। लोनिया। अमलोनी।

नोनी—† संज्ञा स्त्री० [सं० लवण] (१) लोनी मिट्टी। (२) लोनिया। अमलोनी का पौधा।

वि० स्त्री० [हिं० नोना] (१) सुंदर। रूपवती। (२) अच्छी। बढ़िया।

नोनो—† * वि० [हिं० लोन, लोना] [स्त्री० नोनी] (१) सलोना। सुंदर। (२) अच्छा। भला। बढ़िया।

नोर—* वि० [सं० नवल] नवीन। नया। उ०—सित सरोज फूले छतै इत इंदीवर नोर। शशिमंडल यहि ओर जनु विषमंडल यहि ओर।—गुमान।

नोल—*वि० दे० "नवल"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] चिड़िया की चोंच।

नोवना—† क्रि० स० [सं० ह्र, हिं० नधना, नहना] दुहते समय रस्सी से गाय का पैर बाँधना। उ०—बछरा छोरि खरिक को दीनो आप कान्ह तन सुध बिसराई। नोवत वृषभ निकसि गैया गई हँसत सखा कहा दुहत कन्हाई।—सूर।

नोहर—† वि० [सं० नोपलभ्य, प्रा० नोलह, या मनोहर] (१) अलभ्य। दुर्लभ। जल्दी न मिलनेवाला। (२) अनोखा। अद्भुत। उ०—अति सुकुमार सरीर मनोहर नोहर नैन विसाला।—रघुराज।

नौंधरई, नौंधराई, नौंधरी—† संज्ञा स्त्री० दे० "नामधराई"।

नौ—वि० [सं० नव] जो गिनती में आठ और एक हो। एक कम दस।

मुहा०—नौ दो ग्यारह होना=देखते देखते भाग जाना। चलता होना। चल देना। भाग जाना। नौ तेरह बाइस बताना=हीला हवाली करना। टाल मटूल करना। इधर उधर की बातें करके टाल देना। जैसे, जब मैं रुपया माँगने जाता हूँ तब वे नौ तेरह बाइस बताते हैं।

नौकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नौ+कौड़ी] एक प्रकार का जूआ जो तीन आदमी तीन तीन कौड़ियाँ लेकर खेलते हैं।

नौकर—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० नौकरानी] (१) सेवा करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त मनुष्य। टहल या काम-धंधा करने के लिये तनखाह पर रखा हुआ आदमी। भृत्य। चाकर। टहलुवा। खिदमतगार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

यौ०—नौकर-चाकर।

(२) कोई काम करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त किया

(४०) कूपखानक न्याय—जैसे कुआँ खोदनेवाले की देह में लगा हुआ कीचड़ उसी कूएँ के जल से साफ हो जाता है उसी प्रकार राम, कृष्ण आदि को भिन्न भिन्न रूपों में समझने से ईश्वर में भेदबुद्धि का जो दोष लगता है वह उन्हीं की उपासना द्वारा ही अद्वैतबुद्धि हो जाने पर मिट जाता है।

(४१) कूपमंडूक न्याय—समुद्र का मेढक किसी कूएँ में जा पड़ा। कूएँ के मेढक ने पूछा "भाई! तुम्हारा समुद्र कितना बड़ा है"। उसने कहा "बहुत बड़ा"। कूएँ के मेढक ने पूछा 'इस कूएँ के इतना बड़ा' समुद्र के मेढक ने कहा 'कहाँ कूआँ, कहाँ समुद्र॥ समुद्र से बड़ी कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं।' इस पर कूएँ का मेढक जो कूएँ से बड़ी और कोई वस्तु जानता ही न था बिगड़ कर बोला 'तुम झूठे हो, कूएँ से बड़ी कोई वस्तु हो नहीं सकती'। जहाँ परिमित ज्ञान के कारण कोई अपनी जानकारी के ऊपर कोई दूसरी बात मानता ही नहीं वहाँ के लिये यह उक्ति है।

(४२) कूर्मांग न्याय—जिस प्रकार कछुवा जब चाहता है तब अपने सब अंग भीतर समेट लेता है और जब चाहता है बाहर करता है उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि और लय करता है।

(४३) कैमुतिक न्याय—जिसने बड़े बड़े काम किए उसे कोई छोटा काम करते क्या लगता है। उसीके दृष्टांत के लिये यह उक्ति कही जाती है।

(४४) कौंडिन्य न्याय—यह अच्छा है पर ऐसा होता तो और भी अच्छा होता।

(४५) गजभुक्तकपित्थ न्याय—हाथी के खाए हुए कैथ के समान ऊपर से देखने में ठीक पर भीतर भीतर निःसार और शून्य।

(४६) गड्डलिका-प्रवाह न्याय—भेड़ियाधसान।

(४७) गणपति न्याय—एक बार देवताओं में विवाद चला कि सब में पूज्य कौन है। ब्रह्मा ने कहा जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा पहले कर आवे वही श्रेष्ठ समझा जाय। सब देवता अपने अपने वाहनों पर चले। गणेश जी चूहे पर सवार सबके पीछे रहे। इतने में मिले नारद। उन्होंने गणेश जी को युक्ति बताई कि राम-नाम लिखकर उसी की प्रदक्षिणा करके चटपट ब्रह्मा के पास पहुँच जाओ। गणपति ने ऐसा ही किया और देवताओं में वे प्रथम पूज्य हुए। इसी से जहाँ थोड़ी सी युक्ति से बड़ी भारी बात हो जाय वहाँ इसका प्रयोग करते हैं।

(४८) गतानुगतिक न्याय—कुछ ब्राह्मण एक घाट पर तर्पण किया करते थे। वे अपना अपना कुश एक ही स्थान पर रख देते थे जिससे एक का कुश दूसरा ले लेता था। एक दिन पहचान के लिये एक ने अपने कुश को ईंट से दबा दिया। उसकी देखा देखी दूसरे दिन सबने अपने कुश पर ईंट रखी। जहाँ एक की देखादेखी लोग कोई काम करने लगते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(४९) गुडजिह्विका न्याय—जिस प्रकार बच्चे को कड़वी औषध खिलाने के लिये उसे पहले गुड़ देकर फुसलाते हैं उसी प्रकार जहाँ अरुचिकर या कठिन काम कराने के लिये पहले कुछ प्रलोभन दिया जाता है वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(५०) गोवलीवर्द न्याय—'वलीवर्द' शब्द का 'अर्थ है बैल। जहाँ यह शब्द गो के साथ हो वहाँ अर्थ और भी जल्दी खुल जता है। ऐसे शब्द जहाँ एक साथ होते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है।

(५१) घट्टकुटीप्राभात न्याय—एक बनिया घाट के महसूल से बचने के लिये ठीक रास्ता छोड़ ऊभड़खाबड़ स्थानों में रातभर भटकता रहा पर सबेरा होते होते फिर उसी महसूल की छावनी पर पहुँचा और उसे महसूल देना पड़ा। जहाँ एक कठिनाई से बचने के लिये अनेक उपाय निष्फल हों और अंत में उसी कठिनाई में फँसना पड़े वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(५२) घटप्रदीप न्याय—घड़ा अपने भीतर रखे हुए दीप का प्रकाश बाहर नहीं जाने देता। जहाँ कोई अपना ही भला चाहता है दूसरे का उपकार नहीं करता वहाँ यह प्रयुक्त होता है।

(५३) घुणाक्षर न्याय—घुनों के चालने से लकड़ी में अक्षरों के से आकार बन जाते हैं, यद्यपि घुन इस उद्देश्य से नहीं काटते कि अक्षर बनें। इसी प्रकार जहाँ एक काम करने में कोई दूसरी बात अनायास हो जाय वहाँ यह कहा जाता है।

(५४) चंपकपटवास न्याय—जिस कपड़े में चंपे का फूल रखा हो उसमें फूलों के न रहने पर भी बहुत देर तक महँक बनी रहती है। इसी प्रकार विषय भोग का संस्कार भी बहुत काल तक बना रहता है।

(५५) जलतरंग न्याय—अलग नाम रहने पर भी तरंग जल से भिन्न गुण की नहीं होती। ऐसा ही अभेद सूचित करने के लिये इस उक्ति का व्यवहार होता है।

(५६) जलतुंबिका न्याय—(क) तूँबी पानी में नहीं डूबती, डुबाने से ऊपर आ जाती है। जहाँ कोई बात छिपाने से छिपनेवाली नहीं होती वहाँ कहते हैं। (ख) तूँबी के ऊपर मिट्टी कीचड़ आदि लपेट कर उसे पानी में डालें तो वह डूब जाती है पर कीचड़ धोकर यदि पानी में डालें तो नहीं डूबती। इसी प्रकार जीव देहादि के मलों से युक्त रहने पर संसार सागर में निमग्न हो जाता है, और मल आदि छूटने पर पार हो जाता है।

हुआ मनुष्य। वैतनिक कर्मचारी। जैसे तहसीलदार एक सरकारी नौकर है।

मुहा०—(किसी को) नौकर रखना=कार्य्य पर वेतन देकर नियुक्त करना। काम पर लगाना।

नौकरानी—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर+आनी (प्रत्य०)] दासी। घर का काम धंधा करनेवाली स्त्री।

नौकरी—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर+ई (प्रत्य०)] (१) नौकर का काम। सेवा। टहल। खिदमत।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—नौकरी देना या बजाना=नौकरी के काम में लगना। सेवा में तत्पर होना। नौकरी से लगना=नौकर होना। काम पाना। नौकरी पाना।

(२) कोई काम जिसके लिये तनखाह मिलती हो। जैसे, सरकारी नौकरी।

नौकरीपेशा—संज्ञा पुं० [फा०] वह जिसका काम नौकरी करना हो। वह जिसकी जीविका नौकरी से चलती हो।

नौकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका।

नौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। जहाज।

नौग्रही—संज्ञा स्त्री० [सं० नवग्रह] हाथ में पहनने का एक गहना जिसमें नौ कँगूरेदार दाने पाट में गुँथे रहते हैं।

नौची—संज्ञा स्त्री० [फा० नौची=नववधू] वेश्या की पाली हुई लड़की जिसे वह अपना व्यवसाय सिखाती हो।

नौछावर†—संज्ञा स्त्री० दे० "निछावर"।

नौज—अव्य० [सं० नवद्य, प्रा० नवज्ज] (१) ऐसा न हो। ईश्वर न करे। (अनिच्छा-सूचक)। उ०—नगर कोट घर बाहर सूना। नौज होय घर पुरुष विहूना।—जायसी। (२) न हो। न सही। (बेपरवाही) (स्त्रि०)

नौजवान—वि० [फा०] नवयुवक। उठती जवानी का।

नौजवानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] उठती युवावस्था।

नौजा—संज्ञा पुं० [फा० लौज] (१) बादाम। (२) चिलगोजा। उ०—नौजा नरियर नेतरवाला। नीम निसोत चिरौंजी आला।—सूदन।

नौजी—संज्ञा स्त्री० [?] लीची।

नौतन*—वि० दे० "नूतन"।

नौतम*—वि० [सं० नवतम] (१) अत्यंत नवीन। बिल्कुल नया। (२) ताजा।

संज्ञा पुं० [सं० नम्रता] नम्रता। विनय।

नौता—संज्ञा पुं० दे० "न्यौता"।

नौतेरही—संज्ञा स्त्री० [हिं० नौ+तेरह] (१) ककई ईंट। छोटी ईंट। नौ जौ चौड़ी और तेरह जौ लंबी ईंट जो पुरानी चाल के मकानों में लगती थी। (२) एक प्रकार का जूआ जो पासों से खेला जाता है।

नौतोड़—वि० [हिं० नव+तोड़ना] नया तोड़ा हुआ। जो पहले पहल जोता गया हो। जैसे, नौतोड़ खेत या जमीन।

संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो पहली बार जोती गई हो।

नौदसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नौ+दस] एक रीति जिसके अनुसार किसान अपने जमींदार से रुपया उधार लेते हैं और साल भर में ९) रु० के १०) देते हैं।

नौध—संज्ञा पुं० [सं० नव=नया+पौधा] नया पौधा। अँखुवा।

नौधा—संज्ञा पुं० [सं० नव+हिं० पौधा] (१) नील की वह फसल जो वर्षारंभ ही में बोई गई हो। (२) नए फलदार पौधों का बगीचा। नया लगा हुआ बगीचा।

* वि० दे० "नवधा"।

नौनगा—संज्ञा पुं० [हिं० नौ+नग] बाहु पर पहनने का एक गहना जिसमें नौ नग जड़े होते हैं। इसमें नौ दाने होते हैं और प्रत्येक दाने में भिन्न भिन्न रंग के नग जड़े जाते हैं। इसे "नौरतन" भी कहते हैं।

नौना—क्रि० अ० [सं० नमक] (१) नवना। झुकना। (२) झुक कर टेढ़ा होना।

नौसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोन+सार। सं० लवणशाला] वह स्थान जहाँ नोनिया लोग लोनी मिट्टी से नमक बनाते हैं।

नौबढ़—वि० [सं० नव+हिं० बढ़ना] हाल में बढ़ा हुआ। नव। जिसे तुच्छ या हीन दशा से अच्छी दशा में आए थोड़े ही दिन हुए हों। उ०—लखी लखन कौतुक धरि धीरा। काह करत बढ़ि नौबढ़ बीरा।—रघुराज।

नौबढ़िया,† **नौबढ़ुवा**—वि० दे० "नौबढ़"।

नौबत—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बारी। पारी। जैसे, नौबत का बुखार। (२) गति। दशा। हालत। जैसे, घर चलो देखो तुम्हारी क्या नौबत होती है।

क्रि० प्र०—करना।—है

मुहा०—नौबत को पहुँचना=दशा को प्राप्त होना। हालत में होना।

(३) स्थिति में कोई परिवर्तन करनेवाली बातों का घटना। उपस्थित दशा। संयोग। जैसे, ऐसा काम न करो जिससे भागने की नौबत आवे।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

(४) वैभव, उत्सव या मंगलसूचक वाद्य जो पहर पहर भर देवमंदिरों, राजप्रासादों या बड़े आदमियों के द्वार पर बजता है। समय समय पर बजनेवाला बाजा।

विशेष—नौबत में प्रायः शहनाई और नगाड़े बजाते हैं।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

यौ०—नौबतखाना।

मुहा०—नौबत झड़ना=नौबत बजना। नौबत बजना=(१) आनंद-उत्सव होना। (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा होना।

(५७) जलानयन न्याय—पानी 'लाओ' कहने से उसके साथ बरतन का लाना भी समझ लिया जाता है क्योंकि बरतन के बिना पानी आवेगा किसमें।

(५८) तिलतंडुल न्याय—चावल और तिल की तरह मिली रहने पर भी अलग अलग दिखाई देनेवाली वस्तुओं के संबंध में।

(५९) तृणजलौका न्याय—दे० "तृणजलौका"।

(६०) दंडचक्र न्याय—जैसे घड़ा बनने में दंड, चक्र आदि कई कारण हैं वैसे ही जहाँ कोई बात अनेक कारणों से होती है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(६१) दंडापूप न्याय—कोई डंडे में बँधे हुए मालपूए छोड़कर कहीं गया। आने पर उसने देखा कि डंडे का बहुत सा भाग चूहे खा गए हैं। उसने सोचा कि जब चूहे डंडा तक खा गए तब मालपूए को उन्होंने कब छोड़ा होगा। जब कोई दुष्कर और कष्टसाध्य कार्य्य हो जाता है तब उसके साथ ही लगा हुआ सुखद और सहज कार्य्य अवश्य ही हुआ होगा यही सूचित करने के लिये यह कहावत कहते हैं।

(६२) दशम न्याय—दस आदमी एक साथ कोई नदी तैरकर पार गए। पार जाकर वे यह देखने के लिये सब को गिनने लगे कि कोई छूटा या बह तो नहीं गया। पर जो गिनता वह अपने को छोड़ देता इससे गिनने में नौ ही ठहराते। अंत में उस एक खोए हुए के लिये सब ने रोना शुरू किया। एक चतुर पथिक ने आकर उनसे फिर से गिनने के लिये कहा। जब एक उठकर नौ तक गिन गया तब पथिक ने कहा "दसवें तुम"। इस पर सब प्रसन्न हो गए। वेदांती इस न्याय का प्रयोग यह दिखाने के लिये करते हैं कि गुरु के 'तत्त्वमसि' आदि उपदेश सुनने पर अज्ञान और तज्जनित दुःख दूर हो जाता है।

(६३) देहलीदीपक न्याय—देहली पर दीपक रखने से भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला रहता है। जहाँ एक ही आयोजन से दो काम सधें या एक शब्द या बात दोनों ओर लगे वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।

(६४) नष्टाश्वदग्धरथ न्याय—एक आदमी रथ पर वन में जाता था। वन में आग लगी और उसका घोड़ा मर गया। वह बहुत व्याकुल घूमता था कि इतने में एक दूसरा आदमी मिला जिसका रथ जल गया था और घोड़ा बचा था। दोनों ने मिलकर काम चला लिया। इस प्रकार जहाँ दो आदमी मिलकर एक दूसरे की त्रुटि की पूर्त्ति करके काम चलाते हैं वहाँ इसे कहते हैं।

(६५) नारिकेलफलाम्बुन्याय—नारिकेल के फल में जिस प्रकार न जाने कहाँ से कैसे जल आ जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी किस प्रकार आती है नहीं जान पड़ता।

(६६) निम्नगाप्रवाह न्याय। नदी का प्रवाह जिस ओर को जाता है उधर रुक नहीं सकता। इसी प्रकार के अनिवार्य्य क्रम के दृष्टांत में यह कहावत है।

(६७) नृपनापितपुत्र न्याय—किसी राजा के यहाँ एक नाई नौकर था। एक दिन राजा ने उससे कहा कहीं से सब से सुंदर बालक लाकर मुझे दिखाओ। नाई को अपने पुत्र से बढ़कर और कोई सुंदर बालक कहीं न दिखाई पड़ा और वह उसी को लेकर राजा के सामने आया। राजा उस काले कलूटे बालक को देख बहुत क्रुद्ध हुआ, पर पीछे उसने सोचा कि प्रेम या राग के वश इसे अपने लड़के सा सुंदर और कोई दिखाई ही न पड़ा। राग के वश जहाँ मनुष्य अंधा हो जाता है और उसे अच्छे बुरे की पहचान नहीं रह जाती वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।

(६८) पंकप्रक्षालन न्याय—कीचड़ लग जायगा तो धो डालेंगे इसकी अपेक्षा यही विचार अच्छा है कि कीचड़ लगने ही न पावे।

(६९) पंजरचालन न्याय—दस पक्षी यदि किसी पिंजड़े में बंद कर दिए जायँ और वे सब एक साथ यत्न करें तो पिंजड़े को इधर उधर चला सकते हैं। दस ज्ञानेंद्रियाँ और दस कर्मेंद्रियाँ प्राणरूप क्रिया उत्पन्न करके देह को चलाती हैं इसी के दृष्टांत में सांख्यवाले उक्त न्याय कहते हैं।

(७०) पाषाणेष्टक न्याय। ईंट भारी होती है पर उससे भी भारी पत्थर होता है।

(७१) पिष्टपेषण न्याय—पीसे को पीसना निरर्थक है। किए हुए काम को व्यर्थ जहाँ कोई फिर करता है वहाँ के लिये यह उक्ति है।

(७२) प्रदीप न्याय—जिस प्रकार तेल, बत्ती और आग इन भिन्न वस्तुओं के मेल से दीपक जलता है उसी प्रकार सत्व रज और तम इन परस्पर भिन्न गुणों के सहयोग से देह धारण का व्यापार होता है। (सांख्य)

(७३) प्रापाणक न्याय—जिस प्रकार घी चीनी आदि कई वस्तुओं को एकत्र करने से बढ़िया मिठाई बनती है उसी प्रकार अनेक उपादानों के योग से सुंदर वस्तु तैयार होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही जाती है। साहित्यवाले विभाव, अनुभाव आदि द्वारा रस का परिपाक सूचित करने के लिये इसका प्रयोग प्रायः करते हैं।

(७४) प्रासादवासि न्याय—महल में रहनेवाला यद्यपि कामकाज के लिये नीचे उतरकर बाहर इधर उधर भी जाता है पर उसे प्रासादवासी ही कहते हैं। इसी प्रकार जहाँ जिस विषय की प्रधानता होती है वहाँ उसी का उल्लेख होता है।

(७५) फलवत्सहकार न्याय—आम के पेड़ के नीचे पथिक छाया के लिये ही जाता है पर उसे फल भी मिल जाता है।

नौबत बजाना=(१) आनंद उत्सव करना। खुशी मनाना। (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा करना। दबदबा दिखाना। आतंक प्रकट करना। नौबत बजाकर=डंके की चोट। खुले आम। नौबत की टकोर=(१) डंके की चोट। (२) डंके या नगाड़े की आवाज।

नौबतखाना–संज्ञा पुं० [फा०] फाटक के ऊपर बना हुआ वह स्थान जहाँ बैठकर नौबत बजाई जाती है। नक्कारखाना।

नौबती–संज्ञा पुं० [फा० नौबत+ई० (प्रत्य०)] (१) नौबत बजानेवाला। नक्कारची। (२) फाटक पर पहरा देनेवाला। पहरेदार। (३) कोतल घोड़ा। बिना सवार का सजा हुआ घोड़ा। (४) बड़ा खेमा या तंबू।

नौबतीदार–संज्ञा पुं० [फा० नौबतदार] (१) खेमे पर पहरा देनेवाला। संतरी। (२) दरबान। द्वारपाल।

नौबरार–संज्ञा पुं० [फा०] वह भूमि जो किसी नदी के हट जाने से निकल आती है।

नौमासा–संज्ञा पुं० [सं० नवमास] (१) गर्भ का नवाँ महीना। (२) वह रीति रस्म जो गर्भ नौ महीने का हो जाने पर की जाती है और जिसमें पंजीरी मिठाई आदि बाँटी जाती है।

नौमि*–क्रि० स० [सं० नमामि का अपभ्रंश] एक वाक्य जिसका अर्थ है मैं नमस्कार करता हूँ। उ०—नौमि निरंतर श्री रघुवीरं।—तुलसी।

नौमी–संज्ञा स्त्री० [सं० नवमी] पक्ष की नवीं तिथि।

नौरंग–संज्ञा पुं० [सं० नव+रंग] एक प्रकार की चिड़िया।

†*संज्ञा पुं० औरंग (औरंगज़ेब) का रूपांतर।

नौरंगी†–संज्ञा स्त्री० दे० "नारंगी"।

नौरतन–संज्ञा पुं० दे० "नवरत्न"।

संज्ञा पुं० [सं० नवरत्न] नौनगा नाम का गहना।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चटनी जिसमें ये नौ चीज़ें पड़ती हैं—खटाई, गुड़, मिर्च, शीतलचीनी, केसर, इलायची, जावित्री, सौंफ और जीरा।

नौरस–वि० [सं० नव=नया+रस] (१) (फल) जिसका रस नया अर्थात् ताजा हो। नया पका हुआ (फल)। ताजा (फल)। (२) नवयुवक।

नौरातर†–संज्ञा पुं० दे० "नवरात्र"।

नौरूप–संज्ञा पुं० [हिं० नव+रोपना] नील की फसल की पहली कटाई। दे० "नील"।

नौरोज़–संज्ञा पुं० [फा०] (१) पारसियों में नए वर्ष का पहला दिन। इस दिन बहुत आनंद उत्सव मनाया जाता था। (२) त्योहार का दिन। (३) खुशी का दिन। कोई शुभ दिन।

नौल–वि० दे० "नवल"।

संज्ञा पुं० [देश०] जहाज़ पर माल लादने का भाड़ा।

नौलक्खा–वि० दे० "नौलखा"।

नौलखा–वि० [हिं० नौ+लाख] नौ लाख का। जिसका मूल्य नौ लाख हो। जड़ाऊ और बहुमूल्य। जैसे, नौलखा हार।

नौलखी–संज्ञा स्त्री० [?] ताने को दबाने के लिये एक लकड़ी जिसमें इधर उधर वजनी पत्थर बँधे रहते हैं। (जुलाहे)

नौला†–संज्ञा पुं० दे० "नेवला"।

नौलासी–वि० [?] नर्म। मुलायम। कोमल।

नौवाब–संज्ञा पुं० दे० "नवाब"।

नौवाबी–संज्ञा स्त्री० दे० "नवाबी"।

नौशा–संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० नौशी] दूल्हा। वर।

नौशी–संज्ञा स्त्री० [फा०] नववधू। दुलहिन।

नौशेरवाँ–संज्ञा पुं० [फा०] फारस का एक परम प्रसिद्ध न्यायी और प्रतापी बादशाह जो सन् ५३१ ई० में अपने पिता कुबाद के मरने पर सिंहासन पर बैठा। रोमन लोगों को इसने युद्ध में कई बार परास्त किया। मुसलमान लेखकों ने तो लिखा है कि इसने रोम के बादशाह को कैद किया था। रोम का सम्राट् उस समय जस्टिनियन था। नौशेरवाँ की अंटियोकस पर विजय, शामदेश तथा भूमध्यसागर के अनेक स्थानों पर अधिकार तथा साइबेरिया यूक्साइन आदि प्रदेशों पर आक्रमण रोम के इतिहास में भी प्रसिद्ध है। रोम का बादशाह जस्टिनियन पारस्य साम्राज्य के अधीन होकर प्रतिवर्ष तीस हजार अशरफियाँ कर देता था। ८० वर्ष की वृद्धावस्था में नौशेरवाँ ने रोम राज्य के विरुद्ध चढ़ाई की थी और दारा तथा शाम आदि देशों को अधिकृत किया था। ४८ वर्ष राज्य करके यह परम प्रतापी और न्यायी बादशाह परलोक सिधारा।

फारसी किताबों में नौशेरवाँ के न्याय की बहुत सी कथाएँ हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इसी बादशाह के समय में मुसलमानों के पैगंबर मुहम्मद साहब का जन्म हुआ जिनके मत के प्रभाव से आगे चलकर पारस की प्राचीन आर्य्य सभ्यता का लोप हुआ।

नौसत–संज्ञा [हिं० नौ+सात] सोलहो शृंगार। सिंगार। उ०—(क) नवसत साजि चली सब बारी।—जायसी। (ख) नौसत साजे चली गोपिका गिरवर पूजा हेत।—सूर।

नौसरा–संज्ञा पुं० [हिं० नौ+सर] नौ लड़ी की माला। नौलरा हार या गजरा।

नौसादर–संज्ञा पुं० [सं० नर+सादर। फा० नौशादर] एक तीक्ष्ण झालदार क्षार या नमक जो दो वायव्य द्रव्यों के योग से बनता है।

विशेष—यह क्षार वायव्य रूप में हवा में अल्प मात्रा में मिला

इसी प्रकार जहाँ एक लाभ होने से दूसरा लाभ ही हो वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(७६) बहुवृकाकृष्ट न्याय—एक हिरन को यदि बहुत से भेड़िए लगें तो उसके अंग एक स्थान पर नहीं रह सकते। जहाँ किसी वस्तु के लिये बहुत से लोग खींचा खींची करते हैं वहाँ वह यथास्थान वा समूची नहीं रह सकती।

(७७) बिलवर्तिगोधा न्याय—जिस प्रकार बिल में स्थित गोह का विभाग आदि नहीं हो सकता उसी प्रकार जो वस्तु अज्ञात है उसके संबंध में भला बुरा कुछ नहीं कहा जा सकता।

(७८) ब्राह्मणग्राम न्याय—जिस गाँव में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक होती है उसे ब्राह्मणों का गाँव कहते हैं यद्यपि उसमें कुछ और लोग भी बसते हैं। औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही नाम लिया जाता है यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(७९) ब्राह्मणश्रमण न्याय—ब्राह्मण यदि अपना धर्म्म छोड़ श्रमण (बौद्ध भिक्षुक) भी हो जाता है तब भी उसे ब्राह्मण श्रमण कहते हैं। एक वृत्ति को छोड़ जब कोई दूसरी वृत्ति ग्रहण करता है तब भी लोग उसकी पूर्व वृत्ति का निर्देश करते हैं।

(८०) मज्जनोन्मज्जन न्याय—तैरना न जाननेवाला जिस प्रकार जल में पड़कर डूबता उतराता है उसी प्रकार मूर्ख या दुष्ट वादी प्रमाण आदि ठीक न दे सकने के कारण क्षुब्ध और व्याकुल होता है।

(८१) डूकतोलन न्याय—एक धूर्त्त बनिया तराजू पर सौदे के साथ मेढक रखकर तौला करता था। एक दिन मेढक कूद कर भागा और वह पकड़ा गया। छिपाकर की हुई बुराई का भंडा एक दिन फूटता है।

(८२) रज्जुसर्प न्याय—जब तक दृष्टि ठीक नहीं पड़ती तब तक मनुष्य रस्सी को साँप समझता है इसी प्रकार जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तब तक मनुष्य दृश्य जगत् को सत्य समझता है, पीछे ब्रह्मज्ञान होने पर उसका भ्रम दूर होता है और वह समझता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (वेदांती)

(८३) राजपुत्रव्याध न्याय—कोई राजपुत्र बचपन में एक व्याध के घर पड़ गया और वहीं पलकर अपने को व्याधपुत्र ही समझने लगा। पीछे जब लोगों ने उसे उसका कुल बताया तब उसे अपना ठीक ठीक ज्ञान हुआ। इसी प्रकार जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तब तक मनुष्य अपने को न जाने क्या समझा करता है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वह समझता है कि "मैं ब्रह्म हूँ"। (वेदांती)

(८४) राजपुरप्रवेश न्याय—राजा के द्वार पर जिस प्रकार बहुत से लोगों की भीड़ रहती है पर सब लोग बिना किसी प्रकार का गड़बड़ या हल्ला किए चुपचाप कायदे से खड़े रहते हैं उसी प्रकार जहाँ सुव्यवस्थापूर्वक कार्य्य होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(८५) रात्रिदिवसन्याय—रात दिन का फर्क। भारी फर्क।

(८६) लूतातंतु न्याय—जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से ही सूत निकालकर जाला बनाती है और फिर आप ही उसका संहार करती है इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही सृष्टि करता है और अपने में उसे लय करता है।

(८७) लोष्टलगुड़ न्याय—ढेला तोड़ने के लिये जैसे डंडा होता है उसी प्रकार जहाँ एक का दमन करनेवाला दूसरा होता है वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(८८) लोहचुंबक न्याय—लोहा गतिहीन और निष्क्रिय होने पर भी चुंबक के आकर्षण से उसके पास जाता है उसी प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी प्रकृति के साहचर्य्य से क्रिया में तत्पर होता है। (सांख्य)

(८९) वरगोष्ठी न्याय—जिस प्रकार वरपक्ष और कन्यापक्ष के लोग मिलकर विवाह रूप एक ऐसे कार्य्य का साधन करते हैं जिससे दोनों का अभीष्ट सिद्ध होता है उसी प्रकार जहाँ कई लोग मिलकर सबके हित का कोई काम करते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(९०) वह्निधूम न्याय—धूमरूप कार्य्य देखकर जिस प्रकार कारणरूप अग्नि का ज्ञान होता है उसी प्रकार कार्य्य द्वारा कारण अनुमान के संबंध में यह उक्ति है। (नैयायिक)

(९१) बिल्वखल्वाट न्याय—धूप से व्याकुल गंजा छाया के लिये बेल के पेड़ के नीचे गया। वहाँ उसके सिर पर एक बेल टूट कर गिरा। जहाँ इष्टसाधन के प्रयत्न में अनिष्ट होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(९२) विषवृक्ष न्याय—विष का पेड़ लगाकर भी कोई उसे अपने हाथ से नहीं काटता। अपनी पाली पोसी वस्तु का कोई अपने हाथ से नाश नहीं करता।

(९३) वीचितरंग न्याय—एक के उपरांत दूसरी, इस क्रम से बराबर आनेवाली तरंगों के समान। नैयायिक ककारादि वर्णों की उत्पत्ति वीचितरंग न्याय से मानते हैं।

(९४) बीजांकुर न्याय—बीज से अंकुर है या अंकुर से बीज है यह ठीक नहीं कहा जा सकता। न बीज के बिना अंकुर हो सकता है न अंकुर के बिना बीज। बीज और अंकुर का प्रवाह अनादि काल से चला आता है। दो संबद्ध वस्तुओं के नित्य प्रवाह के दृष्टांत में वेदांती इस न्याय को कहते हैं।

रहता है और जंतुओं के शरीर के सड़ने गलने से इकट्ठा होता है। सींग, खुर, हड्डी बाल आदि का भभके में अर्क खींचकर यह अकसर निकाला जाता है। गैस के कारखानों में पत्थर के कोयले को भभके पर चढ़ाने से जो एक प्रकार का पानी सा पदार्थ छूटता है आजकल बहुत सा नौसादर उसी से निकाला जाता है। पहले लोग ईंट के पजावों से भी जिनमें मिट्टी के साथ कुछ जंतुओं के अंग भी मिलकर जलते थे, यह क्षार निकालते थे॥ नौसादर औषध तथा कला कौशल के व्यवहार में आता है।

वैद्यक में नौसादर दो प्रकार का कहा गया है। एक कृत्रिम जो और क्षारों से बनाया जाता है, दूसरा अकृत्रिम जो जंतुओं के मूत्र पुरीष आदि के क्षार से निकाला जाता है। आयुर्वेद के अनुसार नौसादर शोधनाशक, शीतल तथा यकृत, प्लीहा, ज्वर, अर्बुद, सिरदर्द, खाँसी इत्यादि में उपकारी है।

पर्या०—नरसार। सादर। चक्रक्षार। विदारण। अमृतक्षार। चूलिका लवण। क्षारश्रेष्ठ।

नौसिख–वि० दे० "नौसिखिया"।

नौसिखिया–वि० [सं० नवशिक्षित, प्रा० नवसिक्खिअ] जिसने नया नया सीखा हो। जिसने कोई काम हाल में सीखा हो। जो सीखकर पक्का न हुआ हो। जो दक्ष या कुशल न हुआ हो।

नौसिखुवा–वि० दे० "नौसिखिया"।

नौहँड–संज्ञा पुं० [सं० नव = नया + भांड, हिं० हाँडी] मिट्टी की नई हाँडी। कोरी हँडिया।

नौहँड़ा–संज्ञा पुं० [सं० नव + भांड] पितृपक्ष। कनागत (जिसमें मिट्टी के पुराने बरतन फेंक दिए जाते हैं और नए रखे जाते हैं)।

न्यंक–संज्ञा पुं० [सं०] रथ का एक अंग।

न्यंकु–वि० [सं०] नितांत गमनशील। बहुत दौड़नेवाला।

संज्ञा पुं० मृगभेद। एक प्रकार का हिरन। बारहसिंगा।

न्यंकुभूरुह–संज्ञा पुं० [सं०] श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा।

न्यंकुसारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके पहले और दूसरे चरण में १२,१२ अक्षर और तीसरे और चौथे चरण में ८, ८ अक्षर होते हैं।

न्यंचित–वि० [सं०] अध क्षिप्त। नीचे फेंका या डाला हुआ।

न्यंजलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीचे की ओर की हुई अंजली या हथेली।

न्यग्रोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वट वृक्ष। बरगद। (२) शमीवृक्ष। (३) बाहु। (४) लंबाई की एक नाप। उतनी लंबाई जितनी दोनों हाथों के फैलाने से होती है। व्याम परिमाण। पुरसा। (५) विष्णु। (६) मोहनौषधि। (७) महादेव। (८) उग्रसेन के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)। (९) मूसाकानी। मूषिकपर्णी।

न्यग्रोधपरिमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी लंबाई चौड़ाई एक व्याम या पुरसा हो। ऐसे पुरुष त्रेता में राज्य करते थे। (मत्स्यपुराण)

न्यग्रोधपरिमंडला–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का एक भेद। वह स्त्री जिसके स्तन कठोर, नितंब विशाल और कटि क्षीण हो।

न्यग्रोधा–संज्ञा स्त्री [सं०] न्यग्रोधी।

न्यग्रोधादिगण–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वृक्षों का एक गण या वर्ग जिसके अंतर्गत ये वृक्ष माने जाते हैं—बरगद, पीपल, गूलर, पाकर, महुआ, अर्जुन, आम, कुसुम, आमड़ा, जामुन, चिरौंजी, मांसरोहिणी, कदम, बेर, तेंदू, सलई, तेजपत्ता, लोध, सावा, भिलावाँ, पलाश, तुन, घुँघची या मुलेठी।

न्यग्रोधिक–वि० [सं०] (स्थान) जहाँ बहुत से वट वृक्ष हों।

न्यग्रोधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी लता।

न्यग्रोधी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी।

न्यच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर काले चकत्ते पड़ जाते हैं।

न्यर्बुद–वि० [सं०] दस अर्बुद। दस अरब (संख्या)।

न्यर्बुदि–संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र का नाम। (अथर्व०)

न्यस्त–वि० [सं०] (१) रखा हुआ। धरा हुआ। (२) स्थापित। बैठाया या जमाया हुआ। (३) चुनकर सजाया हुआ। (४) क्षिप्त। डाला हुआ। फेंका हुआ। (५) त्यक्त। छोड़ा हुआ।

संज्ञा पुं० धरोहर रखा हुआ। अमानत रखा हुआ।

न्यस्तशस्त्र–वि० [सं०] जिसने हथियार रख दिए हों।

संज्ञा पुं० पितृलोक।

न्यह्न–संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या का सायंकाल।

न्यांकव–संज्ञा पुं० [सं०] न्यंकु का मृगचर्म। बारहसिंघे का चमड़ा।

न्याइ–संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।

न्याउ–संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।

न्याति*–संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञाति, प्रा० ञाति] जाति। उ०—मधुकर कहा कारे की न्याति ? ज्यों जलमीन कमल मधुपन को छिन नहिं प्रीति खगाति।—सूर।

न्याद–संज्ञा पुं० [सं०] आहार।

न्याय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उचित बात। नियम के अनुकूल बात। हक बात। नीति। इंसाफ। जैसे, (क) न्याय तो यही है कि तुम उसका रुपया फेर दो। (ख) अपराध कोई करे और दंड कोई पावे यह कहाँ का न्याय है ? (२) सद्-सद्विवेक। दो पक्षों के बीच निर्णय। प्रमाणपूर्वक निश्चय। विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निबटेरा। किसी मामले मुकदमे में दोषी और निर्दोष, अधिकारी और अनधिकारी आदि का निर्धारण। जैसे, (क) राजा अच्छा न्याय करता है। (ख) इस अदालत में ठीक न्याय नहीं होता।

(९५) वृक्षप्रकंपन न्याय—एक आदमी पेड़ पर चढ़ा। नीचे से एक ने कहा कि यह डाल हिलाओ, दूसरे ने कहा वह डाल हिलाओ। पेड़ पर चढ़ा हुआ आदमी कुछ स्थिर न कर सका कि किस डाल को हिलाऊँ। इतने में एक आदमी ने पेड़ का धड़ ही पकड़ कर हिला डाला जिससे सब डालें हिल गईं। जहाँ कोई एक बात सब के अनुकूल हो जाती है वहाँ इसका प्रयोग होता है।

(९६) वृद्धकुमारिका न्याय या वृद्धकुमारी-वाक्य न्याय—कोई कुमारी तप करती करती बुड्ढी हो गई। इंद्र ने उससे कोई एक वर माँगने के लिये कहा। उसने वर माँगा कि "मेरे बहुत से पुत्र सोने के बरतनों में खूब घी दूध और अन्न खायँ"। इस प्रकार उसने एक ही वाक्य में पति पुत्र तो धन धान्य सब कुछ माँग लिया। जहाँ एक की प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(९७) शतपत्रभेद न्याय—सौ पत्ते एक साथ रखकर छेदने से जान पड़ता है कि सब एक साथ एक काल में ही छिद गए पर वास्तव में एक एक पत्ता भिन्न भिन्न समय में छिदा। कालांतर की सूक्ष्मता के कारण इसका ज्ञान नहीं हुआ। इस प्रकार जहाँ बहुत से कार्य्य भिन्न भिन्न समयों में होते हुए भी एक ही समय में हुए जान पड़ते हैं वहाँ यह दृष्टांतवाक्य कहा जाता है। (सांख्य)

(९८) श्यामरक्त न्याय। जिस प्रकार कच्चा काला घड़ा पकने पर अपना श्याम गुण छोड़कर रक्तगुण धारण करता है उसी प्रकार पूर्व गुण का नाश और अपर गुण का धारण सूचित करने के लिये यह उक्ति कही जाती है।

(९९) श्यालकशुनक न्याय—किसी ने एक कुत्ता पाला था और उसका नाम अपने साले का नाम रखा था। जब वह कुत्ते को नाम लेकर गालियाँ देता तब उसकी स्त्री अपने भाई का अपमान समझकर बहुत चिढ़ती। जिस उद्देश्य से कोई बात नहीं की जाती वह यदि उससे हो जाती है तो यह कहावत कही जाती है।

(१००) संदंशपतित न्याय—सँड़सी जिस प्रकार अपने बीच में आई हुई वस्तु को पकड़ती है उसी प्रकार जहाँ पूर्व और उत्तर पदार्थ द्वारा मध्यस्थित पदार्थ का ग्रहण होता है वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है।

(१०१) समुद्रवृष्टि न्याय—समुद्र में पानी बरसने से जैसे कोई उपकार नहीं होता उसी प्रकार जहाँ जिस बात की कोई आवश्यकता या फल नहीं वहाँ यदि वह की जाती है तो यह उक्ति चरितार्थ की जाती है।

(१०२) सर्वापेक्षा न्याय—बहुत से लोगों का जहाँ निमंत्रण होता है वहाँ यदि कोई सबके पहले पहुँचता है तो उसे सबकी प्रतीक्षा करनी होती है। इस प्रकार जहाँ किसी काम के लिये सबका आसरा देखना होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(१०३) सिंहावलोकन न्याय—सिंह शिकार मारकर जब आगे बढ़ता है तब पीछे फिर फिरकर देखता जाता है। इसी प्रकार जहाँ अगली और पिछली सब बातों की एक साथ आलोचना होती है वहाँ इस उक्ति का व्यवहार होता है।

(१०४) सूचीकटाह न्याय—सूई बनाकर कड़ाह बनाने के समान। किसी लोहार से एक आदमी ने आकर कड़ाह बनाने को कहा। थोड़ी देर में एक दूसरा आया, उसने सूई बनाने के लिये कहा। लोहार ने पहले सूई बनाई तब कड़ाह। सहज काम पहले करना तब कठिन काम में हाथ लगाना इसीके दृष्टांत में यह कहा जाता है।

(१०५) सुंदोपसुंद न्याय—सुंद और उपसुंद दोनों भाई बड़े बली दैत्य थे। एक स्त्री पर दोनों मोहित हुए। स्त्री ने कहा दोनों में जो अधिक बलवान् होगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। परिणाम यह हुआ कि दोनों लड़ मरे। परस्पर की फूट से बलवान् से बलवान् मनुष्य नष्ट हो जाते हैं यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(१०६) सोपानारोहण न्याय—जिस प्रकार प्रासाद पर जाने के लिये एक एक सीढ़ी क्रम से चढ़ना होता है उसी प्रकार किसी बड़े काम के करने में क्रम क्रम से चलना पड़ता है।

(१०७) सोपानावरोहण न्याय—सीढ़ियाँ जिस क्रम से चढ़ते हैं उसी के उलटे क्रम से उतरते हैं। इसी प्रकार जहाँ किसी क्रम से चलकर फिर उसी के उलटे क्रम से चलना होता है (जैसे, एक बार एक से सौ तक गिनती गिनकर फिर सौ से निन्नानवे, अट्ठानवे इस उलटे क्रम से गिनना) वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(१०८) स्थविरलगुड न्याय—बुड्ढे के हाथ से फेंकी हुई लाठी जिस प्रकार ठीक निशाने पर नहीं पहुँचती उसी प्रकार किसी बात के लक्ष्य तक न पहुँचने पर यह उक्ति कही जाती है।

(१०९) स्थूणानिखनन न्याय—जिस प्रकार घर के छप्पर में चाँड़ देने के लिये खंभा गाड़ने में उसे मिट्टी आदि डालकर दृढ़ करना होता है उसी प्रकार युक्ति उदाहरण द्वारा अपना पक्ष दृढ़ करना पड़ता है।

(११०) स्थूलारुंधती न्याय—विवाह हो जाने पर वर और कन्या को अरुंधती तारा दिखाया जाता है जो दूर होने के कारण बहुत सूक्ष्म है और जल्दी दिखाई नहीं देता। अरुंधती दिखाने में जिस प्रकार पहले सप्तर्षि को दिखाते हैं जो बहुत जल्दी दिखाई पड़ता है और फिर उँगली से बताते हैं कि उसी के पास वह अरुंधती है, देखो, इसी

यौ०—न्याय-सभा। न्यायालय।

(३) वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिये विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है। विवेचन-पद्धति। प्रमाण, दृष्टांत, तर्क आदि युक्त वाक्य।

विशेष—न्याय छ दर्शनों में है। इसके प्रवर्त्तक गौतम ऋषि मिथिला के निवासी कहे जाते हैं। गौतम के न्यायसूत्र अब तक प्रसिद्ध हैं। इन सूत्रों पर वात्स्यायन मुनि का भाष्य है। इस भाष्य पर उद्योतकर ने वार्त्तिक लिखा है। वार्त्तिक की व्याख्या वाचस्पति मिश्र ने "न्यायवार्त्तिकतात्पर्य टीका" के नाम से लिखी है। इस टीका की भी टीका उदयनाचार्य्य कृत "तात्पर्य्यपरिशुद्धि" है। इस परिशुद्धि पर वर्द्धमान उपाध्याय कृत "प्रकाश" है।

गौतम का न्याय केवल प्रमाण तर्क आदि के नियम निश्चित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि आत्मा, इंद्रिय, पुनर्जन्म, दुःख, अपवर्ग आदि विशिष्ट प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है। गौतम ने सोलह पदार्थों का विचार किया है और उनके सम्यक् ज्ञान द्वारा अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कही है। सोलह पदार्थ या विषय ये हैं—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। इन विषयों पर विचार किसी मध्यस्थ के सामने वादी प्रतिवादी के कथोपकथन के रूप में कराया गया है। किसी विषय में विवाद उपस्थित होने पर पहले इसका निर्णय आवश्यक होता है कि दोनों वादियों के कौन कौन प्रमाण माने जायँगे। इससे पहले प्रमाण लिया गया है। इसके उपरांत विवाद का विषय अर्थात् प्रमेय का विचार हुआ है। विषय सूचित हो जाने पर मध्यस्थ के चित्त में संदेह उत्पन्न होगा कि उसका यथार्थ स्वरूप क्या है। उसी का विचार संदेह पदार्थ के नाम से हुआ है। संदेह के उपरांत मध्यस्थ के चित्त में यह विचार हो सकता है कि इस विषय के विचार से क्या मतलब। यही प्रयोजन हुआ। वादी संदिग्ध विषय पर अपना पक्ष दृष्टांत दिखाकर बतलाता है वही दृष्टांत पदार्थ है। जिस पक्ष को वादी पुष्ट करके बतलाता है वह उसका सिद्धांत हुआ। वादी का पक्ष सूचित होने पर पक्षसाधन की जो जो युक्तियाँ कही गई हैं प्रतिवादी उनके खंड खंड करके उनके खंडन में प्रवृत्त होता है। युक्तियों के ये ही खंड अवयव कहलाते हैं। अपनी युक्तियों को खंडित देख वादी फिर से और युक्तियाँ देता है जिनसे प्रतिवादी की युक्तियों का उत्तर हो जाता है। यही तर्क कहा गया है। तर्क द्वारा वादी जो अपना पक्ष स्थिर करता है वही निर्णय है। प्रतिवादी के इतने से संतुष्ट न होने पर दोनों पक्षों द्वारा पंचावयवयुक्त युक्तियों का कथन 'वाद' कहा गया है। वाद या शास्त्रार्थ द्वारा स्थिर सत्य पक्ष को न मान कर यदि प्रतिवादी जीत की इच्छा से अपनी चतुराई के बल से व्यर्थ उत्तर प्रत्युत्तर करता चला जाता है तो वह जल्प कहलाता है। इस प्रकार प्रतिवादी कुछ काल तक तो कुछ अच्छी युक्तियाँ देता जायगा फिर ऊटपटांग बकने लगेगा जिसे वितंडा कहते हैं। इस वितंडा में जितने हेतु दिए जायँगे वे ठीक न होंगे, वे हेत्वाभास मात्र होंगे। उन हेतुओं और युक्तियों के अतिरिक्त जान बूझ कर वादी को घबराने के लिये उसके वाक्यों का ऊटपटांग अर्थ करके यदि वादी गड़बड़ डालना चाहता है तो यह उसका छल कहलाता है, और यदि व्याप्तिनिरपेक्ष साधर्म्य वैधर्म्य आदि के सहारे अपना पक्ष स्थापित करने लगता है तो वह जाति में आ जाता है। इस प्रकार होते होते जब शास्त्रार्थ में यह अवस्था आ जाती है कि अब प्रतिवादी को रोक कर शास्त्रार्थ बंद किया जाय तब 'निग्रहस्थान' कहा जाता है। (विवरण प्रत्येक शब्द के अंतर्गत देखो)।

न्याय का मुख्य विषय है प्रमाण। 'प्रमा' नाम है यथार्थ ज्ञान का। यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे, प्रमाण कहते हैं। गौतम ने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनमें से आत्मा, मन और इंद्रिय का संयोग रूप जो ज्ञान का करण वा प्रमाण है वही प्रत्यक्ष है। वस्तु के साथ इंद्रिय संयोग होने से जो उसका ज्ञान होता है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष को लेकर जो ज्ञान होता है वह अनुमान है। भाष्यकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि लिंग लिंगी के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान (तथा ज्ञान के करण) को अनुमान कहते हैं। जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहाँ धूआँ रहता है वहाँ आग रहती है। इसी को नैयायिक व्याप्ति ज्ञान कहते हैं जो अनुमान की पहली सीढ़ी है। हमने कहीं धूआँ देखा जो आग का लिंग या चिह्न है और हमारे मन में यह ध्यान हुआ कि "जिस धूएँ के साथ सदा हमने आग देखी है वह यहाँ है"। इसी को परामर्श ज्ञान या व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता कहते हैं। इसके अनंतर हमें यह ज्ञान या अनुमान उत्पन्न हुआ कि "यहाँ आग है"। अपने समझने के लिये तो उपर्युक्त तीन खंड काफी हैं पर नैयायिकों का कार्य्य है दूसरे के मन में ज्ञान कराना, इससे वे अनुमान के पाँच खंड करते हैं जो 'अवयव' कहलाते हैं।

(१) प्रतिज्ञा—साध्य का निर्देश करनेवाला अर्थात् अनुमान से जो बात सिद्ध करना है उसका वर्णन करनेवाला वाक्य, जैसे, "यहाँ पर आग है"।

(२) हेतु—जिस लक्षण या चिह्न से बात प्रमाणित की जाती है, जैसे, "क्योंकि यहाँ धूआँ है"।

प्रकार किसी सूक्ष्म तत्त्व का परिज्ञान कराने के लिये पहले स्थूल दृष्टांत आदि देकर क्रमशः उस तत्त्व तक ले जाते हैं।

(१११) स्वामिभृत्य न्याय—जिस प्रकार मालिक का काम करके नौकर भी स्वामी की प्रसन्नता से अपने को कृतकार्य्य समझता है उसी प्रकार जहाँ दूसरे का काम हो जाने से अपना भी काम या प्रसन्नता हो जाय वहाँ के लिये यह उक्ति है।

ऊपर जो न्याय दिए गए हैं उनका व्यवहार प्रायः होता है। और बहुत से न्याय संस्कृत में आते हैं जो विस्तारभय से नहीं दिए गए।

न्यायकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय करनेवाला। दो पक्षों के विवाद का निर्णय करनेवाला। इंसाफ करनेवाला। मुकद्दमे का फैसला करनेवाला हाकिम।

न्यायतः—क्रि० वि० [सं०] (१) न्याय से। धर्म और नीति के अनुसार। ईमान से। (२) ठीक ठीक।

न्यायता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय का भाव। औचित्य।

न्यायपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आचरण का न्यायसम्मत मार्ग। उचित रीति।

न्यायपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यायशीलता। न्यायी होने का भाव।

न्यायवान्—संज्ञा पुं० [सं० न्यायवत्] [स्त्री० न्यायवती] न्याय पर चलनेवाला। विवेकी। न्यायी।

न्यायसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा जहाँ विवादों का निर्णय हो। कचहरी। अदालत।

न्यायाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायकर्त्ता। व्यवहार वा विवाद का निर्णय करनेवाला अधिकारी। मुकद्दमे का फैसला करनेवाला अधिकारी। जज।

न्यायालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ न्याय अर्थात् व्यवहार या विवाद का निर्णय हो। वह जगह जहाँ मुकद्दमों का फैसला हो। अदालत। कचहरी।

न्यायी—संज्ञा पुं० [सं० न्यायिन्] न्याय पर चलनेवाला। नीति-सम्मत आचरण करनेवाला। उचित पक्ष ग्रहण करनेवाला।

न्याय्य—वि० [सं०] न्याययुक्त। न्यायसंगत।

न्यार*—वि० दे० "न्यारा"।

संज्ञा पुं० [हिं० निवार] पसही धान। मुन्यन्न।

न्यारा—वि० [सं० निर्निकट, प्रा० निन्निअड़, निनियर, पु० हिं० निन्यार] [स्त्री० न्यारी] (१) जो पास न हो। दूर। (२) जो मिला या लगा न हो। अलग। पृथक्। जुदा।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

(३) और ही। अन्य। भिन्न। जैसे, यह बात न्यारी है। (४) निराला। अनोखा। विलक्षण। जैसे, मथुरा तीन लोक से न्यारी।

न्यारिया—संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा] सुनारों के नियार (राख इत्यादि) को धोकर सोना चाँदी एकत्र करनेवाला।

न्यारे—क्रि० वि० [हिं० न्यारा] (१) पास नहीं। दूर। जैसे, उससे न्यारे रहो। (२) अलग। पृथक्। साथ में नहीं। जैसे, वह हमसे न्यारे हो गया।

न्याव—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] (१) नियम-नीति। आचरण-पद्धति। उ०—ऊधो, ताको न्याव है जाहि न सूझै नैन।—सूर। (२) उचित पक्ष। वाजिब बात। कर्त्तव्य का ठीक निर्धारण। (३) विवेक। उचित अनुचित की बुद्धि। इंसाफ। जैसे, जो तुम्हारे न्याव में आवे वही करो। (४) दो पक्षों के बीच निर्णय। विवाद वा झगड़े का निबटेरा। व्यवहार या मुकद्दमे का फैसला। जैसे, राजा करे सो न्याव।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—न्याव चुकाना = झगड़ा निबटाना। विवाद का निर्णय करना। फैसला करना।

न्यास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० न्यस्त] (१) स्थापन। रखना। (२) यथास्थान स्थापन। जगह पर रखना। ठीक जगह क्रम से लगाना या सजाना। (३) स्थाप्य द्रव्य। किसी की वस्तु जो दूसरे के यहाँ इस विश्वास पर रखी हो कि वह उसकी रक्षा करेगा और माँगने पर लौटा देगा। धरोहर। थाती। (४) अर्पण। त्याग। (५) संन्यास। (६) पूजा की तांत्रिक पद्धति के अनुसार देवता के भिन्न भिन्न अंगों का ध्यान करते हुए मंत्र पढ़कर उनपर विशेष वर्णों का स्थापन।

यौ०—अंगन्यास। करन्यास।

(७) किसी रोग या बाधा की शांति के लिये रोगी या बाधाग्रस्त मनुष्य के एक एक अंग पर हाथ ले जा कर मंत्र पढ़ने का विधान।

न्यासस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जिससे कोई राग समाप्त किया जाय।

न्यासिक—वि० [सं०] धरोहर रखनेवाला। जो किसी की थाती रखे।

न्युब्ज—वि० [सं०] (१) अधोमुख। औंधा। (२) कुबड़ा। (३) रोग से जिसकी कमर टेढ़ी हो गई हो।

संज्ञा पुं० (१) कुश। (२) माला। (३) एक यज्ञपात्र। (४) कमरंग फल। कमरख।

न्यून—वि० [सं०] (१) कम। थोड़ा। अल्प। (२) घटकर। नीचा। (३) नीच। क्षुद्र।

न्यूनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमी। (२) हीनता।

न्योछावर—संज्ञा स्त्री० दे० "निछावर"।

न्योतना—क्रि स० [हिं० न्योता + ना (प्रत्य०)] (१) किसी रीति रस्म या आनंद उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये इष्ट मित्र, बंधु-बांधव आदि को बुलाना। निमंत्रित करना।

(३) उदाहरण—सिद्ध की जानेवाली वस्तु बतलाए हुए चिह्न के साथ जहाँ देखी गई है उसे बतानेवाला वाक्य। जैसे, जहाँ जहाँ धूआँ रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, जैसे 'रसोई घर में'।

(४) उपनय—जो वाक्य बतलाए हुए चिह्न या लिंग का होना प्रकट करे, जैसे, "यहाँ पर धूआँ है"।

(५) निगमन—सिद्ध की जानेवाली बात सिद्ध हो गई यह कथन।

अत अनुमान का पूरा रूप यों हुआ—

यहाँ पर आग है (प्रतिज्ञा)।

क्योंकि यहाँ धूआँ है (हेतु)।

जहाँ जहाँ धूआँ रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है 'जैसे रसोई घर में' (उदाहरण)

यहाँ पर धूआँ है (उपनय)।

इसलिये यहाँ पर आग है (निगमन)।

साधारणत इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य को न्याय कहते हैं। नवीन नैयायिक इन पाँचों अवयवों का मानना आवश्यक नहीं समझते। वे प्रमाण के लिये प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टात इन्हीं तीनों को काफी समझते हैं। मीमासक और वेदाती भी इन्हीं तीनों को मानते हैं। बौद्ध नैयायिक दो ही मानते हैं, प्रतिज्ञा और हेतु।

दुष्ट हेतु को हेत्वाभास कहते हैं पर इसका वर्णन गौतम ने प्रमाण के अंतर्गत न करके इसे अलग पदार्थ (विषय) मानकर किया है। इसी प्रकार छल, जाति, निग्रहस्थान इत्यादि भी वास्तव में हेतुदोष ही कहे जा सकते हैं। केवल हेतु का अच्छी तरह विचार करने से अनुमान के सब दोष पकड़े जा सकते हैं और यह मालूम हो सकता है कि अनुमान ठीक है या नहीं।

गौतम का तीसरा प्रमाण 'उपमान' है। किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य से न जानी हुई वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वही उपमान है। जैसे नीलगाय गाय के सदृश होती है। किसी के मुँह से यह सुनकर जब हम जगल में नीलगाय देखते हैं तब चट हमें ज्ञान हो जाता है कि "यह नीलगाय है"। इससे प्रतीत हुआ कि किसी वस्तु का उसके नाम के साथ सबंध ही उपमिति ज्ञान का विषय है। वैशेषिक और बौद्ध नैयायिक उपमान को अलग प्रमाण नहीं मानते, प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाण के ही अतर्गत मानते हैं। वे कहते हैं कि "गो के सदृश गवय होता है" यह शब्द या आगम ज्ञान है क्योंकि यह आप्त या विश्वासपात्र मनुष्य के कहे हुए शब्द द्वारा हुआ। फिर इसके उपरात यह ज्ञान कि "यह जतु जो हम देखते हैं गो के सदृश है" यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। इसका उत्तर नैयायिक यह देते हैं कि यहाँ तक का ज्ञान तो शब्द और प्रत्यक्ष ही हुआ पर इसके अनंतर जो यह ज्ञान होता है कि "इसी जतु का नाम गवय है" यह न प्रत्यक्ष है, न अनुमान, न शब्द, यह उपमान ही है। उपमान को कई नए दार्शनिकों ने इस प्रकार अनुमान के अंतर्गत किया है। वे कहते हैं कि 'इस जंतु का नाम गवय है', 'क्योंकि यह गो के सदृश है' 'जो जो जतु गो के सदृश होते हैं उनका नाम गवय होता है'। पर इसका उत्तर यह है कि जो जो जतु गो के सदृश होते हैं वे गवय हैं यह बात मन में नहीं आती, मन में केवल इतना ही आता है कि "मैंने अच्छे आदमी के मुँह से सुना है कि गवय गाय के सदृश होता है।"

चौथा प्रमाण है शब्द। सूत्र में लिखा है कि आप्तोपदेश अर्थात् आप्त पुरुष का वाक्य शब्द प्रमाण है। भाष्यकार ने आप्त पुरुष का लक्षण यह बतलाया है कि जो साक्षात्कृतधर्मा हो, जैसा देखा सुना (अनुभव किया) हो ठीक ठीक वैसा ही कहनेवाला हो वही आप्त है, चाहे वह आर्य हो या म्लेच्छ। गौतम ने आप्तोपदेश के दो भेद किए हैं दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। प्रत्यक्ष जानी हुई बातों को बतानेवाला दृष्टार्थ और केवल अनुमान से जानी जानेवाली बातों (जैसे स्वर्ग अपवर्ग, पुनर्जन्म इत्यादि) को बतानेवाला अदृष्टार्थ कहलाता है। इस पर भाष्य करते हुए वात्स्यायन ने कहा है कि इस प्रकार लौकिक और ऋषिवाक्य (वैदिक) का विभाग हो जाता है अर्थात् अदृष्टार्थ में केवल वेदवाक्य ही प्रमाण-कोटि में माना जा सकता है। नैयायिकों के मत से वेद ईश्वर कृत है इससे उसके वाक्य सदा सत्य और विश्वसनीय हैं पर लौकिक वाक्य सभी सत्य माने जा सकते हैं जब कि उनका कहनेवाला प्रामाणिक माना जाय। सूत्रों में वेद के प्रामाण्य के विषय में कई शकाएँ उठाकर उनका समाधान किया गया है। मीमासक ईश्वर नहीं मानते पर वे भी वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। नित्य तो मीमांसक शब्द मात्र को मानते हैं और शब्द और अर्थ का नित्य सबंध बतलाते हैं। पर नैयायिक शब्द का अर्थ के साथ कोई नित्य सबंध नहीं मानते।

वाक्य का अर्थ क्या है इस विषय में बहुत मतभेद है। मीमासकों के मत से नियोग या प्रेरणा ही वाक्यार्थ है—अर्थात् 'ऐसा करो', 'ऐसा न करो' यही बात सब वाक्यों से कही जाती है चाहे साफ साफ चाहे ऐसे अर्थवाले दूसरे वाक्यों से सबंध द्वारा। पर नैयायिकों के मत से कई पदों के सबंध से निकलनेवाला अर्थ ही वाक्यार्थ है। परतु वाक्य में जो पद होते हैं वाक्यार्थ के मूल कारण वे ही हैं। न्याय मजरी में पदों में दो प्रकार की शक्ति मानी गई है—अभिधात्री शक्ति जिससे एक एक पद अपने अपने अर्थ का बोध

संयो०—देना।

(२) दूसरे को अपने यहाँ भोजन करने के लिये बुलाना। जैसे, उसने सौ ब्राह्मण न्योते हैं।

न्योतनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० न्योतना] वह खाना पीना जो विवाह आदि मंगल अवसरों पर होता है।

न्योतहरी–संज्ञा पु० [हिं० न्योता] निमंत्रित मनुष्य। न्योते में आया हुआ आदमी।

न्योता–संज्ञा पुं० [सं० निमंत्रण] (१) किसी रीति रसम, आनंद उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये इष्ट, मित्र बंधु-बांधव आदि का आह्वान। बुलावा। निमंत्रण।

क्रि० प्र०—देना।

(२) अपने स्थान पर भोजन के लिये बुलावा। भोजन स्वीकार करने की प्रार्थना। जैसे, उन्होंने दस ब्राह्मणों को न्योता दिया है।

क्रि० प्र०—पाना।—आना।—देना।

(३) वह भोजन जो दूसरे को अपने यहाँ कराया जाय या दूसरे के यहाँ (उसकी प्रार्थना पर) किया जाय। दावत। जैसे, (क) वह न्योता खाने गया है। (ख) हमें न्योता खिलाओ।

क्रि० प्र०—खाना।—खिलाना।

(४) वह भेंट या धन जो अपने इष्ट मित्र संबंधी इत्यादि के यहाँ से किसी शुभ या अशुभ कार्य्य में सम्मिलित होने का न्योता पाकर उसके यहाँ भेजा जाता है। जैसे, उसकी कन्या के विवाह में मैंने १००) न्योता भेजा था।

न्योरा–1 संज्ञा पु० दे० "नेवला"

संज्ञा पुं० [सं० नूपुर] बड़े दानों का घुंघरू। नेवर।

न्योला–संज्ञा पुं० दे० "नेवला"।

न्योली–संज्ञा स्त्री० [सं० नली] नेती, धोती, आदि के समान हठ योग की एक क्रिया जिसमें पेट के नलों को पानी से साफ करते हैं।

न्हाना†*–क्रि० अ० दे० "नहाना"।

कराता है और दूसरी तात्पर्य शक्ति जिससे कई पदों के संबंध का अर्थ सूचित होता है। शक्ति के अतिरिक्त लक्षणा भी नैयायिकों ने मानी है। आलंकारिकों ने तीसरी वृत्ति व्यंजना भी मानी है पर नैयायिक उसे पृथक्वृत्ति नहीं मानते। सूत्र के अनुसार जिन कई अक्षरों के अंत में विभक्ति हो वे ही पद हैं और विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—नाम-विभक्ति और आख्यात-विभक्ति। इस प्रकार नैयायिक नाम और आख्यात दो ही प्रकार के पद मानते हैं। अव्यय पद को भाष्यकार ने नाम के ही अंतर्गत सिद्ध किया है।

न्याय में ऊपर लिखे चार ही प्रमाण माने गए हैं। मीमांसक और वेदांती अर्थापत्ति, ऐतिह्य, संभव और अभाव ये चार और प्रमाण कहते हैं। नैयायिक इन चारों को अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमाण ही न्यायशास्त्र का मुख्य विषय है। इसीसे 'प्रमाण-प्रवीण' 'प्रमाण-कुशल' आदि शब्दों का व्यवहार नैयायिक या तार्किक के लिये होता है।

प्रमाण अर्थात् किसी बात को सिद्ध करने के विधान का ऊपर उल्लेख हो चुका। अब उक्त विधान के अनुसार किन किन वस्तुओं का विचार और निर्णय न्याय में हुआ है इसका संक्षेप में कुछ विवरण दिया जाता है।

ऐसे विषय न्याय में प्रमेय (जो प्रमाणित किया जाय) पदार्थ के अंतर्गत हैं और बारह गिनाए गए हैं—

(१) आत्मा—सब वस्तुओं का देखनेवाला, भोग करनेवाला, जाननेवाला और अनुभव करनेवाला। (२) शरीर—भोगों का आयतन या आधार। (३) इंद्रियाँ—भोगों के साधन। (४) अर्थ—वस्तु जिनका भोग होता है। (५) बुद्धि—भोग। (६) मन—अंतःकरण अर्थात् वह भीतरी इंद्रिय जिसके द्वारा सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। (७) प्रवृत्ति—वचन, मन और शरीर का व्यापार। (८) दोष—जिसके कारण अच्छे या बुरे कामों में प्रवृत्ति होती है। (९) प्रेत्यभाव—पुनर्जन्म। (१०) फल—सुख-दुःख का संवेदन या अनुभव। (११) दुःख—पीड़ा, क्लेश। (१२) अपवर्ग—दुःख से अत्यंत निवृत्ति या मुक्ति।

इस सूची से यह न समझना चाहिए इन वस्तुओं के अतिरिक्त और प्रमाण के विषय या प्रमेय हो ही नहीं सकते। प्रमाण के द्वारा बहुत सी बातें सिद्ध की जाती हैं। पर गौतम ने अपने सूत्रों में उन्हीं बातों पर विचार किया है जिनके ज्ञान से अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो। न्याय में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान ये आत्मा के लिंग (अनुमान के साधन चिह्न या हेतु) कहे गए हैं, यद्यपि शरीर, इंद्रिय और मन से आत्मा पृथक् मानी गई है। वैशेषिक में भी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि को आत्मा का लिंग कहा है। शरीर, इंद्रिय और मन से आत्मा के पृथक् होने के हेतु गौतम ने दिए हैं। वेदांतियों के समान नैयायिक एक ही आत्मा नहीं मानते, अनेक मानते हैं। सांख्यवाले भी अनेक पुरुष मानते हैं पर वे पुरुष को अकर्त्ता और अभोक्ता, साक्षी वा द्रष्टा मात्र मानते हैं। नैयायिक आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता आदि मानते हैं। संसार को रचनेवाली आत्मा ही ईश्वर है। न्याय में आत्मा के समान ही ईश्वर में भी संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि, प्रयत्न ये गुण माने गए हैं पर नित्य करके। न्यायमंजरी में लिखा है कि दुःख, द्वेष और संस्कार को छोड़ और सब आत्मा के गुण ईश्वर में हैं। बहुत से लोग शरीर को पाँचों भूतों से बना मानते हैं पर न्याय में शरीर केवल पृथ्वी के परमाणुओं से घटित माना गया है। चेष्टा, इंद्रिय और अर्थ के आश्रय को शरीर कहते हैं। जिस पदार्थ से सुख हो उसके पाने और जिससे दुःख हो उसे दूर करने का व्यापार चेष्टा है। अतः शरीर का जो लक्षण किया गया है उसके अंतर्गत वृक्षों का शरीर भी आ जाता है। पर वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि यह लक्षण वृक्ष-शरीर में नहीं घटता, इससे केवल मनुष्य-शरीर का ही अभिप्राय समझना चाहिए। शंकर मिश्र ने वैशेषिक सूत्रोपस्कार में कहा है कि वृक्षों को शरीर है पर उसमें चेष्टा और इंद्रियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़तीं इससे उसे शरीर नहीं कह सकते। पूर्वजन्म के किए कर्मों के अनुसार शरीर उत्पन्न होता है। पाँच भूतों से पाँचों इंद्रियों की उत्पत्ति कही गई है। घ्राणेंद्रिय से गंध का ग्रहण होता है इससे वह पृथ्वी से बनी है। रसना जल से बनी है क्योंकि रस जल का ही गुण है। चक्षु तेज से बना है क्योंकि रूप तेज का ही गुण है। त्वक् वायु से बना है क्योंकि स्पर्श वायु का गुण है। श्रोत्र आकाश से बना है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है।

बौद्धों के मत से शरीर में इंद्रियों के जो प्रत्यक्ष गोलक देखे जाते हैं उन्हीं को इंद्रियाँ कहते हैं (जैसे, आँख की पुतली, जीभ इत्यादि) पर नैयायिकों के मत से जो अंग दिखाई पड़ते हैं वे इंद्रियों के अधिष्ठान मात्र हैं, इंद्रियाँ नहीं हैं। इंद्रियों का ज्ञान इंद्रियों के द्वारा नहीं हो सकता। कुछ लोग एक ही त्वग् इंद्रिय मानते हैं। न्याय में उनके मत का खंडन करके इंद्रियों का नानात्व स्थापित किया गया है। सांख्य में पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन लेकर ग्यारह इंद्रियाँ मानी गई हैं। न्याय में कर्मेंद्रियाँ नहीं मानी गई हैं पर मन एक करण और अणु-रूप माना गया है। यदि मन सूक्ष्म न होकर व्यापक होता तो युगपद् ज्ञान संभव होता, अर्थात् अनेक इंद्रियों का एक क्षण में एक साथ संयोग होने से उन सब के विषयों का एक साथ ज्ञान होता।

पर नैयायिक ऐसा नहीं मानते। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचों भूतों के गुण और इंद्रियों के अर्थ या विषय हैं। न्याय में बुद्धि को ज्ञान या उपलब्धि का ही दूसरा नाम कहा है। सांख्य में बुद्धि नित्य कही गई है पर न्याय में अनित्य।

वैशेषिक के समान न्याय भी परमाणुवादी है अर्थात् परमाणुओं के योग से सृष्टि मानता है। प्रमेयों के संबंध में न्याय और वैशेषिक के मत प्राय एक ही हैं इससे दर्शन में दोनों के मत न्याय मत कहे जाते हैं। वात्स्यायन ने भी भाष्य में कह दिया है कि जिन बातों को विस्तार भय से गौतम ने सूत्रों में नहीं कहा है उन्हें वैशेषिक से ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतम का न्याय केवल विचार या तर्क के नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक (तर्कशास्त्र) से यही इसमें भेद है। लाजिक दर्शन के अंतर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय दर्शन है। यह अवश्य है कि न्याय में प्रमाण या तर्क की परीक्षा विशेष रूप से हुई है।

न्यायशास्त्र का भारतवर्ष में कब प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता। नैयायिकों में जो प्रवाद प्रचलित हैं उनके अनुसार गौतम वेदव्यास के समकालीन ठहरते हैं; पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'आन्वीक्षिकी,' 'तर्कविद्या' 'हेतुवाद' का निंदापूर्वक उल्लेख रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण में तो नैयायिक शब्द भी अयोध्याकांड में आया है। पाणिनि ने न्याय से नैयायिक शब्द बनने का निर्देश किया है। न्याय के प्रादुर्भाव के संबंध में साधारणत दो प्रकार के मत पाए जाते हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि बौद्ध धर्म का प्रचार होने पर उसके खंडन के लिये ही इस शास्त्र का अभ्युदय हुआ। पर कुछ एतद्देशीय विद्वानों का मत है कि वैदिक वाक्यों के परस्पर समन्वय और समाधान के लिये जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में जिन युक्तियों और तर्कों का व्यवहार किया वे ही पहले न्याय के नाम से कहे जाते थे। आपस्तंब धर्मसूत्र में जो 'न्याय' शब्द आया है उसका पूर्वमीमांसा से ही अभिप्राय समझना चाहिए। माधवाचार्य ने पूर्वमीमांसा का जो सार संग्रह लिखा उसका नाम न्यायमालाविस्तार रखा। वाचस्पति मिश्र ने भी 'न्यायकणिका' के नाम से मीमांसा पर एक ग्रंथ लिखा है। पर न्याय के प्राचीनत्व से या देश का गौरव समझनेवाले कुछ बंगाली पंडितों का कथन है कि न्याय ही सब दर्शनों में प्राचीन है क्योंकि और सब दर्शनसूत्रों में दूसरे दर्शनों का उल्लेख मिलता है पर न्यायसूत्रों में कहीं किसी दूसरे दर्शन का नाम नहीं आया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय सब दर्शनों में प्राचीन है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि तर्क के नियम बौद्ध धर्म के प्रचार से बहुत पूर्व प्रचलित थे चाहे वे मीमांसा के रहे हों या स्वतंत्र। हेमचंद्र ने न्यायसूत्रों पर भाष्य रचनेवाले वात्स्यायन और चाणक्य को एक ही व्यक्ति माना है। यदि यह ठीक हो तो भाष्य ही बौद्ध धर्मप्रचार के पूर्व का ठहरता है क्योंकि बौद्धधर्म का प्रचार अशोक के समय से और बौद्ध न्याय का आविर्भाव अशोक के भी पीछे महायान-शाखा स्थापित होने पर हुआ। पर वात्स्यायन और चाणक्य का एक होना हेमचंद्र के श्लोक (जिसमें चाणक्य के आठ नाम गिनाए गए हैं) के आधार पर ही ठीक नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानों का कथन है कि वात्स्यायन ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए। ईसा की छठी शताब्दी में वासवदत्ताकार सुबंधु ने मल्लनाग, न्यायस्थिति, धर्मकीर्ति और उद्योतकर इन चार नैयायिकों का उल्लेख किया है। इनमें धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक थे। उद्योतकराचार्य ने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्नागाचार्य के 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रंथ का खंडन करके वात्स्यायन का मत स्थापित किया। 'प्रमाणसमुच्चय' में दिङ्नाग ने वात्स्यायन के मत का खंडन किया था। इससे यह निश्चित है कि वात्स्यायन दिङ्नाग के पूर्व हुए। मल्लिनाथ ने दिङ्नाग को कालिदास का समकालीन बतलाया है पर कुछ लोग इसे ठीक नहीं मानते और दिङ्नाग का काल ईसा की तीसरी शताब्दी कहते हैं। सुबंधु के उल्लेख से दिङ्नागाचार्य का ही काल छठीं शताब्दी के पूर्व ठहरता है अत वात्स्यायन को जो उनसे भी पूर्व हुए पाँचवीं शताब्दी में मानना ठीक नहीं। वे उससे पहले हुए होंगे। वात्स्यायन ने दशावयवादी नैयायिकों का उल्लेख किया है इससे सिद्ध है कि उनके पहले से भाष्यकार नैयायिकों की परंपरा चली आती थी। अस्तु, सूत्रों की रचना का काल बौद्धधर्म प्रचार के पूर्व मानना पड़ता है।

वैदिक बौद्ध और जैन नैयायिकों के बीच विवाद ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर १३ वीं शताब्दी तक बराबर चलता रहा। इससे खंडन मंडन के बहुत से ग्रंथ बने। १४ वीं शताब्दी में गंगेशोपाध्याय हुए जिन्होंने 'नव्यन्याय' की नींव डाली। प्राचीन न्याय में प्रमेय आदि जो सोलह पदार्थ थे उनमें से और सब का किनारे करके केवल 'प्रमाण' को लेकर ही भारी शब्दाडंबर खड़ा किया गया। इस नव्य न्याय का आविर्भाव मिथिला में हुआ। मिथिला से नदिया में आकर नव्य न्याय ने और भी भयंकर रूप धारण किया। न इसमें तत्वनिर्णय रहा न तत्वनिर्णय की सामर्थ्य।

मुहा०—चिराग़ का हँसना = चिराग़ से फूल झड़ना। चिराग़ को हाथ देना = चिराग़ बुझाना। चिराग़ गुल पगड़ी गायब = मौका मिलते ही धन का उड़ा लिया जाना। चिराग़ गुल करना = (१) दीआ बुझाना। (२) किसी के वंश का विनाश करना। (३) रौनक मिटाना। चिराग़ गुल होना = (१) दीए का बुझ जाना। (२) रौनक मिटना। उदासी छाना। (३) किसी के वंश का विनाश होना। चिराग़ जले = अँधेरा होने पर। संध्या समय। चिराग़ ठंढा करना = चिराग़ बुझाना। चिराग़ तले अँधेरा होना = (१) किसी ऐसे स्थान पर बुराई होना जहाँ उसके रोकने का प्रबंध हो। जैसे, हाकिम के सामने अत्याचार होना, पुलिस के सामने चोरी होना, किसी उदार धनी के किसी संबंधी का भूखों मरना, इत्यादि, इत्यादि। (२) किसी ऐसे मनुष्य द्वारा कोई बुराई होना जिससे उसकी संभावना न हो। जैसे, किसी विद्वान् द्वारा कोई कुकर्म होना, इत्यादि। चिराग़ दिखाना = रोशनी दिखाना। सामने उजाला करना। चिराग़ बढ़ाना = चिराग़ बुझाना। चिराग़ बत्ती करना = दीआ जलाना। दीआ जलाने की तैयारी करना। चिराग़ बत्ती का वक्त = संध्या का समय। चिराग़ ले कर ढूँढ़ना = खूब छान बीन के साथ ढूँढ़ना। चारों ओर हैरान हो कर ढूँढ़ना। चिराग़ से चिराग़ जलना = एक को दूसरे से लाभ पहुँचना। परस्पर लाभ पहुँचना। चिराग़ से फूल झड़ना = चिराग़ की जलती हुई बत्ती में गोल गोल फुचड़े निकलना या गिरना। चिराग़ से गुल झड़ना।

चिराग़दान–संज्ञा पु० [फ़ा०] दीयट। फ़तीलसोज़। शमादान।

चिराग़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) चिराग़ जलाने का खर्च। किसी स्थान पर दीआबत्ती करते रहने का खर्च या मज़दूरी। (२) जुआरियों के अड्डे पर चिराग़ जलानेवालों की मज़दूरी जो बहुधा दाँव जीतनेवाला खिलाड़ी प्रत्येक दाँव जीतने पर देता है। (३) वह भेंट जो किसी मज़ार पर चढ़ाई जाती है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।

चिराटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद पुनर्नवा। (२) चिरायता।

चिरातन–वि० [सं० चिरंतन] (१) पुरातन। पुराना। (२) जीर्ण। उ०—हम तो तबही तें जोग लियो। पहिरि मेखला चीर चिरातन पुनि पुनि फेरि सियाए।—सूर।

चिराद्–संज्ञा पु० [सं०] गरुड़।

चिराद–संज्ञा पु० [सं० चिराद] बत्तक की जाति की एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जिसका मांस स्वादिष्ट होता है।

चिराना–क्रि० स० [हिं० चीरना] चीरने का काम कराना। फड़वाना। जैसे, फोड़ा चिराना, लकड़ी चिराना।

वि० [सं० चिरंतन] (१) पुराना। पुरातन। उ०—भरेउ सो मानस सुपल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना।—तुलसी। (२) जीर्ण।

पर्या०—पुराना चिराना।

चिरायँध–संज्ञा पु० [सं० चर्म + गंध] वह दुर्गंध जो चरबी, चमड़े, बाल, मांस आदि जीवों के अंगों के अंशों के जलने से फैलती है।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उठना।—फैलना।—निकलना।

मुहा०—चिरायँध फैलना = बदनामी फैलना।

चिरायता–संज्ञा पु० [सं० चिरतिक्त या चिरतिक्त] दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जो हिमालय के किनारे कम ठंढे स्थानों में काश्मीर से भूटान तक होता है। खसिया की पहाड़ियों पर भी यह पौधा मिलता है। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और तुलसी की पत्तियों के बराबर होती हैं। जाड़े के दिनों में इसमें फूल लगते हैं। सूखा पौधा (जड़, डंठल, फूल सब) औषध के काम में आता है। फूल लगने के समय पौधा उखाड़ा जाता है और दबा कर बाहर भेजा जाता है। नैपाल के मोरंग नामक स्थान से चिरायता बहुत आता है। चिरायते का सर्वांग कड़ुआ होता है, इसी से यह ज्वर में बहुत दिया जाता है। वैद्यक में यह दस्तावर, शीतल तथा ज्वर, कफ, पित्त, सूजन, सन्निपात, खुजली, कोढ़ आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। रक्त-शोधक ओषधियों में इसकी गणना है। डाक्टरी में भी इसका व्यवहार होता है। चिरायते की बहुतसी जातियाँ होती हैं। एक प्रकार का छोटा चिरायता दक्षिण में बहुत होता है। एक चिरायता कलपनाथ के नाम से प्रसिद्ध है जो सबसे अधिक कड़ुआ होता है। गीमा नाम का एक पौधा भी चिरायते ही की जाति का है जो सारे भारत में जलाशयों के किनारे होता है। दक्षिण देश के वैद्य और हकीम हिमालय के चिरायते की अपेक्षा शिलारस या शिलाजीत नाम का चिरायता अधिक काम में लाते हैं जो मदरास प्रांत के कई स्थानों में होता है।

पर्या०—भूनिंब। अनार्यतिक्त। कैरात। कांडतिक्तक। किराततिक्त। किरातनिक्त। चिरतिक्त। रामसेनक। सुतिक्तक। चिराटिका। कटुतिक्ता।

चिरायु–वि० [सं० चिरायुस्] बड़ी उम्रवाला। बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घायु।

संज्ञा पु० देवता।

चिरारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चार] चिरौंजी। उ०—खारिक दाख अरु गरी चिरारी। पीड़ बदाम लेत बनवारी।—सूर।

चिराव–संज्ञा पु० [हिं० चिरना] (१) चीरने का भाव या क्रिया। (२) घाव जो चीरने से हो।

चिरिंटिका, चिरिंटी–संज्ञा स्त्री० दे० "चिरंटी"।

चिरिया।*–संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया"।

चिरी*–संज्ञा स्त्री० दे० "चिड़िया"।

यौ०—चिरायु। चिरकाल। चिरकारी। चिरक्रिय। चिरजात। चिरजीवी।

संज्ञा पुं० तीन मात्राओं का गण जिसका प्रथम वर्ण लघु हो।

चिरईं—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] चिड़िया। पक्षी।

चिरकढाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरकना + ढाँसना] (१) एक न एक रोग का नित्य बना रहना। कभी कुछ रोग कभी कुछ। सदा बनी रहनेवाली अस्वस्थता। (२) नित्य का झगड़ा। रगड़ा।

चिरकना—क्रि० अ० [अनु०] थोड़ा थोड़ा मल निकालना। थोड़ा थोड़ा हगना।

चिरकारी—वि० [सं० चिरकारिन्] [स्त्री० चिरकारिणी] काम में देर लगानेवाला। दीर्घसूत्री।

चिरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घकाल। बहुत समय। जैसे, चिरकाल से यह प्रथा चली आई है।

चिरकीन—वि० [फ़ा०] मैला। गंदा। (लश०)

चिरकुट—संज्ञा पुं० [सं० चीर + कुट = काटना] फटा पुराना कपड़ा। चिथड़ा। गूदड़। उ०—काढ़हु कंथा चिरकुट लावा। पहिरहु राते दगल सुहावा।—जायसी।

चिरक्रिय—वि० [सं०] काम में देर लगानेवाला। दीर्घसूत्री।

चिरक्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीर्घसूत्रता।

चिरचिटा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) चिचड़ा। अपामार्ग। (२) एक ऊँची घास जो बाजरे के पौधे के आकार की होती है। इसे चौपाए खाते हैं।

चिरचिरा†—वि० दे० "चिड़चिड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "चिचड़ा"।

चिरजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक नाम का वृक्ष।

चिरजीवी—वि० [सं०] (१) बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घजीवी। (२) सब दिन जीवित रहनेवाला। अमर।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) कौवा। (३) जीवक वृक्ष। (४) सेमर का पेड़। (५) मार्कंडेय ऋषि। (६) अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य्य और परशुराम जो चिरजीवी माने गए हैं।

चिरतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

चिरत्न—वि० [सं०] पुरातन। पुराना।

चिरना—क्रि० अ० [सं० चीर्ण, हिं० चीरना] (१) फटना। सीध में कटना। जैसे, कपड़ा चिरना, लकड़ी चिरना। (२) लकीर के रूप में घाव होना। सीधा क्षत होना। उ०—फटी मत छूओ उँगली चिर जायगी।

संज्ञा पुं० (१) चीरने का औज़ार। (२) सोनारों का एक औज़ार जिससे वे चाँदी के तार चीरते हैं। (३) कुम्हारों का वह धारदार लोहा जिससे वे नरिया चीरते हैं। (४) कसेरों का एक औज़ार जिससे वे थाली के बीच में टप्पा या गोल लकीर बनाते हैं।

चिरपाकी—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

चिरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] बकुल। मौलसिरी।

चिरवत्ती—वि० [हिं० चिरना + वत्ती] चिथड़ा चिथड़ा। टुकड़ा टुकड़ा। पुरज़ा पुरज़ा।

मुहा०—चिरवत्ती कर डालना = चिथड़े चिथड़े कर डालना। फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना (काग़ज़, कपड़ा आदि)।

चिरविल्व—संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष। कंजा।

चिरमिटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघुची।

चिरवल—संज्ञा पुं० [सं० चिरविल्व या चिरवल्ली ?] एक पौधा जो बंगाल और उड़ीसा से लेकर मदरास और सिंहल तक होता है। यह पौधा छः महीने तक रहता है। इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर लाल रंग निकलता है जिससे मछलीपट्टन, नेलोर आदि स्थानों में कपड़े रँगे जाते हैं। इन स्थानों में इस पौधे की खेती होती है। असाढ़ में इसके बीज बोए जाते हैं। इस पौधे को सुरबुली भी कहते हैं।

चिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिरवाना] (१) चिरवाने का भाव या कार्य। (२) चिरवाने की मज़दूरी। † (३) पानी बरसने पर खेतों की पहली जोताई।

चिरवाना—क्रि० स० [हिं० चीरना का प्रे०] चीरने का काम कराना। फड़वाना।

चिरवीर्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़ का वृक्ष।

चिरस्थायी—वि० [सं० चिरस्थायिन्] बहुत दिनों तक रहनेवाला।

चिरस्मरणीय—वि० [सं०] (१) बहुत दिनों तक स्मरण रखने योग्य। (२) पूजनीय। प्रशंसनीय।

चिरहँटा†—संज्ञा पुं० [हिं० चिड़ी + हंता] चिड़ीमार। बहेलिया। व्याध। उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा। कतहुँ पखंडी काठ नचावा।—जायसी।

चिराँदा—वि० [अनु० चिर चिर = लकड़ी आदि के जलने का शब्द] चिड़चिड़ा। थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला।

चिराइता—संज्ञा पुं० दे० "चिरायता"।

चिराइन†—संज्ञा स्त्री० दे० "चिरायँध"।

चिराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरना] (१) चीरने का भाव या क्रिया। (२) चीरने की मज़दूरी।

चिराक†—संज्ञा पुं० दे० "चिराग़"। उ०—मोहन चंद्र चिराक चाँदना करत दसौं दिसि।—जयसिंह।

चिराग़—संज्ञा पुं० [फ़ा० चराग़] दीपक। दीया।

क्रि० प्र०—गुल करना।—जलना।—जलाना।—बुझना।—बुझाना।

चिलमपोश—संज्ञा पु० [फ़ा०] धातु का एक झँझरीदार ढकन जिसमे चिलम ढक देने से चिनगारी नहीं उड़ती।

चिलम-बरदार—संज्ञा पु० [फ़ा०] हुक्का पिलानेवाला ख़िदमतगार।

चिलमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जुगनू। खद्योत। (२) बिजली। (३) एक प्रकार की कंठी।

चिलवाँस—संज्ञा पु० [?] एक प्रकार का फंदा जिससे चिड़ियाँ फँसाई जाती हैं।

चिलसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तमाकू जो काश्मीर में होता है। श्रीनगर के आसपास यह बहुत होता है। यह अप्रैल में बोया जाता है।

चिलहुल—संज्ञा पु० [सं० चिल] एक प्रकार की छोटी मछली जो डेढ़ बालिश्त के लगभग होती है। यह सिंध, पंजाब, युक्त प्रांत और बंगाल की नदियों में पाई जाती है।

चिलिम†—संज्ञा स्त्री० दे० "चिलम"।

चिलमिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गले में पहनने की एक प्रकार की माला। (२) जुगनू। (३) बिजली।

चिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल] चिलहुल मछली।

चिलुआ—संज्ञा स्त्री० दे० "चेल्हवा"।

चिल्लड़—संज्ञा पुं० [सं० चिल्ल=वस्त्र] जूँ की तरह का एक बहुत छोटा सफ़ेद रंग का कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है। इस कीड़े के काटने से शरीर में बड़ी खुजली होती और छोटे छोटे दाने से पड़ जाते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बीनना।

चिल्ल पों—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना+अनु० पों] चिल्लाना। शोर गुल। पुकार। दोहाई।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

चिल्लभक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या नखी नाम का गंधद्रव्य।

चिल्लवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना] बच्चों का वह चिल्लाना जो जमुवा के रोग में होता है।

चिल्लवाना—क्रि० स० [हिं० चिल्लाना का प्रे०] चिल्लाने का काम दूसरे से कराना। चिल्लाने में प्रवृत्त करना।

चिल्ला—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चालीस दिन का समय।

मुहा०—चिल्ले का जाड़ा=बहुत कड़ी सरदी।

विशेष—धन के पंद्रह, मकर पचीस। जाड़ा जानो दिन चालीस। इन्हीं चालीस दिनों के जाड़े को चिल्ले का जाड़ा कहते हैं।

(२) चालीस दिन का व्रत। चालीस दिन का बंधेज वा किसी पुण्य कार्य्य का नियम। (मुसल०)

क्रि० प्र०—खींचना।

संज्ञा पु० [देश०] (१) एक जंगली पेड़। (२) उर्द, मूँग वा रौंछे के मैदे की परौंठी वा घी चुपड़ कर सेंकी हुई रोटी। चीला। उलटा। (३) धनुष की डोरी। पतंचिका।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—उतारना।

संज्ञा पु० [?] पगड़ी का छोर जिसमें कलाबत्तू का काम रहता है। तिल्ला।

चिल्लाना—क्रि० अ० [सं० चीत्कार] किसी प्राणी का ज़ोर से बोलना। मुँह से ऊँचा स्वर निकालना। शोर करना। हल्ला करना।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

चिल्लाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिल्लाना] (१) चिल्लाने का भाव। (२) हल्ला। शोर। गुल।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

चिल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दोनों भौंहों के बीच का स्थान। (२) एक प्रकार का बथुआ साग जिसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली नाम का कीड़ा।

संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका=एक अस्त्र का नाम] बिजली। वज्र। चिर्री।—उ०—(क) चकहू तें, चिल्लिन ते, प्रलै की बिज्जुल्लिन तें जमतुल्य झिल्लिन तें जगत उजेरो है।—पद्माकर। (ख) चिल्लिन को चाचा औ बिज्जुल्लिन को बाप बड़ो बाँकुरो बना है बड़वानल अजब को।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोध। (२) बथुआ साग।

चिल्हवाड़ा—संज्ञा पु० [हिं० चील] एक खेल जिसे लड़के पेड़ों पर चढ़ कर खेलते हैं। गिल्हर। गिलहर।

चिल्ही†—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] चील नाम की चिड़िया। उ०—चिकारी चहूँ ओर ते चाइ चिल्हीं।—सूदन।

चिवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिबुक। ठोढ़ी।

चिविट—संज्ञा पु० [सं०] चिउड़ा। चिड़वा।

चिवुक—संज्ञा पु० [सं०] (१) ठुड्ढी। ठोढ़ी। (२) मुचकुंद वृक्ष।

चिहुँकना*†—क्रि० अ० [सं० चमत्कृ, प्रा० चवँकि] चौंकना।

चिहुँटना*—क्रि० स० [सं० चिपिट, हिं० चिमटना] (१) चुटकी काटना। चुटकी से शरीर का मांस इस प्रकार पकड़ना जिसमें कुछ पीड़ा हो।

मुहा०—चित्त चिहुँटना=चित्त में संवेदना उत्पन्न करना। मर्म स्पर्श करना। चित्त में चुभना। उ०—लै चुभकी चलि जाति जित जित जल केलि अधीर। कीजत केसरि नीर से तित तित केसरि नीर। तकि तकि चित चिहुँटै खरी ऍड़ भरी अँगिराय।—शृंगार सत०।

(२) चिपटना। लिपटना। उ०—लाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहुँटी।—देव।

चिह–संज्ञा पुं० [सं०] कंधे और बाँह का जोड़। मोढ़ा।

चिरैता†–संज्ञा पुं० दे० "चिरायता"।

चिरैया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़िया] (१) दे० "चिड़िया"। (२) वर्षा का पुष्य नक्षत्र। (३) परिहत का सिरा जिसे जोतनेवाला पकड़ता है।

चिरौंजी–संज्ञा स्त्री० [सं० चार + बीज] पियार वा पियाल वृक्ष के फलों के बीज की गिरी। अचार के बीज की गिरी जो खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है और मेवों में समझी जाती है। यह किशमिश, बादाम आदि के साथ पकवानों और मिठाइयों में भी पड़ती है।

विशेष—दे० "पियार"।

चिर्भटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।

चिर्री†–संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका = एक अस्त्र का नाम] बिजली। वज्र।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

चिलक–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] (१) आभा। कांति। द्युति। चमक। झलक। उ०—(क) कहैं रघुनाथ वाके मुख की लुनाई आगे चिलक जुन्हाइन की चंद सरसानो है।—रघुनाथ। (ख) जब वाके रद की चिलक चमचमाति चहुँ कोंति। मंद होति दुति चंद की चपति चंचला जोति।—शृंगार सत०। (ग) चिलक तिहारी चाहि के सूधो तिलक लगै न।—शृंगार सत०। (२) रह रह कर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक। (३) एक बारगी उठ कर बंद हो जानेवाला दर्द। उ०—उठते बैठते कमर में चिलक होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलकना–क्रि० अ० [हिं० चिल्ली = बिजली, या अनु०] (१) रह रह कर चमकना। चमचमाना। झलकना। (२) दर्द का रह रह कर उठना। (३) एक बारगी पीड़ा होकर बंद हो जाना। चमकना।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिलका–संज्ञा पुं० [हिं० चिलक] चमकता हुआ चाँदी का सिक्का। रुपया।

चिलकाना†–क्रि० स० [हिं० चिलक] (१) चमकाना। झलकाना। (२) किसी वस्तु को इतना माँजना कि वह चमकने लगे। उज्ज्वल करना।

चिलगोजा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का मेवा। चीड़ वा सनोबर का फल।

विशेष—दे० "चीड़"।

चिलचिल–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिलकना] अभ्रक। अबरक। भोंडल।

चिलड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] उलटा नाम का पकवान।

चिलता–संज्ञा पुं० [फ़ा० चिल्तः] एक प्रकार का ज़िरहबकतर। एक प्रकार का कवच।

चिलबिल–संज्ञा पुं० [सं० चिलबिल्व] (१) एक बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और खेती के औज़ार बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों की सी होती हैं। (२) एक बड़ा पौधा जिसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और पेड़ी डाल आदि बहुत हलकी और हरे रंग की होती हैं। यह बरसात में उगता है और चार पाँच हाथ तक ऊँचा होता है। यह पौधा तालों में भी होता है जहाँ उसके पानी के भीतर का भाग फूल कर खूब मोटा हो जाता है। इस भाग को खुखड़ी कहते हैं जिससे माली ब्याह के मौर, झालर, तोरण आदि बनाते हैं।

चिलबिला, चिलबिल्ला–वि० [सं० चल + बल] [स्त्री० चिलबिल्ली] चंचल। चपल। शोख़। नटखट। उ०—यह बड़ा चिलबिला लड़का है।

चिलम–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कटोरी के आकार का मिट्टी का एक बरतन जिसका निचला भाग चौड़ी नली के रूप में होता है। इस पर तमाकू और आग रख कर तमाकू पीते हैं। साधारणतः चिलम को हुक्के की नली के ऊपर बैठा कर तमाकू पीते हैं। पर कभी कभी चिलम की नली को हाथ में लेकर भी पीते हैं। तमाकू के अतिरिक्त गाँजा, चरस आदि भी चिलम पर रख कर पिए जाते हैं।

यौ०—चिलमचट। चिलम-बरदार।

मुहा०—चिलम पीना = चिलम पर रखे हुए तमाकू का धुआँ पीना। चिलम चढ़ाना = (१) चिलम पर तमाकू (गाँजा आदि) और आग रख कर उसे पीने के लिये तैयार करना। (२) गुलामी करना। चिलम भरना = दे० "चिलम चढ़ाना"।

चिलमगर्दा–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हुक्के में हाथ भर की या उससे अधिक लंबी बाँस की नली जो चूने और ज़ामिन से मिली होती है। इस पर चिलम रखी जाती है। (नैचाबंद)

चिलमचट–वि० [फ़ा० चिलम + हिं० चटना] (१) बहुत अधिक चिलम पीनेवाला। वह जो चिलम पीने का बहुत व्यसनी हो। (२) इस प्रकार खींच कर चिलम पीनेवाला कि वह चिलम दूसरे के पीने योग्य न रहे।

चिलमची–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] देग के आकार का एक बरतन जिसके किनारे चारों ओर थाली की तरह दूर तक फैले होते हैं। इसमें लोग हाथ धोते और कुल्ली आदि करते हैं।

यौ०—चिलमची बरदार = हाथ मुँह धुलानेवाला नौकर।

चिलमन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाँस की फट्टियों का परदा। चिक।

क्रि० प्र०—डालना।—बाँधना।—लटकाना।

छु खाइया, साया किनहूँ दीठ। छोत उघाई देखिया, भीतर जमिया चीठ।—कबीर।

चीठा-संज्ञा पुं० दे० "चिट्ठा"। उ०—नाम की लाज राम-करनाकर, केहि न दिये कर चीठे।—तुलसी।

चीठी-संज्ञा स्त्री० दे० "चिट्ठी"।

चीड़-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का देशी लोहा। (२) जूते के लिये चमड़ा साफ़ करने की क्रिया। (मोचियों की परिभाषा)। (३) दे० "चीढ़"।

चीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीढ़ नाम का पेड़।

चीढ़-संज्ञा पुं० [सं० चीड़ा या क्षीर = चीढ] (१) एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो भूटान से काश्मीर और अफ़ग़ानिस्तान तक बहुत अधिकता से होता है। इसके पत्ते सुंदर होते हैं और लकड़ी अंदर से नरम और चिकनी होती है जो प्रायः इमारत और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पानी पड़ने से यह लकड़ी बहुत जल्दी ख़राब हो जाती है। इस लकड़ी में तेल अधिक होता है इसलिये पहाड़ी लोग इसके टुकड़ों को जला कर उनसे मशाल का काम लेते हैं। इसकी लकड़ी औषध के काम में भी आती है। इसके गोंद को गंधा-बिरोजा कहते हैं। तारपीन (तेल) भी इसी वृक्ष से निकलता है। कुछ लोग चिलगोज़े को इसीका फल बतलाते हैं पर चिलगोज़ा इसी जाति के दूसरे पेड़ का फल है। प्राचीन भारतीयों ने इसकी गणना गंधद्रव्य में की है और वैद्यक में इसे गरम, कासनाशक, चरपरा और कफनाशक कहा है। इसके अधिक सेवन से पित्त और कफ का दूर होना भी कहा गया है। इसे चील या सरल भी कहते हैं। (२) चीढ़ नाम का देशी लोहा।

चीत*†-संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त। मन। दिल।

संज्ञा पुं० [सं० चित्रा] चित्रा नक्षत्र। उ०—तुहि देखे पिय पलुहै कया। उतरा चीत बहुरि करि मया।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

चीतकार†*-संज्ञा पुं० (१) दे० "चीत्कार"। (२) दे० "चित्र-कार"।

चीतना-क्रि० स० [सं० चेत] [वि० चीत] (१) सोचना। विचारना। भावना करना। (२) चैतन्य होना। होश में आना। (३) स्मरण करना। याद करना।

क्रि० स० [सं० चित्र] चित्रित करना। तसवीर या बेल बूटे बनाना। उ०—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कौरेन सँथिया चीतत नव निधि।—सूर।

चीतर†-संज्ञा पुं० दे० "चीतल"।

चीतल-संज्ञा पुं० [हिं० चित्ती = सफ़ेद धब्बा या दाग] (१) एक प्रकार का हिरन जिसके शरीर पर सफ़ेद रंग की चित्तियाँ या बुंदकियाँ होती हैं। यह मझोले कद का होता है और सारे भारत में प्रायः जल के किनारे झुंडों में पाया जाता है। इसके अयाल नहीं होती। इसकी मादा गर्भ धारण के आठ महीने बाद बच्चा देती है। (२) अजगर की जाति का पर उससे छोटा एक प्रकार का साँप जिसके शरीर पर छोटी छोटी सफ़ेद चित्तियाँ होती हैं। इसके आगे का भाग पतला और मध्य का बहुत भारी होता है। यह ख़रगोश, बिल्ली या बकरे के छोटे बच्चों को निगल जाता है। (३) एक प्रकार का सिक्का।

चीता-संज्ञा पुं० [सं० चित्रक] (१) बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु जो प्रायः दक्षिणी एशिया और विशेषतः भारत के जंगलों में पाया जाता है। यह आकार में बाघ से छोटा होता है और इसकी गरदन पर अयाल नहीं होती। इसकी कमर बहुत पतली होती है और इसके शरीर पर लंबी, काली और पीली धारियाँ होती हैं जो देखने में सुंदर होती हैं। यह बहुत तेज़ी से चौकड़ी भरता और इसी प्रकार प्रायः हिरनों को पकड़ लेता है। यह साधारणतः बहुत हिंसक होता है और प्रायः पेट भरे रहने पर भी शिकार करता है। संध्या समय यह जलाशयों के किनारे छिपा रहता है और पानी पीनेवाले पशुओं को उठा ले जाता है। चीता मनुष्यों पर जल्दी आक्रमण नहीं करता, पर जब एक बार इसके मुँह में आदमी का खून लग जाता है, तो फिर वह प्रायः गाँवों में इसी के लिये घुस जाता और मनुष्यों के बालकों को उठा ले जाता है। यह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता पर पानी में बहुत तेज़ी से तैर सकता है। मादा एक बार में ३—४ तक बच्चे देती है। भारत में इसका शिकार किया जाता है। कहीं कहीं बड़े आदमी इसे दूसरे जानवरों का शिकार करने के लिये भी पालते हैं। इसका बच्चा पकड़ कर पाला भी जा सकता है। (२) एक प्रकार का बड़ा क्षुप जिसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसकी कई जातियाँ हैं जिनमें अलग अलग सफ़ेद, लाल, काले या पीले फूल लगते हैं। पर सफ़ेद फूलवाले चीते के सिवा और रंगों के फूलोंवाले चीते बहुत कम देखने में आते हैं। इसके फूल बहुत सुगंधित और जूही के फूलों से मिलते जुलते होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। इसकी छाल और जड़ औषधि के काम में आती है। यह बहुत पाचक होता है। वैद्यक में इसे चरपरा, हलका, अग्निदीपक, भूख बढ़ानेवाला, रूखा, गरम और संग्रहणी, कोढ़, सूजन, बवासीर, खाँसी और यकृत् दोष आदि को दूर करनेवाला तथा त्रिदोषनाशक माना है। कहते हैं, लाल फूलवाले चीते की जड़ के सेवन से शरीर स्थूल हो जाता है और काले फूल के चीते की जड़ के सेवन से बाल काले हो जाते हैं।

चिहुँटनी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा । घुँघची । चिरमिटी ।

चिहुँटी†–संज्ञा स्त्री० [?] चुटकी । चिकोटी । उ०—बाल को लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहूँटी ।—देव ।

चिहुर*–संज्ञा पुं० [सं० चिकुर] सिर के बाल । केश । उ०—छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ।—सूर ।

चिह्न–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिह्नित] (१) वह लक्षण जिससे किसी चीज़ की पहचान हो । निशान । (२) पताका । झंडी । (३) किसी प्रकार का दाग या धब्बा ।

चिह्नधारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा नाम की लता । कालीसर ।

चिह्नित–वि० [सं०] चिह्न किया हुआ । जिस पर चिह्न हो ।

चीँ, चीँचीँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पक्षियों अथवा छोटे बच्चों का बहुत महीन शब्द । (२) पक्षियों अथवा बच्चों का महीन स्वर में बहुत बोलना या शोर करना ।

मुहा०—चीं बोलना = अयोग्यता, अकर्मण्यता, वा अधीनता स्वीकार करना । दबैल होना ।

यौ०—चीँ चपड़ ।

चीँ चपड़–संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द या कार्य्य जो किसी बड़े या सबल के सामने प्रतिकार या विरोध के लिये किया जाय । जैसे, अगर ज़रा भी चीँ चपड़ करोगे तो हाथ पैर तोड़ कर रख दूँगा ।

चीँटवा†–संज्ञा पुं० दे० "चीँटा" या "च्यूँटा" । उ०—राम मरैं तो हम मरैं नातर मरै बलाय । अविनासी का चीँटवा, मरै न मारा जाय ।—कबीर ।

चीँटा–संज्ञा पुं० दे० "चिँउँटा" ।

चीँटी–संज्ञा स्त्री० दे० "चिँउँटी" ।

चीँता गोला–संज्ञा पुं० दे० "छीँटा गोला" ।

चीँथना–क्रि० स० दे० "चींथना" ।

चीक–संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार] पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत ज़ोर से चिल्लाने का शब्द । चिल्लाहट ।

क्रि० प्र०—मारना ।

†संज्ञा पुं० [हिं० चिक] मांस बेचनेवाला । कसाई । बूचर ।

विशेष—प्रायः बूचरों की दूकानों पर आड़ के लिये चिकें टँगी रहती हैं, इसी से उन्हें चीक कहते हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "कीच" या "कीचड़" ।

चीकट–संज्ञा पुं० दे० [हिं० कीचड़] (१) तेल का मैल । तलछट । (२) मटियार । लसार मिट्टी ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) चिकट नाम का रेशमी कपड़ा । † (२) वह कपड़े या जेवर आदि जो कोई मनुष्य अपने भांजे या भांजी के विवाह में अपनी बहन को देता है ।

वि० बहुत मैला या गंदा ।

चीकड़†–संज्ञा पुं० दे० "कीचड़" ।

चीकना†–वि० दे० "चिकना" ।

चीकना–क्रि० अ० [सं० चीत्कार] (१) पीड़ा या कष्ट आदि के कारण ज़ोर से चिल्लाना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

(२) बहुत ज़ोर ज़ोर से बोलना । बहुत ऊँचे स्वर से बात करना ।

चीकर†–संज्ञा पुं० [देश०] कुएँ के ऊपर बना हुआ वह स्थान जिसमें मोट या चरस आदि से निकाला हुआ पानी गिराया जाता है और जहां से पानी नालियों द्वारा होकर खेतों में पहुँचता है ।

चीख–संज्ञा स्त्री० दे० "चीक" ।

चीखना–क्रि० स० [सं० चषण] किसी चीज़ को उसका स्वाद जानने के लिये, थोड़ी मात्रा में खाना या पीना ।

चीखना–क्रि० अ० दे० "चीकना" ।

चीखर, चीखल†–संज्ञा पुं० [हिं० चीकट (कीचड़)] (१) कीच । कीचड़ । उ०—जल दाझ्या चीखल जला, विरहा लागी आगि । तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूरा के लागि ।—कबीर । (२) गारा । (डिं०) ।

चीखुर–संज्ञा पुं० [हिं० चिखुरा] गिलहरी ।

चीज़–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह जिसकी वास्तविक, काल्पनिक अथवा संभावित परंतु दूसरों से पृथक् सत्ता हो । सत्तात्मक वस्तु । पदार्थ । वस्तु । द्रव्य । जैसे, (क) बहुत भूख लगी है, कोई चीज़ (खाद्य पदार्थ) हो तो लाओ । (ख) मेरे पास ओढ़ने के लिये कोई चीज़ (रज़ाई, दोहर या कोई कपड़ा) नहीं है । (ग) उनकी सब चीज़ें (लोटा, थाली, कपड़ा, किताबें आदि) हमारे यहां रक्खी हुई हैं ।

यौ०—चीज़ वस्तु = सामान । असबाब ।

(२) आभूषण । गहना । उ०—(क) यह चीज़ रख कर रुपए लाए हैं । (ख) लड़की के हाथ पैर नंगे हैं, इसे कोई चीज़ बनवा दो ।

यौ०—चीज़ वस्तु = ज़ेवर आदि ।

(३) गाने की चीज़ । राग । गीत । उ०—(क) कोई अच्छी चीज़ सुनाओ । (ख) उसने दो चीज़ें बहुत अच्छी सुनाई थीं । (४) विलक्षण वस्तु । विलक्षण जीव । उ०—(क) क्या कहूँ, मेरी अँगूठी गिर गई; वह एक चीज़ थी । (ग) आप भी तो एक चीज़ हैं । (५) महत्त्व की वस्तु । गिनती करने योग्य वस्तु । उ०—(क) काशी के आगे मथुरा क्या चीज़ है । (ख) उनके सामने ये क्या चीज़ हैं ।

चीठा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीकट (कीचड़)] मैल । उ०—बाँहे काट

संज्ञा पु० [सं० चिह्न] एक प्रकार का सफ़ेद कबूतर जिसके शरीर पर लाल या काली चित्तियाँ होती हैं।

वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे, चीना बादाम।

चीनाक—संज्ञा पु० [सं०] चीनी कपूर।

चीना ककड़ी—संज्ञा पु० [सं० चीना + कर्कटी] एक प्रकार की छोटी ककड़ी। वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, रुचिकारक, भारी, वातवर्द्धक, पित्तरोग-नाशक और दाहशोष आदि को हरने-वाला कहा है।

चीनाचंदन—संज्ञा पु० [हिं० चीना + चंदन] एक प्रकार का पक्षी जो दक्षिण-भारत में पाया जाता है। इसके पीले शरीर पर काली धारियाँ होती हैं और इसका स्वर मनोहर होता है। मधुर-भाषी होने के कारण यह पाला जाता है।

चीना बादाम—संज्ञा पु० [हिं० चीन + फ़ा० बदाम] मूँगफली।

चीनिया—वि० [देश०] चीन देश का। चीन देश संबंधी।

चीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० (देश) + ई (प्रत्य०)] सफ़ेद रंग का एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ जो चूर्ण के रूप में होता है और ईख के रस, चुकंदर, खजूर आदि कई पदार्थों से बनाया जाता है। इसका व्यवहार प्रायः मिठाइयाँ बनाने और पीने के लिये दूध या पानी आदि को मीठा करने में होता है। तरल पदार्थ में यह बहुत सरलता से घुल जाती है।

विशेष—भारतवर्ष में चीनी केवल ईख के रस से ही उसको बार बार उबाल और साफ़ करके बनाई जाती है। पर संसार के अन्य भागों में यह और भी बहुत से पौधों के मीठे रस से और विशेषतः चुकंदर के रस से बनाई जाती है। जिस देशी चीनी में मैल अधिक हो उसे "कच्ची चीनी" और जिसमें मैल कम हो उसे "पक्की चीनी" कहते हैं। इधर कुछ दिनों से भारत में विलायती चीनी भी आने लगी है, जिसका व्यवहार बहुत से हिंदू धार्म्मिक दृष्टि से अनुचित समझते हैं। चीनी की खपत भारतवर्ष में अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। खाँड़, राब, गुड़ आदि इसी के पूर्व और अपरिष्कृत रूप हैं। प्राचीन भारतियों ने इसकी गणना मंगल-द्रव्यों में की है। सुश्रुत के अनुसार ईख का रस उबाल कर बनाए हुए पदार्थ ज्यों ज्यों साफ़ होकर राब, गुड़, चीनी, मिसरी आदि बनते हैं त्यों त्यों वे उत्तरोत्तर शीतल, स्निग्ध, भारी, मधुर और तृष्णा शांत करनेवाले होते जाते हैं।

वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे, चीनी मिट्टी, कबाब चीनी, चीनी भाषा।

चीनी कपूर—संज्ञा पु० [हिं० चीन + सं० कर्पूर] एक प्रकार का कपूर।

चीनी कबाब—संज्ञा स्त्री० दे० "कबाबचीनी"।

चीनी चंपा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बहुत उत्तम केला जो आकार में छोटा होता है। इसी को 'चिनिया केला' भी कहते हैं।

चीनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चीनी (वि०) + मिट्टी] एक प्रकार की मिट्टी जो पहले पहल चीन के किंग-टि-चिन् नामक पहाड़ से निकली थी और अब अन्य देशों में भी कहीं कहीं पाई जाती है। इसके ऊपर पालिश बहुत अच्छी होती है और इससे तरह तरह के खिलौने, गुलदान और छोटे बड़े बरतन बनाए जाते हैं जो "चीन के" या "चीनी के" कहलाते हैं। आज कल इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश तथा बंगाल के कुछ जिलों में भी पाई जाती है।

चीनी मोर—संज्ञा पु० [हिं० चीनी + मोर] सोहन चिड़िया की जाति का एक पक्षी जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में अधि-कता से होता है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है, इस-लिये अँगरेज़ प्रायः इसका शिकार करते हैं।

चीन्ह †—संज्ञा पु० दे० "चिह्न"।

चीन्हना †—क्रि० स०[सं० चिह्न] पहचानना।

यौ०—चीन्हा परिचय = जान पहचान।

चीन्हा †—संज्ञा पु० दे० "चिह्न"।

चीप—संज्ञा० स्त्री० [देश०] (१) चार अंगुल की एक लकड़ी जो जूते के कलबूत में सबसे पीछे भरी या चढ़ाई जाती है। (चमारों की परि०)। (२) ज़मीन में से निकली हुई मिट्टी का वह अंश जो एक बार फावड़ा चलाने से खुद कर निकल आवे। (३) दे० "चेप"।

चीपड़—संज्ञा पु० [हिं० कीचड़] वह सफ़ेद लसदार पदार्थ जो आँख के कोनों से निकलता है। आँख का कीचड़।

चीफ़—संज्ञा पु० [अं०] बड़ा सरदार या राजा, विशेषतः किसी जाति या प्रांत का अधिकारप्राप्त प्रधान।

यौ०—रूलिंग चीफ़ = (भारतवर्ष में) वह राजा जिसे अपने राज्य के आतरिक कार्य्यों के संबंध में पूर्ण अधिकार हो।

वि० प्रधान। श्रेष्ठ। बड़ा। जैसे, चीफ़ एडीटर।

चीफ़ कमिश्नर—संज्ञा पु० [अं०] (१) वह प्रधान अधिकारी जिसको किसी कार्य्य करने का अधिकार-पत्र मिला हो। (२) किसी सूबे या कई कमिश्नरियों का प्रधान अधिकारी।

विशेष—चीफ़ कमिश्नर का पद लेफ्टिनेंट गवर्नर (छोटे लाट) के पद से कुछ छोटा समझा जाता है और उसके अधिकार में स्वतंत्र प्रांत होता है। इसकी नियुक्ति स्वयं गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल के द्वारा होती है और वह गवर्नर-जेनरल का विशिष्ट अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि होता है। सीमा-प्रांत तथा मध्य प्रदेश आदि प्रांत चीफ़ कमिश्नर के अधीन हैं।

चीफ़ कोर्ट—संज्ञा पु० [अं०] किसी प्रांत का प्रधान न्यायालय।

विशेष—भारतवर्ष के पंजाब तथा दक्षिणी बरमा की सबसे बड़ी अदालत 'चीफ़ कोर्ट' कहलाती है। इसके चीफ़ जज

पर्य्या०—चित्रक । अनल । वह्नि । विभाकर । शिखावान । शुष्मा । पावक । दारुण । शंवर । शिखी । हुतभुक् । पाची । इसके अतिरिक्त अग्नि के प्रायः सभी पर्य्याय इसके लिये व्यवहृत होते हैं ।

†संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त । हृदय । दिल । उ०—अति अनंद गति इंद्री जीता । जाको हरि बिन कबहुँ न चीता ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [स० चेत] संज्ञा । होश हवास । उ०—तिन को कहा परेखो कीजे कुबजा के मीता को । चढ़ि चढ़ि सेज सातहूँ सिंधू बिसरी जो चीता को ।—सूर ।

वि० [हिं० चेतना] सोचा हुआ । विचारा हुआ । जैसे, अब तो तुम्हारा चीता हुआ ।

चीतावनी†—संज्ञा स्त्री० [स० चेत] यादगार । स्मारकचिह्न ।

चीत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाहट । हल्ला । शोर । गुल । चिल्लाने का शब्द ।

चीथड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चीथना] फटे पुराने कपड़े का छोटा रद्दी टुकड़ा ।

मुहा०—चीथड़ा लपेटना = फटा पुराना और रद्दी कपड़ा पहनना । चीथड़ों लगना = बहुत दरिद्र होना । इतना दरिद्र होना कि पहनने को केवल चीथड़े ही मिलें ।

चीथना—क्रि० स० [स० चर्व] टुकड़े टुकड़े करना । चोंथना । फाड़ना । (विशेषतः कपड़े के लिये) ।

चीथरा—संज्ञा पुं० दे० "चीथड़ा" ।

चीदः—वि० [फ़ा०] चुना हुआ । छाँटा हुआ । (क्व०)

चीन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) झंडी । पताका । (२) सीसा नामक धातु । नाग । (३) तागा । सूत । (४) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । (५) एक प्रकार का हिरन । (६) एक प्रकार की ईख । (७) एक प्रकार का साँवाँ अन्न । दे० "चेना" । (८) एक प्रसिद्ध पहाड़ी देश जो एशिया के दक्षिण पूर्व में है । इसमें अठारह प्रांत हैं और इसकी राजधानी पेकिंग है । इसका साम्राज्य बड़ा और मध्य एशिया तक फैला हुआ है । मंचूरिया, मंगोलिया, तिब्बत, पूर्वी तुर्किस्तान आदि इसी के अधीन हैं । अभी हाल में यहाँ प्रजातंत्र राज्य हुआ है । यहाँ के अधिकांश निवासी प्रायः बौद्ध हैं । चीन के निवासी अपनी भाषा में अपने देश को "चंगकूह" कहते हैं । कदाचित् इसी लिये भारत तथा फारस के प्राचीन निवासियों ने इस देश का नाम अपने यहाँ "चीन" रख लिया था । चीन देश का उल्लेख महाभारत, मनुस्मृति, ललितविस्तर आदि ग्रंथों में बराबर मिलता है । यहाँ के रेशमी कपड़े भारत में चीनांशुक नाम से इतने प्रसिद्ध थे कि रेशमी कपड़े का नाम ही "चीनांशुक" पड़ गया है । चीन में बहुत प्राचीन काल का क्रमबद्ध इतिहास सुरक्षित है । ईसा से २९५० वर्ष पूर्व तक के राजवंश का पता चलता है । चीन की सभ्यता बहुत प्राचीन है, यहाँ तक कि यूरोप की सभ्यता का बहुत कुछ अंश—जैसे पहनावा, बैठने और खाने पीने आदि का ढंग, पुस्तक छापने की कला आदि—चीन से लिया गया है । यहाँ ईसा के २१७ वर्ष पूर्व से बौद्ध धर्म का संचार हो गया था, पर ईसवी सन् ६१ में मिंगती राजा के शासनकाल में जब कि भारतवर्ष से ग्रंथ और मूर्त्तियाँ गईं, लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित होने लगे । सन् ६७ में कश्यप मतंग नामक एक बौद्ध पंडित चीन में गए और उन्होंने 'द्वाचत्वारिंशत् सूत्र' का चीनी भाषा में अनुवाद किया । तब से बराबर चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ता गया । चीन से झुंड के झुंड यात्री विद्याध्ययन के लिये भारतवर्ष में आते थे । चीन में अब तक कई स्तूप पाए जाते हैं, जिनके विषय में चीनियों का कथन है कि वे सम्राट् अशोक के बनवाए हैं ।

यौ०—चीन की दीवार = एक प्रसिद्ध दीवार जिसे ईसा से प्रायः दो सौ पूर्व एक चीनी सम्राट् ने उत्तरीय जातियों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करने के लिये बनवाया था । यह दीवार प्रायः १५०० मील लंबी है और बहुत ऊंची, चौड़ी और दृढ़ बनी है । इसका कुछ अंश मंगोलिया और चीन देश की विभाजक सीमा है । इसकी गणना संसार के सात सब से अधिक आश्चर्यदायक पदार्थों (सप्ताश्चर्य) में की जाती है ।

मुहा०—चीन का, या चीनी का बरतन या खिलौना आदि = दे० "चीनी मिट्टी" ।

(९) उक्त देश का निवासी ।

‡ संज्ञा पुं० (१) दे० "चिह्न" । (२) दे० "चुनन" ।

चीनक—संज्ञा पुं० [स०] (१) चेना नामक अन्न । (२) कँगनी नामक अन्न । (३) चीनी कपूर ।

चीनकर्पूर—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर ।

चीनज—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का इस्पात लोहा जो चीन से आता है ।

चीनना†—क्रि० स० दे० "चीन्हना" । उ०—द्वादश धनुष द्वादशै बिम्ब मनमोहन पढ़ै चिबुक चिह्न चित चीन ।—सूर ।

चीनपिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर । सेंदुर । (२) इस्पात लोहा ।

चीनवंग—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु ।

चीनांशुक—संज्ञा पुं० [स०] (१) एक प्रकार की लाल बनात जो पहले चीन से आती थी । (२) चीन से आनेवाला एक प्रकार का कपड़ा ।

चीना—संज्ञा पुं० [हिं० चीन] (१) चीन देशवासी । (२) एक तरह का साँवाँ ।

विशेष—दे० "चेना" ।

चीरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरीनारायण के निकट की एक प्राचीन नदी का नाम जिसके पास वैवस्वत मनु ने तपस्या की थी। इसका नाम महाभारत में आया है।

चीरितच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पालक का साग।

चीरी†–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झींगुर। झिल्ली। (२) एक प्रकार की छोटी मछली।

†*संज्ञा स्त्री० [हिं० चिड़िया] चिड़िया। पक्षी। उ०—सासति सहत दास कीजे पेखि परिहास चीरी को मरन खेलु बालकनि को सोहै।—तुलसी।

‡संज्ञा स्त्री० दे० "चीड़"।

चीरीवाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा। मनु के मत से नमक चुरानेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में इसी योनि में जन्म लेता है।

चीरू†–संज्ञा पुं० दे० "चीर"।

चीरुक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फल जिसे वैद्यक में रुचिकर, दाहजनक और कफ-पित्त-वर्द्धक माना है।

चीरू†–संज्ञा पुं० [सं० चीर] लाल रंग का सूत जो विदेश से आता है।

चीर्ण–वि० [सं०] फाड़ा या फटा हुआ। चीरा या चिरा हुआ।

चीर्णपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़। (२) खजूर का पेड़।

चील–संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] गिद्ध और बाज आदि की जाति की पर उनसे कुछ दुर्बल एक प्रसिद्ध बड़ी चिड़िया जो संसार के प्रायः सभी गरम देशों में पाई जाती है और कई प्रकार और रंगों की होती है। यह बहुत तेज़ उड़ती है और आसमान में बहुत ऊँचाई पर प्रायः बिना पर हिलाए चक्कर लगाया करती है। यह कीड़े, मकोड़े, चूहे, मछलियाँ, गिरगिट और छोटे छोटे पक्षी खाती है। यह अपने शिकार को देख कर तिरछे बनाती है और बिना ठहरे हुए झपट्टा मार कर उसे लेती हुई आकाश की ओर निकल जाती है। बाज़ारों में मछली और मांस की दूकानों के आस पास प्रायः बहुत सी चीलें बैठी रहती हैं और रास्ता-चलते लोगों के हाथ से झपट्टा मार कर खाद्य पदार्थ ले जाती हैं। यह ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर अपना घोंसला बनाती है और पूस माघ में तीन चार अंडे देती है। अपने बच्चों को यह दूसरे पक्षियों के बच्चे लाकर खिलाती है। यह बहुत ज़ोर से ची ची शब्द करती है, इसी से इसका नाम चिल्ल या चील पड़ा है। हिंदू लोग अपने मकानों पर इसका बैठना अशुभ समझते हैं और बैठते ही इसे तुरंत उड़ा देते हैं।

पर्या०—आतापी। शकुनि। दर्भांत। कंठनीड़क। चिरंतन।

यौ०—चील झपट्टा=(१) किसी चीज़ को औचक में झपट्टा मार कर लेने की क्रिया। (२) लड़कों का एक खेल जिसमें वे परस्पर एक दूसरे के सिर पर, उसकी टोपी उतार कर धौल लगाते हैं।

मुहा०—चील का मूत=वह चीज़ जिसका मिलना बहुत कठिन, प्रायः असम्भव हो।

चीलड़–संज्ञा पुं० दे० "चीलर"।

चीलर–संज्ञा पुं० [देश०] जूँ की तरह का पर सफ़ेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है। दे० "चिल्लड़"।

क्रि० प्र०—पड़ना।

चीलवा†–संज्ञा पुं० [देश०] चिलड़ा नाम का पकवान।

विशेष—दे० "उलटा"।

चीला–संज्ञा पुं० दे० "चिलड़ा" या "चिल्ला"।

चीलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

चीलू–संज्ञा पुं० [सं०] आडू की तरह का एक प्रकार का पहाड़ी मेवा।

चीलुक–संज्ञा पुं० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

चील्ह–संज्ञा स्त्री० दे० "चील" (पक्षी)।

चील्हड़, चील्हर–संज्ञा पुं० दे० "चीलर"।

चील्ही†–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तंत्रोपचार जिसे बालकों के कल्याणार्थ स्त्रियाँ करती हैं। उ०—भनै रघुराज मुख चूमति चरण चापि चील्ही करवाय राई लोन उतारयो है।—रघुराज।

चीवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) योगियों, संन्यासियों या भिक्षुकों का फटा पुराना कपड़ा। (२) बौद्ध संन्यासियों के पहनने के वस्त्र का ऊपरी भाग।

विशेष—बौद्ध-संन्यासियों के पहनने का वस्त्र दो भागों में होता है, ऊपरी भाग को चीवर और नीचे के भाग को निवास कहते हैं।

चीवरी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध भिक्षुक। (२) भिक्षुक। भिखमंगा।

चीस–संज्ञा स्त्री० दे० "टीस"।

चीह†–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीख] चिल्लाहट। चीत्कार।

चुँगना–क्रि० स० दे० "चुगना"।

चुंगल–संज्ञा पुं० [हिं० चौ+अंगुल। या फ़ा० चंगल] (१) चिड़ियों या जानवरों का पंजा जो कुछ टेढ़ा या झुका हुआ होता है। चंगुल। उ०—ज्यों क्षुधित बाज लखि गन कुलंग। चुंगल चपेट करि देत भंग।—सूदन। (२) मनुष्य के पंजे की वह स्थिति जो उँगलियों से बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को लेने या पकड़ने में होती है। बटोरा हुआ पंजा। बकोटा। चंगुल। उ०—चुंगल भर आटा साईं को दो।

मुहा०—चुंगल में फँसना=वश में आना। क़ाबू में होना। पकड़ में आना।

चुंगली†–संज्ञा स्त्री० [देश०] नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे 'समथा' भी कहते हैं। एक प्रकार की नथ।

और जजों की नियुक्ति गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल द्वारा होती है।

चीफ़ जज–संज्ञा पुं० [अं०] चीफ़ कोर्ट के जजों में प्रधान। चीफ़-कोर्ट का प्रधान जज।

चीफ़ जस्टिस–संज्ञा पुं० [अं०] हाई कोर्ट का प्रधान जज।

चीमड़–वि० [हिं० चमड़ा] जो खींचने, मोड़ने या झुकाने आदि से न फटे या टूटे। जैसे, चीमड़ कपड़ा, चीमड़ काग़ज़, चीमड़ लकड़ी, आदि।

विशेष—यह विशेषण केवल उन्हीं पदार्थों के लिये व्यवहृत होता है जो खींचने से बढ़ या मोड़ने अथवा झुकाने से टूट सकते हों।

संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मक] अमलतास की जाति का पर बहुत छोटा, एक प्रकार का पौधा जिसके बीज दस्तावर होते हैं और आँख आने पर पीस कर आँखों में डाले जाते हैं। इसे चाकसू या चनार भी कहते हैं।

चीमर–संज्ञा पुं० और वि० दे० "चीमड़"।

चीयाँ–संज्ञा पुं० दे "चियाँ"।

चीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र। कपड़ा। उ०—(क) प्रातकाल असनान करन को यमुना गोपि सिधारी। लै कै चीर कदंब चढ़े हरि विनवत हैं व्रजनारी।—सूर। (ख) कीके कागर ज्यों नृप चीर विभूपन उपमा अंगन पाई।—तुलसी। (ग) चीर मध्ये ज्यों तंतु है तंतु मध्ये ज्यों चीर। ज्यों जग मध्ये ब्रह्म है ब्रह्म मध जगत कबीर।—कबीर। (२) वृक्ष की छाल। (३) पुराने कपड़े का टुकड़ा। चिथड़ा। लत्ता। (४) गौ का थन। (५) चार लड़ियोंवाली मोतियों की माला। (६) मुनियों, विशेपतः बौद्ध भिक्षुकों के पहनने का कपड़ा। (७) एक बड़ा पक्षी जो प्रायः तीन फुट लंबा होता है और जिसका शिकार किया जाता है। यह कमाऊँ, गढ़वाल तथा अन्य पहाड़ी जिलों में पाया जाता है। इसकी दुम लंबी और बहुत ख़ूबसूरत होती है। यह 'चीर चीर' शब्द करता है, इसीसे इसे चीर कहते हैं। (८) धूप का पेड़।

विशेष—दे० "चीड़"।

(९) मथौथ। छप्पर का मँगरा। (१०) सीसा नामक धातु।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरना] (१) चीरने का भाव वा क्रिया।

यौ०—चीर फाड़ = चीरने या फाड़ने का भाव वा क्रिया।

(२) चीर कर बनाया हुआ शिगाफ़ या दरार।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

(३) कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) पीछे से कमर पकड़े होता है। इसमें दाहिने हाथ से जोड़ का दाहिना हाथ और बाएँ से बायाँ हाथ पकड़ कर पहलवान उसके दोनों हाथों को अलग करता हुआ निकल आता है।

चीरक–संज्ञा पुं० [सं०] लिखित प्रमाण के दो भेदों में से एक। विकृत लेख।

चीर-चरम–[सं० चीरचम] बाघंबर। मृगचर्म। मृगछाला।

चीरना–क्रि० स० [सं० चीर्ण = चीरा हुआ] [संज्ञा चीरा] किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक सीध में योंही अथवा किसी धारदार वा दूसरी चीज़ से धँसा या फाड़ कर खंड या फाँक करना। फाड़ना। विदीर्ण करना। जैसे, आरी से लकड़ी चीरना, नश्तर से घाव चीरना, नाव का पानी चीरना, दोनों हाथों से भीड़ चीरना, आदि।

यौ०—चीरना फाड़ना।

मुहा०—माल (या रुपया आदि) चीरना = किसी प्रकार विशेषतः कुछ अनुचित रूप से बहुत धन कमाना।

चीरनिवसन–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशान कोण में बतलाया जाता है। (२) उक्त देश का निवासी।

चीरल्लि–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का पक्षी।

चीरपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चेंच नाम का साग।

चीरपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] साल का पेड़।

चीरफाड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीर + फाड़] (१) चीरने फाड़ने का काम। (२) चीरने फाड़ने का भाव।

चीरवासा–संज्ञा पुं० [सं० चीरवासस्] (१) शिव। महादेव। (२) यक्ष।

चीरा–संज्ञा पुं० [हिं० चीरना] (१) एक प्रकार का लहरियेदार रंगीन कपड़ा जो पगड़ी बनाने के काम में आता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—बनाना।

यौ०—चीराबंद।

(२) गाँव की सीमा पर गाड़ा हुआ पत्थर या खंभा आदि। (३) चीर कर बनाया हुआ क्षत वा घाव।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—लगाना।

मुहा०—चीरा उतारना या तोड़ना = (किसी पुरुष का स्त्री के साथ) प्रथम समागम करना। कुमारी का कौमार नष्ट करना।

यौ०—चीराबंद।

चीराबंद–संज्ञा पुं० [हिं० चीरा = कपड़ा + फ़ा० बंद] चीरा बाँधनेवाला। जो लोगों के लिये चीरे बाँध कर तैयार करता हो।

वि० स्त्री० [हिं० चीरा (क्षत) + फ़ा० बंद] कुमारी। जिसने पुरुष के साथ समागम न किया हो। (बाज़ारू)।

चीराबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चीरा = पगड़ी का कपड़ा + फ़ा० बंदी] एक प्रकार की बुनावट जो पगड़ी बनाने के लिये तास के कपड़े पर कारचोबी के साथ की जाती है। इस बुनावट की पगड़ी कुछ जातियों में विवाह के समय वर को पहनाई जाती है।

चीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर। झिल्ली।

हैं। कृत्रिम चुंबक या तो चुंबक के संसर्ग द्वारा बनाए जाते हैं अथवा इस्पात की छड़ में विद्युत्प्रवाह दौड़ाने से। विद्युत्प्रवाह द्वारा बड़े शक्तिशाली चुंबक तैयार होते हैं।

चुंबन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चुंबनीय, चुंबित] प्रेम के आवेग में होंठों से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को स्पर्श करने या दबाने की क्रिया। चुम्मा। बोसा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चुंबना*–क्रि० स० [सं० चुंबन] (१) चूमना। बोसा लेना। उ०—कबहुँक माखन रोटी लै कै खेल करत पुनि माँगत। मुख चुंबत जननी समझावत आय कंठ पुनि लागत।—सूर। (२) स्पर्श करना। छूना। उ०—धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रवि ससि दुति निंदत।—तुलसी।

चुंबा–संज्ञा पुं० दे० "मुंबा"। (लश०)

चुंबित–वि० [सं०] (१) चूमा हुआ। (२) प्यार किया हुआ। (३) स्पर्श किया हुआ। छुआ हुआ।

चुंबी–वि० [सं०] चूमनेवाला। जो चूमे।

विशेष—यौगिक शब्द बनाने में इसका प्रयोग अधिक होता है जैसे, गगनचुंबी।

चुँभना*†–क्रि० अ० दे० "चुभना"।

चुअना†*–क्रि० अ० दे० "चूना"।

चुआ–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी गेहूँ।

संज्ञा पुं० दे० "चोआ"।

चुआई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुआना] (१) चुआने का काम। टपकाने की क्रिया। (२) चुआने की मज़दूरी।

चुआक–संज्ञा पुं० [हिं० चुआना = टपकना] वह छेद जिससे पानी आवे। (लश०)

चुआन–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना] खाईं। नहर। गड्ढा। जल आने का स्थान। सोता। उ०—(क) सब देवताओं को बश कर नगर में चारों ओर जल की चुआन चौड़ी करवाई और अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो वह सुख से राज्य करने लगा।—लल्लू। (ख) वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर साँचे का कोट और पक्की चुआन, चौड़ी खाईं, स्फटिक के चार फाटक इत्यादि हैं।—लल्लू।

चुआना–क्रि० स० [हिं० चूना = टपकना] (१) टपकाना। बूँद बूँद गिराना। *(२) चुपड़ना। चिकनाना। रसमय करना। रसीला बनाना। उ०—वेष सुबनाइ सुचि बचन कहै चुआइ जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।—तुलसी। (३) भभके से अर्क उतारना। जैसे, शराब चुआना।

चुआव–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुआना] चुआने की क्रिया या भाव।

चुकंदर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर या शलगम की तरह की एक जड़ जो सुर्खी लिए होती है और तरकारी के काम में आती है। इसका स्वाद कुछ मीठापन लिए होता है। कहीं कहीं इससे खाँड़ भी निकाली जाती है। चुकंदर ऐसे स्थानों पर बहुत उपजता है जहाँ खारी मिट्टी या खारा पानी मिलता है। समुद्र के किनारे चुकंदर की पैदावार अच्छी होती है। इसके लिये शोरा और नमक मिला पानी खाद का काम करता है।

चुक–संज्ञा पुं० दे० "चूक"।

चुकचुकाना–क्रि० अ० [हिं० चूना = टपकना] (१) किसी द्रव पदार्थ का बहुत बारीक छेदों से हो कर सूक्ष्म कणों के रूप में बाहर आना। रस कर बाहर फैलना। उ०—चमड़े पर रगड़ लगने से खून चुकचुका आया। (२) पसीजना। आर्द्र होना। चुचाना।

चुकचुहिया–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) एक छोटी चिड़िया जो बहुत तड़के बोलने लगती है। (२) काग़ज़ या चमड़े का बना हुआ एक खिलौना जो हिलाने या दबाने से चूँ चूँ शब्द करता है।

चुकटा–संज्ञा पुं० [हिं० चुटका] चंगुल। चुटकी।

मुहा०—चुटका भर = चंगुल भर। उतना (आटा आदि) जितना चंगुल या चुटकी में आवे।

चुकटी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चुटकी"।

चुकता–वि० [हिं० चुकना] बेबाक। निःशेष। अदा। (ऋण या रुपये पैसे के हिसाब किताब के संबंध में इसे बोलते हैं) उ०—एक महीने में हम तुम्हारा सब रुपया चुकता कर देंगे।

चुकती–वि० दे० "चुकता"।

चुकना–क्रि० अ० [सं० च्युक्त, प्रा० चुक्कि] (१) समाप्त होना। खतम होना। निःशेष होना। न रह जाना। बाकी न रहना। उ०—(क) सारी किताब छपने को पड़ी है, काग़ज़ अभी से चुक गया। (ख) प्रान पियारे की गुन गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ। गाते गाते चुकै नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ।—श्रीधर पाठक। (२) बेबाक़ होना। अदा होना। चुकता होना।—उ०—उनका सब ऋण चुक गया। (३) तै होना। निबटना। जैसे, झगड़ा चुकना। *(४) चूकना। भूल करना। त्रुटि करना। कसर करना। अवसर के अनुसार कार्य्य न करना। उ०—(क) काल सुभाउ करम बरियाई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई।—तुलसी। (ख) तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं।—तुलसी। *(५) खाली जाना। निष्फल होना। व्यर्थ होना। लक्ष्य पर न पहुँचना। उ०—चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी।—तुलसी।

विशेष—यह क्रिया और क्रियाओं के साथ समाप्ति का अर्थ देने के लिये संयुक्त रूप में भी आती है। जैसे, तुम यह काम कर चुके?, तुम कब तक खा चुकोगे?, वह अब चल चुके होंगे। व्यंग्य के रूप में भी इस क्रिया का प्रयोग बहुत होता है। जैसे, तुम अब आ चुके, अर्थात् तुम अब नहीं आओगे। 'वह दे चुका' अर्थात् वह अब न देगा।

चुकरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] रेवंद चीनी।

चुँगवाना—क्रि० स० दे० "चुगवाना"।

चुँगाना—क्रि० स० दे० "चुगाना"।

चुँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुंगल] (१) चुंगल भर वस्तु। चुटकी भर चीज़।

यौ०—चुंगी पैंठ=वह पैंठ या बाज़ार जिसमें हर एक दूकानदार से ज़मींदार को चुंगल भर चीज़ मिलती हो।

(२) वह महसूल जो शहर के भीतर आनेवाले बाहरी माल पर लगता हो।

चुँघाना—क्रि० स० [हिं०] चुसाना। चुसा कर पिलाना। उ०—अब न तो कुछ शीत उष्ण में बचाव करना पड़ेगा और न भूख प्यास के समय दूध ही चुँघाना पड़ेगा, ये सिद्ध लोगों के दिए हुए धागे और यंत्र आपही बालक की रक्षा करेंगे।—श्रद्धाराम।

चुंच†—संज्ञा स्त्री० दे० "चोंच"।

चुंचु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छछूँदर। (२) वैदेहिक स्त्री और ब्राह्मण से उत्पन्न एक संकर जाति।

संज्ञा स्त्री० एक बूटी या पौधा। चिनियारी।

चुंचुक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार नैऋत्य कोण पर स्थित एक देश।

चुंचुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जूआ जो इमली के चिँयों से खेला जाय।

चुंचुल—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो संगीत शास्त्र का बड़ा भारी पंडित था।

चुंचुली—संज्ञा स्त्री० दे० "चुंचुरी"।

चुंटली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] घुँघची।

चुंटा—संज्ञा स्त्री० दे० "चुंडा"।

चुंडा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० चुंडी] कुआँ। कूप।

चुंडित*—वि० [हिं० चुंदी] चुटियावाला। चुंडीवाला। उ०—योगी कहै योग है नीको द्वितीया और न भाई। चुंडित मुंडित मौन जटाधरि तिनहुँ कहाँ सिधि पाई।—कबीर।

चुंडी—संज्ञा स्त्री० दे० "चुंदी"।

चुंदरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनरी"।

चुंदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटनी। दूती।

संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ा] बालों की शिखा जिसे हिंदू सिर पर रखते हैं। चुटैया।

चुँधलाना†—क्रि० अ० [हिं० चौ=चार+अंध=अंधा] आँखों का सहसा अधिक प्रकाश के सामने पड़ने के कारण स्तब्ध होना। चौंधना। चकाचौंध होना। आँखों का तिलमिलाना।

चुंधा—वि० [हिं० चौ=चार+अंध] [स्त्री० चुंधी] जिसे सुझाई न पड़े। छोटी छोटी आँखोंवाला।

चुँधियाना—क्रि० अ० दे० "चुँधलाना"।

चुंबक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चुंबन करे। (२) कामुक। कामी। (३) धूर्त्त मनुष्य। (४) ग्रंथों को केवल इधर उधर उलटनेवाला। विषय को अच्छी तरह न समझनेवाला। (५) पानी भरते समय घड़े के मुँह पर बँधा हुआ फंदा। फाँस। (६) एक प्रकार का पत्थर या धातु जिसमें लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है। चुंबक दो प्रकार का होता है—एक प्राकृतिक, दूसरा कृत्रिम। प्राकृतिक चुंबक एक प्रकार का लोहा मिला हुआ पत्थर होता है जो बहुत कम मिलता है। इससे कृत्रिम या बनावटी चुंबक ही अधिक देखने में आता है जो या तो घोड़े की नाल के आकार का बनता है या सीधे छड़ के आकार का। यदि चुंबक के छड़ को लोहे के चूर के ढेर में डालें तो दिखाई पड़ेगा कि लोहे का चूर उस छड़ में यहाँ से वहाँ तक बराबर नहीं लिपटता बल्कि दोनों छोरों पर सबसे अधिक लिपटता है। इन दोनों छोरों को आकर्षण-प्रांत कहते हैं। छड़ के मध्य भाग को मध्य या शून्य प्रांत कहते हैं। कभी कभी किसी छड़ के आकर्षण प्रांत दो से अधिक होते हैं। यदि किसी चुंबक-शलाका को उसके मध्य भाग (मध्याकर्षण केंद्र) पर से ऐसा ठहरावें कि वह चारों ओर घूम सके तो वह घूम कर उत्तर-दक्खिन रहेगी अर्थात् उसका एक सिरा उत्तर की ओर दूसरा दक्खिन की ओर रहेगा। ध्रुवदर्शक यंत्र में इसी प्रकार की शलाका लगी रहती है। पर ध्यान रखना चाहिए कि शलाका का यह उत्तर और दक्षिण हमारे भौगोलिक उत्तर-दक्षिण से ठीक ठीक मेल नहीं खाता, कहीं ठीक उत्तर से कई अंश पूर्व और कहीं पश्चिम की ओर होता है। इस अंतर को चुंबक-प्रवृत्ति कहते हैं और इसे निकालने के लिये भी एक यंत्र होता है। यह चुंबक-प्रवृत्ति पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होती है जिसका हिसाब-किताब जहाज़ी रखते हैं। इसके अतिरिक्त किसी स्थान की यह चुंबक प्रवृत्ति सब काल में एक सी नहीं रहती, शताब्दियों के हेर-फेर के अनुसार कुछ भौतिक परिवर्त्तनों के कारण यह बदला करती है। किसी चुंबक का एक प्रांत दूसरे चुंबक के उसी प्रांत को आकर्षित न करेगा अर्थात् एक चुंबक-शलाका का उत्तर प्रांत दूसरी चुंबक-शलाका के उत्तर प्रांत को आकर्षित न करेगा, दक्षिण प्रांत को करेगा। जिस वस्तु को चुंबक के दोनों प्रांत आकर्षित करें वह स्थायी चुंबक नहीं है, केवल आकर्षित होने की शक्ति रखनेवाला है। जैसे, साधारण लोहा आदि। स्थायी चुंबक के पास लोहे का टुकड़ा लाने से उसमें भी चुंबक गुण आ जायगा अर्थात् वह भी दूसरे लोहे को आकर्षित कर सकेगा। ऐसे चुंबक को अस्थायी चुंबक कहते हैं। इस्पात में यद्यपि चुंबक-शक्ति अधिक नहीं दिखाई देती पर एक बार यदि उसमें चुंबक-शक्ति आ जाती है तो फिर वह जल्दी नहीं जाती। इसीसे जितने कृत्रिम स्थायी चुंबक मिलते हैं वे इस्पात ही के होते

चुगुली †*–संज्ञा स्त्री० दे० "चुगली"।
चुग्गा–संज्ञा पु० दे० "चुगा"।
चुग्घो–संज्ञा स्त्री० [देश०] चखने की थोड़ी सी वस्तु। चाट। चसका।
चुचकारना–क्रि०स० [अनु०] प्यार से चुंबन के ऐसा शब्द मुँह से निकाल कर बोलना। चुमकारना। पुचकारना। दुलारना। प्यार दिखाना। उ०—(क) मैया बहुत बुरो बलदाऊ। कहन लगे बन बड़ो तमासो, सब मोंड़ा मिलि आऊ। मोहूँ को चुचकारि गये लै, जहाँ सघन बन झाऊ। भागि चलो कहि गयो उहाँ ते, काटि खाइहै हाऊ।—सूर। (ख) चाहि चुचकारि चूँबि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बये हैं।—तुलसी।
चुचकारी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चुचकारने की क्रिया या भाव।
चुचाना–क्रि० अ० [सं० च्यवन] चूना। टपकना। रसना। निचुड़ना। गरना। कण कण या बूँद बूँद करके निकलना। ('चूना' या 'टपकना' क्रिया के समान इसका प्रयोग भी टपकनेवाली वस्तु (जैसे पानी) तथा जिसमें से टपके (जैसे घर) दोनों के लिये होता है)। उ०—(क) अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात।—सूर। (ख) बाल भाव जिय में सुध आई अस्तन चले चुचाय।—सूर। (ग) चौगुनो रंग चढ़ो चित मैं चुनरी के चुचात लला के निंचोरत।—देव। (घ) छुटी गुही बेनी लखे, गुहिबे के त्यौहार। लागे नीर चुचावने, नीठि सुखाए बार।—बिहारी। (च) घोरि डारी केसरि सुकेसरि बिलोरि डारी बोरि डारी चूनरि चुचात रँग रैनी ज्यौं।—पद्माकर।
चुचु–संज्ञा पु० दे० "चच्चु"।
चुचुआना–क्रि० अ० दे० "चुचाना"।
चुचुक–संज्ञा पु० [सं०] (१) कुचाग्र भाग। स्तन के सिरे का नोक पर का भाग जो गोल घुंडी के रूप में होता है। ढिपनी। (२) दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश। (३) उक्त देश का निवासी।
चुचुकना†–क्रि० अ० [सं० शुष्क + ना (प्रत्य०)] सूख कर सिकुड़ जाना। ऐसा सूखना जिसमें झुर्रियाँ पड़ जाय। नीरस होकर संकुचित हो जाना। जैसे, फल का चुचुकना, चेहरे का चुचुकना।
चुच्चु–संज्ञा पुं० [सं०] पालक की तरह का एक प्रकार का साग जिसे चौपतिया भी कहते हैं।
चुटक–संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का गलीचा या कालीन।
†संज्ञा पु० [हिं० चोट + क = कारक(प्रत्य०)] कोड़ा। चाबुक।
संज्ञा स्त्री० [अनु० चुट चुट] चुटकी।
चुटकना–क्रि० स० [हिं० चोट] कोड़ा मारना। चाबुक मारना। उ०—करे चाह सों चुटकि कै खरे उड़ौंहे मैन। लाज नवाए तरफरत करत खूँद सी नैन।—बिहारी।
क्रि० स० [हिं० चुटकी] (१) चुटकी से तोड़ना। जैसे, साग चुटकना, फूल चुटकना। (२) साँप काटना।
चुटकला–संज्ञा पु० दे० "चुटकुला"।
चुटका–संज्ञा पु० [हिं० चुटकी] (१) बड़ी चुटकी। (२) चुटकी भर आटा या और कोई अन्न।
क्रि० प्र०—देना।—लेना।
चुटकी–संज्ञा स्त्री० [अनु० चुट चुट] (१) अँगूठे और बीच की उँगली (अथवा तर्जनी) की वह स्थिति जो दोनों को मिलाने या एक को अन्य पर रखने से होती है। किसी वस्तु को पकड़ने, दबाने या लेने आदि के लिये अँगूठे और बीच की (अथवा और किसी) उँगली का मेल। जैसे, चुटकी में लेना, चुटकी से उठाना।
मुहा०—चुटकी देना = चुटकी बजाना। उ०—जो मूरति जल थल में व्यापक निगम न खोजत पाई। सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी दै दै नचाई।—सूर। चुटकी बजाना = अँगूठे को बीच की उँगली पर रख कर जोर से छटका कर शब्द निकालना। (चुटकी प्रायः संकेत करने, किसी का ध्यान आकर्षित करने, किसी को बुलाने, जगाने अथवा ताल देने आदि के लिये बजाई जाती है। हिंदुओं में यह प्रथा है कि जब किसी को जँभाई आती है तब पास के लोग चुटकियाँ बजाते हैं)। चुटकी बजाते में या चुटकी बजाने = उतनी देर में जितनी देर में चुटकी बजती है। चट पट। देखते देखते। बात की बात में। उ०—यह काम तो चुटकी बजाते होगा। चुटकी बजानेवाला = खुशामदी। चापलूस। चुटकी भर = उतना जितना अँगूठे और मध्यमा के मिलाने पर दोनों के बीच में आ जाय। बहुत थोड़ा। जरा सा। जैसे, चुटकी भर आटा, चुटकी भर नमक। चुटकी बैठना = किसी ऐसे काम का अभ्यास होना जो चुटकी से पकड़ कर किया जाय। जैसे, उखाड़ना, नोचना आदि। चुटकियों में = बहुत शीघ्र। चट पट। उ०—देखते रहो, अभी चुटकियों में यह काम होता है। चुटकियों में या पर उड़ाना = बात की बात में निपटाना। अत्यंत तुच्छ या सहज समझना। कुछ न समझना। कुछ परवाह न करना। उ०—(क) ऐसे मामलों को तो मैं चुटकियों में उड़ाता हूँ। (ख) वह मेरा क्या कर सकता है, ऐसों को तो मैं चुटकियों पर उड़ाता हूँ। चुटकी लगाना = (१) किसी वस्तु को पकड़ने नोचने, खींचने, दबाने आदि के लिये अँगूठे और मध्यमा (अथवा और किसी उँगली) को मिला कर काम में लाना। (२) कपड़े के थान को उँगलियों से फाड़ना। थान पर से कपड़ा उतारना। (३) रुपया पैसा चुराने के लिये उँगलियों से जेब फाड़ना। जेब काटना। (४) दूध दुहने के लिये चुटकी से गाय का थन पकड़ना। (५) चुटकी से पत्तों को मोड़ कर दोना बनाना।

चुकरँड-संज्ञा पुं० [देश०] दोमुहाँ साँप जिसे गूँगी भी कहते हैं। उ०—लेखनि डंक भुजंग की रसना श्रयननि जानि। गज रद मुख चुकरँड के कच्छ शिखा बखानि।—केशव।

चुकवाना-क्रि० स० [हिं० चुकाना का प्रे०] श्रदा कराना। दिलाना। बेबाक़ कराना।

चुकाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुकता] चुकने या चुकता होने का भाव।

चुकाना-क्रि० स० [हिं० चुकाना] (१) बेबाक़ करना। किसी प्रकार का देना साफ़ करना। श्रदा करना। परिशोध करना। जैसे, दाम चुकाना, रुपया चुकाना, ऋण चुकाना। (२) निबटाना। तै करना। ठहराना। जैसे, सौदा चुकाना, झगड़ा चुकाना।

चुकिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] तेलियों की घानी में पानी देने का छोटा बरतन। कुल्हिया।

चुकौता-संज्ञा पुं० [हिं० चुकाना + श्रौता (प्रत्य०)] ऋण का परिशोध। क़र्ज़ की सफ़ाई।

मुहा०—चुकौता लिखना = भरपाई का कागज़ लिख कर देना। क़र्ज़ा चुकता पाने की रसीद देना। भरपाई करना।

चुक्कड़-संज्ञा पुं० [हिं० चखना ?] मिट्टी का गोल छोटा बरतन जिसमें पानी शराब श्रादि पीते हैं। पुरवा।

चुक्का †-संज्ञा पुं० दे० "चूक"।

चुक्कार-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहनाद। गर्जन। गरज।

चुक्की †-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूक] धोखा। छल। कपट।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

चुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नाम की खटाई। चुक महाम्ल। वृक्षाम्ल। (२) एक प्रकार का खट्टा शाक। चूका का साग। (३) श्रमलवेद। (४) काँजी। सड़ाया हुश्रा श्रम्लरस। संधान।

चुक्रक-संज्ञा पुं० [सं०] चूका का साग।

चुक्रफल-संज्ञा पुं० [सं०] इमली।

चुक्रवास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] श्रमलोनी का साग।

चुक्रवेधक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काँजी।

चुक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रमलोनी का साग। (२) इमली।

चुक्राम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूक नाम की खटाई। (२) चूका का साग।

चुक्राम्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रमलोनी का साग।

चुक्रिका, चुक्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नोनिया। श्रमलोनी का साग। (२) इमली।

चुक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंसा।

चुखाना †-क्रि० [सं० चुष] (१) दुहते समय गाय के थन से दूध उतारने के लिये पहले उसके बछड़े को पिलाना। उ०—श्राई हौं गाइ दुहाइबे कों सु चुखाइ चली न बछानि को घेरति। नेकु डेराय नहीं कब की वह माय रिसाय श्रटा चढ़ि टेरति।—देव। (२) चखाना।—उ०—भरि श्रपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहिं चुखाए।—सूर।

चुग़द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उल्लू पक्षी। (२) मूर्ख। मूढ़। बेवक़ूफ़।

चुगना-क्रि० स० [सं० चयन] चिड़ियों का चोंच से दाना उठा कर खाना। चोंच से दाना बिनना। उ०—उथलहिं सीप मोति उतराहीं। चुगहिं हंस श्रौ केलि कराहीं।—जायसी।

चुगल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) परोक्ष में दूसरे की निंदा करनेवाला। पीठ पीछे शिकायत करनेवाला। इधर की उधर लगानेवाला। लुतरा। उ०—कहा करै रसखान को, कोऊ चुगल लबार। जो पै राखनहार है माखन चाखनहार।—रसखान। (२) वह कंकड़ जिसे चिलम के छेद पर रख कर तंबाकू भरते हैं। गिट्टी। गिट्टक।

चुगलखोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] परोक्ष में निंदा करनेवाला। पीठ पीछे शिकायत करनेवाला। इधर की उधर लगानेवाला। लुतरा।

चुगलखोरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चुगली खाने का काम। परोक्ष में निंदा करने की क्रिया वा भाव।

चुगलस-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक तरह की लकड़ी।

चुगलाना †-क्रि० स० दे० "चुभलाना"।

चुगली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीठ पीछे की शिकायत। दूसरे की निंदा जो उसकी श्रनुपस्थिति में किसी तीसरे से की जाय। उ०—श्रपने नृप को इहै सुनायो। ब्रजनारी बटपारिन हैं सब चुगली श्रापहिं जाय लगायो।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।—लगाना।

चुगा-संज्ञा पुं० [हिं० चुगना] (१) वह श्रन्न श्रादि जो चिड़ियों के श्रागे चुगने के लिये डाला जाय। चिड़ियों का चारा। (२) दे० "चोगा"।

चुगाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगना + ई (प्रत्य०)] चुगने का भाव वा क्रिया।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुगाना + ई (प्रत्य०)] (१) चुगाने की क्रिया वा भाव। (२) चुगाने की मज़दूरी।

चुगाना-क्रि० स० [हिं० चुगना] चिड़ियों को दाना खिलाना। चिड़ियों को चारा डालना। उ०—छाँड़ि मन हरि विमुखन को संग। जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग। कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग। कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाए गंग।—सूर।

संयो० क्रि०—देना।

चुगुल *†-संज्ञा पुं० दे० "चुगल"।

चुगुलखोर-संज्ञा पुं० दे० "चुगलखोर"।

चुगुलखोरी-संज्ञा स्त्री० दे० "चुगलखोरी"।

चुत–संज्ञा पुं० [सं०] गुदद्वार ।

चुतल–वि० [हिं० चुहल] ठट्टेबाज । ठठोल । विनोदप्रिय । मसखरा ।

चुतलपना–संज्ञा पुं० [हिं० चुतल+पन] ठठोली । हँसी दिल्लगी । मसखरापन ।

चुथा–संज्ञा पुं० [हिं० चोंथना] वह बटेर जिसे लड़ाई में दूसरे बटेर ने घायल किया हो ।

चुदक्कड़–वि० [हिं० चोदना] बहुत अधिक चोदनेवाला । अत्यंत कामी ।

चुदना–क्रि० अ० [हिं० चोदना] चोदा जाना । पुरुष से संयुक्त होना ।

चुदवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "चुदाई" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह धन जो प्रसंग करने या कराने के बदले में दिया जाय ।

चुदवाना–क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "चुदाना" ।

चुदवास–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना+आस (प्रत्य०)] चुदवाने की इच्छा । मैथुन कराने की कामना ।

क्रि० प्र०—लगना ।

चुदवासी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदवाना] वह स्त्री जिसे मैथुन कराने की कामना हो ।

चुदवैया–संज्ञा पुं० [हिं० चोदना+वैया (प्रत्य०)] चोदनेवाला । स्त्री-प्रसंग करनेवाला ।

चुदाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] (१) चोदने की क्रिया या भाव । स्त्री-प्रसंग । मैथुन । (२) दे० "चुदवाई" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चुदाना] [स्त्री० चुदासी] वह धन जो चुदाने के बदले में मिले ।

चुदाना–क्रि० अ० [हिं० चोदना का प्रे०] चोदने का काम कराना । (स्त्री का) पुरुष से प्रसंग कराना । मैथुन कराना ।

क्रि० स० किसी स्त्री को पुरुष-समागम कराना । किसी स्त्री को पुरुष से संयुक्त कराना ।

चुदास–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना+आस (प्रत्य०)] चोदने की इच्छा । स्त्री-प्रसंग करने की कामना ।

चुदासा–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] वह पुरुष जिसे स्त्री-प्रसंग करने की कामना हो ।

चुदैया–वि० दे० "चुदवैया" ।

चुदौवल–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] चोदने का भाव या क्रिया ।

चुन–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण, हिं० चून] (१) आटा । पिसान । (२) चूर । चूर्ण । बुकनी । रेत ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग समास में प्रायः होता है, जैसे, लोहचुन, बेरचुन ।

चुनचुना–संज्ञा पुं० [देश०] कसेरों का एक लोहे का औज़ार ।

वि० [देश०] (१) जिसके छूने या खाने से चुनचुनाहट उत्पन्न हो । जिसके स्पर्श से कुछ जलन लिए हुए पीड़ा उत्पन्न हो । जिसकी झाल या तीक्ष्णता छूने से जान पड़े । (२) चिढ़नेवाला । रोनेवाला । बात बात पर ठिनकनेवाला (लड़का) ।

संज्ञा पुं० [हिं० चुनचुनना] सूत के ऐसे महीन सफ़ेद कीड़े जो पेट में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं । बच्चों को ये कीड़े बहुत कष्ट देते हैं ।

मुहा०—चुनचुना लगना = मलद्वार में कृमियों के काटने के कारण जलन और खुजली होना ।

चुनचुनाना–क्रि० अ० [देश०] (१) जीभ या चमड़े पर तीक्ष्ण लगना । कुछ जलन लिए हुए चुभने की सी पीड़ा करना । उ०—राई का लेप बदन पर चुनचुनाता है । (२) ठिनकना । रोना । चीं चीं करना । (लड़कों के लिये) ।

चुनचुनाहट–संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर पर कुछ जलन लिए चुभने की सी पीड़ा । झाल या तीक्ष्णता जिसका अनुभव त्वचा को हो ।

चुनट–संज्ञा स्त्री० [हिं०] वह सिकुड़न जो दाब पड़ने के कारण कपड़े, काग़ज़ आदि में पड़ जाती है । चुनन । चुनावट । बल । शिकन । सिलवट ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।—लाना ।

विशेष—प्रायः लोग धोती, टोपी, कुरते आदि पर उँगली या चिमटी आदि से दबा दबा कर शोभा के लिये चुनट डालते हैं ।

चुनन–संज्ञा स्त्री० दे० "चुनट" ।

चुनन–संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] वह सिकुड़न जो दाब पाकर कपड़े काग़ज़ आदि पर पड़ती है । सिलवट । शिकन । चुनट ।

चुननदार–वि० [हिं० चुनन+दार] जिसमें चुनन पड़ी हो । जो चुनी गई हो ।

चुनना–क्रि० स० [सं० चयन] (१) छोटी वस्तुओं को हाथ चोंच आदि से एक एक कर के उठाना । एक एक करके इकट्ठा करना । बीनना । जैसे, दाना चुनना । (२) बहुतों में से छाँट छाँट कर अलग करना । समूह में से एक एक वस्तु पृथक करके निकालना या रखना । जैसे, अनाज में से कँकड़ियाँ चुन कर फेंकना । (३) बहुतों में से कुछ को पसंद करके रखना या लेना । समूह या ढेर में से यथारुचि एक एक को छाँटना । इच्छानुसार संग्रह करना । जैसे, (क) इनमें जो पुस्तकें अच्छी हों उन्हें चुन लो । (ख) इस संग्रह में अच्छी अच्छी कविताएँ चुन कर रक्खी गई हैं ।

मुहा०—चुना हुआ = बढ़िया । उत्तम । श्रेष्ठ ।

(४) सजाना । सजा कर रखना । तरतीब से लगाना । क्रम से स्थापित करना । उ०—आलमारी में किताबें चुन दो । (५) तह पर तह रखना । जोड़ाई करना । दीवार उठाना । उ०—कंकड़ चुन चुन महल उठाया लोग कहैं घर मेरा । ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा ।

(२) चुटकी भर आटा। थोड़ा आटा। उ०—साधु को चुटकी दे दो।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—चुटकी माँगना = भिक्षा माँगना।

(३) चुटकी बजने का शब्द। वह शब्द जो अँगूठे को बीच की उँगली पर रख कर ज़ोर से छटकाने से होता है। उ०—किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाएँ।—तुलसी। (४) अँगूठे और तर्जनी के संयोग से किसी प्राणी के चमड़े को दबाने वा पीड़ित करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—काटना।

मुहा०—चुटकी भरना = (१) चुटकी काटना। (२) चुभती या लगती हुई बात कहना। दे० "चुटकी लेना।" चुटकी लेना = (१) हँसी उड़ाना। दिल्लगी उड़ाना। ठट्ठा करना। उपहास करना। (२) व्यंग्य वचन बोलना। चुभती या लगती बात कहना। (३) चुटकी से खोदना। चुटकी से दबाना। चुटकी भरना। उ०—बार बार कर गहि गहि निरखत घूँघट ओट करौ किन न्यारो। कबहुँक कर परसत कपोल छुइ चुटकि लेत ह्याँ हमहिँ निहारो।—सूर।

(५) अँगूठे और उँगली से मोड़ कर बनाया हुआ गोखरू, गोटा या लचका। कभी कभी यह किश्तीनुमा भी होता है, जिसे किश्ती की चुटकी कहते हैं। (६) बंदूक के प्याले का ढकना। बंदूक का घोड़ा। (लश०)। (७) कटारदार गुलबदन या मशरू। (८) पैर की उँगलियों में पहनने का चाँदी का एक गहना। एक प्रकार का चौड़ा छल्ला। (९) कपड़ा छापने की एक रीति। (१०) काठ आदि की बनी हुई एक प्रकार की चिमटी जिसमें कागज या किसी और हलकी वस्तु को पकड़ा देने से वह इधर उधर उड़ने नहीं पाती। (११) पेंचकश। (१२) दरी के ताने का सूत।

चुटकुला—संज्ञा पुं० [हिं० चोट+कला] (१) विलक्षण बात। विनोदपूर्ण बात। चमत्कारपूर्ण उक्ति। थोड़े में कही हुई ऐसी बात जिससे लोगों को कुतूहल हो। मज़ेदार बात।

मुहा०—चुटकुला छोड़ना = (१) विलक्षण बात कह बैठना। दिल्लगी की बात कहना। (२) कोई ऐसी बात कहना जिससे एक नया मामला खड़ा हो जाय। उ०—उसने एक ऐसा चुटकुला छोड़ दिया कि दोनों आपस ही में लड़ पड़े।

(२) दवा का कोई छोटा नुसख़ा जो बहुत गुण-कारक हो। लटका।

चुटफुट†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फुटकर वस्तु। फुटकर चीज़।

चुटला†—वि० दे० "चुटीला"।

संज्ञा पुं० [हिं० चोटी] (१) एक गहना जो सिर पर चोटी वा वेणी के ऊपर पहना जाता है। (२) स्त्रियों की बँधी हुई वेणी। जूरा।

चुटाना†—क्रि० अ० [हिं० चोट] चोट खाना। घायल होना।

चुटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] (१) वह बालों की लट जो सिर के बीचो बीच रक्खी जाती है। शिखा। चुंदी। (हिंदू, चीनी आदि इस प्रकार की शिखा रखते हैं)।

मुहा०—(किसी की) चुटिया हाथ में होना = (किसी का) अपने अधीन होना। (किसी का) अपने नीचे दबना।

(२) चोरों या ठगों का सरदार।

चुटियाना†—क्रि० स० [हिं० चोट] चोट पहुँचाना। घाव करना। घायल करना। ज़ख़मी करना। काटना। डसना।

चुटीलना—क्रि० स० [हिं० चोट] चोट करना या पहुँचाना।

चुटीला—वि० [हिं० चोट] चोट खाया हुआ। जिसे चोट लगी हो। जिसे घाव लगा हो।

संज्ञा पुं० [हिं० चोटी] छोटी चोटी। अगल बगल की पतली चोटी। मेंढ़ी। उ०—(क) चोटी चुटिल सीसफूल वर। चैना बंदी बंदनी सुवर।—सूदन। (ख) सखि, राधावर कैसा सजीला। देखो री गुइयाँ नजर नहिँ लागे अँगुरिन कर चट काट चुटीला।—हरिश्चंद्र।

वि० चोटी का। सिरे का। सबसे बढ़िया। भड़कदार।

चुटैल—वि० [हिं० चोट] (१) जो चोट खाए हो। जिसे चोट लगी हो। घायल। †(२) चोट करनेवाला। आक्रमण करनेवाला।

चुट्टा—संज्ञा पुं० दे० "चुटला"।

चुड—संज्ञा स्त्री० दे० "चुड्ड"।

चुड़ना—क्रि० अ० दे० "चुटना"।

चुड़ाव—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति।

चुड़िया†—संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी"।

चुड़िहारा—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी + हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० चुड़िहारिन] चूड़ी बनाने या बेचनेवाला।

चुडुक्का—संज्ञा पुं० [हिं०] लाल की तरह की एक छोटी सी चिड़िया। इसकी चोंच और पैर काले, पीठ मटमैले रंग की तथा पूँछ कुछ लंबी होती है।

चुड़ेलवाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

चुड़ेल—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ा = चोटी + ऐल (प्रत्य०)] (१) भूत की स्त्री। भूतनी। डायन। प्रेतनी। पिशाचिनी।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि चुड़ैलों के सिर में बड़ी भारी चोटी होती है जिसे काट लेने से वे वशीभूत हो सकती हैं।

(२) कुरूपा और विकराल स्त्री। (३) दुष्टा। क्रूर स्वभाव की स्त्री।

चुड्ड—संज्ञा स्त्री० [सं० चुड = भग] भग। योनि। (पंजाबी)।

चुड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुड] एक प्रकार की गाली जो स्त्रियों को दी जाती है। छिनाल।

चुन्नन–संज्ञा स्त्री० दे० "चुनन"।

चुन्ना–संज्ञा पुं० दे० "चुनना"।
†क्रि० स० दे० "चुनना"।
‡ संज्ञा पुं० दे० "चूना"।

चुन्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) मानिक, याकूत या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। बहुत छोटा नग। (२) अनाज का चूर। भूसी मिले अन्न के टुकड़े। (३) ओढ़नी। स्त्रियों की चद्दर। (४) लकड़ी का बारीक चूर जो आरी से रेतने पर निकलता है। बुनाई।

चुप–वि० [सं० चुप (=चोपन)=मौन] जिसके मुँह से शब्द न निकले। अवाक्। मौन। खामोश। उ०—चुप रहो, बहुत मत बोलो।
क्रि० प्र०—करना।—रहना।—साधना।—होना।
यौ०—चुपचाप=(१) मौन। खामोश। (२) शांत भाव से। बिना चंचलता के। उ०—यह लड़का घड़ी भर भी चुपचाप नहीं बैठता। (३) बिना कुछ कहे सुने। बिना प्रकट किए। गुप्त रीति से। धीरे से। छिपे छिपे। उ०—(क) वह चुपचाप रुपया लेकर चलता हुआ। (ख) उसने चुपचाप उसके हाथ में रुपए दे दिए। (४) निरुद्योग। प्रयत्नहीन। अप्रयत्नवान्। निठल्ला। उ०—अब उठो, यह चुपचाप बैठने का समय नहीं है। चुप चुप=दे० "चुपचाप"। चुप छिनाल=(१) छिपे छिपे व्यभिचार करनेवाली स्त्री। (२) छिपे छिपे कोई काम करनेवाला। गुप्त गुंडा। छिपा रुस्तम।
मुहा०—चुप करना=(१) बोलने न देना। † (२) चुप होना। मौन रहना। उ०—चुप करके बैठो। चुप नाधना, लगाना, साधना=मौन अवलंबन करना। खामोश रहना। † चुप मारना=मौन होना। चुपके से=दे० "चुपका" का मुहा०।
संज्ञा स्त्री० मौन। खामोशी। जैसे, सब से भली चुप। उ०—ऐसी मीठी कुछ नहीं जैसी मीठी चुप।—कबीर।
संज्ञा पुं० [देश०] पक्के लोहे की वह तलवार जिसमें टूटने से बचाने के लिये एक कच्चा लोहा लगा रहता है।

चुपका–वि० [हिं० चुपका] [स्त्री० चुपकी] (१) मौन। खामोश।
क्रि० प्र०—होना।
मुहा०—चुपके से=(१) बिना किसी से कुछ कहे सुने। शांत भाव से। (२) छिपाकर। गुप्त रूप से।
(२) चुप्पा। घुन्ना।

चुपकाना†–क्रि० स० [हिं० चुपका] मौन करना। न बोलने देना। खामोश कराना।

चुपकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुप] मौन। खामोशी।
क्रि० प्र०—साधना।
मुहा०—चुपकी लगना=मुँह से बात न निकालना। सन्नाटे में रहना।

चुपचाप–क्रि० वि० दे० "चुप" के मुहा०।

चुपड़ना–क्रि० स० [हिं० चिपचिपा] (१) किसी गीली वस्तु को फैला कर लगाना। किसी चिपचिपी वस्तु का लेप करना। पोतना। जैसे, रोटी में घी चुपड़ना। (२) दोष छिपाना। किसी दोष का आरोप दूर करने के लिये इधर उधर की बातें करना। उ०—उसने अपराध तो किया ही है, अब आप के चुपड़ने से क्या होता है? (३) चिकनी चुपड़ी कहना। चापलूसी करना। खुशामद करना।

चुपड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० चिपचिपा] वह जिसकी आँखों में बहुत कीचड़ हो। कीचड़ से भरी आँखोंवाला।

चुपरी आलू–संज्ञा पुं० [देश०] पिंडालू या रतालू जो मदरास और मध्य भारत में अधिकता से होता है।

चुपाना†*–क्रि० अ० [हिं० चुप] चुप हो रहना। मौन रहना। खामोश रहना। न बोलना।

चुप्पा–वि० [हिं० चुप] [स्त्री० चुप्पी] जो बहुत कम बोले। जो अपनी बात को मन में लिए रहे। जो बात का उत्तर जल्दी न दे। घुन्ना।

चुप्पी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुप] मौन। खामोशी।
क्रि० प्र०—साधना।

चुबलाना–क्रि० स० [हिं०] किसी वस्तु को जीभ पर रख कर स्वाद लेने के लिये मुँह में इधर उधर डुलाना। मुँह में ले कर धीरे धीरे आस्वादन करना।

चुभकना–क्रि० अ० [अनु०] पानी में चुभ चुभ शब्द करते हुए गोता खाना। बार बार डूबना उतराना।

चुभकाना–क्रि० स० [अनु०] पानी में गोता देना। बार बार पकड़ कर डुबाना।

चुभकी–संज्ञा० स्त्री० [अनु० चुभ चुभ] डुब्बी। गोता। उ०—(क) लै चुभकी चलि जाति जित जित जलकेलि अधीर। कीजत केसर नीर से तित तित केसर नीर।—बिहारी। (ख) जल बिहार मिस भीर में लै चुभकी इक बार। द्वै मीतन मिलि परस्पर दोउ करत बिहार।—पद्माकर।

चुभना–क्रि० स० [हिं०] (१) गड़ना। धँसना। किसी नुकीली वस्तु का दबाव पा कर किसी नरम वस्तु के भीतर घुसना। जैसे, काँटा चुभना, सुई चुभना। (२) हृदय में खटकना। चित्त पर चोट पहुँचना। मन में व्यथा उत्पन्न करना। उ०—उसकी चुभती हुई बातें कहाँ तक सुनें? (३) मन में बैठना। हृदय पर प्रभाव करना। चित्त में बना रहना। उ०—(क) उसकी बात मेरे मन में चुभ गई। (ख) टरति न टारे यह छबि मन में चुभी।—सूर। (४) मग्न। लीन। तन्मय। उ०—जिमि

मुहा०—दीवार में चुनना = किसी मनुष्य को खड़ा कर के उसके ऊपर ईंटों की जोड़ाई करना। जीते जी किसी को दीवार में गड़वा देना।

(६) चुटकी या खरें से दबा दबा कर कपड़े में चुनन वा सिकुड़न डालना। शिकन डालना। जैसे, धोती चुनना, कुरता चुनना, इत्यादि। (७) नाखून या उँगलियों से खोंटना। चुटकी से कपटना। चुटकी से नोच कर अलग करना। जैसे, फूल चुनना। उ०—माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार। फूली फूली चुन लई, कालि हमारी बार।—कबीर।

चुनरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] (१) एक प्रकार का लाल रंगा हुआ कपड़ा जिसके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर सफ़ेद बुँदकियाँ होती हैं। (अब चुनरी कई रंगों और कई प्रकार की बूटियों की बनती हैं)।

विशेष—चुनरी रँगते समय कपड़े को स्थान स्थान पर चुन कर बाँध देते हैं जिससे रंग में बोरने पर बँधे हुए स्थानों पर सफ़ेद सफ़ेद बुँदकियाँ छूट जाती हैं।

(२) चुन्नी। लाल रंग के एक नग का छोटा टुकड़ा। याकूत।

चुनवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] लड़का। शागिर्द। (सुनार)। वि० चुना हुआ। चुनिंदा। बढ़िया।

चुनवाना—क्रि० स० [हिं० चुनना का प्रे०] चुनने का काम कराना। दे० "चुनाना"।

चुनाँ चुनीँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ऐसा वैसा। इस तरह उस तरह। (२) इधर उधर की बात। वह जो मतलब की बात न हो। उ०—अब चुनाँ चुनीँ मत करो, रुपया लाओ। (३) बनावटी बात।

क्रि० प्र०—करना।

चुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] (१) चुनने की क्रिया वा भाव। बिनने की क्रिया वा भाव। (२) दीवार की जोड़ाई। दीवार की जोड़ाई का ढंग। (३) चुनने की मज़दूरी।

चुनाखा—संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी + नख] वृत्त बनाने का औज़ार। परकार। कंपास।

चुनाना—क्रि० स० [हिं० चुनने का प्रे०] (१) बिनवाना। इकट्ठा करवाना। (२) अलग करवाना। छँटवाना। (३) सजवाना। क्रम या ढंग से लगवाना। (४) दीवार की जोड़ाई कराना। (५) दीवार में गड़वाना। (६) चुनन या शिकन डलवाना।

चुनाव—संज्ञा पुं० [हिं० चुनना] (१) चुनने का काम। बिनने का काम। (२) बहुतों में से कुछ को किसी कार्य्य के लिये पसंद या नियुक्त करने का काम। उ०—इस वर्ष कौंसिल का चुनाव अच्छा हुआ है।

चुनावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनना] चुनन। चुनट।

चुनिंदा—वि० [हिं० चुनना + दा (प्रत्य०)] (१) चुना हुआ। छँटा हुआ। (२) बहुतों में से पसंद किया हुआ। अच्छा। बढ़िया। (३) गण्य। प्रधान। ख़ास ख़ास।

चुनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुनारों की बोली में लड़की को कहते हैं।

चुनिया गोंद—संज्ञा पुं० [हिं० चूनी + गोंद] ढाक का गोंद। पलाश का गोंद। कमरकस। (यह औषध के काम में आता है।)

चुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) चूनी। चुन्नी। मानिक या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। उ०—चहचही चहल चहूँ घा चारु चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।—पद्माकर। (२) मोटे अन्न या दाल आदि का पीसा हुआ चूर्ण जिसे प्रायः ग़रीब लोग खाते हैं।

यौ०—चुनी भूसी = मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

चुनुयाँ—संज्ञा पुं० दे० "चुनवाँ"।

चुनैटी—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनौटी"।

चुनौटिया (रंग)—संज्ञा पुं० [हिं० चुनौटी] एक रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का ऊँदा वा काकरेजी रंग जिसकी रँगाई लखनऊ में होती है। यह आक़िल खानी रंग से कुछ अधिक काला होता है। उ०—पचरँग रँग बेंदी घनी, खरी उठी मुख जोति। पहिरे चीर चुनौटिया, चटक चौगुनी होति।—बिहारी।

विशेष—यह रंग हलदी, हर्रा, कसीस और पतंग (बक्कम) की लकड़ी के संयोग से बनता है।

चुनौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना + औटी (प्रत्य०)] वह बरतन जिसमें पान लगाने वा तंबाकू में मिलाने के लिये गीला चूना रक्खा जाय।

चुनौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुनचुनाना या चूना] (१) प्रवृत्ति बढ़ानेवाली बात। उत्तेजना। बढ़ावा। चिट्टा। उ०—मदन नृपति को देश महामद बुधि बल बसि न सकत उर चैन। सूरदास प्रभु दूत दिनहि दिन पठवत चरित चुनौती दैन।—सूर। (२) युद्ध के लिये उत्तेजना या आह्वान। ललकार। प्रचार। उ०—(क) लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनहुँ चुनौती दीन्हि।—तुलसी। (ख) चतुरंगिनी सैन सँग लीन्हे। विचरन लगहि चुनौती दीन्हे।—तुलसी। (ग) छठे मास नहिँ करि सकै बरस दिना करि लेय। कहैं कबीर सो संत जन यमै चुनौती देय।—कबीर। (घ) दगा देत दूनन चुनौती दिगदंतिन देत यम को जरब देत पानी लेत शिवलोक।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा स्त्री० दे० "चुनौटी"।

चुन्नट—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनट"।

चुन्नत—संज्ञा स्त्री० दे० "चुनट"।

मुहा०—आँख चुराना = नज़र बचाना। सामने मुँह न करना।

(३) किसी वस्तु के देने वा करने में कसर करना। उ०—जैसे, यह गाय दूध चुराती है, यह गवैया सुर चुराता है।

क्रि० स० [हिं० चुरना] पकाना। किसी गीली वस्तु को इतना गरम करना कि वह ऊपर उठने लगे।

चुरिला—संज्ञा पु० [हिं० चूड़ी] (१) काँच का मोटा टुकड़ा जिस से लड़के तख्ती वा पट्टी को रगड़ कर चमकाते हैं। (२) लोहे की एक चूड़ी जिसमें तागा बाँध कर नचनी के बीचो बीच में बाँध देते हैं। (जुलाहे)।

चुरिहारा—संज्ञा पु० दे० "चुड़िहारा"।

चुरी*—संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी"। उ०—(क) किंकिनी कटि कुनित कंकन कर चुरी झनकार। हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार।—सूर। (ख) घर घर हिंदुनि तुरकिनी देति असीस सराहि। पतिन राखि चादर चुरी तैं राखी जय साहि।—बिहारी।

चुरुट—संज्ञा पु० [अं० शेरूट—चेरूट] तंबाकू के पत्ते वा चूर की बत्ती जिसका धुआँ लोग पीते हैं। सिगार।

चुरू*—संज्ञा पु० [सं० चुलुक] चुल्लू। उ०—(क) हँसि जननी चुरु भरवाए। तब कछु कछु मुख पखराए।—सूर। (ख) धरि तुष्टी झारी जल ल्याई। भाथो चुरु रसिका लै आई।—सूर।

चुरैल—संज्ञा स्त्री० दे० "चुड़ैल"।

चुर्ट—संज्ञा पुं० दे० "चुरुट"।

चुर्स—संज्ञा पु० दे० "चुरुट"।

चुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल = चपल] खुजलाहट। किसी अंग के मले वा सहलाए जाने की इच्छा। मस्ती। कामोद्वेग।

मुहा०—चुल उठना = (१) खुजलाहट होना। (२) प्रसंग की इच्छा होना। काम का वेग होना। चुल मिटना = कामवासना तृप्त करना।

चुलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण की एक नदी का नाम।

चुलचुलाना—क्रि० अ० [हिं० चुल] खुजलाहट होना। चुल होना।

चुलचुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलचुलाना] चुल या खुजली उठने का भाव। चुल। खुजलाहट।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।

चुलचुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुलचुलाना] चुल। खुजलाहट।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।

चुलबुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल + बल] चुलबुलाहट। चंचलता। चपलता।

चुलबुला—वि० [सं० चल + बल] [स्त्री० चुलबुली] (१) चंचल। चपल। जिसके अंग उमंग के कारण बहुत अधिक हिलते डोलते रहें। (२) नटखट।

चुलबुलाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) चुलबुल करना। रह रह कर हिलना डोलना। (२) चंचल होना। चपलता करना।

चुलबुलापन—संज्ञा पु० [हिं० चुलबुला + पन (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोख़ी।

चुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [देश०] चंचलता। चपलता। शोख़ी।

चुलबुलिया†—वि० दे० "चुलबुला"।

चुलाना—क्रि० स० दे० "चुवाना"।

चुलाव—संज्ञा पु० [देश०] वह पुलाव जिसमें मांस न पड़ा हो।

संज्ञा पु० [हिं० चुवना] चुलाने वा चुवाने का भाव वा क्रिया।

चुलियाला—संज्ञा पु० [?] एक मात्रिक छंद का नाम जिसमें १३ और १६ के विश्राम से २९ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक जगण और एक लघु होता है। दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखने से यह छंद सिद्ध होता है। कोई इसके दो और कोई चार पद मानते हैं। जो दो पद मानते हैं वे दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखते हैं। जो चार पद मानते हैं वे दोहे के अंत में एक यगण रखते हैं। उ०—(क) मेरी विनती मानि कै हरि जू देखो नेक दया करि। नाहीं तुम्हरी आन है दुख हरिये की टेक सदा धर। (ख) हरि प्रभु माधव बीर बर मन मोहन गोपति अविनासी। कर मुरलीधर धीर नरवर दायक कारन भव-फाँसी। जन विपदाहर राम प्रिय मन भावन संतन घट-बासी। अब मम ओर निहारि दुख दारिद हरि कीजै सुखरासी।

चुलुक—संज्ञा पु० [सं०] (१) गर्दे के डूबने भर को जल। (२) भारी दलदल। गहरा कीचड़। (३) चुल्लू। गहरी की हुई हथेली जिसमें पानी इत्यादि पी सकें। (४) एक प्रकार का बरतन जो नापने के काम में आता था। (५) एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

चुलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

चुलुपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशुमार। सुइँस नाम का जलजंतु।

चुल्ला—संज्ञा पु० [सं० चूल = वलय] काँच का छोटा छल्ला जो जुलाहों के करघे में लगाया जाता है।

† वि० [अनु०] चिलबिल्ला। नटखट। पाजी।

चुल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्न्याधान। चूल्हा। (२) चिता।

† वि० चिलबिल्ला। नटखट।

चुल्लू—संज्ञा पु० [सं० चुलुक] गहरी की हुई हथेली जिसमें भर कर पानी आदि पी सकें। एक हाथ की हथेली का गड्ढा। (इस शब्द का प्रयोग पानी आदि द्रव पदार्थों के ही संबंध में होता है, जैसे, चुल्लू भर पानी, चुल्लू से दूध पीना। इत्यादि।)

मुहा०—चुल्लू भर = उतना (जल, दूध आदि) जितना चुल्लू में आ सके। चुल्लू भर पानी में डूब मरो = मुँह न दिखाओ

घालि चल्यो लखि दुंदुभी तिमि सोह्यो मति रन चुभी।—गोपाल।

चुभर चुभर–क्रि० वि० [अनु०] ओंठ से चूस चूस कर पीने का शब्द। बच्चों के दूध पीने का शब्द।

चुभलाना–क्रि० स० दे० "चुबलाना"।

चुभवाना–क्रि० स० [हिं० चुभना का प्रे०] चुभाने का कार्य्य दूसरे से कराना।

चुभाना–क्रि० स० [हिं० चुभना का प्रे०] धँसाना। गड़ाना।

चुभोना–क्रि० स० दे० "चुभाना"।

चुमकार–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूमना + कार] चूमने का सा शब्द जो प्यार दिखाने के लिये निकालते हैं। पुचकार।

चुमकारना–क्रि० स० [हिं० चुमकार] प्यार दिखाने के लिये चूमने का सा शब्द निकालना। पुचकारना। दुलारना। उ०—वह बच्चे से चुमकार कर सब बातें पूछने लगा।

चुमकारी–संज्ञा स्त्री० दे० "चुमकार"।

चुमवाना–क्रि० स० [हिं० चूमना का प्रे०] चूमने का कार्य्य दूसरे से कराना।

चुमाना–क्रि० स० [हिं० चूमना] किसी दूसरे के सामने चूमने के लिये प्रस्तुत करना।

चुम्मक–संज्ञा पुं० दे० "चुंबक"।

चुम्मा†–संज्ञा पुं० [हिं०] चुंबन। बोसा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

चुर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाघ आदि के रहने का स्थान। माँद। (२) चार पांच आदमियों के बैठने का स्थान। बैठक। उ०—घाट, बाट, चौपार, चुर, देवल, हाट, मसान।—भगवतरसिक।

संज्ञा पुं० [अनु०] कागज, सूखे पत्ते आदि के मुड़ने वा टूटने का शब्द।

* वि० [सं० प्रचुर] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—प्रेम प्रशंसा विनय युत वेग वचन ये आहिं। तेहि ते होत अनंद चुर फुर उर लागत नाहिं।—विश्राम।

चुरकना–क्रि० अ० [अनु०] (१) बोलना। चहचहाना। चहकना। चीं चीं करना। चें चें करना। (व्यंग्य वा तिरस्कार से बोलते हैं)। † (२) चटकना। चूर होना। टूटना। फटना।

चुरकी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोटी] चुटिया। शिखा।

चुरकुट–क्रि० वि० [हिं० चूर + कूटना] चकनाचूर। चूर चूर। चूर्णित। उ०—मुष्टिको गद मरदि चार गूर चुरकुट करयो कंस मनुकंप भयो भई रंगभूमि अनुराग रागी।—सूर।

चुरकुस*–संज्ञा पुं० [हिं०] चूर चूर। चूर मूर। चूर्ण। बुकनी। उ०—तिलक पलीता माथे दसन वज्र के बान। जेहि हेरहिं तेहि मारहिं चुरकुस करैं निदान।—जायसी।

चुरगना–क्रि० अ० दे० "चुरकना"।

चुरचुरा–वि० [अनु०] जो खरा होने के कारण जरा से दबाने से चुर चुर शब्द करके टूट जाय। जैसे, कुमकुमा, पापड़ आदि।

चुरचुराना†–क्रि० अ० [अनु०] (१) बहुत थोड़े आघात से चूर चूर हो जाना। (२) चुर चुर शब्द करना।

क्रि० स० (१) किसी खरी चीज़ को चूर चूर करना। (२) चुर चुर शब्द उत्पन्न करना।

चुरट–संज्ञा पुं० दे० "चुरुट"।

चुरना†–क्रि० अ० [सं० चूर = जलना, पकना] (१) आँच पर खौलते हुए पानी के साथ किसी वस्तु का पकना। सीझना। गीली वस्तु का गरम होना। जैसे, "दाल चुरना"। (२) आपस में गुप्त मंत्रणा या बातचीत होना।

संज्ञा पुं० [हिं० चुनचुनाना] सूत के ऐसे महीन सफ़ेद कीड़े जो पेट में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं। ये कीड़े बच्चों को बहुत कष्ट देते हैं। चुनचुना।

क्रि० प्र०—लगना।

चुरमुर–संज्ञा पुं० [अनु०] खरी वा कुरकुरी वस्तु के टूटने का शब्द। करारी चीजों के टूटने की आवाज। जैसे, सूखी पत्तियों का चुरमुर होना। उ०—चना चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।—हरिश्चंद्र।

चुरमुरा–वि० [अनु०] जो खरेपन के कारण दबाने पर चुर चुर शब्द करके टूट जाय। करारा। जैसे, पापड़, सूखे पत्ते, आदि।

चुरमुराना–क्रि० अ० [अनु०] चुरमुर शब्द करके टूटना।

क्रि० स० [अनु०] चुरमुर शब्द करके तोड़ना। जैसे चना, पापड़ आदि चुरमुराना।

चुरवाना–क्रि० स० [हिं० चुराना = पकाना] पकाने का काम कराना।

क्रि० स० दे० "चोरवाना"।

चुरस–संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े आदि की शिकन। सिलवट। सिकुड़न।

चुरा*†–संज्ञा पुं० दे० "चूरा"। उ०—देखत चुरै कपूर ज्यों उपै जाय जिन लाल। छिन छिन होत खरी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी।

चुराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरना] चुरने की क्रिया या भाव। पकाने का काम।

चुराना–क्रि० स० [सं० चुर = चोरी करना] (१) किसी वस्तु को उसके स्वामी के परोक्ष या अनजान में ले लेना। किसी दूसरे की वस्तु को इस प्रकार से लेना कि उसे खबर न हो। गुप्त रूप से पराई वस्तु हरण करना। चोरी करना।

मुहा०—चित्त चुराना = मन को आकर्षित करना। मन में [illegible] करना।

(२) छिपाना। परोक्ष में करना। लोगों की दृष्टि से बचाना। उ०—यह लड़का पैसा हाथ में चुराए है।

चुहना–क्रि० स० [सं० चूषण] दाँतों से दबा कर किसी वस्तु के रस को चूसना। जैसे, ऊख चुहना।

चुहल–संज्ञा स्त्री० [अनु० चुहचुह = चिड़ियों की बोली] हँसी। ठठोली। विनोद। मनोरंजन।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चुहलपन–संज्ञा पु० दे० "चुहलबाजी"।

चुहलबाज़–वि० [हिं० चुहल + बाज (फा० प्रत्य०)] ठठोल। मसखरा। दिल्लगीबाज़। ठट्ठेबाज़। विनोदी।

चुहलबाजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चुहलबाज] हँसी ठठोली। दिल्लगी। मसखरापन।

चुहादंती–संज्ञा स्त्री० दे० "चूहादंती"।

चुहिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहा] चूहा का स्त्री० और अल्प० रूप।

चुहिला–वि० [हिं० चुहचुहना] रमणीक। जहाँ रौनक हो। (स्थान के संबंध में बोलते हैं।)

चुहिली–संज्ञा स्त्री० [देश०] चिकनी सुपारी।

चुहुकना–क्रि० स० [सं० चूष] चूसना।

चूँ–संज्ञा पु० [अनु०] (१) छोटी चिड़ियों के बोलने का शब्द। उ०—चूँ चूँ चूँ चूँ क्या करती हैं बेचूँ बेचूँ करती हैं।—नज़ीर। (२) चूँ शब्द।

मुहा०—चूँ करना = (१) कुछ कहना। (२) प्रतिवाद करना। विरोध में कुछ कहना।

यौ०—चूँ चरा = दे "चूँचरा"।

चूँकि–क्रि० वि० [फा०] इस कारण से कि। क्योंकि। इस लिये कि।

चूँचरा–संज्ञा पु० [फा०] (१) प्रतिवाद। विरोध। (२) आपत्ति। उज्र। (३) बहाना। मिस।

चूँची–संज्ञा स्त्री० दे० "चूची"।

चूँचूँ–संज्ञा पु० [अनु०] (१) चिड़ियों के बोलने का शब्द। दे० "चूँ"। (२) किसी प्रकार का "चूँ चूँ" शब्द। (३) एक प्रकार का खिलौना जिसे दबाने या खींचने से चूँ चूँ शब्द होता है।

चूँदरी–संज्ञा स्त्री० दे० "चुनरी"। उ०—देवर जेठ जवाहिर की चुनि चोप सों चूँदरी लै पहिरावत।

चूँदी–संज्ञा स्त्री० दे० "चुंदी"।

चूअरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] जरदालु। खूबानी।

चूऊ–संज्ञा पु० [देश०] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का महीन ऊनी कपड़ा जो पहाड़ी देशों में बनता है।

चूक–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूकना] (१) भूल। गलती।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—पड़ना।—होना।

(२) दरार। दर्ज़। शिगाफ़। (लश०)

संज्ञा पु० [सं० चुक] (१) नींबू, इमली, आम, अनार या आँवले आदि किसी खट्टे फल के रस को गाढ़ा करके बनाया हुआ एक पदार्थ जो अत्यंत खट्टा होता है। वैद्यक में इसे दीपन और पाचन मानते हैं। (२) एक प्रकार का खट्टा साग।

विशेष—दे० "चूका"।

वि० बहुत अधिक खट्टा। इतना खट्टा जो खाया न जा सके।

चूकना–क्रि० अ० [सं० च्युतक, प्रा० चुक्कि] (१) भूल करना। ग़लती करना। (२) लक्ष्य-भ्रष्ट होना। (३) सुअवसर खो देना। उ०—समय चूकि पुनि का पछताने।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

चूका–संज्ञा पु० [सं० चुक] एक प्रकार का खट्टा साग जिसे चूक भी कहते हैं। (वैद्यक में इसे हलका, रुचिकारक और दीपक माना है।)

चूची–संज्ञा स्त्री० [सं० चूचुक] (१) स्तन का अग्र भाग। कुच के ऊपर की घुंडी। (२) स्तन। कुच। स्त्री की छाती।

मुहा०—चूची पीता = बहुत छोटा (बच्चा)। नासमझ। नादान। चूची पीना = चूची को मुहँ में लगा कर उसका दूध पीना। स्तनपान करना। चूची मलना = संभोग के समय आनंद वृद्धि के लिये स्त्री के स्तन को (पुरुष का) हाथों से दबाना, मलना या मर्दन करना।

चूचुक–संज्ञा पु० [सं०] कुच का अग्र भाग। चूची की ढेपनी। उ०—चूचुक सारी परसि रहे तेहि निहुरि लखति सी। मुकवि स्याम सों निरखि निरखि विहँसति सकुचति सी।—व्यास।

चूज़ा–संज्ञा पु० [फा०] मुरगी का बच्चा।

वि० जिसकी अवस्था अधिक न हो। (बाज़ारू)

चूड़, चूड़क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोटी। शिखा। (२) मस्तक पर की कलगी, जैसी मुरगे वा मोर के सिर पर होती है। (३) शंखचूड़ नामक दैत्य। (४) खंभे मकान या पहाड़ आदि का ऊपरी भाग। (५) कंकण। (६) छोटा कुआँ।

चूड़ांत–वि० [सं०] चरमसीमा। पराकाष्ठा।

क्रि० वि० अत्यंत। बहुत अधिक।

चूड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चोटी। शिखा। चुरकी।

यौ०—चूड़ाकरण। चूड़ाकर्म। चूड़ामणि।

(२) मोर के सिर पर की चोटी। (३) छाजन आदि में यह सब से ऊँचा भाग जिसे मँगरा कहते हैं। (४) कुआँ। (५) घुँघची। (६) मस्तक। (७) प्रधान नायक। (८) बाँह में पहनने का एक प्रकार का अलंकार। (९) चूड़ाकरण नाम का संस्कार।

संज्ञा पु० [सं० चूडा = बाहु-भूषण] (१) कंकण। कड़ा। बलय। (२) हाथों में पहनने के लिये छोटी बड़ी बहुत सी चूड़ियों का समूह जो किसी जाति में नव-वधू और किसी किसी जाति में प्रायः सब विवाहिता स्त्रियाँ पहनती हैं। चूड़ियाँ प्रायः हाथी दाँत की बनती हैं। इसमें की सब से छोटी

लज्जा के मारे मर जाओ। (जब कोई अत्यंत अनुचित कार्य्य करता है तब उसके प्रति धिक्कार के रूप में यह मुहा० बोलते हैं।) चुल्लू में उल्लू होना=बहुत थोड़ी सी भंग वा शराब में बेसुध होना। चुल्लुओं रोना=बहुत रोना। बहुत आंसू गिराना। चुल्लुओं लहू पीना=बहुत सताना। चुल्लू में समुद्र न समाना=छोटे पात्र में बहुत वस्तु न आना। कुपात्र या क्षुद्र मनुष्य से कोई बड़ा या अच्छा काम न हो सकना।

विशेष—यद्यपि कुछ लोग दोनों हथेलियों को मिला कर बनाई हुई अंजली को भी चुल्लू कहते हैं पर यह ठीक नहीं है।

चुल्हौना‡–संज्ञा पुं० दे० "चूल्हा"। उ०—समधी के घर समधी आयो, आयो बहू को भाइ। गोड़ चुल्हौने दै रहे, चरखा दियो बड़ाइ।—कबीर।

चुवना–क्रि० अ० दे० "चूना"।

चुवा†–संज्ञा पुं० [देश०] मज्जा। भेजा। हड्डी की नली के भीतर का मांस।

चुवाना–क्रि० स० [हिं० चूना का प्रे०] टपकाना। गिराना। बूँद बूँद करके गिराना। थोड़ा थोड़ा गिराना। उ०—(क) रांभत गाय बच्छ हित सुधि करि प्रेम उमँगि थन दूध चुवावत। जसुमति बोली उठि हरषित ह्वै कान्हैं धेनु चराये आवत।—सूर। (ख) कोई मुख सीतल नीर चुवावै। कोइ अंचल सों पवन डोलावै।—जायसी।

चुसकी–संज्ञा स्त्री० [सं० चषक] पानपात्र। मद्य पीने का पात्र। प्याला। (डिं०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] (१) ओंठ से किसी पीने की चीज़ को सुड़कने की क्रिया। ओंठ से लगा कर थोड़ा थोड़ा करके पीने की क्रिया। सुड़क। (२) उतना जितना एक बार सुड़का जाय। घूँट। दम। उ०—दो चुसकियां और लेने दो।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

चुसना–क्रि० अ० [हिं० चूसना] (१) चूसा जाना। ओंठ से खींच कर पिया जाना। चचोड़ा जाना। (२) निचुड़ जाना। गार जाना। निकल जाना। (३) सार-हीन होना। शक्ति-हीन होना। (४) धन-शून्य होना। देते देते पास में कुछ न रह जाना। उ०—हम तो चुस गए, अब हमारे पास रहा क्या?

संयो० क्रि०—जाना।

चुसनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] (१) बच्चों का एक खिलौना जिसे वे मुँह में डाल कर चूसते हैं। (२) दूध पिलाने की शीशी।

चुसवाना–क्रि० स० [हिं० चूसने का प्रे०] चूसने का काम कराना। चूसने देना। चूसने में प्रवृत्त करना।

चुसाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] चूसने की क्रिया या भाव।

चुसाना–क्रि० स० [हिं० चूसना का प्रे०] चूसने का काम कराना। चूसने देना। चूसने में प्रवृत्त करना।

चुसौअल–संज्ञा स्त्री० दे० "चुसौवल"।

चुसौवल–संज्ञा स्त्री० [हिं० चूसना] (१) अधिकता से चूसने की क्रिया। (२) बहुत से आदमियों द्वारा चूसने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चुस्त–वि० [फ़ा०] (१) कसा हुआ। जो ढीला न हो। संकुचित। उ०—यह अंगा बहुत चुस्त है। (२) फुरतीला। जिसमें आलस्य न हो। तत्पर। चलता।

यौ०—चुस्त चालाक=तेज़ और समझदार।

(३) कसा हुआ। दृढ़। मज़बूत।

संज्ञा पुं० जहाज़ का वह भाग जो भीतर की ओर झुका हो। मूढ़। (लश०)

चुस्ना–संज्ञा पुं० [सं० चुस्त=मांसपिंड विशेष] बकरी के बच्चे का आमाशय जिसमें पिया हुआ दूध भरा रहता है।

चुस्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) फुरती। तेज़ी। (२) कसावट। तंगी। (३) मज़बूती। दृढ़ता।

चुहँटी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] चुटकी। उ०—चुहँटी चिबुक चांपि चूँमि लोल लोचन कै रस में विरस कह्यो बचन मलीनो है।

चुहचाहट†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का शब्द। चहकार।

चुहचुहा–वि० [अनु०] [स्त्री० चुहचुही] (१) चुहचुहाता हुआ। रसीला। चटकीला। शोख़। उ०—पहिरे चीर सुही सुरंग सारी चुहचुहु चूनरी बहुरंगनी। नील लहँगा लाल चोली कसि उबटि केसरि सुरंगनी।—सूर।

चुहचुहाता–वि० [हिं० चुहचुहाना] रस भरा। रसीला। सरस। रँगीला। मज़ेदार। उ०—कोई चुहचुहाता कवित्त सुनाइए।

चुहचुहाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) रस टपकाना। चटकीला लगना। (२) चिड़ियों का बोलना। चहचहाना। चहकार मचाना। कलरव करना। उ०—(क) चिरई चुहचुहानी चंद की ज्योति परानी रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवीन की।—सूर। (ख) मैं जानी जिय जहँ रति मानी। तुम आए हो ललना अब चिरियां चुहचुहानी।—सूर।

चुहचुही–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमकीले काले रंग की एक बहुत छोटी चिड़िया जो प्रायः फूलों पर बैठती है। देखने में यह बहुत चंचल और तेज़ होती है। बोली भी इसकी प्यारी होती है। इसे 'फुलसुँघनी' भी कहते हैं। उ०—भोर होत बोलहिं चुहचूही। बोलैं पांडुक एकै तूही।—जायसी।

चुहटना*–क्रि० स० [देश०] रौंदना। कुचलना। उ०—फिरि फेरि अटुत चलत चुहटत दुहू पदतल आइ।—सूदन।

चुहड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० चुहड़ी] भंगी। हलालखोर। श्वपच। चांडाल।

दक्षिणी भाग में तथा पंजाब के कुछ ज़िलों में अधिकता से होता है। इसके दूध में गटापारचा का अंश बहुत अधिक होता है। ताजे दूध में बहुत सुगंधि होती है और वह आँख के लिये बहुत हानिकारक होता है। बासी दूध लगने से शरीर में छाले पड़ जाते हैं।

चूनर, चूनरी—संज्ञा० स्त्री० दे० "चुनरी"

चूना—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षारभस्म जो पत्थर, कंकड़, मिट्टी, सीप, शंख या मोती आदि पदार्थों को भट्ठियों में फूँक कर बनाया जाता है। तुरंत फूँक कर तैयार किए हुए चूने को कली या बिना बुझा हुआ चूना कहते हैं। यह ढोंके या उसी स्वरूप में होता है जिसमें उसका मूल पदार्थ फूँके जाने से पहले रहता है। कंकड़ का बिना बुझा चूना 'बरी' कहलाता है। बिना बुझा चूना हवा लगने से अपनी शक्ति और गुण के अनुसार तुरंत या कुछ समय में चूर्ण के रूप में हो जाता है और उसकी शक्ति और गुण में कमी होने लगती है। पर पानी के संयोग से बिना बुझे चूने की यह दशा बहुत जल्दी हो जाती है। इस अवस्था में इसे "मरका" या बुझा हुआ चूना कहते हैं। बिना बुझे चूने पर जब पानी डाला जाता है तो पहले तो वह पानी को ख़ूब सोखता है, पर थोड़ी ही देर बाद उस में से बुलबुले छूटने लगते हैं और उस में से बहुत तेज़ गरमी निकलती है। तेज चूने के संयोग से शरीर चर्राने लगता है और उस में कभी कभी छाले तक पड़ जाते हैं। पत्थर का चूना बहुत तेज़ होता है और मकान की दीवारों पर सफ़ेदी करने, खेत में खाद की तरह डालने, छींट आदि छापने, पान के साथ लगा कर खाने और दवाओं आदि के काम में आता है। कंकड़ का चूना भी प्रायः इन्हीं कामों में आता है, पर इसका सब से अधिक उपयोग इमारत के काम में, ईंट पत्थर आदि जोड़ने और दीवारों पर पलस्तर करने के लिये होता है। शंख, सीप और मोती आदि का चूना प्रायः खाने और औषध के काम में ही आता है।

मुहा०—चूना छूना या फेरना = चूने को पानी में घोल कर दीवारों पर उन्हें सफ़ेद करने के लिये पोतना। दीवारों पर चूने की सफ़ेदी करना। चूना लगाना = ख़ूब धोखा देना, हानि पहुँचाना या दिक करना। बहुत लज्जित करना।

यौ०—चूनादानी। चुनौटी।

क्रि० अ० [सं० च्यवन] (१) पानी या किसी दूसरे द्रव पदार्थ का किसी छेद या छोटी दरज में से बूँद बूँद हो कर नीचे गिरना। टपकना। जैसे, छत में से पानी चूना, लोटे में से दूध चूना, आदि।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

‡ (२) किसी चीज़ का विशेषतः फल आदि का, अचानक ऊपर से नीचे गिरना। जैसे, आम चूना, महुआ चूना। (३) किसी चीज़ में ऐसा छेद या दरज हो जाना जिसमें से होकर कोई द्रव पदार्थ बूँद बूँद गिरे। जैसे, छत चूना, लोटा चूना, पीपा चूना, आदि।

† वि० [हिं० चूना (क्रि० अ०)] जिसमें किसी चीज़ के चूने योग्य छेद या दरज हो। जैसे, चूना घड़ा, चूना घर।

चूनादानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूना + सं० आधान] वह छोटी डिबिया या इसी प्रकार का और कोई पात्र जिसमें पान या सुरती के साथ खाने के लिये चूना रखा जाता है। चुनौटी।

चूनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका] (१) अन्न का छोटा टुकड़ा। अन्नकण।

यौ०—चूनी भूसी = मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

(२) रत्नकण। चुन्नी।

विशेष—दे० "चुन्नी"।

चूनेदानी—संज्ञा स्त्री० दे० "चूनादानी"।

चूमना—क्रि० स० [सं० चुम्बन] प्रेम के आवेग में अथवा यों ही होठों से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को अथवा किसी और पदार्थ को स्पर्श करना या दबाना। चुम्मा लेना। बोसा लेना।

मुहा०—चूम कर छोड़ देना = किसी भारी कार्य्य को आरंभ करके, या किसी वस्तु को छू कर बिना उसका पूरा उपयोग किए छोड़ देना। चूमना चाटना = चूमना। प्यार करना।

विशेष—किसी किसी देश में आदर या सम्मान के लिये भी बड़ों के हाथ आदि अंगों को चूमते हैं।

संज्ञा पुं० हिंदुओं में विवाह की एक रस्म जिसमें वर की अंजुली में चावल, जौ, गुड़ भर कर पाँच सोहागिनी स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हुई वर के माथे, कंधे और घुटने आदि पाँच अंगों को हरी दूब से छूती और तब उस दूब को चूम कर फेंक देती हैं।

चूमा—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन, हिं० चूमना] चूमने की क्रिया। चुंबन। चुम्मा। मिट्ठी।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

यौ०—चूमा चाटी।

चूमाचाटी—संज्ञा० स्त्री० [हिं० चूमना + चाटना] चूमने और चाटने का काम। चूम और चाट कर प्रेम प्रकट करने की क्रिया।

चूर—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी पदार्थ के बहुत छोटे छोटे टुकड़े जो उस पदार्थ को ख़ूब तोड़ने, कूटने आदि से बनते हैं।

मुहा०—चूर करना या चूर चूर करना = किसी पदार्थ को तोड़ फोड़ कर उसके बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना।

(२) किसी पदार्थ के वे बहुत महीन कण जो उस पदार्थ को रेती से रेतने अथवा आरी से चीरने आदि से निकलते हैं। बुरादा। भूर।

चूड़ी पहुँचे के पास और सबसे बड़ी चूड़ी कुहनी के पास रहती है और बीच की चूड़ियाँ गावदुम रहती हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "चुहड़ा" ।

संज्ञा पुं० दे० "चिउड़ा" ।

चूड़ाकरण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी बच्चे का पहले पहल सिर मुड़वा कर चोटी रखवाना । हिंदुओं के १६ संस्कारों में से यह भी एक संस्कार है । यह बच्चे की उत्पत्ति से तीसरे वा पाँचवें वर्ष होता है । मुंडन ।

चूड़ाकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] चूड़ाकरण ।

चूड़ामणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिर में पहनने का शीश फूल नाम का गहना । बीज । (२) सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति । सब में श्रेष्ठ । सरदार । मुखिया । अग्रगण्य । (३) घुँघची । गुंजा ।

चूड़ाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] इमली ।

चूड़ाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद घुँघची । (२) नागरमोथा । (३) एक प्रकार की घास जिसे निर्विषी भी कहते हैं ।

चुड़िया-संज्ञा पुं० [हिं० चूड़ी + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा ।

चूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चूड़ा] (१) वह मंडलाकार पदार्थ जिसकी परिधि मात्र हो और जिसके मध्य का स्थान बिलकुल खाली हो । वृत्ताकार पदार्थ । जैसे, मशीन की चूड़ी, (जो किसी पुरजे को खसकने से बचाने के लिये पहनाई जाती है), फोनोग्राफ़ की चूड़ी (जिसमें गाना भरा रहता है और जो घूमनेवाले बेलन में पहनाई जाती है ।) (२) हाथ में पहनने का एक प्रकार का वृत्ताकार गहना जो लाख, काँच, चाँदी या सोने आदि का बनता है ।

विशेष-भारतीय स्त्रियाँ चूड़ी को सौभाग्य-चिह्न समझती हैं और प्रत्येक हाथ में कई कई चूड़ियाँ पहनती हैं । पहनी हुई चूड़ी का टूट जाना अशुभ समझा जाता है । यूरोप अमेरिका आदि की स्त्रियाँ केवल दाहिने हाथ में और प्रायः एक ही चूड़ी पहनती हैं ।

क्रि० प्र०-उतारना ।—चढ़ाना ।—पहनना ।

मुहा०-चूड़ियाँ ठंढी करना या तोड़ना = पति के मरने के समय स्त्री का अपनी चूड़ियाँ उतारना या तोड़ना । वैधव्य का चिह्न धारण करना । चूड़ियाँ पहनना = स्त्री का वेष धारण करना । औरत बनना । (व्यंग्य और हास्य) जैसे, जब तुम इतना भी नहीं कर सकते तो चूड़ियाँ पहन लो । (किसी पर या किसी के नाम की) चूड़ियाँ पहनना = स्त्री का किसी को अपना उपपति बना लेना । स्त्री का किसी के घर बैठ जाना । चूड़ियाँ पहनाना = विधवा स्त्री से अथवा विधवा स्त्री का विवाह करना । चूड़ियाँ बढ़ाना = चूड़ियाँ उतारना । चूड़ियों को हाथों से अलग करना । (चूड़ियों के साथ "उतारना" शब्द का प्रयोग स्त्रियों में अनुचित और अशुभ समझा जाता है ।)

(३) फोनोग्राफ़ या ग्रामोफ़ोन बाजे का रेकर्ड जिसमें गाना भरा रहता अथवा भरा जाता है ।

विशेष—पहले पहल जब केवल फोनोग्राफ़ का अविष्कार हुआ था तो उसके रेकर्ड लंबे और कुंडलाकार बनते थे और उक्त बाजे में लगे हुए एक लंबे नल पर चढ़ा कर बजाए जाते थे । उन्हीं रेकर्डों को चूड़ी कहते थे । पर आज कल ग्रामोफ़ोन के रेकर्डों को भी जो तवे के आकार की गोल पटरियाँ होती हैं, चूड़ी कहते हैं ।

(४) चूड़ी की आकृति का गोदना जो स्त्रियाँ हाथों पर गोदाती हैं । (५) रेशम साफ़ करनेवालों का एक औज़ार । यह चंद्राकार मोटे कड़े की शकल का होता है और मकान की छत में बाँस की एक कमानी के साथ बँधा रहता है । इसके दोनों ओर दो टेकुरियाँ होती हैं । बाईं ओर की टेकुरी में साफ़ किया हुआ और दाहिनी ओर की टेकुरी में उलझा हुआ रेशम लपेटा रहता है ।

चूड़ीदार—वि० [हिं० चूड़ी + फा० दार] जिस में चूड़ी या छल्ले अथवा इसी आकार के घेरे पड़े हों ।

यौ०—चूड़ीदार पायजामा = तंग और लंबी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा जिसमें चुस्त ऐंठन के कारण पैर के पास चूड़ी के आकार के घेरे या शिकन पड़ी रहती हैं ।

चूड़ो—संज्ञा पुं० दे० "चुहड़ा"

चूत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

यौ०—चूतमंजरी । चूतलतिका । चूतांकुर । चूतकलिका ।

संज्ञा स्त्री० [सं० च्युति = भग] स्त्रियों की भगेंद्रिय । योनि । भग ।

चूतक—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

चूतड़—संज्ञा पुं० [हिं० चूत + तल] कमर के नीचे और जाँघ के ऊपर गुदा के बगल का माँसल भाग । नितंब ।

मुहा०—चूतड़ दिखाना = कठिन समय पर भाग जाना । पीठ दिखाना । चूतड़ पीटना या बजाना = बहुत प्रसन्न होना । ख़ुश होना । चूतड़ों का लहू मरना = एक स्थान पर जम कर बैठने के योग्य होना ।

चूतरा—संज्ञा पुं० दे० "चूतड़"

चूतिया—वि० [हिं० चूत + इया (प्रत्य०)] बेसमझ । मूर्ख । गावदी ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—फँसाना ।

चूतिया चक्कर—वि० दे० "चूतिया"

चूतियापंथी—संज्ञा स्त्री० [चूतिया + पंथ] मूर्खता । बेसमझी । बेवकूफ़ी ।

चून—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] (१) पिसान । आटा । (२) दे० "चूना" ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो हिमालय के

चूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] लूची नामक पकान्न। मैदे की पतली पूरी। लुचुई।

चूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चूचक। (२) नाटक का एक अंग जिसमें नेपथ्य से किसी घटना के हो जाने की सूचना दी जाती है।

विशेष—संस्कृत-साहित्य के नियमानुसार रंगशाला पर युद्ध या मृत्यु आदि का दृश्य दिखलाना निषिद्ध है। इसलिये उसकी सूचना नेपथ्य से हो जाया करती है। संस्कृत के वीरचरित नाटक में इस प्रकार की एक चूलिका है। उसमें नेपथ्य से कहा जाता है—"राम ने परशुराम पर विजय पा ली है; अतः हे विमान पर बैठनेवालो, आप लोग मंगल-गीत आरंभ करें।"

चूलिकोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं० चुलि] अथर्ववेदीय एक उपनिषद् का नाम।

चूल्हा—संज्ञा पुं० [सं०] अँगीठी की तरह का मिट्टी या लोहे आदि का बना हुआ पात्र जिसका आकार प्रायः घोड़े की नाल का सा या अर्द्धचंद्राकार होता है और जिस पर, नीचे आग जला कर, भोजन पकाया जाता है।

यौ०—दोहरा चूल्हा = वह चूल्हा जिस पर एक साथ दो चीजें पकाई जा सकें।

मुहा०—चूल्हा जलना = भोजन बनना। जैसे, आज उनके घर चूल्हा नहीं जला। चूल्हा न्योतना = घर के सब लोगों का निमंत्रण देना। चूल्हा फूँकना = भोजन पकाना। चूल्हे में जाना = नष्ट भ्रष्ट होना। अस्तित्व मिटना। चूल्हे में डालना = (१) नष्ट भ्रष्ट करना। (२) दूर करना। चूल्हे में पड़ना = दे० "चूल्हे में जाना"। (इन मुहावरों का प्रयोग क्रोध में या अत्यंत निरादर प्रकट करने के समय होता है। जैसे, चूल्हे में जाय तुम्हारा समारोह। चूल्हे में डालो अपनी सौगात।) चूल्हे से निकल कर भाड़ या भट्टी में पड़ना = छोटी विपत्ति से निकल कर बड़ी विपत्ति में फँसना।

चूषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चूषणीय, चूष्य] चूसने की क्रिया।

चूषणीय—वि० [सं०] चूसने योग्य। जो चूसा जाय।

चूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की कमर में बाँधी जानेवाली बड़ी पेटी या पट्टा।

चूष्य—वि० [सं०] चूसने के योग्य। जो चूसा जाय या चूसा जा सके।

चूसना—क्रि० स० [सं० चूषण] (१) जीभ और होंठ के संयोग से किसी पदार्थ का रस खींच खींच कर पीना। जैसे, आम चूसना, गँडेरी चूसना। (२) किसी चीज़ का सार भाग ले लेना। जैसे, किसी स्त्री का पुरुष को चूस लेना। किसी बदमाश का भले आदमी को चूसना (उसका धन आदि अपहरण करना)।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

चूहड़—संज्ञा पुं० दे० "चूहड़ा"।

चूहड़ा—संज्ञा पुं० [ ] [स्त्री० चूहड़ी] भंगी या मेहतर। चांडाल। श्वपच।

चूहर—संज्ञा पुं० दे० "चूहड़ा"।

चूहरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० चुरिहारिन का अपभ्रंश] चूड़ी बेचने या पहनानेवाली स्त्री। चुड़िहारिन।

संज्ञा स्त्री० "चूहड़ा" का स्त्री०।

चूहा—संज्ञा पुं० [अनु० चूँ + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० चुहिया, चूही आदि] चार पैरोंवाला एक प्रसिद्ध छोटा जंतु जो प्रायः घरों या खेतों में बिल बना कर रहता है। यह समस्त एशिया, युरोप और अफ्रिका में पाया जाता है और इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। साधारणतः भारतीय चूहों का रंग कालापन लिए खाकी होता है पर नीचे के भाग में कुछ सफ़ेदी भी होती है। इसके दाँत बहुत तेज़ होते हैं और यह खाने पीने की चीजों के सिवा कपड़ों और दूसरी चीज़ों को काट कर भी बहुत हानि पहुँचाता है। कभी कभी यह मनुष्यों को भी काटता है। इसके काटने से एक प्रकार का हलका विष चढ़ता है। किसी किसी जाति के चूहे बहुत लड़ाके होते हैं और आपस में खूब लड़ते हैं। इसकी मादा एक साथ कई बच्चे देती है। इस देश में विलायत से खरगोश से मिलते जुलते एक प्रकार के सफ़ेद चूहे भी आते हैं जिन्हें विलायती चूहा कहते हैं। इनके एक जोड़े से बढ़ कर एक साल के अंदर कई सौ चूहे हो जाते हैं। इस जाति के चूहे प्रायः अपने बच्चों को जन्मते ही या कुछ दिनों के अंदर खा जाते हैं। साधारणतः चूहे प्रायः कुत्तों और विशेषतः बिल्लियों के शिकार हो जाते हैं। मूसा।

चूहादंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चूहा + दाँत] स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की पहुँची जो चाँदी या सोने की बनती है। इसके दाने चूहे के दाँत से लंबे और नुकीले होते हैं और रेशम या सूत में पिरोए रहते हैं।

वि० चूहे के दाँत के आकार का।

चूहादान—संज्ञा पुं० [हिं० चूहा + फा० दान] चूहों को फँसाने का एक प्रकार का पिंजड़ा।

चूहेदानी—संज्ञा स्त्री० दे० "चूहादान"।

चें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने का शब्द। चेंचें।

मुहा०—चें बोलना = दे० "चीं" के मुहा० में "चीं बोलना"।

चेंगड़ा‡—संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० चेंगड़ी] छोटा बच्चा। बालक।

चेंगा‡—संज्ञा पुं० दे० "चेंगड़ा"।

संज्ञा स्त्री० दे० "चेनगा"।

चेंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़े की चकती या सन या सुतली

वि० (१) (किसी कार्य्य आदि में) तन्मय। निमग्न। तल्लीन। जैसे, काम में चूर, शेखी में चूर। (२) जिस पर नशे का बहुत अधिक प्रभाव हो। नशे में बहुत बदमस्त। जैसे, भांग में चूर, शराब में चूर, गांजे में चूर।
संज्ञा स्त्री० दे० "चूल"।

चूरण–संज्ञा पुं० दे० "चूर्ण"।

चूरन–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] (१) दे० "चूर्ण"। (२) बहुत महीन पीसी हुई कई पाचक औषधों का चूर्ण।

चूरनहार–संज्ञा पुं० [सं० चूर्णहार] एक प्रकार की जंगली बेल जिसके पत्ते बहुत लंबे, चिकने और कुछ मोटे होते हैं। इसमें मीठी गंधवाले छोटे छोटे फूल भी लगते हैं। इसकी जड़, पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार औषधों में होता है। वैद्यक में इसे कसैला, गरम, त्रिदोषनाशक, रुधिर-विकार को दूर करनेवाला और कृमिनाशक माना है। कहते हैं, विषम ज्वर की यह बहुत अच्छी दवा है।

चूरना†*–क्रि० स० [सं० चूर्णन] (१) चूर करना। टुकड़े टुकड़े करना। (२) तोड़ना। तोड़ डालना। उ०—(क) ब्रह्मरंध्र फोर जीव यों मिल्यो द्युलोक जाइ। गेह चूरि ज्यों चकोर चंद्रमैं मिलै उड़ाय।—केशव। (ख) बांधि गा सुआ करत सुख केली। चूरि पांख मेलेसि धरि डेली।—जायसी।

चूरमा–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] रोटी या पूरी को चूर चूर करके घी में भूना हुआ और चीनी मिलाया हुआ एक खाद्य पदार्थ।

चूरमूर–संज्ञा पुं० [देश०] वे खूँटियां जो जौ या गेहूँ के कट जाने पर खेत में रह जाती हैं।

चूरा–संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी वस्तु का पिसा हुआ भाग। चूर्ण। बुरादा।
विशेष—दे० "चूर"।
संज्ञा पुं० दे० "चूड़ा"।
संज्ञा पुं० दे० "चिउड़ा"।

चूरामणि*–संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ामणि"।

चूरी–संज्ञा स्त्री० दे० "चूड़ी"।
‡ संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] (१) चूर। चूरा। (२) चूरमा।

चूरू–संज्ञा पुं० [हिं० चूर] एक प्रकार का चरस जो गांजे के मादा पेड़ों से निकलता और कुछ निकृष्ट समझा जाता है।

चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूखा पिसा हुआ अथवा बहुत ही छोटे छोटे टुकड़ों में किया हुआ पदार्थ। सफूफ। बुकनी। (२) कई पाचक औषधों का बारीक पीसा हुआ सफूफ। (३) अबीर। (४) धूल। गर्द। (५) चूना। (६) कौड़ी। कपर्दक।
वि० जो किसी प्रकार तोड़ा फोड़ा या भ्रष्ट भ्रष्ट किया गया हो। जैसे, गर्व चूर्ण करना।

चूर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्तू। सतुआ। (२) वह गद्य जिसमें छोटे छोटे शब्द हों और लंबे समासवाले शब्द और कठोर या श्रुतिकटु अक्षर न हों। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) एक प्रकार का शालिधान्य।

चूर्णकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूर्ण करनेवाला। (२) आटा बेचनेवाला। (३) एक वर्ण-संकर जाति। पराशर के मत से यह नट जाति की स्त्री और पुंड्रक जाति के पुरुष से उत्पन्न हुई थी।

चूर्ण कुंतल–संज्ञा पुं० [सं०] अलक। जुल्फ। लट।

चूर्णखंड–संज्ञा पुं० [सं०] कंकड़।

चूर्णपारद–संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ।

चूर्णयोग–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से सुगंधित पदार्थों का मिश्रण।

चूर्णशाकांक–संज्ञा पुं० [सं०] गौर सुवर्ण नाम का साग जो चित्रकूट में अधिकता से होता है।
विशेष—दे० "गौर सुवर्ण"।

चूर्णहार–संज्ञा पुं० [सं०] चूरनहार नाम की बेल।

चूर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का दसवां भेद जिसमें १८ गुरु और २१ लघु होते हैं।

चूर्णि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कौड़ी। कपर्दक।

चूर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्तू। सतुआ। (२) गद्य का एक भेद।
विशेष—दे० "चूर्णक"।

चूर्णिकृत–संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्यकार पतंजलि मुनि।

चूर्णित–वि० [सं०] चूर्ण किया हुआ।

चूर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्षापण नामक पुराना सिक्का या कौड़ी। (२) एक प्राचीन नदी का नाम। (३) पतंजलि प्रणीत पाणिनि व्याकरण का भाष्य।

चूर्मा–संज्ञा पुं० दे० "चूरमा"।

चूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोटी। शिखा। (२) रीछ के बाल। (कलंदरों की भाषा)
संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी लकड़ी का वह पतला सिरा जो किसी दूसरी लकड़ी के छेद में उसके साथ जोड़ने के लिये ठोंका जाय।
मुहा०—चूलें ढीली होना = अधिक परिश्रम के कारण बहुत थकावट होना।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बूहड़। दे० "चून"।

चूलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की कनपटी। (२) हाथी के कान की मैल। (३) खंभे का ऊपरी भाग (४) किसी घटना या विषय की परोक्ष से सूचना।

चूलदान–संज्ञा पुं० [सं० चुल्लि + स्थान] (१) बावर्चीखाना। रसोईघर। पाकशाला। (लश०)। (२) बैठने या चीजें आदि रखने के लिये सीढ़ीनुमा बना हुआ स्थान। गैलरी। (लश०)

चार चेटकी।—तुलसी। (२) कौतुकी। अनेक प्रकार के कौतुक करनेवाला। उ०—परम गुरु रतिनाथ हाथे शिर दियो प्रेम उपदेश। चतुर चेटकी मथुरानाथ सों कहियो जाय आदेश।—सूर।

चेटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा करनेवाली स्त्री। दासी।

चेटिकी*–संज्ञा स्त्री० दे० "चेटिका"।

चेटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। लौंडी।

चेटुवा–संज्ञा पु० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। उ०—देव मृदु निनद विनोद मदनाले रव रटत समोद चारु चेटुवा चटक के।—देव।

चेडक–संज्ञा पु० दे० "चेटक"।

चेत्–अव्य० [सं०] (१) यदि। अगर। (२) शायद। कदाचित्।

चेत–संज्ञा पु० [सं० चेतस्] (१) चित्त की वृत्ति। चेतना। संज्ञा। होश। (२) ज्ञान। बोध। उ०—मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिँ विरंचि सम।—तुलसी। (३) सावधानी। चौकसी। (४) खयाल। स्मरण। सुध।

क्रि० प्र०—कराना।—रखना।—पड़ना।—होना।—दिलाना।—धराना।

(५) चित्त।

चेतकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरीतकी। साधारण हड़। (२) सात प्रकार की हड़ों में से एक विशेष प्रकार की हड़ जिस पर तीन धारियाँ होती हैं। यह हड़ दो प्रकार की होती है। एक सफ़ेद और बड़ी जो प्रायः ५,६ अंगुल लंबी होती है; और दूसरी काली और छोटी जो प्रायः एक अंगुल लंबी होती है। भावप्रकाश के अनुसार पहले प्रकार की हड़ के पेड़ के नीचे जाने से भी पशुओं और पक्षियों तक को दस्त हो जाता है। आज कल के बहुत से देशी चिकित्सकों का विश्वास है कि इस प्रकार की हड़ को हाथ में लेने या सूँघने से दस्त हो जाता है, पर इस जाति की हड़ अब कहीं नहीं मिलती। (३) चमेली का पौधा। (४) एक रागिनी का नाम जिसे कुछ लोग श्री राग की प्रिया मानते हैं।

चेतन–संज्ञा पु० [सं०] (१) आत्मा। जीव। (२) मनुष्य। आदमी (३) प्राणी। जीवधारी। (४) परमेश्वर।

चेतनकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

चेतनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] चैतन्य। चेतन का धर्म। सज्ञानता।

चेतनत्व–संज्ञा पु० दे० "चेतनता"।

चेतना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। (२) मनोवृत्ति। (३) ज्ञानात्मक मनोवृत्ति। (४) स्मृति। सुधि। याद। (५) चेतनता। चैतन्य। संज्ञा। होश।

क्रि० अ० (१) संज्ञा में होना। होश में आना। (२) सावधान होना। चौकस होना। उ०—यह तन हरिहर खेत, तरनी हरनी चर गई। अबहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाय ले।—तुलसी।

क्रि० स० [सं० चिन्तन] विचारना। समझना। ध्यान देना। सोचना। जैसे, धर्म चेतना, आगम चेतना, भला चेतना, बुरा चेतना।

चेतनीय–वि० [सं०] जो चेतन करने योग्य हो। जानने योग्य।

चेतनीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक लता।

चेतन्य–वि० दे० "चैतन्य"।

चेतवनि†*–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "चेतावनी।" (२) दे० "चितवन।"

चेतव्य–वि० [सं०] जो चयन (संग्रह) करने योग्य हो। इकट्ठा करने लायक।

चेतावनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेतना] वह बात जो किसी को होशियार करने के लिये कही जाय। सतर्क होने की सूचना।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

चेतिका†*–संज्ञा स्त्री० [सं० चिति] मुरदा जलाने की चिता। सरा। उ०—चेतिका करत्या रची, सब छाड़ि और उपाइ। क्यों जियें जननी बिना, मरि हूँ मिलै जो आइ।—केशव।

चेतुरा–संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो संसार के सब भागों में पाई जाती है। इसके नर और मादा के रंग में भेद होता है। यह पेड़ों पर कटोरे के आकार का घोंसला बनाती है।

चेतोजन्मा–संज्ञा पु० [सं०] कामदेव।

चेतौनी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चेतावनी"।

चेत्य–वि० [सं०] (१) जो जानने योग्य हो। ज्ञातव्य। (२) जो स्तुति करने योग्य हो।

चेदि–संज्ञा पु० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो किसी समय शुक्तिमती नदी के पास था। महाभारत का शिशुपाल इसी देश का राजा था। वर्त्तमान बुंदेलखंड का चँदेरी नगर उसी प्राचीन देश की सीमा के अंतर्गत है। इस देश का नाम त्रैपुर और चैद्य भी है। (२) इस देश का राजा। (३) इस देश का निवासी। (४) कौशिक मुनि के पुत्र का नाम।

चेदिक–संज्ञा पु० दे० "चेदि"।

चेदिराज–संज्ञा पु० [सं०] (१) शिशुपाल नामक राजा जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था। (२) एक वसु का नाम जिन्हें इंद्र से एक विमान मिला था और जो पृथ्वी पर नहीं चलते थे, ऊपर ही ऊपर आकाश में भ्रमण करते थे। इनका दूसरा नाम उपरिचर भी था।

चेन–संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुत सी छोटी छोटी कड़ियों को एक में गूथ कर बनाई हुई शृंखला। सिकड़ी। जँजीर। जैसे, रेलगाड़ी के दो डिब्बों को जोड़ने की चेन, घड़ी में लगाने की चेन।

चेनआ–संज्ञा स्त्री० दे० "चेनवा"।

चेनगा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर तथा पश्चिम भारत की नदियों और बड़े बड़े तालाबों, विशेषतः

का घेरा जिसे पैजनी और पहिये के बीच में इसलिये पहना देते हैं कि जिसमें दोनों एक दूसरे से रगड़ न खायँ।

चेँघी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चेँगी"।

चेँच–संज्ञा पुं० [सं० चंचु] एक साग जो बरसात में बहुत उगता है। इसमें पीले फूल और फलियाँ लगती हैं। इसकी पत्तियाँ लुआबदार होती हैं।

चेँचर†–वि० [चें चें से अनु०] बकवादी। बकी। चें चें करनेवाला।

चेँचुआ†–संज्ञा पुं० [चें चें से अनु०] चातक का बच्चा।

चेँचुला†–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पकवान। इसके बनाने में पहले गूँधे हुए आटे या मैदे के पूरी की तरह पतला बेल कर गोंठते और चौखूटा बना कर कुछ दबा देते हैं और तब घी आदि में तल लेते हैं।

चेँचेँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चिड़ियों के बोलने का शब्द। चीं चीं। (२) व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

चेँटुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० चिड़िया] चिड़िया का बच्चा। उ०—अंड फोरि कियो चेटुवा तुष परयो नीर निहारि। गहि चंगुल चातिक चतुर डारयो बाहिर बारि।—तुलसी।

चेँटियारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] अबलक रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा जल-पक्षी जिसके पैर प्रायः हाथ भर लंबे और चोंच एक बालिश्त की होती है। इसके सिर पर बाल या पर नहीं होते। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और इसीलिये इसका शिकार किया जाता है।

चेँटी†–संज्ञा स्त्री० दे० "चिँउटी"।

चेँडा†–संज्ञा पुं० दे० "चेँगड़ा"।

चेँथी–संज्ञा स्त्री० दे० "चेँगी"।

चेँपेँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) वह धीमा शब्द या कार्य्य जो किसी बड़े के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट करने के लिये किया जाय। चीं चपड़। (२) व्यर्थ की बकवाद। बकबक।

चेँफ†–संज्ञा पुं० [देश०] ऊँख का छिलका।

चेंबर–संज्ञा पुं० [अं०] वह बड़ा कमरा जिसमें किसी विषय की मंत्रणा हो। सभा-गृह।

चेंबर आफ़ कामर्स–संज्ञा पुं० [अं०] किसी नगर के प्रधान व्यापारियों की वह सभा जिसका संगठन उन व्यापारियों के व्यापार-संबंधी स्वत्वों की रक्षा के लिये हुआ हो।

चेअर–संज्ञा स्त्री० [अं०] बैठने की कुरसी।

यौ०—ईज़ी चेअर = आराम कुरसी।

चेअरमेन, चेअरमैन–संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या बैठक का प्रधान। सभापति।

चेउरी†–संज्ञा पुं० [हिं० जेवड़ी = रस्सी] कुम्हार का वह डोरा जिसके द्वारा चाक पर तैयार किया हुआ बरतन शेष मिट्टी से काट कर अलग किया और उतारा जाता है।

चेक–संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह रुक्का या लिखा हुआ आज्ञापत्र जो किसी बंक आदि के नाम लिखा गया हो और जिसके देने पर वहाँ से उस पर लिखी हुई रक़म मिल जाय।

विशेष—साधारणतः चेकों का एक निश्चित स्वरूप हुआ करता है। किसी बंक के नाम लिखने का अधिकार उसी को होता है जिसका रुपया उस बंक में चलते खाते में जमा हो।

मुहा०—चेक काटना = चेक लिख कर (किताब में से काट कर) देना।

यौ०—चेक बुक = बहुत से सादे चेकों को एक साथ सीकर बनाई हुई किताब।

(२) बहुत सी सीधी रेखाओं पर ऐसी आड़ी खींची हुई रेखाएँ जिनसे बहुत से चौकोर खाने बन जायँ। चारखाना।

चेकित–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

चेकितान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) केकय देश के राजा धृष्टकेतु के पुत्र का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में पांडवों की सहायता की थी।

वि० बहुत बड़ा ज्ञानी।

चेचक–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शीतला या माता नामक रोग।

चेचकरू–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसके मुँह पर शीतला के दाग़ हों।

चेजा–संज्ञा पुं० [हिं० छेद ?] सूराख़। छेद। छिद्र। उ०—आँखड़ियाँ रतनालिया चेजा करे पताल। मैं तोहि बूझौं माछली तूँ क्यों बंधी जाल।—कबीर।

चेट–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चेटी वा चेटिका] (१) दास। सेवक। नौकर। (२) पति। खाविंद। (३) नायक और नायिका को मिलानेवाला प्रवीण पुरुष। भँडुवा (४) एक प्रकार की मछली। (५) भाँड़।

चेटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवक। दास। नौकर। (२) चटक मटक। (३) दूत। (४) जल्दी। फुरती। (५) चाट। चसका। मज़ा।

क्रि० प्र०—लगना।

(६) जादू या इंद्रजाल विद्या। नजरबंद का तमाशा। (७) भाँटों का तमाशा। कौतुक। उ०—(क) कतहूँ नाद शब्द हो भला। कतहूँ नाटक चेटक कला।—जायसी। (ख) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कुकोटिक चेटक कौटिक ठाट ठट्यो।—तुलसी।

चेटकनी*–संज्ञा स्त्री० [सं० चेटक] "चेटक" का स्त्री०।

चेटका–संज्ञा स्त्री० [सं० चिता] (१) मुरदा जलाने की चिता। (२) श्मशान। मरघट। उ०—जरे जून नारी चढ़ी चित्रसारी, मनो चेटका में सती सत्यधारी।—केशव।

चेटकी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रजाली। जादूगर। उ०—किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाट चाकर चपल नट चोर

क्रि० प्र०—करना।—बनना।—होना।—बनाना।

मुहा०—चेला मूँड़ना = चेला बनाना। शिष्य बनाना।

विशेष—संन्यासियों में दीक्षा के समय दीक्षित का सिर मूँड़ा जाता है, इसी से यह मुहावरा बना।

(२) वह जिसने शिक्षा ली हो। वह जिसने कोई विषय सीखा हो। शागिर्द। विद्यार्थी। छात्र।

विशेष—दीक्षा या शिक्षा देनेवाले को गुरु और दीक्षा या शिक्षा लेनेवाले को उस (गुरु) का चेला कहते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का साँप जो बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। (२) एक प्रकार की छोटी मछली।

चेलान, चेलाल—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज की लता।

चेलाशक—संज्ञा पुं० दे० "चलाशक"।

चेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिउली नाम का रेशमी कपड़ा।

चेलिकाई—संज्ञा स्त्री० दे० "चेलहाई" या "चेलकाई"।

चेलिन, चेली—संज्ञा स्त्री० चेला का स्त्री०।

चेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध भिक्षुक।

चेल्हवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल (मछली)] एक तरह की छोटी मछली जो चमकीली और पतली होती है।

चेवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण और पश्चिम भारत में होता है। इसकी चटाइयाँ और टोकरियाँ बनाई जाती हैं। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

चेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

चेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चेष्टा करे। चेष्टा करनेवाला। (२) एक प्रकार का रतिबंध।

चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर के अंगों की वह गति या अवस्था जिससे मन का भाव या विचार प्रकट हो। वह कायिक व्यापार जो आंतरिक विचार या भाव का द्योतक हो। (२) नायिका या नायक का वह प्रयत्न या उपाय जो नायक या नायिका के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिये हो (३) उद्योग। प्रयत्न। कोशिश। (४) कार्य्य। काम। (५) श्रम। परिश्रम। (६) इच्छा। कामना। ख्वाहिश।

चेष्टानाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय। सृष्टि का अंत।

चेष्टाबल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ग्रहों का विशेष गति या स्थिति के अनुसार अधिक बलवान् हो जाना। जैसे उत्तरायण में सूर्य्य या वक्रगामी मंगल अथवा चंद्रमा के साथ संयुक्त कोई ग्रह। इससे ग्रह का शुभ या अशुभ फल बढ़ जाता है।

चेस—संज्ञा पुं० [अं०] (१) एक प्रकार का लोहे का चौकठा, जिस के बीच में कंपोज़ किए हुए टाइप रख कर प्रेस पर छापने के लिये कसे जाते हैं। जब टाइप इसमें रख कर कस दिए जाते हैं तब वे फिर कहीं इधर उधर खसक नहीं सकते। (२) शतरंज का खेल।

यौ०—चेस-बोर्ड = शतरंज की बिसात।

चेहरई—वि० [हिं० चेहरा] हलका गुलाबी (रंग)।

चेहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) शरीर का वह ऊपरी गोल और अगला भाग जिसमें मुँह, आँख, माथा, नाक आदि सम्मिलित हैं। मुखड़ा। बदन।

यौ०—चेहरा मोहरा = सूरत शकल। आकृति। चेहरा शाही = वह रुपया जिस पर किसी बादशाह का चेहरा बना हो, तात्पर्य प्रचलित रुपया।

मुहा०—चेहरा उतरना = लज्जा, शोक, चिंता या रोग आदि के कारण चेहरे का तेज जाता रहना। चेहरा तमतमाना = गरमी या क्रोध आदि के कारण चेहरे का लाल हो जाना। चेहरा बिगड़ना = मार खाने के कारण चेहरे की रंगत फीकी पड़ जाना। चेहरा बिगाड़ना = इतना मारना कि सूरत पहचानी न जाय। बहुत मारना। चेहरा होना = फौज में नाम लिखा जाना।

(२) किसी चीज़ का अगला भाग। सामने का रुख़। आगा। (३) कागज, मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ किसी देवता, दानव या पशु आदि की आकृति का वह साँचा जो लीला या स्वाँग आदि में स्वरूप बनने के लिये चेहरे के ऊपर पहना या बाँधा जाता है। प्रायः बालक भी मनोविनोद और खेल के लिये ऐसा चेहरा लगाया करते हैं।

क्रि० प्र०—उतारना।—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—चेहरा उठाना = नियम-पूर्वक पूजन आदि के उपरांत किसी देवी या देवता का चेहरा लगाना।

विशेष—हिंदुओं का नियम है कि जिस दिन नृसिंह, हनुमान या काली आदि देवी देवताओं का चेहरा उठाना (लगाना) होता है उस दिन वे दिन भर उस देवी या देवता के नाम से व्रत या उपवास करते हैं और तब संध्या समय विधि-पूर्वक उस देवी या देवता का पूजन करने के उपरांत चेहरा उठाते हैं।

चेहलुम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह रसम जो मुसलमानों में मुहर्रम के चालीसवें दिन होती है।

चैंटी—संज्ञा स्त्री० दे० "चिउँटी"।

चैंबर—संज्ञा पुं० दे० "चँवर"।

चैंसलर—संज्ञा पुं० दे० "चँसेलर"।

चैंसेलर—संज्ञा पुं० [अं०] यूनीवर्सिटी का प्रधान। विश्वविद्यालय का मुखिया।

विशेष—युनिवर्सिटी में चैंसेलर का वही काम है जो प्रायः सभा समितियों में सभापति का हुआ करता है। भारत में किसी प्रांत की युनिवर्सिटी का चैंसेलर प्रायः उस प्रांत का प्रधान अधिकारी हुआ करता है। चैंसेलर के साथ एक सहायक या वाइस-चैंसेलर भी होता है। चैंसेलर के अधिकांश कार्य्य प्रायः वाइस-चैंसेलर को ही करने पड़ते हैं।

चैक—संज्ञा पुं० [सं० चय] समूह। ढेर। उ०—उठ्यो चट चौंकि

ऐसी नदियों और तालावों में जिनमें घास अधिक हो, पाई जाती है। यह प्रायः एक वालिश्त लंबी होती है और इसका सिर गिरई से कुछ बड़ा होता है। इसे प्रायः नीच जाति के और गरीब लोग खाते हैं। इसे चेंगा या चेनआ भी कहते हैं।

चेनवाँ†–संज्ञा पुं० दे० "चेना"।

चेना–संज्ञा पुं० [सं० चणक] कंगनी या साँवाँ की जाति का एक अन्न जो चैत, वैसाख में बोया और असाढ़ में काटा जाता है। इसके दाने छोटे, गोल और वहुत सुंदर होते हैं। इसे पानी की बहुत आवश्यकता होती है, यहाँ तक कि काटने से तीन चार दिन पहले तक इसमें पानी दिया जाता है। इसीलिये खेतिहरों में एक मसल है—"वारह पानी चेन, नहीं तो लेन का देन।" कहते हैं कि यह अन्न मिस्र या अरब से इस देश में आया है। यह हिमालय में १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह पानी या दूध में चावल की तरह पका कर खाया जाता है और बहुत पौष्टिक समझा जाता है। शिमले के आस पास के लोग इसकी रोटियाँ भी बना कर खाते हैं। पंजाब में इसकी खेती प्रायः चारे के लिये ही होती है। वैद्यक में इसे शीतल, कसैला, शक्तिवर्धक और भारी माना है।

संज्ञा पुं० दे० चीनी कपूर।

चेप–संज्ञा पुं० [चिपचिप से अनु०] (१) कोई गाढ़ा चिपचिपा या लसदार रस। जैसे, आम का चेप, शीतला का चेप। (२) लासा जो चिड़ियों को फँसाने के लिये उन के परों में लगाया जाता है। उ०—वनतन कौं निकसत लसत, हँसत हँसत उत आय। दृगखंजन गहि लै गयो, चितवनि चेप लगाय।—विहारी।

संज्ञा पुं० चाव। उत्साह।

चेपदार–वि० हिं० [चेप + फ़ा० दार] जिसमें चेप या लस हो। चिपचिपा।

चेपना†–क्रि० स० [हिं० चेप] चिपकाना। सटाना।

चेपांग–संज्ञा पुं० [देश०] नैपाल में रहनेवाली एक पहाड़ी जाति।

चेवुला–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा सिझाने और रंगों में काम आती है। यह ऊँचाई में ८० वा १०० फुट तक होता है और समस्त भारत में पाया जाता है।

चेय–वि० [सं०] जो चयन करने योग्य हो। जो संग्रह करने योग्य हो।

संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] वह अग्नि जिसका विधान-पूर्वक संस्कार हुआ हो।

चेयर–संज्ञा स्त्री० दे० "चेअर"।

चेयरमैन–संज्ञा पुं० दे० "चेअरमैन"।

चेर‡*–संज्ञा पुं० [हिं० चेरा] दास। सेवक। गुलाम।

चेरना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छेनी जिससे नक्काशी करनेवाले सीधी लकीर बनाते हैं।

चेरा†*–संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेड़अ, चेड़ा] [स्त्री० चेरी] (१) नौकर। दास। सेवक। गुलाम। (२) चेला। शिष्य। शागिर्द। विद्यार्थी।

संज्ञा पुं० [देश०] मोटे ऊन का बना हुआ गलीचा।

चेराई†*–संज्ञा स्त्री० [हिं०] दासत्व। सेवा। नौकरी। गुलामी। उ०—ऐसे करि मोकौं तुम पायो मनो इनकी मैं करौं चेराई। सूरश्याम वे दिन विसराये जब बाँधे तुम ऊखल लाई।—सूर।

चेरायता†–संज्ञा पु० दे० "चिरायता"।

चेरि, चेरी†*–संज्ञा स्त्री० "चेरा" का स्त्री०।

चेरु–वि० [सं०] संग्रह करनेवाला। जिसे संग्रह करने का अभ्यास हो।

चेरुआ†–संज्ञा पुं० [देश०] एक खाद्य पदार्थ जो सतुआ सान कर पिंडारा की तरह बना कर अदहन में पकाने से तैयार होता है।

चेरुई†–संज्ञा स्त्री० [देश०] घड़े के आकार का पर उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का मिट्टी का बरतन।

चेरू–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की जंगली जाति जिसकी बहुत सी रस्में आदि क्षत्रियों से मिलती जुलती होती हैं। पाँच छः सौ वर्ष पहले भारत के अनेक स्थानों में इस जाति का बहुत ज़ोर था, और अनेक प्रदेशों में इसका राज्य था। कहते हैं, यह नाग जाति के अंतर्गत हैं। बिहार के अनेक स्थानों में इस जाति के लोगों की बनवाई हुई बहुत सी पुरानी इमारतें हैं। आज कल इस जाति के लोग मिर-ज़ापुर ज़िले तथा दक्षिण भारत में पाए जाते हैं।

चेल–संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। कपड़ा।

चेलक–संज्ञा पु० [सं०] वैदिक काल के एक मुनि का नाम।

चेलकाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं०] चेलहाई। चेलों का समूह। शिष्य वर्ग। उ०—रैनि दिवस मैं तहवाँ नारि पुरुष समनाई हो। ना मैं वालक ना मैं बूढ़ो ना मोरे चेलिकाई हो।—कवीर।

चेलगंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जो किसी समय गोकर्ण-क्षेत्र (वर्त्तमान मालाबार) में बहती थी, और जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

चेलवा†–संज्ञा स्त्री० दे० "चेल्हवा"।

चेलहाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० चेला + हाई (प्रत्य०)] चेलों का समूह। शिष्यवर्ग।

मुहा०—चेलहाई करना = भेंट और पूजा आदि संग्रह करने के लिये चेलों में घूमना।

चेला–संज्ञा पु० [सं० चेटक, प्रा० चेड़अ, चेड़ा] [स्त्री० चेलिन, चेली] (१) वह जिसने दीक्षा ली हो। वह जिसने कोई धार्मिक उपदेश लिया हो। शिष्य।

(५) देवालय। मंदिर। (६) चैत्य। (७) पुराणानुसार चित्रा नक्षत्र के गर्भ से उत्पन्न बुध-ग्रह का एक पुत्र जो पुराणोक्त सातों द्वीपों का स्वामी माना जाता है।

वि० चित्रा नक्षत्र संबंधी। चित्रा नक्षत्र का।

चैत्रक—संज्ञा पु० [सं०] चैत्र मास। चैत।

चैत्रगौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ओड़व जाति की एक रागिनी जो संध्या समय अथवा रात के पहले पहर में गाई जाती है। कोई कोई आचार्य्य इसे श्री राग की पुत्रवधू मानते हैं।

चैत्रमख—संज्ञा पु० [सं०] चैत मास के उत्सव जो प्रायः मदन संबंधी होते हैं।

चैत्ररथ—संज्ञा पु० [सं०] (१) कुबेर के बाग़ का नाम जो चित्ररथ का बनाया हुआ और इलावर्त्त खंड के पूरब में अवस्थित माना जाता है। (२) एक प्राचीन मुनि का नाम जिनका ज़िक्र महाभारत में आया है।

चैत्ररथ्य—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर का बाग़। चैत्ररथ।

चैत्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम हरिवंश में आया है।

चैत्रसखा—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव। मदन।

चैत्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चैत्र शुक्ला त्रयोदशी। (२) चैत्र की पूर्णिमा।

पर्य्या०—मधूत्सवासुवसंत। काममह। वासंती। कदंमी।

चैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रा नक्षत्र-युक्त पूर्णिमा। चैत की पूर्णिमा।

चैदिक—वि० [सं०] चेदि देश-संबंधी। चेदि देश का।

चैद्य—संज्ञा पु० [सं०] शिशुपाल।

चैन—संज्ञा पुं० [सं० शयन] आराम। सुख। आनंद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—पड़ना।—मिलना।—होना।

मुहा०—चैन उड़ाना = चैन करना। आनंद करना। चैन पड़ना = शांति मिलना। सुख मिलना। चैन से कटना = सुख पूर्वक समय बीतना।

संज्ञा पुं० [सं० चैत्रक ?] एक नीच जाति।

चैपला—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पक्षी। उ०—कहत पीपलौ पीपलौ, नितहि चैपला आइ। मीन सूत्र यह अरथ की समझ लेहु चित लाइ।—रसनिधि।

चैयाँ†—संज्ञा स्त्री० [?] बाँह। उ०—चैयाँ चैयाँ गही चैयाँ चैयाँ चैयाँ ऐसे बोरयो।—सूर

चैराही†—वि० दे० "चेहरई" (रंग)।

चैल—संज्ञा पु० [सं०] (१) कपड़ा। वस्त्र। (२) पोशाक पहनने के योग्य बना हुआ कपड़ा।

चैलक—संज्ञा पु० [सं०] शूद्रपिता और क्षत्रिया माता से उत्पन्न एक प्राचीन वर्ण-संकर जाति।

चैला—संज्ञा पु० [हिं० चीरना, छीलना] [स्त्री० अल्प० चैली] कुल्हाड़ी से चीरी हुई लकड़ी का टुकड़ा जो जलाने के काम में आता है।

चैलाशक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो कपड़े में लगनेवाले कीड़ों को खाता है।

चैलिक—संज्ञा पु० [सं०] कपड़े का टुकड़ा।

चैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चैला] (१) लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो छीलने या काटने से निकलता है। (२) जमे हुए ख़ून का टुकड़ा या लच्छा जो गरमी के कारण नाक से निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

चैलेंज—संज्ञा पु० [अं०] किसी प्रकार लड़ने, झगड़ने अथवा मुकाबला या वादविवाद आदि करने के लिये दी हुई ललकार।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मिलना।

चौंक—संज्ञा स्त्री० [?] वह चिह्न जो चुंबन में दाँत लग जाने के कारण गाल पर पड़ जाता है। उ०—चहचही चुभके चुभी हैं चौंक चुंबन की लहलही लटैं लटकी सुलंक पर।—पद्माकर।

चौंकर†—संज्ञा पुं० दे० "चोकर"।

चौंगा—संज्ञा पु० [?] (१) बाँस की वह खोखली नली या पोर जिसका एक सिरा गाँठ के कारण बंद हो और दूसरा सिरा खुला हो। सोनार आदि इसमें प्रायः अपने औज़ार रखते हैं। (२) इस आकार की काग़ज़ आदि की बनी हुई नली जो कोई चीज़ रखने के लिये बनाई जाय।

चौंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोंगा का स्त्री० अल्प०] भाथी में की वह नली जिसके द्वारा हो कर हवा निकलती है।

चौंघना*†—क्रि० स० दे० "चुगना"। उ०—कबिरा टुक टुक चौंघना, पल पल गई बिहाय। जीव जंजालों परि रहा, दिया दमामा आय।—कबीर।

चौंच—संज्ञा स्त्री० [सं० चंचु] (१) पक्षियों के मुँह का अगला भाग जो हड्डी का होता है और जिसके द्वारा वे कोई चीज़ उठाते, तोड़ते और खाते हैं। पक्षियों के लिये यह सम्मिलित हाथ, होंठ और दाँत का काम देती है। ठोंट। तुंड। (२) मुँह। (हास्यरस या व्यंग्य)। जैसे, बहुत हुआ, अब अपनी चोंच बंद करो।

मुहा०—दो दो चोंचें होना = कहा सुनी होना। कुछ लड़ाई झगड़ा होना।

चौंचला†—संज्ञा पु० दे० "चोचला"।

चौंटली—संज्ञा स्त्री० [?] सफ़ेद घुँघची।

चौंडा†—संज्ञा पुं० [सं० चूडा] स्त्रियों के सिर के बाल। झोंटा।

मुहा०—चौंडे पर (कोई काम करना) = सिर पर चढ़ कर या सामने होकर (कोई काम करना)।

चौंड़ा—संज्ञा पु० [सं० चुंडा = छोटा कुआँ] वह छोटा कच्चा

चहुँ ओर चितवन लग्यो चित्त चिंता जगी चैन चै चोरिगो।—रघुराज।

चैक–संज्ञा पुं० दे० "चेक"।

चैकित–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

चैकितान–वि० [सं०] जो चेकितान के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

चैकित्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चैकित ऋषि के गोत्र का हो।

चैत–संज्ञा पुं० [सं० चैत्र] (१) वह चांद्र मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। फागुन के बाद और बैसाख से पहले का महीना। † (२) चैती फसल। रब्बी की फसल।

चैतन्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्स्वरूप आत्मा। चेतन आत्मा। (२) ज्ञान।

विशेष—न्याय में तो ज्ञान और चैतन्य को एक ही माना है और उसे आत्मा का धर्म बतलाया है। पर सांख्य के मत से ज्ञान से चैतन्य भिन्न है। यद्यपि इसमें रूप, रस, गंध आदि विशेष गुण नहीं हैं तथापि संयोग, विभाग और परिमाण आदि गुणों के कारण सांख्य में इसे अलग द्रव्य माना है और ज्ञान को बुद्धि का धर्म बतलाया है।

(३) परमेश्वर (४) प्रकृति। (५) एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव धर्म-प्रचारक जिनका पूरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्य चंद्र था। इनका जन्म नवद्वीप में १४०७ शकाब्द के फागुन की पूर्णिमा को रात में चंद्रग्रहण के समय हुआ था। इनकी माता का नाम शची और पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। कहते हैं कि बाल्यावस्था से ही इन्होंने अनेक प्रकार की विलक्षण लीलाएँ दिखलानी आरंभ कर दी थीं। पहले इनका विवाह हुआ था पर पीछे ये संन्यासी हो गए थे। ये सदा भगवद्-भजन में मग्न रहते थे। पहले इनके शिष्यों और तदुपरांत अनुगामियों की भी संख्या बहुत बढ़ गई थी। अब भी बंगाल में इनके चलाए हुए संप्रदाय के बहुत से लोग हैं जो इन्हें श्रीकृष्णचंद्र का पूर्ण अवतार मानते हैं। ४८ वर्ष की अवस्था में इनका शरीरांत हो गया था। इनके चैतन्य महाप्रभु और निमाई आदि और भी कई नाम हैं।

वि० (१) चेतनायुक्त। सचेत। (२) होशियार। सावधान।

चैतन्यता–संज्ञा स्त्री० दे० "चेतनता"।

चैतन्यभैरवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक भैरवी का नाम।

चैता–संज्ञा पुं० [सं० चित्रित] एक पक्षी जिसका सिर काला, छाती चितकबरी और पीठ काली होती है।

संज्ञा पुं० दे० "चैती"।

चैती–संज्ञा स्त्री० [हिं० चैत+ई (प्रत्य०)] (१) वह फसल जो चैत में काटी जाय। रब्बी। (२) अनुआ नील जो चैत में बोया जाता है। (३) एक प्रकार का चलता गाना जो चैत में गाया जाता है।

वि० चैत संबंधी। चैत का। जैसे, चैती गुलाब।

चैत्त–वि० [सं०] चित्त संबंधी। चित्त का।

संज्ञा पुं० बौद्धों के मत से विज्ञान-स्कंध के अतिरिक्त शेष सब स्कंध।

विशेष—बौद्ध लोग रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पांच स्कंध मानते हैं। दे० "स्कंध" और "पांचो संज्ञाएँ"।

चैत्तक–वि० दे० "चैत्त" (वि०)।

चैत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान। घर। (२) मंदिर। देवालय। (३) वह स्थान जहां यज्ञ हो। यज्ञशाला। (४) वृक्षों का वह समूह जो गांव की सीमा पर रहता है। (५) बुद्ध। (६) बुद्ध की मूर्त्ति। (७) अश्वत्थ का पेड़। (८) बेल का पेड़। (९) बौद्ध संन्यासी या भिक्षुक। (१०) बौद्ध संन्यासियों के रहने का मठ। विहार (११) वह मंदिर जो आदि बुद्ध के उद्देश्य से बना हो। (१२) चिता।

वि० चिता संबंधी। चिता का।

चैत्यक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ। पीपल। (२) वर्त्तमान राजगृह के पास के एक प्राचीन पर्वत का नाम। इस पर्वत पर एक चरण-चिह्न है जिसके दर्शनों के लिये प्रायः जैनी वहां जाते हैं।

चैत्यतरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ। पीपल। (२) गांव का कोई प्रसिद्ध वृक्ष।

चैत्यद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ। पीपल। (२) अशोक का पेड़।

चैत्यपाल–संज्ञा पुं० [सं०] चैत्य का रक्षक। चैत्यक। प्रधान अधिकारी।

चैत्यमुख–संज्ञा पुं० [सं०] कमंडलु।

चैत्ययज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसका वर्णन आश्वलायन गृह्य सूत्र में आया है।

विशेष—प्राचीन काल में इस यज्ञ का संकल्प किसी चीज़ के खो जाने पर और उसका अनुष्ठान उस चीज़ के मिल जाने पर होता था।

चैत्यवंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों या बौद्धों की मूर्त्ति। (२) जैनियों या बौद्धों का मंदिर। (३) चैत्य या देवालय संबंधी धन की रक्षा।

चैत्यविहार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्धों का मठ। (२) जैनियों का मठ।

चैत्यवृक्ष–संज्ञा० पुं० दे० "चैत्यतरु"।

चैत्यस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहां बुद्ध देव की मूर्त्ति स्थापित हो। (२) कोई पवित्र स्थान।

चैत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। चैत। संवत् का प्रथम मास। (२) सात वर्ष पर्वतों में से एक। (३) बौद्ध भिक्षुक। (४) यज्ञभूमि।

मुहा०—चोट खाना = आघात ऊपर लेना। प्रहार सहना।
(२) आघात या प्रहार का प्रभाव। घाव। जख्म। उ०—(क) चोट पर पट्टी बाँध दो। (ख) उसे सिर में बड़ी चोट आई।
यो०—चोट चपेट = घाव जख्म।
क्रि० प्र०—आना।—लगना।—पहुँचना।
मुहा०—चोट उभरना = चोट में फिर से पीड़ा होना। चोट खाए हुए स्थान का फिर से दर्द करना।
(३) किसी को मारने के लिए हथियार आदि चलाने की क्रिया। वार। आक्रमण।
क्रि० प्र०—करना।
मुहा०—चोट खाली जाना = वार का निशाने पर न बैठना। आक्रमण व्यर्थ होना। चोट बचाना = चोट न लगने देना।
(४) किसी हिंसक पशु का आक्रमण। किसी जानवर का काटने या खाने के लिये झपटना। उ०—यह जानवर आदमियों पर बहुत कम चोट करता है।
क्रि० प्र०—करना।
(५) हृदय पर का आघात। मानसिक व्यथा। मर्मभेदी दुःख। शोक। संताप। उ०—इस दुर्घटना से उन्हें बड़ी चोट पहुँची। (६) किसी के अनिष्ट के लिये चली हुई चाल। एक दूसरे को परास्त करने की युक्ति। एक दूसरे की हानि के लिये दाँव पेंच। चकाचकी। उ०—आज कल दोनों में खूब चोटें चल रही हैं।
क्रि० प्र०—चलना।
(७) व्यंग्य-पूर्ण विवाद। आवाज़ा। बौछार। ताना। उ०—इन दोनों कवियों में खूब चोटें चली हैं। (८) विश्वासघात। धोखा। दगा। उ०—वह आदमी ठीक वक्त पर चोट कर जाता है। (९) बार। दफ़ा। मरतबा। उ०—(क) आओ एक चोट हमारी तुम्हारी हो जाय। (ख) कल यह बुलबुल कई चोट लड़ा।
विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है।

चोटइल—वि० दे० "चुटैल"।

चोटहा—वि० [हिं० चोट+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोटही] जिस पर आघात का चिह्न हो। जिस पर चोट का निशान हो।

चोटा—संज्ञा पुं० [हिं० चोआ] राब का वह पसेव जो उसे कपड़े में रख कर दबाने या छानने से निकलता है। इसका व्यवहार प्रायः तंबाकू या देसी शराब आदि में होता है। लपटा। चोआ। माट।

चोटाना—क्रि० अ० [हिं० चोट] चोट खाना। घायल हो जाना।

चोटार—वि० [हिं० चोट+आर (प्रत्य०)] (१) चोट करनेवाला। चोट पहुँचानेवाला। उ०—आयसि कचनेह औरवा सुगना सार। परिगो दाग अधरवा चोप चोटार।—रहीम।
(२) चोट खाया हुआ। चुटैल।

चोटारना*—क्रि० अ० [हिं० चोट] चोट करना। उ०—पहले निहारि नैन चोटनि चोटारि फेरि हाय मोहिं सौंप्यो पास प्यारी पंचसर के।—रसकुसुमाकर।

चोटिया—संज्ञा स्त्री० दे० "चोटी"।

चोटियाना—क्रि० स० [हिं० चोट] चोट लगाना या मारना।
क्रि० स० [हिं० चोटी] (१) चोटी पकड़ना। (२) बल-प्रयोग करना।

चोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ा] (१) सिर के मध्य के वे थोड़े से और कुछ बड़े बाल जिन्हें प्रायः हिंदू नहीं मुड़ाते या कटाते। शिखा। चुंदी।
मुहा०—चोटी दबना = दे० "चोटी हाथ में होना"। चोटी रखना = चोटी के लिये सिर के बीच के बाल बढ़ाना। (किसी की) चोटी (किसी के) हाथ में होना = किसी प्रकार के दबाव में होना। काबू में होना। जैसे, अब वे कहाँ जायँगे, उनकी चोटी तो हमारे हाथ में है।
यो०—चोटीवाला = भूत। प्रेत।
(२) एक में गुँथे हुए स्त्रियों के सिर के बाल।
मुहा०—चोटी करना = सिर के बालों को एक में मिला कर गूथना। दे० "कंघी चोटी करना"।
क्रि० प्र०—गूँधना।—बाँधना।
(३) सूत या ऊन आदि का वह डोरा जिसका व्यवहार स्त्रियों की चोटी गूँधने और अंत में बालों को बाँधने में होता है।
(४) पान के आकार का एक प्रकार का आभूषण जिसे स्त्रियाँ अपने जूड़े में खोंसती या बाँधती हैं। (५) पक्षियों के सिर के वे पर जो आगे की ओर ऊपर उठे रहते हैं। कलगी। (६) शिखर। सब से ऊपर का उठा हुआ भाग। जैसे, पहाड़ की चोटी, मकान की चोटी।
मुहा०—चोटी का = सब से बढ़िया या अच्छा। सर्वोत्तम।

चोटीदार—वि० [हिं० चोटी+ फा० दार (प्रत्य०)] जिसके चोटी हो। चोटीवाला।

चोटी पोटी—वि० स्त्री० [देश०] (१) चिकनी चुपड़ी (बात)। खुशामद से भरी हुई (बात)। (२) झूठी या बनावटी (बात)। इधर उधर की (बात) उ०—तुम जानति राधा है छोटी। चतुराई अँग अंग भरी है पूरन ज्ञान न बुद्धि की मोटी। हम सों सदा दुरावति सो यह बात कहत मुख चोटी पोटी।—सूर।

चोटीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० चोटी+वाला] भूत, प्रेत या पिशाच।

चोट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोट्टी] वह जो चोरी करता हो। चोर।
मुहा०—चोट्टी का या चोट्टीवाला = एक प्रकार की गाली।

कुआँ जो खेत के आस पास सिंचाई के लिये खोद लिया जाता है ।

†संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा] सिर । माथा ।

चौंथ–संज्ञा पुं० [अनु०] गाय भैंस आदि के उतने गोबर का ढेर जितना हगते समय एक बार गिरे ।

मुहा०—चौंथ लगाना = हग कर गुह का ढेर लगाना ।

चोंथना†–क्रि० स० [अनु०] किसी चीज़ में से उसका कुछ अंश बुरी तरह फाड़ना या नोचना । चीथना ।

चोंधर–वि० [हिं० चौंधियाना] (१) जिसकी आंखें बहुत छोटी हों । (२) मूर्ख । गावदी ।

चोंधरा†–वि० दे० "चोंधर" ।

चोंप†–संज्ञा पुं० दे० "चोप" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "चोब" ।

चोआ–संज्ञा पुं० [हिं० चुआना = टपकाना] (१) एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंध-द्रव्यों को एक साथ मिला कर गरमी की सहायता से उनका रस टपकाने से तैयार होता है । इसके तैयार करने की कई रीतियां हैं । (क) चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा और मरसे के फूलों को एक में मिलाने और गरम करके उनमें से रस टपकाते हैं । (ख) केसर, कस्तूरी आदि को मरसे के फूलों के रस में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाते हैं । (ग) देवदार के निर्यास को गरम करके टपकाते हैं । (२) वह कंकड़, पत्थर या इसी प्रकार की और कोई चीज़ जो किसी बाट की कमी को पूरा करने के लिये पलड़े पर रखी जाती है । (३) वह थोड़ी चीज़ जो किसी प्रकार की कमी पूरी करने के लिये उसी जाति की अधिक चीज़ के साथ रखी जाती है । (४) दे० "चोटा" ।

चोई–संज्ञा स्त्री० [?] दाल का वह छिलका जो उसको भिगो और मल कर अलग किया जाता है अथवा जो दाल चुरते समय आप से आप दाने से अलग हो कर ऊपर उतरा आता है ।

चोक–संज्ञा पुं० [सं०] भड़भांड़ या सत्यानासी नामक क्षुप की जड़ जिसका व्यवहार औषध में होता है ।

चोकर–संज्ञा पुं० [हिं० चून = आटा + कराई = छिलका] आटे का वह अंश जो उसे छानने के बाद छलनी में बच जाता है । यह प्रायः पीसे हुए अन्न (गेहूं, जौ आदि) की भूसी या छिलका होता है ।

चोक्ष–वि० [सं०] शुद्ध । पवित्र । (२) दक्ष । होशियार । (३) तीक्ष्ण । तेज़ । (४) जिसकी प्रशंसा की गई हो ।

चोख†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखा] तेज़ी । फुरती । वेग । उ०—एक तें सयाने भए मारी जल आने लै चढ़ाए धाम धाम फेंट बांधि ठाढ़े चोख सों ।—हनुमान ।

वि० दे० "चोखा" ।

चोखना†–क्रि० स० [हिं० चूसना] चूसना या चूस कर पीना ।

चोखरा†–संज्ञा पुं० [सं० चिक्किर] चूहा । मूसा ।

चोखा–वि० [सं० चोक्ष] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल, खोट या मिलावट आदि न हो । जो शुद्ध और उत्तम हो । जैसे, चोखा घी, चोखा माल । (२) जो सच्चा और ईमानदार हो । खरा । जैसे, चोखा असामी । (३) जिसकी धार तेज़ हो । धारदार । (४) सब में चतुर या श्रेष्ठ । जैसे, तुम्हीं चोखे निकले जो अपना सब काम करके छुट्टी पा गए ।

संज्ञा पुं० (१) उबाले या भूने हुए बैंगन, आलू या अरुई आदि को नमक मिर्च आदि के साथ मल कर (और कभी कभी घी या तेल में छौंक कर) तैयार किया हुआ सालन । भरता । भुरता । (२) चावल । (हिं०)

चोखाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखा + ई (प्रत्य०)] "चोखा" भाव का चोखापन ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चोखना] "चोखना" का भाव या काम । चुसाई । चूसने की क्रिया या भाव ।

चोगर–संज्ञा पुं० [फ़ा० चुगर] वह घोड़ा जिसकी आंखें उल्लू की सी हों । ऐसा घोड़ा ऐबी समझा जाता है ।

चोग़ा–संज्ञा पुं० [तु०] पैरों तक लटकता हुआ और बहुत ढीला ढाला एक प्रकार का पहनावा जिसका आगा बंद नहीं होता और जिसे प्रायः बड़े आदमी पहनते हैं । लबादा ।

चोगा–संज्ञा पुं० दे० "चुगा" ।

चोच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाल । वल्कल । (२) चमड़ा । (३) तेजपत्ता । (४) दालचीनी । (५) नारियल । (६) केला ।

चोचलहाई†–वि० स्त्री० [हिं० चोचला + हाई (प्रत्य०)] चोचला करनेवाली, नखरेबाज़ ।

चोचला–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) अंगों की वह गति या चेष्टा जो प्रिय के मनोरंजनार्थ, या किसी को मोहित करने के लिये अथवा हृदय की किसी प्रकार की, विशेषतः जवानी की, उमंग में की जाती है । हाव भाव । (२) नखरा । नाज़ ।

चोज–संज्ञा पुं० [?] (१) वह चमत्कार-पूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनोद हो । दूसरों को हँसानेवाली युक्ति-पूर्ण बात । सुभाषित । (२) हँसी ठट्ठा, विशेषतः व्यंग्यपूर्ण उपहास । उ०—किधि के बल उत्तर दीबे ढर्हें मो सुनें बनें चोज चबाइन के ।—प्रताप ।

चोट–संज्ञा स्त्री० [सं० चुट = काटना] (१) एक वस्तु पर किसी दूसरी वस्तु का वेग के साथ पतन या टक्कर । आघात । प्रहार । मार । जैसे, लाठी की चोट, हथौड़े की चोट । उ०—पत्थर की चोट से यह शीशा फूटा है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—पहुँचाना ।—मारना । लगना ।—लगाना ।—सहना ।

चालाकी होना। मन में चोर बैठना = मन में किसी प्रकार का खटका या संदेह होना।

यौ०—कामचोर। चोर चकार (चोर उचक्का)। मुँहचोर। चोर के घर मोर पड़ना = धूर्त के साथ धूर्तता होना।

(२) घाव आदि में वह दूषित या विकृत अंश जो अनजान में भीतर रह जाता है और जिसके ऊपर का घाव अच्छा हो जाता है। ऐसा दूषित अंश भीतर ही भीतर बढ़ता रहता है और शीघ्र ही उस घाव का मुँह फिर से खोलना पड़ता है। (३) वह छोटी संधि या अवकाश जिसमें से होकर कोई पदार्थ बह या निकल जाय या जिसके कारण इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट हो। जैसे, छत में का चोर। मेंहदी का चोर। मेहँदी का चोर हथेली की संधियों आदि का वह सफ़ेद अंश कहलाता है जिस पर असावधानी से मेहँदी नहीं लगती या दाब पड़ने से मेहँदी के सरक जाने के कारण रंग नहीं चढ़ता। यद्यपि इससे किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता तथापि यह देखने में भद्दा जान पड़ता है। (४) खेल में वह लड़का जिस से दूसरे लड़के दाँव लेते हैं और जिसे औरों की अपेक्षा अधिक श्रम का काम करना पड़ता है। चोर को प्रायः दूसरे खिलाड़ियों को छूना, ढूँढ़ना, या अपनी पीठ पर चढ़ा कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना पड़ता है। चोर जिसे छूता या ढूँढ़ लेता है वही चोर हो जाता है। (५) ताश या गंजीफे आदि का वह पत्ता जिसे खिलाड़ी अपने हाथ में दबाए या छिपाए रहता है और जिसके कारण दूसरे खिलाड़ियों की जीत में बाधा पड़ती है।

यौ०—गुलाम चोर = ताश का एक खेल जिसमें गड्डी में का एक पत्ता गुप्त रूप से निकाल कर छिपा दिया जाता है और शेष पत्ते सब खिलाड़ियों में रंग और टिप्पियों के हिसाब से जोड़ा मिलाने के लिये बाँट दिए जाते हैं। अंत में किसी खिलाड़ी के हाथ में छिपाए हुए पत्ते के जोड़ का पत्ता रह जाता है। जिसके हाथ में वह पत्ता रह जाता है वह भी चोर कहलाता है।

(६) चोरक नाम का गंध-द्रव्य।

वि० जिसके वास्तविक स्वरूप का ऊपर से देखने से पता न चले।

चोर उरद—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + उरद] उरद का वह कड़ा दाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोर कंटक—संज्ञा पुं० [सं०] चोरक नामक गंध-द्रव्य।

चोरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का गठिवन जिसकी गणना गंध-द्रव्य में होती है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, कडुआ और वात, कफ, नाक तथा मुँह के रोग, अजीर्ण, कृमिदोष, रुधिरविकार और मेद आदि का नाशक माना है। (२) एक प्रकार का गंध-द्रव्य जिसका व्यवहार औषधों में भी होता है और जिसे असवरग भी कहते हैं।

चोरकट—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + कट = काटनेवाला] चोर। उचक्का।

चोर खाना—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + फ़ा० खाना] (१) संदूक आदि में का गुप्त खाना। (२) पिंजड़े आदि में का वह छोटा खाना जो बड़े खाने के अंदर हो।

चोर खिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + खिड़की] छोटा चोर दरवाज़ा।

चोर गणेश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक गणेश जिनके विषय में यह विश्वास है कि यदि जप करने के समय हाथ की उँगलियों में संधि रह जाय तो ये उसका फल हरण कर लेते हैं।

चोर गली—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + गली] (१) वह पतली और तंग गली जिसे बहुत कम लोग जानते हों। (२) पायजामे का वह भाग जो दोनों जाँघों के बीच में रहता है।

चोर चकार—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + अनु० चकार] चोर। उचक्का।

चोर छिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] संधि। दरज। दो चीज़ों के बीच का अवकाश।

चोर ज़मीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + ज़मीन] वह ज़मीन जो ऊपर से देखने में तो ठीक जान पड़े पर नीचे से पोली हो और जिस पर पैर रखते ही नीचे धँस जाय।

चोरटा—संज्ञा पुं० दे० "चोट्टा"।

चोर ताला—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + ताला] वह ताला जिसका पता दूर या ऊपर से न लगे।

विशेष—ऐसा ताला प्रायः किवाड़ों के पल्ले में अंदर लगा रहता है।

चोर थन—वि० [हिं० चोर + थन] दुहने के समय अपना पूरा दूध न देनेवाली और थनों में कुछ दूध चुरा रखनेवाली (गौ, भैंस या बकरी आदि)।

चोर दंत—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + दंत] वह दाँत जो बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलता और निकलने के समय बहुत कष्ट देता है।

चोर दरवाज़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + दरवाज़ा] किसी मकान में पीछे की ओर या अलग कोने में बना हुआ कोई ऐसा गुप्त द्वार जिसका ज्ञान बहुत कम लोगों को हो।

चोर द्वार—संज्ञा पुं० दे० "चोर दरवाज़ा"।

चोरपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चोर + पाट = सन] एक प्रकार का जह-रीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा तथा लंका में अधिकता से होता है। अगिया की तरह इसके पत्तों और डंठलों पर भी बहुत जहरीले रोएँ होते हैं जो शरीर में लगने से सूजन पैदा करते हैं। सूजे हुए स्थान पर बड़ी जलन होती और वह कई दिनों तक रहती है। इसमें से बहुत

चोड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय वस्त्र। (२) चोल नामक प्राचीन देश।

चोड़क-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा।

चोड़ा-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी गोरखमुंडी।

चोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के पहनने की साड़ी।

चोतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दालचीनी। (२) छाल। वल्कल।

चोथ-संज्ञा पुं० दे० "चोंथ"।

चोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाबुक। (२) वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर कोई नुकीला और तेज लोहा लगा हो।

चोदक-वि० [सं०] चोदना करनेवाला। प्रेरणा करनेवाला। कोई काम करने के लिये उसकानेवाला।

चोदक्कड़-संज्ञा पुं० [हिं० चोदना] बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करनेवाला। अत्यंत कामी। (बाजारू)

चोदन-संज्ञा पुं० दे० "चोदना" संज्ञा।

चोदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो। विधि-वाक्य। (२) प्रेरणा। (३) योग आदि के संबंध का प्रयत्न।

क्रि० स० स्त्री-प्रसंग करना। संभोग करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

चोदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना + ई (प्रत्य०)] (१) चोदने की क्रिया। संभोग। (२) चोदने का भाव।

चोदास-संज्ञा स्त्री० [हिं० चोदना] स्त्री को पुरुष-प्रसंग की अथवा पुरुष को स्त्री-प्रसंग की प्रबल कामना। कामेच्छा।

क्रि० प्र०—लगना।

चोदासा-वि० पुं० [हिं० चोदास] [स्त्री० चोदासी] जिसे चोदास लगी हो। जिसे संभोग की प्रबल इच्छा हो।

चोदू-संज्ञा पुं० दे० "चोदक्कड़"।

चोद्य-वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो।

संज्ञा पुं० (१) प्रश्न। सवाल। (२) वाद विवाद में पूर्व-पक्ष।

चोप*-संज्ञा पुं० [हिं० चाव] (१) चाह। इच्छा। ख़्वाहिश। (२) चाव। शौक। रुचि उ०—द्वै उर जेब जवाहिर की पुनि चोप सों चूँदरी लै पहिरावत।—सुंदरी सिंदूर। (३) उत्साह। उमंग। उ०—(क) अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप। मनहु मत्त गजगन निरखि सिंह-किसोरहि चोप।—तुलसी। (ख) चीर के चोंच चकोरन की मनो चोप ते चंद चुगावत चारे।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

(४) बढ़ावा। उत्तेजना।

क्रि० प्र०—देना।

संज्ञा पुं० [हिं० चूना = टपकना] कच्चे आम की ढेपनी का वह रस जो उसमें से सींके से तोड़ते समय बहता है। इसका असर तेजाब का सा होता है। शरीर में यह जहां लग जाता है वहां छाला पड़ जाता है।

संज्ञा पुं० दे० "चोब"।

चोपदार-संज्ञा पुं० दे० "चोबदार"।

चोपना॥*-क्रि० अ० [हिं० चोप] किसी वस्तु पर मोहित हो जाना। मुग्ध होना।

चोपी*-वि० [हिं० चोप] (१) इच्छा रखनेवाला। चाह रखनेवाला। (२) उत्साही। जिसके मन में उत्साह हो।

चोब-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शामियाना खड़ा करने का बड़ा खंभा। (२) नगाड़ा या ताशा बजाने की लकड़ी। (३) सोने या चाँदी से मढ़ा हुआ डंडा।

यौ०—चोबदार।

(४) छड़ी। सोंटा। डंडा।

चोबकरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का ज़रदोज़ी का काम।

चोबचीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक काष्ठौषध। यह चीन और जापान में होनेवाली एक लता की जड़ है जिसके पत्ते अश्वगंधा के पत्तों के समान होते हैं। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफ़ेद होता है। यह रक्तशोधक होती है और गरमी तथा गठिया आदि की दवाओं में पड़ती है। वैद्यक में इसे तिक्त,उष्णवीर्य्य, अग्निदीपक, मलमूत्र-शोधक, और शूल, वात, फिरंग, उन्माद तथा अपस्मार आदि रोगों को दूर करनेवाली कहा है।

चोबदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह नौकर जिसके पास चोब या असा रहता है। असा-बरदार।

विशेष—ऐसे नौकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत बड़े रईसों की ड्योढ़ियों पर समाचार आदि ले जाने और ले आने तथा इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं। सवारी या बरात आदि में ये आगे आगे भी चलते हैं।

चोबा-संज्ञा पुं० दे० "चोब (१)"।

चोभाना-क्रि० स० दे० "चुभाना"।

चोभा-संज्ञा पुं० [हिं० चोभना] वह पोटली जिसमें कई दवाएं बँधी होती हैं और जिससे शरीर के किसी पीड़ित अंग विशेषतः आँख को सेंकते हैं। लोथा।

मुहा०—चोभा देना = औषध की पोटली में औषध कर उससे शरीर के किसी पीड़ित अंग को सेंकना।

चोया-संज्ञा पुं० दे० "चोआ"।

चोर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो छिप कर पराई वस्तु का अपहरण करे। स्वामी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में छिप कर कोई चीज़ ले लेनेवाला मनुष्य। चुराने या चोरी करनेवाला। तस्कर।

मुहा०—चोर पड़ना = चोर का आ कर कुछ चुरा ले जाना। चोर पर मोर पड़ना = धूर्त से धूर्त का [illegible]

पहनते हैं। (२) एक रस्म जिसमें नए जनमे हुए बालक को पहले पहल कपड़े पहनाए जाते हैं। यह रस्म प्रायः अन्नप्राशन आदि के समय होती है। (३) वह कपड़ा जो पहले पहल बच्चे को पहनाया जाता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(३) शरीर। बदन। जिस्म। तन। जैसे, कुछ दिनों तक यह दवा खाओ, कंचन सा चोला हो जायगा।

मुहा०—चोला छोड़ना = मरना। प्राण त्यागना। चोला बदलना (१) एक शरीर परित्याग करके दूसरा शरीर धारण करना। (साधुओं की बोली)। (२) नया स्वरूप धारण करना।

चोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों का एक पहनावा जो अँगिया से मिलता जुलता होता है। अँगिया से इसमें भेद यह होता है कि इसमें पीछे की ओर बंद नहीं होता। बल्कि दोनों बगलों में कपड़े का ही कुछ भाग बढ़ा रहता है जिसे खींच कर स्त्रियाँ पेट के ऊपर गाँठ देकर बाँध लेती हैं। (२) चोला नामक एक प्रकार का कुरता। (दे० "चोला"।) (३) डलिया जिसमें पान आदि रखते हैं। (४) अँगरखे आदि का वह ऊपरी अंश जिसमें बंद लगे रहते हैं।

मुहा०—चोली-दामन का साथ = बहुत अधिक साथ या घनिष्टता। ऐसा साथ जिसके जल्दी छूटने की संभावना न हो।

चोली मार्ग—संज्ञा पु० [सं०] वाममार्ग का एक भेद।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि इस मार्ग के अनुयायी स्त्री-पुरुष एक स्थान पर एकत्र होकर मांस, मद्य और मत्स्य आदि का सेवन करते हैं और तदुपरांत सब उपस्थित स्त्रियों की चोलियाँ एक घड़े में रख दी जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य बारी बारी से उस घड़े में हाथ डालता और एक चोली निकालता है। जिसके हाथ में जिस स्त्री की चोली आ जाती है, वह उसी के साथ संभोग करता है।

चोल्हा†*—संज्ञा पु० दे० "चोला"। उ०—चूहा मालिक भैंस पद्मिनी, मेंढक ताल लगावे। चोला पहिर के गदहा नाचे, ऊँट विसुनपद गावे।—कबीर।

चोवा—संज्ञा पु० दे० "चोआ"।

चोष—संज्ञा पु० [सं०] भावप्रकाश के मत से एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी को बदन में ऐसी जलन मालूम होती है कि मानों उसके आस पास आग जलती है।

चोषक—वि० [सं०] चूसनेवाला।

चोषण—संज्ञा पु० [सं०] चूसने की क्रिया। चूसना।

चोष्य—वि० [सं०] चूसने के योग्य। जो चूसा जा सके। चूष्य।

चोसा—संज्ञा पु० [देश०] लकड़ी रेतने की एक प्रकार की रेती जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती है।

चौस्क—संज्ञा पु० [सं०] (१) उत्तम जाति का घोड़ा। (२) सिंदुवार नाम का पेड़।

चोहान—दे० "चौहान"।

चौंआलिस†—वि० दे० "चौवालिस"।

चौंक—संज्ञा स्त्री० [सं० चमत्कृत, प्रा० चमंकि, चवंकि] वह चंचलता जो भय, आश्चर्य्य और पीड़ा के सहसा उपस्थित होने पर हो जाती है। एकाएक डर जाने या आश्चर्य्य में पड़ जाने के कारण शरीर के झटके के साथ हिल उठना और चित्त का उचट जाना। झिझक। भड़क।

क्रि० प्र०—उठना।—पड़ना।—जाना।

चौंकना—क्रि० अ० [हिं० चौंक + ना (प्रत्य०)] (१) भय वा पीड़ा के सहसा उपस्थित हो जाने से चंचल हो उठना। एकाएक डर जाने वा पीड़ा आदि अनुभव करने पर झट से काँप वा हिल उठना। झिझकना। उ०—(क) बंदूक छूटते ही वह चौंक उठा। (ख) वह बच्चा न जाने क्यों सोने में चौंक चौंक उठता है। (ग) सुई चुभाते ही वह चौंक कर उठ पड़ा।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

(२) चौकन्ना होना। खबरदार होना। सतर्क होना। उ०—वे तो रुपया दिए देते थे, पर उसकी पिछली बातों से चौंक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) चकित होना। भौंचक्का होना। हैरान होना। विस्मित होना। उ०—उसके मरने का हाल सुन कर वे चौंक कर कहने लगे, "हैं! *अभी तो मैंने उसको कल देखा था*"।

क्रि० प्र०—उठना।—पड़ना।

(४) भड़कना। किसी कार्य्य में प्रवृत्त होने से डरना। भय वा आशंका से हिचकना। उ०—चौंकते क्यों हो इसे हाथ में लेते क्यों नहीं।

चौंकाना—क्रि० स० [हिं० चौंकना का प्रे०] (१) एक बारगी भय उपन्न करके चंचल कर देना। जी धड़का देना। भड़काना। उ०—उसने बाजा बजा कर घोड़े को चौंका दिया। (२) चौकन्ना करना। खबरदार करना। सतर्क करना। किसी बात का खटका पैदा कर देना। भड़काना। उ०—तुम यों ही हमारे गाहकों को चौंका दिया करते हो। (३) चकित करना। विस्मित करना। आश्चर्य्य में डालना।

चौंचा—संज्ञा पु० [हिं० चौ + फ़ा० चह] *सिंचाई के लिये पानी इकट्ठा* करने का वह गड्ढा जहाँ नीचे से पानी चढ़ा कर लाया जाता है।

चौंटली—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ला वा श्वेत चूड़ा] सफ़ेद घुँघची। श्वेत चिरमिटी।

चौंडोल†—संज्ञा पु० दे० "चंडोल"।

चौंढा†—संज्ञा पु० [सं० चुंडा] वह स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले

बढ़िया रेशा निकल सकता है, पर इसी दोष के कारण कोई इसे छूता नहीं और इसी लिये इसका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता। इसे सूरत भी कहते हैं।

चोर पहरा–संज्ञा पुं० [हिं० चोर = गुप्त + पहरा] (१) वह पहरा जो शत्रु के जासूसों से सेना की रक्षा के लिये गुप्त रूप से बैठाया जाता है। (२) किसी प्रकार का गुप्त पहरा।

चोरपुष्प–संज्ञा पुं० दे० "चोरपुष्पी"।

चोरपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० दे० "चोरपुष्पी"।

चोरपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसका डंठल कुछ लाली लिए होता है। इसके पत्ते लंबे और रोएँदार होते हैं। इसमें आसमानी रंग का फूल लगता है जो नीचे की ओर लटका रहता है। वैद्यक में इसे नेत्रों के लिये हितकारी और गूढ़ गर्भ को आकर्षण करनेवाला माना है। इसे अंधाहुली या शंखाहुली भी कहते हैं।

पर्य्या०—शंखिनी। केशिनी। अधःपुष्पी। अमर-पुष्पी। राज्ञी।

चोर पेट–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + पेट] (१) वह पेट जिसमें के गर्भ का जल्दी पता न लगे। (२) किसी चीज़ के मध्य में वह गुप्त स्थान जिसमें रक्खी हुई कोई चीज़ लोगों पर प्रकट न हो। (३) वह चीज़ जिसके मध्य में कोई ऐसा गुप्त स्थान हो।

चोर बदन–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + फ़ा० बदन] वह मनुष्य जिसकी मोटाई प्रकट न हो। वह मनुष्य जो वास्तव में बलवान् हो पर देखने में दुबला जान पड़े।

चोर बालू–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + बालू] वह बालू या रेत जिसके नीचे दलदल हो।

चोर महल–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + महल] वह महल या बड़ा मकान जहाँ राजा और रईस अपनी अविवाहिता स्त्री या प्रेमिका रखते हैं।

विशेष—कभी कभी लोग "चोर महल" से अविवाहिता स्त्री या गुप्त प्रेमिका का भी अर्थ लेते हैं।

चोरमिहीचनी†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + मीचना = बंद करना] आँखमिचौली नाम का खेल।

चोर मूँग–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + मूँग] मूँग का वह कड़ा दाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोर रस्ता–संज्ञा पुं० दे० "चोर गली"।

चोर सीढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर + सीढ़ी] गुप्त सीढ़ी। वह सीढ़ी जिसका पता जल्दी न लगे।

चोरस्नायु–संज्ञा पुं० [सं०] कौवाठोंठी।

चोरहटिया†–संज्ञा पुं० [हिं० चोर + हटिया] वह दूकानदार जो चोरों से माल खरीदता हो।

चोरहुली–संज्ञा स्त्री० दे० "चोरपुष्पी"।

चोरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरपुष्पी।

चोरा चोरी*†–क्रि० वि० [हिं० चोर + चोरी] छिपे छिपे। चुपके चुपके।

चोराख्य–संज्ञा पुं० दे० "चोरपुष्पी"।

चोराना†–क्रि० स० दे० "चुराना"।

चोरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरी। चुराने का काम।

चोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चोर] (१) छिप कर किसी दूसरे की वस्तु के लेने का काम। चुराने की क्रिया। (२) चुराने का भाव।

यौ०—चोरी यारी या चोरी छिनाला = दूषित और निंदित कर्म।

मुहा०—चोरी चोरी = छिपा कर। गुप्त रूप से। चोरी लगना = चोरी के दोष का आरोपण होना। चोरी लगाना = चोरी लगने का दोष आरोपित करना। चोरी का अभियोग लगाना।

चोरौठा†–संज्ञा पुं० दे० "चौरेठा"।

चोरीला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चारा जिसके दाने कभी कभी गरीब लोग भी अनाज की तरह खाते हैं। पशुओं को यह चारा बीज पड़ने से पहले खिलाया जाता है।

चोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जिसका विस्तार मदरास प्रांत के वर्तमान कोयंबतूर, त्रिचनापली और तंजौर आदि से मैसूर के आधे दक्षिणी भाग तक था। रामायण और महाभारत आदि में इस देश का ज़िक्र आया है। (२) उक्त देश का निवासी। (३) स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की अँगिया। चोली। (४) कुरते के ढंग का एक प्रकार का बहुत लंबा पहनावा जिसे चोला कहते हैं। (५) मजीठ। (६) छाल। वल्कल। (७) कवच। ज़िरह-बकतर।

चोलक–संज्ञा पुं० दे० "चोल"।

चोलकी–संज्ञा पुं० [सं० चोलकिन्] (१) बाँस का कल्ला। (२) नारंगी का पेड़। (३) हाथ की कलाई। (४) करील का पेड़।

चोलखंड–संज्ञा पुं० [सं० चोल + खंड] कपड़े का वह टुकड़ा जो ऐसे हिसाब से बुना जाता है कि उसमें से एक चोली बन कर तैयार हो। इसके गले और बाँहवाले अंशों पर प्रायः कलाबत्तू या ज़रदोज़ी आदि की बेलें बनी होती हैं।

चोलन–संज्ञा पुं० दे० "चोलकी"।

चोलना†–संज्ञा पुं० दे० "चोला"। उ०—भला बना संजोग प्रेम का चोलना। तन मन अर्पों सीस साहेब हँसि बोलना।—कबीर।

चोलरंग–संज्ञा पुं० [हिं० चोल = मजीठ + रंग] मजीठ का रंग जो पक्का और लाल होता है।

चोलसुपारी–संज्ञा स्त्री० [सं० चोल + हिं० सुपारी] चिकनी सुपारी जो प्रायः चोल देश में अधिकता से होती है।

चोला–संज्ञा पुं० [सं० चोल] (१) एक प्रकार का बहुत लंबा और ढीला ढाला कुरता जो प्रायः साधु फकीर और मुल्ला आदि

ऊपर किसी प्रकार की छाजन न हो। सहन। (३) चौखूँटा चबूतरा। बड़ी वेदी। (४) मंगल अवसरों पर आँगन में या और किसी समतल भूमि पर आटे, अबीर आदि की रेखाओं से बना हुआ चौखूँटा क्षेत्र जिसमें कई प्रकार के खाने और चित्र बने रहते हैं। इसी क्षेत्र के ऊपर देवताओं का पूजन आदि होता है। उ०—(क) कदली खंभ, चौक मोतिन के, बाँधे बंदनवार।—सूर। (ख) मंगलचार भए घर घर में मोतिन चौक पुराए।—सूर।

क्रि० प्र०—पूरना।

(५) नगर के बीच वह लंबा चौड़ा खुला स्थान जहाँ बड़ी बड़ी दूकानें आदि हों। शहर का बड़ा बाज़ार। (६) नगर के बीच वह स्थान जहाँ से चारों ओर रास्ते गए हों। चौराहा। चौमुहानी। (७) चौसर खेलने का कपड़ा। बिसात। उ०—रासि सत्रह पुनि अठारह चार पाँचो मारि। डारि दे तू तीन काने चतुर चौक निहारि।—सूर। (८) सामने के चार दाँतों की पंक्ति। उ०—दसन चौक बैठे जनु हीरा। औ बिच बिच रँग स्याम गँभीरा।—जायसी। † (९) सीमंत कर्म। अठवाँसा। सोहै।

चौकगोभी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की गोभी।

चौकठ—संज्ञा पुं० दे० "चौखट"।

चौकठा—संज्ञा पुं० दे० "चौखटा"।

चौकड़—वि० [हिं० चौ + सं० कल्य = स्वस्थ, सज्ज] दुरुस्त। बढ़िया। अच्छा। जैसे, चौकड़ माल।

चौकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + कड़ा] (१) कान में पहनने की बाली जिसमें दो दो मोती हों। (२) फ़सल की एक बँटाई जिसमें से ज़मींदार को चौथाई मिलता है।

चौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + सं० कला = अंग] (१) हरिण की वह दौड़ जिसमें वह चारों पैर एक साथ फेंकता हुआ जाता है। चौफाल कुदान। फलाँग। कुलाँच। उड़ान। छलाँग।

क्रि० प्र०—भरना।

मुहा०—चौकड़ी भूल जाना = एक भी चाल न सूझना। बुद्धि का काम न करना। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होना। सिटपिटा जाना। घबरा जाना। भौचक्का रह जाना।

(२) चार आदमियों का गुट्ट। मंडली।

यौ०—चंडाल चौकड़ी = उपद्रवी मनुष्यों की मंडली।

(३) एक प्रकार का गहना। (४) चार युगों का समूह। चतुर्युगी। (५) पलथी।

क्रि० प्र०—मारना।

(६) चारपाई की वह बुनावट जिसमें चार चार सुतलियाँ इकट्ठी करके बुनी गई हों।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + घोड़ी] वह गाड़ी जिसमें चार घोड़े जुतें। चार घोड़ों की गाड़ी।

चौकनिकास—संज्ञा पुं० [हिं० चौक + निकास] वह कर या महसूल जो किसी चौक (बाज़ार) में बैठनेवाले दूकानदारों से लिया जाता है।

चौकन्ना—वि० [हिं० चौ = चार + कान] (१) सावधान। होशियार। चौकस। सजग। (२) चौंका हुआ। आशंकित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चौकनी*—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकड़ी"।

चौकल—संज्ञा पुं० [सं०] चार मात्राओं का समूह। इसके पाँच भेद हैं (SS, IIS, ISI, SII, IIII)।

चौकस—वि० [हिं० चौ = चार + कस = कसा हुआ] (१) सावधान। सचेत। चौकन्ना। होशियार। ख़बरदार। (२) ठीक। दुरुस्त। पूरा। जैसे, चौकस माल।

चौकसाई‡—संज्ञा स्त्री० दे० "चौकसी"।

चौकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौकस] सावधानी। होशियारी। निगरानी। निगहबानी। ख़बरदारी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

चौका—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] (१) पत्थर का चौकोर टुकड़ा। चौखूँटी सिल। (२) काठ या पत्थर का पाटा जिस पर रोटी बेलते हैं। चकला। (३) सामने के चार दाँतों की पंक्ति। उ०—नैकु हँसौंहीं बानि तजि लख्यो परत मुख नीठि। चौका चमकनि चौंध में परति चौंधि सी दीठि।—बिहारी। (४) सिर पर का एक गहना। सीसफूल। (५) वह ईंट जिसकी लंबाई चौड़ाई बराबर हो। (६) वह लिपा पुता स्थान जहाँ हिंदू लोग रसोई बनाते वा खाते हैं। (इस स्थान पर बाहरी लोग या बिना नहाए धोए घर के लोग भी नहीं जाने पाते।) (७) मिट्टी या गोबर का लेप जो सफ़ाई के लिये किसी स्थान पर किया जाय। मिट्टी या गोबर की तह जो लिपने या पोतने में भूमि पर चढ़े।

क्रि० प्र०—देना।—फेरना।—लगाना।

यौ०—चौका बरतन।

मुहा०—चौका बरतन करना = बरतन माँजने और रसोई या घर लीपने-पोतने का काम करना। चौका पोतना = दे० "चौका लगाना"। चौका लगाना = (१) लीप पोत कर बराबर करना। (२) सत्यानाश करना। चौपट करना। उ०—कियो तीन तेरह सबै चौका चौका लाय।—हरिश्चंद्र।

(८) एक प्रकार का जंगली बकरा जिसे चार सींग होते हैं। यह प्रायः जलाशय के आसपास ही झाड़ियों में रहता है। इसके बाल पतले और रूखे होते हैं। रंग इसका बादामी होता है। यह दो फुट ऊँचा और ४, ५ फुट लंबा होता है। बचपन ही से यदि यह पाला जाय तो रह सकता है। इसे चौसिंगा भी कहते हैं। (९) एक ही स्थान पर मिला या सटा कर रक्खी हुई एक ही प्रकार की चार वस्तुओं का

कुएँ से मोट निकाल कर गिराते हैं। पानी गिराने की कुएँ की ढाल। छिउलारा। लिलारी।

चौंतरा†–संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा"।

चौंतिस–वि० [सं० चतुस्त्रिंशत्, प्रा० चउत्तिसो, प्रा० चउत्तीसा] जो गिनती में तीस और चार हो।

संज्ञा पुं० तीस और चार की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३४।

चौंतिसवाँ–वि० [हिं० चौंतिस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तेंतिसवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तेंतीस और वस्तुओं के पीछे हो।

चौंतीस–वि० संज्ञा पुं० दे० "चौंतिस"।

चौंध–संज्ञा स्त्री० [सं० चक् = चमकना वा चौ = चारों ओर + अंध] चकाचौंध। तिलमिली। अत्यंत अधिक चमक वा प्रकाश के सामने दृष्टि की अस्थिरता।

चौंधियाना–क्रि० अ० [हिं० चौंध] (१) अत्यंत अधिक चमक वा प्रकाश के सामने दृष्टि का स्थिर न रह सकना। चकाचौंध होना। जैसे, आँख चौंधियाना, किसी मनुष्य का चौंधियाना। (२) दृष्टि मंद होना। आँखों से सुझाई न पड़ना। (तिरस्कार)।

चौंधी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] चकचौंध। तिलमिली। उ०—चितवत मोहिँ लगी चौंधी सी जानौ न कौन कहाँ ते धौं आए।—तुलसी।

चौंबक–वि० [सं०] (१) जिसमें चुंबक शक्ति हो। आकर्षण करनेवाला। (२) जिसमें चुंबक मिला हो।

चौंर–संज्ञा पुं० [सं० चामर] (१) चँवर। सुरागाव की पूछ के बालों का गुच्छा जो एक डाँड़ी में लगा रहता है और पीछे या बगल से राजा महाराजाओं या देवमूर्त्तियों के सिरों पर इसलिये हिलाया जाता है जिसमें मक्खियाँ आदि न बैठने पावें। विशेष दे० "चँवर"।

क्रि० प्र०—करना।—डुलाना।—होना।

मुहा०—चौंर ढलना = सिर पर चँवर हिलाया जाना। चौंर ढालना = सिर पर चौंर हिलाना। चौंर दुरना = दे० "चौंर ढलना"। चौंर दुराना = दे० "चौंर ढालना"।

(२) भड़भाँड़ की जड़। सत्यानाशी की जड़। चोक। (३) पिंगल में यगण के पहले भेद (ऽ) की संज्ञा। जैसे, श्री........। (४) झालर। फुँदना। उ०—(क) तेंतइ चौंर बनाए औ घाले गल झंप। बँधे सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप।—जायसी। (ख) बहु फूल की माल लपेटि कै खंभन धूप सुगंध सों ताहि धुपाइए। तापैं चहूँ दिसि चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइए।—हरिश्चंद्र।

चौंरगाव–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौंर + स० गो] सुरागाय।

चौंरा–संज्ञा पुं० [सं० चंड = गड्ढा] अनाज रखने का गड्ढा। गाड़।

चौंरानाछ–क्रि० सं० [सं० चामर] (१) चँवर डुलाना। चँवर करना। (२) कूँचा फेरना। झाड़ू देना। बुहारना। उ०—चौंरावत सब राजमग चंदनजल छिरकाइ। प्रकट पताका घर घरन बाँधत हिय हरषाइ।—पद्माकर।

चौंरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौंर + ई (प्रत्य०)] (१) काठ की डाँड़ी में लगा हुआ घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जो मक्खियाँ उड़ाने के काम में आता है। घोड़े के सवार इसे प्रायः अपने पास रखते हैं। (२) वह डोरी जिसमें स्त्रियाँ सिर के बाल गूँथ कर बाँधती हैं। चोटी या वेणी बाँधने की डोरी। उ०—चौंरी डोरी विगलित केश। झूमत लटकत मुकुट सुदेश।—सूर। (३) सफ़ेद पूँछवाली गाय।

चौंसठ–वि० [सं० चतुःषष्ठि, प्रा० चउसट्ठि] जो गिनती में साठ और चार हो।

संज्ञा पुं० साठ और चार की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—६४।

चौंसठवाँ–वि०[हिं० चौंसठ + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तिरसठवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तिरसठ और वस्तुओं के पीछे हो।

चौंहा†–संज्ञा पुं० [देश०] गलफड़ा।

चौंहीं†–संज्ञा स्त्री० [देश०] हल की एक लकड़ी जिसे परिहारी भी कहते हैं।

चौ–वि० [सं० चतुः, प्रा० चउ] चार (संख्या)।

यौ०—चौपहल। चौखला। चौमासा। चौघड़ा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः समास ही में होता है।

संज्ञा पुं० मोती तौलने का एक मान। जौहरियों की एक तौल।

चौअन–वि० संज्ञा पुं० दे० "चौवन"।

चौआ–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद] चौपाया। गाय, बैल, भैंस आदि पशु। (विशेष कर गाय बैल के लिये)।

संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार] (१) हाथ की चार उँगलियों का विस्तार। चार अंगुल की माप। (२) ताश का वह पत्ता जिस पर चार बूटियाँ हों।

विशेष—दे० "चौका"।

चौआईछ–संज्ञा स्त्री० दे० "चौवाई"।

चौआना†छ–क्रि० अ० [हिं०] (१) चकपकाना। चकित होना। विस्मित होना। उ०—सोर भए जागे पतिगई। चहुँ दिसि लखत भए चौआई।—रघुराज। (२) चौकन्ना होना। घबरा जाना। उ०—सांच राम जेतनो रह्यो, तेतनो लिख्यो दिवान। पापा कह तू बावरो, अधिक लिख चौआन।—रघुराज।

चौक–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] (१) चौकोर भूमि। चौखूँटी खुली ज़मीन। (२) आँगन। घर के बीच कोठरियों और बरामदों से घिरा हुआ वह चौखूँटा स्थान जिसके

चौगड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + गोड़ = पैर] (१) खरहा। खरगोश। (२) दे० "चौघड़ा"।

चौगड्डा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + गड्ड वा = मेल] (१) वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमा मिली हों। चौहद्दा। चौमिंडा। चौढा। (२) चार चीजों का समूह।

चौगड्डी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + गड्डा] बाँस की फट्टियों का वह ढाँचा जिसमें जानवर फँसाते हैं।

चौगान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक खेल जिसमें लकड़ी के बल्ले से गेंद मारते हैं। यह घोड़े पर चढ़ कर भी खेला जाता है। यह खेल हाकी या पोलो नामक अंगरेज़ी खेलों ही के समान होता है। उ०—(क) ते तव सिर कंदुक इव नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना।—तुलसी। (ख) श्री मोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान। यादव बीर बराइ बटाई इक हलधर इक आरै ओर। निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैश्रवा के पोर। लीले सुरँग, कुमैत स्याम तेहिपर दै सब मन रंग।—सूर। (२) चौगान खेलने की लकड़ी जो आगे की ओर टेढ़ी वा झुकी होती है। उ०—(क) कर कमलनि विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिझए।—तुलसी। (ख) लै चौगान बटा करि आगे प्रभु आए जब बाहर। सूर स्याम पूछत सब ग्वालन खेलैंगे केहि ठाहर।—सूर। (३) चौगान खेलने का मैदान। उ०—अंतःपुर चौगान लौं निकसत कमलमुख होइ। नरनारी धावत सुख छावत पूछत कोउ नहिं कोइ।—रघुराज। (४) नगाड़ा बजाने की लकड़ी।

चौगानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चौगान ?] हुक्के की सीधी नली जिससे धुआँ खींचते हैं। निगाली। सटक।

चौगिर्द-क्रि० वि० [हिं० चौ + फ़ा० गिर्द = तरफ़] चारों ओर। चारों तरफ़।

चौगुन†-वि० दे० "चौगुना"।

चौगुना-वि० [सं० चतुर्गुण, प्रा० चउग्गुण] [स्त्री० चौगुनी] चार बार और उतना ही। चतुर्गुण। चहारचंद।

मुहा०—मन चौगुना होना = उत्साह बढ़ना। चित्त और प्रसन्न होना। उ०—विंध्यावली तिया सी न देखी कहूँ तिया नैन बीध्यो प्रभु पिया देखि कियो मन चौगुनो।—प्रिया।

चौगून*-वि० दे० "चौगुना"।

चौगोड़ा-वि० [हिं० चौ + गोड़ = पैर] (१) चार पैरवाला। (२) खरगोश। खरहा।

चौगोड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + गोड़ = पैर] (१) एक प्रकार की ऊँची चौकी जिसके पायों में चढ़ने के लिये सीढ़ी की तरह डंडे लगे रहते हैं। टिकठी। (यह छत दीवार आदि ऊँचे स्थानों तक पहुँचने, झाड़ने पोंछने, सफ़ेदी वा रंग आदि करने के काम में आती है।) (२) बाँस की तीलियों का बना हुआ एक ढाँचा या फंदा जिसके चारों पल्लों में तेल में पकाया हुआ पीपल का गोंद लगा रहता है। बहेलिए इससे चिड़िया फँसाते हैं।

चौगोशा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + फ़ा० गोशा] चौखूँटी तश्तरी जिस में मेवे, मिठाइयाँ आदि रख कर कहीं भेजते हैं।

चौगोशिया-वि० स्त्री० [फ़ा०] चार कोनेवाली।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जो कपड़े के चार तिकोने टुकड़ों को सी कर बनाई जाती है।

संज्ञा पुं० तुरकी घोड़ा।

चौघड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + दाढ़] दाढ़ का वह चौड़ा और चिपटा दाँत जो आहार कूचने वा चबाने के काम में आता है।

चौघड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + घर = खाना] (१) चाँदी सोने आदि का बना हुआ एक प्रकार का डिब्बा जिसमें चारखाने बने होते हैं।

विशेष—यह कई आकार का बनता है। विशेषतः गोल होता है और खाने फूल की पखुड़ी के आकार के बनाए जाते हैं। इन खानों में इलायची, लौंग, जावित्री, सुपारी इत्यादि भर कर महफ़िलों में रखते हैं।

(२) चार खानों का बरतन जिसमें मसाला आदि रखते हैं। (३) दिवाली के दिनों में बिकनेवाला मिट्टी का एक खिलौना जिसमें आपस में जुड़ी हुई चार छोटी छोटी कुल्हियाँ होती हैं। लड़के इसमें मिठाई आदि रख कर खाते हैं। (४) पत्ते की खोंगी जिसमें चार बीड़े पान हों। उ०—दो चौघड़े इधर दे आओ। (५) बड़ी जाति की गुजराती इलायची।

चौघड़ी†-वि० स्त्री० [हिं० चौ + घेरा] चार तह या परत की।

चौघर†-वि० [देश०] घोड़ों की एक चाल। चौफाल। पोइयाँ। सरपट। उ०—अबलक अबरस लखी सिराजी। चौघर चाल समुँद सब ताजी।—जायसी।

चौघरा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + घर] (१) पीतल की दीवट जिसके दीये में चार बत्तियाँ जलती हैं। (२) दे० "चौघड़ा"।

चौघोड़ी*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + घोड़ा] चौकड़ी गाड़ी। चार घोड़ों की गाड़ी वा रथ। उ०—सौ तुषार तीस गज पावा। दुंदुभि औ चौघोड़ि देवावा।—जायसी।

चौचँद*†-संज्ञा पुं० [हिं० चौथ + चंद वा चवाव + चंड] कलंक-सूचक अपवाद। बदनामी की चर्चा। निंदा। उ०—सखि ! हौं वा रँगीले के रंग रँगी ये चवाइनै चौचँद कीबो करैं।—शृं० सत०।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चौचँद पारना = चवाव करना। बदनामी करना।

चौचंददाई-वि० स्त्री० [हिं० चौचँद + दाई (प्रत्य०)] चवाव

समूह । जैसे, अँगोछे का चौका, चुनरी का चौका, चौकी का चौका, मोतियों का चौका । (१०) ताश का वह पत्ता जिसमें चार बूटियाँ हों । जैसे, ईंट का चौका । (११) एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो फर्श या जाजिम बनाने के काम में आता है । (१२) एक बरतन का नाम ।

चौकिया सोहागा–संज्ञा पुं० [हिं० चौकी + सोहागा] छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ सोहागा जो औषध के लिये विशेष उपयुक्त होता है ।

चौकी–संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्की] (१) काठ या पत्थर का चौकोर आसन जिसमें चार पाए लगे हों । छोटा तख्त । उ०—चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे । —पद्माकर । (२) कुरसी ।

मुहा०—चौकी देना = बैठने के लिए कुरसी देना । कुरसी पर बिठाना ।

(३) मंदिर में मंडप की ओर के खंभों के ऊपर का वह घेरा जिस पर उसका शिखर स्थित रहता है । (४) मंदिर में मंडप के खंभों के बीच का स्थान जिसमें से होकर मंडप में प्रवेश करते हैं । (५) पड़ाव या ठहरने की जगह । टिकान । अड्डा । सराय । उ०—चले चलो, आगे की चौकी पर डेरा डालेंगे ।

मुहा०—चौकी जाना = कसब कमाने जाना । खरची पर जाना ।

(६) वह स्थान जहाँ आस पास की रक्षा के लिये थोड़े से सिपाही आदि रहते हों । जैसे, पुलिस की चौकी । (७) किसी वस्तु की रक्षा के लिये वा किसी व्यक्ति को भागने से रोकने लिये रक्षकों वा सिपाहियों की नियुक्ति । पहरा । खबरदारी । रखवाली । उ०—करिके निसंक तट चट के नरे तू यास चौंके मति चौकी यहाँ पाहरू हमारे की ।—कविंद ।

यौ०—चौकी पहरा ।

मुहा०—चौकी देना = पहरा देना । रखवाली करना । चौकी बिठना = पहरा बिठाना । खबरदारी के लिये सिपाही तैनात करना । चौकी बैठना = पहरा बैठना वा निगरानी के लिये सिपाही तैनात होना । चौकी भरना = (१) पहरा पूरा करना । अपनी बारी के अनुसार पहरा देना । (२) किसी देवी या देवता के दर्शनों को मनत के अनुसार जाना ।

(८) वह भेंट वा पूजा जो किसी देवी, देवता, ब्रह्म, पीर आदि के स्थान पर चढ़ाई जाती है ।

क्रि० प्र०—भरना ।

(९) जादू । टोना । (१०) तेलियों के कोल्हू में लगी हुई एक लकड़ी । (११) गले में पहनने का एक गहना जिसमें चौकोर पटरी होती है । एक प्रकार की जुगनी । पटरी । उ०—(क) चौकी चदलि परी प्यारं हरि ।—हरिदास । (ख) मानो लसी तुलसी हनुमान हिए जग जीते जराय की चौकी । —तुलसी । (१२) रोटी बेलने का छोटा चकला । (१३) भेड़ों और बकरियों का रात के समय किसी खेत में रहना । (खाद के लिये किसान प्रायः भेड़ों को खेत में रखते हैं) ।

चौकीदार–संज्ञा पुं० [हिं०] (१) पहरेवाला । पहरा देनेवाला । सिपाही । गोड़ैत । (२) जो खूटा मस्तूलों की बगल में भाँज की डोरी फँसाने के लिये गड़ा रहता है उसे जुलाहे चौकीदार कहते हैं ।

चौकीदारा–संज्ञा पुं० दे० "चौकीदारी (३)" ।

चौकीदारी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) पहरा देने का काम । रखवाली । खबरदारी । (२) चौकीदार का पद । (३) वह चंदा या कर जो चौकीदार रखने के लिये लिया जाय ।

चौकुरा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + कूरा] फसल की वह बटाई जिसमें से तीन चौथाई असामी और एक चौथाई जिमींदार लेता है ।

चौकोना–वि० दे० "चौकोना" ।

चौकोना–वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण] [स्त्री० चौकोनी] जिसके चार कोने हों । चौखूँटा । चतुष्कोण ।

चौकोर–वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण, चउक्कोड़] (१) चौखूँटा । जिसके चार कोने हों । चतुष्कोण । (२) क्षत्रियों की एक जाति या शाखा ।

चौखंड–संज्ञा पुं० [हिं०] (१) वह घर जिसमें चार खंड हों । चौमंजिला मकान । (२) वह घर जिसमें चार आँगन या चौक हों ।

चौखट–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + काठ] (१) द्वार पर लगी हुई चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें किवाड़ के पल्ले लगे रहते हैं । (२) देहली । डेहरी । दहलीज ।

मुहा०—चौखट लाँघना = घर के भीतर या बाहर आना ।

चौखटा–संज्ञा पुं० [हिं० चौखट] चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें मुँह देखने का या तसवीर का शीशा जड़ा जाता है । आइने तसवीर आदि का फ्रेम ।

चौखना–वि० [हिं० चौखंड] चार खंड का । चौमंजिला (मकान) ।

चौखा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ + ?] वह स्थान जहाँ चार गावों की सीमा मिलती हो ।

चौखानि–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + खानि = उत्पत्ति, प्रकार] अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज आदि चार प्रकार के जीव । उ०—मानुष तें बड़ पापिया, अक्षर गुरुहि न मानि । बार बार बन कूकुही, गर्भ धरे चौखानि ।—कबीर ।

चौखूँट–संज्ञा पुं० [हिं० चौ + खूँट] (१) चारों दिशा । (२) भूमंडल ।

क्रि० वि० चारों ओर ।

चौखूँटा–वि० [हिं० चौ + खूँट] जिसमें चार कोने हों । चौकोना । चतुष्कोण ।

चौथाई—संज्ञा पुं० [हिं० चौथा + ई (प्रत्य०)] चौथा भाग। चार सम भागों में से एक भाग। चतुर्थांश। चहारुम।

चौथि†*—संज्ञा स्त्री० दे० "चौथ"।

चौथिग्राई†—संज्ञा पुं० दे० "चौथाई"।

चौथिया—संज्ञा पुं० [हिं० चौथ] (१) वह ज्वर जो प्रति चौथे दिन आवे।

क्रि० प्र०—आना।

(२) चौथाई का हकदार। चतुर्थांश का अधिकारी।

चौथी—वि० स्त्री० दे० "चौथा"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौथा] (१) विवाह की एक रीति जो विवाह हो जाने पर चौथे दिन होती है। इसमें वर कन्या के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। उ०—(क) सकल चार चौथी कर कीन्हें अंतःपुर बासिन सुख दीन्हें।—रघुराज। (ख) चौथे दिवस रंगपति आए। विधि चौथी कर चार कराए।—रघुराज।

मुहा०—चौथी का जोड़ा = वह जोड़ा या लहँगा जो वर के घर से आता है और जिसे दुलहिन चौथी के दिन पहनती है। चौथी खेलना = चौथी के दिन दूल्हा दुलहिन का एक दूसरे के ऊपर मेवे फल आदि फेंकना। चौथी छूटना = चौथी के दिन वर कन्या के हाथों के कंगन खुलना। चौथी की रीति होना। चौथी छुड़ाना = चौथी की रीति करना।

(२) फसल की बाँट जिसमें जमींदार चौथाई लेता है और असामी तीन चौथाई। चौकुर।

चौथैया†—संज्ञा पुं० [हिं० चौथाई] चौथाई। चतुर्थांश।

संज्ञा स्त्री० छोटी नाव जिसमें बहुत थोड़ा बोझ लद सके।

चौदंता—वि० [सं० चतुर्दंत] [स्त्री० चौदंती] (१) चार दाँतोंवाला। जिसके चार दाँत हों। जो पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो। बचपन और जवानी के बीच का। उभड़ती जवानी का। (इस शब्द का व्यवहार घोड़े के बच्चों और बैलों आदि के लिये होता है।) (२) अल्हड़। उग्र। उद्दंड। (३) स्याम देश के हाथी की एक जाति जिसे चार दाँत होते हैं।

चौदंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौदंता] अल्हड़पन। उद्दंडता। धृष्टता। ढिठाई।

वि० स्त्री० दे० "चौदंता"।

चौदश—संज्ञा स्त्री० दे० "चौदस"।

चौदस—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्दशी, प्रा० चउद्दसि] वह तिथि जो किसी पक्ष में चौदहवें दिन होती है। चतुर्दशी। उ०—फागुन बदि चौदस को शुभ दिन अरु रविवार सुहायो। नक्षत्र उत्तरा आर विचारयो काल कंस को आयो।—सूर।

चौदह—वि० [सं० चतुर्दश, प्रा० चउद्दस, अप० प्रा० चउद्दह] जो गिनती में दस और चार हो। जो दस से चार अधिक हों।

संज्ञा पुं० दस और चार के जोड़ की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—१४।

मुहा०—चौदह विद्या चौदह भुवन, चौदह रत्न = दे० "विद्या" "भुवन" और "रत्न"।

चौदहवाँ—वि० [हिं० चौदह + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान तेरहवें स्थान के उपरांत हो। जिसके पहले तेरह और हों।

चौदाँत†*—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + दाँत] दो हाथियों की लड़ाई। हाथियों की मुठभेड़। उ०—पीलहि पील देखावा भयो दोहूँ चौदाँत। राजा चहै बुर्द भा शाह चहै शह मात।—जायसी।

चौदाँवाँ—वि० [हिं० चौ = चार + दाँव] वह खेल (विशेषतः सोरही या इसी प्रकार का और कोई जूए का खेल) जिसमें चार दाँव हों। वह खेल जिसमें चार दाँव लग सकें।

चौदा—संज्ञा पुं० दे० "चौका"।

चौदानिया—संज्ञा स्त्री० दे० "चौदानी"।

चौदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + दाना + ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की बाली जिसमें चार पत्तियों की सोने की जड़ाऊ टिकड़ी लगी होती है। (२) कान की वह बाली जिसमें मोती के चार दाने लगे हों।

चौदायनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

चौदाँवाँ, चौदाँवा—वि० दे० "चौदाँवाँ"।

चौधराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] (१) चौधरी का काम। (२) चौधरी का पद।

चौधरात—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौधरी] चौधराना।

चौधराना—संज्ञा पुं० [हिं० चौधरी] (१) चौधरी का काम। (२) चौधरी का पद। (३) वह धन जो चौधरी को उसके कामों के बदले मिले।

चौधरी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर = तकिया, मसनद + धर = धारनेवाला] किसी जाति, समाज या मंडली का मुखिया जिसके निर्णय को उस जाति, समाज या मंडली के लोग मानते हैं। प्रधान। उ०—भनै रघुराज कारण्य पण्य चौधरी हैं जग के विकार जेते सर्व सरदार हैं।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति "चतुर्धुरीण" शब्द से बतलाते हैं।

चौना†—संज्ञा पुं० [सं० च्यवन] कुएँ पर का वह ढाल स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले ढेंकुली या चरस आदि से पानी निकाल कर गिराते हैं। चौकर। लिलारी।

चौप—संज्ञा पुं० दे० "चोप"।

चौपई—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पदी] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु लघु होते हैं। जैसे, राम रमापति तुम मम देव। नहिं प्रभु होन तुम्हारी सेव। दीन दयानिधि भेद अभेव। मम दिशि देखो यह यश लेव।

चौपखा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + सं० पक्ष, हिं० पख] परिता। चहार दीवारी।

करनेवाली । बदनामी फैलानेवाली । दूसरों की बुराई करनेवाली । उ०—चौचंदहाई जेरैं ब्रज की जे परायो बनो सब भांति बिगारैं ।—ठाकुर ।

चौज-संज्ञा पुं० दे० "चोज" ।

चौजुगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + सं० युग] चार युगों का काल ।

चौड़-संज्ञा पुं० [सं०] चूड़ाकरण संस्कार ।

वि० [हिं० चौपट] चौपट । सत्यानाश ।

चौड़ा-वि० [हिं० चौ = चार + पाट = चौड़ाई या सं० चिपिट = चिपटा] [स्त्री० चौड़ी] लंबाई की ओर के दोनों किनारों के बीच विस्तृत । लंबाई से भिन्न दिशा की ओर फैला हुआ । चकला । लंबा का उलटा ।

यौ०—चौड़ा चकला ।

संज्ञा पुं० [सं० चुंडा = कुएं के पास का गड्ढा] वह गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं ।

चौड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौड़ा + ई० (प्रत्य०)] लंबाई से भिन्न दिशा की ओर का विस्तार । लंबाई के दोनों किनारों के बीच का फैलाव ।

चौड़ान-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौड़ा] चौड़ाई ।

चौड़ाना†-क्रि० स० [हिं० चौड़ा] चौड़ा करना । फैलाना ।

चौड़ाव†-संज्ञा पुं० दे० "चौड़ान" ।

चौड़ी-वि० स्त्री० दे० "चौड़ा" ।

चौडोल†-संज्ञा पुं० दे० "चंडोल" ।

चौतग्गी-वि० [हिं० चौ + तागा] वह डोरा जिसमें चार तागे लगे हों ।

चौतनियाँ-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + तनी = बंद] (१) चौतनी । उ०—(क) करत सिंगार चार भैया मिलि शोभा बरनि न जाई । चित्र विचित्र सुभग चौतनिया इंद्र धनुष छवि छाई । —सूर । (ख) भाल तिलक मसि बिंदु विराजत सोहति सीस लाल चौतनियाँ ।—तुलसी । (२) अँगिया । चोली । चौबंदी । उ०—नारंगी नीबू उरोजनि जानि दये नख वानर चौतनियाँ में ।—सेवक स्याम ।

चौतनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + तनी = बंद] बच्चों की टोपी जिसमें चार बंद लगे रहते हैं । उ०—(क) पीत चौतनी सिरन सुहाई ।—तुलसी । (ख) रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस । नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ।—तुलसी ।

चौतरका-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + तड़क = तड़का, धरन] एक प्रकार का खेमा या तंबू ।

चौतरा-संज्ञा पुं० दे० "चबूतरा" ।

चौतही-संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + तह] खेस की बिनावट (लहरियेदार) का एक कपड़ा जो इतना लंबा होता है कि चार तह करके बिछाने पर भी एक मनुष्य के लेटने भर का होता है ।

चौतरा-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + तार] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये चार तार होते हैं ।

वि० चार तारोंवाला । जिसमें चार तार हों ।

चौताल-संज्ञा पुं० [हिं० चौ + ताल] (१) मृदंग का एक ताल । इसमें ६ दीर्घ अथवा १२ लघु मात्राएँ होती हैं जिसमें से ४ आघात और २ खाली होते हैं । इसका बोल यह है—धा धा धिनता कत्ता गेदिनता तेटेकता गेदिधिन । (२) एक प्रकार का गीत जो होली में गाया जाता है ।

चौताला-वि० [हिं० चौ + ताल] चार तालवाला । जिसमें चार ताल हों ।

चौताली†-संज्ञा स्त्री० [देश०] कपास की ढेंढी या डोडा जिसमें से रुई निकलती है ।

चौतुका-वि० [हिं० चौ + तुक] जिसमें चार तुक हों ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद जिसके चारों चरणों की तुक मिली हो ।

चौथ-संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्थी, प्रा० चउत्थि, हिं० चउथि] (१) प्रति पक्ष की चौथी तिथि । हर पखवारे का चौथा दिन । चतुर्थी ।

मुहा०—चौथ का चांद = भाद्र शुक्ल चतुर्थी का चंद्रमा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि कोई देख ले तो उसे झूठा कलंक लगता है । भागवत आदि पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने चौथ का चंद्रमा देखा था इसीसे उन्हें मणि की चोरी लगी थी । अब तक हिंदू भादो सुदी चौथ के चंद्रमा का दर्शन बचाते हैं और यदि किसी को झूठ मूठ कलंक लगता है तो कहते हैं कि उसने चौथ का चांद देखा है । उ०—लगैं न कहुँ ब्रज गलिन में आवन जात कलंक । निरखि चौथ को चंद यह सोचत सुमुखि ससंक ।—पद्माकर ।

(२) चतुर्थांश । चौथाई भाग । (३) मरहठों का लगाया हुआ एक प्रकार का कर जिसमें आमदनी या तहसील का चतुर्थांश ले लिया जाता था ।

*† वि० चौथा । उ०—चंपक लता चौथ दिन जान्यो मृगमद नीर लगायो ।—सूर ।

चौथपन*-संज्ञा पुं० [हिं० चौथा + पन] मनुष्य के जीवन की चौथी अवस्था । बुढ़ाई । बुढ़ापा । उ०—होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन । हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ।—तुलसी ।

चौथा-वि० [सं० चतुर्थ, प्रा० चउत्थ] [स्त्री० चौथी] क्रम में चार के स्थान पर पड़नेवाला । तीसरे के उपरांत का । जिसके पहले तीन और हों ।

संज्ञा पुं० मृतक के घर होनेवाली एक रीति जिसमें संबंधी तथा बिरादरी के लोग इकट्ठे होते हैं और दाह करनेवाले को रुपया, पगड़ी आदि देते हैं । यदि मृतक की स्त्री जीवित हो तो उसे धोती चादर आदि दी जाती है । उ०—क्या तुम इनके चौथे में गए थे ?

और खुला हो। (गांवों में ऐसे स्थान प्रायः रहते हैं जहाँ लोग बैठ कर पंचायत, बातचीत आदि करते हैं। (२) बैठक। उ० – सब चौपारहिँ चंदन खँभा। बैठा राजा भट्ट तब सभा।—जायसी। (३) दालान। बरामदा। (४) घर के सामने का छायादार चबूतरा। (५) एक प्रकार की खुली पालकी जिसमें परदे या किवाड़ नहीं होते। चौपहला।

चौपुरा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + पुर = चरस + आ (प्रत्य०)] वह कुआँ जिस पर चारपुर या मोट एक साथ चल सकें। वह कुआँ जिसपर चार चरसे एक साथ चलते हों।

चौपैया–संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पदी] (१) चार चरणोंवाले एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १२ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है। इसके आरंभ में एक द्विकल के उपरांत सब चौकल होने चाहिएँ और प्रत्येक चौकल में सम के उपरांत सम और विषम के उपरांत विषम कल का प्रयोग होना चाहिए और चारों चरणों का अनुप्रास भी मिलना चाहिए। जैसे, भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी, मुनि-मन-हारी अद्भुत रूप निहारी। लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुजचारी। भूषन बनमाला, नयन विशाला, शोभा सिंधु खरारी। † (२) चारपाई। खाट।

चौफला–वि० [हिं० चौ + फल] जिसमें चार फल या धारदार लोहे हों। (चाकू)

चौफेर–क्रि० वि० [हिं० चौ + फेर] चारों ओर। चारों तरफ।

चौफेरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + फेरा] चारों ओर घूमना। परिक्रमा। †क्रि० वि० चारो ओर।

संज्ञा स्त्री० मुगदर का एक हाथ जिसमें मगदर का हाथ कर के मुगदर को पीठ की ओर से सामने छाती के समानांतर लाकर इतना तानते हैं कि वह छाती की बगल में बहुत दूर तक निकल जाता है।

चौबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + बंद] (१) एक प्रकार का छोटा चुस्त अंगा या कुरती जिसमें जामे की तरह एक पल्ला नीचे और एक पल्ला ऊपर होता है और दोनों बगल चार बंद लगते हैं। बगलबंदी। †(२) राजस्व। कर। (३) घोड़े के चारों सुमों की नालबंदी।

चौबंसा–संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। जैसे, नय धरु एका। न भजु अनेका। इसे शशिवंदना, चंद्ररसा और पादाकुलक भी कहते हैं।

चौबगला–संज्ञा पुं० [हिं०] मिरजई, फतुही, कुरती, अंगे इत्यादि में बगल के नीचे और कली के ऊपर का भाग।

वि० चारों ओर का। जो चारों ओर हो।

चौबगली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + फा० बगल] बगलबंदी।

चौबच्चा–संज्ञा पुं० [फा० चह = कूआँ + हिं० बच्चा] (१) कुंड। हौज़। छोटा गड्ढा जिसमें पानी रहता है। (२) वह गड्ढा जिसमें से धन गड़ा हो। उ०—किले के भीतर कई चौबच्चे भरे पड़े हैं।

चौबरदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + बर्द = बैल] चार बैलों की गाड़ी।

चौबरसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + बरस] (१) वह उत्सव या क्रिया आदि जो किसी घटना के चौथे बरस हो। (२) वह श्राद्ध आदि जो किसी के निमित्त उसके मरने के चौथे बरस हो।

चौबरा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + बखरा] फसल की वह बटाई जिसमें से ज़िमींदार चतुर्थांश लेता है।

चौबा–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी] [स्त्री० चौबाइन] (१) ब्राह्मणों की एक जाति या शाखा। (२) मथुरा का पंडा। दे० "चौबे"।

चौबाइन–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौबे] चौबे की स्त्री।

चौबाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + बाई = हवा] (१) चारों ओर से बहनेवाली हवा। (२) अफवाह। किंवदंती। उड़ती खबर। (३) धूमधाम की चर्चा।

चौबाछा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + बाछना = कर या चंदा वसूल करना] एक प्रकार का कर जो दिल्ली के बादशाहों के समय में लगता था। यह कर चार वस्तुओं पर लगता था—पाग (प्रति मनुष्य), ताग (करधनी अर्थात् प्रति बालक), चूरी (अलाव या कोड़ा, अर्थात् प्रति घर), और पूँछी (प्रति चौपाया)।

चौबार–संज्ञा पुं० दे० "चौबारा"।

चौबारा–संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + बार = द्वार] (१) कोठे के ऊपर की वह कोठरी जिसके चारों ओर दरवाज़े हों। बँगला। बालाखाना। (२) खुली हुई बैठक। लोगों के बैठने उठने का एक ऐसा स्थान जो ऊपर से छाया हो पर चारों ओर खुला हो।

क्रि० वि० [हिं० चौ = चार + बार = दफा] चौथी दफ़ा। चौथी बार।

चौबिस–वि० दे० "चौबीस"।

चौबीस–वि० [सं० चतुर्विंशत्, प्रा० चउवीसा] जो गिनती में बीस और चार हो। बीस से चार अधिक।

संज्ञा पुं० बीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२४।

चौबीसवाँ–वि० [हिं० चौबीस] क्रम में जिसका स्थान तेईसवें के आगे हो। जिसके पहले तेईस और हों।

चौबे–संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदी, प्रा० चउव्वेदी, हिं० चउबेआ] [स्त्री० चौबाइन] ब्राह्मणों की एक जाति या शाखा।

विशेष—मथुरा के पंडे सब चौबे कहलाते हैं।

चौपगा†—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + पग] चौपाया । चार पैरोंवाला पशु ।

चौपट—वि० [हिं० चौ = चार + पट = किवाड़ा, वा हिं० चापट] चारों ओर से खुला हुआ । अरक्षित ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

वि० [हिं० चौ = चार + पट = समतल, तात्पर्य चारों तरफ से बराबर] नष्ट भ्रष्ट । विध्वंस । तबाह । बरबाद । सत्यानाश । उ०—जो दिन प्रति अहार कर सोई । विस्व वेगि सब चौपट होई । —तुलसी ।

यौ०—चौपट चरण = जिसके कहीं पहुँचते सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाय । सब्ज़ कदम । चौपटा ।

चौपटहा†—वि० [हिं० चौपट + हा (प्रत्य०)] चौपट करनेवाला । नष्ट करनेवाला । सर्वनाशी । सत्यानाशी ।

चौपटा—वि० [हिं० चौपट] चौपट करनेवाला । नाश करनेवाला । काम बिगाड़नेवाला । सत्यानाशी ।

चौपड़—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पट, प्रा० चउप्पट] (१) चौसर नामक खेल । नर्दबाजी । (२) इस खेल की बिसात और गोटियाँ आदि । (३) पलंग आदि की वह बुनावट जिसमें चौसर के से खाने बने हों ।

चौपत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + परत] कपड़े की तह या घड़ी जो लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

संज्ञा स्त्री० दे० "चौपतिया" ।

संज्ञा पुं० पत्थर का वह टुकड़ा जिसमें एक कील लगी रहती है और जिस पर कुम्हार का चाक रहता है ।

चौपताना†—क्रि० स० [हिं० चौपत] कपड़े आदि की तह लगाना । घड़ी लगाना ।

चौपतिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + पत्ता] (१) एक प्रकार की घास जो गेहूँ के खेत में उत्पन्न होकर फसल को बहुत हानि पहुँचाती है । (२) एक प्रकार का साग । उटंगन । (३) कसीदे आदि में वह बूटी जिसमें चार पत्तियाँ हों ।

चौपथ—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पथ] (१) चौराहा । चौरस्ता । चौमुहानी । (२) चौपत नाम का पत्थर जिस पर चाक रहता है ।

चौपद†—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद] चार पैरोंवाला पशु । चौपाया ।

चौपया†—संज्ञा पुं० दे० "चौपाया" ।

चौपर†—संज्ञा स्त्री० दे० "चौपड़" ।

चौपरतना—क्रि० स० [हिं० चौ = चार + परत + ना (प्रत्य०)] कपड़े आदि की तह लगाना । कपड़े आदि को चारों ओर से कई फेर मोड़ कर परत बैठाना ।

चौपल—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्फलक] चौपत नाम का पत्थर जिसपर कुम्हार का चाक रहता है ।

चौपहरा—वि० [हिं० चौ = चार + पहर] चार पहर का । चार पहर संबंधी । चार चार पहर के अंतर का ।

मुहा० चौपहरा देना = चार चार पहर के अंतर पर घोड़े से काम लेना ।

चौपहल—वि० [हिं० चौ + फ़ा० पहलू; सं० फलक] जिसके चार पहल वा पार्श्व हों । जिसमें लंबाई चौड़ाई और मोटाई हो । वर्गात्मक ।

चौपहला—वि० दे० "चौपहल" ।

संज्ञा पुं० [हिं० चौपहल + आ (प्रत्य०)] एक प्रकार का डोला । दे० "चौपाल (२)" ।

चौपहलू—वि० दे० "चौपहला" ।

चौपहिया†—वि० [हिं० चौ + पहिया] चार पहियों का । जिसमें चार पहिये हों ।

संज्ञा स्त्री० चार पहियों की गाड़ी ।

चौपहिलू—वि० दे० "चौपहला" । उ०—हाथनि चारि चारि चूरी पाइनि इक सार चूरा चौपहिलू इक टक रहे हरि हेरी ।—स्वामी हरिदास ।

चौपा†—संज्ञा पुं० दे० "चौपाया" ।

चौपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पदी] (१) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं । इसके बनाने में केवल द्विकल और त्रिकल का ही प्रयोग होता है । इसमें किसी त्रिकल के बाद दो गुरु और सब से अंत में जगण या तगण न पड़ना चाहिए । इसे रूप चौपाई या पादाकुलक भी कहते हैं ।

विशेष—वास्तव में चौपाई (चतुष्पदी) वही है जिसमें चार चरण हों और चारों चरणों का अनुप्रास मिला हो । जैसे, छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई । तरनिउ मुनि-घरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई । पर साधारणतः लोग दो चरणों को ही (जिन्हें वास्तव में अर्द्धाली कहते हैं) चौपाई कहते और मानते हैं । मात्रिक के अतिरिक्त कुछ चौपाइयाँ ऐसी भी होती हैं जो वर्ण वृत्त के अंतर्गत आती हैं और जिनके अनेक भेद और भिन्न भिन्न नाम हैं । उनका वर्णन अलग अलग दिया गया है ।

†(२) चारपाई । खाट ।

चौपाड़—संज्ञा पुं० दे० "चौपाल" ।

चौपायनि—संज्ञा पुं० [सं०] चुप नामक ऋषि के वंशज ।

चौपाया—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद, प्रा० चउप्पाय] चार पैरोंवाला पशु । गाय, बैल, भैंस आदि पशु । (प्रायः गाय भैंस आदि के लिये ही अधिक बोलते हैं)

चौपार†—संज्ञा स्त्री० दे० "चौपाल" ।

चौपाल—संज्ञा पुं० [हिं० चौपार] (१) खुली हुई बैठक । लोगों के बैठने उठने का वह स्थान जो ऊपर से छाया हो पर चारों

चौरसा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + रस] (१) ठाकुर जी की शय्या की चद्दर। (२) चार रुपए भर का बाट। (सुनार)

वि० जिसमें चार रस हों। चार रसोंवाला।

चौरसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरसाना] (१) चौरसाने की क्रिया। (२) चौरसाने का भाव। (३) चौरसाने की मज़दूरी।

चौरसाना—क्रि० स० [हिं० चौरस] चौरस करना। बराबर करना। हमवार करना।

चौरसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरस] (१) वाँह पर पहनने का एक चौखूँटा गहना। सीतापुर आदि ज़िलों में इसका प्रचार है। (२) चौरस करने का औज़ार। (३) अन्न रखने का कोठा या बखार।

चौरस्ता—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + फ़ा० रस्ता] चौराहा।

चौरहा—संज्ञा पुं० दे० "चौराहा"।

चौरा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर, प्रा० चउर] [स्त्री० अल्प० चौरी] (१) चौतरा। चबूतरा। वेदी। (२) किसी देवी, देवता, सती, मृत महात्मा, भूत प्रेत आदि का स्थान जहाँ वेदी या चबूतरा बना रहता है। जैसे, सती का चौरा। उ०—पेट को मारि मरैं पुनि भूत ह्वै चौरा पुजावत देव समानैं।—रघुराज। (३) चौपाल। चौबारा। (४) लोबिया। बोड़ा। बरवौं। रवांस। उ०—गेहूँ चांवर चना उरद जव मूँग मोठतिल। चौरा मटर मसूर तुवर सरसों मडुवा मिल।—सूदन। (५) वह बैल जिसकी पूँछ सफ़ेद हो।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

चौराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + राई] (१) चौलाई नाम का साग। उ०—चौराई लैं राई तोरई सुरइ सुरुचा भारी जी।—विश्राम। (२) अगरवाले बनियों की एक रीति जिसमें किसी उत्सव पर किसी को निमंत्रण देते समय उसके द्वार पर हलदी में रँगे पीले चावल रख आते हैं। (३) एक चिड़िया जिसकी गरदन मटमैली, डैने चितकबरे, दुम नीचे सफ़ेद और ऊपर लाल और चोंच पीली होती है। पैर भी पीले ही होते हैं।

चौरानबे—वि० [सं० चतुर्नवति, प्रा० चउरणवइ] नब्बे से चार अधिक।

संज्ञा पुं० नब्बे से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—९४।

चौरासी—वि० [सं० चतुराशीति, प्रा० चउरासीइ] अस्सी से चार अधिक। जो संख्या में अस्सी और चार हो।

संज्ञा पुं० (१) अस्सी से चार अधिक की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८४। (२) चौरासी लक्ष योनि। (पुराणों के अनुसार जीव चौरासी लाख प्रकार के माने गए हैं) उ०—आकर चारि लाख चौरासी। जीव चराचर जल थल वासी।—तुलसी।

मुहा०—चौरासी में पड़ना या भरमना = निरंतर बार बार कई प्रकार के शरीर धारण करना। आवागमन के चक्र में पड़ना। उ०—चौरासी पर नाचत अस उरझेमत छविधारी।—देवस्वामी।

(३) एक प्रकार का घुँघरू। पैर में पहनने का घुँघुरुओं का गुच्छा (इसे नाचते समय पहनते हैं।) उ०—मानिक जड़े सीस औ काँधे। चँवर लाग चौरासी बाँधे।—जायसी। (४) पत्थर काटने की एक प्रकार की टाँकी। (५) एक प्रकार की रुखानी।

चौराष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] षाड़व जाति का एक संकर राग जो प्रातःकाल गाया जाता है।

चौराहा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + राह = रास्ता] वह स्थान जहाँ चार रास्ते या सड़कें मिलती हों। वह स्थान जहाँ से चार तरफ़ को चार रास्ते गए हों। चौरस्ता। चौमुहानी।

चौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौरा] छोटा चबूतरा। वेदी। उ०—रची चौरी आप ब्रह्मा चरित खंभ लगाइ कै।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक पेड़ जो हिमालय पर तथा रावी नदी के किनारे के जंगलों में होता है। मदरास और मध्य प्रदेश में भी यह पेड़ मिलता है। इसकी लकड़ी चिकनी और बहुत मज़बूत होती है और मेज़, कुरसी, अलमारी, तसवीर के चौखटे आदि बनाने के काम में आती है। इसकी छाल दवा के काम में आती है (२) एक पेड़ जिसकी छाल से रंग बनता और चमड़ा सिझाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चोरी। (२) गायत्री का एक नाम।

चौरेठा—संज्ञा पुं० [हिं० चाउर + पैठा] पानी के साथ पीसा हुआ चावल।

चौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। स्तेय।

चौल—संज्ञा पुं० [सं०] चोल नामक देश विशेष। "दे० चोल"।

चौलकर्म—[सं०] चूड़ाकर्म। मुंडन।

चौलड़ा—वि० [हिं० चौ + लड़] जिसमें चार लड़ें हों। (माला आदि)

चौला—संज्ञा पुं० [देश] लोबिया। बोड़ा।

चौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + राई = दाने] एक पौधा जिसका साग खाया जाता है। यह हाथ भर के करीब ऊँचा होता है। इसकी गोल पत्तियाँ सिरे पर चिपटी होती हैं और डंठलों का रंग लाल होता है। यह पौधा वास्तव में छोटी जाति का मरसा है। इस में भी मरसे के समान मंजरियाँ लगती हैं जिन में राई के इतने बड़े काले दाने पड़ते हैं। वैद्यक में चौलाई हलकी, शीतल, रूखी, पित्त-कफ-नाशक, मल-मूत्र-निःसारक, विषनाशक और दीपन मानी जाती है। उ०—चौलाई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआन निचोई।—सूर।

पर्य्या०—तंडुलीय। मेघनाद। कांडेर। तंडुलेरक। भंडीर। विषघ्न। अल्पमारिष, इत्यादि।

चौबोला—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + बोल] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ८ और ७ के विश्राम से १५ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु होता है। उ०—रघुवर तुम सों विनती करौं। कीजै सोई जाते तरौं। भिखारीदास ने इसके दुगने को चौबोला मान कर १६ और १४ मात्राओं पर यति मानी है।

चौमड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + दाढ़] दाढ़ का वह चौड़ा, चिपटा और गड्ढेदार दाँत जिससे आहार कूँचते या चबाते हैं।

चौमंज़िला—वि० [हिं० चौ = चार + फ़ा० मंज़िल] चार मरातिब या खंडोंवाला (मकान आदि)।

चौमसिया—वि० [हिं० चौ + मास] चार महीने का। वर्षा के चार महीनों में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वह हलवाहा जो चार महीने के लिये नौकर रखा गया हो।

संज्ञा पुं० [हिं० चार + माशा] चार माशे का बाट। चार माशे तौल का बटखरा।

चौमहला—वि० [हिं० चौ + महल] चार खंडों का। चार मरातिब का (मकान)।

चौमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मार्ग] चौरस्ता। चौमुहानी।

चौमास—संज्ञा पुं० दे० "चौमासा"।

चौमासा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] (१) वर्षा काल के चार महीने आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन। चातुर्मास। (२) वर्षाऋतु के संबंध की कविता। वर्षा के चार महीनों के वर्णन की कविता। (३) खरीफ की फसल उगने का समय। (४) वह खेत जो वर्षा काल के चार महीनों (असाढ़, सावन, भादों और कुवार) में जोता गया हो। (५) दे० "चौमसिया"।

चौमासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौमासा + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन वा चलता गाना जो प्रायः बरसात में गाया जाता है।

चौमुख—क्रि० वि० [हिं० चौ = चार + मुख = ओर] चारों ओर। चारों तरफ। उ०—चमचमात चामीकर मंदिर चौमुख चित्त विचारु।—रघुराज।

चौमुखा—वि० [हिं० चौ = चार + मुख + आ = (प्रत्य०)] [स्त्री० चौमुखी] चार मुहोंवाला। जिसके मुँह चारों ओर हों।

यौ०—चौमुखा दीया = वह दीपक जिसमें चारों ओर चार बत्तियाँ जलती हों।

मुहा०—चौमुखा दीया जलाना = दिवाला निकालना।

विशेष—लोग कहते हैं कि प्राचीन समय में जब किसी महाजन को अपने दिवाले की सूचना देनी होती थी तो वह अपनी दूकान पर चौमुखा दीया जला देता था।

चौमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ = चार + फ़ा० मुहाना] चौराहा। चौरस्ता। चतुष्पथ।

चौमेंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + मेंड़ + आ (प्रत्य०)] वह स्थान जहां पर चार मेंड़ या सीमाएँ मिलती हों।

चौमेखा—वि० [हिं० चौ = चार + मेख] चार मेखोंवाला। जिसमें चार मेखें या कीलें हों।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का कठोर दंड जिसमें अपराधी को जमीन पर चित या पट लेटा कर उसके हाथों और पैरों में मेखें ठोंक देते थे।

चौरंग—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + रंग = प्रकार, ढब] तलवार का एक हाथ। तलवार चलाने का एक ढब जिससे चीज़ें कट कर चार टुकड़े हो जाती हैं। खड्ग-प्रहार का एक ढंग।

वि० तलवार की वार से कई टुकड़ों में कटा हुआ। खड्ग के आघात से खंड खंड। उ०—कहूं तेग को घालिकै, करहिं टूक चौरंग। सुनि, लखि पितु विसुनाथ नृप, होत मनहिं मन दंग।

क्रि० प्र०—करना।—काटना।

मुहा०—चौरंग उड़ाना या काटना = (१) तलवार आदि से किसी चीज़ को बहुत सफ़ाई से काटना। (२) एक में बँधे हुए ऊंट के चारों पैरों को तलवार के एक हाथ से काटना।

विशेष—देशी रियासतों तथा अन्य स्थानों में वीरता की परीक्षा के लिये ऊँट के चारों पैर एक साथ बांध दिए जाते हैं। ऊँट के पैर की नलियां बहुत मजबूत होती हैं; इस लिये जो उन चारों पैरों को एक ही हाथ में काट देता है वह बहुत वीर समझा जाता है।

चौरंगा—वि० [हिं० चौ + रंग] [स्त्री० चौरंगी] चार रंगों का। जिसमें चार रंग हों।

चौरंगिया—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + रंग] मालखंभ की एक कसरत जिसमें बेंत को एक जंघे पर बाहर की ओर से लेकर पिंडरी को लपेटाते हुए उसी पैर के अंगूठे में अटकाते हैं और फिर दूसरे जंघे से उसे भीतर लेकर पिंडरी से बाहर करते हुए दूसरे अंगूठे में अटकाते हैं।

चौर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। दूसरों की वस्तु चुरानेवाला। (२) एक गंध-द्रव्य। (३) चोर पुष्पी।

संज्ञा पुं० [सं० चुंड] ताल जिसमें बरसाती पानी बहुत दिन तक रुका रहे। खादर।

चौरस—वि० [हिं० चौ = चार + (एक) रस = समान] (१) जो ऊँचा नीचा न हो। समथल। हमवार। बराबर। जैसे, चौरस मैदान। (२) चौपहल। वर्गात्मक।

संज्ञा पुं० (१) ठठेरों का एक औज़ार जिससे वे धातु पर बरतन चिकने करते हैं। (२) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक यगण होता है। इसको "तनुमध्या" भी कहते हैं। उ०—त्यों दिसि पार्वी। पूर्ण मनावौ।

चोहलका—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + फा० हलका ?] गलीचे की बुनावट का एक प्रकार।

चौहान—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + भुजा] अग्निकुल के अंतर्गत क्षत्रियों की एक प्रसिद्ध शाखा जिसके मूल-पुरुष के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसके चार हाथ थे और उसकी उत्पत्ति राक्षसों का नाश करने के लिये वशिष्ठजी के यज्ञकुंड से हुई थी। प्रायः एक हजार वर्ष पहले मालवे और राजपूताने में इस जाति के राजाओं का राज्य था और पीछे इसका विस्तार दिल्ली तक हो गया था। भारत के प्रसिद्ध अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज इसी चौहान जाति के थे। कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि इस जाति के मूल-पुरुष माणिक्य नामक एक राजा थे, जो लगभग ८०० सन् ईस्वी में अजमेर में राज्य करते थे। इस जाति के क्षत्रिय प्रायः सारे उत्तरीय भारत में फैले हुए हैं।

चौहैं—क्रि० वि० [देश०] चारों ओर। चारों तरफ। उ०—राम कहैं चकित चुरैलैं चहूँ अल्लैं त्यों सबी सकरि भल्लैं चौहैं चकित मसान को।—राम कवि।

च्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूना। झरना। टपकना। (२) एक ऋषि का नाम जिनके पिता भृगु और माता पुलोमा थीं। इनके विषय में कथा है कि जब ये गर्भ में थे तब एक राक्षस इनकी माता को अकेली पा हर ले जाना चाहता था। यह देख च्यवन गर्भ से निकल आए और उस राक्षस को इन्होंने अपने तेज से भस्म कर डाला। ये आप से आप गर्भ से गिर पड़े थे इसी से इनका नाम च्यवन पड़ा। एक बार एक सरोवर के किनारे तपस्या करते करते इन्हें इतने दिन हो गए कि इनका सारा शरीर वल्मीक (बमौट, दीमक की मिट्टी) से ढक गया, केवल चमकती हुई आँखें खुली रह गईं। राजा शर्याति की कन्या सुकन्या ने इनकी आँखों को कोई अद्भुत वस्तु समझ उनमें काँटे चुभा दिए। इस पर च्यवन ऋषि ने क्रुद्ध होकर राजा शर्याति की सारी सेना और अनुचर-वर्ग का मल-मूत्र रोक दिया। राजा ने घबरा कर च्यवन ऋषि से क्षमा माँगी और उनकी इच्छा देख अपनी कन्या सुकन्या का ऋषि के साथ ब्याह कर दिया। सुकन्या ने भी उस वृद्ध ऋषि से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं की। विवाह के पीछे एक दिन अश्विनीकुमारों ने आकर सुकन्या से कहा, "बूढ़े पति को छोड़ दो, हम लोगों से विवाह कर लो"। सुकन्या जब किसी प्रकार सम्मत न हुई तब अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि को बूढ़े से सुंदर युवक कर दिया। इसके बदले में च्यवन ऋषि ने राजा शर्याति के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को सोमरस प्रदान किया। इंद्र ने इस पर आपत्ति की। जब इन्होंने नहीं माना तब इंद्र ने इन पर वज्र चलाया। च्यवन ऋषि ने इस पर क्रुद्ध होकर एक महा विकराल असुर उत्पन्न किया जिस पर इंद्र भयभीत होकर इनकी शरणागत आया।

च्यवनप्राश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध अवलेह जिसके विषय में यह कथा है कि च्यवन ऋषि का वृद्धत्व और अंधत्व नाश करने के लिये अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया था। इसका वर्णन इस प्रकार है—पके हुए बड़े ताजे ५०० आँवले लेकर मिट्टी के पात्र में पका कर रस निकाले और इस रस में ५०० टके भर मिस्री डाल कर चाशनी बनावे। (यदि संभव हो तो इसे चाँदी के बरतन में धरे नहीं तो उसी मिट्टी के पात्र में ही रहने दे।) फिर उसमें मुनक्का, अगर, चंदन, कमलगट्टा, इलायची, हड़ का छिलका, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभ, गुरुच, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, कचूर, अडूसा, विदारीकंद, बरियारा, जीवंती, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोना, कटियाली, बेल की गिरी, अरलू, कुंभेर और पाठा—ये सब चीजें टके टके भर मिलावे और ऊपर से मधु ६ टके भर, पिप्पली २ टके भर, तज २ टंक, तेजपात २ टंक, नागकेसर २ टंक, इलायची २ टंक और वंसलोचन २ टंक इन सब का चूर्ण कर डाले। फिर सबको मिला कर रख ले। इससे स्वरभंग, यक्ष्मा, शुक्रदोष आदि दूर होते हैं तथा स्मृति, कांति, इंद्रिय-सामर्थ्य, बल वीर्य आदि की अत्यंत वृद्धि होती है।

च्युत—वि० [सं०] (१) टपका हुआ। गिरा हुआ। चुआ हुआ। झड़ा हुआ। (२) गिरा हुआ। पतित। (३) भ्रष्ट। (४) अपने स्थान से हटा हुआ। (५) विमुख। पराङ्मुख। जैसे कर्त्तव्य से च्युत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

च्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो प्रीति नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

च्युतषड्ज—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मंदा नामक श्रुति से आरंभ होता है। इसमें भी दो श्रुतियाँ होती हैं।

च्युतसंस्कारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्यदर्पण के मत से काव्य का वह दोष जो व्याकरण-विरुद्ध पदविन्यास से होता है। काव्य का व्याकरण-संबंधी दोष। (यह दोष प्रधान दोषों में है)

च्युतसंस्कृति—संज्ञा स्त्री० दे० "च्युत-संस्कारता"।

च्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पतन। स्खलन। झड़ना। गिरना। (२) गति। उपयुक्त स्थान से हटना। (३) चूक। कर्त्तव्य-विमुखता। (४) अभाव। कसर। (५) गुदद्वार। (६) भग।

च्यूड़ा—संज्ञा पुं० दे० "चिउड़ा"।

च्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ या फल।

चौलावा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ + लाना = लगाना] ऐसा कुआं जिसमें एक साथ चार मोट चल सकें।

चौलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चौलुक्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चुलुक ऋषि के वंशज। (२) चालुक्य।

चौली—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा।

चौवन—वि० [सं० चतुःपञ्चाशत्, पा० चतुपञ्ञासो, प्रा० चउवण्ण] पचास से चार अधिक। जो गिनती में पचास से चार ऊपर हों।

संज्ञा पुं० पचास से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—५४।

चौवा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार] (१) हाथ की चार उँगलियों का समूह। (२) अँगूठे को छोड़ हाथ की बाकी चार उँगलियों की पंक्ति में लपेटा हुआ तागा। जैसे, एक चौवा तागा।

मुहा०—चौवा करना = चार उँगलियों में तागा आदि लपेटना।

(३) हाथ की चार उँगलियों का विस्तार। चार अंगुल की माप। (४) ताश का वह पत्ता जिसमें चार बूटियां हों।

संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद] चौपाया। गाय बैल आदि पशु।

चौवाई—संज्ञा स्त्री० दे० "चौबाई"।

चौवालीस—वि० [सं० चतुश्चत्वारिंशत्, पा० चतुचत्तालीसति, प्रा० चउआलीसइ] चालीस से चार अधिक। जो गिनती में चार ऊपर चालीस हो।

संज्ञा पु० चालीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४४।

चौस—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + स (प्रत्य०)] वह खेत जो चार बार जोता गया हो। चार बार जोता हुआ खेत।

संज्ञा पुं० [देश०] बुकनी। चूर। चूर्ण।

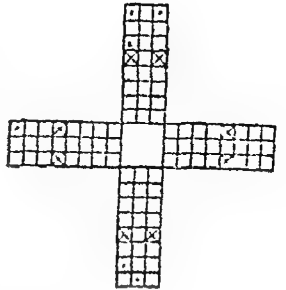
चौसर—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + सर = बाजी अथवा सं० चतुस्सारि] (१) एक प्रकार का खेल जो बिसात पर चार रंगों की चार चार गोटियों और तीन पासों से दो मनुष्यों में खेला जाता है। दोनों खेलनेवाले दो दो रंगों की आठ आठ गोटियां ले लेते हैं और बारी बारी से पासे फेंकते हैं। पासों के दांव आने पर कुछ विशेष नियमों के अनुसार गोटियां चली जाती हैं। चौपड़। नर्दबाजी।

विशेष—यह खेल जब पासों के बदले सात कौड़ियां फेंक कर खेला जाता है तब उसे पचीसी कहते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

(२) इस खेल की बिसात जो प्रायः कपड़े की बनी होती है। इसका मध्य भाग थैली का सा होता है जिसमें खेल की समाप्ति पर गोटियां भर कर रक्खी जाती हैं। मध्य भाग के चारों सिरों की तरफ चार लंबे चौकोर टुकड़े सिले रहते हैं जिनमें से हर एक पर लंबाई में आठ आठ चौकोर खानों की तीन तीन पंक्तियां होती हैं।

क्रि० प्र०—बिछाना।



यौ०—चौसर का बाजार = चौक बाजार। वह स्थान जिसके चारों ओर एक ही तरह के चार बाजार हों।

संज्ञा पुं० [चतुस्सक्] चौलड़ी। चार लड़ों का हार। उ०—(क) चौसर हार अमोल गरे को देहु न मेरी माई।—सूर। (ख) और भांति भये वए चौसर चंदन चंद। पति बिन अति पारत विपति मारत मारुत मंद।—बिहारी।

चौसरी—संज्ञा स्त्री० दे० "चौसर"।

चौसिंघा—वि० [हिं० चौ = चार + सींग] चार सींगोंवाला। जिसके चार सींग हों। जैसे, चौसिंघा बकरा।

संज्ञा पुं० दे० "चौसिंहा"।

चौसिंहा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + सींव = सीमा] वह स्थान जहां चार गांवों की सीमाएँ मिलती हों।

चौहट—संज्ञा पुं० दे० "चौहट्टा"। उ०—चौहट हाट समान बेद चहुँ जानिये। विविध भांति की वस्तु बिकत तहँ मानिये।—विश्राम।

चौहट्ट—संज्ञा पुं० दे० "चौहट्टा"। उ०—चौहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु विधि बना।—तुलसी।

चौहट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० चौ = चार + हाट] (१) वह स्थान जिसके चारों ओर दूकानें हों। चौक। (२) चौमुहानी। चौरस्ता। चौराहा।

चौहड़—संज्ञा पुं० दे० "चौंभड़"।

चौहत्तर—वि० [सं० चतुःसप्तति, प्रा० चोहत्तरि] सत्तर से जो चार अधिक हो। जो गिनती में सत्तर और चार हो।

संज्ञा पुं० तिहत्तर के बाद की संख्या। सत्तर से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—७४।

चौहद्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्भद्र, प्रा० चाउभद्द + ई (प्रत्य०)] एक अवलेह जो जायफल, पिप्पली, काकड़ासींगी और पुष्करमूल को पीस कर शहद में मिलाने से बनता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० चौ + फा० हद] चारों ओर की सीमा।

चौहरा—वि० [हिं० चौ = चार + हरा (प्रत्य०)] (१) जिसमें चार फेरे या तहें हों। चार परतवाला। जैसे, चौहरा कपड़ा। (२) चौगुना। जो चार बार हो। उ०—दोहरे तिहरे चौहरे भूषण जाने जात।—बिहारी।

संज्ञा पुं० वह पत्ता जिसमें पान के बीड़े लपेटे हों। चौपड़ा।

वह वर्णिक वा वर्णवृत्त और जिसमें अक्षरों की गणना और लघु गुरु के क्रम का विचार नहीं, केवल मात्राओं की संख्या का विचार होता है वह मात्रिक छंद कहलाता है। रोला, रूपमाला, दोहा, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंद हैं। वंशस्थ, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, मालिनी, मंदाक्रांता इत्यादि वर्णवृत्त हैं। पादों के विचार से वृत्तों के तीन भेद होते हैं, समवृत्ति, अर्द्धसमवृत्ति और विषमवृत्ति। जिस वृत्त में चारों पाद समान हों वह समवृत्ति, जिसमें वे असमान हों वह विषमवृत्ति और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों वह अर्द्धसमवृत्ति कहलाता है। इन भेदों के अनुसार संस्कृत और भाषा के छंदों के अनेक भेद होते हैं। (४) वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षण आदि का विचार हो। यह छः वेदांगों में मानी गई है। इसे पाद भी कहते हैं। (५) अभिलाषा। इच्छा। (६) स्वेराचार। स्वेच्छाचार। मनमाना व्यवहार। (७) बंधन। गाँठ। (८) जाल। संतान। समूह। उ०—बीज के बूंद में है तम छंद कलिंद जा बुंद लसै दरसानी। (९) कपट। छल। मकर। उ०—(क) राजबार असगुणी न चाही जेहि दूसा कर गोज। यही छंद ठग विद्या छला सो राजा भोज।—जायसी। (ख) कहा कहति तू बात अयानी। वाके छंद भेद को जानै मीन कबहुँ धौं पीवन पानी।—सूर।

मुहा०—छल छंद = कपट। धोखेबाजी। चालबाजी। उ०—लोभ छल छंदन को धाऊँ पाप द्वंदन को फिकिर के फंदन को फारिहैं पै फारिहैं।—पद्माकर।

(१०) चाल। युक्ति। कला। चालबाजी। उ०—(क) योगिहि बहुत छंद औराहीं। बूँद सुआती जैसे पानी।—जायसी। (ख) योगी सबै छंद अस खेला। तू भिखार केहि माहँ अकेला।—जायसी। (ग) सुनि नद नंद प्यारे तेरे मुख चंद सम चंद पै न भयो कोटि छंद करि हार्यो है।—केशव। (११) रंग ढंग। आकार। चेष्टा। उ०—गिरगिट छंद धरै दुख तेता। खन खन पीन रात खन सेता।—जायसी। (१२) अभिप्राय। मतलब। (१३) एकांत। निर्जन। (१४) विष। ज़हर। (१५) ढकन। आवरण। (१६) पत्ती।

संज्ञा पुं० [सं० छदक] एक आभूषण जो हाथ में चूड़ियों के बीच में पहना जाता है।

छंदक-वि० [सं०] (१) रक्षक। (२) छली।

संज्ञा पुं० (१) कृष्णचंद्र का एक नाम। (२) बुद्धदेव के सारथी का नाम। (३) छल।

छंदज-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक देवता। ऐसे देवता जिनकी स्तुति वेदों में है। वसु आदि देवता।

छँदना-क्रि० अ० [सं० छंद = बंधन] पैरों में रस्सी लगा कर बाँधा जाना।

छंदपातन—संज्ञा पुं० [सं०] बनावटी साधु। साधु-वेषधारी ठग। छली। धोखेबाज।

छंदबंद—संज्ञा पुं० [हिं० छंद + बंद] छल। कपट। धोखा।

छंदस्कृत—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छंदस्कृता] (१) वेद जिसमें गायत्री आदि छंद हैं। (२) वेद मंत्र।

छंदःस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक देवता जिनकी स्तुति वेदों में की गई है। (२) ऋषि जो वैदिक छंदों द्वारा देवताओं की स्तुति करे। (३) सूर्य्य का सारथी। अरुण।

छंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छंद = बंधन] एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ हाथों में कलाई के पास पहनती हैं। यह गोल कंगन की तरह का होता है जिस पर रवे की जगह गोल चिपटी टिकिया बैठाई रहती है। यह कंगन और पछेले के बीच में पहना जाता है।

वि० [हिं० छंद] कपटी। धोखेबाज। छली।

छंदेली—संज्ञा स्त्री० दे० "छंदी"।

छंदोग—संज्ञा पुं० [सं०] सामगान करनेवाला पुरुष। सामग। सामवेदी।

छंदोगपरिशिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के गोभिल सूत्र का परिशिष्ट। यह कात्यायन जी का बनाया हुआ है।

छंदोदेव—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार मतंग नामक चांडाल जिनकी उत्पत्ति नापित पिता और ब्राह्मणी माता से हुई थी। इन्होंने ब्राह्मणत्व लाभ करने के लिये जब बड़ी तपस्या की तब इंद्र ने इन्हें वर दिया कि तुम कामरूप विहंग होगे। तुम्हारा नाम छंदोदेव होगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब वर्णों की स्त्रियाँ तुम्हारी पूजा करेंगी।

छंदोबद्ध—वि० [सं०] श्लोक-बद्ध। जो पद्य के रूप में हो। जैसे, छंदोबद्ध ग्रंथ।

छंदोभंग—संज्ञा पुं० [सं०] छंद रचना का एक दोष जो मात्रा वर्ण आदि की गणना वा लघु गुरु आदि नियम का पालन न होने के कारण होता है।

छंदोम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वादशाह याग के अंतर्गत एक कृत्य का नाम। यह आठवें, नवें और दसवें दिन तीन दिन तक होता था और प्रति दिन उन तीन स्तोमों का गान होता था जो इसी नाम से विख्यात हैं। इस यज्ञ का फल कोई कोई राज्यप्राप्ति मानते हैं। (२) वे तीन स्तोम जिनका गान छंदोम में होता था।

छ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काटना। (२) ढाँकना। आच्छादन। (३) घर। (४) खंड। टुकड़ा।

वि० [सं०] (१) निर्मल। साफ़। (२) तरल। चंचल।

वि० [सं० षट्, प्रा० छ] गिनती में पाँच से एक अधिक। जो संख्या में पाँच और एक हो।

संज्ञा पुं० (१) वह संख्या जो पाँच से एक अधिक हो। (२)

छ

छ-हिंदी वर्णमाला में व्यंजनों के स्पर्श नामक भेद के अंतर्गत चवर्ग का दूसरा व्यंजन। इसके उच्चारण का स्थान तालु है। इसके उच्चारण अघोष और महाप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

छंग*-संज्ञा पुं० [सं० उत्संग, प्रा० उच्छंग] गोद। अंक। उ०—खर को कहा अरगजा लेपन मर्कट भूषण अंग। गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छंग।

छंगा-वि० [हिं० छ + अंगुल] छ उँगलियोंवाला। जिसके एक पंजे में छ उँगलियां हों।

छँगुनिया*†-संज्ञा स्त्री० दे० "छगुनी"।

छँगुलिया, छँगुली-संज्ञा स्त्री० दे० "छगुनी"।

छंगू-वि० दे० "छंगा"।

छंछाल*-संज्ञा पुं० [हिं०] हाथी।

छंछोरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छाछ + बरा] एक प्रकार का पकवान जो छाछ में बनाया जाता है। उ०— दुभकौरी, मुँगछौरी, रिकवछ, इँदहर घीर, छँछोरी जी।—रघुनाथ।

छँटना-क्रि० अ० [सं० चटन = तोड़ना, छेदना] (१) कट कर अलग होना। किसी वस्तु के अवयवों का छिन्न होना। जैसे, पेड़ की डाल छँटना, सिर के बाल छँटना। (२) अलग होना। दूर होना। निकल जाना। जैसे, मैल छँटना। (३) समूह से अलग होना। तितर बितर होना। छितराना। जैसे, बादल छँटना, गोल के आदमियों का छँटना। (४) साथ छोड़ना। संग से अलग हो जाना।

मुहा०—छँटे छँटे फिरना या रहना = दूर दूर रहना। साथ बचाना। कुछ संबंध या लगाव न रखना।

(५) चुना जाना। चुन कर अलग कर लिया जाना। जैसे, इसमें से अच्छे अच्छे आम तो छँट गए हैं।

मुहा०—छँटा हुआ = चुना हुआ। चालाक। चतुर। धूर्त।

(६) साफ़ होना। मैल निकलना। जैसे, कुआं छँटना, पेट छँटना। (७) क्षीण होना। दुबला होना। जैसे, बदन छँटना।

छँटवाना-क्रि० स० [हिं० छाँटना] (१) किसी वस्तु का व्यर्थ या अधिक भाग कटवा देना। (२) बहुत सी वस्तुओं में से कुछ वस्तुओं को पृथक् कराना। चुनवाना। (३) कटवाना। छिलवाना।

छँटा-वि० [हिं० छानना] [स्त्री० छँटी] (पशु) जिसके पैर छाने गए हों। जिसके पिछले पैर बाँध कर उसे चरने के लिये छोड़ा जाय।

विशेष—यह शब्द प्रायः लद्दू घोड़ों गदहों आदि के लिये आता है।

छँटाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) छाँटने का काम। छिन्न करने का काम। अलग अलग करने का काम। बिलगाने का काम। (२) चुनाई। चुनने की क्रिया। (३) साफ़ करने का काम। (४) छाँटने की मज़दूरी।

छँटाना-क्रि० स० दे० "छँटवाना"।

छँटाव-संज्ञा पुं० [हिं० छाँटना] (१) छाँटन। (२) छाँटने का भाव और क्रिया।

छंडना*-क्रि० स० [हिं० छाड़ना] (१) छोड़ना। त्यागना। (२) अन्न को ओखली में डाल कर कूटना। छाँटना।

क्रि० अ० [सं० छर्दन] कै करना। वमन करना।

छँडरना-क्रि० अ० [सं० छिद्र] छिलकना। छेद का फैल कर या दबाव से कट जाना।

छँड़ाना*†-क्रि० स० [हिं० छुड़ाना] छीनना। छुड़ा कर ले लेना। उ०—(क) लेहु छँड़ाइ सीय कहँ कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।—तुलसी। (ख)। सजन संग हरि जेवँत जात। ......सुबल सुदामा श्री दामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सों खात। ग्वालन कर ते कौर छँड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात।—सूर।

छँड़ुआ†-वि० [हिं० छाँड़ना] (१) जो छोड़ा दिया गया हो। मुक्त। (२) अदंड्य। जो दंड आदि से मुक्त हो। (३) जिसके ऊपर किसी प्रकार का दबाव या शासन न हो।

संज्ञा पुं० (१) वह पशु जो किसी देवता के उद्देश से छोड़ा गया हो। देवता को उत्सर्ग किया हुआ पशु। (२) ब्याज, कर या ऋण आदि का वह भाग जिसे पानेवाले ने छोड़ दिया हो। छूट।

छंद-संज्ञा पुं० [सं० छन्दस्] (१) वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है। इसके मुख्य सात भेद हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति त्रिष्टुप् और जगती। इनमें प्रत्येक के आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची और ब्राह्मी नामक आठ आठ भेद होते हैं। इनके परस्पर सम्मिश्रण से अनेक संकर जाति के छंदों की कल्पना की गई है। इन मुख्य सात छंदों के अतिरिक्त अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अभिकृति और उत्कृति नाम के छंद भी हैं जो केवल यजुर्वेद के यजुओं में होते हैं। वैदिक पद्य के छंदों में मात्रा अथवा लघु गुरु का कुछ विचार नहीं किया गया है; उनमें छंदों का निश्चय केवल उनके अक्षरों की संख्या के अनुसार होता है। (२) वेद। (३) वह वाक्य जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो। यह दो प्रकार का होता है—वर्णिक और मात्रिक। जिस छंद के प्रति पाद में अक्षरों की संख्या और लघु गुरु के क्रम का नियम होता है

(ग) कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायो। मुफलक सुत मेरे प्राण हरन को काल रूप ह्वै आयो।—सूर।

छगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छाग] छोटी बकरी।

छगल—संज्ञा पु० [सं०] (१) छाग। बकरा। (२) वृद्धदारक नामक पेड़। विधारा। (३) एक ऋषि का नाम। (४) नीले रंग का कपड़ा। (५) वह देश जहाँ बहुत बकरे होते हैं।

छगुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + अंगुली] हाथ के पंजे की सब से छोटी उँगली। कनिष्ठिका। कानी उँगली।

छछिआ, छछिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँछ] (१) छाछ पीने या नापने का छोटा पात्र। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं। (२) छाछ। मट्ठा। तक्र।

छछुंदरी—संज्ञा स्त्री० दे० "छछूंदर"।

छछूंदर—संज्ञा पु० [सं० छुछुंदरी] (१) चूहे की जाति का एक जंतु। इसकी बनावट चूहे की सी होती है पर इसका थूथन अधिक निकला हुआ और नुकीला होता है। इसके शरीर के रोएँ भी छोटे और कुछ आसमानी रंग लिए खाकी या राख के रंग के होते हैं। यह जंतु दिन को बिलकुल नहीं देखता और रात को छू छू करता चरने के लिये निकलता है और कीड़े मकोड़े खाता है। इसके शरीर से एक बड़ी तीव्र दुर्गंध आती है। लोगों का विश्वास है कि छछूंदर के छू जाने से तलवार का लोहा खराब हो जाता है और फिर वह अच्छी काट नहीं करता। यह भी कहा जाता है कि जब साँप छछूँदर को पकड़ लेता है तब उसे दोनों प्रकार से हानि पहुँचती है; यदि छोड़ दे तो अंधा होजाय और यदि खा ले तो वह मर जाता है; इसी से तुलसीदासजी ने कहा है—धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूँदरि केरी। छछूँदर तंत्रों के प्रयोगों में भी काम आता है। (२) एक प्रकार का यंत्र या तावीज जिसे राजपूताने में पुरोहित अपने यजमानों को पहनाता है। यह गुल्ली के आकार का सोने चाँदी आदि का बनाया जाता है। (३) एक आतशबाज़ी जिसके छोड़ने से छू छू का शब्द निकलता है।

मुहा०—छछूंदर छोड़ना = ऐसी बात कहना जिस से लोगों में हलचल मच जाय। आग लगाना।

छछेर्रा—संज्ञा पु० [हिं० छछ] घी का वह फेन या मैल जो खर करते समय उसके ऊपर आ जाता है।

छजना—क्रि० अ० [सं० सज्जन, हिं० सजना] (१) शोभा देना। सजना। अच्छा लगना। सोहना। उ०—(क) बालम के बिछुरे ब्रजबालक को हाल कहयो न परै कछु आँहीं। ध्वैगी गई दिन तीन ही में तब आँधि लौं क्यों छजिहै छहीं छाहीं।—केशव। (ख) सुंदर अनूप रूप छतुरी छजन तैसी छज्जन में मोती लटकन छवि छावने।—गिरधर। (२) उपयुक्त जान पड़ना। ठीक जँचना। उचित जान पड़ना।

छज्जा—संज्ञा पु० [हिं० छाजना या छाना] (१) छाजन या छत का वह भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है। ओलती। उ०—सुंदर अनूप रूप छतुरी छजन तैसी छज्जन में मोती लटकन छवि छावने।—गिरधर। (२) कोठे या पाटन का वह भाग जो कुछ दूर तक दीवार के बाहर निकला रहता है और जिस पर लोग हवा खाने या बाहर का दृश्य देखने के लिये बैठते हैं। उ०—छज्जन ते छूटति पिचकारी। रँगि गई बाखरि महल अटारी।—सूर। (३) दीवार या दरवाजे के ऊपर लगी हुई पत्थर की पट्टी जो दीवार से बाहर निकली रहती है। (४) टोपी के किनारे का निकला हुआ भाग जिससे धूप से बचाव होता है।

मुहा०—छज्जेदार = जिसका किनारा आगे की ओर निकला हुआ हो। जिसमें छज्जा हो। जैसे, छज्जेदार टोपी।

छटंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छटाक] (१) छटांक का बटखरा। वह बाट जिससे छटांक वस्तु तौली जाय। (२) बहुत छोटा।

छटक—संज्ञा पु० [सं०] रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक।

छटकना—क्रि० अ० [अनु० या हिं० छूटना] (१) किसी वस्तु का दाब या पकड़ से वेग के साथ निकल जाना। वेग से अलग हो जाना। सटकना। जैसे, हाथ के नीचे से गोली छटक गई। मुट्ठी में से मछली छटक गई। (२) दूर दूर रहना। अलग अलग फिरना। जैसे, वह कई दिनों से छटका छटका फिरता है। (३) वश में से निकल जाना। बहक जाना। दाँव से निकल जाना। हाथे न चढ़ना। हाथ न आना। उ०—देखना, उसे दम दिलासा देते रहना, छटकने न पावे। (४) कूदना। उछलना।

छटका—संज्ञा पु० [हिं० छटकना] मछलियों के फँसाने का एक गड्ढा जो दो जलाशयों के बीच तंग मेंड़ पर खोदा जाता है। यह गड्ढा चार छ हाथ लंबा और प्रायः दो हाथ चौड़ा तथा दो तीन हाथ गहरा होता है। मछलियाँ एक जलाशय से दूसरे जलाशय में जाने के लिये कूदती हैं और इसी गड्ढे में गिर कर रह जाती हैं। यह गड्ढा प्रायः धान के खेतों की मेंड़ पर पानी सूखने के समय खोदा जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

छटकाना—क्रि० स० [हिं० छटकना] (१) छटक जाने देना। किसी वस्तु को दाब या पकड़ से बलपूर्वक निकल जाने देना। (२) छुड़ाना। बलपूर्वक झटका देकर पकड़ या बंधन से छुड़ाना। जैसे, हाथ छटकाना। उ०—रिसि करि खाँसि खीझि लट झटकति स्याम भुजनि छटकाये दीन्हो।—सूर। (३) पकड़ या दबाव में रखनेवाली वस्तु का बलपूर्वक अलग

उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६।

छई—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षयी"।

छकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शकट, प्रा० सगडो, छगटो] बोझ लादने की दुपहिया गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं। बैलगाड़ी। सग्गड़। लढ़ी।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—छकड़ा लादना = छकड़े में बोझ वा सामान भरना।

वि० जिसका ढाँचा ढीला हो गया हो। जिसके अंजर पंजर ढीले हो गए हों। टूटा फूटा।

क्रि० प्र०—होना।

छकड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + कड़ी] वह पालकी जिसे छ कहार उठाते हों।

छकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + कड़ी] (१) छ का समूह। (२) वह पालकी जिसे छ कहार उठाते हों। छकड़िया। (३) चारपाई बुनने का एक प्रकार जिसमें छ बाध उठाए और छ बैठाए जाते हैं।

वि० जिसमें छ अवयव हों। छ से बना हुआ।

छकना—क्रि० अ० [सं० चकन = तृप्त होना] [संज्ञा छाक] (१) खा पीकर अघाना। तृप्त होना। अफरना। उ०—उसने खूब छक कर खाया।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) तृप्त होकर उन्मत्त होना। मद्य आदि पीकर नशे में चूर होना। उ०—(क) ते छकि नव रस केलि करेहीं। जोग लाइ अधरन रस लेहीं।—जायसी। (ख) केशवदास घर घर नाचत फिरहिं गोप एक रहे छकि तं मरेई गुनियत है।—केशव।

क्रि० अ० [सं० चक = भ्रांत] (१) चकराना। अचंभे में आना। (२) हैरान होना। तंग होना। दिक होना। उ०—वहाँ जाकर हम खूब छके, कहीं कोई भी नहीं था।

छकरी—संज्ञा स्त्री० दे० "छकड़ी"।

छकाछक—वि० [हिं० छकना] (१) तृप्त। अघाया हुआ। संतुष्ट। (२) परिपूर्ण। भरा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

(३) उन्मत्त। नशे में चूर। मदमत्त।

छकाना—क्रि० स० [हिं० छकना] (१) खिला पिला कर तृप्त करना। खूब खिलाना पिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) मद्य आदि से उन्मत्त करना।

क्रि० स० [सं० चक = भ्रांत] अचंभे में डालना। चक्कर में डालना।

(३) हैरान करना। दिक करना। तंग करना। उ०—तुमने तो कल हमें खूब छकाया।

संयो० क्रि०—डालना।

छकुर—संज्ञा पुं० [हिं० छ + कुर] फसल की वह बँटाई, जिसमें उपज का छठा भाग जमींदार पाता है।

छक्का—संज्ञा पुं० [सं० षट्क, प्रा० छक्क] (१) छ का समूह वा वह वस्तु जो छ अवयवों से बनी हो। (२) जूए का एक दाँव जिसमें कौड़ी वा चित्ती फेंकने से छ कौड़ियाँ चित पड़ें। यही दावँ दो, वा दस, वा चौदह कौड़ियों के चित पड़ने पर माना जाता है।

मुहा०—छक्का पंजा = दाँव पेंच। चालबाज़ी। छक्का पंजा भूलना = युक्ति काम न करना। चाल न चलना। कर्त्तव्य न सुझाई पड़ना। बुद्धि का काम न करना।

(३) पासे का एक दावँ जिसमें पासा फेंकने से छ बिंदियाँ ऊपर पड़ें।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—फेंकना।

(४) जुआ।

क्रि० प्र०—खेलना।—फेंकना।—डालना।

(५) वह ताश जिसमें छ बूटियाँ हों। (६) पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और छठे मन का समूह। होशहवाश। सुध। संज्ञा। औसान।

मुहा०—छक्के छूटना = (१) होशहवास जाता रहना। होश उड़ना। बुद्धि का काम न करना। स्तब्ध होना। (२) हिम्मत हारना। साहस छूटना। घबरा जाना। उ०—नई सेना के आते ही शत्रुओं के छक्के छूट गए। छक्के छुड़ाना = (१) चकित करना। विस्मित करना। हैरान करना। (२) साहस छुड़ाना। अधीर करना। घबरा देना। पस्त करना। पैर उखाड़ देना। उ०—सिक्खों ने काबुलियों के छक्के छुड़ा दिए।

छग—संज्ञा पुं० [सं०] छाग। बकरा।

छगड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० छगल] [स्त्री० छगड़ी] बकरा। उ०—एक छगड़ी एक छगड़ा लीलिसि तौ मन लीलिसि केराव। बारह भैंसा सरसों लीलिसि औ चौरासी गाँव।—कबीर।

छगण—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा गोबर। कंडा।

छगन—संज्ञा पुं० [सं० चंगट = एक छोटी मछली] छोटा बच्चा। प्रिय बालक।

वि० बच्चों के लिये एक प्यार का शब्द। उ०—कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।—तुलसी।

यौ०—छगन मगन = छोटे छोटे बच्चे। प्यारे बच्चे। हँसते खेलते बच्चे। (प्यार का शब्द) उ०—(क) गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई। ... छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई। सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु कि ललित लरिकाई।—तुलसी। (ख) निरखि परम शुद्धचनि देखत ... छगन मगन। —सूर।

साथी के। अकेले। एकाकी। (२) बिना कोई बोझ या असबाब लिए। तन तनहा।

छड़ीदार—वि० [हिं० छड़ी + दार (प्रत्य०)] (१) जो छड़ी लिए हो। छड़ीवाला। (२) जिसमें सीधी पतली लकीरें हों। लकीरदार। सीधी लकीरोंवाला (कपड़ा)। जैसे, छड़ीदार छींट, छड़ीदार मलता।

संज्ञा पु० चोबदार। आसा-बरदार। द्वारपालक। रक्षक।

छड़ीबरदार—संज्ञा पु० [हिं० छड़ी + फा० बरदार] चोबदार। बड़े आदमियों की सवारी के साथ सोने चांदी की छड़ी लिए हुए चलनेवाला सेवक।

छड़ीला—संज्ञा पु० दे० "छरीला"।

छण—संज्ञा पु० दे० "क्षण"।

छणदा—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षणदा"।

छत—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] (१) घर की दीवारों के ऊपर की पटिया, चूना, कंकड़ आदि डाल कर बनाई हुई फर्श। पाटन। उ०—क्षिति पर, छान पर छाजत छतान पर, ललित लतान पर, लाड़िली की लट पै।—पद्माकर।

मुहा०—छत पटना वा पड़ना = दीवार के ऊपर बैठाए हुए कड़ियों पर कंकड़, सुर्खी, चूना आदि पीटा जाना। छत बनना।

(२) घर के ऊपर की खुली हुई पाटन। ऊपर का खुला हुआ कोठा। उ०—गरमी में लोग छत पर सोते हैं। (३) छतगीर। ऊपर तानने की चादर। चाँदनी।

मुहा०—छत बँधना = बादलों का घेर कर छाना।

*संज्ञा पु० [सं० क्षत] घाव। ज़ख्म।

*क्रि० वि० [सं० सत] होते हुए। रहते हुए। अछत। उ०—(क) गनती गनिबे तें रहे छतहू अछत समान। अलि अब ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान।—बिहारी। (ख) प्रान पिंड को तजि चलै मुवा कहै सब कोय। जीव छतै जामें मरै सूक्ष्म लखै न सोय। मरिए तो मरि जाइए छूटि परै जंजार। ऐसा मरना को मरै दिन में सौ सौ बार।—कबीर।

छतना*—संज्ञा पु० [हिं० छाता, अवधी० छतना] पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—मोहन मचाई वान कान्ह रचाई दोऊ छवि सों बचाई छटि ओर छतनान की।—रसकुसुमाकर।

छतनार†—वि० [हिं० छाता वा छतना] छाते की तरह फैला हुआ। दूर तक फैला हुआ। विस्तृत।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः वृक्षों के लिये होता है।

छतरिया विष—संज्ञा पुं० [सं० छत्र] एक प्रकार की खुमी जो बहुत विषैली होती है।

छतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र] (१) छाता। (२) पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—लै कर सुघर खुरपिया पिय के साथ। छइबै एक छतरिया बरखत पाथ।—रहीम। (३) मंडप। (४) राजाओं की चिता वा साधु महात्माओं की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ छज्जेदार मंडप। (५) कबूतरों के बैठने के लिये बाँस की फट्टियों का बना हुआ टट्टर जो एक ऊँचे बांस के सिरे पर बँधा रहता है। (६) कहारों की डोली के ऊपर छाया के लिये रक्खा हुआ बांस की फट्टियों का टट्टर जिस पर कपड़ा डालते हैं। (७) बहल वा इक्के आदि के ऊपर की छाजन। (८) जहाज़ के ऊपर का भाग। (९) खुमी। कुकुरमुत्ता।

छतलोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छत + लोटना] एक प्रकार की कसरत जिसमें गच के ऊपर पेट के बल पट लेट कर लोटते हैं। इससे तोंद नहीं निकलती।

छता†—संज्ञा पु० [सं० छत्र] छाता। उ०—सीस भयो हर हार सुमेरु छता भयो आपु सुमेरु को बासी।—मतिराम।

छतिया*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाती] छाती। वक्षस्थल। उ०—सुनहु स्याम तुम को ससि डरपत है कहत पु सरन तुम्हारी। सूर स्याम बिरुझाने सोए लिए लगाइ छतियां महतारी।—सूर।

छतियाना—क्रि० स० [हिं० छाती] (१) छाती के पास ले आना। (२) बंदूक छोड़ने के समय कुंदे को छाती के पास लगाना। बंदूक तानना।

छतिवन—संज्ञा पु० [सं० सप्तपर्णी प्रा० सत्तवन्ना] एक पेड़ जो भारत के प्रायः सभी तर प्रदेशों में थोड़ा बहुत मिलता है। इसके एक एक पत्ते में सात सात छोटी छोटी पत्तियां होती हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है और इसकी टहनियों को तोड़ने से दूध निकलता है। इसकी छाल वृष्य, कृमिनाशक, पुष्टिकारक, ज्वरघ्न और संकोचक होती है। इसका दूध फोड़े पर लगाया जाता है और तेल में मिला कर दर्द दूर करने के लिये कान में डाला जाता है। इसकी लकड़ी संदूक, अलमारी आदि बनाने के काम में आती है। दशमूल नामक काढ़े में इसकी छाल पड़ती है।

छतीसा—वि० [हिं० छत्तीस] [स्त्री० छतीसी] (१) जिसे छत्तीस बुद्धि हो। चतुर। सयाना। चालाक। उ०—पीसी है मनोज की सी छूटेगी छतीसी छुँटी सुरत छड़ी सी भरी भाग की नदी सी है।—रघुराज। (२) मक्कार। धूर्त्त। उ०—नाई की जाति बड़ी छतीसी होती है।

छतीसापन—संज्ञा पु० [हिं० छतीसा] मक्कारी। चालाकी। धूर्त्तता।

छतौना—संज्ञा पु० [हिं० छाता] (१) छाता। (२) छत्राक। खुमी।

छत्त†—संज्ञा पु० दे० "छत"।

छत्तर†—संज्ञा पु० (१) दे० "छत्र"। (२) दे० "सत्र"।

छत्ता—संज्ञा पु० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] †(१) छाता। छतरी। (२) पटाव वा छत जिसके नीचे से रास्ता चलता हो। (३)

करना । बंधन को जोर करके दूर करना । जैसे, रस्सी लटकाना ।

छटना–क्रि० अ० दे० "छँटना" ।

छटपट–संज्ञा पुं० [अनु०] छटपटाने की क्रिया । बंधन या पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकारने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

वि० चंचल । चपल । नटखट ।

छटपटाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) बंधन या पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकारना । तड़फना । तड़फड़ाना । उ०—(क) देखो बछड़े का गला फँस गया है, वह छटपटा रहा है । (ख) वह दर्द के मारे छटपटा रहा है । (२) बेचैन होना, व्याकुल होना । विकल होना । अधीर होना । (३) किसी वस्तु के लिये आकुल होना । अधीरतापूर्वक उत्कंठित होना ।

छटपटी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) घबराहट । व्याकुलता । बेचैनी । अधीरता । (२) किसी वस्तु के लिये आकुलता । गहरी उत्कंठा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

छटाँक–संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + टांक] एक तौल जो सेर का सोलहवाँ भाग है । पाव भर का चौथाई ।

मुहा०—छटांक भर = (१) तौल में पाव का चौथाई भाग । (२) बहुत थोड़ा । स्वल्प । कम ।

छटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति । प्रकाश । प्रभा । झलक । (२) शोभा । सौंदर्य । छवि । (३) बिजली । उ०—चमकहिं मध्य छटा सी राजै ।—रघुनाथ ।

छटाफल–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

छटाभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली । बिजली की चमक । (२) चेहरे की कांति ।

छटैल–वि० [हिं० छँटना] छँटा हुआ । चालाक ।

छट्ठ–संज्ञा स्त्री० दे० "छठ" ।

छट्ठी–संज्ञा स्त्री० दे० "छठी" ।

छठ–संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठी, प्रा० छट्ठी] पखवारे का छठा दिन । प्रति पक्ष की छठी तिथि ।

छठई–वि० स्त्री० दे० "छठवाँ" ।

छठवाँ–वि० दे० "छठा" ।

छठाँ–वि० [सं० षष्ठ] [स्त्री० छठी] जो क्रम में पांच और वस्तुओं के उपरांत हो । गिनती के क्रम से जिसका स्थान छः पर हो ।

मुहा०—छठे छमासे = कभी कभी । बहुत दिनों पर ।

छठी–संज्ञा स्त्री० [सं० षष्ठी, प्रा० छट्ठी] (१) छट्ठी । जन्म से छठे दिन की पूजा । उ०—छठी बारहौं लोक वेद विधि करि सुविधा न विधानी । राम लखन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित मुनि ज्ञानी ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—पूजना ।—पुजाना ।

मुहा०—छठी का दूध निकलना = कठिन श्रम पड़ना । बहुत हैरानी होना । भारी संकट पड़ना । छठी का दूध निकालना = बहुत हैरान करना । अधिक परिश्रम लेना । बहुत कष्ट देना । छठी का दूध याद आना = सब सुख भूल जाना । बचपन की सारी खिलाई पिलाई निकल आना । घोर परिश्रम पड़ना । बहुत हैरानी होना । भारी संकट पड़ना । छठी का राजा = पुश्तैनी अमीर । पुराना रईस । छठी में नहीं पड़ना = (१) भाग्य में न होना । (२) प्रकृति में न होना । प्रकृतिविरुद्ध होना । स्वभाव के प्रतिकूल होना । जैसे, देना तो उनकी छठी में नहीं पड़ा है ।

(२) एक देवी जिसकी पूजा छठी के दिन होती है ।

छड़–संज्ञा स्त्री० [सं० शर] धातु या लकड़ी आदि का लंबा पतला बड़ा टुकड़ा । धातु या लकड़ी का डंडा । जैसे, लोहे की छड़, बांस की छड़ ।

विशेष—बहुत से स्थानों में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है ।

छड़ना–क्रि० स० [हिं० छाँटना] अनाज आदि को ओखली में कूट कर साफ़ करना । ओखली में रख कर अनाज कूटना जिसमें कने निकल जांय और अनाज साफ़ हो जाय । छाँटना । जैसे, चावल छड़ना ।

छड़बाँस–संज्ञा पुं० [हिं० छड़ + बाँस] जहाज़ पर की झंडी । फरहरा । (लश०)

छड़वालो–संज्ञा पुं० दे० "छड़ियाल" ।

छड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० छड़] (१) पैर में पहनने का चूड़ी के आकार का एक गहना । यह चांदी की पतली छड़ या गुँधे हुए तारों का बनाया जाता है और पांच से दस बीस तक एक एक पैर में पहना जाता है । (२) मोतियों की लड़ों का गुच्छा । लच्छा ।

वि० [हिं० छूँटना] अकेला । एकाकी ।

यौ०—छड़ी सवारी । छड़ी छटांक ।

छड़िया–संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी] डेवढ़ीदार । दरबान । द्वारपाल । उ०—परिया आंगन और को लट छुट छड़िया काम । तिल जो चिबुक पर लसत है सो सिंगार रस धाम ।—मुबारक ।

छड़ियाल–संज्ञा पुं० [हिं० छड़ी] एक प्रकार का भाला या बरछा ।

छड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छड़] (१) सीधी पतली लकड़ी । पतली लाठी । (२) लहँगे पाजामे आदि में गोलरू बुटकी आदि की सीधी टँकाई । (दरज़ी) । (३) झंडी जिसे लोग मुसलमान पीरों की मज़ार पर चढ़ाते हैं । सदा । झंडी । जैसे, मदार की छड़ी । (४) मुरिया पीटने या चाँदी छुड़ाने की पतली लकड़ी ।

वि० स्त्री० [हिं० छूँटना] अकेली । एकाकिनी ।

मुहा०—छड़ी छटांक या छड़ी सवारी = (१) [illegible]

उत्तर पड़ता था। इसे अहिच्छत्र वा अहिक्षेत्र भी कहते थे। महाभारत, हरिवंश और विष्णु पुराण इत्यादि में इसका उल्लेख है।

छत्रवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद का पेड़।

छत्रांग–संज्ञा पुं० [सं०] गोदंती हरताल।

छत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खुमी। ढिँगरी। (२) धनियाँ। (३) सोवा। (४) मजीठ। (५) रास्ना। रासन। (६) सुश्रुत के अनुसार एक रसायन औषध।

छत्राक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुमी। ढिँगरी। (२) कुकुरमुत्ता। (३) जलबबूल।

छत्राकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रास्ना नाम की ओषधि। (२) सर्पाक्षी।

छत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] खुमी। ढिँगरी।

छत्री–वि० [सं० छत्रिन्] छत्रयुक्त। छत्र धारण करनेवाला।
संज्ञा पुं० नापित। नाई।
संज्ञा पुं० दे० "क्षत्रिय"।

छत्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर। (२) कुंज।

छद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आवरण। ढकनेवाली वस्तु। ढक्कन, छाल इत्यादि। जैसे, रदच्छद। उ०—चारु विधु मंडल में विद्रुम विराजै, छद मोतिन के छाजै ते छपाए छपते नहीं। (२) पक्ष। चिड़ियों का पंख। (३) पत्ता। (४) ग्रंथिपर्णी वृक्ष। गठिवन। (५) तमाल वृक्ष। (६) तेजपत्ता।

छदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आवरण। आच्छादन। ढक्कन। (२) पत्ता। (३) चिड़ियों का पंख। (४) तमालपत्र। (५) तेजपत्ता।

छदपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता। (२) भोजपत्र।

छदम*–संज्ञा पुं० दे० "छद्म"।

छदाम–संज्ञा पुं० [हिं० छ + दाम] पैसे का चौथाई भाग।

छदहरा–संज्ञा पुं० [हिं० छ + सं० रद वा हिं० दाँत] (१) वह पशु जो छः दाँत तोड़ चुका हो। (२) नटखट लड़का। शरीर लड़का।

छद्म–संज्ञा पुं० [सं० छद्मन्] (१) छिपाव। गोपन। (२) व्याज। बहाना। हीला। (३) छल। कपट। धोखा। जैसे, छद्मवेश।

छद्मवेश–संज्ञा पुं० [सं०] बदला हुआ वेश। कृत्रिम वेश। दूसरों को धोखा देने के लिये बनाया हुआ वेश।

छद्मवेशी–वि० [सं० छद्मवेशिन्] जो वेश बदले हो। जो अपना असली रूप छिपाए हो।

छद्मिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय।

छद्मी–वि० [सं० छद्मिन्] [स्त्री० छद्मिनी] (१) बनावटी वेश धारण करनेवाला। अपना असली रूप छिपानेवाला। छली। कपटी।

छन–संज्ञा पुं० दे० "क्षण"।

छनक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झनझनाहट। झनकार। छन छन करने का शब्द। उ०—कवि मतिराम भूषननि की छनक सुनि चाँद भो चपल चित रसिक रसाल को।—मतिराम। (२) जलती वा तपती हुई वस्तु पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन होने का शब्द।
संज्ञा स्त्री० [सं० शंका] किसी आशंका से चौंक कर भागने की क्रिया। भड़क।
संज्ञा पुं० [सं० क्षण, हिं० छन + एक] एक क्षण। उ०—अरि छोटो गनिए नहीं, जातैं होत बिगार। तृन समूह को छनक में, जारत तनिक अँगार।—वृंद।

छनकना–क्रि० अ० [अनु० छन छन] (१) किसी तपती हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर से पानी आदि के बूँद का छन छन शब्द करके उड़ जाना। उ०—मैं दै लयो सुकर छुवत छनकि गो नीर। लाल तुम्हारो अरगजा उर ह्वै लग्यो अबीर।—बिहारी। (२) * छन छन शब्द करना। झनकार करना। झनझनाना। उ०—खनकंत तेज बख्तर तीर। छनकंत तेग जँजीरतु मीर।—सूदन।
क्रि० अ० [सं० शंका] चौकन्ना होकर भागना। भड़कना। उ०—यह गाय, पास आते ही छनकती है।

छनक मनक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) गहनों के बजने का शब्द। आभूषणों की झनकार। (२) साज बाज। ठसक। उ०—त्योनों में स्त्रियाँ बड़ी छनक मनक से आती हैं। (३) दे० "छमक छमक"।

छनकाना–क्रि० स० [हिं० छनकना] (१) पानी को आँच पर रख कर भाप बना कर उड़ाना जिससे इसका परिमाण कुछ कम हो जाय। (२) तपे हुए बरतन में पानी या और कोई द्रव पदार्थ डाल कर गरम करना। बघकाना।
क्रि० स० [हिं० छनकना] चौंकाना। चौकन्ना करना। भड़काना।

छनछनाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) किसी तपी हुई धातु (जैसे *गरम तवा*) पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। (२) खौलते हुए घी, तेल आदि में किसी गीली वस्तु (जैसे, आटे की लोई, तरकारी आदि) के पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। छन छन का शब्द होना। (३) झनझनाना। झनकार होना।
क्रि० स० (१) छन छन का शब्द उत्पन्न करना। (२) झनकार करना।

छनछबि*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणछवि] क्षणप्रभा। बिजली।

छनदा*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] रात। रात्रि। उ०—तजि सँक सकुचति न चित, बोलति बाक कुबाक। दिन छनदा छाकी रहत, छुटत न छिन छबि छाक।—बिहारी।

मधुमक्खी, भिड़ आदि के रहने का घर जो मोम का होता है और जिसमें बहुत से खाने रहते हैं। (४) छाते की तरह दूर तक फैली हुई वस्तु। छतनार चीज़। चकत्ता। जैसे, दूब का छत्ता, दाद का छत्ता। (५) कमल का बीजकोश।

छत्तीस—वि० [सं० षट्त्रिंशति, प्रा० छत्तीसा] जो गिनती में तीस और छः हो।

संज्ञा पुं० (१) तीस और छः के योग की संख्या। (२) इस संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है —३६।

छत्तीसवाँ—वि० [हिं० छत्तीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में पैंतीस और वस्तुओं के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान छत्तीस पर हो।

छत्तीसा—संज्ञा पुं० [हिं० छत्तीस] (छत्तीसों जातियों की सेवा करनेवाला वा जिसे छत्तीस बुद्धि हो) नाई। हज्जाम।

वि० [स्त्री० छत्तीसी] धूर्त। चालाक। चतुर।

छत्तीसी—वि० [हिं० छत्तीस] (१) गहरे छल छंदवाली (स्त्री)। (२) छिनाल।

छत्तुर†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र] (१) छाता। (२) वह गोबर जो कंडों के ढेर (कंडौर) की चोटी पर छोपा जाता है। (३) वह गोबर जो खलिहान में अनाज की राशि के सिर पर चोरी या नज़र से बचाने के लिये रख वा छोप दिया जाता है। (४) वह छप्पर जो भूसे की राशि के ऊपर छाया या रक्खा जाता है। (५) दे० "छतरी"।

छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाता। छतरी। (२) राजाओं का छाता जो राजचिह्नों में से है। यह छाता बहुमूल्य स्वर्णदंड आदि से युक्त रत्नजटित तथा मोती की झालरों आदि से अलंकृत होता है। भोजराज कृत युक्तकल्पतरु नामक ग्रंथ में छत्रों के परिमाण वर्ण आदि का विस्तृत विवरण है। जिस छत्र का कपड़ा सफ़ेद हो और जिसके सिरे पर सोने का कलश हो उसका नाम कनकदंड है। जिसका डंडा, कमानी कील आदि विशुद्ध सोने की हों, कपड़ा और डोरी कृष्ण वर्ण हों, जिसमें बत्तीस बत्तीस मोतियों की बत्तीस लड़ों की झालरें लटकती हों और जिसमें अनेक रत्न जड़े हों, उस छत्र का नाम नवदंड है। इसी नवदंड छत्र के ऊपर यदि आठ अंगुल की एक पताका लगा दी जाय तो वह दिग्विजयी छत्र हो जाता है।

यौ०—छत्रछाँह = रक्षा। शरण।

मुहा०—किसी की छत्रछाँह में होना = किसी की शरण में होना। किसी की रक्षा में रहना।

(३) खुमी। भूफोड़। कुकुरमुत्ता। (४) बच की तरह का एक पेड़। (५) छतरिया विष। गर विष। अतिच्छत्र।

छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खुमी। भूफोड़। कुकुरमुत्ता। (२) छाता। (३) तालमखाने की जाति का एक पौधा जिसके पत्ते और फल ललाई लिए होते हैं। (४) कौड़िल्ला नाम की चिड़िया। मछरंग। (५) मंदिर। मंडप। देवमंदिर। (६) शहद का छत्ता। (७) मिस्री का कूजा।

छत्रकदेही—संज्ञा पुं० [सं० छत्रकदेहिन्] रावण चाकी नामक जल-जंतु जिसके शरीर के ऊपर एक गोल छाता सा रहता है। यह समुद्र में होता है।

छत्रचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ फल निकालने के लिये फलित ज्योतिष का एक चक्र। इसमें नौ नौ घरों की तीन पंक्तियाँ बनाते हैं जिनमें क्रमशः अश्विनी से लेकर अश्लेषा तक, मघा से ज्येष्ठा तक और मूल से रेवती तक नौ नौ नक्षत्रों के नाम रखते हैं। फिर नक्षत्र के नाम के अनुसार शुभाशुभ की गणना करते हैं।

छत्रधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छत्र धारण करनेवाला मनुष्य। (२) राजा। (३) वह सेवक जो राजा के ऊपर छाता लगावे।

छत्रधारी—संज्ञा पुं० [सं० छत्रधारिन्] जो छत्र धारण करे। जैसे, छत्रधारी राजा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) (छत्र धारण करनेवाला) राजा। (२) वह सेवक जो राजाओं के ऊपर छाता लगावे।

छत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] छत्र का अधिपति। राजा।

छत्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थलपद्म। (२) भोजपत्र का वृक्ष। पद्मम। (३) मानपत्ता। मानकच्चू। मान। (४) छतिवन।

छत्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकपुष्प।

छत्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल का क्षत्रिय। क्षत्रियाधम।

उ०—छत्रबंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिये सहित समुदाई।—तुलसी।

छत्रभंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का नाश। (२) ज्योतिष का एक योग जिसे राजा का नाशक माना है। (३) वैधव्य। (४) स्वतंत्रता। अराजकता। (५) हाथी का एक दोष जो उसके दोनों दाँतों के कुछ नीचे ऊपर होने के कारण माना जाता है।

छत्रमहाराज—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार आकाशस्थ चार दिक्पाल जिनके नाम ये हैं—प्रथम वीणाराज जो पूर्व दिशा के अधिपति हैं और हाथ में वीणा लिए रहते हैं; दूसरे [illegible] जो पश्चिम दिशा के अधिपति हैं और हाथ में [illegible] लिए रहते हैं; तीसरे ध्वजराज जो उत्तर दिशा के अधिपति हैं और हाथ में ध्वजा लिए रहते हैं, चौथे चैत्यराज जो दक्षिण दिशा के अधिपति हैं और हाथ में चैत्य धारण करते हैं। बौद्ध मंदिरों में प्रायः इनकी मूर्तियाँ रहती हैं।

छत्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगर जो पांचा। दे

वर वचन हमारे। बिन व्रजनाथ ताप नैनन की कौन हरे हरि अंतर कारे।—तुलसी।

छपन‡-वि० [हिं० छिपना] गुप्त। गायब। लुप्त। (पंजाबी) उ०—न जाने कहाँ छपन हो गई।—श्रद्धाराम।

संज्ञा पुं० [सं० क्षपण] विनाश। नाश। संहार। उ०—छोनी में न छाड़ो छप्यो, छोनिप को छोना छोटो छोनिप छपन बाँको बिरुद बहत हौं।—तुलसी।

छपना-क्रि० अ० [हिं० चपन = दबना] (१) छापा जाना। चिह्न या दाव पड़ना। (२) चिह्नित होना। अंकित होना। जैसे, छींट छपना, मुहर छपना। (३) यंत्रालय में किसी लेख आदि का मुद्रित होना। छापेखाने में अक्षरों आदि का अंकित होना। जैसे, पुस्तक छपना। (४) शीतला का टीका लगना।

‡क्रि० अ० दे० "छिपना"।

छपरखट, छपरखाट-संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर + खाट] मसहरीदार पलंग। वह पलंग जिसके ऊपर डंडों के सहारे कपड़ा तना हो।

छपरबंद-वि० [हिं० छप्पर + बंध] [संज्ञा छपरबंदी] (१) जिनका घर बना हो। आबाद। बसे हुए। पाही का उलटा। जैसे, छपरबंद असामी, छपरबंद बाशिंदा। (२) छप्पर छाने का काम करनेवाला। छप्पर छानेवाला। (३) पूना के आस पास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है।

छपरबंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छपरबंद] (१) छवाई। छप्पर छाने का काम। (२) छाने की मज़दूरी। छवाई।

छपरा‡-संज्ञा [हिं० छप्पर] (१) बाँस का टोकरा जो पत्तों से मढ़ा होता है और जिसमें तमोली पान रखते हैं। (२) दे० "छप्पर"।

छपरिया-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "छपरी"। (२) छोटा छप्पर।

छपरी*‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० छप्पर] झोपड़ी। मढ़ी। उ०—चंदन की चुटकी भली, कहा बबूल बनराव। साधुन की छपरी भली, बुरो असाधु को गाँव।—कबीर।

छपवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "छपाई"।

छपवाना-क्रि० स० दे० "छपाना"।

छपवैया‡-संज्ञा पुं० [हिं० छापना] (१) छापनेवाला। (२) छपवानेवाला। (३) मुद्रित करानेवाला। उ०—मंगल सदाहीं करें राम हू प्रसन्न सदा राम रसिकावली या ग्रंथ छपवैया को।—जुगलेश।

छपही‡-संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने या चाँदी का एक गहना जिसे स्त्रियाँ हाथ की उँगलियों में पहनती हैं।

छपा-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षपा] (१) रात्रि। रात। उ०—छपन छपा के। रवि इव भा के। दंड उतंग उड़ाके। विविध कता के बँधे पताके। छुवैं जे रवि रथ चाके।—रघुराज। (२) हलदी।

छपाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] (१) छापने का काम। मुद्रण। अंकन। (२) छापने का ढंग। (३) छापने की मज़दूरी।

छपाकर-संज्ञा पुं० [सं० क्षपाकर] (१) चंद्रमा। चाँद। (२) कपूर। कपूर।

छपाका-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) पानी पर किसी वस्तु के ज़ोर से पड़ने का शब्द। (२) छींटा। ज़ोर से उछला या फेंका हुआ पानी।

क्रि० प्र०—मारना।

छपाना-क्रि० स० [हिं० छापना का प्रे०] (१) छापने का काम कराना। (२) चिह्नित कराना। अंकित कराना। (३) छापेखाने में पुस्तक आदि अंकित कराना। मुद्रित कराना। (४) शीतला का टीका लगवाना।

क्रि० स० दे० "छिपाना"।

क्रि० स० [अनु० छप छप या हिं० छापना] जोतने के लिये खेत को सींचना।

छपानाथ-संज्ञा पुं० दे० "छपानाथ"।

छपाव*‡-संज्ञा पुं० दे० "छिपाव"।

छप्पन-वि० [सं० षट्पंचाशत्, प्रा० छप्पणम, छप्पण] जो गिनती में पचास और छः हो। पचास से छः अधिक।

संज्ञा पुं० (१) पचास और छः की संख्या। (२) इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५६।

छप्पय-संज्ञा स्त्री० [सं० षट्पद] एक मात्रिक छंद जिसमें ६ चरण होते हैं। इस छंद में पहले रोला के चार पद, फिर उल्लाला के दो पद होते हैं। लघु गुरु के क्रम से इस छंद के ७१ भेद होते हैं। उ०—अजय विजय बलकर्ण बीर बैताल बिहंकर। मर्कट हरि हर ब्रह्म इंद्र चंदन सु शुभंकर। स्वान सिंह शार्दूल कच्छ कोकिल खर कुंजर। मदन मत्स्य ताटंक शेष सारंग पयोधर। शुभकमल कंद वारण शलभ, भवन अजंगम सर सरस। गणि समर सु सारस मेरु कहि, मकर अली सिद्धिहि सरस।

छप्पर-संज्ञा पुं० [हिं० छोपना] (१) बाँस या लकड़ी की फट्टियों और फूस आदि की बनी हुई छाजन जो मकान के ऊपर छाई जाती है। छाजन। छान।

क्रि० प्र०—छाना।—डालना।—पड़ना।—रखना।

यौ०—छप्परबंद।

मुहा०—छप्पर पर रखना = दूर रखना। अलग रखना। रहने देना। छोड़ देना। चर्चा न करना। ज़िक्र न करना। उ०—तुम अपनी घड़ी सड़ी छप्पर पर रक्खो, लाओ हमारा रुपया दो। छप्पर पर फूस न होना = अत्यंत निर्धन होना। कंगाल होना। अकिंचन होना। छप्पर फाड़कर देना = अना-

छनन मनन–संज्ञा पुं० [अनु०] कड़ाह के खौलते घी या तेल में किसी तली जानेवाली गीली वस्तु के पड़ने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—छनन मनन होना = कड़ाह में पूरी कचौरी आदि निकलना। पूरी, पकवान आदि बनना।

छनना–क्रि० अ० [सं० क्षरण] (१) किसी चूर्ण (जैसे आटा) वा द्रव पदार्थ (जैसे, दूध, पानी) का किसी कपड़े वा जाली के महीन छेदों में से होकर इस प्रकार नीचे गिरना कि मैल, खूद, सीठी आदि अलग होकर ऊपर रह जाय। छलनी से साफ़ होना। (२) छोटे छोटे छेदों से होकर आना। उ०—पेड़ की पत्तियों के बीच से धूप छन छन कर आ रही थी। (३) किसी नशे का पिया जाना। जैसे, भांग छनना, शराब छनना।

मुहा०—गहरी छनना = (१) खूब मेल जोल होना। गाढ़ी मैत्री होना। परस्पर रहस्य की बातें होना। खूब घुट घुट कर बातें होना। (२) आपस में चलना। बिगाड़ होना। लड़ाई होना। एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न होना। उ०—इन दोनों में आज कल गहरी छन रही है।

(४) बहुत से छेदों से युक्त होना। स्थान स्थान पर छिद जाना। छलनी हो जाना। जैसे, इस कपड़े में अब क्या रह गया है, बिलकुल छन गया है। (५) बिध जाना। अनेक स्थानों पर चोट खाना। जैसे, उसका सारा शरीर तीरों से छन गया है। † (६) छान बीन होना। निर्णय होना। सच्ची और झूठी बातों का पता चलना। जैसे, मामला छनना। (७) कड़ाह में से पूड़ी पकवान आदि तलकर निकलना। जैसे, पूरी छनना।

संज्ञा पुं० छानने की वस्तु। जैसे, महीन छनना (कपड़ा)।

छनवाना–क्रि० स० दे० "छनाना"।

छनाका–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) खनाका। ठनाका। झनकार। (२) रुपयों के बजने का शब्द।

छनाना–क्रि० स० [हिं० छानना] (१) किसी दूसरे से छानने का काम कराना। (२) नशा आदि पिलाना। जैसे, भांग छनाना। (३) कड़ाह में पकवान तलवाना।

छनिक*–वि० दे० "क्षणिक"।

संज्ञा पुं० [हिं० छन + एक] एक क्षण। अल्प काल।

छन्न–वि० [सं०] (१) आवृत। आच्छादित। ढका हुआ। (२) गुप्त। गायब।

संज्ञा पुं० (१) एकांत स्थान। निर्जन स्थान। (२) गुप्त स्थान।

संज्ञा पुं० [सं० छंद] छंदी नाम का गहना।

संज्ञा पुं० [अनु०] (१) किसी तपी हुई चीज पर पानी आदि पड़ने से उत्पन्न शब्द। (२) कड़कड़ाते तेल या घी में तलने की वस्तु पड़ने का शब्द।

मुहा०—छन्न होना = सूख जाना। उड़ जाना।

(३) धातुओं के पत्तरों के परस्पर टक्कर से उत्पन्न शब्द। झनकार। ठनकार। † (४) छोटी छोटी कंकड़ियां। बजरी।

छन्नमति–वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पर परदा पड़ा हो। जड़। मूर्ख।

छन्ना–संज्ञा पुं० दे० "छनना"।

छप–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पानी में किसी वस्तु के एक बारगी जोर से गिरने का शब्द। (२) पानी के एक बारगी पड़ने का शब्द। पानी का छींटा के जोर से पड़ने का शब्द।

यौ०—छपछप = भरपूर।

छपकना†–क्रि० स० [छप से अनु०] (१) पतली कमची से किसी को मारना। पतली लचीली छड़ी से पीटना। (२) कटारी या तलवार के आघात से किसी वस्तु को काट डालना। काट डालना। छिन्न करना।

छपका–संज्ञा पुं० [हिं० चपकना] सिर में पहनने का एक गहना जिसे लखनऊ में मुसलमान स्त्रियां पहनती हैं।

†संज्ञा पुं० [हिं० छपकना] पतली कमची। सांटा।

संज्ञा पुं० [हिं० चार + पका] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें पशुओं के खुर पक जाते हैं। खुरपका।

संज्ञा पुं० [अनु०] (१) पानी का भरपूर छींटा। छींटा। (२) एक प्रकार का जाल जिसमें कबूतर फँसाए जाते हैं। (३) लकड़ी के संदूक में वह ऊपर का पटरा जिसमें कुंडे की जंजीर लगी रहती है। (४) पानी में हाथ पैर मारने की क्रिया वा भाव।

क्रि० प्र०—मारना।—लेना।

छपछपाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) पानी पर कोई वस्तु जोर से पटक कर छपछप शब्द उत्पन्न करना। पानी पर हाथ पांव मारना। पानी पर हाथ पांव पटकना। (२) कुछ तैर लेना। जैसे, ये तैरते क्या हैं, यों ही पानी पर छपछपाते हैं।

क्रि० स० [अनु०] पानी को छड़ी या हाथ आदि पटक कर इस प्रकार हिलाना जिस में छप छप शब्द उत्पन्न हो।

छपटना†–क्रि० अ० [सं० चिपिट, हिं० चिपटना] (१) चिपकना। किसी वस्तु से लगना या सटना। (२) आलिंगित होना।

छपटाना†–क्रि० स० [हिं० छपटना] (१) चिपकाना। चिमटाना। (२) छाती से लगाना। आलिंगन करना।

छपटी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छपटना] चैली। लकड़ी का टुकड़ा जो छीलने से निकले।

वि० पतला। दुबला। कृश।

छपड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का भुजंगा पक्षी।

छपद*–संज्ञा पुं० [सं० षट्पद] भ्रमर। भौंरा। उ०—(क) उलटि तहां पग धारिये जासों मन मान्यो। छपद कंज तजि बेलि सों लटि प्रेम न जान्यो।—सूर। (ख) छपद सुमति

छरछंदी–संज्ञा पु० दे० "छलछंद"।

छरछंदी–वि० दे० "छलछंदी"।

छरछर–संज्ञा पु० [हिं० छर] (१) कणों या छर्रों के वेग से निकलने और दूसरी वस्तुओं पर गिरने का शब्द। उ०—तिहि फिर मंडल बीच परी गोली झर झर झर। तहँ फुट्टिय कर गैार श्रोन छुट्टिय छुल छर छर।—सूदन। (२) पतली लचीली छड़ी के लगने का शब्द। सट सट। उ०—काहे के हरि इतनो त्रास्यो। सुन री मैया मेरो भैया कितनो गोरस नास्यो। जब रजु सों कर गाढ़ो बांधे छर छर मारी सांटी।—सूर।

छरछराना–क्रि० अ० [सं० क्षार, हिं० छर] (१) नमक या क्षार आदि लगने से शरीर के घाव या छिले हुए स्थान में पीड़ा होना। जैसे, हाथ छरछरा रहा है। (२) क्षार, नमक आदि का शरीर के घाव या कटे हुए स्थान पर लगा कर पीड़ा उत्पन्न करना। उ०—नमक घाव पर छरछराता है।

क्रि० अ० [अनु० छर छर] कणों को वेग से किसी वस्तु पर गिराना या बिखराना।

छरछराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० छरछराना] (१) छर्रों या कणों के वेगपूर्वक एक साथ निकलने और गिरने का भाव। (२) घाव में नमक आदि लगने से उत्पन्न पीड़ा।

छरना–क्रि० अ० [सं० क्षरण, प्रा० छरण] (१) चूना। बहना। टपकना। झरना। उ०—ऊँची अटा घटा इव राजहिँ छरति छटा छिति छोरैं।—रघुराज।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) चकचकाना। चुचुवाना। उ०—बिथुरी अलक, शिथिल कटि डोरी नखछत छरितु मरालगामिनी।—सूर। (३) छँटना। दूर होना। न रह जाना। उ०—अब हरि मुरली अधर धरत। रग मोहे, मृगयूथ भुलाने, निरखि मदन छवि छरत।—सूर।

क्रि० अ० [हिं० छलना] भूत प्रेत आदि द्वारा मोहित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

†*क्रि० स० [हिं० छलना] छलना। धोखा देना। ठगना। मोहित करना। भुलाना। उ०—तू कांवरु परा बस टोना। भूला योग छरा तोहि सोना।—जायसी।

क्रि० स० दे० "छड़ना"।

छरपुरी–संज्ञा स्त्री० [सं० शैल + पुष्प] (१) छरीला। (२) एक पुड़िया जिसमें छरपुरी आदि सुगंधित द्रव्य होते हैं और जो विवाहों में चढ़ाए जाते हैं।

छरभार*†–संज्ञा पु० [सं० सर + भार] (१) प्रबंध या कार्य्य का बोझ। कार्य्यभार। उ०—(क) देस कोस परिजन परिवारू गुरु पद रजहिँ लाग छर भारू।—तुलसी। (ख) लखि अपने सिर सब छर भारू। कहि न सकहिँ कछु करहिँ बिचारू।—तुलसी। (२) झंझट। बखेड़ा।

छरहरा–वि० [हिं० छड़ + हरा (प्रत्य०)] [स्त्री० छरहरी, संज्ञा छरहरापन] (१) क्षीणांग। सुबुक। हलका। जो मोटा या भद्दा न हो। जैसे, छरहरा बदन। उ०—राधिका संग मिलि गोप नारी। चलीं हिलि मिलि सबै रंग विहँसति तरुनि परस्पर कौतुहल करत भारी।............ युवति आनंद भरी भईं जुरि कै खरी नई छरहरी अति बैस थोरी।—सूर। (२) चुस्त। चालाक। तेज़। फुरतीला।

† वि० [हिं० छर + हारा (प्रत्य०)] बहुरूपिया।

छरहरापन–संज्ञा पु० [हिं० छरहरा + पन] (१) क्षीणांगता। सुबुकपना। (२) चुस्ती। फुरती।

छरा–संज्ञा पु० [सं० शर, हिं० छड़] (१) छड़। (२) लर। लड़ी। उ०—गुजहरा के छरा उर में पट पीत सिंगार की छवि न्यारी। (३) रस्सी। उ०—टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन देहौं।—रसखान। (४) नारा। इज़ारबंद। नीबी। उ०—(क) कहैं पद्माकर नवीन अधनीबी खुली अध खुले छहरि छरा के छोर छलकैं।—पद्माकर। (ख) तहँ प्रीतम दौड़ भए रस के बस हाथ चलावन जोरी करें। गिरि जच्छ-बधून के बच्छ कटू खिँचि, छोर छरान की डोरी परें।—लछमणसिंह।

छरिंदा–वि० दे० "छरीदा"।

छरिया–संज्ञा पु० [हिं० छड़ा] छड़िया। छड़ी बरदार। चोबदार।

छरिला–संज्ञा पु० दे० "छरीला"।

छरी*–संज्ञा स्त्री० दे० "छड़ी"।

वि० (१) दे० "छड़ी"। (२) दे० "छली"।

छरीदा–वि० [फ़ा० जरीदः] (१) अकेला। तने तनहा। बिना किसी संगी साथी का। (२) बिना कोई बोझ या असबाब लिए। (यात्रा के संबंध में इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है)।

छरीदार*–वि० संज्ञा पु० दे० "छड़ीदार"।

छरीला–संज्ञा पु० [सं० शैलेय] काई की तरह का एक पौधा जिसमें केसर या फूल नहीं लगते। यह वास्तव में खुमी के समान परांगमची (Parasite) पौधा है जो भिन्न भिन्न प्रकार की काइयों पर जम कर उन्हीं के साथ मिल कर अपनी वृद्धि करता है। यह सीड़वाली ज़मीन तथा कड़ी से कड़ी चट्टानों पर उभड़े हुए चकत्तों या बाल के लच्छों के रूप में फैलता है और कुछ भूरापन लिए होता है। यह पौधा अधिक से अधिक गरमी या सरदी सह सकता है, यहां तक कि जहां और कोई वनस्पति नहीं हो सकती वहां भी यह पाया जाता है। सूखने पर इसमें से एक प्रकार की मीठी सुगंध आती है जिसके कारण यह मसालों में पड़ता है। औषध में भी इसका प्रयोग होता है। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, कफ

यास देना। बिना परिश्रम प्रदान करना। बैठे बैठाए अकस्मात देना। घर बैठे पहुँचाना। उ०—जब देना होता है तो ईश्वर छप्पर फाड़ कर देता है। छप्पर रखना = (१) एहसान रखना। बोझ रखना। निहोरा लगाना। उपकृत करना। (२) दोषारोपण करना। दोष लगाना। कलंक लगाना।

(२) छोटा ताल या गड्ढा जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा रहता है। डाबर। पोखर। तलैया।

छप्परबंद—संज्ञा पुं० [हिं० छप्पर + फ़ा० बंद] (१) छप्पर छानेवाला (२) पूना के आस पास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है।

वि० जिसने घर बना लिया हो। जो बस गया हो। बसा हुआ। आबाद। जैसे, छप्परबंद असामी।

छबा—संज्ञा स्त्री० दे० "छवि"।

छबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० छबड़ी] (१) टोकरा। दला। झाबा। छितना। (२) खांचा।

छबतखती—संज्ञा स्त्री० [हिं० छवि + अ० तकतीअ] शरीर की सुंदर बनावट। सुंदरता। सज धज।

छबरा—संज्ञा पुं० दे० "छबड़ा"।

छबि—संज्ञा स्त्री० दे० "छवि"।

छबीला—वि० [हिं० छवि + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० छबीली] शोभायुक्त। सुहावना। सुंदर। सज धज का। बाँका। उ०—छला छबीले छैल कौ, नवल नेह लहि नारि। चूमति चाहति लाइ उर, पहिरति धरति उतारि।—बिहारी।

छबुँदकिया—संज्ञा पुं० दे० "छबुंदा"।

छबुंदा—संज्ञा पुं० [हिं० छ + बुँदकी] गुबरैले की तरह का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छ काली बुँदकियाँ होती हैं। यह बड़ा विषैला होता है। कहते हैं कि इसका काटा नहीं जीता।

छब्बी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पैसा। (दलाल)

छब्बीस—वि० [सं० षड्विंश, प्रा० छव्वीसा] जो गिनती में बीस और छ हो।

संज्ञा पुं० (१) बीस से छ अधिक की संख्या। (२) इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२६।

छब्बीसवाँ—वि० [हिं० छब्बीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में पचीस और वस्तुओं के उपरांत हो। जिसका स्थान छब्बीस पर हो।

छब्बीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छब्बीस] (१) छब्बीस वस्तुओं का समूह। (२) फलों की बिक्री का सैकड़ा जो छब्बीस गाही या १३० का होता है।

छमंड—संज्ञा पुं० [सं०] पितृविहीन बालक। वह बालक जिसका पिता मर गया हो।

छम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) घुँघुरू आदि के बजने का शब्द। (२) पानी बरसने का शब्द।

यौ०—छमाछम।

संज्ञा पुं० दे० "क्षम"।

छमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छम] चाल ढाल की बनावट। ठसक। ठाटबाट। (स्त्रियों के लिये)

छमकना—क्रि० अ० [हिं० छम + क] (१) घुँघुरू आदि हिला कर छम छम करना। (२) गहने आदि बजाना। गहनों की झनकार करना। ठसक दिखाना। (स्त्रियों के लिये) (३) दे० "छौंकना"।

छमछम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) वह शब्द जो चलने में पैर में पहने हुए गहनों के बजने से होता है। नूपुर, पायल, घुँघुरू आदि के बजने का शब्द। उ०—छमछम करि छिति चलति छुटी पायल दौड़ छुजी।—सुकवि। (२) मेंह बरसने का शब्द।

क्रि० वि० छम छम शब्द के साथ।

छमछमाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) छम छम शब्द करना। (२) छम छम शब्द करके चलना।

छमना—क्रि० स० [सं० क्षमन, प्रा० छमन] क्षमा करना। उ०—छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल वचन मन लाई।—तुलसी।

छमा—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षमा"।

छमाछम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) गहनों के बजने का शब्द। (२) पानी बरसने का शब्द।

क्रि० वि० लगातार छम छम शब्द के साथ, जैसे छमाछम पानी बरसना।

छमापन—संज्ञा पुं० दे० "क्षमापन"।

छमावान—वि० दे० "क्षमावान्"।

छमाशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + माशा] छ माशे का बाट।

छमासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + सं० मास] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु से छ महीने पर उसके संबंधी करते हैं।

छमिच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० समस्या] (१) समस्या। (२) इशारा। संकेत।

छमुख—संज्ञा पुं० [हिं० छ + मुख] षडानन। कार्त्तिकेय।

छय—संज्ञा पुं० [सं० क्षय] नाश। विनाश।

विशेष—दे० "क्षय"। उ०—जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ।—तुलसी।

छर—संज्ञा पुं० दे० "छल"।

विशेष—दे० "क्षर"।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] छर्रों या कणों के वेग से निकलने या गिरने का शब्द। उ०—छर छर कंकड़ियाँ गिर रही हैं।

यौ०—छर छर।

छरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक तरह का टप्पा।

छरकना—क्रि० अ० [अनु० छर छर] (१) छर छर करके छिटकना या बिखरना। (२) किसी पदार्थ का कभी तल को स्पर्श करते और कभी उछलते हुए वेग से किसी ओर जाना।

क्रि० अ० दे० "छलकना"।

उद्गारित होना। उ०—(क) मनहु उमगि अँग अँग छवि छलकै।—तुलसी।—(ख) गोकुल में गोपिन गोविंद संग खेली फाग राति भरि, प्रात समय ऐसी छवि छलकै।—पद्माकर।

छलकाना—क्रि० स० [हिं० छलकना] किसी पात्र में भरे जल आदि को हिला डुला कर बाहर उछालना।

छलछंद—संज्ञा पुं० [हिं० छल + छंद] [वि० छलछंदी] कपट का जाल। कपट का व्यवहार। चालबाजी। धूर्त्तता।

छलछंदी—वि० [हिं० छलछंद] कपटी। धूर्त्त। चालबाज़। धोखेबाज़।

छलछलाना—क्रि० अ० [अनु०] छल छल शब्द करना। पानी आदि थोड़ा थोड़ा करके गिराना जिसमें छल छल शब्द उत्पन्न हो।

छलछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपट व्यवहार। धूर्त्तता। धोखेबाज़ी। उ०—मोहिँ सपनेहु छलछिद्र न भावा।—तुलसी।

छलछिद्री—संज्ञा पुं० [हिं० छलछिद्र] धोखेबाज़। छली। कपटी।

छलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छलित] छल करने का कार्य्य।

छलना—क्रि० स० [सं० छल] किसी को धोखा देना। भुलावे में डालना। दगा देना। प्रतारित करना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा। छल। प्रतारणा।

छलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चलना वा सं० क्षरण] महीन कपड़े या छेददार चमड़े से मढ़ा हुआ एक मँडरेदार बरतन जिसमें चोकर, भूसी आदि अलग करने के लिये आटा छानते हैं। आटा चालने का बरतन। चलनी।

मुहा०—किसी वस्तु को छलनी कर डालना वा देना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद कर डालना। (२) किसी वस्तु को बहुत से स्थानों पर फाड़ कर बेकाम कर डालना। (किसी वस्तु का) छलनी हो जाना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद हो जाना। (२) किसी वस्तु का स्थान स्थान पर फट कर बेकाम हो जाना। छलनी में डाल छाज में उड़ाना = बात का बतंगड़ करना। थोड़ी सी बुराई या दोष को बहुत बढ़ा कर कहना। थोड़ी सी बात को लेकर चारों ओर बढ़ा बढ़ा कर कहते फिरना। (किसी का) कलेजा छलनी होना = (१) दुःख वा झंझट सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना। निरंतर कष्ट से जी ऊब जाना। (२) जी दुखानेवाली बात सुनते सुनते घबड़ा जाना।

छलहाई*†—वि० स्त्री० [सं० छल + हा (प्रत्य०)] छली। कपटी। चालबाज। धूर्त्त। उ०—ये छलहाई लुगाई सबै निसि द्यौस निवाज हमैं दहती हैं।—निवाज।

† संज्ञा स्त्री० छल। कपट।

छलाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछल + अंग] पैरों को एक बारगी दूर तक फेंक कर वेग के साथ आगे बढ़ने का कार्य्य। कुदान। फलाँग। चौकड़ी।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

छलाँगना†—क्रि० अ० [हिं० छलाँग] चौकड़ी भरना। कूद कर आगे बढ़ना। फलाँग मारना।

छला*†—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली = लता] छल्ला। उँगली में पहनने का गहना। उ०—छला परोसिनि हाथ तें छल करि लियो पिछानि। पियहिँ दिखायो लखि बिलखि रिसमूचक मुसकानि।—बिहारी।

† संज्ञा स्त्री० [सं० छटा] आभा। चमक। दीप्ति। झलक।

छलाई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छल + आई (प्रत्य०)] छल का भाव। कपट। उ०—बंधु के मूत कपूत सपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।—तुलसी।

छलाना—क्रि० स० [हिं० छलना का प्रे०] धोखे में डलवाना। धोखा दिलाना। प्रतारित कराना। उ०—कुमुदिनि तुह वैरिनि नहिँ धाई। मोहि ससि बोलि छलावसि आई।—जायसी।

छलावा—संज्ञा पुं० [हिं० छल] (१) भूत प्रेत आदि की छाया जो एक बार दिखाई पड़ कर फिर झट से अदृश्य हो जाती है। मायादृश्य।

मुहा०—छलावा सा = बहुत चंचल। उ०—कर तें छुटकि छूटी छलकि छलावा सी।—हरिश्चंद्र।

(२) अगिया बैताल। उल्कामुख प्रेत। वह प्रकाश या लुक जो दलदलों के किनारे वा जंगलों में रह रह कर दिखाई पड़ता है और गायब हो जाता है।

मुहा०—छलावा खेलना = अगिया बैताल का इधर उधर दिखाई पड़ना। इधर उधर लुक फिरता हुआ दिखाई देना।

(३) चपल। चंचल। शोख। (४) इंद्रजाल। जादू।

छलिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र में रूपक का एक भेद।

छलित—वि० [सं०] छला हुआ। जिसे धोखा दिया गया हो। प्रतारित। वंचित।

छलितक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक भेद।

छलिया—वि० [सं० छल + हिं० इया (प्रत्य०)] छल करनेवाला। कपटी। धोखेबाज। उ०—(क) यह छलिया सपने मिलि मोसों। गयो पराय कहाँ सखि तोसों।—रघुराज। (ख) वा छलिया ने बनाय के ख्यालो पठायो है याहि न जाने कहाँ सों।—हरिश्चंद्र।

छली—वि० [सं० छलिन्] छल करनेवाला। कपटी। धोखेबाज।

छलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] एक रोग जिसमें उँगलियों के नाखून के भीतर छाला पड़ जाता है और पीड़ा होने लगती है। कभी कभी नाखून पक भी जाता है। लोगों में यह प्रवाद है कि यह रोग उस मिट्टी के लगने से होता है जिस पर साँप का मद गिरा रहता है।

और वात-नाशक और तृष्णा या दाह को दूर करनेवाला माना जाता है तथा खाज, कोढ़, पथरी आदि रोगों में दिया जाता है। इसे पथरफूल और बुढ़ना भी कहते हैं। हिमालय पर यह चट्टानों, पेड़ों आदि पर बहुत दिखाई देता है।

पर्य्या०—शैलेय। शैलाख्य। वृद्ध। शिलापुष्प। गिरिपुष्पक। शिलासन। शैलज। शिलेय। कालानुसार्य। गृह। पलित। जीर्ण। शिलादद्रु।

छरोरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर, पू० हिं० छिलोरा = छिलना] खरोंच। शरीर में काँटे या और किसी नुकीली वस्तु के चुभ कर कुछ दूर तक खिंच जाने के कारण पड़ी हुई लकीर। उ०—पैहौं छरोर जो पातन को फटिहै पटके हूँ तो हौं न डरैहौं।

छर्द्दन—संज्ञा पुं० [सं०] वमन। कै करना।

छर्दि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वमन। कै। उलटी। (२) एक रोग जिसमें रोगी के मुँह से पानी छूटता है और उसे मतली आती है और वमन होता है। वैद्यक में इस रोग के दो भेद माने गए हैं—एक साधारण जो कड़ुई, नमकीन, पनीली या तेल की चीजें अधिक खाने तथा अधिक और अकाल भोजन करने से हो जाता है। अन्य रोगों के समान इसके भी चार भेद हैं—वातज, पित्तज, श्लेष्मज और त्रिदोषज। दूसरा आगंतुक जो अत्यंत श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण आदि के कारण से उत्पन्न होता है। वैद्यक में यह पाँच प्रकार का माना गया है—वीभत्स, दौहृदज, आमज, असात्म्यज और कृमिज। इस रोग से कास, श्वास, ज्वर आदि भी हो जाते हैं।

पर्य्या०—प्रच्छर्दिका। छर्द। वमन। वमि। छर्दिका। वांति। उद्गार। छर्द्दन। उत्कासिका।

संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दिस] (१) घर। (२) तेज। (३) उद्गार। वमन।

छर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वमन। (२) विष्णुक्रांता।

छर्दिकारिपु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

छर्दिघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब। बकाइन।

छर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० छरना, झरना वा अनु० छरछर] (१) छोटी कंकड़ी। कंकड़ आदि का छोटा टुकड़ा। (२) लोहे या सीसे के छोटे छोटे टुकड़ों का समूह जो बंदूक में भर कर चलाया जाता है। (३) वेग से फेंके हुए पानी के छोटे छोटे छींटों या कणों का समूह।

छलंक, छलंगा—संज्ञा स्त्री० दे० "छलांग"।

छल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वास्तविक रूप को छिपाने का कार्य्य जिससे कोई वस्तु या कोई बात और की और देख पड़े। वह व्यवहार जो दूसरे को धोखा देने या बहलाने के लिये किया जाता है। (२) व्याज। मिस। बहाना। (३) धूर्त्तता। वंचना। ठगना।

यौ०—छल कपट। छल छिद्र।

(४) कपट। दंभ। (५) युद्ध के नियम के विरुद्ध शत्रु पर शस्त्र-प्रहार। (६) न्याय शास्त्र के सोलह पदार्थों में से चौदहवां पदार्थ जिसके द्वारा प्रतिवादी वक्ता की बात का वाक्य के अर्थ-विकल्प द्वारा विघात वा खंडन करता है। यह तीन प्रकार का माना गया है—वाक्छल, सामान्यछल और उपचारछल—। जिसमें साधारणतः कहे हुए किसी वाक्य का वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ कल्पित किया जाता है वह वाक्छल कहलाता है; जैसे किसी ने कहा कि 'यह बालक नव कंबल लिए है'। इस पर प्रतिवादी या छलवादी नव शब्द का वक्ता के अभिमत अर्थ से भिन्न अर्थ कल्पित करके खंडन करता है और कहता है कि "बालक नव कंबल कहां लिए है, उसके पास तो एक ही है।" जिसमें संभावित अर्थ का अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ कल्पित किया जाय वह सामान्य छल है, जैसे किसी ने कहा कि 'ब्राह्मण विद्याचरण संपन्न होता है। इस पर छलवादी कहता है "हां विद्याचरण संपन्न होना तो ब्राह्मण का गुण ही है पर यदि यह गुण ब्राह्मण का है तो व्रात्य भी विद्याचरणसंपन्न होगा क्योंकि वह भी ब्राह्मण ही है।" धर्मविकल्प (मुद्राविरा, अलंकार, लक्षण, व्यंजना आदि) द्वारा सूचित अभिप्रेत अर्थ का जहां शब्दों के मूल अर्थ आदि को लेकर निषेध किया जाय वहां उपचारछल होता है, जैसे, किसी ने कहा—'सारा घर गया है", इस पर प्रतिवादी कहता है कि "घर कैसे जायगा? घर तो जड़ है।"

संज्ञा पुं० [अनु०] जल के छींटों के गिरने का शब्द। पानी की धार जो पथिकों को ऊपर से पानी पिलाने में बँध जाती है।

मुहा०—छल पिलाना = कटोरे बजा बजा कर राह चलते पथिकों को पानी पिलाना।

छलक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] छलकने का भाव या क्रिया।

संज्ञा पुं० [सं०] छल करनेवाला।

छलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० छलकना] (१) छलकने का भाव। पानी आदि की उछाल। पानी या और किसी पतले पदार्थ के हिलने डोलने के कारण उछल कर बरतन से बाहर आने का भाव। (२) उद्गार। स्फुरण। उ०—छबि छलकन भरी पीक पलकन त्योंही श्रम जलकन अधिकाने च्वै।—पद्माकर।

छलकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) पानी या और किसी पतली चीज का हिलने डोलने आदि के कारण बरतन से उछल कर बाहर गिरना। आघात के कारण पानी आदि का बरतन से ऊपर उठ कर बाहर आना। (इस शब्द का प्रयोग पात्र और पात्र में भरे हुए जल आदि दोनों के लिये होता है, जैसे, गगरा छलकना, गगरी छलकने जाय।) (२) उमड़ना। बाहर प्रकट होना।

छाँटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) वह वस्तु जो छाँट दी जाय। कतरन। (२) अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाँटना-क्रि० स० [सं० खंडन] (१) किसी पदार्थ से उसके किसी अंश को काट कर अलग करना। छिन्न करना। काट कर अलग करना। जैसे, कलम छाँटना, पेड़ छाँटना, सिर के बाल छाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अंग और अंगी दोनों के लिये होता है, जैसे, डाल छाँटना, पेड़ छाँटना।

(२) किसी वस्तु को किसी विशेष आकार में लाने के लिये काटना वा कतरना। जैसे, कपड़ा छाँटना। (दरजी)

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) अनाज में से कन वा भूसी कूट फटकार कर अलग करना। अनाज को साफ करने के लिये कूटना फटकना। जैसे चावल छाँटना, तिल छाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(४) बहुत सी वस्तुओं में से कुछ को प्रयोजनीय वा निकम्मी समझ कर अलग करना। लेने के लिये चुनना वा निकालने के लिये पृथक् करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—चुनने के अर्थ में संयो० क्रि०—'लेना' का प्रयोग होता है और निकालने के अर्थ में संयो० क्रि०—'देना' का प्रयोग होता है। जैसे, (क) हम अच्छे अच्छे आम छाँट लेंगे। (ख) हम सड़े आम छाँट देंगे। पर जहाँ दूसरे के द्वारा छाँटने का काम कराना होता है वहाँ संयो० क्रि०—'देना' का प्रयोग चुनने वा ग्रहण करने के अर्थ में भी होता है, जैसे, मेरे लिये अच्छे अच्छे आम छाँट दो।

(५) गंदी वा बुरी वस्तु निकालना। दूर करना। हटाना। उ०—(क) यह दवा ख़ूब कफ़ छाँटती है। (ख) यह साबुन ख़ूब मैल छाँटता है। (६) साफ करना। गंदी वा निकम्मी वस्तुओं को निकाल कर शुद्ध करना। जैसे, कुआँ छाँटना। उ०—इस दवा ने ख़ूब पेट छाँटा। (७) किसी वस्तु का कुछ अंश निकाल कर उसे छोटा या संक्षिप्त करना। (८) गढ़ गढ़ कर बातें करना। हिंदी की चिंदी निकालना। जैसे, क़ानून छाँटना, बातें छाँटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता कुछ शब्दों के साथ ही होता है।

(९) अलग रखना। दूर रखना। सम्मिलित न करना। उ०—तुम समय पर हमें इसी तरह छाँट दिया करते हो।

छाँड़ चिट्ठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँड़ना + चिट्ठी] वह पत्र वा परवाना जिसे देखकर उसके रखनेवाले व्यक्ति को कोई रोक न सके। रवन्ना।

छाँड़ना*†-क्रि० स० [सं० छर्दन, प्रा० छड्डन] छोड़ना। त्यागना। उ०—सप्त दीप भुज बल बस कीन्हें। लेइ लेइ दंड छाँड़ि सब दीन्हें।—तुलसी।

छाँद-संज्ञा स्त्री० [छद = बंधन] (१) एक छोटी रस्सी जिससे घोड़े गदहे आदि के दो पैरों को एक दूसरे से सटा कर बाँध देते हैं जिसमें वे दूर तक भाग न सकें बल्कि कूद कूद कर इधर उधर चरते रहें। (२) वह रस्सी जिससे अहीर गाय दुहते समय बछड़े को गाय के पैर में बाँध देते हैं। नोई।

छाँदना-क्रि० स० [सं० छदन] (१) रस्सी आदि से बाँधना। जकड़ना। कसना।

यौ०—बाँधना छाँदना। उ०—असबाब बाँध छाँद कर रख दो।

(२) घोड़े या गदहे के पिछले पैरों को एक दूसरे से सटा कर बाँध देना जिसमें वह दूर तक भाग न सके, आस ही पास चरता रहे। (३) किसी के पैरों को दोनों हाथों से जकड़ कर बैठ जाना और उसे जाने न देना। उ०—वह स्त्री अपने स्वामी का पैर छांद कर बैठ गई और रोने लगी।

मुहा०—पैर छाँदना = जाने से रोकना। रोकना।

छांदस-वि० [सं०] (१) वेदज्ञ। वेदपाठी। (२) वेद संबंधी। (३) रट्टू। (४) मूर्ख।

छाँदा†-संज्ञा पुं० [हिं० छाँटना] हिस्सा। बखरा। भाग।

संज्ञा पुं० [हिं० छानना] उत्तम भोजन। पकवान।

क्रि० प्र०—उड़ाना।

छांदोग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामवेद का एक ब्राह्मण जिसके प्रथम दो भागों में विवाह आदि संस्कारों का वर्णन है और अंतिम आठ प्रपाठकों में उपनिषद् है। इस पर स्वामी शंकराचार्य का भाष्य है। (२) छांदोग्य ब्राह्मण का उपनिषद्। प्रथम प्रपाठक (ब्राह्मण के तृतीय) में १३ खंड हैं जिनमें प्रायः ओ३म् का ही वर्णन है। दूसरे में २४ खंड हैं जिनमें यज्ञों की विधि और मंत्रों के गायन की शिक्षा बड़े विस्तार से है। तीसरे प्रपाठक के १९ खंड हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन तथा ब्रह्म-विद्या का सूक्ष्म विचार है। त्रिकाल संध्या और सूर्य्य के जप आदि का भी विवरण है। चौथे प्रपाठक में १७ खंड हैं जिनमें सत्यकाम जाबालि के प्रति उपदेश है, यज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं और ऋक् यजु साम के भूः भुवः स्वः यथाक्रम तीन देवता मान कर तप के विधान का प्रतिपादन है। पाँचवें प्रपाठक के २४ खंड हैं। इसी में प्राण और इंद्रियों का वर्णन है और गाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि अग्निहोत्र से सृष्टि की वृद्धि होती है, उसी से मेघ होता है, मेघ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है, अन्न से रस होता है और रस से संतान आदि की वृद्धि होती है। छठे प्रपाठक में १६ खंड हैं जिनमें उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की

छल्ला—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली = लता] (१) वह सादी अँगूठी जो धातु के तार के टुकड़े को मोड़ कर बनाई जाती है। मुँदरी। (यह हाथ पैर की उँगलियों में पहनी जाती है।) (२) अँगूठी की तरह की कोई मंडलाकार वस्तु। कड़ा। कुंडली। (३) नैचे की बंदिश में वे गोल चिह्न जो रेशम वा तार लपेट कर बनाए जाते हैं। (४) वह पक्की पतली दीवार जो ऊपर से दिखाने वा रक्षा के लिये कच्ची दीवार से लगा कर बनाई गई हो। (५) तेल की बूँदें जो नीबू आदि के अर्क की बोतल में ऊपर से इसलिये डाल दिए जाते हैं जिसमें अर्क बिगड़ने न पावे। (६) एक प्रकार का पंजाबी गीत वा तुकबंदी जिसे गा गा कर हिँजड़े भीख माँगते हैं।

छल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छाल। (२) लता। (३) संतति। (४) एक प्रकार का फूल।

छल्लेदार—वि० [हिं० छल्ला + फा० दार] (१) जिसमें छल्ले लगे हों। (२) जिसमें मंडलाकार चिह्न वा घेरे बने हों।

छवना—संज्ञा पुं० [सं० शाव, शावक] [स्त्री० छवनी] (१) बच्चा। उ०—भई है प्रगट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन-छवि छवनी।—तुलसी। (२) सूअर का बच्चा।

छवा॰†—संज्ञा पुं० [सं० शावक] बछड़ा। किसी पशु का बच्चा। उ०—(क) तैं रनकेहरि केहरी के विदले अरि कुंजर छैल छवा से।—तुलसी। (ख) हय हंकि धमंकि उठाइ रनं। जिमि सिंह छवा कढ़ि सेन वनं।—सूदन।

संज्ञा पुं० [देश०] एँड़ी। उ०—(क) छवान की छुई न जाति शुभ साधु माधुरी।—केशव। (ख) ऐसे दुराज दुहूँ वय के सब ही को लगे अब चौंचँद सूझन। लूटन लागी प्रभा कढ़ि कै बढ़ि केस छवान सों लागे अरुझन।—रसकुसुमाकर।

छवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना, छावना] (१) छाने का काम (२) छाने की मज़दूरी।

छवाना—क्रि० स० [हिं० छाना का प्रे०] छाने का काम कराना।

छवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० छबीला] (१) शोभा। सौंदर्य। (२) कांति। प्रभा। चमक।

संज्ञा स्त्री० [अ० शबीह] चित्र। फोटो। प्रतिकृति।

छवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छ + वाला] छोटी जटवाली जो पत्थर आदि उठाने के काम में आती है।

छवैया—संज्ञा पुं० [हिं० छाना] छानेवाला। जो छप्पर आदि छावे।

छहा†—वि० दे० "छः"।

छही—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह चिड़िया (प्रायः कबूतर) जो अपने अड्डे से उड़ कर दूसरे के अड्डे पर जा रहे और फिर कुछ दिनों में वहाँ की कुछ चिड़ियों को बहका कर अपने अड्डे पर ले आवे। कुट्टा। गुठाँ।

छहरना॰—क्रि० अ० [सं० क्षरण, प्रा० छरण, छरन] (१) छितराना। बिखरना। छिटकना। फैलना। उ०—(क) छवि केसरि की छहरै तन तें कढ़ि बाहर से तन चोलिन पै।—सुंदरीसर्वस्व। (ख) जनु इंदु उयो अवनी तल तें चहुँ ओर छटा छवि की छहरी।—सुंदरीसर्वस्व।

छहरा†—वि० [हिं० छ + हरा (प्रत्य०)] (१) छ परत का। छ पल्लेवाला। (२) उपज का छठाँ (भाग)।

छहराना॰—क्रि० अ० [सं० क्षरण] छितराना। बिखरना। चारों ओर फैलना। उ०—(क) कंचुकि चूर चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी। (ख) नीरज तें कढ़ि नीर नदी छवि छीजत छीरधि पै छहरानी। (ग) जेहि पहिरे छगुनी अरी, छिगुनी छवि छहराहिं।

क्रि० स० बिखराना। छितराना। फैलाना। उ०—सीप लै संग सखी सुमुखी छवि कोटि छपाकर की छहरावति।—देव।

क्रि० स० [सं० क्षार] क्षार करना। भस्म करना। उ०—न्योछावर कै तन छहरावहुँ। छार होहुँ सँग बहुरि न आवहुँ।—जायसी।

छहरीला†—वि० [हिं० छरहरा] [स्त्री० छहरीली] (१) छरहरा। हलका। (२) फुरतीला। चुस्त।

छहियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँहीं] छाँह। छाया। उ०—दशरथ कौशल्या आगे लसत सुमन की छहियाँ। मानो चारि हंस सरवर ते बैठे आइ सदहियाँ।—सूर।

छाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "छाँह"।

छाँक—संज्ञा पुं० [फा० चाक] खंड। टुकड़ा। जैसे, बदली का छाँक। (लश०)

छाँगना—क्रि० स० [सं० छिन्न + करण] काटना। छाँटना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः कुल्हाड़ी आदि से पेड़ की डाल टहनी आदि काटने के अर्थ में होता है। पूर्वी हिंदी में 'छिनगाना' कहते हैं।

छाँगुर—संज्ञा पुं० [हिं० छ + अंगुल] छ उँगलीवाला। वह मनुष्य जिसके पंजे में छ उँगलियाँ हों।

छाँछ—संज्ञा स्त्री० दे० "छाछ"।

छाँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) छाँटने की क्रिया। छिन्न करने की क्रिया। काटने वा कतरने की क्रिया।

यौ०—काट छाँट।

(२) काटने वा कतरने का ढँग।

यौ०—काट छाँट।

(३) बेकाम टुकड़े जो किसी वस्तु के विशेष रूप से काटने पर निकलते हैं। कतरन। (४) भूसी या कना जो अनाज छाँटने पर निकलता है। (५) अलग की हुई निकम्मी वस्तु।

संज्ञा स्त्री० [सं० छर्दि, प्रा० छड्डि] वमन। कै।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छागमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय का छठा मुख जो बकरे का सा है। (२) कार्त्तिकेय का एक अनुचर।

छागर†–संज्ञा स्त्री० [सं० छगल] बकरी।

छागरथ–संज्ञा पुं० [सं] अग्नि।

छागल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकरा। (२) बकरे की खाल की बनी हुई चीज़।

संज्ञा स्त्री० (१) चमड़े का डोल या छोटी मशक जिसमें पानी भरा या रक्खा जाता है। यह प्रायः बकरे के चमड़े का बनता है। (२) मिट्टी का करवा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० साँकल] एक गहना जिसे स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं। यह चाँदी की पटरी का गोल कड़ा होता है जिसमें घुँघुरू लगे रहते हैं। झाँझन।

छाछ–संज्ञा स्त्री० [सं० छच्छिका] (१) मथा हुआ दही। वह पनीला दही या दूध जिसका घी वा मक्खन निकाल लिया गया हो। मट्ठा। मही। सारहीन तक्र। (२) वह मट्ठा जो घी या मक्खन तपाने पर नीचे बैठ जाता है। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।

छाछठ†–वि० दे० "छाछठ"।

छाछि†–संज्ञा० स्त्री० दे० "छाछ"।

छाज–संज्ञा पुं० [सं० छाद] (१) अनाज फटकने का सींक का बरतन। सूप।

मुहा०—छाज सी दाढ़ी = बड़ी और चौड़ी दाढ़ी। छाजों मेंह बरसना = बहुत पानी बरसना। मूसलाधार पानी बरसना।

(२) छाजन। छप्पर। (३) गाड़ी या बग्घी के आगे छज्जे की तरह निकला हुआ वह भाग जिसपर कोचवान के पैर रहते हैं।

छाजन–संज्ञा स्त्री० [सं० छादन] (१) आच्छादन। वस्त्र। कपड़ा। उ०—छाजन भोजन प्रीति सों दीजै साधु बुलाय। जीवत जस है जगत में अंत परमपद पाय।—कबीर।

यौ०—भोजन छाजन = खाना कपड़ा।

(२) छप्पर। छान। खपरैल। उ०—मरे लागि जब जेठ असाढ़ी। भइ मो कँह यह छाजन गाढ़ी।—जायसी। (३) छाने का काम या ढंग। छवाई। (४) कोढ़ की तरह का एक रोग जिस में उँगलियों के जोड़ के पास तलवा चिड़चिड़ा कर फटता है और उसमें घाव हो जाता है। यह रोग हाथियों को भी होता है। अपरस।

छाजना–क्रि० अ० [सं० छादन] [वि० छाजित] (१) शोभा देना। अच्छा लगना। भला लगना। फबना। उपयुक्त जान पड़ना। उ०—(क) औही छाज छत्र औ पाटू। सब राजन भुइँ धरा ललाटू।—जायसी। (ख) जो कछु कहहु तुमहि सब छाजा।—तुलसी। (२) शोभा के सहित विद्यमान होना। विराजना। सुशोभित होना। उ०—मुकुट मोर पर पुंज मंजु सुर-धनुष विराजत। पीत वसन छिन छिन नवीन छविछवि छवि छाजत।—मतिराम।

छाजा*†–संज्ञा पुं० [सं० छाद] छज्जा। उ०—ऊँचे भवन मनोहर छाजा, मणि कंचन की भीति।—सूर।

छाजित*–वि० [हिं० छाजना] शोभित।

छाडना, छाड़ना†–क्रि० अ० [सं० छर्दि] कै करना। उलटी करना। वमन करना।

क्रि० स० दे० "छाँड़ना", "छोड़ना"।

छात*–संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] (१) छाता। छतरी। (२) राजछत्र। उ०—(क) औही छाज छात औ पाटा। सब राजै भुइ धरा ललाटा।—जायसी। (ख) रूपवंत मनि दिये ललाटा। माथे छात बैठ सब पाटा।—जायसी। (३) आश्रय। आधार। उ०—हम सें ओछ कै पावा छातू। मूल गये सँग रहा न पातू।—जायसी।

वि० [सं०] (१) छिन्न। (२) दुर्बल। कृश।

†संज्ञा स्त्री० दे० "छत"।

छाता–संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त।] (१) लोहे बाँस आदि की तीलियों पर कपड़ा चढ़ाकर बनाया हुआ आच्छादन जिसे मनुष्य धूप मेंह आदि से बचने के लिये काम में लाते हैं। बड़ी छतरी।

मुहा०—छाता देना या लगाना = (१) छाते का व्यवहार करना। (२) छाता ऊपर तानना।

(२) छत्ता। खुमी। (३) चौड़ी छाती। विशाल वक्षस्थल। (४) वक्षस्थल की चौड़ाई की नाप।

छाती–संज्ञा स्त्री० [सं० छादिन्, छादी = आच्छादन करनेवाला] (१) हड्डी की ठटरियों का पंजा जो कलेजे के ऊपर पेट तक फैला होता है। वक्षस्थल। सीना। पेट के ऊपर का भाग जो गरदन तक होता है।

विशेष—छाती की पसलियाँ पीछे की ओर रीढ़ और आगे की ओर एक मध्यवर्ती अस्थिदंड से लगी रहती हैं। इनके भीतर के कोठे में फुप्फुस और कलेजा रहता है। दूध पिलानेवाले जीवों में यह कोठा पेट के कोठे से जिसमें अतड़ी आदि रहती है एक परदे के द्वारा बिलकुल अलग रहता है। पर पक्षियों और सरीसृपों में यह विभाग इतना स्पष्ट नहीं रहता। जलचरों तथा बहुत से रेंगनेवाले जीवों में तो यह विभाग ही नहीं होता।

मुहा०—छाती का जम = (१) दुःखदायक वस्तु या व्यक्ति। हर घड़ी कष्ट पहुँचानेवाला आदमी या वस्तु। (२) कष्ट पहुँचाने के लिये सदा घेरे रहनेवाला आदमी। (३) धृष्ट मनुष्य। ढीठ आदमी। छाती पर का पत्थर या पहाड़ = (१) ऐसी वस्तु जिसका खटका सदा बना रहता हो। चिंता उत्पन्न करनेवाली वस्तु। जैसे, कुआरी लड़की जिसके विवाह

उत्पत्ति आदि का वर्णन करके कहा है कि "हे श्वेतकेतु! तू ही ब्रह्म है"। इस प्रपाठक में वेदांत का महावाक्य "तत्त्वमसि" कई बार आया है। सातवें प्रपाठक में, जिसमें २६ खंड हैं, सनत्कुमारों ने नारद को आतुर देख उन्हें ब्रह्म विद्या का उपदेश किया है। नारद जी ने कहा है कि मैंने वेद, इतिहास, पुराण, राशिविद्या, दैवविद्या, निधिविद्या वाकोवाक्य विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजन-विद्या, इत्यादि बहुत सी विद्याएँ सीखी हैं। इन विद्याओं से आज कल लोग भिन्न भिन्न अभिप्राय निकालते हैं। आठवें प्रपाठक में ब्रह्म-विद्या का स्पष्टता और विस्तार के साथ उपदेश देकर कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान के पश्चात् जन्म नहीं होता।

छाँवँ—संज्ञा स्त्री० दे० "छावँ"।

छाँवड़ा*—संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छौना] [स्त्री० छाँवड़ी छौड़ी] (१) जानवर का बच्चा। किसी पशु का छोटा बच्चा। उ०—धरिये न पांव बलि जांव राधे चंद्रमुखी वारौं गति मंद पै गयंदपति छाँवड़े।—देव। (२) छोटा बच्चा। बालक।

छाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँटना] (१) भूसी वा कन जो अनाज छाँटने से निकलता है। (२) कूड़ा करकट।

छाँह—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] (१) छाया। वह स्थान जहाँ आड़ वा रोक के कारण धूप वा चाँदनी न पड़ती हो। जैसे, पेड़ की छाँह। उ०—हरखित भये नँदलाल बैठि तरु छाँह में। —सूर।

मुहा०—छांह में होना = ओट में होना। छिपना। उ०—पंथ अति कठिन पथिक कोऊ संग नाहिँ तेज भए तारागन छांह भयो रवि है।

(२) ऐसा स्थान जिसके ऊपर मेह आदि रोकने के लिये कोई वस्तु हो। ऊपर से आवृत या छाया हुआ स्थान। (३) शरण। सरक्षा। बचाव या निर्वाह का स्थान। उ०—अब तो तुम्हारी छांह में आ गए हैं जो चाहे सो करो।

यैा०—छत्रछांह।

(४) पदार्थों का छायारूप आकार जो उनके पिंडों पर प्रकाश रुकने के कारण धूप, चाँदनी वा प्रकाश में दिखाई पड़ता है। परछाहिं। उ०—आँगन में आई पछताई ठाढ़ी देहली में, छाँह देखै आपनी औ राह देखै पिय की।

मुहा०—छाँह न छूने देना = पास न फटकने देना। निकट तक न आने देना। छाँह बचाना = दूर दूर रहना। पास न जाना। अलग रहना। छांह छूना = पास जाना। पास फटकना। उ०—मुँह माहीँ लगी जक नाहीँ मुबारक, छाहीँ छुए छरकैं बदलैं।—मुबारक।

(५) प्रतिबिंब। पदार्थों का आकार जो पानी, शीशे आदि में दिखाई पड़ता है। उ०—पैठि मग प्रविसनि जाति कहँ ज्यों दरपन महँ छांह। तुलसी त्यों जगजीव गति करी जीव के नांह।—तुलसी। (६) भूत-प्रेत आदि का प्रभाव। आसेब। बाधा। उ०—भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है, बेदना विषम पाप ताप छल छांह की।—तुलसी।

छाँहगीर—संज्ञा पुं० [हिं० छाँह + फा० गीर] (१) छत्र। राजछत्र। उ०—ज्यों सरद राका ससी करति क्यों न चित चेत। मनों मदन छितिपाल की छाँहगीर छबि देत।—बिहारी। (२) दर्पण। आइना। (३) छड़ी के सिरे पर बँधा हुआ एक आइना जिसके चारों ओर पान के आकार की किरनें लगी रहती हैं और जो विवाह में दुलहे के साथ आसा आदि की तरह चलता है।

छाँहीं†—संज्ञा स्त्री० दे० "छाँह"।

छाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) राख। (२) पांस। खाद।

छाक—संज्ञा स्त्री० [हिं० छकना] (१) तृप्ति। इच्छापूर्ति। जैसे, छाक भर खाना, प्यास भर पीना। (२) वह भोजन जो काम करनेवाले दोपहर को करते हैं। दुपहरिया। उ०—(क) बलदाऊ देखियत दूर ते आवति छाक पठाई मेरी मैया।—तुलसी। (ख) सुनो महाराज प्रात होते ही एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरावने बन को चले जिनके साथ सब ग्वाल-बाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिए।—लल्लू। (ग) आई छाक बुलाये स्याम।—सूर। (३) नशा। मस्ती। मद। उ०—(क) डर न टरै नींद न परै, हरै न काल-बिपाक। छिन छाकै उछकै न फिर खरी विषम छवि छाक।—बिहारी। (ख) तजी संक सकुचति न चित बोलति बाक कुबाक। दिन छनदा छाकी रहति छुटति न छिन छवि छाक।—बिहारी। (४) मैदे के बने हुए बड़े बड़े सुहाल जो विवाहों में जाते हैं। माठ।

छाकना†*—क्रि० अ० [हिं० छकना] (१) खा पी कर तृप्त होना। अघाना। अफरना। उ०—खट रस भोजन नाना विधि के करत महल के माहीं। छाके खात ग्वाल मंडल में वैसो तो सुख नाहीं।—सूर। (२) मस्त होना। शराब आदि पीकर मातना। उ०—सुख के निधान पाए हिय के पिधान लाए ठग के से लाड़ू खाए प्रेम मधु छाके हैं।—तुलसी।

क्रि० अ० [हिं० छकना = हैरान होना] चकित होना। भौंचक्का रह जाना। हैरान होना। उ०—बिबिधि कला के जिन्हैं ताके सुर वृंद छाके, बासव-धनुष उपमा के तुंगता के हैं।—रघुराज।

छाग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छागी] बकरा।

छागन—संज्ञा पुं० [सं०] कंडी या उपली की आग।

छागभोजी—संज्ञा पुं० [सं० छागभोजिन्] भेड़िया।

छागमय—संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय का सातवां मुख।

छागमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।

करना। कामना पूर्ण करना। मन का आवेग संग्रह करना। उ०—(क) लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाय जुड़ावहिं छाती।—तुलसी। (ख) खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी। **छाती ठंढी करना** = हृदय शीतल करना। चित्त शांत और प्रफुल्लित करना। मन का आवेग शांत करना। मन की अभिलाषा पूर्ण करना। हौसला पूरा करना। **छाती ठंढी होना** = हृदय शीतल होना। चित्त शांत और प्रफुल्लित होना। मन का आवेग शांत होना। कामना पूर्ण होना। हौसला पूरा होना। **छाती ठुकना** = हिम्मत बँधना। साहस बँधना। चित्त में दृढ़ता होना। उ०—मुंशी चुन्नीलाल और बाबू बैजनाथ ने इनको हिम्मत बँधाने में कसर नहीं रक्खी परंतु इनका मन कमजोर है इससे इनकी छाती नहीं ठुकती। **छाती ठोकना** = किसी कठिन कार्य्य के करने की साहसपूर्वक प्रतिज्ञा करना। किसी भारी वा कठिन कार्य्य के करने का दृढ़तापूर्वक निश्चय दिखाना। कोई दुष्कर कार्य्य करने का साहस प्रकट करना। हिम्मत बाँधना। उ०—मैं छाती ठोक कर कहता हूँ कि उसे आज पकड़ लाऊँगा। **छाती धड़कना** = भय या आशंका से हृदय कंपित होना। कलेजा धक धक करना। खटके या डर से कलेजा जल्दी जल्दी उछलना। जी दहलना। **छाती थाम कर रह जाना** = ऐसा भारी शोक वा दुःख अनुभव करना जो प्रकट न किया जा सके। कोई भारी मानसिक आघात सह कर स्तब्ध हो जाना। शोक से ठक रह जाना। **छाती पकड़ कर रह जाना वा बैठ जाना** = दे० 'छाती थाम कर रह जाना'। **छाती पक जाना** = दे० 'छाती छलनी होना'। **छाती पत्थर की करना** = अत्यंत शोक वा दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना। भारी कष्ट वा संताप सह लेना वा सहने के लिये प्रस्तुत होना। **छाती पत्थर की होना** = अत्यंत शोक या दुःख सहने के लिये जी कड़ा होना। हृदय इतना कठोर होना कि वह शोक वा दुःख का आघात सह ले। **छाती पर फिरना** = घड़ी घड़ी ध्यान में आना। बार बार स्मरण होना। **छाती भर आना** = प्रेम वा करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना। प्रेम वा करुणा से गद्गद होना। उ०—बारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकि गात भरि आई छाती।—तुलसी। **छाती मसोसना** = चुपचाप हृदय में ऐसा घोर दुःख होना जो प्रकट न किया जा सके। मन ही मन संतप्त होना। **छाती में छेद होना या पड़ना** = कष्ट वा अपमान सहते सहते हृदय जर्जर होना। बार बार के दुःख वा कुढ़न से चित्त अत्यंत व्यथित होना। कुढ़ते कुढ़ते वा दुःख झेलते झेलते जी ऊब जाना। उ०—भेदिया सों भेद कहिबो छेद सों छाती परो।—सूर।

(३) स्तन। कुच। उ०—छाइ रहे छद छाती कपोलनि आनन ऊपर ओप चढ़ाई।—'कविराज'।

मुहा०—**छाती उभरना** = युवावस्था आरंभ होने पर स्त्रियों के स्तन का उठना या बढ़ना। **छाती देना** = बच्चे के मुँह में पीने के लिये स्तन डालना। दूध पिलाना। बच्चे को दूध पिलाना। **छाती पकना** = स्तनों पर घाव होना। स्तनों पर घाव होना। **छाती भर आना** = (१) छाती में दूध भर आना। दूध उतरना। (२) दे० "छाती उमड़ना"। (३) अत्यंत दुःख होना। आँखों में आँसू भर आना। **छाती मसलना** = छाती मलना। स्तन दबाना या मरोड़ना। (संभोग का एक अंग)

(४) हिम्मत। साहस। दृढ़ता। उ०—किस की छाती है जो उसका सामना करे। (५) एक प्रकार की कसरत जो दुबगली के ढंग की होती है। उ०—छाती के डंडे = एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी दोनों ओर से हाथ कमर पर ले जाकर कमर बाँध कर झोंका देना चाहता है। इसमें विपक्षी के हाथ को ऊपर से लपेटते हुए खेलाड़ी अपने हाथ मजबूत बाँध कर बाहरी वा बगली टाँग मारता है।

छात्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिष्य। चेला। विद्यार्थी। अंतेवासी। (२) मधु। (३) छतया नामक मधुमक्खी जो कुछ पीले और कपिल वर्ण की होती है। सरघा। (४) छतया नामक मधु-मक्खी का मधु।

छात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतया वा सरघा नामक मधुमक्खी का बनाया मधु। (२) विद्यार्थी।

छात्रगंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो श्लोक का एक चरण मात्र सुन कर सारे श्लोक का भाव समझ जाय। तीक्ष्ण बुद्धिवाला शिष्य।

छात्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] ताजा मक्खन।

छात्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वृत्ति या धन जो विद्यार्थी को विद्याभ्यास की दशा में सहायतार्थ मिला करे।

छात्रालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्यार्थियों के ठहरने का प्रबंध हो। बोर्डिंग हाउस।

छादक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छानेवाला। आच्छादन करनेवाला। (२) छपरबंद। खपरैल या छप्पर छानेवाला। (३) कपड़ा लत्ता देनेवाला।

छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छादित] (१) छाने या ढकने का कार्य्य। (२) वह जिससे छाया या ढका जाय। आवरण। आच्छादन। (३) नीला म्लान वृक्ष। नील कोरैया। (४) छिपाव।

छादित—वि० [सं०] ढका हुआ। छाया हुआ। आच्छादित।

छादी—वि० [सं० छादिन्] [स्त्री० छादिनी] छादक। आवरणकारी। आच्छादन करनेवाला।

छाद्मिक—वि० [सं०] (१) वह जो वेश छिपाए हो। पाखंडी। मक्कार। (२) बहुरूपिया।

छान—संज्ञा स्त्री० [सं० छादन = छाजन, छान] छप्पर। घास फूस

की चिंता सदा बनी रहती है । (२) सदा कष्ट देनेवाली वस्तु । निरंतर दुःख देनेवाली वस्तु । दुःख से दबाए रहनेवाली वस्तु । छाती कूटना = दे० 'छाती पीटना' । छाती के किवाड़ = छाती का पंजर । छाती का परदा या विस्तार । छाती के किवाड़ खुलना = (१) छाती फटना । (२) कंठ से चीत्कार निकलना । गहरी चीख निकलना । उ०—मैं तो आता ही था तेरी छाती के किवाड़ क्या खुल गए । (३) हृदय के कपाट खुलना । हिए की आँख खुलना । हृदय में ज्ञान का उदय होना । अंतर्बोध होना । तत्व का बोध होना । (४) बहुत आनंद होना । छाती के किवाड़ खोलना = (१) कलेजा टुकड़े टुकड़े करना । (२) जी खोल कर बात करना । हृदय की बात स्पष्ट कहना । मन में कुछ गुप्त न रखना । (३) हृदय का अंधकार दूर करना । अज्ञान मिटाना । अंतर्बोध कराना । छाती तले रखना = (१) पास से अलग न होने देना । सदा अपने समीप या अपनी रक्षा में रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके रखना । छाती तले रहना = (१) पास रहना । आँखों के सामने रहना । (२) अत्यंत प्रिय होकर रहना । छाती दरकना = "दे० छाती फटना" । छाती निकाल कर चलना = तन कर चलना । अकड़ कर चलना । ऐंठ कर चलना । छाती पत्थर की करना = भारी दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना । छाती पर मूँग या कोदो दलना = (१) किसी के सामने ही ऐसी बात करना जिससे उसका जी दुखे । किसी को दिखा दिखा कर ऐसा काम करना जिससे उसे क्रोध या संताप हो । किसी की आँख के सामने ही उसकी हानि या बुराई करना । जैसे, यह स्त्री बड़ी कुलटा है अपने पति की छाती पर कोदो दलती है (अर्थात् अन्य पुरुष से बात चीत आदि करती है) । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । खूब पीड़ित करना । (स्त्रियाँ 'तेरी छाती पर मूँग दलूँ' कह कर प्रायः गाली देती हैं) । छाती पर चढ़ना = कष्ट पहुँचाने के लिये पास जाना । छाती पर चढ़ कर टाई चुल्लू लहू पीना = कठिन दंड देना । प्राण दंड देना । छाती पर धर कर ले जाना = अपने साथ परलोक में ले जाना । (धन आदि के विषय में लोग बोलते हैं कि "क्या छाती पर धर कर ले जाओगे ?") । छाती पर पत्थर रखना = किसी भारी शोक या दुःख के आघात का सहना । दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना छाती पर बाल होना = उदारता न्यायशीलता आदि के लक्षण होना । (लोगों में प्रवाद है कि सूम या विश्वासघातक की छाती पर बाल नहीं होता) । छाती पर सांप लोटना या फिरना = (१) दुःख से कलेजा दहल जाना । हृदय पर दुःख शोक आदि का आघात पहुँचना । मन मसोसना । मानसिक व्यथा होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । डाह होना । जलन होना । छाती पीटना = (१) छाती पर जोर जोर से हाथ पटकना । (२) दुःख या शोक से व्याकुल होकर छाती पर हाथ पटकना । शोक के आवेग में हृदय पर आघात करना । (छाती पर हाथ पटकना शोक प्रकट करने का चिह्न है) । जैसे, छाती पीट पीट कर रोना । छाती फटना = (१) दुःख से हृदय व्यथित होना । दुःख शोक आदि से चित्त व्याकुल होना । अत्यंत मानसिक क्लेश होना । अत्यंत संताप होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । चित्त में डाह होना । जी जलना । कुढ़न होना । उ०—दूसरे की बढ़ती देख कर तुम्हारी छाती क्यों फटती है ? छाती फुलाना = (१) अकड़ कर चलना । तन कर चलना । इतरा कर चलना । (२) घमंड करना । अभिमान दिखलाना । छाती से पत्थर टलना = (१) किसी ऐसे भारी काम का हो जाना जिसका भार अपने ऊपर रहा हो । किसी कठिन या बड़े काम के पूरे होने पर चित्त निश्चिंत होना । किसी ऐसे कार्य्य का पूरा हो जाना जिसका खटका सदा बना रहता हो । (२) बेटी का व्याह हो जाना । छाती से लगना = आलिंगन होना । गले लगना । हृदय से लिपटना । छाती से लगाना = आलिंगन करना । गले लगाना । प्यार करना । प्रेम से दोनो भुजाओं के बीच दबाना । छाती से लगा रखना = (१) अपने पास से जाने न देना । प्रेमपूर्वक सदा अपने समीप रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके रखना । अपनी देख रेख और रक्षा में रखना । वज्र की छाती = ऐसा कठोर हृदय जो दुःख सह सके । अत्यंत सहिष्णु हृदय ।

(२) कलेजा । हृदय । मन । जी ।

मुहा०—छाती उड़ी जाना = दुःख या आशंका से चित्त व्याकुल होना । कलेजा दहलना । जी घबड़ाना । छाती उमड़ आना = प्रेम या करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम या करुणा से गद्गद होना । छाती छलनी होना = कष्ट या अपमान सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना । बार बार के दुःख या कुढ़न से चित्त का अत्यंत व्यथित होना । दुःख झेलते झेलते या कुढ़ते कुढ़ते जी ऊब जाना । उ०—तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो छाती छलनी होगई । छाती जलना = (१) कलेजे पर गरमी मालूम होना । अजीर्ण आदि के कारण हृदय में जलन मालूम होना । (२) शोक से हृदय व्यथित होना । हृदय दग्ध होना । मानसिक व्यथा होना । संताप होना । (३) ईर्ष्या या क्रोध से चित्त संतप्त होना । डाह होना । जलन होना । उ०—जो यह भली नेकु हू होती तौ मिलि सखनि पठाती । यह पापिनी दाहि कुल आई देखि जरत मोरि छाती ।—सूर । छाती जलाना = (१) हृदय संतप्त करना । संताप देना । मानसिक व्यथा पहुँचाना । जी जलाना । कष्ट पहुँचाना । (२) कुढ़ाना । चिढ़ाना । छाती जुड़ाना = (१) (क्रि० अ०) दे० "छाती ठंढी होना" । (२) (क्रि० स०) "छाती ठंढी करना" । हृदय शीतल करना । चित्त शांत और प्रसन्न करना । हृदय संतुष्ट और प्रफुल्लित करना । दुःख या ईर्ष्या [illegible]

(३) शंख चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव अपने अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। मुद्रा। उ०—(क) द्वारका छाप लगे भुज मूल पुरानन माहिं महातम भान हैं। (ख) मेटे क्यों हूँ न मिटति छाप परी टटकी। सूरदास प्रभु की छवि हिरदय मों अटकी।—सूर। (४) वह निशान जो साँचे से अन्न की राशि के ऊपर मिट्टी डाल कर लगाया जाता है। चाँक। (५) एक प्रकार की अँगूठी जिसमें नगीने की जगह पर अक्षर आदि खुदा हुआ ठप्पा रहता है। उ०—विद्रुम अंकुर अँगुरि पानि चरै रँग सुंदरता सरसाने। छाप छला मुँदरी मनकैं, दमकैं पहुँची गजरा मिलि माने।—गुमान। (६) कवियों का उपनाम।

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेप = क्षेप] (१) काँटे या लकड़ी का बोझ जिसे लकड़िहारे जंगल से सिर पर उठा कर लाते हैं। (२) बाँस की बनी हुई टोकरी जिससे सिंचाई के लिये जलाशय से पानी उलीच कर ऊपर चढ़ाते हैं।

छापना—क्रि० स० [सं० चपन] (१) किसी ऐसी वस्तु को जिस पर स्याही गीला रँग आदि पुता हो दूसरी वस्तु पर रखकर वा छुलाकर उसकी आकृति चिह्नित करना। (२) किसी साँचे को किसी वस्तु पर इस प्रकार दबाना कि उसकी, अथवा उसपर के खुदे वा उभरे हुए चिह्नों की, आकृति उस वस्तु पर उतर आवे। ठप्पे से निशान डालना। मुद्रित करना। अंकित करना। (३) कागज आदि को छापे की कल में दबाकर उसपर अक्षर वा चित्र अंकित करना। मुद्रित करना। जैसे, पुस्तक छापना, अखबार छापना।

छापा—संज्ञा पुं० [हिं० छापना] (१) ऐसा साँचा जिस पर गीला रँग या स्याही आदि पोत कर किसी वस्तु पर उसकी अथवा उसपर खुदे या उभरे हुए चिह्नों की आकृति उतारते हैं। ठप्पा। जैसे, छींपियों का छापा, तिलक लगाने का छापा। (२) मुहर। मुद्रा। (३) ठप्पे वा मुहर से दबाकर डाला हुआ चिह्न वा अक्षर। (४) व्यापार के माल पर डाला हुआ चिह्न। मारका। (५) शंख, चक्र आदि का चिह्न जिसे वैष्णव अपने बाहु आदि अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। उ०—जप माला छापा तिलक सरे न एकौ काम।—बिहारी। (६) पंजे का वह चिह्न जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर हलदी आदि से छाप कर (दीवार कपड़े आदि पर) डाला जाता है। (७) वह कल जिससे पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। छापे की कल। मुद्रा यंत्र। प्रेस। दे० 'प्रेस'।

यौ०—छापाखाना।

(८) एक प्रकार का ठप्पा जिससे खलिहानों में राशि पर राख रखकर चिह्न डाला जाता है। यह ठप्पा गोल या चौकोर होता है जिसमें डेढ़ दो हाथ का डंडा लगा रहता है। (९) किसी वस्तु की ठीक ठीक नकल। प्रतिकृति। (१०) रात में सोते हुए या बेखबर लोगों पर सहसा आक्रमण। रात्रि में असावधान शत्रु पर धावा या वार।

क्रि० प्र०—मारना।

छापाखाना—संज्ञा पुं० [हिं० छापा + फा० खाना] वह स्थान जहाँ पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। मुद्रालय। प्रेस।

छाम*—वि० [सं० क्षाम] क्षीण। पतला। कृश। उ०—सीस फूल सरकि सुहावने ललाट लाग्यो लाँबी लटैं लटकि परी हैं कटि छाम पै।—द्विजदेव।

छामोदरी*—वि० [सं० क्षामोदरी] छोटे पेटवाली। कृशोदरी। (छोटा पेट सौंदर्य का चिह्न माना जाता है)। उ०—नैंह सूच्छम छामोदरी कटि केहरि की हरि लंक ना ऐसी।—ब्रज।

छायल—संज्ञा पुं० [हिं० छाना] स्त्रियों का एक पहरावा। उ०—औ कटाव कस अँगिया राती। छायल बँद लाए गुजराती।—जायसी।

छायांक—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश का अभाव जो उसकी किरनों के व्यवधान के कारण किसी स्थान पर होता है। उजाला डालनेवाली वस्तु और किसी स्थान के बीच कोई दूसरी वस्तु पड़ जाने के कारण उत्पन्न कुछ अंधकार वा कालिमा। वह थोड़ी थोड़ी दूर तक फैला हुआ अँधेरा जिसके आस पास का स्थान प्रकाशित हो। साया। जैसे, पेड़ की छाया, मंडप की छाया।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(२) वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आड़ वा व्यवधान के कारण सूर्य्य, चंद्रमा, दीपक या और किसी आलोकप्रद वस्तु का उजाला न पड़ता हो। (३) फैले हुए प्रकाश को कुछ दूर तक रोकनेवाली वस्तु की आकृति जो किसी दूसरी ओर अंधकार के रूप में दिखाई पड़ती है। परछाईं। जैसे, खंभे की छाया। दे० "छाँह"। (४) जल, दर्पण आदि में दिखाई पड़नेवाली वस्तुओं की आकृति। अक्स। (५) तद्रूप वस्तु। प्रतिकृति। अनुहार। सदृश वस्तु। पटतर। उ०—कहहु सप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।—तुलसी। (६) अनुकरण। नकल। उ०—यह पुस्तक एक बँगला उपन्यास की छाया है। (७) सूर्य्य की एक पत्नी का नाम।

विशेष—इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। विवस्वान सूर्य्य की पत्नी संज्ञा थी जिसके गर्भ से वैवस्वत, श्राद्ध देव, यम और यमुना का जन्म हुआ। सूर्य्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया से अपनी ही ऐसी एक स्त्री उत्पन्न की और उससे यह कह कर कि तुम हमारे स्थान पर इन पुत्रों का पालन करना और यह भेद सूर्य्य पर

की छाजन । उ०—टूटी छानि मेघ जल बरसै टूटे पलंग बिछाइये ।—सूर ।

यौ०—छान छप्पर = छाजन । खपड़ैल ।

संज्ञा स्त्री० [सं० छंद] वह रस्सी जिससे किसी पशु के पैर बाँधे जांय । बंधन ।

छानना-क्रि० स० [सं० चालन वा क्षरण] (१) किसी चूर्ण वा तरल पदार्थ को महीन कपड़े या और किसी छेददार वस्तु के पार निकालना जिसमें उसका कूड़ा कांकट अथवा खुरदुरा वा मोटा अंश निकल जाय । जैसे, पानी छानना, शरबत छानना, आटा छानना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

(२) मिली जुली वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करना । भली और बुरी अथवा ग्राह्य और त्याज्य वस्तुओं को परस्पर पृथक् करना । बिलगाना । उ०—(क) जानि कै अनजान हुआ तत्व न लीया छानि ।—कबीर । (ख) मज्जन पान कियो को सुरसरि कर्मनास जल छानी ?—तुलसी । (३) विवेक करना । अन्वीक्षण करना । जाँचना । पड़तालना । (४) देख भाल करना । ढूँढ़ना । अनुसंधान करना । अन्वेषण करना । तलाश करना । खोज करना । उ०—सारा घर छान डाला पर कागज न मिला ।

संयो० क्रि०—डालना ।

(५) भेद कर पार करना । किसी वस्तु को छेद कर इस पार से उस पार निकालना । उ०—जब ही मारयो खैंचि के तब मैं मूवा जानि । लागी चोट जो सबद की गई करेजे छानि ।—कबीर । (६) नशा पीना । जैसे, भांग छानना, शराब छानना ।

क्रि० स० [सं० छंदन, हिं० छाँदना] (१) रस्सी से बाँधना । जकड़ना । रस्सी आदि से कसना ।

यौ०—बाँधना छानना । उ०—असबाब बाँध छान कर पहले से रख दो ।

(२) घोड़े गदहे आदि के पैरों को रस्सी से जकड़ कर बाँधना । उ०—कबीर प्रगटहि राम कहि छाने राम न गाय । फूस क जोटा दूर कर बहुरि न लागै लाय ।—कबीर ।

छानबीन-संज्ञा स्त्री० [हिं० छानना + बीनना] (१) पूर्ण अनुसंधान या अन्वेषण । जाँच पड़ताल । गहरी खोज । (२) पूर्ण विवेचना । विस्तृत विचार । पूर्ण समीक्षा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

छाना-क्रि० स० [सं० छादन] (१) किसी वस्तु के सिरे या ऊपर के भाग पर कोई दूसरी वस्तु इस प्रकार रखना या फैलाना जिसमें वह पूरा पूरा ढक जाय । ऊपर से आच्छादित करना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) पानी, धूप आदि से बचाव के लिये किसी स्थान के ऊपर कोई वस्तु तानना या फैलाना । जैसे, छप्पर छाना, मंडप छाना, घर छाना । उ०—(क) पुष्प नखत सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नाहँ मँदिर को छावा ?—जायसी । (ख) ऊपर राता चँदवा छावा । औ भुँइ सुरँग बिछाव बिछावा ।—जायसी ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग आच्छादन और आच्छादित दोनों के लिये होता है, जैसे, छप्पर छाना, घर छाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

(३) बिछाना । फैलाना । उ०—मायके की सर्जी सों मँगाय फूल मालती के चादर सों ढांपे छाय तोसक पहल में ।—रघुनाथ । (४) शरण में लेना । रक्षा करना । उ०—छत्रहिं अछत, अछत्रहिं छावा । दूसर नाहिं जो सरिवरि पावा ।—जायसी ।

क्रि० अ० (१) फैलना । पसरना । बिछ जाना । भर जाना । जैसे, बादल छाना, हरियाली छाना । उ०—(क) फूले कांस सकल महि छाई ।—तुलसी । (ख) बरषा काल मेघ नभ छाए । गरजत लागत परम सुहाए ।—तुलसी । (ग) कैसे धरौं धीर वीर पावस प्रबल आयो, छाई हरियाई छिति, नभ बग-पाँती है ।—घासीराम ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

(२) डेरा डालना । बसना । रहना । टिकना । उ०—(क) जब सुग्रीव भवन फिरि आये । राम प्रवर्षन-गिरि पर छाए ।—तुलसी । (ख) हम तो इतने ही सचु पायो । सुंदर स्याम कमल-दल लोचन बहुरि दरस दिखरायो । कहा भयो जो लोग कहत हैं कान्ह द्वारका छायो । सुनि यह दशा विरहि लोगन की उठि आतुर ह्वै धायो ।—सूर ।

छानबे-वि० [सं० षण्णवति, प्रा० छण्णवइ वा छ + नब्बे] जो संख्या में नब्बे और छ हो । नब्बे से छ अधिक ।

संज्ञा पुं० छानबे की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९६ ।

छानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० छान । सं० छादन] ईख के रस की नाद के ऊपर का ढकन जो सरकंडे वा बाँस की पतली फट्टियों का बनता है ।

छाप-संज्ञा स्त्री० [हिं० छापना] (१) वह चिह्न जो किसी रंग पुते हुए साँचे को किसी वस्तु पर दबाकर बनाया जाय । खुदे वा उभरे हुए ठप्पे का निशान । जैसे, चंदन या गेरू की छाप, बूटी की छाप, हथेली की छाप ।

क्रि० प्र०—डालना ।—लगना ।—लगाना ।

(२) मुहर का चिह्न । मुद्रा । उ०—दान दिए बिनु जान न पैहौ । माँगत छाप कहा दिखरावौं को नहिं हमरो जानत । मृगयान तर पहरो न्यारि सों गुन मो रों क्यों मानत ।—सूर ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लगना ।—लगाना ।

भस्म। राख। खाक। उ०—(क) जो नियान तन होइहि छारा। माटी पोखि मरइ को भारा।—जायसी। (ख) तुरतहिं काम भयो जरि छारा।—तुलसी।

यौ०—छार खार करना=भस्म करना। नष्ट भ्रष्ट करना। सत्यानाश करना। उ०—उपजा ईश्वर कोप ते आया भारत बीच। छार खार सब हिंद करूँ मैं उत्तम नहिं नीच।—हरिश्चंद्र। (२) धूल। गर्द। रेणु। उ०—(क) गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पब्बै ते छार, छार पब्बै सो अपलक ही।—तुलसी। (ख) मूढ़ छार डारे गजराज क पुकार करै, पुंडरीक बूड़यो री, कपूर खायो कदली।—केशव।

छारकर्दम—संज्ञा पुं० दे० "क्षारकर्दम"। इस नाम का एक नरक।

छारछबीला—संज्ञा पुं० दे० "छरीला"।

छाल—संज्ञा स्त्री० [सं० छल्ल, छाल] (१) पेड़ों के धड़, शाखा, टहनी और जड़ के ऊपर का आवरण जो किसी किसी में मोटा और कड़ा होता है और किसी में पतला और मुलायम। वक्कल। वल्कल। वृक्ष की त्वचा। जैसे, नीम की छाल, बबूल की छाल। (२) एक प्रकार की मिठाई। उ०—भई मिठाई कही न जाई। मुख मेलत खन जाइ बिलाई। मतलड़ु, छाल, और मरकोरी। माठ, पिराकैं और बुँदौरी।—जायसी। (३) चीनी जो ख़ूब साफ़ न की गई हो।

छालटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाल + टी] (१) छाल का बना हुआ वस्त्र। सन या पाट का बना हुआ कपड़ा। (यह पहले अलसी की छाल का बनता था और इसी को फारसी में कर्ता कहते थे)। (२) सन या पाट का बना हुआ एक प्रकार का चिकना और फूलदार कपड़ा जो देखने में रेशम की तरह जान पड़ता है।

छालना—क्रि० स० [सं० चालन] (१) चालना। छानना। छलनी में रख कर (आटा आदि) साफ़ करना। (२) छेद करना। छलनी की तरह छिद्रमय करना। झँझरा करना।

छाला—संज्ञा पुं० [सं० छल्ल] (१) छाल या चमड़ा। चर्म। जिल्द। जैसे, मृगछाला। (२) किसी स्थान पर जलने, रगड़ खाने या और किसी कारण से उत्पन्न चमड़े की ऊपरी झिल्ली का फूल कर उभरा हुआ तल जिसके भीतर एक प्रकार का चेप या पानी भरा रहता है। फफोला। आबला। झलका। उ०—पाँयन में छाले परे बाँधिबे को नाले परे तऊ, लाल, लाले परे रावरे दरस को।—हरिश्चंद्र।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(३) वह उभरा हुआ दाग जो लोहे या शीशे आदि में पड़ जाता है।

छालिया—संज्ञा पुं० [सं० स्थाली, स्थली] काँसे का एक बरतन जिसमें घी तेल आदि भर कर छायादान दिया जाता है। छाया-पात्र। छाया-दान की कटोरी।

संज्ञा स्त्री० दे० "छाली"।

छाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] (१) कटी हुई सुपारी का चिपटा टुकड़ा। सुपारी का फाल। (२) सुपारी।

छाली*—संज्ञा पुं० [सं० छागल, प्रा० छालओ] बकरा। (हिं०)

छावँ*—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] (१) छाया। साया। (२) शरण। उ०—अब तो हम तुम्हारी छावँ में आगए हैं जो चाहो सो करो। (३) प्रतिबिंब। अक्स।

विशेष—दे० "छाँह"।

छावना†*क्रि० स० दे० "छाना"। उ०—चरण धोइ चरणोदक लीनो माँगि देउँ मनभावन। तीन पैंड़ वसुधा हौं चाहौं परण-कुटी को छावन।—सूर।

छावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाना] (१) छप्पर। छान।

क्रि० प्र०—छाना।

(२) डेरा। पड़ाव।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

(३) सेना के ठहरने का स्थान। फ़ौज की बारिक।

छावर—संज्ञा स्त्री० [सं० शावक] मछलियों के छोटे छोटे बच्चे जो झुंड बाँध कर एक साथ तैरते हैं।

छावरा†*—संज्ञा पुं० [सं० शावक] [स्त्री० छावरी] छौना। जानवर का बच्चा। उ०—भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बग पूरब के लीजिए रसाल गज छावरे।—भूषन।

छावा—संज्ञा पुं० [सं० शावक] (१) बच्चा। (२) पुत्र। बेटा। (हिं०)। (३) १० से २० वर्ष तक का हाथी। जवान हाथी।

छासठ—वि० [सं० षट्षष्टि, प्रा० छसट्ठि] जो गिनती में साठ और छ हो।

संज्ञा पुं० साठ और छ की संख्या तथा उसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६६।

छाहु*—संज्ञा स्त्री० दे० "छाछ"।

छिउँका—संज्ञा पुं० [हिं० चिउँटा] [स्त्री० छिउँकी। वि० छिउँकहा] जो साधारण चिउँटे से छोटा और पतला तथा भूरे रंग का होता है और बड़े जोर से काटता है। यह प्रायः पेड़ों पर होता है।

छिउँकहा†—वि० [हिं० छिउँका] [स्त्री० छिउँकही] (लकड़ी, पेड़, पेड़ की डाल आदि) जिसमें छिउँके लगे हों या जिसे छिउँकों ने खा लिया हो।

छिउँकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चिउँटी] (१) एक प्रकार की छोटी चींटी जो बड़े जोर से काटती है। (२) एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा जिसके काटने से बड़ी जलन होती है। (३) लोहे का एक औजार जो छेवाली से छोटा होता है और धंधार में लगाया जाता है। यह लकड़ी उठाने के काम में आता है। (४) रस्सी की वह मुद्धी जो बोरों में इस लिये लगी रहती

न खोलना अपने पिता विश्वकर्मा के घर चली गई। सूर्य्य ने छाया को संज्ञा ही समझ कर उससे सावर्णि और शनैश्चर नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। छाया इन दोनों पुत्रों को संज्ञा की संतति की अपेक्षा अधिक चाहने लगी। इसपर यम क्रुद्ध होकर छाया को लात मारने चले। छाया ने शाप दिया कि तुम्हारा पैर कट कर गिर जाय। जब सूर्य्य ने यह सुना तब उन्होंने छाया से इस भेद भाव का कारण पूछा, पर उसने कुछ न बतलाया। अंत में सूर्य्य ने समाधि द्वारा सब बातें जान लीं और छाया ने भी सारी व्यवस्था ठीक ठीक बतला दी। जब सूर्य्य क्रुद्ध होकर विश्वकर्मा के यहाँ गए तब उन्होंने कहा कि "संज्ञा तुम्हारा तेज न सह सकने के कारण ही यहाँ चली आई थी और अब एक घोड़ी का रूप धारण करके तप कर रही है"। इसपर सूर्य्य संज्ञा के पास गए और उसने अपना रूप परिवर्त्तित किया।

(८) कांति। दीप्ति। (९) शरण। रक्षा। उ०—अब तुम्हारी छाया के नीचे आ गए हैं जो चाहे सो करो। (१०) उत्कोच। घूस। रिशवत। (११) पंक्ति। (१२) कात्यायनी। (१३) अंधकार। (१४) आर्य्या छंद का एक भेद जिसमें १७ गुरु और २३ लघु होते हैं। (१५) एक रागिनी। संगीतसार के मत से यह हम्मीर और शुद्ध नट के योग से उत्पन्न है। पंचम वादी, ऋषभ संवादी और अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। दामोदर के मत से यह औड़व है जिसका सरगम है—नि ध म ग सा। (१६) भूत प्रेत का प्रभाव। आसेब। जैसे इस पर किसी की छाया है।

छाया गणित–संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें छाया के सहारे ग्रहों की गति, अयनांश का गमनागमन आदि निरूपित किया जाता है। इसमें एक शंकु के द्वारा विषुवन्मंडल स्थिर करके छायाकर्ण निर्धारित किया जाता है।

छायाग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। आइना।

छायाग्राहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसने समुद्र फाँदते हुए हनुमान की छाया पकड़ कर उन्हें खींच लिया था। उ०—या भव पारावार को उलघि पार को जाय। तिय छबि छाया-ग्राहनी गहै बीच ही आय।—बिहारी।

छायातनय–संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर।

छायातरु–संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग। छतिवन।

छायादान–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान।

विशेष—दान करनेवाला घी या तेल से भरे काँसे के कटोरे में अपनी छाया या परछाईं देख और उसमें कुछ दक्षिणा डाल कर दान करता है। यह दान ग्रहजनित शरीर के अरिष्ट की शांति के निमित्त किया जाता है और इसे कुलीन ब्राह्मण नहीं ग्रहण करते।

छायानट–संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो केदार नट, कल्याण नट आदि नव नटों के अंतर्गत है। यह छाया और नट के योग से उत्पन्न है। अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। सा वादी ग संवादी। संगीतसार के मत से यह संपूर्ण जाति का राग है और इसका ग्रह तथा अंश और न्यास धैवत है। यह संध्या के समय एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता है। इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार है—ध स स रे ग म प ध स नि ध प म म म रे ध ध प म प म म म म रे ध प स म म रे स रे स स स।

छायान्वित–वि० [सं०] छायायुक्त। सायादार।

छायापथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाशगंगा। हाथी की डहर। डहर। आकाश जनेऊ। (२) देवपथ। (३) आकाश।

छायापद–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक यंत्र। इसमें बारह अंगुल का शंकु होता था जिसकी छाया से काल का ज्ञान होता था।

छायापुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] हठ योग के अनुसार मनुष्य की छायारूप आकृति जो आकाश की ओर स्थिर दृष्टि से बहुत देर तक देखते रहने की साधना करने से दिखाई पड़ती है। तंत्र में लिखा है कि इस छायारूप आकृति के दर्शन से छ महीने के भीतर होनेवाली भविष्य बातों का पता लग जाता है। यदि पुरुष की आकृति पूरी पूरी दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छ महीने के भीतर मृत्यु नहीं हो सकती। यदि आकृति मस्तक शून्य दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छ महीने के भीतर अवश्य मृत्यु होगी। यदि चरण न दिखाई पड़े तो भार्य्या की मृत्यु और यदि हाथ न दिखाई पड़े तो भाई की मृत्यु निकट समझनी चाहिए। यदि छायापुरुष की आकृति रक्त वर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि धन की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार की और बहुत सी कल्पनाएँ हैं।

छायामान–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

छायामित्र–संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी।

छायायंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र जिससे छाया द्वारा काल का ज्ञान हो। सूर्यसिद्धांत में शंकु, धनु, चक्र आदि इसके अनेक प्रकार बतलाए गए हैं। (२) धूपघड़ी।

छायावान्–वि० [सं० छायावत्] [स्त्री० छायावती] (१) छाया-युक्त। सायादार। छाँहवाला। (२) कांतियुक्त।

छायाविप्रतिपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद का एक प्रकरण जिसके अनुसार रोगी की कांति, आभा, चेष्टा आदि में उलट फेर या परिवर्त्तन देख कर यह निश्चय किया जाता है कि अब यह आसन्न-मरण है या नहीं अच्छा होगा।

छार–संज्ञा पुं० [सं० क्षार] (१) कुछ जली हुई वनस्पतियों या रासायनिक क्रिया से फुकी हुई धातुओं की राख का नमक। खार। (२) खारी नमक। नमक। (३) खारी पदार्थ। (४)

सुमन नभ विटप ओड़ि मनो छपा छिटिकि छवि छाई।—तुलसी।

छिटकनी†—संज्ञा स्त्री० दे० "सिटकनी"।

छिटका‡—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] पालकी के ओहार का वह भाग जो दरवाजे के सामने रहता है और जिसे उठा कर लोग पालकी में घुसते निकलते या उसमें से बाहर देखते हैं। परदा।

छिटकाना—क्रि० स० [हिं० छिटकना] चारों ओर फैलाना। इधर उधर डालना। बि[खरा]ना।

छिटकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "छींट", "छींटा"।

छिटकुनी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतली छड़ी। कमची।

छिटनी—संज्ञा स्त्री० [स० छिद्र या हिं० छँटना] बाँस की फट्टियों या पेड़ के डंठलों आदि की बनी हुई छोटी टोकरी। झौवा। डलिया।

छिटवा—संज्ञा पुं० [स० छिद्र या हिं० छँटना] [स्त्री० अल्प० छिटनी] बाँस की फट्टियों आदि का टोकरा।

छिटाका—संज्ञा पुं० [हिं० छिटकना] एक बालिश्त लंबी मोटी लकड़ी जिसे धुनिए पैर के अँगूठे और उसके पास की उँगली में दबा कर और उसमें फटके की ताँत फँसा कर रुई धुनते हैं।

छिट्टा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छींटा] छोटा छींटा। सीकर। सूक्ष्म जलकण।

छिड़कना—क्रि० स० [हिं० छींटा+करना] (१) पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना कि उसके महीन महीन छींटे फैल कर इधर उधर पड़ें। पानी आदि के छींटे डालना। भिगोने या तर करने के लिये किसी वस्तु पर जल बिखराना। जैसे, पानी छिड़कना, रंग छिड़कना, गुलाब-जल छिड़कना। उ०—पानी छिड़क दो तो यहाँ की धूल बैठ जाय। (२) न्योछावर करना। जैसे, जान छिड़कना। (क्वि०)।

छिड़कवाना—क्रि० स० [हिं० छिड़कना] छिड़कने का काम कराना।

छिड़काई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छिड़कना] (१) छिड़काव। छिड़कने की क्रिया या भाव। (२) छिड़कने की मज़दूरी।

छिड़काना—क्रि० स० दे० "छिड़कवाना"।

छिड़काव—संज्ञा पुं० [हिं० छिड़कना] पानी आदि छिड़कने की क्रिया। छींटों से तर करने का काम। उ०—यहाँ सड़कों पर छिड़काव नहीं होता।

छिड़ना—क्रि० अ० [हिं० छेड़ना] आरंभ होना। शुरू होना। चल पड़ना। जैसे, बात छिड़ना, झगड़ा छिड़ना, चर्चा छिड़ना, सितार छिड़ना।

छित*†—संज्ञा पुं० दे० 'छत्र'।

छितनी—संज्ञा स्त्री० [स० छत्र, प्रा० छत] टोकरी। छोटी और छिछली टोकरी।

छितरना—क्रि० अ० दे० "छितराना"।

छितर बितर†—वि० दे० "तितर बितर"।

छितराना—क्रि० अ० [स० छिन्न+करण, प्रा० छित्तकरण, छितरण अथवा स० सस्तरण] खंडों या कणों का गिर कर इधर उधर फैलना। बहुत सी वस्तुओं का बिना किसी क्रम के इधर उधर पड़ना। बिखरना। तितर बितर होना। उ०—(क) हाथ से गिर कर सब चने जमीन पर छितरा गए। (ख) सब चीज़ें इधर उधर छितराई पड़ी हैं, उठा कर ठिकाने से रख दो।

क्रि० स० खंडों या कणों को गिरा कर इधर उधर फैलाना। बहुत सी वस्तुओं को बिना किसी क्रम के इधर उधर डालना। बिखराना। छींटना।

(२) सटी वस्तुओं को अलग अलग करना। दूर दूर करना। घनी वस्तुओं को विरल करना।

मुहा०—टाँग छितराना = दोनों टाँगों को बगल की ओर दूर दूर रखना। टाँगों को बगल या पार्श्व की ओर फैलाना। जैसे, टाँग छितरा कर चलना।

छितराव—संज्ञा पुं० [हिं० छितराना] छितराने का भाव। बिखरने का भाव।

छिति*—संज्ञा स्त्री० [स० क्षिति] (१) भूमि। पृथ्वी। (२) एक का अंक। उ०—संवत् ग्रह ससि जलधि छिति छठ तिथि बासर चंद। चैत मास पछ कृष्ण में पूरन आनँदकंद।—बिहारी।

छितिकंत*—संज्ञा पुं० [स० क्षितिकांत] भूपति। राजा।

छितिपाल*—संज्ञा पुं० [स० क्षितिपाल] भूपाल। राजा।

छितिरुह*—संज्ञा पुं० [स० क्षितिरुह] पेड़। वृक्ष।

छितीस*—संज्ञा पुं० [स० क्षितीश] राजा।

छित्वर—वि० [स०] (१) छेदक। (२) धूर्त। (३) बैरी।

छिदना—क्रि० अ० [हिं० छेदना] (१) छेद से युक्त होना। सूराखदार होना। भिदना। बिधना। उ०—इस पतली सुई से यह कागज नहीं छिदेगा। (२) क्षतपूर्ण होना। घायल होना। ज़ख्मी होना। उ०—सारा शरीर तीरों से छिद गया था।

† क्रि० स० थाम लेना। सहारे के लिये पकड़ लेना।

† संज्ञा पुं० बरच्छा। फलदान। मँगनी।

छिदरा—वि० [हिं० छिद] (१) विरल। छितराया हुआ। जो घना न हो। (२) झँझरीदार। छेददार। (३) फटा हुआ। जर्जर।

† वि० [स० क्षुद्र] ओछा।

छिदवाना—क्रि० स० दे० छेदाना।

छिदाना—क्रि० स० दे० "छेदाना"।

है कि घोड़े की पीठ पर लादने पर उनमें एक लकड़ी फँसा दी जाय।

छिँकाना-क्रि० स० [हिं० छींकना का प्रे०] छींकने की क्रिया कराना। छींक लाना।

छिँगुनी, छिँगुनिया-संज्ञा स्त्री० दे० "छिँगुली"।

छिँगुली, छिँगुलिया-संज्ञा स्त्री० दे० "छिँगुनी"।

छिँछि-संज्ञा स्त्री० [अनु०] छींटा। धार। फौवारा। उ०—(क) शोणित छिंछि उछरि आकासहिं गज बाजिन सर लागी।—सूर। (ख) शोन छिंछि छूटत बदन भीम भई तेहि काल। मानो कृत्या कुटिलयुत पावक ज्वाल कराल।—केशव। (ग) अति उच्छलि छिंछि त्रिकूट छयो। पुर रावण के जल जोर भयो।—केशव।

छिँटुआ, छिंटुवा-संज्ञा पुं० [हिं० छींटना] बीज बोने का एक ढंग जिसमें बीज को हाथों में लेकर खेत में बिखराते हैं। छींटा।

छिँड़ाना-क्रि० स० [हिं० छीनना] छीनना। जबरदस्ती ले लेना। उ०—(क) स्याम सखन सों कहेउ टेर दै घेरो सब अब जाय। बहुत ढीठ यह भई ग्वालिनी मटुकी लेहु छिँड़ाय।—सूर। (ख) गोरस लेहु री कोउ आय।........डरनि तुम्हरे जाति नाहीं लेत दहिउ छिँड़ाय।—सूर।

छि-अव्य० [अनु०] (१) घृणासूचक शब्द। घिन जताने का शब्द। जैसे, छि, छि! देखो तो तुम्हारे हाथ में कितनी मैल लगी है। (२) तिरस्कार वा अरुचि सूचक शब्द। जैसे, छि! तुम्हें माँगते लज्जा नहीं आती।

छिउल†-संज्ञा पुं० दे० "छीउल"

छिउला†-संज्ञा पुं० [सं० क्षुप+ला (प्रत्य०)] छोटा पेड़। पौधा।

छिकनी-संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्किनी] एक प्रकार की बहुत छोटी घास वा बूटी जो जमीन ही पर फैलती है, ऊपर नहीं बढ़ती। इसमें छोटी छोटी घुंडियों की तरह के मूँग के दाने के बराबर गोल फूल लगते हैं जिन्हें सूँघने से बहुत छींक आती है। यह घास प्रायः ऐसे स्थानों पर अधिक होती है जहाँ कुछ दिनों तक पानी जमा रह कर सूख गया हो, जैसे छिछले ताल आदि। यह ओषध के काम में आती है और वैद्यक में गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक तथा श्वेत कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे नकछिकनी भी कहते हैं।

पर्य्या०—छिक्कनी। क्षवकृत्। तीक्ष्णा। उग्रा। उग्रगंधा। क्षवक। क्रूरनासा। घ्राणदुःखदा।

छिकरा-संज्ञा [सं० छिक्कर] हिरन की जाति का एक जानवर जो बहुत तेज होता है। बृहत्संहिता के अनुसार ऐसे मृग का दाहिनी ओर से निकलना शुभ है।

छिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छींक। (२) दे० "छींका"।

छिक्कर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग। छिकरा।

छिक्कार-संज्ञा पुं० [सं०] छिक्कर नामक मृग।

छिक्किका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छिकनी। नकछिकनी।

छिगुनिया-संज्ञा स्त्री० दे० "छिगुनि"।

छिगुनी-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्र+अंगुली] सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका। उ०—(क) गोरी छिगुनी नख अरुन छला स्याम छवि देइ। लहत मुकति रति छिनेक यह नैन त्रिवेनी सेइ।—बिहारी। (ख) आपे आप भली करी मेटन मान मरोर। करो यह दूर देखिहै छला छिगुनियाँ छोर।—बिहारी।

छिगुली-संज्ञा स्त्री० दे० "छिगुनी"

छिच्छ-संज्ञा स्त्री० [अनु०] बूँद। छींटा। सीकर। उ०—(क) गम शर लागि मनु आगि गिरि पर जरी उछलि छिच्छिन शरनि भानु छाए।—सूर। (ख) कहुँ श्रोन छिच्छ अति लाल लाल। मनु इंदुवधू करि रहिय जाल।—सूदन।

छिछकारना†-क्रि० स० [अनु०] छिड़कना।

छिछड़ा-संज्ञा पुं० दे० "छीछड़ा"

छिछयाना†-क्रि० स० [अनु० छि छि] निंदा करना। घिन करना।

छिछला-वि० [हिं० छूछा+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० छिछली] (पानी की सतह) जो गहरी न हो। उथला। जैसे छिछला पानी, छिछला घाट, छिछली नदी।

छिछलाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० छिछला] छिछला होने का भाव।

छिछली-वि० स्त्री० दे० "छिछला"।

संज्ञा स्त्री० (अनु०) लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक पतले ठीकरे को पानी पर इस तरह फेंकते हैं कि वह दूर तक उछलता हुआ चला जाता है।

क्रि० प्र०—खेलना।

छिछोरपन, छिछोरापन-संज्ञा पुं० [हिं० छिछोरा] छिछोरा होने का भाव। क्षुद्रता। ओछापन। नीचता।

छिछोरा-वि० [हिं० छिछला] [स्त्री० छिछोरी] क्षुद्र। ओछा। जो गभीर वा सौम्य न हो। नीच प्रकृति का।

छिजना†-क्रि० अ० दे० "छीजना"।

छिजाना-क्रि० स० [हिं० छीजना] किसी वस्तु को ऐसा करना कि वह छीज जाय। छीजने वा नष्ट होने देना।

छिटकना-क्रि० अ० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त, छित्त+करण] (१) इधर उधर पड़ कर फैलना। चारों ओर बिखरना। छितराना। बगरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) प्रकाश की किरनों का चारों ओर फैलना। प्रकाश का व्याप्त होना। उजाला छाना। जैसे, चाँदनी छिटकना, तारे छिटकना। उ०—(क) जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।—जायसी। (ख) जगमग

है और मांस रुकता है तथा शरीर का रंग बदल जाता है।

छिन्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़ुच। गिलोय। (२) पुंश्चली। छिनाल।

छिपकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० चिपकना] (१) पेट जमीन पर रख कर पंजों के बल चलनेवाला एक सरीसृप या जंतु जो एक बित्ते के लगभग लंबा होता है और मकान की दीवार आदि पर प्रायः दिखाई पड़ता है। यह जंतु गोधा या गोह की जाति का है और छोटे छोटे कीड़े पकड़ कर खाता है। छिपकली चिकनी से चिकनी खड़ी सतह पर सुगमता से दौड़ सकती है।
पर्य्या०—पल्ली। मुसली। गृहगोधा। बिशंबरी। ज्येष्ठा। कुड्य-मत्स्य। गृहगोलिका। माणिक्या। भित्तिका। गृहोलिका।
विशेष—प्रायः दुबली पतली स्त्री को लोग विनोदवश छिपकली कह देते हैं।
(२) कान का एक गहना।

छिपना–क्रि० अ० [सं० क्षिप = डालना] (१) आवरण या ओट में होना। ऐसी स्थिति में होना जहां से दिखाई न पड़े। जैसे, (क) वह लड़का हमें देख कर छिपने का यत्न करता है। (ख) यहां न जाने कितने अँधरत्न छिपे पड़े हैं। (२) आवरण या ओट में होने के कारण दिखाई न देना। अदृश्य होना। देखने में न आना। जैसे, सूर्य्य का छिपना। (३) जो प्रकट न हो। जो स्पष्ट न हो। गुप्त। जैसे, इसमें उनका कुछ छिपा हुआ मतलब तो नहीं है।

छिपा छिपी–क्रि० वि० [हिं० छिपना] चुपके से छिपा कर। गुप्त रीति से। चुपचाप। गुपचुप।

छिपाना–क्रि० स० [सं० क्षिप = डालना] [संज्ञा छिपाव] (१) आवरण या ओट में करना। ऐसी स्थिति में करना जिसमें किसी को दिखाई न पड़े या पता न चले। ढांकना। आड़ में करना। दृष्टि से ओझल करना। गोपन करना। (२) प्रकट न करना। सूचित न करना। गुप्त रखना। जैसे, बात छिपाना, दोष छिपाना। उ०—तो सों न छिपावति हौं, परी भट्ट, अपराध इतनो कीन्हों मैं जो कही हँसि के। —रघुराज।

छिपा रुस्तम–संज्ञा पुं० [हिं० छिपना + फ़ा० रुस्तम] (१) वह व्यक्ति जो अपने गुण में पूर्ण हो, परंतु प्रख्यात न हो। (२) ऐसा दुष्ट जिसकी दुष्टता लोगों पर प्रकट न हो। गुप्त गुंडा।

छिपाव–संज्ञा पुं० [हिं० छिपना] किसी बात या भेद को छिपाने का भाव। बातों को एक दूसरे से गुप्त रखने का भाव। किसी बात को एक दूसरे पर प्रकट न करने का भाव। दुराव। परस्पर के व्यवहार में हृदय के भावों का गोपन।
क्रि० प्र०—करना।—रखना।

छिप्र* क्रि० वि० दे० "क्षिप्र"।
संज्ञा पुं० [सं० क्षिप्र] एक मर्म स्थान जो पैर अँगूठे और उसके पास की अँगुलियों के बीच में होता है।

छिबड़ा–संज्ञा पुं० दे० "छावड़ा"।

छिबड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० शिबिका] खटोली के आकार की एक डोली जिस पर रेतीले मैदानों में यात्रा करते हैं।
संज्ञा स्त्री० [हिं० छिबड़ा] (१) छोटा टोकरा। (२) खांचा।

छिमा*†–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षमा"।

छिया–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप, प्रा० छित, हिं० छि] (१) वह जिसे देखे लोग छी छी करें। घृणित वस्तु। घिनौनी चीज। (२) मल। गलीज। मैला। उ०—हौं ममुसत, साईं, छोह की गति छार छिया रे।—तुलसी।
मुहा०—छिया छरद करना = छी छी करना। घिनाना। मल और वमन के समान घृणित समझना। उ०—जो छिया छरद करि सकल संतन तजी।तासु मतिमूढ़ रस प्रीति ठानी।—सूर।
वि० मैला। मलिन। घृणित।
संज्ञा स्त्री० [हिं० बछिया] छोकरी। लड़की। उ०—कौन की छांह छिपैगी छिया छहियां तजि नाह की माह निसा में।—सु० सर्व०।

छियाज–संज्ञा पुं० [सं० क्षय + ब्याज] कटुआँ ब्याज।

छियानबे†–संज्ञा पुं० दे० "छानबे"।

छियालिस वि० दे० "छियालीस"।

छियालीस–वि० [सं० षट्चत्वारिंश, हिं० छ + चालीस] जो संख्या में चालीस और छ हो।
संज्ञा पुं० छियालीस की संख्या तथा अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४६।

छियासी–वि० [सं० षडशीति, पा० छसीति, प्रा० छासी] छ और अस्सी। जो गिनती में अस्सी से छ अधिक हो।
संज्ञा पुं० (१) छ और अस्सी की संख्या। (२) उक्त संख्या का द्योतक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८६।

छिरकना*–क्रि० स० [हिं०] छिड़कना। उ०—एकादशी एक सखि आई डारयो सुभग अबीर। एक हाथ पीतांबर पकरयो छिरकत कुंकुम नीर।—सूर।

छिरकाना–क्रि० स० दे० "छिड़काना"।

छिरहटा–संज्ञा पुं० दे० "छिरैटा"।

छिरहा†–वि० [हिं० छेड़ना] हठी। जिद्दी।

छिरैटा–संज्ञा पुं० [सं० क्षिरिंड] [स्त्री० अल्पा० छिरैटी] एक छोटी बेल जो मैदानों, नदी के करारों आदि पर होती है। इसकी पत्तियों का कटाव सींके की ओर कुछ पान का सा होता है, पर थोड़ी ही दूर चल कर पत्तियों की चौड़ाई एक बारगी कम हो जाती है और वे दूर तक लंबी बढ़ जाती हैं। यह चौड़ाई सिरे पर भी उतनी ही बनी रहती है। इन पत्तियों

छिद्र–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रित] (१) छेद । सूराख । बिल । (२) गड्ढा । विवर । (३) अवकाश । जगह । (४) दोष । त्रुटि, जैसे छिद्रान्वेषण ।
यौ०—छल छिद्र ।
(५) फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न से आठवाँ घर । (६) नौ की संख्या ।

छिद्रदर्शी–वि० [सं० छिद्रदर्शिन्] पराया दोष देखनेवाला । नुक्स निकालनेवाला । खुचर निकालनेवाला ।
संज्ञा पुं० एक योगभ्रष्ट ब्राह्मण का नाम । हरिवंश के अनुसार यह बाभ्रव्य का पुत्र था ।

छिद्रवैदेही–संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली । गजपीपर ।

छिद्रात्मा–वि० [सं० छिद्रात्मन्] खलस्वभाव । कुटिल । खल ।

छिद्रान्वेषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छिद्रान्वेषी] दोष ढूँढ़ना । नुक्स निकालना । खुचर निकालना ।

छिद्रान्वेषी–वि० [छिद्रान्वेषिन्] [स्त्री० छिद्रान्वेषिणी] छिद्र ढूँढ़नेवाला । पराया दोष ढूँढ़नेवाला । खुचुर निकालनेवाला ।

छिद्राफल–संज्ञा पुं० [सं०] माजूफल ।

छिद्रित–वि० [सं०] (१) छेदा हुआ । वेधा हुआ । (२) जिसमें दोष लगा हो । दूषित ।

छिद्रोदर–संज्ञा पुं० [सं०] क्षतोदर नामक पेट का रोग ।

छिन*–संज्ञा पुं० दे० "क्षण" ।

छिनक*–क्रि० वि० [सं० क्षण+एक] एक क्षण । दम भर । थोड़ी देर । उ०—तृन समूह को छिनक में जारत तनिक अँगार ।

छिनकना–क्रि० स० [हिं० छिड़कना] नाक का मल ज़ोर से साँस बाहर करके निकालना । जैसे, नाक छिनकना ।
क्रि० अ० [हिं० चमकना] †(१) भड़क कर भागना । चमकना । दे० "छनकना" । (२) रंजक चाट जाना । (बंदूक) ।

छिनछवि*–संज्ञा० स्त्री० [सं० क्षण+छवि] बिजली ।

छिनदा*–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षणदा" ।

छिनना–क्रि० अ० [हिं० छीनना] छीन लिया जाना । हरण होना ।
संयो० क्रि०—जाना ।
क्रि० स० [सं० छिन्न] (१) पत्थर का छेनी या टाँकी के आघात से कटना । (२) सिल, चक्की आदि का छेनी के आघात से खुरदरी वा गड्ढेदार होना । कुटना ।

छिनरा–वि० [हिं० छिनार] [स्त्री० छिनार, छिनाल] पर-स्त्री-गामी पुरुष । लंपट । वृषल ।

छिनवाना–क्रि० स० [हिं० 'छीनना का' प्रे०] छीनने का काम कराना ।
क्रि० स० [सं० छिन्न] (१) पत्थर को छेनी से कटवाना । (२) सिल चक्की आदि को छेनी से खुरदुरी कराना । कुटाना ।

छिनाना–क्रि० स० [हिं० 'छीनना' का प्रे०] छीनने का काम कराना ।
† क्रि० स० छीनना । हरण करना । उ०—कामधेनु जमदग्नि की लै गयो नृपति छिनाय ।—सूर ।
क्रि० स० [सं० छिन्न] (१) टाँकी वा छेनी से पत्थर आदि कटाना । (२) टाँकी वा छेनी से सिल चक्की आदि को खुरदुरी कराना ।

छिनार–वि० स्त्री० दे० "छिनाल" ।

छिनाल–वि० स्त्री० [सं० छिन्ना+नारी, पू० हिं० छिनारि] व्यभिचारिणी । कुलटा । परपुरुषगामिनी ।
संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी स्त्री ।

छिनालपन, छिनालपना–संज्ञा पुं० [हिं० छिनाल+पन] व्यभिचार । छिनाला ।

छिनाला–संज्ञा पुं० [हिं० छिनाल] व्यभिचार । स्त्री-पुरुष का अनुचित सहवास ।

छिन्न–वि० [सं०] जो कट कर अलग हो गया हो । जो काट कर पृथक् कर दिया गया हो । खंडित ।
यौ०—छिन्न भिन्न ।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का मंत्र । (२) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा । इसका क्षत सीधी वा टेढ़ी लकीर के रूप में होता है और इसमें मनुष्य का अंग गलने लगता है ।

छिन्न भिन्न–वि० [सं०] (१) कटा कुटा । खंडित । टूटा फूटा । (२) नष्ट भ्रष्ट । (३) तितर बितर । जिसका क्रम खंडित हो गया हो । अस्त व्यस्त ।

छिन्नपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा । पाढ़ा ।

छिन्नपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष ।

छिन्नमस्ता–वि० [सं०] जिसका माथा कटा हो ।
संज्ञा स्त्री० एक देवी जो महा विद्याओं में छठीं हैं । इनका ध्यान इस प्रकार है—अपना ही कटा हुआ सिर अपने दाएँ हाथ में लिए, मुँह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्त धारा को चाटती हुई, हाथ में खड्ग लिए, मुंडों की माला धारण किए और दिगंबरा । इनका नाम प्रचंडिका भी है । तंत्रसार में इनका पूरा विवरण लिखा है ।

छिन्नरुह–संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष । पुन्नाग ।

छिन्नरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच । गिलोय ।

छिन्नव्रण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी शस्त्र से कटा हुआ घाव । (२) वह फोड़ा जो किसी ऐसे घाव पर हो जो शस्त्र से लगा हो ।

छिन्नवेदिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा ।

छिन्नश्वास–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग । यह श्वास का भेद माना जाता है । इसमें रोगी का पेट फूलता है, पसीना आता

छींटना—क्रि० स० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त+ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु के कणों को इधर उधर गिरा कर फैलाना। बिखराना। छितराना।
संयो० क्रि०—देना।

छींटा—संज्ञा पु० [सं० क्षिप्त प्रा० छित्त] (१) पानी (या और किसी द्रव पदार्थ) का महीन बूँद जो पानी को उछालने या ज़ोर से फेंकने से इधर उधर पड़े। जलकण। सीकर।
क्रि० प्र०—उड़ना।—पड़ना।
यौ०—छींटा गोला = तोप का गोला जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ या कील काँटे आदि भरे होते हैं।
(२) महीन महीन बूँदों की हलकी वृष्टि। झड़ी। उ०—मेंह का एक छींटा आया था। (३) किसी द्रव पदार्थ के पड़े हुए बूँद का चिह्न। जैसे, इन स्याही के छींटों को धोकर छुड़ा दो। (४) मदक या चंडू की एक मात्रा। दम। (५) व्यंग्यपूर्ण उक्ति जो किसी को लक्ष्य करके कही गई हो। हलका आक्षेप। छिपा हुआ ताना।
क्रि० प्र०—छोड़ना।—देना।

छींदा—संज्ञा स्त्री० [सं० शिंबी, हिं० छीमी] छीमी। फली।

छी—अव्य० [सं०] घृणासूचक शब्द। घिन प्रकट करने का शब्द। जैसे, छी! तुम्हें ऐसा करते लज्जा नहीं आती।
मुहा०—छी छी करना = घिनाना। अरुचि या घृणा प्रकट करना। उ०—वैद भये विष भावे न भूषन भोजन की कछुहू नहि ईछी। मीच के साधन सोंध सुधा, दधि दूध औ माखन आदिहु छी! छी!
संज्ञा पु० [अनु०] वह शब्द जो घाट पर कपड़ा धोते समय धोबियों के मुँह से निकलता है। उ०—घाट पर ठाढ़ी बाट पारति बटोहिन की चेटकी सी डीठ मन काको न हरति है। लटकि लटकि 'छी' करति खुले भुजमूल झुकि झुकि स्वेद कण फूल से झरत हैं।—देव।

छीउल—संज्ञा पु० [देश०] पलाश। ढाक।

छीका—संज्ञा पु० [सं० शिक्य] (१) गोल पात्र के आकार का रस्सियों का बुना हुआ जाल जो छत में इस लिये लटकाया जाता है कि उस पर रक्खी हुई खाने पीने की चीज़ों (जैसे दूध दही आदि) को कुत्ते बिल्ली आदि न पा सकें। सीका। सिकहर। उ०—अब कहि देउ कहत किन यों कहि माँगत दही धरयो जो है छीके।—सूर।
मुहा०—छीका टूटना = अनायास ऐसी घटना होना जिससे किसी को कुछ लाभ हो जाय। जैसे, बिल्ली के भाग से छीका टूटा।
(२) जालीदार खिड़की या झरोखा। (३) रस्सियों का जाल जो काम लेते समय बैलों के मुँह में इस लिये पहनाया जाता है जिस में वे कुछ खाने के लिये इधर उधर मुँह न चला सकें। जाबा। मुसका।
क्रि० प्र०—देना।—लगाना।
(४) रस्सियों का बना हुआ झूलनेवाला पुल। झूला। (५) बाँस या पतली टहनियों को बुन कर बनाया हुआ टोकरा जिस में बड़े बड़े छेद छूटे रहते हैं। छिटनी। छँचिया।

छीछड़ा—संज्ञा पु० [सं० तुच्छ, प्रा० छुच्छ] (१) मांस का तुच्छ और निकम्मा टुकड़ा। मांस का बेकाम लच्छा। जैसे, बिल्ली को छीछड़े ही भाते हैं। (२) पशुओं की अँतड़ी का वह भाग जिसमें मल भरा रहता है। मल की थैली।

छीछला—वि० दे० "छिछला"।

छीछालेदर—संज्ञा स्त्री० [हिं० छी छी] दुर्दशा। दुर्गति। खराबी।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

छीज—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीजना] घाटा। कमी। उ०—गाउहि दिवस रहे सब भीजा। लाभ न देखत देखी छीजा।—जायसी।

छीजना—क्रि० अ० [सं० क्षयण या क्षीण] (१) क्षीण होना। घटना। कम होना। ह्रास होना। अवनत होना। उ०—(क) छीजहिं निशिचर दिन औ राती। निज मुख कह सुकृत जेहि भाँती।—तुलसी। (ख) लहर झकोर बड़हिं जब भीजा। तौहू रूप रंग नहिं छीजा।—जायसी। (ग) सखि! जा दिन तें परदेस गए पिय ता दिन तें तन छीजत है।—सुं० सर्व०।
संयो० क्रि०—जाना।

छींट—संज्ञा स्त्री० दे० "छींट"।

छीटा—संज्ञा पु० [सं० शिक्य, हिं० छीका] [स्त्री० अल्प० छिटनी] (१) बाँस की कमचियों या पतली टहनियों को परस्पर जाल की तरह बुन कर बनाया हुआ टोकरा। खाँचा।
यौ०—छीटा गोला = ढोल या पीपे के आकार का बना हुआ टोकरा।
(२) चिलमन।

छीड़—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] आदमियों की कमी। भीड़ का उलटा।

छीतना—क्रि० स० [सं० छिद्+ना (प्रत्य०)] (१) बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना। (२) मारना। कूटना।

छीतस्वामी—संज्ञा पु० [हिं० छीत+स्वामी] अष्टछाप के एक वैष्णव भक्त। ये वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। कृष्ण संबंधी इनके रचे पद इनके संप्रदाय के लोग अब तक गाते हैं।

छीता—संज्ञा पु० [देश०] बहू के मायके या ससुराल जाने की साइत।

छीति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] (१) हानि। घाटा। (२) बुराई (?) उ०—अब राधे नाहिन ब्रज नीति। नृप भयो कान्ह काम अधिकारी उपजी है यह कठिन कुरीति।............ तेरो तन धन रूप महा गुन सुंदर स्याम सुनी यह कीर्ति सो कहु सूर जेहि भाँति रहै पति जनि बल बाँधि बढ़ावहु छीति।—सूर।

की लंबाई ढाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती और इन का रस निचोड़ कर जल, दूध आदि में डालने से जल वा दूध गाढ़ा होकर जम जाता है। इस बेल में बहुत छोटे छोटे फल गुच्छों में लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं। वैद्यक में छिरेटा मधुर, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक तथा पित्त, दाह और विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्य्या० छिलहिंड। पातालगरुड़। महामूल। वत्सादनी। तिक्तांगा। मोचकाभिधा। तार्क्षी। सौपर्णी। गारुड़ी। दीर्घ कांडा। महाबला। दीर्घवल्ली। दृढ़लता।

छिलकना*†–क्रि० स० "छिड़कना"।

छिलका–संज्ञा पुं० [हिं० छाल] फलों कंदों तथा इसी प्रकार की और वस्तुओं के ऊपर का कोश या बाहरी आवरण जो छीलने, काटने वा तोड़ने से सहज में अलग हो सकता है। फलों की त्वचा या ऊपरी झिल्ली। एक परत की खोल जो फलों, बीजों आदि के ऊपर होती है। जैसे, सेब का छिलका, कटहल का छिलका, गन्ने का छिलका, अंडे का छिलका।

विशेष—छाल, छिलका और भूसी में अंतर है। छाल पेड़ों के धड़, डाल और टहनियों के ऊपरी आवरण को कहते हैं, छिलका, कंद, मूल, फल आदि के ऊपर के आवरण को कहते हैं जो काटने छीलने आदि से जल्दी अलग हो जाता है। भूसी महीन दानों के सूखे हुए आवरण को कहते हैं जो कूटने से अलग होता है।

छिलछिला†–वि० दे० "छिछला"।

छिलना–क्रि० अ० [हिं० छीलना] (१) इस प्रकार कटना जिसमें ऊपरी सतह या आवरण निकल जाय। छिलके वा चमड़े का कट कर अलग होना। उधड़ना। (२) रगड़ या आघात से ऊपरी चमड़े का कुछ भाग कट कर अलग हो जाना। खरोंच जाना। उ०—पैर में जरा सा छिल गया है। (३) गले के भीतर चुनचुनाहट वा खुजली सी होना। जैसे, सूरन से सारा गला छिल गया।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

छिलवा–संज्ञा पुं० [हिं० छीलना] वह मनुष्य जो ऊख के खेतों में ईख काट कर उसकी पत्तियों को छील कर दूर करता है।

छिलवाना–क्रि० स० [हिं० छीलना का प्रे०] छीलने के लिये प्रेरित करना। छीलने का काम कराना। जैसे, घास छिलवाना।

छिलहिंड–संज्ञा पुं० [सं०] छिरहटा। छिरेटा।

छिलाना–क्रि० स० दे० "छिलवाना"।

छिलाव, छिलावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० छीलना] छिलाई। छीलने का भाव वा क्रिया।

छिलौरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाला] छोटा छाला। आबला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छिलड़ा†–संज्ञा पुं० [हिं० छिलका] छिलका। भूसी।

छिहत्तर–वि० [सं० षट्सप्तति, प्रा० छसत्तति, पा० छसत्तरि, छहत्तरि] छः और सत्तर। जो गिनती में सत्तर से छः अधिक हो।

संज्ञा पुं० (१) छः और सत्तर की संख्या। (२) उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७६।

छिहाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० छिहाना] (१) छिहाने का काम। (२) चिता। सरा। (३) मरघट।

छिहाना†–क्रि० स० [सं० चयन] [संज्ञा छिहानी] किसी वस्तु को तले ऊपर रख कर राशि या ढेर लगाना। गांजना। ढेर लगाना।

छिहानी–संज्ञा पुं० [हिं० छिहाना] श्मशान। मसान। मरघट।

छिहरना†–क्रि० अ० [हिं० छितरना] बिखरना। फैलना। छितराना। दे० "छहराना"।

छिहराना†–क्रि० स० दे० "छहराना"।

छींक–संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्का] नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा निकलनेवाला वायु का झोंका या स्फोट। यह स्फोट नाक की झिल्ली में चुनचुनाहट होने से, आंख में तीक्ष्ण प्रकाश पड़ने के कारण तिलमिलाहट होने से होता है। इसमें कभी कभी पानी वा श्लेष्मा भी नाक और मुँह से निकलती है। हिंदुओं में एक प्राचीन रीति है कि जब कोई छींकता है तब कहते हैं 'शतं जीव' वा 'चिरं जीव'। यह प्रथा यूनानियों, रोमनों और यहूदियों में भी थी। अंगरेजों में भी जब कोई छींकता है तब पुरानी परिपाटी के लोग कहते हैं कि 'ईश्वर कल्याण करें'। हिंदुओं में किसी कार्य्य के आरंभ में छींक होना अशुभ माना जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—होना।—मारना।—लेना।

मुहा०—छींक होना = बुरा शकुन होना।

छींकना–क्रि० अ० [हिं० छींक] नाक और मुँह से वेग के साथ वायु निकालना जिसमें शब्द होता है।

मुहा०—छींकते नाक काटना = थोड़ी थोड़ी बात पर चिढ़ना वा दंड देना। अत्याचार करना।

छींट–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छित्त] (१) पानी वा और किसी द्रव पदार्थ का महीन बूँद। जलकण। सीकर। उ०—राधे छिरकति छींट छबीली। कुच कुंकुम कंचुकि बँद टूटे, लटकि रही लट गीली।—सूर। (२) पानी आदि के पड़े हुए बूँद या कण का चिह्न जो किसी वस्तु पर पड़ जाय। (३) वह कपड़ा जिस पर रंग बिरंग के बेल बूटे रंगों से छाप कर बनाए गए हों।

विशेष—प्राचीन काल में कपड़े पर रंग बिरंग की छींट हाथ से छींट बनाते थे।

यौ०—सोसनी छींट = एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो लिहाफ़ के पहलों के काम में आता है।

छिछला गड्ढा । तलैया । उ०—(क) कबिरा राम रिझाइ ले जिह्वा सों करि मित्त । हरि सागर जनि बीसरैं छीलर देखि अनित्त ।—कबीर । (ख) अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र की आस ।—सूर । (ग) याको कहा परेखो हरषो मधु छीलर, सरितापति खारो । (घ) पून्योई को पूरन पै प्रति दूनो दूनौं छन छन छीन होत छीलर को जलसों । —केशव ।

छोंघ*—संज्ञा पुं० दे० "छीव" ।

छुँगली*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छँगुली] एक प्रकार की अँगूठी जिसमें घुँघुरू लगे होते हैं । यह छोटी उँगली में पहनी जाती है ।

छुआना†—क्रि० स० दे० 'छुलाना' ।

छुआ छूत—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] (१) अछूत को छूने की क्रिया । अस्पृश्य स्पर्श । अशुचि संसर्ग । उ०—यहाँ छूआ छूत मत करो । (२) स्पृश्य अस्पृश्य का विचार । छूत का विचार । उ०—यहाँ छूआ छूत का बखेड़ा नहीं है ।

छुईमुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना मुवना] एक छोटा कटीला पौधा जिसकी पत्तियाँ बबूल की सी होती हैं । इसमें यह विशेषता है कि जहाँ पत्तियों को किसी ने छूआ कि वे बंद हो जाती हैं और उनके सींके लटक जाते हैं । लज्जालु । लज्जावंती । लजाधुर । लजारो । दे० "लज्जावंती" ।

छुगुनू†—संज्ञा पुं० [अनु० छुनछुन] घुँघुरू उ०—कटि करधन छुगुनू छजत स्यामल बदन सुहाय । मनहु नीलमणि मंदिर बसेउ बासुकी आय ।—शृं० सत० ।

छुच्छा—वि० दे० "छूछा" ।

छुच्छी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूछा] (१) पतली पोली छोटी नली । (२) नरकट की चार पाँच अंगुल लंबी नली जिसमें जोलाहे तागा लपेट कर उसे ढरकी में लगा कर बुनते हैं । नरी । (३) नाक में पहनने का एक गहना । यह लौंग की तरह का होता है पर इसमें फूल की जगह चारों ओर उभड़े रवे अथवा चंदक रहती है जिस पर नग जड़े जाते हैं । इसके बीच में एक छेद भी होता है जिसमें नथ डाल कर पहनी जाती है । नाक की कील । लौंग । (४) एक पतली नली जो एक तिकोनिये पर लगी होती है और जिसमें बत्ती लगा कर गिलास में जलाई जाती है । (५) वह पतली नली जिसका एक छोर गिलास की तरह चौड़ा होता है और जिसे लगा कर एक बरतन से दूसरे बरतन में तेल आदि ढालते हैं । कीप ।

छुछकारना†—क्रि० स० [अनु०] (१) कुत्ते को शिकार आदि के पीछे लगाना । लहकारना । (२) झिड़कना । डाँट फटकार बताना ।

छुछहँड़†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूछी + हँडी] छूछी हाँड़ी ।

मुहा०—छुछहँड़ दिखाना = माँगने पर किसी वस्तु को देने से इनकार करना वा उसका अभाव बतलाना ।

छुछुंदर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छुछुंदरी] छछूँदर ।

छुछुआना—क्रि० अ० [अनु० छू छू] छछूँदर की तरह छू छू करते फिरना । व्यर्थ इधर उधर घूमते फिरना ।

छुट*—अव्य० [हिं० छूटना,] छोड़ कर । सिवाय । अतिरिक्त । उ०—जब ते जग जन्म पाय जीव है कहायो । तब ते छुट अवगुण इक नाम न कहि आयो ।—सूर ।

छुटकाना*—क्रि० स० [हिं० छूटना] [संज्ञा छुटकारा] (१) छोड़ना । अलग करना । पकड़े न रहना । उ०—किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाए ।—तुलसी । (२) छोड़ना । साथ न लेना । उ०—माधव जू गज ग्राह ते छुड़ायो ।.........चितवत चित हरी में चिंतामणि चक्र लए कर धायो । अति करुणा करि करुणामय हरि गरुड़हि हूँ छुटकायो ।—सूर । (३) छुड़ाना । मुक्त करना । छुटकारा देना । उ०—(क) लागि पुकार तुरत छुटकायो काट्यो बंधन ताको ।—सूर । (ख) हौं बसि के बन, भूपति को, सुनु, कैकयि के ऋण ते छुटकाऊँ ।—हनुमान ।

छुटकारा—संज्ञा पुं० [हिं० छुटकाना वा छूट] (१) किसी बंधन आदि से छूटने का भाव वा क्रिया । मुक्ति । रिहाई । (२) किसी बाधा, आपत्ति वा चिंता आदि से रक्षा । निस्तार । जैसे, ऋण से छुटकारा, विपत्ति से छुटकारा ।

क्रि० प्र०—करना । पाना ।—मिलना ।—होना ।

(३) किसी काम से छुट्टी । किसी कार्यभार से मुक्ति ।

क्रि० प्र०—देना ।

छुटना†*—क्रि० अ० दे० "छूटना" ।

छुटपन†—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] (१) छोटाई । लघुता । (२) बचपन । लड़कपन ।

छुटवाना†—क्रि० स० दे० "छोड़वाना" ।

छुटाई†—संज्ञा स्त्री० दे० "छोटाई" ।

छुटाना†—क्रि० स० [सं० छुट = काट कर अलग करना] छुड़ाना । उ०—(क) सब गज हरि की शरण आयो । सूरदास प्रभु ताहि छुटायो ।—सूर । (ख) छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार । मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार ।—बिहारी । क्रि० अ० गाय या भैंस का दूध देना बंद कर देना ।

छुटैयाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] भाँड़ों और स्वांग करनेवालों के चुटकले ।

छुटौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] वह सूद वा लगान जो छोड़ दिया जाय । चँदुआ ।

छुट्टा—वि० [हिं० छूटना] [स्त्री० छुट्टी] (१) जो बँधा न हो ।

यौ०—छुट्टा पान = बिना लगा हुआ पान । पान का पत्ता ।

(२) एकाकी । अकेला । (३) जिसके साथ कुछ माल असबाब न हो ।

छोती छान–वि० [सं० क्षति + छिन्न] छिन्न भिन्न। तितर बितर। उ०—वह सब सेना असुरों की छोती छान हो वहीं की वहीं बिलाय गई।—लल्लू।

छोदा–वि० [सं० छिद्र] (१) जिसमें बहुत से छेद हों। झाँझरा। छिदरा। जिसके तंतु दूर दूर पर हों। जिसकी बुनावट घनी न हो। (२) जो दूर दूर पर हों। जो घना न हो। विरल।

छोन–वि० [सं० क्षीण] (१) दुबला। पतला। कृश। (२) शिथिल। मंद। मलिन। उ०—पूँछ को तजि असुर दौरि के मुख गह्यो सुरन तब पूँछ की ओर लीनी। मथत भए छीन तब बहुरि अस्तुति करी श्री महाराज निज शक्ति दीनी।—सूर।

छोन चंद्र–संज्ञा पुं० [सं० क्षीणचंद्र] द्वितीया का चंद्रमा।

छोनता–संज्ञा स्त्री० दे० "क्षीणता"।

छोनना–क्रि० स० [सं० छिन्न + ना (प्रत्य०)] (१) छिन्न करना। काट कर अलग करना। उ०—नीर हू ते न्यारे कीनो चक्रन चक्र सीस छीनो देवकी के नंदलाल ऐंचि भुव तल में।—सूर। (२) किसी दूसरे की वस्तु जबरदस्ती ले लेना। किसी वस्तु को दूसरे के अधिकार से बलात् अपने अधिकार में कर लेना। हरण करना।

यौ०—छीना खसोटी। छीना झपटी। छीना छीनी।

(३) अनुचित रूप से अधिकार करना। (४) सिल चक्की आदि को छेनी से खुरदुरा करना। कुटना। रेहना। (५) छेनी से पत्थर आदि काटना वा बराबर करना। (६) दे० "छेना"।

छोना खसोटी–संज्ञा स्त्री० दे० "छीना झपटी"।

छोना छोनी–संज्ञा स्त्री० दे० "छीना झपटी"।

छोना झपटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छीनना + झपटना] जबरदस्ती वा झाड़ झपट के साथ किसी वस्तु को लेने की क्रिया।

छोना†–क्रि० स० [सं० छुप = छूना] छूना। स्पर्श करना। उ०—(क) ग्वालि वचन सुनि कहति जसोमति भले भूमि पर बादर छीवो।—तुलसी। (ख) हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सो हाथ छिए।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं० छिन्न] (१) घड़े के नीचे का वह कपाल वा गोल भाग जो फोड़ कर अलग कर दिया गया हो। (२) मिट्टी का वह साँचा जिस पर कुम्हार घड़े कुंडे आदि की पेंदी या कपाल को रख कर थापी से पीटते हैं।

छोप–वि० [सं० क्षिप्र] तेज। वेगवान। शीघ्र। उ०—सात दीप नृप दीप दीप गति चहत समर सरि।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० दे० "सीप"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छाप] (१) छाप। चिह्न। दाग। (२) वह दाग या धब्बा जो छोटी छोटी बिंदियों के रूप में शरीर पर पड़ जाता है। सेहुआँ। (यह एक प्रकार का चर्म-रोग है)।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह छड़ी जिसमें डोरी बाँध कर मछली फँसाने की कटिया लगाई जाती है। डगन। बंसी। (२) एक पेड़ का नाम जिसके फल की तरकारी होती है। इसे खीप और चीप भी कहते हैं।

छोपना–क्रि० स० [सं० क्षिप] कटिया में मछली फँसने पर उसे बंसी के द्वारा खींच कर बाहर फेंकना।

छोपा†–संज्ञा पुं० [सं० क्षेप] (१) तंग मुँह का मिट्टी का एक बरतन जिसमें अहीर दूध दुह कर डालते जाते हैं। (२) दे० "छीपी"।

छोपी–संज्ञा पुं० [हिं० छीप] [स्त्री० छीपिन] छींट छापनेवाला। कपड़े पर बेलबूटे छापनेवाला।

संज्ञा पुं० [देश०] वह लंबी छड़ी जिससे लोग कबूतर आदि उड़ाते हैं। इसके सिरे पर कपड़ा बँधा रहता है।

छोवर–संज्ञा स्त्री० [देश०, हिं० छापना] मोटी छींट। कपड़ा जिस पर बेल बूटे छपे हों। उ०—हा हा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती छोहरी छीवर वारी।

छोमी†–संज्ञा स्त्री० [सं० शिम्बी] फली। जैसे, मटर की छीमी।

छोर–संज्ञा पुं० दे० "क्षीर"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छोर] (१) कपड़े आदि का वह किनारा जहाँ लंबाई समाप्त हो। छोर।

मुहा०—छीर डालना = धोती आदि में किनारे का तागा निकाल कर झालर बनाना।

(२) वह चिह्न जो कपड़े पर डाला जाय। (३) कपड़े के फटने का चिह्न।

क्रि० प्र०—पड़ना।

छोरज*–संज्ञा पुं० [सं० क्षीरज] दधि। दही।

छोरधि*–संज्ञा पुं० [सं० क्षीरधि] क्षीरसागर। दूध का समुद्र।

छोरप*–संज्ञा पुं० [सं० क्षीरप] बालक। बच्चा।

छोरफेन*–संज्ञा पुं० [सं० क्षीरफेन] दूध की मलाई।

छोरसागर*–संज्ञा पुं० दे० "क्षीरसागर"।

छोलना–क्रि० स० [हिं० छाल] (१) किसी वस्तु का छिलका या छाल उतारना। लगी हुई छाल या ऊपरी आवरण को काट कर अलग करना। ऊपरी सतह की कुछ मोटाई काट कर अलग करना। जैसे, सेब छीलना, गन्ना छीलना, लकड़ी छीलना, पेंसिल छीलना। (२) ऊपर लगी हुई या जमी हुई वस्तु को खुरच कर अलग करना। जैसे, चाकू से हरफ छीलना, घास छीलना। (३) गले के भीतर चुनचुनाहट या खुजली सी उत्पन्न करना। जैसे, सूरन ने गला छील डाला।

छोलर–संज्ञा पुं० [हिं० छिछला अथवा सं० ...] (१) एक छोटा गड्ढा जो कुएँ पर इस लिये बना रहता है कि मोट का पानी उसमें डाला जाय। छिछला। छिछारी। (२) छोटा

छुमित*—वि० [सं० क्षुभित] (१) विचलित। चंचलचित्त। (२) घबराया हुआ।

छुभिराना*—क्रि० अ० [हिं० क्षोभ] क्षोभ को प्राप्त होना। क्षुब्ध होना। चंचल होना। उ०—चैयाँ चैयाँ गहौ चैयाँ नैयाँ ऐसे बोलौ यदि दैया करो दया हमें काहे छुभराने हौ।—सूदन।

छुरधार*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुरधार] छुरे की धार। पतली धार जिससे छू जाते ही कोई वस्तु कट जाय। उ०—देव विकटतर वक्र छुरधार प्रमदा तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्ग धारा।—तुलसी।

छुरहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरा + धरना] नाऊ की पेटी जिसमें वह छुरे रखता है। किसवत।

छुरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर] [स्त्री० अल्प० छुरी] (१) वह हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का एक धारदार लंबा टुकड़ा लगा रहता है। यह आक्रमण करने वा मारने के काम में आता है। (२) वह हथियार जिससे नाई बाल मूँड़ते हैं। उस्तरा।

छुरित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लास्य नामक नृत्य का एक भेद। इस नृत्य में नायक और नायिका दोनों रसपूर्ण हो परस्पर प्रेमप्रदर्शन पूर्वक चुंबनादि करते हुए नृत्य करते हैं। (२) बिजली की चमक।

वि० खचित। जड़ित। खुदा हुआ।

छुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरा] (१) काटने या चीरने फाड़ने का एक छोटा हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का लंबा धारदार टुकड़ा लगा रहता है। इससे नित्य प्रति के व्यवहार की वस्तु जैसे, फल तरकारी, कलम आदि काटते हैं। (२) लोहे का एक धारदार हथियार जिसमें बेंट लगा रहता है।

मुहा०—छुरी चलना = (१) छुरी से लड़ाई होना। (२) चीरने आदि के लिये छुरी का प्रयोग होना। किसी पर छुरी चलाना = घोर कष्ट पहुँचाना। घोर दुःख देना। भारी हानि पहुँचाना। घोर अनिष्ट करना। बुराई करना। अहित साधन करना। छुरी देना = मारना। गला काटना। (किसी पर) छुरी तेज करना = हानि पहुँचाने की तैयारी करना। (किसी पर छुरी तेज होना = अनिष्ट करने वा हानि पहुंचाने की तैयारी होना। (किसी पर) छुरी फेरना = किसी का अनिष्ट करना। किसी को भारी हानि पहुँचाना। (किसी के) गले पर छुरी फेरना = दे० 'छुरी फेरना'। छुरी कटारी रहना = लड़ाई झगड़ा रहना। बिगाड़ रहना। बैर रहना। किसी के छुरियाँ कटावन पड़ना = (१) किसी के कारण या उसके द्वारा किसी वस्तु का नष्ट वा खर्च होना। कड़े लगना। उ०—यहाँ आम रखे थे न जाने किसके छुरियाँ कटावन पड़े (अर्थात न जाने किसने ले लिए या खा लिये। यह वाक्य प्रायः स्त्रियाँ क्रोध में शाप के रूप में बोलती हैं)। (२) रक्तातीसार होना। लोहू गिरना।

छुरीधार—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुरी + धार] छुरे के आकार का हाथी दाँत का एक औज़ार जिसमें जाली कटी रहती है।

छुलछुल—संज्ञा पुं० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके मूतने से निकला हुआ शब्द।

छुकलना—क्रि० अ० [अनु० छुल छुल] थोड़ा थोड़ा करके मूतना।

छुलकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करने की क्रिया।

छुलछुलाना—क्रि० अ० [अनु० छुल छुल] (१) थोड़ा थोड़ा करके मूतना। (२) थोड़ा थोड़ा करके पानी डालना। † (३) इतराना।

छुलाना—क्रि० स० [हिं० छूना] स्पर्श कराना। एक वस्तु को दूसरी वस्तु के इतने पास ले जाना कि एक दूसरे से लग या मिल जाय।

छुवना†—क्रि० स० दे० "छूना"।

छुवा छूत—संज्ञा स्त्री० दे० "छुआ छूत"।

छुवाना†—क्रि० स० [हिं० छूना का सकर्मक रूप] स्पर्श कराना। छुलाना। उ०—चिलई ललचौंहैं चलनि डटि घूँघट पट माँहि। छल सों चली छुवाय कै छनक छबीली छाँहि।—बिहारी।

छुवावा†—संज्ञा पुं० [हिं० छुवाना] लगाव। संबंध। संसर्ग।

छुहारी अजवायन—दे० "छुहारी अजवायन"

छुहना*—क्रि० अ० [हिं० छुवना] (१) छू जाना। (२) रँगा जाना। लिपना। पुतना। रंजित होना। उ०—कवि देव कह्यो किन काहू कछू जब ते उनके अनुराग छुही।—देव।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० दे० "छूना"।

छुहाना—क्रि० स० दे० "छोहाना"।

छुहार बेर—संज्ञा पुं० [हिं० छुहारा] पका हुआ बेर।

छुहारा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुत + हार] (१) एक प्रकार का खजूर जिसका फल खाने में अधिक मीठा होता है। इसका पेड़ अरब, सिंध आदि मरु स्थानों में होता है। वैद्यक में यह पुष्टिकारक, शुक्र और बल को बढ़ानेवाला, तथा मूर्छा और वात पित्त का नाश करनेवाला माना गया है। खुरमा। पिंड खजूर। खरिक खुरमा। (२) पिंडखजूर का फल।

विशेष—दे० "खजूर"।

छुहारी—संज्ञा स्त्री० [देश० छुहारा] छोटी और निकृष्ट जाति का छुहारा।

छुहारी अजवायन—संज्ञा स्त्री० [सं० चौहार + यवानी] फारस से आनेवाली अजमोदा।

छुही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] खरिया। सफेद मिट्टी।

छू—संज्ञा पुं० [अनु०] मंत्र पढ़ कर फूँक मारने का शब्द मंत्र की फूँक।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—छू बनना या होना = चलता बनना। चंपत होना।

मुहा०—छुट्टा छरिंदा = एकाकी। अकेला। जिसके साथ यात्रा में माल असबाब या साथी न हों। छुट्टे हाथ = खाली हाथ। हाथ में बिना छड़ी या हथियार आदि लिए।

छुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छूट] (१) छुटकारा। मुक्ति। रिहाई। उ०—बिना लगान दिए छुट्टी नहीं है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुहा०—छुट्टी पाना = झंझट से बचना। पीछा छुड़ाना। जवाबदेही या जिम्मेदारी से अलग होना। उ०—तुम तो यह कह कर छुट्टी पा जाओगे, तंग होंगे हम। छुट्टी होना = झंझट दूर होना। काम निबटना या समाप्त होना।

(२) वह समय जिसमें कोई कार्य्य न हो। काम से खाली वक्त। अवकाश। फुरसत। उ०—(क) आज कल मेरे सिर इतना काम है कि खाने पीने तक की छुट्टी नहीं। (ख) उसने तीन महीने की छुट्टी ली है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

मुहा०—छुट्टी पर जाना या होना = नियत कार्य्य से अवकाश ग्रहण करना।

(३) वह दिन जिसमें नियत कार्य बंद रहे। कार्यालय के बंद रहने का दिन। तातील। उ०—आज स्कूल में छुट्टी है।

मुहा०—छुट्टी मनाना = अवकाश का दिन आनंद से बिताना।

(४) काम से छुड़ाए जाने की क्रिया। मौकूफी। (५) प्रस्थान करने की अनुमति। जाने की आज्ञा। उ०—अब छुट्टी दीजिए, बहुत देर हो रही है। (६) भाँडों का चुटकुला।

छुड़वाना—क्रि० स० [हिं० छोड़ना का प्रे०] छोड़ने का काम कराना। छोड़ने के लिये प्रेरित वा उद्यत करना। जैसे, बहेलिये से नीलकंठ छुड़वाना।

छुड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुड़ाना] (१) छोड़ने की क्रिया।

यौ०—छोड़ छोड़ाई = माफी।

(२) वह धन जो किसी व्यक्ति वा वस्तु के छोड़ने के बदले में दिया या लिया जाय। जैसे, पशुओं की छुड़ाई, नील कंठ की छुड़ाई। (३) बड़े कनकौए को दूर लेजाकर ऊपर उछालना जिससे कि पतंग ऊपर उड़ जाय। छुड़ैया। (पतंग)

क्रि० प्र०—करना।—देना।

छुड़ाना—क्रि० स० [हिं० छोड़ना] (१) किसी वस्तु को ऐसा करना जिसमें वह छूट जाय। दूसरे की पकड़ से अलग करना। बँधी, फँसी, उलझी वा लगी हुई वस्तु को पृथक करना। जैसे, वह हाथ छुड़ा कर भागा, लड़के का पैर चारपाई में फँस गया है छुड़ा दो, गाँठ छुड़ाना। उ०—बाँह छुड़ाए जात हौ निबल जानि के मोहिं। हिरदय में से जाइयो मरद बदूँगी तोहिं। (२) दूसरे के अधिकार से अलग करना। जैसे, रेहन रखा हुआ खेत छुड़ाना, माल छुड़ाना, चिट्ठी छुड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) किसी वस्तु पर पुती हुई वस्तु को दूर करना। जैसे, रंग छुड़ाना, दाग छुड़ाना, मैल छुड़ाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(४) कार्य्य से अलग करना। नौकरी से हटाना। बरखास्त करना। उ०—उसने उस पुराने नौकर को छुड़ा दिया।

संयो० क्रि०—देना।

(५) किसी नियमित क्रिया का त्याग कराना। किसी प्रवृत्ति को दूर कराना। जैसे, अभ्यास छुड़ाना, आदत छुड़ाना। मुक्त कराना। उ०—हम उसका आना जाना छुड़ा देंगे।

['छोड़ना' का प्रे०] छोड़ने का काम कराना। दे० "छुड़वाना"।

छुड़ौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छुड़ाना] (१) देनदार या असामी से पावना छोड़ देने की क्रिया। (२) वह रुपया जो असामी वा देनदार से दया वश या और किसी कारण से न लिया जाय, सब दिन के लिये छोड़ दिया जाय। छूट। (३) वह धन जो किसी को बंधन मुक्त करने के लिये दिया जाय।

छुत्*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुत्] क्षुधा। भूख।

छुतिहर†—संज्ञा पुं० [हिं० छूत + हंडी] (१) वह घड़ा या बरतन जो किसी अशुचि वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध हो गया हो और जिसमें खाने पीने की वस्तु न रखी जाती हो। (२) कुपात्र। नीच आदमी।

छुतिहा†—वि० [हिं० छूत + हा (प्रत्य०)] (१) छूतवाला। जिसमें छूत लगी हो। जो छूने योग्य न हो। अस्पृश्य। (२) कलंकित। दूषित। पतित। निकृष्ट।

संज्ञा पुं० वह नमक जो नोनी मिट्टी से निकाला जाता है। शोरे का नमक।

छुद्र—संज्ञा पुं० दे० "क्षुद्र"।

छुद्र घंटिका—संज्ञा स्त्री० दे० "क्षुद्र घंटिका"।

छुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुधा] [वि० छुधित] क्षुधा। भूख।

छुधित*—वि० [सं० क्षुधित] भूखा। उ०—खेद खिन्न छुधित तृषित राजा बाजि समेत। खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत।—तुलसी।

छुनछुनाना—क्रि० अ० [अनु०] 'छुन छुन' शब्द करना। झनकार के साथ बजना।

छुनमुन, छुनन मुनन—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) दे० "छुनन मुनन"। (२) बच्चों के पैर के आभूषण का शब्द।

छुप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्पर्श। (२) झाड़ी। क्षुप। (३) वायु। वि० चंचल।

छुपना—क्रि० अ० दे० "छिपना"।

छुपाना—क्रि० स० दे० "छिपाना"।

छुबुक—संज्ञा पुं० [सं०] चिबुक। ठुड्ढी।

जाना। जैसे, गाड़ी छूटना। उ०—चोरों को पकड़ने के लिये चारों ओर सिपाही छूटे हैं। (६) किसी वस्तु, व्यक्ति वा स्थान का अपने से दूर पड़ जाना। वियुक्त होना। बिछुड़ना। जैसे, घर छूटना, भाई बंधु छूटना। उ०—वह दूकान तो पीछे छूट गई।

संयो० क्रि०—जाना।

(७) किसी दूर तक जानेवाले अस्त्र का चल पड़ना। जैसे, तीर छूटना, गोली छूटना।

मुहा०—बंदूक छूटना = बंदूक से गोली निकलना और शब्द होना। बंदूक चलना।

विशेष—बंदूक, पड़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द होने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

(८) किसी बात का जो रह रह कर बराबर होती रहे, बंद होना। किसी क्रिया का जो समय समय पर बराबर होती रहे दूर होना। न रह जाना। जैसे, आना जाना छूटना, आदत छूटना, अभ्यास छूटना, शराब (अर्थात् शराब का पीना) छूटना, दम छूटना, बुखार छूटना, रोग छूटना, चौथिया छूटना।

विशेष—फोड़ा, बवासीर, फीलपाव आदि बाहरी शरीर पर स्थायी लक्षण रखनेवाले रोगों के लिये इस क्रिया का व्यवहार प्रायः नहीं होता। इसी प्रकार समय समय पर होनेवाली बात का किसी एक विशेष समय में न होना छूटना नहीं कहलाता। जैसे, यदि किसी को बुखार चढ़ा है या सिर में दर्द है और वह दवा देने से उस समय दूर होगया तो उसे 'छूटना' नहीं कहेंगे 'उतरना' वा 'दूर होना' ही कहेंगे।

मुहा०—नाड़ी छूटना = (१) नाड़ी का चलना बंद हो जाना। (२) नाड़ी की गति का अपने स्थान पर न मिलना।

(९) किसी वस्तु में से वेग के साथ निकलना। उ०—रक्त की धार छूटना। (१०) रस रस कर (पानी) निकलना। जैसे, इस तरकारी में से पकाते वक्त पानी बहुत छूटता है। (११) किसी ऐसी वस्तु का अपनी क्रिया में तत्पर होना जिसमें से कोई वस्तु कणों वा छींटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे, पिचकारी छूटना, फौवारा छूटना, आतिशबाजी छूटना।

मुहा०—पेट छूटना = दस्त जारी होना।

(१२) काम में आने से बचना। शेष रहना। बाकी रहना। जैसे, उसके आगे जो छूटा है तुम खा लो। (१३) किसी काम का या उसके किसी अंग का, भूल से न किया जाना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न जाना। भूल या प्रमाद से किसी वस्तु का कहीं पर प्रयुक्त न होना, रक्खा न जाना या लिया न जाना। रह जाना। जैसे, लिखने में अक्षर छूटना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छूटना, रेल पर छाता छूट जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

(१४) किसी कार्य से हटाया जाना। नौकरी से अलग किया जाना। बरखास्त होना। जैसे, नौकरी से छूटना। (१५) किसी वृत्ति या जीविका का बंद होना। रोज़ी वा जीविका का न रह जाना। जैसे, नौकरी छूटना। बँध हुआ सीधा छूटना। (१६) पशुओं का अपनी मादा से संयोग करना।

मुहा०—किसी पर छूटना = किसी मादा से संयोग करना।

छूत–संज्ञा स्त्री० [हिं० छूना] (१) छूने का भाव। स्पर्श। संसर्ग। छुवाव।

यौ०—छुआ छूत। छूत छात।

(२) गंदी अशुचि वा रोग-संचारक वस्तु का स्पर्श। अस्पृश्य का संसर्ग। उ०—(क) बहुत से रोग छूत से फैलते हैं। (ख) शीतला में लोग छूत बचाते हैं।

यौ०—छूत का रोग = वह रोग जो किसी से छू जाने से हो।

(३) अशुचि वस्तु के छूने का दोष वा दूषण। उ०—इस बरतन में कौन सी छूत लगी है?

मुहा०—छूत उतरना = अशुचि स्पर्श का दोष दूर होना।

(४) किसी मनहूस आदमी या भूत-प्रेत की छाया। भूत आदि लगने का बुरा प्रभाव।

मुहा०—छूत उतारना = भूत प्रेत की छाया का प्रभाव मंत्र से दूर करना। छूत झाड़ना = दे० "छूत उतारना"।

छूना–क्रि० अ० [सं० छुप, प्रा० छुव + ना (प्रत्य०), पू० हिं० छुवना] एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास पहुँचना कि दोनों के कुछ अंश एक दूसरे से लग जायँ। एक वस्तु के किसी अंश का दूसरी वस्तु के किसी अंश से इस प्रकार मिलना कि दोनों के बीच कुछ अंतर वा अवकाश न रह जाय। स्पृष्ट होना। आंशिक संयोग होना। जैसे, चारपाई ऐसे ढंग से बिछाओ कि कहीं दीवार से न छू जाय।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) किसी वस्तु तक पहुँच उसके किसी अंग को अपने किसी अंग से सटाना या लगाना। किसी वस्तु की ओर आप बढ़ कर उसे इतना निकट करना कि बीच में कुछ अवकाश या अंतर न रह जाय। स्पर्श करना। संसर्ग में लाना। जैसे, धीरे धीरे यह डाल छत को छू लेगी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—आकाश छूना = बहुत ऊँचे तक जाना। बहुत ऊँचा होना।

(२) हाथ बढ़ा कर उँगलियों के संसर्ग में लाना। हाथ लगाना। त्वगिंद्रिय द्वारा अनुभव करना। जैसे, (क) इसे छूकर देखो कितना कड़ा है। (ख) इस पुस्तक को मत छूओ।

मुहा०—छूने से होना या छूने को होना = रजस्वला होना।

† (३) दान देने के लिये किसी वस्तु को स्पर्श करना। दान

गायब होना। उड़ जाना। जाता रहना। छू छू बनाना = उल्लू बनाना। बेवकूफ बनाना। छू मंतर = मंत्र की फूँक। छू मंतर होना = चट पट दूर होना। मिट जाना। गायब होना। जाता रहना। न रहना। जैसे, दर्द का छू मंतर होना। (इंद्रजालिक वा बाजीगर प्रायः मंत्र पढ़ते हुए छू कह कर वस्तुओं को गायब कर देते हैं)

छूचक†–संज्ञा पुं० [सं० सूतक] (१) अशौच। सूतक। (२) बच्चा उत्पन्न होने पर छः दिन का काल।

छू छू–वि० [सं० तुच्छ, हिं० छूछा] मूर्ख। जड़†। अहमक। संज्ञा स्त्री० [अनु०] दाई। बच्चों को खेलानेवाली।

छूँछा†–वि० दे० "छूँछा"।

छूँछा–वि० [सं० तुच्छ, प्रा० चुच्छ, छुच्छ] [स्त्री० छूँछी] (१) जिसके भीतर कोई वस्तु न हो। खाली। रीता। रिक्त। जैसे, छूँछा घड़ा, छूँछी नली, छूँछा हाथ। उ०—(क) गैठे सखनि सहित घर सूने माखन दधि सब खाई। छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसि सब बाहिर आई।—सूर। (ख) जब बिन प्रान पिंड है छूँछा। धर्म लाग कहिए जो पूँछा।—जायसी।

मुहा०—छूँछा हाथ = (१) द्रव्य से खाली हाथ। (२) बिना हथियार का हाथ। हाथ जिसमें छड़ी या डंडा आदि न हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः छोटी वस्तुओं के लिये होता है, मकान आदि बड़ी वस्तुओं के लिये नहीं।

(२) निःसार। जिसके भीतर कुछ तत्त्व वा सार न हो। (३) निर्धन। जिसके पास रुपया पैसा न हो। जैसे, छूँछे को कौन पूछे?

छूँछी–संज्ञा स्त्री० दे० "छुच्छी"।

छूछा–वि० दे० "छूँछा"।

छूट–संज्ञा स्त्री [हिं० छूटना] (१) छूटने का भाव। छुटकारा। मुक्ति।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

(२) अवकाश। फुरसत।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।—होना।

(३) देनदारों या असामियों के ऋण वा लगान की माफ़ी। उस रुपये या धन को अपनी इच्छा से छोड़ देना जो किसी के यहाँ चाहता हो। छुड़ौती। (४) किसी कार्य्य या उसके किसी अंग को भूल से न करने का भाव। किसी कार्य्य से संबंध रखनेवाली किसी बात पर ध्यान न जाने का भाव। उ०—करि स्नान अन्न दै दाना। एको सासै नाम बखाना। यहि के माहिँ छूट जो होई। एकादसि बिसरायो सोई।—सबल।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—पाना।

(५) वह धन या रुपया जो किसी के यहाँ चाहता हो पर किसी कारण से जमींदार या महाजन जिसे छोड़ दे। वह देना जो माफ हो जाय। (६) स्वतंत्रता। स्वच्छंदता। आजादी। (७) वह उपहास की बात जो किसी पर लक्ष्य करके निःसंकोच कही जाय। वह उक्ति जो बिना शिष्टता आदि का विचार किए किसी पर कही जाय। गाली गलौज।

क्रि० प्र०—चलना।—होना।

(८) पटैत, फेंकैत, बंकैत आदि की वह लड़ाई जिसमें जहाँ जिसे दाँव मिले वह बेधड़क वार करे।

क्रि० प्र०—लड़ना।

(९) स्त्री पुरुष का परस्पर संबंध त्याग। तिलाक़। (१०) वह स्थान जहाँ से कबूतर बाज शर्त बद कर कबूतर छोड़ें। (११) बौछार। छींटा। (१२) मालखंभ की एक कसरत जिसमें कोई पकड़ करके हाथों के थपेड़े देकर नीचे कूदते हैं। यह दो प्रकार की होती है, एक "दो हत्थी" दूसरी 'उलटी'। दो हत्थी में दोनों हाथों से बेंत पकड़ते हैं फिर जिस प्रकार उड़ान की थी उसी प्रकार पैरों को पीठ के पास ले जाकर उलटा उतारते हैं।

छूटना–क्रि० अ० [सं० छुट = काटना (बंधन आदि)] (१) किसी बँधी, लगी, फँसी, उलझी या पकड़ी हुई वस्तु का अलग होना। लगाव में न रहना। संलग्न न रहना। दूर होना। जैसे, (खूँटे से) घोड़ा छूटना, छिलका छूटना, (चिपका हुआ) टिकट छूटना, गाँठ छूटना, (पकड़ा हुआ) हाथ छूटना। उ०—सखि, सरद-निसा-बिधुबदनि बधूटी। ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी रतिहु रची बिधि जो छोलत छबि छूटी।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—शरीर छूटना = मृत्यु होना। प्राण छूटना = मृत्यु होना। साहस या हिम्मत छूटना = साहस न रहना। छूट पड़ना = किसी पकड़ी या बँधी हुई वस्तु का अलग होकर नीचे गिर जाना। जैसे, गिलास हाथ से छूट पड़ा और फूट गया।

(२) किसी बाँधने या पकड़नेवाली वस्तु का ढीला पड़ना या अलग होना। जैसे, रस्सी छूटना, बंधन छूटना। (३) किसी पुती या लगी हुई वस्तु का अलग होना या दूर होना। जैसे, रंग छूटना, मैल छूटना।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) किसी बंधन से मुक्त होना। छुटकारा होना। रिहाई होना। किसी ऐसी स्थिति से दूर होना जिसमें स्वच्छंद गति आदि का अवरोध हो। जैसे, कैद से छूटना।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) प्रस्थान करना। रवाना होना। चल पड़ना। चला

छेड़वाना–क्रि० स० [हिं० 'छेड़ना' का प्रे०] छेड़ने का काम कराना।

छेड़ा–संज्ञा पु० [?] रस्सी। साँट। (लश०)। जैसे, बारीक छेड़ा।

छेत्र*†–संज्ञा पु० दे० "क्षेत्र"।

छेद–संज्ञा पु० [सं०] (१) छेदन। काटने का काम। (२) नाश। ध्वंस। जैसे, उच्छेद, वंशच्छेद। (३) छेदन करनेवाला। (४) गणित में भाजक। (५) खंड। टुकड़ा। (६) श्वेतांबर जैन संप्रदाय के ग्रंथों का एक भेद।

संज्ञा पुं० [सं० छिद्र] (१) किसी वस्तु में वह खाली स्थान जो फटने या सुई, काँटे हथियार आदि के आर पार चुभने से होता है। किसी वस्तु में वह शून्य या खुला स्थान जिसमें होकर कोई वस्तु इस पार से उस पार जा सके। सूराख। छिद्र। रंध्र। जैसे, छलनी के छेद, कपड़े में छेद, सुई का छेद। उ०—दीवार के छेद में से बाहर की चीज़ें दिखाई पड़ती हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह खाली स्थान जो (खुदने कटने फटने या और किसी कारण से) किसी वस्तु में कुछ दूर तक पड़ा हो। बिल। दरज। खोखला। विवर। कुहर। (३) दोष। दूषण। ऐब।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—मिलना।

छेदक–वि० [सं०] (१) छेदनेवाला। काटनेवाला। (२) नाश करनेवाला। (३) विभाजक। भाजक। छेद।

छेदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काटने या आर पार चुभाने की क्रिया या भाव। काट कर अलग करने का काम। चीर फाड़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) नाश। ध्वंस। (३) छेदक। (४) काटने या छेदने का अस्त्र। (५) वह औषध जो कफ आदि को छाँट कर निकाल दे।

छेदना–क्रि० स० [सं० छेदन] (१) किसी वस्तु को सुई काँटे भाले बरछी आदि से इस प्रकार दबाना कि उसमें आर पार छेद हो जाय। सुई, कील या और किसी नुकीली वस्तु एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक चुभा कर किसी वस्तु को छिद्र-युक्त करना। बेधना। भेदना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—यदि कैंची से कतर कर, या और किसी ढंग से किसी वस्तु में छेद बनाए जाँय तो उस वस्तु को 'छेदना' नहीं कहलावेगा।

(२) क्षत करना। घाव करना। जैसे, तीरों ने उसका सारा शरीर छेद डाला। † (३) काटना। छिन्न करना।

संज्ञा पु० वह औज़ार जिससे छेद किया जाय। जैसे, सूआ, सुतारी।

छेदनहारा–वि० [हिं० छेदना + हारा (प्रत्य०)] छेदनेवाला। उ०—सहस बाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीप-कुमारा।—तुलसी।

छेदा–संज्ञा पु० [हिं० छेदना] (१) घुन नाम का कीड़ा। (२) अन्न में वह विकार जो इस कीड़े के कारण पैदा होता है। घुन द्वारा खाए जाने के कारण अनाज के खोखले होने का दोष।

छेदोपस्थानिकचारित्र–संज्ञा पु० [सं०] गणाधिप के दिए हुए प्राणातिपातादि पाँच महाव्रतों का पालन। छेदोपस्था-नीय। (जैन)।

छेद्य–वि० [सं०] छेदन करने योग्य। छेदनीय।

संज्ञा पु० (१) परेवा। कबूतर। (२) वैद्यक में आँख के रोगों की चिकित्सा का एक ढंग। इसमें आँख में नमक का चूर्ण डालते हैं तथा कभी कभी शस्त्र चिकित्सा भी करते हैं।

छेद्यकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर। परेवा।

छेना–संज्ञा पुं० [सं० छेदन] (१) फाड़ा हुआ दूध जिसका पानी निचोड़ कर निकाल दिया गया हो। फटे दूध का खोया। पनीर।

विशेष—इसके बनाने की रीति यह है कि खौलते हुए दूध में खटाई या फिटकरी डाल देते हैं जिससे वह फट जाता है अर्थात् उसके पानी का अंश सफेद भुरभुरे अंश से अलग हो जाता है। फिर फटे हुए दूध को एक कपड़े में रख कर निचो-ड़ते हैं जिससे पानी निकल जाता है और दूध का सफेद भुरभुरा अंश बच रहता है जो छेना कहलाता है। इस छेने से बंगाल में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं। दही गरम करके भी एक प्रकार का छेना बनाया जाता है।

† (२) कंडा। उपला।

क्रि० स० (१) छिनगाना। कुल्हाड़ी आदि से काटना या घाव करना। (२) दे० "छैना"।

छेनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] (१) लोहे का वह औज़ार जिससे धातु, पत्थर आदि काटे या नकाशे जाते हैं। टाँकी।

विशेष—यह पाँच छ अंगुल लंबा लोहे का पतला टुकड़ा होता है जिसके एक ओर चौड़ी धार होती है। नकाशी करते समय इसे नोक के बल रख कर ऊपर से ठोंकते हैं। नकाशी करने की छेनी के सोलह भेद हैं—(१) खेरना। इससे गोल लकीर बनाई जाती है। (२) चेरना। इससे सीधी लकीर बनाई जाती है। (३) पगोरना। इसमें लहर बनाई जाती है। (४) गुलमुम। इससे गोल गोल दाने बनाए जाते हैं। (५) फुलना। इससे फूल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (६) बलिस्त। इससे बड़ी बड़ी पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (७) दोम्रर्द। इससे छोटी पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (८) तिलरा, (९) ढिंगा। इनसे गोल मेहराब काटा जाता है। (१०) किर्री। इससे

देना। जैसे, खिचड़ी छूना, बछिया छूना या छू कर देना, सोना छूना।

विशेष—दान देने के समय वस्तु को मंत्र पढ़ कर स्पर्श करने का विधान है।

(४) दौड़ की बाजी में किसी को पकड़ना। (५) उन्नति की समान श्रेणी में पहुँचना। उ०—यह लड़का अभी छठें दरजे में है पर दो बरस में तुम्हें छू लेगा। (६) धीरे से मारना। जैसे, तुम ज़रा सा छूने से रोने लगते हो। (७) थोड़ा व्यवहार करना। बहुत कम काम में लाना। जैसे, छुट्टी में तुमने कभी किताब छुई है। (८) पोतना। लगाना। जैसे, चूना छूना, रंग छूना।

छूरा-संज्ञा पुं० दे० "छुरा"।

छूरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "छुरी"।

छेंकना-क्रि० स० [सं० छद = ढाँकना + करण] (१) आच्छादित करना। स्थान घेरना। जगह लेना। जैसे, (क) कितनी जगह तो यह पेड़ छेंके है। (ख) इस रोग की दवा करो नहीं तो यह सारा चेहरा छेंक लेगा। (२) घेरना। रोकना। गति का अवरोध करना। रास्ता बंद करना। जाने न देना। उ०—(क) प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि रहत छाँह किमि छेंकी।—तुलसी। (ख) मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ। उतरि दुर्ग तें बीर वर सम्मुख चलेउ बजाइ।—तुलसी। (३) लकीरों से घेरना। रेखा के भीतर डालना। (४) लिखे हुए अक्षर को लकीर से काटना। मिटाना। जैसे, इस पोथी में जहाँ जहाँ अशुद्ध हो छेंक दो। उ०—सोइ गोसाइँ विधि गति जेइ छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी।

छेंवर-संज्ञा पुं० [देश०] दे० "घंटील"।

छेक-संज्ञा पुं० [हिं० छेद] (१) छेद। सूराख। उ०—सत गुरु साँचा सूरमा शब्द जो मारा एक। लागत ही भय मिट गया परा कलेजे छेक।—कबीर। (२) कटाव। विभाग। उ०—कबिरा सपने रैन में परा जीव में छेक। जैसे हुतो दुइ जना जो जागूँ तो एक।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर के पालतू पशु पक्षी। (२) नागर। (३) छेकानुप्रास।

छेकानुप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] एक शब्दालंकार। एक अनुप्रास जिसमें एक ही चरण में दो या अधिक वर्णों की आवृत्ति कुछ अंतर पर होती है। उ०—अंभोज अंचक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई।

छेकापह्नुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें दूसरे के ठीक अनुमान या अटकल का अयथार्थ उक्ति से खंडन किया जाता है। उ०—सी सी करत सिहात है करत अधर छत पीर। कहा मिल्यो नागर पिया ? नहिं सखि सिसिर समीर। यहाँ नायिका के अधर पर क्षत देख कर सखी अपना अनुमान प्रकट करती है कि क्या नायक मिला था। इस पर नायिका ने यह कह कर कि नहीं "शिशिर की हवा लगी है" उसके अनुमान का खंडन किया।

छेकोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लोकोक्ति जो अर्थांतर-गर्भित हो अर्थात् जिससे अन्य अर्थ की भी ध्वनि निकले। जैसे, जानत सखे भुजंग ही जग में चरण भुजंग।

छेटा†-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप, प्रा० छित] बाधा। रुकावट। उ०—कह्यो कुलिंद भूप कर बेटा। डाँड़ देत में डारत छेटा।—रघुराज।

छेड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० छेद] (१) छू या खोद खाद कर तंग करने की क्रिया। (२) व्यंग्य उपहास आदि के द्वारा किसी को चिढ़ाने या तंग करने की क्रिया। हँसी ठठोली करके कुढ़ाने का काम। चुटकी।

यौ०—छेड़खानी। छेड़छाड़।

(३) ऐसी बात या क्रिया जिससे दूसरा कोई चिढ़े। चिढ़ानेवाली बात।

मुहा०—छेड़ निकालना = चिढ़ानेवाली बात स्थिर करना। उ०—उसे चिढ़ाने के लिये तुमने यह अच्छी छेड़ निकाली है।

(४) रगड़ा। झगड़ा। परस्पर की चोटें। एक दूसरे के विरुद्ध दाँव पेच। विरोध। जैसे, उन दोनों में खूब छेड़ चली है (५) बाजे में गति या शब्द उत्पन्न करने के लिये उसे छूने की क्रिया। बजाने के लिये किसी (विशेषतः तार-वाले जैसे सितार) वाद्य यंत्र का स्पर्श।

† संज्ञा पुं० छेद। सूराख।

छेड़ना-क्रि० स० [हिं० छेदना] (१) छूना या खोदना खादना। दबाना। कोंचना। उ०—इस फोड़े को छेड़ना मत, दवा लगा कर छोड़ देना। (२) छू या खोदखाद कर भड़काना या तंग करना। उ०—कुत्ते को मत छेड़ो, काट खायगा। (३) किसी को उत्तेजित करने या चिढ़ाने के लिये उसके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य्य करना जिससे वह बदला लेने के लिये तैयार हो। उ०—तुम पहले उसे न छेड़ते तो वह तुम्हारे पीछे क्यों पड़ता। (४) व्यंग्य, उपहास आदि द्वारा किसी को चिढ़ाना या तंग करना। हँसी-ठिठोली करके कुढ़ाना। चुटकी लेना। दिल्लगी करना। (५) कोई बात या कार्य्य आरंभ करना। उठाना। शुरू करना। जैसे, काम छेड़ना, बात छेड़ना, चर्चा छेड़ना, राग छेड़ना। (६) बाजे (विशेषतः तारवाले) में शब्द या गति उत्पन्न करने के लिये उसे छूना। वाद्य यंत्र में क्रिया या शब्द उत्पन्न करने के लिये उसे स्पर्श करना। बजाने के लिये बाजे में हाथ लगाना। जैसे, सितार छेड़ना, सारंगी छेड़ना। † (७) छेद करना। † (८) नश्तर से फोड़ा चीरना।

रँगीला। उ०—(क) ते सब छैल भए असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा।—तुलसी। (ख) छरे छबीले छैल सब सूर सुजान नवीन। जुग पद चर असवार प्रति जे असि कला प्रवीन।—तुलसी।

यौ०—छैल चिकनियाँ। छैल छबीला।

छैल चिकनियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] शौकीन। बना ठना आदमी।

छैल छबीला—संज्ञा पुं० [देश०] (१) सजावजा और युवा पुरुष। रँगीला पुरुष। बाँका। (२) छरीला नाम का पौधा।

छैला—संज्ञा पुं० [सं० छवि + इल (प्रा० प्रत्य०), प्रा० छविल, छइल] सुंदर और बना ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यास युक्त पुरुष। वह पुरुष जो अपना अंग खूब सजाए हो। सजीला। बाँका। रँगीला। शौकीन।

छोंकर, छोंकरा—संज्ञा पुं० [सं० शंकरा] शमी का वृक्ष। सफेद कीकर।

छोंड़ा†*—संज्ञा पुं० [सं० क्ष्वेड] वह लकड़ी जिससे दही मथा जाता है। मथानी।

छोंड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेड़िका] मथानी।

संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणि] बड़ा बरतन।

छो—संज्ञा पुं० [सं० क्षोम, हिं० छोह] (१) छोह। प्रेम। प्रीति। चाह। (२) दया। कृपा। (३) क्षोभ। क्रोधजनित दुःख। कोप। गुस्सा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रखना।

छोई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छीलना] (१) ईख की पत्तियाँ जो उसमें से छील कर फेंक दी जाती हैं। (२) गन्ने की वह गँड़ेरी जिसका रस चूस कर वा पेर कर निकाल लिया गया हो। बिना रस की गँड़ेरी। सीठी।

छोकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावक + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोकड़ी] लड़का। बालक। अनुभवशून्य वा अपरिपक्व बुद्धि का युवक। लौंडा (प्रायः बुरे भाव से बोलते हैं)।

छोकड़ापन—संज्ञा पुं० [देश०] (१) लड़कपन। (२) छिछोरापन। नादानी।

छोकड़िया†—संज्ञा स्त्री० दे० "छोकड़ी"।

छोकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोकड़ा] लड़की। कन्या। बेटी।

छोकरा†—संज्ञा पुं० दे० "छोकड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "छोंकरा"।

छोकला†—संज्ञा स्त्री० [सं० वल्क] छाल। छिलका। बक्कल।

छोटा—वि० दे० "छोड़ा"।

छोटका†—वि० [हिं० छोटा + का (प्रत्य०)] [स्त्री० छोटकी] छोटा।

विशेष—पूरबी प्रत्यय (का, की) ऐसी विशेष वस्तुओं के लिये आता है जो सामने होती हैं, जिनका उल्लेख पहले हो चुका रहता है, या जिनका परिचय सुननेवाले को कुछ रहता है।

छोटपन†—संज्ञा पुं० छोटापन।

छोटफनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + फन] कम चौड़े मुँहवाली मटकी। छोटे मुँह की ठिलिया। तंग मुँह की गगरी।

छोटभैया—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + भाई] पद या मान मर्यादा में छोटा आदमी। कम हैसियत का आदमी।

छोटा—वि० [सं० क्षुद्र] [स्त्री० छोटी] (१) जो बड़ाई या विस्तार में कम हो। आकार में लघु या न्यून। डील डौल में कम। जैसे, *छोटा घोड़ा, छोटा घर, छोटा पेड़, छोटा हाथ।*

यौ०—छोटा मोटा = छोटा। जैसे, छोटा मोटा घर।

(२) जो अवस्था में कम हो। जिसका वय अल्प हो। जो थोड़ी उम्र का हो। जैसे, छोटा भाई। उ०—हम तुमसे तीन बरस छोटे हैं। (३) जो पद प्रतिष्ठा में कम हो। जो शक्ति, गुण, योग्यता, मान मर्यादा आदि में न्यून हो। जैसे, बड़े आदमियों के सामने छोटे आदमियों को कौन पूछता है?। उ०—अरि छोटो गनिए नहीं जातें होत बिगार।—वृंद।

यौ०—छोटा मोटा।

(४) जो महत्व का न हो। जिसमें कुछ सार या गौरव न हो। सामान्य। उ०—इतनी छोटी बात के लिये लड़ना ठीक नहीं। (५) ओछा। क्षुद्र। जिसमें गंभीरता उदारता वा शिष्टता न हो। जिसका आशय महत् वा उच्च न हो। उ०—(क) किसी से कुछ माँगना बड़ी छोटी बात है। (ख) वह बड़े छोटे जी का आदमी है।

छोटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + ई (प्रत्य०)] (१) छोटापन। लघुता। (२) नीचता। क्षुद्रता।

छोटा कुँवार—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + सं० कुमारी] एक जाति का घीकुँआर जिसके पत्ते छोटे होते हैं और चीनी में मिला कर दस्त की बीमारी में खाए जाते हैं। यह मैसूर प्रांत में अधिक होता है।

छोटा-कचूर—संज्ञा पुं० [हिं०] कपूर कचरी। गंधपलाशी।

छोटा-कपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + कपड़ा] अँगिया। चोली।

छोटा-चाँद—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + चाँद] एक लता जिसकी जड़ साँप के विष की उत्तम औषध कही जाती है। जड़ को सुखा कर और चूर्ण करके साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते और उसका काढ़ा करके २४ घंटे में ।=) तक पिलाते हैं।

छोटापन—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पन (प्रत्य०)] (१) छोटा होने का भाव। छोटाई। लघुता। (२) बचपन। बालपन। लड़कपन।

छोटा-पाट—संज्ञा पुं० [हिं० छोटा + पाट] रेशम के कीड़े का एक भेद।

छोटा-पीलू—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटा + पीलू] रेशम के कीड़े का एक भेद।

बेल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं। (११) मलकरना। इससे दोहरी लकीर बनती है। (१२) सूतदार पगेरना। इससे एक बार में दोहरी लहर बनती है। (१३) गोटरा। इससे गोल नक्काशी बनाई जाती है। (१४) पानदार गोटरा। इससे पान बनाया जाता है। (१५) चौकोना गुलसुम। (१६) तिकोना गुलसुम। इन दोनों से चौकोनी और तिकोनी नक्काशी बनाई जाती है। (२) वह नहरनी जिससे पोस्ते से अफीम पाछ कर निकाली जाती है।

छेमंड—संज्ञा पुं० [सं०] बिना बाप माँ का लड़का। अनाथ। यतीम।

छेम*‡—संज्ञा पुं० दे० "क्षेम"। उ०—(क) जाय कहब करतूति बिनु जाय जोग बिनु छेम। तुलसी जाय उपासब बिना राम-पद-प्रेम।—तुलसी। (ख) बढ़ि प्रतीति गठबंध ते बड़ो जोग ते छेम। बड़ो सुसेवक साइँ ते बड़ो नाम ते प्रेम।—तुलसी।

छेमकरी*—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेमकरी] सफेद चील। उ०—(क) छेमकरी कह छेम विशेषी। स्यामा वाम सुतरु पर देखी।—तुलसी। (ख) लाभ लाभ लोवा कहत छेमकरी कह छेम। चलत विभीषनु सगुन सुनि तुलसी पुलकत प्रेम।—तुलसी।

छेरना†—क्रि० अ० [सं० क्षरण] अपच के कारण बार बार पाखाना फिरना

छेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छेलिका] बकरी। अजा।

छेली†—संज्ञा स्त्री० दे० "छेरी"।

छेव—संज्ञा पुं० [सं० छेद, प्रा० छेव] (१) काटने छीलने आदि के लिये किया हुआ आघात। वार। चोट। उ०—तबै मेव यह कही वीर ठाढ़ो रहु ठाढ़ो। अब नहिं जीवत जाइ लोह करिहौं रन गाढ़ो। सुनत राव ह्वै क्रुद्ध जुद्ध में तेगहि झारी। तहीं मेव गहि छेव तुरंगम ते गहि डारी। भू परयो परी ह्वै तीन असि बड़ गूजर के अंग पर। लियो सीस काटि साथी सहित राव रुंड सोयो समर।—सूदन।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।—लगना।—लगना।

(२) वह चिह्न जो काटने छीलने आदि से पड़े। जख्म। घाव। जैसे, उसने इस पेड़ में कुल्हाड़ी से कई छेव लगाए हैं। उ०—अरिन के उर माहिं कीन्हयों इमि छेव है।—भूषण।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।—पड़ना।

मुहा०—छल छेव = कपट व्यवहार। कुटिलता का दाव पेंच। छल छिद्र। उ०—जानति नहीं कहाँ ते सीखे चोरी के छल छेव।—सूर

† (३) आनेवाली आपत्ति। होनहार दुःख। किसी दुष्कर्म या क्रूर ग्रह आदि के प्रभाव से होनेवाला अनिष्ट।

क्रि० प्र०—टलना।—छूटना।—टलना।—मिटना।

संज्ञा स्त्री० दे० "टेव"।

छेवन—संज्ञा पुं० [हिं० छेवना = काटना] वह तागा जिससे कुम्हार चाक पर के बरतन को काट कर अलग करते हैं।

छेवना*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छेना] ताड़ी।

क्रि० स० [सं० छेदन] (१) काटना। छिन्न करना। छिनगाना। (२) चिह्नित करना। चिह्न लगाना।

* क्रि० स० [सं० क्षेपण] फेंकना। मिलाना। उ०—अंत भयो प्रारब्ध को पायो निश्चल गेह। आतम परमातम मिल्यो देह खेह महँ छेव।—निश्चल।

छेवर†—संज्ञा पु० [हिं० छेवना] (१) छाल। वकल। (२) छिलका। (३) चमड़ा। त्वचा।

क्रि० प्र०—उधड़ना।

छेवरा†—संज्ञा पुं० दे० "छेवर"।

छेवा—संज्ञा पुं० [हिं० छेव] (१) छीलने या काटने का काम। (२) वह आघात जो छीलने वा काटने के लिये किया जाय। चोट। (३) छीलने वा काटने का चिह्न। घाव। जखम। (४) अत्यंत वेग से बहनेवाला जल। (मल्लाह)

छेह*—संज्ञा पुं० [हिं० छेव] (१) दे० "छेव"। (२) खंडन। नाश। उ०—ब्रह्म भिन्न मिथ्या सब भाख्यो। तिन को भेद द्वैत कहि राखो। उपजो यह मोको संदेहा। प्रभुता को अब कीजै छेहा।—निश्चल।

वि० खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। न्यून। कम। उ०—पूरा सहजै गुण करै गुर्ण ना आवै छेह। सायर पोसे सर भरे दामन भीगे मेह।—कबीर।

संज्ञा पुं० [?] नृत्य का एक भेद।

*संज्ञा स्त्री० [सं० क्षार] मिट्टी। राख। दे० "खेह"।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० छाया] छाया।

छेहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] छाया। साया।

छैं—वि० दे० "छ"।

*संज्ञा स्त्री० दे० "छय", "क्षय"।

छैना*—क्रि० अ० [हिं० छय + ना (प्रत्य०)] (१) छीजना। क्षीण होना। कम होना। * (२) नष्ट होना।

मुहा०—छै जाना = छेद का फट जाना। किसी छेद का फैल कर इतना बढ़ जाना कि उसके आस पास का स्थान फट जाय। जैसे, कान छै जाना अर्थात् कान में किए हुए छेद का इतना फैल जाना कि लौ फट जाय।

छैया†*—संज्ञा पुं० [हिं० छवना] बच्चा। वत्स। (प्यार का शब्द) उ०—(क) कहति मल्हाइ मल्हाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।—तुलसी। (ख) भूलतु के छैया आस पास के रसैया और काली के नथैया हू ध्यान इते न धरै।—सूर।

छैल—संज्ञा पुं० [सं० छवि + इल (प्र० प्रत्य०), प्रा० छइल्ल, छइल्ल] सुंदर और बना ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यासयुक्त पुरुष। वह पुरुष जो अपना अंग खूब सजाए हो। बाँका। शौकीन।

जैसे, लिखने में अक्षर छोड़ना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छोड़ना, रेल पर छाता छोड़ना। (१८) ऊपर से गिराना वा डालना। जैसे (क) हाथ पर थोड़ा पानी तो छोड़ दो। (ख) इस पर थोड़ी राख छोड़ दो।

छोड़वाना–क्रि० स० [हिं० छोड़ना का प्रे०] छोड़ने का काम कराना।

क्रि० स० [हिं० छुड़ाना का प्रे०] छुड़ाने का काम कराना।

छोड़ाना–क्रि० स० दे० "छुड़ाना"।

छोनिप*–संज्ञा पुं० [सं० क्षोणिप] राजा। उ०—रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।—तुलसी।

छोनी*–संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी। भूमि। उ०—लोक कनक लोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जग जोनी। —तुलसी।

छोप–संज्ञा पु० [सं० क्षेप, हिं० छोप] (१) किसी गाढ़ी वा गीली वस्तु की मोटी तह जो किसी वस्तु पर चढ़ाई जाय। मोटा लेप।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

(२) गाढ़ी वा गीली वस्तु की मोटी तह चढ़ाने का कार्य्य। (३) गीली मिट्टी या और किसी पानी में सनी हुई वस्तु का लोंदा जो दीवार अथवा और किसी वस्तु पर गड्ढे मूँदने वा सतह बराबर करने आदि के लिये रक्खा और फैलाया जाय।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—रखना।

यौ०—छोप छाप = मरम्मत।

(४) आघात। वार। प्रहार। उ०—जहाँ जात जूटि तहाँ टूटि परैं बादर सों उड़ि बल भट, सीस फूटि डारैं छोप सों।—गोपाल। (५) छिपाव। बचाव।

यौ०—छोप छाप = (१) दोष आदि का छिपाव। (२) बचाव। रक्षा।

छोपना–क्रि० स० [हिं० छुपना] (१) किसी गीली वा गाढ़ी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रख कर फैलाना कि उसकी मोटी तह चढ़ जाय। गाढ़ा लेप करना। उ०—नीम की पत्ती पीस कर फोड़े पर छोप दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) गीली मिट्टी या और किसी पानी में सनी हुई वस्तु के लोंदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैला कर रखना कि वह उसमें चिपक जाय। गिलावा लगाना। थोपना। जैसे, दीवार में जहाँ जहाँ गड्ढे हैं वहाँ मिट्टी छोप दो।

यौ०—छोपना छापना = गड्ढे आदि मूँद कर मरम्मत करना फटे वा गिरे पड़े को दुरुस्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) किसी वस्तु पर इस प्रकार पड़ना कि वह बिलकुल ढक जाय। किसी पर इस प्रकार चढ़ बैठना कि वह इधर उधर अंग न हिला सके। धर दबाना। ग्रसना। जैसे, शेर बकरी को छोप कर बैठा रहा।

संयो० क्रि०—लेना।

† (४) ढकना। आच्छादित करना। छेंकना। † (५) किसी बात को छिपाना। परदा डालना। † (६) किसी की वार वा आघात से बचाना। आक्रमण आदि से रक्षा करना।

छोपा–संज्ञा पु० [हिं० छोपना] पाल के चारों कोनों पर बँधी हुई रस्सियाँ जिनसे उसे ऊपर चढ़ाते हैं।

छोपाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोपना] (१) छोपने का भाव। (२) छोपने की क्रिया। (३) छोपने की मजदूरी।

छोभ–संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ] [वि० छोभित] (१) चित्त की विचलता जो दुःख, क्रोध, मोह, करुणा आदि मनोवेगों के कारण होती है। जी की खलबली। उ०—तात तीन अति प्रबल खल काम, क्रोध अरु लोभ। मुनि विज्ञान धाम-मन करहिं निमिष महँ छोभ।—तुलसी। (२) नदी तालाब आदि का भर कर उमड़ना।

छोभना*–क्रि० अ० [हिं० छोभ + ना (प्रत्य०)] चित्त का विचलित होना। करुणा, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना। जी में खलबली होना। क्षुब्ध होना। उ०—(क) जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।—तुलसी। (ख) नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु पन सुमिरि बहुरि मन छोभा।—तुलसी।

छोभित*–वि० [सं० क्षोभित] क्षोभित। चंचल। विचलित। उ०—हे हरि छोभित करि दई मयन मयन सर मारि। हरिहि हरिन नयनी लगी हेरन हार निहारि।—शृं० सत०।

छोम*–वि० [सं० क्षौम = अलसी का बना चिकना कपड़ा] (१) चिकना। (२) कोमल। उ०—मोम सरिस मन छोम, खरे करि रोम भजहिं भट।—गोपाल।

छोर–संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना] (१) किसी वस्तु का वह किनारा जहाँ उसकी लंबाई का अंत होता हो। आयत विस्तार की सीमा। चौड़ाई का हाशिया। जैसे, दुपट्टे का छोर, तागे का छोर। उ०—काननि कनकफूल उपवीत अनुकूल पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं।—तुलसी।

यौ०—ओर छोर = आदि अंत।

(२) विस्तार की सीमा। हद। (३) कोर कोना। किनारे पर का सूक्ष्म भाग। नोक। उ०—मिला छोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह गुन पेखु पारस पंकरुह पाय के।—तुलसी।

छोर छुट्टी–संज्ञा स्त्री० दे० "छोड़ छुट्टी"।

छोरना–क्रि० स० [सं० छोरण = परित्याग] (१) बंधन आदि अलग करना। उलझन या फँसाव आदि दूर करना। (२) बंधन से मुक्त करना। (३) छीनना। हरण करना

छोटी इलायची—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + इलायची] सफ़ेद वा गुजराती इलायची। दे० "इलायची"।

छोड़ चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + चिट्ठी] वह लेख वा कागज जिसके कारण कोई व्यक्ति किसी प्रकार के ऋण वा बंधन से मुक्त समझा जाय। फारखती।

छोटी मैल—संज्ञा स्त्री० एक चिड़िया का नाम।

छोटी रकरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + रकरिया] एक घास जो पंजाब के हिसार आदि स्थानों में मिलती है। यह पाँच चार साल तक रहती है और इसे घोड़े चाव से खाते हैं।

छोटी सहेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + सहेली] एक छोटी चिड़िया का नाम जो देखने में बड़ी सुंदर होती है।

छोटी हाजिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोटी + हाजिरी] भारत में रहनेवाले अँगरेजों या यूरोपियनों का प्रातःकाल का कलेवा। (खानसामा)

छोड़ छुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोड़ना + छुट्टी] नाता टूटना या संबंध-त्याग।

क्रि० प्र०—बोलना।

छोड़ना—क्रि० स० [सं० छोरण] (१) किसी पकड़ी हुई वस्तु को पृथक् करना। पकड़ से अलग करना। जैसे, हमारा हाथ क्यों पकड़े हो छोड़ दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी लगी या चिपकी हुई वस्तु का उस वस्तु से अलग हो जाना जिससे वह लगी या चिपकी हो। उ०—बिना आँच दिखाए यह पट्टी चमड़े को न छोड़ेगी। (३) किसी जीव या व्यक्ति को बंधन आदि से मुक्त करना। छुटकारा देना। रिहाई देना। जैसे, कैदियों को छोड़ना, चौपायों को छोड़ना। (४) दंड आदि न देना। अपराध क्षमा करना। मुआफ़ करना। जैसे, (क) इस बार तो हम छोड़ देते हैं फिर कभी ऐसा न करना। (ख) जज ने अभियुक्तों को छोड़ दिया। (५) न ग्रहण करना। न लेना। हाथ से जाने देना। जैसे, मिलता हुआ धन क्यों छोड़ते हो। (६) उस धन को दयावश या और किसी कारण से न लेना जो किसी के यहाँ चाहता हो। देना मुआफ़ करना। ऋणी या देनदार को ऋण से मुक्त करना। छूट देना। उ०—(क) महाजन ने सूद छोड़ दिया है, केवल मूल चाहता है। (ख) हम एक पैसा न छोड़ेंगे सब वसूल करेंगे। (७) अपने से दूर वा अलग करना। त्यागना। परित्याग करना। पास न रखना। जैसे, वह घर बार लड़के बाले छोड़ कर साधु हो गया। (८) साथ न लेना। किसी स्थान पर पड़ा रहने देना। न उठाना या लेना। जैसे, (क) तुम हमें यहाँ अकेले छोड़ कर कहाँ चले गए। (ख) यहाँ एक भी चीज़ न छोड़ना, सब उठा लाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—स्थान (घर, गाँव, नगर आदि) छोड़ना = स्थान से चला जाना वा गमन करना। उ०—हमें घर छोड़े आज तीन दिन हुए।

(९) प्रस्थान कराना। गमन कराना। चलाना। दौड़ाना। जैसे, गाड़ी छोड़ना, घोड़ा छोड़ना, सिपाही छोड़ना, सवार छोड़ना।

मुहा०—किसी पर किसी को छोड़ना = किसी के पीछे किसी को दौड़ाना। किसी को पकड़ने, तंग करने वा चोट पहुँचाने के लिये उसके पीछे किसी को लगा देना। जैसे, हिरन पर कुत्ते छोड़ना, चिड़िया पर बाज छोड़ना। मादा (पशु) पर नर (पशु) छोड़ना = जोड़ा खाने के लिये नर को मादा के सामने करना।

(१०) किसी दूर तक जानेवाले अस्त्र को चलाना या फेंकना। क्षेपण करना। जैसे, गोली छोड़ना, तीर छोड़ना।

विशेष—बंदूक पड़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द करने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

(११) किसी वस्तु, व्यक्ति वा स्थान से आगे बढ़ जाना। जैसे, उसका घर तो तुम पीछे छोड़ आए।

संयो० क्रि०—आना।

(१२) किसी काम को बंद कर देना। किसी हाथ में लिए हुए कार्य्य को न करना। किसी कार्य्य से अलग होना। त्याग देना। जैसे, काम छोड़ना, आदत छोड़ना, अभ्यास छोड़ना, थाना जाना छोड़ना। उ०—(क) सब काम छोड़कर तुम इसे लिख डालो। (ख) उसने नौकरी छोड़ दी। (१३) किसी रोग व्याधि का दूर होना। जैसे, बुखार नहीं छोड़ता है। (१४) भीतर से वेग के साथ बाहर निकालना। उ०—हाथी अपने मुँह से पानी की धार छोड़ती है। (१५) किसी ऐसी वस्तु को चलाना या अपने कार्य्य में लगाना जिसमें से कोई वस्तु कणों या छींटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे, पिचकारी छोड़ना, फौवारा छोड़ना, आतशबाजी छोड़ना। (१६) बचाना। शेष रखना। बाकी रखना। व्यवहार या उपयोग में न लाना। उ०—(क) उसने अपने आगे कुछ भी नहीं छोड़ा, सब खा गया। (ख) उसने किसी को नहीं छोड़ा है सब की दिल्लगी उड़ाई है।

मुहा०—(किसी को) छोड़ या छोड़ कर = (किसी के) अतिरिक्त। सिवाय। जैसे, तुम्हें छोड़ और कौन हमारा सहायक है।

(१७) किसी कार्य्य को या उसके किसी अंग को भूल से न करना। कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न देना। भूल या विस्मृति से किसी वस्तु को कहीं से न लेना, न रखना या न ग्रहण करना।

संज्ञा पु० [हिं० छेवर = चमड़ा] पुराने समय में सरहद के झगड़ों के संबंध में शपथ खाने की एक रीति। इसमें वादी प्रतिवादी या किसी तीसरे व्यक्ति को जिसके सत्य कथन पर झगड़े का निपटेरा छोड़ दिया जाता था। गाय का चमड़ा सिर पर रख कर उस सरहद वा सिवान पर घूमना पड़ता था।

छौरा—संज्ञा पुं० [सं० क्षर = नाशवान्, नष्ट] (१) ज्वार या बाजरे का डंठल जो चारे के काम में आता है। डाँठ। कोयर। गाँडी। खरई। (२) कपास का डंठल।

—:०:—

ज

ज—हिंदी भाषा का एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चवर्ग का तीसरा अक्षर है। इसका बाह्य प्रयत्न संवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। झ इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंग—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—असदखान करि इल जंग दुहुँ ओर मचाइय। सनमुख अरि हड्डि सुभट बहु कट्टि हटाइय।—सूदन।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—जंगआवर। जंगजू।

संज्ञा स्त्री० [अं० जंक] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

संज्ञा पु० [फा०] लोहे का मोरचा।

क्रि० प्र०—लगना।

जंगआवर—वि० [फा०] लड़नेवाला। योद्धा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराणा प्रताप।

जंगम—वि० [सं०] (१) चलने फिरनेवाला। चलता फिरता। चर। (२) जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विष। (३) दाक्षिणात्य लिंगायत शैव संप्रदाय के गुरु। ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कौपीन पहनते हैं। इन लोगों का लिंगायतों में बड़ा मान है।

जंगम-गुल्म—संज्ञा पु० [सं०] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम-विष—संज्ञा पुं० [सं०] वह विष जो चर प्राणियों के दंश आघात या विकार आदि से उत्पन्न हो। सुश्रुत ने सोलह प्रकार के जंगम-विष माने हैं—दृष्टि, निश्वास, दंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक्र, लाला, आर्तव, आल (आड़), मुख-संदेश, अस्थि, पित्त, विशर्द्धित, शूक, और शव वा मृत देह। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के श्वास में विष; साधारण सर्प के दंशन में विष; कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गोह आदि के नख और दाँत में विष; बिच्छू, भिड़ सकुची मछली आदि के आड़ में विष होता है।

जँगरा—संज्ञा पु० [देश०] उर्द, मूँग इत्यादि के वे डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जेंगरा।

जँगरैत—वि० [हिं० जाँगर] [स्त्री० जँगरैतिन] (१) जाँगरवाला। (२) परिश्रमी। मेहनती।

जंगल—संज्ञा पु० [सं०] [वि० जंगली] (१) जल-शून्य भूमि। रेगिस्तान। (२) वन। अरण्य।

मुहा०—जंगल में मंगल = सुनसान स्थान में चहल पहल। जंगल जाना = टट्टी जाना। पाखाने जाना।

(३) माँस।

जंगल-जलेबी—संज्ञा पुं० [हिं० जंगल + जलेबी] गू। गलीज़। गू का लेंड।

जँगला—संज्ञा पु० [पुर्त० जेंगिला] (१) खिड़की, दरवाजे, बरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पंक्ति। कटहरा। बाड़। (२) चौखट या खिड़की जिसमें जाली या छड़ लगी हों।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) दुपट्टे आदि के किनारे पर काढ़ा हुआ बेल बूटा।

संज्ञा पु० [सं० जांगल्य] (१) संगीत के बारह मुकामों में से एक। (२) एक राग का नाम। (३) एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। (४) अन्न के वे पेड़ वा डंठल जिनसे कूट कर अन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हिं० जंगल] (१) जंगल में मिलने वा होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंडा। (२) आपसे आप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए या लगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। (३) जंगल में रहनेवाला। बनैला। जैसे, जंगली हाथी, जंगली आदमी। (४) जो घरेलू या पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० जंगली + बादाम] (१) कतीले की जाति का एक पेड़ जो भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

छोरा†—संज्ञा पुं० [सं० शावक, हिं० छावक + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोरी] छोकड़ा। लड़का। बालक।

संज्ञा पुं० [देश०] एक नाव को दूसरी नाव के साथ बाँध कर ले जाने का कार्य्य।

छोरा छोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरना] (१) छीन खसोट। छीना छीनी। (२) झगड़ा। बखेड़ा। झंझट। उ०—आतम देव-राम नित विहरत यामें नहि कछु छोरा छोरी।—देवस्वामी।

छोरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरा] लड़की। छोकड़ी।

छोल—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] (१) छिल जाने का चिह्न या घाव। (२) साँप के काटने में उसके दाँत लगने का एक भेद जिसमें केवल चमड़े में खरोंच लग जाता है।

छोलदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोरना + धरना = छोरधरी। वा अं० सोलजरी = सेना] एक प्रकार का छोटा खेमा। छोटा तंबू।

छोलना†—क्रि० स० [हिं० छाल] (१) छीलना। सतह का ऊपरी हिस्सा काटना। उ०—सखि सरद विमल विधु वदन वधूटी। ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी रतिउ रची विधि जो छोलत छवि छूटी।—तुलसी। (२) खुरचना। उ०—कलेजा छोलना = हृदय को अत्यंत व्यथित करना।

संज्ञा पुं० [स्त्री० छोलनी] लोहे का एक औज़ार जिससे सिकलीगर हथियारों का मुरचा खुरचते हैं।

छोलनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] (१) छीलने का औज़ार। (२) ऊँख छीलने का औज़ार। (३) चिलम में छेद बनाने का औज़ार। (४) हलवाइयों का कड़ाही खुरचने का औज़ार जो खुरपी के आकार का होता है। खुरचनी।

छोला—संज्ञा पुं० [हिं० छोलना] (१) वह पुरुष जो ईख को काटता और छीलता है। (२) चना।

छोवन—संज्ञा पुं० [हिं० छेवना] कुम्हारों का वह डोरा जिससे वे चाक पर चढ़े हुए बरतन को काट कर अलग करते हैं। (इस डोरे को एक सरकंडे में बाँध कर वे पानी में रखे रहते हैं)

छोह—संज्ञा पुं० [हिं० छोभ] (१) ममता। प्रेम। स्नेह। उ०—तजब छोभ जनि छाँड़िय छोहू। कर्म कठिन कछु दोष न मोहू।—तुलसी। (२) दया। अनुग्रह। कृपा। उ०—पारवती सम पति प्रिय होहू। देवि न हम पर छाँड़िय छोहू।—तुलसी।

छोहगर†—वि० [हिं० छोह + गर (प्रत्य०)] प्रेमी। स्नेही। ममता रखनेवाला।

छोहना*—क्रि० अ० [हिं० छोह + ना (प्रत्य०)] विचलित होना। चंचल होना। क्षुब्ध होना। उ०—बड़गूजरहूँ कोहयो। पंचानन ज्यों छोहयो।—सूदन।

छोहरा*—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावअ, छाव + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० छोहरी] लड़का। बालक। छोकड़ा। उ०—आपुस ही में कहत हँसत हैं प्रभु हिरदै यह सालत। तनक तनक से ग्वाल छोहरन कंस अवहि वधि घालत।—सूर।

छोहरी*—संज्ञा स्त्री० [हिं० छोहरा] लड़की। बालिका। छोकड़ी। उ०—ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।

छोहाना*—क्रि० अ० [हिं० छोह] (१) मुहब्बत करना। प्रेम दिखाना। उ०—मग गोहूँ कर हिया चराना। पै सो पिता न हिये छोहाना।—जायसी। (२) अनुग्रह करना। दया करना। उ०—तुलसी तिहारे विद्यमान युवराज आज कोपि पाउँ रोपि बसि कै छोहाय छाड़िगो।—तुलसी।

मुहा०—किसी पर छोहाना = (१) किसी पर स्नेह प्रकट करना। (२) किसी पर दया या अनुग्रह करना।

छोहारा—संज्ञा पुं० दे० "छुहारा"।

छोहिनी*—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] अक्षौहिणी।

छोही*†—वि० [हिं० छोह] प्रेमी। स्नेही। ममता रखनेवाला। अनुरागी। उ०—कियो नेत यह वैष्णवद्रोही। राजा अहै साधु को छोही।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [हिं० छोलना] खोइया। चूसी हुई गँड़ेरी की सीठी। पेरी हुई गँड़ेरी की सीठी। उ०—रस छाँड़ि छोही गहै कोल्हू पेरत देख। गहै असार असार को हिरदे नाहिं विवेक।—कबीर।

छौंक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बघार। तड़का।

यौ०—छौंक बघार।

छौंकना—क्रि० स० [अनु० छायँ छायँ = तपी हुई वस्तु पर पानी पड़ने का शब्द] (१) हींग, मिरचा, जीरा, राई, लहसुन आदि से मिले हुए कड़कड़ाते घी को दाल आदि में डालना जिसमें वह सोंधी या सुगंधित हो जाय। बघारना। जैसे, दाल छौंकना। (२) मेथी, मिरचा, हींग आदि से मिले हुए कड़कड़ाते घी में कच्ची तरकारी अन्न के दले या भीगे दाने आदि को भूनने के लिये डालना। तड़का देना। जैसे, तरकारी छौंकना।

छौंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चुंड = गड्ढा] ज़मीन में खोदा हुआ वह गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं। खत्ता। गाड़।

छौकना†—क्रि० अ० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक्क] किसी जानवर (शेर बिल्ली आदि) का चारों पैर उठाकर किसी की ओर कूदना या झपटना। चौकड़ी के साथ झपटना।

छौना—संज्ञा पुं० [सं० सुनु = पुत्र। सं० शावक, प्रा० छाव + औना (प्रत्य०)] [स्त्री० छौनी] पशु का बच्चा। किसी जानवर का बच्चा जैसे, मृग छौना, सूअर का छौना। उ०—[illegible] छौना छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई।—तुलसी।

छौर—संज्ञा पुं० दे० "छौरा"।

संज्ञा पुं० दे० "चौर"।

मुहा०—ऊँचा तुला = (१) मुपरीक्षित। सधा या मँजा। अव्यर्थ। (२) ठीक ठीक। जिसकी सचाई में कुछ भी कसर न हो। जैसे, ऊँची तुली बात।

जंजर*†—वि० दे० "जंजल"।

जंजल*†—वि० [स० जर्जर] पुराना और कमजोर। बेकाम।

जंजाल—संज्ञा पु० [हिं० जग + जाल] [वि० जंजालिया, जंजाली] (१) प्रपंच। झंझट। बखेड़ा। उ०—अस प्रभु दीन बंधु हरि कारन रहित दयाल। तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।—तुलसी। (२) बंधन। फँसाव। उलझन। उ०—(क) आज्ञा लै के चल्यो नृपति वहँ उत्तर दिशा विशाल। करि तप विप्र जनम जब लीन्हों मिट्यो जन्म जंजाल।—सूर। (ख) हृदय की कबहुँ न पीर घटी। दिन दिन हीन छीन भइ काया दुख जंजाल जटी।—सूर। (ग) भव जंजाल तोरि तरु बन के पल्लव हृदय विदारणी।—सूर।

मुहा०—जंजाल में पड़ना वा फँसना = कठिनता में पड़ना। संकट में पड़ना। उलझन में फँसना।

(३) पानी का भँवर। (४) एक प्रकार की बड़ी पलीतेदार बंदूक जिसकी नाल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज गहि छुट्टिय। तुपक तेग जंजालन छुट्टिय। (५) एक बड़े मुँह की तोप। इसमें कंकड़ पत्थर आदि भर कर फेंके जाते थे। यह बहुधा किले का धुस तोड़ने के काम में आती थी। (६) बड़ा जाल।

जंजालिया—वि० [हिं० जंजाल + इया (प्रत्य०)] जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। झगड़ालू। उपद्रवी। फसादी।

जंजाली—वि० [हिं० जंजाल] झगड़ालू। बखेड़िया। फसादी। संज्ञा स्त्री० वह रस्सी और घिरनी जिससे पाल चढ़ाते वा गिराते हैं।

जंजीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० जंजीरी] (१) साँकल। सिकड़ी। कड़ियों की लड़ी। जैसे, लोहे की जंजीर। (२) बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना = पैर में बेड़ी डालना। बाँधना। बंदी करना। पैर में जंजीर पड़ना = जंजीर से जकड़ा जाना। बंदी होना।

(३) किवाड़ की कुंडी। सिकड़ी।

मुहा०—जंजीर बजाना = कुंडी खटखटाना। जंजीर लगाना = कुंडी बंद करना।

जंजीरा—संज्ञा पु० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो देखने में जंजीर की तरह मालूम पड़ती है। यह फाँस डाल कर सी जाती है। यह केवल कसीदे और सूईकार में काम आती है। लहरिया।

क्रि० प्र०—डालना।

जंजीरी—वि० [हिं० जंजीर] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

मुहा०—जंजीरी गोला = तोप के वे गोले जो कई एक साथ जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक भयानक होते हैं।

जंजीरेदार—वि० [हिं० जंजीरा + दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो। जंजीरा डाला हुआ।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है, जैसे, जंजीरेदार सिलाई।

जंट—संज्ञा पु० [अं० ज्वाइंट] जिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिवीलियन मजिस्ट्रेट। जंट मजिस्टर।

जंटिलमैन—संज्ञा पु० [अं०] (१) भला मानुस। सभ्य पुरुष। (२) अँग्रेजी चाल ढाल से रहनेवाला आदमी।

जंड—संज्ञा पु० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे साँगर भी कहते हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है।

जंतर—संज्ञा पु० [स० यंत्र] (१) कल। औज़ार। यंत्र। (२) तांत्रिक यंत्र।

यौ०—जंतर मंतर।

(३) चौकोर वा लंबी तावीज जिसमें तांत्रिक यंत्र वा कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा वा किसी इष्ट की सिद्धि के लिये पहनते हैं। (४) गले में पहनने का एक गहना जिसमें चाँदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े पाट में गुँधे होते हैं। कठुला। तावीज। (५) यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल और आसव आदि तैयार करते हैं। (६) जंतर मंतर। मानमंदिर। आकाशलोचन। †(७) पत्थर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोका। (८) वीणा। बीन नामक बाजा।

जंतर मंतर—संज्ञा पु० [हिं० यंत्र मंत्र] (१) यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। (२) आकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा, जंत्रा—संज्ञा स्त्री० [स० यंत्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ढाँचे पर कसी वा तानी जाती है।

जंतरी—संज्ञा स्त्री० [स० यंत्र] (१) छोटा जंता जिसमें सोनार तार बढ़ाते हैं। दे० जंता (२)"।

मुहा०—जंतरी में खींचना = (१) तारों को जंते में डाल कर पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। दुरुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

(२) पत्रा। तिथिपत्र। (३) जादूगर। भानमती। (४) बाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल।

जँतसार—संज्ञा स्त्री० [स० यंत्रशाला] जाँता गाड़ने का स्थान। वह स्थान जहाँ जाँता गाड़ा जाता है।

जंता—संज्ञा पु० [स० यंत्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] (१) यंत्र। कला। जैसे, जंताघर। (२) सोनारों और तारकशों का

तथा मर्तवान और टनासरिम के ऊपरी भागों में होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके फलों के बीज को उबाल कर तेल निकाला जाता है। इन बीजों को महँगी के दिनों में लोग भून कर भी खाते हैं। फूल और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे पून और पिनार भी कहते हैं। (२) हड़ की जाति का एक पेड़। यह अंडमन के टापू तथा भारतवर्ष और वर्मा में भी उत्पन्न होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो गंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है। इसकी पत्तियाँ कसैली होती हैं और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं। इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली सुअरों को खिलाई जाती है। इसकी छाल, पत्ती, बीज, तेल आदि सब औषध के काम में आते हैं। लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं। इसे हिंदी बदाम और नट बदाम भी कहते हैं।

जंगली रेंड–संज्ञा पुं० दे० "बन रेंड"।

जंगा–संज्ञा पुं० [फ़ा० जुगूला] बोर। घुँघुरू का दाना।

जंगार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० जंगारी] (१) ताँबे का कसाव। तूतिया। (२) एक रंग। यह ताँबे का कसाव है जिसे सिरकाकश लोग निकालते हैं। वे ताँबे के चूर्ण को सिरके के अर्क में डाल देते हैं। सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है। चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन से निकाल कर छिछले बरतन में सूखने के लिये रख देते हैं। जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रँगाई के काम में आती है।

जंगारी–वि० [फ़ा० जंगार] नीले रंग का। नीला।

जंगाल–संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगार] दे० "जंगार"।

संज्ञा पुं० [सं०] पानी रोकने का बाँध।

जंगाली–वि० दे० "जंगारी"।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है।

जंगी–वि० [फ़ा०] (१) लड़ाई से संबंध रखनेवाला। जैसे, जंगी जहाज, जंगी कानून। (२) फौजी। सैनिक। सेना संबंधी। जैसे, जंगी लाट, जंगी अफसर।

मुहा०—जंगी लाट = प्रधान सेनापति।

(३) बड़ा। बहुत बड़ा। दीर्घकाय। जैसे, जंगी घोड़ा। (४) वीर। लड़ाका। बहादुर। जैसे, जंगी आदमी।

संज्ञा पुं० कहारों की बोलचाल में घोड़ा। जैसे, "दाहने जंगी, बचा के"।

वि० [फ़ा०] जंगबार का। हबश देश का। जैसे, जंगी हड़। संज्ञा पुं० जंगबार देश का निवासी। हबशी।

जंगी हड़–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगी + हड़] काली हड़। छोटी हड़।

जंगुल–संज्ञा पुं० [सं०] जहर। विष।

जंगै–संज्ञा स्त्री० [हिं० जंगा] बड़ी घुँघुरु लगी कमरपट्टी जिसे अहीर वा धोबी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं।

जंघा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिँडली। (२) जाँघ। रान। उरु। (३) कैंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं। यह प्रायः कैंची के फलों के साथ ढाला जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है।

जंघाफार–संज्ञा पुं० [हिं० जंघा + फारना] कहारों की बोली में वह खाईं जो पालकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघामथानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। कुलटा।

जँघार–संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + आर] वह फोड़ा जो जाँघ में हो। यह आकृति में लंबा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) जंघारथ नाम ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जंघारा–संज्ञा पुं० [देश०] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी झगड़ालू होती है।

जंघारि–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धावन। धावक। दूत। (२) भावप्रकाश के अनुसार मृग की सामान्य जाति। हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पृषत, न्यंकु, शंबर, राजीव, मुंडी आदि इसी जाति के अंतर्गत हैं। तामड़े रँग के हिरन को हरिण, कृष्ण वर्ण को एण, कुछ ताम्र वर्ण लिए काले को कुरंग, नील वर्ण को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे चंद्रबिंदुयुक्त को पृषत, बहुत से सींगोंवाले को मृग, न्यंकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जँचना–क्रि० अ० [हिं० जाँचना] (१) जाँचा जाना। देखा भाला जाना। (२) जाँच में पूरा उतरना। दृष्टि में ठीक या अच्छा ठहरना। उचित वा अच्छा ठहरना। उचित या अच्छा प्रतीत होना। ठीक या अच्छा जान पड़ना। उ०—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जँचता। (ख) मुझे उसकी बात जँच गई। (३) जान पड़ना। प्रतीत होना। निश्चय होना। मन में बैठना। उ०—मुझे तुम्हारी बात ठीक नहीं जँचती।

जँचा–वि० [हिं० जँचना] (१) जाँचा हुआ। मुपरीक्षित। (२) अव्यर्थ। अचूक। जैसे, जँचा हाथ।

मन है कि यह गोल है और चारों ओर से खारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नौ खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नव नव हजार योजन विस्तीर्ण है। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन नौ खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्मय और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और शृंगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्मय और हिरण्मय और कुरुवर्ष के मध्य में हैं। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनका नाम हरिवर्ष, किंपुरुष और भारतवर्ष है, और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनका नाम निषध, हेमकूट और हिमालय है। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल वर्ष हैं तथा गंधमादन और माल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इस लिये पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबू का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंबू द्वीप से केवल भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जंबुध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप।

जंबुमत्—संज्ञा पुं० [सं०] एक बानर का नाम जिसे जांबवान् भी कहते हैं।

जंबुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

जंबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमालिन्] एक राक्षस का नाम

जंबुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भरत जब अपने ननिहाल केकय देश से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि आज कल का जंबू (काश्मीर) वही नगर है।

जंबुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू। जामुन। (२) केतकी का पेड़। (३) कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान की लौ पक जाती है। सुर-कनवा।

जंबुस्वामी—संज्ञा स्त्री० [सं० जंबुस्वामिन्] एक जैन स्थविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदत्त सेठ की स्त्री धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंबू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन। (२) जामुन का फल। (३) नागदमनी। दौना। (४) कश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन के फल के अर्थ में क्लीव भी है।

† वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।

जंबूखंड—संज्ञा पुं० दे० "जंबुखंड"।

जंबूद्वीप—संज्ञा पुं० दे० "जंबुद्वीप"।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार जंबु द्वीप की एक नदी। यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्मलोक से निकली हुई लिखा है।

जंबूर—संज्ञा पुं० [फा०] (१) जंबूरा। जमूरका। (२) तोप की चरख। (३) पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती थी। जंबूरक।

जंबूरक—[फा० जंबूरचः] (१) छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती है। (२) तोप की चर्ख। (३) भँवर कड़ी।

जंबूरची—संज्ञा पुं० [फा०] (१) जंबूर नामक छोटी तोप का चलानेवाला। तोपची। (२) बर्कंदाज। सिपाही। तुपकची।

जंबूरा—संज्ञा पुं० [फा० जंबूर = भौंरा] (१) चर्ख जिस पर तोप चढ़ाई जाती है। (२) भँवर कड़ी। भँवर कली। (३) सोने लोहे आदि धातुओं के बारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि पकड़ कर ऐंठते, रेतते या घुमाते हैं। यह काम के अनुसार छोटा या बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में जड़ा रहता है। इसमें चिमटे की तरह चिपक कर बैठ जानेवाले दो चिपटे पल्ले होते हैं। इन पल्लों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं। कारीगर इसमें चीजों को दबा कर ऐंठते रेतते तथा और काम करते हैं। बांक। (४) एक लकड़ी का बल्ला जो मस्तूल पर आड़ा लगा रहता है और जिस पर पाल का ढाँचा रहता है। (लश०)

जंबूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन का वृक्ष। (२) केवड़े का वृक्ष।

जंबूरजा—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत जपा पुष्प। सफ़ेद गुड़हल का फूल।

जंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाढ़। चौभड़। (२) जबड़ा। (३) एक दैत्य का नाम। यह महिषासुर का पिता था और इसे इंद्र ने मारा था। उ०—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर, रावण सदंभ पर रघुकुल राज है।—भूषण। (४) प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक। (५) हिरण्यकशिपु के पुत्रों में से एक। (६) जँबीरी नीबू। (७) कंधा और हँसली। (८) भक्षण। (९) जम्हाई।

जंभक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जँबीरी नीबू। (२) शिव। (३) एक राक्षस।

वि० [सं०] (१) जँभाई वा नींद लानेवाला। (२) हिंसक। भक्षक। (३) कामुक।

जंभका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जँभाई।

एक औजार जिसमें डाल कर वे तार खींचते हैं। यह औजार लोहे की एक लंबी पटरी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पांतियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चाँदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उनसे छोटे छेदों में, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकाल कर खींचते ह जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

वि० [सं० यंत्र = यंता] यंत्रणा देनेवाला। दंड देनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—डाकिनी शाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ यूथ जंता।—तुलसी।

जँताना—क्रि० अ० [हिं० जँता] जाँते में पिस जाना। कुचल जाना। चूर चूर होना।

जंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंता] छोटा जंता जिससे सोनार बारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] माता। मा।

जंतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

यौ०—जीवजंतु = प्राणी। जानवर।

(२) महाभारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी वपा से होम करने के पीछे सौ पुत्र होगए।

जंतुकंबु—संज्ञा पुं० [सं०] शंख का कीड़ा। शंख।

जंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाक्षा।

जंतुघ्न—वि० [सं०] प्राणिनाशक। कृमिघ्न।

संज्ञा पुं० (१) विडंग। वायविड़ंग। (२) हींग। (३) बिजौरा नीबू। (४) वह औषध जिसके संपर्क से कीड़े मर जाते हों।

जंतुघ्नी—संज्ञा० स्त्री० [सं०] वायविडंग।

जंतुनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

जंतुफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदुंबर। गूलर। ऊमर।

जंतुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीबू।

जंतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांस नाम की घास।

जंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) कल। औज़ार। (२) तांत्रिक यंत्र। (३) ताला।

विशेष—दे० "यंत्र"।

जंत्रना—क्रि० स० [हिं० जंत्र] ताला लगाना। ताले के भीतर बंद करना। जकड़बंद करना। उ०—सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "यंत्रणा"।

जंत्र मंत्र—संज्ञा पुं० दे० "जंतर मंतर", "यंत्र मंत्र"।

जंत्रा—संज्ञा पुं० दे० "जंतरा"।

जंत्रित—वि० [सं० यंत्रित] (१) दे० "यंत्रित"। (२) बंद। बँधा। उ०—जयति निरुपाधि भक्ति भाव जंत्रित हृदय बंधु हित चित्रकूटाद्रि चारी।—तुलसी।

जंत्री—संज्ञा पुं० [सं० यंत्रिन्] वीणा आदि बजानेवाला। बाजा बजानेवाला।

वि० यंत्रित करनेवाला। बद्ध करनेवाला। जकड़बंद करनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] बाजा। उ०—बाजन दे बैजंतरी जग जंत्री ना छेड़। तुझे बिरानी क्या पड़ी अपनी आप निबेर।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० दे० "जंतरी (२)"।

जंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० ژند मि० सं० छंदस] (१) पारसियों का अत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ। इस की भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है। इसके श्लोक को 'गाथा' वा 'मंथ्र' कहते हैं। इसके छंद और देवता वेदों के छंद और देवताओं से मिलते हैं। (२) वह भाषा जिसमें पारसियों का जंद-अवस्था नामक धर्मग्रंथ लिखा गया है।

जंदरा—संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) यंत्र। कल।

मुहा०—जंदरा ढीला होना = (१) कल पुर्जे बेकार होना। (२) हाथ पैर सुस्त होना। नस ढीली होना। थकावट आना।

(२) जाँता। जैसे, कुछ गेहूं गीले, कुछ जंदरे ढीले।

† (३) ताला।

जंबाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कीचड़। काँदो। पंक। (२) सेवार। शैवाल। (३) काई। (४) केवड़ा।

जंबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी का वृक्ष।

जंबीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबीरी नीबू। (२) मरुआ। (३) सफ़ेद या हलके रंग की तुलसी। (४) वन तुलसी।

जंबीरी नीबू—संज्ञा पुं० [सं० जंबीर] एक प्रकार का खट्टा नीबू। इसका फल कागजी नीबू से बड़ा और फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभड़े महीन महीन दानों के कारण खुरदुरा होता है। कच्चा फल रसमता लिए गहरा हरा होता है पर पकने पर पीला हो जाता है। पेड़ इसका बड़ा और कँटीला होता है। वसंत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्त्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत आते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंबु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू वृक्ष। जामुन। (२) जामुन का फल।

जंबुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा जामुन। फरेंदा। (२) श्योनाक वृक्ष। (३) सुवर्ण केतकी। केवड़ा। (४) शृगाल। गीदड़। (५) वरुण। (६) बदन वृक्ष। (७) टेंटू का पेड़। सोना पाठा। (८) स्कंद का एक अनुचर।

जंबुखंड—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "जंबुद्वीप"।

जंबुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का

जईफी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

जकंद*–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जगद] छलांग। चौकड़ी। उछाल।

जकंदना*–क्रि० अ० [हिं० जकंद] (१) कूदना। उछलना। (२) टूट पड़ना। उ०—अमन जोर करि धाइया तव भरत जकंदे। मानो राहु सराहिया भच्छन नू चंदे।—सूदन।

जक–संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] (१) यक्ष। धनरक्षक भूत प्रेत। (२) कंजूस आदमी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० भक] [वि० भक्की] (१) जिद्द। हठ। अड़। उ०—मोहि प्रभु तुम सों होड़ परी।.. .... पतित समूहनि उद्धरिबे को तुम जिय जक पकड़ी।—सूर।

क्रि० प्र०—पकड़ना।

(२) धुन। रट। उ०—जदपि नाहिं नाहीं नहीं वदन लगी जक जाति। तदपि भौंह हाँसी भरिनु हाँसी पै ठहराति।—बिहारी।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—जक बँधना = रट लगना। धुन लगना। उ०—तव पद चमक चकचाने चंद्रचूड़ चख चितवत एकटक जक बँधि गई है।—चाणा।

(३) हार। पराजय। (४) हानि। घाटा। टोटा।

क्रि० प्र०—उठाना।—पाना।

(५) पराभव। लज्जा। (६) डर। खौफ़।

जकड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० जकड़ना] जकड़ने का भाव। कस कर बांधना।

मुहा०—जकड़बंद करना = (१) खूब कस कर बंधना। (२) अच्छी तरह फँसा लेना। पूरी तरह अपने अधिकार में कर लेना।

जकड़ना–क्रि० स० [सं० युक्त + करण वा भखत्त = सिकड़ी] कस कर बाँधना। कड़ा बाँधना। जैसे, इसका हाथ पैर जकड़ दो।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

क्रि० अ० अकड़ने आदि के कारण अंगों का हिलने डुलने के योग्य न रह जाना। जैसे, हाथ पैर जकड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

जकना*–क्रि० अ० [हिं० जक या चकपकाना] [वि० जकित] अचंभे में आना। भौचक्का होना। चकपकाना। उ०—(क) तकि तकि चहूँ ओर जकि सी रही थकि थकि थकि उठै झुकि दैव की लगन में।—दीनदयालु। (ख) तव दोऊ धरनि परे भहराई।.. ... कोऊ रहे अकाश देखत कोऊ रहे सिरनाई। घरिक लों जकि रहे जहँ तहँ रहे गति बिसराई।—सूर। (ग) दूत दबकाने, चित्रगुप्त मुसकाने, औ जकाने यमजाल पाय पुंज लुंज ह्वै गये।—पद्माकर।

ज़कात–संज्ञा पुं० [अ०] (१) दान। खैरात।

क्रि० प्र०—देना।

(२) कर। महसूल।

जकाती–संज्ञा पुं० दे० "जगाती"।

जकित*–वि० [हिं० चकित] चकित। विस्मित। स्तंभित।

उ०—हरिमुख किधौं मोहनी माई।... ... ... सूरदास प्रभु वदन विलोकत जकित थकित चित अनत न जाई।—सूर।

जकुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलयाचल। (२) कुत्ता। (३) बैंगन का फूल।

जक्की–संज्ञा स्त्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति। इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाड़े के दिनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में पाई जाती है। गरमी के महीनों में यह हिमालय पर चली जाती है।

वि० दे० "झक्की"।

जक्त†–संज्ञा पुं० दे० "जगत्"।

जक्ष†–संज्ञा पुं० दे० "यक्ष"।

जक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण। भोजन। खाना।

जक्ष्मा†–संज्ञा स्त्री० दे० "यक्ष्मा" या "क्षयी"।

जक्षिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "यक्षिणी"।

ज़खम–संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ख्म। मि० सं० यक्ष्म] (१) वह क्षत जो शरीर में आघात या अस्त्र आदि के लगने के कारण हो जाय। घाव। (२) मानसिक दुःख का आघात। सदमा।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।—देना।—पूजना।—भरना।—लगना।—होना।

मुहा०—ज़खम ताज़ा या हरा हो आना = बीते हुए कष्ट का फिर लौट आना। गई हुई विपत्ति का फिर आ जाना।

ज़खमी–वि० [फ़ा० ज़ख्मी] घायल। जिसे ज़ख्म लगा हो।

ज़ख़ीरा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह स्थान जहां एक ही प्रकार की बहुत सी चीज़ों का संग्रह हो। कोष। ख़ज़ाना। (२) संग्रह। ढेर। समूह।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

(३) वह बाग या स्थान जहाँ बिक्री के लिये तरह तरह के पेड़, पौधे और बीज आदि मिलते हों।

ज़खेड़ा†–संज्ञा पुं० (१) दे० "ज़खीरा"। (२) दे० "बखेड़ा"। (३) जमाव। यूथ। समूह।

ज़खैया†–संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] एक प्रकार का कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगों को अधिक कष्ट देता है।

जग्म्–संज्ञा पुं० दे० "जगम"।

जग–संज्ञा पुं० [सं० जगत्] (१) संसार। विश्व। दुनिया। उ०—तुलसी या जग आइ के सबसे मिलिये धाय। का जाने केहि भेष में नारायण मिलि जाँय।—तुलसी।

जंभन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भक्षण। (२) रति। संभोग। (३) जँभाई।

जंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जँभाई। जमुहाई।

जँभाई–संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य मालूम पड़ने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने, या दुर्बलता आदि के कारण होती है। इसमें मुँह के खुलते ही सांस के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिंच आती है और कुछ क्षण ठहर कर धीरे धीरे बाहर निकलती है। यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे आप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दबाई भी जा सकती है। हमारे यहां के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस वायु के कारण जँभाई आती है उसे देवदत्त कहते हैं। वैद्यक के अनुसार जँभाई आने पर उत्तम सुगंधित पदार्थ खाना चाहिए। प्रायः दूसरे को जँभाई लेते हुए देख कर भी जँभाई आने लगती है। उबासी।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

जँभाना–क्रि० अ० [सं० जृम्भण] जँभाई लेना।

जंभारि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) अग्नि। (३) वज्र। (४) विष्णु।

जंभी, जंभीर–संज्ञा पुं० दे० "जंबीरी"।

जंभीरी–संज्ञा पुं० दे० "जंबीरी नीबू"।

जंभूरा–संज्ञा पुं० दे० "जंबूरा"।

जंवालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

ज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्युंजय। (२) जन्म। (३) पिता। (४) विष्णु। (५) विष। (६) मुक्ति। (७) तेज। (८) पिशाच। (९) वेग। (१०) छंदःशास्त्रानुसार एक गण जो तीन अक्षरों का होता है। इसके आदि और अंत के वर्ण लघु और मध्य का वर्ण गुरु होता है (। ऽ।), जैसे, महेश, रमेश, सुरेश आदि। इस गण का देवता सांप और फल रोग माना गया है।

वि० (१) वेगवान्। वेगित। तेज। (२) जीतनेवाला। जेता।

प्रत्य०–उत्पन्न। जात। जैसे, देशज, पित्तज, वातज आदि।

विशेष—यह प्रत्यय प्रायः तत्पुरुष समास के पदों के अंत में आता है। पंचमी तत्पुरुष आदि में पंचम्यंत पदों की विभक्ति लुप्त हो जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी तत्पुरुष में 'प्रावृट्' 'शरत्' 'काल' और 'धु' इन चार शब्दों के अतिरिक्त जहां विभक्ति बनी रहती है (जैसे प्रावृषिज, शरदिज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोप विकल्पित होता है। जैसे, सनसिज, मनोज; सरसिज, सरोज इत्यादि।

जई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ] (१) जौ की जाति का एक अन्न जिसका पौधा जौ के पौधे से बहुत मिलता जुलता होता है और जो जौ से अधिक बढ़ता है। जौ गेहूँ आदि की तरह यह अन्न भी वर्षा के अंत में बोया जाता है। बोने के प्रायः एक महीने बाद इसके हरे डंठल काट लिए जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम में आते हैं। काटने के बाद डंठल फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये छोड़ दी जाती है। चौथी बार इस में प्रायः हाथ भर या इस से कुछ कम लंबी बालें लगती हैं। इन्हीं बालों में जई के दाने लगते हैं। बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है। फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने झड़ जाते हैं और डंठल भी निकम्मे हो जाते हैं। एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन अन्न और अठारह मन डंठल होते हैं। इसके लिये दोमट भूमि अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में जई बहुधा घोड़ों आदि को ही खिलाई जाती है, पर जिन देशों में गेहूँ, जौ आदि अच्छे अन्न नहीं होते वहां इसके आटे की रोटियां भी बनती हैं। इसके हरे डंठल गेहूँ और जौ के भूसे से अधिक पोषक होते हैं और गाएँ, भैंसें और घोड़े आदि उन्हें बड़े चाव से खाते हैं। (२) जौ का छोटा अंकुर।

विशेष—हिंदुओं के यहां नौरात्र में देवी की स्थापना के साथ थोड़े से जौ भी बोए जाते हैं। अष्टमी या नौमी के दिन ये अंकुर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर मंगल स्वरूप अपने यजमानों की भेंट करते हैं। उन्हीं अंकुरों को जई कहते हैं। इस अर्थ में इनके साथ "देना", "खोंसना" आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है।

(३) अंकुर। अँखुआ।

मुहा०—जई डालना = अंकुर निकालने के लिये किसी अन्न को भिगोना या तर स्थान में रखना। जई लेना = किसी अन्न की इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह अंकुरित होगा या नहीं। जैसे, धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना, आदि। (४) उन फलों की बतिया जिन में बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई। उ०—सरस बाजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है।—तुलसी।

क्रि० प्र०—निकलना।—लगना।

वि० दे० "जयी"।

जईफ–वि० [अ०] बुड्ढा। वृद्ध।

नहीं रहती बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्त्तियाँ रहती हैं। तीनों मूर्त्तियाँ चंदन की होती हैं, समय समय पर पुरानी मूर्त्तियों का विसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं। सर्वसाधारण इस मूर्त्ति बदलने को "नव कलेवर" या "कलेवर बदलना।" कहते हैं। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है। पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मल मास और दो पूर्णिमाएँ हों, तब कलेवर बदलता है। कूर्म, भविष्य, ब्रह्म वैवर्त्त, नृसिंह अग्नि, ब्रह्म और पद्म आदि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्त्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक और माहात्म्य दिए गए हैं। इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथजी की मूर्त्ति पहले पहल किसी जंगल में पाई गई थी। उसी मूर्त्ति को उड़ीसा के राजा ययाति केसरी ने जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जंगल से ढूँढ़ कर पुरी में स्थापित किया था। जगन्नाथजी का वर्त्तमान् भव्य और विशाल मंदिर गंगवंश के पाँचवें राजा अनंग भीमदेव ने सन् ११८४ से सन् ११९८ तक में बनवाया था। सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति कालापहाड़ ने उड़ीसा को जीत कर जगन्नाथजी की मूर्त्ति आग में फेंक दी थी। जगन्नाथ और बलराम की आज कल की मूर्त्तियों में पैर बिलकुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं। सुभद्रा की मूर्त्ति में न हाथ होते हैं और न पैर। अनुमान किया जाता है कि या तो आरंभ में जंगल में ही ये मूर्त्तियाँ इसी रूप में मिली हों और या सन् १५६८ में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों। नए कलेवर में मूर्त्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं। इन मूर्त्तियों को अधिकांश भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं। भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों वर्णों के लोग बिना स्पर्शास्पर्श का विचार किए ग्रहण करते हैं। महाप्रसाद का भात अटका कहलाता है जिसे यात्री लोग अपने साथ अपने निवास स्थान तक ले जाते और अपने संबंधियों में प्रसाद-स्वरूप बाँटते हैं। जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं। (४) बंगाल के दक्षिण उड़ीसा के अंतर्गत समुद्र के किनारे का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धामों के अंतर्गत है। इसे पुरी, जगदीशपुरी और जगन्नाथपुरी भी कहते हैं। अधिकांश पुराणों में इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है। जगन्नाथजी का प्रसिद्ध मंदिर यहीं है। इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जाति-भेद आदि बिलकुल नहीं रह जाता। पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से "रथ-यात्रा" और "नव कलेवर" के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं। इन अवसरों पर वहाँ लाखों यात्री आते हैं। यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। परमेश्वर। (२) विष्णु।

जगन्नियंता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नियंतृ] परमात्मा। ईश्वर।

जगन्नु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) जंतु।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जगन्मयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) समस्त संसार को चलानेवाली शक्ति।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) महामाया।

जगमग, जगमगा—वि० [अनु०] (१) प्रकाशित। जिस पर प्रकाश पड़ता हो। (२) चमकीला। चमकदार।

जगमगाना—क्रि० अ० [अनु०] किसी वस्तु का स्वयं अथवा किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना। झलकना। दमकना।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगमग] चमक। चमचमाहट। जगमगाने का भाव।

जगर—संज्ञा पुं० [सं०] कवच।

जगरनाथ‡—संज्ञा पुं० दे० "जगन्नाथ"।

जगर मगर—वि० दे० "जगमग"।

जगरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा] खजूर की खाँड़।

जगल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूटी नामक सुरा। पीठी से बना हुआ मद्य। (२) शराब की सीठी। कल्क। (३) मदन वृक्ष। मैनी। (४) कवच। (५) गोमय। गोबर।

वि० धूर्त्त। चालाक।

जगवाना—क्रि० स० [हिं० जगना] (१) सोते से उठवाना। निद्रा भंग करवाना। (२) किसी वस्तु को अभिमंत्रित करा के उसमें कुछ प्रभाव कराना।

जगह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जायगाह] (१) वह अवकाश जिस में कोई चीज रह सके। स्थान। स्थल। जैसे, (क) उन्होंने मकान बनाने के लिये जगह ली है। (ख) यहाँ तिल धरने को जगह नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना।—देना।—निकालना।—पाना।—बनाना।—मिलना आदि।

मुहा०—जगह जगह = सब स्थानों पर। सब जगह।

(२) स्थिति। पद।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ में "जगह" को क्रिया विशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं। जैसे, हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं।

(३) मौका। स्थल। अवसर। (४) पद। ओहदा। जैसे, (क) दो महीने हुए उन्हें कलक्टरी में जगह मिल गई। (ख) इस दफ्तर में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।

जगहर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगना] जगना। जगने की अवस्था। जगने का भाव।

(२) संसार के लोग। जन समुदाय। उ०—साँच कहो तो मारन धावैं झूँठे जग पतियाना।—कबीर। (३) दे० "यज्ञ"।

जगच्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

जगजगा†—संज्ञा पुं० [जगमग से अनु०] पीतल आदि का बहुत पतला चमकीला तख्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काट कर टिकुली और ताजिये आदि पर चिपकाए जाते हैं। पन्नी। वि० चमकीला। प्रकाशित। जो जगमगाता हो।

जगजगाना†—क्रि० अ० [अनु०] चमकना। जगमगाना।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगमगाना] चमक दमक। चमकीलापन। झलझलाहट।

जगजोनि—संज्ञा पुं० [जगयोनिः] ब्रह्मा।

जगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार तीन अक्षरों का समूह जिसका मध्याक्षर दीर्घ मात्रा युक्त हो और आदिम तथा अंतिम अक्षर ह्रस्व हों। जैसे, रसाल, तमाल, जमाल।

जगझंप—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था। आज कल भी कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका व्यवहार होता है।

जगड्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] आडंबर। व्यर्थ का आयोजन।

जगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन अक्षरों का एक गण जिसमें मध्य का अक्षर गुरु और आदि और अंत के अक्षर लघु होते हैं। जैसे, महेश, रमेश, गणेश, हसंत।

विशेष—दे० "ज (१०)"।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) महादेव। (३) जंगम। (४) विश्व। संसार।

यौ०—जगतसेठ।

पर्य्या०—जगती। लोक। भुवन। विश्व।

(५) गोपीचंदन।

जगत—संज्ञा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुरसी] कुएँ के ऊपर चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिस पर खड़े होकर पानी भरते हैं। संज्ञा पुं० दे० "जगत्"।

जगतसेठ—संज्ञा पुं० [सं० जगत + श्रेष्ठ] बहुत बड़ा धनी महाजन, जिसकी साख सारे संसार में मानी जाय।

जगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संसार। भुवन। (२) पृथ्वी। (३) एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर होते हैं।

जगतीतल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी। भूमि।

जगतीधर—संज्ञा पुं० [सं०] बोधिसत्त्व।

जगत्साक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

जगत्हेतु—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदंतक—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु।

जगदंबा, जगदंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

जगद्—संज्ञा पुं० [सं०] पालक। रक्षक।

जगदादि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) परमेश्वर।

जगदाधार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) वायु। हवा।

जगदानंद—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदायु—संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

जगदीश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु। (३) जगन्नाथ।

जगदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती।

जगद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) शिव। (३) नारद। (४) अत्यंत पूज्य वा प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें। (५) शंकराचार्य्य की गद्दी पर के महंतों की उपाधि।

जगद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) मनसा देवी का एक नाम। यह नागों की बहन और जरत्कारु ऋषि की स्त्री थी।

जगद्दीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) महादेव।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) महादेव।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा की एक मूर्त्ति। (२) सरस्वती।

जगद्बल—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जगद्योनि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) ब्रह्मा। (४) पृथ्वी। (५) परमेश्वर।

जगद्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल।

जगनक—संज्ञा पुं० [देश०] महोबाधीश परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि।

जगना—क्रि० अ० [सं० जागरण] (१) नींद से उठना। निद्रा त्याग करना। सोने की अवस्था में न रहना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।—पड़ना।

(२) सचेत होना। सावधान होना। खबरदार होना। (३) देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना। (४) उत्तेजित होना। उमड़ना या उभड़ना। वेग से प्रकट होना। जैसे, शरीर में काम जगना। (५) (आग का) जलना। बलना। दहकना, जैसे, आग जगना। उ०—करि उपचार थकी सखि, चल उताल नँदनंद। चंदक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद।—शृं० सत०। (६) जगमगाना। चमकना। जैसे, ज्योति जगना।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जगत् का नाथ, ईश्वर। (२) विष्णु। (३) विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्त्ति जो उड़ीसा के अंतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है। यह मूर्त्ति अकेली

जजमान—संज्ञा पुं० दे० "यजमान"।

जजिमान—संज्ञा पुं० दे० "यजमान"।

जज़िया—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दंड। (२) एक प्रकार का कर जो मुसलमानी राज्य काल में अन्य धर्मवालों पर लगता था।

जजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जज + ई (प्रत्य०)] (१) जज की कचहरी। जज की अदालत। (२) जज का काम। (३) जज का पद या ओहदा।

जज़ीरा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] टापू। द्वीप।

जज्ज—संज्ञा पुं० दे० "जज"।

जझरा—संज्ञा पुं० [हिं० झरना] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उसमें से तवे काटने के बाद बच रहता है।

जट—संज्ञा पुं० [देश० या सं० जट्] एक प्रकार का गोदना जो झाड़ी के आकार का होता है।

संज्ञा पुं० दे० "जाट"।

जटना—क्रि० स० [हिं० जट] ठगना। धोखा देकर कुछ लेना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

* क्रि० स० [सं० जटन] जड़ना। ठोंक कर लगाना। उ०—पाट जटी अति श्वेत सौं हीरन की अवली।—केशव।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] व्यर्थ और कूट मूठ की बात। गप। बकवाद। उ०—अपना बहुत समय .... इधर उधर की जटल हाँकने में खो देते हैं।—परीक्षागुरु।

क्रि० प्र०—मारना।—हाँकना।

यौ०—जटल काफ़िया = गपशप। बेतुकी बात। ऊटपटाँग बात।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक में उलझे हुए सिर के बहुत से बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः साधुओं के होते हैं।

पर्य्या०—जटा। जटि। जटी। जूट। शट। कोटीर। हस्त।

(२) जड़ के पतले पतले सूत। झकरा। (३) एक में उलझे हुए बहुत से रेशे आदि। जैसे, नारियल की जटा, बरगद की जटा। (४) शाखा। (५) जटामासी। (६) जूट। पाट। (७) कौंछ। केवाँच (८) शतावर। (९) रुद्र जटा। बालछड़। (१०) वेदपाठ का एक भेद जिसमें मंत्र के दो या तीन पदों को क्रमानुसार पूर्व और उत्तर पद को पृथक् पृथक् फिर मिला कर दो बार पढ़ते हैं।

जटाचीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

जटाजिनी—संज्ञा पुं० [सं०] जटा और मृगचर्म धारण करनेवाला।

जटाजूट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जटा का समूह। बहुत से लंबे बढ़े हुए बालों का समूह। (२) शिव की जटा।

जटाटंक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

जटाटीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

जटाधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक बुद्ध का नाम। (३) दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में आया है। (४) जटाधारी।

जटाधारी—वि० [सं०] जो जटा रखे हो। जिसके जटा हो।

संज्ञा पुं० (१) शिव। महादेव। (२) मरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लहरदार लाल फूल लगते हैं। मुर्गकेश।

जटाना—क्रि० स० [हिं० जटना] जटने का प्रेरणार्थक रूप।

क्रि० अ० [हिं० जटना] ठगा जाना। धोखे में आ कर अपनी हानि कर बैठना।

जटापटल—संज्ञा पुं० [सं०] वेद पाठ करने का एक बहुत जटिल प्रकार या क्रम। कहते हैं कि यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था।

जटामाली—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटमासी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक वनस्पति की जड़ है। यह वनस्पति हिमालय में १७००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इस की डालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी और सींके की तरह होती हैं जिनमें आमने सामने डेढ़ दो अंगुल लंबी और आधी से एक अंगुल तक चौड़ी पत्तियाँ होती हैं। इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो या सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है। इसमें छोटी उँगली के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं जिन पर तामड़े रंग के बाल या रेशे होते हैं। इसकी गंध तेज़ और मीठी तथा स्वाद कड़ुआ होता है। वैद्यक में जटामासी बलकारक, उत्तेजक, विषघ्न तथा उन्माद और कास श्वास आदि को दूर करनेवाली मानी गई है। लोगों का कथन है कि इसे लगाने से बाल बढ़ते और काले होते हैं। खींचने से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो औषध और सुगंधि के काम में आता है। २८ सेर जटामासी में से डेढ़ छटाँक के लगभग तेल निकलता है। इसे बालछड़, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध। यह सूर्य्य के सारथी अरुण का पुत्र था जो उसकी श्येनी नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हर कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में वह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर उसने रावण के सीता को हर ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय उसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इस की अंत्येष्टि क्रिया की थी। संपाति इसका भाई था। (२) गुग्गुल।

जटाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वटवृक्ष। बरगद। (२) कचूर। (३) मुष्कक। मोखा। (४) गुग्गुल।

वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाव—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। कुम्हरौटी।

जगात†—संज्ञा पुं० [अ० ज़कात] (१) वह जो पुण्य के लिये दिया जाय। दान। खैरात। (२) महसूल। कर।

जगाती†—संज्ञा पुं० [हिं० जगात वा फ़ा० जगाती] (१) महसूल वा कर लगानेवाला कर्म्मचारी। वह जो कर वसूल करे। (२) कर उगहने का काम या भाव।

जगाना—क्रि० स० [हिं० जागना] (१) जागने या 'जगने' का प्रेरणार्थक रूप। नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना। जैसे, वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ। (२) चेत में लाना। होश दिलाना। उद्बोधन कराना। चैतन्य करना। † (३) फिर से ठीक स्थिति में लाना। † (४) सुलगाना। बुझती हुई या बहुत धीमी आग को तेज़ करना। † (५) यंत्र या सिद्धि आदि का साधन करना। जैसे, मंत्र जगाना, भूत प्रेत जगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

जगार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना] जागरण। जागृति। उ०—नैना ओछे चोर सखी री। श्यामरूप निधि नेरे पाई देखत गये भरी री। .. ..कहा लेहि, कह तजै विवश भय तैसी करनि करी री। भोरे भए भोर सों ह्वै गयो धरे जगार परी री।—सूर।

जगो—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी जो शिमले के आस पास के पहाड़ों में मिलता है। यह प्रायः दो हाथ लंबा होता है। नर के सिर पर लाल कलगी होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाठें होती हैं। नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग की होती है और उसके पंखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं। उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती और पेट के नीचे के पर भी काले होते हैं जिन पर ललाई की झलक होती है और एक छोटी सफेद बिंदी होती है। मादा का रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है। यह दस दस बारह बारह की झुंड में रहता है। जाड़े के दिनों में यह गरम देशों में आकर रहता है। इसकी बोली बकरी के बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चीत्कार करता है। इसका चीत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है। अंगरेज़ लोग इसका शिकार करते हैं। इसे जवाहिर भी कहते हैं।

जगीला†—वि० [हिं० जागना] उनींदा। जागने के कारण अलसाया हुआ। उ०—दुरति दुराये ते न रति चलि कुंकुम उर मैन। प्रगट कहैं पति रतजगे जगी जगीले नैन। शृं० सत०।

जग्गुरि—संज्ञा पुं० [सं०] जंगम।

जग्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खाने की क्रिया। भोजन। (२) कई आदमियों का साथ मिल कर खाना। सहभोजन।

जग्मि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

वि० जो चलता हो। जो गति में हो।

जघन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटि के नीचे आगे का भाग। पेडू। (२) नितंब। चूतड़। उ०—सरस विपुल मम जघनन पर कल किंकिनि कलश सजावो।—हरिश्चंद्र।

यो०—जघनकूपक।

(३) सेना का सबसे पिछला भाग।

जघनकूपक—संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़ पर का गड्ढा।

जघनचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामुकी स्त्री। (२) कुलटा। (३) आर्य्या छंद के सोलह भेदों में से एक। वह मात्रा वृत्त जिसका प्रथमार्द्ध आर्य्या छंद के प्रथमार्द्ध का सा और द्वितीयार्द्ध चपला छंद के द्वितीयार्द्ध का सा हो।

जघनेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर।

जघन्य—वि० [सं०] (१) अंतिम। चरम। (२) गर्हित। त्याज्य। अत्यंत बुरा। (३) क्षुद्र। नीच। निकृष्ट।

संज्ञा पु० (१) शूद्र। (२) नीच जाति। हीन वर्ण। (३) पीठ का वह भाग जो पुट्ठे के पास होता है। (४) राजाओं के पाँच प्रकार के संकीर्ण अनुचरों में से एक। बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा आदमी धनी, मोटी बुद्धि का, हँसोड़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति भी होती है। ऐसे मनुष्य के कान अर्द्धचंद्राकार, शरीर के जोड़ अधिक दृढ़ और उँगलियां मोटी होती हैं। इसकी छाती, हाथों और पैरों में तलवार और खाँड़े आदि के से चिह्न होते हैं। (५) दे० "जघन्यभ"।

जघन्यज—संज्ञा पु० [सं०] (१) शूद्र। (२) अंत्यज।

जघन्यभ—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, भरणी और शतभिषा ये छ नक्षत्र।

जघ्नि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वध करता हो। (२) वह अस्त्र जिससे वध किया जाय।

जचना—क्रि० अ० दे० "जँचना"।

जच्चा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़च्चः] प्रसूता स्त्री। वह स्त्री जिसे तुरंत संतान हुई हो।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियां जच्चा कह-लाती हैं।

यो०—जच्चाखाना = सूतिकागृह। सौरी।

जच्छ†—संज्ञा पुं० दे० "यक्ष"।

जज—संज्ञा पु० [अं०] (१) न्यायाधीश। विचारपति। न्याय करने-वाला। (२) दीवानी और फ़ौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला हाकिम।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक या अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज कहलाता है। जिले के अंदर अंतिम अपील जज के यहाँ ही होती है।

यो०—दौरा या सेशंस जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूम कर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ निश्चित स्थानों पर करे। सब-जज = दे० "सदराला"।

संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा।

जड़ता–संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ का भाव] (१) अचेतनता । (२) मूर्खता । बेवकूफी। (३) साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव जो किसी घटना के होने पर चित्त के विवेक-शून्य होने की दशा में होता है। यह भाव प्रायः घबराहट दुःख भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है। (४) स्तब्धता। अचलता। चेष्टा न करने का भाव। उ०—निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी।—तुलसी।

जड़ताई|–संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ता"।

जड़त्त्व–संज्ञा पु० [सं०] (१) चेतनता का विपरीत भाव। अचेतन पदार्थों का वह गुण जिस से वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं और स्वयं हिल डोल वा किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं कर सकते। (२) स्थिति और गति की इच्छा का अभाव। वैशेषिक के अनुसार यह परमाणुओं का एक गुण है।

जड़ना–क्रि० स० [सं० जटन] [संज्ञा जड़िया वि० जड़ाऊ, जड़ाई,] (१) एक चीज को दूसरी चीज में पच्ची करके बैठाना। पच्ची करना। जैसे, अँगूठी में नग जड़ना। (२) एक चीज को दूसरी चीज में ठोंक कर बैठाना। जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।

(३) किसी वस्तु से प्रहार करना। जैसे, धौल जड़ना, थप्पड़ जड़ना। (४) चुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से कुछ कहना। कान भरना। जैसे, किसी ने पहले ही उनसे जड़ दिया था, इसी लिये वह यहाँ नहीं आए।

संयो० क्रि०—देना।

जड़भरत–संज्ञा पु० [सं०] अंगिरस गोत्री एक ब्राह्मण जो जड़वत् रहते थे। भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने वानप्रस्थ आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ उनका इतना प्रेम था कि मरते दम तक उन्हें उसकी चिंता बनी रही। मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए पर उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा। उन्होंने हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया। वह संसार की वासना से बचने के लिये जड़वत् रहते थे, इसी लिये लोग उन्हें जड़ भरत कहते थे।

जड़वाना–क्रि० स० [हिं० जड़ना] (१) नग इत्यादि जड़ने के लिये प्रेरणा करना। जड़ने का काम कराना। (२) कील इत्यादि गड़वाना।

जड़वाँ–संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ हो।

जड़हन–संज्ञा पु० [हिं० जड़+हनन=गड़ना] धान का एक प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बैठाए जाते हैं। यह धान असाढ़ में घना बोया जाता है। जब पौधे एक वा दो फुट ऊँचे हो जाते हैं तब किसान उन्हें उखाड़ कर ताल के किनारे नीचे खेतों में बैठाते हैं। वह खेत, जिसमें इस के बीज पहले बोए जाते हैं, बियाड़ कहलाता है, और पौधे के बीज को "बेहन" तथा बीज बोने को "बेहन डालना" कहते हैं। बीज को बियाड़ से उखाड़ कर दूसरे खेत में बैठाने को रोपना और बैठाना कहते हैं, और वह खेत, जिसमें इसके पौधे रोपे जाते हैं, सोई, डाबर आदि कहलाता है। जड़हन पौधों में कुआर के अंत में बाल फूटने लगती है, और अगहन में खेत पक कर कटने के योग्य हो जाता है। इस प्रकार के धान की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे और कुछ के महीन होते हैं। यह कभी कभी तालों के किनारे वा बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है और ऐसी बोआई को "बोवारी" कहते हैं। अगहनी के अतिरिक्त धान का एक और भेद होता है जिसे कुआँरी कहते हैं। इस भेद के धान ओसहन कहलाते हैं।

जड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुइँ आमला। (२) कौंछ। केवाँच।

जड़ाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] (१) जड़ने का काम। पच्चीकारी। (२) जड़ने का भाव। (३) जड़ने की मज़दूरी।

जड़ाऊ–वि० [हिं० जड़ना] जिस पर नग या रत्न आदि जड़े हों। पच्चीकारी किया हुआ।

जड़ान|–संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ाई (१) और (२)।"

जड़ाना–क्रि० स० [हिं० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप। जड़ने का काम दूसरे से कराना।

‡ क्रि० अ० [हिं० जाड़ा] जाड़ा सहना। ठंढ खाना। सरदी की बाधा होना। शीत लगना।

जड़ाव|–संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव। उ०—पुनि अभरन बहु काढ़ा नाना भांति जड़ाव। फेरि फेरि सब पहिरहिँ जैस जैस मन भाव।—जायसी।

जड़ावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] जड़ाव। जड़ने का काम वा भाव।

जड़ावर–संज्ञा पुं० [हिं० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े। गरम कपड़े।

जड़ावल|–संज्ञा पुं० दे० "जड़ावर"।

जड़ित*–वि० [हिं० जड़ना वा सं० जटित] (१) जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो। (२) जिसमें नग आदि जड़े हों।

जड़िमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जड़ता। जड़त्त्व। (२) एक भाव जिसमें मनुष्य को इष्ट अनिष्ट का ज्ञान नहीं होता और वह जड़ की तरह हो जाता है।

जड़िया–संज्ञा पु० [हिं०–जड़ना] (१) नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरुष। वह जो नग जड़ने का काम करता हो। कुंदनसाज। (२) सोनारों की एक जाति जो गहने में नग जड़ने का काम करती है।

जटावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा। शंकरजटा। (२) एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमासी भी कहते हैं।

जटासुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध राक्षस जो द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के भेस में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था। (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़। (२) बरगद का पेड़। (३) जटा। (४) समूह। (५) जटामासी।

जटित—वि० [सं०] जड़ा हुआ। जैसे, रत्नजटित।

जटिल—वि० [सं०] (१) जटावाला। जटाधारी। (२) अत्यंत कठिन। जटा के उलझे हुए बालों की तरह जिसका सुलझना बहुत कठिन हो। दुरूह। दुर्बोध। (३) क्रूर। दुष्ट। हिंसक।

संज्ञा पुं० (१) सिंह। (२) ब्रह्मचारी। (३) जटामासी। (४) शिव। (जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थीं, उस समय शिव जो जटिल-वेष धारण करके उनके पास गए थे, उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा।)

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) इस ऋषि के वंशज।

जटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्मचारिणी। (२) जटामासी। (३) पिप्पली। पीपल। (४) वचा। वच। (५) दौना। दमनक। (६) महाभारत के अनुसार गौतमवंश की एक ऋषि-कन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषि-पुत्रों से हुआ था। यह बड़ी धर्म्म-परायणा थी।

जटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाकर। (२) जटामासी।

जटुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है। लोग इसे लच्छन या लच्छण कहते हैं।

जठर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेट। कुक्षि।

यौ०—जठराग्नि। जठरानल।

(२) भागवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत से निषध गिरि तक चला गया है। यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है। (३) एक देश का नाम। बृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वा फाल्गुणी के अधिकार में है। महाभारत में इसे कुक्कुर देश के पास लिखा है। (४) सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग जिसमें पेट फूल आता है। इसमें रोगी बल और वर्णहीन हो जाता है और उसे भोजन से अरुचि हो जाती है। (५) शरीर। (६) मर्कत मणि का एक दोष। इस दोषयुक्त मर्कत के रखने से मनुष्य दरिद्र होता है।

वि० (१) वृद्ध। बुड्ढा। (२) कठिन।

जठरनुत्—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

जठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिससे अन्न पचता है। पित्त की कमी बेशी से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, मंदाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि और समाग्नि।

जठरामय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अतीसार रोग। (२) जलोदर रोग।

जठल—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिस का आकार उदर का सा होता है।

जठेरा‡—वि० [हिं० जेठ वा जठर] [स्त्री० जठेरी] जेठा। बड़ा।

जड़—वि० [सं०] (१) जिस में चेतनता न हो। अचेतन। (२) जिसकी इंद्रियों की शक्ति मारी गई हो। चेष्टाहीन। स्तब्ध। (३) मंद बुद्धि। ना समझ। मूर्ख। (४) सरदी का मारा या ठिठुरा हुआ। (५) शीतल। ठंढा। (६) गूँगा। मूक। (७) बहरा। जिसे सुनाई न दे। (८) अनजान। अनभिज्ञ। (९) जिस के मन में मोह हो। (१०) जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो। (दायभाग)

संज्ञा पुं० (१) जल। पानी। (२) सीसा नाम की धातु।

संज्ञा स्त्री० [सं० जटा = वृक्ष की जड़] (१) वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिस के द्वारा उन का पोषण होता है। जड़ के मुख्य दो भेद हैं। एक मूसला जो मूसल या डंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है, और दूसरी झकरा जिस के रेशे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारों तरफ फैलते हैं। सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है। मूल। सोर।

यौ०—जड़मूल।

(२) वह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो। नीव। बुनियाद।

मुहा०—जड़ उखाड़ना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचा कर या बुराई कर के समूल नाश करना। ऐसा नष्ट करना जिस में वह फिर अपनी पूर्व स्थिति तक न पहुँच सके। जड़ जमना = दृढ़ या स्थायी होना। जड़ पकड़ना = जमना। दृढ़ होना। मजबूत होना। जड़ पड़ना = नीवँ पड़ना। बुनियाद पड़ना।

(३) हेतु। कारण। सबब। जैसे, यही तो सारे झगड़ों की जड़ है। (४) वह जिस पर कोई चीज अवलंबित हो। आधार।

जड़-आमला—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + आमला] भुइँ आँवला।

जड़क्रिया—वि० [सं०] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे। सुस्त। दीर्घसूत्री।

संग्रहे कोऊ लाख हजार। सो संपति जदुपति सदा विपति बिदारनहार।—बिहारी।

जदुपाल*–संज्ञा पुं० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण।

जदुपुर*–संज्ञा पुं० [सं० यदुपुर] राजा यदु का नगर। यदुकुल की राजधानी, मथुरा।

जदुबंसी–संज्ञा पुं० दे० "यदुवंशी"।

जदुराइ*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] यदुपति। श्रीकृष्ण चंद्र।

जदुराज*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुराम*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम। बलदेव।

जदुराय*–संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुवर*–संज्ञा पुं० [सं० यदुवर] श्रीकृष्ण चंद्र।

जदुवीर*†–संज्ञा पुं० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र।

जद्दा*–वि० [अ० ज्यादा] अधिक। ज्यादा।

वि० [सं० योद्धा] प्रचंड। प्रबल। उ०—छागलि चलेउ समद भूप बलहद जद्द अति।—गोपाल।

संज्ञा पुं० [अ०] दादा। पितामह। बाप का बाप।

जद्यपि*–क्रि० वि० दे० "यद्यपि"।

जद्वद्–संज्ञा पुं० [सं० यद्+अवद्य] अकथनीय बात। वह बात जो न कहने योग्य हो। दुर्वचन।

जनंगम–संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल।

जन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोक। लोग।

यौ०—जनप्रवाद। जनरव। जनश्रुति। जनवल्लभ। जनसमूह आदि।

(२) प्रजा। (३) गँवार। देहाती। (४) अनुयायी। अनुचर। दास। उ०—(क) हरिजन हंस दशा लिए डोलैं। निर्मल नाम चुनी चुनि बोलैं।—कबीर। (ख) हरि अर्जुन निज जन जान। लै गए तहाँ न जहँ शशि भान।—सूर। (ग) जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी।—तुलसी।

यौ०—हरिजन।

(५) समूह। समुदाय। जैसे, गुणिजन। (६) भवन। (७) वह जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से चलती हो। (८) सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति। (९) सात लोकों में से पाँचवाँ लोक। पुराणानुसार चौदह लोकों में ऊपर के सात लोकों में पाँचवाँ लोक जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगींद्र रहते हैं। (१०) एक राक्षस का नाम।

जनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मदाता। उत्पादक। (२) पिता। बाप। (३) मिथिला के एक राजवंश की उपाधि। ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर वैदेह भी कहलाते थे। सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री थीं। इस कुल में बड़े बड़े महात्मा उत्पन्न हुए हैं जिनकी कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं। (४) संबरासुर का चौथा पुत्र। (५) एक वृक्ष का नाम।

जनकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करने का भाव या काम। (२) उत्पन्न करने की शक्ति।

जनकनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। जानकी।

जनकपुर–संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी। इसका स्थान आज कल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं। यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष यहाँ दर्शन के लिये आते हैं।

जनकारी–संज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाख का बना हुआ रंग। अलक्तक।

जनकौर–संज्ञा पुं० [हिं० जनक+औरा (प्रत्य०)] (१) जनक का स्थान। जनक नगर। उ०—बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पायेन्हि। सीय नैहर जनकौर नगर नियरायेन्हि।—तुलसी। (२) जनक राजा के वंशज या संबंधी। उ०—कौसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा।—तुलसी।

जनखा–वि० [फा० जनकः] (१) जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों। (२) हीजड़ा। नपुंसक।

जनगी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली।

जनघर–संज्ञा पुं० [सं० जन+गृह] मंडप। (डिं०)

जनचक्षु–संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य।

जनचर्चा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद। सर्वसाधारण में फैली हुई बात।

जनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनन का भाव। (२) जनसमूह। सर्वसाधारण।

जनत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और वृष्टि आदि से रक्षा हो।

जनथोरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुकड़बेल। बँदाल।

जनदेव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। नरपति। (२) मिथिला के एक प्राचीन राजा का नाम जो बड़ा जिज्ञासु था और जिसने महर्षि पंचशिख के उपदेश से मोक्ष प्राप्त किया था। इसका वर्णन महाभारत में आया है।

जनधा–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जनन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्पत्ति। उद्भव। (२) जन्म। (३) आविर्भाव। (४) तंत्र के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मातृका वर्णों से उद्धार किया जाता है। (५) यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है। (६) वंश। कुल। (७) पिता। (८) परमेश्वर।

जनना–क्रि० स० [सं० जनन = जन्म] संतान को जन्म देना। प्रसव करना। उ०—(क) जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि

जड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ औषध के काम में लाई जाय। बिरई।

यौ०—जड़ी बूटी = जंगली औषधि या वनस्पति।

जड़ीला–संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + ईला (प्रत्य०)] (१) वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो। जैसे, मूली, गाजर। (२) वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले। (कहार)।

†वि० जड़दार। जिसमें जड़ हो।

जडुआ–संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के अँगूठे में पहना जाता है।

जडुल–संज्ञा पुं० दे० "जटुल"।

जड़ैया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० जाड़ा + ऐया (प्रत्य०)] वह बुखार जिस के आरंभ में जाड़ा लगता हो। जूड़ी।

जढ़†–वि० दे० "जड़"।

जढ़ता–संज्ञा स्त्री० दे० "जड़ता"।

जढ़ाना†–क्रि० अ० [हिं० जड़ वा जड़] (१) जड़ हो जाना। (२) हठ करना। जिद्द करना। अपनी बात पर अड़े रहना।

जत†*–वि० [सं० यद्] जितना। जिस मात्रा का।

संज्ञा पुं० [सं० यति] वाद्य के बारह प्रबंधों में से एक। होली का ठेका वा ताल।

जतन*†–संज्ञा पुं० दे० "यत्न"। उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।—तुलसी।

जतनी–संज्ञा पुं० [सं० यत्न] (१) यत्न करनेवाला। (२) सुचतुर। चालाक।

संज्ञा स्त्री० [सं० यत = रक्षा] वह रस्सी वा डोरी जिसे चर्खे (रहँट) की पँखुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं।

जतलाना–क्रि० स० दे० "जताना"।

जतसर–संज्ञा पुं० दे० "जँतसर"।

जताना–क्रि० स० [सं० ज्ञात] (१) जानने का प्रेरणार्थक रूप। ज्ञात कराना। बतलाना। (२) पहले से सूचना देना। आगाह करना।

‡ क्रि० अ० दे० "जँताना"।

जतारा†–संज्ञा पुं० [हिं० जाति वा यूथ] वंश। खानदान। कुल। जाति। घराना।

जति†–संज्ञा पुं० दे० "यति"।

जती–संज्ञा पुं० [सं० यतिन्] संन्यासी।

संज्ञा स्त्री० दे० "यति"।

जतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष का निर्य्यास। गोंद। (२) लाख। लाह। (३) शिलाजतु। शिलाजीत।

जतुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग। (२) लाख। लाह। (३) शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है। इसे "लच्छन" या "लक्षण" भी कहते हैं।

जतुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ औषधि के काम में आती हैं। (२) चमगादड़।

जतुकारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पपड़ी नाम की लता।

जतुकृष्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता।

जतुगृह–संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस आदि ऐसी चीजों का बना हुआ घर जो जल्दी जल सके।

जतुनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

जतुपुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शतरंज का मोहरा। (२) चौसर की गोटी।

जतुमणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें चमड़े पर दाग पड़ जाता है। जटुल। जतुक।

जतुमुख–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का धान।

जतुरस–संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग। अलक्तक। महावर।

जतू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक पक्षी का नाम। (२) लाख का बना हुआ रंग।

जतूकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जतूका–संज्ञा स्त्री० दे० "जतुका"।

जतेक†*–क्रि० वि० [सं० यत् वा हिं० जितना + एक] जितना। जिस मात्रा का।

जत्था–संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से जीवों का समूह। झुंड। गरोह।

क्रि० प्र०—बाँधना।

जत्रानी–संज्ञा स्त्री० [?] जाटों की एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है।

जत्रु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले की सामने की दोनों ओर की वह हड्डी जो कंधे तक कमानी की तरह लगी रहती है। हँसली। हँसिया। (२) कंधे और बाँह का जोड़।

जत्वश्मक–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

जथा–क्रि० वि० (१) दे० "यथा"।

संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] मंडली। गरोह। समूह। टोली।

क्रि० प्र०—बाँधना।

संज्ञा स्त्री० [सं० गय] पूँजी। धन। संपत्ति।

यौ०—जमा जथा।

जदा†–क्रि० वि० [सं० यदा] जब। जब कभी।

अव्य० [सं० यदि] यदि। अगर।

जदपि–क्रि० वि० दे० "यद्यपि"।

जदवदा†–संज्ञा पुं० दे० "जदवार"।

जदवर, जदवार–संज्ञा पुं० [फा० जदवार] निर्विषी। निर्बिसी।

जदीद–वि० [अ०] नया। हाल का। नवीन।

जदु–संज्ञा पुं० दे० "यदु"।

जदुपति*–संज्ञा पुं० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण। उ०—देखि ऐसेहि

जनवरी–संज्ञा स्त्री० [अ० जनुअरी] अंगरेजी साल का पहला महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

जनवल्लभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्वेत रोहित का पेड़। सफेद रोहिड़ा। (२) जनप्रिय। लोकप्रिय।

जनवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "जनाई (२)"।

जनवाद–संज्ञा पु० दे० "जनरव"।

जनवाना–क्रि० स० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप। प्रसव कराना। लड़का पैदा कराना।

† क्रि० स० [हिं० जनना] समाचार दिलवाना। किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना।

जनवास–संज्ञा पु० [सं० जन+वास] (१) सर्वसाधारण के ठहरने या टिकने का स्थान। लोगों के निवास का स्थान। (२) बरातियों के ठहरने का स्थान। वह जगह जहाँ कन्या पक्ष की ओर से बरातियों के ठहरने का प्रबंध हो। उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्ह्यो जनवास तहाँ कीन्ह्यो सन्मान दे हुलास त्यों समाज को।—कबीर। (ख) दीन्ह जाय जनवास सुपास किये सब। घर घर बालक बात कहन लागे सब।—तुलसी। (३) सभा। समाज।

जनवासा–संज्ञा पु० दे० "जनवास (२)"।

जनश्रुत–वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

जनश्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अफवाह। वह खबर जो बहुत से लोगों में फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या झूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो। अफवाह। किंवदंती।

क्रि० प्र०—उठना।—फैलना।

जनस्थान–संज्ञा पु० [सं०] दंडकारण्य। दंडकवन।

जनहरण–संज्ञा पु० [सं०] एक दंडक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीस लघु और एक गुरु होता है। यह 'मुक्तक' का दूसरा भेद है। उ०—लघु सब गुरु इक तिमर न मन धर भजु भजु नर प्रभु अघ जन हरणा।

जनांत–संज्ञा पु० [सं०] (१) वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो। (२) यम। (३) वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों।

वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला।

जनांतिक–संज्ञा पु० [सं०] दो आदमियों में परस्पर वह सांकेतिक बात चीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है।

जना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति। पैदाइश। (२) माहिष्मती के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम। जैमिनी भारत के अनुसार पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उस घोड़े के लिये प्रवीर और पांडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें इसने अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी। जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब वह स्वयं युद्ध करने लगी। श्रीकृष्ण को इससे पांडवों की रक्षा करने में बहुत कठिनता हुई थी।

संज्ञा पु० दे० "ज़िना"।

वि० उत्पन्न किया हुआ। जन्माया हुआ।

जनाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] (१) जनानेवाली। दाई। (२) जनाने की उजरत। पैदा कराई का हक़ या नेग। दाई की मज़दूरी।

जनाउ*†–संज्ञा पु० दे० "जनाव"। उ०—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ। भए प्रेम बस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ।—तुलसी।

जनाचार–संज्ञा पु० [सं०] लोकाचार। देश या समाज आदि की प्रचलित रीति।

जनाज़ा–संज्ञा पु० [अ०] (१) मृतक शरीर। शव। लाश। (२) अरथी या वह संदूक जिसमें लाश को रख कर गाड़ने, जलाने या और किसी प्रकार की अंतिम क्रिया करने के लिये ले जाते हैं।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

जनाधिनाथ–संज्ञा पु० [सं०] (१) ईश्वर। (२) राजा।

ज़नानख़ाना–संज्ञा पु० [फ़ा०] घर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हों। स्त्रियों के रहने का घर।

जनाना–क्रि० स० [हिं० जानना] मालूम कराना। जताना।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

क्रि० स० [हिं० जनना] जानने का प्रेरणार्थक रूप। उत्पन्न कराना। जनन का काम कराना।

संयो० क्रि०—देना।

ज़नाना–वि० [फ़ा०] [स्त्री० ज़नानी] (१) स्त्रियों का। स्त्री संबंधी। जैसे, ज़नाना काम, ज़नानी सूरत, ज़नानी बोली। (२) नामर्द। नपुंसक। हीजड़ा। (३) निर्बल। डरपोक।

संज्ञा पु० [फ़ा०] (१) ज़नखा। मेहरा। (२) अंतःपुर। ज़नानख़ाना।

मुहा०—ज़नाना करना = पर्दा करना। स्थान को पर्देवाली स्त्रियों के आने जाने योग्य करना।

ज़नानापन–संज्ञा पु० [फ़ा० ज़नाना + पन (प्रत्य०)] मेहरापन। क्लीवत्व।

जनाब–संज्ञा पु० [अ०] बड़ों के लिये आदरसूचक शब्द। महाशय। महोदय। जैसे, जनाब मौलवी साहब।

जनाबआली–संज्ञा पुं० [अ०] मान्यवर। महोदय। प्रतिष्ठित पुरुषों के लिये आदर-सूचक संबोधन।

जनार्दन–संज्ञा पु० [सं०] (१) विष्णु। (२) शालग्राम की बटिया का एक भेद।

वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला। दुखदायी।

जनाव–संज्ञा पु० [हिं० जनना] जनाने की क्रिया। सूचना। इत्तिला।

जननि उर सोच अपारा।—कबीर। (ख) रंभ खंभ जंघन दुति देखत नशत जनत जगमाँही।—रघुराज।

जननाशौच-संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है। वृद्धि।

जननि॰-संज्ञा स्त्री० दे० "जननी"।

जननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पन्न करनेवाली। (२) माता। मा। उ०—(क) जनत पुत्र नभ बजे नगरा। तदपि जननि वर सोच अपारा।—कबीर। (ख) समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिँ। बाल बुझाए विविध विधि, निडर होहु डर नाहिं।—तुलसी। (ग) जननी जनकादि हितू भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी।—तुलसी। (घ) हौं इहाँ तेरे ही कारण आयो। तेरी सौं सुन जननि यशोदा हठि गोपाल पठायो।—सूर। (३) जूही का पेड़। (४) कुटकी। (५) मजीठ। (६) जटामाँसी। (७) अलता। (८) पपड़ी। पपरिका। (९) चमगादड़। (१०) दया। कृपा। (११) जनी नाम का गंध-द्रव्य।

जननेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। भग। योनि।

जनपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देश। (२) सर्वसाधारण। निवासी। देशवासी। प्रजा। लोक। लोग। उ०—ज्यों हुलास रनिवास नरेसहिँ त्यों जनपद रजधानी।—तुलसी।

जनपाल, जनपालक,-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्यों का पोषण करनेवाला। (२) सेवक वा अनुचर का पालनेवाला।

जनप्रवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकप्रवाद। लोकनिंदा। (२) जनरव। अफवाह। किंवदंती।

जनप्रिय-वि० [सं०] सब से प्रेम रखनेवाला। सर्व प्रिय। सब का प्यारा।

संज्ञा पुं० (१) धान्यक। धनिया। (२) शोभांजन वृक्ष। सहँजन का पेड़। (३) महादेव। शिव।

जनप्रियता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सब के प्रिय होने का भाव। सर्वप्रियता।

जनप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साग।

जनबगुल-संज्ञा पुं० [हिं० जन + बगुला] एक प्रकार का बगुला।

जनम-संज्ञा पुं० [सं० जन्म] (१) उत्पत्ति। जन्म। दे० "जन्म" उ०—बहु विधि राम सियहिँ समुझावा। पारवती कर जनम सुनावा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—धारना।—पाना।—लेना।

यौ०—जनमघूँटी। जनमपत्ती। जनमपत्री।

(२) जीवन। जिंदगी। आयु। उ०—(क) होय न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु।—तुलसी। (ख) तुलसीदास मोको बड़ो सोचु है तू जनम कवन विधि भरिहै।—तुलसी।

मुहा०—जनम गँवाना = व्यर्थ जनम या समय नष्ट करना। जनम बिगड़ना = धर्म्म नष्ट होना।

जनमघूँटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम + घूँटी] वह घूँटी जो बच्चों को जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक दी जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूँटी में पड़ना = जन्म से ही (किसी बात की) आदत पड़ना। (किसी बात का) इतना अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न छूट सके। जैसे, झूठ बोलना तो इनकी जनमघूँटी में पड़ा है।

जनमदिन-संज्ञा पुं० दे० "जन्मदिन"।

जनम-धरती।-संज्ञा स्त्री० दे० "जन्मभूमि"।

जनमना-क्रि० अ० [सं० जन्म] (१) पैदा होना। उत्पन्न होना। जन्म लेना। (२) चौसर आदि खेलों में किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार खेले जाने के योग्य होना।

जनमपत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम + पत्ती] चाय की वह छोटी पत्ती या फुनगी जो पहले पहल निकलती है। (चाय-कुलियों की भाषा)।

जनमपत्री-संज्ञा स्त्री० दे० "जन्मपत्री"।

जनमरक-संज्ञा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत से लोग मर जाँय। महामारी।

जनमर्य्यादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसँघाती।॰-संज्ञा पुं० [हिं० जन्म + संघाती] (१) वह जिसका साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र। (२) वह जिसका साथ जन्म भर रहे

जनमाना-क्रि० स० [हिं० जनम] (१) जनमने का काम कराना। प्रसव कराना। (२) दे० "जनमना"।

जनमेजय-संज्ञा पुं० दे० "जन्मेजय"।

जनयिता-संज्ञा पुं० [सं० जनयितृ] [स्त्री० जनयित्री] जन्मदाता। पिता। बाप।

जनयित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म देनेवाली। माता। मा। उ०—सीतलता, सरलता मइत्री। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री।

जनरल-संज्ञा पुं० [अं०] फ़ौजों का एक बड़ा अफ़सर जिसके अधिकार में कई रेजिमेंटें होती हैं। अंग्रेजी सेना का सेनापति या सेना-नायक।

वि० साधारण। आम। जैसे, इंस्पेक्टर-जनरल।

जनरव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किंवदंती। जनश्रुति। अफ़वाह। (२) लोकनिंदा। बदनामी। (३) बहुत से लोगों का कोलाहल। शोर।

जनलोक-संज्ञा पुं० दे० "जन (६)।"

जन्मकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] पिता । जन्मदाता ।
जन्मग्रहण–संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति ।
जन्मतिथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म की तिथि । जन्मदिन । (२) वर्षगांठ ।
जन्मतुआ–वि० [हिं० जन्म + तुआ (प्रत्य०)] [स्त्री० जन्मतुई] थोड़े दिनों का पैदा हुआ । नवोत्पन्न । दुधमुहाँ ।
जन्मदिन–संज्ञा पुं० [सं०] वह दिन जिसमें किसी का जन्म हुआ हो । जन्म का दिन । वर्षगांठ । जैसे, आज महाराज का जन्मदिन है ।
जन्मनक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] जन्म समय का नक्षत्र ।
विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्म-नक्षत्र में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत न बनवानी चाहिए, उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए ।
जन्मना–क्रि० अ० [सं० जन्म + ना (प्रत्य०)] (१) जन्म लेना । जन्म ग्रहण करना । पैदा होना । (२) आविर्भूत होना । अस्तित्व में आना ।
जन्मप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष में जन्म लग्न का स्वामी । (२) फलित ज्योतिष में जन्म राशि का स्वामी ।
जन्मपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंडली में जन्म राशि का मालिक । (२) जन्म लग्न का स्वामी ।
जन्मपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मपत्री । (२) जन्म का विवरण । जीवनचरित्र । (३) किसी चीज का आदि से अंत तक विस्तृत विवरण ।
जन्मपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री ।
जन्मपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्रा जिसमें किसी की उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि दिए हों ।
जन्मप्रतिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता । मा । (२) जन्म होने का स्थान ।
जन्मभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म समय का लग्न । (२) जन्म समय का नक्षत्र । (३) जन्म की राशि । (४) जन्म नक्षत्र के सजातीय नक्षत्र आदि ।
जन्मभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्मस्थान । जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । (२) वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।
जन्मभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।
जन्मराशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमें किसी के उत्पन्न होने के समय चंद्रमा उदय हो ।
जन्मवर्त्म–संज्ञा पुं० [सं०] योनि । भग ।
जन्मविधवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो बचपन में विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका संपर्क न हुआ हो । अक्षतयोनि ।
जन्मस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्मभूमि । (२) माता का गर्भ । (३) कुंडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।
जन्मांतर–संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा जन्म ।
जन्मांध–वि० [सं०] जन्म का अंधा ।
जन्मा–संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला । जैसे, द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।
विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार समासांत में होता है ।
वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।
जन्माधिप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम । (२) जन्मराशि का स्वामी । (३) जन्म लग्न का स्वामी ।
जन्माना–क्रि० स० [हिं० जन्मना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।
जन्माष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों की कृष्णाष्टमी, जिस दिन आधी रात के समय भगवान श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू व्रत तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।
विशेष—विष्णु पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चांद्रमास और गौण चांद्रमास का भेद मालूम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में होती है और किसी वर्ष सौर भाद्र मास में होती है ।
जन्मास्पद–संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।
जन्मी–संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।
वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।
जन्मेजय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम जो बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था और एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था । वैशंपायन ने इसे महाभारत सुनाया था । (३) एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।
जन्मेश–संज्ञा पुं० [सं०] जन्म राशि का स्वामी ।
जन्मोत्सव–संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्ट चिरजीवी और कुल-देवता आदि का पूजन ।
जन्य–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जन्या] (१) साधारण मनुष्य । जनसाधारण । (२) किंवदंती । अफवाह । (३) राष्ट्र । किसी एक देश के वासी । (४) लड़ाई । युद्ध । (५) हाट । बाजार । (६) निंदा । परिवाद । (७) वर । दूलह । (८) वर के संबंधी । वर पक्ष के लोग । (९) बराती । (१०) जामाता । दामाद ।

उ०—चलत न काहुहि कियो जनाव। हरि प्यारी सों वाढ्यो भाव। रास रसिक गुण गाइ हो।—सूर।
जनावर†—संज्ञा पुं० दे० "जानवर"।
जनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेड़िया। (२) मनुष्यभक्षक। वह जो आदमियों को खाता हो। (३) आदमियों को खाने का काम।
जनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मशाला या सराय आदि जहाँ यात्री ठहरते हों। (२) वह मकान या मंडप आदि जो किसी विशेष कार्य्य या समय के लिये बनाया जाय। (३) साधारण घर। मकान।
जनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। (२) जिससे कोई उत्पन्न हो। नारी। स्त्री। (३) माता। (४) जनी नामक गंधद्रव्य। (५) पुत्र-वधू। पतोहू। (६) भार्य्या। पत्नी। (७) जतुका। (८) जन्मभूमि।
*†अव्य० मत। नहीं। न। (निषेधार्थक)
जनिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] पहेली। मुअम्मा। बुझौवल।
जनित—वि० [सं०] (१) उत्पन्न। जन्मा हुआ। जन्य। उपजा हुआ। (२) उत्पन्न किया हुआ।
जनिता—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ] पैदा करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला। पिता।
जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मस्थान। जन्मभूमि।
जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली। माता। मा।
जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़।
जनियाँ*—संज्ञा स्त्री० [सं० जानि] प्रियतमा। प्राणप्यारी। प्रिया। प्रेयसी।
जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] (१) दासी। सेविका। अनुचरी। (२) स्त्री। (३) उत्पन्न करनेवाली। माता। (४) जन्माई हुई। कन्या। लड़की। पुत्री।
वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई। पैदा की हुई। जनमाई हुई।
जनीपर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।
जनु—क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो।
संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म। उत्पत्ति।
जनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।
जनेऊ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ वा जन्म] (१) यज्ञोपवीत। ब्रह्मसूत्र।
मुहा०—जनेऊ का हाथ = पटेबाजी वा तलवार का एक हाथ जिसमें प्रतिद्वंदी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है जैसे जनेऊ पड़ा रहता है।
(२) यज्ञोपवीत संस्कार।
जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + एत (प्रत्य०)] बरयात्रा। बरात। उ०—बीच बीच वर वास करि, मग लोगन सुख देत। अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत।—तुलसी।
जनेता—संज्ञा पुं०— [सं० जनयिता] पिता। बाप। (डिं०)
जनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० जुवार] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़ बहुत बड़े होते हैं। इसमें बालें भी बहुत लंबी आती हैं।
जनेव—संज्ञा पुं० दे० "जनेऊ"।
जनेवा—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] (१) लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी हुई लकीर या धारी। (२) एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं।
जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरेश। भूपति।
जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हल्दी। (२) चमेली का पेड़। (३) पपड़ी। पर्पटी। (४) वृद्धि नाम की ओषधि।
जनैया—वि० [हिं० जनना + ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला। जानकार। उ०—(क) बदले को बदलो लै जाहु। उनकी एक हमारी दोइ तुम बड़े जनैया आहु।—सूर। (ख) तृण के समान धन धाम राज त्याग करि पाल्यो पितु वचन जो जानत जनैया हैं।—पद्माकर। (ग) जो आयसु अब होइ स्वामिनी ल्यावहुँ ताहि लेवाई। योगी बाबा बड़ो जनैया लखें कुँवर सुखदाई।—रघुराज।
जनो†—संज्ञा पुं० दे० "जनेऊ"।
क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। गोया।
जन्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ में से निकल कर जीवन धारण करने की क्रिया। उत्पत्ति। पैदाइश।
यौ०—जन्मांध। जन्माष्टमी। जन्मभूमि। जन्मपत्री। जन्मरोगी। जन्मदिन। जन्मकुंडली। जन्ममरण आदि।
पर्य्या०—जनु। जन। जनि। उद्भव। जनी। प्रभव। भाव। भव। संभव। जनू। प्रजनन। जाति।
क्रि० प्र०—देना।—धारना।—लेना।
मुहा०—जन्म लेना = उत्पन्न होना। पैदा होना।
(२) अस्तित्व प्राप्त करने का काम। आविर्भाव। जैसे, इस वर्ष कई नए पत्रों ने जन्म लिया है। (३) जीवन। जिंदगी।
मुहा०—जन्म बिगड़ना = बेधर्म होना। धर्म नष्ट होना। जन्म जन्म = सदा। नित्य। जन्म में थूकना = घृणापूर्वक धिक्कारना। जन्म हारना = (१) व्यर्थ जन्म खोना। (२) दूसरे का दास हो कर रहना।
(४) फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न जिसमें कुंडलीवाले का जन्म हुआ हो।
जन्मअष्टमी—संज्ञा स्त्री० दे० "जन्माष्टमी"।
जन्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इसीसे विष्णु को जन्मकील कहते हैं।
जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति का पता चले।

मुहा०—जब जब = जब कभी। जिस जिस समय। उ०—जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़ैं असुर अधम अभिमानी। तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी। जब तब = कभी कभी। जैसे, जब तब वे यहाँ आजाया करते हैं। जब होता है तब = प्रायः। बराबर। जैसे, जब होता है तब तुम मार दिया करते हो। जब देखो तब = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे, जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो।

जबड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जंभ] मुहँ में दोनों ओर ऊपर नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें डाढ़ें जड़ी रहती हैं। कल्ला।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुहँ खोलना। मुँह फाड़ना।

यौ०—जबड़ातोड़ = जबरदस्त। बलवान। मुँहतोड़।

जबदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो रुहेलखंड में पैदा होता है।

जबर—वि० [फा० जबर] (१) बलवान्। बली। ताक़तवर। (२) दृढ़। मजबूत।

जबरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जबर] अन्याययुक्त अत्याचार। सख्ती। ज्यादती।

जबरजद्द—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का पन्ना जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है।

जबरदस्त—वि० [फा०] [संज्ञा जबरदस्ती] (१) बलवान्। बली। शक्तिवाला। (२) दृढ़। मजबूत। पक्का।

जबरदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] अत्याचार। सीनाजोरी। प्रबलता। ज़ियादती। अन्याय।

क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डाल कर। इच्छा के विरुद्ध।

जबरन्—क्रि० वि० [अ० जब्रन] बलात्। जबरदस्ती। बलपूर्वक।

जबरा—वि० [हिं० जबर] बलवान्। बली। प्रबल। जबरदस्त। जैसे, जबरा मारे, रोने न दे।

संज्ञा पुं० [हिं० जबर = दृढ़] चौड़े मुँह का एक प्रकार का कुठला या अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

संज्ञा पुं० [अ० ज़ेबरा] घोड़े और गदहे के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं। यह कंधे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छरहरे पर मजबूत बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और दुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकन्ना, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी कठिनता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवारी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रिका के जंगलों और पहाड़ों में इसके झुंड के झुंड पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की आहट पाकर तुरंत भाग जाता है। इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है।

ज़बह—संज्ञा पुं० [अ०] गला काट कर प्राण लेने की क्रिया। हिंसा।

मुहा०—ज़बह करना = बहुत कष्ट देना। अत्यंत दुःख देना।

जबहा—संज्ञा पुं० [हिं० जीव] जीवट। साहस। हिम्मत। जैसे, उसने बड़े जबहे का काम किया।

ज़बाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "ज़बान"।

ज़बाँदराज—वि० दे० "ज़बानदराज"।

ज़बाँदराजी—संज्ञा स्त्री० दे० "ज़बानदराजी"।

ज़बान—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० ज़बानी] (१) जीभ। जिह्वा।

यौ०—ज़बानदराज। ज़बानबंदी।

मुहा०—ज़बान खींचना = बहुत अनुचित या धृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना। ज़बान खुलना = मुँह से बात निकलना। ज़बान खोलना = मुँह से बात निकालना। बोलना। ज़बान चलना = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। (३) खाया जाना। मुँह चलना। ज़बान चलाना = (१) बोलना, विशेषतः जल्दी जल्दी बोलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकालना। ज़बान चाटना = दे० "ओठ चाटना"। ज़बान टूटना = (बालक का) स्पष्ट उच्चारण आरंभ करना। † ज़बान डालना = (१) माँगना। याचना करना। (२) पूछना। प्रश्न करना। ज़बान थामना या पकड़ना = बोलने न देना। कहने से रोकना। ज़बान पर आना = कहा जाना। मुँह से निकलना। ज़बान पर रखना = (१) किसी चीज़ को थोड़ी मात्रा में खाकर उसका स्वाद देखना। चखना। (२) स्मरण रखना। याद रखना। ज़बान पर लाना = मुँह से कहना। बोलना। ज़बान पर होना = हर दम याद रहना। स्मरण रहना। ज़बान बंद करना = (१) चुप होना। (२) बोलने से रोकना। (३) विवाद में हराना। ज़बान बंद होना = (१) मुँह से शब्द न निकलना। (२) विवाद में हार जाना। निग्रह स्थान में आना। ज़बान बिगड़ना = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना। (२) मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज़ अच्छी न लगे। (३) ज़बान चटोरी होना। ज़बान में लगाम न होना = अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना। सोच समझ कर बोलने के अयोग्य होना। ज़बान रोकना = (१) ज़बान पकड़ना। (२) चुप करना। ज़बान सँभालना = मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना। सोच समझ कर बोलना। ज़बान सीना = दे० "मुँह सीना"। ज़बान से निकलना = उच्चारण होना। बोला जाना। ज़बान से निकालना = उच्चारण करना। बोलना। कहना। ज़बान हिलाना = बोलने का प्रयत्न करना। मुँह से शब्द निकालना। दबी ज़बान से बोलना या कहना = कम जोर होकर बोलना। अस्पष्ट रूप से बोलना।

(११) पुत्र । बेटा । (१२) पिता । (१३) महादेव । (१४) देह । शरीर । (१५) जन्म । (१६) जाति ।

वि० (१) जन संबंधी । (२) किसी जाति, देश, वंश वा राष्ट्र से संबंध रखनेवाला । (३) देशिक । राष्ट्रीय । जातीय । (४) जो उत्पन्न हुआ हो । उद्भूत ।

जन्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वधू की सहेली । (२) वधू । (३) माता की सखी । (४) प्रीति । स्नेह ।

जन्यु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । (२) ब्रह्मा । विधाता । (३) प्राणी । जीव । (४) जन्म । उत्पत्ति । (५) हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम ।

जप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंत्र वा वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना । (२) पूजा वा संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना । पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक । कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच जिह्वा जप नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं । ऐसे लोगों का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में, और सहस्रगुना फल मानस जप में होता है । मन ही मन मंत्र का अर्थ मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और ओंठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है । जिह्वा और ओंठ को हिला कर मंत्रों के अर्थ का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है । जिह्वा जप भी उपांशु ही के अंतर्गत माना जाता है, भेद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है पर ओंठ में गति नहीं होती, और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है । वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है । जप करने में मंत्र की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इस लिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है ।

यौ०—जपमाला । जपयज्ञ । जपस्थान ।

(३) जपनेवाला । जैसे, करणजप ।

जपजी–संज्ञा पुं० [हिं० जप] सिक्खों का एक पवित्र धर्मग्रंथ, जिसका नित्य पाठ करना वे अपना मुख्य धर्म समझते हैं ।

जप तप–संज्ञा पुं० [हिं० जप + तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि । पूजा पाठ ।

जपता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जप करने का काम । (२) जप करने का भाव ।

जपन–संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम । जप ।

जपना–क्रि० स० [सं० जपन] (१) किसी वाक्य या वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना । उ०—राम राम के जपे ते जाय जिय की जरनि ।—तुलसी । (२) किसी मंत्र का संध्या, यज्ञ वा पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना । (३) खा जाना । जल्दी जल्दी निगल जाना । (बाजारू)

जपनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जपना] (१) माला । (२) गोमुखी । वह थैली जिसमें माला रख कर जप किया जाता है । गुप्ती ।

जपनीय–वि० [सं०] जप करने योग्य । जो जपने योग्य हो ।

जपमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं । यह माला संप्रदायानुसार रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्र-जीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनकों की होती है । इनमें प्रायः एक सौ आठ, चौवन या अट्ठाइस दाने होते हैं और बीच में जहाँ गाँठ होती है, एक सुमेरु होता है ।

विशेष—हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं ।

जपयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] जप । इसके तीन भेद हैं—वाचिक, उपांशु, और मानसिक । दे० "जप (२)" ।

जपहोम–संज्ञा पुं० [सं०] जप ।

जपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा । अड़हुल ।

जपाना†–क्रि० स० [हिं० जप वा जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप । जप कराना ।

जपी–संज्ञा पुं० [हिं० जप + ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला । वह जो जप करता हो ।

जप्त–संज्ञा पुं० दे० "जब्त" ।

जप्तव्य–वि० [सं०] जो जपने योग्य हो । जपनीय ।

जप्ती–संज्ञा स्त्री० दे० "जब्ती" ।

जप्य–वि० [सं०] जपने योग्य ।

संज्ञा पुं० मंत्र का जप ।

जफ़ा–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार । सख़्ती ।

जफ़ाकश–वि० [फ़ा०] (१) सहिष्णु । सहनशील । (२) मेहनती । परिश्रमी ।

जफ़ीर–संज्ञा स्त्री० दे० "जफ़ील" ।

जफ़ीरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की कपास जो मिश्र देश में होती है ।

जफ़ील–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़फ़ीर] (१) सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कबूतरबाज कबूतर उड़ाने के समय मुँह में दो उँगलियाँ रख कर बजाते हैं । (२) वह जिससे सीटी बजाई जाय । सीटी ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—देना ।

जफ़ीलना†–क्रि० अ० [हिं० जफ़ील] सीटी बजाना । सीटी देना ।

जब–क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० जाव, जव] जिस समय । जिस वक्त । उ०—जब तें राम ब्याहि घर आये । नित नव मंगल मोद बधाये ।—तुलसी ।

कर कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैयार किया होगा, उसका चरु स्वयं खा लिया और अपना चरु उसे खिला दिया। जब दोनों गर्भवती हुईं तब ऋचीक ने अपनी स्त्री के लक्षण देख कर समझ लिया कि चरु बदल गया है। ऋचीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से सिद्ध पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और क्षात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैयार किया था; पर तुम लोगों ने चरु बदल लिया। इस पर सत्यवती ने दुखी हो कर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिसमें उसके गर्भ से उग्र क्षत्रिय न उत्पन्न हो, और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य्य ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो। तदनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ। इसी लिये जमदग्नि में भी बहुत से क्षत्रियोचित गुण थे। जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें रुमन्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। ऋचीक के चरु के प्रभाव से उनमें से परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे। जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हैहय के राजा कार्त्तवीर्य्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे। इसपर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट डाले। जब कार्त्तवीर्य्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई तब उन लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला।

जमघर—संज्ञा पु० [हिं० जमदाढ़] (१) जमदाढ़ नामक हथियार। (२) एक प्रकार का बादामी कागज़।

जमन—संज्ञा पु० दे० "यवन"।

जमना—क्रि० अ० [सं० यमन = जकड़ना। मि० अ० जमा] (१) किसी द्रव पदार्थ का, ठंढक के कारण, समय पाकर अथवा और किसी प्रकार गाढ़ा होना। किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना। जैसे, पानी से बरफ़ जमना, दूध से दही जमना। (२) किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना। अच्छी तरह स्थित होना। जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी पर आसन जमना, बरतन पर मैल जमना, सिर पर पगड़ी या टोपी जमना।

मुहा०—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना। नज़र का बहुत देर तक किसी चीज़ पर ठहरना। मन में बात जमना = किसी बात का हृदय पर भली भाँति अंकित होना। किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना। रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना। पूरा अधिकार होना।

(३) एकत्र होना। इकट्ठा होना। जमा होना। जैसे, भीड़ जमना, तलछट जमना। (४) अच्छा प्रहार होना। खूब चोट पड़ना। जैसे, लाठी जमना, थप्पड़ जमना। (५) हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना। जैसे, लिखने में हाथ जमना। (६) बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना। बहुत से आदमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सब पर उसका पूरा प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। (७) सर्व साधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, दूकान जमना। (८) घोड़े का बहुत ठुमक ठुमक कर चलना।

क्रि० अ० [सं० जन्म + ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पौधा जमना, बाल जमना।

संज्ञा पु० [हिं० जमना = उत्पन्न होना] वह घास जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों में उगती है।

†संज्ञा स्त्री० दे० "यमुना"।

जमनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिका] (१) जवनिका। परदा। (२) काई। उ०—हृदय जमनिका बहु बिधि लागी।—तुलसी।

जमनौता—संज्ञा पु० [अ० जमानत + औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में ज़मानत करनेवाले को दे।

विशेष—मुसलमानी राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५) प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनौती†—संज्ञा स्त्री० दे० "जमनौता"।

जमरूद—संज्ञा पु० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कूआँ बनाने में भगाड़ में रक्खा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमा—वि० [अ०] (१) जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल = सब मिला कर। कुल। सब। जैसे, वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर घर से चले थे।

(२) जो अमानत के तौर पर या किसी खाते में रक्खा गया हो। जैसे, उनका सौ रुपया बंक में जमा है, तुम्हारे चार थान हमारे यहाँ जमा हैं।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मूल धन। पूँजी। (२) धन। रुपया पैसा। जैसे, उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजथा।

मुहा०—जमा मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेईमानी से किसी का माल हज़म करना।

इस प्रकार बोलना जिसमें सुननेवाले को उस बात के संबंध में संदेह रह जाय। बदज़बानी = अनुचित और अशिष्ट बात। बर.ज़बान = जो बहुत अच्छी तरह याद हो। कंठस्थ। उपस्थित। बेज़बान = जो अधिक न बोलता हो। बहुत सीधा। (२) .ज़बान से निकला हुआ शब्द। बात। बोल। जैसे, मरद की एक .ज़बान होती है।

मुहा०—.ज़बान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना।

(३) प्रतिज्ञा। वादा। क़ौल।

मुहा०—.ज़बान देना या हारना = प्रतिज्ञा करना। वचन देना। वादा करना।

(४) भाषा। बोल चाल।

ज़बानदराज–वि० [फ़ा०] [संज्ञा ज़बानदराज़ी] (१) जो बहुत सी न कहने योग्य और अनुचित बातें कहे। बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला। (२) बढ़ बढ़ कर बातें करनेवाला। शेखी या डींग हाँकनेवाला।

ज़बानदराज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की क्रिया या भाव। धृष्टता। ढिठाई। गुस्ताखी।

ज़बानबंदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी घटना आदि के संबंध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय। लिखा जानेवाला इज़हार। (२) मौन। चुप्पी।

ज़बानी–वि० [हिं० ज़बान] जो केवल .ज़बान से कहा जाय, (पर कार्य्य अथवा और किसी रूप में परिणत न किया जाय)। मौखिक। जैसे, .ज़बानी जमा-खर्च। .ज़बानी सँदेसा।

जबाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्य काम जाबाल ऋषि की माता का नाम जो एक दासी थी। इसकी कथा छांदोग्य उपनिषद में है।

विशेष—दे० "जाबाल"।

ज़बून–वि० [तु०] बुरा। खराब। निकम्मा। निकृष्ट।

ज़ब्त–संज्ञा पुं० [अ०] (१) अधिकारी या राज्य द्वारा दंड स्वरूप किसी अपराधी की संपत्ति का हरण। किसी अपराधी को दंड देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। (२) अपने अधिकार में आई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी अधिकार से ले लेना।

ज़ब्ती–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ब्त] ज़ब्त।

मुहा०—ज़ब्ती में आना = ज़ब्त हो जाना।

जब्भा†–संज्ञा पुं० दे० "जबहा"।

जब्र–संज्ञा पुं० [अ०] कठोर व्यवहार। ज़्यादती। सख्ती।

जब्रन–क्रि० वि० [अ०] बलात्। जबरदस्ती से। ज़्यादती से। बलपूर्वक।

जभन–संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। स्त्री-प्रसंग।

जम–संज्ञा पुं० दे० "यम"।

जमई–वि० [फ़ा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। अथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिंस के रूप में नहीं बल्कि नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक–संज्ञा पुं० दे० "यमक"

जमकना†–क्रि० अ० दे० "चमकना"।

जमकातर†*–संज्ञा पुं० [सं० यम + हिं० कातर] भँवर। संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्त्तरी] यम का छूरा या खाँड़ा।

जमकाना–क्रि० स० [हिं० जमकना] जमकना का सकर्मक रूप।

जमघंट–संज्ञा पुं० दे० "यमघंट"।

जमघट–संज्ञा पुं० [हिं० जमना + घट] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठसाठस भरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। ठट। बहुत से मनुष्यों की भीड़। जमावड़ा।

क्रि० प्र०—लगना।

जमघटा†–संज्ञा पुं० दे० "जमघट"।

जमघट्ट†–संज्ञा पुं० दे० "जमघट"।

जमज–वि० दे० "यमज"।

जमजोहरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो जाड़े के दिनों में उत्तर-पश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और गरमी में फ़ारस और तुर्किस्तान को चली जाती है। यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है और ऋतु परिवर्त्तन के समय रंग बदलती है।

जमडाढ़–संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दाढ़] कटारी की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पैनी और आगे की ओर झुकी हुई होती है। इसे शत्रु के शरीर में भोंकते हैं। जमधर।

जमदग्नि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है। ये भृगुवंशी ऋचीक के पुत्र थे। वेदों में इनके बहुत से मंत्र मिलते हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये भी वशिष्ठ के विपक्षी थे। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेध यज्ञ में ये अध्वर्यु हुए थे।

विशेष—जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में आया है। इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि ऋचीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो राजा गाधि की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये भिन्न गुणोंवाले दो चरु तैय्यार किए थे। दोनों चरु अपनी स्त्री सत्यवती को देकर उन्हों ने बतला दिया था कि ऋतु-स्नान के उपरांत यह चरु तुम खा लेना और दूसरा चरु अपनी माता को खिला देना। सत्यवती ने दोनों चरु अपनी माता को देकर उनके संबंध में सब बातें बतला दीं। उसकी माता ने यह समझ

जाति का है और समुद्र से ३००० फुट की ऊँचाई तक पानी भूमि में होता है। यह पौधा दूसरे वर्ष फलने लगता है। इसका फल छोटी इलायची के बराबर होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है। गरी में तेल का अंश बहुत होता है और उसे खाने से बहुत दस्त आते हैं। गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है और जिसके लगने से बदन पर फफोला पड़ जाता है। तेल गाढ़ा और साफ़ होता है और औषध के काम में आता है। इसकी खली चाह के खेत की मिट्टी में मिलाने से पौधों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते। इसके पेड़ कहवे के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं। जयपाल। दंतीफल।

जमाव–संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] (१) जमने का भाव। (२) जमाने का भाव।

जमावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] जमने का भाव।

जमावड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० जमना = एकत्र होना] बहुत से लोगों का समूह। भीड़।

जमींकंद–संज्ञा पुं० [फा० ज़मीन + कंद] सूरन। ओल।

जमींदार–संज्ञा पुं० [फा०] ज़मीन का मालिक। भूमि का स्वामी।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी छोटे प्रांत, ज़िले या कुछ गाँवों का भूमिकर उगाहने और सरकारी ख़ज़ाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था वह जमींदार कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दसवाँ भाग पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था। पर जब अंत में मुसलमान शासक कमज़ोर हो गए तब ये जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र रूप से प्रायः मालिक बन गए। अंगरेज़ी राज्य में जमींदार लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे मालिक समझे जाते हैं और ज़मींदारी पैतृक होती है। वे सरकार को कुछ निश्चित वार्षिक कर देते हैं और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भाँति जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते हैं। काश्तकारों आदि को, कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी ज़मीन स्वयं ही जोतने बोने आदि के लिये देते और उनसे लगान आदि लेते हैं।

जमींदारा†–संज्ञा पुं० दे० "जमींदारी"।

जमींदारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) जमींदार की वह ज़मीन जिसका वह मालिक हो। (२) जमींदार होने की दशा या अवस्था। (३) जमींदार का हक़ या स्वत्व।

ज़मींदोज़–वि० [फा०] जो गिरा, तोड़ या ढहा कर ज़मीन के बराबर कर दिया गया हो।

ज़मीन–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) पृथ्वी। (मह)। जैसे, ज़मीन बराबर सूरज के चारों तरफ़ घूमती है। (२) पृथ्वी का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते हैं। भूमि। धरती।

मुहा०—ज़मीन आसमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम या उद्योग करना। बहुत बड़े बड़े उपाय करना। ज़मीन आसमान का फ़रक = बहुत अधिक अंतर। बहुत बड़ा फ़रक। आकाश पाताल का अंतर। ज़मीन आसमान के *कुलाबे मिलाना = बहुत डींग हाँकना। बहुत शेखी करना।* ज़मीन का पैरों तले से निकल जाना = सन्नाटे में आ जाना। होश हवास जाता रहना। ज़मीन चूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें ज़मीन के साथ मुँह लग जाय। जैसे, ज़रा से धक्के से वह ज़मीन चूमने लगा। ज़मीन देखना = (१) *गिर पड़ना। पटका जाना। (२) नीचा देखना। ज़मीन दिखाना* = (१) गिराना। पटकना। जैसे, एक पहलवान का दूसरे पहलवान को ज़मीन दिखाना। (२) नीचा दिखाना। ज़मीन पकड़ना = जम कर बैठना। ज़मीन पर चढ़ना = (१) घोड़े का तेज दौड़ने का अभ्यस्त होना। (२) किसी कार्य का *अभ्यस्त होना। ज़मीन पर पैर न रखना* = बहुत इतराना। बहुत अभिमान करना। ज़मीन पर पैर न पड़ना = बहुत अभिमान होना।

(३) सतह, विशेष कर कपड़े, कागज़ या तख्ते आदि की वह सतह जिस पर किसी तरह के बेल बूटे आदि बने हों। जैसे, काली ज़मीनपर हरी बूटी की कोई छींट मिले तो लेते आना। (४) वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में आधार रूप से किया जाय। जैसे, अतर खींचने में चंदन की ज़मीन, फुलेल में तिली के तेल की ज़मीन। (५) किसी कार्य्य के लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली। पेशबंदी। भूमिका। आयोजन।

मुहा०—ज़मीन बाँधना = किसी कार्य्य के लिये पहले से प्रणाली *निश्चित करना।*

ज़मीमा–संज्ञा पुं० [अ०] क्रोड़पत्र। पूरक। अतिरिक्तपत्र।

जमुआ†–संज्ञा पुं० दे० "जामुन"।

जमुआर†–संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ + आर (प्रत्य०)] जामुन का जंगल।

जमुकना†–क्रि० अ० [?] पास पास होना। सटना

उ०—जब जमुक्यो कछु पृथु तनय, तब तरंग तहँ छोड़ि। *भयो पुरंदर अलख उर, सक्यो न सन्मुख दौड़ि।—रघुराज।*

जमुना–संज्ञा स्त्री० दे० "यमुना"।

जमुनियाँ–संज्ञा पुं० [हिं० जामुन] जामुन का रंग। जामुनी।

वि० जामुन के रंग का। जामुनी रंग का।

जमुरका†–संज्ञा पुं० [फा० जंबूर] कुलावा।

जमुरी–संज्ञा स्त्री० [फा० ज़बूर] (१) चिमटी के आकार का नालबंदों का एक औज़ार जिससे वे घोड़ों का नाखून काटते हैं। †(२) चिमटी। (३) सँड़सी।

(२) भूमि-कर। मालगुजारी। लगान।
यौ०—जमाबंदी।
(३) संकलन। जोड़। (गणित) (४) बही आदि का वह भाग या कोष्ठक जिसमें आए हुए धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है।
यौ०—जमाखर्च।

जमाई—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दामाद। जँवाई। जामाता।
संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] (१) जमने की क्रिया। (२) जमने का भाव।
संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] (१) जमाने की क्रिया। (२) जमाने का भाव। (३) जमाने की मजदूरी।

जमाखर्च—संज्ञा पुं० [फ़ा० जमा + खर्च] आय और व्यय।

जमाजथा—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमा + गथ = पूँजी] धन-संपत्ति। नगदी और माल।

जमात—संज्ञा स्त्री० [अ० जमाअत] (१) बहुत से मनुष्यों का समूह। आदमियों का गरोह या जत्था। जैसे, साधुओं की जमात। (२) कक्षा। श्रेणी। दरजा। जैसे, वह लड़का पाँचवीं जमात में पढ़ता है।

जमादार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा जमादारी] (१) कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान। वह जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों। (२) पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और साधारण सिपाही होते हैं। हेड कांसटेबल। (३) कोई सिपाही या पहरेदार।

जमादारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) जमादार का पद। (२) जमादार का काम।

ज़मानत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने, किसी कर्ज़दार के कर्ज़ अदा करने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये अपने ऊपर ले। वह जिम्मेदारी जो ज़बानी, कोई कागज़ लिख कर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली जाती है। ज़ामिनी। जैसे, (क) वे सौ रुपए की ज़मानत पर छूटे हैं। (ख) उन्होंने हमारी ज़मानत पर उनका सब माल छोड़ दिया।
क्रि० प्र०—करना।—देना।
यौ०—ज़मानतनामा।

ज़मानतनामा—संज्ञा पुं० [अ० ज़मानत + फ़ा० नामा] वह कागज़ जो ज़मानत करनेवाला ज़मानत के प्रमाण-स्वरूप लिख देता है।

ज़मानती—संज्ञा पुं० [अ० ज़मानत + ई (प्रत्य०)] ज़मानत करनेवाला। वह जो ज़मानत करे। ज़ामिन। जिम्मेदार। (क०)

जमाना—क्रि० स० [हिं० जमना का स० रूप] (१) किसी द्रव पदार्थ को ठंढा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा करना। किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना। जैसे, चाशनी से बरफी जमाना। (२) किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़तापूर्वक बैठाना। अच्छी तरह स्थित करना। जैसे, जमीन पर पैर जमाना।
मुहा०—दृष्टि जमाना = दृष्टि को स्थिर करके किसी ओर लगाना। (मन में) बात जमाना = हृदय पर बात को भली भाँति अंकित करा देना। रंग जमाना = अधिकार दृढ़ करना। पूरा पूरा प्रभाव डालना।
(३) प्रहार करना। चोट लगाना। जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़ जमाना। (४) हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना। जैसे, अभी तो वे हाथ जमा रहे हैं। (५) बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक करना। जैसे, व्याख्यान जमाना, खेल जमाना, गाना जमाना (६) सर्व साधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलने योग्य बनाना। जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना। (७) घोड़े को इस प्रकार चलाना जिसमें वह ठुमक ठुमक कर पैर रक्खे।
क्रि० स० [हिं० जमना = उत्पन्न होना] उत्पन्न करना। उपजाना। जैसे, पौधा जमाना।
संज्ञा पुं० दे० "ज़माना"।

ज़माना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) समय। काल। वक़्त। (२) बहुत अधिक समय। मुद्दत। जैसे, उन्हें यहाँ आए ज़माना हुआ। (३) प्रताप या सौभाग्य का समय। एकबाल के दिन। जैसे, आजकल आप का ज़माना है। (४) दुनिया। संसार। जगत्। जैसे, सारा ज़माना उसे गाली देता है।
मुहा०—ज़माना देखना = बहुत अनुभव प्राप्त करना। तजरबा हासिल करना। जैसे, आप बुजुर्ग हैं, ज़माना देखे हुए हैं।
यौ०—ज़मानासाज़। ज़मानासाज़ी।

ज़मानासाज़—वि० [फ़ा०] जो अपने स्वार्थ के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है। अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला।

ज़मानासाज़ी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना। अपने स्वार्थ के लिये समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना।

जमाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पटवारी का एक कागज जिसमें असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें लिखी जाती हैं।

जमामार—वि० [हिं० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला।

जमालगोटा—संज्ञा पुं० [सं० जयपाल = जमाल + हिं० गोटा] एक पौधे का बीज जो अत्यंत रेचक होता है। यह पौधा आसाम की

चाहना। जय हो = आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उत्तर में देते हैं।

विशेष—आशीर्वाद के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं या महात्माओं की अभिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है। जैसे, जय काली की, रामचंद्रजी की जय। उ०—जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेव्य भुक्तिमुक्तिदायिनि भय-हरणि कालिका।—तुलसी।

यौ०—जयगोपाल। जय श्रीकृष्ण। जयराम, आदि (अभिवादन वचन)।

(२) ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रौष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष। फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और क्षत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीड़ा होती है। (३) विष्णु के एक पार्षद का नाम। पुराणों में लिखा है कि सनकादिक ने भगवान् के पास आने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई विजय को शाप दिया था। इसी से जय को संसार में तीन बार हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल का अवतार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुंभकर्ण और कंस का जन्म ग्रहण करना पड़ा था। (४) महाभारत या भारत ग्रंथ का नाम। (५) जयंती या जैत के पेड़ का नाम। (६) लाभ। (७) युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। (८) अयन। (९) वशीकरण। (१०) एक नाग का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। (११) भागवत के अनुसार दसवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। (१२) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (१३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१४) राजा संजय के एक पुत्र का नाम। (१५) उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न पुरूरवा के एक पुत्र का नाम। (१६) वह मकान जिसका दरवाजा दक्खिन की तरफ हो। (१७) सूर्य। (१८) अरणी या अग्निमंथ नाम का पेड़। (१९) इंद्र। (२०) इंद्र का पुत्र जयंत।

विशेष—पुराणों आदि में और भी बहुत से "जय" नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं।

वि० विजयी। जीतनेवाला। (समास में)

जयकंकण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कंकण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की दशा में आदरार्थ प्रदान किया जाता था।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'चौपाई' नामक छंद का एक नाम।

जयकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयखाता—संज्ञा पुं० [हिं० जय = लाभ + खाता] बनियों की एक बही जिसमें वे नित्य अपना मुनाफा या लाभ आदि लिखा करते हैं। (क्व०)

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जय + जयवंती] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जो धूलश्री, बिलावल और सोरठ के योग से बनती है। इसमें सब स्वर शुद्ध लगते हैं और यह रात को ६ दंड से १० दंड तक गाई जाती है पर वर्षा ऋतु में लोग इसे सभी समय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघराज की भार्या मानते हैं और कुछ लोग मालकोश की सहचरी भी बतलाते हैं।

जयजीव—संज्ञा पुं० [हिं० जय + जी] एक प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था। उ०—कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमंगल वचन सुनाये।—तुलसी।

जयढक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल।

जयताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। यह सात ताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है,—ताहं। तत्थरि थरिथाऽथाहं। ताहं। तत० था० तथा तथरि थरिथों ऽ।

जयति,जयत्—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक संकर राग जो गौरी और ललित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना मानते हैं। दे० "जयेत्"।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भार्या मानी जाती है।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोडी, विभास और बड़ाना के योग से बनी हुई बतलाते हैं। कितने लोग इसे पूरिया, सामंत और ललित के मेल से बनी मानते हैं। दे० "जयेती"।

जयत्कल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिला कर बनता है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्त्ति।

जयदेव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य गीतगोविंद के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव कवि जिनका जन्म आज से प्रायः आठ सौ सौ वर्ष पहले बंगाल के वर्त्तमान वीरभूम जिले के अंतर्गत केंदु बिल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये गौड़ के महाराज लक्ष्मणसेन की राजसभा में रहते थे। इनका वर्णन भक्तमाल में भी आया है।

जयद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार सिंधु-सौवीर या सौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का बहनोई था। इसने एक

जमुर्रद—संज्ञा पुं० [?] पन्ना नामक रत्न ।

जमुर्रदी—वि० [फ़ा० ज़मुर्रदीन] ज़मुर्रद के रंग का हरा । जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो ।

संज्ञा पुं० ज़मुर्रद का रंग । नीलापन लिए हुए हरा रंग ।

जमुवाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ] जामुनी । जामुन का रंग ।

जमुहाना—क्रि० अ० दे० "जम्हाना"।

जमूरक†—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंबूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े या ऊँट पर रहती है । उ०—सब के आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाये । धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निसान सुहाये ।—रघुराज ।

जमूरा—संज्ञा पुं० दे० "जमूरक" ।

जमोग†—संज्ञा पुं० [?] (१) जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया । सरेख । (२) किसी तीसरे के द्वारा किसी दूसरे की बात का समर्थन । सामने का निश्चय । तसदीक़ । (३) देहाती लेन देन की एक रीति जिसके अनुसार कोई ज़मींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता और काश्तकारों से लगान के मद्धे उसका चुकाना स्वीकार करा देता है ।

यौ०—सही जमोग ।

जमोगदार—संज्ञा पुं० [अ० जमा + सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से ज़मींदार को रुपया देता है ।

जमोगना†—क्रि० स० [अ० जमा + योग] (१) हिसाब किताब की जाँच करना । (२) ब्याज को मूल धन में जोड़ना । (३) स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सौंपना और उससे उस उत्तरदायित्व की स्वीकृति कराना । सरेखना । (४) किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना । तसदीक़ कराना ।

जमोगवाना†—क्रि० स० [हिं० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना । सरेखवाना ।

जम्मू—संज्ञा पुं० दे० "जंबू" ।

जम्हाई—संज्ञा स्त्री० दे० "जँभाई" ।

जम्हाना—क्रि० अ० दे० "जँभाना" ।

जयंत—वि० [सं०] [स्त्री० जयंती] (१) विजयी । (२) बहुरूपिया । अनेक रूप धारण करनेवाला ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रुद्र का नाम । (२) इंद्र के पुत्र उपेंद्र का नाम । (३) संगीत में ध्रुवक जाति के एक ताल का नाम । (४) स्कंद । कार्त्तिकेय । (५) धर्म के एक पुत्र का नाम । (६) अक्रूर के पिता का नाम । (७) भीमसेन का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे । (८) दशरथ के एक मंत्री का नाम । (९) एक पर्वत का नाम । जयंतिया की पहाड़ी । (१०) जैनों के अनुत्तर देवों का एक भेद । (११) फलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग जो उस समय पड़ता है जब कि चंद्रमा उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पहुँच जाता है । इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल शत्रु-पक्ष का नाश है ।

जयंतपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे निमिराज ने स्थापित किया था और जो गौतम ऋषि के आश्रम के निकट था ।

जयंतिका—संज्ञा स्त्री० दे० "जयंती" ।

जयंती—वि० स्त्री० [सं०] विजय करनेवाली । विजयिनी । (१) ध्वजा । पताका । (२) हलदी । (३) दुर्गा का एक नाम । (४) पार्वती का एक नाम । (५) किसी महात्मा की जन्म-तिथि पर होनेवाला उत्सव । वर्षगाँठ का उत्सव । (६) एक बड़ा पेड़ जिसे जैंत या जैंता भी कहते हैं । इसकी डालियाँ बहुत पतली और पत्तियाँ अगस्त की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं । फूल अरहर की तरह पीले पीले होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर बित्ते सवा बित्ते लंबी पतली फलियाँ लगती हैं । फलियों के बीज उत्तेजक और संकोचक होते हैं और दस्त की बीमारियों में औषध के रूप में काम में आते हैं । खाज का मरहम भी इनसे बनता है । पत्तियाँ फोड़े या सूजन पर बाँधी जाती हैं और गिलटियों के गलाने का काम करती हैं । जड़ पीस कर बिच्छू के काटने पर लगाई जाती है । यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं । बीज जेठ असाढ़ में बोया जाता है । इसकी एक छोटी जाति होती है जिसे चक्रभेद कहते हैं । इसके रेशे से जाल बनता है । बंगाल में इसे लोग अप्रेल, मई में बोते हैं और सितंबर अक्तूबर में काटते हैं । पौधा सन की तरह पानी में सड़ाया जाता है । पान के भीटों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है । (७) बैजंती का पौधा । (८) ज्योतिष का एक योग । जब श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के प्रथम और शेष दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े तब यह योग होता है । (९) जन्माष्टमी । (१०) जौ के छोटे पौधे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग यजमानों को मंगल-द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं । जई । (११) अरणी का वृक्ष ।

जय—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध, विवाद आदि में विपक्षियों का पराभव । विरोधियों का दमन करके स्वत्व या महत्व स्थापन । जीत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जय मनाना = विजय की कामना करना । [illegible]

जयावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंती का वृक्ष ।

जयाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरड़ी घास ।

जयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयाहा—संज्ञा स्त्री० दे० "जयावहा" ।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील । जो जीतता हो ।

जयी—वि० [सं० जयिन्] विजयी । जयशील ।

संज्ञा स्त्री० दे० "जई" ।

जयेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानु-बाहु थे ।

जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयत्-श्री के मेल से उत्पन्न होती है । यह सामंत, ललित और पूरिया अथवा टोड़ी, सहाना और विभास के योग से भी बन सकती है ।

जयेत्—संज्ञा पुं० [सं०] षाडव जाति के एक राग का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है । इसमें पंचम स्वर नहीं लगता ।

जयेत् गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है ।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य । जो जीतने योग्य हो ।

जर*—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरा । वृद्धावस्था ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश या जीर्ण होने की क्रिया । (२) जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप पुण्य कलुष राग द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का क्षय होता है ।

‡ संज्ञा पुं० [हिं० ज्वर] दे० "ज्वर" ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का समुद्री सेवार । कचरा । (लश०)

‡ संज्ञा स्त्री० दे० "जड़" ।

ज़र—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सोना । स्वर्ण ।

यौ०—ज़रबफ़्त । ज़रबाफ़ी । ज़रदोज़ । ज़रदोज़ी ।

(२) धन । दौलत । रुपया ।

जरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] (१) धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों ।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पानी से भिगोते हैं; फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढक कर ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे मारना कहते हैं । फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहने देते हैं, दूसरे वा तीसरे दिन फिर खोलते हैं । उस समय तक बीजों में से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं । फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं । ऐसे बीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं । यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है । कभी कभी धान की मुजारी भी बंद पानी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है, चौथे दिन उसे खोलते हैं । उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं । कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं भिन्न भिन्न अन्नों की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है ।

(२) दे० "जई"

जरकटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी पक्षी । उ०—जुर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यों शचान सान पार है ।—रघुराज ।

जरकस, जरकसी*—वि० [फ़ा० जरकश] जिसपर सोने के तार आदि लगे हों । उ०—(क) छोटिऐ धनुहियाँ पनहियाँ पगन छोटी छोटिऐ कछोटी कटि छोटिऐ तरकसी । लसत झँगूली झीनी दामिनी की छवि छीनी सुंदर बदन सिर पगिया जरकसी ।—तुलसी । (ख) अब झकि झाँकि झमकि झुकी उझकि झरोखे ऐन । कसे कंचुकी जरकसी लसी दमी ही मैन ।—शृं० सत० ।

जरख़ेज़—वि० [फ़ा०] उपजाऊ । जिसमें ख़ूब अन्न पैदा होता हो । उर्वरा (जमीन का विशेषण) ।

जरगह, जरगा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जर + गियाह] एक घास जिसे चौपाए बड़े स्वाद से खाते हैं । यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है । किसान इसे खेतों में कियारियाँ बना कर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं । पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है । एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है । यह दाने की तरह दी जाती है और बैल घोड़े इसके खाने से जल्दी तैयार हो जाते हैं ।

जरज—संज्ञा पुं० [देश०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है । यह दो प्रकार का होता है । एक की जड़ गाजर वा मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है ।

जरजर—वि० दे० 'जर्जर' ।

जरछार†—वि० [हिं० जरना + छार] (१) भस्मीभूत । (२) नष्ट ।

जरठ—वि० [सं०] (१) कर्कश । कठिन । (२) वृद्ध । बुड्ढा । (३) जीर्ण । पुराना । (४) पांडु । पीलापन लिए सफेद रंग का ।

संज्ञा पुं० बुढ़ापा ।

जरडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं । वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाह नाशक, रक्तशोधक और रुचिकर माना है ।

पर्य्या०—गर्मोटिका । सुनाला । जयाश्रया ।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग । (२) जीरा । (३) काला नमक । सौवर्चल । (४) कासमर्द । कसौंजा । (५) जरा । बुढ़ापा । (६) दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रारंभ होता है ।

बार जंगल में द्रौपदी को अकेली पा कर हर ले जाने का प्रयत्न किया था; उस समय भीम और अर्जुन ने इसकी बहुत दुर्दशा की थी। यह महाभारत के युद्ध में लड़ा था और अर्जुन के हाथों से मारा गया था।

जयध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालजंघा के पिता का नाम जो अवंती के राजा कार्त्तवीर्य्यार्जुन का पुत्र था। (२) जयपताका। जयंती।

जयना*†–क्रि० स० [सं० जयन] जीतना। उ०—भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।—तुलसी।

जयनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

जयपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजय पत्र। (२) वह राजाज्ञा जो अर्थी प्रत्यर्थी के बीच विवाद के निबटेरे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिस पर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो। प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर वादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और धर्म्मशास्त्र तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उस पर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमालगोटा। (२) विष्णु। (३) राजा।

जयपुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा विराट् के भाई का नाम। (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है,—ताहं। धिधिकिट ताहंऽगन थों।

जयमंगल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हाथी जिस पर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। (२) राजा के सवार होने योग्य हाथी। (३) ताल के साठ भेदों में एक। यह शृंगार और वीर रस में बजाया जाता है। यह चौताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। द्रांतकि। धिमि धिमि। थों०।

जयमल्लार–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमाल–संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] (१) वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। (२) वह माला जिसे स्वयंवर के समय कन्या अपने वरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली।—तुलसी।

जययज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात–संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश के एक राजकुमार का नाम जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलेख–संज्ञा पुं० [सं०] जयपत्र।

जयवाहिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राणी। शची।

जयशाल–संज्ञा पुं० यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहां का किला बनवाया था। अपने पिता के सब से बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्हें राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता ले कर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्हों ने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विजयलक्ष्मी। विजय। (२) ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। (३) देशकार राग से मिलती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तंभ–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्तंभ जो विजयी राजा किसी देश को विजय करने के उपरांत, विजय के स्मारकस्वरूप बनवाता है।

जया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) पार्वती का एक नाम। (३) हरी दूब। (४) अरणी नामक वृक्ष। (५) जयंती वा जैंत का पेड़। (६) हरीतकी। हड़। (७) दुर्गा की एक सहचरी का नाम। (८) पताका। ध्वजा। (९) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियां। (१०) सोलह मातृकाओं में से एक। (११) माघ-शुक्ल एकादशी। (१२) एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे। (१३) जया पुष्प। गुड़हल का फूल। अड़हुल। (१४) भांग (१५) शमी-वृक्ष। छोंकर।

जयादित्य–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्त्ता थे।

जयाद्वय–संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती और हड़।

जयानीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम। (२) राजा विराट के एक भाई का नाम।

जयापीड़–संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी आठवीं शताब्दी में हुए थे। ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे, पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़ कर भाग गए। इस पर ये प्रयाग चले गए थे जहां इन्होंने ९९९९९ घोड़े दान किए थे।

जयावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। (२) एक संकर रागिनी जो धवलश्री, बिभास और सरस्वती के योग से बनती है।

मुहा०—ज़रब देना = चोट लगाना। पीटना। उ०—दगा देत दूतन सुनौती चित्र गुप्तै देत जम को ज़रब देत पापी लेत शिव लोक।—पद्माकर।

(२) तबले मृदंग आदि पर का आघात। थाप। थाप दो तरह की होती है, एक खुली और दूसरी बंद। (३) गुणा। (गणित) (४) कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई बेल।

ज़रबफ़्त—संज्ञा पुं० [फा०] वह रेशमी कपड़ा जिसकी बुनावट में कलाबत्तू दे कर कुछ बेल बूटे बनाए जाते हैं।

ज़रबाफ़—संज्ञा पुं० [फा०] सोने के तारों से कपड़े पर बेल बूटे बनानेवाला कारीगर। ज़रदोज़।

ज़रबाफ़ी—वि० [फा०] ज़रबाफ़ के काम का। जिस पर ज़रबाफ़ का काम बना हो।

संज्ञा स्त्री० ज़रदोज़ी।

जरबीला—*†वि० [फा० ज़रब + ईला (प्रत्य०)] जो देखने में बहुत भड़कीला और सुंदर हो। उ०—(क) श्रवण मुकै सुमका अति लोल कपोल जराइ जरे जरबीले।—गुमान। (ख) आयो तहँ भावतो कहँ पायो मीर सोरह में पीठ पीछे चीन्हे चीन्हें पेति जरबीली की।—रघुराथ।

ज़रबुलंद—संज्ञा पुं० [फा०] कोंकू का एक भेद जिसके गुल बूटे जिन पर सोने या चाँदी की कलई होती है, बहुत उभड़े रहते हैं।

जरमन—संज्ञा पुं० [अं०] (१) जरमनी देश का निवासी। (२) जरमनी देश की भाषा।

वि० जरमनी देश संबंधी। जरमनी का, जैसे, जरमन माल, जरमन सिलवर।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अं०] एक सफेद और चमकीली यौगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के संयोग से बनती है। इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से पाँच भाग तक जस्ता पड़ता है। निकल की मात्रा बढ़ा देने से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है। इस धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अं०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश।

जरमुआ—†वि० [हिं० जरना + मुअना] [स्त्री० जरमुई] जल मरनेवाला। बहुत ईर्ष्या करनेवाला।

ज़रर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हानि। नुकसान। क्षति। (२) आघात। चोट।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

(३) आफ़त। मुसीबत।

जरल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और बुंदेलखंड में बहुत होती है। इसे सेवानी भी कहते हैं।

जरवारा*†—वि० [फा० ज़र + वाला] रुपए पैसेवाला। धनी। उ०—ते धन जिनकी ऊँची नजर हैं। कइक बनाय दिए जरवारे जिनकी कतहुँ न जर हैं।—देव स्वामी।

जरस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास। (लश०)।

जरांकुश—संज्ञा पुं० [सं० मरूकुश] मूँज के प्रकार की एक सुगंधित घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है। यह कई प्रकार की होती है। दक्षिण भारत में यह बहुत अधिकता से होती है। इससे एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन और सुगंधित तेल आदि बनाने में काम आता है।

जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

यौ०—जराग्रस्त।

(२) पुराणानुसार काल की कन्या का नाम। विस्रसा। (३) एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी। इसी को षष्ठी भी कहते हैं। (४) खिरनी का पेड़।

संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याध का नाम। इसी के बाण से भगवान कृष्णचंद्र देवलोक सिधारे थे।

ज़रा—वि० [अ० ज़र्रा] थोड़ा। कम। जैसे, ज़रा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी।

क्रि० वि० थोड़ा। कम। जैसे, ज़रा दौड़ो तो सही।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

जराग्रस्त—वि० [सं०] बुड्ढा। वृद्ध।

जराती—संज्ञा पुं० [हिं० जरना] वह शोरा जो चार बार उबाला गया हो।

जराद—संज्ञा पुं० [सं०] टिड्डी।

जराना†—क्रि० स० दे० "जलाना"।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जराबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो। (वैदिक)

जराबोधीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

जरासीस—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

जरायणि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा जरायुज] (१) वह झिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है। आँवल। खेड़ी। उल्व। (२) गर्भाशय। (३) योनि (४) जटायु। (५) अग्निजार या समुद्रफल नामक वृक्ष। (६) कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो आँवल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो। पिंडज।

जराव*†—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। जिसमें नगीने आदि जड़े हों। उ०—(क) बेंदी जराव लिलार दिए गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई।—सुंदरी सर्वस्व। (ख) सुंदर सूची सुगोल रची विधि कोमलता अति हीं सरसात है। त्यों हरिऔध जराव जरे खरे कंकन कंचन के दरसात हैं।—अयोध्या।

जरणद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साखू का वृक्ष । (२) सागौन का पेड़ ।

जरणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा । (२) वृद्धावस्था । बुढ़ापा । (३) स्तुति । प्रशंसा । (४) मोक्ष । मुक्ति ।

जरता बरता†–संज्ञा पुं० दे० "जलना" के अंतर्गत । "जलता बलता" ।

जरतार*–संज्ञा पुं० [फ़ा० जर + तार] सोने वा चाँदी आदि का तार । जरी । उ०—बीच जरतारन की हीरन की हार की जगमगी जोतिन की मोतिन की झालरैं ।—देव ।

जरतारा†–वि० [हिं० जरतार] [स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या रुपहले तार लगे हों । जरी के काम का ।

जरतुआ†‡–वि० [हिं० जलना] जो दूसरों को देख कर बहुत जलता या बुरा मानता हो । ईर्ष्या करनेवाला ।

जरतुश्त–संज्ञा पुं० दे० "ज़रदुश्त" ।

जरत्–वि० [सं०] [स्त्री० जरती] (१) बुड्ढा । वृद्ध । (२) पुराना । बहुत दिनों का ।

जरत्करण–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

जरत्कारु–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की मनसा नाम की कन्या से ब्याह किया था । आस्तिक मुनि इनके पुत्र थे ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी । इसका नाम मनसा भी था ।

जरद–वि० [फ़ा० ज़र्द] पीला । जर्द । पीत ।

जरदक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जरदा या पीलू नाम का पक्षी ।

जरदष्टि–वि० [सं०] (१) वृद्ध । बुड्ढा (२) दीर्घजीवी । बहुत दिनों तक जीनेवाला ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा । वृद्धावस्था । (२) दीर्घ जीवन ।

ज़रदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं । इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हलदी डाल कर उसे पानी में उबालते हैं; फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में घी डाल कर शक्कर के शर्बत में पकाते हैं । पीछे से इसमें लौंग इलायची आदि सुगंधित द्रव्य और मसाले छोड़ दिए जाते हैं । (२) एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगंधित सुरती जो प्रायः काले रंग की होती है । (३) पीले रंग का घोड़ा । (४) पीले रंग की एक प्रकार की छींट ।

संज्ञा पुं० [सं० जरदक] एक प्रकार का पक्षी जिसकी कनपटी पीली, पीठ खाकी, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होते हैं । इसे पीलू भी कहते हैं ।

जरदालू–संज्ञा पुं० [फ़ा०] खूबानी नाम का मेवा ।

विशेष—दे० "खूबानी" ।

जरदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) पीलाई । पीलापन ।

मुहा०—ज़रदी छाना = किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, खून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना ।

(२) अंडे के भीतर का वह चेप जो पीले रंग का होता है ।

जरदुश्त–संज्ञा पुं० [फ़ा० । मि० सं० जरदष्टि = दीर्घजीवी, वृद्ध] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म का प्रतिष्ठाता एक आचार्य जो ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व हुआ था । इसने सूर्य और अग्नि की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्म ग्रंथ जंद-अवस्था बनाया था । शाहनामे में लिखा है कि यह तूरानियों के हाथ से मारा गया था ।

जरदोज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा जरदोज़ी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कलाबत्तू और सलमे सितारे आदि का काम करता हो । जरदोज़ी का काम करनेवाला ।

जरदोज़ी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कलाबत्तू वा सलमे सितारे आदि से की जाती है ।

जरद्गव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुड्ढा बैल । (२) बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं । यह चंद्रमा की वीथी है ।

वि० जीर्ण । प्राचीन ।

जरद्विप–संज्ञा पुं० [सं०] जल ।

जरन–†*संज्ञा स्त्री० दे० "जलन" ।

जरनल–संज्ञा पुं० [अं०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों । सामयिक पत्र ।

संज्ञा पुं० दे० "जनरल" ।

जरना–क्रि० अ० दे० "जलना" ।

जरनि*–संज्ञा स्त्री० [हिं० जरना = जलना] (१) जलने की पीड़ा । जलन । (२) व्यथा । पीड़ा । उ०—(क) ताते हौं देत न दूखन तोहूँ । राम विरोधी उर कठोर ते प्रगट कियो है विधि मोहूँ । सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि जरनि जाय जेहि जोए । विष बारुणी बंधु कहियत विधु नातो मिटत न धोए ।—तुलसी । (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिर नाइ । देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय ।—तुलसी । (ग) सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ।—तुलसी ।

ज़रनिशाँ–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कोफ़्त का एक भेद जिसमें गुल बूटे कलई करने के पहले उभाड़े जाते हैं ।

जरनैल–संज्ञा पुं० (१) दे० "जनरल" । (२) दे० "जरनल" ।

ज़रब–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आघात । चोट ।

यौ०—ज़रब ख़फ़ीफ़ = हलकी चोट । ज़रब शदीद = भारी चोट ।

जर्राही—संज्ञा स्त्री० [अ० जर्राह + ई (प्रत्य०)] बहादुरी। वीरता। सूरमापन।

जर्राह—संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा जर्राही] चीर फाड़ का काम करनेवाला। फोड़ों आदि को चीर कर चिकित्सा करनेवाला। शस्त्र चिकित्सक।

जर्राही—संज्ञा स्त्री० [अ०] चीर फाड़ का काम। चीर फाड़ की सहायता से चिकित्सा करने का काम। शस्त्र-चिकित्सा।

जर्वर—संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक बार यज्ञ करके सांपों की रक्षा की थी।

जर्हिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। जर्तिल।

जलंग—संज्ञा पुं० [सं०] महाकाल नाम की एक लता।

जलंगम—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल।

जलंधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पौराणिक असुर का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से समुद्र में उत्पन्न हुआ था। पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए। उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जा कर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाइए। जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी डाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा। इसी लिये ब्रह्मा ने उसका नाम जलधर रखा। बड़े होने पर इसने इंद्र की अमरावती पर अधिकार कर लिया। अंत में शिव जी इंद्र की ओर से इससे लड़ने गए। उसकी स्त्री वृंदा ने (जो कालनेमि की कन्या थी) अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की। अब देवताओं ने देखा कि जलंधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अंत में जलंधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए। वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया। पूजन छोड़ते ही जलंधर के प्राण निकल गए। वृंदा क्रुद्ध होकर ब्रह्मा को शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (३) योग का एक बंध।
संज्ञा पुं० दे० "जलोदर"।

जलंबल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी। (२) अंजन।

जल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी। (२) उशीर। खस। (३) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र। (४) ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली में चौथा स्थान। (५) सुगंधबाला। नेत्रबाला।

जल-अलि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी का भँवर। (२) एक काला कीड़ा जो पानी पर तैरा करता है। इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है। इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ही ओर घूम घूम कर तैरता है। जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है। पैरावा। भौंतुआ। उ०—भरत दशा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल-अलि गति जैसी।—तुलसी।

जलई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना या कीलना] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो अँकुड़े होते हैं और जो दो तख्तों के जोड़ पर जड़ा जाता है। यह प्रायः नाव के तख्तों के जड़ने में काम आता है।

जलकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंघाड़ा। (२) कुंभी।

जलकंडु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है।

जलकंद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) केला। (२) काँदा। जल-कँदरा।

जलकंदरा—संज्ञा पुं० [सं० जल + कदली] काँदा नामक गुल्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है।

जलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) संख। (२) कौड़ी।

जलकपि—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकपोत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है।

जलकरंक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल। (२) पद्म। कमल (३) शंख। (४) जललता।

जलकर—संज्ञा पुं० [हिं० जल + कर] (१) वह पदार्थ जो जलाशयों आदि में हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय। जैसे मछली, सिंघाड़ा, कमलगट्टा आदि। (२) इस प्रकार के पदार्थों पर का कर।

जलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार। (२) कीचड़। (३) काई।

जलकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी।

जलकांत—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

जलकांतार—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

जलकाँदा—संज्ञा पुं० दे० "काँदा"।

जलकाक—संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ नामक पक्षी।
पर्य्या०—दात्यूह। कालकंटक।

जलकामुक—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी।

जलकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिनका जल ही शरीर है।

जलकिनार—संज्ञा पुं० [हिं० जल + किनारा] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

जलकिराट—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राह या नाक नामक जलजंतु।

जलकुंतल—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

जलकुंभी—संज्ञा पुं० [हिं० जल + कुंभार] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है।
विशेष—दे० "कुंभी"।

जलकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगाबी।

जराशोष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है। इसमें रोगी दुर्बल हो जाता है, भोजन से अरुचि हो जाती है और बल वीर्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है।

जरासंध–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा। यह बृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था। कंस के मरने पर इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्ण, अर्जुन और भीम को साथ लेकर इसकी राजधानी गिरिव्रज में गए थे। वहीं भीम ने द्वंद्व युद्ध में इसे मार डाला था।

जरासुत–संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

जराह–संज्ञा पुं० दे० "जर्राह"।

जरिमा–संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। वृद्धावस्था।

जरिया*†–संज्ञा पुं० दे० "जड़िया"।

वि० [हिं० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जला कर बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया नमक।

यौ०—जरिया शोरा = एक प्रकार का शोरा जो भाफ उड़ा कर बनाया जाता है। जरिया नमक = वह खारा नमक जो आँच से तैयार किया जाता है।

ज़रिया–संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। लगाव। द्वार। जैसे, उनके यहाँ अगर आपका कोई ज़रिया हो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। (२) हेतु। कारण। सबब।

ज़रिश्क–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दारु हलदी।

जरी–वि० [सं० जरिन्] बुड्ढा। वृद्ध।

ज़री–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ताश नामक कपड़ा जो बादले से बुना जाता है। (२) सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

ज़रीनाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० जरी + नाल = ठोकर] कहारों की बोलचाल में वह स्थान जहाँ ईंटें और रोड़े पड़े हों।

जरीब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक माप जिससे भूमि नापी जाती है। हिंदुस्तानी जरीब ५५ गज़ की और अंग्रेजी जरीब ६० गज़ की होती है। एक जरीब में बीस गट्ठे होते हैं।

यौ०—जरीबकश।

मुहा०—जरीब डालना = भूमि को जरीब से नापना।

(२) लाठी। छड़ी।

जरीबकश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय जरीब खींचने का काम करता है।

जरीवाना, जरीमाना†–संज्ञा पुं० दे० "जुरमाना"।

जरूथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस। गोश्त। (२) कटुभाषी।

ज़रूर–क्रि० वि० [अ०] [वि० ज़रूरी। संज्ञा ज़रूरत] अवश्य। निःसंदेह। निश्चय करके।

ज़रूरत–संज्ञा स्त्री० [अ०] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

ज़रूरी–वि० [फ़ा०] (१) जिसकी ज़रूरत हो। जिसके बिना काम न चले। प्रयोजनीय। (२) जो अवश्य होना चाहिए। आवश्यक। सापेक्ष्य।

जरोल–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम में आती है। यह बंगाल में, विशेष कर सिलहट के कछार में, चटगाँव और उत्तरीय नीलगिरि में बहुत होता है।

जरौट*–वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। उ०—कोउ कजरौट जरौट लिए कर कोउ मुरछल कोउ छाता।—रघुराज।

जर्कबर्क–वि० [फ़ा०] जिसमें खूब तड़क भड़क हो। भड़कीला। चमकीला। भड़कदार।

जर्जर–वि० [सं०] (१) जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण बेकाम हो गया हो। (२) फूटा। टूटा। खंडित। (३) वृद्ध। बुड्ढा।

संज्ञा पुं० छरीला। बुढ़ना। पत्थरफूल।

जर्जरानना–संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जरानना] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जर्जरित–वि० [सं० जर्जरित] (१) जीर्ण। पुराना। (२) टूटा फूटा। खंडित।

जर्जरीक–वि० [सं०] (१) बहुत वृद्ध। बुड्ढा। (२) जिसमें बहुत से छेद हो गए हों।

जर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) वृक्ष।

वि० जीर्ण।

जर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) योनि।

जर्त्तिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन वाहीक देश का एक नाम। (२) उक्त देश का निवासी।

जर्त्तिल–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। बन तिलवा।

जर्त्तु–संज्ञा पुं० दे० "जर्त्त"।

ज़र्द–वि० [फ़ा०] पीला। पीत।

ज़र्दा–संज्ञा पुं० दे० "जरदा"।

ज़र्दालू–संज्ञा पुं० दे० "जरदालू"।

ज़र्दी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीलापन। पीलाई।

विशेष—दे० "जर्दी"।

ज़र्दोज़–संज्ञा पुं० दे० "जरदोज"।

ज़र्दोज़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "जरदोज़ी"।

जर्नल–संज्ञा पुं० दे० "जरनल"।

ज़र्रा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) अणु। (२) वे छोटे छोटे कण जो सूर्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। (३) जौ का सौवाँ भाग। (४) बहुत छोटा टुकड़ा या खंड।

वि० दे० "ज़रा"।

जर्रार–वि० [अ०] [संज्ञा जर्रारी] (१) बलिष्ठ। प्रबल। (२) लड़ाका। बहादुर। वीर।

बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और इन कटोरियों पर किसी हलकी मुँगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरोई-संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)

जलतापिक, जलतापी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हील कहते हैं।

जलतिक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई का पेड़।

जलत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छाता। (२) वह कुटी जो एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास-संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने अथवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है।

जलद-वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) मोथा। (३) कपूर। (४) पुराणानुसार शाकद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

जलदक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु।

जलदतिताला-संज्ञा पुं० [हिं० जल्दी + तिताला] वह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो। यह कौवाली से कुछ विलंबित होता है।

जलदाशन-संज्ञा पुं० [सं०] साखू का पेड़।
विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि बादल साखू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से साखू का यह नाम पड़ा।

जलदुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारों ओर नदी झील आदि से सुरक्षित हो।

जलदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्वाषाढ़ा नाम का नक्षत्र। (२) वरुण।

जलदेवता-संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

जलदोदो-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जो काई की तरह पानी पर फैलता है। इसके शरीर में लगने से खुजली पैदा होती है।

जलद्रव्य-संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं।

जलद्रोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन जिससे खेतों में पानी देते हैं।

जलधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। (२) मुस्ता। (३) समुद्र। (४) तिनिश। तिनस का पेड़।

जलधर केदारा-संज्ञा पुं० [सं० जलधर + हिं० केदारा] एक संकर राग जो मेघ और केदारा के योग से बनता है।

जलधरमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बादलों की श्रेणी। (२) बारह अक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में (म भ स म) SSS, SII, IIS, SSS होते हैं। उ०—मो भासै मोहन हम को दै योगा। टारो ऊधो इन कुबजा सों भोगा। साँचो ग्वालागन कर नेहा देखी। प्रेमाभक्ती जलधरमाला लेखी।

जलधरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर या धातु आदि का बना हुआ वह अर्घा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलहरी।

जलधार-संज्ञा० पुं० [सं०] शाक द्वीप का एक पर्वत।
*संज्ञा स्त्री० दे० "जलधारा"।

जलधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी का प्रवाह। पानी की धारा। (२) एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँध कर पानी डालता रहता है।

जलधारी-वि० [सं० जलधारिन्] [स्त्री० जलधारिणी] पानी का धारण करनेवाला। जलधारक।
संज्ञा पुं० बादल। मेघ। उ०—श्रवण न सुनत, चरणगति थाके, नैन भये जलधारी।—सूर।

जलधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) एक संख्या जो दस शंख की होती है।

जलधिगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मी। (२) नदी। दरिया।

जलधिज-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

जलधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित धेनु जिसकी कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है। इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है।

जलन-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] (१) जलने की पीड़ा या दुःख। दाह। बहुत अधिक ईर्ष्या या डाह।
मुहा०—जलन निकालना=द्वेष या ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरी करना।

जल-नकुल-संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलना-क्रि० अ० [सं० ज्वलन] (१) किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में हो जाना। दग्ध होना। भस्म होना। बलना। जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना।
यौ०—जलता बलता=होलिकाष्टक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य्य नहीं किया जाता।
मुहा०—जलती आग=भयानक विपत्ति। जलती आग में कूदना =जान बूझ कर भारी विपत्ति में फँसना।
(२) किसी पदार्थ का बहुत गरमी या आँच के कारण भाफ या कोयले आदि के रूप में हो जाना। जैसे, तवे पर रोटी जलना, कड़ाही में घी जलना, धूप में घास या पौधे का जलना। (३) आँच लगने के कारण किसी अंग का पीड़ित और विकृत होना। झुलसना। जैसे, हाथ जलना।

जलकुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की चिड़िया। कुकुही। बनमुर्गी।

पर्य्या०—कोयष्टि। शिखरी।

जलकुन्तक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार। (२) काई।

जलकूर्म्म—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है। इसकी चोटी या शिखा पश्चिम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है। यह देखने में स्वच्छ होता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिक्ष रहता है।

जलकेश—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

जलकौआ—संज्ञा पुं० [हिं० जल + कौआ] एक जल-पक्षी जिसकी गर्दन सफेद, चोंच भूरी और शेष सारा शरीर काला होता है। मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं। यह चिड़िया सारे युरोप, एशिया, अफ्रिका और उत्तरीय अमेरिका में पाई जाती है। इसकी लंबाई दो से तीन हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छ तक अंडे देती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और बल-वर्द्धक होता है।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] देव और पितृ आदि का तर्पण।

जलक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीड़ा जो जलाशयों आदि में की जाय। जलविहार। जैसे, तैरना आदि।

जलखग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है।

जलखर—संज्ञा पुं० [हिं० जाल] जलखरी।

जलखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल + काढ़ना वा खारी] रस्सी वा तागे की जाल की बनी हुई थैली वा झोली जिसमें लोग फल आदि रख कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा—संज्ञा पुं० [हिं० जल + खाना] जलपान। कलेवा।

जलगर्द—संज्ञा पुं० [सं० जल + फा० गर्द] पानी में रहनेवाला साँप। डेड़हा।

जलगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनंद का पूर्व जन्म का नाम।

जलगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में का भँवर। (२) कछुआ। (३) वह देश जिसमें जल कम हो।

जलचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें जल कम हो।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है। इसमें एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है। यह कटोरा पानी की नांद में पड़ा रहता है। पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी जाता है और कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है। डूबने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकाल कर खाली करके पानी की नांद में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है। इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा डूबता और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है।

जलघुमरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल + घूमना] पानी का भँवर। जलावर्त्त। चक्कर।

जलचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु। जैसे, मछली, कछुआ, मगर आदि। जलजंतु।

जलचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली। उ०—मधुकर मो मन अधिक कठोर। बिगसिन गए कुंभ का चेलौं बिछुरत नंद-किसोर। हमते भली जलचरी बपुरी अपनो नेम निबाह्यो। जल ते बिछुरि तुरत तनु त्याग्यो तउ कुल जल को चाह्यो। —सूर।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० दे० "चौलाई"।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाले जीव जंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल-जामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है।

विशेष—दे० "जलजामुन"।

जलज—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) शंख। (३) मछली। (४) पनिहाँ नाम का वृक्ष। (५) सेवार। (६) अंबुबेत। जलबेत। (७) जलजंतु। (८) सामुद्रिक या लोनार नमक। (९) मोती (१०) कुचले का पेड़। (११) चौलाई।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

ज़लज़ला—संज्ञा पुं० [फा०] भूकंप। भूडोल।

जलजात—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।

संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे आप से आप उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्ते कनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलडिंब—संज्ञा पुं० [सं०] शंबूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो धातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रख कर

मनु का प्लावन तथा मुसलमानों और ईसाइयों के हज़रत नूह का तूफान इसी कोटि का है।

जलफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबंध—संज्ञा पुं० [सं०] मछली।

जलबंधक—संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर मिट्टी आदि का बाँध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] मछली।

जलबालक—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्याचल पर्वत।

जलबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

जलबिंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यावनाल शर्करा नाम की दस्तावर ओषधि जिसे फारसी में शीरख्शित कहते हैं।

जलबिंब—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुलबुला।

जलबिडाल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह देश जहाँ जल कम हो। (२) केकड़ा।

जलबुद्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलबेंत—संज्ञा पुं० [सं० जलवेत्र] जलाशयों के निकट की भूमि में पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेंत जिसका पेड़ लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के से होते हैं और इसमें फल फूल आते ही नहीं। कुरसियाँ बेंचे इत्यादि इसी बेंत के छिलके से बुनी जाती हैं।

जलब्रह्मी, जलब्राह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोची या हुरहुर का साग।

जलभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँगरा] एक प्रकार का भँगरा जो पानी में या जलाशयों के किनारे होता है।

जलभँवरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँवरा] काले रंग का एक कीड़ा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। इसे भँवरा भी कहते हैं।

जलभालू—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भालू] सील की जाति का एक जंतु जो आकार में आठ नौ हाथ लंबा होता है। इसके सारे शरीर में बड़े बड़े बाल होते हैं। यह झुंडों में रहता है और इसकी मत्तर से अस्सी तक मादीनों के झुंड में एक नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तर-पूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरीय भागों में अधिकता से पाया जाता है।

जलभू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर। (३) जलचौलाई।

संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक रहे। जलप्राय भूमि। कछ। अनूप।

जलभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) एक प्रकार का कपूर। (३) जल रखने का बरतन।

जलमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के संसर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। चिरैया बुदकार।

जलमंडूक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

जलम†—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "जन्म"।

जलमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] मछरंग। कौड़िल्ला।

जलमधूक—संज्ञा पुं० [सं०] जल-महुआ।

जलमय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव की एक मूर्ति।

जलमल—संज्ञा पुं० [सं०] फेन। झाग।

जलमसि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर।

जल-महुआ—संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुआ जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं। वैद्यक में यह ठंढा, व्रण-नाशक, बलवीर्य्यवर्द्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—दीर्घपत्रक। ह्रस्वपुष्पक। स्वादु। गौलिका। मधूलिका। क्षौद्रप्रिय। पतंग। कीरेष्ट। गौरिकाख्य। मांगल्य। मधुपुष्प।

जलमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल में रहनेवाली मानी गई हैं। ये गिनती में सात हैं—मत्स्यी, कूर्मी, वाराही, दर्दुरी, मकरी, जलूका और जंतुका।

जलमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] परीहू नामक कल्पित जलजंतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछली के ऐसा होता है। उ०—तुरत तुरंगम देव चढ़ाई। जलमानुष अगुआ सँग लाई।—जायसी।

जलमार्जार—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। मेघ। (२) एक प्रकार का कपूर।

जलमुलेठी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलयष्टी] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी।

जलमूर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

जलमूर्त्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करका। ओला।

जलमोद—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

जलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यंत्र जिससे कूएँ आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है। (२) फौवारा। (३) जलघड़ी।

जलयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह यात्रा जो अभिषेक आदि के लिये पवित्र जल लाने के लिये की जाती है।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना=किसी दुःखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना। जले फफोले फोड़ना=दुःखी या व्यथित को किसी प्रकार, विशेष कर अपना बदला चुकाने की इच्छा से और अधिक दुःखी या व्यथित करना। जले पाँव की बिल्ली=जो स्त्री हर दम घूमती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

(४) बहुत अधिक डाह। ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना=बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात=वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना=डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्ह अपनायो तब जनिहौं जब मनु फिरि परिहै। हरखिहै न अति आदरे निदरे न जरि मरिहै।—तुलसी।

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) चार की संख्या।

जलनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जल नीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल+निंब] एक प्रकार की लोनिया जो कड़ुई होती है और प्रायः जलाशयों के निकट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है।

जलनीलिका, जलनीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के आस पास रहता हो।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) समुद्र। (३) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली, नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] रुद्राक्ष की जाति का एक पेड़ जो हिमालय के उत्तर-पूर्व भाग में तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उत्तरी कनारा और ट्रावंकोर के जंगलों में भी मिलता है। यह रुद्राक्ष के पेड़ से छोटा होता है। इसका फल अधिक गूदेदार होता है और जंगली जैतून कहलाता है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनाया जाता है और पक्के फल यों ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [हिं० जल+पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखी नाग द्वीपसुत सोय। लोपांजन दग लै चखी ताहि न देखै कोय।—नंददास।

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातःकाल कार्य्य आरंभ करने से पहले अथवा संध्या को कार्य्य समाप्त करने के उपरांत साधारण भोजन से पहले किया जाता है। कलेवा। नाश्ता।

जलपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] जलकपोत नाम की चिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जलपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की ओषधि।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गंधहीन ओषधि। इसका पेड़ खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं और तने में पास पास बहुत सी गाँठें होती हैं। इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लंबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं। पर उनमें गंध नहीं होती। यह खाने में तीखी, कड़ुई, कसैली और गुण में मल-शोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे गंगतिरिया भी कहते हैं।

पर्य्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोयवल्लरी। मत्स्यादिनी। मत्स्यगंधा। लांगली। शकुलादनी। चित्र-पत्री। प्राणदा। तृणशीता। बहुशिखा।

जलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लज्जावंती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि में पैदा होता है। (२) कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत या पितर आदि की उदकक्रिया। तर्पण।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पौंसरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। (२) वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो।

जलप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी का बहाव। (२) किसी के शव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया या भाव। (३) किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] जलाशय के आस पास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। अनूप देश।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली। (२) चातक। पपीहा।

जलप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी की बाढ़ जिससे आस पास की भूमि जल में डूब जाय। (२) पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातियों के धर्म्म-ग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के (शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित) वैवस्वत

अमेरिका और एशिया के बीच कमसकटका उपद्वीप तथा क्यूरायल आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह झुंड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिरस–संज्ञा पुं० [सं० जलशिरिष] जल में या जलाशय के अति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष। *यह वृक्ष साधारण सिरस से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं दादोन भी कहते हैं।*

जलसीप–संज्ञा स्त्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलसूचि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूँस। शिशुमार। (२) बड़ा कछुआ। (३) जोंक। (४) एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। (५) कौआ। (६) कंकमोट या कौआ नाम की मछली। (७) सिंघाड़ा।

जलसूत–संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ रोग।

जलसेनी–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक दैवी घटना जिसमें जलाशयों वा समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। कभी कभी यह सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है तब आकाश में बादल स्तन के समान नीचे झुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही देर में बढ़ते हुए जलतल तक पहुँच कर एक मोटे खंभे का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्र-रेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी तह होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर को खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ यह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह नष्ट होने को होता है तब ऊपर का भाग तो उड़ कर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी होकर बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं। सूँड़ी।

जलस्तंभन–संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाँधना।

जलस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदूर्वा।

जलहर–वि० [हिं० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ। उ०—दादू करता करत निमिष में जल माँ हैं थल थाप। थल माँहें जलहर करै, ऐसा समरथ आप।—दादू।

संज्ञा पुं० [हिं० जलधर] जलाशय। उ०—(क) विरह जलाई मैं जलूँ जलती जलहर जाऊँ। मों देखे जलहर जलै संतो कहा बुझाऊँ।—कबीर। (ख) नैना भये अनाथ हमारे। मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे। वे जलहर हम मीन बापुरी कैसे जियहिं निनारे। हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधा निधि प्यारे।—सूर।

जलहरण–संज्ञा पुं० [सं०] बत्तीस अक्षरों की एक वर्ण वृत्ति या दंडक जिसके अंत में दो लघु पड़ते हैं। इसमें सोलहवें वर्ण पर यति होती है। उ०—*भरत सदा ही पूजे पादुका उतै सनेम, इतै राम सिय बंधु सहित सिधारे बन। सूपनखा कै कुरूप मारे खल झुंड घने, हरी दससीस सीता राघव विकल मन।*

जलहरी–संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] (१) पत्थर या धातु आदि का वह अर्घा जिसमें शिव-लिंग स्थापित किया जाता है। (२) एक बर्तन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है। लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं। (३) मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टाँगा जाता है। इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिसमें से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

जलहस्ती–संज्ञा पुं० [सं०] सील की जाति का एक जल-जंतु जो स्तनपायी होता है। यह प्रायः छः से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का चमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है। इसके मुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं। यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है। नर की नाक कुछ लंबी और सूँड़ की तरह आगे को निकली हुई होती है और वह प्रायः १५—२० मादाओं के झुंड में रहता है। गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है। इसका माँस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता। इसकी चरबी के लिये जिससे मोमबत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है। प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है।

जलहार–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहारी] पानी भरनेवाला पनिहारा।

जलहालम–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का हालम या चंसुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ सलाद या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है।

जलहास–संज्ञा पुं० [सं०] फेन। समुद्र का फेन।

जलहोम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल में आहुति दी जाती है।

(२) राजपूताने का एक उत्सव। यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है। उस दिन उदयपुर के राणा अपने सर्दारों के साथ सज के बड़े समारोह से किसी ह्रद के पास जाके जल की पूजा करते हैं। (३) वैष्णवों का एक उत्सव जो ज्येष्ठ की पूर्णिमा को होता है। इस दिन विष्णु की मूर्त्ति को खूब ठंढे जल से स्नान कराया जाता है।

जलयान–संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जो जल में काम आती हो। जैसे, नाव, जहाज आदि।

जलरंक–संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगुला।

जलरंकु–संज्ञा पुं० [सं०] वनमुर्गी।

जलरंज–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला।

जलरंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भँवर। (२) पानी की बूँद। जलकण। (३) साँप।

जलरस–संज्ञा पुं० [सं०] नमक।

जलराशि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कर्क, मकर, कुंभ और मीन राशि। (२) समुद्र।

जलरुह–संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलरूप–संज्ञा पुं० [सं०] मकर राशि।

जललता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर। तरंग।

जललोहित–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

जलवर्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघ वर्तक साजि सैन लै आये। जलवर्त, वारिवर्त पवन-वर्त, बीजुवर्त, आगिवर्तक जलद संग ल्याये।—सूर। (२) दे० "जलावर्त्त"।

जलवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा।

जलवल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी।

जलवाना–क्रि० स० [हिं० जलाना] जलाने का प्रेरणार्थक रूप। जलाने का काम दूसरे से कराना।

जलवानीर–संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत। अंबुवेतस।

जलवायस–संज्ञा पुं० [सं०] कौड़िल्ला पक्षी।

जलवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उशीर। खस। (२) विष्णुकंद।

जलवाह–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

जलविषुव–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य्य के कन्या राशि से निकल कर तुला राशि में संक्रमित होने के समय होता है। तुलासंक्रांति।

जलवीर्य–संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम।

जलवृश्चिक–संज्ञा पुं० [सं०] झींगा मछली।

जलवेतस–संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

जलवैकृत–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार पानी या जलाशय में आकस्मिक विकार या अद्भुत बातों का दिखाई पड़ना। जैसे, नगर के पास से नदी का सरक जाना, तालाबों का अचानक एक बारगी सूख जाना, नदी के पानी में तेल, रक्त, मांस आदि बहना, जल का अकारण मैला हो जाना, कुएँ में धुआँ, ज्वाला आदि देख पड़ना, उसके पानी का खौलने लगना या उसमें से रोने गाने गर्जने आदि के शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध रस आदि का अचानक बदल जाना, जलाशय के पानी का बिगड़ जाना इत्यादि इत्यादि। यह अशुभ माना गया है और इसकी शांति का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है।

जलव्यथ, जलव्यध–संज्ञा पुं० [सं०] कंकमोट या कौआ नाम की मछली।

जलव्याघ्र–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का एक जंतु जो बड़ा क्रूर और हिंसक होता है। डील डौल में यह जलभालू से कुछ ही बड़ा होता है पर इसके शरीर पर के बाल जलभालू के बालों की तरह बहुत बड़े नहीं होते। इसके शरीर पर चीते की तरह दाग या धारियाँ होती हैं। यह प्रायः दक्षिण सागर में सेटलैंड टापू के पास होता है।

जलव्याल–संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द साँप। पानी में का साँप।

जलशय, जलशयन–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जलशायी–संज्ञा पुं० [सं० जलशायिन्] विष्णु।

जलशूक–संज्ञा पुं० [सं०] सेवार

जलशूकर–संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जल-जंतु।

जलसंध–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। महाभारत में लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ भीषण युद्ध करके तोमर से उसका बायाँ हाथ तोड़ दिया था। अंत में यह उसी के हाथ से मारा गया था।

जलसंस्कार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नहाना। स्नान करना। (२) धोना। पखारना। (३) मुर्दे को जल में बहा देना।

जलसमुद्र–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम समुद्र।

जलसर्पिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलसा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) आनंद या उत्सव मनाने के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना, विशेषतः लोगों का वह जमावड़ा जिसमें खाना, पीना, गाना, बजाना, नाच रंग और आमोद प्रमोद हो। जैसे, कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे। (२) सभा समिति आदि का बड़ा अधिवेशन जिसमें सर्व साधारण सम्मिलित हों। जैसे, परसों आर्य्य-समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसिंह–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलसिंही] सील की जाति का एक जंतु जो पाँच सात गज लंबा होता है और जिसके सारे शरीर में ललाई लिए पीले रंग के या काले भूरे बाल होते हैं। इसकी गर्दन पर सिंह की तरह लंबे लंबे बाल होते हैं। यह अत्यंत बली और शांत प्रकृति का होता है। यह

जलाश्रया–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शूली घास।

जलासुका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जोंक।

जलाहल–वि॰ [हिं॰ जलाजल या सं॰ जलस्थल] जलमय। उ॰—प्रानप्रिया अँसुश्रान के नीर पनारे भये बहि के भये नारे। नारे भये ते भई नदियाँ नद ह्वै गये काटि किनारे। वेगि चलौ जू चलौ ब्रज को नँदनंदन चाहत चेत हमारे। वे नद चाहत सिंधु भये अब सिंधु ते ह्वैहैं जलाहल सारे।

जलाह्वय–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) कमल। (२) कुमुद। कुईं।

जलिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जोंक।

ज़लील–वि॰ [सं॰] (१) तुच्छ। बेक़दर। (२) जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित।

जलुक, जलूका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जोंक।

जलूस–संज्ञा पुं॰ [अ॰] बहुत से लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष में सज धज कर विशेषतः किसी सवारी के साथ, किसी विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये चलना।

क्रि॰ प्र॰—निकलना।—निकालना।

जलेंद्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वरुण। (२) महासागर।

जलेंधन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बाड़वाग्नि। (२ वह पदार्थ जिसकी गरमी से पानी सूखता है। जैसे, सूर्य्य, विद्युत् आदि।

जलेचर–वि॰ [सं॰] जलचर।

जलेच्छया–संज्ञा पुं॰ [?] हाथीसूँड़ नाम का पौधा जो पानी में उत्पन्न होता है।

जलेज–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कमल

जलेतन–वि॰ [हिं॰ जलना+तन] (१) जिसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता हो। जिसमें सहनशीलता बिलकुल न हो। (२) जो डाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो।

जलेबा–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जलाब] बड़ी जलेबी।

जलेबी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जलाब=खमीर या शीरा] (१) एक प्रकार की मिठाई जो कुंडलाकार होती और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है। पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है। तब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रख कर इस प्रकार घुमाते हैं कि उसमें से मैदे की धार निकल कुंडलाकार होती जाती है। पक चुकने पर उसे घी में से निकाल शीरे में थोड़ी देर तक डुबो देते हैं। मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है। (२) बरियारे की जाति का चार पाँच हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं। (३) गोल घेरा। कुंडली। लपेट।

यौ॰—जलेबीदार=जिसमें कई घेरे हों।

जलेभ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] जलहस्ती।

जलेरुहा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सूरजमुखी नाम के फूल का पौधा।

जलेला–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कार्त्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जलेवाह–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पानी में गोता लगा कर चीज़ें निकालनेवाला मनुष्य। गोताखोर।

जलेश–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वरुण। (२) समुद्र। (३) जलाधिप।

जलेशय–संज्ञा॰ पुं॰ [सं॰] (१) मछली। (२) विष्णु। (जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं, इसीसे उनका यह नाम पड़ा—)

जलेश्वर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) समुद्र। (२) वरुण।

जलोका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जोंक।

जलोच्छ्वास–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) जलाशयों में उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा को उल्लंघन करके बाहर गिरती हैं। (२) वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने अथवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय।

जलोत्सर्ग–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराणानुसार ताल कुआँ या बावली आदि का विवाह।

जलोदर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की तह में पानी एकत्र हो जाता है जिसमें पेट फूल आता है और आगे की ओर निकल पड़ता है। वैद्यों का मत है कि घृतादि पान करने और वस्तिकर्म रेचन और वमन के पश्चात् चटपट ठंढे जल से स्नान करने से जल-वाहिनी नसें दूषित हो जाती हैं और पानी उतर आता है। इसमें रोगी के पेट में शब्द होता है और उसका शरीर काँपने लगता है।

जलोद्धति गति–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण और सगण होता है। (ISI , IIS, ISI , IIS) उ॰—जु सांति सुपली हरी हि सिर में। धसे जु वसुदेव रैन जल में। प्रभू चरण को छुआ जमुन में। जलोद्धति गती हरी छिनक में।

जलोद्भवा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) गुंदला। (२) छोटी ब्राह्मी।

जलोद्भूता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गुंदला नाम की घास।

जलोन्माद–संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिव के एक अनुचर का नाम।

जलोरगी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जोंक।

जलौका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जोंक।

जल्द–क्रि॰ वि॰ [अ॰] [संज्ञा जल्दी] (१) शीघ्र। चटपट। बिना विलंब। (२) तेजी से।

जल्दबाज़–वि॰ [फ़ा॰] [संज्ञा जल्दबाज़ी] जो किसी काम के

जलांचल-संज्ञा पुं० [सं०] पानी की नहर।

जलांजल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेवार। (२) सोता। स्रोत।

जलांजलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी-भरी अँजुली। (२) पितरों या प्रेतादिक के उद्देश्य से अंजुली में जल भर कर देना।

जलांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात समुद्रों में से एक समुद्र (२) हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

जलांबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कूप। कुआँ।

जलाका-संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] (१) पेट की जलन। (२) तीक्ष्ण धूप की लपट। (३) लू।

जलाकर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, जलाशय आदि।

जलाकांक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

जलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल। जलपिप्पली।

जलाखु-संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलाजल-संज्ञा पुं० [हिं० झलाझल] गोटे आदि की झालर। झलाझल। उ०—गति गयंद कुच कुंभ किंकिणी मनहुँ घंट झहनावै। मोतिन हार जलाजल मानो खुमीदंत झलकावै।—सूर।

जलाटन-संज्ञा पुं० [सं०] कंक नामक पक्षी।

जलाटनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाटीन-संज्ञा पुं० दे० "जेलाटीन"।

जलातंक-संज्ञा पुं० [सं०] जलत्रास नामक रोग।

जलातन-वि० [हिं० जलना + तन] (१) क्रोधी। बिगड़ैल। बदमिजाज। (२) ईर्षालु। डाही।

जलात्मिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोंक। (२) कूआँ। कूप।

जलात्यय-संज्ञा पुं० [सं०] शरत् काल।

जलाद-संज्ञा पुं० दे० "जल्लाद"।

जलाधिदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर में जल का अधिपति हो।

जलाना-क्रि० स० [हिं० जलना का सकर्मक रूप] (१) किसी पदार्थ को अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में कर देना। प्रज्वलित करना। जैसे, आग जलाना, दीआ जलाना। (२) किसी पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचा कर या आँच की सहायता से भाप या कोयले आदि के रूप में करना। जैसे, अंगारे पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना। (३) आँच के द्वारा विकृत या पीड़ित करना। झुलसना। जैसे, अंगारे से हाथ जलाना। (४) किसी के मन में डाह ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न करना। किसी के मन में संताप उत्पन्न करना।

मुहा०—जला जला कर मारना = बहुत दुःख देना। खूब तंग करना।

जलापा-संज्ञा पुं० [हिं० जलना + आपा (प्रत्य०)] डाह या ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन।

क्रि० प्र०—सहना।

संज्ञा पुं० [अं० जेलप पाउडर] एक विलायती औषध जो रेचक होती है।

जलापात-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के जल का गिरना। जलप्रपात।

जलायुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलार्णव-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल। बरसात।

जलाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तेज। प्रकाश। (२) महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव। आतंक।

जलालुक-संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसीड़।

जलालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाव-संज्ञा पुं० [हिं० जलना + आव (प्रत्य०)] (१) खमीर या आटे आदि का उठना।

क्रि० प्र०—आना।

(२) खमीर। वह आटा जो उठाया हो। (३) क़िवाम। पतला शीरा।

जलावतन-वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले का दंड मिला हो। निर्वासित।

जलावतनी-संज्ञा स्त्री० [अ०] दंड स्वरूप किसी अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना। देश-निकाला। निर्वासन।

जलावन-संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] (१) लकड़ी कंडे आदि जो जलाने के काम में आते हैं। ईंधन। (२) किसी वस्तु का वह अंश जो आग में उसके तपाए, जलाए या गलाए जाने पर जल जाता है। जलता।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

(३) मौसिम में कोल्हू के पहले पहल चलने का उत्सव। इसमें वे सब काश्तकार जो उस कोल्हू में अपनी ईख पेरना चाहते हैं अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख लाकर वहाँ पेरते हैं और उसका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदि को पिलाते तथा उससे गुड़ बना कर बाँटते हैं। भँडरव।

जलावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर। नाल।

जलाशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। जैसे, गड़हा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि। (२) उशीर। खस। (३) सिंघाड़ा। (४) लामज्जक नाम का तृण।

जलाशया-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदला। नागरमोथा।

जलाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तगुंड या दीर्घनाल नाम का तृण।

होना। जवानी ढलना = उमर खसकना। जवानी उतरना। बुढ़ापा आना। उठती जवानी = यौवनारंभ। चढ़ती जवानी। उतरती जवानी = यौवनावसान। उमर खसकने की अवस्था। चढ़ती जवानी = यौवनारंभ। जवानी का प्रारंभ होना। उठती जवानी।

जवाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी प्रश्न या बात को सुन अथवा पढ़ कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात। उत्तर।

यौ०—जवाब-दावा। जवाब-देही।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—माँगना।—मिलना।—लिखना।

मुहा०—जवाब तलब करना = (किसी घटना का) कारण पूछना। कैफियत माँगना। जवाब मिलना या कोरा जवाब मिलना = निषेधात्मक उत्तर मिलना।

(२) वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया जाय। कार्य रूप में दिया हुआ उत्तर। बदला। जैसे, जब उधर से गोलियों की बौछार आरंभ हुई तो इधर से भी उसका जवाब दिया गया। (३) मुकाबले की चीज़। जोड़। जैसे, इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। (४) नौकरी छूटने की आज्ञा। मौकूफी। जैसे, कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

जवाब-तलब-वि० [फा०] जिसके संबंध में समाधान-कारक उत्तर माँगा गया हो।

जवाबदावा-संज्ञा पुं० [अ०] वह उत्तर जो वादी के निवेदन-पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिख कर अदालत में देता है।

जवाबदेह-वि० [फा०] उत्तरदाता। जिस पर किसी बात का उत्तरदायित्व हो।

जवाबदेही-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) उत्तर देने की क्रिया। (२) उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भार। जिम्मेदारी। जैसे, मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाब सवाल-संज्ञा पुं० [अ० जवाब + सवाल] (१) प्रश्नोत्तर। (२) वाद विवाद।

जवाबी-वि० [फा०] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जवाबी तार, जवाबी कार्ड।

जवार-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पड़ोस। (२) आस पास का प्रदेश।

संज्ञा स्त्री० दे० 'ज्वार'।

* संज्ञा पुं० [अ० ज़वाल] (१) अवनति। बुरे दिन। (२) जंजाल। झंझट। भार। उ०—स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली पेट की कठिन जग जीव को जवारु है।

जवारा-संज्ञा पुं० [हिं० जौ] जौ के हरे हरे अंकुर जिन्हें दशहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोंसती हैं या श्रावणी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जौ, छुहारे, मोती आदि मिला कर गुँथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरांत ससुर अपनी बहू को पहनाता है।

संज्ञा स्त्री० (१) सितार, तंबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का वह छोटा टुकड़ा जो इन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिस पर होकर सब तार खूँटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजों के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। घोड़ी। (२) तारवाले बाजों में षडज का तार।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—बाँधना।—लगाना।

जवाल-संज्ञा पुं० [अ० ज़वाल] (१) अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

(२) जंजाल। आफत। झंझट। बखेड़ा।

मुहा०—जवाल में पड़ना या फँसना = आफत में फँसना। झंझट या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना = आफत में फँसाना।

जवाशीर-संज्ञा पुं० [फा० जावशीर] एक प्रकार का गंधाबिरोजा जो कुछ पीले रंग का और बहुत पतला होता है। इसमें से तारपीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों में होता है। दे० 'गंधाबिरोजा'।

जवास, जवासा-संज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० जवासअ] एक कँटीला क्षुप जिसकी पत्तियाँ करौंदे की पत्तियों के समान होती हैं। यह नदियों के किनारे बलुई भूमि में आप से आप उगता है। बरसात के दिनों में इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं और कुँआर तक यह बिना पत्तियों के नंगा रहता है। वर्षा के बीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कड़ुआ, कसैला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, तृष्णा, तथा ज्वर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी के दिनों में खस की तरह इसकी टट्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्य्या०—यास। यवासक। अनंता। बालपत्र। अधिककंटक। दूरमूल। समुद्रांत। दीर्घमूल। मरुद्भव। कंटकी। बनदर्भ। सूक्ष्मपत्रा।

जवाह †-संज्ञा पुं० [?] (१) आँख का एक रोग जिसमें पलक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम आते हैं। प्रवाल। परवल। (२) बैलों की आँख का एक रोग जिसमें उसके नीचे माँस बढ़ आता है।

जवाहड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० जवा = दाना + हड़] बहुत छोटी हड़।

जवाहर-संज्ञा पुं० [अ०] रत्न। मणि।

जवाहरखाना-संज्ञा पुं० [अ० जवाहर + फा० खाना] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हों। रत्नागार। तोशाखाना।

करने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक जल्दी करता हो। बहुत अधिक जल्दी करनेवाला।

जल्दी–संज्ञा स्त्री० [अ०] शीघ्रता। फुरती।
† क्रि० वि० दे० "जल्द"।

जल्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथन। कहना। (२) बकवाद। व्यर्थ की बात। प्रलाप। (३) न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों में से एक पदार्थ। यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मंडन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है। इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्वनिर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्षस्थापन और परपक्ष खंडन मात्र होता है। वाद के समान इसमें भी प्रतिज्ञा हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं।

जल्पक–वि० [सं०] बकवादी। वाचाल। बातूनी।

जल्पन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकवाद। प्रलाप। गपशप। व्यर्थ की बातें। (२) डींग। बहुत बढ़ कर कही हुई बात।

जल्पना–क्रि० अ० [सं० जल्पन] व्यर्थ बकवाद करना। बहुत बढ़ बढ़ कर बात करना। डींग मारना। सीटना। उ०—(क) कहु जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके।—तुलसी। (ख) जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु।—तुलसी।

जल्पाक–वि० [सं०] जल्पक। बकवादी। वाचाल। व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला।

जल्पित–वि० [सं०] (१) मिथ्या। जो (बात) वास्तव में ठीक न हो (२) कथित। कहा हुआ।

जल्ला†–संज्ञा पुं० [हिं० झील] (१) झील। (लश०), (२) ताल। (३) हौज़। हद।

जल्लाद–संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्राण लेना हो जिन्हें प्राणदंड की आज्ञा हो चुकी हो। घातक। वधुआ। उ०—हो मन रामनाम को गाहक। चौरासी लख जिया जोनि लख भटकत फिरत अनाहक। करि हियाव सौं सौं जल्लाद यह हरि के पुर लै जाहि। घाट बाट कहुँ अटक होय नहिं सब कोउ देहि निबाहि।

जल्ह–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जव–संज्ञा पुं० [सं०] वेग।
† संज्ञा पुं० [सं० यव] जौ।

जवन–वि० [सं०] [स्त्री० जवनी] वेगवान। वेगयुक्त। तेज।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेग। (२) स्कंद का एक सैनिक। (३) घोड़ा।
संज्ञा पुं० दे० "यवन"।

जवनाल–संज्ञा पुं० दे० "यवनाल"।

जवनिका–संज्ञा स्त्री० दे० "यवनिका"।

जवनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवाइन। अजवायन। (२) तेज़ी। वेग।

जवस–संज्ञा पुं० [सं०] घास।

जवस–संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

जवाँमर्द–वि० [फ़ा०] [संज्ञा जवाँमर्दी] (१) शूर वीर। बहादुर। (२) वालंटियर। स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही।

जवाँमर्दी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वीरता। बहादुरी।

जवा–संज्ञा स्त्री० दे० "जपा"।
†संज्ञा पुं० [सं० यव] (१) एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके दर्ज को चीर कर दोनों ओर तुरप देते हैं। (२) लहसुन का एक दाना।

जवाइन†–संज्ञा स्त्री० [सं० यवानी] अजवायन।

जवाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० जाना] (१) जाने की क्रिया। गमन। (२) जाने का भाव। (३) वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय।

जवाखार–संज्ञा पुं० [सं० यवक्षार] एक प्रकार का नमक जो जौ के खार से बनता है। वैद्यक में यह पाचक माना गया है।

जवादानी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ + दाना] चंपाकली नामक गहना जो गले में पहना जाता है।

जवादि, जवादि कस्तूरी–संज्ञा पुं०, स्त्री० [अ० ज़ुब्बाद, ज़बाद] एक सुगंधित द्रव्य जो गंधमार्जार से निकाला जाता है। यह पीले रंग की एक चिकनी लसदार चीज़ है जो कस्तूरी की तरह महकती है। इसे गोरासार भी कहते हैं। दे० "गंधबिलाव"। उ०—पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसे घनसारहि लैं। पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगोछे में आछे अँगोछन कै। कहि केशव मेद जवादि सों माँजि इते पर आँजे में अंजन है। बहुरे हरि देखौ तौ देखौ कहा सखि लाज तें लोचन लागे दहै।—केशव।

जवाधिक–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा।

जवान–वि० [फ़ा०] (१) युवा। तरुण।
यौ०—जवाँमर्द।
(२) वीर।
† संज्ञा पुं० (१) मनुष्य। पुरुष। (२) सिपाही। (३) वीर पुरुष।

जवानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाइन। अजवाइन।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] यौवन। तरुणाई। युवावस्था।
मुहा०—जवानी उठना या उभड़ना = यौवन का प्रारंभ होना। तरुणाई का आरंभ होना। जवानी उतरना = उमर ढलना। बुढ़ापा आना। जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना। तरुणाई का प्रारंभ होना। (२) मद पर आना। मदमत्त

त्याग करना। (२) नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष श्रम्न भो कैसे। फिरि है श्रव उलूक सुत मैसे।

जहन्नुम—संज्ञा पुं० [श्र०] (१) नरक। दोज़ख़।

मुहा०—जहन्नुम में जाय = चूल्हे में जाय। हमें कोई संबंध नहीं। (इस मुहावरे का प्रयोग दुःख-जनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, जब वह मानता ही नहीं तब जहन्नुम में जाय।)

(२) वह स्थान जहाँ बहुत अधिक दुःख और कष्ट हो।

जहन्नुमरसीद—वि० [फ़ा०] नरक में गया हुआ। दोज़ख़ी।

जहन्नुमी—वि० [फ़ा०] नारकिक। जहन्नुम में जानेवाला।

जहमत—संज्ञा स्त्री० [श्र०] (१) आपत्ति। मुसीबत। आफ़त।

मुहा०—जहमत उठाना = दुःख भोगना। मुसीबत सहना।

(२) झंझट। बखेड़ा।

मुहा०—जहमत में पड़ना = झंझट में फँसना। बखेड़े में पड़ना।

जहर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ह्र] (१) वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँच कर प्राण ले ले अथवा किसी अंग में पहुँच कर उसे रोगी कर दे। विष। गरल।

यौ०—जहरवाद। जहरमोहरा।

मुहा०—जहर उगलना = (१) मर्म्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुखी हो। (२) द्वेषपूर्ण बात कहना। जली कटी कहना। जहर करना या कर देना = (बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डाल कर) किसी खाद्य पदार्थ को इतना कड़ुआ कर देना कि उसका खाना कठिन हो जाय। जहर का घूँट = बहुत कड़ुआ। बे-सवाद या कड़ुआ होने के कारण न खाने योग्य। जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देख कर क्रोध को मन ही मन दबा रखना। क्रोध को प्रकट न होने देना। जहर का बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो। जहर की गाँठ = देखो "विष की गाँठ"। किसी पर जहर खाना = किसी बात या आदमी के कारण ग्लानि, दुःख, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उतारू होना। जैसे, तुम्हारे इस काम पर तो उन्हें ज़हर खा लेना चाहिए। जहर देना = ज़हर खिलाना या पिलाना। जहर मार करना = अनिच्छा या अरुचि होने पर भी जबरदस्ती खाना। जैसे, कचहरी जाने की जल्दी थी, किसी तरह दो रोटियाँ जहर मार करके चलते बने। जहर मारना = विष के प्रभाव या शक्ति को दबाना या शांत करना। जहर में बुझाना = धारदार (तीर, छुरी, तलवार, कटार, आदि) हथियारों को विषाक्त करना। (ऐसे हथियारों से जब वार किया जाता है तब उनसे घायल होनेवाले मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत जल्दी मर जाता है।)

(२) अप्रिय बात या काम। वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो। जैसे, हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना। बहुत नागवार बना देना। जैसे, उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया। जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना। जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना। जैसे, आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझा कर कहते हैं। जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना। बहुत नागवार मालूम होना।

वि० (१) घातक। मार डालनेवाला। प्राण लेनेवाला। (२) बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाला। जैसे, ज्वर के रोगी के लिये घी जहर है।

†* संज्ञा पुं० दे० "जौहर"। उ०—ग्यारह पुत्र कराइ यारहें अजय बचायो। साजि जहर व्रत नारि धर्म कुलधर्म रचायो।—राधाकृष्णदास।

जहरगत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँघट काढ़ के नाचा जाता है।

जहरदार—वि० [फ़ा०] जहरीला। विषाक्त।

जहरवाद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विषाक्त फोड़ा, जिसके आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है। इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बड़ी कठिनता से अच्छा होता है। यह रोग मनुष्यों के अतिरिक्त घोड़ों, बैलों और हाथियों आदि को भी होता है। कहते हैं कि इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़हरमुहरा] (१) काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें साँप काटने के कारण शरीर में चढ़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है। यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रक्खा जाता है जहाँ साँप ने काटा हो। कहते हैं कि यह पत्थर उस स्थान पर आप से आप चिपक जाता है और जब तक सारा विष नहीं खींच लेता तब तक वहाँ से नहीं छूटता। यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेंढक के सिर में से निकलता है। (२) हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है। यह बहुत ठंढा होता है इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे घिस कर शरबत में मिला कर पीते हैं। खुतन देश का यह पत्थर, जिसे "जहरमोहरा खताई" कहते हैं, बहुत अच्छा होता है।

जहरीला—वि० [हिं० जहर + ईला (प्रत्य०)] जिसमें जहर हो। जहरदार। विषाक्त। जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर।

जहलक्षणा—संज्ञा स्त्री० दे० "जहत्स्वार्था"।

जहाँ—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० जत्थ, प्रा० जह] (१) स्थानसूचक

जवाहिर–संज्ञा पुं० दे० "जवाहर"।

जवाहिरात–संज्ञा पुं० दे० "जवाहरात"।

जवाही–वि० [हिं० जवाह] (१) जिसकी आँख में जवाह रोग हुआ हो। (२) जवाह रोग युक्त। जैसे, जवाही आँख।

जवी–वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त। वेगवान्।

संज्ञा पुं० (१) घोड़ा। (२) ऊँट।

जवीय–वि० [सं० जवीयस्] अत्यंत वेगवान्। बहुत तेज़।

जवैया†–वि० [हिं० जाना + ऐया] (प्रत्य०) जानेवाला। गमन-शील।

जशन–संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० यजन] (१) धार्मिक उत्सव। (२) किसी प्रकार का उत्सव। जलसा। (३) आनंद। हर्ष।

क्रि० प्र०—मनाना।

(४) वह नाच और गाना जिसमें कई वेश्याएँ एक साथ सम्मिलित हों। यह बहुधा महफ़िल या जलसे की समाप्ति पर होता है।

जस*†–क्रि० वि० [सं० यथा, प्रा० जहा] जैसा। उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।—तुलसी।

†–संज्ञा पुं० दे० "यश"।

जसद–संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता।

जसुरि–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जस्त–संज्ञा पुं० दे० "जस्ता"।

जस्तई–वि० [हिं० जस्ता] जस्ते के रंग का। खाकी।

जस्ता–संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु जिसमें गंधक का अंश बहुत होता है। इसका व्यवहार अनेक प्रकार के कार्यों में विशेषतः लोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, बैटरी में बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन आदि बनाने में होता है। भारत में इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी और खूब ठंढा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है; जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे सफ़ेदा कहते हैं और जिसका व्यवहार औषधों तथा रंगों आदि में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर आज कल बेलजियम तथा प्रूशिया में भी इसकी बहुत सी खानें हैं। युरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहँ–क्रि० वि० दे० "जहाँ"। उ०—जँह जँह चरण पड़ें संतन के, तँह तँह बंटाधार। (कहावत)

जहँडना†–क्रि० अ० [सं० जहन, हिं० जहँडना] (१) घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—(क) हिंदू गूँगा गुरु कहैं, मुसलिम गोप मगोप। कहैं कबीर जहँडे दोऊ, मोह नींद में सोय।—कबीर। (२) धोखे में आना। भ्रम में पड़ना। (ख) अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल। हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े माया चेटक लाया। घर में डारि सबन भरमाया हृदया ज्ञान न आया।—कबीर।

जहँडाना†–क्रि० अ० [सं० जहन] (१) हानि उठाना। (२) धोखे में पड़ना। उ०—सबै लोग जहँड़ा दयी अंधा सभै भुलान। कहा कोई नहिं मानही सब एकै माँह समान।—कबीर।

जहकना†–क्रि० स० [हिं० भकना] चिढ़ना। कुढ़ना।

जहतिया–संज्ञा पुं० [हिं० जगात = कर] जगात उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै। मन्मथ करै कैद अपनी में जान जहतिया लावै। माँडि माँडि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावै।—सूर।

जहत्स्वार्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद वा वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़ कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे 'मम घर गंगा माँहि' यहाँ गंगा माँहि से गंगा के बीच अर्थ नहीं है किंतु गंगा के किनारे अर्थ है। इसे जहल्लक्षणा भी कहते हैं।

जहदजहल्लक्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक वा एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे 'यह वही देवदत्त है' इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है न कि पहले के देवदत्त से था अब के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आए हुए 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् हे श्वेतकेतु ! वह तू ही है, आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व या ब्रह्म की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहदना–क्रि० अ० [हिं० जहदा] (१) कीचड़ होना। दल दल हो जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।

(२) शिथिल पड़ना। थक जाना। हाँफ जाना।

जहदा–संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहदा में राचिया झूठे कुल की लाज। तन छीजै कुल बिनसिहै रटै न नाम जहाज।—कबीर।

जहद्रम*†–संज्ञा पुं० दे० 'जहन्नुम'।

जहना*†–क्रि० स० [सं० जहन] (१) त्यागना। छोड़ना। परि-

जह्नु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) एक राजर्षि का नाम । पुराणों के अनुसार जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे तब ये मार्ग में यज्ञ कर रहे थे। गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उसको पी लिया था। भगीरथजी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा।

विशेष—इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्री वाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है।

जह्नुतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

जह्नुसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख की शुक्ला सप्तमी। कहते हैं कि इसी दिन जह्नु ने गंगा को पान कर लिया था। गंगा-सप्तमी।

जाँ—संज्ञा स्त्री० दे० "जा"।
वि० दे० "जा"

जाँग—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—जरदा, जिरही, जाँग, सुनोंची, अदे खजन। कर रकवाह कवल गिलगिली गुलगुल रंजन।—सूदन।
संज्ञा स्त्री० दे० "जाँघ"।

जाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला। भाट। बंदी। उ०—करैं जाँगरे आलाप विरद कलाप भूप प्रताप। अतिशय मिजाजी चढ़े बाजी करत अरि उर ताप।—रघुराज।

जाँगर—संज्ञा पुं० [हिं० जन या जंघ] (१) शरीर। देह। (२) हाथ पैर।
यौ०—जाँगर-चोर = आलसी। जो काम करने से जी चुराता हो। हील-हराम।

जाँगरा—संज्ञा पुं० दे० "जाँगड़ा"।

जाँगल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीतर। (२) मांस। (३) वह देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का अभाव हो, करील, मदार, बेल, और शमी आदि के पेड़ हों और बारहसिंघे और हिरन आदि पशु रहते हों। (४) ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन और बारहसिंघे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, रूखा, हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल और प्रमेह, कंठमाला और श्लीपद आदि रोगों का नाशक होता है।
वि० जंगल संबंधी। जंगली।

जाँगलि, जाँगलिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सँपेरा। साँप पकड़नेवाला मदारी। (२) विष वैद्य। साँप की जहर उतारनेवाला।

जाँगली—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच। कैंवाच।

जाँगलू—वि० [फा० जंगल] गँवार। जंगली। उजड्ड।

जाँगी—संज्ञा पुं० [?] नगारा। (डिं०)

जाँगुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोरई। तरोई। (२) विष। (३) दे० "जंगुल"।

जाँगुलि, जाँगुलिक—संज्ञा पुं० [सं०] साँप पकड़नेवाला। गारुड़ी। सँपेरा।

जाँगुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप का विष उतारने की विद्या।

जाँघ—संज्ञा स्त्री० [सं० जंघा = पिंडली] घुटने और कमर के बीच का अंग। ऊरु।

जाँघा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) हल। (पूरब)। (२) कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खंभा। (३) लकड़ी या लोहे का वह धुरा जिसमें गड़ारी पहनाई हुई होती है।

जाँघिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) एक प्रकार का मृग जिसे ओकारी भी कहते हैं। (३) वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदि से ही चलती हो। जैसे, हरकारा।

जाँघिया—संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ + इया (प्रत्य०)] (१) पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ कपड़ा जिसकी मोहरियाँ घुटनों के ऊपर तक ही रहती हैं। काछा। इसे प्रायः पहलवान और नट आदि पहनते हैं। (२) मालखंभ की एक प्रकार की कसरत जिसमें बेंत को पैर के अँगूठे और दूसरी उँगली से पकड़ कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते हैं और तब दूसरे पैर के अँगूठे से बेंत को पकड़ कर नीचे की ओर सिर करके लटक आते हैं।

जाँघिल—संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ] वह बैल जिसका पिछला पैर चलने में लच खाता हो।
† वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो।
संज्ञा पुं० [देश०] (१) खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लंबी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और इसी के लिये इसका शिकार किया जाता है। (२) प्रायः एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चोंच और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जाँच—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाँचना] (१) जाँचने की क्रिया या भाव। परीक्षा। परख। इम्तहान। आजमाइश। (२) गवेषणा। तहकीकात।
यौ०—जाँच पड़ताल = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना। छान बीन।

जाँचक*†—संज्ञा पुं० दे० "जाचक" या "याचक"।

जाँचकता*†—संज्ञा स्त्री० दे० "जाचकता" या "याचकता"।
उ०—(क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे।—तुलसी। (ख) सुख दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता अकुलानी।—तुलसी।

एक शब्द । जिस स्थान पर । जिस जगह । उ०—धन्य सो देस जहाँ सुरसरी धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ।—तुलसी ।

मुहा०—जहाँ का तहाँ = अपने पहले के स्थान पर । जिस जगह पर हो उसी जगह पर । जहाँ का तहाँ रह जाना = (१) दब जाना । आगे न बढ़ना । (२) कुछ कार्रवाई न होना । जहाँ तहाँ = (१) इतस्ततः । इधर उधर । उ०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच । मास दिवस बीते मोहिं मारिहिं निसिचर पोच ।—तुलसी ।

(२) सब जगह । सब स्थानों पर । उ०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग । जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तनु राम वियोग ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहान । संसार । लोक ।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या यौगिक शब्दों में होता है । जैसे, (क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए इमारत बनाते चले जाइए । (ख) जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

जहाँगीरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना । यह कई प्रकार का होता है । साधरणतः हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं जिन पर नग जड़े होते हैं । कहीं कहीं पटरियों में कोंढ़े भी जड़े होते हैं जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघरुओं के फूल के आकार के गुच्छे पिरो दिए जाते हैं । इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं । (२) हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की चूड़ी ।

जहाँदीद, जहाँदीदा–वि० [फ़ा०] अनुभवी । जिसने दुनिया को देख कर बहुत कुछ तजरुबा किया हो ।

जहाँपनाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार का रक्षक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है ।

जहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुँडी ।

जहाज–संज्ञा पुं० [अ०] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषतः समुद्र में चलती है ।

विशेषः—आज कल के जहाजों का अधिकांश भाग लोहे का ही होता है और उन के चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े इंजिनों से काम लिया जाता है । यात्रियों को ले जाने, माल ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भिड़ने आदि कामों के लिये अलग अलग तरह के जहाज हुआ करते हैं । यात्रा आदि के कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छः सौ फुट तक होती है ।

मुहा०—जहाज का कौवा या काग = दे० "जहाजी कौआ" । उ०—सीतापति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दौर । जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर ।—तुलसी ।

जहाजी–वि० [अ०] जहाज से संबंध रखनेवाला । जैसे, जहाजी बेड़ा ।

यौ०—जहाजी इत्र = एक प्रकार का निकृष्ट इत्र जो कन्नौज में बनता है । जहाजी कौआ = (१) वह कौआ जो किसी जहाज के छूटने के समय उस पर बैठ जाता है और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है तब चारों ओर कहीं स्थल न देख कर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है । साधारणतः इससे ऐसे मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने बैठने या किसी काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो । (२) बहुत बड़ा धूर्त । भारी चालाक । जहाजी डाकू = वे डाकू जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों को लूट लेते हैं । समुद्री डाकू । जहाजी सुपारी = एक प्रकार की सुपारी जो साधारण सुपारी से दूनी बड़ी होती है ।

जहान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार । लोक । जगत । जैसे, जान है तो जहान है । (कहावत)

विशेष—कविता और यौगिक शब्दों में इस शब्द का रूप "जहाँ" हो जाता है । दे० "जहाँ" (संज्ञा) ।

जहानक–संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय ।

जहालत–संज्ञा स्त्री० [अ०] अज्ञान । मूर्खता ।

जहिया*†–क्रि० वि० [सं० यद् + हिया] जब । जिस समय । उ०—(क) कह कबीर कुछ अछलो न जहिया । हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहिया ।—कबीर । (ख) भुज बलविस्व जितब तुम जहिया । धरिहैं विष्णु मनुज तनु तहिया ।—तुलसी ।

जहीं*†–क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ] (१) जहां ही । जिस स्थान पर । उ०—(क) सप्त खंड सात ही तरंगिनी यहै जहीं । सोय रूप ईश को अशेष जंतु सेवहीं ।—केशव । (ख) जहीं जहीं विराम लेत राम जू तहीं तहीं अनेक भांति के अनेक भोग भाग सों बढ़ें ।—केशव । (२) ज्यों ही । उ०—सीय जहीं पहिराई । रामहि माल सुहाई । दुंदुभि देव बजाये । फूल तहीं बरसाये ।—केशव ।

ज़हीन–वि० [अ०] (१) बुद्धिमान् । समझदार । (२) धारणा शक्तिवाला ।

जहु–संज्ञा पुं० [सं०] संतान ।

ज़हूर–संज्ञा पुं० [अ०] प्रकाश ।

मुहा०—ज़हूर में आना = प्रकट होना । ज़हूर में लाना = प्रकट करना ।

ज़हूरा†–संज्ञा पुं० [अ० ज़हूर] (१) दिखावा । दृश्य । (२) ठाट । (३) लड़का । (बाज़ारू)

जहेज़–संज्ञा पुं० [अ० मि० सं० दायज] वह धन-संपत्ति जो कन्या के विवाह में पिता की ओर से वर को अथवा उसके घरवालों को दी जाती है । दहेज ।

जाँवर*†—संज्ञा पु० [हिं०] गमन । प्रस्थान । जाना । उ०—नव नव लाड़ लड़ाइ लाड़िल नाहीं नाहीं कहूँ बूज जांवरो । —स्वामी हरिदास ।

जा—संज्ञा स्त्री० [स] (१) माता । माँ । (२) देवरानी । देवर की स्त्री ।

वि० स्त्री० उत्पन्न । संभूत । जैसे, गिरिजा, जनकजा ।

*†सर्व० [हिं० जो] जो । जिस । उ०—(क) जा कर जा पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिले न कछु संदेहू ।—तुलसी । (ख) इक समान जब ह्वै रहत लाज मदन में दोय । जा तिय के तन में तबहिं मध्या कहिए सोय ।—पद्माकर । (ग) मेरी भव बाधा हरो राधा नागर सोइ । जा तन की झाईं परे स्याम हरित दुति होइ ।—बिहारी ।

वि० [फा०] मुनासिब । उचित । वाजिब । जैसे, जैसे आपकी बात बहुत जा है ।

यौ०—बेजा = नामुनासिब । जो ठीक न हो ।

जाइंट—संज्ञा पु० [अं० ज्वाइंट] (१) जोड़ । पैवंद । (२) गिरह । गाँठ । (मिस्त्री) । (३) दे० ज्वाइंट ।

जाइ*†—वि० [हिं० जाना] व्यर्थ । वृथा । निष्प्रयोजन । बेफायदा । उ०—सुमन सुमन अरपन लिये उपवन ते धन ल्याइ । धरनी धरि हरि तकि कहीं होइ भयो श्रम जाइ ।

जाइफर, जाइफल—संज्ञा पु० दे० "जायफल" ।

जाइस—संज्ञा पु० दे० "जायस" ।

जाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जा = उत्पन्न] (१) कन्या । बेटी । पुत्री । लड़की । (२) जाती । चमेली ।

जाउँनि*†—संज्ञा स्त्री० दे० "जामुन" ।

जाउर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० चाउर = चावल] मीठा और चावल डाल कर पकाया हुआ दूध । खीर ।

जायला—संज्ञा पु० [देश०] दो बार जोता हुआ खेत ।

जापस—संज्ञा पु० दे० "जायस"।

जाक*†—संज्ञा पु० [सं० यज्ञ] यज्ञ ।

जाकट—संज्ञा स्त्री० दे० "जाकेट" ।

जाकड़—संज्ञा पु० [हिं० जा कर] (१) दूकानदार के यहाँ से कोई माल इस शर्त पर ले आना कि यदि वह पसंद न होगा तो फेर दिया जायगा । पक्का का उलटा । (२) इस प्रकार (शर्त पर) लाया हुआ माल ।

यौ०—जाकड़ बही ।

जाकड़ बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाकड़ + बही] वह बही जिसमें दूकानदार जाकड़ दिए हुए माल का नाम और दाम आदि टाँक लेते हैं ।

जाकेट—संज्ञा स्त्री० [अं० जैकेट] कुर्त्ती या सदरी की तरह का एक प्रकार का अँगरेज़ी पहनावा ।

जाखनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए के आकार का लकड़ी का गोल चक्कर जो कुओं की नीव में दिया जाता है । जमवट । नेवार ।

जाग—संज्ञा पु० [सं० यज्ञ] (१) यज्ञ । मख । उ०—(क) तप कीन्हें से देहैं भाग । ता सेती तुम कीजो जाग । यज्ञ किये गंधर्व लोक सिधैहौ । तहाँ जाय मोको तुम पैहौ ।—सूर । (ख) चहत महा मुनि जाग जयो । नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तयो ।—तुलसी । (ग) दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग । नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ।—तुलसी ।

‡संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] (१) जगह । स्थान । ठिकाना । उ०—(क) तुहिका न मुहिका कहीं लुहिका रही न जाग भाग कुज और तोपखाना बाघ ब्याघा है ।—सूदन । (ख) कुदरत बाकी भर रही रसनिधि सबही जाग । ईंधन बिन बनियौ रहे ज्यों पाहन में आग ।—रसनिधि । (२) गृह । घर । मकान । (हिं०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० जगना] जागने की क्रिया या भाव । जागरण । उ०—घटती होइ जाहि ते आपनी ताको कीजै त्याग । धोखे कियो वास मन भीतर अब समझे भई जाग ।

संज्ञा पु० [देश०] वह कबूतर जो बिलकुल काले रंग का हो ।

संज्ञा पु० [अं० जैक] जहाज का मंडार-रक्षक ।

जागत—संज्ञा पु० [सं०] जगती छंद ।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० दे० "जागती जोत" ।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगना + ज्योति] (१) किसी देवता विशेषतः देवी की प्रत्यक्ष महिमा या चमत्कार । (२) चिराग । दीपक ।

जागना—क्रि० अ० [सं० जागरण] (१) सोकर उठना । नींद त्यागना । उ०—आइ जगावहिं चेला जागहु । आया गुरु पाय उठि लागहु ।—जायसी ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

(२) निद्रा रहित रहना । जागृत अवस्था में होना । (३) सजग होना । चैतन्य होना । सावधान होना । उ०—जराई दसा रवि काल उयो अजहूँ जड़ जीवन जागहि रे ।—तुलसी । (४) उदित होना । चमक उठना । उ०—(क) भागत अभाग अनुरागत विराग भाग जागत आलस तुलसी से निकाम कै ।—तुलसी । (ख) निश्चय प्रेम पीर यहि जागा । कसे कसौटी कंचन लागा ।—जायसी ।

मुहा०—जागना = प्रत्यक्ष । साक्षात् । जैसे, जागती जोत, जागती कला । उ०—जाहिरै जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी ।—पद्माकर ।

(५) समृद्ध होना । बढ़ चढ़ कर होना । उ०—पद्माकर स्वादु सुधा तें सरै मधु तें महा माधुरी जागती है ।—पद्मा-

जाँचना–क्रि० स० [सं० याचन] (१) किसी विषय की सत्यता या असत्यता अथवा योग्यता वा अयोग्यता का निर्णय करना। सत्यासत्य आदि का अनुसंधान करना। यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जाँचना, काम जाँचना।

संयो० क्रि०—देखना।—रखना।—डालना।

† (२) किसी बात के लिये प्रार्थना करना। माँगना। उ०—(क) जिन जाँच्यो जाइ रस नंदराय ढरे। मानों बरसत मास असाढ़ दादुर मोर ररे।—सूर। (ख) रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि वचन कीन्ह चह साँचा।—तुलसी। (ग) यही उदर के कारने जग जाँच्यो निसि याम। स्वामिपनो सिर पर चढ्यो सर्‍यो न एकौ काम।—कबीर।

जाँजरा*†–वि० [सं० जर्जर] जो बहुत ही जीर्ण हो। जर्जर। उ०—लाग्यो यहै दोष जु मैं रोष है धनुष तोरो जाँजरो। पुरानो हो मैं जानो गयो काम सों।—हनुमान।

जाँझ*†–संज्ञा पुं० [सं० झंझा] वह वर्षा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जाँट–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रीया भी कहते हैं।

जाँत–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] जाँता। आटा पीसने की बड़ी चक्की। उ०—धरती स्वरग जाँत पर दोऊ। जो एहि बिच जिव राख न कोऊ।—जायसी।

जाँता–संज्ञा पुं० [सं० यंत्र] (१) आटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमीन में गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०—चलाना।—पीसना।

(२) सुनारों और तारकशों आदि का एक औजार। यह इसपात या फौलाद लोहे की एक पटरी होती है जिसमें क्रमशः बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रख कर उसे खींचते खींचते लंबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे जंती भी कहते हैं।

जाँद–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जाँपनाह†–संज्ञा पुं० दे० "जहाँपनाह"।

जाँब*†–संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] जंबू फल। जामुन। जाम। उ०—(क) काहू गही आँब की डारा। कोई बिरह जाँब अति धारा।—जायसी। (ख) स्याम जाँब कस्तूरी चोवा। आँब जो ऊँच हृदय तेहि रोवा।—जायसी।

जाँबवंत–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"। उ०—(क) महाधीर गंभीर वचन सुनि जांबवंत समझाए। बड़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिया दिखाए।—सूर। (ख) जांबवंत सुतासुत कहाँ मम सुता दुहिवंत पुरुष यह सब सँभार।—सूर।

जांबव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन का फल। जंबू फल। (२) जामुन के फल से बनी हुई स्पिरिट। जामुन का बना मद्य। (३) जामुन का सिरका। (४) सोना। स्वर्ण।

जांबवक–संज्ञा पुं० दे० "जांबव"।

जांबवती–संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवती] (१) जांबवान की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्यमंतक मणि की खोज में जंगल में गए थे तो वहीं उन्होंने जांबवान को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जांबवती से विवाह किया था। उ०—(क) जांबवती अरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गए हरि पुर को जहाँ योगेश्वर जाय।—सूर। (ख) ऋक्षराज वह मणि तासों लै जांबवती को दीन्हीं। प्रसमन को विलंब भयो तब सत्राजित सुध लीन्हीं।

(२) नागदमनी। नागदौन।

जांबवान्–संज्ञा पुं० [सं०] सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह रीछ था। रावण के साथ युद्ध करने में त्रेता युग में इसने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी। भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसीकी कन्या जांबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इसने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी।

जांबवि–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जांबवी–संज्ञा स्त्री० दे० "जांबवती"।

जांबवौष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] जंबोष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जांबीर–संज्ञा पुं० [सं०] जंबीरी नींबू।

जांबील–संज्ञा पुं० [सं०] पैर के घुटने में बीचवाली गोल हड्डी।

जांबुमाली–संज्ञा पुं० [सं०] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अशोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था।

जांबुवत्–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"।

जांबुवान–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"।

जांबू–संज्ञा पुं० दे० "जंबू" (द्वीप)। उ०—जांबू और प्लक्ष हैं शालमली कुश चारि। क्रौंच संकला द्वीप पट पुष्कर सात विचारि।

जांबूनद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धतूरा। (२) सोना।

जांबोष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जांवत*–दे० "जावत" या "यावत"। उ०—काँसा जग मागा बन डाँगा। जावत केस रोम पंखि पाँगा।—जायसी। (ग) पुनि रूपवंत बखानों काहा। जांवत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी।

जाज्वल्यमान—वि० [सं०] (१) प्रज्वलित। दीप्तिमान्। (२) तेजस्वी। तेजवान्।

जाट—संज्ञा पुं० [?] (१) भारतवर्ष की प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताना और संयुक्त प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है। इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। इस जाति के अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं। कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अंतर्गत बतलाते हैं। राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम आया है। कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह-संबंध भी होता है पर कहीं कहीं के जाटों में विधवाविवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है। जाटों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कोई कहता है कि इन की उत्पत्ति शिव की जटा से हुई और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबद्ध बतलाता है। अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं। पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से मुसलमान जाट भी हैं। (२) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाठ"।

जाटालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाश की जाति का एक पेड़ जिसे मोखा कहते हैं।

जाटालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

जाटिकायन—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद के एक ऋषि का नाम।

जाठ—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि] (१) लकड़ी का वह मोटा और ऊँचा लट्ठा जो कोल्हू की कूँड़ी के बीच में लगा रहता है और जिसके घूमने और जिसका दाब पड़ने से कोल्हू में डाली हुई चीज़ें पेरी जाती हैं। (२) किसी चीज विशेषतः तालाब आदि के बीच में गड़ा हुआ लकड़ी का ऊँचा और मोटा लट्ठा।

जाठर—संज्ञा पुं० [सं० जठर] (१) पेट। उदर। (२) पेट की वह अग्नि जिसकी सहायता से खाया हुआ अन्न आदि पचता है। जठराग्नि। (३) भूख। क्षुधा।

वि० (१) जठर संबंधी। (२) जो जठर से उत्पन्न हो। (संतान)

जाठराग्नि—संज्ञा स्त्री० दे० "जठराग्नि"।

जाठि—संज्ञा स्त्री० दे० "जाठ"।

जाड़‡—संज्ञा पुं० दे० "जाड़ा"।

‡ वि० अत्यंत। बहुत अधिक।

जाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जड़] (१) वह ऋतु जिसमें बहुत ठंढ पड़ती हो। शीत काल। सरदी का मौसम।

विशेष—भारतवर्ष में जाड़ा प्रायः अगहन के मध्य से आरंभ होता है और फागुन के आरंभ तक रहता है।

(२) सरदी। शीत। पाला। ठंढ।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

जाड्य—संज्ञा पुं० [सं०] जड़ का भाव। जड़ता।

जाड्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नींबू।

जात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म। (२) पुत्र। बेटा। (३) चार प्रकार के पारिभाषिक पुत्रों में से एक। वह पुत्र जिसमें उसकी माता के से गुण हों। (४) जीव। प्राणी।

वि० (१) उत्पन्न। जन्मा हुआ। जैसे, जलजात। उ०—देखत उदधिजात देखि देखि निज गात चंपक के पात कढ़ू लिख्यो है बनाइ के।—केशव। (२) व्यक्त। प्रकट। (३) प्रशस्त। अच्छा। (४) जिसने जन्म ग्रहण किया हो। जैसे, नवजात।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ात] शरीर। देह। काया। जैसे, उसकी जात से तुम्हें बहुत फायदा होगा।

संज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

जातक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा। उ०—(क) तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन जातक से।—तुलसी। (ख) जानै कहाँ बाँझ ब्यावर दुख जातक जनहि न पीर है कैसी।—सूर। (२) कारंडी। बत। (३) भिक्षु। (४) फलित ज्योतिष का एक भेद जिसके अनुसार कुंडली देख कर उसके फल को कहते हैं। (५) एक प्रकार के बौद्ध ग्रंथ जिनमें महात्मा बुद्धदेव के पूर्व जन्मों की कथाएँ लिखी हैं।

संज्ञा पुं० हींग का पेड़।

जातकर्म्म—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। उ०—तब नंदीमुख श्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह।—तुलसी।

विशेष—इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालक की नाल न काटी जाय। तदुपरांत वह पहने हुए कपड़ों सहित स्नान करके कुछ विशेष पूजन और वृद्ध-श्राद्ध आदि करता है। इसके अनंतर ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा धोई हुई सिल पर लोहे से पीसे हुए चावल और जौ के चूर्ण को अँगूठे और अनामिका से लेकर मंत्र पढ़ता हुआ बालक की जीभ पर मलता है। दूसरी बार वह सोने से घी लेकर मंत्र पढ़ता हुआ उसकी जीभ पर मलता है और तब नाल काटने और दूध पिलाने की आज्ञा देकर स्नान करता है। आज कल यह संस्कार बहुत कम लोग करते हैं।

कर। (६) जोर शोर से उठना। समुत्थित होना। जैसे, लोकमत का जागना। (७) प्रज्वलित होना। जलना। (८) प्रादुर्भूत होना। अस्तित्व प्राप्त करना।

जगनैाल–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का हथियार।

जागबलिक†*–संज्ञा पुं० दे० "याज्ञवल्क्य" उ०—जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिँ सुनाई।—तुलसी।

जागर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण। जाग। जागने की क्रिया। उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानौ सुपने को सौ जागर।—हरिदास। (२) कवच। (३) अंतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब (मन बुद्धि अहंकार आदि) वृत्तियाँ प्रकाशित या जागृत हों।

जागरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निद्रा का अभाव। जागना। (२) किसी व्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में अथवा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवत् भजन करते हुए सारी रात जागना। उ०—बासर ध्यान करत सब बीत्यो। निशि जागरन करत मन भीत्यो।—सूर।

जागरित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण। नींद का न होना। (२) सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य को इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे।

जागरित स्थान–संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो।

जागरितांत–संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो। जागरित स्थान।

जागरूँ†–संज्ञा पुं० [देश०] (१) भूसा आदि मिला हुआ वह खराब अन्न जो दँवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर बच रहता है। (२) भूसा।

जागरूक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जागृत अवस्था में हो। चैतन्य।

जागरूप–वि० [हिं० जागना + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो।

जागा‡–संज्ञा स्त्री० दे० "जगह"।

जागर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जागरण। जाग्रति (२) चेतनता।

जागी*†–संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] भाट।

जागीर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जमीन मुआफ़ी। तअल्लुका। परगना। ऐसी भूमि जो राजा बादशाह नव्वाब आदि किसी को प्रदान करते हैं। वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपलक्ष में मिले। सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

जागीरदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसे जागीर मिली हो। जागीर का मालिक।

जागीरी*–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर + ई (प्रत्य०)] (१) जागीरदार होने का भाव। (२) अमीरी। रईसी। उ०—भागता सो जूझिय पीठ जो लागा घाय। जागीरी सब उतरी धनी न कहसी आव।—कबीर।

जागुड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केसर। (२) एक प्राचीन देश का नाम। (३) उस देश का निवासी।

जागृवि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) आग।

जाग्रत–वि० [सं०] (१) जो जागता हो। (२) वह अवस्था जिसमें सब बातों का परिज्ञान हो।

जाग्रति–संज्ञा स्त्री० [सं० जागृत] जागरण। जागने की क्रिया।

जाघनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] उरु। जाँघ। जंघा।

जाचक†*–संज्ञा पुं० [सं० याचक] (१) माँगनेवाला। वह जो माँगता हो। भिक्षुक। मंगन। भिखारी। उ०—नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम्ह सों मन भावत पायो न कै।—तुलसी। (२) भिखमंगा। भीख माँगनेवाला। उ०—दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यो कहै न। नहिं जाचक सुनि सूम लौं बाहर निकसत बैन।—बिहारी।

जाचकता†*–संज्ञा स्त्री० [सं० याचकत्व] (१) माँगने का भाव। (२) भिखमंगी। भीख माँगने की क्रिया। उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो।—तुलसी

जाचना*†–क्रि० [सं० याचन] माँगना।

जाजम–संज्ञा [तु०] एक प्रकार की चादर जिस पर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछाने के काम में आती है।

जाज मलार–संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जाजरा†*–वि० [देश० । सं० जर्जर] जर्जर। जीर्ण। उ०—(क) ज्यों घुन लगाई काठ को लोहइ लागइ काट। काम किया घट जाजरा दादू बारह बाट।—दादू। (ख) आँधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में।—तुलसी।

जाजरी†–संज्ञा पुं० [देश०] बहेलिया। चिड़ीमार।

जाज़रूर–संज्ञा पुं० [फ़ा० जा + अ० ज़रूर] शौच क्रिया करने का स्थान। पाखाना। टट्टी।

जाजल–संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद की एक शाखा का नाम।

जाजलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

जाजात‡–संज्ञा स्त्री० दे० "जायदाद"।

जाजिम–संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] (१) एक प्रकार की छपी हुई चादर जो बिछाने के काम में आती है। (२) गलीचा। कालीन।

जाज्वल्य–वि० [सं०] (१) प्रज्वलित। प्रकाशयुक्त। (२) तेजवान्।

वर्ण आदि। उ०—जाति पाँति उन सम हम नाहीं। हम निर्गुण सब गुण उन पाहीं।—सूर।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रुता। सहज वैर।

विशेष—महाभारत में जाति वैर पाँच प्रकार का माना गया है,—(१) स्त्री कृत। (२) वास्तुज। (३) वाग्ज। (४) सापत्न। और (५) अपराधज।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद-अध्ययन आदि न किया हो।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है। इसके अंतर्गत ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना अथवा अखाद्य पदार्थ खाना, कपट-व्यवहार करना और पुरुष-मैथुन आदि कई निंदनीय काम हैं। यह पाप यदि अनजान में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी में हो तो सांतपन प्रायश्चित्त करना चाहिए।

जातिशस्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णसंकर। दोगला।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल। जातीफल।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें आकृति और गुण का वर्णन किया जाता है।

जाती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमेली। (२) आमलकी। छोटा आँवला। (३) मालती। (४) जायफल।

†* संज्ञा स्त्री० दे० "जाति"।

संज्ञा पुं० हाथी। (डिं०)

ज़ाती—वि० [अ० जात] (१) व्यक्तिगत। (२) अपना। निज का।

जातीकोश, जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री। जायपत्री।

जातीपूग—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीय—वि० [सं०] जाति संबंधी। जाति का। जातिवाला।

जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाति का भाव। जातित्व। जाति की ममता।

जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंध द्रव्य।

जातु—अव्य० [सं०] कदाचित्।

जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग।

जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा।

जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। निशाचर। असुर।

जातुष—वि० [सं०] जतु या लाख का बना हुआ।

जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

जातूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] उपस्मृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम। हरिवंश के अनुसार इनका जन्म अट्ठाइसवें द्वापर में हुआ था।

जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता का नाम।

जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातकर्म्म।

जातोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह बैल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बधिया कर दिया गया हो।

जात्य—वि० [सं०] (१) कुलीन। उत्तम कुल में उत्पन्न। (२) श्रेष्ठ। (३) सुंदर। जो देखने में बहुत अच्छा हो।

जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र, जिसमें एक सम कोण हो। जैसे, ◺

जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन जिसमें हाथ और पैर जमीन पर रख कर चलते हैं। कहते हैं इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्व जन्म की सब बातें याद हो आती हैं।

जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर न हो। यह अठारह प्रकार का माना गया है।

जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के अक्षांश की गिनती में वह दूरी जो मेष से पूर्व की ओर प्रथम अंश से ली जाती है।

जात्रा‡—संज्ञा स्त्री० दे० "यात्रा"।

जात्री‡—संज्ञा पुं० दे० "यात्री"।

जाथका*†—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] ढेरी। ढेर। राशि।

जादव*†—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव। यदुवंशी।

जादवपति*†—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र।

जादसपति, जादसपती*†—संज्ञा पुं० [सं० यादसांपति] जल-जंतुओं का स्वामी। वरुण।

जादा*†—वि० दे० "ज्यादः"।

जादू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हों। इंद्रजाल। तिलस्म।

विशेष—प्राचीन काल में संसार की प्रायः सभी जातियों के लोग किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते थे। उन दिनों रोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे अच्छे जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते थे। पर अब जादू पर से लोगों का विश्वास बहुत अंशों में उठ गया है।

क्रि० प्र०—चलना।—करना।

मुहा०—जादू जगाना = प्रयोग आरंभ करने से पहले जादू को चैतन्य करना।

जातक्रिया—संज्ञा स्त्री० दे० "जातकर्म्म" ।

जातज्ञात रोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो बच्चे को गर्भ ही से माता के कुपथ्य आदि के कारण हो ।

जातना—संज्ञा स्त्री० दे० "यातना" । उ०—(क) गर्भ वास दुख रासि जातना तीव्र विपति बिसरायो ।—तुलसी ।

जात पाँत—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + पंक्ति] जाति । बिरादरी । जैसे, जात पाँत पूछे नहिं कोइ । हरि को भजै सो हरि का होइ ।

जातरा—संज्ञा स्त्री० दे० "यात्रा" ।

जातरूप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण । सोना । (२) धतूरा ।

जातवेद—संज्ञा पुं० [सं० जातवेदस्] (१) अग्नि । (२) चित्रक वृक्ष । चीते का पेड़ । (३) अंतर्यामी । परमेश्वर । (४) सूर्य्य ।

जातवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० जातवेश्मन्] वह घर जिसमें बालक का जन्म हो । सौरी । सूतिकागार ।

जाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । पुत्री ।

वि० उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० दे० "जाँता" ।

जाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंदुओं में मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहले पहल कर्म्मानुसार किया गया था पर पीछे से स्वभावतः जन्मानुसार हो गया । उ०—कामी क्रोधी लालची इन पै भक्ति न होय । भक्ति करे कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय ।—कबीर ।

विशेष—यह जाति-विभाग आरंभ में वर्ण विभाग के रूप में ही था, पर पीछे से प्रत्येक वर्ण में भी कर्मानुसार कई शाखाएँ हो गईं, जो आगे चल कर भिन्न भिन्न जातियों के नामों से प्रसिद्ध हुईं । जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सोनार, लोहार, कुम्हार आदि ।

(२) मनुष्य समाज का वह विभाग जो निवास-स्थान या वंश-परंपरा के विचार से किया गया हो । जैसे, अँगरेज जाति, मुगल जाति, पारसी जाति, आर्य्य जाति आदि । (३) वह विभाग जो गुण धर्म्म आकृति आदि की समानता के विचार से किया जाय । कोटि । वर्ग । जैसे, मनुष्य जाति, पशु जाति, कीट जाति । उ०—(क) सकल जाति के बँधे तुरंगम रूप अनूप विशाला ।—रघुराज । (ख) यह अच्छी जाति का घोड़ा है । (ग) यह दोनों आम एक ही जाति के हैं ।

विशेष—न्याय के अनुसार द्रव्यों में परस्पर भेद रहते हुए भी जिस से उनके विषय में समान बुद्धि उत्पन्न हो उसे जाति कहते हैं । जैसे, घटत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व, आदि । "सामान्य" भी इसी का पर्य्याय है ।

(४) न्याय में किसी हेतु का वह अनुपयुक्त खंडन या उत्तर जो केवल साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर हो । जैसे, यदि वादी कहे कि आत्मा निष्क्रिय है क्योंकि वह आकाश के समान विभु है, और इस पर प्रतिवादी यह उत्तर दे कि विभु आकाश के समान धर्म्मवाला होने के कारण यदि आत्मा निष्क्रिय है तो क्रिया-हेतु-गुण युक्त लोष्ट के समान होने के कारण वह क्रियावान् क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर केवल साधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आवेगा । इसी प्रकार यदि वादी कहे कि शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पत्ति-धर्म्मवाला है और आकाश उत्पत्ति-धर्मवाला नहीं है और इसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि शब्द उत्पत्ति-धर्मवाला और आकाश के असमान होने के कारण अनित्य है तो वह घट के असमान होने के कारण नित्य क्यों नहीं है ? तो उसका यह उत्तर केवल वैधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आ जायगा ।

विशेष—न्याय में जाति सोलह पदार्थों के अंतर्गत मानी गई है । नैयायिकों ने इसके और भी सूक्ष्म २४ भेद किए हैं जिनके नाम ये हैं—(१) साधर्म्य सम । (२) वैधर्म्य सम । (३) उत्कर्ष सम । (४) अपकर्ष सम । (५) वर्ण्य सम । (६) अवर्ण्य सम । (७) विकल्प सम । (८) साध्य सम । (९) प्राप्ति सम । (१०) अप्राप्ति सम । (११) प्रसंग सम । (१२) प्रतिदृष्टांत सम । (१३) अनुत्पत्ति सम । (१४) संशय सम । (१५) प्रकरण सम । (१६) हेतु सम । (१७) अर्थापत्ति सम । (१८) अविशेष सम । (१९) उपपत्ति सम । (२०) उपलब्धि सम । (२१) अनुपलब्धि सम । (२२) नित्य सम । (२३) अनित्य सम । (२४) कार्य्य सम ।

(५) वर्ण । (६) कुल । वंश । (७) गोत्र । (८) जन्म । (९) आमलकी । छोटा आँवला । (१०) सामान्य । साधारण । आम । (११) चमेली । (१२) जावित्री । (१३) जायफल । जाती फल । (१४) वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो । मात्रिक छंद ।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० दे० "जातकर्म्म" ।

जातिकोश, जातिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिकोशी, जातिकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ । जो जाति से अलग या बाहर हो ।

जातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जातीयता । जाति का भाव ।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाति या वर्ण का धर्म्म । (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्त्तव्य ।

जातिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जातिपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जातिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जाति पाँति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हिं० पाँति (पंक्ति)] जाति या

देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यग्र होना। किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये बेचैन होना। उ०—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है, उसका कोई कुछ नहीं दबा सकता। जान निकलना = (१) प्राण निकलना। मरना। (२) भय के मारे प्राण सूखना। डर लगना। अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना। जान पड़ना = दे० "जान आना"। जान पर आ बनना = (१) प्राण भय होना। प्राण बचना कठिन दिखाई देना। (२) आपत्ति आना। चित्त संकट में पड़ना। (३) हैरानी होना। नाक में दम होना। गहरी व्यग्रता होना। जान पर खेलना = प्राणों को भय में डालना। जान को जोखो में डालना। अपने आप को ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो। जान पर नौबत आना = दे० "जान पर आ बनना"। जान बचाना = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुड़ाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु को दूर रखना। निस्तार करना। उ०—हम तो जान बचाते फिरते हैं तुम बार बार हमें आकर घेरते हो। जान मार कर काम करना = जी तोड़ कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। जान मारना = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दुःख देना। तंग करना। दिक करना। (३) अत्यंत परिश्रम कराना। कड़ी मेहनत लेना। उ०—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। जान में जान आना = धैर्य बँधना। ढाढ़स होना। चित्त स्थिर होना। व्यग्रता घबड़ाहट या भय आदि का दूर होना। जान लेना = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दुःख देना। पीड़ित करना। उ०—क्यों धूप में दौड़ा कर उसकी जान लेते हो? जान सी निकलने लगना = कठिन पीड़ा होना। बहुत दुःख होना। जान सूखना = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवाश उड़ना। उ०—शेर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा लगना। खलना। उ०—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। जान से जाना = प्राण खोना। मरना। जान से मारना = मार डालना। प्राण ले लेना। जान से हाथ धोना = प्राण गँवाना। मर जाना। जान हलाकान करना = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। जान हलाकान होना = तंग होना। दिक होना। हैरान होना। जान होठों पर आना = (१) प्राण कंठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना।

(२) बल। शक्ति। बूता। सामर्थ्य। उ०—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने आवे। (३) सार। तत्त्व। सब से उत्तम अंश। उ०—यही पद तो उस कविता की जान है। (४) अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। उ०—मसाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—जान आना = आब चढ़ना। शोभा बढ़ना। उ०—रंग फेर देने से इस तसवीर में जान आ गई है।

जानकार—वि० [हिं० जानना + कार (प्रत्य०)] (१) जाननेवाला। अभिज्ञ। (२) विज्ञ। चतुर।

जानकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जानकार] (१) अभिज्ञता। परिचय। वाकफियत। (२) विज्ञता। निपुणता।

जानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनक की पुत्री सीता।

जानकी-जानि—संज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी हैं) रामचंद्र। उ०—बाहु बल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकी-जानि जानी।—तुलसी।

जानकी-जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र। उ०—जानकी-जीवन को जन है जरि जाहु सो जीह जो जाँचत औरहिं।—तुलसी।

जानकीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति श्रीराम। उ०—सौ बातन की एकै बात। सब तजि भजो जानकीनाथ।—सूर।

जानकी-मंगल—संज्ञा पुं० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम-जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] (जानकी के पति) श्रीरामचंद्र।

जानकीरवन*—संज्ञा पुं० दे० "जानकीरमण"।

जानदार—वि० [फा०] जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी।
संज्ञा पुं० जानवर। प्राणी।

जाननहार*—संज्ञा पुं० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला। समझनेवाला।

जानना—क्रि० स० [सं० ज्ञान] (१) किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया या प्रणाली इत्यादि निर्दिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाकिफ़ होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। उ०—(क) वह व्याकरण नहीं जानता। (ख) तुम तैरना नहीं जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता।

संयो० क्रि०—जाना।—पाना।—लेना।

यौ०—जानना बूझना = जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—जान पड़ना = (१) मालूम पड़ना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। संवेदना होना। उ०—जिस समय मैं गिरा था उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा पर पीछे बड़ा दर्द हुआ। जान कर अनजान बनना = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने या अपना मतलब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना।

(२) वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर किया जाय। ताश, अँगूठी, घड़ी, छुरी और सिक्के आदि के तरह तरह के विलक्षण और बुद्धि को चकरानेवाले खेल इसी के अंतर्गत हैं। (३) टोना। टोटका। (४) दूसरे को मोहित करने की शक्ति। मोहिनी। जैसे, उसकी आँखों में जादू है।

क्रि० प्र०—डालना।

जादूगर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० जादूगरनी] वह जो जादू करता हो। तरह तरह के अद्भुत और आश्चर्य्यजनक कृत्य करनेवाला मनुष्य।

जादूगरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जादू करने की क्रिया। जादूगर का काम।

जादूनज़र–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दृष्टि मात्र से मोहित कर लेनेवाला। देखते ही मन लुभानेवाला। जिसके नेत्रों में जादू हो।

जादो*†–संज्ञा पुं० [सं० यादव] (१) यदुवंशी। यदुवंश में उत्पन्न। उ०—सुमति विचारहिं परिहरहिं दल सुमनहु संग्राम। सकल गए तन बिनु भये साखी जादौ काम।—तुलसी। (२) नीच जाति। नीच कुलोत्पन्न।

जादौराय*†–संज्ञा पुं० [सं० यादव] श्रीकृष्णचंद्र। उ०—गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराइ।—तुलसी।

जान–संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] (१) ज्ञान। जानकारी। उ०—हमारी जान में तो कोई ऐसा आदमी नहीं है। (२) समझ। अनुमान। ख्याल। उ०—मेरे जान इन्हहिं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतो री।—तुलसी।

यौ०—जान पहचान = परिचय। एक दूसरे से जानकारी उ०—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है। (ख) तुमसे जान पहचान होगी।

मुहा०—जान में = जानकारी में। जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक। उ०—मेरी जान में तो यहाँ ऐसा कोई नहीं है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल समास में या "में" विभक्ति के साथ ही होता है। लिंग के विषय में भी मतभेद है।

वि० सुजान। जानकार। ज्ञानवान। चतुर। उ०—क) तुम परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय। जन गुन गाहक राम दोषदलन करुनायतन।—तुलसी। (ख) जान सिरोमनि हौ हनुमान सदा जन के मन बास तिहारो।—तुलसी। (ग) प्रभु को देखौ एक सुभाय। अति गंभीर उदार उदधि सरि जान सिरोमनि राय।—सूर। (घ) प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागैं घाट। बेकाह्यो है जान कहावत जान पनो कि कहा परी बाट।—हरिदास।

संज्ञा पुं० दे० "जानु"।

संज्ञा पुं० दे० "यान"।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) प्राण। जीव। प्राणवायु। दम।

मुहा०—जान आना = जी ठिकाने होना। चित्त में धैर्य्य होना। चित्त स्थिर होना। शांति होना। जान का गाहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला। मार डालने का यत्न करनेवाला। भारी शत्रु। (२) बहुत तंग करनेवाला। पीछा न छोड़नेवाला। जान का रोग = ऐसा दुःखदायी व्यक्ति वा वस्तु जो पीछा न छोड़े। सब दिन कष्ट देनेवाला। जान का लागू = दे० "जान का गाहक"। जान के लाले पड़ना = प्राण बचना कठिन दिखाई देना। जी पर आ बनना। अपनी जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना। अत्यंत अधिक कष्ट वा परिश्रम सहना। दूसरे की जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट वा दुःख देना। किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना। (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुखी होना। किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुखी होना। उ०—तुमने उसकी जीविका ली, वह अब तक तुम्हारी जान को रोता है। *जान खाना* = (१) *तंग करना। बार बार घेर कर दिक करना।* (२) किसी बात के लिये बार बार कहना। उ०—चलते हैं क्यों जान खाते हो। जान खोना = प्राण देना। मरना। जान चुराना = दे० "जी चुराना"। जान छुड़ाना = (१) प्राण बचाना। (२) किसी झंझट से छुटकारा करना। किसी अप्रिय वा कष्टदायक वस्तु को दूर करना। संकट टालना। छुटकारा करना। निस्तार करना। उ०—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ा कर भागते हैं। (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ाओ। जान छूटना = किसी झंझट वा आपत्ति से छुटकारा मिलना। किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना। निस्तार होना। उ०—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी। जान जाना = प्राण निकलना। मृत्यु होना। (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना। जान जोखों = प्राण भय। प्राणहानि की आशंका। जीवन का संकट। प्राण जाने का डर। जान तोड़ कर = दे० "जी तोड़ कर"। जान दूभर होना = जीवन कटना कठिन जान पड़ना। जीना भार मालूम होना। दुःख पड़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना। जान देना = प्राण त्याग करना। मरना। (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना। किसी के किसी काम से तंग या दुखी होकर मरना। (२) किसी पर प्राण न्यौछावर करना। किसी को प्राण से बढ़ कर चाहना। बहुत ही अधिक प्रेम करना। (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना। (किसी वस्तु के लिये या पीछे) जान

ठीक मान कर उस पर चलना। किसी बात पर ध्यान देना। उ०—इनकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता आदि का बोध कराने के लिये होता है। जैसे, चले जाना, आ जाना, मिल जाना, खो जाना, डूब जाना पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि। कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है। जैसे, कर जाना, इनके लिये भी कुछ कर जाओ। कर्म-प्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे, *किया जाना, खाया जाना*। जहाँ 'जाना' का संयोग किसी क्रिया के पहले होता है वहाँ उसका अर्थ बना रहता है, जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना।

(२) अलग होना। दूर होना। उ०—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी। (ख) सिर जाय तो जाय पीछे नहीं हटेंगे। (३) हाथ या अधिकार से निकलना। हानि होना।

मुहा०—क्या जाता है ? = क्या व्यय होता है ? क्या लगता है ? क्या हानि होती है ? उ०—इनका क्या जाता है नुकसान तो होगा हमारा। किसी बात से भी गए = इतनी बात से भी वंचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी या पात्र न रहे ? इतने में भी चूकनेवाले हो गए ? जैसे, *उसने हमारे साथ इतनी बुराई की, हम कुछ कहने से भी गए ?*

(४) खोना। गायब होना। चोरी होना। गुम होना। उ—(क) पुस्तक यहाँ से गई है। (ख) जिसका माल जाता है वही जानता है। (५) बीतना। व्यतीत होना। गुजरना। (काल)। उ०—(क) चार दिन इस महीने में भी गए और रुपया न आया। (ख) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। (६) नष्ट होना। बिगड़ना। सत्यानाश। बरबाद होना। चौपट होना। उ०—यह घर भी अब गया।

मुहा०—गया घर = दुर्दशाप्राप्त घराना। वह कुल जिसकी समृद्धि नष्ट हो गई हो। गया बीता = (१) *दुर्दशाप्राप्त*। (२) निकृष्ट।

(७) मरना। मृत्यु को प्राप्त होना। (क्वि०)। उ०—उसके दो बच्चे जा चुके हैं। (८) प्रवाह के रूप में कहीं से निकलना। बहना। जारी होना। जैसे, आँख से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना इत्यादि।

*†—क्रि० स० [स० जनन] उत्पन्न करना। जन्म देना। पैदा करना। उ०—(क) मो सों कहत मोल को लीनो तोहि कत जसुदा जायो।—सूर। (ख) कोशलेश दशरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।—तुलसी।

जानि—संज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री। भार्य्या। उ०—सो मय दीन्ह रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी।—तुलसी।

*वि० [सं० ज्ञानी] जानकार। जाननेवाला। उ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जानि सिरोमनि कोसलराऊ।—तुलसी।

जानिब—संज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ़। ओर। दिशा।

जानिबदार—वि० [फ़ा०] तरफ़दार। पक्षपाती। हिमायती।

जानिबदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पक्षपात। तरफ़दारी।

जानी—वि० [फ़ा०] जान से संबंध रखनेवाला।

यौ०—जानी दुश्मन = जान लेने को तैयार दुश्मन। *प्राणों का* गाहक शत्रु। जानी दोस्त = दिली दोस्त। प्रिय दोस्त। प्राण-प्रिय मित्र।

संज्ञा स्त्री० [फा० जान] प्राणप्यारी।

जानु—संज्ञा पुं० [स०] जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग। घुटना। उ०—(क) श्याम भुजा की सुंदरताई। बड़े विशाल जानु लौं पहुँचत यह उपमा मन भाई।—तुलसी। (ख) जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस *भरा।—तुलसी।*

संज्ञा पुं० [फा० जानू] जाँघ। रान। उ०—बान है फावत आन के मान है कै कदली विपरीत उठानु है।......का न करै यह सौतिन के पर प्रान से प्यारी सुजान की जानु है।—तोष।

**अव्य०* दे० "जानो"। उ०—नरियर फरे फरे फरहरी। फरे जानु इंद्रासन पुरी।—जायसी।

जानुपाणि—क्रि० वि० [सं०] घुटरुवों। पैयां पैयां। घुटनों और हाथों के बल (चलना, जैसे बच्चे चलते हैं)। उ०—(क) जानुपानि धाये मोहि धरना। श्यामल गात, अरुन कर चरना।—*तुलसी*। (ख) *पीत झँगुलिया तनु पहिराई*। जानुपानि विचरन मोहि भाई।—तुलसी। (ग) राजत सिसु रूप राम सकल गुन निकाय धाम, कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानुपानि चारी।—तुलसी।

जानुपानि—क्रि० वि० दे० "जानुपाणि"।

जानुप्रहृतिक—संज्ञा पुं० [स०] मल्ल युद्ध या कुश्ती का एक ढंग जिसमें घुटनों का व्यवहार विशेष होता था।

जानुर्धा—संज्ञा पुं० [स० जानु] एक रोग जो हाथी के अगले पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी घुटने की हड्डी उभर आती है।

जानु विजानु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक।

जानू—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जंघा। जाँघ।

जानो†—अव्य० [हिं० जनना] मानो। जैसे। ऐसा जान पड़ता है कि।

जान्य—संज्ञा पुं० [स०] हरिवंश के अनुसार एक ऋषि *का नाम*।

जाप—संज्ञा पुं० [स०] (१) किसी मंत्र या स्तोत्र आदि का बार बार मन में उच्चारण। मंत्र की विधिपूर्वक आवृत्ति। उ०—अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।—तुलसी। (२) भगवान के नाम का बार बार स्मरण और उच्चारण।

जान बूझ कर = भूल से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। उ०—तुमने जान बूझ कर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदयंगम करना। उ०—इस बात को जान रक्खो कि अब वह न आवेगा। किसी का कुछ जानना = किसी का सहायतार्थ दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना। किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना। किसी का एहसानमंद होना। उ०—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ। ......तो मैं जानूँ = (१) ......तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी अनहोनी बात हो गई। उ०—(क) यदि तुम इतना कूद जाओ तो मैं जानूँ। (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लावे तो जानूँ। (२) ...... तो मैं समझूँ कि बात ठीक है। उ०—सुना तो है कि वे आनेवाले हैं पर आ जायँ तो जानें। (इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है। इसका प्रयोग "मैं" और "हम" दोनों के साथ होता है)। ......तो मैं नहीं जानता = ...तो मैं जिम्मेदार नहीं। तो मेरा दोष नहीं। उ०—उस पर चढ़ते तो हो पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता। मैं क्या जानूँ? तुम क्या जानो? वह क्या जाने? = मैं नहीं जानता; तुम नहीं जानते; वह नहीं जानता। (बहु वचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है)।

(२) सूचना पाना। खबर पाना या रखना। अवगत होना। पता पाना या रखना। उ०—हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे आनेवाले हैं। (३) अनुमान करना। सोचना। उ०—मैं जानता हूँ कि वे कल तक आ जायँगे।

जानपद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जनपद संबंधी वस्तु। (२) जनपद का निवासी। जन। लोक। मनुष्य। (३) देश। (४) कर। मालगुजारी। (५) मिताचरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो भेदों में से एक जिसमें लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है। यह दो प्रकार का होता है एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ का लिखा हुआ। अपने हाथ से लिखे हुए में साची की आवश्यकता नहीं होती थी।

जानपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृत्ति। (२) एक अप्सरा जिसे इंद्र ने शरद्वान् ऋषि का तप भंग करने के लिये भेजा था। शरद्वान् ऋषि ने मोहित होकर जो शुक्रपात किया उससे कृप और कृपी की उत्पत्ति हुई। (महाभारत आदि पर्व।)

जानपना*†—संज्ञा पुं० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] जानकारी। अभिज्ञता। चतुराई। होशियारी। उ०—बेकारयो दै जान कहावत जानपनो की कहा परी बाट।—हरिदास।

जानपनी*—संज्ञा स्त्री० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] बुद्धिमानी। जानकारी। चतुराई। होशियारी। उ०—(क) जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।—तुलसी। (ख) जानी है जानपनी हरि की अब बाँधिएगी कछु मोठ कला की।—तुलसी। (ग) हम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर वंचन ताति घनी।—तुलसी।

जानबाज़—संज्ञा पुं० [फ़ा० जान + बाज़] वलमटेर। वालंटियर। (लश०)

जानमनि*—संज्ञा पुं० [हिं० जान + मणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ। बड़ा ज्ञानी पुरुष। बहुत बुद्धिमान मनुष्य। उ०—रूप सील सिंधु गुन सिंधु गुन बंधु दीन को दया निधान जानमनि बीर बाँह बोल को।—तुलसी।

जानमाज़—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पतला कालीन या आसन जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। नमाज पढ़ने का फर्श।

जानराय—संज्ञा पुं० [हिं० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ। अत्यंत ज्ञानी पुरुष। बड़ा बुद्धिमान मनुष्य। सुजान। उ०—जागिए कृपानिधान जान राय रामचंद्र जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे।—तुलसी।

जानवर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्राणी। जीव। जीवधारी। (२) पशु। जंतु। हैवान।

वि० मूर्ख। अहमक। जड़।

जानशीन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद वा अधिकार पर हो। (२) वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद वा संपत्ति आदि का अधिकारी हो। उत्तराधिकारी।

जानहार*†—वि० [हिं० जाना + हारा] (१) जानेवाला। (२) खो जानेवाला। हाथ से निकल जानेवाला। (३) मरनेवाला। नष्ट होनेवाला।

जानहु*†—अव्य० [हिं० जानना] मानो। जैसे। उ०—धनि राजा अस सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी।—जायसी।

जाना—क्रि० अ० [सं० यान = जाना] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना। गमन करना। किसी ओर बढ़ना। किसी ओर अग्रसर होना। स्थान परित्याग करना। जगह छोड़ कर हटना। प्रस्थान करना। जैसे, (क) वह घर की ओर जा रहा है। (ख) यहाँ से जाओ।

मुहा०—जाने दो = (१) क्षमा करो। माफ करो। (२) त्याग करो। छोड़ दो। (३) चर्चा छोड़ो। प्रसंग छोड़ो। जा पड़ना = किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना। जा रहना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना। उ०—मुझे क्या, मैं किसी धर्मशाला में जा रहूँगा। किसी बात पर जाना = किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निश्चय करना। किसी बात से

संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] (१) दे० 'जामुन'। (२) आलू बुखारे की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर पंजाब से लेकर सिकिम और भूटान तक होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद तथा जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है। इसके फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं। लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं। इसे पारस भी कहते हैं।

जामना†–क्रि० अ० दे० "जमना"। उ०—ऊपर बरसे तृण नहिं जामा।—तुलसी।

जामनी–वि० दे० "यावनी"।

जाम बेतुआ–संज्ञा पुं० [हिं० जाम + बेंत] एक प्रकार का बाँस जो प्रायः बरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है। यह बाँस छप्पर बनाने, घर पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है।

जामल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्र। जैसे, रुद्र जामल।

जामवंत–संज्ञा पुं० दे० "जांबवान्"।

जामा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पहरावा। कपड़ा। वस्त्र। (२) एक प्रकार का घुटने के नीचे तक का पहरावा जिसका नीचे का घेरा बहुत बड़ा और लहँगे की तरह चुनन्दार होता है। पेट के ऊपर इसकी काट बगलबंदी के ढँग की होती है। पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहन कर जाते थे। यह पहरावा प्राचीन कंचुक का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हुआ होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है पर प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहरावा प्रचलित नहीं था। हिंदुओं में अब तक विवाह के अवसर पर यह पहरावा दुलहे को पहनाया जाता है।

मुहा०—जामे से बाहर होना = आपे से बाहर होना। अत्यंत क्रोध करना। जामे में फूला न समाना = अत्यंत आनंदित होना।

जामात–संज्ञा पुं० दे० 'जामाता'।

जामाता–संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] (१) दामाद। कन्या का पति। उ०—सादर पुनि भेंटे जामाता। रूपसील गुन निधि सब भ्राता।—तुलसी। (२) हुरहुर का पौधा। हुलहुल।

जामातु*–संज्ञा पुं० दे० "जामाता"।

जामि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहिन। भगिनी। (२) लड़की। कन्या। (३) पुत्रवधू। बहू। पतोहू। (४) अपने संबंध या गोत्र की स्त्री। (५) कुल स्त्री। घर की बहू-बेटी।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने भगिनी, सपिंड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू आदि किया है। मनु ने लिखा है जिस घर में जामि प्रतिपूजित होती हैं उसमें सुख की वृद्धि होती है और जिसमें अपमानित होती हैं उस कुल का नाश हो जाता है।

जामिक*–संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरुआ। पहरा देनेवाला। रक्षक। उ०—चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।—तुलसी।

जामित्र–संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवाँ स्थान।

जामित्र वेध–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं। कर्म का जो काल हो उसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि सूर्य शनि वा मंगल हो तब जामित्र वेध होता है। किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पाप ग्रह होने से ही जामित्र वेध होता है। किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण वा क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो या पूर्ण चंद्र अपने वा शुभ ग्रह के क्षेत्र में हो तो जामित्र वेध का दोष नहीं रह जाता।

जामिन–संज्ञा पुं० [अ०] (१) जिम्मेदार। जमानत करनेवाला। इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य्य करेगा या न करेगा तो मैं उस कार्य्य की पूर्त्ति करूँगा वा दंड सहूँगा। प्रतिभू।

क्रि० प्र०—होना।

(२) दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनों नलियों को अलग रखने के लिये चिलमगर्द और मूल के बीच में बाँधी जाती है।

जामिनदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमानत करनेवाला।

जामिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "यामिनी"।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जमानत। जिम्मेदारी।

जामी–संज्ञा स्त्री० दे० (१) "यामी"। (२) दे० 'जामि'।

* संज्ञा पुं० [हिं० जमना वा जनमना] बाप। पिता। (हिं०)

जामुन–संज्ञा पुं० [सं० जंबु] गरम देशों में होनेवाला एक सदाबहार पेड़ जो भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है। यह नदियों के किनारे कहीं कहीं आप से आप उगता है, पर प्रायः फलों के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है। इसकी लकड़ी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे दल की और चमकीली होती हैं। बैसाख जेठ में इसमें मंजरी लगती है जिसके झड़ जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई पड़ते हैं जो बढ़ने पर दो तीन अंगुल लंबे बेर के आकार के होते हैं। बरसात लगने ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के, फिर खूब काले हो जाते हैं। ये फल कालेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग 'जामुन सा काला' प्रायः बोलते हैं। फलों का स्वाद कसैलापन लिए हुए मीठा होता है। फल में एक कड़ी गुठली होती है। इसकी लकड़ी पानी में सड़ती नहीं और मकानों में

जापक–संज्ञा पुं० [सं०] जपकर्त्ता । जप करनेवाला । जपनेवाला । उ०—(क) राम नाम नरकेशरी कनककसिपु कलिकाल । जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु ।—तुलसी । (ख) चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत । राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ।—तुलसी ।

जापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जप । (२) निवर्त्तन ।

जापा–संज्ञा पुं० [सं० जनन] सौरी । प्रसूतिका गृह ।

जापान–संज्ञा पुं० एक द्वीप समूह जो चीन के पूरब है ।

जापानी–संज्ञा पुं० [देश०] जापान द्वीप निवासी । जापान का रहनेवाला ।

वि० जापान का । जापान का बना । जैसे, जापानी दियासलाई ।

जापी–संज्ञा पुं० [सं० जापिन्] जापक । जप करनेवाला । उ०—लंपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी ।—सूर ।

ज़ाफ़ा–संज्ञा पुं० [अ० ज़ोफ़] (१) बेहोशी । (२) घुमरी । मूर्च्छा । थकावट । शिथिलता ।

क्रि० प्र०—आना ।

ज़ाफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ियाफ़त] भोज । दावत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—खाना ।—खिलाना ।—देना ।

ज़ाफ़रान–संज्ञा पुं० [अ०] (१) केसर । (२) अफ़गानिस्तान की एक तातारी जाति ।

ज़ाफ़रानी–वि० [अ०] केसरिया । केसर के रंग का । केसर का सा पीला । जैसे, ज़ाफ़रानी रंग या कपड़ा ।

ज़ाफ़रानी ताँबा–संज्ञा पुं० [हिं०] पीला पन लिए हुए उत्तम ताँबा जो चाँदी सोने में मेल देने के काम में आता है ।

जाब प्रेस–संज्ञा पुं० [अं०] कार्ड नोटिस आदि छोटी छोटी चीजों के छापने की कल ।

जाबजा–क्रि० वि० [फ़ा०] जगह जगह । इधर उधर ।

जाबड़ा–संज्ञा पुं० दे० "जबड़ा" ।

जाबना–संज्ञा पुं० दे० "जाब्ता" ।

जाबर–संज्ञा पुं० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ चावल ।

[illegible]–वि० [सं० जर्जर] बुड्ढा । वृद्ध । (डिं०)

जाबाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जिनकी माता का नाम जबाला था । जब ये ऋषियों के पास वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गए तब उन्होंने इनका गोत्र तथा इनके पिता का नाम आदि पूछा । ये न बतला सके और अपनी माता के पास पूछने गए । माता ने कहा कि मैं जवानी में बहुतों के पास रही और उसी समय तू उत्पन्न हुआ । मैं नहीं जानती कि तू किसका पुत्र है । जा और कह दे कि मेरी माता का नाम जबला है और मेरा नाम जाबाल है । जब आचार्य ने यह सुना तब उन्हों ने कहा कि "हे जाबाल ! समिधा लाओ, मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत करूँ क्योंकि ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई ऐसा सत्य नहीं बोल सकता" । इनका नाम सत्यकाम भी है । यह आख्यान छांदोग्य उपनिषद् में आया है ।

जाबालि–संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप वंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे । इन्हों ने चित्रकूट में रामचंद्र को वन से लौट लाने और राज्य करने के लिये बहुत समझाया था, यहाँ तक कि अपने उपदेश में इन्होंने चार्वाक से मिलते जुलते मत का आभास देकर भी राम को बनगमन से विमुख करने का प्रयत्न किया था ।

जाबिर–वि० [फ़ा०] (१) जब्र करनेवाला । अत्याचार करनेवाला । ज़बरदस्ती करनेवाला । (२) जबरदस्त । प्रचंड ।

ज़ाब्ता–संज्ञा पुं० [अ०] नियम । कायदा । व्यवस्था । कानून । जैसे, जाब्ते की कार्रवाई, जाब्ते की पाबंदी ।

यौ०—जाब्ता दीवानी = सर्व साधारण के परस्पर आर्थिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून वा व्यवस्था । जाब्ता फौजदारी = दंडनीय अपराधों से संबंध रखनेवाला कानून ।

जाम–संज्ञा पुं० [सं० याम] पहर । प्रहर । ७½ घड़ी या तीन घंटे का समय । उ०—गए जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्याला । (२) प्याले के आकार का बना हुआ कटोरा ।

संज्ञा पुं० [अनु० झम = जल्दी] जहाज़ की दौड़ । (लश०)

संज्ञा पुं० [अं० जैम] जहाज़ का दो चट्टानों या और किसी वस्तु के बीच अटकाव । फँसाव । (लश०)

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।

संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जामुन ।

जामगिरी–संज्ञा पुं० [?] बंदूक का फलीता । (लश०)

जामगी–संज्ञा पुं० [?] बंदूक या तोप का फलीता । उ०—जोत जामगिन में जगी लागे नपत दिखान । रन असमान समान भो रन समान असमान ।—लाल ।

जामदग्न्य–संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि के पुत्र, परशुराम ।

जामदानी–संज्ञा पुं० [फ़ा० जामः दानी] (१) कपड़ों की पेटी । चमड़े का संदूक जिसमें पहिनने के कपड़े रखे जाते हैं । (२) एक प्रकार का कढ़ा हुआ फूलदार कपड़ा । बूटीदार महीन कपड़ा । (३) शीशे या अबरक की बनी हुई छोटी संदूकची जिसमें बच्चे अपनी खेलने की चीज़ें रखते हैं ।

जामन–संज्ञा पुं० [हिं० जमना] वह थोड़ा सा दही या और कोई खट्टा पदार्थ जो दूध में उसे जमा कर दही बनाने के लिये डाला जाता है । उ०—फेरि कछु करि पौरि तें फिरि चितै मुसुकाय । आई जामन लेन को नेहैं चली जमाय ।—बिहारी ।

इस मादा पेड़ों के पास उस ओर एक नर पेड़ लगा देते हैं जिधर से हवा अधिक आती है। इस प्रकार नर पौधों का पुंपराग उड़ कर मादा पेड़ों के स्त्री रज तक पहुँचता है और पेड़ फलने लगते हैं। प्रायः सातवें वर्ष पेड़ फलने लगते हैं और पंद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर बढ़ता जाता है। एक अच्छे पेड़ में प्रति वर्ष प्रायः डेढ़ दो हजार फल लगते हैं। फल बहुधा रात के समय स्वयं पेड़ों से गिर पड़ते हैं और सवेरे चुन लिए जाते हैं। फल के ऊपर एक प्रकार का छिलका होता है जो उतार कर अलग सुखा लिया जाता है। इसी सूखे हुए ऊपरी छिलके को जावित्री कहते हैं। छिलका उतारने के बाद उसके अंदर एक और बहुत कड़ा छिलका निकलता है। छिलके को तोड़ने पर अंदर से जायफल निकलता है जो छाँह में सुखा लिया जाता है। सूखने पर फल उस रूप में हो जाते हैं जिसमें वे बाजार में बिकने आते हैं। जायफल में से एक प्रकार का सुगंधित तेल और अरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगंधि बढ़ाने के अथवा औषधों में मिलाने के लिये होता है। भारतवर्ष में जायफल और जावित्री का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है।

जायल–वि० [फा०] विनष्ट। *जिसका नाश हो गया हो।*

जायस–संज्ञा पुं० रायबरेली जिले का एक प्रसिद्ध प्राचीन और ऐतिहासिक नगर जहाँ बहुत दिनों से सूफी फकीरों की गद्दी है। यहाँ मुसलमान विद्वान बहुत दिनों से होते आए हैं। बहुत सी जातियाँ अपना आदि स्थान इसी नगर को बताती हैं। पद्मावती के रचयिता प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद यहीं के निवासी थे।

जाया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाहिता स्त्री। पत्नी। जोरू। विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालक को जन्म दे चुकी हो। उ०—जरा मरन ते रहित अमाया। मात पिता सुत बंधु न जाया।—सूर। (२) उपजाति वृत्त का सातवाँ भेद जिसके पहले तीन चरणों में (ज त ज ग ग) ।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ और चौथे चरण में (त त ज ग ग) ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ होता है। (३) जन्म-कुंडली में लग्न से सातवाँ स्थान जहाँ से पत्नी के संबंध की गणना की जाती है।

ज़ाया–वि० [फ़ा०] खराब। नष्ट। व्यर्थ। खोया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—होना।

जायाघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में ग्रहों का एक योग। यह योग उस समय होता है जब जन्म-कुंडली में लग्न से सातवें स्थान पर मंगल या राहु ग्रह रहता है। जिस मनुष्य की कुंडली में यह योग पड़ता है फलित ज्योतिष के अनुसार उस मनुष्य की स्त्री नहीं जीती। (२) वह मनुष्य जिसकी कुंडली में यह योग हो। (३) शरीर में का तिल।

जायाजीव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बगला पक्षी। (२) अपनी जाया (स्त्री) के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला नट। वेश्या-पति।

जायानुजीवी–संज्ञा पुं० दे० "जायाजीव"।

जायी–संज्ञा पुं० [सं० जयिन्] संगीत में ध्रुपद की जाति का एक प्रकार का ताल।

जायु–संज्ञा पुं० [सं०] औषध। दवा।

वि० जीतनेवाला। जेता।

जार–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम या अनुचित संबंध हो। उपपति। पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष। यार। आशना।

वि० मारनेवाला। नाश करनेवाला।

ज़ार–संज्ञा पुं० [लै० सीजर] रूस के सम्राट् की उपाधि।

जारकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार। छिनाला।

जारज–संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री की वह संतान जो उसके जार या उपपति से उत्पन्न हुई हो।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज दो प्रकार के माने गए हैं। जो संतान स्त्री के विवाहित पति के जीवन काल में उसके उपपति से उत्पन्न हो वह "कुंड" और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह "गोलक" कहलाती है। जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म-कार्य्य या पिंडदान आदि का अधिकारी नहीं होता।

जारज योग–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पड़नेवाला एक प्रकार का योग जिससे यह सिद्धांत निकाला जाता है कि वह बालक अपने असली पिता के वीर्य्य से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपति के वीर्य्य से उत्पन्न है। उ०—चित पितु घातक जोग लखि भयो भये सुत सोग। फिर हुलस्यो जिय जोतसी समझ्यो जारज जोग।—बिहारी।

विशेष—बालक की जन्म-कुंडली में यदि लग्न या चंद्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चंद्रमा के साथ सूर्य्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है। द्वितीया, सप्तमी, और द्वादशी तिथि में रवि शनि या मंगलवार के दिन यदि कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वा भाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है। इसके अतिरिक्त इन अवस्थाओं में कुछ अपवाद भी है जिनकी उपस्थिति में जारज योग होने पर भी वह बालक जारज नहीं माना जाता।

जारजात–संज्ञा पुं० [सं०] जारज।

लगाने तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसका पका फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनता है जो तिल्ली की दवा है। गोआ में इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। इसकी गुठली बहुमूत्र के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। बौद्ध लोग जामुन के पेड़ को पवित्र मानते हैं। वैद्यक में जामुन का फल ग्राही, रूखा, तथा कफ पित्त और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्य्या०—जंबू। सुरभिप्रभा। नीलफला। श्यामला। महास्कंधा। राजार्हा। गजफला। शुकप्रिया। मोदमादिनी। जंबुल।

जामुनी–वि० [हिं० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह बैंगनी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामेय–संज्ञा पुं० [सं०] भागिनेय। भांजा। बहिन का लड़का।

जामेवार–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का दुशाला जिसकी सारी ज़मीन पर बेल-बूटे रहते हैं। (२) एक प्रकार की छींट जिसकी बूटी दुशाले की चाल की होती है।

जाय*†–अव्य० [फ़ा० जा = ठीक] वृथा। निष्फल। व्यर्थ। उ०—(क) जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई।—तुलसी। (ख) तात जाय जिन करहु गलानी। ईस अधीन जीवगति जानी।—तुलसी। (ग) जेहि देह सनेह न रावरे सों ऐसी देह धराइ जो जाय जिये।—तुलसी।

जायक–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

ज़ायक़ा–संज्ञा पुं० [अ०] खाने पीने की चीजों का मज़ा। स्वाद। लज्ज़त।

क्रि० प्र०—लेना।

ज़ायक़ेदार–वि० [अ० ज़ायक़ा + फ़ा० दार] स्वादिष्ट। मज़ेदार। जो खाने या पीने में अच्छा जान पड़े।

ज़ायचा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जन्मकुंडली। जन्मपत्री

जायज़–वि० [अ०] यथार्थ। उचित। मुनासिब। ठीक। वाज़िब।

क्रि० प्र०—रखना।

जायज़ा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) जाँच। पड़ताल।

मुहा०—जायज़ा देना = हिसाब समझाना। जायज़ा लेना = पड़ताल करना। जांचना।

(२) हाजिरी। गिनती।

जायज़रूर–संज्ञा पुं० [फ़ा० जा + अ० ज़रूर] टट्टी। पाखाना।

ज़ायद–वि० [फ़ा०] ज्यादा। अधिक। फालतू।

जायदाद–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] भूमि, धन वा सामान आदि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कानून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनकूला और गैरमनकूला। मनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाई जा सके। जैसे, बरतन, कपड़ा, असबाब आदि। जायदाद गैरमनकूला उसे कहते हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुआँ आदि।

जायदाद गैरमनकूला–संज्ञा स्त्री० दे० "जायदाद"।

जायदाद ज़ौजियत–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह संपत्ति जिस पर स्त्री का अधिकार हो। स्त्री-धन।

जायदाद मक़फ़ूला–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० + अ०] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रेहन या बंधक हो।

जायदाद मनकूला–संज्ञा स्त्री० दे० "जायदाद"।

जायदाद मुतनाज़िआ–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] विवाद-ग्रस्त संपत्ति। वह संपत्ति जिसके अधिकार आदि के विषय में कोई झगड़ा हो।

जायदाद शौहरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह संपत्ति जो स्त्री को उसके पति से मिले।

जायनमाज़–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह छोटी दरी, कालीन या इसी प्रकार का और कोई बिछौना जिसपर बैठ कर मुसलमान नमाज़ पढ़ते हैं। बहुधा इसपर बुना या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। मुसल्ला।

जायपत्री–संज्ञा स्त्री० दे० "जावित्री"।

जायफर†–संज्ञा पुं० दे० "जायफल"।

जायफल–संज्ञा पुं० [सं० जातीफल] अखरोट की तरह का पर उससे छोटा (प्रायः जामुन के बराबर) एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले आदि में होता है। इसके छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते हैं। वैद्यक में इसे कड़ुआ, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, चरपरा, अग्निदीपक, मलरोधक, बल-वर्द्धक, तथा त्रिदोष, मुख की विरसता, खाँसी, वमन, पीनस और हृद्रोग आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्य्या०—कोषक। सुमनफल। कोश। जातिशस्य। शालूक। मालतीफल। मज्जसार। जातिसार। पुट।

विशेष—जायफल का पेड़ प्रायः ३०—३५ हाथ ऊँचा और सदा-बहार होता है, तथा मलाका, जावा और पटेविया आदि द्वीपों में पाया जाता है। दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। ताजे बीज बोकर इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। इनके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों में उन्हें नित्य सींचने की आवश्यकता होती है। जब पौधे डेढ़ दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५—२० हाथ की दूरी पर अलग अलग रोप देते हैं। यदि उनकी जड़ों के पास पानी ठहरने दिया जाय अथवा व्यर्थ घास पात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इनके नर और मादा पेड़ अलग अलग होते हैं। जब पेड़ फलने लगते हैं तब दोनों जातियों के पेड़ों को अलग अलग कर देते हैं और नर झाड़

और बिना पके ही जिसमें जलन उत्पन्न होती है। इस रोग में रोगी को ज्वर भी हो जाता है।

जालजीवी–संज्ञा पुं० [सं०] धीवर। मछुआ।

जालदार–वि० [सं० जाल+हिं० दार] जिसमें जाल की तरह पास पास बहुत से छेद हों।

जालपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस। (२) जाबालि ऋषि के एक शिष्य का नाम। (३) एक प्राचीन देश का नाम।
वि० वह पशु या पक्षी जिसके पैर की उँगलियाँ जालदार झिल्ली से ढँकी हों।

जालप्राया–संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच। जिरह बकतर। सँजोया।

जालबंद–संज्ञा पुं० [हिं० जाल+फा० बंद] एक प्रकार का गलीचा जिसमें जाल की तरह की बेलें बनी होती हैं।

जाल-बर्बूरक–संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसमें छोटी छोटी डालियाँ होती हैं।

जालम–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो बल्वल का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने बध किया था।

जालसाज़–संज्ञा पुं० [अ० जअल+फा० साज़] वह जो दूसरों को धोखा देने के लिये किसी प्रकार झूठी कार्रवाई करे।

जालसाज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फरेब या जाल करने का काम। दगाबाज़ी।

जाला–संज्ञा पुं० [सं० जाल] (१) मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले पतले तारों का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खियों और दूसरे कीड़े मकोड़ों आदि को फँसाती है। इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और छतों आदि पर लगे रहते हैं। विशेष—दे० "मकड़ी"। (२) आँख का एक रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफ़ेद परदा या झिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण दिखाई कम पड़ता है। यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार की मैल आदि के जमने के कारण होता है और ज्यों ज्यों झिल्ली मोटी होती जाती है त्यों त्यों रोगी की दृष्टि नष्ट होती जाती है। झिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता है तब उसे माड़ा कहते हैं। (३) सूत या सन आदि का बना हुआ वह जाल जिसमें घास भूसा आदि पदार्थ बाँधे जाते हैं। (४) एक प्रकार का सरपत जिससे चीनी साफ़ की जाती है। (५) पानी रखने का एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन। (६) दे० "जाल"।

जालाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] झरोखा। गवाक्ष।

जालिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कैवर्त्त। जाल बुननेवाला। (२) जाल से मृगादि जंतुओं को फँसानेवाला। कर्कटक। (३) इंद्रजालिक। मदारी। बाजीगर। (४) मकड़ी। (हिं०)

जालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाश। फंदा। (२) जाली। (३) विधवा स्त्री। (४) कवच। जिरहबकतर। सँजोया। (५) मकड़ी। (६) लोहा।

जालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरोई। घिया। (२) वह स्थान जहाँ चित्र बनते हों। चित्रशाला। (३) परवल की लता। (४) पिड़िका रोग का एक भेद जिसमें रोगी के शरीर के माँसल स्थानों में दाह-युक्त फुंसियाँ हो जाती हैं। यह केवल प्रमेह के रोगियों को होता है।

जालिनी फल–संज्ञा पुं० [सं०] तरोई। घिया।

ज़ालिम–वि० [अ०] ज़ुल्म करनेवाला। जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता का व्यवहार करता हो। अत्याचारी।

जालिया–वि० [हिं० जाल=फरेब+इया (प्रत्य०)] जालसाज़। फरेब करने या धोखा देनेवाला।
† संज्ञा पुं० [हिं० जाल+इया (प्रत्य०)] जाल की सहायता से मछली पकड़नेवाला। धीमर।

जाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरोई। (२) परवल।
संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल] (१) किसी चीज़ विशेषतः लकड़ी, पत्थर या धातु की चादर आदि में बना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह।
क्रि० प्र०—काटना।—बनाना।
(२) कसीदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी फूल या पत्ती आदि के बीच में बहुत छोटे छोटे छेद बनाए जाते हैं।
क्रि० प्र०—काढ़ना।—निकालना।—डालना।—भरना।—बनाना।
(३) एक प्रकार का कपड़ा जिसमें केवल बहुत से छोटे छोटे छेद ही होते हैं। इसे जालीलेट भी कहते हैं। (४) वह लकड़ी जो चारा काटने के गँड़ासे के दस्ते पर लगी रहती है। (५) कच्चे आम के अंदर गुठली के ऊपर का वह तंतु-समूह जो पकने से कुछ पहले उत्पन्न होता और पीछे से कड़ा हो जाता है। इसके उत्पन्न होने के उपरांत आम के फल का पकना आरंभ हो जाता है।
क्रि० प्र०—पड़ना।
(६) दे० "जाला (२)"
संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की छोटी नाव।
वि० [अ० जअल] नकली। बनावटी। झूठा। जैसे, जाली सिक्का। जाली दस्तावेज़।

जालीदार–वि० [देश०] जिसमें जाली बनी या पड़ी हो।

जालीलेट–संज्ञा पुं० [हिं० जाली] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालीलोट–संज्ञा पुं० दे० "जालीलेट"।

जाल्म–वि० [सं०] (१) पामर। नीच। (२) मूर्ख। बेवकूफ़।

जाल्मक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मण के साथ द्वेष करे।

जारण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारे का ग्यारहवाँ संस्कार। (२) जलाना। भस्म करना।
विशेष—वैद्यक में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को औषध के काम के लिये कई बार कुछ विशेष क्रियाओं से फूँक कर भस्म करने को जारण कहते हैं।

जारणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा। सफेद जीरा।

जारद्गवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्य मार्ग की एक वीथी का नाम जिसमें वराहमिहिर के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा तथा विष्णुपुराण के अनुसार विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं।

जारन†–संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] (१) जलाने की लकड़ी। ईंधन। (२) जलाने की क्रिया या भाव।

जारना†–क्रि० स० दे० "जलाना"।

जारा–संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] सोनार आदि की भट्ठी का वह भाग जिसमें आग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज गलाई या तपाई जाती है। इसके नीचे एक छोटा छेद होता है जिसमें से होकर भाथी की हवा आती है।
संज्ञा पुं० दे० "जाला"।

जारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे पुरुष के साथ अनुचित संबंध हो। दुश्चरित्रा स्त्री।

जारी–वि० [अ०] (१) बहता हुआ। प्रवाहित। जैसे, खून जारी होना। (२) चलता हुआ। प्रचलित। जैसे, वह अखबार जारी है या बंद हो गया?
क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।
संज्ञा पुं० [देश०] (१) झरबेरी का पौधा। (२) एक प्रकार का गीत जिसे मुहर्रम में ताजियों के सामने स्त्रियाँ गाती हैं।
संज्ञा स्त्री० [सं० जार+ई (प्रत्य०)] पर-स्त्री-गमन। जार की क्रिया या भाव।

जारुधि–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के वृत्त का केसर माना जाता है।

जारुधी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम।

जारूत्थ–संज्ञा पुं० दे० "जारूथ्य"।

जारूथ्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह अश्वमेध यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय।

जारोब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] झाड़ू। बोहारी। कूँचा।

जारोबकश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] झाड़ू देनेवाला। चमार।

जार्ग्यक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग।

जालंधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) जलंधर नाम का दैत्य।

जालंधरी विद्या–संज्ञा स्त्री० [सं० जलंधर=दैत्य] मायिक विद्या। माया। इंद्रजाल।

जाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर बुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिये होता है।
विशेष—जाल में बहुत से सूतों, रस्सियों या तारों आदि को खड़े और आड़े फैला कर इस प्रकार बुनते हैं कि बीच में बहुत से बड़े बड़े छेद छूट जाते हैं।
क्रि० प्र०—बनाना।—बुनना।
मुहा०—जाल डालना या फेंकना=मछलियाँ आदि पकड़ने, कोई वस्तु निकालने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये जल में जाल छोड़ना। जाल फैलाना या बिछाना=चिड़िया आदि को फँसाने के लिये जाल लगाना।
(२) एक में ओतप्रोत बुने या गुथे हुए बहुत से तारों अथवा रेशों का समूह। (३) वह युक्ति जो किसी को फँसाने या वश में करने के लिये की जाय। जैसे, तुम उनके जाल से नहीं बच सकते।
मुहा०—जाल फैलाना या बिछाना=किसी को फँसाने के लिये युक्ति करना।
(४) मकड़ी का जाला। (५) समूह। जैसे, पद्म-जाल। (६) इंद्रजाल (७) गवाक्ष। झरोखा। (८) अहंकार। अभिमान। (९) वनस्पति आदि को जलाकर उसकी राख से तैयार किया हुआ नमक। क्षार। खार। (१०) कदम का पेड़। (११) एक प्रकार की तोप। उ०—जाल जंजाल हयनाल गयनाल हूँ बान नीसान फहरान लागे।—सूदन। (१२) फूल की कली। (१३) दे० "जाली"।
संज्ञा पुं० [अ० जअल। मि० सं० जाल] वह उपाय या कृत्य जो किसी को धोखा देने या ठगने आदि के अभिप्राय से हो। फरेब। धोखा। झूठी कार्रवाई।
क्रि० प्र०—करना।—बनाना।—रचना।

जालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाल। (२) कली। (३) समूह। (४) गवाक्ष। झरोखा। (५) मोतियों का बना हुआ एक प्रकार का आभूषण। (६) केला। (७) चिड़ियों का घोंसला। (८) गर्व। अभिमान।

जालकारक–संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा।

जालकि–संज्ञा पुं० [सं०] दामों से अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला मनुष्य।

जालकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ी।

जालकिरच–संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल+किरच] परतला मिली हुई वह पेटी जिसके साथ तलवार भी लगी हो।

जालकीट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ा। (२) वह कीड़ा जो मकड़ी के जाले में फँसा हो।

जालगर्दभ–संज्ञा० पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है

जिउतिया–संज्ञा स्त्री० [सं० जिता या जीवमूत] एक व्रत जो आश्विन कृष्णाष्टमी के दिन होता है। इस व्रत को वे स्त्रियाँ जिनके पुत्र होते हैं करती हैं। इसमें गले में एक धागा बाँधा जाता है जिसमें अनंत की तरह गाँठें होती हैं। कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्लाष्टमी के दिन किया जाता है। दे० "जिताष्टमी"।

जिउलेवा†–वि० दे० "जिवलेवा"।

जिकिर‡–संज्ञा पु० दे० "ज़िक्र"।

ज़िक्र–संज्ञा पुं० [अ०] चर्चा। बातचीत। प्रसंग।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—चलना।—चलाना।—छिड़ना।—छेड़ना।

यौ०—ज़िक्र मज़कूर = बातचीत। चर्चा।

जिगन–संज्ञा स्त्री० दे० "जिगिन"।

जिगर–संज्ञा पुं० [फा० मि० स० यकृद्] [वि० जिगरी] (१) कलेजा। (२) चित्त। मन। जीव। (३) साहस। हिम्मत। (४) गूदा। सत्त। सार। (५) मध्य। सार भाग। जैसे, लकड़ी का जिगर। (६) पुत्र। लड़का। (प्यार से)

जिगरकीड़ा–संज्ञा पु० [फा० जिगर + हिं० कीड़ा] भेड़ों का एक रोग जिसमें उनके कलेजे में कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा–संज्ञा पु० [हिं० जिगर] साहस। हिम्मत। जीवट।

जिगरी–वि० [फा०] (१) दिली। भीतरी। (२) अत्यंत घनिष्ट। अभिन्न-हृदय। जैसे, जिगरी दोस्त।

जिगिन–संज्ञा स्त्री० [सं० जिंगिनी] एक ऊँचा जंगली पेड़। इसके पत्ते महुए या तुन के पत्तों के समान होते हैं और टहनी में जोड़ के रूप में इधर उधर लगते हैं। यह पहाड़ों और तराई के जंगलों में होता है। इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसैला लिखा है। इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात व्रण अतीसार और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है। इसकी दतवन अच्छी होती है और मुख की दुर्गंध को दूर करती है।

पर्य्या०—जिंगिनी। झिंगिनी। झिंगी। सुनिर्य्यासा। प्रमोदिनी। पार्वती। कृष्णशाल्मली।

जिगीषा–संज्ञा स्त्री० [स०] (१) जय की इच्छा। विजय प्राप्त करने की कामना। (२) उद्योग। उद्यम।

जिगुरन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारा तक मिलता है। इसे जधी, सिंग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं। इसकी मादा बोदल कहलाती है।

ज़िच, ज़िच्च–संज्ञा स्त्री० [?] (१) बेबसी। तंगी। मजबूरी। (२) शतरंज में शाह की वह अवस्था जब उसे चलने का कोई घर न हो और न अर्दब देने को मोहरा हो। (३) शतरंज में खेल की वह अवस्था जिसमें किसी एक पक्ष को कोई मोहरा चलने की जगह न हो।

वि० [?] विवश। मजबूर। तंग।

जिजिया‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० जीजी] बहिन।

संज्ञा पु० [फा० जज़िया] (१) कर। महसूल। (२) वह कर या महसूल जो मुसलमानी अमलदारी में उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे।

जिज्ञासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करने की कामना। (२) पूछ ताँछ। प्रश्न। परिप्रश्न। तहकीकात।

क्रि० प्र०—करना।

जिज्ञासु–वि० [स०] जानने की इच्छा रखनेवाला। ज्ञान प्राप्ति के लिये इच्छुक। खोजी।

जिज्ञासू–वि० दे० "जिज्ञासु"।

जिज्ञास्य–वि० [स०] जिसकी जिज्ञासा की जाय। जिसे जानना हो। जिसके संबंध में पूछ ताँछ की जाय।

जिठाई‡–संज्ञा स्त्री० दे० "जेठाई"।

जिठानी–संज्ञा स्त्री० दे० "जेठानी"।

जित्–वि० [स०] जीतनेवाला। जेता।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समासांत में आता है। जैसे, इंद्रजित्, शत्रुजित्, विश्वजित् इत्यादि।

जित–वि० [सं०] जीता हुआ। पराजित। जिसे दूसरे ने जीता हो।

संज्ञा पु० [सं०] जीत। विजय।

*‡क्रि० वि० [सं० यत्र] जिधर। जिस ओर। उ०—जात है जित बाजि केशौ जात हैं तित लोग।—केशव।

जितना–वि० [हिं० जिस + तना (प्रत्य०)] [स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जैसे, उसके पास जितने आम थे सब सड़ गए।

क्रि० वि० जिस मात्रा में। जिस परिमाण में। जैसे, जितना मैं दौड़ता हूँ उतना तुम नहीं दौड़ सकते।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जितने' का प्रयोग होता है। 'जितना' के पीछे 'उतना' का प्रयोग संबंध पूरा करने के लिये किया जाता है। जैसे, जितना मीठा वह आम था उतना यह नहीं है।

जितरा†–संज्ञा पु० [हिं० जिता] वह हलवाहा जिसे वेतन या मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जोतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं।

जितलोक–वि० [सं०] जिसने पुण्य कर्म से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो।

जितवना*†–क्रि० स० [सं० ज्ञात] जताना। प्रकट करना। उ०—चितवत जितवत हित हिए किए तिरीछे नैन। भीजे तन दोऊ कँपैं क्यों हू जप निबरै न।—बिहारी।

जितवाना–क्रि० स० [हिं० जीतना का प्रे०] जीतने देना। जीतने में समर्थ या उद्यत करना।

जाल्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

जावक*†–संज्ञा पुं० [सं० यावक] लाह से बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग। अलता। महावर।

जावत–अव्य० दे० "यावत्"।

जावन*†–संज्ञा पुं० [हिं०] दे० "जामन"। उ०—(क) नई दोहनी पोंछि पखारी धरि निधूम खीर परतायो। तामें मिलि मिश्रित मिश्री करिह्नै कपूर पुट जावन नायो।—सूर। (ख) तोप मरुत तव छमा जुड़ावइ। धृति सम जावन देइ जमावइ।—तुलसी।

जावित्री–संज्ञा स्त्री० [सं० जातिपत्री] जायफल के ऊपर का छिलका जो बहुत सुगंधित होता है और औषध के काम में आता है। वैद्यक में इसे हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ, खाँसी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विष का नाशक माना है। दे० "जायफल"।

जापक–संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

जापनी*†–दे० "यक्षिणी"। उ०—राघौ करी जापनी पूजा। चहे सुभाव दिखावै दूजा।—जायसी।

जासु†*–वि० [हिं० जो] जिसका।

जासू–संज्ञा पुं० [देश०] वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है।

वि० दे० "जासु"।

जासूस–संज्ञा पु० [अ०] गुप्त रूप से किसी बात विशेषतः अपराध आदि का पता लगानेवाला। भेदिया। मुखबिर।

जासूसी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया। जासूस का काम।

जास्पति–संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। जँवाई। दामाद।

जाहक–संज्ञा पु० [स०] (१) गिरगिट। (२) जोंक। (३) बिछौना। विस्तर। (४) घोंघा।

जाहर†–वि० दे० "ज़ाहिर"।

ज़ाहिर–वि० [अ०] (१) जो छिपा न हो। जो सबके सामने हो। प्रकट। प्रकाशित। खुला हुआ। (२) विदित। जाना हुआ।

यौ०—ज़ाहिर ज़हूर = ज़ाहिर।

ज़ाहिरदारी–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह बात या काम जो केवल दिखावे के लिये हो। वह काम या बात जिसमें केवल ऊपरी बनावट हो।

ज़ाहिरा–क्रि० वि० [अ०] देखने में। प्रकट रूप में। प्रत्यक्ष में। जैसे, जाहिरा तो यह बात नहीं मालूम होती आगे ईश्वर जाने।

जाहिल–वि० [अ०] (१) मूर्ख। अनाड़ी। अज्ञान। ना समझ। (२) अनपढ़। विद्याहीन। जो कुछ पढ़ा लिखा न हो।

जाही–संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] (१) चमेली की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी।

जाह्नवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जह्नु ऋषि से उत्पन्न, गंगा।

जिंक–संज्ञा स्त्री० [अं०] जस्ते का खार। यह खार देखने में सफ़ेद रंग का होता है और रंग रोगन और दवा के काम में आता है। यह क्लोराइड आफ जिंक, वा सलफेट आफ जिंक को सोडियम, बेरियम वा कलसियम सलफाइड में घोलने वा हल करने से बनता है। सलफाइड के नीचे तलछट बैठ जाती है जिसे निकाल कर सुखाने के बाद लाल आँच में तपा कर ठंढे पानी में बुझा लेते हैं। इसके बाद वह खरल में पीसी जाती है और बाजारों में बिकती है। इसे सफ़ेदा भी कहते हैं। गुलाब जल वा पानी में घोल कर इसे आँखों में डालते हैं जिससे आँख की जलन और दर्द दूर हो जाती है।

जिंगनी, जिंगिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जिगिन का पेड़।

जिंद–संज्ञा पु० [अ०] भूत प्रेत। मुसलमान भूत। दे० "जिन"।

संज्ञा पुं० दे० "जंद"।

जिंदगानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जीवन। जिंदगी।

जिंदगी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) जीवन।

मुहा०—जिंदगी से हाथ धोना = जीने से निराश होना।

(२) जीवन काल। आयु।

मुहा०—जिंदगी का दिन पूरा करना वा भरना = (१) दिन काटना। जीवन बिताना। (२) मरने को होना। आसन्न-मृत्यु होना।

जिंदा–वि० [फ़ा०] जीवित। जीता हुआ।

यौ०—जिंदा दिल।

जिंदा दिल–वि० [फ़ा०] [संज्ञा जिंदा दिली] खुश मिजाज। हँसोड़। दिल्लगीबाज। विनोदप्रिय।

जिँवाना†–क्रि० स० दे० "जिमाना"।

जिंस–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) प्रकार। किस्म। भाँति। (२) वस्तु। द्रव्य। (३) सामग्री। सामान। (४) अनाज। गल्ला। रसद।

यौ०—जिंसवार।

जिंसवार–संज्ञा पु० [फ़ा०] पटवारियों का एक काग़ज़ जिसमें वे अपने हलके के प्रत्येक खेत में बोए हुए अन्न का नाम पड़ताल करते समय लिखते हैं।

जिआना†*–क्रि० स० दे० "जिलाना"। उ०—तामें बैर कबहुँ नहिं कीजै। मारे मरिय जिआए जीजै।—तुलसी।

जिउ†–संज्ञा पु० दे० "जीव"।

जिउका†–संज्ञा स्त्री० दे० "जीविका"।

जिउकिया–संज्ञा पु० [हिं० जीविका वा जिउका] (१) जीविका करनेवाला। रोजगारी। (२) पहाड़ी लोग जो दुर्गम जंगलों और पर्वतों से अनेक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे चँवर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी बूटी आदि ले आकर नगरों में बेचते हैं।

जिभला†–वि० [हिं० जीभ + ला (प्रत्य०)] चटोरा। चटूटू।

जिभ्या*†–संज्ञा स्त्री० दे० "जिह्वा"।

जिमनास्टिक–संज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार की कसरत जो काठ के दोहरे बल्लों वा छड़ों आदि के ऊपर की जाती है। अंगरेजी कसरत।

जिमाना–क्रि० स० [हिं० जीमना] खाना खिलाना। भोजन कराना।

जिमि*–क्रि० वि० [हिं० जिस + इमि] जिस प्रकार से। जैसे। यथा। ज्यों। उ०—(क) कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।—तुलसी। (ख) जिमि जिमि तापस कथै उदासा। तिमि तिमि नृपहिं उपज विश्वासा।—तुलसी।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस शब्द के आगे 'तिमि' का प्रयोग होता है।

जिमींदार–संज्ञा पु० दे० "जमींदार"।

जिम्मा–संज्ञा पु० [अ०] (१) इस बात का भार ग्रहण कि कोई बात या कोई काम अवश्य होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा। किसी ऐसी बात के होने वा न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका संबंध अपने से या दूसरे से हो। उत्तर-दायित्व पूर्ण प्रतिज्ञा। जवाब-दिही। जैसे, (क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि कल आपको चीज मिल जायगी। (ख) इस बात का जिम्मा मेरा है कि ये एक महीने के भीतर आपका रुपया चुका देंगे। (ग) क्या रोज रोज खिलाने का मैंने जिम्मा लिया है?

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

मुहा०—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम के करने का भार किसी के ऊपर होना। किसी के जिम्मे रुपया आना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया ऋण स्वरूप होना। देना ठहरना। जैसे, हिसाब करने पर २) तुम्हारे जिम्मे निकलते हैं। किसी के जिम्मे रुपया डालना = किसी के ऊपर ऋण वा देना ठहराना।

विशेष—जिम्मा और वादा में यह अंतर है कि वादा अपने ही विषय में किया जाता है पर जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है।

(२) सुपुर्दगी। देख रेख। संरक्षा। जैसे, ये सब चीजें मैं तुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पावें।

जिम्मादार–संज्ञा पुं० दे० "जिम्मावार"।

जिम्मादारी–संज्ञा स्त्री० दे० "जिम्मावारी"।

जिम्मावार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जवाबदेह। उत्तरदाता। वह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञा-बद्ध हो।

जिम्मावारी–संज्ञा पु० [हिं० जिम्मावार] (१) उत्तरदायित्व। जवाबदिही। किसी बात के करने वा किए जाने का भार। (२) सुपुर्दगी। संरक्षा। उ०—हम इन चीजों को तुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं।

जिम्मेदार–संज्ञा पु० दे० "जिम्मावार"।

जिम्मेदारी–संज्ञा स्त्री० दे० "जिम्मावारी"।

जिम्मेवार–संज्ञा पुं० दे० "जिम्मावार"।

जिम्मेवारी–संज्ञा स्त्री० दे० "जिम्मावारी"।

जियॊ†–संज्ञा पु० [सं० जीव] मन। चित्त। जी। उ०—अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई।—तुलसी।

जियन*–संज्ञा पुं० [हिं० जीवन] जीवन। जिंदगी।

जियरा*†–संज्ञा पु० [हिं० जीव] जीव। उ०—मेरो सुभाव चितैबे को माई री लाल निहारि कै बंसी बजाई। वा दिन तें मोहि लागी ठगौरी सी लोग कहैं कोउ बावरी आई। यों रसखानि घिरयो सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियरा ई। जो कोउ चाहै भलो अपनो तो सनेह न काहू सों कीजिए माई।—रसखान।

जिया जंतु†–संज्ञा पु० दे० "जीव जंतु"

जियादती–संज्ञा स्त्री० दे० "ज़्यादती"।

जियादा–वि० दे० "ज़्यादा"।

जियान–संज्ञा पुं० [अ०] घाटा। टोटा। नुकसान। हानि। क्षति।

क्रि० प्र०—करना।—उठाना।

जियाना†*–क्रि० स० [हिं० जीना] (१) जिलाना। उ०—अबहूँ करि माया जिव केरी। मोहिं जियाउ देहु पिय मोरी।—जायसी। (२) पालना। पोसना। उ०—बाघ बच्चानि को गाय जियावत, बाघिनि पै सुरभी सुत चोपै।—गुमान।

जिया पोता–संज्ञा पु० [हिं० जिलाना + पूत] पुत्रजीवा का पेड़। पतजिव।

ज़ियाफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आतिथ्य। मेहमानदारी। (२) भोज। दावत।

मुहा०—ज़ियाफ़त करना = (१) आदर सत्कार करना। (२) खाना खिलाना। भोज देना।

ज़ियारत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दर्शन। (२) तीर्थ दर्शन।

मुहा०—ज़ियारत लगना = मेला लगना। दर्शन के लिये दर्शकों की भीड़ होना।

ज़ियारतगाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पवित्र स्थान। तीर्थ। (२) दरबार। दरगाह (३) दर्शकों की भीड़ या जमघट।

ज़ियारती–वि० [फ़ा०] (१) दर्शक। (२) तीर्थयात्री।

जियारी†*–संज्ञा स्त्री० [?] (१) जीवन। जिंदगी उ०—उनको लै मान कियो याही में अमान भयो दयो जो पै जाइ तौही तौ जियारी है।—प्रिया। (२) जीविका।

जितवार†–वि० [हिं० जीतना] जीतनेवाला। विजयी। उ०—जैंह हो ब्रजेस कुमार। रनभूमि को जितवार। सूदन।

जितवैया†–वि० [हिं० जीतना + वैया (पू० प्रत्य०)] जीतनेवाला।

जिता†–संज्ञा पुं० [हिं० जीतना वा जोतना] वह सहायता जो किसान लोग खेत की जोताई बोआई में एक दूसरे को देते हैं। हूँड़।

जितात्मा–वि० [सं० जितात्मन्] जितेंद्रिय।

संज्ञा पुं० एक देवता जिसे श्राद्ध में भाग दिया जाता है।

जिताना–क्रि० स० [हिं० 'जीतना' का प्रे०] जीतने में समर्थ वा उद्यत करना। उ०—ताही समै छैल छल कीन्हों है छबीली संग, देव विपरीत बसि बूझत पहेली बात। पूछैं जो पियारी ताहि जानत अजान पिय, आपु पूछी प्यारी को जलाइ कै जिताइ जात।—देव।

जितार†–वि० [सं० जित्वर] (१) जीतनेवाला। विजयी। (२) बली। जो जीत सके। (३) अधिक। भारी। वजनी। (प्रायः पलड़े पर रखी हुई वस्तु के संबंध में बोलते हैं)।

जितारि–वि० [सं०] (१) शत्रुजित्। (२) कामादि शत्रुओं को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं० बुद्धदेव का नाम।

जिताष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं। यह व्रत आश्विन कृष्णाष्टमी के दिन पड़ता है। इस दिन स्त्रियाँ सायंकाल के समय जलाशय में स्नान कर जीमूत-वाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं करतीं। इस व्रत के लिये उदया तिथि ली जाती है। इस को जिवतिया भी कहते हैं।

जिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] जीत। विजय।

जितुम–संज्ञा पुं० [यू० डिदुमाइ] मिथुन राशि।

जितेंद्रिय–वि० [सं०] (१) जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो। जिसकी इंद्रियाँ उस के वश में हों। जो इंद्रियासक्त न हो। मनुस्मृति में ऐसे पुरुष को जितेंद्रिय माना है जिसे सुनने, छूने, देखने, खाने और सूँघने से हर्ष वा विषाद न हो। (२) शांत। सम वृत्तिवाला।

जिते*–वि० [हिं० जिस—ते] जितने (संख्या-सूचक)। उ०—कंत विदेस रहे हो जिते दिन देहु तिते मकुतानि की माला।—पद्माकर।

जिते*–क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० यत्त] जिधर। जिस ओर। उ०—लाल जितै चितवै तिय पै, तिय त्यों त्यों चितौति सखीन की ओरी।—देव।

जितो*†–वि० [हिं० जिस] जितना (परिमाण-सूचक)। उ०—(क) बैठि सदा सतसंग ही में बिष मानि विषय रस कीर्त्ति सदाहीं। त्यों पद्माकर झूठ जितो जग जानि सुज्ञानहि के अवगाहीं।—पद्माकर। (ख) नख सिख सुंदरता अवलोकत, कह्यो न परत सुख होत जितो री।—तुलसी।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहु वचन रूप 'जिते' का प्रयोग होता है।

क्रि० वि० जिस मात्रा से। जितना।

जित्तम–संज्ञा पुं० [यू० डिदुमइ] मिथुन राशि।

जित्य–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जित्या] बड़ा हल।

जित्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] हींग।

जित्वर–वि० [सं०] नेता। जीतनेवाला। विजयी।

ज़िद–संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० ज़िद्दी] (१) उलटी बात या वस्तु। विरुद्ध वस्तु वा बात

† (२) वैर। शत्रुता।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।—रखना।

(३) हठ। अड़। दुराग्रह।

क्रि० प्र०—आना। – करना।—बाँधना।—रखना।

मुहा०—ज़िद पर आना = हठ करना। अड़ना। ज़िद चढ़ना = हठ धरना। ज़िद पकड़ना = हठ करना।

जिदियाना†–क्रि० अ० [हिं० ज़िद] ज़िद बाँधना। हठ करना।

जिद्द†–संज्ञा स्त्री० दे० "ज़िद"।

ज़िद्दी–वि० [फ़ा०] (१) ज़िद करनेवाला। हठी। अड़नेवाला। जैसे, ज़िद्दी लड़का। (२) दुराग्रही। दूसरे की बात न माननेवाला।

जिधर–क्रि० वि० [हिं० जिस् + धर (प्रत्य०)] जिस ओर। जहाँ।

मुहा०—जिधर तिधर = (१) जहाँ तहाँ। इधर उधर। (अब इसका कम प्रयोग है)। (२) बेठिकाने। बिना ठौर ठिकाने।

विशेष—समन्वय में इसके साथ 'उधर' का प्रयोग होता है जैसे, जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

जिन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) सूर्य्य। (३) बुद्ध। (४) जैनों के तीर्थंकर।

वि० [सं० यानि] 'जिस' का बहु वचन।

सर्व० 'जिस' का बहु वचन।

संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमान भूत।

ज़िना–संज्ञा पुं० [अ०] व्यभिचार। छिनाला।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—ज़िनाकार। ज़िना बिलजब्र।

ज़िनाकार–वि० [फ़ा०] [संज्ञा ज़िनाकारी] व्यभिचारी।

ज़िनाकारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पर-स्त्री-गमन। व्यभिचार।

ज़िना बिलजब्र–संज्ञा पुं० [अ०] किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा और सम्मति के विरुद्ध बलात् संभोग करना।

जिनिस–संज्ञा स्त्री० दे० 'जिंस'।

जिनिसवार–संज्ञा पुं० दे० "जिंसवार"।

जिन्ह†*–सर्व० दे० "जिन"।

जिभ्या*–संज्ञा स्त्री० दे० "जिह्वा"।

यौ०—जिल्दबंद । जिल्दसाज़ ।

(४) पुस्तक की एक प्रति ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकों का ग्रहण संख्या के अनुसार होता है। जैसे, दस जिल्द पद्मावत, एक जिल्द *रामायण ।*

(५) किसी पुस्तक का वह भाग जो पृथक् मिला हो। भाग। जैसे, दादूदयाल की बानी दो जिल्दों में छपी है।

जिल्दगर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जिल्दबंद।

जिल्दबंद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो किताबों की जिल्द बाँधता हो। जिल्द बाँधनेवाला।

जिल्दबंदी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पुस्तकों की जिल्द बाँधने का काम। जिल्दबँधाई ।

जिल्दसाज़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [संज्ञा जिल्दसाज़ी] जिल्दबंद

जिल्दसाज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जिल्दबंदी । किताबों पर जिल्द बाँधने का काम।

जिल्दी–वि० [अ०] त्वक संबंधी। त्वचा या चमड़े से संबंध रखनेवाला। जैसे, जिल्दी बीमारी।

ज़िल्लत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अनादर । अपमान । निरस्कार । बेइज़्ज़ती ।

मुहा०—ज़िल्लत उठाना=(१) अपमानित होना। (२) तुच्छ होना। हेठा ठहरना। ज़िल्लत देना=(१) अपमानित करना। (२) लज्जित करना। हतक करना। हेठा ठहराना। ज़िल्लत पाना=अपमानित होना।

(२) दुर्गति। दुर्दशा। हीन दशा। जैसे, ज़िल्लत में पड़ना या फँसना।

जिल्ली–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम में होता है और घर की छाजन आदि में लगता है।

जिवहोर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में काटा जाता है।

जिवा–संज्ञा पुं० दे० 'जीव'।

जिवाजिव–संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

जिष्णु–वि० [सं०] जीतनेवाला । विजय प्राप्त करनेवाला। विजयी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) इंद्र। (३) अर्जुन। (४) सूर्य्य। (५) वसु।

जिस–वि० [सं० य, यत्] 'जो' का वह रूप जो उसे विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ आने से प्राप्त होता है। जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से, जिस घोड़े पर, जिस घर में, इत्यादि।

सर्व० 'जो' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, जिसने, जिसको, जिससे, जिसका, जिस पर, जिसमें।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'उस' का प्रयोग होता है। जैसे, जिसको देंगे उससे लेंगे। पहले 'उस' के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था।

जिसिम–संज्ञा पुं० दे० "जिस्म"।

जिस्ता–संज्ञा पुं० (१) दे० "जस्ता"। ‡ (२) दे० "दस्ता"।

जिस्म–संज्ञा पुं० [फ़ा] शरीर। देह।

जिह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ह, सं० ज्या] चिल्ला। रोदा। ज्या। (धनुष)। उ०—तिय कित कमनैती पढ़ी बिन जिह भौंह कमान। चित चल बेझे चुकति नहिं बंक बिलोकनि बान।—बिहारी।

ज़िह्न–संज्ञा पुं० [अ०] समझ। बुद्धि। धारणा

मुहा०—ज़िह्न खुलना=बुद्धि का विकास होना। ज़िह्न लड़ना=बुद्धि का काम करना। बुद्धि पहुँचना। ज़िह्न लड़ाना=सोचना। बुद्धि दौड़ाना। ऊहापोह करना।

जिहाद–संज्ञा पुं० [अ०] (१) धर्म्म के लिये युद्ध। मज़हबी लड़ाई। धार्मिक युद्ध। (२) वह लड़ाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलंबियों से अपने धर्म्म के प्रचार आदि के लिये करते थे।

मुहा०—जिहाद का झंडा=वह पताका जो मुसलमान लोग भिन्न धर्मवालों से युद्ध करने के लिये लेकर चलते थे। जिहाद का झंडा *करना=मज़हब के नाम पर लड़ाई छेड़ना।*

जिहालत–संज्ञा स्त्री० [अ० जहालत] मूर्खता। अज्ञानता।

जिहासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग करने की इच्छा।

जिहासु–वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला।

जिहीर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हरने की इच्छा। लेने की इच्छा। हरण करने की कामना।

जिहीर्षु–वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला।

जिह्म–वि० [सं०] (१) वक्र। टेढ़ा। (२) दुष्ट। क्रूर प्रकृतिवाला। कुटिल। कपटी। (३) अप्रसन्न। खिन्न। (४) मंद।

संज्ञा पुं० (१) तगर का फूल। (२) अधर्म।

जिह्मग–वि० [सं०] (१) कुटिल गतिवाला। टेढ़ी चाल चलनेवाला। (२) मंदगति। धीमा। (३) कुटिल। कपटी। चालबाज़।

संज्ञा पुं० साँप।

जिह्मगति–संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

जिह्मगामी–वि० [सं० जिह्मगमिन्] [स्त्री० जिह्मगामिनी] (१) टेढ़ा चलनेवाला। (२) कुटिल। कपटी। चालबाज़। (३) मंदगामी। सुस्त। धीमा।

जिह्मता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ापन। वक्रता। (२) मंदता। धीमापन। (३) कुटिलता। कपट। चालबाज़ी।

जिह्ममेहन–संज्ञा पुं० [सं०] मेढ़क।

जिह्मशल्य–संज्ञा पुं० [सं०] खैर। खदिर। कत्था।

उ०—राकापति बाँका तिया बसै पुर पंडुर में उर में न चाह नेकु रीति कछु न्यारियै । लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करैं, धरैं हरि रूप हिये, ताही सों जियारि यै ।—प्रिया।

(३) जीवट । जिगरा । हृदय की दृढ़ता । साहस ।

जिरगा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) झुंड । गरोह । (२) मंडली ।

जिरह—संज्ञा पुं० [अ० जुरह] (१) हुज्जत । खुचुर (२) फेर फार के प्रश्न जिनसे उत्तरदाता घबड़ा जावे और सच्ची बात को छिपा न सके । ऐसी पूछ ताछ जो किसी से उसकी कही हुई बातों की सत्यता की जाँच के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जिरह काढ़ना वा निकालना = खोद विनोद करना । बहुत अधिक पूछ ताछ करना । बात में बात निकालना । खुचुर निकालना ।

(३) वह सूत की डोरी जो बैसर में ऊपर नीचे बय के गाँथने के लिये लगी रहती है । (जुलाहे) ।

ज़िरह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच । वर्म । बकतर ।

यौ०—जिरह पोश = जो बकतर पहने हों । कवची ।

ज़िरही—वि० [हिं० जिरह] जो जिरह पहने हो । कवचधारी ।

ज़िराअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] खेती । कृषि कर्म्म ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जिराअत पेशा—खेतिहर । किसान । कृषक ।

ज़िरायत—संज्ञा स्त्री० दे० "ज़िराअत" ।

जिराफा—संज्ञा पुं० [अ० ज़राफ] मरु भूमि का एक वन्य पशु । यह अफ्रीका की मरु भूमि में झुंडों में फिरा करता है । इसके पैरों में खुर होते हैं और इसका अगला धड़ पिछले से भारी होता है । गरदन इसकी ऊँट की सी लंबी होती है । यह अठारह फुट ऊँचा होता है । इसके सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोएँदार चमड़े से ढके रहते हैं । इसकी आँखें सुंदर और उभड़ी होती हैं जिनसे यह बिना सिर मोड़े पीछे देख सकता है । इसकी नाक की बनावट ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है । जीभ इसकी इतनी लंबी होती है कि यह उसे मुँह से सत्रह इंच बाहर निकाल सकता है । इसके शरीर पर हिरन के से रोएँ और बड़ी बड़ी चित्तियाँ होती हैं । यह ताड़ों और खजूरों की पत्तियाँ खाता है ।

जिरिया—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो जीरे की तरह पतला और लंबा होता है ।

जिला—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) चमक दमक । ओप । पानी ।

मुहा०—जिला करना वा देना = किसी वस्तु को माँज कर तथा रोगन आदि चढ़ा कर चमकाना । सिकली करना । जैसे, हथियारों पर जिला देना, तलवार पर जिला देना ।

यौ०—जिलाकार = सिकलीगर ।

(२) माँज कर तथा रोगन आदि चढ़ा कर चमकाने का कार्य्य । झलकाने की क्रिया । ओप देने का कार्य्य ।

ज़िला—संज्ञा पुं० [अ०] (१) प्रांत । प्रदेश । (२) भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर वा डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो । (३) किसी इलाके का छोटा विभाग वा अंश ।

यौ०—ज़िलादार ।

(४) किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुआ वह मकान जिसमें वह या उसके आदमी तहसील वसूल आदि के लिये ठहरते हों ।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था और जो थाप से बजाया जाता था ।

ज़िलादार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सरबराहकार । सज़ावल । (२) वह अफसर जिसे जमींदार अपने इलाके के किसी भाग में लगान वसूल करने के लिये नियत करता है । (३) वह छोटा अफसर जो नहर, अफीम आदि संबंधी किसी हलके में काम करने के लिये नियत हो ।

ज़िलादारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ज़िलेदार का काम ।

जिलाना—क्रि० स० [हिं० जीना का स०] (१) जीवन देना । जी डालना । ज़िंदा करना । जीवित करना । जैसे, मुर्दा जिलाना । †(२) पालना । पोसना । जैसे, तोता जिलाना, कुत्ता जिलाना । (इस क्रिया का प्रयोग प्रायः ऐसे ही पशुओं वा जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नहीं लेता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है । जैसे कुत्ता, बिल्ली, तोता, शेर, आदि । घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, बैल, आदि के लिये इसका प्रयोग नहीं होता) । (३) मरने से बचाना । मरने न देना । प्राण-रक्षा करना । जैसे, सरकार ने अकाल में लाखों आदमियों को जिला लिया । (४) धातु के भस्म को फिर धातु के रूप में लाना । मूर्छित धातु को पुनः जीवित करना ।

जिलासाज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सिकलीगर । हथियारों पर ओप चढ़ानेवाला ।

जिलाह*—संज्ञा पुं० [अ० जल्लाद ?] अत्याचारी । उ०—ज्वाला की जलन सी, जलाक जंग जालन की, जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहे की ।—पद्माकर ।

ज़िलेदार—संज्ञा पुं० दे० "ज़िलादार" ।

जिलेबी†—संज्ञा स्त्री० दे० "जलेबी" ।

जिल्द—संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० जिल्दी] (१) खाल । चमड़ा । खलड़ी । (२) ऊपर का चमड़ा । त्वचा । जैसे, जिल्द की बीमारी । (३) वह पट्ठा या दफ्ती जो किसी किताब की सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—बाँधना ।

बचना । प्राण बचना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झंझट या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । जी की निकालना=(१) मन की उमंग पूरी करना । दिल की हवस निकालना । मनोरथ पूरा करना । (२) हृदय का उद्गार निकालना । क्रोध, दुःख द्वेष आदि उद्वेग को बक झक कर शांत करना । बदला लेने की इच्छा पूरी करना । जी की जी में रहना=मनोरथों का पूरा न होना । मन में ठानी सोची या चाही हुई बातों का न होना । जी की पड़ना=प्राण बचाने की चिंता होना । प्राण बचाना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झंझट या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । उ०—सब असबाब डाढ़ो मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो जिय की परी सम्हारै सहन भँडार को ।—तुलसी । जी का=जीवटवाला । जिगरेवाला । साहसी । हिम्मतवर । दमदार । उ०—धनी धरनी के नीके आपुनी अनी के संग आवैं छरि जीके मो नजी के गरजी के सों ।—गोपाल । (किसी के) जी को जी समझना=किसी के विषय में यह समझना कि वह भी जीव है, उसे भी कष्ट होगा । दूसरे के कष्ट को समझना । दूसरे को क्लेश न पहुँचाना । दूसरे पर दया करना । जी को मारना=(१) मन की इच्छाओं को रोकना । चित्त के उत्साहों को न पूरा करना । (२) संतोष धारण करना । जी को न लगना=(१) चित्त में अनुभव होना । हृदय में वेदना होना । सहानुभूति होना । जैसे, दूसरों की पीड़ा आदि किसी के जी को नहीं लगती । (२) प्रिय लगना । भाना । अच्छा लगना । जी खटकना=(१) चित्त में खटका या संदेह उत्पन्न होना । (२) हानि आदि की आशंका से (किसी काम के करने से) जी हिचकना । (किसी से या किसी की ओर से) जी खट्टा करना=मन फेर देना । चित्त में घृणा या विरक्ति उत्पन्न कर देना । चित्त विरक्त करना । हृदय में दुर्भाव उत्पन्न करना । उ०—तुम्हीं ने मेरी ओर से उनका जी खट्टा कर दिया है । (किसी से या किसी की ओर से) जी खट्टा होना=चित्त हट जाना । मन फिर जाना या विरक्त होना । अनुराग न रहना । घृणा होना । जैसे, उस एक बात से उनकी ओर से मेरा जी खट्टा हो गया । जी खपाना=(१) चित्त तन्मय करना । (किसी काम में) जी लगाना । नितांत दत्तचित्त होना । जी तोड़ कर किसी काम में लगना । (२) प्राण देना । अत्यंत कष्ट उठाना । जी खुलना=संकोच छूट जाना । धड़क खुल जाना । किसी काम के करने में हिचक न रह जाना । जी खोल कर=(१) बेधड़क । बिना किसी संकोच के । बिना किसी प्रकार के भय या लज्जा के । बिना हिचके । जैसे, जो कुछ तुम्हें कहना हो जी खोल कर कहो । (२) जितना जी चाहे । बिना अपनी ओर से कोई कमी किए । मन माना । यथेष्ट । उ०—तुम हमें जी खोल कर गालियाँ दो, कोई चिंता नहीं । जी गँवाना=प्राण देना । जान खोना । जी गिरा जाना=जी बैठा जाना । तबीयत सुस्त होती जाना । शिथिलता आती जाना । जी घबराना=(१) चित्त व्याकुल होना । मन व्यग्र होना । (२) मन न लगना । जी ऊबना । जी चलना=(१) जी चाहना । इच्छा होना । (२) जी आना । चित्त मोहित होना । जी चला=(१) वीर । दिलेर । बहादुर । शूर । शूरमा । (२) दानवीर । दाता । दानी । उदार । दानशूर । (३) रसिक । सहृदय । जी चलाना=(१) इच्छा करना । मन दौड़ाना । चाह करना । (२) हिम्मत बाँधना । साहस करना । हौसला बढ़ाना । जी चाहना=मनोभिलाष होना । मन चलना । इच्छा होना । जी चाहे=(१) यदि इच्छा हो । यदि मन में आवे । जी चुराना=किसी काम या बात से बचने के लिये हीला हवाली करना या युक्ति रचना । किसी काम से भागना । जैसे, यह नौकर काम से जी चुराता है । जी छुपाना=दे० "जी चुराना" । जी छूटना=(१) हृदय की दृढ़ता न रहना । साहस दूर होना । निराश होना । नाउम्मेदी होना । उत्साह जाता रहना । (२) थकावट आना । शिथिलता आना । जी छोटा करना=(१) हृदय का उत्साह कम करना । मन उदास करना । (२) हृदय संकुचित करना । दान देने का साहस कम करना । उदारता छोड़ना । कंजूसी करना । जी छोड़ना=(१) प्राण त्याग करना । मरना । (२) हृदय की दृढ़ता खोना । साहस गँवाना । हिम्मत हारना । जी छोड़ कर भागना=हिम्मत हार कर बड़े वेग से भागना । एकदम भागना । ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना । जी जलना=(१) चित्त संतप्त होना । हृदय में संताप होना । चित्त में कुढ़ना और दुःख होना । क्रोध आना । गुस्सा लगना । (२) ईर्ष्या होना । डाह होना । जी जलाना=(१) चित्त संतप्त करना । हृदय में क्रोध उत्पन्न करना । कुढ़ाना । चिढ़ाना । (२) हृदय में दुःख उत्पन्न करना । रंज पहुँचाना । दुखी करना । चित्त व्यथित करना । सताना । (३) ईर्ष्या या डाह उत्पन्न करना । जी जानता है=हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता । सही हुई कठिनाई, दुःख पीड़ा आदि वर्णन के बाहर है । जैसे, (क) मार्ग में जो जो कष्ट हुए जी ही जानता है । (ख) उसने इतनी मार खाई है कि जी ही जानता होगा । ('जी जानता होगा' भी बोला जाता है) । जी जान लड़ाना=मन लगाना । दत्तचित्त होना । जी जान से लगना=हृदय से प्रवृत्त होना । सारा ध्यान लगा देना । एकाग्र चित्त होकर तत्पर होना । उ०—वह जी जान से इस काम में लगा है । किसी को जी जान से लगी है=कोई हृदय से तत्पर है । किसी की घोर इच्छा और प्रयत्न है । कोई सारा ध्यान लगा कर उद्यत है । कोई बराबर इसी चिंता और उद्योग में है । उ०—उसे जी जान से लगी है कि मकान बन

जिह्मित–वि० [सं०] घूमा हुआ । फिरा हुआ । चकित । विस्मित ।

जिह्मीकृत–वि० [सं०] झुकाया हुआ । टेढ़ा किया हुआ ।

जिह्वक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें जीभ में काँटे पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोला नहीं जाता, जीभ लड़खड़ाती है । इसकी अवधि सोलह दिन की है । इसमें श्वास कास आदि भी हो जाते हैं । इस रोग में रोगी प्रायः गूँगे वा बहरे हो जाते हैं ।

जिह्वल–वि० [सं०] जिभला । चटूटू । चटोरा ।

जिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभ ।

जिह्वाग्र–संज्ञा पुं० [सं०] जीभ की नोक । टूँड़ ।

मुहा०—जिह्वाग्र करना = कंठस्थ करना । ज़बानी याद करना । किसी विषय को इस प्रकार रटना या घोखना कि उसे जब चाहे तब कह डाले । जिह्वाग्र होना = ज़बानी याद होना ।

जिह्वाजप–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें केवल जिह्वा ही हिलने का विधान है ।

जिह्वाप–संज्ञा पुं० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं । जैसे कुत्ते, बिल्ली, सिंह, आदि ।

जिह्वामूल–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ वा पिछला स्थान ।

जिह्वामूलीय–वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से संबंध रखता हो । संज्ञा पुं० वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वामूल से हो । शिक्षा के अनुसार ऐसे वर्ण अयोगवाह होते हैं और वे संख्या में दो हैं ⌣क और ⌣ख । क और ख के पहले विसर्ग आने से वे जिह्वामूलीय हो जाते हैं । कोई कोई वैयाकरण कवर्ग मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं ।

जिह्वारद–संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी ।

जिह्वारोग–संज्ञा पुं० [सं०] जीभ का रोग । सुश्रुत के मत से यह पाँच प्रकार का होता है । तीन प्रकार के कंटक जो वात पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, चौथा अलास जिसमें जीभ के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ उपजिह्विका जिसमें जिह्वा के मूल में सूजन हो आती है और लार टपकती है । इन पाँचों में अलास असाध्य है । इसमें जीभ के तले की सूजन बढ़ कर पक जाती है ।

जिह्वालिह्–संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

जिह्वाशल्य–संज्ञा पुं० [सं०] खदिर । खैर । कत्था ।

जिह्विका–संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी ।

जींगना–संज्ञा पुं० [सं० जृंगण] खद्योत । जुगनू । उ०—दसहू दिसि जोति जगामगी होति अनुपम जींगन जालन की ।—गंग । (ख) बिरह जरी लखि जींगननि कही मुवह कै वार । अरी आउ उठि भीतरै बरसत आज अँगार ।—बिहारी ।

जी–संज्ञा पुं० [सं० जीव] (१) मन । दिल । तबीयत । चित्त । उ०—(क) कहत नसाइ होइ हिय नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ।—तुलसी । (२) हिम्मत । दम । जीवट । (३) संकल्प । विचार । इच्छा । चाह ।

मुहा०—जी अच्छा होना = चित्त स्वस्थ होना । रोग आदि की पीड़ा वा बेचैनी न रहना । नीरोग होना । उ०—दो तीन दिन तक बुखार रहा, आज जी अच्छा है । किसी पर जी आना = किसी से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम में अनुरक्त होना । जी उकताना = चित्त का उचाट होना । चित्त न लगना । एक ही अवस्था में बहुत काल तक रहते रहते परिवर्त्तन के लिये चित्त व्यग्र होना । तबीयत घबड़ाना । जैसे, तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो जी उकता गया । जी उचटना = चित्त न लगना । चित्त का प्रवृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य्य, वस्तु वा स्थान आदि से विरक्ति होना । उ०—अब तो इस काम से मेरा जी उचट गया । जी उठना = दे० "जी उचटना" । जी उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनुरक्त न रहना । जी उड़ जाना = भय आशंका आदि से चित्त सहसा व्यग्र हो जाना । चित्त चंचल हो जाना । धैर्य्य जाता रहना । जी में घबराहट होना । उ०—उसकी बीमारी का हाल सुनते ही मेरा तो जी उड़ गया । जी उदास होना = चित्त खिन्न होना । जी उलट जाना = (१) मन का वश में न रहना । चित्त चंचल और अव्यवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त हो जाना । होश हवास जाता रहना । (२) मन फिर जाना । चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिम्मत करना । हौसला करना । साहस करना । (२) जी चाहना । इच्छा होना । जैसे, अब तो जी करता है कि यहाँ से चल दें । जी काँपना = भय आशंका आदि से कलेजा धक धक करना । हृदय थर्राना । डर लगना । जैसे, वहाँ जाने का नाम सुनते ही जी काँपता है । जी का बुखार निकालना = हृदय का उद्वेग बाहर करना । क्रोध, शोक दुःख आदि के वेग को रो कलप कर या बक झक कर शांत करना । ऐसे क्रोध या दुःख को शब्दों द्वारा प्रकट करना जो बहुत दिनों से चित्त को संतप्त करता रहा हो । जी का बोझ हलका होना = ऐसी बात का दूर होना जिसकी चिंता चित्त में बराबर रहती आई हो । खटका मिटना । चिंता दूर होना । जी की अमान माँगना = प्राण रक्षा की प्रतिज्ञा की प्रार्थना करना । किसी काम के करने या किसी बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राण रक्षा करने या अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करना जिसके विषय में यह निश्चय हो कि उसे उस काम के होने या उस बात के सुनने से अवश्य दुःख पहुँचेगा । जैसे, यदि किसी राजा से कोई अप्रिय बात कहनी हुई तो लोग पहले यह कह लेते हैं कि "जी का अमान पाऊं तो कहूँ" । जी की था लगना = [illegible]

खिसलना=चित्त का (किसी की ओर) आकर्षित होना। मन खिंचना। हृदय अनुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुभाना। जी फीका होना=दे० "जी खट्टा होना"। जी बँटना=(१) जी बहलाना। चित्त का किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि कोई दुःख या चिंता की बात भूल जाय। (२) चित्त का एकाग्र न रहना। चित्त का एक विषय में पूर्ण रूप से न लगा रहना, दूसरी बातों की ओर भी चला जाना। ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भंग होना। मन उचटना। जैसे, काम करते समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो जी बँट जाता है। (३) एकांत प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अनन्य प्रेम न रहना। जी बँद होना=दे० "जी फिरना"। जी बढ़ना=(१) चित्त प्रसन्न या उत्साहित होना। हौसला बढ़ना। (२) साहस बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना=(१) उत्साह बढ़ाना। किसी विषय में प्रवृत्त करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में अधिक रुचि उत्पन्न करना। हौसला बढ़ाना। जैसे, लड़कों का जी बढ़ाने के लिये इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य्य की सफलता की आशा बँधा कर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य्य में होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिला कर उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना। हिम्मत बँधाना। जी बहलना=(१) चित्त का किसी विषय में लग कर आनंद अनुभव करना। चित्त का आनंदपूर्वक लीन होना। मनोरंजन होना। जैसे, थोड़ी देर खेल लेने से जी बहल जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जैसे, मित्रों के यहाँ आ जाने से कुछ जी बहल जाता है, नहीं तो दिन रात उस बात का दुःख बना रहता है। जी बहलाना=(१) रुचि के अनुकूल किसी विषय में लग कर चित्त प्रसन्न करना। ध्यान को किसी ओर लगा कर आनंद अनुभव करना। मनोरंजन करना। उ०—कभी कभी *जी बहलाने के लिये ताश भी खेल लेते हैं।* (२) चित्त को किसी ओर लगा कर दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जी बिखरना=(१) चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्च्छा होना। बेहोशी होना। जी बिगड़ना=(१) जी मचलाना। मतली छूटना। कै करने की इच्छा होना। (२) मिटकना। घृणा करना। घिन मालूम होना। जी बुरा करना=कै करना। उलटी करना। वमन करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना=किसी के प्रति अच्छा भाव न रखना। किसी के प्रति बुरी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा या क्रोध करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना=दूसरे का ख्याल खराब करना। बुरी धारणा उत्पन्न करना। क्रोध घृणा या दुर्भाव उत्पन्न करना। जी बुरा होना=(१) कै होना। उलटी होना। (२) ख्याल खराब होना। चित्त में दुर्भाव या घृणा उत्पन्न होना। जी बैठ जाना=(१) चित्त विह्वल होता जाना। चित्त ठिकाने न रहना। चैतन्य न रहना। मूर्च्छा सी आना। उ०—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है और जी बैठा जाता है। (२) मन मरना। उदासी होना। जी भिटकना=चित्त में घृणा होना। घिन मालूम होना। जी भरना (क्रि० अ०)=(१) चित्त संतुष्ट होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। मन अघाना। और अधिक की इच्छा न रह जाना। जैसे, (क) अब जी भर गया और न खाएँगे। (ख) तुम्हारी बातों ही से जी भर गया, अब जाते हैं। (व्यंग्य)। (२) मन की अभिलाषा पूरी होने से आनंद और संतोष होना। जैसे, लो मैं आज यहाँ से चला जाता हूँ, अब तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन मानना। मन में घृणा न होना। उ०—ऐसे गंदे बरतन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भर कर=जितना और जहाँ तक जी चाहे। मन माना। यथेष्ट। उ०—तुम हमें जी भर कर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जी भरना (क्रि० स०)=चित्त विश्वासपूर्ण करना। चित्त का संदेह दूर करना। चित्त से किसी बात की बुराई या धोखा आदि खाने की आशंका दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिल जमई करना। उ०—यों तो घोड़े में कोई ऐब नहीं है पर आप दस आदमियों से पूछ कर अपना जी भर लीजिए। जी भर आना=हृदय का करुणा या शोक के आवेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख या करुणा का उद्रेक होना। दुःख या दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख या दया का वेग उठना कि आँखों में आँसू आ जाय। हृदय का करुणा से विह्वल होना। जी भरभरा उठना=रोमांच होना। हृदय के किसी आकस्मिक आवेग से चित्त विह्वल हो जाना। (अपना) जी भारी करना=चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना=तबीयत अच्छी न होना। किसी रोग या पीड़ा आदि के कारण सुस्ती जान पड़ना। शरीर अच्छा न रहना। जी भुरभुराना=किसी की ओर चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलाना=दे० "जी मतलाना"। जी मतलाना=चित्त में उलटी या कै करने की इच्छा होना। वमन करने को जी चाहना। जी मर *जाना=मन* में उमंग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना=चित्त में दुःख या पछतावा होना। अफसोस होना। जैसे, गाँठ के चार पैसे *निकालते जी मलमलाता है।* जी *मारना*=(१) चित्त की उमंग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) संतोष धारण करना। सब्र करना। (किसी से) जी मिलना=चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति

जाय। जी टूट जाना = उत्साह भंग हो जाना। उमंग या हौसला न रह जाना। नैराश्य होना। उदासीनता होना। उ०—उनकी बातों से हमारा जी टूट गया, अब कुछ न करेंगे। जी टँगा रहना, होना = चित्त में ध्यान या चिंता रहना। जी में खटका बना रहना। चित्त चिंतित रहना। उ०—(क) जब तक तुम लौट कर नहीं आओगे मेरा जी टँगा रहेगा। (ख) उसका कोई पत्र नहीं आया, जी टँगा है। जी ठंढा होना = (१) चित्त शांत और संतुष्ट होना। अभिलाषा पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना। चित्त में संतोष और प्रसन्नता होना। उ०—वह यहाँ से निकाल दिया गया, अब तो तुम्हारा जी ठंढा हुआ? जी ठुकना = (१) मन को संतोष होना। चित्त स्थिर होना। (२) चित्त में दृढ़ता होना। साहस होना। हिम्मत बँधना। दे० "छाती ठुकना"। जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना। जीवित करना। (२) प्राणरक्षा करना। मरने से बचाना। (३) हृदय मिलाना। प्रेम करना। जी डूबना = (१) बेहोशी होना। मूर्छा आना। चित्त विह्वल होना। (२) चित्त स्थिर न रहना। घबराहट और बेचैनी होना। चित्त व्याकुल होना। जी ढहा जाना = दे० "जी बैठा जाना"। जी तपना = जी जलना। चित्त क्रोध से संतप्त होना। क्रोध चढ़ना। उ०—सुनि गज जूह अधिक जिउ तपा। सिंह जात कहुँ रह नहिं छपा।—जायसी। जी तरसना = किसी वस्तु या बात के अभाव से चित्त व्याकुल होना। किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त अधीर या दुखी होना। किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना। जैसे—(क) तुम्हारे दर्शन के लिये जी तरसता था। (ख) जब तक बंगाल में थे रोटी के लिये जी तरस गया। जी दहलना = भय या आशंका से चित्त डाँवाडोल होना। डर से हृदय काँपना। डर के मारे जी ठिकाने न रहना। अत्यंत भय लगना। जी-दान = प्राणदान। प्राण-रक्षा। जीदार = जीवटवाला। दृढ़ हृदय का। साहसी। हिम्मत-वर। बहादुर। बड़े दिल का। जी दुखना = चित्त को कष्ट पहुँचना। हृदय में दुःख होना। उ०—ऐसी बात क्यों बोलते हो जिससे किसी का जी दुखे। जी दुखाना = चित्त व्यथित करना। हृदय को कष्ट पहुँचाना। दुःख देना। सताना। उ०—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या लाभ? जी देना = (१) प्राण खोना। मरना। (२) दूसरे की प्रसन्नता या रक्षा के लिये प्राण देने के लिये प्रस्तुत रहना। प्राण से बढ़ कर प्रिय समझना। अत्यंत प्रेम करना उ०—वह तुम पर जी देता है और तुम उससे भागे फिरते हो। जी दौड़ना = मन चलना। इच्छा होना। लालसा होना। जी धँसा जाना = दे० "जी बैठा जाना" जी धड़कना = (१) भय या आशंका से चित्त स्थिर न रहना। कलेजा धक धक करना। डर के मारे हृदय में घबराहट होना। डर लगना। (२) चित्त में दृढ़ता न होना। साहस न पड़ना। हिम्मत न पड़ना। उ०—चार पैसे पास से निकालते जी धड़कता है। जी धक धक करना = कलेजे का भय आदि के आवेग से ज़ोर ज़ोर उछलना। जी धड़कना। डर लगना। जी धक धक होना = दे० "जी धक धक करना"। जी निकलना = (१) प्राण छूटना। प्राण निकलना। मृत्यु होना। (२) भय से चित्त व्याकुल होना। डर लगना। प्राण सूखना। उ०—अब तो उधर जाते इसका जी निकलता है। (३) प्राणांत कष्ट होना। कष्ट बोध होना। उ०—तुम्हारा रुपया तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है? जी निढाल होना = चित्त का स्थिर न रहना। चित्त ठिकाने न रहना। चित्त विह्वल होना। हृदय व्याकुल होना। जी पक जाना = किसी अप्रिय बात को नित्य देखते देखते या सुनते सुनते चित्त दुखी हो जाना। किसी बार बार होनेवाली बात का चित्त को असह्य हो जाना। और अधिक सहने की सामर्थ्य चित्त में न रहना। उ०—नित्य तुम्हारी जली कटी बातें सुनते सुनते जी पक गया। जी पड़ना = (१) शरीर में प्राण का संचार होना। जैसे, गर्भ के बालक को जी पड़ना। (२) मृतक के शरीर में प्राण का संचार होना। मरे हुए में जान आना। जी पकड़ लेना = कलेजा थामना। किसी असह्य दुःख के वेग को दबाने के लिये हृदय या छाती पर हाथ रख लेना। जी पकड़ा जाना = मन में संदेह पड़ जाना। माथा ठनकना। कोई भारी खटका पैदा हो जाना। कोई भारी आशंका चित्त में उठना। (क्वि०) उ०—तार आते ही मेरा तो जी पकड़ा गया। जी पर आ बनना = प्राणों पर आ बनना। प्राण बचाना कठिन हो जाना ऐसे भारी संकट या झंझट में फँस जाना कि पाछा छुड़ाना कठिन हो जाय। जी पर खेलना = प्राण को संकट में डालना। जान को आफत में डालना। जान पर जोखों उठाना। ऐसा काम करना जिसमें प्राण जाने का भय हो। जी पानी करना = (१) लहू पानी एक करना। प्राण देने और लेने की नौबत लाना। भारी आपत्ति खड़ी करना। (२) चित्त कोमल या दयार्द्र करना। जी पानी होना = चित्त कोमल या दयार्द्र होना। जी पिघलना = (१) दया से हृदय द्रवित होना। चित्त का दयार्द्र होना। (२) हृदय का प्रेमार्द्र होना। चित्त में स्नेह का संचार होना। जी पीछे पड़ना = दिल बहलना। चित्त बँटना। मन का किसी ओर लग जाना जिसमें दुःख की बात कुछ भूल जाय। (क्वि०)। जी फट जाना = हृदय मिला न रहना। चित्त में पहले का सा सद्भाव या प्रेमभाव न रह जाना। प्रीति भंग होना। प्रेम में अंतर पड़ जाना। चित्त विरक्त होना। किसी की ओर से चित्त खिन्न हो जाना। जी फिर जाना = मन हट जाना। चित्त विरक्त हो जाना। चित्त अनुरक्त न रहना। हृदय में घृणा या अरुचि उत्पन्न हो जाना। उ०—जब किसी से जी फिर जाता है तब फिर वह बात चित्त नहीं रह जाती। जी

स्तब्ध होना। भय, आशंका, क्षीणता, आदि से अंगों की गति शिथिल हो जाना। चित्त विह्वल होना। जी सांय सांय करना=दे० "जी सनसनाना"। जी से=जी लगा कर। ध्यान देकर। पूर्ण रूप से दत्तचित्त होकर। उ०—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु या व्यक्ति का) जी से उतर जाना=दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति की) इच्छा या चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह या श्रद्धा न रह जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्ति हो जाना। भला न जँचना। हेय या तुच्छ हो जाना। बेकदर हो जाना। जी से जाना=प्राण विहीन होना। मरना। जान खो बैठना। उ०—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी मिलना=(१) हृदय के भाव परस्पर एक होना। एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति या वस्तु से) जी हट जाना=चित्त विरक्त हो जाना। चित्त प्रवृत्त या अनुरक्त न रह जाना। इच्छा या चाह न रह जाना। उ०—(क) ऐसे कामों से अब हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एक दम हट गया। जी हवा होना=प्राण निकल जाना। मृत्यु होना। जी हवा हो जाना=किसी भय या आशंका की बात से चित्त ठिकाने न रह जाना। किसी भय दुःख या शोक के सहसा उपस्थित होने पर चित्त स्तब्ध हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी घबरा जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना=(१) किसी का भाव अपने प्रति अच्छा रखना। किसी को प्रसन्न रखना। राजी रखना। मन मैला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटका न पैदा होने देना। दिलासा दिए रहना। जी हाथ में लेना=दे० "जी हाथ में रखना"। जी हारना=(१) किसी काम से घबरा या ऊब जाना। हैरान होना। पस्त होना। (२) हिम्मत हारना। साहस छोड़ना। जी हिलना=(१) भय से हृदय काँपना। जी दहलना। (२) करुणा से हृदय क्षुब्ध होना। दया से चित्त उद्विग्न होना।

अव्य० [सं० जित्, प्रा० जिव=विजयी या स० (श्री) युत, प्रा० जुक, हिं० जू] एक सम्मानसूचक शब्द जो किसी के नाम या अल्ल के आगे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में जो संक्षिप्त प्रतिसंबोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। उ०—(क) श्री रामचन्द्र जी, पंडित जी, त्रिपाठी जी, लाला जी, इत्यादि। (ख) कथन—ये आम कैसे मीठे हैं। उत्तर—जी हाँ, बेशक। (ग) प्रश्न—तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास! उत्तर—जी हाँ! (या केवल) जी!

विशेष—प्रश्न या केवल संबोधन में 'जी' का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता, जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी! तुम कहाँ थे? अथवा (ख) देखो जी! यह जाने न पावे। स्वीकार करने या हामी भरने के अर्थ में 'जी हाँ' के स्थान में कभी कभी केवल 'जी' बोलते हैं, जैसे प्रश्न—तुम वहाँ गए थे? उत्तर—जी! (अर्थात् हाँ)।

जीअ*—संज्ञा पुं० दे० "जी" "जीव"।

जीअन*†—संज्ञा पुं० दे० "जीवन"।

जीउ—संज्ञा पुं० दे० "जीव"।

जीगा—संज्ञा पुं० [तु०] तुर्रा। सिरपेच। कलगी।

जीजा—संज्ञा पुं० [हिं० जीजी] बड़ी बहिन का पति। बड़ा बहनोई।

जीजी—संज्ञा स्त्री० [स० देवी, हिं० देई, दीदी] बड़ी बहिन। उ०—कीजे कहा जीजी जू! सुमित्रा परि पायँ कहैं तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है।—तुलसी।

जीजूराना—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

जीत—संज्ञा स्त्री० [स० जिति, वैदिक० जीति] (१) युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता। जय। विजय। फतह।

क्रि० प्र०—होना।

(२) किसी ऐसे कार्य्य में सफलता जिसमें दो या अधिक विरुद्ध पक्ष हों। जैसे, मुकदमे में जीत, खेल में जीत, बाजी में जीत। (३) लाभ। फायदा। उ०—तुम्हारी तो हर तरह से जीत है, इधर से भी लो उधर से भी।

संज्ञा स्त्री० [?] जहाज़ में पाल का तुनाम (लश०)।

संज्ञा० स्त्री० दे० "जीति"।

जीतना—क्रि० स० [हिं० जीत+ना (प्रत्य०)] (१) युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना। शत्रु को हराना। विजय प्राप्त करना। जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना। उ०—रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत।—तुलसी। (२) किसी ऐसे कार्य्य में सफलता प्राप्त करना जिसमें दो या अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हों। जैसे, मुकदमा जीतना, खेल में जीतना, बाजी जीतना, जुए में रुपया जीतना।

जीता—वि० [हिं० जीना] (१) जीवित। जो मरा न हो। (२) तौल या नाप में ठीक से कुछ बढ़ा हुआ। जैसे, ज़रा जीता तौलो।

जीतालू—संज्ञा पुं० [स० आलु] अरारोट।

जीता लोहा—संज्ञा पुं० [हिं० जीना+लोहा] चुंबक। मेकनातीस।

जीति—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता का नाम। यह जमुना के किनारे से नैपाल तक तथा अवध बिहार और छोटा नागपुर में होती है। इसके रेशे बहुत मज़बूत होते हैं और रस्सी बनाने के काम में आते हैं। इन रेशों को टोगुस कहते हैं। इन रेशों से धनुष की डोरी बनती है।

होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित्त पटना। **जी में आना**=(१) मन में भाव उठना। चित्त में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना। इरादा होना। संकल्प होना। उ०—तुम्हारे जो जी में आवे करो। **जी में घर करना**=मन में स्थान करना। हृदय में किसी का ध्यान जम जाना। हृदय में बराबर किसी का ध्यान बना रहना। **जी में गड़ना या खुभना**=(१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय में अंकित हो जाना। चित्त में बराबर ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूरति जिय में खुभी।—सूर। **जी में जलना**=(१) हृदय में क्रोध के कारण संताप होना। मन में कुढ़ना। (२) मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। **जी में जी आना**=चित्त ठिकाने होना। चित्त की घबराहट दूर होना। चित्त शांत और स्थिर होना। चित्त की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की आशंका या भय मिट जाना। उ०—जब वह उस स्थान से सकुशल लौट आया तब मेरे जी में जी आया। **जी में जी डालना**=(१) चित्त संतुष्ट और स्थिर करना। चित्त का खटका दूर करना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिलाना। इतमीनान कराना। दिलजमई करना। **जी में डालना**=मन में विचार लाना। सोचना। जैसे, मैं तुम्हारे साथ कोई बुराई करूँगा ऐसी बात कभी जी में न डालना। **जी में धरना**=(१) मन में लाना। चित्त में किसी बात का इसलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चल कर उसके अनुसार कोई कार्य्य करें। ख्याल करना। (२) मन में बुरा मानना। नाराज होना। बैर रखना। उ०—माधव जू जो जन तें बिगरै। तउ कृपालु करुणा-मय केशव प्रभु नहिं जीय धरै।—सूर। **जी में पैठना**=(१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान में अंकित होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित्त से न हटना या भूलना। **जी में बैठना**=(१) मन में स्थिर होना। चित्त में निश्चय होना। चित्त में निश्चित धारणा होना। मन में सत्य प्रतीत होना। उ०—उन्होंने जो बातें कहीं वे मेरे जी में बैठ गईं। (२) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (३) हृदय पर अंकित हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। **जी में रखना**=(१) चित्त में विचार धारण करना। ख्याल बनाए रखना। चित्त में इसलिये किसी बात का ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चल कर उसके अनुसार कोई कार्य्य करें। (२) मन में बुरा मानना। बैर रखना। द्वेष रखना। कीना रखना। उ०—उसे चाहे जो कहो वह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय में गुप्त रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में लिए रहना। उ०—इस बात को जी में रक्खो, किसी से कहो मत। (किसी का) **जी रखना**=(किसी का) मन रखना। मन की बात होने देना। मन की अभिलाषा पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उत्साह भंग न करना। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। उ०—जब वह बारबार इसके लिये कहता है तब उसका भी जी रख दो। **जी रुकना**=(१) जी घबराना। (२) जी हिचकना। चित्त प्रवृत्त न होना। **जी लगना**=चित्त तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित्त प्रवृत्त होना। उ०—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) **जी लगना**=चित्त का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। **जी लगाना**=(१) तत्पर होना। दत्तचित्त होना। **जी लगा रहना, होना**=चित्त में ध्यान बना रहना। जी में खटका लगा रहना। चित्त चिंतित रहना या होना। उ०—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं आया जी लगा है। **किसी से जी लगाना**=किसी से प्रेम करना। **जी लड़ाना**=(१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में तत्पर होना। (२) मन का पूर्ण रूप से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। **जी लरजना**=दे० "जी काँपना"। **जी ललचना**=(१) जी में लालच होना। चित्त में किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। किसी चीज के पाने के लिये जी तरसना। उ०—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं को देख कर जी ललच गया। (२) चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। **जी ललचाना**=(१) (क्रि० अ०) दे० "जी ललचना"। (२) (क्रि० स०) दूसरे के चित्त में लालच उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसाना। उ०—दूर से दिखा कर क्यों उसका जी ललचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुभाना। मन मोहित करना। **जी लुटना**=मन मोहित होना। मन मुग्ध होना। हृदय प्रेमासक्त होना। **जी लुभाना**=(१) (क्रि० स०) चित्त आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में प्रीति उपजाना। सौंदर्य्य आदि गुणों के द्वारा मन खींचना। (२) (क्रि० अ०) चित्त आकर्षित होना। मन मोहित होना। उ०—उसे देखते ही जी लुभा जाता है। **जी लूटना**=मन मोहित करना। चित्त आकर्षित करना। **जी लेना**=जी चाहना। जी करना। चित्त का इच्छुक होना। उ०—वहाँ जाने को हमारा जी नहीं लेता। (दूसरे का) **जी लेना**=प्राण हरण करना। मार डालना। **जी लोटना**=जी छटपटाना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित्त व्याकुल होना। चित्त का अत्यंत इच्छुक होना। ऐसी इच्छा होना कि रहा न जाय। **जी सन होना**=भय आशंका आदि से चित्त स्तब्ध हो जाना। जी धक हो जाना। डर के मारे चित्त ठिकाने न रहना। होश उड़ जाना। जैसे, उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। **जी सनसनाना**=(१) चित्त

जिस स्थान पर जीभ लार-युक्त मांस और झिल्ली द्वारा दूसरे स्थान के मांस आदि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र वा बंधन होते हैं जो जीभ की गति नियत वा स्थिर रखते हैं। इन्हीं बंधनों के कारण जीभ की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती। बहुत से बच्चों की जीभ में यह बंधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे बोल नहीं सकते। बंधनों को हटा देने से बच्चे बोलने लगते हैं। रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य की जीभ का बड़ा भारी कार्य कंठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है। इन्हीं विभेदों से वर्णों की उत्पत्ति होती है, जिनसे भाषा का विकास होता है। इसी से जीभ को वाणी भी कहते हैं।

पर्य्या०—जिह्वा। रसना। रसज्ञा। रसाल। रसिका। सालुसवा। रसला। रसांका। ललना।

मुहा०—जीभ करना = बहुत बढ़ कर बोलना। ढिठाई से उत्तर देना। जीभ खोलना = मुँह से कुछ बोलना। शब्द निकालना। उ०— अब जहाँ जीभ खोली कि पिटे। जीभ चलना = भिन्न भिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीभ का हिलना डोलना। स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चंचल होना। चटोरेपन की इच्छा होना। उ०—जीभ चलै बल ना चलै, बहै जीभ जरि जाय। जीभ थोड़ी करना = कम बोलना। बकवाद कम करना। अधिक न बोलना। उ०—मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जानै दधि की चोरी। हाथ नचावति आवति ग्वालिनि जीभ न करही थोरी।—सूर। जीभ निकालना = (१) जीभ बाहर करना। (२) जीभ खींचना। जीभ उखाड़ लेना। जीभ पकड़ना = बोलने न देना। बोलने से रोकना। जीभ बढ़ाना = चटोरपन की आदत होना। जीभ बंद करना = बोलना बंद करना। जबान न खोलना। चुप रहना। जीभ हिलाना = मुँह से कुछ बोलना। छोटी जीभ = गलशुंडी। किसी की जीभ के नीचे जीभ होना = किसी का अपनी कही हुई बात को बदल जाना। एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना।

(२) जीभ के आकार की कोई वस्तु, जैसे निब।

मुहा०—कलम की जीभ = कलम का वह भाग जो छील कर नुकीला किया रहता है।

जीभा—संज्ञा पुं० [हिं० जीभ] (१) जीभ के आकार की कोई वस्तु जैसे, कोल्हू का पच्चर। (२) चौपायों की एक बीमारी जिसमें उनकी जीभ के काँटे सूज या बढ़ आते हैं और उनसे खाते नहीं बनता। बेरुरी। अवार। (३) चौपायों की आँख की एक बीमारी जिसमें आँख का मांस बढ़ कर लटक आता है।

जीभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ] (१) धातु की बनी एक पतली लचीली और धनुषाकार वस्तु जिससे जीभ छील कर साफ करते हैं। (२) मैल साफ करने के लिये जीभ छीलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

(३) निब। (४) छोटी जीभ। गलशुंडी। (५) चौपायों का एक रोग। दे० "जीभा"। (६) लगाम का एक भाग।

जीभीचाभा—संज्ञा पुं० [हिं० जीभ + चभना] चौपायों का एक रोग। दे० "जीभा"।

जीमट—संज्ञा पुं० [सं० जीमूत = पोषण करनेवाला] पेड़ों और पौधों के धड़, शाखा, और टहनी आदि के भीतर का गूदा।

जीमना—क्रि० स० [सं० जेमन] भोजन करना। आहार करना। खाना। उ०—काबा फिर काशी भया राम जो भया रहीम। मोटा चुन मैदा भया बैठि कबीरा जीम।—कबीर।

जीमूत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत। (२) मेघ। बादल। (३) मुस्ता। मोथा। नागर मोथा। (४) देवताड़ वृक्ष। (५) इंद्र। (६) पोषण करनेवाला। रोजी या जीविका देनेवाला। (७) घोषा लता। (८) सूर्य्य। (९) एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है। (१०) एक मल्ल का नाम जो विराट की सभा में रहता था और भीम के द्वारा मारा गया था। (११) हरिवंश के अनुसार दशार्ह के पौत्र का नाम। (१२) ब्रह्मांड पुराण में शाल्मली द्वीप के एक राजा जो वपुष्मत् के पुत्र थे। (१३) शाल्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम। (१४) एक प्रकार का दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और ग्यारह रगण होते हैं। यह प्रचित के अंतर्गत है।

जीमूतमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघ से उत्पन्न मोती।

विशेष—रत्नपरीक्षा विषयक प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है। बृहत्संहिता, अग्निपुराण, गरुड़पुराण, युक्तिकल्पतरु आदि ग्रंथों में भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आज तक देखा नहीं गया। बृहत्संहिता में लिखा है कि मेघ से जिस प्रकार ओले उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है। जिस प्रकार ओले बादल से गिरते हैं उसी प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे बीच ही में उड़ा लेते हैं। सारांश यह कि यह मुक्ता मनुष्यों को अलभ्य है। न देखने पर भी प्राचीन आचार्य इसका लक्षण बतलाने से नहीं चूके हैं और उन्होंने इसे मुरगी के अंडे की तरह गोल, ठोस और वजनी बतलाया है। इसकी कांति सूर्य्य की किरन के समान कही गई है। इसे यदि तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय।

जीमूतवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) शालिवाहन राजा का पुत्र। आश्विन कृष्ण ८ को पुत्र कामनावाली स्त्रियाँ इनका पूजन करती हैं। (३) जीमूतकेतु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नागानंद का नायक है। (४) धर्मरत्न नामक स्मृति-संग्रहकार।

जीन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) घोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी। चारजामा। काठी।

यौ०—जीनपोश।

(२) पलान। कजावा। (३) एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा।

*वि० [सं० जीर्ण] (१) पुराना। जर्जर। कटा फटा। (२) वृद्ध।

जीनत–संज्ञा स्त्री [फ़ा०] (१) शोभा। छवि। खूबसूरती। (२) सजावट। शृंगार।

जीनपोश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जीन के ऊपर ढकने का कपड़ा। काठी का ढँकना।

जीनसवारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े पर जीन रख कर चढ़ने का कार्य्य। उ०—जैसे यह घोड़ा जीनसवारी में रहता है।

जीना–क्रि० स० [सं० जीवन] (१) जीवित रहना। सजीव रहना। जिंदा रहना। न मरना। जैसे, (क) यह कुत्ता अभी मरा नहीं है जीता है। (ख) वह अभी बहुत दिन जीएगा। उ०—अरविंद सो आनन रूप मरंद अनंदित लोचन भृंग पिये। मन मों न बस्यो ऐसो बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिये?—तुलसी।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) जीवन के दिन बिताना। जिंदगी काटना। जैसे, ऐसे जीने से तो मरना अच्छा।

मुहा०—जीता जागता=जीवित और सचेत। भला चंगा। जीता लहू=देह से ताजा निकला हुआ खून। जीती मक्खी निगलना=(१) जान बूझ कर कोई अन्याय वा अनुचित कर्म करना। सरासर बेईमानी करना। उ०—उससे रुपया पाकर मैं कैसे इनकार करूँ? इस तरह जीती मक्खी तो नहीं निगली जाती। (२) जान बूझ कर बुराई में फँसना। जान बूझ कर आपत्ति वा संकट में पड़ना। जीते जी=(१) जीवित अवस्था में। जिंदगी रहते हुए। उपस्थिति में। बने रहते। आछत। उ०—(क) मेरे जीते जी तो ऐसा कभी न होने पावेगा। (ख) उसके जीते जी कोई एक पैसा नहीं पा सकता। (२) जब तक जीवन है। जिंदगी भर। उ०—मैं जीते जी आप का उपकार कभी नहीं भूल सकता। जीते जी मर जाना=जीवन में ही मृत्यु से बढ़ कर कष्ट भोगना। किसी भारी विपत्ति वा मानसिक आघात से जीवन भारी होना। जीवन का सारा सुख और आनंद जाता रहना। जीवन नष्ट होना। उ०—(क) पोते के मरने से तो हम जीते जी मर गए। (ख) इस चोरी से जीते जी मर गए। जीते रहो=एक आशीर्वाद जो बड़ों की ओर से प्रणाम आदि के उत्तर में छोटों को दिया जाता है। जब तक जीना तब तक सीना=जिंदगी भर किसी काम में लगे रहना। उ०—पेट के पेट बेगारहि में जब लौं जियना तब लौं सियना है।—पद्माकर। जीना भारी हो जाना=जीवन कष्टमय हो जाना। जीवन का सुख और आनंद जाता रहना।

(३) प्रसन्न होना। प्रफुल्लित होना। जैसे, उसके नाम पर तो वह जी उठता है।

संयो० क्रि०—उठना।

मुहा०—अपनी खुशी जीना=अपने ही सुख से आनंदित होना।

जीभ–संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्व, प्रा० जिब्भ] (१) मुँह के भीतर रहनेवाली लंबे चिपटे मांस पिंड के आकार की वह इंद्रिय जिससे कटु, अम्ल, तिक्त इत्यादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है। ज़बान। जिह्वा। रसना।

विशेष—जीभ मांस पेशियों और स्नायुओं से निर्मित है। पीछे की ओर यह नाल के आकार की एक नरम हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वास्थि कहते हैं। नीचे की ओर यह दाढ़ के मांस से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली झिल्ली से ढकी है जिसमें से बराबर लार छूटती रहती है। नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोशमय होता है और उसी पर वे उभार होते हैं जो काँटे कहलाते हैं। ये उभार या काँटे कई आकार के होते हैं, कोई अर्द्ध चंद्राकार, कोई चिपटे और कोई नोक वा शिखा के रूप के होते हैं। जिन मांस पेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के मांस तथा शरीर के और भागों से जुड़ी है उन्हीं के बल से यह इधर उधर हिल डोल सकती है। स्नायुओं में जो महीन महीन शाखा-स्नायु होती हैं उनके द्वारा स्पर्श तथा शीत उष्ण आदि का अनुभव होता है। इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुओं का जाल जिह्वा के अग्र भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श या रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है। इन स्नायुओं के उत्तेजित होने से ही स्वाद का बोध होता है। इसी से कोई अधिक मीठी या सुस्वाद वस्तु मुँह में लेकर कभी लोग जीभ चटकारते या दबाते हैं। द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है। १२८ अंश गरम जल में एक मिनट तक जीभ डुबो कर यदि उस पर कोई वस्तु रक्खी जाय तो खट्टे मीठे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। कई वृक्ष ऐसे हैं जिनकी पत्तियाँ चबा लेने से भी यह ज्ञान थोड़ी देर के लिये नष्ट हो जाता है। वस्तुओं का कुछ अंश काँटों में लग कर और घुल कर छिद्रों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं में पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है। अतः यदि कोई वस्तु अत्यंत सूखी, कड़ी है तो उसका स्वाद हमें जल्दी नहीं जान पड़ेगा। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि घ्राण का रसना के स्वाद से विशेष संबंध है। कोई वस्तु खाते समय हम उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं।

गरम जल ६ महीने तक डालता जाय। इसके पीछे फिर पत्थर की मिट्टी दे। तीन वर्ष में ये सब वस्तुएँ एक सिल के रूप में जम जाँयगी। उस सिल को लेकर बुकनी कर डाले और उसका पात्र बनावे। ऐसे पात्र में भोजन करना बहुत अच्छा है। भोजन यदि विष आदि द्वारा दूषित होगा तो ऐसे पात्र में पता चल जायगा। यदि महाविष होगा तो यह पात्र टूट जायगा और यदि साधारण होगा तो उसमें छींटे आदि पड़ जाँयगे।

जीर्णोद्धार–संज्ञा पुं० [सं०] फटी पुरानी टूटी फूटी वस्तुओं का फिर से सुधार। पुनः संस्कार। मरम्मत।

विशेष—पूर्व स्थापित शिवलिंग या मंदिर आदि के जीर्णोद्धार की विधि आदि अग्निपुराण में विस्तार से दी हुई है।

जील–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जीर] (१) धीमा शब्द। मध्यम स्वर। नीचा सुर। (२) तबले या ढोल का बाँया। उ०—जात कहूँ ते कहूँ को चल्यो सुर टीप न लागत तान धरे की। आदर सो समुझे न परे मिलि भ्राम रहे जति जील परे की। —रघुनाथ।

जीला†*–वि० [[सं० झिल्ली] [स्त्री० झीली] (१) झीना। पतला। (२) महीन। उ०—झिल्ली तें रसीली जीली राँटेहूँ की रटलीली स्यारि तें सवाई भूत भावनी ते आगरी।—केशव।

जीलानी–संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का लाल रंग। यह बबूल, करवेरी, मजीठ, पतंग और लाह को बराबर लेकर और पानी में उबाल कर बनाया जाता है।

जीवंजीव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकोर पक्षी। (२) एक वृक्ष का नाम।

जीवंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राण। (२) ओषधि। (३) जीवशाक। वि० जीता जागता।

जीवंतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वनस्पति या पौधा जो दूसरे पेड़ के ऊपर उत्पन्न होता और उसी के आहार से बढ़ता है। बाँदा। (२) गुरुच। गुडूची। (३) जीव शाक। (४) जीवंती लता। (५) एक प्रकार की हड़ जो पीले रंग की होती है। (६) शमी।

जीवंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक लता जिसकी पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसकी टहनियों में से दूध निकलता है। फल गुच्छों में लगते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—बृहज्जीवंती, पीली जीवंती और तिक्त जीवंती। तिक्त जीवंती को डोड़ी कहते हैं। (२) एक लता जिसके फूलों में मीठा मधु या मकरंद होता है। (३) एक प्रकार की हड़ जो पीली होती है और गुजरात काठियावाड़ की ओर से आती है। इसका गुण बहुत उत्तम माना जाता है (४) बाँदा। (५) गुडूची। (६) शमी।

जीव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणियों का चेतन तत्त्व। जीवात्मा। आत्मा। (२) प्राण। जीवनतत्त्व। जान। जैसे, इस हिरन में अब जीव नहीं है। (३) प्राणी। जीवधारी। इंद्रिय विशिष्ट शरीरी। जानदार। जैसे, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि। उ०—(क) जे जड़ चेतन जीव जहाना।—तुलसी। (ख) किसी जीव को सताना अच्छा नहीं।

यौ०—जीवजंतु=(१) जानवर। प्राणी। (२) कीड़ा मकोड़ा। (४) जीवन। (५) विष्णु। (६) बृहस्पति। (७) अश्लेषा नक्षत्र। (८) बकायन का पेड़।

जीवक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राण धारण करनेवाला। (२) क्षपणक। (३) सँपेरा (४) सेवक। (५) ब्याज लेकर जीविका करनेवाला। सूदखोर। (६) पीतसाल वृक्ष। (७) एक जड़ी या पौधा। भाव प्रकाश के अनुसार यह पौधा हिमालय के शिखरों पर होता है। इसका कंद लहसुन के कंद के समान और इसकी पत्तियाँ महीन और सारहीन होती हैं। इसकी टहनियों में बारीक काँटे होते हैं और दूध निकलता है। यह अष्ट वर्ग औषध के अंतर्गत है और इसका कंद मधुर बलकारक और कामोद्दीपक होता है। ऋषभ और जीवक दोनों एक ही जाति के गुल्म हैं, भेद केवल इतना ही है कि ऋषभ की आकृति बैल के सींग की तरह होती है और जीवक की झाड़ू की सी।

पर्य्या०—कूर्चशीर्ष। मधुरक। शृंग। ह्रस्वांग। जीवन। दीर्घायु। प्राणद। भृंगाह्व। प्रिय। चिरंजीवी। मँगला। आयुष्मान्। बलद।

जीवजीव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोरपक्षी।

जीवट–संज्ञा स्त्री० [सं० जीवथ] हृदय की दृढ़ता। जिगरा। साहस। हिम्मत। मरदानगी।

जीवत्तोका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो। जीवत्पुत्रिका।

जीवत्पति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री।

जीवत्पितृक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका पिता जीवित हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य के लिये अमास्नान, गयाश्राद्ध, दक्षिणमुख भोजन, तथा मूछें मुड़ाने आदि का निषेध है। ऐसा मनुष्य यदि निरग्नि ब्राह्मण है तो उसे वृद्धि छोड़ और कोई श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है। साग्निक जीवत्पितृक सब श्राद्ध कर सकता है।

जीवथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राण। (२) कूर्म। (३) मयूर। (४) मेघ।

वि० (१) धार्मिक। (२) दीर्घायु। चिरजीवी।

जीवद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवनदाता। (२) वैद्य। (३) जीवक पौधा। (४) जीवंती। (५) शत्रु।

जीमूतवाही—संज्ञा पुं० [सं० जीमूतवाहिन्] धूम। धुआँ।

जीया†*—संज्ञा पुं० दे० "जीव"। "जी"।

जीयट—संज्ञा पुं० दे० "जीवट"।

जीयति†*—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीना] जीवन। जिंदगी। उ०—तोहि सोंहि लगि आँखिनि सों आँखें मिली रहें जीयति को यहै लहा।—हरिदास।

जीयदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवदान] प्राणदान। जीवनदान। प्राणरक्षा। उ०—बालक काज धर्म जनि छाँड़ौ राय न ऐसी कीजै हो। तुम मानी वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो।—सूर।

जीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीरा। (२) फूल का जीरा। केसर। उ०—रघुराज पंकज को जीर नहिं बेधै हीर धरौं किमि धीर पावै पीर मन मोर है।—रघुराज। (३) खड्ग। तलवार। (४) अणु।

वि० क्षिप्र। तेज। जल्दी चलनेवाला।

*संज्ञा पुं० [फ़ा० जिरह] जिरह। कवच। उ०—कुंडन के ऊपर कड़ाके उठें ठौर ठौर, जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गान के।—भूषण।

*वि० [सं० जीर्ण] जीर्ण। पुराना। जर्जर। उ०—मनहु मरी इक वर्ष की भयो तासु तन जीर। करपत कर महि पर गिरी गयो सुखाय शरीर।—रघुराज।

जीरा—संज्ञा पुं० [सं० जीरक, फ़ा० ज़ीरः] (१) डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें सौंफ की तरह फूलों के गुच्छे लंबी सींकों में लगते हैं। पत्तियाँ बहुत बारीक और दूब की तरह लंबी होती हैं। बंगाल और आसाम को छोड़ भारत में यह सर्वत्र अधिकता से बोया जाता है। लोगों का अनुमान है कि यह पश्चिम के देशों से लाया गया है। मिस्र देश तथा भूमध्य सागर के माल्टा आदि टापुओं में यह जंगली पाया जाता है। माल्टा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है। जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने जाते हैं—सफेद और स्याह अथवा श्वेत और कृष्ण जीरक। सफेद वा साधारण जीरा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है, पर स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है कारमीर, लद्दाख़, अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान तथा गढ़वाल और कुमाऊँ से आता है। काश्मीर और अफ़ग़ानिस्तान में तो यह खेतों में और तृणों के साथ उगता है। माल्टा आदि पश्चिम के देशों से जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह स्याह जीरे की जाति का है और उसी की तरह छोटा छोटा और तीव्र गंध का होता है। वैद्यक में यह कटु, उष्ण, दीपक तथा अतीसार, गृहणी, कृमि और कफ-वात को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्य्या०—जरण। अजाजी। कणा। जीर्ण। जीर। दीप्य। जीरण। अजाजिका। वह्निशिख। मागध। दीपक।

(२) जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज। (३) फूलों का केसर। फूलों के बीज का महीन सूत।

जीरक—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।

जीरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।

*वि० दे० "जीर्ण"।

जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री नाम की घास।

जीरी—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। यह पंजाब के करनाल जिले में अधिक होता है। इसके दो भेद हैं—एक रमाली, दूसरा रामजमानी।

जीरीपटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूल।

जीर्ण—वि० [सं०] (१) बहुत बुड्ढा। बुढ़ापे से जर्जर। (२) पुराना। बहुत दिनों का। जैसे, जीर्ण ज्वर। (३) जो पुराना होने के कारण टूट फूट गया हो या कमजोर हो गया हो। फटा पुराना। उ०—(क) जीरण पट कुपीन तनु धारी।—सूर। (ख) का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे।—तुलसी।

यौ०—जीर्ण शीर्ण=फटा पुराना। टूटा फूटा।

(४) पेट में अच्छी तरह पचा हुआ। जठराग्नि में जिसका परिपाक हुआ हो। परिपक्व। जैसे जीर्ण अन्न, अजीर्ण।

संज्ञा पुं० जीरा।

जीर्णज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना बुखार। वह ज्वर जिसे रहते बारह दिन से अधिक हो गए हों।

विशेष—किसी किसी के मत से प्रत्येक ज्वर अपने आरंभ के दिन से ७ दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनों के पीछे, जब रोगी का शरीर दुर्बल और रूखा हो जाय तथा उसे क्षुधा न लगे और उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण' कहलाता है।

जीर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुढ़ापा। बुढ़ाई। (२) पुरानापन।

जीर्णदारु—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारक वृक्ष। विधारा।

जीर्णपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टिका लोध। पठानी लोध।

जीर्णपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कदंब का पेड़।

जीर्णवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रांत मणि।

जीर्णा—वि० [सं०] वृद्धा। बुढ़िया।

संज्ञा स्त्री० काली जीरी।

जीर्णास्थि-मृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सड़ा कर बनाई हुई मिट्टी।

विशेष—ऐसी मिट्टी बनाने की विधि शब्दार्थचिंतामणि नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है। जहां शिलाजीत निकलता हो वहां एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरों और मनुष्यों की हड्डियों से भर दे। ऊपर से सज्जीखार, नमक, गंधक और

के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है, अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनी और त्रिगुणमयी है और मैं नित्य और चैतन्य स्वरूप हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

जीवन्मृत—वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो। जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हो। जिसका जीवन सार्थक या सुखमय न हो।

विशेष—जो अपने कर्त्तव्य से विमुख और अकर्मण्य हो, जो सदा कष्ट ही भोगता रहे, जो बड़ी कठिनता से अपना पोषण कर सकता हो, जो अतिथि आदि का सत्कार न करता हो ऐसा मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्मृत कहलाता है।

जीवन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्त्तियों की प्राणप्रतिष्ठा का मंत्र।

जीवपति—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मराज।

संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री। सुहागिनी स्त्री।

जीवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री।

जीवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती।

जीवपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्रजीव वृक्ष। जियापोता का पेड़। (२) इंगुदी का वृक्ष।

जीवपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृहज्जीवंती। बड़ी जीवंती।

जीवप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

जीवबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] गुल दुपहरिया। बंधुजीव। बंधूक।

जीवभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता।

जीवमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, धनदा, नंदा, विमला, मंगला, बला और पद्मा नाम की सात देवियां जो माता के समान जीवों का पालन और कल्याण करती हैं। (विधान-पारिजात)

जीवयाज—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं से किया जानेवाला यज्ञ।

जीवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव सृष्टि। जीव जंतु। जानवर।

जीवरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का रज जो गर्भ धारण के उपयुक्त हुआ हो। (सुश्रुत के अनुसार यह पंचभौतिक होता है अर्थात् जिन पंच भूतों से जीवों की उत्पत्ति होती है वे इसमें होते हैं)

जीवरा*†—संज्ञा पुं० [हिं०] जीव। प्राण। उ०—साईं सेती चोरिया चोरा सेती गुज्झ। तब जानैगा जीवरा मार परैगी तुज्झ।—कबीर।

जीवरि†—संज्ञा स्त्री० [सं० जीव या जीवन] जीवन। प्राण धारण की शक्ति। उ०—बीज मम माली मदन तुर थालवाल भयो। प्रेम पय सींच्यो पहिल ही सुभग जीवरि दयो।—सूर।

जीवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सैंहली। (२) सिंहपिप्पली।

जीवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] भूलोक। पृथ्वीतल। मर्त्यलोक।

जीववल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली।

जीववृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीव का गुण या व्यापार। (२) पशु पालने का व्यवसाय।

जीवशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो मालवा देश में अधिक होता है। सुसना।

जीवशुक्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवसंक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

जीवसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। धान।

जीवसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीता हो।

जीवसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो। जीवत्तोका।

जीवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में वह स्थान जहाँ जीव रहता है। मर्मस्थान। हृदय।

जीवहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राणियों का वध। (२) प्राणियों के वध का दोष।

जीवहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणियों की हत्या। जीवों का वध।

जीवांतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवों का वध करनेवाला। (२) व्याध। बहेलिया।

जीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह सीधी रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो। ज्या। (२) धनुष की डोरी। (३) जीवंती। (४) बालवच। वचा। (५) भूमि। (६) जीवन। (७) जीवनोपाय। जीविका।

जीवाजून†—संज्ञा पुं० [सं० जीवयोनि] जीव जंतु। प्राणी मात्र। पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि। उ०—पी फाटी पगरा हुआ जागे जीवाजून। सब काहू को देत है चोंच समाना चून।—कबीर।

जीवातुमत्—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्काम यज्ञ का एक देवता जिससे आयु की प्रार्थना की जाती है। (आश्व० श्रौतसूत्र)

जीवात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणियों की चेतन वृत्ति का कारण स्वरूप पदार्थ। जीव। आत्मा। प्रत्यगात्मा।

विशेष—शरीर से भिन्न एक जीवात्मा है। इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में दिए गए हैं। सांख्य दर्शन में आत्मा को 'पुरुष' कहा है और उसे नित्य, त्रिगुण-शून्य, चेतन-स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ, द्रष्टा, विवेकी, सुख-दुःख-शून्य, मध्यस्थ और उदासीन माना है। आत्मा या पुरुष अकर्त्ता है, कोई कार्य नहीं करता, सब कार्य प्रकृति करती है। प्रकृति के कार्य को हम

जीवदान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने वश में आए हुए शत्रु या अपराधी को न मारने, या छोड़ देने का कार्य। प्राणदान। प्राणरक्षा। उ०—खड्ग लै ताहि भगवान मारन चले रुक्मिणी जोरि कर विनय कीयो। दोष इन कियो मोहि क्षमा प्रभु कीजिए भद्र करि शीश जिवदान दीयो।—सूर।

जीवधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह संपत्ति जो जीवों या पशुओं के रूप में हो। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट आदि। (२) जीवन धन। प्राणप्रिय। प्यारा।

जीवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सब जीवों की आधार स्वरूपा, पृथ्वी।

जीवधारी—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणी। जानवर। चेतन जंतु।

जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जीवित] (१) जीवित रहने की अवस्था। जन्म और मृत्यु के बीच का काल। वह दशा जिस में प्राणी अपनी इंद्रियों द्वारा चेतन व्यापार करते हैं। जिंदगी। उ०—अपने जीवन में ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी थी।

यौ०—जीवनचरित। जीवनचर्य्या।

मुहा०—जीवन भरना = जीवन व्यतीत करना। जिंदगी के दिन काटना।

(२) जीवित रहने का भाव। जीने का व्यापार वा भाव। प्राणधारण। जैसे, अन्न ही से तो मनुष्य का जीवन है।

यौ०—जीवनदाता। जीवनधन। जीवनमूरि।

(३) जीवित रखनेवाली वस्तु। जिसके कारण कोई जीता रहे। प्राण का अवलंब। जैसे, जल ही मनुष्य का जीवन है। (४) प्राणाधार। परमप्रिय। प्यारा। (५) वृत्ति। जीविका। (६) जल। पानी। (७) मज्जा। (८) वात। वायु। (९) ताजा घी या मक्खन। (१०) जीवक नामक औषध। (११) पुत्र। (१२) परमेश्वर। (१३) गंगा।

जीवनचरित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवन का वृत्तांत। जीवन में किए हुए कार्य्यों आदि का वर्णन। जिंदगी का हाल। (२) वह पुस्तक जिसमें किसी के जीवन भर का वृत्तांत हो।

जीवनचरित्र—संज्ञा पुं० दे० "जीवनचरित"।

जीवनधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवन का सर्वस्व। जीवन में सबसे प्रिय वस्तु वा व्यक्ति। (२) प्राणाधार। प्यारा। प्राणप्रिय। उ०—सुकवि सरद-नभ मन उडुगन से। रामभगत जन जीवनधन से।—तुलसी।

जीवनबूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हिं० बूटी] एक पौधा या बूटी जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह मरे हुए आदमी को भी जिला सकती है। संजीवनी।

जीवनमूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + मूल] (१) संजीवनी नाम की जड़ी। (२) अत्यंत प्रिय वस्तु या व्यक्ति। प्यारी। प्राणप्रिया।

जीवनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित। जीवनवृत्तांत। जीवनी।

जीवनवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित। जिंदगी भर का हाल। जीवनी।

जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीविका। जीवनोपाय। प्राण-रक्षा के लिये उद्यम। रोज़ी।

जीवनहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन रक्षा का साधन। जीविका। रोज़ी।

विशेष—गरुड़ पुराण में दस प्रकार की जीविका बतलाई गई हैं—विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, विपणि, कृषि, वृत्ति, भिक्षा और कुसीद।

जीवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महौषध। (२) जीवंती लता।

क्रि० अ० दे० "जीना"।

जीवनावास—वि० [सं०] जल में रहनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वरुण। (२) देह। शरीर।

जीवनि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवनी] (१) संजीवनी बूटी (२) जिलानेवाली वस्तु। प्राणाधार। (३) अत्यंत प्रिय वस्तु। उ०— गहली गरब न कीजिए समय सुहागहि पाय। जिय की जीवनि जेठ सो माह न छाँह सुहाय।—बिहारी।

जीवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली। (२) तिक्त जीवंती। डोड़ी। (३) मेद (४)। महामेद (५) जूही।

संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + ई० (प्रत्य०)] जीवन भर का वृत्तांत। जीवनचरित। जिंदगी का हाल।

जीवनीय—वि० [सं०] (१) जीवनप्रद। (२) जीविका करने योग्य। बरतने योग्य।

संज्ञा पुं० (१) जल। (२) जयंती वृक्ष। (३) दूध। (डिं०)

जीवनीय गण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में बलकारक औषधों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत अष्टवर्ग पर्णिनी, जीवंती, मधूक और जीवन हैं। वाग्भट्ट के मत से जीवनीय गण ये हैं—जीवंती, काकोली, मेद, मुद्गपर्णी' माषपर्णी, ऋषभक, जीवक और मधूक।

जीवनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता।

जीवनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सैंहली वृक्ष।

जीवनोपाय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का उपाय। जीविका। वृत्ति। रोज़ी।

जीवनौषध—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित दशा में ही आत्मज्ञान द्वारा सांसारिक मायाबंधन से छूट गया हो।

विशेष—वेदांतसार में लिखा है कि जिसने अखंड चैतन्य स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान-द्वारा अज्ञान का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और जो अज्ञान तथा अज्ञान के कार्य पाप पुण्य एवं संशय भ्रम आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है। मोक्ष और योग

क्रि० वि० दे० "जो"।

संज्ञा दे० "जू"।

जुआँ–संज्ञा पुं० [सं० यूका, प्रा० जूआ] [स्त्री० अल्प० जुई] एक छोटा कीड़ा जो मैलेपन के कारण सिर के बालों में पड़ जाता है। जूँ। ढील।

जुआँरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआँ] जुआँ। छोटी जुआँ।

† संज्ञा स्त्री० दे० "ज्वार"।

जुआ–संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूत] वह खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। रुपए पैसे की बाजी लगा कर खेला जानेवाला खेल। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। द्यूत।

विशेष—जुआ कौड़ी पासे ताश आदि कई वस्तुओं से खेला जाता है, पर भारत में कौड़ियों से खेलने का प्रचार आज कल विशेष है। इसमें चित्ती कौड़ियों को लेकर फेंकते हैं और चित पड़ी हुई कौड़ियों की संख्या के अनुसार दावों की हार जीत मानते हैं। सोलह चित्ती कौड़ियों से जो जुआ खेला जाता है उसे सोलही कहते हैं। उ०—थाछो जनम अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुआ ज्यों हारयो।—सूर।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।

संज्ञा पुं० [सं० युज = जोड़ना] (१) गाड़ी छकड़े हल आदि की वह लकड़ी जो बैलों के कंधों पर रहती है। (२) जाँते या चक्की की मूँठ।

जुआचोर–संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + चोर] (१) वह जुआरी जो अपना दाँव जीत कर खिसक जाय। (२) धोखेबाज। धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला। ठग। वंचक।

जुआचोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआ + चोरी] ठगी। धोखेबाजी। वंचकता।

क्रि० प्र०—करना।

जुआठा–संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + काठ] हल में लगनेवाला वह लकड़ी का ढाँचा जो बैलों के कंधों पर रहता है।

जुआनो–संज्ञा स्त्री० दे० "अजवानी"।

जुआर–संज्ञा स्त्री० दे० "ज्वार"।

जुआरदासी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जुआर भाटा–संज्ञा पुं० दे० "ज्वार भाटा"।

जुआरा–संज्ञा पुं० [हिं० जोतार] उतनी धरती जितनी एक जोड़ी बैल एक दिन में जोत सकें।

जुआरी–संज्ञा पुं० [हिं० जुआ] जुआ खेलनेवाला।

जुइना † संज्ञा पुं० [सं० यूनि = बंधन या जोड़] घास या फूस को ऐंठ कर बनाई हुई रस्सी जो बोझ बाँधने के काम में आती है।

जुईं–संज्ञा स्त्री० [हिं० जूँ] (१) छोटी जुआँ। (२) एक छोटा कीड़ा जो मटर, सेम इत्यादि की फलियों में लग कर उन्हें नष्ट कर देता है।

जुई–संज्ञा स्त्री० [?] बरछी के आकार का काठ का बना वह पात्र जिससे हवन में घी छोड़ा जाता है। स्रुवा।

जुकाम–संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ + घाम ?] अस्वस्थता या बीमारी जो सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर में कफ उत्पन्न हो जाने के कारण नाक और मुँह से कफ निकलता है, ज्वरांश रहता है, सिर भारी रहता है और दर्द करता है। सरदी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—मेंडकी को जुकाम होना = किसी मनुष्य में कोई ऐसी बात होना जिसकी उसमें कोई संभावना न हो। किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या जो उसके स्वभाव या अवस्था के विरुद्ध हो।

जुग–संज्ञा पुं० [सं० युग] (१) युग।

मुहा०—जुग जुग = चिर काल तक। बहुत दिनों तक। जैसे, जुग जुग जीयो।

(२) जोड़ा। जत्था। गुट्ट। दल। गोल।

मुहा०—जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना। अलग अलग हो जाना। दल टूटना। मंडली तितर बितर होना। उ०—सामने शत्रु सेना के दल खड़े थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लगे और उनके जुग टूट गए। (२) किसी दल या मंडली में एकता या मेल न रहना। जुग फूटना = जोड़ा खंडित होना। साथ रहनेवाले दो मनुष्यों में से किसी एक का न रहना।

(३) चौसर के खेल में दो गोटियों का एक ही कोठे में इकट्ठा होना। जैसे, जुग टूटा कि गोटी मरी। (४) वह डोरा जिसे जुलाहे तारों को अलग अलग रखने के लिये ताने में डाल देते हैं। (५) पुरत। पीढ़ी।

जुगजुगाना–क्रि० अ० [हिं० जगना = प्रज्वलित होना] (१) मंद मंद और रह रह कर प्रकाश करना। मंद ज्योति से चमकना। टिमटिमाना। जैसे, तारों का जुगजुगाना। उ०—कोठरी के कोने में एक दीया जुगजुगा रहा था। (२) अवनत या हीन दशा से क्रमशः कुछ उन्नत दशा को प्राप्त होना। कुछ कुछ उभरना। कुछ कीर्ति या समृद्धि प्राप्त करना। कुछ बढ़ना या नाम करना। जैसे, वे इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि बीच ही में चल बसे।

जुगजुगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगजुगाना] एक चिड़िया जिसे शकरखोरा भी कहते हैं।

जुगत–संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] (१) युक्ति। उपाय। तदबीर। ढंग।

क्रि० प्र०—करना।

अपना (आत्मा का) कार्य समझते हैं। यह भ्रम है। न आत्मा कुछ काम करता है न सुख दुःखादि फल भोगता है। सुख दुःख आदि भोग करना बुद्धि का धर्म्म है। आत्मा न वद्ध होती है न मुक्त होती है। कठोपनिषद में आत्मा का परिमाण अंगुष्ठ मात्र लिखा है। इस पर सांख्य के भाष्यकार विज्ञानभिक्षु ने बतलाया है कि अंगुष्ठ मात्र से अभिप्राय अत्यंत सूक्ष्म से है। योग और वेदांत दर्शन भी आत्मा को सुख दुःख आदि का भोक्ता नहीं मानते। न्याय, वैशेषिक और मीमांसा दर्शन आत्मा को कर्मों का कर्त्ता और फलों का भोक्ता मानते हैं। वेदांत दर्शन में जीवात्मा और परमात्मा एक ही माना गया है। उपाधियुक्त होने से ही जीवात्मा अपने को पृथक् समझता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवात्मा ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। सांख्य वेदांत योग आदि सभी जीवात्मा को नित्य मानते हैं। बौद्ध दर्शन के अनुसार जैसे सब पदार्थ क्षणिक हैं उसी प्रकार आत्मा भी। जीवात्मा एक क्षण में उत्पन्न होता है और दूसरे क्षण में नष्ट हो जाता है। अतः क्षणिक ज्ञान का नाम ही आत्मा है। इस क्षणिक ज्ञान के अतिरिक्त कोई नित्य वा स्थिर आत्मा नहीं। माध्यमिक शाखा के बौद्ध तो इस क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा को भी नहीं स्वीकार करते; सब कुछ शून्य मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती तो सब अवस्थाओं में बनी रहती। योगाचार शाखा के बौद्ध आत्मा को क्षणिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान और दूसरा आलय विज्ञान। जाग्रत और सुप्त अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और सुषुप्ति अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे आलय विज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान आत्मा ही को होता है। जैन दर्शन भी आत्मा को चिरस्थायी और प्रत्येक प्राणी में पृथक् पृथक् मानता है। उपनिषदों में जीवात्मा का स्थान हृदय माना गया है पर आधुनिक परीक्षाओं से यह बात अच्छी तरह प्रकट हो चुकी है कि समस्त चेतन व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्क को ब्रह्मांड भी कहते हैं। दे० "आत्मा"।

पर्य्या०—पुनर्भवी। जीव। असुमान्। सत्त्व। देहभृत्। चेतन।

जीवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा का आश्रय स्थान। हृदय। (उपनिषदों में जीव का स्थान हृदय माना गया है)

जीवानुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्गाचार्य मुनि जो बृहस्पति के वंश में हुए हैं। किसी के मत से ये बृहस्पति के छोटे भाई भी कहे जाते हैं। उ०—भापत हम जीवानुज बानी। जा मँह होइ सकल दुख हानी।—गोपाल।

जीवास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किए हुए कर्म के अनुसार शुभाशुभ गति में जानेवाला और सम्यक् ज्ञानादि के वश से कर्म समूह का नाश करनेवाला जीव। यह तीन प्रकार का माना गया है, अनादिसिद्ध, मुक्त और वद्ध। अनादिसिद्ध अर्हत् हैं जो सब अवस्थाओं में अविद्या आदि के दुःख और बंधन से मुक्त तथा अणिमादि सिद्धियों से संपन्न रहते हैं।

जीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन का निर्वाह हो। भरण पोषण का साधन। जीवनोपाय। वृत्ति। उ०—जीविका विहीन लोग सिद्यमान, सोच वस कहैं एक एकनि सों कहाँ जाइ का करी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जीविका लगना = भरण पोषण का उपाय होना। रोज़ी का ठिकाना होना। जीविका लगाना = भरण पोषण का उपाय करना। जीवननिर्वाह का उपाय करना। रोज़ी का ठिकाना करना।

जीवित—वि० [सं०] जीता हुआ। जिंदा।

संज्ञा पुं० जीवन। प्राणधारण।

यौ०—जीवितेश।

जीवितेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणनाथ। प्यारा व्यक्ति। प्राणों से बढ़ कर प्रिय व्यक्ति। (२) यम। (३) इंद्र। (४) सूर्य्य। (५) देह में स्थित इड़ा और पिंगला नाड़ी।

जीवी—वि० [सं० जीविन्] (१) जीनेवाला। प्राणधार। (२) जीविका करनेवाला। जैसे, श्रमजीवी।

जीवेश—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर।

जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वप्न सुषुप्ति और जाग्रत इन तीनों अवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं।

जीह*—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ, सं० जिह्वा] जीभ। जबान। उ०—(क) जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से।—तुलसी। (ख) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहरौ जो चाहसि उजियार।—तुलसी। (ग) नाम जीह जपि जागहिं जोगी।—तुलसी।

जीहि*—संज्ञा स्त्री० दे० "जीह"।

जुँई—संज्ञा स्त्री० दे० "जुई"।

जुंग—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारक वृक्ष। विधारा।

जुंडी—संज्ञा स्त्री० दे० "जुन्दरी"। "ज्वार"।

जुंदर—संज्ञा पुं० [?] बंदर का बच्चा। (कलंदरों की बोली)।

जुंबली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुंबा] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़।

जुंबिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चाल। गति। हरकत। हिलना डोलना।

मुहा०—जुंबिश खाना = हिलना डोलना।

जु*—वि० दे० "जो"।

दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना प्रयास या आघात के वे अलग न हो सकें। दो वस्तुओं का बँधने चिपकने सिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर एक होना। संबद्ध होना। संश्लिष्ट होना। जुड़ना। जैसे, इस खिलौने का टूटा सिर गोंद से नहीं जुटता, गिर गिर पड़ता है।

संयो० क्रि०— जाना।

विशेष—मिल कर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों के संबंध में इस क्रिया का प्रयोग नहीं होता।

(२) एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के बीच अवकाश न रहे। दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट होना कि एक का कोई पार्श्व दूसरे के किसी पार्श्व से छू जाय। भिड़ना। सटना। लगा रहना। जैसे, मेज इस प्रकार रखो कि चारपाई से जुटी न रहे। (३) लिपटना। चिमटना। गुथना। जैसे, दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात घूँसे चला रहे हैं। (४) संभोग करना। प्रसंग करना। (५) एक ही स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का आना या होना। एकत्र होना। इकट्ठा होना। जमा होना। जैसे, भीड़ जुटना, आदमियों का जुटना, सामान जुटना। (६) किसी कार्य में योग देने के लिये उपस्थित होना। जैसे, आप निश्चिंत रहें हम मौके पर जुट जायँगे। (७) किसी कार्य में जी जान से लगना। प्रवृत्त होना। तत्पर होना। जैसे, वे जिस काम के पीछे जुटते हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं। (८) एकमत होना। अभिसंधि करना। जैसे, दोनों ने जुट कर यह सब उपद्रव खड़ा किया है।

जुटली—वि० [सं० जूट] जूटेवाला। जिसे लंबे लंबे बालों की जट हो। उ०—सखी री नंदनंदन देखु। धूरि धूसर जटा जुटली हरि किए हर भेषु।—सूर।

जुटाना—क्रि० स० [हिं० जुटना] (१) दो या अधिक वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। जोड़ना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) एक वस्तु को दूसरी वस्तु के इतने पास करना कि एक का कोई भाग दूसरे के किसी भाग से छू जाय। भिड़ाना। सटाना। (३) इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना।

जुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिखा। चुंदी। चुटैया। (२) गुच्छा। लट। जूड़ी। जुट्टी। (३) एक प्रकार का कपूर।

जुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुटना] (१) घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बँधा हुआ छोटा पूला। अँटिया। जूरी। जैसे, तंबाकू की जुट्टी, पुदीने की जुट्टी। (२) सूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे हुए निकलते हैं। (३) तले ऊपर रखी हुई एक ही प्रकार की कई चिपटी (पत्तर या परत के आकार की) वस्तुओं का समूह। गड्डी। जैसे, रोटियों की जुट्टी, रुपयों की जुट्टी, पैसों की जुट्टी। †(४) एक पकवान जो शाक या पत्तों को बेसन, पीठी आदि में लपेट कर तलने से बनता है।

वि० जुटी वा मिली हुई। जैसे, जुट्टी भौं।

जुठारना—क्रि० स० [हिं० जूठा] (१) किसी खाने पीने की वस्तु को कुछ खाकर छोड़ देना। किसी खानेपीने की वस्तु में मुँह लगा कर उसे अपवित्र वा दूसरे के व्यवहार के अयोग्य करना। उच्छिष्ट करना। (हिंदू आचार के अनुसार जूठी वस्तु का खाना निषिद्ध समझा जाता है)

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(२) किसी वस्तु को भोग करके उसे दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर देना।

जुठिहारा—संज्ञा पुं० [हिं० जूठा + हारा] [स्त्री० जुठिहारी] जूठा खानेवाला। उ०—सूर दास प्रभु नँद नंदन कहँ हम ग्वालन जुठिहारे।—सूर।

जुड़ना—क्रि०अ० [हिं० जुटना वा सं० जुड़ = बँधना] (१) दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने सिलने वा जड़े जाने के कारण परस्पर मिल कर एक होना। संबद्ध होना। संश्लिष्ट होना। संयुक्त होना। उ०—दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर सँग प्रीति। परति गाँठि दुर्जन हिये दई नई यह रीति।—बिहारी।

क्रि० प्र०—जाना।

(२) संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। † (३) इकट्ठा होना। एकत्र होना। (४) किसी कार्य में योग देने के लिये उपस्थित होना। (५) उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना। मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लत्ते जुड़ना। उ०—उसे तो चने भी नहीं जुड़ते। (६) गाड़ी आदि में बैल लगना। जुतना।

जुड़पित्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूड़ + पित्त] शीत और पित्त से उत्पन्न एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ—वि० [हिं० जुड़ना] जुड़े हुए। यमज। गर्भ काल से ही एक में सटे हुए। जैसे, जुड़वाँ बच्चे। (इस शब्द का प्रयोग गर्भजात बच्चों के लिये ही होता है)।

संज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़वाई"।

जुड़वाना†—क्रि० स० [हिं० जूड़] (१) ठंढा करना। शीतल करना। (२) शांत करना। सुखी करना। जैसे, छाती जुड़वाना।

मुहा०—जुगत लगाना = जोड़ तोड़ बैठाना। ढंग रचना। उपाय करना। तदबीर करना।

(२) व्यवहार-कुशलता। चतुराई। हथकंडा। (३) चमत्कार-पूर्ण उक्ति। चुटकुला।

जुगनी-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "जुगनू"। (२) एक प्रकार का गाना जो पंजाब में गाया जाता है।

जुगनू-संज्ञा पुं० [हिं० जुगजुगाना] (१) गुबरैले की जाति का एक कीड़ा जिसका पिछला भाग आग की चिनगारी की तरह चमकता है। यह कीड़ा बरसात में बहुत दिखाई पड़ता है। खद्योत। पटबीजना।

विशेष—तितली, गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि की तरह यह कीड़ा भी पहले ढोले के रूप में उत्पन्न होता है। ढोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर में रहता है और उसमें से दस दिन के उपरांत रूपांतरित होकर गुबरैले के रूप में निकलता है। इसके पिछले भाग से फ़ासफ़र का प्रकाश निकलता है। सब से चमकीले जुगनू दक्षिणी अमेरिका में होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग घर में दीपक का काम लेते हैं। इन्हें सामने रख कर लोग महीन से महीन अक्षरों की पुस्तकें पढ़ सकते हैं।

(२) स्त्रियों का एक गहना जो पान के आकार का होता है। और गले में पहना जाता है। रामनामी।

जुगल-वि० दे० "युगल"।

जुगलिया-संज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार वह मनुष्य जिसके ४०९६ बाल मिल कर आज कल के मनुष्यों के एक बाल के बराबर हों।

जुगवना-क्रि० स० [सं० योग + अवना (प्रत्य०)] (१) संचित रखना। एकत्र करना। जोड़ जोड़ कर रखना कि समय पर काम आवे। (२) हिफाजत से रखना। सुरक्षित रखना। यत्न और रक्षा पूर्वक रखना।

जुगादरी-वि० [सं० युगांतरीय] बहुत पुराना। बहुत दिनों का।

जुगाना†-क्रि० स० दे० "जुगवना"।

जुगालना-क्रि० अ० [सं० उद्गिलन = उगलना] सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल मुँह में लेकर फिर से धीरे धीरे चबाना। पागुर करना।

जुगाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगालना] सींगवाले चौपायों की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल फिर से चबाने की क्रिया। पागुर। रोमंथ।

क्रि० प्र०—करना।

जुगुन-संज्ञा स्त्री० दे० "जुगत"।

जुगुप्सक-वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला

जुगुप्सन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स, जुगुप्सित] निंदा करना। दूसरे की बुराई करना।

जुगुप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निंदा। गर्हणा। बुराई। (२) अश्रद्धा। घृणा।

विशेष—साहित्य में यह वीभत्स रस का स्थायी भाव है और शांत रस का व्यभिचारी। पतंजल के अनुसार शौच वा शुद्धि लाभ कर लेने पर अपने अंगों तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सांसारिक प्राणियों का संसर्ग अच्छा नहीं लगता उसका नाम 'जुगुप्सा' है।

जुगुप्सित-वि० [सं०] निंदित। घृणित।

जुगुप्सु-वि० [सं०] निंदक। बुराई करनेवाला।

जुज़-संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० युज्] कागज़ के ८ पृष्ठों वा १६ पृष्ठों का समूह। एक फारम।

यौ०—जुज़बंदी।

जुज़बंदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किताब की सिलाई जिसमें आठ आठ पन्ने एक साथ सिए जाते हैं।

क्रि० प्र०—करना।

जुज़वी-वि० [फ़ा०] (१) बहुतों में से कोई एक। बहुत कम। कुछ थोड़े से। (२) बहुत छोटे अंश का। जैसे, जुज़वी हिस्सेदार।

जुजीठल*-संज्ञा पुं० [सं० युधिष्ठिर] राजा युधिष्ठिर। (डिं०)।

जुझ*†-संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध। लड़ाई।

जुझवाना†*क्रि० स० [हिं० जूझना] (१) लड़ने के लिये प्रोत्साहित करना। लड़ा देना। (२) लड़ा कर मरवा डालना।

जुझाऊ-वि० [हिं० जुज्झ, जूझ + आऊ (प्रत्य०)] (१) युद्ध का। युद्ध संबंधी। जिसका व्यवहार रणक्षेत्र में हो। लड़ाई में काम आनेवाला। (२) युद्ध के लिये उत्साहित करनेवाला। जैसे, जुझाऊ बाजा। जुझाऊ राग। उ०—बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि सुनि होय भटन मन चाऊ।—तुलसी।

जुझार†*-वि० [हिं० जुज्झ + आर (प्रत्य०)] लड़ाका। सूरमा। वीर। बाँकुरा। बहादुर। उ०— सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर को जीतनहारा।—तुलसी।

जुट-संज्ञा स्त्री० [सं० युक्त, प्रा० जुत] (१) दो परस्पर मिली हुई वस्तुएँ। एक साथ के दो आदमी या वस्तु। जोड़ी। जुग। (२) एक साथ बँधी या लगी हुई वस्तुओं का समूह। लाट। थोक। (३) गुट। मंडली। जथा। दल। (४) ऐसे दो मनुष्य जिन में खूब मेल हो। जैसे, इन दोनों की एक जुट है। (५) जोड़ का आदमी या वस्तु।

जुटना-क्रि० अ० [सं० युक्त, प्रा० जुत + न (प्रत्य०) अ सं० जुट = बँधना] (१) दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। एक वस्तु का

जुमेरात–संज्ञा स्त्री० [अ०] वृहस्पति । गुरुवार । बीफै ।

जुम्मा–संज्ञा पु० दे० "जुमा" ।

संज्ञा पुं० दे० "ज़िम्मा" ।

जुयांग–संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की जंगली जाति । इस जाति के लोग सिंहभूम के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं ।

जुरअत–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] साहस । हिम्मत । हियाव । जवहा ।

जुरझुरी।–संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर वा जूर्त्ति + हिं० मरमराना] (१) हलकी गरमी जो ज्वर के आदि में जान पड़ती है । ज्वरांश । हरारत । (२) ज्वर के आदि की कँपकँपी । शीतकंप ।

जुरना*।–क्रि० स० दे० "जुड़ना" ।

जुरवाना।–संज्ञा पु० दे० "जुरमाना" ।

जुरमाना–संज्ञा पु० [फ़ा०] अर्थ दंड । धन दंड । वह दंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लेना ।—लगना ।—होना ।

जुराफा–संज्ञा पुं० [अ० जुर्राफ़ा] अफरीका का एक जंगली पशु । इसके खुर बैल के से, टाँगें और गर्दन ऊँट की सी लंबी, सिर हिरन का सा, पर सींग बहुत छोटे, पूँछ गाय की सी, चमड़े का रंग नारंगी का सा जिस पर बड़े बड़े काले धब्बे से होते हैं । संसार भर में सबसे ऊँचा पशु यही है । १५ या १६ फुट की ऊँचाई तक के तो सबही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की ऊँचाई के भी होते हैं । इसकी आँखें ऐसी बड़ी और उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर फेरे हुए ही यह अपने चारों ओर देख सकता है । इसी से इसका पकड़ना वा शिकार करना बहुत कठिन है । इसके नथुनों की बनावट ऐसी विलक्षण होती है कि जब यह चाहे उन्हें बंद कर ले सकता है । इसकी जीभ १७ इंच तक लंबी होती है । यह प्रायः वृक्षों की पत्तियाँ खाता है और मैदानों में झुंड बाँध कर रहता है । चरते समय झुंड के चारों ओर चार जुराफे पहरे पर रहते हैं जो शत्रु के आने की सूचना तुरंत झुंड को दे देते हैं । शिकारी लोग घोड़ों पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं परंतु बहुत निकट नहीं जाते, क्योंकि इस के लात की चोट बड़ी कड़ी होती है । इसका चमड़ा इतना सख्त होता है कि उस पर गोली असर नहीं करती । इसका मांस खाया जाता है ।

विशेष—यह पशु झुंड बाँध कर पारिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके जोड़े में अत्यंत प्रेम मान कर इसका काव्य में उल्लेख किया है । परंतु समझने में कुछ भ्रम हुआ है और इसको पशु की जगह पक्षी समझा है । उ०—(क) मिलि बिहरत बिछुरत मरत दंपति अति रस लीन । नूतन विधि हेमंत की जगत जुराफा कीन ।—बिहारी । (ख) जगत जुराफा ह्वै जियत तज्यो तेज निज भानु । रूस रहे तुम पूस में यह धौं कौन सयानु ।—पद्माकर ।

जुर्री–संज्ञा स्त्री० [सं० जूर्त्ति = ज्वर] धीमा ज्वर । हरारत ।

जुर्म–संज्ञा पु० [अ०] अपराध । वह कार्य जिसके दंड का विधान राजनियम के अनुसार हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जुर्रा–संज्ञा पु० [फ़ा०] नर बाज़ ।

जुर्राब–संज्ञा स्त्री० [तु०] मोज़ा । पायताबा ।

जुल–संज्ञा पु० [सं० छल ?] धोखा । दम । झाँसा । पट्टी । छलछंद ।

क्रि० प्र०—देना ।—में आना ।

यौ०—जुलबाज़ । जुलबाज़ी ।

जुलना–क्रि० स० [हिं० जुड़ना] (१) मिलना । सम्मिलित होना । (२) मिलना । भेंट करना ।

विशेष—यह क्रिया अब अकेली नहीं बोली जाती है । जैसे, (क) मिल जुल कर रहो । (ख) जिससे मिलना हो मिल जुल आओ ।

जुलबाज़–वि० [हिं० जुल + फ़ा० बाज़] धोखेबाज़ । छली । धूर्त्त । चालाक ।

जुलबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जुलबाज़] धोखेबाज़ी । छल । धूर्त्तता । चालाकी ।

जुलम।–संज्ञा पु० दे० "जुल्म" ।

जुलाई–संज्ञा स्त्री० [अ०] एक अंगरेजी महीना जो जेठ वा असाढ़ में पड़ता है । यह अंगरेजी का ७ वाँ महीना है और ३१ दिन का होता है । इस मास की १३ वीं वा १४ वीं तारीख को कर्क की संक्रांति पड़ती है ।

जुलाब–संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलाब, अ० जुलाब] (१) रेचन । दस्त ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(२) रेचक औषध । दस्त लानेवाली दवा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—जुलाब पचना = किसी दस्त लानेवाली दवा का दस्त न लाना वरं पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में फ़ा० गुलाब से अरबी साँचे में ढाल कर बना लिया गया है । गुलाब दस्तावर दवाओं में से है ।

जुलाहा–संज्ञा पु० [फ़ा० जौलाह] (१) कपड़ा बुननेवाला । तंतुवाय । तंतुकार ।

विशेष—भारतवर्ष में जुलाहे कहलानेवाले मुसलमान हैं । हिंदू कपड़ा बुननेवाले कोली आदि भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं ।

(२) पानी पर तैरनेवाला एक कीड़ा । (३) एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदुम और मुँह मटर की तरह गोल होता है ।

क्रि० स० दे० "जोड़वाना"।

जुड़ाई–संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़ाई"।

जुड़ाना†–क्रि० अ० [हिं० जूड़] (१) ठंढा होना। शीतल होना। (२) शांत होना। तृप्त होना। प्रसन्न होना। संतुष्ट होना।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) ठंढा करना। शीतल करना। (२) शांत और संतुष्ट करना। तृप्त करना। प्रसन्न करना। उ०—खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

जुड़ावना†–क्रि० स० दे० "जुड़ाना"।

जुड़ीवाँ–वि० संज्ञा पुं० दे० "जुड़वाँ"।

जुडीशल–वि० [अं०] दीवानी वा फौजदारी संबंधी। न्याय-संबंधी।

जुतना–क्रि० अ० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त] (१) बैल, घोड़े आदि का गाड़ी, हल आदि में लगना। नधना। (२) किसी काम में परिश्रमपूर्वक लगना। किसी परिश्रम के कार्य में तत्पर वा संलग्न होना। जैसे, वह दिन भर काम में जुता रहता है। (३) लड़ाई में लगना। गुथना। जुटना। (४) जोता जाना। हल चलने के कारण जमीन का खुदकर भुरभुरी हो जाना। जैसे, यह खेत दिन भर में जुत जायगा।

जुतवाना–क्रि० स० [हिं० जोतना] (१) दूसरे से जोतने का काम कराना। दूसरे से हल चलवाना। जैसे, जमीन जुतवाना, खेत जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) बैल घोड़े आदि को गाड़ी हल आदि में खींचने के लिये लगवाना। नधवाना। (इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु में जोते जाते हैं दोनों के लिये होता है। जैसे घोड़े जुतवाना, गाड़ी जुतवाना।)

संयो० क्रि०—देना।

जुताई–संज्ञा स्त्री० दे० "जोताई"।

जुताना–क्रि० स० दे० "जोताना"।

जुतियाना–क्रि० स० [हिं० जूता + इयाना (प्रत्य०)] (१) जूता मारना। जूतों से मारना। जूते लगाना। (२) अत्यंत निरादर करना। अपमानित करना।

जुतियौअल–संज्ञा स्त्री० [हिं० जूता] परस्पर जूतों की मार।

क्रि० प्र०—होना।

जुत्थ*–संज्ञा पुं० दे० "यूथ"।

जुथैली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी चिड़िया जिसकी छाती और गरदन का कुछ अंश सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुदा–वि० [फ़ा०] [स्त्री० जुदी] (१) पृथक। अलग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जुदा करना = नौकरी से छुड़ाना। काम से अलग करना।

(२) भिन्न। निराला।

जुदाई–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] विछोह। वियोग। दो व्यक्तियों के एक दूसरे से अलग होने का भाव।

क्रि० प्र०—होना।

जुदी–वि० स्त्री० दे० "जुदा"।

जुद्ध*–संज्ञा पुं० दे० "युद्ध"।

जुनियर–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अंगरेजी फूल जो कई रंगों का होता है।

जुनून–संज्ञा पुं० [फ़ा०] पागलपन। सनक।

जुन्हरी–संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हाई–संज्ञा स्त्री [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा] (१) चाँदनी। चंद्रिका। (२) चंद्रमा।

जुन्हार†–संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हैया†–संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा, हिं० जोन्ही + ऐया] (१) चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का उजाला। (२) चंद्रमा। उ०—अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास यातें सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।—पद्माकर।

जुबराज*–संज्ञा पुं० दे० "युवराज"।

जुबली–संज्ञा स्त्री० [अं० वा इबरानी योबल] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव। जशन। बड़ा जलसा।

जुबान–संज्ञा स्त्री० दे० "ज़बान"।

जुबानी–वि० दे० "ज़बानी"।

जुमना–संज्ञा पुं० [देश०] खेत में पाँस या खाद देने का एक ढंग जिसके अनुसार कटी हुई झाड़ियों और पेड़ पौधों को खेत में बिछा कर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं।

जुमला–वि० [फ़ा०] सब। कुल। सबके सब।

संज्ञा पुं० वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो।

जुमा–संज्ञा पुं० [अ०] शुक्रवार।

यौ०—जुमामसजिद।

जुमामसजिद–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन दोपहर की नमाज पढ़ते हैं।

जुमिल–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—गुर्रा गुंठ जुमिल दरियाई।—रघुनाथ।

जुमिल्ला–संज्ञा पुं० [?] वह खूँटा जो लपेटन की बाईं ओर गड़ा रहता है और जिसमें लपेटन लगी रहती है। (जुलाहों की बोली)।

जुमुकना†–क्रि० अ० [सं० यमक] (१) निकट आ जाना। पास आ जाना। (२) जुटना। इकट्ठा होना।

(२) जुआठा । (३) चक्की में लगी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़ कर वह फिराई जाती है।

संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूअ] वह खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। द्यूत।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।

विशेष—दे० "जुआ"।

जूक-संज्ञा पुं० [यूना० ज्यूकस] तुला राशि।

जूजू-संज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयंकर जीव जिसका नाम लोग लड़कों के डराने के लिये लेते हैं। हाऊ।

जूझ*-संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध। लड़ाई। झगड़ा। उ०—(क) पाई नाहिं जूझ हठ कीन्हे। जे पावा ते आपुहि चीन्हे।—जायसी। (ख) कोते परा न छूटिहै सुन रे जीव अबूझ। कबिर माँड़ मैदान में करि इंद्रिन सों जूझ।—कबीर।

जूझना†*-क्रि० अ० [सं० युद्ध वा हिं० जूझ] (१) लड़ना। (२) लड़ कर मर जाना। युद्ध में प्राण त्याग करना। उ०—जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परयो नृप धरनी।—तुलसी।

जूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जटा की गाँठ। जूड़ा। (२) लट। जटा। (३) शिव की जटा। (४) पटसन। (५) पटसन का बना कपड़ा।

जूठा†-वि० (१) दे० "जूठन"। (२) दे० "जूठा"।

जूठन-संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठ] (१) वह खाने पीने की वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ अंश किसी ने मुँह लगा कर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।

(२) वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर लिया हो। भुक्त पदार्थ। दे० "जूठा"।

जूठा-वि० [सं० जुष्ट, प्रा० जुट्ठ] [स्त्री० जूठी। क्रि० जुठारना] (१) (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो। जिसमें किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो। किसी के खाने से बचा हुआ। उच्छिष्ट। जैसे, जूठा अन्न, जूठा भात, जूठी पत्तल। उ०—बिनती राय प्रवीन की सुनिए साह सुजान। जूठी पातरि भखत हैं बारी, बायस स्वान।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है।

(२) जिसका स्पर्श मुँह अथवा किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो। जैसे, जूठा हाथ, जूठा बरतन।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना=बहुत अधिक कंजूस होना।

(३) जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर दिया हो। जिसे किसी ने भोग करके अपवित्र कर दिया हो। भुक्त। जैसे, जूठी स्त्री।

संज्ञा पुं० वह खाने पीने की वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ किसी ने मुँह लगा कर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। जूठन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—चाटना।

जूठी-वि० स्त्री० दे० "जूठा"।

जूड़ा†-वि० [सं० जड़] [क्रि० जुड़ाना, जुड़वाना] ठंढा। शीतल।

संज्ञा पुं० दे० "जूड़ा"।

जूड़ा-संज्ञा पुं० [सं० जूट] (१) सिर के बालों की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ बालों को एक साथ लपेट कर अपने सिर के ऊपर बाँधती हैं। जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालों की सजावट का विशेष ध्यान नहीं रहता अपने सिर पर इस प्रकार बालों को लपेट कर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।—खोलना।

(२) चोटी। कलगी। जैसे, कबूतर या बुलबुल का जूड़ा। (३) पगड़ी का पिछला भाग। (४) मूँज आदि का पूला। मुँजारी। (५) पानी के घड़े के नीचे रखने की घास आदि की लपेट कर बनाई हुई गड्डुरी।

संज्ञा पुं० [हिं० जूड़] [स्त्री० जूड़ी] बच्चों का एक रोग जिसमें सरदी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और कोख में साँस लेते समय गड्ढा पड़ जाता है। कभी कभी पेट में पीड़ा भी होती है और बच्चा सुस्त पड़ा रहता है।

जूड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जूड़] एक प्रकार का ज्वर जिसमें ज्वर आने के पहले रोगी को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर थरथर काँपा करता है। यह ज्वर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के ज्वर को जूड़ी, दूसरे दिनवाले को अंतरा, तीसरे दिनवाले को तिजरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्रायः मलेरिया से उत्पन्न होता है। उ०—जो काहू की सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।—तुलसी।

क्रि० प्र०—आना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ना] जुट्टी।

जूत-संज्ञा पुं० [हिं० जूता] (१) जूता। (२) बड़ा जूता।

जूता-संज्ञा पुं० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त] चमड़े आदि का बना हुआ थैली के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनों पैरों में लोग कांटे आदि से बचने के लिये पहनते हैं। जोड़ा। पनही। पादत्राण। उपानह।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमड़े के टुकड़ों को

जुलफा†–संज्ञा स्त्री० दे० "जुल्फ़"।
जुलुम†–संज्ञा पुं० दे० "जुल्म"।
जुल्फ़–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं। पट्टा। कुल्ले।
जुल्फ़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ़] जुल्फ़। पट्टा।
जुल्म–संज्ञा पुं० [अ०] अत्याचार। अन्याय। अनीति।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—जुल्म टूटना = आफत आ पड़ना। जुल्म ढाना = (१) अत्याचार करना। (२) कोई अद्भुत काम करना।
जुलूस–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सिंहासनारोहण। (२) किसी उत्सव का समारोह। (३) उत्सव और समारोह की यात्रा। धूम धाम की सवारी।
क्रि० प्र०—निकलना।
जुलाब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) रेचन। दस्त।
क्रि० प्र०—लगना।
(२) रेचक औषध।
क्रि० प्र०—देना।—लेना।
विशेष—दे० "जुलाब"।
जुवा–संज्ञा पुं० दे० "जुआ"।
जुवान†–संज्ञा पुं० दे० "जवान"।
जुवानी†–संज्ञा पुं० दे० "जवानी"।
जुवार†–संज्ञा स्त्री० दे० "ज्वार"।
जुवारी–संज्ञा पुं० दे० "जुआरी"।
जुस्तजू–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तलाश। खोज।
जुहाना†–क्रि० स० [सं० यूथ, प्रा० जूह + आना (प्रत्य०)] (१) एकत्र करना। (२) संचित करना। जोड़ जोड़ कर एक जगह रखना।
संयो० क्रि०—देना।—लेना।
जुहार–संज्ञा स्त्री० [सं० अवहार = युद्ध का रुकना वा बंद होना ?] राजपूतों या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम। अभिवंदन। सलाम। बंदगी।
जुहारना–क्रि० स० [सं० अवहार = पुकार वा बुलावा] किसी से कुछ सहायता माँगना। किसी का एहसान लेना।
जुहावना†–क्रि० स० दे० "जुहाना"।
जुही–संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] एक छोटा झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं। यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है। ये फूल बरसात में लगते हैं। इनकी सुगंध चमेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है।
विशेष—दे० "जूही"।
जुहू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलाश की लकड़ी का बना हुआ एक अर्द्ध चंद्राकार यज्ञपात्र। (२) पूर्व दिशा।
जुहोता–संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला।
जूँ–संज्ञा स्त्री० [सं० यूका] एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है। ये कीड़े बालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं। आगे की ओर इनके छ पैर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गंडों में विभक्त होता है। इनके मुँह में एक सूँड़ी होती है जो नोक पर झुकी होती है। ये कीड़े इसी सूँड़ी को जानवरों के शरीर में चुभो कर उनके शरीर से रक्त चूस कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। चीलर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है। जूँ बहुत अंडे देती हैं। ये अंडे बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में पक जाते हैं और छोटे छोटे कीड़े निकल पड़ते हैं। ये कीड़े बहुत सूक्ष्म होते हैं और थोड़े ही दिनों में रक्त चूस कर बड़े हो जाते हैं। भिन्न भिन्न प्राणियों के शरीर पर की जूँ भिन्न भिन्न आकृति और रंग की होती हैं। लोगों का कथन है कि कोढ़ियों के शरीर पर जूँ नहीं पड़ती।
क्रि० प्र०—पड़ना।
यौ०—जूँमुहाँ।
मुहा०—कानों पर जूँ रेंगना = चेत होना। स्थिति का ज्ञान होना। सतर्कता होना। होश होना। जूँ की चाल = बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल।
जूँठ–वि०, संज्ञा पुं० दे० "जूठा"।
जूँठन–संज्ञा स्त्री० दे० "जूठन"।
जूँड़िहा–संज्ञा पुं० [हिं० झुंड] वह बैल जो बैलों के झुंड के आगे चलता है।
जूँदन–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० जूँदनी] बंदर। (मदारी)।
जूँमुहाँ–वि० [हिं० जूँ + मुँह] वह जो देखने में सीधा सादा पर वास्तव में बड़ा धूर्त्त हो।
जू–अव्य० [सं० (श्री) युक्त] (१) एक आदरसूचक शब्द जो ब्रज बुंदेलखंड राजपूताना आदि में बड़े लोगों के नाम के साथ लगाया जाता है। जी। जैसे, कन्हैया जू। (२) संबोधन का शब्द। दे० "जी"।
अव्य० [देश०] एक निरर्थक शब्द जो बैलों या भैंसों को खड़ा करने के लिये बोला जाता है।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) वायुमंडल। वायु। (३) बैल या घोड़े के मस्तक पर का टीका।
जूआ–संज्ञा पुं० [सं० युग] (१) रथ या गाड़ी के आगे दरस में बाँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है।
क्रि० प्र०—बाँधना।

जूती की नोक पर मारना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना। कुछ परवाह न करना। जैसे, ऐसा रुपया मैं जूती की नोक पर मारता हूँ। जूती की नोक से = बला से। कुछ परवाह नहीं। (स्त्रि०)। उ०—वह यहाँ नहीं आती है तो मेरी जूती की नोक से। जूती के बराबर = अत्यंत तुच्छ। बहुत नाचीज। (किसी की) जूती के बराबर न होना = किसी की अपेक्षा अत्यंत तुच्छ होना। किसी के सामने बहुत नाचीज़ होना। (*खुशामद या नम्रता से भी कभी कभी लोग इस वाक्य का प्रयोग करते हैं।* जैसे, मैं तो आप की जूती के बराबर भी नहीं हूँ)। जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से पिटना। (२) ऊँचा नीचा सुनना। भला बुरा सुनना। कड़ी बातें सहना। (३) अपमान सहना। जूतियाँ गाँठना = (१) फटी हुई जूतियों को सीना। (२) चमार का काम करना। अत्यंत तुच्छ काम करना। निकृष्ट व्यवसाय करना। जूतियाँ चटकाते फिरना = (१) दीनता वश इधर उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना। (फटे पुराने जूते को घसीटने से चट चट शब्द होता है)। (२) व्यर्थ इधर उधर घूमना। जूती चाटना = खुशामद करना। चापलूसी करना। जूतियों दाल बँटना = *आपस में लड़ाई झगड़ा होना।* वैर विरोध होना। फूट होना। जूती देना = जूती से मारना। जूतियाँ पड़ना = जूतियों की मार पड़ना। जूती पर जूती चढ़ना = यात्रा का आगम दिखाई पड़ना। (जब जूती पर जूती चढ़ जाती है तब लोग यह शकुन समझते हैं कि जिसकी जूती है उसे कहीं यात्रा करनी होगी)। जूती पर मारना = दे० "जूती की नोक पर मारना"। जूती पर रख कर रोटी देना = अपमान के साथ खाने पीने को देना। निरादर के *साथ रखना या पालना*। जूती पहनना = (१) जूती में पैर डालना। (२) नया जूता मोल लेना। जूती पहनाना = (१) दूसरे के पैर में जूती डालना। (२) नया जूता मोल ले देना। जूतियाँ बगल में दबाना = जूतियाँ उतार कर *भागना* जिसमें पैर की आहट न सुनाई दे। चुपचाप भागना। धीरे से चलता बनना। खिसकना। जूतियाँ मारना = (१) जूतियों से मारना। (२) कड़ी बातें कहना। अपमानित करना। तिरस्कृत करना। (३) कड़ा उत्तर देना। मुँह तोड़ जवाब देना। जूतियाँ लगाना = जूतियों से मारना। जूतियाँ सीधी करना = अत्यंत नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूती से = दे० "जूती की नोक से"।

जूतीकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूता + कार] जूतों की मार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूतीखोर—वि० [हिं जूती + फा० खोर] (१) जो जूतों की मार खाया करे। (२) जो निर्लज्जता से मार और गाली की परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूतीछुपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + छुपाना] (१) विवाह में एक रसम। स्त्रियाँ कोहबर से वर के चलते समय वर का जूता छिपा देती हैं और तब तक नहीं देतीं जब तक वह जूते के लिये कुछ नेग न दे। यह काम प्रायः वे स्त्रियाँ करती हैं जो नाते में बधू की बहिन होती हैं। (२) वह नेग जो स्त्रियों को वर जूते छुपाई में देता है।

जूती पैजार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + फा० पैजार] (१) जूतों की *मार पीट। धौल धप्पड़।* (२) लड़ाई दंगा। कलह। *झगड़ा।*

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूथ*—संज्ञा पुं० दे० "यूथ"।

जून—संज्ञा पुं० [सं० जुवन् = सूर्य] समय। काल। बेला।

संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण = एक तृण] तृण। घास। तिनका। उ०—का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी वर्ष का छठाँ महीना जो जेठ के *लगभग पड़ता है।*

संज्ञा पुं० [सं० यवन ?] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय, बैल, ऊँट आदि *पालती है।*

जूना—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण = एक तृण] (१) घास या फूस को बट कर बनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बाँधने के काम में आती है। (२) *घास फूस का लच्छा या पूला जिससे बरतन माँजते या मलते हैं।* बसकन। उबसन।

जूनियर—वि० [अं०] काल क्रम से पिछला। जो पीछे का हो। छोटा।

जूप—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूअ वा जूव] (१) जूआ। द्यूत। उ०—जैसे, अंध रूप, बिनु गाँठ धन जूप की, त्यों हीन गुण आय है न कूप जल पान की।—हनुमान। (२) विवाह में एक रीति जिसमें वर और वधू परस्पर जूआ खेलते हैं। पासा। उ०—कर कँपै कंगन नहि छूटै। खेलत जूप युगल जुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "यूप"।

जूमना*†—क्रि० अ० [अ० जमा] इकट्ठा होना। जुटना। एकत्र होना। उ०—(क) लाग्यो छुटो हाट एक मदन 'धनी को जहाँ गोपिन को वृंद रह्यो जूमि चहुँ घाई में।—देव। (ख) गिरधर दास भूमि जूमि आसु बढ़ि, बाज लौं दराज लेहिं परन दबाय के।—गोपाल।

जूर*—संज्ञा पुं० [हिं० जुरना] जोड़। संचय। उ०—दान आदि सब दरब क जूरू। दान लाभ होइ बाँचै मूरू।—जायसी।

जूरना*—क्रि० स० [हिं० जोड़ना] जोड़ना। उ०—अवध में संतन

एक में सीकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को उपल्ला कहते हैं। तले का पिछला भाग एँड़ी वा एँड़ और अगला भाग नोक या ठोकर कहलाता है। उपल्ले के वे अंश जो पैर के दोनों ओर खड़े उठे रहते हैं दीवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पट्टी जो एँड़ी के ऊपर दोनों दीवारों के जोड़ पर लगी रहती है लँगोट कहलाती है। देशी जूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे, पंजाबी, दिल्लीवाल, सलीमशाही, गुरगाबी, घेतला, चट्टी इत्यादि। अंगरेजी जूतों के भी कई भेद हैं जैसे, बूट, स्लिपर, पंप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व में छाते और जूते के आविष्कार के संबंध में एक उपाख्यान है। युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि श्राद्ध आदि कर्मों में छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसे किसने निकाला। भीष्मजी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि क्रीड़ा वश धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ा कर छोड़ते थे और उनकी पत्नी रेणुका फेंके हुए बाणों को ला ला कर उन्हें देती थी। धीरे धीरे दोपहर हो गई और कड़ी धूप पड़ने लगी। ऋषि उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से उसका सिर चकराने लगा और पैर जलने लगे। वह शिथिल हो कर कुछ देर तक एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरांत वह बाणों को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि क्रुद्ध हो कर बार बार देर होने का कारण पूछने लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक कह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य्य पर अत्यंत क्रुद्ध हुए और धनुष पर बाण चढ़ा कर सूर्य्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य्य ब्राह्मण के वेश में ऋषि के पास आए और कहने लगे—"सूर्य्य ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप उन्हें मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य्य से लोक का कितना उपकार होता है।" जब इसपर भी ऋषि का क्रोध शांत न हुआ तब ब्राह्मण वेषधारी सूर्य्य ने कहा कि "सूर्य्य तो सदा वेग के साथ चलते रहते हैं। आपका लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा" ऋषि ने कहा कि "जब मध्यान्ह में कुछ क्षण विश्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं मारूँगा"। इसपर सूर्य्य ऋषि की शरण में आए। तब ऋषि ने कहा कि "अच्छा! अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसमें हमारी पत्नी को मार्ग में धूप का कष्ट न हो" इस पर सूर्य्य ने एक जोड़ा जूता और एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये ये दोनों पदार्थ हैं, इन्हें आप ग्रहण करें।" तब से छाते और जूते का दान बड़ा फलदायक माना जाने लगा।

यौ०—जूताख़ोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का दासत्व करना। किसी की हीन से हीन सेवा करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता उछलना या चलना = (१) जूतों से मार पीट होना। (२) लड़ाई दंगा होना। झगड़ा होना। जूता खाना = (१) जूतों की मार खाना। जूतों का प्रहार सहना। (२) बुरा भला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। तिरस्कृत होना। जूता गाँठना = (१) फटा हुआ जूता सीना। (२) चमार का काम करना। नीच काम करना। जूता चाटना = अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न रख कर दूसरे की शुश्रूषा करना। खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता जड़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूतों की मार पड़ना। उपानह प्रहार होना। (२) मुँह तोड़ जवाब मिलना। किसी अनुचित बात का कड़ा और मर्मभेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। नुकसान होना। हानि होना। जैसे, बैठे बैठाए १०) रुपया का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) जूता पैर में डालना। (२) जूता मोल लेना। जूता पहनाना = (१) दूसरे के पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल ले देना। जूता खरीद देना। जूता बरसना = दे० "जूता पड़ना (१)"। जूता बैठना = जूते की मार पड़ना। दे० "जूता पड़ना"। जूता मारना = (१) जूते से मारना। (२) मुँह तोड़ जवाब देना। किसी अनुचित बात का ऐसा कड़ा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। जूता लगना = (१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँह तोड़ जवाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य्य का बुरा फल प्राप्त होना। जैसा बुरा काम किया हो तत्काल वैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य्य का तुरंत ऐसा परिणाम होना जिससे उसके करनेवाले को लज्जित होना पड़े। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का आदमी = ऐसा आदमी जो बिना जूता खाए ठीक काम न करे। बिना कठोर दंड या शासन के उचित व्यवहार न करनेवाला मनुष्य। जूते से खबर लेना = जूते से मारना। जूतों दाल बँटना = आपस में लड़ाई झगड़ा होना। परस्पर बैर विरोध होना। अनबन होना। जूतों से आना = जूते से मारना। जूते लगाना। जूते से मारने के लिये तैयार होना। जूतों से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताख़ोर—वि० [हिं० जूता + फ़ा० ख़ोर] (१) जो जूता खाया करे। (२) जो निर्लज्जता के कारण मार या गाली की कुछ परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूति—संज्ञा पुं० [सं०] वेग। तेज़ी।

जूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूता] (१) स्त्रियों का जूता। (२) जूता।

यौ०—जूतीकारी। जूतीख़ोर। जूतीछुपाई। जूती पैजार।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नीच सेवा करना। दासत्व करना।

जृंभिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आलस्य। (२) जृंभा। जँभाई। (३) एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार बार जँभाई लिया करता है। यह रोग निद्रा के अवरोध करने से उत्पन्न होता है।

जृंभिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एलापर्णी लता।

जृंभित–वि० [सं०] (१) चेष्टित। (२) प्रवृद्ध। (३) स्फुरित। संज्ञा पु० [सं०] जृंभा। (२) स्फोटन। (३) स्त्रियों की ईहा या इच्छा।

जेंगरा†–संज्ञा पु० [देश०] उर्द, मूँग, मोथी, ज्वार, बाजरे आदि के डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जँगरा।

जेंताक–संज्ञा पु० [सं०] रोगी के शरीर में पसीना लाकर दूषित अंश और विकार आदि निकालने की एक क्रिया। भफारा।

जेंवना–क्रि० स० [सं० जेमन] भोजन करना। खाना। भक्षण करना।
†संज्ञा पुं० भोजन। खाने का पदार्थ। वह जो कुछ खाया जाय।

जेंवनार–संज्ञा स्त्री० दे० "जेवनार"।

जेंवाना†–क्रि० स० [हिं० जेंवना] भोजन कराना। खिलाना। जिमाना।

जे*†–सर्व० [सं० ये] 'जो' का बहुवचन। दे० 'जो'।

जेइ*†–सर्व० दे० 'जो'।

जेउ, जेऊ*†–सर्व० दे० 'जो'।

जेट–संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] (१) समूह। यूथ। ढेर। (२) रोटियों की तही। (३) मिट्टी के बर्तनों का वह समूह जिसमें वे एक दूसरे के ऊपर रखे हों। (४) गोद। कोरा।

जेटी–संज्ञा स्त्री० [अं०] नदी या समुद्र के किनारे पर बना हुआ वह बड़ा चबूतरा जिस पर से जहाजों का माल चढ़ाया और उतारा जाता है।

जेठ–संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] (१) एक चांद्र मास जो बैसाख और असाढ़ के बीच में पड़ता है। जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है, उस दिन चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं। यह ग्रीष्म ऋतु का पहला और संवत् का तीसरा मास है। सौर मास के हिसाब से जेठ वृष संक्रांति से आरंभ होकर मिथुन संक्रांति तक रहता है। ज्येष्ठ। (२) [स्त्री० जेठानी] पति का बड़ा भाई। भसुर। वि० अग्रज। बड़ा। उ०—जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।—तुलसी।

जेठरा†–वि० दे० "जेठ" (वि०)।

जेठरैयत†–संज्ञा पु० [हिं० जेठ + अ० रैयत] गाँव का मुखिया, जिसकी सम्मति के अनुसार गाँव के सब लोग कार्य करते हैं।

जेठवा–संज्ञा पु० [हिं० जेठ] एक प्रकार की कपास जो जेठ में तैयार होती है। इसे मुलवा भी कहते हैं।
विशेष—दे० 'मुलवा'।

जेठा–वि० [सं० ज्येष्ठ] [स्त्री० जेठी] (१) अग्रज। बड़ा। (२) सब से उत्तम। सब से अच्छा।
मुहा०—जेठा रंग = वह रंग जो कई बार की रँगाई में सब से अंतिम बार रँगा जाय।

जेठाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठा] जेठे होने का भाव या दशा। बड़ाई। जेठापन।

जेठानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठ] जेठ की स्त्री। पति के बड़े भाई की स्त्री।

जेठी–वि० [हिं० जेठ + ई (प्रत्य०)] जेठ संबंधी। जेठ का। जैसे, जेठी धान, जेठी कपास।
संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की कपास जो जेठ में पकती और फूटती है। इसे बरार में टिकड़ी या जूही और काठियावाड़ में गँगरी कहते हैं।
संज्ञा पु० बोरो नाम का धान जो चैत में नदियों के किनारे बोया और जेठ में काटा जाता है।

जेठीमधु–संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिमधु] मुलेठी।

जेठुआ†–वि० दे० "जेठी"।

जेठौत, जेठौता–संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ + पुत्र] [स्त्री० जेठौती] जेठ का लड़का। पति के बड़े भाई का पुत्र। जेठानी का पुत्र।

जेतवार†–संज्ञा पु० दे० "जैतवार"।

जेतव्य–वि० [सं०] जो जीता जा सके। जेय।

जेता–संज्ञा पु० [सं० जेतृ] (१) जीतनेवाला। विजय करनेवाला। विजयी। (२) विष्णु।

जेतार†–संज्ञा पु० दे० "जेता"।

जेतिक*†–क्रि० वि० [हिं० जितना] जितना। जिस कदर। जिस मात्रा में।

जेते*†–वि० [सं० यः, यम्] जितने। जिस कदर।

जेतो*†–क्रि० वि० [सं० यः, यम्] जितना। जिस कदर।

जेना–क्रि० स० दे० 'जीमना'।

जेन्यावसु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) अग्नि।

जेप्लिन–संज्ञा पु० [जर्मन०] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज जिस का आविष्कार जर्मनी के काउंट जेप्लिन नामक एक साहब ने किया था। इसका ऊपरी भाग सिगार के आकार का लंबोतरा होता है जिसके खानों में गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलियाँ होती हैं। बड़े लंबोतरे चौखटे में नीचे की ओर एक या दो संदूक लटकते हुए लगे रहते हैं जिनमें आदमी बैठते हैं और तोपें रखी जाती हैं। सब प्रकार के आकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है।

जेब–संज्ञा पु० [फ़ा०] पहनने के कपड़ों (कोट, कुरते, कमीज, अंगे आदि) में बगल में या सामने की ओर लगी हुई वह छोटी

रहु दूरि........बंधु सखा गुरु कहत राम को नाते बहुतेक जूरि।—देव स्वामी।

जूरा–संज्ञा पुं० दे० "जूड़ा"।

जूरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जुरना] (१) घास पत्तों या टहनियों का एक में बँधा हुआ छोटा पूला। जुट्टी। जैसे, तमाकू की जूरी। (२) सूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे निकलते हैं। (३) एक पकवान जो पौधों के नए बँधे हुए कल्लों को गीले बेसन में लपेट कर घी में तलने से बनता है। (४) एक प्रकार का पौधा या झाड़ जिससे क्षार बनता है। यह पौधा गुजरात करांची आदि के खारे दलदलों में होता है।

संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार के पंच जो अदालत में जज के साथ बैठ कर मुकदमों के फैसले में सहायता देते हैं।

जूरु–संज्ञा पुं० दे० "जूर"।

जूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

पर्य्या०—उलूक। उलप।

जूर्णाह्वय–संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य।

जूर्णि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेग। (२) आदित्य। (३) देह। (४) ब्रह्मा। (५) क्रोध। (६) स्त्रियों का एक रोग।

वि० (१) वेगयुक्त। वेगवान। तेज़। (२) द्रवित। गला हुआ। (३) ताप देनेवाला। (४) स्तुति करने में कुशल।

जूर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर।

जूष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी उबाली या पकाई हुई वस्तु का पानी। झोल। रसा। (२) उबाली या पकाई हुई दाल का पानी।

जूषण–संज्ञा पुं० ० [सं०] धाय नामक पेड़ जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जूस–संज्ञा पुं० [सं० जूष] (१) मूँग अरहर आदि की पकी हुई दाल का पानी जो प्रायः रोगियों को पथ्य रूप में दिया जाता है।

मुहा०—जूस देना = उबली हुई दाल का पानी पिलाना। जूस लेना = (१) उबली हुई दाल का पानी पीना। (२) रोगी का कुछ सशक्त होकर खाने पीने लायक होना।

(२) उबाली हुई चीज का रस। रसा।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—निकालना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० जुफ़्त, सं० युग्म] युग्म संख्या। सम संख्या। ताक़ का उलटा। जैसे, २, ४, ६, ८।

यौ०—जूस ताक।

जूस ताक–संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फ़ा० ताक़] एक प्रकार का जूआ जिसे लड़के खेलते हैं।

विशेष—एक लड़का अपनी मुट्ठी में छिपा कर कुछ कौड़ियां ले लेता है और दूसरे से पूछता है कि "जूस कि ताक?" अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है वा विषम। यदि दूसरा लड़का ठीक ठीक बूझ लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूझता तो उसे हार कर उतनी ही कौड़ियां बुझानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी मुट्ठी में होती हैं।

जूसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जूस] वह गाढ़ा लसीला रस जो ईख के पकते रस को गुड़ के रूप में ठोस होने के पहले उतार कर रख देने से उसमें से छूटता है। खाँड़ का पसेव। चोटा।

जूह*–संज्ञा पुं० [सं० यूथ, प्रा० जूह] झुंड। समूह।

जूहर–संज्ञा पुं० [हिं० जीव + हर ?] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्ग में शत्रु का प्रवेश निश्चित जान स्त्रियां चिता पर बैठ कर जल जाती थीं और पुरुष दुर्ग के बाहर लड़ने के लिये निकल पड़ते थे।

विशेष—दे० "जौहर"।

जूही–संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] (१) एक फैलनेवाला झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियां छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं। यह हिमालय के अंचल में आप से आप उगता है। यह पौधा फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है। इसके फूल सफेद चमेली से मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं। सुगंध इसकी चमेली ही की तरह हलकी मीठी और मनभावनी होती है। ये फूल बरसात में लगते हैं। जूही को कहीं कहीं पहाड़ी चमेली भी कहते हैं। पर जूही का पौधा देखने में चमेली से नहीं मिलता, कुंद से मिलता है। चमेली की पत्तियां सीकों के दोनों ओर पंक्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं। जूही के फूल का अतर बनता है। (२) एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने पर छोटे छोटे फूल से झड़ते दिखाई पड़ते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० यूक] एक प्रकार का कीड़ा जो सेम, मटर आदि की फलियों में लगता है। जूई।

जृंभ–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जृंभा। वि० जृंभक] (१) जँभाई। जमुहाई। (२) आलस्य।

जृंभक–वि० [सं०] जँभाई लेनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) रुद्र गणों में एक। (२) एक अस्त्र जिसके चलाने से शत्रु निद्राग्रस्त होकर लड़ना छोड़ जमाई लेने लगते, सो जाते या शिथिल पड़ जाते थे।

विशेष—जब राम ने ताड़का आदि को मारा था तब विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर मंत्र सहित यह अस्त्र उन्हें दिया था। विश्वामित्र को यह अस्त्र घोर तपस्या के उपरांत शिव से प्राप्त हुआ था।

जृंभण–संज्ञा पुं० [सं०] जँभाई लेना।

जृंभमान–वि० [सं०] (१) जँभाई लेता हुआ या जँभाई लेनेवाला। (२) प्रकाशमान।

जृंभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जँभाई। (२) आलस्य या प्रमाद से उत्पन्न जड़ता। (३) एक शक्ति का नाम।

जेवर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का महोखपक्षी जिसे जधी या सिंधमोनाल भी कहते हैं। यह शिमले में बहुत पाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "जेवरी"।

जेवरा–संज्ञा पुं० दे० "ज्योरा"।

जेवरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी।

जेष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] (१) जेठ मास। (२) जेठ। पति का बड़ा भाई।

वि० [सं० ज्येष्ठ] अग्रज। जेठा। बड़ा।

जेष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० "ज्येष्ठा"।

जेह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़िह=चिल्ला। मि० सं० ज्या] (१) कमान की डोरी में वह स्थान जो आँख के पास लाया जाता है और जिसकी सीध में निशान रहता है। चिल्ला। उ०—तिय कत कमनैती पढ़ी, बिन जेह भौंह कमान। चित चल बेधे चुकति नहि, बंक बिलोकनि बान।—बिहारी। (२) दीवार में नीचे की ओर दो तीन हाथ की ऊँचाई तक पलस्तर या मिट्टी आदि का वह लेप जो दीवार के शेष भाग के पलस्तर या लेप से कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभड़ा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम औ चक्र संख असि, पंचतत्त्व सूचक समुझनि अरु, इन पाँचन की गति हरि के बस यही जगत की जेह। भस्म गंग लोचन अहि डमरू पंचतत्त्व अरु भौरु, हर के बस पाँचहु यह पँचरू जिनसे पिंड वरेह।—देवस्वामी।

क्रि० प्र०—उतारना।—निकालना।

जेहड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० जेट+घट] एक पर एक रखे हुए पानी से भरे हुए बहुत से घड़े।

ज़ेहन–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० ज़ेहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेहर†–संज्ञा स्त्री० [?] पैर में पहनने का घुँघुरूदार पायजेब नाम का जेवर। उ०—(क) पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजन।—सूर। (ख) पग जेहरि जंजीरनि जकरयो यह उपमा कछु पावै।—सूर। (ग) अमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि आगमनं पग युग जेहरि जराय की।—केशव।

जेहरि*–संज्ञा स्त्री० दे० "जेहर"।

जेहल†–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़हल] [वि० जेहली] हठ। ज़िद।

संज्ञा पुं० दे० "जेल"।

जेहलखाना†–संज्ञा पुं० दे० "जेलख़ाना" या "जेल"।

जेहली†–वि० [फ़ा० जेहल] जो समझाने से भी किसी बात की भलाई-बुराई न समझे और अपनी हठ न छोड़े। हठी। ज़िद्दी।

जेहि*–सर्व० [सं० यस्] जिसको। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवर बदन।—तुलसी।

जैंता†–संज्ञा पुं० [सं० जयंती] जैत का पेड़।

जै–संज्ञा स्त्री० दे० "जय"।

†वि० [सं० यावत, प्रा० जाव] जितने। जिस संख्या में।

जैकरी–संज्ञा पुं० दे० "जयकरी"।

जैकार–संज्ञा स्त्री० दे० "जयकार"।

जैगीषव्य–संज्ञा पुं० [सं०] योग शास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। असित देवल नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीषव्य नामक एक ऋषि आए और उन्हीं के आश्रम में निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीषव्य योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और असित देवल सिद्धि लाभ न कर सके। एक दिन जैगीषव्य कहीं से घूमते फिरते भिक्षुक के रूप में देवल के पास आकर बैठे। देवल यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन पूजा करते हो गए और जैगीषव्य अटल भाव से बैठे रहे कुछ बोले चाले नहीं तब देवल उठ कर आकाश पथ से स्नान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीषव्य को स्नान करते पाया। आश्चर्य से चकित होकर देवल जल्दी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीषव्य को उसी प्रकार अटल भाव से बैठे पाया। इस पर देवल आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी अनेक सिद्ध जैगीषव्य की पूजा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे नाना लोकों में स्वेच्छापूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रतलोक इत्यादि तक तो देवल पीछे पीछे गए पर इसके आगे वे न देख सके कि जैगीषव्य कहाँ गए। सिद्धों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सास्वत ब्रह्मलोक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवल घर लौट आए। वहाँ जैगीषव्य को ज्यों का त्यों बैठे देख उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसके उपरांत देवल जैगीषव्य के शिष्य हुए और उनसे योग शास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके सिद्ध हुए।

जैजैकार–संज्ञा स्त्री० दे० "जयजयकार"।

जैजैवंती–संज्ञा स्त्री० [सं० जयजयवती] भैरव राग की एक रागिनी जो सबेरे गाई जाती है।

जैढक–संज्ञा पुं० [सं० जय+ढक्का] एक प्रकार का बड़ा ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत*–संज्ञा स्त्री० [सं० जयति] विजय। जीत। फतह।

थैली या चकती जिसमें रुमाल, कागज आदि चीज़ें रखते हैं। खीसा। खरीता। पाकेट।

क्रि० प्र०—कतरना।—काटना।

यौ०—जेवकट। जेवखर्च। जेवघड़ी।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ेब] शोभा। सौंदर्य्य। फबन

मुहा०—ज़ेब देना = शोभित होना।

यौ०—ज़ेबदार = तर्जदार। अच्छा। सुंदर।

जेवकट—संज्ञा पुं० [फ़ा० जेब + हिं० काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरों के जेब से रुपया पैसा लेने के लिये जेब काटता हो। जेबकतरा। गिरहकट।

जेवकतरा—संज्ञा पुं० दे० "जेवकट"।

जेवखर्च—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेने का किसी को अधिकार न हो। भोजन वस्त्र आदि के व्यय से भिन्न, निज का और ऊपरी खर्च।

जेवघड़ी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जेब + घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेब में रखी जाती है। जेबीघड़ी। वाच।

ज़ेवदार—वि० [फ़ा०] सुंदर। शोभायुक्त।

ज़ेवरा—संज्ञा पुं० [अं०] जबरा नाम का जंगली जानवर। दे० "जबरा"।

जेबी—वि० [फ़ा०] (१) जेब में रखने योग्य। जो जेब में रखा जा सके। जैसे, जेबी घड़ी। (२) बहुत छोटा।

जेमन—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करना। जीमना।

जेय—वि० [सं०] जीतने योग्य। जो जीता जा सके।

जेर—संज्ञा स्त्री० [देश०] आँवल। वह झिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है।

वि० [फ़ा० ज़ेर] [संज्ञा जेरबारी] (१) परास्त। पराजित। (२) जो बहुत दिक किया जाय। जो बहुत तंग किया जाय।

संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो सुंदरवन में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी लाली लिए सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से मेज, कुरसी, अलमारी इत्यादि बनती हैं।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) स्त्रियों के पहनने की जूती। स्लीपर। (२) साधारण जूता।

जेरबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तस्मा जो तंग में फँसाया जाता है।

ज़ेरबार—वि० [फ़ा०] (१) जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तंग और दुखी हो। आपत्ति या दुःख के बोझ से बहुत दबा हुआ। (२) क्षति-ग्रस्त। जिसकी बहुत हानि हुई हो।

ज़ेरबारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) आपत्ति या क्षति के कारण बहुत दुखी होने की क्रिया। तंगी। (२) हैरानी। परेशानी।

क्रि० प्र०—उठाना।—सहना।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० दे० "जेरी (२) और (३)"

जेरी—संज्ञा स्त्री० [?] (१) दे० "जेर"। (२) वह लाठी जो चरवाहे कँटीली झाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं। उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हे गारी देहिं सकुच तोरी की। इतहि सखी कर बाँस लिये विच मारु मची झोरा झोरी की।—सूर। (३) खेती का एक औज़ार जो फरुई के आकार का काठ का होता है। इसका व्यवहार अन्न दाँवने के समय पुआल हटाने में होता है। सिंचाई के लिये दौरी चलाने में भी वह काम में आता है।

जेल—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दंडित अपराधी आदि कुछ निश्चित समय के लिये रखे जाते हैं। कारागार। बंदीगृह

मुहा०—जेल काटना या भोगना = जेल में रह कर दंड भोगना।

संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ेर] जंजाल। हैरानी या परेशानी का काम। उ०—खेलत खेल सहेलिन में पर खेल नवेली को जेल सो लागै।—मतिराम।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कारागार।

विशेष—दे० "जेल"।

जेलर—संज्ञा पुं० [अं०] जेलखाने का अध्यक्ष। जेल का अफसर।

जेलाटीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] जानवरों विशेषतः कई प्रकार की मछलियों के मांस हड्डी खाल आदि को उबाल कर तैयार की हुई एक प्रकार की बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्ठियों आदि की नकल करने के लिये पैड बनाने में होता है। यह पशुओं को खिलाई भी जाती है, पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं। खूब साफ की हुई जेलाटीन से औषधों की गोलियाँ भी बनाई जाती हैं।

जेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेरी] घास या भूसा इकट्ठा करने का औज़ार। पाँचा।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "जेवरी"।

जेवना—क्रि० स० दे० "जीमना"।

जेवनार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेवना] (१) बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठ कर भोजन करना। भोज। (२) रसोई। भोजन।

ज़ेवर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धातु या रत्नों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये अंगों में पहनी जाती है। गहना। आभूषण। अलंकार। आभरण।

सूत्र, ज्ञाताधर्म कथा, उपासक दशांग, अंतकृत् दशांग, अनुत्तरोपपातिक दशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद। इनमें से ग्यारह अंग तो मिलते हैं पर बारहवाँ दृष्टिवाद नहीं मिलता। ये सब अंग अर्द्धमागधी प्राकृत में हैं और अधिक से अधिक बीस बाईस सौ वर्ष पुराने हैं। इन आगमों वा अंगों को श्वेतांबर जैन मानते हैं पर दिगंबर पूरा पूरा नहीं मानते। उनके ग्रंथ संस्कृत में अलग हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और जो २४ पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यथार्थ में जैन धर्म के तत्वों को संग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीर स्वामी ही हुए हैं। उनके प्रधान शिष्य इंद्रभूति वा गौतम थे जिन्हें कुछ युरोपियन विद्वानों ने भ्रम वश शाक्य मुनि गौतम बुद्ध समझा था। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर ग्यारह अंगों को मुख्य धर्म्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों को। इसके अतिरिक्त श्वेतांबर लोग तीर्थंकरों की मूर्त्तियों को कच्छ वा लँगोट पहनाते हैं और दिगंबर लोग नंगी रखते हैं। इन बातों के अतिरिक्त तत्व या सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है। अर्हन् देव ने संसार को द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है। जगत् का न तो कोई कर्त्ता हर्त्ता है और न जीवों को कोई सुख दुःख देनेवाला है। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल वा कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पौद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत स्याद्वाद के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकांतवाद अर्थात् एक ही पदार्थ में नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्व और असत्व, अभिलाप्यत्व और अनभिलाप्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्म्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार आकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त हैं।
(२) जैन धर्म्म का अनुयायी। जैनी।

जैनी—संज्ञा पु० [हिं० जैन] जैन मतावलंबी।

जैनु†*—संज्ञा पु० [हिं० जेवना] भोजन। आहार। उ०—इहाँ रहौ जहँ जूठनि पावैं ब्रजवासी के जैनु।—सूर।

जैपत्र*—संज्ञा पु० दे० "जयपत्र"।

जैबो†—क्रि० अ० दे० "जाना"।

जैमंगल—संज्ञा पु० [सं० जयमंगल] (१) एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है। इसकी लकड़ी से मेज कुरसी इत्यादि सजावट की चीजें बनाई जाती हैं। (२) खास राजा की सवारी का हाथी।

जैमाल, जैमाला*—संज्ञा स्त्री० दे० "जयमाल"।

जैमिनि—संज्ञा पु० [सं०] पूर्व मीमांसा के प्रवर्त्तक एक ऋषि जो व्यासजी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे। कहते हैं कि इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका कि अब केवल अश्वमेध पर्व मिलता है। यह अश्वमेध पर्व व्यास के अश्वमेध पर्व से बड़ा है पर कई नई बातों के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता में संदेह है।

जैयट—संज्ञा पु० महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता।

जैयद—वि० [अ० जैद = दादा] (१) बड़ा भारी। घोर। बहुत बड़ा। जैसे, जैयद बेवकूफ़। (२) बहुत धनी। भारी मालदार। जैसे, जैयद असामी।

जैल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दामन। (२) नीचे का स्थान। निम्न भाग। (३) पंक्ति। सफ़। समूह। (४) इलाका। हलका।
यौ०—जैलदार।

जैलदार—संज्ञा पु० [अ० जैल + फ़ा० दार] वह सरकारी ओहदेदार जिसके अधिकार में कई गावों का प्रबंध हो।

जैव—वि० [सं०] (१) जीव संबंधी। (२) बृहस्पति संबंधी।
संज्ञा पु० (१) बृहस्पति के क्षेत्र में धनु राशि और मीन राशि। (२) पुष्य नक्षत्र।

जैवातृक—संज्ञा पु० [सं०] (१) कपूर। (२) चंद्रमा। (३) औषध।
वि० दीर्घायु।

जैसवार—संज्ञा पु० [हिं० जायस + वाला] कुरमियों और कलवारों का एक भेद।

जैसा—वि० [सं० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाच० जइस्सो] [स्त्री० जैसी] (१) जिस प्रकार का। जिस रूप रंग आकृति वा गुण का। जैसे, (क) जैसा देवता वैसी पूजा। (ख) जैसा राजा वैसी प्रजा। (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिलाई भी होनी चाहिए।
मुहा०—जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों। जिसमें किसी प्रकार की घटती बढ़ती या फेर फार आदि न हुआ हो। जैसा पहले था वैसा ही। उ०—(क) दरजी के यहाँ अभी कपड़ा जैसे का तैसा रक्खा है हाथ भी नहीं लगा है। (ख) खाना जैसे का तैसा पड़ा है किसी ने नहीं खाया। (ग) यह मकान सौ वर्ष का हुआ पर जैसे का तैसा बना हुआ है। जैसे को तैसा = (१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) जो जैसा हो उसी की प्रकृति का। एक ही स्वभाव और प्रकृति का। उ०—जैसे को तैसा मिलै, मिलै नीच को नीच। पानी में पानी मिलै, मिलै कीच में कीच। जैसा चाहिए = उपयुक्त। ठीक। जैसा उचित हो।
(२) जितना। जिस परिमाण या मात्रा का। जिस कदर।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) जैतून वृक्ष । (२) जैतून की लकड़ी ।
संज्ञा पुं० [सं० जयंती] अगस्त की तरह का एक पेड़ जिसमें पीले फूल और लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं । इन फलियों की तरकारी होती है । पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं ।

जैतपत्र*—संज्ञा पुं० [सं० जयति + पत्र] जयपत्र । जीत की सनद ।

जैतवार*†—संज्ञा पुं० [हिं० जैत + वार] जीतनेवाला । विजयी । विजेता ।

जैतश्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जयतिश्री] एक रागिनी ।

जैती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयंतिका] एक प्रकार की घास जो रबी की फसल में खेतों में आप से आप उगती है ।

जैतून—संज्ञा पुं० [अ०] एक सदा बहार पेड़ जो अरब शाम आदि से लेकर युरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है । इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है । इसका आकार ऊपर गोलाई लिए होता है । पत्तियाँ इसकी नरकट की पत्तियों से मिलती जुलती पर उनसे छोटी होती हैं । ये ऊपर की ओर हरी और नीचे की ओर कुछ सफेदी लिए होती हैं । फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं । फल कचरी के से होते हैं । पश्चिम की प्राचीन जातियाँ इसे पवित्र मानती थीं । रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियों की माला सिर में धारण करते थे । अरबवाले भी इसे पवित्र मानते थे जिससे मुसलमान लोग अब तक इसकी लकड़ी की तसबीह (माला) बनाते हैं । इस पेड़ के फल और बीज दोनों काम में आते हैं । फल पकने पर नीलापन लिए काले होते हैं । कच्चे फलों का मुरब्बा और अचार पड़ता है । बीजों से तेल निकलता है । लकड़ी भी सजावट के समान बनाने के काम में आती है । इसकी लकड़ी धूप से चिटकती नहीं ।

जैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जैत्री] (१) विजेता । विजयी ।
यौ०—जैत्ररथ ।
(२) पारा । (३) औषध ।

जैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष । जैत का पेड़ ।

जैन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिन का प्रवर्त्तित धर्म्म । भारत का एक धर्म्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा परम धर्म्म माना जाता है और कोई ईश्वर या सृष्टिकर्त्ता नहीं माना जाता ।

विशेष—जैन धर्म कितना प्राचीन है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता । जैन ग्रंथों के अनुसार अंतिम तीर्थंकर महावीर या वर्द्धमान ने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था । इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेष कर युरोपियन विद्वान् जैन धर्म्म का प्रचलित होना मानते हैं । उनके अनुसार यह धर्म्म बौद्ध के पीछे उसी के कुछ तत्वों को लेकर और उनमें कुछ ब्राह्मण धर्म की शैली मिलाकर खड़ा किया गया । जिस प्रकार बौद्धों में २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थंकर हैं । हिंदू धर्म्म के अनुसार जैनों में भी अपने ग्रंथों को आगम और पुराण आदि में विभक्त किया है । पर प्रो० जेकोबी आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह स्थिर किया गया है कि जैन धर्म्म, बौद्ध धर्म्म से पहले का है । उदय गिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैन मत की प्राचीनता पाई जाती है । ऐसा जान पड़ता है कि यज्ञों की हिंसा आदि देख जो विरोध का सूत्रपात बहुत पहले से होता आ रहा था उसी ने आगे चलकर जैन धर्म्म का रूप प्राप्त किया । भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ । पर जैनों के मूल ग्रंथ अंगों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है । जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के अंग ग्रंथों में भी है । इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है ।

जैन लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन या अर्हत् ही को ईश्वर मानते हैं, उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं । जिन २४ हुए हैं जिनके नाम ये हैं—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी । इनमें से केवल महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से ५२७ वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाता है । शेष के विषय में अनेक प्रकार की अलौकिक और प्रकृतिविरुद्ध कथाएँ हैं । ऋषभ देव की कथा भागवत आदि पुराणों में भी आई है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ अवतारों में है । जिस प्रकार हिंदुओं में काल मन्वंतर कल्प आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगों में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी । प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौबीस चौबीस जिन या तीर्थंकर होते हैं । ऊपर जो २४ तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्त्तमान अवसर्पिणी के हैं । जो एक बार तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में जन्म नहीं लेते । प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में नए नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं । इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर गणधर लोग द्वादश अंगों की रचना करते हैं । ये ही द्वादशांग जैन धर्म्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं । इनके नाम ये हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती,

इसका व्यवहार कम होता जाता है। जैसे, जो बोवेगा सो काटेगा। आज कल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का व्यवहार होता है।

अव्य० [सं० यद्] यदि। अगर। (पुं० हिं०) उ०—(क) जो करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहि निस्तार कल्प शत कोरी। —तुलसी। (ख) जो बालक कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी।

विशेष—इस अर्थ में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है। जैसे, जो इसमें पानी देना हो तो अभी दे दो।

जोअना*†–क्रि० स० दे० "जोवना"।

जोइ*†–संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। पत्नी। भार्या। स्त्री। उ०—विरध अरु विभाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।—सूर।

†सर्व० दे० "जो"।

जोउ–सर्व० दे० "जो"।

जोक–संज्ञा स्त्री० दे० "जोंक"।

जोख†–संज्ञा स्त्री० [हिं०] जोखने का कार्य या भाव। तौल।

जोखता‡–संज्ञा स्त्री० [सं० योषिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना–क्रि स० [सं० जुष=जाँचना] तौलना। वजन करना।

जोखम–संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"।

जोखा–संज्ञा पु० [हिं० जोखना] लेखा। हिसाब।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार बहुधा यौगिक में ही होता है। जैसे, लेखा जोखा।

‡ [सं० योषा] स्त्री। लुगाई।

जोखाई †–संज्ञा स्त्री० [हिं० जोखना] (१) जोखने का काम। तौलाई। (२) जोखने या तौलने का भाव। (३) तौलने की मजदूरी।

जोखिम–संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंक, झोंको, जोखों] (१) भारी अनिष्ट या विपत्ति की आशंका अथवा संभावना। झोंकी। जैसे इस काम में बहुत जोखिम है।

मुहा०—जोखिम उठाना या सहना=ऐसा काम करना जिसमें भारी अनिष्ट की आशंका हो। जोखिम में पड़ना=जोखिम उठाना। जान जोखिम होना=प्राण जाने का भय होना।

(२) वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति आने की संभावना हो, जैसे, रुपया, पैसा, जेवर आदि। जैसे, तुम्हारी यह जोखिम हम नहीं रख सकते।

जोखुआ †–संज्ञा पु० [हिं० जोखना+उआ (प्रत्य०)] तौलनेवाला। बया।

जोखुवा †–संज्ञा पुं० दे० "जोखुआ"।

जोखों–संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"।

जोगंधर–संज्ञा पु० [सं० योगंधर] एक युक्ति जिसके द्वारा शत्रु के चलाए हुए अस्त्र से अपना बचाव किया जाता है। यह युक्ति श्रीरामचंद्रजी को विश्वामित्र ने सिखलाई थी। उ०—पद्मनाभ अरु महानाभ दोउ दुंदहु नाभ सुनाभा। ज्योति निकृंत निराश विमल युग जोगंधर यह आभा।—रघुराज।

जोग–संज्ञा पु० दे० "योग"।

वि० दे० "योग्य"।

अव्य० [सं० योग्य] को। के निकट। (पुरा—हिं०)

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की चिट्ठियों के आरंभिक वाक्यों में होता है। जैसे,—"स्वस्तिश्री भाई परमानंदजी जोग लिखा काशी से सीताराम का राम राम बाँचना।" बहुधा यह द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर काम में आता है। जैसे, "इनमें से एक साड़ी भाई कृष्णचंद्रजी जोग देना।"

जोगड़ा–संज्ञा पु० [हिं० जोगी+ड़ा (प्रत्य०)] बना हुआ योगी। पाखंडी। जैसे, घर का जोगी जोगड़ा बाहर का जोगी सिद्ध। (कहा०)

जोगता * ‡–संज्ञा स्त्री० दे० "योग्यता"।

जोगन‡–संज्ञा स्त्री० दे० "जोगिन"।

जोगनिया‡–संज्ञा पु० दे० "जोगिनिया"।

संज्ञा स्त्री० दे० "जोगिनिया"।

जोगमाया–संज्ञा स्त्री० दे० "योगमाया"।

जोगवना–क्रि० स० [सं० योग+अवना (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट भ्रष्ट न होने पावे। रक्षित रखना। उ०—जिवनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।—तुलसी। (२) संचित करना। एकत्र करना। बटोरना। (३) लिहाज़ रखना। आदर करना। उ०—तातुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन-मर्म कुमाँउ।—तुलसी। (४) दर गुजर करना। जाने देना। कुछ खयाल न करना। उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।—तुलसी। (५) पूरा करना। पूर्ण करना। उ०—काय न कलेस लेस लेत मानि मन की। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की।—तुलसी।

जोगसाधन *–संज्ञा पु० [सं० योगसाधन] तपस्या।

जोगा–संज्ञा पु० [देश०] अफीम का खूदड़। वह मैल जो अफीम को छानने से बच रहती है।

जोगानल–संज्ञा स्त्री० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न आग। उ०—सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी। हर विरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी।—तुलसी।

जोगिंद*†–संज्ञा पु० [सं० योगींद्र] (१) योगिराज। योगिश्रेष्ठ। (२) महादेव। (डिं०)

जोगिन–संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] (१) जोगी की स्त्री। (२)

(इस अर्थ में केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है।)
उ०—जैसा अच्छा यह कपड़ा है वैसा वह नहीं है।
विशेष—संबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह 'वैसा' शब्द के साथ आता है।
†(२) समान। सदृश। तुल्य। बराबर। उ०—उस जैसा आदमी ढूँढ़े न मिलेगा।
क्रि० वि० जितना। जिस परिमाण वा मात्रा में। जैसे, जैसा इस लड़के को याद है वैसा उस लड़के को नहीं।

जैसी—वि० "जैसा" का स्त्री०।

जैसे—क्रि० वि० [हिं० जैसा] जिस प्रकार से। जिस ढंग से। जिस तरीके पर।
मुहा०—जैसे जैसे=जिस क्रम से। ज्यों ज्यों। उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी आती जायगी। जैसे तैसे=किसी प्रकार। बहुत यत्न करके। बड़ी कठिनता से। उ०—खैर जैसे तैसे उनको यहाँ ले आना। जैसे बने, जैसे हो=जिस प्रकार संभव हो। जिस तरह हो सके। उ०—जैसे बने वैसे कल शाम तक चले आयो।

जैसो†—वि० दे० "जैसा"।
क्रि० वि० दे० "जैसा"।

जों†*—क्रि० वि० [हिं० ज्यों] ज्यों। जैसे। जिस प्रकार से। जिस तरह से। जिस भाँति।
विशेष—दे० "ज्यों"।

जोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौका] (१) पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो बिलकुल थैली के आकार का होता है और जो जीवों के शरीर में चिपक कर उनका रक्त चूसता है। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश तालाबों और छोटी नदियों आदि में, कुछ तर घासों में और बहुत थोड़ी जातियाँ समुद्र में होती हैं। साधारण जोंक डेढ़ दो इंच लंबी होती है; पर किसी किसी जाति की समुद्री जोंक ढाई फुट तक लंबी होती है। साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और कालापन मिले हरे रंग का या भूरा होता है जिन पर या तो धारियाँ या बुंदकियाँ होती हैं। आँखें इसे बहुत सी होती हैं। इसके शरीर के दोनों सिरों पर पकड़ने की शक्ति होती है; पर काटने और लहू चूसने की शक्ति केवल आगे, मुँह की ओर ही होती है। आकार के विचार से साधारण जोंकें तीन प्रकार की मानी जाती हैं—कागजी, मझोली और भैंसिया। सुश्रुत ने बारह प्रकार की जोंकें गिनाई हैं—कृष्णा, अलगर्दा, इंद्रायुधा, गोचंदना, कर्बुरा और सामुद्रिक—ये छः प्रकार की जोंकें जहरीली और कपिला, पिंगला, शंकुमुखी, मूषिका, पुंडरीकमुखी और सावरिका ये छः प्रकार की जोंकें बिना जहर की बतलाई हैं। जोंक शरीर के किसी स्थान में चिपक कर खून चूसने लगती है और पेट में खून भर जाने के कारण खूब फूल उठती है। शरीर में किसी स्थान पर फोड़ा फुंसी या गिलटी आदि हो जाने पर वहाँ का दूषित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे चिपका देते हैं और जब वह खूब खून पी लेती है तब उसे उँगलियों से खूब कस कर दुह लेते हैं जिससे सारा खून इसकी गुदा के मार्ग से निकल जाता है। भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है। कभी कभी पशुओं के जल पीने के समय जल के साथ जोंक भी इनके पेट में चली जाती है।
पर्य्या०—रक्तपा। जलूका। जलोरगी। तीक्ष्णा। वमनी। वेधनी। जलसर्पिणी। जलसूची। जलाटनी। जलाका। पटालुका। वेणीवेधनी। जलालिका।
क्रि० प्र०—लगाना।—लगवाना।
(२) वह मनुष्य जो अपना काम निकालने के लिये बेतरह पीछे पड़ जाय। वह जो बिना अपना काम निकाले पिंड न छोड़े। (३) सेवार का बनाया हुआ एक प्रकार का छनना जिससे चीनी साफ की जाती है।

जोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोंक] (१) वह जलन जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोंक उतर जाने के कारण होती है। (२) लोहे का एक प्रकार का काँटा जो दो तख्तों को मजबूती के साथ जोड़ने के काम में आता है। (३) एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी में होता है। (४) दे० "जोंक"।

जोंग, जोंगक—संज्ञा पुं० [सं०] अगर। अगुरु।

जों जों—क्रि० वि० दे० "ज्यों ज्यों"।

जोंताला—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवधान्य। पुनेरा।

जों तों—क्रि० वि० दे० "ज्यों त्यों"।
मुहा०—जों तों करके=बड़ी कठिनाई से। उ०—गरज जों तों करके दिन तो काटा।—लल्लू।

जोंदरा—संज्ञा पुं० दे० "जोंधरी"।

जोंदरी—संज्ञा पुं० दे० "जोंधरी"।

जोंधरा†—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण] बड़े दानों की ज्वार।

जोंधरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० जूर्ण] (१) छोटी ज्वार। छोटे दानों की ज्वार। (२) बाजरा। (क्वचित्)

जोंधैया—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] चाँदनी। चंद्रिका।

जो—सर्व० [सं० यः] एक संबंधवाचक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के वर्णन में कुछ और वर्णन की योजना की जाती है। जैसे, (क) जो घोड़ा आपने भेजा था वह मर गया। (ख) जो लोग कल यहाँ आए थे वे गए।
विशेष—पुरानी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था। अब भी लोग प्रायः इसके साथ 'सो' बोलते हैं पर अब

पहलवानों को चुनना। (२) किसी काम पर अलग अलग दो दो आदमियों को नियत करना। (३) चौपड़ में दो गोटियों को एक ही घर में रखना।

(१०) वह जो बराबरी का हो। समान धर्म या गुण आदि वाला। जोड़ा। (११) पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे, उनके पास चार जोड़ कपड़े हैं। (१२) किसी वस्तु या कार्य्य में प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री। जैसे, पहनने के सब कपड़ों या अंग-प्रत्यंग के आभूषणों का जोड़। (१३) जोड़ने की क्रिया या भाव। (१४) छल। दाँव।

यौ०—जोड़ तोड़ = (१) दाँव पेंच। छल कपट। (२) किसी कार्य्य के लिये विशेष युक्ति। ढंग। (बहुधा इस अर्थ में इसके साथ "लगाना" "भिड़ना" "लड़ाना" क्रियाओं का व्यवहार होता है)।

(१५) दे० "जोड़ा"।

जोड़ती†-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़+ती (प्रत्य०)] गणित में कई संख्याओं का योग। जोड़।

जोड़न-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़] वह पदार्थ जो दही जमाने के लिये दूध में डाला जाता है। जावन। जामन।

जोड़ना-क्रि० स० [स० जुड़ = बँधना या सं० युक्त, प्रा० जुड़] (१) दो वस्तुओं को सी कर, मिला कर, चिपका कर अथवा इसी प्रकार के किसी और उपाय से एक करना। दो चीज़ों को मज़बूती से एक करना। जैसे, लंबाई बढ़ाने के लिये कागज़ या कपड़ा जोड़ना। (२) किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिलाकर एक करना। उ०—जो अति प्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बुलाई।—तुलसी। (३) द्रव्य या सामग्री को क्रम से रखना, लगाना, या स्थापित करना। जैसे, अक्षर जोड़ना, ईंट या पत्थर जोड़ना। (४) एकत्र करना। इकट्ठा करना। संग्रह करना। जैसे, रुपए जोड़ना, कुनबा जोड़ना, सामग्री जोड़ना। (५) कई संख्याओं का योग-फल निकालना। मीज़ान लगाना। (६) वाक्यों या पदों आदि की योजना करना। वर्णन प्रस्तुत करना। जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमार या तूफान जोड़ना (= झूठा दोषारोपण करना)। (७) प्रज्वलित करना। जलाना। जैसे, आग जोड़ना, दीया जोड़ना। (८) संबंध स्थापित करना। (९) संबंध करना। संबंध उत्पन्न करना। जैसे, दोस्ती जोड़ना। (१०) † जोतना।

संयो० क्रि०—देना।

जोड़ला†-वि० [हिं० जोड़ा+ला (प्रत्य०)] एक ही गर्भ से एक ही समय में जन्मे हुए दो बच्चे। यमज।

जोड़वाँ-वि० [हिं० जोड़ा+वाँ (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय में और एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों। यमज।

जोड़वाई-संज्ञा पुं० [हिं० जोड़वाना] (१) जोड़वाने की क्रिया। (२) जोड़वाने का भाव। (३) जोड़वाने की मज़दूरी।

जोड़वाना-क्रि० स० [हिं० जोड़ना का प्रे०] दूसरे को जोड़ने में प्रवृत्त करना। जोड़ने का काम दूसरे से कराना।

जोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] (१) दो समान पदार्थ। एक ही सी दो चीज़ें। जैसे, धोतियों का जोड़ा, तसवीरों का जोड़ा, गुलदानों का जोड़ा।

क्रि० प्र०—मिलाना।—लगाना।

विशेष—जोड़े में का प्रत्येक पदार्थ भी परस्पर एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है। जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे।

(२) दोनों पैरों में पहनने के जूते। उपानह। (३) एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े। जैसे, अंगे और पैजामे का जोड़ा, कोट और पतलून का जोड़ा, लहँगे और ओढ़नी का जोड़ा, धोती और दुपट्टे का जोड़ा। (४) पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे, (क) उनके पास चार जोड़े कपड़े हैं। (ख) हम तो घोड़े जोड़े से तैयार हैं, तुम्हारी ही देर थी।

यौ०—जोड़ा जामा = (१) वे सब कपड़े जो विवाह में वर पहनता है। (२) पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक।

क्रि० प्र०—पहनना।—बढ़ाना।

(५) स्त्री और पुरुष। जैसे, वर कन्या का जोड़ा। (६) नर और मादा। (केवल पशुओं और पक्षियों आदि के लिये)। जैसे, सारस का जोड़ा, कबूतर का जोड़ा, कुत्तों का जोड़ा।

विशेष—नं० ५ और ६ के अर्थों में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोड़ा कहते हैं।

क्रि० प्र०—मिलाना।—लगाना।

मुहा०—जोड़ा खाना = संभोग करना। मैथुन करना। जोड़ा खिलाना = संभोग में प्रवृत्त करना। मैथुन कराना। जोड़ा लगाना = नर और मादा को मैथुन में प्रवृत्त करना।

(७) वह जो बराबरी का हो। जोड़। (८) दे० "जोड़"।

जोड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ना+आई (प्रत्य०)] (१) दो या अधिक वस्तुओं को जोड़ने की क्रिया या भाव। (२) जोड़ने की मज़दूरी। (३) दीवार आदि बनाने के लिये ईंटों या पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे पर रख कर उन्हें मसाले से जोड़ने की क्रिया।

जोड़ासंदेस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बंगला मिठाई जो छेने से बनती है।

जोड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ा] (१) दो समान पदार्थ। एक ही सी दो चीज़ें। जोड़ा। जैसे, शाल की जोड़ी, तसवीरों की जोड़ी, किवाड़ों की जोड़ी, घोड़ों या बैलों की जोड़ी।

विरक्त स्त्री। साधुनी। (३) पिशाचिनी। (४) एक प्रकार की रण देवी जो रण में कटे मरे मनुष्यों के रुंड मुंडों को देखकर आनंदित होती है और मुंडों को गेंद बनाकर खेलती है। (५) एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं। (६) दे० "योगिनी"।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार। (२) एक प्रकार का आम। (३) एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल वर्षों ठहर सकता है।

जोगिनी—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "योगिनी"। (२) दे० "जोगिन"। उ०—भूमि अति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस फन शेष सो सीस काँधो।—सूर।

जोगिया—वि० [हिं० जोगी + इया (प्रत्य०)] (१) जोगी संबंधी। जोगी का। जैसे, जोगिया भेस। (२) गेरू के रंग में रँगा हुआ। गेरू घुले हुए पानी में रँगा हुआ। गैरिक। (३) गेरू के रंग का। मटमैलापन लिए लाल रंग का।

संज्ञा पुं० (१) दे० "जोगीड़ा"। (२) "जोगी"।

जोगींद्र*†—संज्ञा पुं० [सं० योगींद्र] (१) योगिराज। बड़ा योगी। योगिश्रेष्ठ। (२) शिव। महादेव।

जोगी—संज्ञा पुं० [सं० योगी] (१) वह जो योग करता हो। योगी। (२) एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर भर्तृहरि के गीत गाते और भीख माँगते हैं। इनके कपड़े गेरुए रंग के होते हैं।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० योगी + ड़ा (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना जो प्रायः वसंत ऋतु में ढोलक पर गाया जाता है। (२) गाने बजानेवालों का एक समाज जिसमें एक गानेवाला लड़का, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं। इनमें गानेवाले लड़के का भेस प्रायः योगियों का सा होता है और वह कुछ अलंकार आदि भी पहने रहता है। इस का गाना बहुधा देहातों में सुना जाता है। (३) इस समाज का कोई आदमी।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० दे० "योगीश्वर"।

जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० योगेश्वर] (१) श्रीकृष्ण। (२) शिव। (३) देवहोत्र के पुत्र का नाम। (४) योग का अधिकारी। योग का ज्ञाता। सिद्ध योगी।

जोगौटा*†—वि० [हिं० जोगी] जोगी।

जोग्य—वि० दे० "योग्य"।

जोजन—संज्ञा पुं० दे० "योजन"।

जोजनगंधा—संज्ञा स्त्री० दे० "योजनगंधा"।

जोट*†—संज्ञा पुं० [सं० योटक] (१) जोड़ा। जोड़ी। (२) साथी। संघाती।

वि० समान। बराबरी का। मेल का।

जोटा*†—संज्ञा पुं० [सं० योटक] (१) जोड़ा। युग। उ०—(क) ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालनि के कल जोटा।—तुलसी। (ख) सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा।—तुलसी। (२) टाट का बना एक बड़ा दोहरा थैला जिसमें अनाज भर कर बैलों पर लादा जाता है। गौन। खुरजी।

जोटिंग—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

जोटी*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोट] (१) जोड़ी। युग्मक। उ०—काँचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी। सूरदास चिरजीवहु दोऊ हरि हलधर की जोटी।—सूर। (२) बराबरी का। जोड़ का। समान। (३) जो गुण आदि में किसी दूसरे के समान हो। जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं० योग] (१) गणित में कई संख्याओं का योग। जोड़ने की क्रिया। (२) गणित में कई संख्याओं का योगफल। वह संख्या जो कई संख्याओं को जोड़ने से निकले। मीजान। ठीक। टोटल।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(३) वह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या टुकड़े जुड़े अथवा मिले हों। जैसे, कपड़े में सिलाई के कारण पड़नेवाला जोड़, लोटे या थाली आदि का जोड़।

मुहा०—जोड़ उखड़ना = जोड़ का ढीला पड़ जाना। संधि स्थान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ अलग हो जाँय।

(४) वह टुकड़ा जो किसी चीज में जोड़ा जाय। जैसे, यह चाँदनी कुछ छोटी है, इसमें जोड़ लगा दो। (५) वह चिह्न जो दो चीजों के एक में मिलने के कारण संधि स्थान पर पड़ता है। (६) शरीर के दो अवयवों का संधि स्थान। गाँठ। जैसे, कंधा, घुटना, कलाई, पोर आदि।

मुहा०—जोड़ उखड़ना = किसी अवयव के मूल का अपने स्थान से हट जाना। जोड़ बैठना = अपने स्थान से हटे हुए अवयव के मूल का अपने स्थान पर आ जाना।

(७) मेल। मिलान। (८) बराबरी। समानता। जैसे, तुम्हारा और उनका कौन जोड़ है?

विशेष—प्रायः इस अर्थ में इस शब्द का रूप "जोड़ का" भी होता है। जैसे, (क) यह गमला इसके जोड़ का है। (ख) इसके जोड़ का एक लंप ले आओ।

(९) एक ही तरह की अथवा साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें। जोड़ा। जैसे, पहलवानों का जोड़, कपड़ों (धोती और दुपट्टे) का जोड़।

मुहा०—जोड़ बाँधना = (१) कुश्ती के लिये बराबरी के दो

जोतिखी†-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"।
जोतिलिंग-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिर्लिंग"।
जोतिष†-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिष"।
जोतिष्टोम-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिष्टोम"।
जोतिषी†-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"।
जोतिस*†-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिष"।
जोतिहा†-संज्ञा पुं० [हिं० जोतना] जोतनेवाला किसान। जोता।
जोती-संज्ञा स्त्री० दे० (१) "ज्योति" और (२) "जोति"।
संज्ञा स्त्री० (१) तराजू के पल्लों की डोरी जो डाँड़ी से बँधी रहती है। जोत। (२) घोड़े की रास। लगाम।
जोत्स्ना-संज्ञा स्त्री० दे० "ज्योत्स्ना"।
जोधन-संज्ञा स्त्री० [सं० योग + धन] वह रस्सी जिससे बैल के जुए की ऊपर नीचे की लकड़ियाँ बँधी रहती हैं।
जोधा*†-संज्ञा पुं० दे० "योद्धा"। उ०—(क) अगट कपाट बड़े दीने हैं बहु जोधा रखवारे।—सूर। (ख) सूर प्रभु सिंह ध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहँ करन लागे लराई।—सूर।
संज्ञा पुं० जोता नाम की रस्सी जो जुआठे में बँधी रहती है और जिसमें बैलों के सिर फँसाए जाते हैं।
जोधार†-संज्ञा पुं० [सं० योद्धा] योद्धा। शूर। (डिं०)।
जोन*†-संज्ञा स्त्री० दे० "योनि"।
जोनराज-संज्ञा पुं० राजतरंगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने सं० १२०० के बाद का हाल लिखा है। इनका लिखा हुआ पृथ्वीराजविजय नामक एक ग्रंथ और किरातार्जुनीय की एक टीका भी है।
जोनरी†-संज्ञा स्त्री० [?] ज्वार नामक अन्न।
जोनि-संज्ञा स्त्री० दे० "योनि"
जोन्ह*†-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] (१) उन्हाई। चंद्रिका। चाँदनी। ज्योत्स्ना। (२) चंद्रमा।
जोन्हरी†-संज्ञा स्त्री० [?] ज्वार नामक अन्न।
जोन्हाई*†-संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] (१) चन्द्रिका। चाँदनी। चंद्रज्योति। (२) चंद्रमा।
जोन्हार†-संज्ञा पुं० [?] ज्वार नामक अन्न।
जोप-संज्ञा पुं० दे० "यूप"।
जोपै*-अव्य० [हिं० जो + पर] (१) यदि। अगर। (२) यद्यपि। अगरचे।
ज़ोफ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बुढ़ापा। वृद्धावस्था। (२) सुस्ती। निर्बलता। कमजोरी। नाताकती। जैसे, ज़ोफ़ जिगर, ज़ोफ़ दिमाग़।
जोबन-संज्ञा० पुं० [सं० यौवन] (१) युवा होने का भाव। यौवन। उ०—धन जोबन अभिमान अल्प जल कहँ कूर अपुनी बोरी।—सूर।
मुहा०—जोबन लूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का आनंद लेना।
(२) सुंदरता, विशेषतः युवावस्था अथवा मध्य काल की सुंदरता। रूप। खूबसूरती।
क्रि० प्र०——छाना।—पर आना।
मुहा०—जोबन उतरना = युवावस्था समाप्त होना। जोबन चढ़ना = युवावस्था का सौंदर्य आना। जोबन ढलना = दे० "जोबन उतरना"।
(३) रौनक। बहार। (४) कुच। स्तन। छाती। उ०—जूप दुहूँ जोबन सों लागा।—जायसी।
क्रि० प्र०—उठना।—उभरना।—ढलना।
(५) एक प्रकार का फूल।
जोबना*†-क्रि० स० दे० "जोवना"।
ज़ोम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) उमंग। उत्साह। (२) जोश। उद्वेग। आवेश। (३) अहंकार। अभिमान। घमंड।
क्रि० प्र०—दिखाना।
जोय*†-संज्ञा स्त्री० [सं० जया] जोरू। स्त्री। पत्नी।
सर्व० पुं० जो। जिस।
जोयना*†-क्रि० स० [?] (१) बालना। जलाना। उ०—चौसठ दीवा जोय के चौदह चंदा माहि। तिहि घर किसका चाँदना जिहि घर सतगुर नाहि।—कबीर। (२) दे० "जोवना"।
जोयसी*†-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"।
ज़ोर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बल। शक्ति। ताकत।
क्रि० प्र०—आजमाना।—देखना।—दिखाना।—लगाना।—लगाना।
मुहा०—ज़ोर करना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) प्रयत्न करना। कोशिश करना। ज़ोर टूटना = बल घटना या नष्ट होना। प्रभाव कम होना। शक्ति घटना। ज़ोर डालना = बोझ डालना। दे० "ज़ोर देना"। ज़ोर देना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) (शरीर आदि का) बोझ डालना। भार देना। जैसे, इस जँगले पर बहुत ज़ोर मत दो नहीं तो यह टूट जायगा। किसी बात पर ज़ोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना। किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना। जैसे, उन्होंने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि सब लोग साथ चलें। किसी बात के लिये ज़ोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना। किसी बात के लिये हठ करना। ज़ोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना। जैसे, मैं ज़ोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम में आप को बहुत फायदा होगा। ज़ोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग

क्रि० प्र०—मिलाना।—लगाना।

यौ०—जोड़ीदार = जोड़वाला। जो किसी के साथ में हो। (किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोड़ीदार कहते हैं।)

विशेष—जोड़ी में से प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं। जैसे किसी एक तसवीर को उसी तरह की दूसरी तसवीर की "जोड़ी" कहेंगे।

(२) एक साथ पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे, उनके पास चार जोड़ी कपड़े हैं। (३) स्त्री और पुरुष। जैसे, वर वधू की जोड़ी। (४) नर और मादा। (केवल पशुओं और पक्षियों के लिये)। जैसे, घोड़ों की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोड़ी।

विशेष—नं० ३ और ४ के अर्थ में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं।

(५) दो घोड़ों या दो बैलों की गाड़ी। वह गाड़ी जिसे दो घोड़े या दो बैल खींचते हों। जैसे, जब से आपको ससुराल का माल मिला है तब से आप जोड़ी पर निकलते हैं। (६) दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं।

क्रि० प्र०—फेरना।—भाँजना।—हिलाना।

(७) मँजीरा। ताल।

यौ०—जोड़ीवाल = जो गाने बजानेवालों के साथ जोड़ी या मँजीरा बजाता हो।

(८) वह जो बराबरी का हो। समान धर्म या गुण आदि वाला। जोड़।

जोड़ी की बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ी = मुगदर + बैठक = कसरत] वह बैठकी (कसरत) जो मुगदरों की जोड़ी पर हाथ टेक कर की जाती है। मुगदरों के अभाव में इसमें दो लकड़ियों से भी काम लिया जाता है।

जोड़ुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ा + उआ (प्रत्य०)] पैर में पहनने का चाँदी का एक प्रकार का गहना जिसमें एक सिकरी में छोटे बड़े दो छल्ले लगे रहते हैं। बड़ा छल्ला अँगूठे में और छोटा सबसे छोटी उँगली में पहना जाता है। सिकरी बीच की उँगलियों के ऊपर रहती है।

जोड़ू—संज्ञा स्त्री० दे० "जोरू"।

जोत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] (१) वह चमड़े का तसमा या रस्सी जिसका एक सिरा घोड़े बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले में और दूसरा सिरा उस चीज़ में बँधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं। जैसे, एक्के की जोत, गाड़ी की जोत, मोट या चरसे की जोत।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

(२) वह रस्सी जिसमें तराजू की डंडी से बँधे हुए उसके पल्ले लटकते रहते हैं। (३) उतनी भूमि जितनी एक असामी को जोतने बोने आदि के लिये मिली हो।

† संज्ञा स्त्री० (१) दे० "ज्योति"। (२) दे० "जोति"।

जोतदार—संज्ञा पुं० [हिं० जोत + दार] वह असामी जिसे जोतने बोने के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो।

जोतना—क्रि० स० [सं० योजन या युक्त, प्रा० जुत्त + ना] (१) रथ, गाड़ी, कोल्हू, चरसे आदि को चलाने के लिये उसके आगे बैल घोड़े आदि पशु बाँधना। जैसे, घोड़ा जोतना। (२) गाड़ी या रथ आदि को उनमें घोड़े बैल आदि जोत कर चलने के लिये तैयार करना। जैसे गाड़ी जोतना। (३) किसी को जबरदस्ती किसी काम में लगाना। (४) हल चलाकर खेती के लिये जमीन की मिट्टी खोदना। हल चलाना। जैसे, खेत जोतना।

जोतनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोत या जोतना] वह छोटी रस्सी जो जुए में जुते हुए जानवर के गले के नीचे दोनों ओर बँधी होती है।

जोतसी†—संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"।

जोतांत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह। (कुम्हार)।

जोता—संज्ञा पुं० [हिं० जोतना] (१) जुआठे में बँधी हुई वह पतली रस्सी जिसमें बैलों की गरदन फँसाई जाती है। (२) जुलाहों की परिभाषा में वह दोनों डोरियाँ जो करघे पर फैलाए हुए ताने के अंतिम सिरे पर उसके सूतों को ठीक रखने-वाली कमाची या भँजनी के दोनों सिरों पर बँधी हुई होती हैं। इन दोनों डोरियों के दूसरे सिरे आपस में भी एक दूसरे से बँधे और पीछे की ओर तने होते हैं। (३) करघे में सूत की वह डोरी जो बरांछी में बँधी रहती है। (४) वह बहुत बड़ी धरन या शहतीर जो एक ही पंक्ति में लगे हुए कई खंभों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है। (५) वह जो हल जोतता हो। खेती करनेवाला।

जोताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना + आई (प्रत्य०)] (१) जोतने का काम। (२) जोतने का भाव। (३) जोतने की मजदूरी।

जोतात—संज्ञा स्त्री० दे० "जोतांत"।

जोति—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] (१) घी का वह दीया जो किसी देवी या देवता आदि के आगे अथवा उसके उद्देश्य से जलाया जाता है।

क्रि० प्र०—जलाना।—बालना।

यौ०—जोति-भोग = किसी देवता के सामने जोति जलाने और भोग लगाने आदि की क्रिया।

(२) दे० "ज्योति"।

* † संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना] जोतने बोने योग्य भूमि। उ०—ऐसे तजि द्वेषो क्रिया देखि जग धुरो होत जोति कहु दई दान राम भक्ति मानिये।—प्रिया०।

जोली † *—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़] वह जो बराबरी का हो । जोड़ । जोड़ी ।

यौ०—हमजोली ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० झोला] (१) जाली या किरमिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकौआँ बिस्तर जिसके दोनों सिरों पर अदवान की तरह कई रस्सियाँ होती हैं । दोनों ओर की ये रस्सियाँ दो कड़ियों में बँधी होती हैं और दोनों कड़ियाँ दो तरफ खूँटियों आदि में लटका दी जाती हैं । बीच का बिस्तरवाला हिस्सा लटकता रहता है जिस पर आदमी सोते हैं । इसका व्यवहार प्रायः जहाजी लोग जहाजों में करते हैं । (लश०) । (२) वह रस्सी जो तूफान के समय जहाजों के पाल चढ़ाने या उतारने के काम में आती हैं । (लश०) । (३) एक प्रकार की गाँठ जो रस्से के सिरे पर उसकी लड़ों से बनाई जाती है ।

जोवना *—क्रि० स० [सं० जुषण = सेवन] (१) जोहना । देखना । ताकना । (२) ढूँढ़ना । तलाश करना । (३) आसरा देखना । रास्ता देखना ।

जोवारि—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसका रंग बहुत चमकीला होता है । यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है, इसी लिये लोग इसे पालते और बोलना सिखाते हैं । यह ऋतुपरिवर्तन के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में घूमा करती है । फूलों और अनाजों को यह बहुत हानि पहुँचाती है और टिड्डियों का खूब नाश करती है । इसके अंडे बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं । इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है ।

जोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी तरल पदार्थ का आँच या गरमी के कारण उबलना । उफान । उबाल ।

मुहा०—जोश खाना = उबलना । उफनना । खौलना । जोश देना = पानी के साथ उबालना । जैसे, इस दवा को जोश देकर पीओ ।

यौ०—जोशाँदा = क्वाथ । काढ़ा ।

(२) चित्त की तीव्र वृत्ति । मनोवेग । आवेश । जैसे, उन्होंने जोश में आकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह डालीं ।

मुहा०—जोश में आना = उत्तेजित हो उठना । आवेश में आना । खून का जोश = प्रेम का वह वेग जो अपने वंश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो । जैसे, खून के जोश ने उन्हें रहने न दिया, वे अपने भाई की मदद के लिये दौड़ दौड़े ।

यौ०—जोश खरोश = अधिक आवेश ।

जोशन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) भुजाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का गहना जिसमें छः पहल या आठ पहलवाले लंबोतरे पोले दानों की पाँच, छः या सात जोड़ियाँ लंबाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती दोनों बाहों पर दो जोशन पहने जाते हैं । (२) जिरह बकतर । कवच । चार आईना ।

जोशाँदा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दवा के काम के लिये पानी में उबाली हुई जड़ या पत्तियाँ आदि । क्वाथ । काढ़ा ।

जोशी—संज्ञा पुं० दे० "जोषी" ।

जोशीला—वि० [फ़ा० जोश + ईला (प्रत्य०)] जोश से भरा हुआ । जिसमें खूब जोश हो । आवेगपूर्ण । जैसे, उन्होंने कल बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी ।

जोष—[सं०] (१) प्रीति । प्रेम । (२) सुख । आराम । (३) सेवा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री । नारी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "जोख" । उ०—चढ़ न चातिक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष । तुलसी प्रेम पयोधि की तातें माप न जोष ।—तुलसी ।

जोषक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक ।

जोषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रीति । प्रेम । (२) सेवा ।

जोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी । स्त्री ।

जोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । नारी । औरत ।

जोषी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] (१) गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति । (२) महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति । (३) पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति । (४) ज्योतिषी । गणक । (क्व०)

जोस †—संज्ञा पुं० दे० "जोश" ।

जोह †—*संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] (१) खोज । तलाश ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(२) इंतजार । प्रतीक्षा । (३) नजर । दृष्टि, विशेषतः कृपायुक्त दृष्टि ।

क्रि० प्र०—रखना ।

जोहड़—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चा तालाब ।

जोहन † *—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] (१) देखने या जोहने की क्रिया । उ०—सघन कुंज तरु तर मनमोहन । दच्छिन चरन चरन पर दीन्हें तनु त्रिभंग मृदु जोहन ।—सूर । (२) तलाश । खोज । ढूँढ़ । (३) प्रतीक्षा । इंतजार ।

जोहना†—क्रि० स० [सं० जुषण = सेवन] (१) देखना । अवलोकन करना । ताकना । निहारना । उ०—(क) दर्पन साह भीत तहँ लावा । देखों जोहि झरोखे आवा ।—जायसी । (ख) जो सब ठौर खंभ हू होहि । कह्यो प्रह्लाद आहि तूँ जोहि ।—सूर । (२) खोजना । ढूँढ़ना । पता लगाना । उ०—शकद्वीप तेहि आगे सोहा । बत्तिस लाख योजन कर जोहा ।—विश्राम । (३) राह देखना । इंतजार देखना । प्रतीक्षा करना । आसरा देखना । उ०—फूलन सेजरिया कोठरिया बिछौले सखियारवा जोहला तोरी बाट ।—बजनीर ।

करना। ताकत लगाना। (२) बहुत प्रयत्न करना। खूब कोशिश करना। जैसे, उन्होंने बहुतेरा ज़ोर मारा पर कुछ भी न हुआ।
यौ०—ज़ोर ज़ुल्म = अत्याचार। ज़्यादती।
(२) प्रबलता। तेज़ी। बढ़ती। जैसे, भाँग का ज़ोर, बुखार का ज़ोर।
विशेष—कभी कभी लोग इस अर्थ में 'ज़ोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उड़ा कर विशेषण की तरह और कभी कभी 'का' विभक्ति उड़ा कर क्रिया विशेषण की तरह करते हैं।

मुहा०—ज़ोर पकड़ना या बाँधना = (१) प्रबल होना। तेज होना। जैसे, (क) अभी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी ज़ोर पकड़ेगी। (ख) इस फोड़े ने बहुत ज़ोर बाँधा है। (२) दे० "ज़ोर में आना"। ज़ोर करना या मारना = प्रबलता दिखलाना। जैसे, (क) रोग का ज़ोर करना, काम का ज़ोर करना। (ख) आज आपकी मुहब्बत ने ज़ोर मारा, तभी आप यहाँ आए हैं। ज़ोर में आना = ऐसी स्थिति में पहुँचना जहाँ अनायास ही उन्नति या वृद्धि हो जाय। ज़ोरों पर होना = (१) पूरे बल पर होना। बहुत तेज होना। जैसे, (क) आज कल शहर में चेचक बहुत ज़ोरों पर है। (ख) इस समय उन्हें बुखार ज़ोरों पर है। (२) खूब उन्नत दशा में होना।
(३) वश। अधिकार। इख़तियार। काबू। जैसे, हम क्या करें, हमारा उन पर कोई ज़ोर नहीं है।
क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—जताना।—होना।
मुहा०—ज़ोर डालना = किसी काम के लिये कुछ अधिकार जतलाते हुए विशेष आग्रह करना। दबाव डालना।
(४) वेग। आवेश। झोंक।
मुहा०—ज़ोरों पर = बड़े वेग से। बड़ी तेज़ी से। जैसे, गाड़ी का ज़ोरों पर जाना, नदी का ज़ोरों पर बहना।
(५) भरोसा। आसरा। सहारा। जैसे, आप किसके ज़ोर पर कूदते हैं?
मुहा०—शतरंज में किसी मोहरे पर ज़ोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहरा ला रखना जिसमें उस पहले मोहरे के मारे जाने की संभावना न रह जाय अथवा यदि उस पहले मोहरे को विपक्षी अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका वह मोहरा भी तुरंत उस मोहरे से मार लिया जा सके जिससे पहले मोहरे पर ज़ोर पहुँचाया गया है। शतरंज के मोहरे का ज़ोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति में होना जिसमें यदि उसे विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहे तो वह मारनेवाला मोहरा स्वयं भी तुरंत मारा जा सके। किसी के ज़ोर पर कूदना = किसी को अपनी सहायता पर देख कर अपना बल दिखाना। बेज़ोर = जिसकी सहायता पर कोई न हो।

(६) परिश्रम। मेहनत। जैसे, अँधेरे में पढ़ने से आँखों पर ज़ोर पड़ता है।
क्रि० प्र०—पड़ना।
(७) व्यायाम। कसरत।
ज़ोर शोर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बहुत अधिक ज़ोर। बहुत अधिक प्रबलता या प्रचंडता। जैसे, कल शाम को ज़ोर शोर से आँधी आई थी।
ज़ोरदार—वि० [फ़ा०] जिसमें बहुत ज़ोर हो। ज़ोरवाला।
जोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ ?] (१) एक ही में बँधे हुए लंबे लंबे और मजबूत दो बाँस जिनके सिरों पर मोटी रस्सी का एक फंदा लगा रहता है और जिनका उपयोग कोल्हू धोने के समय जाट को रोकने और उसे कोल्हू में से निकाल कर अलग करने में होता है। जाट का ऊपरी भाग इसके फंदे में फँसा दिया जाता है और तब जाठ का निचला भाग दोनों बाँसों की सहायता से उठा कर कोल्हू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है। (२) एक प्रकार का हरे रंग का कीड़ा जो फसल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है। चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है।
जोरन—संज्ञा पुं० दे० "जोड़न"।
जोरना†—क्रि० स० (१) दे० "जोड़ना"। उ०—रति रण जानि अनंग नृपति आप नृपति राजति यल जोरति।—सूर।
† (२) जोतना। जानवर को जुए में नाधना।
जोरा†—संज्ञा पुं० दे० "जोड़ा"।
जोरा जोरी†*—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ोर] जबरदस्ती। धींगा धींगी।
क्रि० वि० जबरदस्ती से। बलपूर्वक।
ज़ोरावर—वि० [फ़ा०] बलवान। ताकतवर। जबरदस्त।
ज़ोरावरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ज़ोरावर होने का भाव। (२) जबरदस्ती। धींगा धींगी।
जोरिल्ला†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गंध बिलाव।
जोरी†*—संज्ञा स्त्री० दे० "जोड़ी"। उ०—(क) स्वर्ग सूर ससि करैं अजोरी। तेहि ते अधिक देउ केहि जोरी।—जायसी।
(ख) पूछत हैं रुक्मिणी इनमें को वृषभानु किशोरी। नेक हमें दिखओ अपने बाल पने की जोरी।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ोर] ज़ोरावरी। जबरदस्ती। उ०—जोरी मारि भजत हरही को जान यमुन के तीर। एक धावत पीछे उन ही के पावत नहीं अधीर।—सूर।
जोरू—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ा] स्त्री। पत्नी। भार्य्या। घरवाली।
यौ०—जोरू जाँता = गृहस्थी। परिवार। घर बार।
जोलहा†—संज्ञा पुं० दे० "जुलाहा"।
जोलाहल †*—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला। अग्नि। आग। उ०—रोम रोम पावक लिखा जगी जोलाहल जोर।—रघुराज।
जोलाहा—संज्ञा पुं० दे० "जुलाहा"।

जौनाल—संज्ञा स्त्री० [सं० यव+नाल] वह जमीन जिस पर जौ आदि रबी की फसल बोई जाय। रबी का खेत।

जौन्ह*†—संज्ञा स्त्री० दे० "जोन्ह"।

जौपै*†—अव्य० [हिं० जौ+पै] अगर। यदि।

जौवन*—संज्ञा पुं० दे० "यौवन"।

जौम—संज्ञा पुं० दे० "जोम"।

जौरा—संज्ञा पुं० [हिं० जूरा] वह अनाज जो गावों में नाऊ बारी आदि पौनियों को उनके काम के बदले में दिया जाता है।

संज्ञा पुं० [सं० ज्या+वर] बड़ा रस्सा।

जौलाई—संज्ञा स्त्री० दे० "जुलाई"।

जौलाऊ—संज्ञा पुं० [हिं० जौलाय = बारह] प्रति रुपया बारह पैसे। की रुपया तीन आना। (दलाली)।

जौलाय—वि० [?] बारह। (दलाल)।

जौशन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण। दे० "जोशन"।

जौहर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गौहर का अरबी रूप] (१) रत्न। बहुमूल्य पत्थर। (२) सार वस्तु। सरांश। तत्त्व।

क्रि० प्र०—निकालना।

(३) तलवार या और किसी लोहे के धारदार हथियार पर के सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे लोहे की उत्तमता प्रकट होती है। हथियार की ओप। (४) गुण। विशेषता। उत्तमता। खूबी। तारीफ की बात। उत्कर्ष। जैसे, (क) धुलने पर इस कपड़े का जौहर देखिएगा। (ख) मैदान में वे अपना जौहर दिखावेंगे।

क्रि० प्र०—दिखाना।

मुहा०—जौहर खुलना = (१) गुण का विकाश होना। गुण प्रकट होना। खूबी जाहिर होना। (२) करतब प्रकट होना। भेद खुलना। गुप्त कार्रवाई जाहिर होना। जौहर खोलना = गुण प्रकट करना। हुनर दिखाना। खूबी जाहिर करना। करतब दिखाना।

संज्ञा पुं० [हिं० जीव+हर] (१) राजपूतों में युद्ध समय की एक प्रथा जिसके अनुसार नगर वा गढ़ में शत्रु प्रवेश का निश्चय होने पर उनकी स्त्रियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता में जल जाते थे।

विशेष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे गढ़ की रक्षा न कर सकेंगे और शत्रुओं का अवश्य अधिकार होगा तब वे अपनी स्त्रियों और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता में भस्म होने का आदेश देकर आप युद्ध के लिये सुसज्जित होकर निकल पड़ते थे। स्त्रियाँ भी शृंगार करके बड़े भारी दहकते कुंड में कूद कर प्राण विसर्जन करती थीं। प्रसिद्ध है कि जब अलाउद्दीन ने चित्तौरगढ़ को घेरा था तब महारानी पद्मिनी सोलह हजार स्त्रियों को लेकर भस्म हुई थीं। इसी प्रकार जब जैसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त स्त्रियाँ और बच्चे अर्थात् २४००० प्राणियों के लगभग क्षण भर में जल मरे थे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जौहर होना = चिता पर जल मरना। उ०—जौहर भँइ सब स्त्री पुरुष भए संग्राम।—जायसी।

(२) आत्महत्या। आत्मत्याग।

क्रि० प्र०—करना।

(३) वह चिता जो दुर्ग में स्त्रियों के जलने के लिये बनाई जाती है। उ०—(क) जौहर कर साजा रनिवासू। जेहि सत हिये कहाँ तेहि आँसू।—जायसी। (ख) अबहूँ जौहर साजि के कीन्ह चहौ उजियार। होरी खेलउ रन कठिन कोउ न समेटै छार।—जायसी।

क्रि० प्र०—साजना।

जौहरी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) हीरा लाल आदि बहुमूल्य पत्थर बेचनेवाला। रत्नविक्रेता। (२) रत्न परखनेवाला। रत्नों की परीक्षा जाननेवाला। जवाहिरात की पहचान रखनेवाला। पारखी। परखैया। जँचवैया। (३) किसी वस्तु के गुण दोष की पहचान रखनेवाला। (४) गुण का आदर करनेवाला। गुणग्राहक। कद्रदान।

ज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान। बोध। (२) ज्ञानी। जाननेवाला। जैसे, शास्त्रज्ञ। (३) ब्रह्मा। (४) बुध ग्रह। (५) सांख्य के अनुसार निष्क्रिय निर्विकार पुरुष जिसको जान लेने से बंधन कट जाते हैं। (६) मंगल ग्रह। (७) ज और ञ के संयोग से बना हुआ संयुक्त अक्षर।

ज्ञपित—वि० [सं०] (१) जाना हुआ। (२) मारा हुआ। (३) तुष्ट किया हुआ। (४) तेज किया हुआ। चोखा किया हुआ। (५) जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

ज्ञप्त—वि० [सं०] जाना हुआ।

ज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जानकारी। (२) बुद्धि। (३) मारण। (४) तोषण। तुष्टि। (५) स्तुति। (६) जलाने की क्रिया।

ज्ञवार—संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार। बुध का दिन।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी।

ज्ञात—वि० [सं०] विदित। जाना हुआ। अवगत। मालूम।

संज्ञा पुं० ज्ञान।

ज्ञातनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के तीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञात यौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका का एक भेद। वह मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो। इसके दो भेद हैं—नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा।

ज्ञातव्य—वि० [सं०] जो जाना जा सके। जिसे जानना हो अथवा जिसको जानना उचित हो। ज्ञेय। वेद्य। बोधगम्य।

जोहर।-संज्ञा स्त्री० [देश०] बावली। छोटा तालाब।

जोहार-संज्ञा स्त्री० [सं० जुषण=सेवन] अभिवादन। वंदन। प्रणाम। नमस्कार। उ०—इक इक वाण भेज्यो सकल नृपति पै मानौ सब साथ कीन्हे जोहारी।—सूर।
संज्ञा पुं० दे० "जौहर"।

जोहारना।-क्रि० अ० [हिं०] प्रणाम या नमस्कार आदि करना। अभिवादन करना।

जौं।-अव्य० [सं० यदि] यदि। जो।
क्रि० वि० दे० "ज्यों"।

जौंकना-क्रि० स० [अनु० भौंव भौंव] डाँटना। डपटना। क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कुछ कहना।

जौंची-संज्ञा स्त्री० [देश०] गेहूँ वा जौ की फसल का एक रोग जिससे बाल काली हो जाती है और उसमें दाने नहीं पड़ते।

जौंड़ा।-संज्ञा पुं० दे० "जौंरा"।

जौंरा भौंरा-संज्ञा पुं० [हिं० भुइँधर, भुइँहरा] किले वा महलों के भीतर का वह गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है।
संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ा+भौंरा] दो बालकों का जोड़ा। दो बच्चों का जोड़ा। (प्यार का शब्द)

जौंरे।-क्रि० वि० [फा० जवार] निकट। समीप। आसपास।

जौ-संज्ञा पुं० [सं० यव] (१) चार पाँच महीने रहनेवाला एक पौधा जिसके बीज या दाने की गिनती अनाजों में है। यह पौधा पृथ्वी के प्रायः समस्त उष्ण तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में होता है। भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त पहाड़ों पर भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी बोआई कातिक अगहन में होती है और कटाई फागुन चैत में होती है। इसका पौधा बिलकुल गेहूँ का सा होता है। अंतर इतना होता है कि इसमें जड़ के पास से बहुत से डंठल निकलते हैं जिन्हें कभी कभी छाँट कर अलग करना पड़ता है। इसमें टूँड़दार बाल लगती है जिसमें कोश के साथ बिलकुल चिपके हुए दाने पंक्तियों में गुछे रहते हैं। दानों के ऊपर का कोश कठिनाई से अलग होता है, इसी से यह अनाज कोश सहित बिकता है, पर काश्मीर में एक प्रकार का जौ ग्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह कोश से अलग रहते हैं। गेहूँ के समान इसके भी आटे का व्यवहार होता है। सूखे हुए पौधे का भूसा होता है जो चौपायों के खाने के काम में आता है। युरोप में और अब भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जौ से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है। जौ कई प्रकार के होते हैं। इस अन्न को मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है। वेदों में इसका उल्लेख बराबर है। अब भी हवन आदि में इस अन्न का व्यवहार होता है। ईसा से २७०० वर्ष पहले चीन के बादशाह शिनंग ने जिन पाँच अन्नों को बोआया था उनमें एक जौ भी था। ईसा से १०१५ वर्ष पहले सुलेमान बादशाह के समय में भी जौ का प्रचार खूब था। मध्य एशिया के करडँग नामक स्थान के खँड़हर के नीचे दबे हुए जौ स्टीन साहब को मिले थे। इस खँड़हर के स्थान पर सातवीं शताब्दी में एक अच्छा नगर था जो बालू में दब गया। वैद्यक में जौ तीन प्रकार के माने गए हैं, शूक, निःशूक और हरित वर्ण। शूक को यव, निःशूक को अतियव और हरे रंग के जौ को तोक्य कहते हैं। जौ शीतल, रूखा, वीर्यवर्द्धक, मलरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करनेवाला माना जाता है। यव से अतियव और अतियव से तोक्य हीन गुणवाला माना जाता है।
पर्य्या०—यव। मेध्य। सितशूक। दिव्य। अक्षत। कंचुकि। धान्यराज। तीक्ष्णशूक। तुरगप्रिय। शक्तु। हयेष्ट। पवित्र धान्य।
(२) एक पौधा जिसकी लचीली टहनियों से पंजाब में टोकरे झाड़ू आदि बनते हैं। मध्य एशिया के प्राचीन खँड़हरों में मकान के परदों के रूप में इसकी टट्टियाँ पाई गई हैं।
(३) एक तौल जो ६ राई (खरदल) के बराबर मानी जाती है।
।अव्य० [सं० यद्] यदि। अगर। उ०—जौ लरिका कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी।
क्रि० वि० जब।
यौ०—जौ लौं, जौ लगि, जौ लहि=जब तक।

जौकेराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ+केराव] मटर मिला हुआ जौ।

जौख-संज्ञा पुं० [तु० जूक] झुंड। जत्था। फौज। सेना। समूह। भीड़। पक्षियों की श्रेणी। आदमियों की गोल। उ०—धनी गौरव वे जौख की मौख सोहै। पताकानुकेकी पिकी ही अरोहै।—सूदन।

जौगढ़वा-संज्ञा पुं० [जौगढ़=कोई स्थान] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

जौचनी-संज्ञा स्त्री० [हिं०] चना मिला हुआ जौ।

जौजा-संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ौज़ः] जोरू। भार्या। पत्नी।

जौतुक-संज्ञा पुं० दे० "यौतुक"।

जौधिक-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार या खड्ग के ३२ हाथों में से एक। उ०—गुप्त प्रथित जौधिक प्रथित से हाथ वत्तिसै।—रघुराज।

जौन।-सर्व० [सं० यः] जो।
वि० जो। उ०—जौन ठौर मोहिं आज्ञा होई। नहि ठौर रहौं मैं सोई।—सूर
संज्ञा पुं० दे० "यवन"।

(२) यथार्थज्ञान। सम्यक्ज्ञान। तत्वज्ञान। आत्मज्ञान। प्रमा। केवलज्ञान।

विशेष—मीमांसा को छोड़ प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोक्ष माना है। न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष न रहने पर प्रवृत्ति से निवृत्ति, प्रवृत्ति के नाश से जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश और दुःख के नाश से मोक्ष माना है। सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जब प्रकृति हट जाती है तब मोक्ष का होना बतलाया है। वेदांत का मोक्ष ऊपर लिखा जा चुका है।

ज्ञानकांड–संज्ञा पुं० [सं०] वेद के तीन कांडों वा विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है। जैसे, उपनिषद्।

ज्ञानकृत–वि० [सं०] जो (पाप) जान बूझ कर किया गया हो, भूल से न हुआ हो।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त दूना लिखा गया है।

ज्ञानगम्य–संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर। जो जाना जा सके।

ज्ञानगोचर–वि० [सं०] ज्ञानेंद्रियों से जानने योग्य। ज्ञानगम्य।

ज्ञानतः–क्रि० वि० [सं०] जान बूझ कर। जानकारी में। समझ बूझ कर।

ज्ञानदग्धदेह–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चतुर्थ आश्रम में हो। संन्यासी।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि संन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अर्थात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है, अतः मृत्यु होने पर उसके दाह कर्म्म की आवश्यकता नहीं। उसके शरीर को एक गड्ढा खोद कर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए।

ज्ञानदाता–संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानदातृ] ज्ञान देनेवाला मनुष्य। गुरु।

ज्ञानप्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक तथागत का नाम।

ज्ञानमद–संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का अभिमान। ज्ञानी वा जानकार होने का घमंड।

ज्ञानमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को अँगूठे से मिलाकर हृदय में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों को कमल संपुट के आकार की करके उनसे सिर से लेकर बाएँ अंघे तक रखा करते हैं।

ज्ञानयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा में हवन अर्थात् आत्मा और परमात्मा का संयोग वा अभेदज्ञान। ब्रह्मज्ञान।

ज्ञानयोग–संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन। उ०—एक ज्ञानयोग विस्तरै। ब्रह्म जानि सबसों हित करै।—सूर।

ज्ञानलक्षण–संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद।

विशेष—नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक और अलौकिक। अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, सामान्य लक्षण, ज्ञानलक्षण, और योगज। ज्ञानलक्षण वह है जिसमें विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है। जैसे घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घड़े का ज्ञान।

ज्ञानवान्–वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो। ज्ञानी।

ज्ञानवृद्ध–वि० [सं०] ज्ञान में बड़ा। जिसकी जानकारी अधिक हो।

ज्ञानसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रिय। (२) ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न।

ज्ञानाकर–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

ज्ञानावरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान का परदा। ज्ञान का बाधक। (२) वह पाप कर्म्म जिससे ज्ञान का यथार्थ ज्ञान जीव को नहीं होता। यह पाँच प्रकार का है, १—मतिज्ञानावरण। २—श्रुत-ज्ञानावरण। ३—अवधि-ज्ञानावरण। ४—मनःपर्य्याय-ज्ञानावरण। ५—केवल-ज्ञानावरण। (जैन)।

ज्ञानावरणीय कर्म्म–संज्ञा पुं० दे० "ज्ञानावरण"।

ज्ञानासन–संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामल के अनुसार योग का एक आसन जिससे योगाभ्यास में शीघ्र सिद्धि होती है। इसमें दहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के तलवे को और बाईं जाँघ पर दहिने पैर के तलवे को रखना पड़ता है। इससे पैर की नसें ढीली हो जाती हैं।

ज्ञानी–वि० [सं० ज्ञानिन्] (१) जिसे ज्ञान हो। ज्ञानवान्। जानकार। (२) आत्मज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी।

ज्ञानेंद्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं०] वे इंद्रियाँ जिनसे जीवों को विषयों का बोध होता है। ज्ञानेंद्रियाँ ५ हैं—दर्शनेंद्रिय, श्रवणेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, रसना और स्पर्शेंद्रिय। इन इंद्रियों के गोलक वा आधार क्रमशः आँख, कान, नाक, जीभ और त्वक् हैं। इन पाँचों के अतिरिक्त कोई कोई छठी इंद्रिय मन वा अंतःकरण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेंद्रिय नहीं है कर्मेंद्रिय भी है, अतः उसे दार्शनिकों ने उभयात्मक माना है।

ज्ञापक–वि० [सं०] (१) जतानेवाला। जिससे किसी बात का बोध हो या पता चले। सूचक। व्यंजक। (वस्तु)। (२) बतानेवाला। सूचित करनेवाला। (व्यक्ति)

ज्ञापन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ज्ञापित, ज्ञाप्य] जताने या बताने का कार्य्य।

विशेष—श्रुति उपनिषद आदि में आत्मा ही को एक मात्र ज्ञातव्य माना है। उसे जान लेने से फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता।

ज्ञाता–वि० [सं० ज्ञातृ, ज्ञाता] [स्त्री० ज्ञात्री] जाननेवाला। ज्ञान रखनेवाला। जानकार।

ज्ञाति–संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र वा वंश का मनुष्य। गोती। भाई बंधु। बांधव। सपिंड समानोदक आदि। जैसे, चचा, चचेरा भाई आदि। उ०—(क) ते मोहि मिले ज्ञात घर अपने मैं बूझी तब जात। हँसि हँसि दौरी मिले अंकम भरि हम तुम एकै ज्ञाति।—सूर। (ख) अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रकट करि दीन्ही।—सूर।

ज्ञातिपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोत्रज का पुत्र। (२) जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी का नाम।

ज्ञातृत्व–संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी। अभिज्ञता।

ज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्तुओं और विषयों की वह भावना जो मन वा आत्मा को हो। बोध। जानकारी। प्रतीति।

क्रि० प्र०—होना।

विशेष—न्याय आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इंद्रियों के साथ, इंद्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है। मान लीजिए कि कहीं पर एक घड़ा रक्खा है। इंद्रियों ने उस घड़े का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन को दी। फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने निश्चित किया कि यह घड़ा है। ये सब व्यापार इतने शीघ्र होते हैं कि इनका अनुमान नहीं हो सकता। एक ही साथ दो विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता, ज्ञान सदा अयुगपद् होता है। जैसे यदि मन एक ओर है और हमारी आँख किसी दूसरी वस्तु की ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा। न्याय में जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, चार प्रमाण माने गए हैं उन्हीं के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है। चक्षु, श्रवण आदि इंद्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं। कभी कभी एक वस्तु (व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का अभाव नहीं हो सकता ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता है, जैसे धुएँ को देख कर अग्नि होने का ज्ञान। अनुमान तीन प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। कारण को देख कार्य्य के अनुमान को पूर्ववत् (व्याकारणलिंगक) अनुमान कहते हैं; जैसे बादलों का उमड़ना देख होनेवाली वृष्टि का ज्ञान। कार्य्य को देख कारण के अनुमान को शेषवत् (या कार्य्यलिंगक) अनुमान कहते हैं। जैसे, नदी का जल बढ़ता हुआ देख वृष्टि का ज्ञान। व्याप्य को देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। जैसे, धुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चंद्रमा को देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि। प्रसिद्ध वा ज्ञात वस्तु के साधर्म्य द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है उसे उपमान कहते हैं। जैसे, गाय ही के ऐसी नील गाय होती है। दूसरों के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शाब्द कहते हैं। जैसे, गुरु का उपदेश आदि। सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये तीन ही प्रमाण मानता है, उपमान को इनके अंतर्भूत मानता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान और अप्रमा अयथार्थ ज्ञान। वेदांत में ब्रह्म को ही ज्ञान स्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान पृथक् पृथक् नहीं हो सकता। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में वा एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है वह विषय रूप उपाधि के कारण है। वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई पड़नेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चित् स्वरूप सत्ता वा ब्रह्म का ही बोध होता है।

पाश्चात्य दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप प्रत्यक्ष ज्ञान को ही ज्ञान का मूल या प्रथम रूप माना है। किसी एक वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह वस्तु कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है, अर्थात् बिना साधर्म्य और वैधर्म्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है। इस साक्षात्करण रूप ज्ञान से आगे चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है। जैसे, 'वह पेड़ नदी के किनारे है' इस बात का ज्ञान केवल 'पेड़' 'नदी' और 'किनारा' का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन पृथग् भावों का समाहार है।

प्राणि विज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तंतु जाल (नाड़ियां) और कोश हैं, चेतन व्यापार उन्हीं की क्रिया से संबंध रखते हैं। इनमें क्रिया को ग्रहण करने और उत्पन्न करने दोनों की शक्ति है। इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाड़ियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों को प्रोत्साहित करके परमाणुओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है। भूतवादियों के अनुसार इन्हीं नाड़ियों और कोशों की क्रिया का नाम ही चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ज्ञान छाँटना = अपनी विद्या या जानकारी प्रकट करने के लिये लंबी चौड़ी बातें करना।

है। इसमें राजा धर्मज्ञ होता है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन से होती है (वृहत्संहिता), (३) सामगान का एक भेद। (४) परमेश्वर। (५) प्राण।

ज्येष्ठता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्येष्ठ होने का भाव। बड़ाई। (२) श्रेष्ठता।

ज्येष्ठबला–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई नाम की जड़ी जो औषध के काम में आती है।

ज्येष्ठसामग–संज्ञा पुं० [सं०] अरण्यक साम का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठसामा–संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ साम वेद का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठांबु–संज्ञा पुं० [सं०] चावलों का धोवन।

ज्येष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) २७ नक्षत्रों में से अठारहवाँ नक्षत्र जो तीन तारों से मिलकर कुंडल के आकार का है। इसके देवता चंद्रमा हैं। (२) वह स्त्री जो औरों की अपेक्षा अपने पति को अधिक प्यारी हो। (३) छिपकली। (४) मध्यमा उँगली। (५) गंगा। (६) पद्म पुराण के अनुसार अलक्ष्मी-देवी जो समुद्र मथने पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं। जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब उन्होंने बतलाया कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो नित्य गंदी या बुरी बातें बके, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके यहाँ रहो। लिंगपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन को ग्रहण नहीं किया तब दुःसह नामक तेजस्वी ब्राह्मण ने इन्हें पत्नी रूप से ग्रहण किया।

वि० स्त्री० बड़ी।

ज्येष्ठाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तमाश्रम। गृहस्थाश्रम।

ज्येष्ठाश्रमी–संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ। गृही।

ज्येष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहगोधा। पल्ली। छिपकली।

ज्यों–क्रि० वि० [सं० य+इव] (१) जिस प्रकार। जैसे। जिस ढंग से। जिस रूप से। (अब गद्य में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता केवल कविता में सादृश्य दिखाने के लिये होता है) उ०—(क) तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न।—तुलसी। (ख) करी न प्रीति स्यामसुंदर सों जन्म जुआ ज्यों हारयो।—सूर।

मुहा०—ज्यों त्यों=(१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढंग से। झंझट और बखेड़े के साथ। (२) अरुचि के साथ। अच्छी तरह नहीं। ज्यों त्यों कर के=(१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढब से। किसी उपाय से। जिस प्रकार हो सके उस प्रकार। जैसे, ज्यों त्यों कर के उसे हमारे पास लाओ। (२) झंझट और बखेड़े के साथ। दिक्कत के साथ। कठिनाई के साथ। उ०—रास्ते में बड़ी गहरी आँधी आई ज्यों त्यों कर के घर पहुँचे। ज्यों का त्यों=(१) जैसे का तैसा। उसी रूप रंग का। तद्रूप। सदृश। (२) जैसा पहले था वैसा ही। जिसमें कुछ फेर फार या घटती बढ़ती न हुई हो। जिसके साथ कुछ किया न की गई हो। जैसे, सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है कुछ भी नहीं हुआ है।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ "त्यों" का प्रयोग होता है पर गद्य में नहीं।

(२) जिस क्षण। जैसे ही। जैसे, (क) ज्यों मैं आया कि पानी बरसने लगा है। (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा वह उठ कर चला गया।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है।

मुहा०—ज्यों ज्यों=जिस क्रम से। जिस मात्रा से। जितना। उ०—जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न।—तुलसी।

ज्योतिःशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष।

ज्योतिःशिखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लघु गुरु वर्णों की गणना के अनुसार विषम वर्णवृत्तों का एक भेद जिसके पहले दल में ३२ लघु और दूसरे दल में १६ गुरु होते हैं।

ज्योति–संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिस्] (१) प्रकाश। उजाला। द्युति। (२) अग्निशिखा। लपट। लौ।

मुहा०—ज्योति जगना=(१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवता के सामने दीपक जलना।

(३) अग्नि। (४) सूर्य। (५) नक्षत्र। (६) मेथी। (७) संगीत में अष्टताल का एक भेद। (८) आँख की पुतली के मध्य का वह विंदु या स्थान जो दर्शन का प्रधान साधन है। (९) दृष्टि। (१०) अग्निष्टोम यज्ञ की एक संस्था का नाम। (११) विष्णु। (१२) वेदांत में परमात्मा का एक नाम।

ज्योतिक–संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"। उ०—बार बार ज्योतिक सों घरी बूझि आवै। एक जाइ पहुँचे नहिं और एक पठावै।—सूर।

ज्योतिरिंग–संज्ञा पुं० [सं०] जुगनू।

ज्योतिरिंगण–संज्ञा पुं० [सं०] जुगनू।

ज्योतिर्मय–वि० [सं०] प्रकाशमय। द्युतिपूर्ण। जगमगाता हुआ।

ज्योतिर्लिंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव।

विशेष—शिव पुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे घबरा कर कमलनाल पर इधर से उधर घूमने लगे। विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो। इस पर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो? तुम्हारा भी तो कोई कर्त्ता है। जब दोनों में घोर युद्ध होने लगा तब झगड़ा निपटाने के लिये एक कालाग्नि सदृश ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ जिसके चारों ओर भयंकर ज्वाला फैल रही थी। यह ज्योतिर्लिंग आदि मध्य और अंत रहित था। इस कथा का अभि-

ज्ञापित–[सं०] जताया हुआ। बताया हुआ। सूचित।

ज्ञेय–[सं०] (१) जिसका जानना योग्य वा कर्त्तव्य हो। जानने योग्य।

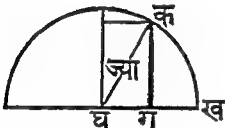
विशेष—ब्रह्मज्ञानी लोग एक मात्र ब्रह्म ही को ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

(२) जो जाना जा सके। जिसका जानना संभव हो।

ज्या–संज्ञा स्त्री०[सं०] (१) धनुष की डोरी। (२) वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो।



(३) वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लंब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो।



(४) त्रिकोणमिति में केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर बतलाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क घ) की निष्पत्ति।

(५) पृथ्वी। (६) माता।

ज़्यादती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अधिकता। बहुतायत। अधिकाई।

ज़्यादा–क्रि०वि० [फ़ा०] अधिक। बहुत।

ज्यान–संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ियान] नुक़सान। हानि। घाटा।

ज़्याफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ियाफ़त] (१) दावत। भोज। (२) मेहमानी। आतिथ्य।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

ज्यामिति–संज्ञा स्त्री०[सं०] वह गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, भिन्न भिन्न क्षेत्रों के अंगों आदि के परस्पर संबंध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है। क्षेत्रगणित। रेखागणित।

विशेष—इस विद्या में प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उन्नति की थी। यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरोडोटस के अनुसार ईसा से १३५७ वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रिस के समय में मिस्र देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ। राजकर निर्धारित करने के लिये जब भूमि को नापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सूत्रपात हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि नील नद के चढ़ाव उतार के कारण लोगों की जमीन की हद मिट जाया करती थी इसीसे यह विद्या निकाली गई। इउक्लिड के टीकाकार प्रोक्लस ने भी लिखा है कि थेल्स ने मिस्र में जाकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में प्रचलित की थी। धीरे धीरे यूनानियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की। पेथागोरस ने सबसे पहले इसके संबंध में सिद्धांत स्थिर किए और कई प्रतिज्ञाएँ निकालीं। फिर तो प्लेटो आदि अनेक विद्वान् इस विद्या के अनुशीलन में लगे। प्लेटो के अनेक शिष्यों ने इस विद्या का विस्तार बढ़ाया, जिनमें मुख्य अरस्तू (अरिस्टाटल) और इउडोक्सस थे। पर इस विद्या का प्रधान आचार्य्य इउक्लिड (उकलैदस) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पर्य्याय स्वरूप होगया। यह ईसा से २८४ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (अलेग्ज़ेंडिया जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था। वास्तव में इउक्लिड ही यूरप में ज्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र वा पीठ रहा है। जब अरबवालों ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहां इस विद्या का बड़ा प्रचार था।

प्राचीन हिंदू भी इस विद्या में बहुत पहले अग्रसर हुए थे। वैदिक काल में आर्य्यों को यज्ञ की वेदियों के परिमाण आकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था। ज्यामिति का आभास शुल्वसूत्र, कात्यायन श्रौत सूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है। इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सूत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ पर इसमें यहां कुछ उन्नति नहीं की गई। यूनानियों के संसर्ग के पीछे ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के ग्रंथों में ही ज्यामिति विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है। इस प्रकार जब हिंदुओं का ध्यान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए। परिधि और व्यास का सूक्ष्म अनुपात (३° १४१६ : १) भास्कराचार्य को विदित था। इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२ वीं शताब्दी के पीछे) हुआ।

ज्यारना†*–क्रि० अ० दे० "जियाना", "जिलाना"। उ०—पायो फिरि विप्र नेह खोजहू न पायो कहूँ तरसायो बातें लै दिखायो स्याम ज्यारियै।—प्रिया०।

ज्यावना†*–क्रि० स० दे० "जिलाना"।

ज्यूँ†–अव्य० दे० "ज्यों"।

ज्येष्ठ–वि० [सं०] (१) बड़ा। जेठा। जैसे, ज्येष्ठ भ्राता। (२) वृद्ध। बड़ा बूढ़ा।

संज्ञा पुं० (१) जेठ का महीना। वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो। यह वर्ष का तीसरा और ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना है। (२) वह वर्ष जिसमें बृहस्पति का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो। यह वर्ष कँगनी और सावाँ को छोड़ और अन्नों के लिये हानिकारक माना गया

मतानुसार देवताओं का एक भेद जिसके अंतर्गत चंद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और अर्क हैं।

ज्योतिष्का–संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

ज्योतिष्टोम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ ऋत्विक् होते थे। इस यज्ञ के समापनांत में १२०० गोदान का विधान था।

ज्योतिष्पथ–संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

ज्योतिष्पुंज–संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र-समूह।

ज्योतिष्मती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकँगनी। (२) रात्रि। (३) एक नदी का नाम। (४) एक प्रकार का वैदिक छंद। (५) सारंगी की तरह का एक प्राचीन बाजा।

ज्योतिष्मान्–वि० [सं०] प्रकाशयुक्त।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य। (२) कुश द्वीप के एक पर्वत का नाम।

ज्योतीरथ–संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव (जिसके आश्रित ज्योतिश्चक्र है)।

ज्योतीरस–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और बृहत्संहिता में है।

ज्योत्स्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। (२) चाँदनी रात। (३) सफेद फूल की तोरई। (४) सौंफ।

ज्योत्स्नाकाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम की कन्या जो वरुण के पुत्र पुष्कर की पत्नी थी। (महाभारत)

ज्योत्स्नाप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] चकोर।

ज्योत्स्नावृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] दीपाधार। दीवट। फतीलसोज़।

ज्योत्स्निका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदनी रात। (२) सफेद फूल की तोरई।

ज्योत्स्नी–संज्ञा स्त्री० दे० "ज्योत्स्निका"।

ज्योनार–संज्ञा स्त्री० [सं० जेमन = खाना] (१) पका हुआ भोजन। रसोई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) भोज। दावत। ज़ियाफ़त।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—ज्योनार बैठना = अतिथियों का भोजन करने बैठना। ज्योनार लगाना = अतिथियों के सामने रखने के लिये व्यंजनों का क्रम से लगाकर रखना।

ज्योरा–संज्ञा पुं० [सं० जीव = जीविका] वह अनाज जो फसल तैयार होने पर गावों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है।

ज्योरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी। रज्जु। डोरी।

ज्योहत†–संज्ञा पुं० [सं० जीव + हत] आत्महत्या। जौहर। उ०—केश गहि करषि जमुना धार डारिहैं, सुन्यो नृप नारि पति कृष्ण मारयो। भई व्याकुल सबै हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत ज्योहत विचारयो।—सूर।

ज्योहर†–संज्ञा पुं० [सं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार उन की स्त्रियाँ गढ़ के शत्रुओं से घिर जाने पर चिता में जल कर भस्म हो जाती थीं। दे० "जौहर"।

ज्यों–क्रि० वि० दे० "ज्यों"।

ज्यौ–अव्य० [सं० यदि] जो। यदि। उ०—जोन जुगुति पिय मिलन की धूर मुकुति मोहि दीन। ज्यौ लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हू कौन।—बिहारी।

ज्यौतिष–वि० [सं०] ज्योतिष-संबंधी।

ज्यौतिषिक–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।

ज्यौनार–संज्ञा पुं० दे० "ज्योनार"।

ज्यौरा–संज्ञा पुं० दे० "ज्योरा"।

ज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की वह गरमी या ताप जो स्वाभाविक से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे। ताप। बुखार।

विशेष—सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सब रोगों का राजा और आठ प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सान्निपातिक और आगंतुज। आगंतुज ज्वर वह है जो चोट लगने, विष खाने आदि के कारण हो जाता है। इन सब ज्वरों के लक्षण और उपचार भिन्न भिन्न हैं। ज्वर से छूटे हुए, कृश वा मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य का शेष या रहा सहा दोष जब वायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और संधि इन पाँच कफ स्थानों का आश्रय लेता है तब उससे अँतरा, तिजरा और चौथिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न होते हैं। प्रलेपक ज्वर से शरीरस्थ धातु सूख जाती है। जब कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब विपर्य्यय नाम का विषम ज्वर उत्पन्न होता है। विपर्य्यय ज्वर वह है जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे। इसी प्रकार आगंतुक ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किए गए हैं जैसे, कामज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, भयज्वर इत्यादि।

ज्वर अपने आरंभ दिन से ७ दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम, २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के उपरांत जीर्णज्वर कहलाता है। जिस ज्वर का वेग अत्यंत अधिक हो, जिससे शरीर की कांति बिगड़ जाय, शरीर शिथिल हो जाय, नाड़ी जल्दी न मिले उसे कालज्वर कहते हैं। वैद्यक में गुड़च चिरायता पिप्पली नीम आदि कटु वस्तुएँ ज्वर को दूर करने के लिये दी जाती हैं।

पाश्चात्य मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक गरमी ९८° और ९९° के बीच में होती है। शरीर में गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिसाब है कि इस मात्रा की उष्णता शरीर में बराबर बनी रहती है। ज्वर की अवस्था में शरीर में इतनी गरमी उत्पन्न होती है

प्राय ब्रह्मा विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है।

(२) भारतवर्ष में प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो बारह हैं। वैद्यनाथ माहात्म्य में इन बारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं—सोमनाथ सौराष्ट्र में, मल्लिकार्जुन श्रीशैल में, महाकाल उज्जयिनी में, ओंकार नर्मदा तट पर (अमरेश्वर में), केदार हिमालय में, भीमशंकर डाकिनी में, विशेश्वर काशी में, त्र्यंबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चिताभूमि में, नागेश्वर द्वारका में, रामेश्वर सेतुबंध में, घृष्णेश्वर शिवालय में।

ज्योतिर्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कालचक्र प्रवर्त्तक ध्रुव लोक। (२) उस लोक के अधिपति परमेश्वर या विष्णु।

विशेष—भागवत में इस लोक को सप्तर्षि मंडल से १३ लाख योजन और दूर लिखा है। यहीं पर उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इंद्र कश्यप प्रजापति तथा ग्रह नक्षत्र आदि बराबर करते रहते हैं।

ज्योतिर्विद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्हस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ज्योतिश्चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र और राशियों का मंडल।

ज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहों, नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है।

विशेष—भारतीय आर्यों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यंत प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे—पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्रा०), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्ति० सं०), कृत्तिका से भरणी (वेदांग ज्योतिष)। तैत्तरीय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरंभ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके पीछे वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरंभ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे पंडित बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुवद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छ हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी। इसीसे कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ'। प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यंत प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धांत भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया क्योंकि जब कि इसके संबंध में युरोप में विवाद था उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था।

वराहमिहिर के समय में ज्योतिष के संबंध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ट, पौलिश और रोमक। सौर सिद्धांत संबंधी सूर्य्य सिद्धांत नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भुजांश, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशांतर का भी विचार है। पूर्व काल में देशांतर लंका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी ही को केंद्र मान कर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज कल की गणना में कुछ अंतर पड़ता है।

क्रांति वृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (यूनानियों के) संपर्क से पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे होरा, द्रकाण, केंद्र, इत्यादि।

ज्योतिष के आजकल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धांत या गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष। फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है।

(२) अस्त्रों का एक संहार या रोक जिससे चलाया हुआ अस्त्र निष्फल जाता है। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

ज्योतिषिक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करनेवाला।

वि० ज्योतिष संबंधी।

ज्योतिषी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषिन्] ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला मनुष्य। ज्योतिर्विद्। दैवज्ञ। गणक।

संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा।

ज्योतिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि का समूह। (२) मेथी। (३) चित्रक वृक्ष। चीता (४) गनियारी का पेड़। (५) मेरु पर्वत के एक शृंग का नाम। (६) जैन

आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है। बंगाल, मद्रास, बरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है और बोई भी जाती है तो उसमें दाने अच्छे नहीं पड़ते। इसका पौधा नरकट की तरह एक डंठल के रूप में सीधा ५–६ हाथ ऊँचा जाता है। डंठल में सात सात आठ आठ अंगुल पर गाँठे होती हैं जिनसे हाथ डेढ़ हाथ लंबे तलवार के आकार के पत्ते दोनों ओर निकलते हैं। इसके सिरे पर फूल के जीरे और सफेद दानों के गुच्छे लगते हैं। ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम में आते हैं। ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधों में विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता। ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी दूसरी खरीफ। मक्का भी इसी का एक भेद है। इसी से कहीं कहीं 'मक्का' भी ज्वार ही कहलाता है। ज्वार को जोन्हरी, जुंडी आदि भी कहते हैं। इसके डंठल और पौधे को चारे के काम में लाते हैं और चरी कहते हैं। इस अन्न के उत्पत्ति स्थान के संबंध में मतभेद है। कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिम देशों से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को अरबी 'दूरा' से बना हुआ समझते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। ज्वार की खेती भारत में बहुत प्राचीन काल से होती आई है। पर यह चारे के लिये बोई जाती थी अन्न के लिये नहीं। (२) समुद्र के जल की तरंग का चढ़ाव। लहर की उठान। भाटा का उलटा।

विशेष—दे० "ज्वारभाटा"।

ज्वारभाटा—संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार + भाँटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार। लहर का बढ़ना और घटना।

विशेष—समुद्र का जल प्रति दिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है। इस चढ़ाव उतार का कारण चंद्रमा और सूर्य्य का आकर्षण है। चंद्रमा के आकर्षण में दूरत्व के वर्ग के हिसाब से कमी होती है। पृथ्वी तल के उस भाग के अणु जो चंद्रमा से निकट होगा उस भाग के अणुओं की अपेक्षा जो दूर होगा अधिक आकर्षित होंगे। चंद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य्य की दूरी बहुत अधिक है पर उसका पिंड चंद्रमा से बहुत ही बड़ा है। अतः सूर्य्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चंद्रमा से बहुत कम नहीं है, ⅖ के लगभग है। सूर्य्य की यह शक्ति कभी कभी चंद्रमा की शक्ति के प्रतिकूल होती है पर अमावास्या और पूर्णिमा के दिन दोनों की शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य्य करती हैं अर्थात् जिस अंश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी उसी अंश में दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी, इसी प्रकार जिस अंश में एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी में भाटा उत्पन्न करेगी। यही कारण है अमावास्या और पूर्णिमा को और दिनों की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँचा उठता है। सप्तमी और अष्टमी के दिन चंद्रमा और सूर्य्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिकूल रूप से कार्य्य करती हैं अतः इन दोनों तिथियों को ज्वार सबसे कम उठता है।

ज्वारी—संज्ञा पुं० दे० "जुआरी"।

ज्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निशिखा। लौ। लपट। आँच।
उ०—चिंता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय।
—गिरिधर।

ज्वालमाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालमालिन्] सूर्य्य।

ज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्निशिखा। लपट। (२) विष आदि की गरमी का ताप। (३) गरमी। ताप। जलन।
मुहा०—ज्वाला फूकना = गरमी उत्पन्न करना। शरीर में दाह उत्पन्न करना।
(४) दग्धान्न। (५) तक्षक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था (महाभारत)।

ज्वालाजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) एक प्रकार का चित्रक वृक्ष।

ज्वालादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारदा पीठ में स्थित एक देवी।
विशेष—इनका स्थान काँगड़े जिले के अंतर्गत देरा तहसील में है। तंत्र के अनुसार जब सती के शव को लेकर शिवजी घूम रहे थे तब यहाँ पर सती की जिह्वा गिरी थी। यहाँ की देवी 'अंबिका' नाम की और भैरव 'उन्मत्त' नामक हैं। यहाँ पर्वत के एक दरार से भूगर्भस्थ अग्नि के कारण एक प्रकार की जलनेवाली भाप निकला करती है जो दीपक दिखलाने से जलने लगती है। इसी को देवी का ज्वलंत मुख कहते हैं।

ज्वालामालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम।

ज्वालामुखी पर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिसकी चोटी के पास बड़ा गहरा गड्ढा या मुँह होता है जिसमें से धूआँ, राख, तथा पिघले या जले हुए पदार्थ बराबर अथवा समय समय पर निकला करते हैं।
विशेष—ये वेग से बाहर निकलनेवाले पदार्थ भूगर्भ में स्थित प्रचंड अग्नि के द्वारा जलते या पिघलते हैं और संचित भाप के वेग से ऊपर निकलते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों से राख, ठोस और पिघली हुई चट्टानें, कीचड़, पानी, धूआँ आदि पदार्थ निकलते हैं। पर्वत के मुँह के चारों ओर इन वस्तुओं के जमने के कारण कँगूरेदार ऊँचा किनारा सा बन जाता है। कहीं कहीं प्रधान मुख के अतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे मुख भी इधर उधर दूर तक फैले हुए होते हैं। ज्वालामुखी पर्वत प्रायः समुद्रों के निकट होते हैं। प्रशांत महासागर (पैसिफ़िक समुद्र) में जापान से लेकर पूर्वीय द्वीप समूह तक अनेक छोटे बड़े ज्वालामुखी पर्वत हैं। अकेले

जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण जाड़ा लगता है और शरीर में कँपकँपी होती है। ज्वर में यद्यपि स्वस्थ दशा की अपेक्षा अधिक गरमी उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो वह बिना किसी प्रकार का अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की धातुओं का जो क्षय होता है वह पूर्त्ति की अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीण होने लगता है, पेशाब अधिक आता है, नाड़ी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगती है, प्रायः कोष्ट-बद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, भूख कम हो जाती है, सिर में दर्द तथा अंगों में विलक्षण पीड़ा होती है। विषैले कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और वृद्धि, अंगों की सूजन, धूप आदि के ताप तथा कभी कभी नाड़ियों या स्नायुओं की अव्यवस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संबंध में हरिवंश में एक कथा लिखी है। जब कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध बाणासुर के यहाँ बंदी हो गए तब कृष्ण और बाणासुर में घोर संग्राम हुआ था। उसी अवसर पर बाणासुर की सहायता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। जब ज्वर ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में भी प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहेश्वर ज्वर को निकाल कर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के बहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रुद्ध होकर महादेवजी ने अपने श्वास से ज्वर को उत्पन्न किया।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

मुहा०—ज्वर उतरना = ज्वर का जाता रहना। बुखार दूर होना। (किसी को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रकोप होना।

ज्वरकुटुंब—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव जैसे, प्यास, श्वास, अरुचि, हिचकी इत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुडुच। (२) बथुआ।

ज्वरराज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक औषध जो पारे, माक्षिक, मैनसिल, हरताल, गंधक तथा भिलावें के योग से बनती है।

ज्वरहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

ज्वरांकुश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्वर की एक औषध जो पारे, गंधक, प्रत्येक विष और धतूरे के बीजों के योग से बनती है। (२) कुश की तरह की एक सुगंधित घास जो उत्तरीय भारत में कमाऊँ गढ़वाल से लेकर पेशावर तक होती है। इसकी जड़ में से नींबू की सी सुगंध आती है। यह घास चारे के काम की उतनी नहीं होती। इसकी जड़ और डंठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जो शरबत आदि में डाला जाता है।

ज्वरांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंती नाम का पौधा।

ज्वरांतक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिरायता। (२) अमलतास।

ज्वरा—संज्ञा पुं० [?] मृत्यु। मौत। उ०—लिए सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।—केशव।

ज्वरापह—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेलपत्री।

ज्वरार्त्त—वि० [सं०] ज्वरपीड़ित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं० ज्वरिन्] जिसे ज्वर हो।

ज्वर्रा—संज्ञा पुं० दे० "जुर्रा"। उ०—ज्वर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यों शचान सानवारे हैं।—रघुराज।

ज्वलंत—वि० [सं०] (१) जलता हुआ। प्रकाशमान्। दीप्त। देदीप्यमान्। (२) प्रकाशित। अत्यंत स्पष्ट। जैसे, ज्वलंत दृष्टांत ज्वलंत प्रमाण।

ज्वल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्वाला। अग्नि। (२) दीप्ति। प्रकाश।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा। आग की लपट। लौर।

ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलने का कार्य्य या भाव। जलन। दाह। उ०—(क) अधर रसन पर लाली मिसी मलूम। मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु धूम। (ख) सुदसा ज्वलन सनेहवा, कारन तोर। अंजन सोइ उर प्रगटत लगि दृग कोर।—रहीम। (२) अग्नि। आग। (३) लपट। ज्वाला। (४) चित्रक वृक्ष। चीता।

ज्वलनांत—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवपुत्रों का नायक जिसने बौद्ध मठ में प्रवेश करते ही बोधि-ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

ज्वलित—वि० [सं०] (१) जला हुआ। दग्ध। (२) उज्वल। दीप्तियुक्त। चमकता या झलकता हुआ।

ज्वलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मुर्रा। मरोड़फली।

ज्वान—वि० दे० "जवान"।

ज्वानी—संज्ञा स्त्री० दे० "जवानी"।

ज्वाब—संज्ञा पुं० दे० "जवाब"।

ज्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल, यवाकार या जूर्ण] (१) एक प्रकार की घास जिसकी बाल के दाने मोटे अनाजों में गिने जाते हैं। यह अनाज संसार के बहुत से भागों में होता है। भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि में इसकी खेती होती है। ज्वार सूखे स्थानों में अधिक होती है, सीड़ लिए हुए स्थानों में उतनी नहीं हो सकती। भारत में राजपूताना, पंजाब,

भँभरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० भाभर से अनु०] (१) किसी चीज़ में बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह । जाली । (२) दीवारों आदि में बनी हुई छोटी जालीदार खिड़की । (३) लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा जो दम चूल्हे आदि में रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए कोयले रहते हैं। जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों में से नीचे गिरती है । दमचूल्हे की जाली या भरना । (४) लोहे आदि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः खिड़कियों या बरामदों में लगाई जाती हैं । (५) आटा छानने की छलनी । (६) आग आदि उठाने का भरना । (६) दुपट्टे या धोती आदि के आँचल में उसके बाने के सूतों का, सुंदरता या शोभा के लिये बनाया हुआ छोटा जाल जो कई प्रकार का होता है ।
वि० स्त्री० दे० "भँभरा" ।

भँभरीदार–वि० [हिं० भँभरी + फा० दार] जालीदार । सूराखदार । जिसमें भँभरी या जाली हो ।

भंभा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह तेज आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो । उ०—मन को मसूसि मनभावन सों रूसि रसी दामिनि को दूषि रही रंभा सुकि भंभा सी ।—देव । (२) तेज आँधी । अंधड़ । (३) छोटी छोटी बूँदों की वर्षा । (४) भाँभ ।
वि० प्रचंड । तेज । तीव्र ।

भंभानिल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रचंड वायु । आँधी । (२) वह आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो।

भंभार–संज्ञा पुं० [सं० भंभा] आग की वह लपट जिसमें से कुछ अव्यक्त शब्द के साथ धुआँ और चिनगारियाँ निकलें ।

भंभाघात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रचंड वायु । आँधी । (२) वह आँधी जिसके साथ पानी भी बरसे ।

भंभी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) फूटी कौड़ी । (२) दलाली का धन । भम्भी । (दलालों की बोली)

भँभोड़ना–क्रि० स० [सं० भर्भन] (१) किसी चीज़ को बहुत वेग और झटके के साथ हिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय या नष्ट हो जाय । झकझोरना । जैसे, वे सोए हुए थे, इन्होंने जाते ही उन्हें खूब भँभोड़ा । (२) किसी जानवर का अपने से छोटे जानवर को मार डालने के लिये दाँतों से पकड़ कर खूब झटका देना । झकझोरना । जैसे, कुत्ते या बिल्ली का चूहे को भँभोड़ना ।

भँभोटी, भँभौटी–संज्ञा स्त्री० दे० "भिंभौटी" ।

भंडा–संज्ञा पुं० [सं० जट] (१) छोटे बालकों के मुंडन के पहले के केश । (२) करील ।

भंडा–संज्ञा पुं० [सं० जयन्त] (१) तिकोने या चौकोर कपड़े का टुकड़ा जिसका एक सिरा लकड़ी आदि के डंडे में लगा रहता है और जिसका व्यवहार चिह्न प्रकट, संकेत करने, उत्सव आदि सूचित करने अथवा इसी प्रकार के अन्य कामों के लिये होता है । यह कपड़ा कई रंगों का होता है और इसपर कई तरह की रेखाएँ, चिह्न या चित्र आदि अंकित होते हैं । प्राचीन काल में भारत में भंडे का कपड़ा केवल तिकोना ही होता था; पर आज कल युरोप अमेरिका आदि के भंडों के कपड़े चौकोर होते है । प्रत्येक दल या राज्य आदि का चिह्न प्रकट करने के लिये अलग अलग प्रकार के भंडे होते हैं । किसी एक राज्य की सेना या एक देश की जाति के चिह्न-स्वरूप भी अलग अलग भंडे होते हैं । लंबाई और चौड़ाई में भंडे कई फुट तक के होते हैं । सेनाओं, किलों, सरकारी इमारतों और जहाजों आदि पर प्रायः राजकीय या जातीय भंडे लगे रहते हैं जिनसे उनकी पहचान होती है । संकेत के काम के लिये जो भंडे होते हैं वे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं । पताका । निशान । फरहरा । ध्वजा ।
मुहा०—भंडा खड़ा करना = (१) सैनिक आदि एकत्र करने के लिये भंडा स्थापित करके संकेत करना । (२) आडंबर करना । (३) दे० "भंडा गाड़ना" । भंडा गाड़ना = (१) किसी स्थान विशेषतः नगर या किले आदि पर अपना अधिकार करके उसके चिह्न स्वरूप भंडा स्थापित करना । (२) पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमाना । भंडा फहराना = भंडा गाड़ना । भंडे तले आना = युद्ध आदि के उद्देश्य से, किसी के बुलाने पर योद्धाओं का निश्चित स्थान पर एकत्र होना । भंडे तले की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चलते की जान पहचान । भंडे पर चढ़ना = बदनाम होना । अपने सिर बहुत बदनामी लेना । भंडे पर चढ़ाना = बहुत बदनाम करना ।
(२) ज्वार बाजरे आदि पौधों के ऊपर का नर-फूल । जीरा ।

भंडी–संज्ञा स्त्री० [हिं० 'भंडा' का स्त्री० अल्प०] छोटा भंडा जिसका व्यवहार प्रायः संकेत आदि करने के लिये होता है ।
मुहा०—भंडी दिखाना = भंडी से संकेत करना ।

भंडीदार–वि० [हिं० भंडी + फा० दार] जिसमें भंडी लगी हो । भंडीवाला ।

भँडूलना–संज्ञा पुं० दे० "भँडूला" ।

भँडूला–वि० [हिं० भंड + ऊला (प्रत्य०)] (१) जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों । जिसका मुंडन संस्कार न हुआ हो । गर्भ के बालोंवाला (बालक) । (२) मुंडन संस्कार से पहले का । गर्भ का (बाल) । उ०—उर बघनहाँ कंठ कठुला भँडूले बार बेनी लटकन मसि बिंदु मुनि मनहर ।—सूर ।
विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः बहुवचन रूप में बोला जाता है ।
(३) घनी पत्तियोंवाला । सघन
संज्ञा पुं० (१) वह बालक जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों । वह लड़का जिसके गर्भ के बाल अभी तक मुँडे न

जावा ऐसे छोटे द्वीप में ४९ टीले ज्वालामुखी के हैं। सन् १८८३ में क्रकटोआ टापू में जैसा ज्वालामुखी का भयंकर स्फोट हुआ था वैसा कभी नहीं देखा गया था। टापू के आस पास प्रायः चालीस हजार आदमी समुद्र की घोर हलचल से डूब कर मर गए थे।

ज्वाला हलदी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रँगने की एक हलदी।

—०—

झ

झ—हिंदी व्यंजन वर्णमाला का नवाँ और चवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण-स्थान तालू है। यह स्पर्श वर्ण है और इस के उच्चारण में संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं। च, छ, ज और ञ इसके सवर्ण हैं।

झं—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) वह शब्द जो धातु-खंडों के परस्पर टकराने से निकलता है। (२) हथियारों का शब्द।

झंकना—क्रि० अ० दे० "झीखना"।

झंकाड़—संज्ञा पुं० दे० "झंखाड़"।

झंकार—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झनझनाहट का शब्द जो किसी धातुखंड से निकला हो। झनझन शब्द। झनकार। जैसे, पाजेब की झंकार, झाँझ की झंकार। (२) झींगुर आदि छोटे छोटे जानवरों के बोलने का शब्द जो प्रायः 'झन् झन्' होता है। झनकार। जैसे, झिल्लियों की झंकार। (३) झनझन शब्द होने का भाव।

झंकारना—क्रि० स० [सं० झंकार] धातु-खंड आदि में से "झन-झन" शब्द उत्पन्न करना। जैसे, झाँझ झंकारना।

क्रि० अ० "झनझन" शब्द होना। जैसे, झिल्लियों का झंकारना।

झँकिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] (१) छोटी खिड़की। झरोखा। (२) झँझरी। जाली।

झँकोर†—संज्ञा पुं० दे० "झकोरा"।

झँकोरना†—क्रि० अ० दे० "झकोरना"।

झँकोलना†—क्रि० अ० दे० "झकोरना"।

झँकोला†—संज्ञा पुं० दे० "झकोरा"।

झंखना—क्रि० अ० [हिं० खीजना] बहुत अधिक दुखी होकर पछताना और कुढ़ना। झीखना। उ०—(क) बरस दिवस धन रोय के हार परी चित झंख।—जायसी। (ख) पाँच तत्त्व का बना पींजरा तामें मुनियाँ रहती। उड़ि मुनियाँ डारी पर बैठें झंखन लागे सारी दुनिया।—कबीर। (ग) सूरज प्रभु आवत हैं हलधर को नहि लखत झँखनि कहति तो होते संग दोऊ।—सूर।

झंखाड़†—वि० दे० "झंखाड़"।

झंखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ का अनु०] (१) घनी और कँटीदार झाड़ी या पौधा। (२) ऐसे कँटीदार पौधों या झाड़ियों का घना समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान ढँक जाय। (३) वह वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों। (४) व्यर्थ की और रद्दी, विशेषतः काठ की, चीजों का समूह।

झँगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस का जालदार गोल झाँपा जिसे बेरा भी कहते हैं।

झँगा—संज्ञा पुं० दे० "झगा"। उ०—(क) नव नील कलेवर पीप झँगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिए।—तुलसी। (ख) आव लाल ऐसे मदु पीजै तेरी झँगा मेरी अँगिया धीर।—हरिदास।

झँगिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "झँगुली"।

झँगुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मठिया नामक गहने में की, कुहनी की ओर से तीसरी चूड़ी। दे० "मठिया"।

झँगुला†—संज्ञा पुं० दे० "झगा"।

झँगुलिया, झँगुली†*—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा का अल्प०] छोटे बालकों के पहनने का झगा या ढीला कुरता। उ०—(क) घुटुरन चलत कनक आँगन में कौशल्या छवि देखत। नील नलिन तनु पीत झँगुलिया घन दामिनि द्युति पेखत।—सूर। (ख) उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई।—तुलसी। (ग) कोउ झँगुली कोउ मृदुल पद-निया कोउ लावै रचि ताजा।—रघुराज।

झँगूली†*—संज्ञा स्त्री० दे० "झँगुली"। उ०—कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखहि मातु मुदित प्रीति फूली।—तुलसी।

झंझा†—संज्ञा पुं० दे० "झाँझ"। उ०—कोउ बीणा मुरली पटह चंग मृदंग उपंग। झालरि झंझ बजाइ कै गावहि तिनके संग।—गोपाल।

झंझट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] व्यर्थ का झगड़ा। टंटा। बखेड़ा। प्रपंच।

क्रि० प्र०—उठाना।—में पड़ना या फँसना।

झँझनाना—क्रि० अ० [अनु०] झन झन शब्द होना। झनक झनक शब्द होना। झंकारना। उ०—नेकु रहौ मति बोलो अबै मनि पायनि पैंजनिया झँझनैंगी।

क्रि० स० झन झन शब्द उत्पन्न करना।

झंझर—संज्ञा पुं० दे० "झज्झर"।

संज्ञा स्त्री० दे० "झँझरी"।

झँझरा—संज्ञा पुं० [हिं०] मिट्टी का जालीदार ढकना जो औटते हुए दूध के बरतन पर रखा जाता है।

वि० [सं० झर्झर] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। झीना।

सेवक। (ग) बातन तें डरपै ये कहा झकझोरत हूँ न अरी अरसात है।

झकझोरा–संज्ञा पुं० [अनु०] झटका। धक्का। झोंका। उ०—मंद बिलंद अभेरा दलकनि पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी।

झकझोलना–क्रि० स० दे० "झकझोरना"।

झँकड़–संज्ञा पुं० दे० "झक्कड़"।

झकड़ी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] दोहनी। दूध दुहने का बरतन।

झकना†–क्रि० अ० [अनु०] (१) बकवाद करना। व्यर्थ की बातें करना। (२) क्रोध में आकर अनुचित वचन कहना।

झकरा†–संज्ञा पुं० दे० "झक्कड़"।

झका*†–वि० दे० "झक"।

झकाझक–वि० [अनु०] चमकीला। जो खूब साफ़ और चमकता हुआ हो। झलाझल। उज्ज्वल। जैसे, सफेदी होने से यह कमरा झकाझक हो गया। उ०—झौंकि कै प्रीति सों झीने झरोखनि झांकि के झांका झकाझक झाँकी।—रघुराज।

झकोर*†–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हवा का झोंका। पवन की हिलोर। हिलकोरा। उ०—(क) चारु लोचन हँसि विलोकनि देखि कै चितमोर। मोहनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर।—सूर। (ख) पवि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि। रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि।—तुलसी। (ग) चारिहुँ ओर तें पौन झकोर झकोरन घोर घटा घहरानी।—पद्माकर। (२) झटका। झोंका। धक्का।

झकोरना–क्रि० अ० [अनु०] हवा का झोंका मारना। उ०—(क) चहुँ दिसि पवन झकोरत घोरत मेघ घटा गंभीर।—सूर। (ख) झँझरी के झरोखनि ह्वै कै झकोरति रावटी हूँ मैं न जात सही।—देव।

झकोरा–संज्ञा पुं० [अनु०] हवा का झोंका। वायु का वेग।

झकोल*†–संज्ञा पुं० दे० "झकोर" या "झकोरा"। उ०—मृदु पदन्यास मंद मलया निज विगलत शीश निचोल। नील पीत सित अरुन ध्वजा चल सीर समीर झकोल।—सूर।

झक–वि० [अनु०] खूब साफ़ और चमकता हुआ। झकाझक। ओपदार।

संज्ञा स्त्री० दे० "झख"।

झक्कड़–संज्ञा पुं० [अनु०] तेज आँधी। तूफ़ान। तीव्र वायु। अंधड़।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

वि० दे० "झक्की"।

झक्का–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) हवा का तेज झोंका। (२) झक्कड़। आँधी। (लश०)

झक्की–वि० [अनु०] (१) व्यर्थ की बकवाद करनेवाला। बहुत बकबक करनेवाला। (२) जिसे झक सवार हो। जो अपनी धुन के सामने किसी की न सुने। सनकी।

झखना*†–क्रि० अ० दे० "झीखना"। उ०—कह गिरिधर कविराय मातु झखै वहि ठाहीं।—गिरिधर।

झख–संज्ञा स्त्री० [हिं० झखना] झीखने का भाव या क्रिया।

मुहा०—झख मारना = (१) व्यर्थ समय नष्ट करना। वक्त खराब करना। जैसे, आप सबेरे से यहाँ बैठे हुए झख मार रहे हैं। (२) अपनी मिट्टी खराब करना। (३) विवश होकर बुरी तरह झीखना। लाचार होकर खूब कुढ़ना। जैसे, (क) तुम्हें झख मार कर यह काम करना होगा। (ख) झख मारो और वहीं जाओ।

झखकेतु–संज्ञा पुं० दे० "झषकेतु"।

झखना*†–क्रि० अ० दे० "झीखना"। उ०—(क) बाबा नंद झखत केहि कारन यह कहि मया मोह अरुझाय। सूरदास प्रभु मात पिता को तुरतहि दुख डारयो बिसराय।—सूर। (ख) ऊधो कुलिश भई यह छाती। मेरो मन रसिक लग्यो नँदलालहि झखत रहत दिन राती।—सूर। (ग) पुनि धाइ धरी हरिजू की भुजान तें छूटिबे को बहु भाँति झखी री।—केशव। (घ) कवि हरिजन मेरे उर बनमाल तेरे बिन गुन माल रेख सेख देखि झखियाँ।—हरिजन।

झखनिकेत–संज्ञा पुं० दे० "झषनिकेत"।

झखराज–संज्ञा पुं० दे० "झषराज"।

झखलगन*–संज्ञा पुं० दे० "झषलग्न"।

झखी*†–संज्ञा स्त्री० [सं० झष] मीन। मछली। मत्स्य। उ०—(क) आवत बन तें साँझ देखे मैं गायन माँझ काहू को ढोटा री एक शीश मोर पखियाँ। अलसी कुसुम जैसे चंचल दीरघ नैन मानो रस भरी लरत जुगल झखियाँ।—सूर। (ख) गोकुल माह मैं मान करैं ते भई तिय बारि बिना झखियाँ हैं।

झगड़ना–क्रि० अ० [हिं० झकझक से अनु०] दो आदमियों का आवेश में आकर परस्पर विवाद करना। झगड़ा करना। हुज्जत तकरार करना। लड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

झगड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० झकझक से अनु०] दो मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद। लड़ाई। टंटा। बखेड़ा। कलह। हुज्जत। तकरार।

क्रि० प्र०—करना।—उठाना।—समेटना।—डालना।—फैलाना।—तोड़ना।—खड़ा करना।—मचाना।—लगाना।

यौ०—झगड़ा बखेड़ा।

झगड़ालू–वि० [हिं० झगड़ा + आलू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला। कलहप्रिय। झगड़ा बखेड़ा करनेवाला। जो बात बात में झगड़ा करता हो।

हों। (२) मुंडन संस्कार से पहले का बाल। गर्भ का बाल जो अभी तक मूँड़ा न गया हो। (३) घनी पत्तियोंवाला वृक्ष। सघन वृक्ष।

झंप–संज्ञा पुं० [सं०] उछाल। फलांग। कुदान।

मुहा०—झंप देना=कूदना। उ०—करि अपनो कुल नास वनहि सो अगिनि झँप दै आई।—सूर।

संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों के गले का एक भूषण। उ०—तैसे चँवर बनाए औ घाले गल झंप।—जायसी।

झँपकना–क्रि० अ० दे० "झपकना"।

झँपकी–संज्ञा स्त्री० दे० "झपकी"।

झँपताल–संज्ञा पुं० दे० "झपताल"।

झँपाक–संज्ञा पुं० [सं०] बंदर।

झँपना–क्रि० अ० [सं० झंप] (१) ढँकना। छिपना। आड़ में होना। (२) उछलना। कूदना। लपकना। झपकना। उ०—(क) छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौरत झँपत झौंर झौंर मधु अंध।—बिहारी। (ख) जबहि झँपति तबहि कँपति बिहँसि लगति उरोज।—सूर। (३) टूट पड़ना। एक दम से आ पड़ना। उ०—जागत काल सोवत काल काल झँपै आई। काल चलत काल फिरत कबहूँ लै जाई।—दादू। (४) झेंपना। लज्जित होना।

झँपरिया, झँपरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना=ढकना] पालकी को ढाँकने की खोली। गिलाफ़। ओहार। उ०—आठ कोठरिया नौ दरवाजा दसयें लागि केंवरिया। खिड़की खोलि पिया हम देखल ऊपर झाँप झँपरिया।—कबीर।

झँपान–संज्ञा पुं० [सं० झंप] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली जिसमें दोनों ओर दो लंबे बाँस बँधे होते हैं। इन बाँसों के दोनों ओर बीच में रस्सियाँ बँधी होती हैं जिनमें छोटे छोटे दो और बाँस पिरोए रहते हैं। इन्हीं बाँसों को चार आदमी अपने कंधे पर रख कर सवारी ले चलते हैं। यह सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है। झप्पान।

झंपित*–वि० [सं० झप] ढँका हुआ। छिपा हुआ। आच्छादित। छाया हुआ।

झँपोला–संज्ञा पुं० [हिं० झँपा+ओला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० झँपोली या झँपोलिया] छोटा झाँपा या झावा। छावड़ा।

झँवराना–क्रि० अ० [हिं० झँवर] (१) कुछ काला पड़ना। (२) कुम्हलाना। सूखना। फीका पड़ना।

झँवा–संज्ञा पुं० दे० "झाँवाँ"।

झँवाना–क्रि० अ० [हिं० झँवाँ] (१) झाँवे के रंग का हो जाना। कुछ काला पड़ जाना। जैसे, धूप में रहने के कारण चेहरा झँवा जाना। (२) अग्नि का मंद हो जाना। आग का कुछ ठंढा हो जाना। (३) किसी चीज का कम हो जाना। घट जाना। (४) कुम्हलाना। मुरझाना। (५) झाँवे से रगड़ा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) झाँवे के रंग का कर देना। कुछ काला कर देना। जैसे, धूप ने उनका चेहरा झँवा दिया। (२) अग्नि को मंद करना। आग ठंढी करना। (३) किसी चीज को कम करना। घटाना। उ०—ज्ञान को अभिमान किए मोको हरि पठयो। मेरोई भजन थापि माया सुख झँपयो।—सूर। (४) कुम्हला देना। मुरझा देना। (५) झाँवे से रगड़ना। (६) झाँवे से रगड़वाना। उ०—झझकत हिये गुलाब के झँवा झँवावति पाँय।—बिहारी।

झ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) झंझावात। वर्षा मिली हुई तेज आँधी। (२) सुरगुरु। बृहस्पति। (३) दैत्यराज। (४) ध्वनि। गुंजार शब्द। (५) तीव्र वायु। तेज़ हवा।

झइँ*†–संज्ञा स्त्री० दे० "झाईं"। उ०—भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई।—तुलसी।

झई*†–संज्ञा स्त्री० दे० "झाईं"। उ०—को जानै काहू के जिय की छिन छिन होत नई। सूरदास स्वामी के बिछुरे लागै प्रेम झई।—सूर।

झउआ, झउवा†–संज्ञा पुं० [हिं० झावा] खाँचा। टोकरा। झावा।

झक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] धुन। सनक। लहर। मौज।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें आगा पीछा या भला बुरा न सूझे। सनक।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।—समाना।—सवार होना।

संज्ञा स्त्री० दे० "झख"।

वि० चमकीला। साफ़। ओपदार। जैसे, सफ़ेद झक।

झककेतु*–संज्ञा पुं० दे० "झषकेतु"।

झकझक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) व्यर्थ की हुज्जत। फ़जूल झगड़ा या तकरार। किचकिच। (२) व्यर्थ की बकवाद। निरर्थक वाद विवाद। बकबक।

यौ०—बकबक झकझक।

झकझका–वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार।

झकझकाहट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] ओप। चमक। जगमगाहट।

झकझेलना–क्रि० स० दे० "झकझोरना"।

झकझोर–संज्ञा पुं० [अनु०] झोंका। झटका। उ०—तन अस पिपर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा।—जायसी।

वि० झोंकेदार। तेज़। जिसमें खूब झोंका हो। उ०—काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर। नाहिं चितवत देत तिय सुत नाम नौका ओर।—सूर।

झकझोरना–क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को पकड़ कर खूब हिलाना। झोंका देना। झटका देना। उ०—(क) सूरदास निरखि ब्रज युवती झकझोरनि उर देत भरे।—सूर। (ख) अधिकाय सुगंधनि सेव चारु मलिंदन को झकझोरति है।—

चढ़ती या पड़ती है। जैसे, यदि धोती पर कनखजूरा चढ़ने लगे तो कहेंगे कि 'धोती झटक दो,' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने झटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से अलग कर दिया तो कहेंगे कि "कृष्ण ने राम का हाथ झटक दिया"।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी चीज को जोर से हिलाना। झोंका देना। झटका देना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—झटक कर = झोंके से। झटके से। तेजी से। उ०—झटकि चढ़ति उतरति अटा नेक न थाकति देह। भई रहति नट कौ बटा अटकी नागरि नेह।—बिहारी।

(३) दबाव डालकर चालाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। ऐंठना। जैसे, (क) आज एक बदमाश ने रास्ते में दस रुपए उनसे झटक लिए। (ख) पंडित जी आज उनसे एक धोती झटक लाए।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—झटके का माल = जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल।

क्रि० अ० रोग या दुःख आदि के कारण बहुत दुर्बल या क्षीण हो जाना। जैसे, चार ही दिन के बुखार में वे तो बिलकुल झटक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

झटका–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) झटकने की क्रिया। झोंके से दिया हुआ हलका धक्का। झोंका।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—मारना।—लगना।—लगाना।

(२) झटकने का भाव। (३) पशु वध का वह प्रकार जिसमें पशु हथियार के एक ही आघात से काट डाला जाता है।

यौ०—झटके का मांस = उक्त प्रकार से मारे हुए पशु का मांस।

(४) आपत्ति, रोग या शोक आदि का आघात।

क्रि० प्र०—उठना।—खाना।—लगना।

(५) कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दाँव करने के इरादे से पेट में घुस आता है।

झटकारना–क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को इस प्रकार हिलाना जिसमें उस पर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय। झटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गर्द साफ करने के लिये चादर झटकारना या किसी का हाथ झटकारना। दे० "झटकना"।

झटपट–अव्य० [हिं० झट + अनु० पट] अति शीघ्र। तुरंत ही। तत्क्षण। फौरन। बहुत जल्दी। जैसे, तुम झटपट जाकर बाजार से सौदा ले आओ।

झटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भू आँवला।

झटाका–क्रि० वि० दे० "झड़ाका"।

झटाला†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ी] बौछार।

झटिका–संज्ञा स्त्री० दे० "झाटा"।

झटिति†*–क्रि० वि० [सं०] (१) झट। चटपट। फौरन। तत्काल। तुरंत। उ०—कटत झटिति पुनि नूतन भये। प्रभु बहु बार बाहु सिर हये।—तुलसी। (२) बेविचारे। बिना समझे बूझे।

झट्‡–क्रि० वि० दे० "झट"।

झड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना] (१) दे० "झड़ी"। (२) ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से हटता बढ़ता है।

झड़कना–क्रि० स० दे० "झिड़कना"।

झड़का†–संज्ञा पुं० दे० "झड़ाका"।

झड़झड़ाना–क्रि० स० (१) दे० "झिड़कना"। (२) दे० "झँझोड़ना"।

झड़न–संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना] (१) जो कुछ झड़ के गिरे। झड़ी हुई चीज। (२) झड़ने की क्रिया या भाव। (३) लगाए हुए धन का मुनाफा या सूद। (क्व०)

झड़ना–क्रि० अ० [सं० क्षरण] (१) किसी चीज से उसके छोटे छोटे अंगों या अंशों का टूट टूट कर गिरना। कण या बूँद के रूप में गिरना। जैसे, आकाश से तारे झड़ना, बदन की धूल झड़ना, पेड़ में से पत्तियाँ झड़ना।

मुहा०—फूल झड़ना = दे० "फूल" के मुहावरे।

(२) अधिक मान या संख्या में गिरना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(३) वीर्य का पतन होना। (बाज़ारू)।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) झाड़ा जाना। साफ किया जाना।

झड़प–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) दो जीवों की परस्पर मुठभेड़। लड़ाई। (२) क्रोध। गुस्सा। (३) आवेश। जोश। (४) आग की लौ। लपट। (५) दे० "झड़ाका"।

झड़पना–क्रि० अ० [अनु०] (१) आक्रमण करना। हमला करना। वेग से किसी पर गिरना। (२) छोप लेना। (३) लड़ना। झगड़ना। उलझ पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(४) जबरदस्ती किसी से कुछ छीन लेना। झटकना।

संयो० क्रि०—लेना।

झड़पा झड़पी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] हाथापाई। गुत्थमगुत्था।

झगड़ी*—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ा] अपने नेग के लिये झगड़ा करनेवाली । उ०—यशोमति लटकति पाँय परै । तेरो भलो मनाइहौं झगरी तूँ मति मनहि डरै ।—सूर ।

झगर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया । उ०—तूती लाल कर करे सारस झगर तोते तीतर तुरमती बटेर गहियत है ।—रघुनाथ ।

झगरना—क्रि० अ० दे० "झगड़ना" ।

झगरा * †—संज्ञा पुं० दे० "झगड़ा" ।

झगराऊ * †—वि० दे० "झगड़ालू" । उ०—याहि कहा मैया मुँह लावति गनति कि एक लँगरि झगराऊ ।—तुलसी ।

झगरी * †—संज्ञा स्त्री० दे० "झगड़ी" । उ०—यशोमति लटकति पाँय परै । तेरो भलो मनाइहौं झगरी तूँ मति मनहि डरै ।—सूर ।

झगला * †—संज्ञा पुं० दे० "झगा" ।

झगा—संज्ञा पुं० [?] छोटे बच्चों के पहनने का कुछ ढीला कुरता । उ०—झगा पगा अरु पाग पिछौरी ढाढ़िन को पहिरायो । हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठायो ।—सूर ।

झगुलिया * †—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा का अल्प०] झगा । उ०—के लिये दे० "झँगुलिया" ।

झगुली * †—संज्ञा स्त्री० दे० "झगुलिया" ।

झज्झर—संज्ञा पुं० [सं० झर्झर] कुछ चौड़े मुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक प्रकार का बरतन जिसकी ऊपरी तह पर पानी को ठंढा करने के लिये थोड़ा सा बालू लगा दिया जाता है । इसकी ऊपरी सतह पर सुंदरता के लिये तरह तरह की नकाशियाँ भी की जाती हैं । इसका व्यवहार प्रायः गरमी के दिनों में जल को अधिक ठंढा करने के लिये होता है ।

झज्झी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) फूटी कौड़ी । (२) दलाली का धन । (दलालों की भाषा)

झझक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] (१) झझकने की क्रिया या भाव । किसी प्रकार के भय की आशंका से रुकने की क्रिया । चमक । भड़क । जैसे, अभी इनकी झझक नहीं गई है, इसीसे खुलकर नहीं बोलते ।

क्रि० प्र०—जाना ।—मिटना ।—होना ।

मुहा०—झझक निकलना = झझक दूर होना । भय का नष्ट होना । झझक निकालना = झझक या भय दूर करना । जैसे, हम चार दिन में इनकी झझक निकाल देंगे ।

(२) कुछ क्रोध से बोलने की क्रिया या भाव । झुँझलाहट । (३) किसी पदार्थ में से रह रह कर निकलनेवाली विशेषतः अप्रिय गंध ।

क्रि० प्र०—आना ।—निकलना ।

(४) रह रह कर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा । कभी कभी होनेवाली सनक ।

क्रि० प्र०—आना ।—चढ़ना ।—सवार होना ।

झझकन * †—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] झझकने या भड़कने का भाव । डर कर हटने या रुकने का भाव । भड़क । उ०—वह रस की झझकनि, वह महिमा, वह मुसुकनि वैसो संजोग ।—सूर ।

झझकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) किसी प्रकार के भय की आशंका से अकस्मात् किसी काम से रुक जाना । अचानक डरकर ठिठकना । बिदकना । चमकना । भड़कना । उ०—(क) कबहुँ चुंबन देत आकर्षि जिय लेति करति बिन चेत सब हेत अपने । मिलति भुज कंठ दै रहति अंग लटकि कै जात दुख दूर ह्वै झझकि सपने ।—सूर । (ख) छाले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ । झझकति हियहिं गुलाब के झँवा झँवावति पाइ ।—बिहारी ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

(२) झुँझलाना । खिजलाना । (३) चौंक पड़ना ।

झझकाना—क्रि० स० [हिं० झझकना का प्रे०] (१) अचानक किसी प्रकार के भय की आशंका कराके किसी काम से रोक देना । चमकाना । भड़काना उ०—जु ज्यों उझकि झाँपति बदन झुकति बिहँसि सत राइ । तुत्यों गुलाल मुठी झुठी झझकावत पिय जाइ ।—बिहारी । (२) चौंका देना ।

झझकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकारना] झझकारने की क्रिया या भाव ।

झझकारना—क्रि० स० [अनु०] (१) डपटना । डाँटना । (२) दुरदुराना । (३) अपने सामने कुछ न गिनना । किसी को अपने आगे मंद बना देना । उ०—नख मानो चंद्रबाण साजि कै झझकारत उर आयो । सूरदास मानिनि रण जीत्यो समर संग हरि रण भाग्यो ।—सूर ।

झट—क्रि० वि० [सं० झटिति] तुरंत । उसी समय । तत्क्षण । फौरन । जैसे, हमारे पहुँचते ही वे झट उठ कर चले गए ।

मुहा०—झट से = जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

यौ०—झट पट ।

झटकना—क्रि० स० [हिं० झट] (१) किसी चीज को इस प्रकार एकबारगी झोंके से हिलाना कि उस पर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय । झटके से हलका धक्का देना । झटका देना । उ०—नासिका ललित बेसरि बनी अधर तट सुभग तारक छबि कहि न आई । धरनि पट पटकि कर झटकि भौंहनि मटकि अटकि नहीं रीझे कन्हाई ।—सूर ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर पड़ती या पड़ती है और उस चीज के लिये भी होता है जिस पर कोई दूसरी चीज

झपका–संज्ञा पुं० [अनु०] हवा का झोंका। (लश०)

झपकाना–क्रि० स० [अनु०] पलकों को बार बार बंद करना।

झपकी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) हलकी नींद। थोड़ी निद्रा। ऊँघाई। ऊँघ। जैसे, ज़रा झपकी ले लें तो चलें।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।—लेना।

(२) आँख झपकने की क्रिया। (३) बेंवरा। वह कपड़ा जिससे अनाज ओसाने या बरसाने में हवा देते हैं। (४) *धोखा। चकमा। बहकावा। उ०—कहुँ देत झपकी झपकि झपकहु देत खाली दाउँ। बढ़ि जात कहुँ पुत बगल ह्वै बलगात दच्छिन पाउँ।—रघुराज।*

झपकौहाँ०–वि० [हिं० झपना] [स्त्री० झपकौहीं] (१) नींद से भरा हुआ (नेत्र)। जिसमें झपकी आ रही हो (वह आँख)। झपकता हुआ। उ०—(क) झपकौहैं पलनि पिया के पीक लीक लखि झुकि झहराइहूँ न नेकु अनुरागे त्यों।—पद्माकर। (ख) झुकि झुकि झपकौहैं पलन फिरि फिरि जुरि जमुहाय। जानि पियागम नींद मिस ही सब सखी उठाय।—बिहारी। (२) मस्त। नशे में चूर। नशे से भरा। उ०—सखि अंग लटूरी चहुँघा पूरी जोति समूरी भाव लसैं। दृग दुति झपकौंही भौंह चढ़ौंही नाक चढ़ौंही अधर हँसैं।—सूदन।

झपट–संज्ञा स्त्री० [सं० झंप=कूदना] *झपटने की क्रिया या भाव।* उ०—(क) लपट झपट झहराने हहराने वात भहराने भट परयो प्रबल परावनो।—तुलसी। (ख) देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।—तुलसी। (ग) मन पंछी जब लग उड़े विषय वासना माहिं। ज्ञान बाज की झपट में तब लगि आया नाहिं।—कबीर।

यौ०—लपट झपट=लपटने और झपटने की क्रिया या भाव।

मुहा०—झपट लेना=बहुत तेज़ी से बढ़कर छीनना।

झपटना–क्रि० अ० [सं० झंप=कूदना] (१) *किसी (वस्तु या व्यक्ति)* की ओर झोंक के साथ बढ़ना। वेग से किसी की ओर चलना। (२) पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बढ़ना। टूटना। धावा करना।

मुहा०—किसी पर झपटना=किसी पर आक्रमण करना। जैसे, बिल्ली का चूहे पर झपटना।

क्रि० स० बहुत तेज़ी से बढ़ कर कोई चीज़ ले लेना। झपट कर कोई चीज़ पकड़ या छीन लेना। जैसे, तोते को बिल्ली झपट ले गई।

संयो० क्रि०—लेना।

झपटाना–क्रि० स० [हिं० झपटना का प्रे०] धावा कराना। आक्रमण कराना। हमला कराना। इरितयाळक देना। वार कराना। लड़ने को उभारना। उँपकाना। बढ़ावा देना। किसी को झपटने में प्रवृत्त करना।

झपट्ट†–संज्ञा स्त्री० दे० "झपट"।

झपट्टा†–संज्ञा पु० दे० "झपट"।

झपताल–संज्ञा पु० [देश०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्द्ध होती हैं। इसमें ३ आघात और एक खाली रहता है। इसका मृदंग

× १ ० २ ० ×

का बोल यह है—धागू, धागेने, तटे, धागे, ने, धा,। इस

× ०

का तबले का बोल यह है—धिन धा, धिन धिन धा, दंव

\+

ता तिन तिन ता। धा।

झपना–क्रि० अ० [अनु०] (१) (पलकों का) गिरना। (पलकों का) बंद होना। (२) आँखें झपकना या बंद होना। (२) झुकना। (३) लज्जित होना। झेंपना। छिपना।

झपनी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ढकना। वह जिससे कोई चीज़ ढकी जाय। (२) पिटारी।

झपलैया†–संज्ञा स्त्री० दे० "झँपोला"। उ०—अस कहि झपलैया दिखरायो। *खिलखिल्ले को दरस करायो।—रघुराज।*

झपवाना–क्रि० स० [अनु०] झपाना का प्रेरणार्थक रूप। किसी को झपाने में प्रवृत्त करना।

झपस–संज्ञा स्त्री० [हिं० झपसना] (१) गुंजान होने की क्रिया या भाव। (२) कहारों की परिभाषा में पेड़ की झुकी हुई डाल। (इस का व्यवहार पिछले कहार को आगे पेड़ की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहार करता है)

झपसना–क्रि० अ० [हिं० झँपना=ढँकना] लता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना। पेड़ या लता आदि का गुंजान होना। जैसे, यह लता खूब झपसी हुई है।

झपाका–संज्ञा पु० [हिं० झप] शीघ्रता। जल्दी।

क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

झपाट†–क्रि० वि० [हिं० झप] झटपट। तुरंत। शीघ्र ही।

झपाटा–संज्ञा पु० [हिं० झपट] चपेट। आक्रमण। दे० "झपट"।

झपाना–क्रि० स० [हिं० झपना] (१) झपना का सकर्मक रूप। मूँदना। बंद करना। (विशेषतः आँखों या पलकों का) (२) झुकाना। (३) दे० "झिपाना"।

झपाथ–संज्ञा पु० [देश०] घास काटने का एक प्रकार का औज़ार।

झपित–वि० [हिं० झपना] (१) झपा हुआ। मुँदा हुआ। (२) जिसमें नींद भरी हो। झपकौंहा। उनींदा। (नेत्र)। (३) लज्जित। लज्जायुक्त। लजालू। उ०—कवि पद्माकर छकित झपित झपि रहत दगंचल।—पद्माकर।

झपिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) गले में पहनने का एक प्रकार का गहना जो हँसुली की तरह का बना होता है और जिसके *सोने या चाँदी के बीच में एक अकीक़ जड़ा रहता है। यह* गहना प्रायः डोम जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) पेटारी। पच्छो।

झड़पाना—क्रि० स० [अनु०] दो जीवों विशेषतः पक्षियों को लड़ाना। (क्व०)

झड़बेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़+बेर] (१) जंगली बेर। (२) जंगली बेर का पौधा।

मुहा०—झड़बेरी का काँटा=लड़ने या उलझनेवाला मनुष्य। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला मनुष्य।

झड़बेरी—संज्ञा स्त्री० दे० "झड़बेरी"।

झड़वाना—क्रि० स० [हिं० झाड़ना का प्रे०] झाड़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झाड़ने में प्रवृत्त करना।

झड़ाक—क्रि० वि० दे० "झड़ाका"।

झड़ाका—संज्ञा पुं० [अनु०] झड़प। दो जीवों की परस्पर मुठभेड़। क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक। चटपट।

झड़ाझड़—क्रि० वि० [अनु०] (१) लगातार। बिना रुके। बराबर। एक के बाद एक। (२) जल्दी जल्दी।

झड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना] (१) लगातार झड़ने की क्रिया। बूँद या कण के रूप में बराबर गिरने का कार्य्य या भाव। (२) छोटे बूँदों की वर्षा। (३) लगातार वर्षा। झड़ी। बराबर पानी बरसना। (४) बिना रुके हुए लगातार बहुत सी बातें कहते जाना या चीजें रखते, देते अथवा निकालते जाना। जैसे, उन्होंने बातों (या गालियों) की झड़ी लगा दी।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।—लगना।—लगाना।

(५) ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से हटता बढ़ता है।

झन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी धातु-खंड आदि पर आघात लगने से होता है। धातु के टुकड़े के बजने की ध्वनि।

यौ०—झनझन।

झनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनकार का शब्द। झनझन का शब्द जो बहुधा धातु आदि के परस्पर टकराने से होता है। जैसे, हथियारों की झनक, पाजेब की झनक, चूड़ियों की झनक।

झनकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) झनकार का शब्द करना। (२) क्रोध आदि में हाथ पैर पटकना। (३) चिड़चिड़ाना। क्रोध में आकर जोर से बोल उठना। (४) दे० "झींखना"।

झनक मनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मंद मंद झनकार जो बहुधा आभूषणों आदि से उत्पन्न होती है।

झनकवात—संज्ञा स्त्री० [अनु० झनक+सं० वात] घोड़ों का एक रोग जिसमें वे अपने पैर को कुछ झटका देकर रखते हैं।

झनकार—संज्ञा स्त्री० दे० "झंकार"। उ०—घर घर गोपी दही बिलोवहि करकंकन झनकार।—सूर।

झनकारना—क्रि० स० और अ० दे० "झंकारना"।

झनझन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनझन शब्द। झनकार। झनझनाहट।

झनझना—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो तमाखू की नसों में छेद कर देता है। इसे 'चनचना' भी कहते हैं। वि० [अनु०] जिसमें से झनझन शब्द उत्पन्न हो।

झनझनाना—क्रि० अ० [अनु०] झनझन शब्द होना। क्रि० स० झनझन शब्द उत्पन्न करना।

झनझनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झनझन शब्द होने की क्रिया या भाव। झंकार। (२) झुनझुनी।

झनझोरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

झननन—संज्ञा पुं० [अनु०] झनझन शब्द। झंकार।

झननाना—क्रि० अ० और स० दे० "झंकारना"।

झनवाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

झनस—संज्ञा पुं० [?] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

झनाझन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झंकार। झनझन शब्द। क्रि० वि० झनझन शब्द सहित। इस प्रकार जिसमें झनझन शब्द हो। जैसे, झनाझन खड़े बजने लगे, झनाझन रुपए बरसने लगे।

झनिया—वि० दे० "झीना"। उ०—कनक रतन मनि जटित कटि किंकिन कलित पीत पट झनिया।—सूर।

झन्नाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनकार का शब्द। झनझनाहट। उ०—टूटे सार सन्नाह झन्नाहटे सौं। परे टूटि कै भूमि खन्नाहटे सौं।—सूदन।

झप—क्रि० वि० [सं० झंप=जल्दी से गिरना, कूदना] जल्दी से। तुरंत। झट। उ०—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि झप यमुना जल लीनो। सोवत काली जाइ जगायो फिरि भारत हरि कीनो।—सूर।

यौ०—झपझप। झपाझप।

मुहा०—झप खाना=पतंग का जल्दी से पेंदी के बल गिर पड़ना।

झपक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपकना] (१) उतना समय जितना पलक गिरने में लगता है। बहुत थोड़ा समय। (२) पलकों का परस्पर मिलना। पलक का गिरना। (३) हलकी नींद। झपकी। (४) लज्जा। शर्म। हया। झेंप।

झपकना—क्रि० अ० [सं० झंप=वेग से चलना, कूदना] (१) पलक गिराना। पलकों का परस्पर मिलना। (२) झपकी लेना। ऊँघना। (क्व०) (३) तेजी से आगे बढ़ना। झपटना। (४) ढकेलना। (५) झेंपना। शरमिंदा होना। (६) डरना। सहम जाना।

झमकाना–क्रि० स० [हिं० झमकना का स० रूप] (१) चमकाना। बार बार हिला कर चमक पैदा करना। (२) चलने में आभूषण आदि बजाना और चमकाना। उ०—सहज सिँगार उठत यौवन तन विधि सों हाथ बनाई। सूर स्याम आए ढिग आपुन घट भरि चलि झमकाई।—सूर। (३) युद्ध में हथियारों आदि को चमकाना और खनखनाना।

झमकारा–वि० [हिं० झमझम] झमाझम बरसनेवाला (बादल)। उ०—सोहे सिंधु सिंधुर से बंधुर ज्यों विंध्य गंधमादन के बंधु गरज गुरवानि के। झमकारे झूमत गगन घने घूमत पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवान के।—देव।

झमझम–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झमझम शब्द जो बहुधा घुँघुरुओं आदि के बजने से उत्पन्न होता है। छमछम। (२) पानी बरसने का शब्द। (३) चमक दमक।

वि० जिसमें से खूब चमक या आभा निकले। चमकता हुआ।

क्रि० वि० (१) झमझम शब्द के साथ। जैसे, घुँघुरुओं का झमझम बोलना, पानी का झमझम बरसना। (२) चमक दमक के साथ। झमाझम।

झमझमाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) झमझम शब्द होना। (२) चमचमाना। चमकना।

क्रि० स० (१) झमझम शब्द उत्पन्न करना। (२) चमकाना।

झमझमाहट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झमझम शब्द होने की क्रिया या भाव। (२) चमकने की क्रिया या भाव।

झमना–क्रि० अ० [अनु०] नम्र होना। झुकना। दबना। उ०—मुरली स्याम के कर अधर बिंब रमी। लेति सरबसु युवतिजन को बदन तें बिंदु अमी। पिवति न्यारे गर्व मारे नेकु नाहीं नमी। बोलि शब्द सु सह सुर मिल नाग मुनि गति दमी। महा कठिन कठोर आली बाँस बंश जु जमी। सूर पूरन परसि श्रीमुख नैक नाहीं झमी।—सूर।

झमाका–संज्ञा पु० [अनु०] (१) झमझम शब्द। पानी बरसने या गहनों के बजने आदि का शब्द। (२) ठमक। मटक। नखरा।

झमाझम–क्रि० वि० [अनु०] (१) उज्वल कांति के सहित। दमक के साथ। जैसे, सलमे सितारे टँके हुए कपड़ों का झमाझम चमकना। (२) झमझम शब्द सहित। जैसे, पाजेब का झमाझम बोलना, पानी का झमाझम बरसना।

झमाट–संज्ञा पु० [अनु०] झुरमुट। उ०—पर्वत के सिर पर क्या देखता है कि बहुत से सूखे झाड़ों के झमाट से बड़ा घटाटोप धूम निकल रहा है।—व्यास।

झमाना–क्रि० अ० [अनु०] झपकना। छाना। घेरना। उ०—(क) खेलत तुम निसि अधिक गई सुत नैननि नींद झमाई। बदन जँभात अंग ऐंड़ावत जननि पलोटत पाई।—सूर।

(ख) त्यों पदमाकर झोरि झमाई सुदौरीं सबै हरि पै इकदाऊ।—पद्माकर।

क्रि० अ० दे० "झँवाना"।

क्रि० स० इकट्ठा करना। एकत्र करना।

झमूरा–संज्ञा पु० [?] (१) घने बालोंवाला पशु। जैसे, रीछ, झबरा कुत्ता आदि। (२) वह लड़का जो बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर को सहायता देता है। (३) वह बच्चा जो ढीले ढाले कपड़े पहने हो। (४) कोई प्यारा बच्चा।

झमेल–संज्ञा स्त्री० दे० "झमेला"।

झमेला–संज्ञा पुं० [अनु० झाँव झाँव] (१) बखेड़ा। झंझट। झगड़ा टंटा। (२) लोगों का झुंड। भीड़ भाड़। उ०—शत्रुन के झमेला बीर पाय शस्त्र ठेला प्रान त्यागि अलबेला तन लहै काम चेला सो।—गोपाल।

झमेलिया–संज्ञा पु० [हिं० झमेला + इया (प्रत्य०)] झमेला करनेवाला। झगड़ालू।

झर–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी गिरने का स्थान। निर्झर। (२) झरना। सोता। चश्मा। पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। (३) समूह। (४) तेजी। वेग। उ०—प्रात गई नीके उठि ते घर। मैं बरजी कहाँ जाति री प्यारी तब खीकी रिस झर ते।—सूर। (५) झड़ी। लगातार वृष्टि। (६) किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ०—(क) बर्षत अस्त्र कवच धर फूटे। मघा मेघ मानो झर जूटे।—लाल। (ख) पावक झर ते मेह झर दाहक दुसह विसेखि। दहै देह वाके परस याहि दृगन की देखि।—बिहारी। (ग) सूरदास तब ही तम नासै ज्ञान अगिन झर फूटे।—सूर (७) आँच। ताप। लपट। ज्वाला। झाल। उ०—(क) स्याम अंकम भरि लीन्हीं बिरह अगिन झर तुरत बुझानी।—सूर। (ख) स्याम गुणराशि मानिनि मनाई। रह्यो रस परस्पर मिट्यो तनु बिरह झर भरी आनंद त्रिय उर न माई।—सूर। (ग) लटपटाति सी ससिमुखी मुख घूँघट पट ढाँकि। पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि।—बिहारी। (घ) नेकु न झुरसी बिरह झर नेह लता कुँभिलाति। नित नित होत हरी हरी खरी झलरति जाति।—बिहारी। (८) ताले का खटका। ताले के भीतर की कल। ताले का कुत्ता।

झरक *†–संज्ञा स्त्री० दे० "झलक"।

झरकना–क्रि० अ० (१) "झलकना"। उ०—सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम खंभ सुजोर। चारु पाटियनि पुरट की झरकत मरकत भोर।—तुलसी। (२) दे० "झिड़कना"। उ०—रोवत देखि जननि अकुलानी लियो तुरत मैया को झरकी।—सूर।

झरझर–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) जल के बहने, बरसने या हवा के चलने आदि का शब्द। (२) किसी प्रकार से उत्पन्न झरझर शब्द।

झपेट—संज्ञा स्त्री० दे० "झपट" ।

झपेटना—क्रि० स० [अनु०] आक्रमण करके दबा लेना । चपेटना । दबोचना । छोप लेना । उ०—सहमि सुखात बातजात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के ।—तुलसी ।

झपेटा†—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) चपेट । झपट । आक्रमण । (२) भूत-प्रेतादि कृत बाधा या आक्रमण । (३) हवा का झोंका । झकोरा । (लश०)

झपोला—संज्ञा पुं० दे० "झँपोला" ।

झपोली—संज्ञा स्त्री० दे० "झँपोला" के अंतर्गत "झँपोली" ।

झप्पड़, झप्पर †—संज्ञा पुं० [अनु०] झापड़ । थप्पड़ ।

झप्पान—संज्ञा पुं० [हिं० झँपान] झँपान नाम की एक प्रकार की पहाड़ी सवारी जिसे चार आदमी उठा कर ले चलते हैं ।

झप्पानी—संज्ञा पुं० [हिं० झँपान] झप्पान उठानेवाला कहार या मजदूर ।

झबझबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ता । (गहना)

झबड़ा—वि० दे० "झबरा" ।

झबधरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो गेहूँ को हानि पहुँचाती है ।

झबरा—वि० [अनु०] [स्त्री० झबरी] चारों तरफ बिखरे और घूमे हुए बड़े बड़े बालोंवाला । जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हों । जैसे, झबरा कुत्ता ।

संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में नर-भालू ।

झबरीला—वि० [हिं० झबरा + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० झबरीली] कुछ बड़ा, चारों तरफ बिखरा और घूमा हुआ (बाल) ।

झबरैरा † *—वि० दे० "झबरीला" । उ०—कुंतल कुटिल छवि राजत झबरैरी । लोचन चपल तारे रुचिर भँवरैरी ।—सूर ।

झबा—संज्ञा पुं० दे० "झब्बा" । उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी पोंछत फूँदनि झबा निहारत । बदन बिंद जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत ।—सूर । (ख) छहरैं सिर पै छवि मोर पखा उनकी नथ के मुकता थहरैं । फहरै पियरो पट बेनी इतै उनकी चुनरी के झबा झहरैं ।—बेनी कवि ।

झबार, झबारि—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टंटा । बखेड़ा । झगड़ा । उ०—(क) बहुत अचगरी जिन करौ अजहूँ तजौ झबारि । पकरि कंस लै जाइगो कालिहि सूर खबारि ।—सूर । (ख) बड़े घर की बहू बेटी करति वृथा झबारि । सूर अपनो अंश पावै जाहि घर कत मारि ।—सूर । (ग) भरि नयन ललहु रघुकुल कुमार । तजि देहु और जग की झबार ।—रघुराज । (घ) यह झगरो बगरो जग रोपत हरिपद अनि अनुरागा । तातें सज्जन रसिक-सिरोमणि यह झबारि सब त्यागा—रघुराज ।

झबिया †—संज्ञा स्त्री० [हिं० झब्बा का स्त्री० अल्प०] (१) छोटा झब्बा । छोटा फुँदना । (२) सोने या चाँदी आदि की बनी हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल आदि गहनों में सूत या रेशम में पिरो कर गूथी जाती हैं जिससे एक झब्बा सा बन जाता है । उ०—मदानातुर ती तिनऊ पर स्याम हुमेलन की झमकै झबिया ।—लाल कवि ।

झबुआ †—वि० दे० "झबरा" ।

झबूकना†—क्रि० अ० [अनु०] चमकना । झमकना । उ०—भभूकें उड़ैं यों झबूकैं फुलैंगा । मनो अग्नि बेताल नच्चैं खुलैंगा ।—सूदन ।

झब्बा—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) एक ही में बंधे हुए रेशम या सूत आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये लटकाया जाता है । जैसे, पगड़ी का झब्बा, बाजूबंद का झब्बा, इजारबंद का झब्बा । (२) एक में लगी गँथी या बँधी हुई छोटी छोटी चीजों का समूह । गुच्छा । जैसे, तालियों का झब्बा, घुँघरुओं का झब्बा ।

झमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चमक का अनुकरण । (२) प्रकाश । उजेला । (३) झमझम शब्द । उ०—पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजत । सूर स्याम स्यामा सुख जोरी मणि कंचन छवि छाजत ।—सूर । (४) ठसक या नखरे की चाल ।

झमकड़ा—संज्ञा पुं० दे० "झमक" ।

झमकना—क्रि० अ० [हिं० झमक] (१) प्रकाश की किरनें फेंकना । रह रह कर चमकना । दमकना । प्रकाश करना । प्रज्वलित होना । (२) झपकना । छाना । उ०—आलस सों कर कौर उठावत नैननि नींद झमकि रहि भारी । दोउ माता निरखत आलस सों छवि पर तन मन डारत वारी ।—सूर । (३) झमझम शब्द होना । झनकार की ध्वनि होना । (४) झम झम करते हुए उछलना कूदना । गहनों की झनकार के साथ हिलना डोलना । उ०—(क) कबहुँक निकट देखि घरों झनु झूलत सुरँग हिंडोरे । रमकत झमकत जनकसुता सँग हाव भाव चित चोरे ।—सूर । (ख) ज्यों ज्यों आवै निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल । झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटे बाल ।—बिहारी । (५) गहनों की झनकार करते हुए नाचना । (६) लड़ाई में हथियारों का घनकना और खनकना । उ०—भट्ठ लगे घमकन नग्ग लगे झमकन सूल लगे दमकन तेग लगे तड़पान ।—रघुराज । (७) चमक दिखलाना । तेजी दिखाना । शोख दिखाना । (८) झनझन शब्द करना । बजने का सा शब्द करना । उ०—तैसिये नन्हीं बूँदनि बरसनु झमकि झमकि झकोर ।—सूर ।

झराझर–क्रि॰ वि॰ [अनु॰] (१) झरझर शब्द सहित। (२) लगातार। बराबर। (३) वेग सहित। उ॰—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी दोउ मिलि खरत झराझरि।—हरिदास।

झरावोर–संज्ञा पुं॰, वि॰ दे॰ "झलाबोर"।

झरि–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "झड़ी"।

झरिफ * †–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ भरप] चिक। चिलमन। परदा।

झरी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ भरना] (१) पानी का झरना। स्रोत। चश्मा। (२) वह धन जो किसी हाट, बाजार या सट्टी आदि में जा कर सौदा बेचनेवाले छोटे छोटे दूकानदारों विशेषतः सोनचोलों और कुँजड़ों आदि से प्रति दिन किराए के रूप में वहाँ के ज़मींदार या ठीकेदार आदि को मिलता है। (३) दे॰ "झड़ी"। उ॰—(क) कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर। नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मनभावति भीर।—तुलसी। (ख) दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई।—तुलसी।

झरुआ–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की घास।

झरोखा–संज्ञा पुं॰ [अनु॰ झरझर = वायु बहने का शब्द + गोख] दीवारों आदि में बनी हुई झँझरीदार छोटी खिड़की या मोखा जिसे हवा और रोशनी आदि आने के लिये बनाते हैं। गवाक्ष। गौखा।

झर्झर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हुडुक नाम का लकड़ी का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता है। (२) कलियुग। (३) एक नद का नाम। (४) हिरण्याक्ष के एक पुत्र का नाम। (५) लोहे आदि का बना हुआ झरना जिससे कड़ाही में पकनेवाली चीज़ चलाते हैं। (६) झाँझ। (७) पैर में पहनने का झाँझ या झाँझर नाम का गहना।

झर्झरक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कलियुग।

झर्झरा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) तारा देवी का एक नाम। (२) वेश्या। रंडी।

झर्झरावती–संज्ञा स्त्री [सं॰] (१) गंगा। (२) कटसरैया।

झर्झरिका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तारा देवी।

झर्झरी–संज्ञा पुं॰ [सं॰ झर्झरिन्] शिव।
संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] झाँझ नामक बाजा।

झर्झरीक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) देश। (२) शरीर। (३) चित्र।

झर्रा–संज्ञा पुं॰ [देश॰] (१) बया पक्षी। (२) एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

झर्रैया–संज्ञा पुं॰ [देश॰] बया नाम की चिड़िया।

झल–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झार, सं॰ ज्वल = तप] (१) दाह। जलन। आँच। (२) उग्र कामना। किसी विषय की उत्कट इच्छा। उ॰—(क) जीव विलंबा जीव सों अलख लख्यो नहि जाय। साहब मिलै न झल बुझै रही बुझाय बुझाय।—कबीर। (ख) झल बायें झल दाहिने झल ही में व्यवहार। आगे पीछे झल जलै राखै सिरजनहार।—कबीर। (३) काम की इच्छा। विषय या संभोग की कामना। (४) क्रोध। गुस्सा। रिस। (५) समूह। उ॰—पुनि आए सरजू सरित तीर।... ...कहु आपु न अघ अघ गति चलंति। झल पतितन को ऊरध फलंति।—केशव।

झलक–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ झल्लिका = चमक] (१) चमक। दमक। प्रकाश। प्रभा। द्युति। आभा। उ॰—मनि खंभन प्रतिबिंब झलक छवि छलकि रही भरि आँगने।—तुलसी। (२) आकृति का आभास। प्रतिबिंब। जैसे, वे खाली एक झलक दिखला कर चले गए। उ॰—मकराकृत कुंडल की झलकैं इतहूँ सुजमूल में छाप परी री।—पद्माकर।

झलकदार–वि॰ [हिं॰ झलक + फ़ा॰ दार] चमकीला। चमकनेवाला।

झलकना–क्रि॰ अ॰ [सं॰ झल्लिका = चमक] (१) चमकना। दमकना। उ॰—झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोष ओसकन जैसे।—तुलसी। (२) कुछ कुछ प्रकट होना। आभास होना। जैसे, उनकी आज की बातों से झलकता था कि वे कुछ नाराज़ हैं।

झलकनि*–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "झलक"। उ॰—(क) श्रवन कुंडल मकर मानो नैन मीन बिसाल। सलिल झलकनि रूप आभा देख री नँदलाल।—सूर। (ख) मदन मोर के चंद की झलकनि निदरति तन जोति। नील कमल मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति।—तुलसी।

झलका–संज्ञा पुं॰ [ज्वल = जलना] चलने या रगड़ लगने आदि के कारण शरीर में पड़ा हुआ छाला। उ॰—झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोष ओसकन जैसे।—तुलसी।

झलकाना–क्रि॰ स॰ [हिं॰ झलकना का स॰ रूप] (१) चमकाना। दमकाना। झलकाना। (२) दरसाना। दिखलाना। कुछ आभास देना।

झलकी–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "झलक"।

झलझल–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झलकना] चमक। दमक।
क्रि॰ वि॰ रह रह कर निकलनेवाली आभा के साथ। जैसे, झलझल चमकना।

झलझलाना–क्रि॰ अ॰ [अनु॰] चमकना। चमचमाना। उ॰—झलझलात रिस ज्वाल बदनसुत चहुँ दिसि चाहिय।—सूदन।
क्रि॰ स॰ चमकाना। चमचमाना।

झलझलाहट–संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] चमक। दमक।

झलना–क्रि॰ स॰ [हिं॰ झलझल (हिलना) से अनु॰] (१) किसी चीज़ को हिला कर किसी दूसरी चीज़ पर हवा लगाना या

झरझराना–क्रि० स० [अनु०] किसी बर्तन में से किसी वस्तु को इस प्रकार झाड़ कर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से झरझर शब्द हो।

झरन–संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] (१) झरने की क्रिया। (२) वह जो कुछ झर कर निकला हो। वह जो झरा हो। (३) दे० "झड़न"

झरना*†–क्रि० अ० [सं० क्षरण] (१) झड़ना। (२) किसी ऊँचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची जगह से सोते का गिरना। जैसे, पहाड़ों में झरने झर रहे थे। उ०—नंदनँदन के बिछुरे अँखियाँ उपमा जोग नहीं।...............झरना लौं ये झरत रैन दिन उपमा सकल वहीं। सूरदास आसा मिलिबे की अब घट साँस रहीं।—सूर। (३) वीर्य का पतन होना। वीर्य स्खलित होना। (बाजारू)

विशेष—दे० "झड़ना"।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिस में से कोई चीज झरती है।

संज्ञा पुं० [सं० झर] ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जल-प्रवाह। पानी का वह स्रोत जो ऊपर से गिरता हो। सोता। चश्मा। जैसे, इस पहाड़ पर कई झरने हैं।

संज्ञा पुं० [सं० क्षरण] [स्त्री० अल्प० झरनी] (१) लोहे या पीतल आदि की बनी हुई एक प्रकार की छलनी जिसमें लंबे लंबे छेद होते हैं और जिसमें रख कर समूचा अनाज छाना जाता है। (२) लंबी डाँड़ी की वह करछी या चम्मच जिसका अगला भाग छोटे तवे का सा होता है और जिस में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। इससे खुले घी या तेल आदि में तली जानेवाली चीजों को उलटते, पलटते, बाहर निकालते अथवा इसी प्रकार का कोई और काम लेते हैं। झरने पर जो चीज ले ली जाती है उस पर का फालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब वह चीज निकाल ली जाती है। पौना। (३) पशुओं के खाने की एक प्रकार की घास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

वि० [स्त्री० झरनी] (१) झरनेवाला। जो झरता हो। (२) जिसमें से कोई पदार्थ झरता हो। उ०—दे० "झरनी"।

झरनि*†–संज्ञा स्त्री० दे० "झरन"। उ०— नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत मीन होत चरणामृत झरनि को। —चरण।

झरनी†–वि० दे० "झरना"। उ०—झरनी सुरस बिंदु धरनी मुकुंद जू की धरनी सुफल रूप जेत कर्म काल की। नरनी सुधरनी उधरनी पर बानी चारु पात तन तरनी भगति नँद लाल की।—गोपाल।

झरप*†–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) झोंका। झकोर। उ०—बंधु कीये मधुर मदंध कीये पुरजन सुमोह्यो मन गंधी की सुगंध झरपन सौं।—देव। (२) वेग। तेजी। उ०—घेरि घेरि घहरि घन आए घोर तापै महा मारुत झकोरत झरप सों।—कमलापति। (३) चाँड़। टेक। किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा। (४) चिक। चिलमन। चिलवन। परदा। उ०—(क) तासन की गिलमैं गलीचा मखतूलन के झरपैं झुमाऊ रहीं झूमि रंग द्वारी में।—पद्माकर। (ख) झाकैं झुकी युवती ते झरोखन मुंदनि ते झरपैं कर टारी।—रघुराज। (५) दे० "झड़प"।

झरपना*†–क्रि० अ० [अनु०] (१) झोंका देना। बौछार मारना। उ०—वर्षत गिरि झरपत ब्रज ऊपर। सो जल जहँ तहँ पूरन भूपर।—सूर। (२) दे० "झड़पना (१)"। (३) दे० "झड़पना (३)"। उ०—एते पर कबहूँ जब आवत झरपत लरत घनेरो।—सूर।

झरपेटा†–संज्ञा पुं० दे० "झपट"।

झरबेर†–संज्ञा पुं० दे० "झड़बेरी"।

झरबेरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "झड़बेरी"।

झरवाना†–क्रि० स० [हिं० झारना का प्रे०] (१) झारने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झारने में प्रवृत्त करना। (२) दे० "झड़वाना"।

झरसना*†–क्रि० अ० [अनु०] (१) दे० "झुलसना"। (२) सूखना। मुरझाना। कुम्हलाना।

क्रि० स० (१) दे० "झुलसाना"। (२) सुखाना। मुरझा देना।

झरहरना†–क्रि० अ० [अनु०] झरझर शब्द करना। उ०—अजहूँ चेत मूढ़ चहुँ दिसि ते काल अग्नि उपजत झुकि झर-हरि। सूर काल बलि व्याल ग्रसत है श्रीपति सरन परत क्यों न कर हरि।—सूर।

झरहरा†–वि० दे० "झँझरा"। उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि झिल झिल झेल झेल झरहरी झाँपन में झमकि झमकि उठै।—पद्माकर।

झरहराना–क्रि० अ० [अनु०] पत्तों का वायु या वर्षा के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना। हवा के झोंके से पत्तों का शब्द करना अथवा शब्द सहित गिरना। उ०—झरहरात बन पात गिरत तरु धरनि तड़ाक तड़ाक सुनाई। जल बरषत गिरिवर तर बाचे अब कैसे गिरि होतु सहाई?—सूर।

क्रि० स० (१) झरझर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषतः पेड़ों के पत्तों को गिराना। पेड़ की डाल हिलाना। (२) झटकना। झाड़ना।

झरहिल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

झरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो पानी भरे हुए खेतों में उत्पन्न होता है।

[हिं० झल्लाना] † (१) पागल । (२) बहुत बड़ा बेवकूफ़ ।

झल्लाना–क्रि० अ० [हिं० झल] बहुत चिढ़ना । खिजलाना । किट-किटाना ।

क्रि० स० ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत चिढ़े ।

झल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बदन पोंछने का कपड़ा । अँगोछा । (२) शरीर की वह मैल जो किसी चीज से मलने या पोंछने से निकले । (३) दीप्ति । प्रकाश । (४) सूर्य्य की किरणों का तेज ।

झल्ली†–वि० [हिं० झलना] बातूनिया । गप्पी । बकवादी ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] हुडुक की तरह का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था ।

झल्लीषक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

झवर†–संज्ञा पुं० [हिं० झगड़ा] झगड़ा ।

झष†–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मत्स्य । मीन । मछली । उ०—संकुल मकर उरग झष जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती ।—तुलसी । (२) मकर । मगर । (३) ताप । गरमी । (४) वन । (५) मीन राशि । मीन लग्न । (६) दे० "झख" ।

झषकेतु–संज्ञा पुं० [सं० झषकेतन] कंदर्प । कामदेव ।

झषनिकेत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाशय । (२) समुद्र ।

झषराज–संज्ञा पुं० [सं०] मगर । मकर ।

झषलग्न–संज्ञा पुं० [सं०] मीनलग्न ।

झषांक–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

झषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबला । गुलसकरी ।

झषाशन–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार नामक जलजंतु । सूँस ।

झषोदरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता । मत्स्यगंधा ।

झहनना*–क्रि० अ० [अनु०] (१) झनाना । झनाटे या सन्नाटे में आना । (२) (रोएँ का) खड़ा होना । उ०—गहन गहन लागीं गावन मयूरमाला झहन झहन लागे रोम रोम छन में ।—श्रीपति । (३) झनझन शब्द करना ।

क्रि० स० दे० "झहनाना" ।

झहनाना–क्रि० स० [अनु०] (१) झहनना का सकर्मक रूप । (२) झनकार शब्द करना । झनकारना । उ०—गति गयंद कुच कुंभ किंकिनी मनहु घंट झहनावै ।—सूर ।

झहरना*†–क्रि० अ० [अनु०] (१) झरझर शब्द करना । झड़ने का सा शब्द करना । उ०—झहरि झहरि झुकि झीनी झर लाये देव छहरि छहरि छोटी बूँदनि छहरिया ।—देव । (२) (शरीर आदि का) बहुत शिथिल पड़ना । ढीला हो जाना । उ०—झहरि झहरि परै पाँसुरी ललाय देह विरह बसाय हाय कैसे दूबरे भये ।—रघुनाथ ।

क्रि० स० झिड़कना । झल्लाना । उ०—सुनि सजनी मैं रही अकेली विरह बहेली इत गुरु जन झहरैं ।—सूर ।

झहराना–क्रि० अ० [अनु०] (१) शिथिल हो कर झरझर शब्द के साथ या लड़खड़ा कर गिरना । उ०—(क) असुर लै तरु सों पछारयो गिरयो तरु झहराई । ताल सों तरु ताल लाग्यो उड्यो बन घहराई ।—सूर । (ख) आपु गए यमलार्जुन तरु तर परसत पात उठे झहराई ।—सूर । (ग) लपट झपट झहराने हहराने वात भहराने भट परयो प्रबल परावनो ।—तुलसी । (२) झल्लाना । किटकिटाना । खिजलाना । उ०—(क) एक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर झहरानी ।—सूर । (ख) नागरि हँसति हँसी उर छाया तापर अति झहरानी । अधर कंप रिस भौंह मरोरी मन ही मन गहरानी ।—सूर । (३) हिलाना । उ०—बालधी फिरावै बार बार झहरावै झरै बुँदियाँ सी लंक पघिलाइ पागि पागिहै ।—तुलसी ।

झाँई–संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] (१) परछाईं । प्रतिबिंब । छाया । आभा । झलक । उ०—(क) झाँई न मिटन पाई आए हरि आतुर ह्वै अब जान्यो गज ग्राह लये जात जल में ।—सूर । (ख) बेसरि के मुकुता में झाँई बरन विराजत चारि । मानो सुरगुर शुक भौम शनि चमकत चंद्र मझारि ।—सूर । (ग) कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महँ प्रकट भूमि की झाँई ।—तुलसी (घ) मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ । जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होइ ।—बिहारी । (२) अँधकार । अँधेरा । उ०—रेशमी सतत शाल लाल पट लपिटे मइल भीतरे न शीत रैनि की न झाँई है ।—देव । (३) धोखा । छल ।

मुहा०—झाँई बताना = छल करना । धोखा देना ।

यौ०—झाँई झप्पा = धोखा धड़ी ।

(४) प्रतिशब्द । प्रतिध्वनि । उ०—कुहकि उठे बन मोर कंदरा गरजति झाँई । चित चकृत मृग वृंद विथा मनमथ सरसाई ।—नागरीदास । (५) एक प्रकार के हलके काले धब्बे जो रक्त-विकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मुँह पर पड़ जाते हैं ।

झाँई माँई–संज्ञा स्त्री० [अनु०] बच्चों का एक खेल जिसमें वे "झाँई माँई कौवों की बरात आई" कहते जाते और घूमते जाते हैं ।

मुहा०—झाँई माँई होना = नजरों से गायब हो जाना । अदृश्य हो जाना ।

झाँक–संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] झाँकने की क्रिया या भाव ।

यौ०—ताक झाँक = दे० "ताक झाँक" ।

पहुँचाना। जैसे, (क) जरा इन्हें पंखा झल दो। (ख) वे मक्खियाँ झल रहे हैं। (२) हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना। जैसे, पंखा झलना।

संयो० क्रि०—देना।

† (३) ढकेलना। ठेलना। धक्का देकर आगे बढ़ाना।

क्रि० अ० (१) किसी चीज के अगले भाग का इधर उधर हिलना। उ०—फूलि रहे, फूलि रहे, फैलि रहे, फबि रहे, झपि रहे, झलि रहे, झुकि रहे, झूमि रहे।—पद्माकर। † (२) शेखी बघारना। डींग हाँकना। (३) "झालना" का अकर्मक रूप। दे० "झालना"। (४) दे० "झेलना"।

झलमल—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल = दीप्ति] (१) अँधेरे के बीच थोड़ा थोड़ा उजाला। हलका प्रकाश। (२) अँधेरा। (कहारों की परि०) (३) चमक दमक।

क्रि० वि० दे० "झलझल"।

झलमला—वि० [हिं० झलमलाना] चमकीला। चमकता हुआ। उ०—मोर मकुट अति सोहई श्रवणनि वर कुंडल। ललित कपोलनि झलमले सुंदर अति निर्मल।—सूर।

झलमलाना—क्रि० अ० [हिं० झलमल] (१) रह रह कर चमकना। रह रह कर मंद और तीव्र प्रकाश होना। चमचमाना। (२) ज्योति का अस्थिर होना। अस्थिर ज्योति निकलना। ठहर कर बराबर एक तरह न जलना या चमकना। निकलते हुए प्रकाश का हिलना डोलना। जैसे, हवा के झोंके से दीये का झलमलाना। उ०—(क) लेहौं री मा चंदा चहौंगो। कह करौं जलपुट भीतर को बाहर ओक गहौंगो। यह तो झलमलात झकझोरत कैसे कै जु लहौंगो।—सूर। (ख) श्याम अलक बिच मोती मंगा। मानहु झलमलति सीस गंगा।—सूर। (ग) बाल केलि बात बस झलकि झलमलत शोभा की सी दीयटि मानो रूप दीप दियो है।—तुलसी।

क्रि० स० किसी स्थिर ज्योत या लौ को हिलाना डुलाना। हवा के झोंके आदि से प्रकाश को अस्थिर या बुझने के निकट करना।

झलराना*†—क्रि० अ० [हिं० झालर] फैल कर छाना। बढ़ना। उ०—दे० "झालरना"।

झलरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुडुक नाम का बाजा। (२) बजाने की झाँझ।

झलवाना—क्रि० स० [हिं० झलना] (१) झलना का प्रेरणार्थक रूप। झलने का काम दूसरे से कराना। (२) "झालना" का प्रेरणार्थक रूप। झालने का काम दूसरे से कराना।

झलहाया—संज्ञा पुं० [हिं० झल] [स्त्री० झलहाई] वह जो डाह करता हो। हसद करनेवाला आदमी।

झला*†—संज्ञा पुं० [हिं० झड़] (१) हलकी वर्षा। (२) झालर, तोरण या बंदनवार आदि। (३) पंखा। बीजना। बेना। (४) समूह। उ०—झलकत आवैं झुंड झिलिम झलानि झप्यो, तमकत आवैं तेगवाही औ सिलाही हैं।—पद्माकर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] आतप। धूप।

झलाझल—वि० [अनु०] खूब झलझलाता या चमचमाता हुआ। चमाचम। उ०—(क) छोटी छोटी अँगुली झलाझल झलकदार छोटी सी छुरी को लिए छोटे राजढोटे हैं।—रघुराज। (ख) कंचन के कलस झराए भूरि पन्नन के ताने तुंग तोरन तहाँई झलाझल के।—पद्माकर।

झलाझली—वि० [अनु०] चमकीला। चमकदार। झलाझल। उ०—जिन्हैं लखे झलाझली हलाहली हिये लजे।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० झलाझल होने की क्रिया या भाव।

झलाना†—क्रि० स० दे० "झलवाना"।

झलाबोर—संज्ञा पुं० [झलाझल = चमक] (१) कलाबत्तून का बुना हुआ साड़ी आदि का चौड़ा अंचल। (२) कारचोबी। उ०—झलाबोर का घाँघरा घूम घुमाला तिस पर सच्चे मोती टके हुए।—लल्लू। (३) एक प्रकार की आतिशबाजी। † (४) काँटा। झाड़ी। (५) चमक। दमक।

वि० [झलझल = चमक] चमकीला। ओपदार।

झलामली—संज्ञा स्त्री० [झलझल = चमक] चमक। दमक। उ०—चहुँ दिस लगी है बजार झलामल हो रही, झूमर होत अपार अधर डोरी लगी।—कबीर।

वि० चमकीला। चमक दमकवाला।

झल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्रात्य (= संस्कारहीन) क्षत्री और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न वर्णसंकर जाति। (२) भाँड़ या विदूषक। (३) पटह या हुडुक नामक बाजा। (४) लपट। ज्वाला।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] झल्ला होने का भाव।

झल्लकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] परेवा।

झल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँसे का बना करताल। झाँझ। (२) मँजीरा। जोड़ी।

झल्लना†—क्रि० अ० [अनु०] बहुत झूठी झूठी बातें करना। बहुत डींग हाँकना या गप्प उड़ाना।

झल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हुडुक नामक बाजा। (२) झाँझ। (३) पसीना। स्वेद। (४) पसेव।

झल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] (१) खाँचा। बड़ा टोकरा। (२) वर्षा। वृष्टि। (३) बौछार। (४) वे दाने जो पके हुए तमाखू के पत्तों पर पड़ जाते हैं।

वि० [हिं० जल ?] बहुत नरम या पतला। जिसमें अधिक पानी मिला हो। जो गाढ़ा न हो। जैसे, झल्ला रस, झल्ली भाँग।

झाँझिया–संज्ञा पु० [हिं० झाँझ + इया (प्रत्य०)] झाँझ बजानेवाला मनुष्य। बाजेवालों में से वह जो झाँझ बजाता हो।

झाँट–संज्ञा स्त्री० [सं० जट, हिं० झड = बाल] (१) पुरुष या स्त्री की मूत्रेंद्रिय पर के बाल। उपस्थ पर के बाल। पशम। शष्प।

मुहा०—झाँट उखाड़ना = (१) बिलकुल व्यर्थ समय नष्ट करना। कुछ भी काम न करना। (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा सकना। इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक झाँट उखड़ जाने से हो सकती है। झाँट जल जाना या जल कर राख हो जाना = किसी को अभिमान आदि की बातें करते देख कर बहुत बुरा मालूम होना। (इसका व्यवहार अभिमान करनेवाले के प्रति बहुत अधिक उपेक्षा दिखलाने के लिये किया जाता है।)

(२) बहुत तुच्छ वस्तु। बहुत छोटी या निकम्मी चीज़।

मुहा०—झाँट बराबर = (१) बहुत छोटा। (२) अत्यंत तुच्छ। झाँट की झँडुली = अत्यंत तुच्छ (पदार्थ या मनुष्य)।

झाँटा†–संज्ञा पु० [देश०] झंझट।

झाँटि*†–संज्ञा स्त्री० दे० "झाँट"। उ०—एकोइ आपुहिं भयो द्वितिया दीन्हों काटि। एकोइ कासों कहै महा पुरुष की झाँटि।—कबीर।

झाँप–संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] (१) वह जिससे कोई चीज ढाँकी जाय। (२) पड़ी हुई चीजें निकालने की लोहे की एक प्रकार की कल। (३) नींद। झपकी। (४) पर्दा। चिक। उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि झिल झिल झेल झेल झहरी झाँपन में झमकि झमकि उठै।—पद्माकर। (५) निकास। मस्तूल का झुकाव। (लश०)

संज्ञा पु० [सं० झंप] उछल कूद।

क्रि० प्र०—देना। उ०—दे० "झँप" के अंतर्गत।

झाँपना–क्रि० स० [सं० उत्थापन, हिं० ढाँपना] (१) ढाँकना। आवरण डालना। ओट में करना। आड़ में करना। उ०—जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुविचारी।—तुलसी। (२) झेंपना। लजाना। शरमाना।

झाँपी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] (१) ढाँकने की टोकरी। (२) मूँज की बनी हुई पिटारी जिसमें कभी कभी चमड़ा भी मढ़ा होता है। (३) झपकी। नींद। ऊँघ।

झाँबा–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) धोबिन चिड़िया। खंजन पक्षी। (२) छिनाल स्त्री। पुंश्चली।

झाँवना–क्रि० स० [हिं० झाँवाँ] झाँवे से रगड़ कर (हाथ पैर आदि) धोना। उ०—हाँ गई भेंट भई न सहेट मैं तातें रमाहट मेरो मन छायगो। कालिंदी के तट झाँवत पाँय हौं आयो तहाँ लखि रूखे सुभायगो।—प्रतापसिंह सवाई।

झाँवर–संज्ञा स्त्री० [हिं० झावर] वह नीची भूमि जिसमें वर्षा काल में जल भर जाता है और जिसमें मोटा अन्न जमता है। झावर। (ऐसी भूमि धान के लिये बहुत उपयुक्त होती है)।

† वि० [सं० श्यामल] (१) झाँवें के रंग का। कुछ काला। (२) मलिन। उ०—साँची कहौं रावरे सों झाँवरे लगैं तमाल। (३) मुरझाया हुआ। कुम्हलाया हुआ। (४) शिथिल। मंद। सुस्त। उ०—निसि न नींद आवै दिवस न भोजन भावै चितवत मग भई दृष्टि झाँवरी।—सूर।

झाँवली–संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँव = छाया] (१) झलक। (२) आँख की कनखी।

यौ०—झाँवलीबाज़।

मुहा०—झाँवली देना = आँख से इशारा करना।

झाँवाँ–संज्ञा पु० [सं० झामक] जली हुई ईंट। वह ईंट जो जल कर काली हो गई हो। इससे रगड़ कर चीज़ों की, विशेषतः पैरों की मैल छुड़ाते हैं।

झाँसना–क्रि० स० [हिं० झाँसा] (१) ठगना। धोखा देना। झाँसा देना। (२) किसी स्त्री को व्यभिचार में प्रवृत्त करना। स्त्री को फँसाना।

झाँसा–संज्ञा पुं० [सं० अध्यास = मिथ्या ज्ञान, प्रा० अज्झास] अपना काम साधने के लिये किसी को बहकाने की क्रिया। धोखा पट्टी। दम बुत्ता। छल।

क्रि० प्र०—देना।—बताना।

यौ०—झाँसा पट्टी = धोखा पट्टी।

मुहा०—झाँसे में आना = धोखे में आना।

झाँसिया–संज्ञा पु० [हिं० झाँसा + इया (प्रत्य०)] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज़।

झाँसी–संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का गुबरैला जो दाख और तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है।

झाँसू–संज्ञा पु० [हिं० झाँसा] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज़।

झा–संज्ञा पु० [सं० उपाध्याय प्रा० उज्झाओ, हिं० ओझा] मैथिल ब्राह्मणों की एक उपाधि।

झाईं–संज्ञा स्त्री० दे० "झाँई"।

झाऊ–संज्ञा पु० [सं० झावुक] एक प्रकार का छोटा झाड़ जो दक्षिणी एशिया में नदियों के किनारे रेतीले तथा मैदानों में अधिकता से होता है और बहुत जल्दी जल्दी और खूब फैलता है। इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और गरमी के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे हलके गुलाबी फूल लगते हैं। बहुत कड़ी सरदी में यह झाड़ नहीं रह सकता। कुछ देशों में इससे एक प्रकार का रंग निकाला जाता है और इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार औषधों में किया जाता है। इसमें से एक प्रकार का क्षार भी निकलता है। इसकी टहनियों से टोकरियाँ और

संज्ञा पुं० दे० "झाँख"।

झाँकना–क्रि० अ० [सं० अध्यक्ष, प्रा० अज्झक्ख = आँख के सामने] (१) ओट के बगल में से देखना। आड़ में से मुँह निकाल कर देखना। उ०—(क) जँह तँह उझकि झरोखा झाँकत जनक नगर की नारि।—सूर। (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन झाँकति झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं।—तुलसी। (२) इधर उधर झुक कर देखना।

झाँकनी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] (१) झाँकी। दर्शन। उ०—झाँकनी दै कर काँकनी की सुनैं कानन बैन अनाकनी कीने।—देव (२) कुआँ। (कहारों की परि०)

झाँकर–संज्ञा पुं० दे० "झंखाड़"।

झाँका–संज्ञा पुं० [हिं० झाँकना] (१) रहे का खाँचा। जालीदार खाँचा। (२) झरोखा। उ०—सभा माँझ द्रुपदी राखी पति पानिप गुण है जाको। बसन ओट करि कोट विश्वंभर परन न पायो झाँको।

झाँकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] (१) दर्शन। अवलोकन। झाँकने या देखने की क्रिया अथवा भाव।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मिलना।—लेना।—होना।

(२) दृश्य। वह जो कुछ देखा जाय।

क्रि० प्र०—देखना।

(३) वह जिसमें से झाँका जाय। झरोखा।

झाँख–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन। उ०—ठाढ़े टिग बाघ बिग चीते चितवत झाँख मृग शाखामृग सब रीझि रीझि रहे हैं।—देव।

झाँखना*†–क्रि० अ० दे० "झीँखना"। उ०—(क) इंद्री बश न्यारी परी सुख लूटति आँखि। सूरदास संग रहैं तेऊ भरैं झाँखि।—सूर। (ख) एहि विधि राउ मनहि मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मनु माखा।—तुलसी।

झाँखर–संज्ञा पुं० [हिं० झखाड़] (१) झंखाड़। उ०—झाँखर जहाँ सुछाँड़हु पंथा। हिलगि मकोय न फारहु कंथा।—जायसी (२) अरहर की वे खूँटियाँ जो फसल काटने के बाद खेत में रह जाती हैं।

झाँगला–वि० [देश०] ढीला ढाला (कपड़ा)। उ०—पहिर झाँगले पटा पाग सिर टेढ़ी बाँधे। घर में तेल न लोन प्रीत चेरी सों साधे।—गिरधर।

झाँगा†–संज्ञा पुं० दे० "झगा"। उ०—पीत वसन पहिरे सुठि झाँगा। चखु चपल अलकैं जनु नागा।—विश्राम।

झाँजन–संज्ञा स्त्री० दे० "झाँझन"।

झाँझ–संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लक या झनझन से अनु०] (१) मजीरे की तरह के पर उससे बहुत बड़े काँसे के ढले हुए तश्तरी के आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा जिनके बीच में कुछ उभार होता है। इसी उभार में एक छेद होता है जिसमें डोरी पिरोई रहती है। इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात करके पूजन आदि के समय घड़ियालों और शंखों के साथ यों ही बजाने अथवा तासे और ढोल आदि के साथ ताल देने में होता है। झाल। उ०—झिल्ली झाँझ झरना डफ पनव मृदंग निसान।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

(२) क्रोध। गुस्सा।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—निकालना।

(३) पाजीपन। शरारत। उ०—रुक्यो साँकरे कुंज मग करत झाँझ झकरात। मंद मंद मारुत तुरंग खूँदत आवत जात।—बिहारी। (४) किसी दुष्ट मनोविकार का आवेग। (५) सूखा हुआ कुआँ या तालाब। (६) भोग की इच्छा। विषय की कामना। (७) दे० "झाँझन"।

झाँझड़ी*†–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "झाँझ"। (२) दे० "झाँझन"

झाँझन–संज्ञा स्त्री० [अनु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का एक प्रकार का गहना जो प्रायः चाँदी का बनता है और जिसमें नकाशी और जाली बनी होती है। यह भीतर से पोला होता है और इसके अंदर छर्रे पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने में "झन् झन्" शब्द होता है। कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदि को भी शोभा और झन्झन् शब्द होने के लिये पीतल या ताँबे की झाँझन पहनाते हैं। पैंजनी। पायल।

झाँझर*†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झाँझन। पैंजनी। (२) छलनी।

वि० (१) पुराना। जर्जर। छिन्न भिन्न। फटा टूटा। (२) छेदवाला। छिद्रयुक्त उ०—कबिरा नाव त झाँझरी फूटा खेवनहार। हलका हलका तरि गया बूड़े जिन सिर भार।—कबीर।

झाँझरि*†–संज्ञा स्त्री० दे० "झाँझर"।

झाँझरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) झाँझ नामक बाजा। झाल। उ०—बजै झाँझरी शंख नगारे। गए देत सब देव अगारे।—रघुराज। (२) झाँझन नामक पैर का गहना। उ०—झाँझरियाँ झनकैंगी खरी खरकैंगी तनी तन की तन तोरे।—देव।

झाँझा–संज्ञा पुं० [हिं० झँझरा] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो हरी हुई फसल के पत्तों को बीच बीच में से खा कर बिलकुल झँझरा कर देता है। यह कीड़ा बड़ा कई आकार और प्रकार का होता है और बहुधा तमाकू या मूली के पत्तों पर पाया जाता है। (२) घी और चीनी के साथ भूनी हुई भाँग की फंकी। † (३) मेह छानने का पौना।

संज्ञा पुं० दे० (१) "झाँझ"। (२) झंझट। बखेड़ा।

संयो० क्रि०—देना।

(७) बिगड़ कर कड़ी कड़ी बातें कहना। फटकारना। डांटना।

संयो० क्रि०—देना।

झाड़ फूँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झ ़ना फूँकना] मंत्र आदि से झाड़ने या फूँकने की वह क्रिया जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं अथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है। मंत्र आदि पढ़ कर झाड़ना या फूँकना।

झाड़ बुहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना बुहारना] झाड़ने और बुहारने की क्रिया। सफ़ाई।

झाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ना] (१) झाड़ फूँक। (२) तलाशी। (३) सितार के सब तारों को एक साथ बजाना। (४) मल। गुह। मैला।

मुहा०—झाड़ा फिरना = मलोत्सर्ग करना। हगना। झाड़ा फिराना = हगाना।

(५) मलोत्सर्ग का स्थान। पाखाना। टट्टी।

क्रि० प्र०—जाना।

झाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़] (१) छोटा झाड़। पौधा। (२) बहुत से छोटे छोटे पेड़ों का समूह या झुरमुट। (३) सूअर के बालों की कूँची। बलौंछी।

झाड़ीदार—वि० [हिं० झाड़ी + फ़ा० दार] (१) झाड़ी की तरह का। छोटे झाड़ का सा। (२) कँटीला। काँटेदार।

झाड़ू—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] (१) बहुत सी सींकों आदि का समूह जिससे ज़मीन, फर्श आदि झाड़ते हैं। कूँचा। बोहारी। सोहनी। बढ़नी।

मुहा०—झाड़ देना = झाड़ू की सहायता से कूड़ा करकट साफ़ करना। झाड़ू फिरना = सफ़ाया हो जाना। कुछ न रहना। झाड़ू फेरना = बिलकुल नष्ट कर देना। झा ़ मारना = (१) घृणा करना। (२) निरादर करना।

(२) पुच्छल तारा। केतु। दुमदार सितारा।

झाड़ूदुमा—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + दुम] वह हाथी जिसकी दुम झाड़ू की तरह फैली हो। ऐसा हाथी ऐबी गिना जाता है।

झाड़ूबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + फ़ा० बरदार] (१) वह जो झाड़ू देता हो। (२) चमार। भंगी। मेहतर।

झाड़ूवाला—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + वाला] (१) वह जो झाड़ू देता हो। झाड़ूबरदार। (२) भंगी, मेहतर या चमार।

झापड़—संज्ञा पुं० [सं० चपट] थप्पड़। चटाका। लप्पड़। तमाचा।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—झापड़ कसना, देना = थप्पड़ मारना।

झाबर—संज्ञा पुं० [?] दलदली भूमि।

संज्ञा पुं० दे० "झाबा"। उ०—पुनि झाबर पै झाबर आई। घिरित खाँड़ का कहौं मिठाई।—जायसी।

झाबा—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना = ढाँकना] (१) टोकरा। खाँचा। रहठे का बड़ा दौरा। (२) घी तेल आदि तरल पदार्थों के रखने का चमड़े का टोंटीदार बरतन। (३) चमड़े का बना हुआ गोल थाल जिसमें पंजाब में लोग आटा छानते हैं। इसे सफरा कहते हैं। (४) रोशनी का झाड़ जो लटकाया जाता है। (५) दे० "झब्बा"।

झाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाबा] छोटा झाबा। टोकरी।

झाम*—संज्ञा पुं० [देश०] (१) झब्बा। गुच्छा। उ०—सुंदर दसन चिबुक अति सुंदर सुंदर हृदय बिराजत दाम। सुंदर भुजा पीतपट सुंदर सुंदर कनक मेखला झाम।—सूर। (२) एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं। (३) घुड़की। डाँट। डपट। (४) धोखा। छल। कपट।

झामक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट। झाँवाँ।

झामर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) टेकुआ रगड़ने की सान। तर्कशाण। सिल्ली। (२) स्त्रियों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजन की तरह का होता है।

झामी—संज्ञा पुं० [हिं० झाम] धोखेबाज़। चालाक। धूर्त। उ०—(क) सूधे भए जे हैं नर गंगा के अन्हाइबे को काम बदनामी झामी कैयक करोर हैं।—पद्माकर। (ख) जिनके मंत्र न कोऊ झामी। झूठि न बादि न परतिय गामी।—पद्माकर।

झायँ झायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झनकार। झन् झन् शब्द। (२) सन्नाटे में हवा का शब्द। वह शब्द जो किसी सुनसान स्थान में हवा के चलने, तथा गूँज आदि के कारण सुनाई पड़ता है। जैसे, इतना बड़ा सूना घर झायँ झायँ करता है।

झावँ झावँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) बकवाद। बकबक। (२) हुज्जत। तकरार।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

झार—वि० [सं० सर्व, प्रा० सारो, हिं० सारा] (१) एक मात्र। निपट। केवल। उ०—दीबो दधि दान को सुकैसे ताहि भावत है जाहि मन भायो झार झगरो गोपाल को।—पद्माकर। (२) संपूर्ण। कुल। सब। समस्त। उ०—कै न खेत सिव लौं पदमाकर जाहिरैं झार सिंगार भयो है।—पद्माकर। (३) समूह। झुंड।

संज्ञा स्त्री० [सं० झाला = ताप] (१) दाह। डाह। जलन। ईर्ष्या। (२) ज्वाला। लपट। आँच। उ०—(क) जनहुँ छाँह मँह धूप दिखाई। तैसे झार लाग जो आई।—जायसी।

रस्सियाँ आदि बनती हैं और सूखी लकड़ी जलाने के काम में आती है। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह झाड़ बहुत बढ़ कर पेड़ का रूप भी धारण कर लेता है। पिचुल। अफल। बहुग्रंथि।

झाग—संज्ञा पुं० [हिं० गाज] पानी आदि का फेन। गाज। फेन।
क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकालना।—फेंकना।

झागड़ * †—संज्ञा पुं० दे० "झगड़ा"।

झागना †—क्रि० अ० [हिं० झाग] झाग उत्पन्न होना। फेन निकलना।
क्रि० स० झाग उत्पन्न करना। फेन निकालना।

झाझ †—संज्ञा स्त्री० दे० "झाँझ"।

झाटकपट—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की ताजीम जो राजपूताने के राज-दरबारों में अधिक प्रतिष्ठित सरदारों को मिला करती है।

झाटल—संज्ञा पुं० [सं०] मोखा नामक वृक्ष जो सफेद और काला होने के कारण दो प्रकार का होता है। आक की भाँति इसमें से भी दूध निकलता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं और फल घंटियों की भाँति लटकते हैं।

झाटा †—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूही। (२) भुइँ आँवला।

झाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।

झाड़—संज्ञा पुं० [सं० झाट] (१) वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा पौधा जिसमें पेड़ी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या जमीन के बहुत पास से निकल चारों ओर खूब छितराई हुई हों। पौधे से इसमें अंतर यह है कि यह कठीला होता है। (२) झाड़ के आकार का एक प्रकार का रोशनी करने का सामान जो छत में लटकाया या जमीन पर बैठकी की तरह रखा जाता है। इनमें कई ऊपर नीचे वृत्तों में बहुत से शीशे के गिलास लगे हुए होते हैं जिनमें मोमबत्ती, गैस या बिजली आदि का प्रकाश होता है। नीचे से ऊपर की ओर के गिलासों के वृत्त बराबर छोटे होते जाते हैं।
यौ०—झाड़ फानूस = शीशे के झाड़ हाँड़ियाँ और गिलास आदि जिनका व्यवहार रोशनी और सजावट आदि के लिये होता है।
(३) एक प्रकार की आतिशबाज़ी जो छूटने पर झाड़ या बड़े पौधे के आकार की जान पड़ती है। (४) छीपियों का एक प्रकार का छापा जो प्रायः दस अंगुल चौड़ा और बीस अंगुल लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ या झाड़ की आकृति बनी रहती है। (५) समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास जिसे जरस या जार भी कहते हैं। (लश०)। (६) गुच्छा। लच्छा।
संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] (१) झाड़ने की क्रिया। झटक कर या झाड़ू आदि दे कर साफ़ करने की क्रिया। (२) बहुत डाँट या फटकार कर कही हुई बात। फटकार। डाँट डपट।
यौ०—झड़ पोंछ = झाड़ और पोंछ कर साफ़ करने की क्रिया।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों ही में विशेषतः होता है।
क्रि० प्र०—देना।—बताना।—सुनना।—सुनाना।
(३) मंत्र से झाड़ने की क्रिया।
यौ०—झाड़ फूँक = मंत्रोपचार।
संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ना] झटका। (कुश्ती)

झाड़खंड—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + खंड] जंगल। वन। ऐसा वन-विभाग जिसमें अधिकतर झरबेरी आदि के कँटीले झाड़ हों।

झाड़ झंखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + झंखाड़] (१) काँटेदार झाड़ियों का समूह। (२) व्यर्थ की निकम्मी चीजों का समूह।

झाड़दार—वि० [हिं० झाड़ + फ़ा० दार] (१) सघन। घना। (२) कँटीला। काँटेदार। (३) जिस पर झाड़ या बेल बूटे आदि बने हों।
संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार कसीदा जिसमें बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं। (२) एक प्रकार का गलीचा जिस पर बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं।

झाड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] (१) वह जो कुछ झाड़ने पर निकले। (२) वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज़ गर्द आदि दूर करने के लिये झाड़ी जाय।

झाड़ना—क्रि० स० [सं० क्षरण] (१) किसी चीज पर पड़ी हुई गर्द आदि साफ करने या और कोई चीज हटाने के लिये उस चीज को उठा कर झटका देना। झटकारना। फटकारना। जैसे, जरा दरी और चाँदनी झाड़ दो। (२) झटका देकर किसी एक चीज़ पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज को गिराना। जैसे, इस अँगोछे पर बहुत से बीज चिपक गए हैं, जरा उन्हें झाड़ दो। (३) झाड़ू या कपड़े आदि की रगड़ या झटके से किसी चीज पर पड़ी या लगी हुई दूसरी चीज गिराना या हटाना। जैसे, इन किताबों पर की गर्द झाड़ दो। (४) झाड़ू या कपड़े आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार गर्द, मैल या और कोई चीज हटा कर कोई दूसरी चीज़ साफ़ करना। जैसे, (क) सवेरे उठते ही उन्हें सारा घर झाड़ना पड़ता है, (ख) इस मेज को झाड़ दो।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।
(५) बल या युक्तिपूर्वक किसी से धन ऐंठना। झटकना। (क्व०)
संयो० क्रि०—लेना।
(६) रोग या प्रेत-बाधा आदि दूर करने के लिये किसी को मंत्र आदि से फूँकना। मंत्रोपचार करना।

झालि†-संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़] पानी की झड़ी। झाल। उ०—झालि परे दिन अथए अंतर परि गइ साँझ। बहुत रसिक के लागते वेश्या रहिगै बाँझ।—कबीर।

क्रि० प्र०—छाना।—पड़ना।

संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की काँजी जो कच्चे आम को पीस कर उसमें राई नमक और भूनी हींग मिला कर बनाई जाती है। झारी।

झावर-संज्ञा पुं० दे० "झावर"।

झावुक-संज्ञा पुं० [स०] झाऊ।

झिंगा†-संज्ञा स्त्री० [सं० झिंगाक] तरोई। तोरी। तुरई।

झिंगन-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती से लाल रंग बनता है। (२) सारस्वत ब्राह्मणों की एक जाति।

झिँगवा-संज्ञा स्त्री० [म० चिंगट] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनों तरफ बाल होते हैं।

झिंगाक-संज्ञा पुं० [स०] तोरई। तरोई।

झिंगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसके पत्ते महुए के समान और शाखाओं में दोनों ओर लगते हैं। फूल सफेद और फल बेर के समान होते हैं।

पर्य्या०—झिंगी। झिंगिनी। प्रमोदिनी। सुनिर्यासा।

झिंगी-संज्ञा स्त्री० दे० "झिंगिनी"।

झिँगुली-संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा] छोटे बच्चों के पहनने का कुरता। झगा। उ०—पीत झीन झिंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही।—तुलसी।

झिंझिया-संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा जिसमें दीया बाल कर कुआर के महीने में लड़कियाँ घुमाती हैं। उ०—जाल रंध मग ह्वै कढ़ै तिय तन दीपति पुंज। झिंझिया कैसो घट भयो दिन ही में बनकुंज।—मतिराम।

झिंझिरिष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] झिंझिरीटा नामक क्षुप।

झिंझिरीटा-संज्ञा स्त्री० [सं० झिंझिरिष्टा] एक प्रकार का क्षुप।

झिंझी-संज्ञा स्त्री० [स०] झिल्ली। झींगुर।

झिंझोटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दिन के चौथे पहर में गाई जाती है।

झिंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटसरैया। पियावासा।

झिगड़ा†-संज्ञा पुं० दे० "झगड़ा"।

झिझक-संज्ञा स्त्री० दे० "झझक"।

झिझकना-क्रि० अ० दे० "झझकना"। उ०—(क) बरुनीन ह्वै नैन झिकै झिझिकै मनो खंजन मीन पै जाले परे।—ठाकुर। (ख) तहाँ साँचे चलैं तजि आपुन पौ झिझकैं कपटी जो निसांक नहीं।—घनानंद।

झिझकार-संज्ञा स्त्री० दे० "झझकार"।

झिझकारना-क्रि० स० (१) दे० "झझकारना"। उ०—वोही ढँग तुम रहे कन्हाई सबै उहाँ झिझकारि। लेहु असीस सबन के मुख तें कलहि दिवावत गारि।—सूर। (२) दे० "झटकना" उ०—रसना मति इत नैना निज गुन लीन। कर तें पिय झिझकारे अजगुति कीन।

झिटकारना†-क्रि० स० दे० "झटकारना" या "झटकना"।

झिड़क†-संज्ञा स्त्री० दे० "झिड़की"।

झिड़कना-क्रि० स० [अनु०] (१) अवज्ञा या तिरस्कारपूर्वक बिगड़ कर कोई बात कहना। उ०—(क) याते तुमको ढीठ कही। स्यामहि तुम भई झिरकनहारी पुते पर पुनि हारि नहीं।—सूर। (ख) भोर जगि प्यारी अध ऊरध इतै की ओर मापी खिझि झिरकि उघारि अध पलकैं।—पद्माकर। (२) अलग फेंक देना। झटकना। (क्व०) उ०—मुकुट सिर श्रीखंड सोहै निरखि रही ब्रजनारि। कोटि सुर को दंड आभा झिरकि डारैं वारि।—सूर।

झिड़की-संज्ञा स्त्री० [हिं० झिड़कना] (१) वह बात जो झिड़क कर कही जाय। डाँट। फटकार।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—सुनना।

(२) झिड़कने की क्रिया या भाव।

झिड़झिड़ाना-क्रि० अ० [अनु०] भला बुरा कहना। कटु वचन कहना। चिड़चिड़ाना।

झिड़झिड़ाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० झिड़झिड़ाना] झिड़झिड़ाने का भाव या क्रिया। (क्व०)

झिनवा-संज्ञा पुं० [देश०] महीन चावल का धान। उ०—रायभोग औ काजररानी। झिनवा रूद औ दाऊद खानी।—जायसी।

वि० दे० "झीना"।

झिपना-क्रि० अ० दे० "झेंपना"।

झिपाना-क्रि० स० [हिं० झेंपना का स० रूप] लज्जित करना। शरमिंदा करना।

झिमकना†-क्रि० अ० दे० "झमकना"।

झिर-संज्ञा स्त्री० दे० "झिरी"।

झिरकना-क्रि० स० दे० "झिड़कना"।

झिर झिर-क्रि० वि० [अनु०] (१) मंद मंद। धीरे धीरे। (२) झिर झिर शब्द के साथ।

झिरझिरा-वि० [हिं० झरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा आदि)। झँझरा। झीना।

(ख) नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झार ही।—तुलसी। (ग) गरज किलक आघात उठत मनु दामिनि पावक झार।—सूर। (घ) छूलि छबीली धरी धुँगारी। झरहै उठत झार की न्यारी।—सूर। (३) झाल। चरपरायन।

संज्ञा पुं० [हिं० झड़ना] (१) झरना। पौना। (२) एक पेड़ का नाम।

झारखंड-संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + खंड] (१) एक पहाड़ जो वैद्यनाथ होता हुआ जगन्नाथपुरी तक चला गया है।

विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास ग्रंथों में छत्तीसगढ़ और गोंडवाने के उत्तरी भाग को झारखंड के नाम से लिखा है।

(२) दे० झाड़खंड।

झारन-क्रि० स० [हिं० झाड़ना] दे० "झाड़न"।

झारना-क्रि० स० [सं० झर] (१) बाल साफ करने के लिये कंघी करना। (२) छाँटना। अलग करना। जुदा करना। (३) दे० "झाड़ना"।

झार फूँका-संज्ञा स्त्री० दे० "झाड़ फूँक"।

झारा-संज्ञा पुं०[हिं० झारना] (१) पतली छनी हुई भांग। (२) वह सूप जिससे अन्न को फटक कर सरसों इत्यादि से पृथक् करते हैं। झरना।

झारिं-संज्ञा स्त्री० दे० "झार"। उ०—कहहु सुमंत विचारि केहि बालक घोटक गह्यो। बसैं इहाँ ऋपि झारि छत्रिन कर न निवास इत।

झारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] लुटिया की तरह का एक प्रकार का लंबोतरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक ओर एक टोंटी लगी होती है। इस टोंटी में से धार बँध कर जल निकलता है। इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने अथवा हाथ पैर आदि धुलाने में होता है। उ०—(क) आसन दे चौकी आगे धरि। जमुना जल राख्यो झारी भरि।—सूर। (ख) आपुन झारी माँगि विप्र के चरन पखारे। इती दूर श्रम कियो राज द्विज भए दुखारे।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० झरि] वह पानी जिसमें अमचूर, जीरा, नमक आदि घुला हुआ हो। इस का व्यवहार पश्चिम में अधिक होता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "झाड़ी"।

क्रि० वि० दे० "झार"।

झारू-संज्ञा पुं० दे० "झाड़ू"।

झारेवालां-वि० [?] पटा खेलनेवाला। पटा, बनेठी या लकड़ी चलानेवाला।

झाल-संज्ञा पुं० [सं० झल्लक] झाँझ। काँसे का बना हुआ ताल देने का बाजा।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) रहट्टे का बड़ा खाँचा। (२) झालने की क्रिया या भाव।

संज्ञा स्त्री० [सं० झाला] (१) चरपराहट। तीतापन। तीक्ष्णता। जैसे, राई की झाल, मिरचे की झाल। (२) तरंग। मौज। लहर। (३) कामेच्छा। चुल। प्रसंग करने की कामना। झल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की झड़ी जो प्रायः जाड़े में होती है। उ०—जिन जिन संबल ना किया असपुर पाटन पाय। झाल परे दिन आयये संबल किया न जाय।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

वि०, और संज्ञा स्त्री० दे० "झार"।

झालड़-संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लरी] (१) घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। (२) दे० "झालर"।

झालना-क्रि० स० [?] (१) धातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका दे कर जोड़ लगाना। (२) पीने की चीजों को बोतल आदि में भर कर ठंढा करने के लिये बरफ़ या शोरे में रखना।

संयो० क्रि०—देना।

झालर-संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लरी] (१) किसी चीज के किनारे पर शोभा के लिये बनाया, लगाया या टाँका हुआ वह हाशिया जो लटकता रहता है। झालर की चौड़ाई प्रायः कम हुआ करती है और उसमें सुंदरता के लिये कुछ बेल बूटे आदि बने रहते हैं। मुख्यतः झालर कपड़े में ही होती है; पर दूसरी चीजों में भी शोभा के लिये झालर के आकार की कोई चीज़ बना या लगा देते हैं। जैसे, गद्दी या तकिए की झालर, पंखे की झालर, सायबान की झालर, चबूतरे आदि में पत्थर की झालर। (२) झालर के आकार की या किनारे की तरह पर लटकती हुई कोई चीज। (३) किनारा। छोर। (क्व०) (४) झाँझ। झाल। (५) घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है।

झालरदार-वि० [हिं० झालर + फ़ा० दार] जिसमें झालर लगी हो।

झालरना-क्रि० अ० दे० "झलराना"। उ०—नेकु न झुरसी बिरह झर नेहलता कुँभिलानि। नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जाति।—बिहारी।

झालरां-संज्ञा पुं० [हिं० झालर] एक प्रकार का दोहला हार। हुमेल।

संज्ञा पुं० [हिं० ताल] चौड़ा कुआँ। बावली। कुंड।

झाला-संज्ञा पुं० [देश०] राजपूतों की एक जाति जो गुजरात और मारवाड़ में पाई जाती है।

झिल्लु–संज्ञा पुं० [सं०] नील की जाति का एक प्रकार का पौधा। इसकी छाल और फूल लाल होते हैं और पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं।

झिल्लड़–वि० [हिं० झिल्ली] (वह कपड़ा) जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो। पतला और झँझरा (कपड़ा)। गफ का उलटा।

झिल्लन–संज्ञा स्त्री० [देश०] दरी बुनने के करघे की वह कड़ी लकड़ी जिसमें थै का बाँस लगा रहता है। गुरिया।

झिल्ला†–वि० [अनु०] [स्त्री० झिल्ली] (१) पतला। बारीक। (२) झँझरा। जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों।

झिल्लिका–संज्ञा स्त्री [सं०] झींगुर। झिल्ली।

झिल्ली–संज्ञा पुं० [सं०] झींगुर।

संज्ञा स्त्री० [सं० चैल] (१) किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े। जैसे, चमड़े की झिल्ली। (२) बहुत बारीक छिलका। (३) आँख का जाला।

वि० स्त्री० बहुत पतला। बहुत बारीक।

झिल्लीक–संज्ञा पुं० [सं०] झींगुर।

झिल्लीदार–वि० [हिं० झिल्ली + फा० दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो। जिस पर झिल्ली हो।

झींक–संज्ञा पुं० दे० "झोंका"। उ०—घोले चलु जँतवा झमकि देहु झिंकवा, देवस भुसल भैया, पाहुन रे की।—कबीर।

झींकना–क्रि० अ० दे० "झींखना"।

† क्रि० स० [देश०] फेंकना। पटकना।

झींका–संज्ञा पुं० [देश०] उतना अन्न जितना एक बार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है।

झींखना–क्रि० अ० [हिं० खीजना] (१) किसी अनिवार्य्य अनिष्ट के कारण दुखी होकर बहुत पछताना और कुढ़ना। खीजना। (२) दुखड़ा रोना। अपनी विपत्ति का हाल सुनाना।

संज्ञा पुं० (१) झींखने की क्रिया या भाव। (२) दुःख का वर्णन। दुखड़ा।

झींगट–संज्ञा पुं० [देश०] पतवार थामनेवाला। मल्लाह। कर्णधार। (लश०)

झींगा–संज्ञा पुं० [सं० चिंगट] (१) एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और जलाशयों आदि में पाई जाती है। इसके अगले भाग में छाती के नीचे बहुत पतले पतले और लंबे आठ पैर होते हैं; इसी लिये प्राणि-शास्त्रज्ञ इसे केकड़े आदि के अंतर्गत मानते हैं। आठ पैरों के अतिरिक्त इसके दो बहुत लंबे धारदार डंक भी होते हैं। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह लंबाई में चार अंगुल से प्रायः एक हाथ तक होती है। इसका सिर और मुँह मोटा होता है और दुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है। यह अपना शरीर इस प्रकार झुका सकती है कि सिर के साथ इसकी दुम लग जाती है। इसके सिर पर उँगलियों के आकार के दो छोटे छोटे शृंग होते हैं जिनके सिरों पर आँखें होती हैं। इन आँखों से वह बिना मुड़े चारों ओर देख सकती है। यह अपने अंडे सदा अपने पेट के अगले भाग में छाती पर ही रखती है। इसके शरीर के पिछले आधे भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर आपसे आप साँप की केंचुली की तरह उतर जाते हैं। छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। बहुधा मांस के लिये यह सुखा कर भी रखी जाती है। (२) एक प्रकार का धान, जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। (३) एक प्रकार का कीड़ा जो कपास की फसल को हानि पहुँचाता है।

झींगुर–संज्ञा पुं० [अनु० झीं + कर] एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जिसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है। इसकी छः टाँगें और दो बहुत बड़ी मूँछें होती हैं। यह प्रायः अँधेरे घरों में भी पाया जाता है। तथा खेतों और मैदानों में भी होता है। खेतों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है। इसकी आवाज़ बहुत तेज झीं झीं होती है और प्रायः बरसात में अधिकता से सुनाई देती है। नीच जाति के लोग इसका मांस भी खाते हैं। घुरघुरा। जंजीरा। झिल्ली।

झींझना†–क्रि० अ० [अनु०] झुँझलाना। खिजलाना।

झींझी–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक रस्म जिसमें आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाँड़ी में बहुत से छेद कर के उसके बीच में एक दीया बाल कर रखते हैं। इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती हैं और उस दीपक का तेल उनके सिर में लगाती हैं और वे लोग इन्हें कुछ देते हैं। उसी द्रव्य से वे सामग्री मँगा कर पूर्णिमा के दिन पूजन करती और आपस में प्रसाद बाँटती हैं। लोगों का यह भी विश्वास है कि इसका तेल लगाने से सेंहुआ रोग नहीं होता अथवा अच्छा हो जाता है। (२) मिट्टी की वह कच्ची हाँड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीया रखते हैं।

झींटना†–क्रि० अ० दे० "झींकना"।

झींपना†–क्रि० अ० (१) दे० "झेंपना"। (२) "ढँपना"।

झींसा†–संज्ञा पुं० दे० "झींसी"।

झींसी–संज्ञा स्त्री० [अनु० या हिं० झीना = बहुत महीन] फुहार। छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। वर्षा की बहुत महीन महीन बूँदें।

क्रि० प्र०—पड़ना।

झिरझिराना–क्रि० अ० दे० "झिड़झिड़ाना"।

झिरना–क्रि० अ० दे० "झरना"।

संज्ञा पुं० (१) छेद। छिद्र। सूराख। (२) दे० "झरना"।

झिरा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना = रस कर निकलना] आमदनी। आय।

झिरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] (१) छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय। दरज। शिगाफ। (२) वह गड्ढा जिसमें पानी झिर झिर कर इकट्ठा हो। (३) कुएँ के बगल में से निकला हुआ छोटा सोता। (४) तुषार। पाला। (५) वह फसल जिसे पाला मार गया हो।

झिर्री†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना या झिरी] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाय। घेरुआ।

झिलँगा–संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + अंग] (१) टूटी हुई खाट का घाघ। (२) ऐसी खाट जिसकी बुनावट ढीली पड़ गई हो।

संज्ञा पुं० दे० "झींगा"।

झिलना–क्रि० अ० [?] (१) बलपूर्वक प्रवेश करना। धँसना। घुसना। उ०—झिली फौज प्रतिभट गिरे खाइ घाव पर घाव। कुँवर दौरि परवत चढ़यो बढ़यो युद्ध को चाव।—लाल। (२) तृप्त होना। अघा जाना। उ०—(क) झिले राम कृष्ण, झिले पाइकै मनोरथ की, हिले दग रूर किये चूरि चूरि चूरि को।—प्रिया। (ख) झुकि झुकि झूमि झूमि झिलि झिलि झेलि झेलि झरहरी झाँपन में झमकि झमकि उठै।—पद्माकर। (३) मग्न होना। तल्लीन होना। उ०—कटयों कर चले हरि रंग माँझ झिले मानी जानी कछु चूक मेरी यहै उर धारिये।—प्रिया। (४) (कष्ट, आपत्ति, आदि) झेला जाना। सहा जाना। सहन होना। उठाया जाना।

संज्ञा पुं० [सं० झिल्ली] झींगुर।

झिलम–संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलमिला] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का झँझरीदार पहरावा जो लड़ाई के समय सिर और मुँह पर पहना जाता था। एक प्रकार का लोहे का टोप या खोद। उ०—(क) झलकत आवै झुंड झिलम झलानि झप्यो तमकत आवैं तेगवाही औ सिलाही के।—पद्माकर। (ख) गुरु जन डर सों चतुरई बरुनी झिल में डार। निधरक प्रीतम वदन तन अँखियाँ रहीं निहार।—रसनिधि।

झिलमटोप–संज्ञा पुं० दे० "झिलम"

झिलमा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है।

झिलमिल–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) काँपती हुई रोशनी। हिलता हुआ प्रकाश। झलमलाता हुआ उजाला। (२) ज्योति की अस्थिरता। रह रह कर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया। उ०—(क) हेरि हेरि विल में न लीन्हों दिल मिल में रही हैं हाय मिल में प्रभा की झिलमिल में।—पद्माकर। (ख) घूँघुट के घूमि के सु झूमके जवाहिर के झिलमिल झालर की भूमि लौं झुलत जात।—पद्माकर। (३) बढ़िया मलमल या तनजेब की तरह का एक प्रकार का बारीक और मुलायम कपड़ा। उ०—(क) चँदनौता जो खर दुख भारी। बाँस पूर झिलमिल की सारी।—जायसी। (ख) राम आरती होन लगी है, जगमग जगमग जोति जगी है। कंचन भवन रतन सिंहासन। दासन डासे झिलमिल डासन। तापर राजत जगत प्रकासन। देखत छवि मति प्रेम पगी है।—मन्नालाल।

वि० रह रह कर चमकता हुआ। झलमलाता हुआ। उ०—नदी किनारे मैं खड़ी पानी झिलमिल होय। मैं मैली पिय ऊजरे मिलना किस विधि होय।

झिलमिला–वि० [अनु०] (१) जो गफ वा गाढ़ा न हो। (२) जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। झँझरा। झीना। (३) जिसमें से रह रह कर हिलता हुआ प्रकाश निकले। (४) झलझलाता हुआ। चमकता हुआ। (५) जो बहुत स्पष्ट न हो।

झिलमिलाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) रह रह कर चमकना। जुगजुगाना। (२) प्रकाश का हिलना। ज्योति का अस्थिर होना।

क्रि० स० (१) किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमें वह रह रह कर चमके। (२) हिलाना। कँपाना।

झिलमिलाहट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] झिलमिलाने की क्रिया या भाव।

झिलमिली–संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलमिल] (१) एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी आड़ी पटरियों का ढाँचा जो किवाड़ों और खिड़कियों आदि में जड़ा रहता है। ये सब पटरियाँ पीछे की ओर पतली लंबी लकड़ी या छड़ में जड़ी होती हैं, जिसकी सहायता से झिलमिली खोली या बंद की जाती है। इसका व्यवहार बाहर से आनेवाला प्रकाश और गर्द आदि रोकने के लिये अथवा इस लिये होता है कि जिसमें बाहर से भीतर का दृश्य दिखलाई न पड़े। झिलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या छड़ को जरा सा नीचे की ओर खींचने से एक दूसरे पर पड़ी हुई पटरियाँ अलग अलग खड़ी हो जाती हैं और उन सब के बीच में इतना अवकाश निकल आता है जिसमें से प्रकाश या वायु आदि अच्छी तरह आ सके। खड़खड़िया।

क्रि० प्र०—उठाना।—खोलना।—गिराना।—चढ़ाना।

(२) चिक। चिलमन। (३) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना।

झुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना] (१) झुकाने की क्रिया या भाव। (२) झुकाने की मजदूरी।

झुकाना—क्रि० स० [हिं० झुकना] (१) किसी खड़ी चीज के ऊपरी भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना। निहुराना। नवाना। जैसे, पेड़ की डाल झुकाना। (२) किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना। जैसे, बेंत झुकाना, छड़ झुकाना। (३) किसी खड़े या सीधे पदार्थ को किसी ओर प्रवृत्त करना। (४) प्रवृत्त करना। रुजू करना। (५) नम्र करना। विनीत बनाना।

झुकामुखी—संज्ञा स्त्री० दे० "झुकमुख" उ०—जानि झुकामुखी भेष छपाय कै गागरी लै घर तें निकरी ती।—ठाकुर।

झुकार†—संज्ञा पु० [हिं० झकोरा] हवा का झोंका। झकोरा।

झुकाव—संज्ञा पु० [हिं० झुकना] (१) किसी ओर लटकने, प्रवृत्त होने या झुकने की क्रिया। (२) झुकने का भाव। (३) ढाल। उतार। (४) प्रवृत्ति। मन का किसी ओर लगना।

झुकावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना + आवट (प्रत्य०)] (१) झुकने या नम्र होने की क्रिया या भाव। (२) प्रवृत्ति। चाह। झुकाव।

झुटपुटा—संज्ञा पु० [अनु०] कुछ अँधेरा और कुछ उँजेला समय। ऐसा समय जब कि कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश हो। झुकमुख।

झुटुंग—वि० [हिं० झोंटा] जिसके खड़े खड़े और बिखरे हुए बाल हों। झोंटेवाला। जटावाला। दे० "झोटंग"। उ०—योगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापस सी तीर तीर बैठी हैं समरसरि खोरि कै।—तुलसी।

झुट्ठा†—वि० दे० "झूठा"।

झुठकाना—क्रि० स० [हिं० झूठ] (१) झूठी बात कह कर अथवा *और किसी प्रकार (विशेषतः बच्चों आदि को) धोखा देना।* (२) दे० "झुठलाना"।

झुठलाना—क्रि० स० [हिं० झूठ + लाना (प्रत्य०)] (१) झूठा ठहराना। झूठा प्रमाणित करना। झूठा बनाना। (२) झूठ कह कर धोखा देना। झुठकाना।

झुठाई*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूठ + आई (प्रत्य०)] झूठापन। असत्यता। झूठ का भाव। उ०—(क) जानि परत नहिं साँच झुठाई धेनु चरावत रहे झुरैया।—सूर। (ख) आधि मगन मन व्याधि विकल तन वचन मलीन झुठाई।—तुलसी।

झुठाना—क्रि० स० [हिं० झूठ + आना (प्रत्य०)] झूठा ठहराना। झूठा साबित करना। झुठलाना।

झूठामूठी—क्रि० वि० दे० "झूठमूठ"।

झुठालना—क्रि० स० दे० "झुठलाना"।

झुन—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की चिड़िया। (२) दे० "झुनझुनी"।

झुनक—संज्ञा पुं० [अनु०] नूपुर का शब्द।

झुनकना—क्रि० अ० [अनु०] झुनझुन शब्द करना। झुनझुन बोलना या बजना।

संज्ञा पुं० दे० "झुनझुना"।

झुनका†—संज्ञा पुं० [?] घोखा। छल।

झुनकार†—वि० [हिं० झीना] [स्त्री० झुनकारी] झिंझरा। पतला। झीना। महीन। बारीक। उ०—अँगिया झुनकारी खरी मितजारी की सेदकनी कुच-टू पर लौं।

झुनझुन—संज्ञा पुं० [अनु०] झुन झुन शब्द जो नूपुर आदि के बजने से होता है। उ०—अरुन तरनि नख ज्योति जगमगित झुनझुन करत पाय पैजनियाँ।—सूर।

झुनझुना—संज्ञा पु० [हिं० झुनझुन से अनु०] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खेलौना जो धातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज आदि से बनाया जाता है। यह कई आकार और प्रकार का होता है; पर साधारणतः इसमें पकड़ने के लिये एक डंडी होती है जिसके एक या दोनों सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है। इसी लट्टू में कंकड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या बजाने से झुनझुन शब्द होता है। घुनघुना।

झुनझुनाना—क्रि० अ० [अनु०] झुन झुन शब्द होना। घुँघुरू के जैसा बोलना।

क्रि० स० झुनझुन शब्द उत्पन्न करना। झुनझुन शब्द निकालना।

झुनझुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सनई का पौधा।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पैर में पहनने का कोई आभूषण जो झुनझुन शब्द करे। (२) बेड़ी। निगड़।

क्रि० प्र०—पहनना।—पहनाना।

झुनझुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुनझुनाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की सनसनाहट या क्षोभ।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

झुनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] जलाने की पतली लकड़ी।

झुपझुपी—संज्ञा स्त्री० दे० "झुबझुबी"।

झुपरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "झोंपड़ी"। उ०—साधुन की झुपरी भली नामाकर को गाँव। चंदन की कुटकी भली ना बबूल बनराव।—कबीर।

झुप्पा—संज्ञा पु० (१) दे० "झब्बा"। (२) दे० "झुंड"।

झुबझुबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं।

झीखना-क्रि० अ० दे० "झींखना"। उ०—मोर जगि प्यारी अध ऊरध इतै की ओर भाखी झिखि झिरकि उघारि अध पलकैं।—पद्माकर।

झीत-संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के पाल का बटन।

झीन†-वि० दे० "झीना"।

झीना-वि० [सं० क्षीण] (१) बहुत महीन। बारीक। पतला। उ०—प्रफुलित ह्वै के आनि दीन है जसोदा रानि झीनियै झँगुली तामें कंचन को तगा।—सूर। (२) जिसमें बहुत से छेद हों। झँझरा। (३) दुबला। दुर्बल। (४) मंद। धीमा।

झीमर-संज्ञा पुं० दे० "झीवर"।

झील-संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर = जल] (१) वह बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय जो चारों ओर ज़मीन से घिरा हो।

विशेष—झीलें बहुत बड़े मैदानों में होती हैं और प्रायः इनकी लंबाई और चौड़ाई सैकड़ों मील तक पहुँच जाती है। बहुत सी झीलें ऐसी होती हैं जिनका सोता उन्हीं के तल में होता है और जिनमें न तो कहीं बाहर से पानी आता है और न किसी ओर से निकलता है। ऐसी झीलों के पानी का निकास बहुधा भाप के रूप में ही होता है। कुछ झीलें ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ झीलों में से नदियाँ निकलती भी हैं। कभी कभी झील का संबंध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों में लगातार कई ऐसी झीलें हैं जो आपस में नदियों द्वारा सब एक दूसरे से संबद्ध हैं। झीलें खारे पानी की भी होती हैं और मीठे पानी की भी।

(२) तालाबों आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जलाशय। बहुत बड़ा तालाब। ताल। सर।

झालम-संज्ञा स्त्री० दे० "झिलम"।

झीली†-संज्ञा स्त्री० [हिं० झिल्ली] (१) मलाई। (२) दे० "झिल्ली"।

झीवर-संज्ञा पुं० [सं० धीवर] माँझी। मल्लाह। मछुआ।

विशेष—दे० "धीवर"।

झुँकवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "झोंकवाई"।

झुँकवाना-क्रि० स० दे० "झोंकवाना"।

झुँकाई-संज्ञा स्त्री० दे० "झोंकाई"।

झुँगरा-संज्ञा पुं० [देश०] साँवाँ नामक अन्न।

झुँझलाना-क्रि० अ० [अनु०] खिझलाना। किटकिटाना। बहुत दुःखी और क्रुद्ध होकर कोई बात करना। चिड़चिड़ाना।

झुंड-संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से मनुष्यों, पशुओं या पक्षियों आदि का समूह। प्राणियों का समुदाय। वृंद। गरोह। जैसे, भेड़ियों का झुंड, कबूतरों का झुंड।

मुहा०—झुंड के झुंड = संख्या में बहुत अधिक (प्राणी)।

झुंड में रहना = अपने ही वर्ग के दूसरे बहुत से जीवों में रहना।

झुंडी-संज्ञा स्त्री० [?] (१) वह खूँटी जो पौधों को काट लेने के बाद खेतों में खड़ी रह जाती है। (२) चिलमन या परदा लटकाने का कुलाबा जो प्रायः कुंदे में लगा रहता है।

झुकझोरना-क्रि० स० दे० "झकझोरना"।

झुकना-क्रि० अ० [सं० युज्, युन्. हिं० जुक] (१) किसी खड़ी चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढ़ा हो कर लटक आना। ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना। निहुरना। नवना। जैसे, आदमी का सिर या कमर झुकना।

मुहा०—झुक झुक पड़ना = नशे या नींद आदि के कारण किसी मनुष्य का सीधा या अच्छी तरह खड़ा या बैठा न रह सकना। उ०—अमिय हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार।

(२) किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का किसी ओर प्रवृत्त होना। जैसे, छड़ी का झुकना। (३) किसी खड़े या सीधे पदार्थ का किसी ओर प्रवृत्त होना। जैसे, खंभे या तख्ते का झुकना। (४) प्रवृत्त होना। दत्त-चित्त होना। रुजू होना। मुखातिब होना। (५) किसी चीज को लेने के लिये आगे बढ़ना। (६) नम्र होना। विनीत होना। अवसर पड़ने पर अभिमान या उग्रता न दिखलाना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(७) क्रुद्ध होना। रिसाना। उ०—(क) सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अबरहु अरगानी।—तुलसी। (ख) अब झूठो अभिमान करति सिय झुकति हमारे ताईं। सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सहज सुभाई।—सूर। (ग) अनत बसे निसि की रिसनि उर बर रह्यो बिसेखि। तऊ लाज आई झुकत खरे लजौंहैं देखि॥—बिहारी।

झुकमुख†-संज्ञा पुं० [हिं० झुकना + मुख] प्रातः काल या संध्या का वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता। ऐसा अँधेरा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को पहचानने में कठिनता हो। झुटपुटा।

झुकरना†-क्रि० अ० [अनु०] झुँझलाना। खिसलाना।

झुकराना-क्रि० अ० [हिं० झोंका] झोंका खाना। उ०—पयो साँकरे कुंजमग करतु झाँझ झुकरात। मंद मंद मारुत तुरँग खूँदन आवत जात।—बिहारी।

झुकवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकवाना] (१) झुकवाने की क्रिया या भाव। (२) झुकवाने की मजदूरी।

झुकवाना-क्रि० स० [हिं० झुकना] झुकाने का काम दूसरे से कराना। किसी को झुकाने में प्रवृत्त करना।

झुर्री–संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना] किसी चीज़ की सतह पर लंबी रेखा के रूप में उभरा या धँसा हुआ चिह्न जो उस चीज के सूखने मुड़ने या पुरानी हो जाने आदि के कारण पड़ जाता है। सिकुड़न। सिलवट। शिकन। जैसे, आम पर की झुर्री, चेहरे पर की झुर्री।

क्रि० प्र०—पड़ना।

विशेष—बहुधा इसका प्रयोग बहु वचन में ही होता है। जैसे, अब वे बहुत बुड्ढे हो गए, उनके सारे शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई हैं।

झुलका–संज्ञा पुं० दे० "झुनझुना"।

झुलना–संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ढीला ढाला कुरता। झूला।

वि० [हिं० झूलना] झूलनेवाला। जो झूलता हो।

संज्ञा पुं० दे० "झूला"।

झुलनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] (१) सोने आदि के तार में गुथा हुआ छोटे छोटे मोतियों का गुच्छा जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये नाक की नथ में लटका लेती हैं। (२) दे० "झूमर"।

झुलनीचोर–संज्ञा पुं० [देश०] धान का बाल। (कहारों की परि०)

झुलमुला–वि० दे० "झिलमिला"। उ०—(क) झीने पट में झुलमुली झलकति ओप अपार। सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार।—बिहारी। (ख) काननि कनिक पत्र चक्र चमकत चारु ध्वजा झुलमुल झलकति अति सुखदाइ।—केशव।

झुलवा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की कपास जो बहराइच, बलिया, गाजीपुर और गोंडे आदि में उत्पन्न होती है। यह अच्छी जाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार होती है, इस लिये इसे जेठवा भी कहते हैं। † (२) दे० "झूला"।

झुलवाना–क्रि० स० [हिं० झूलना] झुलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झुलाने में प्रवृत्त करना।

झुलसना–क्रि० अ० [सं० ज्वल+अंश] (१) किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल का इस प्रकार अंशतः जल जाना कि उसका रंग काला पड़ जाय। किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का अधजला होना। झौंसना। जैसे, यह लड़का अंगीठी पर गिर पड़ा था इसीसे इसका सारा हाथ झुलस गया। (२) बहुत अधिक गरमी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सूख कर कुछ काला पड़ जाना। जैसे, गरमी के दिनों में कोमल पौधों की पत्तियाँ झुलस जाती हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को इस प्रकार अंशतः जलाना कि उस का रंग काला पड़ जाय और तल खराब हो जाय। झौंसना। जैसे, उन्हों ने जान बूझ कर अपना हाथ झुलस लिया। (२) अधिक गरमी से किसी पदार्थ के ऊपरी भाग को सुखा कर अधजला कर देना। जैसे, आज दोपहर की धूप ने सारा शरीर झुलस दिया।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—मुँह झुलसना = देखो "मुँह" के मुहावरे।

झुलसवाना–क्रि० स० [हिं० झुलसना का प्रे०] झुलसने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झुलसने में प्रवृत्त करना।

झुलसाना–क्रि० स० (१) दे० "झुलसना"। (२) दे० "झुलसवाना"।

झुलाना–क्रि० स० [हिं० झूलना] (१) हिंडोले या झूले में बैठा कर हिलाना। किसी को झूलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो नाहीं नाहीं अब ना झुलाओ लाल बावा की मैं मेरी ये जुगल जंघ थहरात।—तोष। (२) अधर में लटका या टाँग कर इधर उधर हिलाना। बार बार झोंका देकर हिलाना। (३) कोई चीज़ देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक समय तक आसरे में रखना। अनिश्चित या अनिर्णीत अवस्था में रखना। कुछ निष्पत्ति या निपटेरा न करना। जैसे, इस कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीनों झुलाता है।

झुलावना *†–क्रि० स० दे० "झुलाना"। उ०—लेइ उछंग कबहुँक हलरावइ। कबहुँ पालने घालि झुलावइ।—तुलसी।

झुलावनि *†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झुलाना] झुलाने का भाव या क्रिया।

झुलुआ †–संज्ञा पुं० दे० "झूला"।

झुलौवा *†–संज्ञा पुं० [हिं० झूला = कुरता] जनाना कुरता।

वि० [हिं० झूलना] जो झूलता या झुलाया जा सकता हो। झूलने या झूल सकनेवाला।

झुल्ला †–संज्ञा पुं० दे० "झूला"।

झुहिरना †–क्रि० अ० [?] लदना। लादा जाना। उ०—रतन पदारथ नग जो बखाने। घोरन मँह देखे झुहिराने।—जायसी।

झुहिराना†–क्रि० स० [?] लादना। बोझ रखना।

झूँक*†–संज्ञा पुं० दे० "झोंका"। उ०—(क) मुहमद गुरु जो त्रिधि लिखी का कोई तेहि फूँक। जेहि के भार जग थिर रहा उड़े न पवन के झूँक।—जायसी। (ख) त्यों पदमाकर पौन के झूँकन कवैलिया कूकन को सहि लैहैं।—पदमाकर।

संज्ञा स्त्री० दे० "झोंक"। उ०—किंकिनी की झमकानि झुकावनि झूँकनि सों झुकि आन करी की।—देव।

झूँकना†–क्रि० स० (१) दे० "झोंकना"। (२) दे० "झलना"।

झुमका—संज्ञा पुं० [हिं० झूमना] (१) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना जो छोटी गोल कटोरी के आकार का होता है। इस कटोरी का मुँह नीचे की ओर होता है और इसकी पेंदी में एक कुंदा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में नीचे की ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के तार में गुथे हुए मोतियों आदि की झालर लगी होती हैं। यह सोने चाँदी या पत्थर आदि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है। यह अकेला भी कान में पहना जाता है और करणफूल के नीचे लटका कर भी। (२) एक प्रकार का पौधा जिसमें झुमके के आकार के फूल लगते हैं। (३) इस पौधे का फूल।

झुमना†—वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला। हिलनेवाला।
संज्ञा पुं० [देश०] वह बैल जो अपने खूँटे पर बँधा हुआ अपने पिछले पैर उठा उठा कर झूमा करे। यह एक कुलक्षण है।

झुमरा—संज्ञा पुं० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या बहुत भारी हथौड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में होता है।

झुमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) काठ की मुँगरी। (२) गच पीटने का औज़ार। पिटना।

झुमाऊ—वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला। जो झूमता है।

झुमाना—क्रि० स० [हिं० झूमना का स० रूप] किसी को झूमने में प्रवृत्त करना। किसी चीज़ के ऊपरी भाग को चारों ओर धीरे धीरे हिलाना।

झुरकुट—वि० [अनु०] (१) मुरझाया हुआ। सूखा हुआ। (२) दुबला। कृश।

झुरकुटिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे खेड़ी कहते हैं।
विशेष—दे० "खेड़ी"।
वि० [अनु०] दुबला पतला। कृश।

झुरकुन†—संज्ञा पुं० [हिं० झड़+कण] किसी चीज़ के बहुत छोटे छोटे टुकड़े। चूर।

झुरझुरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कँपकँपी जो जूड़ी के पहले आती है। (२) कँपकँपी।

झुरना—क्रि० अ० [हिं० धूल, वा चूर] (१) सूखना। खुश्क होना। दे० "झुराना"। उ०—हाड़ भई झुरि किंगड़ी नसें भईं सब ताँति। रोंव रोंव तन धुन उठै कहौं बिथा केहि भाँति।—जायसी। (२) बहुत अधिक दुखी होना या शोक करना। उ०—(क) साँझ भई झुरि झुरि पँथ हेरी। कौन सो घरी करी पिय फेरी।—जायसी। (ख) वैसोइ रथ वैसोई कोउ आवत उतहीं ते। झुरि झुरि सब मरति विरह गोपीजन फीते।—सूर। (ग) इनका बोझ आपके सिर है; आप इनकी खबर न लेंगे तो संसार में इनका कहीं पता न लगेगा। वे बेचारे यों ही झुर झुर कर मर जायगे।—श्रीनिवासदास। (३) बहुत अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुर्बल होना। घुलना। उ०—(क) ए दोउ मेरे गाइचरैया। मोल बिसाहि लये तुम को तब दोउ रहे नन्हैया।......जानि परत नहिं साँच झुठाई धेनु चरावत रहे झुरैया। सूरदास प्रभु कहति यशोदा मैं चेरी कहि लेत बलैया।—सूर। (ख) सूनों कै परम पद, ऊनो कै अनंत मद नूनो कै नदीस नद इंदिरा झुरै परी।—देव। (ग) सिद्धिन की सिद्धि दिगपालन की रिद्धि वृद्धि वेधा की समृद्धि सुरसदन झुरै परी।—रघुराज।
संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना। (क्व०)

झुरमुट—संज्ञा पुं० [सं० झुंट=झाड़ी] (१) कई झाड़ों या पत्तों आदि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय। एक ही में मिले हुए या पास पास कई झाड़ या क्षुप। डाल पत्तियों की आड़ (२) बहुत से लोगों का समूह। गरोह। उ०—खन इक महँ झुरमुट होइ बीता। दर महँ चढ़े रहै सो जीता।—जायसी। (३) चादर या ओढ़ने आदि से शरीर को चारों ओर से छिपा या ढक लेने की क्रिया।
मुहा०—झुरमुट मारना=चादर या ओढ़ने आदि से सारा शरीर इस प्रकार ढक लेना कि जिसमें जल्दी कोई पहचान न सके।

झुरवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना+वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज़ के सूखने के कारण उसमें से निकल जाता है।

झुरवाना—क्रि० स० [हिं० झुरना] (१) सुखाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना। † (२) झुराना। सुखाना।

झुरसना—क्रि० अ०। स० दे० "झुलसना"।

झुरसाना—क्रि० स० दे० "झुलसाना"।

झुरहुरी—संज्ञा स्त्री० दे० "झुरझुरी"।

झुराना†—क्रि० स० [हिं० झुरना] सुखाना। खुश्क करना।
क्रि० अ० (१) सूखना। (२) दुःख या भय से घबरा जाना। दुःख से स्तब्ध होना। उ०—यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भए मानो बिन पानी।—सूर। (३) दुबला होना। क्षीण होना।
संयो० क्रि०—जाना।
विशेष—दे० "झुरना"।

झुरावन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना+वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज़ को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है।

गुच्छे टँके हों। वह लँहगे पर की ओढ़नी जिसमें सिर के पल्ले पर सोने के पत्ते या मोती के गुच्छे टँके हों। उ०—लाख टका यह झूमक सारी देहु दाइ को नेग।—सूर।

झूमका—संज्ञा पुं० (१) दे० "झुमका"। उ०—मरवा मयारि विरोज लाज लटकत सुंदर सुढर डरावनो। मोतिन झालरि झूमका राजत बिच नीलमणि बहु भावनो।—सूर। (२) दे० "झूमक"। उ०—पग पटक्त लटकत लटवाहू। मटकत भौंहन हस्त उछाहू। अंचल चंचल झूमका।—सूर।

झूमड़—संज्ञा पुं० दे० "झूमर"।

झूमड़ा—संज्ञा पुं० दे० "झूमरा"।

झूमड़ झामड़—संज्ञा पुं० [हिं० झूमड़] ढकोसला। झूठा प्रपंच। निरर्थक विषय। उ०—अपने हाथे करैं पापना अजया का सिर काटी। सो पूजा घर लैंगो माली मूरति कुत्तन चाटी। दुनियाँ झूमड़ि झामड़ि अटकी।—कबीर।

झूमना—क्रि० अ० [सं० झंप = कूदना] (१) आधार पर स्थित किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिरे का बार बार आगे पीछे नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना। बार बार आगे पीछे नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना। बार बार झोंके खाना। जैसे, हवा के कारण पेड़ों की डालों का झूमना।

मुहा०—बादल झूमना = बादलों का एकत्र होकर झुकना।

(२) किसी खड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़ को बार बार आगे पीछे और इधर उधर हिलाना। लहराना। जैसे, हाथी या रीछ का झूमना, नशे या नींद में झूमना। उ०—आई सुधि प्यारे की विचारै मति टारै तब धारै पग मग झूमि द्वारावति आए हैं।—प्रिया।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्ती, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे आदि के कारण होती है।

मुहा०—दरवाजे पर हाथी झूमना = इतना अमीर होना कि दरवाजे पर हाथी बँधा हो। इतना सम्पन्न होना कि हाथी पाल सके। उ०—झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जड़े मद अंबु चुचाते।—तुलसी। झूम झूम कर = सिर और धड़ को आगे पीछे या इधर उधर खूब हिला हिला कर। लहरा लहरा कर। जैसे, झूम झूम कर पढ़ना, नाचना या (भूत प्रेत आदि बाधाओं के कारण) खेलना।

संज्ञा पुं० बैलों का एक ऐब जिसमें वे खूँटे पर बँधे बँधे इधर उधर सिर हिलाया करते हैं।

झूमर—संज्ञा पुं० [हिं० झूमना या सं० सुम्म, प्रा० जुम्म + र (प्रत्य०)] (१) सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः एक या डेढ़ अंगुल चौड़ी चार पाँच अंगुल लंबी और भीतर से पोली सीधी अथवा धनुषाकार एक पटरी होती है। यह गहना प्रायः सोने का ही होता है और इसमें छोटी जंजीरों से बँधे हुए घुँघरू या झब्बे लटकते रहते हैं। किसी किसी झूमर में जंजीरों से लटकती हुई एक के बाद एक इस प्रकार दो पटरियाँ भी होती हैं। इसके पिछले भाग के कुंडे में चाँद के आकार के एक गोल टुकड़े में दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है जिसके दूसरे सिरे का कुंडा सिर की चोटी या माँग के पास के बालों में अटका दिया जाता है। यह गहना सिर के अगले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं। संयुक्त प्रदेश में केवल एक ही झूमर पहना जाता है जो सिर पर दाहिनी ओर रहता है, और वहाँ इसका व्यवहार वेश्याएँ करती हैं, पर पंजाब में इसका व्यवहार गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं और वहाँ झूमरों की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों ओर लटकती रहती है। (२) कान में पहनने का झुमका नामक गहना। (३) झूमक नाम का गीत जो होली में गाया जाता है। (४) इस गीत के साथ होनेवाला नाच। (५) एक प्रकार का गीत जो बिहार प्रांत में सब ऋतुओं में गाया जाता है। (६) एक ही तरह की बहुत सी चीजों का एक स्थान पर इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय। जमघटा। जैसे, नावों का झूमर।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

(७) बहुत सी स्त्रियों या पुरुषों का एक साथ मिल कर इस प्रकार घूम घूम कर नाचना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय। (८) भालू का खड़ा करने पर रस्सी लेकर भागना। (कलंदरों की भाषा) (९) गाड़ीवानों की मोंगरी। (१०) झूमरा नामक ताल। दे० "झूमरा"। (११) एक प्रकार का काठ का खिलौना जिसमें एक गोल टुकड़े में चारों ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकती रहती हैं।

झूमरा—संज्ञा पुं० [हिं० झूमर] एक प्रकार का ताल जो चौदह मात्राओं का होता है। इसमें तीन आघात और एक विराम होता है। धिं धिं तिरकिट, धिं धिं धा धा, तित्ता तिरकिट, धिं धिं धाधा।

झूमरि†—संज्ञा स्त्री० दे० "झूमर"।

झूमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मालकोश राग के पाँच भेदों में से एक।

झूर†—वि० [हिं० झूर या चूर] सूखा। खुश्क। शुष्क।

वि० [हिं० झूठ] (१) खाली। रीता। (२) व्यर्थ।

वि० [सं० जुष्ट] जूठा। उच्छिष्ट।

संज्ञा स्त्री० (१) जलन। दाह। (२) परिताप। दुःख। उ०—अजहुँ कहै सुनाइ कोई करै कुबिजा दूरि। सूर दाहनि मरत गोपी हरी के झूरि।—सूर।

झूँखना*†–क्रि० अ० दे० "झींखना"। उ०—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब इतनी नहिं झूँखीं।—सूर।

झूँझल–संज्ञा स्त्री० दे० "झुँझलाहट"।

झूँटा–संज्ञा पुं० [हिं० झोंका] पेंग। उ०—दे० "झोंटा"।
वि० दे० "झूठा"।

झूँठा†–वि०, संज्ञा पुं० दे० "झूठ"।

झूँठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठी] वह डंठल जो नील को सड़ाने पर बच रहता है।

झूँपड़ा†–संज्ञा पुं० "झोंपड़ा"।

झूँसना†–क्रि० अ० और स० दे० "झुलसना"।

झूँसा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

झूकटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूट+काँटा] छोटी झाड़ी। उ०—(क) वह झूकटी तिरस्कृत प्रकृती को अनुसरती है।—श्रीधर पाठक। (ख) जिमि बसंत नव फूल झूकटी तले लखाई।—श्रीधर पाठक।

झूझना –क्रि० अ० दे० "जूझना" उ०—साहब को भावइ नहीं सो बाट न बूझी रे। । साईं सों सनमुख रहे इस मन से झूझी रे।—दादू।

झूट–संज्ञा पुं० दे० "झूठ"।

झूठ–संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त] वह कथन जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। वह बात जो यथार्थ न हो। सच का उलटा।

क्रि० प्र०—कहना।—बोलना।

मुहा०—झूठ सच कहना या लगाना = निंदा करना। शिकायत करना।

यौ०—झूठ मूठ।
वि० दे० "झूठा"। (क्व०)
†संज्ञा स्त्री० दे० "जूठन"।

झूठन–संज्ञा स्त्री० दे० "जूठन"।

झूठमूठ–क्रि० वि० [हिं० झूठ+मूठ (अनु०)] बिना किसी वास्तविक आधार के। झूठे ही। यों ही। व्यर्थ। जैसे, उन्होंने झूठ मूठ एक बात बना कर कह दी।

झूठा–वि० [हिं० झूठ] (१) जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। जो झूठ हो। जो सत्य न हो। मिथ्या। असत्य। जैसे, झूठी बात, झूठा अभियोग। (२) जो झूठ बोलता हो। झूठ बोलनेवाला। मिथ्यावादी। जैसे, ऐसे झूठे आदमियों का क्या विश्वास।

क्रि० प्र०—ठहरना।—निकलना।—बनना।

(३) जो सच्चा या असली न हो। जो केवल रूप और रंग आदि में असली चीज़ के समान हो पर गुण आदि में नहीं। जो केवल दिखौआ और बनावटी हो या किसी असली चीज़ के स्थान पर यों ही काम देने, सुभीता उत्पन्न करने अथवा किसी को धोखे में डालने के लिये बनाया गया हो। नकली। जैसे, झूठे जवाहिरात, झूठा गोटा पट्ठा, झूठी घड़ी, झूठा मसाला या काम (जरदोज़ी का काम), झूठा दस्तावेज़, झूठा कागज।

विशेष—इस अर्थ में "झूठा" शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ ही होता है जिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में दिए गए हैं।

(४) जो (पुरजे या अंग आदि) बिगड़ जाने के कारण ठीक ठीक काम न दे सकें। जैसे, ताले या खटके आदि का झूठा पड़ जाना, हाथ या पैर का झूठा पड़ना।

क्रि० प्र०—पड़ना।
वि० दे० "जूठा"।

झूठों–क्रि० वि० [हिं० झूठा] (१) झूठ मूठ। यों ही। (२) नाम मात्र के लिये। कहने भर को। जैसे, वे झूठों भी हमें बुलाने के लिये न आए। उ०—झूठों हि दोष लगावे मोहें राजा।—गीत।

झूणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की सुपारी। (२) एक प्रकार का असगुन।

झूना†–वि० दे० "झीना"। उ०—(क) तब लौ दया बनो दुसह दुख दारिद को साथरी को सोइबो ओढ़िबो झूने खेस को।—तुलसी। (ख) तेहि वश उड़े झूने सुसीकर परम शीतल तृण परे।—रघुराज।

झूम–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमना] (१) झूमने की क्रिया या भाव। (२) ऊँघ। उँघाई। झपकी। (क्व०)

झूमक–संज्ञा पुं० [हिं० झूमना] (१) एक प्रकार का गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ झूम झूम कर एक घेरे में नाचती हुई गाती हैं। झूमर। झूमकरा उ०—लिए छरी बेंत सौंधे विभाग। चाचरि झूमक कहै सरस राग।—तुलसी। (२) इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य। (३) एक प्रकार का पूरबी गीत जो विशेषतः विवाह आदि मंगल अवसरों पर गाया जाता है। झूमर। उ०—कहूँ मनोरा झूमक होई। फर और फूल लिए सब कोई।—जायसी। (४) गुच्छा। (५) चाँदी सोने आदि के छोटे छोटे झुमकों या मोतियों आदि के गुच्छों की वह कतार जो साड़ी या ओढ़नी आदि के उस भाग में लगी रहती है जो माथे के ठीक ऊपर पड़ता है। इसका व्यवहार पूरब में अधिक होता है। (६) दे० "झुमका"।

झूमक साड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमक+साड़ी] वह साड़ी जिसके सिर पर रहनेवाले भाग में झुमके या सोने मोती आदि के

विशेष—झूला कई प्रकार का होता है। इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु में घरों या पेड़ों की डालों में झूलते हुए रस्से बाँध कर उनके निचले भाग में तख्ता या पटरी आदि रख कर उस पर झूलते हैं। दक्षिण भारत में झूले का रवाज बहुत है। वहाँ प्रायः सभी घरों में छतों में चार रस्सियाँ या ज़ंजीरें लटका दी जाती हैं और किसी बड़े तख्ते या चौकी के चारों कोने से उन रस्सियों को बाँध या जंजीरों को जड़ देते हैं। झूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरलता से बराबर झूल सके। झूले के आगे और पीछे जाने और आने को पेंग कहते हैं। झूले पर बैठ कर पेंग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके आघात करते हैं या उसके एक सिरे पर खड़े हो कर झोंके से नीचे की ओर झुकते हैं।

क्रि० प्र०—झूलना।—डोलना।—पड़ना।

(२) बड़े बड़े रस्सों जंजीरों या तारों आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, चट्टान या बुर्ज आदि में बँधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अधर में लटकता और झूलता रहता है। झूलता हुआ पुल। जैसे, लछमन झूला।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे। आज कल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और बड़ी बड़ी खाइयों पर कहीं कहीं जंगली जातियों के बनाए हुए इस प्रकार के पुल पाए जाते हैं। पुरानी चाल के पुल दो तरह के होते हैं। (१) एक बहुत मोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारों पर की दो बड़ी चट्टानों आदि में बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा दौरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है जो दूसरे किनारे पर से खींच लिया जाता है, ऊपर-वाले रस्से को पकड़कर यात्री इसे कभी कभी स्वयं सरकाता चलता है। (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल बुन कर अथवा छोटे छोटे डंडे बाँध कर नदी की चौड़ाई के बराबर लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी एक पटरी सी बना लेते हैं और उसे रस्सों में लटका कर दोनों ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर उन्हीं रस्सों और रस्सियों की लटकती हुई एक गली सी बन जाती है। इसी में से हो कर आदमी चलते हैं। इसके दोनों सिरे भी नदी के किनारे पर चट्टानों से बँधे होते हैं। आज कल युरोप अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियों पर भी मोटे मोटे तारों और जंजीरों से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बढ़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं।

(३) वह बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों में बाँध कर दोनों ओर दो ऊँची खूँटियों या खंभों आदि में बाँध दिए गए हों।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के बिस्तर पेड़ों में बाँध देते और उन पर सोते हैं। जहाजों में खलासी लोग भी इस प्रकार के कनवास के बिस्तरों का व्यवहार करते हैं।

(४) पशुओं की पीठ पर डालने की झूल। (५) देहाती स्त्रियों के पहनने का ढीला ढीला कुरता। (६) झोंका। झटका। (क०)। (७) † तरबूज़।

झूलि—संज्ञा पुं० दे० "झूली"।

झूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] (१) वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न ओसाया जाता है। परती। (२) खलासियों आदि का जहाजी बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बाँध कर दोनों ओर ऊँची खूँटियों या खंभों आदि में बाँध दिए जाते हैं। दे० "झूला (३)"।

झेंपना, झेपना—क्रि० अ० [हिं० छिपना] शरमाना। लजाना। लज्जित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

झेर * †—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० देर] (१) विलंब। देर। उ०—(क) चलहु तुरत जिनि झेर लगावहु अबहीं आइ करौ विश्राम। —सूर। (ख) काहे को तुम झेर लगावति। दान देहु घर जाहु बेचि दधि तुम ही को यह भावति।—सूर। (२) बखेड़ा। झगड़ा। उ०—(क) सूरदास प्रभु रासबिहारी श्रीबनवारी वृथा करत काहे झेरें।—सूर। (ख) मधुकर समता ऐसा बैरन।......नंदकुमार छाँड़ि को लैहै योग दुखन की ढेरन। जहाँ न परम उदार नंदसुत मुक्त परो किन झेरन।—सूर।

झेरना * †—क्रि० स० [हिं० झेलना] झेलना। सहना। उ०—कह नृप पद अब ते यहाँ गहे हानि सुख झेरि। मन में भयो न मैल कछु लागे सेवन फेरि।—विश्राम।

क्रि० स० [हिं० छेड़ना] छेड़ना। शुरू करना। आरंभ करना। उ०—मेरी घड़ेरी जाहि झेरी मुरली बहुतेरी बनी। —गोपाल।

झेरा—संज्ञा पुं० [?] झंझट। बखेड़ा। दे० "झेर"। उ०—(क) जीव का जनम का जनम का जीव का आप ही आप ले भानि झेरा।—दादू। (ख) दीपक में धरयो धारि देखत भुज भए चारि हारी हौं धरति करत दिन दिन को झेरो।—सूर।

झेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] (१) पानी में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। (२) हलका धक्का या हिलोरा। उ०—सुरत समुद मगन दंपति रस झेलत अति सुख झेल। —सूर। (३) झेलने की क्रिया या भाव।

झूरना‡–क्रि० स० [हिं० झूर] दे० "झुराना"।

झूरा‡–वि० [हिं० झूर] (१) सूखा। शुष्क। खुश्क। (२) खाली। उ०—किंगरी गहे बजाये झूरी। भोर साँझ सिंगी नित पूरी।—जायसी। दे० "झूर"।
संज्ञा पुं० (१) सूखा स्थान। वह स्थान जो पानी से भींगा न हो। (२) जलवृष्टि का अभाव। अवर्षण। सूखा।
क्रि० प्र०—पड़ना।
(३) न्यूनता। कमी। उ०—करी कराह साज सब पूरा। काहुहु पूरी परी न झूरा।—रघुराज।

झूरि–संज्ञा स्त्री० दे० "झूर"।

झूरै–क्रि०वि० [हिं० झूर] व्यर्थ। निष्प्रयोजन।
वि० दे० "झूर"। उ०—बाँधि पची डोरी नहिं पूरै। बार बार खीजत रिस झूरै।—सूर।

झूल–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] (१) वह चौकोर कपड़ा जो प्रायः शोभा के लिये चौपायों की पीठ पर डाला जाता है। उ०—शेर के समान जब लीन्हें सावधान श्वान झूलन ढपान जिन वेग बेप्रमान हैं।—रघुराज।
विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो झूल डाली जाती है वह प्रायः मखमल की और अधिक दामों की होती है और उस पर कारचोबी आदि का काम किया होता है। बड़े बड़े राजाओं के हाथियों की झूलों में मोतियों की झालरें तक टँकी होती हैं। ऊँटों तथा रथों के बैलों पर भी इसी प्रकार की झूलें डाली जाती हैं। आज कल कुत्तों तक पर झूल डाली जाने लगी है।
मुहा०—गधे पर झूल पड़ना = बहुत ही अयोग्य या कुरूप मनुष्य के शरीर पर बहुमूल्य और बढ़िया वस्त्र होना। (व्यंग्य)
(२) वह कपड़ा जो पहना जाने पर भद्दा और बेढंगम जान पड़े। (व्यंग्य) (३) * दे० "झूला"। उ०—मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अंक लिए।—केशव।

झूलडंड–संज्ञा पुं० दे० "झूलदंड"।

झूलदंड–संज्ञा पुं० [हिं० झूलना + सं० दंड] एक प्रकार की कसरत जिसमें बारी बारी से बैठक और तब झूलते हुए दंड करते हैं।

झूलन–संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] (१) एक उत्सव जिसमें श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्त्तियों को झूले पर बैठा कर झुलाते और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं। यह साधारणतः वर्षा ऋतु में और विशेषतः श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है। हिंडोल। (२) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना।
† संज्ञा स्त्री० झूलने की क्रिया या भाव।

झूलना–क्रि० अ० [सं० दोलन] (१) किसी लटकी हुई वस्तु पर स्थित होकर अथवा किसी आधार के सहारे नीचे की ओर लटक कर बार बार आगे पीछे या इधर उधर हटते बढ़ते रहना। लटक कर बार बार इधर उधर हिलना। जैसे, पंखे की रस्सी झूलना, झूले पर बैठ कर झूलना। (२) झूले पर बैठ कर पेंग लेना। उ०—(क) प्रेम रंग बोरी भोरी नवल किसोरी गोरी झूलति हिंडोरे यों सोहाई सखियान में। काम झूलै उर में, उरोजन में दाम झूलै, स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में।—पद्माकर। (ख) फूली फूली बेली सी नवेली अलबेली बधू झूलति अकेली कामकेली सी बढ़ति है।—पद्माकर। (३) किसी कार्य के होने की आशा में अधिक समय तक पड़े रहना। आसरे में अथवा अनिर्णीत अवस्था में रहना। जैसे, जो लोग बरसों से झूल रहे हैं उनका काम होता ही नहीं, और आप अभी से जल्दी मचाने लगे।
वि० झूलनेवाला। जो झूलता हो। जैसे, झूलना पुल।
संज्ञा पुं० (१) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ७,७,७ और ५ के विराम से २६ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं। उ०—हरि राम विभु, पावन परम, गोकुल बसत मनमान। (२) इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण में १०, १०, १० और ७ के विराम से ३७ मात्राएँ और अंत में यगण होता है। उ०—जैति हिम बालिका असुर कुल घालिका कालिका मालिका सुरस हेतू। (३) हिंडोला। झूला। (क्व०)। उ०—अँबवा की डाली तले आली झूलना डला दे।—गीत।

झूलनी बगली–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना + बगली] मुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह की होती है। बगली की अपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पीठ पर से बगल में मुगदर छोड़ते समय पंजे को इस प्रकार उलटना पड़ता है कि मुगदर बराबर झूलता हुआ आता है। इससे कलाई में बहुत जोर आता है।

झूलनी बैठक–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना + बैठक = कसरत] एक प्रकार की बैठक (कसरत) जिसमें बैठक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह झुला कर और तब उसे समेट कर बैठना और फिर उठ कर दूसरे पैर को उसी प्रकार झुलाना पड़ता है। इसमें शरीर को तौलने की विशेष साधना होती है।

झूलरि–संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] झूलता हुआ छोटा गुच्छा या झुमका। उ०—वर वितान बहु तने तनावन। मनि झालरि झूलरि लटकावन।—गोपाल।

झूला–संज्ञा पुं० [सं० दोला] (१) पेड़ की डाल, छत या किसी और ऊँचे स्थान में बाँध कर लटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सी, जंजीर आदि से बँधी पटरी जिस पर बैठ कर झूलते हैं। हिंडोला।

(७) ठाट। सजावट। चाल। अंदाज। उ०—पहिरे राती चूनरी सिर उपरना सोई। कटि लहँगा लीलो बन्यो झोंको जो देखि मन मोई।—सूर। (८) कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानों के हाथ एक दूसरे की कमर पर होते हैं। इसमें एक हाथ विपक्षी के हाथ के बाहर निकाल कर मोढ़े पर चढ़ाते और दूसरा बगल से मोढ़े पर ले जाते, फिर झोंका दे कर गिराते हैं।

झोंकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंकना] (१) झोंकने की क्रिया या भाव। (२) झोंकने की मजदूरी।

झोंकिया—संज्ञा पु० [हिं० झोंकना] भाड़ में पत्ताई आदि झोंकनेवाला। झोंकवा।

झोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंक] (१) भार। बोझ। जवाबदेही। जैसे, सब झोंकी मेरे ही सिर? (२) भारी अनिष्ट वा हानि की आशंका। जोखों। जोखिम। जैसे, दूसरे का माल रख कर झोंकी कौन सहे?

क्रि० प्र०—सहना।

झोंझ †—संज्ञा पु० [देश०] (१) खोंता। घोंसला। (२) कुछ पक्षियों (जैसे, ढेक, गीध) के गले की थैली या लटकता हुआ मांस। (३) खुजली। सुरसुराहट। चुल।

मुहा०—झोंझ मारना = खुजली होना। चुल होना।

झोंझल—संज्ञा पु० [हिं० झुँझलाना] झुँझलाहट। क्रोध। कुढ़न। गुस्सा।

क्रि० प्र०—आना।

झोंट—संज्ञा पु० [सं० झुट = झाड़ी] (१) झाड़ी। (२) झाड़। झुरमुट। (३) समूह। जूरी। जुट्टी। (४) दे० "झोंटा"।

झोंटा—संज्ञा पु० [सं० जूट] (१) बड़े बड़े बालों का समूह। इधर उधर बिखरे बड़े बड़े बालों का जुट्टा।

मुहा०—झोंटे पकड़ कर मारना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का और कुव्यवहार करना = सिर के बाल खींच कर ये सब व्यवहार करना। (स्त्रियों के लिये यह अपमान की बात है) झोंटे खसोटना = सिर के बाल खींचना।

यौ०—झोंटा झोंटी = ऐसा लड़ाई झगड़ा या मार पीट जिसमें झोंटा पकड़ने की नौबत आवे।

(२) जुट्टा। पतली लंबी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में आ सके।

संज्ञा पु० [हिं० झोंका] वह धक्का जो झूले को इधर उधर हिलाने के लिये दिया जाता है। झोंका। पेंग। उ०—(क) ललिता विशाखा देहि झोंटा रीझि अंग न समाति।—सूर। (ख) एक समय एकांत वन में डोल झूलत कुंजबिहारी। झोंटा देत परस्पर अबीर उड़ावत डारी।—हरिदास।

मुहा० झोंटा देना = झूले को बढ़ाने के लिये धक्का देना। पेंग मारना। झोंटा मारना = दे० "झोंटा देना"।

संज्ञा पु० [हिं० ढोटा] (१) भैंस का बच्चा। पड़वा। (२) भैंसा। महिष।

झोंटी*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंटा] झोंटा। उ०—सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।—तुलसी।

यौ०—झोंटी झोंटा = लड़ाई झगड़ा। दे० "झोंटा झोंटी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "झोंका"।

झोंपड़ा—संज्ञा पु० [हिं० छोपना = छाना] [स्त्री० अल्प० झोंपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषतः गाँवों या जंगलों आदि में कच्ची मिट्टी की छोटी छोटी दीवारें उठा कर और घास फूस से छाकर बना लेते हैं। कुटी। पर्णशाला।

मुहा०—अंधा झोंपड़ा = पेट। उदर। (फ़कीर)। अंधे झोंपड़े में आग लगना = भूख लगना। (फ़कीर)।

झोंपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंपड़ा का स्त्री० अल्प०] छोटा झोंपड़ा। कुटिया। पर्णशाला। मढ़ी। उ०—कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोंपड़ी।—तुलसी।

झोंपा—संज्ञा पुं० [हिं० झब्बा] झब्बा। गुच्छा। उ०—झूलहिं रतन पाट के झोंपा। साज मदन नहिं का कँह कोपा।—जायसी।

झोंभर, झोंभा—संज्ञा पु० दे० "ओझर"।

झोंटिंग—वि० [हिं० झोंटा] झोंटेवाला। जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े और खड़े बाल हों। उ०—मज्जहि भूत पिशाच बैताला। प्रमथ महा झोंटिंग कराला।—तुलसी।

संज्ञा पु० बहुत बड़े बड़े और खड़े बालोंवाला। भूत प्रेत या पिशाच आदि।

झोड़—संज्ञा पु० [सं०] सुपारी का वृक्ष।

झोपड़ा—संज्ञा पु० दे० "झोंपड़ा"।

झोपड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "झोंपड़ी"।

झोर†—संज्ञा पु० दे० "झोल"।

झोरई†—वि० [हिं० झोल] जिसमें झोल हो। रसेदार। उ०—सूर करतरि सरस तोरई। सेमि सींगरी छुमकि झोरई।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० झोल] रसेदार तरकारी।

झोरना†—क्रि० स० [सं० दोलन] (१) झटका देकर हिलाना या कँपाना। उ०—कह्यो कहारनि हमें न खोरि। नयो कहार चलत पग झोरि।—सूर। (२) किसी चीज को इस प्रकार झटका देकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीज़ें गिर पड़ें। जैसे, पेड़ की डाल झोरना, आम झोरना, इमली झोरना। उ०—झोरि से कौन लए फल बाग ये कौन जु आमन को हरियाई।—रसकुसुमाकर।

संज्ञा स्त्री० विलंव। देर। दे० "झेर"। उ०—(क) सब कहँ देखि भूप मणि बोले सुनहु सकल मम बैना। भए कुमार विवाहन लायक उचित झेल कछु है ना।—रघुराज। (ख) झाँकति है का झरोखा लगी लग लागिवे को इहाँ झेल नहीं फिर।—पद्माकर।

झेलना–क्रि० स० [सं० क्ष्वेल=हिलाना डुलाना ?] (१) ऊपर लेना। सहारना। सहना। वरदाश्त करना। जैसे, दुःख झेलना, कष्ट झेलना, मुसीवत झेलना, उ०—टूटे परत अकास को कौन सकत है झेलि।—कवीर। (२) पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना। पानी को हाथ पैर से हिलाना। उ०—(क) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत। प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरखि हरखि अपने रँग खेलत। शिव सोचत विधि बुद्धि विचारत वट वाढ़यो सागर जल झेलत।—सूर। (ख) वाल केलि को विशद परम सुख सुख समुद्र नृप झेलत।—सूर। (३) पानी में हिलना। हेलना। जैसे, कमर तक पानी झेल कर नदी पार करना। (४) ठेलना। ढकेलना। आगे बढ़ाना। आगे चलाना। उ०—दुहुन की सहज विसात दुहूँ मिलि सतरंज खेलत। उर, रुख, नैन चपल अश्व चतुर वरावर झेलत।—हरिदास। † (५) पचाना। हज़म करना।

झेलनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] एक प्रकार की जंजीर जो कान के आभूषण का भार सँभालने के लिये वालों में अटकाई जाती है।

झेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० झेलना] वच्चा जनते समय स्त्री को विशेष प्रकार से हिलाने डुलाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

झोंक–संज्ञा स्त्री०[सं० युक्त, हिं० झुकना] (१) झुकाव। प्रवृत्ति। (२) तराजू के किसी पलड़े का किसी ओर अधिक नीचा होना।

मुहा०—झोंक मारना=डाँड़ी मारना। कम तौलना।

(३) वोझ। भार। जैसे, इसकी झोंक सब उसी पर पड़ती है। (४) वेग। झटका। तेजी। प्रचंड गति। रव। जैसे, (क) गाड़ी बड़ी झोंक से आ रही थी। (ख) साँड़ आ रहा है कहीं झोंक में पड़ जाओगे तो बड़ी चोट आवेगी। (ग) नशे की झोंक, क्रोध की झोंक, लिखने की झोंक, नींद की झोंक। (५) किसी काम का धूम धाम से उठान। कार्य्य की गति। जैसे, पहली झोंक में उसने इतना काम कर डाला। (६) ठाट। सजावट। चाल। अंदाज। उ०—पहिरे राती चूनरी सिर स्वेत उपरना सोहै। कटि लँहगा लीलो वन्यो झोंको जो देखि मन मोहै।—सूर।

यौ०—नोक झोंक=ठाट वाट। धूम धाम।

(७) पानी का हिलोरा। (८) दे० "झोंका"। (९) दो लट्ठे जो वैल गाड़ी की मजवूती के लिये दोनों ओर लगे रहते हैं।

झोंकना–क्रि० स० [हिं० झोंक] (१) झटके के साथ एक वारगी किसी वस्तु को आगे की ओर फेंकना। वेग से सामने की ओर डालना। फेंक कर छोड़ना। जैसे, भाड़ में पत्ते झोंकना। इंजन में कोयला झोंकना, आँख में धूल झोंकना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—भाड़ झोंकना=(१) भाड़ में सूखे पत्ते आदि फेंकना। (२) तुच्छ व्यवसाय करना। जैसे, इतने दिन दिल्ली में रहे, भाड़ झोंकते रहे।

(२) ढकेलना। ठेलना। जवरदस्ती आगे की ओर बढ़ाना या करना। जैसे, उसने मुझे एकवारगी आगे की ओर झोंक दिया। (३) अँधाधुंध खर्च करना। वहुत अधिक व्यय करना। वहुत अधिक किसी काम में लगाना। जैसे, व्याह शादी में रुपया झोंकना।

संयो० क्रि०—देना।

(४) किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना। भय या कष्ट के स्थान में कर देना। वुरी जगह ठेलना। जैसे, (क) तुमने हमें कहाँ लाकर झोंक दिया, दिन रात आफत में जान पड़ी रहती है। (ख) उसने अपनी लड़की को वुरे घर झोंक दिया। (५) कार्य का वहुत अधिक भार देना। वहुत ज्यादा काम ऊपर डालना। विना सोचे समझे काम लादना। जैसे, तुम जो काम होता है हमारे ही ऊपर झोंक देते हो। (६) विना विचारे आरोपित करना। दोष आदि मढ़ना। (दोष) लगाना। जैसे, सारा कसूर उसी पर झोंकते हो?

झोंकवा–संज्ञा पुं० [देश०] भट्ठे या भाड़ में खड़ पताई झोंकनेवाला मनुष्य।

झोंकवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंकना] (१) झोंकने की क्रिया या भाव। (२) झोंकवाने की क्रिया या भाव।

झोंकवाना–क्रि० स० [हिं० झोंकना का प्रे०] (१) झोंकने का काम कराना। (२) किसी को आगे की ओर जोर से डालना।

झोंका–संज्ञा पुं० [हिं० झोंक] (१) वेग से जानेवाली किसी वस्तु के स्पर्श का आघात। तेजी से चलनेवाली किसी चीज़ के छू जाने से उत्पन्न झटका। धक्का। रेला। झपट्टा। (२) वेग से चलनेवाली वायु का आघात। हवा का झटका या धक्का। (३) वायु का प्रवाह। हवा का वहाव। झकोरा। जैसे, ठंडी हवा का झोंका आया। (४) पानी का हिलोरा। (५) वगल से लगनेवाला ऐसा धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय। रेला। (६) इधर से उधर झुकने या हिलने डोलने की क्रिया।

मुहा०—झोंके आना=नींद के कारण झुक झुक पड़ना। ऊँघ लगना। झोंका खाना=किसी आघात या वेग आदि के कारण किसी ओर झुकना। जैसे, झोंका खा कर गिरना, नींद से झोंके खाना।

झोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] (१) इस प्रकार मोड़ कर हाथ में लिया या लटकाया हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग एक गोल बरतन के आकार का हो जाय और उसमें कोई वस्तु रखी जा सके। कपड़े को मोड़ कर बनाई हुई थैली। धोकरी जैसे, गुलाल की झोली, साधुओं की झोली।

विशेष—यह किसी चौखूँटे कपड़े के चारों कोनों को लेकर इकट्ठा बाँधने से बन जाती है। कभी कभी इसके नीचे के खुले हुए चारों कोनों को कुछ दूर तक सी भी देते हैं।

मुहा०—झोली छोड़ना = बुढ़ापे के कारण शरीर के चमड़े का झूल जाना। झोली डालना = भिक्षा माँगने के लिये झोली उठाना। साधु या भिक्षुक हो जाना। झोली भरना = साधु को भरपूर भिक्षा देना।

(२) घास बाँधने का जाल। (३) मोट। चरसा। पुर। (४) वह कपड़ा जिससे खलिहान में अनाज में मिला हुआ भूसा उड़ा कर अलग किया जाता है। (५) दौंरा। कुश्ती का एक पेच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी किसी प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है। इसमें एक हाथ उलट कर उस की कमर पर देते हैं और दूसरे से उसकी टाँगों की संधि पकड़ कर उठाते हैं। (६) सफरी बिस्तर जो चारो कोनों पर लगी हुई रस्सियों के द्वारा खंभे पेड़ आदि में बाँध कर फैलाया जाता है। (७) रस्सियों का एक प्रकार का फंदा जिसके द्वारा भारी चीज़ों को ऊपर उठाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल या झाला] राख। भस्म।

मुहा०—झोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे उसे करने चलना। कोई बात हो जाने पर व्यर्थ उसके संबंध में कुछ करना। जैसे, पंचायत तो हो चुकी अब क्या झोली बुझाने आए हो।

विशेष—यह मुहा० घर जलने की घटना से लिया गया है अर्थात् जब घर जल कर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने के लिये पहुँचे।

झौंझट—संज्ञा पुं० दे० "झंझट"।

झौंद—संज्ञा पुं० [हिं० झोंझ] पेट। उदर। उ०—कोई कर्न विहीन या नासा बिन कोई। झौंद फुटे कोइ पड़े स्वासा बिनु होई।—सूदन।

झौंर—संज्ञा पुं० [सं० युग्म, प्रा० जुम्म, हिं० झूमर] (१) झुंड। समूह। उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौंरत झपत झौंर झौंर मधु अंध।—बिहारी। (२) फूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलों का गुच्छा। उ०—दाख कैसी झौंर झलकति जोति जोवन की चाटि जाते भौंर जो न होती रंग चंपा की। (३) एक प्रकार का गहना जिसमें मोतियों या चाँदी सोने के दानों के गुच्छे लटकते रहते हैं। झब्बा। उ०—कलगी तुर्रा झौंर जग सिरपेच सुकुंडल।—सूर। (४) पेड़ों या झाड़ियों का घना समूह। झापस। कुंज। उ०—बंस झौंर गंभीर भीतिकर नहिं सूझत दस आसा।—रघुराज। दे० "झाँवर"।

झौंरना—क्रि० अ० [अनु०] (१) गूँजना। गुँजारना। उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौंरत झँपत झौंर झौंर मधु अंध।—बिहारी। (२) दे० "झौरना"।

झौंरा—संज्ञा पुं० दे० "झौंर"।

झौंराना—क्रि० अ० [हिं० झाँवाँ या झाँवरा] (१) झाँवरे रंग का हो जाना। बदरंग हो जाना। काला पड़ जाना। (२) मुरझाना। कुम्हलाना।

झौंसना—क्रि० स० दे० "झुलसना"। उ०—नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं।—तुलसी।

झौनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टोकरी। दौरी।

झौर—संज्ञा पुं० [अनु० झाँव, झावँ] (१) झंझट। बखेड़ा। हुज्जत। तकरार। हौरा। विवाद। उ०—(क) नहीं ढीठ नैनन ते और। कितनौं मैं बरजति समझावति उलटि करत हैं झौर।—सूर। (ख) महरि तुम ब्रज चाहति कछु और। बात एक मैं कही कि नाहीं आप लगावति झौर।—सूर। (२) डाँट फटकार। कहा सुनी। ऊँचा नीचा। उ०—और को कैतउ झौर सहै पै न बावरी रावरी आस भुलैहै।—द्विजदेव।

झौरना—क्रि० स० [हिं० झपटना] छोप लेना। दबा लेना। झपट कर पकड़ना। उ०—इती भाँति कै दुग्ग त्यों बीर दौरयौ। मृगाधीश ज्यों मृग्ग के जूह झौरयौ।—सूदन।

झौरा—संज्ञा पुं० [अनु० झावँ झावँ] झंझट। बखेड़ा। हुज्जत। तकरार। हौरा। विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

यौ०—हौरा झौरा।

झौरे—क्रि० वि० [हिं० धौरे] (१) समीप। पास। निकट। (२) साथ। संग। उ०—सौंरे अंग सूझत न पौरे खोलि दौरे राति अधिक लौ राधिका के झौरे ह्वै लगे रहैं।—देव।

झौवा [illegible] । दौरी [illegible] लिये [illegible]

झौहाना—क्रि० अ० [अनु०] (१) गुर्राना। (२) ज़ोर से चिड़चिड़ाना।

ञ

ञ—हिंदी वर्णमाला का दसवाँ व्यंजन जो चवर्ग का पाँचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान तालू और नासिका है। उसका प्रयत्न स्पर्श, घोष अल्पप्राण है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(३) इकट्ठा करना। एकत्र करना। (क्व०)।

झोरा†–संज्ञा पुं० [?] गुच्छा। झब्बा।

झोरि*†–संज्ञा स्त्री० दे० "झोली"।

झोरी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० झोली] (१) झोली। उ०—(क) भाय करी मन की पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी।—पद्माकर। (ख) हमारे कौन वेद विधि साधै। बटुआ झोरी दंड अधारी इतनेन को अराधै।—सूर। (२) पेट। झोझर। ओझर। उ०—जो आवै अनगनत करोरी। डारैं खाई भरै नहिं झोरी।—विश्राम। (३) एक प्रकार की रोटी। उ०—रोटी वाटी पेरी झोरी। एक कोरी एक घीव चभोरी।—सूर।

झोल—संज्ञा पुं० [हिं० झालि = आम का पना] (१) तरकारी आदि का गाढ़ा रसा। शोरवा। (२) किसी अन्न के आटे में मसाले दे कर कढ़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली लेई। (३) माँड़। पीच। (४) मुलम्मा या गिलट जो धातुओं पर चढ़ाया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—चढ़ाना।—फेरना।

यौ०—झोलदार।

संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] (१) पहने या ताने हुए कपड़ों आदि में वह अंश जो ढीला होने के कारण झूल या लटक कर झोले की तरह हो जाता है। जैसे, कुरते या कोट में का झोल, छत की चाँदनी में का झोल। (२) कपड़े आदि के ढीले होने के कारण उसके झूलने या लटकने का भाव या क्रिया। तनाव या कसाव का उलटा।

क्रि० प्र०—डालना।—निकलना।—निकालना।—पड़ना।

(३) पल्ला। आँचल। उ०—फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाय अमोल। तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछत पट झोल।—सूर। (४) परदा। ओट। आड़। उ०—ऊधो सुनत तिहारे बोल। ल्याए हरि कुसलात धन्य तुम घर घर पारयो गोल। कहन देहु कहा करैं हमारो बस उठि जैहे झोल। आवत ही याको पहिचान्यो निपटहि ओछो तोल।—सूर। (५) हाथी की चाल का एक ऐव जिसके कारण वह बिलकुल सीधा न चल कर बराबर झूलता हुआ चलता है।

वि० (१) ढीला। जो कसा या तना न हो।

यौ०—झोल झाल = ढीला ढाला।

(२) निकम्मा। खराब। बुरा।

संज्ञा पुं० भूल। गलती। जैसे, गदहे की गोन में नौ मन का झोल। (कहा०)।

संज्ञा पुं० [हिं० झिल्ली या झोली] (१) वह झिल्ली या थैली जिसमें गर्भ से निकले हुए बच्चे या अंडे रहते हैं। जैसे, कुतिया का झोल, मुरगी का झोल, मछली का झोल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि के संबंध में ही होता है, मनुष्यों के संबंध में नहीं।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

मुहा०—झोल बैठाना = मुरगी के नीचे सेने के लिये अंडे रखना।

(२) गर्भ। उ०—भक्ति बीज बिनसै नहीं आय परै जो झोल। जो कंचन बिष्ठा परै घटै न ताको मोल।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल, हिं० झाल] (१) राख। भस्म। खाक। उ०—(क) तुम बिन कंता धन हरुई तृन तृन बरमा डोल। तेहि पर बिरह जराइ के चहै उड़ावा झोल।—जायसी। (ख) आगि जो लगी समुद्र में टुटि टुटि खसै जो झोल। रोवै कबिरा डिंभिया मोरा हीरा जरै अमोल।—कबीर। (२) दाह। जलन।

झोलदार–वि० [हिं० झोल + फा० दार] (१) जिसमें रसा हो। रसेदार। (२) जिस पर गिलट या मुलम्मा किया हो। (३) झोल संबंधी। (४) जिसमें झोल पड़ता हो। ढीला ढाला।

झोलना–क्रि० स० [सं० ज्वलन] जलाना। उ० - हमको तुम बिन सबै सतावत।........पूछ पूछ सरदार सखन के इहि विधि दई बड़ाई। तिन अति बोल झोलि तनु डारयो अनल भँवर की नाईं।—सूर।

झोला–संज्ञा पुं० [हिं० झलना वा सं० चोल] [स्त्री० अल्प० झोली] (१) कपड़े की बड़ी झोली या थैली। (२) ढीला ढाला गिलाफ। खोली। जैसे, बंदूक का झोला। (३) साधुओं का ढीला कुरता। चोला (४) वात का एक रोग जिसमें कोई अंग (जैसे हाथ पैर आदि) ढीला पड़ कर बेकाम हो जाता है। एक प्रकार का लकवा या पक्षाघात।

मुहा०—किसी को झोला मारना = (१) वात रोग से किसी अँग का बेकाम हो जाना। पक्षाघात होना। (२) सुत्त पड़ जाना। बेकाम हो जाना।

(५) पेड़ों के पाला लू आदि के कारण एक बारगी कुम्हला जाने वा सूख जाने का रोग।

क्रि० प्र०—मारना।

(६) झटका। आघात। धक्का। झोंका। बाधा। आपत्ति। उ०—पाकी खेती देखि के गरवै कहा किसान। अजहूँ झोला बहुत है घर आवैं तब जान।—कबीर। (७) हाथ का संकेत। इशारा। (८) पाल की गोन या रस्सी को झटका देने या ढीलने की क्रिया।

झोलिहारा–संज्ञा पुं० [हिं० झोली + हारा (प्रत्य०)] (१) झोली लटकानेवाला। (२) कहार। (सोनारों की बोली)

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ लंबोतरी होती हैं। फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में लाल फूल लगते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफ़ेद। फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके झड़ने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं। यह क्षुप जंगलों में बहुत होता है। वैद्यक में इसका स्वाद कटु और गुण वात-कफ का नाशक और अग्निदीपक लिखा है। टंकारी उदर रोग और विसर्प रोग में भी दी जाती है।

टंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर काटने का औज़ार। टाँकी। छेनी। उ०—सुतरु सुजन वन ऊख सम खल टंकिका रुखान। पर हित अनहित लागि सब साँसति सहत समान।—तुलसी।

टंकी—संज्ञा स्त्री० [?] श्री राग की एक रागिनी।
संज्ञा स्त्री० [सं० टंक = खड्ड वा गड्ढा] (१) दीवार उठा कर बनाया हुआ पानी भरने का छोटा सा कुंड। चौबचा। टाँका। (२) पानी भरने का बड़ा बरतन। टब।

टंकोर—संज्ञा पुं० दे० "टंकार"। उ०—प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।—तुलसी।

टंकोरना—क्रि० [सं० अनु०] (१) टंकारना। धनुष की रस्सी को खींच कर उससे शब्द उत्पन्न करना। (२) ठोकर लगाना। ठोकर मार कर शब्द उत्पन्न करना। (३) तर्जनी वा मध्यमा उँगली को कुंडली बना कर उसकी नोक को अँगूठे से दबा कर बलपूर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टकर लगे।

टँकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] छोटा काँटा। सोना चाँदी आदि तौलने का छोटा तराज़ू। काँटा।

टंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) टाँग। टँगड़ी। (२) कुल्हाड़ी। (३) कुदाल। परशु। फरसा। (४) सुहागा। (५) चार माशे की एक तौल।

टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंग] टाँग। घुटने से ले कर एँड़ी तक का भाग।

मुहा०—टँगड़ी पर उड़ाना = लंग मार कर गिराना। कुश्ती में पैर से पैर फँसा कर गिराना। अड़ंगा मारना।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं०] टंकण। सोहागा।

टँगना—क्रि० अ० [सं० टंकण वा टंगण = बँधा जाना] (१) किसी वस्तु का किसी ऊँचे आधार पर बहुत थोड़ा सा इस प्रकार अटकना या ठहरा रहना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो। किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना या फँसना अथवा उस पर इस प्रकार टिकना या अटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर लटकता रहे। लटकना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़े टँगना, परदा टँगना, तसवीर टँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार पर हो और थोड़ा सा अंश आधार के नीचे लटका हो तो उस वस्तु को टँगी हुई नहीं कहेंगे। 'टँगना' और 'लटकना' में यह अंतर है कि 'टँगना' क्रिया में वस्तु के फँसने, टिकने या अटकने का भाव प्रधान है और 'लटकना' में उसके बहुत से अंश का नीचे की ओर अधर में दूर तक जाने का भाव।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) फाँसी पर चढ़ना। फाँसी लटकना।

संयो० क्रि०—जाना।

संज्ञा पुं० (१) वह आड़ी बँधी हुई रस्सी जिस पर कपड़े आदि टाँगे या रखे जाते हैं। अलगनी। विलगनी। (२) जुलाहों की वह रस्सी जिसमें उढ़ौनी टाँगी जाती है।

टँगरी संज्ञा स्त्री० दे० "टँगड़ी"।

टँगा—संज्ञा पुं० [देश०] मूँज।

टँगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंग] कुल्हाड़ी। कुठार।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

टंच†—वि० [सं० चंड, हिं० चंठ] (१) सूमड़ा। कंजूस। कृपण। (२) कठोर हृदय। निष्ठुर।
वि० [हिं० टिचन] तैयार। मुस्तैद।

टंट घंट—संज्ञा पुं० [अनु० टन टन + घंटा] पूजा पाठ का भारी आडंबर। घड़ी घंटा आदि बजा कर पूजा करने का भारी प्रपंच। मिथ्या आडंबर।

क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।

टंटा—संज्ञा पुं० [अनु० टन टन] (१) आडंबर। प्रपंच। बखेड़ा। खटराग। लंबी चौड़ी प्रक्रिया। उ०—इस दवा के बनाने में तो बड़ा टंटा है। (२) उपद्रव। हलचल। दंगा फसाद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा खड़ा करना = उपद्रव उठाना।

(३) झगड़ा। तकरार। लड़ाई। कलह।

यौ०—झगड़ा टंटा।

टंडर—संज्ञा पुं० [अं० टेंडर] (१) वह कागज़ जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने या खरीदने का इकरार करता है। (२) अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदालत में दाखिल करे।

टंडल—संज्ञा पुं० [अ० जनाल, हिं० जंडैल] मजदूरों का मेट या जमादार।
संज्ञा पुं० दे० "टंडर"।

टँड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] बाँह में पहनने का एक गहना जो अनंत के आकार का, पर उससे भारी और बिना घुंडी का होता है। टाँड़। बहूँटा।

ट

ट—संस्कृत वा हिंदी वर्णमाला में ग्यारहवाँ व्यंजन जो टवर्ग का पहला वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान मूर्द्धा है। इसके उच्चारण करने में तालू से जीभ लगानी पड़ती है।

टंक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक तौल जो चार माशे की होती है। कोई कोई इसे तीन माशे या २४ रत्ती की भी मानते हैं। (२) वह नियत मान वा बाट जिससे तौल तौल कर धातु टकसाल में सिक्के बनाने के लिये दी जाती है। (३) सिक्का। (४) मोती की तौल जो २१$\frac{3}{7}$ रत्ती की मानी जाती है। (५) पत्थर काटने या गढ़ने का औजार। टाँकी। छेनी। (६) कुल्हाड़ी। परशु। फरसा। (७) कुदाल। (८) खड्ग। तलवार। (९) पत्थर का कटा हुआ टुकड़ा। (१०) टाँग। (११) नील कपित्थ। नीला कैथ। खटाई (१२) कोप। क्रोध। (१३) दर्प। अभिमान। (१४) पर्वत का खड्ड। (१५) सुहागा। (१६) कोष। खज़ाना। (१७) संपूर्ण जाति का एक राग जो श्री, भैरव और कान्हड़ा के योग से बना है। इसके गाने का समय रात १६ दंड से २० दंड तक है। इसमें कोमल ऋषभ लगता है और इसका सरगम इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि। हनुमत् के मत से इसका स्वर ग्राम है—स ग म प ध नि सा सा। (१८) म्यान। (१९) एक काँटेदार पेड़ जिसमें बेल वा कैथ के बराबर फल लगते हैं।

टंकक—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी का सिक्का या रुपया।

टंकक-शाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] टकसाल घर।

टंकटीक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

टंकण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुहागा। (२) धातु की चीज़ में टाँका मार कर जोड़ लगाने का कार्य्य। टाँका लगाने का काम। (३) घोड़े की एक जाति। (४) एक देश जिसका नाम बृहत्संहिता में कोंकण आदि के साथ आया है।

टँकना—क्रि० अ० [सं० टंकण] (१) टाँका जाना। कील आदि जड़ कर जोड़ा जाना। जैसे, एक छोटी सी चिप्पी टँक जायगी तो यह गगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) सिलाई के द्वारा जुड़ना। सिलना। सिया जाना। जैसे, फटा जूता टँकना, चकती टँकना, गोटा टँकना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) सी कर अँटकाया जाना। सिलाई के द्वारा ऊपर से लगाया जाना। जैसे, झालर में मोती टँके हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) रेती वा सोहन के दाँतों का नुकीला होना। रेती का तेज होना।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) अंकित होना। लिखा जाना। दर्ज किया जाना। जैसे, यह रुपया वही पर टँका है या नहीं?

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग ऐसी वस्तु, रक़म या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है।

(६) सिल, चक्की आदि का टाँकी से गड्ढे कर के खुरदुरा किया जाना। छिनना। रेहा जाना। कुटना।

टंकपति—संज्ञा पुं० [सं०] टकसाल का अधिपति।

टंकवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक पहाड़ जिसका नाम वाल्मीकीय रामायण में आया है।

टँकवाना—क्रि० स० दे० "टँकाना"।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] टकसाल।

टंका—संज्ञा पुं० [सं० टंक] (१) पुराने समय में चाँदी की एक तौल जो एक तोले के बराबर होती थी। (२) ताँबे का एक पुराना सिक्का। टका।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना वा ईख।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंघा। (२) तारा देवी। (३) संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो त्रिषडज और आदि मूर्च्छना युक्त होती है। हनुमत् के अनुसार इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स।

टँकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकना] (१) टाँकने की क्रिया वा भाव। (२) टाँकने की मजदूरी।

टंकानक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मदारु। शहतूत।

टँकाना—क्रि० स० [हिं० टाँकना का प्रे०] (१) टाँकों से जोड़वाना या सिलवाना। जैसे जूता टँकाना। (२) सिला कर लगवाना। जैसे, बटन टँकाना। (३) (सिल, जाँता, चक्की आदि को) खुरदुरा कराना। कुटाना।

टंकाना—क्रि० स० [सं० टंक = सिक्का] सिक्कों का परखवाना। सिक्कों की जाँच कराना।

टंकार—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ठन ठन शब्द जो किसी कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है। (२) वह शब्द जो धनुष की कसी हुई डोरी पर बाण रख कर खींचने से होता है। धनुष की कसी हुई पतंचिका खींच वा तान कर छोड़ने का शब्द। (३) धातुखंड पर आघात लगने का शब्द। ठनाका। झनकार। (४) विस्मय। (५) कीर्त्ति। नाम। प्रसिद्धि।

टंकारना—क्रि० स० [सं० टंकार] धनुष की डोरी खींच कर शब्द करना। पतंचिका तान कर ध्वनि उत्पन्न करना। चिल्ला खींच कर बजाना। उ०—सुफलक बढ़ि निज धनुप टँकारयो। बीस बाण वाहीकहि मारयो।—गोपाल।

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० टंकशाला] (१) वह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या ढाले जाते हैं। रुपए, पैसे आदि बनने का कार्य्यालय। उ०—पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परख भया टकसार।—कबीर।

मुहा०—टकसाल का खोटा = नीच। दुष्ट। कमीना। कमअसल। अशिष्ट। टकसाल चढ़ना = (१) टकसाल में परखा जाना। सिक्के या धातु-खंड की परीक्षा होना। (२) किसी विद्या या कला-कौशल में दक्ष माना जाना। पारंगत माना जाना। (३) बुराई में अभ्यस्त होना। कुकर्म या दुष्टता में परिपक्व होना। बदमाशी में पक्का होना। निर्लज्ज होना। टकसाल बाहर = (१) (सिक्का) जो राज्य की टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय। जो प्रचार में न हो। जिसका चलन न हो। (२) (वाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय। जिसका प्रयोग शिष्ट न माना जाय।

(२) ऊँची या प्रामाणिक वस्तु। असल चीज़। निर्दोष वस्तु। उ०—नष्ट का यह राज है न फरक बातें हूँ क। सार शब्द टकसार है हिरदय माँहि विवेक।—कबीर।

टकसाली—वि० [हिं० टकसाल] (१) टकसाल का। टकसाल संबंधी। (२) जो टकसाल का बना हो। खरा। चोखा। जैसे, टकसाली रुपया। (३) सर्व-सम्मत। अधिकारियों या विज्ञों द्वारा अनुमोदित। माना हुआ। जैसे, टकसाली भाषा। (४) जँचा हुआ। पक्का। प्रामाणिक। परीक्षित। जैसे, टकसाली बात।

मुहा०—टकसाली बात = जँची तुली बात। पक्की बात। ठीक बात। ऐसी बात जो अन्यथा न हो। टकसाली बोली = सर्वसम्मत भाषा। विज्ञों द्वारा अनुमोदित भाषा। शिष्ट भाषा। ऐसी भाषा जिसमें ग्राम्य आदि दोष न हों।

संज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी। टकसाल का अध्यक्ष।

टकहाई—वि० स्त्री० [हिं० टका] जो टके टके पर व्यभिचार कराती हो। जो वेश्याओं में नीच हो। जैसे, टकहाई रंडी।

टका—संज्ञा पुं० [सं० टंक] (१) चाँदी का एक पुराना सिक्का। रुपया। उ०—(क) रतन सेन हीरा मन चीन्हा। लाख टका बाम्हन कँह दीन्हा।—जायसी। (ख) लाख टका अरु झूमक सारी दे दाई को नेग।—सूर। (२) ताँबे का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है। अधन्ना। दो पैसे। जैसे, अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।

मुहा०—टका पास न होना = निर्धन होना। दरिद्र होना। टका सा जवाब देना = (१) खट से जवाब देना। तुरंत अस्वीकार करना। किसी की प्रार्थना, याचना, अनुरोध, या आज्ञा को तुरत अस्वीकार करना। साफ़ इनकार करना। कोरा जवाब देना। जैसे, मैंने दो दिन के लिये उनसे घोड़ा माँगा, उन्होंने टका सा जवाब दे दिया। (२) साफ़ जवाब देना कि मैंने यह काम नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता। साफ़ निकल जाना। कानों पर हाथ रखना। टका सा मुँह ले कर रह जाना = छोटा सा मुँह ले कर रह जाना। लज्जित हो जाना। खिसिया जाना। टका सी जान = अकेला दम। एकाकी जीव। (व्यं०)। टके गज़ की चाल = मोटी चाल। किफ़ायत से निर्वाह। थोड़े खर्च में निर्वाह। †टके गिनना = हुक्के का गुड़गुड़ बोलना।

(३) धन। द्रव्य। रुपया पैसा। जैसे, जब टका पास में रहेगा तब सब सुनेंगे। (४) तीन तोले की तौल। दो बालाशाही पैसे भर की तौल। आधी छटाँक का मान। (वैद्यक)

मुहा०—टका भर = (१) तीन तोले का परिमाण। (२) थोड़ा सा। ज़रा सा।

(५) गढ़वाल की एक तौल जो सवा सेर के बराबर होती है।

टकाई—वि० स्त्री० दे० "टकाही" "टकहाई"।

संज्ञा स्त्री० दे० "टकासी"।

टका टकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "टकटकी"।

टका तोप—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है। (लश०)।

टकाना—क्रि० स० दे० "टँकाना"।

टकानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टँकना] बैल गाड़ी का जूआ।

टकासी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) टके रुपए का ब्याज। दो पैसे रुपए का सूद। (२) वह कर या चंदा जो प्रति मनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय।

टकाही—वि० स्त्री० [हिं० टका] दे० "टकहाई"।

संज्ञा स्त्री० दे० "टकासी"।

टकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "टकटकी"।

टकुआ—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक, प्रा० तक्कुअ] (१) एक प्रकार का सूआ जो चरखे में लगा रहता है और जिस पर सूत काता और लपेटा जाता है। तकला। (२) बिनौला निकालने की चरखी में लोहे का एक पुरज़ा। (३) छोटे तराज़ू या काँटे के पलड़ों में बँधा हुआ तागा।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] चपोट सिरीस। पत्ती झाड़नेवाला एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (१) टाँकी। पत्थर काटने का औज़ार। (२) पेचकश की तरह का लोहे का एक औज़ार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

टकूचना—क्रि० स० [?] खाना। (दलाल)

टकैट—वि० दे० "टकैत"।

टँडुलिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] बन-चौलाई जो कुछ काँटेदार होती है। यह साग और दवा दोनों के काम में आती है।

टंडैल–संज्ञा पुं० दे० "टंडल"।

टंसरी–संज्ञा स्त्री० [?] एक वीणा।

टँसहा†–संज्ञा पुं० [हिं० टाँस+हा] वह बैल जो नसों के सिकुड़ जाने से लँगड़ा हो गया हो।

ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का खोपड़ा। (२) वामन। (३) चौथाई भाग। (४) शब्द।

टई*–संज्ञा स्त्री० दे० "टही"।

टक–संज्ञा स्त्री० [सं० टक=बाँधना वा सं० त्राटक] (१) स्थिर दृष्टि। ऐसा ताकना जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे। किसी ओर लगी या बँधी हुई दृष्टि। गड़ी हुई नजर।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—टक बाँधना=स्थिर दृष्टि होना। टक बँधना=किसी ओर स्थिर दृष्टि से देखना। टक टक देखना=बिना पलक गिराए लगातार कुछ काल तक देखते रहना। टक लगाना=आसरा देखते रहना। प्रतीक्षा में रहना।

(२) लकड़ी आदि भारी बोझों को तौलनेवाले बड़े तराजू का चौखूँटा पलड़ा।

टकटका * †–संज्ञा पुं० [हिं० टक वा सं० त्राटक] [स्त्री० टकटकी] स्थिर दृष्टि। टकटकी। उ०—सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार टकटका लागा।—जायसी।

वि० स्थिर वा बँधी हुई (दृष्टि)। उ०—रूपासक्त चकोर कवक करि पावक को खात कन। रामचंद्र को रूप निहारत साधि टकटका तकन।—देव स्वामी।

टकटकाना †–क्रि० स० [हिं० टक] (१) एकटक ताकना। स्थिर दृष्टि से देखना। उ०—टकटकै मुख झुकी नैनहीं नागरी, उरहनो देत रुचि अधिक बाढ़ी।—सूर। (२) टकटक शब्द उत्पन्न करना।

टकटकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टक वा सं० त्राटक] स्थिर दृष्टि। ऐसी तकाई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे। अनिमेष दृष्टि। गड़ी हुई नजर।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—टकटकी बँधना=स्थिर दृष्टि होना। टकटकी बाँधना=स्थिर दृष्टि से देखना। ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे।

टकटोना–क्रि० स० दे० "टकटोलना"। उ०—पुनि पीवत ही कच टकटोवै झूठे जननि रढै।—सूर।

टकटोरना †–क्रि० स० [सं० त्वक्=चमड़ा+तोलन=अंदाज करना] (१) टटोलना। हाथ से छू कर पता लगाना या जाँचना। स्पर्श द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना। उ०—(क) सूर एकहू अंगन काँची मैं देखी टकटोरि।—सूर। (ख) नहिं सगुन पायेउ एक मिसु करि एक धनु देखन गए। टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए।—तुलसी। (२) तलाश करना। ढूँढ़ना। खोजना। उ०—मोहि न पत्याहु तो टकटोरि देखो पन दै।—स्वामी हरिदास

टकटोलना*–क्रि० स० [सं० त्वक्=चमड़ा+तोलन=अंदाज करना] टटोलना। हाथ से छू कर पता लगाना या जाँचना।

टकटोहन–संज्ञा पुं० [हिं० टकटोना] टटोल कर देखने की क्रिया। स्पर्श। उ०—श्याम श्यामा मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन।—सूर।

टकटोहना *–क्रि० स० दे० "टकटोलना"। उ०—या वानक उपमा दीवे को सुकवि कहा टकटोहै। देखन अंग थके मन में शशि कोटि मदन छवि मोहै।—सूर।

टकतंत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] सितार के ढंग का एक प्राचीन बाजा।

टकना†–संज्ञा पुं० [सं० टंक=टाँग] घुटना।

क्रि० अ० दे० "टँकना"।

टकबीड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की भेंट जो किसानों की ओर से विवाहादि के अवसर पर ज़मींदारों को दी जाती है। मथवच। शादिया।

टकराना–क्रि० अ० [हिं० टकर] (१) एक वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार वेग के साथ सहसा मिलना वा छू जाना कि दोनों पर गहरा आघात पहुँचे। ज़ोर से भिड़ना। धक्का या ठोकर लेना। जैसे (क) चट्टान से टकरा कर नाव चूर चूर हो गई। (ख) अँधेरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) इधर से उधर मारा मारा फिरना। डाँवाडोल घूमना। कार्यसिद्धि की आशा से कई स्थानों पर कई बार आना जाना। घूमना। जैसे, उसका घर मालूम नहीं, मैं कहाँ टकराता फिरूँगा? उ०—जँह तँह फिरत स्वान की नाईं द्वार द्वार टकरात।—सूर।

मुहा०—टकराते फिरना=मारे मारे फिरना। हैरान घूमना।

क्रि० स० एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना। जोर से भिड़ाना। पटकना।

मुहा०—माथा टकराना=(१) दूसरे के पैर के पास सिर पटक कर विनती करना। अत्यंत अनुनय विनय करना। (२) घोर प्रयत्न करना। सिर मारना। हैरान होना।

टकरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम।

टकसरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घास जो आसाम, चटगाँव और बर्मा में होता है। इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं।

टकसार†–संज्ञा स्त्री० दे० "टकसाल"।

टगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) टंकण । सोहागा । (२) विलास । क्रीड़ा । (३) तगर का पेड़ ।

टगरगोड़ा—संज्ञा पु० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कौड़ियाँ चित्त करके जमा देते हैं फिर एक कौड़ी से उन्हें मारते हैं ।

टगरा†—वि० [सं० टेरक] ऐंचा ताना । भेंगा ।

टघरना†—क्रि० अ० [सं० तप = गरम करना + गरण = पिघलाना] (१) पिघलना । घी, चरबी, मोम आदि का आँच खाकर द्रव होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) हृदय का द्रवीभूत होना । चित्त में दया आदि उत्पन्न होना । हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टघराना—क्रि० स० [हिं० टघरना] पिघलाना । घी, मोम, चरबी आदि को आँच पर रख कर द्रव करना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

टचटच—क्रि० वि० [हिं० टचना = जलना] धाँय धाँय । धक धक (आग की लपट का शब्द) । उ०—टच टच तुम बिनु आगि मोहिं लागी । पाँचों दाध बिरह मोहिं जागी ।—जायसी ।

टचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] लोहे का एक औज़ार जिससे कसेरे बरतनों पर नकाशी करते हैं ।

टटका†—वि० [सं० तत्काल] [स्त्री० टटकी] (१) तत्काल का । तुरंत का प्रस्तुत या उपस्थित । ताज़ा । जिसको वर्तमान रूप में आए बहुत देर न हुई हो । हाल का । उ०—(क) मेटे क्यों हू न मिटति छाप परी टटकी ।—सूर । (ख) मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको ।—रसखान ।

(२) नया । कोरा ।

टटड़ी†—संज्ञा स्त्री० [पजाबी] (१) खोपड़ी । (२) दे० "ठठरी" । (३) दे० "टट्टी" ।

टटरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "टट्टी" ।

टटाना†—क्रि० अ० [हिं० ठाठ] सूख जाना ।

टटलब टर्ला—वि० [अनु०] अटसट । अंडबंड । ऊटपटांग । उ०—टटल बटल बोल पाटल कपोल देव दीपति पटल में अटल ह्वै कै अटकी ।—देव ।

टटावली—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभावलि] टिटिहरी नाम की चिड़िया । कुररी ।

टटिया—संज्ञा स्त्री० दे० "टट्टी" ।

टटियाना—क्रि० अ० [हिं० ठाठ] सूख जाना । सूख कर अकड़ जाना ।

टटीबा—संज्ञा पु० [अनु०] घिरनी । चक्कर । उ०—खैंचूँ तो आवै नहीं जो छोड़ूँ तो जाय । कबीर मन पुछ रे प्रान टटीबा खाय ।—कबीर ।

क्रि० प्र०—खाना ।

टटीरी—संज्ञा स्त्री० दे० "टिटिहरी" ।

टटुआ—संज्ञा पुं० दे० "टट्टू" ।

टटुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टट्टू] मादा टट्टू ।

टटोना†—क्रि० स० दे० "टटोलना" ।

टटोरना†—क्रि० स० दे० "टटोलना" । उ०—कबहूँ कमला चपला पाइ के टेढ़े टेढ़े जात । कबहुँक मग मग धूरि टटोरत भोजन को बिलखात ।—सूर ।

टटोल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टटोलना] टटोलने का भाव । उँगलियों से छू या दबा कर मालूम करने का भाव या क्रिया । गूढ़ स्पर्श ।

टटोलना—क्रि० स० [सं० त्वक् + तोलन = अंदाज़ करना] (१) मालूम करने के लिये उँगलियों से छूना या दबाना । किसी वस्तु के तल की अवस्था अथवा उसकी कड़ाई आदि जानने के लिये उस पर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना । गूढ़ स्पर्श करना । जैसे, *ये आम पके हैं, टटोल कर देख लो ।*

संयो० क्रि०—लेना ।—डालना ।

(२) किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना । ढूँढ़ने या पता लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना । जैसे, (क) अँधेरे में क्या टटोलते हो ? रुपया गिरा होगा तो सबेरे मिल जायगा । (ख) वह अंधा टटोलता हुआ अपने घर तक पहुँच जायगा । (ग) घर के सब कोने टटोल डाले कहीं पुस्तक का पता न लगा ।

संयो० क्रि०—डालना ।

(३) किसी से कुछ बात चीत करके उसके विचार या आशय का इस प्रकार पता लगाना कि उसे मालूम न हो । बातों ही बातों में किसी के हृदय के भाव का अंदाज़ लेना । थाह लेना । थहाना । जैसे, तुम भी उसे टटोलो कि वह कहाँ तक देने के लिये तैयार है ।

मुहा०—मन टटोलना = हृदय के भाव का पता लगाना ।

(४) जाँच या परीक्षा करना । परखना । आज़माना । जैसे, (क) हम उसे खूब टटोल चुके हैं, उसमें कुछ विशेष विद्या नहीं है । (ख) मैंने तो सिर्फ़ तुम्हें टटोलने के लिये रुपए माँगे थे, रुपए मेरे पास हैं ।

टट्टड़†—संज्ञा पु० दे० "टक्कर" ।

टट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली ।

टट्टर—संज्ञा पु० [सं० तट = ऊँचा किनारा वा सं० स्थाता = जो खड़ा हो] बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़ कर बनाया हुआ ढाँचा जो ओट, रोक या रक्षा के लिये दरवाज़े, बरामदे अथवा और किसी खुले स्थान में लगाया जाता है । बाँस की फट्टियों आदि का बना हुआ पल्ला जो परदे, किवाड़, छाजन आदि का काम दे । जैसे, कुत्ता टट्टर खोल कर झोंपड़े में घुस गया । उ०—टट्टर खोजो निखट्टू आए । (कहावत)

टकैत वि० [हिं० टका + ऐत (प्रत्य०)] टकेवाला। रुपए पैसे-वाला। धनी।

टकोर–संज्ञा स्त्री० [सं० टंकार] (१) हलकी चोट। प्रहार। आघात। ठेस। थपेड़।

क्रि० प्र०—देना।

(२) डंके की चोट। नगाड़े पर का आघात। (३) डंके का शब्द। नगाड़े की आवाज़। (४) धनुष की डोरी खींचने का शब्द। टंकार। (५) दवा भरी हुई गरम पोटली को किसी अंग पर रह रह कर छुलाने की क्रिया। सेंक। (६) दाँतों की वह टीस जो किसी खट्टी वस्तु के खाने से होती है। चमक। दाँतों के गुठले होने का भाव।

क्रि० प्र०—लगना।

(७) झाल। परपराहट। उ०—कबहूँ कौर खात मिरचन की लागी दसन टकोर।—सूर।

क्रि० प्र०—लगना।

टकोरना–क्रि० स० [हिं० टकोर] (१) ठोकर लगाना। हलका आघात पहुँचाना। ठेस वा थपेड़ मारना। (२) डंके आदि पर चोट लगाना। बजाना। (३) दवा भरी हुई गरम पोटली को किसी अंग पर रह रह कर छुलाना। सेंकना। सेंक करना।

टकोरा–संज्ञा पुं० [सं० टकार] डंके की चोट। नौबत की आवाज़।

टकौना‡–संज्ञा पुं० दे० "टका"।

टकौरी–संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (१) सोना आदि तौलने का छोटा तराज़ू। छोटा काँटा। (२) दे० "टकासी"।

टक देश–संज्ञा पुं० [सं०] चनाव और व्यास के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—राजतरंगिणी में टक्क देश को गुर्जर (गुजरात) राज्य के अंतर्गत लिखा है। टक्क जाति किसी समय में अत्यंत प्रतापशालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी। चीनी यात्री हुएन्संग ने टक्क राज्य तथा उसके अधिपति मिहिरकुल का उल्लेख किया है। मिहिरकुल का हूण होना इतिहासों में प्रसिद्ध है। ये हूण पंजाब और राजपूताने में बस गए थे। यशोधर्म्मन् द्वारा मिहिरकुल के पराजित होने (५२८ ईसवी) के ७८ वर्ष पीछे हर्षवर्द्धन राजसिंहासन पर बैठे थे जिनके राजत्व काल में हुएन्संग आया था। टक्क शायद हूण जाति की ही कोई शाखा रही हो।

टकदेशीय–वि० [सं०] टक्क देश का। टक्क देश में उत्पन्न। संज्ञा पुं० बथुआ नाम का साग।

टक्कर–संज्ञा स्त्री० [अनु० ठक] (१) वह आघात जो दो वस्तुओं के वेग के साथ एक दूसरे से मिलने वा छू जाने से लगता है। दो वस्तुओं के भिड़ने का धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर खाना = (१) किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग से भिड़ना या छू जाना कि गहरा आघात पहुँचे। जैसे, चट्टान से टक्कर खा कर नाव चूर चूर हो गई। (२) मारा मारा फिरना। कार्य साधन के लिये इधर से उधर फिरना। जैसे, नौकरी छूट जाने से वह इधर उधर टक्करें खाता फिरता है।

(२) मुकाबिला। मुठभेड़। भिड़ंत। लड़ाई। जैसे, दिन भर में दोनों की एक टक्कर हो जाती है।

मुहा०—टक्कर का = जोड़ का। मुकाबिले का। बराबरी का। समान। तुल्य। जैसे, उनकी टक्कर का विद्वान् यहाँ कोई नहीं है। टक्कर खाना = (१) मुकाबिला करना। सम्मुख होना। लड़ना। भिड़ना। (२) मुकाबिले का होना। समान होना। तुल्य होना। उ०—इस टोपी का काम सच्चे काम से टक्कर खाता है। टक्कर लेना = वार सहना। चोट सहारना। मुकाबिला करना। लड़ना। भिड़ना। पहाड़ से टक्कर लेना = बड़े भारी शत्रु से भिड़ना। अपने से अधिक सामर्थ्य वाले शत्रु से लड़ना।

(३) जोर से सिर मारने का धक्का। किसी कड़ी वस्तु पर माथा मारने या पटकने का आघात।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टक्कर मारना = (१) आघात पहुँचाने के लिये जोर से सिर मारना या पटकना। सिर से धक्का लगाना। (२) माथा मारना। हैरान होना। घोर परिश्रम और उद्योग करना। ऐसा प्रयत्न करना जिसका फल शीघ्र दिखाई न दे। उ०—लाख टक्कर मारो अब वह तुम्हारे हाथ नहीं आता। टक्कर लड़ना = दूसरे के सिर पर सिर मार कर लड़ना। माथे से माथा भिड़ाना। जैसे, दोनों मेढ़े खूब टक्कर लड़ रहे हैं। टक्कर लड़ाना = सिर से धक्का मारना।

(४) घाटा। हानि। नुकसान। धक्का। जैसे, १०) की टक्कर बैठे बैठाए लग गई।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर झेलना = (१) हानि उठाना। नुकसान सहना। (२) संकट या आपत्ति सहना।

टखना–संज्ञा पुं० [सं० टंक = टाँग] एड़ी के ऊपर निकली हुई हड्डी की गाँठ। गुल्फ। पादग्रंथि। पैर का गट्टा।

टगटगाना‡–क्रि० स० दे० "टकटकाना"।

टगण–संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक गणों में से एक। यह छः मात्राओं का होता है और इसके १३ उपभेद हैं जैसे, SSS, IISS, इत्यादि।

टप-संज्ञा स्त्री० [हिं० टोप, तोप=आच्छादन, जैसे, घटाटोप] (१) जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकार की और खुली गाड़ियों का ओहार या सायबान जो इच्छानुसार चढ़ाया या गिराया जा सकता है। कलंदरा। (२) लटकानेवाले लंप के ऊपर की छतरी।

संज्ञा पुं० [अं० टब] नाँद के आकार का पानी रखने का खुला बरतन। टाँका।

संज्ञा पुं० [अ० ट्यूब] जहाजों की गति का पता लगाने का एक औजार। (लश०)

संज्ञा पुं० [हिं० ठप्पा] एक औजार जिससे ढिबरी का पेच घुमावदार बनाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) बूँद बूँद टपकने का शब्द। उ०—(क) परत श्रम बूँद टप टपकि आनन बाल भई बेहाल रति मोह भारी।—सूर। (ख) प्यारी बिनु कटत न कारी रैन। टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद्र।

यौ०—टप टप।

(२) किसी वस्तु के एक बारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द। जैसे, आम टप से टपक पड़ा।

यौ०—टप टप।

मुहा०—टप से=चट से। झट से। बड़ी जल्दी। जैसे, (क) बिल्ली ने टप से चूहे को पकड़ लिया। (ख) टप से आओ।

विशेष—खट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है अतः इसका लिंग बतलाना निश्चित नहीं है।

टपक-संज्ञा स्त्री [हिं० टपकना] (१) टपकने का भाव। (२) बूँद बूँद गिरने का शब्द। (३) रुक रुक कर होनेवाला दर्द। ठहर ठहर कर उठनेवाली पीड़ा। जैसे, फोड़े की टपक।

टपकना-क्रि० अ० [अनु० टप टप] (१) बूँद बूँद गिरना। किसी द्रव पदार्थ का बिंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना। चूना। रसना। जैसे, घड़े से पानी टपकना, छत टपकना। (इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है दोनों के लिये होता है)। जैसे, उ०—टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद्र।)

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) फल का पक कर आपसे आप पेड़ से गिरना। जैसे, आम टपकना, महुआ टपकना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(३) किसी वस्तु का ऊपर से एक बारगी सीध में गिरना। ऊपर से सहसा पतित होना। टूट पड़ना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—टपक पड़ना=एक बारगी आ पहुँचना। अकस्मात् आ कर उपस्थित होना। जैसे, हैं, तुम बीच में कहाँ से टपक पड़े। आ टपकना=दे० "टपक पड़ना"।

(४) किसी भाव का बहुत अधिक आभास पाया जाना। अधिकता से कोई भाव प्रकट होना। लक्षण, शब्द चेष्टा या रूप रंग से कोई भाव व्यंजित होना। जाहिर होना। झलकना। जैसे, (क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी। (ख) महल्ले में चारों ओर उदासी टपकती है। (ग) उसकी बातों से बदमाशी टपकती है।

संयो० क्रि०—पड़ना। जैसे, उसके अंग अंग से यौवन, टपका पड़ता है।

(५) (चित्त का) तुरंत प्रवृत्त होना। (हृदय का) झट आकर्षित होना। ढल पड़ना। फिसलना। लुभा जाना। मोहित हो जाना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(६) स्त्री का संभोग की ओर प्रवृत्त होना। ढल पड़ना। (बाजारू)

संयो० क्रि०—पड़ना।

(७) घाव, फोड़े आदि का मवाद आने के कारण रह रह कर दर्द करना। चिलकना। टीस मारना। टीसना। (८) फोड़े का पक कर बहना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(९) लड़ाई में घायल हो कर गिरना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

टपका-संज्ञा पुं० [हिं० टपकना] (१) बूँद बूँद गिरने का भाव।

यौ०—टपका टपकी।

(२) वह जो बूँद बूँद कर के गिरा हो। टपकी हुई वस्तु। रसाव। (३) पक कर आपसे आप गिरा हुआ फल। (४) रह रह कर उठनेवाला दर्द। टीस। (५) चौपायों के खुर का एक रोग। खुरपका।

टपका टपकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकना] (१) बूँदा बूँदी। (मेंह की) हलकी झड़ी। फुहार। फुही। (२) फलों का लगातार एक एक कर के गिरना। (३) किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक टूटना। (४) एक के पीछे दूसरे की मृत्यु। एक एक कर के बहुत से आदमियों की मृत्यु। (जैसे हैजे आदि में होती है)

क्रि० प्र०—लगना।

वि० इक्का दुक्का। भूला भटका। एक आध। बहुत कम। कोई कोई।

टपकाना-क्रि० स० [हिं०] (१) बूँद बूँद गिराना। चुआना। (२) अरक उतारना। भभके से अर्क खींचना। चुआना। जैसे, शराब टपकाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—टट्टर देना या लगाना = टट्टर बंद करना।

टट्टरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ढोल का शब्द। नगाड़े आदि का शब्द। (२) लंबी चौड़ी बात। (३) चुहलबाजी। ठट्ठा।

टट्टा–संज्ञा पुं० [सं० तट = ऊँचा किनारा वा सं० स्थाता = जो खड़ा हो] [स्त्री० टट्टी] (१) टट्टर। बड़ी टट्टी। बाँस की फट्टियों का परदा या पल्ला। (२) लकड़ी का पल्ला। बिना पुश्तवान का तख्ता। † (३) अंडकोश। (पंजाबी)

टट्टी–संज्ञा स्त्री० [सं० तटी = ऊँचा किनारा वा सं० स्थात्री = जो खड़ी हो] (१) बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़ कर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़, रोक या रक्षा के लिये दरवाजे, बरामदे अथवा और किसी खुले स्थान में लगाया जाता है। बाँस की फट्टियों आदि का बना पल्ला जो परदे, किवाड़ या छाजन आदि का काम दे। जैसे, खस की टट्टी।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टट्टी की आड़ (या ओट) से शिकार खेलना = (१) किसी के विरुद्ध छिप कर कोई चाल चलना। किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से कोई कार्रवाई करना। (२) छिपा कर बुरा काम करना। लोगों की दृष्टि बचा कर कोई अनुचित कार्य करना। टट्टी का शीशा = पतले दल का शीशा। टट्टी में छेद करना = बुराई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना। प्रकट रूप से कुकर्म करना। खुल खेलना। निर्लज्ज हो जाना। लोक लज्जा छोड़ देना। टट्टी लगाना = (१) आड़ करना। परदा खड़ा करना। (२) किसी के सामने भीड़ लगाना। किसी के आगे इस प्रकार पंक्ति में खड़ा होना कि उसका सामना रुक जाय। जैसे, यहाँ क्या टट्टी लगा रक्खी है, क्या कोई तमाशा हो रहा है? धोखे की टट्टी = (१) वह टट्टी जिसकी आड़ में शिकारी शिकार पर वार करते हैं। (२) ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उससे होनेवाली बुराई का पता न चले। ऐसी वस्तु या बात जिसके कारण लोग धोखा खा कर हानि उठावें। जैसे, उसकी दूकान वगैरः सब धोखे की टट्टी है, उसे भूल कर भी रुपया न देना। (३) ऐसी वस्तु जो ऊपर से देखने में सुंदर जान पड़े पर काम देनेवाली न हो। चटपट टूट या बिगड़ जानेवाली वस्तु। काजू भोजू चीज।

(२) चिक। चिलमन। (३) पतली दीवार जो परदे के लिये खड़ी की जाती है। (४) पाखाना।

क्रि० प्र०—जाना।

(५) फुलवारी का तख्ता जो बारातों में निकलता है। (६) बाँस की फट्टियों आदि की बनी वह दीवार और छाजन जिस पर अंगूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं।

टट्टर–संज्ञा पुं० [सं०] भेरी का शब्द।

टट्टू–संज्ञा पुं० [अनु०] [वि० टटुआनी, टटुई] (१) छोटे कद का घोड़ा। टांगन।

मुहा०—टट्टू पार होना = बेड़ा पार होना। काम निकल जाना। प्रयोजन सिद्ध हो जाना। भाड़े का टट्टू = रुपया ले कर दूसरे की ओर से कोई काम करनेवाला।

(२) लिंगेंद्रिय। (बाजारू)

मुहा०—टट्टू भड़कना = कामोद्दीपन होना।

टठिया–संज्ञा स्त्री० दे० "टाठी"।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की भाँग।

टड़िया–संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] बाँह में पहनने का एक गहना जो अनंत के आकार का पर उससे मोटा और बिना घुंडी का होता है। टाँड़।

टण–संज्ञा पुं० दे "टना"।

टन–संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द। किसी धातुखंड पर आघात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि। टनकार। झनकार। जैसे, टन से घंटा बोला।

विशेष—'खट' 'पट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है।

मुहा०—टन हो जाना = चटपट मर जाना।

संज्ञा पुं० [अं०] एक अंगरेजी तौल जो अट्ठाईस मन के लगभग होती है।

टनकना–क्रि० अ० [अनु० टन] (१) टन टन बजना। (२) धूप या गरमी लगने के कारण सिर में दर्द होना। रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा देना। जैसे, माथा टनकना।

टनटन–संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

टनटनाना–क्रि० स० [हिं० टनटन] घंटा बजाना। किसी धातुखंड पर आघात कर के उस में से 'टन टन' शब्द निकालना।

क्रि० अ० टनटन बजना।

टनमन–संज्ञा पुं० [सं० तंत्र मंत्र] तंत्र मंत्र। टोना। जादू।

वि० दे० "टनमना"।

टनमना–वि० [सं० तन्मनस्] जो सुस्त न हो। जिसकी चेष्टा मंद न हो। जिसकी तबीयत हरी हो। जो शिथिल न हो। स्वस्थ। चंगा। 'अनमना' का उलटा।

टना–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] [स्त्री० अल्प० टनी] (१) स्त्रियों की योनि में बढ़ निकला हुआ मांस का टुकड़ा जो दोनों किनारों के बीच में होता है। (२) योनि। भग।

टनाका †–संज्ञा पुं० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।

वि० बहुत कड़ा (घाम)। माथा टनकनेवाला (घाम)।

टनाटन–संज्ञा स्त्री० [अनु०] लगातार घंटा बजने का शब्द।

टनी–संज्ञा स्त्री० दे० "टना"।

टनेल–संज्ञा स्त्री० [अं०] सुरंग खोद कर बनाया हुआ मार्ग। ऐसा रास्ता जो जमीन या किसी पहाड़ आदि के नीचे हो कर गया हो।

यौ०—टर टर।

(३) ऐंठ। अकड़। घमंड से भरी बात। अविनीत वचन और चेष्टा। जैसे, शेखों की शेखी, पठानों की टर। (४) हठ। ज़िद। अड़। (५) तुच्छ बात। पोच बात। बेमेल बात। (६) ईद के बाद का एक मेला। (मुसलमान)। उ०—ईद पीछे टर, बरात पीछे धौंसा।

टरकना क्रि० अ० [हिं० टरना] (१) चला जाना। हट जाना। खिसक जाना। टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—टरक देना = धीरे से चला जाना। चुप चाप हट जाना। जैसे, जब काम का वक्त आता है तब वह कहीं टरक देता है।

*† (२) टर टर करना। कर्कश स्वर से बोलना। उ०—टर्रं टर्रं टरकन लगे दसहु दिसा मंडूक।—गोपाल।

टरकनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ईख या गन्ने की दूसरी बार की सिँचाई।

टरकाना—क्रि० स० [हिं० टरकना] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर देना। हटाना। खिसकाना। जैसे, (क) देखते रहो, ये चीज़ें इधर उधर न टरकाने पावें। (ख) जब कोई ढूँढ़न आवे तब इस लड़के को कहीं टरका दो। (२) किसी काम से आए हुए मनुष्य को बिना उसका काम पूरा किए कोई बहाना करके लौटा देना। टाल देना। चलता करना। धता बताना। जैसे, जब हम अपना रुपया माँगने आते हैं तब तुम यों ही टरका देते हो।

टरकी—संज्ञा पुं० [तुरकी] एक प्रकार का मुर्गा जिसकी चोंच के नीचे गले में मांस की लाल झालर रहती है और जिसके काले परों पर छोटी छोटी सुफ़ेद बुँदकियाँ होती हैं। इस का मांस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है। इसे पेरू भी कहते हैं।

टरगी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है। इसे भैंसें बड़े चाव से खाती हैं। यह सुखा कर १२-१३ बरस तक रक्खी जा सकती है और घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है। हिंदुस्तान में यह घास हिसार मांटगोमरी (पंजाब) आदि स्थानों में होती है पर विलायती के ऐसी सुगंधित नहीं होती। इसे पलवा या पलवन भी कहते हैं।

टरटराना—क्रि० स० [हिं० टर] (१) बक बक करना। (२) ढिठाई से बोलना। टर टर करना।

टरना†—क्रि० स० दे० "टलना"। उ०—(क) तृण ते कुलिस कुलिस तृण करई। तासु दूत पग कहु किमि टरई।—तुलसी। (ख) अस विचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ विधाता।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [देश०] तेली के कोल्हू में ढेंका और कतरी से बँधी हुई रस्सी।

टरनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टरना] टरने का भाव।

टर्रा—वि० [अनु० टर टर] (१) टर्राने वाला। ऐंठ कर बातें करने-वाला। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देनेवाला। घमंड के साथ चिढ़ चिढ़ कर बोलनेवाला। सीधे न बोलनेवाला। (२) धृष्ट। कटुवादी।

टर्राना—क्रि० अ० [अनु० टर] ऐंठ कर बातें करना। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देना। घमंड के साथ चिढ़ चिढ़ कर बोलना। सीधे से न बोलना। घमंड लिए हुए कटु वचन कहना।

टर्रापन—संज्ञा पुं० [हिं० टर्रा] बात चीत में अविनीत भाव। कटुवादिता।

टर्रू—संज्ञा पुं० [हिं० टर टर] (१) टर्रा आदमी। (२) मेढ़क। (३) चमड़े की झिल्ली मढ़ा हुआ एक खिलौना जो घोड़े की पूँछ के बाल से एक लकड़ी में बँधा होता है। इसे घुमाने से मेढ़क की तरह टर्रं टर्रं आवाज़ निकलती है। मेढ़क। भँवरा। कँवा।

टलना—क्रि० अ० [सं० टलन = विचलित होना] (१) अपने स्थान से अलग होना। हटना। खिसकना। सरकना। जैसे, यह पत्थर तुमसे नहीं टलेगा। उ०—तृण ते कुलिस, कुलिस तृण करई। तासु दूत पग कहु किमि टरई।—तुलसी।

मुहा०—अपनी बात से टलना = प्रतिज्ञा न पूरी करना। मुकरना।

(२) एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाना। अनुपस्थित होना। किसी स्थान पर न रहना। जैसे, (क) काम के समय तुम सदा टल जाते हो। (ख) जब इसके आने का समय हो तब तुम कहीं टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) दूर होना। मिटना। न रह जाना। जैसे, आपत्ति टलना, संकट टलना, बला टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) (किसी कार्य्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का समय स्थिर होना। (किसी काम के लिये) मुकर्रर वक्त से और आगे का वक्त ठहराया जाना। मुलतवी होना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य्य दोनों के लिये होता है, जैसे, तिथि टलना, तारीख़ टलना, विवाह की सायत टलना, दिन टलना, लग्न टलना, विवाह टलना, इम्तहान टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) (किसी बात का) अन्यथा होना। और का और होना।

टपकाव-संज्ञा पुं० [हिं० टपकना] टपकाने का भाव।

टपना-क्रि० अ० [हिं० तपना] (१) बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय काटना। जैसे, सवेरे से पड़े टप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। (२) बिना किसी कार्य्यसिद्धि के बैठा रहना। व्यर्थ आसरे में बैठा रहना। (दलाल)

विशेष—दे० "टापना"।

†क्रि० अ० [हिं० टाप] (१) कूदना। उछलना। उचकना। फाँदना। (२) जोड़ा खाना। प्रसंग करना।

क्रि० स० [हिं० तोपना] ढाकना। आच्छादित करना।

टपनामा-संज्ञा पुं० [हिं० टिप्पन] जहाज पर का वह रजिस्टर जिसमें समुद्र-यात्रा के समय तूफान गर्मी आदि का लेखा रहता है। (लश०)।

टपमाल-संज्ञा पुं० [अं० टापमाल] एक बड़ा भारी लोहे का घन जो जहाजों पर काम आता है।

टपरा†-संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] [स्त्री० टपरी, टपरिया] (१) छप्पर। छाजन। (२) झोपड़ा।

संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] छोटे छोटे खेतों का विभाग।

टपाटप-क्रि० वि० [अनु० टप टप] (१) लगातार टप टप शब्द के साथ (गिरना)। बराबर बूँद बूँद कर के (गिरना)। उ०—छाते पर से टपाटप पानी गिर रहा है। (२) झट झट। जल्दी जल्दी। एक एक कर के शीघ्रता से। उ०—बिल्ली चूहों को टपाटप ले रही है।

टपाना-क्रि० स० [हिं० तपाना] (१) बिना दाना पानी के रखना। बिना खिलाए पिलाए पड़ा रहने देना। (२) व्यर्थ आसरे में रखना। निष्प्रयोजन बैठाए रखना। व्यर्थ हैरान करना।

क्रि० स० [हिं० टाप] कुदाना। फँदाना।

टप्पर†-संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] छप्पर। छाजन।

मुहा०—टप्पर उलटना = दे० "टाट उलटना"।

टप्पा-संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थाप, टप] (१) किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच में भूमि का स्पर्श। उछल उछल कर जाती हुई वस्तु का बीच बीच में टिकान। जैसे, गेंद कई टप्पे खाता हुआ गया है।

मुहा०—टप्पा खाना = किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिर कर जमीन से छू जाना और फिर उछल कर आगे बढ़ना।

(२) उतनी दूरी जितनी दूरी पर कोई फेंकी हुई वस्तु जा कर पड़े। किसी फेंकी हुई चीज की पहुँच का फासला। जैसे, गोली का टप्पा। (३) उछाल। कूद। फाँद। फलाँग।

मुहा०—टप्पा देना = लंबे लंबे डग बढ़ाना। कूदना।

(४) नियत दूरी। मुकर्रर फासला। (५) दो स्थानों के बीच में पड़नेवाला मैदान। जैसे, इन दोनों गावों के बीच में बड़ा भारी बालू का टप्पा पड़ता है। (६) छोटा भूविभाग। जमीन का छोटा हिस्सा। परगने का हिस्सा। (७) अंतर। बीच। फर्क। उ०—पीपर सूना फूल बिन फल बिन सूना राय। एका एकी मानुषा टप्पा दीया आय।—कबीर।

मुहा०—टप्पा देना = अंतर डालना। फर्क डालना।

(८) दूर दूर की भद्दी सिलाई। मोटी सीवन। (स्त्रि०)

मुहा०—टप्पे डालना, भरना, मारना = दूर दूर बखिया करना। मोटी और भद्दी सिलाई करना। लंगर डालना।

(९) पालकी ले जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बदले जाते हैं। पालकीवालों की चौकी या डाक। † (१०) डाकखाना। पोष्ट आफिस। (११) पाल के जोर से चलनेवाला बेड़ा। (१२) एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है। † (१३) एक प्रकार का ठेका जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है। (१४) एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब-संज्ञा पुं० [अं०] पानी रखने के लिये नाँद के आकार का एक खुला बरतन।

संज्ञा पुं० [हिं० टप] जलाने का एक प्रकार का लंप जो छत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान में लटकाया जाता है।

टब्बर†-संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब] कुटुंब। परिवार। (पंजाब)

टमकी-संज्ञा स्त्री० [सं० टंकार] छोटा नगाड़ा जिसे बजा कर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है। डुगडुगिया।

टमटम-संज्ञा स्त्री० [अं० टैंडेम] दो ऊँचे ऊँचे पहियों की एक खुली हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हाँकता है।

टमटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बरतन। उ०—त्रष्टा अरु आधार भर्त्त के बहुत खिलौना। परिया टमटी अतरदान रूपे कै सौना।—सूदन।

टमस-संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] टौंस नदी। तमसा।

टमाटर-संज्ञा पुं० [अं० टमैटो] एक प्रकार का बैंगन जिसका फल गोलाई लिए हुए चिपटा, इधर उधर उभरा हुआ तथा स्वाद में खट्टा होता है। विलायती भंटा।

टमुकी-संज्ञा स्त्री० "टमकी"।

टर-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कर्कश शब्द। कर्कश वाक्य। कर्णकटु वाक्य। अप्रिय शब्द। कड़ुई बोली।

यौ०—टर टर।

मुहा०—टर टर करना = (१) ढिठाई से बोलते जाना। प्रतिवाद में बार बार कुछ कुछ कहते जाना। जबानदराजी करना। जैसे, टर टर करता जायगा न मानेगा। (२) बकवाद करना। व्यर्थ बक बक करना। टर टर लगाना = व्यर्थ बकवाद करना। झूठ मूठ बक बक करना। इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे।

(२) मेढ़क की बोली।

टहकना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ टसकना] (१) रह रह कर दर्द करना। चसकना। टीस मारना। (२) (घी, मोम चरबी आदि का) आँच खा कर तरल होना या बहना। पिघलना।

टहकाना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ टहकना] आँच से पिघलाना।

टहटहा†—वि॰ [हिं॰ टटका] टटका। ताज़ा।

टहना—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तनुः = पतला या शरीर] [स्त्री॰ टहनी] वृक्ष की पतली शाखा। पतली डाल।

टहनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टहना] वृक्ष की बहुत पतली शाखा। पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पत्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीम की टहनी।

टहरकट्टा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिस पर टकु या तकले से उतारा हुआ सूत लपेटा जाता है।

टहरना†—क्रि॰ अ॰ दे॰ "टहलना"।

टहल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टहलना] (१) सेवा। शुश्रूषा। ख़िदमत।

क्रि॰ प्र॰—करना।

यौ॰—टहल टई = सेवा शुश्रूषा। उ॰—कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत नित टहल टई है।—तुलसी। टहल टकोर = सेवा शुश्रूषा।

मुहा॰—टहल बजाना = सेवा करना।

(२) नौकरी चाकरी। काम धंधा।

टहलना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ तत् + चलन = चलना] (१) धीरे धीरे चलना। मंद गति से भ्रमण करना। धीरे धीरे कदम रखते हुए फिरना।

मुहा॰—टहल जाना = धीरे से खिसक जाना। चुप चाप अन्यत्र चला जाना। हट जाना। जान बूझ कर उपस्थित न रहना।

(२) केवल जी बहलाने के लिये धीरे धीरे चलना या घूमना। सैर करना। हवा खाना। उ॰—संध्या को नित्य टहलने जाते हैं।

(३) परलोक गमन करना। मर जाना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

टहलनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टहल] (१) टहल करनेवाली। सेवा करनेवाली। दासी। मजदूरनी। लौंड़ी। चाकरानी। (२) वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ टहलना] (१) धीरे धीरे चलाना। घुमाना। फिराना। (२) सैर कराना। हवा खिलाना। (३) हटा देना। दूर करना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

टहलुआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टहल] [स्त्री॰ टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला। सेवक। नौकर। चाकर। ख़िदमतगार।

टहलुई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टहल] (१) दासी। किंकरी। लौंड़ी। चाकरानी। मजदूरनी। नौकरानी। (२) वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलुवा—संज्ञा पुं॰ दे॰ "टहलुआ"।

टहलू—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टहल] नौकर। चाकर। सेवक।

टही†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ घाट, घात] युक्ति। जोड़ तोड़। मतलब निकालने का घात। प्रयोजन सिद्धि का ढंग। ताक।

मुहा॰—टही लगाना = जोड़ तोड़ लगाना। टही में रहना = काम निकालने की ताक में रहना।

टहुआटारी†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] इधर की उधर लगाना। चुगलखोरी।

टहूका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठक या ठहाका] (१) पहेली। (२) चुटकुला। चमत्कार-पूर्ण उक्ति।

टहोका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठोकर] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का। झटका।

मुहा॰—टहोका देना = हाथ या पैर से धक्का देना। झटकना। ढकेलना। ठेलना। टहोका खाना = धक्का खाना। ठोकर सहना। उ॰—मैंने इनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खा कर झुंझला कर कहा।—इंशा अल्ला खाँ।

टाँक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ टंक] (१) एक प्रकार की तौल जो चार माशे की (किसी किसी के मत से तीन माशे की) होती है। इसका प्रचार जौहरियों में है। (२) धनुष की शक्ति की परीक्षा के लिये एक तौल जो पचीस सेर की होती थी।

विशेष—इस तौल के बटखरे को धनुष की डोरी में बाँध कर लटका देते थे। जितने बटखरे बाँधने से धनुष की डोरी अपने पूरे संधान या खिंचाव पर पहुँच जाती थी उतनी टाँक का वह धनुष समझा जाता था। जैसे, कोई धनुष सवा टाँक का, कोई डेढ़ टाँक का, यहाँ तक कि कोई कोई दो या तीन टाँक तक का होता था जिसे अत्यंत बलवान पुरुष ही चढ़ा सकते थे।

(३) जाँच। कूत। अंदाज़। आँक। (४) हिस्सेदारों का हिस्सा। बखरा।

संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टाँकना] (१) लिखावट। लिखने का अंक या चिह्न। लिखन। उ॰—छुतौ नेह कागद हिये भई लखाय न टाँक। विरह तचे उघर्यो सु अब सेंहुड़ को सो आँक।—बिहारी। (२) कलम की नोक। लेखनी का डंक। उ॰—हरि जाय चेत चित, सूखि स्याही झरि जाय, बरि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय।—रघुनाथ।

टाँकना—क्रि॰ स॰ [सं॰ टंकन] (१) एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को कील आदि जड़ कर जोड़ना। कील काँटे टाँक कर एक वस्तु (धातु की चद्दर आदि) को दूसरी वस्तु से मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी वस्तु बैठाना। जैसे, फूटे हुए बरतन पर चिप्पी टाँकना।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

(२) सुई के सहारे एकही तागे को दो वस्तुओं के नीचे ऊपर

ठीक न ठहरना। खंडित होना। जैसे, हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती। (६) (किसी आदेश या अनुरोध का) न माना जाना। उल्लंघित होना। पूरा न किया जाना। जैसे, बादशाह का हुक्म कहीं टल सकता है? (७) समय व्यतीत होना। बीतना।

टलहा†-वि० [देश०] [स्त्री० टलही] खोटा। खराब। दूषित। जैसे, टलहा रुपया, टलही चाँदी।

टलाटली†-संज्ञा स्त्री० दे० "टालटूल"।

टल्ला†-संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का। आघात। ठोकर।

मुहा०—टल्ले मारना=ठोकर खाते फिरना। मारा मारा फिरना। इधर से उधर निष्फल घूमना।

टल्ली-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस। दे० "टोली"।

टल्लेनवीसी-संज्ञा स्त्री० दे० "टिल्लेनवीसी"।

टवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णों का समूह।

टवाई-संज्ञा स्त्री० [सं० अटन=घूमना] व्यर्थ घूमना। आवारगी। उ०—फेर रह्यो पुर करत टवाई। मान्यो नहिं जो जननि सिखाई।—रघुराज।

टस-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी भारी चीज़ के खिसकने का शब्द। टसकने का शब्द।

मुहा०—टस से मस न होना=(१) किसी भारी चीज़ का जरा सा भी न जगह छोड़ना। कुछ भी न खिसकना। (२) किसी कड़ी वस्तु का (पकाने वा गलाने आदि से) जरा सा भी न गलना। (३) कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव अनुभव न करना। किसी के अनुकूल कुछ भी प्रवृत्त न होना।

(२) कपड़े आदि के फटने का शब्द। मसकने का शब्द।

टसक-संज्ञा स्त्री० [हिं० टसकना] रह रह कर उठनेवाली पीड़ा। कसक। टीस। चसक।

टसकना-क्रि० अ० [सं० तस=ढकेलना+करण] (१) किसी भारी चीज़ का जगह से हटना। खिसकना। जगह से हिलना। जैसे, यह पत्थर जरा सा भी इधर उधर नहीं टसकता। (२) रह रह कर दर्द करना। टीस मारना। कसकना (३) प्रभावित होना। हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना। किसी के अनुकूल कुछ प्रवृत्त होना। किसी की बात मानने को कुछ तैयार होना। जैसे, उससे इतना कहा सुना पर वह ऐसा कठोर हृदय है कि जरा भी न टसका। †(४) पक कर गदराना। गुदारा होना। †(५) रोना धोना। आँसू बहाना।

टसकाना-क्रि० स० [हिं० टसकना] किसी भारी चीज़ को जगह से हटाना। खिसकाना। सरकाना।

टसना†-क्रि० अ० [अनु० टस] कपड़े आदि का फटना। मसक जाना। दरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

टसर-संज्ञा पुं० [सं० त्रसर] एक प्रकार का कड़ा और मोटा रेशम जो बंगाल के जंगलों में होता है।

विशेष—छोटा नागपुर, मोरभंज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में साखू, बहेड़ा, पियार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े पलते हैं। रेशम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक यत्न नहीं करना पड़ता। पालनेवालों को जंगल में आपसे आप होनेवाले कीड़ों को केवल चींटियों और चिड़ियों आदि से बचाना भर पड़ता है। पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोश से निकले हुए उड़नेवाले कीड़ों को जंगल में छोड़ आते हैं, जहाँ अपने जोड़े ढूँढ़ कर वे अपनी वृद्धि करते हैं। मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के ऐसे पर चिपटे चिपटे अंडे देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं। एक कीड़ा तीन चार दिन के भीतर दो ढाई सौ तक अंडे देता है। अंडे दे कर ये कीड़े मर जाते हैं। दस बारह दिनों में इन अंडों से सूँड़ी वा ढोल के आकार के छोटे छोटे कीड़े निकल आते हैं और पत्तियाँ चाट चाट कर बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं। इस बीच में ये तीन चार बार कलेवर या खोली बदलते हैं। अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच जाते हैं। उस समय इनका आकार ८–१० अंगुल तक होता है। ये मटमैले, भूरे, नीले, पीले, कई रंगों के होते हैं। पूरी बाढ़ को पहुँचने पर ये कीड़े कोश बनाने में लग जाते हैं और अपने मुँह से एक प्रकार की लार निकालते हैं जो सूख कर सूत के रूप में हो जाती है। सूत निकालते हुए घूम घूम कर ये अपने लिये एक कोश तैयार कर लेते हैं और उसी में बंद हो जाते हैं। ये कोश अंडाकार होते हैं। बड़ा कोश ६—६½ अंगुल तक लंबा होता है। कोश के भीतर तीन चार दिनों तक सूत निकाल कर ये कीड़े मुरदे की तरह चुप चाप पड़ जाते हैं। पालनेवाले कोशों के पकने पर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें भय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतर कर निकल जायँगे अतः उड़ने के पहले ही इन कोशों को खार के साथ गरम पानी में उबाल कर वे कीड़ों को मार डालते हैं। जिन कोशों को उबालना नहीं पड़ता उनका टसर सब से अच्छा होता है। जो कोश पकने के पहले ही उबाले जाते हैं उनका सूत कच्चा और निकम्मा होता है।

टसुआ†-संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, हिं० आँसू, अँसुआ] आँसू। अश्रु। (पंजाबी)।

क्रि० प्र०—बहाना।

मुहा०—टसुए बहाना=झूठ मूठ आँसू गिराना।

टहक†-संज्ञा स्त्री० [हिं० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा। रह रह कर उठनेवाली पीड़ा। चसक।

को टाँक कर छेदों में गला हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़ कर मिल जाते हैं। किले की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जोड़ाई प्रायः होती है।

टाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० टंग] (१) शरीर का वह निचला भाग जिस पर धड़ ठहरा रहता है और जिससे प्राणी चलते या दौड़ते हैं। साधारणतः जाँघे की जड़ से ले कर एड़ी तक का अंग जो पतले खंभे या डंडे के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से ले कर एड़ी तक का अंग। जीवों के चलने फिरने का अवयव (जिसकी संख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है।)

मुहा०—*टाँग अड़ाना*=(१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी का ऐसे काम में हाथ डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फ़जूल दखल देना। (२) अड़गा लगाना। विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे, जिस बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग अड़ाते हो? *टाँग उठाना*=(१) स्त्री संभोग करना। स्त्री के साथ संभोग करने के लिये प्रस्तुत होना। आसन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। *टाँग उठा कर मूतना*=कुत्तों की तरह मूतना। *टाँग तले से (या नीचे से) निकलना*=हार मानना। ध्वस्त होना। नीचा देखना। अधीन होना। *टाँग तले (या नीचे) से निकालना*=हराना। ध्वस्त करना। नीचा दिखाना। अधीनता या हीनता स्वीकार कराना। *टाँग तोड़ना*=(१) अंग भंग करना। (२) बेकाम करना। निकम्मा करना। किसी काम का न रखना। (३) किसी भाषा को थोड़ा सा सीख कर उसके टूटे फूटे या अशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे, क्या अँगरेजी की टाँग तोड़ते हो? *(अपनी) टाँग तोड़ना*=चलते चलते पैर थकाना। घूमते घूमते हैरान होना। *टाँग पसार कर सोना*=(१) निर्द्वंद्व हो कर सोना। सुख की नींद लेना। निश्चिंत सोना। (२) बिना किसी प्रकार के खटके के चैन से दिन बिताना। *टाँगें रह जाना*=(१) चलते चलते पैर दर्द करने लगना। चलते चलते पैरों का शिथिल हो जाना। (२) लकवा या गठिया से पैर का बेकाम हो जाना। *टाँग लेना*=(१) टाँग पकड़ना। (२) (कुत्ते आदि का) पैर पकड़ कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। सिर होना। पिंड न छोड़ना। *टाँग बराबर*=छोटा सा। जैसे, टाँग बराबर लड़का ऐसी ऐसी बातें कहता है। *(किसी की) टाँग से टाँग बाँध कर बैठना*=किसी के पास से न हटना। सदा किसी के पास बना रहना। एक घड़ी के लिये भी न छोड़ना। *टाँग से टाँग बाँध कर बैठाना*=अपने पास से छूटने न देना। सदा अपने पास बैठाए रहना। एक घड़ी के लिये भी कहीं जाने आने न देना।

(२) कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग मार कर या अड़ा कर उसे चित करते हैं। यह कई प्रकार का होता है। जैसे, (क) पिछली टाँग=जब विपक्षी पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिछली टाँग कहते हैं। (ख) बाहरी टाँग=जब दोनों पहलवान आमने सामने छाती से छाती मिला कर भिड़े हों तब विपक्षी के घुटने के पिछले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग=विपक्षी को बगल में पा कर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग=जब विपक्षी पीठ पर हो तब मौका पा कर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसा कर झटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) अड़ानी टाँग=विपक्षी को दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसा कर मारने को अड़ानी टाँग कहते हैं। (३) चतुर्थांश। चौथाई भाग। चहारुम। (दलाल)

टाँगन—संज्ञा पुं० [सं० तुरगम या हिं० ठेंगना] छोटी जाति का घोड़ा। वह घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टट्टू।

विशेष—नैपाल और बरमा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना—क्रि० स० [हिं० टँगना] (१) किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगा कर इस प्रकार अटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार बाँधना या फँसाना अथवा उस पर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर लटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका आश्रय ऊपर की ओर हो। लटकाना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, झाड़ टाँगना, तसवीर टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार पर हो और थोड़ा सा अंश आधार के नीचे लटकता हो तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'लटकाना' में यह अंतर है कि टाँगना क्रिया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' में उसके बहुत से अंश को नीचे की ओर अधर में दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे, 'कुएँ में रस्सी लटकाना' कहेंगे 'रस्सी टाँगना' नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में लटकाना का प्रयोग होता है।

संयो० क्रि०—देना।

(२) फाँसी चढ़ाना। फाँसी लटकाना।

टाँगा—संज्ञा० पुं० [सं० टंग] बड़ी कुल्हाड़ी।

ले जा कर उन्हें एक दूसरे से मिलाना। सिलाई के द्वारा जोड़ना। सीना। जैसे चकती टाँकना, गोटा टाँकना, फटा जूता टाँकना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) सी कर अँटकाना। सुई तागे से एक वस्तु पर दूसरी वस्तु इस प्रकार लगाना या ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे। जैसे, बटन टाँकना, मोती टाँकना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(४) सिल, चक्की आदि को टाँकी से गड्ढे कर के खुरदुरा करना। कूटना। रेहना। छीनना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(५) रेती या सोहन के दाँतों को नुकीला करना। रेती तेज करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(६) किसी कागज वही या पुस्तक पर स्मरण रखने के लिये लिखना। दर्ज करना। चढ़ाना। जैसे, ये १०) भी वही पर टाँक लो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—मन में टाँक रखना = स्मरण रखना। याद रखना।

† (७) लिख कर पेश करना। दाखिल करना। जैसे, अरजी टाँकना। (८) खाना। चट कर जाना। उड़ा जाना। (बाजारू)। जैसे, देखते देखते वह सब मिठाई टाँक गया।

संयो० क्रि०—जाना।

(९) अनुचित रूप से रुपया पैसा आदि ले लेना। मार लेना। उड़ा लेना। (दलाल)

टाँकली—संज्ञा स्त्री० [?] पाल लपेटने की घिरनी या गराड़ी। (लश०)

संज्ञा स्त्री० [सं० ढक्का] एक पुराना बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

टाँका—संज्ञा पुं० [हिं० टाँकना] (१) वह जड़ी हुई कील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चद्दरें) एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। जोड़ मिलानेवाली कील या काँटा।

क्रि० प्र०—उखड़ना।—निकालना।—लगना।—लगाना।

(२) सीवन का उतना अंश जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाने में तैयार होता है। सिलाई का पृथक् पृथक् अंश। डोभ। जैसे, दो टाँके लगा दो, ज्यादा काम नहीं है।

क्रि० प्र०—उधड़ना।—खुलना।—टूटना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँका चलाना = सीने के लिये कपड़े आदि में आर पार सुई डालना। टाँका भरना = सुई से छेद कर तागा फँसाना या अँटकाना। सीना। सिलाई करना। टाँका मारना = दे० "टाँका भरना"।

(३) सिलाई। सीवन। (४) टँकी हुई चकती। थिगली। चिप्पी। (५) शरीर पर के घाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो घाव के पूजने के लिये की जाती है। जोड़।

क्रि० प्र०—उखड़ना।—खुलना।—टूटना।—लगना।—लगाना।

(६) धातुओं को जोड़ने का मसाला जो उनको गला कर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—भरना।

संज्ञा पुं० [सं० टंक] [स्त्री० अल्प० टाँकी] लोहे की कील जो नीचे की ओर चौड़ी और धारदार होती है और पत्थर छीलने या काटने के काम में आती है। पत्थर काटने की चौड़ी छेनी।

संज्ञा पुं० [सं० टंक = खड्ड या गड्ढा] (१) दीवार उठा कर बनाया हुआ पानी इकट्ठा रखने का छोटा सा कुंड। हौज़। चहबच्चा। (२) पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँका टूक—वि० [हिं० टाँक + तौल] तौल में ठीक ठीक। वजन में पूरा पूरा। ठीक तुला हुआ। (दुकानदार)

टाँकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक] (१) पत्थर गढ़ने का औज़ार। वह लोहे की कील जिससे पत्थर तोड़ते काटते या छीलते हैं। छेनी। उ०—यह तेलिया पखान हठी, कठिनाई याकी। टूटीं याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।—दीनदयाल।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—बैठना।—मारना—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँकी बजना = (१) पत्थर पर टाँकी का आघात पड़ना। (२) पत्थर की गढ़ाई होना। इमारत का काम लगना।

(२) तरबूज या खरबूजे के ऊपर छोटा सा चौखूँटा कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है। (फल बेचनेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काट कर तरबूज रखते हैं)। (३) काट कर बनाया हुआ छेद। (४) एक प्रकार का फोड़ा। डुंबल। (५) गरमी या सूज़ाक का घाव। (६) आरी का दाँत। दाँता। दंदाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० टंक = खड्ड या गड्ढा] (१) पानी इकट्ठा रखने का छोटा हौज। छोटा टाँका। छोटा चहबच्चा। (२) पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकीबंद—वि० [हिं० टाँकी + फा० बंद] (इमारत, दीवार या जोड़ाई) जिसमें लगे हुए पत्थर पहुओं या दोनों ओर गड़नेवाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से खूब जुड़े हों। जैसे, टाँकीबंद जोड़ाई, टाँकीबंद इमारत।

विशेष—दो पत्थरों के जोड़ के दोनों ओर आमने सामने दो छेद किए जाते हैं। इन्हीं छेदों में दो ओर झुकी हुई कीलों

गन्ने आदि की जड़ों में लग कर फसल को हानि पहुँचाता है।

क्रि० प्र०—लगना।

टांड़ी†-संज्ञा स्त्री० [सं० तत + डीन = उड़ान] टिड्डी। उ०—उमड़ि रारि तुरकन त्यों माँड़ी। छूटे तीर उड़ति ज्यों टाँड़ी।—लाल।

टाँय टाँय-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) कर्कश शब्द। अप्रिय शब्द। कड़ुई बोली। टें टें (२) बक बक। बकवाद। प्रलाप।

मुहा०—टाँय टाँय फिस = (१) बकवाद बहुत पर फल कुछ नहीं। किसी कार्य के संबंध में बात चीत तो बहुत बढ़ चढ़ कर पर परिणाम कुछ नहीं। (२) किसी कार्य के आरंभ में तो बड़ी भारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं। कार्य्य का आरंभ तो बड़ी धूम धाम के साथ पर अंत में होना जाना कुछ नहीं।

टाँस-संज्ञा स्त्री० [हिं० टानना = खींचना] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नसों की सिकुड़न या तनाव जिसमें फटने की सी असह्य पीड़ा होने लगती है। यह पीड़ा प्रायः क्षणिक होती है

क्रि० प्र०—चढ़ना।

टाँसना†-क्रि० स० दे० "टाँचना", "टाँकना"।

टाइटिल पेज-संज्ञा पुं० [अं०] किसी पुस्तक के सब से ऊपर का पृष्ठ जिस पर पुस्तक और ग्रंथकार का नाम आदि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है।

टाइप-संज्ञा पुं० [अं०] सीसे के ढले हुए अक्षर जिनको मिला कर पुस्तकें छापी जाती हैं। कांटे का अक्षर।

टाइप कास्टिंग मशीन-संज्ञा स्त्री० [अं०] कांटे के अक्षर ढालने की कल।

टाइप मोल्ड-संज्ञा पुं० [अं०] कांटे के अक्षर ढालने का साँचा।

टाइप-राइटर-संज्ञा पुं० [अं०] एक कल जिसमें कागज रख कर टाइप के से अक्षर छाप सकते हैं। यह दफ़रों और कार्य्यालयों में चिट्ठी पत्री आदि छापने के काम में आता है।

टाइफायड ज्वर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का विषैला और प्रायः घातक ज्वर।

टाइफोन-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का तूफान जो चीन के समुद्र में और उसके आस पास बरसात के चार महीनों में आया करता है।

टाइम-संज्ञा पुं० [अं०] समय। वक्त।

यौ०—टाइम-टेबुल। टाइमपीस।

टाइम-टेबुल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह विवरणपत्र या सारिणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्य्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है। जैसे, स्कूल का टाइम-टेबुल, दफ़र का टाइम-टेबुल। (२) वह पुस्तक या कागज जिसमें रेल गाड़ी के पहुँचने और छूटने का समय लिखा रहता है।

टाइमपीस-संज्ञा स्त्री० [अं०] कमरे में रहनेवाली वह छोटी घड़ी जो केवल सूइयों के द्वारा समय बताती है, बजती नहीं।

टाई-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) कपड़े की एक पट्टी जो अंगरेजी पहनावे में कालर के ऊपर गाँठ दे कर बाँधी जाती है। (२) जहाज़ के ऊपर के पाल की वह रस्सी जिसकी मुद्दी मस्तूल के छेदों में लगाई जाती है।

टाउन-संज्ञा पुं० [अं०] शहर। कसबा।

टाउन-ड्यूटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] चुंगी। पैंडूटी।

टाउन हाल-संज्ञा पुं० [अं०] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई रोशनी आदि के प्रबंधकर्त्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी सभाएँ होती हैं।

टाकू-संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] टकुआ। तकला। टेकुरी।

टाट-संज्ञा पुं० [सं० तत] (१) सन या पटुए की रस्सियों का बुना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा डालने आदि के काम में आता है।

मुहा०—टाट में मूँज का बखिया = जैसी भद्दी चीज वैसी ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज। टाट में पाट का बखिया = चीज तो भद्दी और सस्ती पर उसमें लगी हुई सामग्री बढ़िया और बहुमूल्य। बेमेल का साज।

(२) बिरादरी। कुल। (बनिए)। जैसे, वे दूसरे टाट के हैं।

मुहा०—एक ही टाट के = (१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साथ उठने बैठनेवाले। एक ही मंडली के। एक ही दल के। एक ही विचार के।

(३) साहूकार के बैठने का बिछावन। महाजन की गद्दी।

मुहा०—टाट उलटना = दिवाला निकालना। दिवालिया होने की सूचना देना। (पहले यह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला बोलता था तब वह अपनी कोठी या दूकान पर का टाट और गद्दी उलट कर रख देता था जिससे व्यवहार करने-वाले लौट जाते थे।)

वि० [अं० टाइट] कसा हुआ। (लश०)

मुहा०—टाट करना = मस्तूल खड़ा करना।

टाटका-वि० दे० "टटका"।

टाटबाफी जूता-संज्ञा पुं० [फा० तारबाफ़ी] कामदार जूता। वह जूता जिस पर कलाबत्तू का काम हो।

टाटर-संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ = जो खड़ा हो] (१) टट्टर। टट्टी। (२) खोपड़ी। कपाल। सिर की हड्डी या परदा। उ०—टाटर टूट, टूट सिर तासू।—जायसी।

टाटरिक ऐसिड-संज्ञा पुं० [अं०] इमली का सत। इमली का चुक।

संज्ञा पुं० [हिं० टँगना] एक प्रकार की गाड़ी जिसका ढाँचा इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या लटका रहता है। इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह कर के बैठती है और जमीन से इतने पास रहती है कि घोड़े के भड़कने आदि पर झट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इधर उधर उलटने का भय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैल दोनों जोते जाते हैं।

टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँग + नोचना] खींच खसोट। खींचा खींची। खींचा तानी।

टाँगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टँगा] कुल्हाड़ी।

टाँगुन—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरे या कँगनी की तरह का एक अनाज जिसकी फसल सावन भादों में पक कर तैयार हो जाती है। इसके दाने महीन पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इस का भात बना कर खाते हैं।

टाँघन†—संज्ञा पुं० दे० "टाँगन"।

टाँच—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकी] ऐसा वचन जिससे किसी का चित्त फिर जाय और वह जो कुछ दूसरे का काम करनेवाला हो उसे न करे। दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात या वचन। भाँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँका] (१) टाँका। सिलाई। डोभ। (२) टँकी हुई चकती। थिगली। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी।

टाँचना—क्रि० स० [हिं० टाँच] (१) टाँकना। डोभ लगाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी। (२) काटना। तराशना। छीलना। छाँटना।

क्रि० अ० फूला फूला फिरना। गुलछर्रे उड़ाते घूमना।

टाँची—संज्ञा स्त्री० [सं० टंक = रुपया] रुपया भरने की लंबी थैली जिसमें रुपए भर कर कमर में बाँध लेते हैं। न्यौजी। न्यौली। मियानी। बसनी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकी] भाँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँचु†—संज्ञा स्त्री० दे० "टाँच"।

टाँट†—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टा] खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—टाँट के बाल उड़ना = (१) सिर के बाल झड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास में कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। भुरकुस निकलना। टाँट के बाल उड़ाना = सिर पर खूब जूते लगाना। मारते मारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खुजाना = मार खाने को जी चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार खाने की नौबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना = (१) मारते मारते सिर गंजा करना। (२) खूब खर्च करवाना। खूब रुपए गलवाना। खर्च के मारे हैरान कर देना। पास का धन निकलवा देना। टाँट गंजी होना = (१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खर्च के मारे धुर्रे निकलना। खर्च करते करते पास में धन न रह जाना।

टाँटर†—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टर] खोपड़ी। कपाल।

टाँठ†—वि० [अनु० ठन ठन या सं० स्थाणु] (१) जो सूख कर कड़ा हो गया हो। करारा। कड़ा। कठोर। उ०—राम सों साम किये नित है हित कोमल काज न कीजिए टाँठे।—तुलसी। (२) दृढ़। बली। तगड़ा। मुस्टंडा।

टाँठा—वि० [हिं० टाँठ] [स्त्री० टाँठी] (१) करारा। कड़ा। कठोर। (२) दृढ़। हृष्ट पुष्ट। तगड़ा।

टाँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाणु] (१) लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बाँस के लट्ठे ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिस पर चीज़ असबाव रखते हैं। परछत्ती। (२) मचान जिस पर बैठ कर खेत की रखवाली करते हैं। (३) गुल्ली-डंडे के खेल में गुल्ली पर डंडे का आघात। टोला।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] बाहु पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना। टँड़िया।

संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हिं० अटाला, टाल] (१) ढेर। अटाला। टाल। राशि। (२) समूह। पंक्ति। (३) घरों की पंक्ति। (४) दे० "टाँड़ा"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] कंकड़ मिली मिट्टी। कँकरीली मिट्टी।

टाँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० टाँड़ = समूह] (१) अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी ले कर चलते हैं। बरदी। बनजारों के बैलों आदि का झुंड। उ०—बनजारे के बैल ज्यों टाँड़ो उतरयो आय।—कबीर। (२) व्यापारियों के माल की चलान। बिक्री के माल का खेप। व्यापारी का माल जो लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय। उ०—अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है। सुई बेह लौं बेह सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।—बोधा।

मुहा०—टाँड़ा लदना = (१) बिक्री का माल लदना। (२) कूच की तैयारी होना। (३) मरने की तैयारी होना।

(३) व्यापारियों का चलता समूह। बनजारों का झुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो। (४) नाव पर चढ़ कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह। उ०—लीजै वेगि निबेरि सूर प्रभु यह पतितन को टाँड़ो।—सूर। (५) कुटुंब। परिवार।

संज्ञा पुं० [सं० तुंड, हिं० टूँड] एक प्रकार का हरा कीड़ा जो

संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हिं० टाल] ढेर। राशि। दे० 'टाल'।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टारना] टाल टूल। दे० "टाल"।

टारन–संज्ञा पुं० [हिं० टारना] (१) टालने या सरकाने की वस्तु। (२) कोल्हू में पड़ा हुआ वह लकड़ी का डंडा जिससे गड़ेरियाँ चलाई या हिलाई जाती हैं।

टारना–क्रि० स० दे० "टालना"।

टारपीडो–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का जंगी जहाज जो पानी के भीतर भीतर चल कर शत्रु के जहाजों का नाश करता है।

टाल–संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टाल, हिं० अटाला] (१) नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं का ढेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो। ऊँचा ढेर। भारी राशि। अटाला। गंज। जैसे, लकड़ी की टाल, भुस की टाल, पयाल की टाल, घास की टाल। (२) लकड़ी, भुस, पयाल आदि की बड़ी दूकान। (३) बैल-गाड़ी के पहिये का किनारा।

मुहा०—टाल मारना = पहिये के किनारे का छीलना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का घंटा जो गाय, बैल, हाथी आदि के गले में बाँधा जाता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] (१) टालने का भाव। (२) किसी बात के लिये आज कल का झूठा वादा। ऐसा बहाना जिस से किसी समय किसी काम के करने से कोई बच जाय।

यौ०—टालटूल। टालबटाल। टालमटूल।

संज्ञा पुं० [सं० टार] व्यभिचार के लिये स्त्री पुरुष का समागम करानेवाला। कुटना। भँडुआ।

टालटूल–संज्ञा स्त्री० दे० "टालमटूल"।

टालना–क्रि० स० [हिं० टलना] (१) अपने स्थान से अलग करना। हटाना। खिसकाना। सरकाना। उ०—(क) भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा।—तुलसी। (ख) जियत भूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ।—तुलसी।

संयो० क्रि०—देना।

(२) दूसरे स्थान पर भेज देना। अनुपस्थित कर देना। दूर करना। भगा देना। जैसे, जब काम का समय होता है तब तुम उसे कहीं टाल देते हो।

संयो० क्रि०—देना।

(३) दूर करना। मिटाना। न रहने देना। निवारण करना। जैसे, आपत्ति टालना, संकट टालना, बला टालना। उ०—मुनि प्रसाद बल तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी।—तुलसी।

संयो० क्रि०—देना।

(४) किसी कार्य्य को निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना। नियत समय से और आगे का समय ठहराना। मुलतवी करना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य्य दोनों के लिये होता है। जैसे, तिथि टालना, दिन टालना, विवाह की सायत या लग्न टालना, विवाह टालना, इम्तहान टालना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) समय व्यतीत करना। बिताना। उ०—अतिहि अधिक दरसन की आरति। राम वियोग असोक विटप तर सीय निमेष कल्प सम टारति।—तुलसी। (६) (किसी आदेश या अनुरोध को) न मानना। न पालन करना। उल्लंघन करना। जैसे, (क) हमारी बात वे कभी नहीं टालेंगे। (ख) राजा की आज्ञा कौन टाल सकता है? (७) किसी काम को तत्काल न कर के दूसरे समय पर छोड़ना। मुलतवी करना। जैसे, जो काम आवे उसे तुरंत कर डालो, कल पर मत टालो। (८) बहाना कर के किसी काम से पीछा छुड़ाना। हीला-हवाली कर के किसी काम से बचना। किसी कार्य्य के संबंध में इस प्रकार की बातें कहना जिसमें वह न करना पड़े।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी पर टालना = स्वयं न करके किसी दूसरे के करने के लिये छोड़ देना। किसी के सिर मढ़ना। जैसे, जो काम उस के पास जाता है वह दूसरों पर टाल देता है।

(९) किसी बात के लिये आज कल का झूठा वादा करना। किसी काम को और आगे चल कर पूरा करने की मिथ्या आशा देना वा प्रतिज्ञा करना। जैसे, तुम इसी तरह महीनों से टालते आए हो, आज हम रुपया जरूर लेंगे। (१०) किसी प्रयोजन से आए हुए मनुष्य को निष्फल लौटाना। किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे इधर उधर की बातें कह कर फेर देना। धता बताना। टरकाना। जैसे, इस समय इसे कुछ कह सुन कर टाल दो, फिर माँगने आवेगा तब देखा जायगा। (११) पलटना। फेरना। और का और करना। उ०—आई सुधि प्यारे की, विचारे मति टारे तब धारे पग मग भूमि द्वारावति आए हैं।—प्रिया। (१२) बचा जाना। तरह दे जाना। कोई अनुचित या अपने विरुद्ध बातें देख सुन कर न बोलना।

संयो० क्रि०—जाना।

टाल-मटाल–संज्ञा स्त्री० दे० "टालमटूल"।

टालम-टाल–क्रि० वि० [दलाली, टाली = अठन्नी] आधे आध। निस्फा-निस्फ।

टालमटूल–संज्ञा पुं० [हिं० टलना] बहाना।

टाला–वि० [स्त्री० टाली] आधा। अर्द्ध। (दलाल)

टाली–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) गाय बैल आदि के गले में बाँधने की घंटी। (२) जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम की हो और बहुत चंचल हो। उ०—आई आई है मैया कुंज

टाटिका*–संज्ञा स्त्री० [हिं० टाटी] टट्टी। उ०—विरचि हरि भक्त को वेष वर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवनि छावौं।—तुलसी।

टाटी†–संज्ञा स्त्री० [सं० स्यात्री या तटी] टट्टी। छोटा टट्टर। उ०—(क) आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति। माया टाटी उड़ि गई लगी नाम सों प्रीति।—कबीर। (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारौं मानत रंक त्रास टाटी को।—सूर।

टाठी†–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली=बटलोई, प्रा० ठाली, ठाडी] थाली।

टाड़–संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] भुजा पर पहनने का एक गहना। टाँड़। टँड़िया। बहूँटा। उ०—बाहु टाड़ कर कंकन बाजूबंद एते पर है तौकी।—सूर।

टाडर–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

टान–संज्ञा स्त्री० [सं० तान=फैलाव, खिंचाव] (१) तनाव। खिँचाव। फैलाव। (२) खींचने की क्रिया। खींच। (३) सितार के परदे पर उँगली रख कर इस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीच के सब स्वर निकल आवें। (४) साँप के दाँत लगने का एक प्रकार जिसमें दाँत धँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है।

संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु=थून या लकड़ी का खंभा] टाँड़। मचान।

टानना–क्रि० स० [हिं० टान+ना (प्रत्य०)] तानना। खींचना।

टाप–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, हिं० थापन, थाप] (१) घोड़े के पैर का वह सब से निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है। घोड़ों का अर्द्धचंद्राकार पादतल। सुम। उ०—जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़, वेग अधिकाई।—तुलसी। (२) घोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द। जैसे, दूर पर घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। (३) पलंग के पाए का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहता है और जिसका घेरा उभरा रहता है। (४) बेंत या और किसी पेड़ की लचीली टहनियों का बना हुआ मछली पकड़ने का झावा जिसकी पेंदी में एक छेद होता है। मछली पकड़ने का खाँचा। (५) मुरगियों के बंद करने का झावा।

टापड़–संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार–वि० [हिं० टाप+फ़ा० दार] जिसके सिरे या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो। जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो। जैसे, टापदार पाया।

टापना–क्रि० अ० [हिं० टाप+ना (प्रत्य०)] (१) घोड़ों का पैर पटकना। (प्रायः जब दाना पाने का समय हो जाता है तब घोड़े टाप पटक कर अपनी भूख की सूचना देते हैं। इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'दाना माँगना' भी लेते हैं)। (२) टक्कर मारना। किसी वस्तु के लिये इधर उधर हैरान फिरना। (३) व्यर्थ इधर उधर फिरना। (४) उछलना। कूदना।

क्रि० स० कूदना। फाँदना। उछल कर लाँघना। जैसे, दीवार टापना।

क्रि० अ० [सं० तप] (१) बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय बिताना। जैसे, सबेरे से बैठे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। (२) ऐसी बात के आसरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे। व्यर्थ प्रतीक्षा करना। आशा में पड़े पड़े उद्विग्न और व्यग्र होना। जैसे, घंटों से बैठे टाप रहे हैं कोई आता जाता नहीं दिखाई देता। (३) किसी बात से निराश और दुखी होना। हाथ मलना। पछताना। उ०—वह चला गया मैं टापता रह गया।

टापर†–संज्ञा पुं० [देश०] चद्दर। ओढ़ने का मोटा कपड़ा।

संज्ञा पुं० [हिं० टाप] छोटी मोटी सवारी। टट्टू आदि की सवारी।

टापा–संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थाप] (१) टप्पा। मैदान। (२) उजाड़ मैदान। ऊसर मैदान। (३) उछाल। कूद। छलांग। फाँद।

मुहा०—टापा देना=लंबे डग भरना। फलाँग मारना। उ०—कबिरा यह संसार में घने मनुप मतिहीन। राम नाम जाना नहीं आए टापा दीन।—कबीर।

(४) झावा। किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा।

टापू–संज्ञा पुं० [हिं० टापा या टप्पा] (१) स्थल का वह भाग जिसके चारों ओर जल हो। वह भूखंड जो चारों ओर जल से घिरा हो। द्वीप। † (२) टप्पा। टापा।

टाबर–संज्ञा पुं० [पंजाबी टब्बर] बालक। लड़का।

टाबू–संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बुनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे बैलों के मुँह पर इस लिये चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर उधर चर न सकें। जावा।

टामक†–संज्ञा पुं० [अनु०] टिमटिमी। डिमडिमी। उ०—दुंदुभि पटह मृदंग ढोलकी डफला टामक। मंदरा तबला सुमरु खँजरी तबला धामक।—सूदन।

टामन–संज्ञा पुं० [सं० तंत्र] तंत्रविधि। टोटका। उ०—जानत हौं जु दई सुंदरी पढ़ि राम कछू जन टामन कीन्हो।—हनुमान।

टार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) गाँडू। लौंडा। लंग। (३) स्त्री-पुरुष का संयोग करानेवाला व्यक्ति। कुटना। दलाल। भँडुआ।

टिकना—क्रि० अ० [सं० स्थित + क । वा अ = नहीं + टिक = चलना] (१) कुछ काल तक के लिये रहना । ठहरना । डेरा करना । *मुकाम करना ।* उ०—टिकि लीजियो रात में काहू अटा जहाँ सोवन हाँय परेवा परे ।—लक्ष्मण ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।—लेना ।

(२) किसी घुली हुई वस्तु का नीचे बैठना । तल में जमना । तलछट के रूप में नीचे पेंदे में इकट्ठा होना । (३) स्थायी रहना । कुछ दिनों तक चलना या बना रहना । कुछ दिनों तक काम देना । जैसे, यह जूता तुम्हारे पैर में कितने दिन टिकेगा ? (४) स्थित रहना । खड़ा रहना । इधर उधर न गिरना । ठहरना । सहारे पर रहना । जमना या बैठना । जैसे, (क) यह गोला डंडे की नोक पर टिका हुआ है । (ख) इस पर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हों ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टिकरी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] (१) एक नमकीन पकवान जो बेसन और मैदे की दो मोयनदार लोइयों को एक में बेल कर और घी में तल कर बनाया जाता है । (२) टिकिया ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] सिर पर पहनने का एक गहना ।

टिकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया वा टीका] (१) छोटी टिकिया । (२) पन्नी या काँच की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिये अपने माथे पर चिपकाती हैं । सितारा । चमकी । (३) छोटा टीका । माथे पर पहनने की छोटी बेंदी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर्क, हिं० टकुवा] सूत बटने की फिरकी । सूत कातने का एक औज़ार ।

विशेष—यह बाँस या लोहे की सलाई के सिरे पर लगी हुई काठ की गोल टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें लपेटा हुआ सूत ऐंठ कर कड़ा होता जाता है ।

टिकस—संज्ञा पुं० [अं० टैक्स] महसूल । कर । जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस ।

मुहा०—टिकस लगाना = महसूल या कर नियत होना ।

टिकाई †—संज्ञा पुं० [हिं० टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । युवराज । उत्तराधिकारी राजकुमार ।

टिकाऊ—वि० [हिं० टिकना] टिकनेवाला । कुछ दिनों तक काम देनेवाला । चलनेवाला । पायदार ।

टिकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] (१) टिकने या ठहरने का भाव । (२) टिकने या ठहरने का स्थान । पड़ाव । चट्टी ।

टिकाना—क्रि० स० [हिं० टिकना] (१) ठहराना । रहने के लिये जगह देना । निवास-स्थान देना । कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान ठीक करना । जैसे, इन्हें तुम अपने यहाँ टिका लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) अड़ाना । ठहराना । स्थित करना । सहारे पर खड़ा करना या रोकना । जमाना । जैसे, (क) एक पैर जमीन पर अच्छी तरह टिका लो तब दूसरा पैर उठाओ । (ख) इसे दीवार से टिका कर खड़ा कर दो । (ग) इस बोझ को चबूतरे पर टिका कर थोड़ा दम ले लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

† (३) किसी उठाए जाते हुए बोझ में सहारे के लिये हाथ लगाना । बोझ उठाने या ले जाने में सहायता देना । सहारा देना । जैसे, (क) अकेले उससे चारपाई न जायगी तुम भी टिका लो । (ख) चार आदमी जब उसे टिकाते हैं तब वह उठता है ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

टिकानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकाना] छकड़ा गाड़ी की वे दोनों लकड़ियाँ जिनमें पैंजनी डाल कर रस्सी से बाँधते हैं ।

टिकाव—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना] (१) स्थिति । ठहराव । (२) स्थिरता । स्थायित्व । (३) वह स्थान जहाँ यात्री आदि ठहरते हों । पड़ाव ।

टिकिया—संज्ञा स्त्री० [स० वटिका] (१) गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा । गोल और चिपटे आकार की छोटी वस्तु । चक्राकार छोटी मोटी वस्तु । जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया ।

विशेष—चकती और टिकिया में अंतर यह है कि 'टिकिया' का प्रयोग प्रायः ठोस और उभरे हुए मोटे दल की वस्तुओं के लिये होता है पर चकती का प्रयोग कपड़े चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है । जैसे, 'कपड़े या चमड़े की चकती', 'मैदे की टिकिया' ।

(२) कोयले की बुकनी को किसी लसीली चीज़ में सान कर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर आग सुलगाते हैं । (३) एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मोयनदार मैदे की छोटी लोई को घी में तलने और चाशनी में डुबाने से बनती है । (४) बरतन के साँचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा बाहर निकला रहता है । (५) छोटी मोटी रोटी । बाटी । लिट्टी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] (१) माथा । ललाट । (२) माथे पर लगी हुई बिंदी । (३) उँगली में चूना, रंग या और कोई वस्तु पोत कर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न ।

विशेष—अनपढ़ लोग नित्य प्रति के लेन देन की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं ।

टिकुवा †—संज्ञा पुं० [देश०] टीला । भीटा ।

टिकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कु, हिं० टकुवा] सूत बटने या कातने की फिरकी । टिकली ।

वृंद में टाली। अब के अपनी हटकि चरावहु जैहै हटकी घाली।—सूर। (३) एक प्रकार का बाजा। (४) अठन्नी। आधा रुपया। धेली। (दलाल)

टाल्ही—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शीशम जिसके पेड़ पंजाब में बहुत होते हैं। इसके हीर की लकड़ी भूरी और बहुत मजबूत होती है। यह इमारतों में लगती है तथा गाड़ी, खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है।

टाहली—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] टहल करनेवाला। टहलुवा। दास। सेवक। खिदमतगार। उ०—कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत सबनि सोहात हैं सेवा सुजान टाहली।—तुलसी।

टिंचर—संज्ञा पुं० [अं० टिंकचर] किसी औषध का सार जो स्पिरिट के योग से तरल रूप में बनाया जाता है।

टिंचर आयोडीन—संज्ञा पुं० [अं०] सूजन पर लगाने के लिये लोहे के सार का अर्क।

टिंचर ओपियाई—संज्ञा पुं० [अं०] अफीम का अर्क।

टिंचर कार्डिमम—संज्ञा पुं० [अं०] इलायची का अर्क।

टिंचर स्टील—संज्ञा पुं० [अं०] फौलाद के सार का अर्क।

टिंटिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल-सिरीस का पेड़। अंबु-शिरीषिका। दाढ़ौन। (२) जोंक।

टिंड—संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] (१) ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। ढेंढसी। डेंढ़सी। (२) रहट में लगा हुआ बरतन जिसमें पानी भर कर बाहर आता है। डब्बू।

टिंडा—संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] ककड़ी की जाति की एक बेल जिस में छोटे खरबूजे के बराबर गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। डेंढ़सी। ढेंढ़सी।

टिंडर—संज्ञा पुं० [सं० टिंड=डेंढ़सी] रहट में लगी हुई हँड़िया।

टिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडिश] टिंड नाम की तरकारी। डेंढ़सी।

टिंडिश—संज्ञा पुं० [सं०] टिंडा। डेंढ़सी। ढेंडसी।

टिंडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) हल को पकड़ कर दबानेवाली मुठिया। (२) जाँता घुमाने का खूँटा।

टिक—संज्ञा पुं० [?] टिक्कर। लिट्ट। ठेंकना। पूआ।

टिकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] टीकेवाली गाय। वह गाय जिसके माथे में सुफ़ेद टीका हो।

टिकट—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह कागज़ का टुकड़ा जो किसी प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को प्रमाण-पत्र के रूप दिया जाय और जिसके द्वारा वह कहीं आ जा सके या कोई काम कर सके। जैसे, रेल का टिकट, डाक का टिकट, थिएटर का टिकट, दंगल का टिकट। (२) कहीं आने जाने या कोई काम करने के लिये अधिकारपत्र। (३) वह कर, फीस या महसूल जो किसी काम के करनेवालों पर लगाया जाय। जैसे, स्नान का टिकट, मेले का टिकट।

मुहा०—टिकट लगाना=महसूल लगाना। कर नियत करना।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) घोड़ों को हाँकने के लिये मुँह से किया हुआ शब्द। (२) घड़ी के बोलने का शब्द।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकठी] (१) तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँध कर उनके शरीर पर बेंत या कोड़े लगाए जाते हैं। ऊँची तिपाई जिस पर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी लगाते हैं। टिकठी। (२) ऊँची तिपाई। टिकठी।

मुहा०—टिकटिकी पर खड़ा करना=लड़ाई में न हटनेवाले चोट खा कर मरे हुए मुरगे को तीन लकड़ियों पर खड़ा करना। (मुरगों की लड़ाई में जब कोई बहादुर मुरगा लड़ते ही लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं हटता है तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर देते हैं। यदि दूसरा मुरगा लात मार कर उसे लकड़ी के नीचे गिरा देता है तो उसकी जीत समझी जाती है और यदि वह किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरगे की जीत समझी जाती है।)

संज्ञा स्त्री० [देश०] आठ नौ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसका रंग भूरा और पैर कुछ लाली लिए होते हैं। जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः जलाशयों के किनारे की झाड़ियों में घोंसला लगाती है। यह एक बार में चार अंडे देती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "टकटकी"।

टिकठी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकाष्ठ वा हिं० तीन+काठ] (१) तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँध कर उनके शरीर पर बेंत या कोड़े लगाए जाते हैं। टिकटिकी। (२) ऊँची तिपाई जिस पर अपराधियों को खड़ा कर के उनके गले में फाँसी का फंदा लगाया जाता है। (३) काठ का आसन जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों। तिपाई। (४) बुना हुआ कपड़ा फैलाने के लिये दो लकड़ियों का बना हुआ एक ढाँचा। यह कपड़े की चौड़ाई के बराबर फैल सकता है। (जुलाहे)

टिकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० टिकिया] [स्त्री० अल्प० टिकड़ी] (१) चिपटा गोल टुकड़ा। धातु, पत्थर, खपड़े या और किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड। (२) आँच पर सेंकी हुई छोटी मोटी रोटी। बाटी। अंगाकड़ी।

मुहा०—टिकड़ा लगाना=आग पर बाटी सेंकना या पकाना।

(३) जड़ाऊ या ठप्पे के गहनों में कई नगों को जड़ कर बनाया हुआ एक एक विभाग या अंश।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकड़ा] छोटा टिकड़ा।

इसका दल लाल बादल की घटा के समान उमड़ कर चलता है उस समय आकाश में अंधकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़, पौधों और खेतों में पत्तियाँ नहीं रह जातीं। टिड्डियाँ हजार डेढ़ हजार कोस तक की लंबी यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों से हो कर जाती हैं उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं। ये पर्वत की कंदराओं और रेगिस्तानों में रहती है और बालू में अपने अंडे देती हैं। अफ्रिका के उत्तरीय तथा एशिया के दक्षिणी भागों में इनका आक्रमण विशेष होता है।

मुहा०—टिड्डी दल = बहुत बड़ा झुंड। बहुत बड़ा समूह। बड़ी भारी भीड़ या सेना।

टिढ़बिंगा–वि० [हिं० टेढ़ा + सं० बंक] टेढ़ामेढ़ा। जो सीधा या सुडौल न हो।

टिप–संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] साँप काटने का एक प्रकार। साँप का ऐसा दंश जिसमें दाँत चुभ गए हों और विष रक्त में मिल गया हो।

टिपकना†–क्रि० अ० दे० "टपकना"।

टिपका*†–संज्ञा पु० [हिं० टिपकना] बूँद। कतरा। बिंदु। उ०—नव मन दूध बटोरिया टिपका किया विनास। दूध फाटि काँजी भया भया घीव का नास।—कबीर।

टिप टिप–संज्ञा स्त्री० [अनु०] बूँद बूँद गिरने का शब्द। टपकने का शब्द। वह शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना।

टिपवाना–क्रि० स० [हिं० टीपना] (१) दबवाना। चँपवाना। मिसवाना। जैसे, पैर टिपवाना। (२) पिटवाना। धीरे धीरे प्रहार करवाना।

टिपारा–संज्ञा पु० [हिं० तीन + फा० पारः = टुकड़ा] मुकुट के आकार की एक टोपी जिसमें कलगी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में। उ०—मोर फूल बीनिबे को गए फुलवाई हैं। सीसनि टिपारो, उपनीत पीत पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भेसवाई हैं।—तुलसी।

टिपुर–संज्ञा पुं० [देश०] (१) गुमान। अभिमान। गुरूर। (२) बहुत अधिक आचार-विचार। पाखंड। आडंबर।

टिप्पणी–संज्ञा स्त्री० दे० "टिप्पनी"।

टिप्पन–संज्ञा पु० [सं०] (१) टीका। व्याख्या। (२) जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = विवाह-संबंध स्थिर करने के लिये वरकन्या की जन्मपत्रियों का मिलान।

टिप्पनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] टीका। व्याख्या। किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण।

टिप्पस†–संज्ञा स्त्री० [देश०] युक्ति। अभिप्राय साधन का ढंग।

क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।—लगाना।

विशेष—दे० "टिकी"।

टिप्पी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] (१) उँगली में रंग आदि पोत कर बनाया हुआ चिह्न। (२) ताश की बूटी।

विशेष—दे० "टिकी"।

टिफन–संज्ञा स्त्री० [अं०] अँगरेजों का दोपहर के बाद का जलपान।

टिबरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ों की छोटी चोटी।

टिमकी†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) छोटा मोटा बरतन। (२) बच्चों का पेट।

टिमटिमाना–क्रि० अ० [सं० तिम = ठंढा होना] (१) (दीपक का) मंद मंद जलना। क्षीण प्रकाश देना। जैसे, कोठरी में एक दीया टिमटिमा रहा था। (२) समान बँधी हुई लौ के साथ न जलना। बुझने पर हो हो कर जलना। झिलमिलाना। जैसे, दीया टिमटिमा रहा है, बुझा चाहता है।

मुहा०—आँख टिमटिमाना = आँख को थोड़ा थोड़ा खोल कर फिर बंद कर लेना।

(३) मरने के निकट होना। कुछ ही घड़ी के लिये और जीना।

टिमाक–संज्ञा स्त्री० [देश०] बनाव। सिंगार। ठसक। (क्रि०)

टिमिला†–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० टिमिरी] लड़का। छोकड़ा।

टिमिली†–संज्ञा स्त्री० [देश०] लड़की। छोकरी।

टिम्मा†–वि० [देश०] ठेंगना। बौना। छोटे डील डौल का। नाटा।

टिर–संज्ञा स्त्री० दे० "टर"।

टिरफिस–संज्ञा स्त्री० [हिं० टिर + फिस] चीं चपड़। प्रतिवाद। विरोध। बात न मानने की ढिठाई। जैसे, सीधे से जो कहते हैं करो, जरा भी टिरफिस करोगे तो मार बैठेंगे।

क्रि० प्र०—करना।

टिर्रा†–वि० दे० "टर्रा"।

टिर्राना†–क्रि० अ० दे० "टर्राना"।

टिलटिलाना†–क्रि० अ० [अनु०] पतला दस्त फिरना। दस्त आना।

टिलटिली†–संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतला दस्त फिरने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—आना।—छूटना।

टिल्वा–संज्ञा पु० [देश०] (१) लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा गँठीला और टेढ़ा हो। गठीला और टेढ़ा मेढ़ा कुंदा। (२) नाटा या ठेंगना आदमी। (३) चापलूस आदमी।

संज्ञा पुं० [देश०] निसोथ । तुवुंद ।

टिकुला—संज्ञा पुं० दे० "टिकोरा" ।

टिकुली—संज्ञा स्त्री० दे० "टिकली" ।

टिकुवा—संज्ञा पुं० दे० "टकुआ", "टेकुआ" ।

टिकैत—संज्ञा पुं० [हिं० टीका + ऐत (प्रत्य०)] (१) राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । राजा का उत्तराधिकारी कुमार । युवराज । (२) अधिष्ठाता । सरदार ।

टिकोर—संज्ञा स्त्री० दे० "टकोर" ।

टिकोरा—संज्ञा पुं० [सं० वटिका, हिं० टिकिया] आम का छोटा और कच्चा फल । आम की वतिया । आम का वह फल जिसमें जाली न पड़ी हो ।

टिकोला—संज्ञा पुं० दे० "टिकोरा"

टिक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० टिकिया] (१) बड़ी टिकिया । (२) हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी गई हो । बाटी । लिट्टी । अंगाकड़ी । (३) मालपूवा । (साधु) ।

टिका—संज्ञा पुं० [देश०] मूँगफली के पौधे का एक रोग ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] [स्त्री० टिकी] (१) टीका । तिलक । बिंदी । (२) उँगली में रंग आदि लगा कर बनाया हुआ खड़ा चिह्न ।

विशेष—दे० "टिकी" ।

(३) सुध । स्मरण । याद ।

टिकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] (१) टिकिया । गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा ।

मुहा०—टिकी जमना, बैठना, लगना = प्रयोजन सिद्धि का उपाय होना । युक्ति, लड़ना । प्राप्ति आदि का डौल होना । गोटी जमना ।

(२) अंगाकड़ी । बाटी ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] (१) उँगली में रंग या और कोई गीली वस्तु पोत कर बनाया हुआ गोल चिह्न । बिंदी । (२) माथे पर की बिंदी । गोल टीका । (३) उँगली में गीला चूना या रंग आदि पोत कर दीवार पर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न ।

विशेष—अनपढ़ लोग नित्य प्रति के लेन देन की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः दीवार पर बनाते हैं ।

(४) ताश की बूटी । ताश में बना हुआ पान आदि का चिह्न ।

टिखटिख—संज्ञा स्त्री० दे० "टिकटिक" ।

टिघलना—क्रि० अ० [सं० तप + गलन] पिघलना । आँच से द्रवीभूत होना ।

विशेष—दे० "पिघलना" ।

टिघलाना—क्रि० स० [हिं० टिघलना] पिघलाना ।

टिचन—वि० [अं० अटेंशन] (१) तैयार । ठीक । दुरुस्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) उद्यत । मुस्तैद ।

क्रि० प्र०—होना ।

टिटकारना—क्रि० स० [अनु०] [संज्ञा टिटकारी] टिक टिक शब्द कर के किसी पशु को चलने के लिये उभारना । 'टिक टिक' कर के हाँकना । जैसे, घोड़े को टिटकारना ।

मुहा०—टिटकारी पर लगना = (पशु का) इशारा पा कर काम करना । संकेत पा कर या बोली पहचान कर पास चला आना ।

टिटिह, टिटिहा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—(क) देखा टिटिह टिटिहरी आई । चोंचें भरि भरि पानी लाई । (ख) टिटिहा कही जाउँ लै कहाँ । यहि ते नीक और है जहाँ ।—नारायणदास ।

टिटिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ, हिं० टिटिह] पानी के किनारे रहनेवाली एक छोटी चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर चितकबरे, पीठ खैरे रंग की, दुम मिले जुले रंगों की और चोंच काली होती है । इसकी बोली कड़ुई होती हैं और सुनने में 'टीं टीं' की ध्वनि के समान जान पड़ती है । स्मृतियों में द्विजातियों के लिये इसके मांस-भक्षण का निषेध है । इस चिड़िया के संबंध में ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश न टूट पड़े उसे रोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित सोती है । कुररी ।

टिटिहा रोर—संज्ञा पुं० [हिं० टिटिहा + रोर] (१) चिल्लाहट । शोर गुल । (२) रोना पीटना । क्रंदन ।

टिट्टिभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिट्टिभी] (१) टिटिहरी । कुररी । दे० "टिटिहरी" । उ०—उमा रावनहिं अस अभिमाना । जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ।—तुलसी । (२) टिड्डी ।

टिट्टिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिट्टिभ की मादा ।

टिट्टिभी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ] टिट्टिभ की मादा ।

टिड्डा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो खेतों में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर दिखाई पड़ता है । यह चार पाँच अंगुल लंबा और कई तरह का होता है, जैसे, हरा, भूरा, चित्तीदार । यह नरम पत्ते खा कर रहता है । गुबरैले, तितली, रेशम के कीड़े आदि की तरह इसके जीवन में आकृति-परिवर्त्तन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ नहीं होतीं । मक्खियों की तरह इसके मुँह में भी धँसाने के लिये डूँड़ होते हैं ।

टिड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ वा सं० तद + डीन = उड़ना] एक जाति का टिड्डा या उड़नेवाला कीड़ा जो बड़ा भारी दल या समूह बाँध कर चलता है और मार्ग के पेड़ पौधों और फसल को बड़ी हानि पहुँचाता है । इसका आकार साधारण टिड्डे ही के समान, पैर और पेट का रंग लाल या नारंगी तथा शरीर भूरापन लिए और चित्तीदार होता है । जिस समय

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषतः शीतला रोग से बचाने के लिये ही इस देश में होता है। पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर ले कर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सूई से गोद कर उसका संचार करते थे। संथाल लोग आग से शरीर में फफोले डाल कर उनके फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं। इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है उसमें ज्वर वेग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला निकल आती है और डर भी रहता है। सन् १७९८ में डाक्टर जेनर नामक एक अंगरेज ने गोथन में उत्पन्न शीतला के दानों के नीर से टीका लगाने की युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है। इंगलैंड में इस प्रकार के टीके से बड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सारे देशों में फैल गया। भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंगरेजी शासन काल में हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि गोथन-शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारत-वासियों को ज्ञात थी। इस बात के प्रमाण में वे धन्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक्त ग्रंथ का यह श्लोक देते हैं—

धेनुस्तन्यमसूरिका नराणां च मसूरिका।
तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रांतेन गृहीतवान्॥
बाहुमूले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वरसंभवम्॥

संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। व्याख्या। अर्थ का विवरण। विवृति। जैसे, रामायण की टीका, सतसई की टीका।

टीकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार। किसी ग्रंथ का अर्थ लिखनेवाला। वृत्तिकार।

टीकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] (१) टिकुली। (२) टिकिया। टिक्की।

टीकुरा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) ऊँची पृथ्वी। नदी से बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि। (२) जंगल। वन।

टीटा—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है। टना।

टीड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "टिड्डी"।

टीन—संज्ञा पुं० [अं० टिन] (१) राँगा। (२) राँगे की कलई की हुई लोहे की पतली चद्दर। (३) इस प्रकार की चद्दर का बना बरतन या डिब्बा।

टीप—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] (१) हाथ से दबाने की क्रिया या भाव। दबाव। दाब। (२) हलका प्रहार। धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया या भाव। (३) गच कूटने का काम। गच की पिटाई। (४) बिना पलस्तर की दीवार में ईंटों के जोड़ों में मसाला दे कर महले से बनाई हुई लकीर। (५) टंकार। ध्वनि। घोर शब्द। (६) गाने में ऊँचा स्वर। जोर की तान।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(७) हाथी के शरीर पर लेप करने की औषध। (८) दूध और पानी का शीरा जिसमें चीनी की मैल छँटती है। (९) स्मरण के लिये किसी बात को झटपट लिख लेने की क्रिया। टाँक लेने की क्रिया। टाँक लेने का काम। नोट। (१०) वह कागज जिस पर महाजन को मूल और ब्याज के बदले में फसल के समय अनाज आदि देने का इकरार लिखा रहता है। (११) दस्तावेज। (१२) हुंडी। चेक। (१३) सेना का एक भाग। कंपनी। (१४) गंजीफे के खेल में विपक्षी के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया। (१५) लड़की या लड़के की जन्मपत्री। कुंडली। टिप्पन।

वि० चोटी का। सब से अच्छा। चुनिंदा। बढ़िया। (क्वि०)

टीपटाप—संज्ञा स्त्री० [देश०] ठाठ बाट। सजावट। तड़क भड़क। दिखावट।

टीपन—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] शरीर में वह स्थान जहाँ काँटा या कंकड़ चुभने से मांस ऊँचा हो कर कड़ा हो जाता है। गाँठ। टाँका। घट्टा।

टीपना—क्रि० स० [सं० टेपन = फेंकना] (१) हाथ या उँगली से दबाना। चापना। मसकना। जैसे, पैर टीपना। (२) धीरे धीरे ठोंकना। हलका प्रहार करना। (३) ऊँचे स्वर से गाना। (४) गंजीफे के खेल में दो पत्तों से एक पत्ता जीतना।

क्रि० स० [सं० टिप्पनी] लिख लेना। टांक लेना। अंकित कर लेना। दर्ज कर लेना।

टीबा—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] टीला। डूह। भीटा।

टीम—संज्ञा स्त्री० [अं०] खेलनेवालों का दल। जैसे, क्रिकेट की टीम।

टीमटाम—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बनाव सिंगार। सजावट। (२) ठाठ बाट। तड़क भड़क।

टीला—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीला = उभार] (१) पृथ्वी का वह उभरा हुआ भाग जो आस पास के तल से ऊँचा हो। डूह। भीटा। (२) मिट्टी या बालू का ऊँचा ढेर। धुस। (३) छोटी पहाड़ी।

टीस—संज्ञा स्त्री० [देश०] चुभती हुई पीड़ा। रह रह कर उठनेवाला दर्द। कसक। चसक। हूल।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—टीस उठना = दर्द शुरू होना। रह रह कर पीड़ा होना।

टिलिया †–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) छोटी मुर्गी । (२) मुर्गी का बच्चा ।

टिली-लिली–संज्ञा स्त्री० [अनु०] बीच की उँगली हिला कर चिढ़ाने का शब्द । (लड़के)

विशेष—जब एक लड़का कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में अकृतकार्य होता है, तब दूसरे लड़के उसके सामने हथेली सीधी कर के और बीच की उँगली हिला कर 'टिली-लिली' कह कर चिढ़ाते हैं ।

टिलेहू–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गंध निकलती है । इस का सिर सूअर के ऐसा और दुम बहुत छोटी होती है । यह तलवों के बल चलता है और अपने थूथन से जमीन की मिट्टी खोदता है । सुमात्रा, जावा आदि टापुओं में यह नेवला पाया जाता है ।

टिलोरिया †–संज्ञा स्त्री० [देश०] मुरगी का बच्चा ।

टिल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० ठेलना] धक्का । टकोर । चोट । (बाजारू)

यौ०—टिल्लेनवीसी ।

टिल्लेनवीसी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टिल्ला + फ़ा० नवीसी] (१) निकृष्ट सेवा । नीच सेवा । (२) व्यर्थ का काम । ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो । निठल्लापन । (३) हीला हवाली । टालमटूल । बहाना ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिसुआ †–संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] आँसू । (पंजाबी)

टिहुकना †क्रि० अ० [देश०] (१) ठिठकना । (२) चौंकना ।

टिहुनी †–संज्ञा स्त्री० [सं० घुंट, हिं० घुटना] (१) घुटना । (२) कोहनी ।

टिहूक †–संज्ञा स्त्री [देश०] चौंकने की क्रिया या भाव । चौंक । झझक । उ०—एक ताग बनवल, दूसर गैल टूटी । चिलरे काटल, उठलि टिहूकी ।—कबीर ।

टिहूकना †–क्रि० अ० दे० "टिहुकना" ।

टींड–संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश = डेंडसी] रहट में बाँधने की हँड़िया ।

टीँड़सी–संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडिश] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी होती है ।

टींड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] जाँता घुमाने का खूँटा ।

टींड़ी †–संज्ञा स्त्री० दे० "टिड्डी" । उ०—जिमि टीड़ी दल गुहा समाई ।—तुलसी ।

टीक–संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक] (१) गले में पहनने का सोने का एक गहना जो ठप्पेदार या जड़ाऊ बनता है । (२) माथे में पहनने का सोने का एक गहना ।

टीकठ †–संज्ञा पुं० [हिं० टिकना] रीढ़ की हड्डी ।

टीकन–संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] थूनी । चाँड़ । वह खंभा या खड़ी लकड़ी जो किसी भार को सँभाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है ।

मुहा०—टीकन देना = बढ़ते हुए पौधों को सीधा और सुडौल रखने के लिये थूनी लगाना ।

टीकना †–क्रि० स० [हिं० टीका] (१) टीका लगाना । तिलक देना । (२) उँगली में रंग आदि पोत कर चिह्न या रेखा बनाना ।

टीका–संज्ञा पुं० [सं० तिलक] (१) वह चिह्न जो उँगली में गीला चंदन, रोली, केसर, मिट्टी आदि पोत कर मस्तक बाहु आदि अंगों पर शृंगार वा साम्प्रदायिक संकेत के लिये लगाया जाता है । तिलक ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टीका देना = टीका लगाना । माथे पर घिसे हुए चंदन आदि से चिह्न बनाना । (टीका पूजन के समय तथा अनेक शुभ अवसरों पर लगाया जाता है । यात्रा के समय भी जानेवाले के शुभ के लिये उसके माथे में टीका लगाते हैं ।)

(२) विवाह स्थिर होने की एक रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोग वर के माथे में तिलक लगाते हैं और कुछ द्रव्य वरपक्ष के लोगों को देते हैं । इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समझा जाता है । तिलक ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—भेजना ।

(३) दोनों भौं के बीच माथे का मध्य भाग (जहां टीका लगाते हैं) । (४) (किसी समुदाय का) शिरोमणि । (किसी कुल, मंडली या जन-समूह में) श्रेष्ठ पुरुष । उ०—समाधान करि सो सब ही का । गयउ जहाँ दिनकर-कुल-टीका ।—तुलसी । (५) राजतिलक । राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य ।

क्रि० प्र०—देना ।—होना ।

(६) वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला हो । युवराज । जैसे, टीका साहब । (७) आधिपत्य का चिह्न । प्रधानता की छाप । जैसे, क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी को इसका अधिकार नहीं है ?

मुहा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला । अनोखा । जैसे, क्या वही एक टीके का है जो सब कुछ रख लेगा ? (स्त्रि०)

(८) वह भेंट जो राजा या ज़मींदार को रैयत या असामी देते हैं । (९) सोने का एक गहना जिसे स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं । (१०) घोड़ों की दोनों आंखों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ भँवरी होती है । (११) धब्बा । दाग । चिह्न । (१२) किसी रोग से बचाने के लिये उस रोग के चेप या रस को ले कर किसी के शरीर में सूइयों से चुभा कर प्रविष्ट करने की क्रिया । जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका ।

टुकड़ी। (४) पशु-पक्षियों का दल। झुंड। गोल। जत्था। जैसे, कबूतरों की टुकड़ी। (५) सेना का एक अंश। हिस्सा। कंपनी † (६) स्त्रियों का लहँगा। † (७) कार्त्तिक के स्नान का मेला।

टुकनी–संज्ञा स्त्री० दे० "टोकनी"।

टुकरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ी] (१) मलमल की तरह का एक कपड़ा। (२) टुकड़ी।

टुघलाना–क्रि० अ० [देश०] (१) चुभलाना। मुँह में रख कर धीरे धीरे कूँचना। (२) जुगाली करना।

टुच्चा–वि० [सं० तुच्छ] तुच्छ। ओछा। नीच। नीचाशय। छिछोरा। क्षुद्र प्रकृति का। कमीना। शोहदा। जैसे, टुच्चा आदमी।

टुटका–संज्ञा पु० दे० "टोटका"।

टुटनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंटी] झारी या गडुवे की पतली नली। छोटी टोंटी।

टुटपुँजिया–वि० [हिं० टूटी + पूँजी] थोड़ी पूँजी का। जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो।

टुटरूँ–संज्ञा पु० [अनु०] छोटी पंडुकी। छोटी फाख्ता।
 मुहा०—टुटरूँ सा = अकेला। एकाकी।

टुटरूँ टूँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] पंडुकी के बोलने का शब्द। पेंडुकी या फ़ाख्ता की बोली।
 वि० (१) अकेला। एकाकी। जैसे, सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही टुटरूँ टूँ रह गया हूँ। (२) दुबला पतला। कमजोर। जैसे, बेचारे टुटरूँ टूँ आदमी कहाँ तक करें।

टुटुका–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता है।

टुटुहा†–संज्ञा पु० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

टुटैला†–वि० [हिं० टूटना] टूटा हुआ। (लश०)

टुड्डी–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंडि] (१) नाभि। ढोंढ़ी।
 संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ी] टुकड़ी। डली।

टुनका †–संज्ञा पु० [देश०] बार बार मूत्रस्राव होने और उसके साथ धातु गिरने का रोग।

टुनकी †–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक परदार कीड़ा जो धान को हानि पहुँचाता है।

टुनगा †–संज्ञा पुं० [सं० तनु = पतला + अग्र = अगला—अन्वग्र] [स्त्री० टुनगी] डाल या टहनी के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनी का अगला भाग।

टुनगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टुनगा] डाल या टहनी के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनी का अगला भाग।

टुनटुना †–संज्ञा पुं० [देश०] मैदे का बना हुआ एक नमकीन पकवान। यह मैदे की चिपटी लंबी पत्तियों को घी में तल कर बनाया जाता है।

टुनहाया–संज्ञा पु० दे० "टोनहाया"।

टुनाका–संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मुसली।

टुनियाँ†–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] मिट्टी का टोंटीदार बरतन।

टुनिहाई†–संज्ञा स्त्री० दे० "टोनहाई"।

टुप्पा–संज्ञा पु० [सं० तुंड] वह नाल जिसमें फल लगते हैं और लटकते हैं, जैसे, कद्दू का टुप्पा।

टुपकना†–क्रि० अ० [अनु०] (१) धीरे से काटना या डंक मारना। (२) किसी के विरुद्ध धीरे से कुछ कह देना। चुगली खाना।
 संयो० क्रि०—देना।

टुब्बी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] गोता। डुब्बी।

टुम्मा–संज्ञा पुं० [देश०] रुपए पाने की एक गैरमामूली रसीद।

टुर्रा–संज्ञा पु० [?] (१) टुकड़ा। डली। दाना। रवा। कण। (२) मोटे अनाज का दाना। ज्वार, बाजरे आदि का दाना।

टुलकना†–क्रि० अ० दे० "ढुलकना"।

टुलड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घास जो पूरबी बंगाल और आसाम में होता है।

टुसकना–क्रि० अ० दे० "टसकना"।

टूँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] पादने का शब्द।

टूँका†–संज्ञा पुं० दे० "टूक"।

टूँगना–क्रि० स० [हिं० टुनगा] (१) (चौपायों का) टहनी के सिरे की कोमल पत्तियों को दाँत से काटना। कुतरना। (२) थोड़ा सा काट कर खाना। कुतर कर चबाना।
 संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

टूँड़–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] [स्त्री० अल्प० टूँड़ी] मच्छड़, मक्खी, टिड्डे आदि कीड़ों के मुँह के आगे निकली हुई बाल की तरह की दो पतली नलियाँ जिन्हें धँसा कर वे रक्त आदि चूसते हैं। (२) जौ, गेहूँ आदि की बाल में दाने के कोश के सिरे पर निकला हुआ बाल की तरह का पतला नुकीला अवयव। सींग। सींगुर।

टूँड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] (१) जौ, गेहूँ, धान आदि की बाल में दानों के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली नोक। सींगा। (२) ढोंढ़ी। नाभि। (३) गाजर, मूली आदि की नोक। (४) किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नोक।

(घाव आदि का) टीस मारना=रह रह कर दर्द करना।
संज्ञा स्त्री० [अं० स्टिच्] किताब की सिलाई। जुज़बंदी।

टीसना–क्रि० अ० [हिं० टीस] (१) चुभती पीड़ा होना। रह रह कर दर्द उठना। कसक होना। (२) घाव फोड़े आदि का दर्द करना।

टुँगना–क्रि० स० [हिं० टुनगा] (१) (चौपायों का) टहनी के सिरे की पत्तियों को दाँत से काटना। कुतरना। (२) कुतर कर चबाना। थोड़ा सा काट कर खाना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

टुंच–वि० [सं० तुच्छ] क्षुद्र। तुच्छ। टुच्चा।

मुहा०—टुंच भिड़ाना=थोड़ी पूँजी से काम करना। टुंच लड़ाना=(१) थोड़ी सी पूँजी से काम प्रारंभ करना। (२) थोड़ी सी पूँजी से जूआ खेलना। धीरे धीरे जीतना।

टुंटा–वि० [सं० रुंड वा हिं० टूटा] जिसका हाथ कटा हो। बिना हाथ का। लूला।

टुंटुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्योनाक। सोना पाठा। अलू। टेंटु। (२) काला खैर।

टुंटुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

टुंड–संज्ञा पुं० [सं० रुंड=बिना सिर का धड़, वा स्थाणु=छिन्न वृक्ष] (१) वह पेड़ जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों। छिन्न वृक्ष। ठूँठ। (२) वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों। (३) कटा हुआ हाथ। (४) एक प्रकार का प्रेत जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह घोड़े पर सवार हो कर और अपना कटा हुआ सिर आगे रख कर रात को निकलता है।

टुंडा–वि० [हिं० टुंड] [स्त्री० टुंडी] (१) जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों। ठूँठा। (२) जिसका हाथ कट गया हो। बिना हाथ का। लूला। लुंजा। (३) (बैल) जिसका एक सींग टूटा हो। एक सींग का बैल। डूँडा।

संज्ञा पुं० (१) हाथ कटा आदमी। लूला मनुष्य। (२) एक सींग का बैल।

टुंडी†–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंडि] नाभि। ढोंढी।

संज्ञा स्त्री० [सं० दंड] बाहुदंड। भुजा। मुश्क।

मुहा०—टुंडियाँ बांधना वा कसना=मुश्कें बाँधना। टुंडियाँ खिंचना=मुश्कें बँधना। हथकड़ी पड़ना।

वि० स्त्री० जिसे हाथ न हो। कटे हाथ की। लूली।

टुइयाँ–संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का सूआ या तोता। सुग्गी। इसकी चोंच पीली और गरदन बैंगनी रंग की होती है।

वि० ठेंगना। नाटा। बौना।

टुइल–संज्ञा स्त्री० [अं० ट्विल] एक प्रकार का मोटा मुलायम सूती कपड़ा।

टुक–वि० [सं० स्तोक=थोड़ा] थोड़ा। ज़रा। किंचित्। तनिक।

मुहा०—टुक सा=जरा सा। थोड़ा सा।

क्रि० वि० थोड़ा। जरा। तनिक। जैसे, टुक इधर देखो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि० वि० वत् ही अधिक होता है। कभी कभी यह यों ही कुछ बेपरवाई या अल्प तत्परता सूचित करने के लिये किसी क्रिया के साथ बोला जाता है। जैसे, टुक जा कर देखो तो।

टुकड़गदा–संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा+फ़ा० गदा] वह भिखमंगा जो घर घर रोटी का टुकड़ा माँग कर खाता हो। भिखारी। मँगता।

वि० (१) तुच्छ। (२) अत्यंत निर्धन। दरिद्र। कंगाल।

टुकड़गदाई–संज्ञा पुं० दे० "टुकड़गदा"।

संज्ञा स्त्री० टुकड़ा माँगने का काम।

टुकड़तोड़–संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा+तोड़ना] दूसरे का दिया हुआ टुकड़ा खा कर रहनेवाला आदमी। दूसरे का आश्रित मनुष्य।

टुकड़ा–संज्ञा पुं० [सं० स्तोक(=थोड़ा), हिं० टुक, टूक+ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० टुकड़ी] (१) किसी वस्तु का वह भाग जो उससे टूट फूट या कट छँट कर अलग हो गया हो। खंड। छिन्न अंश। रेज़ा। जैसे, रोटी का टुकड़ा, कागज या कपड़े का टुकड़ा, पत्थर या ईंट का टुकड़ा।

मुहा०—टुकड़े उड़ाना=काट कर कई भाग करना। टुकड़े करना=काट या तोड़ कर कई भाग करना। खंड करना। टुकड़े टुकड़े उड़ाना=काट कर खंड खंड करना। (किसी वस्तु को) टुकड़े टुकड़े करना=इस प्रकार तोड़ना कि कई खंड हो जाँय। चूर चूर करना। खंडित करना।

(२) चिह्न आदि के द्वारा विभक्त अंश। भाग। जैसे, खेत का टुकड़ा। (३) रोटी का टुकड़ा। रोटी का तोड़ा हुआ अंश। ग्रास। कौर।

मुहा०—(दूसरे का) टुकड़ा तोड़ना=दूसरे की दी हुई रोटी खाना। दूसरे के दिए हुए भोजन पर निर्वाह करना। जैसे, वह सुसराल का टुकड़ा तोड़ता है। टुकड़ा तोड़ कर जवाब देना=दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना'। टुकड़ा देना=भिखमंगे को रोटी या खाना देना। (दूसरे के) टुकड़ों पर पड़ना=दूसरे की दी हुई रोटी खा कर रहना। दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना। पराई कमाई पर गुजर करना। जैसे, वह सुसराल के टुकड़ों पर पड़ा है। टुकड़ा माँगना=भीख माँगना। टुकड़ा सा जवाब देना=झट और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करना। संकोच नहीं करना। साफ इनकार करना। लगी लिपटी न रखना। कोरा जवाब देना। टुकड़ा सा तोड़ कर हाथ में देना=दे० "टुकड़ा सा जवाब देना"।

टुकड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ा] (१) छोटा टुकड़ा। खंड। जैसे, एक टुकड़ी नमक, काँच की टुकड़ी। (२) थान। कपड़े का टुकड़ा। (३) समुदाय। मंडली। दल। जैसे, यारों की

यौ०—टूटा फूटा=जीर्ण। निकम्मा।

मुहा०—टूटी फूटी बातें या बोली=(१) असंबद्ध वाक्य। ऐसे वाक्य जो व्याकरण से शुद्ध और संबद्ध न हों। जैसे, टूटी फूटी अँगरेजी। (२) असष्ट वाक्य। उ०—शीत, पित्त कफ कंठ निरोधे रसना टूटी फूटी बात।—सूर। टूटी बाँह गले पड़ना=अपाहिज के निर्वाह का भार अपने ऊपर पड़ना। किसी संबंधी का खर्च अपने जिम्मे होना।

(२) दुबला। कमजोर। क्षीण। शिथिल। (३) निर्धन। दरिद्र। दीन।

संज्ञा पुं० दे० "टोटा"।

टूठना*—क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा०तुट्ठ] तुष्ट होना। प्रसन्न होना। उ०—हम सों मिले पर्व द्वादश दिन चारिक तुम सों टूठे। सूर आपने प्रानन खेलैं ऊधव खेलैं रूठे।—सूर।

टूठनि*—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूठना] संतोष। तुष्टि। प्रसन्नता। उ०—ठुमुकु ठुमुकु पग धरनि नटनि लरखरनि सुहाई। भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई।—तुलसी।

टूनडोटी—संज्ञा स्त्री० [अं० टाउन-ड्यूटी] चुंगी।

टूना†—संज्ञा पुं० दे० "टोना"।

टूम—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] (१) गहना पाता। आभूषण।

मुहा०—टूमटाम=(१) गहना पाता। वस्त्राभूषण। (२) बनाव सिंगार। टूम छल्ला=छोटा मोटा गहना। साधारण गहना। (२) सुंदर स्त्री। (३) धनी स्त्री। मालदार स्त्री। (४) नीची (बाजारू)। (५) चालाक और चतुर आदमी। (६) ठकसाने या खोदने की क्रिया। झटका। धक्का।

मुहा०—टूम देना=कबूतर को छतरी पर से उड़ाना।

(७) ताना। व्यंग्य।

टूमना†—क्रि० स० [अनु०] (१) धक्का देना। झटका देना। खोदना। (२) ताना मारना। व्यंग्य बोलना।

मुहा०—टूम मारना=ताना मारना।

टूरनामेंट—संज्ञा पुं० [अं०] खेल जिनमें जीतनेवालों को इनाम मिलता है।

टूसा†—संज्ञा पुं० [सं० तुष=भूसी ?] (१) मंदार का फल। ढोढ़ा। (२) रेशा। फुचड़ा। सूत। (३) पकड़ का फूल। पाकर का फूल।

संज्ञा पुं० [देश०] टुकड़ा। खंड।

टूसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूसा] कली। बिना खिला हुआ फूल।

टें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तोते की बोली। सुए की बोली।

यौ०—टेंटें।

मुहा०—टेंटें=व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। टें होना या बोलना=उसी तरह चटपट मर जाना जिस प्रकार बिल्ली के पकड़ने पर तोता एकबार टें शब्द निकाल कर मर जाता है। झट प्राण छोड़ देना। मर जाना। न बचना।

टेंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टेंकिका] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

टेंकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध राग का एक भेद। (२) एक प्रकार का नृत्य।

टेंगड़ा—संज्ञा पुं० दे० "टेंगरा"।

टेंगना—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] टेंगरा मछली। उ०—सँध सुगंध धरे जल बाढ़े। टेंगन मुवे टोय सब काढ़े।—जायसी।

टेंगर—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड=एक मछली] एक प्रकार की मछली जो टेंगरा ही के तरह की पर उससे बहुत बड़ी अर्थात् दो ढाई हाथ तक लंबी होती है। टेंगरा की तरह इसे भी काँटे होते हैं।

टेंगरा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड=एक प्रकार की मछली] एक प्रकार की मछली जो भारत के अनेक भागों में विशेष कर अवध बिहार और बंगाल के उत्तर के जलाशयों में पाई जाती है। यह डेढ़ बालिश्त लंबी तथा सफेद या कुछ कालापन लिए बादामी होती है। इसके शरीर में सेहरा नहीं होता और इस के मुँह के किनारे लंबी मूँछें होती हैं। इसके शरीर में तीन काँटे होते हैं, दो बगल बगल और एक पीठ में। क्रुद्ध होने पर यह इन काँटों से मारती है। सब से बड़ी विलक्षणता इस मछली में यह है कि यह मुँह से गुनगुनाहट के ऐसा एक प्रकार का शब्द निकालती है।

टेंघुना†—संज्ञा पुं० [हिं० अष्ठीवान्] [स्त्री० टेंघुनी] घुटना।

टेंघुनी—संज्ञा स्त्री० दे० "टेंघुना"।

टेंचना†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] खंभा। टेक। चाँड़।

टेंट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तट+ऐंठ] धोती की वह मंडलाकार ऐंठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें लोग कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। मुर्री।

मुहा०—टेंट में कुछ होना=पास में कुछ रुपया पैसा होना।

संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड, हिं० टोंट] (१) कपास की ढोंढ़। कपास का ढोंढ़ा जिसमें से रुई निकलती है। (२) करील का फल। (३) करील। (४) पशुओं के शरीर पर का ऐसा घाव जो ऊपर से देखने में सूखा जान पड़े पर जिसमें से समय समय पर रक्त बहा करे। (५) दे० "टेंटर"।

टेंटड़—संज्ञा पुं० दे० "टेंटर"।

टेंटर—संज्ञा पुं० [सं० तुंड] रोग या चोट के कारण आँख के ढेले पर का उभरा हुआ मांस। ढेढर।

क्रि० प्र०—निकलना।

टेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पक्षी जिसकी चोंच बालिश्त

टूका—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] टुकड़ा । खंड ।
टूकरा†—संज्ञा पुं० दे० "टुकड़ा" ।
टूका†—संज्ञा पुं० [हिं० टूक] (१) टुकड़ा । खंड । (२) रोटी का टुकड़ा । (३) रोटी का चौथाई भाग । (४) भिक्षा । भीख ।
क्रि० प्र०—माँगना ।

टूकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक] (१) टूक । खंड । टुकड़ा । (२) अँगिया के मुलकट के ऊपर की चकती ।

टूक्यो*—संज्ञा पुं० [?] भालू । (डिं०)

टूट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूटना, सं० त्रुटि] (१) वह अंश जो टूट कर अलग हो गया हो । खंड । टूटन ।
यौ०—टूट फूट ।
(२) टूटने का भाव । (३) किसी लिखावट में वह भूल से छूटा हुआ शब्द या वाक्य जो पीछे से किनारे पर लिख दिया जाता है ।
† संज्ञा पुं० टोटा । घाटा । कमी ।

टूटना—क्रि० अ० [सं० त्रुट] (१) किसी वस्तु का आघात, दबाव या झटके के द्वारा दो या कई भागों में एक बारगी विभक्त होना । टुकड़े टुकड़े होना । खंडित होना । भग्न होना । जैसे, छड़ी टूटना, रस्सी टूटना ।
संयो० क्रि०—जाना ।
यौ०—टूटना फूटना ।
विशेष—'टूटना' और 'फूटना' क्रिया में यह अंतर है कि 'फूटना' खरी वस्तुओं के लिये बोला जाता है विशेषतः ऐसी जिनके भीतर अवकाश या खाली जगह रहती है, जैसे, घड़ा फूटना; बरतन फूटना, खपड़े फूटना, सिर फूटना । लकड़ी आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये 'फूटना' का प्रयोग नहीं होता । पर 'फूटना' के स्थान पर पश्चिमी हिंदी में 'टूटना' का प्रयोग होता है, जैसे, घड़ा टूटना ।
(२) किसी अंग के जोड़ का उखड़ जाना । किसी अंग का चोट खा कर ढीला और बेकाम हो जाना । जैसे, हाथ टूटना, पैर टूटना । (३) किसी लगातार चलनेवाली वस्तु का रुक जाना । चलते हुए क्रम का भंग होना । सिलसिला बंद होना । जारी न रहना । उ०—पानी इस प्रकार गिराओ कि धार न टूटे । (४) किसी ओर एकबारगी वेग से जाना । किसी वस्तु पर झपटना । झुकना । जैसे, चील का मांस पर टूटना, बच्चे का खिलौने पर टूटना ।
संयो० क्रि०—पड़ना ।
(५) अधिक समूह में आना । एक बारगी बहुत सा आ पड़ना । पिल पड़ना । जैसे, दूकान पर ग्राहकों का टूटना, विपत्ति या आपत्ति टूटना ।
संयो० क्रि०—पड़ना ।
मुहा०—टूट टूट कर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना । मूसलाधार बरसना ।
(६) दल बाँध कर सहसा आक्रमण करना । एकबारगी धावा करना । जैसे, फौज का दुश्मन पर टूटना ।
संयो० क्रि०—पड़ना ।
(७) अनायास कहीं से आ जाना । अकस्मात् प्राप्त होना । जैसे, दो ही महीने में इतनी सम्पत्ति कहाँ से टूट पड़ी ? उ०—आयो हमारे मया करि मोहन मोको तो मानो महानिधि टूटी ।—देव । (८) पृथक् होना । अलग होना । च्युत होना । मेल में न रहना । जैसे, पंक्ति से टूटना, गवाह का टूट जाना ।
संयो० क्रि०—जाना ।
(९) संबंध छूटना । लगाव न रह जाना । जैसे, नाता टूटना, मित्रता टूटना ।
संयो क्रि०—जाना ।
(१०) दुर्बल होना । कृश होना । दुबला पड़ना । क्षीण होना । कम होना । उ०—(क) वह खाने बिना टूट गया है । (ख) उसका सारा बल टूट गया ।
संयो० क्रि०—जाना ।
मुहा०—(कुएँ का) पानी टूटना = पानी कम होना ।
(११) धनहीन होना । कंगाल होना । बिगड़ जाना । जैसे, इस रोजगार में बहुत से महाजन टूट गए ।
संयो० क्रि०—जाना ।
(१२) चलता न रहना । बंद हो जाना । किसी संस्था, कार्यालय आदि का न रह जाना । जैसे, स्कूल टूटना, बाजार टूटना, कोठी टूटना, मुकदमा टूटना ।
संयो० क्रि०—जाना ।
(१३) किसी स्थान, जैसे गढ़ आदि का शत्रु के अधिकार में जाना । युद्ध में किले का ले लिया जाना । जैसे, किला टूटना । उ०—मेघनाद तहँ करइ लराई । टूट न द्वार परम कठिनाई ।—तुलसी ।
संयो० क्रि०—जाना ।
(१४) रुपए का बाकी पड़ना । वसूल न होना । जैसे, अभी हिसाब साफ नहीं हुआ, हमारे १०) टूटते हैं । (१५) टोटा होना । घाटा होना । हानि होना । (१६) शरीर में ऐंठन या तनाव लिए हुए पीड़ा होना । जैसे, बुखार चढ़ने पर जोड़ जोड़ टूटता है ।
मुहा०—बदन या अंग टूटना = अंगड़ाई आना ।
(१७) पेड़ों से फल तोड़ा जाना । फलों का इकट्ठा किया जाना । फल उतरना । जैसे, आम टूटना ।

टूटा—वि० [हिं० टूटना] [स्त्री० टूटी] (१) टुकड़े किया हुआ । भग्न । खंडित ।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] किसी चीज को उठाने या गिराने का औजार। (लश०)

टेकान—संज्ञा पु० [हिं० टेकाना] (१) टेक। वह लकड़ी जो किसी गिरनेवाली धरन छत आदि को सँभालने के लिये उसके नीचे खड़ी कर दी जाती है। चाँड़। (२) वह ऊँचा चबूतरा या खंभा जिस पर बोझा ढोनेवाले अपना बोझा अड़ा कर थोड़ी देर सुस्ता लेते हैं। धरम ढीहा।

टेकाना †—क्रि० स० [हिं० टेकना] (१) किसी वस्तु को कहीं ले जाने में सहायता देने के लिये पकड़ना। उठा कर ले जाने में सहारा देने के लिये थामना। जैसे, चारपाई को टेका लो, भीतर कर दें।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) उठने बैठने या चलने फिरने में सहायता देने के लिये पकड़ना। सहारा देने के लिये थामना। जैसे, ये इतने कमजोर हो गए हैं कि दो आदमी टेका कर उन्हें भीतर बाहर ले जाते हैं।

टेकानी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना] पहिये को रोकने की कील। किल्ली।

टेकी—संज्ञा पु० [हिं० टेक] (१) कही हुई बात पर जमा रहनेवाला। प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। (२) अड़नेवाला। हठी। दुराग्रही। जिद्दी।

टेकुआ †—संज्ञा पु० [स० तर्कुक, प्रा० टक्कुअ] चरखे का तकला जिस पर सूत कात कर लपेटा जाता है।

संज्ञा पु० [हिं० टेक] (१) टिकाने या अड़ाने की वस्तु। अड़ुकना। (२) सहारे की वह लकड़ी जो एक पहिया निकाल लेने पर गाड़ी को ऊपर ठहराए रखने के लिये लगाई जाती है।

टेकुरा †—संज्ञा पु० [देश०] पान।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [स० तर्कु, हिं० टेकुआ] (१) फिरकी लगा हुआ सूआ जिसके घूमने से फँसी हुई रुई का सूत कत कर लिपटता जाता है। सूत कातने का तकला। (२) बाँस की डाँड़ी के एक छोर पर लाह लगा कर बनाई हुई जोलाहों की फिरकी जिसकी नोक में रेशम फँसाया रहता है। (३) रस्सी बटने का तकला या औजार। (४) चमारों का सूआ जिससे वे तागा खींचते और निकालते हैं। (५) गोप नाम का गहना बनाने के लिये सोनारों की सलाई जिससे तार खींच कर फंदा दिया जाता है। (६) मूर्त्ति बनानेवालों का चिपटी धार का एक औजार जिससे वे मूर्त्ति का तल साफ और चिकना करते हैं।

टेघरना †—क्रि० अ० दे० "टिघलना"।

टेचिन—संज्ञा पुं० [अं० स्टिचिंग] एक प्रकार का काँटा जिसके एक ओर माथा होता है और दूसरी ओर पेच और ढिबरी होती है। यह किसी चीज को अड़ाने या थामने के काम में आता है। (लश०)।

टेटका†—संज्ञा पु० [स० ताटंक] कान में पहनने का एक गहना।

टेढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] (१) टेढ़ापन। वक्रता। (२) अकड़। ऐंठ। उजड्डपन। नटखटी। शरारत।

मुहा०—टेढ़ की लेना = नटखटी करना। शरारत करना। उजड्डपन करना।

† वि० दे० "टेढ़ा"।

टेढ़बिड़ंगा—वि० [हिं० टेढ़ा + बेढंगा] टेढ़ा मेढ़ा। टेढ़ा और बेढंगा। बेडौल।

टेढ़ा—वि० [सं० तिरस् = टेढ़ा] [स्त्री० टेढ़ी] (१) जो लगातार एक ही दिशा को न गया हो, इधर उधर झुका या घूमा हो। फेर खा कर गया हुआ। जो सीधा न हो। वक्र। कुटिल। जैसे, टेढ़ी लकीर, टेढ़ी छड़ी, टेढ़ा रास्ता।

यौ०—टेढ़ा मेढ़ा = जो सीधा और सुडौल न हो। टेढ़ा बाँका = नोक झोंक का। बना ठना। छैल चिकनिया।

मुहा०—टेढ़ी चितवन = तिरछी चितवन। भावभरी दृष्टि।

(२) जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो समानांतर न गया हो। तिरछा। (३) जो सुगम न हो। जो सहज न हो। कठिन। पेंड़ा। फेरफार का। मुश्किल। पेचीला। जैसे, टेढ़ा काम, टेढ़ा प्रश्न, टेढ़ा मामला।

मुहा०—टेढ़ी खीर = मुश्किल काम। कठिन कार्य। दुष्कर कार्य। (इस मुहा० के संबंध में लोग एक कथा कहते हैं। एक आदमी ने एक अंधे से पूछा "खीर खाओगे?" अंधे ने पूछा "खीर कैसी होती है?" उस आदमी ने कहा "सफेद"। फिर अंधे ने पूछा "सफेद कैसा?" उसने उत्तर दिया "जैसा बगला होता है"। अंधे ने पूछा "बगला कैसा होता है?" इस पर उस आदमी ने हाथ टेढ़ा करके दिखाया। अंधे ने टटोल कर कहा—"यह तो टेढ़ी खीर है न खाई जायगी)।

(४) जो शिष्ट या नम्र न हो। उद्धत। उग्र। उजड्ड। दुःशील। कोपवान्। जैसे, टेढ़ा आदमी, टेढ़ी बात। उ०—टेढ़े आदमी से कोई नहीं बोलता।

मुहा०—टेढ़ा पड़ना या होना = (१) उग्र रूप धारण करना। बिगड़ना। कुपित होना। कठोर व्यवहार करना। जैसे, कुछ टेढ़े पड़ोगे तभी रुपया निकलेगा, सीधे से माँगने से नहीं। (२) अकड़ना। ऐंठना। टर्राना। जैसे, वह जरा सी बात में टेढ़ा हो जाता है। टेढ़ी आँख से देखना = क्रूर दृष्टि करना। शत्रुता की दृष्टि से देखना। अनिष्ट करने का विचार करना। बुरा व्यवहार करने का विचार करना। टेढ़ी आँखें करना = कुपित दृष्टि करना। क्रोध की आकृति बनाना। बिगड़ना।

भर की और पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका वदन चितकबरा पर चोंच काली होती है।

टेंटार–संज्ञा पुं० दे० "टेंटा"।

टेंटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टेंट] (१) करील। उ०—सूर कहौ कैसे रुचि मानै टेंटी के फल खारे।—सूर। (२) करील का फल। कचड़ा।

टेंटु–संज्ञा पुं० [सं० टुंटुक] श्योनाक। सोनापाठा।

टेंटुवा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) गला। घेंटू। घीची। (२) अँगूठा।

टेंटें–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) तोते की बोली। (२) व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। धृष्टतापूर्ण बात। जैसे, कहाँ राम राम, कहाँ टेंटें।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

टेंड–संज्ञा स्त्री० दे० "टिंड"।

टेंडसी–संज्ञा स्त्री० दे० "टिंडसी"।

टेउ†–संज्ञा स्त्री० "टेव"।

टेउकन–संज्ञा पुं० दे० "टेकन"।

टेउकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] (१) किसी वस्तु को लुढ़कने या गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे लगाई वस्तु। (२) जुलाहों की वह लकड़ी जो ताने की डाँड़ी में इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे।

टेक–संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] (१) वह लकड़ी या खंभा जो किसी भारी वस्तु को अड़ाए वा टिकाए रखने के लिये नीचे या बगल से भिड़ा कर लगाया जाता है। चाँड़। थूनी। थम।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) टिकने या भार देने की वस्तु। ओठँगने की चीज़। ढासना। सहारा। (३) आश्रय। अवलंब। उ०—दै मुद्रिका टेक तेहि अवसर सुचि समीरसुत पैर गहे री।—तुलसी। (४) बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा चबूतरा या बेदी। बैठने का स्थान। जैसे, रामटेक। (५) ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी। (६) चित्त में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन में ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। अड़। हठ। जिद। उ०—सोइ गोसाइँ जो विधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक निभना=(१) जिस बात के लिये आग्रह या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होनी। टेक रहना=दे० "टेक निभना"। टेक पकड़ना या गहना=हठ करना। जिद करना।

(७) वह बात जो अभ्यास पड़ जाने के कारण कोई मनुष्य अवश्य करे। बान। आदत। संस्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(८) गीत का वह पद या टुकड़ा जो बार बार गाया जाय। स्थायी। (९) पृथ्वी की नोक जो पानी में कुछ दूर तक चली गई हो। (लश०)

टेकड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] (१) टीला। ऊँचा धुस्स। (२) छोटी पहाड़ी।

टेकन–संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] [स्त्री० टेकनी] वह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवाली वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे या बगल में लगाई जाय। अढ़ुकन। रोक। जैसे, घड़े के नीचे टेकन लगा दो।

क्रि० प्र०—लगाना।

टेकना–क्रि० स० [हिं० टेक] (१) खड़े खड़े या बैठे बैठे श्रम से बचने के लिये शरीर के बोझ को किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत डालना। सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साथ भिड़ाना। सहारा लेना। ढासना लेना। आश्रय बनाना। जैसे, दीवार या खंभा टेक कर खड़ा होना।

संयो० क्रि०—लेना।

(२) किसी अंग को सहारे आदि के लिये कहीं टिकाना। ठहराना या रखना।

मुहा०—माथा टेकना=प्रणाम करना। दंडवत करना।

(३) चलने, चढ़ने,, उठने बैठने आदि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसको हाथ से पकड़ना। सहारे के लिये थामना। जैसे, चारपाई टेक कर उठना बैठना, लाठी टेक कर चलना। उ०—(क) सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि।—सूर। (ख) नाचत गावत गुन की खानि। समित भए टेकत पिय पानि।—सूर। (४) चलने में गिरने पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना। हाथ का सहारा लेना। उ०—गृह गृह गृह द्वार फिरयो तुम को प्रभु छाँड़े। अंध अंध टेकि चलै क्यों न परै गाड़े?—सूर। † * (५) टेक करना। हठ करना। ठानना। उ०—सोइ गोसाइँ जेइ विधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली धान। चनाव।

टेकनी–संज्ञा स्त्री दे० "टेकन"।

टेकर, टेकरा–संज्ञा पुं० [हिं० टेक] [स्त्री० टेकरी] (१) टीला। उठी हुई भूमि। (२) छोटी पहाड़ी।

टेकरी–संज्ञा स्त्री० दे० "टेकरा"।

टेकला † *–संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] धुन। रट। उ०—बन घन पुकारूँ एकला, डारूँ गले बिच मेंखला, एक नाम की है टेकला, सोहबत की ताईं में क्या करूँ।—कबीर।

की तरह घुमा कर जड़ा रहता है, एक नली के भीतर बैठाई रहती है। चुंबक के एक छोर के पास लोहे का एक पत्तर बँधा रहता है। यह पत्तर काठ की खोली में रहता है जिसका मुँह एक ओर चोंगे की तरह खुला रहता है। इस प्रकार दो चोंगों की आवश्यकता टेलिफोन में होती है एक बोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये। इन दोनों चोंगों के बीच तार लगा रहता है। शब्द वायु में उत्पन्न तरंग या कंप मात्र है। मुँह से निकला हुआ शब्द चोंगे के भीतर की वायु को कंपित करता है जिसके कारण बँधे हुए लोहे के पत्तर में भी कंप होता है अर्थात् वह आगे पीछे जल्दी जल्दी हिलता है। इस हिलने से चुंबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है। इस प्रकार तार की मंडलाकार कमानी के एक बार एक ओर और दूसरी बार दूसरी ओर बिजली उत्पन्न होती रहती है। इसी बिजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है। टेलिफोन के द्वारा स्थल पर सौ सौ कोस दूर तक की और समुद्र में ३०—४० कोस तक की कही बातें सुनाई पड़ती हैं।

टेली—संज्ञा पुं० [देश०] मझले आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है तथा चारपाई, औजारों के दस्ते आदि बनाने के काम में आती है। यह पेड़ आसाम, कछार, सिलहट और चटगाँव में बहुत होता है।

टेव—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] अभ्यास। आदत। बान। स्वभाव। प्रकृति। उ०—(क) सुनु मैया याकी टेव लरन की, सकुच बेचि सी खाई।—तुलसी। (ख) तुम तो टेव जानतिहि ह्वैहौ तऊ मोहि कहि आवै। प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टेवकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेवकन, टेकन] (१) दोनों छोरों पर कुछ दूर तक बाँस की एक चिरी लकड़ी जो जुलाहों की डाँड़ी में इसलिये लगी रहती है जिसमें ताना गिरने न पावे। (२) नाव के पालों में से सब से ऊपर का छोटा पाल।

टेवना†—क्रि० स० दे० "टेना"।

टेवा—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पन] (१) जन्मपत्री। जन्मकुंडली। (२) लग्नपत्र जिसमें विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लड़की के यहाँ से शकुन के साथ नाई ले जा कर लड़के के पिता को विवाह से १० या १२ दिन पहले देता है।

टेवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० टेवना] टेनेवाला। सिल्ली पर धार तेज करनेवाला। चोखा करनेवाला। उ०—जहाँ जमजातन घोर नदी भट कोटि जलचर दंत टेवैया।—तुलसी।

टेसुआ†—संज्ञा पुं० दे० "टेसू"।

टेसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] (१) पलाश का फूल। ढाक का फूल।

विशेष—इसे उबालने से इसमें से एक बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रँगे जाते थे। दे० "पलाश"।

(२) पलाश का पेड़। (३) लड़कों का एक उत्सव जिसमें विजयादशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे हो कर घास का एक पुतला सा ले कर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं। प्रत्येक घर से उन्हें कुछ अन्न या पैसा मिलता है। इसी प्रकार पाँच दिन तक अर्थात् शरदपूनो तक करते और जो कुछ भिक्षा मिलती उसे इकट्ठा करते जाते हैं। पूनों की रात को मिले हुए द्रव्य से लावा मिठाई आदि ले कर वे बोए हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और बलाबल की परीक्षा संबंधी बहुत सी कसरतें और खेल होते हैं। सब के अंत में लावा मिठाई लड़कों में बँटती है। टेसू के गीत इस प्रकार के होते हैं। इमली की जड़ से निकली पतंग। नौ सौ मोती नौ सौ रंग। रंग रंग की बनी कमान। टेसू आया घर के द्वार। खोलो रानी चंदन किवार। उ०—जे कच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल। तिन केसन को भस्म चढ़ावत टेसू के से खेल।—सूर।

टेहला†—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह के व्यवहार। व्याह की रीति रस्म।

टैयाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी कौड़ी जिसकी पीठ साधारण कौड़ी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो चार उभरे हुए बड़े दाने से होते हैं। इसका रंग नीलापन लिए नहीं होता। कुछ पीलापन लिए या बिलकुल सफेद होता है। फेंकने से यह चित अधिक पड़ती है इसीसे इसका व्यवहार जुए में होता है। इसे चित्ती भी कहते हैं।

टैक्स—संज्ञा पुं० [अं०] कर या महसूल जो राज्य की ओर से किसी वस्तु पर लगाया जाय। जैसे, इनकम-टैक्स।

टैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

टैना†—संज्ञा पुं० [देश०] घास का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली हाँड़ी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिये रखते हैं।

टैनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों का झुंड। (गड़ेरिये)

टैरा†—संज्ञा पुं० दे० "टेरा"।

टैरी—संज्ञा स्त्री० दे० "टेरी"।

टोंका—संज्ञा पुं० दे० "टोंका"।

संज्ञा स्त्री० दे० "टोक"।

टोंका†—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक = थोड़ा] (१) छोर। सिरा। किनारा।

टेढ़ी सीधी सुनाना=ऊँची नीची सुनाना। खरी खोटी सुनाना। भला बुरा कहना। टेढ़ी सुनाना=दे० "टेढ़ी सीधी सुनाना"।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] टेढ़ा होने का भाव। टेढ़ापन।

टेढ़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० टेढ़ा + पन (प्रत्य०)] टेढ़ा होने का भाव।

टेढ़े—क्रि० वि० [हिं० टेढ़ा] सीधे नहीं। घुमाव फिराव के साथ। जैसे, वह टेढ़े जा रहा है।

मुहा०—टेढ़े टेढ़े जाना=इतराना। घमंड करना। उ०—(क) कबहुँ कमला चपला पाय के टेढ़े टेढ़े जात। कबहुँक मग मग धूरि टटोरत, भोजन को बिललात।—सूर। (ख) जो रहीम ओछो बढ़ै तौ अति ही इतरात। प्यादा से फरजी भयो टेढ़े टेढ़े जात।—रहीम।

टेना—क्रि० स० [हिं० टेव + ना (प्रत्य०)] (१) किसी हथियार की धार को तेज करने के लिये उसे पत्थर आदि पर रगड़ना। तेज करने के लिये रगड़ना। उ०—कुबरी करी कुबलि कैकेई। कपट छुरी उर-पाहन टेई।—तुलसी। (२) मूछ के बालों को खड़ा करने के लिये ऐंठना। जैसे, मूँछ टेना।

टेनिस—संज्ञा पुं० [अं०] गेंद का एक प्रकार का अँगरेजी खेल।

टेनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी उँगली।

मुहा०—टेनी मारना=सौदा तौलने में उँगली को इस तरह घुमाना फिराना कि चीज़ कम चढ़े। (सौदा) कम तौलना।

टेपारा—संज्ञा पुं० दे० "टिपारा"।

टेबुल—संज्ञा पुं० [अं०] मेज़।

टेम—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिमटमाना] दीपशिखा। दिए की लौ। दीपक की ज्योति। लाट।

संज्ञा पुं० [अं० टाइम] समय। वक्त।

टेमन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

टेमा—संज्ञा पुं० [देश०] कटे हुए चारे की छोटी अँटिया।

टेर—संज्ञा स्त्री० [सं० तार=संगीत मे ऊँचा स्वर] (१) गाने में ऊँचा स्वर। तान। टीप।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) बुलाने का ऊँचा शब्द। पुकारने की आवाज़। बुलाहट। पुकार। हाँक। उ०—(क) टेर लखन सुनि बिकल जानकी अति आतुर उठि धाई।—सूर। (ख) कुश की टेर सुनी जबै फूलि फिरे शत्रुघ्न।—केशव।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर=तै करना] निर्वाह। गुज़र।

मुहा०—टेर करना=गुज़ारना। बिताना। काटना। जैसे, ज़िंदगी टेर करना।

टेरना—क्रि० स० [हिं० टेर + ना (प्रत्य०)] (१) ऊँचे स्वर से गाना। तान लगाना। (२) बुलाना। पुकारना। हाँक लगाना। उ०—(क) भई साँझ जननी टेरत है कहाँ गए चारो भाई।—सूर। (ख) फिरि फिरि राम सीय तन हेरत। तृषित जानि जल लेन लखन गए, भुज उठाय ऊँचे चढ़ि टेरत।—तुलसी।

क्रि० स० [सं० तीरण=तै करना] (१) तै करना। चलता करना। निबाहना। पूरा करना। जैसे, थोड़ा सा काम और रह गया है किसी प्रकार टेर ले चलो। (२) बिताना। गुज़ारना। काटना। जैसे, वह इसी प्रकार ज़िंदगी टेर ले जायगा।

संयो० क्रि०—ले चलना।—ले जाना।

टेरवा—संज्ञा पुं० [देश०] हुक्के की वह नली जिस पर चिलम रखी जाती है।

टेरा—संज्ञा पुं० [?] (१) ढेरा। अंकोल का पेड़। (२) पेड़ों का धड़। तना। वृक्षस्तंभ। जैसे, केले का टेरा। (३) शाखा।

वि० [सं० टेर] ऐंचाताना। टेरा। भेंगा।

टेराकोटा—संज्ञा पुं० [अं०] (१) पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्त्तियाँ, इमारतों में लगाने के लिये बेलबूटे आदि बनते हैं। (२) पकी हुई मिट्टी का सा रंग। ईंटकोहिया रंग।

टेरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टहनी। पतली शाखा। जैसे, नीम की टेरी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकुरी] दरी बुनने का सूजा।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक पौधा जिसकी कलियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने में काम आती हैं। इसे 'बलेरी' और 'कुंती' भी कहते हैं। (२) बक्कम की फली।

टेरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] सरसों का एक भेद। उलटी।

टेलिग्राफ़—संज्ञा पुं० [अं०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं। दे० "तार"।

टेलिग्राम—संज्ञा पुं०] [अं०] तार से भेजी हुई खबर।

टेलिफोन—संज्ञा पुं० [अं०] वह तार जिसके द्वारा एक स्थान पर कहा हुआ शब्द कितने ही कोस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई पड़ता है।

विशेष—इसकी साधारण युक्ति यह है कि दो चोंगे लो जिनका मुँह एक ओर कागज चमड़े आदि से मढ़ा हो और दूसरी ओर खुला हो। मढ़े हुए चमड़े के बीचो बीच से लोहे का एक लंबा तार ले आ कर दोनों चोंगों के बीच लगा दो। यदि एक चोंगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे चोंगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान लगा होगा तो वह बात सुनाई पड़ेगी। पर यह युक्ति थोड़ी ही दूर के लिये काम दे सकती है। अधिक दूर के लिये बिजली के प्रवाह का सहारा लिया जाता है। चुंबक की एक छड़, जिसमें रेशम (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे हो कर बिजली का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ ताँबे का तार कमानी

(२) काली हाँड़ी जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं।

टोटकेहाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोटका] टोटका करनेवाली। टोना या जादू करनेवाली।

टोटल–संज्ञा पुं० [अं०] जोड़। ठीक। मीज़ान।

मुहा०—*टोटल मिलाना=जोड़ ठीक करना।*

टोटा–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] (१) बाँस आदि का कटा हुआ टुकड़ा। (२) मोमबत्ती का जलने से बचा हुआ टुकड़ा। (३) कारतूस। (४) एक प्रकार की आतशबाजी।

संज्ञा पुं० [हिं० टूटना, टूटा] (१) घाटा। हानि।

क्रि० प्र०—उठाना।—सहना।

मुहा०—टोटा देना या भरना=नुकसान पूरा करना। घाटा पूरा करना। हरजाना देना।

(२) *कमी। अभाव। जैसे, यहाँ कागज का क्या टोटा है।*

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोड़ा–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] चोंच के आकार का गढ़ा हुआ काठ का डेढ़ दो हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बढ़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाया जाता है। टोंटा।

टोड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० त्रोटकी] (१) एक रागिनी जिसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड पर्यंत है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ध प म ग ग ग रे स। रे सा नि स नि ध ध नि स रे ग रे स नि स नि ध। प ग ग म ग रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ध प। म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ध ध ध नि स। हनुमत मत से इसका स्वरग्राम यह है—म प ध नि स रे ग म अथवा स रे ग म प ध नि स। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यम के अतिरिक्त बाकी सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है और इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में वीणा लिए हुए, प्रिय के विरह में गाती हुई, श्वेतवस्त्र धारण किए और सुंदर नेत्रोंवाली। (२) चार मात्राओं का एक ताल जिसमें ३ आघात और २ खाली रहते हैं। इसका तबले का बोल यह है—

```
          +         ०        ३        ०        +
बोल यह है—धिन्  धा, गेदिन,  जिनता,  गेदिन। धा।
     +    ०    ०    ०    +
अथवा घेड़ां केटे, नेड़ा केटे। धा।
```

टोनहा†–वि० [हिं० टोना] [स्त्री० टोनही] टोना करनेवाला। जादू मारनेवाला।

टोनहाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोना+हाई (प्रत्य०)] (१) टोना करनेवाली। जादू मारनेवाली। नजर लगानेवाली। (२) मंत्र और झाड़ फूँक करनेवाली।

टोनहाया–संज्ञा पुं० [हिं० टोना] टोना करनेवाला मनुष्य। जादू करनेवाला मनुष्य।

टोना–संज्ञा पुं० [सं० तंत्र] (१) मंत्र तंत्र का प्रयोग। जादू।

क्रि० प्र०—करना।—चलाना।—मारना।

(२) एक प्रकार का गीत जो विवाह में गाया जाता है और जिसमें 'टोना' शब्द कई बार आता है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी चिड़िया। उ०—जुर्रा बाज बाँसे, कुही, बहरी, लगर लीन टोने जरकटी त्यों सचान मानचारे हैं।—रघुराज।

† क्रि० स० [सं० त्वक्=स्पर्शेंद्रिय+ना (प्रत्य०)] हाथ से टटोलना। छूना। छू कर मालूम करना।

टोनाहाई–*संज्ञा स्त्री० दे० "टोनहाई"।*

टोप–संज्ञा पुं० [हिं० तोपना=ढाँकना] (१) बड़ी टोपी। सिर का बड़ा पहरावा।

यौ०—कनटोप।

(२) सिर की रक्षा के लिये लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी। शिरस्त्राण। खोद। कूँड़। (३) खोल। गिलाफ। (४) अंगुश्ताना।

† संज्ञा पुं० [अनु० टप टप या सं० स्तोक] बूँद। कतरा।

टोपन–संज्ञा पुं० [देश०] टोकरा।

टोपरा†–संज्ञा पुं० दे० "टोकरा"।

टोपरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "टोकरी"।

टोपही†–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोप] बरतन के साँचे का सब से ऊपरी *भाग जो कटोरे के आकार का होता है।*

टोपा–संज्ञा पुं० [हिं० टोप] बड़ी टोपी।

† संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] टोकरा।

† संज्ञा पुं० [सं० टंकन, हिं० तोपना, तुरपना] टाँका। डोभ। सीवन।

मुहा०—टोपा भरना=तागा भरना। सीना।

टोपी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना=ढकना] (१) सिर पर का पहरावा। सिर ढाकने के लिये बना हुआ आच्छादन।

क्रि० प्र०—*पहनना।—लगाना।*

मुहा०—टोपी उछलना=निरादर होना। बेइज्जती होना। टोपी उछालना=निरादर करना। बेइज्जती करना। टोपी देना=टोपी पहनना। टोपी बदलना=भाई भाई का संबंध जोड़ना। भाईचारा करना। टोपी बदल भाई=वह जिससे टोपी बदल कर भाई का संबंध जोड़ा गया हो।

विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी टोपी उसे पहनाते और उसकी टोपी आप पहनते हैं।

(२) राजमुकुट। ताज।

(२) नोक। कोना। (३) जमीन जो नदी में कुछ दूर तक चली गई हो। (मल्लाह)

टोंगा–संज्ञा पुं० दे० "टाँगा"।

टोंगू–संज्ञा पुं० [देश०] फैलनेवाली एक झाड़ी जिसकी छाल के रेशों से रस्सी बनाई जाती है। जिती। जक।

टोंचना–क्रि० स० [सं० टंकन] चुभाना। गड़ाना। धँसाना।

टोंट–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] ठोर। चोंच।

टोंटरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "टोंटी"।

टोंटा–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] (१) चिड़िया की चोंच के आकार की निकली हुई कोई वस्तु। (२) चोंच के आकार के गढ़े हुए काठ के डेढ़ दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बढ़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए जाते हैं। घोड़िया। (३) पानी आदि ढालने के लिये बरतन में लगी हुई नली।

टोंटी–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] (१) पानी आदि ढालने के लिये झारी लोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है। तुलतुली। (२) पशुओं का थूयन। जैसे, सूअर की टोंटी।

टोंस–संज्ञा स्त्री० दे० "टौंस"।

टोआ–संज्ञा पुं० [सं० तोय = पानी ?] गड्ढा। (पंजाब)

टोइयाँ–संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का सूआ जिसकी चोंच पीली होती है और कंठ से ले कर चोंच तक सारा भाग बैंगनी होता है। तोती।

टोई†–संज्ञा स्त्री० [देश०] पोर। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग।

टोक†–संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] एक बार में मुँह से निकला हुआ शब्द। किसी पद या शब्द का टुकड़ा। उच्चारण किया हुआ अक्षर। जैसे, एक टोक मुँह से न निकला।

संज्ञा स्त्री० (१) छोटा सा वाक्य जो किसी को कोई काम करते देख उसे टोकने या पूछ ताछ करने के लिये कहा जाय। जैसे, "क्या करते हो ?", "कहाँ जाते हो ?" इत्यादि। पूछ ताछ। प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा।

यौ०—टोक टाक = पूछ ताछ। प्रश्न आदि द्वारा बाधा। जैसे, बड़े जरूरी काम से जा रहे हैं, टोक टाक न करो। रोक टोक = मनाही। मुमानिअत। निषेध।

(२) नजर। बुरी दृष्टि का प्रभाव। (स्त्रि०)।

मुहा०—टोक में आना = नजर लगानेवाले आदमी के सामने पड़ जाना। जैसे, बच्चा टोक में आ गया।

टोकना–क्रि० स० [हिं० टोक] (१) किसी को कोई काम करते हुए देख कर उसे कुछ कह कर रोकना या पूछ ताछ करना। जैसे, 'क्या करते हो ?' 'कहाँ जाते हो ?' इत्यादि। बीच में बोल उठना। प्रश्न आदि कर के किसी कार्य्य में बाधा डालना। उ०—गोपिन के यह ध्यान कन्हाई। नेकु न अंतर होय कन्हाई। घाट बाट जमुना तट रोकै। मारग चलत जहाँ तहँ टोकै।—सूर।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई रोक कर कुछ पूछता है तो यात्री अपने कार्य्य की सिद्धि के लिये बुरा शकुन समझता है।

(२) नजर लगाना। बुरी दृष्टि डालना। हूँसना। (३) एक पहलवान का दूसरे पहलवान से लड़ने के लिये कहना।

संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकनी] (१) टोकरा। डला। (२) पानी रखने का धातु का बड़ा बरतन। एक प्रकार का हंडा।

टोकनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकना] (१) टोकरी। डलिया। (२) पानी रखने का छोटा हंडा। (३) बटलोई। देगची।

टोकरा–संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकरी] बाँस की चिरी हुई फट्टियों, अरहर, झाऊ की पतली टहनियों आदि को गाँछ कर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तरकारी, फल आदि रखते हैं। छावड़ा। डला। झाबा। खाँचा।

मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = इज्जत बनी रहना। परदा न खुलना। भरम बना रहना।

टोकरिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "टोकरी"।

टोकरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकरा] (१) छोटा टोकरा। छोटा डला या छावड़ा। झाँपी। झपोली। (२) देगची। बटलोई।

टोकवा†–संज्ञा पुं० [देश०] उत्पाती लड़का। नटखट लड़का।

टोकसी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] नरियरी। नारियल की आधी खोपड़ी।

टोका–संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो उर्द की फसल को हानि पहुँचाता है।

संज्ञा पुं० दे० "टोंका"।

टोकारा†–संज्ञा पुं० [हिं० टोक] वह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात चेताने या स्मरण दिलाने के लिये कहा जाय। इशारे के लिये मुँह से निकाला हुआ शब्द।

टोट–संज्ञा पुं० दे० "टोटा"।

टोटका–संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] (१) किसी बाधा को दूर करने या किसी मनोरथ को सिद्ध करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी अलौकिक या दैवी शक्ति पर विश्वास करके किया जाय। टोना। यंत्र मंत्र। तांत्रिक प्रयोग। लटका।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टोटका करने आना = आकर कुछ भी न ठहरना। थोड़ी देर भी न बैठना। तुरंत चला जाना। जैसे, थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने आई थी। (स्त्रि०)। टोटका होना = किसी बात का चटपट हो जाना। किसी बात का ऐसी जल्दी होना कि देख कर आश्चर्य हो।

रहना। ढूँढ़ते रहना। टोह लगाना, लेना = पता लगाना। सुराग लगाना।

(२) खबर। देखभाल।

मुहा०—टोह रखना = खबर रखना। देखभाल रखना।

टोहना–क्रि० स० [हिं० टोह] (१) ढूँढ़ना। खोजना। (२) हाथ लगाना। छूना। टटोलना।

टोहाटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोह] (१) छान बीन। ढूँढ़। तलाश। (२) देखभाल।

टोहिया–वि० [हिं० टोह] (१) टोह लगानेवाला। ढूँढ़नेवाला। (२) जासूस।

टोहियाना–क्रि० स० दे० "टोहना"।

टोही–वि० [हिं० टोह] तलाश करनेवाला। पता लगानेवाला।

टौंस–संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] (१) एक छोटी नदी जो अयोध्या के पश्चिम से निकल कर बलिया के पास गंगा में मिलती है। रामायण में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ वन को जाते हुए रामचन्द्रजी ने अपना डेरा किया था और जिससे आगे चल कर गोमती और गंगा पड़ी थीं। बालकांड के आदि में तमसा के तट पर वाल्मीकि के आश्रम का होना लिखा है। अयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी रामचंद्र को वाल्मीकि का आश्रम मिला था पर वहाँ तमसा का कोई उल्लेख नहीं है। इससे संभव है कि वाल्मीकिजी दो स्थानों पर रहे हों। (२) एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकल कर रीवाँ होती हुई मिर्जापुर और इलाहाबाद के बीच गंगा में मिलती है। इस नदी के तट पर वाल्मीकि का एक आश्रम बतलाया जाता है जो संभवतः उस आश्रम को सूचित करता हो जिसका उल्लेख अयोध्याकांड में है। (३) एक नदी जो जमुनोत्री पहाड़ से निकल कर टेहरी और देहरादून होती हुई जमुना में जा मिली है।

टौनहाल–संज्ञा पुं० दे० "टाउनहाल"।

ट्रंक–संज्ञा पुं० [अं०] लोहे का सफ़री संदूक।

ट्रंप–संज्ञा पुं० [अं०] (१) ताश के खेल में वह रंग जो और रंगों के बड़े से बड़े पत्ते को काटने के लिये नियत कर लिया जाता है। हुक्म का रंग। (२) ट्रंप का खेल।

ट्राम–संज्ञा स्त्री० [अं०] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लंबी गाड़ी जो लोहे की बिछी हुई पटरी पर चलती है। इसमें पहले घोड़े लगते थे पर अब यह बिजली के जोर से चलाई जाती है।

ट्रेड-मार्क–संज्ञा पुं० [अं०] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते हैं। छाप।

ट्रेडिल मशीन–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की छापने की छोटी कल जिसे एक ही आदमी पैर से चलाता और हाथ से उसमें कागज रखता जाता है। स्याही इसमें आपसे आप लग जाती है। इसमें (हाफटोन ब्लाक) फोटो की तस्वीरें बहुत साफ और उत्तम छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है।

ट्रेन–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) रेलगाड़ी में लगी हुई गाड़ियों की पंक्ति। (२) रेलगाड़ी।

मुहा०—ट्रेन छूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चल देना।

ठ

ठ–व्यंजनों में ग्यारहवाँ व्यंजन जिसके उच्चारण का स्थान मूर्धा है। इसके उच्चारण करने में जीभ का मध्य भाग तालू में लगाना पड़ता है।

ठठ–वि० [सं० स्थाणु] जिस की डाल और पत्तियाँ सूख कर या कट कर गिर गई हों। ठूँठा। सूखा (पेड़)।

ठंठनाना–क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "ठनठनाना"।

ठठसा–संज्ञा स्त्री० [सं० डिंडिश] ढेंढस। टेंडसी।

ठंठार–वि० [हिं० ठंठ] खाली। रीता। छूँछा। उ०—अस कछु दीजे धरन कहँ आपन लेहु सँभार। तस सिंगार सब लीन्हेसि कीन्हेसि मोहि ठँठार।—जायसी।

ठंठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठ] वह अन्न जो दाना पीटने के बाद बाल में लगा रहता है। (ज्वार मूँग आदि के लिये) वि० स्त्री० (बूढ़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और दूध देने की संभावना न हो। जैसे, ठंठी गाय।

ठंड–संज्ञा स्त्री० दे० "ठंढ"।

ठंडक–संज्ञा स्त्री० दे० "ठंढक"।

ठंडा–वि० दे० "ठंढा"।

ठंडाई–संज्ञा स्त्री० दे० "ठंढाई"।

ठंढ–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंढा] शीत। सरदी। जाड़ा।

मुहा०—ठंढ पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना। ठंढ लगना = शीत का अनुभव होना।

ठंढई–संज्ञा स्त्री० दे० "ठंढाई"।

ठंढक–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंढा] (१) शीत। सरदी। उष्णता या गरमी का ऐसा अभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो।

मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य होना।

(३) टोपी के आकार की कोई गोल और गहरी वस्तु। कटोरी। (४) टोपी के आकार का धातु का गहरा ढक्कन जिसे बंदूक की निपुल पर चढ़ा कर घोड़ा गिराने से आग लगती है। बंदूक का पड़ाका। (५) वह थैली जो शिकारी जानवर के मुँह पर चढ़ाई रहती है। (६) लिंग का अग्र भाग। सुपारा। (७) मस्तूल का सिरा। (लश०)

टोपीदार–वि० [हिं० टोपी + दार] जिस पर टोपी लगी हो। जो टोपी लगने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक, टोपीदार तमंचा।

टोपीवाला–संज्ञा पुं० [हिं० टोपी] (१) वह आदमी जो टोपी पहने हो। (२) अहमदशाह और नादिरशाह की सेना के सिपाही जो लाल टोपियाँ पहन कर आए थे, टोपीवाले कहलाते थे। (३) अंगरेज या यूरोपियन जो हैट पहनते हैं।

टोभ †–संज्ञा पुं० [हिं० डोभ] टाँका। तोपा। उ०—बैरिनि जीभहि टोभ दै री मन बैरी को भूँजि कै भौन धरैंगी।—देव।

टोया †–संज्ञा पुं० [सं० तोय] गड्ढा। (पंजाबी)

टोर †–संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। कटार। उ०—तुम सों न जोर चोर भूपन के भोर रूप कांकरी को चौर काऊ मारो है न टोर कै।—हनुमान।

संज्ञा स्त्री० [देश०] शोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण नमक की कलमों को छान कर निकाल लेने पर बच रहता है और जिसे फिर उबाल और छान कर शोरा निकाला जाता है।

टोरना †–क्रि० स० [सं० त्रुट] तोड़ना। उ०—(क) रिझवार दृग देखि कै मन मोहन की ओर। भौंहन मारत रीझि जनु डारत है तन टोर।—रसनिधि। (ख) कोउ कँह टोरन देत न माली। मांगेहु पर मुरके हम खाली।—रघुरान।

मुहा०—आँख टोरना = लज्जा आदि से दृष्टि हटाना या अलग करना। आँख मोड़ना। दृष्टि छिपाना। उ०—सूर प्रभु के चरित सखियन कहत लोचन टोरि।—सूर।

टोरा–संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों का सूत तौलने का तराजू।

संज्ञा पुं० दे० "टोड़ा"।

† संज्ञा पुं० [सं० तोक] [स्त्री० टोरी] लड़का। छोकड़ा।

टोरी †–संज्ञा स्त्री० दे० "टोड़ी"।

टोर्रा–संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर का वह छिलके सहित खड़ा दाना जो बनाई हुई दाल में रह जाय।

टोल–संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका = गढ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा] (१) मंडली। समूह। जत्था। झुंड। उ०—(क) अपने अपने टोल कहत ब्रजवासी आई। भाव भक्ति लै चलौ सुदंपति आसी आई।—सूर। (ख) दुनिहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय। सुतौ ऐंचि पिय आप त्यों करी अदोखिल आय।—विहारी। (२) चटसार। पाठशाला।

संज्ञा पुं० संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय २५ दंड से २८ दंड तक है।

संज्ञा पुं० [अं० टाल] सड़क का महसूल। मार्ग का कर। चुंगी।

यौ०—टोल कलक्टर = कर लेनेवाला। महसूल वसूल करनेवाला।

टोला—संज्ञा पुं० [सं० तोलिका = किसी स्तंभ या गढ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा] आदमियों की बड़ी बस्ती का एक भाग। महल्ला।

संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी कौड़ी। कौड़ा। टग्घा।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) गुल्ली पर डंडे की चोट।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) उँगली को मोड़ कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया। ठूँग। (३) पत्थर या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। (४) बेंत आदि के आघात का पड़ा हुआ चिह्न जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है। साँट। नील।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोलिया–संज्ञा स्त्री० [सं० टोलिका = घेरा, हाता] टोली। छोटा महल्ला।

टोली–संज्ञा स्त्री० [सं० टोलिका = हाता, बाड़ा] (१) छोटा महल्ला। बस्ती का छोटा भाग। उ०—नैन बचाय चवाइन के नहिं रैन में ह्वै निकसो यह टोली।—सेवक। (२) समूह। झुंड। जत्था। मंडली। (३) पत्थर की चौकोर पटिया। सिल। (४) एक जाति का बाँस जो पूर्वीय हिमालय, सिकिम और आसाम की ओर होता है। इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमें ऊपर जा कर टहनियाँ निकलती हैं यह बाँस बहुत सीधा और सुडौल होता है। टोकरे बनाने के लिये यह बाँस सबसे अच्छा समझा जाता है। यह छप्परों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में भी आता है इसे 'नाल' और 'पकोक' भी कहते हैं।

टोली-धनवा–संज्ञा पुं० [हिं० टोली + धान] धान की तरह की एक घास जिसके नरम पत्ते घोड़े और चौपाए बड़े चाव से खाते हैं। इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं।

टोवना†–क्रि० स० दे० "टोना"।

टोवा–संज्ञा पुं० [देश०] गलही पर बैठनेवाला वह माझी जो पानी की गहराई जाँचता है।

टोह–संज्ञा स्त्री० [हिं० टोना] (१) टटोल। खोज। ढूँढ़। तलाश। पता।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना। टोह में रहना = तलाश में

की पखड़ी, गोल मिर्च आदि को एक में पीस कर प्रायः ठंढाई बनाई जाती है।

(२) भाँग (जिसमें ऊपर लिखे मसाले डाले जाते हैं)।

क्रि० प्र०—पीना।—लेना।

ठंढा मुलम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० ठंढा + अ० मुलम्मा] बिना आँच के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति। सोने चाँदी का पानी जो बैटरी के द्वारा या तेजाब की लाग से चढ़ाया जाता है।

ठंढी—वि० स्त्री० दे० "ठंढा"।

संज्ञा स्त्री० शीतला। चेचक। (स्त्रि०)

मुहा०—ठंढी ढलना = शीतला के दानों का मुरझाना। चेचक का जोर कम होना। ठंढी निकलना = शीतला के दाने शरीर पर होना। शीतला या चेचक का रोग होना।

ठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) महाध्वनि। (३) चंद्रमंडल। (४) मंडल। (५) शून्य। (६) गोचर। इंद्रियग्राह्य वस्तु।

ठउर—संज्ञा पुं० दे० "ठौर"।

ठक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] एक वस्तु पर दूसरी वस्तु को जोर से मारने का शब्द। ठोंकने का शब्द।

वि० स्तब्ध। भौचक्का। आश्चर्य या घबराहट से निश्चेष्ट। सन्नाटे में आया हुआ।

क्रि० प्र०—रह जाना।—हो जाना।

संज्ञा पुं० चंडूबाजों की सलाई या सूजा जिसमें अफीम का किवाम लगा कर सेंकते हैं।

ठक ठक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झगड़ा। बखेड़ा। टंटा। झंझट। उ०—हठि टक ठक एती कहा पावस के अभिसार। जानि परैगी देखि यों दामिनि घन अँधियार।—बिहारी।

ठकठकाना—क्रि० स० [अनु०] (१) एक वस्तु पर दूसरी वस्तु पटक कर शब्द करना। खटखटाना। (२) ठोंकना पीटना।

ठकठकिया—वि० [अनु० ठक ठक] (१) हुज्जती। थोड़ी सी बात के लिये बहुत दलील करनेवाला। तकरार करनेवाला। बखेड़िया।

ठकठौआ—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) एक प्रकार की करताल। (२) करताल बजा कर भीख माँगनेवाला। (३) एक प्रकार की छोटी नाव।

ठकार—संज्ञा पुं० 'ठ' अक्षर।

ठकुरई—संज्ञा स्त्री० दे० "ठकुराई"।

ठकुरसुहाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर = मालिक + सुहाना] ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय। लल्लोचप्पो। खुशामद। लोपामोद। उ०—हमहु कहब अब ठकुर सुहाती।—तुलसी।

ठकुराइत—संज्ञा स्त्री० दे० "ठकुरायत"।

ठकुराइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] (१) ठाकुर की स्त्री। स्वामिनी। मालकिन। उ०—नहिं दासी ठकुराइन कोई। जहँ देखो तँह ब्रह्म है सोई।—सूर। (२) क्षत्री की स्त्री। क्षत्राणी। (३) नाइन। नाउन। नाई की स्त्री। उ०—देव स्वरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लौं सीस ते पाइन। ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी हँसै कर ठोढ़ी दिए ठकुराइन।—देव।

ठकुराइस—संज्ञा स्त्री० दे० "ठकुरायत"।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] (१) आधिपत्य। प्रभुत्व। सरदारी। प्रधानता। उ०—अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल को करिहै ठकुराई?—तुलसी। (२) ठाकुर का अधिकार। स्वामी होने के अधिकार का उपयोग। जैसे, घेत में कैसी ठकुराई? उ०—न्याव न किय कीनी ठकुराई। बिना किए लिखि दीनि बुराई।—जायसी। (३) वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो। राज्य। रियासत। (४) उच्चता। बड़प्पन। महत्व। बड़ाई। उ०—हरि के जन की अति ठकुराई। महाराज ऋषिराज राजहूँ देखत रहे लजाई।—सूर।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] (१) ठाकुर या सरदार की स्त्री। जमींदार की स्त्री। (२) रानी। उ०—निज मंदिर लै गई रुक्मिणी पहुनाई विधि ठानी। सूरदास प्रभु तँह पग धारे जँह दोऊ ठकुरानी।—सूर। (३) मालकिन। स्वामिनी। अधीश्वरी। (४) क्षत्रिय की स्त्री। क्षत्राणी।

ठकुराय—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर] क्षत्रियों का एक भेद। उ०—गहरवार परहार सो कूरे। कलहंस और ठकुराय जूरे।—जायसी।

ठकुरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] (१) आधिपत्य। प्रभुत्व। उ०—ठकुरायत गिरिधरजू की साँची। कौरव जीति युधिष्ठिर राजा कीरति तीनि लोक में माँची।—सूर। (२) वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो। रियासत।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना, ठेकना + ओरी (प्रत्य०)] (१) सहारा लेने की लकड़ी। उ०—(क) भक्त। भरोसे राम के निधरक ऊँची दीठ। तिनको करम न लागई राम ठकोरी पीठ।—कबीर। (ख) देखा देखी पकरिया गई छिनक में छूटि। कोइ बिरला जन ठाहरै जासु ठकोरी पूठि।—कबीर।

विशेष—यह लकड़ी अदद्दे के आकार की होती है। पहाड़ी लोग जब बोझ ले कर चलते चलते थक जाते हैं तब इस लकड़ी को पीठ या कमर से भिड़ा कर उसी के बल पर थोड़ी

मुहा०—ठंढक पड़ना=शीत का संचार होना। सरदी फैलना। ठंढक लगना=शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पड़ना।
(२) ताप वा जलन की कमी। ताप की शांति। तरी।
क्रि० प्र०—आना।
(३) प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्त्ति से उत्पन्न संतोष। तृप्ति। प्रसन्नता। तसल्ली।
क्रि० प्र०—पड़ना।
(४) किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शांति। किसी हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव। जैसे, इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर था पर अब ठंढक पड़ गई है।
क्रि० प्र०—पड़ना।

ठंढा—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० तद्ध, टड्ड] [स्त्री० ठंढी] (१) जिसमें उष्णता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव शरीर को विशेष रूप से हो। सर्द। शीतल।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—ठंढे ठंढे=ठंढे वक्त में। धूप निकलने के पहले। तड़के। सवेरे। उ०—रात भर सोओ सवेरे उठ कर ठंढे ठंढे चले जाना। ठंढी आग=(१) हिम। बरफ। (२) पाला। तुषार। ठंढी कड़ाई=हलवाइयों और बनियों में सब पकवान बना चुकने के पीछे हलुआ बना कर बाँटने की रीति। ठंढी मार=भीतरी मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई अंग टूटा फूटा न हो पर भीतर बहुत चोट आई हो। गुप्ती मार (जैसे, लात घूँसों आदि की)। ठंढी मिट्टी=(१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बढ़े। ऐसी देह जिसमें जवानी के चिह्न जल्दी न मालूम हों। (२) ऐसा शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंढी साँस=ऐसी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण बहुत खींच कर ली जाती है। दुःख से भरी साँस। शोकोच्छ्वास। आह। ठंढी साँस लेना या भरना=दुःख की साँस लेना।
(२) जो जलता हुआ या दहकता हुआ न हो। बुझा हुआ। बुता हुआ। जैसे, दीया ठंढा करना।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
(३) जो उद्दीप्त न हो। जो उद्विग्न न हो। जो भड़का न हो। उद्गाररहित। जिसका या जिसमें आवेश न हो। शांत। जैसे, क्रोध ठंढा होना, जोश ठंढा होना। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आवेश और आवेश धारण करनेवाले व्यक्ति दोनों के लिये होता है, जैसे, क्रोध ठंढा पड़ना, उत्साह ठंढा पड़ना, क्रुद्ध मनुष्य का ठंढा पड़ना, उत्साह में आए हुए मनुष्य का ठंढा पड़ना)।
क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।
मुहा०—ठंढा करना=(१) क्रोध शांत करना। (२) ढाढ़स दे कर शोक कम करना। ढाढस बँधना। तसल्ली देना। माता या शीतला ठंढी करना=शीतला या चेचक के अच्छे होने पर शीतला की अंतिम पूजा करना।
(४) जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। नपुंसक।
(५) जो उद्वेगशील या चंचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध आदि न आता हो। धीर। शांत। गंभीर। (६) जिसमें उत्साह या उमंग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो। बिना जोश का। धीमा। सुस्त। मंद। उदासीन।
मुहा०—ठंढी गरमी=ऊपर की प्रीति। बनावटी स्नेह का आवेश।
(७) जो हाथ पैर न हिलाए। जो अपनी इच्छा के प्रतिकूल कोई बात होते देख कर कुछ न बोले। चुपचाप रहनेवाला। विरोध न करनेवाला। जैसे, वे बहुत इधर उधर करते थे पर जब खरी खरी सुनाई तब ठंढे पड़ गए।
क्रि० प्र०—पड़ना।—रहना।
मुहा०—ठंढे ठंढे=चुप चाप। बिना चूँ किए। बिना विरोध या प्रतिवाद किए।
(८) जो प्रिय वस्तु की प्राप्ति वा इच्छा की पूर्त्ति से संतुष्ट हो। तृप्त। प्रसन्न। खुश। जैसे, लो आज वहँ चला जायगा, अब तो ठंढे हुए।
क्रि० प्र०—होना।
मुहा०—ठंढे ठंढे=हँसी खुशी से। कुशल आनंद से। ठंढे ठंढे घर आना=बहुत तृप्त हो कर लौटना (अर्थात् असंतुष्ट होकर या निराश हो कर लौटना) (व्यंग्य)। ठंढे पेटों=हँसी खुशी से। प्रसन्नता से। बिना मन मोटाव या लड़ाई झगड़े के। सीधे से। ठंढा रखना=आराम चैन से रखना। किसी बात की तकलीफ न होने देना। संतुष्ट रखना। (स्त्रि०)। ठंढे रहो=प्रसन्न रहो। खुश रहो। (आशीर्वाद)।
(९) निश्चेष्ट। जड़। मृत। मरा हुआ।
मुहा०—ठंढा होना=मर जाना। ताजिया ठंढा करना=ताजिया दफन करना। (मूर्त्ति या पूजा की सामग्री आदि को) ठंढा करना=जल में विसर्जन करना। डुबाना। (किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंढा करना=फेंकना या तोड़ना फोड़ना। जैसे, चूड़ियाँ ठंढी करना।
(१०) जिसमें चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। बे-रौनक।
मुहा०—बाजार ठंढा होना=बाजार का चलता न होना। बाजार में लेन देन खूब न होना।

ठंढाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंढा] (१) वह दवा या मसाला जिससे शरीर की गरमी शांत होती है और ठंढक आती है।
विशेष—सौंफ, इलायची, ककड़ी, खरबूजे आदि के बीज, गुलाब

ठगाना—क्रि० अ० [हिं० ठगना] (१) ठगा जाना। धोखे में आ कर हानि सहना। (२) किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना। दूकानदार की बातों में आ कर ज्यादा दाम दे देना। जैसे, इस सौदे में तुम ठगा गए।

संयो० क्रि०—जाना।

ठगाही—संज्ञा स्त्री० दे० "ठगाई", "ठगहाई"। उ०—नाइक नर शूली धरि दीन्हों। जिन बन माँहि ठगाही कीन्हों।—विश्राम।

ठगिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] (१) धोखा दे कर लूटनेवाली स्त्री। लुटेरिन। (२) ठग की स्त्री। (३) धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] (१) लुटेरिन। धोखा दे कर लूटनेवाली स्त्री। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ आवति सोइ सोइ कहि डारति जाति जनावति दै दै गारी।—सूर। (२) ठग की स्त्री। (३) धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिया—संज्ञा पुं० दे० "ठग"।

ठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] (१) ठग का काम। धोखा दे कर माल लूटने का काम। (२) ठगने का भाव। (३) धूर्तता। धोखेबाजी। चालबाजी।

ठगोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + बैरी] ठगों की सी माया। मोहित करने का प्रयोग। मोहिनी। सुधबुध भुलानेवाली शक्ति। टोना। जादू। उ०—(क) जानहु लाई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँधै बौरी।—जायसी। (ख) दमन चमक अधरन अरुनाई देखत परी ठगोरी।—सूर। (ग) राजिव नैन, बिधुबदन, टिपारे सिर, नख सिख अंगन ठगोरी ठौर ठौर है।—तुलसी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

ठट—संज्ञा पुं० [सं० स्थाता = जो खड़ा हो] (१) एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति। उ०—देखि न जाइ कपिन के ठट्टा। अति बिसाल-तनु भालु सुभट्टा।—तुलसी।

मुहा०—ठट के ठट = झुंड के झुंड। बहुत से। ठट लगना = (१) भीड़ जमना। भीड़ खड़ी होना। (२) ढेर लगना। राशि इकट्ठी होना।

(२) समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—अंबर अमर हरखत बरखत फूल सनेह सिथिल गोप गाइन के ठट हैं।—तुलसी। (३) बनाव। रचना। सजावट। उ०—परखत प्रीति प्रतीति पैज पन रहे काज ठट ठानि हैं—तुलसी।

ठटकीला—वि० [हिं० ठट] सजा हुआ। ठटदार। सजीला। तड़क भड़कवाला। उ०—आछी धरननि कंचन लकुट ठटकीले बनमाल कर टेके द्रुमडार ठेढ़े ठाढ़े नंदलाल छबि छाई घट घट।—सूर।

ठटना—क्रि० स० [सं० स्थाता = जो खड़ा या ठहरा हो। हिं० ठट, ठाट] (१) ठहराना। निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—होत सु जो रघुनाथ ठटी। पचि पचि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तऊ बढ़ी न घटी।—सूर। (२) सजाना। सुसज्जित करना। तैयार करना। उ०—नृप बन्यो विकट रन ठाट ठटि मारु मारु धरु मारु रटि।—गोपाल।

मुहा०—ठट कर बातें करना = बना बना कर बातें करना। एक एक शब्द पर ज़ोर देते हुए बातें करना।

(३) छेड़ना। आरंभ करना। (राग)। उ०—नव निकुंज गृह नवल आली नवल बीना मधि राग गौरी ठटी।—हरिदास।

क्रि० अ० (१) खड़ा रहना। अड़ना। डटना। उ०—सेवत स्वाद स्वान पातर ज्यों चातक रटत ठट्यो।—सूर। (२) सजना। सुसज्जित होना। तैयार होना। उ०—जबहीं आइ चढ़ै दल ठटा। देखत जैस गगन-घन-घटा।—जायसी।

ठटनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठटना] बनाव। रचना। सजावट। उ०—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन तुलिन ठटनी।—सूर।

ठटया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट] (१) हड्डियों का ढाँचा। अस्थि-पंजर।

मुहा०—ठटरी होना = दुबला होना। कृशगात होना।

(२) घास भूसा आदि बाँधने का जाल। खरिया। ठड़िया। (३) किसी वस्तु का ढाँचा। (४) मुरदा उठाने की रथी। अरथी।

ठट्ठ—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] बनाव। रचना। सजावट। उ०—परिखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानि हैं।—तुलसी।

ठट्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तट, हिं० ठट्ठी या सं० स्थाता] (१) एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति। (२) समूह। झुंड। समुदाय। पंक्ति। उ०—(क) देखि न जाय कपिन के ठट्टा। अति-बिसाल-तनु भालु सुभट्टा।—तुलसी। (ख) थियन भट के ठट्ट अरु गुजरातिन के वृंद।—हरिश्चंद।

ठट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट] ठटरी। पंजर। हड्डी का ढाँचा। —उ०—उर अंतर धुँधुआइ जरै ज्यों काँच की भट्ठी। रक्त मास जरि जाय रहै पाँजर की ठट्ठी।—गिरिधर।

ठट्ठई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठट्ठा] ठट्ठा। दिल्लगी। हँसी।

देर खड़े हो जाते हैं। साधु लोग भी इस प्रकार की लकड़ी सहारा लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते हैं। इसे वे वैरागिन या जोगिनी भी कहते हैं।

ठक्कर—संज्ञा स्त्री० दे० "टक्कर"।

ठक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। ठाकुर। पूज्य प्रतिमा।

ठग—संज्ञा पुं० [सं० स्थग] [स्त्री० ठगनी, ठगिन] (१) धोखा दे कर लोगों का धन हरण करनेवाला। वह लुटेरा जो छल और धूर्त्तता से माल लूटता है। भुलावा देकर लोगों का माल छीननेवाला।

विशेष—डाकू और ठग में यह अंतर है कि डाकू प्रायः जबरदस्ती बल दिखा कर माल छीनते हैं पर ठग अनेक प्रकार की धूर्त्तता करते हैं। भारत में इनका एक अलग संप्रदाय सा हो गया था। उ०—जग हटवारा, स्वाद ठग, माया वेश्या लाय। राम नाम गाढ़ा गहो जनि कहुँ जाहु ठगाय।—कबीर।

मुहा०—ठग लगना=ठगों का आक्रमण करना या पीछे पड़ना। जैसे, उस रास्ते में बहुत ठग लगते हैं। ठग के लाडू=दे० "ठगलाडू"।

यौ०—ठगमूरी। ठगमोदक। ठगलाडू। ठगविद्या।

(२) छली। धूर्त्त। धोखेबाज। वंचक। प्रतारक।

ठगई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+ई (प्रत्य०)] (१) ठगपना। ठग का काम (२) धोखा। छल।

ठगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक छंदों के गणों में से एक। यह ५ मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं।

ठगना—क्रि० स० [हिं० ठग] (१) धोखा दे कर माल लूटना। छल और धूर्त्तता से धन हरण करना। (२) धोखा देना। छल करना। धूर्त्तता करना। भुलावे में डालना।

मुहा०—ठगा सा=धोखा खाया हुआ। भूला हुआ। चकित। भौचक्का। आश्चर्य से स्तब्ध। दंग। उ०—(क) यह कहि वठे नंदकुमार। कहा ठगी सी रही बाला परयो कौन विचार?—सूर। (ख) करत कछु नाहीं आजु बनी। हरि आए हौं रही ठगी सी जैसे चित्र धनी।—सूर। (ग) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न सुहात है।—सुंदरीसर्वस्व।

(३) उचित से अधिक मूल्य लेना। वाजिब से बहुत ज्यादा दाम लेना। सौदा बेचने में बेईमानी करना। जैसे, यह दूकानदार लोगों को बहुत ठगता है।

संयो० क्रि०—लेना।

†क्रि० अ० (१) ठगा जाना। धोखा खा कर लुटना। (२) धोखे में आना। धोखा खाना। प्रतारित होना। (३) चक्कर में आना। चकित होना। आश्चर्य से स्तब्ध होना। ठक रह जाना। दंग रहना। उ०—(क) तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं।—तुलसी। (ख) मैं चकृत ठगि रही कछु कहत न आवै।—सूर। (ग) बिनु देखे बिन ही सुने ठगत न कोऊ बाँच्यो।—सूर।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] (१) ठग की स्त्री। (२) ठगनेवाली स्त्री। (३) धूर्त्त स्त्री। छलनेवाली स्त्री। (४) कुटनी।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हिं० ठग+पन] (१) ठगने का भाव या काम। (२) धूर्त्तता। छल। चालाकी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+मूरि] वह नशीली जड़ी बूटी जिसे ठग पथिकों को बेहोश करके उनका धन लूटने के लिये खिलाते थे।

मुहा०—ठगमूरी खाना=मतवाला होना। होश हवास में न रहना। उ०—काहू तोहि ठगौरी लाई। बूझति सखी सुनति नहिँ नेकहु तुही किधौं ठगमूरी खाई।—सूर।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हिं० ठग+सं० मोदक] ठगलाडू। उ०—चलत चितै मुसकाय कै मृदु बचन सुनाए। तेही ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि तन छूछो छिटकाए।—सूर।

ठगलाडू—संज्ञा पुं० [हिं० ठग+लाडू (लड्डू)] ठगों का लड्डू जिसमें नशीली या बेहोशी करनेवाली चीज मिली रहती थी।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पथिकों से रास्ते में मिल कर उन्हें किसी बहाने से अपना लड्डू खिला देते थे जिस में विष या कोई नशीली चीज मिली रहती थी। जब लड्डू खा कर पथिक मूर्छित या बेहोश हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाडू खाना=मतवाला होना। होश हवास में न रहना। बेसुध होना। उ०—(क) मनहु दीन ठगलाडू देख आय तस मीच।—जायसी। (ख) सूर कहा ठगलाडू खायो इत उत फिरत मोह को मातो कबहुँ न सुधि करि हरि चित लायो।—सूर।

ठगवाना—क्रि० स० [हिं० ठगना का प्रे०] दूसरे से धोखा दिलवाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० ठग+विद्या] धूर्त्तता। धोखेबाजी। छल। वंचकता।

ठगहाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] ठगपना।

ठगहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+हारी (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+आई (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] धोखेबाजी। वंचकता। धोखा धड़ी।

ठढ़िया–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठढ़ = खड़ा] काठ की वह ऊँची ओखली जिसमें पड़े हुए धान को स्त्रियाँ खड़ी हो कर कूटती हैं।

ठढ़ियाना–क्रि० स० [हिं० ठढ़ = खड़ा] खड़ा करना।

ठढ़ुई–संज्ञा स्त्री० दे० 'ठढ़िया'।

ठन–संज्ञा स्त्री० [अनु०] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द। धातु के बजने का शब्द।

यौ०—ठन ठन = चमड़े से मढ़े हुए बाजे का शब्द।

ठनक–संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] (१) मृदंगादि की ध्वनि। चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात पड़ने का शब्द। उ०—खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की रुनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल की।—पद्माकर। (२) रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा। टीस। चमक।

ठनकना–क्रि० अ० [अनु० ठन ठन] (१) ठन ठन शब्द करना। धातुखंड अथवा चमड़े से मढ़े बाजे आदि का आघात पा कर बजना। जैसे, तबला ठनकना। (२) रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा होना। जैसे, माथा ठनकना।

मुहा०—माथा ठनकना = किसी बुरे लक्षण को देख कर चित्त में घोर आशंका उत्पन्न होना। गहरा खटका पैदा होना। जैसे, तार पाते ही माथा ठनका।

ठनका–संज्ञा पुं० [हिं० ठनक] (१) धातुखंड आदि पर आघात पड़ने का शब्द। (२) आघात। ठोकर। (३) रह रह कर आघात पड़ने की सी पीड़ा।

ठनकाना–क्रि० स० [हिं० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात कर के शब्द निकालना। बजाना। जैसे, तबला ठनकाना, रुपया ठनकाना।

मुहा०—रुपया ठनका लेना = रुपया बजा कर ले लेना। रुपया वसूल कर लेना। उ०—जैसे, तुमने रुपए तो ठनका लिए, मेरा काम हो या न हो।

ठनकार–संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द।

ठनगन–संज्ञा पुं० [हिं० ठनना] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेगियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हठ या अड़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठनठन–क्रि० वि० [अनु०] धातुखंड के बजने का शब्द।

ठनठन गोपाल–संज्ञा पुं० [अनु० ठनठन + गोपाल = कोई व्यक्ति] (१) छूँछी और निःसार वस्तु। वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो। (२) खुक्ख आदमी। निर्धन मनुष्य। वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो।

ठनठनाना–क्रि० स० [अनु०] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना। बजाना।

क्रि० अ० ठन ठन बजना।

ठनना–क्रि० अ० [हिं० ठानना] (१) (किसी कार्य का) तत्परता के साथ आरंभ होना। दृढ़ संकल्पपूर्वक आरंभ किया जाना। अनुष्ठित होना। समारंभ होना। छिड़ना। जैसे, काम ठनना, झगड़ा ठनना, बैर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना। (२) (मन में) स्थिर होना। ठहरना। निश्चित होना। पक्का होना। दृढ़ होना। चित्त में दृढ़ता-पूर्वक धारण किया जाना। दृढ़ संकल्प होना। जैसे, मन में कोई बात ठनना, हठ ठनना। उ०—हरिचंद जू बात ठनी सो ठनी नित की कलकानि तें छूटनो है।—हरिश्चंद्र। (३) ठहरना। लगना। जमना। धारण किया जाना। प्रयुक्त होना। उ०—तुलसी कल कोकिल कंठ घनी मृग खंजन अंजन भाँति ठनी।—केशव। (४) उद्यत होना। मुस्तैद होना। सन्नद्ध होना। उ०—रन जीतन काजे मदन बिराजे आनंद छाजे युद्ध ठने।—गोपाल।

मुहा०—किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम के करने के लिये उद्यत होना।

ठनमनना–क्रि० अ० दे० "ठनमनाना"।

ठनाका–संज्ञा पुं० [अनु० 'ठन'] ठन ठन शब्द। ठनकार।

ठनाठन–क्रि० वि० [अनु० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ। झनकार के साथ। जैसे, ठनाठन बजना।

ठपका–संज्ञा पुं० [देश०] धक्का। ठोकर। ठेस। उ०—यह तन काचा कुंभ है लिया फिरै था साथ। ठपका लाग्या फुटिग्या कछू न आया हाथ।—कबीर।

ठयना–क्रि० स० [सं० अनुष्ठान] (१) ठानना। दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ करना। छेड़ना। उ०—(क) दासी सहस प्रगट तहँ भई। इंद्रलोक रचना अपि ठई।—सूर। (ख) जब नैननि प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।—तुलसी। (२) कर चुकना। पूरी तरह से करना। (इसका प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में हुआ है)। उ०—देवता निहोरे महामारिन सों कर जोरे भोरानाथ भोरे आपनी सी कहि ठई है।—तुलसी। (३) मन में ठहराना। निश्चित करना। उ०—तुलसिदास कौन आस मिलन की ? कहि गए सो तो एकौ चित न ठई।—तुलसी।

क्रि० अ० (१) ठनना। दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ होना। (२) मन में दृढ़ होना।

क्रि० स० [सं० स्थापन, प्रा० ठवन] (१) स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। (२) लगाना। प्रयुक्त करना। नियोजित करना। उ०—बिधिना अतिहीं पोच कियो री।......रोम रोम लोचन इकटक करि युवतिन प्रति काहे न ठयो री।—सूर।

क्रि० अ० (१) ठहरना। स्थित होना। बैठना। जमना।

ठट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० अट्टहास वा ठट्टरी] हँसी । उपहास । दिल्लगी । मसखरापन । खिल्ली ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—ठट्ठेबाज = दिल्लगीबाज । ठट्ठेबाजी = दिल्लगी ।

मुहा०—ठट्ठा उड़ाना = उपहास करना । दिल्लगी करना । ठट्ठा मारना = खिलखिलाना । अट्टहास करना । ठट्ठा लगाना = खिलखिला कर हँसना । ठठा कर हँसना । अट्टहास करना ।

ठठ—संज्ञा पुं० दे० "ठट" ।

ठठई—*संज्ञा स्त्री० [हिं० ठट्ठा] हँसी । ठट्ठा । मसखरापन । उ०—हुतो न साँचो सनेह मिट्यो मन को संदेह हरि परे उघरि सँदेसहु ठठई ।—तुलसी ।

ठठकना†*—क्रि० अ० [सं० स्थेष्ट + करण] (१) एक बारगी रुक या ठहर जाना । ठिठकना । उ०—(क) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरै बंकट भौंह चलावै ।—सूर । (ख) डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि । लिये जाति चित चोरटी वहै गोरटी नारि ।—बिहारी । (२) स्तंभित हो जाना । क्रियाशून्य हो जाना । ठक रह जाना । उ०—मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर स्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय ।—सूर ।

ठठकाना†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठकना] ठठकने का भाव ।

ठठना†—क्रि० स०, क्रि० अ० दे० "ठटना" ।

ठठरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "ठटरी" ।

ठठवा†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] एक प्रकार का मोटा कपड़ा । इकतारा । लमगजा ।

ठठा†—संज्ञा पुं० दे० "ठट्ठा" ।

ठठाना—क्रि० स० [अनु० ठक ठक] ठोंकना । आघात लगाना । पीटना । जोर जोर से मारना । उ०—(क) फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल, बाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं ।—तुलसी । (ख) दंत ठठाइ ठेठरे कीने । रहे पठान सकल भय भीने ।—लाल ।

क्रि० अ० [सं० अट्टहास] खिलखिलाना । अट्टहास करना । कहकहा लगाना । जोर से हँसना । उ०—दुइ कि होइ इक संग भुआलू । हँसब ठठाइ फुलाउब गालू ।—तुलसी ।

ठठियार†—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली चौपायों को चरानेवाला । चरवाहा । (नैपाल-तराई) ।

ठठिरिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठेरा] ठठेरिन । ठठेरे की स्त्री । उ०—ठठिरिन बहुतइ ठाठर कीन्ही । चली अहीरिन काजर दीन्ही ।—जायसी ।

ठठुकना†—क्रि० अ० दे० "ठठकना", "ठिठकना" ।

ठठेर-मंजारिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठेरा + सं० मार्जारिका] ठठेरे की बिल्ली । उ०—अहे बजंत्री हरिन भ्रम कहा बजावै बीन । या ठठेर-मंजारिका सुर सुनि मोहै गी न ।—दीनदयाल ।

विशेष—ठठेरों की बिल्ली के सामने रात दिन बरतन पीटे जाने से न तो वह थोड़ी खड़खड़ाहट से डरती है और न किसी अच्छे शब्द पर मोहित होती है ।

ठठेरा—संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन । वा हिं० ठाठ + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० ठठेरिन, ठठेरी] धातु पीट पीट कर बरतन बनानेवाला । बरतन बनानेवाला । कसेरा ।

मुहा०—ठठेरे ठठेरे बदलाई = जैसे का तैसा व्यवहार । एक ही प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार । ऐसे दो आदमियों के बीच व्यवहार जो चालाकी, धूर्त्तता, बल आदि में एक दूसरे से कम न हों । ठठेरे की बिल्ली = ऐसा मनुष्य जो कोई अरुचिकर काम देखते देखते या सुनते सुनते अभ्यस्त हो गया हो । ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देख कर न चौंके या घबराय । (ठठेरे की बिल्ली दिन रात बरतन का पीटना सुना करती है इससे वह किसी प्रकार की आहट या खटका सुन कर नहीं डरती ।)

संज्ञा पुं० [हिं० ठाँठ] ज्वार बाजरे का डंठल ।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठेरा] (१) ठठेरा की स्त्री । ठठेरा जाति की स्त्री । (२) ठठेरे का काम । बरतन बनाने का काम ।

यौ०—ठठेरी बाजार ।

ठठोल—संज्ञा पुं० [हिं० ठट्ठा] [स्त्री० ठठोलिन] (१) ठट्ठेबाज । विनोदप्रिय । दिल्लगीबाज । मसखरा । † (२) ठठोली । हँसी । दिल्लगी ।

ठठोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठट्ठा] हँसी । दिल्लगी । मसखरापन । मज़ाक । वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठड़कना†—क्रि० अ० दे० "ठठकना", "ठिठकना" ।

ठड़ा†—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा । दंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० ठाड़] वह नैचा जिसकी निगाली बिलकुल खड़ी होती है । (ऐसा नैचा लखनऊ में बनता है और मिट्टी की फरशी में लगाया जाता है । मुसलमान इसका व्यवहार अधिक करते हैं ।)

ठड्ढा—संज्ञा पुं० [हिं० ठड़ा] (१) पीठ की खड़ी हड्डी । रीढ़ ।

यौ०—ठड्ढाटूटी = जिसकी कमर झुकी हो । कुबड़ी । (स्त्रि०)

(२) पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची । काँप का उलटा ।

ठढ़ा†—वि० [सं० स्थातृ] खड़ा । दंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

और गले से ठन ठन शब्द निकले। सूखी खाँसी। (२) ठोकर। धक्का।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।—लगाना।

ठसाठस–क्रि० वि० [हिं० ठस] ऐसा दबा कर भरा हुआ कि और भरने की जगह न रहे। ठूँस कर भरा हुआ। खूब कस कर भरा हुआ। खचाखच। जैसे, (क) यह संदूक कपड़ों से ठसाठस भरा हुआ है। (ख) इस कुप्पे में ठसाठस चीनी भरी हुई है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल चूर्ण या ठोस वस्तुओं के लिये ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं। जो वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु में भरी जाती है दोनों के संबंध में इस शब्द का व्यवहार होता है। जैसे, संदूक ठसाठस भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं।

ठस्सा–संज्ञा पु० [देश०] (१) नक्काशी बनाने की एक छोटी रुखानी। (२) गर्वपूर्ण चेष्टा। अभिमानपूर्ण हाव भाव। ठसक। (३) घमंड। अहंकार। (४) ठाट बाट। शान। (५) ध्वनि। मुद्रा। अंदाज।

ठहक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] नगारे का शब्द।

ठहना–क्रि० अ० [अनु०] (१) हिनहिनाना। घोड़ों का बोलना। उ०—गज अरुड़ कुरुपति छबि छाई। चहुँ दिसि तुरग रहे ठहनाई।—सबल। (२) घनघनाना। ठनठनाना। घंटे का बजना। उ०—द्वंद्व घंट ध्वनि अति ठहनाई। मारू राग सहित सहनाई।—सबल।

† क्रि० अ० [सं० स्था, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए सोच विचार करने या बनाने सँवारने के लिये बीच बीच में ठहरना। धीरे धीरे धैर्य के साथ करना। बनाना। सँवारना। किसी काम को करने में खूब जमना।

मुहा०—ठह ठह कर बोलना = हाव भाव के साथ रुक रुक कर बोलना। एक एक शब्द पर ज़ोर दे दे कर बोलना। मठार मठार कर बोलना। ठह कर = अच्छी तरह जम कर।

ठहर†–संज्ञा पु० [सं० स्थल] (१) स्थान। जगह। उ०—ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ लोक बेद हू विदित महिमा ठहर की।—तुलसी। (२) रसोई के लिये मिट्टी से लीपा हुआ स्थान। चौका। (३) रसोईघर आदि में मिट्टी की लिपाई। पोताई। चौका।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—ठहर देना = चौका लगाना।

ठहरना–क्रि० अ० [सं० स्थैर्य + ना (प्रत्य०)] (१) चलना बंद करना। गति में न होना। रुकना। थमना। जैसे, (क) थोड़ा ठहर जाओ पीछे के लोगों को भी आ लेने दो। (ख) रास्ते में कहीं न ठहरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) विश्राम करना। डेरा डालना। टिकना। कुछ काल तक के लिये रहना। जैसे, आप काशी में किस के यहाँ ठहरेंगे?

संयो० क्रि०—जाना।

(३) स्थित रहना। एक स्थान पर बना रहना। इधर उधर न होना। स्थिर रहना। जैसे, यह नौकर चार दिन भी किसी के यहाँ नहीं ठहरता।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—मन ठहरना = चित्त स्थिर और शांत होना। चित्त की आकुलता दूर होना। उ०—जबै आऊँ साधु संगति कछुक मन ठहराइ।—सूर।

(४) नीचे न फिसलना या गिरना। अड़ा रहना। टिका रहना। बहने या गिरने से रुकना। स्थित रहना। जैसे, (क) यह गोला डंडे की नोक पर ठहरा हुआ है। (ख) यह घड़ा फूटा हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा। (ग) बहुत से योगी देर तक अधर में ठहरे रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) दूर न होना। बना रहना। न मिटना या न नष्ट होना। जैसे, यह रंग ठहरेगा नहीं, उड़ जायगा। (६) जल्दी न टूटना फूटना। नियत समय के पहले नष्ट न होना। कुछ दिन काम देने लायक रहना। चलना। जैसे, यह जूता तुम्हारे पैर में दो महीने भी नहीं ठहरेगा। (७) किसी घुली हुई वस्तु के नीचे बैठ जाने पर पानी या अर्क का स्थिर और साफ हो कर ऊपर रहना। थिराना। (८) प्रतीक्षा करना। धैर्य धारण करना। धीरज रखना। स्थिर भाव से रहना। चंचल या आकुल न होना। जैसे, ठहर जाओ, देते हैं, आफत क्यों मचाए हो। (९) कार्य आरंभ करने में देर करना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। जैसे, अब ठहरने का वक्त नहीं है झटपट काम में हाथ लगा दो। (१०) किसी लगातार होनेवाली क्रिया का बंद होना। लगातार होनेवाली बात या काम का रुकना। थमना। जैसे, मेंह ठहरना, पानी ठहरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(११) निश्चित होना। पक्का होना। स्थिर होना। तै पाना। करार होना। जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना, बात ठहरना, ब्याह ठहरना।

मुहा०—किसी बात का ठहरना = किसी बात का संकल्प होना। विचार स्थिर होना। ठनना। जैसे, (क) क्या अब चलने ही की ठहरी? (ख) गप बहुत हुई, अब खाने की ठहरे। ठहरा = है। जैसे, (क) वह तुम्हारा भाई ही ठहरा कहाँ तक खबर न

उ०—राज रुख लखि गुरु भूसुर सुश्रासनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है।—तुलसी। (२) प्रयुक्त होना। लगना। नियोजित होना।

ठप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थापन, थाप] (१) लकड़ी धातु मिट्टी आदि का खंड जिस पर किसी प्रकार की आकृति, बेल बूटे या अक्षर आदि इस प्रकार खुदे हों कि उसे किसी दूसरी वस्तु पर रख कर दबाने या दूसरी वस्तु को उस पर रख कर दबाने से उस दूसरी वस्तु पर वे आकृतियाँ बेल बूटे या अक्षर उभर आवें या बन जाँय। साँचा।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) लकड़ी का टुकड़ा जिस पर उभरे हुए बेल बूटे बने रहते हैं और जिस पर रंग स्याही आदि पोत कर उन बेल बूटों को कपड़े आदि पर छापते हैं। छापा। (३) गोटे पट्ठे पर बेल बूटे उभारने का साँचा। (४) साँचे के द्वारा बनाया हुआ चिह्न, बेलबूटा आदि। छाप। नकृश। (५) एक प्रकार का चौड़ा नक्काशीदार गोटा।

ठभोली†—संज्ञा स्त्री० दे० "ठठोली"।

ठमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमकना] (१) चलते चलते ठहर जाने का भाव। रुकावट। (२) चलने की ठसक। चलने में हाव भाव। लचक।

ठमकना—क्रि० अ० [सं० स्तंभ, हिं० थम + करना] (१) चलते चलते ठहर जाना। ठिठकना। रुकना। जैसे, (क) तुम चलते चलते ठमक क्यों जाते हो। (ख) ठमक ठमक कर चलना। (२) ठसक के साथ रुक रुक कर चलना। हाव भाव दिखाते हुए चलना। अंग मरोड़ते या मटकाते हुए चलना। लचक के साथ चलना।

ठमकाना—क्रि० स० [हिं० ठमकना] ठहराना। चलते चलते रोकना।

ठमकारना—क्रि० स० दे० "ठमकाना"।

ठरना—क्रि० अ० [सं० स्तब्ध, ठड्ढ + ना (प्रत्य०)] (१) अत्यंत शीत से ठिठुरना। सरदी से अकड़ना या सुन्न होना। जैसे, हाथ पाँव ठरना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) अत्यंत सरदी पड़ना। बहुत अधिक ठंड पड़ना।

ठरमरुआ†—वि० [हिं० ठार + मारना] जिसे पाला मार गया हो। (फसल)

ठरुआ†—वि० [हिं० ठार] जिसे पाला मार गया हो। (फसल)

ठर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० ठड़ा = खड़ा] (१) इतना कड़ा बटा हुआ मोटा सूत जो हाथ में लेने से कुछ तना रहे। मोटा सूत। (२) बड़ी अधपकी ईंट। (३) महुवे की निकृष्ट शराब। फूल का उलटा। (४) अँगिया का बंद। तनी। (५) एक प्रकार का भद्दा जूता। (६) भद्दा और बेडौल मोती।

ठर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बिना अंकुर उठा हुआ धान का बीज जो छितरा कर बोया जाता है। (२) बिना अंकुर उठे हुए धान की बोआई।

ठवना—क्रि० स० दे० "ठयना"।

ठवनि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, हिं० ठवना = बैठना वा सं० स्थान] (१) बैठक। स्थिति। उ०—राज रुख लखि गुरु भूसुर सुश्रासनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है।—तुलसी। (२) बैठने या खड़े होने का ढंग। आसन। मुद्रा। अंग की स्थिति या संचालन का ढब। अंदाज। उ०—(क) कुंजर मनि कंठा कलित उर तुलसी की माल। वृषभ कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल।—तुलसी। (ख) ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए। ठवनि जुवा मृगराज लजाए।—तुलसी।

ठवर†—संज्ञा पुं० दे० "ठौर"।

ठस—वि० [सं० स्थास्नु = दृढ़ता से जमा हुआ, दृढ़] (१) जिसके कण परस्पर इतने मिले हों कि उसमें उँगली आदि न धँस सके। जिसके बीच में कहीं रंध्र वा अवकाश न हो। जो भुरभुरा, गीला या मुलायम न हो। ठोस। कड़ा। जैसे, बरफी का सूख कर ठस होना, गीले आटे का ठस होना। (२) जो भीतर से पोला या खाली न हो। भीतर से भरा हुआ। (३) जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो। गफ। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा। उ०—इस टोपी का काम खूब ठस है। (४) दृढ़। मजबूत। (५) भारी। वजनी। गुरु। (६) जो अपने स्थान से जल्दी न टसके। जो हिले डोले नहीं। निष्क्रिय। सुस्त। मट्ठर। आलसी। (७) (रुपया) जिसकी झनकार ठीक न हो। जो खरे सिक्के के ऐसा न बजे। जो कुछ खोटा होने के कारण ठीक आवाज न दे। जैसे, ठस रुपया। (८) भरा पूरा। संपन्न। धनाढ्य। जैसे, ठस असामी। (९) कृपण। कंजूस। (१०) हठी। जिद्दी। अड़ करनेवाला।

ठसक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठस] (१) अभिमानपूर्ण हाव भाव। गर्वीली चेष्टा। नखरा। उ०—जैसे, वह बड़ी ठसक से चलती है। (२) अभिमान। दर्प। शान। उ०—कढ़ि गई रैयत के जिय की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।—भूषण।

ठसकदार—वि० [हिं० ठसक + फ़ा० दार] (१) घमंडी। अभिमानी। (२) शानदार। तड़क भड़कवाला। उ०—और ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार नंद के कन्हाई सो जु नंद को कन्हाई है।—पद्माकर।

ठसका—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) वह खाँसी जिसमें कफ न निकले

ठाकुर अंत चहै जेहि मारा। तेहि सेवक कर कहाँ उबारा ?—जायसी। (ख) निडर, नीच, निर्गुन निर्धन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव।—तुलसी। (८) नाइयों की उपाधि। नापित।

ठाकुरद्वारा-संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर+द्वार] (१) किसी देवता विशेषतः विष्णु का मंदिर। देवालय। देवस्थान। (२) जगन्नाथ का मंदिर जो पुरी में है। पुरुषोत्तमधाम। (३) मुरादाबाद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान।

ठाकुरप्रसाद-संज्ञा पुं० [हिं०] (१) देवता की निवेदित वस्तु। नैवेद्य। (२) एक प्रकार का धान जो भादों महीने के अंत और क्वार के आरंभ में हो जाया करता है।

ठाकुरबाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर+बाड़ा या बाड़ी=घर] देवालय। मंदिर।

ठाकुरसेवा-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर+सेवा] (१) देवता का पूजन। (२) वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्सर्ग की गई हो।

ठाकुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] ठकुराई। स्वामित्व। आधिपत्य। शासन। उ०—जम के असूस विनय जम सों हमेशा करैं तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।—पद्माकर।

ठाट-संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ=खड़ा होनेवाला] (१) फूस और बाँस की फट्टियों को एक में बाँध कर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़ करने या छाने के काम में आता है। लकड़ी या बाँस की फट्टियों का बना हुआ परदा। जैसे, इस खपरैल का ठाट उजड़ गया है।

क्रि० प्र०—ठाटबंदी। नवठट।

(२) ढाँचा। ढड्ढा। पंजर। किसी वस्तु के मूल अंगों की योजना जिसके आधार पर शेष रचना की जाती है।

मुहा०—ठाट खड़ा करना=ढाँचा तैयार करना। ठाट खड़ा होना=ढाँचा तैयार होना।

(३) रचना। बनावट। सजावट। वेश-विन्यास। शृंगार। उ०—(क) ब्रज नरनारि ग्वाल बालक कहँ कौने ठाट रच्यो।—सूर। (ख) पहिरि पितंबर, करि आडंबर बहु तन ठाट सिंगारयो।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—ठटना।—बनाना।

मुहा०—ठाट बदलना=(१) वेश बदलना। नया रूप रंग दिखाना। (२) और का और भाव प्रकट करना। प्रयोजन निकालने या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये झूठे लक्षण दिखाना। (३) श्रेष्ठता प्रकट करना। झूठ मूठ अधिकार या बड़प्पन जताना। रंग बाँधना। ठाट माँजना=दे० "ठाट बदलना (१), (३)"।

(४) आडंबर। तड़क। भड़क। तैयारी। शान शौकत। दिखावट। धूम धाम। जैसे, राजा की सवारी बड़े ठाट से निकली।

यौ०—ठाट बाट।

(५) चैन चान। मज़ा। आराम।

मुहा०—ठाट मारना=मौज उड़ाना। मज़े उड़ाना। चैन करना। ठाट से कटना=चैन से दिन बीतना।

(६) ढंग। शैली। प्रकार। ढब। तर्ज़। अंदाज़। जैसे, (क) उसके चलने का ठाट ही निराला है। (ख) यह घोड़ा बड़े ठाट से चलता है। (७) आयोजन। सामान। तैयारी। अनुष्ठान। समारंभ। प्रबंध। बंदोबस्त। उ०—(क) रघुबर कह्यो लखन ! भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।—तुलसी। (ख) पालव बैठि पेड़ एइ काटा। सुख महँ सोक ठाट धरि ठाटा।—तुलसी। (ग) कासों कहौं, कहो, कैसी करौं अब क्यों निबहै यह ठाट जो ठाये।—सुंदरीसर्वस्व।

क्रि० प्र०—करना।

(८) सामान। माल असबाब। सामग्री। उ०—सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा।—नज़ीर।

(९) युक्ति। ढब। ढंग। उपाय। डौल। जैसे, (क) किसी ठाट से अपना रुपया वहाँ से निकालो। (ख) वह ऐसे ठाट से माँगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है। उ०—राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कुठाट। तुलसी ते कुरराज ज्यों जैहैं बारह बाट।—तुलसी। (१०) कुश्ती या पटेबाज़ी में खड़े होने या वार करने का ढंग। पैंतरा।

मुहा०—ठाट बदलना=दूसरी मुद्रा से खड़ा होना। पैंतरा बदलना। ठाट बाँधना=वार करने की मुद्रा से खड़ा होना।

(११) कबूतर या मुर्गे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या झाड़ने का ढंग।

मुहा०—ठाट मारना=पर फड़फड़ाना।

(१२) सितार का तार।

संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] [स्त्री० ठटी] (१) समूह। झुंड। उ०—(क) गज के ठाट पचास हजारा। लख सहस्र रहँ असवारा।—रघुराज। (ख) निसरि पराहि भालु कपि ठाटा।—तुलसी। † (२) बहुतायत। अधिकता। प्रचुरता। (३) बैल या साँड़ की गरदन के ऊपर का डिल्ला। कूबड़।

ठाटना-क्रि० स० [हिं० ठाट] (१) रचना। बनाना। निर्मित करना। संयोजित करना। उ०—बालक को तन ठाटिया निकट सरोवर तीर। सुर नर मुनि सब देखहिं साहेब धरेउ सरीर।—कबीर। (२) अनुष्ठान करना। ठानना। करना। आयोजन करना। उ०—(क) महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुराई ठाटी।—सूर। (ख) पालव बैठि पेड़ एइ काटा। सुख महँ सोक ठाट धरि ठाटा।—तुलसी। (३) सुसज्जित करना। सजाना। सँवारना।

ठाटबंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट+फ़ा० बंद] (१) छाजन या परदे

लेगा ? (ख) तुम घर के आदमी ठहरे तुमसे क्या छिपाना। (ग) अपने संबंधी ठहरे उन्हें क्या कहें। (इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ किसी व्यक्ति या वस्तु के अन्यथा होने पर विरुद्ध घटना या व्यवहार की संभावना होती है)।

ठहराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना] (१) ठहराने की क्रिया। (२) ठहराने की मजदूरी। (३) कब्जा। अधिकार।

ठहराउ†–संज्ञा पुं० दे० "ठहराव"।

ठहराऊ–वि० [हिं० ठहरना] (१) ठहरनेवाला। कुछ दिन बना रहनेवाला। जल्दी नष्ट न होनेवाला। (२) टिकाऊ। चलनेवाला। दृढ़। मजबूत।

ठहराना–क्रि० स० [हिं० ठहरना] (१) चलने से रोकना। गति बंद करना। स्थिति कराना। जैसे, (क) वह चला जा रहा है, उसे ठहराओ। (ख) यह चलता हुआ पहिया ठहरा दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) टिकाना। विश्राम कराना। डेरा देना। कुछ काल तक के लिये निवास देना। जैसे, इन्हें अपने यहाँ ठहराओ। (३) इस प्रकार रखना कि नीचे न खिसके या गिरे। अड़ाना। टिकाना। स्थित रखना। जैसे, डंडे की नोक पर गोला ठहराना।

संयो० क्रि०—देना।

(४) स्थिर रखना। इधर उधर न जाने देना। एक स्थान पर बनाए रखना। (५) किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बंद करना। किसी होते हुए काम को रोकना।

संयो० क्रि०—देना।

(६) निश्चित करना। पक्का करना। स्थिर करना। तै करना। जैसे, बात ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहराना, ब्याह ठहराना।

ठहराव–संज्ञा पुं० [हिं० ठहरना] (१) ठहरने का भाव। स्थिरता। (२) निश्चय। निर्धारण। नियति। मुकर्ररी।

ठहरु†–संज्ञा पुं० दे० "ठहर"।

ठहरौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना] विवाह में लेन देन का करार।

ठहाका†–संज्ञा पुं० [अनु०] अट्टहास। जोर की हँसी। क़हक़हा।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

†वि० चटपट। तुरंत। तड़ से।

ठहियाँ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँव] ठाँव। जगह। ठिकाना। स्थान।

ठाँ–संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "ठाँव"।

संज्ञा पुं० [अनु०] बंदूक की आवाज़।

ठाँई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठावँ] (१) स्थान। जगह। (२) तईं। प्रति। उ०—पान भखे मुख नैन रची रुचि आरसी देखि कहैं हम ठाँईं।—केशव। (३) समीप। पास। निकट।

ठाँउँ†–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] (१) ठौर। ठाँव। स्थान। जगह। ठिकाना। (२) पास। समीप। उ०—चार मीत जो मुहमद ठाऊँ। जिन्हहिं दीन्हि जग निरमल नाऊँ।—जायसी।

ठाँठ–वि० [सं० स्थाणु = ठूँठा पेड़ वा अनु० ठन ठन] (१) जो सूख कर विना रस का हो गया हो। नीरस। (२) (गाय या भैंस) जो दूध न देती हो। दूध न देनेवाला (चौपाया)। जैसे, ठाँठ गाय।

ठाँयँ–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० स्थान, प्रा० ठान] (१) स्थान। जगह। ठिकाना।

विशेष—दे० "ठाँव"।

(२) समीप। निकट। पास। उ०—जिन लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़े ठायँ।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [अनु०] बंदूक छूटने का शब्द। जैसे, ठायँ से गोली मार दी।

ठाँयँ ठाँयँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) बंदूक छूटने का शब्द। † (२) रगड़ा झगड़ा।

ठाँव–संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान] स्थान। जगह। ठिकाना। उ०—(क) निडर, नीच, निर्गुन निर्धन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव।—तुलसी। (ख) नाहिन मेरे और कोउ बलि, चरन कमल बिनु ठाँव।—सूर।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सब कवियों ने पुं० किया हैं और अधिक स्थानों में पुं० ही बोला भी जाता है पर दिल्ली मेरठ आदि पच्छिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं।

ठाँसना–क्रि० स० [सं० स्थास्नु = दृढ़ता से बैठाया हुआ] (१) जोर से घुसाना। कस कर घुसेड़ना। दबा कर प्रविष्ट करना। (२) कस कर भरना। दबा दबा कर भरना। † (३) रोकना। अवरोध करना। मना करना।

क्रि० अ० ठन ठन शब्द के साथ खाँसना। विना कफ निकाले हुए खाँसना।

ठाँहीं†–संज्ञा स्त्री० दे० "ठाँईं"।

ठाकुर–संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] [स्त्री० ठकुराइन, ठकुरानी] (१) देवता, विशेष कर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा। देव-मूर्त्ति।

यौ०—ठाकुरद्वारा। ठाकुरबाड़ी।

(२) ईश्वर। परमेश्वर। भगवान। (३) पूज्य व्यक्ति। (४) किसी प्रदेश का अधिपति। नायक। सरदार। अधिष्ठाता। उ०—सब कुँवरन फिर खैंचा हाथू। ठाकुर जेंव तो जेंवै साथू।—जायसी। (५) जमींदार। गाँव का मालिक। (६) क्षत्रियों की उपाधि। (७) मालिक। स्वामी। उ०—(क)

वि० जिसे कुछ कामधंधा न हो। खाली। निठल्ला।

ठाला–संज्ञा पु० [हिं० निठल्ला] (१) व्यवसाय या कामधंधे का अभाव। बेकारी। रोजगार का न रहना। (२) रोजी या जीविका का अभाव। आमदनी का न होना। वह दशा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो। रुपए पैसे की कमी। जैसे, आज कल बड़ा टाला है कुछ नहीं दे सकते।

मुहा०—ठाला बताना=बिना कुछ दिए चलता करना। धता बताना। (दलाल)। बैठे ठाले=खाली बैठे हुए। कुछ कामधंधा न रहते हुए। जैसे, बैठे ठाले, यहीं किया करो, अच्छा है।

ठाली–वि० [हिं० निठल्ला] (१) खाली। जिसे कुछ काम धंधा न हो। निठल्ला। बेकाम। उ०—(क) ऐसी को ठाली बैठी है तोसों मूड़ चरावै। झूठी बात तुमी सी बिनु कन फटकन हाथ न आवै।—सूर। (ख) ठाली ग्वालि जानि पठये अलि कह्यो पछोरन छूछो।—तुलसी।

ठावँ–संज्ञा स्त्री० पु० दे० "ठाँव"।

ठावना–क्रि० स० दे० "ठाना"।

ठासा–संज्ञा पु० [हिं० ठँसना] लोहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की कोर निकालते और उभारते हैं।

यौ०—गोल ठासा=गोल सिरे का ठासा जिससे लोहे की चद्दर को गढ़ कर गोला बनाते हैं।

ठाहर†–संज्ञा पु० [सं० स्थल, हिं० ठहर] (१) स्थान। जगह। उ०—शुक्रसुता जब आई बाहर। पाए बसन परे तेहि ठाहर।—सूर। (२) निवास-स्थान। रहने या टिकने का स्थान। डेरा। उ०—रघुवर कह्यो लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।—तुलसी।

ठाहरू†–संज्ञा पु० दे० "ठाहर"।

ठाहरूपक–संज्ञा पु० [सं० स्था+रूपक] मृदंग का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है। इसमें और आड़ा चौताल में बहुत थोड़ा भेद है।

ठाहीं†–संज्ञा स्त्री० दे० "ठाँहीं"।

ठिँगना–वि० [हिं० हेठ+अंग] [स्त्री० ठिँगनी] जो ऊँचाई में कम हो। छोटे कद का। छोटे डील का। नाटा। (जीव धारियों विशेषतः मनुष्य के लिये)

ठिक–संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] धातु की चद्दर का कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो जोड़ लगाने के काम में आवे। थिगली। चकती।

ठिकठैन†*–संज्ञा पु० [हिं० ठीक+ठयना] ठीक ठाक। प्रबंध। आयोजन। उ०—आज कछू औरै भए ठए नए ठिकठैन। चित के हित के चुगल ये नित के होंय न नैन।—बिहारी।

ठिकड़ा–संज्ञा पु० दे० "ठीकरा"।

ठिकना†–क्रि० अ० [सं० स्थित+क] ठिठकना। ठहरना। रुकना। अड़ना। उ०—रस भिजए दोऊ दुहुनि तउ ठिकि रहैं टरैं न। छवि सों छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन।—बिहारी।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

ठिकरा†–संज्ञा पु० दे० "ठीकरा"।

ठिकरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "ठीकरी"।

ठिकरौर–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जहाँ खपड़े ठीकरे आदि बहुत से पड़े हों।

ठिकाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठीक] पाल के जम कर ठीक ठीक बैठने का भाव। (लश०)

ठिकान†–संज्ञा पु० दे० "ठिकाना"।

ठिकाना–संज्ञा पु० [हिं० टिकान] (१) स्थान। जगह। ठौर। (२) रहने की जगह। निवास स्थान। ठहरने की जगह।

यौ०—पता ठिकाना।

(३) आश्रय स्थान। निर्वाह करने का स्थान। जीविका का अवलंब।

मुहा०—ठिकाना करना=(१) जगह करना। स्थान निश्चित करना। स्थान नियत करना। जैसे, अपने लिये कहीं बैठने का ठिकाना करो। (२) टिकना। डेरा करना। ठहरना। (३) आश्रय ढूँढ़ना। जीविका लगाना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जैसे, इनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, खाली बैठे हैं। (४) ब्याह के लिये घर ढूँढ़ना। ब्याह ठीक करना। जैसे, इनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे। ठिकाना ढूँढ़ना=(१) स्थान ढूँढ़ना। जगह तलाश करना। (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढ़ना। निवास स्थान ठहराना। (३) नौकरी या काम धंधा ढूँढ़ना। जीविका खोजना। आश्रय ढूँढ़ना। (४) कन्या के ब्याह के लिये घर ढूँढ़ना। वर खोजना। (किसी का) ठिकाना लगना=(१) आश्रय स्थान मिलना। ठहरने या रहने की जगह मिलना। उ०—सिपाही जो भागे तो बीच में कहीं ठिकाना न लगा। (२) जीविका का प्रबंध होना। नौकरी या काम धंधा मिलना। निर्वाह का प्रबंध होना। उ०—इस चाल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न लगेगा। ठिकाना लगाना=(१) पता चलाना। ढूँढ़ना। (२) आश्रय देना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जीविका का प्रबंध करना। ठिकाने आना=(१) अपने स्थान पर पहुँचना। नियत या वांछित स्थान पर प्राप्त होना। उ०—चलत पंथ कोउ थाको होई। कहै दूरि हरि मरिहै सोई। जो कोउ ताको निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकाने आवै।—सूर। (२) ठीक विचार पर पहुँचना। बहुत सोच विचार या बातचीत के उपरांत यथार्थ बात करना या समझना। जैसे, बुद्धि ठिकाने आना। उ०—हाँ, इतनी देर

आदि के लिये फूस और बाँस की फट्टियों आदि को परस्पर जोड़ कर ढाँचा बनाने का काम। (२) इस प्रकार का ढाँचा। ठाट। टट्टर।

ठाट बाट—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] (१) सजावट। बनावट। सजधज। (२) तड़क भड़क। आडंबर। शान शौकत। जैसे, आज बड़े ठाट बाट से राजा की सवारी निकली।

ठाटर—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] (१) बाँस की फट्टियों और फूस आदि को जोड़ कर बनाया हुआ ढाँचा जो छाजन या परदे के काम में आता है। ठाट। टट्टर। टट्टी। (२) ठठरी। पंजर। (३) ढाँचा। (४) कबूतर आदि के बैठने की छतरी जो टट्टर के रूप में होती है। (५) ठाट बाट। बनाव। सिंगार। सजावट। उ०—ठठिरिन बहुतइ ठाटर कीन्हीं। चली अहीरिन काजर दीन्हीं।—जायसी।

ठाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट] ठट। समूह। श्रेणी। उ०—जस रथ रेंगि चलइ गज ठाटी। बोहित चले समुद गे पाटी।—जायसी।

ठाट्ठ—संज्ञा पुं० दे० "ठाट"।

ठाठ—संज्ञा पुं० दे० "ठाट"।

ठाठना—क्रि० स० दे० "ठाटना"।

ठाठर—संज्ञा पुं० दे० "ठाटर"।

संज्ञा पुं० [देश०] नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लग्गी न लगे। (मल्लाह)

ठाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़] खेत की वह जोताई जिसमें एक बल जोत कर फिर दूसरे बल जोतते हैं।

वि० दे० "ठाढ़ा"।

ठाढ़—वि० दे० "ठाढ़ा"।

ठाढ़ा*—वि० [सं० स्थातृ = जो खड़ा हो] (१) खड़ा। दंडायमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

(२) जो पिसा या कुटा न हो। समूचा। साबित। उ०—भूँजि समोसा घिउ महँ काढ़े। लौंग मिर्च तेहि भीतर ठाढ़े।—जायसी। (३) उपस्थित। उत्पन्न। पैदा। उ०—कीन चहत लीला हरि जबहीं। ठाढ़ करत हैं कारन तबहीं।—विश्राम।

मुहा०—ठाढ़ा देना = स्थिर रखना। ठहराना। रखना। टिकाना। उ०—बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो यह प्रताप बिनु जाने। अब प्रगटे वसुदेव सुवन तुम गर्ग वचन परिमाने।—सूर।

वि० हट्टा कट्टा। हृष्ट पुष्ट। बली। दृढांग। मजबूत।

ठाढ़ेश्वरी—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़ + सं० ईश्वर] एक प्रकार के साधु जो दिन रात खड़े रहते हैं। वे खड़े ही खड़े खाते पीते तथा दीवार आदि का सहारा लेकर सोते हैं।

ठादर—संज्ञा पुं० [देश०] रार। झगड़ा। मुठभेड़। उ०—देव आपनो नहीं सँभारत करत इंद्र सों ठादर।—सूर।

ठान—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुष्ठान] (१) अनुष्ठान। कार्य्य का आयोजन। समारंभ। काम का छिड़ना। (२) छेड़ा हुआ काम। कार्य्य। उ०—जानती इतेक तो न ठानती अठान ठान भूलि पथ प्रेम के न एक पग डारती।—हनुमान। (३) दृढ़ निश्चय। दृढ़ संकल्प। पक्का इरादा। (४) चेष्टा। मुद्रा। अंग स्थिति या संचालन का ढब। अंदाज। उ०—पाछे बंक चितै मधुरे हँसि घात किए उलटे सुठान सों।—सूर।

ठानना—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान, हिं० ठान] (१) (किसी कार्य्य को) तत्परता के साथ आरंभ करना। दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना। अनुष्ठित करना। छेड़ना। जैसे, काम ठानना, झगड़ा ठानना, बैर ठानना, युद्ध ठानना, यज्ञ ठानना। उ०—तिन सों कह्यो पुत्र हित हय मख हम दीनो है ठानी।—रघुराज। (२) (मन में) स्थिर करना। (मन में) ठहराना। निश्चित या ठीक करना। पक्का करना। चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करना। दृढ़ संकल्प करना। जैसे, मन में कोई बात ठानना, हठ ठानना। उ०—सदा राम एहि प्रान समाना। कारन कौन कुटिल पन ठाना।—तुलसी।

ठाना†*—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान] (१) ठानना। दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ करना। छेड़ना। करना। उ०—काहे को सोहैं हजार करो तुम तो कबहूँ अपराध न ठायो।—मतिराम। (२) मन में ठहराना। निश्चित करना। दृढ़तापूर्वक चित्त में धारण करना। पक्का विचार करना। उ०—विश्वामित्र दुखी ह्वै तँह पुनि करन महा तप ठायो।—रघुराज।

विशेष—दे० "ठयना"।

(३) स्थापित करना। रखना। धरना। उ०—मुरली तऊ गोपालहि भावति। अति आधीन सुजान कनौठे गिरिधर नार नवावति। आपुन पौढ़ि अधर सज्या पर कर-पल्लव पद-पल्लव ठावति।—सूर।

† संज्ञा पुं० दे० "थाना"।

ठाम†*—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० स्थान] (१) स्थान। जगह।

विशेष—दे० "ठाँव"।

(२) अंगस्थिति या संचालन का ढंग। ढवनि। मुद्रा। अंदाज। (३) अँगेट। अँगलेट।

ठायँ—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "ठाँव" "ठाँयँ"।

ठार—संज्ञा पुं० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ, ठड्ढ] (१) गहरा जाड़ा। अत्यंत शीत। गहरी सरदी। (२) पाला। हिम।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठाला†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निठल्ला] (१) व्यवसाय या कामधंधे का अभाव। जीविका का अभाव। बेकारी। बेरोजगारी। (२) खाली वक्त। फुरसत। अवकाश।

ठिल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० ठिलिया] [स्त्री० ठिलिया, ठिल्ली] घड़ा। पानी भरने या रखने का मिट्टी का बरतन। गगरी।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० दे० "ठिलिया"।

ठिल्ही—संज्ञा स्त्री० दे० "ठिल्ली"।

ठिहार—वि० [सं० स्थिर] विश्वास करने योग्य। एतबार के लायक।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहरना] ठहराव। निश्चय। इकरार। उ०—जैसी हुती हमतें तुमतें अब होयगी वैसियै प्रीति ठिहारी। चाहत जो चित में हित तो जनि बोलिय कुंजन कुंजविहारी।—सुंदरीसर्वस्व।

ठीक—वि० [हिं० ठिकना] (१) जैसा हो वैसा। यथार्थ। सच। प्रामाणिक। जैसे, तुम्हारी बात ठीक निकली। (२) जैसा होना चाहिए वैसा। उपयुक्त। अच्छा। भला। उचित। मुनासिब। योग्य। जैसे, (क) उनका वर्त्ताव ठीक नहीं होता। (ख) तुम्हारे लिये ऐसा कहना ठीक नहीं है।

मुहा०—ठीक लगना = भला जान पड़ना।

(३) जिसमें भूल या अशुद्धि न हो। शुद्ध। सही। जैसे, आठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं? (४) जो बिगड़ा न हो। जो अच्छी दशा में हो। जिसमें कुछ त्रुटि या कसर न हो। दुरुस्त। अच्छा। जैसे, (क) यह घड़ी ठीक करने के लिये भेज दो। (ख) हमारी तबियत ठीक नहीं है।

यौ०—ठीक ठाक।

(५) जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बैठे या जमे। जो ढीला या कसा न हो। जैसे, यह जूता पैर में ठीक नहीं होता।

मुहा०—ठीक आना = ढीला या कसा न होना।

(६) जो प्रतिकूल आचरण न करे। सीधा। सुष्ट। नम्र। जैसे, (क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा। (ख) हम अभी तुम्हें आ कर ठीक करते हैं।

मुहा०—ठीक बनाना = (१) दंड देकर सीधा करना। राह पर लाना। दुरुस्त करना। (२) तंग करना। दुर्गति करना। दुर्दशा करना।

(७) जो कुछ आगे पीछे इधर उधर या घटा बढ़ा न हो। जिसकी आकृति, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ अंतर न हो। किसी निर्दिष्ट आकार, परिमाण या स्थिति का। जिसमें कुछ फ़र्क न पड़े। निर्दिष्ट। जैसे, (क) हम ठीक ग्यारह बजे आवेंगे। (ख) चिड़िया ठीक तुम्हारे सिर के ऊपर है। (ग) यह चीज ठीक वैसी ही है।

मुहा०—ठीक उतरना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना। जाँच करने पर न घटना न बढ़ना। जैसे, अनाज तौलने पर ठीक उतरा।

(८) ठहराया हुआ। नियत। निश्चित। स्थिर। पक्का। है। जैसे, काम करने के लिये आदमी ठीक करना, गाड़ी ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—ठीक ठाक।

क्रि० वि० जैसे चाहिए वैसे। उपयुक्त प्रणाली से। उचित रीति से। अच्छे ढंग से। जैसे, ठीक चलना, ठीक दौड़ना। उ०—(क) यह घोड़ा ठीक नहीं चलता। (ख) यह बनिया ठीक नहीं तौलता।

संज्ञा पुं० (१) निश्चय। ठिकाना। स्थिर और असंदिग्ध बात। पक्की बात। दृढ़ बात। जैसे, उनके आने का कुछ ठीक नहीं, आवें या न आवें।

यौ०—ठीक ठिकाना।

मुहा०—ठीक देना = मन में पक्का करना। दृढ़ निश्चय करना। उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ी उर आखर दू की।—तुलसी। (ख) कर विचार मन दीन्ही ठीका। राम रजायसु आपन नीका।—तुलसी। (इस मुहा० में 'ठीक' शब्द के आगे 'बात' शब्द लुप्त मान कर उसका प्रयोग स्त्री० में होता है)

(२) नियति। ठहराव। स्थिर प्रबंध। पक्का आयोजन। बंदोबस्त। जैसे, खाने पीने का ठीक कर लो, तब कहीं जाओ।

यौ०—ठीक ठाक।

(३) जोड़। मीजान। योग। टोटल।

मुहा०—ठीक देना, लगाना = जोड़ निकालना। योगफल निश्चित करना।

ठीक ठाक—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] (१) निश्चित प्रबंध। बंदोबस्त। आयोजन। जैसे, इनके रहने का कहीं ठीक ठाक करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) जीविका का प्रबंध। काम धंधे का बंदोबस्त। आश्रय। ठौर ठिकाना। जैसे, इनका भी कहीं ठीक ठाक लगाओ।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

(३) निश्चय। ठहराव। पक्की बात। जैसे, विवाह का ठीक ठाक हो गया?

वि० अच्छी तरह दुरुस्त। बन कर तैयार। प्रस्तुत। काम देने योग्य।

ठीकड़ा—संज्ञा पुं० दे० "ठीकरा"।

ठीकरा—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा] [स्त्री० अल्प० ठीकरी] (१) मिट्टी के बरतन का फूटा टुकड़ा। खपरैल आदि का टुकड़ा। सिटकी।

मुहा०—ठीकरा फोड़ना = दोष लगाना। कलंक लगाना। (किसी वस्तु या रुपए पैसे आदि को) ठीकरा समझना = कुछ न

के बाद अब ठिकाने आए। (३) मूल तत्व तक पहुँचना। असली बात छेड़ना या कहना। प्रयोजन की बात पर आना। मतलब की बात उठाना। ठिकाने की बात=(१) ठीक बात। सच्ची बात। यथार्थ बात। प्रामाणिक बात। असली बात। (२) समझदारी की बात। युक्तियुक्त बात। (३) पते की बात। ऐसी बात जिससे कोई भेद खुले। ऐसी बात जिससे किसी विषय में जानकारी हो जाय। ठिकाने न रहना=चंचल हो जाना। जैसे, बुद्धि ठिकाने न रहना, होश ठिकाने न रहना। ठिकाने पहुँचाना=(१) यथास्थान पहुँचाना। ठीक जगह पहुँचाना। (२) किसी वस्तु को लुप्त वा नष्ट कर देना। किसी वस्तु को न रहने देना। (३) मार डालना। ठिकाने लगना=(१) ठीक स्थान पर पहुँचना। वांछित स्थान पर पहुँचना। (२) काम में आना। उपयोग में आना। अच्छी जगह खर्च होना। उ०—चलो अच्छा हुआ, बहुत दिनों से यह चीज पड़ी थी ठिकाने लग गई। (३) सफल होना। फलीभूत होना। जैसे, मिहनत ठिकाने लगना। (४) परमधाम सिधारना। मर जाना। मारा जाना। ठिकाने लगाना=(१) ठीक जगह पहुँचाना। उपयुक्त या वांछित स्थान पर ले जाना। (२) काम में लाना। उपयोग में लाना। अच्छी जगह खर्च करना। (३) सार्थक करना। सफल करना। निष्फल न जाने देना। जैसे, मिहनत ठिकाने लगाना। (४) इधर उधर कर देना। खो देना। लुप्त कर देना। गायब कर देना। नष्ट कर देना। न रहने देना। (५) खर्च कर डालना। (६) आश्रय देना। जीविका का प्रबंध करना। काम धंधे में लगाना। (७) कार्य को समाप्ति तक पहुँचाना। पूरा करना। (८) काम तमाम करना। मार डालना।

(४) (क) निश्चित अस्तित्व। यथार्थता की संभावना। ठीक। प्रमाण। जैसे, उसकी बात का क्या क्या ठिकाना? कभी कुछ कहता है कभी कुछ। (ख) दृढ़ स्थिति। स्थायित्व। स्थिरता। ठहराव। जैसे, इस टूटी मेज़ का क्या ठिकाना दूसरी बनवाओ।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक या संदेहात्मक वाक्यों ही में होता है। जैसे, रुपया तो हम तब लगावें जब कि उनकी बात का कुछ ठिकाना हो।

(५) प्रबंध। आयोजन। बंदोबस्त। डौल। प्राप्ति का द्वार या ढंग। जैसे, (क) पहले खाने पीने का ठिकाना करो, और बातें पीछे करेंगे। (ख) उसे तो खाने का ठिकाना नहीं है। उ०—दो करोड़ रुपए साल की आमदनी का ठिकाना हुआ।—शिवप्रसाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ठिकाना लगना=प्रबंध होना। आयोजन होना। प्राप्ति का डौल होना। ठिकाना लगाना=प्रबंध करना। डौल लगाना।

(६) पारावार। अंत। हद। जैसे, (क) वह इतना झूठ बोलता है जिसका ठिकाना नहीं। (ख) उसकी दौलत का कहीं ठिकाना है?

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधार्थक वाक्यों ही में होता है।

† क्रि० स० [हिं० ठिकना] ठहराना। अड़ाना। स्थित करना।

ठिठकना—क्रि० अ० [सं० स्थित + करण] (१) चलते चलते एकबारगी रुक जाना। एकदम ठहर जाना। (२) अंगों की गति बंद करना। स्तंभित होना। न हिलना न डोलना। ठक रह जाना।

ठिठरना—क्रि० अ० [सं० स्थित] अधिक शीत से संकुचित होना। सरदी से ऐंठना या सिकुड़ना। जाड़े से अकड़ना। बहुत अधिक ठंढ खाना। जैसे, हाथ पाँव ठिठरना।

ठिठुरना †—क्रि० अ० दे० "ठिठरना"।

ठिनकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) बच्चों का रह रह कर रोने का सा शब्द निकालना। (२) ठसक से रोना। रोने का नखरा करना। (स्त्रि०)

ठिया†—संज्ञा पुं० [सं० स्थित] (१) गाँव की सीमा का चिह्न। हद का पत्थर या लट्ठा। (२) चाँड़। थूनी। (३) दे० "ठीहा"।

ठिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर वा स्तब्ध] गहरी सरदी। कठिन शीत। गहरी ठंढ। पाला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठिरना—क्रि० स० [हिं० ठिर] सरदी से ठिठुरना। जाड़े से अकड़ना।

क्रि० अ० गहरा जाड़ा पड़ना। अत्यंत ठंढ पड़ना।

ठिलना—क्रि० अ० [हिं० ठेलना] (१) ठेला जाना। ढकेला जाना। बलपूर्वक किसी ओर खिसकाया या बढ़ाया जाना। (२) बलपूर्वक बढ़ना। वेग से किसी ओर झुक पड़ना। घुसना। धँसना। उ०—दक्खिन तें उमड़े दोउ भाई। ठिले दीह दल पुहुमि हिलाई।—लाल। † (३) बैठना। जमना।

ठिलाठिल †—क्रि० वि० [हिं० ठिलना] एक पर एक गिरते हुए। धक्कमधक्का करते हुए। घने समूह और बड़े वेग के साथ। उ०—झिलमिल फौज ठिलाठिल धावै। चहुँ दिस छोर छुवन नहिं पावै।—लाल।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली, प्रा० ठाली=हँड़िया] छोटा घड़ा। पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन। गगरी।

ठिलुआ—वि० [हिं० निठल्ला] निठल्ला। निकम्मा। बेकाम। जिसे कुछ काम धंधा न हो। उ०—बहुत से ठिलुए अपना मन बहलाने के लिये औरों की पंचायत ले बैठते हैं।—श्रीनिवास दास।

कर कूदते हुए (चलना)। जैसे, बच्चों का ठुमक ठुमक चलना। उ०—(क) चलत देखि जसुमति सुख पावै। ठुमुकु ठुमुकु धरनी पर रेंगत जननी देखि दिखावै।—सूर। (ख) कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई।—तुलसी। (ग) छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौ।—तुलसी।

ठुमकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) बच्चों का उमंग में जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना। कूदते या फुदकते हुए चलना। उ०—ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजत पैंजनियाँ।—तुलसी। (२) नाचने में पैर पटक कर चलना जिसमें घुँघुरू बजें।

ठुमका†—वि० [देश०] [स्त्री० ठुमकी] छोटे डील का। नाटा। ठेंगना। उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर।

संज्ञा पुं० [अनु०] झटका। थपका। (पतंग)

ठुमकारना—क्रि० स० [देश०] उँगली से डोरी खींच कर झटका देना। थपका देना। (पतंग)

ठुमकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) हाथ या उँगली से खींच कर दिया हुआ झटका। थपका। (पतंग)।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) ठिठक। रुकावट। (३) छोटी खरी पूरी।

वि० स्त्री० नाटी। छोटे डील की। छोटी काठी की। उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) छोटा सा गीत। दो बोलों का गीत। वह गीत जो केवल एक स्थाय और एक ही अंतरे में समाप्त हो।

यौ०—सिर पादा ठुमरी = एक प्रकार की ठुमरी जो 'चढ़ा' तान पर बजाई जाती है।

(२) उड़ती खबर। गप। अफवाह।

क्रि० प्र०—उड़ना।

ठुरियाना—क्रि० अ० [हिं०] ठिठुर जाना। सिकुड़ जाना। शीत से अकड़ जाना।

ठुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड़ा = खड़ा] वह भूना हुआ दाना जो भूनने पर न खिले।

ठुसकना—क्रि० अ० दे० (१) "ठिनकना"। (२) ठुस शब्द करके पादना। ठुसकी मारना।

ठुसकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] धीरे से पादने की क्रिया।

ठुसना—क्रि० अ० [हिं० ठूसना] (१) कस कर भरा जाना। इस प्रकार समाना या अँटना कि कहीं खाली जगह न रह जाय। जैसे, इस संदूक में कपड़े ठुसे हुए हैं। (२) कठिनता से घुसना।

ठुसवाना—क्रि० स० [हिं० ठूसना का प्रे०] (१) कस कर भरवाना। (२) जोर से घुसवाना।

ठुसाना—क्रि० स० [हिं० ठूसना] (१) कस कर भरवाना। (२) जोर से घुसवाना। (३) खूब पेट भर खिलाना। (अशिष्ट)

ठूँग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुड] (१) चोंच। ठोर। (२) चोंच से मारने की क्रिया। चोंच का प्रहार। (३) उँगली को मोड़ कर पीछे निकली हुई हड्डी की नोक से मारने की क्रिया। ठोला।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

ठूँगा—संज्ञा पुं० दे० "ठूँग"।

ठूँठ—संज्ञा पुं० [हिं० टूटना वा सं० स्थाणु] (१) ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल पत्तियाँ आदि कट गई हों। पेड़ का धड़ जिसमें डाल पत्ते आदि न हों। सूखा पेड़। (२) कटा हुआ हाथ। टुंड। उ०—विद्या बिद्या हाथ हित पढ़त होत सब ठूँठ। कह्यो निकारो मीन को घुसि आयो गृह ऊँट।—विश्राम। (३) एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, ईख आदि की फसल में लगता है।

ठूँठा—वि० [हिं० ठूँठ वा सं० स्थाणु] [स्त्री० ठूँठी] (१) बिना पत्तियों और टहनियों का (पेड़)। सूखा (पेड़)। जैसे, ठूँठा पेड़। (२) बिना हाथ का। जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठूँठिया†—वि० [हिं० ठूँठ] (१) लूला लँगड़ा। (२) हिजड़ा। नपुंसक।

ठूँठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठूँठ] ज्वार, बाजरे, अरहर आदि का जड़ के पास का डंठल जो खेत कटने पर पड़ा रह जाता है। खूँटी।

ठूँसना—क्रि० स० दे० "ठूसना"।

ठूँसा—संज्ञा पुं० दे० "ठोसा"।

ठूनू—संज्ञा पुं० [देश०] पटवों की वह टेढ़ी कील जिस पर वे गहने अँटका कर उन्हें गूँथते हैं।

विशेष—यह कील पत्थर में बैठाए हुए खूँटे के सिरे पर लगी होती है।

ठूसना—क्रि० स० [हिं० ठस] (१) कस कर भरना। इतना अधिक भरना कि इधर उधर जगह न रहे। (२) घुसेड़ना। जोर से घुसाना। (३) खूब पेट भर कर खाना। कस कर खाना।

ठेंगना—वि० [हिं० हेठ + अंग] [स्त्री० ठेंगनी] छोटे डील का। जो ऊँचाई में पूरा न हो। नाटा। (जीवधारियों विशेषतः मनुष्य के लिये)

समझना। कुछ भी मूल्यवान् न समझना। अपने किसी काम का न समझना। जैसे, पराए माल को ठीकरा समझना चाहिए।

मुहा०—(किसी वस्तु का) ठीकरा होना = अंधा-धुंध खर्च होना। पानी की तरह बहाया जाना।

(२) बहुत पुराना बरतन। टूटा फूटा बरतन। (३) भीख माँगने का बरतन। भिक्षापात्र।

ठीकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठीकरा] (१) मिट्टी के बरतन का छोटा फूटा टुकड़ा। (२) तुच्छ वस्तु। निकम्मी चीज़। (३) मिट्टी का तवा जो चिलम पर रखते हैं। (४) उपस्थ। स्त्रियों की योनि का उभरा हुआ तल।

ठीका—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] (१) कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, मकान बनवाने का ठीका, सड़क तैयार करने का ठीका। (२) समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल कर के और कुछ अपना मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा। इजारा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हिं०] ठीका देनेवाला।

ठीठा—संज्ञा पुं० दे० "ठेंठा"।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] हँसी का शब्द।

यौ०—हाहा ठीठी।

ठीलना†—क्रि० स० दे० "ठेलना"। उ०—मैं तो भूलि ज्ञान को आयो गयउ तुम्हारे ठीले।—सूर।

ठीवन*—संज्ञा पुं० [सं० ष्ठीवन] थूक। खखार। कफ। श्लेष्मा। उ०—आमिष अस्थि न चाम को आनन ठीवन तामे भरो अधिकाई।—रघुराज।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़ों की हींस। हिनहिनाहट का शब्द। उ०—दुहुँ दल ठीहँ तुरंगनि दीनी। दुहुँ दल बुद्धि जुद्ध रस भीनी।—लाल।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० स्था] (१) जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा जिसका थोड़ा सा भाग जमीन के ऊपर रहता है। इस पर वस्तुओं को रख कर लोहार बढ़ई आदि उन्हें पीटते, छीलते या गढ़ते हैं। लोहार सोनार कसेरे आदि धातु का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी निहाई गाड़ते हैं। पशुओं को खिलाने का चारा भी ठीहे पर रख कर काटा जाता है। (२) बढ़ैयों का लकड़ी गढ़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में ढालुआँ गड्ढा बना रहता है। (३) बढ़ैयों का लकड़ी चीरने का कुंदा जिसमें लकड़ी को कस कर खड़ा कर देते और चीरते हैं। (४) बैठने के लिये कुछ ऊँचा किया हुआ स्थान। वेदी। गद्दी। दूकानदार के बैठने की जगह। (५) हद। सीमा।

ठुंठ—संज्ञा पुं० [हिं० टूटना वा सं० स्थाणु] (१) सूखा हुआ पेड़। ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल पत्तियाँ आदि कट या गिर गई हों। (२) कटा हुआ हाथ। वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठुंड—संज्ञा पुं० दे० "ठुंठ"।

ठुकना—क्रि० अ० [अनु०] (१) ताड़ित होना। ठोंका जाना। पिटना। आघात सहना। (२) आघात पा कर धँसना। गड़ना। जैसे, खूँटा ठुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) मार खाना। मारा जाना। जैसे, घर पर खूब ठुकोगे। (४) कुश्ती आदि में हारना। ध्वस्त होना। पस्त होना। (५) हानि होना। नुकसान होना। चपत बैठना। जैसे, घर से निकलते ही २०) की ठुकी। (६) काठ में ठोंका जाना। कैद होना। पैर में बेड़ी पहनना। (७) दाखिल होना। जैसे, नालिश ठुकना।

ठुकराना—क्रि० स० [हिं० ठोकर] (१) ठोकर मारना। ठोकर लगाना। लात मारना। (२) पैर से मार कर किनारे करना। तुच्छ समझ कर पैर से हटाना।

ठुकवाना—क्रि० स० [हिं० ठोकना का प्रे०] (१) ठोकने का काम कराना। पिटवाना। (२) गड़वाना। धँसवाना। (३) संभोग कराना। (अशिष्ट)

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग। चिबुक। ठोढ़ी। ठुड्डी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड़ा = खड़ा] वह भूना हुआ दाना जो फूट कर खिला न हो। ठोर्री। जैसे, मक्के की ठुड्डी।

ठुनकना—क्रि० अ० दे० "ठिनकना"।

†क्रि० स० [हिं० ठोंकना] धीरे से उँगली से ठोंक या मार देना।

ठुनकाना†—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] धीरे से ठोंकना। उँगली से हलकी चोट पहुँचाना।

ठुन ठुन—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) धातु के टुकड़ों या बरतनों के बजने का शब्द। (२) बच्चों के रुक रुक कर रोने का शब्द।

मुहा०—ठुन ठुन लगाए रहना = बराबर रोया करना।

ठुमक—वि० [अनु०] (१) (चाल) जिसमें उमंग के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं। बच्चों की तरह कुछ कुछ उछल कूद या ठिठक लिए हुए (चाल)। (२) ठसक भरी (चाल)। जैसे, ठुमक चाल।

ठुमक ठुमक—क्रि० वि० [अनु०] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना)। फुदकते या रह रह

ठेगनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेगना] टेकने की लकड़ी।

ठेघना–क्रि० स० दे० "ठेगना"।

ठेघनी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेघना] टेकने की लकड़ी।

ठेघा–†संज्ञा पु० [हिं० टेक] टेक। चाँड़। वह खंभा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय। उ०—(क) बरनहिं बरन गगन जस मेघा। उठहिं गगन बैठे जनु ठेघा।—जायसी। (ख) विरह बजागि बीज की ठेघा। धूम सो उठी स्याम भए मेघा।—जायसी। (ग) गाजे गगन चढ़ा जस मेघा। बरसहि वज्र सलिल की ठेघा।—जायसी।

ठेघुना†–संज्ञा पु० दे० "ठेहुना"।

ठेठ–वि० [देश०] (१) निपट। निरा। बिलकुल। जैसे, ठेठ गँवार। (२) खालिस। जिसमें कुछ मेल जोल न हो। जैसे, ठेठ बोली, ठेठ हिंदी। (३) शुद्ध। निर्मल। निर्लिप्त। उ०—मैं बलकारी ठेठ का सत गुरु दिया सोहाग। दिल दरपन दिखलाय के दूर किया सब दाग। कबीर। (४) आरंभ। शुरू। उ०—मैं ठेठ से देखता आता हूँ कि आप मुझको देख कर जलते हैं।—श्रीनिवासदास।

संज्ञा स्त्री० सीधी सादी बोली। वह बोली जिसमें साहित्य अर्थात् लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो।

ठेप–संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो अँटी में आ सके। (सुनार)

विशेष—सुनार सोना या चाँदी गायब करने के लिये उसे इस प्रकार अँटी में खोंसते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगाना।

†संज्ञा पुं० [सं० दीप] दीपक। चिराग।

ठेपी–संज्ञा स्त्री० [देश०] डाट। काग, जिससे बोतल या किसी बरतन का मुँह बंद किया जाता है।

ठेलना–क्रि० स० [हिं० टलना] ढकेलना। धक्का दे कर आगे बढ़ाना। रेलना।

संयो० क्रि०—देना।

यौ०—ठेलमठेल = एक पर एक आगे बढ़ते हुए। ठेला ठेली = धक्कम धक्का।

ठेला–संज्ञा पु० [हिं० ठेलना] (१) बगल से लगा हुआ धक्का जिसके कारण कोई वस्तु खिसक कर आगे बढ़े। पार्श्व का आघात। टक्कर। (२) एक प्रकार की गाड़ी जिसे आदमी ठेल या ढकेल कर चलाते हैं। (३) छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो लग्गी के सहारे चलाई जाती है। (४) बहुत से आदमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना। धक्कम धक्का। ऐसी भीड़ जिसमें देह से देह रगड़ खाय।

ठेलाठेल–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] बहुत से आदमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना। रेला पेल। धक्कम धक्का। उ०—ठानि ब्रज ठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेल मेला के मकार हित हेला के मलो गयो।—पद्माकर।

ठेवका†–संज्ञा पुं० [सं० स्थापक] वह स्थान जहाँ खेत सींचने के लिये पानी गिराया जाता है।

ठेवकी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को अड़ाने या टिकाने की वस्तु।

ठेस–संज्ञा स्त्री० [देश०] आघात। चोट। धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लगाना।

ठेसना–क्रि० स० दे० "ठूसना"।

ठेसमठेस–क्रि० वि० [हिं० ठेस] सब पालों को एक बारगी खोले हुए (जहाज़ का चलना)। (लश०)

ठेहरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी सी लकड़ी जो दरवाजों के पल्लों की चूल के नीचे गड़ी रहती है और जिस पर चूल घूमती है।

ठेही–संज्ञा स्त्री० [देश०] मारी हुई ईख।

ठेहुका–संज्ञा पु० [हिं० ठेक] वह जानवर जिसके पिछले घुटने चलते समय आपस में रगड़ खाते हों।

ठेहुना†–संज्ञा पु० [सं० अष्ठीवान्] घुटना।

ठैकर–संज्ञा पु० [देश०] नीबू का सा एक खट्टा फल जिसे हलदी के साथ उबाल कर हलका पीला रंग बनाते हैं।

ठैन*†–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान, हिं० ठँव] जगह। स्थान। बैठने का ठाँव। उ०—श्रीहन सघन कुंज वृंदावन बंसीबट जमुना की ठैन।—सूर।

ठैयाँ†–संज्ञा स्त्री० दे० "ठाइँ"।

ठैरना†–क्रि० अ० दे० "ठहरना"।

ठैराई–संज्ञा स्त्री० दे० "ठहराई"।

ठैराना–क्रि० स० दे० "ठहराना"।

ठोंक–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोंकना] (१) ठोंकने की क्रिया या भाव। प्रहार। आघात। (२) वह लकड़ी जिससे दरी बुननेवाले सूत ठोंक कर ठस करते हैं।

ठोंकना–क्रि० स० [अनु० ठक ठक] (१) जोर से चोट मारना। आघात पहुँचाना। प्रहार करना। पीटना। जैसे, इसे हथौड़े से ठोंको।

संयो० क्रि०—देना।

(२) मारना पीटना। लात, घूँसे, डंडे आदि से मारना। जैसे, घर पर जाओगे, खूब ठोंके जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

ठेंगा—संज्ञा पुं० [हिं० ठेठ + अंग वा अँगूठा] (१) अँगूठा। ठोसा।

मुहा०—ठेंगा दिखाना = (१) अँगूठा दिखाना। ठोसा दिखाना। धृष्टता के साथ अस्वीकार करना। बुरी तरह से नहीं करना। (२) चिढ़ाना। ठेंगे से = बला से। कुछ परवाह नहीं। (जब कोई किसी से किसी बात की धमकी या कुछ करने या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या निर्भीकता प्रकट करने लिये ऐसा कहता है।)

(२) लिंगेंद्रिय। (अशिष्ट)। (३) सोंटा। डंडा। गदका। उ०—जबरदस्त का ठेंगा सिर पर।

मुहा०—ठेंगा बजना = (१) मार पीट होना। लड़ाई दंगा होना। (२) व्यर्थ की खटखट होना। प्रयत्न निष्फल होना। कुछ काम न निकलना। उ०—जिसका काम उसी को साजे। और करे तो ठेंगा बाजे।

(४) वह कर जो बिक्री के माल पर लिया जाता है। चुंगी का महसूल।

ठेंगुर—संज्ञा पुं० [हिं० ठेंगा = सोंटा] काठ का लंबा कुंदा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दौड़ और उछल कूद न सकें।

ठेंघा—संज्ञा पुं० दे० "ठेघा"।

ठेँठ—संज्ञा स्त्री० दे० "ठेंठी"।

वि० दे० "ठेठ"।

ठेंठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) कान की मैल का लच्छा। कान की मैल। (२) कान के छेद में लगाई हुई रुई, कपड़े आदि की डाट। कान का छेद मूँदने की वस्तु।

मुहा०—कान में ठेंठी लगाना = न सुनना।

(३) शीशी बोतल आदि का मुँह बंद करने की वस्तु। डाट। काग।

ठेंपी—संज्ञा स्त्री० दे० "ठेंठी"।

ठेक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] (१) सहारा। बल दे कर टिकाने की वस्तु। ओंठगने की चीज़। (२) वह वस्तु जो किसी भारी चीज़ को ऊपर ठहराए रखने के लिये नीचे से लगाई जाय। टेक। चाँड़। (३) वह वस्तु जिसे बीच में देने वा ठेंकने से कोई ढीली वस्तु कस जाय, इधर उधर न हिले। पच्चड़। (४) किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे। पेंदा। तला। (५) टट्टियों आदि से घिरा हुआ वह स्थान जिसमें अनाज भर कर रखा जाता है। (६) घोड़ों की एक चाल। (७) छड़ी या लाठी की सामी। (८) धातु के बरतन में लगी हुई चकती। (९) एक प्रकार की मोटी महतावी।

ठेकना—क्रि० स० [हिं० टिकना, टेक] (१) सहारा लेना। आश्रय लेना। चलने वा उठने बैठने में अपना बल किसी वस्तु पर देना। टेकना। (२) आश्रय लेना। टिकना। ठहरना। रहना। उ०—नौ, तेरह, चौबिस औ एका। पूरब दखिन कोन तेइ ठेका।—जायसी।

विशेष—दे० "टेकना"।

ठेकवा बाँस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बंगाल और आसाम में होता है और छाजन तथा चटाई आदि के काम में आता है। इसे देव बाँस भी कहते हैं।

ठेका—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना, टेक] (१) ठेक। सहारे की वस्तु। (२) ठहरने या रुकने की जगह। बैठक। अड्डा। (३) तबला या ढोल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे बोल न निकाले जायँ, केवल ताल दिया जाय। यह बाएँ पर बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

मुहा०—ठेका भरना = घोड़े का उछल कूद करना।

(४) तबले में बायाँ। (५) कौवाली ताल। (६) ठोकर। धक्का। थपेड़ा। उ०—तरल तरंग गंग की राजहि उछलत छज लगि ठेका।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] (१) कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, मकान बनवाने का ठेका, सड़क तैयार करने का ठेका। (२) समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और कुछ अपना मुनाफा काट कर, बराबर मालिक को देता जायगा। इजारा। पट्टा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

यौ०—ठेका पट्टा।

मुहा०—ठेका भेंट = वह नजर जो किसी वस्तु को ठेके पर लेनेवाला मालिक को देता है।

ठेकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़ों की छपाई में काले हाशिये की छपाई।

ठेकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] (१) टेक। सहारा। (२) विश्राम करने के लिये ऊपर लिए हुए बोझ को कुछ देर कहीं ठिकाने या ठहराने की क्रिया।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

ठेगड़ी*—संज्ञा पुं० [देश०] कुत्ता। (डिं०)

ठेगना*—क्रि० स० [हिं० टेकना] (१) टेकना। सहारा लेना। उ०—पाणि टेगि मंजूषा काहीं। रघुनायक चितयो गुरु पाहीं।—रघुराज। (२) रोकना। बरजना। मना करना। उ०—भँवर भुजंग कहा सो पीया। हम ठेगा तुम कान न कीया।—जायसी।

बगल में दबा कर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर थपेड़ा देते हैं और जिधर का हाथ बगल में दबाया रहता है उधर ही की टाँग से धक्का देते हैं।

ठोकरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह गाय जिसे बच्चा दिए कई महीने हो चुके हों। इसका दूध गाढ़ा और मीठा होता है।

ठोकवा–संज्ञा पुं० दे० "ठोंकवा"।

ठोका†–संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के हाथ का एक गहना जो चूड़ियों के साथ पहना जाता है। एक प्रकार की पछेली।

ठोट–वि० [हिं० ठूँठ] जिसमें कुछ तत्त्व न हो। जड़। मूर्ख। गावदी।

ठोठरा†–वि० [हिं० ठूँठ] [स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या लगी हुई वस्तु के निकल आने से खाली पड़ा हुआ। खाली। पोपला। उ०—सात सौस एहि विधि लरे बान बाँधि बल-वंत। रातिहु दिनहु ठठाइ कै करे ठोठरे दंत।—लाल।

ठोड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग जो कुछ गोलाई लिए उभरा होता है। ठुड्डी। चिबुक। दाढ़ी।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धर कर बैठना=चिंता में मग्न हो कर बैठना। ठोड़ी पकड़ना, ठोड़ी में हाथ देना=(१) प्यार करना। (२) किसी चिढ़े हुए आदमी को स्नेह का भाव दिखा कर मनाना। मीठी बातों से क्रोध शांत करना। ठोड़ी तारा=सुंदरी स्त्री की ठुड्डी पर का तिल या गोदना।

ठोढ़ी†–संज्ञा स्त्री० दे० "ठोड़ी"।

ठोप†–संज्ञा पुं० [अनु० टप टप] बूँद। बिंदु।

ठोर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई या पकवान जो मैदे की मोयनदार मढ़ाई हुई लोई को घी में तलने और चाशनी में पकाने से बनता है। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में इसका भोग प्रायः लगता है।

† संज्ञा पुं० [सं० तुंड] चोंच। चंचु।

ठोला–संज्ञा पुं० [देश०] रेशम फेरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी की चौकोर छोटी पटरी (एक बित्ता लंबी, एक बित्ता चौड़ी) के रूप में होता है। इसमें लकड़ी का एक खूँटा लगा रहता है जिसमें सूआ डालने के लिये दो छेद होते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ठोली] मनुष्य। आदमी। (पश्चिम)।

ठोस–वि० [हिं० ठस] (१) जिसके भीतर खाली स्थान न हो। जो भीतर से खाली न हो। जो पोला या खोखला न हो। जो भीतर से भरा पूरा हो। जैसे, ठोस कड़ा। उ०—यह मूर्त्ति ठोस सोने की है।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में अंतर यह है कि ठस का प्रयोग या तो चद्दर के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व सूचित करने के लिये अथवा गीले या 'मुलायम' के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा, गीली मिट्टी का सूख कर ठस होना। 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या 'खोखले' के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये अतः लंबाई चौड़ाई मोटाई वाली (घनात्मक) वस्तुओं के संबंध में होता है।

(२) दृढ़। मजबूत।

संज्ञा पुं० [देश०] घसक। कुढ़न। डाह। उ०—इक हरि के दरसन बिनु मरियत अरु कुबजा के ठोसनि।—सूर।

ठोसा–संज्ञा पुं० [देश०] अँगूठा। (हाथ का) ठेंगा।

मुहा०—ठोसा दिखाना=अँगूठा दिखाना। इनकार करना। ठोसे से=बला से। ठेंगे से। कुछ परवाह नहीं।

ठोहना*†–क्रि० स० [हिं० ढूँढना] ठिकाना ढूँढना। पता लगाना। खोजना। उ०—आयो कहाँ अब हौं कहि को हौं। ज्यों अपनो पद पाऊँ सो ठोहौं।—केशव।

ठोहरा–संज्ञा पुं० [हिं० निठोहर] अकाल। गिरानी। मँहगी।

ठौंका–संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, हिं० ठावँ+क] वह स्थान जहाँ सिंचाई के लिये तालाब गड्ढे आदि का पानी दौरी से ऊपर उलीच कर गिराते हैं।

ठौनि*–संज्ञा स्त्री० दे० "ठवनि"।

ठौर–संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं० ठाँव+र] (१) जगह। स्थान। ठिकाना।

यौ०—ठौर ठिकाना=(१) रहने का स्थान। (२) पता ठिकाना।

मुहा०—ठौर कुठौर=(१) अच्छी जगह, बुरी जगह। बुरे ठिकाने। अनुपयुक्त स्थान पर। जैसे, (क) इस प्रकार ठौर कुठौर की चीज न उठा लिया करो। (ख) तुम पत्थर फेंकते हो किसी को ठौर कुठौर लग जाय तो? (२) बेमौका। बिना अवसर। ठौर न आना=समीप न आना। पास न फटकना। उ०—हरि को भजै सो हरि पद पावै। जन्म मरन तेहि ठौर न आवै।—सूर। ठौर रखना=उसी जगह मार कर गिरा देना। मार डालना। ठौर रहना=(१) जहाँ का तहाँ रह जाना। पड़ रहना। (२) मर जाना। किसी के ठौर=किसी के स्थानापन्न। किसी के तुल्य। उ०—किबला के ठौर बाप बादसाह साहजहाँ ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।—भूषण।

(२) मौका। घात। अवसर। उ०—ठौर पाय पवनपुत्र डारि मुद्रिका दई।—केशव।

ट्यापा†–वि० [देश०] उपद्रवी। शरारती। उतपाती।

(३) ऊपर से चोट लगा कर धँसाना। गाड़ना। जैसे, कील ठोंकना, पच्चर ठोंकना। (४) (नालिश अरजी आदि) दाखिल करना। दायर करना। जैसे, नालिश ठोंकना, दावा ठोंकना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) काठ में डालना। बेड़ियों से जकड़ना। (६) धीरे धीरे हथेली पटक कर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। थपेड़ा देना। थपथपाना। जैसे, पीठ ठोंकना, ताल ठोंकना, बच्चे को ठोंक कर सुलाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—ठोंक ठोंक कर लड़ना = ताल ठोक कर लड़ना। डट कर लड़ना। जबरदस्ती झगड़ा करना। उ०—दिन दिन देन उरहनो आवैं ढुँकि ढुँकि करत लरैया।—सूर। ठोंकना बजाना = हाथ से टटोल कर परीक्षा करना। जाँचना। परखना। जैसे, लोग दमड़ी की हाँड़ी भी ठोंक बजा कर लेते हैं। उ०—(क) ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े।—तुलसी। (ख) नंद व्रज लीजै ठोंकि बजाय। देहु बिदा मिलि जाँहि मधुपुरी जहँ गोकुल के राय।—सूर। पीठ ठोंकना = दे० "पीठ"। रोटी या बाटी ठोंकना = आटे की लोई को हाथ से बढ़ा कर रोटी बनाना।

(७) हाथ से मार कर बजाना। जैसे, तबला ठोंकना। (८) कस कर अँटकाना। लगाना। जड़ना। जैसे, ताला ठोंकना। (९) हाथ या लकड़ी से मार कर 'खट खट' शब्द करना। खटखटाना।

ठोंकवा †-संज्ञा पुं० [हिं० ठोंकना] मीठा मिले हुए आटे की मोटी पूरी। गूना।

ठोंग-संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] (१) चोंच। (२) चोंच की मार। (३) उँगली झुका कर पीछे की ओर निकली हुई नोक से मारने की क्रिया। उँगली की ठोकर। खुदका।

ठोंगना-क्रि० स० [हिं० ठोंग] (१) चोंच मारना। (२) उँगली से ठोकर मारना।

ठोंचना †-क्रि० स० दे० "ठोंगना"।

ठोंठा-संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो ज्वार बाजरा और ईख को हानि पहुँचाता है।

ठोंठी †-संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] (१) चने के दाने का कोश। (२) पोस्ते की ढोंढी।

ठो †-अव्य० [हिं० ठौर] एक शब्द जो पूरबी हिंदी में संख्या वाचक शब्दों के आगे लगाया जाता है। संख्या। अदद। जैसे, एक ठो, दो ठो।

ठोकचा-संज्ञा पुं० [देश०] आम की गुठली के ऊपर का कड़ा छिलका या आवरण।

ठोकना-क्रि० स० दे० "ठोंकना"।

ठोकर-संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकना] (१) वह चोट जो किसी अंग विशेषतः पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे। आघात जो चलने में कंकड़ पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे। ठेस।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—ठोकर उठाना = आघात या दुःख सहना। हानि उठाना। ठोकर या ठोकरें खाना = (१) चलने में रास्ते में पड़े हुए कंकड़ पत्थर की चोट सहना। चलने में एकबारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की रुकावट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ाना। अडुकना। अडुक कर गिरना। जैसे, जो सँभल कर नहीं चलेगा वह ठोकर खा कर गिरेगा। (२) किसी भूल के कारण दुःख या हानि सहना। असावधानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना। जैसे, ठोकर खावे, बुद्धि पावे। (३) धोखे में आना। भूल चूक करना। चूक जाना। (४) प्रयोजन-सिद्धि या जीविका आदि के लिये चारों ओर घूमना। हीन दशा में भटकना। इधर उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त हो कर घूमना। दुर्गति सहना। कष्ट सहना। जैसे, यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो आप ही ठोकर खायगा। ठोकर खाता फिरना = इधर उधर मारा मारा फिरना। ठोकर लगना = किसी भूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचना। ठोकर लेना = ठोकर खाना। अडुकना। चलने में पैर का कंकड़ पत्थर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना। ठेस खाना। जैसे, घोड़े का ठोकर लेना।

(२) रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर या कंकड़ जिसमें पैर रुक कर चोट खाता है।

मुहा०—ठोकर उड़ाऊ कदम में = ठोकर बचाते हुए। रास्ते का कंकड़ पत्थर बचाते हुए। (पालकी के कहार)। ठोकर पहाड़िया कदम में = धँसा हुआ पत्थर या कंकड़ बचाते हुए। (पालकी के कहार)

(३) वह कड़ा आघात जो पैर या जूते के पंजे से किया जाय। जोर का धक्का जो पैर के अगले भाग से मारा जाय। जैसे, एक ठोकर देंगे होश ठीक हो जायँगे।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—ठोकर देना या जड़ना = ठोकर मारना। ठोकर खाना = पैर का आघात सहना। लात सहना। पैर के आघात से इधर उधर लुढ़कना। ठोकरों पर पड़ा रहना = किसी की सेवा करके और मार गाली खाकर निर्वाह करना। अपमानित होकर रहना।

(४) कड़ा आघात। धक्का। (५) जूते का अगला भाग। (६) कुश्ती का एक पेच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी (जोड़) खड़े खड़े भीतर घुसता है। इसमें विपक्षी का हाथ

यह पृथ्वी पर पट और सीधा पड़ कर किया जाता है। हाथ पैर के पंजों के बल पट पड़ कर की जानेवाली कसरत।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—डंडपेल।

मुहा०—डंड पेलना = खूब डंड करना।

(४) दंड। सज़ा।

(५) अर्थदंड। जुरमाना। वह रुपया जो किसी अपराध या हानि के बदले में दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—डंड डालना = अर्थदंड नियत करना। जुरमाना करना। डंड भरना = हानि के बदले में धन देना। जुरमाना या हरजाना देना।

(६) घाटा। हानि। नुकसान।

मुहा०—डंड पड़ना = नुकसान होना। व्यर्थ व्यय होना। जैसे कुछ काम भी नहीं हुआ इतना रुपया डंड पड़ा।

(७) घड़ी। दंड। दे० "दंड"।

डँड़–संज्ञा पु० दे० "डंड (३)"।

डंडक*†–संज्ञा पु० दे० "दंडक"।

डँड़का†–संज्ञा पु० [हिं० डंडा] सीढ़ी का डंडा।

डंडपेल–संज्ञा पु० [हिं० डंड + पेलना] (१) खूब डंड करनेवाला। कसरती। पहलवान। (२) बलवान या तगड़ा आदमी।

डंडल–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल और बरमा में पाई जाती है। यह मछली पानी के ऊपर अपनी आँखें निकाल कर तैरती है। इसकी लंबाई १८ इंच होती है।

डंडवत्†*–संज्ञा पु० दे० "दंडवत्"।

डँड़वारा–संज्ञा पु० [हिं० डाँड़ + वार = किनारा] [स्त्री० अल्प० डँड़वारी] वह कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय। दूर तक गई हुई खुली दीवार।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—डँड़वारा खींचना = डँड़वारा उठाना।

संज्ञा पु० [हिं० दक्खिन + वारा (प्रत्य०)] दक्षिण की वायु। दखनहरा। दक्खिनैया।

क्रि० प्र०—चलना।

डँड़वारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ + वार = किनारा] कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—डँड़वारी खींचना = डँड़वारी या चारदीवारी उठाना।

डँड़वो†*–संज्ञा पु० [देश०] दंड या राजकर देनेवाला। करद। उ०—डँडवी डाँड़ दीन्ह जँह ताईं। आय डंडवत कीन्ह सबाईं।—जायसी।

डँड़हरा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल मध्य भारत और बरमा में भी पाई जाती है। यह ३ इंच लंबी होती है।

डँड़हरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी मछली जो आसाम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है।

डँड़हिया–संज्ञा पु० [हिं० डंडा] वह डंडा जिसमें बैलों की पीठ पर लदे हुए दो बोरे फँसाए रहते हैं।

डंडा–संज्ञा पु० [सं० दंड] (१) लकड़ी या बाँस का सीधा लंबा टुकड़ा। (२) लंबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें। सोंटा। मोटी छड़ी। लाठी।

मुहा०—डंडा खाना = डंडे की मार सहना। डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना। डंडे खेलना = डंडों की लड़ाई का खेल खेलना। भादों बदी चौथ को पाठशालाओं के लड़के यह खेल खेलते निकलते हैं। डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना। डंडे देना = विवाह संबंध होने के पीछे भादों बदी चौथ को बेटीवाले का बेटेवाले के यहाँ चाँदी के पत्तर चढ़े हुए कलम दवात आदि भेजने की रीति करना। डंडा बजाते फिरना = मारा मारा फिरना।

(३) डाँड़। डँड़वारा। वह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय। चारदीवारी।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—डंडा खींचना = चार दीवारी उठाना।

डंडाकरन*–संज्ञा पु० [सं० दण्डकारण्य] दंडक वन। उ०—परेउ आइ सब बन खंड माहाँ। डंडाकरन बीझ बन जाहाँ।—जायसी।

डंडाडोली–संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडा + डोली] लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के को दो आड़े डंडों पर बैठा कर इधर उधर फिराते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—खेलना।

डंडाल–संज्ञा पु० [हिं० डंडा] नगारा। दुंदुभी।

डँड़िया–संज्ञा स्त्री० [हिं० डँड़ी = रेखा] (१) छड़ीदार साड़ी। वह साड़ी जिसके बीच में लंबाई के बल गोटे टाँक कर लकीरें बनी हों। उ०—(क) लाल चोली नील डँड़िया संग युवतिन भीर। सूर प्रभु छवि निरखि रीझे मगन भो मन कीर।—सूर। (ख) नख सिख सजि सिँगार युवती तन डँड़िया कुसुमे बोरी की।—सूर।

विशेष—इसे प्रायः कुआँरी लड़कियाँ पहनती हैं। कभी कभी यह रंग बिरंगे कई पाट जोड़ कर बनाई जाती है।

(२) गेहूँ के पौधे में वह लंबी सींक जिसमें बाल लगी रहती है।

ड

ड—व्यंजनों में तेरहवाँ व्यंजन और टवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण आभ्यंतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्द्धा में स्पर्श कराने से होता है।

डंक—संज्ञा पुं० [सं० दंश] (१) भिड़, बिच्छू, मधु-मक्खी आदि कीड़ों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे वे क्रोध में या अपने बचाव के लिये जीवों के शरीर में धँसाते हैं।

विशेष—भिड़, मधु-मक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ों के पीछे जो काँटा होता है वह एक नली के रूप में होता है जिससे होकर जहर की गाँठ से जहर निकल कर चुभे हुए स्थान में प्रवेश करती है। यह काँटा केवल मादा कीड़ों को होता है।

क्रि० प्र०—मारना।

(२) कलम की जीभ। निब। (३) डंक मारा हुआ स्थान। डंक का घाव।

डंकदार—वि० [हिं० डंक + फ़ा० दार] डंकवाला। काँटेदार।

डंकना†—क्रि० अ० [अनु०] शब्द करना। गरजना। भयानक शब्द करना। उ०—हथनाल हंकिय तोप डंकिय धुनि धमंकिय चंड।—सूदन।

डंका—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का = दुंदुभि का शब्द] एक प्रकार का बाजा जो नाँद के आकार के ताँबे या लोहे के बरतनों पर चमड़ा मढ़ कर बनाया जाता है। पहले लड़ाई में डंके का जोड़ा ऊँटों और हाथियों पर चलता था और उसके साथ झंडा भी रहता था।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।—पिटना।—पीटना।

मुहा०—डंके की चोट कहना = खुल्लमखुल्ला कहना। सब को सुना कर कहना। बेधड़क कहना। डंका डालना = (१) मुरगे से मुरगे को लड़ाना। (२) मुरगे का चोंच मारना। डंका देना या पीटना = दे० (१) "डंका बजाना"। (२) मुनादी करना। डुग्गी फेरना। डौंड़ी फेरना। डंका बजाना = हल्ला करके सब को सुनाना। सब पर प्रकट करना। प्रसिद्ध करना। घोषित करना। किसी का डंका बजना = किसी का शासन या अधिकार होना। किसी की चलती होना।

संज्ञा पुं० [अं० डाक] जहाज़ों के ठहरने का पक्का घाट।

डंकिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "डाकिनी"।

डँकियाना†—क्रि० स० [हिं० डंक + आना (प्रत्य०)] डंक मारना।

डंकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) कुश्ती का एक पेंच। (२) मलखंभ की एक कसरत।

† वि० [हिं० डंक] डंकवाला।

डँकीला†—वि० [हिं० डंक + ईला (प्रत्य०)] डंकवाला।

डंकुर—संज्ञा पुं० [हिं० डंका] एक पुराना बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

डँकौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंक + औरी (प्रत्य०)] भिड़। बर्रे। ततैया। हड्डा।

डंग—संज्ञा पुं० [देश०] अधपका छुहारा।

डंगम—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष विशेष। यह पेड़ बहुत बड़ा होता है। हर साल जाड़े के दिनों में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है। दारजिलिंग के आस पास तथा खसिया की पहाड़ियों में यह अधिक मिलता है।

डंगर—संज्ञा पुं० [देश०] चौपाया (जैसे, गाय, भैंस)।

डँगरा†—संज्ञा पुं० [सं० दशांगुल] खरबूजा।

डँगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डँगरा] लंबी ककड़ी। डाँगरी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँगर = दुबला] एक प्रकार की चुड़ैल। डाइन। उ०—डाइन डँगरी नरन चबावत। गगन घुमाइ अकास पठावत।—गोपाल।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत जो पूर्वीय हिमालय, सिकिम, भूटान से लेकर चटगाँव तक होता है। यह बेंत सब से मजबूत होता है और इसमें से बहुत अच्छी छड़ियाँ और डंडे निकलते हैं। टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है।

डँगवारा—संज्ञा पुं० [हिं० डंगर = बैल, चौपाया] हल बैल आदि की वह सहायता जिसे किसान एक दूसरे को देते हैं। जिता।

डंगू ज्वर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर जकड़ उठता है और उस पर चकत्ते पड़ जाते हैं।

डँगोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और चमकदार होती है। इसके सजावट के सामान बहुत अच्छे बनते हैं। यह पेड़ आसाम और कछार में बहुतायत से होता है।

डँटैया†*—संज्ञा पुं० [हिं० डाँटना] डाँटनेवाला। डाँट बतानेवाला। घुड़कनेवाला। धमकानेवाला। उ०—साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।—तुलसी।

डँठरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "डंठल"।

डंठल—संज्ञा पुं० [सं० दंड] छोटे पौधों की पेड़ी और शाखा। नरम छाल के झाड़ों और पौधों का धड़ और टहनी। जैसे, ज्वार का डंठल, मूली का डंठल।

डंठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दंड] डंठल।

डंड—संज्ञा पुं० [सं० दंड] (१) डंडा। सोंटा। (२) बाहुदंड। बाहँ। (३) एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ पैर के पंजों के

मुहा०—डकार न लेना=(१) किसी का धन या कोई वस्तु उड़ा कर पता न देना। चुप चाप हजम कर जाना। (२) कोई काम करके उसका पता न देना।
(२) बाघ सिंह आदि की गरज। दहाड़। गुर्राहट।
क्रि० प्र०—लेना।
डकारना–क्रि० अ० [हिं० डकार+ना (प्रत्य०)] (१) पेट की वायु को मुँह से निकालना। डकार लेना। (२) किसी का माल उड़ा कर ले लेना। किसी की वस्तु चुपचाप मार लेना। हजम करना। पचा जाना। जैसे, यह सब माल डकार जायगा।
संयो० क्रि०—जाना।
(३) बाघ सिंह आदि का गरजना। दहाड़ना।
डकैत–संज्ञा पुं० [हिं० डाका+ऐत (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला। जबरदस्ती माल छीननेवाला। लुटेरा।
डकैती–संज्ञा स्त्री० [हिं० डकैत] डकैत का काम। डाका मारने का काम। जबरदस्ती माल छीनने का काम। लूट मार। छापा।
डकौत–संज्ञा पुं० [देश०] भड्डर। भड्डरी। सामुद्रिक, ज्योतिष आदि का ढोंग रचनेवाला।
विशेष—इनकी एक पृथक् जाति है जो अपने को ब्राह्मण कहती है पर नीच समझी जाती है।
डग–संज्ञा पुं० [हिं० डाँकना या सं० दक्=चलना] (१) चलने में एक स्थान से पैर उठा कर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति। फाल। कदम। उ०—मुरि मुरि चितवति नंदगली। डग न परत बृजनाथ साथ बिनु विरह व्यथा मचली।—सूर।
क्रि० प्र०—पड़ना।
मुहा०—डग देना=चलने में आगे की ओर पैर रखना। उ०—पुर तें निकसी रघुबीर वधू धरि धीर दियो मग ज्यों डग द्वै।—तुलसी। डग भरना=चलने में आगे पैर रखना। कदम बढ़ाना। डग मारना=कदम रखना। लंबे पैर बढ़ाना। उ०—भारि डगै अब फिरि चली सुंदर बनि हुलै सब अंग। मनहुँ चंद के बदन सुधा को बढ़ि बढ़ि लगत भुअंग।—सूर।
(२) चलने में जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय दोनों स्थानों के बीच की दूरी। उतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े। पैंड़।
डगडगाना–क्रि० अ० [अनु०] हिलना। इधर से उधर हिलना।
मुहा०—डगडगा कर पानी पीना=एक दम में बहुत सा पानी पीना।
डगडोलना†–क्रि० अ० [हिं० डग+डोलना] डगमगाना। हिलना। काँपना। उ०—भीषम द्रोण करण सुनै कोउ मुखहू न बोलै। ए पांडव क्यों काढ़िये धरनी डगडोलै।—सूर।
डगडोर–वि० [हिं० डग+डोलना] डाँवाडोल। हिलनेवाला। चलायमान। उ०—श्याम को एक तुही जान्यो दुराचरनी और। जैसे घट पूरन न डोलै अधभरो डगडौर।—सूर।
डगण–संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में चार मात्राओं का एक गण।
डगना†*–क्रि० अ० [सं० दक्=चलना, हिं० डग] (१) हिलना। टसकना। खसकना। जगह छोड़ना। उ०—डगइ न संभु सरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे।—तुलसी। (२) चूकना। भूल करना। उ०—तुरंग नचावहिं कुँवर वर अकनि मृदंग निसान। नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान।—तुलसी। दे० "डिगना"।
डगमगाना–क्रि० अ० [हिं० डग+मग] (१) इधर उधर हिलना डोलना। कभी इस बल, कभी उस बल झुकना। स्थिर न रहना। थरथराना। लड़खड़ाना। जैसे, पैर डगमगाना, नाव डगमगाना। (२) विचलित होना। किसी बात पर दृढ़ न रहना।
डगर–संज्ञा स्त्री० [हिं० डग] मार्ग। रास्ता। पथ। पैंड़ा।
मुहा०—डगर बताना=(१) रास्ता बताना। (२) उपाय बताना। उपदेश देना।
डगरना†*–क्रि० अ० [हिं० डगर] चलना। रास्ता लेना। धीरे धीरे चलना। उ०—चारौ इतै डगरी द्विजदेव न जानती कान्ह अजौं मग रूँदै।—द्विजदेव।
डगरा–संज्ञा पुं० [हिं० डगर] रास्ता। मार्ग। उ०—गुरु कह्यो राम नाम नीको मोहिं लागत रामराज डगरो सो।—तुलसी।
संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की पतली फट्टियों का बना हुआ छिछला बरतन। छिछला डला। डलरा। छाबड़ा।
डगराना†–क्रि० स० [हिं० डगरना] (१) रास्ते पर ले जाना। ले चलना। चलाना। (२) हाँकना।
डगरिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "डगर"।
डगरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "डगर"।
डगा†–संज्ञा पुं० [हिं० डागा] डागा। डुग्गी बजाने की लकड़ी। नगारा बजाने की लकड़ी। चोब। उ०—हउँ सब कविन्ह कर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा।—जायसी।
डगाना–क्रि० स० दे० "डिगाना"।
डग्गर–संज्ञा पुं० [सं० तरक्षु] (१) कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक मांसाहारी पशु जो रात को शिकार की खोज में निकलता है और कभी कभी बस्ती से कुत्तों, बकरी के बच्चों आदि को उठा ले जाता है। यह कई प्रकार का होता है पर मुख्य भेद दो हैं—चित्तीवाला और धारीवाला। यह एशिया और अफ्रिका के बहुत से भागों में पाया जाता है। यह देखने में बड़ा डरावना जान पड़ता है। इसका पिछला धड़ छोटा और अगला भारी होता है। गरदन लंबी और मोटी होती है, कंधे पर खड़े खड़े बाल होते हैं। इसके दाँत बहुत पैने और तेज होते हैं। यह जानवर डरपोक भी बड़ा होता है।

संज्ञा पुं० [हिं० डाँड = अर्थदंड] महसूल वसूल करनेवाला। कर उगाहनेवाला।

डँड़ियाना–क्रि० स० [हिं० डाँड़ी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाटों को सी कर जोड़ना। दो कपड़ों की लंबाई के किनारों को एक में सीना।

डँड़ियारा गोला–संज्ञा पुं० [हिं० डंडा + गोला] दोहरे सिरे का लंबा (तोप का) गोला। लठिया। (लश०)

डंडी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडा] (१) छोटी लंबी पतली लकड़ी। (२) हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो मुट्ठी में लिया या पकड़ा जाता है। दस्ता। हत्था। मुठिया। जैसे, छाते की डंडी। (३) तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका कर पलड़े बाँधे जाते हैं। डाँड़ी।

मुहा०—डंडी मारना = सौदा देने में तराजू इस प्रकार झुका देना कि चीज कम चढ़े। सौदा देने में चालाकी से कम तौलना।

(४) वह लंबा डंठल जिसमें पत्ता फूल या फल लगा होता है। नाल। जैसे, कमल की डंडी, पान की डंडी। (५) फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। जैसे, हरसिंगार की डंडी। (६) हरसिंगार का फूल। (७) आरसी नाम के गहने का वह छल्ला जो उँगली में पड़ा रहता है। (८) डंडे में बँधी हुई झोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है। झप्पान। (९) लिंगेंद्रिय। (१०) दंड धारण करनेवाला संन्यासी।

वि० [सं० द्वंद्व] झगड़ा लगानेवाला। चुगलखोर।

डँड़ोर–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी] सीधी लकीर।

डँड़ोरना–क्रि० स० [अनु०] ढूँढ़ना। हिलोर कर ढूँढ़ना। उलट पलट कर खोजना। उ०—अबकै जब हम दरस पावैं देहिं लाख करोर। हरि सो हीरा खोइ कै हम रहि समुद डँडोर।—सूर।

डंडौत–संज्ञा पुं० दे० "दंडवत्"।

डंबर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आयोजन। आडंबर। ढकोसला। धूमधाम। (२) विस्तार। (३) विलास। (४) एक प्रकार का चँदोवा। चदरछत।

यौ०—मेघडंबर = बड़ा शामियाना। दलबादल। अंबर डंबर = वह लाली जो संध्या के समय आकाश में दिखाई पड़ती है। उ०—बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति। अंबर डंबर साँझ के ज्यों बारू की भीति।

डंबेल–संज्ञा पुं० [अं०] (१) हाथ में लेकर कसरत करने की लोहे या लकड़ीकी गुल्ली जिसके दोनों सिरे लट्टू की तरह गोल होते हैं। इसे हाथ में लेकर तानते हैं। यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है। (२) वह कसरत जो इस प्रकार के लट्टू से की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।

डँवरुआ–संज्ञा पुं० [सं० डमरु] वात का एक रोग जिसमें शरीर के जोड़ जकड़ जाते हैं और उनमें दर्द होता है। गठिया। उ०—अहंकार अति दुखद डँवरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ।—तुलसी।

डँवरुआ साल–संज्ञा पुं० [सं० डमरु + हिं० सालना] धातु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये एक प्रकार का जोड़। इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा और दूसरी ओर से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े में उसी काट की नाप से गड्ढा करते हैं और उस कटे हुए अंश को उसी गड्ढे में बैठा देते हैं। यह जोड़ बहुत दृढ़ होता है और खींचने से नहीं उखड़ता।

डवाँडोल–वि० [हिं० डावँ डावँ + डोलना] चंचल। विचलित। घबराया हुआ। जैसे, चित्त डवाँडोल होना। उ०—पावक पवन पानी भानु हिम वात जम काल लोकपाल मेरे डर डवाँडोल हैं।—तुलसी।

क्रि० प्र०—होना।

डंस–संज्ञा पुं० [सं० दंश] (१) एक प्रकार का बड़ा मच्छर जो बहुत काटता है। वनमशक। जंगली मच्छर। डाँस। (इसका आकार बड़ी मक्खी से मिलता जुलता होता है।) उ०—देव विषय सुख लालसा डँस मसकादि खलु झिल्ली रूपादि सब सर्प स्वामी।—तुलसी। (२) वह स्थान जहाँ डंक चुभा हो या साँप आदि विषैले कीड़ों का दाँत चुभा हो।

डँसना–क्रि० स० दे० "डसना"।

डक–संज्ञा पुं० [अं० डाक] (१) एक प्रकार का पतला सफेद टाट (कनवस) जिससे छोटे दल के जहाजों के पाल बनाते हैं। (२) एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

डकइत–†संज्ञा पुं० दे० "डकैत"।

डकई–संज्ञा पुं० [ढाका] केले की एक जाति।

डकरा–संज्ञा पुं० [देश०] काली मिट्टी जो ताल की चँदिया में पानी सूख जाने पर निकलती है और जिसमें दरार फटे होते हैं।

डकराना–क्रि० अ० [अनु०] बैल या भैंसे का बोलना।

डकवाहा†–संज्ञा पुं० [हिं० डाक] डाक का चपरासी। डाकिया।

डकार–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) पेट की वायु का एकबारगी ऊपर की ओर छूट कर कंठ से शब्द के साथ निकल पड़ने का शारीरिक व्यापार। मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार।

क्रि० प्र०—आना।—लेना।

विशेष—योग आदि के अनुसार डकार नाग वायु की प्रेरणा से आती है।

है। होली में इसे बजाते हुए निकलते हैं।) उ०—(क) छिन डफ ताल मृदंग बजावत गात भरत परस्पर छिन छिन हेरी।—स्वामी हरिदास। (ख) कहै पदमाकर ग्वालन के डफ बाजि उठे गल गाजत गाढ़े।—पद्माकर। (२) लावनी-बाजों का बाजा। चंग।

डफर—संज्ञा पुं० [अं० ड्रापर] जहाज का एक तरफ का पाल।

डफला—संज्ञा पुं० [अ० दफ़] डफ नाम का बाजा।

डफली—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़] छोटा डफ। खँजरी।

मुहा०—अपनी अपनी डफली अपना अपना राग = जितने लोग उतनी राय।

डफार†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिग्घाड़, ज़ोर से रोने या चिल्ला उठने का शब्द। उ०—ततखन रतनसेन अति धवरा। छाँड़ि डफार पाँव लै परा।—जायसी।

डफारना†—क्रि० अ० [अनु०] चिल्लाना। दहाड़ मारना। ज़ोर से रोना या चिल्लाना। उ०—जाय विहंगम समुद डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा।—जायसी

डफालची—संज्ञा पुं० दे० "डफाली"।

डफाली—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] डफला बजानेवाला। एक मुसलमान जाति जो डफला बजाती तथा डफ, ताशे, ढोल आदि चमड़े के बाजों की मरम्मत करती है।

विशेष—अवध में डफाली डफला बजा कर गाज़ीमियाँ के गीत गाते और भीख माँगते फिरते हैं।

डफोरना†—क्रि० अ० [अनु०] हाँक देना। चिल्लाना। ललकारना। गरजना। उ०—वचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।—तुलसी।

डब—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] (१) जेब। थैला।

मुहा०—डब पकड़ कर कुछ कराना = गरदन पकड़ कर कुछ काम कराना। गला दबा कर काम कराना। जैसे, रुपया देगा कैसे नहीं, डब पकड़ कर लूँगा। डब में आना = वश में होना। क़ाबू में आना।

(२) कुप्पा बनाने का चमड़ा।

डबकना—क्रि० स० [हिं० डब] किसी धातु की चद्दर को कटोरी के आकार का गहरा करना।

क्रि० अ० [अनु०] (१) पीड़ा करना। टपकना। दर्द देना। टीस मारना। (२) लँगड़ा कर चलना।

डबकौंहाँ—वि० [अनु०] [स्त्री० डबकौंही] आँसू भरा हुआ। डबडबाया हुआ। गीला। उ०—बिलखी डबकौंहैं चखन तिय लखि गमन बराय। पिय गहबर आयो गरो राखी गरैं लगाय।—बिहारी।

डबडबाना—क्रि० अ० [अनु०] आँसू से आँखें भर आना। आँसू से (आँखों का) गीला होना। अश्रुपूर्ण होना। जैसे, आँखें डबडबाना। उ०—जब जब सुरति करत तब तब डबडबाइ दोउ लोचन उमगि भरत।—सूर।

संयो० क्रि०—आना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग "आँख" के साथ तो होता ही है 'आँसू' के साथ भी होता है।

डबरा—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र = समुद्र या झील] [स्त्री० अल्प० डबरी] (१) छिछला लंबा गड्ढा जिसमें पानी जमा रहे। कुंड। हौज़। (२) वह नीची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी लगता हो और जिसमें अगहन के कई खेत हों। (३) खेत का कोना जो जोतने में छूट जाता है।

डबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबरा] छोटा गड्ढा या ताल।

डबल—वि० [अं०] दोहरा।

संज्ञा पुं० पैसा। अँगरेज़ी राज्य का पैसा।

डबल रोटी—संज्ञा स्त्री० [अं० डबल + हिं० रोटी] पावरोटी।

डबल विक—वि० [अं०] दोहरी बत्ती।

डबला—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का पुरवा। कुल्हड़। चुक्कड़।

डबा†—संज्ञा पुं० दे० "डब्बा", "डिब्बा"।

डबिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डब्बा] छोटा डिब्बा।

डबिरना†—क्रि० स० [देश०] खेत में से भेड़ों को निकाल लाना। (गड़ेरियों की बोली)

डबी†*—संज्ञा स्त्री० दे० "डब्बी", "डिब्बी"। उ०—कंचन की कान्ति रूप डबीन में लाल धरी मनों नील नगी हैं।—सुंदरीसर्वस्व।

डबुलिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुल्हिया। छोटा पुरवा।

डबोना—क्रि० स० [अनु० डब डब] (१) डुबाना। गोता देना। बोरना। मग्न करना। (२) बिगाड़ना। नष्ट करना। चौपट करना।

मुहा०—नाम डबोना = नाम में धब्बा लगाना। ख्याति नष्ट करना। वंश डबोना = वंश की मर्यादा नष्ट करना। कुल में कलंक लगाना। लुटिया डबोना = महत्त्व नष्ट करना। प्रतिष्ठा खोना।

डब्बल‡—संज्ञा पुं० दे० "डबल"।

डब्बा—संज्ञा पुं० [तैलं०। वा सं० डिंब = गोला] (१) ढक्कनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें ठोस या भुरभुरी चीज़ें रखी जाती हैं। संपुट। (२) रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो अलग हो सकती है।

डब्बू—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] डाँड़ी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परोसने का काम लिया जाता है।

डभकना†—क्रि० अ० [अनु० डभडभ] पानी में डूबना। उतराना। चुभकी लेना।

डभका—संज्ञा पुं० [हिं० डभकना] कुएँ से ताज़ा निकाला हुआ (पानी)। ताज़ा।

† संज्ञा पुं० [देश०] भूना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो। कोंहरा।

डभकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डभकना] उरद की पीठी की बरी जो

यह मुरदे खाकर भी रहता है। इसका कब्र में गड़े मुरदे ले जाना प्रसिद्ध है। (२) लंबी टाँगों का दुबला घोड़ा।

डग्गा–संज्ञा पुं० [हिं० डग] लंबी टाँगों का दुबला घोड़ा।

डट–संज्ञा पुं० [देश०] निशाना।

डटना–क्रि० अ० [सं० स्थातृ, हिं० ठाट या ठाढ़] (१) जम कर खड़ा होना। अड़ना। ठहरा रहना। उ०—वे सबेरे से मेले में डटे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।—जा डटना।

मुहा०—डटा रहना=सामना करने या कठिनाई झेलने के लिये खड़ा रहना। न हटना। मुँह न मोड़ना। डट कर खाना=खूब पेट भर खाना।

(२) भिड़ना। लग जाना। छू जाना।

*†क्रि० स० [सं० दृष्टि, हिं० डीठ] ताकना। देखना। उ०—(क) उर मानिक की उरवली डटत घटत दृग दाग। झलकत बाहर कढ़ि मनौ पिय हिय को अनुराग। (ख) लटकि लटकि लटकत चलत डटत मुकुट की छाहँ। चटक भरयो नट मिलि गयो अटक भटक वन माँह।—बिहारी।

डटाना–क्रि० स० [हिं० डटना] (१) एक वस्तु को दूसरी वस्तु से लगाना। सटाना। भिड़ाना। (२) एक वस्तु को दूसरी वस्तु से लगा कर आगे की ओर ठेलना। जोर से भिड़ाना। (३) जमाना। खड़ा करना।

डटाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० डटाना] (१) डटाने का काम। (२) डटाने की मजदूरी।

डट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० डाटना] (१) हुक्के का नेचा। टेरुआ। (२) डाट। काग। गट्टा। (३) बड़ी मेख। (४) छींट छापने का ठप्पा। साँचा।

डड़ही–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

डड़ूदार*†–वि० [हिं० डाढ़ी] बड़ी डाढ़ी रखनेवाला। उ०—डिढ न रहे डड़ूदार बाघ बनचर बन डुल्लिय।—सूदन।

विशेष—बड़ी डाढ़ी रखना वीरों का वेश समझा जाता है।

वि० [सं० दृढ़, हिं० डिढ़] दृढ़ हृदय का। साहसी।

डढ़न*–संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ] जलन। ताप। उ०—भक्ति लता फैलन लगी दिन दिन होत पाप को डढ़न।—देवस्वामी।

डढ़ना*–क्रि० अ० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ+ना (प्रत्य०)] जलना। सुलगना। बलना। उ०—डढै मनु रूप लसैं इह रूप, गढ़े जिमि कैयक हैं महिभूप।—सूदन।

डढ़ार†–वि० [हिं० डाढ़] (१) डाढ़वाला। जिसे डाढ़ हो। (२) डाढ़ीवाला।

डढ़ारा–वि० [हिं० डाढ़] (१) डाढ़वाला। वह जिसके डाढ़ें हों। दाँतवाला। (२) वह जिसे डाढ़ी हो।

डढ़ियल–वि० [हिं० डाढ़ी] डाढ़ीवाला। जिसके बड़ी डाढ़ी हो।

डढ़ुआ†–संज्ञा पुं० [सं० दृढ़] बर्रें, गेहूँ, चने का तेल जो मोट में मजबूती के लिये लगाया जाता है।

डढ़ना–क्रि० स० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ+ना (प्रत्य०)] जलाना।

डढ्योरा*–वि० [हिं० डाढ़ी] डाढ़ीवाला। उ०—सित असित डढ्योरे दीह तन सजि सनेह रोसन सने।—सूदन।

डपट–संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प] डाँट। झिड़की। घुड़की।

संज्ञा स्त्री० [हिं० रपट] तेज दौड़। घोड़े की तेज चाल। सरपट चाल।

डपटना–क्रि० स० [हिं० डपट] डाँटना। क्रोध में जोर से बोलना। कड़े स्वर से बोलना।

क्रि० स० [हिं० रपटना] तेज दौड़ना। वेग से जाना।

डपोरसंख–संज्ञा पुं० [अनु० डपोर=बड़ा+संख] (१) जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके। डींग मारनेवाला।

विशेष—इस शब्द के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। एक ब्राह्मण ने दरिद्रता से दुखी हो समुद्र की आराधना की। समुद्र ने प्रसन्न हो कर उसे एक बहुत छोटा सा संख दिया और कहा कि यह १००) रोज तुम्हें दिया करेगा। जब उस ब्राह्मण ने उस संख से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब एक दिन अपने गुरुजी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से उनका सत्कार किया। गुरु जी ने उस संख का हाल जान लिया और वे धीरे से उसे उड़ा ले गए। ब्राह्मण फिर दरिद्र हो गया और समुद्र के पास गया। समुद्र ने सब हाल सुन कर एक बहुत बड़ा सा संख दिया और कहा कि "इससे भी गुरु जी के सामने रुपया माँगना, यह खूब बढ़ बढ़ कर बातें करेगा पर देगा कुछ नहीं। जब गुरु जी इसे माँगें तो दे देना और पहलेवाला छोटा संख माँग लेना"। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। जब ब्राह्मण ने गुरुजी के सामने उस संख से १००) रु० माँगा तब उसने कहा—"१००) क्या माँगते हो दस बीस पचास हजार माँगो।" गुरु जी को यह सुन कर लालच हुई और उन्होंने वह संख ले कर छोटा संख ब्राह्मण को लौटा दिया। गुरु जी एक दिन उस बड़े संख से माँगने बैठे। पर वह उसी प्रकार और माँगने के लिये कहता जाता पर देता कुछ नहीं था। जब गुरु जी बहुत व्यग्र हुए तब उस बड़े संख ने कहा—"गता सा शंखिनी, विप्र ! या ते कामान् प्रपूरयेत्। अहं डपोर शंखाख्यो वदामि न ददामि ते।"

(२) बड़े डील डौल का पर मूर्ख। देखने में सयाना पर बच्चों की सी समझवाला।

डप्पू–वि० [देश०] बहुत बड़ा। बहुत मोटा।

डफ–संज्ञा पुं० [अ० दफ़] (१) चमड़ा मढ़ा हुआ एक प्रकार का बड़ा बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। डफला। (यह लकड़ी के गोल बड़े मेंढ़रे पर चमड़ा मढ़ कर बनाया जाता

डराहुक†–वि० [हिं० डरना] डरपोक ।

डरिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "डार", "डाल" । उ०—अब के राखि लेहु भगवान । हम अनाथ बैठे द्रुम डरिया पारधि साधे बान ।—सूर ।

डरी–संज्ञा स्त्री० दे० "डली" ।

डरीला†–वि० [हिं० डार] डारवाला । शाखायुक्त । टहनीदार । उ०—हैदन दचीले तरु टूटत डरीले शैल होत हैं फटीले शेष फन चमकीले हैं ।—रघुराज ।

डरैला‡–वि० [हिं० डर] डरावना । भयानक । खौफनाक । उ०—विहरत अंडा धरत नाद उचरत डरैलो ।—श्रीधर पाठक ।

डल–संज्ञा पुं० [हिं० डला = टुकड़ा] टुकड़ा । खंड ।

मुहा०—डल का डल = ढेर का ढेर । बहुत सा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तल्ल] (१) झील । (२) काश्मीर की एक झील ।

डलई–संज्ञा स्त्री० दे० "डलिया" ।

डलना–क्रि० अ० [हिं० डालना] डाला जाना । पड़ना । जैसे, सूखा डलना ।

डलवा–संज्ञा पुं० दे० "डला" ।

डलवाना–क्रि० स० [हिं० 'डालना' का प्रे०] डालने का काम कराना । डालने देना ।

डला–संज्ञा पुं० [सं० दल] [स्त्री० अल्पा० डली] टुकड़ा । ढोंका । खंड ।

विशेष—इसका प्रयोग नमक, मिस्री आदि के लिये अधिक होता है ।

संज्ञा पुं० [सं० डल्लक] [स्त्री० अल्पा० डलिया] बाँस, बेंत आदि की पतली फट्टियों या कमचियों को गाँथ कर बनाया हुआ बरतन । टोकरा । दौरा ।

यौ०—डला खुलवाई = बनियों के यहाँ विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा दुलहिन के यहाँ एक टोकरा लाता है ।

डलिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] छोटा डला । छोटा टोकरा । दौरी ।

डली–संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] (१) छोटा टुकड़ा । छोटा ढेला । खंड । जैसे, मिस्री की डली, नमक की डली । (२) सुपारी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "डलिया" ।

डल्लक–संज्ञा पुं० [सं०] डला । दौरा ।

डवँरू–संज्ञा पुं० दे० "डमरू" ।

डवंडआ–संज्ञा पुं० दे० "डंवडआ" ।

डवित्थ–संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ मृग ।

डस–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की शराब । रम । (२) तराजू की डोरी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । जोती । (३) कपड़े के थान का छोर जिसमें ताने और बाने के पूरे तागे नहीं बुने रहते । छोर ।

डसन–संज्ञा स्त्री० [सं० दंशन] (१) डसने की क्रिया या भाव । (२) डसने या काटने का ढंग । उ०—यह अपराध बड़ो हम कीनो । तक्षक डसन साप मैं दीनो ।—सूर ।

डसना–क्रि० स० [सं० दंशन] (१) किसी ऐसे कीड़े का दाँत से काटना जिसके दाँत में विष हो । साँप आदि जहरीले कीड़ों का काटना । (२) डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

संज्ञा पुं० दे० "डासन", "दसना" ।

डसवाना–क्रि० स० दे० "डसाना" ।

डसा†–संज्ञा पुं० [सं० दंश] डाढ़ । चौभड़ ।

डसाना†–क्रि० स० [हिं० डसना का प्रे०] दाँत से कटवाना । जैसे, साँप से डसाना ।

डसी†–संज्ञा स्त्री० दे० "दसी" ।

संज्ञा स्त्री० पहचान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये दिया हुआ चिह्न । चिन्हानी । निशानी । सहदानी ।

डहक–वि० [?] संख्या में छः । ६ । (दलाली)

डहकना–क्रि० स० [हिं० डाका] (१) छल करना । धोखा देना । ठगना । झटना । उ०—डहकि डहकि परचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ।—तुलसी । (२) किसी वस्तु को देने के लिये दिखा कर न देना । ललचा कर न देना । उ०—खेलत खान परस्पर डहकत छीनत कहत करत रग-दैया ।—तुलसी ।

क्रि० अ० [हिं० दहाड़, धाड़] (१) रोने में रह रह कर शब्द निकालना । बिलखना । विलाप करना । उ०—काल्ह बदनतें राखि लीनो इंद्र गर्व जो खोइ । गोपिनी सब ऊधो आगे डहकि दीनो रोइ ।—सूर । (२) हुँकारना । डकार लेना । दहाड़ मारना । गरजना । उ०—इक दिन कंस असुर इक प्रेरा । आवा धरि वपु विरषभ केरा । डहकत फिरत वृन्दावन छोरा । पकरि सींग तुरते प्रभु मारा ।—विश्राम ।

क्रि० अ० [देश०] छितराना । छिटकना । फैलना । उ०—चंदन कपूर जल धौत कलधौत धाम उज्जल जुन्हाई डहडही डहकत है ।—देव ।

डहकलाय–वि० [?] सोलह । १६ । (दलाली)

डहकाना–क्रि० स० [सं० दस = खोना, हिं० डाका] खोना । गँवाना । नष्ट करना । उ०—वाद विवाद यज्ञ व्रत साधे कतहूँ जाय जन्म डहकावै ।—सूर ।

क्रि० अ० किसी के धोखे में आ कर अपने पास का कुछ खोना । किसी के छल के कारण हानि सहना । धोखे में आना । वंचित या प्रतारित होना । ठगा

बिना तले हुए कढ़ी में डाल दी जाती है। डुभकी। उ०—पानौरा राइता पकौरी। डभकौरी मुँगछी सुठि सौरी।—सूर।

डभकौहाँ—वि० दे० "डभकौहाँ"

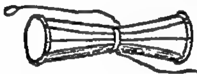
डम—संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या वर्णसंकर जाति जिसे ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ने लेट और चांडाली से उत्पन्न माना है। डोम।

डमर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय से पलायन। भगेड़। (२) हलचल। उपद्रव।

डमरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] वात का एक रोग जिससे जोड़ों में दर्द होता है। गठिया।

यौ०—डमरुआ साल = दे० "डँवरुआ साल"।

डमरू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] (१) एक बाजा जिसका आकार बीच में पतला और दोनों सिरों की ओर बराबर चौड़ा होता जाता है। दोनों सिरों पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसके बीच में दो तरफ बराबर बढ़ी हुई डोरी बँधी होती है जिसके दोनों छोरों पर एक एक कौड़ी या गोली बँधी होती है। बीच में पकड़ कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कौड़ियां चमड़े पर पड़ती हैं और शब्द होता है। यह बाजा शिवजी को बहुत प्रिय है। बंदर नचानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा अपने साथ रखते हैं। (२) डमरू के आकार की कोई वस्तु। ऐसी वस्तु जो बीच में पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी (उलटी गावदुम) होती गई हो।



यौ०—डमरूमध्य।

(३) एक प्रकार का दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ३२ लघु वर्ण होते हैं। उ०—रहत रजत नग नगर न गज तट गज खल कलगर गरल तरल धर। भिखारीदास ने इसी का नाम जलहरण लिखा है।

डमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + मध्य] धरती का वह तंग पतला भाग जो दो बड़े बड़े खंडों को मिलाता हो।

यौ०—जल-डमरूमध्य = जल का वह तंग पतला भाग जो जल के दो बड़े बड़े भागों को मिलाता हो।

डमरूयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डमरु + यंत्र] एक प्रकार का यंत्र या पात्र जिसमें अर्क खींचे जाते तथा सिंगरफ का पारा, कपूर, नौसादर आदि उड़ाए जाते हैं।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिला कर और कपड़मिट्टी से जोड़ कर बनाया जाता है। जिस वस्तु का अर्क खींचना होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के साथ एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (अर्थात् दोनों जुड़े हुए घड़ों को) इस प्रकार आड़ा रखते हैं कि एक घड़ा आंच पर रहता है और दूसरा ठंढी जगह पर। आंच लगने से वस्तु मिले हुए पानी की भाप उड़ कर दूसरे घड़े में जा कर टपकती है। यही टपका हुआ जल उस वस्तु का अर्क होता है। सिंगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों को खड़े बल नीचे ऊपर रखते हैं। नीचे के घड़े के पेंदे में आंच लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा आदि रख कर ठंढा रखते हैं। आंच लगने पर सिंगरफ से पारा उड़ कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है।

डयन—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ान। उड़ने की क्रिया।

डर—संज्ञा पुं० [सं० दर] (१) एक दुःखपूर्ण मनोवेग जो किसी अनिष्ट वा हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस (अनिष्ट वा हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न करता है। भय। भीति खौफ़। त्रास

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण।

(२) अनिष्ट की संभावना का अनुमान। आशंका। जैसे, हमें डर है कि वह कहीं भटक न जाय।

डरना—क्रि० अ० [हिं० डर + ना (प्रत्य०)] (१) किसी अनिष्ट वा हानि की आशंका से आकुल होना। भयभीत होना। खौफ करना। सशंक होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) आशंका करना। अंदेशा करना।

डरपना†—क्रि० अ० [हिं० डर] डरना। भयभीत होना। उ०—(क) इंद्रहु को कछु दूषन नाहीं। राजहेतु डरपत मन माहीं।—सूर। (ख) एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु मोहि देव साप अति घोरा।—तुलसी।

डरपाना†—क्रि० स० [हिं० डरपना] डराना। भयभीत करना।

डरपोक—वि० [हिं० डरना + पोंकना] बहुत डरनेवाला। भीरु। कायर।

डरपोकना†—वि० दे० "डरपोक"।

डरवाना—क्रि० स० दे० "डराना"।

†क्रि० स० दे० "डलवाना"।

डराडरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डर] डर। भय। आशंका। उ०—जब आनि घेरत कटक काम को तब जीय होत डराडरि।—स्वामी हरिदास।

डराना—क्रि० स० [हिं० डरना] डर दिखाना। भयभीत करना। खौफ़ दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

डरावना—वि० [हिं० डर] [स्त्री० डरावनी] जिससे डर लगे। जिससे भय उत्पन्न हो। भयानक। भयंकर।

डरावा—संज्ञा पुं० [हिं० डराना] वह लकड़ी जो फलदार पेड़ों में चिड़ियाँ उड़ाने के लिये बंधी रहती है। इसमें एक लंबी रस्सी बँधी होती है जिसे खींचने से खट खट शब्द होता है। खटखटा। धड़का।

मुहा०—डाँट में रखना = शासन में रखना । वश में रखना । किसी पर डाँट रखना = किसी पर शासन या दबाव रखना । डाँट पर = पालकी के कहारों की एक बोली । (जब तंग और ऊँचा नीचा रास्ता आगे होता है तब अगला कहार कुछ बच कर चलने के लिये कहता है "डाँट पर")

(२) डराने के लिये क्रोध-पूर्वक कर्कश स्वर से कहा हुआ शब्द । घुड़की । डपट ।

क्रि० प्र०—बताना ।

डाँटना-क्रि० स० [हिं० डाँट + ना (प्रत्य०)] डराने के लिये क्रोध-पूर्वक कड़े स्वर से बोलना । घुड़कना । डपटना । उ०—(क) जैसे मीन किलकिला दरसत ऐसे रहो प्रभु डाँटत ।—सूर । (ख) जाने ब्रह्म सो विप्रवर आँखि दिखावहि डाँटि ।—तुलसी ।

संयो० क्रि०—देना ।

डाँठ†-संज्ञा पुं० [सं० दंड] डंठल ।

डाँड़-संज्ञा पुं० [सं० दंड] (१) सीधी लकड़ी । डंडा । (२) गदका ।

यौ०—डाँड़ पटा = (१) फरी गतका । (२) गतके का खेल ।

(३) नाव खेने का लंबा बल्ला या डंडा । चप्पू ।

क्रि० प्र०—खेना ।—चलाना ।—मारना ।—भरना । (लश०)

(४) अंकुश का हत्था । (५) जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें ढरी फँसाई रहती है । †(६) सीधी लकीर । (७) रीढ़ की हड्डी । (८) ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर की तरह चली गई हो । ऊँची मेंड़ ।

मुहा०—डाँड़ मारना = मेंड़ उठाना ।

(९) रोक, आड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची दीवार । (१०) ऊँचा स्थान । छोटा भीटा या टीला । उ०—सो कर लै दंडा छिति गाड़े । उठ्यो द्रुम द्रुम इक तेहि डाँड़े ।—रघुराज । (११) दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक लकीर की तरह गई हो और जिस पर से लोग आते जाते हों । मेंड़ । (१२) समुद्र का ढालुआँ रेतीला किनारा । (१३) सीमा । हद । (१४) वह मैदान जिसमें का जंगल कट गया हो । (१५) अर्थदंड । किसी अपराध के कारण अपराधी से लिया जानेवाला धन । जुरमाना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

(१६) वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले । नुकसान का बदला । हरजाना ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

(१७) ऊँचाई नापने का मान । कट्ठा । बाँस ।

डाँड़ना-क्रि० स० [हिं० डाँड़] अर्थ दंड देना । जुरमाना करना । उ०—(क) उदधि अपार उतरतहुँ न लागी बार केसरी कुमार सो अदंड ऐसो डाँड़िगो ।—तुलसी । (ख) पड़ा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निचित माटी के भाँड़ा ।—जायसी ।

डाँड़र-संज्ञा पुं० [हिं० डंठ] बाजरे के डंठल का गड़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रह जाता है । बाजरे की खूँटी ।

डाँड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़] (१) छड़ । डंडा । (२) गतका । उ०—वज्र की साँग वज्र का डाँड़ा । उठी आगि तस बाजै खाँड़ा ।—जायसी । (३) नाव खेने का डाँड़ । (४) समुद्र का ढालुआँ रेतीला किनारा । (लश०) । (५) हद । सीमा । मेंड़ ।

यौ०—डाँड़ा मेंड़ा । डाँड़ा मेंड़ी ।

मुहा०—होली का डाँड़ा = लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो वसंतपंचमी के दिन से होली जलाने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है ।

डाँड़ा मेंड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० डाँड + मेंड़] (१) एक ही डाँड़ या सीमा का अंतर । परस्पर अत्यंत सामीप्य । लगाव । (२) अनबन । झगड़ा ।

क्रि० प्र०—रहना ।

डाँड़ा मेंड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "डाँड़ा मेंड़ा" ।

डाँड़ाशहेल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप जो बंगाल में होता है ।

डाँड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़] (१) लंबी पतली लकड़ी । (२) हाथ में ले कर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो हाथ में लिया या पकड़ा जाता है । लंबा हत्था या दस्ता । जैसे, करछी की डाँड़ी । उ०—हरि जू की आरती बनी । अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी । कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी शेष फनी ।—सूर । (३) तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका कर पलड़े बाँधे जाते हैं । डंडी । उ०—साईं मेरा बानिया सहज करै व्यवहार । बिन डाँड़ी बिन पालड़े तौलै सब संसार ।—कबीर ।

मुहा०—डाँड़ी मारना = सौदा देने में कम तौलना ।

(४) टहनी । पतली शाखा । (५) वह लंबा डंठल जिसमें फूल या फल लगा होता है । नाल । उ०—तेहि डाँड़ी सह कमलहि तोरी । एक कमल की दूनी जोरी ।—जायसी । (६) हिंडोले में लगी हुई वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरी की लड़ें जिनसे लगी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है । उ०—पटुआ लगे नग लाग बहु रँग बनी डाँड़ी चारि ।

जाना। जैसे, इस सौदे में तुम डहका गए। उ०—(क) इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अज्ञानी ?—सूर। (ख) डहके ते डहकाइबो भलो जो करिय विचार।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) ठगना। धोखे से किसी की कोई वस्तु ले लेना। धोखा देना। जटना। (२) किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखा कर न देना। ललचा कर न देना।

डहडहा—वि० [अनु०] [स्त्री० डहडही] (१) हरा भरा। ताजा। लहलहाता हुआ। जो सूखा या मुरझाया न हो। (पेड़, पौधे, फूल पत्ते आदि के लिये)। उ०—जो काटै तो डहडही, सींचै तो कुम्हिलाय। यहि गुनवंती बेल का कुछ गुन कहा न जाय।—कबीर। (२) प्रफुल्लित। प्रसन्न। आनंदित। उ०—(क) तुम सौतिन देखत दई अपने हिय ते लाल। फिरति सबनि में डहडही वहै मरगजी बाल।—बिहारी। (ख) सेवती चरन चारु सेवती हमारे जान ह्वै रही डहडही लहि अनँदकंद को।—देव। (३) तुरंत का। ताजा। उ०—लहलही इंदीवर श्यामता शरीर सोही डहडही चंदन की रेखा राजै भाल में।—रघुराज।

डहडहाट †*—संज्ञा स्त्री० [हिं० डहडहा] हरापन। ताजगी। प्रफुल्लता। उ०—प्यारी जू के मुख अंबुज की डहडहाट ऐसी लागति मनो अमृत की सींच।—स्वामी हरिदास।

डहडहाना—क्रि० अ० [हिं० डहडहा] (१) हरा भरा होना। ताज़ा होना। (पेड़, पौधे, पत्ते आदि का)। उ०—दूर दमकत श्रवन शोभा जलज युग डहडहत।—सूर। (२) प्रफुल्लित होना। आनंदित होना।

डहडहाव—संज्ञा पुं० [हिं० डहडहा] हराभरा होने का भाव। ताजगी। प्रफुल्लता।

डहन—संज्ञा पुं० [सं० डयन = उड़ना] डैना। पर। पंख। उ०—विपदाना कित देइ अँगूरा। जिहि भा मरन डहन धरि चूरा।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन। दाह।

डहना—संज्ञा पुं० दे० "डैना"।

क्रि० अ० [सं० दहन] (१) जलना। भस्म होना। (२) कुढ़ना। चिढ़ना। द्वेष करना। बुरा मानना।

क्रि० स० (१) जलाना। भस्म करना। उ०—रावन लंका हौं डही वेइ मोहिं डाढ़न आइ।—जायसी। (२) संतप्त करना। दुःख पहुँचाना। उ०—डहइ चंद अउचंदन चीरू। दगध करइ तन विरह गभीरू।—जायसी।

डहर †—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] (१) रास्ता। मार्ग। पथ। उ०—जिहि डहरत डहर करत कहरो। चित चख चोरत चेटक चेहरो।—रघुराज। (२) आकाशगंगा।

डहरना—क्रि० अ० [हिं० टहर] चलना। फिरना। टहलना। उ०—जिहि डहरत डहर करत कहरो। चित चख चोरत चेटक चेहरो।—रघुराज।

डहराना †—क्रि० स० [हिं० डहरना] चलाना। दौड़ाना। फिराना। उ०—कोऊ निरखि रही भाल चंदन एक चित लाई। कोऊ निरखि विथुरी भृकुटि पर नैन डहराई।—सूर।

डहु, डहू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्षविशेष। लकुच। (२) बड़हर।

डा—संज्ञा स्त्री० [सं०] डाकिनी। डाइन।

डाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमक, दवँक] ताँबे या चाँदी का बहुत पतला कागज़ की तरह का पत्तर।

विशेष—देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे घोंट कर नगीनों के नीचे बैठाते हैं। अब ताँबे के पत्तर की विदेशी डाँक भी बहुत आती है जिसके गोल और चमकीले टुकड़े काट कर स्त्रियों की टिकली, कपड़ों पर टाँकने की चमकी आदि बनती हैं। डाँक घोंटने की सान ८–९ अंगुल लंबी और ३–४ अंगुल चौड़ी पटरी होती है जिस पर डाँक रख कर चमकाने के लिये घोटते हैं।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँकना] कै। वमन। उलटी।

क्रि० प्र०—होना।

डाँकना †—क्रि० स० [सं० तक = चलना] (१) कूद कर पार करना। लाँघना। फाँदना। (२) वमन करना। उलटी करना।

डाँग †—संज्ञा पुं० [सं० टंक = पहाड़ का किनारा और चोटी] (१) पहाड़ी। जंगल। वन। (२) पहाड़ की ऊँची चोटी।

संज्ञा पुं० [सं० दंक, हिं० डागा] मोटे बाँस का डंडा। लट्ठ।

† संज्ञा पुं० [हिं० डाँकना] कूद। फलाँग।

डाँगर—वि० [देश०] (१) चौपाया। ढोर। गाय, भैंस आदि पशु। † (२) मरा हुआ चौपाया। (गाय बैल आदि) चौपाए की लाश (पूरब)।

मुहा०—डाँगर घसीटना = चमारों की तरह मरा हुआ चौपाया खींच कर ले जाना। अशुचि कर्म करना।

(३) एक नीच जाति का नाम।

वि० (१) दुबला पतला। जिसकी हड्डी हड्डी निकली हो। (२) मूर्ख। जड़। गावदी।

डाँगा—संज्ञा पुं० [सं दंडक] (१) जहाज के मस्तूल में रस्सियों को फैलाने के लिये आड़ी लगी हुई धरन। (२) लंगड़ के बीच का मोटा डंडा। (लश०)

डाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति = दमन, वश] शासन। (१) वश। दाब। दबाव। जैसे, (क) इस लड़के को डाँट में रक्खो। (ख) इस लड़के पर किसी की डाँट नहीं है।

क्रि० प्र०—मानना।—रखना।

डाकगाड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक+गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिस पर चिट्ठी पत्री आदि भेजने का सरकार की तरफ से इंतजाम हो। डाक ले जानेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर–संज्ञा पुं० दे० "डाकखाना"।

डाकना–क्रि० अ० [हिं० डाक] कै करना। वमन करना।

क्रि० स० [हिं० डड़ाँक, डँक+ना (प्रत्य०)] फाँदना। लाँघना। कूद कर पार करना।

संयो० क्रि०—जाना।

डाक बँगला [हिं० डाक+बँगला] वह बँगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के ठहरने के लिये बना हो।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बँगले स्थान स्थान पर बने थे। पहले जब रेल नहीं थी तब इन्हीं स्थानों पर डाक ली जाती और बदली जाती थी। अतः सवारियों का भी यहीं अड्डा रहता था जिससे मुसाफिरों को ठहरने आदि का सुबीता रहता था।

डाक-महसूल–संज्ञा पुं० [हिं० डाक+अ० महसूल] वह खर्च जो चीज को डाक द्वारा भेजने या मँगाने में लगे।

डाकमुंशी–संज्ञा पुं० [हिं० डाक+फा० मुंशी] डाकघर का अफसर, पोस्टमास्टर।

डाकर–संज्ञा पुं० [देश०] तालों की वह मिट्टी जो पानी सूख जाने पर चिटख कर कड़ी हो जाती है।

डाकव्यय–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक+सं० व्यय] डाक का खर्च। डाकमहसूल।

डाका–संज्ञा पुं० [हिं० डाकना=कूदना या सं० दस्यु] वह आक्रमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल असबाब जबरदस्ती छीनने के लिये कई आदमियों का दल बाँध कर धावा। बटमारी।

मुहा०—डाका डालना=लूटने के लिये धावा करना। जबरदस्ती माल छीनने के लिये चढ़ दौड़ना। डाका पड़ना=लूट के लिये आक्रमण होना। जैसे, उस गाँव पर आज डाका पड़ा। डाका मारना=जबरदस्ती माल लूटना। बलपूर्वक धन हरण करना।

डाकाज़नी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाका+फा० ज़नी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन–संज्ञा स्त्री० दे० "डाकिनी"।

डाकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। (२) डाइन। चुड़ैल।

डाकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक] वमन। कै।

संज्ञा पुं० बहुत खानेवाला। पेटू।

वि० सबल। प्रचंड। (डिं०)

डाकू–संज्ञा पुं० [हिं० डाकना, या सं० दस्यु] (१) डाका डालनेवाला। जबरदस्ती लोगों का माल लूटनेवाला। लुटेरा। बटमार। (२) अधिक खानेवाला। पेटू

डाकेट–संज्ञा पुं० [अं०] किसी बड़ी चिट्ठी या आज्ञापत्र आदि का सारांश। चिट्ठी का खुलासा।

डाकोर–संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर, हिं० ठाकुर] ठाकुर। विष्णुभगवान्। (गुजरात)

डाक्टर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) आचार्य। अध्यापक। विद्वान्। (२) वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

डाक्टरी–संज्ञा स्त्री० [अं० डक्टर+ई (प्रत्य०)] (१) चिकित्साशास्त्र। (२) योरप का चिकित्साशास्त्र। पाश्चात्य आयुर्वेद।

डाक्तर–संज्ञा पुं० दे० डाक्टर"।

डाख†–संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] ढाक। पलाश। उ०—तरवर झरहिं झरहिं बन डाखा। भई उपत फूल कर साखा।—जायसी।

डाखिपो†*–संज्ञा पुं० [?] भूखा सिंह। (डिं०)

डागर–संज्ञा स्त्री० दे० "डगर"।

डागा–संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] नगाड़ा बजाने का डंडा। चोब। उ०—हौं पंडितन केर पछलागा। कछु कहि चला तबल दे डागा।—जायसी।

डागुर–संज्ञा पुं० [देश०] जाटों की एक जाति। उ०—डागुर धर्मोहरे धरि मरोर। बहु जहु ढहु बट्टे सजोर।—सूदन।

डाट–संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति] (१) वह वस्तु जो किसी बोझ को ठहराए रखने या किसी वस्तु को खड़ी रखने के लिये लगाई जाती है। टेक। चाँड़।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) वह कील या खूँटा जिसे ठोंक कर कोई छेद बंद किया जाय। छेद रोकने या बंद करने की वस्तु।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) बोतल शीशी आदि का मुँह बंद करने की वस्तु। ठेंठी। काग। गट्टा।

क्रि० प्र०—कसना।—लगाना।

(४) मेहराब को रोके रखने के लिये ईंटों आदि की भरती। मेहराब की रोक। मेहराब का ढोला।

संज्ञा पुं० दे० "डाँट"।

डाटना–क्रि० स० [हिं० डाट] (१) किसी वस्तु को किसी वस्तु पर रख कर जोर से ढकेलना। एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कस कर दबाना। भिड़ा कर ठेलना। जैसे, (क) इसे इस डंडे से डाटो तब पीछे खिसकेगा। (ख) इस डंडे को डाटे रहो तब पत्थर इधर न लुढ़केगा।

संयो० क्रि०—देना।

(२) किसी लंबे डंडे आदि को किसी बोझ या भारी वस्तु

भाँग भँवै भजि केलि भूने नवज नागर नारि।—सूर। (७) जुलाहों की वह लकड़ी जो चरखी की थवनी में डाली जाती है। (८) शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है। (९) अनवट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी और तीसरी उँगली के नीचे इसलिये निकला रहता है जिसमें अनवट घूम न सके। (१०) डाँड़ खेनेवाला आदमी। (लश०)। (११) मट्ठर या सुत आदमी। (लश०)। † (१२) सीधी लकीर। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

(१३) लीक। मर्यादा। (१४) चिड़ियों के बैठने का अड्डा। (१५) फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। (१६) पालकी के दोनों ओर निकले हुए लंबे डडे जिन्हें कहार कंधे पर रखते हैं। (१७) पालकी। (१८) डंडे में बंधी हुई झोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है। झप्पान।

डाँढ़री †-संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, हिं० डाढा] भूनी हुई मटर की फली।

डाँबू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो दलदल में उत्पन्न होता है।

डाँवरा-संज्ञा स्त्री० [सं० डिंब ?] [स्त्री० डाँवरी] लड़का। बेटा। पुत्र। उ०—(क) कंचन मनि रतन जड़ित रामचंद्र पाँवरी। दाहिन सो राम वाम जनक राय डाँवरी।—देवस्वामी। (ख) बाहिर पौरि न दीजिए पाँवरी बाउरी होय सो डाँवरी डोलै।—देव। दे० "डावरी"।

डाँवरी †-संज्ञा स्त्री० [हिं० डँवरा] लड़की। बेटी।

डाँवरू †-संज्ञा पुं० [सं० डिंब] बाघ का बच्चा।

डाँवाडोल-वि० [हिं० डोलना] इधर उधर हिलता डोलता हुआ। एक स्थिति पर न रहनेवाला। चंचल। विचलित। अस्थिर। जैसे, चित्त डाँवाडोल होना।

डाँशपादिड़-संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक जिसमें ५ आघात के पश्चात् १ शून्य (खाली) होता है।

डाँस-संज्ञा पुं० [सं० दंश] (१) बड़ा मच्छड़। दंश। (२) एक प्रकार की मक्खी जो पशुओं को बहुत दुःख देती है। (३) कुकरौंछी।

डाँसर †-संज्ञा पुं० [देश०] इमली का बीज। चिआँ।

डा-संज्ञा पुं० [अनु०] सितार की गति का एक बोल। उ०—डा डिड़ डा ड़ा डा डा ड़ा।

डाइन-संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] (१) भूतनी। चुड़ैल। राक्षसी। (२) टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि आदि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। (३) कुरूपा और डरावनी स्त्री।

डाइरेक्टर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) प्रबंध चलानेवाला। कार्य-संचालक। मुंनजिम। इंतजाम करनेवाला। (२) मशीन में वह पुरजा जिसकी क्रिया से गति उत्पन्न होती है।

डाइरेक्टरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर या देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची अक्षर क्रम से हो।

डाई-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पासा। (२) ठप्पा। साँचा। (३) रंग।

डाईप्रेस-संज्ञा स्त्री० [अं०] ठप्पा उठाने की कल। उभरे हुए अक्षर उठाने की कल जिससे मोनोग्राम आदि छपते हैं।

डाक-संज्ञा पुं० [हिं० उडाँक या उलाँक। वा डाँकना = फाँदना] (१) सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकान पर बराबर जानवर आदि बदले जाते हों। घोड़े गाड़ी आदि का जगह जगह इंतजाम।

मुहा०—डाक बैठाना = शीघ्र यात्रा के लिये स्थान स्थान पर सवारी बदलने की चौकी नियत करना। डाक लगना = शीघ्र संवाद पहुंचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में स्थान स्थान पर आदमियों या सवारियों का प्रबंध रहना। डाक लगाना = दे० "डाक बैठाना"।

यौ०—डाक चौकी = मार्ग में वह स्थान जहाँ यात्रा के घोड़े बदले जाय या एक हरकारा दूसरे हरकारे को चिट्ठियों का थैला दे।

(२) राज्य की ओर से चिट्ठियों के आने जाने की व्यवस्था। वह सरकारी इंतजाम जिसके मुताबिक खत एक जगह से दूसरी जगह बराबर आते जाते हैं। जैसे, डाक का मुहकमा। उ०—यह चिट्ठी डाक में भेजेंगे नौकर के हाथ नहीं।

यौ०—डाकखाना। डाकगाड़ी।

(३) चिट्ठी पत्री। कागज पत्र आदि जो डाक से आवे। डाक से आने जानेवाली वस्तु। जैसे, तुम्हारी डाक रखी है, ले लेना।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] वमन। उलटी। कै।

क्रि० प्र०—होना।

संज्ञा पुं० [अ०] समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का वह स्थान जहाँ मुसाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बाँध या चबूतरे आदि बने होते हैं।

संज्ञा पुं० [बंग० डाकना = चिल्लाना] नीलाम की बोली। नीलाम की वस्तु लेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे दाम लगाते हैं।

डाकखाना-संज्ञा पुं० [हिं० डाक + फ़ा० खाना] वह स्थान या सरकारी दफ़्तर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं और जहाँ से आई हुई चिट्ठियाँ लोगों को बाँटी जाती हैं।

डामाडोल–वि० दे० 'डाँवाँडोल'

डामिल‡–संज्ञा पुं० दे० "डामल"।

डायँ डायँ–क्रि० वि० [अनु०] व्यर्थ इधर से उधर (घूमना)। व्यर्थ धूल छानते हुए। जैसे, वह यों ही दिन भर डायँ डायँ *फिरा करता है।*

डायन–संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] (१) डाकिनी। पिशाचिनी। चुड़ैल। भूतिन। (२) कुरूपा स्त्री।

डायनामो–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा एंजिन जिससे *बिजली पैदा की जाती है।*

डायरी–संज्ञा स्त्री० [अं०] वह पुस्तक जिसमें दिन भर के किए हुए कार्य संक्षेपतः लिखे जायँ। दिनचर्य्या। रोज़नामचा।

डायल–संज्ञा पुं० [अं०] घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिस के ऊपर अंक बने होते हैं और सूइयाँ घूमती हैं। घड़ी का चेहरा।

डायस–संज्ञा पुं० [अं०] वह ऊँचा स्थान या चबूतरा जिस पर किसी सभा के सभापति का आसन रक्खा जाता है।

डायमंड-कट–संज्ञा पुं० [अं०] गहनों की धातु को इस प्रकार छीलना जिसमें हीरे की सी चमक पैदा हो जाय। हीरे की सी काट। डामल काट।

डार†–संज्ञा स्त्री० [सं० दारु = लकड़ी] (१) डाल। शाखा। उ०—(क) रत्नजटित कंकन बाजूबंद नगन मुद्रिका सोहै। डार डार मनु मदन बिटप तरु विकच देखि मन मोहै।—सूर। (ख) जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीत बहार। अब अलि रही गुलाब में अपत कटीली डार।—बिहारी। (२) फानूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की एक तरह की खूँटी।

संज्ञा स्त्री० [सं० डलक] डलिया। चँगेर। डाली उ०—चली पाउन सब गोहनै फूल डार लेइ हाथ। बिस्सुनाथ कह पूजा पदुमावति के साथ।—जायसी।

डारना† *–क्रि० स० दे० "डालना"।

डारियास–संज्ञा पुं० [देश०] बाबून बंदर की एक जाति।

डारी†–संज्ञा स्त्री० दे० "डार" "डाल"।

डाल–संज्ञा स्त्री० [सं० दारु = लकड़ी, हिं० डार] (१) पेड़ के धड़ से इधर उधर निकली हुई वह लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ और कल्ले होते हैं। शाखा। शाख।

मुहा०—डाल का टूटा = (१) डाल से पक कर गिरा हुआ ताजा (फल)। (२) बढ़िया। अनोखा। चोखा। जैसे, तुम्हीं एक डाल के टूटे हो जो सब कुछ तुम्हीं को दिया जाय। (३) नया आया हुआ। नवागंतुक। डाल का पका = पेड़ ही में पका हुआ। डालवाला = बंदर। शाखामृग।

(२) फानूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी। (३) तलवार का फल। तलवार के मूठ के ऊपर का मुख्य भाग। (४) एक प्रकार का गहना जो मध्य भारत और मारवाड़ में पहना जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० डलक, हिं० डला] (१) डलिया। चँगेरी। (२) फूल फल या खाने पीने की वस्तु जो डलिया में सजा कर किसी के यहाँ भेजी जाय। (३) कपड़ा और गहना जो एक डलिया में रख कर विवाह के समय वर की ओर से वधू को दिया जाता है।

डालना–क्रि० स० [सं० तलन = (नीचे) रखना] (१) पकड़ी या ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर पड़े। नीचे गिराना। छोड़ना। फेंकना। गेरना। जैसे, ऐसी चीज़ क्यों हाथ में लिए हो? उधर डाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—डाल रखना = (१) किसी वस्तु को रख छोड़ना। (२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना। रोक रखना। देर लगाना। भुलाना।

(२) एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना। छोड़ना। जैसे, हाथ पर पानी डालना, थूक पर राख डालना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के लिये उसमें गिराना। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर या मिल जाय। स्थित या मिश्रित करना। रखना या मिलाना। जैसे, घड़े में पानी डालना, दूध में चीनी डालना, दाल में घी डालना, चूर्ण में नमक डालना।

संयो० क्रि०—देना।

(४) घुसाना। घुसेड़ना। प्रविष्ट करना। भीतर कर देना या ले जाना। जैसे, पानी में हाथ डालना, कुएँ में डोल डालना, जेलखाने में डालना, इजारबंद डालना, सुई में डोरा डालना, बिल या मुँह में हाथ डालना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) परित्याग करना। छोड़ना। खोज खबर न लेना। भुला देना। उ०—केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे।—तुलसी। (६) अंकित करना। लगाना। चिह्नित करना। जैसे, लकीर डालना, चिह्न डालना।

संयो० क्रि०—देना।

(७) एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिस में वह कुछ ढक जाय। फैला कर रखना। जैसे, मुँह पर चादर डालना, मेज़ पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गीली धोती डालना।

संयो० क्रि०—लेना।

(८) शरीर पर धारण करना। पहनना। जैसे, अँगरखा डालना।

को ठहराए रखने के लिये उससे भिड़ा कर लगाना। टेकना। चाँड़ लगाना (३) छेद या मुँह बंद करना। मुँह कसना। मुँह बंद करना। ठेंठी लगाना। (४) कस कर भरना। ठूस कर भरना। कस कर घुसेड़ना। (५) खूब पेट भर खाना। कस कर खाना। उ०—अगनित तरु फल सुगंध मधुर मिष्ट खाटे। मनसा करि प्रभुहि अर्पि भोजन को डाटे।—सूर। (६) ठाट से कपड़ा गहना आदि पहनना। जैसे, कोट डाटना, अंगरखा डाटना। (७) डटाना। भिड़ाना। मिलाना। उ०—रंच न साध सुधै सुख की बिन राधिकै आधिक लोचन डाटे।—केशव।

डाड़ना–क्रि० अ० दे० "ढाड़ना" "धाड़ना"।
क्रि० स० दे० "डाँड़ना"।

डाढ़–संज्ञा स्त्री० [सं० दंष्ट्रा, प्रा० डड्ढ] (१) चबाने के चौड़े दाँत। चौभड़। दाढ़। (२) वट आदि वृक्षों की शाखाओं से नीचे की ओर लटकी हुई जटाएँ। बरोह।

डाढ़ना†*–क्रि० स० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ + ना (प्रत्य०)] जलाना। भस्म करना। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न।—तुलसी।

डाढ़ा–संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ] (१) दावानल। वन की आग। (२) आग। उ०—रामकृपा कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लागि अति डाढ़ा।—तुलसी।
क्रि० प्र०—लगना।
(३) ताप। दाह। जलन।
क्रि० प्र०—फूँकना।

डाढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाढ़] (१) चेहरे पर ओठ के नीचे का गोल उभरा हुआ भाग। ठोढ़ी। ठुड्डी। चिबुक। (२) ठुड्डी और कनपटी पर के बाल। चिबुक और गंडस्थल पर के लोम। दाढ़ी। उ०—डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवाने की।—भूषण।
मुहा०—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँड़वाना। डाढ़ी बढ़ाना। डाढ़ी का एक एक बाल करना = डाढ़ी उखाड़ लेना। अपमानित करना। दुर्दशा करना। डाढ़ी को कलंक लगाना = बूढ़े आदमी को कलंक लगाना। श्रेष्ठ और वृद्ध को दोष लगाना। पेट में डाढ़ी होना = छोटी ही अवस्था में बड़ों की सी जानकारी प्रकट करना या बातें करना। पेशाब से डाढ़ी मुँड़वाना = अत्यंत अपमान करना। अप्रतिष्ठा करना। दुर्गति करना। डाढ़ी फटकारना = (१) हाथ से डाढ़ी के बालों को झटकना। (२) संतोष और उत्साह प्रकट करना। डाढ़ी रखना = डाढ़ी के बाल न मुँड़वाना। डाढ़ी बढ़ने देना।

डाब–संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] (१) डाभ नाम की घास। (२) कच्चा नारियल। (३) परतला।

डाबक–वि० दे० "डाभक"।

डाबर–संज्ञा पुं० [सं० दभ्र = समुद्र या झील] (१) नीची जमीन। गहिरी भूमि जहाँ पानी ठहरा रहे। (२) गड़ही। पोखरी। तलैया। गड्ढा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है। उ०—(क) सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।—तुलसी। (ख) सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं।—तुलसी। (३) हाथ धोने का पात्र। चिलमची। (४) मैला पानी।
वि० मटमैला। गदला। कीचड़ मिला। उ०—भूमि परत भा डाबर पानी।—तुलसी।

डाबा–संज्ञा पुं० दे० "डब्बा"। उ०—संघ सहित धूमन के डाबा। अमल अरघ भाजन छवि छावा।—पद्माकर।

डाबी–संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] कटी हुई घास वा फसल का पूला।

डाभ–संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] (१) कुश की जाति की एक घास जो प्रायः रेह मिली हुई ऊसर जमीन में अधिक होती है। एक प्रकार का कुश। (२) कुश। उ०—अलक डाभ, तिल गाल यों अँसुवन को परवाह। नीदहिं देत तिलांजली नैना तुम बिनु नाह।—मुबारक। (३) आम का मौर। आम की मंजरी। उ०—जउ लहि आमहि डाभ न होई। तउ लहि सुगँध बसाय न सोई।—जायसी। (४) कच्चा नारियल।

डाभक–वि० [अनु० डभक डभक] कुएँ से तुरंत का निकाला हुआ। ताजा। (पानी)। जैसे, डाभक पानी।

डामचा–संज्ञा पुं० [देश०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मचान जिस पर से खेत की रखवाली करते हैं। मैड़ा। माचा।

डामर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव-कथित माना जानेवाला एक तंत्र जिसके छः भेद किए गए हैं—योगडामर, शिवडामर, दुर्गाडामर, सारस्वतडामर, ब्रह्मडामर, और गंधर्वडामर। (२) हलचल। धूम। (३) आडंबर। ठाटबाट। (४) चमत्कार। (५) दुर्ग के शुभाशुभ जानने के लिये बनाए जानेवाले चक्रों में से एक। (६) ४९ क्षेत्रपाल भैरवों में से एक।
संज्ञा पुं० [देश०] (१) साल वृक्ष का गोंद। राल। (२) एक प्रकार का गोंद या कहरुवा जो दक्षिण में पच्छिमी घाट के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है। दे० "कहरुवा"। (३) कहरुवा की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोंद जो छोटी मधु मक्खियों के छत्ते से निकलता है। (४) वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल बनाती है।

डामल–संज्ञा स्त्री० [अ० दायमुलहब्स] (१) जनमकैद। उम्र भर के लिये कैद। (२) 'देशनिकाला' का दंड।
विशेष—भारतवर्ष में अँगरेजी सरकार भारी भारी अपराधियों को अंडमन टापू में भेजा करती है। उसी को डामल कहते हैं।

डिंडिमी-संज्ञा स्त्री० दे० "डिंडिम"।

डिंडिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्रफेन। (२) पानी का झाग।

डिंडिरमोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गृंजन। गाजर। (२) लहसुन।

डिंडिश-संज्ञा पुं० [सं०] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी। ढेंड़सी।

डिंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हलचल। पुकार। वावैला। भयध्वनि। (२) दंगा। लड़ाई। (३) अंडा। (४) फेफड़ा। फुप्फुस। (५) प्लीहा। पिलही। (६) कीड़े का छोटा बच्चा।

डिंबाहव-संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य युद्ध। ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों।

डिंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदमाती स्त्री। (२) सोनापाठा। स्योनाक।

डिंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा। छोटा बच्चा। उ०—अब तु, हौं डिंभ, सो न बूझिए बिलंब अब अवलंब नाहीं आन राखन हौं तेरिये।—तुलसी। (२) मूर्ख या जड़ मनुष्य।

† संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] (१) आडंबर। पाखंड। (२) अभिमान। घमंड।

डिंभक-संज्ञा पुं० [सं०] बच्चा। छोटा बच्चा।

डिंभिया-वि० [सं० दम्भ, हिं० डिंभ] (१) आडंबर रचनेवाला। पाखंडी। (२) अभिमानी। घमंडी।

डिकामाली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण में होता है। इसमें से एक प्रकार की गोंद या राल निकलती है जो हींग की तरह मृगी रोग में दी जाती है। इसके लगाने से घाव जल्दी सूखता है और उस पर मक्खियाँ नहीं बैठतीं।

डिकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का] (१) सींगों का धक्का (जैसा मेढे देते हैं)। (२) झपट। वार। आक्रमण।

डिक्टेशन-संज्ञा पुं० [अं०] वह वाक्य जो लिखने के लिये बोला जाय। इमला।

डिक्री-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) आज्ञा। हुक्म। फरमान। (२) न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी पक्ष को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय।

विशेष—दे० "डिगरी"।

डिक्शनरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] शब्दकोश।

डिगना-क्रि० अ० [सं० टिक = हिलना डोलना] (१) हिलना। टलना। खसकना। हटना। सरकना। जगह छोड़ना। जैसे, उस भारी पत्थर को कई आदमी उठाने गए पर वह जरा भी न डिगा।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) किसी बात पर स्थिर न रहना। प्रतिज्ञा छोड़ना। संकल्प या सिद्धांत पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना। विचलित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

डिगरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की पदवी।

क्रि० प्र०—मिलना।—लेना।

(२) अंश। कला। समकोण का $\frac{1}{90}$ भाग।

संज्ञा स्त्री० [अं० डिक्री] अदालत का वह फैसला जिसके जरिये से किसी फरीक को कोई हक मिलता है। न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार प्राप्त होता है। जैसे, उस मुकदमे में उसकी डिगरी होगई।

यौ०—डिगरीदार।

मुहा०—डिगरी जारी कराना = फैसले के मुताबिक किसी जायदाद पर कब्जा वगैरह करने की कार्रवाई कराना। न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी संपत्ति पर अधिकार करने का उपाय कराना। डिगरी देना = अभियोग में किसी के पक्ष में निर्णय करना। फैसले के जरिए से हक कायम करना। डिगरी पाना = अपने पक्ष में न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करना। जर डिगरी = वह रुपया जो अदालत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिलावे।

डिगरीदार-संज्ञा पुं० [अं० डिक्री + फा० दार] वह जिसके पक्ष में अदालत की डिगरी हुई हो।

डिगवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

डिगाना-क्रि० स० [हिं० डिगना] (१) हटाना। खसकाना। जगह से टालना। सरकाना। हिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) बात पर जमा न रहना। किसी संकल्प या सिद्धांत पर स्थिर न रखना। विचलित करना।

संयो० क्रि०—देना।

डिग्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका, बँग० दीघी = बावली या तालाब] तालाब। पोखरा। बावली, जैसे, लालडिग्गी।

† संज्ञा स्त्री० [देश०] हिम्मत। साहस। जिगरा।

डिटेक्टिव-संज्ञा पुं० [अं०] जासूस। मुखबिर। गुप्तचर। भेदिया।

यौ०—डिटेक्टिव पुलिस = वह पुलिस जो छिप कर मामलों का पता लगावे। खुफिया पुलिस।

डिठार†-वि० [हिं० डीठ = नजर] आँखवाला। देखनेवाला। जिसे सुझाई दे।

डिठियारा†-वि० [हिं० डीठि + आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० डिठियारी] दृष्टिवाला। देखनेवाला। आँखवाला। जिसकी आँख से सूझे।

संयो० क्रि०—लेना ।

(६) किसी के मत्थे छोड़ना। जिम्मे करना। भार देना। जैसे, (क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो। (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है।

संयो० क्रि०—देना।

(१०) गर्भपात करना। पेट गिराना। (चौपायों के लिये)।

संयो० क्रि०—देना।

(११) कै करना। उलटी करना। वमन द्वारा निकाल देना।

संयो० क्रि०—देना।

(१२) (स्त्री को) रख लेना। पत्नी की तरह रखना।

संयो० क्रि०—लेना।

(१३) लगाना। उपयोग करना। जैसे, किसी व्यापार में रुपया डालना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में भी समाप्ति की ध्वनि व्यंजित करने के लिये सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, काट डालना, जला डालना, दे डालना।

डालफिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] ह्वेल मछली का एक भेद।

डालर—संज्ञा पुं० [अं०] अमेरिका का एक सिक्का। यह १०० सेंट या टके का होता है जो यहाँ के रुपये से तीन रुपये दो आने के बराबर हुआ।

डाला†—संज्ञा पुं० दे० "डला"।

डाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] (१) डलिया। चंगेरी। (२) फल फूल मेवे तथा और खाने पीने की वस्तुएँ जो डलिया में सजा कर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं। जैसे, बड़े दिन में साहब लोगों के पास बहुत सी डालियाँ आती हैं।

क्रि० प्र०—भेजना।

मुहा०—डाली लगाना = डलिया में मेवे आदि सजा कर भेजना।

संज्ञा स्त्री० दे० "डाल"।

डावड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] पिठवन।

संज्ञा पुं० दे० "डावरा"।

डावड़ी†*—संज्ञा स्त्री० दे० "डावरी"।

डावरा—संज्ञा पुं० [सं० डिंब ?] [स्त्री० डावरी] लड़का। बेटा। उ०—दशरथ को डावरो साँवरो ब्याहे जनक कुमारी।—रघुराज।

डावरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डावरा] लड़की। बेटी। कन्या। उ०—(क) ठाढ़े भए रघुवंशमणि तिमि जनक भूपति डावरी।—रघुराज। (ख) जिन पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाय उठीं ब्रज डावरियाँ।—सुंदरीसर्वस्व।

डास—संज्ञा पुं० [देश०] चमारों का एक औजार जिससे चमड़े के भीतर का रुख साफ करते हैं।

डासन—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ, हिं० डाभ + आसन] बिछाने की चटाई वस्त्र आदि। बिछावन। बिछौना। बिस्तर। उ०—लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर-पर जमपुर-त्रासन।—तुलसी।

डासना—क्रि० स० [हिं० डासन] बिछाना। डालना। फैलाना। उ०—(क) निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहि संभु कृपाला।—तुलसी। (ख) डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।—तुलसी।

* † क्रि० स० [हिं० डसना] डसना। काटना। उ०—डासी वा विसासी विष मेषु विषधर उठै आठहू पहर विषै विष की लहर सी।—देव।

डासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डासन] खाट। पलंग। चारपाई।

डाह—संज्ञा स्त्री [सं० दाह] जलन। ईर्ष्या। द्वेष। द्रोह।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

डाहना—क्रि० स० [सं० दाहन] जलाना। सताना। दिक करना। तंग करना। उ०—काहे को मोहि डाहन आए रैनि देत सुख वाको?—सूर।

डाहुक—संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी जो टिटिहरी के आकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है।

डिंगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोटा आदमी। मोटासा। (२) दुष्ट। बदमाश। ठग। (३) दास। गुलाम। नीच मनुष्य।

संज्ञा पुं० [देश०] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँध दिया जाता है। ठिंगुरा। उ०—कबिरा माला काठ की पहिरी मुगद डुलाय। सुमिरन की सुध है नहीं ज्यों डिंगर बाँधी गाय।—कबीर।

डिंगल—वि० [सं० डिंगर] नीच। दूषित।

संज्ञा स्त्री० राजपुताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और वंशावली आदि लिखते चले आते हैं।

डिँगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खासिया पर्वत तथा चटगाँव और बरमा की पहाड़ियों में बहुत होते हैं। इससे बहुत बढ़िया गोंद या राल निकलती है। तारपीन का तेल भी इससे निकलता है।

डिँड़स—संज्ञा पुं० [सं० टिंडिश] डिंढ या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडिश] डिंढ या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था। डिमडिमी। डुगडुगिया। (२) करौंदा। कुष्माण्डक फल।

संज्ञा पुं० [सं० दल] ऊन का लच्छा।

डिलिवरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] डाकखानों में आई हुई चिट्ठियों, पारसलों मनीआर्डरों की बँटाई जो नियत समय पर होती है।

डिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में भगण होता है। उ०—राम नाम निसि बासर गावहु। जन्म खेत कर फल जग पावहु॥ सीख हमारी जो हिय लावहु। जन्म मरण के फंद नसावहु। (२) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (॥ऽ) होते हैं। इसके अन्य नाम तिलका, तिल्ला और तिलाना भी हैं। उ०—ससि भाल धरो। शिव भाल धरो॥ भ्रमरा हरषे। तिलका निरखे।

संज्ञा पुं० [हिं० टीला] बैलों के कंधे पर उठा हुआ कूबड़। कुव्वा। ककुत्थ।

डिस्ट्रिब्यूट करना—क्रि० स० [अं०] छापेखाने में कंपोज किए हुए टाइपों (अक्षरों) को केसों (खानों) में अपने अपने स्थान पर रखना।

डिसमिस—वि० [अं०] (१) बरखास्त। (२) खारिज। जैसे, अपील डिसमिस करना।

डिहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १००० गाँठों का एक मान जिसके अनुसार कालीनों (गलीचों) का दाम लगाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घ, हिं० डीह, डीह] कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन जिसमें अनाज भरा जाता है।

डींग—संज्ञा स्त्री० [सं० डीन = उड़ान] लंबी चौड़ी बात। खूब बढ़ बढ़ कर कही हुई बात। अपनी बड़ाई की झूठी बात। अभिमान की बात। शेखी। सिट्ट।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—मारना।—हाँकना।

मुहा०—डींग की लेना = शेखी बघारना।

डीक—संज्ञा स्त्री० [देश०] झिल्ली या फाँफी जो आँख पर पड़ जाती है। जाला। मोतियाबिंद।

डीकरी*—संज्ञा स्त्री० [सं० डिंबक] बेटी। कन्या। (डिं०)

डीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि०, प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि] (१) दृष्टि। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—डालना।—पसारना।

मुहा०—डीठ चुराना = नजर छिपाना। सामने न ताकना। डीठ छिपाना = दे० "डीठ चुराना"। डीठ जोड़ना। = चार आँखें करना। सामने ताकना। डीठ बाँधना = नजरबंद करना। ऐसी माया या जादू करना जिसमें सामने की वस्तु ठीक ठीक न सूझे। डीठ मारना = नजर डालना। चितवन से चित्त मोहित करना। डीठ रखना = नजर रखना। देख रेख रखना। निरीक्षण रखना। डीठ लगाना = नजर लगाना। किसी अच्छी वस्तु पर अपनी दृष्टि का बुरा प्रभाव डालना।

यौ०—डीठबंध।

(२) देखने की शक्ति। (३) ज्ञान। सूझ। उ०—दई पीठि बिनु डीठि हौं, तू बिश्व-बिलोचन।—तुलसी।

डीठना†*—क्रि० अ० [हिं० डीठ + ना (प्रत्य०)] दिखाई देना। दृष्टि में आना।

डीठबंध—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबंध] (१) ऐसी माया या जादू जिससे सामने की वस्तु ठीक ठीक न सुझाई दे। नजरबंदी। इंद्रजाल। (२) कुछ का कुछ कर दिखानेवाला। इंद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

डीठि†—संज्ञा स्त्री० दे० "डीठ"।

डीठिमूठि†*—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीठि + मूठ] नजर। टोना। जादू। उ०—रोवनि धोवनि अनखनि अनरनि डिठिमूठि निठुर नसाइहौं।—तुलसी।

डीन—संज्ञा स्त्री० [सं०] उड़ान। पक्षियों की गति।

विशेष—ऊपर नीचे आदि इसके २६ भेद किए गए हैं।

डीबुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा। उ०—बबुआ न आवा मोर मैयन न पावा थाक सुपक को न लावा गाँठि डीबुआ न आवा है।—सूदन।

डीमडाम—संज्ञा पुं० [सं० डिंब = धूम धाम] (१) ठाट। ऐंठ। तपाक। ठसक। अहंकार। उ०—पाग पेंच खेंच दें लपेट पट फेंट बाँध ऐंडे ऐंडे आव पैनै टूटे डीमडाम के।—हृदयराम। (२) धूम धाम। ठाट बाट। आडंबर। उ०—दुंदुभी बजाई ढोल ताल करनाई बड़ो ऊधम मचाइ छल कीने डीमडाम को।—हृदयराम।

डील—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] (१) प्राणियों के शरीर की ऊँचाई। शरीर का विस्तार। कद। उठान। जैसे, वह छोटे डील का आदमी है।

यौ०—डील डौल = (१) देह की लंबाई चौड़ाई। शरीर-विस्तार। (२) शरीर का ढाँचा। आकार। आकृति। काठी।

(२) शरीर। जिस्म। देह। जैसे, (क) अपने डील से उसने इतने रुपए पैदा किए। (ख) उनके डील से किसी की बुराई नहीं हो सकती। (३) व्यक्ति। प्राणी। मनुष्य। जैसे, सौ डील के लिये भोजन चाहिए। उ०—जेते डील तेते हाथी, तेतेई खवास साथी, कंचन के कुंडल किरीट पुंज छाये हैं।—हृदयराम।

डीला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो प्रायः पश्चिमोत्तर भारत में पाया जाता है।

डीह—संज्ञा पुं० [फा० देह] (१) गाँव। आबादी। बस्ती। (२) उजड़े हुए गाँव का टीला। (३) ग्राम-देवता।

डीहदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीह + फा० दारी] एक तरह का हक जो उन जमींदारों को मिलता है जो अपनी जमीन बेच डालते हैं। खरीदार उनको गाँव का कोई अंश देता है जिससे उन का निर्वाह हो।

उ०—तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुख पाइहै डिठियारो केहि डीठि।—तुलसी।

डिठोहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीठि + हरना] एक जंगली पेड़ के फल का बीज जिसे तागे में पिरो कर बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाते हैं।

विशेष—दे० "वजरवट्टू" या "नजरवट्टू"।

डिठौना—संज्ञा पुं० [हिं० डीठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के मस्तक पर नजर से बचाने को स्त्रियाँ लगा देती हैं। उ०—(क) पहिरायो पुनि वसन रँगीला। दीन्हों भाल डिठौना नीला।—रघुराज। (ख) सखि कंजन को परम सलोना भाल डिठौना देहीं। मनु पंकज कोना पर बैठो अलि छौना मधु लेहीं।—रघुराज।

डिडका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहाँसा।

डिड़ई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिड़वा—संज्ञा पुं० [देश०] डिड़ई नाम का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिढ़†—वि० [सं० दृढ़] पक्का। मजबूत।

डिढ़ाना†*—क्रि० स० [हिं० डिढ़] (१) पक्का करना। मजबूत करना। (२) ठानना। निश्चित करना। मन में दृढ़ विचार करना।

डिढ्या†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अत्यंत लालच। लालसा। कामना। तृष्णा। उ०—संग्रह करने की लालसा प्रबल हुई तो जोरी सै, चोरी सै, छल सै खुशामद सै कमाने की डिढ्या पड़ेगी और खाने खर्चने के नाम सै जान निकल जायगी।—श्रीनिवासदास।

डित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काठ का बना हाथी। (२) विशेष लक्षणोंवाला पुरुष।

विशेष—साँवले, सुंदर, युवा और सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को डित्थ कहते हैं।

डिपटी—संज्ञा पुं० [अं० डिपुटी] नायब। सहायक। सहकारी। जैसे, डिपटी कलक्टर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंसपेक्टर।

डिपाजिट—संज्ञा पुं० [अं०] धरोहर। अमानत। तहवील।

डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] मुहकमा। सरिश्ता। विभाग।

डिपो—संज्ञा स्त्री० [अं०] गुदाम। अमानतखाना। जखीरा। भांडार। जैसे, बुक डिपो।

डिप्लोमा—संज्ञा पुं० [अं०] विद्यासंबंधिनी योग्यता का प्रमाणपत्र। सनद।

डिबिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] वह छोटा ढकनदार बरतन जिसके ऊपर ढकन अच्छी तरह जम कर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। छोटा डिब्बा। छोटा संपुट। जैसे, सुरती की डिबिया।

डिबिया टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० कुश्ती का एक पेच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) कमर पर होता है और उसका दहना हाथ कमर में लिपटा होता है। इसमें विपक्षी को दहने हाथ से जोड़ का बायाँ हाथ कमर के पास से दहने जाँघ तक खींचते हुए और बाएँ हाथ से लँगोट पकड़ते हुए बाएँ पैर से भीतरी टाँग मार कर गिराते हैं।

डिबेंचर—संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह कागज या दस्तावेज जिसमें कोई अफसर किसी कंपनी या म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए ऋण को स्वीकार करता है। ऋण-स्वीकार पत्र। (२) माल की रफ़्नी के महसूल का रवन्ना। परमट का वसीका। बहती।

डिब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग वा सं० डिंब = गोला] (१) वह छोटा ढकनदार बरतन जिसके ऊपर ढकन अच्छी तरह जम कर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज़ हिलाने डुलाने से न गिरे। संपुट। (२) रेलगाड़ी की एक गाड़ी। (३) पसली के दर्द की बीमारी जो प्रायः बच्चों को हुआ करती है। पसई चलने की बीमारी।

डिभगना*—क्रि० स० [देश०] मोहित करना। मोहना। छलना। डहकना। उ०—दुरजोधन अभिमानहिं गयऊ। पंडव केर मरम नहिं भयऊ। माया के डिभगे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा।—कबीर।

डिम—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक वा दृश्य काव्य का एक भेद जिसमें माया, इंद्रजाल, लड़ाई और क्रोध आदि का समावेश विशेष रूप से होता है। यह रौद्र-रस-प्रधान होता है और इसमें चार अंक होते हैं। इसके नायक देवता गंधर्व यक्ष आदि होते हैं। भूतों और पिशाचों की लीला इसमें दिखाई जाती है। इसमें शांत, शृंगार और हास्य ये तीनों रस न आने चाहिएँ।

डिमडिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिंडिम] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। डुगडुगिया। डुग्गी। उ०—डिमडिमी पटह ढोल डफ वीणा मृदंग उपंग चँगतार।—सूर।

डिमरेज—संज्ञा पुं० [अं०] (१) बंदरगाह में जहाज के ज्यादा ठहरने का हर्जा। (२) स्टेशन पर आए हुए माल के अधिक दिन पड़े रहने का हर्जा जो पानेवाले को देना पड़ता है।

क्रि० प्र०—लगना।

डिमाई—संज्ञा स्त्री० [अं०] कागज वा छापने की कल की एक नाप जो १८ × १२ इंच होती है।

डिला—संज्ञा० पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में उत्पन्न होती है। मोथा।

डूँड़ा–वि० [सं० त्रुटि, हिं० टूटना] एक सींग का (बैल)। (बैल) जिसका एक सींग टूट गया हो।

डूक–संज्ञा स्त्री० [देश०] पशुओं के फेफड़ों की एक बीमारी।

डूकना†–क्रि० स० [सं० त्रुटि+करण] चूकना। त्रुटि करना।

डूबना–क्रि० अ० [अनु० डुब डुब] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर समाना। एक बारगी पानी के भीतर चला जाना। मग्न होना। गोता खाना। बूड़ना। जैसे, नाव डूबना, आदमी डूबना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—डूब मरना=लज्जा के मारे मर जाना। शरम के मारे मुँह न दिखाना। (इस मुहा० का प्रयोग विधि और आदेश के रूप में ही प्रायः होता है। जैसे, तू डूब मर, तुम डूब क्यों नहीं मरते?) चुल्लू भर पानी में डूब मरना=दे० "डूब मरना"। डूबते को तिनके का सहारा होना=निराश्रय व्यक्ति के लिये थोड़ा सा आश्रय भी बहुत होना। संकट में पड़े हुए निस्सहाय मनुष्य के लिये थोड़ी सी सहायता भी बहुत होना। डूबा नाम उछालना=(१) फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त करना। गई हुई मर्यादा को फिर से स्थापित करना। (२) अप्रसिद्धि से प्रसिद्धि प्राप्त करना। डूबना उतराना=(१) चिंता में मग्न होना। सोच में पड़ जाना। (२) चिंताकुल होना। घबराना। जी डूबना=(१) चित्त विह्वल होना। चित्त व्याकुल होना। जी घबराना। (२) बेहोशी होना। मूर्च्छा आना। (पद्माकर ने 'प्राण' शब्द के साथ भी इस मुहा० का प्रयोग किया है, जैसे, जबल हौ, डूबत हौ, डोलत हौ बोलत न काहे प्रीति रीतिन रितै चले।.........परे मेरे प्रान! कान्ह प्यारे की चलाचल में तब तो चले न, अब चाहत किते चले।)

(२) सूर्य्य, ग्रह नक्षत्र आदि का अस्त होना। सूर्य्य या किसी तारे का अदृश्य होना। जैसे, सूर्य्य डूबना, शुक्र डूबना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) चौपट होना। सत्यानाश जाना। बरबाद होना। बिगड़ना। नष्ट होना। जैसे, वंश डूबना। उ०—डूबा वंश कबीर का उपजे पूत कमाल।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—नाम डूबना=मर्यादा बिगड़ना। प्रतिष्ठा नष्ट होना। कुख्याति होना।

(४) किसी व्यवसाय में लगाया हुआ धन नष्ट होना या किसी को दिया हुआ रुपया न वसूल होना। मारा जाना। जैसे, (क) उसने जितना रुपया इधर उधर कर्ज दिया था सब डूब गया। (ख) जिसने जिसने हिस्सा खरीदा सब का रुपया डूब गया।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) बेटी का बुरे घर ब्याहा जाना। कन्या का ऐसे घर पड़ना जहाँ बहुत कष्ट हो।

संयो० क्रि०—जाना।

(६) चिंतन में मग्न होना। विचार में लीन होना। अच्छी तरह ध्यान लगाना। जैसे, डूब कर सोचना। (७) लीन होना। तन्मय होना। लिप्त होना। अच्छी तरह लगना। जैसे, विषय-वासना में डूबना, ध्यान में डूबना।

डूमा–संज्ञा पु० [रूसी] रूस की पार्लमेंट या राजसभा का नाम।

डेँड़सी–संज्ञा स्त्री० [सं० टिंडिश] ककड़ी की तरह की एक तरकारी जिसके फल कुँहड़े की तरह गोल पर छोटे होते हैं।

डेउढ़ा†–वि०, संज्ञा पु० दे० "डेवढ़ा"। "ड्योढ़ा"।

डेउढ़ी†–संज्ञा स्त्री० दे० "ड्योढ़ी"।

डेग–संज्ञा पु० दे० "देग"।

डेगची–संज्ञा स्त्री० दे० "देगची"।

डेड़हा†–संज्ञा पुं० [सं० डुंडुभ] पानी का साँप जिसमें बहुत कम विष होता है।

डेढ़–वि० [सं० अध्यर्द्ध, प्रा० डिवड्ढ] एक और आधा। सार्द्धैक। जो गिनती में १½ हो। जैसे, डेढ़ रुपया, डेढ़ पाव, डेढ़ सेर, डेढ़ बजे।

मुहा०—डेढ़ ईंट की जुदा मसजिद बनाना=खरेपन या अक्खड़पन के कारण सबसे अलग काम करना। मिल कर काम न करना। डेढ़ गाँठ=एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गाँठ। रस्सी तागे आदि की वह गाँठ जिसमें एक पूरी गाँठ लगा कर दूसरी गाँठ इस प्रकार लगाते हैं कि तागे का एक छोर दूसरे छोर की दूसरी ओर बाहर नहीं खींचते, तागे को थोड़ी दूर ले जाकर बीच ही से कस देते हैं। मुद्धी। (इसमें दोनों छोर एक ही ओर रहते हैं और दूसरे छोर को खींचने से गाँठ चट खुल जाती है)। डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना=अपनी राय सब से अलग रखना। बहुमत से भिन्न मत प्रकट करना। डेढ़ चुल्लू=थोड़ा सा। डेढ़ चुल्लू लहू पीना=मार डालना। खूब दंड देना। (क्रोध का वाक्य-खि०)

विशेष—जब किसी निर्दिष्ट संख्या के पहले इस शब्द का प्रयोग होता है तब उस संख्या को एकाई मान कर उसके आधे को जोड़ने का अभिप्राय होता है। जैसे, डेढ़ सौ=सौ और उसका आधा पचास—१५०, डेढ़ हजार=हजार और उसका आधा पाँच सौ अर्थात् १५००। पर इस शब्द का प्रयोग दहाई के आगे के स्थानों को निर्दिष्ट करनेवाली संख्याओं के साथ ही होता है। जैसे, सौ, हजार, लाख, करोड़ अरब इत्यादि। पर अनपढ़ और गँवार जो पूरी गिनती नहीं जानते और संख्याओं के साथ भी इस शब्द का प्रयोग कर देते हैं, जैसे डेढ़ बीस अर्थात् तीस।

डुंगा-संज्ञा पुं० [सं० तुंग=ऊँचा] (१) ढेर। अटाला। उ०—धर्ती स्वर्ग असूझ भा तबहुँ न आग बुझाय। उठहिं वज्र जरि डुंग वे धूम रहो जग छाय।—जायसी। (२) टीला। भीटा। पहाड़ी।

डुंडा-संज्ञा पुं० [सं० दंड] ठूँठ। पेड़ों की सूखी डाल जिसमें पत्ते आदि न हों। उ०—देव जू अनंग अंग होमि कै भसम संग अंग अंग उमह्यो अखैवर ज्यौं डुंड मैं।—देव।

डुंडु-संज्ञा पुं० दे० "डुंडुभ"।

डुंडुभ-संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत कम विष होता है। डेड़हा साँप। डयोढ़ा साँप।

डुंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] छोटा उल्लू।

डुक-संज्ञा पुं० [अनु०] घूँसा। मुक्का।

डुकिया-संज्ञा स्त्री० दे० "डोकिया"।

डुकियाना-क्रि० स० [हिं० डुक] घूँसों से मारना। घूँसा लगाना।

डुगडुगाना-क्रि० स० [अनु०] किसी चमड़ा-मढ़े बाजे को लकड़ी से बजाना।

डुगडुगी-संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक छोटा बाजा। डौंगी। डुग्गी।

क्रि० प्र०—बजाना।

मुहा०—डुगडुगी पीटना=डौंड़ी बजा कर घोषित करना। मुनादी करना। चारो ओर प्रकट करना।

डुग्गी-संज्ञा स्त्री० दे० "डुगडुगी"।

डुड्डा-संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक।

डुड़का-संज्ञा पुं० [देश०] धान के पौधों का एक रोग।

डुडुहा-संज्ञा पुं० [हिं० टाँड़] खेत में दो नालियों (बिरहों) के बीच की मेंड़।

डुपटना-क्रि० स० [हिं० दो+पट] चुनना। चुनियाना। उ०—अन्हवाइ तन पहिराइ भूषन बसन सुंदर डुपटि के।—विश्राम।

डुपट्टा-संज्ञा पुं० "दुपट्टा"।

डुबकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] (१) पानी में डूबने की क्रिया। डुब्बी। गोता। बुड़की।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—मारना।—लगाना।—लेना।

मुहा०—डुबकी मारना या लगाना=गायब हो जाना।

(२) पीठी की बनी हुई बिना तली बरी जो पीठी ही की कढ़ी में डुबा कर रखी जाती है। (३) एक प्रकार का बटेर।

डुबवाना-क्रि० स० [हिं० डुबाना का प्रे०] डुबाने का काम कराना।

डुबाना-क्रि० स० [हिं० डूबना] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर डालना। मग्न करना। गोता देना। बोरना। (२) चौपट करना नष्ट करना। सत्यानाश करना। बरबाद करना।

मुहा०—नाम डुबाना=नाम को कलंकित करना। यश को बिगाड़ना। किसी कर्म या त्रुटि के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना। मर्यादा खोना। लुटिया डुबाना—महत्व खोना। बड़ाई न रखना। प्रतिष्ठा नष्ट करना। वंश डुबाना=वंश की मर्यादा नष्ट करना। कुल की प्रतिष्ठा खोना।

डुबाव-संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] पानी की इतनी गहराई जितनी में एक मनुष्य डूब जाय। डूबने भर की गहराई। जैसे, यहाँ हाथी का डुबाव है।

डुबोना-क्रि० स० दे० "डबोना"।

डुब्बी-संज्ञा स्त्री० दे० "डुबकी"।

डुभकौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना, डुबकी+बरी] पीठी की बिना तली बरी जो पीठी ही के झोल में पकाई और डुबा कर रखी जाती है। उ०—चौराई तोराइ तोरई मुरइ मुरब्बा भारी जी। डुबकौरी मुँगछौरी रिकवछ इँडहर छीर छँछौरी जी।—रघुनाथ।

डुमई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का चावल जो कछार में होता है।

डुलना*†-क्रि० अ० दे० "डोलना"। उ०—मंद मंद मैगल मतंग लौं चलेई भले भुजन समेत भुजभूषन डुलत जात।—पद्माकर।

डुलाना-क्रि० स० [हिं० डोलना] (१) हिलाना। चलाना। गति में लाना। चलायमान करना। जैसे, पंखा डुलाना। (२) हटाना। भगाना। उ०—कारे भए करि कृष्ण को ध्यान डुलाएँ ते काहू के डोलत ना।—सुंदरीसर्वस्व। (३) चलाना। फिराना। घुमाना। टहलाना।

डुलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमठी। कछुई। कच्छपी।

डुल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली साग। लालपत्ती का बथुआ।

डूँगर-संज्ञा पुं० [सं० तुंग=पहाड़] (१) टीला। भीटा। डूह। उ०—सूरदास प्रभु रसिक सिरोमणि कैसे दुरत दुराय कहौ। धौं डुँगरन की ओट सुमेर।—सूर। (२) छोटी पहाड़ी। उ०—छिनहीं में ब्रज धोइ बहावैं। डूँगर को कहुँ नावँ न पावै।—सूर।

डूँगरफल-संज्ञा पुं० [हिं० डूँगर+फल] बंदाल का फल। देवदाली का फल जो बहुत कड़ुआ होता है और सरदी में घोड़ों को खिलाया जाता है।

डूँगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डूँगर] छोटी पहाड़ी।

डूँगा-संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] (१) चम्मच। चमचा। (२) एक लकड़ी की नाँव। डोंगा। (लश०)। (३) रस्से का गोल लपेटा हुआ लच्छा। (लश०)

संज्ञा पुं० [देश०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक।

डूँजा-संज्ञा स्त्री० [देश०] आँधी। तेज हवा। (डिं०)

हुई वह भूमि जो धारा के कई शाखाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है।

डेला–संज्ञा पुं० [सं० दल] ढेला। रोड़ा। आँख का सफेद उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है। आँख का कोया। संज्ञा पुं० [हिं० ठेलना] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँध दिया जाता है। ठेंगुर।

डेलिगेट–संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रतिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से मत देने के लिये भेजा जाय।

डेलिया–संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है। इसका फूल लाल या पीला होता है।

डेली†–संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] डलिया। बाँस की झाँपी। उ०—बँधिगा सुआ करत सुख केली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी।

डेवढ़ा†–वि० [हिं० डेवढ़ा] डेढ़गुना। डेवढ़ा। उ०—सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ सुलोचन लाहू।—तुलसी।
† संज्ञा स्त्री० तार। सिलसिला। क्रम।
क्रि० प्र०—लगना।

डेवढ़ना–क्रि० अ० [हिं० डेवढ़ा] (१) आँच पर रखी हुई रोटी का फूलना। (२) कपड़े को मोड़ना। कपड़े की तह लगाना।

डेवढ़ा–वि० [हिं० डेढ़] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।
संज्ञा पुं० (१) ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या गड्ढा हो। (पालकी के कहार)। (२) गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो। (३) एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अंकों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेवढ़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "ड्योढ़ी"।

डेवलप करना–क्रि० अ० [अं० डेवलप + हिं० करना] फोटोग्राफी में प्लेट को मसाले मिले हुए जल से धोना जिसमें अंकित चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय।

डेस्क–संज्ञा पुं० [अं०] लिखने के लिये छोटा ढालुआँ मेज़।

डेहरी–संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दरवाज़े के नीचे की उठी हुई ज़मीन जिस पर चौखट के नीचे की लकड़ी रहती है। दहलीज़। उतमर्दा।
† संज्ञा स्त्री० [हिं० दह] अन्न रखने के लिये कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन।

डेहल–संज्ञा पुं० [सं० देहली] देहली। दहलीज़।

डेंगना–संज्ञा पुं० [हिं० डग] काठ का लंबा टुकड़ा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे अधिक भाग न सकें। ठेंगुर। लंगर।

डैना–संज्ञा पुं० [सं० डयन = उड़ना] चिड़ियों का वह फैलने और सिमटनेवाला अंग जिससे वे हवा में उड़ती हैं। पंख। पक्ष। पर। बाजू।

डैम–संज्ञा पुं० [अं०] एक अंगरेजी गाली। अभागा। नारकी। सत्यानाशी।

डैश–संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अंगरेजी विराम-चिह्न जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है। यदि किसी वाक्य के बीच डैश देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरण संबंध मुख्य वाक्य से नहीं होता। जैसे, जो शब्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे अरबी के, चाहे अंगरेजी के—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। डैश का चिह्न इस प्रकार—का होता है।

डोंगर–संज्ञा पुं० [सं० तुंग = पहाड़ी] [स्त्री० अल्प० डोंगरी] पहाड़ी। टीला। भीटा। उ०—(क) एक फूक विष ज्वाल के जल डोंगर जरि जाहि।—सूर। (ख) डोंगर को बल बनहिं बताऊँ। ता पाछे ब्रज खोदि बहाऊँ।—सूर। (ग) चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर डांग। जनु पुर बीथिनि विहरत छैल सँवारे स्वांग।—तुलसी।

डोंगा–संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० अल्प० डोंगी] (१) बिना पाल की नाव। (२) नाव।

डोंगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डोंगा] (१) बिना पाल की छोटी नाव। (२) छोटी नाव। (३) वह बरतन जिसमें लोहार लोहा लाल करके बुझाते हैं।

डोंड़ा–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] (१) बड़ी इलायची। (२) टोंटा। कारतूस। उ०—चंद्रबाण सत्रहूँ विराजे। शत्रु हने सोइ बचे जु भागे॥ भरि बंदूक अठारह छोड़े। इतने उदिय होय तब डोंडे।—हनुमान।

डोंडी–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] (१) पोस्ते का फल जिसमें से अफीम निकलती है। (२) उभरा मुँह। टोंटी।
संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणी] डोंगी। छोटी नाव।
संज्ञा स्त्री० दे० "डौंड़ी"।

डोई–संज्ञा स्त्री० [हिं० डोकी] काठ की डाँड़ी की बड़ी कलछी जिससे कड़ाह में दूध, घी, चाशनी आदि चलाते हैं। (यह वास्तव में लोहे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमें काठ की लंबी डाँड़ी खड़े बल लगी रहती है)।

डोका–संज्ञा पुं० [देश०] छुहारा जो पक कर पीला हो जाय। पकी हुई खजूर।

डोकर–संज्ञा पुं० दे० "डोकरा"।

डोकरहा†–संज्ञा पुं० दे० "डोकरा"।

डोकरा–संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर, प्रा० दुक्कर ?] [स्त्री० डोकरी] (१) बड़ा आदमी। अशक्त और वृद्ध मनुष्य। † (२) पिता। बाप।

डेढ़खम्मन–संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़+फ़ा० ख़म] एक प्रकार का बिरका या गोल रुखानी।

डेढ़खम्मा–संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़+फ़ा० ख़म=टेढ़ा] तंबाकू पीने का वह सस्ता नैचा जिसमें कुलफी नहीं होती। इसके घुमाव पर केवल एक लोहे की टेढ़ी सलाई रख कर उसे पयाल और चिथड़े आदि से लपेट देते हैं।

डेढ़गोशी–संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़+फ़ा० गोशा=कोना] एक बहुत छोटा और मजबूत बना हुआ जहाज़।

डेढ़ा–वि० [हिं० डेढ़] डेढ़ गुना। किसी वस्तु से उसका आधा और अधिक। डेवढ़ा।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें प्रत्येक संख्या की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़] किसानों को बोआई के समय इस शर्त्त पर अनाज उधार देने की रीति कि वे फसल कटने पर लिए हुए अनाज का ड्योढ़ा देंगे।

डेढ़िया–संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो दारजिलिंग, सिकिम और भूटान आदि में पाया जाता है। इसके पत्तों से एक प्रकार की सुगंध निकलती है। इसकी लकड़ी मकानों में लगाने तथा चाय के संदूक और खेती के सामान (हल, पाटा आदि) बनाने के काम में आती है। यह पेड़ पुआले की जाति का है।

डेपूटेशन–संज्ञा पुं० [अं०] चुने हुए प्रधान प्रधान लोगों की वह मंडली जो जन साधारण या किसी सभा संस्था की ओर से सरकार, राजा महाराजा अथवा किसी अधिकारी या शासक के पास किसी विषय में प्रार्थना करने के लिये भेजी जाय।

डेबरा†–वि० [देश०] बैंहत्था। बाएँ हाथ से काम करनेवाला।

डेबरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत का वह कोना जो जोतने में छूट जाता है। कोंतर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बी] डिब्बी के आकार का टीन शीशे आदि का बरतन जिसमें तेल भर कर रोशनी के लिये बत्ती जलाते हैं। डिब्बी।

डेर†–संज्ञा पुं० दे० "डर"।

डेरा–संज्ञा पुं० [हिं० ठैरनां, ठैराव] (१) टिकान। ठहराव। थोड़े काल के लिये निवास। थोड़े दिन के लिये रहना। पड़ाव। जैसे, आज रात को यहीं डेरा करो सबेरे उठ कर चलेंगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) टिकने का आयोजन। टिकान का सामान। ठहरने वा रहने के लिये फैलाया हुआ सामान, जैसे, बिस्तर, बरतन भाँड़ा, छप्पर, तंबू इत्यादि। छावनी। उ०—यहाँ से चटपट अपना डेरा उठाओ।

यौ०—डेरा डंडा=टिकने का सामान। बोरिया बँधना।

मुहा०—डेरा डालना=सामान फैला कर टिकना। ठहरना। रहना। डेरा पड़ना=टिकान होना। छावनी पड़ना। उ०—भरि चौरासी कोस परे गोपन के डेरा।—सूर। डेरा डंडा उखाड़ना=टिकने का सामान हटा कर चला जाना।

(३) टिकने के लिये साफ किया हुआ और छाया बनाया हुआ स्थान। ठहरने का स्थान। छावनी। कैंप। उ०—नौबत झरहिं वहु नृपति डेरन दुंदुभी धुनि ह्वै रही।—रघुराज। (४) खेमा। तंबू। छोलदारी। शामियाना।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

(५) नाचने गानेवालों का दल। मंडली। गोल।

(६) मकान। घर। निवास-स्थान। जैसे, तुम्हारा डेरा कितनी दूर है?

*†वि० [सं० डहर=छोटा?] [स्त्री० डेरी] बायाँ। सव्य। जैसे, डेरा हाथ। उ०—(क) फहमैं आगे फहमैं पाछे, फहमैं दहिने डेरे।—कबीर। (ख) सूर स्याम सन्मुख रति मानत गए मग बिसरि दाहिने डेरे।—सूर।

संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी सफेद और मजबूत लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी छाल और जड़ साँप काटने पर पिलाई जाती है। यह पेड़ पंजाब, अवध, बंगाल तथा मध्यप्रदेश और मदरास में भी होता है। इसे 'धरोली' भी कहते हैं।

डेराना†–क्रि० अ० दे० "डरना"।

डेल–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो रबी की फसल के लिये जोत कर छोड़ दी जाय। परेल।

संज्ञा पुं० [देश०] कटहल की तरह का एक बड़ा और ऊँचा पेड़ जो लंका में होता है। इसके हीर की लकड़ी चमकदार और मजबूत होती है, इस लिये वह मेज़ कुरसी तथा और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। नावें भी इसकी अच्छी बनती हैं। इस पेड़ में कटहल के बराबर बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। बीज भी खाने के काम में आते हैं। इन बीजों में से तेल निकलता है जो दवा और जलाने के काम में आता है।

संज्ञा पुं० [सं० डुंडुल] उल्लू पत्ती। उ०—धनमद, जोबन राजमद ज्यों पंछिन महँ डेल।—स्वामी हरिदास।

संज्ञा पुं० [सं० दल, हिं० डला] ढेला। पत्थर मिट्टी या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। उ०—नाहिंन रास रसिक रस चाख्यो तातें डेल सो डारो।—सूर।

डेलटा–संज्ञा पुं० [यू०, अं०] नदियों के मुहाने वा संगम-स्थान पर उनके द्वारा लाए हुए कीचड़ और बालू के जमने से बनी

(३) आँखों की बहुत महीन लाल नसें जो साधारण मनुष्यों की आँख में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नशे की उमंग में होते हैं या सो कर उठते हैं। जैसे, आँखों में लाल डोरे कानों में बालियाँ। (४) तलवार की धार। (५) तपे घी की धार, जो दाल आदि में ऊपर से डालते समय, बँध जाती है।

मुहा०—डोरा देना=तपा हुआ घी ऊपर से डालना।

(६) एक प्रकार की कलछी जिसकी डाँड़ी खड़े बल लगी होती है और जिससे घी निकालते हैं या दूध आदि कड़ाह में चलाते हैं। परी। (७) स्नेहसूत्र। प्रेम का बंधन। लगन।

मुहा०—डोरा डालना=प्रेमसूत्र में बद्ध करना। प्रेम में फँसाना। अपनी ओर प्रवृत्त करना। परचाना। डोरा लगना=स्नेह का बंधन होना। प्रीति-संबंध होना।

(८) वह वस्तु जिसका अनुसरण करने से किसी वस्तु का पता लगे। अनुसंधानसूत्र। सुराग। उ०—जुवति जोन्ह में मिलि गई नेकु न देति लखाय। सौंधे के डोरे लगीं अली चली सँग जाय।—बिहारी। (९) काजल या सुरमे की रेखा। (१०) नृत्य में कंठ की गति। नाचने में गरदन हिलाने का भाव।

संज्ञा पुं० [हिं० डोंड़] पोस्ते आदि का डोंड़। डोडा।

डोरिया—संज्ञा पुं० [हिं० डोरा] (१) एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हों। (२) एक प्रकार का बगला जिसके पैर हरे होते हैं। यह ऋतु के अनुसार रंग बदलता है। (३) जुलाहों के यहाँ तागा उठानेवाला लड़का। (४) एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ शिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी। ये लोग कुत्तों को शिकार पर सधाते थे।

डोरियाना †—क्रि० स० [हिं० डोरी+आना (प्रत्य०)] पशुओं को रस्सी से बाँध कर ले चलना। बागडोर लगा कर घोड़ों को ले जाना। उ०—गवने भरत पयादेहि पाये। कोतल संग जाहिं डोरियाये।—तुलसी।

डोरिहार—संज्ञा पुं० [हिं० डोरी+हार] [स्त्री० डोरिहारिन] पटवा।

डोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोरा] (१) कई डोरों या तागों को बट कर बनाया हुआ खंड जो लंबाई में दूर तक लकीर के रूप में चला गया हो। रस्सी। रज्जु। जैसे, पानी भरने की डोरी, पंखा खींचने की डोरी।

मुहा०—डोरी खींचना=सुध करके अपने पास दूर से बुलाना। पास बुलाने के लिये स्मरण करना। जैसे, जब भगवती डोरी खींचेगी तब जायँगे। (स्त्रि०)। डोरी लगना=किसी के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान बना रहना। जैसे, अब तो घर की डोरी लगी हुई है।

(२) वह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़ कर उसके भीतर डाल कर सीते हैं।

क्रि० प्र०—भरना।

(३) वह रस्सी जिसे राजा महाराजाओं या बादशाहों की सवारी के आगे आगे दोनों ओर हद बाँधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं। (यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी की हद के भीतर कोई जा न सके)।

क्रि० प्र०—थामना।—चलना।

(४) बाँधने की डोरी। पाश। बंधन। उ०—मैं मेरी करि जन्म गँवावत जब लगि परत न जम की डोरी।—सूर।

मुहा०—डोरी ढीली छोड़ना=देख रेख कम करना। चौकसी कम करना। जैसे, जहाँ डोरी ढीली छोड़ी कि बच्चा बिगड़ा।

(५) डाँड़ीदार कटोरा जिससे कड़ाह में दूध चाशनी आदि चलाते हैं।

डोरे *—क्रि० वि० [हिं० डोर] साथ पकड़े हुए। साथ साथ। संग संग। उ०—(क) अमृत निचोरे कल बोलत निहोरे मैक सखिन के डोरे देव डोलै जित तित कों।—देव। (ख) बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि शिव को समाज कैधौं ऋषि को सदन है।—केशव।

डोल—संज्ञा पुं० [सं० दोल=झूलना, लटकाना] (१) लोहे का एक गोल बरतन जिसे कुएँ में लटका कर पानी खींचते हैं। (२) हिंडोला। झूला। पालना। उ०—(क) सघन कुंज में डोल बनायो झूलत है पिय प्यारी।—सूर। (ख) प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधि मंडल डोल।—तुलसी। (३) डोली। पालकी। शिविका। उ०—महा डोल दुलहिन के चारी। देहु बताय होहु उपकारी।—रघुराज। (४) जहाज का मस्तूल। (लश०)

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है।

डोलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का ताल देने का एक बाजा।

डोलची—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोल+ची (प्रत्य०)] छोटा डोल।

डोलडाल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) चलना फिरना। (२) दिसा के लिये जाना। पाखाने जाना।

क्रि० प्र०—करना।

डोलना—क्रि० स० [सं० दोलन=लटकना, हिलना] (१) हिलना। चलायमान होना। गति में होना। (२) चलना। फिरना। टहलना। जैसे, चौपाए चारों ओर डोल रहे हैं।

डोकरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "डोकरी"।
डोकरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डोकरा] बुड्ढी स्त्री।
डोकरो-संज्ञा पुं० दे० "डोकरा"।
डोका-संज्ञा पुं० [सं० द्रोणक] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।
डोकिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० डोका] काठ का छोटा कटोरा या बरतन जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।
डोकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डोका] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।
डोगर-संज्ञा पुं० दे० "डोंगर"।
डोज़-संज्ञा स्त्री० [अं०] मात्रा। खुराक। मोताद।
डोड़हथी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँडा + हाथ] तलवार। (डिं०)
डोड़हा-संज्ञा पुं० [सं० डुंडुम] पानी में रहनेवाला साँप।
डोड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जो औषध के काम में आती है। वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्य्यवर्द्धक मानी जाती है। इसे जीवंती भी कहते हैं।

डोडो-संज्ञा पुं० [अं०] एक चिड़िया जो अब नहीं मिलती। यह मारिशस (मिरिच के) टापू में जूलाई १६८१ तक देखी गई थी। इसके चित्र यूरप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिलते हैं। सन् १८६६ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं। डोडो भारी और बेढंगे शरीर की चिड़िया थी। डील डौल में बत्तख के बराबर होती थी, न अधिक उड़ सकती थी, न और किसी प्रकार अपना बचाव कर सकती थी। यूरोपियनों के बसने पर इस दीन पक्षी का समूल नाश हो गया।

डोब-संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] डुबाने का भाव। गोता। डुबकी।
मुहा०—डोब देना = गोता देना। डुबाना। जैसे, कपड़े को रंग में दो तीन डोब देना, कलम को स्याही में डोब देना।

डोबा-संज्ञा पुं० [हिं० डुबाना] गोता। डुबकी।
मुहा०—डोबा देना या भरना = डुबाना। गोता देना। जैसे, कपड़े को रंग में डोबा देना, कलम को स्याही में डोबा देना।

डोभरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजा महुआ।

डोम-संज्ञा पुं० [सं० डम] [स्त्री० डोमिनी, डोमनी] (१) एक अस्पृश्य नीच जाति जो पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरीय भारत में पाई जाती है। स्मृतियों में इस जाति का उल्लेख नहीं मिलता। केवल मत्स्यसूक्ततंत्र में डोमों को अस्पृश्य लिखा है। कुछ लोगों का मत है कि ये डोम बौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें अब तक बाकी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान डोमों के अधिकार में आ गए थे। गोरखपुर के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनवाया हुआ था। पर अब यह जाति प्रायः निकृष्ट कर्मों ही के द्वारा अपना निर्वाह करती है। श्मशान पर शव जलाने के लिये आग देना, ऊपर का कफन लेना, सूप डले आदि बेचना आज कल डोमों का काम है। पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल और जड़ी बूटी लाकर बेचते हैं। (२) एक नीच जाति जो मंगल के अवसरों पर लोगों के यहाँ गाती बजाती है। ढाढ़ी। मीरासी।

डोम कौआ-संज्ञा पुं० [हिं० डोम + कौआ] बड़ी जाति का कौआ जिसका सारा शरीर काला होता है।

डोमड़ा-संज्ञा पुं० दे० "डोम"।

डोमतमौटा-संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति जो पीतल ताँबे आदि का काम करती है।

डोमनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] (१) डोम जाति की स्त्री। (२) डोम की स्त्री। (३) इस नीच जाति की स्त्री जो उत्सवों पर गाने बजाने का काम करती है। ये स्त्रियाँ गाने बजाने के अतिरिक्त कहीं कहीं वेश्यावृत्ति भी करती हैं।

डोमा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

डोमिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] (१) डोम जाति की स्त्री। (२) मीरासियों की स्त्री। दे० "डोमनी"। उ०—नटिनी डोमिन ढाढ़िनी सहनायन परकार। निरतत नाद विनोद सों विहँसत खेलत नार।—जायसी।

डोर-संज्ञा स्त्री० [सं०] डोरा। तागा। धागा। रस्सी। सूत। उ०—डीठि डोर, नैना दही छिरकि रूप रस तोय। मथि मो घट प्रीतम लियो मन नवनीत बिलोय।—रसनिधि।
मुहा०—डोर पर लगाना = रास्ते पर लाना। प्रयोजन-सिद्धि के अनकूल करना। ढब पर लाना। प्रवृत्त करना। परचाना। डोर भरना = कपड़े के किनारे को कुछ मोड़ कर उसके भीतर तागा भर कर सीना। फलीता लगाना। डोर मजबूत होना = जीवन का सूत्र दृढ़ होना। ज़िंदगी बाकी रहना। डोर होना = मुग्ध होना। मोहित होना। लट्टू होना।
विशेष—दे० "डोरी"।

डोरक-संज्ञा पुं० [सं०] डोरा। तागा। सूत्र। धागा।

डोरही-संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़ी कटाई। बड़ी भटकटैया।

डोरा-संज्ञा पुं० [सं० डोरक] (१) रुई, सन, रेशम आदि को बट कर बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो पर लंबाई में लकीर के समान दूर तक चला गया हो। सूत्र। सूत। तागा। धागा। जैसे, कपड़ा सीने का डोरा, माला गूँथने का डोरा। (२) धारी। लकीर। जैसे, कपड़ा हरा है बीच बीच में लाल डोरे हैं।
क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

यौ०—ढौल ढाल।

मुहा०—ढौल पर लाना = अभिप्राय-साधन के अनुकूल करना। ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके। इस प्रकार प्रवृत्त करना जिससे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके। ढौल बाँधना = दे० "ढौल लगाना"। ढौल लगाना = उपाय करना। युक्ति बैठाना। जैसे, कहीं से १००) का ढौल लगाओ।

(२) रंग ढंग। लक्षण। आयोजन। सामान। जैसे, पानी बरसने का कुछ ढौल नहीं दिखाई देता। (६) बंदोबस्त में जमा का तखमीना। तखमीना।

संज्ञा स्त्री० खेतों की मेंड़। डाँड़।

ढौलढाल—संज्ञा पु० [हिं० ढौल] उपाय। प्रयत्न। युक्ति। ब्योंत।

ढौलदार—वि० [हिं० ढौल + फ़ा० दार (प्रत्य०)] सुडौल। सुंदर। खूबसूरत।

ढौलना—क्रि० स० [हिं० ढौल] गढ़ना। किसी वस्तु को काट छाँट या पीट पाट कर किसी ढाँचे पर लाना। दुरुस्त करना।

ढौलियाना—क्रि० स० [हिं० ढौल] (१) ढंग पर लाना। कह सुन कर अपनी प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना। (२) काट छाँट कर किसी ठीक आकार का बनाना। गढ़ कर दुरुस्त करना।

ढौवर—संज्ञा पु० [देश०] एक चिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सुफ़ेद, दुम काली, और चोंच लाल होती है।

ढौवा—संज्ञा पु० दे० "ढौआ"।

ड्योढ़ा—वि० [हिं० डेढ़] [स्त्री० ड्योढ़ी] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

संज्ञा पु० (१) ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या गड्ढा हो (पालकी के कहार)। (२) गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो। (३) एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अंकों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

ड्योढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] (१) द्वार के पास की भूमि। वह स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं। चौखट। दरवाज़ा। फाटक। (२) वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में घुसने के पहले ही पड़ती है। दरवाजे में घुसते ही पड़नेवाला बाहरी कमरा। पौरी।

यौ०—ड्योढ़ीदार। ड्योढ़ीवान।

मुहा०—(किसी की) ड्योढ़ी खुलना = दरबार में आने की इजाज़त मिलना। आने जाने की आज्ञा मिलना। (किसी की) ड्योढ़ी बंद होना = किसी राजा या रईस के यहाँ आने जाने की मनाही होना। आने जाने का निषेध होना। ड्योढ़ी लगना = द्वार पर द्वारपाल बैठना जो बिना आज्ञा पाए लोगों को भीतर नहीं जाने देता।

ड्योढ़ीदार—संज्ञा पु० दे० "ड्योढ़ीवान"।

ड्योढ़ीवान—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़ी] ड्योढ़ी पर रहनेवाला सिपाही या पहरेदार। द्वारपाल। दरबान। उ०—जहाँ न ड्योढ़ीवान पायजामा तन धारे।—श्रीधर पाठक।

ड्राइंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] रेखाओं के द्वारा अनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला। लकीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या।

ड्राइवर—संज्ञा पु० [अं०] गाड़ी हाँकने या चलानेवाला। सवारी चलानेवाला। जैसे, रेल का ड्राइवर।

ड्राई-प्रिंटिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] सूखी छपाई। छापेखाने में वह छपाई जो बिना भिगोए हुए सूखे कागज पर की जाती है।

विशेष—इस प्रकार की छपाई से कागज की चमक नहीं जाती है और छपाई साफ़ होती है।

ड्राफ्ट्समैन—संज्ञा पु० [अं०] नकशा बनानेवाला। स्थूल मानचित्र प्रस्तुत करनेवाला। जैसे, ड्राफ्टमैन ने मकान का नकशा इंजिनियर के पास भेजा।

ड्राम—संज्ञा पुं० [अं०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक अंगरेजी मान जो तीन माशे के बराबर होता है।

ड्रिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुत से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के क्रम से खड़े होने, चलने, अंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा। कवायद। जैसे, स्कूल में ड्रिल नहीं होती।

यौ०—ड्रिल मास्टर = कवायद सिखानेवाला।

ड्रेस करना—क्रि० स० [अं० ड्रेस + हिं० करना] (१) घाव में दवा आदि भर कर बाँधना। मरहम पट्टी करना। (२) पत्थर आदि को चिकना और सुडौल करना।

ड्रैगून—संज्ञा पु० [अं०] सवार सिपाही।

विशेष—पहले ड्रैगून पैदल और सवार दोनों का काम देते थे पर अब वे सवार ही होते हैं।

यौ०—डोलना फिरना = चलना। घूमना।

(३) चला जाना। हटना। दूर होना। जैसे, वह ऐसा अकड़ कर माँगता है कि हुलाने से नहीं डोलता। (४) (चित्त) विचलित होना। (चित्त का) दृढ़ न रह जाना। (चित्त का किसी बात पर) जमा न रहना। डिगना। उ०—(क) मर्म वचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।—तुलसी। (ख) बटुकरि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। अचलसुता मनु अचल बयारि कि डोलइ?—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "डोला"।

डोलरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० डोल] पलंग। खाट। झोली।

डोला–संज्ञा पुं० [सं० दोल] [स्त्री० अल्प० डोली] (१) स्त्रियों के बैठने वह बंद सवारी जिसे कहार कंधों पर ले कर चलते हैं। पालकी। मियाना। शिविका।

मुहा०—(किसी का) डोला (किसी के) सिर पर या चौंड़े पर उछलना = किसी दूसरी स्त्री का संबंध या प्रेम किसी स्त्री के पति के साथ होना। डोला देना = (१) किसी राजा या सरदार को भेंट की तरह पर अपनी बेटी देना। (२) अपनी बेटी को वर के घर पर ले जाकर व्याहना। (यह प्रथा शूद्रों और नीच जातियों में है)। डोला निकालना = दुलहिन को विदा करना। डोला लेना = भेंट में कन्या लेना।

(२) वह झोंका जो झूले में दिया जाता है। पेंग।

डोलाना–क्रि० स० [हिं० डोलना] (१) हिलाना। चलाना। गति में करना। जैसे, पंखा डोलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) हटाना। दूर करना। भगाना।

डोलायंत्र–संज्ञा पुं० दे० "दोलायंत्र"।

डोली–संज्ञा स्त्री० [हिं० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कंधे पर उठा कर ले चलते हैं।

डोली करना–क्रि० स० [हिं० डोलना] धता बताना। हटाना। टालना।

डोलू–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) हिंदी रेवंद चीनी।

विशेष—इसका पेड़ हिमालय के काँगड़ा, नैपाल, सिकिम आदि प्रदेशों में जंगली होता है। वहाँ से इसकी जड़, जो पीली पीली होती है, नीचे की ओर भेजी जाती है और बाजारों में बिकती है। पर गुण में यह चीन की रेवंद (रेवंद चीनी), खुतन की रेवंद (रेवंद खताई) या विलायती रेवंद के समान नहीं होती। इसे पदमचल और सुकरी भी कहते हैं।

(२) एक प्रकार का बाँस जो पूर्वीय बंगाल आसाम, और भूटान से लेकर बरमा तक होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी। यह चोंगे और छाते बनाने के काम में अधिकतर आती है। टोकरे और पान रखने के डब्बे भी इससे बनते हैं।

डोहरा†–संज्ञा पुं० [देश०] काठ का एक बरतन जिससे कोल्हू से गिरा हुआ रस निकाला जाता है।

डोही–संज्ञा स्त्री० दे० "डोई"। उ०—छलनी चलनी डोहि और करछी बहु करछा।—सूदन।

डौंडाना†–क्रि० अ० [हिं० डाँवाँडोल] डाँवाँडोल रहना। विचलित होना। घबराना।

डौंड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० डिंडिम] (१) एक प्रकार का ढोल जिसे बजा कर किसी बात की घोषणा की जाती है। ढिंढोरा। डुगडुगिया।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजना।—बजाना।

मुहा०—डौंड़ी देना = (१) ढोल बजा कर सर्व साधारण को सूचित करना। मुनादी करना। (२) सब किसी से कहते फिरना। डौंड़ी बजना = (१) घोषणा होना। (२) दुहाई फिरना। जयजयकार होना। चलती होना। उ०—लौंड़ी के घर डौंड़ी बाजी ओछो निपट अजानो।—सूर।

(२) वह सूचना जो सर्व साधारण को ढोल बजा कर दी जाय। घोषणा। मुनादी।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना।

डौंरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक घास जो खेतों में पैदा हो जाती है। इसमें सावाँ की तरह दाने पड़ते हैं जो खाने में कड़ुए होते हैं।

डौंरू–संज्ञा पुं० दे० "डमरू"। उ०—नील पाट परोइ मणिगण फणिग धोखे जाइ। खुनखुना करि हँसत मोहन नचत डौंरु बजाइ।—सूर।

डौआ–संज्ञा पुं० [देश०] काठ का चमचा। काठ की डाँड़ी की बड़ी करछी। उ०—लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि। सुप्रभु संग्रहहि परिहरहि सेवक सखा विचारि।—तुलसी।

डौल–संज्ञा पुं० [हिं० डौल ?] (१) किसी रचना का प्रारंभिक रूप। ढाँचा। ढौल। ढड्ढा। ठाट। ठट्टर।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

मुहा०—डौल डालना = ढाँचा खड़ा करना। रचना का प्रारंभ करना। बनाने में हाथ लगाना। लग्गा लगाना। डौल पर लाना = काट छाँट कर सुडौल करना। दुरुस्त करना।

(२) बनावट का ढंग। रचना प्रकार। ढब। जैसे, इसी डौल का एक गिलास मेरे लिये भी बना दो।

मुहा०—डौल से लगाना = ठीक क्रम से रखना। इस प्रकार रखना जिसमें देखने में अच्छा लगे।

(३) तरह। प्रकार। भाँति। किस्म। तौर। तरीका। (४) अभिप्राय के साधन की युक्ति। उपाय। तदबीर। ब्योंत। आयोजन। सामान।

पहुँचना और जब तक काम न हो जाय तब तक न हटना। धरना देना।

ढकई–वि० [हिं० ढाका] ढाके का।
संज्ञा पु० एक प्रकार का केला जो ढाके की ओर होता है।

ढकना–संज्ञा पु० [सं० ढक=छिपाना] [स्त्री० अल्प० ढकनी] वह वस्तु जिसे ऊपर डाल देने या बैठा देने से नीचे की वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय। ढक्कन। चपनी।
क्रि० अ० किसी वस्तु के नीचे पड़ कर दिखाई न देना। छिपना। उ०—मिठाई कपड़े से ढकी है।
संयो० क्रि०—जाना।
क्रि० स० दे० "ढाँकना"।

ढकनिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "ढकनी"। उ०—सुभग ढकनिया ढाँपि पट जतन राखि छींके समदायो।—सूर

ढकनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकना] (१) ढाँकने की वस्तु। ढक्कन। (२) फूल के आकार का एक प्रकार का गोदना जो हथेली के पीछे की ओर गोदा जाता है।

ढकपेडुक–संज्ञा पु० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

ढका–संज्ञा पु० [सं० आढक] तीन सेर की एक तौल या बाट।
संज्ञा पु० [अ० डाक] घाट। जहाज़ ठहरने का स्थान। (लश०)
†*संज्ञा पु० [सं० ढक्का] बड़ा ढोल। उ०—बदत दुंदुभि ढका, बदन मारु हंका, चक्कत लागत धका कहत आगे।—सूदन।
*संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का। टक्कर। उ०—(क) ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ न चलैगो बल अनल भयावनी।—तुलसी। (ख) चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि नेकु ढका दैहैं दैहैं ढेलन की ढेरी सी।—तुलसी।

ढकिला†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकेलना] एक दूसरे को ढकेलते हुए वेग के साथ धावा। चढ़ाई। आक्रमण। उ०—ढकिल करी सब ते अधिकाई। छोड़ी गुरु लोगन की धाई।—लाल कवि।

ढकेलना–क्रि० स० [हिं० धका] (१) धक्के से गिराना। ठेल कर आगे की ओर गिराना।
संयो० क्रि०—देना।
(२) धक्के से हटाना। ठेल कर सरकाना। जैसे, भीड़ को पीछे ढकेलो।

ढकेला ढकेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकेलना] ठेलमठेला। आपस में धक्का।
क्रि० प्र०—करना।

ढकोसना–क्रि० स० [अनु० ढक ढक] एक बारगी पीना। बहुत सा पीना। जैसे, इतना दूध मत ढकोस लो कि कै हो जाय।
संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

ढकोसला–संज्ञा पु० [हिं० ढग+सं० कौशल] ऐसा आयोजन जिससे लोगों को धोखा हो। धोखा देने या मतलब साधने का ढंग। आडंबर। पाखंड। मिथ्या जाल। कपट व्यवहार।
क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।

ढक्क–संज्ञा पु० [सं०] एक देश का नाम। कदाचित् "ढाका"।

ढक्कन–संज्ञा पु० [सं०] ढाकने की वस्तु। वह वस्तु जिसे ऊपर से डाल या बैठा देने से कोई वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय। जैसे, डिबिया का ढक्कन, बरतन का ढक्कन।

ढक्का–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ा ढोल। (२) नगारा। डंका।

ढक्की–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाल] पहाड़ की ढाल जिससे होकर लोग चढ़ते उतरते हैं। (पंजाब)

ढगण–संज्ञा पु० [सं०] पिंगल में एक मात्रिक गण जो तीन मात्राओं का होता है। इसके तीन भेद हो सकते हैं, यथा।ऽ, ऽ।, ।।।, इनमें से पहले की संज्ञा रसवास और ध्वजा, दूसरे की पवन, मंद, ग्वाल, ताल और तीसरे की वलय है।

ढचर–संज्ञा पु० [हिं० ढाँचा] (१) किसी वस्तु को बनाने या ठीक करने का सामान या ढाँचा। आयोजन और सामान।
क्रि० प्र०—फैलाना।—बाँधना।
(२) टंटा। बखेड़ा। जंजाल। धंधा। कारबार। (३) आडंबर। झूठा आयोजन। ढकोसला।
क्रि० प्र०—फैलाना।
(४) बहुत दुबला पतला और बुड्ढा।

ढटींगड़–संज्ञा पु० [सं० टिंगर=मोटा आदमी] (१) बड़े डील डौल का। धींग। जैसे, इतने बड़े ढटींगड़ हुए पर कुछ शऊर न हुआ। (२) हृष्ट पुष्ट। मुस्टंडा। मोटा ताज़ा।

ढटींगड़ा–संज्ञा पुं० दे० "ढटींगड़"।

ढटींगर–संज्ञा पुं० दे० "ढटींगड़"।

ढट्ठा–संज्ञा पु० [हिं० डाढ़] वह भारी साफा या मुरेठा जो सिर के अतिरिक्त डाढ़ी और कानों को भी ढाँके हो।
†संज्ञा पुं० [हिं० डाट] कस कर छेद या मुँह बंद करने की वस्तु। डाट। ठेंपी।

ढट्ठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाढ़] डाढ़ी बाँधने की पट्टी।
संज्ञा स्त्री० [हिं० डाट] किसी छेद को बंद करने की वस्तु। डाट। ठेंपी।

ढड्ढा–वि० [देश०] बहुत बड़ा। आवश्यकता से अधिक बड़ा। बड़ा और बेढंगा।
संज्ञा पुं० [हिं० ठट] (१) ढाँचा। अंगों की वह स्थूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारंभ में की जाती है।
क्रि० प्र०—खड़ा करना।
(२) आडंबर। दिखावट का सामान। झूठा ठाट बाट।

ढ

ढ--हिंदी वर्णमाला का चौदहवाँ व्यंजन वर्ण और टवर्ग का चौथा अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है।

ढँकन--संज्ञा पुं० दे० "ढकना", "ढक्कन"।

ढँकना--क्रि० स० दे० "ढकना"।
संज्ञा पुं० दे० "ढकना"।

ढँकुली†--संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

ढंख*--†संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] पलाश। ढाक। उ०--बरुनि बान अस अनी बेधी रन बन ढंख। सउजहि तन सब रोवाँ पंखिहि तन सब पंख।--जायसी।

ढंग--संज्ञा पुं० [सं० तग (तंगन)=चाल, गति ?] (१) क्रिया प्रणाली। शैली। पद्धति। ढब। रीति। तौर। तरीक़ा। जैसे, (क) बोलने चालने का ढंग, बैठने उठने का ढंग। (ख) जिस ढंग से तुम काम करते हो वह बहुत अच्छा है। (२) प्रकार। भाँति। तरह। क़िस्म। (३) रचना। प्रकार। बनावट। गढ़न। । ढाँचा। जैसे, वह गिलास और ही ढंग का है। (४) अभिप्राय-साधन का मार्ग। युक्ति। उपाय। तदबीर। डौल। जैसे, कोई ढंग ऐसा निकालो जिसमें रुपया मिल जाय। उ०--वाही के जैए बलाय लौं, बालम! हैं तुम्हें नीको बतावति हौं ढंग।--देव।

क्रि० प्र०--करना।--निकालना।

मुहा०--ढंग पर चढ़ना=अभिप्राय-साधन के अनुकूल होना। किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ अर्थ सिद्ध हो। जैसे, उससे भी कुछ रुपया लेना चाहता हूँ, पर वह ढंग पर नहीं चढ़ता है। ढंग पर लाना=अभिप्राय साधन के अनुकूल करना। किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना जिससे कुछ मतलब निकले। ढंग का=कार्यकुशल। व्यवहार-दक्ष। चतुर। जैसे, वह बड़े ढंग का आदमी है।

(५) चाल ढाल। आचरण। व्यवहार। बर्त्ताव। जैसे, यह मार खाने का ढंग है।

मुहा०--ढंग बर्त्तना=शिष्टाचार दिखाना। दिखाऊ व्यवहार करना।

(६) धोखा देने की युक्ति। बहाना। हीला। पाखंड। जैसे, यह सब तुम्हारा ढंग है।

क्रि० प्र०--रचना।

(७) ऐसी बात जिससे किसी होनेवाली बात का अनुमान हो। लक्षण। आभास। आसार।

यौ०--रंग ढंग=ऐसा आयोजन जिससे किसी घटना का आभास मिले। लक्षण। आसार। जैसे, रंग ढंग अच्छा नहीं दिखाई देता।

(८) दशा। अवस्था। स्थिति। उ०--नैनन को ढंग सों अनंग पिचकारिन ते, गातन को रंग पीरे पातन तें जानबी।--पद्माकर।

ढंगउजाड़--संज्ञा पुं० [हिं० ढंग+उजाड़] घोड़ों की दुम के नीचे की एक भौंरी जो ऐबों में समझी जाती है।

ढँगलाना†--क्रि० स० [हिं० ढाल] लुढ़काना।

ढँगिया†--वि० दे० "ढंगी"।

ढंगी--वि० [हिं० ढंग] चालबाज़। चतुर। चालाक।

ढँढरच†--संज्ञा पुं० [हिं० ढंग+रचना] धोखा देने का आयोजन। पाखंड। बहाना। हीला।

ढंढस--संज्ञा पुं० दे० "ढँढरच"।

ढंढार--वि० [देश०] बड़ा ढड्ढा। बहुत बड़ा और बेढंगा।

ढँढोर--संज्ञा पुं० [अनु० धायँ धायँ] (१) आग की लपट। ज्वाला। लौ। उ०--(क) रहै प्रेम मन उरझा लटा। बिरह ढँढोर परहिं सिर जटा।--जायसी। (ख) कंथा जरे अगिनि जनु लाए। बिरह ढँढोर जरत न जराए।--जायसी। (२) काले मुँह का बंदर। लंगूर।

ढँढोरची--संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोर+फ़ा० ची (प्रत्य०)] ढँढोरा फेरनेवाला। मुनादी फेरनेवाला।

ढँढोरना†--क्रि० स० [हिं० ढूंढ़ना] टटोल कर ढूँढ़ना। हाथ डाल कर इधर उधर खोजना। उ०--तेरे लाल मेरो माखन खायो। दुपहर. दिवस जानि घर सूनो ढूँढ़ि ढँढोरि आपही आयो।--सूर।

ढँढोरा--संज्ञा पुं० [अनु० ढम+ढोल] (१) घोषणा करने का ढोल। डुगडुगी। डौंड़ी।

मुहा०--ढँढोरा पीटना=ढोल बजा कर चारों ओर जताना। मुनादी करना।

(२) वह घोषणा जो ढोल बजा कर की जाय। मुनादी।

मुहा०--ढँढोरा फेरना=दे० "ढँढोरा पीटना"।

ढँढोरिया--संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोरा] ढँढोरा पीटनेवाला। डुगडुगी बजा कर घोषणा करनेवाला। मुनादी करनेवाला।

ढँपना--क्रि० अ० [हिं० ढँकना] किसी वस्तु के नीचे पड़ कर दिखाई न देना। किसी वस्तु के ऊपर से छेंक लेने के कारण उसकी ओट में छिप जाना।

संयो० क्रि०--जाना।
संज्ञा पुं० ढाकने की वस्तु। ढक्कन।

ढ--संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा ढोल। (२) कुत्ता। (३) कुत्ते की पूँछ। (४) ध्वनि। नाद। (५) साँप।

ढई देना--क्रि० अ० [हिं० धरना ?] किसी के यहाँ किसी काम से

प्रतीत प्रीति रासे कबहुँक तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि।—तुलसी। (ख) कृपासिंधु कोसल धनी सरनागत पालक ढरनि आपनी ढरिए।—तुलसी।

ढरहरना *†-क्रि० अ० [हिं० ढरना] खसकना। सरकना। ढलना। झुकना। उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गावत गुण आवत ढिग ढरहरि।—सूर।

ढरहरा-वि० [हिं० ढार+हार (प्रत्य०)] [स्त्री० ढरहरी] ढालुवाँ। ढालू।

ढरहरी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] पकौड़ी। उ०—रायभोग लियो भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई।—सूर।

वि० स्त्री० [हिं० ढरहरा] ढालू। ढालुवाँ।

ढराई†-संज्ञा स्त्री० दे० "ढलाई"।

ढराना†-क्रि० स० (१) दे० "ढलाना"। उ०—खैंचि खराद चढ़ाए नहीं न सुढार के सारनि मध्य ढराए।—सरदार। (२) दे० "ढरकाना"।

ढरारा-वि० [हिं० ढार] [स्त्री० ढरारी] (१) ढलनेवाला। ढरकनेवाला। गिर कर बह जानेवाला। (२) लुढ़कनेवाला। थोड़े आघात से पृथ्वी पर आपसे आप सरकनेवाला। (जैसे, गोली)

यौ०—ढरारा रवा=गहना बनाने में सोने चाँदी का वह गोल दाना जो जमीन पर रखने से लुढ़क जाय।

(३) शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला। झुक पड़नेवाला। आकर्षित होनेवाला। चलायमान होनेवाला। उ०—जोबन रँग रंगीली, सोने से गात, ढरारे नैना, कंटीन मलजूली।—स्वामी हरिदास।

ढरैया†-संज्ञा पु० [हिं० ढारना] ढालनेवाला।

ढर्रा-संज्ञा पु० [हिं० धरना] (१) मार्ग। रास्ता। पथ। (२) किसी कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढंग। तरीका। (३) युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे, कोई ढर्रा ऐसा निकालो जिसमें इन्हें भी कुछ लाभ हो जाय।

क्रि० प्र०—निकालना।

(४) आचरण पद्धति। चाल चलन। जैसे, यह लड़का बिगड़ रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना-क्रि० अ० [हिं० ढल] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) लुढ़कना। नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए सरकना।

ढलका-संज्ञा पु० [हिं० ढलकना] आँख का एक रोग जिसमें आँख से बराबर पानी बहा करता है।

ढलकाना-क्रि० स० [हिं० ढलकना] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। (२) लुढ़काना।

संयो० क्रि०—देना।

ढलकी-संज्ञा स्त्री० दे० "ढरकी"।

ढलना-क्रि० अ० [हिं० ढार] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना। ढरकना। गिर कर बहना। जैसे, पत्ते पर की बूँद का ढलना। उ०—अधरन सुवाइ लेउँ सिगरो रस तनिकौ न जान देउँ इत उत ढरि।—स्वामी हरिदास।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—जवानी ढलना=युवावस्था का जाता रहना। छाती ढलना=स्तनों का लटक जाना। जोबन ढलना=युवावस्था के चिह्नों का जाता रहना। जवानी का उतार होना। दिन ढलना=सूर्यास्त होना। संध्या होना। दिन ढले=संध्या को। शाम को। सूरज या चाँद ढलना=सूर्य या चंद्रमा का अस्त होना।

(२) बीतना। गुजरना। निकल जाना। उ०—काहे न प्रगट करौ जदुपति सों दुसह दोष की अवधि गई ढरि।—सूर। (३) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से गिरना। पानी, रस आदि का एक बरतन से दूसरे बरतन में डाला जाना। उँडेला जाना।

मुहा०—बोतल ढलना=खूब शराब पीया जाना। मद्य पिया जाना। शराब ढलना=मद्य पिया जाना।

(४) लुढ़कना। (५) किसी सूत या डोरी के रूप की वस्तु का इधर से उधर हिलना। लहर खाकर इधर उधर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढलना। (६) किसी ओर आकर्षित होना। प्रवृत्त होना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(७) अनुकूल होना। प्रसन्न होना। रीझना। उ०—देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

(८) पिघली या गली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा बनना। साँचे में ढाल कर बनाया जाना। ढाला जाना। जैसे, खिलौने ढलना, बरतन ढलना।

मुहा०—साँचे में ढला हुआ=बहुत सुंदर और सुडौल।

ढलवाँ-वि० [हिं० ढालना] जो पिघली हुई धातु आदि को साँचे में ढाल कर बनाया गया हो। जैसे, ढलवाँ बरतन।

ढलवाना-क्रि० स० [हिं० ढालना का प्रे०] ढालने का काम कराना।

ढलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० ढलना] (१) साँचे में ढाल कर बरतन आदि बनाने का काम। ढालने का काम। (२) ढालने की मजदूरी।

क्रि॰ प्र॰—खड़ा करना।

ढड्ढो–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढड्ढा] (१) बुड्ढी स्त्री। बूढ़ी स्त्री जिसके शरीर में हड्डी का ढाँचा ही रह गया हो। (२) बकवादिन स्त्री। (३) मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी चोंच पीली होती है। यह बहुत लड़ती और चिल्लाती है। चरखी।

मुहा॰—ढड्ढो का, ढड्ढोवाला = मूर्ख। बेवकूफ।

ढनमनाना †–क्रि॰ अ॰ [अनु॰] लुढ़कना। ढुलकना। उ॰—मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर वमत धरनी ढनमनी।—तुलसी।

ढप‡–संज्ञा पुं॰ दे॰ "डफ"।

ढपना–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढाँपना] ढाकने की वस्तु। ढकन।

ढपरी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढाँपना] चूड़ीवालों की अँगीठी का ढकना।

ढपला ‡–संज्ञा पुं॰ दे॰ "डफला"।

ढपली ‡–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "डफली"।

ढप्पू–वि॰ [देश॰] बहुत बड़ा। ढड्ढा।

ढफ ‡–संज्ञा पुं॰ दे॰ "डफ"। उ॰—रुंज मुरज ढफ ताल बाँसुरी झालर की झंकार।—सूर।

ढब–संज्ञा पुं॰ [सं॰ धव = चलना, गति] (१) क्रियाप्रणाली। ढंग। रीति। तौर। तरीका। जैसे, काम करने का ढब। (२) प्रकार। भाँति। तरह। किस्म। जैसे, वह न जाने किस ढब का आदमी है। (३) रचना-प्रकार। बनावट। गढ़न। ढाँचा। जैसे, वह गिलास और ही ढब का है। (४) अभिप्राय-साधन का मार्ग। युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे, किसी ढब से रुपया निकालना चाहिए।

मुहा॰—ढब पर चढ़ना = अभिप्राय-साधन के अनुकूल होना। किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ अर्थ सिद्ध हो। किसी का ऐसी अवस्था में होना जिससे कुछ मतलब निकले। जैसे, कहीं वह ढब पर चढ़ गया तो बहुत काम होगा। ढब पर लगाना या लाना = अभिप्राय-साधन के अनुकूल करना। किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना कि उससे कुछ अर्थ सिद्ध हो। अपने मतलब का बनाना।

(५) गुण और स्वभाव। प्रकृति। आदत। बान।

मुहा॰—ढब डालना = (१) आदत डालना। अभ्यस्त करना। (२) अच्छी आदत डालना। आचार व्यवहार की शिक्षा देना। शऊर सिखाना।

ढबरा †–वि॰ दे॰ "ढाबर"।

ढबीला †–वि॰ [हिं॰ ढब] ढब का। ढबवाला। चालाक। चतुर।

ढबुआ †–संज्ञा पुं॰ [देश॰] खेतों के मचान के ऊपर का छप्पर। संज्ञा पुं॰ [देश॰] पैसा।

ढबैला–वि॰ [हिं॰ ढाबर] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी)। मटमैला। गदला।

ढमढम–संज्ञा पुं॰ [अनु॰] ढोल का वा नगारे का शब्द।

ढमलाना †–क्रि॰ स॰ [देश॰] लुढ़काना।

ढयना–क्रि॰ अ॰ [सं॰ ध्वंसन्] किसी दीवार, मकान, आदि का गिरना। ध्वस्त होना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।—पड़ना।

मुहा॰—ढय पड़ना = उतर पड़ना। सहसा आकर टिक जाना। एकबारगी आकर डेरा डाल देना। (व्यंग्य)

ढरकना †–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ढार या ढाल] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना। गिर कर बह जाना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।—पड़ना।

(२) नीचे की ओर जाना। उ॰—(क) सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।—तुलसी। (ख) परसत भोजन प्रातहिं ते सब। रवि माथे ते ढरकि गयो अब।—सूर।

मुहा॰—दिन ढरकना = सूर्यास्त होना। दिन डूबना।

ढरका–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढरकना] (१) आँख का एक रोग जिसमें आँख से आँसू बहा करता है।

क्रि॰ प्र॰—लगना।

(२) सिरे पर कलम की तरह छीली हुई बाँस की नली जिससे चौपायों के गले में दवा उतारते हैं। (३) बाँस की नली से चौपायों के गले में दवा उतारने की क्रिया।

क्रि॰ प्र॰—देना।

ढरकाना †–क्रि॰ स॰ [हिं॰ ढरकना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिरा कर बहाना। जैसे, पानी ढरकाना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

ढरकी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढरकना] जुलाहों का एक औज़ार जिससे वे लोग बाने का सूत फेंकते हैं। ढरकी की आकृति करताल की सी होती है और यह भीतर से पोली रहती है। खाली स्थान में एक काँटे पर लपेटा हुआ सूत रक्खा रहता है जब ढरकी को इधर से उधर फेंकते हैं तब उसमें से सूत खुलकर बाने में भरता जाता है। इसे 'भरनी' भी कहते हैं।

ढरना † *–क्रि॰ अ॰ दे॰ "ढलना"।

ढरनि–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढरना] (१) गिरने वा पड़ने की क्रिया। पतन। उ॰—सखि वचन सुन कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।—तुलसी। (२) हिलने डोलने की क्रिया। गति। स्पंदन। उ॰—कंठसिरी दुलरी हीरन की नासा मुक्ता ढरनि।—स्वामी हरिदास। (३) चित्त की प्रवृत्ति। झुकाव। उ॰—रिस अरु रुचि हौं समुझि देखिहौं वाके मन की ढरनि, वाकी भावती बात चलायहौं।—सूर। (४) किसी की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया। दीन दशा दूर करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। स्वाभाविक करुणा। दयाशीलता। सहज कृपालुता। उ॰—(क) राम नाम सों

ढाकना-संज्ञा पु० दे० "ढक्कन"।

ढाका-संज्ञा पुं० [सं० ढक्क] पूर्वीय बंगाल का एक नगर जो पुराने समय में महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध था जैसे, ढाके की चद्दर, ढाके की मलमल।

ढाकापाटन-संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का फूलदार महीन कपड़ा।

ढाकेयाल पटेल-संज्ञा पु० [हिं० ढक+पटेल (पटी नाव)] एक प्रकार की पटवी नाव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है। छप्पर के नीचे बैठ कर माझी नाव खेते हैं।

ढाटा-संज्ञा पुं० [हिं० डाढ़] (१) कपड़े की वह पट्टी जिससे दाढ़ी बाँधी जाती है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

(२) वह बड़ा साफा जिसका एक फेंट डाढ़ी, और गाल से होता हुआ जाता है। (३) वह कपड़ा जिससे मुरदे का मुँह इसलिये बाँध देते हैं जिसमें कफन सरकने से मुँह खुल न जाय।

ढाड़-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) चिग्घाड़। चीख। गरज (बाघ सिंह आदि की)। दे० "दहाड़"। (२) चिल्लाहट।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिल्ला कर रोना।

विशेष—दे० "धाड़"।

ढाढ़ना-क्रि० स० दे० "डाढ़ना"। उ०—एक परे गाढ़े एक ढाढ़त ही काढ़े एक देखत हैं ठाढ़े कहैं पावक भयावनो।—तुलसी।

ढाढ़स-संज्ञा पु० [सं० दृढ़, प्रा० ढिढ] (१) संकट कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता। धैर्य। धीरज। शांति। आश्वासन। सांत्वना। तसल्ली।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढाढ़स देना या बँधाना = वचनों से दुखी चित्त को शांत करना। तसल्ली देना।

(२) दृढ़ता। साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढाढ़स बँधाना = साहस उत्पन्न करना। उत्साहित करना।

ढाढ़िन-संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाढ़ी] ढाढ़ी की स्त्री।

ढाढ़ी-संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० ढाढ़िन] एक प्रकार के नीच गवैये जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ आकर बधाई आदि के गीत गाते हैं। उ०—ढाढ़ी और ढाढ़िनि गावैं हरि के ठाढ़े बजावैं हरषि असीस देत मस्तक नवाइ कै।—सूर।

ढाढ़ोन-संज्ञा पु० [सं० दिंढणी] जल सिरिस का पेड़।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जंगली सिरिस से कुछ छोटा होता है। वैद्यक के अनुसार यह त्रिदोष, कफ, कुष्ट और बवासीर को दूर करता है।

ढाना-क्रि० स० [सं० ध्वंसन, हिं० ढहना] (१) दीवार मकान आदि को गिराना। ऊँची बड़ी हुई वस्तु को तोड़ फोड़ कर गिराना। ध्वस्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) गिराना। गिरा कर ज़मीन पर डालना। जैसे, किसी को मार कर ढाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढापना-क्रि० स० दे० "ढाँपना"।

ढाबरा-वि० [हिं० ढाबर = गड्ढा] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी)। मटमैला। गदला। उ० भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।—तुलसी।

ढाबा-संज्ञा पु० [देश०] (१) ओलती। (२) छाजन। (३) परछत्ती। (४) रोटी की दूकान। वह दूकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं।

ढामक-संज्ञा पु० [अनु०] ढोल नगारे आदि का शब्द। उ०—ढमकंत ढोल ढमाक ढफला तबल ढामक जोर।—सूदन।

ढामना-संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का साँप।

ढार-संज्ञा पु० [सं० धार] (१) वह स्थान जो बराबर क्रमशः नीचा होता गया हो और जिस पर से होकर कोई वस्तु नीचे फिसल या बह सके। उतार। उ०—सकुच सुरत आरंभ ही बिछुरी लाज लजाय। ढरकि ढार ढुरि ढिग भई ढीठ ढिठाई आय।—बिहारी। (२) पथ। मार्ग। प्रणाली। उ०—हेर ढार तेही ढरत दूजे ढार ढरै न। क्यों हूँ आनन आन सौं नैना लागत नैन।—बिहारी। (३) प्रकार। ढाँचा। ढंग। रचना। बनावट। उ०—(क) ढग थरकौंहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार। सुरत सुखी सी देखियत दुखित सरम के भार।—बिहारी। (ख) तिय को मुख सुंदर बन्यो बिधि फेरयो परगार। तिलक बीच को बिंदु है गाल गोल इक ढार।—मुबारक।

संज्ञा स्त्री० (१) ढाल के आकार का कान में पहनने का एक गहना। बिरिया। (२) पछेली नामक गहना।

ढारना-क्रि० स० [सं० धार, हिं० ढार+ना (प्रत्य०)] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिरा कर बहाना। उ०—(क) उत्तर देइ नहिं, लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।—तुलसी। (ख) ठग नारि आगे ठाढ़ी नैनन ढारति नीर।—सूर। (२) गिराना। ऊपर से छोड़ना। डालना। जैसे, पासा ढारना।

विशेष—दे० "ढालना"।

ढारस-संज्ञा पुं० दे० "ढाढ़स"।

ढाल-संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार, भाले आदि का वार रोकने का अस्त्र जो चमड़े धातु आदि का बना हुआ थाली के आकार का गोल होता है। फरी। चर्म। आड़। फलक।

ढलाना–क्रि० स० दे० "ढलवाना"।

ढलुवाँ–वि० दे० "ढलवाँ"।

ढलैत–संज्ञा पुं० [हिं० ढाल] ढाल बाँधनेवाला। सिपाही।

ढवरी†*–संज्ञा स्त्री० [देश०] धुन। ढोरी। लौ। लगन। रट। उ०—सूरदास गोपी बड़ भागी। हरि दरशन की ढवरी लागी।—सूर। दे० "ढौरी"

ढहना–क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] (१) दीवार, मकान आदि का गिर पड़ना। ध्वस्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) नष्ट होना। मिट जाना। उ०—तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो, कोल कलमल्यो ढहि कमठ को बल गो।—तुलसी।

ढहराना†–क्रि० स० [हिं० ढार] (१) लुढ़काना। (२) सूप के अन्न में से गोल दाने की कंकड़ी मिट्टी आदि को लुढ़का कर अलग करना।

ढहरी†–संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] डेहरी। देहली। दहलीज। उ०—सूर प्रभु कर सेज टेकट कबहूँ टेकत ढहरि।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन। मटका। उ०—डगर न देत काहुहिं फोरि डारत ढहरि।—सूर।

ढहवाना–क्रि० स० [हिं० ढहाना का प्रे०] ढहाने का काम कराना। गिरवाना।

ढहाना–क्रि० स० [सं० ध्वंसन] दीवार मकान आदि गिराना। ध्वस्त करना। उ०—एक ही बान को पापान को कोट सब हुतो चहुँ ओर सो दियो ढहाई।—सूर।

ढाँक–संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती के एक पेच का नाम।

ढाँकना–क्रि० स० [सं० ढक=छिपाना (१) किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के इस प्रकार नीचे करना जिसमें वह दिखाई न दे या उस पर गर्द आदि न पड़े। ऊपर से कोई वस्तु फैला या डाल कर (किसी वस्तु को) ओट में करना। कोई वस्तु ऊपर से डाल कर छिपाना। जैसे, (क) पानी का बरतन खुला मत छोड़ो ढाँक दो। (ख) मिठाई को कपड़े से ढाँक दो।

संयो० क्रि०—देना।

(२) इस प्रकार ऊपर डालना या फैलाना जिसमें नीचे कोई वस्तु छिप जाय। जैसे, इस पर कपड़ा ढाँक दो।

संयो० क्रि०—देना।

ढाँखा†–संज्ञा पुं० दे० "ढाक"।

ढाँगा†–वि० [देश०] दे० "ढालुवाँ"।

ढाँच–संज्ञा पुं० दे० "ढाँचा"।

ढाँचा–संज्ञा पुं० [सं० स्थाता, हिं० ठाट] (१) किसी वस्तु की रचना की प्रारंभिक अवस्था में स्थूल रूप से संयोजित अंगों की समष्टि। किसी चीज को बनाने के पहले परस्पर जोड़ जाड़ कर बैठाए हुए उसके भिन्न भिन्न भाग जिनसे उस वस्तु का कुछ आकार खड़ा हो जाता है। ठाट। ठट्टर। डौल। जैसे, अभी तो इस पालकी का ढाँचा खड़ा हुआ है, तख्ते आदि नहीं जड़े गए हैं।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—बनाना।

(२) भिन्न भिन्न रूपों से परस्पर इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदि के बल्ले या छड़ कि उनमें बीच में कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके। जैसे, चौखटा, बिना बुनी चारपाई, कुरसी आदि। (३) पंजर। ठटरी। (४) चार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुलाहे नचनी लटकाते हैं। (५) रचना-प्रकार। गढ़न। बनावट। जैसे, इस गिलास का ढाँचा बहुत अच्छा है। (६) प्रकार। भाँति। तरह। जैसे, वह न जाने किस ढाँचे का आदमी है।

ढाँपना–क्रि० स० दे० "ढाँकना"।

ढाँस–संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह 'ठन ठन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है। ठसक।

ढाँसना–क्रि० अ० [हिं० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना।

ढाई–वि० [सं० अर्द्धद्वितीय, प्रा० अड्ढाइय, हिं० अढ़ाई] दो और आधा। जो गिनती में दो से आधा अधिक हो।

मुहा०—ढाई घड़ी की आना=चटपट मौत आना। (स्त्रि० का कोसना) जैसे, तुझे ढाई घड़ी की आवे। ढाई चुल्लू लहू पीना=मार डालना। कठिन दंड देना (क्रोध वाक्य)। जैसे, तेरा ढाई चुल्लू लहू पीऊँ तब मुझे कल होगी। ढाई दिन की बादशाहत करना=(१) थोड़े दिनों के लिये खूब ऐश्वर्य भोगना। (२) दूल्हा बनना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाना] (१) लड़कों का एक खेल जिसे वे कौड़ियों से खेलते हैं। इस में कौड़ियों का समूह एक घेरे में रख कर उसे गोलियों से मारते हैं। (२) वह कौड़ी जो इस खेल में रखी जाती है।

ढाक–संज्ञा पुं० [सं० आषाढक=पलाश] पलाश का पेड़। छिउला। छीउल।

मुहा०—ढाक के तीन पात=सदा एक सा निर्धन। कभी भरा पूरा नहीं। (निर्धन मनुष्य के संबंध में बोलते हैं)। ढाक तले की फूहड़ महुए तले की सुघड़=जिसके पास धन नहीं रहता वह निर्गुणी और धनवाला सर्वगुण संपन्न समझा जाता है।

संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] लड़ाई का बड़ा ढोल। उ०—गोमुख, ढाक, ढोल, पणवानक। बाजत रव अति होत भयानक।—सबल।

दीपियत सोभित सुभग सुवेस । इद रदछद छवि देखियत सद रदछद की रेख ।—बिहारी ।

ढिठाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीठ + आई (प्रत्य०)] (१) गुरु जनों के समक्ष व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता । संकोच का अनुचित अभाव । धृष्टता । चपलता । गुस्ताखी । उ०—छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई ।—तुलसी । (२) लोक लज्जा का अभाव । निर्लज्जता । (३) अनुचित साहस ।

ढिपुनी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) फल या पत्ते के साथ लगा हुआ टहनी का पतला नरम भाग । (२) किसी वस्तु के सिरे पर दाने की तरह उभरा हुआ भाग । ठोंठी । (३) कुच का अग्र भाग । ढेंढ़ी ।

ढिबरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] (१) टीन, शीशे, या पकी मिट्टी की डिबिया जिसके मुँह पर बत्ती लगा कर मिट्टी का तेल जलाते हैं । मिट्टी का तेल जलाने की धुएँदार डिबिया । (२) बरतन के साँचे के पल्ले के तीन भागों में से सब से नीचे का भाग । साँचे की पेंदी का भाग ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] (१) किसी कसे जानेवाले पेच के सिरे पर लगा हुआ लोहे का चौड़ा टुकड़ा जिससे पेच बाहर नहीं निकलता । (२) चमड़े या मूँज की वह चकती जो चरखे में इस लिये लगाई जाती है जिसमें तकला न घिसे ।

ढिमका–सर्व० [हिं० अमका का अनु०] [स्त्री० ढिमकी] अमुक । अमका । फलाँ । फलाना ।

यौ०—फलाना ढिमका = अमुक अमुक मनुष्य । ऐसा ऐसा आदमी ।

ढिलढिला–वि० [हिं० ढीला] (१) ढीला ढाला । (२) (रस आदि) जो गाढ़ा न हो । पानी की तरह पतला ।

ढिलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] (१) ढीला होने का भाव । कसा न रहने का भाव । (२) शिथिलता । सुस्ती । आलस्य । किसी कार्य के करने में अनुचित विलंब । जैसे, तुम्हारी ही ढिलाई से यह काम पिछड़ा है ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव । ढीला करने का काम ।

ढिलाना–क्रि० स० [हिं० ढीलना का प्रे०] (१) ढीलने का काम कराना । (२) ढीला कराना ।

†*क्रि० स० (१) ढीला करना । (२) कसी या बँधी हुई वस्तु को खोलना । उ०—जनु स्वामी जब उठे प्रभाता । बंधन बँधे लसे सुखदाता ॥ खेती हित लै गए ढिलाई । भेद न जान्यो गए चोराई ।—रघुराज ।

ढिल्लड़–वि० [हिं० ढीला] ढील करनेवाला । मट्ठर । सुस्त ।

ढिसरना*†–क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] (१) फिसल पड़ना । सरक पड़ना । (२) प्रवृत्त होना । झुकना । उ०—उक्ति युक्ति सब तबहीं बिसरै । जब पंडित पढ़ि तिय पै ढिसरै ।—निश्चल । (३) फलों का कुछ कुछ पकना ।

ढींगर†–संज्ञा पु० [सं० डिंगर] (१) बड़े डील डौल का आदमी । मोटा मुस्टंडा आदमी । (२) पति या उपपति । उ०—कहै कबीर ये हरि के काज । जोइया के ढींगर कौन है लाज ।—कबीर ।

ढींढ़–संज्ञा पु० दे० "ढींढ़ा"

ढींढस–संज्ञा पु० [सं० टिंडिश] हिँडसी नाम की तरकारी ।

ढींढ़ा†–संज्ञा पु० [सं० ढुंढि = लंबोदर, गणेश] (१) बढ़ा पेट । निकला हुआ पेट ।

मुहा०—ढींढ़ा फूलना = पेट में बच्चा होने के कारण पेट निकलना ।

(२) गर्भ । हमल ।

मुहा०—ढींढ़ा गिराना = गर्भपात करना ।

ढींगे*†–क्रि० वि० दे० "ढिग" ।

ढीट–संज्ञा स्त्री० [देश०] रेखा । लकीर । डँडीर । उ०—रेख छाँड़ि जाऊँ तो डराऊँ लछिमनजी तें, भीख बिनु दिए भीख मीच हौं न पावती । कोऊ मंदभागी यह राम के न आगे आयो दासन पावन हौं देत सकावती । ढीट मेट देउँ फिर ढीट ही मिलाय लेउँ, ह्वै है बात सोई भगवंत जू को भावती ।—हनुमान ।

ढीठ–वि० [सं० धृष्ट] (१) वह जो गुरु जनों के सामने ऐसा काम करे जो उनके सामने अनुचित हो । बड़ों का संकोच या डर न रखनेवाला । बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छंदता प्रकट करनेवाला । धृष्ट । बेअदब । शोख । उ०—बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवक समय, न ढीठ ढिठाई ।—तुलसी । (२) किसी काम को करने में उसके परिणाम का भय न करनेवाला । ऐसे कामों में आगा पीछा न करनेवाला जिनसे लोगों का विरोध हो । अनुचित साहस करनेवाला । बिना डर का । उ०—ऐसे भए हैं कान्ह दधि गिराय मटकी सब फोरी ।—सूर । (३) साहसी । हिम्मतवर । हियाववाला । किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला ।

ढीठता*–संज्ञा स्त्री० [सं० धृष्टता] ढिठाई ।

ढीठा†–वि० दे० "ढीठ" ।

संज्ञा पु० ढिठाई । धृष्टता ।

ढीठ्यो–संज्ञा पु० दे० "ढीठा" ।

ढीमा†–संज्ञा पु० [देश०] (१) पत्थर का बड़ा टुकड़ा । पत्थर का ढोंका । उ०—सिला ढीम ढाहै इलावीर माहैं घड़ा घड्ड मड्डैं भड़ा भड्ड ह्वैहैं ।—सूदन । (२) मिट्टी की पिंडी ।

ढीमड़ो*†–संज्ञा पु० [देश०] कूप । कुँआ । (डिंगल)

विशेष—ढाल गैंडे के पुट्ठे, कछुए की खोपड़ी, धातु आदि कई चीजों की बनती है। जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं उधर यह गहरी और आगे की ओर उभरी हुई होती है। आगे की ओर इसमें ४—५ काँटे या मोटी फुलिया जड़ी होती हैं।

मुहा०—ढाल बाँधना = ढाल हाथ में लेना।

संज्ञा स्त्री० [सं० धार] (१) वह स्थान जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु नीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके। उतार। जैसे, (क) पानी ढाल की ओर बहेगा। (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से फिसल गया। (२) ढंग। प्रकार। तौर। तरीका। उ०—सदा मति ज्ञान में कि वेद कि पुरान में, कि ध्यान, दान मान में सुऐसो एक ढाल है।—हनुमान। † (३) उगाही। चंदा। बेहरी। (पंजाब)

ढालना—क्रि० स० [सं० धार] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गिराना। उँड़ेलना। जैसे, (क) हाथ पर पानी ढाल दो। (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो। बोतल की शराब गिलास में ढाल दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—बोतल ढालना = शराब पीना। मद्यपान करना।

(२) शराब पीना। मद्यपान करना। जैसे, आजकल तो खूब ढालते हो। (३) बेचना। बिक्री करना। (दलाल)। (४) थोड़े दाम पर माल निकालना। सस्ता बेंचना। लुटाना। (५) ताना छोड़ना। व्यंग्य बोलना। † (६) चंदा उतारना। उगाही करना। (पंजाब)। (७) पिघली हुई धातु आदि को साँचे में ढाल कर बनाना। पिघली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा निर्मित करना। जैसे, लोटा ढालना, खिलौने ढालना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

ढालवाँ—वि० [हिं० ढाल] [स्त्री० ढालवीं] जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु जल्दी से लुढ़क, फिसल या बह सके। जिसमें ढाल हो। ढालदार। ढालू। जैसे, यह रास्ता ढालवाँ है। सँभल कर चलना।

ढालिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढालना] फूल, पीतल, ताँबा, जस्ता, इत्यादि पिघली धातुओं को साँचे में ढाल कर बरतन गहने आदि बनानेवाला। भरिया। सुलवा। साँचिया।

ढालुआँ—वि० दे० "ढालवाँ"।

ढालू—वि० दे० "ढालवाँ"।

ढावना†—क्रि० स० [देश०] गिराना।

ढासा†—संज्ञा पुं० [सं० दस्यु] ठग। लुटेरा। डाकू। उ०—बासर ढासनि के ढका रजनी चहुँ दिसि चोर। शंकर निजपुर राखिये चितै सुलोचन कोर।—तुलसी।

ढासना—संज्ञा पुं० [सं० धा = धारण करना + आसन] (१) वह ऊँची वस्तु जिस पर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके। सहारा। टेक। उठँगन। (२) तकिया।

ढाहना†—क्रि० स० [सं० ध्वंसन] दीवार, मकान आदि को गिराना। ध्वस्त करना। ढाना। उ०—(क) ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली विपति बारिधि अनुकूला।—तुलसी। (ख) वृक्ष बन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दीनो गिराई।—सूर।

विशेष—दे० "ढाना"।

ढाहा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाहना] नदी का ऊँचा करारा।

ढिँढोरना—क्रि० स० [अनु०] (१) मथन करना। मथना। बिलोड़ना। हाथ डाल कर ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना। उ०—(क) क्यों बचिए भजिहूँ घन आनँद बैठी रहैं घर पैठि ढिँढोरत।—घनानंद। (ख) भूलि गई माखन की चोरी। खात रहे घर सकल ढिँढोरी।—विश्राम।

ढिँढोरा—संज्ञा पुं० [अनु० ढम + ढोल] (१) वह ढोल जिसे बजा कर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है। घोषणा करने की भेरी। डुगडुगिया।

मुहा०—ढिँढोरा पीटना या बजाना = ढोल बजा कर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना। चारो ओर घोषित करना। मुनादी करना।

(२) वह सूचना जो ढोल बजा कर सर्वसाधारण को दी जाय। घोषणा। मुनादी। उ०—जो मैं ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय। नगर ढिँढोरा फेरती, प्रीति करो जनि कोय। (प्रचलित)।

क्रि० प्र०—फेरना।

ढिकचन—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ने का एक भेद।

ढिकुली—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेकुली"

ढिग—क्रि० वि० [सं० दिक् = ओर] पास। समीप। निकट। नजदीक। उ०—मुरली धुनि सुनि सबै ग्वालिनी हरि के ढिग चलि आईं।—सूर।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है पर इसका प्रयोग सप्तमी विभक्ति का लोप करके प्रायः क्रि० वि० वत् ही होता है।

संज्ञा स्त्री० (१) पास। सामीप्य। (२) तट। किनारा। छोर। उ०—सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपालु सिंधु बहुताई।—तुलसी।—(३) कपड़े का किनारा। पाड़। कोर। हाशिया। उ०—(क) लाल ढिगन की सारी ताको पीत ओढ़निया कीनी।—सूर। (ख) पट की ढिग कत

मुहा०—ढुंढिया चढ़ाना = मुसकें बाँधना। उ०—उसने झट उसकी पगड़ी उतार ढुंढियाँ चढ़ाय मूछ दाढ़ी और सिर मूँड़ रथ के पीछे बाँध लिया।—लल्लू।

संज्ञा स्त्री० दे० "ढोंढ़ी"।

ढुकना—क्रि० अ० [देश०] (१) घुसना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) झुक पड़ना। टूट पड़ना। पिल पड़ना। एकबारगी किसी ओर धावा करना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(३) किसी बात को सुनने या देखने के लिये आड़ में छिपना। लुकना। घात में छिपना। जैसे, ढुक कर कोई बात सुनना, किसी को पकड़ने के लिये ढुकना। उ०—(क) ढुकी रहीं जहँ तहँ सब गोरी। (ख) जउ न होत चारा कइ आसा। कित चिरिहार ढुकत लेइ लासा ?।—जायसी।

ढुकास †—संज्ञा स्त्री० [अनु० ढुक ढुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा। अधिक प्यास।

क्रि० प्र०—लगना।

ढुका—संज्ञा पु० दे० "ढूका"।

ढुच †—संज्ञा पु० [देश०] घूँसा। मुक्का।

ढुटौना—संज्ञा पु० दे० "ढोटा"।

ढुनमुनिया †—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढनमनना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव। (२) सावन में कजली गाने का एक ढंग जिसमें स्त्रियाँ एक मंडल में घूमती हुई गोल बाँध कर गाती हैं और बीच बीच में झुकती और खड़ी होती हैं।

ढुरकना † *—क्रि० अ० [हिं० ढर] (१) लुढ़कना। फिसल कर सरकना या गिरना। उ०—लोभ चढ़ी अति मोहन की मति मोह महा गिरि तें ढुरकी।—देव। (२) झुकना। उ०—संग में सईसते रईस तें नफीस बेस सीस उमनीस बना बाम ओर ढुरकी।—गोपाल।

ढुरना—क्रि० अ० [हिं० ढर] (१) गिरकर बहना। ढरकना। ढलना। टपकना। उ०—नैनन ढुरहिं मोति औ मूँगा। जस गुड़ खाय रहा है गूँगा।—जायसी।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(२) कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। डगमगाना। (३) सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढुरना। उ०—जोबन मदमाती इतराती बेनी ढुरत कटि पै छबि बाढ़ी।—सूर। (४) लुढ़कना। फिसल पड़ना। (५) प्रवृत्त होना। झुकना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(६) अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना। उ०—बिन करनी मोपै ढुरौ कान्ह गरीब निवाज।—रसनिधि।

ढुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] (१) लुढ़कने की क्रिया या भाव। नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या पड़ने की क्रिया। उ०—लूटि सी काति कलहंस जुग देव कहै टूटि मोतिसिरी छिति छूटि ढुरहुरी लेति।—देव।

क्रि० प्र०—लेना।

(२) पगडंडी। पतला रास्ता। (३) नथ में लगी हुई सोने के गोल दानों की पंक्ति।

ढुराना—क्रि० स० [हिं० ढुरना] (१) गिरा कर बहाना। ढरकाना। ढुलकाना। टपकाना। उ०—पलक न लावति रहत ध्यान धरि बारंबार ढुरावति पानी।—सूर। (२) इधर उधर हिलाना। लहराना। उ०—धुजा फहराइ छत्र चौंर सो ढुराइ बागे बीरन बनाय यों चलाइ दाम चाम के।—हनुमान। (३) लुढ़कना। फिसल कर गिरना।

ढुरुआ—संज्ञा पु० [हिं० ढुरना] गोल मटर। केराव मटर।

ढुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय। पगडंडी।

ढुलकना—क्रि० अ० [हिं० ढाल + कना (प्रत्य०) वा सं० लुंठन, हिं० लुढ़कना] नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना। ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए बढ़ना या चल पड़ना। लुढ़कना। ढँग लाना।

संयो० क्रि०—जाना।

ढुलकाना—क्रि० स० [हिं० ढुलकना] लुढ़काना। ढँगलाना।

ढुलना—क्रि० अ० [हिं० ढल] (१) गिरकर बहना। ढरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) लुढ़कना। फिसल पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) प्रवृत्त होना। झुकना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(४) अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(५) कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। इधर से उधर हिलना। उ०—ढुलति ग्रीव, लटकति नक बेसरि, मंद मंद गति आवै।—सूर। (६) सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढुलना।

ढुलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोना] (१) ढोने का काम। (२) ढोने की मजदूरी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] (१) ढुलाने की क्रिया। (२) ढुलाने की मजदूरी।

ढुलवाना—क्रि० स० [हिं० ढोना का प्रे०] ढोने का काम कराना। बोझ लेकर जाने का काम कराना।

क्रि० स० [हिं० 'ढुराना' का प्रे०] ढुलाने का काम कराना।

ढीमा-संज्ञा पुं० [देश०] ढेला। ईंट पत्थर आदि का टुकड़ा। ढोंका।

ढील-संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] (१) कार्य्य में उत्साह का अभाव। शिथिलता। अतत्परता। नामुस्तैदी। सुस्ती। अनुचित विलंब। जैसे, इस काम में ढील करोगे तो ठीक न होगा।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—ढील देना = ध्यान न देना। दत्तचित्त न होना। बेपरवाही करना।

(२) बंधन को ढीला करने का भाव। डोरी को कड़ा वा तना न रखने का भाव।

मुहा०—ढील देना = (१) पतंग की डोर बढ़ाना जिससे वह आगे बढ़ सके। (२) स्वच्छंदता देना। मनमाना करने का अवसर देना। वश में न रखना।

† वि० दे० "ढीला"।

† संज्ञा पुं० बालों का कीड़ा। जूँ।

ढीलना-क्रि० स० [हिं० ढीला] (१) ढीला करना। कसा या तना हुआ न रखना। बंधन आदि की लंबाई बढ़ाना जिससे बँधी हुई वस्तु और आगे या इधर उधर बढ़ सके। जैसे, पतंग की डोरी ढीलना, रास ढीलना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) बंधन मुक्त करना। छोड़ देना। उ०—तापै सूर बछरुवन ढीलत वन वन फिरत बहे।—सूर। (३) (पकड़ी हुई रस्सी आदि को) इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह आगे या नीचे की ओर बढ़ती जाय। डोरी आदि को बढ़ाना या डालना। जैसे, कुएँ में रस्सी ढीलना। (४) किसी गाढ़ी वस्तु को पतला करने के लिये उसमें पानी आदि ढालना।

ढीला-वि० [सं० शिथिल, प्रा० सिढिल] (१) जो कसा या तना हुआ न हो। जो सब ओर से खूब खिंचा न हो। (डोरी, रस्सी, तागा आदि) जिसके ठहरे या बँधे हुए छोरों के बीच झोल हो। जैसे, लगाम ढीली करना, डोरी ढीली करना, चारपाई (की बुनावट) ढीली होना।

मुहा०—ढीली छोड़ना या देना = बंधन ढीला करना। अंकुश न रखना। मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छंद करना।

(२) जो खूब कस कर पकड़ा हुआ न हो। जो अच्छी तरह जमा या बैठा न हो। जो दृढ़ता से बँधा या लगा हुआ न हो। जैसे, पेंच ढीला होना, जँगले की छड़ ढीली होना। (३) जो खूब कस कर पकड़े हुए न हो। जैसे, मुट्ठी ढीली करना, गाँठ ढीली होना। बंधन ढीला होना। (४) जिसमें किसी वस्तु को डालने से बहुत सा स्थान इधर उधर छूटा हो। जो किसी समानेवाली चीज़ के हिसाब से बड़ा या चौड़ा हो। फ़राख। कुशादा। जैसे, ढीला जूता, ढीला अंगा, ढीला पायजामा। (५) जो कड़ा न हो। बहुत गीला। जिसमें जल का भाग अधिक हो गया हो। पनीला। जैसे, रसा ढीली करना, चाशनी ढीली करना। (६) जो अपने हठ पर अड़ा न रहे। प्रयत्न या संकल्प में शिथिल। जैसे, ढीले मत पड़ना, बराबर अपने रुपए का तकाज़ा करते रहना।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(७) जिसके क्रोध आदि का वेग मंद पड़ गया हो। धीमा। शांत। नरम। जैसे, ज़रा भी ढीले पड़े कि वह सिर पर चढ़ जायगा।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(८) मंद। सुस्त। धीमा। शिथिल। जैसे, उत्साह ढीला पड़ना।

मुहा०—ढीली आँख = मंद मंद दृष्टि। अधखुली आँख। रस या मद भरी चितवन। उ०—देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेह निरवाहि। ढीली अँखियन ही इतै गई कनखियन चाहि।—बिहारी।

(९) मट्ठर। सुस्त। आलसी। काहिल। (१०) जिसमें काम का वेग कम हो। नपुंसक।

ढीलापन-संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + पन (प्रत्य०)] ढीला होने का भाव। शिथिलता।

ढीह-संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ, हिं० दीह] ऊँचा टीला। ढूह।

ढुंढ†-संज्ञा पुं० [हिं० ढूढ़ना] चाईं। उचक्का। ठग। लुटेरा। उ०—चोर ढुंढ बटपार अन्याई अपमारगी कहावैं जे।—सूर।

ढुंढपाणि*-संज्ञा पुं० [सं० दंडपाणि] (१) शिव के एक गण। (२) दंडपाणि भैरव। उ०—पुनि काल भैरव ढुंढपाणिहि और सिगरे देव को।—कबीर।

ढुँढ़वाना-क्रि० स० [हिं० ढूँढ़ना का प्रे०] ढूढ़ने का काम कराना। खोजवाना। तलाश कराना। पता लगवाना।

ढुंढा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराण के अनुसार एक राक्षसी का नाम जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी। इसको शिव से यह वर प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी। जब प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय हिरण्यकशिपु कर के हार गया तब उसने ढुंढा को बुलाया। वह प्रह्लाद को लेकर आग में बैठी। विष्णु भगवान की कृपा से प्रह्लाद तो न जले, ढुंढा जल कर भस्म हो गई।

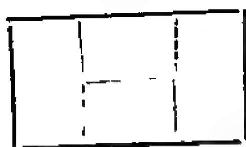
ढुंढि-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का एक नाम। ये ५६ विनायकों में से है।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि सारे विषय इनके ढूँढ़े हुए या अन्वेषित हैं इसी से इनका नाम ढुंढि या ढुंढिराज है।

ढुंढी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँह। बाहु। भुजक।

आधी दूर तक फाड़ते हैं। इसके उपरांत बीच में पड़नेवाले भाग को खड़े बल आधे आध काट देते हैं। इस तरह जो दो टुकड़े निकलते हैं उन्हें खाली स्थान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं।

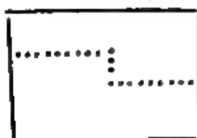
पूरा कपड़ा



कटा हुआ टुकड़ा



दोनों जुड़े हुए टुकड़े



ढेंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंक=एक पक्षी] अनाज कूटने का लकड़ी का एक यंत्र। ढेंकली।

ढेंकुरा—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

ढेंकुली—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

ढेंढ़ा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) कौवा। (२) एक नीच जाति जो मरे जानवरों का मांस खाती है। (३) एक नीच जाति। उ०—मांस खाँय ते ढेढ़ सब मद पीवैं सो नीच।—कबीर। (४) मूर्ख। मूढ़। जड़।

संज्ञा पुं० [सं० तुंड, हिं० ढाड़] कपास आदि का ढोंढ़। ढोंढ। उ०—सेमर सुवना सेइए दुइ ढेंढे की आस।—कबीर

ढेंढर—संज्ञा पुं० [हिं० ढेंढ] आँख के ढेले का निकला हुआ विकृत मांस। टेंटर।

ढेंढवा—संज्ञा पुं० [देश०] काले मुँह का बंदर। लंगूर।

ढेंढा—संज्ञा पुं० [सं० तुंड] दे० "ढेंढ़"।

ढेंढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेढ़ा] (१) कपास का ढोंढा। (२) पोस्ते का ढोंढा। (३) कान का एक गहना। तरकी।

ढेंप—संज्ञा स्त्री० [देश०] फल या पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। (२) कुचाग्र। ढेंड़ी।

ढेंपी—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंप"।

ढेउआ—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा।

ढेऊ†—संज्ञा पुं० [देश०] पानी की लहर। तरंग। हिलोरा।

ढेड़स—संज्ञा स्त्री० दे० "डेंड़सी"।

ढेपुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंप] (१) पत्ते या फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। ढेंप। (२) किसी वस्तु की दाने की तरह उभरी हुई नोक। ठोंठ। (३) कुचाग्र।

ढेबरी—संज्ञा स्त्री० दे० "ढिबरी"।

ढेबुका—संज्ञा पुं० [देश०] ढेबुआ। पैसा। उ०—यथा ढेबुक मुद्रा जग माहीं। हैं सब एक पदिक सम नाहीं।—विश्राम।

ढेबुवा—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा। ढेउआ। ताम्रमुद्रा।

ढेममौज—संज्ञा स्त्री० [देश० ढेऊ+फ़ा० मौज] बड़ी लहर। समुद्र की ऊँची लहर। (लश०)

ढेर—संज्ञा पुं० [हिं० धरना ?] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो। राशि। अटाला। अंबार। गंज। टाल।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

मुहा०—ढेर करना=मार कर गिरा देना। मार डालना। ढेर रखना=मार कर रख देना। जीता न छोड़ना। ढेर रहना=(१) गिर कर मर जाना। (२) थक कर चूर हो जाना। अत्यंत शिथिल हो जाना। ढेर हो जाना=(१) गिर कर मर जाना। मर जाना। (२) ध्वस्त होना। गिर पड़ जाना। जैसे, मकान का ढेर होना।

† वि० बहुत। अधिक। ज्यादा।

ढेरना—संज्ञा पुं० [देश०] सूत या रस्सी बटने की फिरकी।

ढेरा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर काटती हुई दो आड़ी लकड़ियों के बीच में एक खड़ा डंडा जड़ कर बनाई जाती है। (२) मोट के मुँह पर का लकड़ी या लोहे का घेरा जो मोट का मुँह खुला रखने के लिये लगा रहता है। (३) अंकोल का पेड़। (वैद्यक)

ढेराढोंक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली। दे० "ढोंक"।

ढेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेर] ढेर। समूह। अटाला। राशि।

ढेल—संज्ञा पुं० दे० "ढेला"।

ढेलवांस—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला+सं० पाश] रस्सी का एक फंदा जिससे ढेला फेंकते हैं। गोफना।

ढेला—संज्ञा पुं० [सं० दल, हिं० डला] (१) ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा। चक्का। जैसे, ढेला फेंक कर मारना।

यौ०—ढेला चौथ।

(२) टुकड़ा। खंड। जैसे, नमक का ढेला। (३) एक प्रकार का धान। उ०—कपूर काट कजरी रतनारी। मधुकर ढेला जीरा सारी।—जायसी।

ढेला चौथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला+चौथ] भादों सुदी चौथ।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि इस दिन चंद्रमा देखने से कलंक लगता है। यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिए। गालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर ढेला फेंकना है। अतः लोग इस दिन ढेला फेंकते हैं। यह प्रायः एक प्रकार का विनोद या खेलवाड़ सा हो गया है।

ढेंकली—संज्ञा स्त्री० दे० "ढेंकली"।

ढुलाना–क्रि० स० [हिं० ढाल] (१) गिरा कर बहाना। ढरकाना। ढालना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) नीचे ढालना। ठहरा न रहने देना। गिराना। उ०—स्यंदन खंडि, महारथ खंडौं कपिध्वज सहित ढुलाऊँ।—सूर।

(३) लुढ़काना। ढँगलाना।

संयो० क्रि०—देना।

(४) प्रवृत्त करना। झुकाना।

संयो० क्रि०—देना। लेना।

(५) अनुकूल करना। प्रसन्न करना। कृपालु करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(६) कभी इधर, कभी उधर करना। इधर उधर डुलाना। इधर से उधर हिलाना। जैसे, चँवर ढुलाना। (७) चलाना। फिराना। उ०—सूर स्याम स्यामावश कीनो ज्यों सँग छाँह डुलावै हो।—सूर। † (८) फेरना। पोतना। उ०—ऊँचा महल चिनाइया चूना कली ढुलाय।—कबीर।

क्रि० स० [हिं० ढोना] ढोने का काम कराना।

ढुलुआ–संज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर की बनी हुई चीनी।

ढुवारा†–संज्ञा पुं० [देश०] घुन नाम का कीड़ा।

ढूँकना–क्रि० अ० दे० "ढुकना"।

ढूँका–संज्ञा पुं० [हिं० ढुँकना] किसी बात या वस्तु को गुप्त रूप से देखने के लिये आड़ में छिपने का कार्य्य। बिना अपनी आहट दिए कुछ देखने की घात में छिपने का काम।

क्रि० प्र०—लगना।

ढूँढ़–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूँढ़ना] खोज। तलाश। अन्वेषण।

मुहा०—ढूँढ़ ढाँढ़=खोज। तलाश।

ढूँढ़ना–क्रि० स० [सं० ढुंढन] खोजना। तलाश करना। अन्वेषण करना। पता लगाना।

संयो० क्रि०—देना (दूसरे के लिये)।—लेना (अपने लिये)।—डालना।

यौ०—ढूँढ़ना ढाँढ़ना=खोजना। तलाश करना।

ढूँढला–संज्ञा स्त्री० [सं० ढुंढा] ढुंढा नाम की राक्षसी।

ढूका–संज्ञा पुं० [देश०] डंठल, घास आदि के बोझ का एक मान जो दस पूले का होता है।

संज्ञा पुं० दे० "ढूँका"।

ढूढ़िया–संज्ञा पुं० [देश०] श्वेतांबर जैनों का एक भेद। इस संप्रदाय के लोग मूर्त्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान के समय को छोड़ सदा मुँह पर पट्टी बाँधे रहते हैं।

ढूसर–संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति।

ढूसा–संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच जिसमें ऊपर आया हुआ पहलवान नीचेवाले की गरदन पर हाथ मार कर उसे चित करता है।

ढूह†–संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] (१) ढेर। अटाला। (२) टीला। भीटा। (३) मिट्टी का छोटा ढूह जो सीमा या हद सूचित करने के लिये खड़ा किया जाता है।

ढूहा†–संज्ञा पुं० दे० "ढूह"।

ढेंक–संज्ञा स्त्री० [सं० ढेंक] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और गरदन लंबी होती है। उ०—(क) केवा सोन ढेंक बक लेदी। रहे अपूरि मीन जल भेदी।—जायसी। (ख) कूजत पिक मानहुँ गजमाते। ढेंक महोख ऊँट बिसराते।—तुलसी।

ढेंकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंक=चिड़िया, जिसकी गरदन लंबी होती है] (१) सिंचाई के लिये कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र जिसमें एक ऊँची खड़ी लकड़ी के ऊपर एक आड़ी लकड़ी बीचोंबीच से इस प्रकार ठहराई रहती है कि उसके दोनों छोर बारी बारी से नीचे ऊपर हो सकते हैं। इसके एक छोर में, मिट्टी छोपी या पत्थर बँधा रहता है और दूसरे छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोल की रस्सी बँधी होती है। मिट्टी या पत्थर के बोझ से डोल कुएँ में से ऊपर आती है।

क्रि० प्र०—चलाना।

(२) एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की लकीर के समानांतर नहीं होती, आड़ी होती है। आड़े डोभ की सिलाई।

क्रि० प्र०—मारना।

(३) धान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार सींचने की ढेंकली ही से मिलता जुलता पर उससे बहुत छोटा और ज़मीन से लगा हुआ होता है। धन-कुट्टी। ढेंकी। (४) भबके से अर्क उतारने का यंत्र। बकतुंडयंत्र। (५) सिर नीचे और पैर ऊपर करके उलट जाने की क्रिया। कलाबाज़ी। कलैया।

क्रि० प्र०—खाना।

ढेंका–संज्ञा पुं० [हिं० ढेंक=पक्षी] (१) कोल्हू में वह बाँस जो जाट के सिरे से कतरी तक लगा रहता है। (२) बड़ी ढेंकी।

ढेंकिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

ढेँकिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंकी] ढेढ़पटी चद्दर बनाने में कपड़े की एक प्रकार की काट और सिलाई जिससे कपड़े की लंबाई एक तिहाई घट जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है। इस काट की विशेषता यह है कि इसमें आड़ा जोड़ किनारे तक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है।

विशेष—इसमें कपड़े की लंबाई के तीन बराबर भागों में तह करके आड़े निशान डाल देते हैं। फिर एक आड़ी लकीर पर आधी दूर तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं। इसी प्रकार दूसरे किनारे की ओर दूसरी आड़ी लकीर पर भी

संज्ञा पुं० [सं० दोलन] बच्चों का छोटा झूला । पालना ।
† क्रि० स० [सं० दोलन] (१) ढरकाना । ढालना । (२) इधर उधर हिलाना । डुलाना । जैसे, चँवर ढोलना ।

ढोलनी–संज्ञा स्त्री० [सं० दोलन] बच्चों का झूला । पालना ।
विशेष—यह झूला रस्सी से लटका हुआ एक छोटा खटोला सा होता है । उ०—अगर चंदन को पालनो गढ़ई गुर ढार सुढार । लै आयो गढ़ि ढोलनी बिसकर्मा सो सुत धार ।—सूर ।

ढोलवाई†–संज्ञा स्त्री० दे० "ढुलवाई" ।

ढोला–संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] (१) बिना पैर का रेंगनेवाला एक प्रकार का छोटा सुफेद कीड़ा जो आध अंगुल से दो अंगुल तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि) तथा पौधों के हरे डंठलों में पड़ जाता है । (२) वह ढूह या छोटा चबूतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना रहता है । हद का निशान ।
यौ०—ढोलाबंदी ।
(३) गोल मेहराब बनाने का ढाट । कलबूत । (४) पिंड । शरीर । देह । उ०—जौ लगि ढोला तौ लगि बोला तौ लगि धनव्यवहार ।—कबीर । (५) पति । प्यारा प्रियतम । (६) एक प्रकार का गीत । (७) मूर्ख मनुष्य । जड़ ।

ढोलिनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली । डफालिन । उ०—नटिनि डोमिनि ढोलिनी सहनाइनि भेरिकारि । निरतत तंत विनोद सउँ बिहँसत खेलत नारि ।—जायसी ।

ढोलिया–संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला । उ०—भीर बड़े बड़े बात बहे तहाँ ढोलिये पार लगावत को है ।—ठाकुर ।

ढोली–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोल] २०० पानों की गड्डी । उ०—ढोलिन ढोलिन पान बिकाना भीटन के मैदाना ।—कबीर ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली, ठोली] हँसी । दिल्लगी । ठठोली । ठट्ठा । उ०—सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी बचि लीनों मोहि करति ढोली ।—सूर ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ढोव–संज्ञा पुं० [हिं० ढोना] वह पदार्थ जो किसी मंगल के अवसर पर लोग सरदार या राजा को भेंट ले जाते हैं । डाली । नजर । उ०—लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार ।—तुलसी ।

ढोवना†–क्रि० स० दे० "ढोना" ।

ढौंचा–संज्ञा पुं० [सं० अर्द्ध, प्रा० अड्ढ + हिं० चार] वह पहाड़ा जिसमें क्रम से एक एक अंक का साढ़े चार गुना अंक बतलाया जाता है । साढ़े चार का पहाड़ा ।

ढौंसना–क्रि० अ० [अनु०, हिं० धौंस] आनंद ध्वनि करना । उ०—तियनि को तल्ला पिय तियन पियल्ला त्यागे ढौंसत भल्ला भल्ला धाए राजद्वार को ।—रघुराज ।

ढौकन–संज्ञा पुं० [सं०] घूस । रिशवत ।

ढौकना–क्रि० स० [देश०] पीना । (अशिष्ट)

ढौरी†*–संज्ञा स्त्री० [हिं०] रट । धुन । लौ । लगन । उ०—(क) रसिक सिरमौर ढौरि लगावत गावत राधा राधा नाम ।—सूर । (ख) रुखिये खात नहीं अनखात मरैं दिन राति रही परि ढौरी ।—देव ।
संज्ञा स्त्री० दे० "ढुर्री" ।

ण

ण–हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन । इसका उच्चारण-स्थान मूर्द्धा है । इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न स्पृष्ट और सानुनासिक है । बाह्यप्रयत्न संवार, नाद, घोष और अल्पप्राण है । इसका संयोग मूर्द्धन्य वर्ण, अंतस्थ तथा म और ह के साथ होता है ।

ण–संज्ञा पुं० (१) बिंदुदेव । एक बुद्ध का नाम । (२) आभूषण । (३) निर्णय । (४) ज्ञान । (५) शिव का एक नाम । (६) पानी का घर । (७) दान । (८) पिंगल में एक गण का नाम ।
वि० गुणरहित । गुणशून्य ।

णगण–दो मात्राओं का एक मात्रिक गण । इसके दो रूप हो सकते हैं जैसे, 'श्री (ऽ) और हरि (॥)' ।

ढँचा–संज्ञा पुं० [देश०] चकवँड़ की तरह का एक पेड़ जिसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। जयंती। (२) पान के भीटे पर की छाजन के लिये सन या पटवे का डंठल।

ढैया–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढई] (१) ढाई सेर की बाट। ढ़ाई सेर तौलने का बटखरा। (२) ढाई गुने का पहाड़ा। (३) शनैश्चर के एक राशि पर स्थिर रहने का ढाई वर्ष का काल।

ढोंकना–क्रि० स० [अनु०] पीना। पी जाना। (अशिष्ट या विनोद)

ढोंका–संज्ञा पुं० [देश०] (१) पत्थर या और किसी कड़ी वस्तु का बड़ा अनगढ़ टुकड़ा। (२) वह बाँस जो कोल्हू में जाट के सिरे से लेकर कोल्हू तक बँधा रहता है। (३) दो ढोली पान। चार सौ पान। (तमोली)

ढोंग–संज्ञा पुं० [हिं० ढंग] ढकोसला। पाखंड। झूठा आडंबर।
क्रि० प्र०—करना।—रचना।

ढोंगधतूर–†संज्ञा पुं० [हिं० ढोंग + धूर्त] धूर्त्तविद्या। धूर्त्तता। पाखंड।

ढोंगबाजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोंग + फा० बाजी] पाखंड। आडंबर।

ढोंगी–वि० [हिं० ढोंग] पाखंडी। ढकोसलेबाज। झूठा आडंबर करनेवाला।

ढोंटा–संज्ञा पुं० दे० "ढोटा"।

ढोंढ़–संज्ञा पुं० [सं० तुंड] (१) कपास, पोस्ते आदि का जोड़ा। (२) कली।

ढोंढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोंढ़] नाभि। धुन्नी।

ढोक–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो १२ इंच लंबी होती है। ढेरी। ढोंक।

ढोका–संज्ञा पुं० दे० "ढोंका"।

ढोटा–संज्ञा पुं० [सं० दुहितृ = लड़की, हिं० ढेटा] [स्त्री० ढेटी] (१) पुत्र। बेटा। उ०—देखत छोट खोट नृपढोटा।—तुलसी। (२) लड़का। बालक। उ०—गोकुल के गैंड एक साँवरो सो ढोटा माई अँखियन के पैंड़ पैठि जी के पैंड़े परयो लै। —सूर।

ढोटी–संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] लड़की।

ढोटौना‡–संज्ञा पुं० दे० "ढोटा"। उ०—स्याम बरन एक मिल्यो ढोटौना तेहि मोकों मोहनी लगाई।—सूर।

ढोड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट। (डिं०)

ढोना–क्रि० स० [सं० वोढ = वहन करना, ले जाना, आद्यंत विपर्यय—ढेव] (१) बोझ लाद कर ले जाना। भार ले चलना। भारी वस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना।
संयो० क्रि०—देना।—ले जाना
(२) उठा ले जाना। जैसे, चोर सारा माल ढो ले गए।

ढोर–संज्ञा पुं० [हिं० ढुरना] गाय, बैल, भैंस आदि पशु। चौपाया। मवेशी। उ०—जब हरि मधुबन को जु सिधारे धीरज धरत न ढोर।—सूर।

ढोरा–संज्ञा पुं० दे० "ढोर"।

ढोरना*†–क्रि० स० [हिं० ढारना] (१) पानी या और कोई द्रव पदार्थ गिराकर बहाना। ढरकाना। ढालना। उ०—(क) रीते भरै भरे पुनि ढोरै चाहै फेरि भरै। कबहुँक तृण बूड़ै पानी में कबहूँ शिला तरै।—सूर। (ख) जननी अति रिस जानि बँधायो चितै बदन लोचन जल ढोरै।—सूर। (ग) वै अक्रूर क्रूर कृत जिनके रीते भरे भरे गहि ढोरे।—सूर। (२) लुढ़काना।

ढोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोरना] (१) ढालने का भाव। ढरकाने की क्रिया या भाव। उ०—कनक कलस केसरि भरि ल्याई ढारि दियो हरि पर ढोरी की। अति आनंद भरी ब्रज युवती गावति गीत सबै होरी की।—सूर। (२) रट। धुन। बान। लौ। लगन। उ०—(क) सूरदास गोपी बड़ भागी। हरि दरसन की ढोरी लागी। (ख) ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसकात। थोरी थोरी सकुच सों भोरी भोरी बात।—बिहारी।
क्रि० प्र०—लगना।

ढोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है।
विशेष—लकड़ी के गोल कटे हुए लंबोतरे कुंदे को भीतर से खोखला करते हैं और दोनों ओर मुँह पर चमड़ा मढ़ते हैं। छोटा ढोल हाथ से और बड़ा ढोल लकड़ी से बजाया जाता है। दोनों ओर के चमड़ों पर दो भिन्न भिन्न प्रकार का शब्द होता है। एक ओर तो 'ढब ढब' की तरह गंभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी ओर टनकार का सा शब्द होता है।
यौ०—ढोलढमक्का = बाजा गाजा। धूमधाम।
मुहा०—ढोल पीटना या बजाना = घोषणा करना। प्रसिद्ध करना। प्रकट करना। प्रकाशित करना। चारों ओर कहते या जताते फिरना।
(२) कान का परदा। कान की वह झिल्ली जिस पर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

ढोलक–संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] छोटा ढोल। ढोलकी।

ढोलकिया–संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] ढोल बजानेवाला।

ढोलकी–संज्ञा स्त्री० दे० "ढोलक"।

ढोलन–संज्ञा पुं० दे० "ढोलना"।

ढोलना–संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] (१) ढोलक के आकार का छोटा जंतर जो तागे में पिरो कर गले में पहना जाता है। उ०—आने गढ़ि सोना ढोलना पहिराए चतुर सुनार।—सूर। (२) ढोल के आकार का बड़ा बेलन जिसे पहिए की तरह लुढ़का कर सड़क का कंकड़ पीटते या खेत के ढेले फोड़ कर जमीन चौरस करते हैं।

भा मेरा।—जायसी। (४) इच्छा। प्रबल कामना। उ०—(क) दिसि परजंत अनंत ख्यात जस विजय तंत जिय।—गोपाल। (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत तंत जाय मथ निरधारत।—गोपाल। (५) वश। अधीनता। उ०—त्यों पदमाकर आइगो कंत इकंत जबैं निज तंत मैं जानी।—पद्माकर।

विशेष—दे० "तंत्र"।

वि० जो तौल में ठीक हो। जो वजन में बराबर हो।

तंत मंत—संज्ञा पुं० दे० "तंत्र मंत्र"। उ०—कह जिउ तंत मंत सों हेरा। गएउ हिराय जो वह भा मेरा।—जायसी।

तंतरी*—संज्ञा पुं० [सं० तंत्री] वह जो तारवाले बाजे बजाता हो। उ०—आयो दुसह बसंत री कंत न आए वीर। जन मन बेधत तंतरी मदन सुमन के तीर।—शृं० सत०।

तंति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय।

तंतिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहदेव का वह नाम जिससे वह अज्ञातवास के समय विराट के यहाँ प्रसिद्ध थे। (२) वह जो गो की रक्षा या पालन करता हो।

तंतु—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] (१) सूत। डोरा। तागा।

यौ०—तंतुकीट।

(२) ग्राह। (३) संतति। संतान। बाल बच्चे। (४) विस्तार। फैलाव। (५) यज्ञ की परंपरा। (६) वंशपरंपरा। (७) ताँत। (८) मकड़ी का जाला।

तंतुक—संज्ञा पुं० [सं०] सरसों।

संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

तंतुकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहों की एक लकड़ी जिसे तूली कहते हैं।

तंतुकी—संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी।

तंतुकीट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ी। (२) रेशम का कीड़ा।

तंतुजाल—संज्ञा पुं० [सं०] नसों का समूह। (वैद्यक)।

तंतुनाग—संज्ञा पुं० [सं०] मगर।

तंतुनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी।

तंतुनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

तंतुपर्व—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुपर्व्वन्] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन राखी बाँधी जाती है। रक्षाबंधन।

तंतुभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरसों। (२) बछड़ा।

तंतुमस्—संज्ञा पुं० [सं०] श्राग।

तंतुर—संज्ञा पुं० [सं०] मृणाल। भसींड़। मुरार। कमल की जड़।

तंतुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृणाल। कमलनाल।

तंतुवादक—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्री। बीन आदि तार के बाजे बजानेवाला। उ०—बहुरि तंतुवादक रघुराई। गान करन में निपुन बनाई।—रामाश्वमेध।

तंतुवाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँत। (२) ताँती। दे० "तंतुवाय"।

तंतुवाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े बुननेवाला। ताँती। भिन्न भिन्न स्मृतियों में इन की उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से बतलाई गई है। किसी में इन्हें मणिबंध पुरुष और मणिकार स्त्री से और किसी में वैश्य पिता और क्षत्रियाणी माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया गया है। इन की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं। (२) मकड़ी।

तंतुविग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] केले का पेड़।

तंतुसार—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

तंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतु। ताँत। (२) सूत। (३) जुलाहा। (४) कपड़ा बुनने की सामग्री। (५) कपड़ा। वस्त्र। (६) कुटुंब के भरण और पोषण आदि का कार्य। (७) निश्चित सिद्धांत। (८) प्रमाण। (९) औषध। दवा। (१०) झाड़ने फूँकने का मंत्र। (११) कार्य्य। (१२) कारण। (१३) उपाय। (१४) राजकर्मचारी। (१५) राज्य। (१६) राज्य का प्रबंध। (१७) सेना। फौज। (१८) अधिकार। (१९) पद। कार्य्य करने का स्थान। (२०) समूह। (२१) प्रसन्नता। आनंद। (२२) घर। मकान। (२३) धन। सम्पत्ति। (२४) अधीनता। परवश्यता। (२५) श्रेणी। वर्ग। कोटि। (२६) दल। (२७) उद्देश्य। (२८) कुल। खानदान। (२९) शपथ। कसम। (३०) हिंदुओं का उपासना संबंधी एक शास्त्र।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह शास्त्र शिव प्रणीत है। यह शास्त्र तीन भागों में विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य-तंत्र। वाराही-तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरश्चरण, षट्कर्म-साधन और चार प्रकार के ध्यान योग का वर्णन हो उसे आगम और जिसमें सृष्टि-तत्त्व, ज्योतिष, नित्य-कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णभेद और युगधर्म्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं और जिसमें सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय, देवताओं के संस्थान, यंत्र-निर्णय, तीर्थ आश्रमधर्म, कल्प, ज्योतिष-संस्थान, व्रत-कथा, शौच और अशौच स्त्री-पुरुष लक्षण, राजधर्म्म, दान-धर्म्म, युग धर्म्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, वह तंत्र कहलाता है। इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कलियुग में वैदिक मंत्रों जप और यज्ञों आदि का कोई फल नहीं होता; इस युग में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्र शास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है। इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है। आज कल प्रायः मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि के लिये तथा अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का ही है और इस के मंत्र

त

त–संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का बत्तीसवाँ, व्यंजन वर्ण का १६वाँ और तवर्ग का पहला अक्षर जिसका उच्चारण-स्थान दंत है। इसके उच्चारण में विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न लगते हैं। इसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है।

तं–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाव। नौका। (२) पुण्य। पवित्र।

तँई–प्रत्य० दे० 'तईं'।

तंक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय। डर। (२) वह दुःख जो किसी प्रिय के वियोग से हो। (३) पत्थर काटने की टाँकी। (४) पहनने का कपड़ा।

तँकारी–संज्ञा स्त्री० दे० "टंकारी"।

तंग–संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़ों की जीन कसने का तस्मा। घोड़ों की पेटी। कसन।

वि० (१) कसा। दृढ़। (२) आजिज़। दुखी। दिक़। विकल। हैरान। (३) सकरा। संकुचित। पतला। चुस्त। संकीर्ण। ओछा। छोटा। सिकुड़ा हुआ। सकेत।

मुहा०—तंग आना, होना=घबरा जाना। थक जाना। तंग करना=सताना। दुःख देना। हाथ तंग होना=पल्ले पैसा न होना। धनहीन होना।

तंगदस्त–वि० [फ़ा०] (१) कृपण। कंजूस। (२) दरिद्री। धनहीन। गरीब।

तंगदस्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) कृपणता। कंजूसी। (२) दरिद्रता। धनहीनता। गरीबी।

तंगहाल–वि० [फ़ा०] (१) निर्धन। गरीब। (२) विपद्ग्रस्त। कष्ट में पड़ा हुआ। (३) बीमार। रोगग्रस्त। मरणासन्न।

तंगा–संज्ञा पुं० [दे०] (१) एक प्रकार का पेड़। (२) अधन्ना। डबल पैसा।

तंगी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तंग या सँकरे होने का भाव। संकीर्णता। संकोच। (२) दुःख। तकलीफ। क्लेश। (३) निर्धनता। गरीबी। (४) कमी।

तंज़ेब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की महीन और बढ़िया मलमल।

तंड–संज्ञा पुं० [सं० तांडव] नृत्य। नाच। उ०—बहत गुलाब के सुगंध के समीर सने परत फुही है जल जंत्रन के तंड की। —रसकुसुमाकर।

संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तंडक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंजन पक्षी। (२) फेन। (३) पेड़ का तना। (४) वह वाक्य जिसमें बहुत से समास हों। (५) बहुरूपिया।

तंडव–संज्ञा पुं० [सं० तांडव] नृत्य विशेष। एक प्रकार का नाच। उ०—दोऊ रति पंडित अखंडित करत काम तंडव सो मंडित कला कहूँ पूरन की।—देव।

तंडि–संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका वर्णन महाभारत में आया है। इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र युजर्वेद में हैं।

तंडु–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव जी के नंदिकेश्वर।

तंडुरण–सं० पुं० [सं०] (१) चावल का पानी। (२) कीड़ा मकोड़ा।

तंडुल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चावल। (२) वायविडंग। (३) तंडुली शाक। चौलाई का साग। (४) प्राचीन काल की हीरे की एक तौल जो ८ सरसों के बराबर होती थी।

तंडुल-जल–संज्ञा पुं० [सं०] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत हितकर बतलाया गया है। यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(क) चावल को कूट कर अठगुने पानी में पका कर छान लेते हैं, यह उत्तम तंडुल-जल है। (ख) चावल को थोड़ी देर तक भिगो कर छान लेते हैं, यह तंडुल-जल साधारण है।

तंडुलांबु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंडुल-जल। (२) माँड़। पीच।

तंडुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वायविडंग। (२) ककही का पौधा।

तंडुलिया–संज्ञा स्त्री० [सं० तंडुल] चौलाई। चौराई।

तंडुली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की ककड़ी। (२) चौलाई का साग। (३) यवतिक्ता नाम की लता।

तंडुलीक–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

तंडुलीय–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

तंडुलीयक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायविडंग। (२) चौलाई का साग।

तंडुलीयिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वायविडंग।

तंडुलू–संज्ञा स्त्री० [सं० तंडुलु] वायविडंग। विडंग।

तंडुलेर, तंडुलेरक–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

तंडुलोत्थ–संज्ञा पुं० [सं०] चावल का पानी। दे० "तंडुल-जल"।

तंडुलोदक–संज्ञा पुं० [सं०] चावल का पानी। दे० "तंडुल-जल"।

तंडुलौघ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस।

तंत*†–संज्ञा पुं० दे० "तंतु"। उ०—किंकरी हाथ गहे वैरागी। पाँच तंत धुनि यह एक लागी।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरंत] किसी बात के लिये जल्दी। आतुरता। उतावली। उ०—ध्यान की मूरति आँखि ते आगे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति है तंत सों।—रघुनाथ।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा पुं० दे० 'तत्त्व'। उ०—योगिहि कोह न चाही तब न मोहिं रिस लाग। योग तंत ज्यों पानी काहि करै तेहि आग।—जायसी।

संज्ञा पुं० [सं० तंत्र] (१) वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों। जैसे, सितार, बीन, सारंगी। उ०—नटिन डोमिनि ढोलिनी सहनाइनि भेरिकार। निरतत तंत विनोद सउँ विहँसत खेलत नारि।—जायसी। (२) क्रिया। उ०—जनु उन योग तंत अब खेला।—जायसी। (३) तंत्र-शास्त्र। उ०—कई जिउ तंत मंत सउँ हेरा। गएउ हेराय जो वह

तंदुल*†–संज्ञा पुं० (१) दे० "तंदुल(१)"। उ०—तंदुल माँगि दै चिलाई सो दीन्हों उपहार। फाटे बसन बाँधि कै द्विजवर अति दुर्बल तनहार।—सूर। (२) दे० "तंदुल (२)"। उ०—आठ श्वेत सरसों को तंदुल जानिये। दश तंदुल परिमाण सुगुंजा मानिये।—रत्नपरीक्षा।

तंदुलीयक–संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का शाक। चौराई का साग।

तंदूर–संज्ञा पुं० [फा० तनूर] अँगीठी, चूल्हे या भट्ठी आदि की तरह का बना हुआ एक प्रकार का मिट्टी का बहुत बड़ा, गोल और ऊँचा पात्र जिसके नीचे का भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस में पहले लकड़ी आदि की खूब तेज आँच सुलगा देते हैं और जब वह खूब तप जाता है तब उसकी दीवारों पर भीतर की ओर मोटी मोटी रोटियाँ चिपका देते हैं जो थोड़ी देर में सिक कर लाल हो जाती हैं। कभी कभी जमीन में गड्ढा खोद कर भी तंदूर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—तंदूर झोंकना = भाड़ झोंकना। निकृष्ट काम करना।

तंदूरी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो मालदह से आता है। इसका रंग पीला होता है और यह अत्यंत बारीक और मुलायम होता है। यह किरची से कुछ घटिया होता है।

वि० [हिं० तंदूर + ई० (प्रत्य०)] तंदूर संबंधी। जैसे, तंदूरी रोटी।

तंदेही–संज्ञा स्त्री० [फा० तनदिही] (१) परिश्रम। मेहनत। (२) प्रयत्न। कोशिश। (३) ताकीद। किसी काम को करने के लिये बार बार चेतावनी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

तंद्रवाप, तंद्रवाय–संज्ञा पुं० दे० "तंतुवाय"।

तंद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह अवस्था जिसमें बहुत अधिक नींद मालूम पड़ने के कारण मनुष्य कुछ कुछ सो जाय। ऊँघाई। ऊँघ। (२) वह हलकी बेहोशी जो चिंता, भय, शोक या दुर्बलता आदि के कारण हो। वैद्यक के अनुसार इसमें मनुष्य को व्याकुलता बहुत होती है, इंद्रियों का ज्ञान नहीं रह जाता, जँभाई आती है, उसका शरीर भारी जान पड़ता है, उससे बोला नहीं जाता तथा इसी प्रकार की दूसरी बातें होती हैं। तंद्रा और कटु तिक्त या कफनाशक वस्तु खाने और व्यायाम आदि करने से दूर होती है।

क्रि० प्र०—आना।

तंद्रालु–वि० [सं०] जिसे तंद्रा आती हो।

तंद्रि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "तंद्रा"।

तंद्रिकसन्निपात–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा सन्निपात ज्वर जिसमें ऊँघाई विशेष आवे, ज्वर वेग से चढ़े, प्यास विशेष लगे, जीभ काली हो कर खुर खुरी हो जाय, दम फूले, दस्त विशेष हो, जलन न हो और कान में दर्द रहे। इसकी अवधि २५ दिन है।

तंद्रिका–संज्ञा स्त्री० दे० "तंद्रा"।

तंद्रिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंद्रा में होने का भाव।

तंद्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंद्रा। (२) भृकुटी। भौंह। भ्रू।

तंपा–संज्ञा स्त्री० [सं० तम्पा] गौ। गाय।

तंबा–संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बा] गौ। गाय।

संज्ञा पुं० [फा० तंबान] बहुत चौड़ी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा। उ०—तंबा सूथन सरो जाँघिया तनियाँ घघरा। पगरी चीरा ताजगोस बंदा सिर बगला।—सूदन।

तंबाकू–संज्ञा पुं० दे० "तमाकू"।

तंबाकूगर–संज्ञा पुं० [हिं० तंबाकू + फा० गर] तमाकू बनानेवाला।

तंबिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय।

तंबिया–संज्ञा पुं० [हिं० ताँबा + इया (प्रत्य०)] (१) ताँबे का बना हुआ छोटा तसला या इसी प्रकार का और कोई गोल बरतन। (२) किसी प्रकार का तसला।

तँबियाना–क्रि० अ० [हिं० ताँबा] (१) ताँबे के रंग का होना। (२) ताँबे के बरतन में रहने के कारण किसी पदार्थ में ताँबे का स्वाद या गंध आ जाना।

तंबीर–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग।

तंबीह–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ऐसी सूचना या क्रिया आदि जिसके कारण कोई मनुष्य आगे के लिये सावधान रहे। नसीहत। शिक्षा। (२) दंड। सजा। (क्व०)

तंबू–संज्ञा पुं० [हिं० तनना] (१) कपड़े, टाट, कनवस आदि का बना हुआ वह बड़ा घर जो खंभों पर तना रहता है और जिसे एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं। खेमा। डेरा। शिविर। शामियाना।

विशेष—साधारणतः तंबू का व्यवहार जंगलों में शिकार आदि के समय रहने अथवा नगरों में सार्वजनिक सभाएँ, खेल, तमाशे और नाच आदि करने के लिये होता है।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—तानना।

(२) एक प्रकार की मछली जो बाँस की तरह की होती है।

तंबूर–संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का छोटा ढोल।

संज्ञा पुं० दे० "तंबूरा"।

तंबूरची–संज्ञा पुं० [फा० तंबूर + ची (प्रत्य०)] तंबूर बजानेवाला।

तंबूरा–संज्ञा पुं० [हिं० तानपूरा या तुम्बुरु (गंधर्व)] बीन या सितार की तरह का एक बहुत पुराना बाजा जो आलापचारी में केवल सुर का सहारा देने के लिये बजाया जाता है। इससे राग के बोल नहीं निकाले जाते। इसमें बीच में लोहे के दो तार होते हैं जिनके दोनों ओर दो और तार पीतल के

प्रायः अर्थहीन और एकाक्षरी हुआ करते हैं। जैसे, ह्रीं, क्लीं, श्रीं, स्त्रीं, शूं, फ्रूं आदि। तांत्रिकों का पंच मकार—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है। तांत्रिक सब देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सब से भिन्न और स्वतंत्र होता है। चक्र-पूजा तथा अन्य अनेक पूजाओं में तांत्रिक लोग मद्य, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन करते हैं। यद्यपि अथर्ववेद संहिता में मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदि का वर्णन और विधान है तथापि आधुनिक तंत्र का उसके साथ कोई संबंध नहीं है। कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय में और उसके उपरांत भारत में आधुनिक तंत्र का प्रचार हुआ है। चीनी यात्री फ़ाहियान और हुएनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह ईसवी चौथी या पाँचवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। हिंदुओं की देखा देखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और तत्संबंधी अनेक ग्रंथ बने। हिंदू तांत्रिक उन्हें उपतंत्र कहते हैं और उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन में है। वाराहीतंत्र में यह भी लिखा है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है।

तंत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] नया कपड़ा।

तंत्रण—संज्ञा पुं० [सं०] शासन या प्रबंध आदि करने का काम।

तंत्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना। कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों। जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें से प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्रायश्चित्त करना जिससे सब पाप नष्ट हो जायँ, अथवा बार बार अस्पृश्य होने की दशा में प्रत्येक बार स्नान न करके सब के अंत में एक ही बार स्नान कर लेना। (धर्मशास्त्र)

तंत्रधारक—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्म कांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ बैठता हो। स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि में ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है।

तंत्रयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह युक्ति जिसकी सहायता से किसी वाक्य का अर्थ आदि निकालने या समझने में सहायता ली जाय।

विशेष—सुश्रुत संहिता में तंत्रयुक्तियाँ इस प्रकार की बताई गई हैं—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, प्रदेश, अतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्य्यय, प्रसंग, एकांत, अनेकांत, पूर्वपक्ष, निर्णय, अनुमत, विधान, अनागतावेक्षण, अतिक्रांतावेक्षण, संशय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्वचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह्य।

तंत्रवाप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतुवाय। ताँती। (२) मकड़ी।

तंत्रवाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतुवाय। ताँती। (२) मकड़ी। (३) ताँत।

तंत्रसंस्था—संज्ञा पुं० [सं०] वह संस्था जो राज्य का शासन या प्रबंध करे। गवर्मेंट।

तंत्रसंस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य के शासन की प्रणाली।

तंत्रस्कंद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का वह अंग जिसमें गणित के द्वारा ग्रहों की गति आदि का निरूपण होता है। गणित ज्योतिष।

तंत्रहोम—संज्ञा पुं० [सं०] वह होम जो तंत्र-शास्त्र के मत से हो।

तंत्रा—संज्ञा स्त्री० दे० "तंद्रा"।

तंत्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्री। (२) तंद्रा।

तंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुडूची। गुरुच। (२) ताँत।

तंत्रिपाल—संज्ञा पुं० दे० "तंतिपाल"।

तंत्रिपालक—संज्ञा पुं० [सं०] जयद्रथ का एक नाम।

तंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बीन सितार आदि बाजों में लगा हुआ तार। (२) गुडूची। गुरुच। (३) शरीर की नस। (४) एक नदी का नाम। (५) रज्जु। रस्सी। (६) वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों। तंत्र। जैसे सितार, बीन, सारंगी आदि। (७) वीणा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बाजा बजाता हो। (२) वह जो गाता हो। गवैया। उ०—तंत्री काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति। दुविधा दुंदुभि है निसिवासर उपजावति विपरीति।—सूर।

वि० [सं०] (१) आलसी। (२) अधीन।

तंत्रीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की एक मुद्रा या अवस्थान।

तंदरा*†—संज्ञा स्त्री० दे० "तंद्रा"। उ०—तारकेश ताथि जुन्हाई ज्यों तरुण तम तरुणी तपो ज्यों तरुण ज्वर तंदरा।—देव।

तंदान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया अंगूर जो क्वेटा के आस पास होता है और जिसको सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

तंदिही—संज्ञा स्त्री० दे० "तंदेही"।

तंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में ही जमती है और चारे के काम में आती है। यह ऊसर जमीन में खाद का भी काम देती है।

तंदुरुस्त—वि० [फ़ा०] जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे कोई रोग या बीमारी न हो। नीरोग। स्वस्थ।

तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शरीर की आरोग्यता। नीरोग होनेकी अवस्था या भाव। (२) स्वास्थ्य।

तक–अव्य० [सं० त्व+क] एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवधि सूचित करती है। पर्यंत। जैसे, वे दिल्ली तक गए हैं, परसों तक ठहरो, दस रुपए तक दे देंगे। उ०—जो पत्र तकिया छोड़ि इत सकै न सुव तक आइ। दरस भीख उन कौं कहा दीजत नहिं पहुँचाइ।—रसनिधि।

संज्ञा स्त्री० [पं० तकड़ी] (१) तराजू। (२) तराजू का पल्ला।

संज्ञा स्त्री० दे० "टक"। उ०—अति बल जल बरसत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहि तक।—तुलसी।

तकड़–वि० दे० "तगड़ा"।

तकड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है। इसे घोड़े बहुत चाव से खाते हैं। इसकी फसल साल में ६ या ७ बार हुआ करती है। चमरा। ईन।

†संज्ञा स्त्री० तराजू। (पंजाब)

तक़दमा–संज्ञा पुं० [अ० तक़दमीना] किसी चीज़ की तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय। तख़मीना।

तक़दीर–संज्ञा स्त्री० [अ०] अंदाज़ा। मेक़दार। भाग्य। प्रारब्ध। क़िस्मत। नसीब।

यौ०—तक़दीरवर।

विशेष—"तक़दीर" के मुहाविरों के लिये देखो "क़िस्मत" के मुहाविरे।

तक़दीरवर–वि० [अ० तक़दीर+फ़ा० वर] जिसका भाग्य बहुत अच्छा हो। भाग्यवान्।

तकन–संज्ञा स्त्री० [हिं० तकना] ताकने की क्रिया या भाव। देखना। दृष्टि।

तकना * †–क्रि० अ० [हिं० ताकना] (१) देखना। निहारना। अवलोकन करना। उ०—(क) देखि जागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती।—तुलसी। (ख) कहि हरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत न भोर पाट।—स्वामी हरिदास। (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किये बलबीर बिहारी।—सुंदरीसर्वस्व। (२) शरण लेना। पनाह लेना। आश्रय लेना। उ०—देखन तके मेरु गिरि खोहा।—तुलसी।

तकमा †–संज्ञा पुं० (१) दे० "तमगा"। (२) दे० "तुकमा"।

तकमील–संज्ञा स्त्री० [अ०] पूरा होने की क्रिया या भाव। पूर्णता।

तकरमल्ही–संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया। (गढ़वाल)

तकरार–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी बात को बार बार कहना। हुज्जत। विवाद। (२) झगड़ा। टंटा। लड़ाई। (३) कविता में किसी वर्णन को दोहराना। (४) चावल का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के जोता गया हो। (५) वह खेत जिसमें जौ चना गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो।

तक़रीर–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बातचीत। गुफ़्तगू। (२) वक्तृता। लेक्चर। भाषण।

तक़रीब–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह शुभ कार्य जिसमें कुछ लोग सम्मिलित हों। उत्सव। जलसा।

तकर्रुरी–संज्ञा स्त्री० [अ०] मुक़र्रर होने की क्रिया या भाव। नियुक्ति।

तकला–संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] (१) लोहे की वह सलाई जो सूत कातने के चरखे में लगी होती है और जिस पर सूत लिपटता जाता है। टेकुआ। (२) बटियों की टेकुरी की सलाई जिस पर कलाबत्तू बट कर चढ़ाते जाते हैं। (३) सुनारों की सिकरी बनाने की सलाई। (४) रस्सा या रस्सी बनाने की टिकुरी।

मुहा०—किसी के तकले से बल निकालना=सारी शेखी या पाजीपन दूर करना। अच्छी तरह दुरुस्त या ठीक करना।

तकली–संज्ञा स्त्री० [हिं० तकला] छोटा तकला या टेकुरी।

तकलीफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कष्ट। क्लेश। दुःख। जैसे, (क) आज कल वह बड़ी तकलीफ़ से अपने दिन बिताते हैं। (ख) इस तोते को पिंजड़े में बड़ी तकलीफ़ है। (२) विपत्ति। मुसीबत।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना।—मिलना।—सहना।

तकल्लुफ़–संज्ञा पुं० [अ०] शिष्टाचार। दिखाने आदि के लिये कष्ट उठा कर कोई काम करना।

मुहा०—तकल्लुफ़ का=बहुत अच्छा। बढ़िया या सजा हुआ।

तकवाना–क्रि० स० [हिं० तकना का प्रे०] ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना।

तकवाही†–संज्ञा स्त्री० दे० "तकाई"।

तकसो†–संज्ञा स्त्री० [?] नाश। दुर्दशा।

तक़सीम–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बाँटने की क्रिया या भाव। बँटाई। (२) गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बाँटी जाय। भाग।

क्रि० प्र०—देना।

तक़सीर–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अपराध। दोष। क़सूर। (२) भूल। चूक।

तकाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना+ई० (प्रत्य०)] (१) ताकने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो ताकने के बदले में दिया जाय।

तक़ाज़ा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) ऐसी चीज़ माँगना जिसके पाने का अधिकार हो। तगादा। जैसे, जाओ, उनसे रुपयों का तक़ाज़ा करो। (२) कोई ऐसा काम करने के लिये कहना जिसके लिये वचन मिल चुका हो। जैसे, बहुत दिनों से उनका

होते हैं। तानपूरा। कुछ लोग कहते हैं कि इसे तुंबुरु गंधर्व ने बनाया था इसीसे इसका नाम तंबूरा पड़ा है। इसकी जवारी पर तारों के नीचे सूत रख देते हैं जिसके कारण उनसे निकलनेवाले स्वर में कुछ झंझनाहट आजाती है।

तंबूरा तोप–संज्ञा स्त्री० [हिं० तंबूरा+तोप] एक प्रकार की बड़ी तोप।

तंबूल*†–संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] पान। तांबूल।

तंबेरम–संज्ञा पुं० [डिं०] हाथी।

तंबोरा–संज्ञा पुं० दे० "तमोरा"

तंबोल–संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] (१) दे० "तांबूल" और "तमोल"। (२) एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते लिसोड़े के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। (३) वह टीका जो बरात के समय वर को दिया जाता है। (पंजाब)। (४) वह धन जो विवाह या बरात के न्योते के साथ मार्ग-व्यय के लिये भेजा जाता है। (बुंदेलखंड)। (५) वह खून जो लगाम की रगड़ के कारण घोड़े के मुँह से निकलता है। (साईस)

क्रि० प्र०—आना।

तँबोलिन†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तँबोली की स्त्री] पान बेचनेवाली स्त्री। बरइन।

तँबोलिया–संज्ञा स्त्री० [तंबूल+इया (प्रत्य०)] पान के आकार की एक प्रकार की मछली जो प्रायः गंगा और जमुना में पाई जाती है।

तँबोली–संज्ञा पुं० [हिं० तंबोल+ई (प्रत्य०)] वह जो पान बेचता हो। पान बेचनेवाला। बरई।

तंभ*–संज्ञा पुं० [सं० स्तंभ] शृंगार रस के १० सात्विक भावों में से एक। स्तंभ। उ०—मोहति सुरति आंसू स्वेद तंभ पुलक विवर्न कंप सुरभंग मूरछि परति है।—देव।

तंभन–संज्ञा पुं० [सं० स्तंभन] शृंगार रस के १० सात्विक भावों में से एक। स्तंभन। उ०—आरंभन तंभन सदंभ परिरंभन कचगृह संरंभन चुंबन घनेरे हैं।—देव।

तंभावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के दूसरे पहर में गाई जाती है।

तँवार–संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] (१) सिर में आनेवाला चक्कर। घुमटा। घुमेर। (२) हरारत। ज्वरांश।

क्रि० प्र०—आना।—खाना।

तँवारी–संज्ञा स्त्री० दे० "तँवार"।

त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नौका। नाव। (२) पुण्य। (३) चोर। (४) झूठ। (५) पूँछ। दुम। (६) गोद। (७) म्लेच्छ। (८) गर्भ। (९) शठ। (१०) रत्न। (११) बुद्ध। (१२) अमृत।

*†–क्रि० वि० [सं० तद्, हिं० तो] तो। उ०—(क) अब पाएउँ मानुस कइ भाखा। नाहिं त पंखि मूठि भर पाँखा।—जायसी। (ख) हमहूँ कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।—तुलसी। (ग) करतेहु राज त तुमहिं न दोपू। रामहि होत सुनत संतोपू।—तुलसी।

तअज्जुब–संज्ञा पुं० [अ०] आश्चर्य्य। विस्मय। अचंभा।

क्रि० प्र०—करना।—में आना।—होना।

तअम्मुल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सोच। फिक्र। विचार (२) देर। अरसा। (३) सब्र। धैर्य्य।

तअल्लुक–संज्ञा पुं० [अ०] इलाका। संबंध। लगाव।

तअल्लुकः–संज्ञा पुं० [अ०] बहुत से मौजों की जमींदारी। बड़ा इलाका।

यौ०—तअल्लुकःदार।

तअल्लुकःदार–संज्ञा पुं० [अ०] इलाकेदार। तअल्लुके का मालिक। तअल्लुकःदारी।

संज्ञा स्त्री० तअल्लुकःदार का पद।

तअल्लुका–संज्ञा पुं० दे० "तअल्लुकः"।

तअल्लुकादार, तअल्लुकेदार–संज्ञा पुं० दे० "तअल्लुकःदार"।

तअल्लुकेदारी–संज्ञा स्त्री० दे० "तअल्लुकःदारी" का पद।

तअस्सुब–संज्ञा पुं० [अ०] पक्षपात, विशेषतः धर्म या जाति संबंधी पक्षपात।

तइक–संज्ञा पुं० [देश०] चमार। (सोनारों की बोली)

तइनात–संज्ञा पुं० दे० "तैनात"।

तइसा†–वि० दे० "तैसा" या "वैसा"। उ०—जस हींछा मन जेहि कइ सो तइसइ फल पाउ।—जायसी।

तइँ*–प्रत्य० [हिं० तें*] से। उ०—कीन्हेसि कोइ निभरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार। छारहिं तइँ सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार।—जायसी।

प्रत्य० [प्रा० हुंतो] प्रति। को। से। (क्व०)। जैसे, मैंने आपके तइँ कह रखा था। उ०—कोऊ कहै हरि रीति सब तई। और मित्रन का सब सुख दई।—सूर।

अव्य० [सं० तावत्] लिये। वास्ते।

तई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा या तया का स्त्री०] एक प्रकार की छिछली कड़ाही। इसका आकार थाली का सा होता है और इसमें कड़े लगे होते हैं। इसमें प्रायः जलेबी या मालपुआ ही बनाया जाता है।

तउ*†–अव्य० (१) दे० "तब"। (२) दे० "त्यों"। उ०—भा परलउ नियराना जउहीं। मरइ सो ता कह परलउ तउहीं।—जायसी।

तऊ*†–अव्य० [हिं० तब+ऊ (प्रत्य०)] तौ भी। तिस पर भी। तब भी। तथापि।

प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट अनार्यों को हिंदू लोग तक्षक या नाग कहा करते थे और ये लोग सम्भवतः शक थे। तिब्बत, मंगोलिया और चीन के निवासी अब तक अपने आप को तक्षक या नाग के वंशधर बतलाते हैं। महाभारत के युद्ध के उपरांत धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तर-पश्चिम भारत में तक्षक लोगों का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिकंदर के भारत आने के समय तक, राज्य रहा। इनका जातीय चिह्न सर्प था। ऊपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है उसके संबंध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पांडवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिसमें तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मारे गए थे और अंत में जनमेजय ने फिर तक्षशिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यही घटना जनमेजय के सर्प-यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई।

(२) साँप। सर्प। (३) विश्वकर्मा। (४) सूत्रधार। (५) दस वायुओं में से एक। नागवायु। उ०—प्रान, अपान, व्यान, उदान और कहियत प्राण समान। तक्षक, धनंजय पुनि देवदत्त और पौंड्रक शंख द्युमान।—सूर। (६) एक प्रकार का पेड़। (७) प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिस का वर्णन भागवत में आया है। (८) एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति सूचिक पिता और ब्राह्मणी माता से मानी गई है।

वि० छेदनेवाला। छेदक।

तक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लकड़ी को साफ़ करने का काम। रंदा करने का काम। (२) बढ़ई। (३) लकड़ी पत्थर आदि में खोद कर मूर्त्तियाँ और बेल-बूटे बनाने का काम। लकड़ी पत्थर आदि गढ़ कर मूर्त्तियाँ बनाना।

तक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़इयों का वह औज़ार जिससे वे लकड़ी छील कर साफ़ करते हैं। रंदा।

तक्षशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भारत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी। विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में इसके आस पास के प्रदेश में तक्षक लोगों का राज्य था, इसीलिए इस नगरी का नाम भी तक्षशिला पड़ा था। महाभारत में लिखा है कि यह स्थान गांधार में है। अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास ज़मीन खोद कर निकाला गया है। वहाँ बहुत से बौद्ध-मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं। महाभारत में लिखा है कि जनमेजय ने यहीं सर्प-यज्ञ किया था। सिकंदर जिस समय भारत में आया था उस समय यहाँ के राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था। कुछ समय तक इसके आस पास का प्रदेश अशोक के शासन में था। अनेक यूनानी तथा चीनी यात्रियों ने तक्षशिला के वैभव और विस्तार आदि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। बहुत दिनों तक यह नगरी पश्चिम भारत का प्रधान विद्यापीठ थी। दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे। चाणक्य यहीं का था।

तक्षा—संज्ञा पुं० [सं० तक्षन्] बढ़ई।

तख़फ़ीफ़—संज्ञा स्त्री० [अ०] कमी। न्यूनता।

तख़मीनन्—क्रि० वि० [अ०] अंदाज़ से। अटकल से। अनुमान से।

तख़मीना—संज्ञा पुं० [अ०] अंदाज़। अनुमान। अटकल।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

तखरी—संज्ञा स्त्री० दे० "तकड़ी"।

तख़लिया—संज्ञा पुं० [अ०] एकांत स्थान। निर्जन स्थान।

तखान—संज्ञा पुं० [सं० तक्षण] बढ़ई।

तखिहा—वि० [अ० ताक़] वह बैल जिसकी दोनों आँखें दो रंग की हों।

तखीत—संज्ञा स्त्री० [अ० तहक़ीक़] (१) तलाशी। (२) तहक़ीकात। (बरा०)

तख़्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) राजा के बैठने का आसन। सिंहासन। (२) तख़्तों की बनी हुई बड़ी चौकी।

यौ०—तख़्त की रात=सोहाग रात। (मुसल०)

तख़्तरवाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह तख़्त जिस पर बादशाह सवार होकर निकलता हो। हवादार। (२) वह तख़्त या बड़ी चौकी जिस पर शादियों में बरात के आगे रंडियाँ, नाचनेवाले या लौंडे नाचते हुए चलते हैं। (३) उड़नखटोला।

तख़्त ताऊस—संज्ञा पुं० [फ़ा० + अ०] एक प्रसिद्ध राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रुपए लगा कर बनवाया था। इसके ऊपर एक जड़ाऊ मोर पंख फैलाए हुए खड़ा था। इस तख़्त को सन् १७३९ ई० में नादिरशाह लूट कर ले गया।

तख़्तनशीन—वि० [फ़ा०] सिंहासनारूढ़। जो राजसिंहासन पर बैठा हो।

तख़्तपोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) तख़्त या चौकी पर बिछाने की चादर। (२) चौकी। तख़्त।

तख़्तबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तख़्तों की बनी हुई दीवार। (२) तख़्तों की दीवार बनाने की क्रिया।

तख़्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख़्तः] (१) लकड़ी का वह चीरा हुआ लंबा चौड़ा और चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई अधिक न हो। बड़ा पटरा। पल्ला।

मुहा०—तख़्ता उलटना=(१) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट हो जाना। किसी बने बनाए काम का बिगड़ जाना। (२) किसी प्रबंध को नष्ट भ्रष्ट करना। बना बनाया काम बिगाड़ना। तख़्ता हो जाना=ऐंठ या अकड़ जाना। तख़्ते की तरह जड़ हो जाना।

तक़ाज़ा है, चलो आज उनके यहाँ हो आएँ। (३) किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा। जैसे, उम्र या वक्त का तक़ाज़ा।

तकान-संज्ञा स्त्री० दे० "थकान" या "थकावट"।

तकाना-क्रि० स० [हिं० ताकना का प्रे०] ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना। दिखाना। क्रि० अ० किसी ओर को रुख करना। किसी ओर को भागना या जाना। जैसे, उसने जंगल का रास्ता तकाया।

तक़ावी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह धन जो जमींदार, राजा या सरकार की ओर से गरीब खेतिहरों को खेती के औजार बनवाने, बीज खरीदने या कुआँ आदि बनवाने के लिये ऋण स्वरूप दिया जाय।

क्रि० प्र०—बाँटना।—देना।

(२) इस प्रकार का ऋण देने की क्रिया।

तकिया-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कपड़े का बना हुआ वह लंबोतरा, गोल या चौकोर थैला जिसमें रुई, पर आदि भरते हैं और जिसे सोने लेटने आदि के समय सिर के नीचे रखते हैं। बालिश। (२) पत्थर की वह पटिया आदि जो छज्जे, रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है। मुतक्का। (३) विश्राम करने या आश्रय लेने का स्थान। (४) आश्रय। सहारा। आसरा। उ०—तँह तुलसी के कौल को काको तकिया रे।—तुलसी।

यौ०—तकिया-कलाम।

(५) वह स्थान विशेषतः शहर के बाहर या कब्रिस्तान के पास का स्थान जहाँ कोई मुसलमान फकीर रहता हो। (६) चारजामाँ। (लश०)

तकिया-कलाम-संज्ञा पुं० दे० "सखुनतकिया"।

तकियादार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मज़ार पर रहनेवाला मुसलमान फकीर।

तकिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूर्त्त। (२) औषध।

तकिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] औषध। दवा।

तकुआ-संज्ञा पुं० दे० "तकला"।

संज्ञा पुं० [हिं० ताकना + उआ (प्रत्य०)] ताकनेवाला। देखनेवाला।

तकैया-संज्ञा पुं० [हिं० ताकना + ऐया (प्रत्य०)] ताकने वा देखनेवाला।

तकोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तक्मा-संज्ञा स्त्री० [सं० तक्मन्] (१) वसंत नामक चर्म्म रोग। (२) शीतला देवी।

तक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मट्ठा। छाछ। मठा। उ०—छलकत तक्र उफनि अँग आवत नहिं जानति तेहि कालहि सों।—सूर। (२) शहतूत के पेड़ का एक रोग।

तक्रकूर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध। छेना।

तक्रपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] फटा हुआ दूध। छेना।

तक्रभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

तक्रप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें छाछ का सा श्वेत मूत्र होता है; और मट्ठे की सी गंध आती है।

तक्रमांस-संज्ञा पुं० [सं०] मांस का रसा। अखनी।

तक्रवामन-संज्ञा पुं० [सं०] नागरंग।

तक्रसंधान-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की काँजी जिसे सौ टके भर छाछ में एक एक टके भर साँभर नमक, राई और हलदी का चूर्ण डाल कर बनाते हैं। यह काँजी पहले पंद्रह दिन तक पड़ी रहने दी जाती है तब तैयार होती है। ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह नित्य दो दो टंक पीई जाय तो तापतिल्ली अच्छी हो जाती है।

तक्रसार-संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन।

तक्राट-संज्ञा पुं० [सं०] मथानी।

तक्रार-संज्ञा स्त्री० दे० "तकरार"।

तक्रारिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का अरिष्ट जो मट्ठे में हड़ और आँवले आदि का चूर्ण मिला कर बनाया जाता है। यह संग्रहणी रोग का नाशक और अग्निदीपक माना जाता है।

तक्राह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप।

तक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामचंद्र के भाई भरत का बड़ा पुत्र। (२) वृक के पुत्र का नाम। (३) पतला करने की क्रिया।

तक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाताल के आठ नागों में से एक नाग जो कश्यप का पुत्र था और कद्रु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। शृंगी ऋषि का शाप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काटा था। इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत बिगड़े और उन्होंने संसार भर के साँपों का नाश करने के लिये सर्पयज्ञ आरंभ किया। तक्षक इससे डर कर इंद्र की शरण में चला गया। इस पर जनमेजय ने अपने ऋत्विकों को आज्ञा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़े तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मँगाओ और भस्म कर दो। ऋत्विकों के मंत्र पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिँचने लगे। तब इंद्र ने डर कर तक्षक को छोड़ दिया। जब तक्षक खिँच कर अग्निकुंड के समीप पहुँचा तब आस्तीक ने आकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गए।

विशेष—आज कल के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी। नाग जाति के लोग अपने आप को तक्षक की संतान ही बतलाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सर्प का पूजन करते थे। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि

तच्छ—संज्ञा पुं० दे० "तक्ष"।

तच्छक—संज्ञा पुं० दे० "तक्षक"।

तच्छिन*—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] उसी समय। तत्काल।

तज—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] (१) तमाल और दारचीनी की जाति का मझोले कद का एक सदाबहार पेड़ जो कोचीन, मलाबार, पूर्वी बंगाल, खासिया की पहाड़ियों और बरमा में अधिकता से होता है। भारत के अतिरिक्त यह चीन, सुमात्रा और जावा आदि स्थानों में भी होता है। खासिया और जयंतिया की पहाड़ियों में यह पेड़ अधिकता से लगाया जाता है। जिन स्थानों पर समय समय पर गहरी वर्षा के उपरांत कड़ी धूप पड़ती है वहाँ यह बहुत जल्दी बढ़ता है। इसके पेड़ प्रायः पाँच पाँच हाथ की दूरी पर बीज से लगाए जाते हैं और जब पेड़ पाँच वर्ष के हो जाते हैं तब वहाँ से हटा कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। छोटे पौधे प्रायः बड़े पेड़ों या झाड़ियों आदि की छाया में ही रखे जाते हैं। बाजारों में मिलनेवाला तेज पत्ता। दे० "तेजपत्ता" = इस पेड़ का पत्ता और तज (लकड़ी) इसकी छाल है। कुछ लोग इसे और दारचीनी के पेड़ को एक ही मानते हैं, पर वास्तव में यह उससे भिन्न है। इस वृक्ष में डालियों की फुनगियों पर सफेद फूल लगते हैं जिनमें गुलाब की सी सुगंध होती है। इसके फल करौंदे के से होते हैं जिनमें से तेल निकाला जाता है और इत्र तथा अर्क बनाया जाता है। यह वृक्ष प्रायः दो वर्ष तक रहता है। तमाल। (२) इस पेड़ की छाल जो बहुत सुगंधित होती है और औषध के काम में आती है। वैद्यक में इसे चरपरा, शीतल, हलका, स्वादिष्ट; कफ, खाँसी, आम, कंडु, अरुचि, कृमि, पीनस आदि को दूर करनेवाला, पित्त तथा धातुवर्द्धक और बलकारक माना है।

पर्य्या०—भृंग। वरांग। रामेष्ट। विज्जुल। त्वच। उत्कट। चोल। सुरभिवल्कल। सूतकट। मुखशोधन। सिंहल। सुरस। कामवल्लभ। बहुगंध। वनप्रिय। लटपर्ण। गंधवल्कल। वर। शीत। रामवल्लभ।

तज़किरा—संज्ञा पुं० [अ०] चर्चा। ज़िक्र।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—छिड़ना।—होना।

तजगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तेजगरी] सिकलीगरों की दो अंगुल चौड़ी और अनुमान डेढ़ बालिश्त लंबी लोहे की पटरी जिस पर तेल गिरा कर रंदा तेज करते हैं।

तजन*†—संज्ञा पुं० [सं० त्यजन] तजने की क्रिया या भाव। त्याग। परित्याग।

संज्ञा पुं० [सं० तर्जन] कोड़ा या चाबुक।

तजना—क्रि० स० [सं० त्यजन] त्यागना। छोड़ना। उ०—(क) सब तज, हर भज। (ख) तजहु आस निज निज गृह जाहू।—तुलसी।

तजरबा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह ज्ञान जो परीक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय। अनुभव। जैसे, मैंने सब बातें अपने तजरबे से कही हैं।

यौ०—तजरबेकार = जिसने परीक्षा द्वारा अनुभव प्राप्त किया हो। अनुभवी।

(२) वह परीक्षा जो ज्ञान प्राप्त करने के लिये की जाय। जैसे, आप पहले तजरबा कर लीजिए तब लीजिए।

तजरबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तजरबा + फ़ा० कार] जिसने तजरबा किया हो।

तजरबाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तजरबा + फ़ा० कारी] अनुभव।

तजरुबा—संज्ञा पुं० दे० "तजरबा"।

तजरुबाकार—संज्ञा पुं० दे० "तजरबाकार"।

तजरुबाकारी—संज्ञा स्त्री० दे० "तजरबाकारी"।

तजवीज़—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सम्मति। राय। (२) फैसला। निर्णय। (३) बंदोबस्त। इंतिज़ाम। प्रबंध।

तजवीज़सानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी अदालत में उसी अदालत के किए हुए किसी फ़ैसले पर फिर से होनेवाला विचार। एक ही हाकिम के सामने होनेवाला पुनर्विचार।

तजिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकड़ी] बहुत छोटा तराजू। काँटा।

तज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री।

तज्ञ—वि० [सं०] (१) तत्त्वज्ञ। तत्व का जाननेवाला। उ०—देव तज्ञ सर्वज्ञ जज्ञेश अच्युत विभो विश्व भवदंश-संभव पुरारी।—तुलसी। (२) ज्ञानी।

तटंक—संज्ञा पुं० [सं० तटंक] कर्णफूल। कनफूल नामक कान का आभूषण। उ०—चलि चलि आवत श्रवण निकट अति सकुचि तटंक फँदा ते।—सूर।

तट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षेत्र। खेत। (२) प्रदेश। (३) तीर। किनारा। कूल। (४) शिव। महादेव।

क्रि० वि० समीप। पास। नजदीक। निकट।

तटका—वि० दे० "टटका"। उ०—निसि के उनींदे नैना तैसे रहे ढरि ढरि। किधौं कहूँ प्यारी को तटकी लागी नजरि।—सूर।

तटग—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग।

तटनी*—संज्ञा स्त्री० [सं० तटिनी] (तटवाली) नदी। सरिता। दरिया। उ०—(क) मंदाकिनि तटनि तीर मंजु मृग विहंग भीर धीर मुनि गिरा गँभीर साम गान की।—तुलसी। (ख) कदम विटप के निकट तटनी के आय अटा आय अटा चढ़ि चाहि पीतपट फहरानि री।—रसखान।

तटस्थ—वि० [सं०] (१) तीर पर रहनेवाला। किनारे पर रहनेवाला। (२) समीप रहनेवाला। निकट रहनेवाला। (३) किनारे रहनेवाला। अलग रहनेवाला। (४) जो किसी का पक्ष ग्रहण न करे। उदासीन। निरपेक्ष।

(२) लकड़ी की बड़ी चौकी। तख़्त। (३) अरथी। टिखटी। (४) कागज का ताव। (५) खेतों या बागों में जमीन का वह अलग टुकड़ा जिसमें बीज बोए या पौधे लगाए जाते हैं। कियारी।

तख़्तापुल–संज्ञा पुं० [फ़ा० तख़्ता + पुल] पटरों का पुल जो किले की खंदक पर बनाया जाता है। यह पुल इच्छानुसार हटा भी लिया जा सकता है।

तख़्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तख़्तः] (१) छोटा तख़्ता। (२) काठ की वह पटरी जिस पर लड़के अक्षर लिखने का अभ्यास करते हैं। पटिया। (३) किसी चीज की छोटी पटरी।

तगड़ा–वि० [हिं० तन + कड़ा] [स्त्री० तगड़ी] (१) जिसमें ताकत ज्यादः हो। सबल। बलवान्। मजबूत। (२) अच्छा और बड़ा।

तगड़ी†–संज्ञा स्त्री० दे० "तागड़ी"।

तगण–संज्ञा पुं० [सं०] छंदः शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (ऽऽ।) वर्ण होता है।

तगदमा, तगदम्मा–संज्ञा पुं० [अ० तक़द्दुम] (१) व्यय आदि का किया हुआ अनुमान। तखमीना। (२) दे० "तकदमा"।

तगना–क्रि० अ० [हिं० तागना] तागा जाना।

तगपहनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा + पहनना] जुलाहों का एक औजार जो टूटा हुआ सूत जोड़ने में काम आता है।

तगमा–संज्ञा पुं० दे० "तमगा"।

तगर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, काश्मीर, भूटान और कोंकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है। भारत के बाहर यह मडगास्कर और जंजीबार में भी होता है। इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है। यह लकड़ी अगर की लकड़ी के स्थान पर तथा औषध के काम में आती है। लकड़ी काले रंग की और सुगंधित होती है और उसका बुरादा जलाने के काम में आता है। भावप्रकाश के अनुसार तगर दो प्रकार का होता है, एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं। इसकी पत्तियों के रस से आँख के अनेक रोग दूर होते हैं। वैद्यक में इसे उष्ण, वीर्य्य-वर्द्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष, अपस्मार, शूल, दृष्टि-दोष, विष-दोष, भूतोन्माद और त्रिदोष आदि का नाशक माना है।

पर्य्या०—वक्र। कुटिल। शठ। महोरग। नत। दीपन। विनम्र। कुंचित। घंट। नहुष। पार्थिव। राजहर्षण। क्षत्र। दीन। कालानुसारिवा। कालानुसारक।

(२) इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंध-द्रव्यों में होती है। इसके चबाने से दाँतों का दरद अच्छा हो जाता है। (३) मदनवृक्ष। मैनफल।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की शहद की मक्खी।

तगला–संज्ञा पुं० [हिं० तकला] (१) तकला। (२) दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलाहे साँथी मिलाते हैं।

तगसा–संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जिससे पहाड़ी प्रांतों में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिये पीटते हैं।

तगा*†–संज्ञा पुं० दे० "तागा"। उ०—प्रफुलित ह्वै कै आन दीन है यशोदा रानी झीनी ए झगुली तामें कंचन को तगा।—सूर।

संज्ञा पुं० एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है। इस जाति के लोग जनेऊ पहनते और अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं।

तगाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तागना] (१) तागने का काम। (२) तागने का भाव। (३) तागने की मज़दूरी।

तगाड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० गारा] [स्त्री० तगाड़ी] वह तसला या लोहे का छिछला बरतन जिसमें मसाला या चूना गारा रख कर जोड़ाई करनेवालों के पास ले जाते हैं।

तगादा–संज्ञा पुं० दे० "तकाजा"।

तगाना–क्रि० स० [हिं० तागना का प्रे०] तागने का काम कराना। दूसरे को तागने में प्रवृत्त करना।

तगार, तगारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) उखली गाड़ने का गड्ढा। (२) हलवाइयों का मिठाई बनाने का मिट्टी का बड़ा बरतन या नाँद। (३) चूना। गारा इत्यादि ढोने का तसला।

तगियाना–क्रि० स० दे० "तागना"।

तगीर*–संज्ञा पुं० [अ० तग़य्युर = परिवर्त्तन] बदलने की क्रिया या भाव। परिवर्त्तन। उ०—(क) अहदी गह रोग अनंता। जागीर तगीर करंता।—विश्राम। (ख) जोबन आमिल आइ कै भूसन कर तसवीर। घट बढ़ रकम बनाइ कै सिसुता करी तगीर।—रसनिधि।

तगीरी–संज्ञा स्त्री० [अ० तग़य्युर, हिं० तगीर] बदली। परिवर्त्तन। उ०—गैरहाजिरी लिखि है कोई। मन सब घटै तगीरी होई।—लाल कवि।

तघार, तघारी–संज्ञा स्त्री० दे० "तगार"।

तचना†–क्रि० अ० [हिं० तपना] तपना। तप्त होना। उ०—(क) तापन सों तचती विरहैं विन काज वृथा मन माँहि विदूषतीं।—प्रताप। (ख) मानों विधि अब उलटि रची री। जानत नहीं सखी काहे ते वही न तेज तची री।—सूर।

तचा†–संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचा] चमड़ा। खाल। त्वचा। उ०—तुम विन नाह रहै पै तचा। अब नहिं विरह गरुड़ पै बचा।—जायसी।

तचाना–क्रि० स० [हिं० तपाना] तपाना। जलाना। तप्त करना। संतप्त करना। उ०—अनल उचाट रूप लाट में तचाइ भारी कारीगर काम ने सुधारी अभिराम सान।—दीनदयालु।

तड़ाका—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) "तड़" शब्द। जैसे, न जाने कहाँ कल रात को बड़े ज़ोर का एक तड़ाका हुआ। (२) कमख्वाब बुननेवालों का एक डंडा जो प्रायः सवा गज़ लंबा होता और जफे में बँधा रहता है। इसके नीचे तीन और डंडे बँधे होते हैं। (३) पेड़। वृक्ष। (कहारों की परि०)
क्रि० वि० चटपट। जल्दी से। तुरंत। जैसे, तड़ाका जाकर बाजार से सौदा ले आओ। (बोल चाल)

तड़ाग—संज्ञा पुं० [सं०] तालाब। सरोवर। ताल। पुष्कर। पोखरा। पद्मादियुक्त सर। प्राचीनों के अनुसार तड़ाग जो पाँच सौ धनुष लंबा चौड़ा और खूब गहरा होना चाहिए और उसमें कमल आदि होने चाहिएँ। उ०—(क) भरत हंस रवि वंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।—तुलसी। (ख) अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिकसी मनो मंजुल कंजकली।—तुलसी।

तड़ातड़—क्रि० वि० [अनु०] तड़तड़ शब्द के साथ। इस प्रकार जिसमें तड़तड़ शब्द हो। जैसे, तड़ातड़ चपत जमाना। उ०—आगे रघुबीर के समीर के तनय के संग तारी दे तड़ाक तड़ातड़ के तमंका में।—पद्माकर।

तड़ाना—क्रि० स० [हिं० ताड़ना का प्रे०] किसी दूसरे को ताड़ने में प्रवृत्त करना। भँपाना।

तड़ावा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़ाना = दिखाना] (१) ऊपरी तड़क भड़क। वह चमक दमक जो केवल दिखाने के लिये हो। (२) धोखा। छल। (क्व०)
क्रि० प्र०—देना।

तड़ित—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] बिजली। विद्युत्। उ०—(क) उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उढ़ाए। नील जलद पर उडगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छिपाए।—तुलसी। (ख) तड़ित बिनिंदक पीतपट उदर रेख वर तीनि।—तुलसी।

तड़ित्कुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक देवता जो भुवनपति देवगण में से हैं।

तड़ित्पति—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।

तड़ित्प्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

तड़ित्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागरमोथा। (२) बादल।

तड़िता—संज्ञा स्त्री० दे० "तड़ित्"।

तड़िद्गर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बादल।

तड़िया—संज्ञा स्त्री० [देश०] समुद्र के किनारे की हवा। (लश०)

तड़ी—संज्ञा स्त्री० [तड़ से अनु०] (१) चपत। धौल।
क्रि० प्र०—जड़ना।—जमाना।—देना।—लगाना।
(२) धोखा। छल। (दलाली)। (३) बहाना। हीला।
क्रि० प्र०—देना।—बताना।

तणमीट—संज्ञा पुं० [डिं०] मुसलमान।

तत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्म या परमात्मा का एक नाम। उ०—ओं तत् सत्। (२) वायु। हवा।
सर्व० उस।

विशेष—इसका प्रयोग केवल संस्कृत के समस्त शब्दों के साथ उनके आरंभ में होता है। जैसे, तत्काल, तत्क्षण, तत्पुरुष, तत्पश्चात्, तदनंतर, तदाकार, तद्द्वारा।

तत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) विस्तार। (३) पिता। (४) पुत्र। (५) वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों, जैसे, सारंगी, सितार, बीना, एकतारा, बेहला आदि।

विशेष—तत बाजे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो खाली उँगली या मिजराब आदि से बजाए जाते हैं, जैसे, सितार, बीन, एकतारा आदि। ऐसे बाजों को अंगुलियंत्र कहते हैं। जो कमानी की सहायता से बजाए जाते हैं सारंगी बेला आदि वे धनुर्यंत्र कहलाते हैं।

* † वि० [सं० तप्त] तपा हुआ। गरम। उ०—नखत अकासहि चढ़इ दिपाई। तत तत लूका परहि बुझाई।—जायसी।

* † संज्ञा पुं० दे० "तत्त्व"।

तततथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नृत्य का शब्द। नाच के बोल।

ततपर—वि० दे० "तत्पर"।

ततपत्री—संज्ञा पुं० [सं०] केले का वृक्ष।

ततबाउ * †—संज्ञा पुं० दे० "तंतुवाय"।

ततबीर * †—संज्ञा स्त्री० दे० "तदबीर"। उ०—बोड़ गई जल पैठि तरुनी और ठाढ़ी तीर। तिनहि लई बोलाइ राधा करति सुख ततबीर।—सूर।

ततरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़।

ततसार * †—संज्ञा स्त्री० [सं० तप्तशाला] तपाने का स्थान। आँच देने या तपाने की जगह। उ०—सतगुर तो ऐसा मिला ताते लोह लुहार। कसनी दे कंचन किया ताय लिया ततसार।—कबीर।

ततहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तप्त + हिं० हाँड़ी] [स्त्री० अल्पा० ततहड़ी] वह बरतन विशेषतः मिट्टी का बरतन जिसमें देहातवाले नहाने का पानी गरम करते हैं।

तताई * †—संज्ञा स्त्री० [हिं० तता] गरमी। तप्त होने की क्रिया या भाव।

ततामह—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह। दादा।

ततारना—क्रि० स० [हिं० तता = गरम] (१) गरम जल से धोना। (२) तरेरा देकर धोना। धार देकर धोना। उ०—मनहु बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीर ततारति।—तुलसी।

तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रेणी। पंक्ति। ताँता। (२) समूह। (३) विस्तार।

ततुबाऊ*†—संज्ञा पुं० दे० "तंतुवाय"।

संज्ञा पुं० किसी वस्तु का वह लक्षण जो उसके स्वरूप को लेकर नहीं वल्कि उसके गुण और धर्म्म आदि को लेकर वतलाया जाय। दे० "लक्षण"।

तटाक–संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग। तालाब।

तटाघात–संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं का अपने सींगों या दाँतों से जमीन खोदना।

तटिनी–संज्ञा स्त्री [सं०] नदी। सरिता। दरिया।

तटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीर। कूल। किनारा। तट। (२) नदी। सरिता। उ०—ताही समै पर नाभि तटी को गयो उड़ि सेवक पौन प्रसंग में।—सेवक। (३) तराई। घाटी।

तड़–संज्ञा पुं० [सं० तट] (१) समाज में हो जानेवाला विभाग। पक्ष।

यौ०—तड़बंदी।

(२) स्थल। खुश्की। जमीन। (लश०)

संज्ञा पुं० [अनु०] (१) थप्पड़ आदि मारने या कोई चीज़ पटकने से उत्पन्न होनेवाला शब्द।

यौ०—तड़ातड़।

(२) थप्पड़। (दलाल)

क्रि० प्र०—जमाना।—देना।—लगाना।

(३) लाभ का आयोजन। आमदनी की सूरत। (दलाल)

क्रि० प्र०—जमाना।—बैठाना।

तड़क–संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़कना] (१) तड़कने की क्रिया या भाव। (२) तड़कने के कारण किसी चीज पर पड़ा हुआ चिह्न। (३) भोजन के साथ खाए जानेवाले अचार चटनी आदि चटपटे पदार्थ। चाट।

संज्ञा स्त्री० [सं तंडक=धरन] वह वड़ी लकड़ी जो दीवार से बँड़ेर तक लगाई जाती है और जिस पर दासे रख कर छप्पर छाया जाता है।

तड़कना–क्रि० अ० [अनु० तड़] (१) 'तड़' शब्द के साथ फटना, फूटना या टूटना। कुछ आवाज के साथ टूटना। चटकना। कड़कना। जैसे, शीशा तड़कना, लकड़ी तड़कना। (२) किसी चीज़ का सूखने आदि के कारण फट जाना। जैसे, छिलका तड़कना, जखम तड़कना। (३) जोर का शब्द करना। उ०—कहि योगिनि निशि हित अति तड़की। विंध्याचल के ऊपर खड़की।—गोपाल। (४) क्रोध से विगड़ना। झुँझलाना। विगड़ना। (५) जोर से उछलना या कूदना। तड़पना। उ०—तरकि पवनसुत कर गहेउ आनि धरे प्रभु पास।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

† क्रि० स० तड़का देना। छौंकना। बघारना।

तड़का–संज्ञा पुं० [हिं० तड़कना] (१) सवेरा। सुबह। प्रातःकाल। प्रभात। (२) छौंक। बघार।

क्रि० प्र०—देना।

तड़काना–क्रि० स० [हिं० तड़कना का स० रूप] (१) किसी वस्तु को इस तरह से तोड़ना जिससे 'तड़' शब्द हो। (२) किसी पदार्थ को सुखाकर या और किसी प्रकार बीच में से फाड़ना। (३) जोर का शब्द उत्पन्न करना। (४) किसी को क्रोध दिलाना या खिजाना।

तड़कीला†–वि० [हिं० तड़कना+ईला (प्रत्य०)] (१) चमकीला। भड़कीला। (२) तड़कनेवाला। फट जानेवाला।

तड़का†–क्रि० वि० दे० "तड़ाका"। उ०—चेतहु काहे न सवेर यमन सो रारिहै। काल के हाथ कमान तड़का मारिहै।—कबीर

तड़तड़ाना–क्रि० अ० [अनु०] तड़ तड़ शब्द होना।

क्रि० स० तड़तड़ शब्द उत्पन्न करना।

तड़तड़ाहट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाने की क्रिया या भाव।

तड़ता*–संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित] विजली। विद्युत्। (हिं०)

तड़प–संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़पना] (१) तड़पने की क्रिया या भाव। (२) चमक। भड़क।

तड़पदार–वि० [हिं० तड़प+फ़ा० दार] चमकीला। भड़कदार। भड़कीला।

तड़पना–क्रि० अ० [अनु०] (१) वहुत अधिक शारीरिक या *मानसिक वेदना के कारण व्याकुल होना। छटपटाना।* तड़फड़ाना। तलमलाना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) घोर शब्द करना। गरजना। जैसे, किसी से तड़प कर बोलना, शेर का तड़प कर झाड़ी में से निकलना।

तड़पवाना–क्रि० स० [हिं० तड़पाना का प्रे०] किसी को तड़पाने में प्रवृत्त करना। तड़पाने का काम दूसरे से कराना।

तड़पाना–क्रि० स० [हिं० तड़पना का स० रूप] (१) शारीरिक या मानसिक वेदना पहुँचा कर व्याकुल करना। (२) किसी को गरजने के लिये वाध्य करना।

संयो० क्रि०—देना।

तड़फड़ाना–क्रि० अ० दे० "तड़पना (१)"।

क्रि० स० दे० "तड़पाना (१)"।

तड़फना–क्रि० अ० दे० "तड़पना"।

तड़बंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़+फ़ा० वंदी] समाज, विरादरी या गोल में अलग अलग तड़ बनना।

तड़ाक–संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग। तालाब। सरोवर।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाके का शब्द। किसी चीज़ के टूटने का शब्द।

क्रि० वि० (१) 'तड़' या 'तड़ाक' शब्द के सहित। (२) जल्दी से। चटपट। तुरंत।

यौ०—तड़ाक पड़ाक=चटपट। तुरंत।

तत्पद्–संज्ञा पुं० [सं०] परम पद। निर्वाण।

तत्पदार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्त्ता। परमात्मा।

तत्पर–वि० [सं०] [संज्ञा तत्परता] (१) जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। मुस्तैद। सन्नद्ध। (२) दक्ष। निपुण। (३) चतुर। होशियार।

संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा मान। एक निमेष का तीसवाँ भाग।

तत्परता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तत्पर होने की क्रिया या भाव। सन्नद्धता। मुस्तैदी। (२) दक्षता। निपुणता। (३) होशियारी।

तत्पुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। परमेश्वर। (२) एक रुद्र का नाम। (३) मत्स्य पुराण के अनुसार एक कल्प (काल-विभाग) का नाम। (४) व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्त्ता कारक की विभक्ति को छोड़ कर कर्म आदि दूसरे कारकों की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो। इसका लिंग और वचन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार का होता है। जैसे, जलचर नरेश, हिमालय, यज्ञशाला।

तत्प्रतिरूपक व्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से एक अतिचार जो बेचने के खरे पदार्थों में खोटे पदार्थ की मिलावट करने से होता है।

तत्फल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूट नामक ओषधि। (२) बेर का फल। (३) कुवलय। नील कमल। (४) चोर नामक गंध द्रव्य।

तत्र–क्रि० वि० [सं०] वहाँ। उस स्थान पर। उस जगह।

तत्रक–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो योरप, अरब, फारस से लेकर पूर्व में अफगानिस्तान तक होता है। यह अनार के पेड़ के इतना बड़ा या उससे कुछ बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ ललाई लिए होती हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिसमें मसूर के से बीज पड़ते हैं। ये बीज बाजार में अत्तारों के यहाँ समाक़ के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम आते हैं। बीज के छिलके का स्वाद कुछ खट्टा और रुचिकर होता है। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है। डंठल और पत्तियों से चमड़ा बहुत अच्छा सिझाया जाता है। हिंदुस्तान में चमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ सिसली से मँगाई जाती हैं।

तत्रभवान्–संज्ञा पुं० [सं०] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

विशेष—अत्रभवान् की तरह इस शब्द का प्रयोग भी प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है।

तत्रापि–अव्य० [सं०] तथापि। तौ भी।

तत्सम–संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में व्यवहृत होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो जैसे, दया प्रत्यक्ष, स्वरूप, सृष्टि आदि।

तथा–अव्य० [सं०] (१) और। व। (२) इसी तरह। ऐसे ही। जैसे, यथा नाम तथा गुण।

यौ०—तथास्तु = ऐसा ही हो। इसी प्रकार हो। एवमस्तु।

विशेष—इस पद का प्रयोग किसी प्रार्थना को स्वीकार करने अथवा माँगा हुआ वर देने के समय होता है।

संज्ञा पुं० (१) सत्य। (२) सीमा। हद। (३) निश्चय। (४) समानता।

संज्ञा स्त्री० दे० तथ्य।

तथागत–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

तथापि–अव्य० [सं०] तौ भी। तिस पर भी। तब भी।

विशेष—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है। जैसे,यद्यपि हम वहाँ नहीं गए तथापि उनका काम हो गया।

तथाराज–संज्ञा पुं० [सं०] गौतमबुद्ध।

तथैव–अव्य० [सं०] वैसा ही। उसी प्रकार।

तथ्य–वि० [सं०] सत्य। सचाई। यथार्थता।

तथ्यभाषी–वि० [सं० तथ्यभाषिन्] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी–वि० दे० "तथ्यभाषी"।

तद्–वि० [सं०] वह।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे, तदनंतर, तदनुसार।

† क्रि० वि० [सं० तदा] तब। उस समय।

तदंतर–क्रि० वि० [सं०] इसके बाद। इसके उपरांत।

तदनंतर–क्रि० वि० [सं०] उसके पीछे। उसके बाद। उसके उपरांत।

तदनन्यत्व–संज्ञा पुं० [सं०] कार्य्य और कारण में अभेद। कार्य्य और कारण की एकता। (वेदांत)

तदनु–क्रि० वि० [सं०] (१) उसके पीछे। तदनंतर। उसके अनुसार। (२) उसी तरह। उसी प्रकार।

तदनुरूप–वि० [सं०] उसी के जैसा। उसी के रूप का। उसी के समान।

तदनुसार–क्रि० [सं०] उसके मुताबिक। उसके अनुकूल।

तदन्यबाधितार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] नव्य न्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक।

तदपि–अव्य० [सं०] तौ भी। तिस पर भी। तथापि।

तदबीर–संज्ञा स्त्री० [अ०] अभीष्ट सिद्धि करने का साधन। उपाय। युक्ति। तरकीब। यत्न।

तदा–क्रि० वि० [सं०] उस समय। तब। जिस समय।

ततुरि–वि० [सं०] (१) हिंसा करनेवाला। (२) तारनेवाला।

ततैया–संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्त] (१) बर्रे। भिड़। हड्डा। (२) जवा मिर्च जो बहुत कड़ुई होती है।

वि० [हिं० तीता अथवा तत्ता] (१) तेज। फुरतीला। (२) चालाक। बुद्धिमान।

तत्काल–क्रि० वि० [सं०] तुरंत। फौरन। उसी समय। उसी वक्त।

तत्कालीन–क्रि० वि० [सं०] उसी समय का।

तत्क्षण–क्रि० वि० [सं०] उसी समय। तत्काल। फौरन। उसी दम।

तत्त *†–संज्ञा पुं० दे० "तत्त्व"।

तत्ता *–वि० [सं० तप्त] गरम। उष्ण। जलता या तपता हुआ।

मुहा०—तत्ता तवा = जो बात बात पर लड़े। लड़ाका। झगड़ालू।

तत्तोथंबो–संज्ञा पुं० [हिं० तत्ता = गरम + थामना] (१) दम दिलासा। बहलावा। (२) बीच बचाव। दो लड़ते हुए आदमियों को समझा बुझा कर शांत करना।

तत्त्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वास्तविक स्थिति। यथार्थता। वास्तविकता। असलियत। (२) जगत् का मूल कारण।

विशेष—सांख्य में २५ तत्त्व माने गए हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। मूल प्रकृति से शेष तत्त्वों की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—प्रकृति से महत्तत्व (बुद्धि), महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इंद्रियाँ (पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन) और पाँच तन्मात्र, पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, आदि)। प्रलयकाल में ये सब तत्त्व फिर प्रकृति में क्रमशः विलीन हो जाते हैं। योग में ईश्वर को और मिला कर कुल २६ तत्त्व माने गए हैं। सांख्य के पुरुष से योग के ईश्वर में विशेषता यह है कि योग का ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक आदि से पृथक् माना गया है। वेदांतियों के मत से ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व है। शून्यवादी बौद्धों के मत से शून्य या अभाव ही परम तत्त्व है, क्योंकि जो वस्तु है वह पहले नहीं थी और आगे भी न रहेगी। कुछ जैन तो जीव और अजीव ये ही दो तत्त्व मानते हैं और कुछ पाँच तत्त्व मानते हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और आस्तिकाय। चार्वाक के मत में पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये ही तत्त्व माने गए हैं और इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति कही गई है।

(३) पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)। (४) परमात्मा। ब्रह्म। (५) सारवस्तु। सारांश। जैसे, उनके लेख में कुछ तत्त्व नहीं है।

तत्त्वज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो ईश्वर या ब्रह्म को जानता हो। तत्त्वज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी। (२) दार्शनिक। दर्शन-शास्त्र का ज्ञाता।

तत्त्वज्ञान–संज्ञा पुं० [सं] ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदि के संबंध का यथार्थ ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य का मोक्ष हो जाय। ब्रह्मज्ञान।

विशेष—सांख्य और पातंजल के मत से प्रकृति और पुरुष का भेद जानना और वेदांत के मत से अविद्या का नाश और वस्तु का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्त्वज्ञान है।

तत्त्वज्ञानी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसे ब्रह्म, सृष्टि और आत्मा आदि के संबंध का यथार्थ ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ। (२) दार्शनिक।

तत्त्वता–संज्ञा स्त्री० [सं] (१) तत्त्व होने का भाव या गुण। (२) यथार्थता। वास्तविकता।

तत्त्वदर्श–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तत्त्वज्ञानी। (२) सावर्णि मन्वंतर के एक ऋषि का नाम।

तत्त्वदर्शी–संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्शिन्] (१) जो तत्त्व जानता हो। तत्त्वज्ञानी। (२) रैवत मनु के एक पुत्र का नाम।

तत्त्वदृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दृष्टि जो तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। ज्ञानचक्षु। दिव्य दृष्टि।

तत्त्वन्यास–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार विष्णु-पूजा में एक अंगन्यास जो सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

तत्त्वभाव–संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति। स्वभाव।

तत्त्वभाषी–संज्ञा पुं० [सं०] जो स्पष्ट रूप से यथार्थ बात कहता हो।

तत्त्वरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार स्त्री-देवता का बीज। वधूबीज।

तत्त्ववाद–संज्ञा पुं० [सं०] दर्शनशास्त्र संबंधी विचार।

तत्त्ववादी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो तत्त्ववाद का ज्ञाता और समर्थक हो। (२) जो यथार्थ और स्पष्ट बात कहता हो।

तत्त्वविद्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तत्त्ववेत्ता। (२) परमेश्वर।

तत्त्वविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्शनशास्त्र।

तत्त्ववेत्ता–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसे तत्त्व का ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ। (२) दर्शनशास्त्र का ज्ञाता। फिलासफर। दार्शनिक।

तत्त्वशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] दर्शनशास्त्र।

तत्त्वावधान–संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण। जाँच पड़ताल। देख रेख।

तत्त्वावधानक–संज्ञा पुं० [सं०] देख रेख करनेवाला। निरीक्षक।

तत्थ्य–वि० [सं० तत्त्व] मुख्य। प्रधान।

संज्ञा पुं० शक्ति। बल। ताकत।

तत्पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केले का पेड़। (२) वंशपत्री नाम की घास।

वि० दे० "तनिक" उ०—अबहीं देखे नवल किसोर।•घर आवत ही तनक भये हैं ऐसे तन के चोर।—सूर।

तनक़ीह–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जाँच। खोज। तहकीकात। (२) न्यायालय में किसी उपस्थित अभियोग के संबंध में विचारणीय और विवादास्पद विषयों को ढूँढ़ निकालना। अदालत का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना जिनके लिये वह मुकदमा चलाया गया हो और जिनका फैसला होना जरूरी हो।

विशेष—भारत में दीवानी अदालतों में जब कोई मुकदमा दायर होता है तब पहले उस में अदालत की ओर से एक तारीख पड़ती है। उस तारीख को दोनों पक्षों के वकील बहस करते हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद और विचारणीय बातों के जानने में सहायता मिलती है। उस समय हाकिम ऐसी सब बातों की एक सूची बना लेता है। इन्हीं बातों को ढूँढ़ निकालना और उनकी सूची बनाना तनकीह कहलाता है।

तनख़ाह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनख़्वाह] वह धन जो प्रति सप्ताह प्रति मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष में मिलता है। वेतन। तलब।

तनख़ाहदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तनख़ाह पर काम करता हो। तनख़ाह पानेवाला नौकर। वेतनभोगी।

तनख़्वाह–संज्ञा स्त्री० दे० "तनख़ाह"

तनख़्वाहदार–संज्ञा पुं० दे० "तनख़ाहदार"।

तनगना*–क्रि० अ० दे० "तिनकना"। उ०—अनतहिं बसत अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास। सुनहु सूर पुनि तो कहि आवे तनगि गए ता पास।—सूर।

तनज़ेब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुत ही महीन और बढ़िया सूती कपड़ा। महीन चिकनी मलमल।

तनज़्ज़ुल–संज्ञा पुं० [अ०] तरक्की का उलटा। अवनति। उतार। घटाव।

तनज़्ज़ुली–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अवनति। उतार। तरक्की का उलटा।

तनतना–संज्ञा पुं० [हिं० तनतनाना या अ० तन्तनः] (१) रोबदाब। दबदबा। (२) क्रोध। गुस्सा। (क्व०)
क्रि० प्र०—दिखाना।

तनतनाना–क्रि० अ० [अनु० या अ० तन्तनः] (१) दबदबा दिखलाना। शान दिखाना। (२) क्रोध करना। गुस्सा दिखलाना।

तनत्राण*–संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] (१) वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो। (२) कवच। बखतर।

तनदिही–संज्ञा स्त्री० दे० "तंदेही"।

तनधर–संज्ञा पुं० दे० "तनुधारी"।

तनना–क्रि० अ० [सं० तन या तनु] (१) किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का इस प्रकार आगे की ओर बढ़ना जिसमें उसके मध्य भाग का झोल निकल जाय और उसका विस्तार कुछ बढ़ जाय। झटके, खिंचाव या खुश्की आदि के कारण किसी पदार्थ का विस्तार बढ़ना। जैसे, चादर या चाँदनी तनना, घाव पर की पपड़ी तनना। (२) किसी चीज का जोर से किसी ओर खिंचना। आकर्षित या प्रवृत्त होना। (३) किसी चीज का अकड़ कर सीधा खड़ा होना। जैसे, (ख) यह पेड़ कल झुक गया था पर आज पानी पाते ही फिर तन गया। (४) कुछ अभिमानपूर्वक रुष्ट या उदासीन होना। ऐंठना। जैसे, इधर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने रहते हैं।
संयो० क्रि०—जाना।

तनपात–संज्ञा पुं० दे० "तनुपात"।

तनपोषक–वि० [हिं० तन + सं० पोषक] जो केवल अपने ही शरीर या लाभ का ध्यान रखे। स्वार्थी।

तनबाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश जिसका नाम महाभारत में आया है। (२) उस देश के निवासी।

तनमय–वि० दे० "तन्मय"। उ०—अपनो अपनो भाग सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे।—सूर।

तनमात्रा*–संज्ञा स्त्री० दे० "तन्मात्रा"।

तनमानसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में तीसरी भूमिका।

तनय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। लड़का। (२) जन्म लग्न से पाँचवाँ स्थान जिससे पुत्र-भाव देखा जाता है।

तनया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लड़की। बेटी। पुत्री। (२) पिठवन लता।

तनराग–संज्ञा पुं० दे० "तनुराग"।

तनरुह*†–संज्ञा पुं० दे० "तनूरुह"। उ०—हरपवंत पर अचर भूमिसुर तनरुह पुलकि जनाई।—तुलसी।

तनवाल–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति विशेष।

तनसल–संज्ञा पुं० [देश०] स्फटिक। बिल्लौर।

तनवाना–क्रि० स० [हिं० तनना का प्रे०] तानने का काम दूसरों से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। तनाना।

तनसीख़–संज्ञा स्त्री० [अ०] रद्द करना। खारिज करना। नाजायज़ करना। मंसूखी।

तनसुख–संज्ञा पुं० [हिं० तन + सुख] तंजेब या अद्धी की तरह का एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा। उ०—(क)

तदाकार–वि० [सं०] (१) वैसा ही। उसी आकार का। उसी आकृतिवाला। तद्रूप। (२) तन्मय।

तदारुक–संज्ञा पुं० [अ०] (१) खोई हुई चीज या भागे हुए अपराधी आदि की खोज या किसी दुर्घटना आदि के संबंध में जांच। (२) किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध। पेशबंदी। बंदोबस्त। (३) सजा। दंड।

तदीय–सर्व० [सं०] उसका। उससे संबंध रखनेवाला।

तदुपरांत–क्रि० वि० [सं०] उसके पीछे। उसके बाद।

तद्गत–वि० [सं०] (१) उससे संबंध रखनेवाला। उसके संबंध का। (२) उसके अंतर्गत। उसमें व्याप्त।

तद्गुण–संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण त्याग करके समीपवर्त्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित होता है। जैसे, (क) अधर धरत हरि के परत ओंठ डीठ पट जोति। हरित बाँस की बाँसुरी इंद्र धनुष सी होति।—बिहारी। इसमें बाँस की बाँसुरी का अपना गुण छोड़ कर इंद्रधनुष का गुण ग्रहण करना वर्णित है। (ख) जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़े बहै उमहै वह बेनी। त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुख देनी। पायन के रँग सों रँगि जात सुभाँतिहि भाँति सरस्वति सेनी। पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहँ ताल में होत त्रिबेनी।—पद्माकर। यहाँ ताल के जल का बालों, हीरे, मोती के हारों और तलवों के संसर्ग के कारण त्रिवेणी का रूप धारण करना कहा गया है।

तद्धन–संज्ञा पुं० [सं०] कृपण। कंजूस।

तद्धित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगा कर शब्द बनाते हैं।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है। (१) अपत्यवाचक, जिससे अपत्यता या अनुयायित्व आदि का बोध होता है। इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे, शिव से शैव, विष्णु से वैष्णव रामानंद से रामानंदी आदि। (२) कर्तृवाचक जिससे किसी क्रिया के कर्त्ता होने का बोध होता है। इसमें 'वाला' या 'हारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़हारा। (३) भाववाचक, जिससे भाव का बोध होता है। इसमें 'आई,' 'ई,' 'त्व,' 'ता,' 'पन,' 'पा,' 'वट,' 'हट,' आदि प्रत्यय लगते हैं। जैसे, ढीठ से ढिठाई, ऊँचा से ऊँचाई, तर से तरी, मनुष्य से मनुष्यत्व, मित्र से मित्रता, लड़का से लड़कपन, बूढ़ा से बुढ़ापा, मिलान से मिलावट, चिकना से चिकनाहट, आदि। (४) ऊनवाचक, जिसमें किसी प्रकार की न्यूनता या लघुता आदि का बोध होता है। इसमें संज्ञा के अंत में 'क' 'इया' आदि लगा देते हैं और 'आ' को 'ई' से बदल देते हैं। जैसे, वृत्त से वृत्तक, फोड़ा से फोड़िया, डोला से डोली। (५) गुणवाचक, जिससे गुण का बोध होता है। इसमें संज्ञा के अंत में 'आ' 'इक' 'इत' 'ई' 'ईला' 'एला' 'लू' 'वंत' 'वान' 'दायक' 'कारक' आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं। जैसे, ठंढ से ठंढा, मैल से मैला, शरीर से शारीरिक, आनंद से आनंदित, गुण से गुणी, रंग से रँगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान्, सुख से सुखदायक, गुण से गुणकारक आदि।

(२) वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय।

तद्बल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाण।

तद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्त्तित हो गया हो। संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप। जैसे, हस्त का हाथ, अश्रु का आँसू, अर्द्ध का आधा, काष्ठ का काठ, कर्पूर का कपूर, घृत से घी।

तद्यपि–अव्य० [सं०] तथापि। तौ भी।

तद्रूप–वि० [सं०] समान। सदृश। वैसा ही। उसी प्रकार का।

तद्रूपता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सादृश्य। समानता। उ०—जानि जुग जूप मैं भूप तद्रूपता बहुरि करिहै कलुष भूमि भारी।—सूर।

तद्वत्–वि० [सं०] उसी के जैसा। उसके समान। ज्यों का त्यों।

तधी†–क्रि० वि० [सं० तदा] तभी। (क्व०)

तन–संज्ञा पुं० [सं० तनु। मि० फा० तन] (१) शरीर। देह। गात। जिस्म।

यौ०—तनताप=(१) शारीरिक कष्ट। (२) भूख। क्षुधा।

मुहा०—तन को लगाना=(१) हृदय पर प्रभाव पड़ना। जी में बैठना। जैसे, चाहे कोई काम हो, जब तक तन को न लगे तब तक वह पूरा नहीं होता। (२) (खाद्य पदार्थ का) शरीर को पुष्ट करना। जैसे, जब चिंता छूटे तब खाना पीना भी तन को लगे। तन तोड़ना=अँगड़ाई लेना। तन देना=ध्यान देना। मन लगाना। जैसे, तन देकर काम किया करो। तन मन मारना=इंद्रियों को वश में रखना। इच्छाओं पर अधिकार रखना।

(२) स्त्री की मूत्रेंद्रिय। भग।

मुहा०—तन दिखाना=(स्त्री का) संभोग कराना। प्रसंग कराना।

क्रि० वि० तरफ ओर। उ०—(क) बिहँसे करुना ऐन चितै जानकी लखन तन।—तुलसी। (ख) कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन प्रान कृपान बीर सी छोरे।—तुलसी। (ग) गो गो सुतनि सों मृगी मृग सुतनि सों और तन नेक न जोहनी।—हरिदास।

तनक–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ राग की रागिनी मानते हैं।

तनुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गोंदनी या गोंदी का पेड़। इँगुआ वृक्ष।

तनुपात-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से प्राण निकलना। मृत्यु। मौत।

तनुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुभव-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा। लड़का।

तनुभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध श्रावकों के जीवन की एक अवस्था।

तनुमध्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक यगण (ऽऽ।-।ऽऽ) होता है। इसको चौरस भी कहते हैं। उ०— तू यों किमि आली, घूमै मतवाली।

तनुरस-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनुराग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर, अगर आदि को मिला कर बनाया हुआ सुगंधित उबटन। बटना। (२) वे सुगंधित द्रव्य जिससे वह उबटन बनाया जाता है।

तनुरुह-संज्ञा पुं० [सं०] रोआँ। रोम।

तनुवात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो। (२) एक नरक का नाम।

तनुवार-संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बकतर।

तनुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक रोग।

तनुसर-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। लड़का। (२) शरीर। (३) प्रजापति। (४) गौ। गाय।

तनूज*-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तनुज"।

तनूजा*-संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "तनुजा"।

तनूनप-संज्ञा पुं० [सं०] घृत। घी

तनूपा-संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि।

तनूपान-संज्ञा पुं० [सं०] अंगरक्षक। वह जो शरीर की रक्षा करता है।

तनूनपात्, तनूनपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीते का वृक्ष। चीता। चितावर। चित्रक। (२) अग्नि। आग (३) प्रजापति के पोते का नाम। (४) घी। घृत। (५) मक्खन।

तनूपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग।

तनूर-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तंदूर"।

तनूरुह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोम। लोम। रोआँ। (२) पक्षियों का पर। पंख। (३) पुत्र। लड़का। बेटा।

तनेना-वि० [हिं० तनना + एना (प्रत्य०)] [स्त्री० तनेनी] (१) खिंचा हुआ। टेढ़ा। तिरछा। उ०—मान के मूरत ही मतिराम कहा करती अब भौंह तनेनी।—मतिराम। (२) क्रुद्ध। जो नाराज़ हो। उ०—आली हौं गई ही आजु भूलि बरसाने कहूँ तापै तू परी है पदमाकर तनेनी क्यों।—पद्माकर।

तनै*-संज्ञा पुं० दे० "तनय"।

तनैना-संज्ञा पुं० दे० "तनेना"।

तनैया†*-संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] पुत्री। बेटी। कन्या। लड़की।

तनैला-संज्ञा पुं० [देश०] एक किस्म का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सुफ़ेद होते हैं।

तनोज*-संज्ञा पुं० [सं० तनूज] (१) रोम। लोम। रोआँ। उ०—अंग थरहरे क्यों भरे खरे तनोज पसेव।—शृं० सत०। (२) लड़का। बेटा।

तनोरुह*-संज्ञा पुं० दे० "तनूरुह"।

तन्ना-संज्ञा पुं० [हिं० तानना] (१) बुनाई में ताने का सूत जो लंबाई में ताना जाता है। (२) वह जिस पर कोई चीज़ तानी जाय।

तन्नाना†-क्रि० अ० [हिं० तनना] अकड़ना। ऐंठना। अकड़ दिखाना। बिगड़ना। क्रुद्ध होना।

तन्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पिठवन। (२) काश्मीर की चंद्रतुल्या नदी का नाम।

तन्नी-संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना या तनी] (१) तराज़ू में जोती की रस्सी। वह रस्सी जिसमें तराज़ू के पल्ले लटकते हैं। जोती। (२) एक प्रकार की अँकुसी जिससे लोहे की मैल खुरचते हैं। (३) जहाज़ के मस्तूल की जड़ में बँधा हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि चढ़ाते हैं। (लश०)

संज्ञा पुं० [हिं० तरनी] किसी व्यापारी जहाज़ का वह अफ़सर जो यात्राकाल में उसके व्यापार संबंधी कार्यों का प्रबंध करता हो।

संज्ञा पुं० दे० "तरनी"

तन्मय-वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो। लवलीन। लीन। लगा हुआ। दत्तचित्त। उ०—कबहूँ कहनि कौन हरि को मैं यों तनमय ह्वै जाहीं।—सूर

तन्मयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिप्तता। एकाग्रता। लीनता। तदाकारता। लगन।

तन्मयासक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान में तन्मय हो जाना। भक्ति में अपने आपको भूल जाना और अपने को भगवान ही समझना।

तनसुख सारी लही अँगिया अतलस अतरौटा छवि चारि चारि चूरी पहुंचीनि पहुँची छमकि वनी नकफूल जेब मुख बीरा चौका कौधै संभ्रम भूली।—हरिदास। (ख) कोमलता पर रसाल तनसुख की सेज लाल मनहुँ सोमसूरज पर सुधा-विंदु बरषै।—केशव।

तनहा–वि० [फ़ा०] जिसके संग कोई न हो। बिना साथी का। अकेला। एकाकी।

क्रि० वि० विना किसी संगी या साथी के। अकेले।

तनहाई–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तनहा होने की दशा या भाव। (२) वह स्थान जहाँ और कोई न हो। एकांत।

तना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वृक्ष का जमीन से ऊपर निकला हुआ वहाँ तक का भाग जहाँ तक डालियाँ न निकली हों। मंदल। पेड़ का धड़।

क्रि० वि० [हिं० तन] ओर। तरफ़। दे० "तन"। उ०—नील पट झपटि लपेटि छिगुनी पै धरि टेरि टेरि कहै हँसि हेरि हरिजू तना।—देव।

तनाई–संज्ञा स्त्री० दे० "तनाव"।

तनाऊ*–संज्ञा पुं० दे० "तनाव"।

तनाकु*†–क्रि० वि० दे० "तनिक"। उ०—तब पिय सहचरि तन चितय मुसकी कुँअरि तनाकु।—नंददास।

तनाजा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) बखेड़ा। झगड़ा। टंटा। दंगा। फसाद। (२) अदावत। शत्रुता। वैर। वैमनस्य।

तनाना–क्रि० स० [हिं० तानना का प्रे०] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। उ०—कलस चवर तोरन ध्वजा सुवितान तनाए।—तुलसी।

तनाव†–संज्ञा स्त्री० [अ० तिनाब] (१) खेमे की रस्सी। (२) बाजीगरों का रस्सा जिस पर वे चलते तथा दूसरे खेल करते हैं।

तनाव–संज्ञा पुं० [हिं० तनना] (१) तनने का भाव या क्रिया। (२) वह रस्सी जिस पर धोबी कपड़े सुखाते हैं। (३) रस्सी। डोरी। जेवरी। रज्जु।

तनि†–क्रि० वि० दे० "तनिक"। उ०—तनि सुख तौं चहियत हतौ हर विध विधिहि मनाय। भली भई जो सखि भयौ मोहन मथुरै जाय।—रसनिधि।

तनिक–वि० [सं० तनु = अल्प] (१) थोड़ा। कम। (२) छोटा। उ०—इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आइ छयौ। —सूर।

क्रि० वि० जरा। टुक।

तनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज़ बाँधी जाय।

तनिया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तनी] (१) लँगोट। लँगोटी। कौपीन। (२) कछनी। जाँघिया। उ०—तनिया ललित कटि विचित्र टिपारो सीस मुनि मन हरत वचन कहै तोतरात।—तुलसी। (३) चोली। उ०—तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न घामै घुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की।—भूषन।

तनिष्ठ–वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला छोटा या कमज़ोर हो।

तनी–संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना] (१) डोरी की तरह बटा या लपेटा हुआ वह कपड़ा जो अंगरखे, चोली आदि में उनका पल्ला तान कर बाँधने के लिये लगाया जाता है। बंद। बंधन। उ०—कंचुकि ते कुचकलस प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी।—सूर। (२) दे० "तनिया"।

†क्रि० वि० दे० "तनिक"।

†वि० दे० तनिक।

तनु–वि० [सं०] (१) कृश। दुबला पतला। (२) अल्प। थोड़ा। कम। (३) कोमल। नाज़ुक। (४) सुंदर। बढ़िया।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर। देह। बदन। (२) चमड़ा। खाल। त्वक्। (३) स्त्री। औरत। (४) केंचुली। (५) ज्योतिष में लग्न-स्थान। जन्मकुंडली में पहला स्थान। (६) योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद जिसमें चित्त में क्लेश की अवस्थिति तो होती है, पर साधन या सामग्री आदि के कारण उस क्लेश की सिद्धि नहीं होती।

तनुक*†–वि० दे० "तनिक"।

क्रि० वि० दे० "तनिक"।

संज्ञा पुं० दे० "तनु"

तनुक्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] आमड़े का पेड़।

तनुच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बखतर।

तनुच्छाय–संज्ञा पुं० [सं०] जाल बबूल का पेड़।

तनुज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। लड़का। (२) जन्म-कुंडली में लग्न से पाँचवा स्थान जहाँ से पुत्रभाव देखा जाता है।

तनुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। लड़की। पुत्री। बेटी।

तनुता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लघुता। छोटाई। (२) दुर्बलता दुबलापन।

तनुत्र–संज्ञा पुं० दे० "तनुत्राण"।

तनुत्राण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो। (२) कवच। बखतर।

तनुत्रान–संज्ञा पुं० दे० "तनुत्राण"।

तनुत्वचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी अरणी।

संज्ञा स्त्री० जिसकी छाल पतली हो।

तनुधारी–वि० [सं०] शरीरधारी। देहधारी। शरीर धारण करनेवाला।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] तपने की क्रिया या भाव। ताप। जलन। गरमी।

मुहा०—तपन का महीना = वह महीना जिसमें गरमी खूब पड़ती हो। गरमी।

तपनकर–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण। रश्मि।

तपनच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़।

तपनतनय–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र यम, कर्ण, शनि, सुग्रीव आदि।

तपनतनया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शमीवृक्ष। (२) यमुना नदी।

तपनमणि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

तपनांशु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण। रश्मि।

तपना–क्रि० अ० [सं० तपन] (१) बहुत अधिक गर्मी आँच या धूप आदि के कारण खूब गरम होना। तप्त होना। उ०—निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—रसोई तपना = दे० "रसोई" के मुहाविरे।

(२) संतप्त होना। कष्ट सहना। मुसीबत झेलना। जैसे, हम घंटों से यहाँ आप के आसरे तप रहे हैं। उ०—पीय सेवाति कँह तपइ समुद मँझ नीर।—जायसी। (३) तेज या ताप धारण करना। गरमी या ताप फैलाना। उ०—जहूँ भानु जग ऊपर तपा।—जायसी। (४) प्रबलता, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना। आतंक फैलाना। जैसे, आजकल यहाँ के कोतवाल खूब तप रहे हैं। उ०—(क) सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।—जायसी। (ख) कर्म, काल, गुन सुभाउ सब के सीस तपत।—तुलसी। *(५) तपस्या करना। तप करना।

तपनि*†–संज्ञा स्त्री० दे० "तपन"।

तपनी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] (१) वह स्थान जहाँ बैठ कर लोग आग तापते हों। कौड़ा। अलाव।

क्रि० प्र०—तापना।

(२) तपस्या। तप।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गोदावरी नदी।

तपनीय–संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

तपनीयक–संज्ञा पुं० दे० "तपनीय"।

तपनेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

तपनोपल–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

तपभूमि–संज्ञा स्त्री० दे० "तपोभूमि"।

तपराशि–संज्ञा पुं० दे० "तपोराशि"।

तपलोक–संज्ञा पुं० दे० "तपोलोक"।

तपवाना–क्रि० स० [हिं० तपना का प्रे०] (१) गरम करवाना। तपाने का काम दूसरे से कराना। (२) किसी से व्यर्थ व्यय कराना। अनावश्यक व्यय कराना।

तपवृद्ध–वि० दे० "तपोवृद्ध"।

तपश्चरण–संज्ञा पुं० [सं०] तप। तपस्या।

तपश्चर्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या। तपश्चरण।

तपस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) सूर्य। (३) पक्षी।

तपसा–संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] (१) तपस्या। तप। (२) ताप्ती नदी का दूसरा नाम जो बैतूल के पहाड़ से निकल कर खंभात की खाड़ी में गिरती है।

तपसाली–संज्ञा पुं० [सं० तपःशालिन्] तपस्वी। वह जिस ने बहुत तपस्या की हो। उ०—आए मुनिवर निकर तब कौशिकादि तपसालि।—तुलसी।

तपसी–संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला। तपस्वी। उ०—तपसी तुमको तप करि पावैं। मुनि भागवत गृही गुन गावैं।—सूर।

तपसी मछली–संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मत्स्य] एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की मछली जो बंगाल की खाड़ी में होती है। बैसाख या जेठ के महीने में अंडे देने के लिये यह नदियों में चली जाती है।

तपसोमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक।

तपस्तक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

तपस्पति–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

तपस्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंद पुष्प। (२) तपस्या। तप। (३) हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। (४) फागुन का महीना। (५) अर्जुन। (अर्जुन का एक नाम फाल्गुन भी था इसीलिये तपस्य भी अर्जुन का एक नाम हो गया)।

तपस्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तप। व्रतचर्या। (२) फागुन मास। (३) दे० "तपसी मछली"।

तपस्वत्–संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपस्विता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने की अवस्था या भाव।

तपस्विनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तपस्या करनेवाली स्त्री। (२) तपस्वी की स्त्री। (३) पतिव्रता या सती स्त्री। (४) जटामासी। (५) वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान के पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक अपना जीवन बितावे। (५) दीन और दुखिया स्त्री। (६) जटामासी। (७) बड़ी गोरखमुंडी। (८) कुटकी। कटुरोहिणी।

तपस्वि-पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष। दौने का पेड़।

तन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार पंचभूतों का अविशेष मूल। पंचभूतों का आदि अमिश्र और सूक्ष्म रूप। ये संख्या में पांच हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विशेष—सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम दिया है उसके अनुसार पहले प्रकृति से महतत्त्व की उत्पत्ति होती है। महतत्त्व से अहंकार और अहंकार से सोलह पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सोलह पदार्थ, पाँच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेंद्रियाँ, एक मन और पांच तन्मात्र हैं। इसमें भी पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश का गुण शब्द है। शब्द और स्पर्श दो तन्मात्रओं से वायु उत्पन्न होता है और शब्द तथा स्पर्श दोनों ही उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श और रूप तीन तन्मात्राओं से तेज उत्पन्न होता है और शब्द, स्पर्श तथा रूप तीनों उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श रूप और रस तन्मात्र के संयोग से जल उत्पन्न होता है जिसमें ये चारों गुण होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पांचों तन्मात्रों के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है जिसमें ये पांचों गुण रहते हैं।

तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री० दे० "तन्मात्र"।

तन्यतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) रात्रि। रात। (३) गर्जन। गरजना। (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

तन्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की चंद्रकुल्या नदी का एक नाम।

तन्विनी—संज्ञा स्त्री० दे० "तन्वी"।

तन्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से भगण, तगण, नगण, सगण, भगण यगण, नगण और यगण (ऽ।।—ऽऽ।—।।।—।।ऽ—ऽ।।—ऽ।।—।।।—।ऽऽ) होते हैं। इसमें ५ वें, १२ वें और २४ वें अक्षर पर यति होती है।

वि० दुबले पतले और कोमल अंगोंवाली। जिसके अंग कृश और कोमल हों।

तपःकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपस्वी। (२) तपसी मछली।

तपःकृश—वि० [सं०] तप से क्षीण।

तप—संज्ञा पुं० [सं० तपस्] (१) शरीर को कष्ट देनेवाले वे व्रत और नियम आदि जो चित्त को शुद्ध और विषयों से निवृत्त करने के लिये किए जायं। तपस्या।

क्रि० प्र०—करना।—साधना।

विशेष—प्राचीन काल में हिंदुओं, बौद्धों यहूदियों और ईसाइयों आदि में बहुत से लोग ऐसे हुआ करते थे जो अपनी इंद्रियों को वश में रखने तथा दुष्कर्मों से बचने के लिये अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार बस्ती छोड़ कर जंगलों और पहाड़ों में जा रहते थे। वहां वे अपने रहने के लिये घास फूस की छोटी मोटी कुटी बना लेते थे और कंद मूल आदि खाकर और तरह तरह के कठिन व्रत आदि करके रहते थे। कभी वे लोग मौन रहते, गरमी सरदी सहते और उपवास करते थे। उनके इन्हीं सब आचरणों को तप कहते हैं। पुराणों आदि में इस प्रकार के तपों और तपस्वियों आदि की अनेक कथाएँ हैं। कभी कभी किसी अभीष्ट की सिद्धि या किसी देवता से वर की प्राप्ति आदि के लिये भी तप किया जाता था। जैसे, गंगा को लाने के लिये भगीरथ का तप, शिवजी से विवाह करने के लिये पार्वती का तप। पातंजल दर्शन में इसी तप को क्रिया-योग कहा है। गीता के अनुसार तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं का पूजन, बड़ों का आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तप के अंतर्गत हैं; सत्य और प्रिय बोलना, वेद शास्त्र पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मौनावलंबन, आत्म-निग्रह आदि की गणना मानसिक तप में है।

(२) शरीर वा इंद्रिय को वश में रखने का धर्म्म। (३) नियम। (४) माघ का महीना। (५) ज्योतिष में लग्न से नवां स्थान। (६) अग्नि। (७) एक कल्प का नाम। (८) एक लोक का नाम। दे० "तपोलोक"।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताप। गरमी। (२) ग्रीष्म ऋतु। (३) बुखार। ज्वर।

तपकना—*क्रि० अ० [हिं० टपकना या तमकना] (१) धड़कना उछलना। उ०—रतिया अँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कढति उठै छतिया तपकि तपकि।—देव। (२) दे० "टपकना"।

तपचाक—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का तुर्की घोड़ा।

तपड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ढूह। छोटा टीला। (२) एक प्रकार का फल जो पकने पर पीलापन लिए लाल रंग का हो जाता है। यह जाड़े के अंत में बाजारों में मिलता है।

तपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सूर्य की कन्या का नाम जो छाया के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। सूर्य ने कुरुवंशी सम्वरण की सेवा आदि से प्रसन्न होकर तपती का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया था।

तपन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपने की क्रिया या भाव। ताप। जलन। आँच। दाह। (२) सूर्य। आदित्य। रवि। (३) सूर्यकांत मणि। सूरजमुखी। (४) ग्रीष्म। गरमी। (५) एक प्रकार की अग्नि। (६) पुराणानुसार एक नरक जिसमें जाते ही शरीर जलता है। (७) धूप। (८) भिलावें का पेड़। (९) मदार। आक। (१०) अरनी का पेड़। (११) वह क्रिया या हाव भाव आदि जो नायक के वियोग में नायिका करे या दिखलावे। इसकी गणना अलंकार में की जाती है।

तपौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] (१) ठगों की एक रसम जो मुसाफिरों के गरोह को लूट मार चुकने और उनका माल ले लेने पर होती है। इसमें सब ठग मिल कर देवी की पूजा करते हैं और गुड़ चढ़ा कर उसी का प्रसाद आपस में बाँटते हैं।

मुहा०—तपौनी का गुड़ = (१) तपौनी की पूजा के प्रसाद का गुड़ जो किसी नए आदमी को पहले पहल अपनी मंडली में मिलाने के समय ठग लोग खिलाते हैं। (२) किसी नए आदमी को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या दिया जानेवाला पदार्थ।

(२) दे० "तपनी"।

तप्त—वि० [सं०] (१) तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ। तापित। गरम। उष्ण। (२) दुःखित। क्लेशित। पीड़ित।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राकृतिक जल धारा जिसका पानी गरम हो। गरम पानी का सोता या कुंड।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे सोते मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे सोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खौलता हुआ तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के अंदर की अग्नि से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता है। ऐसे सोतों के जल में बहुधा अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य (जैसे, गंधक, लोहा, अनेक प्रकार के क्षार) भी मिले होते हैं जिनके कारण उन जलों में बहुत से रोगों को दूर करने का गुण आ जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे सोते कम हैं पर युरोप और अमेरिका में ऐसे सोते बहुत पाए जाते हैं जिन्हें देखने तथा जिनका जल पीने के लिये बहुत दूर दूर से लोग जाते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये महीनों उनके किनारे रहते भी हैं। प्रायः जल जितना अधिक गरम होता है उसमें गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे सोतों के जल में दस्त लाने, बल बढ़ाने या रक्त-विकार आदि दूर करनेवाले खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक बहुत भयानक नरक जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ खौलते हुए तेल के कड़ाहे रहते हैं। उन्हीं कड़ाहों में दुराचारियों को यम के दूत फेंक दिया करते हैं।

तप्तकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो बारह दिनों में समाप्त होता और प्रायश्चित्त स्वरूप किया जाता है। इसमें व्रत करनेवाले को पहले तीन दिन तक प्रति दिन तीन पल गरम दूध, तब तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन दिन तक रोज ६ पल गरम जल और अंत में तीन दिन तक गरम वायु का सेवन करना होता है। गरम वायु से तात्पर्य गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह व्रत करने से द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी के मत से यह व्रत केवल चार दिनों में किया जा सकता है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन एक पल गरम घी और तीसरे दिन ६ पल गरम जल पीना चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिए।

तप्तपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तबालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाष—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिसमें व्यवहार या अपराध आदि के संबंध में किसी मनुष्य के कथन की सत्यता जानी जाती थी। इसमें लोहे या ताँबे के बरतन में घी या तेल खौलाया जाता था और परीक्षार्थी उस खौलते हुए तेल या घी में अपनी उँगली डालता था। यदि उसकी उँगली में छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था।

तप्तमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादि के छापे जो तपा कर वैष्णव लोग अपनी भुजा तथा दूसरे अंगों पर दाग लेते हैं। यह धार्मिक चिह्न होता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं। दे० "चक्रमुद्रा"।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तशूर्मी—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें अगम्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और अगम्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती हैं। इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए लोहे के खंभे आलिंगन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो दीन दुखियों को बहुत सता कर प्राप्त की जाय।

तप्प*†—संज्ञा पुं० दे० "तप"। उ०—साधन सिद्ध न पाई औ जो साधिन तप्प। सो पै जानहि बापुरो सीस जो करै कलप्प। —जायसी।

तप्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तफ़रीक़—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जुदाई। भिन्नता। अलहदगी। (२) घटाना। बाकी निकालना। (गणित)

क्रि० प्र०—निकालना।

(३) फरक। अंतर। (४) बँटवारा। बाँट। बँटाई। (कानून)

तफ़रीह—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) खुशी। प्रसन्नता। फरहत। (२) दिलबहलाव। दिल्लगी। हँसी। ठट्ठा। (३) हवाखोरी। सैर। (४) ताज़ापन। ताजगी।

तफ़सील—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विस्तृत वर्णन। (२) टीका। तशरीह। (३) सूची। फेहरिस्त। फर्द। (४) कैफियत। ब्योरा। विवरण।

तपस्वी–संज्ञा पुं० [सं० तपस्विन्] [स्त्री० तपस्विनी] (१) वह जो तप करता हो। तपस्या करनेवाला। (२) दीन। (३) दया करने योग्य। (४) घीकुआर। (५) तपसी मछली। (६) तपसोमूर्त्ति का एक नाम।

तपा†–संज्ञा पुं० [हिं० तप] तपस्वी। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी।

वि० तप में मग्न। जो तपस्या में लीन हो। उ०—फेरइ भेस रहइ भा तपा। धूरि लपेटा मानिक छपा।—जायसी।

तपाक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) आवेश। जोश। जैसे, आते ही वह बड़े तपाक से बोला।

मुहा०—तपाक बदलना = नाराज होना। बिगड़ जाना। तेवर बदलना।

(२) वेग। तेजी।

तपात्यय–संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल। बरसात।

तपानल–संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज। वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो।

तपाना–क्रि० स० [हिं० तपना] (१) बहुत अधिक गर्मी, आग, धूप आदि की सहायता से गरम करना। तप्त करना। (२) संतप्त करना। दुःख देना। क्लेश देना।

तपावंत–संज्ञा पुं० [हिं० तप + वंत (प्रत्य०)] तपस्वी। तपसी। वह जो तपस्या करता हो। उ०—तपावंत छाला लिखि दीन्हा। वेग चलाव चहूँ सिधि कीन्हा।—जायसी।

तपाव–संज्ञा पुं० [हिं० तपना + आव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव। गरमाहट। ताप।

तपित*†–वि० [सं०] तपा हुआ। गरम। तप्त।

तपिया–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्य भारत, बंगाल तथा आसाम में होता है। इस की छाल तथा पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे विरमी भी कहते हैं।

तपिश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गरमी। तपन। आँच। ताव।

तपी–संज्ञा पुं० [हिं० तप + ई (प्रत्य०)] (१) तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। ऋषि। उ०—धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी।—तुलसी। (२) सूर्य। (डिं०)

तपु–संज्ञा पुं० [सं० तपुस्] (१) अग्नि। आग। (२) सूर्य। रवि। (३) शत्रु।

वि० (१) तप्त। उष्ण। गरम। (२) तपाने या गरम करनेवाला।

तपेदिक़–संज्ञा पुं० [फ़ा० तप + अ० दिक़] राजयक्ष्मा। क्षयीरोग।

तपोज़–वि० [सं०] (१) जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। (२) जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विशेष—प्राचीन आर्यों का विश्वास था कि यज्ञ आदि की अग्नि की सहायता से ही मेघ बनता है, इसीलिये जल का नाम "तपोज" पड़ा।

तपोड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन। (लश०)

तपोदान–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुण्य-तीर्थ जिस का वर्णन महाभारत में आया है

तपोधन–संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी। वह जो तपस्या के अतिरिक्त और कुछ भी न करता हो। उ०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि बृंद।—तुलसी। (२) दौने का पेड़।

तपोधना–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

तपोधर्म–संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधृति–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वंतर चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि–संज्ञा पुं० [सं०] तपोनिष्ठ। तपस्वी।

तपोनिष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोबन*–संज्ञा पुं० दे० "तपोवन"।

तपोभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय–संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) तपस्वी। (३) पुराणानुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक।

तपोमूल–संज्ञा पुं० [सं०] तामस मनु के एक पुत्र का नाम।

तपोरति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपस्वी। (२) तामस मनु के एक पुत्र का नाम।

तपोरवि–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराशि–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह लोकों में से ऊपर के सात लोकों में से छठा लोक जो जनलोक और सत्यलोक के बीच में है। पद्मपुराण में लिखा है कि यह लोक तेजोमय है और जो लोग अनेक प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके श्रीकृष्ण भगवान को संतुष्ट करते हैं इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोवट–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मावर्त्त देश।

तपोवन–संज्ञा पुं० [सं०] वह एकांत स्थान या वन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोबल–संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोवृद्ध–वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा श्रेष्ठ हो।

तपोहशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तामस मनु के पुत्र तपस्य का एक नाम। (२) तपसोमूर्त्ति का एक नाम।

ऐसी स्थिति में लाना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में से चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले।

तबलिया–संज्ञा पुं० [अ० तबल + इया (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो। तबलची।

तबाक़–संज्ञा पुं० [अ०] बड़ा थाल। परात।

यौ०—तबाक़ी कुत्ता = केवल खाने-पीने का साथी। वह जो केवल अच्छी दशा में साथ दे और आपत्ति के समय अलग हो जाय।

तबाबत–संज्ञा स्त्री० [अ०] चिकित्सा। वैद्यक।

तबाशीर–संज्ञा पुं० [सं० तवक्षीर] वंसलोचन।

तबाह–वि० [फ़ा०] जो नष्ट भ्रष्ट या बिलकुल खराब हो गया हो। नष्ट। बरबाद। चौपट।

तबाही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नाश। बरबादी। अधःपतन।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—तबाही खाना = जहाज़ का टूट फूट कर रद्दी होना। (लश०)। तबाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज़ को काम न मिलना। (लश०)

तबिअत–संज्ञा स्त्री० दे० "तबीअत"।

तबीअत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) चित्त। मन। जी।

मुहा०—(किसी पर) तबीअत आना = (किसी पर) प्रेम होना। आशिक होना। (किसी चीज पर) तबीअत आना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीअत उलझना = जी घबराना। तबीअत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वास्थ्य बिगड़ना। (२) जी मिचलाना। तबीअत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो जाना। उमंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीअत फड़क जाना = दे० "तबीअत फड़क उठना"। तबीअत फिरना = जी हटना। अनुराग न रहना। तबीअत बिगड़ना = दे० "तबीअत खराब होना"। तबीअत भरना = (१) संतोष होना। तसल्ली होना। (२) संतोष करना। तसल्ली करना। जैसे, हमने अच्छी तरह उन की तबीअत भर दी तब उन्होंने रुपए लिए। (३) मन भरना। अनुराग या इच्छा न रहना। जैसे, अब इन कामों से हमारी तबीअत भर गई। तबीअत लगना = (१) मन में अनुराग उत्पन्न होना। (२) ख्याल लगा रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे, इधर कई दिनों से उनकी चिट्ठी नहीं आई, इससे तबीअत लगी हुई है। तबीअत लगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रवृत्त करना। जैसे, तबीअत लगा कर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहब्बत में फँसना। तबीअत होना = अनुराग या प्रवृत्ति होना। जी चाहना।

(२) बुद्धि। समझ। भाव।

मुहा०—तबीअत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। तवज्जह करना। जैसे, जरा तबीअत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीअत लड़ाना = दे० "तबीअत पर जोर डालना"।

यौ०—तबीअतदार। तबीअतदारी।

तबीअतदार–वि० [अ० तबीअत + फ़ा० दार] (१) जो भावों को चट ग्रहण करता हो। समझदार। (२) भावुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीअतदारी–संज्ञा स्त्री० [अ० तबीअत + फ़ा० दारी] (१) होशियारी। समझदारी। (२) भावुकता। रसज्ञता।

तबीब–संज्ञा पुं० [अ०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

तभी–अव्य० [हिं० तब + ही] (१) उसी समय। उसी वक्त। उसी घड़ी। जैसे, जब तुम नहीं आए तभी मैंने समझ लिया कि दाल में कुछ काला है। (२) इसी कारण। इसी वजह से। जैसे, तुम्हारा उधर काम था तभी तुम गए।

तमंचा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) छोटी बंदूक। पिस्तौल।

क्रि० प्र०—चलाना।—दागना।—मारना।—छोड़ना।

यौ०—तमंचे की टाँग = कुश्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पेट में घुस आने पर बाएँ हाथ से कमर पर से उसका लँगोट पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी बगल से अपना बायाँ पाँव चढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाईं जाँघ फँसाते और उसे चित कर देते हैं।

(२) एक लंबा पत्थर जो दरवाजों की मजबूती के लिये बगल में लगाया जाता है।

तम–संज्ञा पुं० [सं० तम, तमस्] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) पैर का अगला भाग। (३) तमाल वृक्ष। (४) राहु। (५) वराह। सुअर। (६) पाप। (७) क्रोध। (८) अज्ञान। (९) कालिख। कालिमा। श्यामता। (१०) नरक। (११) मोह। (१२) सांख्य के अनुसार अविद्या। (१३) सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है। जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है तब उसकी प्रवृत्ति काम क्रोध हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है।

तमअ–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लालच। लोभ। हिर्स। (२) चाह। इच्छा। ख्वाहिश।

तमक–संज्ञा पुं० [हिं० तमकना] (१) जोश। उद्वेग। (२) तेजी। तीव्रता। (३) क्रोध। गुस्सा।

संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार श्वास रोग का एक भेद जिसमें दम फूलने के साथ साथ बहुत प्यास लगती है, पसीना आता है, जी मिचलाता है और गले में घरघराहट होती है। जिस समय आकाश में बादल छाए हों, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

तफ़ावत–संज्ञा पुं० [अ०] (१) अंतर । फर्क । (२) दूरी । फ़ासिला ।

तब–अव्य० [सं० तदा] (१) उस समय । उस वक्त ।

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रायः 'जब' के साथ होता है । जैसे, जब तुम आओगे तब मैं चलूँगा ।

(२) इस कारण । इस वजह से । जैसे, मेरा उधर काम था तब मैं गया, नहीं क्यों जाता ?

तबक़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) आकाश के वे कल्पित खंड जो पृथ्वी के ऊपर और नीचे माने जाते हैं । लोक । तल । (२) परत । तह । (३) चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तरों को पीट कर कागज की तरह बनाया हुआ पतला वरक जो बहुधा मिठाइयों आदि पर चपकाया और दवाओं में डाला जाता है । (४) चौड़ी और छिछली थाली । (५) वह पूजा या उपचार जो मुसलमान स्त्रियाँ परियों की बाधा से बचने के लिये करती हैं । परियों की नमाज़ ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

(६) घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर सूजन हो जाती है । (७) रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ दाग । चकत्ता ।

तबक़गर–संज्ञा पुं० [अ० तबक़ + फ़ा० गर] वह जो सोने चाँदी आदि के तबक़ या पत्तर बनाता हो । तबकिया ।

तबकड़ी–संज्ञा स्त्री० [अ० तबक + ड़ी (प्रत्य०)] छोटी रिकाबी ।

तबक़फाड़–संज्ञा पुं० [अ० तबक + हिं० फाड़] कुश्ती का एक पेंच । जब शत्रु पेट में घुस आता है तब पहलवान अपनी दाहिनी टाँग से उसके बाएँ पाँव को भीतर से बाँधते हैं और दोनों हाथों से उसकी दाहिनी टाँग को जाँघ की जगह पकड़ कर उसके दोनों पाँव फाड़ते हैं और मौका पा कर उसे चित कर देते हैं ।

तबक़ा–संज्ञा पुं० [अ० तबकः] (१) खंड । विभाग । (२) तह । परत । (३) लोक । तल । (४) आदमियों का गरोह । (५) पद । रुतबा ।

तबकिया–संज्ञा पुं० [अ० तबक + इया (प्रत्य०)] वह जो सोने, चाँदी आदि के तबक या पत्तर बनाता हो । तबकगर ।

वि० तबक-संबंधी । जिसमें तबक या परत हों । जैसे, तबकिया हरताल ।

तबकिया हरताल–संज्ञा पुं० [हिं० तबकिया + सं० हरताल] एक प्रकार की हरताल जिसके टुकड़ों में तबक या परत होते हैं । इसके टुकड़े में से अलग अलग पपड़ियाँ सी उतरती हैं ।

तबदील–वि० [अ०] जो बदला गया हो । परिवर्त्तित ।

तबदीली–संज्ञा स्त्री० [अ०] बदले जाने या परिवर्त्तित होने की क्रिया । बदली ।

तबद्दल–संज्ञा पुं० दे० "तबदीली" ।

तबर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कुल्हाड़ी । टाँगी । (२) कुल्हाड़ी की तरह का लड़ाई का एक हथियार ।

संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के सब से ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है ।

तबरदार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुल्हाड़ी या तबर चलानेवाला ।

तबरदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तबर, कुल्हाड़ी या फरसा चलाने का काम ।

तबल–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बड़ा ढोल । (२) नगारा । डंका ।

तबलची–संज्ञा पुं० [अ० तबलः + ची (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलिया ।

तबला–संज्ञा पुं० [अ० तबलः] ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के लंबोतरे और खोखले कूँड़ पर गोल चमड़ा मढ़ा रहता है । यह चमड़ा "पूरी" कहलाता है और इस पर लोहचून, झावें, लोई, सरेस, मँगरैले और तेल को मिलाकर बनाई हुई स्याही की गोल टिकिया अच्छी तरह जमाकर चिकने पत्थर से घोंटी हुई होती है । इसी स्याही पर आघात पड़ने से तबले में से आवाज़ निकलती है । कूँड़ पर रख कर यह पूरी चारों ओर चमड़े के फीते से जिसे 'बद्धी' कहते हैं, कस कर बाँध दी जाती है । इस बद्धी और कूँड़ के बीच में काठ की गुल्लियाँ भी रख दी जाती हैं जिनकी सहायता से तबले का स्वर आवश्यकतानुसार चढ़ाते या उतारते हैं । वातावरण अधिक ठंढा हो जाने के कारण भी तबला आप से आप उतर जाता और अधिक गरमी के कारण आप से आप चढ़ जाता है । यह बाजा अकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे "बायाँ" "ठेका" या "डुग्गी" भी कहते हैं ।

विशेष—साधारणतः बोलचाल में लोग तबले और बाएँ को एक साथ मिला कर भी केवल तबला ही कहते हैं । तबला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।

मुहा०—तबला उतरना = तबले की बद्धी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला उतारना = तबले की बद्धी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का तनाव कम कर देना जिससे तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला खनकना = दे० "तबला ठनकना" । तबला चढ़ना = तबले की बद्धी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता और स्वर ऊँचा निकलने लगता है । तबला चढ़ाना = तबले की बद्धी को कस कर पूरी पर का तनाव अधिक करना जिसमें तबले में से ऊँचा स्वर निकलने लगे । तबला ठनकना = (१) तबला बजना । (२) नाच रंग होना । तबला मिलाना = गुल्लियों को ऊपर नीचे हटा बढ़ा कर

ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पौधे ही काट लिए जाते हैं। इसके बाद वे पत्ते धूप में सुखाए जाते हैं और अनेक रूपों में काम में लाए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते और रोग होते हैं। तंबाकू।

विशेष—सोलहवीं शताब्दी से पहले तमाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ प्रांतों के आदिम निवासियों में ही होता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा तब उसने वहाँ के लोगों को इसके पत्ते चबाते और इसका धुआँ पीते हुए देखा था। सन् १५३१ में स्पेनवाले इसे पहले पहल युरोप ले गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे। सन् १६०५ में इसे असदबेग ने बीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से वह अपने साथ दिल्ली ले गया था। वहाँ उसने हुक्के और चिलम पर रख कर इसे अकबर को पिलाना चाहा था, पर हकीमों ने मना कर दिया। पर आगे चल कर धीरे धीरे इसका प्रचार बहुत बढ़ गया। आरंभ में इंगलैंड, फ्रांस तथा भारत आदि सभी देशों में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, धर्माधिकारियों और चिकित्सकों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उद्योग किए थे पर वे सब निष्फल हुए। अब समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुड्ढे प्रायः सभी किसी न किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों में छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

(२) इस पेड़ का पत्ता जिसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। चूर करके खाते हैं, सूँघते हैं, धूआँ खींचने के लिये नली में या चिलम पर जलाते हैं। इसमें नशा होता है। भारत में धूआँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है। (दे० नं० (३))। इसका बहुत महीन चूर्ण सुँघनी कहलाता है जिसे लोग सूँघते हैं। भारत में लोग इसके पत्तों को सुखा कर पान के साथ अथवा यों ही खाने के लिये कई तरह का चूरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, जरदा आदि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का अवलेह भी बनाया जाता है जिसे "किमाम" कहते हैं। इस देश में लोग इसके सूखे पत्तों को चूने के साथ मल कर मुँह में रखते हैं। चूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे "खैनी" या 'सुरती' कहते हैं। युरोप अमेरिका आदि देशों में इसके चूरे को कागज या पत्तों आदि में लपेट कर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाता है और इससे स्वास्थ्य और विशेषतः आँखों को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, गरम, कड़ुआ, मद और वमनकारक तथा दृष्टि को हानि पहुँचानेवाला माना जाता है। सुरती। (३) इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गीली पिंडी जिससे चिलम पर जला कर मुँह से धुआँ खींचते हैं। पत्तियों के साथ रेह मिला कर जो तमाकू तैयार होता है वह कड़ुआ कहलाता है, गुड़ मिला कर बनाया हुआ "मीठा" कहलाता है और कटहल बेर आदि का खमीर मिला कर बनाया हुआ "खमीरा" कहलाता है। इसे चिलम पर रख कर उसके ऊपर कोयले की आग या सुलगती हुई टिकिया रखते हैं और खाली हाथ, गौरिए अथवा हुक्के पर रख कर नली से इसका धुआँ खींचते हैं।

मुहा०—तमाकू चढ़ाना = तमाकू को चिलम पर रख कर और उस पर आग या टिकिया रख कर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धुआँ खींचना। तमाकू भरना = दे० "तमाकू चढ़ाना"।

तमाखू†–संज्ञा पुं० दे० 'तमाकू'।

तमाचा–संज्ञा पुं० [फ़ा० तबानचः या तबन्चः] हथेली और उँगलियों से गाल पर किया हुआ प्रहार। थप्पड़। झापड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमाचारी–संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। दैत्य। निशिचर।

तमादी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) अवधि बीत जाना। मुद्दत या मियाद गुजर जाना। (२) उस अवधि का बीत जाना जिसके अंदर लेन देन संबंधी कोई कानूनी कार्रवाई हो सकती हो। उस मुद्दत का गुजर जाना जिसके अंदर अदालत में किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—होना।

तमाम–वि० [अ०] (१) पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। बिलकुल। जैसे, (क) दो ही बरस में तमाम रुपए फूँक दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। (२) समाप्त। खतम।

मुहा०—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का देशी रेशमी कपड़ा जिस पर कलाबत्तू की धारियाँ होती हैं। यह प्रायः गोट लगाने के काम में आता है।

तमारि–संज्ञा पुं० [हिं० तम + अरि] सूर्य। दिनकर। रवि। उ०—संत उदय संतत सुखकारी। विस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० "तँवार"। उ०—पल में पल रूप बीतिया लोगन लगी तमारि।—कबीर।

तमाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीस पचीस फुट ऊँचा एक बहुत

तमकना–क्रि॰ अ॰ [अनु॰] (१) क्रोध का आवेश दिखलाना। क्रोध के कारण उछल पड़ना। उ॰—अंजन त्रास तजत तमकत तकि तानत दरशन डीठि। हारेहू नहिं हटत अमित बल चदन पयोधि पईठ।—सूर। (२) दे॰ "तमतमाना"।

तमकश्वास–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का दमा जिसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है। प्रायः इसके उत्पन्न होने से रोगी के मर जाने का भी भय होता है।

तमग़ा–संज्ञा पुं॰ [तु॰] पदक। तगमा। मेडल।

तमगुन–संज्ञा पुं॰ दे॰ "तमोगुण"

तमचर–संज्ञा पुं॰ [सं॰ तमीचर] (१) राक्षस। निशाचर। (२) उलूक। उल्लू।

तमचुर * †–संज्ञा पुं॰ [सं॰ ताम्रचूड़] मुरगा। कुक्कुट। उ॰—(क) विख राखे नहि होत अँगूरू। सबद न देइ बिरह तमचूरू।—जायसी। (ख) सुनि तमचुर को सोर घोष की बागरी। नवसत साजि सिँगार चलीं ब्रज नागरी।—सूर। (ग) ससि कर हीन छीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मेरे प्यारे।—तुलसी।

तमचोर *† –संज्ञा पुं॰ दे॰ "तमचुर"।

तमतमाना–क्रि॰ अ॰ [सं॰ ताम्र] (१) धूप या क्रोध आदि के कारण चेहरा लाल हो जाना। (२) चमकना। दमकना। (क्व॰)

तमतमाहट–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तमतमाना] तमतमाने का भाव।

तमता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) तम का भाव। (२) अँधेरा। अंधकार।

तमप्रभ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमरंग–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का नीबू जिसे 'तुरंज' कहते हैं।

विशेष—दे॰ "तुरंज"।

तमर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वंग।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ तम] अंधकार। अँधेरा।

तमराज–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की खाँड़ जो वैद्यक में ज्वर, दाह तथा पित्तनाशक मानी गई है।

तमलूक–संज्ञा पुं॰ दे॰ "तामलूक"।

तमलेट–संज्ञा पुं॰ [अं॰ टम्लर] (१) लुक फेरा हुआ टीन या लोहे का बरतन। (२) फौजी सिपाहियों का लोटा।

तमस्–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) अंधकार। (२) अज्ञान का अंधकार। (३) प्रकृति का एक गुण। दे॰ 'गुण'। तमोगुण।

तमस–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) अंधकार। (२) अज्ञान का अंधकार। (३) पाप। (४) नगर। (५) कूप। कुआँ। (६) तमसा नदी। टौंस। उ॰—आयो तमस नदी के तीरा। तब लाछिल परिहार सुबीरा।—रघुराज।

तमसा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] टौंस नाम की नदी। (इस नाम की तीन नदियाँ हैं)। दे॰ "टौंस"।

तमस्वती–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "तमस्विनी"।

तमस्विनी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) रात्रि। रात। रजनी। (२) हल्दी।

तमस्सुक–संज्ञा पुं॰ [अ॰] वह कागज जो ऋण लेनेवाला ऋण के प्रमाण-स्वरूप लिख कर महाजन को देता है। दस्तावेज। ऋणपत्र। लेख।

तमहँड़ी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताँबा + हाँड़ी] हाँड़ी के आकार का ताँबे का एक प्रकार का छोटा बरतन।

तमहर–संज्ञा पुं॰ दे॰ "तमोहर"।

तमहीद–संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] वह जो कुछ किसी विषय को आरंभ करने से पहले कहा जाय। भूमिका। दीबाचा।

क्रि॰ प्र॰—बाँधना।

तमाँचा–संज्ञा पुं॰ दे॰ "तमाचा"।

तमा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ तमः तमस्] राहु।

संज्ञा स्त्री॰ (१) रात। रात्रि। रजनी।

* संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "तमअ"। उ॰—(क) लोक परलोक बिलोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाइ कहा काहू वीर वान की।—तुलसी। (ख) आप कीन तप खप कियो न तमाइ जोग जाग न विराग त्याग तीरथ न तन को।—तुलसी।

तमाई–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] खेत जोतने के पूर्व उसमें की घास आदि साफ करना।

तमाकू–संज्ञा॰ पुं॰ [पुर्त्त॰ टबैको] (१) तीन से छः फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पौधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर यूरोप में अधिकता से होता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं पर खाने या पीने के काम में केवल ५—६ तरह के पत्ते ही आते हैं। इसके पत्ते २—३ फुट तक लंबे, विपाक्त और नशीले होते हैं। भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में इसके बोने का समय एक दूसरे से अलग है, पर बहुधा यह कुआर कातिक से लेकर पूस तक बोया जाता है। इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें खार अधिक हो। इसमें खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। जिस जमीन में यह बोया जाता है उसमें साल में बहुधा केवल इसी की एक फसल होती है। पहले इसका बीज बोया जाता है और जब इसके अंकुर ५—६ इंच के ऊँचे हो जाते हैं तब इसे दूसरी जमीन में जो पहले से कई बार बहुत अच्छी तरह जोती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं। आरंभ में इसमें सिँचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसके फूलने से पहले ही इसकी कलियाँ और नीचे के पत्ते छाँट दिए जाते हैं। जब पत्ते कुछ पीले रंग के हो जाते हैं और उस पर चित्तियाँ पड़ जाती हैं तब या तो

तमोघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) चंद्रमा। (३) सूर्य। (४) बुद्ध। (५) बौद्ध मत के नियम आदि। (६) विष्णु। (७) शिव। (८) ज्ञान। (९) दीपक। दीआ। चिराग।

वि० जिससे अँधेरा दूर हो।

तमोदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो।

तमोनुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) चंद्रमा। (३) अग्नि। आग।

तमोभिद-संज्ञा पुं० [सं०] जुगनू।

वि० अंधकार दूर करनेवाला।

तमोमणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुगनू। (२) गोमेदक मणि।

तमोमय-वि० [सं०] (१) तमोगुणयुक्त। (२) अज्ञानी। (३) क्रोधी।

संज्ञा पुं० [सं०] राहु।

तमोर*†-संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] तांबूल। पान। उ०—(क) थार तमोर दूध दधि रोचन हरषि यशोदा लाई।—सूर। (ख) सुरँग अधर औ लीन तमोरा। सोहै पान फूल कर जोरा।—जायसी।

तमोरि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

तमोरी*†-संज्ञा पुं० दे० "तँबोली"।

तमोल*†-संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] (१) पान का बीड़ा। उ०—बेंदी भाल तमोल मुख सीस सिलसिले बार। दृग आँजे राजे खरी ये ही सहज सिंगार।—बिहारी। (२) दे० "तंबोल"।

तमोलिन-संज्ञा स्त्री० दे० "तँबोलिन"।

तमोलिप्री-संज्ञा स्त्री० दे० "ताम्रलिप्त"।

तमोली-संज्ञा पुं० दे० "तँबोली"।

तमोविकार-संज्ञा पुं० [सं०] तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाला विकार। जैसे, नींद आलस्य आदि।

तमोहंत-संज्ञा पुं० [सं०] दस प्रकार के ग्रहणों में से एक।

विशेष—दे० "तमोंत्य"।

तमोहपह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) चंद्रमा। (३) अग्नि। (४) दीपक। दीआ।

वि० (१) मोह-नाशक। (२) अंधकार दूर करनेवाला।

तमोहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) सूर्य। (३) अग्नि। आग। (४) ज्ञान।

वि० [सं०] (१) अंधकार दूर करनेवाला। (२) अज्ञान दूर करनेवाला।

तमोहरि-संज्ञा पुं० दे० "तमोहर"।

तय-वि० [अ०] (१) समाप्त। पूरा किया हुआ। निबटाया हुआ। जैसे, रास्ता तय करना, काम तय करना। (२) निश्चित। स्थिर। ठहराया हुआ। मुकर्रर। उ०—सोमवार को चलना तय हुआ है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तय पाना = निश्चित होना। ठहरना।

(३) निर्णीत। फैसल। निबटाया हुआ। जैसे, मामला या झगड़ा तय करना।

तयना*†-क्रि० अ० [सं० तपन] (१) तपना। बहुत गरम होना। उ०—निसि बासर तया तिहूँ ताय।—तुलसी। (२) संतप्त होना। दुखी होना। पीड़ित होना।

विशेष—दे० "तपना"।

तया†-संज्ञा पुं० दे० 'तवा'।

तयार‡*-वि० दे० "तैयार"।

तयारी‡*-संज्ञा स्त्री० दे० "तैयारी"।

तरंग-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी की वह उछाल जो हवा लगने के कारण होती है। लहर। हिलोर। मौज।

क्रि० प्र०—उठना।

पर्य्या०—भंग। ऊर्मि। उर्मी। वीचि। विची। हली। लहरी। भृंगि। उत्कलिका। जललता।

(२) संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार। स्वरलहरी। उ०—बहु भाँति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं।—तुलसी। (३) चित्त की उमंग। मन की मौज। उत्साह या आनंद की अवस्था में सहसा उठनेवाला विचार। जैसे, (क) भंग की तरंग में ऐसी ही बातें सूझती हैं। (ख) आज मेरे चित्त में यही तरंग उठी कि नदी के किनारे चलना चाहिए। (४) वस्त्र। कपड़ा। (५) घोड़े आदि की फलांग या उछाल। (६) हाथ में पहनने की एक प्रकार की चूड़ी जो सोने के तार उमेठ कर बनाई जाती है।

तरंगक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तरंगिका] (१) पानी की लहर। हिलोर। (२) स्वरलहरी। उ०—स्वर मंद बाजत बाँसुरी गति मिलत उठत तरंगिका।—राधाकृष्णदास।

तरंगभीरु-संज्ञा पुं० [सं०] चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

तरंगवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। तरंगिणी।

तरंगालि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

तरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। सरिता।

वि० तरंगवाली।

तरंगित-वि० [सं०] हिलोर मारता हुआ। लहराता हुआ। नीचे ऊपर उठता हुआ।

तरंगी-वि० [सं० तरंगिन्] [स्त्री० तरंगिणी] (१) तरंगयुक्त। जिसमें लहर हो। (२) जैसा मन में आवे वैसा करनेवाला। मनमौजी। आनंदी। लहरी। बेपरवाह। उ०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।—तुलसी।

तरंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाव। नौका। (२) मछली मारने की डोरी में बँधी हुई छोटी सी लकड़ी जो पानी के ऊपर तैरती रहती है। (३) नाव खेने का डाँड़ा।

सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर अधिकता से और जमुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है। यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा श्याम तमाल। श्याम तमाल कम मिलता है। उसके फूल लाल रंग के और उसकी लकड़ी आबनूस की तरह काली होती है। तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीफे के पत्ते से मिलते जुलते होते हैं। बैसाख के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं। इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक खट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं। ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गीदड़ बड़े चाव से खाते हैं। श्याम तमाल को वैद्यक में कसैला, मधुर, बल-वीर्य-वर्द्धक, भारी, शीतल, श्रम शोथ और दाह को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्तनाशक माना है।

पर्य्या०—कालस्कंध। तापिच्छ। अमितद्रुम। लोकस्कंध। नील-ध्वज। नीलताल। तापिंज। तम। तया। कालताल। महाबल।

(२) तेजपत्ता। (३) काले खैर का वृक्ष। (४) बाँस की छाल। (५) वरुण वृक्ष। (६) एक प्रकार की तलवार। (७) तिलक का पेड़। (८) हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जिसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो घटिया रेवंद चीनी की तरह का होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का बढ़िया पीला रंग निकलता है। पूस माघ में इसमें फल लगता है जिसे लोग यों ही खाते अथवा इमली की तरह दाल तरकारियों में डालते हैं। इसका व्यवहार औषध में भी होता है। लोग इसे सुखा कर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं। इसे मन्होला और उमबेल भी कहते हैं।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपात। (२) तमाल वृक्ष। (३) बाँस की छाल। (४) चौपतिया साग। सुसना साग।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुइँ आमला। भूम्यामलकी। (२) ताम्रवल्ली नाम की लता।

तमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रलिप्त देश का एक नाम। (२) भूम्यामलकी। भुइँ आँवला।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वरुण वृक्ष। (२) ताम्रवल्ली नाम की लता जो चित्रकूट में बहुत होती है।

तमाशगीर†—संज्ञा पुं० दे० "तमाशबीन"।

तमाशबीन—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा + फ़ा० बीन] (१) तमाशा देखनेवाला। सैलानी। (२) रंडीबाज। वेश्यागामी। ऐयाश।

तमाशबीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमाशबीन + ई (प्रत्य०)] रंडीबाजी। ऐयाशी। बदकारी।

तमाशा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह दृश्य जिसके देखने से मनो-रंजन हो। चित्त को प्रसन्न करनेवाला दृश्य। जैसे, मेला, थिएटर, नाच, आतिशबाजी आदि। उ०—मद मोलक जब खुलत हैं तेरे दृग गजराज। आइ तमासे जुरत हैं नेही नैन समाज।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—देखना।—दिखाना।—होना।

(२) अद्भुत व्यापार। विलक्षण व्यापार। अनोखी बात।

मुहा०—तमाशे की बात = आश्चर्य भरी और अनोखी बात।

तमाशाई—संज्ञा पुं० [अ०] तमाशा देखनेवाला। वह जो तमाशा देखता हो।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात। (२) मोह।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तमिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) क्रोध गुस्सा। (३) पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमिस्र पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृष्ण पक्ष अँधेरा पक्ष।

तमिस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँधेरी रात।

तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। रात्रि। निशा। (२) हरिद्रा। हलदी।

तमीचर—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। दैत्य। दनुज।

तमीज़—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) भले और बुरे को पहचानने की शक्ति। विवेक। (२) पहचान। (३) ज्ञान। बुद्धि। (४) अदब। कायदा।

यौ०—तमीज़दार = (१) बुद्धिमान। समझदार। (२) शिष्ट। सभ्य।

तमीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। निशाकर। क्षपाकर।

तमीश—संज्ञा पुं० [सं० तमी + ईश] चंद्रमा। क्षपाकर।

उ०—तौ लौं तम राजै तमी जौलौं नहिं रजनीश। केशव उगे तरणि के तमु न तमी न तमीश।—केशव।

तमु*†—संज्ञा पुं० दे० "तम"।

तमूरा†—संज्ञा पुं० दे० "तंबूरा"।

तमूल†—संज्ञा पुं० दे० "तांबूल"।

तमोंत्य—वि० [सं०] सूर्य और चंद्रग्रहण के दश प्रकार के ग्रासों में से एक जिसमें चंद्रमंडल की पिछली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक और बीच के भाग में थोड़ी सी जान पड़ती है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण फसल को हानि पहुँचती है और चोरों का भय होता है।

तमोंध—वि० [सं०] (१) अज्ञानी। (२) क्रोधी।

तमोगुण—संज्ञा पुं० दे० "तमस् (३)"।

तमोगुणी—वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो। अधम वृत्ति-वाला। उ०—तमोगुणी चाहै या भाई। मम बैरी क्योंही मर जाई।—सूर।

तरखा†-संज्ञा स्त्री० [सं० तरण] जल का तेज बहाव । तीव्र प्रवाह ।

तरखान-संज्ञा पुं० [सं० तक्षण] बढ़ई । लकड़ी का काम करनेवाला ।

तरगुलिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] अवत रखने का एक छिछला बरतन ।

तरचली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधे का नाम जो सजावट के लिये बगीचों में लगाया जाता है ।

तरछट-संज्ञा स्त्री० दे० "तलछट" ।

तरछना†-संज्ञा स्त्री० दे० "तलछट" ।

तरछा-संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] वह स्थान जहाँ तेली गोबर इकट्ठा करते हैं ।

तरछाना*†-क्रि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछी आँख से इशारा करना । इंगित करना । उ०—अरघ जाम जानिनि गए सखिन सकुचि तरछाय । देति बिदा तिय इतहि पिय चितवत चित ललचाय ।—देव ।

तरज-संज्ञा पुं० "तर्ज़" ।

तरजना-क्रि० अ० [सं० तर्जन] (१) ताड़न करना । डाँटना । डपटना । उ०—गरजति कहा तरजनिन्ह तरजत बरजत सयन नयन के कोए ।—तुलसी । (२) भला बुरा कहना । बिगड़ना ।

तरजनी-संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अँगूठे के पास की उँगली । उ०—(क) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।—तुलसी । (ख) सरल बाजि तर्जित तरजनी कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] भय । डर । उ०—अहो रे ! विहंगम बनवासी । तेरे बोल तरजनी बाढ़ति श्रवन सुनत नींदउ नासी ।—सूर ।

तरजुई†-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराज़ू] छोटी तराज़ू ।

तरजुमा-संज्ञा पुं० [अ०] अनुवाद । भाषांतर । उल्था ।

तरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी आदि को पार करने का काम। पार करना । (२) पानी पर तैरनेवाला तख्ता । बेड़ा । (३) निस्तार । उद्धार । (४) स्वर्ग ।

तरणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य । (२) मदार । (३) किरन ।

संज्ञा स्त्री० दे० "तरणी" ।

तरणिकुमार-संज्ञा पुं० दे० "तरणिसुत" ।

तरणिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की कन्या, यमुना । (२) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु होता है । इसका दूसरा नाम "सती" है । उ०—नगपती । धर सती ।

तरणितनय-संज्ञा पुं० दे० "तरणिसुत" ।

तरणितनूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना ।

तरणिसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य का पुत्र । (२) यम । (३) शनि । कर्ण ।

तरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नौका । नाव । (२) घीकुआर । (३) स्थल कमलिनी ।

तरतराना*-क्रि० अ० [अनु०] तड़तड़ाना । तड़तड़ शब्द करना । तोड़ने का सा शब्द करना । उ०—घहरात तरतरात गररात हहरात परात झहरात माथ नाये ।—सूर ।

तरतीब-संज्ञा स्त्री० [अ०] वस्तुओं की अपने ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति । यथास्थान रखा या लगाया जाना । क्रम । सिलसिला । जैसे, किताबें तरतीब से लगा दो ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

मुहा०—तरतीब देना = क्रम से रखना या लगाना । सजाना ।

तरत्समंदीय-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद के पावमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अप्रतिग्राह्य धन ग्रहण करने या निषिद्ध अन्न भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है ।

तरदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कटीला पेड़ ।

तरदीद-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) काटने या रद्द करने की क्रिया । मंसूखी । (२) खंडन । प्रत्युत्तर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरद्दुद-संज्ञा पुं० [अ०] सोच । फ़िक्र । अंदेशा । चिंता । खटका ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तरद्दुद में पड़ना = चिंता में पड़ना ।

तरद्दती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो घी और दही के साथ माड़े हुए आटे की गोलियों को पकाने से बनता है ।

तरन*-संज्ञा पुं० दे० 'तरण' ।

संज्ञा पुं० दे० "तरौना" ।

तरनतार-संज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन-संज्ञा पुं० [सं० तरण, हिं० तारना] (१) उद्धार । निस्तार । मोक्ष । (२) उद्धार करनेवाला । भवसागर से पार करनेवाला ।

तरना-क्रि० स० [सं० तरण] पार करना ।

क्रि० अ० भवसागर के पार होना । मुक्त होना । सद्गति प्राप्त करना । जैसे, तुम्हारे पुरखे तर जायँगे ।

क्रि० स० दे० "तलना" ।

संज्ञा पुं० [?] व्यापारी जहाज़ का वह अफ़सर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) मेढक। (३) राक्षस।

तरंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। किश्ती।

तरंतुक-संज्ञा पुं० [सं०] कुरुक्षेत्र के अंतर्गत एक स्थान का नाम।

तरंबुज-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज़।

तर-वि० [फ़ा०] (१) भीगा हुआ। आर्द्र। गीला। जैसे, पानी से तर करना, तेल से तर करना। (२) शीतल। ठंढा। जैसे, तर पानी, तर माल। उ०—तरबूज़ खा लो, तबीयत तर हो जाय। (३) जो सूखा न हो। हरा। (४) भरा पूरा। मालदार। जैसे, तर असामी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पार करने की क्रिया। (२) अग्नि। (३) वृक्ष। (४) पथ। (५) गति। (६) नाव की उतराई।

† क्रि० वि० [सं० तल] तले। नीचे। उ०—कौने विरिछ तर भीजत होइहैं राम लषन दूनो भाई।—गीत।

प्रत्य० [सं०] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में लगा कर दूसरे की अपेक्षा आधिक्य (गुण में) सूचित करता है। जैसे, गुरुतर, अधिकतर, श्रेष्ठतर।

तरई †-संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] नक्षत्र।

तरक-संज्ञा स्त्री० [सं० तंडक] दे० "तड़क"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़कना] दे० "तड़क"।

संज्ञा० पुं० [सं० तर्क] (१) विचार। सोच विचार। उधेड़-बुन। ऊहापोह। उ०—होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावइ साखा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।

(२) उक्ति। तर्क। चतुराई का वचन। चोज की बात। उ०—(क) सुनत हँसि चले हरि सकुचि भारी। यह कह्यो आज हम आइहैं गेह तुव तरक जिनि कहौ हम समुझि हारी—सूर। (ख) प्यारी को मुख धोइ कै पट पोंछि सँवारयो। तरक बात बहुतइ कही कछु सुधि न सँभारयो—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० तर = पथ ?] वह अक्षर वा शब्द जो पृष्ठ या पत्रा समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर आगे के पृष्ठ के आरंभ का अक्षर वा शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है। (हाथ की लिखी पुरानी पोथियों में इस प्रकार अक्षर वा शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्रे लगाए जा सकें। पृष्ठों पर अंक देने की प्रथा नहीं थी)।

† संज्ञा पु० [सं० तर्क = सोच विचार] (१) अड़चन। बाधा। (२) व्यतिक्रम। भूल चूक।

क्रि० प्र०—पड़ना।

तरकना † *-क्रि० अ० दे० "तड़कना"।

क्रि० अ० [सं० तर्क] तर्क करना। सोच विचार करना। अनुमान करना। उ०—तरकि न सकहि बुद्धि मन बानी।—तुलसी।

क्रि० अ० [अनु०] उछलना। कूदना। झपटना। उ०—वार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी।—तुलसी।

तरकश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] तीर रखने का चोंगा। भाथा। तूणीर।

तरकस-संज्ञा पुं० दे० "तरकश"।

तरकसी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर्कश] छोटा तरकश। छोटा तूणीर। उ०—धरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पट ओढ़े चलैं चारु चालु। अंग अंग भूषन जराय के जगमगत हरत जन के जी को तिमिर जालु।—तुलसी।

तरका-संज्ञा पुं० दे० "तड़का"।

संज्ञा पुं० [अ०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद। वह जायदाद जो किसी मरे हुए आदमी के वारिस को मिले।

तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तरः = सब्ज़ी, शाक + कारी] (१) वह पौधा जिसकी पत्ती जड़ डंठल फल फूल आदि पका कर खाने के काम में आते हैं। जैसे, पालक, गोभी, आलू, तुरई, कुम्हड़ा इत्यादि। शाक। सागपात। भाजी। सब्ज़ी। (२) खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल कंद मूल पत्ता आदि। शाक। भाजी। (३) खाने योग्य मांस। (पं०)।

क्रि० प्र०—बनाना।

तरकी-संज्ञा स्त्री० [सं० ताडंकी] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

विशेष—इस गहने का वह भाग जो कान के भीतर रहता है ताड़ के पत्ते को गोल लपेट कर बनाया जाता है। इससे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है। सं० शब्द 'ताडंक' से भी यही सूचित होता है। इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं। इसे आज कल छोटी जाति की स्त्रियाँ अधिक पहनती हैं। पर सोने के कर्णफूल आदि के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

तरकीब-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संयोग। मिलान। मेल। (२) बनावट। रचना। (३) युक्ति। उपाय। ढंग। ढब। जैसे, उन्हें यहाँ लाने की कोई तरकीब सोचो। (४) रचना-प्रणाली। शैली। तौर। तरीका। जैसे, इसके बनाने की तरकीब मैं जानता हूँ।

तरकुल †-संज्ञा पुं० [सं० ताल + कुल] ताड़ का पेड़।

तरकुला-संज्ञा पुं० [हिं० तरकुल] तरकी। कान में पहिनने का एक गहना।

तरकुली-संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकुल] कान का एक गहना। तरकी। उ०—लछिमन संग बूझै कमल कदंब कहूँ देखी सिय कामिनी तरकुली कनक की।—हनुमान।

तरक्की-संज्ञा स्त्री० [अ०] वृद्धि। बढ़ती। उन्नति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तरक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाघ। लकड़बग्घा। चरग

तरवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला + ड़ी (प्रत्य०)] छोटी तराजू का पलड़ा।

तरवन—संज्ञा पु० [हिं० तड़ + बनना] (१) कान में पहनने का एक गहना। तरकी। (२) कर्णफूल।

तरवर—संज्ञा पु० [सं० तरुवर] बड़ा पेड़। पेड़।
संज्ञा पु० [सं० तरवट] एक लंबा पेड़ जिसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है। यह मध्य भारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है। इसे तरोता भी कहते हैं।

तरवरा †—संज्ञा पु० दे० "तिरमिरा"।

तरवरिया †—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला।

तरवरिहा †—संज्ञा पु० दे० "तरवरिया"।

तरवाँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + माचा] जुए के नीचे की लकड़ी। मचेरी।

तरवाँसी †—संज्ञा स्त्री० दे० "तरवाँची"।

तरवा †—संज्ञा पु० दे० "तलवा"।

तरवाई सिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + सिर] ऊँची जमीन और नीची जमीन। पहाड़ और घाटी।

तरवाना—क्रि० अ० [?] (१) बैलों के तलवों का चलते चलते घिस जाना जिससे वे लँगड़ाते हैं। (२) बैलों का लँगड़ाना।
क्रि० स० [हिं० तारना का प्रे०] तारने की प्रेरणा करना।

तरवार †—संज्ञा पु० दे० "तलवार"।
संज्ञा पुं० दे० "तरवर"।

तरवारि—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार। खड्ग का एक भेद। उ०—*रोष न रसना खनि खोलिये बरु खोलिये तरवारि।*—तुलसी।

तरवारी †—संज्ञा पु० [हिं० तलवार] तलवार चलानेवाला।

तरस्—संज्ञा पु० [सं०] (१) बल। (२) वेग। (३) वानर। (४) रोग। (५) तीर। तट।

तरस—संज्ञा पु० [सं० त्रस = डरना] दया। करुणा। रहम।
क्रि० प्र०—खाना।
मुहा०—(किसी पर) तरस खाना = दयार्द्र होना। दया करना। रहम करना।
विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्य्यय द्वारा आया हुआ जान पड़ता है। जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है उस पर दया प्रायः की जाती है।

तरसना—क्रि० अ० [सं० तर्षण = अभिलाषा] *किसी वस्तु के अभाव* में उसके लिये इच्छुक और आकुल रहना। अभाव का दुःख सहना। (किसी वस्तु को) न पाकर बेचैन रहना। जैसे, (क) वहाँ लोग दाने दाने को तरस रहे हैं। (ख) कुछ दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे। उ०—दरसन बिनु अँखियाँ तरसि रहीं। (गीत)
संयो० क्रि०—जाना।

तरसाना—क्रि० स० [हिं० तरसना] (१) अभाव का दुःख देना। *किसी वस्तु को न देकर या न प्राप्त करा कर उसके लिये बेचैन करना।* (२) *किसी वस्तु की इच्छा और आशा उत्पन्न करके* उससे वंचित रखना। व्यर्थ ललचाना।
क्रि० प्र०—डालना।—मारना।

तरह—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) प्रकार। भाँति। किस्म। जैसे, यहाँ तरह तरह की चीजें मिलती हैं।
मुहा०—किसी की तरह = किसी के सदृश। किसी के समान। जैसे, उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं।
(२) रचनाप्रकार। ढाँचा। डौल। बनावट। रूप रंग। जैसे, इस छींट की तरह अच्छी नहीं है। (३) ढब। तर्ज़। प्रणाली। रीति। ढंग। जैसे, वह बहुत बुरी तरह से पढ़ता है।
मुहा०—तरह उड़ाना = ढंग की नकल करना।
(४) युक्ति। ढंग। उपाय। जैसे, किसी तरह से उनसे रुपया निकालो।
मुहा०—तरह देना = (१) ख्याल न करना। बचा जाना। विरोध या प्रतिकार न करना। क्षमा करना। जाने देना। उ०—इन तेरह तें तरह दिए बनि आवै साईं।—गिरिधर। (२) *टालटूल करना। ध्यान न देना।*
(५) *हाल। दशा। अवस्था। जैसे, आज कल उनकी क्या तरह है।*
मुहा०—*तरह देना = पूर्ति के लिये समस्या देना।*

तरहटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे + हट (प्रत्य०)] (१) नीची भूमि। (२) पहाड़ की तराई।

तरहदार—वि० [फ़ा०] (१) सुंदर बनावट का। अच्छी चाल या ढाँचे का। जिसकी रचना मनोहर हो। जैसे, तरहदार छींट। (२) सजधजवाला। शौकीन। वज़ादार। जैसे, तरहदार आदमी।

तरहदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वज़ादारी। सजधज का ढंग।

तरहर †—क्रि० वि० [हिं० तर + हर (प्रत्य०)] तले। नीचे। उ०—जम करि मुँह तरहर परयो इहिं धर हरि चित लाइ। विषय त्रिषा परिहरि अजौं नर हरि के गुन गाइ।—बिहारी।
वि० नीचा। तले का। नीचे का। निकृष्ट।

तरहा—संज्ञा पु० [हिं० तर] (१) *कुआँ खोदने में एक माप जो प्रायः* एक हाथ की होती है। (२) वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैला कर कड़ा ढालने का साँचा बनाते हैं।

तरहेल †—वि० [हिं० तर + हा, हल (प्रत्य०)] (१) अधीन। निम्नस्थ। (२) वश में आया हुआ। पराजित। उ०—तौ चौपड़ खेलौं करि हीया। जो तरहेल होय सो तीया।—जायसी।

तरनाग–संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

तरनाल–संज्ञा पुं० [?] वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को लोहे की धरन में बाँधते हैं। (लश०)

तरनि–संज्ञा स्त्री० दे० "तरणि"।

तरनिजा–संज्ञा स्त्री० दे० "तरणिजा"।

तरनी–संज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] (१) नाव। नौका। उ०—तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाई।—तुलसी। (२) वह छोटा मोढ़ा जिस पर मिठाई का थाल या खोंचा रखते हैं। दे० "तन्नी"।

तरप†–संज्ञा स्त्री० दे० "तड़प"।

तरपत–संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति] (१) सुपास। सुबीता। (२) आराम। चैन। उ०—बूँदी सम सर तजत खंडमंडल पर तरपत।—गोपाल।

तरपन–संज्ञा पुं० दे० "तर्पण"। उ०—तरपन होम करहिं विधि नाना।—तुलसी।

तरपना–क्रि० अ० दे० "तड़पना"। उ०—तरपै जिमि बिज्जुल सी पिय पै झरपै झननाय सबै घर मैं।—सुंदरीसर्वस्व।

तरपर–क्रि० वि० [हिं० तर+पर] (१) नीचे ऊपर। (२) एक के पीछे दूसरा।

तरपू–संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मकानों में लगती है। यह पेड़ मलाबार और पच्छिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है।

तरफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ओर। दिशा। अलँग। जैसे, पूरब तरफ़, पच्छिम तरफ़। (२) किनारा। पार्श्व। बगल। जैसे, दहनी तरफ़, बाईं तरफ़। (३) पक्ष। पासदारी। जैसे, (क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ़ रहोगे। (ख) हम तुम्हारी तरफ़ से बहुत कुछ कहेंगे।

यौ०—तरफ़दार।

तरफ़दार–वि० [अ० तरफ़+फ़ा० दार] पक्ष में रहनेवाला। साथ वा सहायता देनेवाला। पक्षपाती। हिमायती। समर्थक।

तरफ़दारी–संज्ञा स्त्री० [अ० तरफ़+फ़ा० दारी] पक्षपात।

क्रि० प्र०—करना।

तरफराना†–क्रि० अ० दे० "तड़फड़ाना"।

तरब–संज्ञा पुं० [हिं० तरपना, तड़पना] सारंगी में वे तार जो ताँत के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और सब स्वरों के साथ गूँजते हैं।

तर-बतर–वि० [फ़ा०] भींगा हुआ। आर्द्र। सराबोर।

तरबहना–संज्ञा पुं० [हिं० तर+बहना] थाली के आकार का ताँबे वा पीतल का एक बर्तन जो प्रायः ठाकुरजी को स्नान कराने के काम में लाया जाता है।

तरबूज़–संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्बुज़] एक प्रकार की बेल जो जमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बड़े बड़े गोल फल लगते हैं। ये फल खाने के काम में आते हैं। पके फलों को काटने पर इन के भीतर झिल्लीदार लाल या सफेद गूदा तथा मीठा रस निकलता है। बीजों का रंग लाल या काला होता है। गरमी के दिनों में तरबूज तरावट के लिये बहुत खाया जाता है। पकने पर भी तरबूज के छिलके का रंग गहरा हरा होता है। तरबूज के पत्ते कटावदार और फूल पीले रंग के होते हैं। यह बलुए खेतों में विशेषतः नदी के किनारे के रेतीले मैदानों में जाड़े के अंत में बोया जाता है। संसार के प्रायः सब गरम देशों में तरबूज़ होता है। यह दो तरह का होता है एक फसली या वार्षिक, दूसरा स्थायी। स्थायी पौधे केवल अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक फूलते फलते रहते हैं।

तरबूज़िया–वि० [हिं० तरबूज़] तरबूज़ के छिलके के रंग का। गहरा हरा। काही।

तरमाची–संज्ञा स्त्री० दे० "तरवांची"।

तरमानी–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह तरी जो जोती हुई भूमि में आती है।

क्रि० प्र०—आना।

तरमीम–संज्ञा स्त्री० [अ०] संशोधन। दुरुस्ती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरराना†–क्रि० अ० [अनु०] ऐंठना। ऐंड़ाना।

तरल–वि० [सं०] (१) हिलता डोलता। चलायमान। चंचल। चल। उ०—लखत सेत सारी ढक्यो तरल तरौना कान।—बिहारी। (२) अस्थिर। क्षणभंगुर। (३) (पानी की तरह) बहनेवाला। द्रव। (४) चमकीला। भास्वर। कांतिवान्। (५) खोखला। पोला।

संज्ञा पुं० (१) हार के बीच का मणि। (२) हार। (३) हीरा। (४) लोहा। (५) एक देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम। (महाभारत)। (६) तल। पेंदा। (७) घोड़ा।

तरलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंचलता। (२) द्रवत्व।

तरलनयन–संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण होते हैं। उ०—नचत सुघर सखिन सहित। थिरकि थिरकि फिरत मुदित।

तरलभाव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतलापन। (२) चंचलता। चपलता।

तरला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यवागू। जौ का माँड़। (२) मदिरा। (३) मधुमक्षिका। शहद की मक्खी।

संज्ञा पुं० [हिं० तर] छाजन के नीचे का बाँस।

तरलाई–संज्ञा स्त्री० [सं० तरल+आई (प्रत्य०)] (१) चंचलता। चपलता। (२) द्रवत्व।

तरवँछ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] तरवांची। जुए के नीचे की लकड़ी जो बैलों के गले के नीचे रहती है।

*संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] बिजली। उ०—करपै करै कौंधे कहुँ तरिता तरपै पुनि जाल छटा में घिरी।—पजनेस।

तरिया†–संज्ञा पुं० [हिं० तरना] तैरनेवाला।

तरियाना†–क्रि० स० [हिं० तरे = नीचे] (१) नीचे कर देना। नीचे डाल देना। तह में बैठा देना। (२) ढाँकना। छिपाना। (३) बटुए के पेंदे में मिट्टी राख आदि पोतना जिससे आँच पर चढ़ाने में उसमें कालिख न जमे। लेवा लगाना।

क्रि० अ० तले बैठ जाना। तह में जमाना।

तरिवन–संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] (१) कान का एक गहना जो फूल के आकार का होता है। तरकी। (इसका वह भाग जो कान के छेद में रहता है ताड़ के पत्ते को लपेट कर बनाया जाता है)। (२) कर्णफूल।

तरिवर*–संज्ञा पुं० दे० "तरुवर"।

तरिहँत†–क्रि वि० [हिं० तर + अंत, हँत (प्रत्य०)] नीचे। तले। उ०—बुधि जो गई है हिय बौराई। गर्व गयो तरिहँत सिर नाई।—जायसी।

तरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाव। नौका। (२) गदा। (३) कपड़ा रखने का पिटारा। पेटी। (४) धुआँ। धूम। (५) कपड़े का छोर। दामन।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर] (१) गीलापन। आर्द्रता। (२) ठंढक। शीतलता। (३) वह नीची भूमि जहाँ बरसात का पानी बहुत दिनों तक इकट्ठा रहता हो। कछार। (४) तराई। तरहटी।

†संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] (१) जूते का तला। (२) तलछट। तलौंछ।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़] कान का एक गहना। तरिवन। कर्णफूल। उ०—काने कनक तरी वर बेसरि सोहहि।—तुलसी।

तरीक़ा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) ढंग। विधि। रीति। प्रकार। ढब। (२) चाल। व्यवहार। (३) युक्ति। उपाय। तदबीर।

तरीष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूखा गोबर। (२) नौका। नाव। (३) पानी में बहनेवाला तख्ता। बेड़ा। (४) समुद्र। (५) व्यवसाय। (६) स्वर्ग।

तरीषी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

तरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष। पेड़। (२) एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया की पहाड़ी, चटगाँव और बरमा में होते हैं। इसमें जो विरोजा या गोंद निकलता है वह सब से अच्छा होता है। तारपीन का तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है।

तरुआ–संज्ञा पुं० [देश०] उबाले हुए धान का चावल। भुँजिया चावल।

तरुण–वि० [सं०] [स्त्री० तरुणी] (१) युवा। जवान। (२) नया। नूतन।

संज्ञा पुं० (१) बड़ा जीरा। स्थूल जीरक। (२) एरंड। रेंड़। (३) कूजा का फूल। मोतिया।

तरुण ज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो सात दिन का हो गया हो।

तरुण तरणि–संज्ञा पुं० दे० "तरुण सूर्य्य"।

तरुणदधि–संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही। (वैद्यक के अनुसार ऐसा दही खाना हानिकारक है)।

तरुणपीतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

तरुण सूर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य्य।

तरुणाई*–संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] युवावस्था। जवानी।

तरुनाना–क्रि० अ० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना। युवावस्था में प्रवेश करना।

तरुणास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली लचीली हड्डी।

तरुणी–वि० स्त्री० [सं०] युवती। जवान (स्त्री)।

संज्ञा स्त्री० (१) युवती। जवान स्त्री।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिए।

(२) घीकुवार। ग्वारपाठा। (३) दंती। जमालगोटा। (४) चीड़ा नामक गंध द्रव्य। (५) कूजा का फूल। मोतिया। (६) मेघराग की एक रागिनी।

तरुणी-कटाक्षमाल–संज्ञा स्त्री० [सं०] तिलक वृक्ष।

तरुतूलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादर।

तरुन*†–संज्ञा पुं० दे० "तरुण"।

तरुनई†*–संज्ञा स्त्री० दे० "तरुनाई"।

तरुनाई*–संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] तरुणावस्था। जवानी।

तरुनापा–संज्ञा पुं० [सं० तरुण + पा (प्रत्य०)] युवावस्था। जवानी। उ०—बालापन में खेलत खोयो तरुनापै गरबानो—सूर।

तरुबाँही*–संज्ञा स्त्री० [सं० तर + हिं० बाँह] पेड़ की भुजा। शाखा। डाल। उ०—इक संशय फल है तरु माहीं। पाँच कोटि दल हैं तरुबाँही।—सदलमिश्र।

तरुभुक्–संज्ञा पुं० [सं०] बंदाक। बाँदा।

तरुभुज–संज्ञा पुं० दे० "तरुभुक"।

तरुराग–संज्ञा पुं० [सं०] नया कोमल पत्ता। किसलय।

तरुराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पवृक्ष। (२) ताड़ का वृक्ष।

तरुरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरुरोहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरुवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता। पानड़ी।

तरा †–संज्ञा पुं० [देश०] पटुआ। पटसन।
संज्ञा पुं० दे० "तला"। "तलवा"।

तराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तर=नीचे] (१) पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ सीड़ या तरी रहती है। जैसे, नैपाल की तराई। (२) पहाड़ की घाटी। (३) मूँज के मुट्ठे जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं।
† संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] तारा। नक्षत्र।

तराजू–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रस्सियों के द्वारा एक सीधी डाँड़ी के छोरों से बँधे हुए दो पलड़ों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तौल मालूम करते हैं। तौलने का यंत्र। तुला। तकड़ी।
मुहा०—तराजू हो जाना=(१) तीर को निशाने के इस प्रकार आर पार घुसना कि उसका आधा भाग एक ओर, और आधा दूसरी ओर निकला रहे। (२) दो सैनिक दलों का इस प्रकार ठीक ठीक बराबर होना कि एक दूसरे को परास्त न कर सके।

तराना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का चलता गाना जिसका बोल इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि आ ना रे ते दी म् ता दी म् ता ना ना दे रे ता दा रे दा नि ता ना ना दे रे ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना तोम् देर ता रे दा नी।
विशेष—तराना हर एक राग का हो सकता है। इसमें कभी कभी सरगम और तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं।
(२) कोई अच्छा गाना। बढ़िया गीत। (क्व०)

तराप * †–संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द। बंदूक, तोप आदि का शब्द। उ०—सैन अफ़गान सैन सगर सुतन लागी कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की।—भूषण।

तरापा †–संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार। कुहराम। त्राहि त्राहि। उ०—परी धर्मसुत शिविर तरापा। गजपुर सकल शोकबस काँपा।—सबलसिंह।
संज्ञा पुं० [हिं० तरना] पानी में तैरती हुई शहतीर। बेड़ा। (लश०)

तराबोर–वि० [फ़ा० तर+हिं० बोरना] खूब भींगा हुआ। खूब डूबा हुआ। सराबोर।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरामल–संज्ञा पुं० [हिं० तर=नीचे] (१) मूँज के वे मुट्ठे जो छाजन में खपरैल के नीचे दिए जाते हैं। (२) जुवे के नीचे की लकड़ी।

तरामीरा–संज्ञा पुं० [देश० सरसों की तरह का एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है। उत्तरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं। रबी की फसल के साथ इसके दाने भी पक जाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती है। तेल निकाले हुए बीजों की खली भी चौपायों को खिलाई जाती है। इसे दुआँ भी कहते हैं।

तरारा–संज्ञा पुं० [?] (१) उछाल। छलांग। कुलाँच।
क्रि० प्र०—भरना।—मारना।
मुहा०—तरारा भरना=जल्दी जल्दी काम करना। फर्राटे के साथ काम करना। तरारा मारना=डींग हाँकना। बढ़ बढ़ कर बातें करना।
(२) पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे।

तरावट–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर+आवट (प्रत्य०)] (१) गीलापन। नमी। (२) ठंढक। शीतलता। जैसे, सिर पर पानी पड़ने से तरावट आ गई।
क्रि० प्र०—आना।
(३) क्लांत चित्त को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ। शरीर की गरमी शांत करनेवाला आहार। (४) स्निग्ध भोजन। जैसे, घी, दूध, आदि।

तराश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) काटने का ढंग। काट। (२) काट छाँट। बनावट। रचना प्रकार।
यौ०—तराश खराश।
(३) ढंग। तर्ज़। (४) ताश या गंजीफे का वह पत्ता जो काटने के बाद हाथ में आवे।

तराश खराश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] काट छाँट। कतर ब्योंत। बनावट।

तराशना–क्रि० स० [फ़ा०] काटना। कतरना। कलम करना।

तरास †–संज्ञा पुं० दे० "त्रास"।

तराहि †–अव्य० दे० "त्राहि"।

तराहीं †–क्रि० वि० दे० "तरे"।

तरिंदा–संज्ञा पुं० [हिं० तरना+इंदा (प्रत्य०)] वह पीपा जो समुद्र में किसी स्थान पर लंगर के द्वारा बाँध दिया जाता है और लहरों के ऊपर उतराया रहता है। (लश०)
विशेष—ये पीपे चट्टान आदि की सूचना के लिये बाँधे जाते हैं और कई आकार प्रकार के होते हैं। इनमें से किसी किसी में घंटा सीटी आदि लगी रहती है।

तरि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नौका। नाव। (२) कपड़ों का पेटारा। (३) कपड़े का छोर। दामन।

तरिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल में तैरनेवाली लकड़ी। बेड़ा। (२) नाव का महसूल लेनेवाला। उतराई लेनेवाला। (३) मल्लाह। केवट। माँझी।

तरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। नौका।

तरिको †–संज्ञा पुं० [सं० ताडंक] कान का एक गहना। तरकी। तरौना। उ०—तैं कत तोरयो हार नौ सरि को मोती बगरि रहे सब बन में गयो कान को तरिको।—सूर।

तरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तर्जनी उँगली। (२) भाँग। गाँजा।

तर्कक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तर्क करनेवाला। (२) याचक। मँगता।

तर्कण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्कणीय, तर्क्य] तर्क करने की क्रिया। बहस करने का काम।

तर्कणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार। विवेचना। ऊहा। (२) युक्ति। दलील।

तर्कना–संज्ञा स्त्री० दे० "तर्कणा"।

क्रि० अ० [सं० तर्क] तर्क करना।

तर्कमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

तर्क वितर्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊहापोह। विवेचना। सोच विचार। (२) वाद विवाद। बहस।

क्रि० प्र०—करना।

तर्कश–संज्ञा पुं० [फा०] भाथा। तूणीर। तीर रखने का चोंगा।

तर्क शास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या विवेचना करने के नियम आदि निरूपित हों। सिद्धांतों के खंडन मंडन की शैली बतलानेवाली विद्या। (२) न्यायशास्त्र।

तर्कसी–संज्ञा स्त्री० [फा० तरकश] छोटा तरकश।

तर्काभास–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो। कुतर्क।

तर्कारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अँगेथू का वृक्ष। अरणी वृक्ष। (२) जैंत का पेड़

संज्ञा स्त्री० दे० "तरकारी"।

तर्किण–संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़। पँवार।

तर्किल–संज्ञा पुं० [सं०] चकवड़। पँवार।

तर्की–संज्ञा पुं० [सं० तर्किन्] [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला।

तर्कीब–संज्ञा स्त्री० दे० "तरकीब"।

तर्कु–संज्ञा पुं० [सं०] तकला। टेकुआ।

तर्कुटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तकला। टेकुआ।

तर्कुपिंड–संज्ञा पुं० [सं०] तकले की फिरकी।

तर्कुल–संज्ञा पुं० [सं० ताड़+कुल] (१) ताड़ का पेड़। (२) ताड़ का फल।

तर्क्य–वि० [सं०] विचार्य। चिंत्य। जिस पर कुछ सोच विचार करना आवश्यक हो।

तर्क्षु–संज्ञा पुं० [सं०] तेंदुआ या चीता।

तर्क्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार नमक।

तर्ज़–संज्ञा पुं० स्त्री० [अ०] (१) प्रकार। किस्म। तरह। (२) रीति। शैली। ढंग। ढब। जैसे, बात चीत करने का तर्ज़। (३) रचना प्रकार। बनावट। जैसे, इस झोंटे का तर्ज़ अच्छा नहीं है।

तर्जन–संज्ञा पुं० [सं० तर्जन] [वि० तर्जित] (१) धमकाने का कार्य। भय-प्रदर्शन। (२) क्रोध। (३) तिरस्कार। फटकार। डाँट डपट।

यौ०—तर्जन-गर्जन = डाँट फटकार। क्रोध-प्रदर्शन।

तर्जना–क्रि० अ० [सं० तर्जन] डाटना। धमकाना। डपटना।

तर्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अँगूठे के पास की उँगली। अँगूठे और मध्यमा के बीच की उँगली। प्रदेशिनी। उ०—इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तर्जनी देखि मरि जाहीं।—तुलसी।

विशेष—इसी उँगली से किसी वस्तु की ओर दिखाते या इशारा करते हैं।

तर्जनीमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँध तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं।

तर्जिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम। ताजिक देश।

तर्जुमा–संज्ञा पुं० [अ०] भाषांतर। उल्था। अनुवाद।

तर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बछड़ा। बछवा।

तर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुरत का जन्मा गाय का बछड़ा। (२) शिशु। बच्चा।

तर्णि–संज्ञा पुं० दे० "तरणि"।

तर्त्तरीक–संज्ञा पुं० [सं०] नाव।

वि० पार जानेवाला।

तर्पण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] (१) तृप्त करने की क्रिया। संतुष्ट करने का कार्य। (२) कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि और पितरों को तृप्त करने के लिये हाथ (या अरघे) से पानी देते हैं।

विशेष—मध्याह्न-स्नान के पीछे तर्पण करने का विधान है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तर्पणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खिरनी का वृक्ष। (२) गंगा नदी। वि० तृप्ति देनेवाली।

तर्पणीय–वि० [सं०] तृप्ति के योग्य।

तर्पिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मचारिणी लता। स्थल-कमलिनी। स्थलपद्म।

तर्पित–वि० [सं०] तृप्त किया हुआ। संतुष्ट किया हुआ।

तर्पी–वि० [सं० तर्पिन्] [स्त्री० तर्पणी] (१) तृप्त करनेवाला। संतुष्ट करनेवाला। (२) तर्पण करनेवाला।

तर्बट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवँड़। पँवार। (२) वत्सर। वर्ष।

तर्बूज–संज्ञा पुं० दे० "तरबूज"।

तर्यौना‡–संज्ञा पुं० दे० "तरौना"।

तर्रा–संज्ञा पुं० [देश०] चाबुक का फीता या डोरी जो छड़ी में बँधी रहती है।

तरुसार–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तरुस्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरूट–संज्ञा पुं० [सं०] भसींड़। मुरार। कमल की जड़।

तरेंदा–संज्ञा पुं० [सं० तरंड] (१) पानी में तैरता हुआ काठ। बेड़ा। (२) वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सकें। उ०—सिंह तरेंदा जेइ गहा पार भयो तिहि साथ। ते पय बूड़े वारि हीं भेंड़ पूँछ जिन हाथ।—जायसी।

तरे–क्रि० वि० [सं० तल] नीचे। तले।

मुहा०—(किसी के) तरे बैठना = (किसी को) पति बनाना।

तरेटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] तराई। तरहटी। तलहटी। घाटी। पर्वत के नीचे की भूमि।

तरेड़ा–संज्ञा पुं० दे० "तरेरा", "तरारा"।

तरेरना–क्रि० स० [सं० तर्ज = डाटना + हिं० हेरना = देखना] आँखों को इस प्रकार करना जिससे क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट हो। दृष्टि कुपित करना। आँख के इशारे से डाट बताना। दृष्टि से असम्मति या असंतोष प्रकट करना। उ०—(क) सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम। तुलसी। (ख) भौंहनि फेरि तरेरि सुनैन सखी तन हेरि हिये सुख पायो।—प्रताप।

विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ आँख या उसके पर्य्या० शब्द आते हैं।

तरैनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] वह पच्चर जो हरिस और हल को मिलाने के लिये दिया जाता है।

तरैली–संज्ञा स्त्री दे० "तरैनी"।

तरैया‡–संज्ञा स्त्री० दे० "तरई"।

तरैला–संज्ञा पुं० [हिं० तरे] किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र।

तरोंच–संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे] (१) कंघी के नीचे की लकड़ी। (२) दे० "तरौंछ"।

तरोंचा†–संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे [स्त्री० तरोंची] जुए के नीचे की लकड़ी।

तरोंडा–संज्ञा पुं० [देश०] फसल का उतना अनाज जितना हलवाहे आदि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है।

तरोई–संज्ञा स्त्री० दे० "तुरई"।

तरोता–संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक लंबा पेड़ जो मध्य भारत और दक्षिण भारत में पाया जाता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसे 'तरवर' भी कहते हैं।

तरोवर*–संज्ञा पुं० दे० "तरुवर"।

तरौंछी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + औंछी (प्रत्य०)] (१) वह लकड़ी जो हत्थे में नीचे की तरफ लगी रहती है। (जुलाहे)। (२) बैलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो सुजावा के नीचे रहती है।

तरौंटा–संज्ञा पुं० [हिं० तर + पाट] आटा पीसने की चक्की का नीचेवाला पाट। जाँते के नीचे का पत्थर।

तरौंता–संज्ञा पुं० [हिं० तर + औंता (प्रत्य०)] छाजन में वे लकड़ियाँ जो ठाट के नीचे दी जाती हैं।

तरौंस*–संज्ञा पुं० [हिं० तट + औंस (प्रत्य०)] तट। तीर। किनारा। उ०—स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीर। अँसुवनि करति तरौंस कौ छिनक खरौंहो नीर।—बिहारी।

तरौना–संज्ञा पु० [हिं० ताड़ + वनना] (१) कान में पहनने का एक गहना जो फूल के आकार का गोल होता है। तरकी। (इसका वह अंश जो कान के छेद में रहता है ताड़ के पत्ते को गोल लपेट कर बनाया जाता है)

विशेष—दे० "तरकी", "ताड़ंक"।

(२) कर्णफूल नाम का आभूषण। उ०—लसत सेत सारी ढक्यो तरल तरौना कान।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [हिं० तर = नीचे] वह मोढ़ा जिस पर मिठाई का खोंचा रखा जाता है।

तर्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु के विषय में अज्ञात तत्त्व को कारणोपपत्ति द्वारा निश्चित करनेवाली उक्ति या विचार। विवेचना। हेतुपूर्ण युक्ति। दलील।

विशेष—तर्क न्याय के सोलह पदार्थों (विषयों) में से एक है। जब किसी वस्तु के संबंध में वास्तविक तत्त्व ज्ञात नहीं होता तब उस तत्त्व के ज्ञानार्थ (किसी निगमन के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति दी जाती है जिसमें विरुद्ध निगमन की अनुपपत्ति भी दिखाई जाती है। ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं। तर्क में शंका का होना भी आवश्यक है क्योंकि जब यह शंका होगी कि बात ऐसी है या वैसी तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति दी जायगी जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि बात का ऐसा होना ही ठीक है वैसा नहीं। जैसे, शंका यह है कि आत्मा नित्य है या अनित्य। यहाँ आत्मा का यथार्थ रूप ज्ञात नहीं है। उसका यथार्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं—

यदि आत्मा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल न प्राप्त कर सकती और उसका आवागमन या मोक्ष न हो सकता। पर इन सब बातों का होना प्रसिद्ध ही है। अतः आत्मा नित्य है ऐसा मानना ही पड़ता है।

(२) चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुहल की बात। चोज की बात। चतुराई से भरी बात। उ०—प्यारी को मुख धोइकै पट पोंछि सँवारयो। तरक बात बहुतै कही कुछ सुधि न सँभारयो।—सूर। (३) व्यंग्य। ताना। उ०—ते सब तर्क बोलिहैं मोकों तासों बहुत डराऊँ।—सूर।

संज्ञा पुं० [अ०] त्याग। छोड़ना।

क्रि० प्र०—करना।

तलमलाना†—क्रि॰ अ॰ [देश॰] तड़फड़ाना । तड़फना । बेचैन होना ।

क्रि॰ अ॰ दे॰ "तिलमिलाना"।

तलमलाहट—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] व्याकुलता । तड़फने का भाव । बेचैनी ।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "तिलमिलाहट"।

तलव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गानेवाला।

तलवकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सामवेद की एक शाखा । (२) एक उपनिषद् का नाम ।

तलवा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने या खड़े होने में जमीन पर पड़ता है। पैर के नीचे की ओर का वह भाग जो एड़ी और पंजों के बीच में होता है। पादतल ।

मुहा॰—तलवा खुजलाना = तलवे में खुजली होना जिससे यात्रा का शकुन समझा जाता है । तलवे चाटना = बहुत खुशामद करना । अत्यंत सेवा शुश्रूषा में लगा रहना। तलवे छलनी होना = चलते चलते पैर घिस जाना । चलते चलते शिथिल हो जाना । बहुत दौड़ धूप की नौबत आना । तलवे तले आँखें मलना = दे॰ "तलवों से आँखें मलना"। तलवों तले मेटना = कुचल कर नष्ट करना । गर्द डालना । (स्त्रि॰)। तलवे धो धो कर पीना = अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। अत्यंत श्रद्धा-भक्ति प्रकट करना । अत्यंत प्रेम प्रकट करना । तलवा न टिकना = पैर न टिकना । जमकर बैठा न रहा जाना । आसन न जमना । एक जगह कुछ देर बैठे न रहा जाना । तलवा न लगना = दे॰ "तलवा न टिकना"।(स्त्रि॰)। तलवों से आँखें मलना = (१) अत्यंत दीनता प्रकट करना । बहुत अधिक अधीनता दिखाना। (२) अत्यंत प्रेम प्रकट करना । (३) दे॰ "तलवों तले मेटना"। तलवों से आग लगना = क्रोध से शरीर भस्म होना । अत्यंत क्रोध चढ़ना । तलवों से मलना = पैर से कुचलना । रौंदना । कुचल कर नष्ट करना । तलवों से लगना = (१) क्रोध चढ़ना । (२) बुरा लगना । अत्यंत अप्रिय लगना। कुढ़न होना । चिढ़ होना । तलवों से लगना, सिर में जाकर बुझना = सिर से पैर तक क्रोध चढ़ना। क्रोध से शरीर भस्म होना । तलवे सहलाना = (१) अत्यंत सेवा-शुश्रूषा करना । (२) बहुत खुशामद करना ।

तलवार—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तरवारि] लोहे का एक लंबा धारदार हथियार जिसके आघात से वस्तुएँ कट जाती हैं। खड्ग। असि । कृपाण ।

पर्या॰—असि । विशसन । खड्ग । तीक्ष्णवर्म्मा । दुरासद । श्रीगर्भ । विजय। धर्मराज । धर्ममाल । निस्त्रिंश । चंद्रहास । रिष्टि । करवाल । कौक्षेयक । कृपाण ।

क्रि॰ प्र॰—चलना ।—चलाना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा॰—तलवार करना = तलवार चलाना । तलवार का वार करना। तलवार झुकाना = तलवार झुकाना । तलवार का खेत = लड़ाई का मैदान । युद्धक्षेत्र । तलवार का घाट = तलवार में वह स्थान जहाँ से उसका टेढ़ापन आरंभ होता है। तलवार का छाला = तलवार के फल में उभरा हुआ दाग। तलवार का डोरा = तलवार की धार जो पतले सूत की तरह दिखाई देती है । बाढ़ । तलवार का पट्टा = तलवार की चौड़ी धार । तलवार का पानी = तलवार की आभा या दमक। तलवार का फल = मूठ के अतिरिक्त तलवार का सारा भाग। तलवार का बल = तलवार का टेढ़ापन । तलवार का मुँह = तलवार की धार । तलवार का हाथ = (१) तलवार चलाने का ढंग । (२) तलवार का वार । खड्ग का आघात । तलवार की आँच = तलवार की चोट का सामना। तलवार की मार = तलवार का वह जोड़ जो हुँकारने से कुछ दूर पर होता है। तलवारों की छाँह में = ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारों ओर तलवार ही तलवार दिखाई देती हो। रणक्षेत्र में। तलवार खींचना = म्यान से तलवार बाहर करना । तलवार जड़ना = तलवार मारना । तलवार से आघात करना । तलवार तौलना = तलवार को हाथ में लेकर अंदाजना जिसमें वह भरपूर बैठे । तलवार सँभालना । तलवार पर हाथ रखना = (१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना । (२) तलवार की शपथ खाना । तलवार बाँधना = तलवार को कमर में लटकाना। तलवार साथ में रखना । तलवार सौंतना = तलवार म्यान से निकालना । वार करने के लिये तलवार खींचना ।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है । धनुर्वेद आदि ग्रंथों को देखने से जाना जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत अच्छी तलवारें बनती थीं जिनसे पत्थर तक कट सकता था । प्राचीन काल में खट्टर देश, अंग, बंग, मध्यग्राम, सहग्राम, कालंजर इत्यादि स्थान खड्ग के लिये प्रसिद्ध थे । ग्रंथों में लोहे की उपयुक्तता, खड्गों के विविध परिमाण तथा उनके बनाने का विधान भी दिया हुआ है । पानी देने के लिये लिखा है कि धार पर नमक या क्षार मिली गीली मिट्टी का लेप करके तलवार को आग में तपावे और फिर पानी में बुझा दे । उशना और शुक्राचार्य ने पानी के अतिरिक्त रक्त, घृत, ऊँट के दूध आदि में बुझाने का भी विधान बतलाया है । तलवार की झनकार (ध्वनि) तथा फल पर आपसे आप पड़े हुए चिह्नों के अनुसार तलवार के शुभ, अशुभ या अच्छे बुरे होने का निर्णय किया गया है । ऐसे निर्णय के लिये जो परीक्षा की जाती है उसे अष्टांग परीक्षा कहते हैं । तलवार चलाने के हाथ ३२ गिनाए

तर्राना-संज्ञा पुं० [फ़ा० तराना] एक प्रकार का गाना । दे० "तराना" ।

† क्रि० अ० दे० "चर्राना" ।

तर्री-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे भैंसे बड़े प्रेम से खाती हैं । यह प्रत्येक ऋतु में मिलती है ।

तर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभिलाषा । (२) तृष्णा । असंतोष । उ०—देव शोक संदेह भय हर्ष तम तर्ष गन साधु सद्युक्ति विच्छेद कारी ।—तुलसी । (३) बेड़ा । (४) समुद्र । (५) सूर्य्य ।

तर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पित] (१) पिपासा । प्यास । (२) अभिलाषा । इच्छा ।

तर्पित-वि० [सं०] (१) प्यासा । (२) इच्छुक । जो लालसा किए हो ।

तल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीचे का भाग । (२) पेंदा । तला । (३) जल के नीचे की भूमि । (४) वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो । जैसे, तरुतल ।

मुहा०—तल करना=नीचे दबा लेना । छिपा लेना । (जुआरी)

(५) पैर का तलवा । (६) हथेली । (७) चपत । थप्पड़ । (८) किसी वस्तु का बाहरी फैलाव । बाह्य-विस्तार । पृष्ठदेश । सतह । जैसे, भूतल, धरातल, समतल । (९) स्वरूप । स्वभाव । (१०) कानन । जंगल । (११) गड्ढा । गड़हा । (१२) चमड़े का बल्ला जो धनुष की डोरी की रगड़ से बचने के लिये बाईं बाँह में पहना जाता है । (१३) घर की छत । पाटन । जैसे, चार तला मकान । (१४) ताड़ का पेड़ । (१५) मुठिया । मूठ । दस्ता । (१६) बाएँ हाथ से बीणा बजाने की क्रिया । (१७) गोधा । गोह । (१८) कलाई । पहुँचा । (१९) बालिश्त । बित्ता । (२०) आधार । सहारा । (२१) महादेव । (२२) सप्त पातालों में से पहला । (२३) एक नरक का नाम ।

तलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताल । पोखरा । (२) एक फल का नाम ।

‡अव्य० [हिं० तक] तक । पर्य्यंत ।

तलकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिंघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है ।

तलकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो पंजाब, अवध, बंगाल, मध्यदेश तथा मद्रास में होता है । उसकी लकड़ी ललाई लिए भूरी होती है और खेती के सामान बनाने तथा मकानों में लगाने के काम में आती है ।

तलगू-संज्ञा स्त्री० [सं० तैलंग] तैलंग देश की भाषा ।

तलघरा-संज्ञा पुं० [सं० तल+हिं० घर] तहखाना ।

तलछट-संज्ञा स्त्री० [हिं० तल+छँटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई मैल । तलौंछ । गाद ।

तलना-क्रि० स० [सं० तरण=तिराना] कड़कड़ाते हुए घी या तेल में डाल कर पकाना । जैसे, पापड़ तलना, घुघनी तलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

विशेष—भावप्रकाश में 'घी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलित' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता ।

तलप*-संज्ञा पुं० दे० "तल्प" ।

तलपट-वि [देश०] नाश । बरबाद । चौपट ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तलफ़-वि० [अ०] नष्ट । बर्बाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—मुहर्रिर तलफ़ ।

तलफना-क्रि० अ० [अनु०] (१) कष्ट या पीड़ा से अंग पटकना । छटपटाना । (२) व्याकुल होना । बेचैन होना । विकल होना ।

तलफ़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ख़राबी । बरबादी । नाश । (२) हानि ।

यौ०—हक़ तलफ़ी=स्वत्व का मारा जाना ।

तलब-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) खोज । तलाश । (२) चाह । पाने की इच्छा । (३) आवश्यकता । माँग ।

मुहा०—तलब करना=माँगना । मँगाना ।

(४) बुलावा । बुलाहट ।

मुहा०—तलब करना=बुला भेजना । पास बुलाना ।

(५) तनख़ाह । वेतन ।

क्रि० प्र०—खाना ।—चुकाना ।—देना ।—पाना ।—मिलना ।

तलबगार-वि० [फ़ा०] चाहनेवाला । माँगनेवाला ।

तलबाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह ख़रचा जो गवाहों को तलब करने के लिये टिकट के रूप में अदालत में दाखिल किया जाता है । (२) वह खरचा जो मालगुजारी समय पर न जमा करने पर जमींदार से दंड के रूप में लिया जाता है ।

विशेष—चपरासियों को खाने पीने आदि के लिये जो भेंट या खरचा जमींदार देते हैं उसको भी तलबाना कहते हैं ।

तलबी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बुलाहट । (२) माँग ।

क्रि० प्र०—होना ।

तलबेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० तलफना] किसी वस्तु के लिये आतुरता या बेचैनी । छटपटी । घोर उत्कंठा । उ०—कान्ह उठे अति प्रात ही तलबेली लागी । प्रिया प्रेम के रस भरे रति अंगनि खागी ।—सूर ।

तलमल-संज्ञा पुं० [सं०] तलछट । तरौंछ । गाद ।

रह जाना। स्तब्ध रह जाना। कुछ कहते सुनते या करते धरते न बन पड़ना। (२) भौचक रह जाना। हक्का बक्का रह जाना। चकित रह जाना। तले की दुनिया ऊपर होना=(१) भारी उलट फेर हो जाना। (२) जो चाहे सो हो जाना। असंभव से असंभव बात हो जाना। जैसे, चाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय हम अब वहाँ न जायँगे। (मादा चौपाए के) तले बच्चा होना=साथ में थोड़े दिनों का बच्चा होना। जैसे, इस गाय के तले एक बछड़ा है।

तलेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

तलेटी-संज्ञा स्त्री० [सं० तल] (१) पेंदी। (२) पहाड़ के नीचे की भूमि। तलहटी।

तलैंचा-संज्ञा पुं० [हिं० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का और छत से नीचे का भाग।

तलैया-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल।

तलोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्या।

तलोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दरिया।

तलौंछ-संज्ञा स्त्री० [सं० तल=नीचे] तलछट। नीचे जमी हुई मैल आदि।

तल्क-संज्ञा पुं० [सं०] वन।

तल्ख-वि० [फ़ा०] (१) कड़ुवा। कटु। (२) बदमज़ा। बुरे स्वाद का।

तल्खी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कड़ुवाहट। कड़ुवापन।

तल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शय्या। पलंग। सेज। (२) अट्टालिका। अटारी।

तल्पकीट-संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण। खटमल।

तल्पज-संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज पुत्र।

तल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल। गड्ढा। (२) ताल। पोखरा।

तल्लज-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

तल्ला-संज्ञा पुं० [सं० तल] (१) तले की परत। अस्तर। भितल्ला। (२) ढिग। पास। सामीप्य। उ०—तियन को तल्ला किय, तियन पियल्ला त्यागे दौसत अवल्ला भल्ला धाए राजद्वार को।—रघुराज।

तल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ताली। कुंजी।

तल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूते का तला। (२) नीचे की तलछट जो नीचे में बैठ जाती है।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरुणी। युवती। (२) नौका। नाव। (३) वरुण की पत्नी।

तल्लुआ-संज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े के ऐसा एक कपड़ा। महमूदी। तुकी। सल्लम।

तल्लो-संज्ञा पुं० [सं० तल] खाने के नीचे का पाट।

तवक्कार-संज्ञा पुं० दे० "तलवकार"।

तव-सर्व० [सं०] तुम्हारा।

तवक्षीर-संज्ञा पुं० [सं० फ़ा० तबाशीर] तबाखीर। तीखुर।

तवक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कनकचूर जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर बनता है। अबीर इसी तीखुर का बनता है।

तवज्जह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ध्यान। रुख।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

(२) कृपादृष्टि।

तवना†*-क्रि० अ० [सं० तपन] (१) तपना। गरम होना। (२) ताप से पीड़ित होना। दुःख से पीड़ित होना। उ०—(क) काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है। (ख) जबते न्हान गई तई ताप भई बेहाल। मली करी था नारि की नारी देखी लाल।—शृं० सत०। (३) प्रताप फैलाना। तेज पसारना। उ०—छतर गगन लग ताकर सूर तवइ जस आप।—जायसी। (४) क्रोध से जलना। गुस्से से लाल होना। कुढ़ जाना। उ०—(क) भरत प्रसंग ज्यों कालिका यदु देखि तन में तई।—नाभादास। (ख) महादेव बैठे रहि गए। दच्छ देखि कै तेहि दुख तए।—सूर।

तवनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा] हलका तवा। छोटा तवा।

तवरक-संज्ञा पुं० [सं० तुवर] एक पेड़ जो समुद्र और नदियों के तट पर होता है। इसमें इमली के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से चौपायों का दूध बढ़ता है।

तवराज-संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजबीन। यवास शर्करा।

तवा-संज्ञा पुं० [हिं० तवना=जलना] (१) लोहे का एक छिछला गोल बरतन जिस पर रोटी सेंकते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—तवा सा मुँह=कालिख लगे हुए तवे की तरह काला मुँह। तवा सिर से बाँधना=सिर पर प्रहार सहने के लिये तैयार होना। अपने को खूब दृढ़ और सुरक्षित करना। तवे का हँसना=तवे के नीचे जमे हुए कालिख का बहुत जलते जलते लाल हो जाना जिससे घर में विवाद होने का कुशकुन समझा जाता है। तवे की बूँद=(१) क्षणस्थायी। देर तक न टिकनेवाला। नश्वर। (२) जो कुछ भी न मालूम हो। जिससे कुछ भी तृप्ति न हो। जैसे, इतने से उसका क्या होता है, इसे तवे की बूँद समझो।

(२) *मिट्टी या खपड़े का गोल ठीकरा जिसे चिलम पर रख कर* तमाखू पीते हैं। (३) एक प्रकार की लाल मिट्टी जो हींग में मेल देने के काम में आती है।

तवाखीर-संज्ञा पुं० [सं० त्वक्क्षीर] वंशरोचन। बंसलोचन।

तवाज़ा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आदर। मान। आवभगत। (२) मेहमानदारी। दावत। ज़ियाफ़त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तवाना-वि० [फ़ा०] बली। मोटा ताजा। मुस्टंडा।

गए हैं जिनके नाम ये हैं—भ्रांत, उद्भ्रांत, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, संभ्रांत, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संधान, मस्तक-भ्रामण, भुज-भ्रामण, पाश, पाद, विबंध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थानक-प्लुति, लघुता, सौष्टव, शोभा, स्थैर्य्य, दृढ़मुष्टिता, तिर्य्यक्-प्रचार और ऊर्द्धप्रचार। इसी प्रकार पट्टिक, मौष्टिक, महिपाच आदि तलवार के १७ भेद भी बतलाए गए हैं। आज कल भी तलवारों के कई भेद होते हैं जैसे खाँड़ा, जो सीधा और छोर पर चौड़ा होता है; सैफ़ जो लंबी पतली और सीधी होती है; दुधारा, जिसके दोनों ओर धार होती है। इसके अतिरिक्त स्थानभेद से भी तलवारों के कई नाम हैं—जैसे, सिरोही, धँदूरी, जुनूबी इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लचीली तलवार ऊना कहलाती है जिसे राजा तकिये में रख सकते या कमर में लपेट सकते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान अस्त्र है इसीसे कभी कभी तलवार को दुर्गा भी कहते हैं।

तलहटी—संज्ञा स्त्री [सं० तल+घट्ट] पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ की तराई।

तलहा†—वि० [हिं० ताल] ताल संबंधी। ताल का या ताल में होनेवाला।

तला—संज्ञा पुं० [सं० तल] (१) किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदा। (२) जूते के नीचे का चमड़ा जो जमीन पर रहता है।

तलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल। तलैया। बावली।

तलाउ†—संज्ञा पुं० दे० "तलाव"।

तलाक़—संज्ञा पुं० [अ०] पति पत्नी का विधानपूर्वक संबंध-त्याग।

क्रि० प्र०—देना।

तलाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] चटाई।

तलातल—संज्ञा पुं० [सं०] सात पातालों में से एक पाताल का नाम।

तलावेली—संज्ञा स्त्री० दे० "तलवेली"।

तलाव†—संज्ञा पुं० [सं० तल] ताल। वह लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है। तालाब। पोखरा। उ०—सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा।—तुलसी।

† मुहा०—तलाव जाना = शौच जाना। पाखाने जाना।

तलाश—संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) खोज। ढूँढ ढाँढ। अन्वेषण। अनुसंधान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) आवश्यकता। चाह।

क्रि० प्र०—होना।

तलाशना†—क्रि० स० [फ़ा० तलाश] ढूँढ़ना। खोजना।

तलाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष का नाम।

तलाशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को पाने के लिये घर बार, चीज वस्तु आदि की देख भाल। जैसे, पुलिस ने जब घर की तलाशी ली तब बहुत सी चोरी की चीज़ें निकलीं।

मुहा०—तलाशी देना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये संदेह करनेवाले को अपना घर बार, कपड़ा लत्ता आदि ढूँढ़ने देना। तलाशी लेना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये ऐसे मनुष्य के घर बार आदि की देख-भाल करना जिस पर उस वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो।

तलित—वि० [सं० ?] तला हुआ। घी या चिकने के साथ भुना हुआ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता, केवल भावप्रकाश में भुने हुए मांस के लिये आया है।

तलिन—वि० [सं०] (१) दुबला। क्षीण। दुर्बल। (२) विरला। छितराया हुआ। अलग अलग। (३) थोड़ा। कम। (४) साफ़। स्वच्छ। शुद्ध।

संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या। सेज। पलंग।

तलिम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छत। पाटन। (२) शय्या। पलंग। (३) खड्ग। (४) चँदवा।

तलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की थाह। (डिं०)

तली—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] (१) किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदी। (२) तलछट। तलौंछ। † (३) पैर की एड़ी। † (४) विवाह में वरवधू के आसन के नीचे रखा हुआ रुपया पैसा।

तलुआ‡—संज्ञा पुं० दे० "तलवा"।

संज्ञा पुं० दे० "तालू"।

तलुन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) युवा पुरुष।

तले—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे। ऊपर का उलटा। जैसे, पेड़ के तले।

मुहा०—तले ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा। जैसे, किताबों को तले ऊपर रख दो। (२) नीचे की वस्तु ऊपर और ऊपर की वस्तु नीचे। उलट पलट किया हुआ। गड्ड मड्ड। जैसे, सब कागज लगा कर रखे हुए थे तुमने तले ऊपर कर दिए। तले ऊपर के = आगे पीछे के। ऐसे दो जिनमें से एक दूसरे के उपरांत हुआ हो। जैसे, ये तले ऊपर के लड़के हैं इसी से लड़ा करते हैं। (स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में नहीं बनती)। तले ऊपर होना = (१) उलट पलट हो जाना। (२) संयोग में प्रवृत्त होना। जी तले ऊपर होना = (१) जी मचलाना। (२) जी ऊबना। चित्त घबराना। तले की साँस तले और ऊपर की साँस ऊपर रह जाना = (१) ठक

तसू—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + शूक = जौ की तरह का एक कदन्न] लंबाई की एक माप। इमारती गज का २४ वाँ अंश जो १⅜ इंच के लगभग होता है।

तस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। (२) श्रवण। कान। (३) मैनफल। मदन वृक्ष। (४) एक प्रकार के केतु जो लंबे और सफेद होते हैं। ये ५१ हैं और बुध के पुत्र माने जाते हैं। (बृहत्संहिता)। (५) चोर नामक गंधद्रव्य।

तस्करता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरी। चोर का काम।

तस्करस्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] काकनासा लता। कौवाटोंटी।

तस्करी—संज्ञा स्त्री० [सं० तस्कर] (१) चोरी। चोर का काम। (२) चोर की स्त्री। (३) वह स्त्री जो चोर हो।

तस्थु—वि० [सं०] स्थावर। एक ही स्थान पर रहनेवाला। अचल।

तस्मात्—अव्य० [सं०] इसलिये।

तस्य—सर्व० [सं०] उसका।

तस्सू—संज्ञा पुं० दे० 'तसू'।

तहँ—क्रि० वि० दे० "तहाँ"।

तहँवाँ‡—क्रि० वि० दे० "तहाँ"।

तह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी वस्तु की मोटाई का फैलाव जो किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो। परत। जैसे, कपड़े की तह, मलाई की तह, मिट्टी की तह, चट्टान की तह। उ०—(क) इस पर अभी मिट्टी की कई तहें चढ़ेंगी। (ख) इस कपड़े को चार पाँच तहों में लपेट कर रख दो।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—जमना।—जमाना।—लगाना।

यौ०—तहदार = जिसमें कई परत हों।

मुहा०—तह करना = किसी फैली हुई (चद्दर आदि के आकार की) वस्तु के भागों को कई ओर से मोड़ और एक दूसरे के ऊपर फैला कर उस वस्तु को समेटना। चौपरत करना। तह कर रखो = लिए रहो। मत निकालो या दो। रहने दो। नहीं चाहिए। तह जमाना या बैठाना = (१) परत के ऊपर परत दबाना। (२) भोजन पर भोजन किए जाना। तह तोड़ना—(१) झगड़ा निबटाना। समाप्ति को पहुँचाना। कुछ बाकी न रखना। निबटाना। (२) कुएँ का सब पानी निकाल देना जिससे जमीन दिखाई देने लगे। (किसी चीज की) तह देना = (१) हलकी परत चढ़ाना। थोड़ी मोटाई में फैलाना या बिछाना। (२) हलका रंग चढ़ाना (३) अतर बनाने में जमीन देना। आधार देना। जैसे, चंदन की तह देना। तह मिलाना = जोड़ा लगाना। नर और मादा एक साथ करना। तह लगाना = चौपरत करके समेटना।

(२) किसी वस्तु के नीचे का विस्तार। तल। पेंदा। जैसे, इस गिलास में घुली हुई दवा तह में जाकर जम गई है।

मुहा०—तह का सच्चा = वह कबूतर जो उड़कर अपने छत्ते पर चला आवे, अपना स्थान न भूले। तह की बात = छिपी हुई बात। गुप्त रहस्य। गहरी बात। (किसी बात की) तह को पहुँचना = दे० "तह तक पहुँचना"। (किसी बात की) तह तक पहुँचना = किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता पाना। यथार्थ रहस्य जान लेना। असली बात समझ जाना।

(३) पानी के नीचे की जमीन। तल। थाह। (४) महीन पटल। वरक। झिल्ली।

क्रि० प्र०—उचड़ना।

तहक़ीक़—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सत्य। यथार्थता। (२) सचाई की जाँच। यथार्थ बात का अन्वेषण। खोज। अनुसंधान। (२) जिज्ञासा। पूछ ताछ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहक़ीक़ात—संज्ञा स्त्री० [अ० बहु० व०] किसी विषय या घटना की ठीक ठीक बातों की खोज। अनुसंधान। अन्वेषण। जाँच। जैसे, किसी मामले की तहक़ीक़ात, किसी इल्म की तहक़ीक़ात।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तहक़ीक़ात आना = किसी घटना या मामले के संबंध में पुलिस के अफ़सर का पता लगाने के लिये आना।

तहखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह कोठरी या घर जो जमीन के नीचे बना हो। भुइँहरा। तलगृह।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग धूप की गरमी से बचने के लिये जा रहते या धन रखते हैं।

तहज़ीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] शिष्ट व्यवहार। शिष्टता। सभ्यता।

तहदरज़—वि० [फ़ा०] (कपड़ा आदि) जिसकी तह तक न खोली गई हो। बिलकुल नया। ज्यों का त्यों नया रखा हुआ।

तहनिशाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] लोहे पर सोने चाँदी की पच्चीकारी।

तहपेच—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पगड़ी के नीचे का कपड़ा।

तहबाज़ारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] झूरी। वह महसूल जो हाट में सौदा बेचनेवालों से ज़मींदार लेता है।

तहमत—संज्ञा पुं० [फ़ा० तहबंद या तहमद] लुंगी। अँचला। कमर में लपेटा हुआ कपड़ा या अँगोछा।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

तहरा†—संज्ञा पुं० दे० "ततहँड़ा"।

तहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पेठे की बरी और चावल की खिचड़ी। (२) मटर की खिचड़ी। (३) कालीन बुननेवालों की दरकी।

तहरीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लिखावट। लेख। (२) लेख-शैली। जैसे, उनकी तहरीर बड़ी जबरदस्त होती है। (३) लिखी हुई बात। लिखा हुआ मज़मून। (४) लिखा हुआ

क्रि० स० [हिं० ताना] (१) तप्त कराना । गरम कराना ।
†क्रि० स० [हिं० ताना] ढकन को चिपका कर बरतन का मुँह बंद कराना ।

तवायफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] वेश्या । रंडी । (यद्यपि यह शब्द बहु० है पर हिंदी में एक वचन बोला जाता है)

तवारा–संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव] जलन । दाह । ताप । उ०—तवते इन सबहिन सचु पायो । जबतें हरि संदेश तुम्हारो सुनत तवारो आयो ।—सूर ।

तवारीख़–संज्ञा स्त्री० [अ०] इतिहास ।
विशेष—यह 'तारीख़' शब्द का बहुवचन है ।

तवालत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लंबाई । दीर्घत्व । (२) आधिक्य । अधिकता । अधिकाई । ज्यादती । (३) बखेड़ा । तूल तवील । झंझट ।

तविष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग । (२) समुद्र । (३) व्यवसाय । (४) शक्ति । (५) स्वर्ग ।
वि० (१) वृद्ध । महत् । (२) बलवान ।

तशख़ीस–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ठहराव । निश्चय । (२) मर्ज़ की पहिचान । रोग का निदान ।

तशरीफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] बुज़ुर्गी । इ़ज्जत । महत्त्व । बड़प्पन ।
मुहा०—तशरीफ़ रखना=विराजना । बैठना । (आदर) । तशरीफ़ लाना=पदार्पण करना । पधारना । आना । (आदर) । तशरीफ़ ले जाना=प्रस्थान करना । चला जाना ।

तश्त–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) थाली के आकार का हलका छिछला बरतन । (२) परात । लगन । (३) तांबे का वह बड़ा बरतन जो पाख़ानों में रखा जाता है । गमला ।

तश्तरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] थाली के आकार का बहुत छिछला हलका बरतन । रिकाबी ।

तष्ट–वि० [सं०] (१) छीला हुआ । (२) कुटा हुआ । दला हुआ । पीस कर दो दलों में किया हुआ । (३) पीटा हुआ ।

तष्टा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छीलनेवाला । (२) छील छाल कर गढ़नेवाला । (३) विश्वकर्मा । (४) एक आदित्य का नाम ।
संज्ञा पुं० [फ़ा० तश्त] ताँबे की एक प्रकार की छोटी तश्तरी जिसका व्यवहार ठाकुर पूजन के समय मूर्त्तियों को नहलाने के लिये होता है ।

तस–वि० [सं० तादृश, प्रा० तारिस, पु० हिं० तइस] तैसा । वैसा ।
क्रि० वि० तैसा । वैसा । उ०—तस मति फिरी रही जस भावी ।—तुलसी ।

तसकीन–संज्ञा स्त्री० [अ०] तसल्ली । ढाढ़स । दिलासा ।

तसगर–संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों के ताने में नौलक्खी के पास की दो लकड़ियों में से एक ।

तसदीक़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सचाई । (२) सचाई की परीक्षा या निश्चय । समर्थन । प्रमाणों के द्वारा पुष्टि । (३) साक्ष्य । गवाही ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तसदीह*†–संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीअ] (१) दर्द सर । (२) तकलीफ़ । दुःख । क्लेश । उ०—नहिं चून चीव सबील ही तसदीह सब ही की सही ।—सूदन ।

तसद्दुक़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) निछावर । सदक़ा । (२) बलि-प्रदान । क़ुरबानी ।

तसनीफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] ग्रंथ की रचना ।

तसबीह–संज्ञा स्त्री० [अ०] सुमिरनी । माला । जपमाला । (मुसल०) । उ०—मन मनि के तँह तसबी फेरइ । तब साहब के वह मन भेवइ ।—दादू ।
मुहा०—तसबीह फेरना=ईश्वर का नाम स्मरण या उच्चारण करते हुए माला फेरना ।

तसमा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] चमड़े की कुछ चौड़ी डोरी के आकार की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बांधने या कसने के काम में आवे । चमड़े का चौड़ा फ़ीता ।
मुहा०—तसमा खींचना=एक विशेष रूप से गले में फंदा डाल कर मारना । गला घोटना । तसमा लगा न रखना=गरदन साफ़ उड़ा देना । साफ़ दो टुकड़े करना ।

तसर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुलाहों की ढरकी । (२) एक प्रकार का घटिया रेशम । दे० "टसर" ।

तसला–संज्ञा पुं० [फ़ा० तश्त+ला (प्रत्य०)] कटोरे के आकार का पर उससे बड़ा गहरा बरतन जो लोहे, पीतल, तांबे आदि का बनता है ।

तसली–संज्ञा स्त्री० [हिं० तसला] छोटा तसला ।

तसलीम–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सलाम । प्रणाम । (२) किसी बात को स्वीकृति । हामी । जैसे, ग़लती तसलीम करना ।
क्रि० प्र०—करना ।

तसल्ली–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ढाढ़स । सांत्वना । आश्वासन । (२) व्यग्रता की निवृत्ति । व्याकुलता की शांति । धैर्य्य । धीरज ।
क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—होना ।
मुहा०—तसल्ली दिलाना=तसल्ली देना । धैर्य्य धारण कराना ।

तसवीर–संज्ञा स्त्री० [अ०] चित्र । वस्तुओं की आकृति जो रंग आदि के द्वारा कागज पटरी आदि पर बनी हो ।
क्रि० प्र०—खींचना ।—बनाना ।—लिखना ।
मुहा०—तसवीर उतारना=चित्र बनाना । † तसवीर निकालना=चित्र बनाना ।
वि० चित्र सा सुंदर । मनोहर ।

तसी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन बार जोता हुआ खेत ।

बनी हुई डोरी। (इससे धनुष की डोरी, सारंगी आदि के तार बनाए जाते हैं।

मुहा०—तांत सा = बहुत दुबला पतला।

(२) धनुष की डोरी। कमान की डोरी। (३) डोरी। सूत। (४) सारंगी आदि का तार। जैसे, तांत बाजी राग बूझा। उ०—(क) सो मैं कुमति कहउँ केहि भांती। बाज सुराग कि गांड़र तांती।—तुलसी। (ख) सेइ साधु गुरु मुनि पुरान श्रुति बूझ्यो राग बाजी तांति।—तुलसी। (५) जुलाहों का राछ।

तांतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तांत का अल्प०] तांत।

मुहा०—तांतड़ी सा = तांत की तरह दुबला पतला।

तांतव—वि० [सं०] जिसमें तंतु या तार हो। जिस में से तार निकल सके।

तांतवा—संज्ञा पु० [हिं० आँत] आँत उतरने का रोग।

तांता—संज्ञा पुं० [सं० तति = श्रेणी] श्रेणी। पंक्ति। कतार।

मुहा०—तांता बांधना = पंक्ति में खड़ा होना। तांता लगना = तार न टूटना। एक पर एक बराबर चला चलना।

तांति—संज्ञा स्त्री० दे० "तांत"।

तांतिया—वि० [हिं० तांत] तांत की तरह दुबला पतला।

तांती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तांता] (१) पंक्ति। कतार। (२) बाल बच्चे। औलाद।

संज्ञा पु० जुलाहा। कपड़ा बुननेवाला।

तांत्रिक—वि० [सं०] [स्त्री० तांत्रिकी] तंत्र संबंधी।

संज्ञा पु० (१) तंत्र शास्त्र का जाननेवाला। यंत्र मंत्र आदि करनेवाला। मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के प्रयोग करनेवाला। (२) एक प्रकार का सन्निपात।

तांबा—संज्ञा पु० [सं० ताम्र] लाल रंग की एक धातु जो खानों में गंधक, लोहे, तथा और द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है। यह पीटने से बढ़ सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है। ताप और विद्युत् के प्रवाह का संचार तांबे पर बहुत अधिक होता है इससे इसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ़ आदि में होता है। तांबे में और दूसरी धातुओं को निर्दिष्ट मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, रांगा मिलाने से कांसा, जस्ता मिलाने से पीतल। कई प्रकार के विलायती सोने भी तांबे से बनते हैं। खूब ठंढी जगह में तांबा और जस्ता बराबर बराबर लेकर गला डाले। फिर गली हुई धातु को खूब घोंटे और थोड़ा सा जस्ता और मिला दे। घोंटते घोंटते कुछ देर में उस धातु का रंग सफेद निकलेगा फिर थोड़ी देर में सोने की तरह पीला हो जायगा। तांबे की खानें संसार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें भिन्न भिन्न यौगिक द्रव्यों के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का तांबा निकलता है। कहीं धूमले रंग का, कहीं बैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का। भारतवर्ष में सिंहभूमि, हजारीबाग, जयपुर, अजमेर, कच्छ, नागपुर, नेलोर इत्यादि अनेक स्थानों में तांबा निकलता है। जापान से बहुत अच्छे तांबे के पत्तर बाहर जाते हैं।

हिंदुओं के यहां तांबा एक बहुत पवित्र धातु माना जाता है, अतः उसके अरघे, पंचपात्र, कलश, झारी आदि पूजा के बरतन बहुत बनते हैं। डाक्टरी, हकीमी और वैद्यक तीनों मत की चिकित्साओं में तांबे का व्यवहार अनेक रूपों में होता है। आयुर्वेद में तांबा शोधने की विधि इस प्रकार है। तांबे का बहुत पतला पत्तर कर के आग में तपा कर लाल कर डाले फिर उसे क्रमशः तेल, मट्ठे, कांजी, गोमूत्र और कुलथी की पीठी में तीन तीन बार बुझावे। बिना शोधा हुआ तांबा विष से अधिक हानिकारक होता है।

पर्या०—ताम्रक। शुल्व। म्लेच्छमुख। द्वयष्ट। वरिष्ट। उदुंबर। द्विष्ट। अंबक। तपनेष्ट। अरविंद। रविलोह। रविप्रिय। रक्त। नैपालिक। मुनिपित्तल। अर्क। लोहितायस।

संज्ञा पुं० [अ० तअमः] मांस का वह टुकड़ा जो बाज़ आदि शिकारी पक्षियों के आगे खाने के लिये डाला जाता है।

तांबिया—संज्ञा स्त्री० दे० "तांबी"।

तांबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तांबा] (१) चौड़े मुँह का तांबे का एक छोटा बरतन। (२) तांबे की करछी।

तांबूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पान। नागवल्ली दल। (२) पान का बीड़ा। (३) किसी प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो भोजनोत्तर खाया जाय। (जैन)। (४) सुपारी।

तांबूलकरंक—संज्ञा पु० [सं०] (१) पान रखने का बरतन। पट्टा। पिलहरा। (२) पान के बीड़े रखने का डिब्बा। पनडिब्बा।

तांबूलनियम—संज्ञा पु० [सं०] पान, सुपारी, लवंग इलायची आदि खाने का नियम। (जैन)

तांबूलपत्र—संज्ञा पु० [सं०] (१) पान का पत्ता। (२) पिंडालू। अरुआ नाम की लता जिसके पत्ते पान के ऐसे होते हैं।

तांबूलवीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा। बीड़ी।

तांबूलराग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पान की पीक। (२) मसूर।

तांबूलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की बेल। नागवली।

तांबूलवाहक—संज्ञा पु० [सं०] पान खिलानेवाला सेवक। पान का बीड़ा लेकर साथ चलनेवाला नौकर।

तांबूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाला। तमोली।

तांबूली—संज्ञा पुं० [सं० तांबूलिन्] पान बेचनेवाला। तमोली।

तांबेकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लाल रंग।

तांबेल—संज्ञा पुं० [?] कछुवा। कच्छप।

तांवर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव] (१) ताप। ज्वर। हरारत। (२) जूड़ी। (३) मूर्च्छा। पछाड़। घुमटा।

क्रि० प्र०—आना।

प्रमाणपत्र। लेख-बद्ध प्रमाण। (५) लिखने की उजरत। लिखाई। लिखने का मिहनताना। जैसे, इसमें १) तहरीर लगेगी। (६) गेरू की कच्ची छपाई जो कपड़ों पर होती है। कट्टर की डटाई। (छीपी)

तहरीरी-वि० [फ़ा०] लिखा हुआ। लिखित। लेखबद्ध। जैसे, तहरीरी सबूत।

तहलका-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मौत। मृत्यु। (२) बरबादी। नाश। (३) खलबली। धूम। हलचल। विप्लव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

तहवील-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सपुर्दगी। (२) अमानत। धरोहर। (३) खज़ाना। जमा। किसी मद की आमदनी का रुपया जो किसी के पास जमा हो।

तहवीलदार-संज्ञा पुं० [अ० तहवील + फ़ा० दार] खज़ानची। वह आदमी जिसके पास किसी मद की आमदनी का रुपया जमा होता हो।

तहस नहस-वि० [देश०] विनष्ट। बरबाद। नष्ट भ्रष्ट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहसील-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बहुत से आदमियों से रुपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया। वसूली। उगाही। जैसे, पोत तहसील करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह आमदनी जो लगान वसूल करने से इकट्ठी हो। जमीन की सालाना आमदनी। जैसे, इनकी पचास हजार की तहसील है। (३) वह दफ्तर या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं। तहसीलदार की कचहरी। माल की छोटी कचहरी।

तहसीलदार-संज्ञा पुं० [अ० तहसील + फ़ा० दार] (१) कर वसूल करनेवाला। (२) वह अफसर जो जमींदारों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है।

तहसीलदारी-संज्ञा पुं० [अ० तहसील + फ़ा० दार + ई] (१) कर या महसूल वसूल करने का काम। मालगुजारी वसूल करने का काम। तहसीलदार का काम। (२) तहसीलदार का पद।

क्रि० प्र०—करना।

तहसीलना-क्रि० स० [अ० तहसील] उगाहना। वसूल करना (कर, लगान, मालगुजारी, चंदा आदि)।

तहाँ-क्रि० वि० [सं० तत + सं० स्थान, प्रा० थाण, थान,] वहाँ। उस स्थान पर। उ०—तहाँ जाइ देखी वन सोभा। —तुलसी।

विशेष—लेख में अब इसका प्रयोग उठ गया है केवल "जहाँ का तहाँ" ऐसे दो एक वाक्यों में रह गया है।

तहाना-क्रि० स० [हिं० तह] तह करना। घरी करना। लपेटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

तहियाँ †-क्रि० -वि० [सं० तदाहि] तब। उस समय। उ०—कह कबीर कछु अछिलो न जहियाँ। हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहियाँ।—कबीर।

तहियाना †-क्रि० स० [फ़ा० तह] तह लगा कर लपेटना।

तहीं †-क्रि० वि० [हिं० तहाँ] वहीं। उसी जगह। उसी स्थान पर।

तहोबाला-वि० [फ़ा०] नीचे ऊपर। ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। क्रम-भंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ता-प्रत्य० [सं०] एक भाववाचक प्रत्य० जो विशेषण और संज्ञा शब्दों के आगे लगता है जैसे, उत्तम, उत्तमता; शत्रु, शत्रुता। मनुष्य, मनुष्यता।

अव्य० [फ़ा०] तक। पर्य्यंत। उ०—केस मेघावरि सिर ता पाइँ। चमकहिं दसन बीजु की नाइँ।—जायसी।

* † सर्व [सं० तद्] उस।

विशेष—इस रूप में यह शब्द विभक्ति के साथ ही आता है। जैसे, ताको, तासों, तापै इत्यादि।

* †-वि० उस। उ०—तब शिव उमा गए ता ठौर।—सूर।

विशेष—इसका प्रयोग विभक्ति युक्त विशेष्य के साथ ही होता है।

ताँई-क्रि० वि० दे० "ताई"।

ताँगा-संज्ञा पुं० दे० "टाँगा"।

तांडव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुषों का नृत्य।

विशेष—पुरुषों के नृत्य को तांडव और स्त्रियों के नृत्य को लास्य कहते हैं। तांडव नृत्य शिव को अत्यंत प्रिय है। इसी से कोई कोई तंडु अर्थात् नंदी को इस नृत्य का प्रवर्त्तक मानते हैं। किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले पहल इसकी शिक्षा दी इसी से इसका नाम तांडव हुआ। (२) उद्धत नृत्य। वह नाच जिसमें बहुत उछल कूद हो। (३) शिव का नृत्य। (४) एक तृण का नाम।

तांडवी-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के चौदह तालों में से एक।

तांडि-संज्ञा पुं० [सं०] (तंडि मुनि का निकाला हुआ) नृत्य-शास्त्र।

तांडी-संज्ञा पुं० [सं० तांडिन्] (१) सामवेद की तांड्य शाखा का अध्ययन करनेवाला। (२) यजुर्वेद का एक कल्पसूत्रकार।

तांड्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंडि मुनि के वंशज। (२) सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम।

तांत-वि० [सं०] (१) श्रांत। थका हुआ। (२) जिसके अंत में त् हो।

ताँत-संज्ञा स्त्री० [सं० तंतु] (१) भेड़ बकरी की अँतड़ी, या चौपायों के पट्ठों को बट कर बनाया हुआ सूत। चमड़े या नसों की

कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि बूझनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताक झाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना + झाँकना] (१) रह रह कर बारबार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्न पूर्वक दृष्टिपात। जैसे, क्या ताक झाँक लगाए हो, अभी वे यहाँ नहीं आए हैं। (२) छिपकर देखने की क्रिया। (३) निरीक्षण। देखभाल। निगरानी। (४) अन्वेषण। खोज।

ताक़त—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) ज़ोर। बल। शक्ति। (२) सामर्थ्य। जैसे, किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने आवे।

ताक़तवर—वि० [फा०] (१) बलवान। बलिष्ठ। (२) शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—क्रि० स० [सं० तर्कण = विचारना] (१) सोचना। विचारना। चाहना। उ०—जो शठ प्रति अनभल ताका। सो पाइहि यह फल परिपाका।—तुलसी। (२) अवलोकन करना। दृष्टि जमा कर देखना। टकटकी लगाना। (३) ताड़ना। समझ जाना। लखना। (४) पहले से देख रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य्य के लिये) देख कर स्थिर करना। तजवीज करना। जैसे, (क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रखी है, यहीं बैठो। (ख) कोई अच्छा आदमी ताक कर यहाँ लाओ। (५) दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे, मैं अपना असबाब यहीं छोड़े जाता हूँ, ज़रा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक = एक देश या एक जाति] एक लिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुलती होती है। अटक के उस पार से लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और काँगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके अक्षरों को लुंडे या मुंडे भी कहते हैं।

ताकि—अव्य० [फा०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे, मैं यहाँ से हट जाता हूँ ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] ज़ोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेता कर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बारबार कहा गया हो। जैसे, मुद्दरिसों से ताकीद कर दो कि कल ठीक समय पर आवें।

क्रि० प्र०—करना।

ताकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधे का नाम।

ताख ‡—संज्ञा पु० दे० "ताक़"।

ताखड़ा †—वि० दे० "तगड़ा"।

ताखड़ी †—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हिं० कड़ी] तराजू। काँटा।

ताखी—वि० [अ० ताक़] जिसकी दोनों आँखें एक तरह की न हों। जिसकी एक आँख एक रंग या ढंग की हो और दूसरी आँख दूसरे रंग या ढंग की हो। (घोड़ों, बैलों आदि के लिये। ऐसे जानवर ऐबी समझे जाते हैं)।

विशेष—यह शब्द 'ताक़' से बना है जिसका अर्थ है एक या बिना जोड़े का।

ताग—संज्ञा पु० दे० "तागा"।

तागड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज़ों पर चढ़ने की तख्तों की बनी हुई एक प्रकार की सीढ़ी जो पानी से लेकर जहाज़ के ऊपर तक चली जाती है।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तग + कड़ी] (१) तागे में पिरोए हुए सोने चाँदी के घुँघुरुओं का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करधनी। कांची। किंकिणी। क्षुद्रघंटिका। (तागड़ी सीकड़ या जंजीर के आकार की भी बनती है)। (२) कमर में पहनने का रंगीन डोरा। कटिसूत्र। करगता।

तागना—क्रि० स० [हिं० तागा + ना (प्रत्य०)] सुई से तागा डाल कर फँसाना। स्थान स्थान पर डोभ या लंगर डालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, दुलाई या रजाई तागना।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा + पहनाना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रख कर बय में पहनाया जाता है। (जुलाहे)

ताग पाट—संज्ञा पु० [हिं० तागा + पाट = रेशम] एक गहना जो रेशम के तागे में सोने के तीन दाने या जंतर डाल कर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—ताग पाट डालना = विवाह की रीति के अनुसार गणेश पूजन आदि के पीछे वर के बड़े भाई (दुलहिन के जेठ) का वधू को ताग पाट पहनाना।

तागा—संज्ञा पुं० [सं० तार्कव, प्रा० तग्गो, हिं० तग्गो] (१) रुई, रेशम आदि का वह अंश जो तकले आदि पर बटने से लंबी रेखा के रूप में निकलता है। सूत। डोरा। धागा।

क्रि० प्र०—डालना।—पिरोना।

मुहा०—तागा डालना = तागना। सिलाई के द्वारा तागा फँसाना। दूर दूर पर सिलाई करना।

(२) वह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लगे। (मनुष्य करधनी, जनेऊ आदि पहनते हैं इसी से यह अर्थ लिया गया है)

ताज—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बादशाह की टोपी। राजमुकुट।

यौ०—ताजपोशी।

(२) कलगी। तुर्रा। (३) मोर, मुर्गे आदि पक्षियों के सिर पर की चोटी। शिखा। (४) दीवार की कँगनी या छज्जा। (५) वह बुर्जी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना

ताँवरी–संज्ञा स्त्री० दे० "ताँवर"।

ताँवरो†–संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव] (१) ताप। ज्वर। हरारत। (२) जूड़ी। जाड़ा देकर आनेवाला बुखार। (३) मूर्च्छा। पछाड़। घुमटा। चक्कर।

क्रि० प्र०—आना।

ताँसना†–क्रि० स० [सं० त्रास] (१) डाँटना। त्रास देना। धमकाना। आँख दिखाना। (२) कुव्यवहार करना। सताना। जैसे, सास का बहू को ताँसना।

तईं–अव्य० [सं० तावत् या फ़ा० ता] (१) तक। पर्य्यंत। (२) पास। तक। समीप। निकट। (३) (किसी के) प्रति। समक्ष। लक्ष्य करके। जैसे, किसी के ताईं कुछ कहना। उ०—कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताईं। इन तेरह तें तरह दिए बनि आवै साईं।—गिरिधर। (४) विषय में। संबंध में। लिये। वास्ते। निमित्त। उ०—दीन्ह रूप औ जोति गोसाईं। कीन्ह खंभ दुहुँ जग के ताईं।—जायसी।

मुहा०—अपने ताईं = अपने को।

विशेष—दे० "तईं"।

ताई–संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताय + ई (प्रत्य०)] (१) ताप। हरारत। हलका ज्वर। (२) जूड़ी। जाड़ा देकर आनेवाला बुखार।

क्रि० प्र०—आना।

(३) एक प्रकार की छिछली कड़ाही जिसमें मालपूआ, जलेबी आदि बनाते हैं।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ताऊ] जेठी चाची। बाप के बड़े भाई की स्त्री।

ताईत †–संज्ञा पुं० [फ़ा० ताबीज़] ताबीज़। जंतर। यंत्र।

ताईद–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पक्षपात। तरफदारी। (२) अनुमोदन। समर्थन। पुष्टि।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

† संज्ञा पुं० (१) सहायक कर्मचारी। नायब। (२) किसी कर्मचारी के साथ काम सीखने के लिये उम्मेदवार की तरह पर काम करनेवाला व्यक्ति।

ताउ †–संज्ञा पुं० दे० "ताव"।

ताऊ–संज्ञा पुं० [सं० तात] बाप का बड़ा भाई। बड़ा चाचा। ताया।

मुहा०—बछिया के ताऊ = बैल। मूर्ख। जड़।

ताऊन–संज्ञा पुं० [अ०] एक संक्रामक रोग जिसमें गिलटी निकलती और बुखार आता है।

ताऊस–संज्ञा पुं० [अ०] (१) मोर। मयूर।

यौ०—तख़्त ताऊस = शाहजहाँ के बहुमूल्य रत्नजटित राजसिंहासन का नाम जो कई करोड़ की लागत में मोर के आकार का बनाया गया था।

(२) सारंगी और सितार से मिलता जुलता एक बाजा जिस पर मोर का आकार बना होता है। इसमें सितार के से तरब और परदे होते हैं और यह सारंगी की कमानी से रेत कर बजाया जाता है।

ताऊसी–वि० [अ०] (१) मोर का सा। मोर के रंग का। (२) गहरा ऊदा। गहरा बैंगनी।

ताक–संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना] (१) ताकने की क्रिया। अवलोकन।

यौ०—ताक झाँक।

मुहा०—ताक रखना = निगाह रखना। निरीक्षण करते रहना।

(२) स्थिर दृष्टि। टकटकी।

मुहा०—ताक बाँधना = दृष्टि स्थिर करना। टकटकी लगाना।

(३) किसी अवसर की प्रतीक्षा। मौका देखते रहने का काम। घात। जैसे, बंदर आम लेने की ताक में बैठा है।

मुहा०—ताक में रहना = उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहना। मौका देखते रहना। ताक रखना = घात में रहना। मौका देखते रहना। ताक लगाना = घात लगाना। मौका देखते रहना।

(४) खोज। तलाश। फ़िराक़। जैसे, (क) किस ताक में बैठे हो? (ख) उसी की ताक में जाते हैं।

ताक़–संज्ञा पुं० [अ०] दीवार में बना हुआ गड्ढा या खाली स्थान जो चीज़ वस्तु रखने के लिये होता है। आला। ताखा।

मुहा०—ताक़ पर धरना या रखना = पड़ा रहने देना। काम में न लाना। उपयोग न करना। जैसे, (क) किताब ताक़ पर रख दी और खेलने के लिये निकल गया। (ख) तुम अपनी किताब ताक़ पर रखो, मुझे उसकी जरूरत नहीं। ताक़ पर रहना या होना = पड़ा रहना। काम में न आना। अलग पड़ा रहना। व्यर्थ जाना। जैसे, यह दस्तावेज़ ताक़ पर रह जायगी और उसकी डिगरी हो जायगी। ताक़ भरना = किसी देवस्थान पर मनौती की पूजा चढ़ाना। (मुसल०)

वि० (१) जो संख्या में सम न हो। विषम। जो बिना खंडित हुए दो बराबर भागों में न बँट सके। जैसे, एक, तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह इत्यादि।

यौ०—जुफ़ताक या जूस ताक।

(२) अद्वितीय। जिसके जोड़ का दूसरा न हो। एकता। अनुपम। जैसे, किसी फ़न में ताक होना।

ताकजुफ़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का जूआ जिसमें मुट्ठी के भीतर कुछ कौड़ियाँ या और वस्तुएँ लेकर बुझाते हैं

उपस्थित होना। जैसे, उनके आने से मामला फिर ताज़ा हो गया। (२) स्मरण आना। फिर चित्त में उपस्थित होना। जैसे, ग़म ताज़ा होना।

ताज़िया—संज्ञा पुं० [अ०] बाँस की कमचियों पर रंग बिरंगे कागज, पत्नी आदि चिपका कर बनाया हुआ मक़बरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसेन की क़ब्र बनी होती है। मुहर्रम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी आराधना करते और अंतिम दिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले आकर दफ़न करते हैं।

मुहा०—ताज़िया ठंढा होना = (१) ताजिया दफ़न होना। (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना।

विशेष—ताज़िया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुसलमानों में है। ऐसा प्रसिद्ध है कि तैमूर कुछ जातियों का नाश करके जब करबला गया था तब वहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के आगे आगे लेकर चलता था। तभी से यह प्रथा चल पड़ी।

ताज़ी—वि० [फ़ा०] अरबी। अरब का। अरब संबंधी।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) अरब का घोड़ा। (२) शिकारी कुत्ता।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अरब की भाषा। अरबी भाषा।

वि० ताज़ा का स्त्री०।

ताज़ीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] सम्मान प्रदर्शन। किसी बड़े के सामने उसके आदर के लिये उठ कर खड़ा हो जाना, झुक कर सलाम करना इत्यादि।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ताज़ीमी सरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० तज़ीम + अ० सरदार] वह सरदार जिसके आने पर राजा या बादशाह उठ कर खड़े हो जाँय या जिसे कुछ आगे बढ़ कर लें। ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा हो।

ताटंक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान में पहनने का एक गहना। करनफूल। तरकी। (२) छप्पय के २४ वें भेद का नाम। (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में मगण होता है। किसी किसी ने अंत में एक गुरु का ही नियम रखा है। लावनी प्रायः इसी छंद में होती है।

ताड़ंक—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक गहना। तरकी। करनफूल।

विशेष—पहले यह गहना ताड़ के पत्तों ही का बनता था। अब भी तरकी ताड़ के पत्ते ही की बनती है।

ताड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाखा-रहित एक बड़ा पेड़ जो खंभे के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल सिरे पर पत्ते धारण करता है। ये पत्ते चिपटे मजबूत डंठलों में, जो चारों ओर निकले रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे रहते हैं और बहुत ही कड़े होते हैं। इसकी लकड़ी की भीतरी बनावट सूत के ठोस लच्छों के रूप की होती है। ऊपर गिरे हुए पत्तों के डंठलों के मूल रह जाते हैं जिससे छाल खुरदुरी दिखाई पड़ती है। चैत के महीने में इसमें फूल लगते हैं और वैशाख में फल, जो भादों में खूब पक जाते हैं। फलों के भीतर एक प्रकार की गिरी और रेशेदार गूदा होता है जो खाने के योग्य होता है। फूलों के कच्चे अंकुरों को पोंछने से बहुत सा नशीला रस निकलता है जिसे ताड़ी कहते हैं। ताड़ी का व्यवहार नीच श्रेणी के लोग मद्य के स्थान पर करते हैं। ताड़ प्रायः सब गरम देशों में होता है। भारतवर्ष, बरमा, सिंहल, सुमात्रा जावा आदि द्वीप-पुंज, तथा फ़ारस की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं। ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं। तामिल-भाषा में ताल-विलास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़ गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग अलग गुण बतलाया गया है। दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं। गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं तालवनों की विलक्षण शोभा है। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी काम में आता है। पत्तों से पंखे बनते हैं और छप्पर छाए जाते हैं। ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लगती है। लकड़ी खोखली करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी बनाते हैं। डंठल के रेशे चटाई और जाल बनाने के काम में आते हैं। कई प्रकार के ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। सिंहल के जफ़ना नामक नगर से ताड़ की लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी। प्राचीन काल में दक्षिण के देशों में ताल-पत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे। ताड़ का रस औषध के काम में भी आता है। ताड़ी का पुलटिस फोड़े या घाव के लिये अत्यंत उपकारी है। ताड़ी का सिरका भी पड़ता है। वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि, कुष्ठ और रक्तपित्त-नाशक माना जाता है। ताड़ ऊँचाई के लिये प्रसिद्ध है। कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक ऊँचे होते हैं, पर घेरा किसी का ६—७ बित्ते से अधिक नहीं होता।

पर्य्या०—तालद्रुम। पत्री। दीर्घस्कंध। ध्वजद्रुम। तृणराज। मधुरस। मदाढ्य। दीर्घपादप। चिरायु। तरुराज। दीर्घपत्र। गुच्छपत्र। आसवद्रु। लेख्यपत्र। महोन्नत।

(२) ताड़न। प्रहार। (३) शब्द। ध्वनि। धमाका। (४) घास, अनाज के डंठल आदि की अँटिया जो मुट्ठी में आजाय। जुट्टी। (५) हाथ का एक गहना। (६) मूर्त्ति-निर्माण-विद्या में मूर्त्ति के ऊपरी भाग का नाम।

ताड़का—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीरामचंद्र ने मारा था।

देते हैं। (६) गंजीफ़े के एक रंग का नाम। (७) आगरे का ताजमहल।

ताजक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक ईरानी जाति जो तुर्किस्तान के बुख़ारा प्रदेश से लेकर बदख़शाँ, काबुल, बिलूचिस्तान, फ़ारस आदि तक पाई जाती है। बुख़ारा में यह जाति सर्त, अफगानिस्तान में देहान और बिलूचिस्तान में देहवार कहलाती है। फ़ारस में ताजक एक साधारण शब्द ग्रामीण के लिये हो गया है। (२) ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यवनाचार्य्य कृत प्रसिद्ध है। यह पहले अरबी और फ़ारसी में था, राजा समरसिंह, नीलकंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं। जैसे, मेष, सिंह और धनु का पित्त स्वभाव और क्षत्रिय वर्ण; मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव और वैश्य वर्ण; मिथुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और शूद्र वर्ण, कर्कट, वृश्चिक और मीन का कफ स्वाभाव और ब्राह्मण वर्ण। इस ग्रंथ में जो संज्ञाएँ आई हैं वे अधिकांश अरबी और फ़ारसी की हैं जैसे, इक़बाल योग, इंतिहा योग, इत्थशाल योग, इशराक योग, गैरकबूल योग इत्यादि।

ताज़गी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हरापन। शुष्कता या कुम्हलाहट का अभाव। ताज़ापन। (२) प्रफुल्लता। स्वस्थता। शिथिलता या श्रांति का अभाव। (३) सद्यः प्रस्तुत होने का भाव। नयापन।

ताजदार—वि० [फ़ा०] ताज के ढंग का।

संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला बादशाह।

ताजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] कोड़ा। चाबुक।

ताजना—संज्ञा पुं० दे० "ताजन"।

ताजपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] राजमुकुट धारण करने या राजसिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव।

ताजबीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताज + बीबी] शाहजहाँ की अत्यंत प्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज़ महल जिसके लिये आगरे में ताजमहल नाम का मक़बरा बनाया गया।

ताजमहल—संज्ञा पुं० [अ०] आगरे का प्रसिद्ध मक़बरा जिसे शाहजहाँ बादशाह ने अपनी प्रिय बेगम मुमताज़ महल के लिये बनवाया था। ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा कभी सुना नहीं गया था। बेगम ने बादशाह से कहा—"मेरा अंतिम काल निकट जान पड़ता है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निकाह न करें, मेरे लड़के को ही राजसिंहासन का अधिकारी बनावें और मेरा मक़बरा ऐसा बनवावें जैसा कहीं भूमंडल पर न हो"। प्रसव के थोड़े दिन पीछे ही बेगम का शरीर छूट गया। बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार जमुना के किनारे यह विशाल और अनुपम भवन निर्मित कराया जिसके जोड़ की इमारत संसार में कहीं नहीं है। यह मक़बरा बिल्कुल संगमर्मर का है जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य रंगीन पत्थरों के टुकडे जड़ कर बेल बूटों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का धोखा होता है। रंग बिरंग के फूल पत्ते पच्चीकारी के द्वारा खचित हैं। पत्तियों की नसें तक दिखाई गई हैं। इस मक़बरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मज़दूर और देशी विदेशी कारीगर लगे रहे। मसाला, मज़दूरी आदि आजकल की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ३१७३८०२४ रुपए लगे। टवर्नियर नामक यूरोपियन यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब कि यह इमारत बन रही थी। इस अनुपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्त्रीक गए तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि "यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मक़बरा बने तो मैं आज मरने के लिये तैयार हूँ"।

ताज़ा—वि० [फ़ा०] [स्त्री० ताज़ी] (१) जो सूखा या कुम्हलाया न हो। हरा भरा। जैसे, ताज़ा फूल, ताज़ी पत्ती, ताज़ी गोभी। (२) (फल आदि) जो डाल से टूट कर तुरंत आया हो। जिसे पेड़ से अलग हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताज़े आम, ताज़े अमरूत, ताज़ी फलियाँ। (३) जो श्रांत या शिथिल न हो। जो थका माँदा न हो। जिसमें फुरती और उत्साह बना हो। स्वस्थ। प्रफुल्लित। जैसे, (क) घोड़ा जलपान कर लो तो ताज़े हो जाओ। (ख) शरबत पी लेने से तबीयत ताज़ी हो गई।

यौ०—मोटा ताज़ा = हृष्ट पुष्ट।

(४) तुरंत का बना। सद्यः प्रस्तुत। जैसे, ताज़ी पूरी, ताज़ी जलेबी, ताज़ी दवा, ताज़ा खाना।

मुहा०—हुक्का ताज़ा करना = हुक्के का पानी बदलना।

(५) जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताज़ा पानी, ताज़ा दूध। (६) जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे, ताज़ा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताज़ा करना = (१) नए सिर से उठाना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर से उपस्थित करना। जैसे, दवा दवाया झगड़ा क्यों ताज़ा करते हो? (२) स्मरण दिलाना। याद दिलाना। फिर चित्त में लाना। जैसे, ग़म ताज़ा करना। (किसी बात का) ताज़ा होना = (१) नए सिर से उठाना। फिर छिड़ना या चलना। फिर

ताति–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। लड़का।

तातील–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह दिन जिसमें काम काज बंद रहे। छुट्टी का दिन। छुट्टी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तातील मनाना = छुट्टी के दिन विश्राम लेना या आमोद प्रमोद करना।

तात्कालिक–वि० [सं०] तत्काल का। तुरंत का। उसी समय का।

तात्पर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभिप्राय। अर्थ। आशय। मतलब। वह भाव जो किसी वाक्य को कह कर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो।

विशेष—कभी कभी शब्दार्थ से तात्पर्य्य भिन्न होता है। जैसे, 'काशी गंगा पर बसी है' वाक्य का शब्दार्थ यह होगा कि काशी गंगा के जल के ऊपर बसी है, पर कहनेवाले का तात्पर्य्य यह है कि गंगा के किनारे बसी है।

(२) तत्परता।

तात्त्विक–वि० [सं०] (१) तत्त्व संबंधी। (२) तत्त्व-ज्ञान-युक्त। जैसे, तात्त्विक दृष्टि। (३) यथार्थ।

तात्स्थ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी के बीच में रहने का भाव। एक वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति। (२) एक व्यंजनात्मक उपाधि जिसमें जिस वस्तु का कथन होता है उस वस्तु में रहनेवाली वस्तु का ग्रहण होता है, जैसे, "सारा घर गया है" से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं।

ताथेई–संज्ञा स्त्री० दे० "तताथेई"।

तादात्म्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिल कर दूसरी वस्तु के रूप में हो जाना। तत्स्वरूपता। अभेद संबंध।

तादाद–संज्ञा स्त्री० [अ० तअदाद] संख्या। गिनती। शुमार।

तादृश–वि० [सं०] [स्त्री० तादृशी] उसके समान। वैसा।

ताधा–संज्ञा स्त्री० दे० "तताथेई"। उ०—भृकुटी धनुष नैन सर साधे वदन विकास अगाधा। चंचल चपल चारु अवलोकनि काम नचावति ताधा।—सूर।

तान–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तानने का भाव या क्रिया। खींच। फैलाव। विस्तार। जैसे, आँखों की तान।

यौ०—खींच तान।

(२) गाने का एक अंग। अनुलोम विलोम गति से गमन। मूर्च्छना आदि द्वारा राग या स्वर का विस्तार। अनेक विभाग करके सुर का खींचना। आलाप। लय का विस्तार।

विशेष—संगीतदामोदर के मत से स्वरों से उत्पन्न तान ४९ हैं। इन ४९ तानों से भी ८३०० कूट तान निकले हैं। किसी किसी के मत से कूट तानों की संख्या ५०४० भी मानी गई है।

मुहा०—तान उड़ाना = गीत गाना। अलापना। तान तोड़ना = लय को खींच कर झटके के साथ समय पर विराम देना। *किसी पर तान तोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद या क्रोध* सूचक बात कहना। आक्षेप करना। बौछार छोड़ना। तान भरना, मारना, लेना = गाने में लय के साथ सुरों को खींचना। अलापना। तान की जान = सारांश। खुलासा। सौ बात की एक बात।

(३) ज्ञान का विषय। ऐसा पदार्थ जिसका बोध इंद्रियों आदि को हो। (४) कंबल का ताना। (गड़ेरिए)। (५) आटे का हलड़ा। लहर। तरंग। (लश०)। (६) लोहे की छड़ जिसे पलंग या हौदे में मजबूती के लिये लगाते हैं। (७) एक पेड़ का नाम।

तानतरंग–संज्ञा स्त्री० [सं०] अलापचारी। लय की लहर।

तानना–क्रि० स० [सं० तन = विस्तार] (१) किसी वस्तु को उसकी पूरी लंबाई या चौड़ाई तक बढ़ा कर लेजाना। फैलाने के लिये ज़ोर से खींचना। *किसी वस्तु को जहाँ की तहाँ रख* कर उसके किसी छोर कोने या अंश को जहाँ तक हो सके *बलपूर्वक आगे बढ़ाना। जैसे, रस्सी तानना।*

विशेष—'तानना' और खींचना' में यह अंतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता जैसे, खूँटे में बँधी हुई रस्सी तानना। पर 'खींचना' किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने को भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, गाड़ी खींचना, पंखा खींचना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तान कर = बलपूर्वक। जोर से। जैसे, तान कर तमाचा मारना।

(२) किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खींच कर फैलाना। बलपूर्वक विस्तीर्ण करना। जोर से बढ़ा कर पसारना। जैसे, पाल तानना, छाता तानना, चद्दर तान कर सोना, कपड़े को तान कर झोल मिटाना।

विशेष—'तानना' और 'फैलाना' में यह अंतर है कि 'तानना' क्रिया में कुछ बल लगाने या ज़ोर से खींचने का भाव है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तान कर सोना = खूब हाथ पैर फैला कर निश्चिंत *सोना। आराम से सोना।*

(३) किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फैला कर बाँधना *या ठहराना। छाजन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा* लगाना। जैसे, चँदोवा तानना, चाँदनी तानना, तंबू तानना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(४) डोरी, रस्सी आदि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खींच कर बाँधना कि वह ऊपर अधर में एक सीधी लकीर के रूप में ठहरी रहे। एक ऊँचे स्थान से दूसरे

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में कथा है कि यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को खाने दौड़ी। ऋषि के शाप से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस हो गए। इसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन का नाश करने लगे और उसे उन्होंने प्राणियों से शून्य कर दिया। यह सब व्यवस्था दशरथ से कह कर विश्वामित्र रामचंद्र जी को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया।

ताड़काफल—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी इलायची।

ताड़कायन—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

ताड़कारि—संज्ञा पुं० [सं०] (ताड़का के शत्रु) श्रीरामचंद्र।

ताड़केय—संज्ञा पुं० [सं०] (ताड़का का पुत्र) मारीच।

ताड़घ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेत या कोड़ा मारनेवाला। जल्लाद।

ताड़घात—संज्ञा पुं० [सं०] हथौड़े आदि से पीट कर काम करनेवाला।

ताड़न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार। प्रहार। आघात। (२) डाँट डपट। घुड़की। (३) शासन। दंड। (४) मंत्रों के वर्णों को चंदन से लिख कर प्रत्येक मंत्र को जल से वायु बीज पढ़ कर मारने का विधान। (५) गुणन।

ताड़ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रहार। मार। (२) डाँट डपट। शासन। दंड। धमकी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) उत्पीड़न। कष्ट।

क्रि० स० (१) मारना पीटना। दंड देना। (२) डाँटना डपटना। शासित करना।

क्रि० स० [सं० तर्कण=सोचना] (१) किसी ऐसी बात को जान लेना जो जान बूझ कर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। लक्षण से समझ लेना। भाँपना। लख लेना। अंदाज से मालूम कर लेना। जैसे, मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी लिये आए हो।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

(२) मार पीट कर भगाना। हाँकना। हटा देना।

संयो० क्रि०—देना।

ताड़नीय—वि० [सं०] दंडनीय। दंड देने योग्य।

ताड़पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताडंक। तार्टक।

ताड़बाज़—वि० [हिं० ताड़ना+फ़ा० बाज़] ताड़नेवाला। भाँपनेवाला। समझ जानेवाला।

ताड़ित—वि० [सं०] (१) मारा हुआ। जिस पर प्रहार पड़ा हो। (२) जो डाँटा गया हो। जिसने घुड़की खाई हो। (३) दंडित। शासित। (४) मार कर भगाया हुआ। निकाला हुआ। हाँका हुआ।

ताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का छोटा ताड़। (२) एक आभूषण।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़+ई (प्रत्य०)] ताड़ के फूलते हुए डंठलों से निकाला हुआ नशीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष—ताड़ के सिरे पर फूलते हुए डंठलों या अंकुरों को छुरी आदि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं। दूसरे दिन सबेरे जब बरतन रस से भर जाता है तब उसे खाली करके रस ले लेते हैं।

ताड्य—वि० [सं०] (१) ताड़ने के योग्य। (२) डाँटने डपटने लायक। (३) दंड्य।

ताड्यमान—वि० [सं०] (१) जो पीटा जाता हो। जिस पर प्रहार पड़ता हो। (२) जो डाँटा जाता हो।

संज्ञा पुं० ढोल। ढक्का।

तात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिता। बाप। (२) पूज्य व्यक्ति। गुरु। (३) प्यार का एक शब्द या संबोधन जो भाई, बंधु, इष्ट मित्र, विशेषतः अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है, जैसे, तात जनक-तनया यह सोई। धनुष-यज्ञ जेहि कारन होई।—तुलसी।

† वि० [सं० तप्त, प्रा० तत्त] तपा हुआ। गरम।

तातगु—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा।

तातन—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी। खिड़रिच।

तातरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम।

तातल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पितृ-तुल्य संबंधी। (२) रोग। (३) लोहे का काँटा। (४) पाक। पक्वता।

वि० तप्त। गरम।

ताता †—वि० [सं० तप्त, प्रा० तत्त] [स्त्री० ताती] तपा हुआ। गरम। उष्ण।

तातार्थेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) नृत्य में एक प्रकार का बोल। (२) नाचने में पैर के गिरने आदि का अनुकरण-शब्द। जैसे, तातार्थेई तातार्थेई नाचना।

तातार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य एशिया का एक देश। हिंदुस्तान और फ़ारस के उत्तर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के उत्तर प्रांत तक तातार देश कहलाता है। हिमालय के उत्तर लद्दाख, यारकंद, खुतन, बोखारा, तिब्बत आदि के निवासी तातारी कहलाते हैं। साधारणतः समस्त तुर्क या मोगल तातारी कहलाते हैं।

तातारी—वि० [फ़ा०] तातार देश संबंधी। तातार देश का।

संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी।

आदि धातु)। (४) परीक्षा करना। जाँचना। अजमाना।

† क्रि० स० [हिं० तवा, तवा] गीली मिट्टी, आटे आदि से ढक्कन चिपका कर किसी बरतन का मुँह बंद करना। मूँदना। उ०—तिन श्रवनन पर-दोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [अ०] वह लगती हुई बात जिसका अर्थ कुछ छिपा हो। व्यंग्य। आक्षेप वाक्य। बोली ठोली।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

ताना बाना-संज्ञा पु० [हिं० ताना + बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाए हुए सूत।

मुहा०—ताना बाना करना = व्यर्थ इधर से उधर आना जाना। फेरा फेरी करना।

तानारीरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तान + अनु० रीरी] साधारण गाना। राग। अलाप।

तानाशाह-संज्ञा पु० [फ़ा०] अब्बुलहसन बादशाह का दूसरा नाम।

तानी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल हो।

तानूर-संज्ञा पु० [स०] (१) पानी का भँवर। (२) वायु का भँवर।

तानो†-संज्ञा पु० [देश०] जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों। चक।

तान्व-संज्ञा पु० [सं०] (१) तनुज। पुत्र। (२) एक ऋषि का नाम जो तनु के पुत्र थे।

ताप-संज्ञा पु० [सं०] (१) एक प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारों में देखा जाता है और जिसका अनुभव अग्नि, सूर्य्य की किरण आदि के रूप में इंद्रियों को होता है। यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं। उष्णता। गरमी। तेज।

विशेष—ताप एक गुण मात्र है, कोई द्रव्य नहीं है। किसी वस्तु को तपाने से उसकी तौल में कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। विज्ञानानुसार ताप गति-शक्ति का ही एक भेद है। द्रव्य के अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ उत्पन्न होता है उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है। ताप सब पदार्थों में थोड़ा बहुत निहित रहता है। जब विशेष अवस्था में वह व्यक्त होता है तब उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जब शक्ति के संचार में रुकावट होती है तब वह ताप का रूप धारण करती है। दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब जिस शक्ति का रगड़ में व्यय होता है वह उष्णता के रूप में फिर प्रकट होती है। ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है। ताप का सब से बड़ा भांडार सूर्य्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है। सूर्य्य के अतिरिक्त ताप संघर्षण (रगड़), ताड़न तथा रासायनिक योग से भी उत्पन्न होता है। दो लकड़ियों को रगड़ने से और चकमक पत्थर आदि पर हथौड़ा मारने से आग निकलते बहुतों ने देखा होगा। इसी प्रकार रासायनिक योग से अर्थात् एक विशेष द्रव्य के साथ दूसरे विशेष द्रव्य के मिलने से भी आग या गरमी पैदा हो जाती है। चूने की डली में पानी डालने से, पानी में तेजाब या पोटाश डालने से गरमी या लपट उठती है।

ताप का एक प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाता है अर्थात् वे कुछ फैल जाते हैं। यदि लोहे की किसी ऐसी छड़ को लें जो किसी छेद में कस कर बैठ जाती हो और उसे तपावें तो वह उस छेद में नहीं घुसेगी। गरमी में किसी तेज़ चलती हुई गाड़ी के पहिये की हाल जब ढीली मालूम होने लगती है तब उस पर पानी डालते हैं जिसमें उसका फैलाव घट जाय। रेल की लाइनों के जोड़ पर जो थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है वह इसी लिये जिसमें गरमी में लाइन के लोहे फैल कर उठ न जायँ। जीवों को जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है, अतः स्पर्शेंद्रिय द्वारा ताप का ठीक ठीक अंदाज़ा सदा नहीं हो सकता। इसी से ताप की माप के लिये एक यंत्र बनाया गया है जिसके भीतर पारा रहता है। पारा अधिक गरमी पाने से ऊपर चढ़ता है और गरमी कम होने से नीचे गिरता है।

(२) आँच। लपट। (३) ज्वर। बुखार।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

यौ०—तापतिल्ली।

(४) कष्ट। दुःख। पीड़ा।

विशेष—ताप तीन प्रकार का माना गया है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। दे० दुःख"। उ०—दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज काहुहि नहिं व्यापा।—तुलसी।

(५) मानसिक कष्ट। हृदय का दुःख (जैसे, शोक, पछतावा आदि)।

तापक-संज्ञा पु० [सं०] (१) ताप उत्पन्न करनेवाला। (२) रजोगुण।

विशेष—रजोगुण ही ताप या दुःख का प्रतिकारण माना जाता है।

(३) ज्वर। बुखार।

तापतिल्ली-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताप + तिल्ली] ज्वर-युक्त प्लीहा रोग। पिलही बढ़ने का रोग।

ऊँचे स्थान तक ले जा कर बाँधना। जैसे, (क) यहाँ से वहाँ तक एक डोरी तान दो तो कपड़ा फैलाने का सुबीता हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) मारने के लिये हाथ या कोई हथियार उठाना। प्रहार के लिये अस्त्र उठाना। जैसे, तमाचा तानना, डंडा तानना। (६) किसी को हानि पहुँचाने या दंड देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी के खिलाफ़ कोई चिट्ठी पत्री या दरख्वास्त आदि भेजना। जैसे, एक दरख्वास्त तान देंगे रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

(७) क़ैदखाने भेजना। जैसे, हाकिम ने उसे दो बरस को तान दिया।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—संज्ञा पुं० [सं० तान + हिं० पूरा] सितार के आकार का एक बाजा जिसे गवैये कान के पास लगा कर गाने के समय छेड़ते जाते हैं। यह गवैयों को सुर बाँधने में बड़ा सहारा देता है अर्थात् सुर में जहाँ विराम पड़ता है वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो लोहे के और दो पीतल के।

तानबान†*—संज्ञा पुं० दे० "तानाबाना। उ०—जोलहा तान बान नहिं जानै फाट बिनै दस ठाईं हो।—कबीर।

तानसेन—संज्ञा पुं० अकबर बादशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके जोड़ का आज तक कोई नहीं हुआ। अब्बुल फ़ज़ल ने लिखा है कि इधर हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का ब्राह्मण था। कहते हैं पहले इसका नाम त्रिलोचन मिश्र था। इसे संगीत से बहुत प्रेम था पर गाना इसे नहीं आता था। जब वृंदावन के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ तब यह संगीत में कुशल हुआ। इसकी ख्याति धीरे धीरे बढ़ने लगी। पहले यह भाट के राजा रामचंद्र बघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है कि वहाँ इसे करोड़ों रुपए मिले। इब्राहीम लोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत बुलाना चाहा पर यह नहीं गया, अंत में अकबर ने राजसिंहासन पर बैठने के दस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में सम्मानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया बादशाह ने इसे दो लाख रुपए दिए। बादशाह के दरबार में आने के कुछ दिन पीछे यह ग्वालियर जाकर और मुहम्मद गौस नामक एक मुसलमान फकीर से कलमा पढ़ कर मुसलमान हो गया। तब से यह मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं कि पहले बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सौंदर्य्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा विकसित हो गई और इसने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजादी भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनों का विवाह कर दिया।

तानसेन की मृत्यु के संबंध में भी एक अलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देख कर दरबार के और गवैये इससे जला करते थे और इसे मार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन सबने मिलकर यह सोचा कि यदि तानसेन दीपक राग गावे तो आप से आप भस्म हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात छेड़ी। बादशाह को अत्यंत उत्कंठा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हों तो दीपक राग न गवावें। जब बादशाह ने न माना तब उसने अपनी लड़की को मलार राग गाने के लिये पास ही बिठा दिया जिसमें दीपक राग से प्रज्वलित अग्नि का मलार राग द्वारा शमन हो जाय। दीपक राग गाते ही दरबार के सब बुझे हुए दीपक जल उठे और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लड़की ने मलार राग छेड़ा। पर अपने पिता की दुर्दशा देख उसका सुर बिगड़ गया और तानसेन जल कर भस्म हो गया। उसका शव ग्वालियर में ले जाकर दफन किया गया। उसकी कब्र के पास एक इमली का पेड़ है। आज दिन भी गवैये इस कब्र पर जाते हैं और इमली के पत्तों को चबाते हैं। उनका विश्वास है कि इससे कंठरस उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यहाँ तक सम्मान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने कान पकड़ते हैं। तानसेन का बनाया हुआ एक ग्रंथ भी मिला है।

ताना—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] (१) कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जुलाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। उ०—अस जोलहा कर मरम न जाना। जिन जग आइ पसारल ताना।—कबीर।

यौ०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

(२) दरी, कालीन बुनने का करघा।

क्रि० स० [हिं० ताव + ना (प्रत्य०)] (१) ताव देना। तपाना। गरम करना। उ०—(क) कर कपोल अंतर नहिं पावत अति उसास तन ताइए। (ख) देव दिखावति कंचन सो तन औरन को मन तावै अगौनी।—देव। (२) पिघलाना। जैसे, घी ताना। (३) तपा कर परीक्षा करना। (सोना

वस्त्र, हाथ, आग की आँच आदि से सेंक कर पसीना निकालने की क्रिया।

तापहरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्यंजन का नाम। एक पकवान। (भावप्रकाश)

विशेष—उरद की वरी मिले हुए थोए चावल को हलदी के साथ घी में तले या पकावे। तल जाने पर उसमें थोड़ा जल डाल दे। जब रसा तैयार हो जाय तब उसे अदरख और हींग से बघार कर उतार ले।

तापा–संज्ञा पुं० [हिं० तोपना ?] (१) मछली मारने का तख्ता। (लश०)। (२) मुरगी का दरबा।

तापायन–संज्ञा पुं० [सं०] वाजसनेयी शाखा का एक भेद।

तापिंछ–संज्ञा पुं० दे० "तापिंज"।

तापिंज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनामक्खी। (२) श्याम तमाल।

तापिच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष।

तापित–वि० [सं०] (१) तापयुक्त। जो तपाया गया हो। (२) दुःखित। पीड़ित।

तापी–वि० [सं० तापिन्] (१) ताप देनेवाला। (२) जिसमें ताप हो।

संज्ञा पुं० बुद्धदेव।

संज्ञा स्त्री० (१) सूर्य्य की एक कन्या। (२) तापती नदी। (३) यमुना नदी।

तापीज–संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी। माक्षिक धातु।

तापेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। उ०—नमो पातु तापेंद्र देव प्रतीचं। नमो मे रवि रच रवेंदु दीचं।—विश्राम।

तासी–संज्ञा स्त्री० दे० "तापती"

संज्ञा स्त्री० दे० "ताप्ती"।

ताप्य–संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी।

ताफ़्ता–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का चमकदार रेशमी कपड़ा। धूप छाँ रेशमी कपड़ा। उ०—छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोबन अंग। दीप देह दुहूनि मिलि दिपति ताफ्ता रंग।—बिहारी।

ताब–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ताप। गरमी। (२) चमक। आभा। दीप्ति। (३) शक्ति। सामर्थ्य। हिम्मत। मजाल। जैसे, उनकी क्या ताब कि आपके सामने कुछ बोलें ? (४) सहन करने की शक्ति। मन को वश में रखने की सामर्थ्य। धैर्य। जैसे, अब इतनी ताब नहीं है कि दो घड़ी ठहर जाओ।

ताबड़तोड़–क्रि० वि० [अनु०] एक के उपरांत तुरंत दूसरा इस क्रम से। लगातार। बराबर। अखंडित क्रम से।

ताबा–वि० दे० "ताबे"।

ताबूत–संज्ञा पुं० [अ०] मुरदे का संदूक। वह संदूक जिसमें मुरदे की लाश रखकर गाड़ने को ले जाते हैं।

ताबे–वि० [अ० तबअ] (१) वशीभूत। अधीन। मातहत। जैसे, जो तुम्हारे ताबे हो उसे आँख दिखाओ। (२) आज्ञानुवर्ती। हुक्म का पाबंद।

यौ०—ताबेदार।

ताबेदार–वि० [अ० तबअ + फ़ा० दार] आज्ञाकारी। हुक्म का पाबंद।

संज्ञा पुं० नौकर। सेवक। अनुचर।

ताबेदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) सेवकाई। नौकरी। (२) सेवा। टहल।

क्रि० प्र०—करना।—बजाना।

ताम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दोष। विकार। (२) मनोविकार। चित्त का उद्वेग। व्याकुलता। बेचैनी। उ०—(क) मिट्यो काम तनु ताम तुरत ही रिझई मदनगोपाल।—सूर। (ख) तरु तमाल तर तरुन कन्हाई दूरि करन युवतिन तनु ताम।—सूर। (३) दुःख। क्लेश। व्यथा। कष्ट। उ०—देखत पय पीवत बलराम। तातो लगत डारि तुम दीनो, दावानल पीवत नहिं ताम।—सूर।

(४) ग्लानि।

वि० (१) भीषण। डरावना। भयंकर। (२) दुखी। व्याकुल। हैरान। उ०—अति सुकुमार मनोहर मूरति ताहि करति तुम ताम।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० तमस] (१) क्रोध। रोष। गुस्सा। उ०—(क) सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि दूरि करहु मन तामहि।—सूर। (ख) सूर प्रभु जेहि सदन जात न सोइ करति तनु ताम।—सूर। (२) अंधकार। अँधेरा। उ०—जननि कहति उठहु स्याम, विगत जानि रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु भैवे।—सूर।

तामजान–संज्ञा पुं० [हिं० थमना + सं० यान = सवारी] एक प्रकार की छोटी खुली पालकी। एक हलकी सवारी जो काठ की लंबी कुरसी के आकार की होती है और जिसे कहार उठा-कर ले चलते हैं।

तामड़ा–वि० [सं० ताम्र, हिं० ताँबा + ड़ा (प्रत्य०)] ताँबे के रंग का, ललाई लिए हुए भूरा। जैसे, तामड़ा रंग, तामड़ा कबूतर।

संज्ञा पुं० (१) ऊदे रंग का एक प्रकार का पत्थर या नगीना। (२) एक तरह का कागज़। (३) खल्वाट मस्तक। गंजे की खोपड़ी। † (४) स्वच्छ आकाश।

तामना †–क्रि० स० [देश०] खेत जोतने के पूर्व खेत की घास उखाड़ना।

तापती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य की कन्या तापी । (२) एक नदी का नाम जो सतपुरा पहाड़ से निकल पश्चिम ओर को बहती हुई खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

विशेष—स्कंदपुराण के तापी खंड में तापती के विषय में यह कथा लिखी है । अगस्त्य मुनि के शाप से वरुणसंवरण नामक सोमवंशी राजा हुए । उन्होंने घोर तप करके सूर्य्य की कन्या तापी से विवाह किया जो अत्यंत रूपवती और पापनाशिनी थी । वही तापी के नाम से प्रवाहित हुई । जो लोग उसमें स्नान करते हैं उनके सब पातक छूट जाते हैं । आषाढ़ मास में इसमें स्नान करने का विशेष माहात्म्य है । तापीखंड में तापती के तट पर गजतीर्थ, अक्षमाला तीर्थ, आदि अनेक तीर्थों का होना लिखा है । इन तीर्थों के अतिरिक्त १०८ महालिंग भी इस पुनीत नदी के तट पर भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित बतलाए गए हैं ।

तापत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के ताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ।

तापदुःख-संज्ञा पुं० [सं०] पातंजल दर्शन के अनुसार दुःख का एक भेद ।

विशेष—पातंजल दर्शन में तीन प्रकार के दुःख माने गए हैं, तापदुःख, संस्कारदुःख और परिणामदुःख । दे० "दुःख" ।

तापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताप देनेवाला । (२) सूर्य्य । (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक । (४) सूर्य्यकांत मणि । (५) अर्कवृक्ष । मदार । (६) ढोल नाम का बाजा । (७) एक नरक का नाम । (८) तंत्र में एक प्रकार का प्रयोग जिससे शत्रु को पीड़ा होती है ।

तापना-क्रि० अ० [सं० तापन] आग की आँच से अपने को गरम करना । अपने को आग के सामने गरमाना । (कहीं कहीं धूप लेने के अर्थ में भी बोलते हैं) जैसे, वह ताप रहा है ।

विशेष—'आग तापना' आदि प्रयोगों को देख अधिकांश लोगों ने इस क्रिया को सकर्मक माना है । पर आग इस क्रिया का कर्म नहीं है क्योंकि आग नहीं गरम की जाती है गरम किया जाता है शरीर । 'शरीर तापते हैं' 'हाथ पैर तापते हैं' ऐसा नहीं बोला जाता । दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस क्रिया का फल कर्त्ता से अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता, जैसे कि 'तपाना' में देखा जाता है । 'आग तापना' एक संयुक्त क्रिया है जिसमें आग तृतीयांत पद (करण) है ।

क्रि० स० (१) शरीर गरम करने के लिये जलाना । फूँकना ।

संयो० क्रि०—डालना ।

(२) उड़ाना । नष्ट करना । बरबाद करना । जैसे, वे सारा धन फूँक ताप कर किनारे हो गए ।

यौ०—फूँकना तापना ।

*क्रि० स० तपाना । गरम करना ।

तापमान यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] उष्णता की मात्रा मापने का एक यंत्र । गरमी मापने का एक औज़ार ।

विशेष—यह यंत्र शीशे की एक पतली नली में कुछ दूर तक पारा भर कर बनाया जाता है । अधिक गरमी पाकर यह पारा लकीर के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता है और कम गरमी पाकर नीचे की ओर घटता है । गली हुई बरफ़ या बरफ़ के पानी में नली को रखने से पारे की लकीर जिस स्थान तक नीचे आती है एक चिह्न वहाँ लगा देते हैं और खौलते हुए पानी में रखने से जिस स्थान तक ऊपर चढ़ती है, दूसरा चिह्न वहाँ लगा देते हैं । इन दोनों के बीच की दूरी को १०० अथवा १८० बराबर भागों में चिह्नों के द्वारा बाँट देते हैं । ये चिह्न अंश या डिग्री कहलाते हैं । यंत्र को किसी वस्तु पर रखने से पारे की लकीर जितने अंशों तक पहुँची रहती है उतने अंशों की गरमी उस वस्तु में कही जाती है ।

तापल†-संज्ञा पुं० [सं० ताप] क्रोध । (डिं०)

तापश्चित-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम ।

तापस-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तापसी] (१) तप करनेवाला । तपस्वी । (२) तमाल । तेजपत्ता । (३) दमनक । दौना नामक पौधा । (४) एक प्रकार की ईख । (५) बक । बगला ।

तापसक-संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य या छोटा तपस्वी । वह तपस्वी जिसकी तपस्या थोड़ी हो ।

तापसज-संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता ।

तापसतरु-संज्ञा पुं० [सं०] हिंगोट वृक्ष । इंगुआ का पेड़ । इंगुदी वृक्ष ।

विशेष—तपस्वी लोग वन में इंगुदी का ही तेल काम में लाते थे, इसी से इसका ऐसा नाम पड़ा ।

तापसद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी वृक्ष ।

तापसप्रिय-वि० [सं०] (१) जो तपस्वियों को प्रिय हो । (२) जिसे तपस्वी प्रिय हों ।

संज्ञा पुं० (१) इंगुदी वृक्ष । (२) चिरौंजी का पेड़ ।

तापसप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख । अंगूर या मुनक्का ।

तापसवृक्ष-संज्ञा पुं० दे० "तापसतरु" ।

तापसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तपस्या करनेवाली स्त्री । (२) तपस्वी की स्त्री ।

तापसेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख ।

तापस्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी प्रकार की उष्णता पहुँचा कर उत्पन्न किया हुआ पसीना । (२) गरम बालू, नमक,

यह 'तिरमिड़' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतवालों ने 'द्रविड़' शब्द बना लिया। जैनों के 'शत्रुंजय माहात्म्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड़' शब्द पर एक विलक्षण कल्पना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को 'द्रविड़' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुआ उसका नाम 'द्रविड़' पड़ गया। पर भारत मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड़ जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड़ पड़ा। (दे० द्राविड़)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्वविदों का मत है कि यह जाति अनार्य्य है और आर्यों के आगमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में आकर जिन लोगों की सहायता से लंका पर चढ़ाई की थी और जिन्हें वाल्मीकि ने बंदर लिखा है, वे इसी जाति के थे। उनके काले वर्ण भिन्न आकृति तथा विकट भाषा आदि के कारण ही आर्य्यों ने उन्हें बंदर कहा होगा। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति आर्यों के संसर्ग के पूर्व ही बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकी थी। तामिल लोगों के राजा होते थे जो किले बनाकर रहते थे। वे हजार तक गिन लेते थे। वे नाव, छोटे मोटे जहाज़, धनुष, बाण, तलवार इत्यादि बना लेते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। राँगे सीसे और जस्ते को छोड़ और सब धातुओं का ज्ञान भी उन्हें था। आर्यों के संसर्ग के उपरांत उन्होंने आर्यों की सभ्यता पूर्ण रूप से ग्रहण की। दक्षिण देश में ऐसी जनश्रुति है कि अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण में आकर वहाँ के निवासियों को बहुत सी विद्याएँ सिखाईं। बारह तेरह सौ वर्ष पहले दक्षिण में जैनधर्म का बड़ा प्रचार था। चीनी यात्री हुएनसांग जिस समय दक्षिण में गया था उसने वहाँ दिगंबर जैनों की प्रधानता देखी थी।

(२) द्रविड़ भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। दो हजार वर्ष पूर्व तक के काव्य तामिल भाषा में विद्यमान हैं। पर वर्णमाला अपूर्ण है। अनुनासिक पंचम वर्ण को छोड़ व्यंजन के एक एक वर्ग का उच्चारण एक ही सा है। क, ख, ग, घ चारों का उच्चारण एक ही है। व्यंजनों के इस अभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं वे विकृत हो जाते हैं, जैसे 'कृष्ण' शब्द तामिल में 'किट्टिन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रंथ कवि तिरुवल्लुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नरक का नाम जिसमें सदा घोर अंधकार बना रहता है। (२) क्रोध। (३) द्वेष। (४) एक अविद्या का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिस्र कहते हैं। (भागवत)

तामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौंबा] (१) ताँबे का तसला। (२) अन्न पदार्थों को नापने का एक बरतन।

तामील—संज्ञा स्त्री० [अ०] (आज्ञा का) पालन। जैसे, हुक्म की तामील होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तामेमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो गेरू के योग से बनता है।

ताम्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। (२) एक प्रकार का कोढ़।

ताम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

ताम्रकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तमेरा। ताँबे के बरतन बनानेवाला।

ताम्रकार—संज्ञा स्त्री [सं०] अंजना। पश्चिम के दिग्गज की पत्नी।

ताम्रकुट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाकू का पेड़।

विशेष—यह शब्द गढ़ा हुआ है और कुलार्णव तंत्र में आया है।

ताम्रकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी नाम का कीड़ा।

ताम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुत्थ। तूतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुकरौंधा नाम का पौधा। (२) मुरगा।

ताम्रदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखदुद्धी। छोटी दुद्धी। अमर संजीवनी।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबे की चद्दर का एक टुकड़ा जिस पर प्राचीन काल में अक्षर खुदवा कर दानपत्र आदि लिखते थे। (२) ताँबे की चद्दर। ताँबे का पत्तर।

ताम्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बावली। तालाब। (२) दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मदरास प्रांत के तिनवल्ली जिले से होकर बहती है। इसकी लंबाई ७० मील के लगभग है। रामायण महाभारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। टालमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है।

ताम्रपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रपाकिन्] पाकर का पेड़।

ताम्रपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। लाल रंग का लज्जालु।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल का निसोत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धातकी। धव का पेड़। (२) पाटल। पाढ़र का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। ढेरा। ढेरा।

तामर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी । (२) घी ।

विशेष—यह शब्द 'तामरस' शब्द को संस्कृत सिद्ध करने के लिये गढ़ा हुआ जान पड़ता है ।

तामरस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । उ०—सियरे बदन सूखि गए कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ।—तुलसी ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द वेदों में आया है पर आर्यभाषा का नहीं है । 'पिक' आदि के समान यह अनार्य-भाषा से आया हुआ माना गया है । शवर भाष्य में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है ।

(२) सोना । (३) ताँबा । (४) धतूरा । (५) सारस । (६) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण, दो जगण और एक यगण (III,ISI,ISI,ISS) होता है । उ०—निज जय हेतु करौं रघुबीरा । तव तुति मोरि हरौ भव पीरा ।

तामलकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी । भूआँवला ।

तामलूक–संज्ञा पुं० [स० ताम्रलिप्त] बंगदेश के अंतर्गत एक भूभाग जो मेदिनीपुर जिले में है । यह परगना गंगा के मुहाने के पास पड़ता है । इस प्रदेश का प्राचीन नाम ताम्रलिप्त है । ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक यह वाणिज्य का एक प्रधान स्थल था । दे० "ताम्रलिप्त" ।

तामलेट–संज्ञा पुं० [अं० टंबलर] टीन का गिलास जिस पर चमकदार रोगन या लुक फेरा रहता है ।

तामलोट–संज्ञा पुं० दे० "तामलेट" ।

तामस–वि० [सं०] [स्त्री० तामसी] तमोगुण युक्त । जिसमें प्रकृति के उस गुण की प्रधानता हो जिसके अनुसार जीव क्रोध आदि नीच वृत्तियों के वशीभूत होकर आचरण करता है । उ०—(क) होइ भजन नहिं तामस देहा ।—तुलसी । (ख) विप्र साप तें दूनउँ भाई । तामस असुर देह तिन पाई । —तुलसी ।

विशेष—पद्मपुराण में कुछ शास्त्र तामस बतलाए गए हैं । कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, जैमिनि की मीमांसा, इन सब की गणना उक्त पुराण के अनुसार तामस शास्त्रों में की गई है । इसी प्रकार बृहस्पति का चार्वाक दर्शन, शाक्य मुनि का बौद्ध शास्त्र, शंकर का वेदांत इत्यादि तत्त्वज्ञान संबंधी ग्रंथ भी सांप्रदायिक दृष्टि से तामस माने जाते हैं । पुराणों में मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि और स्कंद ये छ तामस पुराण कहे गए हैं । सामुद्र, शंख, यम, औशनस आदि कुछ स्मृतियों, तथा जैमिनि, कणाद, बृहस्पति, जमदग्नि, शुक्राचार्य्य आदि कुछ मुनियों को भी तामस कह डाला है । इसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार अनेक वस्तुओं और व्यापारों के विभाग किए गए हैं । निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि से उत्पन्न सुख को तामस सुख, पुरोहिताई, असत्प्रतिग्रह, पशुहिंसा, लोभ, मोह, अहंकार आदि को तामस कर्म कहा है । विष्णु सत्वगुणमय, ब्रह्मा रजोगुणमय और शिव तमोगुणमय माने जाते हैं । उ०—ब्रह्मा राजस गुण अधिकारी शिव तामस अधिकारी । —सूर ।

संज्ञा पुं० (१) सर्प । साँप । (२) खल । (३) उल्लू । (४) क्रोध । गुस्सा । उ०—कहु तोकों कैसे आवत है शिशु पै तामस एत ?—सूर । (५) अंधकार । अँधेरा । उ०—तू मरु कूप छलीक सून हिय तामस वासा ।—दीनदयाल । (६) अज्ञान । मोह । (७) चौथे मनु का नाम । (८) एक अस्त्र का नाम (वाल्मीकि रामायण) (९) तैंतीस प्रकार के केतु जो सूर्य्य और चंद्रमा के भीतर दृष्टिगोचर होते हैं । (बृहत्संहिता) । दे० "तामसकीलक" ।

तामसकीलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के केतु जो राहु के पुत्र माने जाते हैं और संख्या में ३३ हैं । सूर्य्य मंडल में इनके वर्ण, आकार और स्थान को देख कर फल का निर्णय किया जाता है । ये यदि सूर्य्यमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो इनका फल अशुभ और चंद्रमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो शुभ माना जाता है ।

तामस मद्य–संज्ञा पुं० [सं०] कई बार की खींची शराब ।

तामस वाण–संज्ञा पुं० [सं०] एक शस्त्र का नाम ।

तामसी–वि० स्त्री० [सं०] तमोगुणवाली । जैसे, तामसी प्रकृति ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अँधेरी रात । (२) महाकाली ।—(३) जटामासी । बालछड़ । (४) एक प्रकार की माया विद्या जिसे शिव ने निकुंभिला यज्ञ से प्रसन्न होकर मेघनाद को दिया था ।

तामा–संज्ञा पुं० [सं०] देखो "ताँबा" ।

तामिल–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) भारत के दूरस्थ दक्षिण प्रांत की एक जाति जो आधुनिक मदरास प्रांत के अधिकांश भाग में निवास करती है । यह द्रविड़ जाति की ही एक शाखा है ।

विशेष—बहुत से विद्वानों की राय है कि तामिल शब्द संस्कृत 'द्राविड़' से निकला है । मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में द्रविड़ देश और द्राविड़ जाति का उल्लेख है । मागधी प्राकृत या पाली में इसी 'द्राविड़' शब्द का रूप "दामिलो" हो गया । तामिल वर्णमाला में त, थ, द आदि के एक ही उच्चारण के कारण 'दामिलो' का 'तामिलो' या 'तामिल' हो गया । शंकराचार्य के शारीरिक भाष्य में 'द्रमिल' शब्द आया है । हुएनसांग नामक चीनी यात्री ने भी द्रविड़ देश को चि-मो-लो करके लिखा है । तामिल व्याकरण के अनुसार द्रमिल शब्द का रूप 'तिरमिड़' होता है । आजकल कुछ विद्वानों की राय हो रही है कि

क्रि० प्र०—खींचना ।

यौ०—तारकश ।

मुहा०—तार दबकना = गोटे के लिये तार को पीट कर चिपटा और चौड़ा करना ।

(३) धातु का *वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजली* की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा जाता है । टेलिग्राफ़ । जैसे, इन दोनों स्टेशनों के बीच तार लगा है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

यौ०—*तारघर* ।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की शक्ति काम में लाई जाती है । इसके लिये चार वस्तुएँ आवश्यक होती हैं—बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर, बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संवाद को प्रवाह द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संवाद को ग्रहण करनेवाला यंत्र । यह एक नियम है कि यदि किसी तार के घेरे में से बिजली का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो तो उस चुंबक को हिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्त्तन हो जाता है । चुंबक के रहने से जिस दशा को *बिजली का प्रवाह होगा उसे निकाल लेने पर प्रवाह उलट कर दूसरी दिशा की ओर हो जायगा । प्रवाह के इस दिशा-*परिवर्त्तन का ज्ञान कंपास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी रहती है । यह सुई एक ऐसे तार की कुंडली के भीतर रहती है जिसमें बाहर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है । सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के दिक् परिवर्त्तन का पता लगता है । आज कल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती । जिस तार में से बिजली का प्रवाह आता है उसके बगल में दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युद्घट से मिला देने से थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बदल जाती है । अब समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है स्थूल रूप से देखना चाहिए । भेजनेवाले तार घर में जो विद्युद्घटमाला होती है उसके एक ओर का तार तो पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी ओर का पानेवाले स्थान की ओर गया रहता है । उसमें एक कुंजी ऐसी होती है जिसके द्वारा जब चाहें तब तारों को जोड़ दें और जब चाहें तब अलग कर दें । इसी के साथ उस तार का भी संबंध रहता है जिसके द्वारा *बिजली के प्रवाह* की दिशा पलट जाती है । इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कभी इधर कभी उधर करने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ में रहती है जिससे संवाद ग्रहण करनेवाले स्थान की सुई को वह जब जिधर चाहे बटन या कुंजी दबा कर कर सकता है । एक बार में सुई जिस क्रम से दहिने या बाएँ होगी उसी के अनुसार अक्षर का संकेत समझा जायगा । सुई के दहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को डैश (रेखा) कहते हैं । इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग से मार्स नामक एक व्यक्ति ने अँगरेज़ी वर्णमाला के सब अक्षरों के संकेत पूरे कर लिए हैं । जैसे,

A के लिये ·—

B के लिये —····

C के लिये —·—· इत्यादि ।

तार के संवाद ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं एक दर्शन प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली । ऊपर लिखी रीति पहली *प्रणाली के अंतर्गत है* । पर अब अधिकतर एक खटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई लोहे के टुकड़ों पर मारती है जिस से भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं । अभ्यास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब अक्षर समझ लिए जाते हैं ।

(४) तार से आई हुई खबर । टेलिग्राफ़ के द्वारा आया हुआ समाचार ।

क्रि० प्र०—आना ।

(५) सूत । तागा । तंतु । सूत्र ।

यौ०—तार तोड़ ।

मुहा०—तार तार करना = किसी बुनी या बटी हुई वस्तु की धज्जियाँ अलग अलग करना । नोच कर सूत सूत अलग करना । उ०—तार तार कीन्ही फारि सारी जरतारी की ।—द्विजेश । तार तार होना = ऐसा फटना कि धज्जियाँ अलग अलग हो जायँ । बहुत ही फट जाना ।

(६) सुनरी । (लश०) । (७) बराबर चलता हुआ *क्रम* । अखंड परंपरा । सिलसिला । जैसे, दोपहर तक लोगों के आने जाने का तार लगा रहा ।

मुहा०—तार टूटना = चलता हुआ क्रम बंद हो जाना । परंपरा खंडित हो जाना । लगातार होते हुए काम का बंद हो जाना । तार बँधना = किसी क्रम का बराबर चला चलना । किसी बात का बराबर होते जाना । सिलसिला जारी होना । जैसे, सबेरे से जो उनके रोने का तार बँधा वह अब तक न टूटा । तार बाँधना = (किसी बात का) बराबर करते जाना । सिलसिला जारी करना । तार लगाना = दे० "तार बाँधना" । तार व तार = छिन्न भिन्न । अस्त व्यस्त । बे सिलसिला ।

(८) ब्योंत । सुबीता । व्यवस्था । जैसे, जहाँ चार पैसे का *तार होगा वहाँ जायँगे, यहाँ क्यों आवेंगे* ।

मुहा०—तार बैठना या बँधना = ब्योंत होना । कार्यसिद्धि का सुबीता होना । तार लगना = दे० "तार बैठना" । तार जमना = दे० "तार बैठना" ।

ताम्रमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवासा । धमासा । (२) लज्जालु । छुईमुई । (३) किवाँच । कौंच । कपिकच्छु ।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] मेदिनीपुर (बंगाल) ज़िले के तामलूक या तमलूक नामक स्थान का प्राचीन नाम । पूर्व काल में यह व्यापार का एक प्रधान स्थल था । बृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ से सिंहल, सुमात्रा, जावा, चीन इत्यादि देशों की ओर बराबर व्यापारियों के जहाज़ रवाना होते रहते थे । महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिंग से लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है । पाली ग्रंथ महावंश से पता लगता है कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से था । यहीं जहाज़ पर चढ़ सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था और महाराज अशोक ने समुद्र तट पर खड़े होकर उसके लिये आँसू बहाए थे । ईसा की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फ़ाहियान बौद्ध ग्रंथों की नक़ल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज़ पर बैठ सिंहल गया था ।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है । वहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतयुद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़े थे । पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है । यथा—शकाः किराता दरदा बर्बरा ताम्रलिप्तकाः । अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । (द्रोणपर्व)

ताम्रवर्ण—वि० [सं०] (१) तामड़ा रंग का । (२) लाल ।
संज्ञा पुं० (१) वैद्यक के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी त्वचा का नाम । (२) पुराण के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत एक द्वीप । सिंहल द्वीप । सीलोन ।

विशेष—प्राचीन काल में सिंहलद्वीप इसी नाम से प्रसिद्ध था । मेगास्थनीज़ ने इस द्वीप का नाम तप्रोबेन लिखा है ।

विशेष—दे० "सिंहल" ।

ताम्रवर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अड़हुल । गुड़हर का पेड़ । ओड्रपुष्प ।

ताम्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ । (२) एक लता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है ।

ताम्रबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी ।

ताम्रवृंत—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी ।

ताम्रवृंता—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी ।

ताम्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलथी । (२) लाल चंदन का पेड़ ।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रशिखिन्] कुक्कुट । मुरगा ।

ताम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लालचंदन का पेड़ । (२) लाल खैर ।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिंहली पीपल । (२) दक्ष प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी । इससे ये ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं । (१) क्रौंची । (२) भासी । (३) सेनी । (४) धृतराष्ट्री । (५) शुकी । (रामायण)

ताम्राभ—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

ताम्रार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा ।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा । घुँघची ।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाजा ।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रभस्म । ताँबे की राख ।

ताय[१]*—संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव] (१) ताप । गरमी । (२) जलन । (३) धूप ।
सर्व० दे० "ताहि" ।

तायदाद‡—संज्ञा पुं० "तादाद" ।

तायफ़ा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) नाचने गानेवाली वेश्याओं और समाजियों की मंडली । (२) वेश्या । रंडी ।

तायना—क्रि० स० [हिं० ताव] तपाना । गरम करना । उ०—पायन बजति उतायल तायल कीन । पुनि करि कायल घायल हायल कीन ।—सेवक ।

ताया—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० ताई] बाप का बड़ा भाई । बड़ा चाचा ।

तार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रूपा । चाँदी । (२) (सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा इत्यादि) धातुओं का सूत । तपी धातु को पीट और खींच कर बनाया हुआ तागा । रस्सी या तागे के रूप में परिणत धातु । धातु-तंतु ।

विशेष—धातु को पहले पीट कर गोल बत्ती के रूप में करते हैं । फिर उसे तपा कर जंती के बड़े छेद में डालते और सँड़सी से दूसरी ओर पकड़ कर ज़ोर से खींचते हैं । खींचने से धातु लकीर के रूप में बढ़ जाती है । फिर उस छेद में से सूत या बत्ती को निकाल कर उससे और छोटे छेद में डाल कर खींचते हैं । फिर उससे भी छोटे छेद में डाल कर खींचते हैं । इसी प्रकार उत्तरोत्तर अधिक छोटे छेदों में डाल डाल कर खींचते जाते हैं जिससे वह बराबर महीन होता और बढ़ता जाता है । खींचने में धातु बहुत गरम हो जाती है । सोने, चाँदी, आदि धातुओं का तार गोटे, पट्ठे, कारचोबी आदि बनाने में काम आता है । सीसे और राँगे को छोड़ और प्रायः सब धातुओं का तार खींचा जा सकता है । ज़री, कारचोबी आदि में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है । तार को सुनहरी बनाने के लिये उसमें रत्ती दो रत्ती सोना मिला देते हैं ।

कपोत के वेश में अग्नि को देख शिव ने कहा "तुम्हीं हमारे वीर्य को धारण करो" और वीर्य को अग्नि के ऊपर डाल दिया। इसी वीर्य से कार्त्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओं ने अपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरांत कार्त्तिकेय के बाण से तारकासुर मारा गया।

तारकिणी-वि० स्त्री० [सं०] तारों से भरी।
संज्ञा स्त्री० रात्रि। रात।

तारकित-वि० [सं०] तारायुक्त। तारों से भरा हुआ। जैसे, तारकित गगन।

तारकी-वि० [सं० तारकिन्] [स्त्री० तारकिणी] तारकित।

तारकूट-संज्ञा पुं० [सं० तार=चाँदी+कूट=नकली] चाँदी और पीतल के योग से बनी एक धातु।

तारकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक शिवलिंग जो कलकत्ते के पास है। (३) एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, लोहा, बंग, अभ्रक, जवासा, जवाखार, गोखरू के बीज, और हड़ इन सब को बराबर बराबर लेकर घिसते हैं और फिर पेठे के पानी, पंचमूल के काढ़े और गोखरू के रस की भावना देकर प्रस्तुत औषध की दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। इन गोलियों को शहद में चाट कर खाते हैं। इस औषध के सेवन से बहुमूत्र रोग दूर होता है।

तारक्षिति-संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा में एक देश जहाँ म्लेच्छों का निवास है। (बृहत्संहिता)

तारख*-संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] गरुड़। (डिं०)

तारखी*-संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] घोड़ा। (डिं०)

तारघर-संज्ञा पुं० [देश०] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय।

तारघाट-संज्ञा पुं० [हिं० तर+घात] कार्य्यसिद्धि का योग। मतलब निकलने का सुबीता। व्यवस्था। आयोजन। जैसे, वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी वह गया है।

तारचरबी-संज्ञा पुं० [देश०] मोमचीना का पेड़।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है। इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं जो एक प्रकार के चिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं। चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमबत्तियाँ बनती हैं। चरबी के अतिरिक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिश) के काम में आता है।

तारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (दूसरे को) पार करने का काम। पार उतारने की क्रिया। (२) उद्धार। निस्तार। (३) उद्धार करनेवाला। तारनेवाला। उ०—जग कारन, तारन भव, भंजन धरनी भार।—तुलसी। (४) विष्णु। (५) साठ संवत्सरों में से एक।

तारणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कश्यप की एक पत्नी जो याज और उपयाज की माता कही जाती है।

तारतंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद ज्वार।

तारतम्य-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतम्यिक] (१) न्यूनाधिक्य। परस्पर न्यूनाधिक्य का क्रम या संबंध। एक दूसरे से कमी बेशी का हिसाब। (२) उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के अनुसार व्यवस्था। कमी बेशी के हिसाब से तरतीब। (३) दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार। गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान।

तारतम्यबोध-संज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में एक का दूसरे से घट कर या बढ़ कर होने से घट कर या बढ़ कर होने का विचार। कई वस्तुओं में भले बुरे आदि की पहचान। सापेक्ष संबंध ज्ञान।

तार तार-वि० [हिं० तर] जिसकी धज्जियाँ अलग अलग हो गई हों। टुकड़ा टुकड़ा। फटा कटा। उधड़ा हुआ।
क्रि० प्र०—करना।
संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार एक गौण सिद्धि। पठित आगम शास्त्र आदि की तर्क द्वारा युक्तियुक्त परीक्षा द्वारा प्राप्त सिद्धि।

तारतोड़-संज्ञा पुं० [हिं० तर+तोड़ना] एक प्रकार का सुई का काम जो कपड़े पर होता है। कारचोबी। उ०—दिखावै कोई गोखरू मोड़ मोड़। कहीं सूत बूटे कहीं तारतोड़।—मीरहसन।

तारदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काँटेदार पेड़। तरदी वृक्ष।
पर्य्या०—रक्तसार। तीव्रा। रक्तबीजका।

तारन-संज्ञा पुं० दे० "तारण"।
संज्ञा पुं० [हिं० तर=नीचे ?] (१) छत की ढाल। छाजन की ढाल। (२) छप्पर का वह बाँस जो काँड़ियों के नीचे रहता है।

तारना-क्रि० स० [सं० तारण] (१) पार लगाना। पार करना। (२) संसार के क्लेश आदि से छुड़ाना। भवबाधा दूर करना। उद्धार करना। निस्तार करना। सद्गति देना। मुक्त करना। उ०—काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे और जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।—पद्माकर।

तारपीन-संज्ञा पुं० [अं० टरपेंटाइन] चीड़ के पेड़ से निकला हुआ तेल।

विशेष—चीड़ के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक खोखला गड्ढा काट कर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर

† (९) ठीक माप। जैसे, (क) अपने तार का एक जूता ले लेना। (ख) यह कुरता तुम्हारे तार का नहीं है।

(१०) कार्य्यसिद्धि का योग। युक्ति। ढब। जैसे, कोई ऐसा तार लगाओ कि हम भी तुम्हारे साथ आ जायँ।

यौ०—तारघाट।

(११) प्रणव। ओंकार। (१२) राम की सेना का एक बंदर जो तारा का पिता था और बृहस्पति के अंश से उत्पन्न था। (१३) शुद्ध मोती। (१४) नक्षत्र। तारा। (१५) सांख्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद। गुरु से विधिपूर्वक वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि। (१६) शिव। (१७) विष्णु। (१८) संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंठ से उठ कर कपाल के आभ्यंतर स्थानों तक होता है। इसे उच्च भी कहते हैं। (१९) आँख की पुतली। (२०) अठारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। उ०—तहँ प्रान के नाथ प्रसन्न विलोकी।

* संज्ञा पुं० [सं० ताल] (१) ताल। मजीरा। उ०—काहू के हाथ अघोरी, काहू के वीन, काहू के मृदंग, कोऊ गहे तार।—हरिदास। (२) करताल नामक बाजा।

संज्ञा पुं० [सं० तल] तल। सतह। जैसे, करतार। उ०—सो कर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो।—केशव।

यौ०—करतार = हथेली।

* संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] कान का एक गहना। ताटंक। तरौना। उ०—श्रवनन पहिरे उलटे तार।—सूर।

वि० [सं०] (१) जिस में से किरने फूटी हों। (२) निर्मल। स्वच्छ।

तारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नक्षत्र। तारा। (२) आँख। (३) आँख की पुतली। (४) इंद्र का शत्रु एक असुर। इसने जब इंद्र को बहुत सताया तब नारायण ने नपुंसक रूप धारण करके इसका नाश किया। (गरुड़पुराण)। (५) एक असुर जिसे कार्त्तिकेय ने मारा था। दे० "तारकासुर"। (६) राम का षडक्षर मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है और जिससे मनुष्य तर जाता है। 'ओं रामाय नमः' यह मंत्र। (७) भिलावाँ। भेलक। (८) वह जो पार उतारे। (९) कर्णधार। मल्लाह। (१०) भवसागर से पार करनेवाला। उद्धार करनेवाला। तारनेवाला। (११) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार सगण और एक गुरु होता है (IIS IIS IIS IIS S)।

तारकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

तारक टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तारक + हिं० टोड़ी] एक राग जिसमें ऋषभ और कोमल स्वर लगते हैं और पंचम वर्जित होता है। (संगीतरत्नाकर)

तारक तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गया तीर्थ (जहाँ पिंडदान करने से पुरखे तर जाते हैं)।

तारक ब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं०] राम षडक्षर मंत्र। रामतारक मंत्र। "ओं रामाय नमः" यह मंत्र।

तार-कमानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तार + कमानी] धनुष के आकार का एक औज़ार जिसमें डोरी के स्थान पर लोहे का तार लगा रहता है। इससे नगीने काटे जाते हैं।

तारकश—संज्ञा पुं० [हिं० तार + फ़ा० कश = (खींचनेवाला)] धातु का तार खींचनेवाला।

तारकशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तारकश] तार खींचने का काम।

तारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नक्षत्र। तारा। (२) कनीनिका। आँख की पुतली। (३) इंद्रवारुणी। (४) नाराच नामक छंद का नाम। (५) बालि की स्त्री तारा। उ०—सुग्रीव को तारका मिलाई बध्यो बालि भयमंत।—सूर।

* संज्ञा स्त्री० दे० "ताड़का"।

तारकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकासुर का बड़ा लड़का। यह उन तीन भाइयों में से एक था जो ब्रह्मा के वर से तीन पुर (त्रिपुर) बसा कर रहते थे।

विशेष—दे० "त्रिपुर"।

तारकामय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

तारकायण—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

तारकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका पूरा वृत्तांत शिवपुराण में दिया हुआ है।

विशेष—यह असुर तार का पुत्र था। इसने जब एक हज़ार वर्ष तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ तब इसके मस्तक से एक बहुत प्रचंड तेज निकला जिससे देवता लोग व्याकुल होने लगे, यहाँ तक कि इंद्र सिंहासन पर से खिंचने लगे। देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप वर देने के लिये उपस्थित हुए। तारकासुर ने ब्रह्मा से दो वर माँगे। पहला तो यह कि "मेरे समान संसार में कोई बलवान् न हो', दूसरा यह कि "यदि मैं मारा जाऊँ तो उसी के हाथ से जो शिव से उत्पन्न हो" ये दोनों वर पाकर तारकासुर घोर अन्याय करने लगा। इस पर सब देवता मिल कर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा "शिव के पुत्र के अतिरिक्त तारक को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय पर पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं। जाकर ऐसा उपाय रचो कि उनका संयोग शिव के साथ हो जाय"। देवताओं की प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्त को चंचल किया। अंत में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया। जब बहुत दिनों तक शिव को पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ तब देवताओं ने घबरा कर अग्नि को शिव के पास भेजा।

ताराधीश–संज्ञा पुं० दे० "ताराधिप"।

तारानाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) बृहस्पति। (३) बालि। (४) सुग्रीव।

तारापति–संज्ञा पुं० दे० "तारानाथ"।

तारापथ–संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

तारापीड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) मत्स्यपुराण के अनुसार अयोध्या के एक राजा का नाम। (३) काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम।

ताराभ–संज्ञा पुं० [सं०] पारद।

ताराभूषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

ताराभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तारामंडल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नक्षत्रों का समूह या घेरा। (२) एक प्रकार की आतशबाज़ी।

तारामंडूर–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है।

तारामृग–संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र।

तारायण–संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

तारारि–संज्ञा पुं० [सं०] विटमाक्षिक नाम की उपधातु।

तारिक–संज्ञा पुं० [सं०] नदी आदि पार उतारने का भाड़ा या महसूल। उतराई।

तारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य।
* संज्ञा स्त्री० दे० "तारका"। उ०—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, श्रवन भनक परी ललिता के तान की।—सूर।

तारिणी–वि० स्त्री० [सं०] तारनेवाली। उद्धार करनेवाली।
संज्ञा स्त्री० तारा देवी। दे० "तारा"।

तारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की चिड़िया। (२) निद्रा। समाधि। ध्यान।
*। संज्ञा स्त्री० दे० "ताली"।
*। संज्ञा स्त्री० दे० "ताड़ी"।

तारीक–वि० [फ़ा०] (१) स्याह। काला। (२) धुँधला। अँधेरा।

तारीकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) स्याही। (२) अंधकार।

तारीख–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) महीने का हर एक दिन (२४ घंटों का)। तिथि।
मुहा०—तारीख डालना = तिथि वार आदि लिखना।
(२) वह तिथि जिसमें पूर्व काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषतः ऐसी जिस का उत्सव या शोक मनाया जाता हो अथवा जिसके लिये कुछ रीति व्यवहार प्रति वर्ष करना पड़ता हो। (३) नियत तिथि। किसी काम के लिये ठहराया हुआ दिन। जैसे, कल मुकद्दमे की तारीख है।
मुहा०—तारीख डालना = तारीख मुकर्रर करना। दिन नियत करना। तारीख टलना = किसी काम के लिये पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना। जैसे, उनके मुकद्दमे की तारीख टल गई। तारीख पड़ना = किसी काम के लिये दिन मुकर्रर होना। तिथि नियत होना।
(४) तवारीख। इतिहास।

तारीफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लक्षण। परिभाषा। (२) वर्णन। विवरण। (३) बखान। प्रशंसा। श्लाघा।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
(४) प्रशंसा की बात। विशेषता। गुण। सिफ़त। जैसे, यही तो इस दवा में तारीफ़ है कि ज़रा भी नहीं लगती।

तारुण्य–संज्ञा पुं० [सं०] यौवन। जवानी।

तारू–संज्ञा पुं० दे० "तालू"।

तारेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तारा या बालि का पुत्र अंगद। (२) बृहस्पति की स्त्री तारा का पुत्र बुध।

तार्किक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तर्कशास्त्र का जाननेवाला। (२) तत्ववेत्ता। दार्शनिक।

तार्क्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कश्यप। (२) कश्यप के पुत्र गरुड़।

तार्क्षज–संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन।

तार्क्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताल गरुड़ी लता। छिरेंटी। छिरिहटा।

तार्क्ष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृक्ष मुनि के गोत्रज। (२) गरुड़। (३) गरुड़ के बड़े भाई अरुण। (४) घोड़ा। (५) रसांजन। (६) सर्प। (७) अश्वकर्ण वृक्ष। एक प्रकार का शालवृक्ष। (८) एक पर्वत का नाम। (९) महादेव। (१०) सोना। स्वर्ण। (११) रथ।

तार्क्ष्यज–संज्ञा पुं० [सं०] रसोत। रसांजन।

तार्क्ष्यप्रसव–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण वृक्ष।

तार्क्ष्यशैल–संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन। रसोत।

तार्क्ष्यी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनलता का नाम।

तार्प्य–संज्ञा पुं० [सं०] तृपा नामक लता से बनाया हुआ वस्त्र जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था।

ताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ का तल। करतल। हथेली। (२) वह शब्द जो दोनों हथेलियों को एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न होता है। करतलध्वनि। ताली। (३) नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मार कर सूचित करते जाते हैं।

कुछ गहरा कर देते हैं। इसी गहरे किए हुए स्थान में चीड़ का पसेव निकल कर गोंद के रूप में इकट्ठा होता है जिसे गंदा-बिरोजा कहते हैं। इस गोंद से भवके द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है उसे तारपीन का तेल कहते हैं। यह औषध के काम मे आता है और दर्द के लिये उपकारी है।

तारपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पेड़।

तारबर्क्की–संज्ञा पुं० [उ०] बिजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुँचानेवाला तार।

तारमाक्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] रूपामक्खी नाम की उपधातु।

तारयिता–संज्ञा पुं० [सं० तारयितृ] [स्त्री० तारयित्री] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला।

तारल्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म। द्रवत्व। (२) चंचलता। चपलता।

तारविमला–संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामक्खी नाम की उपधातु।

तारसार–संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

तारा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नक्षत्र। सितारा।

यौ०—तारा मंडल।

मुहा०—*तारे गिनना*=चिंता या आसरे में बेचैनी से रात काटना। दुःख से किसी प्रकार रात बिताना। *तारे खिलना*=तारों का चमकते हुए निकलना। तारों का दिखाई देना। *तारे छिटकना*=तारों का दिखाई पड़ना। आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पड़ना। *तारा टूटना*=चमकते हुए पिंड का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर को जाते हुए या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना। उल्कापात होना। *तारा डूबना*=(१) किसी नक्षत्र का अस्त होना। (२) शुक्र का अस्त होना (शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए जाते)। *तारे तोड़ लाना*=(१) कोई बहुत ही कठिन काम कर दिखाना। (२) बड़ी चालाकी का काम करना। *तारे दिखाना*=प्रसूता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमें जिन भूत आदि का डर न रह जाय। (मुसलमान स्त्रियों में यह रीति है)। *तारे दिखाई दे जाना*=कमजोरी या दुर्बलता के कारण आंखों के सामने तिरमिराहट दिखाई पड़ना। *तारा सी आँखें हो जाना*=ललाई, सूजन, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँख का स्वच्छ हो जाना। *तारों की छाँह*=बड़े सवेरे। तड़के, जब कि तारों का धुँधला प्रकाश रहे। जैसे, तारों की छाँह यहाँ से चल देंगे। *तारा हो जाना*=(१) बहुत ऊंचे पर हो जाना। इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह छोटा दिखाई दे। (२) इतनी दूर हो जाना कि छोटा दिखाई पड़े। बहुत फासले पर हो जाना।

(२) बृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था। बृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से माँगा तब चंद्रमा ने देना अस्वीकार किया। इस पर बृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और घोर युद्ध आरंभ हुआ। अंत में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को ले कर बृहस्पति को दे दिया। तारा को गर्भवती देख बृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया। तारा ने तुरंत शिशु का प्रसव किया। देवताओं ने तारा से पूछा "ठीक ठीक बताओ यह किसका पुत्र है?" तारा ने बड़ी देर के पीछे बताया कि "यह दस्युहंतम नामक पुत्र चंद्रमा का है।" चंद्रमा ने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम बुध रखा। (३) आँख की पुतली। उ०—मेरे नैनों का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है।—हरिश्चंद्र। (४) सितारा। भाग्य। किसमत। उ०—ग्रीखम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के।—भूषण।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्र के अनुसार दस महाविद्याओं में से एक। (२) जैनों की एक शक्ति। (३) बालि नामक बंदर की स्त्री और सुसेन की कन्या जिसने बालि के मारे जाने पर उसके भाई सुग्रीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था। तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रातःकाल उसके नाम लेने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है। श्लोक—अहल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा। पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥ (४) सिर में बाँधने का चीरा।

*संज्ञा पु० दे० "ताला"।

ताराकूट–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है।

ताराक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] तारकाक्ष दैत्य।

ताराग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पाँच ग्रहों का समूह। (बृहत्संहिता)।

ताराज–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) लूट पाट। (लश०)। (२) नाश। ध्वंस। बरबादी।।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तारात्मक नक्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में क्रांति वृत्त के उत्तर और दक्षिण ओर के तारों का समूह जिन में अश्विनी भरणी आदि हैं।

ताराधिप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव। (३) बृहस्पति। (४) बालि और सुग्रीव।

(३) तालमूली । मुसली । (४) मेथा । मेथा नाम का साग।

तालपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] पुंडरिया । प्रपौंडरीक ।

तालबंद-संज्ञा पुं० [सं० ताल, तालिका + बंध] वह लेखा जिसमें आमदनी की हर एक मद दिखलाई गई हो ।

तालबेन-संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेणु] एक बाजा ।

तालबैताल-संज्ञा पुं० [सं० ताल + बैताल] दो देवता या यक्ष । ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें सिद्ध किया था और ये बराबर इनकी सेवा में रहते थे ।

ताल-मखाना-संज्ञा पुं० [हिं० ताल + मखाना] (१) एक पौधा जो गीली या सीड़ जमीन में होता है, विशेषतः पानी या दलदलों के निकट । इसकी पत्तियाँ ५ या ६ अंगुल लंबी और अंगुल सवा अंगुल चौड़ी होती हैं । इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टहनियाँ निकलती हैं जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गन्ने के पौधे की गाँठों के ऐसी गाँठें होती हैं। इन गाँठों पर काँटे होते हैं । इन्हीं गाँठों पर फूल या बीजों के कोशों के अंकुर होते हैं । फूल छोटे छोटे और सफेद रंग के होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर गाँठ के कोशों में जीरे के ऐसे बीज पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में ये बीज मधुर, शीतल, बलकारक वीर्यवर्द्धक तथा पथरी, वातरक्त, प्रमेह आदि को दूर करनेवाले माने जाते हैं । वात और गठिया में भी तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन्हें मूत्रकारक, बलकारक, और जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये उपकारक बताया है। तालमखाने का पौधा दो प्रकार का होता है—एक लाल फूल का, दूसरा सफेद फूल का । सफेद फूल का ही अधिक मिलता है । इसकी पत्तियों का साग भी कहीं कहीं खाया जाता है ।

पर्य्या०—कोकिलाक्ष । काकेक्षु । इक्षुर । क्षुरक। भिक्षु । कांडेक्षु । इक्षुगंधा, शृगाली । शृंखलि । क्षुरक । शृगालघंटी । वज्रास्थि । शृंखला । वनकंटक । वज्र । त्रिक्षुर । शुक्लपुष्प (सफेद तालमखाना) । क्षुरक और अनिच्छत्र (तालमखाना)।

(२) दे० "मखाना" ।

तालमूलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "तालमूली" ।

तालमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसली ।

तालमेल-संज्ञा पुं० [हिं० ताल + मेल] (१) ताल सुर का मिलान । (२) मिलान । मेलजोल । उपयुक्त योजना । ठीक ठीक संयोग ।

मुहा०—तालमेल खाना = ठीक ठीक संयोग होना । प्रकृति आदि का मेल होना । विधि मिलना । मेल पटना । तालमेल बैठना = दे० "तालमेल खाना" ।

(३) उपयुक्त अवसर । अनुकूल संयोग । जैसे, तालमेल देख कर काम करना चाहिए ।

तालरस-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी । ताड़ के पेड़ का मद्य । उ०—तालरस बलराम चाख्यो मन भयो आनंद । गोपसुत सब टेरि लीन्हे सुधि भई नँदनंद ।—सूर ।

ताललक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] तालध्वजा । बलराम ।

तालवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ के पेड़ों का जंगल । (२) व्रज मंडल के अंतर्गत एक वन जो गोवर्द्धन के उत्तर जमुना के किनारे पर है । कहते हैं यहीं पर बलराम ने धेनुकवध किया था । उ०—सखा कहन लागे हरि सों तब । चलौ तालवन कौं जैये अब ।—सूर ।

तालवाही-वि० [सं०] वह बाजा जिससे ताल दिया जाय । जैसे, मँजीरा, झाँझ आदि ।

तालवृंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ के पत्ते का पंखा । (२) एक प्रकार का सोम । (सुश्रुत)

तालव्य-वि० [सं०] (१) तालु संबंधी । (२) तालु से उच्चारण किया जानेवाला वर्ण ।

विशेष—इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श—ये वर्ण तालव्य कहलाते हैं ।

तालसाँस-संज्ञा पुं० [सं० ताल + बँ० साँस = गूदा] ताड़ के फल के भीतर का गूदा जो खाने के काम में आता है ।

तालस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जिसका नाम वाल्मीकि रामायण में आया है ।

तालांक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका चिह्न ताड़ हो । (२) बलराम । (३) एक प्रकार का साग । (४) आरा । (५) शुभलक्षणवान् मनुष्य । (६) पुस्तक । (७) महादेव ।

तालांकुर-संज्ञा पुं० [सं०] मैनसिल ।

ताला-संज्ञा पुं० [सं० तालक] लोहे पीतल आदि की वह कल जिसे बंद किवाड़ संदूक आदि की कुंडी में फँसा देने से किवाड़ या संदूक बिना कुंजी के नहीं खुल सकता । कपाट अवरुद्ध रखने का यंत्र । जंदरा । कुलुफ ।

क्रि० प्र०—खुलना ।—खोलना ।—बंद होना, करना ।—लगना ।—लगाना ।

यौ०—ताला कुंजी ।

मुहा०—ताला जकड़ना = ताला लगाकर बंद करना । ताला तोड़ना = किसी दूसरे की वस्तु को चुराने या लूटने के लिये उसके घर संदूक आदि में लगे हुए ताले को तोड़ना । ताला भिड़ना = ताला बंद होना । ताला भेड़ना = ताला लगाना ।

ताला कुंजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताला + कुंजी] (१) किवाड़ संदूक आदि बंद करने का यंत्र ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी। भरतमुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चच्चत्पुट, चाचपुट, पट्पितापुत्रक, उद्घट्टक, सन्निपात, कंकण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, शचीप्रिय, पार्वतीलोचन, राजचूड़ामणि, जयश्री, वाद-काकुल, कंदर्प, नलकूवर, दर्पण, रतिलीन, मोक्षपति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजलील, चर्चरी, कुहक्क, विजयानंद, वीरविक्रम, टेंगिक, रंगाभरण, श्रीकीर्त्ति, वनमाली, चतुर्मुख, सिंहनंदन, नंदीश, चंद्रबिंब, द्वितीयक, जयमंगल, गंधर्व, मकरंद, त्रिभंगी, रतिताल, वसंत, जगर्भप, गारुड़ि, कविशेखर, घोष, हरवल्लभ, भैरव, गतप्रत्यागत, मल्लताली, भैरवमस्तक, सरस्वतीकंठाभरण, क्रीड़ा, निःसारु, मुक्तावली, रंगराज, भरतानंद, आदितालक, संपर्कष्टक। इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं। इन तालों के नामों में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता देखी जाती है। इन नामों में से आज कल बहुत ही थोड़े प्रचलित हैं। संगीत में ताल देने के लिये तबले, मृदंग, ढोल और मँजीरे आदि का व्यवहार किया जाता है।

क्रि० प्र०—देना।—बजाना।

यौ०—तालमेल।

मुहा०—ताल बेताल=(१) जिसका ताल ठिकाने से न हो। (२) अवसर या बिना अवसर के। मौके बेमौके। ताल से बेताल होना=ताल के नियम से बाहर हो जाना। उखड़ जाना (गाने बजाने में)।

(४) अपने जंघे या बाहु पर जोर से हथेली मार कर उत्पन्न किया हुआ शब्द। कुश्ती आदि लड़ने के लिये जब किसी को ललकारते हैं तब इस प्रकार हाथ मारते हैं।

मुहा०—ताल ठोंकना=लड़ने के लिये ललकारना।

(५) मजीरा या झाँझ नाम का बाजा। (६) चश्मे के पत्थर या काँच का एक पल्ला। (७) हरताल। (८) तालीशपत्र। (९) ताड़ का पेड़ या फल। (१०) बेल। बिल्वफल। (अनेकार्थ)। (११) हाथियों के कान फटफटाने का शब्द। (१२) लंबाई की एक माप। बित्ता। (१३) ताला। (१४) तलवार की मूठ। (१५) एक नरक। (१६) महादेव। (१७) दुर्गा के सिंहासन का नाम। (१८). पिंगल में ढगण के दूसरे भेद का नाम जो एक गुरु और एक लघु का होता है—ऽ।

संज्ञा पुं० [सं० तल्ल] वह नीची भूमि या लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है। जलाशय। पोखरा। तालाब।

तालकंद–संज्ञा पुं० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालक*†–संज्ञा पुं० दे० "तअल्लुक़"। उ०—हौं तो एक बालक न मोहिं कछू तालक पै देखो तात तुमहूँ को कैसी लघुताई है।—हनुमान।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) ताला। (३) गोपीचंदन।

तालकट–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश जो कदाचित् बीजापुर के पास का तालीकोट हो।

तालकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी। तालरस।

तालकूटा–संज्ञा पुं० [हिं० ताल + कूटना] झाँझ बजा कर भजन आदि गानेवाला।

तालकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी पताका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। (२) भीष्म। (३) बलराम।

तालकेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जो कुष्ट, फोड़ा फुंसी आदि में दी जाती है।

विशेष—दो माशे हरताल में पेठे के रस, घीकुआर के रस और तिल के तेल की भावना देते हैं। फिर दो माशे गंधक और एक माशे पारे को मिला कर कज्जली करते और उसमें भावना दी हुई हरताल मिला कर फिर सब में क्रम से बकरी के दूध, नीबू के रस और घीकुआर के रस की तीन दिन भावना देते हैं। अंत में सब का गोल कतरा बना कर उसे हाँड़ी में क्षार के भीतर रख बारह पहर तक पकाते हैं और फिर ठंढा होने पर उतार लेते हैं।

तालक्रोशा–संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] खजूर या ताड़ की चीनी।

तालचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (२) उस देश का निवासी।

तालजंघ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (२) उस देश का निवासी। (३) एक यदुवंशी राजा जिसके पुत्रों ने राजा सगर के पिता असित को राजच्युत किया था।

तालरंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

तालध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी ध्वजा पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। (२) भीष्म। (३) बलराम। (४) एक पर्वत का नाम।

तालनवमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ला नवमी।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ व्रत और तालपत्र आदि से गौरी का पूजन करती हैं।

तालपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मुसली।

तालपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकर्णी। मूषकपर्णी। मूसाकानी बूटी।

तालपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर कचरी।

तालपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। (२) कपूर कचरी

तालू-संज्ञा पु० [सं० तालु] (१) मुँह के भीतर की ऊपरी छत जो ऊपरवाले दाँतों की पंक्ति से लेकर छोटी जीभ या कौवे तक होती है।

विशेष—इस का ढाँचा कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है, उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तहों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोश और मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है।

मुहा०—तालू उठाना = तुरंत के जनमे हुए बच्चे के तालू को दबा कर ठीक करना। (दाइयाँ या चमारिनें यह काम करती हैं)। तालू में दाँत जमना = अदृष्ट आना। बुरे दिन आना। (प्रायः क्रोध में दूसरे के प्रति लोग इस वाक्य का व्यवहार करते हैं। बच्चों के तालू में काँटा या अंकुर सा निकल आता है जिसे तालू में दाँत निकलना कहते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा कष्ट होता है)। तालू लटकना = तालू का रोग के कारण नीचे लटक आना। तालू से जीभ न लगना = चुपचाप न रहा जाना। बके जाना।

(२) खोपड़ी के नीचे का भाग। दिमाग़।

मुहा०—तालू चटकना = (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना। (२) प्यास से मुँह सूखना। जैसे, प्यास से तालू चटकना।

(३) घोड़ों का एक ऐब।

तालूफाड़-संज्ञा पु० [हिं० तालू + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालू में घाव हो जाता है।

तालेवर-वि० [अ० ताला = भाग्य + फ़ा० वर (प्रत्य०)] धनाढ्य। धनी।

ताल्लुक़-संज्ञा पु० दे० "तअल्लुक़"।

तालवर्बुद-संज्ञा पु० [सं०] एक रोग जिसमें तालू में एक कमल के आकार का बड़ा सा अंकुर या काँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव-संज्ञा पु० [सं० ताप, प्रा० ताव] (१) वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय।

क्रि० प्र०—लगना।

यौ०—तावबंद। ताव भाव।

मुहा०—(किसी वस्तु में) ताव आना = (किसी वस्तु का) जितना चाहिए उतना गरम हो जाना। जैसे, अभी ताव नहीं आया है पूरियाँ कड़ाह में मत डालो। ताव खाना = आँच में गरम होना। ताव खा जाना = (१) तेज़ आँच के कारण बहुत अधिक गरम हो जाना या जल जाना। (२) आँच पर चढ़े हुए कड़ाह के घी, चाशनी, पाग इत्यादि का आवश्यकता से अधिक गरम हो जाना। किसी पाग, या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना। जैसे, चाशनी का ताव खा जाना, पाग का ताव खा जाना। (३) किसी लोहाई तपाई या पिघलाई हुई वस्तु का आवश्यकता से अधिक ठंढा होना। ताव देखना = आँच का अंदाज़ देखना। ताव देना = (१) आँच पर रखना। गरम करना। (२) आग में लाल करना। तपाना। (धातु)। ताव बिगड़ना = पकाने में आँच का कम या अधिक हो जाना (जिससे कोई वस्तु बिगड़ जाय)। मूछों पर ताव देना = सफलता आदि के अभिमान में मूछें ऐंठना। पराक्रम, बल आदि के घमंड में मूछों पर हाथ फेरना।

(२) अधिकार मिले हुए क्रोध का आवेश। घमंड लिए हुए गुस्से की झोंक।

मुहा०—ताव दिखाना = अभिमान मिला हुआ क्रोध प्रकट करना। बड़प्पन दिखाते हुए बिगड़ना। आँख दिखाना। ताव में आना = अभिमान मिले हुए क्रोध के आवेग में होना। अहंकार मिश्रित क्रोध के वश में होना। जैसे, ताव में आकर कहीं मेरी चीज़ें भी न फेंक देना।

(३) अहंकार का वह आवेश जो किसी के बढ़ावा देने ललकारने आदि से उत्पन्न होता है। शेखी की झोंक। जैसे, ताव में आकर इतना चंदा लिख तो दिया, दोगे कहाँ से ? (४) किसी वस्तु के तत्काल होने की घोर इच्छा या उत्कंठा। ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो। चटपट होने की चाह या आवश्यकता।

मुहा०—ताव चढ़ना = (१) प्रबल इच्छा होना। ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चटपट हो जाय। (२) कामोद्दीपन होना। ताव पर = जब इच्छा या आवश्यकता हो उसी समय। ज़रूरत के मौक़े पर। जैसे, तुम्हारे ताव पर तो रुपया नहीं मिल सकता।

संज्ञा पु० [फ़ा० ता = संख्या] काग़ज़ का एक तख़्ता। जैसे, चार ताव काग़ज़।

तावत्-क्रि० वि० [सं०] (१) उतने काल तक। उतनी देर तक। तब तक। (२) उतनी दूर तक। वहाँ तक। (३) उतने परिमाण तक। उतने तक।

विशेष—यह "यावत्" का संबंधपूरक शब्द है।

तावना*†-क्रि० स० [सं० तापन] (१) तपाना। गरम करना। (२) जलाना। (३) दाहना। संताप पहुँचाना। दुःख पहुँचाना।

तावबंद-संज्ञा पु० [हिं० ताव + फ़ा० बंद] वह औषध जिसके प्रयोग से चाँदी का खोटापन तपाने पर भी प्रकट न हो।

ताव भाव-संज्ञा पु० [हिं० ताव + भाव] उपयुक्त अवसर। मौक़ा। परिस्थिति।

वि० थोड़ा सा। ज़रा सा। हलका सा।

तावर*†-संज्ञा स्त्री० दे० "तावरी"।

तावरी-संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + ई (प्रत्य०)] (१)

(२) लड़कों का एक खेल ।

तालाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर कचरी ।

तालाव—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + फ़ा० आब] जलाशय । सरोवर । पोखरा ।

तालिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैली हुई हथेली । (२) चपत । तमाचा । (३) नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज बँधे हों । (४) तालपत्र या कागज का पुलिंदा ।

तालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताली । कुंजी । (२) नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज अलग अलग बँधे हों । तालपत्र या कागज का पुलिंदा । (३) नीचे ऊपर लिखी हुई वस्तुओं का क्रम । नीचे ऊपर लिखे हुए नाम जिसमें अलग अलग चीजें गिनाई गई हों । सूची । फिहरिस्त । (४) चपत । तमाचा । (५) तालमूली । मुसली । (६) मजीठ ।

तालिब—संज्ञा पुं० [अ०] ढूँढ़नेवाला । तलाश करनेवाला । चाहनेवाला ।

तालिबइल्म—संज्ञा पुं० [अ०] विद्यार्थी ।

तालिम * †—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्प] शय्या । विस्तर । (हिं०)

तालियामार—संज्ञा पुं० [हिं० ताली + मारना] गलही । जहाज़ या नाव का अगला भाग जो पानी काटता है । (लश०)

ताली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुंजी । चाबी । लोहे की वह कील जिससे ताला खोला और बंद किया जाता है । (२) ताड़ी । ताड़ का मद्य । (३) तालमूली । मुसली । (४) भूआँवला । भूम्यामलकी । (५) अरहर । (६) ताम्रवल्ली लता । (७) एक प्रकार का छोटा ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है । बजरबट्टू । बट्टू । (८) एक वर्णवृत्त । (९) मेहराब के बीचो बीच का पत्थर या ईंट ।

संज्ञा स्त्री० [सं० ताल] (१) दोनों फैली हुई हथेलियों को एक दूसरे पर मारने की क्रिया । करतलों का परस्पर आघात । थपेड़ी ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

मुहा०—ताली पीटना या बजाना = हँसी उड़ाना । उपहास करना । ताली बज जाना = उपहास होना । निरादर होना । एक हाथ से ताली नहीं बजती = बैर या प्रीति एक ओर से नहीं होती । दोनों के करने से लड़ाई झगड़ा या प्रेम का व्यवहार होता है ।

(२) दोनों हथेलियों को फैला कर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न शब्द । करतल-ध्वनि ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल = जलाशय] छोटा ताल । तलैया । गड़ही । उ०—फरइ कि कोदव बालि सु साली । मुकता प्रसव कि संबुक ताली ।—तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पैर की बिचली उँगली का पोर या ऊपरी भाग ।

तालीका—संज्ञा पुं० [अ० तअलीका] (१) माल असबाब की ज़ब्ती । मकान की कुर्की । (२) कुर्क़ किए हुए असबाब की फिहरिस्त ।

तालीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तालीश पत्र ।

तालीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] शिक्षा । अभ्यासार्थ उपदेश जैसे, उसकी तालीम अच्छी नहीं हुई है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—लेना ।

तालीशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तमाल या तेजपत्ते की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर सिंध से सतलज तक थोड़ा बहुत और उससे पूर्व सिकिम तक बहुत अधिक होता है । आसाम में खसिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए जाते हैं । इसके पत्ते एक लंबे डंठल के दोनों ओर लगते हैं और तेजपत्ते से लंबे होते हैं । डंठल में खजूर की तरह चौकोर खाने से होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है । पत्ते बाजारों में तालीशपत्र के नाम से बिकते हैं और दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफवातनाशक तथा गुल्म, क्षय रोग और खाँसी को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्य्या०—धात्रीपत्र । शुकोदर । ग्रंथिकापत्र । तुलसीछद । अर्कवेध । पत्राख्य । करिपत्र । करिच्छद । नील । नीलांबर । तालीपत्र । तमाह्वय ।

(२) दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जो उत्तरीय भारत, बंगाल तथा समुद्र के किनारे के देशों में होता है । यह भूआँवला की जाति का है । इसकी सूखी पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं । इसे पनिया आमला भी कहते हैं । इसका पौधा भूआँवले से बड़ा और चिलबिल से मिलता जुलता होता है ।

तालीशपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र ।

तालु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालव्य] तालू ।

तालुकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो बच्चों के तालू में होता है । इसमें तालू में काँटे से पड़ जाते हैं और तालू धँस जाता है । इसके कारण बच्चा स्तन बड़ी कठिनाई से पीता है । जब यह रोग होता है तब बच्चे को पतले दस्त भी आते हैं ।

तालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालू की नाड़ी ।

संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तअल्लुक़ा" ।

तालुजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल ।

तालुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालू पक जाता है और उसमें घाव सा हो जाता है ।

तालुपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग ।

तालुशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू सूख जाता है और उसमें फट कर घाव से हो जाते हैं ।

तिंतिरांग—संज्ञा पुं० [सं०] इसपात। वज्रलोह।

तिंतिलिका—संज्ञा स्त्री० दे० "तिंतिड़िका"।

तिंतिली—संज्ञा स्त्री० दे० "तिंतिड़ी"।

तिंदिश—संज्ञा पुं० [सं०] टिंडसी नाम की तरकारी। डेंडसी।

तिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

तिंदुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेंदू का पेड़। (२) कर्षप्रमाण। दो तोला।

तिंदुकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] व्रजमंडल के अंतर्गत एक तीर्थ।

तिंदुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेंदू का पेड़।

तिंदुकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवर्त्तकी। भगवत वल्ली।

तिंदुल—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

तिआ—संज्ञा स्त्री० दे० "तिया"।

तिआह †—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविवाह] (१) तीसरा विवाह। (२) वह पुरुष जिसका तीसरा ब्याह हो रहा हो।

तिउरा †—संज्ञा पुं० [देश०] खेसारी नाम का कदन्न। केसारी।

तिउरी †—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी। खेसारी।

तिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+कड़ी] (१) जिसमें तीन कड़ियाँ हों। (२) चारपाई आदि की वह बुनावट जिसमें तीन तीन रस्सियाँ एक साथ हों।

तिकानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+कान] वह तिकोनी लकड़ी जो पहिये के बाहर धुरी के पास पहिये की रोक के लिये लगी रहती है।

तिकार †—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+कार] खेत की तीसरी जोताई।

तिकुरा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+कूरा] फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशि जिनमें से एक जमींदार लेता है।

तिकोन*—वि० दे० "तिकोना"। उ०—बाँस पुरान साज सब अटपट सरल तिकोन खटोला रे।—तुलसी।

संज्ञा पुं० दे० "त्रिकोण"।

तिकोना—वि० [सं० त्रिकोण] [स्त्री० तिकोनी] जिसमें तीन कोने हों। तीन कोनों का। जैसे, तिकोना टुकड़ा।

संज्ञा पुं० (१) एक नमकीन पकवान। समोसा। तिकोनी नक्काशीबनाने की छेनी।

संज्ञा स्त्री दे० "त्योरी"।

तिकोनिया—वि० दे० "तिकोना"।

तिक्का †—संज्ञा पुं० [फा० तिक्कः] मांस की बोटी। लोथ।

मुहा०—तिक्का बोटी करना=टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी अलग करना।

तिक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] (१) ताश का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ बनी हों। (२) गंजीफे का वह पत्ता जिस पर तीन बूटियाँ हों।

तिक्ख*—वि० [सं० तीक्ष्ण, प्रा० तिक्ख] (१) तीखा। चोखा। तेज़। (२) तीव्रबुद्धि। तेज़। चालाक।

तिक्त—वि० [सं०] तीता। कड़ुआ। जिसका स्वाद नीम, गुरुच, चिरायते आदि के समान हो।

विशेष—तिक्त छ रसों में से एक है। तिक्त और कटु में भेद यह है कि तिक्त स्वाद अरुचिकर होता है, जैसे, नीम, चिरायते आदि का; पर कटु स्वाद चरपरा और रुचिकर होता है। जैसे, सोंठ, मिर्च आदि का। वैद्यक के अनुसार तिक्त रस छेदक, रुचिकारक, दीपक, शोधक, तथा मूत्र, मेद, रक्त वसा आदि का शोषण करनेवाला है। ज्वर, खुजली, कोढ़, मूर्च्छा आदि में यह विशेष उपकारी है। अमिलतास, गुरुच, मजीठ, कनेर, हल्दी, इंद्रजव, भटकटैया, अशोक, कुटकी, बरियारा, ब्राह्मी, गदहपुरना (पुनर्नवा), इत्यादि तिक्त वर्ग के अंतर्गत हैं।

संज्ञा पुं० (१) पित्तपापड़ा। (२) सुगंध। (३) कुटज। (४) वरुण वृक्ष।

तिक्तकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनशट। गंधपत्रा। वनकपूर।

तिक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पटोल। परवल। (२) चिरतिक्त। चिरायता। (३) काला खैर। (४) इंगुदी। (५) नीम। (६) कुटज। कुरैया।

तिक्तकांड—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

तिक्तका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुतुंबी। कड़ुआ कद्दू।

तिक्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वराहक्रांता। वराही कंद।

तिक्तगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वराहक्रांता। वराही कंद।

तिक्तगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंजा। करंज। करंजुआ।

तिक्तघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तिक्त ओषधियों के योग से बना हुआ एक घृत जो कुष्ट, विषमज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी आदि में दिया जाता है।

तिक्ततंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपर।

तिक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिताई। कड़ुआपन।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ुई तुरई।

तिक्ततुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खिरनी। (२) मेढ़ासिंगी।

तिक्तधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर के भीतर की कड़ुई धातु, अर्थात्) पित्त।

तिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ककोड़ा। खेखसा।

तिक्तपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचरी। पेहँटा।

तिक्तपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूब। (२) हुलहुल। हुरहुर। (३) गिलोय। गुर्च। (४) मुलेठी। जेठी मधु।

तिक्तपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

तिक्तफल—संज्ञा पुं० [सं०] रीठा। निर्मल फल।

तिक्तफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भटकटैया। (२) कचरी। (३) खरबूजा।

तिक्तभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

ताप। दाह। जलन। (२) धूप। घाम। (३) बुखार। ज्वर। हरारत। (४) गरमी से आया हुआ चक्कर। मूर्च्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावरो*†-संज्ञा पुं० [हिं० ताव + रा (प्रत्य०)] (१) ताप। दाह। जलन। (२) धूप। घाम। सूर्य्य की गरमी। आतप। उ०—मैं जमुना जल भरि घर आवति मो को लागो तावरो।—सूर। (३) गरमी से आया हुआ चक्कर। घुमेर। मूर्च्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावल†-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] जल्दी। उतावलापन। हड़बड़ी।

तावा†-संज्ञा पुं० [हिं० ताव] (१) दे० "तवा"। (२) वह कच्चा खपड़ा या थपुआ जिसके किनारे अभी मोड़े न गए हों।

तावान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दंड। डाँड़। हानि का पलटा। वह चीज़ जो नुकसान भरने के लिये दी या ली जाय।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

ताविष-संज्ञा पुं० दे० "तावीष"।

ताविषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवकन्या। (२) नदी। (३) पृथिवी।

तावीज़-संज्ञा पुं० [अ० तअवीज़] (१) यंत्र, मंत्र या कवच जो किसी संपुट के भीतर रख कर गले में या बाँह पर पहना जाय। (२) सोने, चाँदी, ताँबे आदि का चौकोर या अठपहला, गोल या चिपटा संपुट जिसे तागे में लगा कर गले या बाँह पर पहनते हैं। ये संपुट यों ही गहने की तरह भी पहने जाते हैं और इनके भीतर यंत्र भी रहता है।

मुहा०—तावीज़ बाँधना = रक्षा के लिये देवता का मंत्र आदि लिख कर बाँधना। कवच बाँधना।

तावीष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) स्वर्ग। (३) समुद्र।

तावुरि-संज्ञा पुं० [यूना० टारस] वृष राशि।

ताश-संज्ञा पुं० [अ० तास = तश्त या चौड़ा बरतन] (१) एक प्रकार का ज़रदोज़ी कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना बादले का होता है। ज़रबफ़्त। (२) खेलने के लिये मोटे कागज का चौखूँटा टुकड़ा जिस पर रंगों की बूटियाँ या तसवीरें बनी रहती हैं। खेलने का पत्ता। (३) ताश का खेल।

विशेष—ताश के खेल में चार रंग होते हैं—हुक्म, चिड़ी, पान और ईंट। एक एक रंग के तेरह तेरह पत्ते होते हैं। एक से दस तक तो बूटियाँ होती हैं जिन्हें क्रमशः एका, दुक्की (या दुड़ी), तिक्की, चौकी, पंजी, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहला और दहला कहते हैं। इनके अतिरिक्त तीन पत्तों में क्रमशः गुलाम, बीवी और बादशाह की तसवीरें होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक रंग के तेरह पत्ते और सब मिलाकर बावन पत्ते होते हैं। खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलट कर बराबर बराबर बाँट दिए जाते हैं। साधारण खेल (रंगमार) में किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंग की कम बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है। इसी प्रकार दहले को गुलाम मार सकता है और गुलाम को बीवी, बीवी को बादशाह और बादशाह को एक्का। एक्का सब पत्तों को मार सकता है। ताश के खेल कई प्रकार के होते हैं जैसे, ट्रंप, गन, गुलामचोर इत्यादि।

ताश का खेल पहले पहल किस देश में निकला इसका ठीक पता नहीं है। कोई मिस्र देश को, कोई बाबुल को, कोई अरब को और कोई भारतवर्ष को इसका आदि स्थान बतलाता है। फ़ारस और अरब में गंजीफ़े का खेल बहुत दिनों से प्रचलित है जिसके पत्ते रुपए के आकार के गोल गोल होते हैं। इसी से उन्हें ताश कहते हैं। अकबर के समय हिंदुस्तान में जो ताश प्रचलित थे उनके रंगों के नाम और थे। जैसे, अश्वपति, गजपति, नरपति, गढ़पति, दलपति इत्यादि। इनमें घोड़े, हाथी आदि पर सवार तसवीरें बनी होती थीं। पर आज कल जो ताश खेले जाते हैं वे यूरप से ही आते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

(४) कड़े कागज़ या दफ़्ती की चकती जिस पर सीने का तागा लपेटा रहता है।

ताशा-संज्ञा पुं० [अ० तास] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो गले में लटका कर दो पतली लकड़ियों से बजाया जाता है। यह धूमधाम सूचित करने के लिये ही बजाया जाता है।

तासला-संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जिसे भालुओं को नचाने के समय कलंदर उनके गले में डाले रहते हैं।

तासा-संज्ञा पुं० दे० "ताशा"।

संज्ञा स्त्री० [सं० त्रय = तिहरा] तीन बार की जोती हुई भूमि।

तासीर-संज्ञा स्त्री० [अ०] असर। प्रभाव। गुण। जैसे, दवा की तासीर, सोहबत की तासीर।

तासु † *-सर्व० [हिं० ता + सु (प्रत्य०)] उसका।

तासूँ †-सर्व० दे० "तासों"।

तासों * †-सर्व० [हिं० ता + सों (प्रत्य०)] उससे।

ताहम-अव्य० [फ़ा०] तौ भी। तिस पर भी। फिर भी।

ताहि * †-सर्व० [हिं० ता + हि० (प्रत्य०)] उसको। उसे।

ताहीं †-अव्य० दे० "ताईं", "तईं"।

तिंतिड़-संज्ञा पुं० [सं०] इमली।

तिंतिड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

तिंतिड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

तिंतिड़ीक-संज्ञा पुं० [सं०] इमली।

तिंतिड़ीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

तितर बितर–वि० [हिं० तिथर + अनु०] जो इधर उधर हो गया हो। छितराया हुआ। बिखरा हुआ। जो एकत्र न हो। जैसे, तोप की आवाज सुनते ही सब सिपाही तितर बितर हो गए। (२) जो क्रम से लगा न हो। अव्यवस्थित। अस्त व्यस्त। जैसे, तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दीं।

तितरोखी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक छोटी चिड़िया।

तितली–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पू० हिं० तितिल (चित्रित डैनों के कारण)] (१) एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिंगा जो प्रायः बगीचों में फूलों पर बैठता हुआ दिखाई करता है और फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है।

विशेष—तितली के छ पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसी दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है। दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पंख होते हैं। भिन्न भिन्न तितलियों के पंख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूटियाँ रहती हैं। पंख के अतिरिक्त इसका और शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता। गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि फतिंगों के समान तितली के शरीर का भी रूपांतर होता है। अंडे से निकलने के उपरांत यह कुछ दिनों तक गाँठदार ढोले या सूँड़े के रूप में रहती है। ऐसे ढोले प्रायः पौधों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं। इन ढोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पौधों को कभी कभी बड़ी हानि पहुँचाते हैं। छ असली पैरों के अतिरिक्त इन्हें कई पैर और होते हैं। ये ही ढोले रूपांतरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं।

(२) एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है। इसका पौधा हाथ सवा हाथ तक होता है। पत्तियाँ पतली पतली होती हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

तितलौआ–संज्ञा पु० [हिं० तीत + लौआ] कड़ुवा कद्दू।

तितलौकी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] कड़ु तुंबी। कड़ुवा कद्दू।

तितारा–संज्ञा पु० [सं० त्रि + हिं० तार] (१) सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं। उ०—बाजैं डफ, नगारा, बीन, बाँसुरी सितारा चारितारा त्यों तितारा मुरछावनी निसंक हैं।—रघुराज। (२) फसल की तीसरी बार की सिंचाई।

वि० तीन तारवाला। जिसमें तीन तार हों।

तितिंबा–संज्ञा पुं० [अ० तितिम्मा] (१) ढकोसला। (२) शेष। (३) पुस्तक या लेख का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के संबंध में लगा देते हैं। परिशिष्ट। उपसंहार।

तितिक्ष–वि० [सं०] सहनशील। क्षमाशील।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

तितिक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरदी गरमी आदि सहने की सामर्थ्य। सहिष्णुता। (२) क्षमा। शांति।

तितिक्षु–वि० [सं०] क्षमाशील। शांत। सहिष्णु।

संज्ञा पुं० पुरुवंशीय एक राजा जो महामना का पुत्र था।

तितिम्मा–संज्ञा पु० [अ०] (१) बचा हुआ भाग। अवशिष्ट अंश। (२) किसी ग्रंथ के अंत में लगाया हुआ प्रकरण। परिशिष्ट।

तितिल–संज्ञा पु० [सं०] (१) ज्योतिष में सात करणों में से एक। दे० "तैतिल"। (२) नाँद नाम का मिट्टी का बरतन।

तितीर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तैरने की इच्छा। (२) तर जाने की इच्छा।

तितीर्षु–वि० [सं०] (१) तैरने की इच्छा करनेवाला। (२) तरने का अभिलाषी।

तितुला†–संज्ञा पु० [देश०] गाड़ी के पहिये का आरा।

तितेक*†वि० [सं० तति] उतने। (संख्यावाचक)

तितेक*†–वि० [हिं० तितो + एक] उतना।

तितै†*–क्रि० वि० [हिं० तित + ऐ (प्रत्य०)] (१) वहाँ ही। वहीं। (२) वहाँ। (३) उधर।

तितो*†–वि० [सं० तति] उतना। उस मात्रा या परिमाण का।

क्रि० वि० उतना।

तित्तिर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तित्तिरी] (१) तीतर नाम का पक्षी। (२) तितली नाम की घास।

तित्तिरि–संज्ञा पु० [सं०] (१) तीतर पक्षी। (२) यजुर्वेद की एक शाखा का नाम। दे० "तैत्तिरीय"। (३) यास्क मुनि के एक शिष्य जिन्होंने तैत्तिरीय शाखा चलाई। (आत्रेय अनुक्रमणिका)

विशेष—भागवत आदि पुराणों के अनुसार वैशंपायन के शिष्य मुनियों ने तीतर पक्षी बन कर याज्ञवल्क्य के उगले हुए यजुर्वेद को चुँगा था।

तिथ–संज्ञा पु० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) कामदेव। (३) काल। (४) वर्षाकाल।

तिथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के क्रम के अनुसार गिने जानेवाले महीने के दिन। चांद्रमास के अलग अलग दिन जिन के नाम संख्या के अनुसार होते हैं। मिति। तारीख।

यौ०—तिथिक्षय। तिथिवृद्धि।

विशेष—पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं कृष्णा और शुक्ला। प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियाँ होती हैं जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिवा), द्वितीया (दूज), तृतीया (तीज), चतुर्थी (चौथ), पंचमी, षष्ठी (छठ), सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (दुआस),

तिक्तयवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी।

तिक्तरोहिणिका–संज्ञा स्त्री० दे० "तिक्तरोहिणी"।

तिक्तरोहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

तिक्तवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मुर्रा। मरोरफली। चुरनहार।

तिक्तबीजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तशाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) वरुणवृक्ष। (३) पत्रसुंदर शाक।

तिक्तसार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहिस नाम की घास। (२) खैर का पेड़।

तिक्तांगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पातालगारुड़ी लता। छिरेंटा।

तिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। कटुका। (२) पाठा। (३) यवतिक्ता लता। (४) खरबूजा। (५) छिकनी नाम का पौधा। नकछिकनी।

तिक्ताख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तितलौकी। (२) काकमाची। (३) कुटकी।

तिक्किरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तूमड़ी या महुअर नाम का बाजा जिसे प्रायः सँपेरे बजाते हैं।

तिक्ष*†–वि० [सं० तीक्ष्ण] (१) तीक्ष्ण। तेज़। (२) चोखा। पैना। उ०—धनु बान तिक्ष कुठार केशव मेखला मृगचर्म सों। रघुबीर को यह देखिये रसवीर सात्विक धर्म सों।—केशव।

तिक्षता*–संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेज़ी। उ०—शूर वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिन की हई।—केशव।

तिख–वि० [सं० त्रि] तीन बार का जोता हुआ। तिबहा (खेत)।

तिखटी*†–संज्ञा स्त्री० दे० "टिकठी"।

तिखरा–वि० दे० "तिख"।

तिखाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] तीखापन। तीक्ष्णता। तेज़ी।

तिखारना†–क्रि० स० [सं० त्रि + हिं० आखर] किसी बात को दृढ़ या निश्चित करने के लिये तीन बार पूछना। पक्का करने के लिये कई बार कहलाना।

विशेष—तीन बार कह कर जो प्रतिज्ञा की जाती है वह बहुत पक्की समझी जाती है।

तिखूँटा–वि० [हिं० तीन + खूँट] तीन कोने का। जिस में तीन कोने हों। तिकोना।

तिगना–क्रि० स० [देश०] देखना। नज़र डालना। भाँपना। (दलाली)

तिगुना–वि० [सं० त्रिगुण] [स्त्री० तिगुनी] तीन बार अधिक। तीन गुना।

तिगूचना–क्रि० स० दे० "तिगना"।

तिग्म–वि० [सं०] तीक्ष्ण। खरा। तेज़।

यौ०—तिग्मकर। तिग्मदीधिति। तिग्ममन्यु। तिग्मरश्मि। तिग्मांशु।

संज्ञा पुं० (१) वज्र। (२) पिप्पली (अनेकार्थ)। (३) पुरुवंशीय एक क्षत्रिय। (मत्स्य पु०)

तिग्मकर–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

तिग्मकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो वत्सर और सुवीथी के पुत्र थे। (भागवत)

तिग्मता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता।

तिग्मदीधिति–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

तिग्ममन्यु–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तिग्मरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

तिग्मांशु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

तिघरा†–संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन जिसमें दूध दही रखा जाता है। मटकी।

तिचिया–संज्ञा पुं० [?] जहाज पर के वे आदमी जो आकाश में नक्षत्रों को देखते हैं। (लश०)

तिच्छ*–वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तिच्छन*–वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तिजरा–संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजारी।

तिजवाँसा–संज्ञा पुं० [हिं० तीजा = तीसरा + मास = महीना] वह उत्सव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर उसके कुटुंब के लोग करते हैं।

तिजहरिया†–संज्ञा पुं० [हिं० तीजा = तीसरा + पहर] तीसरा पहर। अपराह्न।

तिजार†–संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर।

तिजारत–संज्ञा स्त्री० [अ०] वाणिज्य। बनिज। व्यापार। रोजगार। सौदागरी।

तिजारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिजार] तीसरे दिन जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर।

तिजिया†–संज्ञा पुं० [हिं० तीजा = तीसरा] वह मनुष्य जिसका तीसरा विवाह हो।

तिड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि = तीन] ताश का वह पत्ता जिसमें तीन बूटियाँ हों।

तिड़ी बिड़ी†–वि० [देश०] तितर बितर। छितराया हुआ।

तित*–क्रि० वि० [सं० तत्र] (१) तहाँ। वहाँ। (२) उधर। उस ओर। उ०—जित देखौं तित श्याममयी है।—सूर।

तितना†–क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतना। उसके बराबर।

विशेष—'जितना' के साथ आए हुए वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है।

तिनके की ओट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का छिपा रहना । सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा एहसान करना । (२) किसी प्रकार थोड़ा बहुत काम करके उपकार का नाम करना ।

तिनगना–क्रि० अ० दे० 'तिनकना' ।

तिनगरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पकवान । उ०—पेठा पाक जलेबी पेरा । गोंद-पाग तिनगरी गिँदौरा ।—सूर ।

तिनतिरिया–संज्ञा पु० [देश०] मनुवा कपास ।

तिनधरा–संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन धार की रेती जिससे आरी के दाँते चोखे किए जाते हैं ।

तिनपहल–वि० दे० "तिनपहला" ।

तिनपहला–वि० [हिं० तीन + पहल] [स्त्री० तिनपहली] जिसमें तीन पहल हों । जिसके तीन पार्श्व हों ।

तिनमिना–संज्ञा पु० [हिं० तीन + मनिया] माला जिसके बीच में सोने का या जड़ाऊ जुगनू हो ।

तिनवा–संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बरमा में बहुत होता है । आसाम और छोटा नागपुर में भी यह पाया जाता है । यह इमारतों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में आता है । इसके चोंगों में बरमा, मनीपुर आदि के लोग भात भी पकाते हैं ।

तिनस–संज्ञा पुं० दे० "तिनिश" ।

तिनसुना–संज्ञा पु० [सं०] तिनिश का पेड़ ।

तिनाशक–संज्ञा पु० [सं०] तिनिश वृक्ष ।

तिनास–संज्ञा पु० दे० "तिनिश" ।

तिनिश–संज्ञा पु० [सं०] सीसम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शमी या खैर की सी होती हैं । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और किवाड़, गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है । इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं । वैद्यक में यह कसैला और गरम माना जाता है । रक्तातिसार, कोढ़, दाद, रक्तविकार आदि में इसकी छाल, पत्तियाँ आदि दी जाती हैं ।

पर्य्या०—स्यंदन । नेमी । रथद्रु । अतिमुक्तक । चित्रकृत । चक्री । शतांग । शकट । रथिक । भस्मगर्भ । मेषी । जलधर । वंचक । तिनाशक ।

तिनुका–संज्ञा पुं० दे० "तिनका" ।

तिनूका*†–संज्ञा पुं० दे० "तिनका" । उ०—होय तिनूका वज्र वज्र तिनका है टूटै ।—गिरिधर ।

तिन्ना–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सती नामक वर्णवृत्त । (२) रोटी के साथ खाने की रसेदार वस्तु । (३) तिन्नी के धान का पौधा ।

तिन्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० तृण, हिं० तिन] एक प्रकार का जंगली धान जो तालों में आप से आप होता है । इसकी पत्तियाँ जड़हन की पत्तियों की सी ही होती हैं । पौधा तीन चार हाथ तक ऊँचा होता है । कातिक में इसकी बाल फूटती है जिसमें बहुत लंबे लंबे टूँड़ होते हैं । बाल के दाने तैयार होने पर गिरने लगते हैं, इसीसे इकट्ठा करनेवाले या तो झटके में दानों को झाड़ लेते हैं अथवा बहुत से पौधों के सिरों को एक में बाँध देते हैं । तिन्नी का धान लंबा और पतला होता है । चावल खाने में नीरस और रूखा लगता है और व्रत आदि में खाया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] नीवी । फुफुंदी ।

तिन्ह†–सर्व० दे० "तिन" ।

तिपड़ा–संज्ञा पु० [हिं० तीन + पट] कमखाब बुननेवालों के करघे की वह लकड़ी जिसमें तागा लपेटा रहता है और जो दोनों बैसरों के बीच में होती है ।

तिपति*†–संज्ञा स्त्री० दे० "तृप्ति" ।

तिपल्ला–वि० [हिं० तीन + पल्ला] (१) तीन पल्लों का । जिसमें तीन पर्त्त या पार्श्व हों । (२) तीन तागे का । जिसमें तीन तागे हों ।

तिपाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + पाय] (१) तीन पायों की बैठने की छोटी ऊँची चौकी । स्टूल । (२) पानी के घड़े रखने की ऊँची चौकी । टिकटी । तिगोड़िया । (३) लकड़ी का एक चौखटा जिसे रँगरेज काम में लाते हैं ।

तिपाड़–संज्ञा पु० [हिं० तीन + पाट] (१) जो तीन पाट जोड़कर बना हो । उ०—दच्छिन चीर तिपाड़ को लहँगा । पहिरि विविध पट मोलन महँगा ।—सूर । (२) जिसमें तीन पल्ले हों । (३) जिसमें तीन किनारे हों ।

तिपारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जो बरसात में आप से आप इधर उधर जमता है । इसकी पत्तियाँ छोटी और सिरे पर नुकीली होती हैं । इसमें सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं । फल संपुट के आकार के एक झिल्लीदार कोश में रहते हैं जिसमें नसों के द्वारा कई पहल बने रहते हैं । मकोय । परपोटा । छोटी रसभरी ।

तिपैरा–संज्ञा पु० [हिं० तीन + पुर] वह बड़ा कुआँ जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें ।

तिबद्धी–वि० स्त्री० [हिं० तीन + बध] (चारपाई की बुनावट) जिसमें तीन बाध या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार खींची जायँ ।

तिबाई†–संज्ञा स्त्री० [देश०] आटा माड़ने का छिछला बड़ा बरतन ।

तिबारा–वि० [हिं० तीन + बार] तीसरी बार ।

संज्ञा पु० तीन बार उतारा हुआ मद्य ।

संज्ञा पुं० [हिं० तीन + बार = दरवाजा] [स्त्री० तिबारी] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों ।

त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस), पूर्णिमा या अमावास्या। कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि अमावास्या और शुक्लपक्ष की पूर्णिमा कहलाती है। इन तिथियों के पाँच वर्ग किए गए हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम नंदा; द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम भद्रा; तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी का नाम जया; चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी का नाम रिक्ता और पंचमी, दशमी, और पूर्णिमा या अमावास्या का नाम पूर्णा है। तिथियों का मान नियत होता है अर्थात् सब तिथियाँ बराबर दंडों की नहीं होतीं।

(२) पंद्रह की संख्या।

तिथिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] तिथि की हानि। किसी तिथि का गिनती में न आना।

विशेष—ऐसा तब होता है जब एक ही दिन में अर्थात् दो सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। ऐसी अवस्था में जो तिथि सूर्य्य के उदयकाल में नहीं पड़ती बीच में पड़ती है उसका क्षय माना जाता है।

तिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता।

विशेष—भिन्न भिन्न ग्रंथों के अनुसार ये अधिपति भिन्न भिन्न हैं। जिस तिथि का जो देवता है उसका उक्त तिथि को पूजन होता है।

तिथि	देवता	
	बृहत्संहिता	वसिष्ट
१	ब्रह्मा	अग्नि
२	विधाता	विधाता
३	हरि	गौरी
४	यम	गणेश
५	चंद्रमा	सर्प
६	षड़ानन	षड़ानन
७	शक्र	सूर्य्य
८	वसु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विश्वेदेवा
१२	सविता	हरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विश्वेदेवा	चंद्रमा
अमावास्या	पितर	पितर

तिथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पत्रा। पंचांग। जंत्री।

तिथिप्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तिथ्यर्ध—संज्ञा पुं० [सं०] करण।

तिदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + फ़ा० दर] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाज़े या खिड़कियाँ हों।

तिदारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल के किनारे रहनेवाली बत्तख की तरह की एक चिड़िया जो बहुत तेज़ उड़ती है और ज़मीन पर सूखी घास का घोंसला बनाती है। इसका लोग शिकार करते हैं।

तिद्वारी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिद्वार] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाज़े या खिड़कियाँ हों।

तिधर†—क्रि० वि० [सं० तत्र] उधर। उस ओर।

तिधारा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधार] एक प्रकार का थूहर (सेंहुड़) जिसमें पत्ते नहीं होते। इसमें उँगलियों की तरह शाखाएँ ऊपर को निकलती हैं। इसे बगीचों आदि की बाढ़ या टट्टी के लिये लगाते हैं। इसे वज्री या नरसेज भी कहते हैं।

तिधारीकांडवेल—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड़जोड़।

तिन†—सर्व० [सं० तेन = उनसे] 'तिस' शब्द का बहुवचन। जैसे, तिनने, तिनको, तिनसे इत्यादिक। उ०—तिन कवि केशवदास सों कीनो धर्म सनेह।—केशव।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता।

संज्ञा पुं० [सं० तृण] तिनका। तृण। घासफूस। उ०—ह्वै कपूर मनिमय रही मिलति न दुति मुकुतालि। छिन छिन खरी विचच्छनौ लखहि छाय तिन आलि।—बिहारी।

तिनकना—क्रि० अ० [हिं० चिनगारी, चिनगी, वा अनु०] चिड़चिड़ाना। चिढ़ना। झल्लाना। बिगड़ना। नाराज़ होना।

तिनका—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण। तृण का टुकड़ा। सूखी घास या डाँठी का टुकड़ा।

मुहा०—तिनका दाँतों में पकड़ना वा लेना = विनती करना। क्षमा या कृपा के लिये दीनतापूर्वक विनय करना। गिड़गिड़ाना। हा हा खाना। तिनका तोड़ना = (१) संबंध तोड़ना। (२) बलाय लेना। बलैया लेना। (बच्चे को नज़र न लगे, इस लिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है)। तिनके चुनना = बेसुध हो जाना। अचेत होना। पागल वा बावला हो जाना। (पागल प्रायः व्यर्थ के काम किया करते हैं)। तिनके चुनवाना = (१) पागल बना देना। (२) मोहित करना। तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा। (२) ऐसी बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत ढाढस बँधे। तिनके को पहाड़ करना = छोटी बात को बड़ी कर डालना। तिनके को पहाड़ कर दिखाना = थोड़ी सी बात को बहुत बढ़ा कर कहना।

तियला–संज्ञा पुं० [हिं० तिय + ला (प्रत्य०)] स्त्रियों का पहिरावा। उ०—ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय सुथरे तियले पहराय...दक्षिणा दी।—लल्लू।

तिया–संज्ञा पुं० [सं० त्रि] (१) गंजीफे या ताश का वह पत्ता जिस पर तीन बूटियाँ होती हैं। (२) नक्कीपूर के खेल में वह दाँव जो पूरे पूरे गंडों के गिनने के बाद तीन कौड़ियाँ बचने पर होता है।

* संज्ञा स्त्री० दे० "तिय"।

तिरकट–संज्ञा पुं० [?] आगे का पाल। अगला पाल। (लश०)

तिरकट गावासवाई–संज्ञा पुं० [?] आगे का और सब से ऊपर सिरे पर का पाल। (लश०)

तिरकट गावी–संज्ञा पुं० [?] सिरे पर का पाल। (लश०)

तिरकट डोल–संज्ञा पुं० [?] आगे का मस्तूल। (लश०)

तिरकट तवर–संज्ञा पुं० [?] वह छोटा चौकोर आगे का पाल जो सब से बड़े मस्तूल के ऊपर आगे की ओर लगाया जाता है। इसका व्यवहार बहुत धीमी हवा चलने के समय होता है। (लश०)

तिरकट सवर–संज्ञा पुं० [?] सब से ऊपर का पाल। (लश०)

तिरकट सवाई–संज्ञा पुं० [?] आगे का वह पाल जो उस रस्से में बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये लगाया जाता है। (लश०)

तिरकना†–क्रि० अ० [अनु०] तड़कना। चटखना। फट जाना।

तिरकस†–वि० [सं० तिरस्] टेढ़ा।

तिरकाना–क्रि० स० [?] (१) ढीला छोड़ना। (लश०) (२) रस्सा ढीली करना। बहासी छोड़ना। (लश०)

तिरकुटा–संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च, पीपल इन तीन कड़ुई औषधों का समूह।

तिरखा*†–संज्ञा स्त्री० दे० "तृषा"।

तिरखित*–वि० दे० "तृषित"।

तिरखूँटा–वि० [सं० त्रि + हिं० खूँट] [स्त्री० तिरखूँटी] जिसमें तीन खूँट या कोने हों। तिकोना।

तिरच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश वृक्ष।

तिरछई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा] तिरछापन।

तिरछउड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + उड़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी के शरीर का कोई भाग ज़मीन पर नहीं लगता, एक कंधा झुका कर और एक पाँव उठा कर वह शरीर को चक्कर देता है। इसे छलांग भी कहते हैं।

तिरछा–वि० [सं० तिर्यक् वा तिरस्] [स्त्री० तिरछी] (१) जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो न बिलकुल खड़ा हो और न बिलकुल आड़ा हो। जो न ठीक ऊपर की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर। जो ठीक सामने की ओर न जाकर इधर उधर हट कर गया हो। जैसे, तिरछी लकीर।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है। टेढ़ा वह है जो अपने लक्ष्य पर सीधा न गया हो, इधर उधर मुड़ता या घूमता हुआ गया हो। पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया हो पर जिसका लक्ष्य ही ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में न हो। (टेढ़ी रेखा ∼∼∼। तिरछी रेखा ⁄)

यौ०—बाँका तिरछा = छबीला। जैसे, बाँका तिरछा जवान।

मुहा०—तिरछी टोपी = बगल में कुछ झुका कर सिर पर रखी हुई टोपी। तिरछी चितवन = बिना सिर फेरे हुए बगल की ओर दृष्टि। (जब लोगों की दृष्टि बचा कर किसी ओर ताकना होता है तब लोग, विशेषतः प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से देखते हैं)। तिरछी नज़र = दे० "तिरछी चितवन"। तिरछी बात या तिरछा वचन = कटु वाक्य। अप्रिय शब्द। उ०—हरि उदास सुनि वचन तिरीछे।—सबल।

(२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्रायः अस्तर के काम में आता है।

तिरछाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन।

तिरछाना–क्रि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछा होना।

तिरछापन–संज्ञा पुं० [हिं० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने का भाव।

तिरछी–वि० स्त्री० दे० "तिरछा"।

तिरछी बैठक–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछी + बैठक] मालखंभ की एक कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी की ऐंठन की तरह परस्पर गुथ कर ऊपर बढ़ते हैं।

तिरछौहाँ–वि० [हिं० तिरछा + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० तिरछौहीं] कुछ तिरछा। जो कुछ तिरछापन लिए हो। जैसे, तिरछौहीं दीठ।

तिरछौहैं–क्रि० वि० [हिं० तिरछौहाँ] तिरछापन लिए हुए। तिरछेपन के साथ। वक्रता से। जैसे, तिरछौहैं ताकना।

तिरतालीस†–वि० दे० "तैंतालीस"।

तिरतिराना†–क्रि० अ० [अनु०] बूँद बूँद करके टपकना।

तिरना–क्रि० अ० [सं० तरण] (१) पानी के ऊपर आना या ठहरना। पानी में न डूब कर सतह के ऊपर रहना। उतराना। (२) तैरना। पैरना। (३) पार होना। (४) तरना। मुक्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।

तिरनी–संज्ञा स्त्री० [?] (१) वह डोरी जिससे घाघरा या धोती नाभि के पास बँधी रहती है। नीवी। निवी।

तिबासी–वि० [हिं० तीन + वासी] तीन दिन का वासी (खाद्य पदार्थ)।

तिबी–संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी।

तिब्बत– संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भोट] एक देश जो हिमालय पर्वत के उत्तर पड़ता है।

विशेष—इस देश को हिंदुस्तान में भोट कहते हैं। इसके तीन विभाग माने जाते हैं। छोटा तिब्बत, बड़ा तिब्बत और खास तिब्बत। तिब्बत बहुत ठंढा देश है इससे वहाँ पेड़ पौधे बहुत कम उगते हैं। यहाँ के निवासी तातारियों से मिलते जुलते होते हैं और अधिकतर ऊन के कंबल, कपड़े आदि बुन कर अपना निर्वाह करते हैं। यह देश कस्तूरी और चँवर के लिये प्रसिद्ध है। सुरागाय और कस्तूरी मृग यहाँ बहुत पाए जाते हैं। तिब्बत के रहनेवाले सब महायान शाखा के बौद्ध हैं। यहाँ बौद्धों के अनेक मठ और महंत हैं। कैलास पर्वत और मानसरोवर झील तिब्बत ही में हैं। ये हिंदू और बौद्ध दोनों के तीर्थस्थान हैं। कुछ लोग "तिब्बत" को त्रिविष्टप का अपभ्रंश बतलाते हैं।

तिब्बती–वि० [तिब्बत] तिब्बत संबंधी। तिब्बत का। तिब्बत में उत्पन्न। जैसे, तिब्बती आदमी, तिब्बती भाषा।
संज्ञा स्त्री० तिब्बत की भाषा।
संज्ञा पुं० तिब्बत देश का रहनेवाला।

तिमंज़िला–वि० [हिं० तीन + अ० मंज़िल] [स्त्री० तिमंज़िली] तीन खंडों का। तीन मरातिब का। जैसे, तिमंज़िला मकान।

तिम–संज्ञा पुं० [हिं० डिंडिम] नगारा। डंका। दुंदुभी। (डिं०)

तिमाना†–क्रि० स० [देश०] भिगोना। तर करना।

तिमाशी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + माशा] (१) तीन माशे की एक तौल। (२) ४० जौ की एक तौल जो पहाड़ी देशों में प्रचलित है।

तिमिंगिल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र में रहनेवाला मत्स्य के आकार का एक बड़ा भारी जंतु जो तिमि नामक बड़े मत्स्य को भी निगल सकता है। बड़ी भारी ह्वेल। (२) एक द्वीप का नाम। (३) उस द्वीप का निवासी।

तिमिंगिलाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण का एक देश-विभाग जिसके अंतर्गत लंका आदि हैं और जहाँ के निवासी तिमिंगिल मत्स्य का मांस खाते हैं। (वृहत्संहिता)। (२) उक्त देश का निवासी।

तिमि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार का एक बड़ा भारी जंतु।

विशेष—लोगों का अनुमान है कि यह जंतु ह्वेल है।

(२) समुद्र। (३) आँख का एक रोग जिसमें रात को सुझाई नहीं पड़ता। रतौंधी।

* अव्य० [सं० तद् + इमि] उस प्रकार। वैसे।

विशेष—इसका व्यवहार "जिमि" के साथ होता है।

तिमिकोश–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

तिमिज–संज्ञा पुं० [सं०] तिमि नामक मत्स्य से निकलनेवाला मोती। (वृहत्संहिता)

तिमित–वि० [सं०] (१) निश्चल। अचल। स्थिर। (२) क्लिन्न। भींगा। आर्द्र।

तिमिध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] शंबर नामक दैत्य जिसे मार कर रामचंद्र ने ब्रह्मा से दिव्यास्त्र प्राप्त किया था।

तिमिर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) आँख का एक रोग जिसके अनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं। आँखों से धुँधला दिखाई पड़ना, चीजें रंग बिरंग की दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि सब दोष इसी के अंतर्गत माने गए हैं। (३) एक पेड़। (वाल्मीकि०)

तिमिरनुद्–वि० [सं०] अंधकार का नाश करनेवाला।
संज्ञा पुं० सूर्य्य।

तिमिरभिद्–वि० [सं०] अंधकार को भेदने या नाश करनेवाला।
संज्ञा पुं० सूर्य्य।

तिमिररिपु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य। भास्कर।

तिमिरहर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) दीपक।

तिमिरारि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार का शत्रु। (२) सूर्य्य।

तिमिरारी*–संज्ञा स्त्री० [सं० तिमिराली] अंधकार का समूह। अँधेरा। उ०—मधुप से नैन वर बंधुदल ऐस हेठ श्रीफल से कुच कच बेलि तिमिरारी सी।—देव।

तिमिरावलि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार का समूह। उ०—तिमिरावलि साँवरे दंतन के हित मैन धरे मनो दीपक है।—सुंदरीसर्वस्व।

तिमिष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ककड़ी। फूट। (२) पेठा। सफेद कुम्हड़ा। (३) तरबूज़।

तिमी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिमि मत्स्य। (२) दक्ष की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और तिमिंगलों की माता थी।

तिमीर–संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तिमुहानी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + फ़ा० मुहाना] (१) वह स्थान जहाँ तीन ओर जाने को तीन फाटक या मार्ग हों। तिरमुहानी। (२) वह स्थान जहाँ तीन ओर से नदियाँ आकर मिली हों।

तिय*–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] (१) स्त्री। औरत। (२) पत्नी। भार्य्या। जोरू।

तियतरा†–वि० [सं० त्रि + अंतर] [स्त्री० तियतरी] वह बेटा जो तीन बेटियों के बाद पैदा हो।

(वह मंत्र) जिसके मध्य में दकार हो और मस्तक पर दो कवच और अस्त्र हों।

तिरस्क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिरस्कार। अनादर। (२) आच्छादन। (३) वस्त्र। पहरावा।

तिरहा†–संज्ञा पुं० [देश०] एक फतिंगा जो धान के फूल को नष्ट कर देता है।

तिरहुत–संज्ञा पुं० [सं० तीरभुक्ति] [वि० तिरहुतिया] मिथिला प्रदेश जिसके अंतर्गत आजकल बिहार के दो जिले हैं—मुजफ्फरपुर और दरभंगा।

तिरहुतिया–वि० [हिं० तिरहुत] तिरहुत का। तिरहुत संबंधी।
संज्ञा पुं० तिरहुत का रहनेवाला।
संज्ञा स्त्री० तिरहुत की बोली।

तिरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है। एक तेलहन।

तिराटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोत।

तिरानबे–वि० [सं० त्रिनवति, प्रा० तिनवइ] जो गिनती में नब्बे से तीन अधिक हो। तीन ऊपर नब्बे।
संज्ञा पुं० (१) नब्बे से तीन अधिक की संख्या। (२) उक्त संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९३।

तिराना–क्रि० स० [हिं० तिरना] (१) पानी के ऊपर ठहराना। (२) पानी के ऊपर चलाना। तैराना। (३) पार करना। (४) उबारना। तारना। निस्तार करना।

तिरास‡–संज्ञा पुं० दे० "त्रास"।

तिरासना‡–क्रि० स० [सं० त्रासन] त्रास दिखाना। डराना। भयभीत करना।

तिरासी–वि० [सं० त्र्यशीति, प्रा० तियासीति] जो गिनती में अस्सी से तीन अधिक हो। तीन ऊपर अस्सी।
संज्ञा पुं० (१) अस्सी से तीन अधिक की संख्या। (२) उक्त संख्या सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है —८३।

तिराहा–संज्ञा पुं० [हिं० तीन + फ़ा० राह] वह स्थान जहाँ से तीन रास्ते तीन ओर को गए हों। तिरमुहानी।

तिराही–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी कटारी या तलवार।

तिरिजिह्वक–संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तिरिन‡*–संज्ञा पुं० दे० "तृण"।

तिरिम–संज्ञा पुं० [सं०] शालि भेद। एक प्रकार का धान।

तिरिया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री। औरत। उ०—तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी।—जायसी।
यौ०—तिरिया चरित्तर=स्त्रियों का रहस्य।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो नैपाल में होता है। इसे ग्रोखा भी कहते हैं।

तिरीछा‡*–वि० दे० "तिरछा"।

तिरीट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध्र। लोध। (२) किरीट।

तिरीफल–संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीफल] दंतीवृक्ष।

तिरीविरी–वि० दे० "तिड़ीबिड़ी"।

तिरँदा–संज्ञा पुं० [सं० तरंड] (१) समुद्र में तैरता हुआ पीपा जो संकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी छिछला होता है, चट्टानें होती हैं, या इसी प्रकार की और कोई बाधा होती है। (ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं। किसी किसी के ऊपर घंटा या सीटी भी लगी रहती है)। (२) मछली मारने की बंसी में कटिया से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर बँधी हुई पाँच छ अंगुल की लकड़ी जो पानी पर तैरती रहती है और जिसके डूबने से मछली के फँसने का पता लगता है। (३) "तरेंदा"।

तिरैं–संज्ञा पुं० [अनु०] फीलवानों का एक शब्द जिसे वे नहाते हुए हाथियों को लेटाने के लिये बोलते हैं।

तिरोधान–संज्ञा पुं० [सं०] अंतर्द्धान। अदर्शन। गोपन।

तिरोधायक–संज्ञा पुं० [सं०] आड़ करनेवाला। छिपानेवाला। गुप्त करनेवाला।

तिरोभाव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतर्द्धान। अदर्शन। (२) गोपन। छिपाव।

तिरोभूत–वि० [सं०] गुप्त। छिपा हुआ। अदृष्ट। अंतर्हित। गायब।

तिरोहित–वि० [सं०] (१) छिपा हुआ। अंतर्हित। अदृष्ट। (२) आच्छादित। ढका हुआ।

तिरौंछा‡*–वि० दे० "तिरछा"। उ०—कठिन बचन सुनि श्रवन जानकी सकी न बचन सहार। तृण अंतर दै दृष्टि तिरौंछी दई नैन जलधार।—सूर।

तिरौंदा–संज्ञा पुं० दे० "तिरेंदा"।

तिर्यंचानुपूर्वी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रानुसार जीव की वह गति जिसमें उसे तिर्यग्योनि में जाते हुए कुछ काल तक रहना पड़ता है।

तिर्यंची–संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु पक्षियों की मादा।

तिर्यक्–वि० [सं०] तिरछा। आड़ा। टेढ़ा।
विशेष—मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी आदि जीव तिर्यक् कहलाते हैं क्योंकि खड़े होने में उनके शरीर का विस्तार ऊपर की ओर नहीं रहता, आड़ा होता है। इन का खाया हुआ अन्न सीधे ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता बल्कि आड़ा होकर पेट में जाता है।

तिर्यक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरछापन। आड़ापन।

तिर्यक्त्व–संज्ञा पुं० [सं०] तिरछापन आड़ापन।

तिर्यक्पाती–वि० [सं० तिर्यक्पातिन्] [स्त्री० तिर्यक्पातिनी] आड़ा फैलाया या रखा हुआ। बेंड़ा रखा हुआ।

फुफती। (२) स्त्रियों के घाघरे या धोती का वह भाग जो नाभि के नीचे पड़ता है। उ०—बेनी सुभग नितंबनि डोलत मंदगामिनी नारी। सूथन जघन बाँधि नारावँद तिरनी पर छवि भारी।—सूर।

तिरप—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] नृत्य में एक प्रकार का ताल जिसे त्रिसम या तिहाई कहते हैं। उ०—तिरप लेति चपला सी चमकति झमकति भूषण अंग। या छवि पर उपमा कहुँ नाहीं निरपत विवस अनंग।—सूर।

क्रि० प्र०—लेना।

तिरपट†—वि० [देश०] (१) तिरछा। टेढ़ा। टेढ़-बिड़ंगा। (२) मुश्किल। कठिन। विकट।

तिरपटा—वि० [देश०] तिरछा ताकनेवाला। भेंगा। ऐंचाताना।

तिरपन—वि० [सं० त्रिपंचाशत्, प्रा० तिपण्णा] जो गिनती में पचास से तीन और अधिक हो। पचास से तीन ऊपर।

संज्ञा पुं० (१) पचास से तीन अधिक की संख्या। (२) उक्त संख्या सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५३।

तिरपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपाद] तीन पायों की ऊँची चौकी। स्टूल।

तिरपाल—संज्ञा पुं० [सं० तृण + हिं० पालना = बिछाना] फूस या सरकंडों के लंबे पूले जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं। मुट्ठा।

संज्ञा पुं० [अं० टारपालिन] रोगन चढ़ा हुआ कनवस। राल चढ़ाया हुआ टाट।

तिरपित*†—वि० दे० "तृप्त"।

तिरपौलिया—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० पोल = फाटक] वह स्थान जहाँ बराबर से ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिनसे होकर हाथी, घोड़े, ऊँट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सकें। (ऐसे फाटक किलों या महलों के सामने या बड़े बाजारों के बीच होते हैं)

तिरफला—संज्ञा पुं० दे० "त्रिफला"।

तिरवेनी—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवेणी"।

तिरवो—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरना] सिंध देश में एक प्रकार की नाव का नाम।

तिरमिरा—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर] (१) दुर्बलता के कारण दृष्टि का एक दोष जिसमें आँखें प्रकाश के सामने नहीं ठहरतीं और ताकने में कभी अँधेरा, कभी अनेक प्रकार के रंग, और कभी छिटकती हुई चिनगारियाँ या तारे से दिखाई पड़ते हैं। (२) कमजोरी से ताकने में जो तारे से छिटकते दिखाई पड़ते हैं उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं। (३) तीक्ष्ण प्रकाश या गहरी चमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता। तेज़ रोशनी में नजर का न ठहरना। चकाचौंध।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा पुं० [हिं० तेल + मिलना] घी, तेल या चिकनाई के छींटे जो पानी, दूध या और किसी द्रव पदार्थ (जैसे, दाल, रसा आदि) के ऊपर तैरते दिखाई देते हैं।

तिरमिराना—क्रि० अ० [हिं० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के सामने न ठहरना। तेज रोशनी या चमक के सामने (आँखों का) झपना। चौंधना। चौंधियाना।

तिरलोक†—संज्ञा पुं० दे० "त्रिलोक"।

तिरलोकी†—संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिलोकी"।

तिरवट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का राग जो तराने वा तिल्लाने का एक भेद है।

तिरवराना†—क्रि० अ० दे० "तिरमिराना"।

तिरवा—संज्ञा पुं० [फा०] इतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके।

तिरवाह†—संज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] नदी के तीर की भूमि।

क्रि० वि० किनारे किनारे। तट से।

तिरश्चीन—वि० [सं०] (१) तिरछा। (२) टेढ़ा। कुटिल।

तिरश्चीन गति—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लयुद्ध की एक गति। कुश्ती का एक पैतरा।

तिरसठ—वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसट्ठि] जो गिनती में साठ से तीन अधिक हो। साठ से तीन ऊपर।

संज्ञा पुं० (१) वह संख्या जो साठ से तीन अधिक हो। (२) उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३।

तिरसा—संज्ञा पुं० [?] वह पाल जिसका एक सिरा चौड़ा और एक सँकरा होता है। (लश०)

तिरसूल†—संज्ञा पुं० दे० "त्रिशूल"।

तिरस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादक। परदा करनेवाला। ढकिनेवाला।

तिरस्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ओट। आड़। (२) परदा। कनात। चिक। (३) वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अदृश्य हो सकता है।

तिरस्करी—संज्ञा पुं० [सं० तिरस्करिन्] [स्त्री० तिरस्करिणी] आच्छादक। परदा।

तिरस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] (१) अनादर। अपमान। (२) भर्त्सना। फटकार। (३) अनादरपूर्वक त्याग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तिरस्कृत—वि० [सं०] (१) जिसका तिरस्कार किया गया हो। अनादृत। (२) अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ। (३) आच्छादित। परदे में छिपा हुआ। (४) तंत्र के अनुसार

जगह खाली न रहना। पूरा स्थान छिका रहना। तिल बँधना = सूर्यकांत शीशे से होकर आए हुए सूर्य के प्रकाश का केंद्रीभूत होकर बिंदु के रूप में पड़ना। तिल भर = (१) जरा सा। थोड़ा सा। उ०—रहा चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई।—तुलसी। † (२) क्षण भर। थोड़ा देर। (किसी के) तिलों से तेल निकालना = किसी से किसी प्रकार रुपया लेकर वहीं उसके काम में लगाना।

(२) काले रंग का छोटा दाग जो शरीर पर होता है। उ०—चिबुक कूप रसरी अलक तिल सु चरस दृग बैल। बारी बयस गुलाब की सींचत मन्मथ छैल।—रसलीन।

विशेष—सामुद्रिक तिलों के स्थान से अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं। पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर और स्त्री के शरीर में बाईं ओर का तिल अच्छा माना जाता है। हथेली का तिल सौभाग्य-सूचक समझा जाता है।

(३) काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये गाल, ठुड्डी आदि गोदाती हैं।

क्रि० प्र०—बनाना।—लगाना।

(४) आँख की पुतली के बीचो बीच की गोल बिंदी जिस में सामने पड़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।

तिलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु-कांची। काली कौवाठोंठी।

तिलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चिह्न जिसे गीले चंदन, केसर आदि से मस्तक बाहु आदि अंगों पर सांप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं। टीका।

विशेष—भिन्न भिन्न संप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। वैष्णव खड़ा तिलक या ऊर्ध्व पुंड्र लगाते हैं जिस के संप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं। शैव आड़ा तिलक या त्रिपुंड्र लगाते हैं। शाक्त लोग रक्त चंदन का आड़ा टीका लगाते हैं। वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक है। ब्रह्म पुराण में ऊर्ध्व पुंड्रतिलक की बड़ी महिमा गाई गई है। वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश अंग मानते हैं—मस्तक, पेट, छाती, कंठ, (दोनों पार्श्व) दोनों काँख, दोनों बाँह, कंधा, पीठ और कटि। तिलक प्राचीन काल में शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से उपासना का चिह्न समझा जाने लगा।

क्रि० प्र०—धारण करना।—धारना।—लगाना।—सारना।

(२) राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा। राज्याभिषेक। गद्दी।

यौ०—राजतिलक।

(३) विवाह-संबंध स्थिर करने की एक रीति जिस में कन्या-पक्ष के लोग वर के माथे में दही अक्षत आदि का टीका लगाते और कुछ द्रव्य उसके साथ देते हैं। टीका।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

मुहा०—तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना। जैसे, उसने कितना तिलक दिया। तिलक भेजना = तिलक की सामग्री के के साथ वर के घर तिलक चढ़ाने लोगों को भेजना।

(४) माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना। टीका। (५) शिरोमणि। श्रेष्ठ व्यक्ति। किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्तम पुरुष। जैसे, रघुकुलतिलक। (६) पुन्नाग की जाति का एक पेड़ जिसमें छत्ते के आकार के फूल वसंत ऋतु में लगते हैं। यह पेड़ शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है। इसकी लकड़ी और छाल दवा के काम आती है। (७) मूँज का फूल या घूआ। (८) लोध्र वृक्ष। लोध का पेड़। (९) मरुवक। मरुवा। (१०) एक प्रकार का अश्वत्थ। (११) एक जाति का घोड़ा। घोड़े का एक भेद। (१२) क्लोम। तिल्ली जो पेट के भीतर होती है। (१३) सौवर्चल लवण। सोंचर नमक। (१४) संगीत में ध्रुवक का एक भेद जिसमें एक एक चरण पचीस पचीस अक्षरों के होते हैं। (१५) किसी ग्रंथ की अर्थसूचक व्याख्या। टीका।

संज्ञा पुं० [तु० तिरलीक का संक्षिप्त रूप] (१) एक प्रकार का ढीला ढाला ज़नाना कुरता जिसे प्रायः मुसलमान स्त्रियाँ सूथन के ऊपर पहनती हैं। उ०—तनिया न तिलक, सुथनिया पगनिया न घामैं घुमराती छाँड़ि सेजिया सुखन की।—भूषण। (२) खिलअत।

तिलक कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी जो कामोद और विचित्र अथवा कान्हड़ा कामोद और षट् योग से मिल कर बनी है।

तिलकट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण।

तिलकना—क्रि० अ० [हिं० तड़कना] गीली मिट्टी का सूख कर स्थान स्थान पर दरकना या फटना। ताल आदि की मिट्टी का सूख कर दरार के साथ फटना।

तिलक मुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन आदि का टीका और शंख चक्र आदि का छापा जिसे भक्त लोग लगाते हैं।

तिलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण। तिलकुट।

तिलकहरू—संज्ञा पुं० दे० "तिलकहार"।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हिं० तिलक + हार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से वर को तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (।।ऽ) होते हैं। इसे 'तिल्ला' 'तिल्लाना' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। (२) कंठ में पहनने का एक आभूषण।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न। तिल। (२) सुश्रुत के अनुसार एक व्याधि

तिर्यक्‌भेद–संज्ञा पुं० [सं०] दो सहारों पर टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना।

तिर्यक्‌स्रोतस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका फैलाव आड़ा हो। (२) वह जीव जिसके पेट में खाया हुआ आहार आड़ा होकर जाता हो। वह जीव जिसका आहार निगलने का नल खड़ा न हो, आड़ा हो। पशु, पक्षी।

विशेष—पुराणों में जीव सृष्टि के ऊर्द्धस्रोतस्, तिर्य्यक्‌स्रोतस् आदि कई वर्ग किए गए हैं। भागवत में तिर्य्यक्‌स्रोतस् २८ प्रकार के माने गए हैं। (१) द्विखुर (दो खुरवाले)—गाय, बकरी, भैंस, कृष्णसार मृग, सूअर, नीलगाय, रुरु नामक मृग। (२) एकखुर—गदहा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरभ, सुरागाय,। (३) पंचनख—कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुवा, मेढक, इत्यादि। (४) जलचर—मछली। (५) खचर—गीध, बगला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी। ये सब जीव ज्ञान-शून्य और तमोगुण-विशिष्ट कहे गए हैं। इनके अंतःकरण में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं बतलाया गया है।

तिर्यग्गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिरछी या टेढ़ी चाल। (२) कर्मवश-पशु-योनि-प्राप्ति।

तिर्यग्दिश्–संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा।

तिर्यग्यान–संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

तिर्यग्योनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु पक्षी आदि जीव। दे० "तिर्य्यक्‌स्रोतस्"।

तिर्यंच्–संज्ञा पुं० दे० "तिर्य्यक्"।

तिलंगनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + अंगिनी] एक प्रकार की मिठाई जो चीनी में तिल पाग कर बनती है।

तिलंगसा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बलूत जो हिमालय पर नैपाल से लेकर पंजाब तक होता है। अफ़गानिस्तान में भी यह पेड़ पाया जाता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इमारतों में लगती है तथा हल, झप्पान का डंडा आदि बनाने के काम में आती है। शिमले के आस पास के जंगलों में इसकी लकड़ी का कोयला फूँका जाता है।

तिलंगा–संज्ञा पुं० [हिं० तिलंगाना, सं० तैलंग] अंगरेजी फौज का देशी सिपाही।

विशेष—पहिले पहल ईस्ट-इंडिया कंपनी ने मदरास में किला बना कर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेना में भरती किया था। इससे अंगरेजी फौज के देशी सिपाही मात्र तिलंगे कहे जाने लगे।

संज्ञा पुं० हिं० [तीन + लंग] एक प्रकार का कनकौवा।

तिलंगाना–संज्ञा पुं० [सं० तैलंग] तैलंग देश।

तिलंगी–वि० [सं० तैलंग] तिलंगाने का निवासी। तैलंग।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लग] एक प्रकार की पतंग।

तिल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रति वर्ष बोया जानेवाला हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक पौधा जिसकी खेती संसार के प्रायः सब गरम देशों में तेल के लिये होती है। इसकी पत्तियाँ आठ दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती हैं। ये नीचे की ओर तो ठीक आमने सामने मिली हुई लगती हैं पर थोड़ा ऊपर चल कर कुछ अंतर पर होती हैं। पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं। फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं। ये फूल सफेद रंग के होते हैं केवल मुँह पर भीतर की ओर बैंगनी धब्बे दिखाई देते हैं। बीजकोश लंबोतरे होते हैं जिनमें तिल के बीज भरे रहते हैं। ये बीज चिपटे और लंबोतरे होते हैं। हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला। तिल की दो फ़सलें होती हैं—कुँवारी और चैती। कुँवारी फसल बरसात में ज्वार, बाजरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती है। चैती फसल यदि कातिक में बोई जाय तो पूस माघ तक तैयार हो जाती है।

उद्भिद् शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदि स्थान अफ्रिका महाद्वीप है। वहाँ आठ नौ जाति के तिल जंगली पाए जाते हैं। पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि जब और किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था तब तिल से निकाला गया। इसी कारण उसका नाम ही तैल (तिल से निकला हुआ) पड़ गया। अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है। आजकल भी पितरों के तर्पण में तिल का व्यवहार होता है। वैद्यक में तिल भारी, स्निग्ध, गरम, कफपित्तकारक, बल-वर्द्धक, केशों को हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और वातनाशक माना जाता है। तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिया जाय तो रेचक होता है।

पर्य्या०—होमधान्य। पवित्र। पितृतर्पण। पापघ्न। पूतधान्य। जटिल। वनोद्भव। स्नेहफल। तैलफल।

यौ०—तिलकुट। तिलचट्टा। तिलभुग्गा। तिलशकरी।

मुहा०—तिल की ओझल पहाड़ = किसी छोटी बात के भीतर बड़ी भारी बात। तिल का ताड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना। छोटे से मामले को बहुत बड़ा करना या दिखाना। तिलचावले बाल = कुछ सफेद और कुछ काले बाल। खिचड़ी बाल। तिल चाटना = मुसलमानों के यहाँ विवाह में बिदाई के समय दूल्हे का दुलहिन के हाथ पर रखे हुए काले तिलों को चाटना। (यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दूल्हा सदा अपनी स्त्री के वश में रहे)। तिल तिल = थोड़ा थोड़ा। तिल धरने की जगह न होना = जरा सी भी

तिलांजली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक संस्कार का एक अंग। हिंदुओं में मृतक-संस्कार की एक क्रिया जो मुरदे के जल चुकने पर स्नान करके की जाती है। इसमें हाथ की अँजुली में जल भर कर और उसमें तिल डाल कर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं।

मुहा०—*तिलांजली देना = बिलकुल त्याग देना। जरा भी संबंध न रखना।*

तिलांबु—संज्ञा पुं० [सं०] तिलांजली।

तिला—संज्ञा पुं० [हिं० तेल] (१) वह तेल जो लिंगेंद्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय। लिंग-लेप। (२) दे० "तिल्ला"।

तिलाक़—संज्ञा स्त्री० [अ० तलाक़] पति पत्नी का संग। स्त्री पुरुष के नाते का टूटना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री से एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं। इस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को अलग अलग विवाह करने का अधिकार हो जाता है।

यौ०—तिलाक़नामा।

तिलादानी—संज्ञा स्त्री० दे० "तिलदानी"।

तिलान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खिचड़ी।

तिलापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला जीरा।

तिलावा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + लावना, लाना] वह बड़ा कुआँ जिस पर एक साथ तीन पुरवट चल सकें।

संज्ञा पुं० [अ० तलाया] रात के समय कोतवाल आदि का शहर में गश्त लगाना। रौंद।

तिलिंगा—संज्ञा पुं० दे० "तिलंगा"।

तिलित्सा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसे गोनस भी कहते हैं।

तिलिया—संज्ञा पुं० [देश०] (१) मरकत। (२) दे० "तेलिया" (विष)।

तिलस्मी—वि० [अ० तिलस्म + ई० (प्रत्य०)] तिलस्म-संबंधी। जादू का।

तिली †—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "तिल"। (२) दे० "तिल्ली"।

तिलेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेलहन + एती (प्रत्य०)] तेलहन की खूँटी जो फसिल काटने पर खेत में बच जाती है।

तिलेदानी—संज्ञा स्त्री० दे० "तिलदानी"।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० दे० "तेलगू"।

तिलोक—संज्ञा पुं० दे० "त्रिलोक"।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकपति] विष्णु। उ०—*तुलसी बिलोक कै तिलोकपति लोक नाम को प्रताप बात विदित है जग में।*—तुलसी।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकी] इक्कीस मात्राओं का एक उपजाति छंद जो प्लवंगम और चांद्रायण के मेल से बनता है। इसके प्रत्येक चरण के अंत में लघु-गुरु होता है।

तिलोचन—संज्ञा पुं० दे० "त्रिलोचन"।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम रूपवती अप्सरा जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने संसार भर के सब उत्तम पदार्थों में से एक एक तिल अंश लेकर इसे बनाया था।

इसकी उत्पत्ति हिरण्याक्ष के सुंद और उपसुंद नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें; और यदि मरें भी तो आपस में ही लड़कर मरें। इन दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देवताओं तथा इंद्र को बहुत तंग कर रखा था। इन्हीं दोनों में विरोध कराने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की सृष्टि की और उसे सुंद और उपसुंद के निवासस्थान विंध्याचल पर भेज दिया। इसे पाने के लिये दोनों भाई आपस में लड़ मरे थे।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला अँजुली भर जल जो मृतक के उद्देश्य से दिया जाता है। तिलांजली।

तिलोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की मैना जिसे तेलिया मैना भी कहते हैं। उ०—*पेडु तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठ बिरह कर निसा।*—जायसी। (२) दे० "तिलौरी"।

तिलोहरा †—संज्ञा पुं० [देश०] परसन का रेशा।

तिलौंछना—क्रि० स० [हिं० तेल + औंछना (प्रत्य०)] थोड़ा तेल लगाकर चिकना करना।

तिलौंछा—वि० [हिं० तेल + औंछा (प्रत्य०)] जिसमें तेल का सा स्वाद या रंग हो। जैसे, तिलौंछा फल।

तिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + बरी] उर्द या मूँग की वह बरी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो। इसमें नमक भी पड़ा रहता है और यह घी में तलकर खाई जाती है।

तिल्लना—संज्ञा पुं० [ ] तिलका नाम का वर्ण वृत्त।

तिल्लर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सोहन चिड़िया जिसे लोवर भी कहते हैं।

तिल्ला—संज्ञा पुं० [अ० तिला] (१) कलाबत्तू या बादले आदि का काम।

यौ०—तिल्लेदार।

(२) पगड़ी, दुपट्टे या साड़ी आदि का वह अंचल जिसमें कलाबत्तू या बादले आदि का काम किया हो। (३) वह

जिसमें पुरुष की इंद्रिय पक जाती है और उस पर काले काले दाग से पड़ जाते हैं।

तिलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली। पीना।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं० तिलकट] कूटे हुए तिल जो खाँड़ की चाशनी में पगे हों।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + चाटना] एक प्रकार का झींगुर। चपड़ा।

तिलचावली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + चावल] तिल और चावल की खिचड़ी।

वि० स्त्री० जिसका कुछ अंश सफ़ेद और कुछ काला हो। जैसे, तिल चावली दाढ़ी।

तिलचित्र पत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद।

तिलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकल्क। तिलकुट।

तिलछना—क्रि० अ० [अनु०] विकल रहना। छटपटाना। बेचैन रहना।

तिलड़ा—वि० [हिं० तीन + लड़] जिसमें तीन लड़ें हों। तीन लड़ों का।

संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़नेवालों की एक छेनी जिससे टेढ़ी लकीर या लहरदार नक्काशी बनाई जाती है।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लड़] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है।

तिलदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल्ला + सं० आधान] कपड़े की वह थैली जिसमें दरजी, सूई, तागा, अंगुरताना आदि औज़ार रखते हैं।

तिलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें तिलों की गाय बनाकर दान करते हैं।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पट्टी] खाँड़ या गुड़ में पगे हुए तिलों का कतरा।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पपड़ी] तिलपट्टी।

तिलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) सरल का गोंद।

तिलपर्णिका—संज्ञा स्त्री दे० "तिलपर्णी"।

तिलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्त चंदन।

तिलपिंज—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल का पौधा जिसमें फूल फल नहीं लगते। वंध्या तिल वृक्ष।

तिलपिच्चट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों की पीठी। तिलकुटा।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं०] (तिल को पेरनेवाला) तेली।

तिलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल का फूल। (२) व्याघ्रनख। बघनखी।

तिलपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहेड़ा। (२) नाक (क्योंकि इसकी उपमा तिल के फूल से दी जाती है)।

तिलबढ़ा—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें गले के भीतार के मांस के बढ़ जाने से वे कुछ खा पी नहीं सकते।

तिलबर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश। (महाभारत)

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + सं० भुक्त] खाँड़ मिले हुए भुने तिल जो खाए जाते हैं। तिलकुट।

तिलभृष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ भूना या पकाया हुआ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का निषेध है। स्मृतियों में तिल मिला हुआ पदार्थ बिना देवार्पित किए खाना वर्जित है।

तिलभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का दाना।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसके देह पर तिल के समान काले चिह्न होते हैं।

तिलमापट्टी—संज्ञा स्त्री [देश०] दक्षिण में बिलारी और करनूल में होनेवाली एक कपास।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरमिर] चकाचौंध। तिरमिराहट।

तिलमिलाना—क्रि० अ० दे० "तिरमिराना"।

तिलरा—संज्ञा पुं० [देश०] टेढ़ी लकीर बनाने की छेनी जिसे कसेरे काम में लाते हैं।

† वि० संज्ञा पुं० दे० "तिलड़ा"।

तिलरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "तिलड़ी"।

तिलवट—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलपट्टी। तिलपपड़ी।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जो जंगलों और बगीचों में होता है। यह दो प्रकार का होता है—एक सफेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का। इसमें लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं। इसके बीज फूल आदि दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में तिलवन गरम और वात, गुल्म, आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है। पीली तिलवन अंजनों में पड़ती है।

पर्य्या०—अजगंधा। खरपुष्पा। सुगंधिका। कावरी। तुंगी।

तिलवा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलों का लड्डू।

तिलशकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + शकर] तिल और चीनी की बनाई हुई मिठाई। तिलपपड़ी।

तिलस्म—संज्ञा पुं० [यू० टेलिस्मा] (१) जादू। इंद्रजाल। (२) करामात। चमत्कार। अद्भुत या अलौकिक व्यापार।

मुहा०—तिलस्म तोड़ना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का पता लगा देना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + धान्य] फसल के रूप में बोए जानेवाले पौधे जिनके बीजों से तेल निकलता है, जैसे, तिल, सरसों, तीसी इत्यादि।

तिलांकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद।

तिसूत–संज्ञा पुं॰ [?] एक दवा का नाम।
तिस्रा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शंखपुष्पी।
तिस्स–संज्ञा पुं॰ [सं॰ तिष्य] अशोक राजा के सगे भाई का नाम।
तिहत्तर–वि॰ [सं॰ त्रिसप्तति, पा॰ तिसत्तति, प्रा॰ तिहत्तरि] जो गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो। तीन ऊपर सत्तर।
संज्ञा पुं॰ (१) सत्तर से तीन अधिक की संख्या। (२) उक्त संख्या सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७३।
तिहद्दा–संज्ञा पुं॰ [देश॰] वह स्थान जहाँ तीन हदें मिलती हों।
तिहरा–वि॰ दे॰ "तेहरा"।
संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] [स्त्री॰ अल्प॰ तिहरी] दही जमाने या दूध दुहने का मिट्टी का बरतन।
तिहराना–क्रि॰ [हिं॰] (किसी बात या काम को) तीसरी बार करना। दो बार करके एक बार फिर और करना।
तिहरी–वि॰ स्त्री॰ दे॰ "तेहरी"।
संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तीन + हार] (१) तीन लड़ों की माला।
संज्ञा स्त्री॰ [तीन + हंडी] दूध दुहने या दही जमाने का मिट्टी का छोटा बरतन।
तिहवार–संज्ञा पुं॰ [सं॰ तिथिवार] त्योहार। पर्व या उत्सव का दिन।
विशेष—दे॰ "त्योहार"।
तिहवारी–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "त्योहारी"।
तिहाई–संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रि + भाग] (१) तृतीयांश। तीसरा भाग। तीसरा हिस्सा।
संज्ञा स्त्री॰ फसिल। खेत की उपज। (पहले खेत की उपज का तृतीयांश कारतकार लेता था इसी से यह नाम पड़ा।)
मुहा॰—तिहाई मारी जाना = फसल का न उपजना।
तिहाउ†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "तिहाव"।
तिहानी–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक बालिश्त लंबी और तीन अंगुल चौड़ी लकड़ी जिसका काम चूड़ियाँ बनाने में पड़ता है।
तिहायत–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तिहाई = तीसरा] दो आदमियों के झगड़े से अलग एक तीसरा आदमी। तिसरैत। तटस्थ। मध्यस्थ।
तिहारा†–सर्व॰ दे॰ "तुम्हारा"।
तिहारो†–सर्व॰ दे॰ "तुम्हारा"।
तिहाली–संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की कपास की ढोंढ़ी।
तिहाव†–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तेह = गुस्सा, ताव] (१) क्रोध। कोप। (२) बिगाड़। उ॰—हित सों हित रति राम सों रिपु सों बैर तिहाउ। उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ।—तुलसी।
तिहि–सर्व॰ दे॰ "तेहि"।
तिहूँ†–वि॰ [हिं॰ तीन + हूँ (प्रत्य॰)] तीनों। जैसे, तिहूँ लोक।
तिहैया–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तिहाई] (१) तीसरा भाग। तृतीयांश। (२) तबले, मृदंग आदि की वे तीन थापें जिनमें से प्रत्येक थाप अंतिम या समवाले ताल को तीन भागों में बाँट कर प्रत्येक भाग पर दी जाती है और जिसकी अंतिम थाप ठीक सम पर पड़ती है।
ती*–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्त्री] (१) स्त्री। औरत। (२) जोरू। पत्नी। (३) मनोहरण छंद का एक नाम। भ्रमरावली। नलिनी।
तीअन†–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तृणान्न] शाक। भाजी। तरकारी।
तीकरा†–संज्ञा पुं॰ [देश॰] बीज से फूट कर निकला हुआ अंकुर। अँखुआ।
तीकुर–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तीन + कूरा = अंश] फसल की वह बँटाई जिसमें एक तिहाई अंश जमींदार और दो तिहाई कारतकार लेता है। तिहाई।
तीक्षण*–वि॰ दे॰ "तीक्ष्ण"।
तीक्षन*–वि॰ दे॰ "तीक्ष्ण"।
तीक्ष्ण–वि॰ [सं॰] (१) तेज नोक या धारवाला। जिसकी धार या नोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके। जैसे, तीक्ष्ण बाण। (२) तेज। प्रखर। तीव्र। जैसे, तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण बुद्धि। (३) उग्र। प्रचंड। तीखा। जैसे, तीक्ष्ण स्वभाव। (४) जिसका स्वाद बहुत चरपरा हो। तेज या तीखे स्वादवाला। (५) जो (वाक्य या बात) सुनने में अप्रिय हो। कर्ण-कटु। जैसे, तीक्ष्ण वाक्य, तीक्ष्ण स्वर। (६) आत्मत्यागी। (७) निरालस्य। जिसे आलस्य न हो। (८) असह्य। जो सहन न हो सके।
संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) उत्ताप। गरमी। (२) विष। जहर। (३) इस्पात लोहा। (४) युद्ध। लड़ाई। (५) मरण। मृत्यु। (६) शस्त्र। (७) समुद्री नमक। करकच। (८) मुष्कक। मोखा। (९) वत्सनाभ। बछनाग (१०) यव्य। यव। (११) महामारी। मरी। (१२) यवक्षार। जवाखार। (१३) सफेद कुशा। (१४) कुंदुर गोंद। (१५) योगी। (१६) ज्योतिष में मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा और अश्लेषा नक्षत्र। (१७) पूर्वा और उत्तरा भाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति।
तीक्ष्णकंटक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धतूरे का पेड़। (२) बबूल का पेड़। (३) इंगुदी का पेड़। (४) करील का पेड़।
तीक्ष्णकंटका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का वृक्ष जिसे कंथारी कहते हैं।
तीक्ष्णकंद–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पलांडु। प्याज।
तीक्ष्णक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) मोखा वृक्ष। (२) सफेद सरसों।
तीक्ष्णकल्क–संज्ञा पुं॰ [सं॰] तुंबरु वृक्ष।
तीक्ष्णकांता–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कालिकापुराण के अनुसार तारा-

सुंदर पदार्थ जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उस में जोड़ दिया जाय। (क्व०)

संज्ञा पुं० दे० "तिलका" (वर्णवृत्त)।

तिल्लाना–संज्ञा पुं० दे० "तराना (१)"।

तिल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक] पेट के भीतर का एक छोटा अवयव जो मांस की पोली गुठली के आकार का होता है और पसलियों के नीचे पेट की बाईं ओर होता है। इसका संबंध पाकाशय से होता है। इस में खाए हुए पदार्थ का विशेष रस कुछ काल तक रहता है। जब तक यह रस रहता है तब तक तिल्ली फैल कर कुछ बढ़ी हुई रहती है फिर जब इस रस को रक्त सोख लेता है तब वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तिल्ली में पहुँच कर रक्तकणिकाओं का रंग बैंगनी हो जाता है।

ज्वर के कुछ काल तक रहने से तिल्ली बढ़ जाती है, उसमें रक्त अधिक आ जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती है। ऐसी अवस्था में उसे छेदने से उसमें से लाल रक्त निकलता है। ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त आते रहने से ही तिल्ली बढ़ती है। इस रोग में मनुष्य दिन दिन दुबला होता है, उसका मुँह सूखा रहता है और पेट निकल आता है। वैद्यक के अनुसार दाहकारक तथा कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से रुधिर कुपित होकर कफ द्वारा प्लीहा को बढ़ाता है तब तिल्ली बढ़ आती है और मंदाग्नि, जीर्णज्वर आदि रोग साथ लग जाते हैं। जवाखार, पलास का क्षार, शंख की भस्म आदि प्लीहा की अयुर्वेदोक्त औषध हैं। डाक्टरी में कुनैन तथा आर्सेनिक (संखिया) और लोहा मिली हुई दवाएँ तिल्ली बढ़ने पर दी जाती हैं।

पर्य्या०—प्लीहा। पिलही।

संज्ञा स्त्री० [सं० तिल] तिल नाम का अन्न या तेलहन।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम और बरमा में ऊँची पहाड़ियों पर होता है। ये बाँस पचास साठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इनमें गाँठ दूर दूर पर होती हैं इस से ये चोंगे बनाने के काम में अधिक आते हैं।

संज्ञा स्त्री० दे० "नीली"।

तिल्व–संज्ञा पुं० [सं०] लोध्र। लोध।

तिल्वक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध। (२) तिनिश।

तिवाड़ी ‡–संज्ञा पुं० दे० "तिवारी"।

तिवारी–संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठी] [स्त्री० तिवराइन] त्रिपाठी। दे० "त्रिपाठी"।

तिवास†–संज्ञा० पुं० [सं० त्रिवासर] तीन दिन। उ०—मन फाटे वायक बरे मिटै सगाई साक। जैसे दूध तिवास को उलटि हुआ जो आक।—कबीर।

तिवासी–वि० दे० "तिवासी"।

तिवी–संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी।

तिशना–संज्ञा पुं० [फ़ा० तश्नीय] ताना। मेहना।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

तिष्ठद्गु–संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जिसमें गायें अपने खूँटे पर चर कर आ जाती हैं। संध्या। सायंकाल। गोधूली।

तिष्ठना*–क्रि० अ० [सं० तिष्ठ] ठहरना। उ०—चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं कोई।—तुलसी।

तिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तिस्ता नाम की नदी जो हिमालय के पास से निकल कर नवाबगंज के पास गंगा से मिली है।

तिष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्य नक्षत्र। (२) पौष मास। (३) कलियुग। (४) मांगल्य। कल्याणकारी।

तिष्यक–संज्ञा पुं० [सं०] पौष मास।

तिष्यपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी।

तिष्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी।

तिष्पन*–वि० दे० "तीक्ष्ण"। उ०—लष्प में पष्पर तिष्पन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं।—तुलसी।

तिस†–सर्व० [सं० तस्मिन्, पा० तिस्सं] 'ता' का एक रूप जो उसे विभक्ति लगने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे, तिसने, तिसको, तिससे इत्यादि।

विशेष—अब इस शब्द का व्यवहार गद्य में नहीं होता। केवल 'तिस पर' का प्रयोग होता है।

मुहा०—तिस पर=(१) उसके पीछे। उसके उपरांत। (२) इतना होने पर। ऐसी अवस्था में भी। जैसे, (क) हमारी चीज़ भी ले गए, तिस पर हमीं को बातें भी सुनाते हो। (ख) इतना मना किया तिस पर भी वह चला गया।

तिसखुट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसी + खूँटी] तीसी के पौधों के छोटे छोटे डंठल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं। तीसी की खूँटी।

तिसखुर–संज्ञा स्त्री० दे० "तिसखुट"।

तिसना*–संज्ञा स्त्री० दे० "तृष्णा"।

तिसरा†–वि० दे० "तीसरा"।

तिसरायँ†–क्रि० वि० [हिं० तिसरा] तीसरी बार।

तिसरायत–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसरा] तीसरा होने का भाव। गैर होने का भाव।

तिसरैत–संज्ञा पुं० [हिं० तिसरा] (१) दो आदमियों के झगड़े से अलग एक तीसरा मनुष्य। तटस्थ। मध्यस्थ। (२) तीसरे हिस्से का मालिक।

तिसाना*–क्रि० अ० [सं० तृषा] प्यासा होना। तृषित होना। उ०—देखि कै विभूति सुख उपज्यो अभूत कोऊ चल्यो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं।—प्रिया।

एक प्रकार का तीखुर विलायत से भी आता है जिसे अरा-रूट कहते हैं। दे० "अरारूट"।

तीखुल-संज्ञा पुं० दे० "तीखुर"।

तीछन * †-वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तीछनता *-संज्ञा स्त्री० दे० "तीक्ष्णता"।

तीज-संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया] (१) प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि। (२) हरतालिका तृतीया। भादों सुदी तीज।
वि० दे० "हरतालिका"।

तीजा-संज्ञा पुं० [हिं० तीज] मुसलमानों में किसी के मरने के दिन से तीसरा दिन। इस दिन मृतक के संबंधी गरीबों को रोटियाँ बाँटते और कुछ पाठ करते हैं।
वि० [स्त्री० तीजी] तीसरा। तृतीय।

तीत * †-वि० दे० "तीता"।

तीतर-संज्ञा पुं० [सं० तित्तिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त एशिया और युरोप में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमेरिका में भी होती है। यह दो प्रकार का होता है, चितकबरा और काला। इसका पेट कुछ भारी, दुम छोटी और पैर में चार उँगलियाँ होती हैं। यह बहुत चंचल होता है और केवल सोने के समय को छोड़कर बराबर इधर उधर चलता रहता है। यह बहुत तेज दौड़ता है और भारत में प्रायः कपास, गेहूँ या चावल के खेतों में जाल में फँसाकर पकड़ा जाता है। इसका घोंसला जमीन पर ही होता है और इसके अंडे चिकने और धब्बेदार होते हैं। लोग इसे लड़ाने के लिये पालते, इसका शिकार करते और मांस खाते हैं। वैद्यक में इसके मांस को रुचिकारक, लघु, वीर्य्य-बल-वर्द्धक, कषाय, मधुर, ठंढा और श्वास कास ज्वर तथा त्रिदोषनाशक माना है। भावप्रकाश के अनुसार काले तीतर के मांस की अपेक्षा चितकबरे तीतर का मांस अधिक उत्तम होता है।

तीता-वि० [सं० तिक्त] (१) जिसका स्वाद तीखा और चरपरा हो। तिक्त। जैसे, मिर्च।
विशेष—यद्यपि प्राचीनों ने तिक्त और कटु में भेद माना है पर आज कल साधारण बोलचाल में "तीता" और "कड़ुआ" दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है। कुछ प्रांतों में केवल "तीता" शब्द का व्यवहार होता है और कुछ प्रांतों में केवल "कड़ुआ" शब्द का; और उनसे तात्पर्य भी बहुधा एक ही रस का होता है। जिन प्रांतों में "तीता" और "कड़ुआ" दोनों शब्दों का व्यवहार होता है वहाँ भी इन दोनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता।
(२) कड़ुआ। कटु।
वि० गीला। भीगा हुआ। नम।
संज्ञा पुं० [देश०] (१) जोतने बोने की ज़मीन का गीलापन। (२) ऊसर भूमि। (३) ढेंकी या रहट का अगला भाग। (४) ममीरे के झाड़ का एक नाम।

तीतुरी * †-संज्ञा स्त्री० दे० "तितली"।

तीतुल*-संज्ञा पुं० दे० "तीतर"।

तीन-वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो। जो गिनती में चार से एक कम हो।
संज्ञा पुं० (१) दो और चार के बीच की संख्या। दो और एक का जोड़। (२) उक्त संख्या सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३।
मुहा०—*तीन पाँच करना = इधर उधर करना। घुमाव फिराव या हुज्जत की बात करना।*
संज्ञा पुं० सरजूपारी ब्राह्मणों में तीन गोत्रों का एक वर्ग।
विशेष—सरजूपारी ब्राह्मणों में सोलह गोत्र होते हैं जिनमें से तीन गोत्रवालों का उत्तम वर्ग है और तेरह गोत्रवालों का दूसरा वर्ग है।
मुहा०—*तीन तेरह करना = तितर बितर करना। इधर उधर छितराना या अलग अलग करना।* उ०—कियो तीन तेरह सबै चौका चौका जाय।—हरिश्चंद्र। *न तीन में न तेरह में = जो किसी गिनती में न हो। जिसे कोई पूछता न हो।* उ०—सुभ काम जाम कहाँ पैये मोतें आनराय एजू तुम मारे हैं न तेरह न तीन में।—हनुमान।
संज्ञा स्त्री० [हिं० तिन्नी] तिन्नी का चावल।

तीनपान-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस्सा जिसकी मोटाई कम से कम एक फुट होती है। (लश०)

तीनपाम-संज्ञा पुं० दे० "तीनपान"।

तीनलड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+लड़ी] गले में पहनने की एक प्रकार की माला जिसमें तीन लड़ियाँ होती हैं। तिलड़ी।

तीनि * †-संज्ञा पुं० और वि० दे० "तीन"।

तीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तिन्नी] तिन्नी का चावल।

तीपड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] रेशमी कपड़ा बुननेवालों का एक औज़ार जिसके नीचे ऊपर दो लकड़ियाँ लगी रहती हैं जिन्हें पेसर कहते हैं।

तीमारदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगियों की सेवा-शुश्रूषा का काम।

तीय-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। नारी।

तीया *-संज्ञा स्त्री० दे० "तीय"।
संज्ञा पुं० दे० "तिक्की" या "तिड़ी"।

तीरंदाज़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] तीर चलानेवाला। वह जो तीर चलाता हो।

तीरंदाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तीर चलाने की विद्या या क्रिया।

तीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नदी का किनारा। कूल। तट। (२) पास। निकट। समीप।

देवी का एक नाम जिसका ध्यान कृष्णवर्णा, लंबोदरी और एक जटाधारिणी है। इसके पूजन से अभीष्ट का सिद्ध होना माना जाता है।

तीक्ष्णक्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

तीक्ष्णगंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहँजन का पेड़। (२) लाल तुलसी। (३) लोबान। (४) छोटी इलायची। (५) सफेद तुलसी। (६) कुंदुरू नामक गंधद्रव्य।

तीक्ष्णगंधक–संज्ञा पुं० [सं०] सहँजन।

तीक्ष्णगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्वेत वच। सफेद वच। (२) कंथारी का वृत्त। (३) राई। (४) जीवंती। (५) छोटी इलायची।

तीक्ष्णतंडुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपल।

तीक्ष्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्ण होने का भाव। तीव्रता। तेजी।

तीक्ष्णताप–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तीक्ष्णतेल–संज्ञा पुं० दे० "तीक्ष्णतैल"।

तीक्ष्णतैल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राल। (२) सेहुँड़ का दूध। (३) मदिरा। शराब। (४) सरसों का तेल।

तीक्ष्णदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] बाघ।

वि० तेज दाँतोंवाला। जिसके दाँत तेज हों।

तीक्ष्णदंत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जानवर जिसके दाँत बहुत तेज या नुकीले हों।

तीक्ष्णदृष्टि–वि० [सं०] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो। सूक्ष्मदृष्टि।

तीक्ष्णधार–संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग।

वि० जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुंबुरू। धनिया। (२) एक प्रकार का गन्ना।

वि० [सं०] जिसके पत्तों में तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

तीक्ष्णपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

तीक्ष्णप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

तीक्ष्णफल–संज्ञा पुं० [सं०] तुँबुरू। धनिया।

तीक्ष्णफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] राई।

तीक्ष्णबुद्धि–वि० [सं०] जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो। कुशाग्र बुद्धिवाला। बुद्धिमान्।

तीक्ष्णमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का पौधा।

तीक्ष्णमूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलंजन। (२) सहँजन।

वि० जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो।

तीक्ष्णरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वि० जिसकी किरणें बहुत तेज हों।

तीक्ष्णरस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यवक्षार। जवाखार। (२) शोरा।

तीक्ष्णलौह–संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात।

तीक्ष्णशूक–संज्ञा पुं० [सं०] यव। जौ।

तीक्ष्णसारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

तीक्ष्णांशु–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

तीक्ष्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वच। (२) केवाँच। (३) सर्पकंकाली वृत्त। (४) बड़ी मालकंगनी। (५) अल्पमूलपर्णी लता। (६) मिर्च। (७) जोंक। (८) तारादेवी का एक नाम।

तीक्ष्णाग्नि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रबल जठराग्नि। (२) अजीर्ण रोग।

तीक्ष्णाग्र–वि० [सं०] पैनी नोकवाला। जिसका अगला भाग तेज या नुकीला हो।

तीक्ष्णायस–संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात लोहा।

तीख * †–वि० दे० "तीखा"।

तीखन * †–वि० दे० "तीक्ष्ण"।

तीखर–संज्ञा पुं० दे० "तीखुर"।

तीखल–संज्ञा पुं० दे० "तीखुर"।

तीखा–वि० [सं० तीक्ष्ण] [स्त्री० तीखी] (१) जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो। तीक्ष्ण। (२) तेज। तीव्र। प्रखर। (३) उग्र। प्रचंड। जैसे, तीखा स्वभाव। (४) जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो जैसे, (क) तुम तो बड़े तीखे दिखलाई पड़ते हो। (ख) यह लड़का बहुत तीखा होगा। (५) जिसका स्वाद बहुत तेज या चरपरा हो। (६) जो वाक्य या बात सुनने में अप्रिय हो। (७) चोखा। बढ़िया। अच्छा। जैसे, यह कपड़ा उससे तीखा पड़ता है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तीखी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] रेशम फेरनेवालों का काठ का एक औज़ार जिसके बीच में गज़ डाल कर उस पर रेशम फेरते हैं।

तीखुर–संज्ञा पुं० [सं० तवक्षीर] हलदी की जाति का एक प्रकार का पौधा जो पूर्व, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है। अच्छी तरह जोती हुई ज़मीन में जाड़े के आरंभ में इसके कंद गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिंचाई की जाती है। पूस माघ में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और तब यह पक्का समझा जाता है। उस समय इसकी जड़ खोदकर पानी में खूब धोकर कूटते हैं और इसका सत्त निकालते हैं जो बढ़िया मैदे की तरह होता है। यही सत्त बाजारों में तीखुर के नाम से बिकता है और इसका व्यवहार कई तरह की मिठाइयाँ, लड्डू, सेव, जलेबी आदि बनाने में होता है। हिंदू लोग इसकी गणना "फलाहार" में करते हैं। इसे पानी में घोलकर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ा हो जाता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं। अब

विशेष—दहिने हाथ के अँगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अँगूठे और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग प्राजापत्य तीर्थ और उँगलियों का अगला भाग देवतीर्थ माना जाता है। इन तीर्थों से क्रमशः आचमन, पिंडदान, पितृकार्य और देवकार्य्य किया जाता है। (४) शास्त्र। (५) यज्ञ। (६) स्थान। स्थल। (७) उपाय। (८) अवसर। (९) नारीरज। रजस्वला का रक्त। (१०) अवतार। (११) चरणामृत। देव स्नान-जल। (१२) उपाध्याय। गुरु। (१३) मंत्री। (१४) योनि। (१५) दर्शन। (१६) घाट। (१७) ब्राह्मण। विप्र। (१८) निदान। कारण। (१९) अग्नि। (२०) पुण्यकाल। (२१) संन्यासियों की एक उपाधि। (२२) वह जो तार दे। तारनेवाला। (२३) वैर भाव को त्याग कर परस्पर उचित व्यवहार। (२४) ईश्वर। (२५) माता पिता। (२६) अतिथि। मेहमान। (२७) राष्ट्र की अठारह सम्पत्तियाँ जिन के नाम ये हैं,—(१) मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५) द्वारपाल, (६) अंतर्वैशिक, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) द्रव्य-संचय-कारक। (९) कृत्याकृत्य अर्थ का विनियोजक, (१०) प्रदेष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य-निर्माण-कारक, (१३) धर्माध्यक्ष, (१४) सभाध्यक्ष, (१५) दंडपाल, (१६) दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रांतपाल और (१८) अटवीपाल।

तीर्थक–वि० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) तीर्थंकर। (३) वह जो तीर्थों की यात्रा करता हो।

तीर्थंकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) जिन।

तीर्थदेव–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

तीर्थपति–संज्ञा पुं० दे० "तीर्थराज"।

तीर्थपाद–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

तीर्थपादीय–संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव।

तीर्थयात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थाटन। पवित्र स्थानों में दर्शन स्नानादि के लिये जाना।

तीर्थराज–संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग।

तीर्थराजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी।

विशेष—काशी में सब तीर्थ हैं इसीसे यह नाम पड़ा।

तीर्थसेनि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

तीर्थाटन–संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थयात्रा।

तीर्थिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीर्थ का ब्राह्मण, पंडा। (२) बौद्धों के अनुसार बौद्ध-धर्म्म का विद्वेषी ब्राह्मण। (३) तीर्थंकर।

तीर्थिया–संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ + इया (प्रत्य०)] तीर्थंकरों को माननेवाला, जैनी।

तीर्थ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक रुद्र का नाम। (२) सहपाठी।

तीर्न–संज्ञा पुं० दे० "तीर्थ"।

तीलखा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तीली–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तीर = बाण] (१) बड़ा तिनका। सींक। (२) धातु आदि का पतला पर कड़ा तार। (३) करघे में ढरकी की वह सींक जिसमें नरी पहनाई जाती है। (४) तीलियों की वह कूँची जिससे जुलाहे सूत साफ़ करते हैं। (५) पटवों का वह औज़ार जिससे वे रेशम लपेटते हैं। इस में लोहे का एक तार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोल टुकड़ा लगा रहता है।

तीवन†–संज्ञा पुं० [सं० तेमन = व्यंजन] (१) पकवान। (२) रसेदार तरकारी।

तीवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) व्याधा। शिकारी। (३) मछुआ। (४) एक वर्ण-संकर अंत्यज जाति जो ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार राजपूत माता और क्षत्रिय पिता के गर्भ से तथा पराशर के मत से राजपूत माता और शूद्र पिता के गर्भ से उत्पन्न है। कुछ लोग तीवर और धीवर को एक ही मानते हैं। स्मृति के अनुसार तीवर को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता होती है।

तीव्र–वि० [सं०] (१) अतिशय। अत्यंत। (२) तीक्ष्ण। तेज़। (३) बहुत गरम। (४) नितांत। बेहद। (५) कटु। कड़ुआ। (६) दुःसह। असह्य। न सहने योग्य। (७) प्रचंड। (८) तीखा। (९) वेगयुक्त। तेज। (१०) कुछ ऊँचा और अपने स्थान से बढ़ा हुआ (स्वर)। संगीत में ५ स्वरों के तीव्र रूप होते हैं—ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत और निषाद। दे० "कोमल"।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) इस्पात। (३) नदी का किनारा। (४) शिव। महादेव।

तीव्रकंद–संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जमींकंद। ओल।

तीव्रगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अजवायन। यवानी।

तीव्रगंधिका–संज्ञा स्त्री० दे० "तीव्रगंधा"।

तीव्रगति–संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] वायु। हवा।

तीव्रज्वाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल जिस के छूने से, लोग कहते हैं, शरीर में घाव हो जाता है।

तीव्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीव्र का भाव। तीक्ष्णता। तेज़ी। तीखापन। प्रखरता।

तीव्रसव–संज्ञा० पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

तीव्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) षडज स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति। (२) मदकारिणी। खुरासानी अजवायन। (३) राई। (४) गाँडर दूब। (५) तुलसी। (६) बड़ी मालकंगनी। (७) कुटकी। (८) तरवी वृक्ष।

विशेष—इस अर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का लोप करके क्रिया विशेषण की तरह होता है।

(३) सीसा नामक धातु। (४) राँगा।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाण। शर।

विशेष—यद्यपि पंचदशी आदि कुछ आधुनिक ग्रंथों में तीर शब्द बाण के अर्थ में आया है. पर यह शब्द वास्तव में है फ़ारसी का।

क्रि० प्र०—चलाना।—छोड़ना।—फेंकना।—लगना।

मुहा०—तीर चलाना=युक्ति भिड़ना। रंग ढंग लगाना। जैसे, तीर तो गहरा चलाया था, पर ख़ाली गया। तीर फेंकना=दे० "तीर चलाना"।

संज्ञा पुं०[?] जहाज़ का मस्तूल।

तीरगर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तीर बनाता हो। तीर बनाने वाला कारीगर।

तीरण–संज्ञा पुं० [सं०] करंज।

तीरथ–संज्ञा पुं० दे० "तीर्थ"। "तीरथ" के यौगिक शब्दों के लिये दे० "तीर्थ" के यौगिक शब्द।

तीरभुक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गंडकी और कौशिकी इन तीन नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश।

तीरवर्त्ती–वि० [सं०] (१) तट पर रहनेवाला। (२) किनारे पर रहनेवाला। समीप रहनेवाला। पास रहनेवाला। पड़ोसी।

तीरस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] नदी के तीर पर पहुँचाया हुआ मरणासन्न व्यक्ति।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि रोगी जब मरने को होता है तब उसके संबंधी पहले ही से उसे नदी के तीर पर ले जाते हैं, क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना अधिक उत्तम समझा जाता है।

तीरा*†–संज्ञा पुं० दे० "तीर"।

तीराट–संज्ञा पुं० [सं०] लोध।

तीरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) शिव की स्तुति।

तीर्ण–वि० [सं०] (१) जो पार हो गया हो। उत्तीर्ण। (२) जो सीमा का उल्लंघन कर चुका हो। (३) जो भीगा हुआ हो। तरबतर।

तीर्णपदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूल। मूसली।

तीर्णपदी–संज्ञा स्त्री० दे० "तीर्णपदा"।

तीर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु (।।।ऽ) होता है। इसको "सती", "तिन्ना" और "तारिणा" भी कहते हैं। जैसे, नगपती। वसती। शिव कहौ। सुख लहौ।

तीर्थंकर–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के उपास्य देव जो देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित, मुक्त और मुक्तिदाता माने जाते हैं। इनकी मूर्त्तियाँ दिगंबर बनाई जाती हैं और इनकी आकृति प्रायः बिलकुल एक ही होती है। केवल उनका वर्ण और उनके सिंहासन का आकार ही एक दूसरे से भिन्न होता है।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए थे जिनके नाम ये हैं—(१) केवलज्ञानी। (२) निर्वाणी। (३) सागर। (४) महाशय। (५) विमलनाथ। (६) सर्वानुभूति। (७) श्रीधर। (८) दत्त। (९) दामोदर। (१०) सुतेज। (११) स्वामी। (१२) मुनिसुव्रत। (१३) सुमति। (१४) शिवगति। (१५) अस्ताग। (१६) नेमीश्वर। (१७) अनल। (१८) यशोधर। (१९) कृतार्थ। (२०) जिनेश्वर। (२१) शुद्धमति। (२२) शिवकर। (२३) स्यंदन और (२४) संप्रति। वर्त्तमान् अवसर्पिणी के आरंभ में जो चौबीस तीर्थंकर हो गए हैं उनके नाम ये हैं—

(१) ऋषभदेव। (२) अजितनाथ। (३) संभवनाथ। (४) अभिनंदन। (५) सुमतिनाथ। (६) पद्मप्रभ। (७) सुपार्श्व-नाथ। (८) चंद्रप्रभ। (९) सुबुधिनाथ। (१०) शीतलनाथ। (११) श्रेयांसनाथ। (१२) वासुपूज्य स्वामी। (१३) विमल-नाथ। (१४) अनंतनाथ। (१५) धर्मनाथ। (१६) शांतिनाथ। (१७) कुंतुनाथ। (१८) अमरनाथ। (१९) मल्लिनाथ। (२०)मुनि सुव्रत। (२१) नमिनाथ। (२२) नेमिनाथ। (२३) पार्श्वनाथ। (२४) महावीर स्वामी। इनमें से ऋषभ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मूर्त्तियाँ योगाभ्यास में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्त्तियाँ खड़ी बनाई जाती हैं।

तीर्थंकृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैनियों के देवता। जिन। (२) शास्त्रकार।

तीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पवित्र या पुण्य स्थान जहाँ धर्म-भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते हों। जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, गया, द्वारका आदि; अथवा मुसलमानों के लिये मक्का और मदीना।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं—(१) जंगम, जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि, (२) मानस, जैसे, सत्य, क्षमा, दया, दान, संतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुरभाषण आदि, और (३) स्थावर, जैसे, काशी, प्रयाग, गया आदि। इस शब्द के अंत में 'राज' 'पति' अथवा इसी प्रकार का और शब्द लगाने से 'प्रयाग' अर्थ निकलता है। जैसे, तीर्थराज या तीर्थपति=प्रयाग। तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट आने के समय हिंदुओं के शास्त्रों में सिर मुँड़ा कर श्राद्ध करने और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है।

(२) कोई पवित्र स्थान। (३) हाथ में के कुछ विशिष्ट स्थान।

तुंगीश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कृष्ण। (३) सूर्य। (४) चंद्रमा।

तुंज–संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

तुंजाल–संज्ञा पुं० [सं० तुरंग+जाल] एक प्रकार का जाल जो घोड़ों के ऊपर मक्खियों आदि से बचाने के लिये डाला जाता है। इसके नीचे फुँदने भी लगते हैं।

तुंजीन–संज्ञा पुं० [सं०] कश्मीर देश के कई प्राचीन राजाओं का नाम जिनका वर्णन राजतरंगिणी में है।

तुंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख। मुँह। (२) चंचु। चोंच। (३) थूथन। निकला हुआ मुँह। (४) तलवार का अगला हिस्सा। खड्ग का अग्रभाग। उ०—फुट्टं त कपाल कहूँ गज मुंड। तुट्टं त कहूँ तरवारिन तुंड।—सूदन। (५) शिव। महादेव। (६) एक राक्षस का नाम।

तुंडकेरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास वृक्ष।

तुंडकेरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपास। (२) कुँदरू। बिंबाफल।

तुंडकेशरी–संज्ञा पुं० [सं०] मुख का एक रोग जिसमें तालू की जड़ में सूजन होती और दाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती है।

तुंडि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुँह। (२) चोंच। (३) बिंबाफल। (४) नाभि।

तुंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ढोंढी। (२) चोंच। (३) बिंबाफल। कुँदरू।

तुंडिकेशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँदरू।

तुंडिल–वि० [सं०] (१) तोंदवाला। निकले हुए पेटवाला। (२) जिसकी नाभि निकली हुई हो। निकली हुई ढोंढवाला। ढोंढू। (३) बकवादी। मुँहजोर।

तुंडी–वि० [सं० तुंडिन्] (१) मुँहवाला। (२) चोंचवाला। (३) थूथनवाला। सूँड़वाला।

संज्ञा पुं० गणेश। उ०—हरिहर विधि रवि शक्ति समेता। तुंडी ते उपजत सब लेता।—निश्चल।

संज्ञा स्त्री० नाभि। ढोंढी।

तुंडीगुदपाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें बच्चों की गुदा पक जाती और नाभि में पीड़ा होती है।

तुंडीरमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक देश का नाम। उ०—पुनि तुंडीर मँडल इक देसा। तँह विलमंगल ग्राम सुवेसा।—रघुराज।

तुंद–संज्ञा पुं० [सं०] पेट। उदर।

वि० [फ़ा०] तेज़। प्रचंड। घोर। जैसे, हवा का तुंद झोंका।

तुंदि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाभि। (२) एक गंधर्व का नाम।

तुंदिक–वि० [सं०] तोंदवाला। बड़े पेटवाला।

तुंदिकफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] खीरे की बेल।

तुंदिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि।

तुंदिल–वि० [सं०] तोंदवाला। बड़े पेटवाला।

तुंदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि।

तुँदैल–वि० दे० "तुँदैला"।

तुँदैला–वि० [सं० तुंदिल] तोंदवाला। बड़े पेटवाला। लंबोदर।

तुंब–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौकी। लौवा। घीया। (२) लौवे का सूखा फल। तूँबा।

तुँबड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "तूँबड़ी"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से सफेद, नर्म और चिकनी निकलती है। यह लकड़ी मकानों में लगती है। उसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।

तुंबर*–संज्ञा पुं० दे० "तुँबुरु"।

तुंबवन–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो दक्षिण दिशा में है।

तुंबा–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० तुंबी] (१) कड़ुआ कद्दू। गोल कड़ुआ घीया। (२) कड़ुए कद्दू की खोपड़ी का पात्र। (३) एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के किनारे आप से आप होता है।

तुंबिका–संज्ञा स्त्री० दे० "तुंबी"।

तुंबी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा कड़ुवा कद्दू। छोटा कड़ुवा घीया। तितलौकी। (२) गोल कद्दू का खोपड़ा। गोल घीये का बना हुआ पात्र।

तुंबुक–संज्ञा पुं० [सं०] कद्दू का फल। घीया।

तुंबुरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनिया। (२) कुतिया।

तुंबुरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) एक प्रकार के पौधे का बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है। इसमें बड़ी झाल होती है। मुँह में रखने से एक प्रकार की चुनचुनाहट होती है और लार गिरती है। दाँत के दर्द में इस बीज को लोग दाँत के नीचे दबाते हैं। वैद्यक में यह गरम, कड़ुवा, चरपरा अग्निदीपक तथा कफ, वात, शूल आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। इसे बंगाल में नैपाली धनिया कहते हैं। (३) एक गंधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं। ये विष्णु के एक प्रिय पारषद और संगीत विद्या में अति निपुण हैं। (४) एक जिन उपासक का नाम।

तुग्र*†–सर्व० दे० "तुव", "तव"।

तुग्रना†*–क्रि० अ० [हिं० चूना, चुवना] (१) चूना। टपकना। (२) गिर पड़ना। खड़ा न रह सकना। ठहरा न रहना। उ०—निकरै सी निकाई निहारे नई रति रूप लुभाई तुई सी परै।—सुंदरीसर्वस्व। (३) गर्भपात होना। बच्चा गिर पड़ना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

तुग्रर–संज्ञा पुं० [सं० तुवरी] अरहर। आढकी।

तीव्रानुराग–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का अतिचार । पर-स्त्री या पर-पुरुष से अत्यंत अनुराग करना अथवा काम की वृद्धि के लिये अफीम, कस्तूरी आदि खाना ।

तीस–वि० [सं० त्रिंशति, पा० तीसा] जो गिनती में उंतीस के बाद और इकतीस के पहले हो । जो दस का तिगुना हो । बीस और दस ।

यौ०—तीसों दिन या तीस दिन = सदा । हमेशः । तीस मारखाँ = बहुत वीर । बड़ा बहादुर । (व्यंग्य)

संज्ञा पुं० दस की तिगुनी संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३० ।

तीसरा–वि० दे० "तीसरा" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसरा] खेत की तीसरी जुताई ।

तीसरा–वि० [हिं० तीन + सरा (प्रत्य०)] (१) क्रम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला । जो दो के उपरांत हो । जिस के पहले दो और हों । (२) जिस का प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो । संबंध रखनेवालों से भिन्न, कोई और । जैसे, न हमारी बात, न तुम्हारी बात; तीसरा जो कुछ कहे, वही हो ।

यौ०—तीसरा पहर = दोपहर के बाद का समय । दिन का तीसरा पहर । अपराह्न ।

तीसवाँ–संज्ञा पुं० [हिं० तीस + वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला । जो उँतीस के उपरांत हो । जिसके पहले उंतीस और हों ।

तीसी–संज्ञा स्त्री० [सं० अतसी] अलसी नामक तेलहन । दे० "अलसी" ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तीस + ई (प्रत्य०)] (१) फल आदि गिनने का एक मान जो तीस गाहियों अर्थात् एक सौ पचास का होता है । (२) एक प्रकार की छेनी जिस से लोहे की थालियों आदि पर नकाशी करते हैं ।

तीहा–संज्ञा पुं० [सं० तुष्टि ?] तसल्ली । आश्वासन ।

संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई] तिहाई । जैसे, आधा तीहा । इस का प्रयोग समास ही में होता है ।

तुंग–वि० [सं०] (१) उन्नत । ऊँचा । (२) उग्र । प्रचंड । (३) प्रधान । मुख्य ।

संज्ञा पुं० (१) पुन्नाग वृक्ष । (२) पर्वत । पहाड़ । (३) नारियल । (४) किंजल्क । कमल का केसर । (५) शिव । (६) बुध ग्रह । (७) ग्रहों की उच्च राशि । दे० "उच्च" । (८) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु होते हैं । उ०—न नग गहु बिहारी । कहत अहि पियारी । (९) एक छोटा झाड़ या पेड़ जो सुलैमान पहाड़ तथा पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ तक होता है । इस की लकड़ी, छाल और पत्ती रँगने और चमड़ा सिझाने के के काम में आती है । इस की लकड़ी से युरोप में तसवीरों के नकाशीदार चौखटे आदि भी बनते हैं । हिमालय पर पहाड़ी लोग इस की टहनियों के टोकरे भी बनाते हैं । यह पेड़ तत्रक या समाक की जाति का है । इसे आमी, दरेंगड़ी और एरंडी भी कहते हैं ।

तुंगक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुन्नाग वृक्ष । नागकेसर । (२) महाभारत के अनुसार एक तीर्थ। पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों को वेद पढ़ाया करते थे । एक बार जब वेद नष्ट हो गए तब अंगिरा के पुत्र ने एक 'ओइम्' शब्द का उच्चारण किया । इस शब्द के उच्चारण के साथ ही भूला हुआ सब वेद उपस्थित हो गया । इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों और देवताओं ने बड़ा भारी यज्ञ किया ।

तुंगता–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचाई ।

तुंगनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर एक शिवलिंग और तीर्थ-स्थान ।

तुंगनाभ–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक कीड़ा जो विषैले जंतुओं में गिनाया गया है । इस के काटने से जलन और पीड़ा होती है ।

तुंगभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] मतवाला हाथी ।

तुंगभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण की एक नदी जो सह्याद्रि पर्वत से निकल कर कृष्णा नदी में जा मिली है ।

तुंगबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक ।

तुंगवेणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी जिस का नाम महानदी, वेणा (वेण गंगा) आदि के साथ आया है । कदाचित् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो ।

तुंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंशलोचन । (२) शमी वृक्ष । (३) 'तुंग' नामक वर्णवृत्त ।

तुंगारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] झाँसी से ६ कोस ओड़छा के पास का एक जंगल । इस स्थान पर एक मंदिर है और मेला लगता है । यह बेतवा नदी के तट पर है । उ०—नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य । नगर ओड़छो तहँ बसै धरनीतल में धन्य ।—केशव ।

तुंगारन्य–संज्ञा पुं० दे० "तुंगारण्य" ।

तुंगारि–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर का पेड़ ।

तुंगिनी– संज्ञा स्त्री० [सं०] महाशतावरी । बड़ी सतावर ।

तुंगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी । (२) रात्रि । (३) वन-तुलसी । बबई । ममरी ।

तुंगीनास–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "तुंगनाभ" ।

तुंगीपति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तुच्छद्रु–संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़।
तुच्छधान्यक–संज्ञा पुं० [सं०] भूसी। तुस।
तुच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा। (२) तूतिया। (३) गुजराती इलायची। छोटी इलायची।
तुच्छातितुच्छ–वि० [सं०] छोटे से छोटा। अत्यंत हीन। अत्यंत क्षुद्र।
तुजीह–संज्ञा स्त्री० [डिं०] धनुष। कमान।
तुझ–सर्व०[सं० तुभ्यम्, पा० तुय्हं, प्रा० तुज्झं] 'तू' शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा और षष्ठी के अतिरिक्त और विभक्तियाँ लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, तुझको, तुझसे, तुझपर, तुझमें।
तुझे–सर्व० [हिं० तुझ] 'तू' का कर्म और संप्रदान रूप। तुझको।
तुट*–वि० [सं० त्रुट=टूटना] टुकड़ा। लेशमात्र। ज़रा सा।
तुटितुट–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
तुट्ठना *क्रि० स० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ] तुष्ट करना। प्रसन्न करना। राजी करना।
क्रि० अ० तुष्ट होना। प्रसन्न होना। राज़ी होना।
तुड़वाना–क्रि० स० [हिं० 'तोड़ना' का प्रे०] तोड़ने का काम कराना। तोड़ने में प्रवृत्त करना। तोड़ने देना।
तुड़ाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तुड़ाना] (१) तुड़ाने की क्रिया या भाव। (२) तोड़ने की क्रिया या भाव। (३) तोड़ने की मज़दूरी।
तुड़ाना–क्रि० स० [हिं० तोड़ना का प्रे०] (१) तोड़ने का काम कराना। तुड़वाना। (२) बँधी हुई रस्सी आदि को तोड़ना। बंधन छुड़ाना। जैसे, घोड़ा रस्सी तुड़ाकर भागा। (३) अलग करना। संबंध तोड़ना। जैसे, बच्चे को माँ से तुड़ाना। (४) एक बड़े सिक्के को बराबर मूल्य के कई छोटे छोटे सिक्कों से बदलना। भुनाना। जैसे, रुपया तुड़ाना। (५) दाम कम कराना। मूल्य घटवाना।
तुतुम–संज्ञा पुं० [सं० तुत्थ्] तुरही। बिगुल।
तुणि–संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।
तुतरा † *–वि० [हिं० तोतला] [स्त्री० तुतरी] दे० "तोतला"। उ०—मनमोहन की तुतरी बोलन मुनिमन हरत सुहँसि मुसकनियाँ।—सूर।
तुतराना † *–क्रि० अ० दे० "तुतलाना"। उ०—श्रवणन नहिं उपकंठ रहत है अरु बोलत तुतरात री।—सूर।
तुतरौहाँ † *–वि० दे० "तोतला"।
तुतलाना–क्रि० अ० [सं० त्रुट=टूटना या अनु०] शब्दों और वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण करना। रुक रुक कर टूटे फूटे शब्द बोलना। साफ़ न बोलना। शब्द बोलने में वर्ण ठीक ठीक मुँह से न निकलना। जैसे, बच्चों का तुतलाना बहुत प्यारा लगता है।
तुतली–वि० स्त्री० दे० "तोतली"।
तुतुई †–संज्ञा स्त्री० दे० "तुतुही"।
तुतुही †–संज्ञा स्त्री० [सं० तुंड] टोंटीदार छोटी घंटी। छोटी सी भारी जिसमें टोंटी लगी हो।
तुत्थ–संज्ञा पुं० [सं०] तूतिया। नीला थोथा।
तुत्थक–संज्ञा पुं० दे० "तुत्थ"।
तुत्थांजन–संज्ञा पुं० [सं०] तूतिया। नीला थोथा।
तुत्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पौधा। (२) छोटी इलायची।
तुदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यथा देने की क्रिया। पीड़न। (२) व्यथा। पीड़ा। उ०—कृपादृष्टि करि तुदन मिटावा। सुमन माल पहिराय पठावा।—विश्राम। (३) चुभाने या गड़ाने की क्रिया।
तुन–संज्ञा पुं० [सं० तुन्न] एक बहुत बड़ा पेड़ जो साधारणतः सारे उत्तरीय भारत में सिंध नदी से लेकर सिकिम और भूटान तक होता है। इसकी ऊँचाई चालीस से लेकर पचास साठ हाथ तक और लपेट दस बारह हाथ तक होती है। पत्तियाँ इसकी नीम की तरह लंबी लंबी पर बिना कटाव की होती हैं। शिशिर में यह पेड़ पत्तियाँ झाड़ता है। वसंत के आरंभ में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं जिनकी पखड़ियाँ सफ़ेद पर बीच की घुंडियाँ कुछ बड़ी और पीले रंग की होती हैं। इन फूलों से एक प्रकार का पीला बसंती रंग निकलता है। झड़े हुए फूलों को लोग इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। सूखने पर केवल कड़ी कड़ी घुंडियाँ सरसों के दाने के आकार की रह जाती हैं जिन्हें साफ़ करके कूट डालते या उबाल डालते हैं। तुन की लकड़ी लाल रंग की और बहुत मज़बूत होती है। इसमें दीमक और घुन नहीं लगते। मेज़ कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के लिये इस लकड़ी की बड़ी माँग रहती है। आसाम में चाय के बकस भी इसके बनते हैं।
तुनकामीज़–संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र। (लश०)
तुनकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक तरह की खस्ता रोटी।
तुनतुनी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) वह बाजा जिसमें तुनतुन शब्द निकले। (२) सारंगी।
तुनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तुन] तुन का पेड़।
तुनीर–संज्ञा पुं० दे० "तूणीर"।
तुन्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुन का पेड़। (२) फटे हुए कपड़े का टुकड़ा।
वि० छिन्न। कटा या फटा हुआ।
तुन्नवाय–संज्ञा पुं० [सं०] दरज़ी। कपड़ा सीनेवाला।
तुपक–संज्ञा स्त्री० [तु० तोप] (१) छोटी तोप। (२) बंदूक। कड़ाबीन।

तुइ‡–सर्व० दे० "तू"।

तुई–संज्ञा स्त्री० [?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की बेल जिसे स्त्रियाँ दुपट्टों पर लगाती हैं।
सर्व० दे० "तू"।

तुक–संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक = टुकड़ा] (१) किसी पद्य वा गीत का कोई खंड। कड़ी। (२) पद्य के चरण का अंतिम अक्षर। (३) पद्य के दोनों चरणों के अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल। अक्षरमैत्री। अंत्यानुप्रास। काफ़िया।
यौ०—तुकबंदी।

मुहा०—तुक जोड़ना = (१) वाक्यों को जोड़ कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य खड़ा करना। (२) भद्दा पद्य बनाना। भद्दी कविता करना।

तुकना–क्रि० स० [अनु०] एक अनुकरण शब्द जो 'तकना' शब्द के साथ बोल चाल में आता है। उ०—तकि कै तुकि कै उर पापनि को। लखि कै द्विज देवन शापनि को।—रघुराज।

तुकबंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तुक + फ़ा० बंदी] (१) तुक जोड़ने का काम। भद्दी कविता करने की क्रिया। (२) भद्दा पद्य। भद्दी कविता। ऐसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों।

तुकमा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] घुंडी फसाने का फंदा। मुद्धी।

तुकांत–संज्ञा स्त्री [हिं० तुक + सं० अंत] अंत्यानुप्रास। पद्य के दो चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल। काफ़िया।

तुका–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह तीर जिसमें गाँसी न हो। वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंडी सी बनी हो। उ०—काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारैं मन औरै किये डारैं ये कदंबन की की डारैं री।—कविंद।

तुकार–संज्ञा स्त्री० [हिं० तू + सं० कार] अशिष्ट संबोधन। मध्यम पुरुष वाचक अशिष्ट सर्व० का प्रयोग। 'तू' का प्रयोग जो अपमान-जनक समझा जाता है।

मुहा०—तू तुकार करना = अशिष्ट शब्द से संबोधन करना। 'तू' आदि अपमान-जनक शब्दों का प्रयोग करना।

तुकारना–क्रि० स० [हिं० तुकार] तू तू करके संबोधन करना। अशिष्ट संबोधन करना। उ०—वारौं हौं कर जिन हरि को वदन छुवारी। वारौं वह रसना जिन बोल्यो तुकारी।—सूर।

तुक्कड़–संज्ञा पुं० [हिं० तुक + अक्कड़ (प्रत्य०)] तुक जोड़नेवाला। तुकबंदी करनेवाला। भद्दी कविता बनानेवाला।

तुक्कल–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुक्का] एक प्रकार की बड़ी पतंग जो मोटी डोर पर उड़ाई जाती है।

तुक्का–संज्ञा पुं० [फ़ा० तुका] (१) वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंडी सी बनी होती है। (२) टीला। छोटी पहाड़ी। टेकरी। (३) सीधी खड़ी वस्तु।

मुहा०—तुक्का सा = सीधा उठा हुआ। ऊपर उठा हुआ। जैसे, जब देखो रास्ते में तुक्का सी बैठी रहती है।

तुख–संज्ञा पुं० [सं० तुष] (१) भूसी। छिलका। उ०—भटकत पट अद्वैतता अटकत ज्ञान गुमान। सटकत वितरन तें विहरि फटकत तुख अभिमान।—तुलसी। (२) अंडे के ऊपर का छिलका। उ० - अंड फोरि किय चेंटुआ तुख पर नीर निहारि। गहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर वारि।—तुलसी।

तुखार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है। अधिकांश ग्रंथों के मत से इसकी स्थिति हिमालय के उत्तर पश्चिम होनी चाहिए। यहाँ के घोड़े प्राचीन काल में बहुत अच्छे माने जाते थे। (२) तुखार देश का निवासी।
विशेष–हरिवंश के अनुसार जब महर्षियों ने वेणु का मंथन किया था तब इस अधर्मरत असभ्य जाति की उत्पत्ति हुई थी, पर उक्त ग्रंथ में इस जाति का निवासस्थान विंध्य पर्वत लिखा है जो और ग्रंथों के विरुद्ध पड़ता है।
(३) तुखार देश का घोड़ा।
संज्ञा पुं० दे० "तुषार"।

तुख़्म–संज्ञा पुं० [अ०] बीज।

तुगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

तुगाक्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

तुग्र–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम जो अश्विनीकुमारों के उपासक थे। इन्होंने द्वीपांतरों के शत्रुओं को परास्त करने के लिये अपने पुत्र भुज्यु को जहाज़ पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था। मार्ग में जब एक बड़ा तूफ़ान आया और वायु नौका को उलटने लगी तब भुज्यु ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की। अश्विनीकुमारों ने संतुष्ट होकर भुज्यु को सेना सहित अपनी नौका पर लेकर तीन दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया।

तुग्र्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुग्र के वंश का पुरुष। तुग्र वंशज। (२) तुग्र का पुत्र भुज्यु।

तुचा‡–संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] चमड़ा। छाल।

तुचा‡–संज्ञा स्त्री० दे० "त्वचा"।

तुच्छ–वि० [सं०] (१) भीतर से खाली। खोखला। निःसार। शून्य। (२) हीन। क्षुद्र। नाचीज़। (३) ओछा। खोटा। नीच। (४) अल्प। थोड़ा।
संज्ञा पुं० (१) भूसी। सारहीन छिलका। (२) तूतिया। (३) नील का पौधा।

तुच्छक–संज्ञा पुं० [सं०] काले और हरे रंग का मरकत या पन्ना जो शूद्र या निम्न कोटि का माना जाता है।

तुच्छता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हीनता। नीचता। (२) ओछापन। क्षुद्रता। (३) अल्पता।

तुच्छत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीनता। क्षुद्रता। (२) ओछापन।

तुरई-संज्ञा स्त्री० [सं० तूर=तुरही बाजा] एक बेल जिसके लंबे फलों की तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल कटावदार कद्दू की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। यह पौधा बहुत दिनों तक नहीं रहता। इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर बोया जाता है और बरसात ही तक रहता है। बरसाती तुरई छप्पर या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि भूमि में फैलाने से पत्तियों और फलों के सड़ जाने का डर रहता है। गरमी में भी लोग क्यारियों में इसे बोते हैं और पानी से तर रखते हैं। गरमी से बचाने पर यह बेल जमीन ही में फैलती और फलती है। तुरई के फूल पीले रंग के होते हैं और संध्या के समय खिलते हैं। फल लंबे लंबे होते हैं जिन पर लंबाई के बल उभरी हुई नसों की सीधी लकीरें समान अंतर पर होती हैं।

मुहा०-तुरई का फूल सा=हलकी या छोटी मोटी चीज की तरह जल्दी खतम या खर्च हो जानेवाला। इस प्रकार चटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मालूम न हो। जैसे, तुरई के फूल से ये सौ रुपए देखते देखते उड़ गए।

संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

तुरक-संज्ञा पुं० दे० "तुर्क"।

तुरकटा-संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क+हिं० टा—(प्रत्य०)] मुसलमान। (घृणासूचक शब्द)

तुरकानी-संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क] तुर्कों या मुसलमानों की बस्ती।

तुरकाना-संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क] [स्त्री० तुरकानी] (१) तुर्कों का सा। तुर्कों के ऐसा। (२) तुर्कों का देश या बस्ती।

तुरकानी-वि० स्त्री० [फ़ा० तुर्क+आनी (प्रत्य०)] तुर्कों की सी।

संज्ञा स्त्री० तुर्क की स्त्री।

तुरकिन-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुर्क+हिं० इन—(प्रत्य०)] (१) तुर्क की स्त्री। (२) तुर्क जाति की स्त्री। †(३) मुसलमानिन। मुसलमान स्त्री।

तुरकिस्तान-संज्ञा पुं० दे० "तुर्किस्तान"।

तुरकी-वि० [फ़ा०] (१) तुर्क देश का। जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरकी सिपाही। (२) तुर्क देश संबंधी।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तुर्कों की भाषा। तुर्किस्तान की भाषा।

तुरग-वि० [सं०] तेज चलनेवाला।

संज्ञा पुं० [स्त्री० तुरगी] (१) घोड़ा। (२) चित्त।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

तुरगदानव-संज्ञा पुं० [सं०] केशी नामक दैत्य जो कंस की आज्ञा से कृष्ण को मारने के लिये घोड़े का रूप धारण करके गया था।

तुरगब्रह्मचर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्रह्मचर्य जो केवल स्त्री के न मिलने के कारण ही हो।

तुरगलीलक-संज्ञा पुं० [सं०] संगीतदामोदर के अनुसार एक ताल का नाम।

तुरगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोड़ी। (२) अश्वगंधा।

संज्ञा पुं० [सं० तुरगिन] अश्वारोही। घुड़सवार।

तुरगुला-संज्ञा पुं० [देश०] लटकन जो कर्णफूल नामक कान के गहने में लटकाया जाता है। झुमका। लोलक।

तुरत-अव्य० [सं० तुर] शीघ्र। चटपट। तत्क्षण।

यो०—तुरत फुरत=चटपट।

तुरतुरा†-वि० [सं० त्वरा] [स्त्री० तुरतुरी] (१) तेज। जल्दबा (२) बहुत जल्दी जल्दी बोलनेवाला। जल्दी जल्दी करनेवाला।

तुरतुरिया-वि० दे० "तुरतुरा"।

तुरपई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरपना] तुरपन। एक प्रकार की सिल

तुरपन-संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई जिसमें जोड़ों को पहले लंबाई के बल टाँके डाल कर मिला देते हैं फिर निकले हुए छोर को मोड़ कर तिरछे टाँकों से जमा देते हैं। लुढ़ियावन। बखिया का उलटा।

तुरपना-क्रि० स० [हिं० तर=नीचे+पर=ऊपर+ना (प्रत्य०)] तुरपन की सिलाई करना। लुढ़ियाना।

तुरपवाना-क्रि० स० दे० "तुरपाना"।

तुरम-संज्ञा पुं० [सं० तूरम] तुरही।

तुरमती-संज्ञा स्त्री० [तु० तुरमता] एक चिड़िया जो बाज की तरह शिकार करती है। यह बाज से छोटी होती है।

तुरमनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल रेतने की रेती।

तुरय*-संज्ञा पुं० [सं० तुरग] [स्त्री० तुरी] घोड़ा। उ०—सायक चाप तुरय बनि जति हौ लिए सबै तुम जाहु।—सूर।

तुरही-संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] फूँक कर बजाने का एक बाजा जो मुँह की ओर पतला और पीछे की ओर चौड़ा होता है।

विशेष—यह बाजा पीतल आदि का बनता है और टेढ़ा सीधा कई प्रकार का होता है। पहले यह लड़ाई में नगारे आदि के साथ बजता था।

तुरा*-संज्ञा स्त्री० दे० "त्वरा"।

संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा।

तुराई*-संज्ञा स्त्री० [सं० तूल=रूई। तूलिका=गद्दा] रूई भरा हुआ गुदगुदा बिछावन। गद्दा। तोशक। उ०—(क) नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।—तुलसी। (ख) विविध वसन, उपधान, तुराई। छीर-फेन मृदु विसद सुहाई।—तुलसी। (ग) कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।—तुलसी।

तुराट*-संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा। (हिं०)

तुराना*-क्रि० अ० [सं० तुर] जल्दी करना। घबराना। आतुर होना।

क्रि० प्र०—चलना।—छूटना।

तुफंग—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप, हिं० तुपक] (१) हवाई बंदूक। (२) वह लंबी नली जिसमें मिट्टी या आटे की गोलियाँ, छोटे तीर आदि डाल कर फूँक के जोर से चलाए जाते हैं।

तुफान‡—संज्ञा पुं० दे० "तूफ़ान"।

तुभना—क्रि० अ० [सं० स्तुभ, स्तोभन = स्तब्ध रहना, ठक रहना] स्तब्ध रहना। ठक रह जाना। अचल रह जाना। उ०—टरति न टारे यह छवि मन में चुभी। स्याम सघन पीतांबर दामिनि, अँखियाँ चातक ह्वै जाय तुभी।—सूर।

तुम—सर्व० [सं० त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन। वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिये होता है जिससे कुछ कहा जाता है। जैसे, तुम यहाँ से चले जाओ।

विशेष—संबंध कारक को छोड़ शेष सब कारकों की विभक्तियों के साथ इस शब्द का यही रूप बना रहता है, जैसे, तुमने, तुमको, तुमसे, तुममें, तुमपर। संबंध कारक में 'तुम्हारा' होता है। शिष्टता के विचार से एक वचन के लिये भी बहु० 'तुम' का ही व्यवहार होता है। 'तू' का प्रयोग बहुत छोटों या बच्चों के लिये ही होता है।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुंबिनी] (१) कडुए गोल कद्दू का सूखा फल। गोल घीये का सूखा फल। (२) सूखे गोल कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ पात्र जिसमें प्रायः साधु पानी पीते हैं। (३) सूखे कद्दू का बना हुआ एक बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता है। महुवर।

विशेष—यह बाजा कद्दू के खोखले पेट में दो नरकट की नलियाँ घुसा कर बनाया जाता है। सँपेरे इसे प्रायः बजाते हैं।

तुमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० दे० "तूमतड़ाक"।

तुमल*—संज्ञा पुं०, वि० दे० "तुमुल"।

तुमरा—सर्व० दे० "तुम्हारा"।

तुमरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "तुमड़ी"।

तुमरू—संज्ञा पुं० दे० "तुंबुरु"।

तुमाना—क्रि० स० [हिं० 'तूमना' का प्रे०] तूमने का काम कराना। दबी या जम कर बैठी हुई रूई को पुलपुली करके फैलाने के लिये नोचवाना।

तुमुती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तुमुर—संज्ञा पुं० दे० "तुमुल"।

संज्ञा पुं० क्षत्रियों की एक जाति जिसका उल्लेख मत्स्य-पुराण में है।

तुमुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेना का कोलाहल। सेना की धूम। लड़ाई की हलचल। (२) सेना की भिड़ंत। गहरी मुठभेड़। (३) बहेड़े का पेड़।

तुम्ह‡—सर्व० दे० "तुम"।

तुम्हारा—सर्व० [हिं० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध कारक का रूप। उसका जिससे बोलनेवाला बोलता है। जैसे, तुम्हारी पुस्तक कहाँ है?

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० "सिर"।

तुम्हें—सर्व० [हिं० तुम] 'तुम' का वह विभक्तियुक्त रूप जो उसे कर्म और संप्रदान में प्राप्त होता है। तुमको।

तुरंग—वि० [सं०] जल्दी चलनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) चित्त। (३) सात की संख्या।

तुरंगक—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी तोरई।

तुरंग गौड़—संज्ञा पुं० [सं०] गौड़ राग का एक भेद। यह वीर या रौद्र रस का राग है।

तुरंगद्वेषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस। महिषी।

तुरंगप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।

तुरंगम—वि० [सं०] जल्दी चलनेवाला।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) चित्त। (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु होते हैं। इसे तुंग और तुंगा भी कहते हैं। उ०—न नग गहु बिहारी। कहत अहि पियारी।

तुरंगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर।

तुरंगवदन—संज्ञा पुं० [सं०] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर।

तुरंगशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़सार। अस्तबल।

तुरंगारि—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर। करवीर।

तुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। घघरबेल। बंदाल।

तुरंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

तुरंज—संज्ञा पुं० [फ़ा०। अ० तुर्ज] (१) चकोतरा नीबू। (२) बिजौरा नीबू। खट्टी। (३) सुई से काढ़ कर बनाया हुआ पान या कलगी के आकार का वह बूटा जो अँगरखों के मोढों और पीठ पर तथा दुशाले के कोनों पर बनाया जाता है।

तुरंजबीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक प्रकार की चीनी जो प्रायः ऊँटकटारे के पौधों पर ओस के साथ खुरासान देश में जमती है। (२) नींबू के रस का शर्बत।

तुरंत—क्रि० वि० [सं० तुर = वेग, जल्दी] जल्दी से। अत्यंत शीघ्र। तत्क्षण। झटपट। फौरन। बिना विलंब के।

तुरंता—संज्ञा पुं० [हिं० तुरंत] गाँजा (जिसका नशा तुरंत पीते ही चढ़ता है)।

तुर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्द।

वि० वेगवान्। शीघ्रगामी।

संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] (१) वह लकड़ी जिस पर जुलाहे कपड़ा बुन कर लपेटते जाते हैं। (२) वह बेलन जिस पर गोटा बुन कर लपेटते जाते हैं।

तुर्याश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थाश्रम । संन्यासाश्रम ।

तुर्रा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) काकुल । घुँघराले बालों की लट जो माथे पर हो ।

यौ०—*तुर्रा तरार = सुंदर बालों की लट ।*

(२) कलगी । गोशवारा । पर, या फुँदना जो पगड़ी में लगाया या खोंसा जाता है । (३) बादले का गुच्छा जो पगड़ी के ऊपर लगाया जाता है ।

मुहा०—तुर्रा यह कि = उस पर भी इतना और । इस के उपरांत इतना यह भी । *जैसे, वे घोड़ा तो ले ही गए । तुर्रा यह कि खर्च भी हम दें ।* किसी बात पर तुर्रा होना = (१) किसी बात में कोई और दूसरी बात मिलाई जाना । (२) यथार्थ बात के अतिरिक्त और दूसरी बात भी मिलाई जाना । हाशिया चढ़ना ।

(४) फूलों की लड़ियों का गुच्छा जो दूल्हे के कान के पास लटकता रहता है । (५) टोपी आदि में लगा हुआ फुँदना । (६) पक्षियों के सिर पर निकले हुए परों का गुच्छा । चोटी । शिखा । (७) हाशिया । किनारा । (८) मकान का छज्जा । (९) मुँहासे का वह पल्ला जो इसके ऊपर निकला होता है । (१०) गुलतुर्रा । मुर्गकेश नाम का फूल । जटाधारी । (११) कोड़ा । चाबुक ।

मुहा०—तुर्रा करना = (१) कोड़ा मारना । (२) *कोड़ा मार कर घोड़े को बढ़ाना ।*

(१२) एक प्रकार की बुलबुल जो ८ या ९ अंगुल लंबी होती है । यह जाड़े भर भारतवर्ष के पूर्वीय भागों में रहती है पर गरमी में चीन और साइबेरिया की ओर चली जाती है । एक प्रकार का बटेर । डुबकी ।

संज्ञा पुं० [अनु० तुर तुर = पानी ढलने का शब्द] भाँग आदि का घूँट । चुसकी ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—तुर्रा चढ़ाना या जमाना = भाँग पीना ।

वि० [फ़ा०] अनोखा । अद्भुत ।

तुर्वसु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति के एक पुत्र का नाम जो देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । राजा ययाति ने विषय-भोग से तृप्त न होकर जब इससे इसका यौवन माँगा था तब इसने देने से साफ इनकार कर दिया था । इसपर राजा ययाति ने इसे शाप दिया था कि तू अधर्मियों, प्रतिलोमाचारियों आदि का राजा होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगेगा । विष्णुपुराण के अनुसार तुर्वसु का पुत्र हुआ वह्नि, वह्नि का गोभानु, गोभानु का त्रैशांब, त्रैशांब का करंधम और करंधम का मरुत्त । मरुत्त को कोई संतति न थी इससे उसने पुरु-वंशीय दुष्यंत को पुत्ररूप से ग्रहण किया ।

तुर्श—वि० [फ़ा०] खट्टा ।

तुर्शरू—वि० [फ़ा०] तीखे मिज़ाजवाला । बदमिज़ाज ।

तुर्शाई†—संज्ञा स्त्री० दे० "तुर्शी" ।

तुर्शाना—क्रि० अ० [फ़ा० तुर्श] खट्टा हो जाना ।

तुर्शी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] खटाई । अम्लता ।

तुर्शीदंदाँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घोड़े के दाँतों में कीट या मैल जमने का रोग ।

तुल—वि० दे० "तुल्य" ।

तुलना—क्रि० अ० [सं० तुल] (१) तौला जाना । तराज़ू पर *अँदाजा जाना । मान का कूता जाना ।*

संयो० क्रि०—*जाना ।*

(२) तौल या मान में बराबर उतरना । तुल्य होना । उ०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग । तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।—तुलसी । (३) किसी आधार पर इस प्रकार ठहरना कि आधार के बाहर निकला हुआ कोई भाग अधिक बोझ के कारण किसी ओर को झुका न हो । ठीक अंदाज़ के साथ टिकना । जैसे, किसी कील पर छड़ी आदि का तुल कर टिकना । बाइसिकिल पर तुल कर बैठना । (४) सधना । किसी अस्त्र आदि का इस प्रकार हिसाब से चलाया जाना कि वह ठीक लक्ष्य पर पहुँचे और उतना ही आघात पहुँचावे जितना इष्ट हो । *जैसे, तुल कर तलवार का हाथ मारना । (५) नियमित होना ।* बँधना । अंदाज़ होना । बँधे हुए मान का अभ्यास होना । उ०—जैसे, दूकानदारों के हाथ तुले हुए होते हैं, जितना उठाकर दे देते हैं वह प्रायः ठीक होता है । (६) भरना । पूरित होना । (७) गाड़ी के पहिये का ओंगा जाना । (८) उद्यत होना । उतारू होना । किसी काम या बात के लिये बिलकुल तैयार होना । उ०—*वे इस बात पर तुले हुए हैं, कभी न मानेंगे ।*

मुहा०—किसी काम या बात पर तुलना = कोई काम करने के लिये उद्यत होना ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि के एक दूसरे से घट बढ़ होने का विचार । मिलान । *तारतम्य ।*

क्रि० प्र०—*करना ।—होना ।*

(२) सादृश्य । समता । बराबरी । जैसे, इसकी तुलना उसके साथ नहीं हो सकती । (३) उपमा । † (४) तौल । वजन । † (५) गणना । गिनती ।

तुलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] तराज़ू या काँटे की डाँड़ी में सुई के दोनों तरफ़ का लोहा ।

तुलबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल्दबाजी ।

तुलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौलना, तुलना] (१) तौलने की मज़दूरी । (२) पहिये को ओंगने की मज़दूरी ।

क्रि० स० दे० "तुड़ाना"।

तुरायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो चैत्र शुक्ला ५ और वैसाख शुक्ला ५ को होता है।

तुरावत्—वि० [सं० त्वरावत] [स्त्री० तुरावती] वेगवाला। वेगयुक्त।

तुरावती वि० स्त्री० [सं० त्वरावती] वेगवाली। झोंक के साथ बहनेवाली। उ०—(क) विषम विषाद तुरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त्त अपारा।—तुलसी। (ख) अमृत सरोवर सरित अपारा। ढाहैं कूल तुरावति धारा।—शं० दि०।

तुरावान्—वि० दे० "तुरावत्"।

तुराषाट्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

तुरासाह—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

तुरिया—संज्ञा स्त्री० दे० "तुरीय"।

संज्ञा स्त्री० दे० "तोरिया"।

तुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जुलाहों का तोरिया या तोड़िया नाम का औजार। (२) जुलाहों की कूची। हत्थी।

वि० वेगवाली।

संज्ञा स्त्री० [अ० तुरय = घोड़ा] (१) घोड़ी। (२) लगाम। बाग।

संज्ञा पुं० सवार। अश्वारोही।

संज्ञा स्त्री० [अ० तुर्रा] (१) फूलों का गुच्छा। (२) मोती की लड़ों का झब्बा जो पगड़ी में कान के पास लटकाया जाता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

तुरीय—वि० [सं०] चतुर्थ। चौथा।

विशेष—वेद में वाणी या वाक् के चार भेद किए गए हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। इसी वैखरी वाणी को तुरीय भी कहते हैं। सायण के अनुसार जो नादात्मक वाणी मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता है उस का नाम परा है। जिसे केवल योगी लोग ही जान सकते हैं वह पश्यंती है। फिर जब वाणी बुद्धिगत होकर बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है तब उसे मध्यमा कहते हैं। अंत में जब वाणी मुँह में आकर उच्चारित होती है तब उसे वैखरी या तुरीय कहते हैं।

वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष है जिस में समस्त भेद-ज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य वा ब्रह्मचैतन्य हो जाती है।

तुरीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिस से सूर्य की गति जानी जाती है।

तुरीय वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ण का पुरुष। शूद्र।

तुरुक—संज्ञा पुं० दे० "तुर्क"।

तुरुप—संज्ञा पुं० [अं० ट्रंप] ताश का एक खेल जिसमें कोई एक रंग प्रधान मान लिया जाता है। इस रंग का छोटे से छोटा पत्ता दूसरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है।

संज्ञा पुं० [अं० ट्रूप = सेना] (१) सवारों का रिसाला। (२) रिसाला। सेना का एक खंड।

तुरुपना—क्रि० स० दे० "तुरपना"।

तुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुर्क जाति। तुर्किस्तान का रहनेवाला मनुष्य।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम आया है जिससे अभिप्राय हिमालय के उत्तर-पश्चिम के निवासियों ही से जान पड़ता है। उक्त पुराणों में तुरुष्क राजगण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है। कथासरित्सागर और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है।

(२) वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो। तुर्किस्तान। (३) एक गंध द्रव्य। लोबान। (४) तुर्किस्तान का घोड़ा।

तुरुष्कगौड़—संज्ञा पुं० दे० "तुरंगगौड़"।

तुरुही—संज्ञा स्त्री० दे० "तुरही"।

तुरैया—संज्ञा स्त्री० दे० "तुरई"।

तुर्क—संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क] (१) तुर्किस्तान का निवासी। (२) रूम का निवासी। टर्की का रहनेवाला।

तुर्कमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क] (१) तुर्क जाति का मनुष्य। (२) तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ट और साहसी होता है।

तुर्कसवार—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क + सवार] एक विशेष प्रकार का सवार।

विशेष—ऐसे सवारों को सिर से पैर तक तुर्की पहरावा पहनाया जाता था।

तुर्किन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुर्क] (१) तुर्क जाति की स्त्री। (२) तुर्क की स्त्री।

तुर्किनी—संज्ञा स्त्री० दे० "तुर्किन"।

तुर्की—वि० [फ़ा० तुर्क] तुर्किस्तान का। तुर्किस्तान में होनेवाला। जैसे, तुर्की घोड़ा।

संज्ञा स्त्री० (१) तुर्किस्तान की भाषा। (२) तुर्किस्तान का घोड़ा। (३) तुर्कों की सी ऐंठ। अकड़। गर्व।

मुहा०—तुर्की तमाम होना = घमंड जाता रहना। शेखी निकल जाना।

तुर्फरी—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश का मारनेवाला भाग जो सामने सीधी नोक की ओर होता है। हंता।

यौ०—जर्फरी तुर्फरी = बात का बतक्कड़। प्रलाप।

तुर्य—वि० [सं०] चौथा। चतुर्थ।

तुर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जिससे मुक्ति हो जाती है। तुरीय ज्ञान।

इतना प्रेम राम से करते तो न जाने क्या हो जाते"। स्त्री की बात इन्हें लग गई और ये चट विरक्त होकर काशी चले आए। वहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर ब्राह्मण के वेश में कथा सुनने जाया करते थे। हनुमान् जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। हनुमान् जी ने इन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी जहाँ इन्हें दो राजकुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ प्रियादास ने लिखी हैं, जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बंदरों का उत्पात करना और बादशाह का तंग आकर छोड़ना इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुक्ल ९ (रामनवमी) संवत् १६३१ को रामचरित-मानस लिखना आरंभ किया। संवत १६८० में काशी में असीघाट पर इन का शरीरांत हुआ जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥ रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहावली, गीतावली, कवित्त रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्यसंदीपिनी, कृष्णगीतावली। इनके अतिरिक्त हनुमानबाहुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसी-द्वेषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बबई। बन-तुलसी। बर्बरी। ममरी।

तुलसीपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती।

तुलसीबास–संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी+बास=महक] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है। इस का चावल बहुत सुगंधित होता है और कई साल तक रह सकता है।

तुलसीवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलसी के वृक्षों का समूह। तुलसी का जंगल। (२) वृंदावन।

तुला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सादृश्य। तुलना। मिलान। (२) गुरुत्व नापने का यंत्र। तराजू। काँटा।

यौ०—तुलादंड।

(३) मान। तौल। (४) भांड। अनाज आदि नापने का बरतन। (५) प्राचीन काल की एक तौल जो १०० पल या पाँच सेर के लगभग होती थी। (६) ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि।

विशेष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है। तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के आद्य ४५—४५ दंड होते हैं। इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है।

(७) सत्यासत्यनिर्णय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी। वादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा। दे० "तुलापरीक्षा"। (८) वास्तु विद्या में स्तंभ (खंभे) के विभागों में से चौथा विभाग।

तुलाई–संज्ञा स्त्री० [सं० तूल=रुई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो। रुई से भरा दोहरा कपड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है। दुलाई। उ०—तपन तेज तपता तपन तूल तुलाई माह। सिसिर सीत क्योंहुँ न घटै बिन लपटे तियनाह।—बिहारी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] (१) तौलने का काम या भाव। (२) तौलने की मज़दूरी।

तुलाकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तौल में कसर। (२) तौल में कसर करनेवाला। डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य।

तुलाकोटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तराजू की डंडी के दोनों छोर जिनमें पलड़े की रस्सी बँधी रहती है। (२) एक तौल का नाम। (३) अर्बुद संख्या। (४) नूपुर।

तुलाकोश–संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलापरीक्षा।

तुलादान–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है। यह सोलह महादानों में से है। तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं।

तुलाधार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुलाराशि। (२) तराजू की रस्सी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं। (३) बनियाँ। वणिक्। (४) काशी का रहनेवाला एक वणिक् जिसने महर्षि जाजलि को उपदेश दिया था। (महाभारत)। (५) काशीनिवासी एक व्याध जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था। कृतबोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने आया तब इसने उसका समस्त पूर्व वृत्तांत कह सुनाया। इस पर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का व्रत ले लिया। (वृहद्धर्मपुराण)।

वि० तुला को धारण करनेवाला।

तुलाना*–क्रि० अ० [हिं० तुलना=तौल में बराबर आना] (१) आ पहुँचना। समीप आना। निकट आना। उ०—(क) समुद लोक घन चढ़ी विवाना। जो दिन डरै सो आय तुलाना।—जायसी। (ख) अपनो काल आपु ही बोल्यो इनकी मीचु तुलानी।—सूर। (२) बराबर होना। पूरा उतरना।

क्रि० स० [हिं० तुलना] गाड़ी के पहियों को औंगाना। गाड़ी के पहियों की धुरी में चिकना दिलाना।

तुलापरीक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियुक्तों की एक परीक्षा जो अग्नि-परीक्षा, विष-परीक्षा आदि के समान प्राचीन काल में प्रचलित थी। दोषी या निर्दोष होने की दिव्य परीक्षा।

तुलवाना–क्रि० स० [हिं० तौलना] [संज्ञा तुलवाई] (१) तौल कराना। वज़न कराना। (२) गाड़ी के पहिये की धुरी में घी, तेल आदि दिलाना। औंगवाना।

तुलसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटा झाड़ या पौधा जिसकी पत्तियों से एक प्रकार की तीक्ष्ण गंध निकलती है। पत्तियाँ एक अंगुल से दो अंगुल तक लंबी और लंबाई लिए हुए गोल काट की होती हैं। फूल मंजरी के रूप में पतली सींकों में लगते हैं। अंकुर के रूप में बीज से प्रथम दो दल फूटते हैं। उद्भिद्-शास्त्रवेत्ता तुलसी को पुदीने की जाति में गिनते हैं। तुलसी अनेक प्रकार की होती है। गरम देशों में यह बहुत अधिक पाई जाती है। अफ्रिका, दक्षिण अमेरिका में इसके अनेक भेद मिलते हैं। अमेरिका में एक प्रकार की तुलसी होती है जिसे ज्वर-जड़ी कहते हैं। फसली बुखार में इसकी पत्ती का काढ़ा पिलाया जाता है। भारतवर्ष में भी तुलसी कई प्रकार की पाई जाती है, जैसे, गंध-तुलसी, श्वेत तुलसी या रामा, कृष्ण तुलसी या कृष्णा, वर्वरी तुलसी या ममरी। तुलसी की पत्ती मिर्च आदि के साथ ज्वर में दी जाती है। वैद्यक में यह गरम, कड़ुई, दाहकारक, दीपन तथा कफ वात और कुष्ट आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

तुलसी को वैष्णव अत्यंत पवित्र मानते हैं। शालग्राम ठाकुर की पूजा विना तुलसी-पत्र के नहीं होती। चरणामृत आदि में भी तुलसीदल डाला जाता है। तुलसी की उत्पत्ति के संबंध में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में यह कथा है। तुलसी नाम की एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख शाप दिया कि तू मनुष्य शरीर धारण कर। शाप के अनुसार तुलसी धर्मध्वज राजा की कन्या हुई। उसके रूप की तुलना किसी से नहीं हो सकती थी इससे उसका नाम 'तुलसी' पड़ा। तुलसी ने वन में जाकर घोर तप किया और ब्रह्मा से इस प्रकार वर माँगा "मैं कृष्ण की रति से कभी तृप्त नहीं हुई हूँ। मैं उन्हीं को पति रूप से पाना चाहती हूँ"। ब्रह्मा के कथनानुसार तुलसी ने शंखचूड़ नामक राक्षस से विवाह किया। शंखचूड़ को वर मिला था कि विना उसकी स्त्री का सतीत्व भंग हुए उसकी मृत्यु न होगी। जब शंखचूड़ ने संपूर्ण देवताओं को परास्त कर दिया तब सब लोग विष्णु के पास गए। विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारण करके तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इस पर तुलसी ने नारायण को शाप दिया कि "तुम पत्थर हो जाओ"। जब तुलसी नारायण के पैर पर गिर कर बहुत रोने लगी तब विष्णु ने कहा "तुम यह शरीर छोड़ कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा"। तब से बराबर शालग्राम ठाकुर की पूजा होने लगी और तुलसीदल उनके मस्तक पर चढ़ने लगा। वैष्णव तुलसी की लकड़ी की माला और कंठी धारण करते हैं। बहुत से लोग तुलसी-शालग्राम का विवाह बड़ी धूम धाम से करते हैं। कार्त्तिक मास में तुलसी की पूजा घर घर होती है क्योंकि कार्त्तिक की अमावास्या तुलसी के उत्पन्न होने की तिथि मानी जाती है।

तुलसीदल–संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीपत्र। तुलसी के पौधे का पत्ता।

विशेष—वैष्णव इसे अत्यंत पवित्र मानते हैं और ठाकुर पर चढ़ा कर प्रसाद के रूप में भक्तों में बाँटते हैं।

तुलसीदाना–संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + फ़ा० दाना] एक गहना।

तुलसीदास–संज्ञा पुं० उत्तरीय भारत के सर्वप्रधान भक्त कवि जिन के 'रामचरितमानस' का प्रचार हिंदुस्तान में घर घर है। ये जाति के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये पतिऔजा के दूबे थे। पर तुलसीचरित नामक एक ग्रंथ में, जो गोस्वामी जी के किसी शिष्य का लिखा माना जाता है और अब तक छपा नहीं है, इन्हें गाना का मिश्र लिखा है। वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित्र नामक एक ग्रंथ भी है जो अब नहीं मिलता। इस का उल्लेख शिवसिंह ने अपने शिवसिंह-सरोज में किया है। कहते हैं कि वेणीमाधवदास कवि गोसाईं जी के साथ प्रायः रहा करते थे।

नाभा जी के भक्तमाल में तुलसीदास जी की प्रशंसा आई है, जैसे, कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो।... रामचरित-रस-मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी॥ भक्त माल की टीका में प्रियादास ने गोस्वामी जी का कुछ वृत्तांत लिखा है वही लोक में प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी के जन्म संवत् का ठीक पता नहीं लगता। पं० रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर में एक प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। उन्होंने जन्म काल संवत् १५८९ बतलाया है। शिवसिंह ने १५८३ लिखा है। इनके जन्मस्थान के संबंध में भी मतभेद है, पर अधिकांश प्रमाणों से इनका जन्मस्थान चित्रकूट के पास राजापुर नामक ग्राम ही ठहरता है जहाँ अब तक इनके हाथ की लिखी रामायण का कुछ अंश रक्षित है। तुलसीदास के मातापिता के संबंध में भी कहीं कुछ लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी था। प्रियादास ने अपनी टीका में इन के संबंध में कई बातें लिखी हैं जो अधिकतर इनके माहात्म्य और चमत्कार को प्रकट करती हैं। उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी जी युवावस्था में अपनी स्त्री पर अत्यंत आसक्त थे। एक दिन स्त्री बिना पूछे बाप के घर चली गई। ये स्नेह से व्याकुल होकर रात को उसके पास पहुँचे। उसने इन्हें धिक्कारा कि "यदि तुम

में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है। (कुमारिल भट्ट तुषाग्नि ही में भस्म होकर मरे थे)।

तुषार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हवा में मिली भाप जो सर्दी से जम कर और सूक्ष्म जलकण के रूप में हवा से अलग हो कर गिरती और पदार्थों पर जमती दिखाई देती है। पाला। (२) हिम। बरफ। (३) एक प्रकार का कपूर। चीनिया कपूर। (४) हिमालय के उत्तर का एक देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। (५) तुषार देश में बसनेवाली जाति जो शक जाति की एक शाखा थी।

वि० छूने में बरफ़ की तरह ठंढा।

तुषारकर—संज्ञा पुं० [सं०] हिमकर। चंद्रमा।

तुषारगौर—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तुषारमूर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषाररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषारपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ओला। (२) बरफ़।

तुषारांशु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषाराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

तुषित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के गणदेवता जो संख्या में १२ हैं। मन्वंतरों के अनुसार इनके नाम बदला करते हैं। (२) विष्णु। (३) एक स्वर्ग का नाम। (बौद्ध)

तुषोत्थ—संज्ञा पुं० दे० "तुषोदक"।

तुषोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिलके समेत कूटे हुए जौ को पानी में सड़ा कर बनाई हुई काँजी। (२) भूसी को सड़ा कर खट्टा किया हुआ जल।

तुष्ट—वि० [सं०] (१) तोषप्राप्त। तृप्त। (२) राज़ी। प्रसन्न। खुश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष। प्रसन्नता।

तुष्टना*—क्रि० अ० [सं० तुष्ट] प्रसन्न होना। उ०—(क) अपावकर्म तुष्टत चिरकाला। प्रेम ते प्रगट होत ततकाला।—विश्राम। (ख) नाम लेइ जेहि युवति को नहिं सुहाइ सुनि तासु। राम जानकी के कहे तुष्टत तेहि पर आसु।—विश्राम।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संतोष। तृप्ति। (२) प्रसन्नता।

विशेष—सांख्य में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार आध्यात्मिक और पाँच बाह्य। आध्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मान सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है उसे प्रकृति या अंभ तुष्टि कहते हैं। (२) उपादान—संन्यास से विवेक होता है ऐसा समझ संन्यास से जो तुष्टि होती है उसे उपादान या सलिल तुष्टि कहते हैं। (३) काल पाकर आपही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा इस प्रकार की तुष्टि को काल तुष्टि या ओघ तुष्टि कहते हैं। (४) भाग्य में होगा तो मोक्ष हो ही जायगा ऐसी तुष्टि को भाग्य तुष्टि या वृष्टि तुष्टि कहते हैं।

इसी प्रकार इंद्रियों के विषयों से विरक्ति द्वारा जो तुष्टि होती है वह पाँच प्रकार से होती है, जैसे, यह समझने से कि (१) अर्जन करने में बहुत कष्ट होता है, (२) रक्षा करना और कठिन है, (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यों ज्यों भोग करते हैं त्यों त्यों इच्छा बढ़ती जाती है और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता। इन पाँचों के नाम क्रमशः पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमांभ और उत्तमांभ हैं।

इन नौ प्रकार की तुष्टियों के विपर्यय से बुद्धि की अशक्ति उत्पन्न होती है। दे० "अशक्ति"।

(३) कंस के आठ भाइयों में से एक।

तुस—संज्ञा पुं० दे० "तुष"।

तुसार—संज्ञा पुं० दे० "तुषार"।

तुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुस] भूसी। अन्न के ऊपर का छिलका। उ०—ऐसी को ठाली बैठी है तोसों मूँड़ पिरावै। झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न आवै।—सूर।

तुस्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] धूल। गर्द।

तुहफ़ा—संज्ञा पुं० दे० "तोहफ़ा"।

तुहमत—संज्ञा स्त्री० दे० "तोहमत"।

तुहार†—सर्व० दे० "तुम्हारा"।

तुहिँ—सर्व० [हिं० तू + हि (प्रत्य०)] तुमको।

तुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाला। कुहरा। तुषार। (२) हिम। बरफ़। (३) चंद्रतेज। चाँदनी। (४) शीतलता। ठंढक।

तुहिनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

तुहिनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

तुहैं†—सर्व० दे० "तुम्हें"।

तूँ—सर्व० दे० "तू"।

तूँगा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पृथ्वी। भूमि। (२) नाव। नौका।

तूँबड़ा—संज्ञा पुं० दे० "तूँबा"।

तूँबना—क्रि० स० दे० "तूमना"।

तूँबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] (१) कड़ुआ गोल कद्दू। कड़ुआ गोल घीया। तितलौकी।

विशेष—इस कद्दू को खोखला करके कई काम में लाते हैं, बरतन बनाते हैं सितार आदि बाजों में ध्वनिकोश बनाने के लिये लगाते हैं।

(२) कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन जिसे प्रायः साधु अपने साथ रखते हैं। कमंडल।

विशेष—स्मृतियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विस्तृत विधान दिया हुआ है। एक खुले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक बड़ी सी तुला (तराज़ू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर तोरण आदि बाँधे जाते थे। फिर मंत्र-पाठ-पूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराज़ू के पलड़े पर बिठाकर मिट्टी आदि से तौल लेते थे। फिर उसे उतार कर दूसरी बार तौलते थे। यदि पलड़ा कुछ झुक जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें पिण्याक (तिल की खली), भात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का तथ्र लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० दे० "तुलादान"।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] गुंजाबीज। घुँघची के बीज जो तौल के काम में आते हैं।

तुलाभवानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकरदिग्विजय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अंदाज़ या मान जो तौलकर किया जाय। (२) बाट। बटखरा।

तुलायंत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराज़ू।

तुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० तुलना] वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके धुरी में तेल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। वह लकड़ी जिसके सहारे ओंगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जुलाहों की कूँची। (२) चित्र बनाने की कूँची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंजन की तरह की एक छोटी चिड़िया।

तुलित—वि० [सं०] (१) तुला हुआ। (२) बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का वृक्ष।

तुली—संज्ञा स्त्री० दे० "तुलि"।
संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] छोटी तराज़ू। काँटा।
† संज्ञा स्त्री० [?] तंबाकू। सुरती।

तुलुव—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सह्याद्रि और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाड़ा कहते हैं।

तुलूली—संज्ञा स्त्री० [अनु० तुलतुल] बँधी हुई धार जो कुछ दूर पर जाकर पड़े (जैसे, पेशाब की)।

क्रि० प्र०—बँधना।

तुल्य—वि० [सं०] (१) समान। बराबर। (२) सदृश।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बराबरी। समता। (२) सादृश्य।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुल कर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यंग्य जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अप्रस्तुतों का अर्थात् बहुत से उपमेयों या उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। उ०—(क) अपने अँग के जानि कै जोबन नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को बड़ो इज़ाफ़ा कीन।—बिहारी। यहाँ स्तन, मन, नयन, नितंब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'इजाफ़ा होना' एक ही धर्म कहा गया है। (ख) लखि तेरी सुकुमारता पूरी ! या जग माहिं। कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाहिं॥ यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है।

तुल्ययोगी—वि० [सं०] समान संबंध रखनेवाला।

तुल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तुव—सर्व० दे० "तव"।

तुवर—वि० [सं०] (१) कसैला। (२) बिना दाढ़ी मोछ का। श्मश्रुहीन।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसैला रस। कषाय रस। (२) अरहर। (३) एक पौधा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है। इसके फल इमली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का दूध बढ़ता है।

तुवरयावनाल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल ज्वार। लाल जुँहरी।

तुवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोपीचंदन। (२) आढ़की। अरहर।

तुवरी—संज्ञा स्त्री० दे० "तुवरिका"।

तुवरीशिंब—संज्ञा पुं० [सं०] चकँवड़ का पेड़। पँवार।

तुवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूँबी।

तुशियार—संज्ञा पुं० [देश०] एक झाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है। इसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। पुरुनी।

तुष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न के ऊपर का छिलका। भूसी। (२) अंडे के ऊपर का छिलका। (३) बहेड़े का पेड़।

तुषग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

तुषांबु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काँजी जो भूसी सहित कूटे हुए जौ को सड़ा कर बनती है। वैद्यक में यह काँजी, अग्निदीपक, पाचक, हृदयग्राही और तीक्ष्ण मानी गई है।

तुषानल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूसी की आग। घास फूस की आग। करसी की आँच। (२) भूसी वा घास फूस की आग

तून-संज्ञा पुं० [सं० तुन्नक] (१) तुन का पेड़। दे० "तुन"। (२) तूल नाम का लाल कपड़ा।
*संज्ञा पुं० दे० "तूण"।

तूना-क्रि० अ० [हिं० चूना] (१) चूना। टपकना। (२) खड़ा न रह सकना। गिरना। (३) गर्भपात होना। गर्भ गिरना।
विशेष—दे० "तुअना"।

तूनीर-संज्ञा पुं० दे० "तूणीर"।

तूफ़ान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) डुबानेवाली बाढ़। (२) वायु के वेग का उपद्रव। आँधी। ऐसा अंधड़ जिसमें खूब धूल उड़े, पानी बरसे, बादल गरजें तथा इसी प्रकार के और उत्पात हों।
क्रि० प्र०—आना।—उठना।
(३) आपत्ति। ईति। प्रलय। आफ़त। (४) हल्लागुल्ला। वावैला। (५) झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। दंगा फ़साद। हलचल। जैसे, थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफ़ान खड़ा करने की क्या ज़रूरत?
क्रि० प्र०—उठाना।—खड़ा करना।
(६) ऐसा कलंक या दोषारोपण जिससे कोई भारी उपद्रव खड़ा हो। झूठा दोषारोपण। तोहमत।
क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।
मुहा०—तूफ़ान जोड़ना या बाँधना = झूठा कलंक लगाना। झूठ मूठ दोषारोपण करना। तूफ़ान बनाना = दे० "तूफ़ान जोड़ना"।

तूफ़ानी-वि० [फ़ा०] (१) तूफ़ान खड़ा करनेवाला। ऊधमी। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। फ़सादी। (२) झूठा कलंक लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। (३) उग्र। प्रचंड।

तूमड़ी-संज्ञा स्त्री० [दे० तूँबा + ड़ी (प्रत्य०)] (१) तूँबी। (२) तूँबी का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे सँपेरे बजाया करते हैं।
विशेष—तूँबी का पतला सिरा थोड़ी दूर से काट देते हैं और नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो जीभियाँ दो पतली नलियों में लगा कर डाल देते हैं और छेद को मोम से बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के सात छेद बनाते हैं जिन पर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते जाते हैं।

तूमतड़ाक-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तड़क भड़क। शान शौकत। आन बान। (२) ठसक। बनावट।

तूमना-क्रि० स० [सं० स्तोभ = ढेर + ना (प्रत्य०)] (१) रूई आदि के जमे हुए लच्छों को नोच नोच कर छुड़ाना। उँगली से रूई इस प्रकार खींचना कि उसके रेशे अलग अलग हो जायँ। रूई के गाले के सटे हुए रेशों को कुछ अलग अलग करना। उधेड़ना। बिथूरना। (२) धज्जी धज्जी करना। (३) मलना दलना। हाथ से मसलना। (४) बात को उधेड़ना। रहस्य खोलना। सब भेद प्रकट करना।

तूमरी*-संज्ञा स्त्री० दे० "तूमड़ी"।

तूमार-संज्ञा पुं० [अ०] बात का व्यर्थ विस्तार। बात का बतंगड़।
क्रि० प्र०—बाँधना।

तूमारिया सूत-संज्ञा पुं० [हिं० तूमना + सूत] खूब महीन कता हुआ सूत। ऐसा सूत जो तूमी हुई रूई से काता गया हो।

तूया-संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बाजा। नगारा। उ०—तोरन तूरन तूर बजै वर आवत भाँतिन गावति ठाढ़ी।—केशव। (२) तुरही नाम का बाजा। सिंघा।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तूल = लंबाई] (१) गज़ डेढ़ गज़ लंबी एक लकड़ी जो जुलाहों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी लपेटी जाती है। इसके दोनों सिरों पर दो चूर और चार छेद होते हैं। लपेटनी। फनियाला। (२) वह रस्सी जिसे जनानी पालकी के चारों ओर इसलिये बाँधते हैं जिसमें परदा हवा से उड़ने न पावे। चौबंदी।
संज्ञा स्त्री० [सं० तुवरी] अरहर।

तूरज*-संज्ञा पुं० दे० "तूर्य"।

तूरण-क्रि० वि० दे० "तूर्ण"।

तूरंत-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

तूरन*-संज्ञा पुं० दे० "तूर्ण"।

तूरना-संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।
क्रि० स० दे० "तोड़ना"। उ०—संभु सतावत हैं जम को हैं कठोर महा सबको मद तूरत।—शंभु।
*† संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही। उ०—साकत सराप के बिवाह के उछाह कछु ढोलि ढोल बूझत सबद ढोल तूरना।—तुलसी।

तूरान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] फ़ारस के उत्तर-पूर्व पड़नेवाला मध्य एशिया का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मोगल आदि जातियों का निवासस्थान है। हिमालय के उत्तर अल्टाई पर्वत तक का प्रदेश।
विशेष—फ़ारस या ईरानवालों का तूरानियों के साथ बहुत प्राचीन काल से झगड़ा चला आता था। यह तूरानी जाति वही थी जिसे भारतवासी शक कहते थे। अफ़रासियाब नामक तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है। प्राचीन तूरानी अग्नि की उपासना करते थे और पशुओं का बलि चढ़ाते थे। ये आर्यों की अपेक्षा असभ्य थे। इनके उत्पातों से एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था। चंगेज़ खाँ, तैमूर, उसमान आदि उसी तूरानी जाति के अंतर्गत थे।

तूँबी-संज्ञा स्त्री० [हिं० तूँबा] (१) कड़ुआ गोल कद्दू। (२) कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन।

मुहा०—तूँबी लगाना=बात से पीड़ित या सूजे हुए स्थान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये तूँबी का व्यवहार करना। (तूँबी के भीतर एक बत्ती जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है। फिर जिस अंग पर उसे लगाना होता है उस पर आटे की एक पतली लोई रख कर उसके ऊपर तूँबी उलट कर रख देते हैं जिससे उस अंग के भीतर की वायु तूँबी में खिंच आती है। यदि कुछ रक्त भी निकालना होता है तो उस स्थान को जिस पर तूँबी लगानी होती है नश्तर से पाछ देते हैं)।

तू-सर्व० [सं० त्वम्] एक सर्वनाम जो उस पुरुष के लिये आता है जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है। मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम। जैसे, तू यहाँ से चला जा।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट समझा जाता है अतः, इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटों वा नीचों के लिये होता है।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, या तू तू मैं मैं करना=कहा सुनी करना। अशिष्ट शब्दों में विवाद करना। गाली गलौज करना। कुवाक्य कहना।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] कुत्तों को बुलाने का शब्द, जैसे, "आव तू...तू..."।

तूख†-संज्ञा पुं० [सं० तुष=तिनका] तिनके का वह टुकड़ा जिसे गोद कर दोना बनाते हैं। सींक। खरका। उ०—छ्वावति न छाँह, छुए नाहक ही 'नाहीं' कहि, नाह गल माहँ बाँह मेलै सुररूख सी।......तीखी दीठि तूख सी, पतूख सी, अरुरि अंग, ऊख सी मरूरि मुख लागति महूख सी।—देव।

तूटना-क्रि० अ० दे० "टूटना"।

तूठना*-क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ] (१) तुष्ट होना। संतुष्ट होना। तृप्त होना। अघाना। (२) प्रसन्न होना। राजी होना।

तूण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीर रखने का चोंगा। तरकश। (२) चामर नामक वृत्त का नाम।

तूणक्ष्वेड़-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

तूणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तरकश। निषंग। (२) नील का पौधा। (३) एक वात रोग जिसमें मूत्राशय के पास से दर्द उठता है और गुदा और पेड़ू तक फैलता है।

वि० [सं० तूणिन्] तूणधारी। जो तरकश लिए हो।

संज्ञा पुं० [?] तुन का पेड़।

तूणीक-संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

तूणीर-संज्ञा पुं० [सं०] तूण। निषंग। तरकश।

तूत-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं। यह पेड़ मझोले आकार का होता है। इसके पत्ते फालसे के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोतरे और मोटे दल के होते हैं। किसी किसी के सिरे पर फाँकें भी कटी होती हैं। फूल मंजरी के रूप में लगते हैं जिनसे आगे चलकर कीड़ों की तरह लंबे लंबे फल होते हैं। इन फलों के ऊपर महीन महीन दाने होते हैं जिन पर रोइयाँ सी होती हैं। इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है। फलों के भेद से तूत कई प्रकार के होते हैं किसी के फल छोटे और गोल, किसी के लंबे, किसी के हरे, किसी के लाल या काले होते हैं। मीठी जाति के बड़े तूत को शहतूत कहते हैं। तूत युरोप और एशिया के अनेक भागों में होता है। भारतवर्ष में भी तूत के पेड़ प्रायः सर्वत्र—काश्मीर से सिकिम तक—पाए जाते हैं। अनेक स्थानों में, विशेषतः पंजाब और काश्मीर में, तूत के पेड़ों की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। रेशम के कीड़े उनकी पत्तियों को खाते हैं। तूत की लकड़ी भी वज़नी और मज़बूत होती है और खेती और सजावट के सामान, नाव आदि बनाने के काम में आती है। तूत शिशिर ऋतु में पत्ते झाड़ता है और चैत तक फूलता है। इसके फल असाढ़ में पक जाते हैं।

तूती-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी चोंच पीली, गरदन बैंगनी और पर हरे होते हैं। (२) कनेरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत अच्छा बोलती है। इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। (३) मटमैले रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है। इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है पर गरमी में उत्तर काश्मीर, तुर्किस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास फूस से कटोरे के आकार का घोंसला बना कर रहती है।

मुहा०—तूती का पढ़ना=तूती का मीठे सुर में बोलना। किसी की तूती बोलना=किसी की खूब चलती होना। किसी का खूब प्रभाव जमना। नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है=(१) बहुत भीड़ भाड़ या शोरगुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटों की बात कोई नहीं सुनता।

(४) मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा या खिलौना। (५) मिट्टी की छोटी टोंटीदार घरिया जिसे लड़के खेलते हैं।

तूद-संज्ञा पुं० दे० "तूत"।

तूदा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) ढेर। ढेरी। राशि। (२) सीमा का चिह्न। हदबंदी। (३) मिट्टी का वह टीला जिसपर तीर, बंदूक आदि से निशाना लगाना सीखा जाता है।

तृजग *-वि० दे० "तिर्यक्" । उ०—तृजग जोनि गत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं ।—तुलसी ।

तृण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह उद्भिद् जिसकी पेड़ी या कांड में छिलके और हीर का भेद नहीं होता और जिसकी पत्तियों के भीतर केवल समानांतर (प्रायः लंबाई के बल) नसें होती हैं जाल की तरह बुनी हुई नहीं, जैसे, दूब, कुश, सरपत, मूँज, बाँस, ताड़ इत्यादि। घास । उ०—ऊसर बरसे तृण नहिं जामा ।—तुलसी ।

विशेष—तृण की पेड़ी या कांडों के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम से नहीं बैठे रहते कि उनके द्वारा मंडलांतर्गत मंडल बनते जायँ, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इधर उधर तिरछे होकर ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में प्रायः गाँठें थोड़ी थोड़ी दूर पर होती हैं और इन गाँठों के बीच का स्थान कुछ पोला होता है। पत्तियाँ अपने मूल के पास डंठल को खोली की तरह लपेटे रहती हैं। पृथ्वी का अधिकांश तल छोटे तृणों द्वारा आच्छादित रहता है। अर्कप्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ में तृणगण के अंतर्गत तीन प्रकार के बाँस, कुश, काँस, तीन प्रकार की दूब, गाँडर, नरकट, गूँदी, मूँज, डाभ, मोथा इत्यादि माने गए हैं।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ाना = दीनता प्रकट करना । गिड़गिड़ाना । तृण गहाना या पकड़ाना = नम्र करना । विनीत करना । वशीभूत करना । उ०—कहो तो ताको तृण गहाय कै जीवत पायन पारौं ।—सूर । (किसी वस्तु पर) तृण टूटना = किसी वस्तु का इतना सुंदर होना कि उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना पड़े। (स्त्रियाँ बच्चे पर से नज़र का प्रभाव दूर करने के लिये टोटके की तरह पर तिनका तोड़ती हैं)। उ०—आजु की बानिक पै तृण टूटत है कहीं न लाय कछु स्याम तोहि रत ।—स्वा० हरिदास । तृणवत् = तिनके बराबर । अत्यंत तुच्छ । कुछ भी नहीं । तृण बराबर या समान = दे० "तृणवत्" । उ०—अस कहि चला महा अभिमानी । तृण समान सुग्रीवहिं जानी ।—तुलसी । तृण तोड़ना = किसी सुंदर वस्तु को देख उसे नज़र से बचाने के लिये उपाय करना । उ०—(क) गाँधे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं । पुरनारि सुर सुंदरी बरहिं विलोकि सब तृण तोरहीं ।—तुलसी । (ख) स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखत छवि जननी तृन तोरी ।—तुलसी । (किसी से) तृण तोड़ना = संबंध तोड़ना । नाता मिटाना । उ०—सुजा सुहाइ तोरि तृण ज्यों हित करि प्रभु निठुर हियो ।—सूर ।

तृणकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि ।

तृणकुंकुम-संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित घास । रोहिस घास ।

तृणकूर्म-संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू ।

तृणकेतकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीखुर।

तृणकेतु-संज्ञा पुं० दे० "तृणकेतुक" ।

तृणकेतुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) ताड़ का पेड़ ।

तृणग्रंथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णजीवंती ।

तृणग्राही-संज्ञा पुं० [सं० तृणग्राहिन्] एक रत्न का नाम । नीलमणि ।

तृणचर-वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु) ।

संज्ञा पुं० गोमेदक मणि ।

तृणजलायुका-संज्ञा पुं० दे० "तृणजलौका" ।

तृणजलौका-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जोंक ।

तृणजलौकान्याय-संज्ञा पुं० [सं०] तृणजलौका के समान ।

विशेष—इस वाक्य का प्रयोग नैयायिक लोग उस समय करते हैं जब उन्हें आत्मा के एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में जाने का दृष्टांत देना होता है । तात्पर्य्य यह है कि जिस प्रकार जोंक जल में बहते हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका थाम लेती है तब पहले को छोड़ देती है इसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीर में जाती है तब पहले को छोड़ देती है।

तृणज्योतिस्-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती लता ।

तृणद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ का पेड़ । (२) सुपारी का पेड़ । (३) खजूर का पेड़ । (४) केतकी का पेड़ । (५) नारियल का पेड़ । (६) हिंताल ।

तृणधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिन्नी का चावल । मुन्यन्न । तिन्नी का धान । (२) सावाँ ।

तृणध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) ताड़ का पेड़ ।

तृणनिंब-संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।

तृणप-संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।

तृणपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदर्भ नामक तृण ।

तृणपीड़-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लड़ाई ।

तृणपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृणकेशर । (२) ग्रंथिपर्णी । गठिवन ।

तृणपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंदूरपुष्पी नामक घास ।

तृणमय-वि० [सं०] [स्त्री० तृणमयी] घास का बना हुआ ।

तृणराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खजूर । (२) ताड़ । (३) नारियल ।

तृणबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की अवस्था में भेंट हुई थी ।

तृणशय्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिछौना । चटाई । साथरी ।

तृणशीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहिस घास जिसमें से नीबू की सी सुगंध आती है । (२) जलपिप्पली ।

तृणशून्य-वि० [सं०] बिना तृण का । तृण से रहित ।

संज्ञा पुं० (१) मल्लिका । (२) केतकी ।

तृणशूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम ।

तूरानी–वि० [फ़ा०] तूरान देश का। तूरान संबंधी।
संज्ञा पुं० तूरान देश का निवासी।

तूरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] धतूरे का पेड़।

तूर्ण–क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जलदी। तुरंत।

तूर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे त्वरितक भी कहते हैं।

तूर्त–क्रि० वि० [सं०] तुरत। तत्काल। शीघ्र।

तूर्य–संज्ञा पुं० [सं० तूर्य] तुरही। सिंघा।

तूर्व–क्रि० वि० [सं०] तुरत। शीघ्र।

तूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) तूत का पेड़। शहतूत। (३) कपास, मदार, सेमर, आदि के डोंडे के भीतर का घूआ। रूई। उ०—(क) जेहि मारुतगिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।—तुलसी। (ख) व्याकुल फिरत भवन वन जहँ तहँ तूल आक उधराइ।—सूर।
संज्ञा पुं० [हिं० तून = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रँगे जाते हैं] (१) सूती कपड़ा जो चटकीले लाल रंग का होता है। (२) गहरा लाल रंग।
* वि० [सं० तुल्य] तुल्य। समान। उ०—तदपि सकोच समेत कवि कहहिँ सीय सम तूल।—तुलसी।

तूलत–संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] जहाज की रेलिंग या कटहरे की छड़ में लगी हुई एक खूँटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी बोझ में बँधी रस्सी इसलिये अटका दी जाती है जिसमें बोझ धीरे धीरे नीचे जाय, एकदम से न गिर पड़े। (लश०)

तूलता–संज्ञा स्त्री० [सं० तुल्यता] समता। बराबरी।

तूलना–क्रि० स० [हिं० तुलना (१) धुरी में तेल देने के लिये पहिये को निकाल कर गाड़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर ठहराना। (२) पहिये की धुरी में तेल या चिकना देना।

तूलवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

तूलवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तूलशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का बीज। बिनौला।

तूलसेचन–संज्ञा पुं० [सं०] रूई से सूत कातने का काम।

तूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास।

तूलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रकारों की कूँची जिससे वे रंग भरते हैं। तसवीर बनानेवालों की कलम।

तूलेनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्ष्मण कंद। (२) सेमर का पेड़।

तूलिफला–संज्ञा स्त्री० सं० [सं०] सेमर का पेड़।

तूली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का वृक्ष। (२) रंग भरने की कूँची। (३) लकड़ी का एक औज़ार जिसमें कूँची के रूप में खड़े खड़े रेशे जमाए रहते हैं और जिससे जुलाहे फैलाया हुआ सूत बैठाते हैं। जुलाहों की कूँची।

तूवर–संज्ञा पुं० दे० "तूवरक"।

तूवरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) डूँड़ा बैल। बिना सींग का बैल। (२) बे दाढ़ी मोछ का मनुष्य। (३) कषाय रस। कसैला रस। (४) अरहर।

तूवरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरहर। (२) गोपीचंदन।

तूवरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरहर। (२) गोपीचंदन।

तूष्णी–वि० [सं० तूष्णीम् (अव्य०)] मौन। चुप।
* संज्ञा स्त्री० मौन। ख़ामोशी। चुप्पी। उ०—वंचकता, अपमान, अमान, अलाभ भुजंग भयानक तूष्णी।—केशव।

तूष्णीक–वि० [सं०] मौनावलंबी। मौन साधनेवाला।

तूस–संज्ञा पुं० [सं० तुष] भूसी। भूसा।
संज्ञा पुं० [तिब्बती = योश] [वि० तूसी] (१) एक प्रकार का बहुत उत्तम ऊन जो हिमालय पर कास्मीर से लेकर नैपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है। पशम। पशमीना।

विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, बर्फ के निकट तक, पाई जाती है। यह ठंढे से ठंढे स्थानों में रह सकती है और कास्मीर से लेकर मध्य एशिया में अलटाई पर्वत तक मिलती है। इसके शरीर पर घने घने मुलायम रोयों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को कास्मीर में असली तूस या पशम कहते हैं। यह दुशालों में दिया जाता है। ख़ालिस तूस की भी शाल बनती है जिसे तूसी कहते हैं। ऊपर के ऊन या रोएँ से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टू नाम का कपड़ा बुना जाता है। तूसवाली बकरियाँ लद्दाख़ में जाड़े के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं।

(२) तूस के ऊन का जमाया हुआ कंबल या नमदा।

तूसदान–संज्ञा पुं० [पुर्त्त० कारटूश + दान (प्रत्य०)] कारतूस।

तूसना *–क्रि० स० [सं० तुष्ट] (१) संतुष्ट करना। तृप्त करना। (२) प्रसन्न करना।
क्रि० अ० संतुष्ट होना।

तूसा–संज्ञा पुं० [सं० तुष] चोकर। भूसी।

तूसी–वि० [तूस] तूस के रंग का। स्लेट या करंज के रंग का। करंजई।
संज्ञा पुं० एक रंग जो करंज या स्लेट के रंग की तरह का होता है।

विशेष—यह हर्रा, माजूफल और कसीस से बनता है।

तृस्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूल। रेणु। रज। (२) अणु। कणिका। (३) जटा। (४) चाप। धनुप।

तृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि।

तृक्षाक–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तृख–संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल। जायफल।

तृखा–संज्ञा स्त्री० दे० "तृषा"।

तेंतालीस-वि० [सं० त्रिचत्वारिंशत्, पा० तिचत्तालीसा] जो गिनती में बयालिस से एक अधिक और चौवालीस से एक कम हो। चालीस और तीन।

संज्ञा पुं० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३।

तेंतालीसवाँ-वि [हिं० तेंतालीस+वाँ] क्रम में तेंतालीस के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बयालिस और हों।

तेंतिस-वि०, संज्ञा पुं० दे० "तेंतीस"।

तेंतिसवाँ-वि० दे० "तेंतीसवाँ"।

तेंतीस-वि० [सं० त्रयस्त्रिंशत्, पा० तितिंसति, प्रा० तित्तिसा] जो गिनती में तीस से तीन अधिक हो तीस और तीन।

संज्ञा पुं० तीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३३।

तेंतीसवाँ-वि० [हिं० तेंतीस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तेंतीस के स्थान पर पड़े। जिसके पहले बत्तीस और हों।

तेंदुआ-संज्ञा पुं० [देश०] बिल्ली या चीते की जाति का एक बड़ा हिंसक पशु जो अफ्रीका तथा एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है। बल और भयंकरता आदि में शेर और चीते के उपरांत इसी का स्थान है। यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी अयाल नहीं होती। इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है। इसके सारे शरीर पर काले काले गोल धब्बे या चित्तियाँ होती हैं। इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है।

संज्ञा पुं० दे० "तेंदू"।

तेंदू-संज्ञा पुं० [सं० तिंदुक] (१) मझोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लंका, बरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है। यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीर की लकड़ी बिलकुल काली हो जाती है। वही लकड़ी आबनूस के नाम से बिकती है। इसके पत्ते लंबोतरे, नोकदार, खुरदुरे और महुवे के पत्तों की तरह पर उससे नुकीले होते हैं। इसकी छाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है।

पर्य्या०—कालस्कंध। शितिसारक। केंदु। तिंदु। तिंदुक। तिंदुकी। नीलसार। अतिमुक्तक। कालसार।

(२) इस पेड़ का फल जो नीबू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और खाया जाता है। वैद्यक में इसके कच्चे फल को स्निग्ध, कसैला, हलका, मलरोधक, शीतल, अरुचि और वात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त, रक्तरोग और वात का नाशक माना है। (३) सिंध और पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का तरबूज जिसे "दिलपसंद" भी कहते हैं।

ते-अव्य० दे० "तें"।

†सर्व० [सं० ते] वे। वे लोग। उ०—(क) पलक नयन फनिमनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती॥ ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी।—तुलसी। (ख) राम कथा के ते अधिकारी। जिनको सतसंगति अति प्यारी।—तुलसी।

तेइस-वि० दे० "तेईस"।

संज्ञा पुं० दे० "तेईस"।

तेइसवाँ-वि० दे० "तेईसवाँ"।

तेईस-वि० [सं० त्रिविंशति, पा० तेवीसति, प्रा० तेवीस] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो। बीस और तीन।

संज्ञा पुं० बीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२३।

तेईसवाँ-वि० [हिं० तेईस+वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बाईस और हों।

तेखना*†-क्रि० अ० [सं० तीक्ष्ण, हिं० तेहा] बिगड़ना। क्रुद्ध होना। नाराज़ होना। उ०—(क) सुंभ बोलयो तबै भैंस सों तेखि कै। लाल नैना धरे वक्रता देखि कै।—गोपाल। (ख) हनुमान या कौन बलाय बसी कछु पूछे ते ना तुम तेखियो री। हित मानि हमारो हमारे कहे भला मो मुख की छबि देखियो री।—हनुमान। (ग) मोही को झूँठी कहौ झगरो करि सौंह करौं तब और उ तेखौ। बैठे हैं दोउ बगीचे में जाय कै पाइँ परौं अब आइ कै देखौ।—रघुराज।

तेग-संज्ञा स्त्री० [अ०] तलवार। खड्ग। उ०—(क) जो रनसूर तेग तजि देवैं। सो हमहूँ तुम्हरो मत लेवैं।—विश्राम। (ख) बरनै दीनदयाल हरषि जो तेग चलैहौ। ह्वैहौ जीते जसी, मरे सुरलोकहि पैहौ।—दीनदयालु।

तेगा-संज्ञा पुं० [अ० तेग़] (१) खाँड़ा। खड्ग। (अस्त्र)। उ०—तेगा ये दग मीत के पानि पवार सुधार। अंजन बाढ़ दिए बिना करत चौगुनी काट।—रसनिधि। (२) किसी मेहराब के नीचे के भाग या दरवाजे को ईंट पत्थर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया। (३) कुश्ती का एक दाँव या पेंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं।

तेज-संज्ञा पुं० [सं० तेजस्] (१) दीप्ति। कांति। चमक। दमक। आभा। उ०—जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं।—तुलसी। (२) पराक्रम। जोर। बल। (३) वीर्य। उ०—पतित तेज जो भयो हमारो कहो देव को धारी।—रघुराज। (४) किसी वस्तु का सार भाग। तत्व। (५) ताप। गर्मी। (६) पित्त। (७) सोना। (८) तेजी।

तृणशोषक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

तृणसारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला।

तृणस्पर्श परीषह–संज्ञा पुं० [सं०] दर्भादि कठोर तृणों को बिछा कर लेटने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया। (जैन)।

तृणाम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] लवण तृण। नोनिया। अमलोनी।

तृणारणि न्याय–संज्ञा पुं० [सं०] तृण और अरणी रूप स्वतंत्र कारणों के समान व्यवस्था।

विशेष—अग्नि के उत्पन्न होने में तृण और अरणी दोनों कारण तो हैं पर परस्पर निरपेक्ष अर्थात् अलग अलग कारण हैं। अरणी से आग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और तृण में आग लगने का कारण दूसरा।

तृणावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्रवात। बवंडर। (२) एक दैत्य का नाम जिसे कंस ने मथुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल भेजा था। यह चक्रवात (बवंडर) का रूप धारण कर के आया था और बालक कृष्ण को कुछ ऊपर उड़ा ले गया था। कृष्ण ने ऊपर जाकर जब इसका गला दबाया तब यह गिर कर चूर चूर होगया।

तृणेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

तृणेक्षु–संज्ञा पुं० [सं०] वल्वजा। सागे वागे।

तृणोत्तम–संज्ञा पुं० [सं०] उखर्वल। उलल तृण।

तृणोद्भव–संज्ञा पुं० [सं०] मुन्यन्न। तिनी धान। पसही।

तृणोल्का–संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस की मशाल।

तृणौषध–संज्ञा पुं० [सं०] एलुवा।

तृतीय–वि० [सं०] तीसरा।

तृतीयक–संज्ञा पुं० [सं०] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजार।

तृतीय प्रकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त एक तीसरी प्रकृतिवाला। नपुंसक। क्लीव। हिजड़ा।

तृतीय सवन–संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम आदि यज्ञों का तीसरा सवन जिसे सायं सवन भी कहते हैं। दे० "सवन"।

तृतीयांश–संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग।

तृतीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन। तीज। (२) व्याकरण में करण कारक।

तृतीयाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम। वानप्रस्थ।

तृतीयी–वि० [सं० तृतीयिन्] तीसरे हिस्से का हकदार। जिसे किसी संपत्ति का तृतीयांश पाने का स्वत्व हो। (स्मृति)

तृन*–संज्ञा पुं० दे० "तृण"।

तृपति†*–संज्ञा स्त्री० दे० "तृप्ति"।

तृपला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लता। (२) त्रिफला।

तृपित†*–वि० दे० "तृप्त"।

तृप्त–वि० [सं०] (१) तुष्ट। अघाया हुआ। जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो। (२) प्रसन्न। खुश।

तृप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इच्छा पूरी होने से प्राप्त शांति और आनंद। संतोष। उ०—फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अजान। तिहिं लालच कबहूँ कैसेहूँ तृप्ति न पावत प्रान।—सूर। (२) प्रसन्नता। खुशी

तृप्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत। घी। (२) पुरोडाश। (३) तर्पक। तृप्त करनेवाला।

तृषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० तृषित, तृष्य] (१) प्यास। (२) इच्छा। अभिलाषा। (३) लोभ। लालच। (४) कलिहारी। करियारी।

तृषाभू–संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट में जल रहने का स्थान। क्लोम।

तृषालु–वि० [सं०] प्यासा। पिपासित। तृषित। तृषार्त्त।

तृषावंत–वि० [सं० तृषावान् का बहु०] प्यासा। उ०—तृषावंत जिमि पाय पियूषा।—तुलसी।

तृषावान्–वि० [सं०] प्यासा।

तृषास्थान–संज्ञा पुं० [सं०] क्लोम।

तृषाहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

तृषित–वि० [सं०] (१) प्यासा। उ०—तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करै का सुधा तड़ागा?—तुलसी। (२) अभिलाषी। इच्छुक।

तृषितोत्तरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] असनपर्णी। पटसन।

तृष्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राप्ति के लिये आकुल करनेवाली इच्छा। लोभ। लालच। (२) प्यास।

तृष्णारि–संज्ञा पुं० [सं०] पित पापड़ा।

तृष्णालु–वि० [सं०] (१) प्यासा। (२) लालची। लोभी।

तें–*† प्रत्य० [सं० तस् (प्रत्य०)] (१) से। द्वारा। उ०—रज तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान।—गोपाल। (२) से (अधिक)। उ०—(क) को जग मंद मलिन मति मो तें।—तुलसी। (ख) नैना तेरे जलज तें है खंजन तें अति नाचैं।—सूर। (ग) चपला तें चमकत अति प्यारी कहा करौगी श्यामहिं।—सूर।

विशेष—कहीं कहीं "अधिक" "बढ़कर" आदि शब्दों का लोप करके भी "तें" से अपेक्षाकृत आधिक्य का अर्थ निकालते हैं। दे० "से"।

(३) (किसी काल वा स्थान) से। उ०—धौसक तें पिय चित चढ़ी कहै चढ़ौहैं त्यौर।—बिहारी।

विशेष—दे० "से"।

तेंतरा–संज्ञा पुं० [देश०] बैलगाड़ी में फड़ के नीचे लगी हुई लकड़ी।

तेंतालिस–संज्ञा पुं० दे० "तेंतालीस"।

तेंतालिसवाँ–वि० दे० "तेंतालीसवाँ"।

सुगंधित होता है और इसी लिये मसाले में पड़ता है। इस के वृक्ष सिलहट की पहाड़ियों पर बहुत होते हैं। इसे तेजपत्ता और तेजपान भी कहते हैं।

तेजपान–संज्ञा पु० दे० "तेजपत्ता"।

तेजबल–संज्ञा पु० [सं० तेजोवती] एक काँटेदार जंगली वृक्ष जो प्रायः हरिद्वार और उस के आस पास के प्रांतों में अधिकता से होता है। इस की छाल लाल मिर्च की तरह बहुत चरपरी होती है और कहीं कहीं पहाड़ी लोग दाल मसाले आदि में इस की जड़ का मिर्च की तरह व्यवहार भी करते हैं। इस की छाल या जड़ चबाने से दाँत का दरद मिट जाता है। वैद्यक में इसे गरम, चरपरा, पाचक, कफ और वातनाशक, तथा श्वास, खाँसी हिचकी और बवासीर आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्य्या०—तेजवती। तेजस्विनी। तेजन्या। लघुवल्कला। पारिजाता। शीता। तिक्ता। तेजनी। विडालाक्षी। सुतेजसी।

तेजल–संज्ञा पु० [सं०] चातक। पपीहा।

तेजवंत–वि० दे० "तेजवान्"। उ०—तेजवंत लघु गनिय न रानी।—तुलसी।

तेजवान्–वि० [सं० तेजोवान्] [स्त्री० तेजवती] (१) जिसमें तेज हो। तेजस्वी। (२) वीर्यवान्। (३) बली। ताकतवाला। (४) कांतिमान्। चमकीला।

तेजस्–संज्ञा पु० दे० "तेज"।

तेजसी*–वि० [हिं० तेजस्वी] तेजयुक्त। उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु। अजहुँ देत दुख रवि शशिहि सिर अवशेषित राहु।—तुलसी।

तेजस्कर–संज्ञा पु० [सं०] तेज बढ़ानेवाला। जिससे तेज की वृद्धि हो।

तेजस्व–संज्ञा पु० [सं०] महादेव। शिव।

तेजस्वत्–वि० [सं०] तेजस्वी। तेजयुक्त।

तेजस्विता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजस्वी होने का भाव।

तेजस्विनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

तेजस्वी–वि० [सं० तेजस्विन्] (१) [स्त्री० तेजस्विनी] कांतिमान्। तेजयुक्त। जिसमें तेज हो। (२) प्रतापी। प्रतापवाला। प्रभावशाली।

संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के एक पुत्र का नाम।

तेजा–संज्ञा पु० [फ़ा० तेज़] (१) चूने आदि से बना हुआ एक प्रकार का काला रंग जिससे रँगरेज लोग मोरपंखी रंग बनाते हैं। (२) † महँगी। तेज़ी।

तेज़ाब–संज्ञा पु० [फ़ा०] [वि० तेज़ाबी] किसी क्षार पदार्थ का अम्ल-सार जो द्रावक होता है। जैसे, गंधक का तेज़ाब, शोरे का तेज़ाब, नमक का तेज़ाब, नीबू का तेज़ाब आदि।

विशेष—किसी चीज़ का तेज़ाब तरल रूप में होता है और किसी का रवे के रूप में, पर सब प्रकार के तेजाब पानी में घुल जाते हैं, स्वाद में थोड़े या बहुत खट्टे होते हैं और क्षारों का गुण नष्ट कर देते हैं। किसी धातु पर पड़ने से तेज़ाब उसे काटने लगता है। कोई कोई तेज़ाब बहुत तेज होता है और शरीर में जिस स्थान पर लग जाता है उसे बिलकुल जला देता है। तेज़ाब का व्यवहार बहुधा औषधों में होता है।

तेज़ाबी–वि० [फ़ा०] तेज़ाब संबंधी।

यौ०—तेज़ाबी सोना = दे० "सोना"।

तेजारत †–संज्ञा स्त्री० दे० "तिजारत"।

तेजारती †–वि० दे० "तिजारती"।

तेजिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

तेजिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजबल।

तेजिष्ठ–वि० [सं०] तेजस्वी।

तेज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) तेज़ होने का भाव। (२) तीव्रता। प्रबलता। (३) उग्रता। प्रचंडता। (४) शीघ्रता। जल्दी। (५) महँगी। गरानी। मंदी का उलटा।

तेजेयु–संज्ञा पुं० [सं०] रौद्राश्व राजा के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

तेजोमंडल–संज्ञा पु० [सं०] सूर्य्य, चंद्रमा आदि आकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल। छटा-मंडल।

तेजोमंथ–संज्ञा पु० [सं०] गनियारी का पेड़।

तेजोमय–वि० [सं०] (१) तेज से पूर्ण। जिसमें खूब तेज हो। जिसमें बहुत आभा, कांति या ज्योति हो।

तेजोरूप–संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म। (२) जो अग्नि या तेज रूप हो।

तेजोवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गजपिप्पली। (२) चव्य। (३) मालकँगनी। (४) तेजबल।

तेजोवान्–वि० [सं० तेजोवत्] [स्त्री० तेजोवती] तेजवाला।

तेजोविंदु–संज्ञा पु० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

तेजोबीज–संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा।

तेजोवृक्ष–संज्ञा पु० [सं०] छोटी अरणी का वृक्ष।

तेजोह्व–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तेजबल। (२) चव्य।

तेतना †–वि० दे० "तितना"।

तेता†–वि० पु० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] उतना। उसी कदर। उसी प्रमाण का। उ०—(क) हरि हर विधि रवि शक्ति समेता। तुंडी ते उपजत सब तेता।—निश्चल। (ख) जेती संपति कृपन कै तेती सू मत जोर। बढ़त जात ज्यौं ज्यौं उरज त्यौं त्यौं होत कठोर।—बिहारी।

तेतालीस–वि० दे० "तेंतालीस"।

संज्ञा पु० दे० "तेंतालीस"।

तेतिक * †–वि० [हिं० तेता] उतना।

प्रचंडता। उ०—(क) तेज कृशानु रोष महि शेषा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।—तुलसी। (ख) थल सो अचल शील, अनिल से चलचित्त, जल सो अमल तेज कैसो गायो है।—केशव। (९) प्रताप। रोब दाब। (१०) मक्खन। नैनू। (११) सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर। (१२) मज्जा। (१३) पाँच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है। अग्नि।

विशेष—सांख्य में इसका गुण शब्द, स्पर्श और रूप माना गया है। न्याय वा वैशेषिक के अनुसार यह दो प्रकार का होता है—नित्य और अनित्य। परमाणु रूप में यह नित्य और कार्य रूप में अनित्य होता है। शरीर, इंद्रिय और विषय के भेद से अनित्य तेज तीन प्रकार का होता है। शरीर तेज वह तेज है जो सारे शरीर में व्याप्त हो। जैसा, आदित्यलोक में। इंद्रिय तेज वह है जिससे रूप आदि का ग्रहण हो। जैसा, नेत्र में। विषय तेज चार प्रकार का है—भौम, दिव्य, औदर्य और आकरज। भौम वह है जो लकड़ी आदि जलाने से हो; दिव्य वह है जो किसी दैवी शक्ति से अथवा आकाश में दिखाई दे, जैसे, बिजली; औदर्य्य वह है जो उदर में रहता है और जिससे भोजन आदि पचता है, और आकरज वह है जो खनिज पदार्थों में रहता है, जैसा, सोने में। शरीर में तेज रहने से साहस और बल होता है, खाद्य पदार्थ पचते हैं और शरीर सुंदर बना रहता है। (१४) घोड़े का वेग या चलने की तेज़ी।

विशेष—यह तेज दो प्रकार का है—सततोत्थित और भयोत्थित। सततोत्थित तो स्वाभाविक है और भयोत्थित वह है जो चाबुक आदि मारने से उत्पन्न होता है।

तेज़—वि० [फ़ा०] (१) तीक्ष्ण धार का। जिस की धार पैनी हो। उ०—यह चाकू बड़ा तेज़ है। (२) चलने में शीघ्रगामी। उ०—यदपि तेज रौहाल वर लगी न पल की बार। तउ ग्वैंडो घर को भयो पैंडो कोस हज़ार।—विहारी। (३) चटपट काम करनेवाला। फुरतीला। उ०—यह नौकर बड़ा तेज़ है। (४) तीक्ष्ण तीखा। झालदार। जैसे, तेज़ सिरका, (५) महँगा। गरां। बहुमूल्य। उ०—आज कल कपड़ा बहुत तेज़ है। (६) उग्र। प्रचंड।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(७) चटपट अधिक प्रभाव करनेवाला। जिसमें भारी असर हो। जैसे, तेज़ ज़हर।

(८) जिस की बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो। जैसे, यह लड़का बहुत तेज़ है। (८) बहुत अधिक चंचल या चपल।

तेजधारी—वि० [सं० तेजोधारिन्] तेजस्वी। जिस के चेहरे पर तेज हो। प्रतापी

तेजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस। (२) मूँज। (३) रामशर। सरपत। (४) दीप्त करने या तेज उत्पन्न करने की क्रिया या भाव।

तेजनक—संज्ञा पुं० [सं०] शर। सरपत।

तेजनाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

तेजनी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूर्खा। (२) मालकँगनी। (३) चव्य। चाव। (४) तेजबल।

तेजपत्ता—संज्ञा पुं० [सं० तेजपत्र] दारचीनी की जाति का एक पेड़ जो लंका, दारजिलिंग, कांगड़ा, जयंतिया और खासिया की पहाड़ियों में होता है और जिस की पत्तियाँ दाल तरकारी आदि में मसाले की तरह डाली जाती हैं। जिस स्थान पर कुछ समय तक अच्छी वर्षा होती हो और पीछे कड़ी धूप पड़ती हो वहाँ यह पेड़ अच्छी तरह बढ़ता है। जयंतिया और खासिया में इस की खेती होती है। पहले सात सात फुट की दूरी पर इस के बीज बोए जाते हैं और जब पौधा पाँच वर्ष का हो जाता है तब उसे दूसरे स्थान पर रोप देते हैं। उस समय तक छोटे पौधों की रक्षा की बहुत आवश्यकता होती है। उन्हें धूप आदि से बचाने के लिये झाड़ियों की छाया में रखते हैं। रोपने के पाँच वर्ष बाद इस में काम आने योग्य पत्तियाँ निकलने लगती हैं। प्रति वर्ष कुआर से अगहन तक और कहीं कहीं फागुन तक इस की पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं। साधारण वृक्षों से प्रति वर्ष और पुराने तथा दुर्बल वृक्षों से प्रति दूसरे वर्ष पत्तियाँ ली जाती हैं। प्रत्येक वृक्ष से प्रति वर्ष १० से २५ सेर तक पत्तियाँ निकलती हैं। वृक्ष से प्रायः छोटी छोटी डालियाँ काट ली जाती हैं और धूप में सुखाई जाती हैं। इसके बाद पत्तियाँ अलग कर ली जाती हैं और उसी रूप में बाजार में बिकती हैं। ये पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों की तरह की पर उनसे कड़ी होती हैं और सुगंधित होने के कारण दाल तरकारी आदि में मसाले की तरह डाली जाती हैं। इन पत्तियों से एक प्रकार का सिरका तैयार होता है। इन्हें हर्रे के साथ मिलाकर इनसे रंग भी बनाया जाता है। तेजपत्ते के फूल और फल लौंग के फूलों और फलों की तरह होते हैं, लकड़ी लाली लिए हुए सफेद होती है और उससे मेज कुरसी आदि बनती हैं। कुछ लोग दारचीनी और तेजपत्ते के पेड़ को एक ही समझते हैं पर वास्तव में ये दोनों एकही जाति के पर अलग अलग पेड़ हैं। तेजपत्ते के किसी किसी पेड़ से भी पतली छाल निकलती है जो दारचीनी के साथ ही मिला दी जाती है। इसकी छाल से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जिससे साबुन बनाया जाता है। पत्तियों और छाल का व्यवहार औषध में भी होता है। वैद्यक में इसे लघु, उष्ण, रूखा और कफ, वात, कंडू, आम तथा अरुचि का नाशक माना है।

पर्य्या०—गंधजात। पत्र। पत्रक। त्वक्पत्र। वरांग। भृंग। चोच। उत्कट। तमालपत्र।

तेजपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। एक जंगली वृक्ष का पत्ता जो

और वायु तथा दृष्टि के लिये अहितकर मानी गई हैं। साधारण सरसो आदि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की ओषधियाँ भी पकाई जाती हैं।

क्रि० प्र०—जलना।—जलाना।—निकलना।—निकालना। पेरना।—मलना।—लगाना।

मुहा०—तेल में हाथ डालना=अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में हाथ डालना। (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में हाथ डलवाने की प्रथा थी)। (२) विकट शपथ खाना। आँख का तेल निकालना=दे० "आँख" के मुहावरे।

(२) विवाह की एक रस्म जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले भी होती है। इसमें वर को वधू का नाम लेकर और वधू को वर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेल लगाया जाता है। इस रस्म के उपरांत प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—अभ्युदयिक करवाय श्राद्ध विधि सब विवाह के चारा। कुत्ति तेल मायन करवैहैं ब्याह विधान अपारा।—रघुराज।

मुहा०—तेल उठना या चढ़ना=तेल की रस्म पूरी होना। उ०—तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।—कोई कवि। तेल चढ़ाना=तेल की रस्म पूरी करना। उ०—प्रथम हरदि वंदन करि मंगल गावहिं। करि कुलरीति कलस थापि तेल चढ़ावहिं।—तुलसी।

तेलंग—संज्ञा पुं० दे० "तैलंग"।

तेलगू—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलंग] तैलंग देश की भाषा।

तेलवाई—संज्ञा पुं० [हिं० तेल+वाई (प्रत्य०)] (१) तेल लगाना। तेल मलना। (२) विवाह की एक रस्म जिसमें वधू पक्षवाले जनवासे में वर पक्षवालों के लगाने के लिये तेल भेजते हैं।

तेलसुर—संज्ञा पुं० [?] एक जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसके हीर की लकड़ी कड़ी और सफेदी लिए पीली होती है। यह वृक्ष चटगाँव और सिलहट के जिलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनाई जाती हैं।

तेलहँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० तेल+हंडा] [स्त्री० अल्प० तेलहँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

तेलहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल+हँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन।

तेलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल] वे बीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, अलसी इत्यादि।

तेलहा—वि० पुं० [हिं० तेल+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० तेलही] (१) तेलयुक्त। जिसमें तेल हो। जिसमें से तेल निकल सकता हो। (२) तेलवाला। तेल संबंधी। (३) जिसमें चिकनाई हो।

तेला—संज्ञा पुं० [?] तीन दिन रात का उपवास। उ०—जिसे कतल का हुक्म हो तेला अर्थात् तीन उपवास करे जिसमें परलोक सुधरे।—शिवप्रसाद।

तेलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेली का स्त्री०] (१) तेली की स्त्री। तेली जाति की स्त्री। (२) एक बरसाती कीड़ा। यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं।

तेलियर—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक पक्षी जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं।

तेलिया—वि० [हिं० तेल] तेल की तरह चिकना और चमकीला। चिकने और चमकीले रंगवाला। तेल के से रंगवाला। जैसे, तेलिया शमीवा।

संज्ञा पुं० [हिं० तेल+इया (प्रत्य०)] (१) काला, चिकना और चमकीला रंग। (२) इस रंग का घोड़ा। (३) एक प्रकार का बबूल। (४) एक प्रकार की छोटी मछली। (५) कोई पदार्थ, पशु या पक्षी जिसका रंग तेलिया हो। (६) सींगिया नामक विष।

तेलियाकंद—संज्ञा पुं० [सं० तैलकंद] एक प्रकार का कंद। यह कंद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सींची हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे लोहे को पतला करनेवाला चरपरा, गरम तथा वात, अपस्मार, विष और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बाँधनेवाला और तत्काल देह को सिद्ध करनेवाला माना है।

तेलिया कत्था—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया+कत्थ] एक प्रकार का कत्था जो भीतर से काले रंग का होता है।

तेलिया काकरेजी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया+काकरेजी] कालापन लिए गहरा ऊदा रंग।

तेलिया कुमैत—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया+कुमैत] (१) घोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है। (२) वह घोड़ा जिसका रंग ऐसा हो।

तेलिया गर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "गर्जन"

तेलिया पानी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया+पानी] बहुत खारा और स्वाद में बुरा मालूम होनेवाला पानी, जैसा प्रायः पुराने कुओं से निकला करता है।

तेलिया सुरंग—संज्ञा पुं० दे० "तेलिया कुमैत"।

तेलिया सुहागा—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया+सुहागा] एक प्रकार का सुहागा जो देखने में बहुत चिकना होता है।

तेली—संज्ञा पुं० [हिं० तेल+ई (प्रत्य०) [स्त्री० तेलिन] हिंदुओं की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है। इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसों तिल आदि पेर कर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं। साधारणतः द्विज लोग इस

तेतीस–वि० और संज्ञा पुं० दे० "तेंतीस"।

तेता *†–वि० दे० "तेता"।

तेमन–संज्ञा पुं० [सं०] व्यंजन। पका हुआ भोजन।

तेमरू–संज्ञा पुं० [देश०] तेंदू का वृक्ष। आबनूस का पेड़।

तेरज–संज्ञा पुं० [देश०] खतियौनी का गोशवारा।

तेरवाँ †–वि० दे० "तेरहवाँ"।

तेरस–संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयोदश] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। त्रयोदशी।

तेरह–वि० [सं० त्रयोदश, प्रा० तेदह, अर्द्धमा० तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो। दस और तीन।

संज्ञा पुं० दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१३।

तेरहवाँ–वि० [हिं० तेरह + वाँ (प्रत्य०)] दस और तीन के स्थानवाला। क्रम में तेरह के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बारह और हों।

तेरहीं–संज्ञा स्त्री० [हिं० तेरह + ई (प्रत्य०)] किसी के मरने के दिन से अथवा प्रेतकर्म की तेरहवीं तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मण भोजन करके दाह करनेवाला और मृतक के घर के लोग शुद्ध होते हैं।

तेरा–सर्व० [सं० तव] [स्त्री० तेरी] मध्यम पुरुष एक वचन की षष्ठी का सूचक सर्वनाम शब्द। मध्यम पुरुष एक वचन संबंधकारक सर्वनाम। तू का संबंधकारक रूप।

मुहा०—तेरी सी = तेरे लाभ या मतलब की बात। तेरे अनुकूल बात। उ०—बकसीस ईस जी की खीस होत देखियत, रिस काहे लागति कहत तो हौं तेरी सी।—तुलसी।

विशेष—शिष्ट समाज में इसका प्रयोग बड़े या बराबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है।

तेरुस*†–संज्ञा पुं० दे० त्योहस"।

संज्ञा स्त्री० दे० "तेरस"।

तेरे†–अव्य० [हिं० ते] से। उ०—(क) तब प्रभु कह्यो पवनसुत तेरे। जनकसुतहिं लावहु ढिग मेरे।—विश्राम। (ख) यहि प्रकार सब वृचन तेरे। भेंटि भेंटि पूँछैं प्रभु हेरे।—विश्राम।

तेरो*–सर्व० दे० "तेरा"। उ०—तेरो मुख चंदा चकोर मेरे नैना।

तेल–संज्ञा पुं० [सं० तैल] (१) वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है अथवा आप से आप निकलता है। यह सदा पानी से हलका होता है, उसमें घुल नहीं सकता, अलकोहल में घुल जाता है, अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के संयोग से धूआँ देकर जल जाता है। इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है। चिकना। रोगन।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मसृण, उड़ जानेवाला और खनिज। मसृण तेल वनस्पति और जंतु दोनों से निकलता है। वानस्पत्य मसृण वह है जो बीजों या दानों आदि को कोल्हू में पेर कर या दबा कर निकाला जाता है जैसे, तिल, सरसों, नीम, गरी, रेंड़ी, कुसुम आदि का तेल। इस प्रकार का तेल दीआ जलाने, साबुन और वार्निश बनाने, सुगंधित करके सिर या शरीर में लगाने, खाने की चीजें तलने, फलों आदि का अचार डालने और इसी प्रकार के और दूसरे कामों में आता है। मशीनों के पुरजों में उन्हें घिसने से बचाने के लिये भी यह डाला जाता है। सिर में लगाने के चमेली, बेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की जमीन देकर ही बनाए जाते हैं। भिन्न भिन्न तेलों के गुण आदि भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से भी आप से आप तेल निकलता है जो पीछे से साफ़ कर लिया जाता है, जैसे, ताड़पीन आदि। जंतुज तेल जानवरों की चरबी का तरल अंश है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है। जैसे, साँप का तेल, धनेस का तेल, मगर का तेल आदि। उड़ जानेवाला तेल वह है जो वनस्पति के भिन्न भिन्न अंशों से भभके द्वारा उतारा जाता है। जैसे, अजवायन का तेल, ताड़पीन का तेल, मोम का तेल, हींग का तेल आदि। ऐसे तेल हवा लगने से सूख या उड़ जाते हैं और इन्हें खौलाने के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के तेल के शरीर में लगने से कभी कभी कुछ जलन भी होती है। ऐसे तेलों का व्यवहार विलायती औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता से होता है। कभी कभी वारनिश या रंग आदि बनाने में भी यह काम आता है। खनिज तेल वह है जो केवल खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्ढों में से ही निकलता है। जैसे, मिट्टी का तेल (देखो "मिट्टी का तेल" और "पेट्रोलियम") आदि। आज कल सारे संसार में बहुधा रोशनी करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है।

आयुर्वेद में सब प्रकार के तेलों को वायुनाशक माना है। वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल मलने से कफ और वायु का नाश होता है, धातु पुष्ट होती है, तेज बढ़ता है, चमड़ा मुलायम रहता है, रंग खिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है। पैर के तलवों में तेल मलने से अच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क तथा नेत्र ठंढे रहते हैं। सिर में तेल लगाने से सिर का दर्द दूर होता है, मस्तिष्क ठंढा रहता है, और बाल काले तथा घने रहते हैं। इन सब कामों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल को अधिक उत्तम और गुणकारी बतलाया है। वैद्यक के अनुसार तेल में तली हुई खाने की चीजें विदाही, गुरुपाक, गरम, पित्तकर, त्वचादोष उत्पन्न करनेवाली

तैं—क्रि० वि० [सं० तत्] उतना। उस कदर। उस मात्रा का। जैसे, अब तैं नंबर के बाद कहिये तैं नंबर के बाद आपका ताश निकले।

संज्ञा पु० [अ०] (१) निबटेरा। फैसला।

यौ०—तै तमाम = अंत। समाप्ति।

(२) पूर्ति। पूरा करना। (३) दे० "तह"।

वि० (१) जिसका निबटेरा या फैसला हो चुका हो। (२) जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे, झगड़ा तै करना। रास्ता तै करना।

तैकायन-संज्ञा पुं० [सं०] तिक ऋषि के वंशज या शिष्य।

तैक्त-संज्ञा पु० [सं०] तिक्त का भाव। तीतापन। चरपराहट। तिताई। तिक्तत्व।

तैक्ष्ण्य-संज्ञा पु० [सं०] तीक्ष्णता। तीक्ष्णा का भाव।

तैखाना-संज्ञा पु० दे० "तहखाना"।

तैजस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धातु, मणि अथवा इसी प्रकार का और कोई चमकीला पदार्थ। (२) घी। (३) पराक्रम। (४) बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। (५) सुमति के एक पुत्र का नाम। (६) (जो स्वयं-प्रकाश और सूर्य आदि का प्रकाशक हो) भगवान्। (७) वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है। (८) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। (९) राजस अवस्था में प्राप्त अहंकार जो एकादश इंद्रियों और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना अहंकार कभी सात्विक या तामसी अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता।

विशेष—दे० "अहंकार"।

वि० [सं०] तेज से उत्पन्न। तेज संबंधी। जैसे, तैजस पदार्थ।

तैजसावर्त्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी सोना गलाने की घरिया। मूषा।

तैजसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

तैतिर-संज्ञा पुं० [सं०] तीतर।

तैतिल-संज्ञा पु० [सं०] (१) ग्यारह करणों में से चौथा करण। फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला कलाकुशल, रूपवान, वक्ता, गुणी, सुशील और कामी होता है। (२) देवता। (३) गैंड़ा।

तैत्तिरि-संज्ञा पु० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम।

तैत्तिर-संज्ञा पु० [सं०] (१) तीतरों का समूह। (२) तीतर। (३) गैंड़ा।

तैत्तिरीय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से एक जो आत्रेय अनुक्रमणिका और पाणिनि के अनुसार तित्तिरि नामक ऋषि प्रोक्त है। पुराणों में इसके संबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी। उसके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी। और सब शिष्य तो यज्ञ करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए। इस पर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो। याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पढ़ा था वह सब उगल दिया; और उस वमन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर चुग लिया। (२) इस शाखा का उपनिषद्, जो तीन भागों में विभक्त है। पहला भाग संहितोपनिषद् या शिक्षावल्ली कहलाता है, इसमें व्याकरण और अद्वैतवाद संबंधी बातें हैं; दूसरा भाग आनंदवल्ली और तीसरा भाग भृगुवल्ली कहलाता है। इन दोनों सम्मिलित भागों को वारुणी उपनिषद् भी कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्मविद्या पर उत्तम विचारों के अतिरिक्त श्रुति, स्मृति और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं। इस उपनिषद् पर शंकराचार्य्य का बहुत अच्छा भाष्य है।

तैत्तिरीयक-संज्ञा पु० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला।

तैत्तिरीयारण्यक-संज्ञा पु० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक अंश जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है।

तैत्तिल-संज्ञा पुं० दे० "तैतिल"।

तैनात-वि० [अ० तअय्युन] किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ। मुकर्रर। नियत। नियुक्त। जैसे, भीड़ भाड़ का इंतजाम करने के लिये दस सिपाही वहाँ तैनात किए गए थे।

तैनाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० तैनात + ई (प्रत्य०)] किसी काम पर लगाने की क्रिया या भाव। नियुक्ति। मुकर्ररी।

तैया-संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें छीपी कपड़ा छापने के लिये रंग रखते हैं। थहर।

तैयार-वि० [अ०] (१) जो काम में आने के लिये बिलकुल उपयुक्त हो गया हो। सब तरह से दुरुस्त या ठीक। लैस। जैसे, कपड़ा (सिल कर) तैयार होना, मकान (बन कर) तैयार होना, फल (पक कर) तैयार होना, गाड़ी (जुत कर) तैयार होना आदि।

मुहा०—गला तैयार होना = गले का बहुत सुरीला और रस-युक्त होना। ऐसा गला होना जिससे बहुत अच्छा गाना गाया जा सके। हाथ तैयार होना = कला आदि में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना। हाथ का बहुत मँज जाना।

(२) उद्यत। तत्पर। मुस्तैद। जैसे, (क) हम तो सवेरे से चलने के लिये तैयार थे, आप ही नहीं आए। (ख) जब देखिए तब आप लड़ने के लिये तैयार रहते हैं।

जाति के लोगों का छूआ हुआ जल नहीं ग्रहण करते।

मुहा०—तेली का बैल=हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति।

तेलौंची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल+औंची (प्रत्य०)] पत्थर कांच या लकड़ी आदि की वह छोटी प्याली, जिसमें शरीर में लगाने के लिये तेल रखते है। मलिया।

तेवट—संज्ञा स्त्री० [देश०] सात दीर्घ अथवा १४ लघु मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली रहता है। इसके तबले के बोल ये हैं—धिन् धिन् धाकेटे, धिन् धिन् धा, तिन् तिन् ताकेटे धिन् धिन् धा। धा॥

(+ ३ ० १ +)

तेवन†*—संज्ञा पुं० [सं० अन्तेवन] (१) नजरबाग। पाईंबाग। (२) वह स्थान विशेषतः वन आदि जहाँ आमोद प्रमोद और क्रीड़ा हो। (३) क्रीड़ा।

तेवर—संज्ञा पुं० [हिं० तेह=क्रोध] (१) कुपित दृष्टि। क्रोध भरी चितवन।

मुहा०—तेवर चढ़ना=दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो। तेवर बदलना या बिगड़ना=(१) बेमुरौवत हो जाना। (२) खफा हो जाना। (३) मृत्युचिह्न प्रकट होना। तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना=अनुराग में अंतर पड़ना। प्रेम-भाव में अंतर आ जाना। तेवर मैले होना=दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना।

(२) भौंह। भृकुटी।

तेवरसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) ककड़ी। (२) खीरा (३) फूट।

तेवरा—संज्ञा पुं० [देश०] दून में बजाया हुआ रूपक ताल। (संगीत)

तेवराना†—क्रि० अ० [हिं० तेवर+आना (प्रत्य०)] (१) भ्रम में पड़ना। संदेह में पड़ना। सोच में पड़ना। (२) विस्मित होना। आश्चर्य्य करना। दे० "तेवाना"। (३) मूर्च्छित हो जाना। बेहोश हो जाना।

तेवरी—संज्ञा स्त्री० दे० "त्योरी"।

तेवहार—संज्ञा पुं० दे० "त्यौहार"।

तेवाना†*—क्रि० अ० [देश०] सोचना। चिंता करना। उ०—(क) सँवरि सेज धन मन भइ संका। ठाढ़ि तेवानि टेक कर लंका।—जायसी। (ख) हिये आय दुख बाजा जिउ जानौ गा छेंकि। मन तेवान कै रोइये हरि-भँडार कर टेकि।—जायसी। (ग) रहौं लजाय तो पिय चलै कहौं तो कहैं मोहि ढीठ। ठाढ़ि तेवानी का करौं भारी दोउ बसीठ।—जायसी।

तेह†*—संज्ञा पुं० [सं० तदण्य्, हिं० तेखना] (१) क्रोध। गुस्सा। उ०—हम हारी कै कै हहा, पायन पारयो प्यौरु। लेहु कहा अजहूँ किये तेह तरेरे त्योरु।—बिहारी। (२) अहंकार। घमंड। ताव। उ०—आवै तेह वश भूप करहिँ हठ पुनि पाछे पछितैहैं। अवध किशोर समान और वर जन्म प्रयंत न पैहैं।—रघुराज। (३) तेजी। प्रचंडता। उ०—शेष भार खाइकै उतारे फन हू तें भूमि कमठ वराह छोड़ि भागैं छिति जेह को। भानु सितभानु तारा मंडल प्रतीचि उवैं सोखै सिंधु बाडव तरणि तजै तेह को।—रघुराज।

तेहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+हार] तीन लड़ की सिकरी, करधनी या जंजीर जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं।

तेहरा—वि० पुं० [हिं० तीन+हरा] (१) तीन परत किया हुआ। तीन लपेट का। (२) जिसकी एक साथ तीन प्रतियाँ हों। जो एक साथ तीन तीन हो। उ०—दोहरे, तेहरे, चौहरे भूषण जाने जात।—बिहारी। (३) जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो। जैसे, तेहरी मेहनत।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कामों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उत्तम रीति से या पूर्ण न हुए हों।

(४) तिगुना। (क्व०)

तेहराना—क्रि० स० [हिं० तेहरा] (१) तीन लपेट या परत का करना। (२) किसी काम को उसकी त्रुटि आदि दूर करने अथवा उसे बिलकुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना।

तेहवार—संज्ञा पुं० दे० "त्योहार"

तेहा—संज्ञा पुं० [हिं० तेह] (१) क्रोध। गुस्सा। (२) अहंकार। शेखी। अभिमान। घमंड।

यौ०—तेहेदार। तेहेबाज़।

तेहि†*—सर्व० [सं० ते] उसको। उसे।

तेही—संज्ञा पुं० [हिं० तेह+ई (प्रत्य०)] (१) गुस्सा करने वाला। जिसमें क्रोध हो। क्रोधी। (२) अभिमानी। घमंडी।

तेहेदार†—संज्ञा पुं० दे० "तेही"।

तेहेबाज†—संज्ञा पुं० दे० "तेही"।

तैं†*—क्रि० वि० [हिं० तें] से। दे० "तें"। उ०—कुंज तैं कहूँ सुनि कंत को गमन, लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को।—पद्माकर।

सर्व० [सं० त्वं] तू। उ०—त्रिय संग लरहिं न भट रिपु अगनी। वक मम भ्राता तैं मम भगनी।—गोपाल।

तैंतालीस—वि० दे० "तेंतालीस"।

तँतीस—वि० दे० "तेंतीस"।

तैलकिट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] खली।
तैलकीट-संज्ञा पुं० [सं०] तेलिन नाम का कीड़ा।
तैलत्व-संज्ञा पुं० [सं०] तेल का भाव या गुण।
तैलद्रोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल में बनाया जाता था और जिसकी लंबाई आदमी की लंबाई के बराबर हुआ करती थी। इसमें तेल भर कर चिकित्सा के लिये रोगी लेटाए जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये मृत-शरीर रखे जाते थे। राजा दशरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणी में ही रखा गया था।
तैलधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सरसों, दोनों प्रकार की राई, तिल और कुसुम के बीज हैं।
तैलपर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन।
तैलपर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चंदन। (२) लाल चंदन। (३) एक प्रकार का वृक्ष।
तैलपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सलई का गोंद। (२) चंदन। (३) शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य।
तैलपायी-संज्ञा पुं० [सं० तैलपायिन्] झींगुर। चपड़ा। (कीड़ा)
तैलपिपीलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चींटी।
तैलपिष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] खली।
तैलफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंगुदी। (२) बहेड़ा।
तैलभाविनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़।
तैलमाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल की बत्ती। पलीता।
तैलयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कोल्हू।
तैलवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी। शतमूली।
तैलसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] शीतल चीनी। कबाब चीनी।
तैलस्फटिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंबर नामक गंधद्रव्य। (२) तृणमणि। कहरुबा।
तैलस्यंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोकर्णी नाम की लता। मुरहटी। (२) काकोली नाम की ओषधि।
तैलाक्त-वि० [सं०] जिसमें तेल लगा हो। तैल-युक्त।
तैलाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य।
तैलागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] अगर की लकड़ी।
तैलाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्रे। भिड़।
तैलाभ्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में तेल मलने की क्रिया। तेल की मालिश।
तैलिक-संज्ञा पुं० [सं०] तिलों से तेल निकालनेवाला। तेली। वि० तेल संबंधी।
तैलिक यंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कोल्हू। उ०—समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी।—तुलसी।
तैलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बत्ती।
तैलिशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ तेल पेरने का ......

तैली-संज्ञा पुं० [सं०] तेली।
तैल्वक-वि० [सं०] लोध की लकड़ी से बना हुआ।
संज्ञा पुं० [सं०] लोध।
तैश-संज्ञा पुं० [अ०] आवेश-युक्त क्रोध। गुस्सा।
मुहा०—तैश दिखाना=ऐसा कार्य्य करना जिससे कोई क्रुद्ध हो। क्रोध चढ़ाना। तैश में आना=क्रुद्ध होना। बहुत क्रुपित होना।
तैष-संज्ञा पुं० [सं०] चांद्र पौष मास। पौष मास की पूर्णिमा के दिन तिष्य (पुष्य) नक्षत्र होता है, इसी से इसका नाम तैष पड़ा है।
तैषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्य-नक्षत्र-युक्ता पौर्णमासी। पूस की पूर्णिमा।
तैस ‡-वि० दे० "तैसा।"
तैसा-वि० [सं० तादृश, प्रा० तइस] उस प्रकार का। "वैसा" का पुराना रूप।
तैसे-क्रि० वि० दे० "वैसे"।
तौं * †-क्रि० वि० दे० "त्यों"।
तौंअर*†-संज्ञा पुं० दे० "तोमर"।
तौंद-संज्ञा स्त्री० [सं० तुंद] पेट के आगे का बढ़ा हुआ भाग। पेट का फुलाव। मर्यादा से अधिक फूला या आगे की ओर बढ़ा हुआ पेट।
क्रि० प्र०—निकलना।
मुहा०—तोंद पचना=मोटाई दूर होना। (२) शेखी निकल जाना।
तौंदल-वि० [हिं० तोंद+ल (प्रत्य०)] तोंदवाला। जिसका पेट आगे की ओर बढ़ा और खूब फूला हुआ हो।
तौंदा-संज्ञा पुं० [देश०] तालाब से पानी निकलने का मार्ग।
संज्ञा पुं० [फ़ा० तोदः] (१) वह टीला या मिट्टी की दीवार, जिस पर तीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये निशाना लगाते हैं। (२) ढेर। राशि। (बव०)।
तौंदी-संज्ञा स्त्री० [सं० तुंडी] नाभी। ढोंढ़ी।
तौंदीला-वि० दे० "तोंदल"।
तौंदैल-वि० दे० "तोंदल"।
तौंबा-संज्ञा पुं० दे० "तूँबा"।
तौंबी-संज्ञा स्त्री० दे० "तूँबी"।
तौ-सर्व० [सं० तव] तेरा।
अव्य० [सं० तद्] तब। उस दशा में। जैसे, (क) यदि तुम कहो तो मैं उन्हें भी पत्र लिख दूँ। (ख) अगर वे मिलें तो उनसे भी कह देना। उ०—जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। तो पद पदुम पखारन कहहू।—तुलसी।
विशेष—पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्रायः 'जो' के साथ होता था और आज कल 'यदि' या

(३) प्रस्तुत। उपस्थित। मौजूद। जैसे, इस समय पचास रुपए तैयार हैं, बाकी कल ले लीजिएगा। (४) हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। जिसका शरीर बहुत अच्छा और सुडौल हो। जैसे, यह घोड़ा बहुत तैयार है।

तैयारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तैयार + ई (प्रत्य०)] (१) तैयार होने की क्रिया या भाव। दुरुस्ती। (२) तत्परता। मुस्तैदी। (३) शरीर की पुष्टता। मोटाई। (४) धूम धाम। विशेषतः प्रबंध आदि के संबंध की धूम धाम। जैसे, उनकी बरात में बड़ी तैयारी थी। (५) सजावट। जैसे, आज तो आप बड़ी तैयारी से निकले हैं।

तैयो–क्रि० वि० दे० "तऊ"। उ०—सहस अठासी मुनि जौ जेंवें तवौ न घंटा बाजै। कहहिं कबीर सुपच के जेंए, घंट मगन ह्वै गाजै।—कबीर।

तैरणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसकी पत्तियों आदि को वैद्यक में तिक्त और व्रणनाशक माना है।

पर्य्या०—तैर। तैरणी। कुनीली। रागद।

तैरना–क्रि० अ० [सं० तरण] (१) पानी के ऊपर ठहरना। उतराना। जैसे, लकड़ी या काग आदि का पानी पर तैरना। (२) किसी जीव का अपने अंग संचालित करके पानी पर चलना। हाथ पैर या और कोई अंग हिलाकर पानी पर चलना। पैरना। तरना।

विशेष—मछलियाँ आदि जलजंतु तो सदा जल में रहते और विचरते ही हैं; पर इनके अतिरिक्त मनुष्य को छोड़ कर बाकी अधिकांश जीव जल में स्वभावतः बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं। तैरना कई तरह से होता है और उसमें केवल हाथ, पैर, शरीर का कोई अंग अथवा शरीर के सब अंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सीखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अथवा केवल पैरों को गति देनी पड़ती है, मनुष्य का साधारण तैरना प्रायः मेंढक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर चुप चाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे आसनों से भी तैरते हैं। साधारण चौपायों को तैरने में अपने पैरों को प्रायः वैसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गऊ, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ चौपाए ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने में अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, ऊदबिलाव, गंध बिलाव आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही, बिलकुल मछलियों की तरह तैरते हैं, जैसे, ह्वेल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और अंदर भी। जिन पक्षियों के पैरों में जालियाँ होती हैं, वे जल में अपने पैरों की सहायता से चलने की भाँति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में उसी प्रकार अपने पर फटफटाते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा में। साँप, अजगर आदि रेंगनेवाले जानवर जल में अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल में चलते हैं। कछुए आदि अपने चारों पैरों की सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दौड़ते अथवा चित पड़कर तैरते हैं।

तैराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० तैरना + ई (प्रत्य०)] (१) तैरने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो तैरने के बदले में मिले।

तैराक–वि० [हिं० तैरना + आक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तैराना–क्रि० स० [हिं० तैरना का प्रे०] (१) दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। (२) घुसाना। धँसाना। गोदना। जैसे, चोर ने उसके पेट में छुरी तैरा दी।

तैर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो तीर्थ में किया जाय।

वि० तीर्थ-संबंधी।

तैर्थिक–संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रकार। जैसे, कपिल, कणाद आदि।

तैर्य्यग्यनिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैलंग–संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिंग] दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश जिसका विस्तार श्रीशैल से चोल राज्य के मध्य तक था। इसी देश की भाषा तेलगू कहलाती है।

विशेष—इस देश में कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगों का मत है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगों के कारण इस देश का नाम त्रिलिंग पड़ा है; इसका नाम पहले त्रिकलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीछे से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिसके कारण इसका नाम त्रिकलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से ले कर मदरास के और आगे तक का समुद्र तटस्थ प्रदेश तैलंग या तिलंगाना कहलाता है।

तैलंगा–संज्ञा पुं० दे० "तिलंगा"।

तैलंगी–संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग + ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

संज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

वि० तैलंग देश संबंधी। तैलंग देश का।

तैल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल, सरसों आदि को पेर कर निकाला हुआ तेल। (२) किसी प्रकार का तेल।

तैलकंद–संज्ञा पुं० [सं०] तेलियाकंद।

तैलकार–संज्ञा पुं० [सं०] तेली (जाति)। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक जाति की स्त्री और कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है।

आदि को सब दिन के लिये बंद करना। जैसे, महकमा तोड़ना, कंपनी तोड़ना, पद तोड़ना, स्कूल तोड़ना। (१०) किसी निश्चय या नियम आदि को स्थिर या प्रचलित न रखना। निश्चय के विरुद्ध आचरण करना अथवा नियम का उल्लंघन करना। बात पर स्थिर न रहना। जैसे, ठेका तोड़ना, प्रतिज्ञा तोड़ना। (११) दूर करना। अलग करना। मिटा देना। बना न रहने देना। जैसे, संबंध तोड़ना, गर्व तोड़ना, प्रेम तोड़ना, दोस्ती तोड़ना, सगाई तोड़ना। (१२) स्थिर या दृढ़ न रहने देना। कायम न रहने देना। जैसे, गवाह तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—कलम तोड़ना = दे० "कलम" के मुहा०। कमर तोड़ना = दे० "कमर" के मुहा०। किला या गढ़ तोड़ना = दे० "गढ़" के मुहा०। तिनका तोड़ना = दे० "तिनका" के मुहा०। पैर तोड़ना = दे० "पैर" के मुहा०। मुँह तोड़ना = दे० "मुँह" के मुहा०। रोटियाँ तोड़ना = दे० "रोटी" के मुहा०। सिर तोड़ना = दे० "सिर" के मुहा०। हिम्मत तोड़ना = दे० "हिम्मत" के मुहा०।

तोड़वाना-क्रि० स० दे० "तुड़वाना"।

तोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना] (१) सोने चाँदी आदि की लच्छेदार और चौड़ी जंजीर या सिकड़ी जिसका व्यवहार आभूषण की तरह पहनने में होता है। आभूषण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, और पैरों हाथों या गले में पहना जाता है। कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगड़ी के ऊपर चारों ओर भी तोड़ा लपेट लेते हैं। (२) रुपए रखने की टाट आदि की थैली जिसमें १०००) रु० आते हैं। (वह थैली जिसमें २०००) रु० आते हैं, 'तोड़ा' ही कहलाती है।)

मुहा०—(किसी के आगे) तोड़े उलटना या गिनना = (किसी को) तोड़ों, हजारों रुपए देना। बहुत सा द्रव्य देना।

(३) नदी का किनारा। तट। (४) वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बालू मिट्टी जमा होने के कारण बन जाता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(५) घाटा। घटी। कमी। टोटा।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

(६) रस्सी आदि का टुकड़ा। (७) उतना नाच जितना एक बार में नाचा जाय। नाच का एक टुकड़ा। (८) हल की वह लंबी लकड़ी जिसके आगे जूआ लगा होता है। हरिस।

संज्ञा पुं० [स० तुंड या टोंटा] नारियल की जटा की वह रस्सी जिसके ऊपर सून बुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी चाल की तोड़ेदार बंदूक छोड़ी जाती थी। फलीता। पलीता।

यौ०—तोड़ेदार बंदूक = वह बंदूक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय। आज कल इस प्रकार की बंदूक का व्यवहार उठ गया है। दे० "बंदूक"।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) मिस्री की तरह की बहुत साफ की हुई चीनी जिससे ओला बनाते हैं। कंद। (२) वह लोहा जिसे चकमक पर मारने से आग निकलती है। (३) वह भैंस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार बच्चा न दिया हो। तीन बार तक ब्याई हुई भैंस।

तोड़ाई-संज्ञा स्त्री० दे० "तुड़ाई"।

तोड़ाना-क्रि० स० दे० "तुड़ाना"।

तोड़िया†-संज्ञा स्त्री० दे० "तोड़ी"।

तोड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों।

तोण*†-संज्ञा पुं० [सं० तूण] निषंग। तरकस।

तोत†-संज्ञा पुं० [फ़ा० तोदः = ढेर] (१) ढेर। समूह। उ०—घर घर ब्रजही के जुरे बदनामी के तोत। मोहन जे हित ऐंत तें नेक नाम कत होत। ‡ (२) ठेर। (ब्रज०)

तोतई-वि० [हिं० तोता + ई (प्रत्य०)] सुग्गे के जैसा। तोते के रंग का सा। धानी।

संज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा हो। धानी रंग।

तोतरंगी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो पिलपिचा की सी होती है।

तोतर†-वि० दे० "तोतला"।

तोतरा-वि० दे० "तोतला"।

तोतराना-क्रि० अ० दे० "तुतलाना"। उ०—सूधत तोतरात बात मानहि अतुराई। अति सै मुख जाते तोहि मोहि कछु समुझाई।—तुलसी।

तोतला-वि० [हिं० तुतलाना] (१) वह जो तुतला कर बोलता हो। अस्पष्ट बोलनेवाला। जैसे, तोतला बालक। (२) जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो, जैसे, तोतली जबान।

तोतलाना-क्रि० अ० दे० "तुतलाना"।

तोता-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है। इसकी दुम छोटी होती है और पैरों में दो आगे और दो पीछे इस प्रकार चार उँगलियाँ होती हैं। ये आदमियों की बोली की बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हें घर में पालते हैं और "राम राम" या छोटे मोटे पद सिखलाते हैं। ये फल या मुलायम अनाज खाते हैं। तोते की छोटी बड़ी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जिनमें से अधिकांश फलाहारी और कुछ मांसाहारी भी होती हैं। तोते साधारण छोटी चिड़ियों से लेकर तीन फुट तक की लंबाई के होते हैं। कुछ जातियों के तोतों का स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछ का बहुत कटु तथा अप्रिय। इनमें

'अगर' के साथ होता है। कविता में इसका प्रयोग अब भी 'जो' के साथ स्वतंत्रता से किया जाता है।

अव्य० [सं० तु] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये अथवा कभी कभी यों ही किया जाता है। जैसे, (क) आप चलें तो सही, मैं सब प्रबंध कर लूँगा। (ख) जरा बैठो तो। (ग) हम गए तो थे, पर वेही नहीं मिले। (घ) देखो तो कैसी बहार है?

*सर्व० [सं० तव] तुझ। तू का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है जैसे, तोको।

*क्रि० अ० [हिं० हतो = था] था। (ब्व०)। उ०—काल करम दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो।—तुलसी।

तोइ*†–संज्ञा पुं० [सं० तोय] पानी। जल। उ०—दीठ डोरने मोर दिय छिरक रूप रस तोइ। मथि मो घट प्रीतम लिए मन नवनीत बिलोइ।—रसनिधि।

तोई–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) अंगे या कुरते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोट। (२) चादर या दोहर आदि की गोट। (३) लँहगे का नेफ़ा।

तोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्णचंद्र के सखाओं में से एक। (२) शिशु। अपत्य। लड़का वा लड़की। (३) श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा का नाम।

तोकरा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो अफ़ीम के पौधों पर लिपट कर उन्हें सुखा देती है।

तोकम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंकुर। (२) जौ का नया अंकुर। (३) हरा और कच्चा जौ। (४) हरा रंग। (५) बादल। मेघ। (६) कान की मैल।

तोख–*†संज्ञा पुं० दे० "तोष" या "संतोष"।

तोखार–संज्ञा पुं० दे० "तुखार"।

तोटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार सगण (॥ऽ ॥ऽ ॥ऽ ॥ऽ) होते हैं। उ०—ससि सों सखियाँ विनती करतीं टुक मंद न हो पग तो परतीं। हरि के पद अंकनि ढूँढन दे। छिन तो टक लाय निहारन दे। (२) शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों में से एक। इनका एक नाम नंदीश्वर भी था।

तोटका–संज्ञा पुं० दे० "टोटका"। उ०—औषध अनेक जंत्र मंत्र तोटकादि किये बादि भए देवता मनाए अधिकाति है।—तुलसी।

तोड़–संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना] (१) तोड़ने की क्रिया या भाव (क्व०)। (२) किले की दीवारों आदि का वह अंश जो गोले की मार से टूट फूट गया हो। (३) नदी आदि के जल का तेज बहाव। ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवाली चीजों को तोड़ फोड़ दे। (४) कुश्ती का वह पेंच जिससे कोई दूसरा पेंच रद्द हो। किसी दाँव से बचने के लिये किया हुआ दाँव। (५) किसी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य्य। प्रतिकार। मारक। जैसे, अगर वह तुम्हारे साथ कोई पाजीपन करे तो उसका तोड़ हमसे पूछना।

यौ०—तोड़ जोड़।

(६) दही का पानी। (७) बार। दफा। झोंक। जैसे, पहुँचते ही वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्य्यों के लिये होता है जो बहुत आवेशपूर्वक या तत्परता के साथ किए जाते हैं।

तोड़ जोड़–संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ + जोड़] (१) दाँव पेंच। चाल। युक्ति। (२) अपना मतलब साधने के लिये किसी को मिलाने और किसी को अलग करने का कार्य्य। चट्टे बट्टे लड़ाकर काम निकालना।

क्रि० प्र०—भिड़ाना—लगाना।

तोड़ना–क्रि० स० [हिं० टूटना] (१) आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक खंड करना। भग्न, विभक्त या खंडित करना। टुकड़े करना। जैसे, गन्ना तोड़ना, लकड़ी तोड़ना, रस्सी तोड़ना, दीवार तोड़ना, दावात तोड़ना, बरतन तोड़ना, बंधन तोड़ना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः कड़े पदार्थों के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो सूत के रूप में लंबाई में कुछ दूर तक चले गए हों।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—तोड़ा मरोड़ी।

(२) किसी वस्तु के अंग को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी वस्तु को नोच या काट कर, अथवा और किसी प्रकार से अलग करना। जैसे, पत्ती फूल या फल तोड़ना, (कोट में लगा हुआ) बटन तोड़ना, जिल्द तोड़ना, दाँत तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(३) किसी वस्तु का कोई अंग किसी प्रकार खंडित, भग्न या बेकाम करना। जैसे, मशीन का पुरजा तोड़ना, किसी का हाथ या पैर तोड़ना। (४) खेत में हल जोतना। (क्व०)। (५) सेंध लगाना। (६) किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना। किसी का कुमारीत्व भंग करना। (७) बल, प्रभाव, महत्त्व, विस्तार आदि घटाना या नष्ट करना। क्षीण दुर्बल या अशक्त करना। जैसे, (क) बीमारी ने उन्हें बिलकुल तोड़ दिया। (ख) युद्ध ने उन दोनों देशों को तोड़ दिया। (ग) इस कुएँ का पानी तोड़ दो। (८) खरीदने के लिये किसी चीज का दाम घटा कर निश्चित करना। जैसे, वह तो १२०) माँगता था पर मैंने तोड़ कर १००) पर ही ठीक कर लिया। (९) किसी संगठन व्यवस्था या कार्य्यक्षेत्र आदि को न रहने देना अथवा नष्ट कर देना। किसी चलते काम कार्य्यालय

और सामान की गाड़ियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह।

तोपची–संज्ञा पुं० [तु० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला। वह जो तोप में गोला भर कर चलाता हो। गोलंदाज।

तोपचीनी–संज्ञा स्त्री० दे० "चोबचीनी"।

तोपड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कबूतर। (२) एक प्रकार की मक्खी।

तोपना †–क्रि० स० [सं० क्षेपन] नीचे दबाना। ढाँकना। छिपाना।

तोपवाना †–क्रि० स० [हिं० तोपना का प्रे०] तोपने का काम दूसरे से कराना। ढँकवाना। छिपवाना।

तोपा–संज्ञा पुं० [हिं० तुरपना] एक टाँके में की हुई सिलाई।

मुहा०—तोपा भरना = टाँके लगाना। सीना। सीधी सिलाई करना।

तोपाई †–संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] (१) तोपने की क्रिया या भाव। (२) तोपने की मजदूरी।

तोपाना–क्रि० स० दे० "तोपवाना"।

तोपास–संज्ञा पुं० [देश०] झाड़ू देनेवाला। झाड़ूबरदार।

तोपी †–संज्ञा स्त्री० दे० "टोपी"।

तोफगी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोहफ़ा] तोफा या उम्दः होने का भाव। खूबी। अच्छा-पन।

तोफा–वि० [अ० तोहफ़ा] बढ़िया।

संज्ञा पुं० दे० "तोहफा"।

तोबड़ा–संज्ञा पुं० [फ़ा० तोबरा या तुबरा] चमड़े या टाट आदि का वह थैला जिसमें दाना भर कर घोड़े के खाने के लिये उसके मुँह पर बाँध देते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—तोबड़ा चढ़ाना = बोलने से रोकना। मुँह बंद करना।

तोबा–संज्ञा स्त्री० [अ० तौब] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके पश्चात्ताप करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा। किसी कार्य्य को विशेषतः अनुचित कार्य्य को भविष्य में न करने की शपथ-पूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा। (इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है।)

मुहा०—तोबा तिल्ला करना या मचाना = रोते, चिल्लाते या दीनता दिखलाते हुए तोबा करना। तोबा तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना। जिस काम से तोबा कर चुके हो, उसे फिर करना। तोबा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़ कर अथवा ईश्वर से डर कर (कोई बात) कहना। तोबा बुलवाना = किसी को इतना तंग या विवश करना कि उसे तोबा करनी पड़े। पूर्ण रूप से परास्त करना। चीं बुलवाना।

तोम–संज्ञा पुं० [सं० स्तोम] समूह। ढेर। उ०—(क) जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो महामीन बास तिमि तोमनि को थल भो।—तुलसी। (ख) दिनकर के उदय तोम तिमिर फटत।—तुलसी। (ग) चहुँघा तें महा तरपै बिजुरी तम तोम में आजु समासे करै।—किशोर। (घ) लगे तोम कर तोम सर भई हिये बर घाइ। कूक काऊ पाली दई आली लाइ लगाई।—शृं० सत०।

तोमड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "तूँबड़ी"।

तोमर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाले की तरह का एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। इसमें लकड़ी के डंडे में आगे की ओर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था। शर्पला। शावल। (२) बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। जैसे, तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहुत ब्याल॥ कोप्यो समर श्रीराम। चल विशिख निशिक निकाम॥ (३) एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों में है। (४) उस देश का निवासी। (५) राजपूत क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिल्ली में आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक था। प्रसिद्ध राजा अनंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) इसी वंश के थे। पीछे से तोमरों ने कन्नौज को अपना राज-नगर बनाया था। कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे। आज कल इस वंश के बहुत ही कम क्षत्रिय पाए जाते हैं।

तोमरिका–संज्ञा स्त्री० दे० "तुवरिका"।

तोमरी‡–संज्ञा स्त्री० दे० "तूँबड़ी"।

तोय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

तोयकर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण।

तोयकाम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बेंत जो जल के समीप उत्पन्न होता है। वानीर।

तोयकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

तोयकृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें जल के सिवा और कुछ आहार ग्रहण नहीं किया जाता। यह व्रत एक महीने तक करना होता है।

तोयडिंब–संज्ञा पुं० [सं०] ओला। पत्थर। करका।

तोयद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) नागरमोथा। (३) घी। (४) वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहात्म्य बहुत अधिक माना जाता है।)

वि० जल देनेवाला।

तोयदागम–संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

तोयधर–संज्ञा पुं० दे० "तोयधार"।

तोयधार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) मोथा।

तोयधि–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

नर और मादा का रंग प्रायः एक सा ही होता है। अमेरिका में बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते हैं। हीरामन, कातिक, नूरी, काकातूआ आदि तोते की जाति के ही हैं। तीतर, मुरगे, मोर, कबूतर आदि पक्षी जिस स्थान पर बहुत दिनों तक पाले जाते हैं यदि कभी उड़ कर इधर उधर चले जाँय तो प्रायः फिर लौटकर उसी स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर कभी अपने पालनेवाले के पास नहीं आते। इसलिये तोतों की बे-मुरौवती मशहूर है। कीर। सूआ।

मुहा०—हाथों के तोते उड़ जाना=बहुत घबरा जाना। सिट-पिटा जाना। तोते की तरह आँखें फेरना या बदलना=बहुत बे-मुरौवत होना। तोते की तरह पढ़ना=बिना समझे बूझे रटना। तोता पालना=किसी दोष, दुर्व्यसन या रोग को जान बूझ कर बढ़ाना। किसी बुराई या बीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना।

यौ०—तोतेचश्म। तोताचश्मी।

(२) बंदूक का घोड़ा।

तोताचश्म-संज्ञा पुं० [फ़ा०] तोते की तरह आँखें फेर लेनेवाला। वह जो बहुत बे-मुरौवत हो।

तोताचश्मी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोताचश्म+ई० (प्रत्य०)] बे-मुरौवती। बेवफ़ाई।

तोती-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोता] (१) तोते की मादा। (२) रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखनी। सुरैतिन। (बव०)

तोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह छड़ी या चाबुक आदि जिसकी सहायता से जानवर हाँके जाते हैं।

तोत्रवेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दंड।

तोद-संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा। व्यथा।

वि० पीड़ा पहुँचानेवाला। कष्टदायक।

तोदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोत्र। चाबुक, कोड़ा, चमोटी आदि। (२) व्यथा। पीड़ा। (३) एक प्रकार का फलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसैला, मीठा, रूखा तथा कफ और वायु-नाशक माना है।

तोदरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फ़ारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कँटीला पेड़ जिसमें पतले छिलकेवाले फूल लगते हैं। इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह चपटे पर उससे कुछ बड़े होते हैं और औषध के काम में आने के कारण भारत के बाजारों में आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकार के होते हैं— लाल, सफेद और पीले। तीनों प्रकार के बीज बहुत रक्तशोधक, पौष्टिक और बलवर्द्धक समझे जाते हैं। कहते हैं कि इनके सेवन से शरीर का रंग खूब निखरता है और चेहरे का रंग लाल हो जाता है।

तोदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का ख्याल (संगीत)।

तोप-संज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा अस्त्र जो प्रायः दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की ओर बंदूक की नली की तरह, एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है। इस नल में छोटी छोटी गोलियों या मेखों आदि से भरे हुए गोल या लंबे गोले रख कर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं। गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में बारूद रख कर पलीते आदि से उसमें आग लगा देते हैं।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मैदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में तोपें केवल मैदानी और छोटी हुआ करती थीं और उनके खींचने के लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे। इसके अतिरिक्त घोड़ों, ऊँटों या हाथियों आदि पर रख कर चलाने योग्य तोपें अलग हुआ करती थीं जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे। आज कल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७१—७२ मील तक जाता है। इसके अतिरिक्त बाइसिकिलों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि पर से चलाने के लिये अलग प्रकार की तोपें होती हैं। जिनका मुँह ऊपर की ओर होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं। तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना नष्ट करने और किले या मोरचेबंदी तोड़ने के लिये होता है। राजकुल में किसी के जन्म के समय अथवा इसी प्रकार की और किसी महत्त्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भर कर केवल शब्द करते हैं।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—छुटना।—छोड़ना।—दगना।—दागना।—भरना।—मारना।—सर करना।

यौ०—तोपची। तोपख़ाना।

मुहा०—तोप कीलना=तोप की नाली में लकड़ी का कुंदा खूब कस कर ठोंक देना जिसमें उसमें से गोला न चलाया जा सके। प्राचीन काल में मौका पाकर शत्रु की तोपें अथवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार कील दी जाती थीं। तोप की सलामी उतारना=किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर अथवा किसी महत्त्वपूर्ण घटना के समय बिना गोले के बारूद भर कर शब्द करना। तोप के मुँह पर रख कर उड़ाना=बहुत कठिन या प्राणदंड देना। तोप दम करना=दे० "तोप के मुँह पर रख कर उड़ाना"। किसी पर या किसी के सामने तोप लगाना=किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुँह उसकी ओर करना।

तोपख़ाना-संज्ञा पुं० [अ० तोप+फ़ा० ख़ाना] (१) वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुल सामान रहता हो। (२) गोलों

कपड़े और गहने आदि रहते हैं। वस्त्रों और आभूषणों आदि का भांडार।

तोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अघाने या मन भरने का भाव। तुष्टि। संतोष। तृप्ति। (२) प्रसन्नता। आनंद। (३) भागवत के अनुसार स्वायंभुव मन्वंतर के एक देवता का नाम। (४) श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा का नाम।
वि० अल्प। थोड़ा। (अनेकार्थ०)

तोषक–वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोष देने या तृप्त करनेवाला।

तोषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तृप्ति। संतोष। (२) संतुष्ट करने की क्रिया या भाव।

तोषना *–क्रि० अ० [सं० तोष] (१) संतुष्ट करना। तृप्त करना। (२) संतुष्ट होना। तृप्त होना।

तोषल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंस के एक असुर मल्ल का नाम जिसे धनुर्यज्ञ में श्रीकृष्ण ने मार डाला था। (२) मूसल।

तोषित–वि० [सं०] जिसका तोष हो गया हो, अथवा जिसे तृप्त किया गया हो। तुष्ट। तृप्त।

तोस*–संज्ञा पुं० दे० "तोष"।

तोसक †–संज्ञा पुं० दे० "तोशक"।

तोसल * †–संज्ञा पुं० दे० "तोषल"।

तोसा * †–संज्ञा पुं० दे० "तोशा"।

तोसाखाना–संज्ञा पुं० दे० "तोशाखाना"।

तोसागार * †–संज्ञा पुं० दे० "तोशाखाना"।

तोहफगी–संज्ञा स्त्री० [अ० तोहफा + फ़ा० गी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छापन। उम्दगी।

तोहफा–संज्ञा पुं० [अ०] सौगात। उपायन। भेंट। उपहार।
वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोहमत–संज्ञा स्त्री० [अ०] मिथ्या अभियोग। वृथा लगाया हुआ दोष। झूठा कलंक।
क्रि० प्र०—जोड़ना।—देना।—धरना।—लगाना।—लेना।
मुहा०—तोहमत का घर या हट्टी = वह कार्य्य या स्थान जिसमें वृथा कलंक लगने की संभावना हो।

तोहमती–वि० [अ० तोहमत + ई (प्रत्य०)] झूठा अभियोग लगानेवाला। मिथ्या कलंक लगानेवाला।

तोहरा †–सर्व० दे० "तुम्हारा"।

तोहार ‡–सर्व० दे० "तुम्हारा"।

तोहि †–सर्व० [हिं० तू या तैं] तुमको। तुझे।

तौंकना–क्रि० अ० दे० "तौंसना"।

तौंस †–संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + ऊष्म, हिं० ऊमस, औंस] वह प्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भाँति न बुझे।

तौंसना–क्रि० अ० [हिं० तौंस] गरमी से झुलस जाना। गरमी के कारण संतप्त होना।

तौंसा–संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव + सं० ऊष्म, हिं० ऊमस, औंस] अधिक ताप। कड़ी गरमी।

तौ †*–क्रि० वि० दे० "तो"।
क्रि० अ० [हिं० हतो] था। उ०— वेऊ आए द्वारे हूँ हुती अगवारे औरै द्वारे अगवारे कोऊ तौ न तिहि काल मैं।—पद्माकर।

तौक–संज्ञा पुं० [अ०] (१) हँसुली के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का गहना। यह पटरी की तरह कुछ चौड़ा होता है और इसके नीचे घुँघरू आदि लगे होते हैं।
विशेष—प्रायः मुसलमान लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का चाँदी का घेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें तावीज आदि बँधी होती है। कभी कभी यह केवल मन्नत पूरी करने के लिये भी पहनाया जाता है।
(२) इसी आकार की पर तौल में बहुत भारी वृत्ताकार पटरी या मँडरा जिसे अपराधी या पागल के गले में इस लिये पहना देते जिसमें वह अपने स्थान से हिल न सके। (३) इसी आकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पक्षियों आदि के गले में होता है। हँसुली। (४) पट्टा। चपरास। (५) कोई गोल घेरा या पदार्थ।

तौक्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] धनुराशि।

तौचा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे कहीं कहीं देहाती स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं।

तौजी–संज्ञा पुं० [अ० तौज़ी] वह द्रव्य जो खेतिहरों को विवाहादि में खर्च करने के लिये पेशगी दिया जाता है। बियाही।
वि० हाथ-उधार। दस्तगर्दां।

तौतातित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैमिनी का भेद। (२) कुमारिल भट्ट का एक नाम।

तौतिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुक्ता। मोती। (२) मोती का सीप। शुक्ति।

तौन–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गैया दुहने के समय उसका बछवा उसके अगले पैर से बाँध दिया जाता है।
‡ सर्व० [सं० ते] वह। सो।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो वाक्यों का संबंध पूरा करने के लिये "जौन" के साथ होता है।

तौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा का स्त्री० अल्प० रूप] रोटी सेंकने का छोटा तवा। तई। तवी।
संज्ञा स्त्री० दे० "तौन"।
सर्व० दे० "तौन"।

तौबा–संज्ञा स्त्री० दे० "तोबा"।

तोयधिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।
तोयनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।
तोयनीवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
तोयपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।
तोयपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।
तोयपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाँढर।
तोयप्रसादन—संज्ञा पुं० दे० "तोयप्रसादन फल"।
तोयप्रसादन फल—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मली।
तोयफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज़ या ककड़ी आदि की बेल।
तोयमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। (२) मोथा।
तोयवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की बेल।
तोयवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।
तोयसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह योग जिससे वर्षा होने की सूचना मिले।
तोयाधार—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी। तालाब।
तोयाधिवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष।
तोयेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) शतभिषा नक्षत्र। (३) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।
तोर—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर।
*†संज्ञा पुं० दे० "तोड़"।
*†वि० दे० "तेरा"।
तोरई—संज्ञा स्त्री० दे० "तुरई"।
तोरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी घर या नगर का बाहरी फाटक। बहिर्द्वार, विशेषतः वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो। (२) वे मालाएँ आदि जो सजावट के लिये खंभों और दीवारों आदि में बाँध कर लटकाई जाती हैं। बंदनवार। (३) ग्रीवा। गला। (४) महादेव।
तोरणमाल—संज्ञा पुं० [सं०] अवंतिकापुरी।
तोरणस्फटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्योधन की उस सभा का नाम जो उसने पांडवों की मय-दानव-वाली सभा देख कर ईर्ष्या वश बनवाई थी।
तोरन†*—संज्ञा पुं० दे० "तोरण"।
तोरना†—क्रि० स० दे० "तोड़ना"।
तोरश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० तोरश्रवस्] अंगिरा ऋषि का एक नाम।
तोरा*†—सर्व० दे० "तेरा"।
तोराना*†—क्रि० स० दे० "तुड़ाना"।
तोरावान्*†—वि० [सं० त्वरावत्] [स्त्री० तोरावती] वेगवान्। तेज। उ०—विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—तुलसी।
तोरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तूरी] गोटा किनारी आदि बुननेवालों का लकड़ी का वह छोटा बेलन जिस पर बे-बुना हुआ गोटा पट्टा और किनारी आदि बराबर लपेटते जाते हैं।
संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो और जिसका दूध दूहने के लिये कोई युक्ति करनी पड़ती हो। (२) एक प्रकार की सरसों।
तोरी—संज्ञा स्त्री० दे० "तुरई"।
तोल—संज्ञा पुं० [सं०] तोला (तौल)।
†संज्ञा स्त्री० दे० "तौल"।
संज्ञा पुं० [देश०] नाव का डाँड़ा। (लश०)
तोलक—संज्ञा पुं० [सं०] तोला (तौल)। बारह माशे का वजन।
तोलन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तौलने की क्रिया। (२) उठाने की क्रिया।
संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तोलन] वह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लगाई जाती है। चाँड़।
तोलना—क्रि० सं० दे० "तौलना"। उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए मोर भौंह धनुष शर कटाक्ष सुरति व्याध तोलै री।—सूर।
तोलवाना—क्रि० स० दे० "तौलवाना"।
तोला—संज्ञा पुं० [सं० तोलक] (१) एक तौल जो बारह माशे या छानवे रत्ती की होती है। (२) इस तौल का बाट।
तोलाना—क्रि० स० दे० "तौलाना"।
तोलिया—संज्ञा पुं० दे० "तौलिया"।
तोश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा। (२) हिंसा करनेवाला। हिंसक।
तोशक—संज्ञा स्त्री० [तु०] दोहरी चादर या खोल में रूई, नारियल की जटा आदि भर कर बनाया हुआ गुदगुदा बिछौना। हलका गद्दा।
यौ०—तोशकखाना।
तोशकखाना—संज्ञा पुं० दे० "तोशाखाना"।
तोशदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोशादान] (१) वह थैली आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री विशेषतः सैनिक अपना जलपान आदि या दूसरी आवश्यक चीज़ें रखते हैं। (२) चमड़े का वह छोटा बक्स या थैली जो सिपाहियों की पेटी में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है।
तोशल—संज्ञा पुं० दे० "तोषल"।
तोशा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह खाद्य-पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये अपने साथ रख लेता है। (२) साधारण खाने पीने की चीज। जैसे, तोशा से भरोसा।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे गाँव की स्त्रियाँ बाँह पर पहनती हैं।
तोशाखाना—संज्ञा पुं० [तु० तोषक + फ़ा० खाना] वह बड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और अमीरों के पहनने के बढ़िया

त्यक्त–वि० [सं०] छोड़ा हुआ। त्यागा हुआ। जिसका त्याग कर दिया गया हो।

त्यक्तव्य–वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो। त्यागने योग्य।

त्यक्ता–वि० [सं०] त्यागनेवाला। जिसने त्याग किया हो।

त्यग्नायि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

त्यजन–संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ने का काम। त्याग।

त्यजनीय–वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो। त्याज्य।

त्यज्यमान–वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो।

त्याग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया। उत्सर्ग।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—त्यागपत्र।

(२) किसी बात को छोड़ने की क्रिया। जैसे असत्य का त्याग। (३) संबंध या लगाव न रखने की क्रिया। (४) विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ माहात्म्य बतलाया गया है। त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्यान्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय-वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखता। ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है। गीता में त्याग को संन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है। उसके अनुसार काम्य-कर्म्म का परित्याग तो संन्यास है और कर्मों के फल की आशा न रखना त्याग है। मनु के अनुसार संसार की और सब चीज़ें तो त्याज्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याज्य नहीं हैं।

(५) दान। (६) कन्या-दान। (डिं०)।

त्यागना–क्रि० स० [सं० त्याग] छोड़ना। तजना। पृथक् करना। त्याग करना।

संयो० क्रि०—देना।

त्यागपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो। (२) इस्तीफा। (३) तिलाकनामा।

त्यागवान्–वि० [सं०] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो। त्यागी।

त्यागी–वि० [सं० त्यागिन्] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो। स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला। विरक्त।

त्याज्य–वि० [सं०] त्यागने योग्य। जो छोड़ देने योग्य हो।

त्यार†–वि० दे० "तैयार"। उ०—एक कटे एकै पड़े एक कटन को त्यार। अड़े रहैं केते सुमन सीता तेरे द्वार।—रसनिधि।

त्यूँ†–क्रि० वि० दे० "त्यों"।

त्यूरस†–संज्ञा पुं० दे० "त्योरुस"।

त्यों–क्रि० वि० [सं० तद् + एवम्] (१) उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी। ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़नी उनई सी। ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कुछ ज्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर। (२) उसी समय। तत्काल। जैसे, ज्यों मैं वहाँ पहुँचा त्यों वह उठ कर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार "ज्यों" के साथ संबंध पूरा करने के लिये होता है।

त्योरस†–संज्ञा पुं० [हिं० ति (तीन) + बरस] (१) पिछला तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिसे बीते दो बरस हो चुके हों। जैसे, हम त्योरुस वहाँ गए थे। (२) आगामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, त्योरस साल।

त्योरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० त्रिकुटी, सं० त्रिकूट (चक्र)] अवलोकन। चितवन। दृष्टि। निगाह।

मुहा०—त्योरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जिससे कुछ क्रोध झलके। आँख चढ़ना। त्योरी में बल पड़ना = त्योरी चढ़ना। त्योरी चढ़ाना या बदलना = भौंहें चढ़ाना। आँखें चढ़ाना। दृष्टि या आकृति से क्रोध के चिह्न प्रकट करना। त्योरी में बल डालना = त्योरी चढ़ाना।

त्योहार–संज्ञा पुं० [सं० तिथि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय। पर्व-दिन। जैसे, हिंदुओं के त्योहार—दसहरा, दीवाली, होली आदि, मुसलमानों के त्योहार—ईद, शब-बरात आदि; ईसाइयों के त्योहार, बड़ा दिन, गुड-फ्राइडे आदि।

मुहा०—त्योहार मनाना = पर्व या उत्सव के दिन आमोद प्रमोद करना।

त्योहारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० त्योहार + ई (प्रत्य०)] वह धन जो किसी त्योहार के उपलक्ष में छोटों, लड़कों या नौकरों आदि को दिया जाता है।

त्यों–क्रि० वि० दे० "त्यों"।

त्यौनार–संज्ञा पुं० [हिं० तेवर ?] ढंग। तर्ज़। उ०—(क) आये हैं मनुहारि हित धारि अपूर बहार। लखि जीके नीके सुखद ये पीके त्यौनार।—शृं० सत०। (ख) रहौ गुही बेनी लखे गुहिबे के त्यौनार। लागे नीर चुचावने नीठि सुखाये बार।—बिहारी।

तौर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) चालढाल। चालचलन।

यौ०—तौर तरीक या तौर तरीका = चालचलन।

मुहा०—तौर बेतौर होना = रंग ढंग खराब होना। लक्षण बिगड़ना।

(२) अवस्था। दशा। हालत।

मुहा०—तौर बेतौर होना = अवस्था बिगड़ना। दशा खराब होना।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्रायः बहुवचन में होता है।

(३) तरीका। तर्ज। ढंग। (४) प्रकार। भांति। तरह।

संज्ञा पुं० [देश०] मथानी मथने की रस्सी। नेत्री।

तौरश्रवस-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम (गान)।

तौरात-संज्ञा पुं० दे० "तौरेत"।

तौरायणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तुरायण यज्ञ करता हो।

तौरि *†-संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँवरि] घुमेर। घुमरी। चक्कर।

तौरीत-संज्ञा पुं० दे० "तौरेत"।

तौरेत-संज्ञा पुं० [इब्रा०] यहूदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हजरत मूसा पर प्रकट हुआ था। इसमें सृष्टि और आदम की उत्पत्ति आदि विषय हैं।

तौर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढोल मँजीरा आदि बाजे। (२) ढोल मँजीरा आदि बजाना।

तौर्य्यत्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बतलाया है।

तौल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तराजू। (२) तुला राशि।

संज्ञा स्त्री० (१) किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण। भार का मान। वजन। (दे० गुरुत्व)।

विशेष—भारत की प्रधान तौल ये हैं—

४ छटाँक = १ पाव
१६ छटाँक = १ सेर
५ सेर = १ पंसेरी
४० सेर = १ मन

इससे अन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मान में होनेवाली चीजें तौली जाती हैं। हलकी और थोड़ी चीजें तौलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = रत्ती
८ रत्ती = १ माशा
१२ माशा = १ तोला
५ तोला = १ छटाँक

इससे दवाएँ सोना, चाँदी और दूसरे बहुमूल्य पदार्थ तौले जाते हैं। अंगरेजी तौल ड्राम, आउँस और पाउँड आदि की होती है।

(२) तौलने की क्रिया या भाव।

तौलना-क्रि० स० [सं० तोलन] (१) किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या काँटे आदि पर रखना। वजन करना। जोखना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—किसी का तौलना = किसी की खुशामद करना।

(२) किसी अस्त्र आदि को चलाने के लिये हाथ को इस प्रकार ठीक करना कि वह अस्त्र अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय। साधना। उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए भोर भौंह धनुष शर कटाक्ष सुरति व्याध तौलै री।—सूर। (३) दो या अधिक वस्तुओं के गुण मान आदि का, परस्पर तुलना करके, विचार करना। तारतम्य जानना। मिलान करना। (४) गाड़ी का पहिया औंगना। गाड़ी के पहिए में तेल देना।

तौलवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "तौलाई"।

तौलवाना†-क्रि० स० [हिं० तौलना का प्रे०] तौलने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना। तौलाना।

तौला-संज्ञा पुं० [हिं० तौलना] (१) दूध नापने का मिट्टी का बरतन। (२) अनाज तौलनेवाला मनुष्य। बया। (३) तँबिया। (४) मिट्टी का कमोरा। (५) महुए की शराब।

तौलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० तौल + आई (प्रत्य०)] (१) तौलने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो तौलने के बदले में दिया जाय। तौलने की मजदूरी।

तौलाना-क्रि० स० [हिं० तौलना का प्रे०] तौलने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना।

तौलिया-संज्ञा स्त्री० [अं० टावेल] एक विशेष प्रकार का मोटा अँगोछा जिससे स्नान आदि करने के उपरांत शरीर पोंछते हैं।

तौली-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की मिट्टी की छोटी प्याली। (२) मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमें अनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखते हैं।

तौलैया†-संज्ञा पुं० [हिं० तौलना + ऐया (प्रत्य०)] अनाज तौलनेवाला मनुष्य। बया।

तौषार-संज्ञा पुं० [सं०] तुषार का जल। पाले का पानी।

तौसना†-क्रि० अ० [हिं० तौंस] गरमी से बहुत व्याकुल होना। उ०—नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौसियत झौंसियत झारहीं।—तुलसी।

क्रि० स० गरमी पहुँचा कर व्याकुल करना।

तौहीन-संज्ञा स्त्री० [अ०] अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज़्ज़ती।

तौहीनी†-संज्ञा स्त्री० दे० "तौहीन"।

ग्रसित कहँ अग्नि समाना । रोग ग्रसित कहँ औषधि जाना ।—गोपाल ।

त्रसुर–वि० [सं०] भीरु । डरपोक ।

त्रस्त–वि० [सं०] (१) भयभीत । डरा हुआ । (२) पीड़ित । दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । (३) चकित । जिसे आश्चर्य हुआ हो ।

त्राटक–संज्ञा पुं० [सं०] योग के षट् कर्मों में से छठा कर्म या साधन । इसमें अनिमेष रूप से किसी बिंदु पर दृष्टि रखते हैं ।

त्राण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षा । बचाव । हिफाजत । (२) रक्षा का साधन । कवच । इस अर्थ में इसका व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, पादत्राण, अंगत्राण । (३) त्रायमाणलता ।

त्राणक–संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक ।

त्राणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता ।

त्रातव्य–वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य । बचाने के लायक ।

त्राता–संज्ञा पुं० [सं० त्रातृ] रक्षक । बचानेवाला । उ०—तप बल रचै प्रपंच विधाता । तप बल विष्णु सकल जगत्राता ।—तुलसी ।

त्रातार–संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक । उ०—मोक्षप्रदा अरु धर्मप्रद मथुरा सम त्रातार ।—गोपाल ।

विशेष—संस्कृत में यह त्रातृ (त्राता) शब्द का बहुवचन रूप है ।

त्रापुष–संज्ञा पुं० [सं०] राँगे का बना हुआ बरतन या और कोई पदार्थ ।

त्रायंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता ।

त्रायमाण–संज्ञा पुं० [सं०] बनफशे की तरह की एक प्रकार की लता जो जमीन पर फैलती है । इसमें बीच बीच में छोटी छोटी डंडियाँ निकलती हैं जिनमें करौंदे बीज होते हैं । इन बीजों का व्यवहार औषध में होता है । वैद्यक में इन बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है ।

पर्य्या०—अनुजा । अवनी । गिरिजा । देवबाला । बलभद्रा । पालिनी । भयनाशिनी । रक्षिणी ।

वि० रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

त्रायमाणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता ।

त्रायमाणिका–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रायमाणा" ।

त्रायवृंत–संज्ञा पुं० [सं०] गडीर या गुंदिरी नामक साग ।

त्रास–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डर । भय । (२) कष्ट । तकलीफ । (३) मणि का एक दोष ।

त्रासक–संज्ञा पुं० (१) डरानेवाला । भयभीत करनेवाला । (२) निवारक । दूर करनेवाला । उ०—त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी । राम सरूप सिंधु समुहानी ।—तुलसी ।

त्रासन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० त्रासनीय] (१) डराने का कार्य्य । (२) डरानेवाला । भय दिखानेवाला ।

त्रासना * †–क्रि० स० [सं० त्रासन] डराना । भय दिखाना । त्रास देना । उ०—काहे को कलह नाथ्यो दारुण दाँवरि बाँध्यो कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया ?—सूर ।

त्रासित–वि० [सं०] (१) भयभीत । डराया हुआ । (२) जिसे कष्ट पहुँचाया गया हो । त्रस्त ।

त्राहि–अव्य० [सं०] बचाओ । रक्षा करो । त्राण दो । उ०—दारुण तप जब कियो राजसुत तब काँप्यो सुरलोक । त्राहि त्राहि हरि सों सब भाष्यो दूर करो सब शोक ।—सूर ।

मुहा०—त्राहि त्राहि करना = दया या अभयदान के लिये गिड़गिड़ाना । दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना ।

त्रिंश–वि० [सं०] तीसवाँ ।

त्रिंशत्–वि० [सं०] तीस ।

त्रिंशत्पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] कोईं का फूल । कुमुदिनी ।

त्रिंशांश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग । किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग । (२) एक राशि का तीसवाँ भाग (या डिग्री) जिसका विचार फलित ज्योतिष में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष में मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुंभ ये छः राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छः राशियाँ सम मानी जाती हैं । त्रिंशांश का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के ५, ५, ८, ७, और ५ त्रिंशांशों के क्रमशः मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम ५, ७, ८, ५, और ५ त्रिंशांशों के स्वामी येही पाँचों ग्रह विपरीत क्रम से—अर्थात् शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल माने जाते हैं । अर्थात्—प्रत्येक विषम राशि के

१	से	५	त्रिंशांश	तक के	अधिपति—	मंगल
६	,,	१०	,,	,,	,,	शनि
११	,,	१८	,,	,,	,,	बृहस्पति
१९	,,	२५	,,	,,	,,	बुध और
२६	,,	३०	,,	,,	,,	शुक्र

माने जाते हैं । पर सम राशियों में त्रिशांशों और ग्रहों के क्रम उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१	से	५	त्रिंशांश	तक के	अधिपति—	शुक्र
६	,,	१२	,,	,,	,,	बुध
१३	,,	२०	,,	,,	,,	बृहस्पति
२१	,,	२५	,,	,,	,,	शनि और
२६	,,	३०	,,	,,	,,	मंगल

माने जाते हैं ।

त्यौर–संज्ञा पुं० दे० "त्योरी" उ०—(क) चौसक ते पिय चित चढ़ो कहैं चढ़ी है त्यौर।—बिहारी। (ख) तेह तरेरो त्यौर करि कत करियत दृग लोल। लीक नहीं यह पीक की स्तुति मणि झलक कपोल।—बिहारी।

त्योराना–क्रि० अ० [हिं० तँवर] माथा घूमना। सिर में चक्कर आना।

त्यौरी–संज्ञा स्त्री० दे० "त्योरी"।

त्योरुस–संज्ञा पुं० दे० "त्योरुस"।

त्यौहार–संज्ञा पुं० दे० "त्योहार"।

त्योहारी–संज्ञा स्त्री० दे० "त्योहारी"।

त्रंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा हरिश्चंद्र का राजनगर था।

त्रपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० त्रपमान्] (१) लज्जा। लाज। शर्म। हया। उ०—ह्री लज्जा व्रीडा त्रपा सकुच न करु बिनु काज। पिय प्यारे पै चलिय बलि औषध खात कि लाज।—नंददास। (२) छिनाल स्त्री। पुंश्चली।

यौ०—त्रपारंडा=(१) छिनाल स्त्री। (२) वेश्या। रंडी। (३) कीर्ति। यश।

वि० [सं०] लज्जित। शरमिंदा। उ०—भव धनु दलि जानकी बिवाही भये बिहाल नृपाल त्रपा हैं।—तुलसी।

त्रपित–वि० [सं०] लज्जित। शरमिंदा।

त्रपु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीसा। (२) राँगा।

त्रपुकर्कटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खीरा। (२) ककड़ी।

त्रपुरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

त्रपुल–संज्ञा पुं० [सं०] राँगा।

त्रपुष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राँगा। (२) खीरा।

त्रपुषी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) खीरा।

त्रपुस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राँगा। (२) ककड़ी।

त्रपुसी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककड़ी। (२) खीरा। (३) बड़ा इंद्रायन।

त्रप्सा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई श्लेष्मा या कफ।

त्रय–वि० [सं०] (१) तीन। उ०—महाघोर त्रयताप न जरई।—तुलसी। (२) तीसरा।

त्रयी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन वस्तुओं का समूह। तिगुड्ड। तीगट। जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। उ०—(क) वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है।—केशव। (ख) किधौं सिंगार सुखमा सुप्रेम मिले चले जग चित वित लेन। अद्भुत त्रयी किधौं पठई है विधि मग लोगन सुख देन।—तुलसी। (२) सोमराजी लता। (३) दुर्गा।

त्रयीतन–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

त्रयीधर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धर्म्म, जैसे ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि।

त्रयीमय–संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य। (२) परमेश्वर।

त्रयीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

त्रयोदश–वि० [सं०] तेरह।

त्रयोदशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। तेरस।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य्य करने के लिये बहुत उपयुक्त है।

त्रय्यारुण–संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रहवें द्वापर के एक व्यास का नाम।

त्रय्यारुणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे।

त्रष्टा–संज्ञा पुं० दे० "तष्टा" (तश्तरी)। उ०—त्रष्टा अरु आधार भर्त्त के बहुत खिलौना। परिया दमरी अतरदान रूपे के सौना।—सूदन।

त्रस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव। इन जीवों के चार प्रकार हैं। (क) द्वींद्रिय अर्थात् दो इंद्रियोंवाले जीव। (ख) त्रींद्रिय अर्थात् तीन इंद्रियोंवाले जीव। (ग) चतुरिंद्रिय अर्थात् चार इंद्रियोंवाले जीव और (घ) पंचेंद्रिय अर्थात् पाँच इंद्रियोंवाले जीव। (२) वन। जंगल। (३) जंगम। (४) त्रसरेणु।

त्रसन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भय। डर। (२) उद्वेग।

त्रसना*†–क्रि० अ० [सं० त्रसन] भय से काँप उठना। डरना। खौफ खाना। उ०—(क) कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे। चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चिता सो लसै।—केशव। (ख) नवल अनंगा होय सो मुग्धा केशवदास। खेलै बोलै बाल विधि हँसै त्रसै सविलास।—केशव।

त्रसर–संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहों की ढरकी। तसर।

त्रसरेणु–संज्ञा पुं० [सं०] वह चमकता हुआ कण जो छेद में से आती हुई धूप में नाचता वा घूमता दिखाई देता है। सूक्ष्म कण।

विशेष—मनु के अनुसार एक त्रसरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैद्यक के अनुसार तीस परमाणुओं से मिलकर बना होता है।

संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य्य की एक स्त्री का नाम।

त्रसाना*†–क्रि० स० [हिं० त्रसना] डरवाना। धमकाना। भय दिखाना। उ०—(क) सूर श्याम बाँधे ऊखल गहि माता डरत न अति हि त्रसायो।—सूर। (ख) जाको शिव ध्यावत निसि वासर सहसानन जेहि गावै हो। सो हरि राधा वदन चंद को नैन चकोर त्रसावै हो।—सूर।

त्रसित*–वि० [सं० त्रस्त] (१) भयभीत। डरा हुआ। उ०—सब प्रसंग महिसुरन सुनाई। त्रसित परयो अवनी अकुलाई।—तुलसी। (२) पीड़ित। सताया हुआ। उ०—सीत

पीठस्थान है और यहाँ रूपसुंदरी के रूप में भगवती निवास करती हैं। उ०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु मँझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी।—तुलसी। (३) सेंधा नमक। (४) एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है। वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद समुद्र में है। यहाँ देवर्षि रहते हैं और विद्याधर किंनर तथा गंधर्व आदि क्रीड़ा करने आते हैं। इसकी तीन चोटियाँ हैं। एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चाँदी की जिस पर चंद्रमा आश्रय लेते हैं। तीसरी चोटी बरफ से ढकी रहती है और वैडूर्य्य, इंद्रनील आदि मणियों की प्रभा से चमकती रहती है। यही इसकी सब से ऊँची चोटी है। नास्तिकों और पापियों को यह नहीं दिखलाई देता। (५) योग में मस्तक के छः कल्पित चक्रों में से पहला चक्र जो दोनों भौहों के बीच ऊपर की ओर माना जाता है।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक भैरवी।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक शस्त्र जिसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भीरु, राजा आदि की शस्त्र-चिकित्सा के लिये होना चाहिए।

त्रिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन कोने का क्षेत्र। त्रिभुज क्षेत्र। जैसे, △ ▷ (२) तीन कोनेवाली कोई वस्तु। (३) तीन कोटियोंवाली कोई वस्तु। (४) योनि। भग। (५) कामरूप के अंतर्गत एक तीर्थ जो सिद्ध पीठ माना जाता है। (६) जन्म-कुंडली में लग्न-स्थान से पाँचवाँ और नवाँ स्थान।

त्रिकोणक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कोण का पिंड। तिकोना पिंड।

त्रिकोणघंटा—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की मोटी सलाख का बना हुआ एक प्रकार का तिकोना बाजा जिसपर लोहे के एक दूसरे टुकड़े से आघात) करके ताल देते हैं। इसका आकार ऐसा होता है—

त्रिकोणफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा। पानी-फल।

त्रिकोणभवन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ और नवाँ स्थान। दे० "त्रिकोण (६)"।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग-विस्तार आदि का मान निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं।

विशेष—आज कल इसके अंतर्गत त्रिभुज के अतिरिक्त चतुर्भुज और बहुभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं।

त्रिक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार, सज्जी और सुहागा इन तीनों खारों का समूह।

त्रिक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना।

त्रिखा—संज्ञा पुं० [सं०] खीरा।

त्रिखा—संज्ञा स्त्री० दे० "तृषा"।

त्रिगंग—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

त्रिगंधक—संज्ञा पुं० दे० "त्रिजातक"।

त्रिगंभीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका सत्त्व [आचरण], स्वर और नाभि गंभीर हो। लोगों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है।

त्रिगण—संज्ञा पुं० दे० "त्रिवर्ग"।

त्रिगर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आज-कल पंजाब के जालंधर और कांगड़ा आदि नगर हैं। (२) इस देश का निवासी।

त्रिगर्त्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की विशेष इच्छा हो।

त्रिगर्त्तिक—संज्ञा पुं० दे० "त्रिगर्त्त"।

त्रिगुण—संज्ञा पुं० [सं०] सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों का समूह। तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह। दे० "गुण"।
वि० [सं०] तीन गुना। तिगुना।

त्रिगुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) माया। (३) तंत्र में एक प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुणात्मक—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुणात्मिका] तीनों गुणयुक्त। जिसमें तीनों गुण हों।

त्रिगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का पेड़। (बेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसीसे इसका यह नाम पड़ा।)

त्रिगूढ़—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के वेष में पुरुषों का नृत्य।

त्रिघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कल्पित नगर जो हिमालय की चोटी पर अवस्थित माना जाता है। कहते हैं कि यहाँ विद्याधर आदि रहते हैं।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमारों का रथ।

त्रिचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिचक्षुस्] महादेव।

त्रिचित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गार्हपत्याग्नि।

त्रिजग*‡—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यक्] आड़ा चलनेवाले जंतु। पशु तथा कीड़े मकोड़े। तिर्यक्। उ०—(क) त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ।—तुलसी। (ख) यहि विधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते। अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोरि बराबर दाया।—तुलसी।
संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] तीनों लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। उ०—किहिं विधि त्रिपथगामिनि त्रिजग पावनि प्रसिद्ध भई भले।—पद्माकर।

त्रिजट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) एक ब्राह्मण का नाम जिसको वनयात्रा के समय रामचंद्र ने बहुत सी गाएँ दान दी थीं।

प्रत्येक ग्रह के त्रिंशांश में जन्म का अलग अलग फल माना जाता है। जैसे—मंगल के त्रिंशांश में जन्म होने का फल स्त्रीविजयी, धनहीन, क्रोधी और अभिमानी आदि होना और बुध के त्रिंशांश में जन्म होने का फल बहुत धनवान् और सुखी होना माना जाता है।

त्रि–वि० [सं०] तीन।

विशेष—इसका व्यवहार यौगिक शब्दों में, आरंभ में, होता है। जैसे, त्रिकाल, त्रिकुट, त्रिफला आदि।

त्रिकंट–संज्ञा पुं० दे० "त्रिकंटक"।

त्रिकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोखरू। (२) त्रिशूल। (३) तिधारा थूहर। (४) जवासा। (५) टेंगरा मछली।

वि० जिसमें तीन काँटे या नोकें हों।

त्रिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन का समूह। जैसे, त्रिकमय, त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमेद। (२) रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ कूल्हे की हड्डियाँ मिलती हैं। (३) कमर। (४) त्रिफला। (५) त्रिकुटु। (६) त्रिमद। (७) तिरमुहानी। (८) तीन रुपए सैकड़े का सूद या लाभ आदि। (मनु)।

त्रिककुद्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिकूट पर्वत। (२) विष्णु। (विष्णु ने एक बार वाराह का अवतार धारण किया था, इसीसे उनका यह नाम पड़ा)। (३) दस दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

वि० जिसे तीन शृंग हों।

त्रिककुभ्–संज्ञा पुं०[सं०] (१) उदान वायु जिससे डकार और छींक आती है। (२) नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिकट–संज्ञा पुं० दे० "त्रिकंट"।

त्रिकटु–संज्ञा पुं०[सं०] सोंठ, मिर्च और पीपल ये तीन कटु वस्तुएँ। वैद्यक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा खांसी, साँस, कफ, मेह, मेद, श्लीपद और पीनस आदि का नाशक माना है।

त्रिकटुक–संज्ञा पुं० दे० "त्रिकटु"।

त्रिकत्रय–संज्ञा पुं० [सं०] त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमेद। अर्थात् हड़, बहेड़ा और आँवला; सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा, चीता और वायविडंग इन सब का समूह।

त्रिकर्मा–वि० [सं०] वह जो पढ़े पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे। द्विज।

त्रिकल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन मात्राओं का शब्द। प्लुत। (२) दोहे का एक भेद जिसमें ६ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं। जैसे, अति अपार जो सरितवर, जो नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिन श्रम पारहि जाहिं।—तुलसी।

वि० जिसमें तीन कलाएँ हों।

त्रिकलिंग–संज्ञा पुं० दे० "तैलंग"।

त्रिकशूल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें कमर की तीनों हड्डियों, पीठ की तीनों हड्डियों और रीढ़ में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

त्रिकांड–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) अमरकोष का दूसरा नाम। (अमरकोष में तीन कांड हैं, इसीसे उसका यह नाम पड़ा)। (२) निरुक्त का दूसरा नाम। (निरुक्त में भी तीन कांड हैं, इसीसे उसका यह नाम पड़ा)।

वि० जिसमें तीन कांड हों।

त्रिकांडी–वि० [सं० त्रिकांडीय] जिसमें तीन कांड हों। तीन कांडोंवाला।

संज्ञा स्त्री० जिस ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद।

त्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुएँ पर का वह चौखटा जिसमें गराड़ी लगी होती है।

त्रिकाम–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

त्रिकार्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, अतीस और मोथा इन तीनों का समूह।

त्रिकाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य। (२) तीनों समय— प्रातः, मध्याह्न और सायं।

त्रिकालज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] भूत, वर्त्तमान और भविष्य का जाननेवाला व्यक्ति। सर्वज्ञ।

त्रिकालज्ञता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातें जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकालदर्शक–वि० [सं०] तीनों कालों की बातों को जाननेवाला। त्रिकालज्ञ।

संज्ञा पुं० ऋषि।

त्रिकालदर्शिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव। त्रिकालज्ञता।

त्रिकालदर्शी–संज्ञा पुं० [सं० त्रिकालदर्शिन्] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति। त्रिकालज्ञ।

त्रिकुट–संज्ञा पुं० दे० "त्रिकूट"।

त्रिकुटा–संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह।

त्रिकुटी–संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट-चक्र का स्थान। दोनों भौंहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान। उ०—पूरक कुंभक रेचक करहू। उलटि ध्यान त्रिकुटी को धरहू।—विश्राम।

त्रिकुल–संज्ञा पुं० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और श्वसुरकुल।

त्रिकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन शृंगोंवाला पर्वत। वह पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हों। (२) वह पर्वत जिसपर लंका बसी हुई मानी जाती है। देवी भागवत के अनुसार यह एक

त्रिदिनस्पृश्-संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जो तीन दिनों को स्पर्श करती हो। अर्थात् जिसका थोड़ा बहुत अंश तीन दिनों में पड़ता हो। ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

त्रिदिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) आकाश। (३) सुख।

त्रिदिवाधीश-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदिवेश-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

त्रिदिवोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी इलायची। (२) गंगा।

त्रिदृश-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

त्रिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता।

त्रिदोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष। दे० "दोष"। उ०—गदशमु त्रिदोष ज्यों दूरि करै वर। त्रिशिरा सिर त्यों रघुनंदन के शर।—केशव। (२) वात, पित्त और कफ-जनित रोग, सन्निपात। उ० यौवन ज्वर युवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय—तुलसी।

त्रिदोषज-वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात पित्त और कफ से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात रोग।

त्रिदोषना*†-क्रि० अ० [सं० त्रिदोष] (१) तीनों दोषों के कोप में पड़ना। उ०—कुजदि लजावैं बाल बालिस बजावैं गाल कै धौं कैधौं क्रूर काल वश तमकि त्रिदोषे है।—तुलसी। (२) काम क्रोध और लोभ के फंदों में पड़ना। उ०—(क) काल्हि की बात बालि की सुधि करी समुझि हिताहित खोलि भरोसे। कह्यो कुशेधित को न मानिबे बड़ी हानि जिय जानि त्रिदोषे।—तुलसी।

त्रिधनी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी।

त्रिधन्वा-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुधन्वा राजा के एक पुत्र का नाम।

त्रिधर्मा-संज्ञा पुं० [सं० त्रिधर्मन्] महादेव। शिव।

त्रिधा-क्रि० वि० [सं०] तीन तरह से। तीन प्रकार से।

वि० [सं०] तीन तरह का।

त्रिधातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश। (२) सोना, चाँदी और ताँबा।

त्रिधाम-संज्ञा पुं० [सं० त्रिधमन्] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) अग्नि। (४) मृत्यु। (५) स्वर्ग।

त्रिधामूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों हैं।

त्रिधारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा नागरमोथा। गुँदला। (२) कसेरू का पेड़।

त्रिधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन धारावाला सेंहुड़। (२) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में बहनेवाली, गंगा।

त्रिधाविशेष-संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार सूक्ष्म, माता-पितृज और महाभूत तीनों प्रकार के रूप धारण करनेवाला, शरीर।

त्रिधासर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] दैव, तिर्य्यग् और मानुष ये तीनों सर्ग जिसके अंतर्गत सारी सृष्टि आ जाती है।

विशेष—दे० "सर्ग"।

त्रिन*†-संज्ञा पुं० दे० "तृण"।

त्रिनयन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

वि० जिसकी तीन आँखें हों। तीन नेत्रोंवाला।

त्रिनयना-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्रिनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

त्रिनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) सोना। स्वर्ण।

त्रिनेत्ररस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शोधे हुए पारे, गंधक और फूँके हुए ताँबे को बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार किया जाता है और जो सन्निपात रोग में दिया जाता है।

त्रिनेत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराहीकंद।

त्रिपटु-संज्ञा पुं० [सं०] काँच। शीशा।

त्रिपताक-संज्ञा पुं० [सं०] वह माथा या ललाट जिसमें तीन बल पड़े हों।

त्रिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन तीन लगे होते हैं।

त्रिपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलाश का वृक्ष। ढाक का पेड़। (२) तुलसी, कुंद और बेल के पत्तों का समूह।

त्रिपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरहर का पेड़। (२) तिपतिया घास।

त्रिपथ-संज्ञा पुं० [सं०] कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ०—कर्मठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहायगो रामदुआरे दीन।—तुलसी।

त्रिपथगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में गंगा बहती हैं, इसी लिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० "त्रिपथगा"।

त्रिपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिपाई। (२) त्रिभुज। (३) वह जिसके तीन पद या चरण हों। (४) यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काल की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी।

त्रिपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गायत्री।

त्रिजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विभीषण की बहिन जो अशोक वाटिका में जानकी जी के पास रहा करती थी। (२) बेल का पेड़।

त्रिजटी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजटिन या त्रिजट] महादेव। शिव।
संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिजटा"।

त्रिजड़—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) कटारी। (२) तलवार।

त्रिजात—संज्ञा पुं० दे० "त्रिजातक"।

त्रिजातक—संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल) और तेजपत्ता (पत्ता) इन तीन प्रकार के पदार्थों का समूह जिसे त्रिसुगंधि भी कहते हैं। यदि इसमें नागकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे। वैद्यक में इसे रेचक, रूखा, तीक्ष्ण, उष्ण-वीर्य्य, मुँह की दुर्गंध दूर करनेवाला, हलका, पित्तवर्द्धक, दीपक तथा वायु और विषनाशक माना है।

त्रिजामा*†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रियामा] रात्रि। रजनी। उ०—(क) युग चारि भये सब रैनि याम। अति दुसह बिथा तनु करी काम। यहि ते दयाइ मानौ बिरंचि। सब रैनि त्रिजामा कीन्ह संचि।—गुमान। (ख) छनदा छपा तमस्विनी तमी-तमिस्रा होय। निशि श्री सदा बिभावरी रात्रि त्रिजामा सोय।—नंददास।

त्रिजीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों अर्थात् ९० अंशों तक फैले हुए चाप की ज्या।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक खिंची हुई रेखा। व्यास की आधी रेखा।

त्रिण*—संज्ञा पुं० दे० "तृण"।

त्रिणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष।

त्रिणव—संज्ञा पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष प्रकार से उसकी (३ × ९) सत्ताईस आवृत्तियाँ करते हैं।

त्रिणाचिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यजुर्वेद के एक विशेष भाग का नाम। (२) उस भाग के अनुयायी। (३) नारायण।

त्रितंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कच्छपी वीणा की तरह की प्राचीन चाल की एक प्रकार की वीणा जिसमें तीन तार लगे होते थे।

त्रित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के मानस पुत्र माने जाते हैं। (२) गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक जो अपने दोनों भाइयों से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे। एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंग्रह करने के लिये जंगल में गए थे। वहाँ दोनों भाइयों ने इनके संग्रह किए हुए पशु छीन कर और इन्हें अकेला छोड़ कर घर का रास्ता लिया। वहाँ एक भेड़िए को देख कर ये डर के मारे दौड़ने लगे और दौड़ते हुए एक गहरे अंधे कुएँ में जा गिरे। वहीं इन्होंने सोमयाग आरंभ किया जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे। उन्हीं देवताओं ने उस कुएँ से इन्हें निकाला। महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी इसी कुएँ से निकली थी।

त्रितय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्म, अर्थ और काम इन तीनों का समूह।

त्रिताप—संज्ञा पुं० दे० "ताप"।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यास आश्रम का चिह्न, बाँस का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी लकड़ियाँ बँधी होती हैं।

त्रिदंडी—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन वचन और कर्म तीनों को दमन करने या वश में रखनेवाला, संन्यासी। (२) यज्ञोपवीत। जनेऊ।

त्रिदल—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का वृक्ष।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापदी। हंसपदी।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का थूहर जिसे चर्मकशा या सातला कहते हैं।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। उ०—(क) कंदर्प दर्प दुर्गम दवन उमा रवन गुन भवन हर। तुलसी त्रिलोचन त्रिगुन पर त्रिपुर मथन जय त्रिदशवर।—तुलसी। (ख) निरखत बरखत कुसुम त्रिदश जन सूर सुमति मन फूल।—सूर। (२) जीभ।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति।

त्रिदशगोप—संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा। आकाश-गंगा।

त्रिदशपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

त्रिदशमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

त्रिदशवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

त्रिदशसर्षप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों। देवसर्षप।

त्रिदशांकुश—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

त्रिदशाचार्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

त्रिदशाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० दे० "त्रिदशायन"।

त्रिदशायन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

त्रिदशायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

त्रिदशारि—संज्ञा पुं० [सं०] असुर।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) सुमेरु पर्वत।

त्रिदशाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

त्रिदशेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

त्रिदशेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकषा। सातला।

त्रिपुट–संज्ञा पु० [सं०] (१) गोखरू का पेड़। (२) मटर। (३) खेसारी। (४) तीर। (५) ताला।

त्रिपुटक–संज्ञा पु० [सं०] (१) खेसारी। (२) फोड़े का एक आकार।

त्रिपुटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेल का पेड़। (२) छोटी इलायची। (३) बड़ी इलायची। (४) निसोथ। (५) कनफोड़ा बेल। (६) मोतिया। (७) तांत्रिकों की एक देवी जो अभीष्ट-दात्री मानी जाती है।

त्रिपुटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निसोथ। (२) छोटी इलायची। (३) तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; ध्याता, ध्येय और ध्यान, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। उ०—ज्ञाता, ज्ञेय अरु ज्ञान जो ध्याता, ध्येय अरु ध्यान। द्रष्टा, दृश्य अरु दरश जो त्रिपुटी शब्दामान।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुटिन्] (१) रेंड़ का पेड़। (२) खेसारी।

त्रिपुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाणासुर का एक नाम। (२) तीनों लोक। (३) चंदेरी नगर। (डिं०)। (४) महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीनों पुत्रों ने मय दानव से अपने लिये बनवाए थे। इनमें से एक नगर सोने का और स्वर्ग में था, दूसरा अंतरिक्ष में चाँदी का था और तीसरा मर्त्यलोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और उपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिवजी ने एक ही बाण से इन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से उन तीनों राक्षसों को भी मार डाला।

त्रिपुरघ्न–संज्ञा पु० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदहन–संज्ञा पु० [सं०] महादेव।

त्रिपुरभैरव–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक रस जो सन्निपात रोग में दिया जाता है। इसके बनाने की विधि यह है—काली मिर्च ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोहागा ३ भर, और शुद्ध सींगी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीज़ों को पीसकर पहले तीन दिन तक नीबू के रस में फिर पाँच दिन तक अदरक के रस में और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। यह गोली अदरक के रस के साथ दी जाती है।

त्रिपुरभैरवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरांतक–संज्ञा पु० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या देवी की एक मूर्त्ति।

त्रिपुरारि–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस–संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, ताँबे, गंधक, लोहे, अभ्रक आदि के योग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरासुर–संज्ञा पु० दे० "त्रिपुर"।

त्रिपुरुष–संज्ञा पु० [सं०] (१) पिता, पितामह और प्रपितामह। (२) सम्पत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियाँ अलग अलग करे। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुष–संज्ञा पु० [सं०] (१) ककड़ी। (२) खीरा। (३) गेहूँ।

त्रिपुषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काला निसोथ।

त्रिपुष्कर–संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष में एक योग जो पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुणी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन वारों तथा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी इन तिथियों में से किसी एक नक्षत्र एक वार और एक तिथि के एक साथ पड़ने से होता है। इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो आदमी और मरते हैं और उसके संबंधियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। इसमें यदि कोई हानि हो तो वैसी ही हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो वैसा ही लाभ और दो बार होता है। बालक के जन्म के लिये यह योग जारज योग समझा जाता है।

त्रिपृष्ठ–संज्ञा पु० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव।

त्रिपौरुष–संज्ञा पुं० दे० "त्रिपुरुष"।

त्रिपौलिया–संज्ञा स्त्री० दे० "तिरपौलिया"।

त्रिप्रश्न–संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष में दिशा, देश और काल-संबंधी प्रश्न।

त्रिप्रस्रुत–संज्ञा पु० [सं०] वह हाथी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद झड़ता हो।

त्रिप्लक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम जिसका उल्लेख वैदिक ग्रंथों में आया है।

त्रिफला–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँवले, हड़ और बहेड़े का समूह जो आँखों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ट और विषमज्वर का नाशक माना जाता है। इससे वैद्यक में अनेक प्रकार के घृत आदि बनाए जाते हैं

पर्य्या०—त्रिफली। फलत्रय। फलत्रिक।

(२) वह चूर्ण जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है। यह चूर्ण बनाते समय १ भाग हड़, २ भाग बहेड़ा और ३ भाग आँवला लिया जाता है।

त्रिबलि–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली"।

त्रिवली–संज्ञा स्त्री० [सं०] वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं। इन बलों की गणना सौंदर्य्य में होती है।

त्रिवलीक–संज्ञा पु० [सं०] (१) वायु। (२) मलद्वार। गुदा।

विशेष—गायत्री में केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

(२) हंसपदी। लाल रंग का लज्जू।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिपाई की तरह का पीतल आदि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय शंख रखते हैं। (२) तिपाई। (३) संकीर्ण राग का एक भेद (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसपदी। (२) तिपाई। (३) हाथी की पलान बाँधने का रस्सा। (४) गायत्री। (५) तिपाई के आकार का शंख रखने का धातु का चौखटा।

त्रिपन्न—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के दस घोड़ों में से एक।

त्रिपरिक्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े पढ़ावे और दान दे।

त्रिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) वन-कपास। (३) एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का क्षुप जिसका कंद औषध में काम आता है। (२) शालपर्णी। (३) वन-कपास।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठिन्] (१) तीन वेदों का जानने-वाला पुरुष। त्रिवेदी। (२) ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिवेदी। तिवारी।

त्रिपाण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो (कर्मकांड)। (२) वल्कल। छाल।

त्रिपाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्वर। बुखार। (२) परमेश्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिपाई। (२) हंसपदी लता। लाल रंग का लजालू।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] पार्वण श्राद्ध में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया है और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्म्म ग्रंथ मानते हैं। यह तीन भागों में, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है। इनके नाम ये हैं—सूत्रपिटक, विनयपिटक और अभिधर्म्मपिटक। सूत्रपिटक में बुद्ध के साधारण छोटे और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने भिन्न भिन्न घटनाओं और अवसरों पर किए थे। विनयपिटक में भिक्षुओं और श्रावकों आदि के आचार के संबंध की बातें हैं। अभिधर्म्मपिटक में चित्त, चैतिक धर्म्म और निर्वाण का वर्णन है। यही अभिधर्म्म बौद्ध दर्शन का मूल है। यद्यपि बौद्ध धर्म्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन यानों का पता चलता है और इन्हीं के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिएँ तथापि आज कल मध्यमयान का संस्करण नहीं मिलता। हीनयान का त्रिपिटक पाली भाषा में है और बरमा, स्याम तथा लंका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस यान के संबंध का अभिधर्म्म से पृथक् कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है। महायान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, भूटान, आसाम, चीन, जापान और साइबेरिया के बौद्धों में है। इस यान के संबंध के चार दार्शनिक संप्रदाय हैं जिन्हें सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैभाषिक कहते हैं। इस यान के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ अंश नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में अब तक मिलते हैं। पहले पहल महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरान्त उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था। फिर महाराज अशोक ने अपने समय में उसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ में कराया था। हीनयानवाले अपना संस्करण इसी को बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिष्क के समय में हुआ था जिसे महायान-वाले अपना कहते हैं। हीनयान और महायान के संस्करण के कुछ वाक्यों के मिलान से अनुमान होता है कि ये दोनों किसी ग्रंथ की छाया हैं जो अब लुप्तप्राय है। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन, शिव, ब्रह्मा, वरुण और शंकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपिताना *†—क्रि० अ० [सं० तृप्ति + आना (प्रत्य०)] तृप्ति पाना। तृप्त होना। अघा जाना। उ०—(क) जैसे तृषावंत जल अँचवत वह तो पुनि ठहरात। यह आतुर छवि लै उर धारति नेकु नहीं त्रिपितात।—सूर। (ख) जे षटरस सुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खात। सूर सुनो लोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात।—सूर।

क्रि० स० तृप्त करना। संतुष्ट करना।

त्रिपिब—संज्ञा पुं० [सं०] वह खस्सी, पानी पीने के समय जिसके दोनों कान पानी से छू जाते हों। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पितृकर्म्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) आकाश।

त्रिपुंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुंड्र] भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव वा शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ०—गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुंड विराजा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।—रमाना।—लगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिपुंड।

यौ०—त्रियाचरित्र = स्त्रियों का छल कपट जिसे पुरुष सहज में नहीं समझ सकते।

त्रियान–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के तीन प्रधान भेद या यान—महायान, हीनयान और मध्यमयान।

त्रियामक–संज्ञा पुं० [सं०] पाप।

त्रियामा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि।

विशेष—रात के पहले चार दंडों और अंतिम चार दंडों की गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही पहर बच रहते हैं। इसीसे इसे त्रियामा कहते हैं।

(२) यमुना नदी। (३) हलदी। (४) नील का पेड़। (५) काला निसोथ।

त्रियुग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) वसंत, वर्षा और शरद् ये तीनों ऋतुएँ। (३) सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग।

त्रियुह–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा।

त्रिरत्न–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह। (बौद्ध)

त्रिरश्मि–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिकोण"।

त्रिरसक–संज्ञा पुं० [सं०] वह मदिरा जिसमें तीन प्रकार के रस या स्वाद हों।

त्रिरात्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन रात्रियों (और दिनों) का समय। (२) एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ता है। (३) गर्ग त्रिरात्र नामक याग।

त्रिरूप–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार का घोड़ा।

त्रिरेख–संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

वि० तीन रेखाओंवाला। जिसमें तीन रेखाएँ हों।

त्रिल–संज्ञा पुं० [सं०] नगण, जिसमें तीनों लघु वर्ण होते हैं।

त्रिलघु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगण जिसमें तीनों वर्ण लघु होते हैं। (२) वह पुरुष जिसकी गर्दन, जाँघ और मूत्रेंद्रिय छोटी हो। पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं।

त्रिलवण–संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा, साँभर और सोचर (काला) नमक।

त्रिलिंग–संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग] तैलंग शब्द का बनावटी संस्कृत रूप।

त्रिलोक–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक।

यौ०—त्रिलोकनाथ। त्रिलोकपति।

त्रिलोकनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीनों लोक का मालिक या रक्षक, ईश्वर। (२) राम। (३) कृष्ण। (४) विष्णु का कोई अवतार। (५) सूर्य।

त्रिलोकपति–संज्ञा पुं० दे० "त्रिलोकनाथ"।

त्रिलोकी–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिलोक"।

त्रिलोकीनाथ–संज्ञा पुं० दे० "त्रिलोकनाथ"।

त्रिलोकेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) सूर्य्य।

त्रिलोचन–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिलोचना–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिलोचनी"।

त्रिलोचनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्रिलोह–संज्ञा पुं० [सं०] सोना, चाँदी और ताँबा।

त्रिलोही–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मुद्रा जो सोने, चाँदी और ताँबे को मिलाकर बनाई जाती थी।

त्रिवट–संज्ञा पुं० दे० "त्रिवण"।

त्रिवण–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दोपहर के समय गाया जाता है। इसे कुछ लोग हिंडोल राग का पुत्र मानते हैं।

त्रिवर्णी–संज्ञा स्त्री० [?] एक संकर रागिनी जो शंकराभरण, जयश्री और नरनारायण के मेल से बनती है।

त्रिवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्थ, धर्म और काम। (२) त्रिफला। (३) त्रिकुटा। (४) वृद्धि, स्थिति और क्षय। (५) सत्व, रज और तम ये तीनों गुण। (६) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ। (७) सुनीति। (८) गायत्री।

त्रिवर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोखरू। (२) त्रिफला। (३) त्रिकुटा। (४) काला, लाल और पीला रंग। (५) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ।

त्रिवर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन-कपास।

त्रिवर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती। कहते हैं कि जिस के पास यह मोती होता है उसको दरिद्र कर देता है।

त्रिवलि–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली"।

त्रिवलिका–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली"।

त्रिवली–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवली"।

त्रिवलय–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

त्रिवार–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

त्रिवाहु–संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक हाथ।

त्रिविक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वामन का अवतार। (२) विष्णु।

त्रिविद्–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने तीनों वेद पढ़े हों।

त्रिविध–वि० [सं०] तीन तरह का। तीन प्रकार का। उ०—त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम स्वरूप सिंधु समुहानी।—तुलसी।

क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से।

त्रिविनत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें देवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति हो।

त्रिविष्टप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) तिब्बत देश।

त्रिविस्तीर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसका ललाट, कमर और छाती ये तीनों अंग चौड़े हों। ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है।

त्रिबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्र के एक अनुचर का नाम। (२) तलवार का एक हाथ।

त्रिबेनी–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवेणी"।

त्रिभंग–वि० [सं०] तीन जगह से टेढ़ा। जिसमें तीन जगह बल पड़ते हों। उ०—जैसे को तैसो मिले तब ही जुरत सनेह। ज्यों त्रिभंग तनु स्याम को कुटिल कूबरी देह।—पद्माकर।

संज्ञा पुं० खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है।

विशेष—प्रायः श्रीकृष्ण के ध्यान में इस प्रकार खड़े होकर वंसी बजाने की भावना की जाती है।

त्रिभंगी–वि० [सं०] तीन जगह से टेढ़ा। तीन मोड़ का। त्रिभंग। उ०—करौ कुवत जग कुटिलता, तजौं न दीन दयाल। दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है। (२) शुद्ध राग का एक भेद। (३) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १०, ८, ८, ६ मात्राओं पर यति होती है। जैसे, परसत पद पावन, शोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सही। (४) गणात्मक दंडक का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में ६ नगण, २ सगण, भगण मगण, सगण और अंत में एक गुरु होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में ३४ अक्षर होते हैं। जैसे, सजल जलद तनु लसत विमल तनु श्रम कण त्यों झलकै है उमगो है बुंद मनो है। भ्रुव युग मटकनि फिरि लटकनि अनिमिष नैनन जो है हरषो है हैं मन मोहै। (५) दे० "त्रिभंग"।

त्रिभंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिभ–वि० [सं०] तीन नक्षत्रों से युक्त। जिसमें तीन नक्षत्र हों।

संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के हिसाब से रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रयुक्त भाद्रमास; और पूर्वफाल्गुणी, उत्तर-फाल्गुणी और हस्ता नक्षत्रयुक्त फाल्गुण मास।

त्रिभजीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की आधी रेखा। त्रिज्या।

त्रिभज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिभजीया। त्रिज्या।

त्रिभुक्ति–संज्ञा पुं० [सं०] तिरहुत या मिथिला देश।

त्रिभुज–संज्ञा पुं० [सं०] तीन भुजाओं का क्षेत्र। वह धरातल जो तीन भुजाओं वा रेखाओं से घिरा हो। जैसे, △ ▷

त्रिभुवन–संज्ञा पुं० [सं०] तीनों लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल।

त्रिभुवनसुंदरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) पार्वती।

त्रिभूम–संज्ञा पुं० [सं०] तीन खंडोंवाला मकान। तिमहला घर।

त्रिभोलग्न–संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त पर पड़नेवाले क्रांतिवृत्त का ऊपरी मध्य भाग।

त्रिमंडला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ज़हरीली मकड़ी।

त्रिमद–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोथा, चीता और बायविडंग इन तीनों चीजों का समूह। (२) परिवार, विद्या और धन इन तीनों कारणों से होनेवाला अभिमान।

त्रिमधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋग्वेद के एक अंश का नाम। (२) वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त अंश पढ़े। (३) ऋग्वेद का एक यज्ञ। (४) घी, शहद और चीनी इन तीनों का समूह।

त्रिमधुर–संज्ञा पुं० [सं०] घी, शहद और चीनी इन तीनों का समूह।

त्रिमात–वि० दे० "त्रिमात्रिक"।

त्रिमात्रिक–वि० [सं०] तीन मात्राओं का। तीन मात्राओंवाला। जिसमें तीन मात्राएँ हों। प्लुत।

त्रिमार्गगामिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

त्रिमार्गी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) तिरमुहानी।

त्रिमुंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिशिरा राक्षस। (२) ज्वर। बुखार।

त्रिमुकुट–संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट।

त्रिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाक्य मुनि। (२) गायत्री जपने की चौबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा।

त्रिमुखा–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिमुखी"।

त्रिमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता, मायादेवी।

विशेष—महायान शाखा के बौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं।

त्रिमुनि–संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि।

त्रिमुहानी–संज्ञा स्त्री० दे० "तिरमुहानी"।

त्रिमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता। (२) सूर्य्य।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्म की एक शक्ति। (२) बौद्धों की एक देवी।

त्रिमृत–संज्ञा पुं० [सं०] निसोथ।

त्रिमृता–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिमृत"।

त्रिय*–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिया"।

त्रियव–संज्ञा पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जौ के बराबर या एक रत्ती के लगभग होता है।

त्रियष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] पितपापड़ा। शाहतरा।

त्रिया * †–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] औरत। स्त्री।

ऋषि पत्नी से लेकर उसे पालना आरंभ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक बार मांस के अभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मार कर उसका मांस विश्वामित्र के लड़कों को खिलाया था और स्वयं भी खाया था। इस पर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को असंतुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं खाया तथा ऋषि-पुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसीसे वे त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्र की स्त्री और पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये ऋषि ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं उसके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने केकयवंश की सत्यरथा नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे। (६) एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही त्रिशंकु हैं जो इंद्र के ढकेलने पर आकाश से गिर रहे थे और जिन्हें मार्ग में ही विश्वामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चंद्र।

त्रिशंकुयाजी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशंकुयाजिन्] त्रिशंकु को यज्ञ करानेवाले, विश्वामित्र ऋषि।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूपी तीनों ईश्वरीय शक्तियाँ। (२) महत्तत्व जो त्रिगुणात्मक है। बुद्धितत्व। (३) तांत्रिकों की काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनों देवियाँ। (४) गायत्री।

यौ०—त्रिशक्तिधृत्।

त्रिशक्तिधृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) विजिगीषु राजा का एक नाम।

त्रिशरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध। (२) जैनियों के एक आचार्य्य का नाम।

त्रिशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी और मिस्री इन तीनों का समूह।

त्रिशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्त्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों में से अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशाख—वि० [सं०] जिसमें आगे की ओर तीन शाखाएँ निकली हों।

त्रिशाखपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़।

त्रिशालक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार वह इमारत जिसके उत्तर ओर और कोई इमारत न हो। ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिशूल। (२) किरीट। (३) रावण के एक पुत्र का नाम। (४) बेल का पेड़। (५) तामस नामक मन्वंतर के इंद्र का नाम।

वि० जिसकी तीन शिखाएँ हों। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशिखदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकंद नाम की लता, अथवा उसका कंद (मूल)।

त्रिशिखी—वि० दे० "त्रिशिख"।

त्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशिरस्] (१) रावण का एक भाई जो खर दूषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। (२) कुबेर। (३) एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। (४) त्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम। (५) हरिवंश के अनुसार ज्वर पुरुष जिसे दानवों के राजा बाण की सहायता के लिये महादेवजी ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छ हाथ और नौ आँखें थीं।

वि० तीन सिरोंवाला। जिसके तीन सिर हों।

त्रिशिरा—संज्ञा पुं० दे० "त्रिशिर"।

त्रिशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। (२) त्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में है। (२) वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख हों।

त्रिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेवजी का अस्त्र माना जाता है।

यौ०—त्रिशूलधर = महादेव।

(२) दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख। (३) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें अँगूठे को कनिष्ठा उँगली के साथ मिला कर बाकी तीनों उँगलियों को फैला देते हैं।

त्रिशूलघात—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्नान और तर्पण करने से गाणपत्य देह प्राप्त होती है।

त्रिशूली—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलिन्] त्रिशूल को धारण करनेवाले, महादेव।

संज्ञा स्त्री० दुर्गा।

त्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिकूट पर्वत जिसपर लंका बसी थी। (२) त्रिकोण।

त्रिशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] टेंगना मछली जिसके सिर पर तीन काँटे होते हैं।

त्रिबीज–संज्ञा पुं० [सं०] सावाँ।

त्रिवृत–संज्ञा पुं० [सं त्रिवृत्] (१) एक प्रकार का यज्ञ। (२) निसोथ।

त्रिवृता–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवृत"।

त्रिवृत्करण–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करके प्रत्येक को अलग अलग तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया।

विशेष—इस विचार-पद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों का भी समावेश माना जाता है। उदाहरण के लिये अग्नि को लीजिए। अग्नि में अग्नि, जल और पृथ्वी का समावेश माना जाता है; और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के प्रमाण स्वरूप अग्नि की ललाई, सफेदी और कालिमा उपस्थित की जाती है। अग्नि की ललाई उसमें अग्नि तेज के होने का, उसकी सफेदी उसमें जल के होने का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का प्रमाण माना जाता है। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है। जान पड़ता है कि उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे से जब और दो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति निकली।

त्रिवृत्त–वि० [सं०] तिगुना।

त्रिवृत्ता–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवृत्ति"।

त्रिवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिवृत्पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर। हिलमोचिका।

त्रिवृद्वेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद। (२) प्रणव।

त्रिवृष–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापर के व्यास का नाम।

त्रिवेणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तीन नदियों का संगम। (२) तीन नदियों की मिली हुई धारा। (३) गंगा यमुना और सरस्वती का संगम स्थान जो प्रयाग में है। यह तीर्थ स्थान माना जाता है और वारुणी तथा मकर संक्रांति आदि के अवसरों पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है। (४) हठ योग के अनुसार इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का संगम-स्थान।

त्रिवेणु–संज्ञा पुं० [सं०] रथ के अगले भाग के एक अंग का नाम।

त्रिवेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद। (२) इन तीनों वेदों में बतलाए हुए कर्म्म। (३) वह जो इन तीनों का ज्ञाता हो।

त्रिवेदी–संज्ञा पुं० [सं० त्रिवेदिन्] (१) ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेद का जाननेवाला। (२) ब्राह्मणों का एक भेद।

त्रिवेनी*–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिवेणी"।

त्रिवेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिशंकु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल्ली। (२) जुगनू। (३) एक पहाड़ का नाम। (४) पपीहा। (५) एक प्रसिद्ध सूर्य्यवंशी राजा का नाम जिन्होंने सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूसरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके। रामायण में लिखा है कि सशरीर स्वर्ग पहुँचने की कामना से त्रिशंकु ने अपने गुरु वशिष्ट से यज्ञ कराने की प्रार्थना की पर वशिष्ट ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की। इसपर वह वशिष्ट के पुत्रों के पास गए; पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उलटे उन्हें शाप दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार राजा चांडाल होकर विश्वामित्र की शरण में पहुँचे और हाथ जोड़ कर उनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की। इसपर विश्वामित्र ने बहुत से ऋषियों को बुला कर उनसे यज्ञ करने के लिये कहा। ऋषियों ने विश्वामित्र के कोप से डरकर यज्ञ आरंभ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र अध्वर्यु बने। जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका हविर्भाग देना चाहा तब कोई देवता न आये। इसपर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और केवल अपनी तपस्या के बल से ही त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने लगे। जब इंद्र ने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग की ओर आते हुए देखा तब उन्होंने वहीं से उन्हें मर्त्यलोक की ओर लौटाया। त्रिशंकु जब उलटे होकर नीचे गिरने लगे तब बड़े जोर से चिल्लाए। विश्वामित्र ने उन्हें आकाश में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की ओर दूसरे सप्तर्षियों और नक्षत्रों की रचना आरंभ की। तब देवता भयभीत होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। अतः अब वह जहाँ के तहाँ रहेंगे और हमारे बनाए हुए सप्तर्षि और नक्षत्र उनके चारों ओर रहेंगे। देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब से त्रिशंकु वहीं आकाश में नीचे सिर किए हुए लटके हैं और नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज त्रय्यारुण के सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इसले पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार सत्यव्रत चांडाल होकर चांडालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक बार उस प्रांत में बारह वर्षों तक वृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने विचले लड़के को गले में बाँध कर सौ गाओं को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लड़के को

होती है जब कि एक ही सावन दिन में उदय काल के समय थोड़ी सी एकादशी और रात के अंत में त्रयोदशी होती है। ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्य कार्यों के लिये उपयुक्त मानी जाती है।

त्रिस्नान–संज्ञा पुं० [सं०] सबेरे, दोपहर और संध्या तीनों समय का स्नान जो वाणप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले के लिये आवश्यक है। कई प्रायश्चित्तों में भी त्रिस्नान करना पड़ता है।

त्रिहायणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी।

त्रिहुत–संज्ञा पुं० दे० "तिरहुत"।

त्रिपु–संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणों तक की दूरी का स्थान।

त्रिपुक–संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणोंवाला धनुष।

त्रिष्टुक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वैदिक अग्नि।

त्रुटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमी। कसर। न्यूनता। (२) अभाव। (३) भूल। चूक। (४) वचन-भंग। (५) छोटी इलायची। एला। (६) संशय। संदेह (७) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (८) समय का एक अत्यंत सूक्ष्म विभाग जो दो क्षण के बराबर और किसी के मत से प्रायः चार क्षण के बराबर होता है।

त्रुटित–वि० [सं०] (१) कटा या टूटा हुआ। (२) जिसपर आघात लगा हो। (३) आहत।

त्रुटिबीज–संज्ञा पुं० [सं०] अरुई। कचू। घुइँया।

त्रुटी–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रुटि"।

त्रेता–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार युगों में से दूसरा युग जो १२९६००० वर्ष का होता है। पुराणानुसार इस युग का जन्म अथवा आरंभ कार्त्तिक शुक्ला नवमी को होता है। इस युग में पुण्य के तीन पाद और पाप का एक पाद होता है, और सब लोग धर्म-परायण होते हैं। पुराणानुसार इस युग में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष तथा मनु के अनुसार तीन सौ वर्ष होती है। परशुराम और रघुवंशी राम के अवतार का इसी युग में होना माना जाता है।

मुहा०—त्रेता के बीजों में मिलना = सत्यानाश होना। नष्ट होना। (एक शाप)।

(२) दक्षिण, गार्हपत्य और और आहवनीय, ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ। (३) जुए में तीन कौड़ियों का अथवा पासे के उस भाग का चित पड़ना जिसपर तीन बिंदियाँ हों।

त्रेताग्नि–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ।

त्रेतायुग–संज्ञा पुं० दे० "त्रेता" (१)।

त्रेतायुगाद्य–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिक शुक्ला नवमी, जिस दिन त्रेता का जन्म या आरंभ होना माना जाता है। इसकी गणना पुण्य तिथियों में है।

त्रेतिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय तीनों प्रकार की अग्नियों से हो।

त्रै–वि० [सं० त्रय] तीन। उ०—ज्यों अति प्यासो पावै मग में गंगाजल। प्यास न एक बुझाय बुझै त्रै ताप सकल।—केशव।

यौ०—त्रैकालिक।

त्रैकंटक–संज्ञा पुं० दे० "त्रिकंटक"।

त्रैककुद्–संज्ञा पुं० दे० "त्रिककुद्"।

त्रैककुभ–संज्ञा पुं० दे० "त्रिककुभ"।

त्रैकालज्ञ–संज्ञा पुं० दे० "त्रिकालज्ञ"।

त्रैकालिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो त्रिकाल में होता हो। तीनों कालों में, या सदा होनेवाला।

त्रैकूटक–संज्ञा पुं० [सं०] कलचूरि राजवंश के समय का एक प्राचीन राजवंश।

त्रैकोणिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके तीन पार्श्व हों। तिपहला। (२) वह जिसके तीन कोण हों।

त्रैगर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिगर्त्त देश का रहनेवाला। (२) त्रिगर्त्त देश का राजा।

त्रैगुण्य–संज्ञा पुं० [सं०] त्रिगुण का धर्म या भाव। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का धर्म या भाव।

त्रैदशिक–संज्ञा पुं० [सं०] उँगली का अगला भाग, जो तीर्थ कहलाता है।

त्रैधातवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

त्रैपुर–संज्ञा पुं० दे० "त्रिपुर"।

त्रैफल–संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो त्रिफला आदि के संयोग से बनाया जाता है और जिसका व्यवहार प्रदर आदि रोगों में होता है।

त्रैबलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

त्रैमातुर–संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण।

विशेष—लक्ष्मण जी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे पर सुमित्रा ने चरु का जो अंश खाया था वह पहले कौशल्या और कैकयी को दिया गया था और उन्हीं दोनों से सुमित्रा को मिला था, इसीलिये लक्ष्मण का नाम त्रैमातुर पड़ा।

त्रैमासिक–वि० [सं०] हर तीसरे महीने होनेवाला। जो हर तीसरे महीने हो। जैसे, त्रैमासिक पत्र।

त्रैयंबक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम।

वि० [सं०] त्र्यंबक संबंधी। जैसे, त्रैयंबक बलि।

त्रैयंबिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री।

त्रैराशिक–संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें तीन ज्ञात राशियों की सहायता से चौथी अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

त्रिशोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीव, जिसे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं। (२) कण्व ऋषि के एक पुत्र का नाम।

त्रिश्रुतिमध्यम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर जो संदीपनी नाम की श्रुति से आरंभ होता है। इसमें चार श्रुतियाँ होती हैं।

त्रिषवण–संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल। त्रिकाल।

त्रिषष्ठ–वि० [सं०] तिरसठवाँ। क्रम में तिरसठ के स्थान पर पड़नेवाला।

त्रिषष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] साठ और तीन की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६३।

त्रिषा–संज्ञा स्त्री० दे० "तृषा"।

त्रिषित*–वि० दे० "तृषित"।

त्रिषुपर्ण–संज्ञा पुं० दे० "त्रिसुपर्ण"।

त्रिष्टुप–संज्ञा पुं० दे० "त्रिष्टुभ्"।

त्रिष्टुभ्–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसका गोत्र कौशिक, वर्ण लोहित, स्वर धैवत, देवता इंद्र और उत्पत्ति प्रजापति के मांस से मानी जाती है। इसके सुमुखी, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, कीर्त्ति, वारणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, रथोद्धता, दोधक, ऋद्धि और सिद्धि या बुद्धि आदि प्रधान भेद हैं।

त्रिष्टोम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सत्रधृति यज्ञ के पहले और पीछे किया जाता है।

त्रिष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियोंवाला रथ या गाड़ी।

त्रिसंगम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन नदियों के मिलने का स्थान। त्रिवेणी। (२) किसी प्रकार की तीन चीज़ों का मेल।

त्रिसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का फूल जो लाल, सफेद और काला तीन रंगों का होता है। इसे फगुनियाँ भी कहते हैं। वैद्यक में इसे रुचिकारक और कफ, खाँसी तथा त्रिदोष का नाशक माना है।

पर्य्या०— सांध्यकुसुमा। संधिवल्ली। सदाफला। त्रिसंध्यकुसुमा। कांडा। सुकुमारा। संधिजा।

त्रिसंध्य–संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल।

विशेष—जो तिथि त्रिसंध्य-व्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी जाती है।

त्रिसंध्यकुसुम–संज्ञा पुं० दे० "त्रिसंधि"।

त्रिसंध्यव्यापिनी–वि० स्त्री० [सं०] (वह तिथि) जो बराबर सूर्योदय से सूर्यास्त तक हो। ऐसी तिथि शुद्ध और सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है।

त्रिसंध्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातः मध्याह्न और सायं ये तीनों संध्याएँ।

त्रिसप्तति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्तर और तीन का जोड़। तिहत्तर। (२) तिहत्तर की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७३।

त्रिसप्ततितम–वि० [सं०] तिहत्तरवाँ। जो क्रम में तिहत्तर के स्थान पर हो।

त्रिसम–संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, गुड़ और हड़ इन तीनों का समूह।

त्रिसर–संज्ञा पुं० [सं०] खसारी।

त्रिसर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज और तम तीनों गुणों का सर्ग। सृष्टि।

त्रिसामा–संज्ञा पुं० [सं० त्रिसामन्] परमेश्वर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है।

त्रिसिता–संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिशर्करा"।

त्रिसुगंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगंधित मसालों का समूह।

त्रिसुपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम। (२) यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम।

त्रिसुपर्णिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्ण का ज्ञाता हो।

त्रिसौपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्रिसुपर्णिक। (२) परमेश्वर। परमात्मा।

त्रिस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तंत्र और होरा ये तीन स्कंध हैं।

त्रिस्तनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गायत्री। (२) महाभारत के अनुसार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे।

त्रिस्तवन–संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिस्तावा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वमेध यज्ञ की वेदी जो साधारण वेदी से तिगुनी बड़ी होती थी।

त्रिस्थली–संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी, गया और प्रयाग ये तीन पुण्य-स्थान।

त्रिस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानों में रहनेवाला, परमेश्वर।

त्रिस्रोता–संज्ञा पुं० [सं० त्रिस्रोतस्] (१) गंगा। उ०—भस्म त्रिपुंड्क शोभिजै वर्णत बुद्धि उदार। मनो त्रिस्रोता सोतद्युति वंदत लगी लिलार।—केशव। (२) उत्तर बंगाल की एक बड़ी नदी जिसे तिस्ता कहते हैं।

त्रिस्पृशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकादशी जो उस समय

त्र्यस्त–संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण ।

त्र्यहस्पर्श–संज्ञा पुं० [सं०] वह सावन दिन जिसे तीन तिथियाँ स्पर्श करती हों।

त्र्यहस्पृशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो तीन सावन दिनों को स्पर्श करती हो । ऐसी तिथि विवाह या यात्रा आदि के लिये निषिद्ध पर स्नान-दान आदि के लिये अच्छी मानी जाती है ।

त्र्यहिकारि रस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जिसमें प्रधानतः पारा, गंधक, तूतिया और शंख पड़ता है । इसका व्यवहार तिजारी ज्वर में होता है ।

त्र्यहीन–संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्र्यहैहिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह गृहस्थ जिसके यहाँ तीन दिन तक निर्वाह करने के लिये यथेष्ट सामग्री हो । मनु के अनुसार ऐसा गृहस्थ मध्यम समझा जाता है ।

त्र्यार्षेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह गोत्र जिसके तीन प्रवर हों । त्रिप्रवर गोत्र । (२) अंधा, बहरा और गूँगा । (इन तीनों को यज्ञ में जाने का अधिकार नहीं है)

त्र्याहृय–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार के पक्षी ।

त्र्याहिक–संज्ञा पुं० [सं०] हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर । तिजारी ।

वि० तीन दिनों में होनेवाला ।

त्र्यूषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोंठ, पीपल और मिर्च । त्रिकुटा । (२) चरक के अनुसार एक प्रकार का घृत जो इन ओषधियों के मेल से बनाया जाता है ।

त्वक्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिलका । छाल । (२) त्वचा । चमड़ा । खाल । (३) पाँच ज्ञानेंद्रियों में से एक जो सारे शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है । इसके द्वारा स्पर्श होता है तथा कड़े और नरम, ठंढे और गरम आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है । हमारे यहाँ प्राचीन ऋषियों ने इसे वायु के सत्वांश से उत्पन्न माना है और इसका देवता वायु बतलाया है । (४) दारचीनी ।

त्वक्क्षीरा–संज्ञा स्त्री० दे० "त्वक्क्षीरी" ।

त्वक्क्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन ।

त्वक्छद–संज्ञा पुं० [सं०] खीरीश वृक्ष । खीरकंचुकी ।

त्वक्पंचक–संज्ञा पुं० [सं०] बड़, गूलर, अश्वत्थ, सिरीस और पाकर ये पाँचों वृक्ष । वैद्यक में इन पाँचों की छाल का समूह शीतल, लघु, तिक्त तथा व्रण और शोथ आदि का नाशक माना जाता है ।

त्वक्पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता । (२) दारचीनी ।

त्वक्पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंगुपत्री । (२) केले का पेड़ ।

त्वक्पाक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पित्त और रक्त के कुपित होने से शरीर में फुंसियाँ निकल आती हैं ।

त्वक्पुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेहुआँ रोग । (२ रोमांच । रोएँ खड़े हो जाना ।

त्वक्पुष्पिका–संज्ञा स्त्री० दे० "त्वक्पुष्प" ।

त्वक्पुष्पी–संज्ञा स्त्री० दे० "त्वक्पुष्प" ।

त्वक्सार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) दारचीनी । (३) सन का वृक्ष ।

त्वक्सारभेदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चेंच।

त्वक्सारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन ।

त्वक्सुगंधा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एलुवा । (२) छोटी इलायची ।

त्वगंकुर–संज्ञा पुं० [सं०] रोमांच ।

त्वगाक्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन ।

त्वग्गंध–संज्ञा पुं० [सं०] नरंगी का पेड़ ।

त्वग्ज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोम । रोआँ । (२) रक्त । लहू ।

त्वग्दोष–संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ । कुष्ट ।

त्वग्दोषापहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची । बावची ।

त्वग्दोषारि–संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद ।

त्वग्दोषी–संज्ञा पुं० [सं० त्वग्दोषिन्] कोढ़ी । जिसे कुष्ट रोग हो ।

त्वच्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमड़ा । (२) छाल । वल्कल । (३) दारचीनी । (४) साँप की केंचुली । (५) त्वक् इंद्रिय । दे० "त्वक्" ।

त्वच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दारचीनी । (२) तेजपत्ता ।

त्वचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्वक् । चर्म । चमड़ा ।

त्वचापत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेजपत्ता । (२) दारचीनी ।

त्वदीय–सर्व० [सं०] तुम्हारा ।

त्वचिसार–संज्ञा पुं० [सं०] बाँस ।

त्वचिसुगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची ।

त्वरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता । जल्दी ।

त्वरावान्–वि० [सं० त्वरावत्] शीघ्रता करनेवाला । जल्दबाज़ ।

त्वरि–संज्ञा स्त्री० दे० "त्वरा" ।

त्वरित–वि० [सं०] तेज़ ।

क्रि० वि० शीघ्रता से ।

त्वरितक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे तूर्णक भी कहते हैं ।

त्वरितगति–संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, नगण और एक गुरु होता है । इसका दूसरा नाम 'अमृतगति' भी है । उ०—निज मन सोवत हर जू । पयसित खलमि वरजू ।

त्वरिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये की जाती है ।

त्वलग–संज्ञा पुं० [सं०] पानी का साँप ।

त्रैलोक–संज्ञा पुं० दे० "त्रैलोक्य"।

त्रैलोक्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक। (२) २१ मात्राओं का कोई छंद।

त्रैलोक्यचिंतामणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सोने, चाँदी और अभ्रक के मेल से बनाया जाता है। इसका व्यवहार क्षय, खाँसी, प्रमेह, जीर्णज्वर और उन्माद आदि रोगों में किया जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो हीरे, सोने और मोती के संयोग से बनाया जाता है।

त्रैलोक्यविजया–संज्ञा स्त्री० [सं०] भंग।

त्रैलोक्यसुंदर–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, अभ्रक, लोहे और त्रिफला आदि के संयोग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार शोथ, पांडु, क्षय और ज्वरातिसार आदि रोगों में होता है।

त्रैवर्गिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म्म जिससे धर्म्म, अर्थ और काम इन तीनों की साधना हो।

त्रैवर्णिक–संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों जातियों का धर्म्म।

वि० [सं०] तीन वर्ण संबंधी।

त्रैवार्षिक–वि० [सं०] जो तीन वर्षों में अथवा हर तीसरे वर्ष हो। तीन वर्ष संबंधी।

त्रैविक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

त्रैविद्य–संज्ञा पुं० [सं०] तीनों वेदों का जाननेवाला मनुष्य।

त्रैविष्टप–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाले देवता।

त्रैसानु–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार तुर्व्वसु वंश के राजा गोभानु के पुत्र का नाम।

त्रैस्वर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] उदात्त अनुदात्त और स्वरित तीनों प्रकार के स्वर।

त्रोटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाटक का एक भेद जिसमें ५, ७, ८ वा ९ अंक होते हैं और प्रत्येक अंक में विदूषक रहता है। यह नाटक शृंगार रस प्रधान होता है और इसका नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। (२) एक राग का नाम। (संगीत)

त्रोटकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी। (संगीत)

त्रोटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कायफल। (२) चोंच। (३) एक प्रकार की चिड़िया। (४) एक प्रकार की मछली।

त्रोटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टोंटी। टूँटी। (२) चिड़िया की चोंच।

त्रोण–संज्ञा पुं० [सं०] तरकश।

त्रोतल–वि० [सं०] तोतला। जो बोलने में तुतलाता हो।

त्रोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अस्त्र। (२) चाबुक। (३) एक प्रकार का रोग।

त्र्यंगट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) चंद्रमा। (३) छींका। सिकहर।

त्र्यंजन–संज्ञा पुं० [सं०] कालांजन, रसांजन और पुष्पांजन ये तीनों अंजन, काला सुरमा, रसौत और वे फूल जो अंजनों में मिलाए जाते हैं जैसे चमेली, तिल, नीम, लौंग अगस्त्य इत्यादि।

त्र्यंबक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) ग्यारह रुद्रों में से एक रुद्र।

त्र्यंबकसख–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

त्र्यंबका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा, जिसके सोम, सूर्य्य और अनल ये तीनों नेत्र माने जाते हैं।

त्र्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक दैत्य जिसका उल्लेख भागवत में है।

वि० [सं०] जिसकी तीन आँखें हों। तीन नेत्रोंवाला।

त्र्यक्षर–वि० दे० "त्र्यक्षरक"।

त्र्यक्षरक–वि० [सं०] तीन अक्षरों का। जिसमें तीन अक्षर हों।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रणव। (२) तंत्र में वह यंत्र जिसमें तीन अक्षर हों। (३) एक प्रकार का वैदिक छंद।

त्र्यक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम।

त्र्यधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] तीनों लोकों के स्वामी, विष्णु।

त्र्यध्वगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

त्र्यमृतयोग–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और वारों के संयोग से होता है।

विशेष—यदि रवि या मंगलवार को प्रतिपदा, षष्ठी या एकादशी तिथि और स्वाती, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा या मूल नक्षत्र हो, शुक्र अथवा सोमवार को द्वितीया सप्तमी या द्वादशी तिथि और भद्रा, पूर्वफाल्गुणी, पूर्वभाद्रपद या उत्तर भाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवार को तृतीया, अष्टमी या त्रयोदशी तिथि और मृगशिरा, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित् या अश्विनी नक्षत्र हो, बृहस्पतिवार को चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी तिथि और उत्तराषाढ़ा, विशाखा, अनुराधा, मघा या पुनर्वसु नक्षत्र हो अथवा शनिवार को पंचमी, दशमी अमावास्या या पूर्णिमा तिथि और रोहिणी, हस्त या धनिष्ठा नक्षत्र हो तो त्र्यमृत योग होता है। यह योग यात्रा के लिये बहुत उत्तम समझा जाता है और इससे व्यतीपात आदि का दोष भी नष्ट हो जाता है।

त्र्यशीत–वि० [सं०] क्रम में तिरासी के स्थान पर पड़नेवाला। तिरासीवाँ।

त्र्यशीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अस्सी और तीन का जोड़। तिरासी। (२) तिरासी की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८३।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

थकामाँदा–वि० [हिं० थकना] परिश्रम करते करते अशक्त। श्रांत। श्रमित।

थकार–संज्ञा पुं० [सं०] 'थ' अक्षर या वर्ण।

थकाया†–संज्ञा पुं० [हिं० थकना] थकावट।

थकावट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकने का भाव। शिथिलता। क्रि० प्र०—आना।

थकाहट–संज्ञा स्त्री० दे० "थकावट"।

थकित–वि० [हिं० थकना] (१) थका हुआ। श्रांत। शिथिल। (२) मोहित। मुग्ध। उ०—थकित भईं गोपी लखि स्यामहिं।—सूर।

थकिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० थका] (१) किसी गाढ़ी चीज़ की जमी हुई मोटी तह। (२) गली हुई धातु का जमा हुआ लोंदा। यौ०—थकिया की चाँदी=गलाकर साफ़ की हुई चाँदी।

थकैनी†–संज्ञा स्त्री० दे० "थकावट"।

थकौहाँ†–वि० [हिं० थकना] [स्त्री० थकौहीं] कुछ थका हुआ। थकामाँदा। शिथिल। उ०—दृग थिरकौहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार। सुरत सुखित सी देखियत दुखित गरभ के भार।—बिहारी।

थक्का–संज्ञा पुं० [सं० स्था+क, बँग० थाकना=ठहरना] [स्त्री० थक्की, थकिया] (१) किसी गाढ़ी चीज़ की जमी हुई मोटी तह। जमा हुआ कतरा। थरी। जैसे, दही का थक्का, खून का थक्का। (२) गली हुई धातु का जमा हुआ कतरा। जैसे, चाँदी का थक्का।

थगित–वि० [हिं० थकित] (१) ठहरा हुआ। रुका हुआ। (२) शिथिल। ढीला। (३) मंद।

थड़ा–संज्ञा पुं० [सं० स्थल] (१) बैठने की जगह। बैठक। (२) दूकान की गद्दी।

थति†*–संज्ञा स्त्री० दे० "थाती"।

थतिहार†–संज्ञा पुं० [हिं० थाती+हार (प्रत्य०)] वह जिसके पास थाती रखी हो।

थत्ती–संज्ञा स्त्री० [हिं० थनी] ढेर। राशि। अटाला। जैसे, रुपयों की थत्ती।

थन–संज्ञा पुं० [सं० स्तन] गाय, भैंस, बकरी इत्यादि चौपायों का स्तन। चौपायों की चूची।

थनकुदी–संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी नीले रंग की चमकीली चिड़िया जो कीड़े मकोड़े खाती है। इसका रंग बहुत सुंदर होता है।

थनगन–संज्ञा पुं० [बर्मी] एक बड़ा पेड़ जो बरमा, बरार और मलाबार में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है और इमारत में लगती है।

थनटुट्टू–संज्ञा स्त्री० [हिं० थन+टूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में दूध आना बंद हो गया हो।

थनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] (१) स्तन के आकार की दो थैलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे लटकती हैं। गलथना। (२) हाथियों के कान के पास थन के आकार का निकला हुआ मांस का अंकुर जो एक ऐब समझा जाता है। (३) घोड़े की लिंगेंद्रिय में थन के आकार का लटकता हुआ मांस जो एक ऐब समझा जाता है।

थनु+–संज्ञा पुं० दे० 'थन'।

थनेला–संज्ञा पुं० [हिं० थन+एला (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का फोड़ा जो स्त्रियों के स्तन पर होता है। इसमें सूजन और पीड़ा होती है और घाव हो जाता है। (२) गुबरैले की जाति का कीड़ा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह गाय भैंस आदि के थन में डंक मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनैत–संज्ञा पुं० [हिं० थान] (१) गाँव का मुखिया। (२) वह आदमी जो जमींदार की ओर से गाँव का लगान वसूल करे।

थपकना–क्रि० स० [अनु० थप थप] (१) प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये किसीके शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना। हाथ से धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, सुलाने के लिये बच्चे को थपकना। (२) धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, थापी से गच थपकना। (३) चुचकारना या दम दिलासा देना। (४) किसी का क्रोध ठंढा करना। शांत करना।

थपकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० थपकना] (१) किसी के शरीर पर (प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे धीरे पहुँचाया हुआ आघात। (२) हाथ से धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) हाथ के झटके से पहुँचाया हुआ कड़ा आघात। (३) ज़मीन को पीट कर चौरस करने की मुँगरी। (४) थापी। (५) धोबियों का मुँगरा या डंडा जिससे वे धोते समय भारी कपड़ों को पीटते हैं।

थपड़ी–संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] (१) दोनों हथेलियों को एक दूसरे से जोर से टकरा कर ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया। ताली।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—थपड़ी पीटना या बजाना=ज़ोर ज़ोर से हँसी करना। उपहास करना। दिल्लगी उड़ाना।

(२) ताली बजने का शब्द। (३) बेसन की पूरी जिसमें हींग, जीरा और नमक पड़ा रहता है।

थपथपी—संज्ञा स्त्री० दे० "थपकी"।

त्वष्टा–संज्ञा पुं० [सं० त्वष्टृ] (१) विश्वकर्म्मा। विष्णुपुराण के अनुसार ये सूर्य्य के सात सारथियों में से एक हैं। (२) महादेव। शिव। (३) एक प्रजापति का नाम। (४) बढ़ई। (५) वृत्रासुर के पिता का नाम। (६) बारह आदित्यों में से ग्यारहवें आदित्य जो आँख के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं। (७) एक वैदिक देवता जो पशुओं और मनुष्यों के गर्भ में वीर्य्य का विभाग करनेवाले माने जाते हैं। (८) सूत्रधार नाम की वर्णसंकर जाति। (९) चित्रा नक्षत्र के अधिष्ठाता देवता का नाम।

त्वष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संकर जाति।

त्वाष्ट्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्वाष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्वष्टा (विश्वकर्म्मा) का बनाया हुआ हथियार, वज्र। (२) वृत्रासुर का एक नाम। (३) चित्रा नक्षत्र।

त्वाष्ट्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा का एक नाम जो सूर्य्य को व्याही थी और जिसके गर्भ से अश्विनीकुमार का जन्म हुआ था। (२) चित्रा नक्षत्र।

त्विषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा। दीप्ति।

त्विषामीश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) आक का पेड़।

त्विषि–संज्ञा स्त्री० [सं०] किरण।

त्सरु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार की मूठ। (२) सर्प।

त्सारुक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो।

थ

थ–हिंदी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और तवर्ग का दूसरा अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान दंत है।

थंका–संज्ञा पुं० [?] विलमुक्ता।

थंडिल*–संज्ञा पुं० [सं० स्थंडिल] यज्ञ की वेदी।

थंब–संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] (१) खंभा। (२) सहारा। (३) राजपूतों का एक भेद।

थंबी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भ] (१) खड़ी लकड़ी। (२) चाँड़। सहारे की बल्ली। थूनी।

थंभ–संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खंभा। उ०—जंघन को कदली सम जानै। अथवा कनक थंभ सम मानै।—सूर।

थंभन–संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] (१) रुकावट। ठहराव। (२) तंत्र के छः प्रयोगों में से एक। दे० "स्तंभन"। (३) वह औषध जो शरीर से निकलनेवाली वस्तु (जैसे, मल मूत्र, शुक्र इत्यादि) को रोके रहे।

यौ०—जलथंभन=वह मंत्रप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह या बरसना आदि रोक दिया जाय।

थँभना‡–क्रि० अ० दे० "थमना"।

थँभवाना–क्रि० स० दे० "थमवाना"।

थँभाना†–क्रि० स० दे० "थमाना"।

थंभित*–वि० [सं० स्तम्भित] (१) रुका हुआ। ठहरा हुआ। अड़ा हुआ। (२) अचल। स्थिर। (३) भय या आश्चर्य से निश्चल। ठक।

थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षण। (२) मंगल। (३) भय। (४) पर्वत। (५) भयरक्षक। (६) एक व्याधि। (७) भक्षण। आहार।

थइँ‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँव, ठाँई] (१) ठावँ। जगह (२) ढेर। अटाला।

थइली†–संज्ञा स्त्री० दे० "थैली"।

थक–संज्ञा पुं० दे० "थाक"।

थकना–क्रि० अ० [सं० स्तम् वा स्था + कृ, प्रा० थक्कन] (१) परिश्रम करते करते और परिश्रम के योग्य न रहना। मिहनत करते करते हार जाना। शिथिल होना। क्लांत होना। श्रांत होना। जैसे, चलते चलते या काम करते करते थक जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) ऊब जाना। हैरान हो जाना। जैसे,—कहते कहते थक गए पर वह नहीं मानता।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) बुढ़ापे से अशक्त होना। बुढ़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना। जैसे, अब वे बहुत थक गए घर ही पर रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(४) मंदा पड़ जाना। चलता न रहना। धीमा पड़ जाना। ढीला होना या रुक जाना। जैसे, कारबार का थक जाना, रोजगार का थक जाना। (५) मोहित होकर अचल हो जाना। मुग्ध होना। लुभाना। उ०—(क) थके नयन रघुपति छबि देखी।—तुलसी। (ख) थके नारि नर प्रेम-पियासे।—तुलसी।

थकरा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट।

थकरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के बाल झाड़ने की खस की कूँची।

थकान–संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकने का भाव। थकावट। शिथिलता।

थकाना–क्रि० स० [हिं० थकना] श्रांत करना। शिथिल करना। परिश्रम कराते कराते अशक्त कराना। हराना।

थर्राना-क्रि० अ० [अनु० थरथर] डर के मारे काँपना। दहलना। जैसे, वह शेर को देखते ही थर्रा उठा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

थल-संज्ञा पु० [सं० स्थल] (१) स्थान। जगह। ठिकाना।

मुहा०—थल बैठना या थल से बैठना=(१) आराम से बैठना। (२) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। जम कर बैठना। आसन जमा कर बैठना।

(२) सूखी धरती। वह जमीन जिस पर पानी न हो। जल का उलटा। जैसे, (क) नाव पर से उतर कर थल पर आना। (ख) दुर्योधन को जल का थल और थल का जल दिखाई पड़ा। (३) थल का मार्ग।

यौ०—थलचर। थलबेड़ा। जलथल।

(४) ऊँची धरती या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके। (५) वह स्थान जहाँ बहुतसी रेत पड़ गई हो। भूड़। थली। रेगिस्तान। जैसे, थर परकर। (६) बाघ की माँद। चुर। (७) बादले का एक प्रकार का गोल (चवन्नी के बराबर का) साज जिसे बच्चों की टोपी आदि पर जब चाहें तब टाँक सकते हैं। (८) फोड़े का लाल और सूजा हुआ घेरा। वृत्तमंडल। जैसे, फोड़े का थल बाँधना।

क्रि० प्र०—बाँधना।

थलकना-क्रि० अ० [सं० स्थूल, हिं० थूला, थुलथुल] (१) कसा या तना न रहने के कारण झोल खाकर हिलना या फूलना पचकना। झोल पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना। (२) मोटाई के कारण शरीर के मांस का हिलने डोलने में हिलना। थलथल करना।

थलचर-संज्ञा पु० [सं० स्थलचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव।

थलचारी-वि० [देश० स्थलचारी] भूमि पर चलनेवाले।

थलथल-वि० [सं० स्थूल, हिं० थूला] मोटाई के कारण झूलता या हिलता हुआ।

मुहा०—थलथल करना=मोटाई के कारण किसी अंग का झूल झूल कर हिलना। जैसे, चलने में उसका पेट थलथल करता है।

थलथलाना-क्रि० [हिं० थूल] मोटाई के कारण शरीर के मांस का झूल कर हिलना।

थलबेड़ा-संज्ञा पु० [हिं० थल+बेड़ा] नाव या जहाज़ ठहरने की जगह। नाव लगने का घाट।

मुहा०—थल बेड़ा लगाना=ठिकाना लगना। आश्रय मिलना। थल बेड़ा लगाना=ठिकाना लगाना। आश्रय ढूँढ़ना। सहारा देना।

थलभारी-संज्ञा पु० [हिं० थल+भारी] पालकी के कहारों की एक बोली जिससे वे पिछले कहारों को आगे रेतीले मैदान का होना सूचित करते हैं।

थलरुह*-वि० [सं० स्थलरुह] धरती पर उत्पन्न होनेवाले जंतु वृक्ष आदि। उ०—जल थल रुह फल फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई।—तुलसी।

थलिया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] थाली। टाठी।

थली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] (१) स्थान। जगह। जैसे, पर्वत-थली, बनथली। (२) जल के नीचे का तल। (३) ठहरने या बैठने की जगह। बैठक। (४) परती जमीन। (५) बालू का मैदान। रेतीली जमीन। (६) ऊँची जमीन या टीला।

थवई-संज्ञा पु० [सं० स्थपति, प्रा० थवइ] मकान बनानेवाला कारीगर। ईंट पत्थर की जोड़ाई करनेवाला शिल्पी। राज। मेमार।

थवन-संज्ञा पु० [देश०] दुलहिन की तीसरी बार अपने पति के घर की यात्रा।

थवना-संज्ञा पु० [सं० स्थापन, हिं० थपना] कच्ची मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई लकड़ी के छेद में चरखी की लकड़ी पड़ी रहती है। चरखी के घूमने से नारी भरी जाती है। (जुलाहे)

थहना*-क्रि० स० [हिं० थाह] थाह लेना। पता लगाना। उ० यथा थाह थहो नहिं जाई। यह धीरे वह धीर रहाई।—कबीर।

थहराना-क्रि० अ० [अनु० थर थर] (१) दुर्बलता या भय से अंगों का काँपना। कमजोरी या डर से बदन का काँपना। (२) काँपना।

थहाना-क्रि० स० [हिं० थाह] (१) गहराई का पता लगाना। थाह लेना। उ०—(क) सूर कहौ ऐसो को त्रिभुवन आवै सिंधु थहाई।—सूर। (ख) तुलसी तीरहि के चले समय पाइबी थाह। थाह न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह।—तुलसी।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(२) किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता लगाना।

थहारना-क्रि० स० [हिं० ठहराना] जहाज़ को ठहराना।

थाँग-संज्ञा स्त्री० [हिं० थान] (१) चोरों या डाकुओं का गुप्त स्थान। चोरों के रहने की जगह। (२) खोज। पता। सुराग (विशेषतः चोर या खोई हुई वस्तु आदि का)।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) भेद। गुप्त रूप से लगा हुआ किसी बात का पता। जैसे, बिना थाँग के चोरी नहीं होती।

थाँगी-संज्ञा पु० [हिं० थाँग] (१) चोरी का माल मोल लेने या अपने पास रखनेवाला आदमी। (२) चोरों का भेदिया। चोरों को चोरी के लिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला

थपन*—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] स्थापन। ठहराने या जमाने का काम। उ०—उथपे थपन थिर थपेउ थपन हार केसरी कुमार बल अपनो सँभारिये।—तुलसी।

थपना*–क्रि० स० [सं० स्थापन] (१) स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। जमाना। (२) प्रतिष्ठित करना।

क्रि० अ० (१) स्थापित होना। जमना। ठहरना। (२) प्रतिष्ठित होना।

क्रि० स० [अनु० थप थप] धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

संज्ञा पुं० (१) पत्थर, लकड़ी आदि का औजार या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु को पीटें। पिटना। (२) थापी।

थपरा†–संज्ञा पुं० दे० "थप्पड़"।

थपाना*—क्रि० स० [हिं० थपना] स्थापित कराना।

थपुआ–संज्ञा पुं० [हिं० थपना = पीटना] छाजन का वह खपड़ा जो चौड़ा, चौरस और चिपटा हो (अर्थात् नाली के आकार का न हो जैसी कि नरिया होती है)। खपरैल में प्रायः थपुआ और नरिया दोनों का मेल होता है। दो थपुओं के जोड़ के ऊपर नरिया औंधी करके रखी जाती है।

थपेटा†–संज्ञा पुं० दे० "थपेड़ा"।

थपेड़ा–संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] (१) हथेली से पहुँचाया हुआ आघात। थप्पड़। (२) एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। टक्कर। जैसे, नदी के पानी का थपेड़ा।

क्रि० प्र०—लगना।

थपोड़ी†–संज्ञा स्त्री० दे० "थपड़ी"।

थप्पड़–संज्ञा० पुं० [अनु० थप थप] (१) हथेली से किया हुआ आघात। तमाचा। झापड़। चपेट।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—थप्पड़ कसना, देना, लगाना = तमाचा मारना।

(२) एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। जैसे, पानी के हिलोर का थप्पड़, हवा के झोंके का थप्पड़। (३) दाद या फुंसियों का छत्ता। चकत्ता।

थप्पा–संज्ञा० पुं० [लश०] एक प्रकार का जहाज़।

थम—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] (१) खंभा। लाट। स्तंभ। थूनी। (२) केलों की पेड़ी। (३) छोटी छोटी पूरियाँ और हलुआ जिसे देवी को चढ़ाने के लिये स्त्रियाँ ले जाती हैं।

थमकारी*–वि० [सं० स्तंभन] स्तंभन करनेवाला। रोकनेवाला। उ०—मन बुधि चित अहंकार दसों इंद्रिय प्रेरक थमकारी।—सूर।

थमना–क्रि० अ० [सं० स्तंभन = रुकना] (१) रुकना। ठहरना। चलता न रहना। जैसे, गाड़ी का थमना, कोल्हू का थमना। (२) जारी न रहना। बंद हो जाना। जैसे, मेह का थमना, आँसुओं का थमना। (३) धीरज धरना। सब्र करना। ठहरा रहना। उतावला न होना। जैसे, थोड़ा थम जाओ, चलते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

थमुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० थामना] नाव के डाँड़ का हत्था।

थर–संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] तह। परत।

संज्ञा पुं० [सं० स्थल] (१) दे० "थल"। (२) बाघ की माँद।

थरकना†*–क्रि० अ० [अनु० थर थर + करना] थर्राना। डर से काँपना। उ०—वंक हग वदन मयंक वारे अंक भरि अंग में ससंक परयंक थरकत है।—देव।

थरकाना–क्रि० स० [हिं० थरकना] डर से कँपाना।

थर थर–संज्ञा स्त्री० [अनु०] डर से काँपने की मुद्रा।

मुहा०—थर थर करना = डर से काँपना।

क्रि० वि० काँपने की पूरी मुद्रा के साथ। जैसे, वह डर के मारे थर थर काँपने लगा। उ०—थर थर काँपहिं पुर नर नारी।—तुलसी।

थरथर-कँपनी–संज्ञा स्त्री [हिं० थर थर काँपना] एक छोटी चिड़िया जो बैठने पर काँपती हुई मालूम होती है।

थरथराना–क्रि० अ० [अनु० थर थर] (१) डर के मारे काँपना। (२) काँपना। उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के अंक लागी चंद्रमा के चारु प्रतिबिंब ऐसी थरथरात।—शृंगार सुधाकर।

थरथराहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

थरथरी–संज्ञा स्त्री० [अनु० थर थर] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

क्रि० प्र०—छूटना।—लगना।

थरना–क्रि० स० [सं० धुर्व, हिं० धुरना] हथौड़ी आदि से धातु पर चोट लगाना।

संज्ञा पुं० सुनारों का एक औजार जिससे वे पत्ती की नकाशी बनाते हैं।

थरहराना–क्रि० अ० दे० "थरथराना"।

थरहरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

थरहाई†–संज्ञा [देश०] एहसान। निहोरा।

थरि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थल] बाघ आदि की माँद। गुर।

थरिया–संज्ञा स्त्री० दे० "थाली"।

थरु*†–संज्ञा पुं० दे० "थल"।

थरुलिया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० थारी] छोटी थाली।

थरूहट–संज्ञा पुं० [देश० थारू] थारुओं की बस्ती।

थर्मामीटर–संज्ञा पुं० [अं०] सरदी गरमी नापने का यंत्र। दे० "तापमान"।

थानैत-संज्ञा पुं० हिं० [थान + ऐत (प्रत्य०)] (१) किसी स्थान का अधिपति । किसी चौकी या अड्डे का मालिक । (२) किसी स्थान का देवता । ग्रामदेवता ।

थाप-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन] (१) तबले, मृदंग आदि पर पूरे पंजे का आघात । थपकी । ठोंक ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

(२) थप्पड़ । तमाचा । पूरे पंजे का आघात । जैसे, शेर की थाप, पहलवानों की थाप ।

क्रि० प्र० —मारना ।—लगाना ।

(३) वह चिह्न जो किसी वस्तु के भरपूर बैठने से पड़े । एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के दाब के साथ पड़ने से बना हुआ निशान । छाप । जैसे, दीवार पर गीले पंजे का थाप, बालू पर पैर की थाप ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—लगना ।

(४) स्थिति । जमाव । (५) किसी की ऐसी स्थिति जिसमें लोग उसका कहना मानें, भय करें तथा उसपर श्रद्धा विश्वास रखें । महत्वस्थापन । प्रतिष्ठा । मर्य्यादा । धाक । साख । उ० —कहै पदमाकर सुमहिमा मही में भई महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है ।—पद्माकर ।

क्रि० प्र०—जमना ।—होना ।

(५) मान । कदर । प्रमाण । उ०—उनकी बात की कोई थाप नहीं । (६) पंचायत । (७) शपथ । सौगंध । कसम ।

मुहा०—किसी की थाप देना=किसी की कसम खाना । शपथ देना ।

थापन-संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] (१) स्थापित करने की क्रिया । जमाने या बैठाने की क्रिया । (२) किसी स्थान पर प्रतिष्ठित करने का कार्य्य । रखने का कार्य्य । उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन मोहि थापन । रघुकुलतिलक भुवाल सदा तुम उथपन थापन ।—तुलसी ।

थापना-क्रि० स० [सं० स्थापन] (१) स्थापित करना । जमाना । बैठाना । जमाकर रखना । (२) किसी गीली सामग्री (मिट्टी गोबर आदि) को हाथ या साँचे से पीट अथवा दबा कर कुछ बनाना । जैसे, उपले थापना, खपड़े थापना, ईंटें थापना ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] (१) स्थापन । प्रतिष्ठा । रखने या बैठाने का कार्य्य । (२) मूर्त्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा । जैसे, दुर्गा की थापना । (३) नवरात्र में दुर्गा पूजा के लिये घट-स्थापना ।

थापर†-संज्ञा पुं० दे० "थप्पड़" ।

थापरा-संज्ञा पुं० [देश०] छोटी नाव । डोंगी । (लश०)

थापा-संज्ञा पुं० [हिं० थाप] (१) हाथ के पंजे का वह चिह्न जो किसी गीली वस्तु (हलदी, मेंहदी, रंग आदि) से पुती हुई हथेली को ज़ोर से दबाने या मारने से बन जाता है । पंजे का छापा ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

विशेष—पूजा या मंगल के अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार के चिह्न दीवार आदि पर बनाती हैं ।

(२) गाँव में देवी देवता की पूजा के लिये किया हुआ चंदा । पुजौरा । (३) खलियान में अनाज की राशि पर गीली मिट्टी या गोबर से डाला हुआ चिह्न (जो इसलिये डाला जाता है जिसमें यदि कोई चुरावे तो पता लग जाय, चाँकी । (४) वह साँचा जिसमें रंग आदि पोतकर कोई चिह्न अंकित किया जाय । छापा । (५) वह साँचा जिसमें कोई गीली सामग्री दबाकर या डाल कर कोई वस्तु बनाई जाय । जैसे, ईंट का थापा, सुनारों का थापा । (६) ढेर । राशि । उ०—सिद्धहि दरब आगि के थापा । कोई जरा, जार, कोइ तापा ।—जायसी । (७) नैपालियों की एक जाति ।

थापिया-संज्ञा स्त्री० दे० "थापी" ।

थापी-संज्ञा स्त्री० [हिं० थापना] (१) काठ का चिपटे और चौड़े चौड़े सिरे का डंडा जिससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटते हैं । (२) वह चिपटी मुँगरी जिससे राज या कारीगर गच पीटते हैं ।

थाम-संज्ञा पुं० [सं० स्तंभ, प्रा० थंभ] (१) खंभा । स्तंभ । (२) मस्तूल । (लश०) ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० थामना] थामने की क्रिया या ढंग । पकड़ ।

थामना-क्रि० स० [सं० स्तभन, प्रा० थंभन=रोकना] (१) किसी चलती हुई वस्तु को रोकना । गति या वेग अवरुद्ध करना । जैसे, चलती गाड़ी को थामना, बरसते मेह को थामना ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) गिरने, पड़ने, लुढ़कने आदि न देना । गिरने पड़ने से बचाना । जैसे, गिरते हुए को थामना, डूबते हुए को थामना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

(३) पकड़ना । ग्रहण करना । हाथ में लेना । जैसे, छड़ी थामना । उ०—इस किताब को थामो तो मैं दूसरी निकाल दूँ ।

संयो० क्रि०—लेना ।

(४) सहारा देना । सहायता देना । मदद देना । सँभालना । जैसे, पंजाब के गेहूँ ने थाम लिया, नहीं तो अन्न के बिना बड़ा कष्ट होता ।

संयो० क्रि०—लेना ।

(५) किसी कार्य्य का भार ग्रहण करना । अपने ऊपर कार्य्य का भार लेना । जैसे, जिस काम को तुम ने थामा है उसे

मनुष्य। (३) चोरी के माल का पता लगानेवाला आदमी। जासूस। (४) चोरों का अड्डा रखनेवाला आदमी। चोरों के गोल का सरदार।

थाँगीदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० थाँग + फ़ा० दार] थाँगी का काम।

थाँभ†-संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] (१) खंभा। (२) थूनी। चाँड़।

थाँभना†-क्रि० स० दे० "थामना"।

थाँवला-संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] वह घेरा या गड्ढा जिसमें कोई पौधा लगा हो। थाला। आलवाल।

था-क्रि० अ० [सं० स्था] 'है' शब्द का भूतकाल। एक शब्द जिससे भूतकाल में होना सूचित होता है। रहा। जैसे, वह उस समय वहाँ नहीं था।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेदों के रूप बनाने में भी संयुक्त रूप से होता है जैसे, आता था, आया था, आ रहा था इत्यादि।

थाई-वि० [सं० स्थायिन्, स्थायी] बना रहनेवाला। स्थिर रहनेवाला। न मिटने या जानेवाला। बहुत दिनों तक चलनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) बैठने की जगह। बैठक। अथाई। (२) गीत का प्रथम पद जो गाने में बार बार कहा जाता है। ध्रुवपद। स्थायी।

थाक-संज्ञा पुं० [सं० स्था] (१) गाँव की सरहद। ग्रामसीमा। (२) थोक। ढेर। समूह। अटाला। राशि।

† संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट।

क्रि० प्र०—लगना।

थाकना†-क्रि० अ० दे० "थकना"। उ०—थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद सूखि झाँझरी सी ह्वै के देह लागी पीयरान।—हरिश्चंद्र।

थाकु†-संज्ञा पुं० दे० "थाक"।

थाट†-संज्ञा पुं० दे० "ठाट"।

थात*-वि० [सं० स्थात, स्थाता] जो बैठा या ठहरा हो। स्थित। उ०—द्वै पिक बिंब बतीस बज्रकन एक जलज पर थात।—सूर।

थाति-संज्ञा स्त्री० [हिं० थात] (१) स्थिरता। ठहराव। टिकान। रहन। उ०—सगुन ज्ञान विराग भक्ति सुसाधन की पाँति। भाजि विकल बिलोकि कलि अघ ऐगुनन की थाति।—तुलसी। (२) दे० "थाती"।

थाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० थात] (१) समय पर काम आने के लिये रखी हुई वस्तु। (२) वह वस्तु जो किसीके पास इस विश्वास पर छोड़ दी गई हो कि वह माँगने पर दे देगा। धरोहर। उ०—दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आज जुड़ावहु छाती।—तुलसी। (३) संचित धन। इकट्ठा किया हुआ धन। रक्षित द्रव्य। जमा। पूँजी। गथ। (४) दूसरे का धन जो किसीके पास इस विचार से रखा हो कि वह माँगने पर दे देगा। धरोहर। अमानत। उ०—बारहि बार चलावत हाथ सो का मेरी छाती में थाती धरी है।

थान-संज्ञा पुं० [सं० स्थान] (१) जगह। ठौर। ठिकाना। (२) रहने या ठहरने की जगह। डेरा। निवासस्थान। (३) किसी देवी देवता का स्थान। देवल। जैसे, माई का थान। (४) वह स्थान जहाँ घोड़े या चौपाये बाँधे जायँ।

मुहा०—थान का टर्रा=(१) वह घोड़ा जो खूँटे से बँधा बँधा नटखटी करे। घुड़शाल में उपद्रव करनेवाला। (२) वह जो घर पर ही या पड़ोस में ही अपना जोर दिखाया करे बाहर कुछ न बोले। अपनी गली में ही शेर बननेवाला। थान का सच्चा=सीधा घोड़ा। वह घोड़ा जो कहीं से छूट कर फिर अपने खूँटे पर आ जाय। थान में आना=(घोड़े का) धूल में लोटना। अच्छे थान का घोड़ा=अच्छी जाति का घोड़ा। प्रसिद्ध स्थान का घोड़ा।

(५) वह घास जो घोड़े के नीचे बिछाई जाती है। (६) कपड़े गोटे आदि का पूरा टुकड़ा जिसकी लंबाई बँधी हुई होती है। जैसे, मारकीन का थान, गोटे का थान। (७) संख्या। अदद। जैसे, एक थान अशरफ़ी। चार थान गहने। एक थान कलेजी। (८) लिंगेंद्रिय। (बाजारू)

थानक-संज्ञा पुं० [सं० स्थानक] (१) स्थान। जगह। (२) नगर। (३) थावँला। थाला। आलवाल। (४) फेन। बबूला। झाग।

थाना-संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हिं० थान] (१) अड्डा। टिकने या बैठने का स्थान। (२) वह स्थान जहाँ अपराधों की सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं। पुलिस की बड़ी चौकी।

मुहा०—थाने चढ़ना=थाने में किसी के विरुद्ध सूचना देना। थाने में इत्तला करना। थाना बिठाना=पहरा बिठाना। चौकी बिठाना।

(३) बाँसों का समूह। बाँस की कोठी।

थानापति-संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] ग्रामदेवता। स्थानरक्षक देवता।

थानी-संज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] (१) स्थान का स्वामी। जिसका स्थान हो। (२) दिक्पाल। लोकपाल।

वि० संपन्न। पूर्ण।

थानैत-संज्ञा पुं० दे० "थानैत"।

थानेदार-संज्ञा पुं० [हिं० थाना + फ़ा० दार] थाने का वह अफ़सर या प्रधान जो किसी स्थान में शांति बनाए रखने और अपराधों की छान बीन करने के लिये नियुक्त रहता है।

थानेदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० थाना + फ़ा० दारी] थानेदार का पद या कार्य्य।

सब ही के। उतपति थिति, लय विषहु अमी के। —तुलसी। (२) अवस्था। दशा।

थितिभाव*—संज्ञा पुं० [सं० स्थितिभाव] दे० "स्थायी भाव"।

थिआऊ—संज्ञा पुं० [देश०] रहने अंग का फड़कना आदि जिसे ठग लोग अपने लिये अशुभ समझते हैं। (ठग)

थिर—वि० [सं० स्थिर] (१) जो चलता या हिलता डोलता न हो। ठहरा हुआ। अचल। (२) जो चंचल न हो। शांत। धीर। (३) जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

थिरक—संज्ञा पुं० [हिं० थिरकना] नृत्य में चरणों की चंचल गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठना और गिरना।

थिरकना—क्रि० अ० [सं० अस्थिर+करण] (१) नाचने में पैरों का पग पग पर उठाना और गिराना। नृत्य में अंग संचालन करना। जैसे, थिरक थिरक कर नाचना। (२) अंग मटका कर नाचना। ठमक ठमक कर नाचना।

थिरजीह*—संज्ञा पुं० [सं० स्थिरजिह्व] मछली।

थिरता*—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरता] (१) ठहराव। अचलत्व। (२) स्थायित्व। (३) अचंचलता। शांति। धीरता।

थिरताई*—संज्ञा स्त्री० दे० "थिरता"।

थिरथिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बुलबुल जो जाड़े के दिनों में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

थिरना—क्रि० अ० [सं० स्थिर, हिं० थिर+ना (प्रत्य०)] (१) पानी या और किसी द्रव पदार्थ का हिलना, डोलना बंद होना। हिलते डोलते या लहराते हुए जल का ठहर जाना। जल का क्षुब्ध न रहना। (२) जल के स्थिर होने के कारण उसमें घुली हुई वस्तु का तल में बैठना। पानी का हिलना, घूमना आदि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का पेंदे में जाकर जमना। (३) मैल आदि नीचे बैठ जाने के कारण जल का स्वच्छ हो जाना। (४) मैल धूल, रेत आदि के नीचे बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर रह जाना। निथरना।

थिरा*—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] पृथ्वी।

थिराना—क्रि० स० [हिं० थिरना] (१) पानी आदि का हिलना डोलना बंद करना। क्षुब्ध जल को स्थिर होने देना। (२) जल को स्थिर करके उसमें घुली हुई वस्तु को नीचे बैठने देना। (३) घुली हुई मैल आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना। (४) किसी वस्तु को जल में घोल कर और उसमें मिली हुई मैल, धूल, रेत आदि को नीचे बैठा कर साफ करना। निथारना।

† क्रि० अ० दे० "थिरना"।

थी—क्रि० अ० 'है' के भूतकाल 'था' का स्त्री०

थीकरा—संज्ञा पुं० [सं० स्थित+कर] किसी आपत्ति के समय रक्षा या सहायता का भार जिसे गाँव का प्रत्येक समर्थ मनुष्य बारी बारी से अपने ऊपर लेता है।

थीता†—संज्ञा पुं० [सं० स्थित, हिं० थित] (१) स्थिरता। शांति। (२) कल। चैन। उ०—थीतो परै नहिं चीतो चवैयन देखत पीठि दै डीठि कै पैनी।—देव।

थुकथाना—क्रि० स० दे० "थुकाना"।

थुकहाई—वि० स्त्री० [हिं० थूक+हाई (प्रत्य०)] ऐसी स्त्री जिसे सब लोग थूकें। जिसकी सब निंदा करते हों।

थुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूकना] थूकने का काम।

थुकाना—क्रि० स० [हिं० थूकना का प्रे०] (१) थूकने की क्रिया दूसरे से कराना। दूसरे को थूकने की प्रेरणा करना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) मुँह में ली हुई वस्तु को गिरवाना। उगलवाना। जैसे, बच्चा मुँह में मिट्टी लिए है जल्दी थुकाओ। (३) थुड़ी थुड़ी कराना। निंदा कराना। तिरस्कार कराना। जैसे, क्यों ऐसी चाल चलकर गली गली थुकाते फिरते हो ?

थुकायल†—वि० [हिं० थूक+आयल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग थूकें। जिसे सब लोग धिक्कारें। तिरस्कृत। निंद्य।

थुकैल†—वि० दे० "थुकायल"।

थुक्का फजीहत—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक+अ० फजीहत] निंदा और तिरस्कार। थुड़ी थुड़ी। धिक्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

थुकी—संज्ञा स्त्री० [[हिं० थूक] रेशम के तागे को थूक लगाकर सुलझाने की क्रिया। (जुलाहे)

थुड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थुथु=थूकने का शब्द] घृणा और तिरस्कार-सूचक शब्द। धिक्कार। लानत। फिट। जैसे, थुड़ी है तुमको !

मुहा०—थुड़ी थुड़ी करना=धिक्कारना। निंदा और तिरस्कार करना।

थुथना—संज्ञा पुं० दे० "थूथन"।

थुथाना—क्रि० अ० [हिं० थूथन] थूथन फुलाना। मुँह फुलाना। नाराज होना।

थुनेर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण, हिं० थून] गठिवन का एक भेद।

थुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] थूनी। खंभा। चाँड़। उ०—अति प्रबल पूरे पुण्य रूपी कुल अटल थुनी।—सूर।

थुपरना—क्रि० [सं० स्तूप, हिं० थूप] महुवे की थालों का ढेर लगाकर दबाना जिसमें उनमें कुछ गरमी आ जाय। ढंढवाना। औसाना।

थुपरा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] महुवे की थालों का ढेर जो औसने के लिये दबाकर रखा जाय।

थुरना—क्रि० स० [सं० थुर्वण=मारना] (१) कूटना (२) मारना। पीटना।

पूरा करो। (६) पहरे में करना। चौकसी में रखना। हिरासत में करना।

थाम्हना†–क्रि० स० दे० "थामना"।

थायी*–वि० दे० "स्थायी"।

थार†–संज्ञा पुं० दे० "थाल"।

थारा†–सर्व० [हिं० तिहारा] तुम्हारा।

थारी†–संज्ञा स्त्री० दे० "थाल"।

थारू–संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति जो नैपाल की तराई में पाई जाती है।

थाल–संज्ञा पुं० [हिं० थाली] बड़ी थाली। काँसे या पीतल का बड़ा छिछला बरतन।

थाला–संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] (१) वह घेरा या गड्ढा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है। थावँला। आलवाल। (२) कुंडी जिसमें ताला लगाया जाता है। (लश०)

थाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली=बटलोई] (१) काँसे या पीतल का गोल छिछला बरतन जिसमें खाने के लिये भोजन रखा जाता है। बड़ी तश्तरी।

मुहा०—थाली का बैंगन=लाभ और हानि देख कभी इस पक्ष में कभी उस पक्ष में होनेवाला। अस्थिर सिद्धांत का। बिना पेंदी का लोटा। थाली जोड़=कटोरे के सहित थाली। थाली और कटोरे का जोड़ा। थाली फिरना=इतनी भीड़ होना कि यदि उसके बीच थाली फेंकी जाय तो वह ऊपर ही ऊपर फिरती रहे नीचे न गिरे। भारी भीड़ होना। थाली बजना=साँप का विष उतारने का मंत्र पढ़ा जाना जिसमें थाली बजाई जाती है। थाली बजाना=(१) साँप का विष उतारने के लिये थाली बजाकर मंत्र पढ़ना। (२) बच्चा होने पर उसका डर दूर करने के लिये थाली बजाने की रीति करना।

(२) नाच की एक गत जिसमें थोड़े से घेरे के बीच नाचना पड़ता है।

यौ०—थाली कटोरा=नाच की एक गत जिसमें थाली और पदबंद का मेल होता है।

थाव–संज्ञा स्त्री० दे० "थाह"।

थाह–संज्ञा स्त्री० [सं० स्था] (१) नदी, ताल, समुद्र इत्यादि के नीचे की जमीन। जलाशय का तल भाग। धरती का वह तल जिसपर पानी हो। गहराई का अंत। गहराई की हद। जैसे, जब थाह मिले तब तो लोटे का पता लगे।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—थाह मिलना=जल के नीचे की जमीन तक पहुँच हो जाना। पानी में पैर टिकने के लिये जमीन मिल जाना। डूबते को थाह मिलना=निराश्रय को आश्रय मिलना। संकट में पड़े हुए मनुष्य को सहारा मिलना।

(२) कम गहरा पानी। जैसे, जहाँ थाह है वहाँ तो हलकर पार कर सकते हैं। उ०—चरण छूते ही जमुना थाह हुई।—लल्लू। (३) गहराई का पता। गहराई का अंदाज।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—थाह लगना=गहराई का पता चलना। थाह लेना=गहराई का पता लगाना।

(४) अंत। पार। सीमा। हद। परिमिति। जैसे, उनके धन की थाह नहीं है। (५) संख्या, परिमाण आदि का अनुमान। कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसका पता। जैसे, उनकी बुद्धि की थाह इसी बात से मिल गई।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लगना।

मुहा०—थाह लेना=कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसकी जाँच करना।

(६) किसी बात का पता जो प्रायः गुप्त रीति से लगाया जाय। अप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान। भेद। जैसे, इस बात की थाह लो कि वह कहाँ तक देने को तैयार है।

क्रि० प्र०—लेना।

मुहा०—मन की थाह=अंतःकरण के गुप्त अभिप्राय की जानकारी। चित्त की बात का पता। संकल्प या विचार का पता। उ०—कुटिल जनन के मनन की मिलति न कबहूँ थाह।

थाहना–क्रि० स० [हिं० थाह] (१) थाह लेना। गहराई का पता चलाना। (२) अंदाज लेना। पता लगाना।

थाहरा†–वि० [हिं० थाह] छिछला। जो गहरा न हो। जिसमें जल गहरा न हो। उ०—खरखराइ जमुना गह्यो अति-थाहरो सुभाय। मानहु हरि निज पाँव ते दीनी ताहि दबाय।—सुकवि।

थियटर–संज्ञा पुं० [अं०] (१) रंगभूमि। रंगशाला। (२) नाटक का अभिनय। नाटक का तमाशा।

थिगली–संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकली] वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए कपड़े या और किसी वस्तु का छेद बंद करने के लिये टाँका या लगाया जाय। चकती। पैबंद।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—थिगली लगाना=ऐसी जगह पहुँच कर काम करना जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो। जोड़ तोड़ भिड़ाना। युक्ति लगाना। बादल में थिगली लगाना=(१) अत्यंत कठिन काम करना, (२) ऐसी बात कहना जिसका होना असंभव हो।

थित*–वि० [सं० स्थित] (१) ठहरा हुआ। (२) स्थापित। रखा हुआ।

थिति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] (१) ठहराव। स्थायित्व। (२) विश्राम करने या ठहरने का स्थान। (३) रहाइस। रहन। (४) बने रहने का भाव। रक्षा। उ०—ईस रजाइ सीस

(३) वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सी का फंदा लगाकर मथानी का डंडा अटकाते हैं।

थूवी–संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप का विष दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को दागने की युक्ति।

थूरना†–क्रि० स० [सं० थुर्वण=मारना] (१) कूटना। दलित करना। (२) मारना। पीटना। उ०—थूरत करि रिस जबहिं होति सत्रहर सम सूरत। थूरत पर बल भूरि हृदय महँ पूरि गरूरत।—गोपाल। (३) टूँसना। कस कर भरना। (४) खूब कस कर खाना। ठूस ठूस कर खाना।

थूल*–वि० [सं० स्थूल] (१) मोटा। भारी। (२) भद्दा।

थूला–वि० [सं० स्थूल] [स्त्री० थूली] मोटा। मोटा ताजा। उ०—करतार करे यदि कामिनि के कर कोमलता कलता सुनि कै। लघु दीरघ पावरि थूलि सहीं सुसमाधि टरै मुनि के मुनि कै।—तोष।

थूली–संज्ञा स्त्री० [हिं० थूला=मोटा] (१) किसी अनाज का दला हुआ मोटा कण। दलिया। (२) सूजी। (३) पकाया हुआ दलिया जो गाय को बच्चा जनने पर दिया जाता है।

थूवा–संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, प्रा० थूप, थूव] (१) मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। ढूह। (२) गीली मिट्टी का पिंडा या लोंदा। लौंदा। मेली। थोंधा। (३) मिट्टी का ढूह जो सरहद के निशान के लिये उठाया जाता है। सीमासूचक स्तूप। (४) ढूह के आकार का काला रँगा हुआ पिंडा जिसे पीने का तंबाकू बेचनेवाले अपनी दूकानों पर चिह्न के लिये रखते हैं। (५) वह बोझ जो कपड़े में बँधी हुई राब के ऊपर जूसी निकाल कर बहाने के लिये रखा जाता है। (६) मिट्टी का लोंदा जो बोझ के लिये ढेंकली की आड़ी लकड़ी के छोर पर थोपा जाता है।

†संज्ञा स्त्री० [अनु० थू थू] थुड़ी। धिक्कार का शब्द।

थूहड़–संज्ञा पुं० दे० "थूहर"।

थूहर–संज्ञा पुं० [सं० स्थूण=थूनी] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँठों पर से गुल्ली या डंडे के आकार के डंठल निकलते हैं। किसी जाति के थूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते बिलकुल नहीं होते। काँटे भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। थूहर के डंठलों और पत्तों में एक प्रकार का कड़ुआ दूध भरा रहता है। निकले हुए डंठलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं जिनपर आवरणपत्र या दिउली नहीं होती। पुं० और स्त्री पुष्प अलग अलग होते हैं। थूहर कई प्रकार के होते हैं—जैसे, कटिवाला थूहर, तिधारा थूहर, चौधारा थूहर, नागफनी, खुरासानी थूहर, विलायती थूहर इत्यादि। खुरासानी थूहर का दूध विषैला होता है। थूहर का दूध औषध के काम में आता है। थूहर के दूध में सानी हुई बाजरे के आटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ़ हो जाता है। थूहर के दूध में भिगोई हुई चने की दाल (आठ या दस दाने) खाने से अच्छा जुलाब होता है और गरमी का रोग दूर होता है। थूहर की राख से निकाला हुआ खार भी दवा के काम में आता है। काँटेवाले थूहर के पत्तों का लोग अचार भी डालते हैं। थूहर का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। वैद्यक में थूहर रेचक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कटु तथा शूल गुल्म, अष्ठीला, वायु, उन्माद, सूजन इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। थूहर को सेंहुड़ भी कहते हैं।

पर्य्या०—स्नुही। समंतदुग्धा। नागद्रु। महावृक्षा। सुधा। वज्री। शीहुंडा। सिहुँड़। दंडवृक्षक। स्नुक्। स्नुषा। गुड़। गुडा। कृष्णसार, निस्त्रिंशपत्रिका। नेत्रारि। कांडशाख। सिंहतुंड। कांडरोहक।

थूहा–संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, थूव] (१) ढूह। अटाला। (२) टीला।

थूही–संज्ञा स्त्री० [हिं० थूहा] (१) मिट्टी की ढेरी। ढूह। (२) मिट्टी के खंभे जिनपर गराड़ी या घिरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

थेंथर–वि० [देश०] थका हुआ। श्रांत। सुस्त। हैरान।

थेई थेई–वि० [अनु०] तालसूचक नृत्य का शब्द और मुद्रा। थिरक थिरक कर नाचने की मुद्रा और ताल। उ०—लाग मान थेइ थेइ करि उघटत घटत ताल मृदंग गँभीर।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।

थेगली–संज्ञा स्त्री० दे० "थिगली"।

थेवा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) अँगूठी का नगीना। (२) किसी धातु का वह पत्र जिसपर मुहर खोदी जाती है। (३) अँगूठी का वह घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है।

थैचा–संज्ञा पुं० [देश०] खेत में मचान के ऊपर का छप्पर।

थैला–संज्ञा पुं० [सं० स्थल=कपड़े का घर] [स्त्री० अल्प० थैली] (१) कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें। बड़ा कोश। बड़ा बटुआ। बड़ा कीसा।

मुहा०—थैला करना=मारकर ढेर कर देना। मारते मारते ढीला कर देना।

(२) रुपयों से भरा हुआ थैला। तोड़ा। उ०—बोल्यो बनआरो दम खोलि थैला दीजिए जू लीजिए जू आय प्राम चरन पयाए हैं।—प्रियादास। (३) पायजामे का वह भाग जो जंघे से घुटने तक होता है।

थुरहथा–वि० [हिं० थोड़ा + हाथ] [स्त्री० थुरहथी] (१) जिसके हाथ छोटे हों। जिसकी हथेली में कम चीज आवे। उ०—कन दैवो सौंप्यो ससुर बहू थुरहथी जानि। रूप रहचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आनि।—बिहारी। (२) किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ में थोड़ी वस्तु आवे। किफायत करनेवाला।

थुलना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी ऊनी कपड़ा या कंबल।

थुली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल, हिं० थूला] किसी अन्न के मोटे कण जो दलने से होते हैं। दलिया।

थुवा–संज्ञा पुं० दे० "थूवा"।

थूँक–संज्ञा पुं० दे० "थूक"।

थूँकना–क्रि० अ० दे० "थूकना"।

थू–अव्य० [अनु०] (१) थूकने का शब्द। वह ध्वनि जो जोर से थूकने में मुँह से निकलती है। (२) घृणा और तिरस्कार सूचक शब्द। धिक्। छिः। जैसे, थू थू! कोई ऐसा काम करता है ?

मुहा०—थू थू करना = घृणा प्रकट करना। छिः छिः करना। धिक्कारना। थू थू होना = चारों ओर से छिः छिः होना। निंदा होना। थू थू थुहा = लड़कों का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे बेईमानी होने के कारण हार रहे हों।

थूक–संज्ञा पुं० [अनु० थू थू] वह गाढ़ा और कुछ कुछ लसीला रस जो मुँह के भीतर जीभ तथा मांस की झिल्लियों से छूटता है। ष्ठीवन। खखार। लार।

विशेष—मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवों में जीभ के अगले भाग तथा मुँह के भीतर की मांसल झिल्लियों में दाने की तरह उभरे हुए अत्यंत सूक्ष्म छेद होते हैं जिनमें एक प्रकार का गाढ़ा सा रस भरा रहता है। यह रस भिन्न भिन्न जंतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। मनुष्य आदि प्राणियों के थूक के झाग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का अंश होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन में सहायता देते हैं।

मुहा०—थूक उछालना = व्यर्थ की बकवाद करना। थूक बिलोना = व्यर्थ बकना। अनुचित प्रलाप करना। थूक लगाना = हराना। नीचा दिखाना। चूना लगाना। हैरान और तंग करना। थूक लगा कर छोड़ना = नीचा दिखा कर छोड़ना। (विरोधी को) तंग और लज्जित करके छोड़ना। दंड देकर छोड़ना। थूक लगा कर रखना = बहुत सैंत कर रखना। जोड़ जोड़ कर इकट्ठा करना। कंजूसी से जमा करना। कृपणता से संचित करना। थूकों सत्तू सानना = कंजूसी या किफायत के मारे थोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम करने चलना। बहुत थोड़ी सामग्री लगाकर बड़ा कार्य्य पूरा करने चलना। थूक है ! = धिक् है ! लानत है !

थूकना–क्रि० अ० [हिं० थूक + ना (प्रत्य०)] (१) मुँह से थूक निकालना या फेंकना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न थूकना = अत्यंत घृणा करना। जरा भी पसंद न करना। अत्यंत तुच्छ समझ कर ध्यान तक न देना। जैसे, हम तो ऐसी चीज़ पर थूकें भी नहीं। थूक कर चाटना = (१) कह कर मुकर जाना। वादा करके न करना। प्रतिज्ञा करके पूरा न करना। (२) किसी दी हुई वस्तु को लौटा लेना। एक बार देकर फिर ले लेना।

क्रि० स० (१) मुँह में ली हुई वस्तु को गिराना। उगलना। जैसे, पान थूक दो।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—थूक देना = तिरस्कार कर देना। घृणापूर्वक त्याग देना।

(२) बुरा कहना, धिक्कारना। निंदा करना। तिरस्कृत करना। उ०—इसी चाल पर लोग तुम्हें थूकते हैं।

थूथन–संज्ञा पुं० [देश०] लंबा निकला हुआ मुँह जैसे, सूअर, घोड़े, ऊँट बैल आदि का।

थूथनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० थूथन] (१) लंबा निकला हुआ मुँह जैसे, सूअर, घोड़े, बैल आदि का।

मुहा०—थूथनी फैलाना = नाक भौं चढ़ाना। मुँह फुलाना। नाराज होना।

(२) हाथी के मुँह का एक रोग जिसमें उसके तालू में घाव हो जाता है।

थूथरा–वि० [देश०] थूथन के ऐसा निकला हुआ मुँह। बुरा चेहरा। भद्दा चेहरा।

थूथुन†–संज्ञा पुं० दे० "थूथन"।

थून–संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूणा] थूनी। चाँड़। खंभा। उ०—प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि। जनु हिरदय गुनग्राम थून थिर रोपहिं।—तुलसी।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का मोटा पौंडा या गन्ना जो मदरास में होता है। मदरासी पौंडा।

थूना–संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का लोंदा जिसमें परेता खोंस कर सूत या रेशम फेरते हैं।

थूनि†–संज्ञा स्त्री० दे० "थूनी"।

थूनी–संज्ञा स्त्री० [स्थूणा] (१) लकड़ी आदि का गड़ा हुआ खड़ा बल्ला। खंभा। स्तंभ। थम। (२) वह खंभा जो किसी बोझ को रोकने के लिये नीचे से लगाया जाय। चाँड़। सहारे का खंभा।

क्रि० प्र०—लगाना।

थ्यावस-संज्ञा पुं० [स्थैयस] (१) स्थिरता। ठहराव। (२) धीरता धैर्य। उ०— (क) विन पावस तो इन्हें थ्यावस है न सु क्यों करिये अब सो परसैं। बदरा बरसैं ऋतु में घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।—आनंदघन। (ख) ज्यों कहलाय मसूसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सो धरे नहिं थ्यावस। —आनंदघन।

द

द-संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में अठारहवाँ व्यंजन जो तवर्ग का तीसरा वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है; दंतमूल में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। यह अल्पप्राण है और इसमें संवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रयत्न होते हैं।

दंग-वि० [फ़ा०] विस्मित। चकित। आश्चर्यान्वित। स्तब्ध।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

संज्ञा पुं० (१) घबराहट। भय। डर। उ०—जब रथ साजि चढ़ौ रण सम्मुख जीय न आनो दंग। राघव सेन समेत सँघारों करौं रुधिरमय अंग।—सूर। (२) दे० "दंगा"।

दंगई-वि० [हिं० दंगा] (१) दंगा करनेवाला। उपद्रवी। लड़ाका। झगड़ालू। (२) प्रचंड। उग्र। (३) दंगली। बहुत बड़ा। लंबा चौड़ा। भारी।

दंगल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मल्लों का युद्ध। पहलवानों की वह कुश्ती जो जोड़ बद कर हो और जिसमें जीतनेवाले को इनाम आदि मिले। (२) अखाड़ा। मल्ल युद्ध का स्थान।

मुहा०— दंगल में उतरना=कुश्ती लड़ने के लिये अखाड़े में आना।

(३) जमावड़ा। समूह। समाज। जमात। दल। उ०— सावन नित संतन के घर में, रति मति सियवर में। नित बसंत नित होरी मंगल, जैसी बस्ती तैसोइ जंगल, दल बादल से जिनके दंगल पगे रहे की झर में।—देवस्वामी।

क्रि० प्र०—जमाना।—बाँधना।

(४) बहुत मोटा गद्दा या तोशक। उ०—(क) अहलकार हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, वह दंगल पर रहता था, खाना एक बड़ी सी कुरसी पर चुना जाता था।—शिवप्रसाद। (ख) बावर्ची जब छुट्टी पाता तो..........किसी बड़े दंगल पर पाँव फैला कर लंबा पड़ जाता।—शिवप्रसाद।

दंगवारा-संज्ञा पुं० [हिं० दंगल+वारा] वह सहायता जो किसी गाँव के किसान एक दूसरे को हल बैल आदि देकर देते हैं। जिता। हरसीत।

दंगा-संज्ञा पुं० [फ़ा० दंगल] (१) झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। उ०—खेलन लाग बालकन संगा। जब तब करिय सबन ते दंगा।—विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—दंगा फसाद।

(२) गुल गपाड़ा। हुल्लड़। शोर गुल। उ०—शीश पर गंगा हँसैं भुजन भुजंगा हँसैं हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।—पद्माकर।

दंगैत-वि० [हिं० दंगा+ऐत (प्रत्य०)] (१) दंगा करनेवाला। उपद्रवी। (२) बागी। बलवाई।

दंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) डंडा। सोंटा। लाठी।

विशेष—स्मृतियों में आश्रम और वर्ण के अनुसार दंड धारण करने की व्यवस्था है। उपनयन संस्कार के समय मेखला आदि के साथ ब्रह्मचारी को दंड भी धारण कराया जाता है। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों की व्यवस्था है। ब्राह्मण को बेल या पलाश का दंड केशांत तक ऊँचा, क्षत्रिय को बरगद या खैर का दंड ललाट तक और वैश्य को गूलर या पलाश का दंड नाक तक ऊँचा धारण करना चाहिए। गृहस्थों के लिये मनु ने बाँस का डंडा या छड़ी रखने का आदेश दिया है। संन्यासियों में कुटीचक और बहूदक को त्रिदंड [तीन दंड], हंस को एक वेणुदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिए। (निर्णयसिंधु)। पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है। कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे दंड आदि धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। राजा लोग शासन और प्रताप-सूचक एक प्रकार का राजदंड धारण करते थे।

मुहा०—दंड ग्रहण करना=संन्यास लेना। विरक्त या संन्यासी हो जाना।

(२) डंडे के आकार की कोई वस्तु। जैसे, भुजदंड, शुंडादंड, वेतसदंड, मेरुदंड, इक्षुदंड इत्यादि। (३) एक प्रकार की कसरत जो हाथ पैर के पंजों के बल औंधे होकर की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—पेलना।—मारना।—लगाना।

यौ०—दंडपेल। चक्रदंड।

(४) भूमि पर औंधे लेट कर किया हुआ प्रणाम। दंडवत्।

यौ०—दंड प्रणाम।

(५) एक प्रकार का व्यूह। दे० "दंडव्यूह"। (६) किसी अपराध के प्रतिकार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या

थैली-संज्ञा स्त्री० [हिं० थैला] (१) छोटा थैला। कोश। कीसा। बटुआ। (२) रुपयों से भरी हुई थैली। तोड़ा।

मुहा०—थैली खोलना = थैली में से निकाल कर रुपया देना। उ०—तब ग्रानिय ब्योहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।—तुलसी

थैलीदार-संज्ञा पुं० [हिं० थैली + फा० दार] (१) वह आदमी जो खजाने में रुपए उठाता है। (२) तहवीलदार। रोकड़िया।

थैलीबरदारी-संज्ञा स्त्री० [उ०] थैली उठाकर पहुँचाने का काम। थैलियों की ढोआई।

थोक-संज्ञा पुं० [सं० स्तोमक, प्र० थोवँक, हिं० थोक] (१) ढेर। राशि। अटाला। (२) समूह। झुंड। जत्था।

मुहा०—थोक करना = इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—द्रुम चढ़ि काहे न टेरौ कान्हा गैयाँ दूरि गईं।.........बिहरत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक भई। छाँड़ि खेल सब दूरि जात हैं बोलै जो सकै थोक कई।—सूर।

(३) बिक्री का इकट्ठा माल। इकट्ठा बेचने की चीज़। खुदरा का उलटा। जैसे, हम थोक के खरीदार हैं। (४) जमीन का टुकड़ा जो किसी एक आदमी का हिस्सा हो। चक। (५) इकट्ठी वस्तु। कुल। (६) वह स्थान जहाँ कई गावों की सीमाएँ मिलती हों। वह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें।

थोकदार-संज्ञा पुं० [हिं० थोक + फा० दार] इकट्ठा माल बेचनेवाला व्यापारी।

थोड़ा-वि० [सं० स्तोक, पा० थोअ + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० थोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में अधिक न हो। न्यून। अल्प। कम। तनिक। जरा सा। जैसे, (क) थोड़े दिनों से वह बीमार है। (ख) मेरे पास अब बहुत थोड़े रुपए रह गए हैं।

यौ०—थोड़ा बहुत = कुछ। कुछ कुछ। किसी कदर। जैसे, थोड़ा बहुत रुपया उनके पास जरूर है।

मुहा०—थोड़ा थोड़ा होना = लज्जित होना। संकुचित होना।

क्रि० वि० अल्प परिमाण या मात्रा में। ज़रा। तनिक। उ०—थोड़ा चलकर देख लो।

मुहा०—थोड़ा ही = नहीं। बिल्कुल नहीं। जैसे, हम थोड़ा ही जायँगे, जो जाय उससे कहो। (बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझ कर दूसरा कोई बात कहता है।)

थोती-संज्ञा स्त्री० [देश०] चौपायों के मुँह का अगला भाग। थूथन।

थोथ-संज्ञा स्त्री० [हिं० थोथा] (१) खोखलापन। निःसारता। (२) तोंद। पेटी।

थोथरा-वि० [हिं० थोथा] (१) घुन वा कीड़ों का खाया हुआ। खोखला। खाली। (२) निःसार। जिसमें कुछ तत्त्व न हो। (३) निकम्मा। व्यर्थ का। जो किसी काम का न हो।

थोथा-वि० [देश०] [स्त्री० थोथी] (१) जिसके भीतर कुछ सार न हो। खोखला। खाली। पोला। जैसे, थोथा चना, बाजे घना। (२) जिसकी धार तेज न हो। कुंठित। गुठला। जैसे, थोथा तीर। (३) (साँप) जिसकी पूँछ कट गई हो। बाँड़ा। बे दुम का। (४) भद्दा। बेढंगा। व्यर्थ का। निकम्मा।

मुहा०—थोथी बात = भद्दी बात। व्यर्थ की बात। व्यर्थ का प्रलाप।

संज्ञा पुं० बरतन ढालने का मिट्टी का साँचा।

थोथी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

थोपड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० थोपना] चपत। धौल।

यौ०—गनेस थोपड़ी = लड़कों का एक खेल जिसमें जो चोर होता है उसकी आँखें बंद करके उसके सिर पर सब लड़के बारी बारी चपत लगाते हैं। यदि चपत खानेवाला लड़का ठीक ठीक बतला देता है कि किसने पहले चपत लगाई तो वह पहले चपत लगानेवाला लड़का चोर हो जाता है।

थोपना-क्रि० स० [सं० स्थापन, हि० थापन] (१) किसी गीली चीज़ (जैसे, मिट्टी, आटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना या रखना। किसी गीली वस्तु का लोंदा यों ही ऊपर डाल देना या जमा देना। पानी में सनी हुई वस्तु के लोंदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैला कर डालना कि वह उसपर चिपक जाय। छोपना। जैसे, घड़े के मुँह पर मिट्टी छोप दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) तवे पर रोटी बनाने के लिये योंही बिना गढ़े हुए गीला आटा फैला देना। (३) मोटा लेप चढ़ाना। लेव चढ़ाना। (४) आरोपित करना। मत्थे मढ़ना। लगाना। जैसे, किसी पर दोष थोपना। (५) आक्रमण आदि से रक्षा करना। बचाना। दे० "छोपना"।

थोपी †-संज्ञा स्त्री० [हिं० थोपना] चपत। धौल। चपेट। थोपड़ी।

थोबड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] थूथन। जानवरों का निकला हुआ लंबा मुँह।

थोब रखना- क्रि० स० [लश०] जहाज को धार पर चढ़ाना।

थोर †-संज्ञा पुं० [देश०] (१) केले की पेड़ी के बीच का गाभा। (२) थूहर का पेड़।

वि० दे० "थोड़ा"।

थोरा † *-वि० दे० "थोड़ा"।

थोरिक † *-वि० [हिं० थोरा + एक] थोड़ा सा। तनिक सा।

थोरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक हीन अनार्य जाति।

वि० स्त्री० दे० "थोरा"।

दंडकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] ढोलक।

दंडगौरी–संज्ञा स्त्री [सं०] एक अप्सरा का नाम।

दंडघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) डंडे से मारनेवाला। दूसरे के शरीर पर आघात पहुँचानेवाला। (२) दंड को न माननेवाला। राजा जिस दंड की व्यवस्था करे उसका भंग करनेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि चोर, पर-स्त्री-गामी, दुष्ट वचन बोलनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है।

दंडढक्का–संज्ञा पुं० [सं०] दमामा नगारा। धौंसा।

दंडताम्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जलतरंग बाजा जिसमें ताँबे की कटोरियाँ काम में लाई जाती हैं।

दंडदास–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दंड का रुपया न दे सकने के कारण दास हुआ हो। वह जो जुरमाने का रुपया नौकरी करके चुकाता हो।

दंडधर–वि० [सं०] डंडा रखनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) यमराज। (२) शासनकर्त्ता। (३) संन्यासी।

दंडधार–वि० [सं०] डंडा रखनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) यमराज। (२) राजा। (३) एक राजा का नाम जो महाभारत में दुर्योधन की ओर था और अर्जुन से लड़कर मारा गया था। (४) पांचालवंशीय एक योद्धा जो पांडवों की ओर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था।

दंडन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने की क्रिया। शासन।

दंडना–क्रि० स० [सं० दंडन] दंड देना। शासित करना। सजा देना। उ०—सुभग सुन्दर दनत त्रिविध कर्मनि गनत मोहि दंडत धर्मदूत हारे।—सूर।

दंडनायक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेनापति। (२) दंड विधान करनेवाला राजा या हाकिम। (३) सूर्य्य के एक अनुचर का नाम।

दंडनीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] दंड देकर अर्थात् पीड़ित कर के शासन में रखने की राजाओं की नीति। सेना आदि के द्वारा बल-प्रयोग करने की विधि।

दंडनीय–वि० [सं०] दंड देने योग्य।

दंडपाणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यमराज। (२) काशी में भैरव की एक मूर्त्ति।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूर्णभद्र नामक एक यक्ष को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था। एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पार्वती सहित इसके पास आए और बोले "तुम काशी के दंडधर हो। वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का पालन करो। संभ्रम और उद्भ्रम नाम के मेरे दो गण तुम्हारी सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा।"

दंडपात–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी को नींद नहीं आती, वह इधर उधर पागल की तरह घूमता है।

दंडपारुष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरे के शरीर पर हाथ डंडे आदि से आघात करने, धूल मैला आदि फेंकने का दुष्ट कार्य्य। मार पीट। (स्मृति)। (२) राजाओं के सात व्यसनों में से एक।

दंडपाल–संज्ञा पुं० दे० "दंडपालक"।

दंडपालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ड्योढ़ीदार। दरबान। द्वारपाल। (२) एक प्रकार की मछली। दाँड़िका मछली।

दंडपाशक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी। (२) घातक। जल्लाद।

दंडप्रणाम–संज्ञा पुं० [सं०] भूमि में डंडे के समान पड़ कर प्रणाम करने की मुद्रा। दंडवत्। सादर अभिवादन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दंडवालधि–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

दंडभृत्–वि० [सं०] डंडा रखनेवाला। डंडा चलाने या घुमानेवाला।

संज्ञा पुं० कुम्हार। कुंभकार।

दंडमत्स्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जो देखने में डंडे या साँप के आकार की होती है। वाम मछली।

दंडमाथ–संज्ञा पुं० [सं०] सीधा रास्ता। प्रधान पथ।

दंडमानव–संज्ञा पुं० [सं०] (वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो)। बालक। लड़का।

दंडमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंत्र की एक मुद्रा जिसमें मुट्ठी बाँध कर बीच की उँगली ऊपर को खड़ी करते हैं। (२) साधुओं के दो चिह्न, दंड और मुद्रा।

दंडयात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना की चढ़ाई। (२) दिग्विजय के लिये प्रस्थान। (३) वरयात्रा। बारात।

दंडयाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यम। (२) दिन। (३) अगस्त्य मुनि।

दंडरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी। डँगरी फल।

दंडवत्–संज्ञा पुं०। स्त्री० [सं०] साष्टांग प्रणाम। पृथ्वी पर लेटकर किया हुआ नमस्कार। उ०— मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आशिरबाद विप्र बर दीन्हा।—तुलसी।

विशेष—पूरब में इस शब्द को पुल्लिंग बोलते हैं पर दिल्ली की ओर यह शब्द स्त्रीलिंग बोला जाता है।

दंडवासी–संज्ञा पुं० [सं० दंडवासिन्] (१) द्वारपाल। दरबान। (२) गाँव का हाकिम या मुखिया।

हानि। कोई भूल चूक या बुरा काम करनेवाले के प्रति वह कठोर व्यवहार जो उसे ठीक करने या उसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा कराने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदारुक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम, दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ हिंदू शास्त्रों में कही गई हैं। अपने देश में प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा आश्रय लेता है उसका विस्तृत वर्णन स्मृतिग्रंथों में है। ऐसे दंड की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, जैसे, वध, सर्वस्वहरण, देश निकाला, अंगच्छेद इत्यादि), माध्यम साहस और प्रथम साहस। अग्निपुराण तथा अर्थशास्त्र में अन्य देशों के प्रति काम में लाई जानेवाली दंडविधि का भी उल्लेख है, जैसे, लूटना, आग लगाना, आघात पहुँचाना, बस्ती उजाड़ना इत्यादि।

(७) अर्थदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुरमाना। डाँड़।

क्रि॰ प्र॰—लगाना।—देना।—लेना।

मुहा॰—दंड डालना=(१) जुरमाना करना। अर्थदंड लगाना। (२) कर लगाना। महसूल लगाना। दंड पड़ना=हानि होना। नुकसान होना। घाटा होना। जैसे, घड़ी किसी काम की न निकली, उसका रुपया दंड पड़ा। दंड भरना=(१) जुरमाना देना। (२) दूसरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या भुगताना=(१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड सहना। (२) जान बूझ कर व्यर्थ कष्ट उठाना। दंड सहना=नुकसान उठाना। घाटा सहना।

विशेष—स्मृतियों में अर्थदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं—प्रथम साहस—ढाई सौ पण तक; मध्यम साहस—पाँच सौ पण तक और उत्तम साहस—एक हजार पण तक।

(८) दमन। शासन। वश। शमन।

विशेष—संन्यासियों के लिये तीन प्रकार के दंड रखे गए हैं—वाग्दंड—वाणी को वश में रखना। मनोदंड—मन को चंचल न होने देना, अधिकार में रखना। कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास कराना। संन्यासियों का त्रिदंड इन्हीं तीन दंडों का सूचक चिह्न है।

(९) ध्वजा या पताका का बाँस। (१०) तराजू की डंडी। डाँड़ी। (११) मथानी। (१२) किसी वस्तु (जैसे, करछी, चम्मच आदि) की डंडी। (१३) हल की लंबी लकड़ी। (१४) जहाज या नाव का मस्तूल। (१५) एक योग का नाम। (१६) लंबाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। (१७) इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रों में से एक जिनके नाम के कारण दंडकारण्य नाम पड़ा। (हरिवंश) (१८) कुवेर के एक पुत्र का नाम। (१९) (दंड देनेवाले) यम। (२०) विष्णु। (२१) शिव। (२२) सेना। फौज। (२३) अश्व। घोड़ा। (२४) साठ पल का काल। घड़ी। २४ मिनट का समय। (२५) वह आँगन जिसके पूर्व और उत्तर कोठरियाँ हों।

दंडकंदक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धरणीकंद। सेमर का मुसला।

दंडक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) डंडा। (२) दंड देनेवाला पुरुष। शासक। (३) छंदों का एक वर्ग। वह छंद जिसमें वर्णों की संख्या २६ से अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है एक गणात्मक, दूसरा मुक्तक। गणात्मक वह है जिसमें गणों का बंधन होता है अर्थात् किस गण के उपरांत फिर कौन गण आना चाहिए इसका नियम होता है। जैसे, कुसुमस्तवक, त्रिभंगी, नीलचक्र इत्यादि। उ॰—(नीलचक्र) जानि कै समै भवाल, रामराज साज साजि ता समै अकाज काज कैकई जु कीन। भूप तें हराय बैन राम सीय बंधु युक्त बोलि कै पठाय बेगि काननै सुदीन।

मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरों की गिनती होती है अर्थात् जो गणों के बंधन से मुक्त होता है। किसी किसी में कहीं कहीं लघु गुरु का नियम होता है। हिंदी काव्य में जो कवित्त (मनहर) और घनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। उ॰—(मनहर कवित्त) आनँद के कंद जग ज्यावन जगतवंद दशरथनंद के निवाहेई निवहिए। कहैं पदमाकर पवित्रपन पालिवे कों चोर चक्रपाणि के चरित्रन कों चहिए।

(४) इक्ष्वाकु राजा के एक पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरु की कन्या का कौमार्य्य भंग किया। इस पर शुक्राचार्य्य ने शाप देकर उन्हें इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जंगल होगया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

(५) दंडकारण्य। (६) एक प्रकार का वात रोग जिसमें हाथ पैर पीठ कमर आदि अंग स्तब्ध होकर ऐंठ से जाते हैं। (७) शुद्ध राग का एक भेद।

दंडकला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक छंद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें जगण न आना चाहिए।—फल फूलनि ल्यावै, हरिहिं सुनावै, है या लायक भोगन की। अरु सब गुन पूरी, स्वादनि रूरी, हरनि अनेकन रोगन की।

दंडकारण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह प्राचीन वन जो विंध्य पर्वत से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस वन में श्रीरामचंद्र वनवास के काल में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पणखा के नाक-कान कटे थे और सीताहरण हुआ था।

छठी शताब्दी में दंडी हुए थे। इतना तो निश्चय है कि ये कालिदास और शूद्रक आदि के पीछे के हैं। इनकी वाक्य-रचना आडंबरपूर्ण है।

दंडोत्पल-संज्ञा पुं० [सं०.] एक पौधे का नाम जिसे कुछ लोग गूमा, कुछ लोग कुकरौंधा और कुछ लोग बड़ी सहदेया समझते हैं।

दंडोत्पला-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंडोत्पल।

दंड्य-वि० [सं०] दंड पाने योग्य। जिसे दंड देना उचित हो।

दंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत।

यौ०—दंतकथा।

(२) ३२ की संख्या। (३) गाँव के हिस्सों में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कौड़ियों में दाँत के चिह्न होते हैं इसी से यह संख्या बनी है)। (४) कुंज। (५) पहाड़ की चोटी।

दंतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत। (२) पहाड़ की चोटी। (३) पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर।

दंतकथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों, और जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। जनश्रुति। उ०—इति वेद वदंति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा।—तुलसी।

दंतकर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नीबू।

दंतकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] दतुवन। दतून। मुखारी।

दंतकाष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] आहुल्य वृक्ष। तरवट का पेड़।

दंतकूर-संज्ञा पुं० [सं०.] युद्ध। संग्राम।

दंतघर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत पर दाँत दबाकर घिसने की क्रिया। दाँत किरकिराना।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे लोग अशुभ समझते हैं। रोगी के पक्ष में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ। ओंठ।

दंतच्छदोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिंबाफल। कुँदरू।

दंतजात-वि० [सं०] (१) (बच्चा) जिसे दाँत निकल आए हों। (२) दाँत निकलने के योग्य (काल)।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें तो अशौच लगता है।

दंतताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्राचीन बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

दंतदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध या चिड़चिड़ाहट में दाँत निकालने की क्रिया।

विशेष-महाभारत में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिखाए जाते हैं फिर शब्द कर के वार किया जाता है। (वन प०)।

दंतधावन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत धोने या साफ़ करने का काम। दातुन करने की क्रिया। (२) दतौन। दातुन। (३) खैर का पेड़। खदिरवृक्ष। (४) करंज का पेड़। (५) मौलसिरी।

दंतपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक गहना।

दंतपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदपुष्प।

दंतपवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत शुद्ध करने की क्रिया। दंतधावन। (२) दतुवन। दातन।

दंतपार-संज्ञा स्त्री० [हिं० दंत + उपारना] दाँत की पीड़ा। दाँत का दर्द।

दंतपुप्पुट-संज्ञा पुं० [सं०] मसूड़ों का एक रोग जिसमें वे सूज जाते हैं और दर्द करते हैं।

दंतपुर-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर जहाँ पर राजा ब्रह्मदत्त ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके उसके ऊपर एक बड़ा मंदिर बनवाया था। यह दंतपुर कहाँ था इसके संबंध में मतभेद है। डाक्टर राजेंद्रलाल का मत है कि मेदिनीपुर जिले में जलेश्वर से ६ कोस दक्खिन जो दाँतन नामक स्थान है वही बौद्धों का प्राचीन दंतपुर है। सिंहली बौद्धों के दाठावंश नामक ग्रंथ में दंतपुर के संबंध में बहुत सा वृत्तांत दिया हुआ है।

दंतपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निर्मली। (२) कुंद का फूल।

दंतफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कनकफल। निर्मली। (२) कपित्थ। कैथ।

दंतफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली।

दंतमांस-संज्ञा पुं० [सं०] मसूड़ा।

दंतमूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत की जड़। (२) दाँत का एक रोग।

दंतमूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंतीवृक्ष। जमाल गोटे का पेड़।

दंतमूलीय-वि० [सं०] दंतमूल से उच्चारण किया जानेवाला (वर्ण), जैसे तवर्ग।

दंतलेखन-संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जिससे दाँत की जड़ के पास मसूड़े को चीर कर मवाद आदि निकालते हैं जिससे दाँत की पीड़ा दूर होती है। दंतशर्करा नामक रोग में इस अस्त्र का प्रयोजन होता है।

दंतवक्र-संज्ञा पुं० [सं०] करूष देश का राजा जो वृद्धशर्म्मा का पुत्र था। यह शिशुपाल का भाई लगता था और श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था।

दंतवल्क-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत की जड़ के ऊपर का मांस। मसूड़ा।

दंतवस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ। ओंठ।

दंडविधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराधों के दंड से संबंध रखनेवाला नियम या व्यवस्था। जुर्म और सजा का कानून।

दंडवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। सेंहुड़।

दंडव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] सेना की डंडे के आकार की स्थिति जिसमें आगे बलाध्यक्ष, बीच में राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे। मनुस्मृति में इस व्यूह का उल्लेख है। अग्निपुराण में इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्य्यग्वृत्ति आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं।

दंडस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दंड पहुँचाया जा सकता है।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—उपस्थ, उदर, जिह्वा, दोनों हाथ, दोनों पैर, आँख, नाक, कान, धन और देह। अपराध के अनुसार राजा नाक कान आदि काट सकता है या धन हरण कर सकता है।

दंडहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] तगर का फूल।

दंडा–संज्ञा पुं० दे० "डंडा"।

दंडाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] चंपा नदी के किनारे का एक तीर्थ। (महाभारत)।

दंडाजिन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधु संन्यासियों के धारण करने का दंड और मृगचर्म। (२) झूठमूठ का आडंबर। धोखेबाजी का ढकोसला। कपट वेश।

दंडादंडि–संज्ञा स्त्री० [सं०] डंडों की मारपीट। लट्ठबाजी।

दंडापतानक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वात-व्याधि जिसमें कफ और वात के बिगड़ने से मनुष्य का शरीर सूखे काठ की तरह जड़ हो जाता है।

दंडापूपन्याय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय वा दृष्टांत कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य्य हो गया तब उसके साथ ही लगा हुआ सहज और सुखकर कार्य्य अवश्य ही हुआ होगा। जैसे यदि डंडे में बँधा हुआ मालपूआ कहीं रक्खा हो और पीछे मालूम हो कि डंडे को चूहे खा गए तो यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि चूहे मालपूए को पहले ही खा गए होंगे।

दंडायमान–वि० [सं०] डंडे की तरह सीधा खड़ा। खड़ा।
क्रि० प्र०—होना।

दंडालय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) न्यायालय जहाँ से दंड का विधान हो। (२) वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय। जैसे, जेलखाना (३) एक छंद जिसे दंडकला भी कहते हैं। दे० "दंडकला"।

दंडाहत–वि० [सं०] डंडे से मारा हुआ।
संज्ञा पुं० छाछ। मट्ठा।

दंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण के उपरांत एक जगण इस प्रकार गणों का जोड़ा तीन बार आता है और अंत में गुरु लघु होता है। इसे वृत्त और गड़का भी कहते हैं। उ०—रोज रोज राजगैल तें लिए गुपाल ग्वाल तीन सात। वायु सेवनार्थ प्रात बाग जात आव लै सुफूल पात।

दंडित–वि० पुं० [सं०] दंड पाया हुआ। जिसे दंड मिला हो। सजायाफ्ता।

दंडिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दंडोत्पला। एक प्रकार का साग।

दंडी–संज्ञा पुं० [सं० दंडिन्] (१) दंड धारण करनेवाला व्यक्ति। (२) यमराज। (३) राजा। (४) द्वारपाल। (५) वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे।

विशेष—ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है। यद्यपि पिता, माता, स्त्री पुत्र आदि के रहते भी दंड लेने का निषेध है पर लोग ऐसा करते हैं। मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सब संस्कार (अन्न-प्राशन आदि) फिर से करते हैं। उसकी शिखा मूँड़ दी जाती है और जनेऊ उतार कर भस्म कर दिया जाता है। पहला नाम भी बदल दिया जाता है। इसके उपरांत दशाक्षर मंत्र देकर गुरु गेरुवा वस्त्र और दंड कमंडलु देते हैं। इन सब को गुरु से प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवन पर्य्यंत कुछ नियमों का पालन करता है। दंडी लोग गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कभी कभी भस्म और रुद्राक्ष भी धारण करते हैं। दंडी लोग अग्नि और धातु का स्पर्श नहीं करते इससे अपने हाथ से रसोई नहीं बना सकते। किसी ब्राह्मण के घर से पक्का भोजन माँग कर खा सकते हैं। दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है। इन सब नियमों का बारह वर्ष तक पालन करके अंत में दंड को जल में फेंक कर दंडी परमहंस आश्रम को प्राप्त करता है। दंडियों के लिये निर्गुण ब्रह्म की उपासना की व्यवस्था है। जिनसे यह उपासना न हो सके वे शिव आदि की उपासना कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के शव का दाह नहीं होता, या तो शव मिट्टी में गाड़ दिया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। काशी में बहुत से दंडी दिखाई पड़ते हैं।

(६) सूर्य्य के एक पार्श्वचर का नाम। (७) जिन देव। (८) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (९) दमनक वृक्ष। दौने का पौधा। (१०) मंजुश्री। (११) शिव। महा-देव। (१२) संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दो ग्रंथ मिलते हैं 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे, पर तीसरे का पता आज कल नहीं लगता। अनेक लोगों का मत है कि ईसा की

उभरी हुई वस्तुओं की पंक्ति। शंकु या कंगूरे के रूप में निकली हुई चीजों की कतार, जैसी कंघी या आरे आदि में होती है।

दंदानेदार—वि०[फ़ा०] जिसमें दंदाने हों। जिसमें दाँत की तरह निकले हुए कंगूरों की पंक्ति हो।

दंदारू—संज्ञा पु० [हिं० दंद + आरू (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दंदी—वि० [हिं० दंद] झगड़ालू। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। हुज्जती।

दंपति—संज्ञा पु० दे० "दंपती"।

दंपती—संज्ञा पु० [सं०] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति-पत्नी का जोड़ा।

दंपा*—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमकना] बिजली। उ०—चोथते चकोर चहूँ ओर जानि चंदमुखी जो न होती डरनि हसन दुति दंपा की।—पूरवी।

दंभ—संज्ञा पु० [सं०] [वि० दंभी] (१) महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा आडंबर। धोखे में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। (२) झूठी ठसक। अभिमान। घमंड।

दंभक—संज्ञा पु० [सं०] पाखंडी। ढकोसलेबाज़। प्रतारक।

दंभी—वि० [सं० दंभिन्] (१) पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। ढकोसलेबाज़। (२) झूठी ठसकवाला। अभिमानी। घमंडी।

दंभोलि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रास्त्र। वज्र। उ०—मत्त मातंग बल अंग दंभोलि दल काछिनी लाल गजमाल सोहै।—सूर।

दंवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन, हिं० दौंवना] अनाज के सूखे डंठलों में से दाना झाड़ने के लिये उसे बैलों से रौंदवाने का काम।

क्रि० प्र०—नाधना।

दंश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह घाव जो दाँत काटने से हुआ हो। दंतक्षत। (२) दाँत काटने की क्रिया। दंशन। (३) साँप या और किसी विषैले जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश। (४) आक्षेप-वचन। बौछार। व्यंग्य। कटूक्ति। (५) द्वेष। वैर।

क्रि० प्र०—रखना।

(६) दाँत। (७) विषैले जंतुओं का डंक। (८) एक प्रकार की मक्खी जिसके डंक विषैले होते हैं। डाँस। बगदर। उ०—मसक दंश बीते हिमि त्रासा।—तुलसी।

पर्य्या०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। अंमरालिका। पांशुर। दुष्टमुख। क्रूर।

(९) वर्म। बकतर। (१०) एक असुर जिसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग में दंश नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इस पर भृगु ने उसे शाप दिया कि "तू मल-मूत्र का कीड़ा हो जा" शाप से डर कर जब असुर बहुत गिड़गिड़ाने लगा तब भृगु ने कहा—"मेरे वंश में जो राम (परशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे।" वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ। कर्ण जब परशुराम से अस्त्र-शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कर्ण के जंघे पर सिर रख कर परशुराम सो गए। ठीक उसी समय वह कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ में काटने लगा। कर्ण ने गुरु की निद्रा भंग होने के डर से जाँघ नहीं हटाई। जब जाँघ में से रक्त की धारा निकली तब परशुराम की नींद टूटी और उन्होंने उस कीड़े की ओर ताका। उनके ताकते ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीट-शरीर छोड़ा और वह अपने पूर्व रूप में आ गया।

दंशक—संज्ञा पु० [सं०] (१) वह जो काट खाय। दाँत से काटनेवाला। (२) डाँस नाम की मक्खी जो बड़े ज़ोर से काटती है।

दंशन—संज्ञा पु०[सं०] [वि० दंशित, दंशी] (१) दाँत से काटना। डसना। जैसे, सर्पदंशन।

क्रि० प्र०—करना।

(२) वर्म। बकतर।

दंशभीरु—संज्ञा पु० [सं०] महिष। भैंसा। (भैंसों को मच्छड़ और डाँस बहुत लगते हैं)

दंशमूल—संज्ञा पु० [सं०] सहँजन का पेड़। शोभांजन।

दंशित—वि० [सं०] (१) दाँत से काटा हुआ। (२) वर्म से आच्छादित। बकतर से ढका हुआ।

दंशी—वि० [सं० दंशिन्] [स्त्री० दंशिनी] (१) दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। (२) आक्षेप वचन कहनेवाला। कटूक्ति कहनेवाला। (३) द्वेषी। वैर या कसर रखनेवाला।

संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दंश। छोटा डाँस।

दंष्ट्र—संज्ञा पु० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोटे दाँत। स्थूल दाँत। दाढ़। चौभर। (२) वृश्चिकाली। बिछुआ नाम का पौधा जिसमें रोईंदार फल लगते हैं।

दंष्ट्रानखविष—संज्ञा पु० [सं०] वह जंतु जिसके नख और दाँत में विष हो। जैसे, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मेढ़क, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्रायुध—संज्ञा पु० [सं०] (वह जिसका अस्त्र दाँत हो)- शूकर। सूअर।

दंष्ट्राल—वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं० एक राक्षस का नाम।

दंष्ट्री—वि० [सं० दंष्ट्रिन्] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

संज्ञा पु० (१) सूअर। (२) साँप।

दंस*—संज्ञा पु० दे० "दंश"।

द—संज्ञा पु० [सं०] (१) पर्वत, पहाड़। (२) दाँत। (३) दाता विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार।

दंतवैदर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग।

दंतशंकु—संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ फाड़ का एक औजार जो जौ के पत्तों के आकार का होता था। (सुश्रुत)

दंतशठ—संज्ञा पुं० [सं०] वे वृक्ष जिनके फल खाने से खटाई के कारण दाँत गुठले हो जायँ। जैसे, कैथ, कमरख, जंभीरी नीबू इत्यादि।

दंतशठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खट्टी नोनिया। अमलोनी। (२) चुक। चूक।

दंतशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँतों का एक रोग जो मैल जम कर बैठ जाने के कारण होता है।

दंतशाण—संज्ञा पुं० [सं०] मिस्सी। स्त्रियों के लगाने का रंगीन मंजन।

दंतशूल—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत की पीड़ा।

दंतशोफ—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा। दंतार्बुद।

दंतहर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों की वह टीस जो अधिक ठंढी या खट्टी वस्तु लगने से होती है। दाँतों का खट्टा होना।

दंतहर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] जंभीरी नीबू।

दंताघात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत का आघात। (२) (वह जिससे दाँत को आघात पहुँचे) नीबू।

दंतादंति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दूसरे को दांत से काटने की क्रिया या लड़ाई।

दंताज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत की जड़ या संधि में पड़नेवाले कीड़े। (२) दाँत का रोग जो इन कीड़ों के कारण होता है।

दंतायुध—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर। जंगली सूअर।

दंतार—वि० [हिं० दाँत + आर (प्रत्य०)] बड़े दाँतोंवाला।

संज्ञा पुं० हाथी।

दंतार्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।

दंताल—संज्ञा पुं० [हिं० दँतार] हाथी।

दंतालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम।

दंताली—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम।

दंतावल—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

दंताहल *—संज्ञा पुं० [सं० दंतावल] हाथी। (डिं०)

दंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती। जमालगोटा।

दंतिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

दंतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत।

दंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडी की जाति का एक पेड़। दंती दो प्रकार की होती है—लघुदंती और बृहद्दंती। लघुदंती के पत्ते गूलर के पत्तों के ऐसे होते हैं और बृहद्दंती के एरंड या अंडी के से। इसके बीज दस्तावर होते हैं और जमालगोटे के स्थान पर औषध में काम आते हैं। वैद्यक में दंती कटु, उष्ण, तृषा शूल बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है। दंती के बीज अधिक मात्रा में देने से विष का काम करते हैं।

पर्या०—शीघ्रा। निकुंभी। नागस्फोटा। दंतिनी। उपचित्रा। भद्रा। रुद्रा। रेचनी। अनुकूला। निःशल्या। विशल्या। मधुपुष्पा। एरंडफला। तरणी। एरंडपत्रिका। विशोधनी। कुंभी। उदुंबरदला। प्रत्यक्पर्णी।

दंतुर—वि० [सं०] जिसके दाँत आगे निकले हों। दंतुला। दाँतू।

संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) सूअर।

दँतुरच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

दँतुरियाँ † *संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत] बच्चों के छोटे छोटे दाँत।

दँतुला—वि० [सं० दंतुर] [स्त्री० दँतुली] जिसके दाँत आगे निकले हों। बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंतोलूखलिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के संन्यासी जो ओखली आदि में कूटा हुआ अन्न नहीं खाते। ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित अनाज के दानों को दाँत के नीचे कुचलकर खाते हैं।

दंतोष्ठ्य—वि० [सं०] (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत और ओंठ से हो।

विशेष—ऐसा वर्ण "व" है।

दंत्य—वि० [सं०] (१) दंतसंबंधी। (२) (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो। जैसे तवर्ग। (३) दाँतों का हितकारी (औषध)।

दंद—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन, दंदह्यमान्] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी, जैसी कि तपी हुई भूमि पर मेंह का पानी पड़ने से निकलती है या खानों के भीतर पाई जाती है।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।

संज्ञा पुं० [सं० द्वंद्व] (१) लड़ाई झगड़ा। उपद्रव। हलचल। (२) हल्ला गुल्ला। शोर गुल।

क्रि० प्र०—मचाना।

दंदशूक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। (२) राक्षस विशेष।

दंदह्यमान—वि० [सं०] दहकता हुआ।

दंदा—संज्ञा पुं० [देश०] ताल देने का एक प्रकार का पुराना बाजा।

दंदाना—क्रि० अ० [हिं० दंद] (१) गरम लगना। गरमी पहुँचाता हुआ मालूम होना। जैसे, रुई का दंदाना, बंद कोठरी का दंदाना। (२) किसी गरम चीज़ के आस पास होने से गरम होना। जैसे, रजाई या कंबल के नीचे दंदाना।

संज्ञा पुं० [फा०] [वि० दंदानेदार] दाँत के आकार की

दक्ष को सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुईं—श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्त्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती। दक्ष ने इन्हें ब्रह्मा के मानस पुत्रों में बाँट दिया। रुद्र को दक्ष की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गईं। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इस पर महादेव ने क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष को शाप दिया "तुम मनुष्य होकर ध्रुव के वंश में जन्म लोगे" ध्रुव के वंशज प्रचेतागण ने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कंडुकन्या मारिषा के गर्भ से दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने चतुर्विध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। इन्हीं कन्याओं से कश्यप आदि ने सृष्टि चलाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

(२) अत्रि ऋषि। (३) महेश्वर। (४) शिव का बैल। (५) ताम्रचूड़। मुरगा। (६) एक राजा जो उशीनर के पुत्र थे। (७) विष्णु। (८) बल। (९) वीर्य्य।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सती। विशेष—दे॰ "दक्ष"।

दक्षक्रतुध्वंसी—संज्ञा पु॰ [सं॰ दक्षक्रतुध्वंसिन्] (१) महादेव। (२) महादेव के अंश से उत्पन्न वीरभद्र (जिन्होंने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था)।

दक्षता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] निपुणता। योग्यता। कमाल।

दक्षविहिता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का गीत।

दक्षसावर्णि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नवें मनु का नाम।

दक्षा—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] कुशला। निपुणा।

संज्ञा स्त्री॰ पृथ्वी।

दक्षिण—वि॰ [सं॰] (१) दहना। दाहना। बायाँ का उलटा। अपसव्य। (२) इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो। अनुकूल। (३) उस ओर का जिधर सूर्य्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दहिना हाथ पड़े। उत्तर का उलटा।

यौ॰—दक्षिणापथ। दक्षिणायन।

(४) निपुण। दक्ष। चतुर।

संज्ञा पु॰ (१) दक्खिन की दिशा। उत्तर के सामने की दिशा। (२) काव्य या साहित्य में वह नायक जिसका अनुराग अपनी सब नायिकाओं पर समान हो। (३) प्रदक्षिण। (४) तंत्रोक्त एक आचार या मार्ग।

विशेष—कुलार्णव तंत्र में लिखा है कि सब से उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अच्छा वैष्णव मार्ग है, वैष्णव से अच्छा शैव मार्ग है, शैव से अच्छा दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अच्छा वाम मार्ग है और वाम मार्ग से भी अच्छा सिद्धांत मार्ग है।

(५) विष्णु।

दक्षिणगोल—संज्ञा पु॰ [सं॰] विषुवत् रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राशियाँ जो छः हैं—तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) दक्षिण दिशा। (२) वह धन जो ब्राह्मणों या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है। वह दान जो किसी शुभ कार्य आदि के समय ब्राह्मणों को दिया जाय।

क्रि॰ प्र॰—देना।—लेना।

विशेष—पुराणों में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी बतलाया है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि कार्त्तिकी पूर्णिमा की रात को जो एक बार रास महोत्सव हुआ था उसीमें श्रीकृष्ण के दक्षिणांश से दक्षिणा की उत्पत्ति हुई।

(३) पुरस्कार। भेंट। (४) वह नायिका जो नायक के अन्य स्त्रियों से संबंध करने पर भी उससे बराबर वैसी ही प्रीति रखती हो।

दक्षिणाग्नि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] यज्ञ में गार्हपत्याग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि।

दक्षिणाचल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मलयगिरि पर्वत। मलयाचल।

दक्षिणाचार—संज्ञा पु॰ [सं॰] (१) सदाचार। शुद्ध और उत्तम आचरण। (२) तांत्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने आप को शिव मान कर पंच तत्त्व से शिवा की पूजा की जाती है। यह आचार वामाचार से श्रेष्ठ और प्रायः वैदिक माना जाता है।

दक्षिणाचारी—संज्ञा पु॰ [सं॰] विशुद्धाचारी। धर्म्मशील। सदाचारी।

दक्षिणापथ—संज्ञा पु॰ [सं॰] विंध्यपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते जाते हैं।

दक्षिणापरा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नैर्ऋत कोण।

दक्षिणाप्रवण—संज्ञा पु॰ [सं॰] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुआँ हो। मनु के अनुसार श्राद्ध आदि के लिये ऐसा ही स्थान उपयुक्त होता है।

दक्षिणामूर्ति—संज्ञा पु॰ [सं॰] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्त्ति।

दक्षिणायन—वि॰ [सं॰] दक्षिण की ओर। भूमध्य रेखा से दक्षिण की ओर। जैसे, दक्षिणायन सूर्य।

बल्कि किसी शब्द के अंत में जोड़ने से होता है। जैसे, सुखद (सुखदेनेवाला), जलद (जल देनेवाला, बादल) आदि।
संज्ञा स्त्री० (१) भार्य्या। स्त्री। (२) रक्षा। (३) खंडन।

दइउ†–संज्ञा पुं० दे० "दैव"।

दइजा†–संज्ञा पुं० दे० "दायजा"।

दइमारा–वि० दे० "दईमारा"।

दई–संज्ञा पुं० [सं० दैव] (१) ईश्वर। विधाता। उ०—गई करि जाहु दई के निहोरे।—दास।

यौ०—दईमारा।

मुहा०—दई का घाला=ईश्वर का मारा हुआ। अभागा। कमबख्त। उ०—जननी कहति, दई की घाली! काहे को इतराति।—सूर। दई का मारा=दे० "दईमारा"। दई दई=हे दैव, हे दैव! रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। उ०—(क) दई दई आलसी पुकारा।—तुलसी। (ख) दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साँईहिं न भूल। दई दई क्यों करत है दई दई सो कबूल।—बिहारी।

(२) दैव-संयोग। अदृष्ट। प्रारब्ध।

दईमारा–वि० [हिं० दई + मारना] [स्त्री० दईमारी] ईश्वर का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। अभागा। मंदभाग्य। कमबख्त। उ०—(क) दूध दही नहिं लेव, री! कहि कहि पचि हारी। कहति, सूर कोऊ घर नाहीं, कहँ गइ दइमारी?।—सूर। (ख) फीहा फीहा करैं या पपीहा दईमारे को।—श्रीपति।

दईमारो†*–वि० दे० "दईमारा"।

दउरना†–क्रि० अ० दे० "दौड़ना"।

दउरा†–संज्ञा पुं० दे० "दौरा"।

दक–संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकार–संज्ञा पुं० [सं०] तवर्ग का तीसरा अक्षर "द"।

दक़ीक़ा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) कोई बारीक बात। (२) युक्ति। उपाय।

मुहा०—कोई दक़ीक़ा बाकी न रखना=कोई उपाय बाकी न रखना। सब उपाय कर चुकना। जैसे, मुझे नुकसान पहुँचाने में तुमने कोई दक़ीक़ा बाकी नहीं रखा।

(३) क्षण। लहजा।

दक्खिन–संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] [वि० दक्खिनी] (१) वह दिशा जो सूर्य्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दहने हाथ की ओर पड़ती है। उत्तर के सामने की दिशा। जैसे, जिधर तुम्हारा पैर है वह दक्खिन है।

विशेष—यद्यपि सं० 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर हिं० शब्द दक्खिन वि० के रूप में नहीं आता। दक्खिन ओर, दक्खिन दिशा आदि वाक्यों में भी दक्खिन वि० नहीं है।

(२) दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। (३) भारतवर्ष का वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विंध्य और नर्मदा के आगे का देश।

क्रि० वि० दक्खिन की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे, उनका गाँव यहाँ से दक्खिन पड़ता है।

दक्खिनी–वि० [हिं० दक्खिन] (१) दक्खिन का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्खिनी किनारा। (२) जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश-संबंधी। जैसे, दक्खिनी आदमी, दक्खिनी बोली, दक्खिनी सुपारी, दक्खिनी मिर्च।

संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष–वि० [सं०] (१) जिसमें किसी काम को चट पट सुगमतापूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे, वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। (२) दक्षिण। दाहना। उ०—(क) दक्ष दिसि रुचिर वारीश कन्या।—तुलसी। (ख) दक्ष भाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद में दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहीं कहीं ज्योतिष्कगण के पिता कह कर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष अदिति के पिता थे इससे वे देवताओं के आदि पुरुष कहे जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि सब से पहले ब्रह्मणस्पति ने कर्मकार की तरह कार्य्य किया, असत् से सत् उत्पन्न हुआ उत्तानपद् से भू और भू से दिशाएँ हुईं वहीं यह भी लिखा है कि "अदिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से अदिति जन्मी"। इस विलक्षण वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि "या तो दोनों ने समान जन्म लाभ किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और प्रकृति हुई।" शतपथ ब्राह्मण में दक्ष को सृष्टि का पालक और पोषक कहा है। हरिवंश में दक्ष को विष्णु स्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के यज्ञ की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, रुद्र के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करती थी। दक्ष ने जब देखा कि मानस द्वारा प्रजावृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने मैथुन द्वारा सृष्टि का विधान चलाया।

गरुड़ पुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है। ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना से धर्म, रुद्र, मनु, भृगु तथा सनकादि को मानस पुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर दहने अँगूठे से दक्ष को और बाएँ अँगूठे से दक्षपत्नी को उत्पन्न किया। इस पत्नी से

दगध †–संज्ञा पुं० दे० "दाह"।
वि० दे० "दग्ध"।

दगधना * †–क्रि० अ० [सं० दग्ध+ना (प्रत्य०)] जलना। उ०—यत्र अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधि भइ छारा।—जायसी।
क्रि० स० (१) जलाना। (२) बहुत दुःख देना। कष्ट पहुँचाना।

दगना–क्रि० अ० [सं० दग्ध+ना (प्रत्य०)] (१) (बंदूक या तोप आदि का) छूटना। चलना। जैसे, बंदूक आपही आप दग गई। (२) जलना। दग्ध होना। झुलस जाना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की कटाछ कोटि काम दगे।—स्वामी हरिदास। (३) दागा जाना। दागना का अकर्मक रूप।
क्रि० स० दे० "दागना"। उ०— (क) विषधर स्वास सरिस लगी तन लीवत धन बात अनलहु सों सरसे दगैं हिमकर-कर घन गात।—शृं० सत०। (ख) जे तव होत दिखा दिखी भई अमी इक आंक। दगैं तिरीछी डीठ अब ह्वै बीछी को डांक।—बिहारी।

दगर †–संज्ञा पुं० दे० "दगरा"।

दगरा †–संज्ञा पुं० [?] (१) देर। विलंब। उ०—मोहि ते कान्ह करत तोसौं झगरो। × × × × × सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कौने दियो दिखावहु कगरो। अंचल ऐंचि ऐंचि राखत हो जान देहु अब होत है दगरो।—सूर। (२) डगर। रास्ता। उ०—वह जो खंडित मेंड बनी डगरे के माहीं।—श्रीधर पाठक।

दगरी–संज्ञा स्त्री० [?] वह दही जिस पर मलाई या साढ़ी न हो।

दगलफसल–संज्ञा पुं० [अ०दगल+अनु०फसल या हिं० फँसना] धोखा। फरेब।

दगला–संज्ञा पुं० [?] मोटे वस्त्र का बना हुआ या रूईदार अंगरखा। भारी लबादा।

दगवाना–क्रि० स० [हिं० दागना का प्रे०] दागने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दागने में प्रवृत्त करना। उ०—उठि भोरहि तोपन दगवायो। दीनन को बहु द्रव्य लुटायो।—रघुराज।

दगहा–वि० [हिं० दाग+हा (प्रत्य०)] (१) जिसके दाग लगा हो। दागवाला। (२) जिसके सफेद दाग हों।
वि० [हिं० दाग=प्रेतकर्म+हा (प्रत्य०)] जिसने प्रेत क्रिया की हो। प्रेत-कर्म-कर्त्ता।
वि० [हिं० दागना+हा (प्रत्य०)] जो दागा हुआ हो। जो दग्ध किया गया हो।

दगा–संज्ञा स्त्री० [अ०] छल। कपट। धोखा।
क्रि० प्र०—करना।—देना।—खाना।
यौ०—दगाबाज। दगादार।

दगादार–वि० [फा० दगा+दार] धोखेबाज़। छली। उ०—(क) पूरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं गंगा के कछार में पछारि छार करिहौं।—पद्माकर। (ख) छबीले तेरे नैन बड़े हैं दगादार।—गीत।

दगाबाज़–वि० [फा०] छली। कपटी। धोखा देनेवाला। उ०—(क) कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।—तुलसी। (ख) नाम तुलसी पै भोंडे भाग ते भयो है दास। किए अंगीकार एते बड़े दगाबाज को।—तुलसी।
संज्ञा पुं० छली मनुष्य। धोखा देनेवाला आदमी।

दगाबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [फा०] छल। कपट। धोखा। उ०—सुहृद समाज दगाबाजी ही को सौदा सूत जब जाको काज तब मिलै पाय परि सो।—तुलसी।

दगार्गल–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की विद्या जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के ऊपरी लक्षण आदि देख कर, भूमि के नीचे पानी होने अथवा न होने का ज्ञान होता है।
विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्त-वाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में जल-वाहिनी शिराएँ होती हैं और इन शिराओं के किसी स्थान पर होने अथवा न होने का ज्ञान वृक्षों आदि को देखकर हो सकता है। जैसे, यदि किसी निर्जन स्थान में जामुन का पेड़ हो तो समझना चाहिए कि उससे तीन हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्व-वाहिनी शिरा है; यदि किसी निर्जन स्थान में गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम तीन हाथ की दूरी पर डेढ़ दो पुरसे नीचे अच्छे जल की शिरा होगी। इत्यादि।

दगैल–वि० [अ० दाग+एल (प्रत्य०)] (१) दागदार। जिसमें दाग हो। (२) जिसमें कुछ खोट वा दोष हो।
संज्ञा पुं० [अ० दगा] दगाबाज़। छली। उ०—सात कोस जौलौं चलि आये। भये दगैलन के मन भाये।—लाल।

दग्ध–वि० [सं०] (१) जला या जलाया हुआ। (२) दुःखित। जिसे कष्ट पहुँचा हो। जैसे, दग्ध हृदय।
संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे, कतृण भी कहते हैं।

दग्धकाक–संज्ञा पुं० [सं०] डोम कौवा।

दग्धमंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार वह मंत्र जिसके मूर्द्धा प्रदेश में वह्नि और वायु-युक्त वर्ण हों।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति। (२) वह छः महीने का समय जिसमें सूर्य्य कर्क रेखा से चल कर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है।

विशेष—सूर्य्य २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरीय अयन-सीमा पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी अयन-सीमा मकर रेखा तक पहुँच जाता है। पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन हों उस समय कुआँ, तालाब, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न देवताओं की प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तौ भी भैरव, वराह, नृसिंह आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है।

दक्षिणावर्त्त—वि० [सं०] जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो। जो दाहिनी ओर घूमा हुआ हो।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का शंख जिसका घुमाव दाहिनी ओर को होता है।

दक्षिणावर्त्तकी—संज्ञा स्त्री० दे० "दक्षिणावर्त्तवती"।

दक्षिणावर्त्तवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली नाम का पौधा।

दक्षिणावह—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण से आनेवाली हवा।

दक्षिणाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षिणाशापति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यम। (२) मंगलग्रह।

दक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा।

संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

वि० दक्षिण देश का। दक्षिण देश संबंधी।

दक्षिणीय—वि० [सं०] (१) दक्षिण का। दक्षिण संबंधी। दक्षिण देश का। (२) जो दक्षिणा का पात्र हो।

दक्षिन—संज्ञा पुं० दे० "दक्षिण"।

दक्षिनी—वि०, संज्ञा पुं० दे० "दक्षिणी"।

दखन—संज्ञा पुं० दे० "दक्षिण"।

दखमा—संज्ञा पुं० [?] वह स्थान जहाँ पारसी अपने मुरदे रखते हैं।

विशेष—पारसियों में यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी विशिष्ट एकांत स्थान में रख देते हैं जहाँ चील कौए आदि उसका मांस खा जाते हैं। इस काम के लिये वे थोड़ा सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारों ओर से घेर देते हैं जिसके ऊपरी भाग में जँगला सा लगा रहता है। इसी जँगले पर शव रख दिया जाता है। जब उसका मांस चील-कौए आदि खा लेते हैं तब हड्डियाँ जँगले में से नीचे गिर पड़ती हैं। नीचे एक मार्ग होता है जिससे ये हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं।

दख़ल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अधिकार। क़बज़ा।

क्रि० प्र०—करना।—में आना।—में लाना।—होना।

यौ०—दखलदिहानी। दखलनामा। दखीलकार।

(२) हस्तक्षेप। हाथ डालना। उ०—मूरख दखल देहँ बिन जाने। गहैं चपलता गुरु अस्थाने।—विश्राम।

क्रि० प्र०—देना।

(३) पहुँच। प्रवेश। जैसे, आप अँगरेज़ी में भी कुछ दखल रखते हैं।

क्रि० प्र०—रखना।

दखलदिहानी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखल + फ़ा० दिहानी] किसी वस्तु पर किसी को अधिकार दिला देना। कबज़ा दिलवाना।

दखलनामा—संज्ञा पुं० [अ० दखल + फ़ा० नामा] वह पत्र विशेषतः सरकारी आज्ञापत्र जिसमें किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो।

दखिन—संज्ञा पुं० दे० "दक्षिण"। उ०—देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।—तुलसी।

दखिनहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + हारा] दक्षिण से आनेवाली हवा। दक्षिण की ओर से आती हुई हवा।

दखिनहा †—वि० [हिं० दखिन + हा (प्रत्य०)] दक्षिण का। दक्षिणी।

दखिना †—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + आ (प्रत्य०)] दक्षिण से आनेवाली हवा।

दखील—वि० [अ०] अधिकार रखनेवाला। जिसका दखल या कब्जा हो।

दखीलकार—संज्ञा पुं० [अ० दखील + फ़ा० कार] वह असामी जिसने किसी जमींदार के खेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रक्खा हो।

दखीलकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखील + फ़ा० कार] (१) दखीलकार का पद वा अवस्था। (२) वह जमीन जिस पर दखीलकार का अधिकार हो।

दगइल †—वि० दे० "दगैल"।

दगड़—संज्ञा पुं० [?] लड़ाई में बजाया जानेवाला बड़ा ढोल। जंगी ढोल।

दगड़ना—क्रि० अ० [?] सच्ची बात का विश्वास न करना।

दगड़ा—संज्ञा पुं० दे० "दगड़"।

दगदगा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) डर। भय। (२) संदेह। शक। (३) एक प्रकार की कंडील।

दगदगाना—क्रि० अ० [हिं० दगना] दमदमाना। चमकना। उ०—ज्यौं ज्यौं अति कृशता बढ़ति त्यौं त्यौं दुति सरसात। दगदगात त्यौं ही कनक ज्यौं ही दाहत जात।—गुमान।

क्रि० स० चमकाना। चमक उत्पन्न करना।

दगदगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक। दमक।

दगदगी—संज्ञा स्त्री० दे० "दगदगा"।

अवस्था में भी पिंडा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है। किंतु यदि मृत पुत्र का कोई पुत्र या पौत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता। दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि न हो। दूसरी बात यह है कि आदान प्रदान की विधि पूरी हो अर्थात् लड़के का पिता यह कह कर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कह कर उसे ग्रहण करे "धर्माय त्वां परिगृह्णामि, सन्तत्यै त्वां परिगृह्णामि"। द्विजों के लिये हवन आदि भी आवश्यक है। वह पुत्र जिसपर उसका असली पिता भी अधिकार रखे और दत्तक लेनेवाला भी द्व्यामुष्यायण कहलाता है। ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता।

दत्तक लेने का अधिकार पुरुष ही को है अतः स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही। विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा। वशिष्ट का वचन है कि "स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले"। नंद पंडित ने तो दत्तकमीमांसा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह आप होम आदि नहीं कर सकती। पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है। बंग देश और काशी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है; और वह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है। महाराष्ट्र देश के पंडित वसिष्ट के वचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस अवस्था में है जब दत्तक पति के सामने लिया जाय; पति के मरने पर विधवा पति के कुटुंबियों से अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है।

कैसा लड़का दत्तक लिया जा सकता है? स्मृतियों में इस संबंध में कई नियम मिलते हैं—(१) शौनक, वशिष्ट आदि ने एकलौते या जेठे लड़के को गोद लेने का निषेध किया है। पर कलकत्ते को छोड़ और दूसरे हाइकोर्टों ने ऐसे लड़के का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।

(२) लड़का सजातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होगा तो उसे केवल खाना कपड़ा मिलेगा।

(३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के सपिंड को लेना चाहिए, उसके अभाव में भिन्न गोत्र सपिंड, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ संबंधी जो समानोदकों के अंतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।

(४) द्विजातियों में लड़की का लड़का, बहिन का लड़का, भाई, चाचा, मामा, मामी का लड़का गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लड़का हो वह 'पुत्रच्छायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का नियोग या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत में हैं जिनमें नंद पंडित की दत्तकमीमांसा और देवानंद भट्ट तथा कुबेर कृत दत्तकचंद्रिका सबसे अधिक मान्य हैं।

मुहा०—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्त—वि० [सं०] जिसने किसी काम में खूब जी लगाया हो। जिसने खूब चित्त लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] गत उत्सर्पिणी के आठवें अर्हत। (जैन)

दत्ता—संज्ञा पुं० दे० "दत्तात्रेय"।

दत्तात्मा—संज्ञा पुं० [सं० दत्तात्मन्] वह पुत्र जिसे उसके माता पिता ने त्याग दिया हो अथवा जिसके माता-पिता का देहांत हो चुका हो और जो स्वयं किसी के पास आकर उसका दत्तक पुत्र बने। शास्त्रों में यह भी बारह प्रकार के पुत्रों में से एक माना गया है।

दत्तात्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं। मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध में जो कथा लिखी है वह इस प्रकार है—एक कोढ़ी ब्राह्मण की स्त्री बड़ी पतिव्रता और स्वामिभक्त थी। एक बार वह ब्राह्मण एक वेश्या पर आसक्त हो गया। उसके आज्ञानुसार उसकी पतिव्रता स्त्री उसे अपने कंधे पर बैठा कर अँधेरी रात में उस वेश्या के घर ले चली। रास्ते में मांडव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे, अँधेरे में कोढ़ी ब्राह्मण का पैर उन्हें लग गया। उन्होंने शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा है, सूर्य निकलते निकलते वह मर जायगा। सती स्त्री ने अपने पति की रक्षा करने और वैधव्य से बचने के लिये कहा कि जाओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना हुई तो सब देवता मिल कर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें अत्रि मुनि की स्त्री अनसूया के पास जाने की सम्मति दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर अनसूया ने जाकर ब्राह्मण-पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने दो तुम्हारे पति के मरते ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूँगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जायगा। तब सूर्य उदय हुआ और मृत ब्राह्मण को अनसूया ने फिर जीवित कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनसूया से वर माँगने के लिये कहा। अन-

दग्धरथ–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम। (विशेष दे० "चित्ररथ")।

दग्धरुह–संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष।

दग्धरुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुह नामक वृक्ष।

दग्धवर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] रोहिप नाम की घास।

दग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य के अस्त होने की दिशा। पश्चिम। (२) एक प्रकार का वृक्ष जिसे कुरु कहते हैं। (३) कुछ विशिष्ट राशियों से युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ। जैसे—मीन और धन की अष्टमी। वृष और कुंभ की चौथ। मेष और कर्क की छठ। कन्या और मिथुन की नौमी। वृश्चिक और सिंह की दशमी। मकर और तुला की द्वादशी।

विशेष—दग्धा तिथियों में वेदारंभ, विवाह, स्त्री-प्रसंग, यात्रा या वाणिज्य आदि करना बहुत ही हानिकारक माना जाता है।

दग्धाक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार झ, ह, र, भ, और ष ये पाँचों अक्षर जिनका छंद के आरंभ में रखना वर्जित है। उ०—दीजो भूल न छंद के आदि झ ह र भ ष कोइ। दग्धाक्षर के दोष तें छंद दोषयुत होइ॥

दग्धाह्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

दग्धिका–संज्ञा स्त्री० दे० "दग्धा (२)"।

दचक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) झटके या दबाव से लगी हुई चोट। (२) धक्का। ठोकर। (३) दबाव।

दचकन–क्रि० अ० [अनु०] (१) ठोकर या धक्का खाना। (२) दब जाना। (३) झटका खाना।

क्रि० स० (१) ठोकर या धक्का लगाना। (२) दबाना। (३) झटका देना।

दचना–क्रि० अ० [देश०] गिरना। पड़ना। उ०—गगन उड़ाइ गयो ले श्यामहि आइ धरनि पर आप दच्यो री।—सूर।

दच्छ–संज्ञा पुं० दे० "दक्ष"।

दच्छकुमारी*–संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + कुमारी] दक्ष-प्रजापति की कन्या, सती। उ०—मुनि सन विदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दच्छकुमारी।—तुलसी।

दच्छना–संज्ञा स्त्री० दे० "दक्षिणा"।

दच्छसुता*–संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + सुता] दक्ष की कन्या, सती।

दच्छिन–वि० दे० "दक्षिण"। उ०—दच्छिन पिय ह्वै वाम बस बिसराई तिय आन। एकै वासर के विरह लागे बरष बितान।—बिहारी।

दच्छिननायक*–संज्ञा पुं० दे० "दक्षिणनायक"।

दज्जाल–संज्ञा पुं० [अ०] झूठा। बेईमान। अत्याचारी।

दड़घल–संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] सहदेई नाम का पौधा।

दड़ोकना–क्रि० अ० [अनु०] दहाड़ना। गरजना। बाघ, साँड़ आदि का बोलना।

दढ़ियल–वि० [हिं० दाढ़ी + इयल (प्रत्य०)] दाढ़ीवाला। जो दाढ़ी रखे हो।

दणियर–संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] सूर्य। (डिं०)

दतना†– क्रि० अ० दे० "डटना"।

दतवन–संज्ञा स्त्री० दे० "दतुअन"।

दतारा–वि० [हिं० दाँत + आरा (प्रत्य०)] दाँतवाला। जिसमें दाँत हों। दाँतदार।

दतिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत का अल्प० स्त्री०] दाँत का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। छोटा दाँत।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो बहुत सुंदर होता है। इसकी खाल अच्छे दामों पर बिकती है। नीलमोर।

दतिसुत–संज्ञा पुं० [सं० दितिसुत] दैत्य। राक्षस। (डिं०)

दतुअन–संज्ञा स्त्री० दे० "दतुवन"।

दतुवन–संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + अवन (प्रत्य०)] (१) नीम या बबूल आदि की काटी हुई छोटी टहनी जिसके एक सिरे को दाँतों से कुचल कर कूँची की तरह बनाते और उससे दाँत साफ करते हैं। दातुन।

क्रि० प्र०—करना।

(२) दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—दतुअन कुल्ला = दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया।

दतून–संज्ञा स्त्री० दे० "दतुवन"।

दतौन–संज्ञा स्त्री० दे० "दतुवन"।

दत्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दत्तात्रेय। (२) जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक। (३) एक प्रकार के बंगाली कायस्थों की उपाधि। (४) दान। (५) दत्तक।

यौ०—दत्तविधान = दत्तक पुत्र लेने की क्रिया।

वि० दिया हुआ।

दत्तक–संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रविधि से बनाया हुआ पुत्र। वह जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो। गोद लिया हुआ लड़का। मुतबन्ना।

विशेष—स्मृतियों में जो औरस और क्षेत्रज के अतिरिक्त दस प्रकार के पुत्र गिनाए गए हैं उनमें दत्तक पुत्र भी है। इसमें से कलियुग में केवल दत्तक ही को ग्रहण करने की व्यवस्था है पर मिथिला और उसके आस पास कृत्रिम पुत्र का भी ग्रहण अब तक होता है। पुत्र के बिना पितृऋण से उद्धार नहीं होता इससे शास्त्र पुत्र ग्रहण करने की आज्ञा देता है। पुत्र आदि होकर मर गया हो तो पितृऋण से तो उद्धार हो जाता है पर पिंडा पानी नहीं मिल सकता इससे उस

दधिनामा–संज्ञा पुं० [सं० दधिनामन्] कैथ का पेड़।

दधिपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता।

दधिपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।

दधिपूप–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्वान जो दही में फेंटे हुए शालि धान के चूर्ण को घी में तलने से बनता है।

दधिफल–संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

दधिमंड–संज्ञा पुं० [सं०] दही का पानी।

दधिमंडोद–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र।

दधिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र की सेना का एक बंदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था।

दधियार–संज्ञा पुं० [देश०] जीवंतिका की जाति की एक लता जिसके पत्ते लंबे और पान के आकार के होते हैं। इसकी डंठियों आदि में से दूध निकलता है और इसमें सूर्यमुखी की तरह के फूल लगते हैं। इसका व्यवहार औषध में होता है। अर्कपुष्पी। अंधाहुली।

दधिसागर–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र।

दधिसार–संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत। मक्खन।

दधिसुत–संज्ञा पुं० [सं० उदधि-सुत] (१) कमल। उ०—देखो मैं दधिसुत में दधिजात।—सूर। (२) मुक्ता। मोती। उ०—दधिसुत जामे नंद दुवार।—सूर। (३) चंद्रमा। उ०—राधा दधिसुत क्यों न दुरावति। सूर।

यौ०—दधिसुत सुत=विद्वान्। पण्डित। उ०—जिनके हरि वाहन नहीं दधिसुत-सुत जेहि नाहिं।—तुलसी।

(४) जालंधर दैत्य। उ०—विष्णु वचन चपला प्रतिहारा। तेहि ते आयुन दधिसुत मारा।—विश्राम। (५) विष। जहर। उ०—नहिं विभूति दधिसुत न कंठ यह मृगमद चंदन चरचित तन।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन। नवनीत।

दधिसुता–संज्ञा स्त्री० [सं० उदधिसुता] सीप। उ०—दधिसुता सुत अवलि ऊपर इंद्र आयुध जानि।—सूर।

दधिस्नेह–संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दधिस्वेद–संज्ञा पुं० [सं०] तक्र। छाछ। मट्ठा।

दधीच–संज्ञा पुं० दे० "दधीचि"।

दधीचि–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो यास्क के मत से अथर्व के पुत्र थे और इसी लिये दधीचि कहलाते थे। किसी पुराण के मत से ये कर्दम ऋषि की कन्या और अथर्व की पत्नी शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और किसी पुराण के मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे। वेदों और पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ हैं जिनमें से विशेष प्रसिद्ध यह है कि इंद्र ने इन्हें मधुविद्या सिखाई थी और कह दिया था कि यदि तुम यह विद्या बतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे। इस पर अश्वि युगल ने दधीचि का सिर काट कर अलग रख दिया और उनके धड़ पर घोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे मधु विद्या सीखी। जब इंद्र को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आकर उनका घोड़ेवाला सिर काट डाला। इस पर अश्वि युगल ने उनके धड़ पर फिर वही मनुष्यवाला पहला सिर लगा दिया। एक बार वृत्रासुर के उपद्रव से बहुत दुखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए। उस समय निश्चित हुआ कि दधीचि की हड्डियों के बने हुए अस्त्र के अतिरिक्त और किसी अस्त्र से वृत्रासुर मारा न जा सकेगा। इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी। दधीचि ने अपने पुराने शत्रु और हत्याकारी इंद्र को भी विमुख लौटाना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण त्याग दिए। तब उनकी हड्डियों से अस्त्र बना कर वृत्रासुर मारा गया। तभी से दधीचि का बड़ा भारी दानी होना प्रसिद्ध है। महाभारत में यह भी लिखा है कि जब दक्ष ने हरीद्वार में बिना शिवजी के यज्ञ किया था तब इन्होंने दक्ष को शिवजी के निमंत्रित करने के लिये बहुत समझाया था, पर उन्होंने नहीं माना, इसलिये ये यज्ञ छोड़कर चले गए थे। एक बार दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। उस समय इंद्र ने डरकर इन्हें तप से भ्रष्ट करने के लिये अलंबुषा नामक अप्सरा भेजी। एक बार जब ये सरस्वती तीर्थ में तर्पण कर रहे थे तब अलंबुषा उनके सामने पहुँची। उसे देखकर इनका वीर्य स्खलित होगया जिससे एक पुत्र हुआ। इसीसे उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ।

दधीच्यस्थि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) हीरा। हीरक।

दध्र–संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमों में से एक यम।

दध्यानी–संज्ञा पुं० [सं०] सुदर्शन वृक्ष। मदनमस्त।

दध्युत्तर–संज्ञा० पुं० [सं०] दही की मलाई।

दन–संज्ञा पुं० [सं० दिन] दिन। (डिं०)

दनकर–संज्ञा पुं० [सं० दिनकर] सूर्य। (डिं०)

दनगा–संज्ञा पुं० [देश०] खेत का छोटा टुकड़ा।

दनदनाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) दनदन शब्द करना। (२) आनंद करना। खुशी मनाना।

दनमणि–संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] सूर्य। (डिं०)

दनादन–क्रि० वि० [अनु०] दनदन शब्द के साथ। जैसे, दनादन तोपें छूटने लगीं।

दनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही थी। इसके चालीस पुत्र हुए थे जो सब दानव कहलाते हैं। उनके नाम ये हैं—विप्रचित्ति, शंबर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरी, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्द्धा, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुंड, एकपद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचंद्र, निकुंभ, कुजट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य्य, चंद्र,

सूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने इसे स्वीकार किया; और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वासा बन कर अनसूया के घर जन्म लिया। हैहयराज ने जब अत्रि को बहुत कष्ट पहुँचाया था तब दत्तात्रेय क्रुद्ध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आए थे। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषि-कुमारों के साथ योग-साधन किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और संसार से छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर में ही डूबे रहे पर तो भी ऋषि-कुमारों ने इनका संग न छोड़ा, वे सरोवर के किनारे उनके आसरे बैठे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हें छलने के लिये एक सुंदरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मद्यपान करने लगे। पर ऋषि-कुमारों ने यह समझ कर तब भी इनका संग न छोड़ा कि ये पूर्ण योगीश्वर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय में नहीं है। भागवत के अनुसार इन्होंने चौबीस पदार्थों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थीं और उन्हीं चौबीस पदार्थों को ये अपना गुरु मानते थे। वे चौबीस पदार्थ ये हैं—पृथ्वी, वायु आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, मधुकर, (भौंरा और मधुमक्खी), हाथी, मधुहारी (मधुसंग्रह करनेवाली), हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, गिद्ध, बालक, कुमारीकन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और तितली।

दत्ताप्रदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार में अट्ठारह प्रकार के विवाद पदों में से पाँचवाँ विवादपद। किसी दान किए हुए पदार्थ को अन्यायपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगाई का पक्का होना।

दत्तेय—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दत्तोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

दत्तोलि—संज्ञा पुं० [सं०] पुलस्त्य मुनि का एक नाम।

दत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन। (२) सोना।

दत्रिम—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र।

ददन—संज्ञा पुं० [सं०] दान। देने की क्रिया।

ददमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

ददरा—संज्ञा पुं० [देश०] छानने का कपड़ा। छन्ना। साफ़ी।

ददरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पके हुए तमाखू के पत्ते पर का दाग। (२) दे० "अरवन"।

ददा—संज्ञा पुं० दे० "दादा"। उ०—यह विनोद देखत धरनीधर मात पिता बलभद्र दादा रे।—सूर।

ददिऔर†—संज्ञा पुं० दे० "ददिहाल"।

ददियाल—संज्ञा पुं० दे० "ददिहाल"।

ददिया ससुर—संज्ञा पुं० [हिं० दादा + ससुर] श्वसुर का पिता। ससुर का बाप।

ददिया सास—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी + सास] सास की सास। ददिया-ससुर की स्त्री।

ददिहाल—संज्ञा पुं० [हिं० दादा + आलय] (१) दादा का कुल। (२) दादा का घर।

ददोड़ा—संज्ञा पुं० दे० "ददोरा"।

ददोरा—संज्ञा पुं० [हिं० दाद] मच्छर, बर्रे आदि के काटने या खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच में पड़ी हुई थोड़ी सी सूजन जो चकती की तरह दिखाई देती है। चकत्ता। चटखर।

दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाद का रोग। (२) कछुआ।

दद्रुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्द। चकवँड़।

दद्रू—संज्ञा पुं० [सं०] दाद रोग।

दध*†—संज्ञा पुं० दे० "दधि"।

दधसार*—संज्ञा पुं० दे० "दधिसार"।

दधि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दही। जमाया हुआ दूध। (२) वस्त्र। कपड़ा।

संज्ञा पुं० [सं० उदधि] समुद्र। सागर। (इस अर्थ में दधि शब्द का प्रयोग सूरदास ने बहुत किया है)

दधिकाँदो—संज्ञा पुं० [सं० दधि + हिं० काँदो = कीचड़] जन्माष्टमी के समय होनेवाला एक प्रकार का उत्सव जिसमें लोग हलदी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं। (कहते हैं कि श्रीकृष्ण जन्म के समय गोपों और गोपिकाओं ने आनंद में मग्न होकर हलदी मिला दही एक दूसरे पर इतना अधिक फेंका था कि गोकुल की गलियों में दही का कीचड़ सा हो गया था) उ०—यशुमति भाग सुहागिनी जिन जायो हरि सो पूत। करहु ललन की आरती री अरु दधिकाँदो सूत।—सूर।

दधिकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटे हुए दूध का वह अंश जो पानी निकलने पर बच जाता है। छेना।

दधिक्रा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक देवता जो घोड़े के आकार के माने जाते हैं। (२) घोड़ा।

दधिचार—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी।

दधिज—संज्ञा पुं० दे० "दधिजात"।

दधिजात—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन। नवनीत।

संज्ञा पुं० [सं० उदधि-सुत] चंद्रमा। उ०—देखो मैं दधिसुत में दधिजात।—सूर।

दधित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

दधित्थाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] लोबान।

दधिधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये कल्पित गौ जिसकी कल्पना दही के मटके में की जाती है।

दबकगर—संज्ञा पुं० [हिं दबक+गर (प्रत्य०)] दबका (तार) बनानेवाला।

दबकना—क्रि० अ० [हिं० दबना] (१) भय के कारण किसी सँकरे स्थान में छिपना। डर के मारे छिपना। जैसे, (क) कुत्ते को देखकर बिल्ली का बच्चा अलमारी के नीचे दबक रहा। (ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दबक रहा। (२) लुकना। छिपना। जैसे, शेर पहले से ही झाड़ी में दबका बैठा था, हिरन के आते ही उसपर झपट पड़ा।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

क्रि० स० किसी धातु को हथौड़ी से चोट लगा कर बढ़ाना या चौड़ा करना। पीटना।

क्रि० स० [सं० दर्प ?] डाँटना। डपटना। घुड़कना। उ०—दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।—तुलसी।

दबकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] भाथी का वह हिस्सा जिसके द्वारा उसमें हवा घुसती है।

दबकवाना—क्रि० स० [हिं० दबकाना का प्रे०] दबकाने का काम किसी दूसरे से कराना। दूसरे को दबकाने में प्रवृत्त करना।

दबका—संज्ञा पुं० [हिं० दबकना=तार आदि पीटना] कामदानी का सुनहला या रुपहला चिपटा तार।

दबकाना—क्रि० स० [हिं० दबकना का स० रूप] (१) छिपाना। ढाँकना। आड़ में करना। (२) डाँटना। (क्व०)

दबकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरवाहे और खेतिहर खेत पर ले जाया करते हैं।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दबकना] दबकने या छिपने की क्रिया या भाव।

मुहा०—दबकी मारना=छिप जाना। अदृश्य हो जाना।

दबके का सलमा—संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा। दबके का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है।

दबकैया—संज्ञा पुं० [हिं दबकना+ऐया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के तारों को पीट कर बढ़ाने, चपटा और चौड़ा करनेवाला। दबकगर।

दबगर—संज्ञा पुं० [देश०] (१) ढाल बनानेवाला। (२) चमड़े के कुप्पे बनानेवाला।

दबड़ घुसड़ू—वि० [हिं० दबना+घुसना] डरपोक। भय से दबने और डरनेवाला।

दबदबा—संज्ञा पुं० [अ०] रोबदाब। आतंक। प्रताप।

दबना—क्रि० अ० [सं० दमन] (१) भार के नीचे आना। बोझ के नीचे पड़ना। जैसे, आदमियों का मकान के नीचे दबना, लड़के का गाड़ी के नीचे दबना, चींटी का पैर के नीचे दबना। (२) ऐसी अवस्था में होना जिसमें किसी ओर से बहुत जोर पड़े। दाब में आना। (३) (किसी भारी शक्ति का सामना होने अथवा दुर्बलता आदि के कारण) अपने स्थान पर न ठहर सकना। पीछे हटना। (४) किसी के प्रभाव या आतंक में आकर कुछ कह न सकना अथवा अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना। दबाव में पड़कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विवश होना। जैसे, (क) कई कारणों से वे हमसे बहुत दबते हैं। (ख) आप तो उनसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं। (५) अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में ठीक या अच्छा न जँचना। जैसे, यह माला इस कंठे के सामने दब जाती है। (६) किसी बात का अधिक बढ़ या फैल न सकना। किसी बात का जहाँ का तहाँ रह जाना। जैसे, खबर दबना, मामला दबना। उ०—नाम सुनत ही ह्वै गयो तन औरै मन और। दबै नहीं चित चढ़ि रह्यो अबहूँ चढ़ाए त्यौर।—बिहारी। (७) उभड़ न सकना। शांत रहना। जैसे, बलवा दबना, क्रोध दबना। (८) अपनी चीज का अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना। जैसे, हमारे सौ रुपए उनके यहाँ दबे हुए हैं। (९) ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके। जैसे, वे आजकल रुपए की तंगी से दबे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(१०) धीमा पड़ना। मंद पड़ना।

मुहा०—दबी आवाज=धीमी आवाज। वह आवाज जिसमें कुछ जोर न हो। दबी जबान से कहना=अस्पष्ट रूप से कहना। किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि व्यक्त हो। दबे दबाए रहना=शांतिपूर्वक या चुपचाप रहना। उपद्रव या कार्रवाई न करना। दबे पाँव या पैर (चलना)=इस प्रकार (चलना) जिसमें पैरों से कुछ भी शब्द न हो। इस प्रकार (चलना) जिसमें किसी को कुछ आहट न लगे।

(११) संकोच करना। झेंपना।

दबमो—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बकरा जो हिमालय में होता है।

दबवाना—क्रि० स० [हिं० दबना का प्रे०] दबाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दबाने में प्रवृत्त कराना।

दबस—संज्ञा पुं० [?] जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान। जहाजी गोदाम में का माल।

दबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] अनाज निकालने के लिये बालों या डंठलों को बैलों के पैरों से रौंदवाने का काम।

दबाऊ—वि० [हिं० दबना] (१) दबानेवाला। (२) जिस (गाड़ी आदि) का अगला हिस्सा पिछले हिस्से की अपेक्षा अधिक बोझल हो। दबू।

एकाक्ष, अमृतप, प्रलंब, नरक, वातापी, शठ, गविष्ठ, वनायु और दीर्घजिह्न। (इनमें जो चंद्र, और सूर्य्य हैं, वे देवता चंद्र और सूर्य्य से भिन्न हैं)

संज्ञा पुं० एक दानव का नाम जो श्री दानव का लड़का था।

दनुज–संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, असुर। राक्षस।

दनुजदलनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

दनुजराय–संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हिं० राय] दानवों का राजा हिरण्यकश्यप।

दनुजारि–संज्ञा पुं० [सं०] दानवों के शत्रु।

दनुजेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] दानवों का राजा, रावण।

दनुजेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिरण्यकश्यप। (२) रावण।

दनुसंभव–संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनू–संज्ञा स्त्री० दे० "दनु"।

दन्न–संज्ञा पुं० [अनु०] "दन्न" शब्द जो तोप आदि के छूटने अथवा इसी प्रकार के और किसी कारण से होता है।

दपट–संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँट के साथ अनु०] घुड़की। डपट। डपेट। डाँटने या डपटने की क्रिया।

दपटना–क्रि० [हिं० डाँटना के साथ अनु०] किसी को डराने के लिये बिगड़कर जोर से कोई बात कहना। डाँटना। घुड़कना।

दपु–संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दर्प। अहंकार। अभिमान। शेखी। घमंड। उ०—सात दिवस गोवर्द्धन राख्यो इंद्र गयो दपु छोंहि।—सूर

दपेट–संज्ञा स्त्री० दे० "दपट"।

दपेटना–क्रि० स० दे० "दपटना"।

दफतर–संज्ञा पुं० दे० "दफ्तर"।

दफतरी–संज्ञा पुं० दे० "दफ्तरी"।

दफतरीखाना–संज्ञा पुं० दे० "दफ्तरीखाना"।

दफ़ती–संज्ञा स्त्री० [अ० दफ्तीन] कागज के कई तख़्तों को एक में साट कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः जिल्द बाँधने आदि के काम में आता है। गत्ता। कुट। वसली।

दफदर†–संज्ञा पुं० दे० "दफ्तर"।

दफन–संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी चीज को जमीन में गाड़ने की क्रिया। (२) मुरदे को जमीन में गाड़ने की क्रिया।

दफनाना–क्रि० स० [अ० दफन + आना] जमीन में दबाना। गाड़ना।

दफरा–संज्ञा पुं० [देश०] काठ का वह टुकड़ा या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर इस लिये लगा दिया जाता है कि जिसमें किसी दूसरी नाव की टक्कर से उसका कोई अंग टूट न जाय। हौंस। (लश०)

दफराना–क्रि० स० [देश०] (१) किसी नाव को किसी दूसरी नाव के साथ टक्कर लड़ने से बचाना। (२) (पाल) खड़ा करना। (लश०) (३) बचाना। रक्षा कराना।

दफा–संज्ञा स्त्री० [अ० दफ्अः] (१) बार। बेर। जैसे, (क) हम तुम्हारे यहाँ कल दो दफा गए थे। (ख) उसे कई दफा समझाया मगर उसने नहीं माना। (२) किसी कानूनी किताब का वह एक अंश जिसमें किसी एक अपराध के संबंध में व्यवस्था हो। धारा।

मुहा०—दफा लगाना = अभियुक्त पर किसी दफा के नियमों को घटाना। अपराध का लक्षण आरोपित कराना जैसे, फौजदारी में आज उस पर चोरी की दफा लग गई।

वि० [अ० दफः] दूर किया हुआ। हटाया हुआ। तिरस्कृत। जैसे, किसी तरह इसे यहाँ से दफा करो।

मुहा०—दफा दफान करना = तिरस्कृत करके दूर कराना या हटाना।

दफादार–संज्ञा पुं० अ० दफ्अः = समूह + फ़ा० दार] फ़ौज का वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों।

विशेष—सेना में दफादार का पद प्रायः पुलिस के जमादार के पद के बराबर होता है।

दफादारी–संज्ञा स्त्री० [हिं दफादार + ई (प्रत्य०)] (१) दफादार का पद। (२) दफादार का काम।

दफीना–संज्ञा पुं० [अ०] गड़ा हुआ धन या खजाना।

दफ़्तर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह स्थान जहाँ किसी कारखाने आदि के संबंध की कुल लिखा पढ़ी और लेन देन आदि हो। आफिस। कार्यालय। (२) बड़ा भारी पत्र। लंबी चौड़ी चिट्ठी। (३) सविस्तर वृत्तांत। चिट्ठा।

मुहा०—दफ़्तर खोलना = सविस्तर वृत्तांत कह सुनाना।

दफ़्तरी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी दफ्तर का वह कर्मचारी जो वहाँ के कागज आदि दुरुस्त करता और रजिस्टरों आदि पर रूल खींचता अथवा इसी प्रकार के और काम करता हो। (२) किताबों की जिल्द बाँधनेवाला। जिल्दसाज। जिल्दबंद।

यौ० दफ्तरीखाना।

दफ्तरीखाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह स्थान जहाँ किताबों की जिल्द बँधती हो अथवा दफ़्तरी बैठ कर अपना काम करते हों।

दबंग–वि० [हिं०दबाव या दबाना] प्रभावशाली। दबाववाला। जिसका लोगों पर रोब दाब हो। जैसे, वे बड़े दबंग आदमी हैं, किसी से नहीं डरते।

दबक–संज्ञा स्त्री० [हिं० दबकना] (१) दबने या छिपने की क्रिया या भाव। (२) सिकुड़न। शिकन। (३) धातु आदि को लंबा करने के लिये पीटने की क्रिया।

यौ०—दबकगर।

हुए थे। कहते हैं कि ये नौ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। इनके पुरोहित ने समझा था कि जिसकी जननी को नौ वर्ष तक इस प्रकार इंद्रिय दमन करना पड़ा है वह बालक स्वयं भी बहुत ही दमनशील होगा। इसी लिये उसने इसका नाम दम रखा था। ये वेद वेदांगों के बहुत अच्छे ज्ञाता और धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे। (७) बुद्ध का एक नाम। (८) भीम राजा के एक पुत्र और दमयंती के एक भाई का नाम। (९) विष्णु। (१०) दबाव।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) साँस। श्वास।

क्रि० प्र०—आना।—चलना।—जाना।—लेना।

मुहा०—दम अटकना = साँस रुकना, विशेषतः मरने के समय साँस रुकना। दम उखड़ना = दे० "दम अटकना"। दम उलटना = (१) व्याकुलता होना। घबराहट होना। जी घबराना। (२) दे० "दम घुटना"। दम खाना = दे० "दम लेना"। दम खिंचना = दे० "दम अटकना"। दम खींचना = (१) चुप रह जाना। न बोलना। (२) साँस खींचना। साँस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण साँस रुकना। साँस न लिया जा सकना। दम घोंटना = (१) साँस न लेने देना। किसी को साँस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोंट कर मारना = (१) गला दबा कर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = दे० "दम फूलना"। दम चुराना = जान बूझ कर साँस रोकना। (यह क्रिया विशेषतः मक्कार जानवर करते हैं। बंदर मार खाने के समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारनेवाला उसे, मुरदा समझ ले। लोमड़ी भी कभी कभी अपने आपको मरी हुई जतलाने के लिये दम चुराती है। साज़ चढ़ाने के समय मक्कार घोड़े भी साँस रोक कर पेट फुला लेते हैं जिसमें पेटी या बंद अच्छी तरह न कसा जा सके)। दम टूटना = (१) साँस बंद हो जाना। प्राण निकलना। (२) दौड़ने या तैरने आदि के समय इतना अधिक हाँफने लगना कि जिसमें आगे दौड़ा या तैरा न जा सके। दम तोड़ना = मरते समय झटके से साँस लेना। अंतिम साँस लेना। दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐसा अभ्यास होना जिसमें साँस न फूले। (कुश्तीबाज़)। दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण साँस का जल्दी जल्दी चलना, हाँफना। (२) दमे के रोग का दौरा होना। दम बंद करना = बलपूर्वक किसी को बोलने आदि से रोकना। दम बंद होना = भय या आतंक आदि के कारण बिलकुल चुप रह जाना। दम भरना = (१) किसी के प्रेम अथवा मित्रता आदि का पक्का भरोसा रखना और समय समय पर अभिमानपूर्वक उसका वर्णन करना। जैसे, (क) वे उनकी मुहब्बत का दम भरते हैं। (ख) हम आपकी दोस्ती का दम भरते हैं। (२) परिश्रम या दौड़ने आदि के कारण साँस फूलने लगना और थकावट आजाना। परिश्रम के कारण थक जाना। जैसे, इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने में हमारा दम भर गया। (३) माड़ू का हाथ या लकड़ी मुँह पर रख कर साँस खींचना। इस क्रिया से उसका क्रोध शांत होता अथवा भोजन पचता है। (कलंदर)। दम भरना = किसी को कुश्ती लड़ा कर थकाना (पहलवानों की परीक्षा)। दम मारना = (१) विश्राम करना। सुस्ताना। (२) बोलना। कुछ कहना। चूँ करना। जैसे, आपकी क्या मजाल जो इस बात में दम भी मार सकें। (३) हस्तक्षेप करना। दखल देना। जैसे, इस जगह कोई दम मारनेवाला भी नहीं है। दम लेना = विश्राम करना। ठहरना। सुस्ताना। दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना। साँस रोकने का अभ्यास करना। जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना। (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे, (क) इस मामले में अब हम भी दम साधेंगे। (ख) रुपयों का नाम सुनते ही आप दम साध गए।

(२) नशे आदि के लिये साँस के साथ धूआँ खींचने की क्रिया।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—दम मारना = गाँजे या चरस आदि के चिलम पर रख कर उसका धूआँ खींचना। दम लगना = गाँजे या चरस का धूँआ खींचना। दम लगाना = दे० "दम मारना"।

(३) साँस खींच कर ज़ोर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से झाड़ फूँक करना। दम फूँकना = किसी चीज़ में मुँह से हवा भरना। दम भरना = कबूतर के पोटे में हवा भरना।

(४) उतना समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। लमहा। पल।

मुहा०—दम के दम = क्षण भर। थोड़ी देर। जैसे, वे यहाँ दम के दम बैठे, फिर चले गए। दम पर दम = बहुत थोड़ी थोड़ी देर पर। हर दम। बराबर। जैसे, दम पर दम इन्हें कै आ रही है। दम बदम = दे० "दम पर दम"।

(५) प्राण। जान। जी।

मुहा०—दम उलझना = जी घबराना। व्याकुलता होना। दम खाना = दिक करना। तंग करना। दम खुश्क होना = दे० "दम सूखना। दम चुराना = जी चुराना। जान बचाना। बहाने से काम करने से अपने आपको बचाना। दम नाक में या नाक में दम आना = बहुत अधिक दुखी होना। बहुत तंग या परेशान होना। दम नाक में या नाक में दम करना अथवा लाना = बहुत कष्ट या दुःख देना। बहुत तंग या

दबाना–क्रि० स० [सं० दमन] [संज्ञा, दाब, दबाव] (१) ऊपर से भार रखना। बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज़ नीचे की ओर धँस जाय अथवा इधर उधर हट न सके)। जैसे, पत्थर के नीचे किताब या कपड़ा दबाना। (२) किसी पदार्थ पर किसी ओर से बहुत जोर पहुँचाना। जैसे, उँगली से काग दबाना, रस निकालने के लिये नीबू के टुकड़े को दबाना, हाथ या पैर दबाना। (३) पीछे हटाना। जैसे, राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दबाती चली गई। (४) जमीन के नीचे गाड़ना। दफन करना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) किसी मनुष्य पर इतना प्रभाव डालना या आतंक जमाना कि जिसमें वह कुछ कह न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके। अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दबाव डालना। जोर डालकर विवश करना। जैसे, (क) कल बातों बातों में उन्होंने तुम्हें इतना दबाया कि तुम कुछ बोल ही न सके। (ख) उन्होंने दोनों आदमियों को दबाकर आपस में मेल करा दिया। (६) अपने गुण या महत्त्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना। दूसरे के गुणों या महत्त्व का प्रकाश न होने देना। जैसे, इस नई इमारत ने आपके मकान को दबा दिया।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

(७) किसी बात को उठने या फैलने न देना। जहाँ का तहाँ रहने देना। (८) उभड़ने से रोकना। दमन करना। शांत करना। जैसे, बलवा दबाना, क्रोध दबाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(९) किसी दूसरे की चीज पर अनुचित अधिकार करना। कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज अपने पास रखना। जैसे, (क) उन्होंने हमारे सौ रुपए दबा लिए। (ख) आपने उनकी किताब दबा ली।

संयो० क्रि०—बैठना।—रखना।—लेना।

(१०) झोंक के साथ बढ़कर किसी चीज को पकड़ लेना।

संयो० क्रि०—लेना।

(११) ऐसी अवस्था में ले आना जिसमें मनुष्य असहाय दीन या विवश हो जाय। जैसे, आजकल रुपए की तंगी ने उन्हें दबा दिया।

दबाबा–संज्ञा पुं० [देश०] युद्ध की सामग्री में लकड़ी का एक प्रकार का बहुत बड़ा संदूक जिसमें कुछ आदमियों को बैठा कर गुप्त रूप से सुरंग खोदने अथवा इसी प्रकार का और कोई उपद्रव करने के लिये शत्रु के किले में उतार देते हैं।

दबाव–संज्ञा पुं० [हिं० दबाना] (१) दबाने की क्रिया। चाँप। (२) दबाने का भाव। चाँप। (३) रोब।

क्रि० प्र०—डालना।—मानना।—में आना या पड़ना।

दबिला–संज्ञा पुं० [देश०] खुरपी या खुचँनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाइयों का एक औज़ार जिससे वे बेसनते आदि भूनते, खोवा बनाते या चीनी की चाशनी आदि फेंटते हैं।

दबीज–वि० [फ़ा०] जिसका दल मोटा हो। गाढ़ा। संगीन।

दबीर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) लिखनेवाला। मुंशी। (२) एक प्रकार के महाराष्ट्र ब्राह्मणों की उपाधि।

दबूसा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) जहाज का पिछला भाग। पिच्छल। (२) बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। (३) जहाज का कमरा। (लश०)

दबेला–वि० [हिं० दबना + एला (प्रत्य०)] (१) दबा हुआ। जिसपर दबाव पड़ा हो। (२) जल्दी जल्दी होनेवाला (काम)। (लश०)

दबैल–वि० [हिं० दबना + एल (प्रत्य०)] (१) जिसपर किसी का प्रभाव या दबाव हो। दबाव में पड़ा हुआ। (२) जो बहुत दबता या डरता हो। किसी से दबनेवाला। दब्बू।

दबोचना–क्रि० स० [हिं० दबाना] (१) किसी को सहसा पकड़ कर दबा लेना। धर दबाना। जैसे, बिल्ली ने तोते को जा दबोचा। (२) छिपाना।

संयो० क्रि०—लेना।

दबोरना†*–क्रि० स० [हिं० दबाना] अपने सामने ठहरने न देना। दबाना। उ०—दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक मगन मही में एक गगन उड़ात है।—तुलसी।

दबोस–संज्ञा स्त्री० [देश०] चकमक पत्थर।

दबोसना†–क्रि० सं० [देश०] शराब पीना।

दबौता–संज्ञा पुं० [हिं० दबाना + औता (प्रत्य०)] लकड़ी का वह कुंदा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के डंठलों आदि को दबाने के लिये ऊपर से रख देते हैं।

दबौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दबाना + औनी (प्रत्य०)] (१) कसेरों का लोहे का औज़ार जिससे वे बरतनों पर फूल पत्ते आदि उभारते हैं। (२) भँजनी के ऊपर की ओर लगी हुई लकड़ी। (जोलाहे)

दभ्र–वि० [सं०] अल्प। थोड़ा। कम।

दमंस†–संज्ञा पुं० [हिं० दाम + अंस] मोल ली हुई जायदाद।

दम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दंड जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। (२) बाह्येंद्रियों का दमन। इंद्रियों को वश में रखना और चित्त को बुरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। (३) कीचड़। (४) घर। (५) एक प्राचीन महर्षि जिनका उल्लेख महाभारत में है। (६) पुराणानुसार मरुत राजा के पौत्र जो बभ्रु की कन्या इंद्रसेना के गर्भ से उत्पन्न

रण नल लगा रहता है। जब पिचकारी चलाते हैं तब खजाने में का पदार्थ जोर से दूसरे नल के द्वारा बाहर निकलता है। पंप। (२) उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से मकानों में लगी हुई आग बुझाई जाती है। पंप। (३) उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालते हैं। पंप। दे० "दमकला"।

दमकला–संज्ञा पुं० [हिं० दम+कल] (१) दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ वह बड़ा पात्र जिसमें लगी हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी महफिलों में लोगों पर गुलाबजल अथवा रंग आदि छिड़का जाता है। (२) जहाज में वह यंत्र जिसकी सहायता से पाल खड़ा करते हैं। (३) दे० "दमकल"।

दमखम–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दृढ़ता। मजबूती। (२) जीवनी-शक्ति। प्राण। (३) तलवार की धार और उसका झुकाव।

दमघोष–संज्ञा पुं० [सं०] चेदि देश के प्रसिद्ध राजा शिशुपाल के पिता का नाम जो दमयंती के भाई थे। इनका दूसरा नाम श्रुतश्रवा भी है।

दमचा–संज्ञा पुं० [देश०] खेत के कोने पर बनी हुई वह मचान जिसपर बैठ कर खेतिहर अपने खेत की रखवाली करता है।

दमचूल्हा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लोहे का बना हुआ गोल चूल्हा जिसके बीच में एक जाली या झंझरा होता है और जिसके नीचे एक और बड़ा छिद्र होता है। इसकी जाली पर कुछ कोयले रख कर उसकी दीवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा की जाती है जिससे आग सुलगती रहती है और जाली में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा–संज्ञा पुं० [?] तलवार। (डिं०)

दमड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० दाम+ड़ा (प्रत्य०)] रुपया। धन। दाम। (बाजारू)

क्रि० प्र०—खर्चना।

मुहा०—दमड़े करना = बेच कर दाम खड़ा करना।

दमड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविण = धन] (१) पैसे का आठवाँ भाग।

विशेष—कहीं कहीं पैसे के चौथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं।

मुहा०—दमड़ी के तीन होना = बहुत सस्ता होना। कौड़ियों के मोल होना।

(२) चिलचिल पक्षी।

दमदमा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह किलेबंदी जो लड़ाई के समय थैलों या बोरों में धूल या बालू भर कर की जाती है। मोरचा। धुस।

क्रि० प्र०—बाँधना।

दमदार–वि० [फ़ा०] जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। (२) दृढ़। मजबूत। (३) जिसमें दम या साँस अधिक समय तक रह सके। जैसे, इस हारमोनियम की भाथी बहुत दमदार है। (४) जिसकी धार बहुत तेज हो। चोखा।

दमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबाने या रोकने की क्रिया। (२) दंड जो किसी को दबाने के लिये दिया जाता है। (३) इंद्रियों की चंचलता रोकना। निग्रह। दम। (४) विष्णु। (५) महादेव। शिव। (६) एक ऋषि का नाम। दमयंती इन्हीं के यहाँ उत्पन्न हुई थी। उ०—पटरानी सों कै मता ले परिजन कछु साथ। आश्रम गयो नरेश तब जहाँ दमन मुनिनाथ।—गुमान। (७) एक राक्षस का नाम। उ०—दमन नाम निश्चर अति घोरा। गर्जत भाषत बचन कठोरा।—रामाश्वमेध। (८) दौना। (९) कुंद।

दमनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक छंद का नाम जिसमें तीन नगण, एक लघु और एक गुरु होता है। (२) दौना।

वि० दमन करनेवाला। दमन-शील।

दमनशील–वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो। दमन करनेवाला।

दमनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसे अग्निदमनी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] संकोच। लज्जा। उ०—सीख सनी सजनीन समीप गुलाब कछू दमनी दरसावै।—गुलाब।

दमनीय–वि० [सं०] (१) दमन होने के योग्य। जो दमन किया जा सके। (२) जो दबाया जा सके। उ०—कुँवरि मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनहार विरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी।

दमपुख्त–वि० [फ़ा०] (वह खाद्य पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो।

दमबाज–वि० [फ़ा० दम+बाज] दम देनेवाला। फुसलानेवाला। बहाना करनेवाला।

दमबाजी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दम+बाजी] बहानेबाजी। दम देने या फुसलाने का काम।

दमयंतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मदनवान वृक्ष।

दमयंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा नल की स्त्री जो विदर्भ देश के राजा भीमसेन की कन्या थी। दे० "नल"। (२) एक प्रकार का बेला। मदनवान।

दमरक–संज्ञा स्त्री० दे० "चमरख"।

दमरख–संज्ञा स्त्री० दे० "चमरख"।

दमरी–संज्ञा स्त्री० दे० "दमड़ी"।

दमसाज–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आदमी जो किसी गवैये के गाने के समय उसकी सहायता के लिये केवल स्वर भरता है।

दमा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रसिद्ध रोग जिसमें श्वास-वाहिनी नाली के अंतिम भाग में, जो फेफड़ों के पास होता है,

परेशान करना। दम निकलना = मृत्यु होना। मरना। (किसी पर) दम निकलना = किसी पर इतना अधिक प्रेम होना कि उसके वियोग में प्राण निकलने का सा कष्ट हो। बहुत अधिक आसक्ति होना। जैसे, वसीको देखकर जीते हैं जिसपर दम निकलता है। दम पर आ बनना—(१) जान पर आ बनना। प्राण-भय होना। (२) आपत्ति आना। आफत आना। (३) हैरानी होना। व्यग्रता होना। दम फड़क उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण आदि देख कर चित्त का बहुत प्रसन्न होना। जैसे, उसकी कसरत देख कर दम फड़क गया। दम फड़कना = चित्त का व्याकुल होना। बेचैनी होना। दम फ़ना होना = दे० "दम सूखना"। जैसे, (क) देने के नाम तो इनका दम फ़ना होता है। (ख) उनकी सुरत देखते ही दम फ़ना हो जाता है। दम में दम आना = घबराहट या भय का दूर होना। चित्त स्थिर होना। दम में दम रहना या होना = प्राण रहना। जिंदगी रहना। दम सूखना = बहुत अधिक भय के कारण बिलकुल चुप होजाना। बहुत डर के कारण साँस तक न लेना। प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। जैसे, इन्हें देखते ही लड़के का दम सूख गया।

(६) वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखता और काम देता है। जीवनीशक्ति। जैसे, (क) इस छाते में अब बिलकुल दम नहीं है। (ख) इस मकान में कुछ दम तो है ही नहीं, तुम इसे लेकर क्या करोगे।

यौ०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। (२) मजबूत। दृढ़।

(७) व्यक्तित्व। जैसे, आपके ही दम से ये सब बातें हैं।

मुहा०—(किसी का) दम गनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी बातों का होता रहना। गई बीती दशा में भी किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका आदर हो सके। जैसे, इस शहर में अब तो और कोई अच्छा पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम गनीमत है।

(८) किसी स्वर का देर तक उच्चारण। (संगीत)

मुहा०—दम भरना = किसी स्वर का देर तक उच्चारण करते रहना।

यौ०—दमसाज़ = वह आदमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर भरता रहे।

(६) पकाने की वह क्रिया जिसमें किसी खाद्य पदार्थ को बरतन में चढ़ाकर और उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार बरतन के अंदर की भाफ बाहर नहीं निकलने पाती और उस पदार्थ के पकने में भाफ से बहुत सहायता मिलती है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

यौ०—दम-चूल्हा। दम-आलू। दम-पुख्त।

मुहा०—दम करना = किसी चीज़ को बरतन में रख कर और भाफ रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देना। दम खाना = किसी पदार्थ का बंद मुँह के बरतन में भीतरी भाफ की सहायता से पकाया जाना। दम देना = किसी अधपकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी आँच पर रख कर उसका मुँह बंद कर देना जिसमें वह अच्छी तरह से पक जाय। दम पर आना = किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कसर रह जाना कि थोड़ा दम देने से वह अच्छी तरह पक जाय। पक कर तैयारी पर आना। थोड़ी देर भाफ बंद करके छोड़ देने की कसर रहना। दम होना = भाफ से पकना।

(१०) धोखा। छल। फरेब। जैसे, आप तो इसी तरह लोगों को दम देते हैं।

यौ०—दम झाँसा = छल कपट। दम दिलासा = वह बात जो केवल फुसलाने के लिये कही जाय। झूठी आशा। दम पट्टी (१) धोखा। फरेब। (२) दे० "दम दिलासा"। दमबाज़ = (१) धोखा देनेवाला। (२) फुसलाने या बहकानेवाला।

मुहा०—दम देना = बहकाना। धोखा देना। फुसलाना। दम में आना = धोखे में पड़ना। फरेब में आना। जाल में फँसना। दम खाना = फरेब में आना। धोखे में पड़ना। दम में लाना = (१) बहकाना। फुसलाना। (२) धोखा देना। झाँसा देना।

(११) तलवार या छुरी आदि का धाड़। धार।

यौ०—दमदार = चोखा। तेज़। पैना। धारदार।

संज्ञा पुं० [देश०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिकोनी कमाची जिसमें सवा सवा गज की तीन लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं। ये करघे में पड़ी रहती हैं और उसमें जोती बँधी रहती है जो पैर के अँगूठे में बाँध दी जाती है। बुनने के समय इसे पैर से नीचे दबाते हैं।

दमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक का अनु०] चमक। चमचमाहट। द्युति। आभा।

संज्ञा पुं० [सं०] दमनकर्त्ता। दबाने, रोकने या शांत करनेवाला।

दमकना—क्रि० अ० [हिं० चमकना का अनु०] चमकना। चमचमाना।

दमकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० दम + कल] (१) वह यंत्र जिसमें एक वा अधिक ऐसे नल लगे हों, जिनके द्वारा कोई तरल पदार्थ हवा के दबाव से, ऊपर अथवा और किसी ओर झोंक से फेंका जा सके। ऐसे यंत्रों में एक खज़ाना होता है जिसमें जल अथवा और कोई तरल पदार्थ भरा रहता है; और इसमें एक ओर पिचकारी और दूसरी ओर साधा-

दयालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दयालु होने का भाव । दया करने की प्रवृत्ति ।

दयावंत—वि० [सं० दयावान् का बहुवचन] दयायुक्त । दयालु ।

दयावती—वि० स्त्री० [सं०] दया करनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से पहली श्रुति ।

दयावना*—वि० पुं० [हिं० दया + आवना] [स्त्री० दयावनी] दयायोग्य । दयापात्र । दीन । उ०—देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ, बापुरे बराक कहा और राजा राना रंक को ।—तुलसी ।

दयावान्—वि० [सं०] [स्त्री० दयावती] जिसके चित्त में दया हो । दयालु ।

दयावीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया करने में वीर हो । वह जो दूसरे का दुःख दूर करने के लिये प्राण तक दे सकता हो ।

विशेष—साहित्य या काव्य में वीर-रस के अंतर्गत युद्धवीर दानवीर आदि जो चार वीर गिनाए गए हैं उनमें दयावीर भी है ।

दयाशील—वि० [सं०] दयालु । कृपालु ।

दयासागर—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चित्त में अगाध दया हो । अत्यंत दयालु मनुष्य ।

दयित—वि० [सं०] (१) प्यारा । प्रिय ।

संज्ञा पुं० [सं०] पति ।

दयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा । पत्नी । स्त्री ।

दर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंख । (२) गड्ढा । दरार । (३) गुफा । कंदरा । (४) फाड़ने की क्रिया । विदारण । जैसे, पुरंदर । (५) डर । भय । खौफ । उ०—(क) भव-वारिधि-मंदर, पर-मंदर । वारय, तारय संसृति दुस्तर ।—तुलसी । (ख) दर जु कहत कवि शंख को दर ईंधन को नाम । दर दर ते रात्रों कुँवर मोहन गिरधर श्याम ।—नंददास । (ग) साध्वस दर आतंक भय भीत भीर भी त्रास । डरत सहचरी सकुच तें गई कुँवरि के पास ।—नंददास ।

संज्ञा पुं० [सं० दल] सेना । समूह । दल । उ०—(क) पकटा जनु वर्षा ऋतुराजा । जनु असाढ़ आवै दर साजा ।—जायसी । (ख) दूतन कहा आय जहँ राजा । चढ़ा तुर्क आवै दर साजा ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० [फा०] द्वार । दरवाज़ा । उ०—माथा नटिन भ्रुकुटि कर लीने कोटिक नाच नचावै । दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वाँग करावै ।—सूर ।

मुहा०—दर दर मारा मारा फिरना = कार्यसिद्धि या पेट पालने के लिये एक घर से दूसरे घर फिरना । दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना ।

संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल, थर । या फ़ा० दर] (१) जगह । स्थान । (२) वह स्थान जहाँ जुलाहे ताने की हँथियाँ गाड़ते हैं ।

संज्ञा स्त्री० (१) भाव । निर्ख़ । जैसे, कागज़ की दर आज कल बहुत बढ़ गई है । (२) प्रमाण । ठीक ठिकाना । जैसे, इसकी बात की कोई दर नहीं । (३) कदर । प्रतिष्ठा । महत्व । महिमा । उ०—सिर केतु सुहावन फरहरें जेहि लखि पर दल थरहरे । सुराज केतु की दर हरे आदव जोधा डर हरे ।—गोपाल ।

वि० [सं०] किंचित् । थोड़ा । ज़रा सा ।

†संज्ञा स्त्री० [सं० दारु = लकड़ी] ईख । इक्षु । ऊख । उ०—कारन ते कारज है नीको । जथा कंद ते दर रस फीको ।—विश्राम ।

दरकंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । सतावर नामक ओषधि ।

दरक—वि० [सं०] डरनेवाला । डरपोक । भीरु ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दरकना] ज़ोर या दाब पड़ने से पड़ा हुआ दरार । चीर ।

दरकच—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरा + अनु० कच] (१) वह चोट जो ज़ोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे । (२) वह चोट जो कुचल जाने से लगे ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दरकचाना†—क्रि० स० [हिं० दर + कचरना] थोड़ा कुचलना । इतना कुचलना जिसमें कोई वस्तु कई खंड हो जाय पर चूर्ण न हो ।

दरकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दर = भाव + काटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निर्ख़ काट देने की क्रिया । दर की मुकर्री । भाव का ठहराव ।

दरकना—क्रि० अ० [सं० दर = फाड़ना] दाब या ज़ोर पड़ने से फटना । चिरना । विदीर्ण होना । जैसे, कपड़ा दरकना, छाती दरकना । उ०—क्यों धौं दारयौं ज्यौं हियो दरकत नाहिं नँदलाल ।—बिहारी ।

दरका—संज्ञा पुं० [हिं० दरकना] (१) शिगाफ । दरार । फटने का चिह्न । (२) वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय । उ०—लखी वियोगिनि दाड़िमन, कंटक श्रंग निदान । फुलत नवित दरको लगो शुकमुख किंशुकधान ।—गुमान ।

दरकाना—क्रि० स० [हिं० दरकना] फाड़ना । उ०—ढीठ लँगर कन्हाई मोरी चाँगी दरकाई रे । (गीत)

क्रि० अ० फटना । उ०—पुलकित श्रंग अँगिया दरकानी उर आनँद अंचल फहरात ।—सूर ।

आकुंचन और ऐंठन के कारण साँस लेने में बहुत कष्ट होता है, खाँसी आती है और कफ रुक रुक कर बड़ी कठिनता से धीरे धीरे निकलता है। इस रोग के रोगी को प्रायः अत्यंत कष्ट होता है; और लोगों का विश्वास है कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता। इसीलिये इसके संबंध में एक कहावत बन गई है कि दमा दम के साथ जाता है। श्वास। साँस।

दमाद–संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] कन्या का पति। जवाईं। जामाता।

दमादम–क्रि० वि० [अनु०] (१) दम दम शब्द के साथ। (२) लगातार। बराबर।

दमान–संज्ञा पुं० [देश०] दामन। पाल की चादर। (लश०)

दमानक–संज्ञा स्त्री० [देश०] तोपों की बाढ़। उ०—देव भूत पितर करम खल काल ग्रह मोहि पर दौरि दमानक सी दई है।—तुलसी।

दमाम–संज्ञा पुं० दे० "दमामा"।

दमामा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] नगारा। नक्कारा। डंका। धौंसा।

दमारि*†–संज्ञा पुं० [सं० दावानल] जंगल की आग। वन की आग।

दमावति–संज्ञा स्त्री० दे० "दमयंती"। उ०—राजा नल कँह जैसे दमावति।—जायसी।

दमाह–संज्ञा पुं० [हिं० दमा] बैलों का एक रोग जिसमें वे हाँफने लगते हैं।

दमी–वि० [सं० दम] दमनशील।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का जेबी या सफरी नैचा। दम लगाने का नैचा।

वि० [फ़ा० दम] (१) दम लगानेवाला। कश खींचनेवाला। (२) गाँजा पीनेवाला। गँजेड़ी। जैसे, दमी यार किस के। दम लगा के खिसके। (कहा०)

वि० [हिं० दमा] जिसे दमे का रोग हो। दमे के रोगवाला।

दमुना†–संज्ञा पुं० [?] अग्नि। आग।

दमैया*†–वि० [हिं० दमन + ऐया (प्रत्य०)] दमन करनेवाला। उ०—तुलसी तेहि काल कृपाल विना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।—तुलसी।

दमोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० दाम + ओड़ा (प्रत्य०)] दाम। मूल्य। कीमत। (दलाली)

दमोदर–संज्ञा पुं० दे० "दामोदर"।

दम्य–वि० [सं०] (१) दमन करने के योग्य। जो दमन किया जा सके। (२) वह बैल जो बधिया करने योग्य हो।

दयंत‡–संज्ञा पुं० दे० "दैत्य"

दय–संज्ञा पुं० [सं०] दया। कृपा। करुणा।

दया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मन का वह दुःख-पूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट को देखकर उत्पन्न होता है और उस कष्ट को दूर करने की प्रेरणा करता है। सहानुभूति का भाव। करुणा। रहम।

क्रि० प्र०—आना।—करना।

यौ०—दया-दृष्टि।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके वाचक शब्द के साथ 'पर' विभक्ति लगती है जैसे, किसी पर दया आना, किसी पर (या किसी के ऊपर) दया करना। शिष्टाचार के रूप में भी इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है जैसे किसी ने पूछा "आप अच्छी तरह !" उत्तर मिलता है—"आपकी दया से"।

(२) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही गई थी।

दयाकूर्च–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दयादृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के प्रति करुणा या अनुग्रह का भाव। रहम या मेहरबानी की नज़र।

दयानत–संज्ञा स्त्री० [अ०] सत्यनिष्ठा। ईमान।

दयानतदार–वि० [अ० दयानत + फा० दार] ईमानदार। सच्चा।

दयानतदारी–संज्ञा स्त्री० [अ० दयानत + फा० दारी] ईमानदारी। सचाई।

दयाना*–क्रि० अ० [हिं० दया + ना (प्रत्य०)] दयालु होना। कृपालु होना। उ०—आगम कारण भूप तब मुनि सों कह्यो सुनाई। मुनिवर दई उपासना परम दयालु दयाइ।—गुमान।

दयानिधान–संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना। वह जिसमें बहुत अधिक दया हो। बहुत दयालु पुरुष।

दयानिधि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दया का खजाना। वह जिसके चित्त में बहुत दया हो। बहुत दयालु पुरुष। (२) ईश्वर का एक नाम। उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै।—सूर।

दयापात्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया के योग्य हो। वह जिसपर दया करना उचित हो।

दयामय–वि० [सं०] (१) दया से पूर्ण। दयालु। (२) ईश्वर का एक नाम।

दयार–संज्ञा पुं० [सं० दवदार] देवदार का पेड़।

संज्ञा पुं० [अ०] प्रांत। प्रदेश।

दयार्द्र–वि० [सं०] दया से भीगा हुआ। दया-पूर्ण। दयालु।

दयाल–वि० दे० "दयालु"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया जो बहुत अच्छा बोलती है।

दयालु–वि० [सं०] जिसमें दया का भाव अधिक हो। बहुत दया करनेवाला। दयावान्।

स्थूल हों। जिसके रवे महीन न हों, मोटे हों। जिसके कण टटोलने से मालूम हों। जो खूब बारीक न पिसा हो। जैसे, दरदरा आटा, दरदरा चूर्ण।

दरदराना–क्रि० स० [सं० दरण] (१) किसी वस्तु को इस प्रकार हलके हाथ से पीसना या रगड़ना कि उसके मोटे मोटे रवे या टुकड़े हो जायँ। बहुत महीन न पीसना। थोड़ा पीसना। जैसे, मिर्च थोड़ा दरदरा कर ले आओ, बहुत महीन पीसने का काम नहीं। †(२) जोर से दाँत काटना।

दरदरी–वि० स्त्री० [हिं० दरदरा] मोटे रवे की। जिसके रवे मोटे हों।

*संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] पृथ्वी। जमीन। धरती। (डिं०)

दरदवंत–वि० [फ़ा० दर्द+वंत (प्रत्य०)] (१) कृपालु। दयालु। सहानुभूति रखनेवाला। उ०—सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गौर। बोलनि चितवनि चलनि वह दरदवंत की और।—रसनिधि। (२) दुखी। जिसके पीड़ा हो। पीड़ित। उ०—लेत न मजनू गोर ढिग कोऊ लै लै नाम। दरदवंत को नेक तो लेन देहु विश्राम।—रसनिधि।

दरदवंद*–वि० [फ़ा० दर्दमंद] (१) व्यथित। पीड़ित। जिसके दर्द हो। (२) दुखी। खिन्न।

दरदालान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] दालान के बाहर का दालान।

दरद्–संज्ञा पुं० दे० "दरद" वा "दर्द"।

दरना†–क्रि० स० [सं० दरण] (१) दलना। चूर्ण करना। पीसना। (२) ध्वस्त करना। नष्ट करना।

दरप*†–संज्ञा पुं० दे० "दर्प"।

दरपक*–संज्ञा पुं० दे० "दर्पक"।

दरपन–संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] [स्त्री० अल्प० दरपनी] मुँह देखने का शीशा। आइना। मुकुर। आरसी।

दरपना*–क्रि० अ० [सं० दर्पण] (१) ताव में आना। क्रोध करना। (२) गर्व या अहंकार करना। घमंड करना।

दरपनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दरपन] मुँह देखने का छोटा शीशा। छोटा आइना।

दरपरदा–क्रि० वि० [फ़ा०] चुपके चुपके। आड़ में। छिपाकर।

दरपेश–क्रि० वि० [फ़ा०] आगे। सामने।

मुहा०—दरपेश होना = उपस्थित होना। सामने आना। जैसे, मामला दरपेश होना।

दरब–संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] (१) धन। दौलत। (२) धातु। (३) मोटी किनारदार चादर।

दरबरा†–वि० [सं० दरण] (१) दरदरा (२) ऐसा रास्ता जिसमें ठीकरे पड़े हों। (कहारों की बोली)

दरबराना†–क्रि० स० [हिं० दाबर] (१) दरदरा करना। थोड़ा पीसना। (२) किसी को इस प्रकार दबा देना कि वह किसी बात का खंडन न कर सके। घबरा देना। (३) दबाना। दबाव डालना।

दरबहरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मद्य जो कुछ वनस्पतियों को सड़ा कर बनाया जाता है।

दरबा–संज्ञा पुं० [फ़ा० दर] (१) कबूतरों मुरगियों आदि के रखने के लिये काठ का खानेदार संदूक जिसके एक एक खाने में एक एक पक्षी रक्खा जाता है। (२) दीवार, पेड़ आदि में वह खोंदरा या कोटर जिसमें कोई पक्षी या जीव रहता है।

दरबान–संज्ञा पुं० [फ़ा०, मि० सं० द्वारवान्] ड्योढ़ीदार। द्वारपाल।

दरबानी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दरबान का काम। द्वारपाल का कार्य्य।

दरबार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० दरबारी] (१) वह स्थान जहाँ राजा या सरदार मुसाहबों के साथ बैठते हैं। (२) राजसभा। कचहरी। उ०—करि मज्जन सरजू जल गए भूप दरबार।—तुलसी।

यौ०—दरबारदारी। दरबार आम। दरबार खास।

मुहा०—दरबार करना = राजसभा में बैठना। दरबार खुलना = दरबार में जाने की आज्ञा मिलना। दरबार बंद होना = दरबार में जाने की रोक होना। दरबार बाँधना = घूस बाँधना। रिशवत मुकर्रर करना। मुँह भरना। दरबार लगना = राजसभा के सभासदों का इकट्ठा होना।

(३) महाराज। राजा। (रजवाड़ों में)। (४) अमृतसर में सिक्खों का मंदिर जिसमें ग्रंथ साहब रखा हुआ है। (५) दरवाजा। द्वार। उ०—तब बोलि उठ्यो दरबार-बिलासी। द्विजद्वार लसै जमुनातटवासी।—केशव।

दरबारदारी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) दरबार में हाजरी। राजसभा में उपस्थिति। (२) किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने और खुशामद करने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

दरबारबिलासी*–संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबार+सं० विलासी] द्वारपाल। दरबान। उ०—तब बोलि उठ्यो दरबार-बिलासी। द्विजद्वार लसै जमुनातटवासी।—केशव।

दरबारी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] राजसभा का सभासद। दरबार में बैठनेवाला आदमी।

वि० दरबार का। दरबार के योग्य। दरबार से संबंध रखनेवाला। जैसे, दरबारी पोशाक।

दरबारी कान्हड़ा–संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबारी+हिं० कान्हड़ा] एक राग जिसमें शुद्ध ऋषभ के अतिरिक्त बाकी सब कोमल स्वर लगते हैं।

दरभ–संज्ञा पुं० दे० "दर्भ"।

संज्ञा पुं० [?] बंदर। उ०—कपि शाखामृग

दरकार-वि० [फ़ा०] आवश्यक। अपेक्षित। ज़रूरी।

दरकिनार-क्रि० वि० [फ़ा०] अलग। अलहदा। एक ओर। दूर।

मुहा०—......तो दर किनार = ...कुछ चर्चा नहीं। दूर की बात है। बहुत बड़ी बात है। जैसे, उसे कुछ देना तो दर किनार मैं उससे बात भी नहीं करना चाहता।

दरकूच-क्रि० वि० [फ़ा०] बराबर यात्रा करता हुआ। मंजिल दरमंजिल। उ०—(क) रामचंद्रजी की चमू राज्यश्री विभीषण की, रावण की मीचु दरकूच चलि आई है।—केशव। (ख) दस सहस बाजे दराज लागे अरु अरावो संग लै। दरकूच आवत है चलो मन माहँ जंग उमंग लै।—सूदन।

दरखत†-संज्ञा पुं० दे० "दरख्त"।

दरखास्त-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरख्वास्त] (१) निवेदन। किसी बात के लिये प्रार्थना।

क्रि० प्र०—करना।

(२) प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र। वह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो।

मुहा०—दरखास्त गुजरना = दे० "दरखास्त पड़ना"। दरखास्त देना = प्रार्थनापत्र उपस्थित करना। कोई ऐसा लेख भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो। दरखास्त पड़ना = प्रार्थनापत्र उपस्थित किया जाना। किसी के ऊपर दरखास्त पड़ना = किसी के विरुद्ध राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना।

दरख़्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पेड़। वृक्ष।

दरगाह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) चौखट। देहरी। (२) दरबार। कचहरी। उ०—चढ़ी मदन दरगाह में तेरे नाम कमान।—रसनिधि। (३) किसी सिद्ध पुरुष का समाधिस्थान। मकबरा। मजार। जैसे, पीर की दरगाह। (४) मठ। मंदिर। तीर्थस्थान।

दरगुजर-वि० [फ़ा०] (१) अलग। बाज़। वंचित।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दरगुजर करना = टालना। हटाना।

(२) मुआफ। क्षमा-प्राप्त।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना। छोड़ देना। दंड आदि न देना। मुआफ करना।

दरगुजरना-क्रि० अ० [फ़ा०] (१) छोड़ना। त्यागना। बाज़ आना। (२) जाने देना। दंड आदि न देना। क्षमा करना। मुआफ करना।

दरज-संज्ञा स्त्री० [सं० दर = दरार] दरार। शिगाफ। दराज। वह खाली जगह जो फटने या दरकने से पड़ जाय।

यौ०—दरजबंदी = दीवार की दरारों को चूना गारा भरकर बंद करने का काम।

दरजन-संज्ञा पुं० दे० "दर्जन"।

दरजा-संज्ञा पुं० दे० "दर्जा"।

संज्ञा पुं० [हिं० दरजा] लोहा ढालने का एक औज़ार।

दरजिन-संज्ञा स्त्री० दे० "दर्जिन"।

दरजी-संज्ञा पुं० दे० "दर्जी"।

दरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दलने या पीसने की क्रिया। (२) ध्वंस। विनाश।

दरद-संज्ञा पुं० [फा० दर्द] (१) पीड़ा। व्यथा। कष्ट। उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार।—रसनिधि। (२) दया। करुणा। तर्स। सहानुभूति। उ०—माई नेकहु न दरद करति हिलकिन हरि रोवै।—सूर।

विशेष—दे० "दर्द"।

वि० [सं०] भयदायक। भयंकर।

संज्ञा पुं० (१) काश्मीर और हिंदूकुश पर्वत के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—बृहत्संहिता में इस देश की स्थिति ईशान कोण में बतलाई गई है पर आज कल जो दारद नाम की पहाड़ी जाति है वह लद्दाख, गिलगित, चित्राल, नागर हुंजा आदि स्थानों में ही पाई जाती है। प्राचीन यूनानी और रोमन लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवास-स्थान हिंदूकुश पर्वत के आस पास ही निश्चित होता है।

(२) एक म्लेच्छ जाति जिसका उल्लेख मनुस्मृति, हरिवंश आदि में है।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पौंड्रक, ओड्र, द्राविड़, कांबोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खस पहले क्षत्रिय थे, पीछे संस्कार-विहीन हो जाने और ब्राह्मणों का दर्शन न पाने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गए। आज कल जो दारद नाम की जाति है वह काश्मीर के आस पास लद्दाख से लेकर नागर-हुंजा और चित्राल तक पाई जाती है। इस जाति के लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं। पर इनकी भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता है कि ये आर्य्यकुलोत्पन्न हैं। यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसलमान हो जाने के कारण फारसी अक्षरों का व्यवहार करते हैं पर इनकी भाषा काश्मीरी से बहुत मिलती जुलती है।

(३) ईंगुर। सिंगरफ। हिंगुल।

दर दर-क्रि० वि० [फा० दर दर] द्वार द्वार। दरवाज़े दरवाज़े। स्थान स्थान पर। जगह जगह। उ०—माया नटिन लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै। दर दर लोभ लागि लै डोलै नाना स्वांग करावै।—सूर।

† वि० दे० "दरदरा"।

दरदरा-वि० [सं० दरण = दलना] [स्त्री० दरदरी] जिसके कण

दरिद्दर‡–वि०, संज्ञा पुं० दे० "दरिद्र"।

दरिद्र–वि० [सं०] [स्त्री० दरिद्रा] जिसके पास निर्वाह के लिये यथेष्ट धन न हो। निर्धन। कंगाल।
संज्ञा पुं० निर्धन मनुष्य। कंगाल आदमी।

दरिद्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कंगाली। निर्धनता।

दरिद्री‡–वि०, दे० "दरिद्र"।

दरिया–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) नदी। (२) समुद्र। सिंधु। उ०—तजि श्रास भो दास रघुपति को दसरथ के दानि दया दरिया।—तुलसी।
यौ०—दरियादिल = उदार।
संज्ञा पुं० [हिं० दरना] दलिया।

दरियाई–वि० [फ़ा०] (१) नदी संबंधी। (२) नदी में रहनेवाला। जैसे, दरियाई घोड़ा। (३) नदी के निकट का। (४) समुद्र संबंधी।
संज्ञा स्त्री० पतंग को दूर ले जाकर हवा में छोड़ने की क्रिया। कौंजी। छुड़ैया।
क्रि० प्र०—देना।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाराई] एक प्रकार की रेशमी पतली साटन। उ०—तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे ''' दरियाई की अँगिया में मूँज की बखिया।—हरिश्चंद्र।

दरियाई घोड़ा–संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाई + हिं० घोड़ा] गैंडे की तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो अफ्रिका में नदियों के किनारे की दलदलों और झाड़ियों में रहता है। इसके पैरों में खुर के आकार की चार चार उँगलियाँ होती हैं। मुँह के भीतर डाढ़ें और कटीले दाँत होते हैं। शरीर नाटा, मोटा, भारी और बेढंगा होता है। चमड़े पर बाल नहीं होते। नाक फूली और उभरी हुई तथा पूँछ और आँखें छोटी होती हैं। यह जानवर पौधों की जड़ों और कल्लों को खाकर रहता है। दिन भर तो यह झाड़ियों और दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में निकलता है और खेती आदि को हानि पहुँचाता है। पर यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता और ज़रा सा खटका या भय होते ही नदी में जाकर गोता मार लेता है। पर देर तक पानी में नहीं रह सकता, साँस लेने के लिये सिर निकालता है और फिर डूबता है। यह निर्जन स्थानों में गोल बाँध कर रहता है।
कभी कभी लोग इसका शिकार गड्ढे खोद कर करते हैं। रात को जब यह जंतु गड्ढों में गिर कर फँस जाता है तब लोग इसे मार डालते हैं। इसके चमड़े से एक प्रकार का लचीला और मजबूत चाबुक बनता है जिसे करवस कहते हैं। मिस्र देश में इस चाबुक का प्रचार है। वहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले नील नदी के किनारे दरियाई घोड़े बहुत मिलते थे, पर अब शिकार होने के कारण कुछ कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल–संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाई + हिं० नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रीका, अमेरिका आदि में समुद्र के किनारे किनारे होता है। इसकी गिरी और छिलका सूखने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। इसकी गिरी दवा के काम में आती है। खोपड़े का पात्र बनता है जिसे संन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियादासी–संज्ञा पुं० निर्गुण उपासक साधुओं का एक संप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं कि इस संप्रदाय के लोग आधे हिंदू आधे मुसलमान होते हैं।

दरियादिल–वि० [फ़ा०] [संज्ञा दरियादिली] उदार। दानी। फ़ैयाज़।

दरियादिली–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उदारता।

दरियाफ़्त–वि० [फ़ा०] ज्ञात। मालूम। जिसका पता लगा हो।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

दरियाबरामद–संज्ञा पुं० दे० "दरियाबरार"।

दरियाबरार–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जो किसी नदी की धारा हट जाने से निकल आती है और जिसमें खेती होती है।

दरियाबुर्द–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जिसे कोई नदी काट कर खराब कर दे जिसमें कि वह खेती के योग्य न रहे।

दरियाव–संज्ञा पुं० (१) दे० "दरिया"। उ०—तन समुद्र मन लहर है नैन कहर दरियाव। बेसर जुआ सिकंदरी कहत न आव, न जाव॥ (प्रचलित)। (२) समुद्र। सिंधु। उ०—पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का ही मिस उतरत दरियाव हैं।—भूषण।

दरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुफा। खोह। (२) पहाड़ के बीच वह खड्ड या नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो।
संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर, स्तरी = फैलाने की वस्तु] मोटे सूतों का बुना हुआ मोटे दल का बिछौना। शतरंजी।
वि० [सं० दरिन्] (१) फाड़नेवाला। विदीर्ण करनेवाला। (२) डरनेवाला। डरपोक।

दरीखाना–संज्ञा पुं० [फ़ा० दर + खाना] वह घर जिसमें बहुत से द्वार हों। बारहदरी। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दौरि दौरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि उठै।—पद्माकर।

दरीचा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० दरीची] (१) खिड़की। झरोखा। (२) छोटा द्वार। चोर दरवाजा। (३) खिड़की के पास बैठने की जगह।

दरीची–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरीचा] (१) झरोखा। खिड़की। (२) खिड़की के पास बैठने की जगह। उ०—(क) मूँदि दरीचिन दै परदा सिदरीन झरोखन रोंकि छपायो।—

वलीमुख कीश दरभ लंगूर। बानर मर्कट प्लवंग हरि तिन कहँ भजु मन-क्रूर।—नंददास।

दरमन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] इलाज। औषध।

यौ० दवादरमन = उपचार।

दरमा–संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस की वह चटाई जो बंगाल में झोपड़ियों की दीवार बनाने में काम आती है।

†संज्ञा पुं० [सं० दाड़िम] अनार।

दरमाहा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मासिक वेतन।

दरमियान–संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य। बीच।

क्रि० वि० बीच में। मध्य में।

दरमियानी–वि० [फ़ा०] बीच का। मध्य का।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मध्यस्थ। बीच में पड़नेवाला व्यक्ति। दो आदमियों के बीच के झगड़े का निबटेरा करनेवाला मनुष्य। (२) दलाल।

दररना–क्रि० स० दे० "दरना"।

क्रि० स० दे० "दरेरना"।

दरवाजा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) द्वार। मुहाना।

मुहा०—दरवाजे की मिट्टी खोद डालना या ले डालना = बार बार दरवाजे पर आना। दरवाजे पर इतनी बार जाना आना कि उसकी मिट्टी खुद जाय।

(२) किवाड़। कपाट।

क्रि० प्र०—खटखटाना।—खोलना।—बंद करना।—भेड़ना।

दरवी–संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] (१) साँप का फन।

यौ०—दरवीकर = साँप।

(२) करछुल। पौना। (३) सँड़सी। दस्तपनाह। दस्पना।

दरवेश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [दरवेशी] फकीर। साधू।

दरश–संज्ञा पुं० दे० "दर्श"।

दरशन–संज्ञा पुं० दे० "दर्शन"।

दरशाना–क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "दरसना"।

दरस–संज्ञा पुं० [सं० दर्श] (१) देखा देखी। दर्शन। दीदार। उ०—दरस परस मज्जन अरु पाना।—तुलसी। (२) भेंट। मुलाकात। (३) रूप। छवि। सुंदरता।

दरसन–संज्ञा पुं० दे० "दर्शन"।

दरसना*–क्रि० अ० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना। देख पड़ना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। उ०—श्रीनारद की दरसै मति सी। लोपै तमता अपकीरति सी।—केशव।

क्रि० स० [सं० दर्शन] देखना। लखना। उ०—(क) वन राम शिला दरसी जबहीं।—केशव। (ख) नर अंध भये दरसे तरु मोरे।—केशव।

दरसनी हुंडी–संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] (१) वह हुंडी जिसके भुगतान की मिति को दस दिन या उससे कम दिन बाकी हों। (इस प्रकार की हुंडी बाज़ार में दरसनी हुंडी के नाम से बिकती है)। (२) कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाय।

दरसनीय*–वि० दे० "दर्शनीय"।

दरसाना–क्रि० स० [सं० दर्शन] (१) दिखलाना। दृष्टिगोचर कराना। उ०—चकित जानि जननी जिय रघुपति वपु विराट दरसायो।—रघुराज। (२) प्रकट करना। स्पष्ट करना। समझाना। उ०—रामायन भागवत सुनाई। दीन्हीं भक्ति राह दरसाई।—रघुराज।

*†क्रि० अ० दिखाई पड़ना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। उ०—(क) डाढ़ी में अरु वदन में स्वेत बार दरसाहिं।—रघुराज। (ख) प्रमुदित करहिं परस्पर बाता। सखि तव अधर स्याम दरसाता।—रघुराज।

दरसावना–क्रि० स० दे० "दरसाना"।

दराँती–संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] (१) हँसिया। घास या फसल काटने का औज़ार।

मुहा०—दराँती पड़ना = कटौनी पड़ना। कटाई प्रारंभ होना।

(२) दे० "दरेंती"।

दराई†–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) दलने की मज़दूरी। (२) दलने का काम।

दराज़–वि० [फ़ा०] बड़ा। भारी। लंबा। दीर्घ।

क्रि० वि० [फ़ा०] बहुत। अधिक

संज्ञा स्त्री० [हिं० दरार] दरज। शिगाफ। दरार।

संज्ञा स्त्री० [अं० ड्राअर] मेज़ में लगा हुआ संदूकनुमा खाना जिसमें कुछ वस्तु रख कर ताला लगा सकते हैं।

दरार–संज्ञा स्त्री० [सं० दर] वह खाली जगह जो किसी चीज़ के फटने पर लकीर के रूप में पड़ जाती है। शिगाफ़। उ०—(क) अबहुँ अवनि विहरति दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें।—तुलसी। (ख) सुमिर सनेह सुमित्रा सुत को दरकि दरार न आई।—तुलसी।

दरारना–क्रि० अ० [हिं० दरार + ना (प्रत्य०)] फटना। विदीर्ण होना। उ०—बाजहिं भेरि नफीर अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा।—तुलसी।

दरारा–संज्ञा पुं० [हिं० दरना] दरेरा। धक्का। रगड़ा। उ०—दल के दरारे हुते कमठ करारे फूटे केरा कैसे पात विहराने फन सेस के।—भूषण।

दरिंदा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] फाड़ खानेवाला जंतु। मांसभक्षक वन-जंतु। जैसे, शेर, कुत्ता, आदि।

दरिद‡–संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र] (१) कंगाली। निर्धनता। गरीबी। (२) कंगाल। निर्धन।

दर।—तुलसी। (२) मान। अहंकार के लिए किसी के प्रति कोप। (३) उद्दंडता। अक्खड़पन। (४) दबाव। आतंक। रोब। (५) कस्तूरी।

दर्पक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) दर्प करनेवाला व्यक्ति। (२) कामदेव। मनोज।

दर्पण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) आइना। आरसी। मुँह देखने का शीशा। वह काँच जो प्रतिबिंब के द्वारा मुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है। (२) ताल के आठ मुख्य भेदों में से एक भेद। (३) चक्षु। आँख। (४) संदीपन। उद्दीपन। उभारने का कार्य्य। उत्तेजना।

दर्पन–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दर्पण"।

दर्पित–वि॰ [सं॰] गर्वित। अहंकार से भरा हुआ।

दर्पी–वि॰ [सं॰ दर्पिन्] घमंडी। अहंकारी।

दर्ब*†–संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्रव्य] (१) द्रव्य। धन। (२) धातु (सोना चाँदी इत्यादि।)

दर्बान–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दरबान"।

दर्बार–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दरबार"।

दर्बारी–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दरबारी"।

दर्भ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक प्रकार का कुश। डाभ। डाभुस। (२) कुश। (३) कुशासन। उ॰—अस कहि लवणसिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। —तुलसी।

दर्भकेतु–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कुशध्वज, राजा जनक के भाई।

दर्भट–संज्ञा पुं॰ [सं॰] गुप्त गृह। भीतरी कोठरी।

दर्भपत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] काँस।

दर्भपुष्प–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का साँप।

दर्भासन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कुशासन। कुश का बना हुआ बिछावन।

दर्भाह्वय–संज्ञा पुं॰ [सं॰] मूँज।

दर्भि–संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक ऋषि का नाम।

विशेष—महाभारत के अनुसार इन्होंने ऋषि ब्राह्मणों के उपहार के लिये अर्द्धकील नामक एक तीर्थ स्थापित किया था।

दर्मियान–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दरमियान"।

दर्मियानी–वि॰, संज्ञा पुं॰ दे॰ "दरमियानी"।

दर्रा–संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] पहाड़ी रास्ता। वह सँकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता है। घाटी।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ दरना] (१) मोटा आटा। (२) कँकरीली मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रविशों पर डाली जाती है। (३) दरार। शिगाफ़। दरज।

दर्राज़–संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ दराज़=लंबा] लकड़ी का एक औज़ार जिससे लकड़ी सीधी की जाती है।

दर्राना–क्रि॰ अ॰ [अनु॰ दड़ दड़, धड़ धड़] धड़धड़ाना। बेधड़क चला जाना। बिना रुकावट या डर के चला जाना।

विशेष—इस क्रिया के उन्हीं रूपों का प्रयोग होता है जिनसे क्रि॰ वि॰ का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्रा कर=धड़धड़ाकर। बेधड़क। दर्राता हुआ=धड़धड़ाता हुआ। बेधड़क। उ॰—वह दर्राता हुआ दरबार में जा पहुँचा। † दर्राना=धड़धड़ाता हुआ। बेधड़क। उ॰—द्वारपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहाँ चले गये, जहाँ तीन ताड़ लंबा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था।—लल्लू।

दर्व–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हिंसा करनेवाला मनुष्य। (२) राक्षस। (३) एक जाति जिसका नाम दरद, किरात आदि के साथ महाभारत में आया है। इस जाति का निवासस्थान पंजाब के उत्तर का प्रदेश था। (४) वह देश जहाँ यह जाति बसती थी।

दर्वरीक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) इंद्र। (२) वायु। (३) एक प्रकार का बाजा।

दर्वा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] उशीनर की पत्नी का नाम।

दर्विका–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) आँख में लगाने का वह काजल जो घी से भरे दीये में बत्ती जलाकर जमाया या पारा जाता है। (२) वनगोभी। गोजिया।

दर्वी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) करछी। चमचा। डोवा। (२) साँप का फन।

यौ॰—दर्वीकर।

दर्वीकर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] फनवाला साँप।

दर्श–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) दर्शन। (२) सूर्य्य और चंद्रमा का संगम-काल। अमावास्या तिथि। (३) द्वितीया तिथि।

यौ॰—दर्शपति।

(४) वह यज्ञ या कृत्य जो अमावास्या के दिन किया जाय।

यौ॰—दर्शपौर्णमास।

दर्शक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) जो देखे। दर्शन करनेवाला। देखनेवाला। (२) दिखानेवाला। लखानेवाला। बतानेवाला। जैसे, मार्गदर्शक। (३) द्वारपाल (जो लोगों को राजा के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है)। (४) निरीक्षक। निगरानी रखनेवाला। प्रधान।

दर्शन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो। चाक्षुष ज्ञान। देखादेखी। साक्षात्कार। अवलोकन।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

मुहा॰—दर्शन देना=देखने में आना। अपने को दिखाना। प्रत्यक्ष होना। दर्शन पाना=(किसी का) साक्षात्कार करना। देखना। दर्शन मिलना=साक्षात्कार होना।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन

गुमान। (ख) तैसेई मरीचिका दरीचिन के देवे ही में छपा की छबीली छवि छहरति ततकाल।—द्विजदेव।

दरीवा—संज्ञा पुं० [?] (१) पान का बाजार। पान की सट्टी। वह जगह जहाँ बहुत से तँबोली बेचने के लिये पान लेकर बैठते हैं। (२) बाज़ार।

दरीभृत—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

दरीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुफा का मुँह। (२) राम की सेना का एक बंदर।

दरेंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दर + यंत्र] अनाज दलने का छोटा यंत्र। चक्की।

दरेक—संज्ञा पुं० [सं० द्रेक] बकाइन का वृक्ष।

दरेग—संज्ञा पुं० [अ० दरेग़] कमी। कसर। कोरकसर। उ०—हाँ मैं इस काम के करने में दरेग न करूँगा।

दरेरना—क्रि० स० [सं० दरण] (१) रगड़ना। पीसना। (२) रगड़ते हुए धक्का देना।

दरेरा—संज्ञा पुं० [सं० दरण] (१) रगड़ा। धक्का। उ०—तापर सहि न जाय करुणानिधि मन को दुसह दरेरो। तुलसी। (२) मेंह का झाला। (३) बहाव का ज़ोर। तोड़।

दरेस—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रेस] एक प्रकार की छींट। फूलदार छपा हुआ एक महीन कपड़ा।

वि० [अं० ड्रेस] तैयार। बना बनाया। सजा सजाया।

दरेसी—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रेस] दुरुस्ती। तैयारी। मरम्मत।

दरैया—संज्ञा पुं० [सं० दरण] (१) दलनेवाला। जो दले। (२) घातक। विनाशक। उ०—दशरथ को नंदन दुःख दरैया।

दरोग़—संज्ञा पुं० [अ०] झूठ। असत्य।

यौ०—दरोग़हलफ़ी।

दरोग़हलफ़ी—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सच बोलने की कसम खाकर भी झूठ बोलना। (२) झूठी गवाही देने का जुर्म।

दरोग़ा—संज्ञा पुं० दे० "दारोगा"।

दर्कार—क्रि० वि० दे० "दरकार"।

दर्गाह—संज्ञा पुं० दे० "दरगाह"।

दर्ज—संज्ञा स्त्री० दे० "दरज"।

वि० [फ़ा०] लिखा हुआ। कागज पर चढ़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दर्जन—संज्ञा पुं० [अं० डज़न] बारह का समूह। इकट्ठी बारह वस्तुएँ।

दर्जा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) ऊँचाई निचाई के क्रम के विचार से निश्चित स्थान। श्रेणी। कोटि। वर्ग। जैसे, वह अव्वल दर्जे का पाजी है। (२) पढ़ाई के क्रम में ऊँचा नीचा स्थान। जैसे, तुम किस दर्जे में पढ़ते हो।

मुहा०—दर्जा उतारना = ऊँचे दर्जे से नीचे दर्जे में कर देना। दर्जा चढ़ना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में जाना। दर्जा चढ़ाना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में करना।

(३) पद। ओहदा।

क्रि० प्र०—घटाना।—बढ़ाना।

(४) किसी वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे के क्रम से हो। खंड। जैसे, आलमारी के दर्जे। मकान के दर्जे।

क्रि० वि० गुणित। गुना। जैसे, यह चीज़ इससे हजार दर्जे अच्छी है।

दर्जिन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दर्जी + इन (प्रत्य०)] (१) दर्जी जाति की स्त्री। (२) दर्जी की स्त्री।

दर्जी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कपड़ा सीनेवाला। वह जो कपड़े सीने का व्यवसाय करे। (२) कपड़ा सीनेवाली जाति का पुरुष।

मुहा०—दर्जी की सुई = हर काम का आदमी। ऐसा आदमी जो कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके।

दर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पीड़ा। व्यथा।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दर्द उठना = दर्द उत्पन्न होना। (किसी अंग का) दर्द करना = (किसी अंग का) पीड़ित या व्यथित होना। दर्द खाना = कष्ट सहना। पीड़ा सहना। जैसे, उसने क्या दर्द खा कर नहीं जना ? दर्द लगना = पीड़ा आरंभ होना।

(२) दुःख। तकलीफ। जैसे, दूसरे का दर्द समझना।

मुहा०—दर्द आना = तकलीफ मालूम होना। जैसे, रुपया निकालते दर्द आता है।

(३) सहानुभूति। करुणा। दया। तर्स। रहम।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

मुहा०—दर्द खाना = तरस खाना। दया करना।

(४) हानि का दुःख। खो जाने या हाथ से निकल जाने का कष्ट। जैसे, उसे पैसे का दर्द नहीं।

दर्दमंद—वि० [फ़ा०] (१) जिसे दर्द हो। पीड़ित। दुखी। (२) जो दूसरे का दर्द समझे। जिसे सहानुभूति हो। दयावान्।

दर्दी—वि० [फ़ा० दर्द] (१) दुखी। पीड़ित। (२) जो दूसरे का दर्द समझे। दयावान्। जैसे, बेदर्दी।

दर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेढक।

यौ०—दर्दुरोदरा = यमुना नदी।

(३) बादल। (४) अभ्रक। अबरक। (५) पश्चिमी घाट पर्वत का एक भाग। मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत। (६) उक्त पर्वत के निकट का देश। प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

दर्दुरच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी बूटी।

दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दाद नामक रोग।

दर्प—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घमंड। अहंकार। अभिमान। गर्व। ताव। उ०—कंदर्प दर्प दुर्गम दमन उमा-रमन गुन भवन-

भारतवर्ष के इन छः प्रधान दर्शनों के अतिरिक्त सर्वदर्शन संग्रह में चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, नकुलीश पाशुपत, शैव, पूर्णप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनि और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का भी उल्लेख है।

योरप में यूनान या यवन देश ही इस शास्त्र के विवेचन में सब से पहले अग्रसर हुआ। ईसा से पाँच छः सौ वर्ष पहले से वहाँ दर्शन का पता लगता है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक वहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल में दर्शन की योरप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की अत्यंत विशद प्रणाली वहाँ निकली है।

(४) नेत्र। आँख। (५) स्वप्न। (६) बुद्धि। (७) धर्म। (८) दर्पण। (९) वर्ण रंग।

दर्शन प्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू या ज़ामिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। वह आदमी जो किसी को हाज़िर कर देने का ज़िम्मा ले।

दर्शनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० दे० "दरसनी हुंडी"।

दर्शनीय—वि० [सं०] (१) देखने योग्य। देखने लायक। (२) सुंदर। मनोहर।

दर्शाना—क्रि० स० दे० "दरसाना"।

दर्शित—वि० [सं०] दिखलाया हुआ।

दर्शी—वि० [सं० दर्शिन्] (१) देखनेवाला। (२) विचार करनेवाला।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु के उन दो समखंडों में से एक जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों पर ज़रा सा दबाव पड़ने से अलग हो जायँ। जैसे चने, अरहर, मूँग, उरद, मसूर, चियें इत्यादि के दो दल जो चक्की में दलने से अलग हो जाते हैं। (२) पौधों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल। (३) तमालपत्र। (४) फूल की पखड़ी। उ०—जय जय अमल कमलदललोचन।—हरिश्चंद्र। (५) समूह। झुंड। गरोह। (६) मंडली। गुट। चक्र। जैसे, वह दूसरे के दल में है। (७) सेना। फौज। जैसे, शत्रु दल। (८) परत के आकार की किसी वस्तु की मोटाई। परत की तरह फैली हुई चीज़ की मोटाई। जैसे, इस शीशे या पत्थर का दल मोटा है। (९) अस्त्र के ऊपर का आच्छादन। कोष। म्यान। (१०) धन। (११) जल में होनेवाला एक तृण।

दलक—संज्ञा स्त्री० [अ० दलक] गुदड़ी। उ०—बैठा है इस दलक बिच आपै आप छिपाय। साहब का तन लाल परे प्रगट सिफात दिखाय।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [हिं० दलकना] राजगीरों का एक औज़ार जिससे नक्काशी साफ़ की जाती है। यह छुरी के आकार का होता है परंतु सिरे पर चिपटा होता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] (१) वह कंप जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। थरथराहट। धमक। जैसे, ढोलक की दलक। (२) रह रह कर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक।

दलकना—क्रि० अ० [सं० दलकना] (१) फट जाना। दरार खाना। चिर जाना। उ०—तुलसी कुलिस की कठोरता तेहि दिन दलकि दली।—तुलसी। (२) थर्राना। काँपना। उ०—महाबली बालि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है।—तुलसी। (३) चौंकना। उद्विग्न हो उठना। उ०—(क) दलकि उठेउ सुनि बचन कठोरू। जनु छुइ गयो पाक बरतोरू।—तुलसी। (ख) कैकेई अपने करमन को सुमिरत हिय में दलकि उठी।—देवस्वामी।

क्रि० स० [सं० दलन] डराना। भीत कर देना। भय से कँपा देना। उ०—सूरजदास सिंह बलि अपनी लीन्हीं दलकि शृगालहिं।—सूर।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पँखड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पौधा।

दलगंजन—वि० [सं०] सेना को मारनेवाला। भारी वीर।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं०] सप्तपर्ण वृक्ष। सतिवन।

दलघुसरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दाल + घुसड़ना] एक प्रकार की रोटी जिसमें पिसी हुई दाल नमक मसाले के साथ भरी रहती है।

दलथंभन—संज्ञा पुं० [हिं० दल + थामना] कमखाब बुननेवालों का एक औज़ार जो बाँस का होता है और जिसमें अँकुड़ा और नकशा बँधा रहता है।

दलदल—संज्ञा स्त्री० [सं० दलाढ्य] (१) कीचड़। पाँक। चहला। (२) वह ज़मीन जो बहुत गहराई तक गीली हो और जिसमें पैर नीचे को धँसता हो।

विशेष—कहीं कहीं पूरब में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है।

मुहा०—दलदल में फँसना=(१) कीचड़ में फँसना। (२) ऐसी कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुस्तर हो। मुश्किल या दिक्कत में पड़ना। (३) जल्दी खतम या तै न होना। अनिर्णीत रहना। खटाई में पड़ना। उ०—दोनों दलों की दलादली में दलपति का चुनाव भी दलदल में फँसा रहा।—बदरीनारायण चौधरी।

(४) बुड्ढी स्त्री (पालकी के कहार)।

दलदला—वि० [हिं० दलदल] [स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल हो। दलदलवाला। जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती।

चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण।

(२) भेंट। मुलाकात। जैसे, चार महीने पीछे फिर आपके दर्शन करूँगा।

विशेष—प्रायः बड़ों के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

(३) वह शास्त्र जिससे तत्त्वज्ञान हो। वह विद्या जिससे तत्त्वज्ञान हो। वह विद्या जिससे पदार्थों के धर्म्म, कार्य्य, कारण, संबंध आदि का बोध हो।

विशेष—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अंतिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं। विशेष से सामान्य की ओर आंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तत्त्वों या नियमों में अंतर्भाव करना ही दर्शन है। आरंभ में अनेक प्रकार के देवताओं आदि को सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही। पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब लोग संसार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। पहले प्राचीन आर्य अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इंद्र, वरुण, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्गप्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे। इस प्रकार के संशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं। उपनिषदों के समय में ब्रह्म, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इंद्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी। गाथा और प्रश्नोत्तर के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ। बड़े बड़े गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों में पाया जाता है। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" "तत्त्वमसि" आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझा कर कहा है कि "हे श्वेतकेतो! तू ही ब्रह्म है"। बृहदारण्यकोपनिषद् में मूर्त्त और अमूर्त्त, मर्त्य और अमृत ब्रह्म के दोहरे रूप बतलाए गए हैं। उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप में इन तत्त्वों का ऋषियों ने स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और छः दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तरमीमांसा)। इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है उतना और किसी में नहीं है। सांख्य आत्मा को पुरुष कहता है और उसे अकर्त्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न मानता है; पर आत्मा एक नहीं अनेक हैं अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अर्थात् परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है। जगत् के मूल में प्रकृति को मान कर उसके सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही संसार के सब व्यापार माने गए हैं। सृष्टि को प्रकृति की परिणाम-परंपरा मानने के कारण यह मत परिणामवाद कहलाता है। सृष्टि संबंधी सांख्य का यह मत इतिहास पुराण आदि में सर्वत्र गृहीत हुआ है। योग में क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित एक पुरुष विशेष या ईश्वर माना गया है। सर्वसाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की भावना है वह यही योग का ईश्वर है। योग में किसी मत पर विशेष तर्क वितर्क या आग्रह नहीं है; मोक्षप्राप्ति के निमित्त यम, नियम, प्राणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है। न्याय में युक्ति या तर्क करने की प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है जिसका उपयोग पंडित लोग शास्त्रार्थ में बराबर करते हैं। खंडन मंडन के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं जिनका मुख्य विषय प्रमाण और प्रमेय ही है। न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छा-ज्ञानादि गुण युक्त और कर्त्ता माना गया है। जीव कर्ता और भोक्ता दोनों माना गया है। वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है। पृथ्वी जल आदि के अतिरिक्त दिक्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं। न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है। न्याय से इसमें बहुत कम भेद है। इसीसे इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है। ये दोनों सृष्टि का कर्त्ता मानते हैं इसीसे इनका मत आरंभवाद कहलाता है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है। उत्तरमीमांसा या वेदांत अत्यंत उच्च कोटि की विचार-पद्धति द्वारा एक मात्र ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण बतलाता है अर्थात् जगत् और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करता है इसीसे इसका मत विवर्त्तवाद और अद्वैतवाद कहलाता है। भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है। जितना यह मत विद्वानों को ग्राह्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा संसार में हुई, जितने अनुयायी संप्रदाय इसके खड़े हुए उतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए। अरब, फारस आदि देशों में यह सूफी मत के नाम से प्रकट हुआ। आजकल योरप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रवृत्ति है।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

दलाढ्य–संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता।

दलित–वि० [सं०] (१) मींड़ा हुआ। मसला हुआ। मर्दित। (२) रौंदा हुआ। कुचला हुआ। (३) खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। (४) विनष्ट किया हुआ।

दलिद्दर†–संज्ञा पुं० दे० "दरिद्र"।

दलिया–संज्ञा पुं० [हिं० दलना] दल कर कई टुकड़े किया हुआ अनाज। जैसे, गेहूँ का दलिया।

दली–वि० [सं० दलिन्] (१) जिसमें दल या मोटाई हो। (२) जिसमें पत्ता हो। पत्तेवाला।

दलीप†–संज्ञा पुं० दे० "दिलीप"।

दलील–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तर्क। युक्ति। (२) बहस। वाद-विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—लाना।

दलेगंधि–संज्ञा पुं० [सं०] सप्तपर्णी वृक्ष।

दलेपंज–संज्ञा पुं० [हिं० दलना + पंजा] (१) वह घोड़ा जिसकी उमर ढल गई हो। वह घोड़ा जो जवान न रह गया हो। (२) ढलती हुई उमर का आदमी।

दलेल–संज्ञा स्त्री० [अ० ज़िल] सिपाहियों का वह दंड जिसमें हथियार और कपड़े आदि उनकी कमर में बाँध कर उन्हें टहलाते हैं। वह कवायद जो सज़ा की तरह पर ली जाय।

मुहा०—दलेल बोलना = सज़ा की तरह पर कवायद देने की आज्ञा देना।

दलै–मुँह बाओ। खाओ। (हाथीवानों की बोली)।

दलै छुव दलै = पानी पीओ (हाथीवानों की बोली)।

दलैया†–संज्ञा पुं० [हिं० दलना] (१) दलने या पीसनेवाला। (२) नाश करनेवाला। मारनेवाला।

दल्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रतारणा। धोखा। (२) पाप। (३) चक्र।

दल्लाल–संज्ञा पुं० दे० "दलाल"।

दल्लाला–संज्ञा स्त्री० [अ०] कुटनी। दूती।

दल्लाली–संज्ञा स्त्री० दे० "दलाली"।

दवँरी–संज्ञा स्त्री० दे० "दँवरी"।

दव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन। जंगल। (२) दवाग्नि। वह आग जो वन में आप से आप लग जाती है। दवारि। दावा। उ०—गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा।—तुलसी। (३) अग्नि। आग। उ०—(क) आजु अयोध्या जल नहिं अचवों ना मुख देखौं माई। सूरदास राघव के बिछुरे मरौं भवन दव लाई।—सूर। (ख) राकापति षोड़श उअहिं तारागण समुदाय। सकल गिरिन दव लाइए रवि बिनु राति न जाय।—तुलसी।

दवथु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाह। जलन। (२) परिताप। दुःख।

दवन॰–संज्ञा पुं० [सं० दमन] नाश। उ०—प्राणनाथ सुंदर सुजानमनि दीनबंधु जग आरति दवन।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दौना नामक पौधा। उ०—गहब गुलाब, मंजु मोगरे, दवन फूले, बेले अलबेले खिले चंपक चमन में।—भुवनेश।

दवनपापड़ा–संज्ञा पुं० [सं० दमन पर्पट] पितपापड़ा।

दवना॰–संज्ञा पुं० दे० "दौना"।

क्रि० स० [सं० दव] जलाना। उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुंज कुटीर। तिमि तिमि तकत तरुनिअहिं बाढ़ी पीर।—रहीम।

दवनी–संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] फसल के सूखे डंठलों को बैलों से रौंदवा कर दाना झाड़ने का काम। दँवरी। मिसाई। मँड़ाई।

दवरिया†–संज्ञा स्त्री० दे० "दवारि"। उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुंज कुटीर। तिमि तिमि तकत तरुनिअहिं बाढ़ी पीर।—रहीम।

दवा–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्यथा दूर हो। औषध। ओखद। उ०—दरद दवा दोनों रहैं पीतम पास तयार।—रसनिधि।

यौ०—दवाखाना। दवा दारू। दवा दर्पन। दवा दामन।

मुहा०—दवा को न मिलना = थोड़ा सा भी न मिलना। अप्राप्य होना। दुर्लभ होना। दवा देना = दवा पिलाना।

(२) रोग दूर करने का उपाय। उपचार। चिकित्सा। जैसे, अच्छे वैद्य की दवा करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) दूर करने की युक्ति। मिटाने का उपाय। जैसे, शक की कोई दवा नहीं। (४) अवरोध या प्रतिकार का उपाय। ठीक रखने की युक्ति। दुरुस्त करने की तदबीर। जैसे, उसकी दवा यही है कि उसे दो चार खरी खोटी सुना दो।

†संज्ञा स्त्री० [सं० दव] (१) वनाग्नि। वन में लगनेवाली आग। उ०—कानन भूधर बारि बयारि महा विष व्याधि दवा अरि घेरे।—तुलसी। (२) अग्नि। आग। उ०—(क) भरो तवा सो तंत दवा दुति भूरिश्रवा भट।—गोपाल। (ख) तवा सो तपत धरामंडल अखंडल औ मारतंड मंडल दवा सो होत भोर तें।—बेनी।

दवाई†–संज्ञा स्त्री० दे० "दवा"।

दवाईखाना–संज्ञा पुं० दे० "दवाखाना"।

दवाखाना–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जगह जहाँ दवा बिकती हो। औषधालय।

दवाग्नि*–संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि। दावानल।

दवागिन॰–संज्ञा स्त्री० दे० "दवाग्नि"।

दलदार-वि० [हिं० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो। जिसकी तह या परत मोटी हो। जैसे, दलदार गूदा, दलदार आम।

दलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दलित] पीस कर टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया। चूर चूर करने का काम। (२) विनाश। संहार।

दलना-क्रि० स० [सं० दलन] (१) रगड़ या पीस कर टुकड़े टुकड़े करना। मल कर चूर चूर करना। चूर्ण करना। खंड खंड करना। (२) रौंदना। कुचलना। मलना। खूब दबाना। मसलना। मीड़ना। उ०—पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं।—तुलसी।

संयो० क्रि०—डालना। मारना।

(३) चक्की में डाल कर अनाज,आदि के दानों को दो दलों या कई टुकड़ों में करना। जैसे, दाल दलना। (४) नष्ट करना। ध्वस्त करना। जीतना। उ०—(क) भुजबल रिपुदल दलि मलि देखि दिवस कर अंत।—तुलसी। (ख) केतिक देश दल्यो भुज के बल।—भूषण।

यौ०—मलना दलना।

*(५) तोड़ना। झटके से खंडित करना। उ०—(क) दलि तृण प्राण निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया।—तुलसी। (ख) सोई हौं बूझत राजसभा धुनुकैं दल्यौ हौं दलि हौं बल ताको।—तुलसी।

दलनि†-संज्ञा स्त्री० [हिं० दलना] दलने की क्रिया या ढंग।

दलनिर्मोक-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

दलप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दलपति। मंडली या सेना का नायक। (२) सोना। स्वर्ण।

दलपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मंडली या समुदाय का प्रधान। मंडली का मुखिया। अगुवा। सरदार। (२) सेनापति।

दलपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के होते हैं।

विशेष—केतकी या केवड़े की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के कोश के भीतर रहती है। सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार होता है।

दल बल-संज्ञा पुं० [सं०] लाव लश्कर। फौज।

दलवा-संज्ञा पुं० [हिं० दलना] तीतरबाजों, बटेरबाज़ों आदि का वह निर्बल पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से लड़ा कर और मार खिलाकर उन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं।

दलबादल-संज्ञा पुं० [हिं० दल + बादल] (१) बादलों का समूह। बादलों का झुंड। (२) भारी सेना। (३) बहुत बड़ा शामियाना। बड़ा भारी खेमा।

मुहा०—दलबादल खड़ा होना = बड़ा भारी शामियाना या खेमा गड़ना।

दलमलना-क्रि० स० [हिं० दलना + मलना] (१) मसल डालना। मीड़ डालना। उ०—(क) भुजबल रिपुदल दलमलि।—तुलसी। (ख) यौं दलमलियत निरदई दई कुसुम से गात। कर धर देखौ धरधरा अजौं न उर ते जात।—विहारी। (२) रौंदना। कुचलना। (३) विनष्ट कर देना। मार डालना।

दलवाना-क्रि० स० [हिं० दलना का प्रे०] (१) दलने का काम करवाना। मोटा मोटा पिसवाना। जैसे, दाल दलवाना। (२) रौंदवाना। मलवाना। (३) नष्ट कराना।

दलवाल*†-संज्ञा पुं० [सं० दलपाल] सेनापति। फौज का सरदार।

दलवैया†-संज्ञा पुं० [हिं० दलना] दलनेवाला।

दलसारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] केमुआ। बंडा। कच्चू।

दलसूचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पौधा जिसके पत्तों में काँटे हों। (२) पत्तों का काँटा। (३) काँटा।

दलसूसा†-संज्ञा स्त्री० [सं दलश्नसा] दलशिरा। पत्तों की नस।

दलहन-संज्ञा पुं० [हिं० दाल + अन्न] वह अन्न जिसकी दाल बनाई जाती है। जैसे, चना, अरहर, मूँग, उरद, मसूर इत्यादि।

दलहरा-संज्ञा पुं० [हिं० दाल + हारा] दाल बेचनेवाला। जो दाल बेचने का रोजगार करता हो।

दलहा†-संज्ञा पुं० [सं० थल, हिं० थाल्हा] थाला। आलवाल।

दलाढक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली तिल। (२) गेरू। (३) नागकेसर। (४) सिरिस। (५) कुंद। (६) गजकर्णी। एक प्रकार का पलाश।

दलान†-संज्ञा पुं० दे० "दालान"।

दलाना-क्रि० स० दे० "दलवाना"।

दलामल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दौने का पौधा। (२) मरुवे का पौधा। (३) मैनफल का पेड़।

दलाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] लोनिया साग। अमलोनी।

दलारा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झूलनेवाला बिस्तरा जिसका व्यवहार जहाज़ पर मल्लाह लोग करते हैं।

दलाल-संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा दलाली] (१) वह व्यक्ति जो सौदा मोल लेने या बेचने में सहायता दे। बिचवई। मध्यस्थ। (२) स्त्री-पुरुष का अनुचित संयोग करानेवाला। कुटना। (३) जाटों की एक जाति।

दलाली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) दलाल का काम।

क्रि० प्र०—करना।

(२) वह द्रव्य जो दलाल को मिलता है। उ०—भक्ति हाट बैठि तू थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि। काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली देहि।—सूर।

एक प्राचीन विभाग जिसके अंतर्गत दस नगर थे। इसका नाम मेघदूत में आया है।

दशपेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ। (आश्व० श्रौत०)

दशबल—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

विशेष—बुद्ध को दस बल प्राप्त थे जिनके नाम ये हैं—दान, शील, क्षमा, वीर्य्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान।

दशभूमिग—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि दस भूमियों या बलों को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव।

दशभूमीश—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दशम—वि० [सं०] दसवाँ।

दशम दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के रसनिरूपण में वियोगी की वह दशा जिसमें वह प्राण त्याग देता है।

दशम भाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्म-लग्नांश। कुंडली में लग्न से दसवाँ घर।

विशेष—इस घर से पिता, कर्म्म, ऐश्वर्य्य आदि का विचार किया जाता है।

दशमलव—संज्ञा पुं० [सं०] वह भिन्न जिसके हर में दस या उसका कोई घात हो। (गणित)

दशमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दसवाँ हिस्सा। दसवाँ भाग।

दशमाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। एक प्रदेश का प्राचीन नाम।

दशमालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दशमाल देश।

दशमिकभग्नांश—संज्ञा पुं० [सं०] अंकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भग्नांश इस रूप में लाया जाता है कि उसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है। दशमलव।

दशमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चांद्रमास के किसी पक्ष की दसवीं तिथि। (२) विमुक्तावस्था। (३) मरणावस्था।

दशमुख—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशमूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैद्यक में काम आता है—१ हाथी, २ भैंस, ३ ऊँट, ४ गाय, ५ बकरा, ६ भेड़ा, ७ घोड़ा, ८ गदहा, ९ मनुष्य, और १० स्त्री।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम में आता है।

विशेष—सरिवन (शालपर्णी), पिठवन (पृश्निपर्णी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, और गोखरू ये लघु-मूल और बेल, सोनापाठा (श्योनाक), गंभारी, गनियारी और पाढ़ा वृहन्मूल कहलाते हैं। इन दोनों के योग को दश मूल कहते हैं। दशमूल काढ़ा, श्वास और सन्निपात ज्वर में उपकारी माना जाता है।

दशमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशयोगभंग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रवेध जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म्म नहीं किए जाते।

विशेष—जिस नक्षत्र में सूर्य्य हो और जिस नक्षत्र में कर्म होनेवाला हो दोनों नक्षत्रों के जो स्थान गणना-क्रम में हों उन्हें जोड़ डालो। यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस आवे तो दशयोगभंग होगा।

दशरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे। ये देवताओं की ओर से कई बार असुरों से लड़े थे और उन्हें परास्त किया था।

विशेष—इस शब्द के आगे पुत्र-वाचक शब्द लगने से 'राम' अर्थ होता है।

दशरथसुत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

दशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस रातें। (२) एक यज्ञ जो दस रात्रियों में समाप्त होता था।

दशवाजी—संज्ञा पुं० [सं० दशवाजिन्] चंद्रमा।

दशवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

दशवीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम।

दशशिर—संज्ञा पुं० [सं० दश + शिरस्] रावण।

दशशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण। (२) चलाए हुए अस्त्रों को निष्फल करने का एक अस्त्र।

दशशीश *—संज्ञा पुं० दे० "दशशीर्ष"।

दशस्यंदन—*संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ नामक राजा।

दशहरा—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं इसीसे यह अत्यंत पुण्य तिथि मानी जाती है। कहते हैं, इस तिथि को गंगा स्नान करने से दसो प्रकार के और जन्म-जन्मांतर के पाप दूर होते हैं। यदि इस तिथि में हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह और भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है। दशहरे को लोग गंगा की प्रतिमा का पूजन करते हैं और सोने चाँदी के जल-जंतु बना कर भी गंगा में डालते हैं।

(२) विजयादशमी।

दशांग—संज्ञा पुं० [सं०] पूजन में सुगंध के निमित्त जलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बनता है।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से भिन्न भिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है। एक रीति के अनुसार दस द्रव्य ये हैं—शिलारस, गुग्गुल, चंदन, जटामासी, लोबान, राल, खस, नख, भीमसेनी कपूर और कस्तूरी। दूसरी रीति के अनुसार—मधु, नागरमोथा, घी, चंदन, गुग्गुल, अगर, शिलाजतु, सलई का धूप, गुड़ और पीली सरसों। तीसरी रीति—गुग्गुल, गंधक

दवाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली आग। दावानल।

दवात—संज्ञा स्त्री० [अ० दावात] लिखने की स्याही रखने का बरतन। मसिपात्र। मसिदानी।

दवानल—संज्ञा पुं० [सं०] दवाग्नि।

दवामी—वि० [अ०] जो चिरकाल तक के लिये हो। स्थायी। जो सदा बना रहे। जैसे, दवामी बंदोबस्त।

दवामी बंदोवस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय। भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न हो सके।

दवारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि, हिं० दवागि] वनाग्नि। दावानल। उ०—हाय न कोऊ तलास करै ये पलासन कौने दवारि लगाई।—नरेश।

दश—वि० [सं०] दस।

दशकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] रावण (जिसके दस कंठ वा सिर थे)।

दशकंठजहा—संज्ञा पुं० [सं०] रावणसंहारक, श्रीरामचंद्र। उ०—आजु विराजत राज है दशकंठजहा को।—तुलसी।

दशकंठारि—संज्ञा पुं० [सं०] (रावण के शत्रु) श्रीरामचंद्र।

दशकंध—संज्ञा पुं० [सं० दश+स्कंध, हिं० कंध] रावण।

दशकंधर—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाधान से लेकर विवाह तक के दस संस्कार जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकरण, निष्क्रामण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन और विवाह।

दशकुलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ विशेष वृक्ष जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीपल, कदंब, नीम, बरगद, गूलर, आँवला और इमली।

दशकोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक (संगीत)।

दशक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन दस जंतुओं का दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भेंड़, भैंस, घोड़ी, स्त्री, हथिनी, हिरनी और गदही।

दशगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर के दस प्रधान अंग। (२) मृतक संबंधी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है। पुराणों में लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत जैसे, का शरीर बनता है और दसवें दिन पूरा हो जाता है पहले पिंड से सिर, दूसरे से आँख, कान, नाक इत्यादि।

दशग्रामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का अधिपति या शासक बनाया गया हो।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति नियत करे, इसी प्रकार बीस, सहस्र आदि तक के ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है।

दशग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौ। शत।

दशधा—वि० [सं०] दस प्रकार का।

क्रि० वि० दस प्रकार।

दशद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के दस छिद्र—२ कान, २ आँख, २ नाक, १ मुख, १ गुद, १ लिंग, १ ब्रह्मांड।

दशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँत। (२) कवच। (३) शिखर।

दशनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] होंठ।

दशनबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार।

दशनाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनिया शाक।

दशनाम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों के दस भेद जो ये हैं—१ तीर्थ, २ आश्रम, ३ वन, ४ अरण्य, ५ गिरि, ६ पर्वत, ७ सागर, ८ सरस्वती, ९ भारती, १० पुरी।

दशनामी—संज्ञा पुं० [हिं० दश+नाम] संन्यासियों का एक वर्ग जो अद्वैतवादी शंकराचार्य्य के शिष्यों से चला है।

विशेष—शंकराचार्य्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हस्तामलक, मंडन और तोटक। इनमें से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम; हस्तामलक के दो शिष्य—वन और अरण्य, मंडन के तीन शिष्य—गिरि, पर्वत और सागर, इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी। इन्हीं दस शिष्यों के नाम से संन्यासियों के दस भेद चले। शंकराचार्य्य ने चार मठ स्थापित किए थे जिनमें इन दस प्रशिष्यों की शिष्य-परंपरा चली जाती है। पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्यपरंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शारदा मठ के अंतर्गत, वन और अरण्य गोवर्द्धनमठ के अंतर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं। प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है। यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निर्गुण उपासक प्रसिद्ध हैं पर इनमें से बहुतेरे शैवमंत्र की दीक्षा देते हैं।

दशप—संज्ञा पुं० दे० "दशग्रामपति"।

दशपारमिताधर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) केवटी मोथा। (२) मालवे का

तीर्थंकर के प्रताप से उसे वहाँ १६७००२१६००० इंद्र और १३३७०१७२८०००००००० इंद्राणियाँ दिखाई पड़ीं और उसका गर्व चूर्ण हो गया।

दशार्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] धसान नदी जो विंध्याचल से निकल कर बुंदेलखंड के कुछ भाग में बहती हुई कालपी के पास जमुना में मिल जाती है।

दशार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस का आधा पाँच। (२) दश-बलों से युक्त बुद्धदेव।

दशार्ह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोष्टुवंशीय एक राजा का पुत्र। (२) राजा वृष्णि का पौत्र। (३) वृष्णिवंशीय पुरुष। (४) वृष्णिवंशियों का अधिकृत देश।

दशाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (जिसके रथ में दस घोड़े लगते हैं)।

दशाश्वमेध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काशी के अंतर्गत एक तीर्थ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजर्षि दिवोदास की सहायता से ब्रह्मा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ किए थे। पहले यह तीर्थ रुद्रसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था। ब्रह्मा के यज्ञ के पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा। ब्रह्मा ने इस स्थान पर दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवलिंग स्थापित किया था। जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं।

(२) प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास वह घाट या तीर्थ-स्थान जहाँ यात्री जल भरते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल बिगड़ता नहीं।

दशास्य–संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख। रावण।

दशाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस दिन। (२) मृतक के कृत्य का दसवाँ दिन।

विशेष—गृह्यसूत्रों में मृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है। पहले दिन श्मशानकृत्य और अस्थिसंचय, दूसरे दिन रुद्रयाग, श्राद्ध आदि और तीसरे दिन सपिंडीकरण। स्मृतियों ने पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है जिसमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक अंग की पूर्ति के लिये दिया जाता है। पर ग्यारहवें दिन के कृत्य में अब भी द्वितीयाह्न संकल्प का पाठ होता है।

दस–वि० [सं० दश] (१) पाँच का दूना। जो गिनती में नौ से एक अधिक हो। (२) कई। बहुत से। जैसे, (क) दस आदमी जो कहें उसे मानना चाहिए। (ख) वहाँ दस तरह की चीज़ें देखने को मिलेंगी।

संज्ञा पुं० (१) पाँच की दूनी संख्या। (२) उक्त संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१०।

दसखत †–संज्ञा पुं० दे० "दस्तखत"।

दसठौन–संज्ञा पुं० [सं० दश + स्थान] बच्चा जनने के समय की एक रीति जिसके अनुसार प्रसूता स्त्री दसवें दिन नहा कर सौरी के घर से दूसरे घर में आती है।

दसन⊛–संज्ञा पुं० दे० "दशन"।

दसना–क्रि० अ० [हिं० डासना] बिछना। बिछाया जाना। फैलना।

क्रि० स० बिछाना। विस्तर फैलाना। उ०—विवेक सों अनेकधा दसे अनूप आसने। अनर्घ अर्घ आदि दै विनय किये घने घने।—केशव।

संज्ञा पुं० बिछौना। बिस्तर।

क्रि० स० दे० "डसना"।

दसमरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० दस + मढ़ना] एक प्रकार की बर-साती बड़ी नाव जिसमें दस तख्ते लंबाई के बल लगे होते हैं।

दसमाथ⊛–संज्ञा पुं० [हिं० दस + माथ] रावण। उ०—सुनु दस-माथ! नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लंका लाइ हैं तो रहैगी हथेरी सी।—तुलसी।

दसमी–संज्ञा स्त्री० दे० "दशमी"।

दसरंग–संज्ञा पुं० [हिं० दस + रंग] मलखंभ की एक कसरत जिस में कमापेटा करके जिधर का पैर मलखंभ को लपेटे रहता है उधर के हाथ को सीधी पकड़ से मलखंभ में लपेट कर और दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसा कर सवारी बाँधते तथा और अनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे ऊपर खस-कते हैं।

दसरान–संज्ञा पुं० [हिं० दस + रान ?] कुश्ती का एक पेच।

दसवाँ–वि० [सं० दशम] जिसका स्थान नौ और वस्तुओं के उपरांत पड़ता हो। जो क्रम में नौ और वस्तुओं के पीछे हो। गिनती के क्रम में जिसका स्थान दस पर हो। जैसे, दसवाँ लड़का।

दसांग–संज्ञा पुं० दे० "दशांग"।

दसा–संज्ञा स्त्री० दे० "दशा"।

संज्ञा पुं० [हिं० दस] अगरवाल वैश्यों के दो प्रधान भेदों में से एक।

दसारन–संज्ञा पुं० दे० "दशार्ण"

दसारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

दसी–संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] (१) कपड़े के छोर पर का सूत। छोर। (२) कपड़े का पल्ला। थान का आँचल। उ०—जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय।—कबीर। (३) बैलगाड़ी की पटरी। (४) चमड़ा छीलने का औज़ार। रापी। † (५) पता। निशान। चिह्न।

दसेंदू–संज्ञा पुं० [देश०] केंदू। तेंदू का पेड़।

दसैं–संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी, हिं० दसई] दशमी तिथि।

चंदन, जटामासी, सतावरि, सज्जी, खस, घी, कपूर और कस्तूरी।

दशांग क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं०] दस ओषधियों का काढ़ा।

विशेष—१ अडूसा, २ गुर्च, ३ पितपापड़ा, ४ चिरायता, ५ नीम की छाल, ६ जलभंग, ७ हड़, ८ बहेड़ा, ९ आँवला, १० कुलथी, इनके क्वाथ में मधु डाल कर पिलाने से अम्ल-पित्त नष्ट होता है।

दशांगुल—संज्ञा पुं० [सं०] खरबूजा। डँगरा।

दशांत—संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ापा।

दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अवस्था। स्थिति का प्रकार। हालत। जैसे, (क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है। (ख) पहले मैंने इस मकान को अच्छी दशा में देखा था। (२) मनुष्य के जीवन की अवस्था।

विशेष—मानव जीवन की दस दशाएँ मानी गई हैं—गर्भ-वास, जन्म, बाल्य, कौमार, पोगंड, यौवन, स्थाविर्य, जरा, प्राणरोध और नाश।

(३) साहित्य में रस के अंतर्गत विरही की अवस्था।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—अभिलाष, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। (४) फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोगकाल।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की। पहली रीति के अनुसार निर्धारित दशा विंशोत्तरी और दूसरी के अनु-सार निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है। आयु के पूरे काल में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है—जैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य्य की दशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १९ वर्ष, राहु की १२ वर्ष और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है। दशा जन्म-काल के नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है। जैसे, यदि जन्म कृत्तिका, रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र में होगा तो सूर्य्य की दशा होगी; भद्रा, पुनर्वसु, पुष्य वा अश्लेखा नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा की दशा; मघा, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तर-फाल्गुनी में होगा तो मंगल की दशा; हस्त, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो बुध की दशा; अनुराधा, ज्येष्ठा वा मूल नक्षत्र में होगा तो शनि की दशा; पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभि-जित वा श्रवण नक्षत्र में होगा तो बृहस्पति की दशा; धनिष्ठा, शतभिषा वा पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी या भरणी नक्षत्र में होगा तो शुक्र की दशा होगी। प्रत्येक ग्रह की दशा का फल अलग अलग निश्चित है—जैसे, सूर्य्य की दशा में चित्त को उद्वेग, धनहानि, क्लेश, विदेशगमन, बंधन, राजपीड़ा इत्यादि। चंद्रमा की दशा में ऐश्वर्य्य, राजसम्मान, रत्न बाहन की प्राप्ति इत्यादि।

प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल वा दशा के अंतर्गत भी एक एक ग्रह का भोगकाल नियत है जिसे अंतर्दशा कहते हैं। रवि-दशा को लीजिए जो ६ वर्ष की है। अब इन ६ वर्षों के बीच सूर्य्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा की १० महीने की, मंगल की ५ महीने की, बुध की ११ महीने २० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, बृहस्पति की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की १ वर्ष २ महीने की। इन अंतर्दशाओं के फल भी अलग अलग निरूपित हैं—जैसे, सूर्य्य की दशा में सूर्य की अंतर्दशा का फल राजदंड, मनस्ताप, विदेश-गमन इत्यादि; सूर्य की दशा में चंद्र की अंतर्दशा का फल शत्रु-नाश, रोगशांति, वित्तलाभ इत्यादि।

ऊपर जो हिसाब बतलाया गया है वह नाक्षत्रिकी दशा का है। पर योगिनी, वार्षिकी, लाग्निकी, मुकुंदा, पताकी, हरगौरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा लिखा है कि कलियुग में नाक्षत्रिकी दशा ही प्रधान है।

(५) दीए की बत्ती। (६) चित्त। (७) कपड़े का छोर। वस्त्रांत।

दशाकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का छोर या अंचल। (२) दीपक। चिराग।

दशाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष में दशाओं के अधिपति ग्रह। (२) दस सैनिकों या सिपाहियों का अफसर। जमादार। (महाभारत)

दशानन—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशानिक—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

दशापवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध आदि में दान दिए जाने-वाले वस्त्रखंड।

दशामय—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र।

दशारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैवर्त्तिका नाम की लता जो मालवा में होती है और जिससे कपड़े रँगे जाते हैं।

दशार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत के पूर्व-दक्षिण की ओर स्थित उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर धसान नदी बहती है। मेघदूत से पता चलता है कि विदिशा (आधुनिक भिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी। टालमी ने इस प्रदेश का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है। (२) उक्त देश का निवासी या राजा। (३) तंत्र का एक दशाक्षर मंत्र। (४) जैन पुराण के अनुसार एक राजा जिसने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर अभिमान किया था।

संज्ञा पुं० दे० "जस्ता"।
दस्ताना-संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तानः] (१) पंजे और हथेली में पहनने का बुना हुआ कपड़ा। हाथ का मोजा। (२) वह लंबी किर्च या सीधी तलवार जिसकी मूठ के ऊपर कलाई तक पहुँचनेवाला लोहे का परदा लगा रहता है। (यह मुहर्रम में ताजिये के साथ प्रायः निकलता है)
दस्तावर-वि० [फ़ा०] जिससे दस्त आवे। विरेचक। जैसे, दस्तावर दवा।
दस्तावेज़-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह कागज जिसमें दो या कई आदमियों के बीच के व्यवहार की बात लिखी हो और जिसपर व्यवहार करनेवालों के दस्तखत हों। व्यवहार-संबंधी लेख। वह पत्र जिसे लिखकर किसी ने कोई प्रतिज्ञा की हो, किसी प्रकार का ऋण या देना स्वीकार किया हो अथवा द्रव्य संपत्ति आदि का लेन देन किया हो। जैसे, तमस्सुक, रेहननामा, किवाला इत्यादि।
क्रि० प्र०—लिखना।
दस्तावेज़ी-वि० [फ़ा० दस्तावेज] दस्तावेज संबंधी। दस्तावेज का। जैसे, दस्तावेजी रुपया, दस्तावेजी कागज।
दस्ती-वि० [फ़ा० दस्त = हाथ] हाथ का।
संज्ञा स्त्री० (१) हाथ में लेकर चलने की बत्ती। मशाल। (२) छोटी मूठ। छोटा बेंट। (३) छोटा कलमदान। (४) वह सौगात जिसे विजयादशमी के दिन राजा लोग अपने हाथ से सरदारों और अफसरों को बाँटते हैं। (५) कुश्ती का एक पेच जिसमें पहलवान अपने जोड़ का दहिना हाथ दहिने हाथ से अथवा बाँया हाथ बायें हाथ से पकड़ कर अपनी ओर खींचता है और झट पीछे आकर झटके के द्वारा उसे पटक देता है।
दस्तूर-संज्ञा पुं० [फ़ा] (१) रीति। रस्म। रवाज। चाल। प्रथा। (२) नियम। क़ायदा। विधि। (३) पारसियों का पुरोहित जो उनके धर्म्म ग्रंथ के अनुसार कर्मकांड कराता है। (४) जहाज़ के वे छोटे पाल जो सबसे ऊपरवाले पाल के नीचे की पंक्ति में दोनों ओर होते हैं। (लश०)
दस्तूरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दस्तूर] वह द्रव्य जो नौकर अपने मालिक का सौदा लेने में दूकानदारों से हक़ के तौर पर पाते हैं। (दस्तूरी का कुछ बँधा हिसाब होता है जैसे, एक रुपये के सौदे में दो पैसे।)
दस्पना-संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तपनाह] चिमटा।
दस्यु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) डाकू। चोर। (२) असुर। अनार्य्य। म्लेच्छ। दास।
विशेष—दस्युओं का वर्णन वेदों में बहुत मिलता है। आर्यों के भारतवर्ष में चारों ओर फैलने के पहले ये छोटी छोटी बस्तियों में इधर उधर रहते थे और आर्यों को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाते थे, उनके यज्ञों में विघ्न डालते थे, उनके चौपाए चुरा ले जाते थे तथा और भी अनेक प्रकार के उपद्रव करते थे। अनेक मंत्रों में इन यज्ञहीन, अमानुष दस्युओं का नाश करने की प्रार्थना इंद्र से की गई है। नमुचि, शंबर और वृत्र नामक दस्युपतियों के इंद्र के हाथ से मारे जाने का उल्लेख ऋग्वेद में कई स्थानों पर है। जैसे, "हे इंद्र! तुमने दस्यु शंबर की सौ से अधिक पुरियों को नष्ट किया।" "हे इंद्राग्नि! तुमने एक बार में ही दासों की नब्बे पुरियों को हिला डाला।" "हे इंद्र! तुमने कुलितर के पुत्र दास शंबर को ऊँचे पर्वत के ऊपर मुँह के बल गिरा कर मार डाला।" "तुमने मनुष्यों के सुख की इच्छा से दास नमुचि का सिर चूर्ण किया।" वेदों में दस्युओं के लिये "दास" और "असुर" शब्द भी आए हैं। इन दस्युओं के 'पणि' आदि कई भेद थे। पीछे जब कुछ दस्यु सेवा आदि के लिये मिला लिए गए तब उनकी उत्पत्ति के संबंध में कुछ कथाएँ कल्पित की गईं। ऐतरेय ब्राह्मण में वे विश्वामित्र द्वारा उत्पन्न और शाप द्वारा भ्रष्ट बतलाए गए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि "ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में जो क्रिया लुप्त और जाति बाहर हो गए हैं वे सब चाहे म्लेच्छ भाषी हों चाहे आर्यभाषी, दस्यु कहलाते हैं"। महाभारत में लिखा है कि "अर्जुन ने दरदों के सहित कांबोज तथा उत्तर-पूर्व के जो दस्यु थे उन्हें भी परास्त किया।" द्रोणपर्व में दाढ़ीवाले दस्युओं का भी उल्लेख है। इन दस्युओं के बीच निवास करना ब्राह्मण आदि के लिये निषिद्ध था।
दस्युता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लुटेरापन। डकैती। (२) राक्षसपन। दुष्टता। क्रूर स्वभाव।
दस्युवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डकैती। लुटेरापन। (२) चोरी।
दस्युहन्-संज्ञा पुं० [सं०] (असुरों को मारनेवाले) इंद्र।
दस्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिशिर। (२) गदहा। (३) अश्विनीकुमार। (४) दो का समूह। जोड़ा।
वि० (१) दोहरा। (२) हिंसा करनेवाला।
दह-संज्ञा पुं० [सं० ह्रद (वर्ण विपर्यय)] (१) नदी में वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो। नदी के भीतर का गड्ढा। पाल। उ०—लै वसुदेव धँसे दह सामुहिं तिहुँ लोक उजियारे हो।—सूर।
यौ०—कालीदह।
(२) कुंड। हौज़। उ०—टोपन टूटि उठे असि सच्छी। दह में मनो उच्छलै मच्छी।—लाल।
संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] ज्वाला। लपट। लौ।
वि० [फ़ा०] दस। उ०—(क) भादों घोर राति अँधियारी।

दसोतरा-वि० [सं० दशोत्तर] दस ऊपर। दस अधिक। जैसे, दसोतरा सौ अर्थात् एक सौ दस।
संज्ञा पुं० सौ में दस। सैकड़ा पीछे दस का भाग।

दसौंधी-संज्ञा पुं० [सं० दास = दानपात्र + वंदी = भाट] वंदियों या चारणों की एक जाति जो अपने को ब्राह्मण कहती है। ब्रह्मभट्ट। भाट। राजाओं की वंशावली और प्रशंसा करनेवाला पुरुष। उ०—(क) राजा रहा दृष्टि करि औंधी। रहि न सका तब भाट दसौंधी।—जायसी। (ख) देस देस तें ढाढ़ी आए मनवांछित फल पायो। को कहि सकै दसौंधी इनको भयो सबन मन भायो।—सूर।

दस्तंदाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी काम में हाथ डालने की क्रिया। किसी होते हुए काम में छेड़ छाड़। हस्तक्षेप। दखल।

क्रि० प्र० — करना।—होना।

दस्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) पतला पायखाना। पानी ऐसा मल गिरने की क्रिया। विरेचन।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

मुहा०—दस्त लगना = मल निकलने का वेग जान पड़ना। पायखाना लगना।

(२) हाथ।

यौ०—दस्तकार। दस्तखत। दस्तगीर। दस्तपनाह। दस्तबरदार।

दस्तक-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हाथ मार कर खटखट शब्द उत्पन्न करने की क्रिया। खटखटाने की क्रिया। (२) बुलाने के लिये दरवाजे की कुंडी खटखटाने की क्रिया। घर के भीतर के लोगों को बुलाने के लिये बाहर से किवाड़ पर हाथ मारने की क्रिया।

मुहा०—दस्तक देना = बुलाने के लिये किवाड़ खटखटाना।

(३) किसी से देना या मालगुजारी वसूल करने के लिये निकाला हुआ हुक्मनामा। वह आज्ञापत्र जिसे लेकर कोई सिपाही देना या मालगुजारी वसूल करने के लिये आवे। गिरफ्तारी या वसूली का परवाना।

क्रि० प्र०—आना।

यौ०—दस्तक सिपाही = वह सिपाही जो किसी से मालगुजारी आदि वसूल करने या किसी को पकड़ने के लिये तैनात हो।

(४) माल आदि ले जाने का परवाना। निकास की चिट्ठी। राहदारी का परवाना। (५) कर। महसूल। टैक्स। चौंस।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—दस्तक बाँधना या लगाना—व्यर्थ का व्यय ऊपर डालना। नाहक का खर्च जिम्मे करना।

दस्तकार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] हाथ का कारीगर। हाथ से कारीगरी का काम करनेवाला आदमी।

दस्तकारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हाथ की कारीगरी। कला संबंधिनी वह सुंदर रचना जो हाथ से की जाय। जैसे, बेल-बूटे काढ़ना आदि।

दस्तखत-संज्ञा पुं० [फ़ा०] अपने हाथ का लिखा हुआ नाम। हस्ताक्षर। जैसे, उस दस्तावेज पर तुम कभी दस्तखत न करना।

विशेष—जिस लेख के नीचे किसी का दस्तखत होता है वह उसी का लिखा हुआ समझा जाता है, अतः उस लेख में जो बातें होती हैं उन्हें स्वीकार या पूरी करने के लिये वह नियम के अनुसार बाध्य होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दस्तखत लेना = दस्तखत कराना। किसी का नाम उस के हाथ से लिखवा लेना।

दस्तखती-वि० [फ़ा० दस्तखत] जिस पर दस्तखत हो। (लेख) जिसपर लिखने या लिखानेवाले का नाम उसीके हाथ का लिखा हो। जैसे, दस्तखती चिट्ठी।

दस्तगीर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] हाथ पकड़नेवाला। सहारा देनेवाला। सहायक। मददगार। उ०—दस्तगीर गाढ़े कर साथी।—जायसी।

दस्तपनाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिमटा।

दस्तबरदार-वि० [फ़ा०] जो किसी काम से हाथ हटा ले। जो किसी वस्तु पर से अपना हाथ या अधिकार उठा ले। जो कोई वस्तु छोड़ दे या किसी बात से बाज रहे।

मुहा०—दस्तबरदार होना = बाज आना। किसी वस्तु पर का अपना अधिकार छोड़ देना। छोड़ देना। त्याग देना। जैसे, अगर तुम मकान से दस्तबरदार हो जाओ तो हम १०००) और दें।

दस्तबरदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) त्याग। (२) त्यागपत्र।

दस्तयाब-वि० [फ़ा०] हस्तगत। प्राप्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दस्तरखान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह चादर जिसपर खाना रखा जाता है। चौकी पर की वह चादर जिसपर भोजन की थाली रखते हैं। (मुसलमान)

दस्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्त] (१) वह जो हाथ में आवे या रहे। (२) किसी औजार आदि का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है। मूठ। बेंट। जैसे, छुरी का दस्ता। (३) फूलों का गुच्छा। गुलदस्ता। (४) एक प्रकार की घुंडी जो चोगे या कबा पर लगती है। (५) सिपाहियों का छोटा दल। गारद। (६) चपरास। संजाफ। (७) किसी वस्तु का उतना गड्ड या पूला जितना हाथ में आ सके। (८) कागज के चौबीस तावों की गड्डी। (९) सोंटा। डंडा। गदका।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला। हरगिला।

दहलना-क्रि० अ० [सं० दर = डर + हिं० हलना = हिलना] डर से एकबारगी काँप उठना। डर के मारे जी धक से हो जाना। डर से चौंकना। भय से स्तंभित होना। उ०—वह राजा की चढ़ाई सुनते ही दहल उठा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

मुहा०—जी या कलेजा दहलना = डर से हृदय काँपना। डर के मारे छाती धक धक करना।

दहला-संज्ञा पुं० [फा० दह = दस + ला (प्रत्य०)] ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें दस बूटियाँ हों। दस चिह्नोंवाला ताश।

† संज्ञा पुं० [सं० थल] थाला। थावला। आलबाल। उ०—(क) कोऊ तुरंग सुढार कहैं दहला कलपद्रुम भावत श्रौन को।—शंभु। (ख) रोमलता को यहै दहला यह नाभि को गाड़ कि संभु बखानै।—शंभु।

दहलाना-क्रि० स० [हिं० दहलना] डर से कँपाना। भय से चौंकाना। भयभीत करना।

संयो० क्रि०—देना।

दहलीज़-संज्ञा स्त्री० [फा०] द्वार के चौखट की नीचेवाली लकड़ी जो जमीन पर रहती है। देहली। डेहरी।

मुहा०—दहलीज का कुत्ता = पिछलग्गू। दहलीज न झाँकना = दरवाज़े पर न आना। दहलीज की मिट्टी ले डालना = फेरे पर फेरा करना। बार बार द्वार पर आना।

दहशत-संज्ञा स्त्री० [फा०] डर। भय। खौफ़।

दहसनी-संज्ञा स्त्री० [फा० दह + सन] दस साल के खाते की बही।

दहा-संज्ञा पुं० [फा० दह] (१) मुहर्रम का महीना। (२) मुहर्रम की १ से १० तारीख का समय। (३) ताज़िया।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

दहाई-संज्ञा स्त्री० [फा० दह = दस] (१) दस का मान या भाव। (२) अंकों के स्थानों की गिनती में दूसरा स्थान जिस पर जो अंक लिखा होता है उससे उतने ही गुने दस का बोध होता है। जैसे ८० में दहाई के स्थान पर ८ है जिसका मतलब है कि आठ गुना दस। विशेष—दे० "इकाई"।

दहाड़-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी भयंकर जंतु का घोर शब्द। गरज। जैसे, शेर की दहाड़। (२) रोने का घोर शब्द। आर्त्तनाद। चिल्ला कर रोने की ध्वनि।

मुहा०—दहाड़ मारना, या दहाड़ मारकर रोना = चिल्ला चिल्ला कर रोना।

दहाड़ना-क्रि० अ० [अनु०] (१) किसी भयंकर जंतु का घोर शब्द करना। गरजना। गुर्राना। जैसे, शेर का दहाड़ना। (२) जोर से चिल्लाना। (३) चिल्ला चिल्लाकर रोना।

दहाना-संज्ञा पुं० [फा०] (१) चौड़ा मुँह। द्वार। (२) मशक का मुँह।

मुहा०—दहाना खोलना = (१) मशक का मुँह खोलना। पानी छोड़ना। (२) पेशाब करना। (बाजारू)।

(३) वह स्थान जहाँ नदी दूसरी नदी या समुद्र में गिरती है। मुहाना। (४) मोरी। नाली। (५) लगाम जो घोड़े के मुँह में रहती है।

दहार-संज्ञा पुं० [अ० दयार = प्रदेश] (१) प्रांत। प्रदेश। (२) आस पास का प्रदेश। खेंड़।

दहिँगल-संज्ञा पुं० [देश०] कीड़े मकोड़े खानेवाली आठ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसके परों पर सफेद और काली लकीरें होती हैं। यह रह रह कर अपनी पूँछ ऊपर उठाया करती है।

दहिजार†-संज्ञा पुं० दे० "दाढ़ीजार"।

दहिना-वि० [सं० दक्षिण] [स्त्री० दाहिनी] शरीर के दो पार्श्वों में से उस पार्श्व का नाम जिधर के अंगों या पेशियों में अधिक बल होता है। बायाँ का उलटा। अपसव्य। जैसे, दहिना हाथ, दहिना पैर, दहिनी आँख।

मुहा०—दहिना कमर पेंच = दहिनी ओर घूमना है। (पालकी के कहार)।

दहिनावर्त्त-वि० दे० "दक्षिणावर्त्त"।

दहिने-क्रि० वि० [हिं० दहिना] दहिनी ओर को। जैसे, वह मकान तुम्हारे दहिने पड़ेगा।

यौ०—दहिने होना = अनुकूल होना। प्रसन्न होना। दहिने बाएँ = इधर उधर। दोनों पार्श्व में। दोनों ओर।

दहियक-संज्ञा पुं० [फा० दह = दस] दशमांश। दसवाँ हिस्सा।

दहियल-संज्ञा पुं० दे० "दहला"

दही-संज्ञा पुं० [सं० दधि] खटाई के द्वारा जमाया हुआ दूध। वह दूध जो खटाई पड़ जाने के कारण जमकर थक्के के रूप में हो गया हो।

विशेष—मिट्टी के बरतन में रखे हुए गरम दूध में थोड़ा सा दही (या और कोई खट्टा पदार्थ) डाल देते हैं जिससे थोड़ी देर में वह थक्के के रूप में जम जाता है। दही दो प्रकार का होता है। एक सजाव या मीठा जिसका घी या मक्खन निकाला हुआ नहीं होता और जिसमें घी से युक्त मलाई की तह होती है। दूसरा छिनुवा या पनिया जो मक्खन निकाले हुए दूध को जमाने से बनता है और घटिया होता है। घी दही को मथ कर ही निकाला जाता है। हिंदुओं के यहाँ दही मंगल-द्रव्यों में से है।

वैद्यक में दही अग्नि-दीपक, स्निग्ध, गुरु, धारक, रक्त-पित्त कारक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक, कफवर्द्धक, तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, अतीसार, विषमज्वर इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। यूरप के बड़े बड़े डाक्टरों ने हाल में परीक्षा द्वारा सिद्ध किया है कि दही से बढ़कर और कोई आयु-

द्वारकपाट कोट भट रोके दह दिसि कंस भयमारी।—सूर। (ख) हाट बाट नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी।—तुलसी।

दहक–संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] (१) आग दहकने की क्रिया। धधक। दाह। (२) ज्वाला। लपट। † (३) शर्म। हया। लज्जा।

दहकन–संज्ञा स्त्री० [हिं० दहकना] दहकने की क्रिया या भाव।

दहकना–क्रि० अ० [सं० दहन] (१) ऐसा जलना कि लपट ऊपर उठे। लौ के साथ बलना। धधकना। भड़कना। जैसे, आग दहकना, कोयला दहकना। उ०—अंग अंग आगि ऐसे केसर के नीर लागे, चीर लागे बरन, अबीर लागे दहकन।—सेवक।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) शरीर का गरम होना। तपना। धिकना।

संयो० क्रि०—आना।

दहकाना–क्रि० स० [हिं० दहकना] (१) धधकाना। ऐसा जलाना कि लौ ऊपर उठे।

संयो० क्रि०—देना।

(२) भड़काना। क्रोध दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

दहगीं–संज्ञा स्त्री० [हिं० दाह + आग] गरमी। ताप।

दहड़ दहड़–क्रि० वि० [सं० दहन वा अनु०] लपट फेंकते हुए। धायँ धायँ। जैसे, दहड़ दहड़ जलना। उ०—इस बीच देखते क्या हैं कि वन चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है।—लल्लू।

दहदलां–संज्ञा स्त्री० दे० "दलदल"।

दहन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दहनीय, दह्यमान] (१) जलने की क्रिया या भाव। भस्म होने या करने की क्रिया। दाह। जैसे, लंकादहन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) अग्नि। आग। (३) कृत्तिका नक्षत्र। (४) तीन की संख्या। (५) भिलावाँ। भल्लातक। (६) चित्रक। चीता। (७) दुष्ट या क्रोधी मनुष्य। (८) कबूतर। कपोत। (९) एक रुद्र का नाम। (१०) ज्योतिष में एक योग जो पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन तीन नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होता है। (११) ज्योतिष में एक वीथी जो पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होती है।

दहनकेतन–संज्ञा पुं० [सं०] धूम। धूआँ।

दहनर्क्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र।

दहनशील–वि० [सं०] जलनेवाला।

दहना–क्रि० अ० [सं० दहन] (१) जलना। बलना। भस्म होना। उ०—जियरा उड्यो सो डोलै, हियरा धक्योई करै, छाई पियराई, तन सियराई सों दहै।—आनंदघन। (२) क्रोध से संतप्त होना। कुढ़ना।

क्रि० स० (१) जलाना। भस्म करना। उ०—उलटी गाढ़ परी दुर्वासा दहत सुदर्सन जाको।—सूर। (२) संतप्त करना। दुखी करना। कष्ट पहुँचाना। उ०—ये घरहाई लुगाई सबै निसि द्योस निवाज हमैं दहती हैं।—निवाज। (३) क्रोध दिलाना। कुढ़ाना।

क्रि० अ० [हिं० दह] धँसना। नीचे बैठना।

वि० दे० "दहिना"।

दहनिं–संज्ञा स्त्री० [हिं० दहना] जलने की क्रिया। जलन। उ०—अंतर उदेग दाह, आँखिन आँसू प्रवाह, देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।—आनंद घन।

दहनीय–वि० [सं०] जलने या जलाए जाने योग्य।

दहनोपल–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि। सूर्यमुखी। आतशी शीशा।

दहपट–वि० [फ़ा० दह = दस, दसो दिशा + पट = समतल, जैसे, चौपट] (१) गिरा कर जमीन के बराबर किया हुआ। ढाया हुआ। ध्वस्त। चौपट। नष्ट। उ०—सूरदास प्रभु रघुपति आए दहपट भइ लंका।—सूर। (२) रौंदा हुआ। कुचला हुआ। दलित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दहपटना–क्रि० स० [हिं० दहपट] (१) ढाना। ध्वस्त करना। चौपट करना। नष्ट करना। (२) रौंदना। कुचलना। दलित करना। उ०—बालिहू गर्व जिय माहिं ऐसो कियो, मारि दहपटि, दियो जम की घानी।—तुलसी।

दहबासी–संज्ञा पुं० [फा० दह = दस + बासी (प्रत्य०)] दस सिपाहियों का सरदार।

दहर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा चूहा। चुहिया। (२) छछूँदर। (३) भ्राता। भाई। (४) बालक। (५) नरक। (६) वरुण।

वि० (१) स्वल्प। छोटा। (२) सूक्ष्म। (३) दुर्बोध।

संज्ञा पुं० [सं० ह्रद (आद्यंत विपर्य्यय)] (१) दह। नदी में गहरा स्थान। उ०—अति अचगरी करत मोहन फटकि गेंडुरी दहर।—सूर। (२) कुंड। हौज। गड्ढा। पाल।

दहर दहर–क्रि० वि० [अनु० वा दहन = जलना] लपट फेंकते हुए। धधकते हुए। धायँ धायँ। जैसे, दहर दहर जलना।

दहरना*–क्रि० अ० दे० "दहलना"।

क्रि० स० दे० "दहलाना"। उ०—सूर प्रभु आय गोकुल प्रगट भए संतन दै हरख, दुष्ट जन मन दहर के।—सूर।

दहराकाश–संज्ञा पुं० [सं०] चिदाकाश। ईश्वर।

दहल–संज्ञा स्त्री० [हिं० दहलना] डर से एक बारगी काँप उठने की क्रिया।

प्रकार के दाँत होते हैं। दाँत तीन प्रकार के होते हैं— (१) चौका या राजदंत वर्ग (सामने के दो बड़े दाँत अर्थात् राजदंत और उनके दोनों पार्श्ववर्त्ती दाँत), (२) कुकुरदंत या शूलदंत, जो लंबे और नुकीले होते हैं और राजदंत के बाद दो दो पड़ते हैं, (३) चीमड़ जिनका सिरा चौड़ा और चौकोर होता है और जिनसे पीसा या चबाया जाता है। २१ या २२ वर्ष की अवस्था में जब आखिरी चीमड़ या अकिलदाढ़ निकलती है तब ३२ दाँत पूरे हो जाते हैं। बहुत से दूध पिलानेवाले जीवों को दो बार दाँत निकलते हैं। पहले बचपन में जो दूध के दाँत निकलते हैं वे झड़ जाते हैं। पीछे स्थायी दाँत निकलते हैं। दूध के दाँतों और स्थायी दाँतों की संख्या और आकृति में भी भेद होता है। मनुष्य के बच्चे में दूध के दाँत बीस होते हैं। साँप आदि विषधर जंतुओं के दाँत के भीतर एक नली होती है जिसके द्वारा थैली से विष बाहर होता है।

पर्य्या०—रद। दशन। द्विज। रदन।

यौ०—दाँत का चौका = सामने के चार दाँतों की लड़ी।

मुहा०—दाँत उखाड़ना = (१) दाँत मसूड़े से अलग करना। (२) मुँह तोड़ना। कठिन दंड देना। दाँतों उँगली काटना = दे० "दाँत तले उँगली दबाना"। दाँतकाटी रोटी = अत्यंत घनिष्ठ मित्रता। गहरी दोस्ती। घना मेल। जैसे, राम और श्याम की तो दाँतकाटी रोटी है। †दाँत काढ़ना = दे० "दाँत निकालना"। दाँत किटकिटाना, दाँत किचकिचाना = (१) दाँत पीसना। (२) क्रोध से दाँत पीसना। अत्यंत क्रोध प्रकट करना। दाँत किरकिराना = (क्रि० अ०) नीचे कंकड़ी, रेत आदि पड़ने के कारण दाँतों का ठीक न चलना। दाँत किरकिरे होना = हार मानना। हार जाना। हैरान हो जाना। दाँत कुरेदने को तिनका न रहना = पास में कुछ न रह जाना। सर्वस्व चला जाना। दाँत खट्टे करना = (१) खूब हैरान करना। (२) किसी प्रकार की प्रतिद्वंद्विता या लड़ाई में परास्त करना। पस्त करना। जैसे, मरहठों ने मुगलों के दाँत खट्टे कर दिए। उ०—नूतन नूतन यंत्र प्रस्तुत कर विलायती व्यापारियों के दाँत खट्टे करने के लिये सतत: प्रयत्न किए जा रहे हैं।—निबंधमालादर्श। दाँत खट्टे होना = हार जाना। पस्त होना। हैरान होना। † (किसी पर) दाँत गड़ना = दे० "(किसी पर) दाँत लगना"। किसी के दाँतों चढ़ना = (१) किसी के आक्षेप आदि का लक्ष्य होना। किसी को खटकना। (२) बुरी नज़र का निशाना बनना। टोक में आना। दृष्टि में आना। (क्लि०) जैसे, बच्चा लोगों के दाँतों चढ़ा रहता है इसीसे कुछ नहीं पाता। (किसी के) दाँतों चढ़ना = (१) किसी पर आक्षेप करते रहना। बुरी दृष्टि से देखना। पीछे पड़ा रहना। (२) नज़र लगाना (क्लि०)। दाँत चबाना = क्रोध में दाँत पीसना। क्रोध प्रकट करना। उ०—दाँत चबात चले मधुपुर तें धाम हमारे को।—सूर। दाँत जमना = दाँत निकलना। दाँत झड़ना = दाँत का टूट कर गिरना। दाँत झाड़ देना = दाँत तोड़ डालना। कठिन दंड देना। दाँत टूटना = (१) दाँत का गिरना। (२) बुढ़ापा आना। दाँत तले उँगली दबाना = (१) अचरज में आना। चकित होना। दंग रहना। (२) खेद प्रकट करना। अफसोस करना। (३) संकेत से किसी बात का निषेध करना। इशारे से मना करना। (जब कोई कुछ अनुचित कार्य्य करने चलता है तब इष्ट मित्र या गुरुजन प्रकट रूप से वारण करने का अवसर न देख दाँतों के नीचे उँगली दबा कर निषेध करते हैं)। दाँत तोड़ना = परास्त करना। पस्त करना। हैरान करना। कठिन दंड देना। उ०—अलादीन के दाँत तोड़ि निज धर्म बचायो।—राधाकृष्णदास। दाँत दिखाना = (१) हँसना। (२) डराना। घुड़कना। (३) अपना बड़प्पन दिखाना। दाँत देखना = घोड़े बैल आदि की उम्र का अंदाज करने के लिये उनके दाँत गिनना। दाँतों धरती पकड़ कर = अत्यंत दरिद्रता और कष्ट से। बड़ी किफायत और तकलीफ से। जैसे, दाँतों धरती पकड़ कर किसी प्रकार दो महीने चलाए। दाँत न लगाना = दाँतों से न कुचलना। जैसे, दाँत न लगाना, दवा यों ही उतार जाना। दाँत निकलना = बच्चों के दाँत प्रकट होना। दाँत जमना। दाँत निकालना = (१) दाँत उखाड़ना। (२) होठों को कुछ हटा कर दाँत दिखाना। (३) व्यर्थ हँसना। जैसे, क्यों दाँत निकालते हो सीधे बैठो। (४) गिड़गिड़ाना। दीनता दिखाना। हा हा खाना। जैसे, वह दाँत निकाल माँगने लगा, तब कैसे न देते? (५) मुँह बा देना। टें बोल देना। डर या घबराहट से ठक रह जाना। (किसी वस्तु का) दाँत निकालना = फट जाना। दरार से युक्त होना। उघड़ना। जैसे, जूती का दाँत निकालना, दीवार का दाँत निकालना। † दाँत निकोसना = "दे० दाँत निकालना"। † दाँत निपोरना = दे० "दाँत निकालना"। दाँत पर न रखा जाना = खटाई के कारण दाँतों को सहन न होना। अत्यंत खट्टा लगना। दाँत पर मैल न होना = अत्यंत निर्धन होना। भुक्खड़ होना। उ०—उसके तो दाँत पर मैल भी नहीं वह तुम्हें देगा क्या? दाँतों पर रखना = चखना। मुँह में डालना। दाँतों पसीना आना = कठिन परिश्रम पड़ना। उ०—इस काम में दाँतों पसीना आवेगा। (बच्चे का) दाँतों पर होना = उस अवस्था को पहुँचना जिसमें दाँत निकलनेवाले हों। *दाँत पीसना = दाँत पर दाँत रख कर हिलाना। दाँत किटकिटाना। दाँत बँधवाना = हिलते हुए दाँतों को तार से कसवाना। दाँत बजना = सरदी से दाढ़ के हिलने या काँपने के कारण दाँत पर

वर्द्धक पदार्थ मनुष्य के लिये नहीं है। उतरती अवस्था में इसका सेवन उन्होंने अत्यंत उपकारी बतलाया है। उनका कथन है कि दही से शरीर में ऐसे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो रक्त क्षीण करनेवाले कीटाणुओं को खाते जाते हैं।

मुहा०—दही का तोड़=दही का पानी जो कपड़े में रख कर दही को निचोड़ने से निकलता है। दही दही=दहिंगल नाम की चिड़िया की बोली। दही दही करना=किसी चीज को मोल लेने के लिये लोगों से कहते फिरना।

दहुँ*–अव्य० [सं० अथवा] (१) अथवा। या। किंवा। (२) स्यात्। कदाचित्।

दहेंगर–संज्ञा पुं० [हिं० दही+घड़ा] दही का घड़ा।

दहेंड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दही+हंडी] दही रखने का मिट्टी का बरतन।

दहेज–संज्ञा पुं० [अ० जहेज] वह धन और सामान जो विवाह के समय कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाता है। दायजा। यौतुक।

दहेला–वि० [हिं० दहला+एला (प्रत्य०)] [स्त्री० दहेली] (१) जला हुआ। दग्ध। (२) संतप्त। दुखी। उ०—(क) सुनु सजनी मैं रही अकेली विरह दहेली इत गुरुजन कहरे। (ख) कहाँ गए मनमोहन तजि कै काहे विरह दहेली है।

वि० [हिं० दहलना] [स्त्री० दहेली] भीगा हुआ। ठिठुरा हुआ। उ०—गाहत सिंधु सयाननि के जिनकी मति की मति देह दहेली।—केशव।

दहोतरसो–संज्ञा पुं० [सं० दशोत्तरशत] एक सौ दस।

दह्यौ–संज्ञा पुं० दे० "दही"।

दाँ–संज्ञा पुं० [सं० दा (प्रत्य०) जैसे, एकदा] दफा। बार। बारी। उ०—जोरि तुरँग रथ एकदाँ रवि न लेत विश्राम। तैसे ही नित पवन कों चलबे ही ते काम।—लक्ष्मणसिंह।

संज्ञा पुं० [फा०] ज्ञाता। जाननेवाला। जैसे, फारसीदाँ। उर्दूदाँ।

दाँई–वि० स्त्री० दे० "दाई"।

संज्ञा स्त्री० दे० "दाई"।

दाँक–संज्ञा स्त्री० [सं० ध्रांक्ष=चिल्लाना] दहाड़। गरज। किसी प्राणी का भीषण स्वर। उ०—लखन बचन की धांक सों परयो समाज सनाक। जिमि सिंधुर गण वांक में परै सिंह की दाँक।—रघुराज।

दाँकना–क्रि० अ० [हिं० दाँक+ना (प्रत्य०)] गरजना। दहाड़ना। उ०—जैसे व्याल बेंग को हूंकै पखीरी ताकै हो। जैसे सिंह आपु मुख निरखे परै कूप में दाँकै हो।—सूर।

दाँग–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) छः रत्ती की तौल। (२) दिशा। तरफ़। ओर। (३) छठाँ भाग।

संज्ञा पुं० [हिं० डंका] नगाड़ा। डंका। उ०—दान दाँग बाजै दरबारा। कीरति गई समुंदर पारा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [हिं० डूँगर] (१) टीला। छोटी पहाड़ी। (२) पहाड़ की चोटी।

दाँगर–संज्ञा पुं० दे० "डाँगर"।

दाँगी–संज्ञा स्त्री० [सं० दंडक=डंडा] वह लकड़ी जो जुलाहों की कंघी में लगी रहती है।

दाँज–संज्ञा स्त्री० [सं० उदाहार्य] बराबरी। समता। जोड़। तुलना। उ०—(क) जाके रस को इंद्र हु तरसत सुघड न पावत दांज।—देवस्वामी। (ख) न इंदीवरौ देह की दाँज पावै। गोराई लखे पीत कंजौ लजावै।—रघुराज।

दाँड़ना–क्रि० स० [सं० दंडन] (१) दंड देना। सज़ा देना। (२) जुरमाना करना।

दांडाजिनिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दंड और अजिन धारण करके अपना अर्थ साधन करता फिरे। साधु के वेष में लोगों को धोखा देनेवाला आदमी।

दाँड़ामेड़ा–संज्ञा पुं० दे० "डाँड़ामेड़ा"।

दांडिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दंड देने के लिये नियुक्त हो। जल्लाद।

दाँड़ी–संज्ञा पुं० दे० "डाँड़ी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "डाँड़ी"।

दाँत–संज्ञा पुं० [सं० दंत] (१) अंकुर के रूप में निकली हुई हड्डी जो जीवों के मुँह, तालू, गले और पेट में होती है और आहार चबाने, तोड़ने तथा आक्रमण करने, जमीन खोदने इत्यादि के काम में आती है। दंत।

विशेष—मनुष्य तथा और दूध पिलानेवाले जीवों में दाँत दाढ़ और ऊपरी जबड़े के मांस में लगे रहते हैं। मछलियों और सरीसृपों में दाँत केवल जबड़ों ही में नहीं तालू में भी होते हैं। पक्षियों में दाँत का काम चोंच से निकलता है, उनके दाँत नहीं होते। असली दाँत मसूड़ों के गड्ढों में जमे रहते हैं। सरीसृप आदि में दाँत का जबड़े की हड्डी से अधिक घनिष्ट लगाव होता है। रीढ़वाले जंतुओं में मुँह को छोड़ स्रोत (भोजन भीतर ले जानेवाले नल) में और कहीं दाँत नहीं होते। बिना रीढ़वाले क्षुद्र जंतुओं में दाँतों की स्थिति और आकृति में परस्पर बहुत विभिन्नता होती है। किसी के मुँह में, किसी की अँतड़ी में अर्थात् स्रोत के किसी स्थान में दाँत हो सकते हैं। केकड़ा, झिंगवा आदि के पेट में महीन महीन दाँत या दंदानेदार हड्डियाँ सी होती हैं। जल के बहुत से कीड़ों में जिनका मुँह गोल या चक्राकार होता है किनारे पर चारों ओर असंख्य महीन दाँतों का मंडल सा होता है। मनुष्य और बनमानुस में दंतावलि पूर्ण होती है, अर्थात् उनमें प्रत्येक

दँवरी करना। उ०—इसलिये यदि यंत्र द्वारा अन्न दाँया जाय तो दो ही तीन दिन में सब दाना भी अलग हो जाय।—खेती की पहली पुस्तक।

दांपत्य–वि० [सं०] स्त्री पुरुष संबंधी। स्त्री-पुरुष का सा। जैसे, दांपत्य प्रेम, दांपत्य भाव।

संज्ञा पुं० (१) दंपती से संबंध रखनेवाले अग्निहोत्र आदि कर्म। (२) स्त्रीपुरुष के बीच का प्रेम या व्यवहार।

दांभिक–वि० [सं०] (१) दंभयुक्त। वंचक। पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। धोखेबाज। (२) अहंकारी। घमंडी।

संज्ञा पुं० बगला। बक।

दाँय†–संज्ञा स्त्री० दे० "दँवरी"।

दाँया–वि० दे० "दायाँ।

दाँव–संज्ञा पुं० दे० "दावँ"।

दाँवनी–संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दामिनी नाम का गहना।

दाँवरी–संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी। रज्जु। डोरी। उ०—दाँवरि सौं बाँधन लगी जसुदा ह्वै बेपीर।—व्यास।

दा–संज्ञा पुं० [अनु०] सितार का एक बोल। उ०—दा दिर दा दा इत्यादि।

दाइ*–संज्ञा पुं० दे० "दाय" और "दावँ"।

दाइजा†–संज्ञा पुं० दे० "दायज"।

दाइजा†–संज्ञा पुं० दे० "दायजा"।

दाइँ–वि० स्त्री० [हिं० दायाँ] दाहिनी। जैसे, दाइँ आँख।

संज्ञा स्त्री० [सं० दाव (प्रत्य०), हिं० दाँ (प्रत्य०)] बारी। दफा। बार। उ०—तब नहिं जानेहु पीर पराई। अब कस रोवहु आपनि दाइँ।—विश्राम।

दाई–संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री, फा० दायः] (१) दूसरे के बच्चे को अपना दूध पिलानेवाली स्त्री। धाय।

यौ०—दाई पिलाई।

(२) वह दासी जो बच्चे की देख रेख रखने या उसे खेलाने के लिये रखी जाय।

यौ०—दाई खेलाई।

(३) वह स्त्री जो स्त्रियों को बच्चा जनने में सहायता देती हो। प्रसूता के उपचार के लिये नियुक्त स्त्री।

यौ०—दाई जनाई।

मुहा०—दाई से पेट छिपाना = जाननेवाले से कोई बात छिपाना। ऐसे मनुष्य से कोई बात गुप्त रखना जो सब रहस्य जानता हो।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी] (१) पिता की माता। दादी। (२) बड़ी बूढ़ी स्त्री।

*वि० दे० "दायी"।

दाउँ–संज्ञा पुं० दे० "दाँव"। उ०—सूझ जुआरिहि आपन दाऊँ।—तुलसी।

दाऊ–संज्ञा पुं० [सं० देव] (१) बड़ा भाई। (२) बलदेव। बलराम। कृष्ण के बड़े भाई।

दाऊदखानी–संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का चावल। उ०—रायभोग औ काजर रानी। झिन वरूद औ दाउद-खानी।—जायसी। (२) उत्तम प्रकार का सफेद गेहूँ। दाऊदी गेहूँ। गंगाजली गेहूँ।

दाऊदिया–संज्ञा पुं० [अ० दाऊद] (१) एक प्रकार का गेहूँ। दे० "दाऊदी" (२) गुलदावदी फूल। (३) एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर दाऊदी फूल की तरह दिखाई पड़ती है। (४) एक प्रकार का कवच।

दाऊदी–संज्ञा पुं० [अ० दाऊद] एक प्रकार का गेहूँ जिसका छिलका बहुत सफेद और नरम होता है। यह सबसे अच्छा समझा जाता है।

विशेष—कहते हैं कि दिल्ली के बादशाह शाहआलम के एक दरबारी, जिनका नाम दाऊदखाँ था, इस गेहूँ को मिस्र देश से लाए थे।

दाक्षायण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) आभूषण आदि सुनहरी चीजें। (३) स्वर्णमुद्रा। मोहर। अशरफी। (४) दक्ष द्वारा किया हुआ एक यज्ञ जिसकी कथा शतपथ ब्राह्मण में है।

वि० (१) दक्ष से उत्पन्न। (२) दक्ष के गोत्र का। (३) दक्ष का। दक्षसंबंधी। जैसे, दाक्षायण यज्ञ।

दाक्षायणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्ष की कन्या। (२) अश्विनी आदि नक्षत्र। (३) रोहिणी नक्षत्र। (४) दंती वृक्ष। (५) दुर्गा। (६) कश्यप की स्त्री, अदिति।

वि० [सं० दाक्षायणिन्] सोने का। सुवर्णयुक्त।

दाक्षायणीपति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

दाक्षिकंथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वाह्लीक देश।

दाक्षिण–संज्ञा पुं० [सं०] एक होम का नाम। (शतपथ ब्राह्मण)

वि० (१) दक्षिण संबंधी। (२) दक्षिणा संबंधी।

दाक्षिणात्य–वि० [सं०] दक्खिनी। दक्षिण देश का। जैसे, दाक्षिणात्य ब्राह्मण।

संज्ञा पुं० (१) दक्षिण देश। भारतवर्ष का वह भाग जो विंध्याचल के दक्षिण पड़ता है। दक्षिण खंड।

विशेष—इस खंड के अंतर्गत महाराष्ट्र, मलाबार, कोंकण, तैलंग, करनाटक, इत्यादि प्रदेश हैं। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी दक्षिण की प्रधान नदियाँ हैं। दे० 'तामिल', 'तैलंग', 'महाराष्ट्र'।

(२) दक्षिण देश का निवासी। (३) नारियल।

दाक्षिणिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह बंधन जो दक्षिणा प्रधान इष्टापूर्त्त आदि कर्मों को कामना वश करने से होता है। (याज्ञवल्क्य)

दाँत पड़ना। दाँत खट खट होना। दाँत बजाना = दाँत पर दाँत पीसना। दाँत किटकिटाना। दाँत बनवाना = गिरे हुए दाँतों के स्थान में हड्डी या सीप आदि के नकली दाँत लगवाना। दाँत बैठ जाना = मूर्च्छा लकवा आदि में पेशियों की स्तब्धता के कारण दाँत की ऊपर नीचेवाली पंक्तियों का परस्पर इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके। नीचे ऊपर के जबड़ों का सट जाना। दाँत मसमसाना, दाँत मीसना = दे० "दाँत पीसना"। (किसी का) दाँतों में जीभ सा होना = वैरियों के बीच रहना। शत्रुओं से प्रतिक्षण घिरा रहना। दाँतों में तिनका लेना = दया के लिये बहुत विनती करना। दंड आदि से छुटकारे के लिये बहुत गिड़गिड़ाना। बहुत अधीरता और विनय से क्षमा चाहना। हा हा खाना। (किसी वस्तु पर) दाँत रखना = (१) लेने की गहरी चाह रखना। प्राप्ति के प्रयत्न में रहना। (२) दंश रखना। किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव रखना। वैर लेने का विचार रखना। (किसी वस्तु पर) दाँत लगना = (१) दाँत धँसना। दाँत चुभने का घाव होना। (२) लेने की गहरी चाह होना। प्राप्ति की चिंता होना। जैसे, जब कि उस चीज़ पर उसका दाँत लगा है तब वह कब तक रह सकती है। (शेर, बिल्ली आदि शिकारी जानवर जिस जंतु को एक बार मुँह से पकड़ लेते हैं फिर उसे जाने नहीं देते। इसीसे यह मुहा० बना है।) (किसी वस्तु पर) दाँत लगाना = (१) दाँत धँसाना। (२) लेने की गहरी चाह रखना। प्राप्ति के प्रयत्न में रहना। लेने की घात में रहना। दाँत से दाँत बजाना = सरदी के कारण दाढ़ के कँपने से दाँत पर दाँत पड़ना। दाँतों से उठाना = बड़ी कंजूसी से उठाकर रखना। कृपणता से संचित करना। जैसे, एक दाना गिरे तो यह दाँतों से उठावे। किसी पर दाँत होना = (१) गहरी चाह होना। लेने या पाने की अत्यंत अधिक इच्छा होना। प्राप्ति की इच्छा होना। जैसे, जिस वस्तु पर तुम्हारा दाँत है वह कब तक रह सकती है। (२) किसी के प्रति दंश होना। किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव होना। किसी से वैर लेने का संकल्प होना। जैसे, जब कि उस पर तुम्हारा दाँत है तब वह कितने दिनों तक बच सकता है? (किसी के) तालू में दाँत जमना = बुरे दिन आना। शामत आना। जैसे, किसके तालू में दाँत जमे हैं जो ऐसी बात मुँह से निकाल सके?

(२) दाँत के आकार की निकली हुई वस्तु। अंकुर की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतों के साथ एक पंक्ति में हो। दंदाना। दाँता। जैसे, आरी के दाँत, कंघी के दाँत।

दांत—वि० [सं०] (१) जिसका दमन किया गया हो। वशीभूत। दबाया हुआ। (२) जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। जिसका शरीर तप आदि का क्लेश सह सके। (३) जो दाँत का बना हो। (४) दाँत-संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) मैनफल। (२) पहाड़ पर की बावली। (३) विदर्भ के राजा भीमसेन के दूसरे पुत्र जो दमयंती के भाई थे।

दाँतघुँघुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + घुँघुनी] पोस्ते के दाने की घुँघनी जो बच्चे का पहला दाँत निकलने पर बाँटी जाती है।

दाँतना †—क्रि० अ० [हिं० दाँत] (१) दाँतवाला होना। जवान होना। (पशुओं के लिये बोलते हैं)। (२) किसी हथियार की धार का इस प्रकार कुंठित होना कि वह कहीं उभर आवे और कहीं दब जाय। मुड़कर जगह जगह गुठला हो जाना। जैसे, कुल्हाड़ी का दाँतना।

दाँतली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाट] डाट। काग।

दाँता—संज्ञा पुं० [हिं० दाँत] दाँत के आकार का कँगूरा। रवा। अंकुर की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतों के साथ एक पंक्ति में हो। दंदाना।

मुहा०—दाँता पड़ना = किसी हथियार की धार में गुठले होने के कारण उभार और गड्ढे हो जाना।

दांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम। (महाभारत)

दाँताकिटकिट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + किटकिट (अनु०)] (१) कहा सुनी। झगड़ा। वाग्युद्ध। (२) गाली गलौज।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

दाँताकिलकिल—संज्ञा स्त्री० दे० "दाँताकिटकिट"।

दांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रियनिग्रह। इंद्रियों का दमन। क्लेश आदि सहने की शक्ति। (२) वश्यता। अधीनता। (३) विनय। नम्रता।

दाँतिया—संज्ञा पुं० [?] रेह का नमक। रेहू या सोडा जिसे पीने के तंबाकू में उसे तेज़ करने के लिये डालते हैं।

दाँती—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] (१) हँसिया जिससे घास या फसल काटते हैं। (२) वह बड़ा खूँटा जो नाव के घाट पर गड़ा रहता है और जिससे नाव का रस्सा बाँध दिया जाता है। डंडा। (३) भिड़ (बरैं) की जाति का एक कीड़ा जो बहुत काला होता है। काली भिड़।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत] (१) दाँतों की पंक्ति। दंतावलि। बत्तीसी।

मुहा०—दाँती बैठना वा लगना = जबड़ों का परस्पर सट जाना। ऊपर नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके। कच्चा बैठना।

(२) दो पहाड़ों के बीच की सँकरी जगह। दर्रा।

दाँना—क्रि० स० [सं० दमन] पक्की फसल के डंठलों को बैलों से इसलिये रौंदवाना जिसमें डंठल से दाना अलग हो जाय।

तोप, बंदूक आदि छोड़ना। जैसे, तोप दागना, बंदूक दागना।
क्रि० स० [फ़ा० दाग़] रंग आदि से चिह्न डालना। दाग लगाना। अंकित करना। उ०—कबहुँक बैठि अंश भुज धरि कै पीक कपोलनि दागे।—सूर।

दागबेल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाग़+हिं० बेल] भूमि पर फावड़े वा कुदाल से बनाए हुए चिह्न जो सड़क बनाने, नींव खोदने आदि के लिये एक सीध में डाले जाते हैं। उ०—सबके सब बराबर एक कतार में लँगडोरी डाल कर और दागबेल लगा कर बनाए गए हैं।—शिवप्रसाद।

दागी-वि० [फ़ा० दाग़] (१) जिस पर दाग लगा हो। जिस पर धब्बा हो। (२) जिस पर सड़ने का चिह्न हो। जैसे, दागी फल। (३) कलंकित। दोषयुक्त। लांछित। (४) दंडित जिसको सज़ा मिल चुकी हो।

दाघ-संज्ञा पुं० [सं०] गरमी। ताप। दाह। जलन। उ०—(क) कहलाने एकत रहत अहि मयूर मृग बाघ। जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ।—बिहारी। (ख) बादि ही चंदन चारु घिसै घनसार घने घसि पंक बनावत। बादि उसीर समीर चहै दिन रैनि पुरैनि के पात बिछावत। आपुहि तात मिटी द्विज देव सुदाघ निदाघ कि कौन कहावत। बावरि तू नहिं जानति आज मयंक लजावत मोहन आवत।—द्विजदेव।

दाज†-संज्ञा पुं० [?] (१) अँधेरी रात। (२) अँधेरा।

दाजन†-संज्ञा स्त्री० दे० "दाझन"।

दाजना*-क्रि० अ० [सं० दग्ध वा दाहन] (१) जलना। (२) ईर्षा करना। डाह करना। उ०—दाजन दे दुर जीवन को अरु लाजन दे सजनी कुल वारे। साजन दे मन को नव नेम निवाजन दे मनमोहन प्यारे। गाजन दे मनहीन 'गुलाब' बिराजन दे उर में गुन भारे। भाजन दे गुरु लोगन को डर बाजन दे अब नेह नगारे।—गुलाब।
क्रि० स० जलाना।

दाझन*-संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन। उ०—पूरे सतगुरु के बिना पूरा शिष्य न होय। गुरु लोभी शिष लालची दूनी दाझन होय।—कबीर।

दाझना*-क्रि० अ० [सं० दाहन] जलना। संतप्त होना। उ०—कै बिरहिनि कूँ मीचु दे कै आपा दिखलाय। आठ पहर का दाझना मोपै सहा न जाय।—कबीर।
क्रि० स० जलाना।

दाटना†-क्रि० स० दे० "डाँटना"।

दाड़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाढ़। डाढ़। (२) दाँत।

दाड़व-संज्ञा पुं० [?] भविष्य महाखंड के अनुसार काशी से दो योजन पश्चिम एक ग्राम जिसमें कल्कि भगवान् अधर्मी म्लेच्छों का नाश करके शांतिपूर्वक निवास करेंगे।

दाड़स-संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़] एक प्रकार का साँप।

दाड़िम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनार।
यौ०—दाड़िम-प्रिय=सुआ। तोता।
(२) इलायची।

दाड़िम पुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] रोहितक नामक वृक्ष। रोहेड़ा।

दाड़िम-प्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] शुक। सुआ। तोता।

दाड़िमाष्टक-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक चूर्ण जिसमें अनार का छिलका पड़ता है।

दाड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "दाड़िम"।

दाढ़-संज्ञा स्त्री० [सं० दंष्ट्रा, प्रा० दड्ढा। मि० सं० दाढ़क, दाढ़ा] जबड़े के भीतर के मोटे चौड़े दाँत। चौभर।
मुहा०—दाढ़ न लगाना=दाँत से न कुचलना। दाढ़ गरम होना=खाना खाने में आना।
संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) भीषण शब्द। गरज। दहाड़। जैसे, सिंह की दाढ़। (२) चिल्लाहट।
मुहा०—दाढ़ मार कर रोना=खूब चिल्ला चिल्ला कर रोना। उ०—रस्सी कटते ही मुर्दः नीचे गिर पड़ा और गिरते ही दाढ़ मार मार रोने लगा।

दाढ़ना*-क्रि० स० [सं० दाहन] (१) जलाना। आग में भस्म होना। उ०—(क) दाढ़ा राहु केतु गा दाघा। सूरज जरा चाँद जर आधा।—जायसी। (ख) देखे लोग बिरह दव दाढ़े।—तुलसी। (ग) वेई मलीक निचोल सजे सब देव वहै विरहानल दाढ़ी।—बेनीप्रवीन। (२) संतप्त करना। दुखी करना।

दाढ़ा†-संज्ञा पुं० दे० "दाढ़"।
संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़] (१) वन की आग। दावानल।
क्रि० प्र०—लगना।
(२) आग। अग्नि।
क्रि० प्र०—लगाना।
(३) दाह। जलन।
मुहा०—दाढ़ा फूँकना=दाह उत्पन्न करना।

दाढ़िका*-संज्ञा स्त्री० [सं०] दाढ़ी।

दाढ़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दाढ़] (१) चिबुक। (२) ठुड्डी और दाढ़ पर के बाल। श्मश्रु।
विशेष—दे० "डाढ़ी"।

दाढ़ीजार-संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़ी+जलना] वह जिसकी दाढ़ी जली हो। एक गाली, जिसे स्त्रियाँ कुपित होने पर पुरुषों को देती हैं। उ०—(क) स्यामहि मदांध सविपाद मेचना देखि भयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को।—तुलसी

दाक्षिण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुकूलता। किसी के हित की ओर प्रवृत्त होने का भाव। प्रसन्नता। (२) उदारता। सरलता। सुशीलता। (३) दूसरे के चित्त को फेरने या प्रसन्न करने का भाव। (४) साहित्य में नाटक का एक अंग जिसमें वाक्य या चेष्टा द्वारा दूसरे के उदासीन या अप्रसन्न चित्त को फेर कर प्रसन्न करने का भाव दिखाया जाता है।

वि० (१) दक्षिण का। दक्षिण संबंधी। (२) दक्षिणा संबंधी।

दाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्ष की कन्या। (२) पाणिनि की माता का नाम।

यौ०—दाक्षीपुत्र = पाणिनि।

दाक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षता। निपुणता। पटुता। कार्य्यकुशलता।

दाख-संज्ञा स्त्री० [सं० द्राक्षा] (१) अंगूर। (२) मुनक्का। (३) किशमिश।

दाखिल-वि० [फ़ा०] (१) प्रविष्ट। घुसा हुआ। पैठा हुआ। उ०—बीच बगीचा के महल दाखिल भयो प्रशंस।—गुमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दाखिल करना = देना। अदा करना। भर देना। जमा करना। उ०—उसने तुरंत जुरमाना दाखिल कर दिया। दाखिल होना = अदा कर देना। ला कर जमा करना।

(२) शरीक। मिला हुआ। जैसे, किसी गरोह में दाखिल होना। (३) पहुँचा हुआ।

यौ०—दाखिलखारिज। दाखिल-दफ़्तर।

दाखिलखारिज-संज्ञा पुं० [फ़ा०] किसी सरकारी काग़ज़ पर से किसी जायदाद के हक़दार का नाम काट कर उस पर उसके वारिस या किसी दूसरे हक़दार का नाम लिखने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दाखिल-दफ़्तर-वि० [फ़ा०] दफ़्तर में इस प्रकार डाल रक्खा हुआ (काग़ज़) जिस पर कुछ विचार न किया जाय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दाखिला-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) प्रवेश। पैठ। (२) किसी संस्था, कार्य्यालय आदि में सम्मिलित किए जाने का कार्य्य। (३) वह कागज जिसमें उस वस्तु का ब्योरा लिखा हो जो कहीं दाखिल या जमा की जाय। (४) वह कागज जिस पर किसी वस्तु के जमा होने, भेजे जाने या पाए जाने की मिति आदि टँकी हो।

दाखी-संज्ञा स्त्री० दे० "दाक्षी"।

दाग-संज्ञा पुं० [सं० दग्ध] (१) जलाने का काम। दाह। (२) मृतक का दाहकर्म्म। मुर्दा जलाने की क्रिया।

मुहा०—दाग देना = मृतक का दाहकर्म करना। मुरदे का क्रियाकर्म करना।

(३) जलन। डाह। उ०—उर मानिक की उरवसी डटत घटत दृग दाग। झलकत बाहर कढ़ि मनौ पिय हिय को अनुराग।—बिहारी। (४) जलने का चिह्न।

दाग़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० दाग़ी] (१) किसी वस्तु के तल पर रंग का वह भेद जो थोड़े से स्थान पर अलग दिखाई पड़ता है। धब्बा। चित्ती। जैसे, (क) इस बिल्ली की पीठ पर कई रंग के दाग़ हैं। (ख) कपड़े पर का यह दाग़ धोबी से छूटेगा। उ०—तुलसी जो मृग मन मरै परै प्रेम पट दाग।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

विशेष—इस शब्द का अधिकतर प्रयोग ऐसे धब्बे के लिये होता है जो खटकता या बुरा लगता हो।

मुहा०—सफेद दाग़ = एक प्रकार का कोढ़ जिससे शरीर पर सफेद सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। फूल।

(२) निशान। चिह्न। अंक। उ०—मृगनैनी सैनन भजै लखि बेनी के दाग।—बिहारी।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

यौ०—दागबेल।

(३) फल आदि पर पड़ा हुआ सड़ने का चिह्न। (४) कलंक। ऐब। दोष। लांछन। उ०—पुत्र वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै।—गिरिधर।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(५) जलने का चिह्न।

दागदार-वि० [फ़ा०] (१) जिसपर दाग लगा हो। (२) धब्बेदार।

दागना-क्रि० स० [हिं० दाग] (१) जलाना। दग्ध करना। उ०—(क) लोग वियोग विषम विष दागे।—तुलसी। (ख) करि कंद को मंद दुचंद भई फिर दाखन के उर दागति हैं।—पद्माकर। (२) तपे लोहे को छुला कर किसी के अंग को ऐसा जलाना कि चिह्न पड़ जाय। जैसे, साँड़ दागना, घोड़ा दागना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) किसी धातु के तपे हुए साँचे को छुला कर अंग पर उसका चिह्न डालना। तप्तमुद्रा से अंकित करना। जैसे, शंखचक्र दागना। (४) किसी फोड़े आदि पर ऐसी तेज़ दवा लगाना जिससे वह जल या सूख जाय। जैसे, कास्टिक या तेजाब से फुंसी दागना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) भरी हुई बंदूक में बत्ती देना। रंजक में आग लगाना।

यौ०—दादी फरियादी।

दादु*—संज्ञा स्त्री० [सं० दद्रु] दाद। दिनाई। उ०— ममता दादु कंडु इरषाई। हरख विषाद गरह बहुताई।—तुलसी।

दादुर*—संज्ञा पुं० [सं० दर्दुर] मेढ़क। मंडूक। उ०—दादुर धुनि चहुँ ओर सोहाई। वेद पढ़ें जनु बटुसमुदाई।—तुलसी।

दादू†—संज्ञा पुं० [अनु० दादा] (१) दादा के लिये संबोधन या प्यार का शब्द। (२) 'भाई' आदि के समान एक साधारण संबोधन। (३) एक साधु का नाम जिनके नाम पर एक पंथ चला है। ऐसा प्रसिद्ध है कि दादू अहमदाबाद के एक धुनिया थे। १२ वर्ष की अवस्था ही में इन्होंने अपना नगर परित्याग किया और अजमेर, कल्याणपुर आदि स्थानों में कुछ दिनों रह कर अंत में ३७ वर्ष की अवस्था में जयपुर से बीस कोस पर नरैन नामक स्थान में निवास किया। कहते हैं कि यहाँ इन्हें आकाशवाणी हुई जिसके पीछे ये बहुत दिनों तक गुप्त रहे। कबीरपंथियों में प्रसिद्ध है कि दादू कबीरपंथी थे और गुरुपरंपरा में कबीर से छठें थे। दादू ने भी कबीर के समान ही राम नाम के रूप में निर्गुण परब्रह्म की उपासना चलाई है। अकबर के समय में दादू अच्छे पहुँचे हुए साधुओं में गिने जाते थे।

दादूदयाल—संज्ञा पुं० दे० "दादू"।

दादूपंथी—संज्ञा पुं० [हिं० दादू + पंथी] दादू नामक साधु का अनुयायी।

विशेष—दादूपंथी तीन प्रकार के होते हैं—विरक्त, नागा और विस्तरधारी। विरक्त केवल जलपात्र और कौपीन रखते हैं। नागे लोग लड़ाके होते हैं और राजाओं की सेना में भरती होते हैं। विस्तरधारी गृहस्थ होते हैं।

दाध*—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] जलन। दाह। ताप। उ०—(क) सही न जाय विरह कर दाधा।—जायसी। (ख) हाड़ चून भे विरहै दही। जानै सोइ जो दाध इमि सही।—जायसी। (ग) जहँ तहँ भूमि जरी भा रेहू। विरह की दाध भई जनु खेहू।—जायसी। (घ) जेहि तन नेह दाध तेहि दूना।—जायसी।

विशेष—जायसी ने इस शब्द को कहीं स्त्रीलिंग माना है और कहीं पुल्लिंग।

दाधना*—क्रि० स० [सं० दग्ध] जलाना। भस्म करना। उ०—(क) दाढ़ा राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चाँद जर आधा।—जायसी। (ख) ते यह जिउ डाढ़े पर दाधा। आधा निकस, रहा घट आधा।—जायसी।

दाधीचि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि] दधीचि के वंश का मनुष्य। दधीचि का गोत्रज।

दान—संज्ञा पुं०[सं०] (१) देने का कार्य। जैसे, ऋणदान। (२) लेनेवाले से बदले में कुछ न चाह कर या लेकर उदारता वश देने का कार्य। धर्म के भाव से देने की क्रिया। वह धर्मार्थ कर्म जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि दिया जाता है। खैरात।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

यौ०—कन्यादान। गोदान। दानपुण्य। दान-दहेज।

विशेष—स्मृतियों में दान के प्रकरण में अनेक बातों का विचार किया गया है। सब से अधिक जोर दान-ग्रहण करनेवाले की पात्रता पर किया गया है। दान के पात्र ब्राह्मण कहे गए हैं। ब्राह्मणों में वेदपाठी, वेदपाठियों में वेदोक्त-कर्म के कर्ता और उनमें भी शम दम आदि से युक्त आत्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। दानों का विशेष विधान यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्मों के पीछे है। इस प्रकार का दान अंधे, लूले, लंगड़े, गूँगे आदि विकलांगों को देने का निषेध है। दान के लिये दाता में श्रद्धा होनी चाहिए और उसे लेनेवाले से कुछ प्रयोजन-सिद्धि की अपेक्षा न रखनी चाहिए। शुद्धितत्व में दान के छः अंग बतलाए गए हैं—दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्म्म, देश और काल। दान के उत्तम और निकृष्ट होने का विचार इन छः अंगों के अनुसार होता है—अर्थात् दाता के विचार से (जैसे, श्वपच, कुलटा आदि का दिया हुआ), प्रतिग्रहीता के विचार से (जैसे, पतित ब्राह्मण को दिया हुआ), श्रद्धा के विचार से (जैसे, तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ), देश के विचार से (जैसे गंगा के तट पर दिया हुआ) और काल के विचार से (जैसे, ग्रहण के समय का)। इनके अतिरिक्त द्रव्य का भी विचार किया जाता है कि जो धन दान में दिया जाय वह कैसा होना चाहिए। देवल ने लिखा है कि जो धन दूसरे को पीड़ित करके न प्राप्त हुआ हो अपने परिश्रम से प्राप्त हुआ हो वही दान के योग्य है। जिस प्रकार दान का फल कहा गया है उसी प्रकार दान के त्याग का भी फल कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि "जो प्रतिग्रह में समर्थ अर्थात् दान लेने का पात्र होकर भी प्रतिग्रह नहीं लेता वह दानियों के जो स्वर्ग आदि लोक हैं उन सबको प्राप्त होता है"। इसीसे बहुत से स्थानों के ब्राह्मण प्रतिग्रह कभी नहीं लेते। वेदों और स्मृतियों में कहे हुए दानों के अतिरिक्त ग्रहों की शांति आदि के लिये भी कुछ दान किए जाते हैं जिनका लेना बुरा समझा जाता है, शनैश्चर का दान सबसे बुरा समझा जाता है जिसमें तेल, लोहा, काला तिल, काला कपड़ा दिया जाता है। दान के विषय में संस्कृत में अनेक आचार्यों के अनेक ग्रंथ हैं।

(३) वह वस्तु जो दान में दी जाय। (४) कर। महसूल। चुंगी। टैक्स। उ०—तुम समरथ की बाम कहा काहू को करिहौ। चोरी जातीं बेचि दान सब दिन को भरिहौ।—सूर। (५) राजनीति के चार उपायों में से एक। कुछ दे कर शत्रु के विरुद्ध कार्यसाधन की नीति। (६) हाथी का

(ख) अनेक बार मैं कहीं बुझायहू विभीषणं । न मानि दाढ़िजार को कुठार वंश तीक्ष्णं ।—विश्राम ।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति 'दारी=दासी, लौंडी+जार=उपपति,' मानते हैं पर यह ठीक नहीं जान पड़ता ।

दात*–संज्ञा पुं० [सं दातव्य] दान । उ०—तुम सब ही के गुरु मानी अति पुर पुर भूतल के सुर तुम्हैं दीजियत दात है । —हनुमान ।

संज्ञा पुं० दे० "दाता" । उ०—सतगुरु समानै को सगा सोंध समानै दात ।—कबीर ।

दातव्य–वि० [स०] देने योग्य ।

संज्ञा पुं० (१) देने का काम । दान । (२) दानशीलता । उदारता । उ०—बिन दातव्य द्रव्य नहिं आवै । देश विदेश चहौ फिर आवै ।—विश्राम ।

दाता–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो दान दे । दानशील । (२) देनेवाला ।

दातापन–संज्ञा पुं० [सं० दाता+हिं० पन] दानशीलता ।

दातार–संज्ञा पुं० [सं० दाता का बहु०] दाता । देनेवाला । उ०—राजन राउर नाम जसु सब अभिमत दातार । फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाप तुम्हार ।—तुलसी ।

दाती*–संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] देनेवाली । उ०—पलित केश कफ कंठ विरोध्यो कल न परै दिन राती । माया मोह न छांड़ै तृष्णा ए दोऊ दुखदाती ।—सूर ।

दातुन–संज्ञा स्त्री० दे० "दतुवन" ।

दातून–संज्ञा स्त्री० [सं० दंती] (१) दंती की जड़ । (२) जमाल गोटे की जड़ ।

संज्ञा स्त्री० दे० "दतुवन" ।

दातृता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातृत्व–संज्ञा पुं० [सं०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातौन–संज्ञा स्त्री० दे० "दतुवन" ।

दात्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पपीहा । चातक । (२) मेघ । बादल ।

दात्र–संज्ञा० पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० दात्री] दाँती । हँसिया ।

दात्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] देनेवाली ।

संज्ञा० स्त्री० [सं०] हँसिया । दाँती ।

दाद–संज्ञा स्त्री० [सं० दद्रु] एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर उभरे हुए ऐसे चकत्ते पड़ जाते हैं जिनमें बहुत खुजली होती है । दिनाई ।

विशेष—दाद विशेषतः कमर के नीचे जंघे के जोड़ के आस पास होती है जहाँ पसीना होकर मरता है । वैद्यक में यह १८ प्रकार के कोढ़ों में गिनी जाती है । डाक्टरों की परीक्षा से पता लगा है कि दाद एक प्रकार की सूक्ष्म खुमी है जो जंतुओं के चमड़े पर छत्ता बाँधकर जम जाती है और उन्हीं के रक्त आदि से पलती है । दाद प्रायः बरसात में गंदे पानी के संसर्ग से होती है । दाद दो प्रकार की होती है एक कागजी, दूसरी भैंसिया । कागजी दाद का छत्ता पतला और छोटा होता है और अधिक नहीं फैलता । भैंसिया दाद भयंकर होती है, इसके छत्ते बड़े और मोटे होते हैं और कभी कभी शरीर भर में फैलते हैं ।

यौ०—दादमर्दन ।

संज्ञा स्त्री० [फा० दाद] इंसाफ । न्याय । उ०—तिनसों चाहत दाद तैं मन पस कौन हिसाब । छुरी चलावत हैं गरे जे बेकसक कसाब ।—रसनिधि ।

मुहा०—दाद चाहना=किसी अत्याचार के प्रतीकार की प्रार्थना करना । दाद देना =(१) न्याय करना । उ०—देव तो दया-निकेत देत दादि दीन की पै मेरिये अभाग मेरी बार नाथ ढील की ।—तुलसी । (२) सराहना । वाह वाह करना ।

दादनी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह जो देना है । वह रकम जिसे चुकाना है । (२) वह रकम जो किसी काम के लिये पेशगी दी जाय । अगता ।

दादमर्दन–संज्ञा पुं० [सं० दद्रुमर्दन] एक प्रकार का चकवँड जो हिंदुस्तान के बगीचों में प्रायः मिलता है । ऐसा कहा जाता है कि यह पेड़ अमेरिका के टापुओं से लाया गया है, इसीसे इसे विलायती चकवँड़ भी कहते हैं । इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से दाद दूर हो जाती है ।

दादरा–संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का चलता गाना । (२) दो अर्द्ध मात्राओं का ताल जिसमें केवल एक आघात होता है । इसमें केवल एक आघात होता है । खाली इस में नहीं होता । धा धिन धा
(+ +)

दादस–संज्ञा स्त्री० [हिं० दादा+सास] ददिया सास । अजिया सास । सास की सास ।

दादा–संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० दादी] (१) पितामह । पिता का पिता । आजा । (२) बड़ा भाई । (३) बड़े बूढ़ों के लिये आदरसूचक शब्द ।

दादि*†–संज्ञा स्त्री० [फा० दाद] न्याय । इंसाफ । उ०—(क) लागैगी पै लाज वा विराजमान विरदाई महाराज आजु जो न देत दादि दीन की ।—तुलसी । (ख) दई दीनहि दादि सो सुनि सुजन सदन बधाई ।— तुलसी । (ग) कृपासिंधु जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—चाहना ।—देना ।—पाना ।—माँगना ।

दादी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दादा] पिता की माता । दादा की स्त्री ।

संज्ञा पुं० [फा० दाद] दाद चाहनेवाला । फरियादी । न्याय का अर्थी ।

पिरो, या जोड़ कर काम में लाई जाती हो। जैसे, मोती का दाना। उ०—परसैं सु बूँदैं मुकतान ही के दाने सी :—पद्माकर।

(७) ऐसी बहुत सी छोटी वस्तुओं में (या अंगों) में से एक जिनके एक में गूँथने या जोड़ने से कोई बड़ी वस्तु बनी हो। जैसे, घुँघरू का दाना, बाजूबंद का दाना। (८) माला की गुरिया। मनका। उ०—गले में सोने के बड़े बड़े दाने पड़े हैं।—प्रताप। (९) गोल या पहलदार छोटी वस्तुओं के लिये संख्या के स्थान पर आनेवाला शब्द। अदद। जैसे, चार दाने मिर्च, चार दाने अंगूर। (१०) रवा। कण। कणिका। जैसे, दानेदार घी या शराब। (११) किसी सतह पर के छोटे छोटे उभार जो टटोलने से अलग अलग मालूम हों। जैसे, नारंगी के छिलके पर के दाने, दानेदार चमड़ा। (१२) शरीर के चमड़े पर महीन महीन उभार जो खुजलाने या रोग आदि के कारण हो जाते हैं। जैसे, अँभौरी या पित्ती के दाने, चेचक के दाने। (१३) बरतन की नक्काशी में गोल उभार। (कसेरे)

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—दाने का माल = वह बरतन जिसमें नक्काशी उभारी नहीं जाती।

वि० [फ़ा० दाना] बुद्धिमान। अक्लमंद।

दानाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अक्लमंदी।

दानाकेश—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जरदोजी का कपड़ा जो चोगे के ऊपर पहिना जाता है।

दानाचारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दाना + हिं० चारा] खाना पीना। भोजन। आहार।

क्रि० प्र०—करना।

दानाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य ब्राह्मणों में बाँटा जाय। राजाओं के यहाँ दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी।

दाना पानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दाना + हिं० पानी] (१) खान पान। अन्न जल।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दाना पानी छोड़ना = अन्न जल ग्रहण न करना। न कुछ खाना न पीना। उपवास करना। दाना पानी छूटना = रोग के कारण कुछ खाया पीया न जाना।

(२) भरण पोषण का आयोजन। जीविका।

मुहा०—दाना पानी उठना = जीविका न रहना।

(३) रहने का संयोग। जैसे, जहाँ का दाना पानी होगा वहाँ जायँगे।

दानाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाना + बंदी] खड़ी फसल से उपज का अंदाज़ करने के लिये खेत को नापने का काम।

दानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करनेवाली स्त्री।

दानिया—संज्ञा पुं० दे० "दानी"।

दानिस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दानिश] (१) समझ। बुद्धि। (२) राय। सम्मति।

दानी—वि० [सं० दानिन्] [स्त्री० दानिनी] जो दान करे। उदार।

संज्ञा पुं० दान करनेवाला व्यक्ति। दाता।

संज्ञा पुं० [सं० दानीय] (१) कर संग्रह करनेवाला। महसूल उगाहनेवाला। दान लेनेवाला। उ०—(क) आय समुंद ठाढ़ भा होइ दानी के रूप।—जायसी। (ख) परसत ग्वारि ग्वार सब जेंवत मध्य कृष्ण सुखकारी। सूर श्याम दधि दानी कहि कहि आनँद घोष कुमारी।—सूर।

(२) पर्वतिया नैपालियों की एक जाति।

दानीय—वि० [सं०] दान करने योग्य।

दानेदार—वि० [फ़ा०] जिसमें दाने हों। रवादार। जैसे, दानेदार गुड़। दानेदार राब।

दानौ‡*—संज्ञा पुं० दे० "दानव"।

दाप—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] (१) अहंकार। घमंड। अभिमान। गर्व। (२) शक्ति। बल। जोर। उ०—रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।—तुलसी। (३) उत्साह। उमंग। (४) रोब। दबदबा। आतंक। तेज। प्रताप। (५) क्रोध। उ०—सर संधान कीन्ह करि दापा।—तुलसी। (६) जलन। ताप। दुःख। उ०—दियो क्रोध करि रिषिहि सराप। करी कृपा जु मिटै यह दाप।—सूर।

दापक—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दबानेवाला। उ०—सो, प्रभु हैं जल थल सब व्यापक। जो है कंस दर्प को दापक।—सूर।

दापना*—क्रि० स० [हिं० दाप] (१) दाबना। दबाना। (२) मना करना। रोकना। उ०—मानै न जाय गोपाल के गेह घरी घरी धाय कितेकऊ दापति।—गोकुल।

दाब—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प, हिं० दाप] (१) दबने या दबाने का भाव। एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर उस ओर को जोर जिस ओर वह दूसरी वस्तु हो। अपनी ओर को खींचनेवाले जोर का उलटा। चाँप।

क्रि० प्र०—पहुँचाना।—लगाना।

(२) किसी वस्तु का वह जोर जो नीचे की वस्तु पर पड़े। भार। बोझ। जैसे, इस पर पत्थर की दाब पड़ी है इसी से यह चिपटा हो गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

मुहा०—किसी की दाब तले होना = किसी के वश में या अधीन होना।

(३) आतंक। अधिकार। रोब। आधिपत्य। शासन। बड़े या प्रबल के प्रति छोटे या अधीन का संकोच या भय और छोटे या अधीन के प्रति बड़े या प्रबल का प्रमुत्व।

मद। उ०—(क) रणित भृंग घंटावली झरत दान मधु-नीर। मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज-समीर।—बिहारी। (ख) सुरसरि में दिग्गज दान-मलिन जलही भर। कंचन कमलालय हुए तदीय सरोवर।—महावीर-प्रसाद। (ग) दान देत यों शोभियत दीन नरनि के हाथ। दान सहित ज्यों राज ही मत्त गजन के माथ।—केशव। (७) छेदन। (८) शुद्धि। (९) एक प्रकार का मधु।

दानक—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्सित दान। बुरा दान।

दानकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का मद।

दानधर्म्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने का धर्म्म। दान पुण्य।

दानपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदा दान देनेवाला। (२) अक्रूर का एक नाम जो स्यमंतक मणि के प्रभाव से प्रति दिन दान दिया करता था। (३) एक दैत्य का नाम।

दानपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख या पत्र जिसके द्वारा कोई संपत्ति किसी को प्रदान की जाय।

विशेष—प्राचीन काल में दानपत्र ताम्रपत्र आदि पर खोदे जाते थे। अनेक राजाओं के ऐसे दानपत्र मिलते हैं जिनसे बहुत सी ऐतिहासिक बातों का पता लगता है।

दानपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो दान पाने के उपयुक्त हो। दान देने के लिये उपयुक्त व्यक्ति।

दानलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कृष्ण की वह लीला जिस में उन्होंने ग्वालिनों से गोरस बेचने का कर वसूल किया था। (२) कोई ग्रंथ जिसमें इस लीला का वर्णन किया गया हो।

दानव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दानवी] कश्यप के वे पुत्र जो 'दनु' नाम्नी पत्नी से उत्पन्न हुए। असुर। राक्षस।

विशेष—मायावी दानवों का उल्लेख ऋग्वेद में है। महाभारत के अनुसार दक्ष की कन्या दनु से शंबर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, विप्रचित्ति, दुर्जय, अयःशिरा, विरुपाक्ष, महोदर, सूर्य्य, चंद्र इत्यादि चालीस पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें विप्रचित्ति राजा हुआ। दानवों में जो सूर्य्य और चंद्र हुए उन्हें देवताओं से भिन्न समझना चाहिए। भागवत में दनु के ६१ पुत्र गिनाए गए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि दानव पितरों से उत्पन्न हुए। मरीचि आदि ऋषियों से पितर उत्पन्न हुए, पितृगणों से देव दानव और देवताओं से यह चराचर जगत् आनुपूर्विक क्रम से उत्पन्न हुआ।

दानवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य्य।

दानवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार के अश्व जो देवताओं और गंधर्वों की सवारी में रहते हैं, कभी बूढ़े नहीं होते और मन की तरह वेगवान् होते हैं।

दान-वारि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) देवता। (३) इंद्र।

दानवारि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मद।

दानवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दानव की स्त्री। (२) दानव जाति की स्त्री। राक्षसी।

वि० [सं० दानवीय] दानवों की। दानव संबंधी। जैसे दानवी माया।

दानवीर—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने में साहसी पुरुष। वह जो दान देने से न हटे। अत्यंत दानी।

विशेष—साहित्य में वीर रस के अंतर्गत चार प्रकार के जो वीर गिनाए गए हैं उनमें एक दानवीर भी है। दानवीरता में त्याग के विषय में उत्साह स्थायी भाव है; याचक आलंबन है; अध्यवसाय (तीर्थगमन आदि) और दान-समय ज्ञान आदि उद्दीपन विभाव है, सर्वस्व त्याग आदि अनुभाव तथा हर्ष और धृति आदि संचारी भाव हैं।

दानवेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि।

दानशील वि० [सं०] दानी। दान करनेवाला।

दानशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की प्रवृत्ति। उदारता।

दानसागर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महादान जिसका प्रचार वंगदेश में है और जिसमें भूमि, आसन, आदि सोलह पदर्थों का दान किया जाता है।

दानांतराय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्र के अनुसार वह अंतराय या पापकर्म्म जिसके उदय से दान के योग्य द्रव्य और पात्र पा कर भी मनुष्य को दान करने में विघ्न होते हैं और वह दान नहीं कर सकता।

दाना—संज्ञा पुं० [फा० दानः] (१) अनाज का एक बीज। अन्न का एक कण। कन।

यौ०—दाना दुनका = अन्न के दो चार कण। थोड़ा सा अन्न।

मुहा०—दाने दाने को तरसना = अन्न का कष्ट सहना। भोजन न पाना। दाने को मुहताज = अत्यंत दरिद्र। दाना बदलना = एक पक्षी का अपने मुँह का दाना दूसरे पक्षी के मुँह में डालना। चारा बाँटना। दाना भराना = चिड़ियों का अपने बच्चों के मुँह में चारा डालना।

(२) अनाज। अन्न। जैसे, तुम तो इतने दुबले हो कि जान पड़ता है कि कभी दाना नहीं पाते।

यौ०—दाना चारा। दाना पानी।

(३) सूखा भुना हुआ अन्न। चबेना। चर्वण।

क्रि० प्र०—चबाना या चाबना।—भुनाना।

(४) कोई छोटा बीज जो बाल, फली या गुच्छे में लगे। जैसे, राई का दाना, पोस्ते का दाना। (५) ऐसे फल के अनेक बीजों में से एक जिसके बीज कड़े गूदे के साथ बिलकुल मिले हुए अलग अलग निकलें। जैसे, अनार का दाना।

विशेष—आम, कटहल, लीची इत्यादि फलों के बीजों को दाना नहीं कहते।

(६) कोई छोटी गोल वस्तु जो प्रायः बहुत सी एक में गूँथ,

कारन कोटि सहस जिय मारे। इन पापन ते क्यों उबरोगे दामनगीर तिहारे ?—सूर।

मुहा०—दामनगीर होना=पीछे लगना। ऊपर आ पड़ना। ग्रसना या घेरना। (कष्टदायक वस्तु के लिये) जैसे, बला दामनगीर होना।

(२) दावा करनेवाला। दावेदार। उ०—बापुरो आदिलसाह कहाँ कहँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।—भूषण।

दामनपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दामनपर्व्वन्] चैत्र शुक्ला चतुर्दशी का पर्व।

दामनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस्सी। रज्जु।

संज्ञा स्त्री० [फा०] वह चौड़ा कपड़ा जो घोड़ों की पीठ पर डाला जाता है।

दामर—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) राल जो दरार भरने के लिये नावों में लगाई जाती है। (२) दे० "डामर"।

संज्ञा स्त्री० [?] छोटे कान की भेंड़। (गड़ेरिये)

दामरि—संज्ञा स्त्री० दे० "दामरी"।

दामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी। रज्जु। उ०—ज्ञान भक्ति दोउ बिना हरि नहिं बाँधे जात। यहै कहत सी दामरी घटि गइ हरि के गात।—व्यास।

दामलिप्त—संज्ञा पुं० दे० "ताम्रलिप्त"।

दामा*—संज्ञा स्त्री० [सं० दावा] दावानल। उ०—नंद के किशोर ऐसो भ्रातु प्रभु को है कहौ पान करि लीन्हीं व्रज दीन देखि दामा को।—विश्राम।

दामाद—संज्ञा पुं० [फा०, मिलाओ सं० जामातृ] पुत्री का पति। जमाई। जामाता।

दामासाह—संज्ञा पुं० [हिं० दाम+साहु=बनिया] वह दिवालिया महाजन जिसकी जायदाद उसके लहनेदारों के बीच हिस्से के मुताबिक बँट जाय।

दामासाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० दामासाह] किसी दिवालिये महाजन की जायदाद में से एक एक लहनेदार को मिलनेवाली रकम का निर्णय।

दामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली। विद्युत्। उ०—दामिनि दमकि रही घन माहीं।—तुलसी। (२) स्त्रियों का एक शिरोभूषण जिसे बेंदी या बिंदिया भी कहते हैं। दाँवनी। उ०—दामिनी सी दामिनी सुभामिनी सँवारि सीस, कहती कुँवर होत कामिनी के क्यों लजात।—रघुराज।

दामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाम] कर। मालगुजारी।

दामोद—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम।

दामोदर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण। (२) विष्णु।

विशेष—इस नाम के तीन भिन्न भिन्न हेतु बतलाए गए हैं। हरिवंश में लिखा है कि यमलार्जुन के गिराने के समय यशोदा ने ताड़ना के लिये श्रीकृष्ण को पेट में रस्सी लगा कर बाँधा था इसीसे गोपियाँ उन्हें दामोदर कहने लगीं। यही हेतु सबसे प्रसिद्ध है। विष्णुसहस्र नाम के भाष्यकार ने भी यही व्युत्पत्ति लिखी है। कुछ लोग दाम शब्द से विश्व या लोक का ग्रहण करते हैं—'जिसके उदर में सारा विश्व हो'। कुछ लोग 'दमाद्दामोदरं विदुः' महाभारत के इस वाक्य के अनुसार दम अर्थात् इंद्रिय-निग्रह में अत्यंत उदार या श्रेष्ठ अर्थ करते हैं।

(३) एक जैन तीर्थंकर का नाम। (४) बंगाल की एक नदी जो छोटा नागपुर के पहाड़ों से निकल कर भागीरथी में मिलती है।

दायँ*—संज्ञा पुं० दे० "दाँव"।

संज्ञा स्त्री० दे० "दाईं"।

संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] दाना और भूसा अलग करने के लिये कटी हुई फसल के डंठलों को बैलों से रौंदवाने का काम। दवँरी।

क्रि० प्र०—चलाना।

संज्ञा स्त्री० [?] बराबरी। तुल्यता। दे० "दाँज"

दाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देने योग्य धन। वह धन जो किसी को देने को हो। (२) दायजे, दान आदि में दिया जानेवाला धन। (३) वह पैतृक वा संबंधी का धन जिसका *उत्तराधिकारियों में विभाग हो सके। वारिसों में बाँटा जानेवाला* धन या मिलकियत। दे० "दायभाग"।

विशेष—वह धन जो स्वामी के संबंध निमित्त से ही दूसरे का हो सके दाय कहलाता है। मिताक्षरा के अनुसार दाय दो प्रकार का है एक अप्रतिबंध, दूसरा सप्रतिबंध। अप्रतिबंध दाय वह है जिसमें कोई बाधा न हो सके। जैसे, पुत्र पौत्रों का पिता पितामह के धन में स्वत्व। सप्रतिबंध वह है जिसका कोई प्रतिबंधक हो, जिसमें किसी के द्वारा बाधा पड़ सकती हो। जैसे भाई भतीजों का स्वत्व जो पुत्र के अभाव में होता है अर्थात् पुत्र का होना जिसका प्रतिबंधक होता है।

(४) दान।

*संज्ञा पुं० दे० "दाव"। उ०—सिर धुनि धुनि पछिताय मीजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय।—तुलसी।

दायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दायिका] देनेवाला। दाता।

दायज—संज्ञा पुं० दे० "दायजा"।

दायजा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] वह धन जो विवाह में वर पक्ष को दिया जाय। यौतुक। दहेज। उ०—कहुँ सुत ब्याह कहूँ कन्या को देत दायजो राई।—सूर।

दायभाग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैतृक धन का विभाग। (२) बाप दादे या संबंधी की संपत्ति के पुत्रों, पौत्रों या संबंधियों में

मुहा०—दाव दिखाना—अधिकार जताना। हुकूमत या डर दिखाना। प्रभुत्व प्रकट करना। दाव मानना=किसी बड़े से डरना या सहमना। प्रभुत्व स्वीकार करना। वश में रहना। उ०—वह लड़का किसी की दाव नहीं मानता। दाव में रखना—शासन में रखना। जैसे, लड़के को दाव में रखो, नहीं तो बिगड़ जायगा। दाव में लाना=शासन के अंतर्गत करना। वश में करना। दाव में होना=वश में होना। अधीन होना।

दावकस-संज्ञा पुं० [हिं० दाव+कसना] लोहारों के छेदने के औजारों (किरकिरा, बरदुआ आदि) का एक हिस्सा।

दावदार-वि० [हिं० दाव+फा० दार] रोबदार। आतंक रखनेवाला। प्रभावशाली। प्रतापी। उ०—दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण।

दावना-क्रि० स० दे० "दवाना"।

दावा-संज्ञा पुं० [हिं० दाव] कलम लगाने के लिये पौधों की टहनी को मिट्टी में गाड़ने या दवाने का काम।

संज्ञा पुं० [देश०] आठ नौ अंगुल लंबी एक मछली जो सिंध, युक्त प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है।

दाविल-संज्ञा पुं० [हिं० दाव] एक बड़ी सफेद चिड़िया जिसकी चोंच दस बारह अंगुल लंबी और छोर पर पैसे की तरह गोल और चिपटी होती है।

दावी-संज्ञा स्त्री० [हिं०] कटी हुई फसिल के बराबर बराबर बँधे हुए पूले जो मजदूरी में दिए जाते हैं।

दाभ-संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] एक प्रकार का कुश। डाभ।

दाभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] शासन के योग्य। जो शासन में आ सके।

दाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस्सी। रज्जु।

यौ०—दामोदर।

(२) माला। हार। लड़ी। उ०—(क) तेहि के रचि रचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए।—तुलसी। (ख) कहुँ क्रीड़त कहुँ दाम बनावत कहुँ करत श्रृंगार।—सूर। (३) समूह। राशि। (४) लोक। विश्व।

यौ०—दामोदर।

संज्ञा पुं० [फ़ा०, मिलाओ सं०] जाल। फंदा। पाश। उ०—लोचन चोर बाँधे श्याम। जात ही उन तुरत पकरे कुटिल अलकनि दाम।—सूर।

संज्ञा पुं० [हिं० दमड़ी] (१) पैसे का चौबीसवाँ या पचीसवाँ भाग। एक दमड़ी का तीसरा भाग। उ०—कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत। बंक बिकारी देत जिमि दाम रुपैया होत।—बिहारी।

मुहा०—दाम दाम भर देना=कौड़ी कौड़ी चुका देना। कुछ (ऋण) बाकी न रखना। दाम दाम भर लेना=कौड़ी कौड़ी ले लेना। कुछ बाकी न छोड़ना।

(२) वह धन जो किसी वस्तु के बदले में बेंचनेवाले को दिया जाय। मूल्य। कीमत। मोल। उ०—बिन दामन हित हाट में नेही सहज बिकात।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

मुहा०—दाम उठना=किसी वस्तु की कीमत वसूल हो जाना। बिक जाना। दाम करना=(किसी वस्तु का) मोल ठहराना। मूल्य निश्चित करना। कीमत तै करना। मोल भाव करना। दाम खड़ा करना=कीमत वसूल करना। दाम चुकाना=(१) मूल्य दे देना। (२) कीमत ठहराना। मोल भाव तै करना। दाम देने आना=मूल्य देने के लिये विवश होना। किसी वस्तु को नष्ट करने पर उसका मूल्य देना पड़ना। नुकसानी देना पड़ना। दाम भरना=किसी वस्तु को नष्ट करना पर दंड स्वरूप उसका मूल्य दे देना। नुकसानी देना। डाँड़ देना। दाम भर पाना=सारा मूल्य पा जाना।

(३) धन। रुपया पैसा। जैसे, दाम करे काम। उ०—कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।—तुलसी। (४) सिक्का। रुपया। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।—तुलसी।

मुहा०—चाम के दाम चलाना=अधिकार या अवसर पा कर मनमाना अंधेर करना। दे० 'चाम'। उ०—दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सों चाम के दाम चलाय ले री।—परमेश।

(५) दाननीति। राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं। उ०—साम दाम अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहि नाथ कह वेदा।—तुलसी।

वि० [सं०] देनेवाला। दाता।

दामकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

दामक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी के जुए की रस्सी। (२) लगाम। बागडोर।

दामग्रंथि-संज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट का सेनापति। (महाभारत)

दामचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम।

दामन्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस्सी। (२) माला।

दामन-संज्ञा पुं० [फा०] (१) अंगे, कोट, कुर्ते इत्यादि का निचला भाग। पल्ला।

यौ०—दामनगीर।

(२) पहाड़ों के नीचे की भूमि। पर्वत। (३) बादबान।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

(४) नाव या जहाज के जिस ओर हवा का धक्का लगता हो उस के सामने की दिशा। (लश०)

दामनगीर-वि० [फा०] (१) पल्ले पड़नेवाला। सिर होनेवाला। पीछे पड़नेवाला। ग्रसनेवाला। उ०—अपनो पिंड पोपिबे

भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजो बंधुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥ इस श्लोक के 'पितरो' शब्द को लेकर मिताक्षरा कहती है कि 'माता पिता' इस समास में माता शब्द पहले आता है और माता का संबंध भी अधिक घनिष्ट है इससे माता का स्वत्व पहले है। जीमूतवाहन कहता है कि 'पितरो' शब्द ही पिता की प्रधानता का बोधक है इससे पहले पिता का स्वत्व है। मिथिला, काशी और बंबई प्रांत में माता का स्वत्व पहले और बंगाल, मदरास, तथा गुजरात में पिता का स्वत्व पहले माना जाता है। मिताक्षरा दायाधिकार में केवल संबंध निमित्त मानती है और दायभाग पिंडोदक क्रिया। मिताक्षरा 'पिंड' शब्द का अर्थ शरीर करके सपिंड से सात पीढ़ियों के भीतर एक ही कुल का प्राणी ग्रहण करती है पर दायभाग इसका एक ही पिंड से संबद्ध अर्थ करके नाती, नाना, मामा इत्यादि को भी ले लेता है।

मिताक्षरा और दायभाग के बीच मुख्य मुख्य बातों का भेद नीचे दिखाया जाता है—

(१) मिताक्षरा के अनुसार पैतृक (पूर्वजों के) धन पर पुत्रादि का सामान्य स्वत्व उनके जन्म ही के साथ उत्पन्न हो जाता है, पर दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविनाश के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है।

(२) मिताक्षरा के अनुसार विभाग (बाँट) के पहले प्रत्येक सम्मिलित प्राणी (पिता, पुत्र, भ्राता इत्यादि) का सामान्य स्वत्व सारी संपत्ति पर होता है चाहे वह अंश बाँट न होने के कारण अव्यक्त या अनिश्चित हो।

(३) मिताक्षरा के अनुसार कोई हिस्सेदार कुटुंबसंपत्ति को अपने निज के काम के लिये बै या रेहन नहीं कर सकता पर दायभाग के अनुसार वह अपने अनिश्चित अंश को बटवारे के पहले भी बेच सकता है।

(४) मिताक्षरा के अनुसार जो धन कई प्राणियों का सामान्य धन हो उसके किसी देश या अंश में किसी एक स्वामी के पृथक् स्वत्व का स्थापन विभाग (बटवारा) है। दायभाग के अनुसार विभाग पृथक् स्वत्व का व्यंजन मात्र है।

(५) मिताक्षरा के अनुसार पुत्र पिता से पैतृक संपत्ति को बाँट देने के लिये कह सकता है, पर दायभाग के अनुसार पुत्र को ऐसा अधिकार नहीं है।

(६) मिताक्षरा के अनुसार स्त्री अपने मृतपति की उत्तराधिकारिणी तभी हो सकती है जब कि उसका पति भाई आदि कुटुम्बियों से अलग हो। पर दायभाग में चाहे पति अलग हो या शामिल स्त्री उत्तराधिकारिणी होती है।

(७) दायभाग के अनुसार कन्या यदि विधवा, बंध्या या अपुत्रवती हो तो वह उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती। मिताक्षरा में ऐसा प्रतिबंध नहीं है।

याज्ञवल्क्य, नारद आदि के अनुसार पैतृक धन का विभाग इन अवसरों पर होना चाहिए—पिता जब चाहे तब, माता की रजोनिवृत्ति और पिता की विषय-निवृत्ति होने पर, पिता के मृत, पतित या संन्यासी होने पर।

दायमुलहब्स—संज्ञा पुं० [अ०] जीवन भर के लिये कैद। कालेपानी की सज़ा। दामिल।

दायर—वि० [फा०] (१) फिरता हुआ। चलता हुआ। (२) चलता। जारी।

मुहा०—दायर करना = मामले मुकदमे वगैरह को चलाने के लिये पेश करना। (व्यवहार या अभियोग) उपस्थित करना। जैसे, मुकद्दमा दायर करना, नालिश या अपील दायर करना। दायर होना = पेश होना। उपस्थित किया जाना। जैसे, मुकद्दमा दायर होना।

दायरा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) गोल घेरा। कुंडल। मंडल। (२) वृत्त। (३) कक्षा। (४) मंडली। (५) खँजड़ी। डफली।

दायाँ—वि० [हिं० दाहिना का संक्षिप्त रूप बायाँ के अनुकरण पर] दाहिना।

मुहा०—दायाँ बोलना = तीतर का दाहिने हाथ की ओर बोलना जो चोरों के लिये अच्छा शकुन समझा जाता है

दाया[*] संज्ञा स्त्री० दे० "दया"। उ०—कामरूप जानहि सब माया। सपनेहु जिनके धर्म न दाया।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० "दाई"।

यौ०—दायागरी।

दायागत—वि० [सं०] बाँट बखरे में आया हुआ। मौरूसी हिस्से में पड़ा हुआ।

संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रह प्रकार के दासों में से एक। वह दास जो दाय के रूप में प्राप्त हुआ हो। वह गुलाम जो वरासत में और चीजों के साथ मिला हो। दे० "दास"।

दायागरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दाई का पेशा या काम।

दायाद—वि० [सं०] [स्त्री० दायदा] जिसे दाय मिले। जो दाय का अधिकारी हो। जिसे संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा मिले।

संज्ञा पुं० (१) दाय पाने का अधिकारी मनुष्य। वह जिसका संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा हो। हिस्सेदार। (२) पुत्र। बेटा। (३) सपिंड कुटुंबी।

दायादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायापवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी जायदाद में मिलनेवाले हिस्से की जब्ती।

दायित—वि० [सं०] दिया हुआ। दान किया हुआ।

दायित्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देनदार होने का भाव। (२) जिम्मेदारी। जवाबदेही।

बाँटे जाने की व्यवस्था। बपौती या वरासत की मिल्कियत को वारिसों या हकदारों में बाँटने का कायदा कानून।

विशेष—यह हिंदू धर्मशास्त्र के प्रधान विषयों में से है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में इसके संबंध में विस्तृत व्यवस्था है। ग्रंथकारों और टीकाकारों के मतभेद से पैतृक धन-विभाग के संबंध में भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। प्रधान पक्ष दो हैं—मिताक्षरा और दायभाग। मिताक्षरा याज्ञवल्क्यस्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका है जिसके अनुकूल व्यवस्था पंजाब, काशी, मिथिला आदि से लेकर दक्षिण कन्याकुमारी तक प्रचलित है। 'दायभाग' जीमूतवाहन का एक ग्रंथ है जिसका प्रचार बंग देश में है।

सब से पहली बात विचार करने की यह है कि कुटुंब-संपत्ति में किसी प्राणी का पृथक् स्वत्व विभाग करने के पीछे होता है अथवा पहले से रहता है। मिताक्षरा के अनुसार विभाग होने पर ही पृथक् या एकदेशीय स्वत्व होता है, विभाग के पहले सारी कुटुंब संपत्ति पर प्रत्येक सम्मिलित प्राणी का सामान्य स्वत्व रहता है। दायभाग विभाग के पहले भी अव्यक्त रूप में पृथक् स्वत्व मानता है जो विभाग होने पर व्यंजित होता है। मिताक्षरा पूर्वजों की संपत्ति में पिता और पुत्र का समानाधिकार मानती है अतः पुत्र पिता के जीते हुए भी जब चाहे तब पैतृक संपत्ति में हिस्सा बँटा सकते हैं और पिता पुत्रों की सम्मति के बिना पैतृक संपति के किसी अंश का दान, विक्रय आदि नहीं कर सकता। पिता के मरने पर पुत्र जो पैतृक संपत्ति का अधिकारी होता है वह हिस्सेदार के रूप में, होता है, उत्तराधिकारी के रूप में नहीं। मिताक्षरा पुत्र का उत्तराधिकार केवल पिता की निज की पैदा की हुई संपत्ति में मानती है। दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्व-विनाश (मृत, पतित वा संन्यासी होने के कारण) के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है। उसके अनुसार जब तक पिता जीवित है तब तक पैतृक संपत्ति पर उसका पूरा अधिकार है वह उसे जो चाहे सो कर सकता है। पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति पिता के मरने आदि पर ही होती है।

यद्यपि याज्ञवल्क्य के इस श्लोक में "भूर्या पिता-महोपात्ता निबंधी द्रव्यमेव वा। तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः" पिता पुत्र का समान अधिकार स्पष्ट कहा गया है पर जीमूतवाहन ने इस श्लोक से खींच तान कर यह भाव निकाला है कि पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति उनके जन्मकाल से नहीं, वल्कि पिता के मृत्युकाल से होती है।

मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार जिस क्रम से उत्तराधिकारी होते हैं वह नीचे दिया जाता है—

	मिताक्षरा		दायभाग
१	पुत्र	१	पुत्र
२	पौत्र	२	पौत्र
३	प्रपौत्र	३	प्रपौत्र
४	विधवा	४	विधवा
५	अविवाहिता कन्या	५	अविवाहिता कन्या
६	विवाहिता अपुत्रवती निर्धन कन्या	६	विवाहिता पुत्रवती कन्या
७	विवाहिता पुत्रवती संपन्न कन्या	७	नाती (कन्या का पुत्र)
८	नाती (कन्या का पुत्र)	८	पिता
९	माता	९	माता
१०	पिता	१०	भाई
११	भाई	११	भतीजा
१२	भतीजा	१२	भतीजे का लड़का
१३	दादी	१३	बहिन का लड़का
१४	दादा	१४	दादा
१५	चचा	१५	दादी
१६	चचेरा भाई	१६	चचा
१७	परदादी	१७	चचेरा भाई
१८	परदादा	१८	चचेरे भाई का लड़का
१९	दादा का भाई	१९	दादा की लड़की का लड़का
२०	दादा के भाई का लड़का	२०	परदादा
२१	परदादा के ऊपर तीन पीढ़ी के और पूर्वज	२१	परदादी
२२	और सपिंड	२२	दादा का भाई
२३	समानोदक	२३	दादा के भाई का लड़का
२४	बंधु	२४	दादा के भाई का पोता
२५	आचार्य्य	२५	परदादा की लड़की का लड़का
२६	शिष्य	२६	नाना
२७	सहपाठी या गुरुभाई	२७	मामा
२८	राजा (यदि संपत्ति ब्राह्मण की न हो। ब्राह्मण की हो तो उसकी जाति में जाय	२८	मामा का लड़का
		२९	मामा का पोता
		३०	मासी का लड़का
		३१	सकुल्य
		३२	समानोदक
		३३	और बंधु
		३४	आचार्य्य इत्यादि इत्यादि

ऊपर जो क्रम दिया गया है उसे देखने से पता लगेगा कि मिताक्षरा माता का स्वत्व पहले करती है और दायभाग पिता का। याज्ञवल्क्य का श्लोक है—पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ

दारव–वि० [सं०] (१) दारु अर्थात् लकड़ी का। लकड़ी का बना हुआ। (२) काष्ठ-संबंधी।

दारसंग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] भार्य्या-ग्रहण। विवाह।

दारा–संज्ञा स्त्री० [सं० दार] स्त्री। पत्नी। भार्य्या।

विशेष—सं० 'दार' शब्द नित्य बहुवचनांत है अतः उसका प्रथमा का रूप "दाराः" होता है पर हिंदी में 'दारा रूप' ही स्त्रीलिंग में व्यवहृत होता है।

संज्ञा पुं० [?] किनारा। (लश०)

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भारी मछली जो हिंदुस्तान में समुद्र के किनारे पाई जाती है। यह लंबाई में तीन हाथ और तौल में दस ग्यारह सेर होती है।

दाराई–संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो ग्वारनट की तरह का होता है। दरियाई।

दारि*†–संज्ञा स्त्री० दे० "दाल"। उ०—दारि गली है भली विधि सों अरु चाउर हैगो सुगंध भरो जू। —सेवक।

दारिउँ*–संज्ञा पुं० दे० "दाड़िम"। उ०—बिहँसत हँसत दसन तस चमके पाहन उठे छरकि। दारिउँ सरि जो न कइ सका फाट्यो हीया दरकि।—जायसी।

दारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बालिका। (२) बेटी। पुत्री। कन्या। उ०—ए दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई।—तुलसी।

दारित–वि० [सं०] चीरा या फाड़ा हुआ। विदीर्ण किया हुआ।

दारिद*–संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दरिद्रता। निर्धनता। उ०—दलत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि।—तुलसी।

दारिद्र–संज्ञा पुं० दे० "दारिद्र्य"।

दारिद्र्य–संज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता। निर्धनता। गरीबी।

दारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र रोग जिसमें पैर के तलवे का चमड़ा कड़ा हो जाता है और चिड़चिड़ा कर जगह जगह फट जाता है। बेवाई। खरवा।

विशेष—भावप्रकाश में लिखा है कि जो लोग पैदल अधिक चलते हैं उनकी वायु कुपित होकर सूखी हो जाती है, जिससे चमड़ा कड़ा हो कर फट जाता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दासी। लौंडी। वह लौंडी जिसे लड़ाई में जीत कर लाए हों।

यो०—दारीजार।

दारीजार–संज्ञा पुं० [हिं० दारी+सं० जार] (१) लौंडी का पति। (गाली)

विशेष—राजा लोग कभी कभी कोई लौंडी रख लिया करते थे। जब उससे अप्रसन्न होते तब उसे किसी मनुष्य को दे देते थे और उसके गुज़ारे के लिये कुछ जागीर दे देते थे। वह मनुष्य उस लौंडी का पति बनता था इसीसे वह 'दारीजार' कहलाता था। उनसे जो संतान होती थी वह 'दारीजात' कहलाती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि 'दारीजार' ही से बिगड़कर 'डाढ़ीजार' शब्द बना है। पर यह अनुमान ठीक नहीं जँचता।

(२) दासीपुत्र। लौंडीजादा। गुलाम।

दारु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काष्ठ। काठ। लकड़ी।

यौ०—दारुगंधा। दारुचीनी। दारुपात्र। दारुपुत्रिका। दारुयोषित। दारुवधू।

(२) देवदारु। (३) बढ़ई। कारीगर। शिल्पी। (४) पीतल।

वि० (१) दानशील। देनेवाला। (२) खंडनशील। टूटने फटनेवाला।

दारुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) श्रीकृष्ण के सारथी का नाम।

विशेष—ये बड़े कृष्णभक्त थे। सुभद्राहरण के समय इन्होंने अर्जुन से कहा था कि मुझे बाँध कर तब आप सुभद्रा को रथ पर ले जाइए; मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हाँक सकता। कृष्ण के स्वर्गवास का समाचार अर्जुन को इन्होंने दिया था।

(३) काठ का पुतला। (४) एक योगाचार्य्य जो शिव के अवतार कहे जाते हैं।

दारुकदली–संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली केला। कठकेला।

दारुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुकावन–संज्ञा पुं० [सं०] एक वन का नाम जो पवित्र तीर्थ माना जाता है।

दारुगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] विरोजा जो चीड़ से निकलता है।

दारुचीनी–संज्ञा स्त्री० दे० "दालचीनी"।

दारुज–वि० [सं०] (१) काष्ठ से उत्पन्न। लकड़ी में पैदा होनेवाला। जैसे, दारुज कीट। (२) काष्ठनिर्म्मित। लकड़ी का बना हुआ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का बाजा। मर्दल।

दारुजोषित्–संज्ञा स्त्री० दे० "दारुयोषित्"।

दारुण–वि० [सं०] (१) भयंकर। भीषण। घोर। (२) कठिन। प्रचंड। विकट। दुःसह। उ०—आ कहँ विधि दारुण दुख दीन्हा। ताकर मति आगे हरि लीन्हा।—तुलसी। (३) विदारक। फाड़नेवाला।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। (२) भयानक रस। (३) रौद्र नामक नक्षत्र। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) एक नरक का नाम। उ०—अठवाँ दारुण नरक है जेहि देखत भय होय।—विश्राम। (७) राक्षस।

दारुणक–संज्ञा पुं० [सं०] सिर में होनेवाला एक क्षुद्र रोग जिसमें चमड़ा रूखा होकर सफ़ेद भूसी की तरह छूटता है। रूसी।

दारुणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नर्मदाखंड की अधिष्ठात्री देवी। (२) अक्षय तृतीया।

दायिनी–वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली।

दायी–वि० [सं० दायिन्] [स्त्री० दायिन्] देनेवाला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अलग कम होता है, समास में उपपद के रूप में होता है। शांतिदायी, सुखदायी, कष्टदायी, वरदायी।

दायें–क्रि० वि० [हिं० दायां] दाहिनी ओर को।

मुहा०—दायें होना = अनुकूल या प्रसन्न होना।

दार–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी। भार्य्या।

यौ०—दारकर्म। दारग्रहण। दारपरिग्रह।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह शब्द पुं० है पर हिंदी में स्त्री० ही होता है।

*संज्ञा पुं० दे० "दारु"।

दारक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दारिका] (१) लौंडा। लड़का। उ०—इक कुमार पुनि मुनिन सँग रहियहि रस की बात। सिख्यो कहाँ ऋषि तियन पहँ की दारक ढिग तात।—विश्राम। (२) पुत्र। बेटा।

वि० [सं०] विदीर्ण करनेवाला। फाड़नेवाला।

दारकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] भार्य्या-ग्रहण। विवाह।

दारचीनी–संज्ञा स्त्री० [सं० दारु + चीन] (१) एक प्रकार का तज जो दक्षिण भारत, सिंहल और टेनासरिम में होता है। सिंहल में ये पेड़ सुगंधित छाल के लिये बहुत लगाए जाते हैं। भारतवर्ष में यह जंगलों ही में मिलता है, और लगाया भी जाता है तो बगीचों में शोभा के लिये। कोंकण से लेकर बराबर दक्षिण की ओर इसके पेड़ मिलते हैं। जंगलों में तो इसके पेड़ बड़े बड़े मिलते हैं पर लगाए हुए पेड़-झाड़ के रूप में होते हैं। पत्ते इसके तेजपत्ते ही की तरह के पर उससे चौड़े होते हैं और उनमें बीचवाली खड़ी नस के समानांतर कई खड़ी नसें होती हैं। इसके फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फूल के नीचे की दिवली छ फाँकों की होती है। सिंहल में जो दारचीनी के पेड़ लगाए जाते हैं उनके लगाने और दारचीनी निकालने की रीति यह है। कुछ कुछ रेतीली करैल मिट्टी में ४—५ हाथ के अंतर पर इसके बीज बोए जाते या कलम लगाए जाते हैं। बोए हुए बीजों या लगाए हुए कलमों को धूप से बचाने के लिये पेड़ की डालियाँ आस पास गाड़ दी जाती हैं। ६ वर्ष में जब पेड़ ४ या ५ हाथ ऊँचा हो जाता है तब उसकी डालियाँ छिलका उतारने के लिये काटी जाती हैं। डालियों में छूरी से हलका चीरा लगा दिया जाता है जिसमें छाल जल्दी उचट आवे। कभी कभी डालियों को छुरी के बेंट आदि से थोड़ा रगड़ भी देते हैं। इस प्रकार अलग किए हुए छाल के टुकड़ों को इकट्ठा करके दबा दबा कर छोटे छोटे पूलों में बाँध कर रख देते हैं। वे पूले दो या एक दिन यों ही पड़े रहते हैं; फिर छालों में एक प्रकार का हलका खमीर सा उठता है जिसकी सहायता से छाल के ऊपर की झिल्ली और नीचे लगा हुआ गूदा टेढ़ी छुरी से हटा दिया जाता है। अंत में छाल को दो दिन छाया में सुखा कर फिर धूप दिखा कर रख देते हैं।

दारचीनी दो प्रकार की होती है दारचीनी जीलानी और दारचीनी कपूरी। ऊपर जिस पेड़ का विवरण दिया गया है वह दारचीनी जीलानी है। दारचीनी कपूरी की छाल में बहुत अधिक सुगंध होती है और इससे बहुत अच्छा कपूर निकलता है। इसके पेड़ चीन, जापान, कोचीन और फारमोसा द्वीप में होते हैं और हिंदुस्तान में भी देहरादून, नीलगिरि आदि स्थानों में लगाए गए हैं। भारतवर्ष अरब आदि देशों में पहले इसी पेड़ की सुगंधित छाल चीन से आती थी इसीसे उसे दारु + चीनी कहने लगे। हिंदुस्तान में कई पेड़ों की छाल दारचीनी के नाम से बिकती है। अमिलतास की जाति का एक पेड़ होता है जिसकी छाल भी व्यापारी दारचीनी के नाम से बेचते हैं। पर वह असली दारचीनी नहीं है। असली दारचीनी आज कल अधिकतर सिंहल से ही आती है। दक्षिण में दारचीनी के पेड़ को भी लवंग कहते हैं यद्यपि लवंग का पेड़ भिन्न है और जामुन की जाति का है। तज और दारचीनी के वृक्ष यद्यपि भिन्न होते हैं पर एक ही जाति के हैं। दारचीनी से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो दवा के लिये बाहर बहुत जाता है। (२) ऊपर लिखे पेड़ की सुगंधित छाल जो दवा और मसाले के काम में आती है।

दारण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दारित] (१) चीरने या फाड़ने का काम। चीर फाड़। विदीर्ण करने की क्रिया। (२) चीरने फाड़ने का अस्त्र या औज़ार। (३) फोड़ा आदि चीरने का काम। (४) वह औषधि जिसके लगाने से फोड़ा आपसे आप फूट जाय।

विशेष—सुश्रुत में चिलबिल, दंती, चित्रक, कबूतर, गीध आदि की बीट तथा क्षार को दारण औषध कहा है।

(५) निर्मली का पौधा।

दारद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का विष जो दरद देश में होता है। (२) पारा। (३) ईंगुर।

दारना*–क्रि० स० [सं० दारण] (१) फाड़ना। विदीर्ण करना। (२) नष्ट करना। ध्वस्त करना।

दारपरिग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का ग्रहण। पाणिग्रहण। विवाह।

दारमदार–संज्ञा पुं० [फा०] (१) आश्रय। ठहराव। (२) कार्य्य का भार। किसी कार्य्य का किसी पर अवलंबित रहना। जैसे, इस काम का दारमदार तुम्हारे ऊपर है।

(२) हलदी, मसाले के साथ पानी में उबाला हुआ दला अन्न जो रोटी भात आदि के साथ खाया जाता है।

मुहा०—दाल गलना=दाल का अच्छी तरह पक कर नरम हो जाना। दाल का सीझना। (किसी की) दाल गलना=(किसी का) प्रयोजन सिद्ध होना। मतलब निकलना। कार्य्य सिद्धि के लिये किसी युक्ति का चलना। (इस मुहा० का प्रयोग निषेधात्मक वाक्य में ही अधिकतर होता है जैसे, वहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी, बड़े बड़े उस्ताद हैं)। दाल चपाती=(१) दाल रोटी। (२) बच्चों को डराने का एक नाम। दालचप्पू होना=एक दूसरे से लिपट कर एक हो जाना। गुत्थमगुत्था होना। जैसे, दो पतंगों का दालचप्पू होना। दाल दलिया=रूखा सूखा भोजन। गरीबों का सा खाना। दाल में कुछ काला होना=कुछ खटके या संदेह की बात होना। कुछ बुरा रहस्य होना। किसी बुरी बात का लक्षण दिखाई पड़ना। दाल रोटी=सादा खाना। सामान्य भोजन। आहार। दाल रोटी चलना=खाना मिलना। जीविका निर्वाह होना। दाल रोटी से खुश=खाने पीने से सुखी। खाता पीता। जिसे न अधिक धन हो न खानेपीने का कष्ट हो। जूतियों दाल बँटना=खूब लड़ाई झगड़ा होना। गहरी अनबन होना। आपस में न पटना।

(३) दाल के आकार की कोई वस्तु। (४) चेचक, फोड़े फुंसी आदि के ऊपर का चमड़ा जो सूखकर छूट जाता है। खुरंड। पपड़ी।

मुहा०—दाल छूटना=खुरंड अलग होना। दाल बँधना=खुरंड पड़ना।

(५) सूर्य्यमुखी शीशे से होकर आया हुआ किरनों का समूह जो इकट्ठा होकर गोल दाल के आकार का हो जाता है और जिससे आग लग जाती है।

मुहा०—दाल बँधना=अक्स का इकट्ठा होकर पड़ना।

(६) अंडे की जरदी।

संज्ञा पुं० [सं० देवदारु] तुन की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर सिमला तथा आगे पंजाब की ओर होता है। इसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है। इसकी धरनें और कड़ियाँ मकानों में लगतीं, पुल और रेल की सड़कों पर बिछाई जाती हैं तथा और भी बहुत से कामों में आती हैं।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मधु। पेड़ के खोंडरे में मिलनेवाला शहद। (२) कोदो नाम का अन्न।

दालचीनी—संज्ञा स्त्री० दे० "दारचीनी"।

दालन—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग।

दालभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि का नाम।

दालमोठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाल+मोठ=एक कदन्न] घी तेल आदि में नमक, मिर्च के साथ तली हुई दाल जो नमकीन की तरह खाई जाती है।

दालव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष।

दाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल नाम की लता।

दालान—संज्ञा पुं० [फा०] वह लंबा घर जिसके चारों ओर दीवार न हो, एक दो या तीन ओर खंभे आदि हों। मकान में वह छाई हुई जगह जो चारों ओर से घिरी न हो, एक दो या तीन ओर खुली हो। बरामदा। ओसारा।

विशेष—दालान प्रायः मकान के सामने होता है।

दालि—संज्ञा स्त्री० [सं० (१) दाल। (२) देवदाली लता। (३) दाड़िम। अनार।

दालिम—संज्ञा पुं० दे० "दाड़िम"।

दाल्भ्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दल्भ ऋषि के गोत्र का मनुष्य। (२) वृक नामक मुनि।

विशेष—इंद्र इनके बंधु थे। इन्होंने चंद्रसेन राजा की गर्भिणी स्त्री की परशुराम के कोप से रक्षा की थी।

दाल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दाँव—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्य० दा (दाच्) जैसे एकदा] (१) बार दफा। मरतबा। (२) किसी के लिये किसी बात का समय जो कई आदमियों में एक दूसरे के पीछे क्रम से आवे। बारी। पारी। जैसे, अब तुम्हारा दाँव आवेगा तब जैसा चाहना वैसा करना। उ०—तब नहिं दीनो मोर कहँ दावँ। अब कस रोवत अपने दावँ।

क्रि० प्र०—आना।

(३) किसी कार्य्य के लिये उपयुक्त समय। अवसर। मौका। अनुकूल संयोग। उ०—(क) द्विजदेव की सौं अब चूक मत दावँ, अरे पातकी पपीहा! तू पिया की धुनि गावै ना। —द्विजदेव। (ख) कहै पद्माकर त्यों साँकरी गली है अति इत उत भाजिबे को दावँ ना लगत है।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—दावँ करना=घात लगाना। घात में बैठना। दावँ चूकना=अवसर को हाथ से जाने देना। किसी कार्य्यसाधन के लिये अनुकूल समय पाकर भी कुछ न करना। मौका खोना। दावँ ताकना=अवसर की ताक में रहना। मौका देखते रहना। दावँ लगना=अवसर हाथ में आना। अनुकूल संयोग मिलना। मौका मिलना। दावँ लगाना=दे० "दावँ ताकना"। दावँ लेना=जिसने बुरा व्यवहार किया हो मौका मिलने पर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना। बदला लेना। प्रतिकार करना। उ०—असुर कुपित ह्वै कह्यो बहुत तुम असुर सँहारे। अब लैहौं वह दावँ छाड़िहौं नहिं बिनु मारे। —सूर।

दारुणारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
दारुन*—वि० दे० "दारुण"।
दारुनटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।
दारुनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।
दारुनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।
दारुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री।
दारुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] काष्ठ पात्र। काठ का बरतन।
विशेष—मनु ने यतियों को अलाबुपात्र (तुमड़ी) और दारुपात्र रखने का विधान किया है।
दारुपीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारु हलदी।
दारुपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।
दारुफल—संज्ञा पुं० [सं०] पिस्ता।
दारुमय—वि० [सं०] [स्त्री दारुमयी] काठ का। काठ का बना हुआ।
दारुमुच—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थावर विष का नाम।
दारुमूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि का नाम।
दारुयोपित—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।
दारुसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारचीनी।
दारुहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।
दारुहलदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुहरिद्रा] आल की जाति का एक सदाबहार झाड़ जो हिमालय के पूरबी भाग से लेकर आसाम, पूरबी बंगाल और टनासरिम तक होता है। इसमें सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी जड़ की छाल से बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिसका व्यवहार दार्जिलिंग, आसाम आदि के लोग बहुत अधिक करते हैं। जड़ और डंठल का रंग पीला होता है इसीसे इस पौधे को दारुहलदी कहते हैं। वास्तव में यह हलदी की जाति का नहीं है। दारुहलदी के नाम से उसकी जड़ और डंठल के टुकड़े बाजार में बिकते हैं। जड़ गाँठ के रूप में नहीं होती। दारुहलदी दवा के काम में भी आती है। वैद्यक में यह कड़ुई, चरपरी, गरम तथा व्रण, प्रमेह, खुजली, चर्मरोग इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है।
पर्य्या०—दार्वी। दारुहरिद्रा। द्वितीयाभा। कपीतक। पीतद्रु। कलियक। पचंपचा। पर्जनी। काष्ठा। मर्मरी। पीतिका। पीतदारु। कामिनी। कंटकटेरी। पर्जन्या। पीता। दारुनिशा। कामवती। हेमकांती। निर्दिष्टा।
दारू—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दवा। औषध।
यौ०—दवा दारू।
(२) मद्य। शराब। (३) बारूद।
दारूकार—संज्ञा पुं० [फा० दारू + हिं० कार] शराब बनानेवाला। कलवार।
दारूड़ा—संज्ञा पुं० [फा० दारू] [स्त्री० दारूड़ी] शराब। मद्य।
दारो*—संज्ञा पुं० दे० "दारयों"।
दारोगा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) निगरानी रखनेवाला अफसर। देख भाल रखनेवाला या प्रबंध करनेवाला व्यक्ति। जैसे, दारोगा जेल, दारोगा चुंगी, दारोगा अस्तबल। (२) पुलिस का वह अफसर जो किसी थाने पर अधिकारी हो। थानेदार।
दारोगाई—संज्ञा स्त्री० [फा० दारोगा] दारोगा का काम या पद।
दार्ढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता।
दार्दुर—वि० [सं०] दर्दुर संबंधी।
संज्ञा पुं० दक्षिणावर्त्त शंख का एक भेद।
दार्दुरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार।
दार्भ—वि० [सं०] कुश या दर्भ संबंधी।
दारयों*—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] अनार। उ०—नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह दारयों से दसन कैसो बीजुरी सो हास है।—केशव।
दार्वंड—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दार्वंडी] मयूर। मोर। (जिसका अंडा काठ की तरह कड़ा होता है)।
दार्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशानकोण में आधुनिक काश्मीर के अंतर्गत पड़ता था।
दार्वाघाट—संज्ञा पुं० [सं०] (काठ पर आघात करनेवाला) कठफोड़वा नाम का पक्षी।
दार्वाट—संज्ञा पुं० [सं० । फा० 'दरबार' से] मंत्रणा-गृह। वह कोठरी जहाँ एकांत में बैठकर किसी बात का विचार किया जाय।
दार्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दारुहलदी से निकाला हुआ तूतिया। (२) वनगोभी। गोजिया।
दार्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।
दार्शनिक—वि० [सं०] (१) दर्शन जाननेवाला। (२) दर्शन शास्त्र संबंधी।
संज्ञा पुं० दर्शन शास्त्र जाननेवाला मनुष्य। तत्त्वज्ञानी। तत्त्ववेत्ता।
दार्षद्वत—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक यज्ञ जो दृषद्वती नदी के किनारे किया जाता था।
दार्ष्टांतिक—वि० [सं०] दृष्टांत संबंधी।
दाल—संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] (१) दलों में किया हुआ अरहर, मूँग, उरद, चना, मसूर आदि अन्न जो उबाल कर खाया जाता है। दली हुई अरहर मूँग आदि जो सालन की तरह खाई जाती है। जैसे, मूँग की दाल क्या भाव है?
क्रि० प्र०—दलना।
यौ०—दालमोठ।
विशेष—दाल उन्हीं अनाजों की होती है जिनमें फलियाँ लगती हैं और जिनके बीज दबाने से टूटकर दो दलों या खंडों में हो जाते हैं। जैसे, अरहर, मूँग, उरद, चना, मसूर, मटर।

कीनो देस, हद बाँध्यो दरबारे में।—भूषण। (२) स्वत्व। हक। उ०—इस चीज पर तुम्हारा क्या दावा है। (३) किसी के विरुद्ध किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्थिर करने के लिये न्यायालय आदि में दिया हुआ प्रार्थनापत्र। किसी जायदाद या रुपए पैसे के लिये चलाया हुआ मुकदमा। जैसे, किसी आदमी पर अपने रुपए का दावा करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दावा जमाना=मुकदमा ठीक करना। हक साबित करना।

(४) नालिश। अभियोग।

मुहा०—दावा खारिज होना=मुकदमा हारना। हक का साबित न होना।

(५) अधिकार। जोर। प्रताप। उ०—गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।—भूषण। (६) किसी बात को कहने में वह साहस जो उस की यथार्थता के निश्चय से उत्पन्न होता है। दृढ़ता। जैसे, मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मैं इस काम को दो दिनों में कर सकता हूँ। (७) दृढ़तापूर्वक कथन। जोर के साथ कहना। जैसे, उनका तो यह दावा है कि वे एक मिनट में एक श्लोक बना सकते हैं।

दावागीर—संज्ञा पुं० [अ० दावा+फा० गीर] दावा करनेवाला। अपना हक जतानेवाला। उ०—साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज। हिरनाकुस अरु कंस को गयो दुहुन को राज॥ गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे। दुसमन दावागीर भए महिमंडल सिगरे।—गिरिधर।

दावाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली आग।

दावात—संज्ञा स्त्री० [अ० दवात] स्याही रखने का बरतन। मसि-पात्र।

दावादार—संज्ञा पुं० [अ० दावा+फा० दार] दावा करनेवाला। अपना हक जतानेवाला।

दावानल—संज्ञा पुं० [सं०] वन की आग जो बाँसों या और पेड़ों की टहनियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली आती है। वनाग्नि।

दाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] (१) बिजली। (२) स्त्रियों के माथे पर का एक गहना। बेंदी।

दावी—संज्ञा पुं० [सं० धव] धव का पेड़।

दाश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछुवाहा। धीवर। केवट।

विशेष—निषाद पुरुष और आयोगव स्त्री से उत्पन्न व्यक्ति को दाश कहते हैं। ये नौका चलाते हैं और कैवर्त या केवट भी कहलाते हैं।

(२) भृत्य। नौकर।

दाशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धीवरों की बस्ती। (२) एक प्रकार का मोथा। कैवर्त मुस्तक।

दाशरथ—वि० [सं०] दशरथ संबंधी।

संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र।

दाशरथि—संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र आदि।

दाशरात्रिक—वि० [सं०] दशरात्र संबंधी।

दाशार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दशार्ण देश। (२) दशार्ण देश का निवासी।

दाशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] दशार्ह के वंश का मनुष्य। यदुवंशी।

दाशेय—वि० [सं०] दाश से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० दाश का पुत्र।

दाशेर—संज्ञा पुं० [सं०] धीवरों की संतति।

दाशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरु भूदेश। मारवाड़। (२) मारवाड़ का निवासी।

दाशौदनिक—वि० [सं०] दशौदन यज्ञ संबंधी।

संज्ञा पुं० दशौदन यज्ञ की दक्षिणा।

दाश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] परवरिश। पालन पोषण।

दाश्व—वि० [सं०] देनेवाला।

दास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दासी] (१) वह जो अपने को दूसरे की सेवा के लिये समर्पित कर दे। सेवक। चाकर। नौकर।

विशेष—मनु ने सात प्रकार के दास लिखे हैं—ध्वजाहृत अर्थात् युद्ध में जीता हुआ, भक्तदास अर्थात् जो भात या भोजन पर रहे, गृहज अर्थात् जो घर की दासी से उत्पन्न हो, क्रीत अर्थात् मोल लिया हुआ, दत्रिम अर्थात् जिसे किसीने दिया हो, दंडदास अर्थात् जिसे राजा ने दास होने का दंड दिया हो, पैतृक अर्थात् जो बाप दादों से दाय में मिला हो। याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतियों में दास पंद्रह प्रकार के गिनाए गए हैं—गृहजात, क्रीत, दाय में मिला हुआ, अनाकालभृत् अर्थात् अकाल या दुर्भिक्ष में पाला हुआ, आहित अर्थात् जो स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसे सेवा द्वारा पटाता हो, ऋणदास जो ऋण लेकर दासत्व के बंधन में पड़ा हो, युद्ध-प्राप्त, बाज़ी या जुए में जीता हुआ, स्वयं उपगत अर्थात् जो आपसे आप दास होने के लिये आया हो, प्रव्रज्यावसित अर्थात् जो संन्यास से पतित हुआ हो, कृत अर्थात् जिसने कुछ काल तक के लिये आपसे आप सेवा करना स्वीकार किया हो, भक्तदास, बड़वाहृत अर्थात् जो किसी बड़वा या दासी से विवाह करने से दास हुआ हो, लब्ध जो किसी से मिला हो, और आत्मविक्रेता जिसने अपने को बेच दिया हो।

ब्राह्मण के लिये दास होने का निषेध है, ब्राह्मण को छोड़ और तीनों वर्णों के लोग दास हो सकते हैं। यदि कोई

(४) कार्य्य-साधन की युक्ति। उपाय। चाल। मतलब गाँठने का ढंग।

मुहा०—दाँव पर चढ़ना=ऐसी स्थिति में होना जिससे किसी का काम निकल सके। किसी के अभिप्राय साधन के अनुकूल प्रवृत्त होना। इस प्रकार वश में होना कि दूसरा अपना मतलब निकाल ले। दाँव पर चढ़ाना=मतलब के मुवाफिक करना। कार्य्य-साधन के लिये अनुकूल करना। दाँव पर लाना=दे० "दाँव पर चढ़ाना"। दाँव में आना=दे० "दाँव पर चढ़ना"।

(५) कुश्ती या लड़ाई जीतने के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति। चाल। पेच। बंद। उ०—(क) तब हरि भिरे मल्लक्रीड़ा करि बहु विधि दाँव दिखाए।—सूर। (ख) झटकि दूर फेंकन चहत चलत न कोऊ दाँव।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—दाँव पेच।

मुहा०—दाँव पर लाना=कुश्ती में जोड़ को ऐसी स्थिति में करना कि उसपर पेंच हो सके।

(६) कार्य्य साधन की कुटिल युक्ति। छल। कपट।

क्रि० प्र०—चलना।

मुहा०—दाँव खेलना=चाल चलना। धोखा देना। दाँव देना=दे० "दाँव खेलना"।

(७) खेल में प्रत्येक खेलाड़ी के खेलने का समय जो एक दूसरे के पीछे क्रम से आता है। खेलने की बारी। चाल। जैसे, अब हमारा दाँव है कौड़ी हम फेंकेंगे।

मुहा०—दाँव चलना=अपनी बारी आने पर शतरंज की गोटी, ताश के पत्ते आदि को रखना। दाँव फेंकना=अपनी बारी आने पर पासा या जुए की कौड़ी आदि डालना। दाँव पर रखना=रुपया पैसा या कोई वस्तु दाँव फेंकनेवाले के सामने रखना जिसमें यदि वह जीते तो उसे ले जाय और हारे तो उतना दे। बाजी पर लगाना। दाँव लगाना="दे० दाँव पर रखना"।

(८) पाँसे, जुए की कौड़ी आदि का इस प्रकार पड़ना जिससे जीत हो। जीत का पाँसा या कौड़ी। उ०—(क) दाँव बलराम को देखि उन छल कियो रुक्म जीत्यो कहन लगे सारे। देववाणी भई, जीत भई राम की, ताहु पै मूढ़ नाहीं सँभारे।—सूर। (ख) सूझ जुआरिहि आपन दाऊँ।—तुलसी।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

मुहा०—दाँव देना=खेल में हारने पर निश्चत दंड भोगना या परिश्रम करना (लड़के)। उ०—(क) खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ। जीति हारि चुचकारि दुलारत देत दिवावत दाउँ।—तुलसी। (ख) तुमरे संग कहो को खेलै दाँव देत नहिं करत रुनैया?—सूर। दाँव लेना=खेल में हारनेवाले से नियत दंड भोगाना या परिश्रम कराना।

† (९) स्थान। ठौर। जगह। उ०—वह झाड़ी एक पहाड़ के उतार पर थी इससे सिंह को निकलने का दाँव न था।—गोपाल उपासनी।

दाँवना—क्रि० स० [सं० दमन] दाना और भूसा अलग करने के लिये कटी हुई फसल के सूखे डंठलों को बैलों से रौंदवाना। दाना झाड़ने के लिये माँड़ना।

दाँवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना। बंदी।

दाँवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी। रज्जु। उ०—दाँवरि लै बाँधन लगी जसुदा है बेपीर। पै गोवंधन बाँधि है गोपति कों को बीर।—व्यास।

दाव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन। जंगल। (२) वन की आग। (३) आग। अग्नि। (४) जलन। ताप।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का हथियार। (२) एक पेड़ का नाम। दे० "धावरा"।

दावत—संज्ञा स्त्री० [अ० दअवत] (१) ज्योनार। भोज। (२) खाने का बुलावा। निमंत्रण। न्योता।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—लेना।

दावदी—संज्ञा स्त्री० दे० "गुलदावदी"।

दावन—संज्ञा पुं० [सं० दमन] (१) दमन। नाश। उ०—जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो महामीन बास तिमि तोमन को फल भो।—तुलसी। (२) हँसिया। (३) एक प्रकार का टेढ़ा छुरा। खुखड़ी।

संज्ञा पुं० दे० "दामन"।

दावना—क्रि० स० दे० "दाँवना"।

क्रि० स० [हिं० दावन] दमन करना। नष्ट करना। उ०—सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिविध ताप भव दाप दावनी।—तुलसी।

दावनी—संज्ञा स्त्री० दे० "दाँवनी"।

दावरा—संज्ञा पुं० [देश०] धावरा नाम का पेड़।

दावा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव] वन में लगनेवाली आग जो बाँस या और पेड़ों की डालियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली जाती है। उ०—चिंता ज्वाल सरीर बन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुधुवाय।—गिरिधर।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी वस्तु पर अधिकार प्रगट करने का कार्य्य। किसी वस्तु को जोर के साथ अपना कहना। किसी चीज पर हक जाहिर करना। जैसे, कल तुम इस मकान ही पर दावा करने लगोगे तो हम क्या करेंगे? उ०—दावा पातसाहन सों कीन्हों सिवराज वीर जेर

जाय इतना करके फिर वह चिता की ओर न ताके और जाकर स्नान करले।

(३) जलन। ताप। (४) एक रोग जिसमें शरीर में जलन मालूम होती है। प्यास लगती है और कंठ सूखता है। वैद्यक के मत से दाह पित्त के प्रकोप से होता है।

विशेष—भावप्रकाश में दाह सात प्रकार का लिखा है। १—रक्तजन्यदाह जिसमें रक्त कुपित होकर सारे शरीर में दाह उत्पन्न करता है, ऐसा जान पड़ता है मानो सारा शरीर आग से तप रहा है और च्या च्या पर प्यास लगती है। २—रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह जो किसी अंग में हथियार आदि का घाव लगने पर उस घाव से कोष्ठ में रक्त जाने से उत्पन्न होता है। ३—मद्यज दाह। ४—तृष्णा विरोधज दाह। ५—धातुक्षयजदाह। ६—मर्माभिघातज दाह। ७—असाध्य दाह जिसमें रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंढा रहता है पर भीतर भीतर जला करता है।

(५) शोक। संताप। अत्यंत दुःख। डाह। ईर्ष्या।

दाहक–वि० [सं०] जलानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) चित्रक वृत्त। चीता। लाल चीता। (२) अग्नि। आग।

दाहकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाने का भाव या गुण।

दाहकत्व–संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का भाव या गुण।

दाहकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] शव दाहकर्म। मुर्दा फूँकने का काम।

दाहकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] अगर जिसे सुगंध के लिये जलाते हैं।

दाहक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह-कर्म। मृतक को जलाने का संस्कार।

दाहज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जिसमें शरीर में बहुत अधिक जलन मालूम हो।

दाहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने का काम। (२) जलवाने का काम। भस्म कराने की क्रिया।

दाहना–क्रि० स० [सं० दाह] (१) जलाना। भस्म करना। (२) संतप्त करना। सताना। दुःख पहुँचाना।

वि० दे० "दाहिना"।

दाहसर–संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दा जलाने का स्थान। श्मशान।

दाहहरण–संज्ञा पुं० [सं०] खस।

दाहा–संज्ञा पुं० [फा० दह=दस] (१) मुहर्रम के दस दिन जिसके भीतर ताजिया बनता है और दफन किया जाता है। (२) ताजिया।

दाहागुरु–संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अगर।

दाहिनी–वि० दे० "दाहिना"।

दाहिना–वि० [सं० दक्षिण] [स्त्री० दाहिनी] (१) उस पार्श्व का जिसके अंगों की पेशियों में अधिक बल होता है। उस ओर का जिस ओर के अंग काम करने में अधिक तत्पर होते हैं। 'बायाँ' का उलटा। दक्षिण। अपसव्य। जैसे, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, दाहिनी आँख।

मुहा०–दाहिनी देना=दक्षिणावर्त्त परिक्रमा करना। प्रदक्षिणा करना। उ०—जटा भस्म तनु दहै वृथा करि कर्म बँधावै। पुहुमि दाहिनी देहि गुफा बसि मोहि न पावै।—सूर। दाहिनी लाना=प्रदक्षिणा करना। उ०—पंचवटी गोदहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई।—तुलसी। (किसी का) दाहिना हाथ होना=बड़ा भारी सहायक होना।

(२) उधर पड़नेवाला जिधर दाहिना हाथ हो। जैसे, दाहिनी ओर, दाहिनी दिशा। (३) अनुकूल। प्रसन्न। उ०—बार बार बिनवौं नँदलाला। मोपै दाहिन होहु कृपाला।—सूर।

दाहिनावर्त्त°–वि० [सं० दक्षिणावर्त्त] (१) प्रदक्षिणा। (२) एक प्रकार का शंख। दे० "दक्षिणावर्त्त"।

दाहिने–क्रि० वि० [हिं० दाहिना] दाहिने हाथ की ओर। उस तरफ जिस तरफ दहिना हाथ हो। दाहिने हाथ की दिशा में। जैसे, तुम्हारे दाहिने जो मकान पड़े उसी में पुकारना।

मुहा०—दाहिने होना=अनुकूल होना। हित की ओर प्रवृत्त होना। प्रसन्न होना। उ०—पुनि बंदौं खल गन सति भाए। जे बिनु काज दाहिने बाएँ।—तुलसी।

दाही–वि० [सं० दाहिन] [स्त्री० दाहिनी] जलानेवाला। भस्म करनेवाला।

दाह्य–वि० [सं०] जलाने योग्य।

दिंक–संज्ञा पुं० [सं०] जूँ नाम का छोटा कीड़ा जो सिर के बालों में पड़ता है।

दिंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का नाच। उ०—इलथा टेंकी आलम सदिंड। पद पलटि हुरमयी निशंक चिंड।—केशव।

दिंडि–संज्ञा पुं० दे० "दिंडिर"।

दिंडिर–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

दिंडी–संज्ञा पुं० [सं०] उन्नीस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो गुरु होते हैं और जिसमें ९ और १० पर विश्राम होता है। इसमें कभी केवल दो चरणों का और कभी चार चरणों का अनुप्रास होता है। मराठी भाषा में इस छंद का विशेष व्यवहार होता है।

दिंडीर–संज्ञा पुं० [सं०] डिंडिर। समुद्र फेन।

दिश्रली–संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया (छोटा कसोरा) का स्त्री० अल्प०] (१) मिट्टी का बना हुआ बहुत छोटा दीया या कसोरे के आकार का पात्र। (२) फूल के नीचे की हरे रंग की कटोरी जो कई फाँकों में बँटी होती है। (३) दे० "दिउली"।

दिश्रा–संज्ञा पुं० दे० "दीया"।

दिश्रावत्ती–संज्ञा स्त्री० दे० "दियाबत्ती"।

ब्राह्मण लोभवश दासत्व स्वीकार करे तो राजा उसको दंड दे (मनु)। क्षत्रिय और वैश्य दासत्व से विमुक्त हो सकते हैं पर शूद्र दासत्व से नहीं छूट सकता। यदि वह एक स्वामी का दासत्व छोड़ेगा तो दूसरे स्वामी का दास होगा। दास उसे सब दिन रहना पड़ेगा क्योंकि दासत्व के लिये उसका जन्म ही कहा गया है। दासों के दो प्रकार के कर्म कहे गए हैं शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे)। दरवाजे पर झाड़ू देना, मल-मूत्र उठाना, जूँठा धोना आदि बुरे कर्म माने गए हैं।

(२) शूद्र। (३) धीवर। (४) एक उपाधि जो शूद्रों के नामों के आगे लगाई जाती है। (५) दस्यु। (६) वृत्रासुर। (७) ज्ञातात्मा। आत्मज्ञानी।

†संज्ञा पुं० दे० "दासन" "डासन"। उ०—भा निर्मल सब धरति अकासू। सेज सँवारि कीन्ह भल दासू।—जायसी।

दासक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास। सेवक। (२) गोत्र-प्रवर्त्तक एक ऋषि का नाम।

दासता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दास का कर्म। दासत्व। सेवावृत्ति।

दासत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास होने का भाव। (२) दास का काम। सेवावृत्ति।

दासनंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] धीवर की कन्या सत्यवती जो व्यास की माता थी।

दासन–संज्ञा पुं० दे० "डासन"।

दासपन–संज्ञा पुं० [सं० दास+पन (प्रत्य०)]। दासत्व। सेवाकर्म।

दासपुर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोथ। कैवर्त्त मुस्तक।

दासमीय–वि० [सं०] दसम देश में उत्पन्न।

संज्ञा पुं० दसम देश का निवासी।

दासमेय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद।

दासा–संज्ञा पुं० [सं० दासी=वेदी] (१) दीवार से सटाकर उठाया हुआ बाँध या पुश्ता जो कुछ ऊँचाई तक हो और जिस पर चीज वस्तु भी रख सकें। (२) आँगन के चारों ओर दीवार से सटा कर उठाया हुआ चबूतरा जो आँगन के पानी को घर या दालान में जाने से रोकने के लिये बनाया जाता है। (३) वह लकड़ी या पत्थर जो दरवाजे के ऊपर दीवार के आर पार रहता है। (४) दीवार की कुरसी के ऊपर बैठाया हुआ पत्थर।

संज्ञा पुं० [सं० दशन] हँसिया।

दासानुदास–संज्ञा पुं० [सं०] सेवक का सेवक। अत्यंत तुच्छ सेवक। (नम्रता और शिष्टता दिखाने के लिये इस शब्द का व्यवहार अधिक होता है)।

दासिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी।

दासी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवा करनेवाली स्त्री। टहलनी। लौंडी। (२) धीवर या शूद्र की स्त्री।

यौ०—दासीपुत्र।

(३) काकजंघा। (४) नीलाम्लान। कालाकारोठा नाम का पौधा। (५) कटसरैया। (६) वेदी।

दासेय–वि० [सं०] [स्त्री० दासेयी] दास से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) दास। गुलामजादा। (२) धीवर।

दासेयी–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती।

दासेर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दास। (२) कैवर्त्त। धीवर। (३) ऊँट।

दासेरक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दासीपुत्र। (२) ऊँट।

दास्तान्–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वृत्तांत। (२) हाल। कथा। किस्सा। (३) वर्णन। बयान।

दास्य–संज्ञा पुं० [सं०] दासत्व। दासपन। सेवा।

विशेष—दास्य, भक्ति के नव भेदों में से एक है।

दास्यमान्–वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो। जिसे दूसरे को देना हो।

दास्र–संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र।

दाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जलाने की क्रिया या भाव। भस्मीकरण। (२) शव जलाने की क्रिया। मुर्दा फूँकने का कर्म।

विशेष—शुद्धितत्त्व में दाह कर्म के विषय में इस प्रकार लिखा है। शव को पुत्रादि श्मशान में ले जाकर रखें और स्नान करके पिंडदान के लिये अन्न पकावें। फिर मृतक के शरीर में घी मलकर उसे मंत्रपाठ पूर्वक स्नान करावें, दूसरे नए वस्त्र में लपेटें, और आँख, कान, नाक, मुँह इन सात छेदों में थोड़ा थोड़ा सोना डालें। इतना हो चुकने पर चिता में अग्नि देनेवाला प्राचीनावीत होकर (जनेऊ को दाहिने कंधे पर डालकर) बायाँ घुटना टेककर बैठे और मंत्र पढ़कर कुश से एक रेखा खींचे। फिर उस रेखा पर कुश बिछावे और दाहिने हाथ में तिल सहित जल पात्र लेकर मृतक का नाम, गोत्र आदि उच्चारण करता हुआ जल को कुश पर गिरा दे। इसके अनंतर तिल सहित पिंड लेकर कुश पर विसर्जित करे। जब इतना कृत्य हो जाय तब पुत्रादि चिता तैयार करें और मुर्दे को उस पर दक्खिन ओर सिर करके लेटा दें। जो सामवेदी हों वे शव का मस्तक उत्तर की ओर रखें। फिर अग्नि हाथ में लेकर आग देनेवाला तीन प्रदक्षिणा करे और दक्खिन ओर अपना मुँह करके शव के मस्तक की ओर आग लगा दे। फिर सात लकड़ियाँ हाथ में लेकर सात प्रदक्षिणा करे और प्रत्येक प्रदक्षिणा में एक एक लकड़ी चिता में डालता जाय। जब शव जल जाय तब एक बाँस लेकर चिता पर सात बार प्रहार करे जिससे कपाल फूट

निम्न-लिखित दिशाओं में निम्न-लिखित वारों को दिक्शूल माना जाता है—

पश्चिम की ओर शुक्र और रविवार को
उत्तर ,, ,, मंगल ,, बुधवार ,,
पूर्व ,, ,, शनि ,, सोमवार ,,
दक्षिण ,, ,, बृहस्पतिवार को।

किसी किसी के मत से बुध और बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर, बृहस्पतिवार को चारों कोणों की ओर, रवि तथा शुक्रवार को पश्चिम दिशा की ओर शूल होता है। पहले और प्रधान मत के संबंध में लोगों ने एक चौपाई भी बना ली है जो इस प्रकार है। सोम सनीचर पुरुब न चालू। *मंगल बुध उत्तर दिसि कालू॥ आदित शुक्र पच्छिम दिसि* राहू। बीफै दच्छिन लंक दिमदाहू॥

दिक्साधन–संज्ञा पुं० [सं०] वह उपाय जिससे दिशाओं का ज्ञान हो। जैसे, जिस ओर सूर्य्य उदय होता हो उस ओर मुँह कर के खड़े होना और तब यह समझना कि सामने पूरब, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर है अथवा कुछ विशेष नियमों के अनुसार धूप में समवृत्त बनाकर और उसमें लकड़ी आदि गाड़कर उस की छाया से दिशा का पता लगाना। सूर्य्यसिद्धांत आदि प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार दिक्साधन की कई विधियाँ लिखी हैं।

दिक्सुंदरी–संज्ञा स्त्री० दे० "दिक्कन्या"।

दिक्स्वामी–संज्ञा पुं० दे० "दिक्पति"।

दिक्षा †–संज्ञा स्त्री० दे० "दीक्षा"।

दिक्षागुरु †–संज्ञा पुं० दे० "दीक्षागुरु"।

दिक्षित †–वि० दे० "दीक्षित"।

दिखना †–क्रि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना। देखने में आना।

दिखरादेना* †–क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखराना*–क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखरावना*–क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखरावनी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखराना] दिखाने का भाव या क्रिया।

दिखलवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] (१) वह धन जो दिखलवाने के बदले में दिया जाय। (२) दे० "दिखलाई"।

दिखलवाना–क्रि० स० [हिं० दिखलाना का प्रे० रूप] दिखलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दिखलाने में प्रवृत्त करना।

दिखलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] (१) दिखलाने की क्रिया। (२) दिखलाने का भाव। (३) वह धन जो दिखलाने के बदले में दिया जाय।

दिखलाना–क्रि० स० [हिं० देखना का प्रे० रूप] (१) दूसरे को देखने में प्रवृत्त करना। दृष्टिगोचर कराना। दिखाना। जैसे, *उन्होंने हमें तुम्हारा मकान दिखला दिया।* (२) अनुभव कराना। मालूम कराना। जताना। जैसे, हम तुम्हें इसका मज़ा दिखला देंगे।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

दिखलावा †–संज्ञा पुं० दे० "दिखावा"।

दिखवैया †–संज्ञा पुं० [*हिं० दिखाना + वैया (प्रत्य०)*]. दिखानेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० देखना + वैया (प्रत्य०)] देखनेवाला।

दिखहार* †–संज्ञा पुं० [हिं० देखना + हार (प्रत्य०)] देखनेवाला।

दिखाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखाना + आई (प्रत्य०)] (१) दिखाने का काम। (२) दिखाने का भाव। (३) वह धन जो दिखाने के बदले में दिया जाय।

संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + आई (प्रत्य०)] (१) देखने का काम। (२) देखने का भाव। (३) वह धन जो देखने के बदले में दिया जाय।

दिखाऊ †–वि० [हिं० दिखाना या देखना + आऊ (प्रत्य०)] (१) देखने योग्य। दर्शनीय। (२) दिखाने योग्य। (३) जो केवल देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। (४) दिखौआ। बनावटी।

दिखाना–क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

दिखाव–संज्ञा पुं० [हिं० देखना + आव (प्रत्य०)] (१) देखने का भाव या क्रिया। (२) दृश्य। जैसे, इस जगह का दिखाव बहुत अच्छा है।

दिखावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + आवट (प्रत्य०)] (१) दिखलाने का भाव या ढंग। (२) ऊपरी तड़क भड़क। बनावट।

दिखावटी–वि० [हिं० दिखावट + ई (प्रत्य०)] जो केवल देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। दिखौआ।

दिखावा–संज्ञा पुं० [हिं० देखना + आवा (प्रत्य०)] आडंबर। झूठा ठाठ। ऊपरी तड़क भड़क।

दिखैया* †–संज्ञा पुं० [हिं० देखना + ऐया (प्रत्य०)] देखनेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० दिखाना + ऐया (प्रत्य०)] दिखलानेवाला।

दिखौआ–वि० [हिं० देखना + औआ (प्रत्य०)] वह जो केवल देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। बनावटी।

दिखौवा–वि० दे० "दिखौआ"।

दिगंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिशा का छोर। दिशा का अंत। (२) आकाश का छोर। क्षितिज। (३) चारों दिशाएँ। (४) दसों दिशाएँ।

संज्ञा पुं० [सं० दृग् + अंत] आँख का कोना। उ०—राचे पितंबर ज्यों पहुँचा, कछु तैसिये लाजी दिगंतन छाई।—द्विजदेव।

दिगंतर–संज्ञा पुं० [सं०] दो दिशाओं के बीच का स्थान।

दिआर†–संज्ञा पुं० दे० "दयार"।

दिआरा†–संज्ञा पुं० (१) दे० "दयार"। (२) दे० "दियारा"।

दिआसलाई–संज्ञा स्त्री० दे० "दियासलाई"।

दिउला–संज्ञा पुं० दे० "दिउली"।

दिउली†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिअली] (१) सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी। खुरंट। खुट्टी। दाल। (२) दे० "दिअली"। (३) मछली के ऊपर से छूटनेवाला छिलका। सेहरा।

दिक्–संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा। ओर। तरफ़।

दिक़–वि० [अ०] (१) जिसे बहुत कष्ट पहुँचाया गया हो। हैरान। तंग। जैसे, यह लड़का बहुत दिक़ करता है।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

(२) अस्वस्थ। बीमार। (इस अर्थ में इसका प्रयोग तबीयत शब्द के साथ होता है) जैसे, कई दिनों से उनकी तबीयत दिक़ है।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

संज्ञा पुं० क्षयी रोग। तपेदिक़।

दिकचन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ऊख जिसका गुड़ बहुत अच्छा बनता है।

दिक्दाह–संज्ञा पुं० दे० "दिग्दाह"। उ०—ऊकपात दिकदाह दिन फेकरहि स्वान सियार। उदित केतु गत हेतु महि कंपति वारहि बार।—तुलसी।

दिकाक†–संज्ञा पुं० [अ० दक़ीक़ = बारीक] किसी चीज का छोटा टुकड़ा। कतरन। धज्जी।

वि० [अ० दक़ियानूस] बहुत बड़ा चालाक। खुर्राट।

दिकोड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] बर्रे। हड्डा।

दिक्क–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा।

दिक़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दिक का भाव। परेशानी। तकलीफ। तंगी। कष्ट।

क्रि० प्र०—उठाना।

(२) कठिनता। मुश्किल।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

दिक्कन्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशारूपी कन्या।

विशेष—पुराणानुसार दिशाएँ ब्रह्मा की कन्याएँ मानी गई हैं। वाराहपुराण में लिखा है कि जिस समय ब्रह्मा सृष्टि करने की चिंता में थे उस समय उनके कान से दस कन्याएँ निकलीं। ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम लोगों की जिधर इच्छा हो उधर चली जाओ। तदनुसार सब एक एक दिशा में चली गईं। इसके उपरांत ब्रह्मा ने आठ लोकपालों की सृष्टि की और अपनी आठ कन्याओं को बुलाकर प्रत्येक लोकपाल को एक एक कन्या प्रदान की। तदुपरांत वे स्वयं आकाश की ओर चले गए और नीचे की ओर उन्होंने शेष को रखा।

दिक्कर–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

वि० [स्त्री० दिक्करिका] युवक। जवान।

दिक्करवासिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दिक्कर अर्थात् महादेव में निवास करनेवाली एक देवी।

दिक्करि–संज्ञा पुं० दे० "दिक्करी"।

दिक्करिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी जो मानसरोवर के पश्चिम में बहती है। यह नदी दिग्गजों के चेल से निकलती है इसीलिये दिक्करिका कहलाती है। यह नदी संभवतः दिकराई नदी है जो कामरूप देश में बहती है।

दिक्करी–संज्ञा पुं० [सं० दिक्करिन्] आठो दिशाओं के ऐरावत आदि आठ हाथी। दिग्गज।

दिक्कांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दिक्कन्या।

दिक्कुमार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार भवनपति नामक देवताओं में से एक।

दिक्चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] आठों दिशाओं का समूह।

दिक्पति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष के अनुसार दिशाओं के स्वामी ग्रह।

विशेष—ज्योतिष में आठ दिशाओं के स्वामी आठ ग्रह माने जाते हैं। यथा–दक्षिण के स्वामी मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य्य, अग्निकोण के शुक्र, नैर्ऋतकोण के राहु, वायुकोण के चंद्रमा और ईशान कोण के बृहस्पति।

(२) दे० "दिक्पाल"।

दिक्पाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता। यथा—पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैर्ऋतकोण के नैर्ऋत, पश्चिम के वारुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्द्ध दिशा के ब्रह्मा और अधोदिशा के अनंत।

विशेष—दे० "दिक्न्या"।

(२) चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है। इसकी पाँचवीं और सत्तरहवीं मात्राएँ लघु होती हैं। उर्दू का रेख़्ता यही है। उ०—हरिनाम एक साँचो सब झूठ है पसारा।

दिक्शूल–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट दिनों में कुछ विशिष्ट दिशाओं में काल का वास जो कुछ विशेष योगिनियों के योग के कारण माना जाता है। जिस दिन जिस दिशा में कुछ विशिष्ट योगिनियों के योग के कारण इस प्रकार काल का वास और दिक्शूल माना जाता है उस दिन उस दिशा की ओर यात्रा करना बहुत ही अशुभ और हानिकारक माना जाता है। कहते हैं कि दिक्शूल में यात्रा करने से मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होता, आर्थिक हानि होती है, कोई न कोई रोग हो जाता है और यहाँ तक कि कभी कभी यात्री की मृत्यु भी हो जाती है।

और यदि चौथे स्थान पर शुक्र और चंद्र हों तो उत्तर दिशा बली मानी जाती है। इसकी सहायता से दिक्-निर्णय और दूसरी कई प्रकार की गणनाएँ की जाती हैं।

दिग्बली–संज्ञा पुं॰ [सं॰ दिग्बलिन्] (१) फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो किसी दिशा के लिये बली हो। (२) वह राशि जिस पर किसी ग्रह का बल हो। विशेष—दे॰ "दिग्बल"।

दिग्भ्रम–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिशाओं का भ्रम होना। दिशा भूल जाना।

दिग्मंडल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिशाओं का समूह। संपूर्ण दिशाएँ।

दिग्राज–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिक्पाल"।

दिग्वसन–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिग्वस्त्र"।

दिग्वस्त्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) महादेव। शिव। (२) नंगा रहनेवाला जैन यती। क्षपणक। (३) बुध।

दिग्वान्–संज्ञा पुं॰ [सं॰] पहरेदार। चौकीदार।

दिग्वारण–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिग्गज।

दिग्वास–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिग्वस्त्र"।

दिग्विजय–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) राजाओं का अपनी वीरता दिखलाने और महत्त्व स्थापित करने के लिये देश-देशांतरों में अपनी सेना के साथ जा कर युद्ध करना और विजय प्राप्त करना। (प्राचीन काल में यह प्रथा थी)। उ॰—अश्वमेध करवाय युधिष्ठिर कुल को दोष मिटायो। करि दिग्विजय विजय को जग में भक्त पक्ष करवायो।—सूर। (२) अपने गुण, विद्या या बुद्धि आदि के द्वारा देश देशांतरों में अपनी प्रधानता अथवा महत्त्व स्थापित करना। जैसे, शंकर-दिग्विजय।

दिग्विजयी–वि॰ पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ दिग्विजयिनी] जिसने दिग्विजय किया हो। दिग्विजय करनेवाला। उ॰—गज अहंकार चढ़्यो दिग्विजयी लोभ छत्र करि सीं। फौज असत संगति की मेरी ऐसे हौं मैं ईस।—सूर।

दिग्विभाग–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिशा। ओर। तरफ।

दिग्व्यापी–वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ दिग्व्यापिनी] जो सब दिशाओं में व्याप्त हो।

दिग्व्रत–संज्ञा पुं॰ [सं॰] जैनियों का एक व्रत जिसमें वे कुछ निश्चित समय के लिये यह प्रण कर लेते हैं कि अमुक दिशा (अथवा दिशाओं) में इतनी दूर से अधिक न जायँगे।

दिग्दशा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्व दिशा।

दिग्सिंधुर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिग्गज।

दिग्शूल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ "दिक्शूल"।

दिघी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ "दिग्गी"।

दिघोंच–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का पक्षी जिसकी छाती सफेद, डैने काले और कुछ पर सुनहले होते हैं।

दिङ्नक्षत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] विशेष नक्षत्र जो फलित ज्योतिष में विशिष्ट दिशाओं से संबद्ध माने जाते हैं।

विशेष—फलित ज्योतिष में सात सात नक्षत्र प्रत्येक दिशा से संबद्ध माने जाते हैं और इन्हीं के अनुसार किसी प्रश्न अंतर्गत दिशा आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे, यदि किसी की कोई चीज चोरी हो जाय अथवा कोई बालक खो जाय तो चीज के चोरी होने अथवा बालक के खोए जाने के समय का नक्षत्र देखकर यह कहा जा सकता है कि चोर अथवा बालक किस दिशा में है।

दिङ्नाग–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) दिग्गज। (२) एक बौद्ध नैयायिक और आचार्य, जो मल्लिनाथ के अनुसार कालिदास के समय में हुए थे और उनके बड़े भारी प्रतिद्वंद्वी थे।

दिङ्नारि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) वेश्या। रंडी। (२) बहुत से पुरुषों से प्रेम करनेवाली स्त्री। कुलटा।

दिङ्मंडल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिशाओं का समूह।

दिङ्मातंग–संज्ञा पुं॰ [सं॰] दिग्गज।

दिङ्मात्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] उदाहरण मात्र। केवल नमूना।

दिङ्मूढ़–वि॰ [सं॰] (१) जिसे दिग्भ्रम हुआ हो। जो दिशाएँ भूल गया हो। (२) मूर्ख। बेवकूफ।

दिङ्मोह–संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिग्भ्रम"।

दिच्छित*†–संज्ञा पुं॰, वि॰ दे॰ "दीक्षित"

दिजराज*†–संज्ञा पुं॰ दे॰ द्विजराज।

दिजोत्तम*†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "द्विजोत्तम"।

दिठवन–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "देवोत्थान" (एकादशी)।

दिठियार†–वि॰ [हिं॰ दीठ=दृष्टि+इयार (प्रत्य॰)] देखनेवाला। आँखवाला। जिसे दिखाई देता हो।

दिठौना†–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दीठ=दृष्टि+औना (प्रत्य॰)] बच्चों के माथे में भौं के कोने के समीप लगा हुआ काजल का बिंदु जो दृष्टि का दोष शांत करने को लगाया जाता है। वह बिंदी जो बालकों को नजर से बचाने के लिये लगाई जाती है।

क्रि॰ प्र॰—लगाना।

दिढ़*†–वि॰ दे॰ "दृढ़"।

दिढ़ता*†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दृढ़ता"।

दिढ़ाई*†–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दृढ़ता"।

दिढ़ाना*†–क्रि॰ स॰ [सं॰ दृढ़+आना (प्रत्य॰)] (१) पक्का करना। दृढ़ करना। मजबूत करना। (२) निश्चित करना।

दितवार†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "आदित्यवार"।

दिति–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष प्रजापति की एक कन्या और दैत्यों की माता थीं। जब इनके सब पुत्र (दैत्य) इंद्र और देवताओं द्वारा मारे गए तब इन्होंने अपने पति कश्यप ऋषि से कहा कि अब मैं ऐसा पराक्रमी पुत्र चाहती हूँ जो इंद्र का भी दमन कर सके।

दिगंबर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । महादेव । (२) नंगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती । क्षपणक । (३) दिशाओं का वस्त्र, अंधकार । तम । अँधेरा ।

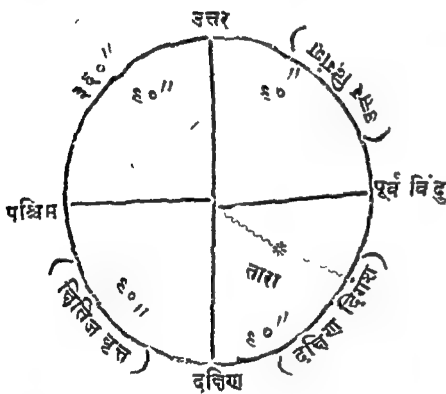
वि० दिशाएँ ही जिसका वस्त्र हों, अर्थात् नंगा । नग्न ।

दिगंबरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नंगापन । नग्नता ।

दिगंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

दिगंश—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त का ३६० वाँ अंश ।

विशेष—आकाश में ग्रहों और नक्षत्रों आदि की स्थिति जानने के लिये क्षितिज वृत्त को ३६० अंशों में विभक्त कर लेते हैं और जिस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जानना होता है, उस पर से अधस्स्वस्तिक और खस्वस्तिक को छूता हुआ एक वृत्त ले जाते हैं । यही वृत्त पूर्व विंदु से क्षितिज वृत्त को दक्षिण अथवा उत्तर जितने अंश पर काटता है उतने को उस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश कहते हैं ।



दिगंश यंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिससे किसी ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जाना जाय ।

दिग्—संज्ञा स्त्री० दे० "दिक्" ।

दिगदंति*—संज्ञा पुं० दे० "दिग्गज" ।

दिगिभ—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिगीश—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल ।

दिगीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आठों दिक्पाल । (२) सूर्य्य चंद्रमा आदि ग्रह ।

दिगेश—संज्ञा पुं० दे० "दिगीश" ।

दिग्गज—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वे आठों हाथी जो आठों दिशाओं में पृथ्वी को दबाए रखने और उन दिशाओं की रक्षा करने के लिये स्थापित हैं । उनके नाम ये हैं—

पूर्व में ऐरावत, पूर्व-दक्षिण के कोने में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, दक्षिण-पश्चिम में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिम-उत्तर के कोने में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम और उत्तर-पूर्व के कोने में सप्रतीक ।

वि० बहुत बड़ा । बहुत भारी । जैसे, *दिग्गज विद्वान्*, *दिग्गज पंडित* ।

दिग्गयंद—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिग्गी—संज्ञा स्त्री० दे० "डिग्गी" ।

दिग्घ*†—वि० [सं० दीर्घ] (१) लंबा । (२) बड़ा ।

दिग्जय—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्विजय ।

दिग्ज्या—संज्ञा स्त्री० दे० "दिगंश" ।

दिग्दर्शक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] डिबिया के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । इसके बीच में लोहे की एक सुई लगी होती है जिसके मुँह पर चुंबकत्व की शक्ति रहती है जिसके कारण सुई का मुँह सदा उत्तर दिशा की ओर रहता है । इसका विशेष व्यवहार जहाजों आदि में दिशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होता है । कुतुबनुमा । कंपास ।

दिग्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो कुछ उदाहरण स्वरूप दिखलाया जाय । नमूना । (२) नमूना दिखाने का काम । (३) अभिज्ञता । जानकारी । (४) दे० "दिग्दर्शक यंत्र" ।

दिग्दर्शनी—संज्ञा स्त्री० दे० "दिग्दर्शक यंत्र" ।

दिग्दाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैवी घटना जिसमें सूर्यास्त होने पर भी दिशाएँ लाल और जलती हुई सी दिखलाई पड़ती हैं । इसे लोग अशुभ मानते हैं और समझते हैं कि इसके *उपरांत युद्ध, दुर्भिक्ष या रोग* आदि होता है । *बृहत्संहिता* में इसके फल आदि का विस्तृत उल्लेख है ।

दिग्देवता—संज्ञा पुं० दे० "दिक्पाल" ।

दिग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विषाक्त बाण । जहर में बुझाया हुआ बान । (२) तेल । (३) अग्नि । (४) प्रबंध । निबंध ।

वि० [सं०] (१) विषाक्त । जहर में बुझा हुआ । (२) लिप्त ।

वि० दीर्घ । लंबा । बड़ा । उ०—छहै मतिराम सब थावर *जंगम जरा जग जाकी दिग्घ उदर दरी में दरसत है ।*—मतिराम ।

दिग्पट—संज्ञा पुं० [सं० दिक्पट] (१) दिशा रूपी वस्त्र । उ०—*भुजंग विभूषण दिग्पट धारी । अर्द्ध अंग गिरिराजकुमारी ।* —सबलसिंह । (२) दिशा रूपी वस्त्र धारण करनेवाला । नंगा । दिगंबर ।

दिग्पति—संज्ञा पुं० दे० "दिक्पाल" ।

दिग्पाल—संज्ञा पुं० दे० "दिक्पाल" ।

दिग्बल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न आदि पर स्थित ग्रहों का बल ।

विशेष—यदि लग्न से दसवें स्थान पर मंगल और रवि हों तो दक्षिण, यदि लग्न से सातवें स्थान पर शनि हों तो पश्चिम

पर घूमने से संबंध रखते हैं पर नक्षत्र के याम्योत्तर पर आने में बराबर उतना ही समय लगता है पर सूर्य्य याम्योत्तर पर ठीक उतने ही समय में सदा नहीं आता, कुछ कम या अधिक समय लेता है, जिसके कारण सौर दिन का मान भी घटता बढ़ता रहता है। अतः हिसाब ठीक रखने और सुभीते के लिये एक सौर वर्ष को तीन सौ साठ भागों में विभक्त कर लेते हैं और इनके एक भाग को एक सौर दिन मानते हैं। हिंदुओं में दिन का मान सूर्य्योदय से सूर्योदय तक होता है और प्रायः सभी प्राचीन जातियों में सूर्योदय से सूर्य्योदय तक दिन का मान होता था। आजकल हिंदुओं और एशिया की दूसरी अनेक जातियों में तथा युरोप के आस्ट्रिया, टर्की और इटली देश में भी सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन माना जाता है। युरोप के अधिकांश देशों तथा मिस्र और चीन में आधी रात से आधी रात तक दिन माना जाता है। प्राचीन रोमन लोग भी आधी रात से ही दिन का आरंभ मानते थे। आजकल भारतवर्ष में सरकारी कामों में भी दिन का आरंभ आधी रात से ही माना जाता है। पर अपनी गणना के लिये योरप के ज्योतिषी मध्याह्न से मध्याह्न तक दिन मानते हैं।

मुहा०—दिन दिन या दिन पर दिन = नित्य प्रति। सदा। हर रोज़।

(३) समय। काल। वक्त। जैसे, (क) इतने दिन की रखी हुई चीज इसने खो दी। (ख) भले दिन, बुरे दिन।

मुहा०—दिन काटना = समय बिताना। दिन गँवाना = वृथा समय खोना। दिन पूरे करना = निर्वाह करना। समय बिताना। दिन बिगड़ना = बुरे दिन होना। विपत्ति का अवसर आना। दिन भुगताना = दिन काटना। समय बिताना।

यौ०—पतले दिन = नाज़ुक वक्त। बुरे दिन। खोटे दिन।

क्रि० प्र०—बिताना।—बीतना।

(४) नियत या उपयुक्त काल। निश्चित या उचित समय। जैसे, (क) कोई दिन दिखा कर चलेंगे। (ख) अब इसके दिन पूरे हो गए यह मरेगा।

मुहा०—दिन आना = समय पूरा हो जाना। अंतिम समय आना। दिन धरना = दिन ठहराना। दिन निश्चित करना। दिन धराना = दिन स्थिर कराना। दिन निश्चित कराना। मुहूर्त्त निकलवाना। उ०—अति परम सुंदर पालना गढ़ि ल्याव रे बढ़ैया। × × × × × पालनो आन्यो सबहि अति मन मान्यो नीको सो दिन धराइ सखिन मंगल गवाय रंग महल में पौढ़्यो है कन्हैया।—सूर।

(५) विशेष रूप से बिताया जानेवाला काल। वह समय जिसके बीच कोई विशेष बात हो। जैसे, अच्छे या बुरे दिन, गर्भ के दिन, जवानी के दिन।

मुहा०—दिन चढ़ना = किसी स्त्री का गर्भवती होना। दिन पड़ना = कुसमय का आना। बुरा समय आना। दिन फिरना = दुर्भाग्य काल के उपरांत सौभाग्य काल आना। बुरे दिनों के बाद अच्छे दिन आना। दिन बहुरना = फिर से अच्छे दिन आना। दिन फिरना। दिन भरना = दुर्भाग्य काल बिताना। बुरे दिन काटना। दिनों से उतरना = जवानी ढलना। युवावस्था का बीत जाना।

क्रि० वि० सदा हमेशा। उ०—(क) बावरो रावरो नाह भवानी। दानी बड़ो दिन देत दिए बिनु बेद बड़ाई भानी।—तुलसी। (ख) गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रणवहुँ दीनबंधु दिन दानी।—तुलसी। (ग) हिंडोरे झूलत लाल दिन दूलह दुलहिन बिहारी देखि री ललना।—हरिदास।

दिनकंत*—संज्ञा पुं० [सं० दिन + हिं० कंत (कांत)] सूर्य्य।

दिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) आक। मंदार।

दिनकरकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

दिनकरसुत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यम। (२) शनि। (३) सुग्रीव। (४) अश्विनीकुमार। (५) कर्ण।

दिनकर्त्ता—संज्ञा पुं० दे० "दिनकर"।

दिनकृत्—संज्ञा पुं० दे० "दिनकर"।

दिनकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा।

दिनक्षय—संज्ञा पुं० दे० "तिथिक्षय"।

दिनचर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिन भर का काम धंधा। दिन भर का कर्तव्य कर्म।

दिनचारी—संज्ञा पुं० [सं० दिनचारिन्] दिन को चलनेवाला सूर्य्य।

दिनज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० दिनज्योतिस्] (१) दिन का उजेला। (२) धूप।

दिनदानी*†—संज्ञा पुं० [सं० दिन + दानी] प्रति दिन दान करनेवाला। रोज़ देनेवाला। गरीब-परवर।

दिनदीप—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनदुःखित—संज्ञा पुं० [सं०] चकवा पक्षी।

दिननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिननायक—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य।

दिननाह—संज्ञा पुं० दे० "दिननाथ"।

दिनप—संज्ञा पुं० दे० "दिनपति"।

दिनपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार। (३) दिन या वार के पति। दे० "दिन"।

दिनपाकी अजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अजीर्ण जिसमें एक बार का किया हुआ भोजन आठ पहर में पचता है और बीच में भूख नहीं लगती।

दिनपात—संज्ञा पुं० दे० "तिथिक्षय"।

दिनपाल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मंदार।

कश्यप ने कहा—इसके लिये तुम्हें सौ वर्ष तक गर्भ धारण करना पड़ेगा और गर्भकाल में बहुत ही पवित्रतापूर्वक रहना पड़ेगा। दिति को गर्भ हुआ और वह ९९ वर्ष तक बहुत पवित्रतापूर्वक रहीं। अंतिम वर्ष में वह एक दिन रात के समय बिना हाथ पैर धोए जाकर सो रहीं। इंद्र ताक में लगे ही थे; इन्हें अपवित्र अवस्था में पाकर उन्होंने इनके गर्भ में प्रवेश किया और अपने वज्र से जरायु के सात टुकड़े कर डाले। उस समय शिशु इतने जोर से रोया और चिल्लाया कि इंद्र घबरा गए। तब उन्होंने सातों टुकड़ों में से हर एक के फिर सात टुकड़े किए। ये ही उनचास खंड मरुत् कहलाते हैं। विशेष—दे० "मरुत्"।

विशेष—इस शब्द में "पुत्र" वाची शब्द लगाने से "दैत्य" अर्थ होता है। जैसे, दितिसुत, दितितनय, दितिनंदन।

(२) तोड़ने या काटने की क्रिया। खंडन। (३) दाता। वह जो देता हो।

दितिकुल–संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यवंश।

दितिज–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दितिजा] दिति से उत्पन्न। दैत्य।

दितिसुत–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य। राक्षस। असुर।

दित्य–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य।

वि० जो छेदने या काटने योग्य हो।

दित्सा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की इच्छा।

दित्सु–वि० [सं०] जो दान करना चाहता हो।

दित्स्य–वि० [सं०] दान करने योग्य। जो दान किया जा सके।

दिदार–संज्ञा पुं० दे० "दीदार"।

दिदृक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की अभिलाषा।

दिदृक्षु–वि० [सं०] जो देखना चाहता हो।

दिदृक्षेय–वि० [सं०] दर्शनीय। जो देखने योग्य हो।

दिद्यु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) बाण।

दिधि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धैर्य्य। (२) धारण करने की क्रिया।

दिधिषु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहले एक बार ब्याही हुई स्त्री का दूसरा पति। दो बार ब्याही हुई स्त्री का दूसरा पति। (२) गर्भाधान करनेवाला मनुष्य।

दिधिषू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसके दो ब्याह हुए हों। द्विरूढा। (२) वह स्त्री या कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहन के विवाह के पहले हुआ हो।

दिधिषूपति–संज्ञा पुं० दे० "दिधिषु"।

दिन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उतना समय जिसमें सूर्य्य क्षितिज के ऊपर रहता है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय। सूर्य्य की किरणों के दिखाई पड़ने का सारा समय।

विशेष—पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई सूर्य्य की परिक्रमा करती है। इस परिक्रमा में उसका जो आधा भाग सूर्य्य की ओर रहने के कारण प्रकाशित रहता है, उसमें दिन रहता है, बाकी दूसरे भाग में रात रहती है।

मुहा०—दिन को तारे दिखाई देना=इतना अधिक मानसिक कष्ट पहुँचना कि बुद्धि ठिकाने न रहे। दिन को दिन रात को रात न जानना या समझना=अपने सुख या विश्राम आदि का कुछ भी ध्यान न रखना। जैसे, इस काम के लिये उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझा। दिन चढ़ना=सूर्योदय होना। सूर्य्य निकलने के उपरांत कुछ और समय बीतना। दिन छिपना=सूर्यास्त होना। संध्या होना। दिन डूबना=सूर्य्य डूबना। संध्या होना। दिन ढलना=संध्या का समय निकट आना। सूर्यास्त होने को होना। दिन दहाड़े या दिन दिहाड़े=बिलकुल दिन के समय। ऐसे समय जब कि सब लोग जागते और देखते हों। जैसे, दिन दहाड़े उनके यहाँ दस हजार की चोरी हो गई। दिन दोपहर या दिन धौले=दे० "दिन दहाड़े"। दिन दूना रात चौगुना होना या बढ़ना=बहुत जल्दी जल्दी और बहुत अधिक बढ़ना। खूब उन्नति पर होना। जैसे, आज कल उनकी जमींदारी दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है। दिन निकलना=दिन चढ़ना। सूर्योदय होना। दिन बूड़ना=दे० "दिन डूबना"। दिन मुँदना=दे० "दिन डूबना"। दिन होना=दिन निकलना। सूर्य्य उदय होना। दिन चढ़ना।

यौ०—दिन रात=सर्वदा। सदा। हर वक्त।

(२) उतना समय जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूमती है अथवा पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग के दो बार सूर्य्य के सामने आने के बीच का समय। आठ पहर या चौबीस घंटे का समय।

विशेष—साधारणतः दिन दो प्रकार का माना जाता है—एक नाक्षत्र, दूसरा सौर या सावन। नाक्षत्र उतने समय का होता है जितना किसी नक्षत्र को एक बार याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दुबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में लगता है। यह समय ठीक उतना ही है जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम चुकती है। इसमें घटती बढ़ती नहीं होती इसीसे ज्योतिषी नाक्षत्र दिनमान का व्यवहार बहुत करते हैं। सूर्य्य को याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दोबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में जितना समय लगता है उतने समय का सौर या सावन दिन होता है। नाक्षत्र तथा सौर दिन में प्रायः कुछ न कुछ अंतर हुआ करता है। यदि किसी दिन याम्योत्तर रेखा पर एक ही स्थान पर और एक ही समय सूर्य्य के साथ कोई नक्षत्र भी हो तो दूसरे दिन उसी स्थान पर नक्षत्र तो कुछ पहले आ जायगा पर सूर्य्य कुछ मिनटों के उपरांत आवेगा। यद्यपि नाक्षत्र और सावन दोनों प्रकार के दिन पृथ्वी के अक्ष

देहुँ दिव दुसह सांसति कीजै आगे ही या तन की।—तुलसी।

दिमंकर सो-वि० [सं० द्वि+उत्तर+शत] सौ और दो। एक सौ दो।

विशेष—इस का व्यवहार पहाड़े में होता है। जैसे, सत्तरह छक्के दिमंकर सो—१७ × ६ = १०२

दिमाक-संज्ञा पु० दे० "दिमाग"।

दिमाकदार-वि० दे० "दिमागदार"। उ०—सोहते सवार सरदार जे दिमाकदार जुद्ध माँहि क्रुद्ध जे अदम्य ठहरात हैं।—गोपाल।

दिमाग-संज्ञा पुं० [अ०] (१) सिर का गूदा। मस्तिष्क। भेजा।

मुहा०—दिमाग खाना या चाटना = व्यर्थ की बातें कहना जिससे किसी के सिर में दरद होने लगे। बहुत बकवाद करना। जैसे, आजकल वे रोज सवेरे आकर दिमाग चाटते (या खाते) हैं। दिमाग खाली करना = दिमाग चाटना। ऐसा काम करना जिस में मानसिक शक्ति का बहुत अधिक व्यय हो। मगजपच्ची करना। जैसे, उन्हें सब बातें समझाने के लिये हमें घंटों दिमाग खाली करना पड़ा। दिमाग चढ़ना या आसमान पर होना = बहुत अधिक घमंड होना। अभिमान होना। दिमाग न पाया जाना या न मिलना = दिमाग चढ़ना। दिमाग परेशान करना = "दे० दिमाग खाली करना"। दिमाग में खलल होना = मस्तिष्क में ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे विवेक शक्ति न रह जाय। सिड़ी होना। पागल होना।

यौ०—दिमागचट। दिमाग-रौशन।

(२) मानसिक शक्ति। बुद्धि। समझ। जैसे, (क) उनका दिमाग अच्छा है, सब मामला बहुत जल्दी समझ लेते हैं। (ख) जरा दिमाग लगाओ कोई न कोई उपाय निकल ही आवेगा।

मुहा०—दिमाग लड़ाना = बहुत अच्छी तरह विचार करना। खूब सोचना। जैसे, इस काम में बहुत दिमाग लड़ाने की जरूरत है।

यौ०—दिमागदार।

(३) अभिमान। घमंड। शेखी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—दिमाग झड़ना = अहंकार नष्ट होना। अभिमान टूटना।

यौ०—दिमागदार।

दिमागचट-वि० [अ० दिमाग+हिं० चट (चाटना)] बहुत अधिक बकवाद करके दूसरों को व्याकुल करनेवाला। बकी।

दिमागदार-वि० [अ० दिमाग+फा० दार (प्रत्य०)] (१) जिसकी मानसिक शक्ति बहुत अच्छी हो। बहुत बड़ा समझदार। (२) अभिमानी। घमंडी।

दिमाग-रौशन-संज्ञा० पु० [अ० दिमाग+फा० रौशन] मगज-रौशन नास। सुँघनी।

दिमागी-वि० दे० "दिमागदार"।

दिमातृ*†-संज्ञा पु०, वि० [सं० द्विमातृ] दो माताओंवाला। वह जिसकी दो माताएँ हों।

वि०, संज्ञा पुं० [सं० द्विमात्र] वह जिसमें दो मात्राएँ हों। दो मात्राओंवाला।

दिमाना*†-वि० दे० "दीवाना"।

दिम्मस†-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरमट] घासदार ढेलों को जमा करके दुरमट से पीटने की क्रिया।

दियट-संज्ञा स्त्री० दे० "दीअट"।

दियत†-संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] वह धन जो किसी को मार डालने या अंग भंग करने के बदले में दिया जाय।

दियना‡-संज्ञा पु० दे० "दीया"।

दियरा-संज्ञा पु० [सं० दीप, हिं० दीया (छोटा कसोरा) + रा (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का पकवान जिसे मीठा मिले हुए आटे की लोई बनाकर और उसके बीच में अँगूठे से गड्ढा करके घी या तेल में तलकर बनाते हैं। लोई में अँगूठे से गड्ढा करने पर उसका आकार दीए का सा हो जाता है। (२) दे० "दीया"।

दियला‡-संज्ञा पुं० दे० "दीया"।

दियवा‡-संज्ञा पु० दे० "दीया"।

दियाँर-संज्ञा स्त्री० दे० "दीमक"।

दिया-संज्ञा पुं० दे० "दीया"।

दियानत-संज्ञा स्त्री० दे० "दयानत"।

दियानतदार-वि० दे० "दयानतदार"।

दियानतदारी-संज्ञा स्त्री० दे० "दयानतदारी"।

दियाबत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया+बत्ती] (संध्या के समय) दीया जलाने का काम।

दियारा-संज्ञा पुं० [फा० दयार = प्रदेश] (१) नदी के किनारे की वह जमीन जो नदी के हट जाने पर निकल आती है। कछार। खादर। दरिया-बरार। (२) दयार। प्रदेश। प्रांत। उ०—का बरनउँ धनि देस दियारा। जहँ अस नग उपजा उँजियारा।—जायसी।

दियासलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया+सलाई] लकड़ी की वह तीली या सलाई जो रगड़ने से जल उठती है।

विशेष—यह प्रायः एक अँगुल या इससे कुछ कम लंबी और पतली लकड़ी की सलाई होती है जिसके एक सिरे पर गंधक आदि कई भभकनेवाले मसाले लगे होते हैं। इस सिरे को रगड़ने से आग निकलती है जिससे सलाई जलने लगती है। जिस सलाई के सिरे पर गंधक लगी होती है वह हर एक कड़ी चीज पर रगड़ने से जल उठती है, पर जिसके सिरे

दिनवल–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह राशि जो दिन के समय बली हो।

विशेष—फलित ज्योतिष में बारह राशियों में से पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं ये छः राशियाँ दिनवल या दिनवली मानी जाती हैं और बाकी रात्रिवल।

दिनमणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। भास्कर। रवि। (२) आक। मंदार।

दिनमनि*†–संज्ञा पुं० दे० "दिनमणि"।

दिनमयूख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२)। आक। मंदार।

दिनमल–संज्ञा पुं० [सं०] मास। महीना।

दिनमान–संज्ञा पुं० [सं०] दिन का प्रमाण। दिन की अवधि। सूर्योदय से लेकर सूर्य्यास्त तक के समय का मान।

विशेष—दिन सदा घटता बढ़ता रहता है; अतः सुभीते के लिये हिसाब लगाकर यह जान लिया जाता है कि कौन दिन कितना बड़ा (कितनी घड़ियों और कितने पलों का) होगा। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का यही मान दिनमान कहलाता है।

दिनमाली–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनमुख–संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। सवेरा।

दिनरत्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) आक। मदार।

दिनराइ*–संज्ञा पुं० दे० "दिनराज"।

दिनराउ*–संज्ञा पुं० दे० "दिनराज"।

दिनराज–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

दिनशेष–संज्ञा पुं० [सं०] दिनांत। सायंकाल। संध्या।

दिनांड–संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा।

दिनांत–संज्ञा पुं० [सं०] सायंकाल। संध्या। शाम।

दिनांतक–संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधियारा।

दिनांध–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे दिन को न सूझे। जैसे उल्लू, चमगादड़ आदि।

दिनांश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन के प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में तीन अंश या विभाग। (२) दिन के पाँच अंश या विभाग जो इस प्रकार हैं—प्रातःकाल, संगव, मध्याह्न, अपराह्न और सायंकाल। इनमें से प्रत्येक अंश क्रमशः सूर्य्योदय के उपरांत तीन मुहूर्त तक माना जाता है।

दिनाइ†–संज्ञा पुं० [देश०] दाद। विशेष–दे० "दाद"।

दिनाई*†–संज्ञा स्त्री० [सं० दिन, हिं० आना] कोई ऐसी विषाक्त वस्तु जिसके खाने से थोड़े ही समय में मृत्यु हो जाय। अंतिम दिन (मृत्यु-काल) लानेवाली चीज। उ०—(क) काके सिर पढ़ि मंत्र दियो हम कहाँ हमारे पास दिनाई। —सूर। (ख) लगी मिम्म को अतुल दिनाई। तुरतहि मीच समय बिन आई।—लाल। (ग) कहै पद्माकर जो कोऊ नर जैसे तैसे तन देत गंगातीर तजिकै महान शोक। सो तौ देत व्याधें विष दुखन दिनाई देत पापन के पुंज को पहारन को ठोक ठोक। —पद्माकर।

दिनागम–संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। तड़का।

दिनाती–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिन + आती (प्रत्य०)] (१) मजदूरों, विशेषतः खेत में काम करनेवालों का एक दिन का काम। (२) मजदूरों की एक दिन की मजदूरी।

दिनादि–संज्ञा पुं० दे० "दिनागम"।

दिनाधीश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) आक। मदार।

दिनार–संज्ञा पुं० दे० "दीनार"।

दिनारु†–वि० [सं० दिनालु] बहुत दिनों का पुराना।

दिनार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न। दोपहर।

दिनावा–संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः हाथ भर लंबी एक प्रकार की मछली जो हिमालय तथा आसाम की नदियों में पाई जाती है। हरद्वार में यह बहुत अधिकता से होती है।

दिनास्त–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यास्त। दिनांत। संध्या।

दिनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन या मजदूरी।

दिनियर†*–संज्ञा पुं० [सं० दिनकर] सूर्य।

दिनी–वि० [हिं० दिन + ई (प्रत्य०)] बहुत दिनों का पुराना। प्राचीन। उ०—भली बुद्धि तेरे जिय उपजी। ज्यों ज्यों दिनी भई त्यों निपजी। —सूर।

दिनेर–संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, हिं० दिनियर] सूर्य। दिनकर। उ०—अनधन तीन सेर निसि माँहा। हौं दिनेर जेहि के तू छाँहा। —जायसी।

दिनेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) आक। मदार। (३) दिन के अधिपति ग्रह।

दिनेशात्मज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शनि। (२) यम। (३) सुग्रीव। (४) कर्ण।

दिनेश्वर–संज्ञा पुं० दे० "दिनेश"।

दिनेस–संज्ञा पुं० दे० "दिनेश"।

दिनौंधी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दिन + अंध + ई (प्रत्य०)] आँख का एक प्रकार का रोग जिसमें दिन के समय सूर्य की तेज किरणों के कारण बहुत कम दिखाई देता है।

दिपति*†–संज्ञा स्त्री० दे० "दीप्ति"।

दिपना*–क्रि० अ० [सं० दीप्ति] चमकना। प्रकाशमान होना। उ०—कोटि भानु दुति दिपत है मोहन छिगुरी छोर। याते बरनी ओट हूँ दृग हेरत वह ओर।—रसनिधि।

दिव–संज्ञा पुं० [सं० दिव्य] वह परीक्षा जो निर्दोषता या अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये कोई दे। जैसे, अग्निपरीक्षा आदि। उ०—(क) काहे को अपराध लगावति कब कीनी हम चोरी।..... जैसे जब चाहो तब तैसे आवन दिव में देहौं। (ख) साँप सभा सावर लयार भए

खुलना"। दिल खिलना=चित्त प्रसन्न होना। मन का प्रफुल्लित होना। दिल खोलकर=दे० "जी खोलकर"। दिल चलाना=दे० "मन चलाना"। दिल चलना=दे० "जी चलना"। दिल चुराना=दे० "जी चुराना"। दिल जमना=(१) किसी काम में चित्त लगना। ध्यान या जी लगना। जैसे, तुम्हारा दिल तो जमता ही नहीं, तुम काम कैसे करोगे? (२) किसी विषय या पदार्थ की ओर से चित्त का संतुष्ट होना। रुचि के अनुकूल होना। जी भरना। जैसे, (क) जिस चीज पर दिल ही नहीं जमता उसे लेकर क्या करेंगे? (ख) अगर तुम्हारा दिल जमे तो तुम भी हमारे साथ चलो। दिल जमाना=काम में ध्यान देना। चित्त लगाना। जी लगाना। जैसे, अगर तुम्हें काम करना हो तो दिल जमा कर किया करो। दिल जलना=दे० "जी जलना"। दिल जलाना=दे० "जी जलाना"। (किसी काम में) दिल जान से लगना=दे० "जी जान से लगना"। दिल टूटना या टूट जाना=दे० "जी टूट जाना"। दिल ठिकाने होना=मन में शांति संतोष या धैर्य होना। चित्त स्थिर होना। जी ठहरना। दिल ठिकाने लगाना=मन को शांत या संतुष्ट करना। जी को सहारा देना। व्याकुलता दूर करना। दिल ठुकना=दे० "जी ठुकना"। दिल ठोकना=मन को दृढ़ करना। जी पक्का करना (क्व०)। दिल डूबना=दे० "जी डूबना"। दिल तड़पना=चित्त का यों ही, विशेषतः किसी के प्रेम में, बहुत व्याकुल होना। बहुत अधिक घबराहट या बेचैनी होना। उ०—दिल तड़प कर रह गया जब याद आई यार की। दिल तोड़ना=हिम्मत तोड़ना। हतोत्साह करना। साहस भंग करना। दिल दहलना=दे० "जी दहलना"। दिल दुखना=दे० "जी दुखना"। दिल दुखाना=दे० "जी दुखाना"। दिल देखना=किसी के मन की परीक्षा करना। रुचि या प्रवृत्ति का पता लगाना। जी की थाह लेना। मन टटोलना। जैसे, हमें रुपयों की कोई जरूरत नहीं है; हम तो खाली तुम्हारा दिल देखते थे। दिल देना=आशिक होना। प्रेम करना। आसक्त होना। मुहब्बत में पड़ना। दिल दौड़ना=दे० "जी दौड़ना"। दिल दौड़ाना=(१) जी चलाना। इच्छा या लालसा करना। (२) ध्यान दौड़ाना। चिंतन करना। सोचना। दिल धड़कना=दे० "कलेजा धड़कना"। दिल पक जाना=दे० "कलेजा पक जाना"। दिल पकड़ लेना या दिल पकड़ कर बैठ जाना=दे० "कलेजा पकड़ लेना"। दिल पकड़ा जाना=दे० "जी पकड़ा जाना"। दिल पकड़े फिरना=प्रेम से व्याकुल होकर इधर उधर फिरना। विकल होकर घूमना। दिल पर नक्श होना=किसी बात का जी में जम जाना। जी में बैठ जाना। हृदयंगम होना। दिल पर मैल आना=मन मोटाव होना। पहले का सा प्रेम या सद्भाव न रह जाना। प्रीति-भंग होना। जी फट जाना। दिल पर साँप लोटना=दे० "कलेजे पर साँप लोटना"। दिल पर हाथ रक्खे फिरना=दे० "दिल पकड़े फिरना"। दिल पसीजना=दे० "दिल पिघलना"। दिल पाना=आशय जानना। अंतःकरण की बात जानना। मन की थाह पाना। दिल पीछे पड़ना=दे० "जी पीछे पड़ना"। दिल फटना या फट जाना=दे० "जी फट जाना"। दिल फिरना या फिर जाना=दे० "जी फिर जाना"। दिल फीका होना=दे० "जी खट्टा होना"। दिल बढ़ना=दे० "जी बढ़ना"। दिल बढ़ाना=दे० "जी बढ़ाना"। दिल बहलना=दे० "जी बहलना"। दिल बहलाना=दे० "जी बहलाना"। दिल बुझना=चित्त में किसी प्रकार का उत्साह या उमंग न रह जाना। मन मरना। दिल बुरा होना=दे० "जी बुरा होना"। दिल बेकल होना=बेचैनी होना। घबराहट होना। दिल बैठा जाना=दे० "जी बैठा जाना"। दिल भटकना=चित्त का व्यग्र या चंचल होना। मन में इधर उधर के विचार उठना। दिल भर आना=दे० "जी भर आना"। दिल भरना=दे० "जी भरना"। दिल भारी करना=दे० "जी भारी करना"। दिल मसोसना=शोक, क्रोध या किसी दूसरे तीव्र मनोवेग को मन में ही दबा रखना। दिल मारना=दे० "मन मारना"। दिल मिलना=दे० "जी मिलना" या "मन मिलना"। दिल में आना=दे० "जी में आना"। दिल में गड़ना या खुभना=दे० "जी में गड़ना या खुभना"। दिल में गाँठ या गिरह पड़ना=दे० "गाँठ" के अंतर्गत "मन में गाँठ पड़ना"। दिल में घर करना=दे० "जी में घर करना"। दिल में चुटकियाँ या चुटकी लेना=दे० "चुटकी लेना"। दिल में चुभना=दे० "जी में गड़ना या खुभना"। दिल में चोर बैठना=दे० "मन में चोर बैठना"। दिल में जगह करना=दे० "जी में घर करना"। दिल में फफोले पड़ना=चित्त को बहुत अधिक कष्ट पहुँचना। मन में बहुत दुःख होना। दिल में फरक आना=सद्भाव में अंतर पड़ना। मन-मोटाव होना। दिल में बल पड़ना=दे० "दिल में फरक आना"। दिल में रखना=दे० "जी में रखना"। दिल मैला करना=चित्त में दुर्भाव उत्पन्न करना। मन मैला करना। दिल रुकना=दे० "जी रुकना"। (किसी का) दिल रखना=दे० "जी रखना"। दिल लगना=दे० "जी लगना"। दिल लगाना=दे० "जी लगाना"। दिल ललचना=दे० "जी ललचना"। दिल लेना=(१) किसी को अपने पर आसक्त करना। अपने प्रेम में फँसाना। (२) अंतःकरण की बात जानना। मन की थाह लेना। दिल लोटना=दे० "जी लोटना"। दिल से उतरना या गिरना=दृष्टि से गिर जाना। प्रिय या आदरणीय न

पर और मसाले लगे होते हैं वह विशिष्ट मसालों से बने हुए तल पर ही रगड़ने से जलती है। इसके अतिरिक्त चिनगारी या आग से इस सिरे का स्पर्श कराने से भी सलाई जल उठती है। छोटी चौकोर डिबिया में दियासलाइयाँ बंद रहती हैं; और उसी डिबिया के एक पार्श्व पर वह मसाला लगा होता है जिस पर रगड़ने से सलाई जलती है। लकड़ी के अतिरिक्त एक प्रकार की मोम की बनी हुई दियासलाई होती है जो अपेक्षाकृत अधिक समय तक जलती रहती है। आज कल वैज्ञानिकों ने कागज आदि की भी सलाई बनाई है। सलाई का व्यवहार दीया जलाने और आग सुलगाने आदि के लिये होता है।

क्रि० प्र०—घिसना।—जलाना।—रगड़ना।

मुहा०—दियासलाई लगाना = आग लगाना। जलाना। जैसे, यह किताब तो दियासलाई लगाने लायक है।

दिर-संज्ञा पुं० [अनु०] सितार का एक बोल। जैसे, दिर दा दिर दारा दारा दा दार दार दा दार। दिर दा दिर दारा दा दिर दारा दा दिर दारा दार दार दा दार।

दिरद*-संज्ञा पुं० दे० "द्विरद"।

दिरम-संज्ञा पुं० [अ० दरहम] (१) मिस्र देश का चाँदी का एक सिक्का। दिरहम। (२) साढ़े तीन माशे की एक तौल।

दिरमान†-संज्ञा पुं० [फा० दरमानः] चिकित्सा। इलाज।

दिरमानी-संज्ञा पुं० [फा० दरमानः = चिकित्सा + ई (प्रत्य०)] वैद्य। चिकित्सक। इलाज करनेवाला। उ०—मैं हरि साधन करै न जानी। जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कहा दिरमानी।—तुलसी।

दिरहम-संज्ञा पुं० [फा० दरहम] दिरम नाम का सिक्का। दे० "दिरम"।

दिरानी†-संज्ञा० स्त्री० दे० "देवरानी"।

दिरिस*†-संज्ञा पुं० दे० "दृश्य"।

दिरेस-संज्ञा पुं० [अं० ड्रेस] (१) महीन कपड़े पर छपी हुई एक प्रकार की छींट। दरेस। (२) सँवारने या ठीक करने की क्रिया।

वि० सँवारा या ठीक किया हुआ। लैस। दुरुस्त।

दिर्हम-संज्ञा पुं० दे० "दिरम"।

दिल-संज्ञा पुं० [फा०] (१) कलेजा।

मुहा०—दिल उलटना = दे० "कलेजा उलटना"। दिल मलना = दे० "कलेजा मलना"। दिल मसोस कर रह जाना—दे० "कलेजा मसोस कर रह जाना"। दिल धुकड़ पुकड़ करना या होना = दे० "कलेजा धुकड़ पुकड़ होना"। दिल धक धक करना या होना = दे० "कलेजा धक धक करना।"

(२) मन। चित्त। हृदय। जी।

यौ०—दिलगीर। दिलगुरदा। दिलचला। दिलचस्प। दिलचोर। दिलजमई। दिलजला। दिलदरिया। दिलदार। दिलवर। दिलरुबा।

मुहा०—(किसी से) दिल अटकना—दे० "जी लगना"। (किसी से) दिल अटकाना = दे० "जी लगाना"। (किसी पर) दिल आना = दे० (किसी पर) "जी आना"। दिल उकताना = दे० "जी उकताना"। दिल उचटना = दे० "जी उचटना"। दिल उचाट होना = दे० "जी उचाट होना"। दिल उठाना = दे० "जी हटाना"। दिल उमड़ना = दे० "जी भर आना"। दिल उलटना = (१) दे० "जी घबराना"। (२) दे० "जी मिचलाना"। दिल उठाना = चित्त हटाना। मन फेर लेना। दिल कड़ा करना = हिम्मत बाँधना। साहस करना। चित्त में दृढ़ता लाना। दिल कड़ुवा करना = दे० "दिल कड़ा करना"। दिल कबाब होना = दे० "जी जलना"। दिल करना = दे० "जी करना"। दिल का कँवल खिलना = चित्त प्रसन्न होना। मन में आनंद होना। दिल का गवाही देना = मन को किसी बात की संभावना या औचित्य का निश्चय होना। इस बात का विचार में आना कि कोई बात होगी या नहीं; अथवा यह बात उचित है या नहीं। जैसे, (क) हमारा दिल गवाही देता है कि वह जरूर आवेगा। (ख) उनके साथ जाने के लिये हमारा जी गवाही नहीं देता। दिल का बुखार निकलना = दे० "जी का बुखार निकलना"। दिल का बादशाह = (१) बहुत बड़ा उदार। (२) मनमौजी। लहरी। दिल का बुखार निकालना = दे० "जी का बुखार निकालना"। दिल का भर आना = दे० "जी भर आना"। दिल की दिल में रहना। = दे० "जी की जी में रहना"। दिल की फाँस = मन की पीड़ा या दुःख। दिल कुढ़ना = चित्त का दुखी होना। रंज होना। दिल कुढ़ाना = चित्त को दुखी करना। रंज करना। दिल कुम्हलाना = चित्त का दुखी वा शोकाकुल होना। मन का सुस्त होजाना। (किसी के) दिल के दरवाजे खुलना = (किसी के) जी का हाल मालूम होना। मन की बात प्रकट होना। दिल के फफोले फूटना = चित्त का उद्गार निकलना। दिल के फफोले फोड़ना = हृदय का उद्गार निकालना। किसी को भली बुरी सुनाकर अपना जी ठंढा करना। जली कटी कह कर अपना चित्त शांत करना। दिल को करार होना = चित्त में धैर्य्य या शांति होना। हृदय का शांत या संतुष्ट होना। दिल को मसोसना = शोक या क्रोध आदि तीव्र मनोवेगों को मन में ही दबा रखना। चित्त के उद्गार को किसी कारणवश निकलने न देना। दिल को लगना = हृदय पर पूरा या गहरा प्रभाव पड़ना। किसी बात का जी में बैठना। चित्त में चुभना। जैसे, उनकी सब बातें हमारे दिल को लग गईं। दिल खट्टा होना = दे० "जी खट्टा होना।" दिल खटकना = दे० "जी खटकना"। दिल खुलना = दे० "जी

मर्त्य लोक में अपनी स्त्री से मिलने के लिये आते समय स्वर्गीय गौ सुरभि की पूजा करना भूल गए थे। इसलिये उसने उन्हें शाप दिया कि जब तक तुम मेरी नंदिनी की सेवा न करोगे तब तक तुम्हें पुत्र न होगा। इस पर वे नंदिनी की सेवा करने लगे। एक बार एक शेर ने नंदिनी को खाना चाहा। दिलीप ने उसकी रक्षा के लिये अपने आपको उस शेर के आगे डाल दिया। इससे सुरभि प्रसन्न हो गई और सुदक्षिणा के गर्भ से रघु की उत्पत्ति हुई। लिंग पुराण में लिखा है कि ये बड़े बुद्धिमान थे और इन्होंने तीनों लोकों और तीनों अग्नियों को जीत लिया था। एक बार एक मुहूर्त्त के लिये ये स्वर्ग से मर्त्य लोक में भी आए थे। आगे चलकर इन्होंने फिर इसी वंश में ऐलिविलि राजा के घर में जन्म लिया था। हरिवंश के अनुसार भी दिलीप राजा सगर के परपोते और भगीरथ के पुत्र थे। आगे चलकर इन्होंने एक बार फिर इसी वंश में जन्म लिया था। (२) चन्द्रवंशी राजा कुरु के वंशज एक राजा का नाम।

दिलीर—संज्ञा पुं० [सं०] भुइँफोड़। ढिँगरी।

दिलेर—वि० [फा०] (१) बहादुर। शूर। वीर। (२) साहसी। दिलवाला।

दिलेरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बहादुरी। वीरता। (२) साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

दिल्लगी—संज्ञा स्त्री० [फा० दिल + हिं० लगना] (१) दिल लगाने की क्रिया या भाव। (२) वह व्यापार, घटना या बात आदि जिसकी विलक्षणता आदि के कारण चित्त का विनोद और मनोरंजन हो। केवल चित्त विनोद या हँसने हँसाने की बात। ठट्ठा। ठठोली। मज़ाक। मखौल। मसखरी। जैसे, (क) आप आजकल बहुत दिल्लगी करने लगे हैं। (ख) कल रातवाले झगड़े में अच्छी दिल्लगी देखने में आई। (ग) दोनों का सामना होगा तो बड़ी दिल्लगी होगी।

मुहा०—किसी बात की दिल्लगी उड़ाना = (किसी बात को) अमान्य और मिथ्या ठहराने के लिये (उसे) हँसी में उड़ा देना। हँसी की बात कह कर टाल देना। उपहास करना। जैसे, (क) आप तो सब की योंही दिल्लगी उड़ाया करते हैं। (ख) उन्होंने तुम्हारी किताब की खूब दिल्लगी उड़ाई। दिल्लगी में = केवल दिल्लगी के विचार से। यों ही। हँसी में। जैसे, मैंने उन्हें दिल्लगी में ही यहाँ से जाने के लिये कहा था, पर वे नाराज़ होकर चले गए।

दिल्लगीबाज़—संज्ञा पुं० [हिं० दिल्लगी + फा० बाज़] वह जो सदा दूसरों को हँसानेवाली बात कहता हो। हँसी या दिल्लगी करनेवाला। मसखरा। ठठोल। हँसोड़। मखौलिया।

दिल्लगीबाज़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिल्लगी + फा० बाज़ी] (१) दिल्लगी करने का काम। (२) दे० "दिल्लगी"।

दिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] किवाड़ के पल्ले में लकड़ी का वह चौखटा जो शोभा के लिये बना या जड़ दिया जाता है। आइना।

विशेष—किवाड़ों में शोभा के लिये या तो चौकोर छेद करके उसमें शीशे की तरह लकड़ी का चौकोर टुकड़ा फिर से बैठा देते हैं अथवा पल्ले का ही कुछ अंश काटकर और कुछ उभाड़दार छोड़कर इस प्रकार बना देते हैं कि वह देखने में एक अलग चौकोर टुकड़ा सा जान पड़ता है। इसी को दिल्ला या दिलहा कहते हैं।

शीशा शीशा

दिल्ला

दिल्ली—संज्ञा स्त्री० जमुना नदी के किनारे बसा हुआ उत्तरपश्चिम भारत का एक बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन नगर जो बहुत दिनों तक हिंदू राजाओं और मुसलमान बादशाहों की राजधानी था और जो सन् १९१२ में फिर ब्रिटिश भारत की भी राजधानी हो गया है। जिस स्थान पर वर्त्तमान दिल्ली नगर है उस के चारों ओर १०—१२ मील के घेरे में भिन्न भिन्न स्थानों में यह नगर कई बार बसा और कई बार उजड़ा। कुछ लोगों का मत है कि इंद्रप्रस्थ के मयूरवंशी अंतिम राजा दिलू ने इसे पहले पहल बसाया था, इसीसे इसका नाम दिल्ली पड़ा। यह भी प्रवाद है कि पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ने एक बार एक गढ़ बनवाना चाहा था। उसकी नीव रखने के समय उनके पुरोहित ने अच्छे मुहूर्त्त में लोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लगी है जिसके कारण आपके तोंअर वंश का राज्य अचल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्होंने वह कील उखड़वा दी। कील उखाड़ते ही वहाँ से लहू की धारा निकलने लगी। इस पर राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने फिर वही कील उस स्थान पर गड़वाई पर इस बार वह ठीक नहीं बैठी, कुछ ढीली रह गई। इसी से उस स्थान का नाम "ढीली" पड़ गया जो बिगड़कर दिल्ली हो गया। पर कील

रह जाना। विरक्ति-भाजन होना। दिल से=(१) जी लगाकर। अच्छी तरह। ध्यान देकर। (२) अपने मन से। अपनी इच्छा से। दिल से उठना=आपसे आप कोई काम करने की प्रवृत्ति होना। जैसे, जब तुम्हारे दिल से ही नहीं उठता, तब बार बार कहकर तुम से कोई क्या काम करावेगा? दिल से दूर करना=भुला देना। विसरण करना। ध्यान छोड़ देना। दिल हट जाना=दे० "जी फिर जाना"। (किसी का) दिल हाथ में रखना=किसी को प्रसन्न रखना। किसी के मन को अपने वश में रखना। दिल हाथ में लेना=किसी को प्रसन्न करके अपने अधिकार में रखना। वशीभूत रखना। दिल हिलना=दे० "जी दहलना"। दिल ही दिल में=चुपके चुपके। गुप्त भाव से। मन ही मन। दिलो जान से=दे० "जी जान से"।

(३) साहस। दम। जिगट।

मुहा०—दिल-दिमाग़ का (आदमी)=बहुत साहसी और समझदार (आदमी)।

यौ०—दिलदार।

(४) प्रवृत्ति। इच्छा।

दिलगीर-वि० [फ़ा०] (१) उदास। (२) दुखी। शोकाकुल।

दिलगीरी-संज्ञा पुं० [फ़ा० दिलगीर+ई० (प्रत्य०)] (१) उदासी। (२) रंज। दुःख।

दिलगुरदा-संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल+गुरदा] हिम्मत। साहस। बहादुरी।

दिलचला-वि० [फ़ा० दिल+हिं० चलना] (१) साहसी। हिम्मतवाला। दिलेर। (२) शूर। वीर। बहादुर। (३) दाता। दानी। उदार। (४) पागल। (क्व०)

दिलचस्प-वि० [फ़ा०] जिसमें जी लगे। मनोहर। चित्ताकर्षक।

दिलचस्पी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) दिल का लगना। (२) मनोरंजन।

दिलचोर-वि० [फ़ा० दिल+हिं० चोर] जो काम करने से जी चुराता हो। कामचोर।

दिलजमई-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिल+अ० जमअ़+ई० (प्रत्य०)] इतमीनान। तसल्ली। संतोष।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—रखना।

दिलजला-वि० [फ़ा० दिल+हिं० जलना] जिसका जी जला हो। जिसके चित्त को बहुत कष्ट पहुँचा हो। अत्यंत दुखी।

दिलदरिया-संज्ञा पुं० दे० "दरियादिल"।

दिलदरियाव-संज्ञा पुं० दे० "दरियादिल"।

दिलदार-वि० [फ़ा०] (१) उदार। दाता। (२) रसिक। (३) प्रेमी। प्रिय। वह जिससे प्रेम किया जाय।

दिलदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिलदार+ई० (प्रत्य०)] (१) उदारता। (२) रसिकता। (३) प्रेमिकता।

दिलपसंद-वि० [फ़ा०] मनोहर। जो भला मालूम हो।

संज्ञा पुं० (१) फुलवर या चुनरी की तरह का एक प्रकार का कपड़ा जिसपर बेल-बूटे आदि छपे हुए होते हैं और जो साड़ी आदि बनाने के काम में आता है। (२) एक प्रकार का आम।

दिलबर-वि० [फ़ा०] जिससे प्रेम किया जाय। प्यारा। प्रिय।

दिलबहार-संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल+बहार] ख़शख़ाशी रंग का एक भेद।

दिलरुबा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिससे प्रेम किया जाय। प्यारा।

दिलवल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

दिलवाना-क्रि० स० दे० "दिलाना"।

दिलवाला-वि० [फ़ा० दिल+वाला (प्रत्य०)] (१) उदार। दाता। जो ख़ूब देता हो। (२) बहादुर। दिलेर। साहसी।

दिलवैया-वि० [हिं० दिलवाना+ऐया (प्रत्य०)] दिलवानेवाला। जो दूसरे को दिलाता हो।

दिलहा-संज्ञा पुं० दे० "दिल्ला"।

दिलहेदार-वि० दे० "दिल्लेदार"।

दिलाना-क्रि० स० [हिं० देना का प्रे०] (१) दूसरे को देने में प्रवृत्त करना। देने का काम दूसरे से कराना। दिलवाना। जैसे, रुपया दिलाना, काम दिलाना। (२) प्राप्त कराना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः ऐसी ही बातों के संबंध में होता है जिनकी प्राप्ति किसी तीसरे व्यक्ति पर निर्भर न हो बल्कि जो स्वयं उसी मनुष्य में उत्पन्न की जा सकें। जैसे, सुध दिलाना, कसम दिलाना, ध्यान दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

दिलावर-वि० [फ़ा०] (१) शूर। बहादुर। जवाँमर्द। (२) उत्साही। साहसी।

दिलावरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बहादुरी। शूरता। (२) साहस।

दिलासा-संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल+हिं० आसा] तसल्ली। ढाढस। आश्वासन। धैर्य्य। प्रबोध।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—दम दिलासा=(१) तसल्ली। धैर्य्य। (२) दम बुत्ता। धोखा। फरेब।

दिली-वि० [फ़ा० दिल+ई (प्रत्य०)] (१) हार्दिक। हृदय या दिल संबंधी। जैसे, दिली मुराद। (२) अत्यंत घनिष्ट। अभिन्न हृदय। जिगरी। जैसे, दिली दोस्त।

दिलीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकुवंशी राजा जो वाल्मीकि के अनुसार राजा सगर के परपोते, भगीरथ के पिता और रघु के परदादा थे। लेकिन रघुवंश के अनुसार इन्हीं राजा दिलीप की स्त्री सुदक्षिणा के गर्भ से राजा रघु उत्पन्न हुए थे। रघुवंश में लिखा है कि राजा दिलीप एक बार स्वर्ग से

दिवामध्य–संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न । दोपहर ।

दियार†–संज्ञा स्त्री० दे० "दीवार" ।

दियारी†–संज्ञा स्त्री० दे० "दीवाली" ।

दिवाल–वि० [हिं० देना + वाल (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो । जैसे, यह एक पैसे के दिवाल नहीं है (बाजारू) । † संज्ञा स्त्री० दे० "दीवार" ।

दिवालय†–संज्ञा पुं० दे० "देवालय" ।

दिवाला–संज्ञा पुं० [हिं० दिया + बालना = जलाना] (१) वह अवस्था जिसमें मनुष्य के पास अपना ऋण चुकाने के लिये कुछ न रह जाय । पूँजी या आय न रह जाने के कारण ऋण चुकाने में असमर्थता । कर्ज न चुका सकना । टाट उलटना ।

विशेष–जब किसी मनुष्य को व्यापार आदि में बहुत घाटा आता है अथवा उसका ऋण बहुत बढ़ जाता है और वह उस ऋण के चुकाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब उसका दिवाला होना मान लिया जाता है । इस देश में प्राचीन काल में अपनी यह असमर्थता प्रकट करने के लिये ऋणी व्यापारी अपनी दूकान का टाट उलट देते थे और उस पर एक चौमुखा दीया जला देते थे जिससे लोग समझ लेते थे कि अब इनके पास कुछ भी धन नहीं बचा और इनका दिवाला हो गया । इसी दीया बालने (जलाने) से "दिवाला" शब्द बना है । आज कल प्रायः सभी सभ्य देशों में दिवाले के संबंध में कुछ कानून बन गए हैं जिनके अनुसार वह मनुष्य जो अपना बढ़ा हुआ ऋण चुकाने में असमर्थ होता है, किसी निश्चित न्यायालय में जाकर अपने दिवाले की दरख्वास्त देता है और यह बतला देता है कि मुझे बाजार का कितना देना है और इस समय मेरे पास कितना धन या सम्पत्ति है । इस पर न्यायालय की ओर से एक मनुष्य, विशेषतः वकील या और कोई कानून जाननेवाला नियुक्त कर दिया जाता है जो उसकी बची हुई सारी सम्पत्ति नीलाम करके और उसका सारा लहना वसूल करके हिस्से के मुताबिक उसका सारा कर्ज चुका देता है । ऐसी दशा में मनुष्य को अपने ऋण के लिये जेल जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

मुहा०—दिवाला निकलना = दिवाला होना । दिवाला निकालना या मारना = दिवालिया बन जाना । ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाना ।

(२) किसी पदार्थ का बिलकुल न रह जाना । जैसे, ज्योनारवाले दिन उनके यहाँ पूरियों का दिवाला हो गया ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

दिवालिया–वि० [हिं० दिवाला + इया (प्रत्य०)] जिसने दिवाला निकाला हो । जिसके पास ऋण चुकाने के लिये कुछ न बच गया हो ।

दिवाली–संज्ञा स्त्री० दे० "दीवाली" ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] खराद या सान में लपेटने का वह तसमा जिसे खींच कर उसे चलाते हैं । बद्धी ।

दिवि–संज्ञा पुं० दे० "दिव" ।

संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ पक्षी ।

दिविता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दीप्ति ।

दिविदिवि–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो दक्षिण अमेरिका से भारतवर्ष में आया है । यह प्रायः धारवाड़, कनारा, बीजापुर, खानदेश इत्यादि नगरों में अधिकता से उत्पन्न होता है । चमड़ा सिझाने और रंगने के काम में इस की पत्तियों आदि का व्यवहार होता है ।

दिविरथ†–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार, पुरुवंशी राजा भूमन्यु के पुत्र का नाम । (२) हरिवंश के अनुसार अंगदेश के राजा दधिवाहन के पुत्र का नाम ।

दिविषत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देव । देवता । (२) स्वर्गवासी ।

दिविष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ ।

दिविष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग में रहनेवाले, देवता । (२) ईशान कोण के एक देश का नाम जिसका उल्लेख बृहत् संहिता में है ।

दिवेश–संज्ञा पुं० [सं०] दिग्पाल ।

दिवैया–वि० [हिं० देना + वैया (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो ।

दिवोका–संज्ञा पुं० दे० "दिवौका" ।

दिवोदास–संज्ञा पुं० (१) चंद्रवंशी राजा भीमरथ के एक पुत्र का नाम जिनका उल्लेख काशीखंड और महाभारत में है । ये इंद्र के उपासक और काशी के राजा थे और धन्वंतरि के अवतार माने जाते हैं । महाभारत में लिखा है कि ये राजा सुदेव के पुत्र थे और इंद्र ने शंबर राक्षस की १०० पुरियों में से ९९ पुरियाँ नष्ट करके बाकी एक पुरी इन्हीं को दी थी । इनके पिता के शत्रु वीतहव्य के पुत्रों ने युद्ध में इन्हें परास्त किया था । इस पर ये भारद्वाज मुनि के आश्रम में चले गए । वहाँ मुनि ने इनके लिये एक यज्ञ किया जिसके प्रभाव से इनके प्रतर्दन नामक एक वीर पुत्र हुआ जिसने वीतहव्य के पुत्रों को युद्ध में मार डाला । सुदास नामक इनका एक पुत्र और था । महादेव ने इन्हींसे काशी ली थी । काशीखंड के अनुसार पहले इनका नाम रिपुंजय था । इन्होंने काशी में बहुत तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें पृथ्वी पालन करने का वर दिया । नागराज ने अपनी अनंगमोहिनी नाम की कन्या इन्हें दी थी । देवताओं ने इन्हें आकाश से पुष्प और रत्न आदि दिए थे, इसीसे इनका नाम दिवोदास हो गया । (२) हरिवंश के अनुसार महर्षि इंद्रसेन के पौत्र और वध्रश्व के पुत्र का नाम जो मेनका के गर्भ

वा स्तंभ पर जो शिलालेख है उससे इस प्रवाद का पूरा खंडन हो जाता है क्योंकि उसमें अनंगपाल से बहुत पहले के किसी चंद्र नामक राजा (शायद चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य) की प्रशंसा है। नाम के विषय में चाहे जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि ईसवी पहली शताब्दी के बाद से यह नगर कई बार वसा और उजड़ा। सन् ११६३ में मुहम्मद गोरी ने इस नगर पर अधिकार कर लिया। तभी से यह मुसलमान बादशाहों की राजधानी हो गया। सन् १३६८ में इसे तैमूर ने ध्वंस किया और १५२६ में बाबर ने इस पर अधिकार किया। तब से यहाँ मोगल साम्राज्य की राजधानी हो गई। सन् १८०३ में इस पर अंगरेजों का अधिकार हो गया। पहले अँगरेजी भारत की राजधानी कलकत्ते में थी; पर सन् १९१२ से उठकर दिल्ली चली गई। आज कल वर्त्तमान दिल्ली के पास एक नई दिल्ली बसाई जा रही है।

दिल्लीवाल–वि० [हिं० दिल्ली + वाल (प्रत्य०)] (१) दिल्ली संबंधी। दिल्ली का। (२) दिल्ली का रहनेवाला।
संज्ञा पुं० दिल्ली का बना हुआ एक प्रकार का देसी जूता।

दिल्लेदार–वि० [देश० दिलहा + फा० दार] दिलहेवाला (किवाड़)। जिसमें दिलहा बना या लगा हो।

दिव्–संज्ञा पुं० दे० "दिव"।

दिव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) आकाश। (डिं०)। (३) वन। (४) दिन।

दिवगृह–संज्ञा पुं० दे० "देवगृह"।

दिवराज–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के राजा, इंद्र। उ०—सूरदास प्रभु कृपा करहिंगे शरण चलौ दिवराज।—सूर।

दिवरानी–संज्ञा स्त्री० दे० "देवरानी"

दिवली–संज्ञा स्त्री० दे० "दिउली"।

दिवस–संज्ञा पुं० [सं०] दिन। वासर। रोज।

दिवस-अंध*संज्ञा पुं० दे० "दिवांध"।

दिवसकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। दिनकर। (२) मदार का पेड़।

दिवसनाथ–संज्ञा पुं० दे० "दिवसमणि"।

दिवसमणि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य

दिवसमुख–संज्ञा पुं० [सं०] सवेरा। प्रातःकाल।

दिवसमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन। एक दिन की तनखाह।

दिवसेश–संज्ञा पुं० दे० "दिवसेश्वर"।

दिवस्पति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) तेरहवें मन्वंतर के इंद्र का नाम।

दिवस्पृश्–संज्ञा पुं० [सं०] (वामनावतार में) पैर से स्वर्ग को छूनेवाले, विष्णु।

दिवांध–वि० [सं०] जिसे दिन में न सूझे। जिसे दिनौंधी हो।
संज्ञा पुं० (१) दिनौंधी का रोग। (२) उल्लू।

दिवांधकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] छुछूँदर।

दिवा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन। दिवस। (२) २२ अक्षरों का एक वर्णवृत्त। एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ७ भगण और १ गुरु होता है। इसके दूसरे नाम "मालिनी" और "मदिरा" भी है। उ०—भातस गौरि गुसाइन कों वर राम धनू दुइ खंड कियो। दे० "दीया"।

दिवाकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। भास्कर। रवि। (२) काक। कौवा। (३) मदार। आक। (४) एक फूल।

दिवाकीर्ति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नापित। नाऊ। नाई। हज्जाम। (प्राचीन काल में नाइयों को केवल दिन के समय ही नगर आदि में घूमने का अधिकार था, इसीसे यह नाम पड़ा) (२) चांडाल। (३) उल्लू।

दिवाकीर्त्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह सामगान जो साल भर में होनेवाले गवानयन यज्ञ में विषुव संक्रांति के दिन गाया जाता है।

दिवाचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) चांडाल।

दिवाटन–संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौवा।

दिवातन–संज्ञा पुं० [सं० दिवा + तन ?] एक दिन की मज़दूरी। एक दिन की तनखाह।
वि० दिन भर का। रोजाना। प्रति दिन का।

दिवान–संज्ञा पुं० दे० "दीवान"।

दिवाना–संज्ञा पुं० दे० "दीवाना"। उ०—सूरदास प्रभु मिलिकै बिछुरे ताते भई दिवानी।—सूर।
*† क्रि० स० दे० "दिलाना"।

दिवानाथ–संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य।

दिवानी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो बरमा में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी ईंट के रंग की लाल होती है जिस पर भूरी और नारंगी रंग की धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसके मेज कुरसी आदि सजावट के सामान बनाए जाते हैं।
संज्ञा स्त्री० दे० "दीवानी"।

दिवापृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

दिवाभिसारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो दिन के समय अपने प्रेमी से मिलने के लिये, शृंगार करके, संकेत स्थान में जाय।

दिवाभीत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। तस्कर। (२) उल्लू।

दिवामणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) अर्क। मदार।

दिन के भीतर उक्त देवता के कोप से अभियुक्त को कोई घोर दुःख न होता तो वह निर्दोष या सच्चा माना जाता था। इसी प्रकार की और भी परीक्षाएँ थीं।

(२२) शपथ विशेषतः देवताओं आदि की शपथ। सौगंद। कसम।

क्रि० प्र०—देना।

दिव्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का साँप। (२) एक प्रकार का जंतु।

दिव्यकट—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार प्राचीन काल का एक देश जो पश्चिम दिशा में था।

दिव्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलौकिक तनत्राण। देवताओं का दिया हुआ कवच। (२) वह स्तोत्र जिसका पाठ करने से अंगरक्षा हो। जैसे रामरक्षा, नारायणकवच, देवीकवच।

दिव्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य के द्वारा परीक्षा लेने की क्रिया। विशेष—दे० "दिव्य" (२१)।

दिव्यगंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग। (२) गंधक।

दिव्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी इलायची। (२) बड़ी चेंच का साग।

दिव्यगायन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में गानेवाले, गंधर्व।

दिव्यचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यचक्षुस्] (१) ज्ञान-चक्षु। (२) अंधा। वह जिसे कुछ भी दिखाई न दे। (३) चश्मा। ऐनक। (४) बंदर। (५) एक प्रकार का गंधद्रव्य।

दिव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिव्य का भाव। (२) देवभाव। (३) सुंदरता। उत्तमता।

दिव्यतेज—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतेजस्] ब्राह्मी बूटी।

दिव्यदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

दिव्यदोहद—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो किसी अभीष्ट की सिद्धि के अभिप्राय से किसी देवता को अर्पित किया जाय।

दिव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अलौकिक दृष्टि जिससे गुप्त, परोक्ष अथवा अंतरिक्ष के पदार्थ दिखाई दें। जैसे, आपने यहीं बैठे बैठे दिव्यदृष्टि से देख लिया कि बारात वहाँ पहुँच गई। (व्यंग्य)। (२) ज्ञान-दृष्टि।

दिव्यधर्मी—संज्ञा पुं० [सं०] सुशील। नेक। वह जिसका स्वभाव बहुत अच्छा हो।

दिव्यनगर—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावती नगरी।

दिव्यनदी—संज्ञा स्त्री० [सं] (१) आकाश गंगा। (२) शिवपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

दिव्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।

दिव्यपंचामृत—संज्ञा पुं० [सं०] घी, दूध, दही, मक्खन और चीनी इन पाँच चीजों को मिलाकर बनाया हुआ पंचामृत।

दिव्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

दिव्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा गूमा जिसका पेड़ मनुष्य के बराबर ऊँचा और फूल लाल होता है। बड़ी द्रोण पुष्पी।

दिव्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रंग का मदार।

दिव्ययमुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामरूप देश की एक नदी जो बहुत पवित्र मानी जाती है और जिसका माहात्म्य पुराणों में है

दिव्यरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] चिंतामणि नामक कल्पित रत्न जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह सब कामनाएँ पूरी करता है।

दिव्यरथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का विमान।

दिव्यरस—संज्ञा पुं० [सं०] पारद। पारा।

दिव्यलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वालता। मूरहरी। मुरनहार।

दिव्यवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य का प्रकाश।

दिव्यवाक्य संज्ञा पुं० [सं०] देववाणी। आकाशवाणी।

दिव्यवाह—संज्ञा स्त्री [सं०] वृषभानु गोप की छः कन्याओं में से एक।

दिव्यश्रोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कान जिससे सब कुछ सुना जाय।

दिव्यसरिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यसरित्] आकाश गंगा।

दिव्यसानु—संज्ञा पुं० [सं०] एक विश्वदेव।

दिव्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष। साखू का पेड़।

दिव्यसूरि—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय के बारह आचार्य जिनके नाम ये हैं, (१) कासार। (२) भूत। (३) महत्। (४) भक्त सार (५) शठारि। (६) कुलशेखर। (७) विष्णुचित्त। (८) भक्तांघ्रिरेणु। (९) मुनिवाह। (१०) चतुष्कविंद्र। (११) रामानुज। (१२) गोदा देवा या मधुकरकवि।—रघुराज।

दिव्यस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यांगना। अप्सरा।

दिव्यांगना—संज्ञा स्त्री० [सं०] देववधू। अप्सरा।

दिव्यांशु—संज्ञा पुं० [सं] सूर्य्य।

दिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आँवला। (२) बाँझ ककोड़ा। (३) महामेदा। (४) ब्राह्मी जड़ी। (५) बड़ा जीरा। (६) सफेद दूब। (७) हड़। (८) कपूर कचरी। (९) शतावर। (१०) तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। स्वर्गीय या अलौकिक नायिका। जैसे, पार्वती, सीता, राधिका आदि। दे० "दिव्य" (नायक)

दिव्यादिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह मनुष्य या इहलौकिक नायक जिसमें देवताओं के भी गुण हों। जैसे, नल, पुरुरवा, अभिमन्यु आदि।

विशेष—दे० "दिव्य" (नायक)।

दिव्यादिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से

से अपनी बहन अहल्या के साथ ही उत्पन्न हुए थे। इनके पुत्र मित्रेयु भी महर्षि थे।

दिवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

दिवोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिन के समय आकाश से गिरनेवाला चमकीला पिंड या उल्का।

दिवौका—संज्ञा पुं० [सं० दिवौकस्] (१) वह जो स्वर्ग में रहता हो। (२) देवता। (३) चातक पक्षी।

दिव्य—वि० [सं०] (१) स्वर्ग से संबंध रखनेवाला। स्वर्गीय। (२) आकाश से संबंध रखनेवाला। अलौकिक। (३) प्रकाशमान। चमकीला। (४) बहुत बढ़िया या अच्छा। जो देखने में बहुत ही सुंदर या भला मालूम हो। खूब साफ या सुंदर। जैसे, (क) इन्होंने एक बहुत दिव्य भवन बनवाया था। (ख) आज हमने बहुत दिव्य भोजन किया है।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) यव। जौ। (२) गुग्गुल। (३) आँवला। (४) शतावर। (५) ब्राह्मी। (६) सफेद दूब। (७) हड़। (८) लौंग। (९) सूअर। (१०) तत्ववेत्ता। (११) हरिचंदन। (१२) अष्टवर्ग के अंतर्गत महामेदा नाम की ओषधि। (१३) कपूरकचरी। (१४) चमेली। (१५) जीरा। (१६) धूप में बरसते हुए पानी से स्नान। (१७) तीन प्रकार के केतुओं में से एक। वे केतु जिनकी स्थिति भूवायु से ऊपर है। (१८) तांत्रिकों के आचार के तीन भावों में से एक जिससे पंच मकार श्मशान और चिता का शाधन विधेय है। (१९) आकाश में होनेवाला एक प्रकार का उत्पात। (२०) तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो स्वर्गीय या अलौकिक हो। जैसे, इंद्र राम, कृष्ण आदि।

विशेष—साहित्य ग्रंथों में तीन प्रकार के नायक माने गए हैं दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य। दिव्य नायक स्वर्गीय या अलौकिक होते हैं जैसे, देवता आदि और अदिव्य नायक सांसारिक या लौकिक, जैसे, मनुष्य। दिव्यादिव्य नायक वे होते हैं जो होते तो मनुष्य हैं पर जिनमें गुण देवताओं के होते हैं। जैसे, नल, पुरुरवा, अर्जुन आदि। इसी प्रकार तीन प्रकार की नायिकाएँ भी होती हैं।

(२१) व्यवहार वा न्यायालय में प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे किसी मनुष्य का अपराधी या निरपराध होना सिद्ध होता था।

क्रि० प्र०—देना। उ०—साँप सभा साबर लबार भए देवँ दिव्य दुसह साँसति कीजै आगे ही या तन की।—तुलसी

विशेष—ये परीक्षाएँ नौ प्रकार की हैं—घट, अग्नि, उदक, विष, कोष, तंडुल, तप्त माषक, फूल और धर्मज। इनमें तुला या घट, अग्नि, जल, विष और कोष ये पाँच परीक्षाएँ भारी अपराधों के लिये, तंडुल चोरी के लिये, तप्तमाषक बड़ी भारी चोरी के लिये और फूल तथा धर्म्मज साधारण अपराधों के लिये हैं। स्मृतियों आदि में यह भी लिखा है कि ब्राह्मण की तुला से, क्षत्रिय की अग्नि से, वैश्य की जल से और शूद्र की विष से परीक्षा लेनी चाहिए। बालक, वृद्ध, स्त्री और आतुर की परीक्षा भी घट या तुला विधि से ही होनी चाहिए। स्त्रियों की विष परीक्षा और शिशिर तथा हेमंत में रोगियों की जल-परीक्षा, कोढ़ियों की अग्नि-परीक्षा और शराबियों, लंपटों, जुआरियों, धूर्तों और नास्तिकों की कोष-परीक्षा कदापि न होनी चाहिए। शीतकाल में जल-परीक्षा, ग्रीष्म में अग्नि-परीक्षा, वर्षा में विष-परीक्षा और प्रातःकाल के समय तुला-परीक्षा नहीं होनी चाहिए। धर्म्मज और घट परीक्षा सब ऋतुओं में और अग्नि-परीक्षा वर्षा, हेमंत और शिशिर में तथा जल-परीक्षा ग्रीष्म में होनी चाहिए। अग्नि, घट और कोष-परीक्षा सवेरे, जल-परीक्षा दोपहर को और विष-परीक्षा रात को होनी चाहिए। बृहस्पति जिस समय सिंहस्थ या मकरस्थ हों अथवा भृगु अस्त हों उस समय कोई दिव्य या परीक्षा न होनी चाहिए। मलमास में और अष्टमी तथा चतुर्दशी को भी परीक्षा नहीं होनी चाहिए। परीक्षा के दिन से एक दिन पहले परीक्षा देने और लेनेवाले दोनों को उपवास करना चाहिए और कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार राजसभा में सब लोगों के सामने दिव्य या परीक्षा होनी चाहिए। किसी किसी के मत से 'तुलसी' नामक एक और प्रकार का दिव्य भी है; पर इसके विषय में कोई विशेष बात नहीं मिलती।

तुला परीक्षा में शोध्य वा अभियुक्त को बड़े तराजू पर बैठाकर दो बार अदल बदल कर तौलते थे, दूसरी बार की तौल में यदि वह बढ़ जाता तो शुद्ध और बराबर उतर गया या घट जाता तो दोषी समझा जाता था। अग्नि-परीक्षा में तपाए हुए लोहे को अंजली में ले कर सात मंडलों के भीतर धीरे धीरे चलना पड़ता था। यदि हाथ न जलता तो अभियुक्त निर्दोष समझा जाता था। जलपरीक्षा में अभियुक्त को जल में गोता लगाना पड़ता था। गोता लगाने के समय तीन बाण छोड़े जाते थे। तिसरा बाण ठीक उसी समय छूटता था जब अभियुक्त जल में डूबता था। बाण छूटते ही एक आदमी वेग से उस स्थान पर दौड़ जाता था जहाँ बाण गिरता और एक दूसरा आदमी उस बाण को लेकर तुरंत उस स्थान पर दौड़ कर आता था जहाँ से बाण छूटा था। यदि इसके वहाँ पहुँचने तक अभियुक्त जल ही में रहता तो वह निर्दोष समझा जाता था। विष परीक्षा में विशेष मात्रा में विष खिलाया जाता था। यदि विष पच जाता तो अभियुक्त निर्दोष माना जाता था। कोष-परीक्षा में। किसी देवता के स्नान का तीन अंजलि जल पिलाया जाता था। यदि १४

दिसना*†-क्रि॰ अ॰ दे॰ "दिखना"।

दिसा-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दिशा"।

- †संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दिशा = ओर] मल त्याग करने की क्रिया। पैखाने जाना। झाड़ा फिरना।

क्रि॰ प्र॰—जाना।—फिरना।—लगना।—होना।

†-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दशा"।

दिसादाह*†-संज्ञा पु॰ दे॰ "दिक्दाह"।

दिसावल-संज्ञा पुं॰ [देश॰] घेरयों की एक जाति।

दिसावर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ देशांतर] दूसरा देश। देशांतर। परदेश। विदेश।

मुहा॰—दिसावर उतरना = जिस स्थान से माल आता हो अथवा जहाँ जाता हो वहाँ का भाव गिरना। विदेश में भाव गिरना। दिसावर चढ़ना = विदेश में बाजार का भाव चढ़ जाना। परदेश में दाम बढ़ जाना।

दिसावरी-वि॰ [हिं॰ दिसावर + ई (प्रत्य॰)] विदेश से आया हुआ। बाहर का। बाहरी (माल आदि)।

दिसाशूल-संज्ञा पु॰ दे॰ "दिक्शूल"।

दिसासूल-संज्ञा पु॰ दे॰ "दिक्शूल"।

दिसि*†-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दिशा"।

दिसिटि*†-दे॰ "दृष्टि"।

दिसिदुरद*†-संज्ञा पु॰ [सं॰ दिग्दिरद] दिग्गज।

दिसिनायक*†-संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिक्पाल"।

दिसिप*-संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिक्पाल"।

दिसिराज*-संज्ञा पुं॰ दे॰ "दिक्पाल"।

दिसैया*†-वि॰ [हिं॰ दिसना = दिखना + ऐया (प्रत्य॰)] (१) देखनेवाला। (२) दिखानेवाला।

दिस्ता-संज्ञा पु॰ दे॰ "दस्ता"।

दिस्सा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दिशा] ओर। तरफ। (अरा॰)

दिहंदा-वि॰ [फ़ा॰] दाता। देनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, रायदिहिंदा।

दिहरा†-संज्ञा पु॰ [सं॰ देव + हिं॰ घर = देवहर] देवालय। देव मंदिर।

दिहली-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दहलीज़"।

दिहाड़ा-संज्ञा पु॰ [हिं॰ दिन + हार (प्रत्य॰)] (१) दुर्गत। बुरी हालत। (२) दिन।

दिहाड़ी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दिहाड़ा + ई (प्रत्य॰)] (१) दिन। (२) दिन भर की मजदूरी।

दिहात-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "देहात"।

दिहाती-वि॰ दे॰ "देहाती"।

दिहातीपन-संज्ञा पुं॰ दे॰ "देहातीपन"।

दिहुड़ी-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "ड्योढ़ी"।

दिहुला-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का धान जो पूरब के जिले में बोया जाता है।

दिहेज-संज्ञा पु॰ दे॰ "दहेज"।

दीँ-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दीमक"।

दीअट-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "दीयट"।

दीआ-संज्ञा पु॰ दे॰ "दीया"।

दीक-संज्ञा पु॰ [देश॰] एक प्रकार का तेल जो काटू या हिजली के पेड़ की छाल से निकलता है और जाल में मांझा देने के काम में आता है। काटू के पेड़ दक्षिण में समुद्र के किनारे मिलते हैं।

दीक्षक-संज्ञा पु॰ [सं॰] दीक्षा देनेवाला। मंत्र का उपदेश करनेवाला। शिक्षक। गुरु।

दीक्षण-संज्ञा पु॰ [सं॰] [वि॰ दीक्षित] दीक्षा देने की क्रिया।

दीक्षांत-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह अवभृत यज्ञ जो किसी यज्ञ के समापनांत में उसकी त्रुटि आदि के दोष की शांति के लिये किया जाता है।

दीक्षा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) यजन। यज्ञकर्म। सोमयागादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान। (२) गुरु या आचार्य्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। मंत्र की शिक्षा जिसे गुरु दे और शिष्य ग्रहण करे।

क्रि॰ प्र॰—देना।—लेना।

विशेष—वैदिक गायत्री मंत्र के अतिरिक्त आज कल भिन्न भिन्न देवताओं के बहुत से सांप्रदायिक इष्ट मंत्र तंत्रोक्त रीति के अनुसार प्रचलित हैं। गौतमीय तंत्र, योगिनी तंत्र, रुद्रयामल इत्यादि तंत्रों में दीक्षाग्रहण का माहात्म्य तथा उसके अनेक प्रकार के नियम दिए हुए हैं। विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य्य इत्यादि की उपासना के भेद से वैष्णव, रामतारक, शैव, शाक्त इत्यादि मंत्र प्रचलित हैं जो शिष्य के कान में कहे जाते हैं। लोगों का साधारण विश्वास है कि बिना गुरुमंत्र लिए गति नहीं होती। तंत्रों के अनुसार जिन मंत्रों के अंत में 'हुं फट' हों वे पुं॰ मंत्र, जिनके अंत में "स्वाहा" हो वे स्त्री॰ मंत्र और जिनके अंत में नमः हो वे नपुंसक मंत्र कहलाते हैं। योगिनी तंत्र में लिखा है कि पिता, मामा, छोटे भाई और शत्रुपक्षवाले से मंत्र न लेना चाहिए। रुद्रयामल स्त्री के पति से मंत्र लेने का भी निषेध करता है, पर उससे सिद्ध मंत्र लेने की आज्ञा देता है। शूद्र को प्रणव या प्रणवघटित मंत्र देने का निषेध है। शूद्र को गोपाल, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य्य और गणेश का मंत्र देना चाहिए।

(३) उपनयन-संस्कार जिसमें आचार्य्य गायत्री मंत्र का उपदेश देता है। (४) वह मंत्र जिसका उपदेश गुरु करे। गुरुमंत्र। (५) पूजन।

एक। वह इहलौकिक नायिका जिसमें स्वर्गीय स्त्रियों के भी गुण हों। जैसे, दमयंती, उर्वशी, उत्तरा आदि।

दिव्याश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पुण्यक्षेत्र जहाँ पूर्व काल में भगवान् विष्णु ने तपस्या की थी। कुरुक्षेत का दर्शन करके बलदेवजी यहीं से होते हुए हिमालय गए थे।

दिव्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन।

दिव्यास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का दिया हुआ हथियार। (२) मंत्रों द्वारा चलनेवाला हथियार।

दिव्येलक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

दिव्योदक—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का पानी। बरसा हुआ पानी।

दिव्योपपादक—संज्ञा पुं० [सं०] विना माता-पिता के उत्पन्न देवता।

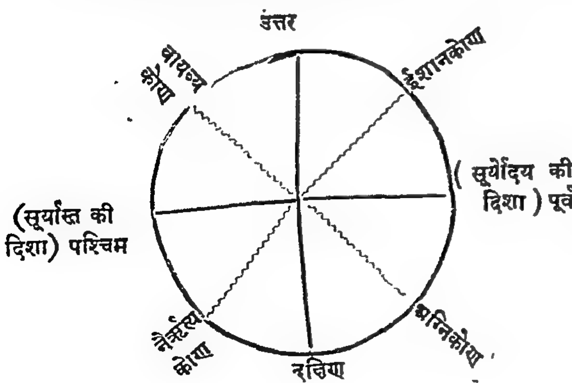
दिव्यौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

दिश्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा। दिक्।

संज्ञा पुं० एक देवता जो कान के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं।

दिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नियत स्थान के अतिरिक्त शेष विस्तार। ओर। तरफ। जैसे, जिस दिशा में घोड़ा भागा था उसी दिशा में वह भी चला। (२) क्षितिज वृत्त के किए हुए चार कल्पित विभागों में से किसी एक विभाग की ओर का विस्तार।

विशेष—दिशा का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्षितिज वृत्त चार भागों में बाँटा गया है, जिनको पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहते हैं। प्रत्येक दो दिशाओं के बीच में एक कोण भी होता है। पूर्व और दक्षिण के बीच के कोण को अग्निकोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोण को नैर्ऋत्य, पश्चिम और उत्तर के बीच के कोण को वायव्य कोण और उत्तर तथा पूर्व के बीच के कोण को ईशान कहते हैं। जिस ओर सूर्य्य उदय होता है उस ओर मुँह करके यदि खड़े हों तो सामने की ओर पूर्व, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर होता है।



इसके अतिरिक्त दो दिशाएँ और भी मानी जाती हैं—एक सिर के ठीक ऊपर की ओर, दूसरी पैर के ठीक नीचे की ओर जिन्हें क्रमशः ऊर्द्ध्व और अधः कहते हैं। वैशेषिक का मत है कि वास्तव में दिशा एक ही है, काम चलाने के लिये उसके भेद कर लिए गए हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग इसके गुण हैं।

पर्य्या०—ककुभ। काष्ठा। आशा। हरित्। निवेशिनी। गो। दिश्। दिक्।

(३) दस की संख्या। (४) रुद्र की एक स्त्री का नाम। (५) दे० "दिसा"।

दिशागज—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज।

दिशाचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

दिशाजय—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्विजय।

दिशापाल—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल।

दिशाभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दिशाओं के संबंध में भ्रम होना। दिक्भ्रम।

दिशावकाशक व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक प्रकार का व्रत जिसमें वे प्रातःकाल यह निश्चय कर लेते हैं कि आज हम अमुक दिशा में इतनी दूर तक जायँगे।

दिशाशूल—संज्ञा पुं० दे० "दिक्शूल"।

दिशासूल—संज्ञा पुं० दे० "दिक्शूल"।

दिशि—संज्ञा स्त्री० दे० "दिशा"।

दिशिनियम—संज्ञा पुं० दे० "दिशावकाशक व्रत"।

दिशेभ—संज्ञा पुं० [सं० दिश्+इभ] दिग्गज।

दिश्य—वि० [सं०] दिशा-संबंधी।

दिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाग्य। (२) उपदेश। (३) दारु-हरिद्रा। दारुहलदी। (४) काल। (५) वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

दिष्टबंधक—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टि+बंधक] किसी पदार्थ को बंधक या रेहन रखने का एक प्रकार जिसमें रुपए का केवल सूद दिया जाता है; रेहन रखे हुए पदार्थ की आय या भोग आदि से रुपए देनेवाले का कोई संबंध नहीं रहता। वह रेहन जिसमें चीज पर रुपए देनेवाले का कोई कब्ज़ा न हो, उसे सिर्फ सूद मिलता रहे।

दिष्टांत—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मौत।

दिष्टि—संज्ञा स्त्री० (१) भाग्य। (२) उपदेश। (२) उत्सव। (४) प्रसन्नता।

संज्ञा स्त्री० दे० "दृष्टि"।

दिसंतर*†—संज्ञा पुं० [सं० देशांतर] देशांतर। विदेश। परदेस।

क्रि० वि० दिशाओं के अंत तक। बहुत दूर तक।

दिसंबर—संज्ञा पुं० [अं० डिसेंबर] अंगरेजी साल का बारहवाँ या अंतिम महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

दिस*†—संज्ञा स्त्री० दे० "दिशा"।

(६) देख भाल। देख रेख। निगरानी।

क्रि० प्र०—रखना।

(७) परख। पहचान। तमीज़। अटकल। अंदाज़।

क्रि० प्र०—रखना।

(८) कृपादृष्टि। हित का ध्यान। मिहरबानी की नज़र। उ०—बिरवा लाइ न सूखइ दीजै। पावै पानि दीठि सो कीजै।—जायसी। (९) आशा की दृष्टि। आसरे में लगी हुई टकटकी। आस। उम्मीद।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(१०) ध्यान। विचार। संकल्प। उद्देश्य।

क्रि० प्र०—रखना।

दीठबंद—संज्ञा पु० [हिं० दीठ + सं० बंध] इंद्रजाल की ऐसी माया जिसमें लोगों को और का और दिखाई दे। नज़रबंद। जादू।

दीठबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीठबंद] इंद्रजाल की ऐसी माया जिससे लोगों को और का और दिखाई दे। नज़रबंदी। जादू।

दीत*—संज्ञा पु० [सं० आदित्य] सूर्य। (डिं०)

दीदा—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दृष्टि। नज़र। (२) दर्शन। देखा देखी।

संज्ञा पु० [फा० दीद.] (१) आंख। नेत्र।

मुहा०—दीदा लगना = जी लगना। ध्यान जमना। चित्त रमना। जैसे, (क) यहाँ इसका दीदा क्यों लगेगा ? (ख) काम में इसका दीदा नहीं लगता। दीदे का पानी ढल जाना = बुरे काम के करने में लज्जा न रह जाना। निर्लज्ज हो जाना। दीदे निकालना = क्रोध की दृष्टि से देखना। आँखें नीली पीली करना। दीदाधोई = स्त्री जिसकी आँखों में शर्म न हो। बेशर्म। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदे पटम होना = आँखों का फूट जाना। (स्त्रि०)। दीदाफटी = स्त्री जिसकी आँखों में शर्म न हो। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदा फूटना = आँखें फूटना। आंखे अंधी होना। दीदे फाड़कर देखना = अच्छी तरह आंख खोलकर देखना। ध्यानपूर्वक देखना। टकटकी बांधकर देखना। दीदे मटकाना = हाव भाव सहित आँखों की पुतली चमकाना। आँखें चमकाना।

(२) दिठाई। संकोच का अभाव। अनुचित साहस। जैसे, उसका इतना बड़ा दीदा कि वह मर्दों के सामने बात करे। (स्त्रि०)

दीदार—संज्ञा पु० [फा०] दर्शन। देखा देखी। साक्षात्कार।

दीदारू—वि० [फ़ा० दीदार] दर्शनीय। देखने योग्य।

दीदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादा = बड़ा भाई] बड़ी बहिन को पुकारने का शब्द। ज्येष्ठ भगिनी के लिये संबोधन शब्द।

दीधिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य्य चंद्रमा आदि की किरन। (२) उँगली।

दीन—वि० [सं०] (१) दरिद्र। गरीब। जिसकी दशा हीन हो। उ०—दानी हौ सब जगत के तुम एकै मंदार। दारन दुख दुखियान के अभिमत फल दातार॥ अभिमत फल दातार देवगन सेवैं हित सों। सकल संपदा सोइ छोड़ किन लावन चित सों। बरनै दीनदयाल छाँह तव सुखद बखानी। तोहि सेइ जो दीन रहै तौ तु कस दानी ? ॥—दीनदयाल। (२) दुःखित। संतप्त। कातर। उ०—आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना।—तुलसी।

यौ०—दीनदयाल। दीनबंधु। दीनानाथ।

(३) उदास। खिन्न। जिसमें किसी प्रकार का उत्साह या प्रसन्नता न हो। जिसका मन मरा हुआ हो। उ०— (क) नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।—तुलसी। (ख) ऐसेई दीन मलीन हुतो मन मेरो भयो अब तो अति आरत।—रसकुसुमाकर। (४) दुःख या भय से अधीनता प्रकट करनेवाला। नम्र। विनीत। उ०—दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] तगर का फूल।

संज्ञा पु० [अ०] मत। मज़हब। धर्मविश्वास।

यौ०—दीन दुनिया = लोक परलोक।

दीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दरिद्रता। गरीबी। (२) कातरता। आर्त्तभाव। (३) उदासी। खिन्नता। (४) दुःख से उत्पन्न अधीनता का भाव। नम्रता। विनीत भाव।

विशेष—काव्य या रस निरूपण में दीनता एक संचारी भाव है।

दीनताई*—संज्ञा स्त्री० दे० "दीनता"।

दीनत्व*—संज्ञा पुं० [सं०] दीनता।

दीनदयाल—वि० दे० "दीनदयालु"। उ०—कोमल चित अति दीनदयाला।—तुलसी।

दीनदयालु—वि० [सं०] दीनों पर दया करनेवाला।

संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम।

दीनदार—वि० [अ० दीन + फा० दार] अपने धर्म पर विश्वास रखनेवाला। धार्मिक। जैसे, दीनदार मुसलमान।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] धर्माचरण।

दीनदुनी—संज्ञा स्त्री० [अ० दीन + दुनिया] लोक परलोक

दीनबंधु—संज्ञा पु० [सं०] (१) दुखियों का सहायक। (२) ईश्वर का एक नाम।

दीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूषिका। चुहिया।

दीनानाथ—संज्ञा पुं० [सं० दीन + नाथ] (१) दीनों का स्वामी या रक्षक। दुखियों का पालक और सहायक। (२) ईश्वर का एक नाम।

दीक्षागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रोपदेष्टा गुरु ।

दीक्षापति-संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा या यज्ञ का रक्षक, सोम ।

दीक्षित-वि० [सं०] (१) जिसने सोम यागादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। जो किसी यज्ञ में प्रवृत्त हो । (२) जिसने आचार्य से दीक्षा ली हो । जिसने गुरु से मंत्र लिया हो । जिसने शिक्षा ग्रहण की हो ।

संज्ञा पुं० ब्राह्मणों का एक भेद ।

दीखना-क्रि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । जैसे, उसे दूर की चीज नहीं दीखती ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

दीघी-संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका] बावली । पोखरा । तालाब । जैसे, लालदीघी ।

दीच्छा*-संज्ञा स्त्री० दे० "दीक्षा" ।

दीठ-संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि] (१) देखने की वृत्ति या शक्ति । आँख की ज्योति । दृष्टि ।

मुहा०—दीठ मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना ।

(२) देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति । आँख की पुतली की किसी वस्तु की सीध में होने की स्थिति । टक । दृक्पात । अवलोकन । चितवन । नजर । निगाह ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—डालना ।

यौ०—दीठबंद । दीठबंदी ।

मुहा०—दीठ करना = दृष्टि डालना । ताकना । दीठ चूकना = नजर न पड़ना । दृष्टि का इधर उधर हो जाना । दीठ फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना । (२) कृपादृष्टि न रहना । हित का ध्यान या प्रीति न रहना । चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना । दीठ फेंकना = नजर डालना । ताकना । दीठ फेरना = (१) नजर हटा लेना । दूसरी ओर ताकना । (२) कृपादृष्टि न रखना । अप्रसन्न या खिन्न होना । किसी की दीठ बचाना ।=(१) (किसी के) सामने होने से बचना । आँख के सामने न आना । जान बूझ कर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण) । (२) (किसी से) छिपाना । न दिखाना । उ०—मोहन आपनो राधिका को विपरीत को चित्र विचित्र बनाय कै । दीठि बचाय सलोनी की आरसी में चिपकाइ गयो बहराइ कै ।—रसकुसुमाकर । दीठ बाँधना = इस प्रकार जादू करना कि आँखों को और का और दिखाई दे । इंद्रजाल फैलाना । दीठ लगाना = ताकना । दृष्टि करना । उ०—नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी ।—तुलसी ।

(३) आँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के रूप रंग का बोध होता है । दृक्पथ ।

मुहा०—दीठ पर चढ़ना = (१) देखने में श्रेष्ठ या उत्तम जान पड़ना । निगाह में जँचना । अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना । पसंद आना । भाना । (२) आँखों में खटकना । किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे । दीठ बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के आसरे में लगातार ताकते रहना । उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना । (२) किसी के आने पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम से स्वागत करना । दीठ में आना = दिखाई पड़ना । दीठ में पड़ना = दिखाई पड़ना । दीठ में समाना = अच्छा या प्रिय लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना । दीठ से उतरना या गिरना = श्रद्धा, विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना । (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना ।

(४) अच्छी वस्तु पर ऐसी दृष्टि जिसका प्रभाव बुरा पड़े । नजर । उ०—दूनी ह्वै लागी लगन दिए दिठौना दीठ ।—बिहारी ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—दीठ उतारना या झाड़ना = मंत्र के द्वारा बुरी दृष्टि का प्रभाव दूर करना । दीठ खा जाना = किसी की बुरी दृष्टि के सामने पड़ जाना । टोक में आना । हूंस में आना । (बच्चों के संबंध में अधिक बोलते हैं) । दीठ जलाना = नजर उतारने के लिये राई लोन या कपड़ा जलाना । (जब बच्चों को नजर लगने का संदेह स्त्रियों को होता है तब वे टोटके के लिये उसके ऊपर से राई लोन घुमा कर आग में डालती हैं, अथवा जिस किसी को वे नज़र लगानेवाला समझती हैं उसकी आँख की बरौनी किसी युक्ति से प्राप्त करके आग में जलाती हैं) (किसी की) दीठ पर चढ़ना, दीठ चढ़ना = दे० "दीठ खा जाना" ।

(५) देखने में प्रवृत्त नेत्र । देखने के लिये खुली हुई आँख ।

मुहा०—दीठ उठाना = ताकने के लिये आँख ऊपर करना । दीठ गड़ाना, जमाना = दृष्टि स्थिर करना । एकटक ताकना । दीठ चुराना = (लज्जा या भय से) सामने न आना । जान बूझ कर दिखाई न पड़ना । दीठ जुड़ना = आँख मिलना । साक्षात्कार होना । देखा देखी होना । दीठ जोड़ना = आँख मिलाना । साक्षात्कार करना । देखा देखी करना । दीठ फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना । आँख में चकाचौंध होना । दीठ भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देखना । जी भर कर ताकना । दीठ मारना = (१) आँख से इशारा करना । पलक गिरा कर संकेत करना । (२) आँख के इशारे से रोकना । दीठ मिलना = दे० "दीठ जुड़ना" । दीठ मिलाना = दे० "दीठ जोड़ना" । दीठ लगना = देखा देखी होने से प्रेम होना । प्रीति होना । दीठ लड़ना = आँख के सामने आँख होना । घूराघूरी होना । दीठ लड़ाना = आँख के सामने आँख किए रहना । घूरना ।

होते हैं। (५) अजवायन (जो अग्निदीपक होती है)। (६) केसर। कुंकुम। (७) बाज नाम का पक्षी। (८) मयूर शिखा। (९) एक प्रकार की आतिशबाजी।

वि० [सं०] [स्त्री० दीपिका] (१) प्रकाश करनेवाला। उजाला फैलानेवाला। दीप्तिकारक। (२) जठराग्नि को तीव्र करनेवाला। पाचन की अग्नि को तेज करनेवाला। (३) उत्तेजक। शरीर में वेग या उमंग लानेवाला।

दीपकमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण, जगण और गुरु होता है। उ०—भामस गो कन्या सखी वरी। देखत ही मोरे घनू दरी॥ मंडप के नीचे अरी अली। दीपकमाला सी लसै छली॥ (२) दीपक अलंकार का एक भेद।

दीपकलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की टेम। चिराग की लौ।

दीपकली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपकलिका] चिराग की टेम। दीपशिखा। दीए की लौ।

दीपकवृक्ष—संज्ञा पु० [सं] (१) वह बड़ा दीवट जिसमें दीए रखने के लिये कई शाखाएँ इधर उधर निकली हों। (२) झाड़।

दीपकसुत—संज्ञा पु० [सं०] कज्जल। काजल।

दीपकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीया बालने का समय। संध्या।

दीपकावृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीपक अलंकार का एक भेद। (२) पनसाखा।

दीपकिट्ट—संज्ञा पु० [सं०] कज्जल। काजल।

दीपकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की बत्ती।

दीपत*—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] (१) कांति। चमक। प्रभा। ज्योति। (२) छटा। शोभा। (३) कीर्ति। यश।

दीपदान—संज्ञा पु० [सं०] (१) किसी देवता के सामने दीपक जलाने का काम जो पूजन का एक अंग समझा जाता है। (२) कार्त्तिक में बहुत से दीपक जलाने का कृत्य जो राधा दामोदर के निमित्त होता है। (३) एक कृत्य जिसमें मरणासन्न व्यक्ति के हाथ से आटे के जलते हुए दीये का संकल्प कराया जाता है।

दीपदानी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप + आधान] घी बत्ती आदि दीया जलाने की सामग्री रखने की डिबिया जो पूजा के समानों में से है।

दीपध्वज—संज्ञा पु० [सं०] काजल।

दीपन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० दीपनीय, दीपित, दीप्त, दीप्य] (१) प्रकाशन। प्रज्वलित या प्रकाशित करने का काम। प्रकाश के लिये जलाने का काम। (२) जठराग्नि को तीव्र करने की क्रिया। भूख को उभारने की क्रिया। (३) आवेग उत्पन्न करना। उत्तेजन। जैसे, काम का दीपन।

वि० दीपन करनेवाला। जठराग्नि वर्द्धक। अग्निमांद्य दूर करनेवाला।

संज्ञा पु० (१) तगरमूल। तगर की जड़ या लकड़ी। (२) मयूरशिखा नाम की बूटी। (३) कुंकुम। केसर। (४) पलांडु। प्याज़। (५) कासमर्द। कसौंदा। (६) मंत्र के उन दस संस्कारों में से एक जिनके बिना मंत्र सिद्ध नहीं होता। (७) रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का सातवाँ संस्कार। (इस दर्शन को माननेवाले रस या पारे ही को संसार परपार-प्राप्ति का कारण और रसशास्त्र को देहवेध पूर्वक मुक्ति का साधन मानते हैं।)

दीपनगण—संज्ञा पु० [सं०] जठराग्नि को तीव्र करनेवाले पदार्थों का वर्ग। भूख जगानेवाली ओषधियों का वर्ग।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत चीता, धनिया, अजमोदा, जीरा, हाऊबेर इत्यादि हैं।

दीपना*—क्रि० अ० [सं० दीपन] प्रकाशित होना। चमकना। जगमगाना।

क्रि० स० प्रकाशित करना। चमकाना। उ०—द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगंत है।—पद्माकर।

दीपनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेथी। (२) अजवायन। (३) पाठा।

दीपनीय—वि० [सं०] (१) प्रकाशन के योग्य। (२) उत्तेजन के योग्य।

दीपनीयवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार एक ओषधि वर्ग जिस के अंतर्गत पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चीता और नागर हैं। ये सब ओषधियाँ कफ और वात नाशक हैं।

दीपपादप—संज्ञा पु० [सं०] दीवट।

दीपपुष्प—संज्ञा पु० [सं०] चंपकवृक्ष। चंपा।

दीपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलते हुए दीपों की पंक्ति। जगमगाते हुए दीयों की श्रेणी। (दीवाली में इस प्रकार दीपक जलाकर पंक्ति में रखे जाते हैं)। (२) दीपदान या आरती के लिये जलाई हुई बत्तियों का समूह।

दीपमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीपों की पंक्ति। जलते हुए प्रदीपों की श्रेणी (जैसी कि दीवाली में दिखाई देती है)। (२) दीवाली। (३) दीपदान या आरती के लिये जलाई हुई बत्तियों की पंक्ति। उ०—दीपमालिका रचि रचि साजत। पुहुपमाल मंडली बिराजत।—सूर।

दीपमाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपमालिका] दीवाली। उ०—आलिनि के संग दीपमाली के बिलोकिबे को औचकहि झलकि जौ न झाँकती झरोखे तें।—द्विजदेव।

दीपवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी जो कामाख्या में है और जिसके पूर्व भृंगार नाम का प्रसिद्ध पर्वत है।

दीनार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण भूषण। सोने का गहना। (२) निष्क की तौल। (३) स्वर्णमुद्रा। मोहर।

विशेष—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का और कहीं चाँदी का होता था। देशभेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। हरिवंश और महावीरचरित में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। साँची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खँडहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट् चंद्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में 'दीनार' शब्द आया है। अमरकोश में भी दीनार शब्द मौजूद है और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है। रघुनंदन के मत से दीनार ३२ रत्ती सोने का होता था। अकबर के समय में जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसकाल अर्थात् आधे तोले के अंदाज था।

हिंदुस्तान की तरह अरब और फारस में भी प्राचीन काल में दीनार नाम का सिक्का प्रचलित था। अरबी फारसी के कोशकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है पर फारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके अतिरिक्त रोमन (रोमक) लोगों में भी यह सिक्का दिनारियस के नाम से प्रचलित था। धात्वर्थ पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्य्यभाषा ही का प्रतीत होता है। अब प्रश्न यह होता है कि यह सिक्का भारत से फारस अरब होते हुए रोम में गया अथवा रोम से इधर आया। यदि हरिवंश आदि संस्कृत ग्रंथों की अधिक प्राचीनता स्वीकार की जाय तो दीनार को इसी देश का मानना पड़ेगा।

दीनारी—संज्ञा पुं० [सं० दीनार] लोहारों का ठप्पा।

दीपंकर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के अवतारों में से एक।

दीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीया। चिराग। जलती हुई बत्ती।

यौ०—दीपकलिका। दीपकिट्ट। दीपकूपी। दीपदान। दीपध्वज। दीपपुष्प। दीपमाला। दीपवृक्ष। दीपशिखा।

विशेष—किसी कुल या समुदाय का दीप कहने से उस कुल या समुदाय में श्रेष्ठ का अर्थ सूचित होता है, जैसे, निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहिँ चलेउ लिवाई।—तुलसी।

(२) दस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में तीन लघु फिर एक गुरु और फिर एक लघु होता है। उ०—जय जयति जगवंद, मुनि मन कुमुद चंद। त्रैलोक्य अवनीप। दशरत्थ कुलदीप॥

संज्ञा पुं० दे० "द्वीप"।

दीपक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीया। चिराग।

यौ०—कुलदीपक = वंश को उजाला करनेवाला पुत्र।

(२) एक अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुत (जो वर्णन का विषय हो) और अप्रस्तुत (जो वर्णन का उपस्थित विषय न हो और उपमान आदि हो) का एक ही धर्म्म कहा जाता है अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है। जैसे, (क) सोहत भूपति दान सों फल फूलन आराम। इस उदाहरण में प्रस्तुत 'भूपति' और अप्रस्तुत 'आराम' दोनों का एक धर्म 'सोहात' कहा गया है। (ख) ऋषिहिं देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिलाय। धनुष देखि डरपै महा चिंता चित्त डुलाय॥ इस उदाहरण में 'हरषै' 'कुम्हिलाय' 'डरपै' आदि क्रियाओं का एक ही कर्त्ता 'हियो' कहा गया है।

विशेष—दीपक चार आदि और प्रधान अलंकारों में से है। तुल्य योगिता में भी एक धर्म का कथन होता है पर वह या तो कई प्रस्तुतों या कई अप्रस्तुतों का होता है। दीपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के एक धर्म का कथन होता है। दीपक चार प्रकार का होता है—आवृत्ति दीपक, कारक दीपक, माला दीपक और देहली दीपक। (१) आवृत्ति दीपक में या तो एक ही क्रियापद भिन्न भिन्न अर्थों में बार बार आता है अथवा एक ही अर्थ के भिन्न भिन्न पद आते हैं। जैसे, (क) बहैं रुधिर सरिता, बहैं किरचानैं कढ़ि कोस। बीरन बरहि बरांगना, बरहि सुभट रन रोस॥ (ख) दौरहिं संगर मत्त गज धावहिं हय समुदाय। (२) कारक दीपक। उ०—ऊपर देखिए। (३) माला दीपक जिसमें एकावली और दीपक का मेल होता है। जैसे, जग की रुचि ब्रजवास, ब्रज की रुचि ब्रजचंद हरि। हरि रुचि बंसी 'दास' बंसी रुचि मन बाँधिबो। (४) देहली दीपक में एक ही पद दो ओर लगता है, जैसे, ह्वै नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रह्लाद को संकट भारी। इस उदाहरण में 'हन्यो' शब्द दो ओर लगता है—'मनुजाद हन्यो' और 'भारी संकट हन्यो'।

(३) संगीत में छः रागों में से एक।

विशेष—हनुमत् के मत से यह छः रागों में दूसरा राग है। यह संपूर्ण जाति का राग है और षड्ज स्वर से आरंभ होता है। इसके गाने का समय ग्रीष्म ऋतु का मध्याह्न है। इसका सरगम यह है—स रे ग म प ध नि स।

इसकी पाँच रागिनियाँ मानी जाती हैं—देशी कामोदी, नाटिका, केदारी और कान्हड़ा। पुत्र आठ हैं—कुंतल, कमल, कलिंग, चंपक, कुसुम, राम, लहित और हिमाल। भरत के मत से दीपक की पत्नियाँ हैं केदारा, गौरी, गौड़ी, गुर्जरी, रुद्राणी; और पुत्र हैं कुसुम, टंक, नटनारायण, विहागरा, किरोदस्त रमसमगला, मंगलाष्टक और अड़ाना।

(४) एक ताल का नाम जिसमें प्लुत, लघु और प्लुत

संज्ञा पुं० सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

दीप्तोद–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जिसमें वधूसर नाम की एक नदी है। यहाँ परशुराम ने स्नान करके अपना खोया हुआ तेज फिर से प्राप्त किया था। पूर्व काल में भृगु ने यहाँ पर कठोर तपस्या की थी।

दीप्तोपल–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

दीप्य–वि० [सं०] (१) जो जलाया जाने को हो। प्रज्वलित किया जानेवाला। (२) जो जलाने योग्य हो।

संज्ञा पुं० (१) अजवायन। (२) जीरा। (३) मयूरशिखा। (४) रुद्रजटा।

दीप्यक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अजवायन। (२) अजमोदा। (३) मयूरशिखा। (४) रुद्रजटा।

दीप्यमान–वि० [सं०] चमकता हुआ।

दीप्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।

दीप्र–वि० [सं०] दीप्तिमान्। प्रकाशयुक्त।

दीबो†–संज्ञा पुं० दे० "देना"।

दीमक–संज्ञा स्त्री० [फा०] चींटी की तरह का एक छोटा कीड़ा जिसे जालीदार पर निकलते हैं। यह लकड़ी आदि में लगकर उसे खोखली और नष्ट कर देता है। बल्मीक।

विशेष—इसका धड़ सफेद होता है और सिर लाल या नारंगी रंग का होता है। यह दल बाँधकर रहता है। दीमकें गरम देशों में बहुत होती हैं और मिट्टी का घर बनाती हैं जिसकी दीवारें दानेदार पपड़ी की तरह होती हैं। कहीं कहीं ये घर हाथ के आकार के हाथ डेढ़ हाथ ऊँचे होते हैं, और वल्मीक या बमौट कहलाते हैं। चींटियों की तरह ये कीड़े भी बड़े नियम और व्यवस्था के साथ रहते हैं। एक दल में अधिक संख्या तो क्लीव कीटों की होती है जो केवल काम करने के लिये होते हैं। कुछ क्लीव कीट लंबे लंबे सिरवाले होते हैं जो सिपाही कहलाते हैं। एक या अधिक स्त्रीकीट या रानियाँ होती हैं जिनका शरीर अंडों से भरे रहने के कारण कभी कभी बहुत फूला दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त नर भी होते हैं जो किसी किसी ऋतु में बहुत दिखाई पड़ते हैं और फतिंगों की तरह उड़ते फिरते हैं। ये कीड़े काष्ठ और जंतु शरीर पर निर्वाह करते हैं। जिस वस्तु पर ये लगते हैं उसे प्रायः मिट्टी की पपड़ी से आच्छादित कर देते हैं और भीतर ही भीतर उसे खाते जाते हैं। बरसात में दीमकें लगती हैं और कागज, लकड़ी आदि को इनसे बचाना कठिन हो जाता है।

मुहा०—दीमक खाया=(१) जिसे दीमकों ने खाकर नष्ट कर दिया हो। (२) दीमकों की खाई हुई वस्तु की तरह स्थान स्थान पर खुदा हुआ या गड्ढेदार, जैसे, शीतला के दागवाला चेहरा। दीमक का चाटना=दीमक का (किसी वस्तु को) खाकर नष्ट करना। जैसे, इस किताब के पन्ने दीमकें चाट गईं।

दीयट–संज्ञा पुं० दे० "दीवट"।

दीयमान–वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो। जिसे किसी को देना हो। जो देने के लिये हो।

दीया–संज्ञा पुं० [सं० दीपक, प्रा० दीअ] (१) उजाले के लिये जलाई हुई बत्ती। जलती हुई बत्ती। चिराग़।

क्रि० प्र०—जलना।—जलाना।—बलना।—बालना।—बुझना।—बुझाना।

मुहा०—दीए का हँसना=दीए की बत्ती से फूल या गुल झड़ना। दीए की बत्ती में चमकते हुए गोल गोल रवे दिखाई पड़ना। (इससे विवाह होने, लड़का होने आदि का शुभ शकुन समझा जाता है) दीया जलना=दीया जलने का समय होना। संध्या होना। दीया जलाना=दीवाला निकालना। (पहले जो लोग दीवाला निकालते थे वे टाट उलट कर उस पर एक चौमुखा दीया जलाकर रख देते थे और काम धाम बंद कर देते थे)। दीया जलने के समय=संध्या को। शाम को। दीया ठंढा करना=दीया बुझाना। दीया ठंढा होना=दीया बुझना। (किसी के घर का) दीया ठंढा होना=किसी के मरने से कुल में अँधकार छा जाना। घर में रौनक न रह जाना। दीया दिखाना=रोशनी दिखाना। सामने उजाला करना। दीया बढ़ाना=दीया बुझाना। दीया बत्ती करना=जलाने के लिये दीया, बत्ती आदि ठीक करना। रोशनी का सामान करना। चिराग़ जलाना। दीये बत्ती का समय=संध्या का समय। दीया लेकर ढूँढ़ना=चारों ओर हैरान होकर ढूँढ़ना। बड़ी छानबीन से खोजना। दीये से फूल झड़ना=दीये की जलती हुई बत्ती से चमकते हुए गोल फुचड़े या रवे निकलना। गुल झड़ना।

(२) [स्त्री० अल्प० दियली, दियरी,] बत्ती जलाने का बरतन। वह बरतन जिसमें तेल भर कर जलाने के लिये बत्ती डाली जाती है।

विशेष—दीए प्रायः मिट्टी के बनते हैं।

मुहा०—दीए में बत्ती पड़ना=दीया जलने का समय होना। संध्या का समय होना।

दीयासलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया+सलाई] लकड़ी की छोटी सलाई या सींक जिसका एक सिरा रगड़ने से जल उठता है। आग जलाने की सींक या सलाई।

विशेष—इन सलाइयों का एक सिरा फासफरस, पोटाशियम क्लोरेट आदि रगड़ खाकर जल उठनेवाले पदार्थों में डुबाया रहता है।

दीरघ*–वि० दे० "दीर्घ"।

दीर्घ–वि० [सं०] (१) आयत। लंबा। (२) बड़ा। (देश और काल दोनों के लिये, जैसे, दीर्घसूत्र, दीर्घवंश, दीर्घकाल)।

दीपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीवट । दीयट ।

दीपशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग । फतिंगा (जो दीपक को बुझा देता है) ।

दीपशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीए की टेम । चिराग की लौ । प्रदीपज्वाला । उ०—दीपशिखा सम युवतिजन मन जनि होसि पतंग ।—तुलसी । (२) दीए का धुआँ या काजल ।

दीपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दीए की टेम की आँच । आँच का एक परिमाण जो धूमाग्नि से चौगुना माना जाता है ।

दीपान्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिक मास की अमावास्या जिसके प्रदोष काल में लक्ष्मी का पूजन और दीपदान आदि होता है । दीवाली ।

दीपावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक और सरस्वती के योग से उत्पन्न एक रागिनी ।

दीपावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीपश्रेणी । दीयों की पंक्ति । (२) दीवाली ।

दीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटा दीया । (२) एक रागिनी जो हिंडोल राग की पत्नी मानी जाती है और प्रदोषकाल में गाई जाती है ।

वि० स्त्री० प्रकाश करनेवाली । उजाला फैलानेवाली ।

दीपिकातैल—संज्ञा पुं० [सं०] एक आयुर्वेदोक्त तेल जो कान का दर्द दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है ।

विशेष—इसे प्रस्तुत करने की रीति यह है कि देवदार, सलई या चीड़ की सात आठ अंगुल लंबी लकड़ी ले और उसे सूए आदि से छलनी की तरह चारों ओर छेद डाले । फिर उसमें रेशम लपेट कर तेल में खूब डुबावे और बत्ती की तरह जला दे । इस प्रकार जलती हुई बत्ती में से जो गरम गरम तेल बूँद बूँद गिरे उसे कान में टपकावे ।

दीपित—वि० [सं०] (१) प्रकाशित । प्रज्वलित । (२) चमकता हुआ । जगमगाता हुआ । (३) उत्तेजित ।

दीपोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दीवाली ।

दीप्त—वि० [सं०] (१) प्रज्वलित । जलता हुआ । (२) प्रकाशित । जगमगाता हुआ । चमकता हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) स्वर्ण । सोना । (२) हींग । (३) नीबू (४) सिंह । (५) सुश्रुत के अनुसार नाक का एक रोग जिसमें नाक से भाप की तरह गरम गरम हवा निकलती है और नथुनों में जलन होती है ।

दीप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] सोना । सुवर्ण ।

दीप्तकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य । (२) मदार का पौधा ।

दीप्तकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षसावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम । (भागवत) । (२) एक राजा का नाम । (महाभारत) ।

दीप्तजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्कामुखी । श्रृगाली । मादा गीदड़ । सियारिन ।

विशेष—गीदड़ के मुँह का अगला भाग कुछ कालापन लिए होता है इसीसे उसका नाम उल्का (लुआठा) मुख पड़ा । उल्का जलते हुए पिंड या प्रकाश को भी कहते हैं इसी भ्रम से दीप्तजिह्वा नाम रखा हुआ जान पड़ता है ।

दीप्तपिंगल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह ।

दीप्तरस—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ ।

विशेष—रात को अँधेरे में केंचुए के शरीर के रस से एक प्रकार की चमक निकलती है ।

दीप्तरोमा—संज्ञा पुं० [सं० दीप्तरोमन्] एक विश्वदेव का नाम । (महाभारत)

दीप्तलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली । बिडाल ।

दीप्तलोह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपाया हुआ लाल लोहा । (२) काँसा ।

दीप्तवर्ण—वि० [सं०] जिसका शरीर कुंदन की तरह दमकता हुआ हो ।

संज्ञा पुं० कार्त्तिकेय ।

दीप्तांग—वि० [सं०] जिस का शरीर चमकता हो ।

संज्ञा पुं० मोर । मयूर

दीप्तांशु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य । (२) मदार । आक ।

दीप्ता—वि० स्त्री० [सं०] (१) प्रकाशित । प्रकाशयुक्ता । चमकती हुई । (२) (दिशा) जिसमें सूर्य्य किसी समय स्थित हों । सूर्य्य से प्रकाशित । जैसे, दीप्ता दिशा ।

संज्ञा पुं० (१) लांगली वृक्ष । कलियारी । (२) ज्योतिष्मती । मालकँगनी । (३) सातला नामक थूहर ।

दीप्ताक्ष—वि० [सं०] जिसकी आँखें चमकती हों ।

संज्ञा पुं० बिडाल । बिल्ली ।

दीप्ताग्नि—वि० [सं०] (१) जिसकी जठराग्नि बहुत तीव्र हो । जिसकी पाचन शक्ति अत्यंत प्रबल हो । (२) जिसकी भूख जगी हो । भूखा ।

संज्ञा पुं० अगस्त्य मुनि (जिन्होंने समुद्र को पी लिया था और वातापि नामक राक्षस को पचा डाला था)

दीप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश । उजाला । रोशनी । (२) प्रभा । आभा । चमक । द्युति । (३) कांति । शोभा । छवि । जैसे, अंग की दीप्ति । (४) ज्ञान का प्रकाश जिससे विवेक उत्पन्न होता है और अज्ञानांधकार दूर हो जाता है । (योग) । (५) एक विश्वदेव का नाम (महाभारत) । (६) लाक्षा । लाख । (७) काँसा । थूहर ।

दीप्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] शिरशोला । दुग्धपाषाण वृक्ष ।

दीप्तिमान्—वि० [सं० दीप्तिमत्] [स्त्री० दीप्तिमती] (१) दीप्तियुक्त । प्रकाशित । चमकता हुआ । (२) कांतियुक्त । शोभायुक्त ।

दीर्घतमा कामधेनु से गोधर्म शिक्षा प्राप्त करके उससे श्रद्धापूर्वक मैथुन आदि में प्रवृत्त हुए। दीर्घतमा को इस प्रकार मर्यादा भंग करते देख आश्रम के मुनि लोग बहुत बिगड़े। उनकी स्त्री प्रद्वेषी भी इस बात पर बहुत अप्रसन्न हुई। एक दिन दीर्घतमा ने अपनी स्त्री प्रद्वेषी से पूछा कि "तू मुझसे क्यों दुर्भाव रखती है ?" प्रद्वेषी ने कहा "स्वामी स्त्री का भरण पोषण करता है इसीसे भर्त्ता कहलाता है पर तुम अंधे हो, कुछ कर नहीं सकते। इतने दिनों तक मैं तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का भरण पोषण करती रही, पर अब न करूँगी"। दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर कहा— "लो ! आज से मैं यह मर्यादा बाँध देता हूँ कि स्त्री एक मात्र पति से ही अनुरक्त रहे। पति चाहे जीता हो या मरा वह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती। जो स्त्री दूसरा पति ग्रहण करेगी वह पतित हो जायगी।" प्रद्वेषी ने इस पर बिगड़ कर अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि "तुम अपने अंधे बाप को बाँध कर गंगा में डाल आओ"। पुत्र आज्ञानुसार दीर्घतमा को गंगा में डाल आए। उस समय बलि नाम के कोई राजा गंगा स्नान कर रहे थे। वे ऋषि को इस अवस्था में देख अपने घर ले गए और उनसे प्रार्थना की कि "महाराज ! मेरी भार्य्या से आप योग्य संतान उत्पन्न कीजिए।" जब ऋषि सम्मत हुए तब राजा ने अपनी सुदेष्णा नाम की रानी को उनके पास भेजा। रानी उन्हें अंधा और बुड्ढा देख उनके पास न गई और उसने अपनी दासी को भेजा। दीर्घतमा ने उस शूद्रा दासी से कक्षीवान् आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए। राजा ने यह जान कर फिर सुदेष्णा को ऋषि के पास भेजा। ऋषि ने रानी का सारा अंग टटोल कर कहा "जाव तुम्हें अंग, बंग, कलिंग, पुंड्र और सुंभ नामक अत्यंत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे जिनके नाम से देश विख्यात होंगे।

ऋग्वेद के पहले मंडल में सूक्त १४० से १६० तक में दीर्घतमा के रचे मंत्र हैं। इनमें कई मंत्र ऐसे हैं जिनसे उनके जीवन की घटनाओं का पता चलता है। महाभारत में उनकी स्त्री के संबंध में जिस घटना का वर्णन है उसका उल्लेख भी कई मंत्रों में है। सूक्त १२७ मंत्र ५ में एक मंत्र है जिसे दीर्घतमा ने उस समय कहा था जब लोगों ने उन्हें एक संदूक में बंद कर दिया था। इस मंत्र में उन्होंने अश्विनी देवता से उद्धार पाने के लिये प्रार्थना की है।

दीर्घतरु—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

दीर्घता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लंबाई। बड़ाई।

दीर्घतिमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। ककंटी।

दीर्घतुंडा—वि० स्त्री० [सं०] जिस का मुहँ लंबा हो।

संज्ञा स्त्री० छछूँदर।

दीर्घतृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसके खाने से पशु निर्बल हो जाते हैं। पलिवाह तृण। ताम्रपर्णी।

दीर्घदंड—संज्ञा पुं० दे० "दीर्घदंडक"।

दीर्घदंडक—संज्ञा पुं० [सं०] एरंडवृक्ष। अंडी का पेड़। रेंड़।

दीर्घदंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखी। गोरखइमली।

दीर्घदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत दूर तक की बात का विचार। परिणाम आदि का विचार करनेवाली बुद्धि। दूरदर्शिता।

दीर्घदर्शी—वि० [सं दीर्घदर्शिन्] (१) दूर तक की बात सोचनेवाला। बहुत सी बातों का विचार करनेवाला। दूर तक सब बातों का परिणाम सोचनेवाला। दूरदर्शी। (२) विचारवान्।

संज्ञा पुं० (१) भालू। (२) गीध।

दीर्घद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

दीर्घद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

दीर्घदृष्टि—वि० [सं०] (१) जिसकी दृष्टि दूर तक जाय। बहुत दूर तक देखनेवाला। (२) दूर तक की बात सोचनेवाला।

संज्ञा पुं० गीध।

दीर्घद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] विशाल देश के अंतर्गत एक जनपद जो गंडकी नदी के किनारे माना जाता था।

दीर्घनाद—वि० [सं०] जिससे भारी शब्द निकले।

संज्ञा० पुं० शंख।

दीर्घनाल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीर्घरोहिष। रोहिस घास। (२) गोंदला घास। गुंड तृण। (३) ज्वार। यवनाल।

दीर्घनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत। मरण।

दीर्घनिश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण ली जाती है।

दीर्घपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग पक्षी।

दीर्घपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजपलांडु। लाल प्याज। (२) विष्णुकंद। (३) हरिदर्भ। एक प्रकार का कुश। (४) कुचला। कुपीलु। (५) एक प्रकार की ईख (सश्रुत)।

दीर्घपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल लहसुन। (२) एरंड। रेंड़। अंडी। (३) बेतस। बेत। (४) हिज्जल। समुद्र फल। (५) करील। टेंटी का पेड़। (६) जलमधूक। जल महुआ।

दीर्घपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केतकी। (२) जंगली जामुन का पेड़ जो छोटा छोटा और नदियों के किनारे होता है। (३) चित्रपर्णी। (४) शालपर्णी।

दीर्घपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद बच। (२) घृतकुमारी। घीकुआर। (३) शालपर्णी। सरिवन। (४) श्वेत पुनर्नवा। सफेद गदहपुरना।

दीर्घपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पलाशी लता। बेलिया पलाश। वह पलाश जो लता के रूप में फैलता है। (२) महाचंचु शाक। बड़ा चेना।

विशेष—कणाद में दीर्घत्व को परिमाणभेद कहा है। सांख्य के मत से दीर्घत्व महत्व का अवस्थांतर है।

संज्ञा पुं० (१) लता शालवृक्ष। (२) भाड वृक्ष। (३) रामशर। नरकट। (४) ऊँट। (५) ताड़ का पेड़। (६) गुरु या द्विमात्र वर्ण। वह वर्ण जिसका उच्चारण खींचकर हो। ह्रस्व का उलटा।

विशेष—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ये दीर्घस्वर कहलाते हैं। जिन व्यंजनों में ये लगते हैं वे भी दीर्घ कहलाते हैं, जैसे, का की कू इत्यादि। संगीत में भी दो मात्राओं का नाम दीर्घ है। अ—अ को एक साथ उच्चारण करने में जो काल लगता है वह दीर्घ काल कहलाता है।

(७) ज्योतिष में पाँचवीं छठी, सातवीं और आठवीं अर्थात् सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक राशि को दीर्घराशि कहते हैं।

दीर्घकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़।

दीर्घकंठ—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घकंठी] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं० (१) बगला। बक। (२) एक दानव का नाम।

दीर्घकंद—संज्ञा पुं० [सं०] मूली।

दीर्घकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसली। तालमूली।

दीर्घकंधर—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घकंधरी] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं० बगला पक्षी। बक।

दीर्घकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद जीरा।

दीर्घकर्ण—वि० [सं०] जिसके कान बड़े बड़े हों।

संज्ञा पुं० एक जाति का नाम जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में है।

दीर्घकांड—संज्ञा पुं० [सं०] गुंडतृण। गोंदला।

दीर्घकांडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताल गारुड़ीलता। छिरहिटा। छिरेटा।

दीर्घकाय—वि० [सं०] बड़े डीलडौल का। लंबे चौड़े शरीरवाला।

दीर्घकील—संज्ञा पुं० दे० "दीर्घकीलक"।

दीर्घकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़।

दीर्घकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

दीर्घकूरक—संज्ञा पुं० [सं०] अंध्रदेश में होनेवाला एक प्रकार का धान।

दीर्घकेश—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घकेशी] जिसके लंबे लंबे बाल हों।

संज्ञा पुं० (१) भालू। (२) कूर्म विभाग के पश्चिमोत्तर में स्थित एक देश। (बृहत्संहिता)

दीर्घकोशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति नामक जलजंतु। सुतुही।

दीर्घगति—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट (जो लंबे लंबे डग रखता है)।

दीर्घग्रंथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

दीर्घग्रीव—वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घग्रीवी] जिसकी गरदन लंबी हो।

संज्ञा पुं० (१) नील क्रौंचपक्षी। सारस। (२) कूर्म विभाग के दक्षिण पश्चिम ओर स्थित एक देश। (बृहत्संहिता)

दीर्घघाटिक—वि० [सं०] लंबी गरदनवाला।

संज्ञा पुं० ऊँट।

दीर्घच्छद—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों।

संज्ञा पुं० ईख। ऊख।

दीर्घजंगल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। बड़ा भिंगा।

दीर्घजंघ—वि० [सं०] जिसकी लंबी लंबी टाँगें हों।

संज्ञा पुं० (१) बक। बगला। (२) ऊँट।

दीर्घजिह्व—वि० [सं०] जिसकी लंबी जीभ हो।

संज्ञा पुं० (१) सर्प। (२) दानव विशेष।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोचन की पुत्री एक राक्षसी जिसे इंद्र ने मारा था। उ०—वैरोचनजा दीरघजिह्वा। सुरपति तेहि लखि लीन्हेसि लिह्वा।—विश्राम। (२) मातृगणों में से एक जो कार्त्तिकेय की अनुचरी है।

दीर्घजीवी—वि० [सं० दीर्घजीविन्] जो बहुत दिनों तक जीए। बहुत काल तक जीवित रहनेवाला।

दीर्घतपा—वि० [सं० दीर्घतपस्] जिसने बहुत दिनों तक तपस्या की हो।

संज्ञा पुं० हरिवंश के अनुसार आयुवंशीय एक राजा जिन्होंने बहुत काल तक तप किया था।

दीर्घतमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घतमस्] एक ऋषि जो उतथ्य के पुत्र थे।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है। उतथ्य नामक एक तेजस्वी मुनि थे जिनकी पत्नी का नाम ममता था। ममता जिस समय गर्भवती थी उस समय उतथ्य के छोटे भाई देवगुरु बृहस्पति उसके पास आए और सहवास की इच्छा प्रकट करने लगे। ममता ने कहा "मुझे तुम्हारे बड़े भाई से गर्भ है अतः इस समय तुम जाओ"। बृहस्पति ने न माना और वे सहवास में प्रवृत्त हुए। गर्भस्थ बालक ने भीतर से कहा—"बस करो! एक गर्भ में दो बालकों की स्थिति नहीं हो सकती"। जब बृहस्पति ने इतने पर भी न सुना तब उस तेजस्वी गर्भस्थ शिशु ने अपने पैरों से वीर्य्य को रोक दिया। इस पर बृहस्पति ने कुपित होकर गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि "तू दीर्घ-तामस में पड़ (अर्थात् अंधा हो जा)"। बृहस्पति के शाप से वह बालक अंधा होकर जन्मा और दीर्घतमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रद्वेषी नाम की एक ब्राह्मण कन्या से दीर्घतमा का विवाह हुआ जिससे उन्हें गौतम आदि कई पुत्र हुए। ये सब पुत्र लोभ मोह के वशीभूत हुए। इस पर

दीर्घस्वर-संज्ञा पुं० [सं०] द्विमात्रिक स्वर। दे० "दीर्घ"

दीर्घा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

दीर्घायु-वि० [सं०] जिसकी आयु बड़ी हो। बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घजीवी। चिरजीवी।

संज्ञा पुं० (१) सेमर का पेड़। (२) कौवा। काक। (३) मार्कंडेय। (४) जीवक वृक्ष।

दीर्घायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंभाला। (२) सूअर। शूकर।

दीर्घालर्क-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार।

दीर्घास्य-वि० [सं०] बड़े मुँहवाला।

संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) शिव के एक अनुचर का नाम। (३) पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित एक देश। (बृहत्संहिता)

दीर्घाहन-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्मकाल (जिसमें दिन बड़ा होता है)।

दीर्घिका-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बावली। छोटा जलाशय। छोटा तालाब।

विशेष—किसी किसी के मत से ३०० धनुष लंबे जलाशय को दीर्घिका कहते हैं।

(२) हिंगुपत्री।

दीर्घवृंत-संज्ञा पुं० [सं०] लंबी ककड़ी। डँगरी।

दीर्ण-वि० [सं०] फटा हुआ। विदारित। दरका हुआ।

दीर्वका-संज्ञा स्त्री० दे० "दीमक"।

दीवट-संज्ञा स्त्री० [सं० दीपस्थ, प्रा० दीवट्ठ] पीतल, लकड़ी आदि का डंडे के आकार का आधार जिसपर दीया रखा जाता है। दीवाधार। चिरागदान।

दीयला-संज्ञा पुं० [हिं० दीवा + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० दिवली, दियली] दीया।

दीया-संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दीपक। दीया।

संज्ञा पुं० दे० "धव"।

दीवान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) राजा या बादशाह के बैठने की जगह। राजसभा। दरबार। कचहरी।

यौ०—दीवान आम। दीवान खास।

(२) मंत्री। वज़ीर। राज्य का प्रबंध करनेवाला। प्रधान। उ०—भक्त ध्रुव की अटल पदवी राम के दीवान।

यौ०—दीवानखालसा।

(३) गजलों के संग्रह की पुस्तक।

दीवानआम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) आम दरबार। ऐसा दरबार जिसमें राजा या बादशाह से सब लोग मिल सकते हैं। (२) वह स्थान या भवन जहाँ आम दरबार लगता हो।

दीवानखाना-संज्ञा पुं० [फा०] घर का वह बाहरी हिस्सा या कमरा जहाँ बड़े आदमी बैठते और सब लोगों से मिलते हैं। बैठक।

दीवानखालसा-संज्ञा पुं० [अ०] वह अधिकारी जिसके पास राजा या बादशाह की मुहर रहती है।

दीवानखास-संज्ञा पुं० [फा० + अ०] (१) खास दरबार। ऐसी सभा जिसमें राजा या बादशाह मंत्रियों तथा चुने हुए प्रधान लोगों के साथ बैठता है। (२) वह जगह या मकान जहाँ खास दरबार होता हो।

दीवाना-वि० [फा०] [स्त्री० दीवानी] पागल। सिड़ी। विक्षिप्त।

मुहा०—किसी के पीछे दीवाना होना = किसी के लिये हैरान होना। किसी (वस्तु या व्यक्ति) के लिये व्यग्र होना।

दीवानापन-संज्ञा पुं० [फा० दीवाना + पन (प्रत्य०)] पागलपन। सिड़ीपन। विक्षिप्तता।

दीवानी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दीवान का पद। दीवान का ओहदा। (२) वह अदालत जिसमें दो फरीकों के बीच किसी तरह की हकीयत का फैसला हो। वह न्यायालय जो सम्पत्ति आदि संबंधी स्वत्व का निर्णय करे। व्यवहार संबंधी न्यायालय।

वि० स्त्री० [फा० दीवाना] पगली। बावली।

दीवार-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) पत्थर, ईंट, मिट्टी आदि को नीचे ऊपर रखकर उठाया हुआ परदा जिससे किसी स्थान को घेर कर मकान आदि बनाते हैं। भीत।

मुहा०—दीवार उठाना = दीवार बनाना। दीवार खड़ी करना = दीवार बनाना।

(२) किसी वस्तु का घेरा जो ऊपर उठा हो। जैसे, टोपी की दीवार, जूते की दीवार, चूल्हे की दीवार।

दीवारगीर-संज्ञा स्त्री० [फा०] दीया आदि रखने का आधार जो दीवार में लगाया जाता है।

दीवारगीरी-संज्ञा स्त्री० [फा० दीवारगीर] एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो दीवार में लगाया जाता है। पिछवाई।

दीवाल-संज्ञा स्त्री० "दे० दीवार"।

दीवालदंड-संज्ञा पुं० [फा० दीवार + हिं० दंड] एक प्रकार की कसरत या दंड जो दीवार पर हाथ टिका कर करते हैं।

दीवाला-संज्ञा पुं० दे० "दिवाला"।

दीवाली-संज्ञा स्त्री० [सं० दीपवली] कार्त्तिक की अमावास्या को होनेवाला एक उत्सव जिसमें संध्या के समय घर में भीतर बाहर बहुत से दीपक जलाकर पंक्तियों में रखे जाते हैं और लक्ष्मी का पूजन होता है।

विशेष—जिस दिन प्रदोष काल में अमावास्या रहेगी उसी दिन दीवाली होगी और लक्ष्मी का पूजन किया जायगा। यदि अमावास्या लगातार दो दिन प्रदोषकाल में पड़े तो दूसरे दिन की रात को दीवाली मानी जायगी और वह रात सुखरात्रिका कहलावेगी। यदि अमावास्या प्रदोषकाल में पड़े ही न तो पहले दिन लक्ष्मीपूजा और दूसरे दिन दीपदान होगा क्योंकि पार्वण श्राद्ध उसी दिन होगा। दीवाली के दिन लोग जूआ खेलना भी कर्त्तव्य समझते हैं।

दीवि-संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ नाम का पक्षी।

दीर्घपर्ण–वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों।
दीर्घपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।
दीर्घपल्लव–संज्ञा पुं० [सं०] सन का पेड़।
दीर्घपाद–वि० [सं०] लंबी टाँगवाला।
संज्ञा पुं० (१) कंकपक्षी। (२) सारस।
दीर्घपादप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ का पेड़। (२) सुपारी का पेड़।
दीर्घपृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।
दीर्घप्रज्ञ–वि० [सं०] दूरदर्शी।
संज्ञा पुं० द्वापर के एक राजा वृषपर्वा का नाम जो असुर के अवतार थे।
दीर्घफल–संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।
दीर्घफलक–संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़।
दीर्घफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतुका लता। पहाड़ी नाम की लता। (२) लंबा अंगूर।
दीर्घफलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपिलद्राक्षा। लंबा अंगूर। (२) जतुका लता।
दीर्घबाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमरी। सुरागाय।
दीर्घबाहु–वि० [सं०] जिसकी भुजा लंबी हो।
संज्ञा पुं० (१) शिव के एक अनुचर का नाम। (हरिवंश)। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
दीर्घमारुत–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।
दीर्घमुख–संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।
दीर्घमूल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की बेल। मोरटलता। (२) बेना की तरह की एक पीली घास। लामज्जक तृण। (३) विल्वांतर वृक्ष।
दीर्घमूलक–संज्ञा पुं० [सं०] मूलक। मूली।
दीर्घमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालिपर्णी। सरिवन। (२) श्यामालता। कालीसर।
दीर्घमूली–संज्ञा स्त्री० [सं०] धमासा।
दीर्घयज्ञ–वि० [सं०] जिसने बहुत काल तक यज्ञ किया हो।
संज्ञा पुं० अयोध्या के एक राजा का नाम जो द्वापर में हुए थे। (महाभारत)
दीर्घरत–वि० [सं०] जो बहुत देर तक मैथुन में रत रहे।
संज्ञा पुं० कुत्ता।
दीर्घरद–वि० [सं] जिसके निकले हुए लंबे दाँत हों।
संज्ञा पुं० सूअर। शूकर।
दीर्घरसन–संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।
दीर्घरागा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा। हलदी।
दीर्घरोमा–संज्ञा पुं० [सं० दीर्घरोमन्] (१) भालू। (२) शिव के एक अनुचर का नाम।
दीर्घरोहिष–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति की रोहिस घास जो मालवा, राजपुताना और मध्यप्रदेश में बहुत होती है। इसमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है जो नीबू की सुगंध से मिलती जुलती होती है। इसकी जड़ से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है।
दीर्घलोचन–वि० [सं०] बड़ी आँखवाला।
संज्ञा पुं० (१) शिव के एक अनुचर का नाम। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
दीर्घवंश–संज्ञा पुं० [सं०] नरसल। नरकट।
दीर्घवक्त्र–वि० [सं०] [स्त्री० दीर्घवक्त्रा] लंबे मुहँवाला।
संज्ञा पुं० हाथी।
दीर्घवर्चिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीर। घड़ियाल।
दीर्घवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ा इंद्रायन। महेंद्र-वारुणी। (२) पातालगरुड़ी लता। छिरेटा। (३) पलाशीलता। चैंरिया पलाश।
दीर्घवृंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्योनाकवृक्ष। सोनापाठा। (२) लताशाल।
दीर्घवृंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रचिर्भिटी लता।
दीर्घवृंतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एलापर्णी।
दीर्घशर–संज्ञा पुं० [सं०] ज्वार। जुन्हरी।
दीर्घशाख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सन का पेड़। (२) शाल। साखू का पेड़।
दीर्घशिंबिक–संज्ञा पुं० [सं०] राव। एक प्रकार की राई।
दीर्घशूक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।
दीर्घश्रवा–संज्ञा पुं० [सं० दीर्घश्रवस्] दीर्घतमा ऋषि के एक पुत्र जिन्होंने अनावृष्टि होने पर जीविका के लिये वाणिज्य कर लिया था। इस बात का उल्लेख ऋग्वेद में है।
दीर्घश्रुत–वि० [सं०] (१) जो दूर तक सुनाई पड़े। (२) जिसका नाम दूर तक विख्यात हो।
दीर्घसत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यावज्जीवन कर्त्तव्य अग्निहोत्र। (२) एक यज्ञ जो बहुत दिनों में समाप्त होता था। (३) एक तीर्थ का नाम (*महाभारत*)।
वि० जिसने दीर्घ सत्र यज्ञ किया हो।
दीर्घसुरत–वि० [सं०] देर तक रति करनेवाला।
संज्ञा पुं० कुत्ता।
दीर्घसूक्ष्म–संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भेद।
दीर्घसूत्र–वि० दे० "दीर्घसूत्री"।
दीर्घसूत्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक कार्य में विलंब करने का स्वाभाव। हर एक काम में देर लगाने की आदत।
दीर्घसूत्री–वि० [सं० दीर्घसूत्रिन्] प्रत्येक कार्य में विलंब करनेवाला। हर एक काम में जरूरत से ज्यादा देर लगानेवाला। प्रत्येक कार्य में अधिक समय बितानेवाला। देर से काम करनेवाला।
दीर्घस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

इत्यादि चित्तविक्षेपों के अतिरिक्त योग ने चित्त के राजस कार्य्य को दुःख कहा है। किसी विषय से चित्त में जो खेद या कष्ट होता है वही दुःख है। इसी दुःख से द्वेष उत्पन्न होता है। जब किसी विषय से चित्त को दुःख होगा तब उससे द्वेष उत्पन्न होगा। योग परिणाम, ताप और संस्कार तीन प्रकार के दुःख मानकर सब वस्तुओं को दुःखमय कहता है। परिणाम दुःख वह है जिसका अन्यथाभाव हो अर्थात् जो भविष्य में अवश्य पहुँचे, ताप दुःख वह है जो वर्त्तमान काल में कोई भोग रहा हो और जिसका प्रभाव या स्मरण बना हो।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दुःख उठाना=कष्ट सहना। तकलीफ सहना। ऐसी स्थिति में पड़ना जिसमें सुख या शांति न हो। दुःख देना=कष्ट पहुँचाना। दुःख पहुँचना=दुःख होना। दुःख पहुँचाना=दे० "दुःख देना"। दुःख पाना=दे० "दुःख उठाना"। दुःख बटाना=सहानुभूति करना। कष्ट या संकट के समय साथ देना। दुःख भरना=कष्ट या संकट के दिन काटना। दुःख भुगतना या भोगना=दे० "दुःख उठाना"।

(२) संकट। आपत्ति। विपत्ति।

मुहा०—(किसी पर) दुःख पड़ना=आपत्ति आना। संकट उपस्थित होना।

(३) मानसिक कष्ट। खेद। रंज। जैसे, उसकी बात से मुझे बहुत दुःख हुआ।

मुहा०—दुःख मानना=खिन्न होना। रंजन होना। रंजीदा होना। दुःख बिसराना=(१) चित्त से खेद निकालना। शोक या रंज की बात भूलना। (२) जी बहलाना। दुःख लगना=मन में खेद होना। रंज होना।

(४) पीड़ा। व्यथा। दर्द। (५) व्याधि। रोग। बीमारी। जैसे, इन्हें बुरा दुःख लगा है।

मुहा०—दुःख लगना=रोग घेरना। व्याधि होना।

दुःखकर–वि० [सं०] जो दुःख उत्पन्न करे। क्लेश पहुँचानेवाला।

दुःखग्राम–संज्ञा पुं० [सं०] संसार।

दुःखजीवी–वि० [सं०] कष्ट से जीवन बितानेवाला।

दुःखत्रय–संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के दुःखों का समूह।

दुःखद–वि० [सं०] [स्त्री० दुःखदा] दुःखदायी। कष्ट पहुँचानेवाला।

दुःखदग्ध–वि० [सं०] कष्ट में पड़ा हुआ। संतप्त। क्लेशित।

दुःखदाता–संज्ञा पुं० [सं० दुःखदातृ] दुःख पहुँचानेवाला मनुष्य।

दुःखदायक–वि० [सं०] [स्त्री० दुःखदायिका] दुःख या कष्ट पहुँचानेवाला। जिससे दुःख हो।

दुःखदायी–वि० [सं० दुःखदायिन्] [स्त्री० दुःखदायिनी] दुःख देनेवाला। जिससे कष्ट पहुँचे।

दुःखदोहा–वि० स्त्री० [सं०] (गाय) जो कठिनता से दुही जा सके। जो जल्दी दुहने न दे।

दुःखनिवह–वि० [सं०] दुःसह।

दुःखप्रद–संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट देनेवाला। दुःखद।

दुःखबहुल–संज्ञा पुं० [सं०] दुःखपूर्ण। क्लेश से भरा हुआ।

दुःखमय–वि० [सं०] दुःखपूर्ण। क्लेश से भरा हुआ।

दुःखलभ्य–वि० [सं०] जो दुःख या कष्ट से प्राप्त हो सके। जो कठिनता से मिल सके।

दुःखलोक–संज्ञा पुं० [सं०] संसार।

दुःखसाध्य–वि० [सं०] दुःख से होने योग्य। मुश्किल से होनेवाला (काम)। जिसका करना कठिन हो।

दुःखांत–वि० [सं०] (१) जिसके अंत में दुःख हो। जिसके परिणाम में कष्ट हो। (२) जिसके अंत में दुःख का वर्णन हो। जैसे, दुःखांत नाटक।

विशेष—प्राचीन यूनान के साहित्य-ग्रंथों में नाटक दो प्रकार के कहे गए हैं—सुखांत और दुःखांत। अतः योरप के साहित्य में नाटक या उपन्यास के दो भेद माने जाते हैं। पर भारतीय आचार्यों ने इस प्रकार का भेद नहीं किया है।

संज्ञा पुं० (१) दुःख का अंत। क्लेश की समाप्ति। (२) दुःख की पराकाष्ठा। अत्यंत अधिक कष्ट। तकलीफ की हद।

दुःखायतन–संज्ञा पुं० [सं०] संसार। जगत्।

दुःखार्त्त–वि० [सं०] कष्ट से व्याकुल।

दुःखित–वि० [सं०] पीड़ित। क्लेशित। जिसे कष्ट या तकलीफ हो।

दुःखिनी–वि० स्त्री० [सं०] [स्त्री०] जिस पर दुःख पड़ा हो। दुखिया।

दुःखी–वि० [सं० दुःखिन्] [स्त्री० दुःखिनी] जिसे दुःख हो। जो कष्ट या तकलीफ में हो।

दुःशकुन–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शकुन। यात्रा आदि में दिखाई पड़नेवाला कोई ऐसा लक्षण जिसका बुरा फल समझा जाता है। जैसे, यात्रा में छेंकी का मिलना।

दुःशला–संज्ञा स्त्री० [सं०] गांधारी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र की कन्या जो सिंधुदेश के राजा जयद्रथ को ब्याही थी। जब महाभारत के युद्ध में जयद्रथ मारा गया तब इसने अपने छोटे से बालक सुरथ को राजसिंहासन पर बैठा कर बहुत दिनों तक राजकाज चलाया था। पांडवों के अश्वमेध के समय जब अर्जुन घोड़े को लेकर सिंधुदेश में पहुँचे तब सुरथ ने अपने पिता को मारनेवाले का युद्धार्थ आगमन सुनकर भय से प्राण त्याग कर दिया। अर्जुन ने इस बात को सुन कर सुरथ के बालक पुत्र को सिंहासन पर बैठाया।

दुःशासन–वि० [सं०] जिस पर शासन करना कठिन हो। जो किसी का दबाव न माने।

दीवी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दीवी] दीवट। चिरागदान।

दीसना–क्रि० अ० [सं० दृश = देखना] दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना। उ०—बिदुसन प्रभु विराट्मय दीसा।—तुलसी।

दीह*–वि० [सं० दीर्घ] लंबा। बड़ा। उ०—बहु ता महँ दीप पताक लसैं। जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसैं।—केशव।

दुंका–संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] (अनाज का) छोटा कण। कन। दाना। किनकी।

दुँगरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

दुंद–संज्ञा पुं० [सं० द्वंद्व] (१) दो मनुष्यों के बीच होनेवाला युद्ध वा झगड़ा। (२) ऊधम। उत्पात। उपद्रव। हलचल। उ०—तब ही सूरज के सुभट निकट मचायो दुंद। निकसि सकैं नहिं एकहू करयो कटक मलमुंद।—सूदन।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(३) जोड़ा। युग्म। उ०—बरनै दीनदयाल दरसि पददुंद अनंदौं—दीनदयाल।

संज्ञा पुं० [सं० दुंदुभि] नगाड़ा। उ०—(क) चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।—जायसी। (ख) बाजत ढोल दुंद औ भेरी। मांदर तूर झांझ चहुं फेरी।—जायसी।

दुँदका†–संज्ञा पुं० [देश०] गन्ना पेरने का कोल्हू।

दुंदुभ–संज्ञा पुं० [सं०] नगारा। धौंसा।

दुंदुभि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) विष। (३) क्रौंच द्वीप का एक विभाग। (४) एक पर्वत का नाम। (५) पासे का एक दाँव। (६) एक राक्षस का नाम जिसे बालि ने मार कर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंका था। इस पर मतंग ऋषि ने शाप दिया था जिसके कारण बालि उस पर्वत के पास नहीं जा सकता था।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नगाड़ा। धौंसा। उ०—(क) तब देवन दुंदभी बजाई।—तुलसी। (ख) मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।—तुलसी।

दुंदुभिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा।

दुंदुभिस्वन–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में लिखी हुई एक प्रकार की विष-चिकित्सा।

विशेष—बड़, आम, गूलर, आँवला, अंकोल इत्यादि बहुत सी लकड़ियों का गोमूत्र में क्षार बनाकर और उसमें और बहुत सी ओषधियाँ मिलाकर लेप बनावे। इस लेप को दुंदुभि, तोरण, पताका इत्यादि में पोते। ऐसे तोरण, दुंदुभि आदि के दर्शन श्रवण से विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

दुंदुभी–संज्ञा स्त्री० दे० "दुंदुभ"।

दुंदुमार–संज्ञा पुं० दे० "धुंधुमार"।

दुंदुह*–संज्ञा पुं० [सं० डुंडुभ] पानी का साँप। डेंड़हा।

दुंबा–संज्ञा पुं० [फा० दुंबालः] एक प्रकार का मेढ़ा जिसकी दुम चक्की के पाट की तरह गोल और भारी होती है। इसका ऊन बहुत अच्छा होता है। इस प्रकार के मेढ़े पंजाब और काश्मीर से लेकर अफगानिस्तान और फारस तक होते हैं। भारतवर्ष में कई स्थानों पर ऐसे मेढ़ों की दोगली जाति उत्पन्न की गई है पर इसमें विशेष सफलता नहीं हुई है। बात यह है कि सीड़वाले प्रदेशों में प्रायः दुम में कई प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

दुंबाल–संज्ञा पुं० [फा० दुंबालः] (१) चौड़ी पूँछ। (२) नाव की पतवार। (३) जहाज का पिछला हिस्सा।

दुंबुर–संज्ञा पुं० [सं० उदुंबर] गूलर की जाति का एक पेड़ जो हिमालय के किनारे चेनाब से लेकर पूरब की ओर बराबर मिलता है। बंगाल, उड़ीसा और बरमा में भी नदियों या नालों के किनारे होता है। इस पर लाख पाई जाती है। इसकी छाल के रेशों से छप्पर की काँड़ी धान आदि बाँधी जाती हैं। बरसात में इसके फल पकते हैं और खाए जाते हैं। पर इन फलों का स्वाद फीका होता है। इसकी पत्तियाँ कुछ खुरदरी होती हैं और लकड़ी माजने के काम में आती हैं।

दुःकुंत*–संज्ञा पुं० दे० "दुष्यंत"।

दुःख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पाने की इच्छा प्राणियों में स्वाभाविक हो। कष्ट। क्लेश। सुख का विपरीत भाव। तकलीफ।

विशेष—सांख्यशास्त्र के अनुसार दुःख तीन प्रकार के माने गए हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख के अंतर्गत रोग व्याधि आदि शारीरिक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख हैं। आधिभौतिक दुःख वह है जो स्थावर, जंगम (पशु, पक्षी, साँप, मच्छड़ आदि) भूतों के द्वारा पहुँचता है। आधिदैविक जो देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पहुँचता है, जैसे, आँधी, वर्षा, वज्रपात, शीत, ताप इत्यादि। सांख्य दुःख को रजोगुण का कार्य्य और चित्त का एक धर्म मानता है, आत्मा को उससे अलग रखता है। पर न्याय और वैशेषिक दुःख को आत्मा का धर्म्म मानते हैं। त्रिविध दुःखों की निवृत्ति को सांख्य ने अत्यंत पुरुषार्थ कहा है और शास्त्र-जिज्ञासा का उद्देश्य बतलाया है। प्रधान दुःख जरा और मरण हैं जिनसे लिंगशरीर की निवृत्ति के बिना चेतन या पुरुष छुटकारा नहीं पा सकता। इस प्रकार की मुक्ति या अत्यंत दुःखनिवृत्ति तत्त्वज्ञान द्वारा—प्रकृति और पुरुष के भेद ज्ञान द्वारा—ही संभव है। वेदांत ने सुख-दुःख-ज्ञान को अविद्या कहा है जिसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान द्वारा हो जाती है।

योग की परिभाषा में दुःख एक प्रकार का चित्तविक्षेप या अंतराय है जिससे समाधि में विघ्न पड़ता है। व्याधि

क्रि॰ प्र॰—देना।

मुहा॰—दुआ लगना = आशीर्वाद का फलीभूत होना।

संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दो] गले में पहनने का एक गहना।

दुआदस॰†-संज्ञा पुं॰ दे॰ "द्वादश"।

दुआब-संज्ञा पुं॰ दे॰ "दुआबा"।

दुआबा-संज्ञा पुं॰ [फा॰] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दुआर†-संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्वार] [स्त्री॰ दुआरी] द्वार।

दुआरा†-संज्ञा पुं॰ दे॰ "दुआरा"। उ॰—लंका बाँके चारि दुआरा।—तुलसी।

दुआरी†-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दुआर] छोटा दरवाजा।

दुआल-संज्ञा स्त्री॰ [फा॰] (१) चमड़ा। चमड़े का तसमा। (२) रिकाब का तसमा।

दुआला-संज्ञा पुं॰ [देश॰] लकड़ी का एक बेलन जिसे सुनहरी छपी हुई छीटों के तारों को बैठाने के लिये फेरते हैं।

दुआली-संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ दुवाल = तसमा] खराद का तसमा। खराद की बद्धी। सान की बद्धी। चमड़े का वह तसमा जिससे कसेरे कून, सिकलीगर सान और बढ़ई खराद घुमाते हैं।

दुइ†-वि॰ दे॰ "दो"।

दुइज†॰-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ द्वितीय, प्रा॰ दुईज] पाख की दूसरी तिथि। द्वितीया। दूज।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्विज] दूज का चाँद। द्वितीया का चंद्रमा। उ॰—कहीं लिलाट दुइज कइ जोती। दुइजहि जोति कहाँ जग ओती?—जायसी।

दुओ-वि॰ दे॰ "दोनों"।

दुकड़हा-वि॰ [हिं॰ दुकड़ + हा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ दुकड़ही] (१) जिसका मूल्य एक दुकड़ा हो। (२) तुच्छ। नाचीज। (३) नीच। कमीना। अनादृत।

दुकड़ा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्विक + ड़ा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ दुकड़ी] (१) वह वस्तु जो एक साथ या एक में लगी हुई दो दो हो। जोड़ा। जैसे, धोतियों का दुकड़ा, अँगोछों का दुकड़ा। (२) वह जिसमें कोई वस्तु दो दो हो। वह जिसमें किसी वस्तु का जोड़ा हो। जैसे, चारपाई की दुकड़ी बुनावट, दुकड़ी गाड़ी। (३) दो दमड़ी। छदाम। एक पैसे का चौथाई भाग।

विशेष—इसका हिसाब कौड़ियों से होता है। कहीं कहीं पाई को दुकड़ा मान लेते हैं यद्यपि इसका मूल्य एक पैसे का ...गा है।

...ानेवाला। [...

दुःखदायी-वि॰ [सं॰ हिं॰ दुकड़ा] जिसमें कोई वस्तु दो दो हो। देनेवाला। जिससे क...रपाई की वह बुनावट जिसमें दो दो ...गते हैं। (२) दो बूटियोंवाला ताश का पत्ता। (३) दो घोड़ों की बग्घी। (४) घोड़ों का सामान जो दोहरा हो।

संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दो + कड़ी] वह लगाम जिसमें दो कड़ियाँ होती हैं।

दुकना-†-क्रि॰ अ॰ [देश॰] लुकना। छिपना।

दुकान-संज्ञा स्त्री॰ [फा॰] वह स्थान जहाँ बेचने के लिये चीजें रखी हों और जहाँ ग्राहक जाकर उन्हें खरीदते हों। सौदा बिकने का स्थान। माल बिकने की जगह। हट्ट। हट्टी। जैसे, कपड़े की दुकान, हलवाई की दुकान, बिसाती की दुकान।

क्रि॰ प्र॰—खोलना।—बंद करना।

मुहा॰—दुकान उठाना = (१) कारबार बंद करके दुकान छोड़ देना। (२) दुकान बंद करना। दुकान करना = दुकान खोलकर किसी चीज की बिक्री आरंभ करना। दुकान जारी करना। दुकान खोलना। जैसे, एक महीने से उन्होंने चौक में गोटे की दुकान की है। दुकान खोलना = दे॰ "दुकान करना"। दुकान चलना = दुकान में होनेवाले व्यवसाय की वृद्धि होना। जैसे, आजकल शहर में उनकी दुकान खूब चलती है। दुकान बढ़ाना = दुकान बंद करना। दुकान में बाहर रखा हुआ माल उठाकर किवाड़े बंद करना। जैसे, (क) उनकी दुकान रात को नौ बजे बढ़ती है। (ख) आज न्योते में जाना था इसी लिये दुकान जल्दी बढ़ा दी। दुकान लगाना = (१) दुकान का असबाब फैलाकर यथास्थान बिक्री के लिये रखना। वस्तुओं को बेचने के लिये फैलाकर रखना। जैसे, ज़रा ठहरो, दुकान लगा लें तो दें। (२) बहुत सी चीजों को इधर उधर फैलाकर रख देना। जैसे, वह लड़का जहाँ बैठता है वहाँ दुकान लगा देता है।

दुकानदार-संज्ञा पुं॰ [फा॰] (१) दुकान का मालिक। दुकान पर बैठकर सौदा बेचनेवाला। वह जिसकी दुकान हो। दूकानवाला। (२) वह जिसने अपनी आय के लिये कोई ढोंग रच रखा हो। जैसे, उन्हें साधु या त्यागी कौन कहता है, वे तो पूरे दुकानदार हैं।

दुकानदारी-संज्ञा स्त्री॰ [फा॰] (१) दूकान या बिक्री बट्टे का काम। दुकान पर माल बेचने का काम। (२) ढोंग रचकर रुपया पैदा करने का काम। जैसे, यह सब बाबाजी की दुकानदारी है।

दुकाल-संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुष्काल] अन्नकष्ट का समय। अकाल। दुर्भिक्ष। उ॰—(क) कलि नाम कामतरु राम को। दलन-हार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को।—तुलसी। (ख) कलि बारहि बार दुकाल परै। बिन अन्न दुखी सब लोग मरै।—तुलसी।

दुकुली-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का पुराना बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता है।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के १०० लड़कों में से एक जो दुर्योधन का अत्यंत प्रेमपात्र और मंत्री था। यह अत्यंत क्रूरस्वभाव था। पांडव लोग जब जूए में हार गए थे तब यही द्रौपदी को पकड़ कर सभास्थल में लाया था और उसका वस्त्र खींचना चाहता था। इस पर भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इसका रक्तपान करूँगा और जब तक इसके रक्त से द्रौपदी के बाल न रँगूँगा तब तक वह बाल न बाँधेगी। महाभारत के युद्ध में भीमसेन ने अपनी यह भयंकर प्रतिज्ञा पूरी की थी।

दुःशील–वि० [सं०] बुरे स्वभाव का।

दुःशीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। दुःस्वभाव।

दुःशोध–वि० [सं०] (१) जिसका सुधार कठिन हो। (२) (धातु आदि) जिसका शोधना कठिन हो।

दुःश्रव–संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह दोष जो कानों को कर्कश लगनेवाले वर्णों के आने से होता है। श्रुतिकटु दोष।

दुःषम–वि० [सं०] निंदनीय।

दुःषेध–वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो।

दुःसंकल्प–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा इरादा। खोटा विचार।

वि० बुरा संकल्प करनेवाला। बुरा इरादा रखनेवाला। खोटी नीयत का।

दुःसंग–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा साथ। कुसंग। बुरी सोहबत।

दुःसंधान–संज्ञा पुं० [सं०] केशवदास के अनुसार काव्य में एक रस जो उस स्थल पर होता है जहाँ एक तो अनुकूल होता है और दूसरा प्रतिकूल, एक तो मेल की बात करता है दूसरा बिगाड़ की। एक होय अनुकूल जहँ दूजो है प्रतिकूल। केशव दुःसंधान रस शोभित तहाँ समूल॥ यह पाँच प्रकार के अनरसों में से माना गया है।

दुःसह–वि० [सं०] जिसका सहन करना कठिन हो। जो कष्ट से सहा जाय। अत्यंत कष्टदायक। जैसे, दुःसह पीड़ा।

दुःसहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी।

दुःसाध्य–वि० [सं०] (१) जिसका साधन कठिन हो। जिस का करना मुश्किल हो। जैसे, दुःसाध्य कार्य। (२) जिसका उपाय कठिन हो। जैसे, दुःसाध्य रोग।

दुःसाधी–संज्ञा पुं० [सं०दुःसाधिन्] द्वारपाल।

दुःसाहस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यर्थ का साहस। ऐसा साहस जिसका परिणाम कुछ न हो, या बुरा हो। ऐसी बात करने की हिम्मत जिसका होना असंभव हो या जिसका फल बुरा हो। जैसे, (क) उसे इस काम से रोकने जाना तुम्हारा दुःसाहस मात्र है। (ख) चलती गाड़ी से कूदने का दुःसाहस मत करना। (२) अनुचित साहस। ऐसी बात करने की हिम्मत जो अच्छी न समझी जाती हो। ढिठाई। धृष्टता। जैसे, बड़ों की बात का उत्तर देना तुम्हारा दुःसाहस है।

दुःसाहसिक–वि० [सं०] जिसे करने का साहस करना अनुचित या निष्फल हो। जिसके लिये हिम्मत करना बुरा हो। जैसे, दुःसाहसिक कार्य्य।

दुःसाहसी–वि० [सं०] बुरा साहस करनेवाला।

दुःस्थ–वि० [सं०] (१) जिसकी स्थिति बुरी हो। दुर्दशाग्रस्त। (२) दरिद्र। (३) मूर्ख।

दुःस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी अवस्था। दुरवस्था। दुर्दशा।

दुःस्पर्श–वि० [सं०] (१) न छूने योग्य। जिसका छूना कठिन हो। (२) जिसे पाना कठिन हो।

संज्ञा पुं० (१) कपिकच्छु। केंवाच। (२) लता करंज। (३) कंटकारी। (४) आकाशगंगा।

दुःस्पर्शा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काँटेदार मकोय।

दुःस्वप्न–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वप्न। ऐसा सपना जिसका फल बुरा माना जाता हो।

विशेष– क्या क्या स्वप्न देखने से क्या क्या फल होता है इसका वर्णन विस्तार के साथ ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में है। स्वप्न में यदि कोई हँसे, नाचना गाना देखे तो समझे कि विपत्ति आनेवाली है। यदि अपने को तेल मलते, गदहे, भैंसे, या ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा को जाते देखे तो समझना चाहिए कि मृत्यु निकट है। इसी प्रकार और बहुत से फल कहे गए हैं।

दुःस्वभाव–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वभाव। दुःशीलता। बदमिज़ाजी।

वि० दुःशील। दुष्ट स्वभाव का।

दुःस्वरनाम–संज्ञा पुं० [सं०] वह पापकर्म्म जिसके उदय से प्राणियों के कठोर और हीनस्वर होते हैं। (जैन)

दु–वि० [हिं० दो] 'दो' शब्द का संक्षिप्त रूप जो समास बनाने के काम में आता है। जैसे, दुविधा, दुचित्ता।

दुअन–संज्ञा पुं० दे० "दुवन"।

दुअरवा‡–संज्ञा पुं० दे० "दुआर" "दुवार"। उ०—पियवा आय दुअरवा, उठि किन देख। दुरलभ पाय बिदेसिया, मुद अवरेख।—रहीम।

दुअरिया‡–संज्ञा स्त्री० दे० "दुआरी" "दुवारी"। छोटा दरवाजा। उ०—छाकहु बइठ दुअरिया, मीजहु पाय। पिय तन पेखि गरमिया, बिजन डोलाय।—रहीम।

दुआ–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) प्रार्थना। दरखास्त। विनती। याचना।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दुआ माँगना = प्रार्थना करना।

(२) आशीर्वाद। असीस।

(२) किसी के मर्मस्थान या पके घाव इत्यादि को छू देना जिससे उसमें पीड़ा हो। जैसे, फोड़ा दुखाना।

दुखारा-वि० [हिं दुख + आर (प्रत्य०)] दुखी। पीड़ित। उ०—एक कल्प सुर देखि दुखारे।—तुलसी।

दुखारी-वि० [हिं० दुख + आर (प्रत्य०)] दुखी। व्यथित। खिन्न। उ०—जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।—तुलसी।

दुखारो-वि० दे० "दुखारा"।

दुखित*-वि० दे० "दुःखित"।

दुखिया-वि० [हिं० दुख + इया (प्रत्य०)] दुखी। जो दुःख में पड़ा हो। जिसे किसी प्रकार का कष्ट हो।

यौ०—दीन दुखिया।

दुखियारा-वि० [हिं० दुखिया] [स्त्री० दुखियारी] (१) दुखिया। जिसे किसी बात का दुःख हो। (२) जिसे कोई शारीरिक पीड़ा हो। रोगी।

दुखी-वि० [सं० दुःखित, दुःखी] (१) जिसे दुःख हो। जो कष्ट या दुःख में हो। उ०—धन हीन दुखी ममता बहुधा।—तुलसी। (२) जिसे मानसिक कष्ट पहुँचा हो। जिसके चित्त में खेद उत्पन्न हुआ हो। जिसके दिल में रंज हो। जैसे, उसकी बात सुनकर मैं बड़ा दुखी हुआ। (३) रोगी। बीमार।

दुखीला†-वि० [हिं० दुख + ईला (प्रत्य०)] दुःखपूर्ण। दुःख अनुभव करनेवाला। उ०—गर्भवती की चाह से दुखीले स्वभाव को पहुँच कर उसने जो कहा सोई आया हुआ देखा।—लक्ष्मणसिंह।

दुखोहां*-वि० [हिं० दुख + ओहां] [स्त्री० दुखोहीं] दुःखदायी। दुःखदेनेवाला। उ०—तेहि पैंडे कहां चलिये कबहूँ जेहि कांटे लगैं पग पीर दुखोहीं।—केशव।

दुग-संज्ञा स्त्री० दे० "धुक"।

दुगई-संज्ञा स्त्री० [देश०] ओसारा। बारामदा। उ०—अति अद्भुत चंदन की दुगई। गज दंत सुचंदन चित्रमई।—केशव।

दुगदुगी-संज्ञा स्त्री० [अनु० धुक धुक] (१) वह गड्ढा जो गरदन के नीचे और छाती के ऊपर बीचो बीच होता है। धुकधुकी।

मुहा०—दुगदुगी में दम होना = प्राण का कंठगत होना।

(२) गले में पहनने का एक गहना जो छाती के ऊपर तक लटका रहता है।

दुगधा†-संज्ञा स्त्री० दे० "दुबधा"।

दुगन-वि० दे० "दुगना"।

संज्ञा स्त्री० बाजे की दूनी तेज आवाज। दून।

दुगना-वि० [सं० द्विगुण] [स्त्री० दुगनी] किसी वस्तु से उतना और अधिक जितनी कि वह हो। द्विगुण। दूना। जैसे, (क) चार का दुगना आठ। (ख) यह चादर उसकी दुगनी है।

दुगदनिया बैठक-संज्ञा स्त्री० कुश्ती का एक पेच जो उस समय किया जाता है जब पहलवान का एक हाथ जोड़ की गरदन पर होता है और जोड़ का वही हाथ पहलवान की गरदन पर होता है। इसमें पहलवान दूसरा खाली हाथ बढ़ाकर जोड़ के जंघे में देता है और बैठक करके गर्दन दबाते हुए उसे फेंक देता है।

दुगाड़ा-संज्ञा पुं० [दो + गाड़ = गड्ढा] (१) दुनाली बंदूक। दोनली बंदूक। (२) दोहरी गोली।

दुगासरा-संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग + आश्रय] वह गाँव जो किसी दुर्ग के किनारे हो। किसी दुर्ग के नीचे या चारों ओर बसा हुआ गाँव। उ०—गढ़ी घेरैन दुरग आसरो। गाँव गढ़ी को ढह दुगासरो।—लाल।

दुगुण*-वि० दे० "द्विगुण"।

दुगुन*†-वि० दे० "दुगना"। उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपिरूप दिखावा।—तुलसी।

दुग्ग*-संज्ञा पुं० दे० "दुर्ग"।

दुग्ध-वि० [सं०] (१) दुहा हुआ। (२) भरा हुआ।

संज्ञा पुं० दूध।

दुग्धकूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश में लिखा हुआ एक पकवान जो पिसे हुए चावल और दूध के मेल से बनता है।

विशेष—दूध के साथ पिसे हुए चावल की गोल लोई बनावे और उसमें गड्ढा करे। फिर इस लोई को थोड़ा घी में तलकर उसके गड्ढे में खूब गाढ़ा दूध भर दे और गड्ढे का मुँह मैदे से बंद कर दे। फिर इस दूध भरे हुए बड़े को घी में तल कर चाशनी में डाल दे। यह पकवान वायु-पित्त-नाशक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक और रुचिवर्द्धक होता है।

दुग्धतालीय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) मलाई।

दुग्धपाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसे बंगाल की ओर सिरोला कहते हैं।

दुग्धपुच्छी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़ का नाम।

पर्या०—सेवकालु। नखेकरी। निशभंगा। दुग्धरेया।

दुग्धफेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) एक पौधा। क्षीर हिंडीर।

दुग्धफेनी-संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा पौधा। पयस्विनी। सुतारि। गोजापर्णी।

दुग्धबीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार। जुन्हरी (जिसके दो दानों में से सफेद रस या दूध निकलता है)।

दुग्धसमुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर समुद्र। पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक।

दुग्धाश्म-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नग या पत्थर जिसपर सफेद सफेद छींटे होते हैं।

दुग्धाब्धि-संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर समुद्र।

दुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षौम वस्त्र। सन या तीसी के रेशे का बना कपड़ा। (२) महीन कपड़ा। बारीक कपड़ा। (३) वस्त्र। कपड़ा। उ०—खग मृग परिजन, नगर वन, बलकल विमल दुकूल। नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुखमूल।—तुलसी। (४) बौद्धों के शाम जातक के अनुसार शाम के पिता का नाम जो एक मुनि थे।

विशेष—शाम जातक में लिखा है कि एक दिन दुकूल अपनी पत्नी परिखा के सहित फल मूल की खोज में वन में गए। वहाँ किसी दुर्घटना से वे दोनों अंधे हो गए। शाम दोनों को ढूँढ़ कर वन से लाए और अनन्य भाव से उनकी सेवा करने लगे। एक दिन संध्या को वे अंधे माता पिता को छोड़ नदी से जल लाने गए। वहाँ किसी राजा ने उन्हें मृग समझकर उनपर तीर चलाया। तीर लगने से शाम की मृत्यु हो गई। राजा शाम के अंधे माता पिता के पास आए और उन्होंने उनसे सब समाचार कह सुनाया। सबके सब मृत शाम के पास शोक करते हुए पहुँचे। परिखा ने कहा "यदि मेरा पुत्र सच्चा ब्रह्मचारी रहा हो, यदि बुद्धदेव में उसकी सच्ची भक्ति रही हो तो मेरा पुत्र जी जाय"। इस प्रकार की सत्य क्रिया करने पर शाम जी उठे और एक देवी ने प्रकट होकर उनके माता पिता का अंधापन भी दूर कर दिया।

बौद्धों का यह आख्यान रामायण में दिए हुए अंधक मुनि के आख्यान का अनुकरण है जिसमें उनके पुत्र सिंधु को महाराज दशरथ ने भ्रम से मारा था। अंतर इतना है कि रामायण में दोनों अंधों का पुत्रशोक में प्राण त्याग करना लिखा है और शामजातक में शाम का जी उठना और अंधों का दृष्टि पाना लिखा गया है।

दुकेला—[हिं० दुका+एला (प्रत्य०)] [स्त्री० दुकेली] जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो अकेला न हो।

यौ०—अकेला दुकेला=जिसके साथ कोई न हो या एकही दो आदमी हों। जैसे, (क) जहाँ कोई अकेला दुकेला उस रास्ते से निकला कि डाकुओं ने आ घेरा। (ख) कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना।

दुकेले—क्रि० वि० [हिं० दुकेला] किसी के साथ। दूसरे आदमी को साथ लिए हुए।

यौ०—अकेले दुकेले=बिना किसी को साथ लिए या एक ही दो आदमियों के साथ। जैसे, (क) वह तुम्हें अकेले दुकेले पावेगा तो जरूर मारेगा। (ख) अकेले दुकेले मत निकलना।

दुक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० दो+कूँड़] (१) तबले की तरह का एक बाजा। यह बाजा शहनाई के साथ बजाया जाता है। इसमें एक कूँड़ बहुत बड़ी और दूसरी छोटी होती है। (२) एक में जुड़ी हुई या साथ परी हुई दो नावों का जोड़ा।

दुक्का—वि० [सं० द्विक] [स्त्री० दुक्की] (१) जो एक साथ दो हों। जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो अकेला न हो। (व्यक्ति)

यौ०—इक्का दुक्का=अकेला दुकेला।

(२) जो जोड़े में हो। जो एक साथ दो हो (वस्तु)। (३) जिसमें कोई वस्तु एक साथ दो हों।

संज्ञा पुं० ताश का वह पत्ता जिसमें दो बूटियाँ हों।

दुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुक्का] ताश का वह पत्ता जिस पर दो बूटियाँ बनी हों।

दुखंडा—वि० [हिं० दो+खंड] दो तल्ला। जिसमें दो खंड हों। दो मरातिब का। जैसे, दुखंडा मकान।

दुखंत*—संज्ञा पुं० दे० "दुष्यंत"।

दुख—संज्ञा पुं० दे० "दुःख"।

दुखड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दुख+ड़ा (प्रत्य०)] (१) दुःख का वृत्तांत। दुःख की कथा जिसमें किसी के कष्ट या शोक का वर्णन हो। तकलीफ का हाल।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनाना।

मुहा०—दुखड़ा रोना=अपने दुःख का वृत्तांत कहना। अपने कष्ट का हाल सुनाना।

(२) कष्ट। तकलीफ़। मुसीबत। विपत्ति।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—(किसी स्त्री पर) दुखड़ा पड़ना=(किसी स्त्री का) रांड़ हो जाना। विधवा हो जाना। (स्त्रि०)। दुखड़ा पीटना=कष्ट भोगना। बहुत परिश्रम और कष्ट से जीवन बिताना। (स्त्रि०)। दुखड़ा भरना=दे० "दुखड़ा पीटना"।

दुखद*—वि० दे० दुःखद।

दुखदाई*—वि० दे० "दुःखदायी"। उ०—खल कर संग सदा दुखदाई।—तुलसी।

दुखदुंद*—संज्ञा पुं० [सं० दुःखद्वंद्व] दुःख का उपद्रव। दुःख और आपत्ति। उ०—छन महँ सकल निशाचर मारे। हरे सकल दुखदुंद हमारे।—सूर।

दुखना—क्रि० अ० [सं० दुःख] (किसी अंग का) पीड़ित होना। दर्द करना। पीड़ायुक्त होना। जैसे, आँख दुखना, पैर दुखना।

दुखरा*—संज्ञा पुं० दे० "दुखड़ा"।

दुखवना†—क्रि० स० दे० "दुखाना"। उ०—नाहिनै केशव साख जिन्हें बकि कै तिनसों दुखवै मुख को, री?—केशव।

दुखाना—क्रि० स० [सं० दुःख] (१) पीड़ा देना। कष्ट पहुँचाना। व्यथित करना।

मुहा०—जी दुखाना=मानसिक कष्ट पहुँचाना। मन में दुःख उत्पन्न करना। जैसे, कड़ी बात कह कर क्यों किसी का जी दुखाते हो?

दुतकार-संज्ञा स्त्री० [अनु० दुत + कार] वचन द्वारा किया हुआ अपमान। तिरस्कार। धिक्कार। फटकार।

क्रि० प्र०—बतलाना।

दुतकारना-क्रि० स० [हिं० दुतकार] (१) दुत् दुत् शब्द करके किसी को अपने पास से हटाना। (२) तिरस्कृत करना। धिक्कारना।

दुतर्फ़ा-वि० [फ़ा० दो + अ० तरफ़] [स्त्री० दुतर्फ़ी] दोनों ओर का। जो दोनों ओर हो। जैसे, दुतर्फ़ी चाल, दुतर्फ़ी रंग।

दुतारा-संज्ञा पुं० [हिं० दो + तार] एक बाजा जिसमें दो तार लगे होते हैं और जो उँगली से सितार की तरह बजाया जाता है।

दुति-संज्ञा स्त्री० दे० "द्युति"।

दुतिमान*-वि० दे० "द्युतिमान्"

दुतिय*-वि० दे० "द्वितीय"।

दुतिया-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] दूज। पक्ष की दूसरी तिथि।

दुतिवंत*-वि० दे० [हिं० दुति + वंत (प्रत्य०)] (१) आभायुक्त। चमकीला। (२) सुंदर।

दुतीय*-वि० "द्वितीय"।

दुतीया*†-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वितीया"।

दुत्थोत्थदवीय-संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ ताजिक के अनुसार वर्ष प्रवेश में एक योग।

दुथना†-संज्ञा पुं० [देश०] पत्नी। जोरू। (कुमाऊँ)

दुथरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

दुदल-वि० [सं० द्विदल] फूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर दल या खंड हो जायँ। द्विदल।

संज्ञा पुं० (१) दाल। उ०—दुदल प्रकार अनेकन भाते। बरन बरन के स्वाद महाने।—रघुराज। (२) एक पौधा जो हिमालय के कम ठंढे स्थानों में तथा नीलगिरि पर्वत पर बहुत होता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है और यकृत को पुष्ट करनेवाली, पसीना और पेशाब लानेवाली होती है। जिगर की बीमारी, आँव, चर्मरोग आदि में यह उपकारी होती है। इसे कानफूल और बरन भी कहते हैं।

दुदलाना†-क्रि० स० [अनु०] दुतकारना। उ०—आवै कोइ आसरा लगाई। लागै दोष देइ दुदलाई।—विश्राम।

दुदहँड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुधहँड़ी"।

दुदामी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाम] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो मालवे में बहुत बनता था। उ०—दुदामी के थान मालवा में पहले भी बनते थे, मगर शाहजहाँ बादशाह की कदरदानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे।—शाहजहाँनामा।

दुदिला-वि० [हिं० दो + फ़ा० दिल] (१) दुचित्ता। दुबधे में पड़ा हुआ। (२) खटके में पड़ा हुआ। चिंतित। व्यग्र। घबराया हुआ। उ०—त्यों रँग मच्यो दिल्ली में औरे। दुदिलो भयो साह किन दौरे।—लाल।

दुदुकारना†-क्रि० स० दे० "दुतकारना"।

दुदुह-संज्ञा पुं० [सं०] अनुवंशीय एक राजा का नाम। (हरिवंश)

दुद्धी-संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धा] (१) जमीन पर फैलनेवाली एक घास जिसके डंठलों में थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं जिनके दोनों ओर एक एक पत्ती होती है। इन्हीं गाँठों पर से पतले डंठल निकलते हैं जिनमें फूलों के गोल गोल गुच्छे लगते हैं। दुद्धी दो प्रकार की होती है एक बड़ी, दूसरी छोटी। बड़ी दुद्धी की पत्ती दो ढाई अंगुल लंबी, एक अंगुल चौड़ी तथा किनारे पर कुछ कुछ कटावदार होती है। अगले सिरे की ओर यह नुकीली और पीछे डंठल की ओर गोल और चौड़ी होती है। छोटी दुद्धी के डंठल बहुत पतले और लाल हो[illegible]याँ भी बहुत महीन और दोनों सिरों पर गोल होती हैं। वैद्यक में दुद्धी गरम, भारी, रूखी, बादी, कड़ुई, मलमूत्र को निकालनेवाली तथा कोढ़ और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। बड़ी दुद्धी से लड़के गोदना गोदने का खेल भी खेलते हैं। वे इसके दूध से कुछ लिखकर इस पर कोयला घिसते हैं जिससे काले चिह्न बन आते हैं।

पर्या०—क्षीरी। ग्रहदुमवा। ग्राहिणी। कच्छुरा। ताम्रमूला।

(२) थूहर की जाति का एक छोटा पौधा जो भारतवर्ष के सब गरम प्रदेशों में विशेष कर पंजाब और राजपूताने में होता है। इसका दूध दमे में दिया जाता है।

संज्ञा० स्त्री० [हिं० दूध] (१) एक प्रकार की सफेद मिट्टी। खड़िया मिट्टी। (२) सारिवा लता। (३) जंगली नील। (४) एक पेड़ जो मदरास, मध्य प्रदेश और राजपूताने में होता है। इसकी लकड़ी सफेद और बहुत अच्छी होती है और बहुत से कामों में आती है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] एक प्रकार का सफेद धान जिसका नाम सुश्रुत ने कुक्कुटांडक लिखा है।

विशेष—दे० "दुधिया"।

दुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज़ का हरा पौधा।

दुधपिठवा-संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध, हिं० दूध + सं० पिष्टक, हिं० पीठा] एक प्रकार का पकवान जो गुँधे हुए मैदे की लंबी लंबी बत्तियों को दूध में पकाने से बनता है।

दुधमुख*†-वि० [हिं० दूध + मुख] दूधपीता। दूधमुहाँ।

दुधमुँहाँ†-वि० दे० "दूधमुहाँ"।

दुधहँड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हाँड़ी] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें दूध रखा या गरम किया जाता है। दूध की मटकी।

दुधाँड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुधहँड़ी"।

दुधार-वि० [हिं० दूध + आर (प्रत्य०)] (१) दूध देनेवाली। जो दूध देती हो। जैसे, दुधार गैया। (२) जिसमें दूध हो।

वि०, संज्ञा पुं० दे० "दुधारा"।

दुग्धाब्धितनया–संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी ।

दुग्धाश्मा– संज्ञा पुं० [सं० दुग्धाश्मन्] दुग्धपाषाण ।

दुग्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुद्धी नाम की घास या बूटी । (२) गंधिका नाम की घास ।

दुग्धिनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल चिचड़ा । रक्तापामार्ग ।

दुग्धी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुधिया नाम की घास । दुद्धी ।
वि० [सं० दुग्धिन्] दूधवाला । जिसमें दूध हो ।
संज्ञा पुं० क्षीरवृक्ष ।

दुघड़िया–वि० [हिं० दो घड़ी] दो घड़ी का । जैसे, दुघड़िया साअत, दुघड़िया मुहूर्त ।

दुघड़िया मुहूर्त–संज्ञा पुं० [हिं० दोघड़ी + सं० मुहूर्त] दो दो घड़ियों के अनुसार निकाला हुआ मुहूर्त । द्विघटिका मुहूर्त ।
विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है । रात दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त करते हैं और फिर राशि के अनुसार शुभाशुभ समय का विचार करते हैं । इसमें दिन का विचार नहीं किया जाता, सब दिन सब ओर की यात्रा का विधान होता है । इस प्रकार का मुहूर्त उस समय देखा जाता है जब यात्रा किसी प्रकार दूसरे दिन पर टाली नहीं जा सकती ।

दुघरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + घड़ी] दुघड़िया मुहूर्त । उ०—दुघरी साधि चले ततकाला । किय विश्राम न मगु महिप पाला ।—तुलसी ।

दुचंद–वि० [फ़ा० दोचंद] दूना । द्विगुण । दुगना । उ०—(क) पारन की पाँति महा मंद मुख मैली भई, दीपति दुचंद फैली धाम समाज की ।—पद्माकर । (ख) आज नंदनंद जू आनंद भरे खेलैं फाग, कोटि चंद ते दुचंद भालदुति लाल की ।—दीनदयाल ।

दुचल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० दो + चाल] वह छत जिसके दोनों ओर ढाल हो ।

दुचित*–वि० [हिं० दो + चित्त] (१) जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो । जो दुबिधे में हो । जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो, कभी दूसरी । अस्थिर चित्त । उ०—दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं ।—तुलसी । (२) चिंतित । फिक्रमंद । उ०—बीत गयो बहु काल कछु भयो न ताके बाल । जऊ सुचित सब दुखनि सों दुचित भयो भूपाल ।—गुमान ।

दुचितई†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० दुचित] (१) एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव । चित्त की अस्थिरता । दुबधा । उ०—सोचत जनक पोच पेंच परि गई है । जोरि-करकमल निहोरि कहैं कौसिक सों आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है । (२) खटका । आशंका । चिंता । उ०—शाह-सुवन उर हरि रति बाढ़ी । तासु बिछोह दुचितई गाढ़ी ।—रघुराज ।

दुचिताई†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० दुचित] (१) चित्त की अस्थिरता । दुबधा । संदेह । उ०—(क) साँची कहहु देखि सुनि कै सुख छाँड़हु छिया कुटिल दुचिताई ।— सूर । (ख) निकरी मन तें सिगरी दुचिताई ।—केशव । (२) खटका । चिंता । आशंका । उ०—जब आनि भई सबको दुचिताई । कहि केशव काहु पै मेटि न जाई ।—केशव ।

दुचित्ता–वि० [हिं० दो + चित्त] [स्त्री० दुचित्ती] (१) जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो । जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो कभी दूसरी । जो दुबधे में हो । अस्थिरचित्त । अव्यवस्थित चित्त । (२) संदेह में पड़ा हुआ । (३) जिसके चित्त में खटका हो । चिंतित ।

दुच्छक–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर कचरी ।

दुछग*–संज्ञा पुं० [सं० द्वेषग = शत्रु] सिंह । (डिं०)

दुज*–संज्ञा पुं० दे० "द्विज" ।

दुजड़*–संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार । (डिं०)

दुजड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी । (डिं०)

दुजन्मा*–संज्ञा पुं० दे "द्विजन्मा" ।

दुजपति*–संज्ञा पुं० दे० "द्विजपति" ।

दुजराज*–संज्ञा पुं० दे० "द्विजराज" ।

दुजाति*–संज्ञा पुं० दे० "द्विजाति" ।

दुजानू–क्रि० वि० [फ़ा० दो ज़ानू] दोनों घुटनों के बल । जैसे, दुजानू बैठना ।

दुजीह*–संज्ञा पुं० दे० "द्विजिह्व" ।

दुजेश*–संज्ञा पुं० दे० "द्विजेश" ।

दुटूक–वि० [हिं० दो + टूक] दो टुकड़ों में किया हुआ । खंडित । उ०—किया दुटूक चाप देखत ही रहे चकित सब ठाढ़े ।—सूर ।
मुहा०—दुटूक बात = थोड़े में कही हुई साफ़ बात । बिना घुमाव फिराव की स्पष्ट बात । ऐसी बात जो लगी लिपटी न हो । खरी बात । जैसे, हम तो दुटूक बात कहते हैं चाहे बुरी लगे या भली ।

दुड़ि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुलि । कच्छपी ।

दुड़ियंद–संज्ञा पुं० [?] सूर्य्य । (डिं०)

दुत–अव्य० [अनु०] (१) एक शब्द जो तिरस्कारपूर्वक हटाने के समय बोला जाता है । दूर हो । (२) एक शब्द जो उस मनुष्य के प्रति कहा जाता है जो कोई मूर्खता की या अनुचित बात कहता अथवा करता है । घृणा या तिरस्कार सूचक शब्द ।
विशेष—कभी कभी लोग बच्चों आदि की बात पर प्यार से भी 'दुत' कह देते हैं ।

हो। स्वार्थसाधन। (३) दिखाऊ या बनावटी व्यवहार। दुराव। छिपाव।

मुहा०—दुनियादारी की बात=बनावटी बात। इधर उधर की बात जो केवल प्रसन्न करने के लिये कही जाय। लल्लो चप्पो। जैसे, दुनियादारी की बात रहने दो, अपना ठीक ठीक मत-लब बतलाओ।

दुनियासाज़—वि० [फा०] (१) ढंग रच कर अपना काम निका-लनेवाला स्वार्थसाधक। (२) अवसर देखकर सुहानेवाली बात करनेवाला। लल्लो चप्पो करनेवाला। चापलूस।

दुनियासाज़ी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अपना मतलब निकालने का ढंग। स्वार्थसाधन की वृत्ति। (२) चापलूसी। बात बनाने का ढंग।

दुनी*—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियाँ] संसार। जगत्। उ०—(क) सातो द्वीप दुनी सब नये।—जायसी। (ख) कविवृंद उदार दुनी न सुनी। गुण दूषण बात न कोपि गुनी।—तुलसी। (ग) तुमही जग हौ जग है तुमही में। तुम हीं बिरची मर्य्याद दुनी में।—केशव।

दुपटा*—संज्ञा पुं० दे० "दुपट्टा"। उ०—पौढ़े हुते पलिँगा पर त्यों मुख ऊपर ओट किए दुपटा की।—सुंदर।

दुपटी*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुपटा] चादर। दुपट्टा। उ०—सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।—केशव।

दुपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+पाट] [स्त्री० अल्प० दुपट्टी] (१) ओढ़ने का वह कपड़ा जो दो पाटों को जोड़ कर बना हो। दो पाट की चद्दर। चादर।

मुहा०—दुपट्टा तान कर सोना=निश्चिंत होकर सोना। बेखटके सोना। दुपट्टा बदलना=सहेली बनाना। सखी बनाना। (स्त्रि०)

(२) कंधे या गले पर डालने का लंबा कपड़ा।

दुपट्टी*—संज्ञा स्त्री० दे० "दुपटी"।

दुपद—संज्ञा पुं० दे० "द्विपद"। उ०—चारो वेद पढ़े मुख-आगर है बामन वपुधारी। अपद दुपद पशु भाषा बूझै अविगत अल्प अहारी।—सूर।

दुपर्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+फा० पर्दा] वह मिरजई, फतुही या नीमस्तीन जिसमें दोनों ओर पर्दे हों। बगलबंदी।

दुपहर—संज्ञा स्त्री० दे० "दोपहर"। उ०—जेहि निदाघ दुपहर रहै भई माह की राति। तेहि उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।—बिहारी।

दुपहरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पहर] †(१) मध्याह्न का समय। दोपहर। (२) एक छोटा पौधा जो फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है। यह डेढ़ दो हाथ ऊँचा और एक सीधे खड़े डंठल के रूप में होता है। इसमें शाखाएँ या टहनियाँ नहीं फूटतीं। पत्तियाँ इसकी आठ दस अंगुल लंबी, अंगुल डेढ़ अंगुल चौड़ी और किनारे पर कटाव-दार और गहरे हरे रंग की होती हैं। फूल इसके गोल कटोरे के आकार के और गहरे लाल रंग के होते हैं। इन फूलों में पाँच दल होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर जो बीजकोश रह जाता है उसमें राई के दाने से काले काले बीज पड़ते हैं। वैद्यक में दुपहरिया मलरोधक, कुछ गरम, भारी, कफकारक, ज्वरनाशक तथा वात पित्त को दूर करने-वाली मानी जाती है। उ०—पग पग मग अगमन परति चरन अरुन दुति झूलि। ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।—बिहारी।

पर्य्या०—बंधूक। बंधुजीव। रक्त। माध्याह्निक। बंधुर। सूर्य्य-भक्त। ओष्ठपुष्प। अर्कवल्लभ। हरिप्रिय। शरत्पुष्प। ज्वाप्र। सुपुष्प।

(३) वह जिसका गर्भाधान दोपहर को हुआ हो। हराम-जादा। दुष्ट। पाजी। (बाज़ारू)

दुपहरी—संज्ञा स्त्री० दे० "दुपहरिया"।

दुपी*—संज्ञा पुं० [सं० द्विप] हाथी। (डिं०)

दुफसली—वि० [हिं० दो+अ० फस्ल] दोनों फसलों में उत्पन्न होनेवाला। वह जिंस जो रबी और खरीफ़ दोनों में हो। वि० स्त्री० दुबधे का। अनिश्चित। संदिग्ध। उ०—दुफसली बात कहना ठीक नहीं।

दुबकना†—क्रि० अ० दे० "दबकना"।

दुबगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+बगल] मालखंभ की एक कस-रत जिसमें बेंत को दोनों बगलों में से निकाल कर हाथ ऊँचे करके उसे ऐसा लपेटते हैं कि एक कुंडल सा बन जाता है। फिर दोनों पैरों को सिर की ओर बढ़ाते हुए इसी कुंडल में से निकल कर कलाबाज़ी के साथ नीचे गिरते हैं।

दुबज्यौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दूब+जेवरी] गले में पहनने का एक गहना जिसकी बनावट डोर की तरह की होती है।

दुबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दूब] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है।

दुबधा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] (१) दो में से किसी एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव। अनिश्चय। चित्त की अस्थिरता। उ०—दुबधा में दोऊ गए माया मिली न राम।

मुहा०—दुबधे में डालना=अनिश्चित दशा में फँसना। दुबधे में पड़ना=अनिश्चित अवस्था में पड़ना।

(२) संशय। संदेह। जैसे, दुबधे की बात मत कहो, ठीक ठीक बताओ कि आओगे या नहीं। (३) असमंजस। आगा-

दुधारा–वि० [हिं० दो + धार] दो धारों का। जिसमें दोनों ओर धार हो (तलवार छुरी आदि)। जैसे, दुधारा खाँड़ा।
संज्ञा पुं० एक प्रकार का चौड़ा खाँड़ा या तलवार जिसके दोनों ओर तेज धार होती है।

दुधारी–वि० स्त्री० [हिं० दूध + आर (प्रत्य०)] दूध देनेवाली। जो दूध देती हो। जैसे, दुधारी गाय।
वि० स्त्री० [हिं० दो + धार] जिसमें दोनों ओर धार हो। उ०—दुधारी तलवार।
संज्ञा स्त्री० वह कटारी जिसके दोनों ओर तेज धार हो।

दुधारू†–वि० दे० "दुधार", "दुधारी"।

दुधिया–वि० [हिं० दूध] (१) दूध मिला हुआ। जिसमें दूध पड़ा हो। जैसे, दुधिया भाँग। (२) जिसमें दूध होता हो। (३) दूध की तरह सफेद। सफेद जाति का। जैसे, दुधिया गेहूँ, दुधिया धान, दुधिया पत्थर, दुधिया कंकड़।
संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धिका] (१) दुद्धी नाम की घास। (२) एक प्रकार की ज्वार या चरी जो बड़ौदे की ओर बहुत होती है और चौपायों को खिलाई जाती है। (३) खड़िया मिट्टी। (४) कलियारी की जाति का एक विष। (५) एक चिड़िया जिसे लटोरा भी कहते हैं।

दुधियाकंजई–वि० [हिं० दुधिया + कंजा] सफेदी लिए हुए कंजे के रंग का। नीलापन लिए भूरा।
संज्ञा पुं० एक रंग जो नीलापन लिए हुए भूरा अर्थात् कंजे के रंग से कुछ खुलता होता है।
विशेष—इस रंग में रँगने के लिये कपड़े को पहले हर्रे के काढ़े में डुबाकर धूप में सुखाते हैं फिर कसीस में रँगते हैं।

दुधियापत्थर–संज्ञा पुं० [हिं०दुधिया + पत्थर] (१) एक प्रकार का मुलायम सफेद पत्थर जिसके प्याले आदि बनते हैं। (२) एक नग या रत्न। विशेष—दे० "दुधिया"।

दुधियाविष–संज्ञा पुं० [हिं० दुधिया + विष] कलियारी की जाति का एक विष जिसके सुंदर पौधे काश्मीर चित्राल हजारा के पहाड़ों तथा हिमालय के पश्चिमी भाग में मिलते हैं। पौधा इस का कलियारी ही कि तरह का सुंदर फूलों से सुशोभित होता है। इसकी जड़ में विष होता है। कलियारी की जड़ से इसकी जड़ छोटी और मोटी होती है। रंग भी कालापन लिए होता है। हजारा में इसे मोहरी और काश्मीर में बनवल-नाग कहते हैं। इस विष को तेलिया विष और मीठा जहर भी कहते हैं।

दुधेली– संज्ञा स्त्री० दे० "दुद्धी (२)"।

दुधैल–वि० [हिं०दूध + एल (प्रत्य०)] बहुत दूध देनेवाली। दुधार। जैसे, दुधैल गाय।

दुनया–संज्ञा पुं० [सं० द्वि०, हिं० दो + सं० नदी, प्रा० णई] वह स्थान जहाँ दो नदियाँ एक दूसरे से मिलती हों। दो नदियों का संगम स्थान।

दुनरना †–क्रि० अ०। क्रि० स० दे० "दुनवना"।

दुनवना † *–क्रि० अ० [हिं० दो + नवना = झुकना] किसी नरम या लचीली वस्तु का इस प्रकार झुकना कि उसके दोनों छोर एक दूसरे से मिल जाँय या पास पास हो जाँय। लच कर दोहरा हो जाना। इस प्रकार नमित होना कि बीच से दोनों अर्द्धभाग प्रायः एक दूसरे के समानांतर हो जाँय। उ०—कहि न सोचिबे लायक, रमत न भीति। दुनए केस न टूटत, यह परतीति।—रहीम।
क्रि० स० लचाकर दोहरा कर देना। इस प्रकार झुकाना कि दोनों छोर एक दूसरे से मिल जाँय या पास पास हो जाँय।

दुनाली–वि० स्त्री० [हिं० दो + नाल] दो नलवाली। जैसे, दुनाली बंदूक।
संज्ञा स्त्री० दुनाली बंदूक। वह बंदूक जिसमें दो दो गोलियाँ एक साथ भरी जायँ।

दुनियाँ–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संसार। जगत्।
यौ०—दीन दुनियाँ = लोक परलोक।
मुहा०—दुनियाँ के परदे पर = सारे संसार में। दुनियाँ की हवा लगना = सांसारिक अनुभव होना। संसारी विषयों का अनुभव होना। दुनियाँ भर का = बहुत या बहुत अधिक। जैसे, (क) दुनियाँ भर का सामान साथ ले जाकर क्या करोगे ? (ख) दुनियाँ भर का बखेड़ा। दुनियाँ से उठ जाना = मर जाना। दुनियाँ से चल बसना = मर जाना।
(२) संसार के लोग। लोक। जनता। जैसे, सारी दुनियाँ इस बात को जानती है। उ०—ये तपसी ह्वै गरूर भरे दुनियाँ तें दयानिधि बोलत ना।—दयानिधि। (३) संसार का जंजाल। जगत् का प्रपंच।

दुनियाई–वि० [अ० दुनिया + हिं० ई (प्रत्य०)] सांसारिक। उ०—जावत खेह रेह दुनियाई। मेघ बूँद औ गगन तराई।—जायसी।
संज्ञा० स्त्री० [फा० दुनिया + हिं० ई (प्रत्य०)] संसार। उ०—ते विष बान लिखौं कहँ ताई। रकत जो चुवा भीज दुनियाई।—जायसी।

दुनियादार–संज्ञा पुं० [फा०] सांसारिक प्रपंच में फँसा हुआ मनुष्य। संसारी। गृहस्थ।
वि० ढंग रच कर अपना काम निकालनेवाला। व्यवहार-कुशल।

दुनियादारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दुनियाँ का कारबार। गृहस्थी का जंजाल। (२) दुनियाँ में अपना काम निकालने का ढंग। वह व्यवहार जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध

उ०—मात को मोह, न छोह दुमात को, सोच न तात के गात दहे को। ......ता रन भूमि में राम कह्यो मोहिं सोच विभीषन भूप कहे को।—श्रीपति।

दुमाला—संज्ञा पुं० [हिं० दो+माला] पाश। फंदा।

दुमुहाँ—वि० दे० "दोमुहाँ"।

दुरंग†—वि० दे० "दुरंगा"।

दुरंगा—वि० [हिं० दो+रंग] [स्त्री० दुरंगी] (१) दो रंगों का। जिसमें दो रंग हों। जैसे, दुरंगा कपड़ा। (२) दो तरह का। दो प्रकार का। (३) दो तरह की चाल चलनेवाला। दो पक्ष अवलंबन करनेवाला।

दुरंगी—वि० स्त्री० दे० "दुरंगा"।

संज्ञा स्त्री० द्विविधा। कुछ इस पक्ष का कुछ उस पक्ष का अवलंबन। जैसे, दुरंगी छोड़ दे एक रंग हो जा।

दुरंत—वि० [सं०] (१) जिसका अंत या पार पाना कठिन हो। अपार। बड़ा भारी। उ०—काल-कोट-सत सरिस अति दुस्तर, दुर्ग, दुरंत।—तुलसी। (२) दुर्गम। दुस्तर। कठिन। जिसे करना या पाना सहज न हो। उ०—यह जु हुती प्रतिमा समीप की सुख संपत्ति दुरंत जई री।—सूर। (३) घोर। प्रचंड। भीषण। (४) जिसका अंत या परिणाम बुरा हो। अशुभ। बुरा। कुत्सित। उ०—पुत्र हीं विधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत।—केशव। (५) दुष्ट। खल।

दुरंतक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

दुरंधा⚬—वि० [सं० द्विरंध्र] दो छिद्रवाला। आर पार छेदा हुआ। उ०—औंधे कबंधे दुरंधे करे अंग। साँधे सुगंधेनु कौं पाइ के संग।—सूदन।

दुर्—अव्य० या उप० [सं०] इसका प्रयोग इन अर्थों में होता है। (१) दूषण, (बुरा अर्थ) जैसे, दुरात्मा, दुर्दिन, (२) निषेध, जैसे, दुर्बल। (३) दुःख या कष्ट, जैसे दुर्गम।

दुर—अव्य० [हिं० दूर] एक शब्द जिसका प्रयोग तिरस्कारपूर्वक हटाने के लिये होता है और जिसका अर्थ है "दूर हो"।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कुत्तों के लिये विशेष कर होता है। कभी कभी किसी बात पर योंही प्यार से भी लोग बच्चों आदि को 'दुर' कह देते हैं, जैसे, "दुर! पगली, क्या बकती है?"।

मुहा०—दुर दुर करना=तिरस्कारपूर्वक हटाना। कुत्ते की तरह भगाना। दुर दुर फिट फिट=तिरस्कार।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) मोती। मुक्ता। (२) मोती का वह लटकन जो नाक में पहना जाता है। लोलक। (३) छोटी बाली। उ०—काहु कुँवर को कनछेदनो है हाथ सुहारी भेली गुर की।......कंचन के द्वै दुर मँगाय लिए कहैं कहा छेदन आतुर की।—सूर।

दुरखा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० दुरखी] एक प्रकार का फतिंगा जो नील, तमाखू, सरसों, गेहूँ इत्यादि की फसल को नुकसान पहुँचाता है।

दुरखुम—संज्ञा पुं० [देश०] दरी के ताने के दो दो सूतों को इस लिये एक में बाँधना जिसमें वे उलझ न जायँ।

दुरजन⚬—संज्ञा पुं० दे० "दुर्जन"। उ०—दृग उरझत टूटत कुटुम जुरति चतुर सँग प्रीति। परति गाँठि दुरजन हिये दई नई यह रीति।—बिहारी।

दुरजोधन⚬—संज्ञा पुं० दे० "दुर्योधन"।

दुरतिक्रम—वि० [सं०] (१) जिसका अतिक्रमण न हो सके। जिसका उल्लंघन न हो सके। जिसके बाहर या विरुद्ध कोई न हो सके। प्रबल। उ०—अंटकटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।—तुलसी। (२) अपार। जिसका पार पाना कठिन हो।

दुरत्यय—वि० [सं०] (१) जिसका पार पाना कठिन हो। अपार। (२) जिसका अतिक्रमण न हो सके। दुस्तर।

दुरद⚬—संज्ञा पुं० दे० "द्विरद"।

दुरदाम⚬—वि० [सं० दुर्दम] कठिन। कष्ट-साध्य। उ०—हरि राधा राधा रटत जपत मंत्र दुरदाम। विरह विराग महाजोगी ज्यों बीतत हैं सब याम।—सूर।

दुरदाल⚬—संज्ञा पुं० [सं० द्विरद] हाथी।

दुरदुराना—क्रि० स० [हिं० दुरदुर] तिरस्कारपूर्वक दूर करना। अपमान के साथ भगाना या हटाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषतः कुत्तों के लिये होता है।

संयो० क्रि०—देना।

दुरधिगम—वि० [सं०] (१) जो पहुँच के बाहर हो। दुष्प्राप्य। (२) जो समझ के बाहर हो। दुर्बोध।

दुरध्व—संज्ञा पुं० [सं०] कुपथ। कुमार्ग। बुरा रास्ता।

दुरना†⚬—क्रि० अ० [हिं० दूर] (१) आँखों के आगे से दूर होना। ओट में होना। आड़ में जाना। (२) न दिखाई पड़ना। न प्रकट होना। छिपना। उ०—बैर प्रीति नहिं दुरत दुराए।—तुलसी।

संयो० क्रि०—जाना।

दुरपदी‡⚬—संज्ञा स्त्री० दे० "द्रौपदी"।

दुरबचा—संज्ञा पुं० [फा० दुर+हिं० बचा] एक मोती। छोटी बाली जिसमें एक मोती हो।

दुरबल—वि० दे० "दुर्बल"।

दुरबास—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दुर्गंध बुरी गंध।

दुरबासा⚬—संज्ञा पुं० दे० "दुर्वासा"।

दुरबीन—संज्ञा स्त्री० दे० "दूरबीन"।

दुरभिग्रह—वि० [सं०] कठिनता से पकड़ में आनेवाला।

पीछा । पसोपेश । उ०—को जाने दुवधा सकोच में तुम डर निकट न आवैं ।—सूर । (४) खटका । चिंता ।

दुवरा—वि० [सं० दुर्बल] [स्त्री० दुवरी] दुवला । शरीर से क्षीण । उ०—करी खरी दुवरी सु लगि तेरी चाह चुरैल ।—विहारी ।

दुवराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुवरा + ई (प्रत्य०)] (१) दुर्बलता । कृशता । (२) कमजोरी । अशक्तता ।

दुवराना*—क्रि० अ० [हिं० दुवरा + ना (प्रत्य०)] दुवला होना । शरीर से क्षीण होना । उ०—लखे न कंत सहेटवा फिरि दुवराय । धनियाँ कमल-बदनियाँ, गइ कुम्हिलाय ।—रहीम ।

दुवराल गोला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + अ० बैरल + हिं० गोला] तोप का लंबोतरा गोला ।

दुवराल पलंग—संज्ञा पुं० [हिं० दुवराल + अं० पुलिंग] पाल की वह डोरी जिसे खींच कर पाल के पेटे की हवा निकालते हैं ।

दुवला—वि० [सं० दुर्बल] [स्त्री० दुवली] (१) क्षीण शरीर का । जिसका बदन हलका और पतला हो । कृश ।

यौ०—दुवला पतला ।

(२) अशक्त । कमजोर ।

दुवलापन—संज्ञा पुं० [हिं० दुवला + पन] कृशता । क्षीणता ।

दुवाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'दूबे' का स्त्री०] दूबे की स्त्री ।

दुवागा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + सं० प्रग्रह, हिं० पगहा, बगई] सन की मोटी रस्सी ।

दुवारा—क्रि० वि० दे० "दोबारा" ।

दुवाला—वि० दे० "दोवाला" । उ०—करें हैं उस परी के वाले जोवन को दुवाला सा ।—नजीर ।

दुवाहिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विवाह] दोनों हाथों से तलवार चलानेवाला योद्धा ।

दुविद*—संज्ञा पुं० दे० "द्विविद" ।

दुविध—संज्ञा स्त्री० दे० "दुविधा" ।

दुविधा*—संज्ञा स्त्री० दे० "दुबिधा" । उ०—को जानै दुविधा सँकोच में तुम डर निकट न आवैं ।—सूर ।

दुबिसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + बीस] एक प्रकार का कमीशन जो गवनमेंट किसानों को देती है, अर्थात् बीस रु० के लगान पर दो रुपए ।

दुवीचा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + बीच] (१) दो बातों के बीच किसी एक बात का निश्चय न होना । दुवधा । (२) संशय । संदेह । (३) असमंजस । आगा पीछा । (४) खटका । चिंता ।

दुवे—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] [स्त्री० दुवाइन] ब्राह्मणों का एक भेद ।

दुभाखी—संज्ञा पुं० दे० "दुभाषी" । उ०—अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ।—तुलसी ।

दुभाषिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषी] दो भाषाओं का जाननेवाला ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं के बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझावे । दो भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलनेवालों के बीच का मध्यस्थ ।

दुभाषी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] दुभाषिया । उ०—अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ।—तुलसी ।

दुमंजिला—वि० [फा०] [स्त्री० दुमंजिली] दोखंडा । दो मरातिब का । जैसे, दुमंजिला मकान ।

दुम—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) पूँछ । पुच्छ ।

मुहा०—दुम के पीछे फिरना = साथ साथ लगा फिरना । पीछे पीछे घूमना । साथ न छोड़ना । दुम दबाकर भागना = डरपोक कुत्ते की तरह डर कर भागना । डर के मारे न ठहरना । दबकर भागना (कुत्ते जब अपने से बलिष्ट कुत्ते को देखते हैं तब डर के मारे पूँछ दोनों टाँगों के बीच दबा लेते हैं) । दुम दबा जाना = (१) डर के मारे हट जाना । डर से भाग जाना । (२) डर के मारे किसी बात से हट जाना । भयवश किसी काम से पीछे हट जाना । डर के मारे किसी काम से अलग हो जाना । दुम में घुसना = गायब हो जाना । दूर हो जाना । जैसे, एक चाँटा दूँगा सारी बदमाशी दुम में घुस जायगी । दुम में घुसा रहना = खुशामद के मारे साथ लगा रहना । शुश्रूषा के लिये सदा साथ में रहना । दुम में रस्सा बाँधूँ = नटखट चौपाए की तरह बाँध कर रक्खूँ । (एक विनोद-सूचक वाक्य जो प्रायः किसी पर बिगड़ कर बोलते हैं) । दुम हिलाना = कुत्ते का दुम हिला कर प्रसन्नता प्रकट करना ।

(२) पूँछ की तरह पीछे लगी या बँधी हुई वस्तु । जैसे, सितारे की दुम, टोपी की दुम ।

यौ०—दुमदार ।

(३) पीछे पीछे लगा रहनेवाला आदमी । पिछलग्गू । (४) किसी काम का सब से अंतिम थोड़ा सा अंश ।

दुमची—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) घोड़े के साज में वह तसमा जो पूँछ के नीचे दबा रहता है । (२) दोनों नितंबों के बीच की हड्डी । पुट्ठों के बीच की हड्डी । उ०—बरजे दूनी हठ चढ़ै ना सकुचै न सकाय । टूटति कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाय ।—विहारी ।

दुमदार—वि० [फा०] (१) पूँछवाला । (२) जिसके पीछे पूँछ की सी कोई वस्तु लगी या बँधी हो । जैसे, दुमदार सितारा, दुमदार टोपी ।

दुमन—वि० [सं० दुर्मनस्, दुर्मना] अनमना । अप्रसन्न । खिन्न ।

दुमाता—वि० [सं० दुर्मातृ] (१) बुरी माता । (२) सौतेली माँ ।

ले उतराई। रघुपति महाराज इत ठाढ़े तैं कहँ नाव दुराई।—सूर। (२) छोड़ना। त्यागना। न रखना। उ०—भजहु कृपानिधि कपट दुराई।—सूर। (३) छिपाना। गुप्त रखना। प्रकट न करना। उ०—तुम तो तीन लोक के ठाकुर तुम तें कहा दुराइए?—सूर।

दुराप–वि० [सं०] कठिनता से मिलनेवाला। दुष्प्राप्य। दुर्लभ।

दुराबाध–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

दुराराध्य–वि० [सं०] कठिनाई से आराधन करने योग्य। जिसको पूजना या संतुष्ट करना कठिन हो।

संज्ञा पुं० विष्णु।

दुरारुह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल। (२) नारियल।

दुरारुहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का पेड़।

दुरारोह–वि० [सं०] जिस पर चढ़ना कठिन हो।

संज्ञा पुं० ताड़ का पेड़।

दुरारोहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेमर का पेड़। (२) खजूर का पेड़।

दुरालंभ–वि० दे० "दुरालभ"

दुरालभ–वि० [सं०] जिसका मिलना कठिन हो। दुष्प्राप्य।

दुरालभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवासा। धमासा। हिंगुआ। (२) कपास।

दुरालाप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा वचन। बुरी बातचीत। (२) गाली।

वि० दुर्वचन कहनेवाला। कटुभाषी।

दुराव–संज्ञा पुं० [हिं० दुराना] (१) किसी बात को दूसरे से छिपाने का भाव। अविश्वास या भेद के कारण किसी से बात गुप्त रखने का भाव। छिपाव। भेदभाव। उ०—सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि-सुभाउ-प्रभाऊ।—तुलसी। (२) कपट। छल। उ०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ। हरष समय विसमय करसि कारन मोहिँ सुनाउ।—तुलसी।

दुराश–वि० [सं०] जिसे दुराशा हो। जिसे अच्छी उम्मीद न हो।

दुराशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्ट आशय। बुरी नीयत।

वि० जिसका आशय बुरा हो। बुरी नीयतवाला। खोटा।

दुराशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी आशा जो पूरी होनेवाली न हो। व्यर्थ की आशा। झूठी उम्मीद। उ०—(क) सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा।—तुलसी। (ख) दिन दिन अधिक दुराशा लागी सकल लोक भरमायो।—सूर।

दुरासद–वि० [सं०] (१) दुष्प्राप्य। (२) दुःसाध्य। कठिन।

दुरासा⁰–संज्ञा स्त्री० दे० "दुराशा"।

दुरित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। पातक। (२) उपपातक। छोटा पाप।

विशेष—उशना की स्मृति में पातकों को दुरिष्ट और उपपातकों को दुरित कहा गया है।

वि० पापी। पातकी। अघी। उ०—प्रबल दनुज दल दलि पल आध में जीवत दुरित दसानन गहिबो।—तुलसी।

दुरितदमनी–वि० स्त्री० [सं०] पाप का नाश करनेवाली।

संज्ञा स्त्री० शमी वृक्ष।

दुरियाना–क्रि० स० [सं० दूर] (१) दूर करना। हटाना। (२) दुरदुराना। तिरस्कार के साथ भगाना।

दुरिष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। पातक।

विशेष—उशना की स्मृति में पातकों को दुरिष्ट और उपपातकों या छोटे पापों को दुरित कहा है।

(२) वह यज्ञ जो मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचारों के लिये किया जाय।

विशेष—स्मृति, पुराण आदि में ऐसा यज्ञ करना महापाप लिखा है। विष्णुपुराण में लिखा है कि "देवता, ब्राह्मण और पितरों से द्वेष करनेवाला, रत्न का अपहरण करनेवाला, दुरिष्ट यज्ञ करनेवाला, कृमिभक्ष और कृमीश नरक में जाते हैं।

दुरिष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुरिष्ट यज्ञ। अभिचारार्थ यज्ञ।

दुरीषणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अहित कामना। (२) शाप। बददुआ।

दुरुखा–वि० [फा०] (१) जिसके दोनों ओर मुँह हो। (२) जिसके दोनों ओर कोई चिह्न या विशेष वस्तु हो, जैसे, दोरुखा कागज़। (३) जिसके दोनों ओर दो रंग हों। जैसे, दोरुखा किनारा।

दुरुत्तर–वि० [सं०] जिसका पार पाना कठिन हो। दुस्तर।

संज्ञा पुं० दुष्ट उत्तर। बुरा जवाब।

दुरुधुरा–संज्ञा स्त्री० [यू० दुरोधोरिया] बृहज्जातक के अनुसार जन्म-कुंडली का एक योग जिसमें अनफा और सुनफा दोनों योगों का मेल होता है।

विशेष—जन्मकुंडली में यदि सूर्य्य को छोड़ कोई दूसरा ग्रह चंद्रमा से बारहवें घर में हो तो अनफा योग होता है और चंद्रमा से दूसरे घर में हो तो सुनफा योग होता है। जहाँ ये दोनों योग हों वहाँ दुरुधुरा योग होता है। इस योग में जिसका जन्म होता है वह बड़ा भारी वक्ता, धनी, वीर और विख्यात पुरुष होता है।

दुरुपयोग–संज्ञा पुं० [सं०] बुरा उपयोग। अनुपयुक्त व्यवहार। किसी वस्तु को बुरी तरह से काम में लाना। बुरा इस्तेमाल।

दुरुफ–संज्ञा पुं० [?] नीलकंठ ताजिक के मतानुसार फलित ज्योतिष का एक योग।

संज्ञा पुं० अपामार्ग। चिचड़ी।

दुरभिग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कपिकच्छु। (२) धमासा।

दुरभिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा पट्चक्र। बुरे अभिप्राय से गुट बाँध कर की हुई सलाह। मिल जुलकर की हुई कुमंत्रणा।

दुरभेव—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाव वा दुर्भेद] बुराभाव। मनमोटाव। मनोमालिन्य। उ०—योग दिवस करि ध्यान तहँ नृप चरणामृत लेव। दुर्वासा लिय जानि सब मान्यो मन दुरभेव।—रघुराज।

क्रि० प्र०—मानना।

दुरमुट—संज्ञा पुं० दे० "दुरमुस"।

दुरमुस—संज्ञा पुं० [सं० दुर् (प्रत्य०)+मुस=कूटना] गदा के आकार का डंडा जिसके नीचे पत्थर या लोहे का भारी टुकड़ा लगा रहता है और जिससे कंकड़ या मिट्टी पीट कर बैठाई जाती है, अथवा मिट्टी तोड़ कर महीन की जाती है।

दुरलभ—वि० दे० "दुर्लभ"।

दुरवस्थ—वि० [सं०] जो अच्छी दशा में न हो।

दुरवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी दशा। खराब हालत। (२) हीन दशा। दुःख, कष्ट, या दरिद्रता की दशा।

दुरवाप—वि० [सं०] जो कठिनता से प्राप्त हो सके। दुष्प्राप्य।

दुरस—संज्ञा पुं० [हिं० दो+औरस] सहोदर भाई।

दुराउ † *—संज्ञा पुं० दे० "दुराव"।

दुराक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक म्लेच्छ जाति का नाम। (२) एक देश का नाम।

दुरागमन—संज्ञा पुं० दे० "द्विरागमन"।

दुरागौन—संज्ञा पुं० [सं० द्विरागमन] वधू का दूसरी बार अपनी सुसराल जाना।

क्रि० प्र०—कराना।

मुहा०—दुरागौन देना=लड़की को दूसरी बार सुसराल भेजना। दुरागौन लाना=बहू को दूसरी बार उसके पिता के घर से लाना।

दुराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बात पर बुरे ढंग से अड़ना। हठ। ज़िद। (२) अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उस पर स्थिर रहने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

दुराग्रही—वि० [सं०] (१) बिना उचित अनुचित के विचार के अपनी बात पर अड़नेवाला। हठी। जिद्दी। (२) अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उस पर स्थिर रहनेवाला।

दुराचरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी चाल चलन। खोटा व्यवहार।

दुराचार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आचरण। बुरा चाल चलन। खोटी चाल। निंदित कर्म।

दुराचारी—वि० [सं० दुराचारिन्] [स्त्री० दुराचारिणी] दुष्ट आचरण करनेवाला। बुरी चाल चलन का। बुरे काम करनेवाला।

दुराज—संज्ञा पुं० [सं० दुर्+राज्य] बुरा राज्य। बुरा शासन। उ०—दिन दिन दूनो देखि दारिद, दुकाल, दुःख, दुरित, दुराज, सुख सुकृत सकोच है।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० दो+राज्य] (१) एक ही स्थान पर दो राजाओं का राज्य या शासन। उ०—(क) जोग बिरह के बीच परम दुख मरियत है यहि दुसह दुराजै।—सूर। (ख) दुसह दुराज प्रजानि कों क्यों न करैं अति दंद। अधिक अँधेरी जग करत मिलि मावस रवि चंद।—बिहारी। (२) वह स्थान जिस पर दो राजाओं का राज्य हो। दो राजाओं की अमलदारी। उ०—लाज बिलोकन देति नहीं रतिराज बिलोकन ही की दई मति।......लख्त तिहारिये सौंह कहौं वह बाल भई है दुराज की रैयति।—तोष।

दुराजी—वि० [सं० द्वराज्य] दो राजाओं का। जिसमें दो राजा हों। उ०—नगर चैन तब जानिये जब एकै राजा होय। याहि दुराजी राज में सुखी न देखा कोय।—कबीर।

दुरात्मा—वि० [सं० दुरात्मन्] दुष्टात्मा। नीचाशय। खोटा।

दुरादुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना=छिपना] छिपाव। गोपन।

मुहा०—दुरादुरी करके=छिपे छिपे। गुप्त रूप से। उ०—सिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ। दुरादुरी करि नेग, सु नात जनायउ।—तुलसी।

दुराधन—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधर—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधर्ष—वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो। जो बड़ी कठिनाई से जीता जा सके। जो वश में न आ सके। प्रचंड। प्रबल। उ०—(क) धूमकेतु शतकोटि सम दुराधर्ष भगवंत।—तुलसी। (ख) दवन दुवन दल दर्प दिल दुराधर्ष दिग्दंति। दशरथ के सामंत अस दशदिग कीर्ति करंति।—रघुराज।

संज्ञा पुं० (१) पीली सरसों। (२) विष्णु।

दुराधर्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंडता। प्रबलता।

दुराधर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटुंबिनी का पौधा।

दुराधार—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

दुराना—क्रि० अ० [हिं० दूर] (१) दूर होना। हटना। टलना। भागना। उ०—यद्यपि सूर प्रताप श्याम को दूरि दुरात।—सूर। (२) छिपना। आड़ में होना। अलक्षित होना। उ०—श्रीवृषभानुनंदिनी ललित दोऊ वा मग जात। तुमहूँ जाय माधुरी कुंजन पहिलेहिं क्यों न दुरात?।—हरिश्चंद्र।

क्रि० स० (१) दूर करना। हटाना। उ०—रे भैया, केवट!

विशेष—शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेय संहिता में रुद्र की भगिनी अंबिका का उल्लेख इस प्रकार है—"हे रुद्र ! अपनी भगिनी अंबिका के सहित हमारा दिया हुआ भाग (पुरोडाश) ग्रहण करो"। इससे जाना जाता है कि शत्रुओं के विनाश आदि के लिये जिस प्रकार प्राचीन आर्य्यगण रुद्र नामक क्रूर देवता का स्मरण करते थे उसी प्रकार उनकी भगिनी अंबिका का भी करते थे। वैदिक काल में अंबिका देवी रुद्र की भगिनी ही मानी जाती थी। तलवकार (केन) उपनिषद् में यह आख्यायिका है—एक बार देवताओं ने समझा कि विजय हमारी ही शक्ति से हुई है। इस भ्रम को मिटाने के लिये ब्रह्म यक्ष के रूप में दिखाई पड़ा, पर देवताओं ने उसे पहचाना नहीं। हाल चाल लेने के लिये पहले अग्नि उसके पास गए। यक्ष ने पूछा "तुम कौन हो ?" अग्नि ने कहा "मैं अग्नि हूँ और सब कुछ भस्म कर सकता हूँ"। इस पर उस यक्ष ने एक तिनका रख दिया और कहा" इसे भस्म करो"। अग्नि ने बहुत जोर मारा, पर तिनका ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार वायु देवता भी गए। वे भी उस तिनके को न उड़ा सके। तब सब देवताओं ने इंद्र से कहा कि इस यक्ष का पता लेना चाहिए कि यह कौन है। जब इंद्र गए तब यक्ष अंतर्द्धान हो गया। थोड़ी देर पीछे एक स्त्री प्रकट हुई जो 'उमा हैमवती' देवी थी। इंद्र के पूछने पर उमा हैमवती ने बतलाया कि यक्ष ब्रह्म था उसकी विजय से तुम्हें महत्व मिला है। तब इंद्र आदिक देवताओं ने ब्रह्म को जाना। अध्यात्म पक्षवाले 'उमा हैमवती' से ब्रह्मविद्या का ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक के एक मंत्र में "दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये" वाक्य आया है और एक स्थान पर गायत्री छंद का एक मंत्र है जिसे सायण ने दुर्गा-गायत्री कहा है। देवी भागवत में देवी की उत्पत्ति के संबंध में कथा इस प्रकार है—महिषासुर से परास्त होकर सब देवता ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा शिव तथा देवताओं के साथ विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा कि महिषासुर के मारने का उपाय यही है कि सब देवता अपनी स्त्रियों से मिल कर अपना थोड़ा थोड़ा तेज निकालें। सब के तेज-समूह से एक स्त्री उत्पन्न होगी जो उस असुर का वध करेगी। महिषासुर को वर था कि वह किसी पुरुष के हाथ से न मरेगा। विष्णु के आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने मुँह से रक्त वर्ण का, शिव ने रौप्य वर्ण का, विष्णु ने नील वर्ण का, इंद्र ने विचित्र वर्ण का, इसी प्रकार सब देवताओं ने अपना अपना तेज निकाला और एक तेजःस्वरूपा देवी प्रकट हुई जिसने उस असुर का संहार किया। कालिकापुराण में लिखा है परब्रह्म के अंश स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णु ने तो सृष्टिस्थिति के लिये अपनी अपनी शक्ति को ग्रहण किया पर शिव ने शक्ति से संयोग न किया और वे योग में मग्न हो गए। ब्रह्मा आदि देवता इस बात के पीछे पड़े कि शिव भी किसी स्त्री का पाणि ग्रहण करें। पर शिव के योग्य कोई स्त्री मिलती नहीं थी। बहुत सोच विचार के पीछे ब्रह्मा ने दक्ष से कहा—"विष्णु-माया के अतिरिक्त और कोई स्त्री ऐसी नहीं जो शिव को लुभा सके। अतः मैं उसकी स्तुति करता हूँ तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी कन्या के रूप में तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिव की पत्नी हो।" वही विष्णु की माया दक्ष प्रजापति की कन्या सती हुई जिसने अपने रूप और तप के द्वारा शिव को मोहित और प्रसन्न किया। दक्ष यज्ञ-विनाश के समय जब सती ने देहत्याग किया तब शिव ने विलाप करते करते उनके शव को अपने कंधे पर लाद लिया। फिर ब्रह्मा विष्णु और शनि ने सती के मृत शरीर में प्रवेश किया और वे उसे खंड खंड करके गिराने लगे। जहाँ जहाँ सती का अंग गिरा वहाँ वहाँ देवी का स्थान या पीठ हुआ। जब देवताओं ने महामाया की बहुत स्तुति की तब वे शिव के शरीर से निकलीं जिससे शिव का मोह दूर हुआ और वे फिर योग-समाधि में मग्न हुए। इधर हिमालय की भार्य्या मेनका संतति की कामना से बहुत दिनों से महामाया का पूजन करती थी। महामाया ने प्रसन्न हो कर मेनका की कन्या होकर जन्म लिया और शिव से विवाह किया। मार्कंडेय पुराण में चंडी देवी द्वारा शुंभ निशुंभ के वध की कथा लिखी है जिसका पाठ चंडी-पाठ या दुर्गा-पाठ के नाम से प्रसिद्ध है और सब जगह होता है। काशीखंड में लिखा है कि रुरु के पुत्र दुर्ग नामक महा दैत्य ने जब देवताओं को बहुत तंग किया तब वे शिव के पास गए। शिव ने असुर को मारने के लिये देवी को भेजा।

पर्य्या०—आद्याशक्ति। उमा। कात्यायनी। गौरी। काली। हैमवती। ईश्वरी। शिवा। भवानी। रुद्राणी। शर्वाणी। कल्याणी। अपर्णा। पार्वती। मृडानी। चंडिका। अंबिका। शारदा चंडी। गिरिजा। मंगला। नारायणी। महामाया। वैष्णवी। हिंडी। कोट्टवी। षष्ठी। माधवी। जयंती। भार्गवी। भा। सती। भ्रामरी। दक्षकन्या। महिषमर्दिनी। हेरंब-जननी। सावित्री। कृष्णपिंगला। शूलधरा। भगवती। ईशानी। सनातनी। महाकाली। शिवानी। चामुंडा। विधात्री। आनंदा। महामात्रा। भौमी। कृष्णा। चार्वंगी। वाणी। फाल्गुनी। मातृका। तारा। कालिका। कामेश्वरी। भैरवी। भुवनेश्वरी। त्वरिता। महालक्ष्मी। वागीश्वरी। त्रिपुरा। ज्वालामुखी। बगलामुखी। अन्नपूर्णा। अन्नदा। विशालाक्षी। सुभगा। सगुणा। धवला। घोरा। प्रेमा। वटेश्वरी। कीर्त्तिदा। तुमुला। कामरूपा। जृंभणी। मोहनी।

दुरुम–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ जिसका दाना पतला और लंबा होता है।

दुरुस्त–वि० [फा०] (१) जो अच्छी दशा में हो। जो टूटा फूटा या बिगड़ा न हो। ठीक। जैसे, घड़ी दुरुस्त करना। (२) जिसमें दोष या त्रुटि न हो। जिसमें ऐब न हो। ठीक।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—किसी को दुरुस्त करना=(१) किसी की चाल सुधारना। (२) किसी को दंड देना।

(३) उचित मुनासिब। (४) यथार्थ। वास्तविक। जैसे, आपका कहना दुरुस्त है।

दुरुस्ती–संज्ञा स्त्री० [फा०] सुधार। संशोधन।

दुरूह–वि० [सं०] जो विचार या ऊहा में जल्दी न आ सके। जिसका जानना कठिन हो। समझ में न आने योग्य। गूढ़। कठिन।

दुरेफ–संज्ञा पुं० दे० "द्विरेफ"। उ०—सुरल सुख छवि पत्र शाखा दग दुरेफ चढ़यो।—सूर।

दुरोदर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुआरी। (२) जूआ। (३) पाश-क्रीड़ा। पासा।

दुरौंधा–संज्ञा पुं० [सं० द्वारोर्द्ध] दरवाजे के ऊपर की लकड़ी। भरेठा।

दुर्कुल *–संज्ञा पुं० दे० "दुष्कुल"। उ०—अमी विषहु से मलहु से लेहु सोन करि यत्न। नीचहुँ से उत्तम गुनन दुर्कुल से तिय-रत्न।—चाणक्यनीति।

दुर्गंध–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी गंध। बुरी महक। बदबू। कुवास। सुगंध का उलटा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला नमक। (२) प्याज़। (३) आम का पेड़।

दुर्गंधता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गंध का भाव।

दुर्ग–वि० [सं०] जिसमें पहुँचना कठिन हो। जहाँ जाना सहज न हो। दुर्गम।

संज्ञा पुं० (१) पत्थर आदि की चौड़ी और पुष्ट दीवारों से घिरा हुआ वह स्थान जिसके भीतर राजा, सरदार और सेना के सिपाही आदि रहते हैं। गढ़। कोट। किला।

विशेष–ऋग्वेद तक में दुर्ग का उल्लेख है। दस्युओं के ९९ दुर्गों को इंद्र ने ध्वस्त किया था। मनु ने ६ प्रकार के दुर्ग लिखे हैं—१ धनुदुर्ग, जिसके चारों ओर निर्जल प्रदेश हो, २ महीदुर्ग जिसके चारों ओर टेढ़ी मेढ़ी जमीन हो, ३ जलदुर्ग (अब्दुर्ग) जिसके चारों ओर जल हो, (४) वृक्षदुर्ग जिसके चारों ओर घने वृक्ष हों, ५ नरदुर्ग, जिसके चारों ओर सेना हो और ६ गिरिदुर्ग जो पहाड़ पर हो या जिसके चारों ओर पहाड़ हों। महाभारत में जब युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा है कि राजा को कैसे पुर में रहना चाहिए तब भीष्म जी ने ये ही ६ प्रकार के दुर्ग गिनाए हैं और कहा है कि पुर ऐसे ही दुर्गों के बीच होना चाहिए। मनुस्मृति और महाभारत दोनों में कोष, सेना, अस्त्र, शिल्पी, ब्राह्मण, वाहन, तृण, जलाशय, अन्न इत्यादि का दुर्ग के भीतर रहना आवश्यक कहा गया है। अग्निपुराण, कालिकापुराण आदि में भी दुर्गों के उपर्युक्त ६ भेद बतलाए गए हैं।

(२) एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा।

दुर्गकारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्ग बनानेवाला मनुष्य। (२) एक वृक्ष का नाम।

दुर्गच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन दर्शन में एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से मलिन पदार्थों से ग्लानि उत्पन्न होती है।

दुर्गत–वि० [सं०] (१) दुर्दशा-ग्रस्त। जिसकी बुरी गति हुई हो। (२) दरिद्र।

दुर्गतरणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम। (महाभारत)

दुर्गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी गति। दुर्दशा। बुरा हाल। ज़िल्लत। जैसे, (क) मरहठों ने गुलाम कादिर की बड़ी दुर्गति की, उसके नाक-कान काट कर उसे पिंजरे में बंद कर दिया। (ख) पानी बरस जाने से रास्ते में बड़ी दुर्गति हुई। (२) वह दुर्दशा जो परलोक में हो। नरक।

दुर्गपाल–संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का रक्षक। किलेदार।

दुर्गपुष्पी–संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम। केशपुष्पा।

दुर्गम–वि० [सं०] (१) जहाँ जाना कठिन हो। जहाँ जल्दी पहुँच न हो सके। औघट। उ०—दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।—तुलसी। (२) जिसे जानना कठिन हो। जो जल्दी समझ में न आवे। दुर्ज्ञेय। (३) दुस्तर। कठिन। विकट।

संज्ञा पुं० (१) गढ़। दुर्ग। किला। (२) विष्णु। (३) वन। (४) संकट का स्थान। कठिन स्थिति। (५) एक असुर का नाम।

दुर्गमता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गम होने का भाव।

दुर्गमनीय–वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो। जिसके यहाँ तक जल्दी पहुँच न हो।

दुर्गरक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] किलेदार। गढ़पति।

दुर्गलंघन–संज्ञा पुं० [सं०] (रेतीले दुर्गम स्थानों को पार करनेवाला) ऊँट।

दुर्गल–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।

दुर्गसंचर–संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गम स्थानों तक पहुँचने का साधन, जैसे, सीढ़ी, पुल, बेड़ा इत्यादि।

दुर्गा–संज्ञा पुं० [सं०] आदि शक्ति। देवी।

दुर्दुरूढ़-संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिक।

दुर्दृष्ट-वि० [सं०] (व्यवहार) जिसका राग, क्षोभ आदि के कारण सम्यक् निर्णय न हुआ हो। (मुकदमा) जिसका घूस, अदावत आदि के कारण ठीक फैसला न हुआ हो।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि ऐसे मुकदमे को राजा फिर से देखे और यदि अन्याय हुआ हो तो निर्णय करनेवाले सभ्यों (न्यायाधीश आदि) और मुकदमा जीतनेवालों को उसका दूना दंड दे जितना हारनेवाले को अन्याय से हुआ हो।

दुर्दैव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्भाग्य। अभाग्य। बुरी किस्मत। (२) बुरा संयोग। दिनों का बुरा फेर।

दुर्द्धर-वि० [सं०] (१) जिसे कठिनता से पकड़ सकें। जो जल्दी पकड़ने में न आ सके। (२) प्रबल। प्रचंड। (३) जो कठिनता से समझ में आवे।

संज्ञा पुं० (१) एक नरक का नाम। (२) पारा। (३) भिलावाँ। भल्लातक। (४) महिषासुर का एक सेनापति। (५) शंबरासुर के एक मंत्री का नाम। (६) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (७) रावण का एक सैनिक जिसे उसने अशोकवाटिका उजाड़ने पर हनुमान को पकड़ने को भेजा था। यह राक्षस हनुमान के हाथ से मारा गया था। (८) विष्णु।

दुर्द्धर्ष-वि० [सं०] (१) जिसका दमन करना कठिन हो। जिसे जल्दी वश में न ला सकें। जिसे अधीन न कर सकें। (२) जिसे परास्त करना कठिन हो। (३) प्रबल। प्रचंड। उग्र।

संज्ञा पुं० (१) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (२) रावण के दल का एक राक्षस।

दुर्द्धर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदौना। (२) कंथारी का पेड़।

दुर्द्धी-वि० [सं०] बुरी बुद्धि का। मंदबुद्धि।

दुर्द्रुरूढ़-संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो गुरु की बात जल्दी न माने।

दुर्द्रिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

दुर्द्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] हरितपलांडु। हरा प्याज़।

दुर्नय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुनीति। बुरी चाल। नीतिविरुद्ध आचरण। (२) अन्याय।

दुर्नाद-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शब्द। अप्रिय ध्वनि।

वि० कर्कश ध्वनि करनेवाला।

संज्ञा पुं० राक्षस। (अनेकार्थ०)

दुर्नाम-संज्ञा पुं० [सं० दुर्नामन्] (१) बुरा नाम। कुख्याति। बदनामी। (२) गाली। बुरा वचन। (३) बवासीर। (४) शुक्ति। सीप। सुतुही।

दुर्नामक-संज्ञा पुं० [सं०] अर्श रोग। बवासीर।

दुर्नामारि-संज्ञा पुं० [सं०] (अर्श रोग को दूर करनेवाला) सूरन। जिमीकंद।

दुर्नाम्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति। सीप। सुतुही।

दुर्निमित्त-संज्ञा पुं० [सं०] होनेवाले अरिष्ट को सूचित करनेवाला अशकुन। बुरा सगुन।

दुर्निरीक्ष-वि० [सं०] (१) जिसे देखते न बने। (२) भयंकर। (३) कुरूप।

दुर्निरीक्ष्य-वि० [सं०] (१) जिसे देखते न बने। (२) भयंकर। (३) कुरूप।

दुर्निवार्य-वि० [सं०] (१) जिसका निवारण करना कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके। (२) जो जल्दी हटाया न जा सके। जिसे जल्दी दूर न कर सकें। (३) जिसका होना प्रायः निश्चित हो। जो जल्दी टल न सके।

दुर्नीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुनीति। कुचाल। अन्याय। अयुक्त आचरण।

दुर्बल-वि० [सं०] (१) जिसे अच्छा बल न हो। कमजोर। अशक्त। (२) कृश, दुबला पतला।

दुर्बलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बल की कमी। कमजोरी। (२) कृशता। दुबलापन।

दुर्बला-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलसिरीस का पेड़।

दुर्बाल-संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चमड़े पर रोग हो और बाल झड़ गए हों। गंजा।

दुर्बोध-वि० [सं०] जिसका बोध कठिनता से हो। जो जल्दी समझ में न आवे। गूढ़। क्लिष्ट। कठिन।

दुर्भक्ष-वि० [सं०] (१) जिसे खाना कठिन हो। जो जल्दी न खाया जा सके। (२) खाने में बुरा।

संज्ञा पुं० वह समय जिसमें भोजन कठिनता से मिले। दुर्भिक्ष। अकाल।

दुर्भग-वि० [सं०] [स्त्री० दुर्भगा] जिसका भाग्य बुरा हो। खोटे प्रारब्ध का। अभागा।

दुर्भगा-वि० स्त्री० [सं०] मंदभाग्यवाली। अभागिन।

संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जो अपने पति के स्नेह से वंचित हो। वह स्त्री जिसे स्वामी न चाहे। विरक्ता।

दुर्भर-वि० [सं०] (१) जिसे उठाना कठिन हो। जो लादा न जा सके। (२) भारी। गुरु। वजनी।

दुर्भाग-संज्ञा पुं० दे० "दुर्भाग्य"।

दुर्भागी-वि० [सं० दुर्भग] अभागा। मंद भाग्य का।

दुर्भाग्य-संज्ञा पुं० [सं०] मंद भाग्य। बुरा अदृष्ट। खोटी किसमत।

दुर्भाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा भाव। (२) द्वेष। मनमोटाव। मनोमालिन्य।

शांता। वेदमाता। त्रिपुरसुंदरी। तापिनी। चित्रा। अनंता, इत्यादि, इत्यादि।
(२) नीली। नील का पौधा। (३) अपराजिता। कौवा-ठेंठी। (४) श्यामा पक्षी। (५) नौ वर्ष की कन्या। (६) एक रागिनी जो गौरी, मालश्री, सारंग और लीलावती के योग से बनी है।

दुर्गाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का अधिपति। किलेदार।

दुर्गाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का प्रधान। किलेदार।

दुर्गानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्त्तिकशुक्ल नवमी। इस दिन जगद्धात्री का पूजन होता है। (२) चैत्रशुक्ल नवमी। (३) आश्विनशुक्ल नवमी।

दुर्गाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन और चैत्र के शुक्ल पक्ष की अष्टमी।

दुर्गाह्य—वि० [सं०] जिसका अवगाहन करना कठिन हो।

दुर्गाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] भूमिगूगल।

दुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा गुण। दोष। ऐब। बुराई।

दुर्गेश—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गाध्यक्ष। दुर्गरक्षक। किलेदार।

दुर्गोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा-पूजा का उत्सव जो नवरात्र में होता है।

दुर्ग्रह—वि० [सं०] (१) जिसे कठिनता से पकड़ सकें। जो जल्दी पकड़ में न आवे। (२) जो कठिनता से समझ में आवे। दुर्ज्ञेय।
संज्ञा पुं० अपामार्ग। चिचड़ी।

दुर्घट—वि० [सं०] जिसका होना कठिन हो। कष्ट-साध्य। मुश्किल से होने लायक।

दुर्घटना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अशुभ घटना। ऐसा व्यापार जिससे हानि या दुःख पहुँचे। ऐसी बात जिसके होने से बहुत कष्ट, पीड़ा या शोक हो। बुरा संयोग। वारदात। जैसे, नदी का पुल टूट गया, इस दुर्घटना से बहुत हानि पहुँची। (२) विपद्। आफत।

दुर्घोष—वि० [सं०] जो बुरा स्वर निकाले। जो कटु या कर्कश ध्वनि करे।
संज्ञा पुं० भालू।

दुर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट जन। खल। खोटा आदमी। उ०—दुर्जन वचन सुनत दुख जैसो। बाण लगे दुख होइ न तैसो।—सूर।

दुर्जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। खोटापन।

दुर्जय—वि० [सं०] जिसे जीतना बहुत कठिन हो। जो जल्दी जीता न जा सके।
संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) कार्त्तवीर्य वंश में उत्पन्न अनंत राजा का एक पुत्र। (कूर्म पुराण)। (३) एक राक्षस का नाम।

दुर्जर—वि० [सं०] जो कठिनता से पचे। जो पकाने से जल्दी न पके। जिसका परिपाक करना कठिन हो।

दुर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता। मालकँगनी।

दुर्जात—वि० [सं०] (१) जिसका जन्म बुरी रीति से हुआ हो। (२) जिसका जन्म व्यर्थ हुआ हो। (३) नीच। कमीना। (४) अभागा।
संज्ञा पुं० (१) व्यसन। (२) असमंजस। कठिनता। संकट।

दुर्जाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी जाति। नीच जाति।
वि० (१) बुरे कुल का। (२) जिसकी जाति बिगड़ गई हो।

दुर्जीव—वि० [सं०] दूसरे के दिए अन्न पर रहनेवाला। बुरी जीविका करनेवाला।
संज्ञा पुं० बुरा जीवन। निंदित जीवन।

दुर्जेय—वि० [सं०] जिसे जीतना अत्यंत कठिन हो। दुर्जय।

दुर्ज्ञेय—वि० [सं०] कठिनाई से जानने योग्य। जिसे जानना अत्यंत कठिन हो। जो जल्दी समझ में न आ सके। दुर्बोध।

दुर्दम—वि० [सं०] (१) जिसका दमन बड़ी कठिनाई से हो सके। जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। (२) प्रचंड। प्रबल।
संज्ञा पुं० रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

दुर्दमन—वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो।
संज्ञा पुं० जनमेजय के वंश में उत्पन्न शतानीक राजा का पुत्र।

दुर्दमनीय—वि० [सं०] (१) जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। (२) प्रचंड। प्रबल।

दुर्दम्य—वि० दे० "दुर्दम।"
संज्ञा पुं० गाय का बछड़ा।

दुर्दर्श—वि० [सं०] (१) जिसे देखना अत्यंत कठिन हो। जो जल्दी दिखाई न पड़े। (२) जो देखने में भयंकर हो।

दुर्दर्शन—वि० दे० "दुर्दर्श"।
संज्ञा पुं० कौरवों का एक सेनापति।

दुर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी दशा। मंद अवस्था। दुर्गति। खराब हालत।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

दुर्दांत—वि० (१) दुर्दमनीय। (२) प्रचंड। प्रबल।
संज्ञा पुं० (१) गाय का बछड़ा। (२) कलह। (३) शिव।

दुर्दान—संज्ञा पुं० [?] रूपा। चाँदी। (अनेकार्थ०)

दुर्दिन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा दिन। (२) ऐसा दिन जिसमें बादल छाए हों, पानी बरसता हो और घर से निकलना कठिन हो। मेघाच्छन्न दिन। (३) दुर्दशा का समय। दुःख और कष्ट का समय। बुरा वक्त।

को भी हार गए। दुःशासन द्रौपदी को बलात् सभा में लाया और दुर्योधन उसे अपने जंघे पर बैठने के लिये कहने लगा। इस पर भीम ने क्रुद्ध होकर गदा से दुर्योधन के जंघे को तोड़ने की प्रतिज्ञा की। अंत में द्यूत के नियमानुसार धृतराष्ट्र ने यह निर्णय किया कि पांडव बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करें। जब अज्ञातवास पूरा हो गया तब कृष्ण दूत होकर कौरवों के पास पांडवों की ओर से गए। पर दुर्योधन ने पांडवों को राज्य का अंश क्या पाँच गाँव तक देना अस्वीकार किया। अंत में कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें कौरव मारे गए और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। दुर्योधन को युधिष्ठिर 'सुयोधन' कहा करते थे।

दुर्योनि-वि० [सं०] जिसका जन्म नीच कुल में हो। नीच कुल का।

दुर्रा-संज्ञा पुं० [फा०] कोड़ा। चाबुक। दुर्रा।

दुर्रानी-संज्ञा पुं० [फा०] अफगानों की एक जाति।

दुर्लंघ्य-वि० [सं०] दुःख से उल्लंघन करने योग्य। जिसे जल्दी लाँघ न सकें।

दुर्लक्ष्य-वि० [सं०] जो कठिनता से दिखाई पड़े। जो प्रायः अदृश्य हो।

संज्ञा पुं० बुरा उद्देश्य। बुरी नीयत।

दुर्लभ-वि० [सं०] (१) जो कठिनता से मिल सके। जिसे पाना सहज न हो। दुष्प्राप्य। (२) अनोखा। बहुत बढ़िया। (३) प्रिय।

संज्ञा पुं० (१) कचूर। (२) विष्णु।

दुर्लेख्य-वि० [सं०] जो बुरा लिखा हुआ हो। जिसकी लिखावट बुरी हो। जो ऐसा लिखा हो कि जल्दी पढ़ा न जा सके। (स्मृति)

दुर्वच-वि० [सं०] (१) जो दुःख से कहा जा सके। जिसके कहने में कष्ट हो। (२) जो कठिनता से कहा जा सके।

संज्ञा पुं० दुर्वचन। गाली।

दुर्वचन-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वाक्य। कटुवचन। गाली।

दुर्वर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाँदी। (२) एलुवा।

दुर्वह-वि० [सं०] जिसका वहन करना कठिन हो। जिसे उठा कर ले चलना कठिन हो।

दुर्वाच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा वचन। निंदित वाक्य।

दुर्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपवाद। निंदा। बदनामी। (२) स्तुतिपूर्वक कहा हुआ अप्रिय वाक्य। (३) अनुचित अयुक्त वा निंदित विवाद।

दुर्वादी-वि० [सं० दुर्वादिन्] कुतर्की। हुज्जती।

दुर्वार-वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वारि-संज्ञा पुं० [सं०] कंबोज देश का एक वीर जो महाभारत की लड़ाई में लड़ा था।

दुर्वार्य्य-वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी इच्छा। खोटी आकांक्षा। दुष्ट कामना। (२) ऐसी कामना जो कभी पूरी न हो सके।

दुर्वासा-संज्ञा पुं० [सं० दुर्वासस्] एक मुनि जो अत्रि के पुत्र थे। इनके नाम के विषय में महाभारत में लिखा है कि जिसका धर्म्म में दृढ़ निश्चय हो उसे दुर्वासा कहते हैं। ये अत्यंत क्रोधी थे। इन्होंने और्व मुनि की कन्या कंदली से विवाह किया था। विवाह के समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि स्त्री के सौ अपराध तक क्षमा करेंगे। प्रतिज्ञानुसार सौ अपराध तक इन्होंने क्षमा किए, अनंतर शाप देकर पत्नी को भस्म कर दिया। और्व मुनि ने कन्या की मृत्यु से शोकातुर होकर दुर्वासा को शाप दिया कि "तुम्हारा दर्प चूर्ण होगा" इसी शाप के कारण राजा अंबरीष के मामले में इन्हें नीचा देखना पड़ा। इनका स्वभाव कुछ सनकी था। इनके शाप और वरदान की अनेक कथाएँ महाभारत तथा पुराण आदि में भरी पड़ी हैं। ये न तो किसी वेदमंत्र के ऋषि हैं और न वैदिक ग्रंथों में कहीं इनका नाम मिलता है।

दुर्विगाह-वि० [सं०] जिसका अवगाहन करना कठिन हो। जिसकी थाह जल्दी न लग सके।

दुर्विज्ञेय-वि० [सं०] जिसका कष्ट या कठिनता से ज्ञान हो सके। जो जल्दी जाना न जा सके।

दुर्विद-वि० [सं०] जिसे जानना कठिन हो। जो जल्दी जाना न जा सके।

दुर्विदग्ध-वि० [सं०] (१) जो अच्छी तरह जला न हो। अधजला। (२) जो पूर्ण परिपक्व न हो। (३) अहंकारी। घमंडी।

दुर्विदग्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अधकचरापन। पूरी निपुणता का अभाव।

दुर्विध-वि० [सं०] (१) दरिद्र। (२) खल। (३) मूर्ख।

दुर्विधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी विधि। कुनियम।

संज्ञा पुं० दुर्भाग्य।

दुर्विनीत-वि० [सं०] अविनीत। अशिष्ट। उद्धत। अक्खड़।

दुर्विपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा परिणाम। बुरा फल। (२) बुरा संयोग। दुर्घटना।

दुर्विभाव्य-वि० [सं०] जिसकी भावना न हो सके। जो मन में न आवे। जिसका अनुमान न हो सके।

दुर्विलसित-संज्ञा पुं० [सं०] दुष्कार्य्य।

दुर्विवाह-संज्ञा पुं० [सं०] बुरा ब्याह। निंदित विवाह।

दुर्भावना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुरी भावना। (२) खटका। चिंता। अंदेशा।

दुर्भाव्य–वि० [सं०] जिसकी भावना सहज में न हो सके। जो जल्दी ध्यान में न आसके।

दुर्भिक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा समय जिसमें भिक्षा या भोजन कठिनता से मिले। अकाल। कहत।

दुर्भिच्छ*–संज्ञा पुं० दे० "दुर्भिक्ष"।

दुर्भेद–वि० [सं०] (१) जो जल्दी भेदा न जा सके। जो कठिनता से छिदे। (२) जिसके पार कठिनता से जा सकें। जिसे जल्दी पार न कर सकें।

दुर्भेद्य–वि० दे० "दुर्भेद"।

दुर्मति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी बुद्धि। नासमझी।

वि० (१) दुर्बुद्धि। जिसकी समझ ठीक न हो। कम अक्ल। (२) खल। दुष्ट।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से एक जिसमें दुर्भिक्ष होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

दुर्मद–वि० [सं०] (१) उन्मत्त। नशे आदि में चूर। उ०—कुंभकरन दुर्मद रनरंगा।—तुलसी। (२) अभिमान में चूर। गर्व से भरा हुआ।

दुर्मना–वि० [सं० दुर्मनस्] (१) बुरे चित्त का। दुष्ट। (२) उदास। खिन्न। अनमना।

दुर्मर–वि० [सं०] जिसकी मृत्यु बड़े कष्ट से हो।

दुर्मरण–संज्ञा पुं० [सं०] बुरे प्रकार से होनेवाली मृत्यु।

दुर्मरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर्वा। दूब।

दुर्मर्ष–वि० [सं०] जिसे सहन करना कठिन हो। दुःसह।

दुर्मल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्य काव्य के अंतर्गत उपरूपकों में से एक जिसमें हास्य रस प्रधान होता है और जो चार अंकों में समाप्त होता है। इसमें गर्भांक नहीं होते। इसके तीन अंकों में क्रमशः विट्, विदूषक, पीठमर्द आदि की विविध क्रीड़ाएँ रहती हैं।

दुर्मल्ली–संज्ञा स्त्री० दे० "दुर्मल्लिका"।

दुर्मिल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भरत के सातवें लड़के का नाम। (२) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८, और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक सगण और दो गुरु होते हैं। इसमें जगण का निषेध है। उ०—जय जय रघुनंदन, असुर-विखंडन, कुलमंडन यश के धारी। जनमनसुखकारी, विपिनविहारी, नारि अहिल्यहि सी तारी। (३) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं। यह एक प्रकार का सवैया है। उ०—सबसों करि नेह भजै रघुनंदन राजत हीरनमाल हिये।

दुर्मुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) राम की सेना का एक बंदर। (३) महिषासुर के एक सेनापति का नाम। (४) रामचंद्र जी का एक गुप्तचर जिसके द्वारा वे अपनी प्रजा का वृत्तांत जाना करते थे। इसी के मुहँ से उन्होंने सीता के विषय में वह लोकापवाद सुना था जिसके कारण सीता का द्वितीय वनवास हुआ था। (उत्तररामचरित)। (५) एक नाग का नाम। (६) शिव। (७) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (८) वह घर जिसका द्वार उत्तर की ओर हो। (९) साठ संवत्सरों में से एक। (१०) एक यक्ष का नाम। (११) गणेशजी का एक गण।

वि० [स्त्री० दुर्मुखी] (१) जिसका मुख बुरा हो। (२) बुरे वचन बोलनेवाला। कटुभाषी। अप्रियवादी।

दुर्मुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने जानकी को समझाने के लिये नियत किया था।

वि० बुरे मुहँवाली।

दुर्मुट–संज्ञा पुं० दे० "दुरमुस"।

दुर्मुस–संज्ञा पुं० [सं० (प्रत्य०) दुर् + मुस = कूटना] गदा के आकार का एक लंबा डंडा जिसके नीचे लोहे या पत्थर का भारी गोल टुकड़ा रहता है और जिससे सड़कों आदि पर कंकड़ या गिट्टी पीट कर बैठाई जाती है। कंकड़ या मिट्टी पीटने का मुगदर।

दुर्मूल्य–वि० [सं०] जिसका दाम अधिक हो। महँगा।

दुर्मेध–वि० [सं० दुर्मेधस्] मंदबुद्धि। नासमझ।

दुर्मोह–संज्ञा पुं० [सं०] कौवाठोठी। काकतुंडी।

दुर्मोहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौवाठोठी। (२) सफेद घुंघची।

दुर्यश–संज्ञा पुं० [सं० दुर्यशस्] अपयश। अपकीर्त्ति।

दुर्योध–वि० [सं०] जो बड़ी बड़ी कठिनाइयों को सह कर भी युद्ध में स्थिर रहे। विकट लड़ाका।

दुर्योधन–संज्ञा पुं० [सं०] कुरुवंशीय राजा धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र जो अपने चचेरे भाई पांडवों से बहुत बुरा मानता था। सब से अधिक द्वेष यह भीम से रखता था। बात यह थी कि भीम के समान दुर्योधन भी गदा चलाने में अत्यंत निपुण था, पर भीम की बराबरी नहीं कर सकता था। पहले धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को ही सब में बड़ा समझ युवराज बनाना चाहते थे, पर दुर्योधन ने बहुत आपत्ति की और छल से पांडवों को वन में भेज दिया। वनवास से लौट कर पांडवों ने इंद्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बसाई और युधिष्ठिर ने धूमधाम से राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञ में पांडवों का भारी वैभव देख दुर्योधन जल उठा और उनके नाश का उपाय सोचने लगा। अंत में उसने युधिष्ठिर को अपने साथ पासा खेलने के लिये बुलाया। उस खेल में दुर्योधन के मामा गांधार के राजकुमार शकुनि के छल और कौशल से युधिष्ठिर अपना सारा राज्य और धन यहाँ तक कि द्रौपदी

बच्चों या प्रेमपात्रों को प्रसन्न करने के लिये उनके साथ अनेक प्रकार की चेष्टा करना (जैसे, विलक्षण संबोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना इत्यादि)। लाड़ करना। लाड़ना।

दुलारा-वि० [हिं० दुलार] [स्त्री० दुलारी] जिसका बहुत दुलार या लाड़ प्यार हो। लाड़ला। जैसे, दुलारा लड़का।
संज्ञा पुं० लाड़ला बेटा। प्रिय पुत्र। उ०—शोकत भग आज सखी नंद को दुलारो।—सूर।

दुलारी-वि० स्त्री० [हिं० दुलारा] जिसका अधिक लाड़ प्यार हो। लाड़ली।
संज्ञा स्त्री० लाड़ली बेटी। प्रिय कन्या। उ०—सखियन सँग झूलति वृषभानु की दुलारी।—सूर।
संज्ञा स्त्री० † दे० "दुलाई"। उ०—इती बात को समुझि ले तू अपने मन लाल। प्रीति दुलारी सुलत है जहि की मगजी लाल।—रसनिधि।

दुलीचा-संज्ञा पुं० [देश०] गलीचा। कालीन।

दुलेहटा †-संज्ञा पुं० दे० "दुलहेटा"।

दुलैचा-संज्ञा पुं० [देश०] गलीचा। कालीन।

दुलोही-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + लोहा] एक प्रकार की तलवार जो लोहे के दो टुकड़ों को जोड़ कर बनाई जाती है।

दुल्लभ॰-वि० दे० "दुर्लभ"।

दुल्ली-संज्ञा स्त्री० दे० "दुल्लो"।

दुल्लो-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + ला (प्रत्य०)] गोली के खेल में वह गोली जो मीर या अगली गोली के पीछे हो। दूसरे नंबर की गोली।

दुल्हैया ‡-संज्ञा स्त्री० दे० "दुलहिन"।

दुव॰-वि० [सं० द्वि] दो।

दुवन-संज्ञा पुं० [सं० दुर्मनस्] (१) दुष्ट चित्त का मनुष्य। खल। दुर्जन। बुरा आदमी। उ०—कै अपनी दुर्नीति कै दुवन क्रूरता मानि। आवै उर में सोच अति सो संका पहिचानि।—पद्माकर। (२) शत्रु। वैरी। दुश्मन। उ०—मतिराम सुजस दिन दिन बढ़त सुनत दुवन दर कढ़ियत।—मतिराम। (३) राक्षस। दैत्य। उ०—(क) वारिज सुवन को तो दया दुवनहु पर मोहिं सोच मेते सब विधि नसानि।—तुलसी। (ख) पवन बँधाय सेत उतरे कटक कपि आए देखि देखि दूत दारुन दुवन के।—तुलसी।

दुवाज-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—तुकरा औ दुवाज बोरता है छवि दूनी।—सूदन।

दुवादस ‡॰-वि० दे० "द्वादश"।

दुवादसबानी॰-वि० [सं० द्वादश = सूर्य + वर्ण] बारह बानी का। सूर्य के समान दमकता हुआ। आभायुक्त। खरा। (विशेषतः सोने के लिये)। उ०—कनक दुवादस बानि है वह सुहाग वह माँग। सेवा करैं नखत ससि तरइ उवै अस गाँग।—जायसी।

दुवादसी॰‡-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वादशी"।

दुवार †-संज्ञा पुं० दे० "द्वार"।

दुवारिका ‡-संज्ञा स्त्री० दे० "द्वारका"।

दुवाल-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) चमड़े का तसमा। (२) रिकाब का तसमा। रिकाब में लगा हुआ चमड़े का चौड़ा फीता।

दुवालबंद-संज्ञा पुं० [फा०] चमड़े का चौड़ा तसमा जो कमर आदि में लपेटा जाय। चपरास या पेटी का तसमा।

दुवाली-संज्ञा स्त्री० [देश०] रंगे या छपे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये घोटने का औजार। घोंटा।
संज्ञा स्त्री० [फा० दुवाल] चमड़े के चौड़े तसमे का परतला या पेटी जिसमें बंदूक, तलवार आदि लटकाते हैं।

दुवालीबंद-संज्ञा पुं० [फा०] परतला आदि लगाए हुए तैयार सिपाही।

दुविद॰-संज्ञा पुं० दे० "द्विविद"।

दुविधा ‡-संज्ञा पुं० दे० "दुवधा"।

दुवौ॰ †-वि० [हिं० दुव = दो + उ = ही] दोनों।

दुशवार-वि० [फा०] [संज्ञा दुशवारी] (१) कठिन। दुरूह। मुश्किल। (२) दुःसह।

दुशवारी-संज्ञा स्त्री० [फा०] कठिनता।

दुशाला-संज्ञा पुं० [सं० द्विशाट, फा० दोशाला] पशमीने की चद्दरों का जोड़ा जिनके किनारे पर पशमीने की रंग बिरंगी बेलें बनी रहती हैं। ये बहुधा कश्मीर और पेशावर से आती हैं। कश्मीरी दुशाले अच्छे और कीमती होते हैं। उ०—तान तुकताला हैं विनोद के रसाला हैं, सुबाला हैं दुशाला हैं विशाला चित्रशाला हैं।—पद्माकर।
यौ०—दुशाला-पोश। दुशाला-फरोश।
मुहा०—दुशाले में लपेट कर मारना या लगाना = आड़े हाथ लेना। छिपे छिपे आक्षेप करना। मीठी चुटकी लेना।

दुशाला-पोश-वि० [फा०] (१) जो दुशाला ओढ़े हो। (२) जो अच्छा कपड़ा पहने हुए हो। (३) अमीर।

दुशाला-फरोश-संज्ञा पुं० [फा०] दुशाला बेचनेवाला।

दुशासन॰-संज्ञा पुं० दे० "दुःशासन"।

दुश्चर-वि० [सं०] [संज्ञा दुश्चरत्व] जिसका करना कठिन हो। कठिन। दुष्कर।

दुश्चरित-वि० [सं०] (१) बुरे आचरण का। बदचलन। (२) कठिन।
संज्ञा पुं० (१) बुरा आचरण। कुचाल। बदचलनी। (२) पाप।

दुश्चरित्र-वि० [सं०] [स्त्री० दुश्चरित्रा] बुरे चरित्रवाला। बदचलन।

विशेष—स्मृतियों में जो आठ प्रकार के विवाह कहे गए हैं उनमें ब्राह्म आदि चार प्रकार के विवाह सुविवाह और आसुर आदि चार प्रकार के विवाह दुर्विवाह कहलाते हैं।

दुर्विष—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (जिन पर विष का कुछ प्रभाव न हुआ)।

दुर्विषह—वि० [सं०] जिसे सहना कठिन हो। दुःसह।

संज्ञा पुं० (१) महादेव। शिव। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो। दुश्चरित्र। दुराचारी।

संज्ञा पुं० बुरा आचरण। बुरा व्यवहार।

दुर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी वृत्ति। बुरा पेशा। बुरा काम। उ०—सेवा समान अति दुस्तर दुःखदाई। दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई।—द्विवेदी।

दुर्व्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुप्रबंध। बद-इंतजामी।

दुर्व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा व्यवहार। बुरा बर्त्ताव। (२) दुष्ट आचरण। (३) वह मुकदमा जिसका फैसला घूस अदावत आदि के कारण ठीक न हुआ हो। दे० "दुर्दृष्ट"।

दुर्व्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी लत। खराब आदत। किसी ऐसी बात का अभ्यास जिससे कोई लाभ न हो।

दुर्व्यसनी—वि० [सं०] बुरी लतवाला।

दुर्व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा मनोरथ। नीच आशय।

वि० जिसने बुरा व्रत लिया हो। बुरे मनोरथोंवाला। नीचाशय।

दुर्हृद—संज्ञा पुं० [सं०] जो सुहृद न हो। अमित्र। शत्रु।

दुलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] घोड़े की एक चाल जिसमें वह चारों पैर अलग अलग उठा कर कुछ उछलता हुआ चलता है।

क्रि० प्र०—चलना।—जाना।

दुलखना†—क्रि० स० [हिं० दो + कथन] बार बार बतलाना। बार बार कहना। बार बार दोहराना।

दुलखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक फतिंगा जो ज्वार, नील, तमाखू, सरसों और गेहूँ को नुकसान पहुँचाता है।

दुलड़ा—वि० [हिं० दो + लड़] [स्त्री० दुलड़ी] दो लड़ों का।

संज्ञा पुं० दो लड़ों की माला।

दुलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + लड़] दो लड़ों की माला।

दुलत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० दो + लात] (१) घोड़े आदि चौपायों का पिछले दोनों पैरों को उठा कर मारना।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।

मुहा०—दुलत्ती छाँटना या झाड़ना = दोनों लातों को चलाना। दोनों लातों से मारना। दुलत्ती फेंकना = दोनों लात चलाना।

(२) मालखंभ की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों से मालखंभ को लपेट कर बाकी बदन मालखंभ से अलग दिखा कर ताल आदि ठोंकते हैं।

दुलदुल—संज्ञा पुं० [अ०] वह खच्चरी जिसे इसकंदरिया (मिस्र) के हाकिम ने मुहम्मद साहब को नज़र में दिया था। साधारण लोग इसे घोड़ा समझते हैं और मुहर्रम के दिनों में इसकी नकल निकालते हैं। मुहर्रम की आठवीं को अब्बास के नाम का और नवीं को हुसैन के नाम का बिना सवार का घोड़ा भीड़ भाड़ के साथ निकाला जाता है।

दुलन†—संज्ञा पुं० दे० "दोलन"। उ०—सूर स्याम सरोज लोचन दुलन जन जल चार।—सूर।

दुलना—क्रि० अ० दे० "डुलना"।

दुलभ *—वि० दे० "दुर्लभ"।

दुलराना *†—क्रि० स० [हिं० दुलारना] लाड़ करना। बच्चों को बहला कर प्यार करना। उ०—अय लागी मोको दुलरावन प्रेम करति टरि ऐसी है। सुनहु सूर तुमरे छित छिन मति बड़ी प्रेम की गैसी हो।—सूर।

क्रि० अ० दुलारे बच्चों की सी चेष्टा करना। लाड़ प्यार का सा व्यवहार करना।

दुलरी—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलड़ी"।

दुलरुवा†—वि० दे० "दुलारा"।

दुलहन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलहा] नवविवाहिता वधू। नई बहू। नई ब्याही हुई स्त्री।

दुलहा—संज्ञा पुं० दे० "दूल्हा"।

दुलहिन—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलहन"।

दुलहिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलही"। उ०—देह दुलहिया की बढ़ै ज्यों ज्यों जोबन जोति।—बिहारी।

दुलही†—संज्ञा स्त्री० दे० "दुलहन"।

दुलहेटा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह + हिं० बेटा] लाड़ला बेटा। दुलारा लड़का। उ०—युग युग जियहि राजदुलहेटा दै असीस द्विजनारी। पाइ भीख लै सीख जाइ घर कोउ आवती सुखारी।—रघुराज।

दुलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० तूल = रुई, हिं० तुलाई, तुराई] ओढ़ने का दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो। रुई भरा हुआ ओढ़ना।

दुलाना *—क्रि० स० दे० "डुलाना"।

दुलार—संज्ञा पुं० [हिं० दुलारना] प्रसन्न करने की वह चेष्टा जो प्रेम के कारण लोग बच्चों या प्रेमपात्रों के साथ करते हैं, जैसे, कुछ विलक्षण संबोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना इत्यादि। लाड़ प्यार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दुलारना—क्रि० स० [सं० दुर्लालन, प्रा० दुल्लाडन] प्रेम के कारण

दुष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दोष। नुक्स। ऐब। (२) बुराई। खराबी। (३) बदमाशी। दुर्जनता।

दुष्टत्व–संज्ञा पु० [सं०] दुर्जनता। खोटाई।

दुष्टपना–संज्ञा पु० [हिं० दुष्ट+पन (प्रत्य०)] दुष्टता। खोटाई। उ०—रे सठ रहु न राज मेरे में। है अति दुष्टपनो तेरे में।—गोपाल।

दुष्ट व्रण–संज्ञा पु० [सं०] वह व्रण का घाव जिसमें से दुर्गंध आवे और जो अच्छा न हो। यह रोग वैद्यक में असाध्य माना गया है और धर्मशास्त्र ने इस रोग को पूर्व-जन्मकृत महा पातक का फल माना है। बिना प्रायश्चित्त किए इस रोग का रोगी अस्पृश्य माना गया है और उसके दाहकर्म और मृतक-संस्कार का निषेध है।

दुष्टर–वि० दे० "दुस्तर"।

दुष्टसाक्षी–संज्ञा पु० [सं० दुष्टसाक्षिन्] बुरा साक्षी। ऐसा गवाह जो ठीक ठीक गवाही न दे। अयोग्य साक्षी।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि साक्षी सत्यवादी, कर्त्तव्य-परायण और निर्लोभ हो। यदि साक्षी ऐसा हो जिसने कभी झूठी गवाही दी हो, जो व्याधिग्रस्त हो, जिसने महा-पातक किए हों अथवा जिसका दो पक्षों में से किसी पक्ष के साथ आर्थिक संबंध, शत्रुता या मित्रता हो वह दुष्ट साक्षी है। उसका साक्ष्य ग्रहण न करना चाहिए।

दुष्टा–वि० स्त्री० [सं०] खोटी। बुरे स्वभाव की।

दुष्टाचार–संज्ञा पु० [सं०] कुचाल। कुकर्म। खोटा काम। वि० दुराचारी। बुरा काम करनेवाला।

दुष्टाचारी–वि० [सं० दुष्टाचारिन्] [स्त्री० दुष्टाचारिणी] कुकर्मी। जिसके आचरण अच्छे न हों। खोटा काम करनेवाला।

दुष्टात्मा–वि० [सं०] जिसका अंतःकरण बुरा हो। दुराशय। खोटी प्रकृति का।

दुष्टान्न–संज्ञा पु० [सं०] (१) बिगड़ा हुआ अन्न। बासी या सड़ा अन्न। (२) कुत्सित अन्न। (३) वह अन्न जो पाप की कमाई हो। (४) नीच का अन्न।

दुष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष। विकार। ऐब।

दुष्पच–वि० [सं०] (१) जो कठिनता से पके। (२) जो जल्दी न पचे।

दुष्पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] चोर नामक गंधद्रव्य।

दुष्पद–वि० [सं०] दुष्प्राप्य।

दुष्पराजय–वि० [सं०] जिसका जीतना कठिन हो। संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

दुष्परिग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] जो जल्दी पकड़ में न आ सके। जिसे जल्दी धर पकड़ न सकें। जिसे वश में लाना कठिन हो।

दुष्पर्श–वि० [सं०] (१) जिसे स्पर्श करना कठिन हो। जिसे छूते न बने। (२) जो जल्दी हाथ न लगे। दुष्प्राप्य।

दुष्पर्शा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा।

दुष्पार–वि० [सं०] (१) जिसे जल्दी पार न कर सकें। (२) दुःसाध्य। कठिन।

दुष्पूर–वि० [सं०] (१) जिसका भरना कठिन हो। जो जल्दी पूरा न हो सके। कठिनता से पूर्ण होनेवाला। (२) अनिवार्य्य।

दुष्प्रकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रकृति। खोटा स्वभाव। वि० बुरे स्वभाव का। दुःशील।

दुष्प्रधर्ष–वि० [सं०] जो जल्दी धर पकड़ में न आ सके। संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुष्प्रधर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जवासा। हिंगुवा। (२) खजूर।

दुष्प्रधर्षिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंटकारी। भटकटैया। (२) बैंगन। भंटा।

दुष्प्रवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रवृत्ति।

दुष्प्रवेशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कंथारी वृक्ष।

दुष्प्राप–वि० दे० "दुष्प्राप्य"।

दुष्प्राप्य–वि० [सं०] जो सहज में न मिल सके। जिसका मिलना कठिन हो।

दुष्प्रेक्ष–वि० दे० "दुष्प्रेक्ष्य"।

दुष्प्रेक्ष्य–वि० [सं०] (१) जिसे देखना कठिन हो। (२) दुर्दर्शन। भीषण।

दुष्मंत–संज्ञा पुं० दे० "दुष्यंत"।

दुष्यंत–संज्ञा पु० [सं०] पुरुवंशी एक राजा जो ऐति नामक राजा के पुत्र थे। महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—

एक दिन राजा दुष्यंत शिकार खेलते खेलते थक कर कण्व मुनि के आश्रम के पास जा निकले। उस समय कण्व मुनि की पाली हुई लड़की शकुंतला ही वहाँ थी। उसने राजा का उचित सत्कार किया। राजा उसके रूप पर मोह गए। पूछने पर राजा को मालूम हुआ कि शकुंतला एक अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र ऋषि की कन्या है। जब राजा ने विवाह का प्रस्ताव किया तब शकुंतला ने कहा "यदि गांधर्व-विवाह में कुछ दोष न हो और यदि आप मेरे ही पुत्र को युवराज बनावें तो मैं सम्मत हूँ।" राजा विवाह करके और शकुंतला को कण्व ऋषि के आश्रम पर छोड़ अपनी राजधानी में चले गए। कुछ दिन बीतने पर शकुंतला को एक पुत्र हुआ जिसका नाम आश्रम के ऋषियों ने सर्वदमन रखा। कण्व ऋषि ने शकुंतला को पुत्र के साथ राजा के पास भेजा। शकुंतला ने राजा के पास जाकर कहा "हे राजन्! यह आपका पुत्र मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है और आपका औरस पुत्र है, इसे युवराज

संज्ञा पुं० बुरी चाल । कुचाल । दुराचार ।

दुश्चर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० दुश्चर्म्मन्] वह पुरुष जिसकी लिंगेंद्रिय के मुख पर ढाकनेवाला चमड़ा न हो । इस प्रकार के लोग जन्म से ही बिना इस चमड़े के होते हैं । धर्मशास्त्रों का मत है कि गुरुतल्पग जन्मांतर में दुश्चर्म्मा उत्पन्न होते हैं । ऐसे पुरुषों को बिना प्रायश्चित्त किए किसी कर्म्म के करने का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि बिना प्रायश्चित्त किए उनका दाहकर्म और मृतक-कर्म भी नहीं किया जा सकता ।

दुश्चलन-संज्ञा स्त्री० [सं० दुः + हि० चलन] दुराचरण । खोटी चाल । उ०—जिस मनुष्य के स्वरूप से दुश्चलन अथवा दुराचरण की आशंका पाई जाय उसका निरीक्षण पूर्णतया हो ।—वेनिस का बाँका ।

दुश्चिंत्य-वि० [सं०] जो कठिनता से समझ में आवे । जिसकी भावना मन में जल्दी न हो सके ।

दुश्चिकित्स-वि० [सं०] दुश्चिकित्स्य । जिसकी चिकित्सा कठिन हो ।

दुश्चिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद संबंधी चिकित्सा के नियमों के विरुद्ध चिकित्सा करना । निंदित चिकित्सा ।

विशेष—स्मृतियों में इस प्रकार के अनाड़ी या दुष्ट चिकित्सकों के दंड का विधान है ।

दुश्चिकित्सित-वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाई से हो सके । अचिकित्सनीय । दुःसाध्य (रोग) ।

दुश्चिकित्स्य-वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा कठिनता से हो सके । जिसकी दवा जल्दी न हो सके । दुःसाध्य ।

दुश्चिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न से तीसरा स्थान ।

दुश्चित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खटका । चिंता । आशंका । (२) घबराहट ।

दुश्चेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [सं० दुश्चेष्टित] बुरा काम । कुचेष्टा ।

दुश्चेष्टित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्कर्म । पाप । (२) नीच काम । खोटा काम ।

दुश्च्यवन-वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न हो सके । जो जल्दी विचलित न हो ।

संज्ञा पुं० इंद्र ।

दुश्च्याव-वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न किया जा सके ।

संज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

दुश्मन-संज्ञा पुं० [फा०] [भाव० दुश्मनी] शत्रु । वैरी । द्वेषी । उ०—श्याम छवि निरखति नागरि नारि । प्यारी छवि निरखत मनमोहन सकत न नैन पसारि । पिय सकुचत नहिं दिष्टि मिलावत सन्मुख होत लजात । श्रीराधिका निदर अवलोकत अतिहि हृदय हरखात । अरस परस मोहनि मोहन मिलि सँग गोपी गोपाल । सूरदास प्रभु सब गुण-लायक दुशमन के उर साल—सूर ।

दुश्मनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वैर । शत्रुता । विरोध ।

दुष्कर-वि० [सं०] जिसे करना कठिन हो । दुःसाध्य । जो मुश्किल से हो सके ।

संज्ञा पुं० आकाश ।

दुष्कर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुष्कर्म-संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर्म्मन्] [वि० दुष्कर्म्मा] बुरा काम । कुकर्म । पाप ।

दुष्कर्मा-वि० [सं० दुष्कर्मन्] बुरा काम करनेवाला । पापी । कुकर्मी ।

दुष्कर्मी-वि० [सं० दुष्कर्म + ई (प्रत्य०)] बुरा काम करनेवाला । पापी । दुराचारी ।

संज्ञा पुं० पापी । उ०— तुमने अपने को बहुत से दुष्कर्म्मियों का अग्रगण्य बना रक्खा है ।—वेनिस का बाँका ।

दुष्काल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा वक्त । कुसमय । (२) दुर्भिक्ष । अकाल । (३) महादेव ।

दुष्कीर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकीर्त्ति । अपयश । बदनामी ।

दुष्कुल-संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल । बुरा खानदान । अप्रतिष्ठित घराना ।

वि० नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।

दुष्कुलीन-वि० [सं०] नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।

दुष्कृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा काम । कुकर्म ।

वि० [सं०] कुकर्मी । पापी ।

दुष्कृती-वि० [सं० दुष्कृतिन्] बुरा काम करनेवाला । कुकर्मी । पापी ।

दुष्क्रीत-वि० [सं०] मोल लेने में जिसका दाम उचित से अधिक दिया गया हो । महँगा ।

दुष्खदिर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ छोटा होता है । इसका कत्था पीला और खाने में कड़ुआ और कसैला होता है । इसे क्षुद्र खदिर भी कहते हैं ।

पर्य्या०—कांबोजी । कालस्कंद । गोरट । अमरज । पत्रतरु । बहुसार । महासार । क्षुद्र खदिर ।

दुष्ट-वि० [सं०] [स्त्री० दुष्टा] (१) दूषित । दोष-ग्रस्त । जिसमें दोष हो । जिसमें नुक्स या ऐब हो । (२) पित्त आदि दोष युक्त । (३) दुर्जन । खल । दुराचारी । पाजी । खोटा ।

संज्ञा पुं० (१) कुष्ट । कोढ़ ।

दुष्टचारी-वि० [सं० दुष्टचारिन्] [स्त्री० दुष्टचारिणी] (१) दुराचारी । बुरा आचरण करनेवाला । (२) दुर्जन । खल ।

दुष्टचेता-वि० [सं० दुष्टचेतस्] (१) बुरी चिंतना करनेवाला । बुरे विचार का । (२) बुरा चाहनेवाला । अहिताकांक्षी । (३) कपटी ।

लपेटता है और फिर जिधर का हाथ ऊपर होता है उधर की टाँग को बढ़ाकर मालखंभ पर सवारी बाँधता है और अपना हाथ पेट के नीचे से निकाल लेता है।

दुहना–क्रि० स० [सं० दोहन] (१) स्तन से दूध निचोड़ कर निकालना। दूध निकालना। उ०—(क) तिल सी तो गाय है छौना नौ नौ हाथ। मटकी भरि भरि दुहिये, पूँछ अठारह हाथ।—कबीर। (ख) राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुरु सेवा करवाये। सुरभी दुहत दोहनी माँगी बाँह पसारि देवाये।—सूर।

विशेष—'दूध' और 'दूधवाला पशु' दोनों इसके कर्म हो सकते हैं। जैसे, दूध दुहना, गाय दुहना।

(२) निचोड़ना। तत्व निकालना। सार खींचना। उ०—(क) पाछे पृथु को रूप हरि लीन्हें नाना रस दुहि काढ़े। तापर रचना रची विधाता बहु विधि पकवान बाढ़े।—सूर। (ख) दीप दीप के दीप की दिपति दुहिन दुहि लीन। सब ससि दामिनि मा मिलै वा भामिनि को कीन।—शृं० सत०।

मुहा०—दुह लेना=(१) निःसार कर देना। सार खींच लेना। (२) धन हर लेना। जहाँ तक हो किसी से लाभ उठाना। लूटना। उ०—बेचहि वेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं।—तुलसी।

दुहनी–संज्ञा स्त्री० [स० दोहनी] बरतन जिसमें दूध दुहा जाता है। दोहनी।

दुहरना–क्रि० स० दे० "दोहरना"।

दुहरा–वि० दे० "दोहरा"।

दुहराना–क्रि० स० दे० "दोहराना"।

दुहाई–संज्ञा स्त्री० [स० द्वि=दो+आह्वय=पुकार] (१) घोषणा। उच्च स्वर से किसी बात की सूचना जो चारों ओर पुकार। दी जाय। मुनादी।

मुहा०—(किसी की) दुहाई फिरना=(१) राजा के सिंहासन पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा होना। राजा के नाम की सूचना डंके आदि के द्वारा फिरना। उ०—बैठे राम राज-सिंहासन जग में फिरी दुहाई। निर्भय राज राम को कहियत सुर नर मुनि सुखदाई।—सूर। (२) प्रताप का डंका पिटना। प्रभुत्व की डौंडी फिरना। विजय-घोषणा होना। जय जयकार। उ०—(क) विंध, उदयगिरि, धौलागिरी। काँपी सृष्टि दुहाई फिरी।—जायसी। (ख) नगर फिरी रघुबीर दुहाई। तब प्रभु सीतहि बोलि पठाई।—तुलसी।

(२) सहायता के लिये पुकार। बचाव या रक्षा के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाने की क्रिया। सताए जाने पर किसी ऐसे प्रतापी या बड़े का नाम लेकर पुकारना जो बचा सके।

मुहा०—दुहाई देना=(संकट या आपत्ति आने पर) रक्षा के लिये पुकारना। अपने बचाव के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाना। उ०—(क) हम बचानेवाले कौन हैं, राजा दुष्यंत की दुहाई दे वही बचायेगा क्योंकि तपोवनों की रक्षा राजा के सिर है।—लक्ष्मण सिंह। (ख) किसी ने आकर दुहाई दी कि मेरी गाय चोर लिए जाता है।—शिवप्रसाद।

(३) शपथ। कसम। सौगंद। जैसे, रामदुहाई। उ०—(क) मन माला तन सुमिरनी हरि जी तिलक दियाय। दुहाई राजा राम की दूजा दूर कियाय।—कबीर। (ख) अब मन मगन हो राम दुहाई। मन वच क्रम हरि नाम हृदय धरि जो गुरुवेद बताई।—सूर। (ग) नाथ सपथ पितुचरन दुहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई।—तुलसी। (घ) आजु ते न जैहौं दधि बेचन दुहाई खाऊँ मैया की, कन्हैया उत ठाढ़ोई रहत है।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—खाना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहना] (१) गाय भैंस आदि को दुहने का काम। (२) दुहने की मजदूरी।

दुहाग–संज्ञा पु० [सं० दुर्भाग्य, प्रा० दुब्भग] (१) दुर्भाग्य। (२) सोहाग का उलटा। वैधव्य। रँडापा।

दुहागिन–संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहागी] विधवा। सुहागिन का उलटा। उ०—(क) हँसि हँसि के तन पाइया जिन पाया तिन रोय। हाँसी खेलत हरि मिलै तो नहीं दुहागिन होय।—कबीर। (ख) सेज बिछावै सुंदरी अंतर परदा होय। तन सौंपे मन दे नहीं सदा दुहागिन सोय।—कबीर।

दुहागिल–वि० [हिं० दुहाग+इल (प्रत्य०)] (१) अभागा। अनाथ। बिना मालिक का। (२) सूना। खाली। उ०—तजि के दिगीसन दुहागिल कै दीनों दिसि मेले है बदन सहैं सोक की सगर को।—गुमान।

दुहागी–वि० [स० दुर्भागिन्] [स्त्री० दुहागिन] दुर्भागी। अभागा। बदकिस्मत। उ०—सब जग दीसै एकला सेवक स्वामी दोइ। जगत दुहागी राम बिनु साधु सुहागी सोइ।—दादू।

दुहाजू–वि० पु० [सं० द्विभार्य्य] जो पहली स्त्री के मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

वि० स्त्री० जो (स्त्री) पहले पति के मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

दुहाना–क्रि० स० [हिं० दुहना का प्रे०] दुहने का काम दूसरे से कराना। दूध निकलवाना। जैसे, दूध दुहाना, गाय दुहाना। उ०—दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायो।—रसखानि।

दुहाव–संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहाना] (१) एक प्रथा जिसके अनुसार प्रति वर्ष जन्माष्टमी आदि त्योहारों को किसानों की गाय भैंस

बनाइए"। राजा को सब बातें याद तो थीं पर लोकनिंदा के भय से उन्होंने उन्हें छिपाने की चेष्टा की और शकुंतला का तिरस्कार करते हुए कहा—"रे दुष्ट! तपस्विनी! तू किसकी पत्नी है? मैंने तुझसे कोई संबंध कभी नहीं किया, चल दूर हो"। शकुंतला ने भी लज्जा छोड़कर जो जो जी में आया खूब कहा। इस पर देववाणी हुई "हे राजन्! यह पुत्र आप ही का है, इसे ग्रहण कीजिए। हम लोगों के कहने से आप इसका भरण करें और इस कारण इसका भरत नाम रखें"। देववाणी सुनकर राजा ने शकुंतला का ग्रहण किया। आगे चलकर भरत बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

इसी कथा को लेकर कालिदास ने 'अभिज्ञान-शाकुंतल' लिखा है। पर कवि ने कौशल से राजा दुष्यंत को दुष्ट नायक होने से बचाने के लिये दुर्वासा के शाप की कल्पना की है और यह दिखाया है कि उसी शाप के प्रभाव से राजा सब बातें भूल गए थे। दूसरी बात कवि ने यह की है कि राजा के अस्वीकार करने पर जिस निर्लज्जता और धृष्टता के साथ शकुंतला का बिगड़ना महाभारत में लिखा है उसको वे बचा गए हैं।

दुष्योदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक उदर-रोग जो सिंह आदि पशुओं के नख और रोएँ अथवा मल, मूत्र, आर्त्तवमिश्रित अन्न वा एक साथ मिला हुआ घी और मधु खाने तथा गंदा पानी पीने से हो जाता है। इसमें त्रिदोष के कारण रोगी दिन दिन दुबला और पीला होता जाता है। उसके शरीर में जलन होती है और कभी कभी उसे मूर्च्छा भी आती है। जब बदली होती है और दिन खराब रहता है तब यह रोग प्रायः उभरता है।

दुसराना*—क्रि० स० [हिं० दो वा दूसरा] दुहराना। उ०—वह कारज अविचारित कीजे। ताहि न फिर दुसराइ सुनीजे।—पद्माकर।

दुसरिहा*†—वि० [हिं० दूसर + हा (प्रत्य०)] (१) साथ रहनेवाला दूसरा आदमी। साथी। संगी। उ०—कह्यो कि मृत्यु लोक के माहीं। तुम्हरा कोई दुसरिहा नाहीं।—विश्राम। (२) प्रतिद्वंद्वी।

दुसह*—वि० [सं० दुःसह] जो सहा न जाय। असह्य। कठिन। उ०—जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू।—तुलसी।

दुसही†—वि० [हिं० दुःसह + ई (प्रत्य०)] (१) जो कठिनता से सह सके। (२) डाही। ईर्षालु। जैसे, असही दुसही। उ०—असही दुसही मरहु मनहि मन बैरिन बढ़हु विषाद। नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु शंकर गौरि प्रसाद।—तुलसी।

दुसाखा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + शाखा] (१) एक प्रकार का शमादान जिसमें दो कनखे निकले होते हैं। उ०—झाड़, दुसाखे, झाम, बसूला, बरम हथौरा।—सूदन। (२) डंडे के आकार की एक छोटी लकड़ी जिसके छोर पर दो कनखे फूटे होते हैं। इसमें साफी (छानने का कपड़ा) बाँधकर लोग भाँग छानते हैं।

दुसाध—संज्ञा पुं० [सं० दोषाद वा दुःसाध्य] हिंदुओं में एक नीच जाति जो सूअर पालती है।

वि० नीच। अधम। दुष्ट। पाजी। (गाली)

दुसार—संज्ञा पुं० [हिं० दो + सालना] आर पार छेद। वह छेद जो एक ओर से दूसरी ओर तक हो। उ०—(क) लागत कुटिल कटाछ सर क्यों न होय बेहाल। लगत जु हिये दुसार करि तऊ रहत नटसाल।—बिहारी। (ख) रहि न सक्यो कस करि रह्यो बस करि लीनौ मार। भेद दुसार कियौ दियौ तन दुति भेदी सार।—बिहारी। (ग) लागी लागी क्या करै लागत रही लगार। लागी तब ही जानिए निकसी जाय दुसार।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

क्रि० वि० आर पार। वार पार। एक पार से दूसरे पार तक।

दुसाल—संज्ञा पुं० [हिं० दो + सल] आर पार छेद। उ०—हाल से हवाल एक्क धावते धरन्नि पिट्ठि। लाल नैन ज्वाल झाल सी झरी दुसाल दिट्ठि।—सूदन।

दुसाला†*—संज्ञा पुं० दे० "दुशाला"।

दुसासन*—संज्ञा पुं० दे० "दुःशासन"।

दुसाहा—संज्ञा पुं० [देश०] दोफसली खेत। वह खेत जिसमें दो फसलें हों।

दुसूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + सूत] एक प्रकार की मोटी चादर जिसमें दो तागों का ताना और बाना होता है। यह पंजाब से आती है और दो वा चार तहों की होती है।

दुसेजा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + सेज] बड़ी खाट। पलँग। उ०—वह पलँग मचान दुसेजा तखत सरोटी। खरसल स्यंदन बहल बहुत गाड़ी सु नबौटी।—सूदन।

दुस्तर—वि० [सं०] (१) जिसे पार करना कठिन हो। (२) दुर्घट। विकट। कठिन।

दुस्त्यज—वि० [सं० दुस्त्याज्य] जो कठिनाई से छोड़ा जा सके। जिसका त्यागना कठिन हो। उ०—देव गुरु गिरा गौरव सुदुस्त्यज राज्य त्यक्त श्री सकल सौमित्रि भ्राता।—तुलसी।

दुस्सह—वि० दे० "दुःसह"।

दुहता—संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] [स्त्री० दुहती] बेटी का बेटा। नाती। उ०—नूर जहाँ के साथ हौदे पर उसकी दुहती भी थी।—शिवप्रसाद।

दुहत्था वि० [हिं० दो + हाथ] [स्त्री० दुहत्थी] (१) दोनों हाथों से किया हुआ। जैसे, दुहत्थी मार। (२) जिसमें दो मूठें या दस्ते हों।

दुहत्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + हाथ] मालखंभ की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी मालखंभ को दोनों हाथों से कुहनी तक

दूजा*†–वि० [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय, दुइज] दूसरा । द्वितीय ।

दूत–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दूती] (१) वह मनुष्य जो किसी विशेष कार्य के लिये अथवा कोई समाचार पहुँचाने या लाने के लिये कहीं भेजा जाय । सँदेसा ले जाने या ले आनेवाला मनुष्य । चर । बसीठ ।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ दूसरे राज्यों में संधि और विग्रह आदि का समाचार पहुँचाने या वहाँ का हाल चाल जानने के लिये दूत रखे जाते थे । अनेक ग्रंथों में योग्य दूतों के लक्षण दिए हुए हैं । उनके अनुसार दूत को यथोक्तवादी, देशभाषा का अच्छा जानकार, कार्य्यकुशल, सहनशील, परिश्रमी, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, मंत्रणाकुशल और सर्वगुण-सम्पन्न होना चाहिए ।

आजकल एक राष्ट्र के जो प्रतिनिधि दूसरे राष्ट्र में स्थायी रूप से रहते हैं वे भी दूत या राजदूत ही कहलाते हैं । (२) प्रेमी का सँदेसा प्रेमिका तक या प्रेमिका का सँदेसा प्रेमी तक पहुँचानेवाला मनुष्य ।

दूतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत । (२) वह कर्म्मचारी जो राजा की दी हुई आज्ञा का सर्वसाधारण में प्रचार करता है ।

दूतकृत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत का काम । (२) दूतक का काम ।

दूतकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] सँदेसा या खबर पहुँचाने का काम । दूत का काम । दूतत्व ।

दूतघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी । कदंबपुष्पी ।

दूतता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूतत्व । दूत का काम ।

दूतत्व–संज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम । दूतता ।

दूतपन–संज्ञा पुं० [सं० दूत + हिं० पन (प्रत्य०)] दूत का काम । दूतत्व ।

दूतर*†–वि० दे० "दुस्तर" ।

दूति–संज्ञा स्त्री० दे० "दूतिका" ।

दूतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूती ।

दूती–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेमी का सँदेसा प्रेमिका तक या प्रेमिका का सँदेसा प्रेमी तक पहुँचानेवाली स्त्री । स्त्री और पुरुष को मिलानेवाली या एक का सँदेसा दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री । कुटनी ।

विशेष—साहित्य में दूतियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा । उत्तमा दूती वह कहलाती है जो मीठी मीठी बातें कहकर अच्छी तरह समझाती हो । मध्यमा दूती उसे कहते हैं जो कुछ मधुर और कुछ कटु बातें सुनाकर अपना काम निकालना चाहती हो । केवल कटु बातें कहकर अपना काम निकालनेवाली दूती को अधमा दूती कहते हैं । सखी, नर्तकी, दासी, संन्यासिनी, धोबिन, चितेरिन, तँबोलिन, गंधिन आदि स्त्रियाँ दूती के काम के लिये उपयुक्त समझी जाती हैं ।

पर्य्या०—संचारिका । सारिका । दूतिका । कुटनी ।

दूत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूत का भाव । (२) दूत का काम ।

दूदकश–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) धुआँ निकलने का मार्ग । वह छिद्र या नल जिससे धुआँ बाहर निकल जाय । धुआँकश । चिमनी । (२) एक प्रकार का दमकला जिससे धुआँ देकर पौधों में लगे हुए कीड़े छुड़ाए जाते हैं ।

दूदला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे दुदला कहते हैं ।

दूदुह*–संज्ञा पुं० [सं० डुंडुभ] पानी का साँप । डेड़हा । (डिं०)

दूध–संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध] (१) सफेद रंग का वह प्रसिद्ध तरल पदार्थ जो स्तनपायी जीवों की मादा के स्तनों में रहता है और जिससे उनके बच्चों का बहुत दिनों तक पोषण होता है । पय । दुग्ध ।

विशेष—दूध स्वाद में कुछ मीठा होता है और इसमें एक प्रकार की विलक्षण हलकी गंध होती है । भिन्न भिन्न जातियों के प्राणियों के दूध के संयोजक अंश तो समान ही होते हैं पर उसके भाग में बहुत कुछ अंतर होता है । एक ही जाति के भिन्न भिन्न प्राणियों और कभी कभी एक ही प्राणी में भिन्न भिन्न समयों में भी दूध के भाग में बहुत कुछ अंतर होता है । दूध का ⅞ से ⅞ तक अंश जल होता है और शेष भाग चरबी, शर्करा और नमक आदि का होता है । दूध जब थोड़ी देर तक यों ही छोड़ दिया जाता है तब उस की चरबी ऊपर आ जाती है और वही परिवर्तित हो कर मलाई और मक्खन बन जाती है । दूध में जब खटाई का कुछ अंश मिल जाता है तब थोड़ी देर में वह जमकर दही बन जाता है । कभी कभी ऐसा भी होता है कि दूध में से जल और उसके संयोजक अंश अलग हो जाते हैं । इसे दूध का फटना कहते हैं । (मनुष्य जाति की) स्त्रियों के दूध से बहुत अधिक मिलता जुलता दूध गाय या भैंस का होता है, इसी लिये मनुष्य बहुधा गाय या भैंस का दूध पीते, उसका दही जमाते, मिठाइयों के लिये खोआ और छेना बनाते तथा उसमें से मथ कर मक्खन आदि निकालते हैं । कहीं कहीं बकरी और ऊँटनी आदि का भी दूध पीया जाता है । वैद्यक में भिन्न भिन्न प्राणियों के दूध के भिन्न भिन्न गुण बतलाए गए हैं । आज कल पाश्चात्य विद्वानों ने दूध का विश्लेषण करके उस के संयोजक पदार्थों के संबंध में जो कुछ निश्चय किया है उसके अनुसार १०० अंश दूध में ८६.८ अंश पानी, ४.५ अंश चीनी, ३.६ अंश मेदा (मक्खन), ४.० अंश केसिन

का दूध दुहाकर जमींदार ले लेता है। (२) वह दूध जो इस प्रथा के अनुसार किसान जमींदार को देता है।

दुहावनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहाना] वह धन जो ग्वाले को गाय दुहने के लिये दिया जाता है। दूध दुहने की मजदूरी। उ०—(क) अरु औरन के घर तें हम सों तुम दूनी दुहावनी लैवो करो।—पद्माकर। (ख) मनभावनी दैहौं दुहावनी पै यह गाय तुहीं पै दुहावनी है—ग्वाल।

दुहिता-संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] कन्या। लड़की।

दुहितृपति-संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। दामाद।

दुहिन*-संज्ञा पुं० [सं० द्रुहण] ब्रह्मा। उ०—करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह। जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुरभाइन्ह।—तुलसी।

दुहेनू†-संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहना] दूध देनेवाली गाय।

दुहेला-वि० [सं० दुर्हेला = कठिन खेल] [स्त्री० दुहेली] (१) दुःखदायी। दुःसाध्य। कठिन। उ०—(क) भक्ति दुहेली राम की नहिं कायर को काम। निस्प्रेही निरधार को आठ पहर संग्राम।—कबीर। (ख) दाइ मारग साधु का खरा दुहेला जान। जीवित मिरतक होइ चलहि रामनाम नीसान।—कबीर। (२) दुःखी। दुखिया। उ०—(क) पद्मावति निज कंत दुहेली। बिनु जल कमल सूख जनु बेली।—जायसी। (ख) भई दुहेली टेक बिहूनी। थाँभ नाइ उठ सकै न थूनी।—जायसी।

संज्ञा पुं० विकट खेल। दुःखदायक कार्य। उ०—(क) अबहिं वारि तैं प्रेम न खेला। का जानसि कस होय दुहेला।—जायसी। (ख) पहिल प्रेम है कठिन दुहेला। दोउ जग तरा प्रेम जेइ खेला।—जायसी।

दुहोतरा-संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] [स्त्री० दुहोतरी] लड़की का लड़का। कन्या का पुत्र। नाती।

* वि० [सं० द्वि, हिं० दो, दु + उत्तर] दो अधिक। दो ऊपर। उ०—ठारे सौ रु दुहोतरा अगहन मास सुजान। बैठि सजल गढ़ नौहि कै किय आखेट विधान।—सूदन।

दुह्य-वि० [सं०] [स्त्री० दुह्या] दुहने योग्य।

दुह्यु-संज्ञा पुं० [सं०] शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा के एक पुत्र का नाम। राजा ययाति जब दिग्विजय कर चुके तब उन्होंने भूमि को अपने पुत्रों में बाँटा था। उस बाँट के अनुसार दुह्यु को पश्चिम दिशा के देश मिले थे। राजा ययाति ने जब अपना बुढ़ापा देकर इनसे जवानी माँगी थी तब इन्होंने अस्वीकार कर दिया था। इस पर ययाति ने शाप दिया था कि तुम्हारी कोई प्रिय अभिलाषा पूर्ण न होगी। दे० "द्रुह्यु"

दूँगड़ा†-संज्ञा पुं० दे० "दौंगरा"।

दूँगरा†-संज्ञा पुं० दे० "दौंगरा"।

दूँदा†-संज्ञा पुं० [सं० द्वंद्व] (१) ऊधम। उपद्रव।

क्रि० प्र०—मचाना।

(२) दे० "द्वंद्व"।

दूँदना†-क्रि० अ० [हिं० दूँद] (१) उपद्रव करना। ऊधम मचाना। (२) घोर शब्द करना।

दू†-वि० दे० "दो"।

दूआ-संज्ञा पुं० [देश०] एक गहना जो कलाई पर और सब गहनों के पीछे की ओर पहना जाता है। पछेली।

संज्ञा पुं० [हिं० दो + आ (प्रत्य०)] (१) ताश या गंजीफे में वह पत्ता जिस पर दो बूटियाँ या टिप्पियाँ हों। दुक्की। (२) सोरही के खेल में, दो कौड़ियों का चित्त (और बाकी चौदह कौड़ियों का पट) पड़ना। (जुआरी)। जैसे, जिसका दूआ, उसका जुआ। (कहावत)। (३) किसी खेल विशेषतः जुए-वाले खेल में वह दाँव जिसका दो चिह्नों, बूटियों या कौड़ियों आदि से संबंध हो।

संज्ञा स्त्री० दे० "दुआ"।

दूइ†-वि० दे० "दो"।

दूइज†-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] किसी पक्ष की दूसरी तिथि। दूज। द्वितीया।

दूई†-वि० दे० "दो"।

दूक*-वि० [सं० द्वैक] दो एक। कुछ। चंद। उ०—जाम समै को पालिबो हानि समय की चूक। सदा विचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक।—तुलसी।

दूकान-संज्ञा पुं० दे० "दुकान"।

दूकानदार-संज्ञा पुं० दे० "दुकानदार"।

दूकानदारी-संज्ञा स्त्री० दे० "दुकानदारी"।

दूख†-संज्ञा पुं० दे० "दुःख"।

दूखन-संज्ञा पुं० दे० "दूषण"।

दूखना*†-क्रि० स० [सं० दूषण + ना (प्रत्य०)] दोष लगाना। ऐब लगाना।

†क्रि० अ० दे० "दुखना"।

दूखित-वि० दे० "दूषित"।

वि० दे० "दुःखित"।

दूगला†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा टोकरा या दौरा।

संज्ञा पुं० दे० "दोगला"।

दूगुना†-वि० [सं० द्विगुण] दूना। दुगुना।

दूगू-संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का बकरा जो हिमालय की तराई में होता है।

दूज-संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया, प्रा० दुइय, दुइज] किसी पक्ष की दूसरी तिथि। दुइज। द्वितीया।

मुहा०—दूज का चाँद होना = बहुत दिनों पर दिखाई पड़ना। कम दिखाई पड़ना। कम दर्शन देना।

दूधपूत-संज्ञा पुं० [हिं० दूध + पूत = पुत्र] धन और संतति। उ०—दूध पूत की छाँड़ी आस। गोधन भरता करे निरास। साँचे हित हरि सों कियो।—सूर।

दूधबहन-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + बहन] ऐसी बालिका जो किसी ऐसी स्त्री का दूध पीकर पली हो जिसका दूध पीकर कोई और बालिका या बालक भी पला हो। (जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री की बालिका को अपना दूध पिलाकर पालती है तब वह बालिका उस पहली स्त्री के लड़कों या लड़कियों की दूध-बहन कहलाती है)

दूधभाई-संज्ञा पुं० [हिं० दूध + भाई] [स्त्री० दूधबहिन] ऐसे दो बालकों में से कोई एक जो एक ही स्त्री के स्तन का दूध पीकर पले हों पर जिनमें कोई एक बालक दूसरे माता-पिता से उत्पन्न हो। (जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री के बालक को अपना दूध पिला कर पालती है, तब उन दोनों स्त्रियों के बालक परस्पर दूधभाई कहलाते हैं।

दूधमसहरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + मसहरी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

दूधमुँहा-वि० [हिं० दूध + मुँह] जो अभी तक माता का दूध पीता हो, अथवा जिसके दूध के दाँत अभी न टूटे हों। छोटा बच्चा। बालक।

दूधमुख-वि० [हिं० दूध + सं० मुख] छोटा बच्चा। बालक। दूधमुँहा। उ०—नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिय न कोहू।—तुलसी।

दूधराज-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार की बुलबुल जो भारत अफ़ग़ानिस्तान और तुर्किस्तान में पाई जाती है। भारत में यह स्थिर रूप से रहती है। इसे शाह बुलबुल भी कहते हैं। (२) एक प्रकार का साँप जिसका फन बहुत बड़ा होता है।

दूधवाला-संज्ञा पुं० [हिं० दूध + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० दूधवाली] दूध बेचनेवाला। ग्वाला।

दूधहंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हंडी] मिट्टी की वह हाँड़ी जिसमें दूध रखकर आग पर पकाते हैं। मेटिया।

दूधा-संज्ञा पुं० [हिं० दूध] (१) एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार हो जाता है और जिसका चावल वर्षों तक रह सकता है। (२) अन्न के कच्चे दाने में का रस जो दूध के रंग का होता है।

दूधाभाती-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + भात] विवाह की एक रसम जिसमें वर और कन्या दोनों अपने अपने हाथ से एक दूसरे को दूध और भात खिलाते हैं। यह रसम विवाह से चौथे दिन होती है।

दूधिया-वि० [हिं० दूध + इया (प्रत्य०)] (१) दूध-संबंधी। जिस में दूध मिला हो अथवा जो दूध से बना हो। जैसे, दूधिया भाँग। (२) दूध के रंग का, सफेद। श्वेत। (३) कच्चा होने के कारण जिसके अंदर का दूध (सार पदार्थ) अभी तक सूखा न हो। जैसे, दूधिया सिंघाड़ा।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सफेद बढ़िया चिकना और चमकीला पत्थर जिसकी गिनती रत्नों में होती है। कभी कभी इसके रंग में कुछ लाली, भूरापन या हरापन भी रहता है। इसमें रेत का भाग अधिक होता है और कुछ लोहा भी होता है। यह कई प्रकार का होता है और इसमें धूप-छाँह की सी चमक होती है। अँगूठियों में इसका नग जड़ा जाता है। (२) एक प्रकार का सफेद घटिया मुलायम पत्थर जिसकी प्यालियाँ आदि बनती हैं जिन्हें पथरी कहते हैं। (३) एक प्रकार का हलुआ-सोहन जो दूध मिलाने के कारण कुछ नरम हो जाता है।

दूधिया खाकी-संज्ञा पुं० [हिं० दूधिया + खाकी] सफेद राख का सा रंग।

दूधी†-संज्ञा स्त्री० दे० "दुद्धी"।

दून-संज्ञा स्त्री० [हिं० दूना] (१) दूने का भाव।

मुहा०—दून की लेना या हाँकना = बहुत बढ़ चढ़कर बातें करना। अपनी शक्ति के बाहर की या असंभव बातें कहना। डींग मारना। शेखी हाँकना। दून की सूझना = अपनी शक्ति के बाहर की बातें सूझना। बहुत बड़ी या असंभव बात का ध्यान में आना।

(२) जितना समय लगाकर गाना या बजाना आरंभ किया जाय आगे चलकर उसके आधे समय में गाना या बजाना। साधारण से कुछ जल्दी जल्दी गाना।

† वि० दे० "दूना"।

संज्ञा पुं० [देश०] दो पहाड़ों के बीच का मैदान। तराई। घाटी।

दूनरा*-वि० [सं० द्विनम्र] जो लचककर दोहरा हो गया हो। उ०—दंपति अधर दाबि दूनरि भई सी चापि चौवर पचौवर कै चूनरि निचोरै है।

दूनसरिसि-संज्ञा पुं० [देश०] सफेद सिरिस का पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है और जल्दी बढ़ जाता है। इसकी छाल हरापन लिए सफेद और हीर की लकड़ी भूरी चमकदार और मजबूत होती है। तौल इसकी प्रति घन फुट १४ से ३० सेर तक होता है। इसकी लकड़ी से रस पेरने का कोल्हू, मूसल, पहिए, चाय के संदूक और खेती के औजार बनाए जाते हैं। इमारत और पुलों के काम में भी यह आती है और इसका कोयला भी बनाया जाता है। इसमें से तेल बहुत निकलता है और इसके फूल बड़े, सुगंधित होते हैं। हिमालय पर्वत पर यह थोड़ी ऊँचाई तक होता है।

दूना-वि० [सं० द्विगुण] दुगुना। दोचंद। दो बार उतना ही। जैसे, यह दूनी झंझट का काम है।

और (अंडे की) सफेदी, और ०.७ अंश खनिज पदार्थ (जैसे खड़िया, फास्फरस आदि) होता है।

मुहा०—**दूध उगलना**=बच्चे का दूध पी कर कै कर देना। **दूध उछालना**=खौलते हुए दूध को ठंढा करने के लिये कड़ाही आदि में से उसे बार बार किसी छोटे बरतन में निकालना और बहुत ऊँचा हाथ करके उसमें से धार बाँधकर कढाई में दूध गिराना। दूध को ठंढा करने के लिये बार बार उसे धार बाँधकर नीचे गिराना। **दूध उतरना**=छातियों में दूध भर जाना। **दूध का दूध और पानी का पानी करना**=बिलकुल ठीक ठीक न्याय करना। पूरा पूरा न्याय करना। ऐसा न्याय करना जिसमें किसी पक्ष के साथ तनिक भी अन्याय न हो। जैसे, आपने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया, नहीं तो ये लोग लड़ते लड़ते मर जाते। उ०—हम जातहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी।—सूर। **दूध का बच्चा**=वह बच्चा जो केवल दूध के ही आधार पर रहता हो। बहुत ही छोटा और केवल दूध पीनेवाला बच्चा। **दूध का सा उबाल**=शीघ्र शांत हो जानेवाला क्रोध या मनोवेग आदि **दूध की मक्खी**=तुच्छ और तिरस्कृत पदार्थ। **दूध की मक्खी की तरह निकालना या निकाल कर फेंक देना**=किसी मनुष्य को बिलकुल तुच्छ और अनावश्यक समझकर अपने साथ या किसी कार्य्य आदि से एकदम अलग कर देना। उस तरह अलग कर देना जिस तरह दूध में पड़ी हुई मक्खी अलग की जाती है। जैसे, सब लोगों ने उनको सभा से दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया। उ०—मनसा वचन कर्मना अब हम कहत नहीं कछु राखी। सूर काढ़ि डारयो ब्रज तें ज्यों दूध माँझ ते माखी।—सूर। **मुहँ से दूध की बू आना**=अभी तक बच्चा और अनुभवहीन होना। विशेष अनुभव और ज्ञान न होना। **दूध के दाँत**=वे दाँत जो बच्चों को पहले पहल दूध पीने की अवस्था में निकलते हैं और छः सात वर्ष की अवस्था में जिनके गिर जाने पर दूसरे दांत निकलते हैं। **दूध के दाँत न टूटना**=अभी तक बच्चा होना। ज्ञान और अनुभव न होना। जैसे, अभी तक तो उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, वह क्या मेरे सामने बात करेगा। **दूध दुहना**=स्तनों को दबाकर दूध की धार निकालना। **दूध देना**=अपने स्तनों में से दूध छोड़ना। अपनी छातियों में से दूध निकालना। जैसे, उनकी भैंस आठ सेर दूध देती है। **दूध चढ़ना**=(१) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा का कम हो जाना। जैसे, इधर कई दिनों से इसकी मा का दूध चढ़ गया है। (२) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा बढ़ना। **दूध चढ़ाना**=दुहते समय गाय का अपने दूध को स्तनों में ऊपर की ओर खींच लेना जिससे दुहने वाला उसे खींच कर बाहर न निकाल सके। (प्रायः गायें भैंसें आदि अपने बछड़ों के लिये स्तनों में दूध चुरा रखती हैं, इसी को दूध चढ़ाना कहते हैं)। **छठी का दूध याद आना**=दे० "छठी" के मुहा०। **दूध छुड़ाना**=बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना। किसी को दूध छोड़ने में प्रवृत्त करना। **दूध डालना**=बच्चों का पीए हुए दूध की कै कर देना। **दूध तोड़ना**=(१) गाय आदि का दूध देना बंद या कम कर देना। (२) गरम दूध को ठंढा करने के लिये हिलाना या घँगोलना। **दूधों नहाओ पूतों फलो**=धन और संतान की वृद्धि हो। सम्पत्ति और संतान खूब बढ़े (आशीर्वाद)। **दूध पिलाना**=बालक का मुहँ स्तन के साथ लगाकर उसे दूध की धार खींचने देना। **दूध पीता बच्चा**=गोद का बच्चा। बहुत छोटा बच्चा। **दूध पीना**=स्तन को मुहँ में लगाकर उसमें से दूध की धार खींचना। स्तनपान करना। **किसी चीज का दूध पीना**=(किसी चीज का) ऐसी दशा में रहना जिसमें उसके नष्ट होने आदि का खटका न रहे। जैसे, आप घबराइए नहीं, आपके रुपए दूध पीते हैं। **दूध फटना**=खटाई आदि पड़ने के कारण दूध का जल अलग और सार भाग या छेना अलग हो जाना। **दूध बिगड़ना**। **दूध फाड़ना**=किसी क्रिया से दूध का पानी और छेना या सार भाग अलग अलग करना। **दूध बढ़ाना**=दूध छुड़ाना। बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना। उ०—दूध बढ़ाने के पीछे गंगाजी ने दोनों लड़के वालमीक जी को सौंप दिए।—सीताराम। **(स्तनों में) दूध भर आना**=बच्चे की ममता या स्नेह के कारण माता के स्तनों में दूध उतर आना। माता का प्रेम बढ़ना।

(२) अनाज के हरे बीजों का रस जो पीछे से जमकर सत्त हो जाता है।

मुहा०—**दूध पड़ना**=अनाज में रस पड़ना। अनाज का तैयारी पर आना।

(३) दूध की तरह का वह सफेद तरल पदार्थ जो अनेक प्रकार के पौधों की पत्तियों और डंठलों में रहता और उनके तोड़ने पर निकलता है। जैसे, मदार का दूध, बरगद का दूध।

दूधचढ़ी—वि० स्त्री० [हिं० दूध+चढ़ना] दूध देने में चढ़ी हुई। जिसके स्तनों में दूध पूर्व की अपेक्षा बढ़ गया हो। उ०—गैयाँ गनी न जाहिं तरुणि सब बच्छ चढ़ीं। ते चरहिं जमुन के कच्छ दूने दूधचढ़ीं।—सूर।

दूधपिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध+पिलाना] (१) दूध पिलानेवाली दाई। (२) ब्याह की एक रसम जिसमें बारात के समय वर के घोड़ी या पालकी आदि पर चढ़ने के पूर्व माता वर को दूध पिलाने की सी मुद्रा करती है। (३) वह धन या नेग जो माता को इस क्रिया के बदले में मिलता है।

दूरदर्शक यंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर की चीज़ें दिखाई देती हैं।

दूरदर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिद्ध। (२) विद्वान्। पंडित। (३) समझदार। (४) दूरबीन।

दूरदर्शिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर की बात सोचने का गुण। दूरंदेशी।

दूरदर्शी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। (२) गृध्र। गीध। वि० बहुत दूर तक की बात सोचने या समझनेवाला। जो पहले से ही भला बुरा परिणाम समझ ले। अग्रसोची। दूरंदेश।

दूरदृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्य का विचार। दूरदर्शिता। दूरंदेशी।

दूरनिरीक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन नाम का यंत्र।

दूरबा–संज्ञा पुं० दे० "दूर्वा"।

दूरबीन–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक प्रकार का यंत्र जिससे दूर की चीज़ें बहुत पास और स्पष्ट या बड़ी दिखाई देती हैं। यह यंत्र एक गोल नल के आकार का होता है जिसमें आगे और पीछे दो गोल शीशे लगे होते हैं। आगेवाले शीशे को प्रधान लेंस और पीछेवाले शीशे को उपनेत्र या चक्षुलेंस कहते हैं। प्रधान लेंस अपने सामनेवाले पदार्थ का प्रतिबिंब ग्रहण करके पीछेवाले लेंस पर फेंकता है और पीछेवाला लेंस या उपनेत्र उस प्रतिबिंब को विस्तृत करके आँखों के सामने उपस्थित करता है। आवश्यकतानुसार प्रधान लेंस आगे पीछे हटाया बढ़ाया भी जा सकता है। दर्शनीय पदार्थ की आकृति की छोटाई या बड़ाई इन्हीं दोनों लेंसों की दूरी पर निर्भर रहती है। कभी कभी दोनों आँखों से देखने के लिये एक ही तरह के दो नलों को एक साथ जोड़ कर भी दूरबीन बनाई जाती है।

विशेष—दूरबीन का आविष्कार पहले पहल हालैंड देश में सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ था। एक बार एक चश्मेवाला अपनी दूकान पर बैठा हुआ काम कर रहा था। इतने में उसकी लड़की सहसा चिल्ला उठी कि देखो वह सामने का बुर्ज कितना पास आगया। चश्मेवाले ने देखा कि उसकी लड़की दो शीशों को आगे पीछे रख कर देख रही है। जब उसने भी उसी प्रकार उन शीशों को रख कर देखा तब उसे उनका उपयोग जान पड़ा। इसके उपरांत उसने अनेक प्रकार की परीक्षाएँ कर के कुछ सिद्धांत स्थिर किए और उन्हीं के अनुसार दूरबीन का आविष्कार किया। उस के कुछ ही दिनों के उपरांत प्रसिद्ध ज्योतिषी गेलीलियो ने भी स्वतंत्र रूप से एक प्रकार की दूरबीन का आविष्कार किया था। तब से दूरबीन बनाने के काम में बराबर उन्नति होती आई है। आज कल दूरबीन का उपयोग सैर के लिये, दूर के अच्छे अच्छे दृश्य देखने, युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं की सेना आदि का पता लगाने और आकाशीय तारों आदि को देखने में होता है। आकाश के तारे आदि देखने के लिये आज कल की वेधशालाओं में जो दूरबीनें होती हैं वे बहुत ही भारी होती हैं। उनके नलों की लंबाई सात फुट तक और व्यास तीन फुट तक होता है।

(२) छोटी दूरबीन के आकार का लड़कों का एक खिलौना जिसमें एक ओर शीशा लगा रहता और जिसमें आँख लगाकर देखने से रंग-बिरंगे फूल आदि दिखाई देते हैं।

दूरमूल–संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

दूरवर्ती–वि० [सं०] दूर का। दूरस्थ। जो दूर हो।

दूरवीक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन।

दूरस्थ–वि० [सं०] जो दूर हो। दूर का। समीपस्थ का उलटा।

दूरापात–संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूर से फेंक कर मारा जाय।

दूरि*–वि० दे० "दूर"।

दूरी–संज्ञा स्त्री० [सं० दूर + ई० (प्रत्य०)] दो वस्तुओं के मध्य का स्थान। दूरत्व। अंतर। फासला। बीच। अवकाश। जैसे, ज़रा इन दोनों खंभों के बीच की दूरी तो नापो। संज्ञा स्त्री० [देश०] खाकी रंग की एक प्रकार की लवा (चिड़िया)।

दूरुढ़ा–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग।

दूरे-अमित्र–संज्ञा पुं० [सं०] उनचास मरुतों में से एक मरुत् का नाम।

दूरोह–संज्ञा पुं० [सं०] आदित्यलोक जहाँ चढ़ कर जाना असंभव है।

दूरोहण–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दूर्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा कचूर। (२) विष्ठा। पुरीष। मल।

दूर्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब नाम की घास।

विशेष—दे० "दूब"।

दूर्वाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार वसुदेव के भाई वृक की स्त्री का नाम।

दूर्वाद्यघृत–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशिष्ट प्रकार से बनाया हुआ बकरी का घी जिसमें दूब, मजीठ, एलुआ, सफेद चंदन आदि मिलाया जाता है और जिसका व्यवहार आँख, मुँह, नाक, कान आदि से रक्त जाने में होता है।

दूर्वाष्टमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी अष्टमी जिस दिन व्रत आदि करते हैं।

दूर्वासोम–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की सोम लता।

मुहा०—दिल दूना होना=मन में खूब उत्साह और उमंग होना। दिन दूना रात चौगुना होना=दे० "दिन" के मुहा०।

दूनौ*†-वि० दे० "दोनों"।

दूब-संज्ञा स्त्री० [सं० दूर्वा] एक प्रकार की बहुत प्रसिद्ध घास जो पश्चिमी पंजाब के थोड़े से बलुए भाग को छोड़ कर शेष समस्त भारत में और पहाड़ों पर आठ हजार फुट की ऊँचाई तक बहुत अधिकता से होती है। यह सब तरह की जमीनों पर और प्रायः सब ऋतुओं में होती है और बहुत जल्दी तथा सहज में फैल जाती है। इसकी बाहरी गाँठें जहाँ जमीन से छू जाती हैं वहीं जम जाती हैं और उनमें लंबी और बहुत पतली पत्तियाँ निकलने लगती हैं। गायें और घोड़े इसे बड़े प्रेम से खाते हैं और इससे उनका बल खूब बढ़ता है। गायें और भैंसें आदि इसे खाकर खूब मोटी हो जाती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं। यह सुखा कर भी बरसों तक रखी जा सकती हैं। जिस स्थान पर एक बार यह हो जाती है वहाँ से इसे बिलकुल निकाल देना बहुत ही कठिन होता है। यह साधारणतः तीन प्रकार की होती है; हरी, सफेद और गाँडर [दे० "गाँडर" (२)] वैद्यक में दूब को साधारणतः कसैली, मधुर, शीतल और पित्त, तृषा, अरुचि, दाह, मूर्च्छा, कफ, भूतबाधा और श्रम को दूर करनेवाली कहा है। हिंदू लोग इसका व्यवहार लक्ष्मी और गणेश आदि के पूजन में करते और इसे मंगल द्रव्य मानते हैं। धोबी घास। हरियाली।

दूबदू-क्रि० वि० [हिं० दो या फा० रूबरू] सामने सामने। मुकाबले में। जैसे, जब तक उनसे दूबदू बातें न हों, तब तक इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

दूबर†-वि० दे० "दूबरा"।

दूबरा*†-वि० [सं० दुर्बल] (१) दुबला। पतला। क्षीण। कृश। (२) कमजोर। निर्बल। नाजुक। (३) दुर्बल। दीन। उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्याम कुंजविहारी कर जोरि मौन ह्वै दूबरे की राँधी खीर कहौ कौने खाई है? —हरिदास।

दूबला†-वि० दे० "दुबला"।

दूबा†-संज्ञा स्त्री० दे० "दूब"।

दूबिया-वि० [हिं० दूब+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का हरा रंग। हरी घास का सा रंग।

दूबे-संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] द्विवेदी ब्राह्मण।

दूभर-वि० [सं० दुर्भर=जिसका निर्वाह कठिन हो] जिसके करने में बहुत कठिनता हो। कठिन। मुश्किल। दुःसाध्य। जैसे, इस दोपहर को तो उनके यहाँ जाना बहुत दूभर मालूम होता है।

दूमना†*-क्रि० अ० [सं० द्रुम] हिलना। डोलना।

दूमा-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़े का छोटा थैला जिसमें तिब्बत से चाय भर कर आती है। इसमें प्रायः तीन सेर तक चाय आती है।

दूमुहाँ†-वि० दे० "दुमुँहा"।

दूरंदेश-वि० [फा०] आगा पीछा सोचनेवाला। दूर तक की बात विचारनेवाला। होशियार। अग्रशोची। दूरदर्शी।

दूरंदेशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] दूर की बात को पहले ही से समझ लेना। दूरदर्शिता।

दूर-क्रि० वि० [सं०, मि० फा० दूर] देश काल या संबंध आदि के विचार से बहुत अंतर पर। बहुत फासले पर। पास या निकट का उलटा। जैसे, (क) वे टहलते टहलते बहुत दूर चले गए। (ख) आप दूर ही से रास्ता बतलाना खूब जानते हैं। (ग) अभी लड़के की शादी बहुत दूर है। (घ) हमारा उनका बहुत दूर का रिश्ता है। (ङ) दिल्लगी करते करते वे बहुत दूर तक पहुँच गए, बाप-दादे तक की गालियाँ देने लगे।

मुहा०—दूर करना=(१) अलग करना। जुदा करना। अपने पास से हटाना। (२) न रहने देना। मिटाना। जैसे, (क) कपड़े पर का धब्बा दूर कर दो। (ख) दो चार दफे आने जाने से तुम्हारा डर दूर हो जायगा। दूर क्यों जायँ या जाइए=अपरिचित या दूर का दृष्टांत न लेकर परिचित और निकटवाले का ही विचार करें। जैसे, दूर क्यों जायँ, अपने पड़ोसी की ही बात लीजिए। दूर दूर करना =पास न आने देना। अत्यंत घृणा और तिरस्कार करना। दूर भागना या रहना=बहुत घृणा या तिरस्कार के कारण बिलकुल अलग रहना। बहुत बचना। पास न जाना। जैसे, हम तो ऐसे लोगों से सदा दूर भागते (या रहते) हैं। दूर रहना=कोई संबंध न रखना। बहुत बचना। जैसे, ऐसी बातों से जरा दूर रहा करो। दूर होना=(१) हट जाना। अलग हो जाना। छूट जाना। (२) मिट जाना। नष्ट होना। न रहना। दूर पहुँचना=(१) साधन या सामर्थ्य के बाहर। शक्ति आदि के बाहर (२) दूर की बात सोचना। बहुत बारीक बात सोचना। दूर की बात=(१) बारीक बात। (२) कठिन या दुःस्साध्य बात। (३) बहुत आगे चल कर आनेवाली बात। अनुपस्थित बात। दूर की कहना=बहुत समझदारी की बात कहना। दूरदर्शिता की बात कहना।

वि० जो दूर हो। जो फासले पर हो। जैसे, दूर देश।

दूरगामी-वि० [सं०] दूर तक चलनेवाला।

दूरता-संज्ञा स्त्री० दे० "दूरत्व"।

दूरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] दूर होने का भाव। अंतर। दूरी। फासला।

दूरदर्शक-वि० [सं०] दूर तक देखनेवाला।

संज्ञा पुं० पंडित। बुद्धिमान्।

नक्षत्रों के उदयास्त का पता चलता है। यह संस्कार दो प्रकार का होता है, आयनदृक् और आयनदृक्।

दृक्काण–संज्ञा पुं० [यू० डेकानस] फलित ज्योतिष में एक राशि का तीसरा भाग जो दस अंशों का होता है।

विशेष—प्रत्येक राशि तीस अंशों की होती है। राशि को तीन भागों में विभक्त करके एक एक भाग को द्रेक्काण कहते हैं। इस प्रकार किसी एक राशि में प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीन द्रेक्काण होते हैं। उस राशि का ही अधिपति प्रथम द्रेक्काण का स्वामी होता है, उससे पाँचवीं राशि का द्वितीय द्रेक्काण का, और उससे नवीं राशि का तृतीय द्रेक्काण का। जैसे, मेष राशि का स्वामी मंगल है। अतः मेष राशि के प्रथम द्रेक्काण का स्वामी मंगल, द्वितीय द्रेक्काण का रवि (जो मेष से पाँचवीं राशि, सिंह, का स्वामी है) और तृतीय द्रेक्काण का बृहस्पति (जो मेष से नवीं राशि, धनु, का स्वामी है) होगा। यह द्रेक्काण फलित ज्योतिष में काम आता है। शुभग्रहों के द्रेक्काण का नाम जल और अशुभ ग्रहों के द्रेक्काण का नाम दहन है। जल द्रेक्काण में जिसका जन्म होता है उस की मृत्यु जल में होती है और दहन द्रेक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अग्नि से होती है। राशियों के अनुसार द्रेक्काणों के अनेक नाम और अनेक फल कल्पित किए गए हैं।

दृक्क्षेप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दृष्टिपात। अवलोकन। (२) दशम लग्न के नतांश की भुज ज्या। इसका काम सूर्यग्रहण के स्पष्टीकरण में पड़ता है। मध्यज्या को उदयज्या से गुणित कर गुणन फल को त्रिज्या से भाग देते हैं फिर भागफल को वर्ग करके और उसमें मध्यज्या के वर्ग को घटाने से जो शेष अंक रहता है उसका वर्गमूल निकालते हैं। यही वर्गमूल का अंक दृक्क्षेप कहलाता है।

दृक्पथ–संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का मार्ग। दृष्टि की पहुँच।

मुहा०—दृक्पथ में आना = दिखाई पड़ना।

दृक्पात–संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात। अवलोकन।

दृक्प्रसादा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलत्था। कुलत्थांजन।

दृक्शक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाशरूप चैतन्य। (२) आत्मा।

दृक्श्रुति–संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

दृगंचल–संज्ञा पुं० [सं०] पलक। उ०—भए विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल।—तुलसी।

दृग–संज्ञा पुं० [सं० दृग्, समस्त–दृक्] (१) आँख। उ०—जथा सुअंजन आँजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान।—तुलसी।

मुहा०—दृग डालना या देना = नजर डालना। देखना। उ०—पाई परे हुते प्रीतम त्यों कहि केशव क्योंहूँ न मैं दृग दीनी।—केशव। दृग फेरना = आँख फेरना। अप्रसन्न रहना। उ०—तुम और मैं कासों कहौं को सुनै ब्रज की वनिता दृग फेरे रहैं।—पद्माकर।

(२) देखने की शक्ति। दृष्टि। उ०—श्रवण घटहु पुनि दृग घटहु घटो सकल बलदेह। इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेह। (३) दो की संख्या।

दृगमिचाव–संज्ञा पुं० [हिं० दृग + मीचना] आँखमिचौली का खेल। उ०—मूँदे तहाँ एक अवलोके अनोखे दृग सुदृग मिचाउ नेक ख्यालनहि तै हिते।—पद्माकर।

दृग्गणित–संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का वेध कर के गणित करना।

दृग्गणितैक्य–संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों को किसी समय पर गणित से स्पष्ट करके फिर उसे वेध कर मिलाना और न्यूनता या अधिकता प्रतीत होने पर उसमें संस्कार करना जिसमें ग्रहों के वेध और स्पष्ट में आगे भेद न पड़े।

दृग्गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृष्टि की गति या पहुँच। (२) दशमलग्न की नतांश की कोटिज्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण निकालने में पड़ता है। इसकी रीति यह है कि मध्यज्या को उदयज्या से गुणित करे और गुणनफल को त्रिज्या से भाग दे। फिर भागफल का वर्ग करे और वर्गफल से त्रिज्या का वर्ग घटावे। इस प्रकार जो शेष अंक बचेगा उसका वर्गमूल दृग्गति कहलावेगा।

दृग्गोचर–वि० [सं०] जो आँख से दिखाई दे।

दृग्गोल–संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसे ऊर्ध्व स्वस्तिक और अधः स्वस्तिक में होता हुआ कल्पित करके जिधर ग्रहों का उदय होता है उधर घुमाकर उनकी स्थिति का पता चलाया जाता है। इसे दृङ्मंडल और दृग्वलय भी कहते हैं।

दृग्ज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] दृक्-मंडल या दृग्गोल के खस्वस्तिक से जो ग्रह जितना हटा रहता है उसे नतांश कहते हैं और इसी नतांश की ज्या दृग्ज्या कहलाती है।

दृग्भू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) सूर्य्य। (३) सर्प।

दृग्लंबन–संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में जब सूर्य चंद्र गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आजाते हैं पर पृष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में नहीं आते तब उन्हें पृष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में लाने के लिये जो पूर्वापर संस्कार किया जाता है उसे दृग्लंबन कहते हैं।

दृग्विष–संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसकी आँखों में विष होता है।

दृग्वृत्त–संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज।

दृङ्नति–संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में सूर्य्य चंद्र का जब दर्शांतकालीन स्पष्ट करते हैं और वे गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आजाते हैं पर पृष्ठाभिप्राय से नहीं आते, तब पृष्ठाभिप्राय

दूर्वेष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की वेदी में काम आनेवाली एक प्रकार की ईंट।

दूलन*—संज्ञा पुं० दे० "दोलन"।

दूलभ†—वि० [सं० दुर्लभ] कठिनता से प्राप्त होने योग्य। दुर्लभ।

दूलह—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह] (१) वह मनुष्य जिसका विवाह अभी हाल में हुआ हो अथवा शीघ्र ही होने को हो। दुलहा। वर। नौशा। (२) पति। स्वामी। खाविंद।

दूलिका—संज्ञा स्त्री० दे० "दूली"।

दूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पेड़।

दूल्हा—संज्ञा पुं० दे० "दूलह"।

दूवा—संज्ञा पुं० दे० "दूआ"।

दूश्य—संज्ञा पुं० [सं०] तंबू। खेमा।

दूषक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दोष लगानेवाला मनुष्य। वह जो किसी पर दोषारोपण करे। (२) वह जो दोष उत्पन्न करे। दोष उत्पन्न करनेवाला पदार्थ।

दूषण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दोष। ऐब। बुराई। अवगुण। उ०—तब हरि कह्यो हत्यो बिन दूषण हलधर भेद बताओ। वह जादू खोज तुम कीजे द्वारावति धरि आयो।—सूर। (२) दोष लगाने की क्रिया या भाव। ऐब लगाना। उ०—संदेह के अनंतर स्वपक्ष के स्थापन और प्रतिपक्ष के दूषण करने पर जो अर्थ का अवधारण होता है सो निर्णय कहलाता है।—सिद्धांतसंग्रह। (३) रावण के भाई एक राक्षस का नाम जो खर के साथ पंचवटी में सूर्पनखा की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था और जो सूर्पनखा की नाक और कान कट जाने पर पीछे रामचंद्र के हाथ से मारा गया। (४) जैनियों के सामयिक व्रत में ३२ त्याज्य बातें या अवगुण जिनमें से १२ कायिक, १० वाचिक और १० मानसिक हैं।

दूषणारि—संज्ञा पुं० [सं०] दूषण को मारनेवाले, रामचंद्र।

दूषणीय—वि० [सं०] दोष लगाने योग्य। जिसमें ऐब लगाया जा सके।

दूषन*†—संज्ञा पुं० दे० "दूषण"।

दूषना*†—क्रि० स० [सं० दूषण] दोष लगाना। कलंकित करना।

दूषि—संज्ञा स्त्री० दे० "दूषिका"।

दूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की मैल।

दूषित—वि० [सं०] जिसमें दोष हो। खराब। बुरा। दोषयुक्त।

दूषी विष—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर में रहनेवाला एक प्रकार का विष जो धातु को दूषित करता है और जिसे हीन विष भी कहते हैं।

विशेष—यदि किसी प्रकार का स्थावर, जंगम या कृत्रिम विष शरीर में प्रविष्ट हो जाने के उपरांत पूरा पूरा बाहर नहीं निकलता, उसका कुछ अंश शरीर में रह कर जीर्ण हो जाता है अथवा विष-नाशक औषधों से दबाने या नष्ट करने पर भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता, तब वह कफ से आच्छादित होकर दूषी-विष कहलाता और बरसों तक शरीर में व्याप्त रहता है। जिसके शरीर में यह विष रहता है उसका रंग पीला पड़ जाता है, मल का रंग बदल जाता है, मुँह में दुर्गंध और विरसता होती है, प्यास लगती है, मूर्छा और कै होती है और दूष्योदर के से लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जब यह विष पक्वाशय में रहता है तब मनुष्य के सिर और शरीर के बाल झड़ जाते हैं। जब इसका कोप होने लगता है तब जँभाई आती है, अंग टूटते हैं, रोएँ खड़े हो जाते हैं, शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं, हाथ पैर सूज जाते हैं तथा इसी प्रकार के और उपद्रव होते हैं।

विशेष—दे० "दोषी"।

दूष्य—वि० [सं०] (१) दोष लगाने योग्य। जिसमें दोष लगाया जा सके। (२) निंदनीय। निंदा करने योग्य। (३) तुच्छ। (४) राज्य को हानि पहुँचानेवाला (मनुष्य)।

संज्ञा पुं० (१) कपड़ा। वस्त्र। (२) तंबू। खेमा।

दूसना—क्रि० स० दे० "दूषना"।

दूसर†—वि० दे० "दूसरा"।

दूसरा—वि० [हिं० दो] (१) जो क्रम में दो के स्थान पर हो। पहले के बाद का। द्वितीय। जैसे, गली में बाएँ हाथ का दूसरा मकान उन्हीं का है। (२) जिसका प्रस्तुत विषय या व्यक्ति से संबंध न हो। अन्य। अपर। और। गैर। जैसे, हम लोग आपस में चाहे लड़ें और चाहे झगड़ें, दूसरे से मतलब ?

यौ०—दूसरी माँ = जो अपनी माँ न हो। सौतेली माँ।

दूहना—क्रि० स० दे० "दुहना"।

दूहनी—संज्ञा स्त्री० दे० "दोहनी"।

दूहा*†—संज्ञा पुं० दे० "दोहा"।

दूहिया†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चूल्हा।

दृंभू—संज्ञा पुं० दे० "दम्भू"।

दृक—संज्ञा पुं० [सं०] छिद्र। छेद।

संज्ञा पुं० [?] हीरा। उ०—निःकंपा दृक वज्र पुनि हीरा पदक जु ऐन। निष्फ सकुच तिय निरखित न भूप भवन छवि मैन।—नंददास।

दृकाण—संज्ञा पुं० दे० "द्रकाण"।

दृकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि साँप सुनने का काम भी आँख ही से लेता है।

दृक्कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह क्रिया वा संस्कार जो ग्रहों को अपने क्षितिज पर लाने के लिये किया जाता है और जिससे ग्रहों के योग, चंद्रमा की शृंगोन्नति तथा ग्रहों और

संज्ञा पु० (मुट्ठी में पकड़ कर चलाए जानेवाले) खड्गादि अस्त्र।

दृढ़मूल—संज्ञा पु० [सं०] (१) मूँज। (२) मथाना नाम की घास जो तालों में होती है। मंथानक तृण। (३) नारियल।

दृढ़रंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फिटकरी (जिससे रंग पक्का होता है)

दृढ़रोह—संज्ञा पु० [सं०] पाकर का पेड़। पकड़।

दृढ़लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पातालगरुड़ी लता। छिरेंटा।

दृढ़लोम—वि० [सं० दृढ़लोमन्] [स्त्री० दृढ़लोमी, दृढ़लोमा] जिसके रोएँ कड़े हों।

संज्ञा पुं० सूअर।

दृढ़वर्मा—संज्ञा पु० [सं० दृढ़वर्मन्] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दृढ़वल्कल—वि० [सं०] जिसकी छाल कड़ी हो।

संज्ञा पु० (१) सुपारी का पेड़। (२) लकुच का पेड़।

दृढ़वल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंबष्ठा।

दृढ़बीज—वि० [सं०] जिसके बीज कड़े हों।

संज्ञा पुं० (१) चकवड़। (२) बेर। (३) बबूल।

दृढ़वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

दृढ़व्य—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम।

दृढ़व्रत—वि० [सं०] स्थिरसंकल्प। अपने संकल्प पर जमा रहनेवाला।

दृढ़संध—वि० [सं०] संकल्प का पक्का। प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला।

संज्ञा पु० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दृढ़सूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा नाम की लता। मुर्रा।

दृढ़स्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिंडखजूर। (२) खिरनी का पेड़।

दृढ़स्यु—संज्ञा पुं० [सं०] लोपामुद्रा के गर्भ से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि के एक पुत्र का नाम।

दृढ़हस्त—वि० [सं०] जो हथियार आदि पकड़ने में पक्का हो।

संज्ञा पु० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दृढ़ांग—वि० [सं०] जिसके अंग दृढ़ हों। कड़े बदन का। हृष्ट पुष्ट।

संज्ञा पुं० जीरक। जीरा।

दृढ़ाई*—संज्ञा स्त्री० [हिं० दृढ़] दृढ़ता। मजबूती।

दृढ़ाना—क्रि० स० [सं० दृढ़+ना (प्रत्य०)] दृढ़ करना। पक्का करना। मजबूत करना। उ०—(क) बड़े घात जो जनक दृढ़ाई। देह धरे विदेह कहाई।—कबीर। (ख) चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भक्ति दृढ़ाई।—तुलसी। (ग) बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत विहँग-कुलह जनु खोली।—तुलसी। (घ) पाछे विविध ज्ञान जननी को दीन्हों कपिल दृढ़ाय। सांख्य योग अरु ज्ञान भक्ति दृढ़ बरनी विविध बनाइ।—सूर।

क्रि० अ० (१) कड़ा होना। पुष्ट या मजबूत होना। (२) स्थिर या पक्का होना।

दृढ़ायु—संज्ञा पु० [सं०] (१) तृतीय मनु सावर्णि के एक पुत्र का नाम। (२) उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न ऐल राजा का एक पुत्र। (महाभारत)

दृढ़ायुध—वि० [सं०] अस्त्र ग्रहण करने में पक्का। युद्ध में तत्पर।

संज्ञा पु० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दृढ़ाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धुंधुमार के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

दृत—वि० [सं०] [स्त्री० दृता] सम्मानित। आदृत।

दृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरा।

दृति—संज्ञा पु० [सं०] (१) चमड़ा। खाल। (२) खाल का बना हुआ पात्र। (३) मशक। (४) मेघ। (५) एक प्रकार की मछली। (६) गलकंबल। गाय, बैल आदि के गले के नीचे झूलता हुआ चमड़ा।

दृतिधारक—संज्ञा पु० [सं०] एक पौधा जिसे बंग देश में आकनपाता कहते हैं।

पर्य्या०—आनंदी। वामन।

दृतिशातवतोरयन—संज्ञा पु० [सं०] एक अयनसत्र का नाम। एक प्रकार का यज्ञ।

दृतिहरि—संज्ञा पुं० [सं०] (खाल या चमड़ा चुरानेवाला) कुत्ता।

दृतिहार—संज्ञा पुं० [सं०] मशक ढोनेवाला। भिश्ती।

दृन्भू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) सूर्य्य। (३) राजा। (४) साँप। (५) पहिया।

दृप्त—वि० [सं०] (१) गर्वित। इतराया हुआ। (२) हर्ष से फूला हुआ।

दृप्र—वि० [सं०] (१) प्रचंड। प्रबल। (२) इतराया हुआ। घमंडी।

दृब्ध—वि० [सं०] (१) ग्रंथित। गुथा हुआ। (२) भीत। डरा हुआ।

दृश्—संज्ञा पु० [सं०] [वि० दृश्य] (१) देखना। दर्शन। (२) प्रदर्शक। दिखानेवाला। (३) देखनेवाला।

संज्ञा स्त्री० (१) दृष्टि। (२) आँख। (३) दो की संख्या (४) ज्ञान।

दृशद्—संज्ञा स्त्री० दे० "दृषद्"।

दृशद्वती—संज्ञा स्त्री० दे० "दृषद्वती"।

दृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख।

दृशाकांक्ष्य—संज्ञा पु० [सं०] कमल।

दृशान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश। आभा। (२) विरोचन

से इन्हें एक सूत्र में लाने के लिये जो याम्योत्तर संस्कार किया जाता है उसे दृङ्नति कहते हैं।

दृङ्मंडल–संज्ञा पुं० [सं०] दृग्गोल।

दृढ़–वि० [सं०] (१) जो शिथिल या ढीला न हो। जो खूब कस कर बँधा या मिला हो। प्रगाढ़। जैसे, दृढ़ बंधन या गाँठ, दृढ़ आलिंगन। (२) जो जल्दी न टूटे फूटे। पुष्ट। मजबूत। कड़ा। ठोस। जैसे, इस फल का छिलका बहुत दृढ़ होता है। (३) बलवान्। बलिष्ठ। हृष्ट पुष्ट। जैसे, दृढ़ अंग। (४) जो जल्दी दूर, नष्ट या विचलित न हो सके। स्थायी। जैसे, दृढ़ आसन, दृढ़ संकल्प, दृढ़ सिद्धांत। (५) जो अन्यथा न हो सके। निश्चित। ध्रुव। पक्का। जैसे, किसी बात का दृढ़ होना। (६) निडर। ढीठ। कड़े दिल का। जैसे, दृढ़ मनुष्य।

संज्ञा पुं० (१) लोहा। (२) विष्णु। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) संगीत में सात रूपकों में से एक। (५) तेरहवें मनु रुचि के एक पुत्र का नाम। (६) गणित में वह अंक जो दूसरे अंक से पूरा पूरा विभाजित न हो सके जैसे, १, ३, ५, ७, ११, १७ इत्यादि।

दृढ़कंटक–संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्रफलक वृक्ष।

दृढ़कर्मा–वि० [सं० दृढ़कर्मन्] जो अपने कर्म में दृढ़ रहे। धैर्य्य और स्थिरता के साथ काम करनेवाला।

दृढ़कांड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस (२) रोहिस घास।

दृढ़कांडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] छिरेंटा। पातालगरुड़ी लता।

दृढ़कारी–वि० [सं० दृढ़कारिन्] (१) दृढ़ता से काम करनेवाला। (२) मजबूत करनेवाला।

दृढ़क्षत्र–संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दृढ़क्षुरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्वजा तृण। सागे वागे।

दृढ़गात्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] राब। खाँड़।

दृढ़ग्रंथि–वि० [सं०] जिसकी गाँठें मजबूत हों।

संज्ञा पुं० बाँस।

दृढ़च्छद–संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घरोहिष तृण। बड़ी रोहिस।

दृढ़च्युत–संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि के एक पुत्र का नाम जो परपुरंजय नामक राजा की कन्या के गर्भ से उत्पन्न था। (भागवत)

दृढ़तरु–संज्ञा पुं० [सं०] धव का पेड़।

दृढ़ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृढ़ होने का भाव। दृढ़त्व। (२) मजबूती। (३) स्थिरता। (४) पक्कापन।

दृढ़तृण–संज्ञा पुं० [सं०] मूँज नाम की घास।

दृढ़तृणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्वजा तृण।

दृढ़त्व–संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता।

दृढ़त्वच्–वि० [सं०] जिसकी त्वचा या छाल कड़ी हो।

संज्ञा पुं० ज्वार का पेड़।

दृढ़दंशक–संज्ञा पुं० [सं०] एक जलजंतु।

दृढ़दस्यु–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो दृढ़च्युत के पुत्र थे।

दृढ़धन–संज्ञा पुं० [सं०] शाक्यमुनि। बुद्ध।

दृढ़धन्वा–संज्ञा पुं० [सं० दृढ़धन्वन्] (१) जो धनुष चलाने में दृढ़ हो या जिसका धनुष दृढ़ हो। (२) एक पुरुवंशीय राजा का नाम।

दृढ़धन्वी–वि० [सं० दृढ़धन्विन्] जिसका धनुष दृढ़ हो।

दृढ़नाम–संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार अस्त्रों की एक रोक जिसे विश्वामित्र जी ने रामचंद्र को बतलाया था।

दृढ़निश्चय–वि [सं०] जो अपनी बात पर जमा रहे। जो अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। स्थिरप्रतिज्ञ।

दृढ़नीर–संज्ञा पुं० [सं०] नारियल, जिसके भीतर का जल धीरे धीरे जम कर कड़ा हो जाता है।

दृढ़नेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र जी के चार पुत्रों में से एक। (वाल्मीकि)

दृढ़नेमि–वि० [सं०] जिसकी नेमि दृढ़ हो। जिसकी धुरी मज़बूत हो।

संज्ञा पुं० अजमीढ़वंशीय एक राजा का नाम जो सत्यधृति के पुत्र थे।

दृढ़पत्र–वि० [सं०] जिसके पत्ते दृढ़ हों।

संज्ञा पुं० बाँस।

दृढ़पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्वजा तृण। सागे वागे।

दृढ़पद–संज्ञा पुं० [सं०] तेईस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें १३ और १० मात्राओं पर विश्राम होता है और अंत में दो गुरु होते हैं। इसे उपमान भी कहते हैं। उ०—बाहु बंध करमूल में आछावलि राजै। लपटे फणि श्रीखंड की लतिका जनु राजै। कुंड जु रच्यौ सुहोम को, जनु नाभि सुहाई। रोमावलि मिस धूम की रेखा चलि आई।

दृढ़पाद–वि० [सं०] दृढ़निश्चय। विचार का पक्का।

दृढ़पादा–संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिक्ता।

दृढ़पादी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी। भूआँवला।

दृढ़प्रतिज्ञ–वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा से न टले।

दृढ़प्ररोह–संज्ञा पुं० [सं०] वट। बरगद।

दृढ़फल–संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

दृढ़बंधिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल नाम की लता। श्यामा और सारिवा भी इसी को कहते हैं।

दृढ़भूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] योगशास्त्र में मन को एकाग्र और स्थिर करने का एक अभ्यास जिसमें मन अविचल हो जाता है, इधर उधर नहीं जाता। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर वैराग्य की प्राप्ति निकट हो जाती है।

दृढ़मुष्टि–वि० [सं०] (१) जो मुट्ठी में जोर से पकड़े। कस कर पकड़नेवाला (२) कृपण। कंजूस।

और अँधेरा होना) होते हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने इन दोनों में बहुत कम अंतर माना है और कहा है कि इन्हें एक ही अलंकार के दो भेद समझना चाहिए। (३) शास्त्र। (४) मरण।

दृष्टार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शब्द जिसका अर्थ स्पष्ट हो। (२) वह शब्द जिसके श्रवण से श्रोता को किसी ऐसे अर्थ का बोध हो जिसका प्रत्यक्ष इस संसार में होता हो। जैसे, 'गंगा' इस शब्द के श्रवण मात्र से मनुष्य को एक ऐसी नदी का बोध होता है जो भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह अदृष्टार्थ शब्द का विरोधी है। जैसे स्वर्ग, नरक, क्षीरसमुद्र, अप्सरा, देवता आदि जो संसार के किसी स्थल में प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

दृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देखने की वृत्ति या शक्ति। आँख की ज्योति।

मुहा०—दृष्टि मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना।

(२) देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। देखने के लिये आँख की पुतली के किसी वस्तु की सीध में होने की स्थिति। टक। दृक्पात। अवलोकन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—पड़ना।—डालना।

मुहा०—दृष्टि करना = दृष्टि डालना। ताकना। दृष्टि चलाना = नजर डालना। दृष्टि चूकना = नजर का इधर उधर हो जाना। आँख का दूसरी ओर फिर जाना। जैसे, जहाँ दृष्टि चूकी कि गिरे। दृष्टि देना = नजर डालना। ताकना। दृष्टि फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। आँख का दूसरी ओर हो जाना। (२) कृपादृष्टि न रहना। हित का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दृष्टि फेंकना = नजर डालना। ताकना। दृष्टि फेरना = नजर हटा लेना। दूसरी ओर देखना। (किसी ओर) ताकते न रहना। (किसी से) दृष्टि फेरना = (किसी पर) कृपादृष्टि न रखना। अप्रसन्न या विरक्त होना। खिन्न होना। (किसी की) दृष्टि बचाना = (१) (किसी के) सामने होने से बचना। आँख के सामने न आना। जान बूझ कर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। दृष्टि बाँधना = इस प्रकार जादू करना कि आँखों को और का और दिखाई दे। इंद्रजाल फैलाना। दृष्टि लगाना = (१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बाँधना। (२) (किसी ओर देखने के लिये) आँख ले जाना। ताकना। उ०—देखी दुवार ताज का लेखा। उलटि दृष्टि जो लाव सो देखा।—जायसी।

(३) आँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के अस्तित्व, रूप, रंग आदि का बोध होता है। दृक्पथ।

मुहा०—दृष्टि आना = दे० "दृष्टि में आना"। दृष्टि पड़ना = दिखाई पड़ना। उ०—(क) दृष्टि परी इंद्रासन पुरी।—जायसी। (ख) मेरी दृष्टि परे जा दिन तें ज्ञान मान हरि लीनो री।—सूर। दृष्टि पर चढ़ना = (१) देखने में बहुत अच्छा लगना। निगाह में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। पसंद आना। भाना। जैसे, वह छड़ी तुम्हारी दृष्टि पर चढ़ी हुई है। (२) आँखों में खटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जैसे, तुम उसकी दृष्टि पर चढ़े हुए हो, वह तुम्हें बिना मारे न छोड़ेगा। दृष्टि बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के आसरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। उ०—पवन स्वास तासों मन लाई। जोवै मारग दृष्टि बिछाई।—जायसी। (२) किसी के आने पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम प्रकट करना। दृष्टि में आना = देख में आना। दिखाई पड़ना। उ०—जग कोउ दृष्टि न आवै पूरन होय सकाम।—जायसी। दृष्टि में पड़ना = दिखाई पड़ना। (क्व०)। दृष्टि से उतरना या गिरना = श्रद्धा विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना। (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना। तुच्छ या बुरा ठहरना।

(४) देखने में प्रवृत्त नेत्र। देखने के लिये खुली हुई आँख।

मुहा०—दृष्टि उठाना = ताकने के लिये आँख ऊपर करना। दृष्टि गड़ाना या जमाना = दृष्टि स्थिर करना। एकटक ताकना। (किसी से) दृष्टि चुराना = (लज्जा या भय से) सामने न आना। जान बूझ कर दिखाई न पड़ना। नजर बचाना। (किसी से) दृष्टि जुड़ना = आँख मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। (किसी से) दृष्टि जोड़ना = आँख मिलाना। देखा देखी करना। साक्षात्कार करना। दृष्टि फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना। आँख में चकाचौंध होना। दृष्टि भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देखना। जी भर कर ताकना। उ०—करै मन नँदनंदन ध्यान। सेइ चरन सरोज सीतल तजु विषय रसपान। सूर श्री गोपाल की छवि दृष्टि भरि लखि लेहि। प्रानपति की निरखि सोभा पलक परन न देहि।—सूर। दृष्टि मारना = (१) आँख से इशारा करना। पलक गिराकर संकेत करना। (२) आँख के इशारे से रोकना। दृष्टि मिलना = दे० "दृष्टि जुड़ना"। दृष्टि में समाना = नजर में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में बना रहना। भाना। उ०—वह सभों की दृष्टि में समा गया।—वेनिस का बाँका। दृष्टि मिलाना = दे० "दृष्टि जोड़ना"। उ०—बिहरत हिया करहु पिय टेका। दृष्टि मया करि मिलवहु एका।—जायसी। (किसी वस्तु पर) दृष्टि रखना = किसी वस्तु को देखते रहना जिसमें वह इधर उधर न हो जाय। निगरानी रखना। (किसी पर) दृष्टि रखना = देख रेख में रखना।

नामक दैत्य का नाम। (३) आचार्य्य। गुरु। (४) प्रजा का पालन करनेवाला राजा। (५) ब्राह्मण।

दृशि–संज्ञा स्त्री० दे० "दृशी"।

दृशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृष्टि। (२) प्रकाश। (३) चेतन पुरुष। (४) शास्त्र।

दृशोपम–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कमल। पुंडरीक।

दृश्य–वि० [सं०] (१) जो देखने में आ सके। जिसे देख सकें। दृग्गोचर। जैसे, दृश्य पदार्थ। (२) जो देखने योग्य हो। दर्शनीय। (३) मनोरम। सुंदर (४) जानने योग्य। ज्ञेय।

संज्ञा पुं० (१) देखने की वस्तु। वह पदार्थ जो आँखों के सामने हो। नेत्रों का विषय। जैसे, वन और पर्वत का दृश्य। (२) तमाशा। वह मनोरंजक व्यापार जो आँखों के सामने हो। (३) वह काव्य जो अभिनय द्वारा दर्शकों को दिखाया जाय। नाटक। (४) गणित में ज्ञात वा दी हुई संख्या।

दृश्यमान–वि० [सं०] (१) जो दिखाई पड़ रहा हो। (२) चमकीला। सुंदर।

दृषत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिला। पर्वत की चट्टान। (२) सिल। पट्टी। (३) पत्थर।

दृषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "दृषत्"।

दृषद्वती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है। इसे आजकल घग्घर और राखी कहते हैं। यह थानेश्वर से १३ मील दक्षिण है। महाभारत में यह कुरुक्षेत्र के अंतर्गत मानी गई है। मनुस्मृति में इसे ब्रह्मावर्त्त की सीमा पर लिखा है। (२) विश्वामित्र की एक पत्नी का नाम।

वि० [सं०] पथरीली।

दृषद्वान्–वि० [सं० दृषद्वत्] [स्त्री० दृषद्वती] पाषाणयुक्त। शिलामय। पथरीला।

दृष्ट–वि० [सं०] (१) देखा हुआ। (२) जाना हुआ। ज्ञात। प्रकट। (३) लौकिक और गोचर। प्रत्यक्ष।

विशेष—पातंजल दर्शन में दो प्रकार के विषय 'दृष्ट' बतलाए गए हैं अर्थात् स्त्री, अन्न, पान आदि लौकिक विषय जिन्हें इंद्रियाँ भोगती हैं और आनुश्रविक विषय जो वेदप्रतिपादित स्वर्ग आदि से संबंध रखते हैं। इन दोनों प्रकार के विषयों से एक साथ निस्पृह हो जाने से वशीकार नामक वैराग्य उत्पन्न होता है।

संज्ञा पुं० (१) दर्शन। (२) साक्षात्कार। (३) सांख्य में तीन प्रकार के प्रमाणों में से एक। प्रत्यक्ष प्रमाण।

दृष्टकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहेली। (२) कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्दों के वाचकार्थ से न समझा जा सके बल्कि प्रसंग वा रूढ़ अर्थों से जाना जाय। उ०—हरिसुत पावक प्रगट भयो री। मारुतसुत भ्राता पितु प्रोहित ता प्रतिपालन छाँड़ि गयो री। हरसुत वाहन ता रिपु भोजन सों लागत अँग अनल भयो री। मृगमद स्वाद मोद नहिं भावत दधिसुत भानु समान भयो री। वारिधसुतपति क्रोध कियो सखि मेटि दकार सकार लयो री। सूरदास प्रभु सिंधुसुता बिनु कोपि समर कर चाप लयो री।—सूर।

दृष्टमान*–वि० [सं० दृश्यमान] प्रकट। व्यक्त। उ०—(क) दृष्टमान नास सब होई। साक्षी व्यापक नसै न सोई।—सूर। (ख) दृष्टमान सब बिनसै अदृष्ट लखै न कोइ। दीन कोइ गाहक मिलै बहुतै सुख सो होइ।—कबीर।

दृष्टवत्–वि० [सं०] (१) प्रत्यक्ष के समान। (२) लौकिक। सांसारिक।

दृष्टवाद–संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जो केवल प्रत्यक्ष ही को मानता है।

दृष्टांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अज्ञात वस्तुओं या व्यापारों का धर्म्म आदि बतलाते हुए समझाने के लिये समान धर्मवाली किसी ऐसी वस्तु या व्यापार का कथन जो सबको विदित हो। उदाहरण। मिसाल। उ०—(क) बहुत से पत्ते गोल होते हैं, जैसे, कमल के। (ख) जब मनुष्य एक बार पतित हो जाता है तब वह बराबर पतित ही होता जाता है। जैसे पत्थर का गोला जब पहाड़ पर से लुढ़कता है तब बराबर गिरता ही जाता है।

इस दूसरे वाक्य में पत्थर के गोले के दृष्टांत द्वारा मनुष्य के पतित होने की दशा समझाई गई है।

विशेष—न्याय के सोलह पदार्थों में से दृष्टांत भी एक है। न्याय के अनुसार जिस पदार्थ के संबंध में लौकिक (साधारण) जनों और परीक्षकों (तार्किकों) का एकमत हो उसे दृष्टांत कहते हैं। ऐसी प्रत्यक्ष बात जिसे सब जानते या मानते हों दृष्टांत है। "जहाँ धूआँ होता है वहाँ आग होती है" इस बात को कहकर किसी ने कहा "जैसे रसोई घर में" तो यह दृष्टांत हुआ। न्याय के अवयवों में उदाहरण के लिये इसकी कल्पना होती है अर्थात् जिस दृष्टांत का व्यवहार तर्क में होता है उसे उदाहरण कहते हैं।

(२) एक अर्थालंकार जिसमें एक ओर तो उपमेय और उसके साधारण धर्म्म का वर्णन और दूसरी ओर बिंबप्रतिबिंब भाव से उपमान और उसके साधारण धर्म का वर्णन होता है। उ०—दुसह दुराज प्रजानि को क्यों न करै अति दंद। अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रविचंद।—बिहारी। यहाँ उपमेय 'दुराज' में अधिक द्वंद्व या अंधेर का होना और उसी के अनुसार उपमान रविचंद मिलन में अधिक अँधेरे का होना वर्णित है। प्रतिवस्तूपमा से इस अलंकार में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में शब्दभेद से एक ही धर्म का कथन होता है पर इसमें धर्म्म भिन्न भिन्न (जैसे, द्वंद्व होना,

सघन बन देखियत कुंजन में सुनियत गुंजन अलीन की।—देव। (२) स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द।

देउ‡–संज्ञा पुं० दे० "देव"।

देउर‡–संज्ञा पुं० दे० "देवर"।

देउरानी‡–संज्ञा स्त्री० दे० "देवरानी"।

देख–संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखने की क्रिया या भाव। अवलोकन। जैसे, देख रेख, देख भाल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकेले कम होता है, समस्त पदों में होता है।

मुहा०—देख में = आँख के सामने। समक्ष।

देखन*‡–संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] (१) देखने की क्रिया या भाव। (२) देखने का ढंग।

देखनहारा‡*–संज्ञा पुं० [हिं० देखना + हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० देखनहारी] देखनेवाला। उ०—सखि, सब कौतुक देखनहारे।—तुलसी।

देखना–क्रि० स० [सं० दृश्, दृश्यते, प्रा० देक्खइ] (१) किसी वस्तु के अस्तित्व वा उसके रूप, रंग आदि का ज्ञान नेत्रों द्वारा प्राप्त करना। अवलोकन करना।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—देखना भालना = निरीक्षण करना। जाँच करना।

मुहा०—देखना सुनना = जानकारी प्राप्त करना। जानना बूझना। पता लगाना। जैसे, बिना देखे सुने उसके विषय में कोई क्या कह सकता है? देखने में = (१) बाह्य लक्षणों के अनुसार। बाहरी चेष्टाओं से। साधारण व्यवहार में। जैसे, देखने में तो वह बहुत सीधा है पर बड़ी बड़ी चालें चलता है। (२) रूप रंग में। वर्ण, आकृति आदि में। जैसे, यह पेड़ देखने में बड़ा सुंदर है। किसी के देखते = रहते हुए। समक्ष। सामने। उपस्थिति में। मौजूद रहते। जैसे, (१) उसके देखते तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। (२) मेरे देखते क्या कोई चीज ले जा सकता है? देखते देखते = (१) आँखों के सामने। (२) तुरंत। फौरन। चटपट। जैसे, देखते देखते वह घड़ी उड़ा ले गया। देखते रह जाना = हक्का बक्का रह जाना। भकसक जाना। चकित हो जाना। ऐसी स्थिति में हो जाना जिसमें कुछ करते धरते न बने। किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना। जैसे, वह एकबारगी आकर उसे मारने लगा, मैं देखता रह गया। देखना चाहिए, देखा चाहिए, देखो या देखिए = (क्या होगा) मालूम नहीं। (आगे की बात) कौन जाने? कह नहीं सकते (कि ऐसा होगा या नहीं)। जैसे, आने के लिये तो उन्होंने कहा है, देखिए, आते हैं या नहीं। (हम) देख लेंगे = उपाय करेंगे। प्रतिकार करेंगे। जो कुछ करना होगा करेंगे। जैसे, उन्हें जो जी में आवे करने दो, हम देख लेंगे। देखा जायगा = (१) फिर विचार किया जायगा। (२) पीछे जो कुछ करना होगा किया जायगा। जैसे, इस समय तो इन्हें टालो, फिर देखा जायगा। देखो = (१) ध्यान दो। विचारो। सोचो। जैसे, देखो, इसी रुपए के लिये लोग कितना कष्ट उठाते हैं। (२) सावधान रहो। ख्याल रखो। खबरदार। जैसे, देखो फिर कभी ऐसा न करना। (३) (पुकारने का शब्द) सुनो। इधर आओ।

(२) जाँच करना। दशा या स्थिति जानने के लिये निरीक्षण करना। मुआयना करना। जैसे, कल इंस्पेक्टर साहब स्कूल देखने आवेंगे। (३) ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना। पता लगाना। जैसे, तुम अपने संदूक में तो देखो, शायद उसी में हो। (४) परीक्षा करना। आजमाना। अनुभव करना। परखना। जैसे, (क) इस औषध का गुण देख लें, तो कहें। (ख) सबको देख लिया है, उस समय किसी ने मेरा साथ न दिया। (५) किसी वस्तु पर ध्यान रखना जिसमें वह बिगड़ने या इधर उधर न होने पावे। निगरानी रखना। ताकते रहना। जैसे, मेरा सामान भी देखते रहना, मैं थोड़ा पानी पी आऊँ। (६) समझना। सोचना। विचारना। जैसे, भलाई बुराई देख कर काम करना चाहिए। (७) अनुभव करना। भोगना। जैसे, (क) उसने अपने जीवन में बहुत दुःख देखा। (ख) इन्होंने अच्छे दिन देखे हैं। उ०—एक यहाँ दुख देखत केशव होत वहाँ सुरलोक विहारी।—केशव। (८) पढ़ना। बाँचना। जैसे, इन्होंने बहुत ग्रंथ देखे हैं। (९) त्रुटि आदि जानने या दूर करने के लिये अवलोकन करना। परीक्षा करना। जाँचना। गुण दोष का पता लगाना। जैसे, (क) देखो तो इस अँगूठी का सोना कैसा है। (ख) मेरे इस लेख को देख जाओ। (१०) ठीक करना। संशोधित करना। शोधना। जैसे, प्रूफ देखना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

देखनि–संज्ञा स्त्री० दे० "देखन"।

देखभाल–संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + भालना] (१) जाँच पड़ताल। निरीक्षण। निगरानी। (२) दर्शन। देखा देखी। साक्षात्कार।

देखराना*†–क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

देखरावना*†–क्रि० स० दे० "दिखलाना"।

देख रेख–संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + सं० प्रेक्षण] देख भाल। निरीक्षण। निगरानी। जैसे, उनकी देख रेख में यह काम हो रहा है।

क्रि० प्र०—रखना।

देखाऊ–वि० [हिं० देखना] (१) जो केवल देखने के लिये हो। जो केवल ऊपर से देखने में भड़कीला या सुंदर हो, काम का न हो। झूठी तड़क भड़कवाला। जैसे, देखाऊ चीजें।

चौकसी में रखना। दशा का निरीक्षण करते रहना। जैसे, इस लड़के पर भी दृष्टि रखना, इधर उधर खेलने न पावे। दृष्टि लगना=नजर का पड़ना। दृष्टिपात होना। (२) देखा देखी होने से प्रेम होना। प्रीति होना। दृष्टि लगाना=(१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बाँधना। उ०—भूलि चकोर दृष्टि जो लावा। मेघ घटा महँ चंद दिखावा।—जायसी। (२) (किसी ओर देखने के लिये) आँख ले जाना। ताकना। (३) प्रेम करना। प्रीति करना। (४) नजर लगाना। बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना। (किसी से) दृष्टि लड़ना=(१) (किसी की) आँख के सामने आँख होना। घूरी घूरी होना। देखा देखी होना (२) प्रेम होना (किसी से) दृष्टि लड़ाना=आँख के सामने आँख किए रहना। घूरना। खूब ताकना। देर तक आँख से आँख मिलाना। (५) परख। पहचान। तमीज़। अटकल। अंदाज। (६) कृपा दृष्टि। हित का ध्यान। मिहरबानी की नजर। जैसे, आज कल आपकी वह दृष्टि मेरे ऊपर नहीं है। उ०—(क) तपै धीज जस धरती सूख विरह के धाम। कब सो दृष्टि करि बरसै तन तरुवर होइ जाम।—जायसी। (ख) बिरवा लाइ न सूखन दीजै। पावै पानि दृष्टि सो कीजै।—जायसी। (७) आशा की दृष्टि। आसरे में लगी हुई टकटकी। आस। उम्मीद। (८) ध्यान। विचार। अनुमान। जैसे, मेरी दृष्टि में तो ऐसा करना अनुचित है। (९) उद्देश्य। अभिप्राय। नीयत। जैसे, कुछ बुरी दृष्टि से मैंने ऐसा नहीं किया।

दृष्टिकूट—संज्ञा पुं० दे० "दृष्टकूट"।

दृष्टिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्शक। (२) स्थल पद्म।

दृष्टिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात।

दृष्टिगत—वि० [सं०] जो दिखाई पड़ा हो। जो देखने में आया हो।

क्रि० ०—होना।

संज्ञा पुं० (१) नेत्र का विषय। (२) आँख का एक रोग।

दृष्टिगोचर—वि० [सं०] नेत्रेंद्रिय द्वारा जिसका बोध हो। जो देखने में आ सके।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिधृक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।

दृष्टिनिपात—संज्ञा पुं० दे० "दृष्टिपात"।

दृष्टिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का फैलाव। नजर की पहुँच।

मुहा०—दृष्टिपथ में आना=दिखाई पड़ना।

दृष्टिपात—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि डालने की क्रिया या भाव। ताकने या देखने की क्रिया। अवलोकन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिपूत—वि० [सं०] (१) जो देखने में शुद्ध हो। जो देखने में शुद्ध जान पड़े। (२) जिसके देखने से आँखें पवित्र हों।

दृष्टिफल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक राशि में स्थित ग्रह के दूसरी राशि में स्थित ग्रह पर दृष्टि करने से जो फल होता है उसे दृष्टिफल कहते हैं। विशेष—दे० "दृष्टिस्थान"।

दृष्टिबंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह क्रिया जिससे देखनेवालों की दृष्टि में भ्रम हो जाय। दीठबंदी। इंद्रजाल। माया। जादू। (२) चालाकी। हाथ की सफाई। हस्तलाघव। उ०—रावो दृष्टिबंध कहिह खेला। सभा माँझ चेटक अस मेला।—जायसी।

दृष्टिबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] खद्योत। जुगनू।

दृष्टिमान्—वि० [सं० दृष्टिमत्] [स्त्री० दृष्टिमती] जिसे दृष्टि हो। दीठवाला। आँखवाला।

दृष्टिरोध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दृष्टि की रोक। नजर पहुँचने में रुकावट। (२) आड़। ओट। व्यवधान।

दृष्टिवंत—वि० [सं० दृष्टि+वंत (प्रत्य०)] (१) दृष्टिवाला। (२) ज्ञानी। ज्ञानवान्। जानकार उ०—ना वह मिला न बिहरा ऐस रहा भरपूर। दृष्टवंत कहँ नियरे अंध मूरुखहिँ दूर।—जायसी।

दृष्टिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह सिद्धांत जिसमें दृष्टि वा प्रत्यक्ष प्रमाण ही की प्रधानता हो। (२) जैनियों के बारह अंगों में से एक जिनकी रचना गणधर लोग तीर्थकरों के उपदेशों को लेकर करते हैं। ये द्वादशांग जैन धर्म्म के मूल ग्रंथ हैं। ग्यारह अंग तो मिलते हैं पर यह दृष्टिवाद नहीं मिलता। जैनाचार्य्य सकलकीर्ति रचित तत्त्वार्थसार-दीपक में इसका जो उल्लेख मिलता है उससे पाया जाता है कि इसमें चंद्र सूर्य्य आदि की गति, आयु आदि, प्राणापान चिकित्सा, मंत्र तंत्र तथा अनेक प्रकार के विषय सम्मिलित हैं।

दृष्टिविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दृष्टिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडली में वह स्थान जिसपर किसी दूसरे स्थान में स्थित ग्रह की दृष्टि पड़ती हो।

विशेष—ग्रहों की दृष्टि का साधारण नियम यह है कि जिस स्थान में ग्रह हो उससे तीसरे और दसवें स्थानों को वह एक चरण से, नवें और पाँचवें को दो चरणों से, चौथे और आठवें को तीन चरणों से और सातवें को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

देँवका—संज्ञा पुं० दे० "दीमक"।

दे—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] देवी। स्त्रियों के लिये एक आदर-सूचक शब्द। उ०—यह छवि सूरदास सदा रहै बानी। नँदनंदन राजा राधिका दे रानी।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० देव] बंगाली कायस्थों का एक भेद।

देई—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] (१) देवी। उ०—देव देई सुंदर

या आवश्यक से अधिक समय। जैसे, (क) देर हो रही है, चलो। (ख) इस काम में देर मत करो।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

(२) समय। वक्त। जैसे, तुम कितनी देर में आओगे।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग तभी होता है जब उसके पहले कोई परिमाणवाचक विशेषण होता है, जैसे, कितनी देर, बहुत देर।

देरा‡*—संज्ञा पुं० दे० "डेरा"।

देरी‡—संज्ञा स्त्री० दे० "देर"।

देवँक—संज्ञा स्त्री० दे० "दीमक"।

देव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवी] (१) स्वर्ग में रहने या क्रीड़ा करनेवाला अमर प्राणी। दिव्य-शरीर-धारी। देवता। सुर। (२) पूज्य व्यक्ति। (३) तेजोमय व्यक्ति। (४) ब्राह्मणों की एक उपाधि। (५) बड़ों के लिये एक आदर-सूचक शब्द या संबोधन। (६) राजा के लिये आदरसूचक शब्द या संबोधन। (७) मेघ। बादल। (८) पारा। (९) देवदार। (१०) देवर। (११) ज्ञानेंद्रिय। (१२) ऋत्विक्।

संज्ञा पुं० [फा०] दैत्य। राक्षस। दानव।

देवअंशी—वि० [सं० देव+अंशिन्] जो देवता के अंश से उत्पन्न हो। जो किसी देवता का अवतार हो।

देवऋण—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लिये कर्त्तव्य। यज्ञादि।

देवऋषि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लोक में रहनेवाले नारद आदि ऋषि।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) एक यदुवंशी राजा जो देवकी के पिता अर्थात् श्रीकृष्णचंद्र के नाना थे। इन्हें चार पुत्र और सात कन्याएँ थीं। सातो कन्याओं का विवाह इन्होंने वसुदेव के साथ कर दिया था। उग्रसेन इनके बड़े भाई थे। (३) युधिष्ठिर के एक पुत्र का नाम।

देवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पुत्री। देवी।

देवकपास—संज्ञा स्त्री० [देश०] नरमा। मनवा। रामकपास।

देवकर्दम—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य जो चंदन, अगर, कपूर और केसर को एक में मिलाने से बनता है।

देवकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म, जैसे, यज्ञ, बलिवैश्वदेव इत्यादि।

देवकाँड़र—संज्ञा स्त्री० [सं० देव+काँड़] एक बहुत छोटा पौधा जिसकी पत्तियों और डंठलों में राई की सी झाल होती है। यह ऊँचे करारोंवाली बड़ी नदियों के किनारे होता है। गंगा के तट पर बहुत मिलता है। इसकी पत्तियाँ कटावदार और फाँकों में विभक्त होती हैं। यह पौधा उभरी हुई गिलटी बैठाने की अच्छी दवा है। अचार भी इसका पड़ता है। इसे लटपुरिया भी कहते हैं।

देवकार्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म। होम, पूजा आदि।

देवकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवदार।

देवकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो मेघराग की भार्य्या मानी जाती है। ललिता मालती गौरी नाट देवकिरी तथा। मेघरागस्य रागिण्यो भवन्तीमाः सुमध्यमाः। (संगीत दामोदर)

देवकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता।

विशेष—जब वसुदेव के साथ इनका विवाह हुआ तब नारद ने आकर मथुरा के राजा कंस से कहा कि मथुरा में तुम्हारी जो चचेरी बहिन देवकी है उसके आठवें गर्भ से एक ऐसा बालक उत्पन्न होगा जो तुम्हारा वध करेगा। कंस ने एक एक करके देवकी के छ बच्चों को मार डाला। जब सातवाँ शिशु गर्भ में आया तब योगमाया ने अपनी शक्ति से उस शिशु को देवकी के गर्भ से आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में कर दिया। आठवें गर्भ के समय देवकी पर कड़ा पहरा बैठाया गया। आठवें महीने में भादों बदी अष्टमी की रात को देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। उसी रात को यशोदा को एक कन्या उत्पन्न हुई। वसुदेव रातोरात देवकी के शिशु श्रीकृष्ण को यशोदा को दे आए और यशोदा की कन्या को लाकर उन्होंने देवकी के पास सुला दिया। कंस ने उस कन्या को पत्थर पर पटका। कहते हैं कन्या जो योगमाया थी उसके हाथ से छूट कर आकाशमार्ग से उड़ कर विंध्य पर्वत पर आई। इधर कृष्ण यशोदा के यहाँ बड़े हुए। दे० "कृष्ण"।

देवकीनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

देवकीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद में भी घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख है।

देवकीमातृ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (जिनकी माता देवकी हैं)।

देवकीय—वि० [सं०] देवता संबंधी। देवता का।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राकृतिक जलाशय। आपसे आप बना हुआ पानी का गड्ढा या ताल। (२) वह जलाशय जो किसी देवता के निकट या नाम पर होने के कारण पवित्र माना जाता है।

देवकुरंबा—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा गूमा। गोमा।

देवकुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के ९ खंडों में से एक खंड जो सुमेरु और निषध के बीच माना गया है। (जैन-हरिवंश)।

देवकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का देवमंदिर जिसका द्वार अत्यंत छोटा हो।

देखाऊ सामान। (२) जो ऊपर से दिखाने के लिये हो वास्तविक न हो। बनावटी। जैसे, देखाऊ प्रेम।

देखा देखी-संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] आँखों से देखने की दशा या भाव। दर्शन। साक्षात्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

क्रि० वि० दूसरों को करते देखकर। जो दूसरे करें उसके अनुसार। दूसरों के अनुकरण पर। जैसे, (क) देखा देखी पाप, देखा देखी पुण्य। (ख) उसकी देखा देखी तुम भी ऐसा करने लगे।

विशेष—यह वास्तव में संज्ञा शब्द है जिसके आगे 'से' विभक्ति लुप्त है अतः लिंग ज्यों का त्यों रहता है।

देखाना * †-क्रि० स० दे० "दिखाना"।

देखाभाली-संज्ञा स्त्री० दे० "देखभाल"।

देखाव-संज्ञा पुं० [हिं० देखना] (१) दृष्टि की सीमा। नजर की पहुँच।

मुहा०—देखाव में = नजर के सामने। समक्ष।

(२) रूप रंग दिखाने की क्रिया या भाव। बनाव। (३) ठाट बाट। तड़क भड़क।

देखावट-संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखाना] (१) रूप रंग दिखाने की क्रिया या भाव। बनाव। (२) ठाट बाट। तड़क भड़क।

देखावना-क्रि० स० दे० "दिखाना"।

देखौआ-वि० दे० "देखाऊ"।

देग-संज्ञा पुं० [फा०] चौड़े मुहँ और चौड़े पेटे का बड़ा बरतन जिसमें खाना पकाया जाता है। तँबिया।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाज पक्षी।

देगचा-संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० अल्प० देगची] छोटा देग।

देगची-संज्ञा स्त्री० [फा० देगचा] छोटा देगचा।

देदीप्यमान-वि० [सं०] अत्यंत प्रकाशयुक्त। चमकता हुआ। दमकता हुआ।

देन-संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] (१) देने की क्रिया या भाव। दान। (२) दी हुई चीज़। प्रदत्त वस्तु। जैसे, यह तो ईश्वर की देन है।

देनदार-संज्ञा पुं० [हिं० देना + फा० दार] ऋणी। कर्जदार।

देनदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० देन + फा० दारी] ऋणी होने की अवस्था।

देन लेन-संज्ञा पुं० [हिं० देना + लेना] ब्याज पर रुपया उधार देने का व्यापार। महाजनी का व्यवसाय।

देनहार*†-वि० दे० "देनहारा"।

देनहारा*†-वि० [हिं० देना + हारा (प्रत्य०)] देनेवाला।

देना-क्रि० स० [सं० दान] (१) किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर उसपर दूसरे का स्वत्व स्थापित करना। दूसरे के अधिकार में करना। प्रदान करना। जैसे, (क) उसने अपना मकान एक ब्राह्मण को दे दिया। (ख) जो दे उसका भला, जो न दे उसका भला।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

(२) अपने पास से अलग करके दूसरे के पास करना। सौंपना। हवाले करना। जैसे, इसे हमें दे दो हम रखे रहें, जब काम पड़े ले लेना। (३) हाथ पर या पास रखना। थमाना। जैसे, (क) छड़ी उसे दे दो और छाता तुम ले लो, तब चलो। (ख) जरा यह चिट्ठी इन्हें तो दे दो, वे पढ़कर देख लें। (४) रखना, लगाना या डालना। स्थापित, प्रयुक्त वा मिश्रित करना। जैसे, (क) सिर पर टोपी देना। (ख) छाता देना। (ग) जोड़ में पच्चड़ देना। (घ) तरकारी में चीनी देना। (ङ) यहाँ से वहाँ तक लकीर देना। उ०—वंक विकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत।—बिहारी। (५) मारना। प्रहार करना। जैसे, थप्पड़ देना, चाँटा देना, पेट में कटारी देना।

मुहा०—दे मारना = पटक देना। पकड़ कर जमीन पर गिरा देना (किसी व्यक्ति को)।

(६) अनुभव कराना। भोगाना। जैसे, कष्ट देना, दुःख देना, सुख देना, आराम देना। (७) उत्पन्न करना। निकालना। जैसे, (क) यह गाय कितना दूध देती है ? (ख) इस बकरी ने दो बच्चे दिए हैं। (८) बंद करना। भिड़ाना। जैसे, किवाड़ देना, बोतल में डाट देना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः सब सकर्मक क्रियाओं के साथ संयो० क्रि० के रूप में होता है जैसे, कर देना, मार देना, गिरा देना, दे देना, बना देना, बिगाड़ देना, निकाल देना इत्यादि। बहुत सी क्रियाओं में तो इसे लगाने से यह भाव निकलता है कि वे क्रियाएँ दूसरे के लिये, हैं जैसे, (१) मेरा या उनका यह काम कर दो। (२) मेरी घड़ी बना दो। (क) जो क्रियाएँ केवल कर्त्ता ही के लिये होती हैं दूसरे के लिये नहीं उनके साथ 'लेना' का प्रयोग होता है, जैसे, खा लेना, पी लेना। एक ही क्रिया केवल कर्त्ता के लिये भी हो सकती है और दूसरे के लिये भी। जैसे, (१) अपना काम कर लो, मेरा काम कर दो। (२) अपनी घड़ी बना लो, मेरी घड़ी बना दो। स० क्रि० के अतिरिक्त कुछ अ० क्रि० के साथ भी संयो० क्रि० के रूप में "देना" का प्रयोग होता है, जैसे, चल देना, रो देना, हँस देना, इत्यादि।

संज्ञा पुं० ऋण जिसे चुकाना हो। कर्ज। उधार लिया हुआ रुपया। जैसे, तुम अपना सब देना चुकता कर दो।

देमान‡*-संज्ञा पुं० [फा० दीवान] मंत्री। अमात्य।

देय-वि० [सं०] देने योग्य। दान योग्य। दातव्य।

देर-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अतिकाल। विलंब। नियमित, उचित

मार डाला। इस प्रकार यादवराज्य की समाप्ति हुई। मुहम्मद तोगलक ने जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि ले आने की सनक चढ़ी थी तब उसने देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा था।

देवगिरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो सोमेश्वर के मत से वसंत राग की, भरत के मत से हिंदोल राग के पुत्र नागध्वनि की, संगीतदर्पण के मत से नटकल्याण की और हनुमत के मत से मालकोश राग की भार्य्या मानी जाती है। यह हेमंत ऋतु में दिन के चौथे पहर से लेकर आधी रात तक गाई जाती है। किसी के मत से यह रागिनी संकर है और शुद्ध पूर्वी और सारंग के मेल से, और किसी के मत से सरस्वती, मालश्री और गांधारी के मेल से बनी है। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

देवगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के गुरु। बृहस्पति। (२) देवताओं के गुरु अर्थात् पिता। कश्यप।

देवगुही-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

देवगृह-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का घर। देवालय।

देवघन-संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो बगीचों में लगाया जाता है।

देवचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] गवामयन यज्ञ के एक अभिप्लव का नाम।

देवचाली-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताल के छ भेदों में से एक। (संगीतदामोदर)

देवचिकित्सक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्विनीकुमार। (२) दो की संख्या।

देवच्छंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार जो किसी के मत से १०० या १०८ लड़ियों का और किसी के मत से ८१ लड़ियों का होता है।

देवज-वि० [सं०] देवता से उत्पन्न। देवसंभूत।

संज्ञा पुं० (१) सामभेद। (२) सूर्य्यवंशीय संयम राजा के एक पुत्र का नाम।

देवजग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण। रोहिस घास।

देवजन-संज्ञा पुं० [सं०] उपदेव। गंधर्व।

देवजनविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधर्वविद्या।

देवजुष्ट-वि० [सं०] देवता को चढ़ा हुआ।

देवट-संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पी। कारीगर।

देवठान-संज्ञा पुं० [सं० देवोत्थान] (१) विष्णु भगवान का सो कर उठना। (२) कार्त्तिकशुक्ला एकादशी। इस दिन विष्णु भगवान सो कर उठते हैं, इससे इसका माहात्म्य बहुत माना जाता है।

देवडोंगरी-संज्ञा पुं० [सं० देव + देश० डोंगरी] देवदाली लता। बंदाल।

देवढ़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "ड्योढ़ी"।

देवतरु-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वृक्ष।

विशेष—स्वर्ग के वृक्ष पाँच माने जाते हैं—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन।

देवतर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं के नाम ले ले कर पानी देने की क्रिया।

देवता-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाला अमर प्राणी।

विशेष—वेदों में देवता शब्द से कई प्रकार के भाव लिए गए हैं। साधारणतः वेदमंत्रों के जितने विषय हैं वे देवता कहलाते हैं। सिल, लोढ़े, मूसल, ओखली, नदी, पहाड़ इत्यादि से लेकर घोड़े, मेढक मनुष्य (नाराशंस), इंद्र, वरुण, आदित्य इत्यादि तक वेदमंत्रों के देवता हैं। कात्यायन ने अनुक्रमणिका में मंत्र के वाच्य विषय को ही उसका देवता कहा है। निरुक्तकार यास्क ने 'देवता' शब्द को दान, दीपन, और द्युस्थानगत होने से निकाला है। देवता के संबंध में प्राचीनों के चार मत पाए जाते हैं—ऐतिहासिक, याज्ञिक, नैरुक्तिक और आध्यात्मिक। ऐतिहासिकों के मत से प्रत्येक मंत्र भिन्न भिन्न घटनाओं या पदार्थों को लेकर बना है। याज्ञिक लोग मंत्र ही को देवता मानते हैं जैसा कि जैमिनि ने मीमांसा में स्पष्ट किया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार देवताओं का कोई रूप, विग्रह आदि नहीं, वे मंत्रात्मक हैं। याज्ञिकों ने देवताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—सोमप और असोमप। अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार ये ३३ सोमप देवता कहलाते हैं। एकादश प्रयाजा, एकादश अनुयाजा और एकादश उपयाजा ये असोमप देवता कहलाते हैं। सोमपायी देवता सोम से संतुष्ट हो जाते हैं और असोमपायी यज्ञ-पशु से तुष्ट होते हैं। नैरुक्त लोग स्थान के अनुसार देवता लेते हैं और तीन ही देवता मानते हैं, अर्थात् पृथिवी का अग्नि, अंतरिक्ष का इंद्र वा वायु और द्युस्थान (आकाश) का सूर्य्य। बाकी देवता या तो इन्हीं तीनों के अंतर्भूत हैं अथवा होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता आदि के कर्मभेद के लिये इन्हीं तीनों के अलग अलग नाम हैं। ऋग्वेद में कुछ ऐसे मंत्र भी हैं जिनमें भिन्न भिन्न देवताओं को एक ही के अनेक नाम कहा है, जैसे, "बुद्धिमान् लोग इंद्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं"". इनके एक होने पर भी इन्हें बहुत बतलाते हैं" (ऋग्वेद १। १६४। ४६)। ये ही मंत्र आध्यात्मिक पक्ष या वेदांत के मूल बीज हैं। उपनिषदों में इन्हीं के अनुसार एक ब्रह्म की भावना की गई है।

प्रकृति के बीच जो वस्तुएँ प्रकाशमान, ध्यान देने योग्य और उपकारी देख पड़ीं उनकी स्तुति या वर्णन ऋषियों ने मंत्रों

देवकुल्या–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंगा नदी। (२) मरीचि और पूर्णिमा की कन्या।

देवकुसुम–संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

देवकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुवेर के आठ पुत्रों में से एक जो शिवपूजन के लिये सूँघकर कमल ले गया था जिसके कारण वह कंस का भाई हुआ और श्रीकृष्णचंद्र के द्वारा मारा गया। (२) एक पवित्र आश्रम जो वसिष्ठ के आश्रम के निकट था। (महाभारत)

देवकेसर–संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग। एक प्रकार का पुन्नाग।

देवखात–संज्ञा पुं० [सं०] अकृत्रिम जलाशय। ऐसा ताल या गड्ढा जो आपसे आप बन गया हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि नदी, देवखात, तड़ाग, सरोवर, गर्भ और प्रस्रवण में नित्य स्नान करना चाहिए।

देवगंग–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटी नदी का नाम जो आसाम में है। इसे वहाँ दिवंग कहते हैं।

देवगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

देवगढ़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

देवगण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का वर्ग। देवताओं का अलग अलग समूह।

विशेष—वैदिक देवताओं के गण हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य। इनमें इंद्र और प्रजापति मिला देने से ३३ देवता होते हैं (शतपथ ब्राह्मण)। पीछे से इन गणों के अतिरिक्त ये गण और माने गए—३० तुषित, १० विश्वेदेवा, १२ साध्य, ६४ आभास्वर, ४९ मरुत्, २२० महाराजिक।

(२) फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक समूह जिसके अंतर्गत अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण हैं। (३) किसी देवता का अनुचर।

देवगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरने के उपरांत उत्तम गति। स्वर्गलाभ। उ०—श्री रघुनाथ धनुष कर लीनो लागत वाण देवगति पाई।—सूर। (२) मरने पर देवयोनि की प्राप्ति।

देवगन–संज्ञा पुं० दे० "देवगण"।

देवगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो देवता के वीर्य्य से उत्पन्न हो, जैसे, कर्ण, जो सूर्य्य से उत्पन्न हुए थे।

देवगांधार–संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें ऋषभ और धैवत कोमल लगते हैं। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ग म प ध नि स रे।

देवगांधारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो श्रीराग की भार्य्या मानी जाती है। यह शिशिर ऋतु में तीसरे पहर से लेकर आधी रात तक गाई जाती है।

देवगायक–संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

देवगायन–संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

देवगिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी, संस्कृत।

देवगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रैवतक पर्वत जो गुजरात में है। गिरनार। (२) दक्षिण का एक प्राचीन नगर जो आज कल दौलताबाद कहलाता है और निजाम राज्य के अंतर्गत है। यह यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा। प्रसिद्ध कलचुरि वंश का जब अधःपतन हुआ तब इसके आस पास का सारा प्रदेश द्वारसमुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया। कई शिलालेखों में जो इन यादव राजाओं की वंशावली मिली है वह इस प्रकार है—

सिंघन (१ ला)
|
मल्लूगि
|
भिल्लम (शक ११०९—१११३)
|
जैतूगि (१ ला) वा जैत्रपाल, जैत्रसिंह (शक १११३—११३१)
|
सिंघन (२रा) वा त्रिभुवनमल्ल (शक ११३१—११६९)
|
जैतूगि (२रा) वा चैत्रपाल
|
कृष्ण वा कन्हार (शक ११६९—११८२) — महादेव (११८२—११९३)
|
रामचंद्र वा रामदेव (११९३—१२११)

द्वितीय सिंघन के समय में ही देवगिरि यादवों की राजधानी प्रसिद्ध हुआ। महादेव की सभा में वोपदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे। कृष्ण के पुत्र रामचंद्र रामदेव बड़े प्रतापी हुए। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। शक १२१६ में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर अकस्मात् चढ़ाई कर दी। राजा जहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक लड़े पर अंत में दुर्ग के भीतर सामग्री घट आने से उन्होंने आत्मसमर्पण किया। शक १२२८ में रामचंद्र ने कर देना अस्वीकार किया। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बैठ चुका था। उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफूर को दक्षिण भेजा। राजा हार गए और दिल्ली भेजे गए। अलाउद्दीन ने सम्मानपूर्वक उन्हें फिर देवगिरि भेज दिया। इधर मलिक काफूर दक्षिण के और राज्यों में लूट-पाट करने लगा। कुछ दिन बीतने पर राजा रामचंद्र का जामाता हरिपाल मुसलमानों को दक्षिण से भगा कर देवगिरि के सिंहासन पर बैठा। छ वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप के साथ राज्य किया अंत में शक १२४० में दिल्ली के बादशाह ने उसपर चढ़ाई की और कपटयुक्ति से उसको परास्त करके

मन बहुत चिढ़ता था। यशोधरा से पहले यही विवाह करना चाहता था। जब यशोधरा ने बुद्ध को स्वीकार किया तब यह और भी जला और बदला लेने की ताक में रहने लगा। गौतम के बुद्धत्व प्राप्त करने पर भी इसने द्वेष न छोड़ा। अवदानशतक में लिखा है कि जिस समय बुद्ध जेतवन आराम में ठहरे थे देवदत्त ने उन्हें मारने के लिये बहुत से घातक भेजे थे। पीछे से यह बुद्ध के संघ में मिल गया था और अनेक प्रकार के उपाय बुद्ध और संघ को हानि पहुँचाने के किया करता था। कौशांबी में आनंद और सारिपुत्र मौद्गलायन की प्रधानता से कुढ़ कर यह संघ छोड़ राजगृह चला गया और वहाँ अजातशत्रु को मिला कर इसने बुद्ध को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाए, उन पर मत्त हाथी छुड़वाया, पत्थर लुढ़कवाया। अन्त में जब वह कुष्ट रोग आदि से पीड़ित और जीवन से निराश हुआ तब बुद्ध से क्षमा माँगने के लिये चला। बुद्ध ने उसे आता सुन कर कहा "वह मेरे पास नहीं आ सकता"। संयोगवश वह आने के पहले तालाब में नहाने घुसा और वहीं कीचड़ में फँस कर मर गया।

देवदर्शन–संज्ञा पु०[सं०] (१) देवता का दर्शन। (२) एक ऋषि का नाम।

देवदानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी तोरई।

देवदार–संज्ञा पु० [सं० देवदारु] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर ६००० फुट से ८००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है। देवदार के पेड़ अस्सी गज तक सीधे ऊँचे चले जाते हैं और पश्चिमी हिमालय पर कुमाऊँ से लेकर काश्मीर तक पाए जाते हैं। देवदार की अनेक जातियाँ संसार के अनेक स्थानों में पाई जाती हैं। हिमालयवाले देवदार के अतिरिक्त एशियाई कोचक (तुर्की का एक भाग) तथा लुबनान और साइप्रस टापू के देवदार प्रसिद्ध हैं। हिमालय पर के देवदार की डालियाँ सीधी और कुछ नीचे की ओर झुकी होती हैं, पत्तियाँ महीन महीन होती हैं। डालियों के सहित सारे पेड़ का घेरा ऊपर की ओर बराबर कम अर्थात् गावदुम होता जाता है जिससे देखने में यह सरो के आकार का जान पड़ता है। देवदार के पेड़ डेढ़ डेढ़ दो दो सौ वर्ष तक के पुराने पाए जाते हैं। ये जितने ही पुराने होते हैं उतने ही विशाल होते हैं। बहुत पुराने पेड़ों के धड़ या तने का घेरा १२–१२ हाथ तक का पाया गया है। इसके तने पर प्रति वर्ष एक मंडल या छल्ला पड़ता है, इसलिये इन छल्लों को गिन कर पेड़ की अवस्था बताई जा सकती है। इसकी लकड़ी कड़ी, सुंदर, हलकी, सुगंधित और सफेदी लिए बादामी रंग की होती है और मज़बूती के लिये प्रसिद्ध है। इसमें घुन कीड़े कुछ नहीं लगते। यह इमारतों में लगती है और अनेक प्रकार के सामान बनाने के काम में आती है। काश्मीर में बहुत से ऐसे मकान हैं जिनमें चार चार सौ बरस की देवदार की धरनें आदि लगी हैं और अभी ज्यों की त्यों हैं। काश्मीर में देवदार की लकड़ी पर नक्काशी बहुत अच्छी होती है। काँगड़े में इसे घिस कर चंदन के स्थान पर लगाते हैं। इससे एक प्रकार का अलकतरा और तारपीन की तरह का तेल भी निकलता है, जो चौपायों के घाव पर लगाया जाता है। देवदार को दियार, केलू और कहीं कहीं केलोन भी कहते हैं।

पर्य्या०–शक्रपादप। पारिभद्रक। भद्रदारु। दुकिलिम। पीतुदारु। दारु। पूतिकाष्ठ। सुरदारु। स्निग्धदारु। दारुक। अमरदारु। शांभव। भूतहारि। भवदारु। भद्रवत्। इंद्रदारु। देवकाष्ठ।

देवदारु–संज्ञा पु० [सं०] देवदार।

देवदार्वादि–संज्ञा पु० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक क्वाथ जिसे प्रसूता स्त्री को पिलाने से ज्वर, दाह, सिर की पीड़ा, अतीसार, मूर्च्छा आदि उपद्रव शांत हो जाते हैं।

विशेष—इस काढ़े में ये वस्तुएँ बराबर बराबर पड़ती हैं— देवदार, वच, कुड़, पिप्पली, सोंठ, चिरायता, कायफल, मोथा, कुटकी, धनिया, हड़, गजपिप्पली, जवासा, गोखरू, भटकटैया (कंटकारि), गुलंचकंद, काकड़ासींगी और स्याह जीरा। काढ़ा तैयार हो जाने पर उसमें हींग और नमक डाल देना चाहिए।

देवदालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल वृक्ष।

देवदाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता जो देखने में तुरई की बेल से मिलती जुलती होती है। पत्तियाँ भी तुरई की पत्तियों के समान पर उनसे छोटी होती हैं और कोनों पर नुकीली नहीं होतीं। फूल पीले, लाल और सफेद तीन रंग के होते हैं। फल ककोड़े (खेखसे) की तरह के काँटेदार होते हैं। इस लता को घघरबेल और बंदाल भी कहते हैं। वैद्यक में यह कडुई, तीक्ष्ण, वमनकारक, विरेचक, विषनाशक, क्षयरोगनाशक, तथा ज्वर, खाँसी, अरुचि, हिचकी, कृमि, चूहे के विष इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्य्या०–जीमूतक। कंटफला। गरागरी। वेणी। सदा। कोशफला। कटुफला। घोरा। कर्दभ। विषहा। ककोंटी। सारमूषिका। आखुविषहा। वृत्तकोषा। घोषा। विषघ्नी। दाली। लोमशपत्रिका। सुरंगिका।

देवदासी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या। (२) मंदिरों की दासी या नर्तकी।

विशेष—ये जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के प्रायः सब मंदिरों में नाचती गाती हैं और वेश्यावृत्ति करती हैं। इनके माता पिता बचपन ही में इन्हें मंदिर को दान कर देते हैं जहाँ इसाद लोग इन्हें नाचना गाना सिखाते हैं। मदरास के चिंगलपट ज़िले के कोरियों (कपड़ा बुननेवालों) में यह रीति

द्वारा किया। जिन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ आदि होते थे उनकी कुछ विशेष स्थिति हुई। उनसे लोग धनधान्य, युद्ध में जय, शत्रुओं का नाश आदि चाहते थे। क्रमशः 'देवता' शब्द से ऐसी ही अगोचर सत्ताओं का भाव समझा जाने लगा और धीरे धीरे पौराणिक काल में रुचि के अनुसार और भी अनेक देवताओं की कल्पना की गई। ऋग्वेद में जिन देवताओं के नाम आए हैं उनमें से कुछ ये हैं—

अग्नि, वायु, इंद्र, मित्र, वरुण, अश्विद्वय, विश्वेदेवा, मरुद्‌गण, ऋतुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, सूर्य्य, विष्णु, पृश्नि, यम, पर्जन्य, अर्य्यमा, पूषा, रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, उशना, त्रित, त्रैतन, अहिर्बुध्न, अज, एकपाद, ऋभुक्षा, गरुत्मान् इत्यादि। कुछ देवियों के नाम भी आए हैं—जैसे सरस्वती, सुनृता, इला, इंद्राणी, होत्रा, पृथिवी, उषा, आत्री, रोदसी, राका, सिनीवाली इत्यादि।

ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं जो शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार गिनाए गए हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, तथा इंद्र और प्रजापति। ऋग्वेद में एक स्थान पर देवताओं की संख्या ३३३९ कही गई है (३। ९। ९)। शतपथ ब्राह्मण और सांख्यायन श्रौतसूत्र में भी यह संख्या दी हुई है। इस पर सायण कहते हैं कि देवता ३३ ही हैं, ३३३९ नाम महिमा-प्रकाशक हैं। देवता मनुष्यों से भिन्न अमर प्राणी माने जाते थे इसका उल्लेख ऋग्वेद में स्पष्ट है—"हे असुर वरुण! देवता हों या मर्त्य (मनुष्य) हों तुम सब के राजा हो।" (ऋक् २। २७। १०)

पीछे पौराणिक काल में जिसका थोड़ा बहुत सूत्रपात शुक और सूत के समय में हो चुका था, वेद के ३३ देवताओं से ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। इंद्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति इत्यादि वैदिक देवताओं के रूप रंग, कुटुंब आदि की भी कल्पना की गई। द्युस्थान के वैदिक देवता विष्णु (जो १२ आदित्यों में थे) आगे चल कर चतुर्भुज, शंखचक्रगदापद्मधारी, लक्ष्मी के पति हो गए। वैदिक रुद्र जटी, त्रिशूलधारी, पार्वती के पति, गणेश और स्कंद के पिता हो गए, वैदिक प्रजापति वेद के वक्ता, चार मुहँवाले ब्रह्मा हो गए। देवताओं की भावना और उपासना में यह भेद महाभारत के समय से ही कुछ कुछ पड़ने लगा। कृष्ण के समय तक वैदिक इंद्र की पूजा होती थी जो पीछे बंद हो गई, यद्यपि इंद्र देवताओं के राजा और स्वर्ग के स्वामी बने रहे। आज कल हिंदुओं में उपासना के लिये पाँच देवता मुख्य माने गए हैं—विष्णु, शिव, सूर्य्य, गणेश और दुर्गा। ये पंचदेव कहे जाते हैं।

यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और पुराणों के अनुसार इंद्र, चंद्र आदि देवता कश्यप से उत्पन्न हुए। पुराणों में लिखा है कि कश्यप की दिति नाम की स्त्री से दैत्य और अदिति नाम की स्त्री से देवता उत्पन्न हुए।

बौद्ध और जैन लोग भी देवताओं को मानते हैं और इसी पौराणिक रूप में, भेद केवल इतना है कि वे देवताओं को बुद्ध, बोधिसत्व वा तीर्थंकरों से निम्न श्रेणी का मानते हैं। बौद्ध लोग भी देवताओं के कई गण या वर्ग मानते हैं, जैसे, चातुर-महाराजिक, तुषिक आदि। जैन लोग चार प्रकार के देवता मानते हैं—वैमानिक या कल्पभव, कल्पातीत, ग्रैवेयक और अनुत्तर। वैमानिक १२ हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, महेंद्र, ब्रह्मा, अंतक, शुक्र, सहस्रार, नत, प्राणत, आरण और अच्युत।

देवताड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का तृण या पौधा जिसमें इधर उधर टहनियाँ नहीं निकलतीं, तलवार की तरह दो ढाई हाथ तक लंबे सीधे पत्ते पेड़ी से चारों ओर निकलते हैं जिससे यह देखने में घीकुवाँर के पौधे सा मालूम होता है। पत्ते कड़े होते हैं और कुछ नीलापन लिए होते हैं। इसके बीच का कांड डंडे की तरह छ सात हाथ ऊपर निकल जाता है जिसके सिरे पर फूलों के गुच्छे लगते हैं। पत्तों के रेशों से बहुत मज़बूत रस्से बनते हैं। इसे रामबाँस भी कहते हैं। (२) दे० "देवताड़ी"।

देवताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवताड़ी] (१) देवदाली लता। बंदाल। (२) तुरई। तरोई।

देवताधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

देवताध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

देवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवपूजा के लिये उपयुक्त समय। (२) अँगूठे को छोड़ उँगलियों का अग्रभाग जिससे होकर संकल्प या तर्पण का जल गिरता है।

देवत्त—वि० [सं०] देवता का दिया हुआ। देवदत्त।

देवत्रयी—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इन तीन देवताओं का समूह।

देवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] देवता होने का भाव या धर्म।

देवदंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवला। गँगेरन।

देवदत्त—वि० [सं०] (१) देवता का दिया हुआ। देवता से प्राप्त। (२) जो देवता के निमित्त दिया गया हो।

संज्ञा पुं० (१) देवता के निमित्त दान की हुई संपत्ति। (२) शरीर की पाँच वायुओं में से एक जिससे जँभाई आती है। (३) अर्जुन के शंख का नाम। (४) अष्टकुल नागों में से एक। (५) शाक्यवंशीय एक राजकुमार जो गौतम बुद्ध का चचेरा भाई था और उनसे बहुत बुरा मानता था। बुद्ध और देवदत्त दोनों साथ ही पले थे, इससे सब बातों में बुद्ध को विशेष कुशल और तेजस्वी देखकर वह मन ही

या नागर ब्राह्मणों से 'नागरी' शब्द का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में आकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललितविस्तर' में जो उन ६४ लिपियों के नाम गिनाए गए हैं जो बुद्ध को सिखाई गईं उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मीलिपि' नाम है। ललितविस्तर का चीनी भाषा में अनुवाद ई० स० ३०८ में हुआ था। जैनों के पन्नवणा सूत्र और समवायांग सूत्र में १८ लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) है। इन्हीं के भगवती सूत्र का आरंभ 'नमो बंभीए लिविए' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है। नागरी का सब से पहला उल्लेख जैनधर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है जो जैन विद्वानों के अनुसार ४५३ ई० के पहले का बना है। 'नित्यापोडशिकार्णव' के भाष्य में भास्करानंद 'नागरलिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागरलिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयवदुद्भवो लेखो यस्य सत्। नागरलिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि अशोकलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है जिसमें फेरफार होते होते आज कल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने जिन्हें साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सब से प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है जो सिंध नदी के पार के प्रदेशों (गांधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व के अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक तो नैपाल की तराई में पिप्रवा नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्धस्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि इनमें दीर्घस्वर चिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर पर बड़ली नामक गाँव में मिला है जो [महा] वीर संवत् ८४ (=ई० स० पूर्व ४४३) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें 'वीराय' में जो 'वी' में दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिलकुल निराली और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यों या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के प्रज्ञापनासूत्र में लिखा है कि 'अर्द्धमागधी भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। अर्द्धमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अतः ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त्त की लिपि है जिससे क्रमशः उस लिपि का विकाश हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (सातवीं शताब्दी ईसा की) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्त्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में मिलने लगती है। किस प्रकार अशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नक्शे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है। वह नक्शा यहाँ अलग छाप कर लगा दिया गया है जिसमें नागरी लिपि का क्रमशः विकाश स्पष्ट हो जायगा। इन अक्षरों का पहला रूप अशोक लिपि का है, उसके उपरांत दूसरे, तीसरे, चौथे रूप क्रमशः पीछे के हैं जो भिन्न भिन्न प्राचीन लेखों से चुने गए हैं।

मि० शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसीसे इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा।

देवनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

देवनामा—संज्ञा पुं० [सं० देवनामन्] (१) कुश द्वीप के एक वर्ष का नाम। (२) कुश द्वीप के राजा हिरण्यरेता के एक पुत्र।

देवनायक—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति। इंद्र।

देवनाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरसल। बड़ा नरकट।

देवनिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का समूह। (२) देवताओं का स्थान। स्वर्ग।

देवनिर्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडूची। गुरुच।

देवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति। इंद्र।

देवपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] सोमनाथ नामक देवस्थान जो काठियावाड़ में है।

विशेष—पुराणों में इस स्थान या क्षेत्र का नाम प्रभास और शिलालेखों में देवपत्तन मिलता है। इसे देवनगर भी कहते थे।

देवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की स्त्री। (२) मध्वालु। एक प्रकार का कंद।

देवपथ—संज्ञा पुं० [सं०] छायापथ। आकाश।

देवपद्मिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में बहनेवाली गंगा का एक नाम।

है कि वे अपनी सब से बड़ी लड़की को किसी मंदिर को दान कर देते हैं। इस प्रकार दान की हुई कुमारियों को महाराष्ट्र देश में 'मुरली' और तैलंग देश में 'बसवा' कहते हैं। इन्हें मंदिरों से गुजारा मिलता है। मरने पर इनका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं होता, कन्या होती है। मंदिरों में देवदासियाँ रखने की प्रथा प्राचीन है। कालिदास के मेघदूत में महाकाल के मंदिर में वेश्याओं के नृत्य की बात लिखी है। मिस्र, यूनान, बाबिलन आदि के प्राचीन देवमंदिरों में भी देवनर्त्तकियाँ होती थीं।

(२) बिजौरा नीबू।

देवदीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह दीपक जो किसी देवता के निमित्त जलाया गया हो। (२) आँख। नेत्र।

देवदुंदुभि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल तुलसी।

देवदूत—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

देवदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग की अप्सरा। (२) बिजौरा नीबू।

देवदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) ब्रह्मा। (३) विष्णु। (४) गणेश।

देवधुर—संज्ञा पुं० [सं०] भारतवंशीय एक राजा जो देवाजित् के पुत्र थे। (भागवत)

देवद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्पवृक्ष, पारिजात आदि स्वर्ग के वृक्ष।। (२) देवदार।

देवद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरघा जिसमें स्वयंभू लिंग स्थापित किया जाता है।

देवधन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त उत्सर्ग किया हुआ धन।

देवधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वार।

देवधाम—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थस्थान। देवस्थान।

मुहा०—देवधाम करना=तीर्थयात्रा करना।

देवधुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी। उ०—हमहि अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरुधरनि देवधुनि-धारा।—तुलसी।

देवधूप—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल। गूगुल।

देवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

देवनंदी—संज्ञा पुं० [सं० देवनन्दिन्] इंद्र का द्वारपाल।

देवन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवहार। (२) किसी से बढ़ चढ़ कर होने की वासना। जिगीषा। (३) क्रीड़ा। खेल। (४) लीलोद्यान। बगीचा। (५) पद्म। कमल। (६) परिवेदना। खेद। रंज। शोक। (७) द्युति। कांति। (८) स्तुति। (९) गति। (१०) द्यूत। जुआ। (११) पासे का खेल। चौसर।

देवनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) सरस्वती और दृषद्वती नदी।

देवनल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरकट या नरसल।

देवना—संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रीड़ा। खेल। (२) सेवा।

देवनागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत तथा हिंदी, मराठी आदि देशभाषाएँ लिखी जाती हैं। उन अक्षरों का नाम जिनमें संस्कृत हिंदी आदि लिखी जाती है।

विशेष—'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके अपना पीछा छुड़ाते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागरखंड का प्रमाण देते हैं। नागरखंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुला कर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'। गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) ही को 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी और सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिला-लेख ताम्रपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सब से पुराना प्रमाणिक लेख जिसमें नागरी अक्षर भी हैं गूर्जरवंशी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) संवत् ४५६ (ई० स० ७०६) का ताम्रपत्र है। यह ताम्रशासन अधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्तो मम श्रीजयभटस्य) उत्तरीय भारत की लिपि में हैं जो नागरी से मिलती जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात में जितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलिपुंड्रवर्द्धन आदि से गए हुए ब्राह्मणों को ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उत्तरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त्त की थी जो सब से सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने के कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह ब्राह्मी ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि नगर

अ =

अ =

इ =

उ =

ए =

क =

ख =

ग =

घ =

ङ =

च =

छ =

ज =

झ =

झ =

ञ =

ट =

ठ =

ड =

ड =

ढ =

ण =

ण =

त =

थ =

द =

ध =

न =

प =

फ =

ब =

भ =

म =

य =

र =

ल =

व =

श =

ष =

स =

ह =

ळ =

क्ष =

ज्ञ =

का =

कि =

की =

कु =

कू =

के =

नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र ।

जो कीर्त्तिरथ के पुत्र और जनक (सीरध्वज) के पूर्वज थे। (वाल्मीकि रा०)। (२) यदुवंशीय एक राजा।

देवमीढुष—संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के पितामह का नाम।

देवमुख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी। कामांधा।

देवमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारद ऋषि। (२) सूर नामक ऋषि।

देवमूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (गर्गसंहिता)

देवमूर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] देवता की प्रतिमा।

देवयजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की वेदी।

देवयजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

देवयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] होमादि कर्म जो पंचयज्ञों में से एक है और गृहस्थों का प्रति दिन का कर्त्तव्य है।

विशेष—दे० "पंचयज्ञ"।

देवयात—वि० [सं०] देवत्वप्राप्त। जो देवता हो गया हो।

देवयात्री—संज्ञा पुं० [सं० देवयात्रिन्] एक दानव का नाम। (हरिवंश)

देवयान—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से अलग होने के उपरांत जीवात्मा के जाने के लिये दो मार्गों में से वह मार्ग जिससे होता हुआ वह ब्रह्मलोक को जाता है।

विशेष—उपनिषदों में जीवात्मा के उत्क्रमण अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर वा एक लोक से दूसरे लोक की प्राप्ति की कथा बहुत आई है। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि संवत्सर ही प्रजापति है। दक्षिण और उत्तर उसके दो अयन हैं। जो कोई इष्टापूर्त्त और कृत (यज्ञ आदि कर्मकांड) की उपासना करते हैं वे चांद्रमस लोक को प्राप्त होते हैं और फिर वहाँ से लौट कर दक्षिणायन को पाते हैं जो रयी (खाद्य, धान्य) या पितृयाण कहलाता है। इसी प्रकार जो तप, ब्रह्मचर्य श्रद्धा और विद्या से आत्मा का अन्वेषण करते हैं वे उत्तरायण मार्ग से आदित्य लोक को प्राप्त होते हैं। इस मार्ग से गमन करनेवाले नहीं लौटते। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि 'जो श्रद्धा और तप की उपासना करते हैं वे अर्चि (आग की लौ) को पाते हैं, अर्चि से अह्न (दिन), अह्न से आपूर्यमाण वा शुक्लपक्ष, आपूर्यमाण पक्ष से उत्तरायण के छ महीनों को, उत्तरायण से संवत्सर, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चंद्रमा को, चंद्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं' और वहाँ अमानव (अर्थात् देव) हो जाते हैं। इसी मार्ग को देवयान कहते हैं जिससे मरनेवाला ब्रह्म को पाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में सूर्य्य से एकबारगी विद्युत् को प्राप्त होना लिखा है, चंद्रमा को छोड़ दिया है और 'अमानव' के स्थान पर अमानस शब्द आया है जिस का अभिप्राय वही है। देवयान और पितृयाण का अभिप्राय केवल यही है कि ब्रह्मज्ञानी मरने पर उत्तरोत्तर प्रकाशमान लोकों या स्थितियों में होते हुए ब्रह्मलोक या ब्रह्म को प्राप्त करते हैं और कर्मकांड में रत मनुष्य, धूमरात्रि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि उत्तरोत्तर अंधकार की स्थिति को प्राप्त होते हैं और लौट कर फिर जन्म लेते हैं। सारांश यह कि एक ओर प्रकाश की उत्तरोत्तर वृद्धिपरंपरा का क्रम रखा गया है और दूसरी ओर अंधकार की। वेदांतसूत्र के तीसरे और चौथे अध्याय में जीव के इन दोनों मार्गों पर बहुत ऊहापोह किया गया है। गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भी इन मार्गों का उल्लेख किया है। उपनिषद् में जो उत्तरायण को देवयान और दक्षिणायन को पितृयाण कहा गया, इस कारण सूर्य्य जब उत्तरायण रहता है तब मरना मोक्षदायक माना जाता है। इसी लिये महाभारत में भीष्म का उत्तरायण सूर्य्य होने तक शरशय्या पर पड़ा रहना लिखा गया है।

देवयानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्राचार्य्य की कन्या जो राजा ययाति को ब्याही थी।

विशेष—बृहस्पति का पुत्र कच मृतसंजीवनी विद्या सीखने के लिये दैत्यगुरु शुक्राचार्य्य का शिष्य हुआ। शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी उसपर अनुरक्त हुई। असुरों को जब विदित हुआ कि कच मृतसंजीविनी विद्या लेने के लिये आया है तब उन्होंने उसको मार डाला। इस पर जब देवयानी बहुत विलाप करने लगी तब शुक्राचार्य्य ने अपनी मृतसंजीवनी विद्या के बल से उसे जिला दिया। इसी प्रकार कई बार असुरों ने कच का विनाश करना चाहा पर शुक्राचार्य्य उसे बचाते गए। एक दिन असुरों ने कच को पीस कर शुक्राचार्य्य के पीने की सुरा में मिला दिया। शुक्राचार्य्य कच को सुरा के साथ पी गए। जब कच कहीं न मिला तब देवयानी बहुत विलाप करने लगी और शुक्राचार्य्य भी बहुत घबराए। कच ने शुक्राचार्य्य के पेट में से सब व्यवस्था कह सुनाई। शुक्राचार्य्य ने देवयानी से कहा कि "कच तो मेरे पेट में है, अब बिना मेरे मरे कच की रक्षा नहीं हो सकती"। पर देवयानी को इन दोनों में से एक बात भी मंजूर नहीं थी। अंत में शुक्राचार्य्य ने कच से कहा कि यदि तुम कच रूपी इंद्र नहीं हो तो मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करो और उसके प्रभाव से बाहर निकल आओ। कच ने मृतसंजीवनी विद्या पाई और वह पेट से बाहर निकल आया। तब देवयानी ने उस से प्रेमप्रस्ताव किया और विवाह करने के लिये वह उससे कहने लगी। कच गुरु की कन्या से विवाह करने पर किसी तरह राजी न हुए। इसपर देवयानी ने शाप दिया कि तुम्हारी सीखी हुई विद्या फलवती न होगी। कच ने कहा कि यह विद्या अमोघ है यदि मेरे हाथ से फलवती न होगी तो जिसे मैं सिखाऊँगा उसके हाथ से होगी। पर तुमने मुझे व्यर्थ शाप दिया।

देवपर–संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो संकट पड़ने पर कोई उद्योग न करे, किसी देवता का भरोसा किए बैठा रहे।
देवपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] माचीपत्र।
देवपशु–संज्ञा पुं० [सं०] देवता के नाम पर उत्सर्ग किया हुआ पशु। (२) देवता का उपासक।
देवपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।
देवपान–संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का एक पात्र।
देवपाल–संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के एक पर्वत का नाम।
देवपालित–वि० [सं०] (देश) जिसमें वृष्टि ही के जल से खेती आदि का काम चल जाता हो।
देवपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवपुत्री] देवता का पुत्र।
देवपुत्रिका–संज्ञा स्त्री० दे० "देवपुत्री"।
देवपुत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की पुत्री। (२) इलायची। (३) कपूरी साग।
देवपुर–संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती।
देवपुरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की राजधानी अमरावती जो स्वर्ग में है।
देवपूजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं का पूजन।
देवप्रयाग–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय में टिहरी जिले के अंतर्गत एक तीर्थ जो गंगा और अलकनंदा के संगम पर है। स्कंद पुराण के हिमवद् खंड में इस तीर्थ का माहात्म्य वर्णित है।
देवप्रश्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्रश्न जो ग्रह, नक्षत्र, ग्रहण आदि के संबंध में हो। (२) शुभाशुभ संबंधी वह प्रश्न जो किसी देवता के प्रति समझा जाय और जिसका उत्तर किसी युक्ति से निकाला जाय।
देवप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरी का नाम जो कुरुक्षेत्र से पूर्व पड़ती थी और जिसका राजा सेनाविंदु था।
देवप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त का पेड़ या फूल। (२) पीत भृंगराज। पीली भँगरैया।
देवबंद–संज्ञा पुं० [सं० देवबंद] घोड़ों की एक भँवरी जो उनकी छाती पर होती है और शुभ लक्षण गिनी जाती है। जिस घोड़े में यह भँवरी हो उसमें यदि और दोष भी हों तो वे सब निष्फल समझे जाते हैं।
देवबला–संज्ञा पुं० [सं०] सहदेई। सहदेइया नाम की बूटी।
देवबाँस–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार, का बाँस जो पूरबी बंगाल और आसाम में बहुत होता है और उड़ीसा तक पाया जाता है। यह १५—२० हाथ से ४०—४५ हाथ तक ऊँचा होता है। यह मजबूत होता है और मकानों की छाजन में लगाने तथा चटाई टोकरा आदि बनाने के काम में आता है। इसके नरम कल्लों का अचार भी पड़ता है।
देवब्रह्मन्–संज्ञा पुं० [सं०] नारद।
देवब्राह्मण–संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो किसी देवता की पूजा करके जीविका निर्वाह करे। पुजारी। पंडा।
देवभवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का घर या स्थान। (२) स्वर्ग। (३) अश्वत्थ। पीपल।
देवभाग–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को दिया जानेवाला भाग। किसी वस्तु या संपत्ति का वह अंश जो देवता के लिये निकाला गया हो।
देवभाषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत भाषा।
देवभिषक्–संज्ञा० पुं० [सं० देवभिषज्] अश्विनीकुमार।
देवभू–संज्ञा स्त्री० दे० "देवभूमि"।
देवभूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का ऐश्वर्य। (२) मंदाकिनी।
देवभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग।
देवभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का भरण करनेवाले) (१) इंद्र। (२) विष्णु।
देवभोज्य–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।
देवमंजर–संज्ञा पुं० [सं०] कौस्तुभ मणि।
देवमंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्त्ति आदि स्थापित हो। देवालय।
देवमणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) कौस्तुभ मणि। (३) घोड़े की भँवरी। (४) महामेदा नाम की ओषधि।
देवमाता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की माता। (२) अदिति। (३) दाक्षायणी।
देवमातृक–वि० [सं०] (देश) जिसमें खेती आदि के लिये वर्षा ही का जल यथेष्ट हो। जहाँ इतनी वर्षा होती हो कि खेती आदि का सब काम उसी से चल जाता हो।
देवमादन–संज्ञा पुं० [सं०] देवतओं को मोहित या मत्त करनेवाला, सोम।
देवमान–संज्ञा पुं० [सं०] काल की गणना में देवताओं का मान, जैसे, मनुष्यों के एक सौर वर्ष का देवताओं का एक दिन।
देवमानक–संज्ञा पुं० [सं०] देवमणि। कौस्तुभ मणि।
देवमाया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की माया। (२) परमेश्वर की माया जो अविद्या रूप होकर जीवों को बंधन में डालती है।
देवमार्ग–संज्ञा पुं० [सं०] देवयान।
देवमास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भ का आठवाँ महीना।
विशेष—आठवें महीने में गर्भ में स्मृति और ओज की उत्पत्ति हो जाती है, इससे उसे देवमास कहते हैं। (२) देवताओं का महीना जो मनुष्यों के तीस वर्ष के बराबर होता है।
देवमित्र–संज्ञा पुं० [सं०] शाकल्य ऋषि का एक नाम।
देवमित्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी एक मातृका।
देवमीढ़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिथिला के एक प्राचीन राजा

देवराय-संज्ञा पुं० दे० "देवराज"।

देवरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरा] छोटी मोटी देवी।

देवर्द्धि-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक प्रसिद्ध स्थविर का नाम जिन्होंने जैनसिद्धांत लिपिबद्ध किया था।

देवर्षि-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में ऋषि।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो देवताओं की पूजा करके जीविका निर्वाह करे। पुजारी। पंडा।

विशेष—देवल ब्राह्मण पतित माना जाता है। हव्य कव्य, श्राद्ध आदि में ऐसे ब्राह्मण का निषेध है।

(२) धार्मिक पुरुष। (३) देवर। (४) नारद मुनि। (५) धर्मशास्त्र के वक्ता एक मुनि जो असित मुनि के पुत्र और वेदव्यास के शिष्य माने जाते हैं। (६) एक स्मृतिकार।

संज्ञा पुं० [देवालय] देवालय। देवमंदिर।

देवलक-संज्ञा पुं० [सं०] देवल। पुजारी ब्राह्मण। पंडा।

देवलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका। नेवारी।

देवलांगुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली।

देवला-संज्ञा पुं० [हिं० दीवा] [स्त्री० अल्प० देवली] छोटा दीवा।

देवलोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

विशेष—मत्स्यपुराण में भू, भुव, इत्यादि सातो लोक देवलोक कहे गए हैं।

देवली-संज्ञा स्त्री० दे० "दिवली"।

देववक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का मुँह) अग्नि।

विशेष—देवताओं के निमित्त हव्य कव्य आदि का अग्नि में हवन होता है, इस कारण यह नाम पड़ा।

देववती-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रामणी नामक गंधर्व की कन्या जो *सुकेश राक्षस की पत्नी और* माल्यवान्, सुमाली और माली की माता थी।

देववधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की स्त्री। (२) देवी। (३) अप्सरा।

देववर्णिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भरद्वाज मुनि की कन्या जो विश्रवा मुनि की पत्नी और कुबेर की माता थी। (वाल्मीकि रा०)

देववर्म-संज्ञा पुं० [सं० देववर्मन्] आकाश।

देववर्द्धकि-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा।

देववर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] राजा देवक के एक पुत्र का नाम। देवकी का एक भाई और श्रीकृष्ण का मामा। (भागवत)

देववर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक द्वीप का नाम। (भागवत)

देवबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी। सहदेई नाम की बूटी।

देववल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं को प्रिय। (२) सुरपुन्नाग वृक्ष। (३) केसर। (अनेकार्थ)

देववाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संस्कृत भाषा। (२) आकाशवाणी। किसी अदृश्य देवता का वचन जो अंतरिक्ष में सुनाई पड़े। उ०—*दाँव बलराम को देखि उन छल किथो रुक्म जीत्यो कहन लगे सारे। देववाणी भई जीत भई राम की ताहु पै मूढ़ नाहीं सँभारे।—सूर।*

देववात-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

देववायु-संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

देववाहन-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि (जो देवताओं का हव्य ले जाकर पहुँचाते हैं)।

देवविहाग-संज्ञा पुं० [सं० देवविभाग] एक राग जो कल्याण और विहाग अथवा सारंग और पूरबी के योग से बना है। यह संपूर्ण जाति का है।

देववृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंदार वृक्ष। (२) गूगल। (३) सतिवन।

देवव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीष्मपितामह का नाम। (२) एक प्रकार का साम गान।

देवशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] असुर। राक्षस।

देवशाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो शंकाभरण, कान्हड़ा और मल्लार से मिलकर बना है। इसमें गांधार कोमल लगता है। इसका गान समय १७ दंड से २० दंड तक है।

देवशिल्पी-संज्ञा पुं० [सं० देवशिल्पिन्] विश्वकर्मा।

देवशुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवलोक की कुतिया, सरमा।

विशेष—इस देवशुनी की एक कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है। राजा जनमेजय कोई बड़ा यज्ञ कर रहे थे। इसी बीच एक कुत्ता वहाँ आया। जनमेजय के भाइयों ने उसे मारकर भगा दिया। उस कुत्ते ने अपनी माता सरमा से जाकर कहा "मैंने कोई अपराध नहीं किया था, यज्ञ की कोई सामग्री नहीं छुई थी, इसपर भी बिना अपराध मुझे लोगों ने मारा"। देवशुनी सरमा यह सुनकर जनमेजय के पास जाकर बोली—"मेरे इस पुत्र ने कोई अपराध नहीं किया था। तुम्हारा घी आदि कुछ भी नहीं चाटा था। तुमने मेरे इस पुत्र को बिना किसी अपराध के मारा इससे तुम्हारे ऊपर अकस्मात् कोई दुःख पड़ेगा"। यह शाप देकर देवशुनी चली गई। विशेष—दे० "सरमा"।

देवशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] दमनक। दौने का पौधा।

देवश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० देवश्रवस्] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) वसुदेव के भाई।

देवश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) नारद। (३) शास्त्र। (४) शुक्राचार्य्य के एक पुत्र का नाम। (५) अवसर्पिणी के एक जिन का नाम।

इससे मैं भी शाप देता हूँ कि तुम्हारा विवाह ब्राह्मण से न होगा।

दैत्यों के राजा वृषपर्व्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी में परस्पर सखी भाव था। एक बार दोनों किनारे पर कपड़े रख जल-विहार के लिये एक जलाशय में घुसीं। इंद्र ने वायु का रूप धरकर दोनों के वस्त्र एक स्थान पर कर दिए। शर्मिष्ठा ने जल्दी में देखा नहीं और निकल कर देवयानी के कपड़े पहन लिए। इसपर दोनों में झगड़ा हुआ और शर्मिष्ठा ने देवयानी को कूँए में ढकेल दिया। शर्मिष्ठा यह समझ कर कि देवयानी मर गई अपने घर चली आई। इसी बीच नहुष राजा का पुत्र ययाति शिकार खेलने आया था। उसने देवयानी को कूएँ से निकाला और उससे दो चार बातें करके वह अपने नगर की ओर चला गया। इधर देवयानी ने एक दासी से अपना सब वृत्तांत शुक्राचार्य्य के पास कहला भेजा। शुक्राचार्य्य ने आकर अपनी कन्या को घर चलने के लिये बहुत कहा, पर उसने एक न सुनी। वह शुक्राचार्य्य से कहने लगी कि "शर्मिष्ठा तुम्हारा बहुत बहुत तिरस्कार करती थी, अतः मैं अब दैत्यों की राजधानी में कदापि न जाऊँगी।"

यह सब सुनकर शुक्राचार्य्य भी दैत्यों की राजधानी छोड़ अन्यत्र जाने को तैयार हुए। यह खबर राजा वृषपर्व्वा को लगी और वह आकर शुक्राचार्य्य से बड़ी विनती करने लगा। शुक्राचार्य्य ने कहा "देवयानी को प्रसन्न करो"। वृषपर्व्वा देवयानी को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। देवयानी ने कहा कि "मेरी इच्छा है कि शर्मिष्ठा सहस्र और कन्याओं के सहित मेरी दासी हो। जहाँ मेरा पिता मुझे दान करे वहाँ वह मेरी दासी होकर जाय।"

वृषपर्व्वा इसपर सम्मत हुआ और उसने अपनी कन्या शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर शुक्राचार्य्य के घर भेज दिया। एक दिन देवयानी अपनी नई दासियों के सहित कहीं क्रीड़ा कर रही थी, इसी बीच राजा ययाति वहाँ आ पहुँचे। देवयानी ने ययाति से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। राजा ययाति ने स्वीकार कर लिया और शुक्राचार्य्य ने कन्यादान कर दिया। कुछ दिन पीछे ययाति से शर्मिष्ठा को एक पुत्र हुआ। देवयानी ने जब पूछा तब शर्मिष्ठा ने कह दिया कि यह लड़का मुझे एक तेजस्वी ब्राह्मण से हुआ है। इसके उपरांत देवयनी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अणु और पुरु ये तीन पुत्र हुए। ययाति से शर्मिष्ठा को तीन पुत्र हुए यह जानकर देवयानी अत्यंत कुपित हुई और उसने अपने पिता के पास इसका समाचार भेजा। शुक्राचार्य्य ने क्रोध में आकर ययाति को शाप दिया कि "तुमने अधर्म किया है, इसलिये तुम्हें बहुत शीघ्र बुढ़ापा घेरेगा।" ययाति ने शुक्राचार्य्य से विनयपूर्वक कहा—"महाराज मैंने कामवश होकर ऐसा नहीं किया, शर्मिष्ठा ने ऋतुमती होने पर ऋतु रक्षा के लिये प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करना मैं ने पाप समझा। मेरा कुछ दोष नहीं।" शुक्राचार्य्य ने कहा "अब तो मेरा कहा हुआ निष्फल हो नहीं सकता। पर यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा ले लेगा तो तुम फिर ज्यों के त्यों जवान हो जाओगे।"

देवयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ययुग।

देवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग अंतरिक्ष आदि में रहनेवाले उन जीवों की सृष्टि जो देवताओं के अंतर्गत माने जाते हैं।

विशेष—विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक और सिद्ध ये देवयोनि के अंतर्गत हैं। (अमर)

देवर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवरानी] (१) पति का छोटा भाई। (२) पति का भाई (छोटा या बड़ा)।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि यदि किसी विधवा को अपने पति से कोई संतान न हो तो वह अपने देवर या पति के किसी अन्य सपिंड से एक संतान उत्पन्न करा ले, एक से अधिक नहीं। पर पराशर ने कलिकाल में इसका निषेध किया है।

देवरक्षित—वि० [सं०] जो देवताओं द्वारा रक्षित हो।

संज्ञा पुं० देवक राजा के एक पुत्र का नाम।

देवरक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक राजा की एक कन्या।

देवरथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का रथ। विमान। (२) सूर्य्य का रथ।

देवरा—संज्ञा पुं० [सं० देव] [स्त्री० देवरी] छोटा मोटा देवता। उ०—पुरुष पूजै देवरा, तिय पूजै रघुनाथ।—रहीम।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन जो सुतली बनाने के काम में आता है।

देवराज—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं के राजा) इंद्र।

देवराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

देवरात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) (देवताओं से रक्षित) राजा परीक्षित। (२) निमि के वंश का एक राजा जो सुकेतु का पुत्र था। (३) शुनःशेफ का एक नाम जो विश्वामित्र के यहाँ जाने पर पड़ा था। (४) याज्ञवल्क्य ऋषि के पिता का नाम। (५) एक प्रकार का सारस।

देवरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवर] देवर की स्त्री। पति के छोटे भाई की स्त्री।

संज्ञा स्त्री० [हिं० देव + रानी] देवराज इंद्र की रानी, शची। इंद्राणी। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।—केशव।

देवाना-वि० दे० "दीवाना"।
संज्ञा पुं० एक चिड़िया।

देवानीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं की सेना। (२) तीसरे मनु सावर्ण के एक पुत्र का नाम। (३) सगर के वंश का राजा।

देवानुचर-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के साथ चलनेवाले विद्याधर आदि उपदेव।

देवान्न-संज्ञा पुं० [सं०] हवि। चरु।

देवापि-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।

विशेष—इस राजा के संबंध में वैदिक कथा इस प्रकार है। ऋष्टिषेण राजा के दो पुत्र थे, देवापि और शांतनु। दोनों में देवापि बड़े थे पर राज्य शांतनु को मिला और देवापि तपस्या में लगे। शांतनु के राज्य में बारह वर्ष की अनावृष्टि हुई। ब्राह्मणों ने शांतनु से कहा कि "तुम जेठे भाई के रहते राजसिंहासन पर बैठे हो इससे देवता लोग रुष्ट हो कर पानी नहीं बरसाते हैं। इस पर शांतनु ने देवापि को सिंहासन पर बैठाया। देवापि ने शांतनु से कहा कि "तुम यज्ञ करो, हम तुम्हारे पुरोहित होंगे"। देवापि ने यज्ञ कराया जिससे खूब पानी बरसा। (निरुक्त २। १०)

महाभारत के अनुसार देवापि पुरुवंशी राजा प्रतीप के पुत्र थे। महाराज प्रतीप को तीन पुत्र थे—देवापि, शांतनु और बाह्लीक। इनमें देवापि अत्यंत धर्मात्मा थे। इन्होंने तपोबल से ब्राह्मणत्व लाभ किया। ये बाल्यावस्था ही से संसारत्यागी हो गए थे। ये अब तक सुमेरु पर्वत पर कलापग्राम में योगी के रूप में हैं। कलियुग समाप्त होने पर सत्ययुग में ये चंद्रवंश स्थापित करेंगे।

देवाम-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की खोई जो धीमर, गोंद, चूना, बीकन और पानी मिलाकर बनाई जाती है।

देवाभियोग-संज्ञा पुं० [सं०] किसी ऐसे देवता का शरीर में प्रवेश जो अनुचित कर्म करावे। (जैन)

देवाभीष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

देवायु-संज्ञा स्त्री० [सं० देवायुस्] देवताओं की आयु। देवताओं का जीवनकाल जो बहुत अधिक होता है।

देवायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का अस्त्र। (२) इंद्रधनुष।

देवारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का वन या उपवन। (२) एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

देवाराधन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा।

देवारि-संज्ञा पुं० [सं०] असुर।

देवार्पण-संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त किसी वस्तु का दान।

देवार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्हत के एक गण का नाम। (जैन)

देवार्ह-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपर्ण। माचीपत्र।

देवाला†-वि० [हिं० देना] देनेवाला। दाता।

देवालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्त्ति रखी जाय। मंदिर।

देवाला-संज्ञा पुं० दे० "दिवाला"।
संज्ञा पुं० दे० "देवालय"।

देवाली-संज्ञा स्त्री० दे० "दिवाली"।

देवालेई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० देना + लेना] देने और लेने का काम। लेनदेन।

देवावास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल का पेड़। (२) स्वर्ग। (३) देवता का मंदिर।

देवावृध्-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत। (हरिवंश)

देवावृध-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। (हरिवंश)

देवाश्व-संज्ञा पुं० [सं०] उच्चैःश्रवा। इंद्र का घोड़ा।

देवाहार-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

देवाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।

देविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] घाघरा नदी जिसमें मिलने के कारण सरजू को भी लोग देवहा कहते हैं। एक नदी का नाम जिसमें कालिकापुराण के मत से सरयू मिली है। पद्मपुराण के अनुसार यह आधा योजन चौड़ी और पाँच योजन लंबी है। मत्स्यपुराण के मत से यह नदी हिमालय के पाददेश से निकली है।

देवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवता की स्त्री। देवपत्नी। (२) दुर्गा। (३) वह रानी जिसका राजा के साथ अभिषेक हुआ हो। पटरानी। (४) *ब्राह्मण स्त्रियों की एक उपाधि।* (५) दिव्य गुणवाली स्त्री। सुशीला और सदाचारिणी स्त्री। (आदरसूचक)। (६) मूर्वा। मरोरफली। मुर्रा। (७) पृक्का नाम की सुगंधित घास। असबरग। (८) आदित्यभक्ता। हुलहुल। हुरहुर। (९) लिंगिनी लता। पँचगुरिया। (१०) बन-ककोड़ा। बाँझ खखसा। (११) शालपर्णी। सरिवन। (१२) महाद्रोणी। बड़ा गूमा। (१३) पाठा। (१४) नागरमोथा। (१५) सफेद इंद्रायन। (१६) हरीतकी। हड़। हर्रे। (१७) अलसी। तीसी। (१८) श्यामा पक्षी। (१९) *रविसंक्रांति जो बड़ी पुण्यजनक समझी* जाती है।

संज्ञा स्त्री० [अं० डेविट्स्] (१) लकड़ी का एक मजबूत चौखटा जिसमें दो खड़े खंभों के ऊपर आड़ा बल्ला लगा रहता है। यह मस्तूल आदि के सहारे के लिये होता है। (२) जहाज के किनारे पर लकड़ी या लोहे के दो चोंच की तरह बाहर की ओर झुके हुए खंभे जिनमें घिरनियाँ लगी होती हैं। इन घिरनियों पर पड़े हुए रस्सों के द्वारा किश्तियाँ जहाज पर चढ़ाई या जहाज से नीचे उतारी जाती हैं। (लश०)

देवश्रेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की पंक्ति। (२) मूर्वा। मरोरफली। मुर्रा।

देवश्रेष्ठ-वि० [सं०] (१) देवताओं में श्रेष्ठ। (२) बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

देवसखा-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा का एक पर्वत। (वाल्मीकि रा०)।

देवसत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम।

देवसद-संज्ञा पुं० [सं०] देवस्थान।

देवसदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का आधार। (२) देवालय। मंदिर। (३) स्वर्ग।

देवसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का समाज। (२) राजसभा। (३) सुधर्म्मा नामक सभा जिसे मय ने अर्जुन या युधिष्ठिर के लिये बनाया था।

देवसमाज-संज्ञा पुं० [सं०] सुधर्मा नाम की सभा।

देवसरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी।

देवसर्षप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों।

देवसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल का दंडोत्पल।

देवसाक-संज्ञा पुं० दे० "देवशाक"।

देवसार-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताल के छः भेदों में से एक।

देवसावर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] तेरहवें मनु का नाम। (भागवत)

देवसृष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। मद्य।

देवसेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की सेना। (२) प्रजापति की कन्या जो सावित्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इनका दूसरा नाम षष्ठी वा महाषष्ठी भी है। ये मातृकाओं में श्रेष्ठ हैं और शिशुओं का पालन करनेवाली हैं। इनको एक बार केशी दानव हर ले गया। इंद्र ने इनकी रक्षा की और स्कंद के साथ इनका विवाह करा दिया। विवाह में बृहस्पति ने होम, जप आदि किया था। ब्राह्मणों ने देवसेना को षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्ति और अपराजिता नामों से पुकारा। जिस पंचमी तिथि को स्कंद श्रीयुक्त हुए थे, वह श्रीपंचमी कहलाई। जिस षष्ठी को स्कंद कृतकार्य्य हुए थे वह षष्ठी महातिथि कहलाई। (महाभारत)

देवसेनापति-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद।

देवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के रहने की जगह। (२) देवालय। (३) एक ऋषि का नाम जिन्होंने पांडवों को उस समय सदुपदेश दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब युधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इन्होंने अनेक प्रकार के उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था। (महाभारत)

देवस्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता की सेवा के लिये अर्पित किया हुआ धन। वह जायदाद जो किसी देवता की पूजा आदि के लिये अलग निकाल दी जाय। (२) यज्ञशील मनुष्य का धन। (मनु०)

विशेष—जो इस धन को लोभ से हरता है वह परलोक में गीध का जूठा खाकर जीता है।

देवहंस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बत्तख।

देवहरा†-संज्ञा पुं० [हिं० देव + घर] देवालय। मंदिर।

देवहरिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव।

देवहा†-संज्ञा स्त्री० [सं० देवहा वा देविका] सरयू नदी।

देवहू-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं का आह्वान। (२) अनाज से भरी गाड़ी। (३) बायाँ कान। (भागवत)। (४) एक ऋषि का नाम।

देवहूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक जो कर्दम मुनि को व्याही थी। महर्षि ने इनकी सेवा से प्रसन्न होकर इन्हें दिव्य ज्ञान दिया। इनके गर्भ से नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ। सांख्य शास्त्र के कर्त्ता कपिल इन्हींके पुत्र हैं। (भागवत)

देवहेति-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवास्त्र।

देवह्रद-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीपर्वत पर एक सरोवर जिसमें स्नान करने से यज्ञ का फल होता है। (महाभारत)

देवांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवताओं की स्त्री। स्वर्ग की स्त्री। अमरी। (२) अप्सरा।

देवांतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जो रावण का पुत्र था और जिसे हनुमान ने राम-रावण युद्ध में मारा था।

देवांधस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमृत। (२) देवता के नैवेद्य का अन्न।

देवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्मचारिणी लता। (२) पटसन।
†वि० [हिं० देना] (१) देनेवाला। जैसे, पानीदेवा। † (२) देनदार। ऋणी।

देवाक्रीड़-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का उद्यान। इंद्र का बगीचा।

देवाजीव-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा करके जीविका करनेवाला। पुजारी। पंडा।

देवाट-संज्ञा पुं० [सं०] हरिहरक्षेत्र नामक तीर्थ। (वाराहपुराण)

देवातिथि-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी एक राजा का नाम। (भागवत)

देवातिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

देवात्मा-संज्ञा पुं० [सं० देवात्मन्] (१) देवस्वरूप। (२) अश्वत्थ। पीपल।

देवाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के अधिपति। (२) परमेश्वर। (३) इंद्र।

देवान-संज्ञा पुं० [फा० दीवान] (१) दरबार। कचहरी। राजसभा। उ०—मारे बागवान ते पुकारत देवान गे उजारे बाग अंगद देखाए घाय तन में।—तुलसी। (२) अमात्य। मंत्री। वजीर। (३) प्रबंधकर्त्ता।

देवानां-प्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं को प्रिय। (२) बकरा। (३) मूर्ख।

से होता है। सुश्रुत में भूतविद्या में अमानुष प्रतिषेध के अंतर्गत इसका उल्लेख है।

देवौकस्—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान सुमेरु पर्वत।

देव्युन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या रोग जिसमें पक्षाघात होता है, शरीर सूख जाता है, मुँह और हाथ पाँव टेढ़े हो जाते हैं तथा स्मरण शक्ति जाती रहती है। कहीं कहीं इसे विजासनी देवी या माववल्या भी कहते हैं।

देश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विस्तार जिसके भीतर सब कुछ है। दिक्। स्थान।

विशेष—न्याय वा वैशेषिक के अनुसार जिससे आगे पीछे, ऊपर नीचे, उत्तर दक्षिण आदि का प्रत्यय होता है वह देश या दिग्द्रव्य है। काल के समान संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग देश के भी गुण हैं। देश के विभु और एक होने पर भी उपाधिभेद से उत्तर दक्षिण, आगे पीछे आदि भेद मान लिए गए हैं। देश-संबंधी 'पूर्व' और 'पर' का विपर्यय हो सकता है पर काल संबंधी पूर्वापर का नहीं। पश्चिमी दार्शनिकों में कांट आदि ने देश (और काल) को मन से बाहर की कोई वस्तु नहीं माना है अंतःकरण का आरोप मात्र कहा है जो वस्तु-संबंध-ग्रहण के लिये वह अपनी ओर से करता है। दे० "काल"।

यौ०—देशकाल।

(२) पृथ्वी का वह विभाग जिसका कोई अलग नाम हो, जिसके अंतर्गत कई प्रांत, नगर, ग्राम आदि हों तथा जिसमें अधिकांश एक जाति के और एक भाषा बोलनेवाले लोग रहते हों। जनपद।

विशेष—देश तीन प्रकार के होते हैं—जांगल्य, अनूप और साधारण। तीन प्रकार के और देश माने गए हैं—देवमातृक (जिसमें वर्षा ही के जल से खेती आदि के सारे काम हों), नदी मातृक और उभय मातृक।

(३) वह भूभाग जो एक ही राजा या शासक के अधीन अथवा एक शासनपद्धति के अंतर्गत हो। राष्ट्र। (४) स्थान। जगह। (५) शरीर का कोई भाग। अंग। जैसे, स्कंध देश, कटि-देश। उ०—भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन बनाए।—तुलसी। (६) एक राग जो किसी के मत से संपूर्ण जाति का और किसी के मत से षाड़व (ऋषभवर्जित) है। (७) जैन शास्त्रानुसार चौथा पंचक जिसके द्वारा धर्मानुसंधानपूर्वक तपस्या अर्थात् गुरु, जन, गुहा, श्मशान और रुद्र की वृद्धि होती है।

देशक—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेश करनेवाला। उपदेशक।

देशकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें गांधार कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

देशकार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो सबेरे एक दंड से पाँच दंड दिन चढ़े तक गाया जाता है। यह राग परज, सोरठ और सरस्वती के मिलाने से बनता है। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि +

अथवा

ध नि स ऋ ग म प +

देशकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत के मत से मेघ राग की पत्नी और किसी किसी के मत से हिंडोल राग की पत्नी मानी जाती है। यह संपूर्ण जाति की है। इसका सरगम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि स +

इसके गाने का काल वर्षा ऋतु का निशांत वा प्रातःकाल है।

देशगांधार—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो सबेरे एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता है।

देशचारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार गार्हस्थ्य धर्म जिसके बारह भेद हैं—(१) प्राणातिपात विरमण व्रत। (२) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत। (३) थूल अदत्तदान विरमण व्रत। (४) मैथुन विरमण व्रत। (५) स्थूल परिग्रह विरमण व्रत। (६) दिश परिमाण व्रत। (७) भोगोपभोग विरमण व्रत। (८) अनर्थ दंड विरमण व्रत। (९) सामयिक व्रत। (१०) दिशावकाशिकव्रत। (११) पौषधोपवास व्रत। (१२) अतिथि संविभाग व्रत।

देशज—वि० [सं०] देश में उत्पन्न।

संज्ञा पुं० शब्द के तीन विभागों में से एक। वह शब्द जो न संस्कृत हो, न संस्कृत का अपभ्रंश हो बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोलचाल से योंही उत्पन्न हो गया हो।

देशज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] देश का हाल जाननेवाला। देश की दशा, रीति नीति आदि जाननेवाला।

देशधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] देश की रीति नीति आचार व्यवहार।

देशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेश। (जैन)

देशनिकाला—संज्ञा पुं० [हिं० देश + निकालना] देश से निकाल दिए जाने का दंड।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—होना।

देशपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] देशकारी रागिनी का दूसरा नाम।

देशभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भाषा जो किसी देश या प्रांत विशेष में ही बोली जाती हो। जैसे, बँगला, मराठी, गुजराती इत्यादि।

देशमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब स्वर लगते हैं।

देवीकोट–संज्ञा पुं० [सं०] बाण की राजधानी शोणितपुर का दूसरा नाम।

देवीपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण जिसमें देवी का माहात्म्य आदि वर्णित है।

देवीबीज–संज्ञा पुं० दे० "देवीवीर्य्य"।

देवीभागवत–संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराण जिसकी गणना बहुत से लोग उपपुराणों में और कुछ लोग पुराणों में करते हैं।

विशेष—श्रीमद्भागवत के समान इस पुराण में भी बारह स्कंध और १८००० श्लोक हैं। अतः इसका निर्णय कठिन है कि दो में कौन पुराण है और कौन उपपुराण। पुराणों में एक दूसरे का विषय, श्लोकसंख्या आदि दी हुई है जिसके अनुसार पुराणों की प्रामाणिकता का प्रायः निर्णय किया जाता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि "जिस ग्रंथ में गायत्री का अवलंबन करके धर्म्मतत्व का सविस्तर वर्णन हो और वृत्रासुर के वध का पूरा वृत्तांत हो, जिसमें सारस्वत कल्प के बीच नरों और देवताओं की कथा हो" और १८००० श्लोक हों वही भागवत पुराण है। शैव पुराण के उत्तर खंड में लिखा है कि जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र हो वह भागवत है, देवी पुराण नहीं"। इसी प्रकार की व्यवस्था कालिका नामक उपपुराण में भी दी है। यह तो शैव और शाक्त पुराणों का साक्ष्य हुआ। अब वैष्णव पुराणों की व्यवस्था सुनिए। पद्म पुराण में लिखा है कि " सब पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है जिसमें प्रति पद में ऋषियों द्वारा कहा हुआ कृष्ण का माहात्म्य है। इस कथा को परीक्षित की सभा में बैठकर शुकदेव जी ने कहा था"। नारद पुराण में भागवत उसको कहा गया है "जिसके दशम स्कंध में कृष्ण का बाल और कौमारचरित, व्रज में स्थिति, किशोरावस्था में मथुरावास, यौवन में द्वारका-वास और और भूभार-हरण आदि विषय हों"।

देवीभागवत में प्रथम ही त्रिपदा गायत्री है किंतु विष्णु भागवत में नहीं, उसमें केवल 'धीमहि' इतना ही पद आया है। वृत्रासुर के वध की कथा दोनों में है। पर मत्स्यपुराण में बतलाया हुआ सारस्वतकल्प प्रसंग विष्णु भागवत में नहीं है, उसमें पाद्मकल्पप्रसंग है। मत्स्यपुराण में जो लक्षण दिया हुआ है उसमें साम्प्रदायिक भाव की गंध नहीं जान पड़ती। शैव और वैष्णव विद्वानों में इन दोनों पुराणों के विषय में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। दुर्जनमुखचपेटिका, दुर्जनमुखमहाचपेटिका, दुर्जनमुखपदपद्मपादुका आदि कई ग्रंथ इस विवाद में लिखे गए। बात यह है कि ये दोनों पुराण साम्प्रदायिक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। ऐसा जान पतड़ा है कि भागवत नाम का कोई प्राचीन पुराण था जो लुप्त हो गया था। बौद्ध धर्म्म के उपरांत हिंदूधर्म्म की जब फिर नए रूप में स्थापना हुई और शैव वैष्णवों की प्रबलता हुई तब पुराणों में दिए हुए लक्षण के अनुसार वैष्णव पंडितो ने श्रीमद्भागवत की और शैव पंडितों ने देवीभागवत की रचना की। रचना के विचार से यदि देखा जाय तो देवीभागवत की शैली पुराणों के अधिक अनुकूल और भागवत की शैली पांडित्य-पूर्ण काव्य की शैली को लिए हुए है। जिस प्रकार श्रीमद्-भागवत में दार्शनिक भावों की प्रधानता है उसी प्रकार देवी भागवत में तांत्रिक भावों की है। इसमें देवी के गिरिजा, काली, भद्रकाली, महामाया आदिक रूपों की उपासना की है। पार्वती के पीठस्थानों का वर्णन है। भैरव और वैताल विधि की उत्पत्ति और उनकी पूजा की विधि बतलाई गई है। यहाँ तक कि इस में आसाम देश के कामरूप देश और कामाक्षी देवी का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। अस्तु अपने वर्तमान रूप में देवीभागवत ईसा की ६ वीं और ११ वीं शताब्दी के बीच बना होगा।

देवीभोया–संज्ञा पुं० [हिं० देवी + भोयना = भुलाना] देवी को माननेवाला। ओझा। सोखा।

देवीवीर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

देवीसूक्त–संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद शाकलसंहिता का एक सूक्त जिसका देवता देवी है।

देवेंद्र–वि० [सं०] देवताओं का राजा इंद्र।

देवेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का राजा इंद्र। (२) परमेश्वर। (३) महादेव। (४) विष्णु।

देवेशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमेश्वर। (२) विष्णु।

देवेशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) देवी।

देवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं को प्रिय। (२) गुग्गुल। महामेद।

देवेष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा बिजौरा।

देवैया–संज्ञा पुं० [हिं० देना] देनेवाला।

देवोत्तर–संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जो किसी देवता के नाम अलग निकाल दी गई हो। देवता को अर्पित किया हुआ धन।

देवोत्थान–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का शेश की शय्या पर से उठना जो कार्त्तिक शुक्ला एकादशी को होता है।

देवोद्यान–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बगीचे जो चार हैं—नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वतोभद्र। त्रिकांडशेष के अनुसार चार बगीचों के नाम ये हैं—वैभ्राज, चैत्ररथ, मिश्रक, सिध्रकावण।

देवोन्माद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद जिसमें रोगी पवित्र रहता है, सुगंधित फूलों की माला पहनता है, आँखें बंद नहीं करता और संस्कृत बोलता है। यह देवता के कोप

देहकान–संज्ञा पुं० [फा०] (१) किसान । कृषक । (२) गँवार ।

देहकानी–वि० [फा०] गँवारू । ग्रामीण ।

देहत्याग–संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

देहद–संज्ञा पुं० [सं०] पारा ।

देहधारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर को धारण करनेवाला । (२) अस्थि । हाड़ ।

देहधारण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीररक्षा । जीवनरक्षा । (२) जन्म ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

देहधारी–संज्ञा पुं० [सं० देहधारिन्] [स्त्री० देहधारिणी] शरीर को धारण करनेवाला । जिसे शरीर हो । शरीरी ।

देहधि–संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष । चिड़ियों का पंख । डैना ।

देहधृज्–संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर को धारण करनेवाला) वायु ।

देहपात–संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु । मौत ।

क्रि० प्र०—होना ।

देहभुज्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देहाभिमानी जीव । (२) सूर्य्य ।

देहभृत्–संज्ञा पुं० [सं०] जीव ।

देहयात्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मरण । मृत्यु । (२) भरण पोषण । पालन । (३) भोजन ।

देहर–संज्ञा स्त्री० [सं० देवह्रद] वह नीची भूमि जो किसी नदी के किनारे हो और जहाँ नदी के बढ़ने पर पानी आ जाता हो ।

देहरा–संज्ञा पुं० [हिं० देव + घर] (१) देवावास । देवालय । उ०—नैव विहूना देहरा, देव विहूना देव । कबिरा तहाँ बिलंबिया करै अलख की सेव ।—कबीर ।

संज्ञा पुं० [हिं० देह] नरशरीर । नर देह । उ०—कोठे ऊपर दौरना सुख नींदरी न सोय । पुण्ये पाया देहरा ओछी ठौर न खोय ।—कबीर ।

देहरी†*–संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] (१) द्वार की चौखट की वह लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे लाँघते हुए लोग भीतर घुसते हैं । दहलीज़ । उ०—(क) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार ।—तुलसी । (ख) एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरे, एक कर कंज एक कर है किंवार पर ।—पद्माकर । (२) दे० "देहर" ।

देहला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर को पुष्टि देनेवाली) मदिरा । शराब ।

देहली–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार की चौखट की वह लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे लाँघ कर लोग भीतर घुसते हैं । दहलीज़ ।

देहलीदीपक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देहली पर रखा हुआ दीपक जो भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है ।

यौ०—देहली दीपक न्याय = देहली पर रखे हुए दोनों ओर प्रकाश फैलानेवाले दीपक के समान दोनों ओर लगनेवाली बात ।

(२) एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक मध्यस्थ शब्द का अर्थ दोनों ओर लगाया जाता है । उ०—है नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रहलाद को संकट भारी । दास विभीषणै लंक दई निज रंक सुदामा को संपति भारी । द्रौपदी चीर बढ़ायो छहान में पांडव के यश की उजियारी । गर्बिन के खनि गर्व बहावत दीनन के दुख श्रीगिरधारी । (विशेष) ऊपर लिखे हुए सवैये के प्रत्येक चरण में यह अलंकार है । हन्यो, दई, बढ़ायो और बहावत शब्दों का अर्थ दोनों ओर लगता है । इस अलंकार का लक्षण यह है—परै एक पद बीच में दुहु दिस लागै सोय । सो है दीपक देहरी जानत हैं सब कोय ।

देहवंत–वि० [सं० देहवत् का बहु०] जिसके देह हो । जो तनुधारी हो । उ०—(क) देहवंत प्राणी जो कसकवंत होतो कहूँ सोने में सुगंध के सराहिबे को को हतो ।—ठाकुर । (ख) नाक नथुनी के गज मोतिन की आभा, कैधौं देहवंत प्रगटित हिये को हुलास है ।

संज्ञा पुं० वह जो शरीरवान् हो । शरीरधारी व्यक्ति । प्राणी । शरीरी । उ०—संतोष सम शीतल सदा दम देहवंत न लेखिए ।—तुलसी ।

देहवान्–वि० [सं०] शरीरधारी ।

संज्ञा पुं० (१) शरीरधारी व्यक्ति । देही । (२) सजीव प्राणी ।

देहशंकु–संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर का खंभा ।

देहसंचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । लड़की ।

देहसार–संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा धातु ।

देहांत–संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु । मौत ।

क्रि० प्र०—होना ।

देहांतर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरा शरीर । (२) दूसरे शरीर की प्राप्ति । जन्मांतर । (३) मृत्यु । मरण ।

देहात–संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० देहाती] गाँव । गँवई । ग्राम ।

देहाती–वि० [फा० देहात] (१) गाँव का । गाँव में होनेवाला । जैसे, देहाती चीज़ । (२) गाँव में रहनेवाला । ग्रामीण । (३) गँवार ।

देहातीत–वि० [सं०] (१) जो शरीर से परे हो । जो देह से स्वतंत्र हो । (२) जिसे देहाभिमान न हो । जिसे शरीर की ममता न हो ।

देहात्मवादी–संज्ञा पुं० [सं० देहात्मवादिन्] वह जो शरीर के

देशराज–संज्ञा पुं० [सं०] आल्हा ऊदल के पिता का नाम जो राजा परमाल (परमर्दिदेव) के सामंतों में थे।

देशस्थ–वि० [सं०] देश में स्थित। देश में रहनेवाला।

संज्ञा पुं० महाराष्ट्र ब्राह्मणों का एक भेद।

विशेष—महाराष्ट्र ब्राह्मणों में दो भेद होते हैं—कोंकणस्थ और देशस्थ।

देशांकी–संज्ञा स्त्री० [?] एक रागिनी हनुमत के मत से जिसका स्वर ग्राम यों है—ग म प ध नी सा ग, अथवा ग म प ध नी सा रे ग।

देशांतर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्य देश। विदेश। परदेस। (२) भूगोल में ध्रुवों से होकर उत्तर दक्षिण गई हुई किसी सर्व-मान्य मध्य रेखा से पूर्व वा पश्चिम की दूरी। लंबांश।

विशेष—भारतवर्ष में पहले यह मध्य रेखा लंका या उज्जयिनी से सुमेरु तक मानी जाती थी। अब यह यूरप और अमेरिका के भिन्न भिन्न स्थानों से गई हुई मानी जाती है। इस मध्य रेखा से किसी स्थान की दूरी उस कोण के अंशों के हिसाब से बतलाई जाती है जो उस स्थान पर से हो कर गई हुई रेखा ध्रुव पर मध्य रेखा से मिल कर बनाती है।

देशांश–संज्ञा पुं० दे० "देशांतर"।

देशाका–संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी। इसका सरगम यह है—ग म प ध नि स +

देशाखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंदोल की दूसरी रागिनी है। यह षाडव जाति की है। स्वर गांधार होता है। गाने का समय वसंत ऋतु का मध्याह्न है।

देशाचार–संज्ञा पुं० [सं०] देश की चाल या व्यवहार।

देशाटन–संज्ञा पुं० [सं०] देशभ्रमण। भिन्न भिन्न देशों की यात्रा।

देशावकाशिक (व्रत)–संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक शिक्षाव्रत जिसमें स्वार्थ के लिये सब दिशाओं में आने जाने के जो प्रतिबंध हैं उनको और भी संक्षिप्त और कठिन करके पालन किया जाता है।

देशिक–संज्ञा पुं० [सं०] पथिक। बटोही।

देशिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूची। (२) तर्जनी अँगुली।

देशी–वि० [सं० देशीय] (१) देश का। देश संबंधी। (२) स्वदेश का। अपने देश का। (३) अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ। जैसे, देशी चीनी, देशी माल।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक रागिनी जो हनुमत् के मत से दीपक राग की भार्य्या है। इसमें पंचम वर्जित है। इसके गाने का समय ग्रीष्म काल का मध्याह्न है। यह मधुमाधव, सारंग पहाड़ी और टोड़ी के योग से बनी है। (२) संगीत के दो भेदों में से एक।

विशेष—संगीतदर्पण में नाचने गाने और बजाने तीनों को संगीत कहा है। संगीत दो प्रकार का है–मार्ग और देशी।

(३) तांडव नृत्य का एक भेद जिसमें अंगविक्षेप अधिक और अभिनय कम होता है।

देशीय–वि० दे० "देशी"।

देस–संज्ञा पुं० दे० "देश"।

देसकार–संज्ञा पुं० दे० "देशकार"।

देसवाल–वि० [हिं० देस + वाला] स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं (मनुष्य के लिये)। जैसे, देसवाल बनिया।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का पटसन।

देसावर–संज्ञा पुं० [सं० देश + अपर] अन्य देश। विदेश। परदेस। देशांतर। जैसे, देसावर का माल।

देसावरी–वि० [हिं० देसावर] देसावर का। दूसरे देश से आया हुआ। (वस्तु या माल के लिये)। जैसे, देसावरी माल।

देसी–वि० [सं० देशीय] (१) स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं। जैसे, देसी आदमी, देसी माल।

देहंभर–वि० [सं०] अपने ही शरीर का पोषण करनेवाला।

देह–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० देही] (१) शरीर। तन। बदन। उ०—(क) नाम एक तनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि।—तुलसी। (ख) अपराध बिना ऋषि देह धरी।—केशव। (ग) है हिय रहति हई छुई नई युक्ति यह जोय। आँखिन आँखि लगी रहै देह दूबरी होय।—बिहारी।

विशेष—शरीर आरंभ काल में कुछ दिनों तक बराबर बढ़ता है इससे उसका नाम देह (दिह = वृद्धि) है। न्याय के मत से पार्थिव देह दो प्रकार की होती है—योनिज और अयोनिज। जरायुज और अंडज योनिज तथा स्वेदज और उद्भिज्ज अयोनिज कहलाते हैं। शुक्र शोणित आदि की योजना से स्वतंत्र अलौकिक देह को (जैसे, नारद आदि की) भी अयोनिज कहते हैं। इसी प्रकार सांख्य आदि के मत से स्थूल और सूक्ष्म आदि भी शरीर के भेद माने गए हैं। विशेष—दे० "शरीर"।

मुहा०—देह छूटना = जीवन समाप्त होना। मृत्यु होना। देह छोड़ना = मरना। उ० मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा।—तुलसी। देह धरे कर यह फल भाई। भजहु राम सब काम बिहाई।—तुलसी। देह लेना = दे० "देह धरना।" देह बिसारना = तन की सुध न रखना। होश हवास न रखना।

(२) शरीर का कोई अंग। (३) जीवन। जिंदगी। उ०—(क) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—तुलसी। (ख) जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई।—तुलसी। (४) विग्रह। मूर्त्ति। चित्र।

संज्ञा पुं० [फा०] गाँव। खेड़ा। मौजा। जैसे, गंगाअहीर, साकिन देह........।

यौ०—देहकान। देहात।

दैवश्राद्ध। (२) देवता के द्वारा होनेवाला। जैसे, दैवगति, दैवघटना। (३) देवता को अर्पित।

संज्ञा पु० (१) वह अर्जित शुभाशुभ कर्म जो फल देनेवाला हो। प्रारब्ध। अदृष्ट। भाग्य। होनेवाली बात या फल। होनी।

विशेष—मत्स्यपुराण में जब मनु ने मत्स्य से पूछा कि दैव और पुरुषकार दोनों में कौन श्रेष्ठ है, तब मत्स्य ने कहा "पूर्व जन्म के जो भले बुरे कर्म अर्जित रहते हैं वे ही वर्तमान जन्म में दैव या भाग्य होते हैं। दैव यदि प्रतिकूल हो तो पौरुष से उसका नाश हो सकता है। यदि पूर्व के कर्म अच्छे हों तो भी बिना पौरुष के वे कुछ भी फल नहीं दे सकते। अतः पौरुष श्रेष्ठ है।

यौ०—दैवगति। दैवज्ञ।

(२) विधाता। ईश्वर। जैसे, दुर्बल को दैव भी सताता है।

मुहा०—(किसी को) दैव लगना = (किसी पर) ईश्वर का कोप होना। बुरे दिन आना। शामत आना।

(३) आकाश। आसमान।

मुहा०—†दैव बरसना = मेंह बरसना। पानी बरसाना।

दैवकोविद–संज्ञा पु० [सं०] (१) देवताओं का विषय जाननेवाला। (२) दैवज्ञ। ज्योतिषी।

दैव गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ईश्वरीय बात। दैवी घटना। (२) भाग्य। कर्म। अदृष्ट। प्रारब्ध।

दैवचिंतक–संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी।

दैवज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दैवज्ञा] (१) ज्योतिषी। गणक। (२) बंगदेश में ब्राह्मणों की एक जाति।

दैवतंत्र–वि० [सं०] भाग्याधीन।

दैवत–वि० [सं०] देवता संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) देवता संबंधी प्रतिमा आदि। (२) देवता। (३) निरुक्त का वह भाग जिससे वेदमंत्रों के देवताओं का परिचय होता है।

दैवतपति–संज्ञा पु० [सं०] इंद्र।

दैवतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करने में उँगलियों के अग्रभाग का नाम। उँगलियों की नोक।

दैवदुर्विपाक–संज्ञा पु० [सं०] दैव की प्रतिकूलता। भाग्य की खोटाई।

दैवयुग–संज्ञा पु० [सं०] देवताओं का युग जो मनुष्यों के चारों युगों के बराबर होता है।

विशेष—मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक रात दिन होता है।

दैवयोग–संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का आकस्मिक फल। संयोग। इत्तिफ़ाक। जैसे, दैवयोग से वह हमें मार्ग ही में मिल गया।

दैवल–संज्ञा पुं० [सं०] देवल ऋषि की संतति।

दैवलेखक–संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैववर्ष–संज्ञा पु० [सं०] देवताओं का वर्ष जो १३१५२१ सौर दिनों का होता है।

दैववश–क्रि० वि० [सं०] संयोग से। दैवयोग से। अकस्मात्। कदाचित्।

दैववशात्–क्रि० वि० दे० "दैववश"।

दैववाणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाशवाणी। (२) संस्कृत।

दैववादी–संज्ञा पु० [सं०] (१) भाग्य के भरोसे रहनेवाला। पुरुषार्थ न करनेवाला। (२) आलसी। निरुद्योगी।

दैवविद्–संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैवविवाह–संज्ञा पु० [सं०] स्मृतियों में लिखे आठ प्रकार के विवाहों में से एक।

विशेष—ज्योतिष्टोम आदि बड़ा यज्ञ करनेवाला यदि उसी यज्ञ के समय ऋत्विज या पुरोहित को अलंकृता कन्या दान कर दे तो वह दैवविवाह हुआ।

दैवश्राद्ध–संज्ञा पु० [सं०] वह श्राद्ध जो देवताओं के उद्देश्य से हो।

दैवसर्ग–संज्ञा पु० [सं०] देवताओं की सृष्टि।

विशेष—इसके अंतर्गत आठ भेद हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐंद्र, पैत्र, गांधर्व, यक्ष, राक्षस और पैशाच। (सांख्यकारिका)

दैवाकरि–संज्ञा पु० [सं०] दिवाकर अर्थात् सूर्य के पुत्र, (१) शनि, (२) यम।

दैवाकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य की पुत्री) जमुना नदी।

दैवागत–वि० [सं०] दैवी। आकस्मिक। सहसा होनेवाला।

दैवात्–क्रि० वि० [सं०] अकस्मात्। दैवयोग से। इत्तिफ़ाक से। अचानक।

दैवात्यय–संज्ञा पु० [सं०] दैवकृत उत्पात। अचानक आपसे आप होनेवाला अनर्थ।

दैवारिप–संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

दैविक–वि० [सं०] (१) देवता संबंधी। देवताओं का। जैसे, दैविक श्राद्ध। (२) देवताओं का किया हुआ। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम-राज्य काहुइ नहिं व्यापा।—तुलसी।

दैवी–वि० स्त्री० [सं०] (१) देवता संबंधिनी। (२) देवताओं की की हुई। देवकृत। जैसे, दैवी लीला। (३) आकस्मिक। प्रारब्ध या संयोग से होनेवाली। जैसे, दैवी घटना। (४) सात्विक। जैसे, दैवी संपत्ति।

संज्ञा स्त्री० (१) दैव-विवाह द्वारा ब्याही हुई पत्नी। (२) एक वैदिक छंद।

दैवी गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ईश्वर की की हुई बात (२) प्रारब्ध। भावी। होनहार। अदृष्ट।

दैव्य–वि० [सं०] देवता संबंधी।

अतिरिक्त आत्मा को न माने, शरीर ही को आत्मा माने, जैसा कि चार्वाक मानता है।

देहाध्यास–संज्ञा पुं० [सं०] देह धर्म को ही आत्मा समझने का भ्रम।

देहिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कीड़े का नाम।

देही–संज्ञा पुं० [सं० देहिन्] (देह को धारण करनेवाला) जीवात्मा। आत्मा।

विशेष—देह चैतन्य नहीं है, पर देही है। आत्मा देह के आश्रय से सुख दुःख आदि का भोगनेवाला होता है। पर शुद्ध देही नित्य, अवध्य आदि है। दे० "आत्मा", "जीवात्मा"।

देहेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] देहाधिष्ठाता आत्मा।

दैंती†–संज्ञा स्त्री० दे० "दरॅती"।

दैजा†–संज्ञा पुं० दे० "दहेज", "दायजा"।

दैतेय–वि० [सं०] दिति से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) दिति की संतति। दैत्य। (२) राहु का एक नाम।

दैत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिति की संतति। कश्यप के वे पुत्र जो दिति नाम्नी स्त्री से पैदा हुए। असुर।

(२) लंबे डील वा असाधारण बल का मनुष्य। जैसे, वह पूरा दैत्य है। (३) अति करनेवाला आदमी। जैसे, वह खाने में दैत्य है। (४) दुराचारी। नीच। दुष्ट व्यक्ति। (५) लोहा।

दैत्यगुरु–संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य्य।

दैत्यदेव–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के देवता (१) वरुण, (२) वायु।

दैत्यद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के पुत्रों में से एक। (महाभारत)

दैत्यधूमिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी की तांत्रिक उपासना में एक मुद्रा जिसमें उलटी हथेलियों को मिलाकर विशेष विशेष उँगलियों को एक दूसरे से फँसाते हैं।

दैत्यपुरोधा–संज्ञा पुं० [सं० दैत्यपुरोधस्] दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य्य।

दैत्यमाता–संज्ञा स्त्री० [सं० दैत्यमातृ] दैत्यों की माता दिति।

दैत्यमेदज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुग्गुल। गूगल। (२) पृथ्वी।

दैत्ययुग–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों का युग जो देवताओं के बारह हजार वरसों वा मनुष्यों के चार युगों के बराबर होता है।

दैत्यसेना–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रजापति की कन्या जो देवसेना की बहिन थी। यह केशी दानव को बहुत चाहती थी। केशी इसे हर ले गया था और उसने इसके साथ विवाह किया था।

दैत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दैत्य जाति की स्त्री। (२) मुरा। कपूरकचरी। (३) चंडौषधि। (४) मद्य। मदिरा।

दैत्यारि–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के शत्रु (१) विष्णु, (२) इंद्र, (३) देवता मात्र।

दैत्याहोरात्र–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों का एक रात दिन जो मनुष्य के वर्ष के बराबर होता है।

दैत्येंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दैत्यों का राजा। (२) गंधक।

दैत्येज्य–संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य्य।

दैधिषव्य–संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री के दूसरे पति का पुत्र।

दैनंदिन–वि० [सं०] प्रति दिन का। दिन दिन होनेवाला। नित्य का।

क्रि० वि० (१) प्रति दिन। रोज रोज। (२) दिनो दिन।

दैन–संज्ञा पुं० [सं०] दीन होने का भाव। दीनता।

वि० [सं०] दिन संबंधी।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] दे० "देन"।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में विशेषणवत् भी होता है जैसे, सुखदैन=सुखदेनेवाला। उ०—नैन सुखदैन मन मैन मलय लेखिए।—केशव।

दैनिक–वि० [सं०] (१) प्रति दिन का। रोज रोज का। (२) जो रोज रोज हो। नित्य होनेवाला। (३) जो एक दिन में हो। (४) दिन संबंधी।

संज्ञा पुं० एक दिन का वेतन। रोजाना मजदूरी।

दैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीनता। दरिद्रता। (२) गर्व वा अहंकार के प्रतिकूल भाव। विनीत भाव। अपने को तुच्छ समझने का भाव। (३) काव्य के संचारी भावों में से एक जिसमें दुःखादि से चित्त अति नम्र हो जाता है। कातरता।

दैयत†–संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दैत्य। दानव। राक्षस। असुर। उ०—(क) वह हरी हठि हरिनाच्छ दैयत देखि सुंदर देह सो।—केशव। (ख) आपन ही रँग रच्यो साँवरो शुक ज्यों बैठि पढ़ावै। दासी हुती असुर-दैयत की अब कुल-वधू कहावै।—सूर।

दैया ‡–संज्ञा पुं० [हिं० दई] दई। दैव।

मुहा०—दैयन कै=दई दई करके। किसी प्रकार। कठिनता से।

अव्य० आश्चर्य्य, भय या दुःख सूचक शब्द जिसे स्त्रियाँ बोलती हैं। हे दई! हे परमेश्वर! उ०—बूझिहैं चबैया तब कैहौं कहा, दैया! इत पारिगो को, मैया, मेरी सेज पै कन्हैया को।—पद्माकर।

संज्ञा स्त्री० † दे० "दाई"।

दैयागति ‡–संज्ञा स्त्री० दे० "दैवगति"।

दैर्घ्य–संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घता। लंबाई। बड़ाई।

दैव–वि० [सं०] [स्त्री० दैवी] (१) देवता-संबंधी। जैसे, दैव कार्य्य,

दोचन–संज्ञा स्त्री० [हिं० दबोचन] (१) दुबधा। असमंजस। (२) दबाव। दबाव में पड़ने का भाव। (३) कष्ट। दुःख। उ०—भवन मोहिं भारी सो लागत मरति सोचही सोचन। ऐसी गति मेरी तुम आगे करत कहा जियदोचन।—सूर।

दोचना–क्रि० स० [हिं० दोच] दबाव डालना। कोई काम करने के लिये बहुत जोर देना।

दोचल्ला–संज्ञा पुं० [हिं० दो+चल्ला (पल्ला) ?] वह छाजन जो बीच में से उभरी हुई और दोनों ओर ढालुई हो। दोपखिया छाजन।

दोचित्ता–वि० [हिं० दो+चित्त] [स्त्री० दोचित्ती] जिसका चित्त एकाग्र न हो, दो कामों या बातों में बँटा हो। उद्विग्न-चित्त।

दोचित्ती–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+चित्त] "दोचित्त" होने का भाव। चित्त की उद्विग्नता। ध्यान का दो कामों या बातों में बँटा रहना।

दोचोबा–संज्ञा पुं० [हिं० दो+फा० चोब] वह बड़ा खेमा जिसमें दो दो चोबें लगती हों।

दोज†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] पक्ष की द्वितीया तिथि। दूज। उ०—दोज ससी ज्यौं प्रेम, राजत स्याम प्रकास में। आड़ी भीत जु नेम, ता ऊपर ह्वै देख ले।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में अष्टताल का एक भेद।

दोजई–संज्ञा स्त्री० [देश०] नक्काशों का एक औजार जो गोलाकार वृत्त बनाने के काम में आता है। यह छेनी के आकार का होता है।

दोजख–संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार नरक जिसके सात विभाग हैं और जिसमें दुष्ट तथा पापी मनुष्य मरने के उपरांत रखे जाते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके फूल सुंदर होते हैं।

दोजखी–वि० [फा०] (१) दोजख संबंधी, दोजख का। (२) पापी। बहुत बड़ा अपराधी जो दोजख में भेजे जाने के योग्य हो।

दोजर्बी–संज्ञा स्त्री० [फा०] दोनली बंदूक।

दोजा–संज्ञा पुं० [हिं० दो] वह पुरुष जिसका दूसरा विवाह हो। दोबारा ब्याहा हुआ आदमी। कल्याण-भार्य्य।

†वि० दे० "दूजा"।

दोजानू–क्रि० वि० [फा०] घुटनों के बल या दोनों घुटने टेककर (बैठना)।

दोजियां–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+जी या जीव] गर्भवती स्त्री। वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो।

दोजीरा–संज्ञा पुं० [हिं० दो+जीरा] एक प्रकार का चावल।

दोजीया–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+जीव] गर्भवती स्त्री। वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो।

दोतां–संज्ञा स्त्री० दे० "दावात"।

दोतरफा–वि० [फा०] दोनों तरफ का। दोनों ओर संबंधी।

क्रि० वि० दोनों तरफ। दोनों ओर।

दोतर्फा–वि० पुं० दे० "दोतरफा"।

दोतला–वि० दे० "दोतल्ला"।

दोतल्ला–वि० [हिं० दो+तल] दो खंड का। दो मंजिला। जैसे, दोतल्ला मकान।

दोतही–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+तह] एक प्रकार की देसी मोटी चादर जो दोहरी करके बिछाने के काम में आती है। दोसूती।

दोता–संज्ञा पुं० दे० "दोतही"।

दोतारा–संज्ञा पुं० [हिं० दो+तार (सूत)] एक प्रकार का दुशाला।

संज्ञा पुं० [हिं० दो+तार (धातु)] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा। एकतारे की अपेक्षा इसमें यह विशेषता होती है कि इसमें बजाने के लिये एक के बदले दो तार होते हैं।

विशेष—दे० "एकतारा"।

दोदना†–क्रि० स० [हिं० दो (दोहराना)] किसी की कही प्रत्यक्ष बात से इनकार करना। प्रत्यक्ष बात से मुकरना।

दोदरी–संज्ञा स्त्री० [नेपाली] एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जो दारजिलिंग, सिकिम, भूटान और पूर्वी बंगाल में पाया जाता है। इसकी लकड़ी काली, चिकनी और कड़ी होती है और इमारत के काम में आती है।

दोदल–संज्ञा पुं० [सं० द्विदल] (१) चने की दाल या तरकारी। (२) कचनार की कलियाँ जिनकी तरकारी भी बनती है और अचार भी पड़ता है।

दोदस्ता खिलाल–संज्ञा पुं० [फा०] ताश के तुरुप के खेल में किसी एक खिलाड़ी का एक साथ बाकी दोनों खिलाड़ियों को मात करना।

दोदा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा कौवा (पक्षी) जिसकी लंबाई डेढ़ दो हाथ होती है। इसका रंग काला, तथा चोंच और पैर चमकीले होते हैं। यह गाँव, देहात या जंगलों में बहुत होता है। इसकी आदतें मामूली कौवे की सी होती हैं। यह ऊँचे वृक्षों पर घोंसला बनाता है और पूस से फागुन तक अंडे देता है। एक बार में इसके पाँच अंडे होते हैं।

दोदाना–क्रि० स० [हिं० दोदना] किसी को दोदने में प्रवृत्त करना। दोदने का काम दूसरे से कराना।

दोदामी–संज्ञा स्त्री० दे० "दुदामी"।

दोदिन–संज्ञा पुं० [देश०] रीठे की जाति का एक पेड़ जिसके फलों का व्यवहार साबुन की तरह कपड़े साफ करने में होता है। इसके पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं और बीज दवा के काम में आते हैं।

संज्ञा पुं० (१) दैव। (२) भाग्य।
दैहिक–वि० [सं०] (१) देह संबंधी। शारीरिक। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा।—तुलसी। (२) देह से उत्पन्न।
दोंकना†–क्रि० अ० [देश०] गुर्राना।
दोंकी–संज्ञा स्त्री० [देश०] धौंकनी।
दोंचा†–संज्ञा स्त्री० दे० "दोच"।
दोंचन†–संज्ञा स्त्री० दे० "दोचना"।
दोंचना†–क्रि० स० [हिं० दोचन] दबाव में डालना। उ०—तंदुल माँगि दोंचि के लाई सो दीन्हों उपहार।—सूर।
दोंर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।
दो–वि० [सं० द्वि] एक और एक। तीन से एक कम।
मुहा०—दो एक=कुछ। थोड़े। जैसे, उनसे दो एक बातें करके चले आवेंगे। दो चार=कुछ। थोड़े। जैसे, वहाँ ज्यादः नहीं सिर्फ दो चार आदमी रहेंगे। दो चार होना=भेंट होना। मुलाकात होना। आँखें दो चार होना=सामना होना। दो दिन का=बहुत ही थोड़े समय का। दो दो दाने को फिरना=बहुत ही दरिद्र दशा में, दूसरों से माँगते हुए फिरना। दो दो बातें करना=संक्षिप्त प्रश्नोत्तर करना। कुछ बातें पूछना और कहना। दो नावों पर पैर रखना=दो पक्षों का अवलंबन करना। दो पदार्थों का आश्रय लेना। उ०—दुइ तुरंग दुइ नाव पावँ धरि ते कहि कवन न मूठे।—सूर। किस के दो सिर हैं?=किसे फालतू सिर है? किस में असंभव सामर्थ्य है। कौन इतना समर्थ है कि मरने से नहीं डरता। उ०—अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर, केहि जम चह लीना?—तुलसी।
दो-आतशा–वि० [फा०] जो दो बार भभके में खींचा या चुआया गया हो। दो बार का खींचा या उतारा हुआ। जैसे, दो-आतशा शराब, दो-आतशा गुलाब।
विशेष—एक बार अर्क या शराब आदि खींच चुकने पर कभी कभी उसको बहुत तेज करने के लिये फिर से खींचते या चुआते हैं। ऐसे ही अर्क या शराब आदि को दो-आतशा कहते हैं।
दोआब–संज्ञा पुं० [फा०] दो नदियों के बीच का प्रदेश। किसी देश का वह भाग जो दो नदियों के बीच में पड़ता हो।
दोआबा–संज्ञा पुं० दे० "दोआब"।
दोई†–वि० दे० "दो"।
संज्ञा पुं० दे० "दो"।
दोउ*†–वि० [हिं० दो] दोनों।
दोऊ*†–वि० [हिं० दो] दोनों।
दोक–संज्ञा पुं० [हिं० दो+का (प्रत्य०)] दो वर्ष की उम्र का बछेड़ा।
दोकड़ा†–संज्ञा पुं० दे० "टुकड़ा"।

दोकरा†–संज्ञा पुं० दे० "टुकड़ा"।
दोकला–संज्ञा पुं० [हिं० दो+कल] (१) दो कल या पेंचवाला ताला। वह ताला जिसके अंदर दो कलें या पेंच होते हैं। (२) एक प्रकार की मजबूत बेड़ी।
दोकोहा–संज्ञा पुं० [हिं० दो+कोह=कूबर] दो कूबरवाला ऊँट। वह ऊँट जिसकी पीठ पर दो कूबर हों।
दोखंभा–संज्ञा पुं० [हिं० दो+खंभा] एक प्रकार का नैचा जिसमें कुल्फी नहीं होती। यह नैचा काट कर लोहे की कमानी पर बनाया जाता है।
दोख*†–संज्ञा पुं० दे० "दोष"।
दोखना*†–क्रि० स० [हिं० दोष+ना (प्रत्य०)] दोष लगाना। ऐब लगाना।
दोखी*†–संज्ञा पुं० [हिं० दोष] (१) दे० "दोषी"। (२) ऐबी। जिसमें कोई ऐब हो। (३) शत्रु। बैरी। (डिं०)
दोगंग–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+गंगा] दो नदियों के बीच का प्रदेश।
दोगंडी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+गंडी=गोल घेरा या चिह्न] (१) वह चित्ती या इमली का चीआँ जिसे लड़के जूआ खेलने में बेई-मानी करने के लिये दोनों ओर से घिस लेते हैं और जिसके दोनों ओर का काला अंश निकल जाता और सफेद अंश निकल आता है। (२) झगड़ा बखेड़ा करनेवाला मनुष्य। फसादी। उत्पाती। उपद्रवी।
दोगर†–संज्ञा पुं० [हिं० डूँगर=पहाड़ी] डुग्गर देश का निवासी जिसे डोगरा कहते हैं।
दोगला–संज्ञा पुं० [फा० दोगलः] [स्त्री० दोगली] (१) वह मनुष्य जो अपनी माता के असली पति से नहीं बल्कि उसके यार से उत्पन्न हुआ हो। जारज। (२) वह जीव जिसके माता-पिता भिन्न भिन्न जातियों के हों। जैसे, देशी और विलायती से उत्पन्न दोगला कुत्ता।
संज्ञा पुं० [हिं० दो+कल] बाँस की कमचियों का बना हुआ एक गोल और कुछ गहरा (टोकरी का सा) पात्र जिससे किसान लोग पानी उलीचते हैं।
दोगा–संज्ञा पुं० [सं० द्विक, हिं० दुका] (१) एक प्रकार का लिहाफ जो मोटे देशी कपड़े पर बेल बूटे छाप कर बनाया जाता है। (२) पानी में घोला हुआ चूना जिससे सफेदी की जाती है।
दोगाड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० दो०+?] दोनली बंदूक।
दोगुना–वि० दे० "दुगना"।
दोचंद–वि० [फा०] दुगना।
दोच–संज्ञा स्त्री० [हिं० दबोच] (१) दुबधा। असमंजस। (२) कष्ट। दुःख। उ०—मनहि यह परतीत आई दूरि हरिहौ दोच। सूर प्रभु हिलि मिलि रहौंगी लाज डारों मोच।—सूर। (३) दबाव। दबाए जाने का भाव।

मुहा०—दोपहर ढलना = दोपहर के उपरांत और समय बीतना।

दोपहरिया †–संज्ञा स्त्री० दे० "दोपहर"।

दोपहरी †–संज्ञा स्त्री० दे० "दोपहर"।

दोपीठा–वि० [हिं० दो + पीठ] दोरुखा। दोनों ओर समान रंग रूप का।

संज्ञा पु० कागज आदि का एक ओर छपने के उपरांत दूसरी ओर छपना (प्रेस)।

दोपौवा–संज्ञा पुं० [हिं० दो + पाव] (१) पान की आधी ढोली। (*तंबोली*)। (२) किसी वस्तु का आधा।

दोप्याजा–संज्ञा पु० [फा०] एक प्रकार का पका हुआ मांस जिसमें तरकारी नहीं पड़ती और प्याज दो बार पड़ता है।

दोफसली–वि० [हिं० दो + अ० फसल + ई० (प्रत्य०)] (१) दोनों फसलों के संबंध का। जैसे, दोफसली जमीन। (२) जो दोनों ओर लग सके। दोनों ओर काम देने योग्य। जैसे, दोफसली बात।

दोवल–संज्ञा पु० [?] दोष। अपराध। उ०—(क) दोवल कहा देति मोहिं सजनी तू तो बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतै कीन्हीं रहति न तेरी आन।—सूर। (ख) दोवल देति सबै मोही को इन पठयो मैं आयो।—सूर।

क्रि० प्र०—देना।

दोबारा–क्रि० वि० [फा०] दूसरी बार। दूसरी दफा। एक बार हो चुकने के उपरांत फिर एक बार।

संज्ञा स्त्री० [फा०]. (१) दो-आतशा शराब। (२) दो-आतशा अरक आदि। (३) दो बार साफ की हुई चीनी। (४) एक बार तैयार करने के उपरांत उसी तैयार चीज से फिर दूसरी बार तैयार की हुई चीज।

दोबाला–वि [फा०] दूना। दुगना।

दोभाषिया–संज्ञा पु० दे० "दुभाषिया"।

दोमंजिला–वि० [फा०] दो खंड का। दोखंडा। जिसमें दो मंजिलें हों। जैसे, दोमंजिला मकान।

दोमट–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + मिट्टी] वह भूमि जिसकी मिट्टी में कुछ बालू भी मिला हो। दूमट भूमि।

दोमहला–वि० [हिं० दो + महल] दो खंड का। दो मंजिला। जैसे, दोमहला मकान।

दोमरगा–संज्ञा पु० [हिं० दो + मर्ग] एक प्रकार का देशी मोटा कपड़ा जिसकी जनानी धोतियाँ बनाई जाती हैं। यह मिर्जापुर में बहुत बनता है।

दोमुहाँ–वि० [हिं० दो + मुँह] (१) दो मुँहवाला। जिसे दो मुँह हों। जैसे, दोमुँहा साँप। (२) दोहरी चाल चलने या बात करनेवाला। कपटी।

दोमुहाँ साँप–संज्ञा पुं० [हिं० दो + मुहाँ + साँप] (१) एक प्रकार का साँप जो प्रायः हाथ भर लंबा होता है और जिसकी दुम मोटी होने के कारण मुँह के समान ही जान पड़ती है। न तो इसमें विष होता है और न यह किसी को काटता है। इसके विषय में लोगों में प्रसिद्ध है कि छ महीने तक इसका मुँह एक ओर रहता है और छ महीने इसकी दुम का सिरा मुँह बन जाता है और पहलेवाला मुँह दुम बन जाता है। (२) दो तरह की बातें कहनेवाला। कुटिल। कपटी।

दोमुही–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + मुँह] सोनारों का एक औजार जो नकाशी के काम में आता है।

दोय*†–वि० (१) दे० "दो"। (२) दे० "दोनों"।

संज्ञा पु० दे० "दो"।

दोयम–वि० [फा०] दूसरा। दूसरे नंबर का। जो क्रम में दो के स्थान पर हो।

दोयरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली पेड़ जो दारजिलिंग के जंगलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी सफेद और मजबूत होती है और संदूक आदि बनाने तथा इमारत के काम में आती है। इसकी लकड़ी का कोयला भी बनाया जाता है जो बहुत देर तक ठहरता है।

दोयल–संज्ञा पु० [देश०] बया पक्षी।

दोरंगा–वि० [हिं० दो + रंग] (१) दो रंग का। जिसमें दो रंग हों। जैसे, दोरंगा किनारा, दोरंगा कागज। (२) जो दो-मुहाँ या दो-तरफा हो। जो दोनों ओर लग या चल सके। दोनों पक्षों में आ सकनेवाला। (३) जो व्यभिचार से उत्पन्न हुआ हो। वर्णसंकर। दोगला। (क्व०)

दोरंगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + रंग + ई (प्रत्य०)] (१) दोरंगे या दोमुँहे होने का भाव। दोनों ओर चलने या लगने का भाव। (२) छल। कपट।

दोरा†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दो बारा जोती हुई जमीन। वह जमीन जो दो दफे जोती गई हो।

दोरदंड*†–वि० दे० "दुर्दंड"।

दोरस†–संज्ञा पुं० दे० "दोमट"।

दोरसा–वि० [हिं० दो + रस] दो प्रकार के स्वाद या रसवाला। जिसमें दो तरह के रस या स्वाद हों।

संज्ञा पु० एक प्रकार का पीने का तमाकू जिसका धूआँ कड़ुआ और मीठा मिला हुआ होता है।

दोरा †–संज्ञा पु० [देश०] हल की मुठिया के पास लगी हुई बाँस की वह नली जिसमें बोने के लिये बीज डाला जाता है। माला।

दोराहा–संज्ञा पु० [हिं० दो + राह] वह स्थान जहाँ से आगे की ओर दो मार्ग जाते हों।

दोरी †–संज्ञा स्त्री० दे० "डोरी"।

दोदिला-वि० [हिं० दो+दिल] जिसका मन दो कामों या बातों में बँटा हो, एकाग्र न हो। जिसका चित्त एक बात पर जमा न हो बल्कि दो तरफ बँटा हो। दोचित्ता।

दोदिली-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+दिल] दोदिला होने का भाव। चित्त की अस्थिरता। दोचित्ती।

दोध-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दोधी] (१) ग्वाला। अहीर। (२) बछड़ा। गाय का बच्चा। (३) वह कवि जो पुरस्कार के लिये कविता करता हो।

दोधक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसमें तीन भगण और अंत में दो गुरुवर्ण होते हैं। इसका दूसरा नाम 'बंधु' भी है। उ०—भागु न गो दुहि दे नँदलाला। पाथि गहे कहतीं ब्रजबाला। दोध करैं सब आरत बानी। या मिस लै घर जायँ सयानी।

दोधार-संज्ञा पुं० [हिं० दो+धार] भाला। बरछा। (डिं०)

दोधारा-वि० [हिं० दो+धार] [स्त्री० दोधारी] दोहरी बाढ़ का। जिसके दोनों ओर धार या बाढ़ हो।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का थूहर।

दोन-संज्ञा पुं० [हिं० दो] दो पहाड़ों के बीच की नीची जमीन।

संज्ञा पुं० [हिं० दो+नद] (१) दो नदियों के बीच की जमीन। दोआबा। (२) दो नदियों का संगम स्थान। (३) दो नदियों का मेल। (४) दो वस्तुओं की संधि वा मेल। उ०—तिय तिथि तरनि किशोर वय पुन्यकाल सम दोन। काहू पुन्यनि पाइयत बैस संधि सक्रोन।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] काठ का वह लंबा और बीच से खोखला टुकड़ा जिससे धान के खेतों में सिंचाई की जाती है। यह धान कूटने की ढेंकली के आकार का होता है और उसी की तरह जमीन पर लगा रहता है। पानी लेने के लिये इसका एक सिरा बहुत चौड़ा होता है जो ताल में रहता है। इस सिरे को पहले पानी में डुबाते हैं और जब उसमें पानी भर जाता है तब उसे ऊपर की ओर उठाते हैं जिससे उसका दूसरा सिरा नीचे हो जाता है और उसके खोखले मार्ग से पानी नाली में चला जाता है।

दोनली-वि० [हिं०] दो+नल] दो नालवाली। जिसमें दो नालें हों। जैसे, दोनली बंदूक।

दोना-संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० दोनी] पत्तों का बना हुआ कटोरे के आकार का छोटा गहरा पात्र जिसमें खाने की चीजें आदि रखते हैं। उ०—कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।—तुलसी।

मुहा०—दोना चढ़ाना=किसी की समाधि आदि पर फूल मिठाई चढ़ाना। दोना देना=(१) दोना चढ़ाना। (२) अपने भोजन के थाल में से कुछ भोजन किसी को देना जिससे देनेवाले की प्रसन्नता और पानेवाले का सम्मान प्रगट होता है। दोना खाना या चाटना=बाजार की मिठाई आदि खाना। दोनों की चाट पड़ना=बाजारी भोजन का चस्का पड़ना।

संज्ञा पुं० दे० "दौना" (मरुवा)

दोनिया †-संज्ञा स्त्री० [हिं० दोना का स्त्री० अल्प०] छोटा दोना। उ०—यक दोनिया महँ दियो बतासा। कह्यो देहु यक यक सब पासा।—रघुराज।

दोनी †-संज्ञा स्त्री० [हिं० दोना का स्त्री० अल्प०] छोटा दोना। उ०—(क) तुलसी स्वामी स्वामिनी जोहे मोही हैं भामिनी, सोभा सुधा पियैं करि अँखियाँ दोनी।—तुलसी। (ख) दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढैहौं। जब सिय सहित विलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं।—तुलसी।

दोनों-वि० [हिं० दो+नों (प्रत्य०)] एक और दूसरा। ऐसे विशिष्ट दो (मनुष्य या पदार्थ) जिनका पहले कुछ वर्णन हो चुका हो और जिनमें से कोई छोड़ा न जा सकता हो। उभय। जैसे, (क) राम और कृष्ण दोनों गए। (ख) वह कल और आज दोनों दिन आया। (ग) वह धन और मान दोनों चाहता है। (घ) उसके माँ बाप दोनों अंधे हैं।

दोपंथी-संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पंथ] एक प्रकार की दोहरे खाने की जाली, स्त्रियाँ प्रायः जिसकी कुरतियाँ बनाती हैं।

दोपट्टा †-संज्ञा पुं० दे० "दुपट्टा"।

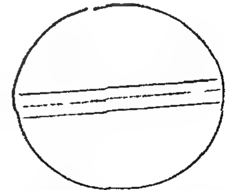
दोपलका-वि० [हिं० दो०+फलक या पलक] (१) दो पल्ले का नगीना। वह नगीना जिसके भीतर नकली या हलका नग हो और ऊपर असली या बढ़िया हो। दोहरा नगीना। (२) एक प्रकार का कबूतर।

दोपलिया †-वि०, संज्ञा स्त्री० दे० "दोपल्ली"।

दोपल्ली-वि० [हिं० दो+पल्ला+ई (प्रत्य०)] दो पल्लेवाला। जिसमें दो पल्ले हों।

संज्ञा स्त्री० मलमल, अद्धी आदि की एक प्रकार की टोपी जिसमें कपड़े के दो टुकड़े एक साथ सिले होते हैं। इसका व्यवहार लखनऊ, प्रयाग और काशी आदि में अधिकता से होता है।





दोपहर-संज्ञा स्त्री० [हिं दो+पहर] मध्याह्नकाल। सवेरे और संध्या के बीच का समय। वह समय जब कि सूर्य मध्य आकाश में रहता है।

दोषग्राही–संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट। दुर्जन।
दोषघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिससे दूषित कफ, वात और पित्त का दोष शांत हो।
दोषज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] पंडित।
दोषता–संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष का भाव।
दोषत्व–संज्ञा पुं० [सं०] दोष का भाव।
दोषन*†–संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष। दूषण। अपराध। उ०—महरि तुमहि कछु दोषन नाहीं। हम को देखि देखि मुसकाहीं।—सूर।
दोषना*†–क्रि० स० [सं० दूषण+न (प्रत्य०)] दोष लगाना। अपराध लगाना। उ०—(क) चोरी होय सूलि पर मोखी। देव जो सुरी तेहिं नहिं दोखी।—जायसी (ख) कह कह फेरा नित यह दोषे। बारहिं बार फिरै संतोषे।—जायसी।
दोषपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसपर किसी अपराधी के अपराधों का विवरण लिखा हो। फर्द करारदाद जुर्म।
दोषल–संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें दोष हो। दोषयुक्त। दूषित।
दोषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रात।
यौ०—दोषाकर।
(२) संध्या। (३) भुजा। बाँह।
दोषाकर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।
दोषाक्लेशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी।
दोषाक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] लगाया हुआ अपराध। अभियोग।
दोषातिलक–संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप। दीपक। दीया।
दोषावह–वि० [सं०] दोषयुक्त। दोषपूर्ण। जिसमें दोष हो।
दोषिक–संज्ञा पुं० [सं०] रोग। बीमारी।
वि० दे० "दूषित"।
दोषिन†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दोषी] (१) अपराधिनी। (२) पाप करनेवाली स्त्री। (३) वह कन्या जिसने कुँवारेपन ही में पुरुषप्रसंग किया हो।
दोषी–संज्ञा पुं० [सं० दोषिन्] (१) अपराधी। कसूरवार। (२) पापी। (३) मुजरिम। अभियुक्त। (४) जिसमें दोष हो। जिसमें ऐब या बुराई हो।
दोस*†–संज्ञा पुं० दे० "दोष"।
दोसदारी*†–संज्ञा स्त्री० [फा० दोस्तदारी] मित्रता।
दोसरता†–संज्ञा पुं० [हिं० दूसरा + ता (प्रत्य०)] द्विरागमन। गौना। मकलावा।
दोसरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दो बार जोती हुई जमीन।
दोसा–संज्ञा स्त्री० दे० "दोषा"।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती है। इसका बहुत अधिक अंश पानी में डूबा रहता है और इसमें एक प्रकार के दाने अधिकता से होते हैं।
दोसाध–संज्ञा पुं० दे० "दुसाध"।
दोसाल–संज्ञा पुं० [?] आसाम के हाथियों की एक जाति। इस जाति का हाथी कुमरिया से कुछ छोटा होता है और साधारणतः लकड़ियाँ आदि ढोने या सवारी आदि के काम में आता है।
दोसाला†–वि० [हिं० दो + साल = वर्ष] दो वर्ष का। दो वर्ष का पुराना।
दोसाही†–वि० [हिं० दो + ?] दोफसला। (जमीन) जिसमें साल में दो फसलें पैदा हों।
दोसी†–संज्ञा पुं० [देश०] दही।
संज्ञा पुं० दे० "दोसी"।
दोसूती–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + सूत] दोतही या दुसूती नाम की मोटी चादर जो बिछाने के काम में आती है।
दोस्त–संज्ञा पुं० [फा०] (१) मित्र। स्नेही। (२) वह जिस से अनुचित संबंध हो। यार। (बाजारू)
दोस्तदार–संज्ञा पुं० दे० "दोस्त"।
दोस्तदारी–संज्ञा स्त्री० दे० "दोस्ती"।
दोस्ताना–संज्ञा पुं० [फा०] (१) दोस्ती। मित्रता। (२) मित्रता का व्यवहार।
वि० दोस्ती का। मित्रता का।
दोस्ती–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मित्रता। स्नेह। (२) अनुचित संबंध। याराना। (बाजारू)
दोस्ती रोटी [फा० दोस्ती + हिं० रोटी] एक प्रकार की रोटी जो आटे की दो लोइयों के बीच में घी लगाकर और एक को दूसरी पर रखकर बेलते और तब तवे पर घी लगाकर पकाते हैं। दो परत की रोटी। दुपड़ी
विशेष—पकने पर इसमें की दोनों लोइयाँ अलग अलग हो जाती हैं।
दोह*–संज्ञा पुं० दे० "द्रोह"।
दोहगा†—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्भगा] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो और जिसको किसी दूसरे पुरुष ने रख लिया हो। रखनी। सुरैतिन। उपपत्नी। उ०—दोहगा सुतिय सोहागिन मेरी। गूल जाति अच्युत कुल केरी।—विश्राम।
दोहज–संज्ञा पुं० [सं०] दूध।
दोहता†–संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] [स्त्री० दोहती] लड़की का लड़का। नाती। नवासा।
दोहती†–संज्ञा स्त्री० दे० "दोस्ती रोटी"।
दोहत्थड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + हाथ] दोनों हाथों से मारा हुआ थप्पड़।
क्रि० प्र०—पीटना।—मारना।
दोहत्था–क्रि० वि० [हिं० दो + हाथ] दोनों हाथों से। दोनों हाथों के द्वारा।
वि० दोनों हाथों का। जो दोनों हाथों से हो।

दोरुखा–वि० [फा०] (१) जिसके दोनों ओर समान रंग या बेल बूटे हों जैसे, दोरुखा कपड़ा, दोरुखी साड़ी, दोरुखा साफ़ा। (२) जिसके एक ओर एक रंग और दूसरी ओर दूसरा रंग हो। कपड़ों की इस प्रकार की रँगाई प्रायः लखनऊ और बीकानेर में होती है। (३) सोनारों का एक औज़ार जो हँसुली बनाने के काम में आता है।

दोरेजी–संज्ञा स्त्री० [फा०] नील की वह दूसरी फसल जो पहले साल की फसल कट जाने के उपरांत उसकी जड़ों से फिर होती है।

दोर्ज्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्यसिद्धांत के अनुसार वह ज्या जो भुज के आकार की हो।

दोर्दंड–संज्ञा पुं० [सं०] भुजदंड।

दोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) झूला। हिंडोला। (२) डोली। चंडोल।

दोलड़ा–वि० [हिं० दो + लड़] [स्त्री० दोलड़ी] दो लड़ों का। जिसमें दो लड़ें हों।

दोलत्ती–संज्ञा पुं० दे० "दुलत्ती"।

दोला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पेड़। (२) हिंडोला। झूला। (३) डोली या चंडोल।

दोलायंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यों का एक यंत्र जिसकी सहायता से वे ओषधियों के अर्क उतारते हैं।

विशेष—एक घड़े में कुछ द्रव पदार्थ (तेल घी पानी आदि) भरकर उसे आग पर चढ़ाते हैं। कुछ ओषधियों की पोटली बाँधकर उस पोटली को एक डोरे से घड़े के मुँह पर रक्खी हुई लकड़ी से इस तरह लटकाते हैं कि वह पोटली उस द्रव पदार्थ के बीच में रहे पर घड़े की पेंदी से न छू जाय। इस प्रकार उन ओषधियों का अर्क उस तरल पदार्थ में उतर आता है।

दोलायमान–वि० [सं०] झूलता हुआ। हिलता हुआ।

दोलायुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें बार बार दोनों पक्षों की हार जीत होती रहे और जल्दी किसी एक पक्ष की अंतिम विजय न हो।

दोलावा †–संज्ञा पुं० [?] वह कुआँ जिसमें दो ओर दो गराड़ियाँ लगी हों।

दोलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंडोला। झूला। (२) डोली।

दोलोही †–संज्ञा स्त्री० दे० "दुलोही"।

दोलू–संज्ञा पुं० [?] दाँत। (डिं०)

दोलोत्सव–संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक त्योहार जिसमें वे अपने ठाकुर जी को फूलों के हिंडोले पर झुलाते हैं। यह उत्सव फागुन की पूर्णिमा को होता है।

दोवा †–संज्ञा पुं० [हिं० देवबाँस] देवबाँस नाम का बाँस जो बंगाल में बहुत होता है।

दोश–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लाख जिसका व्यवहार रंग बनाने में होता है।

दोशमाल–संज्ञा पुं० [फा०] वह अँगोछा या तौलिया जो कसाई अपने पास रखते हैं।

दोशाखा–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह शमादान जिसमें दो बत्तियाँ हों। दो डालों की दीवारगीर। (२) भाँग छानने की लकड़ी जिसमें दो शाखें होती हैं और जिसमें साफ़ी बाँध कर भाँग छानते हैं। इसका आकार ऐसा होता है —(

दोशाला–संज्ञा पुं० दे० "दुशाला"।

दोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरापन। खराबी। अवगुण। ऐब। नुक्स। जैसे, आँख या कान का दोष, लिखने या पढ़ने का दोष, शासन के दोष आदि।

मुहा०—दोष लगाना = किसी के संबंध में यह कहना कि उस में अमुक दोष है। दोष का आरोप करना। दोष निकालना = दोष का पता लगाना। अवगुण को प्रसिद्ध या प्रकट करना।

यौ०—दोषदर्शी = दोष दिखलानेवाला। ऐब दिखलानेवाला।

(२) लगाया हुआ अपराध। अभियोग। लांछन। कलंक।

मुहा०—दोष देना या लगाना = लांछन या कलंक का आरोप करना।

यौ०—दोषारोपण = दोष देना या लगाना।

(३) अपराध। कसूर। जुर्म। (४) पाप। पातक। (५) वैद्यक के अनुसार शरीर में रहनेवाले वात, पित्त और कफ जिनके कुपित होने से शरीर में विकार अथवा व्याधि उत्पन्न होती है। (६) न्याय के अनुसार वह मानसिक भाव जो मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होता है और जिसकी प्रेरणा से मनुष्य भले या बुरे कामों में प्रवृत्त होता है। (७) नव्य न्याय में वह त्रुटि जो तर्क के अवयवों का प्रयोग करने में होती है। यह तीन प्रकार की होती है—अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असद्भाव। (८) मीमांसा में वह अदृष्टफल जो विधि के न करने या उसके विपरीत आचरण से होता है। (९) साहित्य में वे बातें जिनसे काव्य के गुण में कमी हो जाती है। यह पाँच प्रकार का होता है—पद-दोष, पदांश-दोष, वाक्य-दोष, अर्थ-दोष और रस-दोष। इनमें से हर एक के अलग अलग कई गौण भेद हैं। (१०) भागवत के अनुसार आठ वसुओं में से एक का नाम। (११) प्रदोष।

संज्ञा पुं० [सं० द्वेष] द्वेष। विरोध। शत्रुता। उ०—सो. जन जगत जहाज है जाके राग न दोष। तुलसी तृष्णा त्यागि कै गहय है शील संतोष। —तुलसी।

दोषक–संज्ञा पुं० [सं०] बछड़ा। गौ का बच्चा।

दोहाका–संज्ञा पुं० दे० "दोहाग"।

दोहाग*–संज्ञा पुं० [सं० दौर्भाग्य] दुर्भाग्य। बदनसीबी। बदकिस्मती। अभाग्य। उ०—परम सोहाग निबाहि न पारी। भा दोहाग सेवा जब हारी।—जायसी।

दोहागा–संज्ञा पुं० [हिं० दोहाग] [स्त्री० दोहागिन] अभागा। बदकिस्मत।

दोहाना–संज्ञा पुं० [देश०] नौ जवान बैल। बछुवा।

दोहापनय–संज्ञा पुं० [सं०] दूध।

दोहाव–संज्ञा पुं० [हिं० दूहना] काश्तकारों की गौओं का वह दूध जो जमींदार के घर जाता है।

दोहिता–संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] बेटी का बेटा। नाती।

दोही–संज्ञा पुं० [हिं० दो] एक छंद जो दोहे की भाँति चार चरणों का होने पर भी दो ही पंक्तियों में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में पंद्रह पंद्रह मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक लघु होना चाहिए। उ०—विरद सुमिरि सुधि करत नित ही, हरि तुव चरन निहार। यह भव जलनिधि तें मुहिं तुरत, कब प्रभु करिहहु पार।

संज्ञा पुं० [सं० दोहिन] (१) दूध दुहनेवाला। (२) ग्वाला।

दोहिया–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा।

दोहुरा–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जिसमें बालू अधिक हो। बलुई जमीन।

दोह्य–वि० [सं०] दूहने योग्य। जो दूहा जा सके।

संज्ञा पुं० (१) दूध। (२) गाय, भैंस आदि जानवर जो दूहे जाते हैं।

दौं–अव्य० [सं० अथवा] वा। अथवा।

विशेष—दे० "धौं"।

दौंकना*–क्रि० अ० दे० "दमकना"।

दौंगरा–संज्ञा पुं० [हिं० दौं = आग वा गरमी] वह हलकी वर्षा जो गरमी के दिनों में तपी हुई धरती पर होती है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

दौंच–संज्ञा स्त्री० दे० "दोच"।

दौंचना*–क्रि० स० [हिं० दबोचना] (१) दबाव डाल कर लेना। किसी न किसी प्रकार लेना। (२) लेने के लिये अड़ना।

विशेष—इसका प्रयोग 'माँगना' क्रिया के साथ होता है। उ०—तंदुल माँगि दौंचि कै लाई सो दीनो उपहार। फाटे वसन बाँधि कै द्विजवर अति दुर्बल तन हार।—सूर।

दौंजा–संज्ञा पुं० [देश०] मचान। पाड़।

दौंरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँना वा दाँवना] (१) एक साथ रस्सी में बँधे हुए बैलों का झुंड जो कटी फसल के डंठलों पर दाना झाड़ने के लिये फिराया जाता है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—नाधना।—हाँकना।

(२) वह रस्सी जिसे उन बैलों के गले में डालते हैं जो दाँने के लिये फिराए जाते हैं। (३) झुंड।

दौ*–संज्ञा स्त्री० [सं० दव] (१) आग। जंगल की आग। उ०—(क) मन पाँचों के बस परा, मन के बस नहीं पाँच। जित देखौं तित दौ लगी, जित भागौं तित आँच।—कबीर। (ख) तौ लौं मातु आपु नीके रहिबो। जौ लौं हौं ल्यावौं रघुबीरहिं दिन दस और दुसह दुख सहिबो। ....लंक-दाहु उर आनि मानिवो साँचु रामसेवक को कहिबो। तुलसी प्रभु को सुर सुजस गैहैं मिटि जैहैं सब को सोच दौ दहिबो।—तुलसी। (२) संताप। ताप। जलन। उ०—ससि ते शीतल मोको लागै माई री तरनि। याके उए बरति अधिक अंग अंग दौ, वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि। सब विपरीत भये माधो बिनु, हित जो करत अनहित सत की करनि। तुलसीदास स्यामसुंदर विरह की, दुसह दसा सो मोपै परति नहीं बरनि।—तुलसी।

दौकूल–वि० [सं०] कपड़े का।

दौड़–संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ना] (१) दौड़ने की क्रिया या भाव। साधारण से अधिक वेग के साथ गति। द्रुतगमन। धावा। तेजी से चलने या जाने की क्रिया।

यौ०—दौड़धूप। दौड़धपाड़। दौड़ादौड़।

मुहा०—दौड़ मारना = (१) वेग के साथ जाना। (२) दूर तक पहुँचना। लंबी यात्रा करना। जैसे, कलकत्ते से यहाँ आ पहुँचे, बड़ी लंबी दौड़ मारी या लगाई। दौड़ लगाना = दे० "दौड़ मारना"।

(२) धावा। वेगपूर्वक आक्रमण। चढ़ाई। उ०—एक दौर करो तोर मेरो भर कौर कपि एक बार सिंधु धार सब को महायहाँ।—हनुमान। (३) उद्योग में इधर उधर फिरने की क्रिया। प्रयत्न।

मुहा०—दौड़ मारना–उद्योग में इधर उधर फिरना। कोशिश में हैरान होना।

(४) द्रुतगति। वेग। उ०—जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर।—कबीर।

मुहा०—मन की दौड़ = चित्त की सूझ। कल्पना। उ०—भक्ति रूप भगवंत की भेद जो मन की दौर।—कबीर।

(५) गति की सीमा। पहुँच। जैसे, मुल्ला की दौड़ मसजिद तक।

(६) उद्योग की सीमा। प्रयत्नों की पहुँच। अधिक से अधिक उपाय या यत्न जो हो सके। उ०—सीतापति रघुनाथ जी तुम लगि मेरी दौर। (७) बुद्धि की गति। अक्ल की पहुँच। जैसे, जहाँ तक जिसकी दौड़ होगी वहीं तक न अनुमान करेगा। (८) विस्तार। लंबाई। आयत। जैसे, दुशाले की

दोहद–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गर्भवाली स्त्री की इच्छा। उकौना। उ०—प्रथम दौहदै क्यों करौं निष्फल सुनि यह बात।—केशव। (२) गर्भवती स्त्री की मतली इत्यादि (३) गर्भावस्था। (४) गर्भ का चिह्न। (५) गर्भ। (६) एक प्राचीन विश्वास जिसके अनुसार सुंदर स्त्री के स्पर्श से प्रियंगु, पान की पीक थूकने से मौलसिरी, चरणाघात से अशोक, दृष्टिपात से तिलक, आलिंगन से कुरबक, मृदुवार्त्ता से मंदार, हँसी से पटु, फूँक मारने से चंपा, मधुरगान से आम, और नाचने से कचनार इत्यादि वृक्ष फूलते हैं। (७) फलित ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय दिशा, वार या तिथि के भेद से उनके दोष की शांति के लिये खाए या पीए जानेवाले कुछ निश्चित पदार्थ। इनको अलग अलग दिग्दोहद, वारदोहद और तिथिदोहद कहते हैं। जैसे, यदि पूर्व की ओर जाने में कोई दोष हो तो उसकी शांति घी खाने से, होती है। पश्चिम जाने में कोई दोष हो तो वह मछली खाने से, दक्षिण की ओर का दोष तिल की खीर खाने से और उत्तर की ओर का दोष दूध पीने से शांत होता है। इसी प्रकार रविवार को घी, सोमवार को दूध, मंगल को गुड़, बुध को तिल, बृहस्पति को दही, शुक्र को जौ और शनिवार को उड़द खाने से यात्रा-संबंधी वार-दोष की शांति होती है। प्रतिपदा को मदार का पत्ता, द्वितीया को चावल का धोया हुआ पानी, तृतीया को घी आदि खाने से यात्रा-संबंधी तिथि-दोष की शांति होती है। इस प्रकार दोहद से किसी दिशा, वार या तिथि की यात्रा से होनेवाले समस्त अनिष्टों या दुष्ट फलों का निवारण हो जाता है।

दोहदवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी। गर्भवती स्त्री जिसने गर्भधारण किया हो।

दोहदान्विता–संज्ञा स्त्री० दे० "दोहदवती"।

दोहदोहीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक गीत या साम।

दोहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुहना। गाय भैंस इत्यादि के स्तनों से दूध निकालना। (२) दोहनी।

दोहनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूध दुहने की हाँड़ी। मिट्टी का वह बरतन जिसमें दूध दुहते हैं। उ०—दोहनी हाथ की हाथै रही न रह्यो मनमोहनी को मन हाथ में।—शंभु। (२) दूध दुहने का काम।

दोहर–संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + घड़ी = तह] एक प्रकार की चादर जो कपड़े की दो परतों को एक में सीकर बनाई जाती है। इसके चारों ओर गोट लगी रहती है। इसमें कभी कभी कपड़े की दोनों तहें एक ही कपड़े की होती हैं और कभी एक तह किसी मोटे कपड़े या छींट आदि की होती है और दूसरी तह मलमल आदि महीन कपड़े की।

दोहरना–क्रि० अ० [हिं० दोहरा] (१) दो बार होना। दूसरी आवृत्ति होना। (२) दोहरा होना। दो परतों का किया जाना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

क्रि० स० दोहरा करना।

संयो० क्रि०—देना।

दो-हरफ़–संज्ञा पुं० [फा०] धिक्कार। लानत।

क्रि० प्र०—भेजना।

दोहरा–वि० पुं० [हिं० दो + हरा (प्रत्य०)] [स्त्री० दोहरी] (१) दो परत वा तह का। (२) दुगना।

संज्ञा पुं० (१) एक ही पत्ते में लपेटे हुए पान के दो बीड़े। (तंबोली)। (२) कतरी हुई सुपारी। सुपारी के छोटे छोटे टुकड़े। (३) दोहा नाम का छंद। विशेष—दे० "दोहा"।

दोहराना–क्रि० स० [हिं० दोहरा] (१) किसी बात को पुनः कहना या किसी काम को पुनः करना। किसी बात को दूसरी बार कहना या करना। किसी काम या बात की पुनरावृत्ति करना। † (२) किसी कपड़े या कागज़ आदि की दो तहें करना। दोहरा करना।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

दोहरी पट–संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहरी + पट] कुश्ती का एक पेंच।

दोहरी सखी–संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहरी + सखी] कुश्ती का एक पेंच।

दोहल–संज्ञा पुं० [सं०] इच्छा।

दोहलवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

दोहला–वि० [हिं० दो + हला] दो बार की ब्याई हुई (गौ आदि)। (वह गौ आदि) जिसने दो बार बच्चा दिया हो।

दोहली–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अशोक वृक्ष। (२) आक का पेड़। मदार

संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो ब्राह्मण को दी गई हो।

दोहा–संज्ञा पुं० [हिं० दो + हा (प्रत्य०)] (१) एक हिंदी छंद जिसमें होते तो चार चरण हैं, पर जो लिखा दो पंक्तियों में जाता है, अर्थात् पहला और दूसरा चरण एक पंक्ति में और तीसरा और चौथा चरण एक पंक्ति में लिखा जाता है। इस के पहले तथा तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण का तुकांत मिलना चाहिए। उ०—राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार।

विशेष—इसी को उलट देने से सोरठा हो जाता है।

(२) संकीर्ण राग का एक भेद।

दोहाई–संज्ञा स्त्री० दे० "दुहाई"।

†संज्ञा पुं० दे० "दौना"। उ०—अरी माई मेरो मन हरि लीन्हों नंद को ढोटौना। चितवन में वाके कछु टोना। ....बोलत नहीं रहत वह मौना। दधि लै छीनि खात रह्यो दौना।—सूर।

*क्रि० स० [स० दमन, हिं० दौन] दमन करना। उ०—केकई करी धौं चतुराई कौन ? राम लखन सिय बनहिं पठाए पति पठए सुरभौन। कहा भलो धौं भयो भरत को लगे मरन तन दौन।—तुलसी।

दौनागिरि-संज्ञा पुं० [स० द्रोणगिरि] द्रोणागिरि नामक पर्वत जो क्षीरोद समुद्रस्थ लिखा गया है। यहाँ विशल्यकरणी नाम की संजीवनी औषध होती थी। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमानजी यहाँ औषध लेने के लिये भेजे गए थे। उ०—दौनागिरि हनुमान सिधायो। संजिवनी को भेद न पायो तब सब शैल उचायो।—सूर।

दौर-संज्ञा पुं० [अ० दौर] (१) चक्कर। भ्रमण। फेरा। (२) दिनों का फेर। कालचक्र। (३) अभ्युदयकाल। बढ़ती का समय।

यौ०—दौर दौरा=(१) प्रधानता। प्रबलता। चलती। उ०—क्रामवेल के समय में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित होने पर प्युरिटन लोगों का जैसा दौरा दौरा ग्रेट ब्रिटन में था, वैसा ही, इस समय अमेरिका के न्यू इंगलैंड नामक सूबे में है।—स्वाधीनता।

(४) प्रताप। प्रभाव। हुकूमत। (५) दे० "दौरा।" उ०—वीर जीत पूरब दिसि लीन्हीं। वीर दौर पश्चिम की कीन्ही।—लाल। (६) बारी। पारी।

मुहा०—दौर चलना=शराब के प्याले का बारी बारी से सब के सामने लाया जाना।

(७) बार। दफ़ा। जैसे, दूसरे दौर में यह इतना काम ही पूरा हो जायगा।

*संज्ञा स्त्री० दे० "दौड़"।

दौरना*†-क्रि० अ० दे० "दौड़ना"।

दौरा-संज्ञा पुं० [अ० दौर] (१) चारों ओर घूमने की क्रिया। चक्कर। भ्रमण।

क्रि० प्र०—करना।

(२) फेरा। भ्रमण। गश्त। इधर उधर जाने या घूमने की क्रिया। (३) अफसर का अपने इलाके में जाँच पड़ताल या देख भाल के लिये घूमना। निरीक्षण के लिये भ्रमण।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दौरे पर रहना या होना=जाँच पड़ताल या देख भाल के लिये सदर से बाहर रहना या होना। (असामी या मुकदमा) दौरा सुपुर्द करना=(असामी या मुकदमे को) विचार या फैसले के लिये सेशन-जज के पास भेजना। (फौजदारी के भारी मुकदमों को मजिस्ट्रेट सेशन-जज के पास भेज देते हैं)। दौरा सुपुर्द होना=सेशन-जज के पास विचार के लिये भेजा जाना।

(४) ऐसा आना जाना जो समय समय पर होता रहता है। सामयिक आगमन। फेरा। जैसे, डाकुओं के दौरे अब इधर फिर होने लगे हैं (५) बार बार होनेवाली बात का किसी बार होना। ऐसी बात का प्रकट होना जो समय समय पर होती रहती हो। (६) किसी ऐसे रोग का लक्षण प्रकट होना जो समय समय पर होता हो। आवर्त्तन। जैसे, मिरगी का दौरा, पागलपन का दौरा।

†संज्ञा पुं० [स० द्रोण] [स्त्री० अल्प० दौरी] बाँस की फट्टियों, काँस, मूँज, बेत आदि का बना हुआ टोकरा।

दौरात्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुरात्मा का भाव। दुर्जनता। (२) दुरात्मा का काम। दुष्टता।

दौरादौर†-क्रि० वि० [हिं० दौड़ना] (१) लगातार। अविश्रांत। (२) धुन से। तेजी से।

दौरादौरी*-संज्ञा स्त्री० दे० "दौड़ादौड़ी"।

दौरान-संज्ञा पुं० [फा०] (१) दौरा। चक्र। (२) कालचक्र। दिनों का फेर। (३) फेरा। बारी। पारी। (४) सिलसिला। झोंक।

दौराना*†-क्रि० स० दे० "दौड़ाना"।

दौरित-संज्ञा पुं० [स०] क्षति। हानि।

दौरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० दौरा] बाँस या मूँज की छोटी टोकरी। चँगेरी। डलिया।

दौर्ग-वि० [सं०] (१) दुर्ग संबंधी। दुर्ग का। (२) दुर्गा संबंधी। दुर्गा का।

दौर्जन्य-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता। दुष्टता।

दौर्बल्य-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्बलता। कमज़ोरी।

दौर्भाग्य-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्भाग्य।

दौर्मनस्य-संज्ञा पुं० [सं०] 'दुर्मनस' होने का भाव। दुर्जनता। चित्त की खोटाई।

दौर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] दूरी। उ०—ज्योतिष वसिष्ठादि ऋषियों की कृत है। उसमें वेद अनध्याय तथा रेखा बीज गणित तथा सूर्य्यादि ग्रहों का दौर्य्य सामीप्य और आपस का संयोग वियोग आदिक व्यवहार लिखे हैं।—श्रद्धाराम।

दौर्य्योधनि-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

दौर्वल्य-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्बलता।

दौर्हार्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुर्हृद होने का भाव। दुष्ट स्वभाव। (२) दुर्भाव। वैर।

दौर्हृद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हृदय की खोटाई। दुष्टता। (२) दोहद।

दौलत-संज्ञा पुं० [अ०] धन। संपत्ति। उ०—साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लिए हैं। भूषन ते बिनु

बेल या हाशिये की दौड़। (९) सिपाहियों का दल जो अपराधियों को एक बारगी कहीं पकड़ने के लिये जाय। जैसे, पुलिस की दौड़।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।— पहुँचना।

(१०) जहाज़ पर की वह चरखी जिसमें लकड़ी डाल कर घुमाने से वह जंजीर खिसकती है जिसमें पतवार बँधा रहता है।

दौड़धपाड़—संज्ञा स्त्री० दे० "दौड़धूप"।

दौड़धूप—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़+धूप] किसी कार्य्य के लिये इधर उधर फिरने की क्रिया या भाव। किसी काम के लिये बार बार चारों ओर आना जाना। परिश्रम। प्रयत्न। उद्योग। जैसे, (क) उसने बहुत दौड़ धूप की है तब नौकरी मिली है। (ख) अभी रोग का आरंभ है दौड़धूप करोगे तो अच्छा हो जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दौड़ना—क्रि० अ० [सं० धोरण, हिं० धौरना] (१) साधारण से अधिक वेग के साथ गमन करना। द्रुतगति से चलना। मामूली चलने से ज्यादा तेज चलना। जैसे, (क) दौड़ कर न चलो गिर पड़ोगे। (ख) वह लड़का उधर दौड़ा जा रहा है।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

मुहा०—दौड़ पड़ना = एक बारगी वेग के साथ गमन करना। जैसे, जहाँ वह दिखाई दिया कि आप उसकी ओर दौड़ पड़े। चढ़ दौड़ना = चढ़ाई करना। धावा करना। आक्रमण करना। दौड़ दौड़ कर आना = जल्दी जल्दी आना। बार बार आना। जैसे, मेरे पास क्या दौड़ दौड़ आते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता। दौड़ दौड़ कर जाना = जल्दी जल्दी जाना। बार बार जाना। जैसे, उसके घर क्या रखा है जो दौड़ दौड़ कर जाते हो?

(२) सहसा प्रवृत्त होना। झुक पड़ना। ढलना। जैसे, तुम भला बुरा नहीं देखते, जो बात हुई उसीके पीछे दौड़ पड़ते हो।

क्रि० प्र०—पड़ना।

(३) किसी प्रयत्न में इधर उधर फिरना। किसी काम के लिये चारों ओर बार बार आना जाना। उद्योग करना। कोशिश में हैरान होना। उपाय या चेष्टा करना। जैसे, (क) नौकरी के लिये वह बहुत दौड़ा, पर न मिली। (ख) उसकी बीमारी में वह बहुत दौड़ा।

यौ०—दौड़ना धूपना।

(४) फैलना। व्याप्त होना। छा जाना। जैसे, स्याही दौड़ना, लाली दौड़ना, चेहरे पर खून दौड़ना। उ०—दूरिलौं दौरत दंतन की दुति ज्यों अधरा उघरैं अति नीठे।—तोप।

क्रि० प्र०—जाना।

दौड़ादौड़—क्रि० वि० [हिं० दौड़+दौड़] [संज्ञा दौड़ादौड़ी] अविश्रांत। बेतहाशा। बिना कहीं रुके हुए। जैसे, अभी वहाँ से दौड़ादौड़ चला आ रहा हूँ।

संज्ञा स्त्री० दे० "दौड़ादौड़ी"।

दौड़ादौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ना] (१) दौड़धूप। (२) बहुत से लोगों के एक साथ इधर उधर दौड़ने की क्रिया। उ०—आनंद प्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरादौरी। आरती उतारें सरबस वारैं अपनी अपनी पौरी।—केशव। (३) रवारवी। आतुरता। हड़बड़ी। जैसे, दौड़ादौड़ा में कोई काम ठीक नहीं होता।

दौड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ना] (१) दौड़ने की क्रिया या भाव। द्रुतगमन। (२) वेग। झोंक। (३) सिलसिला। (४) फेरा। बारी। पारी।

दौड़ाना—क्रि० स० [हिं० दौड़ना का सकर्मक रूप] (१) दौड़ने की क्रिया कराना। साधारण से अधिक वेग से चलाना। जल्द जल्द चलाना। द्रुत गमन कराना। जैसे, घोड़ा दौड़ाना, सिपाही दौड़ाना। उ०—(क) भयो रजायसु जन दौराये।—जायसी। (ख) दौरावत चहुँ ओर हय देखत बात लजात।—गुमान।

संयो० क्रि०—देना।

(२) बार बार आने जाने के लिये कहना या विवश करना। हैरान करना। जैसे, चार रुपए के लिये क्यों बार बार दौड़ाते हो? (३) किसी वस्तु को यहाँ से वहाँ तक ले जाना। एक जगह से खींचकर दूसरी जगह करना। जैसे, इस चारपाई को जरा उधर दौड़ा दो।

संयो० क्रि०—देना।

(४) फैलाना। पोतना। जैसे, स्याही दौड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

(५) फेरना। जैसे, दीवार पर कूँची दौड़ाना।

दौत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम।

दौन*—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "दमन"।

दौना—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ गुलदाऊदी की तरह कटावदार होती हैं और जिनमें से तेज पर कुछ कड़ुई सुगंध आती है। पौधे की डालियों के सिरे पर एक पतली सींक में मंजरी लगती है जिसमें महीन महीन फूल होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर उस मंजरी के बीजकोशों में छोटे छोटे दाने पड़ते हैं जो पकने पर झड़ जाते हैं। पौधे बीजों से उत्पन्न होते हैं और बरसात में उगते हैं पर पुराने पेड़ भी सालों रह जाते हैं। वैद्यक में दौना शीतल, कड़ुवा, कसैला, हृदय को हितकारी तथा खुजली, विस्फोटक आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

कक्षा में सूर्य्य हैं और तीसरी कक्षा में अनेक लोक लोकांतर हैं। इन लोकों में जाना ही अश्वमेधादि बड़े बड़े यज्ञों का फल कहा गया है।

द्युवन्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) स्वर्ग।

द्युपद्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) नक्षत्र। (३) ग्रह।

द्युसद्म–संज्ञा पुं० [सं० द्युसद्मन्] स्वर्ग।

द्युसरित्–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी।

द्युसिंधु–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी।

द्यू–वि० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

द्यूत–संज्ञा पुं० [सं०] जुआ। वह खेल जिसमें दाँव बदा जाय और हारनेवाला जीतनेवाले को कुछ दे।

विशेष—मनु ने लिखा है कि राजा को चाहिए कि जुआ और पशु पक्षियों का दंगल अपने राज्य में न होने दे। जो जुआ खेले या खेलावे उसे राजा वध तक का दंड दे सकता है। याज्ञवल्क्य ने कूटद्यूत का इसी प्रकार निषेध किया है।

द्यूतकर, द्युतकार वि० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

द्यूतदास–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्यूतदासी] वह दास जो जुए की जीत में मिला हो।

द्यूतपूर्णिमा–संज्ञा पुं० [सं०] कोजागरी। आश्विन की पूर्णिमा। इस दिन प्रचीन काल में जुआ खेला जाता था और लोग रात को जागते थे।

द्यूतप्रतिपदा–संज्ञा स्त्री० [सं० द्यूतप्रतिपत्] कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा। इस दिन लोग जुआ खेलते हैं।

द्यूतफलक–संज्ञा पुं० [सं०] वह चौकी, तख्ता आदि जिसके ऊपर पासा बिछाया या खेला जाय। वह चौकी जिस पर जुए की कौड़ी फेंकी जाय।

द्यूतबीज–संज्ञा पुं० [सं०] कौड़ी।

द्यूतभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ जुआ खेला जाय। जुआखाना।

द्यूतमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुआरियों की मंडली। (२) वह घर जहाँ जुआ खेला जाय। जुआखाना।

द्यूतसमाज–संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुआ खेला जाय।

द्यून–संज्ञा पुं० [सं०] लग्न स्थान से सातवीं राशि।

द्यो–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) आकाश। (३) शतपथ ब्राह्मण और देवीभागवत के अनुसार आठ वसुओं में से एक।

विशेष—महाभारत, अग्निपुराण और भागवत में आठ वसुओं के जो नाम दिए गए हैं उनमें यह नाम नहीं है। देवी भागवत में इस वसु के संबंध में यह कथा लिखी है। एक बार सब वसु अपनी अपनी स्त्रियों को लेकर क्रीड़ा कर रहे थे। वे घूमते फिरते वसिष्ठ के आश्रम पर आ निकले। द्यो की स्त्री ने वसिष्ठ की गाय नंदिनी को देखा और अपने स्वामी से उसे लेने के लिये कहा। द्यो गाय को ले गया। इस पर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। इस शाप के कारण द्यो का पृथ्वीतल पर भीष्म के रूप में जन्म हुआ।

द्योकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह कारीगर जो प्रासादादि बनाने का काम करता हो। थवई। राजगीर।

द्योत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश। (२) आतप। धूप।

द्योतक–वि० [सं०] (१) प्रकाशक। प्रकाश करनेवाला। (२) दर्शक। बतलानेवाला।

द्योतन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्योतित] (१) दर्शन। (२) प्रकाशन। प्रकाशित करने या जलाने का काम। (३) दिग्दर्शन। दिखाने का काम। (४) दीपक।

वि० प्रकाशमान्। चमकीला।

द्योतित–वि० [सं०] प्रकाशित।

द्योतिरिंगण–संज्ञा पुं० [सं०] खद्योत। जुगनू।

द्योभूमि–संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

द्योपद्–संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

द्योहरा*–संज्ञा पुं० दे० "देवधरा"।

द्योस*–संज्ञा पुं० [सं० दिवस] दिन। उ०—(क) राति गँवाई सोइ के, द्योस गवाँया खाय। हीरा जनम अमोल है कौड़ी बदले जाय।—कबीर। (ख) दुःख देखि कै देखि हौ सब सुख आनँदकंद। तपन ताप तपि द्योस निसि, जैसे शीतल चंद।—केशव। (ग) औरै गति औरै वचन भयो बदनरँग और। द्योसक तें पिय चित चढ़ी, कहै चढ़ौहैं त्यौर।—बिहारी।

द्रंक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] तौलने का एक मान जो दो कर्ष अर्थात् एक तोले के बराबर होता था।

पर्य्या०—कोल। वटक। कर्षार्द्ध।

द्रंग–संज्ञा पुं० [सं०] वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कर्वट से छोटा हो।

द्रगड़–संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा। दगड़।

द्राढिमा–संज्ञा पुं० [सं० द्राढिमन्] दृढ़ता।

द्राढिष्ठ–वि० [सं०] अधिक दृढ़। बहुत दृढ़।

द्रप्स–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। (२) मट्ठा। (३) रस। (४) शुक्र।

वि० द्रुतगतियुक्त। तेज चलनेवाला।

द्रप्स्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। (२) मट्ठा। (३) शुक्र। (४) रस।

द्रमिल–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम। दे० "द्राविड़"।

द्रम्म–संज्ञा पुं० [सं० फा० दिरम] सोलह पण मूल्य की एक मुद्रा। (लीलावती)

दौलति ह्वैके फ़कीर ह्वै देश विदेश गए हैं। लोग कहैं दमि दच्छिन जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं? देत रिसाय कै उत्तर यों हमही दुनियाँ ते उदास भए हैं। —भूषण।

क्रि० प्र०—उठाना।—खर्चना।—लगाना।

दौलतखाना—संज्ञा पुं० [फा०] निवासस्थान। घर।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दूसरे के लिये आदरार्थक होता है। अपने लिये 'गरीबखाना' लाया जाता है। जैसे, आप का दौलतखाना कहां है? मेरा गरीबखाना देहली है।

दौलतमंद—वि० [फा०] धनी। संपन्न।

दौलतमंदी—संज्ञा स्त्री [फा०] संपन्नता। मालदारी। धनाढ्यता।

दौलति*—संज्ञा स्त्री० दे० "दौलत"।

दौलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुवा।

दौल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दौवारिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। (२) एक प्रकार का वास्तु देव।

दौवालिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देश का नाम। (२) इस देश का निवासी। (महाभारत)

दौश्चर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुश्चर्म्मा होने का भाव। दे० "दुश्चर्म्मा"।

दौष्मंत, दौष्मंति—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्मंत का पुत्र। दुष्मंत के कुल में उत्पन्न व्यक्ति।

दौहित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दौहित्री] (१) लड़की का लड़का। नाती।

विशेष—धर्म्मशास्त्र में पौत्र और दौहित्र में कुछ विशेष भेद नहीं माना गया है। पौत्र के समान दौहित्र पिंडदान आदि द्वारा उद्धार करता है। जब तक दौहित्र न हो जाय तब तक पिता कन्या के घर भोजन आदि नहीं कर सकता। यदि करे तो नरकगामी होता है।

(२) खड्ग। तलवार। (३) तिल। (४) गाय का घी।

दौहित्रक—वि० [स०] दौहित्र संबंधी।

दौहद—संज्ञा पुं० [सं०] वह इच्छा जो स्त्रियों को गर्भिणी होने की दशा में होती है। दोहद।

दौहदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

द्यु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन। (२) आकाश। (३) स्वर्ग। (४) अग्नि। (५) सूर्य्यलोक।

द्युग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश में गमन करनेवाला। (२) पक्षी।

द्युगण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की मध्यगति के साधक अंग दिन।

द्युचर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रह। (२) पक्षी।

द्युज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहोरात्र वृत्त की व्यासरूप ज्या।

द्युत्—संज्ञा पुं० [सं०] किरण।

द्युत—वि० [सं०] प्रकाशवान।

द्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। कांति। चमक। (२) शोभा। छवि। (३) लावण्य। (४) रश्मि। किरण।

संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम जो चतुर्थ मनु के समय में थे। (हरिवंश)

द्युतिकर—वि० [सं०] प्रकाश उत्पन्न करनेवाला। चमकनेवाला।

संज्ञा पुं० ध्रुव।

द्युतिधर—वि० [सं०] प्रकाश या कांति को धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० विष्णु।

द्युतिमंत—वि० दे० "द्युतिमान्"।

द्युतिमा—संज्ञा० स्त्री० [सं० द्युति + मा (प्रत्य०)] प्रभा। प्रकाश। तेज। उ०—अग जग मग वासी लखि कहई। द्युतिमा भवन कवन में अहँई।—विश्राम।

द्युतिमान्—वि० [सं० द्युतिमत्] [स्त्री० द्युतिमती] प्रकाशवाला। जिस में चमक या आभा हो।

संज्ञा पुं० (१) स्वायंभुव मनु के एक पुत्र का नाम। (२) शाल्व देश के एक राजा का नाम। (महाभारत)। (३) प्रियव्रत राजा के पुत्र जिन्हें क्रौंच द्वीप का राज्य मिला था। (विष्णुपुराण)

द्युन—संज्ञा पुं० [सं०] लग्न से सातवाँ स्थान।

द्युनिश—संज्ञा पुं० [सं०] अहर्निश। दिन रात।

द्युपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) इंद्र।

द्युपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशमार्ग।

द्युमणि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) मंदार। (३) परिशोधित ताँबा। शोधा हुआ ताँबा।

द्युमत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्व देश के एक राजा जो सत्यवान् के पिता थे। ये दुर्भाग्यवश अंधे हो गए। जब सब लोगों ने षड्यंत्र करके इन्हें गद्दी से उतार दिया तब ये अपनी पत्नी और शिशु सत्यवान् को लेकर वन में चले गए। दे० "सत्यवान्", "सावित्री"।

द्युम्नद्गान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम गान।

द्युमयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या। सूर्य्य की पत्नी।

द्युमान्—वि० [सं० द्युमत्] [स्त्री० द्युमती] प्रकाशवाला। कांतियुक्त। चमकीला।

द्युम्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान। (२) सूर्य्य। (३) अन्न। (४) बल।

द्युलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग लोक।

विशेष—वैदिक ग्रंथों में द्युलोक की तीन कक्षाएँ कही गई हैं, पहली उदन्वती, दूसरी पीलुमती, और तीसरी प्रद्यो है। इन तीन कक्षाओं को ही क्रमशः नाक, स्वर्ग और पितृलोक कहते हैं। उदन्वती कक्षा में चंद्रमा हैं, पीलुमती

तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य ऐसे हैं जिनमें क्रिया और गुण दोनों हैं। आकाश, दिक् और काल ये तीन ऐसे हैं जिनमें क्रिया नहीं केवल गुण हैं। पाँच द्रव्यों में केवल चार सावयव हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। ये चार द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले माने गए हैं। ये परमाणु रूप से नित्य और कार्य्य (स्थूल) रूप से अनित्य हैं। इन्हीं परमाणुओं के योग से सृष्टि होती है। प्रशस्तपाद भाष्य में लिखा है कि जीवों के कर्मफल-भोग का जब समय आता है तब जीवों के अदृष्ट के बल से वायु के परमाणुओं में चलन उत्पन्न होता है। इस चलन से परमाणुओं में परस्पर संयोग होता है। दो दो परमाणुओं के मिलने से द्व्यणुक और तीन द्व्यणुकों के मिलने से त्रसरेणु उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक महान् वायु की उत्पत्ति होती है। महान् वायु में परमाणुओं के परस्पर संयोग से क्रमशः जल द्व्यणुक, जल त्रसरेणु और फिर महान् जलनिधि उत्पन्न होता है। इस जल में पृथ्वी परमाणुओं के परस्पर संयोग द्वारा द्व्यणुकादि क्रम से महा-पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। फिर उसी जल-निधि में तैजस परमाणुओं के परस्पर संयोग से तैजस द्व्यणुकादि क्रम से महान् तेजोराशि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वैशेषिक ने चार भूतों के अनुसार चार तरह के परमाणु माने हैं, पृथ्वी परमाणु, जल परमाणु, तेज परमाणु और वायु परमाणु। इन्हीं परमाणुओं से ये चार मूत उत्पन्न होते हैं। पाँचवाँ द्रव्य आकाश निरवयव, विभु और नित्य है, न उसके टुकड़े होते हैं और न उसका नाश होता है। आकाश की तरह काल और दिक् भी विभु और नित्य हैं। आत्मा एक अमूर्त्त द्रव्य है जो ज्ञान का अधिकरण और किसी किसी के मत से ज्ञान का समवायि कारण है। मन नित्य और मूर्त्त माना गया है, क्योंकि यदि मूर्त्त न होता तो उसमें क्रिया न होती। वैशेषिक मन को अणुरूप मानता है क्योंकि एक क्षण में एक ही इंद्रिय का संयोग उसके साथ हो सकता है। जैनों के अनुसार द्रव्य गुणों और पर्यायों का स्थान है और सदा एकरस रहता है, उसके भीतर भेद नहीं पड़ता। जैन ६ द्रव्य मानते हैं—जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश और काल।

पदार्थ ज्ञान में आज कल पश्चिम के देशों में बहुत उन्नति हुई है। सावयव सृष्टि के वैशेपिक में चार मूल भूत कहे गए हैं और उसी के अनुसार चार प्रकार के परमाणु भी माने गए हैं पर आज कल की परीक्षाओं से ये चारों मूलभूत कहे जानेवाले पदार्थ कई मूल द्रव्यों के योग से बने पाए गए हैं। जल और वायु कई मूल द्रव्यों के योग से बने परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। पाश्चात्य रसायन में ७५ के लगभग मूल द्रव्य माने गए हैं जिनके परमाणुओं के रासायनिक संयोग से भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं। अतः इस हिसाब से परमाणु भी ७५ प्रकार के हुए। ७५ मूल-द्रव्यों के परमाणुओं के गुरुत्व का यदि परस्पर मिलान किया जाय तो उनमें एक हिसाब से चलता हुआ क्रम पाया जाता है जिससे सिद्ध होता है कि ये सब मूल द्रव्य भी एक ही परम द्रव्य से निकले हैं।

(३) सामग्री। सामान। उपादान। वह जिससे कोई वस्तु बनी हो। (४) धन। दौलत। रुपया पैसा। (५) पीतल। (६) औषध। भेषज। (७) मद्य। (८) लेप। (९) गोंद।

वि० (१) द्रुम संबंधी। पेड़ का। पेड़ से निकला हुआ। (२) पेड़ के ऐसा।

द्रव्यत्व–संज्ञा पुं० [सं०] द्रव्य का भाव। द्रव्यपन।

द्रव्यपति–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार भिन्न भिन्न द्रव्यों या पदार्थों की अधिपति भिन्न भिन्न राशियाँ। जैसे, कंबल, मसूर, गेहूँ, शाल वृक्ष, जौ इत्यादि की अधिपति मेष राशि है। इसी प्रकार धान, कपास, लता, इत्यादि मिथुन राशि के अधीन हैं।

द्रव्यवान्–वि० [सं० द्रव्यवत्] [स्त्री० द्रव्यवती] धनवान्। धनी।

द्रव्यांतर–संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा द्रव्य।

द्रव्याधीश–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

द्रष्टव्य–वि० [सं०] (१) देखने योग्य। दर्शनीय। (२) जिसे दिखाना हो। जो दिखाया जानेवाला हो। (३) जिसे बतलाना या जताना हो। (४) साक्षात् कर्त्तव्य।

द्रष्टा–वि० [सं०] (१) देखनेवाला। (२) साक्षात करनेवाला। (३) दर्शक। प्रकाशक।

संज्ञा पुं० सांख्य के अनुसार पुरुष और योग के अनुसार आत्मा।

विशेष—आत्मा द्रष्टा और अंतःकरण दृश्य माना जाता है। इन दोनों का संयोग ही दुःख का कारण है। सुख, दुःख आदि ये बुद्धि-द्रव्य के विकार हैं। इंद्रियों का संबंध होने से अंतःकरण या बुद्धि-द्रव्य ही विषय या सुख दुःख रूप में परिणत होता है, आत्मा नहीं। आत्मा द्रष्टा के रूप में रहता है।

द्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ह्रद। ताल। झील। (२) वह स्थान जहाँ गहरा जल हो। दह।

द्राक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख। अंगूर।

द्राघिमा–संज्ञा पुं० [सं० द्राघिमन्] (१) दीर्घता। लंबाई। (२) वे कल्पित रेखाएँ जो भूमध्य रेखा के समानांतर पूर्व पश्चिम को मानी गई हैं। इन रेखाओं से अक्षांश सूचित होता है।

द्राण–वि० [सं०] (१) सुप्त। सोया हुआ। (२) पलायित। भगोड़ा।

द्रवंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। (२) मूषकपर्णी। मूसाकानी। छीटा।

द्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रवण। (२) बहाव। (३) पलायन। दौड़। (४) वेग। (५) आसव। (६) रस। (७) परिहास। (८) द्रवत्व।

वि० (१) तरल। पानी की तरह पतला। (२) आर्द्र। गीला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) पिघला हुआ। आँच खाकर पानी की तरह फैला हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

द्रवक–वि० [सं०] (१) भागनेवाला। भगेड़ू। (२) बहनेवाला। रसनेवाला।

द्रवज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वस्तु जो रस से बनाई जाय। (२) गुड़।

द्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्रवित] (१) गमन। गति। दौड़। (२) क्षरण। बहाव। (३) पिघलने या पसीजने की क्रिया या भाव। (४) हृदय पर करुणापूर्ण प्रभाव पड़ने का भाव। चित्त के कोमल होने की वृत्ति।

द्रवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रवत्व।

द्रवत्पत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसे कहीं कहीं चँगोनी कहते हैं। बंगाल में इसे शिमुड़ी कहते हैं। यह औषध के काम में आता है।

द्रवत्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहने का भाव। पानी की तरह पतला होने का भाव।

विशेष—वैशेषिक के अनुसार यह एक गुण है जो द्रव्यों में रहता है। यद्यपि वैशेषिक दर्शन में गुणों की परिगणना में द्रवत्व गुण नहीं आया है पर प्रशस्तपाद भाष्य में इसे गुण लिखा है। इस गुण के होने से वस्तुओं का बहना होता है। प्राचीन काल के विद्वानों ने द्रवत्व को भूत और सामान्य गुण माना है और द्रवत्व के दो भेद किए हैं—सांसिद्धिक अर्थात् स्वाभाविक और नैमित्तिक अर्थात् जो कारणों से उत्पन्न हो। ऐसे लोगों का मत है कि स्वाभाविक वा सांसिद्धिक द्रवत्व केवल जल में है और पृथ्वी में नैमित्तिक द्रवत्व है जो अग्नि के संयोग से आ जाता है। आधुनिक विद्वान द्रवत्व को द्रव्य का एक रूप या उसकी अवस्था मात्र मानते हैं। उस पदार्थ का जिसमें यह गुण होता है कोई निज का आकार नहीं होता, किंतु जिस वस्तु के आधार में वह रहता है उसी के आकार का वह हो जाता है। वही पानी जब बोतल में भर दिया जाता है तब बोतल के आकार का और जब कटोरे, लोटे गिलास आदि में रहता है तब उन उन पात्रों के आकार का हो जाता है। द्रवत्व और विभुत्व में केवल भेद इतना ही है कि द्रव पदार्थ परिमित अवकाश को घेरता है और विभु पदार्थ पूरे अवकाश में व्याप्त रहता है।

(२) बहना। ढलना।

द्रवना*–क्रि० अ० [सं० द्रवण] (१) प्रवाहित होना। बहना। (२) पिघलना। उ०—निज परिताप द्रवइ नवनीता। परदुख द्रवहिं सुसंत पुनीता।—तुलसी। (३) पसीजना। दयार्द्र होना। दया करना। उ०—(क) मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरवर गहन। जासु कृपा, सो दयाल द्रवउ सकल कलि-मल-दहन।—तुलसी, (ख) कहियत परम उदार कृपानिधि अंतर्यामी त्रिभुवन तात। द्रवत हैं आपु देत दासन को रीझत हैं तुलसी के पात।—सूर।

द्रवरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

द्रविड़–संज्ञा पुं० [ता० तिरमिक] (१) दक्षिण भारत का एक देश जो उड़ीसा के दक्षिण पूर्वीय सागर के किनारे रामेश्वर तक है। (२) द्रविड़ देश का रहनेवाला।

विशेष—मनु ने द्रविड़ों को सवर्णा स्त्री से उत्पन्न व्रात्य क्षत्रियों की संतति कहा है। महाभारत में भी लिखा है कि परशुराम के भय से बहुत से क्षत्रिय दूर दूर के पहाड़ों और जंगलों में भाग गए। वहाँ वे अपने कर्म ब्राह्मणों के अदर्शन आदि के कारण भूल गए और वृषलत्व को प्राप्त हो गए। वे ही द्रविड़, आभीर, शबर पुंड्र आदि हुए। दे० "तामिल"।

(३) ब्राह्मणों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत पाँच ब्राह्मण हैं—आंध्र, कर्णाटक, गुर्जर, द्रविड़ और महाराष्ट्र।

द्रविड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

द्रविण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन। (२) कांचन। सोना। (३) पराक्रम। बल। (४) पृथु राजा का एक पुत्र। (५) भागवत के अनुसार कुश द्वीप का एक सीमापर्वत। (६) क्रौंच द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष। (७) धुर नामक वसु के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

द्रविणनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन। सहजन का पेड़।

विशेष—स्मृतियों में शोभांजन-भक्षण का निषेध है।

द्रविणोदा–संज्ञा पुं० [सं० द्रविणोदस्] वेद का एक देवता जो धन देनेवाला कहा गया है। अग्नि।

द्रवीभूत–वि० [सं०] (१) जो द्रव हो गया हो। जो पानी की तरह पतला हो गया हो। (२) पिघला हुआ। गला हुआ। (३) पसीजा हुआ। दयार्द्र। दयालु।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

द्रव्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्तु। पदार्थ। चीज़। (२) वह पदार्थ जो क्रिया और गुण अथवा केवल गुण का आश्रय हो। वह पदार्थ जिसमें केवल गुण और क्रिया अथवा केवल गुण हो और जो समवायि कारण हो।

विशेष—वैशेषिक में द्रव्य नौ कहे गए हैं—पृथ्वी, जल,

द्रुनख–संज्ञा पु० [सं०] काँटा।

द्रुपद–संज्ञा पु० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार उत्तर पांचाल का एक राजा। यह चंद्रवंशी पृषत का पुत्र था। द्रोणाचार्य्य और द्रुपद बचपन में साथ खेला करते थे और दोनों में बड़ी मित्रता थी। पृषत के मरजाने पर द्रुपद पांचाल का राजा हुआ। उस समय द्रोणाचार्य्यजी उसके पास गए और उन्होंने अपनी बचपन की मित्रता का परिचय देना चाहा पर द्रुपद ने उनका तिरस्कार कर दिया। जब द्रोणाचार्य्यजी को भीष्मजी ने कौरवों और पांडवों को शिक्षा देने के लिये बुलाया और द्रोणजी ने उनको बाणविद्या की उत्तम शिक्षा दी तब गुरु-दक्षिणा में उन्होंने कौरवों और पांडवों से यही माँगा कि तुम द्रुपद को बाँध कर मेरे सामने ला दो। कौरव तो उनकी आज्ञापालन नहीं कर सके पर पांडवों ने द्रुपद को जीता और उसे बाँध कर अपने गुरु को अर्पित किया। द्रोणाचार्य्य जी ने द्रुपद से कहा कि तुम गंगा के दक्षिण किनारे राज्य करो, उत्तर के किनारे का राज्य हम करेंगे। द्रुपद उस समय तो मान गया पर उसके मन में द्रोणाचार्य्य की ओर से द्वेष बना रहा। उसने याज और उपयाज नामक दो ऋषियों की सहायता से ऐसे पुत्र की प्राप्ति के लिये जो द्रोणाचार्य्य का नाश कर सके यज्ञ करना प्रारंभ किया। यज्ञ के प्रसाद से धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र और कृष्णा नाम की एक कन्या हुई। द्रुपद के एक और पुत्र था जिसका नाम शिखंडी था। कृष्णा अर्जुन आदि पांडवों से ब्याही गई थी। द्रुपद महाभारत के युद्ध में मारा गया था। (२) खंभे का पाया। (३) खड़ाऊँ।

द्रुपदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक ऋचा जिसके आदि में द्रुपद शब्द आता है।

द्रुपदात्मज–संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० द्रुपदात्मजा] (१) शिखंडी। (२) धृष्टद्युम्न।

द्रुपदादित्य–संज्ञा पुं० [सं०] काशीखंड के अनुसार सूर्य्य की एक मूर्त्ति जिसे द्रौपदी ने स्थापित किया था।

द्रुम–संज्ञा पु० [सं०] (१) वृक्ष। (२) पारिजात। (३) कुबेर। (४) एक राजा का नाम जो पूर्वजन्म में शिवि नामक दैत्य था। (५) हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र के एक पुत्र का नाम जो रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ था।

द्रुमकंटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़।

द्रुमनख–संज्ञा पु० [सं०] काँटा।

द्रुमव्याधि–संज्ञा पु० [सं०] (१) पेड़ का रोग। (२) लाह। लाख। लाक्षा।

द्रुमभर–संज्ञा पुं० [सं०] काँटा। कंटक।

द्रुमश्रेष्ठ–संज्ञा पु० [सं०] ताड़ का पेड़।

द्रुमशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पेड़ का सिरा। (२) एक प्रकार की छत या गोल मंडप जो पेड़ की तरह फैला हुआ होता है।

द्रुमसार–संज्ञा पुं० [सं०] दाड़िम। अनार। उ०—अस्त्रबीज हानीक कर सूक पीक द्रुमसार। ये दाड़िम इमि देख बलि कछु तुव दसनाकार।—नंददास।

द्रुमसेन–संज्ञा पु० [सं०] (१) कौरवों के पक्ष का एक योद्धा जो धृष्टद्युम्न के हाथ से मारा गया था। (२) एक राजा जो पूर्वजन्म में गविष्ठ नाम का असुर था। (महाभारत)

द्रुमामय–संज्ञा पु० [सं०] (१) पेड़ का रोग। (२) लाक्षा। लाख।

द्रुमारि–संज्ञा पु० [सं०] हाथी।

द्रुमालय–संज्ञा पु० [सं०] जंगल।

द्रुमाश्रय–संज्ञा पु० [सं०] (जो पेड़ पर चले) गिरगिट।

द्रुमिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बन। जंगल।

द्रुमिल–संज्ञा पु० [सं०] (१) एक दानव का नाम। यह सौभ देश का राजा था। (२) नव योगेश्वरों में से एक।

द्रुमिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं। इसके प्रत्येक चरण के अंत में गुरु होता है तथा १० और १८ मात्रा पर यति होती है। उ०—उत्तर यह दैकै दूत पठै कै असदखान यह रोस भरयो। बोल्यो सब वीरन कुल के धीरन, जिन न चरन रन उलटि धरयो। तुम करो तयारी सब इस बारी, मैं दिल यह इतकाद करयो। मुझ को तो खरना देर न करना, आइह साह को काज करयो।—सूदन।

द्रुमेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) ताल। ताड़ का पेड़। (३) पारिजात।

द्रुमोत्पल–संज्ञा पु० [सं०] कर्णिकार वृक्ष। कनकचंपा। कनियारी।

द्रुवय–संज्ञा पु० [सं०] (१) लकड़ी की माप। पैमाना। (२) परिमाण।

द्रुसल्लक–संज्ञा पु० [सं०] पियाल वृक्ष। चिरौंजी का पेड़।

द्रुह–संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० द्रुही] (१) पुत्र। (२) वृक्ष।

द्रुहण–संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा।

द्रुहिण–संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा।

द्रुही–संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

द्रुह्यु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन आर्य्यों का एक वंश या जनसमूह। (२) शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा का जेठ पुत्र जिसने ययाति का बुढ़ापा लेना अस्वीकार किया था। इसने कहा था—"जराग्रस्त मनुष्य, स्त्री, रथ, हाथी इत्यादि को नहीं भोग सकता"। ययाति ने इस पर इसे शाप दिया कि "तेरी कोई अभिलाषा पूरी न होगी। जहाँ रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि की सवारी ही नहीं होती,

संज्ञा पुं० (१) स्वप्न । (२) पलायन । भागना ।

द्राप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश । (२) कौड़ी ।
वि० (१) मूर्ख । (२) सुप्त ।

द्रामिल–वि० [सं० द्राविड़] द्रमिल वा द्रविड़ देशवासी ।
संज्ञा पुं० चाणक्य ।

द्राव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन । (२) क्षरण । (३) बहने या पसीजने की क्रिया । गलने या पिघलने की क्रिया । (४) अनुताप ।

द्रावक–वि० [सं०] (१) द्रवरूप में करनेवाला । ठोस चीज़ को पानी की तरह पतला करनेवाला । (२) बहानेवाला । (३) गलानेवाला । (४) पिघलानेवाला । (५) हृदय पर प्रभाव डालनेवाला । जिससे चित्त आर्द्र हो जाय । (६) चतुर । चालाक । (७) पीछा करनेवाला । भगानेवाला । (८) चुरानेवाला । चोर । (९) हृदयग्राही ।
संज्ञा पुं० (१) चंद्रकांत मणि (२) जार । व्यभिचारी । (३) मोम । (४) सुहागा ।

द्रावकर–संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा ।

द्रावककंद–संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद । तिलकंदरा ।

द्रावण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्रवीभूत करने का कार्य्य या भाव । गलाने या पिघलाने की क्रिया या भाव । (२) भगाने का काम । (३) रीठा ।

द्राविका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लार । (२) मोम ।

द्राविड़–वि० [सं०] [स्त्री० द्राविड़ी] द्रविड़ देशवासी ।
संज्ञा पुं० [सं० द्रविड़] (१) द्रविड़ देश । (२) कचूर । (३) आमिया हल्दी ।

द्राविड़क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विट्लवण । सोंचर नमक । (२) कचिया हल्दी ।

द्राविड़गौड़–संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो रात के समय गाया जाता है । इसमें शृंगार और वीर रस अधिक गाया जाता है ।

द्राविड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची ।
संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविड़] द्रविड़ जाति की स्त्री ।
वि० द्रविड़ संबंधी । द्रविड़ देश का ।
मुहा०—द्राविड़ी प्राणायाम=किसी सीधी तरह होनेवाली बात को बहुत घुमाव फिराव के साथ करना । (इस मुहा० की उत्पत्ति ठीक ठीक नहीं मालूम होती । द्रविड़ लोग प्राणायाम करने में पहले दहिने हाथ की चुटकी बजाते हुए सिर के आस पास हाथ घुमाते हैं, पीछे नाक दबाकर प्राणायाम करते हैं । शायद इसीमें विशेषता देखकर उत्तरीय भारत के लोग ऐसा कहने लगे हों ।)

द्रावित–वि० [सं०] (१) द्रव किया हुआ । (२) गलाया या पिघलाया हुआ । (३) भगाया हुआ ।

द्राह्यायण–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम । ये दृढ ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हुए थे । सामवेद के कल्प, श्रौत और गृह्यसूत्र इनके बनाए हुए हैं ।

द्रु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष । (२) शाखा ।

द्रुकिलिम–संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु ।

द्रुघण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहे का मुगदर । (२) परशु या फरसे के आकार का एक अस्त्र जिसका सिरा मुड़ा हुआ होता था । इससे झुकाने, गिराने, फोड़ने और चीरने का काम लेते थे । (३) कुठार । कुल्हाड़ी (४) ब्रह्मा । (५) भूचंपा ।

द्रुण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष । (२) खड्ग । (३) बिच्छू । (४) भृंगी कीड़ा ।

द्रुणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष की ज्या । धनुष की डोरी ।

द्रुणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कछुही । (२) कनखजूरा । (३) कठवत ।

द्रुत–वि० [सं०] (१) द्रवीभूत । गला हुआ । (२) शीघ्रगामी । तेज़ । (३) भागा हुआ ।
संज्ञा पुं० (१) बिच्छू । (२) वृक्ष । (३) बिल्ली । (४) ताल की एक मात्रा का आधा जिसका चिह्न ० है । इसके देवता शिव और इसकी उत्पत्ति जल से मानी जाती है । उच्चारण चिड़िया की बोली के समान होता है ।
पर्या०—बिंदु । व्यंजन । सन्य । अर्द्धमात्रक । आकाश । व्यंजन । कूप । वलय ।
(५) वह लय जो मध्यम से कुछ तेज़ हो । दून ।

द्रुतगति–वि० [सं०] शीघ्रगामी ।

द्रुतगामी–वि० [सं० द्रुतगामिन्] [स्त्री० द्रुतगामिनी] शीघ्रगामी । तेज चलनेवाला ।

द्रुतत्रिताली–संज्ञा स्त्री० दे० "जल्द तिताला" ।

द्रुतपद–संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं, जिसमें चौथा, ग्यारहवाँ और बारहवाँ अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं ।

द्रुतमध्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्द्ध-सम-वृत्ति का नाम । इसके प्रथम और तृतीय पाद में ३ भगण और २ गुरु होते हैं (ऽ॥ ऽ॥ ऽ॥ ऽ ऽ) तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में १ नगण २ जगण और १ यगण (॥।ऽ।ऽ। ऽ ऽ) होता है । उ०—रामहिँ सेवहु रामहिँ गाओ । तन मन दै नित सीस नवाओ । जन्म अनेकन के अघ जारो । हरि हरि गा निज जन्म सुधारो ।

द्रुतविलंबित–संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में १ नगण २ भगण और एक रगण होता है (न भ भ र) (॥।ऽ॥ ऽ॥ ऽ।ऽ) इसे सुंदरी भी कहते हैं । उ०—भजन जो सखि बालमुकुंदरी । जग न सोहत यद्यपि सुंदरी ।

द्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) द्रव । (२) गति ।

से वे द्रोणाचार्य्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हींकी शिक्षा के प्रताप से कौरव और पांडव ऐसे बड़े धनुर्धर और अस्त्र-कुशल हुए। द्रोणाचार्य्य के सब शिष्यों में अर्जुन श्रेष्ठ थे। अस्त्र-शिक्षा दे चुकने पर द्रोणाचार्य्य ने कौरवों और पांडवों से कहा "हमारी गुरुदक्षिणा यही है कि द्रुपद राजा को बाँध कर हमारे पास लाओ।" कौरवों और पांडवों ने पंचाल देश पर चढ़ाई की। अर्जुन द्रुपद को युद्ध में हरा कर, उसे द्रोणाचार्य्य के पास पकड़ कर लाए। द्रोणाचार्य्य ने द्रुपद को यही कह कर छोड़ दिया कि "तुमने कहा था कि राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, अतः भागीरथी के दक्षिण तुम राज्य करो, उत्तर में राज्य करूँगा"। द्रुपद के मन में इस बात की बड़ी कसक रही। उसने ऋषियों की सहायता से पुत्रेष्टि यज्ञ द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से किया। यज्ञ के प्रभाव से उसे धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा (द्रौपदी) नाम की कन्या हुई। कुरुक्षेत्र के युद्ध में द्रोणाचार्य्य ने नौ दिन कौरवों की ओर से घोर युद्ध किया। अंत में जब युधिष्ठिर के मुँह से 'अश्वत्थामा मारा गया हाथी...' यह सुना तब पुत्रशोक में नीचा सिर करके वे ध्यान में डूबे। इसी अवसर पर धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया।

द्रोणि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा। (२) अष्टम मन्वंतर के एक ऋषि।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "द्रोणी"।

द्रोणिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नील का पौधा।

द्रोणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) डोंगी। (२) दोनियाँ। छोटा दोना। (३) लकड़ी का बना हुआ पात्र। कठवत। (४) काठ का प्याला। डोकिया। (५) दो पर्वतों के बीच की भूमि। दून। (६) केला। (७) दर्रा। (८) इंद्रायन। (९) एक नदी। (१०) द्रोण की स्त्री, कृपी। (११) नील का पौधा। (१२) एक परिमाण जो दो सूर्प या १२८ सेर का होता था। (१३) एक प्रकार का नमक। (१४) शीघ्रता।

द्रोणीदल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] केतकी का फूल।

द्रोणीलवण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का लवण जो कर्णाटक देश के आस पास होता है। इसे विरिया लोन भी कहते हैं। यह अति उष्ण, भेदक, स्निग्ध, शूलनाशक और अल्प पित्त-वर्द्धक माना गया है।

पर्य्या॰—द्रोणेय। वर्द्धेय। द्रोणीज। वारिज। वार्द्धिभव। द्रोणी। चित्रकूट-लवण।

द्रोणोदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सिंहहनु के पुत्र का नाम जो शाक्य मुनि बुद्ध के चाचा थे।

द्रोण्यामय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शरीर के भीतर का एक रोग।

द्रोन*†—संज्ञा पुं॰ दे॰ "द्रोण"।

द्रोह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ द्रोही] दूसरे का अहितचिंतन। प्रतिहिंसा का भाव। वैर। द्वेष।

द्रोहाट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वैडाल व्रतिक। ऊपर से देखने में साधु पर भीतर भीतर बुराई रखनेवाला। (२) मृगलुब्धक। (३) वेद की एक शाखा।

द्रोही—वि॰ [सं॰ द्रोहिन्] [स्त्री॰ द्रोहिणी] द्रोह करनेवाला। बुराई चाहनेवाला।

संज्ञा पुं॰ वैरी। शत्रु।

द्रौणायन, द्रौणायनि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अश्वत्थामा।

द्रौणि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) अश्वत्थामा। (२) एक ऋषि जो पुराणानुसार उनतीसवें द्वापर में होंगे।

द्रौणिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह खेत जिसमें एक द्रोण (३८ सेर) बीज बोया जाय।

वि॰ "द्रोणसंबंधी"

द्रौपद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ द्रौपदी] द्रुपद का पुत्र।

द्रौपदी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] राजा द्रुपद की कन्या कृष्णा जो पाँचों पांडवों को ब्याही गई थी।

विशेष—राजा द्रुपद ने जब द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया था तब उसे धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र और कृष्णा नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। जब कन्या बड़ी हुई तब द्रुपद ने उसका विवाह अर्जुन से करना विचारा। पर लाक्षागृह में आग लगने के पीछे जब पांडवों का पता बहुत दिनों तक न लगा तब द्रुपद ने उपयुक्त वर प्राप्त करने के लिये धूम धाम से एक स्वयंवर रचा। उसमें ऊपर एक मछली टाँग दी गई जिससे कुछ नीचे हट कर एक चक्र घूम रहा था। द्रुपद ने प्रतिज्ञा की कि जो कोई उस मछली की आँख को बाण से बेधेगा उसी को द्रौपदी दी जायगी। स्वयंवर में बहुत दूर दूर से राजा लोग आए थे, पाँचों पांडव भी घूमते घूमते ब्राह्मण के वेश में वहाँ पहुँचे। जब कोई क्षत्रिय लक्ष्य भेद न कर सका तब कर्ण उठा। पर द्रौपदी ने कहा कि मैं सूतपुत्र के साथ विवाह नहीं कर सकती। अंत में ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन ने उठकर लक्ष्य भेद किया। पाँचों पांडव उन दिनों गुप्त रूप से एक ब्राह्मण के यहाँ माता सहित रहते थे। अतः द्रौपदी को लेकर पाँचों भाई ब्राह्मण के आश्रम पर गए और द्वार पर माता को पुकार कर बोले "माँ, आज हमलोग एक रमणीय भिक्षा माँग कर लाए हैं।" कुंती ने भीतर से कहा "अच्छी बात है, पाँचों भाई मिलकर भोग करो"। माता के वचन की रक्षा के लिये पाँचों भाइयों ने द्रौपदी को ग्रहण किया। नारद के सामने यह प्रतिज्ञा की गई कि जिस समय एक भाई द्रौपदी के पास हो दूसरा उस समय वहाँ न जाय, यदि जाय तो बारह वर्ष उसे बनवास करना पड़े।

जहां कूद फांद कर चलना पड़ता है, जहां "राजा" शब्द का व्यवहार ही नहीं है वहां तुम्हे रहना पड़ेगा"। द्रुह्यु के वंश में कोई राजा नहीं हुआ (महाभारत)। आसाम के पास त्रिपुरा राजवंश की जो वंशावली 'राजमाला' नाम की है उसमें त्रिपुरा राजवंश का चंद्रवंशी एक राजा द्रुह्यु से चलना लिखा गया है। पर विष्णु पुराण और हरिवंश के अनुसार द्रुह्यु को बभ्रु और सेतु नामक दो पुत्र हुए। सेतु के पौत्र का नाम गांधार था जिसके नाम से देश का नाम पड़ा। अस्तु पुराणों के अनुसार द्रुह्यु भारत के पच्छिमी कोने पर गया था न कि पूरबी। राजमाला की कथा कल्पित है।

द्रू–संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

द्रूण–संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक। बिच्छू।

द्रेका–संज्ञा स्त्री० [सं०] महानिंब। बकायन।

द्रेक–संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० "द्रकाण"।

द्रेकाण–संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० "द्रकाण"।

द्रेष्काण–संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० "द्रकाण"।

द्रोण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लकड़ी का एक कलसा या बरतन जिसमें वैदिक काल में सोम रखा जाता था। (२) जल आदि रखने का लकड़ी आदि का बरतन। कठवत। (३) एक प्राचीन माप जो चार आढक या १६ सेर, किसी किसी के मत से ३२ सेर की मानी जाती थी।

पर्य्या०—घट। कलस। उन्मान। उल्वण। अर्मण।

(४) पत्तों का दोना। (५) नाव। डोंगा। (६) अरणी की लकड़ी। (७) लकड़ी का रथ। (८) डोम कौआ। काला कौआ। (९) बिच्छू। (१०) वह जलाशय या तालाब जो चार सौ धनुष लंबा चौड़ा हो। यह पुष्करिणी और दीर्घिका से बड़ा होता है। (११) मेघों के एक नायक का नाम। जिस वर्ष यह मेघ नायक होता है उस वर्ष बहुत अच्छी वर्षा होती है। (१२) वृक्ष। पेड़। (१३) द्रोणाचल नाम का पहाड़ जो रामायण के अनुसार क्षीरोद समुद्र के किनारे है और जिसपर विशल्यकारिणी नाम की संजीवनी जड़ी होती है। पुराणों के अनुसार यह एक वर्ष पर्वत है। (१४) एक फूल का नाम (१५) नील का पौधा। (१६) केला। (१७) महाभारत के प्रसिद्ध ब्राह्मण योद्धा जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्र-शिक्षा पाई थी। दे० 'द्रोणाचार्य्य'।

द्रोणकल–संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का एक पात्र जिसमें यज्ञों में सोम छाना जाता था। यह वैकंक की लकड़ी का बनाया जाता था।

द्रोणकाक–संज्ञा पुं० [सं०] काला कौआ। डोम कौआ।

द्रोणगंधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना।

द्रोणगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। पुराणानुसार यह एक वर्ष पर्वत है। वाल्मीकीय रामायण में इसे क्षीरोद समुद्र में लिखा है। हनुमान् विशल्यकारिणी संजीवनी जड़ी लेने इसी पर्वत पर गए थे।

द्रोणपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूकदली।

द्रोणपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गूमा।

द्रोणमुख–संज्ञा पुं० [सं०] वह गांव जो ४०० गावों के बीच प्रधान हो।

द्रोणशर्मपद–संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

द्रोणस–संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

द्रोणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गूमा।

द्रोणाचल–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत। द्रोणगिरि।

द्रोणाचार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्र-शिक्षा पाई थी।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है। गंगा-द्वार (हर-द्वार) के पास भरद्वाज नाम के एक ऋषि रहते थे। वे एक दिन गंगा-स्नान करने जाते थे, इसी बीच घृताची नाम की अप्सरा नहा कर निकल रही थी। उसका वस्त्र छूट कर गिर पड़ा। ऋषि उसे देख कामार्त्त हुए और उनका वीर्य्यपात हो गया। ऋषि ने वीर्य्य को द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख छोड़ा। इसी द्रोण से जो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम द्रोण पड़ा। भरद्वाज ने अपने शिष्य अग्निवेश को जो अस्त्र दिए थे अग्निवेश ने वे सब द्रोण को दिए। भरद्वाज के शरीर-पात के उपरांत द्रोण ने शरद्वान् की कन्या कृपी के साथ विवाह किया जिससे उन्हें अश्वत्थामा नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा घोड़े के समान घोर शब्द किया। द्रोण ने महेंद्र पर्वत पर जाकर परशुराम से अस्त्र और शस्त्र की शिक्षा पाई। वहां से लौटने पर इनके दिन दरिद्रता में बीतने लगे। पृषत नामक एक राजा भरद्वाज के सखा थे। उनका पुत्र द्रुपद आश्रम पर आकर द्रोण के साथ खेलता था। द्रुपद जब उत्तर-पांचाल का राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए और उन्होंने उसे अपनी बाल मैत्री का परिचय दिया। पर द्रुपद ने राजमद के कारण उनका तिरस्कार कर दिया। इस पर दुःखित और क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य्य हस्तिनापुर चले गए और वहां अपने साले कृपाचार्य्य के यहां ठहरे। एक दिन युधिष्ठिर आदि राजकुमार गेंद खेल रहे थे। उनका गेंद कूए में गिर पड़ा। बहुत यत्न करने पर भी वह गेंद नहीं निकलता था, इसी बीच में द्रोण उधर से निकले और उन्होंने अपने बाणों से मार मार कर गेंद को कूएँ से बाहर कर दिया। जब यह खबर भीष्म को लगी तब उन्होंने द्रोण को राजकुमारों की अस्त्रशिक्षा के लिये नियुक्त किया। तब

द्वात्रिंश–वि० [सं०] बत्तीसवाँ।

द्वात्रिंशत्–वि० [सं०] जो संख्या में तीस और दो हो। बत्तीस।
संज्ञा पुं० बत्तीस की संख्या या अंक।

द्वादश–वि० [सं०] (१) जो संख्या में दस और दो हो। बारह।
(२) बारहवाँ।
संज्ञा पुं० बारह की संख्या या अंक।

द्वादशक–वि० [सं०] बारह का।

द्वादशकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय। (२) बृहस्पति।
(३) कार्तिकेय का एक अनुचर। (४) हर्षण योग।

द्वादशभाव–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जन्मकुंडली के बारह घर जिनके क्रम से तनु, आदि नाम फलानुसार रखे गए हैं।
विशेष—जन्मकालीन लग्न से पहले घर से तनु (अर्थात् शरीर क्षीण होगा कि स्थूल, सबल कि निर्बल, लंबा कि नाटा इत्यादि); दूसरे घर से धन और कुटुंब; तीसरे से युद्ध और विक्रम आदि; चौथे से बंधु, वाहन, सुख और आलय; पाँचवें से बुद्धि, मंत्रणा और पुत्र; छठें से चोट और शत्रु; सातवें से काम, स्त्री और पथ; आठवें से आयु मृत्यु, अपवाद आदि; नवें से गुरु, माता, पिता, पुण्य आदि; दसवें से मान, आज्ञा और कर्म, ग्यारहवें से प्राप्ति और आय; बारहवें घर से मंत्री और व्यय का विचार किया जाता है।

द्वादशरात्र–संज्ञा पुं० [सं०] बारह दिनों में होनेवाला एक यज्ञ।

द्वादशलोचन–संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

द्वादशवर्गी–संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में नीलकंठ ताजिक के अनुसार वर्षकाल में ग्रहों के फलाफल निकालने के लिये बारह वर्गों की समष्टि।
विशेष—बारह वर्ग ये हैं—क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, पंचमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टमांश, नवमांश, दशमांश एकादशांश और द्वादशांश।

द्वादशवार्षिक–संज्ञा पुं० [सं०] बारह वर्ष का एक व्रत जो ब्रह्महत्या लगने पर किया जाता है।
विशेष—इस में हत्यारे को वन में कुटी बनाकर, सब कामनाओं को त्याग कर के रहना पड़ता है। यदि वनफलों से निर्वाह न हो तो एक चिह्न धारण करके बस्ती में भिक्षा माँगनी पड़ती है।

द्वादशशुद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णव संप्रदाय में तंत्रोक्त बारह प्रकार की शुद्धि।
विशेष—देवगृह परिष्कार, देवगृह गमन, प्रदक्षिणा, ये तीन प्रकार की पद शुद्धि हैं। पूजा के लिये फूल पत्ते तोड़ना, प्रतिमाचालन (स्पर्श आदि) यह हस्तशुद्धि हुई, भगवान का नाम कीर्तन वाक्यशुद्धि है। हरिकथा श्रवण, प्रतिमा उत्सव आदि का दर्शन यह श्रवण और नेत्रशुद्धि हुई। विष्णु-पादोदक और निर्माल्य धारण तथा प्रणाम शिर की शुद्धि तथा निर्माल्य और गंधपुष्पादि का सूँघना घ्राणशुद्धि है।

द्वादशांग–वि० [सं०] जिसके बारह अंग या अवयव हों।
संज्ञा पुं० (१) बारह गंधद्रव्यों के योग से बनी हुई पूजा में जलाने की धूप।
विशेष—बारह द्रव्य ये हैं—गुग्गुल, चंदन, तेजपात, कुट, अगर, केसर, जायफल, कपूर, जटामासी, नागरमोथा, तज और खस।
(२) जैनों का वह ग्रंथ-समूह जिसे वे गणधरों का बनाया मानते हैं। इसके बारह भेद हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समावायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञानधर्म-कथा, उपासक दशांग, अंतकृद्दशांग, अनुत्तरोपपत्तिकांग, प्रश्न-व्याकरण, विपाकसूत्र, और दृष्टिवाद।

द्वादशांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के द्वादश अंग ग्रंथों का समूह।

द्वादशांशु–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

द्वादशाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय। (२) बुद्धदेव।

द्वादशाक्षर–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक मंत्र जिसमें बारह अक्षर हैं। वह मंत्र यह है, 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय'।

द्वादशाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

द्वादशात्मा–संज्ञा पुं० [सं० द्वादशात्मन्] (१) सूर्य्य। (२) आक का पेड़।

द्वादशायतन–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दर्शन के अनुसार पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों तथा मन और बुद्धि का समुदाय।

द्वादशाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बारह दिनों का समुदाय। (२) एक यज्ञ जो बारह दिनों में किया जाता था। (३) वह श्राद्ध जो किसी के निमित्त उसके मरने से बारहवें दिन किया जाय।

द्वादशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक पक्ष की बारहवीं तिथि।

द्वापर–संज्ञा पुं० [सं०] चार युगों में तीसरा युग। पुराणों में यह युग ८६४००० वर्ष का माना गया है।
विशेष—भादों की कृष्ण त्रयोदशी बृहस्पतिवार को इस युग की उत्पत्ति मानी गई है। मत्स्यपुराण के अनुसार द्वापर लगते ही धर्म आदि में घटती आरंभ हुई। जिनके करने से त्रेता में पाप नहीं लगता था वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे, प्रजा लोभी हो चली, अज्ञान के कारण श्रुति स्मृति आदि का यथार्थ बोध लुप्त होने लगा, नाना प्रकार के भाष्य आदि बनने और अनेक प्रकार के मतभेद चलने लगे। एक पुराण के अनुसार द्वापर में मनुष्यों की परमायु दो हजार वर्ष की थी।

दुर्योधन के साथ जुवा खेलते खेलते युधिष्ठिर जब सब कुछ हार गए तब द्रौपदी को भी हार गए। इस पर दुर्योधन ने भरी सभा में दुःशासन के द्वारा द्रौपदी को पकड़ बुलाया, दुःशासन सभा के बीच उसका वस्त्र खींचना चाहता था, पर वस्त्र न खिँच सका। इस अपमान पर कुपित होकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि "दुर्योधन, जिस जंघे को तूने द्रौपदी को दिखाया है उसे मैं अवश्य तोड़ूँगा, और तेरे कलेजे का रक्तपान करूँगा"। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। पुराणों में द्रौपदी की गणना पंच कन्याओं में है।

पर्य्या०—कृष्णा। पांचाली। सैरिंध्री। नित्ययौवना। याज्ञसेनी। वेदिजा।

द्रौपदेय–संज्ञा पुं० [सं०] द्रौपदी के पुत्र।

द्रौह्य–संज्ञा पुं० [सं०] द्रुह्य के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

द्वंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) युग्म। मिथुन। जोड़ा। उ०—ध्वज कुलिश अंकुश कंज-युत बन फिरत कंटक जिन लहे। पद कंज द्वंद मुकुंदराम रमेस नित्य भजामहे।—तुलसी। (२) जोड़ा। प्रतिद्वंद्वी। (३) द्वंद्वयुद्ध। दो आदमियों की परस्पर लड़ाई। (४) झगड़ा। कलह। बखेड़ा। उ०—धनि यह द्वैज जहाँ लख्यौ तज्यौ दृगनि दुख द्वंद। तुव भागनि पूरब उयौ अहो अपूरब चंद।—विहारी।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(५) दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे गर्मी-सर्दी, राग-द्वेष सुख-दुःख दिन-रात इत्यादि। उ०—रघुनंद निर्कंदय द्वंद घनं। महिपाल विलोकिय दीनजनं।—तुलसी। (६) उलझन। बखेड़ा। झंझट। जंजाल। उ०—जो मन लागै रामचरन अस। देह गेह सुत वित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस। द्वंद-रहित गतमान ज्ञानरत विषय-विरत खटाइ नाना कस।—तुलसी। (७) कष्ट। दुःख। उ०—सोरह सहस घोष-कुमारि। देखि सब को स्याम रीझे रहीं भुजा पसारि। बोलि लीन्हों कदम के तर इहाँ आवहु नारि। प्रगट भए तहाँ सबनि को हरि काम द्वंद निवारि। —सूर। (८) उपद्रव। झगड़ा। ऊधम। उ०—कहा करौं हरि बहुत सिखाई। सहि न सकी रिस ही रिस भरि गई बहुतै ढीठ कन्हाई। मेरो कह्यो नेकु नहिँ मानत करत आपनी टेक। भोर होत उरहन लै आवत ब्रज की वधू अनेक। फिरत जहाँ तहँ द्वंद मचावत घर न रहत छन एक। सूरश्याम त्रिभुवन को करता यशुमति कहति जनेक। —सूर।

क्रि० प्र०—मचाना।

(९) रहस्य। गुप्त बात। (१०) आशंका। भय। डर। (११) दुबधा। दो-चित्तापन। संशय।

विशेष—दे० "द्वंद्व"।

संज्ञा स्त्री० [सं० दुंदुभी] दुंदुभी। उ०—बाजे ढोल द्वंद औ भेरी। मंदिर तूर झाँझ चहुँ फेरी।—जायसी।

द्वंदज–वि० दे० "द्वंद्वज"।

द्वंदयुद्ध–संज्ञा पुं० दे० "द्वंद्वयुद्ध"।

द्वंदर*–वि० [सं० द्वंद्वालु] झगड़ालू। उ०—दीन गरीबी दीन को द्वंदर को अभिमान। द्वंदर तो विष से भरा दीन गरीबी जान।—कबीर।

द्वंद्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) युग्म। दो वस्तुएँ जो एक साथ हों। जोड़ा। (२) स्त्री पुरुष या नर मादा का जोड़ा। (३) दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, शीत उष्ण, सुख दुःख, भला बुरा, पाप पुण्य, स्वर्ग नरक इत्यादि। (४) रहस्य। भेद की बात। गुप्त बात। (५) दो आदमियों की लड़ाई। (६) झगड़ा। बखेड़ा। कलह।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(७) एक प्रकार का समास जिसमें मिलनेवाले सब पद प्रधान रहते हैं और उनका अन्वय एक ही क्रिया के साथ होता है, जैसे, हाथ पाँव बाँधो, रोटी दाल खाओ।

विशेष—यह समास "और" आदि संयोजक पदों का लोप करके बनाया जाता है, जैसे, 'हाथ और पाँव' से 'हाथ पाँव,' 'रात और दिन' से 'रात दिन'।

(८) दुर्ग। किला।

द्वंद्वचर–वि० [सं०] जोड़े के साथ चलने या रहनेवाला।

संज्ञा पुं० चक्रवाक। चकवा।

द्वंद्वचारी–संज्ञा पुं० [सं० द्वंद्वचारिन् [स्त्री० द्वंद्वचारिणी] चकवा।

द्वंद्वज–वि० [सं०] (१) सुख दुःख रागद्वेष आदि द्वंद्वों से उत्पन्न (मनोवृत्ति)। (२) वात, पित्त और कफ़ नाम के त्रिदोषों में से दो दोषों से उत्पन्न (रोग)।

द्वंद्वयुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई जो दो पुरुषों के बीच में हो। कुश्ती। हाथा पाई।

द्वय–वि० [सं०] दो।

द्वयाग्नि–संज्ञा पुं० [सं०] लाल चीता।

द्वयातिग–वि० [सं०] जिसके सत्वगुण ने शेष दो गुणों अर्थात् रजः और तमोगुण को दबा लिया हो। जिसमें सत्वगुण प्रधान हो, और शेष दो गुण दबकर अधीन हो गए हों।

द्वाःस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। (२) नंदिकेश्वर।

द्वाचत्वारिंश–वि० [सं०] बयालीसवाँ।

द्वाचत्वारिंशत्–वि० [सं०] जो संख्या में चालीस से दो अधिक हो। बयालीस।

संज्ञा पुं० बयालीस की संख्या।

द्वाज–संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री का वह पुत्र जो उसके पति से उत्पन्न न हो, दूसरे पुरुष से उत्पन्न हो। जारज। दोगला।

अव्य० [सं० द्वारात्] जरिये से। वसीले से। साधन से। हेतु से। कारण से। कर्त्तृत्व से।

मुहा०—किसी के द्वारा=(१) किसी के करने से। किसी की क्रिया से। जैसे, यह कार्य्य उसीके द्वारा हुआ है। (२) किसी के योग वा सहायता से। किसी की मध्यस्थता द्वारा। किसी के मारफत। जैसे, चिट्ठी आदमी के द्वारा भेज दो। (३) किसी वस्तु के उपयोग से। जैसे, मशीन के द्वारा काम जल्दी होगा।

द्वारावती–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका।

द्वारिक–संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल। दरबान।

द्वारिका–संज्ञा स्त्री० दे० "द्वारका"।

द्वारी*–संज्ञा स्त्री० [सं० द्वार+ई (प्रत्य०)] छोटा द्वार। दरवाजा। उ०—द्वारी निहारि पछीति की भीति में टेरि सखी मुख बात सुनाई।—प्रताप।

संज्ञा पुं० [सं० द्वारिन्] द्वारपाल।

द्वाल–संज्ञा पुं० दे० "दुवाल"।

द्वालबंद–संज्ञा पुं० दे० "दुवालबंद"।

द्वाली–संज्ञा स्त्री० दे० "दुवाली"।

द्वाविंश–वि० [सं०] बाईसवाँ।

द्वाविंशति–वि० [सं०] जो संख्या में बीस और दो हो। बाईस।

द्वाषष्ठ–वि० [सं०] बासठवाँ।

द्वाषष्ठि–वि० [सं०] जो गिनती में साठ और दो हो। बासठ।

द्वासप्तत–वि० [सं०] बहत्तरवाँ।

द्वासप्तति–वि० [सं०] जो गिनती में सत्तर और दो हो। बहत्तर।

द्वास्थ–संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल।

द्वि–वि० [सं०] दो।

द्विक–वि० [सं०] (१) जिसमें दो अवयव हों। (२) दोहरा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) काक। (२) कोक। चकवा।

द्विककुद–संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

द्विकर्मक–वि० [सं०] (क्रिया) जिसके दो कर्म हों।

द्विकल–संज्ञा पुं० [हिं० द्वि+कला] छंदःशास्त्र या पिंगल में दो मात्राओं का समूह। (यह दो प्रकार का होता है। एक में तो दोनों मात्राएँ पृथक् पृथक् रहती हैं, जैसे, जल, थल, मन, धन इत्यादि और दूसरे में एक ही अक्षर दो मात्राओं का होता है, जैसे, खा, जा, खा, आ, का, इत्यादि)

द्विक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] शोरा और सज्जी।

द्विगु–वि० [सं०] जिसे दो गायें हों।

संज्ञा पुं० वह कर्मधारय समास जिसका पूर्वपद संख्यावाचक हो। यह समास तीन प्रकार का होता है—तद्धितार्थ जैसे पंचगु अर्थात् जिसे पाँच गो देकर मोल लिया हो, उत्तरपद जैसे पंचकोश अर्थात् जिसमें पाँच कोश हों; और समाहार, जैसे त्रिलोकी, अर्थात् तीनों लोक, त्रिभुवन। पाणिनिजी ने इस समास को कर्मधारय के अंतर्गत रखा है पर और वैयाकरण इसे एक स्वतंत्र समास मानते हैं।

द्विगुण–वि० [सं०] दुगना। दूना।

द्विगुणित–वि० [सं०] (१) दो से गुणा किया हुआ। जिसे दुगना किया हो। (२) दूना। दुगना।

द्विघटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दो घड़ियों के हिसाब से निकाला हुआ मुहूर्त।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है। रात दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त कर देते हैं और फिर शुभाशुभ का विचार करते हैं। इस मुहूर्त में दिन का विचार नहीं होता सब दिन सब ओर की यात्रा हो सकती है। इसका व्यवहार उस स्थल पर होता है जहाँ कई दिन ठहरने या रुकने का समय नहीं रहता।

द्विचत्वारिंश–वि० [सं०] बयालीसवाँ।

द्विचत्वारिंशत्–वि० [सं०] जो चालीस से दो अधिक हो। बयालीस।

द्विज–संज्ञा पुं० [सं०] जो दो बार उत्पन्न हुआ हो। जिसका जन्म दो बार हुआ हो।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंडज प्राणी। (२) पक्षी। (३) हिंदुओं में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के पुरुष जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। मनु के धर्मशास्त्र के अनुसार यज्ञोपवीत मनुष्य का दूसरा जन्म माना गया है। (४) ब्राह्मण। (५) चंद्रमा। पुराण में कथा है कि चंद्रमा का दो बार जन्म हुआ था। एक बार वे अत्रिऋषि के पुत्र हुए थे और दूसरी बार समुद्र के मथन के समय समुद्र से निकले थे। (६) दाँत। (७) तुंबुरु। नैपाली धनियाँ।

द्विजदंपति–संज्ञा पुं० [सं० द्विज+दंपती] चाँदी का एक पत्तर जिस पर स्त्रीपुरुष या लक्ष्मीनारायण का युगल चित्र खुदा रहता है। यह स्त्रियों के मृतक कर्म में दशाह के बाद ब्राह्मण को दान दिया जाता है।

द्विजन्मा–वि० [सं० द्विजन्मन्] जिसका दो बार जन्म हुआ हो।

संज्ञा पुं० द्विज।

द्विजपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) चंद्र। (३) कपूर। (४) गरुड़।

द्विजप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम।

द्विजबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार या कर्महीन द्विज। नाम मात्र का द्विज।

द्विजब्रुव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाम मात्र का द्विज जिसका जन्म तो द्विज मातापिता से हुआ हो पर वह स्वयं द्विजो

द्वामुष्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पुरुष जो दो मनुष्यों का पुत्र हो (एक का औरस और दूसरे का दत्तक)। (२) वह पुरुष जो दो ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो। (३) उद्दालक मुनि का नाम। (४) गौतम मुनि का नाम।

द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी ओट करनेवाली या रोकनेवाली वस्तु (जैसे, दीवार, परदा आदि) में वह छिद्र या खुला स्थान जिससे होकर कोई वस्तु आर पार या भीतर बाहर जा सके। मुख। मुहाना। मुहड़ा। जैसे, गंगाद्वार। (२) घर में आने जाने के लिये दीवार में खुला हुआ स्थान। दरवाजा।

मुहा०—(किसी बात के लिये) द्वार खुलना=किसी बात के बराबर होने के लिये मार्ग या उपाय निकलना। द्वार द्वार फिरना=(१) कार्य्यसिद्धि के लिये चारों ओर बहुत से लोगों के यहाँ जाना। (२) घर घर भीख माँगना। द्वार लगना=(१) किवाड़ बंद होना। (२) किसी आसरे में दरवाजे पर खड़ा रहना। उ०—यह जान्यो जिय राधिका द्वारे हरि लागे। गर्व कियो जिय प्रेम को ऐसे अनुरागे।—सूर। (३) चुपचाप किसी बात की आहट लेने के लिये किवाड़ के पीछे छिपकर खड़ा होना। द्वार लगाना=किवाड़ बंद करना। (३) इंद्रियों के मार्ग वा छेद, जैसे आँख, कान, नाक, मुँह, आदि। उ०—नौ द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन। रहने को आश्चर्य्य है गए अचंभा कौन?—कबीर। (४) उपाय। साधन। ज़रिया। जैसे, रुपया कमाने का द्वार।

विशेष—सांख्यकारिका में अंतःकरण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेंद्रियाँ उसके द्वार बतलाई गई हैं।

द्वारकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] किवाड़। कपाट।

द्वारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठियावाड़ गुजरात की एक प्राचीन नगरी। पुराणानुसार यह सात पुरियों में मानी गई है। यहाँ द्वारकानाथजी का मंदिर है। हिंदू लोग इसे चार धामों में मानते हैं और यहाँ आकर बड़ी श्रद्धा से छाप लेते हैं। द्वारावती भी इसे कहते हैं। यहाँ श्रीकृष्णचंद्र जरासंध के उत्पातों के कारण मथुरा छोड़कर जा बसे थे। यहीं उस समय यादवों की राजधानी थी। पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण के देहत्याग के पीछे द्वारका समुद्र में मग्न हो गई। पोरबंदर से १२ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान लोग अब तक बतलाते हैं। द्वारका का एक नाम कुशस्थली भी है।

द्वारकाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्णचंद्र। (२) कृष्ण की वह मूर्ति जो द्वारका में है।

द्वारकानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृष्णचंद्र। (२) कृष्णचंद्र की वह मूर्त्ति जो द्वारका में है।

द्वारकेश—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारकानाथ।

द्वारचार—संज्ञा पुं० [सं० द्वार+चार=व्यवहार] वह रीति जो लड़कीवाले के दरवाजे पर बारात पहुँचने पर होती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

द्वारछेंकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० द्वार+छेंकना] (१) विवाह में एक रीति। जब वर विवाह कर वधू समेत अपने घर आता है तब कोहबर के द्वार पर उसकी बहन उसकी राह को रोकती है। ऐसे समय वर कुछ नेग देता है तब वह राह छोड़ देती है। (२) वह नेग जो द्वारछेंकाई में दिया जाता है।

द्वारपंडित—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राजा के यहाँ का प्रधान पंडित।

द्वारप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। उ०—द्रुपदभूप तब कोपित वेशा। दियो द्वारपन तुरत सँदेशा।—सबल। (२) विष्णु।

द्वारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्वारपाली, द्वारपालिनी, द्वारपालिन] (१) वह पुरुष जो दरवाजे पर रक्षा के लिये नियुक्त हो। ड्योढीदार। दरबान।

पर्य्या०—प्रतीहार। द्वाःस्थ। द्वारप। दर्शक। दौःसाधिक। वर्त्तरुक। गर्वाट। द्वारस्थ। क्षत्ता। दौवारिक। दंडी।

(२) तंत्र के अनुसार वह देवता जो किसी मुख्य देवता के द्वार का रक्षक हो। इन देवताओं की पूजा पहले की जाती है। (३) एक तीर्थ। महाभारत में इसे सरस्वती के किनारे लिखा है।

द्वारपालक—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल।

द्वारपिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देहली। ड्योढ़ी। दहलीज।

द्वारपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाह में एक कृत्य जो कन्यावाले के द्वार पर उस समय होता है जब बरात के साथ वर पहले पहल आता है। कन्या का पिता द्वार पर स्थापित कलश आदि का पूजन करके अपने इष्ट मित्रों सहित वर को उतारता और मधुपर्क देता है। (२) जैनों की एक पूजा।

द्वारबलिभुक्, द्वारबलिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगला।

द्वारयंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताला।

द्वारवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारावती। द्वारका।

द्वारसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पुराना नगर। यहाँ कर्नाटक के राजाओं की राजधानी थी। इसके खंडहर अब तक श्रीरंगपट्टन से वायुकोण पर सौ मील पर हैं।

द्वारस्थ—वि० [सं०] जो द्वार पर बैठा हो।

संज्ञा पु० द्वारपाल।

द्वारा—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] (१) द्वार। दरवाजा। फाटक उ०—सुनि के शब्द मँडफ झनकारा। बैठेउ आय पुरुब के द्वारा।—जायसी। (२) मार्ग। राह। उ०—साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।—तुलसी।

द्विप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी। (२) नागकेसर।

द्विपक्ष-वि० [सं०] (१) जिसके दो पर हों। (२) जिसमें दो पक्ष हों।

संज्ञा पुं० (१) पक्षी। चिड़िया। (२) महीना। मास।

द्विपक्षमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] दशमूल।

द्विपथ-संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ दो पथ आकर मिलते हों। दोराहा।

द्विपद-वि० [सं०] (१) जिसके दो पैर हों। जैसे, मनुष्य, पक्षी। (२) जिसमें दो पद या शब्द हों।

संज्ञा पुं० (१) वह जंतु जिसके दो पैर हों। (२) मनुष्य। (३) ज्योतिष के अनुसार मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु लग्न का पूर्व भाग। (४) वास्तुमंडल का एक कोठा।

द्विपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ऋचा जिसमें केवल दो पाद हों।

द्विपदिक-संज्ञा पु० [सं०] शुद्धराग का एक भेद।

द्विपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह छंद या वृत्ति जिसमें दो पद हों। (२) दो पदों का गीत। (३) एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसमें किसी दोहे आदि को कोठों की तीन पंक्तियों में इस प्रकार लिखते हैं—दोहे के पहले चरण का आदि अक्षर पहले कोठे में, फिर एक एक अक्षर छोड़कर पहली पंक्ति के कोठों में भरते हैं, इसके उपरांत छूटे हुए अक्षरों को दूसरी पंक्ति के कोठों में एक एक करके रख देते हैं। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति के कोठों में दोहे के दूसरे चरण के अक्षर एक एक अक्षर छोड़ते हुए रखते हैं। इन्हीं तीन कोष्ठ पंक्तियों से पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है। पढ़ने का क्रम यह होना चाहिए कि पहले कोठे के अक्षर को पढ़कर उसके नीचेवाले कोठे के अक्षर को पढ़े, फिर पहली पंक्ति के दूसरे अक्षर को पढ़कर उसके नीचे के (दूसरी पंक्ति के दूसरे) कोठे के अक्षर को पढ़े। तीसरी पंक्ति के कोठों के अक्षरों को नीचे से ऊपर इस क्रम से पढ़े, जैसे,

रा	दे	न	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	ध	न	द	रि
वा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

रामदेव नरदेव गति पाशु धरन मद धारि।
वामदेव गुरुदेव गति पर कुधरन हद धारि॥

पर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार के जंगली बेर का पेड़। बनकोली।

द्विपाद-वि० [सं०] (१) जिसे दो पैर हों। दो पैरोंवाला (पशु)। (२) जिसमें दो पद या चरण हों (छंद, आदि)।

संज्ञा पु० मनुष्य, पक्षी आदि दो पैरवाले जंतु।

द्विपायी-संज्ञा पु० [सं० द्विपायिन्] [स्त्री० द्विपायिनी] हाथी।

द्विपास्य-संज्ञा पु० [सं०] गणेश (जिनका मुख हाथी के मुख के समान है)।

द्विपृष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के नव वासुदेवों में से एक।

द्विबाहु-वि० [सं०] जिसके दो बाहु हों। द्विभुज।

संज्ञा पु० मनुष्य आदि दो पैरवाले जीव।

द्विभाव-संज्ञा पु० [सं०] दो भाव। दुराव।

वि० जिसमें दो भाव हों। कपटी। बुरे स्वभाव का।

द्विभाषी-संज्ञा पु० [सं० द्विभाषिन्] [स्त्री० द्विभाषिणी] वह पुरुष जो दो भाषाएँ जानता हो। दुभाषिया।

द्विभुज-वि० [सं०] जिसके दो हाथ हों। दो हाथवाला।

द्विभूम-वि० [सं०] दो तल्ला (घर)।

द्विमातृ-संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) जरासंध।

द्विमातृज-संज्ञा पु० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) (१) जरासंध। (२) गणेश।

द्विमात्र-संज्ञा पु० [सं०] वह वर्ण जो दो मात्राओं का हो। दीर्घ। जैसे, आ, ऊ, ई इत्यादि।

द्विमीढ-संज्ञा पु० [सं०] हरिवंश के अनुसार हस्तिनापुर बसानेवाले महाराज हस्ति का एक पुत्र। यह अजमीढ़ का भाई था।

द्विमुख-वि० [सं०] [स्त्री० द्विमुखी] जिसके दो मुँह हों।

संज्ञा पु० एक प्रकार के कृमि जो पेट के मल में उत्पन्न हो जाते हैं। (२) दो मुँहवाला साँप। गूँगी।

द्विमुखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

द्विमुखी-वि० स्त्री० [सं०] दो मुँहवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) वह गाय जो बच्चा दे रही हो। (बच्चा देते समय गाय के पीछे की ओर बच्चे का मुहँ निकलता है इससे देखने में गाय के दोनों ओर मुहँ दिखाई पड़ता है। ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है)।

द्वियजुष-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट जो यज्ञों में यज्ञकुंड मंडप आदि के बनाने में काम आती थी।

संज्ञा पु० यजमान।

द्विरद-संज्ञा पु० [सं०] (१) हाथी। (२) दुर्योधन का एक भाई। उ०—द्विरदहि बहुरि योजाइ नरेशा। सौंपि गयंद-यूथ उपदेशा।—सबल।

वि० दो दाँतोंवाला।

द्विरदाशन-संज्ञा पु० [सं०] सिंह।

द्विरसन-संज्ञा पु० [सं०] साँप।

द्विरागमन-संज्ञा पु० [सं०] (१) पुनरागमन। फिर दूसरी बार आना। (२) वधू का अपने पति के घर दूसरी बार आना। गौना।

द्विरात्र-संज्ञा पु० [सं०] दो रातों में होनेवाला एक यज्ञ।

द्विराप-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

द्विरुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो बार कथन।

के संस्कार और कर्म से हीन हो। (२) ब्राह्मणब्रुव। नाम मात्र का ब्राह्मण।

द्विजराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) चंद्रमा। (३) कपूर। (४) गरुड़। (५) श्रेष्ठ ब्राह्मण।

द्विजलिंगी—संज्ञा पुं० [सं० द्विजलिंगिन्] (१) शूद्र या दूसरे वर्ण का होकर ब्राह्मण का वेश धारण करनेवाला मनुष्य।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड बध लिखा है।

(२) क्षत्रिय।

द्विजवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

द्विजव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दांत का एक रोग। दंतार्बुद।

द्विजशास—संज्ञा पुं० [सं०] बर्बट। भटवांस। (ब्राह्मण इसे नहीं खाते)।

द्विजांगिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

द्विजांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

द्विजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्राह्मण या द्विज की स्त्री। (२) रेणुका। सँभालू का बीज। यह गंधद्रव्यों में है। (३) पालक का शाक। (यह एक बार काटे जाने पर फिर होता है) (४) भारंगी।

द्विजाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाग्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। द्विज। (२) ब्राह्मण। (३) अंडज। (४) पक्षी। (५) दांत।

द्विजानि—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके दो स्त्रियां हों।

द्विजायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञोपवीत।

द्विजिह्व—वि० [सं०] (१) जिसे दो जीभें हों। (२) इधर उधर लगानेवाला। सूचक। चुगलखोर। (३) खल। दुष्ट। (४) चोर। (५) दुःसाध्य।

संज्ञा पुं० (१) सांप। (२) एक रोग।

द्विजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) ब्राह्मण। (३) गरुड़। (४) कपूर।

द्विजेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) ब्राह्मण। (३) कपूर। (४) गरुड़।

द्विजोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] द्विजों में श्रेष्ठ। ब्राह्मण।

द्विट्सेवी—संज्ञा पुं० [सं० द्विट्सेविन्] राज-शत्रु-सेवी। वह जो राजा के शत्रु से मिला हो या मित्रता रखता हो।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड वध लिखा है।

द्विठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विसर्ग। (२) स्वाहा।

द्वित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवता का नाम। (२) एक ऋषि का नाम जो तीन भाई थे—एकत, द्वित और त्रित।

द्वितय—वि० [सं०] (१) जिसके दो अंश हों। जो दो से मिल कर बना हो। (२) दोहरा।

द्वितीय—वि० [सं०] [स्त्री० द्वितीया] दूसरा।

संज्ञा पुं० पुत्र। (आत्मा ही पुत्र रूप से जन्म ग्रहण करता है इससे यह नाम पड़ा)।

द्वितीयक—वि० [सं०] दूसरा।

द्वितीयत्रिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी।

द्वितीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि। दूज। (२) वाम मार्ग के अनुसार मांस।

द्वितीयाकृत—वि० [सं०] खेत जो दो बार जोता गया हो।

द्वितीयाभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी।

द्वितीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] गार्हस्थ्य आश्रम।

द्वित्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो का भाव। (२) दोहरे होने का भाव।

द्विदल—वि० [सं०] (१) जिसमें दो दल या पिंड हों। जो दो ऐसे खंडों से मिलकर बना हो जो खूब जुड़े हों, पर कूटने दबाने आदि से अलग हो सकें। जैसे, अरहर, चना आदि अन्न। (२) जिसमें दो पत्ते हों। (३) जिसमें दो पटल या पखड़ियां हों।

संज्ञा पुं० वह अन्न जिसमें दो दल हों। दाल।

द्विदाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दो रस्सियों से बँधी हो। नटखट गाय।

द्विदेवता—वि० [सं०] (१) दो देवताओं से संबंध रखनेवाला (चरु आदि)। जो दो देवताओं के लिये हो। (२) जिसके दो देवता हों।

संज्ञा पुं० विशाखा नक्षत्र।

द्विदेह—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश (जिनका सिर एक बार कट गया था, फिर हाथी का सिर जोड़ा गया था)।

द्विद्वादश—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष का एक योग। जब वर के जन्मलग्न से कन्या का जन्मलग्न दूसरे पड़े और कन्या के जन्मलग्न से वर का जन्मलग्न बारहवें पड़े तो उसे 'द्विद्वादश' कहते हैं। यह विवाह की गणना में अतिशय अशुभ माना गया है।

द्विधा—क्रि० वि० [सं०] (१) दो प्रकार से। दो तरह से। (२) दो खंडों में। दो टुकड़ों में।

द्विधातु—वि० [सं०] जो धातुओं के संयोग से बना हो।

संज्ञा पुं० (१) दो धातुओं के मेल से बनी हुई मिश्रित धातु। (२) गणेश।

द्विधात्मक—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

द्विधालेख्य—संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल का पेड़।

द्विनग्नक—संज्ञा पुं० [सं०] दुश्चर्म्मा।

द्विनवति—वि० [सं०] बानवे।

द्विपंचाशत्—वि० [सं०] बावन।

द्विपंचाशत्तम—वि० [सं०] बावनवां।

जो सात समुद्र हुए। इन्हीं सातों समुद्रों से वेष्टित होने से सात द्वीपों की सृष्टि हुई। इनमें सबके बीच में जंबूद्वीप है जो चारों ओर से खार समुद्र से वेष्टित है और जिसके बीच में मेरु पर्वत है। खार समुद्र के उस पार दूसरा द्वीप प्लक्षद्वीप है जो जंबूद्वीप से दूना बड़ा है। तीसरा द्वीप शाल्मलीद्वीप है। यह प्लक्षद्वीप से भी द्विगुण है। चौथे द्वीप का नाम कुशद्वीप है जो शाल्मली का भी दूना है। पाँचवाँ द्वीप क्रौंचद्वीप है जो कुशद्वीप का दूना है। छठवाँ द्वीप शाकद्वीप क्रौंच से दूना बड़ा है और सातवें द्वीप का नाम पुष्कर द्वीप है। यह क्रौंचद्वीप का दूना है। पर भास्कराचार्य जी का मत है कि पृथ्वी के आधे भाग में खारसमुद्र से वेष्टित जंबूद्वीप है और आधे में शेष छः द्वीपादि छः द्वीप हैं। ये सातों द्वीप यथाक्रम खार, लवण, क्षीर, दधि, रस आदि के समुद्रों से आवेष्टित हैं।

(३) अवलंबन का स्थान। आधार। (४) व्याघ्रचर्म।

द्वीपकपूर—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

द्वीपकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार एक प्रकार का देवता। यह भुवन-पति नामक देवगण के अंतर्गत है।

द्वीपखर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] महापारेवत।

द्वीपवत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) नद।

द्वीपवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) भूमि।

द्वीपशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] शतावरी। सतावर।

द्वीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी। सतावर।

द्वीपी—संज्ञा पुं० [सं० द्वीपिन्] (१) व्याघ्र। बाघ। (२) चीता। (३) चित्रक वृक्ष। चीता।

द्वीश—वि० [सं०] (१) जो दो का स्वामी हो। (२) जिसके दो स्वामी हों। (३) (चरु आदि) जो दो देवताओं के लिये हो।

संज्ञा पुं० विशाखा नक्षत्र।

द्वृच—संज्ञा पुं० [सं०] दो ऋचाओं का समूह। वह सूक्त जिसमें दोही ऋचाएँ हों।

द्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति। चिढ़। शत्रुता। वैर।

विशेष—योगशास्त्र में द्वेष उस भाव को कहा गया है जो दुःख का साक्षात्कार होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है।

द्वेषी—वि० [सं० द्वेषिन्] [स्त्री० द्वेषिणी] विरोधी। वैरी। चिढ़ रखनेवाला।

संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्वेष्टा—वि० [सं० द्वेष्ट] [स्त्री० द्वेष्ट्री] द्वेष करनेवाला। विरोधी। वैरी। शत्रु।

द्वेष्य—वि० [सं०] (१) जिससे द्वेष किया जाय।

संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्वै*†—वि० [सं० द्वय] दो। दोनों। उ०—(क) पुर ते निकसी रघुबीर वधू धरि धीर दिये मग में डग द्वै।—तुलसी। (ख) गुन गेह सनेह को भाजन सो सबही सों उठाइ कहीं भुज द्वै।—तुलसी।

द्वैगुणिक—वि० [सं०] द्विगुणग्राही। दूना ब्याज लेनेवाला। दूना सूद खानेवाला।

द्वैज*—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय] द्वितीया। दूज। उ०—द्वैज सुधा दीधिति कला, वह लखि दीठ लगाय। मनो अकास अगस्तिया, एकै कली लखाय।—बिहारी।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो का भाव। युग्म। युगल। (२) अपने और पराये का भाव। भेद। अंतर। भेद-भाव। उ०—सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्रीरघुबीर चरन चित लागै।—तुलसी। (३) दुबधा। भ्रम। उ०—सुरत संगति सुख द्वैत सों समुझै नाहिं गवाँर। बात करै अद्वैत की पढ़ि गुनि भया खवार।—कबीर। (४) अज्ञान। उ०—माधव अब न द्रवहु केहि लेखे। प्रणतपाल प्रण तोर, मोर प्रण जियों कमलपद देखे।..........जनक जननि गुरु बंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी। द्वैत रूप तम कूप परों नहिं सो कछु जतन बिचारी।—तुलसी। (५) द्वैतवाद।

द्वैतवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक तपोवन जिसमें युधिष्ठिर ने बनवास के समय कुछ काल तक निवास किया था।

द्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मान कर विचार किया जाता है।

विशेष—उत्तर मीमांसा या वेदांत को छोड़ शेष पाँचों दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं। द्वैतवादियों का कथन है कि ब्रह्म और जीव का भेद नित्य है पर अद्वैतवादी कहते हैं कि यह भेदज्ञान भ्रम है। जिस समय जीव अपने को ब्रह्मस्वरूप समझ लेता है उस समय वह मुक्त हो जाता है। केवल उपाधि के कारण जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है, उपाधि हट जाने पर वह ब्रह्म में मिल जाता है। द्वैतवादी जीव की उपाधि को नित्य मानते हैं, पर अद्वैतवादी उसे हटाने की चेष्टा करने का उपदेश देते हैं। जिस प्रकार अद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' उपनिषद् के इस महावाक्य को मूल मान कर चलते हैं उसी प्रकार द्वैतवादी भी। पर दोनों उससे भिन्न भिन्न अर्थ लेते हैं। अद्वैतवादी "तत्त्वमसि" का सीधा अर्थ लेते हैं कि "तुम वही (ब्रह्म) हो" पर द्वैतवादी मध्वाचार्य्य ने खींच तान कर उसका अर्थ लगाया है "तस्य त्वं असि" अर्थात् 'तुम उसके हो'। न्याय और वैशेषिक में तीन नित्य पदार्थ माने गए हैं, जीवात्मा, परमेश्वर और

द्विरूढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका एक बार एक पति से और दूसरी बार दूसरे पति से विवाह हुआ हो। पुनर्भू।

द्विरेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो भिन्न भिन्न पशुओं से उत्पन्न पशु, जैसे घोड़े और गदहे से उत्पन्न खच्चर। (२) दोगला।

द्विरेफ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमर। भौंरा। (२) बर्बर।

द्विवज्रक—संज्ञा पुं० [सं०] घर जिसमें सोलह कोण हों। सोलह-कोना घर।

द्विविंदु—संज्ञा पुं० [सं०] विसर्ग।

द्विविद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक बंदर जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था। (२) विष्णु पुराणादि के अनुसार एक बंदर। यह नरकासुर का मित्र था। इसे बलदेवजी ने मारा था।

द्विविध—वि० [सं०] दो प्रकार का।

क्रि० वि० दो प्रकार से।

द्विविधा*—संज्ञा पुं० [सं० द्विविध] दुबधा।

द्विवेद—वि० [सं०] दो वेद पढ़नेवाला।

द्विवेदी—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदिन्] ब्राह्मणों की एक उपजाति। दूबे।

द्विवेशरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो पहियों की छोटी गाड़ी।

द्विव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के व्रण या घाव।

विशेष—सुश्रुत ने व्रण दो प्रकार के माने हैं। एक शारीर दूसरा आगंतुक। जो घाव वायु, रक्त, पित्त और कफ से फोड़े आदि के रूप में होता है उसे शारीर व्रण और जो किसी जंतु के काटने, चोट लगने आदि से हो उसे आगंतुक व्रण कहते हैं।

द्विशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिनके खुर फटे हों। दो खुर-वाला पशु। जैसे, गाय, भेंड़, हिरन इत्यादि।

द्विशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार कन्या, मिथुन धनु और मीन राशियाँ जिनका प्रथमार्द्ध स्थिर और द्वितीयार्द्ध चर माना जाता है।

द्विशिर—वि० [हिं० द्वि + शिर] दो सिरवाला। जिसके दो सिर हों।

मुहा०—कौन द्विशिर है ?=किसे फालतू सिर है ? किसे अपने मरने का भय नहीं है ? उ०—तुम्हारे दुःख का कारण न जानने से हमको बड़ा क्लेश होता है। क्या हमसे कोई अपराध हुआ, अथवा और किसी ने द्विशिर होना चाहा है ?—कादंबरी।

द्विशीर्ष—वि० [सं०] जिसके दो सिर हों।

संज्ञा पुं० अग्नि।

द्विष्, द्विष, द्विषत्—वि० [सं०] द्वेष रखनेवाला।

संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्विष्ट—वि० [सं०] जिससे द्वेष हो।

संज्ञा पुं० ताम्र। ताँबा।

द्विसप्तति—वि० [सं०] (१) बहत्तर। (२) बहत्तरवाँ।

संज्ञा स्त्री० बहत्तर की संख्या।

द्विस्विन्नान्न—संज्ञा पुं० [सं०] उबाले हुए धान का चावल। भुजिया चावल।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में यति, विधवा और ब्रह्मचारी के लिये इसका खाना निषिद्ध कहा गया है। देवपूजन आदि में भी इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा गया है।

द्विहन्—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी (जो सूँड़ से मारता है)।

द्विहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी।

द्विहृदया—वि० स्त्री० [सं०] गर्भिणी। गर्भवती।

द्वींद्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके दो ही इंद्रियाँ हों।

द्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थल का वह भाग जो चारों ओर जल से घिरा हो।

विशेष—बड़े द्वीपों को महाद्वीप कहते हैं। बहुत से छोटे छोटे द्वीपों के समूह को द्वीपपुंज या द्वीपमाला कहते हैं। द्वीप दो प्रकार के होते हैं—साधारण और प्रवालज। साधारण द्वीप दो प्रकार से बनते हैं— एक तो भूगर्भस्थ अग्नि के प्रकोप से समुद्र के नीचे से उभड़ आते हैं। दूसरे आस पास की भूमि के धँस जाने से और वहाँ पानी आ जाने से बन जाते हैं। प्रवालज द्वीपों की सृष्टि मूँगों से होती है। ये बहुत सूक्ष्म कृमि हैं जो थूहर के पेड़ के आकार के पिंड बनाकर समुद्रतल में जमे रहते हैं। इन्हीं छोटे छोटे कीड़ों के शरीर से सहस्रों वर्ष में इकट्ठा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्र के ऊपर निकल आता है जिसे प्रवालज द्वीप कहते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का द्वीप भी होता है जिसे सरिद्भव कह सकते हैं। इस प्रकार के द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियों के मुहानों पर जहाँ वे समुद्र में गिरती हैं बन जाते हैं। उन द्वीपों में कितने तो इतने छोटे होते हैं कि समुद्र में एक छोटे से टीले से अधिक नहीं दिखाई पड़ते पर बड़े द्वीप भी होते हैं जिनमें पेड़ पौधे होते हैं और पशु-पक्षी मनुष्य आदि रहते हैं।

(२) पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े विभाग।

विशेष—पुराणों में पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त की गई है। समुद्र और द्वीपों की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा है। महाराज प्रियव्रत ने यह सोचा कि एक बार में सूर्य्य पृथिवी के एक ही ओर उजाला करता है जिससे दूसरी ओर अंधकार रहता है। उन्होंने एक पहिये की एक चमचमाती गाड़ी पर सवार होकर सात बार पृथिवी की परिक्रमा की। गाड़ी के पहिये के धँसने से पृथिवी पर सात वर्त्तुलाकार गड्ढे पड़ गए

जो सात समुद्र हुए। इन्हीं सातों समुद्रों से वेष्टित होने से सात द्वीपों की सृष्टि हुई। इनमें सबके बीच में जंबूद्वीप है जो चारों ओर से खार समुद्र से वेष्टित है और जिसके बीच में मेरु पर्वत है। खार समुद्र के उस पार दूसरा द्वीप प्लक्षद्वीप है जो जंबूद्वीप से दूना बड़ा है। तीसरा द्वीप शाल्मलीद्वीप है। यह प्लक्षद्वीप से भी द्विगुण है। चौथे द्वीप का नाम कुशद्वीप है जो शाल्मली का भी दूना है। पाँचवाँ द्वीप क्रौंचद्वीप है जो कुशद्वीप का दूना है। छठवाँ द्वीप शाकद्वीप क्रौंच से दूना बड़ा है और सातवें द्वीप का नाम पुष्कर द्वीप है। यह क्रौंचद्वीप का दूना है। पर भास्कराचार्य्य जी का मत है कि पृथ्वी के आधे भाग में क्षारसमुद्र से वेष्टित जंबूद्वीप है और आधे में शेष प्लक्ष द्वीपादि छः द्वीप हैं। ये सातों द्वीप यथाक्रम क्षार, लवण, क्षीर, दधि, रस आदि के समुद्रों से आवेष्टित हैं।

(३) अवलंबन का स्थान। आधार। (४) व्याप्यधर्म।

द्वीपकपूर—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर।

द्वीपकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार एक प्रकार का देवता। यह भुवन-पति नामक देवगण के अंतर्गत है।

द्वीपखर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] महापारेवत।

द्वीपवत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) नद।

द्वीपवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) भूमि।

द्वीपशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] शतावरी। सतावर।

द्वीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी। सतावर।

द्वीपी—संज्ञा पुं० [सं० द्वीपिन्] (१) व्याघ्र। बाघ। (२) चीता। (३) चित्रक वृक्ष। चीता।

द्वीश—वि० [सं०] (१) जो दो का स्वामी हो। (२) जिसके दो स्वामी हों। (३) (चरु आदि) जो दो देवताओं के लिये हो।

संज्ञा पुं० विशाखा नक्षत्र।

द्वृच—संज्ञा पुं० [सं०] दो ऋचाओं का समूह। वह सूक्त जिसमें दोही ऋचाएँ हों।

द्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] चित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति। चिढ़। शत्रुता। वैर।

विशेष—योगशास्त्र में द्वेष उस भाव को कहा गया है जो दुःख का साक्षात्कार होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है।

द्वेषी—वि० [सं० द्वेषिन्] [स्त्री० द्वेषिणी] विरोधी। वैरी। चिढ़ रखनेवाला।

संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्वेष्टा—वि० [सं० द्वेष्टृ] [स्त्री० द्वेष्ट्री] द्वेष करनेवाला। विरोधी। वैरी। शत्रु।

द्वेष्य—वि० [सं०] (१) जिससे द्वेष किया जाय।

संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्वै*†—वि० [सं० द्वय] दो। दोनों। उ०—(क) पुर ते निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दिये मग में डग द्वै।—तुलसी। (ख) गुन गेह सनेह को भाजन सो सबही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।—तुलसी।

द्वैगुणिक—वि० [सं०] द्विगुणग्राही। दूना ब्याज लेनेवाला। दूना सूद खानेवाला।

द्वैज*—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय] द्वितीया। दूज। उ०—द्वैज सुधा दीधिति कला, वह लखि दीठ लगाय। मनौ अकास अगस्तिया, एकै कली लखाय।—बिहारी।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो का भाव। युग्म। युगल। (२) अपने और पराये का भाव। भेद। अंतर। भेद-भाव। उ०—सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्रीरघुबीर चरन चित लागै।—तुलसी। (३) दुबधा। भ्रम। उ०—सुरज संगति सुख द्वैत सों समुझै नाहिं गवाँर। बात करै अद्वैत की पढ़ि गुनि भया लबार।—कबीर। (४) अज्ञान। उ०—माधव अब न द्रवहु केहि लेखे। प्रनतपाल प्रन तोर, मोर प्रन जियौं कमलपद देखे।..........जनक जननि गुरु बंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी। द्वैत रूप तम कूप परौं नहिं सो कछु जतन बिचारी।—तुलसी। (५) द्वैतवाद।

द्वैतवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक तपोवन जिसमें युधिष्ठिर ने वनवास के समय कुछ काल तक निवास किया था।

द्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मान कर विचार किया जाता है।

विशेष—उत्तर मीमांसा या वेदांत को छोड़ शेष पाँचों दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं। द्वैतवादियों का कथन है कि ब्रह्म और जीव का भेद नित्य है पर अद्वैतवादी कहते हैं कि यह भेदज्ञान भ्रम है। जिस समय जीव अपने को ब्रह्मस्वरूप समझ लेता है उस समय वह मुक्त हो जाता है। केवल उपाधि के कारण जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है, उपाधि हट जाने पर वह ब्रह्म में मिल जाता है। द्वैतवादी जीव की उपाधि को नित्य मानते हैं, पर अद्वैतवादी उसे हटाने की चेष्टा करने का उपदेश देते हैं। जिस प्रकार अद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' उपनिषद् के इस महावाक्य को मूल मान कर चलते हैं उसी प्रकार द्वैतवादी भी। पर दोनों उससे भिन्न भिन्न अर्थ लेते हैं। अद्वैतवादी "तत्त्वमसि" का सीधा अर्थ लेते हैं कि "तुम वही (ब्रह्म) हो।" पर द्वैतवादी मध्वाचार्य्य ने खींच तान कर उसका अर्थ लगाया है "तस्य त्वं असि" अर्थात् 'तुम उसके हो'। न्याय और वैशेषिक में तीन नित्य पदार्थ माने गए हैं, जीवात्मा, परमेश्वर और

परमाणु। इस प्रकार के द्वैतवाद का खंडन ही शंकर ने अपने अद्वैतवाद द्वारा किया है। जिस प्रकार शंकराचार्य्य ने वेदांतसूत्र का भाष्य करके अपना अद्वैतवाद स्थापित किया है उसी प्रकार मध्वाचार्य्य ने उक्त सूत्र का एक भाष्य रच कर द्वैतवाद का मंडन किया है। उनके मत से परमेश्वर स्वतंत्र है और जीव परमेश्वर के अधीन है। वेदांती लोग जो जगत को ईश्वर से अभिन्न अथवा रज्जु-सर्पवत् भ्रम मानते हैं और जीव में ईश्वर का आरोप करते हैं वह ठीक नहीं। जगत् और जीव सत्य हैं और ईश्वर से भिन्न हैं। 'एकमेवा द्वितीयं' वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जैसा कि अद्वैतवादी करते हैं। उसका अर्थ है कि ईश्वर बहुत नहीं एक ही है। 'एव' शब्द से मध्वाचार्य्य यह ध्वनि निकालते हैं कि ईश्वर सदा एक ही रहता है, एकत्व उसका स्वभाव है वह अनेक हो नहीं सकता। अद्वितीय का अर्थ है कि द्वितीय जो जीव और जगत् है सो वह नहीं है। जीव और जगत् उसकी सृष्टि है। इस प्रकार मध्वाचार्य्य ने द्वैतभाव का मंडन किया है। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद द्वैत और अद्वैत के बीच का मार्ग है, द्वैतवाद से उसमें बहुत अधिक भेद नहीं है। दे० "वेदांत"।

(२) वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें भूत और चित् शक्ति अथवा शरीर और आत्मा दो भिन्न पदार्थ माने जाते हैं।

द्वैतवादी–वि० [सं० द्वैतवादिन्] [स्त्री० द्वैतवादिनी] द्वैतवाद को माननेवाला। ईश्वर और जीव में भेद माननेवाला।

द्वैती–वि० [सं० द्वैतिन्] द्वैतवादी।

द्वैध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध। परस्पर विरोध। (२) राजनीति के षड्गुणों में से एक जिसमें परस्पर के व्यवहार में गुप्त और प्रकट स्वभाव रखना पड़ता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रख कर दूसरा उद्देश्य प्रकट किया जाता है।

द्वैधीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज के दो टुकड़े करना।

द्वैधीभाव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्विधा भाव। अनिश्चय। (२) भीतर कुछ और भाव, बाहर कुछ और भाव।

द्वैप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ से संबंध रखनेवाली या बाघ से निकली या बनी हुई वस्तु। (२) व्याघ्रचर्म। बाघ का चमड़ा।

द्वैपायन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यास जी का एक नाम।

विशेष—वेदव्यास का जन्म जमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था इसीसे यह नाम पड़ा।

(२) एक हृद या ताल जिसमें कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन भाग कर छिपा था।

द्वैमातुर–वि० [सं०] जिसकी दो माताएँ हों।

संज्ञा पुं० (१) गणेश।

विशेष—स्कंदपुराण के गणेशखंड में लिखा है कि गणेश वरेण्य नामक राजा के घर उनकी रानी पुष्पका देवी के गर्भ से त्रैलोक्य की विघ्नशांति के लिये उत्पन्न हुए। पर उनकी आकृति और तेज आदि को देख कर राजा डर गए और उन्होंने इन्हें पार्श्व मुनि के आश्रम के पास एक जलाशय में फेंकवा दिया। वहाँ मुनि की पत्नी दीपवत्सला ने उन्हें पाला। इस प्रकार दो माताओं के द्वारा पलने के कारण गणेश का द्वैमातुर नाम पड़ा।

(२) जरासंध।

द्वैमातृक–संज्ञा पुं० [सं०] *वह भूमि या देश जहाँ खेती नदी के जल (सिंचाई) द्वारा भी की जाती है और वर्षा से भी होती है।*

द्वैयह्निक–वि० [सं०] जो दो दिन में किया जाय वा दो दिन का हो।

द्वैविध्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो प्रकार होने का भाव। (२) दुबधा।

द्वैपणीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली का एक भेद।

दौ* वि० [हिं० दो+क, दोउ] दोनों।

वि० दे० "द्व"।

द्व्यणुक–संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो दो अणुओं के संयोग से उत्पन्न हो। दो अणुओं का एक संघात। वह मात्रा जो दो अणुओं की हो।

द्व्यशीति–वि० [सं०] जो गिनती में अस्सी से दो अधिक हो। बयासी।

द्व्यष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र। ताँबा।

द्व्यक्षायण–संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

द्व्यात्मक–संज्ञा पुं० [सं०] दो स्वभाव की राशियां जो ये हैं—मिथुन, कन्या, धनु और मीन।

द्व्यामुष्यायण–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो एक से तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरे के द्वारा दत्तक के रूप में ग्रहण किया गया हो और दोनों पिता उसको अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनों को पिंड दान देता है और दोनों की संपत्ति का अधिकारी होता है। दे० "दत्तक"।

ध

ध–हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का उन्नीसवाँ व्यंजन और तवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंतमूल है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न आवश्यक होता है और जीभ की नोक ऊपरी दाँतों की जड़ में लगानी पड़ती है। बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष, महाप्राण हैं।

धंगर–संज्ञा पुं० [देश०] चरवाहा। ग्वाल। अहीर।

धंगा†—संज्ञा पुं० [देश०] खाँसी। ढाँसी।

धंदर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा।

धंधक—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] काम धंधे का आडंबर। जंजाल। बखेड़ा। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिक धरम ध्वज धंधकधोरी।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का ढोल।

धंधकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधक+धोरी] काम धंधे का बोझ लादे रहनेवाला। हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिक धरमध्वज धंधकधोरी।—तुलसी।

धंधका†—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्प० धँधकी] एक प्रकार का ढोल।

धंधरक—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] काम धंधे का आडंबर। जंजाल। बखेड़ा। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरम ध्वज धँधरकधोरी।—तुलसी।

धंधरकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधरक+धोरी] काम धंधे का बोझ लादे रहनेवाला। हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धंधरकधोरी।—तुलसी।

धँधला—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] (१) छल छंद। कपट का आडंबर। झूठा ढोंग। ढंग। (२) हीला। बहाना। (क्व०)

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—(किसी को) धंधले आते हैं = छल छंद का अभ्यास है।

धँधलाना—क्रि० अ० [हिं० धंधला] छल छंद करना। ढंग रचना।

धंधा—संज्ञा पुं० [सं० धनधान्य] (१) धन या जीविका के लिये उद्योग। काम काज। जैसे, वह घर का कुछ काम धंधा नहीं करती।

यौ०—काम धंधा। गोरखधंधा।

(२) उद्यम। व्यवसाय। कारबार। पेशा। रोज़गार। जैसे, (क) उसे किसी काम धंधे में लगा दो। (ख) आज कल कोई काम धंधा नहीं है खाली बैठे हैं।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग लिखने पढ़ने की भाषा में "काम" शब्द के साथ अधिक होता है।

धंधार—संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का लंबा औज़ार जो भारी पत्थरों या लकड़ियों के उठाने के काम में आता है।

†वि० [देश०] एकाकी। अकेला।

धंधारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा] गोरखधंधा जिसे गोरखपंथी साधु लिये रहते हैं। उ०—मेखल, सिंघी, चक्र, धँधारी। लीन हाथ तिरसूल सँभारी।—जायसी।

†संज्ञा स्त्री० (१) एकांत। निर्जनता। अकेलापन। (२) सुनसान। सन्नाटा।

धंधाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा] कुटनी। दूती। दलाल।

धंधेरा—संज्ञा पुं० [देश] राजपूतों की एक जाति।

धँधोर—संज्ञा पुं० [अनु० धायँ धायँ = आग दहकने की ध्वनि] (१) होलिका। होली। (२) आग की लपट। ज्वाला। उ०—(क) रहै प्रेम मन उरझा लटा। बिरह धँधोर परहिँ सिर जटा।—जायसी। (ख) कंथा जरै अगिनि जनु लाए। बिरह धँधोर जरत न जाए।—जायसी।

धँस—संज्ञा पुं० [हिं० धँसना] जल आदि में प्रवेश। डुबकी। गोता। उ०—दे० "धस"।

क्रि० प्र०—लेना।

धँसन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंसना] (१) धँसने की क्रिया या ढंग। (२) घुसने या पैठने का ढंग। गति। चाल। उ०—तुलसी मेढ़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।—तुलसी।

धँसना—क्रि० अ० [सं० दंशन = दाँत चुभना] (१) किसी कड़ी वस्तु का किसी नरम वस्तु के भीतर दाब पाकर घुसना। गड़ना। जैसे, पैर में काँटा धँसना, दीवार में कील धँसना, कीचड़ या दलदल में पैर धँसना।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—"चुभना" और "धँसना" में अंतर यह है कि 'चुभना' का प्रयोग विशेषतः जीवधारियों के शरीर में घुसने के अर्थ में होता है। जैसे, पैर में काँटा चुभना। दूसरी बात यह है कि "चुभना" नुकीली वस्तुओं के लिये आता है, जैसे, काँटा, सूई आदि।

मुहा०—जी या मन में धँसना = (१) चित्त में प्रभाव उत्पन्न करना। मन में निश्चय या विश्वास उत्पन्न करना। दिल में असर करना। जैसे, उसे लाख समझाओ, उसके मन में कोई बात धँसती ही नहीं। (२) हृदय में अंकित होना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में बराबर रहना। चित्त से न हटना। ध्यान पर बराबर चढ़ा रहना। उ०—मन महँ धँसी मनोहर मूरति टारति नहीं वह टारे।—सूर।

(२) किसी ऐसी वस्तु के भीतर जाना जिसमें पहले से अवकाश न रहा हो। अपने लिये जगह करते हुए घुसना। इधर उधर दबा कर जगह खाली करते हुए बढ़ना या पैठना। जैसे, पानी में धँसना, भीड़ में धँसना, दलदल में धँसना। उ०—(क) जोर जगी जमुना जल धार में धाय धँसी जलकेलि की माती। (ख) आयो जौन तेरी धौरी धारा में धँसत जात तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।—पद्माकर।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

†(३) नीचे की ओर धीरे धीरे जाना। नीचे खसकना। उतरना। उ०—(क) खरी खसति गोरे गरे धँसति पान की पीक।—बिहारी। (ख) जनु कलिंदनंदिनि मनि इंदनील सिखर परसि धँसति लसति हंस श्रेणि संकुल अधिको हैं।

परमाणु। इस प्रकार के द्वैतवाद का खंडन ही शंकर ने अपने अद्वैवाद द्वारा किया है। जिस प्रकार शंकराचार्य्य ने वेदांतसूत्र का भाष्य करके अपना अद्वैतवाद स्थापित किया है उसी प्रकार मध्वाचार्य्य ने उक्त सूत्र का एक भाष्य रच कर द्वैतवाद का मंडन किया है। उनके मत से परमेश्वर स्वतंत्र है और जीव परमेश्वर के अधीन है। वेदांती लोग जो जगत को ईश्वर से अभिन्न अथवा रज्जु-सर्पवत् भ्रम मानते हैं और जीव में ईश्वर का आरोप करते हैं वह ठीक नहीं। जगत् और जीव सत्य हैं और ईश्वर से भिन्न हैं। 'एकमेवा द्वितीयं' वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जैसा कि अद्वैतवादी करते हैं। उसका अर्थ है कि ईश्वर बहुत नहीं एक ही है। 'एव' शब्द से मध्वाचार्य्य यह ध्वनि निकालते हैं कि ईश्वर सदा एक ही रहता है, एकत्व उसका स्वभाव है वह अनेक हो नहीं सकता। अद्वितीय का अर्थ है कि द्वितीय जो जीव और जगत् है सो वह नहीं है। जीव और जगत् उसकी सृष्टि है। इस प्रकार मध्वाचार्य्य ने द्वैतभाव का मंडन किया है। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद द्वैत और अद्वैत के बीच का मार्ग है, द्वैतवाद से उसमें बहुत अधिक भेद नहीं है। दे० "वेदांत"।

(२) वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें भूत और चित् शक्ति अथवा शरीर और आत्मा दो भिन्न पदार्थ माने जाते हैं।

द्वैतवादी-वि० [सं० द्वैतवादिन्] [स्त्री० द्वैतवादिनी] द्वैतवाद को माननेवाला। ईश्वर और जीव में भेद माननेवाला।

द्वैती-वि० [सं० द्वैतिन्] द्वैतवादी।

द्वैध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध। परस्पर विरोध। (२) राज-नीति के षड्गुणों में से एक जिसमें परस्पर के व्यवहार में गुप्त और प्रकट स्वभाव रखना पड़ता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रख कर दूसरा उद्देश्य प्रकट किया जाता है।

द्वैधीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज के दो टुकड़े करना।

द्वैधीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्विधा भाव। अनिश्चय। (२) भीतर कुछ और भाव, बाहर कुछ और भाव।

द्वैप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ से संबंध रखनेवाली या बाघ से निकली या बनी हुई वस्तु। (२) व्याघ्रचर्म। बाघ का चमड़ा।

द्वैपायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यास जी का एक नाम।

विशेष—वेदव्यास का जन्म जमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था इसीसे यह नाम पड़ा।

(२) एक ह्रद या ताल जिसमें कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन भाग कर छिपा था।

द्वैमातुर-वि० [सं०] जिसकी दो माताएँ हों।

संज्ञा पुं० (१) गणेश।

विशेष—स्कंदपुराण के गणेशखंड में लिखा है कि गणेश वरेण्य नामक राजा के घर उनकी रानी पुष्पका देवी के गर्भ से त्रैलोक्य की विघ्नशांति के लिये उत्पन्न हुए। पर उनकी आकृति और तेज आदि को देख कर राजा डर गए और उन्होंने उन्हें पार्श्व मुनि के आश्रम के पास एक जला-शय में फेंकवा दिया। वहाँ मुनि की पत्नी दीपवत्सला ने उन्हें पाला। इस प्रकार दो माताओं के द्वारा पलने के कारण गणेश का द्वैमातुर नाम पड़ा।

(२) जरासंध।

द्वैमातृक-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या देश जहाँ खेती नदी के जल (सिंचाई) द्वारा भी की जाती है और वर्षा से भी होती है।

द्वैयह्निक-वि० [सं०] जो दो दिन में किया जाय वा दो दिन का हो।

द्वैविध्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो प्रकार होने का भाव। (२) दुबधा।

द्वैपर्णीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली का एक भेद।

दौ* वि० [हिं० दो+क, दोउ] दोनों।

वि० दे० "दव"।

द्व्यणुक-संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो दो अणुओं के संयोग से उत्पन्न हो। दो अणुओं का एक संघात। वह मात्रा जो दो अणुओं की हो।

द्व्यशीति-वि० [सं०] जो गिनती में अस्सी से दो अधिक हो। बयासी।

द्व्यष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र। ताँबा।

द्व्यक्षायण-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

द्व्यात्मक-संज्ञा पुं० [सं०] दो स्वभाव की राशियां जो ये हैं—मिथुन, कन्या, धनु और मीन।

द्व्यामुष्यायण-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो एक से तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरे के द्वारा दत्तक के रूप में ग्रहण किया गया हो और दोनों पिता उसको अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनों को पिंड दान देता है और दोनों की संपत्ति का अधिकारी होता है। दे० "दत्तक"।

ध

ध-हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का उन्नीसवां व्यंजन और तवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंतमूल है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न आवश्यक होता है और जीभ की नोक ऊपरी दाँतों की जड़ में लगानी पड़ती है। बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष, महाप्राण हैं।

धंगर-संज्ञा पुं० [देश०] चरवाहा। ग्वाल। अहीर।

धकाधकी|—संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का] धकमधक्का।

धकाना|—क्रि० स० [हिं० दहकाना] दहकाना। सुलगाना। जलाना। उ०—धूनी ध्यान धकाओ रैन दिन फिकिर फाकुरी खाई।—कबीर।

धकार—संज्ञा पु० "ध" अक्षर।

धकारा|—संज्ञा पु० [अनु० धक] धकधकी। आशंका। खटका। उ०—तुम तो लीला करत सुरन मन परो धकारो।—सूर।

क्रि० प्र०—पड़ना। होना।

धकियाना|—क्रि० स० [हिं० धक्का] धक्का देना। ढकेलना।

धकेलना—क्रि० स० [हिं० धक्का] ढकेलना। ठेलना। धक्का देना।

संयो० क्रि०—देना।

विशेष—दे० 'ढकेलना'।

धकेलू—संज्ञा पु० [हिं० धकेलना] ढकेलनेवाला। धक्का देनेवाला।

धकैत—वि० [हिं० धक्का + ऐत (प्रत्य०)] धक्का देनेवाला। धकम धक्का करनेवाला। उ०—द्रुत धीर धकैत गये धँसि कै।—गोपाल।

धकोना—क्रि० स० दे० "धकियाना"।

धक्क |—संज्ञा स्त्री० दे० "धक"।

धक्कपक्क—संज्ञा स्त्री० क्रि० वि०, दे० "धकपक"।

धक्कमधक्का—संज्ञा पु० [हिं० धक्का] (१) बार बार, बहुत अधिक या बहुत से आदमियों का परस्पर धक्का देने का काम। धक्कापेल। (२) ऐसी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों। रेलापेल। जैसे, मंदिर के भीतर बहुत धक्कमधक्का है।

धक्का—संज्ञा पु० [सं० धम, हिं० धमक, धौंक या सं० धक = नष्ट करना] (१) एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ ऐसा वेगयुक्त स्पर्श जिससे एक या दोनों पर एकबारगी भारी दबाव पड़ जाय अथवा गति के वेग का वह गहरा दबाव जो एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु के एकबारगी आ लगने से एक या दोनों पर पड़ता है। आघात या प्रतिघात। टक्कर। रेला। झोंका। जैसे, (क) सिर में दीवार का धक्का लगना। (ख) चलती गाड़ी के धक्के से गिर पड़ना।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—मारना।—लगना।—लगाना।—सहना।

यौ०—धक्कापेल। धक्कमधक्का।

विशेष—केवल गुरुत्व के कारण जो दबाव पड़ता है उसे "धक्का" नहीं कह सकते, गति के वेग के अवरोध से जो दबाव एकबारगी पड़ जाता है उसी को "धक्का" कहते हैं।

(२) किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी जगह से हटाने, खिसकाने, गिराने आदि के लिये वेग से पहुँचाया हुआ दबाव अथवा इस प्रकार का दबाव पहुँचाने का काम। ढकेलने की क्रिया। झोंका। चपेट। जैसे, इसे धक्का देकर निकाल दो।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मारना।—लगाना।—सहना।—होना।

मुहा०—धक्का खाना = धक्का सहना। धक्के देकर निकालना = तिरस्कार और अपमान के साथ सामने से हटाना।

(३) ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों। कसामस। जैसे, मंदिर के भीतर बड़ा धक्का है, मत जाओ। (४) शोक या दुःख का आघात। दुःख की चोट। संताप। जैसे, भाई के मरजाने से उसे बड़ा धक्का पहुँचा।

क्रि० प्र०—पहुँचना।—पहुँचाना।

(५) आपदा। विपत्ति। आफ़त। दुर्घटना। (६) हानि। टोटा। घाटा। नुकसान। जैसे, इस व्यापार में उसे लाखों का धक्का बैठा।

क्रि० प्र०—खाना।—बैठना।

(७) कुश्ती का एक पेंच जिसमें बायाँ पैर आगे रखकर विपक्षी की छाती पर दोनों हाथों से गहरा धक्का या चपेट देकर उसे गिराते हैं। छाप। ठोंढ़।

धक्कामुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का + मुक्का] ऐसी लड़ाई जिसमें एक दूसरे को ढकेले और घूसों से मारे। मुठभेड़। मारपीट।

धगड़—संज्ञा० पु० [सं० धव = पति ?] जार। उपपति।

धगड़बाज—वि० स्त्री० [हिं० धगड़ + फा० बाज] जार के पास आने जानेवाली व्यभिचारिणी। कुलटा।

धगड़ा—संज्ञा पु० [सं० धव = पति ?] किसी स्त्री का जार। उपपति।

धगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धगड़ा] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा स्त्री।

धगधगाना*|—क्रि० अ० [हिं०] धकधकाना। धकधक करना। धड़कना (छाती या जी का)। उ०—अब राजा तेहि मारन लाग्यो। देवी काली मन धगधाग्यो।—सूर।

धगरा—संज्ञा पु० दे० "धगड़ा"।

धगरिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाँगर] धाँगर जाति की स्त्री जो जन्मे हुए बच्चों का नाल काटती है।

धगवरी—वि० [हिं० धगड़ा = पति या यार] (१) पति की दुलारी। खसम की मुँहलगी। (२) कुलटा। छिनाल। व्यभिचारिणी। उ०—जननी के खीझत हरि रोये झूठहिं मोहिं लगावति धगरी।—सूर।

धगा*|—संज्ञा पु० दे० "धागा", "तागा"। उ०—सूरज दास काँच अरु कंचन एकहि धगा पिरोयो।—सूर।

धगुला|—संज्ञा पु० [देश०] हाथ में पहनने का कड़ा।

धग्गड़—संज्ञा पु० दे० "धगड़"।

धचकचाना|—क्रि० स० [देश०] डराना। दहलाना।

धचकना|—क्रि० अ० [देश०] दलदल में धँसना।

धचका—संज्ञा पु० [देश०] धक्का। झटका। झोंका। आघात।

—तुलसी। (ग) पति पहिचानि धँसी मंदिर तें, सूर, तिया अभिराम। आवहु कंत-लखहु हरि को हितपाँव धारिए धाम। —सूर। (४) तल के किसी अंश का दबाव आदि पाकर नीचे होजाना जिससे गड्ढा सा पड़ जाय। नीचे की ओर बैठ जाना। जैसे, (क) जहाँ गोला गिरा वहाँ ज़मीन नीचे धँस गई। (ख) बीमारी से उसकी आँखें धँस गई हैं।

विशेष—पोली वस्तु के लिये इस अर्थ में 'पचकना' का प्रयोग होता है।

(५) किसी गड़ी या नीवँ पर खड़ी वस्तु का ज़मीन में और नीचे तक चला जाना जिससे वह ठीक खड़ी न रह सके। बैठ जाना। जैसे, इस मकान की नीवँ कमजोर है, बरसात में यह धँस जायगा।

*क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] ध्वस्त होना। नष्ट होना। मिटना। उ०—निज आतम अज्ञान ते है प्रतीति जग खेद। धँसै सु ताके बोध ते यह भाखत मुनि वेद।—विचार-सागर।

धँसनि-संज्ञा स्त्री० दे० "धँसन"।

धँसान-संज्ञा स्त्री० [हिं० धँसना] (१) धँसने की क्रिया या ढंग। (२) ऐसी ज़मीन जिसपर कीचड़ के कारण पैर धँसता हो। दलदल। (३) ऐसी ज़मीन जिसपर नीचे की ओर पैर फिसले। ढाल। उतार।

धँसाना-क्रि० स० [हिं० धँसना] (१) गड़ाना। चुभाना। नरम चीज़ में घुसाना। (२) पैठाना। प्रवेश कराना। जैसे, जल में धँसाना। (३) तल या सतह को दबाकर नीचे की ओर करना। नीचे की ओर बैठाना।

धँसाव-संज्ञा पुं० [हिं० धँसना] (१) धँसने की क्रिया। (२) ऐसी ज़मीन जिसपर पैर धँसे। दलदल।

धई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसकी जड़ या कंद को छोटा नागपुर की पहाड़ी जातियों के लोग खाते हैं।

धउरहर†-संज्ञा पुं० दे० "धौरहर"।

धक-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) दिल के धड़कने का शब्द या भाव। हृत्कंप का शब्द या भाव। हृदय के जल्दी जल्दी कूदने का भाव या शब्द। (भय या उद्वेग होने अर्थात् किसी बात से चौंक पड़ने पर जी में धड़कन होती है)। उ०—गुंधर हौं निरखौं अब लौं मुख पीरी परी छतियाँ धक छाई। —गुंधर।

मुहा०—जी धक धक करना=भय या उद्वेग से जी धड़कना। जी धक हो जाना=(१) भय या उद्वेग से जी धड़क उठना। डर से जी दहल जाना। (२) चौंक उठना। जी धक होना, या धक से होना=(१) उद्वेग या घबराहट होना। (२) आशंका होना। भय होना। जी दहलना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग खट, पट आदि और अनु० शब्दों के समान प्रायः 'से' विभक्ति सहित क्रि० वि० वत् ही होता है।

(२) उमंग। उद्वेग। चोप। उ०—रहत अछक पै मिटै न धक जोवन की निपट जो नाँगी, डर काहू के डरै नहीं।—भूषण।

क्रि० वि० अचानक। एकबारगी। उ०—आनन सीकर सी कहिए धक सोवत तें अकुलाय उठी क्यों?—केशव।

संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जूँ। लीख से बड़ी जूँ।

धकधकाना-क्रि० अ० [अनु० धक] (१) (हृदय का) धड़कना। भय, उद्वेग, आदि के कारण हृदय का जोर जोर से जल्दी जल्दी कूदना। उ०—धकधकात जिय बहुत सँभारै। क्यौं मारौं सो बुद्धि विचारै।—सूर। † (२) (आग का) दहकना। भभकना। लपट के साथ जलना।

धकधकाहट-संज्ञा स्त्री० [अनु० धक] (१) जी धक धक करने की क्रिया या भाव। धड़कन। (२) खटका। आशंका। (३) आगा पीछा।

धकधकी-संज्ञा स्त्री० [अनु० धक] (१) जी धकधक करने की क्रिया या भाव। जी की धड़कन। उ०—(क) आवत देख्यो विप्र जोरि कर रुक्मिनि धाई। कहा कहैगो आनि हिये धकधकी लगाई।—सूर। (ख) दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनुधारि।—तुलसी। (२) गले और छाती के बीच का गड्ढा जिसमें स्पंदन मालूम होता है। धुकधुकी। दुगदुगी।

मुहा०—धुकधुकी धरकना=छाती धड़कना। जी धकधक करना। अकस्मात आशंका या खटका होना। उ०—मिलनि विलोकि भरत रघुवर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी। —तुलसी।

धकपक-संज्ञा स्त्री० [अनु०] जी की धड़कन। धकधकी। उ०—(क) जूझत हकीमखाँ अमीरनु के धक सी औ धकसी के जियमें परी है धकपक सी।—सूदन। (ख) इंद्रजू को अकबक, धाताजू की धकपक, संभूजी की सकपक केसोदास को कहै?—केशव।

क्रि० वि० धड़कते हुए जी के साथ। दहलते हुए। डरते हुए। उ०—अक सक, धक पक थरथरात अदित जात। —सूदन।

धकपकाना-क्रि० अ० [अनु० धक] जी में दहलना। दहशत खाना। डरना। उ०—भूषन भनत दिल्लीपति सों धकपकात धाक सुनि राज छत्रसाल मरदाने की।—भूषन।

धकपेल-संज्ञा स्त्री० [अनु० धक+पेलना] धक्कमधक्का। रेलापेल। उ०—झमकंत साँग करें धकपेल।—सूदन।

धका*-संज्ञा पुं० दे० "धक्का"।

संयो॰ क्रिया—उठना।

मुहा॰—छाती, जी या दिल धड़कना = भय या आशंका से हृदय का ज़ोर ज़ोर से और जल्दी जल्दी उछलना। जी दहलना। हृदय काँपना।

(२) धड़ धड़ शब्द करना। किसी भारी वस्तु के गिरने का सा शब्द करना। जैसे, गोला धड़कना।

धड़का–संज्ञा पुं॰ [अनु॰ धड़] (१) दिल की धड़कन। (२) दिल धड़कने का शब्द। (३) खटका। अंदेशा। भय। (४) गिरने पड़ने का शब्द। (५) पयाल का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली हाँड़ी आदि जिसे चिड़ियों को डराकर भगाने के लिये खेतों में रखते हैं। धोखा।

धड़काना–क्रि॰ स॰ [हिं॰ धड़क] (१) दिल में धड़क पैदा करना। जी धक धक कराना। (२) जी दहलाना। डराना। खटका या आशंका उत्पन्न करना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

(३) धड़ धड़ शब्द उत्पन्न कराना। कोई ऐसी वस्तु फेंकना, गिराना, या छोड़ना जिससे भारी शब्द हो। जैसे, गोला धड़काना।

धड़क्का–संज्ञा पुं॰ दे॰ "धड़का"।

यौ॰—धूम धड़क्का = खूब भीड़ भाड़ और धूम धाम। गहरा समारोह और ठाटबाट।

धड़टूटा–वि॰ [हिं॰ धड़+टूटना] (१) जिसकी कमर झुकी हुई हो। (२) कुबड़ा

धड़ धड़–संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] किसी भारी वस्तु के एक बारगी गिरने, फेंके जाने, गमन करने या छूटने से उत्पन्न लगातार होनेवाला भीषण शब्द।

क्रि॰ वि॰ (१) धड़ धड़ शब्द के साथ। जैसे, धड़ धड़ गोले छूट रहे हैं। (२) बे-धड़क। बिना रुकावट के।

धड़धड़ाना–क्रि॰ अ॰ [अनु॰ धड़धड़] धड़ धड़ शब्द करना। भारी चीज़ के गिरने, पड़ने की सी आवाज़ करना। जैसे, गोले धड़धड़ा रहे हैं।

मुहा॰—धड़धड़ाता हुआ = (१) धड़ धड़ शब्द और वेग के साथ। गड़गड़ाहट और झोंक के साथ। जैसे, गाड़ी धड़धड़ाती हुई निकल गई। (२) बिना रुकावट के और झोंक के साथ। बिना किसी प्रकार के खटके या संकोच के। बे-धड़क। जैसे, तुम धड़धड़ाते हुए भीतर चले जाना।

धड़ल्ला–संज्ञा पुं॰ [अनु॰ धड़] (१) धड़धड़ शब्द। धड़ाका। वेग के साथ गिरने, पड़ने, गमन करने आदि का शब्द।

मुहा॰—धड़ल्ले से या धड़ल्ले के साथ = (१) बिना किसी रुकावट के। झोंक से। (२) बेधड़क। बिना किसी प्रकार के भय या संकोच के। जैसे, जो कुछ कहना हो धड़ल्ले के साथ कहो।

(२) धूम धड़क्का। भीड़ भाड़ और धूम धाम। (३) कसामस। गहरी भीड़।

धड़वा–संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की मैना।

धड़वाई–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धड़ा] तौलनेवाला। डाँड़ी उठानेवाला।

धड़ा–संज्ञा पुं॰ [सं॰ धट] (१) पत्थर लोहे आदि का बोझ जो बँधी हुई तौल का होता है और जिसे तराज़ू के एक पलड़े पर रखकर दूसरे पलड़े पर उसी के बराबर चीज़ रखकर तौलते हैं। बाट। बटखरा।

मुहा॰—धड़ा करना = कोई वस्तु रखकर तौलने के पहले तराज़ू के दोनो पलड़ों को बराबर कर लेना। (जब किसी वस्तु को बरतन के सहित तौलना रहता है तब पहले बरतन को पलड़े पर रख कर दोनो पलड़ों को बराबर कर लेते हैं। इसी को धड़ा करना कहते हैं)। धड़ा बाँधना = (१) दे॰ 'धड़ा करना'। (२) दोषारोपण करना। कलंक लगाना।

(२) चार सेर की एक तौल। (कहीं कहीं पाँच सेर का धड़ा माना जाता है)। (३) तराज़ू। तुला।

मुहा॰—धड़ा उठाना = तौलना। वज़न करना।

संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धड़का] दल। जत्था। झुंड। समूह।

मुहा॰—धड़ा बाँधना = दल बाँधना।

धड़ाका–संज्ञा पुं॰ दे॰ "धड़ाका"।

धड़ाका–संज्ञा पुं॰ [अनु॰ धड़] 'धड़' 'धड़' शब्द। किसी भारी चीज़ के ज़ोर से गिरने, छूटने, चलने आदि से उत्पन्न घोर शब्द। धमाके या गड़गड़ाहट का शब्द। जैसे, बंदूक का धड़ाका, दीवार गिरने का धड़ाका।

क्रि॰ प्र॰—होना।

मुहा॰—धड़ाके से = झट से। जल्दी से। चटपट। बिना रुकावट के। जैसे, धड़ाके से यह काम कर डालो।

धड़ाधड़–क्रि॰ वि॰ [अनु॰ धड़] (१) लगातार 'धड़' 'धड़' शब्द के साथ। बार बार धड़ाके के साथ। जैसे, ऊपर से धड़ाधड़ ईंटें गिर रही हैं। (२) एक दूसरे के पीछे लगातार। बराबर जल्दी जल्दी। बिना रुके हुए। जैसे, वह सब बातों का धड़ाधड़ जवाब देता गया।

धड़ाबंदी–संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धड़ा+फा॰ बंदी] (१) धड़ा बाँधने का काम। (२) लड़ाई के पहले दो पक्षों का अपनी अपनी सेना का बल एक दूसरे के बराबर करना।

धड़ाम–संज्ञा पुं॰ [अनु॰ धड़] ऊपर से एकबारगी कूद या गिर कर ज़ोर से ज़मीन, पानी आदि पर पड़ने का शब्द। जैसे, छत पर से वह धड़ाम से कूद पड़ा।

विशेष—खट, पट आदि अनु॰ शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग केवल 'से' विभक्ति के साथ क्रि॰ वि॰ वत् ही होता है।

मुहा०—धचका उठाना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

धज–संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज = चिह्न पताका] (१) सजावट। बनाव। सुंदर रचना।

यौ०—सजधज = तैयारी। साज सामान। जैसे, बरात बड़ी सज-धज से निकली।

(२) सुंदर ढंग। मोहित करनेवाली चाल। तरह। (३) बैठने उठने का ढंग। ठवन। (४) ठसक। नखरा। (५) रूप रंग। शोभा। आकृति या डील डौल।

धजबड़–संज्ञा स्त्री० [?] तलवार। (डिं०)

धजा–संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] (१) ध्वजा। पताका। (२) कपड़े की धज्जी। कतरन। चीर। (३) धज। रूपरंग। डील डौल।

धजीला–वि० [हिं० धज + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० धजीली] सजीला। तरहदार। सुंदर ढंग का।

धज्जी–संज्ञा स्त्री० [सं० धटी] (१) कपड़े, कागज, चमड़े इत्यादि (चद्दर के रूप की वस्तुओं) की कटी हुई लंबी पतली पट्टी। कटा हुआ लंबा पतला टुकड़ा। (२) लोहे की चद्दर या लकड़ी के पतले तख्ते की अलग की हुई लंबी पट्टी।

मुहा०—धज्जियाँ उड़ना = (१) फट या कट कर टुकड़े टुकड़े हो जाना। पुरजे पुरजे होना। विदीर्ण होना। (२) (किसी की) खूब दुर्गति होना। निंदा वा तिरस्कार होना। दोषों का खूब उधेड़ा जाना। धज्जियां उड़ाना = (१) टुकड़े टुकड़े करना। विदीर्ण करना। खंड खंड करना। (२) (किसी के दोषों को खूब उधेड़ना। दुर्गति करना। निंदा या उपहास करना। (३) मारकर टुकड़े टुकड़े करना। बोटी बोटी काट डालना। धज्जियाँ लगना = गरीबी से कपड़े फटे रहना। चीथड़े पहनने की नौबत आना। बहुत ग़रीबी आना। धज्जियाँ लेना = निंदा वा उपहास करना। दोषों को उधेड़ना। बनाना। दुर्गति करना। धज्जी हो जाना = सूख कर ठठरी हो जाना। बहुत दुबला पतला हो जाना। अत्यंत दुर्बल और अशक्त हो जाना (रोग आदि के कारण)।

धट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुला। तराजू। (२) तुला राशि। (३) तुलापरीक्षा। (४) धर्म्म।

धटक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तौल जो ४२ रत्तियों की होती थी।

धटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाँच सेर की एक तौल। पंसेरी। (२) चीर। वस्त्र। (३) कौपीन। लिँगोटी।

धटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चीर। कपड़े की धज्जी। (२) कौपीन। लिँगोटी। (३) वह वस्त्र जो स्त्रियों को गर्भाधान के पीछे पहनने को दिया जाता था।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार गर्भाधान के पीछे मूल, श्रवण, हस्त, पुष्य, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्र या मृगशिरा नक्षत्रों में स्त्री को अच्छे दिन धटी वस्त्र पहनाना चाहिए।

वि० [सं० धटिन्] [स्त्री० धटिनी] तुलाधारक। डाँडी पकड़नेवाला।

संज्ञा पुं० (१) तुला राशि। (२) शिव।

धड़ंग–वि० [हिं० धड़ + अंग] नंगा।

यौ०—नंग धड़ंग।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता 'नंग' शब्द के साथ समस्त रूप में होता है।

धड़–संज्ञा पुं० [सं० धर = धारण करनेवाला] (१) शरीर का स्थूल मध्य-भाग जिसके अंतर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं। सिर और हाथ पैर (तथा पशु पक्षियों में पूंछ और पंख) को छोड़ शरीर का बाकी भाग। सिर और हाथों को छोड़ कटि के ऊपर का भाग।

यौ०—धड़टूटा।

मुहा०—धड़ में डालना या उतारना = पेट में डालना। खा जाना। (किसी का) धड़ रह जाना = शरीर स्तब्ध हो जाना। देह सुन हो जाना। लकवा मार जाना। धड़ से सिर अलग करना = सिर काट लेना। मार डालना।

(२) पेड़ का वह सब से मोटा कड़ा भाग जो जड़ से कुछ दूर ऊपर तक रहता है और जिससे निकल कर डालियाँ इधर उधर फैली रहती हैं। पेड़ी। तना।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी वस्तु के एकबारगी गिरने, वेग से गमन करने आदि से होता है। जैसे, (क) वह धड़ से नीचे गिरा। (ख) गाड़ी धड़ से निकल गई।

यौ०—धड़ धड़।

विशेष—'खट' 'पट' आदि अनु० शब्दों के समान प्रायः इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है।

धड़क–संज्ञा स्त्री० [अनु० धड़] (१) हृदय का स्पंदन। हृदय के आकुंचन प्रसारण की क्रिया जो हाथ रखने से मालूम होती है। दिल के कूदने या उछलने की क्रिया। (२) हृदय के स्पंदन का शब्द। दिल के कूदने की आवाज़। तड़प। तपाक। (३) भय, आशंका आदि के कारण हृदय का अधिक स्पंदन। अंदेशे या दहशत से दिल का जल्दी जल्दी और ज़ोर ज़ोर से कूदना। जी धक धक करने की क्रिया। (४) आशंका। खटका। अंदेशा। भय।

यौ०—बे-धड़क = बिना किसी खटके के। बिना किसी असमंजस या आगा पीछा के। निर्द्वंद्व। बिना किसी रुकावट या संकोच के। जैसे, तुम बे-धड़क भीतर चले आओ।

धड़कन–संज्ञा स्त्री० [हिं० धड़क] हृदय का स्पंदन। दिल का कूदना।

धड़कना–क्रि० अ० [हिं० धड़क] (१) हृदय का स्पंदन करना। दिल का उछलना या कूदना। छाती का धक धक करना।

धतूरिया–संज्ञा पुं० [हिं० धतूर + इया (प्रत्य०)] ठगों का वह दल या संप्रदाय जो पथिकों को धतूरा खिलाकर बेहोश करता और लूटता था।

धत्ता–संज्ञा पुं० [देश०] एक छंद जिसके विषम (पहले और तीसरे) चरणों में १८ और सम (दूसरे, चौथे) चरणों में १६ मात्राएँ होती हैं। अंत में तीन लघु होते हैं। यह छंद द्विपदी धत्ता कहलाता है और दोही पंक्तियों में लिखा जाता है। उ०—श्रीकृष्णमुरारी कुंजविहारी भजु जन-मनरंजन मदन। ध्यावो धनवारी जन-दुख-हारी, जिहि नित जप गंजनमदन।

संज्ञा पुं० [देश०] थाली की बारी का ढालुवाँ भाग।

धत्तानंद–संज्ञा पुं० एक छंद जिसकी प्रत्येक पंक्ति में ११ + ७ + १३ के विश्राम से ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक नगण होता है। उ०—जय हरि ल कंस, बलिविध्वंस, केशिव बक दानव दरन। सो हरि दीनदयाल, भक्तकृपाल, कवि सुखदेव कृपा करन—सुखदेव।

धत्तूर–संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

धधक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) आग की लपट के ऊपर उठने की क्रिया या भाव। आग की भड़क। (२) आँच। लपट। लौ।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

धधकना–क्रि० अ० [हिं० धधक] आग का इस प्रकार जलना कि लपट ऊपर उठे। लपट के साथ जलना। धायँ धायँ जलना। दहकना। भड़कना।

संयो० क्रि०—उठना।

धधकाना–क्रि० स० [हिं० धधकना] (१) आग को इस प्रकार जलाना कि उसमें से लपट उठे। (२) दहकाना। प्रज्वलित करना।

संयो० क्रि०—देना।

धधाना†–क्रि० अ० दे० "धधकाना"।

धनंजय–वि० [सं०] धन को जीतने अर्थात् प्राप्त करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (इनकी पूजा से धन की प्राप्ति होती है)। (२) चित्रक वृक्ष। चीता। (३) अर्जुन का एक नाम। (४) अर्जुन वृक्ष। (५) विष्णु। (६) एक नाग का नाम जो जलाशयों का अधिपति कहा गया है। (७) शरीरस्थ पाँच वायुओं में से एक।

विशेष—यह वायु पोषण करनेवाली मानी गई है। (वेदांत सार) सुबोधिनी टीका में लिखा है कि यह मरने पर भी बनी रहती है। इससे शरीर फूलता है। ललाट, स्कंध, हृदय, नाभि, अस्थि और त्वचा इसके रहने के स्थान कहे गए हैं।

(८) एक गोत्र का नाम। (९) सोलहवें द्वापर के व्यास।

धनंतर†–संज्ञा पुं० दे० "धन्वंतरि"।

संज्ञा पुं० [सं० धन्वंतक = सोम का एक भेद] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ मोटी और फूल नीले होते हैं।

धन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वस्तु या वस्तुओं की समष्टि जिससे किसी उपयोगी या इष्ट अर्थ की सिद्धि होती है और जो श्रम, पूँजी या समय लगाने से प्राप्त होती है, विशेषतः अधिक परिमाण में संचित उपयोग की सामग्री। संपत्ति। द्रव्य। दौलत। रुपया पैसा, जमीन, जायदाद इत्यादि। जीवनोपाय।

क्रि० प्र०—कमाना।—भोगना।—लगाना।

यौ०—धनधान्य।

मुहा०—धन उड़ाना = धन को चट पट व्यर्थ खर्च कर डालना।

(२) गोधन। चौपायों का झुंड जो किसी के पास हो। गाय, भैंस आदि। (३) स्नेहपात्र। अत्यंत प्रिय व्यक्ति। जीवनसर्वस्व। जैसे, प्राणधन। जीवनधन। (४) गणित में जोड़ी जानेवाली संख्या या जोड़ का चिह्न। योग संख्या या योग चिह्न (+)। ऋण या क्षय का उलटा। (५) वह द्रव्य जिसमें वृद्धि या ब्याज न सम्मिलित हो। मूल। पूँजी। (६) जन्मकुंडली में जन्म लग्न से दूसरा स्थान जिसे देख कर यह विचार किया जाता है कि बच्चा धनी होगा या निर्धन। जैसे, यदि सूर्य्य धन स्थान में हो तो मनुष्य धन-हीन होगा, चंद्रमा हो तो धनधान्य से पूर्ण होगा, इत्यादि। अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी ये धनप्रयोग नक्षत्र कहलाते हैं। (७) कच्ची धातु। खान से निकली हुई बिना साफ़ या शुद्ध की हुई धातु। (खानवाले)

*संज्ञा स्त्री० [सं० धनी] युवती स्त्री। वधू। उ०—(क) पुनि धन भरि अंजुलि जल लीन्हा। नखत मोछ न्योछावरि कीन्हा।—जायसी। (ख) सूरदास सोभा क्यों पावै पिय विहीन धन मटके।—सूर। (ग) नूपुर क्यों उठे मन-नाय सु जाय लगी धन धाय करोखे।—देव।

‡वि० दे० "धन्य"।

धनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन की इच्छा। (२) राजा कृत-वीर्य्य के पिता। (भागवत)

संज्ञा पुं० [सं० धनु]‡(१) धनुस्। कमान। (२) एक प्रकार का पतला गोटा जिसे टोपी आदि में लगाते हैं। (३) एक प्रकार की ओढ़नी।

धनकटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + कटना] (१) धान की कटाई या कटाई का समय। (२) एक प्रकार का कपड़ा।

धनकर–संज्ञा पुं० [हिं० धान + करना] (१) वह कड़ी मिट्टी जिसमें धान बोया जाता है और जिसमें बिना अच्छी वर्षा हुए हल नहीं चल सकता। (२) वह खेत जिसमें धान बोया जाता हो।

धड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका, घटी] (१) चार या पाँच सेर की एक तौल।

मुहा०—धड़ी भरना = वज़न करना। धड़ी धड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना। इस प्रकार लुटना कि पास में कुछ भी न रह जाय। धड़ी धड़ी करके लूटना = तिनका तिनका लूटना। खूब लूटना। कुछ भी न छोड़ना। धड़ियों = ढेर का ढेर। बहुत सा। बहुत अधिक।

(२) पाँच सौ रुपए की रक़म। (३) रेखा। लकीर। (४) वह लकीर जो मिस्सी लगाने या पान खाने से ओठों पर पड़ जाती है।

क्रि० प्र०—जमाना।

धत्-अव्य० [अनु०] (१) दुतकारने का शब्द। तिरस्कार के साथ हटाने का शब्द। दूर हो। हट जा। (२) हाथी को पीछे हटाने का शब्द।

धत-संज्ञा स्त्री० [सं० रत, हिं० लत] लत। बुरी बान। खराब आदत। टेव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

धतकारना-क्रि० सं० [अनु० धत्] (१) दुतकारना। दुरदुराना। तिरस्कार के साथ हटाना। (२) धिक्कारना। लानत मलामत करना।

संयो० क्रि०—देना।

धता-वि० [अनु० धत्] चलता। हटा हुआ। जो दूर हो गया हो या किया गया हो। जो भागा या भगाया गया हो। (बाज़ारू)

मुहा०—धता करना = चलता करना। हटाना। भगाना। टालना। धत्ता बताना = (१) चलता करना। हटाना। (२) जो किसी बात के लिये अड़ा हो उससे इधर उधर का बहाना कर के अपना पीछा छुड़ाना। धोखा देकर टालना। टालटूल करना। धत होना = चलता होना। चल देना।

धतिया-वि० [हिं० धत] जिसे किसी बात की धत पड़ गई हो। बुरी लतवाला। लती।

धतींगड़-संज्ञा पुं० [देश०] (१) बड़े डील का। बेडौल आदमी। मोटा ताजा आदमी। मुस्टंड। (२) जारज। दोगला।

धतींगड़ा-संज्ञा पुं० दे० "धतींगड़"।

धतूर-संज्ञा पुं० दे० "धतूरा"।

संज्ञा पुं० [अनु० धू + सं० तूर] नरसिंहा नाम का बाजा। धूतू। सिंहा। तुरही। उ०—दसएँ मास मोहन भए मेरे आँगन बाजै धतूर।—सूर।

धतूरा-संज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर] दो तीन हाथ ऊँचा एक पौधा जिसके पत्ते सात आठ अंगुल तक लंबे और पाँच छः अंगुल चौड़े तथा कोनदार होते हैं। इसमें घंटी के आकार के बड़े बड़े और सुहावने सफेद फूल लगते हैं। फल इसके अंडी के फलों के समान गोल और काँटेदार पर उनसे बड़े बड़े होते हैं। अंडी के फल के ऊपर जो काँटे निकले होते हैं वे घने लंबे और मुलायम होते हैं, पर धतूरे के फल के ऊपर काँटे कम, छोटे और कुछ अधिक कड़े होते हैं। कंटकहीन फलवाला धतूरा भी होता है। फलों के भीतर बीज भरे होते हैं जो बहुत विषैले होते हैं। जब ये बीज पुष्ट हो जाते हैं तब फल फट जाते हैं। धतूरे कई प्रकार के होते हैं पर मुख्य भेद दो माने जाते हैं।—सफेद धतूरा और काला धतूरा। काले धतूरे के डंठल, टहनियाँ और पत्तों की नसें गहरे बैंगनी रंग की होती हैं तथा फूलों के निचले भाग भी कुछ दूर तक रक्तकृष्णाभ होते हैं। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि काला धतूरा अधिक विषैला होता है, पर यह भ्रम है। औषध में लोग काले धतूरे का व्यवहार अधिक करते हैं। वैद्य लोग धतूरे के बीज तथा पत्ते के रस का दमें में सेवन कराते और बात की पीड़ा में इसका बाहरी प्रयोग करते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन दोनों रोगों में धतूरे को बहुत उपकारी पाया है। सूखे पत्तों या बीजों के धुएँ से भी दमे का कष्ट दूर होता है। पहले डाक्टर लोग धतूरे के गुणों से अनभिज्ञ थे पर अब बहुत दिनों से उन्होंने इसे ले लिया है। पागल कुत्ते के काटने में भी धतूरा बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। धतूरे के फल शिव को चढ़ाए जाते हैं।

वैद्यक में धतूरा कसैला, उष्ण, गुरु तथा मंदाग्नि और वात-कारक माना जाता है। औषध के अतिरिक्त विषप्रयोग और मादकता के लिये भी धतूरे का प्रयोग बहुत होता है। इसके बीज भाँग और शराब को तेज करने के लिये कभी कभी मिलाए जाते हैं। धतूरा प्रायः गरम देशों में पाया जाता है। भारतवर्ष में यह सर्वत्र मिलता है। प्रदेश-भेद से पौधों में थोड़ा बहुत भेद पाया जाता है। दक्षिण देश का धतूरा उत्तराखंड के धतूरे से देखने में कुछ भिन्न मालूम होता है। काश्मीर, काबुल और फ़ारस तक से इसके बीज हिंदुस्तान में आते हैं। फ़ारस से ये बीज तागे में गूँध कर माला के रूप में आते हैं और बंबई में "यरभूली" के नाम से बिकते हैं।

पर्य्या०—उन्मत्त। कितव। धूर्त्त। कनक। कनकाह्वय। मातुल। मदन। धत्तूर। शठ। श्याम। शिवशेखर। खर्जूघ्न। काहलापुष्प। खल। कंटफल। मोहन। कलभ। मत्त। शैव। देविका। तूरी। महामोह। शिवप्रिय।

मुहा०—धतूरा खाए फिरना = पागल बना फिरना। उन्मत्त के समान घूमना। उ०—सूरदास प्रभु दरसन कारन मानहुँ फिरत धतूरा खाए।—सूर।

*संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका, हिं० धनिया=युवती] युवती। वधू। (गीत या कविता)

धनाढ्य-वि० [सं] धनवान्। मालदार।

धनाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

धनाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खज़ानची। (२) कुबेर।

धनाना-क्रि० अ० [सं० धेनु=नवसूतिका गाय] (१) गाय का गर्भवती होना। बच्चे से होना। (२) गाय का मरदाना। गाय का साँड़ से संयोग करना

धनार्थी-वि० [सं० धनार्थिन्] धन चाहनेवाला। रुपया पैसा माँगनेवाला।

धनाश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमान् के मत से श्री राग की तीसरी पत्नी मानी जाती है। इसकी जाति षाड़व, ऋषभ वर्जित गृहांशन्यास षड्ज। गाने का समय किसी किसी के मत से दिन का दूसरा पहर और किसी के मत से तीसरा पहर। इसका प्रयोग वीर रस में विशेष होता है। इसका सरगम इस प्रकार है—

स० ग म प ध नि स: :

भरत के मत से यह गांधार राग की भार्य्या और कल्लिनाथ के मत से मेघराग की चतुर्थ भार्य्या है।

धनि*-संज्ञा स्त्री० [सं० धनी] युवती। वधू। उ० धनि वे धनि सावन की रतियाँ पिय की छतियाँ लगि सोवति हैं।

वि० दे० 'धन्य'। उ०—धनि धनि! भारत की छत्रानी।—हरिश्चंद्र।

धनिक-वि० [सं०] धनी। जिसके पास धन हो।

संज्ञा पुं० (१) धनी मनुष्य। (२) पति। स्वामी। (३) रुपया उधार देनेवाला मनुष्य। महाजन। उत्तमर्ण। (४) धनिया।

धनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनी स्त्री। (२) अच्छी स्त्री। वधू। युवती। (३) प्रियंगु वृक्ष।

धनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनीपना। धनाढ्यता।

धनिया-संज्ञा पुं० [सं० धन्याक, धनिका] एक छोटा पौधा जिसके सुगंधित फल मसाले के काम में आते हैं। यह पौधा हिंदुस्तान में सर्वत्र बोया जाता है। प्राचीन काल में धनिया प्रायः भारतवर्ष ही से मिश्र आदि पश्चिम के देशों में जाता था पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस हंगरी आदि योरप के कई देशों में इसकी खेती अधिक होने लगी है। धनिये का पौधा हाथ भर से बड़ा नहीं होता। इसकी टहनियाँ बहुत नरम और लता की तरह लचीली होती हैं। पत्तियाँ बहुत छोटी कुछ गोलाई लिए होती हैं पर उनमें टेढ़े मेढ़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुत से कटाव होते हैं। इन पत्तियों की सुगंध बड़ी मनोहर होती है जिससे वे चटनी में हरी पीस कर डाली जाती हैं। टहनियों के छोर पर इधर उधर कई सींकें निकलती हैं जिनके सिरों पर छत्ते की तरह फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गेहूँ से भी छोटे छोटे लंबोतरे फल लगते हैं जो सुखा कर काम में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इसकी खेती भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न ऋतुओं में होती है। जैसे, बंगाल और युक्त प्रदेश में जाड़े में, बंबई प्रदेश में बरसात में और मदरास में शिशिर ऋतु में। मसाले के अतिरिक्त योरप में धनिये का तेल भी भबके से अर्क निकाल कर निकाला जाता है, जो खाने और दवा के काम में आता है। वैद्यक में धनिया शीतल, स्निग्ध, दीपन, पाचन, वीर्य्यकारक कृमिनाशक तथा पित्तज्वर, खांसी, प्यास और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है। डाक्टर लोग भी पेट की वायु दूर करने और शरीर में फुरती लाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

पर्य्या०—धन्याक। धनिक। धानक। धनिका। छत्राधान्य। कुस्तुंबुरु। वितुन्नक। सुगंधि। सूक्ष्मपत्र। जनप्रिय। वेधक। वजिधान्य।

मुहा०—धनिये की खोपड़ी में पानी पिलाना=प्यासों मारना। बहुत कठिन दंड देना। बहुत तंग करना। (स्त्रि०)

*संज्ञा स्त्री० [सं० धनिका=युवती] युवती। वधू। स्त्री। उ०—सहसानन गुन गनैं गनत न बनियाँ। सूरस्याम सब भूलीं गोप धनियाँ।—सूर।

धनियामाल-संज्ञा स्त्री० [हिं० धनी+माला] गले में पहनने का एक गहना।

धनिष्ठ-वि० [सं०] धनी। धनाढ्य।

धनिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ताईस नक्षत्रों में से तेईसवाँ नक्षत्र जो ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में से है और जिसमें पाँच तारे संयुक्त हैं। इसके अधिपति देवता वसु हैं और इसकी आकृति मृदंग की सी है। फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म हो वह दीर्घकाय, कामातुर, कफगुरु, उत्तम शास्त्रवेत्ता और कीर्तिमान् होता है।

पर्य्या०—श्रविष्ठा। वसुदेवता। भूति। निधान। धनवती।

विशेष—दे० "नक्षत्र"

धनी-वि० [सं० धनिन्] (१) धनवान्। जिसके पास धन हो। मालदार। रुपया पैसेवाला। दौलतमंद।

यौ०—धनी धोरी=धन और मर्य्यादावाला। धाकवाला। धनी मानी=धनी और प्रतिष्ठित।

मुहा०—बात का धनी=बात का सच्चा। दृढ़प्रतिज्ञ।

(२) जिसके पास कोई गुण आदि हो। दक्षता-संपन्न। जैसे, तलवार का धनी।

संज्ञा पुं० (१) धनवान् पुरुष। मालदार आदमी। (२) रखनेवाला आदमी। वह जिसके अधिकार में कोई हो। अधि-

धनकुट्टी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + कूटना] (१) धान कूटने का काम। (२) धान कूटने के औज़ार, ओखली, मूसल।

मुहा०—धनकुट्टी करना = मारते मारते कचूमर निकालना। बहुत पीटना।

(३) उड़नेवाला लाल रंग का एक छोटा (जौ के बराबर) कीड़ा जिसका मुहँ काला होता है। यह अपना अगला धड़ इस प्रकार नीचे ऊपर हिलाता है जैसे धान कूटने की ढेकली।

धनकुबेर–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो धन में कुबेर के समान हो। अत्यंत धनी मनुष्य।

धनकेलि–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

धनकोटा–संज्ञा पुं० [देश०] एक झाड़ या पौधा जो हिमालय के कम ठंढे स्थानों में होता है और जिससे नैपाली कागज बनता है। चमेोई। सतबरवा। सतपुरा।

धनखर–संज्ञा पुं० [हिं० धान] वह खेत जिसमें (कुआरी) धान बोया जाता हो। धनाऊँ।

धनचिड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + चिड़ी] एक प्रकार की चिड़िया।

धनतेरस–संज्ञा स्त्री० [हिं० धन + तेरस] कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी जो दिवाली के दो दिन पहले होती है। इस दिन रात को लक्ष्मी की पूजा होती है।

धनदंड–संज्ञा पुं० [सं०] वह दंड जिसमें अपराधी को कुछ धन देना पड़ता है। जुरमाना।

धनद–वि० [सं०] धन देनेवाला। दाता।

संज्ञा पुं० (१) कुबेर। (२) हिज्जल वृक्ष। समुद्रफल। (३) धनपति वायु। (४) अग्नि। (५) चित्रक वृक्ष। चीता। (६) हिमालय या उत्तराखंड के एक देश का नाम। (भारत)

धनदतीर्थ–[सं०] कुबेरतीर्थ जो व्रज के अंतर्गत है।

धनदा–वि० स्त्री० [सं०] धन देनेवाली।

संज्ञा स्त्री० आश्विन कृष्ण एकादशी का नाम।

धनदाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] लता करंज।

धनदायन–संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके काढ़े से ऊनी कपड़ों पर माड़ी देते हैं।

धनदेव–संज्ञा [सं०] कुबेर।

धनधान्य–संज्ञा पुं० [सं०] धन और अन्न आदि। सामग्री और संपत्ति। जैसे, धन-धान्य-पूर्ण देश।

धनधाम–संज्ञा पुं० [सं०] घरबार और रुपया पैसा।

धननंद–संज्ञा० पुं [सं०] सिंहल के महावंश नामक ग्रंथ के अनुसार मगध के नंदवंश का अंतिम राजा जिसका चाणक्य द्वारा नाश हुआ। (दे० नंदवंश)।

धननाथ–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

धनपति–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) कुबेर। (२) पुराण के अनुसार वायु का नाम।

विशेष—वराहपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने जब सृष्टि की तब उनके मुख से वायु देवता निकले। ब्रह्मा ने उनसे मूर्त्तिमान् होकर शांत भाव धारण करने के लिये कहा और वर दिया कि "देवताओं का जितना धन है सब के रक्षक तुम हो। जो एकादशी के दिन आग में पका अन्न न खायगा उसके प्रति प्रसन्न होकर तुम धनधान्य दोगे"।

धनपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] बही खाता।

धनपात्र–संज्ञा पुं० [सं०] धनवान्। धनी।

धनपाल–वि० [सं०] धन का रक्षक।

संज्ञा पुं० कुबेर।

धनप्रयोग–संज्ञा पुं० [सं०] धन को किसी व्यापार में लगाने या व्याज पर उधार देने का कार्य्य। रुपया लगाने का काम।

विशेष—मुहूर्त्तचिंतामणि, ज्योतिप्रकाश आदि फलित ज्योतिष के ग्रंथों में इस बात का विचार किया गया है कि किन किन नक्षत्रों या दिनों में धनप्रयोग करना चाहिए, किन किन में नहीं।

धनप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा जामुन।

धनमद–संज्ञा पुं० [सं०] धन का घमंड।

धनमाली–संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का संहार।

धनवंत–वि० दे० "धनवान्"।

धनवती–वि० स्त्री० [सं०] धन रखनेवाली।

संज्ञा स्त्री० धनिष्ठा नक्षत्र।

धनवा–संज्ञा पुं० [हिं० धान] एक प्रकार की घास।

संज्ञा पुं० दे० "धन्वा"।

धनवान्–वि० [सं०] [स्त्री० धनवती] जिसके पास धन हो। धनी। दौलतमंद।

धनशाली–वि० [सं० धनशालिन्] [स्त्री० धनशालिनी] धनवान्। धनिक।

धनसार–संज्ञा पुं० [हिं० धान + सार (शाला)] अनाज भरने की कोठरी या घेरा जिसमें केवल दो खिड़कियाँ अनाज रखने और निकालने के लिये होती हैं।

धनसिरी–संज्ञा स्त्री० [सं० धन + श्री] एक चिड़िया।

धनस–संज्ञा पुं० [सं०] धनेस नाम की चिड़िया।

धनस्यक–वि० [सं०] धन की लालसा रखनेवाला।

संज्ञा पुं० गोक्षुरक। गोखरू।

धनस्वामी–संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

धनहर–वि० [सं०] धन हरनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) चोर। लुटेरा। (२) चोर नामक गंधद्रव्य।

धनहीन–वि० [सं०] निर्धन। दरिद्र। कंगाल।

धना–संज्ञा स्त्री० [?] एक रागिनी।

पाद और प्रयोगपाद। प्रथम दीक्षापाद में धनुर्लक्षण (धनुस् के अंतर्गत सब हथियार लिए गए हैं) और अधिकारियों का निरूपण है। आयुध चार प्रकार के कहे गए हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और यंत्रमुक्त। मुक्त-आयुध, जैसे, चक्र। अमुक्त आयुध, जैसे, खड्ग। मुक्तामुक्त, जैसे, भाला, बरछा। मुक्त को अस्त्र और अमुक्त को शस्त्र कहते हैं। अधिकारी का लक्षण कह कर फिर दीक्षा, अभिषेक, शकुन आदि का वर्णन है। संग्रहपाद में आचार्य्य का लक्षण तथा अस्त्र शस्त्रादि के संग्रह का वर्णन है। तृतीय पाद में संप्रदाय सिद्ध विशेष विशेष शस्त्रों के अभ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं। प्रयोग नामक चतुर्थपाद में देवार्चन, सिद्धि, अस्त्र शस्त्रादि के प्रयोगों का निरूपण है।

वैशंपायन के अनुसार शार्ङ्ग धनुस् में तीन जगह झुकाव होता है पर वैणव अर्थात् बाँस के धनुस् का झुकाव बराबर क्रम से होता है। शार्ङ्ग धनुस् ६॥ हाथ का होता है और अश्वारोहियों तथा गजारोहियों के काम का होता है। रथी और पैदल के लिये बाँस का ही धनुस् ठीक है। अग्नि पुराण के अनुसार चार हाथ का धनुस् उत्तम, साढ़े तीन हाथ का मध्यम और तीन हाथ का अधम माना गया है। जिस धनुस् के बाँस में नौ गाँठें हों उसे 'कोदंड' कहना चाहिए। प्राचीन काल में दो डोरियों की गुलेल भी होती थी जिसे उपलक्षेपक कहते थे। डोरी पाट की और कनिष्ठा उँगली के बराबर मोटी होनी चाहिए। बाँस छील कर भी डोरी बनाई जाती है। हिरन या भैंसे की ताँत की डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है। (वृद्ध शार्ङ्गधर)

बाण दो हाथ से अधिक लंबा और छोटी उँगली से अधिक मोटा न होना चाहिए। शर तीन प्रकार के कहे गए हैं—जिसका अगला भाग मोटा हो वह स्त्री जातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुष जातीय और जो सर्वत्र बराबर हो वह नपुंसक जातीय कहलाता है। स्त्री जातीय शर बहुत दूर तक जाता है। पुरुष जातीय भिदता खूब है और नपुंसक जातीय निशाना साधने के लिये अच्छा होता है। बाण के फल अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे, आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्द्धचंद्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदंत, द्विभल्ल, कर्णिक, काकतुंड, इत्यादि। तीर में गति सीधी रखने के लिये पीछे परों का लगाना भी आवश्यक बताया गया है। जो बाण सारा लोहे का होता है उसे नाराच कहते हैं।

उक्त ग्रंथ में लक्ष्यभेद, शराकर्षण आदि के संबंध में बहुत से नियम बताए गए हैं। रामायण, महाभारत, आदि में शब्दभेदी बाण मारने तक का उल्लेख है। अंतिम हिंदू-सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के संबंध में भी प्रसिद्ध है कि वे शब्दभेदी बाण मारते थे।

धनुष—संज्ञा पुं० दे० "धनुस्"।

धनुष्कोटि तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रामेश्वर से दक्षिण पूर्व एक स्थान जहाँ समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य है।

धनुष्मान्—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा का एक पर्वत। (बृहत्संहिता)

धनुस्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलदार तीर फेंकने का वह अस्त्र जो बाँस या लोहे के लचीले डंडे को झुका कर और उसके दोनों छोरों के बीच डोरी या ताँत बाँध कर बनाया जाता है। कमान।

यौ०—धनुर्धर। धनुर्विद्या। धनुर्वेद।

विशेष—दे० "धनुर्वेद"।

(२) ज्योतिष में एक राशि। धनुराशि। (३) एक लग्न। (४) हठयोग का एक आसन। (५) पियाल वृक्ष। (६) चार हाथ की एक माप। (७) गोल क्षेत्र के आधे से कम अंश का क्षेत्र।

धनुहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनु + हाई] धनुस् की लड़ाई। उ०—परम कृपालु जे नृपाल लोक पालनि पै धनुहाई ह्वै है मन अनुमान कै।—तुलसी।

धनुहिया—संज्ञा स्त्री० दे० "धनुही"।

धनुही—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनु + ही (प्रत्य०)] लड़कों के खेलने की कमान। उ०—बहु धनुही तोरेउँ लरिकाईं।—तुलसी।

धनेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धनेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन का स्वामी। (२) कुबेर। (३) लग्न से दूसरा स्थान। (४) विष्णु।

धनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन का स्वामी। (२) कुबेर। (३) विष्णु।

धनेस—संज्ञा पुं० [सं० धनस् ?] बगले के आकार की एक चिड़िया जिसकी गरदन और चोंच लंबी होती है। यह बैर, बरगद आदि के पेड़ों पर रहती है। लोग खाने के लिये इसका शिकार करते हैं। इसे पकाकर एक प्रकार का तेल भी निकालते हैं जो वात के दर्द में लगाया जाता है।

धनैषी—वि० [सं० धनैषिन्] धन का इच्छुक। धन चाहनेवाला।

धन्ना—संज्ञा पुं० दे० "धरना"।

धन्नासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसका ग्रह षड्ज है और जो ऋ वर्जित है। यह वीर और शृंगार रस के लिये गाई जाती है।

धन्नासेठ—संज्ञा पुं० [हिं० धन + सेठ] बहुत धनी आदमी। प्रसिद्ध धनाढ्य। भारी मालदार।

मुहा०—धन्नासेठ का नाती = बहुत धनाढ्य कुल का। (व्यंग्य)

पति। मालिक। स्वामी। जैसे, कोशलधनी। उ०—सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन-धनी।—तुलसी। (३) पति। शौहर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती स्त्री। वधू। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्याम तमाले उठँगि बैठी धनी।—हरिदास।

धनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धनुःपट—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष।

धनुःशाखा—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष।

धनुःश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुर्वा। मुर्रा। (२) महेंद्र-वारुणी।

धनु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुस्। चाप। कमान।

विशेष—दे० "धनुस्"।

(२) ज्योतिष की बारह राशियों में से नवीं राशि जिसके अंतर्गत मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्र तथा उत्तराषाढ़ा का एक चरण आता है। इसे तौक्षिक भी कहते हैं।

विशेष—दे० "राशि"।

(३) फलित ज्योतिष में एक लग्न विशेष जिसका परिमाण ५। १७। २० है।

विशेष—प्रत्येक दिन रात में बारह लग्न माने जानते हैं। पूस के महीने में सूर्योदय धनु लग्न में होता है।

(४) हठयोग के एक आसन का नाम। (५) पियाल वृक्ष। (६) चार हाथ की एक माप। (७) गोल क्षेत्र के आधे से कम अंश का क्षेत्र।

धनुआ—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्, धन्वा] (१) धनुस्। कमान। (२) तांत की डोरी की लंबी कमान जिससे धुनिए रुई धुनते हैं।

धनुई†—संज्ञा स्त्री० [सं० धनु + ई (प्रत्य०)] छोटा धनुस्।

धनुक—संज्ञा पुं० दे० "धनुस्"।

धनुकना†—क्रि० स० दे० "धुनकना"।

धनुकबाई—संज्ञा पुं० [हिं० धनुक + बाई] लकवे की तरह का एक वायुरोग जिसमें जबड़े बैठ जाते हैं, और मुँह नहीं खुलता।

धनुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् की डोरी। पतंचिका। चिल्ला।

धनुर्गुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। मरोरफली। चुरनहार।

धनुर्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुर्धर। (२) धनुर्विद्या। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

धनुर्द्धर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष धारण करनेवाला पुरुष। कमनैत। तीरंदाज। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

धनुर्द्धारी—वि० [सं० धनुर्द्धारिन्] [स्त्री० धनुर्द्धारिणी] धनुष धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० धनुर्द्धर। कमनैत। वीर। योद्धा।

धनुर्द्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

धनुर्भृत्—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् धारण करनेवाला योद्धा। वीर।

धनुर्मख—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्यज्ञ।

धनुर्माला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। चुरनहार। मरोरफली। मुर्रा।

धनुर्यज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् संबंधी उत्सव। एक यज्ञ जिसमें धनुस् का पूजन तथा उसके चलाने आदि की परीक्षा भी होती थी।

विशेष—मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के विवाहार्थ वर चुनने के लिये इस प्रकार का यज्ञ किया था। कंस ने भी छलपूर्वक कृष्ण को बुलाने के लिये इस प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान किया था।

धनुर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] जवासा।

धनुर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमलता।

धनुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

धनुर्वात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुकबाई। (२) एक वायु रोग जिसमें शरीर धनुस् की तरह झुक कर टेढ़ा हो जाता है।

धनुर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुस् चलाने की विद्या। तीरंदाजी का हुनर।

विशेष—दे० "धनुर्वेद"।

धनुर्वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धामिन का पेड़। (२) बाँस। (३) भिलावाँ। (४) पीपल का पेड़।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें धनुस् चलाने की विद्या का निरूपण हो।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सब सभ्य देशों में इस विद्या का प्रचार था। भारत के अतिरिक्त फ़ारस, मिश्र, यूनान, रोम आदि के प्राचीन इतिहासों और चित्रों आदि के देखने से उन सब देशों में इस विद्या के प्रचार का पता लगता है। भारतवर्ष में तो इस विद्या के बड़े बड़े ग्रंथ थे जिन्हें क्षत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे। मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थान-भेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद लिखा है। आज कल इस विद्या का वर्णन कुछ ग्रंथों में थोड़ा बहुत मिलता है। जैसे, शुक्रनीति, कामंदकी नीति, अग्निपुराण, वीरचिंतामणि, वृद्धशार्ङ्गधर, युद्धजयार्णव, युक्तिकल्पतरु, नीतिमयूख, इत्यादि। 'धनुर्वेद संहिता' नामक एक अलग पुस्तक भी मिलती है पर उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता में संदेह है। अग्निपुराण में ब्रह्मा और महेश्वर इस वेद के आदि प्रकटकर्त्ता कहे गए हैं। पर मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं कि विश्वामित्र ने जिस धनुर्वेद का प्रकाश किया था यजुर्वेद का उपवेद वही है। उन्होंने अपने प्रस्थान-भेद में विश्वामित्रकृत इस उपवेद का कुछ संक्षिप्त ब्योरा भी दिया है। उसमें चार पाद हैं—दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धि-

चीज़ के गिरने का शब्द। (२) भद्दे, मोटे आदमी के पैर रखने का शब्द।

धबला—संज्ञा पुं० [देश०] (१) कटि के नीचे का अंग ढाँकने के लिये कोई ढीला ढाला पहनावा। ढीला पायजामा। (२) स्त्रियों का लहँगा। घाघरा।

धब्बा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) किसी सतह के ऊपर थोड़ी दूर तक फैला हुआ ऐसा स्थान जो सतह के रंग के मेल में न हो और भद्दा लगता हो। दाग़। पड़ा हुआ चिह्न जो देखने में बुरा लगे। निशान। जैसे, कपड़े पर स्याही का धब्बा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

(२) कलंक। दोष। ऐब।

क्रि०प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—नाम में धब्बा लगाना=कीर्त्ति को मिटानेवाला काम करना। (किसी पर) धब्बा रखना=कलंक लगाना। दोषारोपण करना।

धम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भारी चीज़ के गिरने का शब्द। धमाका। जैसे, धम से गिरना, धम से कुएँ में कूदना।

विशेष—खट, पट, आदि और अनु० शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है।

धमक—संज्ञा स्त्री० [अनु० धम] (१) भारी वस्तु के गिरने का शब्द। भार डालते हुए ज़मीन पर पड़ने की ध्वनि। आघात का शब्द। (२) पैर रखने की आवाज़। पैर की आहट। (३) वह कंप जो किसी भारी वस्तु की गति के कारण इधर उधर मालूम हो। आघात आदि से उत्पन्न कंप या विचलता। जैसे, (क) पत्थर इतने ज़ोर से गिरा कि धमक से मेज़ हिल गई। (ख) रेल के पास आने पर ज़मीन में धमक सी मालूम होती है। (४) आघात। चोट। (५) वह आघात जो किसी भारी शब्द से हृदय पर मालूम हो। दहल। (६) गड्डा (पालकीवाले)।

संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धमिका] (१) धौंकनेवाला। (२) लोहार। कर्मकार।

धमकना—क्रि० अ० [हिं० धमक] (१) 'धम' शब्द के साथ गिरना। धमाका करना।

मुहा०—आ धमकना=आ पहुँचना। तुरंत आजाना। देखते देखते उपस्थित होना। जा धमकना=जा पहुँचना।

(२) आघात सा होता हुआ जान पड़ना। रह रह कर दर्द करना। व्यथित होना (सिर के लिये)। जैसे, सिर धमकना।

धमकाना—क्रि० स० [हिं० धमक] (१) डराना। भय दिखाना। दंड देने या अनिष्ट करने का विचार प्रकट करना। (२) डाँटना। घुड़कना।

संयो० क्रि० —देना।

धमकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) दंड देने या अनिष्ट करने का विचार जो भय दिखाने के लिये प्रकट किया जाय। डर दिखाने की क्रिया। त्रास दिखाने की क्रिया। (२) घुड़की। डाँट डपट।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धमकी में आना=डराने से डरकर कोई काम कर बैठना।

धमका ‡—संज्ञा पुं० दे० "धमाका"।

धमगजर—संज्ञा पुं० [अनु० धम + सं० गर्जन] (१) उत्पात। ऊधम। उपद्रव। (२) लड़ाई। युद्ध।

धम धम—संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के गण जो पार्वती के क्रोध से उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

संज्ञा स्त्री० दे० "धम"।

धमधमाना—क्रि० अ० [अनु० धम] 'धम धम' शब्द करना। कूद फाँद या चल फिर कर कंप और शब्द उत्पन्न करना। जैसे, घोड़े धमधमाते हुए आ पहुँचे।

धमधूसर—वि० [अनु० धम + सं० धूसर = मटमैला, या गदहा] भद्दा मोटा आदमी। स्थूल और बेडौल मनुष्य।

धमन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हवा से फूँकने का काम। (२) पोली नली जिसमें हवा भरकर फूँकें। फुँकनी। धौंकनी। (३) नरकट। नरसल। नल नामक तृण।

धमना—क्रि० स० [सं० धमन] धौंकना। फूँकना। नल आदि में हवा भरकर वेग से छोड़ना।

धमनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धमनी। नाड़ी। (२) प्रह्लाद के भाई ह्लाद की स्त्री। वातापि और इल्वल की माँ। (३) वाक्। शब्द।

धमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरीर के भीतर की वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदि का संचार होता रहता है।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार धमनियाँ २४ हैं और नाभि से निकल कर १० ऊपर की ओर गई हैं १० नीचे की ओर तथा चार बगल की ओर। ऊपर जानेवाली धमनियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रश्वास, उच्छ्वास, जँभाई, छींक, हँसना, रोना, बोलना इत्यादि व्यापार होते हैं। ये ऊर्द्धगामिनी धमनियाँ हृदय में पहुँचकर तीन तीन शाखाओं में विभक्त हो कर ३० हो जाती हैं। इनमें से २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ रक्तवहा और २ रसवहा, दस तो ये हैं। इनके अतिरिक्त ८ शब्द, रूप, रस और गंध को वहन करनेवाली हैं। फिर २ से मनुष्य बोलता है, २ से घोष करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, २ धमनियाँ अश्रुवाहिनी हैं और २ स्त्रियों के स्तनों में दूध या पुरुषों के शरीर में शुक्र प्रवर्त्तित करनेवाली हैं। यह तो हुई ऊर्ध्वगामिनी धमनियों की बात। अब इसी प्रकार अधोगामिनी

धन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० (गो) धन] (१) गायों बैलों की एक जाति जो पंजाब में नमकवाले पहाड़ों के आस पास पाई जाती है। (२) घोड़े की एक जाति। उ०—धन्नी, भीमाथली, काठिया, मारवाड़, मधिदेशी।—रघुराज। (३) बेगार का आदमी।

धन्य—वि० [सं०] (१) पुण्यवान्। सुकृती। श्लाघ्य। प्रशंसा के योग्य। बड़ाई के योग्य। कृतार्थ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग साधुवाद देने के लिये प्रायः होता है। जैसे, किसी को कोई अच्छा काम करते देख या सुनकर लोग बोल उठते हैं—धन्य! धन्य!!

(२) धन देनेवाला। जिससे धन प्राप्त हो।

संज्ञा पुं० (१) अश्वकर्ण वृक्ष। (२) धनिया। (३) विष्णु। (४) नास्तिक।

धन्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधुवाद। शाबाशी। प्रशंसा। वाह वाह। (२) किसी उपकार या अनुग्रह के बदले में प्रशंसा। कृतज्ञतासूचक शब्द। शुक्रिया।

क्रि० प्र०— करना।—देना।—लेना।

धन्या—वि० स्त्री० [सं०] प्रशंसायोग्य। पुण्यशीला।

संज्ञा स्त्री० (१) उपमाता। (२) वनदेवी। (३) मनु की एक कन्या जिसका विवाह ध्रुव के साथ हुआ था। (४) आमलकी। छोटा आँवला। (५) धनिया।

धन्याक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धन्वंग—संज्ञा पुं० [सं०] धामिन का पेड़।

धन्वंतर—संज्ञा पुं० [सं०] चार हाथ की एक माप।

धन्वंतरि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमंथन के समय और सब वस्तुओं के साथ समुद्र से निकले थे।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि जब ये समुद्र से निकले तब तेज से दिशाएँ जगमगा उठीं। ये सामने विष्णु को देखकर ठिठक रहे, इसपर विष्णु भगवान ने इन्हें 'अब्ज' कह कर पुकारा। भगवान् के पुकारने पर इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि यज्ञ में मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय। विष्णु ने कहा भाग और स्थान तो बँट गए हैं पर तुम दूसरे जन्म में विशेष सिद्धि लाभ करोगे, अणिमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भ से ही प्राप्त रहेंगी और तुम सशरीर देवत्वलाभ करोगे। तुम आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करोगे।

द्वापर युग में काशिराज "धन्व" ने पुत्र के लिये तपस्या और अब्ज देव की आराधना की। अब्ज देव ने धन्व के घर स्वयं अवतार लिया और भरद्वाज ऋषि से आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करके प्रजा को रोगमुक्त किया।

भावप्रकाश में लिखा है कि इंद्र ने आयुर्वेद शास्त्र सिखा कर धन्वंतरि को लोक के कल्याण के लिये पृथ्वी पर भेजा। धन्वंतरि काशी में उत्पन्न हुए और ब्रह्मा के वर से काशी के राजा हुए। महाराज विक्रमादित्य की सभा के जो नवरत्न गिनाए गए हैं उनमें भी एक धन्वंतरि का नाम है। पर जब नवरत्नवाली बात ही कल्पित है तब इस धन्वंतरि का पता लगना कठिन ही है।

धन्वंतरिग्रस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

धन्व—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस्।

धन्वज—वि० [सं०] मरुदेश में उत्पन्न।

धन्वदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे दुर्ग या गढ़ जिनके चारों ओर पाँच पाँच योजन तक निर्जल और मरुभूमि हो।

धन्वन—संज्ञा पुं० [सं०] धामिन का पेड़।

धन्वयवास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा। जवासा।

धन्वा—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्] (१) धनुस्। कमान। (२) जलहीन देश। मरुभूमि। रेगिस्तान। (३) स्थल। सूखी ज़मीन। (४) आकाश। अंतरिक्ष।

धन्वाकार—वि० [सं०] धनुस् के आकार का। कमान की सूरत का। गोलाई के साथ झुका हुआ। टेढ़ा।

धन्वायी—वि० [सं० धन्वायिन्] धनुर्द्धर।

संज्ञा पुं० रुद्र।

धन्विन—संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

धन्वी—वि० [सं० धन्विन्] (१) धनुर्धर। कमनैत। (२) निपुण। चतुर।

संज्ञा पुं० (१) दुरालभा। जवासा। (२) अर्जुन वृक्ष। (३) बकुल। मौलसिरी। (४) अर्जुन पांडव। (५) विष्णु। (६) शिव। (७) तामस मनु के एक पुत्र।

धप—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी भारी और मुलायम चीज़ के गिरने का शब्द।

संज्ञा पुं० धौल। थप्पड़। तमाचा।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

धपना—क्रि० अ० [सं० धावन। वा० हिं० धाप] (१) ज़ोर से चलना। दौड़ना। (२) झपटना। लपकना। उ०—शीला नाम ग्वालिनी तेहि गहे कृष्ण धपि धाइ हो।—सूर।

धपाना—क्रि० स० [हिं० धपना] (१) दौड़ाना। इधर उधर फिराना। घुमाना। सैर कराना। टहलाना।

धप्पा—संज्ञा पुं० [अनु० धप] (१) थप्पड़। धौल। तमाचा। (२) हानि का आघात। घाटा। टोटा। नुकसान।

क्रि० प्र०—बैठना।—लगना।

मुहा०—धप्पा मारना = नुकसान करा देना। धोखा देकर कुछ माल ले लेना। उड़ा लेना।

धप्पाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० धप] दौड़।

धब धब—संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) किसी भारी और मुलायम

संज्ञा पुं० दे० "धड़"।
संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] धरने या पकड़ने की क्रिया।
यौ०—धर पकड़=भागते हुए आदमियों को पकड़ने का व्यापार। गिरफ़ारी। उ०—जैसे, जब धर पकड़ होने लगी तब लुटेरे इधर उधर भाग गए।
धरक†ᐩ-संज्ञा स्त्री० दे० "धड़क"।
धरकना-क्रि० अ० दे० "धड़कना"।
धरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धारण। रखने, थामने, ग्रहण करने या सँभालने की क्रिया। (२) एक तौल जो कहीं २४ रत्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ माशे, कहीं $\frac{1}{10}$ शतमान, कहीं ११ निष्पाव, कहीं $\frac{2}{5}$ कर्ष, कहीं $\frac{1}{10}$ पल की मानी गई है। (३) बाँध। पुल। (४) संसार। जगत्। (५) सूर्य्य। (६) स्तन। (७) धान। (८) एक नाग का नाम।
धरणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। (२) शाल्मलि वृक्ष।
धरणिधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथ्वी को धारण करनेवाला। (२) कच्छप। (३) पर्वत। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) शेषनाग।
धरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) शाल्मलि वृक्ष। (३) नाड़ी।
धरणीकंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक कंद का नाम। वनकंद।
धरणीकीलक-संज्ञा पुं० [सं०] (पृथ्वी को कील की तरह दबाए रहनेवाला) पर्वत। पहाड़।
विशेष—पुराणों के अनुसार पृथ्वी को पहाड़ दबाकर सँभाले हुए हैं।
धरणीधर-संज्ञा पुं० दे० "धरणिधर"।
धरणीपूर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।
धरणीसुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल। (२) नरकासुर।
धरणीसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।
धरता-संज्ञा पुं० [हिं० धरना या वैदिक धर्तृ] (१) किसी का रुपया धरनेवाला। देनदार। ऋणी। कर्ज़दार। (२) किसी रक़म को देते हुए उसमें से कुछ बँधा हक़ या धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना। कटौती। (३) धारण करनेवाला। कोई कार्य्य आदि अपने ऊपर लेनेवाला।
यौ०—कर्त्ता धरता=सब कुछ करने धरनेवाला।
धरती-संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] (१) पृथ्वी। ज़मीन।
मुहा०—धरती का फूल=(१) खुमी। छत्रक। कुकुरमुत्ता। (२) नया उभरा हुआ धनी। नया निकला हुआ अमीर। (३) मेंढक। धरती बाहना=(१) जमीन जोतना। (२) परिश्रम करना। मशक्कत करना।
(२) संसार। दुनिया। जगत।
धरधरᐩ-संज्ञा पुं० दे० "धराधर"।
संज्ञा स्त्री० दे० "धड़ धड़"।
धरधरा*†-संज्ञा पुं० [अनु०] धड़कन। धकधकाहट। उ०—कर धर देखो धरधरा उर्जौ न उरते जात।—बिहारी।
धरधराना*†-क्रि० अ०। क्रि० स० दे० "धड़धड़ाना"।
धरन-संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] (१) धरने की क्रिया, भाव, ढंग। (२) लकड़ी लोहे आदि का वह लंबा लट्ठा जो इसी प्रकार के और लट्ठों के साथ दो खड़ी समानांतर दीवारों या ऊँचे पर ठहराए हुए दो समानांतर लट्ठों पर इसलिये आड़ा रखा जाय जिसमें उसके ऊपर पाटन (छत आदि) या कोई बोझ ठहर सके। कड़ी। धरनी। (३) वह नस जो गर्भाशय को दृढ़ता से जकड़े रहती है जिससे वह इधर उधर नहीं टलता। गर्भाशय का आधार।
मुहा०—धरन टलना, डिगना, खसकना या सरकना=गर्भाशय की नस का अपनी जगह से हट जाना जिससे गर्भाशय इधर उधर हो जाता है।
(४) गर्भाशय। (५) टेक। हठ। अड़।
संज्ञा पुं० दे० "धरना"। उ०—सिंधुतीर रघुबीर गए पुनि कियो धरन उतरन को।—रघुराज।
†संज्ञा स्त्री० [सं० धरणि] धरती। जमीन।
धरना-क्रि० स० [सं० धरण] (१) किसी वस्तु को इस प्रकार दृढ़ता से स्पर्श करना या हाथ में लेना कि वह जल्दी छूट न सके अथवा इधर उधर जा या हिल न सके। पकड़ना। थामना। ग्रहण करना। जैसे, चोर धरना। (क) इसका हाथ जोर से धरे रहो, नहीं तो भाग जायगा। (ख) यह चिमटी अच्छी तरह धरती नहीं।
यौ०—करना धरना। धरना पकड़ना।
संयो० क्रि०—लेना।
मुहा०—धर दबाना या दबोचना=(१) पकड़ कर वश में कर लेना। बलपूर्वक अधिकार में कर लेना। किसी पर इस प्रकार आ पड़ना कि वह विरोध या बचाव न कर सके। आक्रांत करना। जैसे, कुत्ते ने बिल्ली को धर दबोचा। (२) तर्क या विवाद में परास्त करना। धर पकड़ कर=ज़बरदस्ती। बलात्। जैसे, धर पकड़ कर कहीं काम होता है ?
(२) स्थापित करना। स्थित करना। रखना। ठहराना। जैसे, (क) पुस्तक आले पर धर दो। (ख) बोझ सिर पर रख लो।
संयो० क्रि०—देना।—लेना।
(३) पास रखना। रक्षा में रखना। जैसे, (क) वह हमारी पुस्तक धरे हुए है, देता नहीं। (ख) यह चीज़ उनके यहाँ धर दो, कहीं जायगी नहीं।
संयो० क्रि०—देना।—लेना।
यौ०—धर रखना।
मुहा०—धरा ढका=समय पर काम आने के लिये बचा कर

धमनियाँ वात, मूत्र, पुरीष, वीर्य्य, आर्त्तव इनको नीचे की ओर ले जाती हैं। ये धमनियाँ पहले पित्ताशय में जाकर खाए पीए हुए रस को उष्णता से शुद्ध करके उसे ऊर्ध्वगामिनी और तिर्य्यग्गामिनी धमनियों तथा सारे शरीर में पहुँचाती हैं। ये १० अधोगामिनी धमनियाँ भी आमाशय और पक्काशय के बीच में पहुँच कर तीन तीन भागों में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं। इनमें से दो दो धमनियाँ वायु, पित्त, कफ, रक्त और रस को वहन करने के लिये हैं। आँतों से लगी हुई २ अन्नवाहिनी हैं, २ जलवाहिनी हैं और २ मूत्रवाहिनी। मूत्रवस्ति से लगी हुई २ धमनियाँ शुक्र उत्पन्न करनेवाली और २ प्रवर्त्तित करने या निकालनेवाली हैं। मोटी आँत से लगी हुई २ मल को निकालती हैं। बाकी ८ धमनियाँ तिरछी जानेवाली धमनियों को पसीना देती हैं। ४ तिर्यग्गामिनी धमनियाँ हैं। उनकी सहस्रों लाखों शाखाएँ होकर शरीर के भीतर जाल की तरह फैली हुई हैं।

(२) वह नली जिसमें हृदय से शुद्ध लाल रक्त हृदय के स्पंदन द्वारा क्षण क्षण पर जा कर शरीर में फैलता रहता है। नाड़ी। (आधुनिक)

विशेष—'धमनी' शब्द 'धम' धातु से बना है जिसका अर्थ है धौंकना। हृदय का जो स्पंदन होता है वह भाथी के फूलने पचकने के समान होता है अतः शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों को धमनी कहना बहुत उपयुक्त है। दे० "नाड़ी"।

(३) हलदी।

धमसा—संज्ञा पुं० [देश०] धौंसा। नगाड़ा।

धमाका—संज्ञा पुं० [अनु०] (१) भारी वस्तु के गिरने का शब्द। ऊपर से वेग के साथ नीचे पड़ने या कूदने का शब्द। (२) बंदूक का शब्द। (३) आघात। धक्का। (४) पथरकला बंदूक। (५) हाथी पर लादने की तोप।

धमाचौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० धम + हिं० चौकड़ी] (१) उछल-कूद। कूद-फाँद। कई आदमियों का एक साथ दौड़ना, कूदना, हाथ पैर चलाना या हल्ला करना। उपद्रव। ऊधम। जैसे, लड़को, यहाँ धमाचौकड़ी मत मचाओ और जगह खेलो। (२) धींगाधींगी। मार पीट।

क्रि० प्र०—मचाना।—मचना।—होना।

धमाधम—क्रि० वि० [अनु० धम] (१) लगातार कई बार 'धम' 'धम' शब्द के साथ। लगातार कई धमाकों के साथ। लगातार गिरने का शब्द करते हुए। जैसे, लड़के धमाधम नीचे गिरे। (२) लगातार कई प्रहार शब्दों के साथ। कई आघातों के शब्द के साथ। लगातार मारने या पीटने की आवाज़ के साथ। जैसे (क) वह उसे धमाधम मार रहा है। (ख) इसपर धमाधम घन मारो तब यह टूटेगा।

संज्ञा स्त्री० (१) कई बार गिरने से लगातार धम धम शब्द। लगातार गिरने पड़ने की आवाज़। (२) आघात। प्रतिघात। प्रहार। मार पीट। उपद्रव। उत्पात।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।—होना।

धमार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] उछल कूद। उपद्रव। उत्पात। धमाचौकड़ी।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।—होना।

(२) नटों की उछल कूद। कलाबाजी।

क्रि० प्र०—करना—खेलना।

(३) विशेष प्रकार के साधुओं की दहकती आग पर कूदने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० (१) होली में गाने का एक ताल। (२) होली में गाने का एक प्रकार का गीत।

धमारिया—संज्ञा पुं० [हिं० धमार] (१) उछल कूद करनेवाला नट। कलाबाज। (२) होली के धमार गानेवाला। (३) आग में कूदनेवाला साधु।

वि० उपद्रव करनेवाला। शांत न रहनेवाला। उत्पाती।

धमारी—वि० [हिं० धमार] उपद्रवी। उत्पाती।

धमाल—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० "धमार"।

धमासा—संज्ञा पुं० [सं० यवासा] जवासा। हिंगुवा। दुलाह।

धमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहारिन। (२) लोहार की स्त्री।

धमूका—संज्ञा पुं० [अनु० धम] (१) धमाका। प्रहार। आघात। (२) घूँसा। मुक्का।

धमेख—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मचक्र] काशी से दो कोस पर वह स्तूप जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ बुद्धदेव ने अपना धर्मचक्र अर्थात् धर्मोपदेश आरंभ किया था। दे० "सारनाथ"।

धम्मन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास। दे० "घरवा"।

धम्माल—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "धमार"।

धम्मिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लपेट कर बाँधे हुए बाल। बँधी चोटी। जूड़ा।

धम्हा—संज्ञा पुं० [देश०] धातु गलाने की भट्ठी।

धरंता—*† वि० [हिं० धरना] धरनेवाला। पकड़नेवाला।

धर—वि० [सं०] (१) धारण करनेवाला। ऊपर लेनेवाला। सँभालनेवाला। जैसे, गिरिधर, भूधर। (२) ग्रहण करनेवाला। थामनेवाला। जैसे, चक्रधर, धनुर्धर, मुरलीधर।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग समस्त पदों में ही होता है।

संज्ञा पुं० (१) पर्वत। पहाड़। (२) कपास का ढोढा। (३) कूर्मराज। कच्छप जो पृथ्वी को ऊपर लिए है। (४) एक वसु का नाम। (५) विष्णु। (६) श्रीकृष्ण। (७) विट। व्यभिचारी पुरुष।

धराका–संज्ञा पुं० दे० "धड़ाका"।

धरातल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथ्वी। धरती। (२) सतह। केवल लंबाई चौड़ाई का गुणनफल जिसमें मोटाई गहराई या ऊँचाई का कुछ भी विचार न किया जाय। (३) रकबा। लंबाई और चौड़ाई का गुणनफल।

धरात्मज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल ग्रह। (२) नरकासुर।

धरात्मजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

धराधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो पृथ्वी को धारण करे। (२) शेष नाग। (३) पर्वत। (४) विष्णु।

धराधरन*–संज्ञा पुं० दे० "धराधर"।

धराधरा–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल का नाम।

धराधार–संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग।

यौ०—धराधारधारी=महादेव।

धराधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराधीश–संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराना–क्रि० स० [हिं० 'धरना' का प्रे०] (१) पकड़ाना। थमाना। (२) स्थित कराना। रखाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(३) स्थिर करना। ठहराना। निश्चित कराना। मुकर्रर कराना। जैसे, दिन धराना, नाम धराना। उ०—(क) राम तिलक हित लगन धराई।—तुलसी। (ख) सुदिन, सुनखत, सुघरी सोचाई। बेगि बेद विधि लगन धराई।—तुलसी।

धरापुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह। उ०—धरापुत्र ज्यों स्वर्ण माला प्रकासै।—केशव।

धरावटा–संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] ज़मीन की वह माप या क्षेत्रफल जो कूत कर मान लिया गया हो।

धरावना–क्रि० स० दे० "धराना"।

धरासुर–संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण। उ०—भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर-पद लस्यो।—तुलसी।

धरास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। विश्वामित्र और वशिष्ठ की लड़ाई में विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर यह अस्त्र चलाया था।)

धराहर–संज्ञा पुं० [हिं० धुर=ऊपर+घर] खंभे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ लगी हों। मीनार। उ०—देखि धराहर कर उजियारा। छिपि गए चाँद सुरुज औ तारा।—जायसी।

धरिंगा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल।

धरित्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती। पृथ्वी।

धरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धरा] चार सेर की एक तौल।

संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] रखनी। रखेली स्त्री।

संज्ञा स्त्री० [हिं० दार] दार। बिरिया। कान में पहनने का स्त्रियों का एक गहना।

धरेचा–संज्ञा पुं० दे० "धरेला"।

धरेल–संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] रखेली स्त्री। ऐसी स्त्री जिसे कोई बिना ब्याह के घर में रख ले।

धरेला–संज्ञा पुं० [हिं० धरना] वह पति जिसे कोई स्त्री बिना ब्याह के ही ग्रहण कर ले।

धरैया–संज्ञा पुं० [हिं० धरना] धरनेवाला। पकड़नेवाला।

धरोड़–संज्ञा स्त्री० दे० "धरोहर"।

धरोहर–संज्ञा स्त्री० [हिं०धरना] वह वस्तु या द्रव्य जो किसी के पास इस विश्वास पर रखा हो कि उसका स्वामी जब माँगेगा तब वह दे दिया जायगा। थाती। अमानत। उ०—(क) प्रान धरोहर हैं घन आनंद लेहु न तो अब लेहिंगे गाहक।—घनानंद। (ख) जो कोई धरी धरोहर नाटै। अरु पछिन के पर जो काटै। साधुहिं दोष लगावे जोई। सोइ विष्टा कर कीरा होई।—विश्राम।

क्रि० प्र०—धरना।—रखना।

धरौली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो भारतवर्ष में प्रायः सब जगह विशेषतः हिमालय की तराई में व्यास नदी के किनारे से लेकर सिक्किम तक पाया जाता है। यह अफ्रिका और आस्ट्रेलिया के गरम भागों में भी होता है। इसकी टहनियाँ लंबी और पत्तियाँ सींक के दोनों ओर आमने सामने लगती हैं। इसमें सफेद लाल या पीले फूल लगते हैं। इस पेड़ के किसी भाग में यदि घाव किया जाय तो उसमें से पीला दूध निकलता है जिसे पानी में घोलने से खासा पीला रंग तैयार हो सकता है। इसके बीजों के ऊपर कुछ रोईं सी होती है। बीजों का तेल दवा के काम में आता है। छाल और जड़ साँप काटने और बिच्छू के डंक मारने की दवा समझी जाती है। लकड़ी इसकी भीतर से सफेद चिकनी और मजबूत निकलती है और इसपर खराद और नकाशी का काम बहुत अच्छा होता है।

धरौवा–संज्ञा पुं० [हिं० धरना] बिना विधिपूर्वक विवाह किए स्त्री को रखने की चाल।

धर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० वैदिक, धर्त्तृ] (१) धारण करनेवाला। (२) कोई काम ऊपर लेनेवाला।

यौ०—कर्त्ता धर्त्ता=जिसे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो।

धर्त्ती†–संज्ञा स्त्री० दे० "धरती"।

धर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो। प्रकृति। स्वभाव, नित्य नियम। जैसे, आँख का धर्म देखना, शरीर का धर्म क्लांत होना, सर्प का धर्म काटना, दुष्ट का धर्म दुख देना।

रखी हुई वस्तु। संचित वस्तु। जैसे, कुछ धरा ढका होगा, लाओ। धरा रह जाना=काम न आना। व्यर्थ हो जाना। (४) धारण करना। देह पर रखना। पहनना। जैसे, सिर पर टोपी धरना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(५) आरोपित करना। अवलंबन करना। अंगीकार करना। जैसे, रूप धरना, वेश धरना, धैर्य्य धरना। (६) व्यवहार के लिये हाथ में लेना। ग्रहण करना। जैसे, हथियार धरना। (७) सहायता या सहारे के लिये किसी को घेरना। पल्ला पकड़ना। आश्रय ग्रहण करना। जैसे, इन्हीं को धरो, वेही कुछ कर सकते हैं। (८) किसी फैलनेवाली वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में लगना या छू जाना। जैसे, फूस गीला है इसीसे आग धरती नहीं है। (६) किसी स्त्री को रखना। बैठा लेना। रखेली की तरह रखना। उ०—व्याहौ लाख, धरौ दस कुबरी अंतहि कान्ह हमारो।—सूर। (१०) गिरवी रखना। गहन रखना। रेहन रखना। बंधक रखना। जैसे, (क) अपनी चीज धर कर तब रुपया लाए हैं। (ख) कोई चीज धर कर भी तो रुपया नहीं देता।

संज्ञा पुं० कोई बात या प्रार्थना पूरी कराने के लिये किसी के पास या द्वार पर अड़कर बैठना और जब तक वह बात या प्रार्थना पूरी न कर दी जाय तब तक अन्न न ग्रहण करना। जैसे, हमारा रुपया न दोगे तो हम तुम्हारे दरवाजे पर धरना देंगे। दे० "धरन"।

क्रि० प्र०—देना।—बैठना।

धरनि—संज्ञा स्त्री० दे० "धरणी"।

धरनी—संज्ञा स्त्री० दे० "धरणी"।

धरनेत—संज्ञा पुं० [हिं० धरना+एत (प्रत्य०)] धरना देनेवाला। किसी बात के लिये अड़कर बैठनेवाला।

धरम*‡—संज्ञा पुं० दे० "धर्म"।

धरवाना—क्रि० स० [हिं० धरना का प्रे०] (१) धरने का काम कराना। पकड़ाना। थमाना। (२) रखवाना।

धरषना*—क्रि० स० [सं० धर्षण] दबाना। मर्दन करना। उ०—(क) रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज। पुलक शरीर नयन जल गहे राम पदकंज।—तुलसी। (ख) डगे दिगकुंजर कमठ कोल कलमले डोले धराधर धारि धराधर धरषा।—तुलसी।

धरसना—क्रि० अ० [सं० धर्षण] दब जाना। डर जाना। सहम जाना। उ०—विलसत उर बरहार लसत मणि उड़गन धरसत।—गोपाल।

क्रि० स० दबाना। अपमानित करना।

धरसनी*—संज्ञा स्त्री० दे० "धर्षणी"।

धरहर‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना+हर (प्रत्य०)] (१) धर-पकड़। लोगों को इस प्रकार पकड़ने का कार्य्य कि वे इधर उधर भाग न सकें। गिरफ्तारी।

क्रि० प्र०—होना।

(२) दो या अधिक लड़नेवालों को धर पकड़ कर लड़ाई बंद करने का कार्य्य। बीच बिचाव। उ०—ललित अहि-सिसु-निकर मनहु ससि सन समर लरत धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी।—तुलसी। (३) मारे या पकड़े जाने से बचाने का काम। बचाव। रक्षा। उ०—जब जमजाल पसार परैगो हरि बिनु कौन करैगो धरहरि।—सूर। (४) धैर्य्य। धीरज। उ०—सन सूक्यो, बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि। हरी हरी अरहर अजौं धर धरहर हिय नारि।—बिहारी।

धरहरा—संज्ञा पुं० [हिं० धुर=ऊपर+घर] खंभे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धौरहर। मीनार। जैसे, माधवराय का धरहरा।

धरहरिया‡—संज्ञा पुं० [हिं० धरहरि] बीच बिचाव करा देनेवाला। धर पकड़ करके बचानेवाला। बचाव करनेवाला। रक्षक। उ०—जनहु दीन्ह ठग लाडू देख आय तस मीच। रहा न कोउ धरहरिया करै जो दोउ महँ बीच।—जायसी।

धरहरना*—क्रि० अ० [अनु०] धड़धड़ाना। धड़ धड़ शब्द करना। उ०—रथ राजत चाका धरहरैं पर परजा का घर हरै।—गोपाल।

धरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। जमीन। धरती। (२) संसार। दुनिया। उ०—धरा को प्रमाण यही तुलसी जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना।—तुलसी। (३) गर्भाशय। (४) तौल की बराबरी। किसी वस्तु की तौल के बराबर का बाट या बोझ। बटखरा।

क्रि० प्र०—बाँधना।—साधना।

(५) चार सेर की एक तौल। (६) एक वर्ण वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और गुरु होता है। उ०—राधा कहौ। बाधा टरै। श्यामा कहौ। कामा सरै। (७) मेद। (८) नाड़ी।

धराउर‡—संज्ञा पुं० दे० "धरोहर"।

धराऊ—वि० [हिं० धरना+आऊ (प्रत्य०)] जो साधारण से अधिक अच्छा होने के कारण नित्य व्यवहार में न लाया जाय, यत्न के साथ रखा रहे और कभी कभी विशेष अवसरों पर निकाला जाय। मामूली से अच्छा। बहुमूल्य। जैसे, धराऊ कपड़ा, धराऊ जोड़ा।

धराक*‡—संज्ञा पुं० दे० "धड़ाक"।

धराकदंब—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदंब। धाराकदंब।

परलोक आदि पर विश्वास न रखनेवाले योरप के आधि-भौतिक तत्ववेत्ताओं को भी समाज की रक्षा के निमित्त इस सामान्य धर्म को स्वीकार करना पड़ा है। उन्होंने इस धर्म का लक्षण यह बतलाया है कि जिस कर्म से अधिक मनुष्यों को अधिक सुख मिले वह धर्म है। बौद्ध शास्त्रों में इसी धर्म को शील कहा गया है। जैन शास्त्रों ने अहिंसा को परम धर्म माना है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—धर्म कमाना = धर्म करके उसका फल संचित करना। धर्म खाना = धर्म की शपथ खाना। धर्म की दुहाई देना। धर्म बिगाड़ना = (१) धर्म के विरुद्ध आचरण करना। धर्म भ्रष्ट करना। (२) स्त्री का सतीत्व नष्ट करना। धर्म रखना = धर्म के विरुद्ध आचरण करने से बचना या बचाना। धर्म-लगती कहना = धर्म का ध्यान रखकर कहना। ठीक ठीक कहना। सत्य कहना। उचित बात कहना। जैसे, हम तो धर्म-लगती कहेंगे, चाहे किसी को भला लगे या बुरा। धर्म से कहना = सत्य सत्य कहना। ठीक ठीक कहना। उचित बात कहना।

(६) किसी आचार्य वा महात्मा द्वारा प्रवर्त्तित ईश्वर, परलोक आदि के संबंध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली। उपासनाभेद। मत। संप्रदाय। पंथ। मजहब। जैसे, हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, इसलाम धर्म।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—बदलना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन नहीं है।

(७) परस्पर व्यवहार संबंधी नियम जिसका पालन राजा, आचार्य वा मध्यस्थ द्वारा कराया जाय। नीति। न्याय व्यवस्था। कायदा। कानून। जैसे, हिंदू-धर्मशास्त्र।

यौ०—धर्मराज। धर्माधिकारी। धर्माध्यक्ष।

विशेष—आचार और व्यवहार दोनों का प्रतिपादन स्मृतियों में हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति में आचाराध्याय और व्यवहाराध्याय अलग अलग हैं। दायविभाग, सीमाविवाद, ऋणादान, दंडयोग्य अपराध आदि सब विषय अर्थात् दीवानी और फौजदारी के सब मामले व्यवहार के अंतर्गत हैं। राजसभा में धर्माध्यक्ष के सामने इन सब व्यवहारों (मुकदमों) का निर्णय होता था।

(८) न्यायबुद्धि। विवेक। उचित अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति। ईमान। उ०—जैसा तुम्हारे धर्म में आवे करो, चाहे मारो चाहे छोड़ो।—लक्ष्मणसिंह।

मुहा०—धर्म में आना = अंतःकरण में उचित जान पड़ना।

(९) धर्मराज। यमराज। (१०) धनुष। कमान। (११) सोमपायी। (१२) वर्त्तमान अवसर्पिणी के १५ वें अर्हत् का नाम। (जैन)। (१३) जन्म लग्न से नवें स्थान का नाम जिसके द्वारा यह विचार किया जाता है कि बालक कहाँ तक भाग्यवान् और धार्मिक होगा।

धर्मकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म वा विधान जिसका करना किसी धर्म ग्रंथ में आवश्यक ठहराया गया हो। जैसे, संध्योपासन आदि।

धर्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] राज्यशासन। शासन।

धर्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कश्यप-वंशीय सुकेतु राजा के पुत्र का नाम। (२) बुद्धदेव।

धर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुरुक्षेत्र। (२) भारतवर्ष जो धर्म के संचय के लिये कर्मभूमि माना गया है।

धर्मग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रंथ या पुस्तक जिसमें किसी जन-समाज के आचार व्यवहार और उपासना आदि के संबंध में शिक्षा हो।

धर्मघट—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित जल से भरा हुआ घड़ा जिसके वैशाख में दान देने का माहात्म्य काशीखंड, हेमाद्रि दान खंड आदि में है।

धर्मघड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + हिं० घड़ी] बड़ी घड़ी जो ऐसे स्थान पर लगी हो जिसे सब कोई देख सके।

धर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का समूह। (२) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र। (वाल्मीकि०)। (३) बुद्ध की धर्मशिक्षा जिसका आरंभ काशी से हुआ था। (४) बुद्धदेव।

धर्मचर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म का आचरण।

धर्मचारी—वि० [सं० धर्मचारिन्] [स्त्री० धर्मचारिणी] धर्म का आचरण करनेवाला।

धर्मचिंतन—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म की भावना। धर्मसंबंधी बातों का विचार।

धर्मज—वि० [सं०] धर्म से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) धर्मपत्नी से उत्पन्न प्रथम औरस पुत्र (क्योंकि उसके द्वारा पिता पितृऋण से मुक्त होता है)। (२) धर्मपुत्र युधिष्ठिर। (३) एक बुद्ध का नाम। (४) नर-नारायण।

धर्मजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्य करा कर जीविका करनेवाला ब्राह्मण।

धर्मज्ञ—वि० [सं०] धर्म को जाननेवाला।

धर्मण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धामिन वृक्ष। (२) धामिन साँप। (३) धामिन पक्षी।

धर्मतः—अव्य० [सं०] धर्म से। धर्म का ध्यान रखते हुए। धर्म को साक्षी करके। सत्य सत्य। जैसे, जो कुछ हुआ हो मुझसे धर्मतः कहो।

धर्मदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जो किसी निमित्त से वा विशेष फल की प्राप्ति (जैसे ग्रहों की शांति आदि) के अर्थ

विशेष—ऋग्वेद (१ । २२ । १८) में धर्म शब्द इस अर्थ में आया है । यह अर्थ सब से प्राचीन है ।

(२) अलंकार शास्त्र में वह गुण वा वृत्ति जो उपमेय और उपमान में समान रूप से हो । वह एक सी बात जिसके कारण एक वस्तु की उपमा दूसरी से दी जाती है । जैसे 'कमल के ऐसे कोमल और लाल चरण' इस उदाहरण में कोमलता और ललाई साधारण धर्म हैं । (३) किसी मान्य ग्रंथ, आचार्य वा ऋषि द्वारा निर्दिष्ट वह कर्म वा कृत्य जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के अर्थ किया जाय । वह कृत्य वा विधान जिसका फल शुभ (स्वर्ग वा उत्तम लोक की प्राप्ति आदि) बताया गया हो, जैसे अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, होम, इत्यादि । शुभादृष्ट ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—धर्म कर्म ।

विशेष—मीमांसा के अनुसार वेदविहित जो यज्ञादि कर्म्म हैं उन्हींका विधिपूर्वक अनुष्ठान धर्म है । जैमिनि ने धर्म का जो लक्षण दिया है उसका अभिप्राय यही है कि जिसके करने की प्रेरणा (वेद आदि में) हो वही धर्म है । संहिता से लेकर सूत्र-ग्रंथों तक धर्म की यही मुख्य भावना रही है । कर्मकांड का विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले ही धार्मिक कहे जाते थे । यद्यपि श्रुतियों में "न हिंस्यात्सर्वभूतानि" आदि वाक्यों द्वारा साधारण धर्म का भी उपदेश है पर वैदिक काल में विशेष लक्ष्य कर्मकांड ही की ओर था ।

(४) वह कर्म जिसका करना किसी संबंध, स्थिति या गुण-विशेष के विचार से उचित और आवश्यक हो । वह कर्म वा व्यापार जो समाज के कार्य्य-विभाग के निर्वाह के लिये आवश्यक और उचित हो । वह काम जिसे मनुष्य को किसी विशेष कोटि वा अवस्था में होने के कारण अपने निर्वाह तथा दूसरों की सुगमता के लिये करना चाहिए । किसी जाति, कुल, वर्ग, पद इत्यादि के लिये उचित ठहराया हुआ व्यवसाय या व्यवहार । कर्त्तव्य । फ़र्ज़ । जैसे, ब्राह्मण का धर्म्म, क्षत्रिय का धर्म्म, माता-पिता का धर्म्म, पुत्र का धर्म्म, इत्यादि ।

विशेष—स्मृतियों में आचार ही को परम धर्म कहा है और वर्ण और आश्रम के अनुसार उसकी व्यवस्था की है, जैसे ब्राह्मण के लिये पढ़ना पढ़ाना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना; क्षत्रिय के लिये प्रजा की रक्षा करना, दान देना; वैश्य के लिये व्यापार करना और शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा करना । जहाँ देश-काल की विपरीतता से अपने अपने वर्ण के धर्म द्वारा निर्वाह न हो सके वहाँ शास्त्रकारों ने आपद्धर्म की व्यवस्था की है जिसके अनुसार किसी वर्ण का मनुष्य अपने से निम्न वर्ण की वृत्ति स्वीकार कर सकता है, जैसे ब्राह्मण—क्षत्रिय या वैश्य की, क्षत्रिय—वैश्य की, वैश्य—शूद्र की, पर अपने से उच्च वर्ण की वृत्ति ग्रहण करने का आपत्काल में भी निषेध है । इसी प्रकार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी इनके धर्म्मों का भी अलग अलग निरूपण किया गया है । जैसे ब्रह्मचारी के लिये स्वाध्याय, भिक्षा माँग कर भोजन, जंगल से लकड़ी चुन कर लाना, गुरु की सेवा करना इत्यादि । गृहस्थ के लिये पंच-महायज्ञ, बलि, अतिथियों को भोजन और भिक्षु संन्यासियों आदि को भिक्षा देना इत्यादि । वानप्रस्थ के लिये सामग्री सहित गृह की अग्नि को लेकर वन में वास करना, जटा, नख, श्मश्रु आदि रखना । भूमि पर सोना, शीत, ताप सहना, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास बलिकर्म्म आदि करना इत्यादि । संन्यासी के लिये सब वस्तुओं को त्याग अग्नि और गृह से रहित होकर भिक्षा द्वारा निर्वाह करना, श्मश्रु, नख आदि को कटाए और दंड कमंडलु लिए रहना । यह तो वर्ण और आश्रम के अलग अलग धर्म्म हुए । इन दोनों के संयुक्त धर्म्म को वर्णाश्रम-धर्म्म कहते हैं । जैसे ब्राह्मण ब्रह्मचारी का पलाश-दंड धारण करना । जो धर्म्म किसी गुण या विशेषता के कारण हो उसे गुण-धर्म्म कहते हैं—जैसे, जिसका शास्त्रोक्त रीति से अभिषेक हुआ हो उस राजा का प्रजापालन करना । निमित्त-धर्म्म वह है जो किसी निमित्त से किया जाय । जैसे शास्त्रोक्त कर्म न करने वा शास्त्रविरुद्ध करने पर प्रायश्चित्त करना । इसी प्रकार के विशेष धर्म्म कुल-धर्म्म, जाति-धर्म्म आदि हैं ।

(५) वह वृत्ति वा आचरण जो लोक वा समाज की स्थिति के लिये आवश्यक हो । वह आचार जिससे समाज की रक्षा और सुख-शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में भी उत्तम गति मिले । कल्याणकारी कर्म । सुकृत । सदाचार । श्रेय । पुण्य । सत्कर्म ।

विशेष—स्मृतिकारों ने वर्ण, आश्रम, गुण और निमित्त धर्म्म के अतिरिक्त साधारण धर्म्म भी कहा है जिसका मानना ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक के लिये समान रूप से आवश्यक है । मनु ने वेद, स्मृति, साधुओं के आचार और अपनी आत्मा की तुष्टि को धर्म्म का साक्षात् लक्षण बताकर साधारण धर्म्म में दस बातें कही हैं—धृति (धैर्य), क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इंद्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध । मनुष्य मात्र के लिये जो सामान्य धर्म निरूपित किया गया है वही समाज को धारण करनेवाला है; उसके बिना समाज की रक्षा नहीं हो सकती । मनु ने कहा है कि रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है । अतः प्रत्येक सभ्य देश के जन-समुदाय के बीच श्रद्धा, भक्ति, दया, प्रेम, आदि चित्त की उदात्त मनोवृत्तियों से संबंध रखनेवाले परोपकार धर्म की स्थापना हुई है, यहाँ तक कि

उदित और अव्यपदेश्य। वस्तु का जो धर्म अपना व्यापार कर चुका हो वह शांतधर्म कहलाता है। जैसे, घट के फूट जाने पर घटत्व, बीज के अंकुरित हो जाने पर बीजत्व। जो धर्म विद्यमान रहता है उसे उदित कहते हैं, जैसे, घट के बने रहने पर घटत्व। जो धर्म प्राप्त होनेवाला है और व्यक्त या निर्दिष्ट न हो सकने पर भी शक्ति रूप से स्थित या निहित रहता है उसे अव्यपदेश्य कहते हैं, जैसे बीज में वृक्ष होने का धर्म।

धर्मपाल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धर्म का पालन या रक्षा करनेवाला। (२) धर्म का पालन करनेवाला। (३) दंड (जिस के भय से लोग धर्म का पालन करते हैं)। (४) राजा दशरथ के एक मंत्री का नाम।

धर्मपीठ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धर्म का प्रधान स्थान। (२) काशी। (३) वह स्थान जहाँ धर्म की व्यवस्था मिले।

धर्मपीड़ा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धर्म या न्याय के विरुद्ध आचरण।

धर्मपुत्र–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धर्म के पुत्र युधिष्ठिर। (२) नरनारायण। (३) धर्मानुसार पुत्र कह कर जिसका ग्रहण किया गया हो।

धर्मपुरी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) यमपुरी जहाँ शरीर छूटने पर प्राणियों के किए हुए धर्म अधर्म का विचार होता है। (२) कचहरी। न्यायालय।

धर्मप्रतिरूपक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] परायों को दिया हुआ ऐसे सशक्त और संपन्न मनुष्य का दान जिसके अपने लोग (कुटुंबी आदि) कष्ट में हों।

विशेष—मनु ने कीर्ति, यश आदि के लिये दिए हुए ऐसे दान को धर्म नहीं कहा है, धर्म का प्रतिरूपक (नकल) कहा है।

धर्मप्रभास–संज्ञा पुं॰ [सं॰] बुद्ध का एक नाम।

धर्मप्रवचन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] बुद्ध का एक नाम।

धर्मबुद्धि–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धर्म अधर्म का विवेक। भले बुरे का विचार।

धर्मभाणक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] कथा पुराण बाँचनेवाला। कथक्कड़।

धर्मभिक्षुक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जिसने धर्मार्थ भिक्षावृत्ति ग्रहण की हो।

विशेष—मनु ने नौ प्रकार के धर्मभिक्षुक गिनाए हैं—पुत्र की कामना से विवाह चाहनेवाला, यज्ञ की इच्छा रखनेवाला, पथिक, जो यज्ञ में अपना सर्वस्व लगा कर निर्धन हो गया हो, गुरु, माता और पिता के भरण पोषण के लिये धन चाहनेवाला, अध्ययन की इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी और रोगी। ये नव धर्मभिक्षुक ब्राह्मण श्रेष्ठ स्नातक हैं। इन्हें यज्ञ की वेदी के भीतर बैठा कर दक्षिणा के सहित अन्नदान देना चाहिए। इनके अतिरिक्त जो और ब्राह्मण हों उन्हें वेदी के बाहर बैठाना चाहिए।

धर्मभीरु–वि॰ [सं॰] जिसे धर्म का भय हो। जो अधर्म करते हुए बहुत डरता हो।

धर्ममेघ–संज्ञा पुं॰ [सं॰] योग में असंप्रज्ञात समाधि के अंतर्गत एक समाधि जिसमें वैराग्य के अभ्यास से चित्त सब वृत्तियों से रहित हो जाता है अर्थात् इतना असमर्थ हो जाता है कि उसका रहना न रहना बराबर हो जाता है, केवल कुछ संस्कार मात्र रह जाता है।

धर्मयुग–संज्ञा पुं॰ [सं॰] सत्ययुग।

धर्मयुद्ध–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह युद्ध जिसमें किसी प्रकार का अन्याय या नियम का भंग न हो।

धर्मरक्षित–संज्ञा पुं॰ [सं॰] योग (यवन) देशीय एक बौद्ध धर्मोपदेशक या स्थविर जिसे महाराज अशोक ने अपरांतक (बिलूचिस्तान) देश में उपदेश के लिये भेजा था।

धर्मराइ–*संज्ञा पुं॰ दे॰ "धर्मराज"।

धर्मराज–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धर्म का पालन करनेवाला, राजा। (२) युधिष्ठिर। (३) यमराज। (४) जिन।

धर्मराज परीक्षा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] स्मृतियों के अनुसार धर्म में अभियुक्त दोषी है या निर्दोष, इसकी एक दिव्य परीक्षा।

विशेष—बृहस्पति, पितामह आदि स्मृतिकारों ने जो विधान लिखे हैं वे थोड़े बहुत भिन्न होने पर भी वस्तुतः एक ही से हैं। धर्म और अधर्म की दो श्वेत और कृष्ण मूर्त्तियाँ भोजपत्र पर बना कर और उनकी प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजा कर के मिट्टी के दो बराबर पिंडों में उन्हें रखे। फिर दोनों पिंडों को दो नए घड़ों में रख कर अभियुक्त को बुलावे और किसी घड़े पर हाथ रखने के लिये कहे। यदि उसका हाथ धर्म-पिंडवाले घड़े पर पड़े तो उसे निर्दोष समझे।

धर्मराय–*संज्ञा पुं॰ दे॰ "धर्मराज"।

धर्मलुप्ता उपमा–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह उपमा जिसमें धर्म अर्थात् उपमान और उपमेय में समान रूप से पाई जानेवाली बात का कथन न हो। दे॰ "उपमा"।

धर्मवाहन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जिसका वाहन धर्म हो। शिव। (२) धर्मराज का वाहन महिष। भैंसा।

धर्मविवेचन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) धर्म के संबंध में चिंतन। (२) धर्म अधर्म का विचार। (३) दूसरे के किए हुए कर्म का विचार कि वह सदोष है या निर्दोष। किसी के दोषी वा निर्दोष होने का निर्णय।

धर्मवीर–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जो धर्म करने में साहसी हो।

विशेष—रसनिर्णय के ग्रंथों में वीररस के अंतर्गत चार प्रकार के वीर कहे गए हैं युद्ध—वीर, धर्मवीर, दानवीर और दयावीर।

धर्मवृद्ध–वि॰ [सं॰] जो धर्माचरण द्वारा श्रेष्ठ हो।

न किया जाय, केवल धर्म वा सात्विक बुद्धि की प्रेरणा से किया जाय।

धर्मदार–संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपत्नी।

धर्मद्रवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी।

धर्मधक्का–संज्ञा पुं० [सं० धर्म+हिं० धक्का] (१) वह कष्ट जो धर्म के लिये उठाना पड़े। वह हानि या कठिनाई जो परोपकार आदि के लिये सहनी पड़े। (२) वह कष्ट या प्रयत्न जिससे निज का कोई लाभ न हो। व्यर्थ का कष्ट।

धर्मधातु–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध देव।

धर्मध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म का आडंबर खड़ा करके स्वार्थ साधनेवाला मनुष्य। धार्मिकों का सा वेश और ढंग बनाकर लोगों से पुजानेवाला मनुष्य। पाखंडी। उ०—धिक धर्मध्वज धंधकधोरी।—तुलसी। (२) मिथिला के एक जनकवंशीय राजा जिनकी कथा महाभारत के शांतिपर्व में है। ये संन्यास-धर्म और मोक्ष-धर्म के जाननेवाले परम ब्रह्मज्ञानी राजा थे। एक बार सुलभा नाम की एक संन्यासिनी सारी पृथ्वी पर घूमती हुई धर्मध्वज की परीक्षा के लिये उनकी सभा में योगबल से अत्यंत मनोहर रूप धारण करके आई। राजा चकित होकर उसका परिचय आदि पूछ ही रहे थे कि उसने अपनी बुद्धि द्वारा राजा की बुद्धि में और नेत्र द्वारा राजा के नेत्र में यह देखने के लिये प्रवेश किया कि वे मोक्षधर्म के वेत्ता हैं या नहीं। राजा उसका अभिप्राय समझ गए और लिंग शरीर धारण करके उससे उसका परिचय पूछने लगे और उसे उसके आचरण के लिये भला बुरा कहने लगे। राजा ने कहा—"तुमने अपनी बुद्धि द्वारा जो हमारे शरीर में प्रवेश किया उससे अनुचित सहयोग हुआ; इससे तुम्हें तो व्यभिचार दोष लगा ही, मैं भी उसका भागी हुआ।" सुलभा ने आत्मज्ञान की अनेक बातें कहकर राजा को इस प्रकार समझाया—"मेरा संपर्क तो अपने शरीर के साथ नहीं है आपके शरीर के साथ क्योंकर हो सकता है? मैंने अपने सत्वगुण के बल से आपके शरीर में प्रवेश किया। यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश से आपका कोई अपकार नहीं हो सकता। वन के बीच शून्य कुटी में प्रवेश करना संन्यासी का धर्म है अतः मैंने भी आपके बोधशून्य शरीर में प्रवेश किया है और आज भर रहकर कल चली जाऊँगी।" राजा यह सुन कर चुप हो रहे।

धर्मध्वजी–संज्ञा पुं० [सं० धर्मध्वजिन्] पाखंडी। दे० "धर्मध्वज"।

धर्मनंदी–संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध पंडित जिन्होंने कई बौद्धशास्त्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

धर्मनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के पंद्रहवें तीर्थंकर।

विशेष—जैन ग्रंथों के अनुसार ये रत्नपुरी नाम की नगरी में इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम भानुराज और माता का नाम सुव्रतादेवी था। इनका डील ४५ धनुष का और आयु दस लाख वर्ष की थी। दीक्षा के लिये इन्होंने दो दिन का उपवास किया था। दधिवर्ण वृक्ष इनका दीक्षावृक्ष था। शुक्ला महात्रयोदशी को इनकी दीक्षा हुई थी। दीक्षा के पीछे दो वर्षों तक ये छद्मस्थ रहे, फिर पूस की पूर्णिमा को इन्होंने ज्ञानलाभ किया।

धर्मनाभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक नदी का नाम।

धर्मनिष्ठ–वि० [सं०] धर्मपरायण। धर्म में जिसकी आस्था हो। धार्मिक।

धर्मनिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म में आस्था। धर्म में श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मपट्ट–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यवस्थापत्र जो किसी राजा या धर्माधिकारी की ओर से दिया जाय।

धर्मपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष। धर्मात्मा। (२) वरुण देवता।

धर्मपत्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार कूर्मविभाग में दक्षिण देश के पास का एक जनस्थान जो कदाचित् आधुनिक धर्मपटम (जिला मलाबार) के आस पास रहा हो। (२) श्रावस्ती नगरी। (३) गोलमिर्च।

धर्मपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके साथ धर्मशास्त्र की रीति से विवाह हुआ हो। विवाहिता स्त्री।

विशेष—दक्षस्मृति में लिखा है कि प्रथमा स्त्री ही धर्मपत्नी है। ब्याह कर लाई हुई दूसरी स्त्री को कामपत्नी कहा गया है।

धर्मपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] गूलर (जिसके पत्ते यज्ञादि धर्मकार्यों में काम आते हैं)।

धर्मपरिणाम–संज्ञा पुं० [सं०] योग दर्शन के अनुसार सब भूतों और इंद्रियों के एक रूप वा स्थिति से दूसरे रूप वा स्थिति में प्राप्त होने की वृत्ति। एक धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की प्राप्ति। जैसे, मिट्टी के पिंडतारूप धर्म के निवृत्त होने पर घटत्वरूप धर्म की प्राप्ति।

विशेष—पतंजलि ने अपने योगदर्शन में चित्त के जिस प्रकार निरोध, समाधि और एकाग्रता ये तीन परिणाम कहे हैं उसी प्रकार सूक्ष्म, स्थूल भूतों तथा इंद्रियों के भी तीन परिणाम बतलाए हैं—धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाम। पुरुष के अतिरिक्त और सब वस्तुएँ इन परिणामों के अधीन अर्थात् परिणामी हैं। प्रत्येक धर्मी अर्थात् प्राकृतिक द्रव्य तीन प्रकार के धर्मों से युक्त हैं—शांत,

धर्मसावर्णि–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार ग्यारहवें मनु।

धर्मसू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मप्रेरक। (२) धर्म्याट पक्षी।

धर्मसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनि प्रणीत धर्मनिर्णय पर एक ग्रंथ।

धर्मसेतु–संज्ञा पुं० [सं०] सेतु की तरह धर्म को धारण करनेवाला। धर्म का पालन करनेवाला।

धर्मसेन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन महास्थविर या बौद्ध महात्मा जो ऋषिपत्तन (सारनाथ, काशी) संघ के प्रधान थे। अनुराधापुर (सिंहलद्वीप) के राजा दुलगामिनी ने जब महास्तूप की स्थापना की थी (ई० पू० ११७) तब ये बारह हजार अनुचरों के साथ उपस्थित हुए थे। (२) जैनों के द्वादश अंगविदों में से एक।

धर्मस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] धर्मास्तिकाय पदार्थ। (जैन)

धर्मस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] विचारक। न्यायकर्त्ता।

धर्मांग–संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगला (जिसका अंग धर्म के समान शुभ्र होता है)।

धर्माचार्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म की शिक्षा देनेवाला गुरु। (२) ऋग्वेदियों में उन ऋषियों में एक जिनके निमित्त तर्पण किया जाता है।

धर्मात्मा–वि० [धर्मात्मन्] धर्मशील। धर्म करनेवाला। धार्मिक।

धर्माधिकरण–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ राजा व्यवहारों (मुकदमों) पर विचार करता है। विचारालय।

धर्माधिकारी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म अधर्म की व्यवस्था देनेवाला। विचारक। न्यायाधीश। (२) वह जो किसी राजा या बड़े आदमी की ओर से धर्मार्थ निकाले हुए द्रव्य को पात्रापात्र का विचार करके बाँटने आदि का प्रबंध करता है। पुण्यखाते का प्रबंधकर्त्ता। दानाध्यक्ष।

धर्माध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्माधिकारी। (२) विष्णु। (३) शिव।

धर्मारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपोवन। (२) एक तीर्थ जिसके विषय में वराहपुराण में यह कथा लिखी है कि जब चंद्रमा ने गुरुपत्नी तारा का हरण किया तब धर्म व्याकुल होकर एक सघन वन में घुस गया। उस वन का नाम ब्रह्मा ने धर्मारण्य रक्खा। (३) गया के अंतर्गत एक तीर्थस्थान। (४) कूर्मविभाग के मध्य भाग में एक देश। (बृहत्संहिता)

धर्मार्थ–क्रि० वि० [सं०] धर्म के निमित्त। केवल धर्म वा पुण्य के उद्देश्य से। परोपकार के लिये। जैसे, उसने १००) धर्मार्थ दिए हैं।

धर्मावतार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साक्षात् धर्मस्वरूप। अत्यंत धर्मात्मा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संबोधन के रूप में छोटों की ओर से बड़ों के प्रति आदरार्थ होता है।

(२) धर्माधर्म का निर्णय करनेवाला पुरुष। न्यायाधीश। (३) युधिष्ठिर।

धर्मासन–संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन या चौकी जिस पर बैठ कर न्यायाधीश न्याय करता है। उ०—हे प्रतिहारी तू हमारा नाम लेकर पिशुन मंत्री से कह दे कि बहुत जागने से हम में धर्मासन पर बैठने की सामर्थ नहीं रही, इस लिये जो कुछ काम काज प्रजासंबंधी हो लिखकर हमारे पास यहीं भेज दे।—लक्ष्मणसिंह।

धर्मास्तिकाय–संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार छः द्रव्यों में से एक जो एक अरूपी पदार्थ है और जीव और पुद्गल की गति का आधार या सहायक होता है।

धर्मिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पत्नी। (२) रेणुका।

वि० धर्म करनेवाली।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग समस्त पदों में ही होता है, जैसे, सहधर्मिणी।

धर्मिष्ठ–वि० [सं०] धार्मिक। पुण्यात्मा। सदाचारी।

धर्मी–वि० [सं० धर्मिन्] [स्त्री० धर्मिणी] (१) जिसमें धर्म हो। धर्म वा गुणविशिष्ट। जैसे, प्रसवधर्मी। (२) धार्मिक। पुण्यात्मा। (३) मत या धर्म को माननेवाला। जैसे, भिन्नधर्मी।

संज्ञा पुं० (१) धर्म का आधार। गुण या धर्म का आश्रय। जैसे, द्रवत्व धर्म का आधार जल है। (२) धर्मात्मा मनुष्य। (३) विष्णु।

धर्मीपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] नट। नाटक का कोई पात्र या अभिनयकर्त्ता।

धर्मेयु–संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी राजा रौद्राश्व का एक पुत्र। (महाभारत)

धर्मोपदेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म की शिक्षा। वह कथन वा व्याख्यान जो धर्म का तत्व समझाने या धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिये हो। (२) धर्म की व्यवस्था। धर्मशास्त्र।

धर्मोपदेशक–संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का उपदेश देनेवाला।

धर्मोपाध्याय–संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

धर्म्य–वि० [सं०] जो धर्म के अनुकूल हो। धर्म या न्याययुक्त।

धर्म्यविवाह–संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में जो विवाह गिनाए गए हैं उनमें से ब्राह्म, दैव, आर्ष, गांधर्व और प्राजापत्य ये पाँच धर्म्यविवाह कहलाते हैं।

धर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अविनीत व्यवहार। अविनय। धृष्टता। गुस्ताखी। संकोच या शिष्टता का अभाव। (२) असहनशीलता। तुनकमिजाजी। (३) धैर्य का अभाव। अधीरता। बेसब्री। (४) शक्तिबंधन। अशक्त होने या करने का भाव। बेकाम करने या होने का भाव। (५)

धर्मवैतंसिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पाप के द्वारा धन कमा कर लोगों को दिखाने और धार्मिक प्रसिद्ध होने के लिये बहुत दान पुण्य करता हो।

धर्मव्याध-संज्ञा पुं० [सं०] मिथिलापुर-निवासी एक व्याध जिसने कौशिक नामक एक तपस्वी वेदाध्यायी ब्राह्मण को धर्म का तत्त्व समझाया था।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में इसकी कथा इस प्रकार है। कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे बैठ कर वेद पाठ कर रहे थे इतने में एक बगली ने पेड़ पर से उनके ऊपर बीट कर दी। कौशिक ने कुछ क्रुद्ध होकर उसकी ओर देखा और वह मर कर गिर पड़ी। इस पर कौशिक को बड़ा दुःख हुआ और वे भिक्षा माँगने के लिये एक परिचित गृहस्थ के घर पहुँचे। उसकी गृहणी उन्हें बैठा कर भीतर अन्न आदि लाने गई। पर इसी बीच में उसका पति भूखा प्यासा कहीं से आ गया और वह उसकी सेवा में लग गई। पीछे जब उसे द्वार पर बैठे हुए ब्राह्मण की सुध हुई तब वह भिक्षा लेकर तुरंत बाहर आई और विलंब का कारण बता कर क्षमा प्रार्थना करने लगी। कौशिक इस पर बहुत बिगड़े और ब्राह्मण के कोप का भयंकर फल बता कर उसे डराने लगे। इस पर उस स्त्री ने कहा—"मैं बगली नहीं हूँ। आपके क्रोध से मेरा क्या हो सकता है? मैं पति को अपना परम देवता समझती हूँ। उनकी सेवा से छुट्टी पाकर तब मैं भिक्षा लेकर आई हूँ। क्रोध बहुत बुरी वस्तु है। जो क्रोध के वश में नहीं होता देवता उसी को ब्राह्मण समझते हैं। यदि आपको धर्म का यथार्थ तत्त्व जानना हो तो मिथिला में धर्म-व्याध के पास जाइए।" कौशिक अवाक् हो गए और अपने को धिक्कारते हुए मिथिला की ओर चल पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि धर्म-व्याध नाना प्रकार के पशुओं का मांस रख कर बेच रहा है। धर्म-व्याध ने ब्राह्मण देवता को देखते ही आदर से उठ कर बैठाया और कहा—"आप को एक ब्राह्मणी ने मेरे पास भेजा है"। कौशिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने धर्म-व्याध से कहा—"तुम इतने ज्ञानसम्पन्न होकर ऐसा निकृष्ट कर्म क्यों करते हो?" धर्म-व्याध ने कहा "महाराज! यह पितृपरंपरा से चला आता हुआ मेरा कुल-धर्म है अतः मैं इसी में स्थित हूँ। मैं अपने माता पिता और अतिथियों की सेवा करता हूँ, देवपूजन और शक्ति के अनुसार दान करता हूँ, झूठ नहीं बोलता, बेईमानी नहीं करता। जो मांस बेचता हूँ वह दूसरों के मारे हुए पशुओं का होता है। मेरी वृत्ति भयंकर अवश्य है, पर किया क्या जाय? मेरे लिये वही निर्दिष्ट की गई है। वही मेरा कुलोचित कर्म है, उसे त्याग करना उचित नहीं। पर साथ ही सदाचार के आचरण में मुझे कोई बाधा नहीं"। इसके उपरांत धर्म-व्याध ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत इस प्रकार सुनाया—"मैं पूर्व जन्म में वेदाध्यायी ब्राह्मण था। मैं एक दिन अपने मित्र एक राजा के साथ शिकार में गया और वहाँ जाकर मैंने एक मृगी के ऊपर तीर चलाया। पीछे जान पड़ा कि मृगी के रूप में एक ऋषि थे। ऋषि ने मुझे शाप दिया कि—"तूने मुझे बिना अपराध मारा इससे तू शूद्रयोनि में जाकर एक व्याध के घर उत्पन्न होगा।"

धर्मव्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वरूपा के गर्भ से उत्पन्न धर्म नामक एक राजा की कन्या जिस ने पातिव्रत्य की प्राप्ति के लिये घोर तप किया था। मरीचि ऋषि ने उसे पृथ्वी पर सब से बड़ी पतिव्रता देख उसके साथ विवाह किया था। (वायु-पुराण)

धर्मशाला-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मकान जो पथिकों या यात्रियों के टिकने के लिये धर्मार्थ बना हो और जिसका कुछ भाड़ा आदि न लगता हो। (२) वह स्थान जहाँ पुण्य के लिये नियमपूर्वक दान आदि दिया जाता हो। सत्र। (३) वह स्थान जहाँ धर्म अधर्म का निर्णय हो। न्यायालय। विचारालय।

धर्मशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] किसी जन-समूह के लिये उचित आचार व्यवहार की व्यवस्था जो किसी महात्मा वा आचार्य की ओर से होने के कारण मान्य समझी जाती हो। वह ग्रंथ जिसमें समाज के शासन के निमित्त नीति और सदाचार संबंधी नियम हों। जैसे, मानव धर्मशास्त्र।

विशेष—हिंदुओं के धर्मशास्त्र 'स्मृति' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें मनुस्मृति सब से प्रधान समझी जाती है। मनु के अतिरिक्त यम, वशिष्ठ, अत्रि, दक्ष, विष्णु, अंगिरा, उशना, बृहस्पति, व्यास, आपस्तंब, गौतम, कात्यायन, नारद, याज्ञवल्क्य, पराशर, संवर्त्त, शंख, और हारीत भी स्मृतिकार हुए हैं। दे० "स्मृति"।

धर्मशास्त्री-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवस्था देनेवाला। धर्मशास्त्र जाननेवाला पंडित।

धर्मशील-वि० [सं०] धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला। धार्मिक।

धर्मशीलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशील होने का भाव। धर्माचरण की वृत्ति। उ०—कह कपि धर्मशीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी।—तुलसी।

धर्मसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यायालय। कचहरी। वह स्थान जहाँ बैठ कर न्यायाधीश न्याय करे। अदालत। उ०—धर्म-सभा महँ रामहिं जानो। श्वान चलो निज पीर बखानो।—केशव।

धर्मसारी*†-संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशाला] धर्मशाला। उ०—राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।.........ढूँठ पैंड दे बसुधा हमको तहाँ रचौं धर्मसारी।—सूर।

के लिये भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा। मीनार। उ०—चढ़ि धवरहर विलोकि दखिन दिसि बूझ धौं पथिक कहाँ तें आए वे हैं।—तुलसी।

धवरा†–वि० [स० धवल] [स्त्री० धवरी] उजला। सफेद।

धवराहर–संज्ञा पुं० दे० "धवरहर"। उ०—सात खंड धवराहर साजा।—जायसी।

धवरी–वि० स्त्री० [हिं० धवरा] सफेद। उजली।
संज्ञा स्त्री० (१) धवर पक्षी की मादा। (२) सफेद रंग की गाय।

धवल–वि० [सं०] (१) श्वेत। उजला। सफेद। (२) निर्मल। झकाझक। (३) सुंदर। मनोहर।
संज्ञा पुं० (१) धव का पेड़। (२) चीनिया कपूर। (३) सिंदूर। (४) सफेद मिर्च। (५) धवर पक्षी। सफेद परेवा। (६) भारी बैल। महोक्ष। (७) छप्पय छंद का ४१ वाँ भेद। (८) अर्जुन वृक्ष। (९) श्वेत कुष्ट। सफेद कोढ़। (१०) एक राग जो भरत के मत से हिंडोल राग का आठवाँ पुत्र माना जाता है।

धवलकोष्ठी–संज्ञा स्त्री० [?] वैश्यों की एक जाति।

धवलगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। धवलागिरि।

धवलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी। उजलापन।

धवलत्व–संज्ञा पुं० [सं] सफेदी। उजलापन।

धवलना–क्रि० स० [सं० धवल] उज्ज्वल करना। निखारना। चमकाना। प्रकाशित करना। उ०—स्वामि काज करिहौं रन रारी। जस धवलिहौं भुवन दस चारी।—तुलसी।

धवलपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल पक्ष। उजला पाख। (२) हंस (जिसके पर सफेद होते हैं)।

धवलमृत्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरिया मिट्टी। दुद्धी।

धवलश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें पंचम और गांधार वर्जित हैं।

धवलांग–संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

धवला–वि० स्त्री० [सं०] सफेद। उजली।
संज्ञा स्त्री० सफेद गाय।
संज्ञा पुं० [सं० धवल] सफेद बैल।

धवलाई*†–संज्ञा स्त्री० [स० धवल+आई (प्रत्य०)] सफेदी। उजलापन।

धवलागिरि–संज्ञा पुं० [सं०धवल+गिरि] हिमालय पहाड़ की एक प्रख्यात चोटी।

धवलित–वि० [सं०] (१) जो सफेद किया गया हो। जैसे, तुषारधवलित शृंग। (२) जो साफ झक किया गया हो।

धवली–संज्ञा स्त्री० [स०] (१) सफेद गाय। (२) एक रोग जिसमें बाल सफेद हो जाते हैं। (३) सफेद मिर्च।

धवलीकृत–वि० [सं०] जो सफेद किया गया हो।

धवलीभूत–वि० [सं०] जो सफेद हुआ हो।

धवलोत्पल–संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद।

धवा–संज्ञा पुं० दे० "धव"।

धवाणक–संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

धवाना–क्रि० स० [हिं० धावना का प्रे०] दौड़ाना। उ०—(क) तहाँ सुधन्वा रथहिं धवाई। अर्जुन दल बानन झरिलाई।—रघुराज। (ख) तिन के काज अहीर पठाए। विलम करहु जिनि तुरत धवाए।—सूर।

धस–संज्ञा पुं० [हिं० धँसना=पैठना] (१) जल आदि में प्रवेश। डुबकी। गोता। उ०—(क) जो पथ मिला महेसहिं सेई। गयो समुद ओहि धस लेई।—जायसी। (ख) जस धस लीन्ह समुद मरजीया।—जायसी। (ग) तेहि का कहिय रहन कहँ जो है प्रीतम लाग। जो वहि सुनै लेइ धस का पानी, का आग।—जायसी।
क्रि० प्र०—लेना।
(२) एक प्रकार की जमीन या मिट्टी जो भुरभुरी होती है।

धसक–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है। (२) सूखी खाँसी। ठसक।
संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] किसी के लाभ या बढ़ती को देख दुःख से दब जाने की वृत्ति। डाह। ईर्ष्या।

धसकना–क्रि० अ० [हिं० धँसना] (१) नीचे को धँस जाना। नीचे को खसक जाना। दब जाना। बैठ जाना। उ०—(क) दीसत पंक्ह रेत में नए खोज या द्वार। आगे बढि पाछैं धसकि रहे नितंबन भार।—लक्ष्मणसिंह। (ख) तजो धीर धरनि धरनिधर धसकत धराधर धीर भार सहि न सकतु है।—तुलसी। (२) किसी का लाभ या बढ़ती देख दुःख से दबना। डाह करना। ईर्ष्या करना।

धसका–संज्ञा पुं० [हिं० धसक] चौपायों का एक रोग जो फेफड़ों में होता है। यह रोग छूत से फैलता है।

धसना*–क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] ध्वस्त होना। नष्ट होना। मिटना। उ०—निज आतम अज्ञान तें है प्रतीत जग खेद। धसै सु ताके बोध तें यह भाखत मुनि वेद।—निश्चल।
‡ क्रि० अ० दे० "धँसना"।

धसनि–संज्ञा स्त्री० दे० "धँसनि", "धसन"।

धसमसाना*†–क्रि० अ० [धँसना] धँस जाना। धरती में समाना। उ०—मेरु धसमसै समुद सुखाई।—जायसी।

धसान–संज्ञा स्त्री० दे० "धँसान"।
संज्ञा स्त्री० [सं० दशार्ण] एक छोटी नदी जो पूरबी मालवा और बुँदेलखंड से होकर बहती है। पूरबी मालवा प्राचीन काल में दशार्ण देश कहलाता था और यह नदी भी इसी नाम से प्रसिद्ध थी।

रोक। दबाव (६) नामर्द करने या होने का भाव। (७) नामर्द। नपुंसक। हिजड़ा। (८) हिंसा। जी दुखाने का कार्य्य। (९) अनादर। अपमान। हतक। (१०) (स्त्री का) सतीत्वहरण।

धर्षक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबानेवाला। दमन करनेवाला। (२) अपमान करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। (३) असहनशील। (४) सतीत्व हरण करनेवाला। व्यभिचारी। (५) अभिनय करनेवाला। नकल करनेवाला। नट।

धर्षकारी–वि० [सं० धर्षकारिन्] [स्त्री० धर्षकारिणी] (१) दबाने वा दमन करनेवाला। हरानेवाला। नीचा दिखानेवाला। (२) अपमान करनेवाला। अवज्ञा करनेवाला।

धर्षकारिणी–वि० [सं०] जिसका सतीत्व नष्ट हुआ हो। असती। व्यभिचारिणी।

धर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धर्षणीय, धर्षित] (१) अनादर। अपमान। अवज्ञा। (२) दबोचना। आक्रमण। दबाने वा दमन करने का कार्य्य। हराने का कार्य्य। नीचा दिखाने का कार्य्य। (३) असहनशीलता। (४) एक अस्त्र का नाम। (५) स्त्रीप्रसंग। रति। (६) शिव।

धर्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अवमानता। अवज्ञा। अपमान। हतक। (२) दबाने वा हराने का कार्य्य। नीचा दिखाने का कार्य्य। (३) सतीत्वहरण। (४) संभोग। रति।

धर्षणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] असती स्त्री। कुलटा।

धर्षणीय–वि० [सं०] धर्षण के योग्य।

धर्षित–वि० [सं०] (१) जिसका धर्षण किया गया हो। दबाया या दमन किया हुआ। परिभूत। हराया हुआ। (२) जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित।

संज्ञा पुं० रति। मैथुन।

धर्षी–वि० [सं० धर्षिन्] [स्त्री० धर्षिणी] (१) धर्षण करनेवाला। (२) धर दबानेवाला। आक्रमण करनेवाला। दबोचनेवाला। (३) हरानेवाला। (४) नीचा दिखानेवाला। (५) अपमान करनेवाला।

धलंड–संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़। ढेरा।

धव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक जंगली पेड़ जिसकी पत्तियाँ अमरूद या शरीफे की पत्तियों के ऐसी होती हैं। इसकी छाल सफेद और चिकनी तथा हीर की लकड़ी बहुत कड़ी और चमकीली होती है। फल छोटे छोटे होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं जो हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण भारत तक पाई जाती हैं। बड़ी जाति का जो पेड़ होता है उसे धौरा या बाकली कहते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और नाव, खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है। कोयला भी इसका बहुत अच्छा होता है। पत्तियों से चमड़ा सिझाया और कमाया जाता है। इसके पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छींट छापनेवाले काम में लाते हैं। छोटी जाति का पेड़ विंध्य पर्वत पर तथा दक्षिण भारत की ओर होता है। धव के नाम से प्रायः यही अधिक प्रसिद्ध है और दवा के काम में आता है। वैद्यक में धव चरपरा कसैला, कफवात-नाशक, पित्तकारक, दीपन, रुचिवर्द्धक और पांडु रोग का दूर करनेवाला माना जाता है। पत्ती, फल और जड़ तीनों दवा के काम में आते हैं।

पर्य्या०—पिशाचवृक्ष। शकटाख्य। धुरंधर। दृढ़तरु। गौर। कषाय। मधुरत्वक्। शुष्कांग। पांडुतरु। धवल। पांडुर। घट। नंदितरु। स्थिर। पीतफल।

(२) पति। स्वामी। जैसे, माधव। (३) पुरुष। मर्द। (४) धूर्त्त आदमी। (५) एक वसु का नाम।

धवई–संज्ञा स्त्री० [सं० धातकी, धावनी] एक पेड़ जो हिमालय से लेकर सारे उत्तरीय भारत में अधिकता से होता है। दक्षिण में यह कम मिलता है। इसे धाय भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ अनार की पत्तियों से मिलती जुलती पर कुछ पीलापन लिए और खुरदुरी होती हैं। फूल लाल रंग के होते हैं और दवा तथा रँगाई के काम में आते हैं। ये फूल शिशिर से वसंत तक लगते हैं और इकट्ठे करके सुखाए जाते हैं। प्रदर रोग में वैद्य लोग इन फूलों का काढ़ा देते हैं। छाल भी दवा के काम में आती है। वैद्यक में धवई या धाय चरपरी, शीतल, कसैली, मदकारक, कड़ुई, रक्तप्रवाहिका, तथा पित्त, तृषा, विसर्प, व्रण, कृमि और अतिसार को दूर करनेवाली मानी जाती है। पर और अंगों की अपेक्षा फूलों में अधिक गुण कहा जाता है। धवई के पेड़ से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

पर्य्या०—धाय। धातकी। ताम्रपुष्पी। धात्री। धावनी। धातुपुष्पिका। वह्निपुष्पी। अग्निज्वाला। सुभिक्षा। पार्वती। कुमुदा। सीधुपुष्पी। कुंजरा। मद्यवासिनी। गुच्छपुष्पी। वह्निशिखा इत्यादि।

धवनी–संज्ञा स्त्री० [सं० धमनी] लोहारों की धौंकनी। भाथी।

उ०—भट्ठी मोह कृशानु रवि धवनि स्वास मद दारु। निसिदिन घन दरवी उरप क्रम कुट काल लोहारु।

संज्ञा स्त्री० [सं०] शालिपर्णी। सरिवन।

धवर–संज्ञा पुं० [सं० धवल] एक पक्षी जिसका कंठ लाल और सारा शरीर सफेद होता है।

विशेष—भावप्रकाश में धवल पक्षी का मांस वातघ्न बताया गया है।

†वि० [सं० धवल] सफेद। उजला।

धवरहर–संज्ञा पुं० [हिं० धुर = ऊपर + घर] खंभे की तरह ऊपर दूर तक गया हुआ मकान का एक भाग जिस पर चढ़ने

(२) जत्था। झुंड। गरोह। जैसे, धाड़ की धाड़ बंदर आ गए।

धाड़ना–क्रि० अ० दे० "दहाड़ना"।

धाड़स–संज्ञा स्त्री० दे० "ढारस"।

धाणक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का परिमाण। (२) एक अनार्य छोटी जाति।

धाड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धाड़] भारी लुटेरा या डाकू।

धात–संज्ञा स्त्री० दे० "धातु"।

धातकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धव का फूल। (२) एक प्रकार का झाड़ जो सारे भारत में होता है और जिसके फूलों का व्यवहार रँगाई के काम में होता है। साल में एक बार इसके पत्ते झड़ जाते हैं।

धाता–संज्ञा पुं० [सं० धातृ] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव। महादेव। (४) भृगुमुनि के पुत्र का नाम। (५) ४९ वायुओं में से एक। (६) शेषनाग। (७) १२ सूर्यों में से एक। (८) ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम। (९) विधाता। विधि। (१०) साठ संवत्सरों में से एक (११) टगण के आठवें भेद की संज्ञा (।।।ऽ।)।

वि० (१) पालक। पालनेवाला। (२) रक्षक। रक्षा करनेवाला। (३) धारण करनेवाला।

धातु–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह मूल द्रव्य जो अपारदर्शक हो, जिसमें एक विशेष प्रकार की चमक हो, जिसमें से होकर ताप और विद्युत् का संचार हो सके तथा जो पीटने अथवा तार के रूप में खींचने से खंडित न हो। एक खनिज पदार्थ।

विशेष—प्रसिद्ध धातुएँ हैं—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा और राँगा। इन धातुओं में गुरुत्व होता है यहाँ तक कि राँगा जो बहुत हलका है वह भी पानी से सात गुना अधिक घना या भारी होता है। ऊपर लिखी धातुओं में केवल सोना चाँदी और ताँबा ही विशुद्ध रूप में मिलते हैं इससे इन पर बहुत प्राचीन काल में ही लोगों का ध्यान गया। कहीं कहीं विशेषतः उल्कापिंडों में लोहा भी विशुद्ध रूप में मिलता है। युरोपियनों के आने के पहले अमेरिकावाले उल्कापिंडों के लोहे के अतिरिक्त और किसी लोहे का व्यवहार नहीं जानते थे। सीसा और राँगा विशुद्ध धातु के रूप में प्रायः नहीं मिलते, बल्कि खनिज पिंडों को गला कर साफ़ करने से निकलते हैं। राँगा, सीसा, जस्ता आदि शुद्ध रूप में न मिलनेवाली धातुओं का ज्ञान लोगों को कुछ काल पीछे जब वे मिश्र धातु आदि बनाने लगे तब हुआ। बहुत दिनों तक लोग पीतल तो बना लेते थे पर जस्ते को अच्छी तरह नहीं जानते थे। यही हाल राँगे का भी समझिए। पारे को भी लोग बहुत दिनों से जानते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पारा शुद्ध धातु के रूप में भी बहुत मिलता है। पारा अर्द्धद्रव अवस्था में मिलता है इसी से युरोप में बहुत दिनों तक लोग उसे धातुओं में नहीं गिनते थे। पीछे मालूम हुआ कि वह सर्दी से जम सकता है और उसका पत्तर बन सकता है। मूल धातुओं के योग से मिश्र धातुएँ बनती हैं—जैसे ताँबे और जस्ते के योग से पीतल, ताँबे और राँगे के योग से काँसा आदि। इनके अतिरिक्त अब अलुमिनियम, प्लेटिनम, निकल, कोबाल्ट आदि बहुत सी नई धातुओं का पता लगा है। इस प्रकार धातुओं की संख्या अब बहुत हो गई है। रेडियम नामक धातु का पता लगे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं।

यद्यपि साधारणतः धातु उन्हीं द्रव्यों को कहते हैं जो पीटने से बिना खंडित वा चूर हुए बढ़ सकें पर अब धातु शब्द के अंतर्गत चूर होनेवाले द्रव्य भी लिए जाते हैं और अर्द्धधातु कहलाते हैं, जैसे संखिया, हरताल, सुरमा, सज्जीखार इत्यादि। इस प्रकार क्षार उत्पन्न करनेवाले मूल पदार्थ भी धातु के अंतर्गत आ गए हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि धातुओं की गणना मूल द्रव्यों में है। आधुनिक रसायन शास्त्र में मूल द्रव्य उसको कहते हैं जिसका विश्लेषण करने पर किसी दूसरे द्रव्य का योग न मिले। इन्हीं मूल द्रव्यों के अणुयोग से जगत् के भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं। आज तक ७५ के लगभग मूल द्रव्यों का पता लग चुका है जिनमें से गंधक, फासफर, अम्लजन, उदजन, इत्यादि १३ की गणना धातुओं में नहीं हो सकती बाकी सब धातु ही माने जाते हैं।

तपे हुए लोहे, सीसे, ताँबे आदि के साथ जब अम्लजन नामक वायव्य द्रव्य का योग होता है तब वे विकृत हो जाते हैं (मुरचा इसी प्रकार का विकार है)। विकृत होकर जो पदार्थ उत्पन्न होता है उसे भस्म वा क्षार कह सकते हैं, यद्यपि वैद्यक में प्रचलित भस्म और दूसरे प्रकार से प्राप्त द्रव्यों को भी कहते हैं। देशी वैद्य भस्म, क्षार और लवण में प्रायः भेद नहीं करते; कहीं कहीं तीनों शब्दों का प्रयोग वे एक ही पदार्थ के लिये करते हैं। पर आधुनिक रसायन में क्षार और अम्ल के मेल से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनको लवण कहते हैं। इस प्रकार आजकल वैज्ञानिक व्यवहार में लवण शब्द के अंतर्गत तूतिया हीराकसीस आदि भी आ जाते हैं। ताँबे के चूरे को यदि हवा में (जिसमें अम्लजन रहता है) तपा या गला कर उसमें थोड़ा सा गंधक का तेजाब डाल दें तो तेजाब का अम्लगुण नष्ट हो जायगा और इस योग से तूतिया उत्पन्न होगा। अतः तूतिया भी लवण के अंतर्गत हुआ।

इधर के वैद्यक के ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, लोहा, सीसा और जस्ता ये सात धातु माने गए हैं। सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, काँसा, पीतल, सिंदूर और शिलाजतु ये सात उपधातु कहलाते हैं। पारे को रस कहा है।

धसाना–क्रि० स० दे० "धँसाना"।

धसाव–संज्ञा पुं० दे० "धँसाव"।

धाँक–संज्ञा पुं० [देश०] एक जँगली जाति जिसकी रहन सहन भीलों से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

धाँगड़–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक अनार्य जंगली जाति जो विंध्य और कैमोर पहाड़ियों पर रहती है। (२) एक जाति जो कूएँ और तालाब खोदने का काम करती है।

धाँगर–संज्ञा पुं० दे० "धाँगड़"।

धाँधना–क्रि० स० [देश०] (१) बंद करना। भेड़ना। उ०—बारण पाशहि अंगन बाँधी। राख्यो ताहि कोठरी धाँधी।—रघुराज। (ख) पुनि लकरी पट अंगनि बाँधी। आगि लगायो कोठरि धाँधी।—कबीर। (२) बहुत अधिक खा लेना। ठूसना।

धाँधल–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) ऊधम। उपद्रव। नटखटी।

क्रि० प्र०—मचाना।

(२) फरेब। धोखा। दग़ा। (३) बहुत अधिक जल्दी। जैसे, तुम तो आते ही खाने के लिये धाँधल मचाने लगते हो।

क्रि० प्र०—मचाना।

धाँधलपन–संज्ञा पुं० [हिं० धाँधल + पन (प्रत्य०)] (१) पाजीपन। शरारत। (२) धोखेबाज़ी। दग़ाबाज़ी।

धाँधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

धाँधली–संज्ञा स्त्री० [हिं० धाँधल + ई (प्रत्य०)] (१) उपद्रवी। शरीर। पाजी। नटखट। (२) धोखेबाज़। दग़ाबाज़।

धाँय–संज्ञा स्त्री० दे० "धायँ"।

धाँस–संज्ञा स्त्री० [अनु०] सूखे तंबाकू या मिर्च आदि की तेज़ गंध जिससे खाँसी आने लगती है।

धाँसना–क्रि० अ० [अनु०] पशुओं का खाँसना।

धाँसी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़े की खाँसी।

धा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) बृहस्पति।

वि० धारक। धारण करनेवाला।

प्रत्य० तरह। भाँति। प्रकार। जैसे, नवधा भक्ति। उ०—देखि देही सबै कोटि धा के मनो। जीव जीवेश के बीच माया मनो।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं० धैवत] संगीत में "धैवत" शब्द या स्वर का संकेत।

संज्ञा पुं० [अनु०] तबले का एक बोल। जैसे, धा धा धिन्ता।

†संज्ञा स्त्री० दे० "धाय"।

संज्ञा पुं० दे० "धव"।

धाइ†–संज्ञा स्त्री० दे० "धाय"।

संज्ञा पुं० धव का पेड़। उ०—राजति है यह ज्यों कुल-कन्या। धाइ विराजति है सँग धन्या।—केशव।

धाई–संज्ञा स्त्री० दे० "धाय"।

धाउ–संज्ञा पुं० [सं० धाव] नाच का एक भेद। उ०—बहु उडुपति तिर्यगपति अड़ाल। अरु साग धाउ राय हिंगाल।—केशव।

धाऊ†–संज्ञा पुं० [सं० धावन] वह आदमी जो आवश्यक कामों के लिये दौड़ाया जाय। हरकारा। उ०—नाऊ बारी महर सब धाऊ धाय समेत। नेगचार पाये अमित रह्यो जासु जस हेत।—रघुराज

संज्ञा पुं० [सं० धतकी] धव का पेड़।

धाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृष। (२) उपाहार। भोजन। (३) अन्न। अनाज। (४) स्तंभ। खंभा। (५) आधार।

संज्ञा स्त्री० (१) रोब। दबदबा। आतंक। उ०—(क) धरम धुरंधर धरा में धाक धाए ध्रुव ध्रुव सों समुद्धत प्रताप सर्व काल है।—रघुराज। (ख) महावीर शत्रुसाल नंदराय भाव सिंह तेरी धाक अरिपुर जात भय भोय से।—मतिराम।

मुहा०—धाक बँधना = रोब या दबदबा होना। आतंक छाना। जैसे, शहर में उसके बोलने की धाक बँध गई। धाक बाँधना = रोब जमाना। जैसे, ये जहाँ जाते हैं वहाँ धाक बाँध देते हैं।

(२) प्रसिद्धि। शोहरत। शोर। उ०—सूरदास प्रभु ग्वाल ग्वाल सँग ब्रह्मलोक यह धाक।—सूर।

संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] ढाक। पलास।

धकार–संज्ञा पुं० [देश०] (१) कान्यकुब्ज और सरजूपारी ब्राह्मणों में वह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलों के अंतर्गत न हो और इससे नीचा समझा जाता हो। (२) राजपूतों की एक जाति जो आगरे के आस पास पाई जाती है। (३) पंजाब का एक धान जो बिना पानी के पैदा होता है।

†वि० दोगला।

धका–† संज्ञा स्त्री० दे० "धाक"।

धाखा†–संज्ञा पुं० [देश०] पलाश का पेड़।

धागा†–संज्ञा पुं० [हिं० तागा] डोरा। तागा। बटा हुआ सूत।

मुहा०—धागा भरना = कपड़े के छेद आदि में तागे भरकर उसे रफ़ू करना। धागे धागे करना = किसी कपड़े के बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े करना। चिथड़े चिथड़े करना।

धाड़†–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "डाढ़"। (२) दे० "दहाड़"। (३) दे० "ढाड़"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० धार] (१) डाकुओं का आक्रमण।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—धाड़ पड़ना = बहुत जल्दी होना। बहुत शीघ्रता होना। जैसे, ऐसी कौन सी धाड़ पड़ी है जो अभी उठ कर चले चलें।

धातुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौंसठ कलाओं में से एक, जिसमें कच्ची धातु को साफ़ करते, तथा एक में मिली हुई अनेक धातुओं को अलग अलग करते हैं। (२) रसायन बनाने का काम। (३) तांबे से सोना बनाना। (४) कीमियागिरी। उ०—धातुवाद निरुपाधि वर सद्गुरु लाभ सुमीत। देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत।—तुलसी।

धातुवादी—संज्ञा पुं० [सं०] रसायन की सहायता से सोना या चाँदी बनानेवाला। कारंधमी। रसायनी। कीमियागर।

धातुवैरी—संज्ञा पुं० [सं० धातुवैरिन्] गंधक।

धातुशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसीस। (२) सीसा।

धातुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा।

धातुस्तंभक—वि० [सं०] वीर्य्य को रोकनेवाला। जिससे वीर्य्य का स्तंभन हो और वह देर में स्खलित हो।

धातुहन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

धातू—संज्ञा स्त्री० दे० "धातु"।

धातूपल—संज्ञा पुं० [सं०] खरियामिट्टी। खरी। दुधिया या दुद्धी।

धातृपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार।

धातृपुष्पिका; धातृपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव के फूल।

धात्र—संज्ञा पुं० [सं०] पात्र। बरतन।

धात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँवला।

धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता। माँ। (२) वह स्त्री जो किसी शिशु को दूध पिलाने और उसका लालन पालन करने के लिये नियुक्त की जाय। धाय। दाई। (३) गायत्री-स्वरूपिणी भगवती। (४) गंगा। (५) आँवला। (६) भूमि। पृथ्वी। (७) सेना। फौज। (८) गाय। (९) आर्य्या छंद का एक भेद जिसमें ११ गुरु और ३५ लघु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालीस पत्र। (२) आँवले की पत्ती।

धात्रीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। धाय का लड़का।

धात्रीफल—संज्ञा पुं० [सं०] आँवला। आमला।

धात्रीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसकी सहायता से दाइयाँ गर्भवती स्त्रियों को प्रसव कराती और प्रसूता तथा शिशु की रक्षा आदि करती हैं। लड़का जनाने और उसे पालने आदि की विद्या।

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई।

धात्वर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धातु से निकलनेवाले (किसी शब्द का) अर्थ। मूल और पहला अर्थ।

धाधना—क्रि० स० [?] देखना।

धान—संज्ञा पुं० [सं० धान्य] तृण जाति का एक पौधा जिसके बीज की गिनती अच्छे अन्नों में है। शालि। व्रीहि।

विशेष—भारतवर्ष तथा आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में यह जंगली होता है। इसकी बहुत अधिक खेती भारत, चीन, बरमा, मलाया, अमेरिका (संयुक्त राज्य और ब्रेजिल) तथा थोड़ी बहुत इटली और स्पेन आदि युरोप के दक्षिणी भागों में होती है। इसके लिये तर जमीन और गरमी चाहिए। यह संसार के उन्हीं गरम भागों में होता है जहाँ वर्षा अच्छी होती या सिंचाई के लिये खूब पानी मिलता है। धान की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आ रही है इसी से उसके अनंत भेद हो गए हैं।

ऋग्वेद में धाना और धान्य शब्द आए हैं। धाना शब्द का अर्थ सायण ने कूटा हुआ जौ किया है, पर 'धान्य' का अर्थ दूसरा नहीं किया है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद, शांखायन ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन श्रौतसूत्र इत्यादि में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। पर कहीं कहीं धान्य शब्द अन्न मात्र के अर्थ में भी है। तैत्तिरीय संहिता, वाजसनेय संहिता आदि में व्रीहि शब्द बार बार आया है। कृष्ण यजुर्वेद में शुक्ल और कृष्ण व्रीहि का उल्लेख है। फारसी में भी 'बिरंज' शब्द चावल के लिये वर्त्तमान है जो निश्चय व्रीहि से संबंध रखता है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन आर्यों को धान का पता उस समय भी था जब उनका विस्तार मध्य एशिया तक था। ईसा से २८०० वर्ष पूर्व शिवनंग राजा के समय में चीन में एक त्योहार मनाया जाता था जिसमें ५ प्रकार के अन्नों की बोआई आरंभ होती थी। इन पाँच अन्नों में धान का नाम भी है। चीन में धान जंगली भी पाए जाते हैं और धान की खेती भी बहुत दिनों से होती आ रही है।

जापान, चीन, हिंदुस्तान, बरमा मलाया इत्यादि में चावल बहुत खाया जाता है। यद्यपि इसमें मांस बनानेवाला अंश बहुत कम होता है पर गरम देशों के लिये यह अन्न बहुत उपयुक्त होता है।

भारतवर्ष में सब से अधिक धान बंगाल में होता है। वहाँ इसके तीन मुख्य भेद माने जाते हैं— (१) आमन (अगहनी), जो जेठ आषाढ़ में बोया जाता है और अगहन पूस में कटता है। (२) आउस (भदई) जो वैशाख जेठ में बोया जाता है और भादों कुआर में कटता है, और (३) बोरो, जो पूस माघ में बोया जाता और वैशाख जेठ में कटता है। जो धान एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगा कर पैदा किया जाता है उसे जड़हन कहते हैं, क्योंकि वह जाड़े में तैयार होता है। यों तो भिन्न भिन्न स्थानों में धान की बोआई पूस से लेकर आषाढ़ तक, होती है और कटाई जेठ से अगहन तक, पर उत्तरीय भारत में अधिकतर धान आषाढ़ सावन में बोया जाता है। साधारण धान तो भादों कुआर तक तैयार हो जाता है पर जड़हन अगहन में कटता है। महीन चावल के धान अच्छे समझे जाते हैं। अच्छी

गंधक, ईंगुर, अभ्रक, हरताल, मैनसिल, सुरमा, सुहागा, रावटी, चुंबक, फिटकरी, गेरू, खरिया, कसीस, खपरिया, बालू, मुरदासंख, ये सब उपरस कहलाते हैं। धातुओं के भस्म का सेवन वैद्य लोग अनेक रोगों में कराते हैं।

(२) शरीर को धारण करनेवाला द्रव्य। शरीर को बनाए रखनेवाले पदार्थ।

विशेष—वैद्यक में शरीरस्थ सात धातुएँ मानी गई हैं—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। सुश्रुत में इनका विवरण इस प्रकार मिलता है। जो कुछ खाया जाता है उससे जो द्रवरूप सूक्ष्म सार बनता है वह रस कहलाता है और उसका स्थान हृदय है जहाँ से वह धमनियों के द्वारा सारे शरीर में फैलता है। यही रस अविकृत अवस्था में तेज (पित्त के कार्य) के साथ मिश्रित होकर लाल रंग का हो जाता है और रक्त कहलाता है। रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है। वात, पित्त और कफ की भी धातु संज्ञा है।

(३) बुद्ध या किसी महात्मा की अस्थि आदि जिसे बौद्ध लोग डिब्बे में बंद करके स्थापित करते थे।

यौ०—धातुगर्भ।

(४) शुक्र। वीर्य।

मुहा०—धातु गिरना = पेशाब के साथ या यों ही वीर्य गिरने का रोग होना। प्रमेह होना।

संज्ञा पुं० (१) भूत। तत्व। उ०—जाके उदित नचत नाना विधि गति अपनी अपनी। सूरदास सब प्रकृति धातुमय अति विचित्र सजनी।—सूर।

विशेष—पंचभूतों और पंचतन्मात्र को भी धातु कहते हैं। बौद्धों में अठारह धातुएं मानी गई हैं—चक्षुधातु, घ्राणधातु, श्रोत्रधातु, जिह्वाधातु, कायधातु रूपधातु, शब्दधातु, गंधधातु, रसधातु, स्प्रातव्यधातु, चक्षुविज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु, घ्राणविज्ञान धातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञान धातु, मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञान धातु।

(२) शब्द का मूल। क्रियावाचक प्रकृति। वह मूल जिससे क्रियाएँ बनी हैं या बनती हैं। जैसे, संस्कृत में भू, कृ, धृ इत्यादि। (व्याकरण)

विशेष—यद्यपि हिंदीव्याकरण में धातुओं की कल्पना नहीं की गई है पर की जा सकती है। जैसे, करना का 'कर' हँसना का "हँस" इत्यादि

(३) परमात्मा।

धातु का सीस—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

धातुक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खाँसी का रोग जिससे शरीर क्षीण हो जाता है। (२) प्रमेह आदि रोग जिनमें शरीर से बहुत वीर्य निकल जाता है।

धातुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह कँगूरेदार डिब्बा या पात्र जिसमें बौद्ध लोग बुद्ध या अपने दूसरे भारी साधु-महात्माओं के दाँत या हड्डियाँ आदि रखते हैं। देहगोप।

धातुगोप—संज्ञा पुं० दे० "धातुगर्भ"।

धातुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिससे शरीर का धातु नष्ट हो। जैसे, काँजी, पारा आदि।

धातुचैतन्य—वि० [सं०] धातु (वीर्य) को उत्पन्न या चैतन्य करनेवाला। जिससे वीर्य बढ़े।

धातुद्रावक—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा, जिसके डालने से सोना आदि गल जाता है।

धातुनाशक—संज्ञा पुं० दे० "धातुघ्न"।

धातुप—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर में का वह रस या पतला धातु जो भोजन के उपरांत तुरंत ही तैयार होता है और जिससे शेष धातुओं का पोषण होता है।

विशेष—दे० 'धातु"।

धातुपुष्ट—वि० [सं०] वीर्य को गाढ़ा करनेवाला। जिससे वीर्य गाढ़ा होकर बढ़े।

धातुपुष्पिका ; धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल।

धातुप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य।

धातुभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्व्वत। पहाड़।

वि० जिससे धातु का पोषण हो।

धातुवैरी—संज्ञा पुं० [सं० धातुवैरिन्] गंधक।

धातुमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कच्ची धातु को साफ करना, जो ६४ कलाओं के अंतर्गत है। धातुवाद। उ०—सूचिकर्म धातु मर्म सूत्र कोढ़नोलिजू।—विश्राम।

धातुमल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार कफ, पित्त, पसीने, नाखून, बाल, आँख या कान की मैल आदि जिसकी सृष्टि किसी धातु के परिपक्व हो जाने पर उसके बचे हुए निरर्थक अंश या मल से होती है।

धातुमाक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नाम की उपधातु।

धातुमारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुहागा।

धातुराग—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं से निकला हुआ रंग। जैसे, ईंगुर, गेरू आदि। उ०—सिय अंग लिखै धातुराग सुमननि भूषन विभाग तिलक करनि क्यों कहौं कलानिधान की।—तुलसी।

धातुराजक—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र या वीर्य जो शरीर के सब धातुओं में श्रेष्ठ माना जाता है।

धातुरेचक—वि० [सं०] वीर्य को बहानेवाला। जो वीर्य को बहाकर निकाल दे।

धातुवर्द्धक—वि० [सं०] वीर्य को बढ़ानेवाला। जिससे वीर्य बढ़े।

धातुवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

कल्पित गाय जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है। इसका दान विषुव संक्रांति या कार्त्तिक मास में सब प्रकार का सुख, सौभाग्य, और पुण्य संचय करने के लिये होता है।

धान्यपंचक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भावप्रकाश के अनुसार शालि, व्रीहि, शूक, शिंबी और क्षुद्र ये पाँचों प्रकार के धान। (२) वैद्यक में एक प्रकार का पाचक का पानी जो पाँचों प्रकार के धान, बेल और आम, आदि को मिलाकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार आम, शूल तथा अतिसार आदि रोगों में होता है। (३) वैद्यक में एक पाचक औषध, जिसे धनिया, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथे और आयमाण को मिलाकर बनाते हैं। इसका व्यवहार आमातिसार तथा उदरशूल आदि रोगों में होता है।

धान्यपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चावल। (२) जौ।

धान्यपानक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पना जो धनिए से बनाया जाता है। इसके बनाने के लिये पहले धनिए को सिल पर पीस कर पानी के साथ छान लेते हैं और तब उसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगंधित पदार्थ आदि छोड़ देते हैं।

धान्यबीज–संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्यमालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रावण के यहाँ रहनेवाली एक राक्षसी जिसे उसने जानकी को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विशेष—किसी किसी का मत है कि रावण की स्त्री मंदोदरी का ही दूसरा नाम धान्यमालिनी था।

धान्यमाष–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो दो धान के बराबर होता था।

धान्यमुख–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चीर-फाड़ में होता था।

धान्यमूल–संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्ययूष–संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्ययोनि–संज्ञा स्त्री० [सं०] काँजी।

धान्यराज–संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

धान्यवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] पाँचों प्रकार के धान। धान्यपंचक।

धान्यवर्धन–संज्ञा पुं० [सं०] अन्न उधार देने का व्यवहार जिसमें ऋणी से ड्योढ़ा या सवाया लिया जाता है।

धान्यवीज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धान का बीज। (२) धनिया।

धान्यवीर–संज्ञा पुं० [सं०] उरद। माष।

धान्यशर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी मिला हुआ धनिए का पानी जो अंतर्दाह शांत करने के लिये पिया जाता है।

धान्यशीर्षक–संज्ञा पुं० [सं०] धान की मंजरी।

धान्यशुंठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक औषध जो ज्वरातिसार और कफ के प्रकोप को शांत करता है। इसके बनाने के लिये १ तोला धनिया और २ तोला सोंठ कूट कर आध सेर पानी में मिलाते और इसे आग पर चढ़ा देते हैं, और जब, आध पाव पानी बच जाता है तब इसे उतार लेते हैं।

धान्यशैल–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दान करने के लिये वह कल्पित पर्वत जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है। कहते हैं कि इसके दान करनेवाले को स्वर्ग में सेवा के लिये अप्सराएँ और गंधर्व मिलते हैं और यदि वह किसी प्रकार इस लोक में आ जाय तो राजा होता है।

धान्यसार–संज्ञा पुं० [सं०] तंडुल। चावल।

धान्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

धान्याक–संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्याकृत–संज्ञा पुं० [सं०] खेतिहर। कृषक।

धान्याभ्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में भस्म बनाने के लिये धान की सहायता से शोधा और साफ़ किया हुआ अभ्रक।

विशेष—पहले अभ्रक को सुखा कर खरल में खूब महीन पीस लेते हैं और तब उस चूर्ण को चौथाई धान के साथ मिला कर एक कंबल में बाँध कर तीन दिन तक पानी में रखते हैं। तीन दिन बाद उस पोटली को हाथ से इतना मलते हैं कि वह छन कर नीचे पानी में गिर जाता है। उसी अभ्रक को निथार कर सुखा लेते हैं। भस्म बनाने के लिये ऐसा अभ्रक बहुत अच्छा समझा जाता है।

(२) अभ्रक को इस प्रकार शोधने की क्रिया।

धान्याम्लक–संज्ञा पुं० [सं०] धान से बनाई हुई खटाई या काँजी।

विशेष—दूने जल के साथ धान को एक बंद बरतन में रख कर गाड़ दे। सात दिन पीछे उसे निकाल कर उसका पानी छान ले। यही खट्टा पानी काँजी है।

धान्यारि–संज्ञा पुं० [सं०] चूहा।

धान्यागार–संज्ञा पुं० [सं०] अन्नशाला। भंडारघर।

धान्योत्तम–संज्ञा पुं० [सं०] शालि। धान।

धान्व–वि० [सं०] धन्व देश संबंधी। धन्व देश का।

धान्वंतर्य–संज्ञा पुं० [सं०] धन्वंतरि देवता के होम आदि। वह होम आदि जिनमें धन्वंतरि आदि देवता प्रधान हों।

धाप–संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] (१) दूरी की एक नाप जो प्रायः एक मील की और कहीं दो मील की मानी जाती है। (२) लंबा चौड़ा मैदान। (३) खेत की नाप या लंबाई चौड़ाई।

संज्ञा पुं० [हिं० धार] पानी की धार। (क्व०)

संज्ञा स्त्री० [हिं० धापना] जी भरना। तृप्ति। संतोष।

धापना[8]–क्रि० अ० [सं० तर्पण] संतुष्ट होना। तृप्त होना। अघाना। जी भरना। उ०—(क) लंपट धूत पूत दमरी को

जाति के बढ़िया चावल प्रायः जड़हन के ही होते हैं। धान या चावल के बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८७२ में अजायब घर में रखने के लिये जो चावलों का संग्रह हुआ था उसमें पाँच हजार प्रकार के चावल बतलाए गए थे। इस संख्या को ठीक न मानकर आधी तिहाई भी लें तो भी बहुत भेद होते हैं। महीन सुगंधित चावलों में बासमती सब से प्रसिद्ध है। जड़हनिया चावलों में बासमती के अतिरिक्त लटेरा, रामभोग, रानीकाजर, तुलसीबास, मोतीचूर, समुद्रफेन, कनकजीरा इत्यादि भी अच्छे चावल समझे जाते हैं। साधारण धान भी बहुत प्रकार के होते हैं जैसे, बगरी, दुद्धी, साठी, सरया, रामजवाइन इत्यादि। पहाड़ों के बीच की तर जमीन में भी धान अच्छे होते हैं—जैसे कांगड़े में, हरिद्वार के पास तपोवन में। काश्मीर में भी अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे चावल होते हैं।

धानक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) एक रत्ती का चौथाई भाग।

संज्ञा पुं० [सं० धानुष्क] (१) धनुष चलानेवाला। धनुर्द्धारी। तीरंदाज़। कमनैत। उ०—भौंह धनुष धन धानक दूसर सरि न कराय। गगन धनुक जो उगवै लाजहि सो छिपि जाय।—जायसी। (२) धुनिया। रुई धुननेवाला। (३) एक पहाड़ी जाति का नाम जो पूरब में पाई जाती है।

धानकी—संज्ञा पुं० [हिं० धानुक] (१) धनुर्द्धर। धनुर्धारी। (२) कामदेव। (डिं०)

धानजई—संज्ञा पुं० [हिं० धान + जई] एक प्रकार का धान।

धानपान—संज्ञा पुं० [हिं० धान + पान] विवाह से कुछ ही पहले होनेवाली एक रसम जिसमें वर-पक्ष की ओर से कन्या के घर धान और हल्दी भेजी जाती है। इस रसम के उपरांत विवाह-संबंध प्रायः पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है।

वि० दुबला पतला। नाजुक। (बाजारू)

धानमाली—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे के चलाए हुए अस्त्र को रोकने की एक क्रिया। उ०—अरु विनीत तिमि मत्तहि प्रसमन तैसहि सारचिमाली। रुचिर वृत्ति मत पितृ सौमनस धन धानहुँ धृत माली।—रघुराज।

धानातवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

धाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भूना हुआ जौ या चावल। बहुरी। (२) धनिया। (३) अन्न का कण। खुद्दी। (४) सत्तू। (५) धान। (६) अन्न मात्र।

*† क्रि० अ० [सं० धावन] (१) दौड़ना। तेजी से चलना। भागना। उ०—धूम स्याम धौरी घन धाये। सेत धुजा बग पाँति दिखाये।—जायसी।

मुहा०—धाय पूजना = दूर रहना। अलग रहना। हाथ जोड़ना। संबंध न रखना। उ०—धाय पूजे इस नौकरी से।

(२) कोशिश करना। प्रयत्न करना।

धानाचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सत्तू।

धानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो धारण करे। वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। (२) स्थान। जगह। जैसे, राजधानी। उ०—समथल ऊँच नीच नहिँ कतहूँ पूर्ण धर्म धन धानी। सरस सुरस रंजित नीरसमहत कोसलपति रजधानी।—रघुराज। (२) पीलू का पेड़। (३) धनिया।

संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का हलका हरा रंग जो धान की पत्ती के रंग का सा होता है। यह प्रायः पीले और नीले रंग को मिलाकर बनाया जाता है। तोतई।

वि० धान की पत्ती के रंग का। हलके हरे रंग का।

संज्ञा स्त्री० [सं० धाना] (२) भूना हुआ जौ या गेहूँ।

यौ०—गुड़धानी।

संज्ञा स्त्री०*† दे० "धान्य"।

संज्ञा स्त्री० संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी।

धानुक—संज्ञा पुं० [सं० धानुष्क] (१) धनुर्द्धर। धनुर्धारी। धनुस् चलानेवाला। कमनैत। (२) एक नीच जाति। इस जाति के लोग प्रायः ब्याह शादी में तुरही आदि बजाते हैं।

धानुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् चलाकर अपनी जीविका का निर्वाह करनेवाला। कमनैत। धनुर्धर।

धानुष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

धानुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस।

धानेय, धयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चार तिल का एक परिमाण या तौल। (२) धनिया। (३) कैवर्त्ती मुस्तक। एक प्रकार का नागरमोथा। (४) धान। छिलके समेत चावल। (५) अन्न मात्र।

विशेष—अन्न मात्र को धान्य कहते हैं। किसी किसी स्मृति में लिखा है कि खेत में के अन्न को शस्य और छिलके सहित अन्न के दाने को धान्य कहते हैं।

यौ०—धनधान्य।

(६) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिसका प्रयोग शत्रु के अस्त्र निष्फल करने में होता था और जो वाल्मीकि के अनुसार विश्वामित्र से रामचंद्र को मिला था।

धान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) धान्य। धान।

धान्यकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज भरने के लिये बना हुआ घर या बरतन। कोठिला। गोला।

धान्यतुषोद—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्यधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक

बलनाशक और दोषप्रदायक माना जाता है। पर अगस्त तारे के उदय होने के उपरांत सामुद्र जल भी गांग जल की तरह ही गुणकारी माना जाता है।

(३) ऋण। उधार। कर्ज़। (४) प्रांत। प्रदेश।

वि० [सं०] गंभीर। गहरा।

संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] (१) किसी आधार से लगे हुए अथवा निराधार द्रव पदार्थ की गति-परंपरा। अखंड प्रवाह। पानी आदि के गिरने या बहने का तार। जैसे, नदी की धार, पेशाब की धार, खून की धार।

यौ०—धाराधूरा।

मुहा०—धार चढ़ाना = किसी देवी देवता या पवित्र नदी आदि पर, दूध, जल आदि चढ़ाना। धार टूटना = गिरने का प्रवाह खंडित होना। लगातार गिरना या निकलना बंद हो जाना। धार देना = (१) दूध देना। (२) कोई उपयोगी काम करना। (व्यंग्य)। जैसे, यहाँ बैठे हुए क्या धार देते हो? धार निकालना = दूध दूहना। थनों से दूध निकालना। धार मारना = जोर से पेशाब करना। (किसी चीज़ पर) धार मारना या (किसी चीज़ को) धार पर मारना = किसी चीज़ को बहुत ही तुच्छ और अग्राह्य समझना। जैसे हम, ऐसे रुपए पर धार मारते हैं, या ऐसा रुपया धार पर मारते हैं। धार बँधना = किसी तरल पदार्थ का धार बन कर गिरना। धार बाँधना = किसी तरल पदार्थ को इस प्रकार गिराना जिसमें उसकी धार बन जाय।

(२) पानी का सोता। चश्मा। (४) जल डमरू-मध्य। (लश०)। (५) किसी काटनेवाले हथियार का वह तेज़ सिरा या किनारा जिससे कोई चीज़ काटते हैं। बाढ़। जैसे, तलवार की धार, चाकू की धार, कैंची की धार।

मुहा०—धार बँधना = मंत्र आदि के बल से काटनेवाले अस्त्र की धार का निकम्मा हो जाना। धार बाँधना = मंत्र आदि के बल से किसी हथियार की धार को निकम्मा कर देना। (प्राचीनों का विश्वास था कि मंत्र के बल से हथियार की धार निकम्मी की जा सकती है और तब वह हथियार काट नहीं करता।)

(६) किनारा। सिरा। छोर। (७) सेना। फौज। (८) किसी प्रकार का डाका, आक्रमण या हल्ला। उ०—जात सरन कहँ देखिए कहँ कबीर पुकार। चेतना होहु तो चेत ले दिवस परत है धार।—कबीर। (९) ओर। तरफ़। दिशा। उ०—महरि पैठत सदन भीतर छींक बाईं धार।—सूर। (१०) जहाज़ों के तख्तों की संधि या जोड़। कस्तूरा। (लश०)

संज्ञा पुं० [सं० धरण] (१) चोबदार या द्वारपाल। (डिं०)

संज्ञा पुं० [सं० धरण] (२) वह पेड़ का तना या काठ का टुकड़ा जो कच्चे कूएँ के मुँह पर इस लिये लगा दिया जाता है जिसमें उसका ऊपरी भाग अंदर न गिरे।

धारक—वि० [सं०] (१) धारण करनेवाला। धारनेवाला। (२) रोकनेवाला। (३) ऋण लेनेवाला। कर्जदार।

संज्ञा पुं० [सं०] कलश। घड़ा।

धारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि। स्त्री की मूत्रेंद्रिय।

धारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ को अपने ऊपर रखना अथवा अपने किसी अंग में लेना। थामना, लेना या अपने ऊपर ठहराना। जैसे, शेष जी का पृथ्वी को धारण करना, शिव जी का गंगा को धारण करना, हाथ में छड़ी या अस्त्र धारण करना। (२) परिधान। पहनना। जैसे, वस्त्र या आभूषण धारण करना। (३) सेवन करना। खाना या पीना। जैसे, शिवजी का विष धारण करना, औषध धारण करना। (४) अवलंबन करना। अंगीकार करना। ग्रहण करना। जैसे, पदवी धारण करना। मौन धारण करना। (५) ऋण लेना। कर्ज़ लेना। उधार लेना। (६) कश्यप के एक पुत्र का नाम। (७) शिवजी का एक नाम।

धारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धारण करने की क्रिया या भाव। (२) वह शक्ति जिससे कोई बात मन में धारण की जाती है। समझने या मन में धारण करने की वृत्ति। बुद्धि। अक्ल। समझ। (३) दृढ़ निश्चय। पक्का विचार। (४) मर्यादा। जैसे, नीति की यह धारणा है कि पानी में मुँह न देखा जाय। (५) मन या ध्यान में रखने की वृत्ति। याद। स्मृति। (६) योग के आठ अंगों में से एक। मन की वह स्थिति जिसमें कोई और भाव या विचार नहीं रह जाता, केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है। इस समय मनुष्य केवल ईश्वर का चिंतन करता है; उसमें किसी प्रकार की वासना नहीं उत्पन्न होती और न इंद्रियाँ विचलित होती हैं। यही धारणा पीछे स्थायी होकर "ध्यान" में परिणत हो जाती है। (७) बृहत्संहिता के अनुसार एक योग जो ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी से एकादशी तक एक विशिष्ट प्रकार की वायु चलने पर होता है और जिससे इस बात का पता लगता है कि आगामी वर्षा ऋतु में यथेष्ट पानी बरसेगा या नहीं। यह वर्षा के गर्भधारण का योग माना जाता है, इसी लिये इसे धारणा कहते हैं।

धारणावान्—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धारणावती] वह जिसकी धारणाशक्ति बहुत प्रबल हो। मेधाशाली।

धारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाड़िका। नाड़ी (२) श्रेणी। पंक्ति। (३) धारण करनेवाली। पृथ्वी। (४) सीधी लकीर। (५) बौद्ध तंत्र का एक अंग जो प्रायः हिंदू तंत्र के कवच के समान है और जिसका प्रचार नेपाल, तिब्बत तथा बरमा के बौद्धों में अधिकता से है। बौद्ध तांत्रिक इसे अभीष्ट सिद्धि और दीर्घ जीवन का साधन मानते हैं। इसके अधिकांश के उपदेष्टा बुद्ध और श्रोता आनंद या वज्रपाणि माने जाते हैं।

विषय जाप को जापी। भच्छ अभच्छ अपेय पान करि कबहुँ न मनसा धापी।—सूर। (ख) दूतन कह्यो बड़ो यह पापी। इनतो पाप किए हैं धापी।—सूर। (ग) कबिरा औंधी खोपड़ी कबहूँ धापै नाहिं। तीन लोक की संपदा कब आवै घर माँहि।—कबीर।

क्रि० स० संतुष्ट करना। तृप्त करना।

क्रि० अ० [सं० धावन] दौड़ना। भागना। जल्दी जल्दी चलना। उ०—द्रुमन चढ़े सब सखा पुकारत मधुर सुनावहु बैन। जनि धावहुँ बलि चरन मनोहर कठिन काँट मग ऐन।—सूर।

धावरी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] कबूतरों का दरबा।

धावा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) छत के ऊपर का कमरा। अटारी। (२) वह स्थान जहाँ पर कच्ची या पक्की रसोई (मोल) मिलती हो।

धाभाई–संज्ञा पुं० [हिं० धा = धाय + भाई] दूधभाई।

धाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्रकार के देवता। (२) विष्णु।

संज्ञा पुं० [सं० धामन्] (१) गृह। घर। मकान। (२) देह। शरीर। तन। (३) बागडोर। लगाम। (४) शोभा। (५) प्रभाव। (६) देवस्थान या पुण्यस्थान। जैसे, परम धाम, गोलोक धाम, चारो धाम आदि। (७) जन्म। (८) विष्णु। (९) ज्योति। (१०) ब्रह्म। (११) चारदीवारी। शहरपनाह। (१२) किरण। (१३) तेज। (१४) परलोक। (१५) स्वर्ग। (१६) अवस्था। गति।

धामक–संज्ञा पुं० [सं०] माशा (तौल)।

धामन–संज्ञा पुं० [देश०] (१) फालसे की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो देहरादून से आसाम तक साल आदि के जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी प्रायः बहँगी के डंडे या कुल्हाड़ी आदि के दस्ते बनाने के काम में आती है। (२) एक प्रकार का बाँस।

संज्ञा स्त्री० दे० "धामिन"

धामनिका–संज्ञा स्त्री० दे० "धमनी"।

धामनिधि–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

धामनी–संज्ञा स्त्री० दे० "धमनी"।

धामभाज्–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञस्थान में भाग लेनेवाला देवता।

धामश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ दंड से २८ दंड तक है।

धामा†–संज्ञा पुं० [हिं० धाम] भोजन का निमंत्रण। खाने का नेवता।

धामार्गव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल चिचड़ा। (२) घीया-तोरी।

धामासा–संज्ञा पुं० दे० "धमासा"।

धामिन–संज्ञा स्त्री० [हिं० धाना = दौड़ना] (१) एक प्रकार का साँप जो कुछ हरापन या पीलापन लिए सफेद रंग का होता है। यह बहुत लंबा होता है और इसकी पूँछ में बहुत विष होता है। यह काटता नहीं बल्कि पूँछ से ही कोड़े की तरह मारता है। शरीर के जिस स्थान पर इसकी पूँछ लग जाती है उस स्थान का मांस गल गल कर गिरने लगता है। यह बहुत तेज दौड़ता है। (२) एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत, राजपूताने तथा आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मेज़, कुरसी और अलमारी आदि बनाने के काम में आती है।

धामिया–संज्ञा पुं० [हिं० धाम] (१) एक पंथ का नाम। (२) इस पंथ का आदमी।

धायँ–संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी पदार्थ के जोर से गिरने या तोप बंदूक आदि छूटने का शब्द।

विशेष—खट, पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही प्रायः होता है।

धाय–संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] वह स्त्री जो किसी दूसरे के बालक को दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करने के लिये नियुक्त हो। धात्री। दाई।

संज्ञा पुं० [सं० धातकी] धवई का पेड़।

विशेष—दे० "धवई"।

धायी–संज्ञा स्त्री० दे० "धाय"।

धाय्य–संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

धाय्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वेद मंत्र जो अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़ा जाता है।

धार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जोर से पानी बरसना। जोर की वर्षा। (२) इकट्ठा किया हुआ वर्षा का जल जो वैद्यक के अनुसार त्रिदोषनाशक, लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, तृप्तिकर और पाचक तथा मूर्च्छा, तंद्रा, दाह, थकावट और प्यास आदि को दूर करनेवाला है। कहते हैं कि सावन और भादों में यह जल बहुत ही हितकारक होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह जल दो प्रकार का होता है—गांग और सामुद्र। आकाश गंगा से जल लेकर मेघ जो जल बरसाते हैं वह गांग कहलाता है और अधिक उत्तम माना जाता है, और समुद्र से जो जल लेकर मेघ वर्षा करते हैं वह जल सामुद्र कहलाता है। आश्विन मास में यदि सूर्य्य स्वाती और विशाखा नक्षत्र में हो तो उस महीने का वर्षा हुआ जल गांग होता है। इसके अतिरिक्त शेष जल सामुद्र होता है। साधारणतः सामुद्र जल खारा, नमकीन, शुक्रनाशक, दृष्टि के लिये हानिकारक,

धूम्रोर्णा । हविराकृति । सिनीवाली । कुहू । राका । अनुमति । आयाति । प्रज्ञा । सेला । वेला ।
वि० स्त्री० धारण करनेवाली ।

धारी—वि० [सं० धरिन्] [स्त्री० धारिणी] (१) धारण करनेवाला । जिसने धारण किया हो ।
विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, छत्रधारी ।
(२) किसी ग्रंथ के तात्पर्य को भली भाँति जाननेवाला । (३) ऋण लेनेवाला । कर्जदार । (४) पीलू का पेड़ ।
संज्ञा पुं० (१) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पहले तीन जगण और तब एक यगण होता है । जैसे, जु काल मँह छवि देखत बीते । तुम्हार प्रभु गुण गावत ही ते । कृपा करि देहु यहै गिरिधारी । याचौं कर जोरि सुभक्ति तिहारी । (२) दे० "धारि" (२) ।
संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] (१) सेना । फौज । (२) समूह । झुंड । (३) रेखा । लकीर । जैसे, यदि इस कपड़े पर कुछ धारियाँ होतीं तो और भी अच्छा होता ।
यौ०—धारीदार ।
(४) पुरता ।

धारीदार—वि० [हिं० धारी + फा० दार] जिसमें लंबी लंबी धारियाँ या लकीरें पड़ी अथवा बनी हों । जैसे, धारीदार मलमल ।

धारूजल—संज्ञा पुं० [डिं०] खड्ग । तलवार ।

धारोष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] थन से निकला हुआ ताजा दूध जो प्रायः कुछ गरम होता है और स्तन से निकलने के कुछ समय बाद तक गरम रहता है । वैद्यक के अनुसार ऐसा दूध अमृत के समान और श्रम हरनेवाला, निद्रा लानेवाला, वीर्य्य और पुरुषार्थ बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, अग्नि को बढ़ानेवाला, अति स्वादिष्ट और त्रिदोष को हरनेवाला होता है ।

धार्त्तराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काले रंग की चोंच और पैरोंवाला हंस । (२) एक नाग का नाम । (३) [स्त्री० धार्त्तराष्ट्री] धृतराष्ट्र के वंश का आदमी ।

धार्त्तराष्ट्रपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता । लाल रंग का लज्जालु ।

धार्म—वि० [सं०] धर्म्म संबंधी ।

धार्मिक—वि० [सं०] (१) धर्मशील । धर्मात्मा । धर्म्माचरण करनेवाला । पुण्यात्मा । जैसे, आप बड़े ही धार्मिक हैं । (२) धर्म्म-संबंधी । जैसे, धार्मिक क्रियाएँ ।

धार्मिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म्मशीलता । धार्मिक होने का भाव ।

धार्मिक्य—संज्ञा पुं० दे० "धार्मिकता" ।

धार्य—वि० [सं०] धारण करने के योग्य । धारणीय ।
संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र । कपड़ा ।

धार्ष्ट, धार्ष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टता ।

धाव—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक प्रकार का लंबा और बहुत सुंदर पेड़ जिसे गोलरा, धावरा, बकली और खरधाया भी कहते हैं ।
विशेष—दे० "धव" ।

धावक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दौड़कर चलनेवाला । हरकारा । (२) धोबी । रजक । (३) संस्कृत साहित्य के एक आचार्य्य और कवि जिनका नाम कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक तथा काव्यप्रकाश और साहित्यसार में आया है ।

धावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० धव] धव का पेड़ ।

धावण—संज्ञा पुं० [सं० धावन] दूत । हरकारा । (डिं०)

धावन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत जल्दी या दौड़ कर जाना । (२) दूत । हरकारा । चिट्ठी या सँदेसा पहुँचानेवाला । उ०—(क) द्विविद करि कोप हरि पुरी आयो । नृप सुदक्षिण जयो जरी वाराणसी धाय धावन जबहिं यह सुनायो ।—सूर । (ख) एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ । गुरु अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेस मनाइ ।—तुलसी । (३) धोने या साफ करने का काम । (४) वह चीज जिससे कोई चीज धोई या साफ की जाय । उ०—निद्रा हास्यमद रोग बोलै । तजि रदधावन झूठ न बोलै ।—विश्राम ।

धावना*—क्रि० अ० [सं० धावन = गमन] वेग से चलना । दौड़ना । भागना । जल्दी जल्दी जाना ।

धावनि*—संज्ञा स्त्री० [सं० धावन = गमन] (१) जल्दी जल्दी चलने की क्रिया या भाव । दौड़ । उ०—वा पट पीत की फहरान । कर धरि चक्र चरन की धावनि नहिं बिसरति वह बान ।—सूर । (२) धावा । चढ़ाई । उ०—सिंधु पार परे सब आनँद सों भरे कपि गाजे ढोल बाजे अब लंका पर धावनी ।—हनुमान ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन । पृश्निपर्णी लता ।

धावनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंटकारिका । कटेरी । (२) पिठवन । पृश्निपर्णी । (३) कँटीली मकोय ।

धावनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृश्निपर्णी लता । पिठवन । (२) कंटकारी । (३) धव का फूल ।

धावरा—संज्ञा पुं० दे० "धव", "धवरा" ।

धावरी*†—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] सफेद गाय । धौरी ।
वि० सफेद । उज्ज्वल । उ०—गगन लखातें बलित हैं अर्द्ध समाज तहजाल । धेनु धावरी रावरी लखि आई गोपाल ।—रामसहाय ।

धावा—संज्ञा पुं० [सं० धावन] (१) शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित तैयार होकर जाना । आक्रमण । हमला । चढ़ाई ।
मुहा०—धावा बोलना = अधिकारी का अपने सैनिकों को आक्रमण करने की आज्ञा देना ।
(२) किसी काम के लिये जल्दी जल्दी जाना । दौड़ ।

धारणीमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि।

धारणीया—वि० [सं०] धारण करने योग्य। रखने योग्य। जो धारण किया जा सके।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) धरणीकंद (२) तांत्रिकों का एक प्रकार का मंत्र जो सोने की कलम से केसर, रोचन, लाख, कस्तूरी, चंदन और हाथी के मद से लिखा जाता है। यह यंत्र पूजा के यंत्र से भिन्न होता है और शरीर पर धारण किया जाता है। ज़मीन या शव से छू जाने, जलने अथवा लांघे जाने से यह यंत्र अशुद्ध हो जाता है और धारण करने के योग्य नहीं रहता।

धारधूरा—संज्ञा पुं० [हिं० धार + धूरा (धूल)] नदी की रेत से बनी हुई या नदी के हट जाने से निकली हुई ज़मीन। गंगबरार।

धारन-संज्ञा पुं० [सं० धारण] (१) हाथी के खिलाने के लिये तैयार की हुई दवा। (२) दे० "धारण"।

धारना*—क्रि० स० [सं० धारण] (१) धारण करना। अपने ऊपर लेना। (२) ऋण करना। उधार लेना।

क्रि० स० दे० "ढारना"।

धारयिता—संज्ञा पुं० [सं० धारयितृ] [स्त्री० धारयित्री] धारण करनेवाला।

धारयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धारण करनेवाली। (२) पृथ्वी।

धारस—संज्ञा स्त्री० दे० "ढारस"।

धारांकुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरल का गोंद। (२) घनोपल। ओला। बिनौरी।

धारांग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (२) खड्ग।

धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े की चाल। घोड़े का चलना।

विशेष—प्राचीन भारतवासियों ने घोड़ों की पाँच प्रकार की चालें मानी थीं—आस्कंदित, धौरितक, रेचित, वल्गित और प्लुत।

(२) किसी द्रव पदार्थ की गति-परंपरा। पानी आदि का बहाव या गिराव। अखंड प्रवाह। धार। (३) लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ। (४) पानी का झरना। सोता। चश्मा। (५) काटनेवाले हथियार का तेज़ सिरा। बाढ़। धार। (६) बहुत अधिक वर्षा। (७) समूह। झुंड। (८) सेना अथवा उस का अगला भाग। (९) घड़े आदि में बनाया हुआ छेद या सूराख। (१०) संतान। औलाद। (११) उत्कर्ष। उन्नति। तरक्की। (१२) रथ का पहिया। (१३) यश। कीर्ति। (१४) प्राचीन काल की एक नगरी का नाम जो दक्षिण देश में थी। (१५) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। (१६) वाक्यावलि। पंक्ति। (१७) लकीर। रेखा। (१८) पहाड़ की चोटी। (१९) मालवा की एक राजधानी जो राजा भोज के समय में प्रसिद्ध थी। कहते हैं कि भोज ही उज्जयिनी से राजधानी धारा लाए थे।

धाराकदंब—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदम का पेड़।

धारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या घर जिसमें फुहारा लगा हो।

धाराट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चातक। (२) मेघ। बादल। (३) घोड़ा। (४) मस्त हाथी।

धाराधर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) खड्ग। तलवार।

धारापूप—संज्ञा पुं० [सं] एक प्रकार का पूआ (पकवान) जो मैदे को घी मिले हुए दूध में सान कर और तब घी में छान कर बनाया जाता है और जिसमें पीछे से खाँड़ या चीनी मिला दी जाती है। भावप्रकाश के अनुसार यह बलकारक, रुचिकारक और पित्त तथा वातनाशक है।

धाराफल—संज्ञा पुं० [सं०] मदन वृक्ष। मैनफल वृक्ष।

धारायंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिससे पानी की धार छूटे। फुहारा।

धाराल—वि० [सं०] जिसकी धार तेज हो। धारदार (हथियार)।

धाराली—संज्ञा स्त्री० [सं० धाराल] (१) तलवार। खड्ग। (२) कटारी। (हिं०)

धारावनि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

धारावर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

धारावाही—वि० [सं०] जो धारा के रूप में आगे बढ़ता हो। बिना रोक टोक बढ़ने या चलनेवाला।

धाराविष—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। तलवार।

धारासंपात—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज और अधिक वृष्टि। ज़ोरों की बारिश।

धारासार—वि० [सं०] लगातार वृष्टि। बराबर पानी बरसना।

धारास्नुही— संज्ञा स्त्री० [सं०] तिधारा थूहर।

धारि*—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] (१) दे० "धार"। (२) समूह। झुंड। उ०—(क) धावो धावो धरो सुनि धाए जातुधान वारिधार उलटे दे जलद ज्यों नसावनो।—तुलसी। (ख) रामकृपा अवरेब सुधारी। विबुध धारि भइ गुनद गोहारी।—तुलसी। (३) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण और एक लघु होता है। जैसे, री सखी न। जात कौन। वस्त्र हारि। मौन धारि।

धारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धरणी। पृथ्वी भूमि। जमीन। (२) शाल्मली। सेमर का पेड़। (३) चौदह देवताओं की स्त्रियाँ जिनके नाम ये हैं—शची। वनस्पति। गार्गी।

वि० (१) मजबूत। जोरावर। (२) शरीर। बदमाश। उपद्रवी। (३) कुमार्गी। पापी। बुरा। उ०—अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।—तुलसी।

धींगधुकड़ी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० धींग] (१) धींगामुश्ती। (२) पाजीपन।

धींगरा–संज्ञा पुं० [सं० डिंगर] (१) हट्टा कट्टा। मुसंड। मोटा ताज़ा। (२) शठ। बदमाश। कुकर्मी। गुंडा।

धींगरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० धींग + री (प्रत्य०)] पाजी। उपद्रव करनेवाली स्त्री। उ०—धींग तुम्हारो पूत धींगरी हमको कीन्ही।—सूर।

धींगा–संज्ञा पुं० [सं० डिंगर = शठ] शरीर। बदमाश। उपद्रवी। पाजी।

यौ०—धींगामुश्ती।

धींगाधींगी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धींग] (१) शरारत। बदमाशी। उपद्रव। पाजीपन (२) जबरदस्ती। बल-प्रयोग।

धींगामुश्ती–संज्ञा स्त्री० [हिं० धींगा + मस्ती] (१) शरारत। बदमाशी। उपद्रव। पाजीपन। (२) जबरदस्ती लड़ना। हाथा-बाँही।

धींगड़–†वि० [सं० डिंगर] [स्त्री० धींगड़ी] (१) पाजी। बदमाश। दुष्ट। (२) हट्टा कट्टा। हृष्ट पुष्ट। (३) वर्णसंकर। दोगला। हरामी।

धींगड़ा–संज्ञा पुं० दे० "धींगड़"।

धींद्रिय–संज्ञा स्त्री [सं०] वह इंद्रिय जिससे किसी बात का ज्ञान प्राप्त किया जाय। जैसे, मन, आँख, कान, त्वक्, जीभ, नाक। ज्ञानेंद्रिय।

धींवर–संज्ञा पुं० दे० "धीवर"।

धी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। अक्ल। समझ।

विशेष—दे० "बुद्धि"।

(२) मन। (३) कर्म।

संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीआ] लड़की। बेटी।

धीआ–संज्ञा स्त्री० दे० "धीया"।

धीजना–क्रि० स० [सं० धृ, धार्य्य, धैर्य्य।] (१) ग्रहण करना। स्वीकार करना। अंगीकार करना। उ०—(क) पानी लैके चल्यो विप्र छिप्रबहि पुरी गयो, भयो चाव जान्यो परै कैसे तिया धीजिए। कहो तुम जाइ रानी बैठी सन आई मोको बोल्यौ न सोहाय प्रभु सेवा मांझ भीजिए।—प्रियादास। (ख) धरियाहूँ धीजूँ नहीं गहूँ अधर की बाहिं। धरिया अधर पहिचानियाँ तौ कछु धरावहि नाहिं।—कबीर। (२) धीरज धरना। धैर्य्य-युक्त होना। उ०—आप मिली अलिन में, लालन को ध्यान हिये, पिये मद मानो गृह आई तब धीजी है।—प्रियादास। (३) अति प्रसन्न होना। संतुष्ट होना। उ०—(क) धरे सब आय प्रभु सुकर बनाय दियो कियो सर्वोपरि लै चल्यो मति धीजिए।—प्रियादास। (ख) उज्ज्वल देखि न धीजिए बग ज्यो माँड़े ध्यान। धौरे बैठि चपेटिसी यों लै बूड़े ज्ञान।—कबीर।

धीत–वि० [सं०] (१) जो पिया गया हो। (२) जिसका अनादर हुआ हो। (३) जिसकी आराधना की जाय।

धीति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पान करने की क्रिया। पीना। (२) प्यास।

धीदा–संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता का प्रा० रूप] (१) कन्या। कुँआरी लड़की। (२) पुत्री। बेटी।

धीन–संज्ञा पुं० [हिं०] लोहा। (डिं०)

धीपति–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

धीम०†–वि० दे० "धीमा"।

धीमर–संज्ञा पुं० दे० "धीवर"। उ०—धरे मच्छ पढ़िना औ रोहू। धीमर धरत करै नहिं छोहू।—जायसी।

धीमा–वि० [सं० मध्यम] [स्त्री० धीमी] (१) जिसका वेग या गति मंद हो। जिसकी चाल में बहुत तेजी न हो। जो आहिस्तः चले। जैसे, धीमी चाल, धीमी हवा। (२) जो अधिक प्रचंड, तीव्र या उग्र न हो। हलका। जैसे, धीमी आँच, धीमी रोशनी। (३) कुछ नीचा और साधारण से कम (स्वर)। जैसे, धीमा स्वर, धीमी आवाज़। (४) जिसका जोर घट गया हो। जिसकी तेजी कम हो गई हो। जैसे, (क) पहले तो वह बहुत बिगड़ा पर पीछे धीमा हो गया। (ख) जब उनका गुस्सा कुछ धीमा हुआ तब उसने सारा हाल उनसे कह सुनाया।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

धीमा तिताला–संज्ञा पुं० [हिं० धीमा + तिताला] संगीत में सोलह मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली होता है। इसके मृदंग के बोल ये हैं,—

× २ ०
धेन धेत धेने नाग, द्गे तेटे केटे ताग, गेदेंताक धागे; तेरे क तादि धेने। और इसके तबले के बोल ये हैं,—

× २
धा दिन दिन धा, दिन् धागे तेरेकेटे दिन नादिन तिन ता,
१ ×
दिन धागे तेरेकेटे दिन। धा॥

धीमान्–संज्ञा पुं० [सं० धीमत्] [स्त्री० धीमती] (१) बृहस्पति। (२) बुद्धिमान्। समझदार। अक्लमंद।

धीय–†संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] (१) दे० "धी"। (२) जमाई। जामाता। दामाद। (डिं०)

धीया–संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीदा, धीया] लड़की। बेटी।

धीर–वि० [सं०] जिसमें धैर्य्य हो। जो जल्दी घबरा न जाय। दृढ़ और शांत चित्तवाला। (२) बलवान्। ताकतवर।

मुहा०—धावा मारना = जल्दी जल्दी चलना। जैसे, इस धूप में हम तीन कोस का धावा मार कर आ रहे हैं।

धाह–संज्ञा स्त्री० [अनु०] जोर से चिल्ला कर रोना। धाड़। उ०—(क) देखे नंद चले घर आवत। पैठत पौरि छींक भइ बाँई रोइ दाहिने धाह सुनावत।—सूर। (ख) ऊनै आई बाहरी बरसन लगा अँगार। ऊठि कबीरा धाह दै दाझत है संसार।—कबीर। (ग) जिन्ह रिपु मारि सुरारि नारि तेइ सीस उघारि दिवाईं धाहैं।—तुलसी।

धाही*†–संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। धाय। उ०—तस्य देवान धृष्टबुधि नामा। रही आइ धाही तेहि धामा।—विश्राम।

धिंग संज्ञा स्त्री० [सं०दढांग या धींगा धींगी अनु०] धींगा धींगी। ऊधम। उपद्रव। शरारत। उ०—अरु त्यों भवानी सिंह। गढ़ लैन इच्छिय धिंग।—सूदन।

धिंगरा–संज्ञा पुं० दे० "धींगरा"।

धिंगा†–संज्ञा पुं० [सं० दढांग] (१) बदमाश। शरीर। उपद्रवी। (२) बेशर्म। निर्लज्ज।

धिंगाई–संज्ञा स्त्री० [सं० दढांगी] (१) शरारत। उपद्रव। ऊधम। बदमाशी। उ०—जानि बूझि इन करी धिंगाई। मेरी बलि पर्वतहि चढ़ाई।—सूर। (२) बेशर्मी। निर्लज्जता।

धिंगाधिंगी–संज्ञा स्त्री० दे० "धींगा धींगी"।

धिंगाना†–संज्ञा पुं० [हिं० धिंग] धींगा धींगी करना। उपद्रव करना। ऊधम मचाना।

धिंगी†–संज्ञा स्त्री० [सं० दढांगी] बदमाश स्त्री। निर्लज्ज स्त्री। हुड़दंगी।

धिआ†–संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीआ] (१) बेटी। कन्या। (२) कोई छोटी लड़की।

धिआन*†–संज्ञा पुं० दे० "ध्यान"।

धिआना†*क्रि० स० दे० "ध्याना" या "ध्यावना"।

धिक्–अव्य० [सं०] (१) तिरस्कार, अनादर या घृणासूचक एक शब्द। लानत। (२) निंदा। शिकायत।

धिक–अव्य [सं० धिक्] धिक्। लानत। उ०—धिक धर्मध्वज धंधकधोरी।—तुलसी।

धिकना†–क्रि० अ० [सं० दग्ध या हिं० दहकना] गरम होना। तप्त होना। आग की गरमी से लाल हो जाना। उ०—जरहिं जो पर्वत लाग अकासा। बनखँड धिकहिं पलास कोपासा।—जायसी।

धिकाना†–क्रि० स० [सं दग्ध या हिं० दहकाना] तपाना। खूब गरम करना। तपा कर लाल करना।

धिकार–संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार, अनादर या घृणाव्यंजक शब्द। लानत। फटकार।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

धिक्कारना–क्रि० स० [सं० धिक्] "धिक्" कह कर बहुत तिरस्कार करना। बहुत बुरा भला कहना। लानत मलामत करना। फटकारना।

धिक्कृत–वि० [सं०] जो धिकारा जाय। जिसे "धिक्" कहा जाय। जिसका तिरस्कार हो।

धिक्क्रिया–संज्ञा स्त्री० दे० "धिकार"।

धिग*–अव्य० दे० "धिक्" या "धिकार"।

धिग्वण–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संकर जाति जो ब्राह्मण पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न मानी जाती है।

धिमचा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की हुमची।

धिय*–संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] (१) कन्या। बेटी। उ०—शमी गरभ में अनल ज्यों त्यों तेरी धिय संत। धारति तेज दियो जो नृप प्रजा हेत दुष्यंत।—लक्ष्मणसिंह। (२) लड़की। बालिका।

धिया–संज्ञा स्त्री० दे० "धिय"।

धिरकार†–संज्ञा स्त्री० दे० "धिकार"।

धिरवना†–क्रि० स० [सं० धर्षण] धमकाना। उ०—(क) समय परे की बात बाज कहँ धिरवै फुदकी।—गिरधर। (ख) सुख झगरति आनंद उर धिरवति है घर जाहु।—सूर। (ग) कोउ उठि भागत पुनि नहिं आवत धिरवत अँगुलि दिखाई।—रघुराज।

धिराना*†–क्रि० स० [हिं० धिरवना] डराना। धमकाना। भय दिखाना। उ०—(क) जाति पाँति सों कहा अचगरी यह कहि सुतहिँ धिरावति।—सूर। (ख) भ्राता मारन मोहिं धिरावै देखे मोहिं न भावत।—सूर।

क्रि० अ० [सं० धीर] (१) धीमा होना। गति में मंद पड़ना। उ०—उपचार विचार किये न धिरानी।—केशव। (२) स्थिर होना। धैर्य धारण करना।

धियावसु–संज्ञा पुं० [सं०] सरस्वती के वर्ग के एक वैदिक देवता जो "धी" अर्थात् बुद्धि के देवता माने जाते हैं।

धिषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) ब्रह्मा। (३) नारायण। विष्णु। (४) गुरु। शिक्षक।

वि० [सं०] बुद्धिमान्। अक्लमंद। समझदार।

धिषणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बुद्धि। अक्ल। (२) स्तुति। (३) वाक्शक्ति। (४) पृथ्वी। (५) स्थान।

धिषणाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

धिष्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान। जगह। (२) घर। (३) नक्षत्र। (४) आग। (५) शक्ति। (६) शुक्राचार्य्य।

धींग–संज्ञा पुं० [सं० डिंगर = शठ या दढांग] हट्टा कट्टा मनुष्य। उ०—धींगरी धींग चाचरि करैं मोहि बुलावत साखि।—सूर।

जिसके कारण ज्योति मंद हो जाती है और कोई वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती।

धुंधक–संज्ञा पुं० दे० "धुंध"।

धुँधका–संज्ञा पुं० [हिं० धूआँ] दीवार या छत आदि में बना हुआ वह बड़ा छेद जो धूआँ निकलने के लिये बनाया जाता है। धोंधका। धुँवारा।

धुंधकार–संज्ञा पुं० [हिं० धुंकार] (१) धुंकार। गरज। गड़गड़ाहट। (२) अंधकार। अँधेरा।

धुंधमार–संज्ञा पुं० दे० "धुंधुमार"।

धुंधमाल–संज्ञा पुं० दे० "धुंधुमार"।

धुंधर–† संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध] (१) गर्द-गुबार। हवा में उड़ती हुई धूल। (२) गर्द या धूल उड़ने के कारण होनेवाला अँधेरा। तारीकी।

धुँधराना–क्रि० अ० दे० "धुँधलाना"। उ०—नवपल्लव दीतन धुंधराये। होम धुआँ जिन ऊपर छाये।—लछमणसिंह।

धुँधलका–† वि० दे० "धुंधला"।

धुँधला–वि० [हिं० धुंध+ला] (१) कुछ कुछ काला। धूएँ के रंग का। (२) अस्पष्ट। जो साफ दिखाई न दे। (३) कुछ कुछ अँधेरा।

मुहा०—धुंधले का वक्त=वह समय जब कि कुछ अँधेरा हो जाय और स्पष्ट दिखाई न दे। बहुत सबेरे या संध्या का समय।

धुंधलाई–संज्ञा स्त्री० दे० "धुंधलापन"।

धुँधलाना–क्रि० अ० [हिं० धुँधला] धुँधला पड़ना।

धुँधलापन–संज्ञा पुं० [हिं० धुंधला+पन] धुँधले या अस्पष्ट होने का भाव। कम दिखाई देने का भाव।

धुंधली–संज्ञा स्त्री० दे० "धुंध"।

धुंधु–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो मधु राक्षस का पुत्र था। हरिवंश में लिखा है कि धुंधु एक बार एक मरुभूमि में बालू के नीचे छिप कर संसार को नष्ट करने की कामना से कठिन तपस्या कर रहा था। वह जब साँस लेता था तब उसके साथ धुआँ और अंगारे निकलते थे, भूकंप होता था और बड़े बड़े पहाड़ तक हिलने लगते थे। जब महाराज बृहदश्व वानप्रस्थ ग्रहण करके और अपना राज्य अपने लड़के कुवलयाश्व को देकर वन की ओर जाने लगे तब महर्षि उतंक ने जाकर उनसे धुंधु की शिकायत की और कहा कि यदि आप इस दुष्ट राक्षस को न मारेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। बृहदश्व ने कहा कि मैं तो वानप्रस्थ ग्रहण कर चुका हूँ और अब अस्त्र नहीं उठा सकता; हाँ, मेरा लड़का कुवलयाश्व उसे अवश्य मार डालेगा। तदनुसार कुवलयाश्व अपने सौ लड़कों को लेकर उतंक के साथ धुंधु को मारने चला। उसी समय विष्णु ने भी लोकहित के विचार से उसके शरीर में प्रवेश किया था। कुवलयाश्व और उसके लड़कों को देख कर धुंधु क्रोध से फुफकार छोड़ने लगा जिससे कुवलयाश्व के ९७ लड़के मर गए। अंत में कुवलयाश्व ने उसे मार डाला। तभी से कुवलयाश्व का नाम धुंधुमार पड़ गया।

धुंधुकार–संज्ञा पुं० [हिं० धुंधु+कार] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) धुँधलापन (३) नगाड़े का शब्द। धुंकार। उ०—धराधर हालै धरधर धुंधुकारन सों धीर नर तजैंगे धरैया बल बाँह के।—गुमान।

धुंधुमार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा त्रिशंकु का पुत्र। (२) कुवलयाश्व का एक नाम।

विशेष—दे० "धुंधु"

धुंधुरि–* † संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध] गर्द गुबार या धूएँ के कारण होनेवाला अँधेरा। उ०—(क) ढोल बजावती गावती गीत मचावती धुंधुरि धूरि के धारनि।—द्विजदेव। (ख) बीर अबीर की धुंधुरि में कछु फेर सों कै मुख फेरि कै झाँकी।—पद्माकर। (ग) विकट कटक सजि नल के चलत दल धुंधुरि प्रताप छिपो धूम मलिनाई है।—गुमान।

धुंधुरित–वि० [हिं० धुंधुर] (१) धुँधला किया हुआ। धूमिल। उ०—भुवन धुंधुरित धूलि धूलि धुंधुरित सुधूमहु।—पद्माकर। (२) दृष्टिहीन। धुँधली दृष्टिवाला। उ०—कवि गुलाल सों धुंधुरित सकल ग्वालिनी ग्वाल। रोरी मीड़न के सुमिस गोरी गहे गोपाल।—पद्माकर।

धुँधरी–संज्ञा स्त्री० [धुंधुरि] (१) गर्द गुबार से उत्पन्न अँधेरा। (२) धुंधलापन। (३) आँख का धुंध नामक रोग।

धुंधुवाना*†–क्रि० अ० [सं० धूम्र, हिं० धुआँ] धुआँ देना। धुआँ दे देकर जलना। उ०—चिंता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुँधुवाय।—गिरिधर।

धुँधेरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध वा धुंधुरि] धुंध। गर्द गुबार के कारण होनेवाला अँधेरा। उ०—दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि, धूरि की धुँधेरी सों अँधेरी आभा भानु की।—गुमान

धुँधेला†–संज्ञा पुं० [हिं० धुंध+ऐला (प्रत्य०)] (१) बदमाश। पाजी। (२) दगाबाज़। धोखेबाज़।

धुँवाँ–संज्ञा पुं० दे० "धुआँ"।

धुँवाँकश–संज्ञा पुं० दे० "धुआँकश"।

धुँवाँदान–संज्ञा पुं० दे० "धुआँदान"।

धुँवाधार–वि० और क्रि० वि० दे० "धुआँधार"।

धुअ*–संज्ञा पुं० दे० "ध्रुव"।

धुआँ–संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] (१) सुलगती या जलती* हुई चीज़ों से निकल कर हवा में मिलनेवाली भाप जो कोयले के सूक्ष्म अणुओं से लदी रहने के कारण कुछ नीलापन या

(३) विनीत। नम्र। (४) गंभीर। (५) मनोहर। सुंदर। (६) मंद। धीमा।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) केसर। (२) ऋषभ औषध। (३) मंत्र। (४) राजा बलि।
*†संज्ञा पुं० [सं० धैर्य्य] (१) धैर्य्य। धीरज। ढाढ़स। मन की स्थिरता। (२) संतोष। सब्र।
क्रि० प्र०—करना।—धरना।—रखना।

धीरज-†*संज्ञा पुं० दे० "धैर्य्य"।

धीरजमान-संज्ञा पुं० दे० "धैर्य्यवान्" या "धीर"।

धीरट-संज्ञा पुं० [?] हंस पक्षी। (डिं०)

धीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चित्त की स्थिरता। मन की दृढ़ता। धैर्य्य। (२) स्थिरता। (३) संतोष। सब्र।

धीरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] धीर होने का भाव। धीरता।

धीरपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीकंद।

धीरललित-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सदा खूब बना ठना और प्रसन्नचित्त रहता हो।

धीरशांत-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सुशील, दयावान्, गुणवान् और पुण्यवान् हो।

धीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साहित्य में वह नायिका जो अपने नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देख कर व्यंग्य से कोप प्रकाशित करे। ताने से अपना क्रोध प्रकट करनेवाली नायिका। (२) गुरिच। गिलोय (३) काकोली। (४) मालकँगनी।
वि० [सं० धीर] मंद। धीमा।
संज्ञा [सं० धैर्य] धीरज। धैर्य्य।

धीराधीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो अपने नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देख कर कुछ गुप्त और कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध जतला दे।

धीरावी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

धीरी-संज्ञा स्त्री० [?] आँख की पुतली।

धीरे-क्रि० वि० [हिं० धीर] (१) आहिस्ते से। मंद मंद। धीमी गति से। 'जोर से' का उलटा। (२) चुपके से। इस प्रकार जिसमें कोई सुन या देख न सके। इस प्रकार जिसमें किसी को आहट न मिले। जैसे, धीरे से चल दो।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग कहीं कहीं एक साथ दो बार भी होता है। जैसे, धीरे धीरे चलो, धीरे धीरे बोलो।

धीरोदात्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साहित्य के अनुसार वह नायक जो निरभिमानी, दयालु, क्षमाशील, बलवान्, धीर, दृढ़ और योद्धा हो। जैसे, रामचंद्र, युधिष्ठिर आदि। (२) वीर-रस-प्रधान नाटक का मुख्य नायक।

धीरोद्धत-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो बहुत प्रचंड और चंचल हो और दूसरे का गर्व न सह सके और सदा अपने ही गुणों का बखान किया करे। जैसे, भीमसेन।

धीर्य†*-संज्ञा पुं० [सं०] कातर।
*संज्ञा पुं० दे० "धैर्य्य"।

धीवर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धीवरी] (१) एक जाति विशेष जो प्रायः मछली पकड़ने और बेंचने का काम करती है। इस जाति का छुआ जल द्विज लोग ग्रहण करते हैं। मछुवा। मल्लाह। केवट। (२) खिदमतगार। सेवक। (३) काला मनुष्य। (४) मत्स्यपुराण के अनुसार एक देश। (५) उक्त देश का निवासी।

धीवरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मल्लाहिन। (२) मछली मारने की कटिया।

धुँआँ-संज्ञा पुं० दे० "धुआँ"।

धुँई-† संज्ञा स्त्री० दे० "धूनी"।

धुंकार-संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि + कार] जोर का शब्द। गरज। गड़गड़ाहट। उ०—(क) धुंकार धौंसन की बड़ी हुंकार भूमिपतीन की।—गोपाल। (ख) कहै पद्माकर त्यौं दुंदुभी धुंकार सुनि अकबक बोलै यौं गनीम औ गुनाही हैं।—पद्माकर।

धुँगार-संज्ञा स्त्री० [सं० धूम्र + आधार] बघार। तड़का। छौंक। उ०—तुरई चचेंड़े ढेंड़स तरे। जीर धुंगार मेल सब धरे।—जायसी।

धुँगारना-क्रि० स० [हिं० धुँगार] बघारना। छौंकना। तड़का देना। उ०—छाछि छबीली धरी धुँगारी। झहरैं उठत झार की न्यारी।—सूर।
क्रि० स० [अनु०] मारना। पीटना।

धुंजा-वि० [हिं० धुंध] धुंधली। मंद दृष्टि। उ०—बिनु गोपाल बैरिनि भइ कुंजैं।..................सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को मग जोवत अँखियाँ भइ धुंजैं।—सूर।

धुंद-संज्ञा स्त्री० दे० "धुंध"।
संज्ञा पुं० दे० "दुंद"।

धुंदा-वि० [हिं० धुंध] अंधा।

धुंदुल-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक पेड़ जो बंगाल और मलाबार में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी सफेद रंग की होती है और गाड़ियों के पहिए तथा मेज कुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसके फलों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो जलाया और सिर में लगाया जाता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

धुंध-संज्ञा स्त्री० [सं० धूम्र + अंध] (१) वह अँधेरा जो हवा में मिली धूल के कारण हो।
यौ०—अँधाधुंध।
(२) हवा में उड़ती हुई धूल। (३) आँख का एक रोग

क्रि० स० [सं० धूम + करण] धूनी देना।

धुकार-संज्ञा स्त्री० [धु से अनु०] नगाड़े का शब्द। उ०—दै दुंदुभी धुकार गगन महँ बरसै फूल अमाने।—रघुराज।

धुकारी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "धुकार"।

धुक्कना*†-क्रि० अ० दे० "धुकना"।

धुक्कारना*†-क्रि० अ० दे० "धुकाना"

धुगधुगी-संज्ञा स्त्री० दे० "धुकधुकी"।

धुज*-संज्ञा पुं० दे० "ध्वजा"।

धुजा*†-संज्ञा स्त्री० दे० "ध्वजा"।

धुजिनी*†-संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजा] सेना। फौज। उ०—कपि धुजिनी महँ धँसे धाय खल खलभल भयो न थोरा।—रघुराज।

धुड़ंगी-*† वि० [हिं० धूर + अंगी] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, केवल धूल ही धूल हो।

धुत-अव्य० दे० "दुत"।

धुतकार-संज्ञा स्त्री० दे० "दुतकार"।

धुतकारना-क्रि० स० दे० "दुतकारना"।

धुताई*†-संज्ञा स्त्री० दे० "धूर्त्तता"।

धुतू-संज्ञा पुं० दे० "धूतू"।

धुतूरा-संज्ञा पुं० दे० "धतूरा"।

धुत्ता†-संज्ञा पुं० [सं० धूर्त्तता] धूर्त्तता। दगाबाजी। कपट। छल।
क्रि० प्र०—देना।—बताना।
संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

धुधुकार-संज्ञा स्त्री० [धुधु से अनु०] (१) धू धू शब्द का शोर। (२) घोर शब्द। कड़ा शब्द। गरज के समान शब्द। उ०—बाजन अबाजन को कहाँ लौं गनावै कोउ धमकनि धौंसा की धुकारन की धुधुकार।—गोपाल।

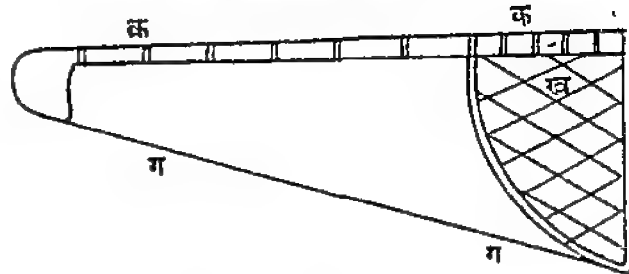
धुधुकारी-संज्ञा स्त्री० दे० "धुधुकार"। उ०—माची धौंसन की धुधुकारी।—रघुराज।

धुधुकी-संज्ञा स्त्री० दे० "धुधुकार"।

धुन-संज्ञा पुं० [सं०] काँपने की क्रिया या भाव। कंपन।
संज्ञा स्त्री० [हिं० धुनना] (१) किसी काम को निरंतर करते रहने की अनिवार्य प्रवृत्ति। बिना आगा पीछा सोचे और रुके कोई काम करते रहने की इच्छा। लगन। जैसे, आज कल उन्हें रुपया पैदा करने की धुन है।
क्रि० प्र०—लगना।—समाना।
यौ०—धुन का पक्का = वह जो आरंभ किए हुए काम को बिना पूरा किए न छोड़े।
(२) मन की तरंग। मौज। जैसे, धुन ही तो है, उठे और चल पड़े। (३) सोच। विचार। फिक्र। चिंता। ख़याल। जैसे, इस समय वे किसी धुन में बैठे हैं, उनसे बोलना ठीक नहीं है।
संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] (१) स्वरों के उतार चढ़ाव आदि के विचार से किसी गीत को गाने का ढंग। गाने का तर्ज़। जैसे, यह भजन कई धुनों में गाया जा सकता है। (२) संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। (३) दे० "ध्वनि"

धुनकना-क्रि० स० दे० "धुनना"।

धुनकी-संज्ञा स्त्री० [सं० धनुस्] (१) धुनियों का वह धनुस के आकार का औज़ार जिससे वे रुई धुनते हैं। पिंजा। फटका।





विशेष—इसमें (दे० चित्र) क क हलकी पर मज़बूत लकड़ी का एक डंडा होता है और इसके सिरे पर काठ का एक और टुकड़ा ख होता है। इस सिरे से क क लकड़ी के दूसरे सिरे तक एक ताँत ग ग खूब कस कर बँधी होती है। धुननेवाला क क डंडे को बाएँ हाथ में पकड़ कर उकड़ूँ बैठ जाता है और ताँत को रुई के ढेर पर रख कर उस पर बार बार प्रायः हाथ भर लंबी लकड़ी के एक दस्ते से, जिसके दोनों सिरे अधिक मोटे और लट्टूदार होते हैं और जिसे मुठिया, बेलन या हत्था कहते हैं, आघात करता है जिससे रुई के रेशे अलग अलग हो जाते और बिनौले निकल जाते हैं। कभी कभी अधिक सुबीते के लिये क क डंडे को ऊपर छत में लटकते हुए किसी छोटे धनुष से भी बाँध देते हैं।
(२) छोटा धनुस् जो प्रायः लड़कों के खेलने अथवा कभी कभी थोड़ी बहुत रुई धुनने के भी काम में आता है।

धुनना-क्रि० स० [हिं धुनकी] (१) धुनकी से रुई साफ करना जिसमें उसके बिनौले अलग हो जाँय, गर्द निकल जाय और रेशे अलग अलग हो जाँय। (२) खूब मारना पीटना।
मुहा०—सिर धुनना = दे० "सिर" के मुहा०।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।
(३) बार बार कहना। कहते ही जाना। जैसे, तुम तो अपनी ही धुनते हो, दूसरे की सुनते ही नहीं। (४) किसी काम को बिना रुके बराबर करते जाना। जैसे, धुने चलो अब थोड़ी ही दूर है।

कालापन लिए होती है। धूम। उ०—चिंता ज्वाल शरीर वन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुँधुवाय।—गिरिधर।

क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—होना।

मुहा०—धुएँ का धौरहर=थोड़े ही काल में मिटने या नष्ट होनेवाली वस्तु या आयोजन। क्षणभंगुर वस्तु। उ०—(क) कबिरा हरि की भक्ति बिन धिक जीवन संसार। धूआँ का सा धौरहर जात न लागै बार।—कबीर। (ख) धुआँ को सो धौरहर देखि तू न भूल रे।—तुलसी। धुएँ के बादल उड़ाना=भारी गप हाँकना। झूठ मूठ बड़ी बड़ी बातें कहना। धुआँ देना=(१) सुलगती हुई वस्तु का धुआँ छोड़ना। धुआँ निकालना। जैसे, यह तेल जलने में बहुत धुआँ देता है। (२) धुआँ लगाना। धुआँ पहुँचाना। जैसे, उसकी नाक में मिर्चों का धुआँ दो। धुआँ निकालना या काढ़ना=बढ़ बढ़ कर बातें कहना। शेखी हाँकना। उ०—जस अपने मुँह काढ़े धुआँ। चाहेसि परा नरक के कुआँ।—जायसी। धुआँ रमना=धुएँ का छाया रहना। धुआँ सा मुँह होना=चेहरे की रंगत उड़ जाना। चेहरा फीका पड़ जाना। लज्जा से मुख मलिन हो जाना। (किसी वस्तु का) धुआँ होना=काला पड़ना। साँवरा होना। धूमला होना। मुँह धुआँ होना=देखो "धुआँ सा मुँह होना"।

(२) घटाटोप। उमड़ती हुई वस्तु। भारी समूह। (३) धुर्रा। धज्जी। उ०—धुआँ देखि खरदूषण केरा। जाय सुपनखा रावण प्रेरा।—तुलसी।

मुहा०—धुएँ उड़ाना=धज्जियाँ उड़ाना। छिन्न भिन्न करना। टुकड़े टुकड़े करना। नाश करना। धुएँ बखेरना=दे० धुएँ उड़ाना।

धुआँकश–संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ+फा० कश=खींचना] भाप के ज़ोर से चलनेवाली नाव या जहाज़। अगिनबोट। स्टीमर।

धुआँदान–संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ+सं० आधान से हिं० प्रत्य० दान] छत में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद। चिमनी।

धुआँधार–वि० [हिं० धुआँ+धार] (१) धुएँ से भरा। धूममय। (२) गहरे रंग का। भड़कीला। तड़क भड़क का। भव्य। (३) धुएँ का सा। काला। स्याह। (४) बड़े ज़ोर का। बड़े वेग का और बहुत अधिक। प्रचंड। घोर। जैसे, धुआँधार वर्षा, धुआँधार घटा, धुआँधार नशा।

क्रि० वि० बड़े वेग से और बहुत अधिक। बहुत ज़ोर से। जैसे, धुआँधार बरसना।

धुआँना–क्रि० अ० [हिं० धुआँ+ना (प्रत्य०)] धुएँ से बस जाना। अधिक धुएँ में रहने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ जाना। (पकवान आदि के लिये)

धुआँयँध–वि० [हिं धुआं+गंध] जिसमें धुएँ की महँक बस गई हो। धुएँ की तरह महँकनेवाला।

संज्ञा स्त्री० अन्न न पचने के कारण आनेवाली डकार। धूम।

धुआँरा–संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ] छत में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या खिड़की। चिमनी।

धुआँस–संज्ञा स्त्री० दे० "धुर्वांस"

धुआँसा–संज्ञा पुं० [हिं धुआँ] घर की छत में जमी हुई धुएँ की कजली। आग जलने के स्थान के ऊपर की छत में जमा कालिख या धूआँ।

वि० धुएँ से बसा हुआ। आँच ठीक न लगने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ा हुआ। (पकवान आदि के लिये)

धुक–संज्ञा स्त्री० [देश०] कलाबत्तू बटने की सलाई।

धुकड़ पुकड़–संज्ञा पुं० [अनु०] (१) भय आदि की आशंका से होनेवाली चित्त की अस्थिरता। घबराहट। (२) आगा-पीछा। पसोपेश।

धुकड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी थैली। बटुआ।

धुकधुकी–संज्ञा स्त्री० [धुकधुक से अनु०] (१) वक्षस्थल का वह भाग जो नीचे होता है। पेट और छाती के बीच का भाग जो कुछ गहरा सा होता है। (२) कलेजा। हृदय। (३) कलेजे की धड़कन। कंप। (४) डर। भय। खौफ।

क्रि० प्र०—लगना।

(५) एक गहना जो गले में पहना जाता है और छाती पर लटकता रहता है। पदिक। जुगनू।

धुकना*†–क्रि० अ० [हिं० झुकना] (१) झुकना। नीचे की ओर ढलना। निहुरना। नवना। उ०—डगमगात गिरि परत पइन पर भुज भ्राज नँदलाल। जनु श्रीधर श्रीधरत अधोमुख धुकत धरनि मानो नमि नाल।—सूर। (२) गिर पड़ना। उ०—(क) लेत उसास नयन जल भरि भरि धुकि जु परी धरि धरणी।—सूर। (ख) रुंड पर रुंड धुकि परे धरि धरणि पर गिरत ज्यों संग करि वज्र मारे।—सूर। (३) वेग से टूटना। झपटना। टूट पड़ना। उ०—(क) तुलसिदास रघुनाथ नाम धुनि अकनि गीध धुकि धायो।—तुलसी। (ख) मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि ज्यों धुकि धायो।—तुलसी।

धुकनी†–संज्ञा पुं० दे० "धूनी"।

धुकान†–संज्ञा स्त्री० [हिं० धमकना] धुँधकार। धुंकार। घोर शब्द। गड़गड़ाहट का शब्द। उ०—सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल, चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की।—गुमान।

धुकाना*–क्रि० स० [हिं० धुकना] (१) झुकाना। नवाना। (२) गिराना। ढकेलना। (३) पछाड़ना। पटकना। उ०—करत सरस जल-केलि कबहुँ मीनहिँ गहि लावत। कबहूँ ह्वै असवार धाय इड्दार धुकावत।—सूदन।

धुरजटी*-संज्ञा पुं० दे० "धूर्जटी"।

धुरना-*† क्रि० स० [सं० धूर्वण] (१) पीटना। मारना। (२) बजाना। उ०—पहुँचे आय राजगिरि द्वारे धुरे निशान सुदेश।—सूर। (३) दाएँ हुए धान के पयाल को भूसा बनाने के लिये फिर से दाँना। पुआरी करना।

धुरपद-संज्ञा पुं० दे० "ध्रुपद"।

धुरमुट-† संज्ञा पुं० दे० "दुरमुस"।

धुरवा-*† संज्ञा पुं० [सं० धुर् + वाह] बादल। मेघ।

धुरा-संज्ञा पुं० [सं० धुर्] लकड़ी या लोहे का वह डंडा जो पहिए की गराड़ी के बीचोबीच रहता है और जिसके चारों ओर पहिया घूमा करता है। वह डंडा जिसमें पहिया पहनाया रहता है और जिस पर वह घूमता है। अक्ष।

संज्ञा पुं० [सं०] भार। बोझ।

धुरियाधुरंग-वि० [देश०] (१) वह गाना जो बाजे या साज के साथ न गाया जाय। जिस (गाने) को बाजे या साज की अपेक्षा न हो। (२) अकेला। जिसके साथ और कोई न हो।

धुरियाना-क्रि० स० [हिं० धूर] (१) किसी वस्तु को धूल से ढँकना। किसी वस्तु पर धूल डालना। (२) ऊख के खेत को पहले पहल गोड़ना। (३) किसी ऐब या बदनामी को किसी युक्ति से दबा देना।

क्रि० अ० (१) किसी चीज़ का धूल से ढँका जाना। (२) ऊख के खेत का पहले पहल गोड़ा जाना। (३) किसी ऐब या बदनामी का किसी प्रकार दबना या दबाया जाना।

धुरियामल्लार-संज्ञा पुं० [देश० धुरिया + मल्लार] एक प्रकार का मल्लार जो संपूर्ण जाति का है और जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

धुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धुरा] छोटा धुरा। विशेष—दे० "धुरा"।

धुरीण-वि० [सं०] (१) बोझ सँभालनेवाला। (२) मुख्य। प्रधान। (३) धुरंधर।

धुरीन-वि० दे० "धुरीण"।

धुरेंडी-संज्ञा स्त्री० दे० "धुलेंडी"।

धुरेटना*†-क्रि० स० [हिं० धूर + एटना (प्रत्य०)] धूल से लपेटना। धूल लगाना। उ०—(क) संग कुँवरेटे चारु पट को लपेटे अंग गोरज धुरेटे ये हैं बेटे नँदराय के।—दीनदयाल। (ख) त्यों द्विजदेव जू नायक ही मुख मेरे यने अरविंद धुरेटन।—द्विजदेव।

धुर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऋषभ नामक ओषधि जो लहसुन की तरह होती और हिमालय पर मिलती है। (२) विष्णु। (३) बैल।

वि० [सं०] (१) धुरंधर। (२) श्रेष्ठ। (३) बोझ ढोनेवाला।

धुर्री-संज्ञा पुं० [हिं० धूर] किसी चीज़ का अत्यंत छोटा भाग। कण। रजकण। ज़र्रा। भुआ।

मुहा०—धुर्रे उड़ाना या उड़ा देना=(१) किसी वस्तु के अत्यंत छोटे छोटे टुकड़े कर डालना। (२) छिन्न भिन्न कर डालना। अस्त व्यस्त या नष्ट भ्रष्ट कर डालना। बहुत दुर्गति करना। (३) बहुत अधिक मारना या पीटना।

धुलना-क्रि० अ० [हिं० धोना का अ० रूप] पानी की सहायता से साफ़ या स्वच्छ किया जाना। धोया जाना। जैसे, कपड़े धुल गए हों तो ले आओ।

धुलवाना-क्रि० स० [हिं० धुलना का प्रे० रूप] धोने का काम दूसरे से कराना। किसी को धोने में प्रवृत्त करना।

धुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० धोना] (१) धोने का काम। (२) धोने का भाव। (३) धोने की मज़दूरी।

धुलाना-क्रि० स० [सं० धवल] धोने का काम दूसरे से कराना। धुलवाना।

धुलियापीर-संज्ञा पुं० [हिं० धूल + फ़ा० पीर] एक कल्पित पीर जिसका नाम बच्चे खेल आदि में लिया करते हैं।

धुलियामिटिया-वि० [हिं० धूल + मिट्टी] (१) जिस पर धूल या मिट्टी पड़ी हो अथवा डाली गई हो। (२) दबाया या शांत किया हुआ (झगड़ा बखेड़ा आदि)।

धुलेंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूल + उड़ाना] (१) हिंदुओं का एक त्योहार जो होली जलने के दूसरे दिन चैत बदी १ को होता है। इस दिन प्रातःकाल लोग होली की राख मस्तक पर लगाते और दूसरों पर अबीर गुलाल आदि सूखे चूर्ण डालते हैं। (२) उक्त त्योहार का दिन।

धुव*†-संज्ञा पुं० दे० "ध्रुव"।

संज्ञा पुं० [हिं०] कोप। क्रोध। गुस्सा।

धुवका-† संज्ञा स्त्री० [सं० ध्रुवक] गीत का पहला पद। टेक।

धुवन-संज्ञा पुं० [सं०] आग।

वि० चलानेवाला। कँपानेवाला। हिलानेवाला।

धुवाँ-संज्ञा पुं० दे० "धुआँ"। उ०—नवपल्लव दीसत धुँधराए, होम धुवाँ जिन ऊपर छाए।—लक्ष्मणसिंह।

धुवाँकश-संज्ञा पुं० दे० "धुआँकश"।

धुवाँधार-वि०, क्रि० वि० दे० "धुआँधार"।

धुवाँधज-संज्ञा पुं० [सं० धूमध्वज] अग्नि। (डिं०)

धुवारा-संज्ञा पुं० [हिं० धुवाँ + द्वार] छत में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या खिड़की। चिमनी।

धुवाँस-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूर + मास। या० धूमसी] उरद का आटा जिससे पापड़ या कचौड़ी बनती है।

धुवाना-क्रि० स० दे० "धुलाना"।

धुविश्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का पंखा जो हिरन के चमड़े आदि से बनाया जाता था और जिसका

धुनवाना-क्रि० स० [हिं० धुनना] "धुनना" का प्रेरणार्थक रूप । धुनने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को धुनने में प्रवृत्त करना ।

धुनवी-†संज्ञा स्त्री० दे० "धुनकी" ।

धुना-†संज्ञा पुं० दे० "धुनियाँ" ।

धुनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।
संज्ञा स्त्री० दे० "ध्वनि" ।

धुनियाँ-संज्ञा पुं० [हिं० धुनना] वह जो रुई धुनने का काम करता हो । बेहना । विशेष—भारत में प्रायः मुसलमान ही रुई धुनने का काम करते हैं ।।

धुनिहाव-†संज्ञा पुं० [?] हड्डी में का दर्द ।

धुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।
*†संज्ञा स्त्री० दे "ध्वनि" । दे० "धूनी" ।
यौ०—सुरधुनी ।

धुनीनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] सागर । समुद्र ।

धुनेचा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के सन का पौधा जिसे बंगाल में काली मिर्च की बेलों पर छाया रखने के लिये लगाते हैं ।

धुनेहा†-संज्ञा पुं० दे० "धुनियाँ" ।

धुपना†-क्रि० अ० [हिं० धुलना] धुलना । धोना । उ०—(क) सेहुँड़ को सों आंक तपायें प्रगट लखायो । नैन नीर सों धुप्यो और हू जन चमकायो ।—व्यास । (ख) मूरत नैन समाय धुपै केहूँ नहिं धोये ।—व्यास ।

धुपाना†-क्रि० स० [हिं० धूप=सुगंधि द्रव्य] धूप देना । धूप के धूएँ से सुवासित करना ।
क्रि० स० [हिं० धूप=सूर्यातप] किसी चीज़ को सुखाने आदि के लिये धूप में रखना । धूप दिखाना ।

धुपेना†-संज्ञा पुं० [हिं० धूप+एना (प्रत्य०)] वह पात्र जिसमें आग रखकर ऊपर से धूप डाल देते हैं । धूप सुलगाने का पात्र । धूपदानी ।

धुपेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप+एला (प्रत्य०)] गरमी में पसीने के कारण निकलनेवाली फुंसी । अँभौरी । पित्ती ।

धुबला-† संज्ञा पुं० [सं०] लहँगा । घघरा ।

धुमई-† वि० [सं० धूम्र+ई (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का । जिसका रंग धूएँ की तरह काला हो ।
संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] वह बैल जिसका रंग धूएँ का सा हो । ऐसा बैल साधारणतः मजबूत और तेज समझा जाता है ।

धुमरा-† वि० दे० "धूमिल" ।

धुमला-† संज्ञा पुं० [सं० धूम्र+ला (प्रत्य०)] जिसे दिखाई न दे । अंधा ।

धुमलाई-† संज्ञा स्त्री० [हिं० धूमिल+आई (प्रत्य०)] (१) धूमिल होने का भाव । (२) अंधकार । अँधेरा ।

धुमारा-वि० [सं० धूम्र+आरा (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का । धूमिल ।

धुमिला-वि० दे० "धूमिल" ।

धुर्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूआ जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है । (२) बोझ । भार । (३) गाड़ी आदि का धुरा । अक्ष । (४) खूँटी । (५) शीर्षस्थान । अच्छी और ऊँची जगह । (६) उँगली । (७) चिनगारी । (८) भाग । अंश । (९) धन । सम्पत्ति । (१०) गंगा का एक नाम ।

धुरंधर-वि० [सं०] (१) भार उठानेवाला । (१) जो सब में बहुत बड़ा, भारी या बली हो । जैसे, धुरंधर पंडित । (२) श्रेष्ठ । प्रधान ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोझ ढोनेवाला जानवर । जैसे, बैल, खच्चर, गधा आदि । (२) वह जो बोझ ढोता हो । बोझ ढोनेवाला कोई जीव । (३) रामायण के अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्त का मंत्री था । (४) धौ का पेड़ ।

धुर-संज्ञा पुं० [सं० धुर्] (१) गाड़ी या रथ आदि का धुरा । अक्ष । (२) शीर्ष या प्रधान स्थान । (३) भार । बोझ । उ०—जो न होत जग जन्म भरत को । सकल धर्म्म-धुर धरणि धरत को ।—तुलसी । (४) आरंभ । शुरू । उ०—धुर ही ते खोटो खायो है लिए फिरत सिर भारी ।—सूर ।
मुहा०—धुर सिर से=बिलकुल आरंभ से । बिलकुल शुरू से । जैसे, तुमने बना बनाया काम बिगाड़ दिया, अब हमें फिर धुर सिर से करना पड़ेगा ।
(५) जूआ जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है । (६) ज़मीन की माप जो बिस्वे का बीसवाँ भाग होता है । बिस्वांसी ।
अव्य० [सं० धुर्] न इधर न उधर । बिलकुल ठीक । सटीक । सीधे । जैसे, धुर ऊपर, धर नीचे । उ०—अंतःपुर धुर जाय उतारें आरती । निरखि पुत्र को रूप सरूप बिसारती ।—रघुनाथ । (२) एक दम दूर । बिल्कुल दूर । उ०—मोती लादन पियगए धुर पटना गुजरात ।—गिरिधर ।
वि० [सं० ध्रुव] पक्का । दृढ़ । उ०—तब लगि साधु न धूर जब लगि परस न प्रेम को ।—हनुमान ।

धुरई-† संज्ञा स्त्री० [हिं० धुर] कूएँ के खंभों आदि के बीच में आड़े टिकाए हुए वे दोनों बाँस या लंबी लकड़ियाँ जिनके ज़मीन पर वाले सिरे आपस में सटाकर मजबूती से बाँधे रहते हैं और दूसरे सिरों के बीच में वह छोटी लकड़ी या खूँटी जड़ी रहती है जिसमें गराड़ी पहनाई होती है ।

धुरकट-संज्ञा पुं० [हिं० धुर=सिर (आरंभ) + कट=कटौती] वह लगान जो असामी जिमींदार को जेठ में पेशगी देते हैं ।

धुरकिल्ली-संज्ञा स्त्री० [हिं० धुरा+कील] गाड़ी में वह कील जो धुरी को आँक से अटकाने के लिये भीतर की ओर धुरी के सिरे पर लगा दी जाती हैं ।

धुरचट-† संज्ञा पुं० [?] अधिकता । प्रचुरता ।

पँवरनि पाँवड़े परे हैं पुर पौरि लगि धाम धाम धूपनि के धूम धूनियत हैं।—देव।

क्रि० स० दे० "धुनना"।

धूना—संज्ञा पुं० [हिं० धूनी] गुग्गुल की जाति का एक बड़ा पेड़ जो आसाम तथा खसिया की पहाड़ियों पर बहुत होता है। इसका गोंद भी धूप की तरह जलाया जाता है और यह वारनिश बनाने के काम में आता है।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूआँ] (१) गुग्गुल, लोबान आदि गंध द्रव्यों या और किसी वस्तु को जलाकर उठाया हुआ धुआँ। धूप।

मुहा०—धूनी देना = गंध मिश्रित या विशेष प्रकार का धुआँ उठाना या पहुँचाना। जैसे, इसे मिर्चों की धूनी दो तो भूत छोड़ेगा।

(२) वह आग जिसे साधु या तो ठंढ से बचने के लिये अथवा शरीर को तपाने या कष्ट पहुँचाने के लिये अपने सामने जलाए रहते हैं। साधुओं के तापने की आग।

मुहा०—धूनी जगना या लगना = (साधुओं के पास की) आग जलना। धूनी जगाना या लगाना = (१) साधुओं का अपने सामने आग जलाना। (२) शरीर तपाना। तप करना। (३) साधु होना। विरक्त होना। योगी होना। धूनी रमाना = (१) सामने आग जलाकर शरीर तपाने बैठना। तप करना। (२) साधु हो जाना। विरक्त हो जाना। घर बार छोड़ देना।

धूप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवपूजन में या सुगंध के लिये कपूर, अगर, गुग्गुल, आदि गंधद्रव्यों को जला कर उठाया हुआ धुआँ। सुगंधित धूम।

क्रि० प्र०—देना।

(२) गंधद्रव्य जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठता और फैलता है। जलाने पर महकनेवाली चीज़।

विशेष—धूप के लिये पाँच प्रकार के द्रव्यों में से किसी न किसी का व्यवहार होता है—(१) निर्यास अर्थात् गोंद। जैसे, गुग्गुल, राल। (२) चूर्ण। जैसे, जायफल का चूर्ण। (३) गंध। जैसे, कस्तूरी। (४) काष्ठ। जैसे, अगर की लकड़ी। (५) कृत्रिम अर्थात् कई द्रव्यों के योग से बनाई हुई धूप। कृत्रिम धूप कई प्रकार की होती है; जैसे पंचांग धूप, अष्टांग धूप, दशांग धूप, द्वादशांग धूप, षोडशांग धूप। इनमें से दशांग धूप अधिक प्रसिद्ध है जिसमें दस चीज़ों का मेल होता है। ये दस चीजें क्या क्या होनी चाहिएँ इसमें मतभेद है। पद्मपुराण के अनुसार कपूर, कुष्ठ, अगर, गुग्गुल, चंदन, केसर, सुगंधबाला, तेजपत्ता, खस और जायफल ये दस चीजें होनी चाहिएँ। सारांश यह कि साल और सलई का गोंद, मैनसिल, अगर, देवदार, पद्माख, मोचरस, मोथा, जटामासी इत्यादि सुगंधित द्रव्य धूप देने के काम में आते हैं।

(३) सूर्य्य का प्रकाश और ताप। घाम। आतप। जैसे, धूप में मत निकलो।

मुहा०—धूप खाना = इस स्थिति में होना कि धूप ऊपर पड़े। धूप में गरम होना या तपना। जैसे, (क) चार दिन धूप खायगी तो लकड़ी सूख जायगी। (ख) जाड़े में लोग बाहर धूप खाते हैं। धूप खिलाना = धूप में रखना। धूप लगने देना। धूप चढ़ना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश का बढ़ना या फैलना। घाम निकलना। दिन चढ़ना। धूप दिखाना = धूप में रखना। धूप लगने देना। धूप देना = दे० "धूप दिखाना"। धूप निकलना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश और ताप फैलना। घाम आना। धूप पड़ना = सूर्य्य का ताप अधिक होना। धूप में बाल या चूँड़ा सफेद करना = बूढ़ा हो जाना और कुछ जानकारी न प्राप्त करना। बिना कुछ अनुभव प्राप्त किए जीवन का बहुत सा भाग बिता देना। धूप लेना = गरमी के लिये शरीर को धूप में रखना। धूप ऊपर पड़ने देना। जैसे, जाड़े में धूप लेने के लिये बाहर बैठना।

धूपघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + घड़ी] एक यंत्र जिससे धूप में समय का ज्ञान होता है।

विशेष—काठ या धातु का एक गोल चक्कर बना कर उसके चार भाग कर ले और एक एक भाग में छः छः समान भाग करे और उस चक्कर की कोर थोड़ा छोड़ दे। उस कोर में साठ भाग करे और बीच में एक एक अंगुल चौड़ी दो पट्टियाँ ऐसी लगावे जिनसे उस चक्कर के चार विभाग पूरे हो जायँ। दोनों पट्टियाँ जहाँ मिलें वहाँ बीचोबीच एक छेद करके एक कील लगा दे और चुंबक की सुई से या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक जान ले। उस स्थान के जितने अक्षांश हों उतनी वह कील उत्तर की ओर झुकी रहे। उस कील की छाया मध्याह्न से पहले पश्चिम की ओर और मध्याह्न के पीछे पूर्व की ओर पड़ेगी। मध्याह्न के चिह्न से पश्चिम की ओर जिस चिह्न पर छाया हो उतनी ही घड़ी मध्याह्न में घटती जाने, इसी प्रकार पूर्व का भी जान ले।

धूपछाँह—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + छाँह] एक रंगीन कपड़ा जिसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़ता है कभी दूसरा।

विशेष—यह कपड़ा इस प्रकार बुना जाता है कि ताने का सूत एक रंग का होता है और बाने का दूसरे रंग का। इसी से देखनेवाले की स्थिति और कपड़े की स्थिति के अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा।

व्यवहार याज्ञिक लोग यज्ञ की आग दहकने के लिये करते थे।

धुस्तूर–संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

धुस्स–संज्ञा० पुं० [सं० ध्वंस] (१) गिरे हुए घरों की मिट्टी या ईंट पत्थर का ढेर। मिट्टी आदि का ऊँचा ढेरा। टीला। (२) नदी आदि के किनारे पर बाँधा हुआ बाँध। बंद।

धुस्सा–संज्ञा पुं० [सं० द्विशाट] मोटे ऊन की लोई जो ओढ़ने के काम में आती है।

धूँध–संज्ञा स्त्री० दे० "धुंध"। उ०—धूम धूँध छाई धर अंबर चमकत विच विच जाल।—सूर।

धूँधर–वि० [सं० धुंध] धुँधला।

संज्ञा स्त्री० (१) हवा में छाई हुई धूल। (२) अँधेरा जो हवा में छाई हुई धूल के कारण हो।

धूँधला–† वि० दे० "धुँधला"।

धूँसा–† संज्ञा पुं० दे० "धौंसा"।

धू*–वि० [सं० ध्रुव] स्थिर। अचल।

संज्ञा पुं० (१) ध्रुव तारा। (२) राजा उत्तानपाद का पुत्र जो भगवान का भक्त था। उ०—रामकथा बरनी न बनाय, सुनी कथा प्रहलाद न धू की।—तुलसी। (३) धुरी। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को समयो अब नीको हिलि मिलि केलि अटल भई धू पर।—स्वामी हरिदास।

धूआँ–† संज्ञा पुं० दे० "धुआँ"।

धूआँधार–संज्ञा पुं० दे० "धुआँधार"।

धूई–संज्ञा स्त्री० [हिं० धूआँ] धूनी।

धूक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) धूर्त्त मनुष्य। (३) काल।

संज्ञा पुं० [फा० दूक=तकला] कलाबत्तू बटने की सलाई।

धूकना–क्रि० अ० दे० "ढुकना"।

धूजट*–संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] शिव। महादेव।

धूत–वि० [सं०] (१) कंपित। कँपता हुआ। थरथराता हुआ। डगमगाता हुआ। हिलता हुआ। (२) जो धमकाया गया हो। जो डाँटा गया हो। (३) त्यक्त। छोड़ा हुआ। (४) तर्कित।

†* वि० [सं० धूर्त्त] धूर्त्त। दगाबाज। उ०—(क) गेसेई जन धूत कहावत।—सूर। (ख) समय सगुन मारग मिलहिं छल-मलीन खल धूत।—तुलसी।

धूतना*–क्रि० स० [हिं० धूत] धूर्त्तता करना। धोखा देना। ठगना। उ०—(क) हों तेरे ही संग जरौंगी यह कहि त्रिया धूति धन खायो।—सूर। (ख) सत्य वचन मानस विमल कपट-रहित करतूति। तुलसी रघुवर सेवकहिं सकै न कलियुग धूति।—तुलसी। (ग) तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु-करतूति। तात कैकइहि दोष नहिं गई गिरा मति धूति।—तुलसी।

धूतपाप–वि० [सं०] जिसके पाप दूर हो गए हों। जो पाप या दोष से रहित हो गया हो।

धूतपापा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी की एक पुरानी छोटी नदी या नाला जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पंचगंगा के पास गंगा में मिलती थी। यह नदी अब पट गई है।

विशेष—काशीखंड में इसके माहात्म्य के संबंध में एक कथा है। पूर्व काल में वेदशिरा. नामक एक ऋषि वन में तपस्या कर रहे थे। उस वन में शुचि नाम की एक अप्सरा को देख मुनि ने कामातुर हो कर उसके साथ संयोग किया। संयोग से धूतपापा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। पिता की आज्ञा से वह कन्या भी घोर तप करने लगी। अंत में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया "तू संसार में सबसे पवित्र होगी, तेरे रोम रोम में सब तीर्थ निवास करेंगे"। एक दिन धूतपापा को अकेले देख धर्म नामक एक मुनि उससे विवाह करने के लिये कहने लगे। धूतपापा ने पिता की आज्ञा लेने के लिये कहा। पर धर्म्म बार बार उसी समय गांधर्व-विवाह करने का हठ करने लगे। इस पर धूतपापा ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि "तुम जड़ नद होकर बहो"। धर्म ने धूतपापा को शाप दिया कि "तुम पत्थर हो जाओ"। पिता ने जब यह वृत्तांत सुना तब कन्या से कहा "अच्छा तू काशी में चंद्रकांत नाम की शिला होगी। चंद्रोदय होने पर तुम्हारा शरीर द्रवीभूत हो कर नदी के रूप में बहेगा और तुम अत्यंत पवित्र होगी। उसी स्थान पर धर्म्म भी धर्मनद होकर बहेगा और तुम्हारा पति होगा"।

महाभारत (भीष्म पर्व ६ अ०) में भी धूतपापा नाम की एक नदी का उल्लेख है पर कुछ विवरण नहीं है। इससे कहा नहीं जा सकता कि इसी नदी से अभिप्राय है या किसी दूसरी से।

धूता–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्य्या।

धूती–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया। उ०—चाँसा बटेर लव और सिचान। धूती रु चिप्पका चटक भान।—सूदन।

धूधू–संज्ञा पुं० [अनु०] आग के दहकने का शब्द। आग की लपट उठने का शब्द।

धून–वि० [सं०] कंपित।

संज्ञा पुं० दे० "दून"।

धूनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिलाने डुलानेवाला। चालाक। (२) साल का गोंद। राल। धूप।

धूनना–*–क्रि० स० [हिं० धूनी] धूनी देना। किसी वस्तु को जलाकर उसका धुआँ उठाना। सुलगाना। जलाना। उ०—

धूमदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० धूमदर्शिन्] वह मनुष्य जिसकी आँख के सामने धुआँ सा दिखाई पड़ता हो। धुँधला देखनेवाला आदमी।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार धुँधला दिखाई पड़ने का रोग शोक, श्रम और सिर की पीड़ा के कारण होता है।

धूम धड़का-संज्ञा पुं० [हिं० धूम+धड़ाका] भीड़ भाड़ और तैयारी। समारोह। भारी आयोजन। ठाठ बाट। जैसे, ब्याह में धूम धड़का मत करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धूमधर-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

धूमधाम-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूम+धाम (अनु०)] भीड़ भाड़ और तैयारी। ठाठ बाट। समारोह। भारी आयोजन। जैसे, बड़ी धूम धाम से सवारी निकली।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धूमध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

धूमपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धुआँ निकलने का रास्ता। (२) पितृयान।

धूमपान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार विशेष प्रकार का धुआँ जो नल के द्वारा रोगी को सेवन कराया जाता है।

विशेष—नेत्र रोग तथा फोड़े फुंसी आदि में सुश्रुत ने कुछ मसालों तथा ओषधियों के धुएँ को नल के द्वारा मुँह में खींचने का विधान बताया है।

(२) तमाकू, चुरुट आदि पीने का कार्य्य।

धूमपोत-संज्ञा पुं० [सं०] धुआँकश। अग्निबोट।

धूमप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नरक जो सदा धुएँ से भरा रहता है।

धूमयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] (धुएँ से उत्पन्न) बादल।

धूमर†[^] वि० दे० "धूमल"।

धूमरज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का धुआँ। (२) घर के धुएँ का कालिख जो छत और दीवार में लग जाता है।

धूमरा-† वि० [सं० धूम्र] [स्त्री० धूमरी] कृष्ण लोहित वर्ण का। धुएँ के रंग का। कालापन लिए हुए लाल। सुँघनी रंग का।

धूमल-वि० [सं०] धुएँ के रंग का। कालिमा युक्त काले रंग का। सुँघनी रंग का।

धूमला-वि० [सं० धूम्र] [स्त्री० धूमली] (१) धुएँ के रंग का। ललाई लिए काले रंग का। सुँघनी रंग का। (२) धुँधला। जो चटकीला न हो। जो शोख न हो। (३) जिसकी कांति मंद हो। मलिन। उ०—जैसे यह बात सुनते ही उसका चेहरा धूमला पड़ गया।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

धूमवान्-वि० [सं० धूमवत्] [स्त्री० धूमवती] जिसमें या जहाँ धुआँ हो। धुएँवाला।

विशेष—बाहुल्य या अधिकता के अर्थ में धूमी विशेषण होता है।

धूमसार-संज्ञा पुं० [सं०] घर का धुआँ।

धूमसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धुआँस उड़द का आटा।

विशेष—यह शब्द भावप्रकाश में मिलता है, किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं; इससे गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

धूमांग-वि० [सं०] जिसका अंग धुएँ के समान हो।

संज्ञा पुं० शीशम का पेड़।

धूमाग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] बिना ज्वाला या लपट की आग (जैसी लपट निकल जाने पर गोहरे या उपले की होती है)

धूमाभ-वि० [सं०] धुएँ के रंग का।

धूमावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] दश महा विद्याओं में से एक देवी।

विशेष—तंत्रों में इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। एक बार पार्वती को बहुत भूख लगी और उन्होंने महादेव से कुछ खाने को माँगा। महादेव ने थोड़ा ठहरने के लिये कहा। पर पार्वती क्षुधा से अत्यंत आतुर हो कर महादेव को निगल गईं। महादेव के निगलने पर पार्वती के शरीर से धुआँ निकलने लगा। अंत में महादेव ने प्रकट हो कर कहा—"तुमने जब हमें खाया तब विधवा हो चुकी। हमारे वर से तुम इस वेश में पूजी जाओगी।" धूमवती देवी का ध्यान बड़ा मलिन और भयंकर बताया गया है।

धूमित-वि० [सं०] जिसमें धुआँ लगा हो।

संज्ञा पुं० तंत्रों के अनुसार वह दूषित मंत्र जो साढ़े अक्षरों का हो।

धूमिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दिशा जिसमें सूर्य्य जानेवाला हो।

धूमिल-†[^]-वि० [सं० धूमल] (१) धुएँ के रंग का। ललाई लिए काले रंग का। (२) धुँधला। उ०—मुख अरविंद धार मिलि सोभित धूमिल नील अगाध। मनहु बाल रवि रस समीप संकित तिमिर छुड़ाऊँ आध।—सूर।

धूमी-वि० [सं० धूमिन्] जिसमें या जहाँ बहुत धुआँ हो। धुएँ से भरा हुआ।

विशेष—जहाँ बाहुल्य या अधिकता का भाव नहीं होता वहाँ धूमवान् रूप होता है।

संज्ञा स्त्री० (१) अजमीढ़ की एक पत्नी का नाम। (२) अग्नि की एक जिह्वा का नाम।

धूमोत्थ-वि० [सं०] धुएँ से निकला हुआ।

संज्ञा पुं० वज्रक्षार। नौसादर।

धूमोद्गार-संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण वा अपच के कारण आनेवाली धुएँ की सी कड़वी डकार।

धूमोर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यमपत्नी। (२) मार्कंडेयपत्नी।

धूम्याट-संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी। भिंगराज नाम की एक चिड़िया। भृंग।

दो रंगों में से एक रंग लाल होता है, दूसरा हरा, नीला या बैंगनी।

यौ०—धूपछाँह का रंग=दो इस प्रकार मिले हुए रंग कि एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़े, कभी दूसरा।

धूपदान-संज्ञा पुं० [सं० धूप+आधान] (१) धूप रखने का डिब्बा या बरतन। (२) वह बरतन जिसमें गंध द्रव्य या धूपवत्ती रख कर सुगंध के लिये जलाई जाती है। अगियारी।

धूपदानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूपदान] धूप रखने का छोटा बरतन।

धूपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धूपित] धूप देने की क्रिया। गंधद्रव्य जला कर सुगंधित धुआँ उठाने का कार्य्य।

धूपना*|-क्रि० अ० [सं० धूपन] धूप देना। गंध-द्रव्य जलाना।
क्रि० स० धूप देना। गंधद्रव्य जला कर सुगंधित धुआँ पहुँचाना। सुगंधित धुएँ से बासना। उ०—धारन धूपि अगारन धूपि कै धूम अँध्यारी पसारी महा है।—मतिराम
क्रि० स० [सं० धूपन=संतप्त वा श्रांत होना] दौड़ना। हैरान होना।

विशेष—केवल समस्त पद में इसका प्रयोग होता है।

यौ०—दौड़ना धूपना।

धूपपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] धूप रखने का बरतन। वह बरतन जिसमें गंधद्रव्य जला कर धूप देते हैं।

धूपवत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं धूप+वत्ती] मसाला लगी हुई सींक या वत्ती जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठ कर फैलता है।

धूपवास-संज्ञा पुं० [सं०] स्नान के पीछे सुगंधित धुएँ से शरीर, बाल आदि वासने का कार्य्य।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवासी स्नान के उपरांत कुछ काल सुगंधित धुएँ में रह कर गीले शरीर या बाल को सुखाते थे जिसमें वह सुगंध से बस जाय। रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों में इस प्रथा का उल्लेख है।

धूपवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सलई या गुग्गुल का पेड़ जिसका गोंद धूप की सामग्री है।

धूपायित-वि० [सं०] (१) सुगंधित धुएँ से बसा हुआ। धूप दिया हुआ। (२) चलने आदि से थका हुआ। हैरान। श्रांत और संतप्त।

धूपित-वि० [सं०] (१) धूप दिया हुआ। सुगंधित धुएँ से बसा हुआ। (२) चलने आदि से थका हुआ। हैरान। श्रांत और संतप्त।

धूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धुआँ। धूआँ।

पर्य्या०—मरुद्वाह। खतमाल। शिखिध्वज। अग्निवाह। तरी।

(२) अजीर्ण वा अपच में उठनेवाली डकार। (३) विशेष प्रकार का धुआँ जिसका कई रोगों में सेवन कराया जाता है।

विशेष—सुश्रुत ने पाँच प्रकार के धूम कहे हैं—प्रायोगिक (जो मसाले से लपेटी हुई सींक जलाने से हो); स्नेहन (जो बत्ती में मसाला लपेट कर घी या तेल में जलाने से हो)। वैरेचन (जो पिप्पली, विडंग, अपामार्ग इत्यादि नस्य द्रव्यों की बत्ती से हो), कासघ्न (जो ककड़ासिंगी, कंटकारी, बृहती आदि कासघ्न औषधों की बत्ती से हो), और वामनीय (जो स्नायु, चमड़े, सींग, सूखी मछली या कृमि आदि को जलाने से हो)।

(४) धूमकेतु। (५) उल्कापात। (६) एक ऋषि का नाम।
संज्ञा स्त्री० [सं० धूम=धुआँ] (१) बहुत से लोगों के इकट्ठे होने, आने जाने, शोर गुल करने, हिलने डोलने आदि का व्यापार। रेलपेल। हलचल। आंदोलन। जैसे, मेले तमाशे की धूम, उत्सव की धूम, लूटमार की धूम।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(२) हल्ला और उछल कूद। उपद्रव। उत्पात। ऊधम। जैसे, यहाँ धूम मत मचाओ, और जगह खेलो। उ०- बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।—हरिश्चंद्र।

मुहा०—धूम डालना=ऊधम करना। हल्ला गुल्ला करना।

(३) भीड़ भाड़ और तैयारी। ठाट बाट। समारोह। भारी आयोजन। जैसे, बारात बड़ी धूम से निकली।

यौ०—धूमधड़का। धूमधाम।

(४) कोलाहल। हल्ला। शोर। (५) चारों ओर सुनाई देनेवाली चर्चा। जनरव। शुहरत। प्रसिद्धि। जैसे, शहर में इस बात की बड़ी धूम है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो तालों में होती है।

धूमक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धुआँ। (२) एक शाक का नाम।

धूमकधैया-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूम] उछल कूद और हल्ला गुल्ला। उपद्रव। उत्पात। शोरगुल।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

धूमकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है)। (२) केतु ग्रह।

धूमकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है)। (२) केतुग्रह (जिसका चिह्न है धुएँ या भाप के आकार की पूँछ)। पुच्छल तारा।

विशेष—दे० "केतु"।

(३) शिव। महादेव। (४) वह घोड़ा जिसकी पूँछ में भवरी हो। (ऐसा घोड़ा बहुत अमंगलकर समझा जाता है)।
(५) रावण की सेना का एक राक्षस। उ०—कुमुख, अकंपन, कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय।—तुलसी।

धूमगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण। रूसा घास।

धूमग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] राहु ग्रह।

धूमज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (धुएँ से उत्पन्न) बादल। (२) मुस्तक। मोथा।

धूमजांगज-संज्ञा पुं० [सं०] वज्रक्षार। नौसादर।

धूर्य्य-संज्ञा पु० [सं०] विष्णु ।

धूर्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रथ का अगला भाग ।

धूल-संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि] (१) मिट्टी, रेत आदि का महीन चूर । रेणु । रज । गर्द ।

मुहा०—(कहीं) धूल उड़ना=(१) ध्वंस होना । सत्यानाश होना । बरबादी होना । तबाही आना । (२) उजाड़ होना । चहल पहल न रहना । सन्नाटा होना । रौनक न रहना । (किसी की) धूल उड़ना=(१) दोषों और त्रुटियों का उधेड़ा जाना । बुराइयों का प्रकट किया जाना । बदनामी होना । (२) उपहास होना । दिल्लगी उड़ना । किसी की धूल उड़ाना=(१) दोषों और त्रुटियों को उधेड़ना । बुराइयों को प्रकट करना । बदनामी करना । (२) उपहास करना । हँसी करना । धूल उड़ाते फिरना=मारा मारा फिरना । जीविका या अर्थसिद्धि के लिये इधर उधर घूमना । दीन दशा में फिरना । व्याकुल घूमना । धूल की रस्सी बटना=ऐसी बात के लिये श्रम करना जो कभी हो न सके । अनहोनी बात के पीछे पड़ना । व्यर्थ परिश्रम करना । धूल चाटना=(१) बहुत गिड़गिड़ाना । बहुत विनती करना । (२) अत्यंत नम्रता दिखाना । धूल छानना=मारा मारा फिरना । हैरान घूमना । जैसे, तुम्हारी खोज में कहाँ कहाँ की धूल छानते रहे । (किसी की) धूल झड़ना=(किसी पर) मार पड़ना । पिटना । (विनोद) । (किसी की) धूल झाड़ना=(१) (किसी को) मारना । पीटना । (विनोद) । (२) शुश्रूषा करना । खुशामद करना । जैसे, वह तो दिन भर अमीरों की धूल झाड़ते आता है । (किसी बात पर) धूल डालना=(१) (किसी बात को) इधर उधर प्रकट न होने देना । फैलने न देना । दबाना (२) ध्यान न देना । जैसे, अपराधों पर धूल डालना । धूल फाँकना=(१) मारा मारा फिरना । दुर्दशा में होना । (२) सरासर झूठ बोलना । जैसे, क्यों धूल फाँकते हो, मैंने तुम्हें खुद देखा था । (कहीं पर) धूल बरसना=उदासी बरसना । चहल पहल न रहना । रौनक न रहना । धूल में मिलना=नष्ट होना । चौपट होना । खराब होना । ध्वस्त होना । जाता रहना । न रह जाना । धूल में मिलाना=नष्ट करना । चौपट करना । खराब करना । ध्वस्त करना । बरबाद करना । (कहीं की) धूल ले डालना=(कहीं पर) बहुत अधिक और बार बार आना । बराबर पहुँचा रहना । बहुत फेरे लगाना । पैर की धूल=अत्यंत तुच्छ वस्तु या व्यक्ति । नाचीज़ । सिर पर धूल डालना=पछताना । सिर धुनना । उ०—पद्मिनि गवन हंस गए दूरी । हस्ति लाज मेलहिं सिर धूरी ।—जायसी ।

(२) धूल के समान तुच्छ वस्तु । जैसे, इनके सामने वह धूल है ।

मुहा०—धूल समझना=अत्यंत तुच्छ समझना । किसी गिनती में न लाना । बिलकुल नाचीज़ ख्याल करना ।

धूलक-संज्ञा पु० [सं०] विष । ज़हर ।

धूलधानी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धूल+धान] चूर चूर होने का भाव । ध्वंस । विनाश ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूला-संज्ञा पु० [देश०] टुकड़ा । खंड । कतरा ।

धूलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] धूल । गर्द । रेणु । रज ।

धूलिकदंब-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कदंब ।

धूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महीन जलकणों की झड़ी । (२) कुहरा ।

धूलिगुच्छक-संज्ञा पु० [सं०] अबीर जो होली में डाला जाता है ।

धूलिध्वज-संज्ञा पु० [सं०] वायु ।

धूलिपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी ।

धूवाँ-संज्ञा पु० दे० "धुआँ" ।

धूसना-क्रि० स० [ध्वंसन] (१) मर्दित करना । मलना दलना । मींजना । (२) ठूसना ।

धूसर-वि० [सं०] (१) धूल के रंग का । खाकी । ईषत पांडु वर्ण । मटमैला । मटीला । (२) धूल लगा हुआ । जिसमें धूल लिपटी हो । धूल से भरा । उ०—(क) धूसर धूरि घुटुरुवन रेंगनि बोलनि वचन रसाल की ।—सूर । (ख) धूसर धूरि भरे तनु आए । भूपति बिहँसि गोद बैठाए ।—तुलसी ।

यौ०—धूल धूसर=धूल से भरा । जिसे गर्द लिपटी हो ।

संज्ञा पु० (१) मटमैला रंग । पीलापन लिए सफेद रंग । भूरा रंग । (२) गदहा । (३) ऊँट । (४) कबूतर । (५) बनियों की एक जाति ।

धूसरच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद बोना ।

धूसरपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथीसूँड़ का पौधा ।

धूसरा-वि० [सं० धूसर] [स्त्री० धूसरी] (१) धूल के रंग का । मटमैला । खाकी । (२) धूल लगा हुआ । जिसमें धूल लिपटी हो । उ०—नियम करत बीते दिवस दूबर अंग लखात । सीस एक बेनी धरे बसन धूसरे गात ।—लक्ष्मणसिंह ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पांडुफली ।

धूसरित-वि० [सं०] (१) धूसर किया हुआ । जो धूल से मटमैला हुआ हो । (२) धूल से भरा हुआ । जिसमें धूल लिपटी हो । उ०—बाल विभूषन वसन धर धूरि धूसरित अंग । बालकेलि रघुपति करत बालबंधु सब संग ।—तुलसी ।

धूसरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी ।

धूम्र—वि० [सं०] धुएँ के रंग का। कृष्णलोहित। ललाई लिए काले रंग का। सुँघनी या भूरे रंग का।

संज्ञा पुं० (१) कृष्णलोहित वर्ण। ललाई लिए काला रंग। सुँघनी या भूरा रंग। (२) शिलारस नाम का गंध द्रव्य। (३) एक असुर का नाम। (४) शिव। महादेव। (५) मेढ़ा (६) कुमार के एक अनुचर का नाम। (७) फलित ज्योतिष में एक योग का नाम। (८) मानिक या लाल का धुँधलापन जो एक दोष समझा जाता है। (९) राम की सेना का एक भालू।

धूम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

धूम्रकांत—संज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न या नग का नाम।

धूम्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] भरतराजा के एक पुत्र का नाम। (भागवत)।

धूम्रकेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा पृथु के एक पुत्र का नाम। (२) कृष्णाश्व का एक पुत्र जो अर्चि नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था। (भागवत)।

धूम्रपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम जो आयुर्वेद में तीता, रुचिकारक, गरम, अग्निदीपक तथा शोथ, कृमि और खाँसी को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या०—सुलभा। स्वयंभुवा। गृध्रपत्रा। गृध्राणी। कृमिघ्नी।

धूम्रमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली नामक तृण।

धूम्रलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कबूतर। (२) शुंभ नामक दानव का एक सेनापति।

विशेष—शुंभ निशुंभ के वध के लिये जब देवी ने एक परम सुंदरी का रूप धारण करके कहा था कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा उसे मैं वरमाला पहनाऊँगी तब शुंभ ने उन्हें पकड़ लाने के लिये इसी धूम्रलोचन को भेजा था।

धूम्रवर्ण—वि० [सं०] धुएँ के रंग का। ललाईपन लिए काला। धूमला।

संज्ञा पुं० धुएँ का रंग। ललाई लिए काला रंग।

धूम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

धूम्रशूक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

धूम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

धूम्राक्ष—वि० [सं०] जिसकी आँखें धूमले रंग की हों।

संज्ञा पुं० (१) रावण का एक सेनापति जो राम-रावण युद्ध में हनुमान के हाथ से मारा गया था। (२) विंदुवंशीय राजा हेमचंद्र के पुत्र। (भागवत)

धूम्राट—संज्ञा पुं० [सं०] धूम्याट पक्षी। भिंगराज।

धूम्रार्चि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओं में से एक। (शारदातिलक)

धूम्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा।

धूम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

धूर—*† संज्ञा स्त्री० दे० "धूल"।

संज्ञा स्त्री० एक घास।

अव्य० दे० "धुर"।

धूरकट—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + काटना] लगान का कुछ पेशगी जिसे असामी जेठ असाढ़ में जमींदार को देते हैं।

धूरजटी—*संज्ञा पुं० दे० "धूर्जटि"।

धूरडाँगर—संज्ञा पुं० [देश०] सींगवाला चौपाया। ढोर।

धूरत—*‡ वि० दे० "धूर्त्त"।

धूरधान—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + धान] धूल की राशि। गर्द का ढेर। उ०—बानन के बाहिबे को कर में कमान कसि धाई धूरधान आसमान में मढ़ै लगी। – पद्माकर।

धूरधानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूरधान] (१) गर्द की ढेरी। धूल की राशि। (२) ध्वंस। विनाश। उ०—लंकपुर जारि, मकरी विदारि बार बार जातुधान धारि धूरधानी करि डारी है।—तुलसी। (३) पथरकला बंदूक।

धूरसंझा—† संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि + संध्या] गोधूली का समय। संध्या।

धूरा—संज्ञा पुं० [हिं० धूर] (१) धूल। गर्द। (२) चूर्ण। बुकनी। चूरा।

मुहा०—धूरा करना या देना = शीत से अंग सुन्न होने पर गरम राख, सोंठ की बुकनी आदि मलना। धूरा देना = इधर उधर की बात कहकर या चापलूसी करके गौं पर लाना। अपने अनुकूल करना। बहकाना। धोखा देना।

धूरि—*† संज्ञा स्त्री० "धूल"।

धूरिया बेला—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + बेला] एक प्रकार का बेला।

धूरिया मल्लार—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + मल्लार] मल्लार राग का एक भेद।

धूर्जटि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

धूर्त्त—वि० [सं०] (१) मायावी। छली। चालबाज। (२) वंचक। प्रतारक। धोखा देनेवाला। दगाबाज।

संज्ञा पुं० (१) साहित्य में शठ नायक का एक भेद। (२) विट् लवण। (३) लोहकिट्ट। लौहकिट्टी। लोहे की मैल। (४) धतूरा। (५) चोर नामक गंधद्रव्य। (६) जुआरी। दाँव पेंच करनेवाला आदमी।

धूर्त्तक—संज्ञा पुं० (१) जुआरी। (२) शृगाल। गीदड़। (३) कौरव्य कुल का नाग। (महाभारत)

धूर्त्तचरित—संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूर्त्तों का चरित्र। (२) संकीर्ण नाटक का एक भेद।

धूर्त्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया। चालबाजी। वंचकता। ठगपना। चालाकी।

धूर्त्तमानुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना।

धूर्धर—संज्ञा पुं० [सं०] बोझा ढोनेवाला। भारवाही।

संज्ञा पुं० (१) चेदिवंशीय कुंति का पुत्र। (हरिवंश)। (२) सप्तम मनु के एक पुत्र का नाम। (भागवत)। (३) अस्त्रों का संहार। (वाल्मीकि०)।

धृष्टकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चेदि देश के राजा शिशुपाल का पुत्र जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ा था और द्रोणाचार्य के हाथ से मारा गया था। (२) जनकवंशीय सुधृति के पुत्र। (रामायण)। (३) नवें मनु रोहित के पुत्र। (४) सन्नति-राजवंशीय सुकुमार का एक पुत्र। (हरिवंश)

धृष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ढिठाई। अनुचित साहस। गुस्ताखी। (२) निर्लज्जता। संकोच का अभाव। बेहयाई।

धृष्टद्युम्न–संज्ञा पुं० [सं०] राजा द्रुपद का पुत्र और द्रौपदी का भाई जो पांडवों की सेना का एक नायक था।

विशेष—पृषत राजा का द्रुपद नामक एक पुत्र था। पृषत राजा से भरद्वाज ऋषि की बहुत मित्रता थी, इससे वे नित्य द्रुपद को लेकर ऋषि के आश्रम पर जाया करते थे। क्रमशः द्रुपद और ऋषिपुत्र द्रोण में बड़ा स्नेह हो गया। द्रुपद जब राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए पर उसने उनकी अवज्ञा की। इस पर द्रोण दीन भाव से इधर उधर घूमने लगे और अंत में उन्होंने कौरवों और पांडवों की अस्त्रशिक्षा का भार लिया। अर्जुन गुरु के अपमान का बदला चुकाने के लिये द्रुपद को बंदी करके लाए। द्रुपद ने द्रोण को आधा राज्य देकर छुटकारा पाया। इस अपमान का बदला लेने के लिये द्रुपद ने याज और अनुयाज नामक दो ऋषिकुमारों की सहायता से एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ से एक अत्यंत तेजस्वी पुरुष खड्ग, चर्म, धनुर्बाण से सुसज्जित उत्पन्न हुआ। देववाणी हुई कि यह राजपुत्र द्रुपद के शोक का नाश करेगा और द्रोणाचार्य का वध इसी के हाथ से होगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जिस समय द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की बात सुन कर योग में मग्न हुए थे उस समय उसी धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काटा था। महाभारत के युद्ध के पीछे अश्वत्थामा ने अपने पिता का बदला लिया और सोते में धृष्टद्युम्न का सिर काट लिया।

धृष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिरण्याक्ष का एक पुत्र। (२) दशरथ के एक मंत्री का नाम। (३) एक यज्ञपात्र।

धृष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धृष्टता।

धृष्णत्व–संज्ञा० पुं० [सं०] धृष्टता।

धृष्णि–संज्ञा पुं० [सं०] किरण।

धृष्णु–वि० [सं०] (१) धृष्ट। प्रगल्भ। (२) ढीठ। उद्धत। संज्ञा पुं० (१) वैवस्वत मनु के एक पुत्र। (२) सावर्ण मनु के एक पुत्र। (३) एक रुद्र का नाम।

धृष्णवोजा–संज्ञा पुं० [सं० धृष्ण्वोजस्] कार्त्तवीर्य के एक पुत्र।

धृष्य–वि० [सं०] धर्षण योग्य। धर्षणीय।

धेड़ी कौवा–संज्ञा पुं० [देश० धेड़ी + हिं० कौवा] बड़ा काला कौवा। डोम कौवा।

धेन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) नद।
‡ संज्ञा स्त्री० दे० "धेनु"।

धेनु–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह गाय जिसे बच्चा जने बहुत दिन न हुए हों। सवत्सा गो।
पर्य्या०—नवप्रसूतिका। नवसूतिका।
(२) गाय। उ०—कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं।—तुलसी।

धेनुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम जिसे बलदेवजी ने मारा था। (हरिवंश)। (२) महाभारत के अनुसार एक तीर्थ। यहाँ स्नान करके तिल की धेनु दान करने का विधान है। (३) रतिमंजरी के अनुसार सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक।

धेनुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धेनु। (२) हस्तिनी स्त्री।

धेनुदुग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय का दूध। (२) चिर्भिटा।

धेनुदुग्धकर–संज्ञा पुं० [सं०] गाजर।

धेनुमक्षिका–संज्ञा स्त्री [सं०] बड़े मच्छड़ जो चौपायों को लगते हैं। डाँसा। डंस।

धेनुमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोमती नदी। (२) भरतवंशीय देवद्युम्न की पत्नी।

धेनुमुख–संज्ञा पुं० [सं०] गोमुख नाम का बाजा। उ०—बाजै विपुल शंख घरियारा। भेरि धेनु मुखपँवरि दुबारा।—सबलसिंह।

धेनुष्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो बंधक रखी हो।

धेय–वि० [सं०] (१) धारण करने योग्य। धार्य्य। (२) पोषण करने योग। पोष्य। (३) पीने योग्य। पीने का। पेय।

धेर–संज्ञा पुं० [देश०] एक अनार्य्य जाति। इस जाति के लोग राजपुताने, पंजाब और कहीं कहीं संयुक्त प्रांत के पश्चिमी जिलों में पाए जाते हैं। ये लोग गाँव के बाहर रहते हैं और मरे चौपायों आदि का मांस खाते हैं। राजपुताने में मरे हुए गाय बैल आदि का चमड़ा निकालकर ये चमारों के हाथ बेंचते हैं। राजपुताने के धेर सूअर का मांस नहीं खाते।

धेरा–†वि० [देश०] भेंगा।

धेलचा–†संज्ञा पुं० [हिं० धेला] आधे पैसे के बराबर का सिक्का। अधेले के मूल्य का सिक्का।

धेला–†संज्ञा पुं० दे० "अधेला"।

धेली–†संज्ञा स्त्री० [हिं० अधेल] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

धूसला-वि० दे० "धूसरा"। उ०—धुंधी धरा धूसली धूम गुबार। मानौ प्रलैकाल की घोर अँध्यार।—सूदन।

धूस्तूर-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

धूहा-संज्ञा पुं० [हिं० दूह] (१) ढूह। (२) चिड़ियों को डराने का पुतला, काली हाँड़ी आदि।

धृक-* अव्य० दे० "धिक्"। उ०—तुमहि बिना मन धृक अरु धृक घर। तुमहि बिना धृक धृक माता पितु धृक धृक कुल की कान लाज डर।—सूर।

धृग-* अव्य० दे० "धृक"।

धृत-वि० [सं०] (१) धरा हुआ। पकड़ा हुआ। (२) धारण किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। (३) स्थिर किया हुआ। निश्चित। (४) पतित।

संज्ञा पुं० (१) तेरहवें मनु रौच्य के पुत्र का नाम। (२) द्रुह्यु वंशीय धर्म का पुत्र। (भागवत)

धृतकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के बहनोई। (गर्गसंहिता)

धृतदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक की एक कन्या का नाम।

धृतमाली-संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों को निष्फल करने का एक अस्त्र। अस्त्रों का एक संहार। (रामायण)

धृतराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह देश जो अच्छे राजा के शासन में हो। (२) वह जिसका राज्य दृढ़ हो। (३) एक कौरव राजा जो दुर्योधन के पिता और विचित्रवीर्य्य के पुत्र थे।

विशेष—इनकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है। पुरुवंश में शांतनु नाम के एक राजा हुए जिन्होंने गंगा से विवाह किया। गंगा से उन्हें देवव्रत नामक पुत्र हुए जो भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्म ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके अपने पिता का विवाह सत्यवती या मत्स्यगंधा से होने दिया। यह सत्यवती जब क्वारी थी तभी उसे पराशर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम द्वैपायन पड़ा था। यही द्वैपायन महाभारत के कर्त्ता प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यास हुए। सत्यवती के गर्भ से शांतनु को दो पुत्र हुए। विचित्रवीर्य्य और चित्रांगद। चित्रांगद युवावस्था के पूर्व ही एक गंधर्व द्वारा मारे गए। विचित्रवीर्य्य राजा हुए और उन्होंने काशिराज की अंबिका और अंबालिका नाम की दो कन्याओं से विवाह किया। कुछ दिन पीछे विचित्रवीर्य्य बिना कोई संतान छोड़े मर गए। वंश स्थिर रखने के लिये सत्यवती ने अपने पुत्र वेदव्यास को बुला कर दोनों पुत्रवधुओं के साथ नियोग करने के लिये कहा। अंबिका ने समागम के समय वेदव्यास का कृष्णवर्ण और जटाजूट देख आँखें मूँद लीं। इस पर वेदव्यास ने कहा कि इसके गर्भ से परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा, पर वह अपनी माता के दोष से अंधा होगा। अंबालिका के साथ नियोग होने पर पांडु की उत्पत्ति हुई और सुदेष्णा दासी के साथ नियोग होने पर विदुर का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र अंधे थे, इसलिये पांडु राजा हुए। पीछे पांडु के मर जाने पर धृतराष्ट्र राजा हुए। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार देश के राजा की कन्या गांधारी से हुआ था। इन्हीं गांधारी के गर्भ से दुर्योधन दुःशासन, विकर्ण, चित्रसेन इत्यादि सौ पुत्र हुए जो कौरव कहलाए और महाभारत के युद्ध में पांडवों के हाथ से मारे गए।

(४) एक नाग का नाम। (५) गंधर्वों के एक राजा का नाम। (बौद्ध)। (६) जनमेजय के एक पुत्र का नाम। (७) एक प्रकार का हंस।

धृतराष्ट्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कश्यप ऋषि की पत्नी ताम्रा से उत्पन्न ५ कन्याओं में से एक जो हंसों की आदि माता थी। (२) धृतराष्ट्र की स्त्री।

धृतवर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० धृतवर्म्मन्] (१) वह जो कवच धारण किए हो। (२) त्रिगर्त्त का राजकुमार जिसके साथ अर्जुन को उस समय युद्ध करना पड़ा था जब वे अश्वमेध के घोड़े के साथ गए थे।

धृतव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने व्रत धारण किया हो। (२) पुरुवंशीय जयद्रथ के पुत्र विजय का पौत्र।

धृतात्मा-वि० [सं० धृतात्मन्] आत्मा को स्थिर रखनेवाला। धीर।

संज्ञा पुं० (१) धीर पुरुष। (२) विष्णु।

धृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धारण। धरने वा पकड़ने की क्रिया। (२) स्थिर रहने की क्रिया या भाव। ठहराव। (३) मन की दृढ़ता। चित्त की अविचलता। धैर्य्य। धीरता।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भावों में से एक है। मनु ने इसे धर्म के दस लक्षणों में कहा है।

(४) सोलह मातृकाओं में से एक। (५) अठारह अक्षरों के वृत्तों की संज्ञा। (६) दक्ष की एक कन्या और धर्म की पत्नी। (७) अश्वमेध की एक आहुति का नाम। (८) फलित ज्योतिष में एक योग। (९) चंद्रमा की सोलह कलाओं में से एक।

संज्ञा पुं० (१) जयद्रथ राजा का पौत्र। (२) एक विश्वदेव का नाम। (३) यदुवंशीय बभ्रु का पुत्र।

धृष्ट-वि० [सं०] [स्त्री० धृष्टा] (१) संकोच या लज्जा न करनेवाला। जो कोई अनुचित या बेढंगा काम करते हुए कुछ भी न सहमे। निर्लज्ज। बेहया। प्रगल्भ।

विशेष—साहित्य में 'धृष्ट नायक' उसको कहते हैं जो अपराध करता जाता है, अनेक प्रकार का तिरस्कार सहता जाता है, पर अनेक बहाने करके बातें बना कर नायिका के पीछे लगा रहता है।

(२) अनुचित साहस करनेवाला। ढीठ। गुस्ताख। उद्धत।

काटता था, उसने भी धोखा दिया (अर्थात् वह चल बसा)। (ख) यह चिमनी बहुत कमजोर है किसी दिन धोखा देगी।

(३) ठीक ध्यान न देने या किसी वस्तु के बाहरी रूप रंग आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति। असत् धारणा। भ्रम। भ्रांति। भूल। जैसे, (क) इस रंगे पत्थर को देखने से असल नग का धोखा होता है। (ख) तुम्हारे सुनने में धोखा हुआ, मैंने ऐसा कभी नहीं कहा था। उ०—पंडित हिये परे नहिं धोखा।—जायसी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—धोखा खाना=भ्रम में पड़ना। भ्रांत होना। और का और समझना। उ०—जिमि कपूर के हंस सों हंसी धोखा खाय।—हरिश्चंद्र। धोखा पड़ना=भूल चूक होना। भ्रम होना।

(४) ऐसी वस्तु या विषय जिससे मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो। भ्रांति उत्पन्न करनेवाली वस्तु या आयोजन। भ्रम में डालने वाली वस्तु। असत् वस्तु। माया। जैसे, (क) यह संसार धोखा है। (ख) राम भरोसा भारी है और सब धोखा धारी है।

मुहा०—धोखे की टट्टी=(१) वह परदा या टट्टी जिसकी ओट में छिप कर शिकारी शिकार खेलते हैं। (२) यथार्थ वस्तु या बात को छिपानेवाली वस्तु। भ्रम में डालनेवाली चीज। उ०—मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ।—शिवप्रसाद। (३) ऐसी वस्तु जिसमें कुछ तत्व न हो। दिखाऊ चीज। धोखा खड़ा करना या रचना=भ्रम में डालने के लिये आडंबर खड़ा करना। माया रचना। उ०—चित चोखा, मन निर्मला, बुधि उत्तम, मति धीर। सो धोखा नहि विरचहीं सतगुरु मिले कबीर।—कबीर।

(५) अज्ञान। जानकारी का अभाव। ध्यान का न होना।

मुहा०—धोखे में या धोखे से=जान में नहीं। जान बूझ कर नहीं। भूल से। जैसे, धोखे से लग गया क्षमा करना। उ०—(क) जिमि धोखे मदपान करि सचिव सोच तेहि भाँति।—तुलसी। (ख) काज कह्यो मातन धरि सारथो। पर-उपकार सार श्रुति को सो धोखेहु में न बिचारयो।—तुलसी।

(६) अनिष्ट की संभावना। जोखों। जैसे, (क) यह बड़े धोखे का काम है। (ख) इसमें जान जाने का धोखा रहता है।

मुहा०—धोखा उठाना=झूठी बात का विश्वास करके हानि सहना। भ्रम में पड़कर हानि या कष्ट उठाना। सावधान न रहने के कारण नुकसान सहना। उ०—अच्छी तरह जान लिया करो, नहीं तो धोखा उठाओगे।—शिवप्रसाद।

(७) अन्यथा होने की संभावना। जैसा समझा या कहा जाय उसके विरुद्ध होने की आशंका। संशय। शक। उ०—(क) या में कछु धोखो नहीं नेही सूर समान। दौड़ सम्मुख सहत हैं दृग अनियारे बान।—रतनहजारा।

मुहा०—धोखा पड़ना=अन्यथा होना। और का और होना। जैसा समझा या कहा जाय उसके विरुद्ध होना। उ०—पंडितन कहा परा नहिं धोखा। कौन अगस्त समुद्रहिं सोखा।—जायसी।

(८) भूल। चूक। प्रमाद। त्रुटि। कसर। जैसे, जितना काम मुझ से हो सकेगा इसमें धोखा नहीं लगाऊँगा।

मुहा०—धोखा लगना=चूक या कसर होना। त्रुटि होना। कमी होना। उ०—हीरामन तैं प्रान परेवा। धोख न लाग करत तुव सेवा।—जायसी। धोखा लगाना=चूक या कसर करना। त्रुटि करना। कमी करना। जैसे, कहने में अपनी ओर से मैं धोखा नहीं लगाऊँगा। उ०—साहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहिं। सुनि सरोष बोले सुभट वीर अधीन न होहिं।—तुलसी।

(इन दोनों मुहावरों का प्रयोग प्रायः निषेध वाक्य (या काकु से प्रश्न) में ही होता है।)

(९) लकड़ी में पयाल कपड़ा आदि लपेट कर बनाया हुआ पुतला जिसे किसान चिड़ियों को डराने के लिये खेत में खड़ा करते हैं। बिजूखा। भुचकाक। उ०—तुला पिनाक साहु नृप त्रिभुवन भट बटोरि सब के बल जोखे। परसुराम से सूर सिरोमनि पल महँ भए खेत के धोखे।—तुलसी।

(१०) रस्सी लगी हुई लकड़ी जो फलदार पेड़ों पर इसलिये बाँधी जाती है कि नीचे से रस्सी खींचने से खटखट शब्द हो और चिड़ियाँ दूर रहें। खटखटा। (११) बेसन का एक पकवान जिसके भीतर नरम कटहल, मसाला आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखने से कबाब का भ्रम होता है।

धोखेबाज—वि० [हिं० धोखा+फा० बाज] [संज्ञा धोखेबाजी] धोखा देनेवाला। छली। कपटी। धूर्त।

धोखेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोखेबाज] छल। कपट। धूर्तता।

धोटा—संज्ञा पुं० दे० "ढोटा"।

धोड़—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

धोतर—संज्ञा पुं० [सं० अधोवस्त्र] एक मोटा कपड़ा जो गाढ़े की तरह का होता है। अधोतर।

† संज्ञा स्त्री० "धोती"।

धोती—संज्ञा स्त्री० [सं० अधोवस्त्र, हिं० अधोतर] नौ दस हाथ लंबा और दो ढाई हाथ चौड़ा कपड़ा जो पुरुष का कटि से लेकर घुटनों के नीचे तक का शरीर और स्त्रियों का प्रायः सर्वांग ढाकने के लिये कमर में लपेट कर खोंसा या ओढ़ा जाता है। उ०—(क) सूरज जेहि की तपै रसोई। नितहि बसंदर

धैंताल-†वि० [अनु० धैं + हिं० ताल] (१) चपल । चंचल । (२) उजड्ड । उ०—छोड़ विचारे को धैंताल ।—प्रताप ।

धैनव-वि० [सं०] गाय से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० गाय का बछड़ा ।

धैना-संज्ञा स्त्री [हिं० धरना वा धंधा] (१) पकड़ी हुई टेव । आदत । स्वभाव । उ०—कह गिरधर कविराय फुहर के याही धैना । कजरौटा नहिं होइ लुकाठै आंजै नैना ।—गिरिधर । (२) काम-धंधा ।

धैर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धीरता । चित्त की स्थिरता । संकट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर घबराहट का न होना । अव्यग्रता । अव्याकुलता । धीरज । जैसे, बुद्धिमान् विपत्ति में धैर्य्य रखते हैं । (२) उतावला न होने का भाव । आतुर न होने का भाव । हड़बड़ी न मचाने का भाव । सब्र । जैसे, थोड़ा धैर्य्य धरो, अभी वे आते होंगे । (३) चित्त में उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव । निर्विकार चित्तता ।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार धैर्य्य नायक या पुरुष के आठ सत्वज गुणों में से एक है ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।—धरना ।—रखना ।

धैवत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वरों में से छठाँ स्वर जो मध्यम के आगे खींचा जाता है ।

विशेष—नारदीय शिक्षा के अनुसार घोड़े के हिनहिनाने के समान जो स्वर निकले वह धैवत है । तानसेन ने इस स्वर को मेंढक के स्वर के समान कहा है । संगीतदामोदर के मत से जो स्वर नाभि के नीचे जाकर वस्ति स्थान से फिर ऊपर दौड़ता हुआ कंठ तक पहुँचे वह धैवत है । संगीतदर्पण के मत से यह स्वर ऋषिकुल में उत्पन्न और क्षत्रिय वर्ण का है । इसका वर्ण पीत, जन्मस्थान श्वेतद्वीप, ऋषि तुंबरु, देवता गणेश और छंद उष्णिक् (मतांतर से जगती) माना गया है और यह बीभत्स और भयानक रस के उपयोगी कहा गया है । यह षाड़व जाति का स्वर माना गया है । इसकी ७२० तानें मानी गई हैं जिनमें प्रत्येक के ४८ भेद होने से सब ३४५६० तानें हुईं । श्रुतियाँ इसकी तीन हैं—रम्या, रोहिणी और मदंती ।

धोंढाल-वि० [हिं० धोंधा ?] (जमीन या मिट्टी) जिसमें ढेले कंकड़ पत्थर के ढोंके हों ।

धोंधका†-संज्ञा पुं० [सं० धूम्र, हिं० धुआँ] [स्त्री० धोंधकी] घर का धुआँ निकलने के लिये चोंगी की तरह निकला हुआ छेद ।

धोंधा-संज्ञा पुं० [सं० ढुंढि = गणेश ?] (१) लोंदा । बेडौल पिंडा । उ०— मैं भी मिट्टी का धोंधा ही हूँ ।—सरस्वती । (२) भद्दा और बेडौल शरीर । मोटी और बेडौल मूर्त्ति ।

मुहा०—मिट्टी का धोंधा = (१) मूर्ख । नासमझ । जड़ । (२) निकम्मा । आलसी ।

धोई-संज्ञा स्त्री० [हिं० धोना] (१) छिलका निकाली हुई उरद या मूँग की दाल ।

विशेष—पानी में भिगोई हुई दाल को हाथ से मल कर छिलका अलग करते हैं इसी लिये दाल को धोई कहते हैं । (२) अफीम के बरतन का धोवन ।

* संज्ञा पुं० [हिं० थवई] राजगीर । थवई । उ०—राजा केर लाग गढ़ धोई । फूटे जहाँ सँवारे सोई ।—जायसी ।

धोकड़-वि० [देश०] हट्टा कट्टा । मोटा ताजा । हृष्ट पुष्ट । मुस्टंडा ।

धोका†-संज्ञा पुं० [सं० स्तोक, प्रा० थोक] पाँच मुट्ठी भर डंठलों का पूला ।

संज्ञा पुं० दे० "धोखा" ।

धोखा-संज्ञा पुं० [सं० धूकता = धूर्त्तता] (१) मिथ्या व्यवहार जिससे दूसरे के मन में मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो । धूर्त्तता या छल जिससे दूसरा भ्रम में पड़े । ऐसी युक्ति या चालाकी जिसके कारण दूसरा कोई अपना कर्त्तव्य भूल जाय । भुलावा । छल । दगा । जैसे, हमारे साथ ऐसा धोखा !

यौ०—धोखा धड़ी । धोखेबाज ।

(२) किसी की धूर्त्तता, चालाकी, झूठ बात आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति । ऐसी बात का विश्वास जो ठीक न हो और जो किसी के रंग ढंग या बात चीत आदि से हुआ हो । दूसरे के छल द्वारा उपस्थित भ्रांति । डाला हुआ भ्रम । भुलावा ।

मुहा०—धोखा खाना = किसी की धूर्त्तता या चालाकी न समझ कर कोई ऐसा काम कर बैठना जो विचार करने पर ठीक न ठहरे । किसी के छल या कपट के कारण भ्रम में पड़ना । ठगा जाना । प्रतारित होना । उ०—और न धोखा देत जो आपुहि धोखा खात ।—व्यास । धोखा देना = (१) ऐसी मिथ्या प्रतीति उत्पन्न करना जिससे दूसरा कोई अयुक्त कार्य्य कर बैठे । भ्रम में डालना । भुलावा देना । झुत्ता देना । छलना । जैसे, लोगों को धोखा देने के लिये उसने यह सब ढंग रचा है । (२) भ्रम में डाल या रख कर अनिष्ट करना । झूठा विश्वास दिला कर हानि करना । विश्वासघात करना । किसी को ऐसी हानि पहुँचाना जिसके संबंध में वह सावधान न हो । जैसे, यह नौकर किसी न किसी दिन धोखा देगा । उ०—रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय । छाँह न वाकी बैठिए जो तरु पतरो होय । जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै । जा दिन बहै बयार टूटि तब जर से जैहै ।—गिरिधर । (३) अकस्मात् मर कर या नष्ट होकर दुःख पहुँचाना । जैसे, (क) इस बुढ़ापे में वह पुत्र को लेकर दिन

वायुदूत ग्रंथ अब तक मिलता है और मेघदूत के ढंग का है।

धोर-संज्ञा स्त्री० [सं० धर=किनारा।] (१) पास। सामीप्य। निकटता। (२) किनारा। धार। बाढ़। उ०—खोदि छई मणिकर्णिका, भूमि चक्र की धोर। सो थल मरयो प्रस्वेद-जल भयो हरण अघ घोर।—केशव।

धोरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सवारी। (२) घोड़े की सरपट चाल। (३) दौड़।

धोरणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेणी। परंपरा।

धोरी-संज्ञा पुं० [सं० धौरेय] (१) धुरे को उठानेवाला। भार उठानेवाला। उ०—(क) फेरत मनहि मातुकृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी।—तुलसी। (ख) तिन महँ प्रथम रेख जगमोरी। धिग धरमध्वज धंधक धोरी।—तुलसी। (२) बैल। वृषभ। उ०—समरथ धोरी कंध धरि रथ ले औरा निवाहिं। मारग माहिं न मेलिए पीछहिं विरद लजाहिं।—दादू। (३) प्रधान। मुखिया। सरदार। उ०—(क) मन मैं मंजु मनोरथ जोरी। सोहर गौरि प्रसाद एक तें कौसिक कृपा चौगुनी भोरी। कुअँर कुआँरि सब मंगल मूरति नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी। राज समाज भूरि भागी जिन्ह चौगुन लाहु लही एहि ठौरी।—तुलसी। (ख) अब यह फौज लूट ही लीजै। धोरिन घाउ न कोऊ कीजै।—लाल। (४) श्रेष्ठ पुरुष। बड़ा आदमी। उ०—म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी। तिनते मरवावत द्विज धोरी।—निश्चल।

धोरे-†क्रि० वि० [सं० धार=किनारा] पास। निकट। समीप। उ०—(क) उज्वल देखि न धीजिए बग ज्यों माँडे ध्यान। धोरे बैठि चपेटसी यों लै बूड़ै ज्ञान।—कबीर। (ख) बिनवै चतुरानन कहि भोरैं। तुव प्रताप जान्यों नहिं प्रभु जू कर स्तुति कर जोरैं। अपराधी मतिहीन नाथ हौं चूक परी निज धोरैं। हम कृत दोष छमो करुणामय ज्यों भू परसत धोरैं।—सूर। (ग) झाँझरियाँ झनकैंगी खरी खनकैंगी चुरी तनिकौ तन तोरे। दास जू जागतीं पास अलीं परिहास करैंगीं सबै उठि भोरे। सौंह तिहारी हौं भागि न जाऊँगी आइ हौं लाल तिहारे ही धोरे। केलि की रैनि परी है घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे।—दास।

यौ०—धोरे धारे=आस पास।

धोलधक-संज्ञा पुं० [?] एक पेड़ का नाम।

धोला-संज्ञा पुं० [सं० दुरालभा] जवासा। धमासा। हिंगुवा।

धोलाना-†क्रि० स० दे० "धुलाना"।

धोवती-‡संज्ञा स्त्री० [सं० अधोवस्त्र] धोती। (क०)। उ०—टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति।—बिहारी।

धोवन-संज्ञा पुं० [हिं० धोना] (१) धोने का भाव। पखारने की क्रिया। (२) वह पानी जिससे कोई वस्तु धोई गई हो। जैसे, पैर का धोवन, चावल का धोवन।

मुहा०—किसी के पैर का धोवन होना=किसी की अपेक्षा अत्यंत तुच्छ होना। किसी के मुकाबले बिलकुल नाचीज होना।

धोवा‡-संज्ञा पुं० [हिं० धोना] (१) धोवन। (२) जल। अर्क। उ०—संग नील वधू लिये दोई घटा पर बैठे विलोकत जोन्ह भरी। रघुनाथ गुलाब को धोवो बनाइ मगाइ कै वारुणी पास धरी।—रघुनाथ।

धोवाना-‡†क्रि० स० [हिं० धोना] धुलाना। उ०—कोइ परात कोइ लोटा लाई। शाह सभा सब हाथ धोवाई।—जायसी। क्रि० अ० [हिं० धोना का अकर्म०] धुलना। धो जाना। साफ होना। उ०—गोये गोय न जाहिं ते धोये ते न धोवाहिं। भली लाल लाली जुहै लोयन कोयन माहिं।—शृं० सत०।

धोसा-संज्ञा पुं० [हिं० ठोस] गुड़ आदि का सूखा हुआ लौंदा। भिस्सा। भेली।

धौं*†-अव्य० [सं० अथवा हिं० दहुँ, दहूँ] (१) एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का भाव अधिक होता है। विचिकित्सा सूचक एक शब्द। न जाने। कौन जाने। मालूम नहीं। कहा नहीं जा सकता। उ०—(क) कौन मोहनी धौं हुत तोही। जो तोहि बिथा सो उपनी मोहीं।—जायसी। (ख) कला-निधान सकल गुन आगर गुरु धौं कहा पढ़ाए।—सूर। (ग) सीय स्वयंबर देखिय जाई। ईस काहि धौं देहि बड़ाई।—तुलसी। (घ) चितवत मोहि लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए।—तुलसी। (२) प्रश्न के रूप में आनेवाले दो विकल्प या संदेहसूचक वाक्यों में से दूसरे या दोनों के पहले लगनेवाला शब्द। कि। या। अथवा। (इस अर्थ में प्रायः 'कि' या 'कै' के साथ आता है)। उ०—(क) सुनत सुदामा जात मनहि मन चीन्हैंगे धौं नाहीं।—सूर। (ख) की धौं वह पर्णकुटी कहुँ और, किधौं वह लक्ष्मण होय नहीं।—केशव। (३) एक शब्द जिसका प्रयोग जोर देने के लिये ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'भला' के अर्थ में होता है जिनका उत्तर काकु से 'नहीं' होता है। यह प्रायः 'कहु' या 'कहो' के साथ आता है और 'कहो तो' का अर्थ देता है। उ०—(क) तुलसी जेहि के रघुबीर से नाथ समर्थ सो सेवत रीझत थोरे। कहा भवभीर परी तेहि धौं विचरै धरनी तिनसों तिन तोरे।—तुलसी। (ख) कंध न देइ मसखरी करई। कहु धौं कौन भाँति निस्तरई।—जायसी। (ग)

धोती धोई।—जायसी। (ख) पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल-रवि दामिनि जोती।—तुलसी।

क्रि० प्र०—पहनना।

मुहा०—धोती बांधना=(१) धोती पहना। उ०—मुद्रा श्रवन जनेऊ कांधे। कनक पत्र धोती कटि बांधे।—जायसी। (२) तैयार होना। सन्नद्ध होना। धोती ढीली करना=डर जाना। भयभीत होना। डर कर भागना। धोती ढीली होना=भय होना। डर होना। उ०—यह सामान देखकर चंद्रापीड़ की धोती ढीली हुई।—गदाधरसिंह।

संज्ञा स्त्री [सं० धौति] (१) योग की एक क्रिया। दे० "धौति"। (२) एक अंगुल चौड़ी और चौवन (५४) अंगुल लंबी कपड़े की धज्जी जिसे हठयोग की "धौति" क्रिया में मुँह से निगलते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाज जिसकी मादा को बेसरा कहते हैं।

धोना—क्रि० स० [सं० धावन] पानी डाल कर किसी वस्तु पर से मैल गर्द आदि हटाना। पानी से साफ करना। जल से स्वच्छ करना। प्रक्षालित करना। पखारना।

विशेष—जिस वस्तु पर से गर्द मैल आदि हटाई जाती है तथा जो लगी हुई वस्तु (गर्द मैल आदि) हटाई या छुड़ाई जाती है दोनों का प्रयोग कर्म में होता है जैसे, हाथ धोना, कपड़ा धोना, घर धोना, बरतन धोना, इसी प्रकार मैल धोना, कालिख धोना, रंग धोना इत्यादि। उ०—(क) जिन रहि बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल विगोए।—तुलसी। (ख) सूर दरस हरि कृपा बारि सों कलिमल धोय बहावै।—सूर।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—(किसी वस्तु से) हाथ धोना=खो देना। गँवा देना। वंचित रहना। जैसे, जो कुछ उनके पास था वे उससे भी हाथ धो बैठे। हाथ धोकर पीछे पड़ना=सब काम धाम छोड़ कर प्रवृत्त होना। सब छोड़ कर लग जाना। धोया धाया=(१) निष्कलंक। निर्दोष। साफ। (२) ऐसा मनुष्य जो बुराई करके भी औरों के सामने उसी प्रकार लज्जित न हो जिस प्रकार निर्दोष आदमी। निर्लज्ज। बेहया। धृष्ट।

(२) दूर करना। हटाना। मिटाना। उ०—(क) करी गोपाल की सब होय। जो अपने पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोय। साधन मंत्र, यंत्र, उद्यम, बल यह सब डारो धोय। जो कछु लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोय।—सूर। (ख) तू ने शकुंतला के अपमान का दुःख सब धो दिया है।—लक्ष्मणसिंह।

संयो० क्रि०—डालना।

मुहा०—धो बहाना=न रहने देना। छोड़ देना या खो देना।

धोप—† * संज्ञा स्त्री० [सं० धूर्वा; धर्वन्=काटनेवाला ?] तलवार। खड्ग। उ०—(क) छत्रसाल जेहि दिसि पिलै काढ़ि धोप कर माहिं। तेहि दिसि सीस गिरीस पै बनत बटोरत नाहिं।—लाल। (ख) भूषण हालि उठे गढ़ भूमि पठान कबंधन के धमके ते। मीरन के अवसान गये मिटि धोपनि सों चपला चमके ते।—भूषण। (ग) एक हाथ धोप द्वै सों कोप यह जनावत है एक तीय हाथ पर ठोंक्यो एक भाल सों।—हनुमान। (घ) अंगद सुग्रीव एऊ दोनों गए राम ढिग सुनो महाराज सिंधु करी बात धोप की।—हनुमान।

धोव—संज्ञा पुं० [हिं० धोवना] धुलावट। धोए जाने की क्रिया।

मुहा०—धोव पड़ना=धोया जाना। धुलने की क्रिया होना। जैसे, इस कपड़े पर कई धोव पड़े पर रंग नहीं उड़ा।

धोवइन—†संज्ञा स्त्री० दे० "धोबिन"।

धोवन†—संज्ञा स्त्री० दे० "धोबिन"।

धोबिघटा—संज्ञा पुं० [हिं० धोबी+घाट] वह घाट जहाँ धोबी कपड़ा धोते हैं।

धोबिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबी] (१) कपड़ा धोनेवाली स्त्री। धोबी जाति की स्त्री। (२) धोबी की स्त्री। (३) दस बारह अंगुल लंबी एक चिड़िया जो जल के किनारे रहती है और पत्थर आदि के नीचे अंडे देती है। यह ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

धोबी—संज्ञा पुं० [हिं० धोवन] [स्त्री० धोबिन] कपड़ा धोनेवाला। वह जो मैले कपड़ों को धो और साफ करके अपनी जीविका करता हो। रजक। उ०—गुरु धोबी, सिख कापड़ा साबुन सिरजनहार। सुरति सिला पर धोइए निकसै रंग अपार।—कबीर।

विशेष—हिंदुओं में जो जाति यह व्यवसाय करती है वह नीच और अस्पृश्य समझी जाती है।

मुहा०—धोबी का कुत्ता=वह जो एक ठिकाने जम कर कोई काम न करे। व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा आदमी। धोबी का छैला=(१) दूसरे के माल पर इतरानेवाला। मँगनी या पराई चीज का घमंड करनेवाला। (२) मंगनी कपड़े पहन कर निकलनेवाला।

धोबीघास—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबी+घास] बड़ी दूब। दूबा।

धोबीपछाड़—संज्ञा पुं० [हिं० धोबी+पछाड़ना] कुश्ती का एक पेच जिसमें जोड़ का हाथ पकड़ कर अपने कंधे की ओर खींचते हैं और उसे कमर पर लादकर चित गिरा देते हैं।

धोबीपाट—संज्ञा पुं० दे० "धोबीपछाड़"।

धोयी—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक कवि। इसका उल्लेख जयदेव ने गीतगोविंद में किया है जिससे यह पता चलता है कि यह कहाँ का राजा था। इसका रचा हुआ

धौंसना-क्रि० स० [सं० ध्वंसन, दमन] (१) दबाना। दंड देना। दमन करना। (२) धमकी देना। घुड़की देना। डराना। उ०—अपने नृप को यहै सुनायो। ब्रजनारी बटपारिन हैं सब चुगली आपुहि जाय लगायो। राजा बड़े बात यह समझी तुम को हम पै धौंसि पठायो। फँसिहारिनि कैसे तुम जानी तुम कहुँ नाहिन प्रगट देखायो। ब्रजवनिता फँसिहारी श्रो सब महतारी काहे न बतायो। फदा फाँसि धनुष विष लाडू सूर श्याम नहि हमैं बतायो।—सूर। (३) मारना। पीटना।

धौंस पट्टी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंस + पट्टी] भुलावा। झाँसा पट्टी। दम दिलासा।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धौंस पट्टी में आना = भुलावे में आना। बहकाने से कोई काम कर बैठना।

धौंसा-संज्ञा पुं० [हिं० धौंसना] (१) बड़ा नगाड़ा। डंका। उ०—(क) दादुर दमामें झांझ झिल्ली गरजनि धौंसा दामिनि मसालै देखि दुरे जगजीव से।—देव। (ख) जरासंध सब असुर सेना ले धौंस दे चला।—लल्लू। (ग) धुंकार धौंसन की बड़ी हुंकार भूमिपतीन की।—गोपाल। (घ) धौंसा लगे घहरान संख लगे हहरान छत्र लागे थहरान केतु लगे फहरान।—गोपाल।

क्रि० प्र०— बजवाना।—बजाना।

मुहा०—धौंसा देना या बजाना = चढ़ाई का डंका बजाना। चढ़ाई की घोषणा करना। उ०—जरासंध सब असुर सेना ले धौंसा दे चला।—लल्लू।

(२) सामर्थ्य। शक्ति। इख्तियार। बूता। उ०—उसका क्या धौंसा है जो इतना खर्च उठावे।

धौंसिया-संज्ञा पुं० [हिं० धौंसना] (१) धौंस जमानेवाला। धौंस से काम चलानेवाला। (२) झाँसा पट्टी देनेवाला। धोखेबाज। (३) धौंसेवाला। नगाड़ा बजानेवाला। (४) वह जो मालगुजारी के बाकीदारों से मालगुजारी वसूल करने का खर्च लेता है।

धौ-संज्ञा पुं० [सं० धव] एक ऊँचा झाड़ या सदाबहार पेड़ जो हिमालय पर ४००० फुट की ऊँचाई तक होता है और भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र जंगलों में मिलता है। इसकी पत्तियाँ अमरूद की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और छाल सफेद होती है जो चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसके फूल को रंगसाज आल के रंग में मिला कर लाल रंग बनाते हैं। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छीपी रंगों में मिला कर कपड़ा छापते हैं। लकड़ी इसकी सफेद होती है और हल मूसल कुल्हाड़ी का बेंट आदि बनाने के काम में आती है। इसका प्रयोग औषध में भी होता है और वैद्यक में यह चरपरा, कसैला, कफ-वात-नाशक, रुचिकारक और दीपन बतलाया गया है। वैद्य लोग इसका प्रयोग पांडुरोग, प्रमेह, अर्श और वात रोग में करते हैं।

पर्य्या०—पिशाचवृक्ष। धुरंधर। गौर। पांडुर। नंदितरु। स्थिर। शुक्ल तरु। धवल। शाकटाख्य।

धौत-वि० [सं०] (१) धोया हुआ। साफ। जैसे, धौतवसन। धौतपाप इत्यादि। (२) उजला। सफेद। जैसे, धौतशिला। (३) नहाया हुआ। स्नात। उ०—हरि को विमल यश गावत गोपांगना। मणिमय आँगन नंदराय को बाल गोपाल तहाँ करै रँगना। गिरि गिरि परत घुटुरुवनि टेकत खेलत हैं दोउ छगन मंगना। धूसरि धूरि धौत तनु मंडित मानि यशोदा लेत बलैया।—सूर।

संज्ञा पुं० रूपा। चाँदी।

धौतशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

धौतात्मा-वि० [सं० धौतात्मन्] जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई। पवित्रात्मा।

धौति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध। (२) हठयोग की एक क्रिया जो शरीर को भीतर और बाहर से शुद्ध करने के लिये की जाती है।

विशेष—घेरंडसंहिता में इसका पूरा वर्णन है। उसमें धौति चार प्रकार की कही गई है—अंतर्धौति, दंतधौति, हृद्धौति और मूलशोधन। अंतर्धौति के भी चार भेद हैं—वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत। वातसार में मुँह को कौवे की चोंच की तरह निकाल कर हवा खींचकर पेट में भरते हैं और उसे फिर मुँह से निकालते हैं। वारिसार में गले तक पानी पीकर अधोमार्ग से निकालते हैं। अग्निसार में साँस को रोककर और पेट को पचका कर नाभि को सौ बार मेरुदंड (रीढ़) से लगाना पड़ता है। बहिष्कृत में कौवे की चोंच की तरह मुँह करके पेट में हवा भरते हैं और उसे चार दंड वहीं रख कर अधोमार्ग से निकालते हैं। इसके पीछे नाभि तक जल में खड़े होकर आँतों को बाहर निकाल कर मल धोते हैं और फिर उन्हें उदर में स्थापित करते हैं। दंतधौति भी पाँच प्रकार की होती है—दंतमूल, जिह्वामूल, रंध्र, कर्णद्वार और कपालरंध्र। इनमें से जिह्वामूल की शुद्धि जीभ को चिमटी से खींच कर करते हैं। रंध्र धौति में नाक से पानी पीकर मुँह से और मुँह से सुड़क कर नाक से निकालना पड़ता है। इसी प्रकार और भी शुद्धियों को समझिए।

(३) योग की एक क्रिया जिसमें दो अंगुल चौड़ी और आठ दस हाथ लंबी कपड़े की धज्जी मुँह से पेट के नीचे उतारते हैं, फिर पानी पीकर उसे धीरे धीरे बाहर निकालते

मेहिं परतीति यहि भाँति नहिं आवई । प्रीति कहु धौं सु नर वानरहि क्यों भई ।—केशव । (घ) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई ।—केशव । (४) किसी वाक्य के पूरे होने पर उससे मिले हुए प्रश्न वाक्य का आरंभ सूचक शब्द जो 'कि' का अर्थ देता है । उ०—(क) हमहु न जानैं धौं सो कहाँ ।—जायसी । (ख) कहो सो विपिन है धौं केति दूर ?—तुलसी । (५) विधि, आदेश आदि वाक्यों के पहले आनेवाला एक शब्द जो केवल जोर देने के लिये उसी प्रकार आता है जिस प्रकार 'सोचिए तो' 'कर तो' 'समझ तो' आदि वाक्यों में 'तो' । उ०—जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद बिनु जिमि जामिनी । तिमि अवध तुलसी दास प्रभु बिनु समुझ धौं जिय भामिनी । —तुलसी ।

धौंक—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंकना] (१) आग दहकाने के लिये भाथी के दबाकर निकाला हुआ हवा का झोंका । अग्नि पर पहुँचाया हुआ वायु का आघात ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

(२) गरमी की लपट । ताप । लू ।

मुहा०—धौंक लगना=शरीर पर ताप का प्रभाव पड़ना । लू लगना ।

धौंकना—क्रि० स० [सं० धम् = धौंकना, फूँकना । धमक = धौंकनेवाला] (१) आग पर, उसे दहकाने के लिये, भाथी दबाकर हवा का झोंका पहुँचाना । अग्नि के प्रज्वलित करने के लिये उस पर वायु का आघात पहुँचाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) ऊपर डालना । भार डालना या सहन कराना । (३) दंड आदि लगाना । जैसे, किसी पर जुरमाना धौंकना ।

धौंकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंकना] (१) बाँस या धातु की एक नली जिससे लोहार सोनार आदि आग फूँकते हैं । (२) भाथी ।

मुहा०—धौंकनी लगना=साँस चढ़ना । दम फूलना ।

धौंका—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंकना] गरमी में चलनेवाली गरम हवा । तप्त वायु । लू ।

क्रि० प्र०—चलना ।

मुहा०—धौंका लगना=गरमी के दिनों में तपी हुई हवा का शरीर में असर करना । लू लगना ।

धौंकिया—संज्ञा पुं० [हिं० धौंकना] (१) भाथी चलानेवाला । आग फूँकनेवाला । (२) एक प्रकार के व्यापारी जो भाथी आदि लिए नगरों की गलियों में फिर कर टूटे फूटे बरतनों की मरम्मत किया करते हैं ।

धौंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० धौंकना] धौंकनी ।

धौंज—संज्ञा स्त्री [हिं० धौंजना] (१) दौड़-धूप । धाव-धूप । उ०—एक करै धौंज एक सोज लै निकारै एक औंजि पानी पीकै सीकै बनत न आवनो ।—तुलसी । (२) घबराहट । उद्विग्नता । हैरानी । व्याकुलता । उ०—आयो आयो आयो सोइ बानर बहुरि भयो सोर चहुँ-ओर लंका आये युवराज के । एक काढ़ैं सोज एक धौंज करै कहा ह्वैहै पोच भई महा सोच सुभट समाज के ।—तुलसी ।

धौंजन—संज्ञा स्त्री० दे० "धौंज" ।

धौंजना—क्रि० स० [सं० ध्वंजन=चलना फिरना] दौड़ना धूपना । दौड़ धूप करना ।

क्रि० स० (१) किसी वस्तु को पैरों से रौंदना । (२) रौंदकर या मलदल कर तह बिगाड़ना (कपड़े आदि की) जैसे, बिस्तर धौंजना ।

धौंटा—संज्ञा पुं० [हिं० अंध + ओट] अँधियारी । ढोका । कोल्हू में चलनेवाले बैल की आँखों का ढकन ।

धौंताल—वि० [हिं० धुन + ताल] (१) जिसे किसी बात की धुन लग जाय । फुरतीला । चुस्त चालाक । काम के कुछ न समझनेवाला । (२) साहसी । दृढ़ । (३) हट्टा कट्टा । मज-बूत । हेकड़ । (४) निपुण । पटु । तेज़ । जैसे, वह खाने में बड़ा धौंताल है ।

धौंधौंमार—संज्ञा स्त्री० [अनु० धम धम + हिं० मार] हड़बड़ी । उतावली । शीघ्रता ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।—होना ।

धौंर—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक प्रकार की ईख जो सफेद होती है ।

धौंस—संज्ञा स्त्री० [सं० दंश] (१) धमकी । घुड़की । डाँट । डपट । उ०—कोई रोता है कोई हँसता है कोई नाचै है कोई गाता है । कोई छीने झपटे से भागे कोई धौंस का डर दिखलाता है ।—नज़ीर ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।—देना ।

(२) धाक । अधिकार । रोब दाब ।

क्रि० प्र०—जमना ।—जमाना ।—बँधना ।—बाँधना ।

(३) झाँसा पट्टी । भुलावा । धोखा । छल ।

क्रि० प्र०—देना ।

यो०—धौंस पट्टी ।

मुहा०—धौंस की चलना=चाल चलना ।

(४) वह रुपया जो मालगुजारी या लगान ठीक समय पर न देने के कारण दंड स्वरूप जमींदार या असामी से वसूल किया जाय । बाकी वसूल होने का खर्च जो जमींदार या असामी को देना पड़े ।

मुहा०—धौंस बाँधना=खर्च जिम्मे करना । खर्चा मढ़ना ।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

धौल धप्पा-संज्ञा पुं० दे० "धौलधप्पड़"।

धौलहर-संज्ञा पुं० [हिं० धौराहर] धौराहर। उ०—कबिरा हरि की भक्ति बिनु धिक जीवन संसार। धूँआ का सा धौलहर जात न लागै बार।—कबीर।

धौलहरा-संज्ञा पुं० दे० "धौरहर"।

धौलाजर-संज्ञा पुं० [सं० धवलाचल] एक पर्वत जो पंजाब के कांगड़ा जिले में है।

धौला-वि० [सं० धवल] [स्त्री० धौली] सफेद। उजला। श्वेत। संज्ञा पुं० (१) धौ का पेड़। धौरा। (२) सफेद बैल।

धौलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० धौल + आई (प्रत्य०)] सफेदी। उजलापन।

धौला खैर-संज्ञा पुं० [हिं० धौला + खैर] बबूल की जाति का एक पेड़ जिसकी छाल सफेद होती है। यह बंगाल, बिहार, आसाम और दक्षिण भारत में होता है।

धौलागिरि-संज्ञा पुं० दे० "धवलगिरि"।

धौली-संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक बड़ा पेड़ जो जाड़े में पत्तियाँ झाड़ता है। इसकी लकड़ी नरम और भूरी होती है तथा पालकी, खिलौने, खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी भीतर की छाल दवाओं में पड़ती है और चमड़ा सिझाने के काम में भी आती है। यह पेड़ पंजाब, अवध, मध्य प्रदेश तथा मद्रास में भी थोड़ा बहुत होता है।

संज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] एक पर्वत जो उड़ीसा में भुवनेश्वर के दक्षिण है। यहाँ अनेक प्राचीन मंदिर हैं। इसके शिखर पर महाराज अशोक के अनुशासन खुदे हैं।

ध्मांक्ष-संज्ञा पुं० दे० "ध्वांक्ष"।

ध्मांक्षनाशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाऊबेर।

ध्मांक्षवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआठोठी।

ध्मांक्षादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकतुंडी।

ध्मांक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोलिका। शीतलचीनी।

ध्मांक्षोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली।

ध्माकार-संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

ध्यात-वि० [सं०] चिंतित। विचारा हुआ। ध्यान किया हुआ।

ध्याता-वि० [सं० ध्यातृ] [स्त्री० ध्यात्री] (१) ध्यान करनेवाला। (२) विचार करनेवाला। उ०—ज्ञाता ज्ञेयरु ज्ञान जो ध्यात धेयरु ध्यान। द्रष्टा दरयरु दरश जो त्रिपुटी शब्दामान।—कबीर।

ध्यान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाह्य इंद्रियों के प्रयोग के बिना केवल मन में लाने की क्रिया या भाव। अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव। मानसिक प्रत्यक्ष। जैसे, किसी देवता का ध्यान करना, किसी प्रिय व्यक्ति का ध्यान करना। उ०—बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिशोर देखि किन लेहू?—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—ध्यान में डूबना या मग्न होना=कोई बात इतना मन में लाना कि और सब बातें भूल जायँ। ध्यान धरना=मन में स्थापित करना। स्वरूप आदि को मन मे लाना। (किसी के) ध्यान में लगना=मन में लाकर मग्न होना। उ०—परसर पोंछत लखि रहत लगि कपोल के ध्यान। करलै पिय पाटल विमल प्यारी पठए पान।—बिहारी।

(२) सोच विचार। चिंतन। मनन। जैसे, आज कल तुम किस ध्यान में रहते हो। (३) भावना। प्रत्यय। विचार। ख्याल। जैसे, (क) चलते समय तुम्हें यह ध्यान न हुआ कि धोती लेते चलें? (ख) मन में इस बात का ध्यान बना रहता है।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ध्यान आना=भावना होना। विचार उत्पन्न होना। ध्यान जमना=विचार स्थिर होना। ख्याल बैठना। ध्यान बँधना=विचार का बराबर या बहुत देर तक बना रहना। लगातार ख्याल बना रहना। जैसे, उसे जिस बात का ध्यान बँध जाता है, वह उसके पीछे पड़ जाता है। ध्यान रखना=विचार बनाए रखना। न भूलना। ध्यान लगना=मन में विचार बराबर बना रहना। बराबर ख्याल बना रहना। जैसे, मुझे तुम्हारा ध्यान बराबर लगा रहता है। उ०—ध्यान लगो मोहिं तोरा रे।—गीत।

(४) रूपों या भावों को भीतर लेने या उपस्थित करनेवाला अंतःकरण-विधान। चित्त की ग्रहण-वृत्ति। चित्त। मन। जैसे, तुम्हारे ध्यान में यह बात कैसे आई कि मैंने तुम्हारे साथ ऐसा किया होगा।

क्रि० प्र०—में आना।—में लाना।

मुहा०—ध्यान में न लाना=(१) चिंता न करना। परवाह न करना। (२) न सोचना समझना, न विचारना।

(५) चित्त का अकेले या इंद्रियों के सहित किसी विषय की ओर लक्ष्य जिससे उस विषय का ज्ञान अंतःकरण में सब के ऊपर हो जाय। किसी संबंध में अंतःकरण की जागृत स्थिति। चेतना की प्रवृत्ति। चेत। ख्याल। जैसे, (क) इसकी कारीगरी को ध्यान से देखो तब खूबी मालूम होगी। (ख) मेरा ध्यान दूसरी ओर था, फिर से कहिए। (ग) इधर ध्यान दो और सुनो।

मुहा०—ध्यान जमना=मन का एक ही विषय के ग्रहण में बराबर तत्पर रहना। ख्याल इधर उधर न जाना। चित्त एकाग्र होना। ध्यान जाना=चित्त का किसी ओर प्रवृत्त होना। दृष्टि पड़ना और बोध होना। जैसे, जब मेरा ध्यान उधर गया तब मैंने उसे टहलते देखा। ध्यान दिलाना=दूसरे का चित्त प्रवृत्त करना। ख्याल कराना, दिखाना या जताना। चेत

हैं। इस क्रिया से आंतें शुद्ध हो जाती हैं। (४) योग की क्रिया में काम आनेवाली कपड़े की लंबी धज्जी।

धौम्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि जो देवल के भाई और पांडवों के पुरोहित थे। ये उत्कोच नामक तीर्थ में रहते थे। चित्ररथ के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने इन्हें अपना पुरोहित बनाया था। (२) एक ऋषि जो महाभारत के अनुसार व्याघ्रपद नामक ऋषि के पुत्र और बड़े शिवभक्त थे। ये सतयुग में थे और बचपन में ही माँ से रुष्ट होकर शिव का तप करके अजर अमर और दिव्यज्ञान-संपन्न हो गए थे। (३) एक ऋषि का नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे। इनके आरुणि, उपमन्यु और वेद नामक तीन पुत्र थे। (४) एक ऋषि जो तारा रूप में पश्चिम दिशा में स्थित हैं। इनका नाम महाभारत में उपंगु, कवि और परिव्याध के साथ आया है।

धौर-संज्ञा पुं० [हिं० धौरा = सफेद] एक चिड़िया। सफेद परेवा।

धौरहर*-संज्ञा पुं० दे० "धौराहर"।

धौरा-वि० [सं० धवल] [स्त्री० धौरी] (१) श्वेत। सफेद। उजला। उ०—(क) धूम, स्याम, धवरे घन धाए। सेत धुजा बग पाँति दिखाए।—जायसी। (ख) धौरी धेनु नजावन कारन मधुरे बेनु बनावै।—सूर। (ग) आयो जौन तेरी धौरी धारा में धँसत जात तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।—पद्माकर। (२) सफेद रंग का बैल। (३) धौ का पेड़। (४) एक पक्षी। एक प्रकार का पंडुक जो कुछ बड़ा और खुलते रंग का होता है। उ०—धौरी पंडुक कहि पिय ठाऊँ। जो चितरोख न दूसर नाऊँ।—जायसी।

धौरादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिवपुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

धौराहर-संज्ञा पुं० [हिं० धुर = ऊपर + घर] ऊँची अटारी। भवन का वह भाग जो खंभे की तरह बहुत ऊँचा गया हो और जिसपर चढ़ने के लिये भीतर भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा। बुर्ज। उ०—(क) पदुमावति धौराहर चढ़ी।—जायसी। (ख) राम जपु राम जपु राम जपु बावरे। घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।·········जग नभबाटिका रही है फलि फूलि रे। धुवा कैसो धौरहार देखि तू न भूलि रे।—तुलसी। (ग) बौरे मन रहन अटल करि जाना। धन दारा सुत बंधु कुटुंब कुल निरखि निरखि बौराना। जीवन जन्म सपनो सो समुझि देखि अल्पमन माहीं। बादर छाहँ धूम धौराहर जैसे थिर न रहाहीं।—सूर।

धौरितक-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पाँच चालों में से एक।

धौरिय-* संज्ञा पुं० [सं० धौरेय] बैल। उ०—नैनन कंधे धौरियन अरे नहीं धुर जाइ। कैसे मन को बोझ धरि घर लौं सकै चलाय।—रसनिधि।

धौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० धौरा] सफेद रंग की गाय। कपिला।

उ०—साँझ की कारी घटा घिरि आई महा झर सों बरसे भरि सावन। धौरिहु कारिहु आइ गई सु रम्हाइ कें धाइ कें लागीं चुखावन।—देव।

धौरे-क्रि० वि० दे० "धोरे"।

धौरेय-वि० [सं०] धुर खींचनेवाला। रथ आदि खींचनेवाला।

संज्ञा पुं० वह बैल जो गाड़ी खींचता है।

धौर्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता।

धौर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक चाल।

धौल-संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) हाथ के पंजे का भारी आघात जो सिर या पीठ पर पड़े। धप्पा। चाँटा। थप्पड़। उ०—पुनि भापइ तो इक धौल लगै सब पद्धति दूर दुरै चट तें।—गोपाल।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—मारना।—लगना।—लगाना।

यौ०—धौल धप्पड़। धौल धप्प। धौल धक्का।

मुहा०—धौल कसना, या जमाना = चाँटा लगाना। थप्पड़ मारना। धौल खाना = चाँटा सहना। थप्पड़ की मार सहना। (२) हानि का आघात। नुकसान का धक्का। हानि। टोटा। जैसे, बैठे बैठाए २००) की धौल पड़ गई।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] (१) धौर नाम की ईख जिसकी खेती कानपुर, बरेली आदि में होती है। (२) ज्वार का हरा डंठल।

संज्ञा पुं० [सं० धवल] धौ का पेड़। धौरा। धवली।

वि० [सं० धवल] उजला। सफेद। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे। देखि मिटैं अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे। सोहै सितासित को मिलिबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरे। मानो हरो तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे।—तुलसी।

मुहा०—धौल धूर्त = गहरा धूर्त। पक्का चालबाज। उ०—ऊधो! हम यह कैसे मानें! धूत धौल लंपट जैसे पट हरि तैसे औरन जाने।—सूर।

संज्ञा पुं० [हिं० धौराहर] धरहरा। धौराहर। उ०—कंटक बनाए वेश राम ही को जायो पापी मेरो मन धुर्आ को सो धौल नभ छायो है।—हनुमान।

धौलधकड़-संज्ञा पुं० [हिं० धौल + धक्का] मारपीट। दंगा। ऊधम। उपद्रव।

धौल धक्का-संज्ञा पुं० [हिं० धौल + धक्का] आघात। चपेट। उ०—तुलसी जिन्हें धाए धुकै धरनीधर, धौरधकान तें मेरु हवै है।—तुलसी।

धौल धप्पड़-संज्ञा पुं० [हिं० धौल + धप्पा] (१) मार पीट। धक्का मुक्का। (२) दंगा। उपद्रव। ऊधम।

ध्राक्षा-संज्ञा स्त्री [सं०] द्राक्षा। दाख।

ध्रुपद-संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवपद] एक गीत जिसके चार भेद या तुक होते हैं—अस्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग। कोई मिलातुक नामक इसका एक पाँचवाँ भेद भी मानते हैं। इसके द्वारा देवताओं की लीला, राजाओं के यश तथा युद्धादि का वर्णन गूढ़ राग रागिनियों से युक्त गाया जाता है। इसके गाने के लिये स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यकता नहीं। इसमें यद्यपि द्रुतलय ही उपकारी है किंतु यह विस्तृति स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी भला मालूम होता है। किसी किसी ध्रुपद में अस्थायी और अंतरा दो ही पद होते हैं। ध्रुपद कान्हड़ा, ध्रुपद केदारा, ध्रुपद एमन आदि इसके भेद हैं। ये सब के सब चौताल पर गाए जाते हैं। इस राग को संस्कृत में ध्रुवक कहते हैं। संगीतदामोदर के मत से ध्रुपद सोलह प्रकार का होता है—जयंत, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुंतल, कमल, सानंद, चंद्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कंदर्प, जयमंगल, तिलक और ललित। इनमें से जयंत के प्रति पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक अक्षर अधिक होता जाता है; इस प्रकार ललित में सब २६ अक्षर होते हैं। छः पदों का ध्रुपद उत्तम, पाँच का मध्यम और चार का अधम होता है।

ध्रुव-वि० [सं०] (१) स्थिर। अचल। सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला। इधर उधर न हटनेवाला। (२) सदा एक ही अवस्था में रहनेवाला। नित्य। (३) निश्चित। दृढ़। ठीक। पक्का। जैसे, उनका आना ध्रुव है।

संज्ञा पुं० (१) आकाश। (२) शंकु। कील। (३) पर्वत। (४) स्थाणु। खंभा। थून। (५) वट। बरगद। (६) आठ वसुओं में से एक। (७) ध्रुवक ध्रुपद। (८) एक यज्ञपात्र। (९) शारि नामक पक्षी। (१०) विष्णु। (११) हर। (१२) फलित ज्योतिष में एक शुभ योग जिसमें उत्पन्न बालक बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान् और प्रसिद्ध होता है। (१३) ध्रुवतारा। (१४) नाक का अगला भाग। (१५) गाँठ। (१६) पुराण के अनुसार राजा उत्तानपाद के एक पुत्र जिनकी माता का नाम सुनीति था। राजा उत्तानपाद की दो स्त्रियाँ थीं; सुरुचि और सुनीति। सुरुचि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव उत्पन्न हुए। राजा सुरुचि को बहुत चाहते थे। एक दिन राजा उत्तम को गोद में लिए बैठे थे इसी बीच में ध्रुव खेलते हुए वहाँ आपहुँचे और राजा की गोद में बैठ गए। इस पर उनकी विमाता सुरुचि ने उन्हें अवज्ञा के साथ वहाँ से हटा दिया। ध्रुव इस अपमान को सह न सके; और घर से निकल कर तप करने चले गए। विष्णु भगवान उनकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें वर दिया कि "तुम सब लोकों और ग्रहों नक्षत्रों के ऊपर उनके आधार स्वरूप होकर अचल भाव से स्थित रहोगे और जिस स्थान पर तुम रहोगे वह ध्रुव लोक कहलावेगा"। इसके उपरांत ध्रुव ने घर आकर पिता से राज्य प्राप्त किया और शिशुमार की कन्या भ्रमि से विवाह किया। इला नाम की इनकी एक और पत्नी थी। भ्रमि के गर्भ से कल्प और वत्सर तथा इला के गर्भ से उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार इनके सौतेले भाई उत्तम को यक्षों ने मार डाला इसलिये इन्हें उनसे युद्ध करना पड़ा जिसे पितामह मनु ने शांत किया। अंत में छत्तीस हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णु के दिए हुए ध्रुवलोक में चले गए। (१७) शरीर की भौंरी।

विशेष—वक्षस्थल, मस्तक, रध्र, उपरंध्र, भाल और अपान इन स्थानों की भौंरियाँ ध्रुव कहलाती हैं। (शब्दार्थचिंतामणि)।

(१८) भूगोल विद्या में पृथ्वी का अक्ष देश। पृथ्वी के वे दोनों सिरे जिनसे होकर अक्षरेखा गई हुई मानी जाती है।

विशेष—सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी लट्टू की तरह घूमती हुई करती है। एक दिन रात में उसका इस प्रकार का घूमना एक बार हो जाता है। जिस प्रकार लट्टू के बीचो बीच एक कील गई होती है जिस पर वह घूमता है उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भकेंद्र से गई हुई एक अक्ष रेखा मानी गई है। यह अक्ष रेखा जिन दो सिरों पर निकली हुई मानी गई है उन्हें ध्रुव कहते हैं। ध्रुव दो हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव या कुमेरु। इन स्थानों से २३½ अंश पर पृथ्वी के तल पर एक एक वृत्त माने गए हैं जिन्हें उत्तर और दक्षिण शीतकटिबंध कहते हैं। ध्रुवों और इन वृत्तों के बीच के प्रदेश अत्यंत ठंढे हैं, उनमें समुद्र आदि का जल सदा जमा रहता है। ध्रुव प्रदेश में दिन रात २४ घंटों का नहीं होता, वर्ष भर का होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं तब तक उत्तर ध्रुव पर दिन और दक्षिण ध्रुव पर रात और जब तक दक्षिणायन रहते हैं तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन और उत्तर ध्रुव पर रात रहती है। अर्थात् मोटे हिसाब से कहा जा सकता है कि वहाँ छः महीने की रात और छः महीने का दिन होता है। इसी प्रकार वहाँ संध्या और उषा काल भी लंबा होता है। वहाँ सूर्य और चंद्रमा पूर्व से पश्चिम जाते हुए नहीं मालूम होते बल्कि चारों ओर कोल्हू के बैल की तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं। ध्रुव प्रदेश में उषा काल और संध्या काल की ललाई क्षितिज के ऊपर बीसों दिन तक घूमती दिखाई पड़ती है। यहाँ तक नहीं ग्रह नक्षत्र युक्त राशिचक्र भी ध्रुव के चारों ओर घूमता दिखाई पड़ता है। शब्द की गति ध्रुव प्रदेश में बहुत तेज-

कराना। चेताना। सुझाना। ध्यान देना=(अपना) चित्त प्रवृत्त करना। चित्त एकाग्र करना। ख्याल करना। गौर करना। ध्यान पर चढ़ना=मन में स्थान कर लेना। चित्त से न हटना। अच्छे लगने या और किसी विशेषता के कारण न भूलना। जैसे, तुम्हारे ध्यान पर तो वही चीज चढ़ी हुई है, और कोई चीज पसंद ही नहीं आती। ध्यान बँटना=चित का इधर भी रहना उधर भी। चित्त एकाग्र न रहना। ख्याल इधर उधर होना। जैसे, काम करते समय कोई बात चीत करता है तो ध्यान बँट जाता है। ध्यान बँटाना=चित्त को एकाग्र न रहने देना। ख्याल इधर उधर ले जाना। ध्यान बँधना=किसी ओर चित्त स्थिर होना। चित्त एकाग्र होना। ध्यान लगना=चित्त प्रवृत्त होना। मन का विषय के ग्रहण में तत्पर होना। चित्त एकाग्र होना। जैसे, उसका ध्यान लगे तब तो वह पढ़े। ध्यान लगाना=दे० "ध्यान देना"।

(६) बोध करनेवाली वृत्ति। समझ। बुद्धि।

मुहा०—ध्यान पर चढ़ना=दे० "ध्यान में आना"। ध्यान में आना=बोध या अनुमान होना। समझ में आना। ध्यान में जमना=मन में बैठना। चित्त में निश्चित होना। विश्वास के रूप में स्थिर होना।

(७) धारणा। स्मृति। याद।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ध्यान आना=स्मरण होना। याद होना। ध्यान दिलाना=स्मरण कराना। याद दिलाना। जैसे, जब भूलोगे तब तुम्हें ध्यान दिला देंगे। ध्यान पर चढ़ना=स्मृति में आना। स्मरण होना। याद होना। ध्यान रखना=स्मृति बनाए रखना। याद रखना। न भूलना। ध्यान रहना=स्मरण रहना। याद रहना। ध्यान से उतरना=स्मृति में न रहना। याद न रहना। विस्मृत होना। भूलना।

(८) चित्त को चारों ओर से हटा कर किसी एक विषय (जैसे, परमात्मचिंतन) पर स्थिर करने की क्रिया। चित्त को एकाग्र करके किसी ओर लगाने की क्रिया। जैसे, योगियों का ध्यान लगाना।

विशेष—योग के आठ अंगों में 'ध्यान' सातवाँ अंग है। यह धारणा और समाधि के बीच की अवस्था है। जब योगी प्रत्याहार द्वारा अपने चित्त की वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है तब उन्हें चारों ओर से हटा कर नाभि आदि स्थानों में से किसी एक में लगाता है। इसे धारणा कहते हैं। धारणा जब इस अवस्था को पहुँचती है कि धारणीय वस्तु के साथ चित्त के प्रत्यय की एकतानता हो जाती है तब उसे ध्यान कहते हैं। यही ध्यान जब चरमावस्था को पहुँच जाता है तब समाधि कहलाता है जिसमें ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता अर्थात् ध्याता ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपनी सत्ता भूल जाती है।

बौद्ध और जैन धर्मों में भी ध्यान एक आवश्यक अंग है। जैन शास्त्र के अनुसार उत्तम संहनन युक्त चित्त के अवरोध का नाम ध्यान है।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—ध्यान छूटना=चित्त की एकाग्रता का नष्ट होना। चित्त इधर उधर हो जाना। उ०—रोवन लग्यो सुत मृतक जान। रुदन करत छूट्यो ऋषि ध्यान।—सूर। ध्यान धरना=ध्यान लगाना। परमात्मचिंतन आदि के लिये चित्त को एकाग्र करके बैठना।

ध्यानना*–क्रि० स० [सं० ध्यान] ध्यान करना। (क्व०)। उ०—बिनु हरि भक्त सब जगत की यही रीति भयो हरि भक्ति की अनंत पद ध्यानिये।—प्रियादास।

ध्यानयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान अंग हो। (२) तंत्र या इंद्रजाल की एक क्रिया जिसके द्वारा मन में किसी आकृति की कल्पना कर के शत्रु का नाश किया जाता है।

ध्याना*–क्रि० स० [सं० ध्यान] (१) ध्यान करना। उ०—(क) हिंदू ध्यावहिं देहरा, मुसलमान मसीत। दास कबीर तहँ ध्यावहिं जहाँ दोनों परतीत।—कबीर। (ख) भजु मन नंद नंदन चरन। परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन। सनक शंकर जाहि ध्यावत निगम अबरन बरन। शेष शारद ऋषि सुनारद संत चिंतत चरन।—सूर। (२) स्मरण करना। सुमरना। उ०—हरि हरि हरि सुमरो सब कोई। हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।......हरिहि मित्र विंदा चित ध्यायो। हरि तहाँ जाइ विलंब न लायो।—सूर।

ध्यानावचार–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवता।

ध्यानिक–वि० [सं०] ध्यानसाध्य। जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो।

ध्यानिबुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के बुद्ध। इनकी संख्या कोई ५ या ६ और कोई १० से भी अधिक बताते हैं। ये अशरीरी हैं।

ध्यानी–वि० [सं० ध्यानिन्] (१) ध्यानयुक्त। समाधिस्थ। (२) ध्यान करनेवाला। जो ध्यान में रहता हो।

ध्याम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमनक। दौना। (२) गंधतृण।

वि० श्यामल। साँवला।

ध्यामक–संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहिस घास। रोहिस सोंधिया।

ध्येय–वि० [सं०] (१) ध्यान करने योग्य। (२) जिसका ध्यान किया जाय। जो ध्यान का विषय हो।

अभाव नहीं मानते केवल तिरोभाव मानते हैं। वे वस्तु का नाश नहीं मानते; उसका अवस्थांतर मानते हैं।

ध्वंसक–वि० [सं०] नाश करनेवाला।

ध्वंसन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ध्वंसनीय, ध्वंसित, ध्वस्त] (१) नाश करने की क्रिया। (२) नाश होने का भाव। क्षय। विनाश। तबाही।

ध्वंसित–वि० [सं०] विनाशित। नष्ट किया हुआ।

ध्वंसी–वि० [सं० ध्वंसिन्] [स्त्री० ध्वंसिनी] नाश करनेवाला। विनाशक।

संज्ञा पुं० पहाड़ी पीलू का पेड़।

ध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिह्न। निशान। (२) वह लंबा या ऊँचा डंडा जिसे किसी बात का चिह्न प्रकट करने के लिये खड़ा करते हैं या जिसे समारोह के साथ लेकर चलते हैं। बाँस, लोहे, लकड़ी आदि की लंबी छड़ जिसे सेना की चढ़ाई या और किसी तैयारी के समय साथ लेकर चलते हैं और जिसके सिरे पर कोई चिह्न बना रहता है, या पताका बँधी रहती है। निशान। झंडा।

विशेष—राजाओं की सेना का चिह्न-स्वरूप जो लंबा दंड होता है वह ध्वज (निशान) कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है—सपताक और निष्पताक। ध्वजदंड बकुल, पलाश, कदंब आदि कई लकड़ियों का होता है, पर बाँस का सबसे अच्छा होता है। ध्वजा परिमाण भेद से आठ प्रकार की होती है—जया, विजया, भीमा, चपला, वैजयंतिका, दीर्घा, विशाला और लोला। जया पाँच हाथ की होती है, विजया छः हाथ की, इसी प्रकार एक एक हाथ बढ़ता जाता है। ध्वज में जो चौखूँटा या तिकोना कपड़ा बँधा होता है उसे पताका कहते हैं। पताका कई वर्णों की होती है और उनमें चित्र आदि भी बने रहते हैं। जिस पताका में हाथी, सिंह आदि बने हों वह जयंती, जिसमें हंस मोर आदि बने हों वह अष्टमंगला कहलाती है; इसी प्रकार और भी समझिए। (युक्ति-कल्पतरु)

(३) ध्वजा लेकर चलनेवाला आदमी। शौंडिक।

विशेष—मनु ने शौंडिक को अतिशय नीच लिखा है।

(४) खाट की पट्टी। (५) लिंग। पुरुषेंद्रिय।

यौ०—ध्वजभंग।

(६) दर्प। गर्व। घमंड। (७) वह घर जिसकी स्थिति पूर्व की ओर हो।

ध्वजग्रीव–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस। (रामायण)

ध्वजद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] ताल। ताड़ का पेड़।

ध्वजभंग–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें पुरुष को स्त्री-संयोग की शक्ति नहीं रह जाती। क्लीवता। नपुंसकता।

विशेष—इस रोग में पुरुषेंद्रिय की पेशियाँ और नाड़ियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। चरक आदि आयुर्वेद के आचार्यों के मतानुसार यह रोग अम्ल, क्षार आदि के अधिक भोजन से, दुष्ट योनि-गमन से, क्षत आदि लगने से, वीर्य के प्रतिरोध से तथा ऐसेही और कारणों से होता है। भावप्रकाश में लिखा है कि संयोग के समय भय, शोक, क्रोध आदि का संचार होने से अनभिप्रेता या द्वेष रखनेवाली स्त्री के साथ गमन करने से मानस क्लैब्य उत्पन्न होता है। यह रोग अधिकतर अधिक शुक्रक्षय और इंद्रिय चालन से उत्पन्न होता है।

ध्वजवान्–वि० [सं०] [स्त्री० ध्वजवती] (१) ध्वजवाला। जो ध्वजा या पताका लिए हो। (२) चिह्नवाला। चिह्नयुक्त। (३) जो (ब्राह्मण) अन्य ब्राह्मण की हत्या करके प्रायश्चित्त के लिये उसकी खोपड़ी लेकर भिक्षा माँगता हुआ तीर्थों में घूमे। (स्मृति)। (४) शौंडिक। कलवार।

ध्वजा–संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] (१) पताका। झंडा। निशान। उ०—(क) ध्वजा फरक्कै शून्य में बाजै अनहद तूर। तकिया है मैदान में पहुँचेंगे कोहनूर।—कबीर। (ख) करि कपि कटक चले लंका को छिन में बाँध्यो सेत। उतरि गए पहुँचे लंका पै विजय ध्वजा संकेत।—सूर।

विशेष—दे० "ध्वज"।

(२) एक प्रकार की कसरत। यह दो प्रकार की होती है एक मलखंभ पर की दूसरी चौरंगी। मलखंभ पर यह कसरत तौल के ही समान की जाती है। केवल विशेष इतना ही करना पड़ता है कि इसमें मलखंभ को हाथ से लपेट कर उसकी एक बगल में सारा शरीर सीधा ठहराकर तौलना पड़ता है। इसे संस्कृत में "ध्वज" कहते हैं। चौरंगी में हाथ पाँव फैला कर चार कोने ठीक दिखाए जाते हैं और दोनों पाँव खूँटी से बाँध कर खड़े रखे जाते हैं। (३) छंदःशास्त्रानुसार टगण का पहला भेद जिसमें पहले लघु फिर गुरु आता है।

ध्वजादि गणना–संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार की गणना जिससे प्रश्न के फल कहे जाते हैं। इसमें नौ कोठों का एक ध्वजाकार चक्र बनाया जाता है। इनमें से पहले घर में प्रश्न रहता है, फिर आगे यथाक्रम ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांक्ष रहते हैं। प्रश्नकर्ता को किसी फल का नाम लेना पड़ता है, फिर फल के आदि वर्ण के अनुसार उसका वर्ग निश्चय करके ज्योतिषी राशि ग्रहादि द्वारा फल बतलाता है। 'ध्वज' के कोठे में स्वर, धूम्र में कवर्ग, सिंह में चवर्ग, श्वान में टवर्ग, वृष में तवर्ग, खर में पवर्ग, गज में अंतस्थ, ध्वांक्ष में श ष स ह समझना चाहिए।

ध्वजाहृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्मृतियों के अनुसार पंद्रह प्रकार

होती है, मीलों पर होनेवाला शब्द ऐसा जान पड़ता है कि पास ही हुआ है। इस भूभाग में सब से मनोहर मेरु ज्योति है जो चित्र विचित्र और नाना वर्णों के आलोक के रूप में कुछ काल तक दिखाई देती है।

(१६) फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रगण जिसमें उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तर भाद्रपद और रोहिणी हैं। (२०) रगण का अठारहवाँ भेद जिसमें पहले एक लघु, फिर एक गुरु और फिर तीन लघु होते हैं। (२१) तालू का एक रोग जिससे ललाई और सूजन आ जाती है। (२२) सोमरस का वह भाग जो प्रातःकाल से सायंकाल तक बिना किसी देवता को अर्पित हुए रक्खा रहे।

ध्रुवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थाणु। थून। खंभा। (२) ध्रुपद नामक गीत। (३) नक्षत्र की दूरी।

विशेष—मीन राशि के शेष से जिस नक्षत्र का योग-तारा जितनी दूर पर रहता है उतने को उस नक्षत्र का ध्रुवक कहते हैं।

ध्रुवका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्रुपद।

ध्रुवकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु तारा।

विशेष—इस प्रकार के केतुओं का न तो आकार नियत है, न वर्ण वा प्रमाण, यहाँ तक कि इनकी गति भी नियत वा नियमित नहीं होती। देखने में वे स्निग्ध होते हैं और फलित ज्योतिष में इनके तीन भेद माने गए हैं, दिव्य, आंतरिक्ष और भौम। इनका फल भी अनियत है कभी अच्छा, कभी बुरा, कभी सम।

ध्रुवचरण—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रताल के बारह भेदों में से एक भेद।

ध्रुवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिरता। अचलता। (२) दृढ़ता। पक्कापन। (३) निश्चय।

ध्रुवतारा—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव + तारक, हिं० तारा] वह तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरु के ऊपर रहता है, कभी इधर उधर नहीं होता।

विशेष—यह तारा बहुत चमकीला नहीं है और सप्तर्षि के सिरे पर के दो तारों की सीध में उत्तर की ओर कुछ दूर पर दिखाई पड़ता है। इसकी पहचान यही है कि अपना स्थान नहीं बदलता। सारा राशिचक्र इसके किनारे फिरता हुआ जान पड़ता है और यह अपने स्थान पर अचल रहता है। रात के प्रत्येक पहर में उठ उठ कर इसके साथ सप्तर्षि को ही देखने से इसका अनुभव हो सकता है। जिस प्रकार सप्तर्षि में सात तारे हैं उसी प्रकार जिस शिशुमार नामक तारकपुंज के अंतर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातों में ध्रुव पहला और सबसे उज्ज्वल है। ध्रुव तारा सदा एक ही नहीं रहता। पृथ्वी के अक्ष वा मेरु से जिस तारे का व्यवधान सबसे कम होता है अर्थात् पृथ्वी के अक्षबिंदु की सीध से जो तारा सब से कम हटकर होता है वही ध्रुव तारा होता है। आज कल जो ध्रुव तारा है वह मेरु वा अक्षबिंदु से १¼ अंश पर है। अयनवृत्त के चारों ओर नाड़ीमंडल के मेरु की गति के अनुसार बारह हजार वर्ष बीतने पर यह तारा मेरु को पीछे छोड़ता हुआ उसकी सीध से बहुत हट जायगा और तब अभिजित नामक नक्षत्र ध्रुव तारा होगा। आज से पाँच हजार वर्ष पहले थूबन नामक तारा ध्रुव तारा था। वर्त्तमान ध्रुव का व्यवधानांतर आजकल मेरु से १¼ अंश है, पर सन् १७८९ ई० में २ अंश २ कला था और दो हजार वर्ष पहले १२ अंश था।

भारतवासियों को ध्रुव का परिचय अत्यंत प्राचीन काल से है। विवाह के वैदिक मंत्र में ध्रुव तारा का नाम आता है। भारतीय ज्योतिर्विदों के मतानुसार दो ध्रुव तारे हैं—एक उत्तर ध्रुव की सीध में, दूसरा दक्षिण ध्रुव की सीध में।

ध्रुवदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सप्तर्षिमंडल। (२) कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के संस्कार के अंतर्गत एक कृत्य जिसमें वर वधू को मंत्र पढ़ कर ध्रुवतारा दिखाया जाता है।

ध्रुवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दुहते समय चुप चाप खड़ी रहे।

ध्रुवनंद—संज्ञा पुं० [सं०] नंद के एक भाई का नाम।

ध्रुवपद—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवक। ध्रुपद।

ध्रुवमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिसके द्वारा दिशाओं का ज्ञान होता है। कुतुबनुमा। (नवीन)

ध्रुवरत्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मातृका जो कुमार वा कार्त्तिकेय की अनुचरी है।

ध्रुवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक लोक जो सत्यलोक के अंतर्गत है और जिसमें ध्रुव स्थित हैं।

ध्रुवसंधि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्यवंशीय राजा सुसंधि के पुत्र। (रामायण)

ध्रुवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञपात्र जो वैकंड की लकड़ी का बनता है। (२) मूर्वा। मरोड़फली। (३) शालपर्णी। सरिवन। (४) ध्रुपद गीत। (५) साध्वी स्त्री। सती स्त्री।

ध्रुवावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ों की भौंरी जो ललाट, केश, रंध्र, उपरंध्र, वक्ष इत्यादि में होती है। (२) वह घोड़ा जिसके ऐसी भौंरियाँ होती हैं।

ध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] विनाश। नाश। क्षय। हानि।

विशेष—न्याय और वैशेषिक में 'ध्वंस' एक अभाव माना गया है। पर सत्कार्यवादी सांख्य और वेदांत ध्वंस को

न

न–एक व्यंजन जो हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का बीसवाँ और तवर्ग का पाँचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारण-स्थान दंत है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न और जीभ के अगले भाग का दाँतों की जड़ से स्पर्श होता है; और बाह्य प्रयत्न संवार, नाद घोष और अल्प प्राण है। काव्य आदि में इस वर्ण का विन्यास सुखद होता है।

नंग–संज्ञा पुं० [हिं० नंगा] (१) नग्नता। नंगापन। नंगे होने का भाव। जैसे, उसने अपना नंग दिखा दिया। मैंने उसका नंग देखा। (२) गुप्त अंग।

वि० लुच्चा। नंगा। बदमाश और बेहया। जैसे, उससे कौन बोले वह तो बड़ा नंग है।

नंगटा†–वि० दे० "नंगा"।

नंग धड़ंग–वि० [हिं० नंगा + धड़ंग अनु०] बिलकुल नंगा। जिसके शरीर पर एक भी वस्त्र न हो। दिगंबर। विवस्त्र। जैसे, आवाज सुनकर वह नंग धड़ंग बाहर निकल आया।

नंगपैरा†–वि० [हिं० नंगा + पैर + आ (प्रत्य०)] जिसके पाँव नंगे हों। जिसके पैरों में जूता न हो।

नंगमुनंगा–वि दे० "नंग धड़ंग"।

नंगर–संज्ञा पुं० दे० "लंगर"।

नंगरवारी–संज्ञा पुं० [हिं० लंगर + वाला] समुद्र में चलनेवाली वह साधारण नाव जो तूफान के समय किसी रक्षित स्थान पर लंगर डालकर ठहर जाती हो। (लश०)

नंगा–वि० [सं० नग्न] (१) जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। जो कोई कपड़ा न पहने हो। दिगंबर। विवस्त्र। वस्त्रहीन।

यौ०—नंगा बवाड़ा = जिसके शरीर पर वस्त्र न हो। विवस्त्र। अलिफ नंगा या नंगा मादरजाद = बिलकुल नंगा।

(२) निर्लज्ज। बेहया। बेशर्म। (३) लुच्चा। पाजी।

यौ०—नंगा लुच्चा = बदमाश और पाजी।

(४) जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो। जो किसी तरह ढँका न हो। खुला हुआ। जैसे नंगा सिर (जिस सिर पर पगड़ी या टोपी आदि न हो), नंगे पैर (जिन पैरों में जूता आदि न हो), नंगी तलवार (म्यान से बाहर निकली हुई तलवार), नंगी पीठ (जिस घोड़े आदि की पीठ पर जीन आदि न हो)।

संज्ञा पुं० (१) शिव। महादेव। (२) कश्मीर की सीमा पर का एक बहुत बड़ा पर्वत।

नंगाभोरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "नंगाझोली"।

नंगाझोली–संज्ञा स्त्री० [हिं० नंगा + झोरना = किसी चीज को गिराने के लिये हिलाना] किसी के पहने हुए कपड़ों आदि को उतरवाकर अथवा यों ही अच्छी तरह देखना, जिसमें उसकी छिपाई हुई चीज का पता लग जाय। कपड़ों की तलाशी। जामा-तलाशी। जैसे, इस लड़के ने जरूर पेंसिल चुराई है, इसकी नंगाझोली लो। (जब यह संदेह होता है कि किसी मनुष्य ने अपने कपड़ों में कोई चीज छिपाई है तब उस की नंगाझोली ली जाती है।)

क्रि० प्र०—लेना।—देना।

नंगाबुंगा–वि० [हिं० नंगा + बुंगा (अनु०)] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। (२) जिसके ऊपर कोई आवरण न हो।

नंगाबुचा, नंगाबूचा वि० [हिं० नंगा + बूचा ?] जिसके पास कुछ भी न हो। बहुत दरिद्र।

नंगा मादरजाद–वि० [हिं० नंगा + फा० मादरजाद] ऐसा नंगा जैसा माँ के पेट से निकलने के समय (बालक) होता है। जिसके शरीर पर एक सूत भी न हो। बिलकुल नंगा। अलिफ नंगा।

नंगामुनंगा –संज्ञा पुं० [हिं० नंगा + अनु० मुनंगा] बिलकुल नंगा।

नंगालुच्चा–वि० [हिं० नंगा + लुच्चा] नीच और दुष्ट। बदमाश।

नँगियाना–क्रि० स० [हिं० नंगा + इयाना (प्रत्य०)] (१) नंगा करना। शरीर पर वस्त्र न रहने देना। (२) सब कुछ छीन लेना। कुछ भी पास न रहने देना।

नँगियावन†–क्रि० स० [हिं० नंगा + इयाना (प्रत्य०)] नंगा करने की क्रिया।

नंदंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेटा। (२) राजा। (३) मित्र।

नंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद। हर्ष। (२) सच्चिदानंद परमेश्वर। (३) पुराणानुसार नौ निधियों में से एक। (४) स्वामिकार्त्तिक के एक अनुचर का नाम। (५) एक नाग का नाम। (६) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (७) वसुदेव के एक पुत्र का नाम जो मदिरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (८) क्रौंच द्वीप के एक वर्ष पर्वत का नाम। (९) विष्णु। (१०) मेढक। (११) भागवत के अनुसार यज्ञेश्वर (परमात्मा) के एक अनुचर का नाम। (१२) एक प्रकार का मृदंग। (१३) चार प्रकार की वेणुओं या बाँसुरियों में से एक जो ग्यारह अंगुल की होती और उत्तम समझी जाती है। इस के देवता रुद्र माने जाते हैं। (१४) एक राग का नाम, जिसे कोई कोई मालकोस राग का पुत्र मानते हैं। (१५) पिंगल में ढगण के दूसरे भेद का नाम जिसमें एक गुरु और एक लघु होता है—(ऽ।) और जिसे ताल और ग्वाल भी कहते हैं। जैसे, राम। लाल। दान। (१६) लड़का। बेटा। पुत्र। (१७) गोकुल के गोपों के मुखिया जिनके यहाँ श्रीकृष्ण को उनके जन्म के समय, वसुदेव जाकर रख आए थे। श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था इन्हीं के यहाँ

के दासों में से एक। वह दास जिसे लड़ाई में जीत कर पकड़ा हो। (२) वह धन जो लड़ाई में शत्रु को जीतने पर मिले। यह धन अविभाज्य कहा गया है।

ध्वजिक—वि० [सं०] धर्मध्वजी। पाखंडी।

ध्वजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक। वह सीमा या हद जिस पर निशान के लिये पेड़ आदि लगे हों। (२) सेना का एक भेद जिसका परिमाण कुछ लोग वाहिनी का दूना मानते हैं।

ध्वजी—वि० [सं० ध्वजिन्] [स्त्री० ध्वजिनी] (१) ध्वजवाला। जो ध्वजा पताका लिए हो। (२) चिह्नवाला। चिह्नयुक्त। संज्ञा पुं० (१) ब्राह्मण। (२) पर्वत। (३) रथ। संग्राम। (४) साँप। (५) घोड़ा। (६) मयूर। मोर। (७) सीपी। (८) ध्वजा लेकर चलनेवाला। शौंडिक। कलवार।

ध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रवणेंद्रिय में उत्पन्न संवेदन अथवा वह विषय जिसका ग्रहण श्रवणेंद्रिय में हो। शब्द। नाद। आवाज। जैसे, मृदंग की ध्वनि, कंठ की ध्वनि।

विशेष—भाषापरिच्छेद के अनुसार श्रवण के विषय मात्र को ध्वनि कहते हैं, चाहे वह वर्णात्मक हो, चाहे अवर्णात्मक। दे० "शब्द"।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ध्वनि उठना = शब्द उत्पन्न होना या फैलना।

(२) शब्द का स्फोट। शब्द का फूटना। आवाज की गूँज। नाद का तार। लय। जैसे, मृदंग की ध्वनि, गीत की ध्वनि।

विशेष—शारीरक भाष्य में ध्वनि उसी को कहा है जो दूर से ऐसा सुना जाय कि वर्ण वर्ण अलग और साफ न मालूम हो। महाभाष्यकार ने भी शब्द के स्फोट को ही ध्वनि कहा है। पाणिनि-दर्शन में वर्णों का वाचकत्व न मान कर स्फोट ही के बल से अर्थ की प्रतिपत्ति मानी गई है। वर्णों द्वारा जो स्फुटित या प्रकट हो उसको स्फोट कहते हैं, वह वर्णातिक्त है। जैसे, 'कमल' कहने से अर्थ की जो प्रतीति होती है वह 'क' 'म' और 'ल' इन वर्णों के द्वारा नहीं, इनके उच्चारण से उत्पन्न स्फोट द्वारा होती है। यह स्फोट नित्य है।

(३) वह काव्य या रचना जिसमें शब्द और उसके साक्षात् अर्थ से व्यंग्य में विशेषता या चमत्कार हो। वह काव्य जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो।

विशेष—जिस काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से सूचित होनेवाले अर्थ की अपेक्षा प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में विशेषता होती है वह 'ध्वनि' कहलाता है। यह उत्तम माना गया है। वाच्यार्थ वा अभिधेयार्थ से अतिरिक्त जो अर्थ सूचित होता है वह व्यंजना द्वारा। जैसे, छूट्यो सबै कुच के तट चंदन, नैन निरंजन दूर लखाई। रोम उठे तव गात लखात ऽरु साफ भई अधरान ललाई। पीर हितून की जानति तू न, अरी! वच बोलत झूठ सदाई। न्हायबे वापी गई इतसों, तिहि पापी के पास गई न तहाँई॥ अपनी दूती से नायिका कहती है कि तेरी पान की ललाई, चंदन, अंजन आदि छूटे हुए हैं, तू बावली में नहाने गई, उधर ही से जरा उस पापी के यहाँ नहीं गई। यहाँ चंदन, अंजन आदि का छूटना नायक के साथ समागम प्रकट करता है। 'पापी' शब्द भी 'तू समागम करने गई थी' यह बात व्यंग्य से प्रकट करता है। इस पद्य में व्यंग्य ही प्रधान है—इसी में चमत्कार है।

(४) आशय। गूढ़ अर्थ। मतलब। जैसे, उनकी बातों से यह ध्वनि निकलती थी कि बिना गए रुपया नहीं मिल सकता।

ध्वनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कान।

ध्वनित—वि० [सं०] (१) शब्दित। (२) व्यंजित। प्रकट किया हुआ। (३) बजाया हुआ। वादित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० बाजा, जैसे मृदंग आदि।

ध्वनिनाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीणा। (२) वेणु।

ध्वन्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यंग्यार्थ। (२) एक प्राचीन राजा जो लक्ष्मण का पुत्र था। इसका नाम ऋग्वेद में आया है।

ध्वन्यात्मक—वि० [सं०] (१) ध्वनि स्वरूप या ध्वनिमय। (२) (काव्य) जिसमें व्यंग्य प्रधान हो।

ध्वन्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं० ध्वन्यर्थ] वह अर्थ जिसका बोध वाच्यार्थ से न होकर केवल ध्वनि वा व्यंजना से हो।

ध्वस्त—वि० [सं०] (१) च्युत। गलित। गिरा पड़ा। (२) खंडित। टूटा फूटा। भग्न। (३) नष्ट। भ्रष्ट। (४) परास्त। पराजित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। विनाश।

ध्वांक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काक। कौआ। (२) मछली खानेवाली एक चिड़िया। (३) तक्षक। (४) भिक्षुक।

ध्वांत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) एक नरक का नाम। तामिस्र। (३) एक मरुत् का नाम।

ध्वांतचर—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। उ०—जैति मंगलागार संसार-भारापहर वानराकार विग्रह पुरारी। राम-रोपानल ज्वालमालामिध्वांतचर-सलभ-संहारकारी।—तुलसी।

ध्वांतवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] खद्योत। जुगनू।

ध्वांतशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) अग्नि। (३) चंद्रमा। (४) श्वेत वर्ण। (५) श्योनाक। सोनापाठा।

ध्वान—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द।

नंदनज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिचंदन । (२) श्रीकृष्ण ।

नंदनप्रधान–संज्ञा पुं० [सं०] नंदनवन के स्वामी, इंद्र ।

नंदनमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की माला जो श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय थी ।

नंदनवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र की वाटिका । (२) कपास ।

नंदना–क्रि० अ० [सं० नंद] आनंदित होना । प्रसन्न होना ।
संज्ञा स्त्री० [सं० नंद=बेटा] पुत्री । लड़की । बेटी ।

नंदनी–संज्ञा स्त्री० दे० "नंदिनी" ।

नंदपाल–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

नंदपुत्री–संज्ञा स्त्री० दे० "नंदनंदिनी" ।

नंदप्रयाग–संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम के निकट का एक तीर्थ जो सात प्रयागों में से है ।

नंदरानी–संज्ञा स्त्री० [सं० नंद+हिं० रानी] नंद की स्त्री, यशोदा ।

नंदरूख–संज्ञा पुं० [हिं० नंद+रूख] अश्वत्थ की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खाने के लिये दी जाती हैं ।

नंदलाल–संज्ञा पुं० [सं० नंद+हिं० लाल=बेटा] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण ।

नंदवंश–संज्ञा पुं० [सं०] मगध का एक विख्यात राजवंश-जिसका अंतिम राजा उस समय सिंहासन पर था जिस समय सिकंदर ने ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व पंजाब पर चढ़ाई की थी ।

विशेष—इस वंश का उल्लेख विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मांड पुराण आदि में मिलता है । विष्णुपुराण में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से महानंदि का पुत्र महापद्मनंद होगा जो समस्त क्षत्रियों का विनाश करके पृथिवी का एकछत्र भोग करेगा । उनके सुमालि आदि आठ पुत्र होंगे जो क्रमशः सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कौटिल्य के हाथ से नंदों का नाश होगा और मौर्य्य लोग राजा होंगे । इसी प्रकार का वर्णन भागवत में भी है । ब्रह्मांड पुराण में कुछ विशेष ब्योरा है । उसमें लिखा है कि राजा विंबिसार (कदाचित् विंबसार जो गौतम बुद्ध के समय तक था और जिसका पुत्र अजातशत्रु बुद्ध का शिष्य हुआ था) २८ वर्ष तक, उसका पुत्र अजातशत्रु २५ वर्ष तक, फिर उदायी ३३ वर्ष तक, नंदिवर्द्धन ४२ वर्ष तक और महानंदि ४० वर्ष तक राज्य करेंगे । शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न महानंदि का पुत्र क्षत्रियों का नाश करनेवाला नंद होगा । वह और उसके आठ पुत्र मोटे हिसाब से १०० वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कौटिल्य के हाथ से सब मारे जायँगे ।

कथा-सरित्सागर में भी नंद का उपाख्यान एक रोचक कहानी के रूप में इस प्रकार दिया गया है । इंद्रदत्त, व्याडि और वररुचि अर्थोपार्जन के लिये नंद की सभा में पहुँचे । पर उनके पहुँचने के कुछ पहले नंद मर गए । इंद्रदत्त ने योग बल से नंद के मृत शरीर में प्रवेश किया जिससे नंद जी उठे । व्याडि इंद्रदत्त के शरीर की रक्षा करने लगे । राजा के जी उठने पर मंत्री शकटार को कुछ संदेह हुआ और उसने आज्ञा दे दी कि नगर में जितने मुर्दे हों सब तुरंत जला दिए जायँ । इस प्रकार इंद्रदत्त का पहला शरीर जला दिया गया और उनकी आत्मा नंद के शरीर में ही रह गई । नंद देहधारी इंद्रदत्त योगानंद नाम से प्रसिद्ध हुए । योगानंद ने महाहत्या का अपराध लगाकर शकटार को सपरिवार कैद कर लिया और अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा । शकटार के सब पुत्र तो यंत्रणा से मर गए, पर शकटार ने प्रतिकार की इच्छा से अपनी प्राणरक्षा की । वररुचि योगानंद के मंत्री हुए । उनके कहने से नंद ने शकटार को छोड़ दिया । धीरे धीरे नंद अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगा । एक दिन उसने वररुचि पर क्रुद्ध हो कर उन्हें मार डालने की आज्ञा दी । शकटार ने उन्हें छिपा रखा । एक दिन राजा फिर वररुचि के लिये व्याकुल हुए । इस पर शकटार ने उन्हें लाकर उपस्थित किया । पर वररुचि ने उदास हो वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया ।

शकटार यद्यपि नंद के मंत्री रहे पर उसके विनाश का उपाय सोचते रहे । एक दिन उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण कुशों को उखाड़ उखाड़ कर गड्ढा खोद रहा है । पूछने पर उसने कहा "ये कुश मेरे पैर में चुभे थे, इससे इन्हें बिना समूल नष्ट किए न रहूँगा ।" यह ब्राह्मण कौटिल्य चाणक्य था । शकटार ने चाणक्य को अपने कार्य्य साधन के लिये उपयोगी समझकर उसे नंद के यहाँ आने के लिये श्राद्ध का निमंत्रण दे दिया । चाणक्य नंद के प्रासाद में पहुँचे और प्रधान आसन पर बैठ गए । नंद को यह सब खबर नहीं थी, उसने वह आसन दूसरे के लिये रखा था । चाणक्य को उस पर बैठा देख उसने उठ जाने का इशारा किया । इस पर चाणक्य ने अत्यंत क्रुद्ध होकर कहा—"सात दिन में नंद की मृत्यु होगी"। शकटार ने चाणक्य को घर ले जाकर राजा के विरुद्ध और भी उत्तेजित किया । अंत में अभिचार क्रिया कर के चाणक्य ने सात दिन में नंद को मार डाला । इसके उपरांत योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त को मार कर उसने नंद के पुत्र चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और आप मंत्री का पद ग्रहण किया ।

बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी नंद का वृत्तांत मिलता है पर भेद इतना है कि पुराणों में तो महापद्मनंद को महानंदि का पुत्र माना है, चाहे शूद्रा के गर्भ से सही, पर जैन और बौद्ध ग्रंथो में उसे सर्वथा नीच कुल का और अकस्मात् आकर राजसिंहासन पर बैठनेवाला लिखा है । कथासरित्सागर में चंद्रगुप्त को जो नंद का पुत्र लिखा है उसे इतिहासज्ञ ठीक

बीती थी। इनकी स्त्री का नाम यशोदा था। कंस के भय से ये पीछे श्रीकृष्ण को लेकर वृंदावन जा रहे थे। जब कृष्ण ने मथुरा में कंस को मारा था तब वे भी उनके साथ ही थे। इस के उपरांत जब कृष्ण मथुरा से वृंदावन नहीं लौटे तब ये बहुत दुःखी हुए थे। इसके बहुत दिन बाद जब हंस और डिंभक का दमन करने के लिये वे गोवर्द्धन गए थे तब इन्होंने उन्हें बहुत रोकना चाहा था, पर कृष्ण ने नहीं माना। भागवत में लिखा है कि एक बार ये एकादशी का व्रत करके रात के समय यमुना में स्नान करने गए थे। उस समय वरुण के दूत इन्हें पकड़ कर वरुण की सभा में ले गए। उस समय कृष्ण ने वहाँ जाकर इन्हें छुड़ाया। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी लिखा है कि नंद पूर्व जन्म में दक्ष प्रजापति थे और यशोदा उनकी स्त्री थी। जब यज्ञ में सती ने शिव जी की निंदा सुन कर अपने प्राण त्याग दिए तब दक्ष दुखी होकर अपनी स्त्री सहित तपस्या करने के लिये चले गए। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सती ने प्रकट हो कर उनसे कहा था कि द्वापर में फिर एक बार तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगी पर उस समय न मैं अधिक समय तक तुम्हारे पास रहूँगी और न तुम मुझे पहचान सकोगे। तदनुसार सती ने कन्यारूप में नंद के यहाँ यशोदा के गर्भ से जन्म लिया था। श्रीकृष्ण को नंद के यहाँ रख कर वसुदेव इसी कन्या को अपने साथ ले गए थे जिसे पीछे से कंस ने जमीन पर पटक दिया था और जो जमीन पर गिरते ही आकाश में चली गई थी। (१८) महात्मा बुद्ध के भाई जो उनकी विमाता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बुद्ध ने बोधि ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत कपिलवस्तु में आकर इन्हें दीक्षित किया था। जब ये बुद्ध के साथ जा रहे थे तब कई बार अपनी स्त्री भद्रा को देखने के लिये ये लौटना चाहते थे, पर बुद्ध ने इन्हें लौटने नहीं दिया था। बुद्ध ने इन्हें भिक्षु बना कर सांसारिक बंधनों से छुड़ा कर स्वर्ग और नरक के दृश्य दिखलाए थे। (१९) मगध देश के कई राजाओं का नाम जिनका राज्य विक्रम संवत् से २९० वर्ष पहले तक रहा और जिनके पीछे मौर्य्य वंश का राज्य हुआ। दे० "नंदवंश"।

नंदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का खड्ग। (२) मेंढक। (३) स्कंद का एक अनुचर। (४) धृतराष्ट्र का एक पुत्र। (५) एक नाग का नाम। (६) राजा नंद जिनके यहाँ कृष्ण बाल्यावस्था में रहते थे।

वि० (१) आनंददायक। (२) कुल-पालक। (३) संतोष देनेवाला।

नंदकि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपल।

नंदकिशोर—संज्ञा पुं० [सं०] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु।

नंदकुँवर—संज्ञा पुं० दे० "नंदकुमार"।

नंदकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदगाँव—संज्ञा पुं० [सं० नंदिग्राम] वृंदावन का एक गाँव जो मथुरा से चौदह कोस पर है और जहाँ नंद गोप रहते थे।

नंदगोपिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना या रायसन नामक ओषधि।

नंदग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नंदगाँव। (२) नंदिग्राम। अयोध्या के समीप का एक गाँव जहाँ बैठ कर राम के वनवास-काल में भरत ने तपस्या की थी। उ०—अवधि में पूरन धरम रहै। नंदिग्राम में नंदी वासे कै ये ही अरथ कहै।—देवस्वामी।

नंदद—संज्ञा पुं० [सं०] आनंद देनेवाला, पुत्र। बेटा। लड़का।

नंदनंद—संज्ञा पुं० [सं०] नंद के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र।

नंदनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नंद की कन्या, दुर्गा। योगमाया। वसुदेव कंस के भय से श्रीकृष्ण को नंद के घर रख कर इसी कन्या को साथ ले गए थे, और जब कंस ने इसे पटका था तब यह उड़ कर आकाश में चली गई थी। विशेष—दे० "नंद"।

नंदन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र के उपवन का नाम जो स्वर्ग में माना जाता है। पुराणानुसार यह सब स्थानों से सुंदर माना जाता है और जब मनुष्यों का भोगकाल पूरा हो जाता है तब वे इसी वन में सुखपूर्वक विहार करने के लिये भेज दिए जाते हैं। (२) कामाख्या देश का एक पर्वत, पुराणानुसार जिस पर कामाख्या देवी की सेवा के लिये इंद्र सदा रहते हैं। इस पर्वत पर जाकर लोग इंद्र की पूजा करते हैं। (३) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (४) एक प्रकार का विष। (५) महादेव, शिव। (६) विष्णु। (७) मेंढक। (८) वास्तु शास्त्र के अनुसार वह मकान जो षट्कोण हो, जिसका विस्तार बत्तीस हाथ हो और जिसमें सोलह शृंग हों। (९) केसर। (१०) चंदन। (११) लड़का। बेटा। जैसे, नंदनंदन। (१२) एक प्रकार का अस्त्र। उ०—ये सब अस्त्रदेव धारत नित जौन तुम्हें सिखलाऊँ। महा अस्त्र विद्याधर लीजै पुनि नंदन जेहि नाऊँ।—रघुराज। (१३) मेघ। बादल। (१४) एक वर्णवृत्त जिसमें प्रत्येक चरण में क्रम से नगण, जगण, भगण, जगण और दो रगण (।।। ।ऽ। ऽ।। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ।ऽ) होते हैं। यथा—भजत सनेम सो सुमति जीत मोह के जाल को। (१५) साठ संवत्सरों में से छब्बीसवाँ संवत्सर। कहते हैं कि इस संवत्सर में अन्न खूब होता है, गौएँ खूब दूध देती हैं और लोग नीरोग रहते हैं।

वि० आनंद देनेवाला। प्रसन्न करनेवाला।

और सिंहनाद भी कहते हैं। जैसे, सजि सी सिंगार कल-हंस गती सी। चलि आइ राम छवि मंडप दीसी। (६) वसिष्ठ की कामधेनु का नाम जो सुरभि की कन्या थी। राजा दिलीप ने इसी गौ को वन में चराते समय सिंह से उसकी रक्षा की थी और इसी की आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया था। महाभारत में लिखा है कि द्यो नामक वसु अपनी स्त्री के कहने से इसे वसिष्ठ के आश्रम से चुरा लाया था जिसके कारण वसिष्ठ के शाप से उसे भीष्म बन कर इस पृथिवी पर जन्म लेना पड़ा था। जब विश्वामित्र बहुत से लोगों को अपने साथ लेकर एक बार वसिष्ठ के यहाँ गए थे तब वसिष्ठ ने इसी गौ से सब कुछ लेकर सब लोगों का सत्कार किया था। यह विशेषता देखकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से यह गौ माँगी; पर जब उन्होंने इसे नहीं दिया तब विश्वामित्र उसे जबरदस्ती ले चले। रास्ते में इसके चिल्लाने से इसके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में से म्लेच्छों और यवनों की बहुत सी सेनाएँ निकल पड़ीं जिन्होंने विश्वामित्र को परास्त किया और इसे उनके हाथ से छुड़ाया। (१०) पक्षी। स्त्री। जोरू। (११) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (१२) व्याड़ि मुनि की माता का नाम।

नंदिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल। (३) शिव का एक नाम।

नंदिमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तंद्रा (२) भावप्रकाश के अनुसार वह पक्षी जिसकी चोंच का ऊपरी भाग बहुत कड़ा और गोल हो। ऐसे पक्षी का मांस पित्तनाशक, चिकना, भारी, मीठा, और वायु, कफ, बल तथा शुक्रवर्द्धक माना जाता है।

नंदिरुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

नंदिवर्द्धन—संज्ञा पुं० (१) शिव। (२) पुत्र। बेटा। (३) मित्र। दोस्त। (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का विमान। (५) प्राचीन वास्तुशास्त्र के अनुसार वह मंदिर जिसका विस्तार चौबीस हाथ हो, जो सात भूमियों से युक्त हो और जिस में २० शृंग हों। (६) मगध के राजा विंबसार के लड़के अजातशत्रु के पड़पोते का नाम।

विं० आनंद बढ़ानेवाला। जो आनंद बढ़ावे।

नंदिवारलक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है।

नंदिषेण—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार के एक अनुचर का नाम।

नंदी—संज्ञा पुं० [सं० नंदिन्] (१) धव का पेड़। (२) गर्दभांड वृक्ष। पारवर का पेड़। (३) वट वृक्ष। बरगद का पेड़। (४) तुन का पेड़। (५) शिव के एक प्रकार के गण। ये तीन प्रकार के होते हैं—कनकनंदी, गिरिनंदी, और शिवनंदी (६) शिव का द्वारपाल, बैल। कहते हैं कि पूर्वजन्म में यह शालंकायण मुनि का पुत्र था। (७) शिव के नाम पर दाग कर उत्सर्ग किया हुआ कोई बैल। (८) वह बैल जिसके शरीर पर गाँठें हों। ऐसा बैल खेती के काम का नहीं होता। इसे फकीर लोग लेकर घुमाते और लोगों को उसके दर्शन कराके पैसे माँगते हैं। (९) विष्णु। (१०) जैनों के एक श्रुतपारग। (११) उड़द। (हिं०)। (१२) बंगाल की कायस्थ, तेली, नाई आदि कई जातियों की उपाधि।

वि० आनंदयुक्त। जो प्रसन्न हो।

नंदीगण—संज्ञा पुं० [हिं० नदी + सं० गण] (१) शिव के द्वारपाल, बैल। (२) दाग कर उत्सर्ग किया हुआ बैल। साँड़।

नंदीघंटा—संज्ञा पुं० [सं० नंदी + हिं० घंटा] बैलों के गले में बाँधने का बिना डाँड़ी का घंटा।

नंदीपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

नंदीमुख—संज्ञा पुं० दे० "नांदीमुख"।

संज्ञा पुं० दे० "नंदिमुख"।

नंदीवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तुन का पेड़। (२) मेढ़ासिंगी।

नंदीश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) तालों के साठ भेदों में से एक। (संगीत)। (३) नंदी।

नंदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) नंदीश ताल। (३) वृंदावन का एक तीर्थ। (४) शिव का एक गण जो पुराणानुसार रावण का अवतार माना जाता है। कहते हैं कि यह वामन है, इसका रंग काला है और सिर मुँड़ा हुआ तथा मुँह बंदर का सा है।

नंदेऊ†—संज्ञा पुं० दे० "नंदोई"।

नंदोई—संज्ञा पुं० [हिं० ननद + ओई (प्रत्य०)] ननद का पति। पति की बहन का पति। पति का बहनोई।

नंदोला†—संज्ञा पुं० [हिं० नाँद + ओला (प्रत्य०)] मिट्टी की बड़ी नाँद।

नंदोसी—संज्ञा पुं० दे० "नंदोई"।

नंद्यावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की इमारत। ऐसी इमारत के पश्चिम ओर द्वार नहीं रहना चाहिए। (२) तगर का पेड़।

नंबर—वि० [अं०] (१) संख्या। अंक। अदद। जैसे, उस पर अँगरेजी में कुछ नंबर लिखा हुआ था।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

(२) गिनती। गणना। (३) किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदि की कोई एक संख्या या अंक। जैसे, (क) इस मासिक पत्र के अभी तीन ही नंबर निकले हैं। (ख) तुम्हारी पुस्तकमाला का चौथा नंबर अभी तक नहीं आया। (४)

नहीं मानते। मौर्यवंश एक दूसरा राजवंश था। कोई कोई इतिहासज्ञ 'नवनंद' शब्द का अर्थ नए नंद करते हैं जो शूद्र थे। इनके अनुसार नंदवंश शुद्ध क्षत्रियवंश था और 'नवनंद' शूद्र थे।

नंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) गौरी। (३) एक प्रकार की कामधेनु। (४) एक मातृका या बाल-ग्रह जिसके विषय में यह माना जाता है कि इसके कारण बालक अपने जीवन के पहले दिन पहले मास और पहले वर्ष में ज्वर से पीड़ित होकर बहुत रोता और अचेत हो जाता है। (५) किसी पक्ष की प्रतिपदा, पष्ठी और एकादशी तिथि। (६) सम्पत्ति। सम्पदा। (७) एक प्रकार की संक्रांति। (८) हर्ष की स्त्री। (यहाँ 'प्रसन्नता' से तात्पर्य्य है।) (९) संगीत में एक मूर्च्छना का नाम। (१०) एक अप्सरा का नाम। (११) विभीषण की कन्या का नाम। (१२) वर्त्तमान अवसर्पिणी के दसवें अर्हत की माता का नाम। (जैन)। (१३) पुराणानुसार कुबेर की पुरी के निकट बहनेवाली नदी का नाम। (१४) मिट्टी का घड़ा या झँझर आदि जिसमें पानी रखते हैं। (१५) पुराणानुसार शाकद्वीप की एक नदी का नाम। (१६) पति की बहन। ननद। (१७) एक तीर्थ का नाम। विशेष—दे० "नंदातीर्थ"। (१८) बरवै छंद का एक नाम।

नंदातीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी और तीर्थ जो हेमकूट पर्वत पर है। लिखा है कि यहाँ सदा बहुत तेज हवा बहती रहती है, जोर से पानी बरसता रहता है, साधारण लोग पहुंच नहीं सकते, और सदा वेद-ध्वनि सुनाई पड़ती है पर कोई वेद पढ़नेवाला दिखाई नहीं देता। सवेरे और संध्या यहाँ अग्निदेव के दर्शन होते हैं। यहाँ बैठ कर यदि कोई तपस्या करना चाहे तो उसे मक्खियाँ काटने लगती हैं। युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ एक बार इस तीर्थ में गए थे।

नंदात्मज–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

नंदात्मजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] योगमाया।

नंदादेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिणी हिमालय की एक चोटी जो २५००० फुट से अधिक ऊँची है और जो यमुनोत्तरी के पूर्व है।

नंदापुराण–संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण जिसमें नंदामाहात्म्य दिया गया है और जिसके वक्ता कार्त्तिक हैं। मत्स्य और शिवपुराण के मत से यह तीसरा उपपुराण है।

नंदार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीपी ब्राह्मणों का एक संप्रदाय।

नंदाश्रम–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

नंदि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद। (२) वह जो आनंदमय हो। (३) सच्चिदानंद परमेश्वर। (४) शिव के द्वारपाल बैल का नाम। नंदिकेश्वर। (५) शिव।

नंदिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नंदीवृक्ष। तुन का पेड़। (२) धव का पेड़। (३) आनंद।

नंदिकर–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

नंदिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिट्टी की नाँद जिसमें पानी रखते हैं। (२) नंदनवन जहाँ इंद्र क्रीड़ा करते हैं। (३) किसी पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि। (४) हँसमुख स्त्री।

नंदिकावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का मणि।

नंदिकुंड–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ।

नंदिकेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव के द्वारपाल, नंदिकेश्वर।

नंदिकेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के द्वारपाल बैल का नाम। (२) एक उपपुराण जो नंदी का कहा हुआ और चौथा उपपुराण माना जाता है। इसे नंदीश्वर और नंदिपुराण भी कहते हैं।

नंदिग्राम–संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या से चार कोस पर एक गाँव जहाँ भरत ने राम के वियोग में चौदह वर्ष तक तप किया था।

नंदिघोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन के रथ का नाम जिसे उन्हें अग्निदेव ने प्रसन्न होकर दिया था। उ०—ससपुन्न गांडिव धनु लीहों। नंदिघोष रथ हुतभुक दीन्हों।—सबल। (२) बंदीजनों की घोषणा। (३) किसी प्रकार की शुभ या मंगल घोषणा।

नंदित–वि० [सं०] आनंदित। सुखी। आनंदयुक्त। प्रसन्न।

*वि० [हिं० नादना] बजता हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नंदितरु–संज्ञा पुं० [सं०] धव का पेड़।

नंदितूर्य–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

नंदिन–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल और आसाम में पाई जाती है। यह तीन फुट तक लंबी होती है और तौल में आध मन की होती है।

*संज्ञा स्त्री० [सं० नंद=बेटा] लड़की। बेटी। पुत्री।

नंदिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कन्या। पुत्री। लड़की। बेटी। (२) रेणुका नामक गंध द्रव्य। (३) जटामासी। बालछड़। (४) उमा। (५) गंगा का एक नाम। (६) ननद। पति की बहन। (७) दुर्गा का एक नाम। (८) तेरह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें एक सगण, एक जगण, फिर दो सगण और अंत में एक गुरु होता है। इसे कलहंस

नकचढ़ा–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + चढ़ना] [स्त्री० नकचढ़ी] चिड़चिड़ा। बद-मिजाज।

नकछिकनी–संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्कनी] एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ महीन महीन और कटावदार होती हैं। इसके फूल घुंडी के आकार के और गुलाबी होते हैं जिन्हें सूँघने से छींकें आने लगती हैं। वैद्यक में इसे चरपरी, रूखी, गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक, पित्तकारक और वात, कफ, कुष्ठ, कृमि, रक्तविकार और दृष्टि-दोष की नाशक माना है।

पर्य्या०—चवकृत। तीचया। छिक्किका। घ्राणदुःखदा। उग्रा। मत्तेदनापटु। उग्रगंधा। चवक। छिकनी।

नकटा–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + कटना] [स्त्री० नकटी] (१) वह जिसकी नाक कट गई हो। (२) एक प्रकार का गीत जो स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर और विशेषतः विवाह के समय गाती हैं। (३) वह अवसर या उत्सव जब कि उक्त गीत गाया जाता है। (४) एक प्रकार की चिड़िया।

वि० (१) जिसकी नाक कटी हो। (२) निर्लज्ज। बेशर्म। बेहया (३) अप्रतिष्ठित। जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो।

नकटेसर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

नकड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० नाक] बैलों का एक रोग जिसमें उनकी नाक सूज आती है और जिसके कारण उन्हें साँस लेने में बहुत कठिनता होती है।

नकतोड़–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + तोड़ना] कुश्ती का एक पेंच।

नकतोड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + तोड़ = गति] अभिमान-पूर्वक नाक भौं चढ़ाकर नखरा करना अथवा कोई बात कहना।

मुहा०—नकतोड़े उठाना = अनुचित अभिमान सहना। नखरा बरदाश्त करना। नकतोड़े तोड़ना = बहुत अधिक और अनुचित नखरा करना।

नकद–संज्ञा पुं० [अ०] तैयार रुपया। रुपया पैसा। धन जो सिक्कों के रूप में हो। जैसे, इनके पास नकद बहुत है।

वि० (१) (रुपया) जो तैयार हो। (धन) जो तुरंत काम में लाया जा सके। प्रस्तुत (द्रव्य)। जैसे, हम नकद रुपया लेंगे कोई चीज नहीं लेंगे। (२) खास। उ०—हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के।—हरिश्चंद्र। (३) दे० "नगद"।

क्रि० वि० तुरंत दिए हुए रुपए के बदले में। तुरंत रुपया-पैसा देकर या लेकर। 'उधार' का उलटा। जैसे, हमने सब माल नकद लिया है या बेचा है।

नकदावा†–संज्ञा पुं० [?] चने या मटर की दाल के साथ पकाई हुई बरी या कुम्हड़ौरी।

नकदी–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रोकड़। धन। रुपया पैसा। सिक्का। (२) जमई। वह भूमि जिसका लगान नकद, रुपयों में लिया जाय।

नकना*†–क्रि० स० [हिं० नाकना] (१) उल्लंघन करना। लाँघना। डाँकना। फाँदना। उ०—(क) औरहु विविध जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज। (ख) धाली नकी गिरिन की टाढ़ी। देखी तहाँ भीमरा बाढ़ी।—लाल। (२) चलना। उ०—मारहु ते सुकुमार नंद के कुमार ताहि आप री मनावन सयान सब नकि कै।—केशव। (३) त्यागना। छोड़ना। तजना।

क्रि० अ० [हिं० नकियाना] नाक में दम होना। हैरान होना।

क्रि० स० नाक में दम करना।

नकपोड़ा†–संज्ञा पुं० दे० "नाक"।

नकफूल–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + फूल] नाक में पहनने का लौंग या कील। उ०—तन सुख सारी लाही अँगिया अतलस अँतरौटा छवि धारि धारि चूरी पहुँचीनि पहुँची झमकि बनी नकफूल जेब मुख धारि चौका कौंधे संभ्रम भूली।—स्वामी हरिदास।

नकब–संज्ञा स्त्री० [अ०] चोरी करने के लिये दीवार में किया हुआ वह बड़ा छेद जिसमें से होकर चोर किसी कमरे या कोठरी आदि में घुसता है। सेंध।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

नकबजन–संज्ञा पुं० [अ० नकब + फा० ज़न] वह जो चोरी करने के लिये दीवार में छेद करे। सेंध लगानेवाला।

नकबजनी–संज्ञा स्त्री० [अ० नकब + फा० ज़नी] सेंध लगाने की क्रिया।

नकबानी*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + बानी ?] नाक में दम। हैरानी। उ०—जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।

नकबेसर–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + बेसर] नाक में पहनने की छोटी नथ। बेसर।

नकमोती–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + मोती] नाक में पहनने का मोती जिसे लटकन भी कहते हैं।

नकल–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह जो सच्चा, खरा या असल न हो बल्कि असल को देखकर रूप-रंग आकृति आदि में उसी के अनुसार बनाया गया हो। वह जो किसी दूसरे के ढंग पर या उसकी तरह तैयार किया गया हो। अनुकृति। कापी। जैसे, (क) यह मकान उस सामनेवाले की नकल है। (ख) इस नकल ने तो असल को भी मात कर

कपड़े आदि नापने का लोहे का वह गज जो ३ फुट या ३६ इंच लंबा होता है। (५) स्त्री-प्रसंग। भोग। (बाजारू)।

मुहा०—नंबर दागना या लगाना = स्त्री-प्रसंग करना।

नंबरदार—संज्ञा पुं० [अं० नंबर + फा० दार] गाँव का वह जमींदार जो अपनी पट्टी के और हिस्सेदारों से मालगुजारी आदि वसूल करने में सहायता दे।

नंबरवार—क्रि० वि० [अं० नंबर + फा० वार (प्रत्य०)] यथाक्रम। सिलसिलेवार। क्रमशः। एक एक करके। जैसे, इन सब किताबों को नंबरवार लगा दो।

नंबरिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे रसीदों, टिकटों आदि पर क्रम-संख्या छापते हैं।

नंबरी—वि० [अं० नंबर + ई (प्रत्य०)] (१) नंबरवाला। जिस पर नंबर लगा हो। (२) प्रसिद्ध। मशहूर। जैसे, नंबरी डाकू, नंबरी चोर।

नंबरी गज—संज्ञा पुं० दे० "नंबर (४)"।

नंबरी सेर—संज्ञा पुं० [हिं० नंबरी + सेर] तौलने का सेर जो अँगरेजी रुपयों से ८० भर का होता है। अँगरेजी सेर। बीस गंडी सेर।

नंबूरी—संज्ञा पुं० [देश०] मालाबार प्रांत के ब्राह्मणों की एक जाति।

न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपमा। (२) रत्न। (३) सोना। (४) बुद्ध। (५) बंध।

अव्य० (१) निषेध-वाचक शब्द। नहीं। मत। जैसे, (क) तुम न जाओ तो कोई हर्ज है ? (ख) उसे कुछ देना ही ठीक है।

विशेष—विधि, अनुज्ञा, हेतुहेतुमद्भाव आदि कुछ विशेष स्थलों पर भी "नहीं" के स्थान में "न" आता है।

(२) कि नहीं। या नहीं। जैसे, (क) तुम वहाँ जाओगे न ? (ख) वे दिन भर तो वहाँ रहेंगे न ? (इस अर्थ में इसका प्रयोग प्रश्नात्मक वाक्य के अंत में ही होता है।)

नइहर†—संज्ञा पुं० [सं० मातृगृह। हिं० मैहर] स्त्रियों की माता का घर। पीहर। मायका।

नई*—वि० [सं० नय] नीतिवान्। नीतिज्ञ।

वि० स्त्री० [सं० नव] 'नया' का स्त्री०।

*† संज्ञा स्त्री० दे० "नदी"।

नउँजी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लीची] लीची नामक फल। उ०—कोई नारँग कोइ झार चिरउँजी। कोई कटहर बड़हर कोइ नउँजी।—जायसी।

नउ*†—वि० (१) दे० "नव"। उ०—ताकहँ गुरु करइ असमाया। नउ अउतार देइ नइ काया।—जायसी। (२) दे० "नौ"। उ०—नउ पउरी बाँकी नउ खंडा। नउ उजो चढइ जाइ ब्रह्मंडा।—जायसी।

नउआ†—संज्ञा पुं० [स्त्री० नउनियाँ] दे० "नाऊ"। उ०—रोवत देखि जननि अकुलानी। लियो तुरत नउआ को भकी।—सूर।

नउका*†—संज्ञा स्त्री० दे० "नौका"।

नउत*†—वि० [हिं० नवना, नवत] नीचे की ओर झुका हुआ। उ०—बिवछि गयो मन लागि ज्यों ललित त्रिभंगी संग। सूधो होत न और तनि नउत रहै वह अंग।—रसनिधि।

नउरंग†—संज्ञा स्त्री० दे० "नारंगी"।

नउर†—संज्ञा पुं० दे० "नेवला"।

नउलि*†—वि० [सं० नवल] नया। नवीन। ताजा। उ०—सबइ नउलि पिय संग न सोई। कँवल पास जनु बिगसी कोई।—जायसी।

नएपंज—संज्ञा पुं० [देश०] पाँच वर्ष की अवस्था का घोड़ा। जवान घोड़ा। (चाबुक सवार)

नओढ़ा*†—संज्ञा स्त्री० दे० "नवोढ़ा"।

नकंद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो काँगड़े में होता है।

नककटा—वि० [हिं० नाक + कटना] [स्त्री० नककटी] (१) जिसकी नाक कटी हो। (२) जिसकी बहुत दुर्दशा हुई हो। (३) जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या बदनामी हुई हो। (४) जिसके कारण अप्रतिष्ठा हो। (५) निर्लज्ज। बेहया। बेशर्म।

नककटापंथ—संज्ञा पुं० [हिं० नककटा + पंथ] एक कल्पित पंथ का नाम।

विशेष—एक कहानी है कि एक बार किसी प्रकार एक आदमी की नाक कट गई। तब उसने और लोगों को भी अपने ही समान बनाने के उद्देश्य से लोगों से यह कहना आरंभ कर दिया कि नाक के कट जाने के कारण ही मुझे ईश्वर के दर्शन होने लगे हैं। उसकी बात पर विश्वास करके बहुत से लोगों ने नाक कटा डाली। ईश्वर के दर्शन तो किसी को न होते थे, पर नककटे होने के अपवाद से बचने और दूसरों को भी अपने समान बनाने के लिये वे उस पहले नककटे की बात का खूब समर्थन करते थे। इसी कहानी के आधार पर लोगों ने इस "नककटे पंथ" की कल्पना कर ली।

नककटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + कटना] (१) नाक कटने की क्रिया। (२) दुर्दशा, अप्रतिष्ठा या बदनामी आदि।

नकघिसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + घिसना] (१) नाक को जमीन पर रगड़ना। जमीन पर नाक रगड़ने की क्रिया। (२) बहुत अधिक दीनता। आजिज़ी।

व्यवहार करती हैं, पर युरोपियन स्त्रियाँ धूल और कीड़ों-पतंगों आदि से बचने तथा शोभा बढ़ाने के लिये करती हैं। प्राचीन काल में कहीं कहीं आवश्यकता पड़ने पर पुरुष भी इसका व्यवहार करते थे।

क्रि॰ प्र॰—उठाना।—डालना।

मुहा॰—नकाब उलटना = चेहरे पर से नकाब हटाना।

यौ॰—नकाबपोश = जिसके चेहरे पर नकाब हो। जो चेहरे पर नकाब डाले हो।

(२) साड़ी या चादर का वह भाग जिसमे स्त्रियों का मुँह ढँका रहता है। घूँघट।

क्रि॰ प्र॰—उठाना।—डालना।

मुहा॰—नकाब उलटना = मुँह पर से घूँघट हटाना।

नकार–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) न या नहीं का बोधक शब्द या वाक्य। नहीं। (२) इनकार। अस्वीकृति। (३) "न" अक्षर।

नकारची–संज्ञा पुं॰ दे॰ "नक्कारची"।

नकारना–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ नकार + ना (प्रत्य॰)] इनकार करना। अस्वीकृत करना।

नकारा‡–वि॰ [फा॰ नाकारः] खराब। बुरा। निकम्मा। जो किसी काम का न हो।

संज्ञा पुं॰ दे॰ "नक्कारा"।

नकारा–संज्ञा पुं॰ दे॰ "नक्कारा"।

नकाशना†–क्रि॰ स॰ [अ॰ नक्काशी] किसी पदार्थ पर बेल बूटे आदि बनाना। धातु, पत्थर आदि पर खोद कर चित्र फूल पत्ती आदि बनाना।

नकाशी–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "नक्काशी"।

नकाशीदार–वि॰ [अ॰ नक्काशी + फा॰ दार] जिस पर नक्काशी हो। बेल-बूटेदार।

नकास†–संज्ञा पुं॰ दे॰ "नक्कास"।

नकासना–क्रि॰ स॰ दे॰ "नकाशना"।

नकासी–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "नक्काशी"।

नकासीदार–वि॰ "नकाशीदार"।

नकियाना†–क्रि॰ अ॰ [हिं॰ नाक + आना (प्रत्य॰)] (१) नाक से बोलना। शब्दों का अनुनासिक वत् उच्चारण करना। (२) नाक में दम आना। बहुत दुखी या हैरान होना। उ॰—हाय बुढ़ापा तुम्हरे मारे हम तो अब नकियाय गयन। करत धरत कछु बनतै नाहिंन कहाँ जान अरु कैस करन।—प्रताप-नारायण।

क्रि॰ स॰ नाक में दम करना। बहुत परेशान या तंग करना।

नकीब–संज्ञा पुं॰ [अ॰] (१) वह मनुष्य जो राजाओं आदि के आगे उनके तथा उनके पूर्वजों के यश का गान करता हुआ चलता है। चारण। बंदीजन। भाट।

विशेष—बादशाहों या नवाबों के यहाँ के नकीब केवल सवारी के आगे विरदावली का बखान करते ही नहीं चलते, बल्कि किसी को उपाधि या पद आदि मिलने के समय अथवा किसी बड़े पदाधिकारी के दरबार में आने के पूर्व उसकी घोषणा भी करते हैं।

(२) कड़खा गानेवाला पुरुष। कड़खैत।

नकुच–संज्ञा पुं॰ [सं॰] मदार का पेड़।

नकुट–संज्ञा पुं॰ [सं॰] नाक।

नकुरा‡–संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नाक + उरा (प्रत्य॰)] नाक। नासिका।

नकुल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) नेवला नाम का प्रसिद्ध जंतु।

विशेष—दे॰ "नेवला"। (२) पांडु राजा के चौथे पुत्र का नाम जो अश्विनीकुमार द्वारा माद्री के गर्भ में से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि जिस समय पांडु शाप के कारण अपनी दोनों स्त्रियों को साथ लेकर वन में रहते थे उस समय जब कुंती को तीन लड़के हुए तब माद्री ने पांडु से पुत्र के लिये कहा था। उस समय कुंती ने माद्री से कहा कि तुम किसी देवता का स्मरण करो। इस पर माद्री ने अश्विनीकुमारों का स्मरण किया जिससे दो बालक हुए। उनमें से बड़े का नाम नकुल और छोटे का सहदेव था। नकुल बहुत ही सुंदर थे और नीति, धर्मशास्त्र तथा युद्ध-विद्या में बड़े पारंगत थे। पशुओं की चिकित्सा की विद्या भी इन्हें ज्ञात थी। अज्ञातवास के समय जब पांडव विराट के यहाँ रहते थे तब नकुल का नाम तंत्रिपाल था और ये गौएँ चराने का काम करते थे। युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ किया था तब इन्होंने पश्चिम की ओर जाकर महेत्थ और पंचनद आदि देशों को परास्त किया था, और तदुपरांत द्वारका में दूत भेज कर वासुदेव से भी युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकृत कराई थी। इनका विवाह चेदिराज की कन्या करेणुमती से हुआ था जिसके गर्भ से निरमित्र नामक एक पुत्र भी हुआ था।

(३) बेटा। पुत्र। (४) शिव। महादेव। (५) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

वि॰ जिसका कोई कुल न हो। कुलरहित।

संज्ञा॰ पुं॰ [अ॰ नुकल = चाट] वह रस जो दोपहर के समय पुर आदि चलानेवालों को पीने के लिये दिया जाता है।

नकुलकंद–संज्ञा पुं॰ [सं॰] गंधनाकुली या रास्ना नामक कंद।

नकुलक–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का गहना। (२) रुपया आदि रखने की एक प्रकार की थैली।

नकुलतैल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो नेवले के माँस में बहुत सी दूसरी ओषधियाँ मिला कर

दिया। (२) एक के अनुरूप दूसरी वस्तु बनाने का कार्य्य। अनुकरण।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना। बनाना।—होना।

(३) लेख आदि की अक्षरशः प्रतिलिपि। कापी। जैसे, (क) इस शिलालेख की एक नकल हमारे पास भी आई है। (ख) इस दस्तावेज की नकल करा लो तो बड़ा काम हो।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—करना।—होना।

(४) किसी के वेष, हाव-भाव या बात चीत आदि का पूरा पूरा अनुकरण। स्वांग। जैसे, (क) वह उनकी खूब नकल उतारता है। (ख) कल महफिल में भाँड़ों ने नवाब साहब की एक बहुत अच्छी नकल की थी।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—करना।—बनना। बनाना।—होना।

(५) अद्भुत और हास्यजनक आकृति। जैसे, आज तो आप बिलकुल नकल बन कर आए हैं। (६) हास्य-रस की कोई छोटी मोटी कहानी या बात चीत। चुटकुला।

नकलनवीस—संज्ञा पुं० [अ० नक़ल + फा० नवीस] वह आदमी, विशेषतः अदालत या दफ्तर आदि का मुहर्रिर जिसका काम केवल दूसरे के लेखों की नकल करना होता है।

नकलनवीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नकल + फा० नवीस] (१) नकलनवीस का काम। (२) नकलनवीस का पद।

नकलनोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसे मुनिया भी कहते हैं। विशेष—दे० "मुनिया"।

नकलपरवाना—संज्ञा पुं० [अ० नकल + फा० परवाना] पत्नी का भाई। साला। (हास्य)।

नकलवही—संज्ञा स्त्री० [हिं० नकल + वही] दफ्तरों या दूकानों आदि की वह वही या कापी आदि जिसमें भेजी जानेवाली चिट्ठियों की नकल रहती है।

नकली—वि० [अ०] (१) जो नकल करके बनाया गया हो। जो असली न हो। कृत्रिम। बनावटी। जैसे, नकली हीरा, नकली केसर, नकली घड़ी।

विशेष—नकली चीज प्रायः निकम्मी और निकृष्ट समझी जाती है और लोगों में इसका आदर नहीं होता।

(२) जो असली न हो। खोटा। जाली। झूठा। जैसे, नकली दस्तावेज बनाने के अपराध में उसको दो बरस की सजा हो गई।

नकलेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक] नाथ खींचने के लिये गोनरखे में बँधी हुई वह रस्सी जो और सब रस्सियों से आगे रहती है।

नकलोल†—संज्ञा पुं० दे० "नकलनोर"।

नकश—संज्ञा पुं० [अ० नक़्श] (१) दे० "नक़्श"। (२) एक प्रकार का जूआ जो दो या अधिक आदमी ताश के पत्तों से खेलते हैं। इसमें सब खिलाड़ियों को पहले एक एक पत्ता बाँट दिया जाता है और तब एक एक खिलाड़ी को अलग अलग उसके माँगने पर और पत्ते दिए जाते हैं। इसमें पत्तों की बूटियों को गिनकर हार जीत होती है)

विशेष—नकश के यौगिक शब्दों के लिये दे० "नक्श" के यौगिक।

नकशमार—संज्ञा पुं० [अ० नक्श + हिं० मारना] नकश नामक जूआ जो ताश के पत्तों से खेला जाता है। विशेष—दे० "नकश (२)"।

नकशा—संज्ञा पुं० दे० "नक़्शा"।

नकशानवीस—संज्ञा पुं० दे० "नक़्शानवीस"।

नकशी—वि० दे० "नक़्शी"।

नकशी मैना—संज्ञा स्त्री० [फा० नकशी + हिं० मैना] तेलिया नाम की एक प्रकार की मैना।

नकसमार—संज्ञा पुं० दे० "नकश (२)"।

नकसा†—संज्ञा पुं० दे० "नक्शा"।

नकसीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + सं० क्षीर = जल] आप से आप नाक से रक्त बहना जो प्रायः गरमी के दिनों में होता है।

विशेष—वैद्यक में इसे रक्तपित्त रोग के अंतर्गत माना है। रक्त-पित्त में मुँह, नाक, आँख, कान, गुदा और योनि या लिंग से रक्त बहता है। यदि यह रक्त अधिक मात्रा में बहे तो मनुष्य थोड़ी ही देर में मर भी सकता है। अधिक आँच या धूप लगने, रास्ता चलने और शोक व्यायाम या मैथुन करने से भिन्न भिन्न मार्गों से रक्त बहने लगता है। स्त्रियों का रज रुक जाने से भी यह रोग हो जाता है। विशेष—दे० "रक्तपित्त"।

क्रि० प्र०—फूटना।

मुहा०—नकसीर भी न फूटना = कुछ भी हानि न पहुँचना। जरा भी तकलीफ या नुकसान न होना।

नकाना*†—क्रि० अ० [हिं० नकियाना] नाक में दम होना। बहुत परेशान होना। उ०—तहँ आडो इक औघट आयो। दब करि चंपत राय नकायो।—लाल।

क्रि० स० [हिं० नकियाना] नाक में दम करना। बहुत परेशान करना।

नकाब—संज्ञा स्त्री० पुं० [अ०] (१) महीन रंगीन कपड़े या जाली का वह टुकड़ा जो मुँह छिपाने के लिये सिर पर से गले तक डाल लिया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः अरब देश की स्त्रियों में और उनके संसर्ग से युरोप की स्त्रियों में भी होता है। मुसलमानी स्त्रियाँ अपना चेहरा छिपाने के उद्देश्य से इसका

हैं। इसमें एक दूसरी को काटती हुई दो सीधी लकीरें खींचते हैं और उनके चारों सिरों में से एक सिरे पर एक बिंदी, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और चौथे पर चार बिंदियाँ बना दी जाती हैं। इनको क्रमशः नक्की, दूआ, तीया और पूर कहते हैं। इसमें दो से चार तक खिलाड़ी होते हैं जो एक एक दाँव ले लेते हैं। एक खिलाड़ी अपनी मुट्ठी में कुछ कौड़ियाँ लेकर अपने दाँव पर मुट्ठी रख देता है। तब बाकी खिलाड़ी अपने अपने दाँव पर कुछ कौड़ियाँ लगाते हैं। इसके उपरांत वह पहला खिलाड़ी अपनी मुट्ठी की कौड़ियाँ गिनकर चार का भाग देता है। जब भाग देने पर १ कौड़ी बचे तो नक्कीवाले की, २ बचें तो दूएवाले की, ३ बचें तो तीएवाले की और कुछ भी न बचे तो पूरवाले की जीत होती है। जिसकी जीत होती है दूसरी बार वही मूठ बाता है। यदि मूठ बाने वाले का दाँव आता है तो वह दाँव पर रखी हुई सब की कौड़ियाँ जीत लेता है, नहीं तो जिसकी जीत होती है उसको उसे उतनी ही कौड़ियाँ देनी पड़ती हैं जितनी उसने दाँव पर लगाई हों। नक्कीपूर।

नक्कू–वि० [हिं० नक] (१) बड़ी नाकवाला। जिसकी नाक बड़ी हो। अपने आपको बहुत प्रतिष्ठित समझनेवाला। जैसे, मह भी तो बड़े नक्कू बनते हैं (बोलचाल)। (२) जिसके आचरण आदि सब लोगों के आचरण के विपरीत हों। सब से अलग और उलटा काम करनेवाला, जो प्रायः बुरा समझा जाता है। जैसे, हमें क्या गरज पड़ी है जो हम नक्कू बनने जाएँ।

नक्तंचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुग्गुल। गूगल। (२) राक्षस। (३) चोर। (४) बिल्ली। (५) उल्लू।
वि० रात के समय विचरण करनेवाला।

नक्तंजात–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल की एक प्रकार की ओषधि जिसका उल्लेख वेदों में है।

नक्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह समय जब कि दिन केवल एक मुहूर्त्त ही रह गया हो। बिलकुल संध्या का समय। (२) रात। (३) एक प्रकार का व्रत जो अगहन महीने के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को किया जाता है। इसमें दिन के समय बिलकुल भोजन नहीं किया जाता, केवल रात को तारे देख कर भोजन किया जाता है। किसी किसी के मत से इस व्रत में ठीक संध्या के समय, जब कि दिन केवल मुहूर्त्त भर रह गया हो, भोजन करना चाहिए। यह व्रत प्रायः यति और विधवाएँ करती हैं। इस व्रत में रात के समय विष्णु की पूजा भी की जाती है। (४) शिव। (५) राजा पृथु के पुत्र का नाम।
वि० लज्जित। जो शरमा गया हो।

नक्तचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात को घूमनेवाला। (२) महादेव। शिव। (३) राक्षस। (४) उल्लू।

नक्तचारी–संज्ञा पुं० [सं० नक्तचारिन्] (१) बिल्ली। (२) उल्लू।
वि० रात के समय विचरण करनेवाला।

नक्तभोजी–वि० [सं० नक्तभोजिन्] (१) रात को भोजन करनेवाला। (२) नक्त नामक व्रत करनेवाला।

नक्तमाल–संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष। कंजे का पेड़।

नक्तमुखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

नक्तव्रत–संज्ञा पुं० दे० "नक्त (२)"।

नक्तांध–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे रात को दिखाई न दे। वह जिसे रतौंधी होती हो।

नक्तांध्य–संज्ञा पुं० [सं०] आँख का वह रोग जिसमें रात के समय कुछ भी दिखाई नहीं देता। रतौंधी।

नक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलियारी नामक विषैला पौधा। (२) हलदी। (३) रात।

नक्ताह्व–संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष। कंजा।

नक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

नक्द–संज्ञा पुं० दे० "नकद"।

नक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाक नामक जलजंतु। (२) मगर नामक जल जंतु। (३) घड़ियाल या कुंभीर नामक जल-जंतु। (४) नाक।

नक्रराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घड़ियाल। (२) मगर। (३) नाक नामक जलजंतु।

नक्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक। नासिका।

नक्ल–संज्ञा स्त्री० दे० "नकल"।

नक्लनवीस–संज्ञा पुं० दे० "नकलनवीस"।

नक्लनवीसी–संज्ञा स्त्री० दे० "नकलनवीसी"।

नक्ल परवाना–संज्ञा पुं० दे० "नकल परवाना"।

नक्ल बही–संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "नकल बही"।

नक्श–वि० [अ०] जो अंकित या चित्रित किया गया हो। खींचा, बनाया या लिखा हुआ।
मुहा०—मन में नक्श करना या कराना = किसी के मन में कोई बात अच्छी तरह बैठना या बैठाना। किसी बात का निश्चय करना या कराना। जैसे, हमने यह बात उनके मन में नक्श करा दी है। नक्श होना = किसी बात का अच्छी तरह मन में जम जाना। पूर्ण निश्चय हो जाना।
संज्ञा पुं० [अ०] (१) तसवीर। चित्र। (२) खोदकर या कलम से बनाया हुआ बेल-बूटे या फूल-पत्ती आदि का काम।

बनाया जाता है। इसका व्यवहार पान, अभ्यंग और वस्ति-क्रिया में होता है। वैद्यक के अनुसार इससे आमवात, शरीर के सब अंगों का कंप और कमर, पीठ, जाँघ आदि का वात का दरद दूर होता है।

नकुलांध रोग—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार आँख का एक रोग जिसमें आँखें नेवले की आँखों की तरह चमकने लगती हैं और चीजें रंग बिरंगी दिखाई देने लगती हैं। इस रोग में पित्तवर्द्धक पदार्थों का सेवन करना मना है।

नकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

†संज्ञा पुं० दे० "नेवला"।

नकुलाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली। नकुलकंद।

नकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जटामासी। (२) केसर। (३) शंखिनी। (४) नेवले की मादा।

नकुलीश, नकुलेश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक भैरव का नाम।

नकुलीश पाशुपतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] एक दर्शन जिसका उल्लेख सर्वदर्शन-संग्रह में है। इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इसमें शिव ही परमेश्वर और सब प्राणी उनके पशु माने गए हैं। जीवों के अधिपति होने के कारण महादेव पशुपति कहलाते हैं। इस दर्शन में मुक्ति दो प्रकार की कही गई है—अत्यंत दुःख-निवृत्ति और परमैश्वर्य्य-प्राप्ति। दृक्शक्ति और क्रियाशक्ति के भेद से परमैश्वर्य्य प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है। दृक्शक्ति वा ज्ञान द्वारा पदार्थ ज्ञानपथ में आते हैं और क्रियाशक्ति द्वारा वे संपन्न होते हैं।

नकुलेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना। रायसन।

नकुलौष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो तारों से बजाया जाता था।

नकुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + उवा (प्रत्य०)] (१) नाक। (२) तराजू की डंडी का सूराख।

नकेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + एल (प्रत्य०)] (१) ऊँट की नाक में बँधी हुई रस्सी जो लगाम का काम देती है और जिसके सहारे ऊँट चलाया जाता है। मुहार।

मुहा०—किसी की नकेल हाथ में होना = किसी पर सब प्रकार का अधिकार होना। किसी से बलपूर्वक मनमाना काम करा लेने की शक्ति होना। जैसे, उनकी चिंता मत कीजिए, उनकी नकेल तो हमारे हाथ में है।

(२) भालू की नाक में पहनाई हुई रस्सी।

नक्का—संज्ञा पुं० [हिं० नाक] सूई का वह छेद जिसमें डोरा पहनाया जाता है। सूई में डोरा पिरोने का छेद। नाका।

संज्ञा पु० (१) ताश के पत्तों में का एक्का। (२) दे० "नक्की" और "नक्कीमूठ"। (३) कौड़ी।

नक्का दूआ—संज्ञा पुं० दे० "नक्की मूठ"।

नक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अवज्ञा। अपमान। तिरस्कार। अवहेलना।

नक्कारखाना—संज्ञा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ पर नक्कारा बजता है। नौबत बजने का स्थान। नौबतखाना।

विशेष—ऐसा स्थान प्रायः बड़े बड़े मकानों में बाहर के दरवाजे के ठीक ऊपर बना रहता है।

मुहा०—नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है = (१) बहुत भीड़ भाड़ या शोर गुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटे आदमियों की बात कोई नहीं सुनता।

नक्कारची—संज्ञा पुं० [फा०] नगाड़ा बजानेवाला। वह जो नक्कारा बजाता हो।

नक्कारा—संज्ञा पुं० [फा०] डुगडुगी या बाएँ की तरह का एक बहुत बड़ा बाजा जिसमें एक बहुत बड़े कूँड़ के ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। इसके साथ में इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा होता है। इन दोनों को आमने-सामने रख कर लकड़ी के दो डंडों से, जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं। नगाड़ा। डंका। नौबत। दुंदुभी।

मुहा०—नक्कारा बजाते फिरना = डुगडुगी पीटते फिरना। चारों ओर प्रकट करते फिरना। नक्कारा बजा के = खुल्लम खुल्ला। डंके की चोट। नक्कारा हो जाना = फूल कर बहुत बढ़ना। बहुत फूलना।

नक्काल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। (२) भाँड़। (३) बहुरुपिया।

नक्काली—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नकल करने का काम। नकल करने की क्रिया या विद्या। (२) भाँड़ का काम या विद्या। (३) बहुरूपिए का काम या विद्या।

नक्काश—संज्ञा पुं० [अ०] नक्काशी का कारीगर। वह जो खोदकर बेल बूटे आदि बनाता हो।

नक्काशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) धातु या पत्थर आदि पर खोद कर बेल-बूटे आदि बनाने का काम या विद्या। (२) वे बेल-बूटे आदि जो इस प्रकार खोदकर बनाए गए हों।

नक्काशीदार—वि० [अ० नक्काशी + फा० दार] जिस पर खोदकर बेल-बूटे बनाए गए हों।

नक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक] (१) नक्की-मूठ खेल में "एक" का दाँव (दे० नक्कीमूठ)। (२) ताश के पत्तों में का एक्का। (क्व०)। (३) जूए के किसी खेल में वह दाँव जिसके लिये "एक" का चिह्न नियत हो अथवा जिसकी जीत किसी प्रकार के "एक" चिह्न के आने से हो।

नक्कीपूर—संज्ञा पुं० दे० "नक्कीमूठ"।

नक्कीमूठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० नक्की + मूठ = मुट्ठी] जूए का एक खेल जो प्रायः स्त्रियाँ और बालक कौड़ियों से खेलते

नक्षत्र	तारा संख्या	आकृति और पहचान
अश्विनी	३	घोड़ा
भरणी	३	त्रिकोण
कृत्तिका	६	अग्निशिखा
रोहिणी	५	गाड़ी
मृगशिरा	३	हरिण-मस्तक वा विडाल-पद
आर्द्रा	१	उज्वल
पुनर्वसु	५ या ६	धनुष वा घर
पुष्य	१ वा ३	माणिक्य वर्ण
अश्लेषा	५	कुत्ते की पूँछ वा कुलालचक्र
मघा	५	हल
पूर्वाफाल्गुनी	२	खट्वाकार × उत्तर दक्षिण
उत्तराफाल्गुनी	२	शय्याकार × उत्तर दक्षिण
हस्त	५	हाथ का पंजा
चित्रा	१	मुक्तावत् उज्वल
स्वाती	१	कुंकुम वर्ण ।
विशाखा	५ व ६	तोरण या माला
अनुराधा	७	सूप या जलधारा
ज्येष्ठा	३	सर्प या कुंडल
मूल	९ या ११	शंख, या सिंह की पूँछ
पूर्वाषाढ़ा	४	सूप, या हाथी का दाँत
उत्तराषाढ़ा	४	सूप
श्रवण	३	बाण या त्रिशूल
धनिष्ठा	५	मर्दल बाजा
शतभिषा	१००	मंडलाकार
पूर्वभाद्रपद	२	भारवत् या घंटाकार
उत्तरभाद्रपद	२	दो मस्तक
रेवती	३२	मछली या मृदंग

इन २७ नक्षत्रों के अतिरिक्त *अभिजित् नाम का एक और* नक्षत्र पहले माना जाता था पर वह पूर्वाषाढ़ा के भीतर ही आ जाता है, इससे अब २७ ही नक्षत्र गिने जाते हैं।

इन्हीं नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रखे गए हैं। जिस महीने की पूर्णिमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्त्तिक की पूर्णिमा को चंद्रमा कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पर; रहेगा, अग्रहायण की पूर्णिमा को मृगशिरा या आर्द्रा पर; इसी प्रकार और समझिए।

जिस प्रकार चंद्रमा के पथ का विभाग किया गया है उसी प्रकार उस पथ का विभाग भी हुआ है जिसे सूर्य १२ महीनों में पूरा करता हुआ जान पड़ता है। इस पथ के १२ विभाग किए गए हैं जिन्हें राशि कहते हैं। जिन तारों के बीच से होकर चंद्रमा घूमता है उन्हीं पर से होकर सूर्य भी गमन करता हुआ जान पड़ता है; खचक्र एक ही है, विभाग में अंतर है। राशिचक्र के विभाग बड़े हैं जिनमें से किसी किसी के अंतर्गत तीन तीन नक्षत्र तक आ जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह राशि-विभाग पहले पहल मिस्रवालों ने किया जिसे यवन लोगों (यूनानियों) ने लेकर और और स्थानों में फैलाया।

पश्चिमी ज्योतिषियों ने जब देखा कि बारह राशियों से सारे अंतरिक्ष के तारों और नक्षत्रों का निर्देश नहीं होता है तब उन्होंने और बहुत सी राशियों के नाम रखे, इस प्रकार राशियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती गई। पर भारतीय ज्योतिषियों ने खगोल के उत्तर और दक्षिण खंड में जो तारे हैं उन्हें नक्षत्रों में बाँध कर निर्दिष्ट नहीं किया।

नक्षत्र या तारे ग्रहों की तरह छोटे छोटे पिंड नहीं हैं, वे बड़े बड़े सूर्य हैं जो हमारे इस सूर्य से बहुत दूरी पर हैं। इनकी संख्या अपरिमित है। वर्तमान काल के युरोपीय ज्योतिषियों ने बड़ी बड़ी दूरबीनों आदि की सहायता से खगोल का बहुत अनुसंधान किया है। उन्होंने तारों का वार्षिक लंबन (किसी नक्षत्र से एक रेखा सूर्य तक और दूसरी पृथ्वी तक खींचने से जो कोण बनता है उसे उस नक्षत्र का लंबन कहते हैं) निकाल कर उनकी दूरी निश्चित करने में बड़ा उद्योग किया है। यदि किसी नक्षत्र का यह कोण एक सेकंड है तो समझना चाहिए कि उसकी दूरी सूर्य की दूरी की अपेक्षा २०६०० गुनी अधिक है। कोई नक्षत्र कम दूरी पर हैं, कोई अधिक, जैसे स्वाती, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्र रविमार्ग से बहुत दूर है और रोहिणी पुष्य और चित्रा उनकी अपेक्षा निकट हैं। जो तारे औरों की अपेक्षा निकट हैं उनके प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में तीन साढ़े तीन वर्ष लग जाते हैं, दूरवालों का प्रकाश तीन तीन चार चार सौ वर्ष में पहुँचता है। प्रकाश की गति एक सेकंड में १८६००० मील ठहराई गई है। इसीसे इनकी दूरी का अंदाजा हो सकता है।

नक्षत्रकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्व वेद का एक परिशिष्ट जिसमें चंद्रमा की स्थिति आदि का वर्णन है।

नक्षत्रकांति-विस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ज्वार।

नक्षत्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों का अलग अलग समूह या गण।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और उत्तरफाल्गुनी इन चारों नक्षत्रों को ध्रुवगण कहते हैं। ध्रुवगण में अभिषेक, शांति, वृक्ष, नगर, धर्म, बीज और ध्रुव कार्य का आरंभ करना उचित है। मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा और आश्लेषा के स्वामी तीक्ष्ण हैं इसलिये इनके समूह को तीक्ष्णगण कहते हैं; इनमें अभि-

यौ०—नक्श-निगार ।

(३) मोहर । छाप ।

मुहा०—नक्श बैठाना=अच्छी तरह अधिकार जमाना । रंग जमाना । नक्श बैठना=अधिकार जमना । रंग जमना । नक्श बिगड़ना=अधिकार या प्रभाव न रह जाना । रंग उखड़ना ।

(४) सारणी या कोष्टक के रूप में बना हुआ यंत्र जो अनेक प्रकार के रोगों आदि को दूर करने के लिये कागज, भोजपत्र आदि पर लिख कर बाँह या गले आदि में पहनाया जाता है । तावीज । (५) जादू । टोना । (६) एक प्रकार का गाना जो प्रायः कव्वाल गाया करते हैं । (७) एक प्रकार का ताश का जूआ । दे० "नकश (२)" ।

नक्शनिगार—संज्ञा पुं० [फा० नक्श व निगार] बनाए हुए बेल-बूटे आदि । नकाशी ।

नक्शमार—संज्ञा पुं० दे० "नकशमार" ।

नक्शा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) चित्र । प्रतिमूर्त्ति । तसवीर । रेखाओं द्वारा आकार आदि का निर्देश ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—खींचना ।—बनाना ।

मुहा०—(आँखों के सामने) नक्शा खिंच जाना=किसी के सामने न रहने पर भी उसके रूप रंग आदि का ठीक ठीक ध्यान हो जाना ।

(२) बनावट । आकृति । शक्ल । ढाँचा । गढ़न । जैसे, उनका रंग चाहे जैसा हो, पर नक़्शा अच्छा है । (३) किसी पदार्थ का स्वरूप । आकृति । जैसे, तुमने छः महीने में ही इस मकान का सारा नक्शा बिगाड़ दिया । (४) चाल-ढाल । तरज । ढंग । (५) अवस्था । दशा । हाल । जैसे, (क) आज कल उनका कुछ और ही नक़्शा है । (ख) एक ही मुकदमे ने उनका सारा नक़्शा बिगाड़ दिया । (६) ढाँचा । ठप्पा ।

मुहा०—नक्शा जमना=बहुत अधिक प्रभाव होना । खूब चलती होना । जैसे, आज कल शहर के रईसों में उनका नक़्शा भी खूब जमा हुआ है । नक्शा जमाना=खूब प्रभाव डालना । रंग बाँधना । नक्शा तेज होना=दे० "नक्शा जमना" ।

(७) किसी धरातल पर बना हुआ वह चित्र जिसमें पृथिवी या खगोल का कोई भाग अपनी स्थिति के अनुसार अथवा और किसी विचार से चित्रित हो ।

विशेष—साधारणतः पृथिवी या उसके किसी भाग का जो नक्शा होता है उसमें यथास्थान देश, प्रदेश, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, झीलें और नगर आदि दिखलाए जाते हैं । कभी कभी इस बात का ज्ञान कराने के लिये कि अमुक देश में कितना पानी बरसता है, या कौन कौन से अन्नादि उत्पन्न होते हैं अथवा इसी प्रकार की किसी और बात के लिये नक्शे में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रंग भी भर दिए जाते हैं । कभी कभी ऐसे नक्शे भी बनाए जाते हैं जिनमें केवल रेल-लाइनें, नहरें अथवा इसी प्रकार की और और चीजें दिखलाई जाती हैं । महाद्वीपों आदि के अतिरिक्त छोटे छोटे प्रदेशों और यहाँ तक कि जिलों, तहसीलों और गावों तक के नक्शे भी बनते हैं । शहरों या गावों आदि के भिन्न भिन्न भागों के ऐसे नक्शे भी बनते हैं जिनमें यह दिखलाया जाता है कि किस गली या किस सड़क पर कौन कौन से मकान, खँड़हर, अस्तबल या कूएँ आदि हैं । इसी प्रकार खेतों और जमीनों आदि के भी नक्शे होते हैं जिनसे यह जाना जाता है कि कौन सा खेत कहाँ है और उसकी आकृति कैसी है । खगोल के चित्रों में इसी प्रकार यह दिखलाया जाता है कि कौन सा तारा किस स्थान पर है ।

क्रि० प्र०—खींचना ।—बनाना ।

नक्शानवीस—संज्ञा पुं० [अ० नक्शा+फा० नवीस] किसी प्रकार का नक्शा लिखने या बनानेवाला ।

नक्शानवीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्शा+फा० नवीसी] नक्शा बनाने का काम ।

नक्शी—वि० [अ० नक्श+ई (प्रत्य०)] जिसपर बेल बूटे बने हों ।

नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के पथ में पड़नेवाले तारों का वह समूह या गुच्छ जिसका पहचान के लिये आकार निर्दिष्ट करके कोई नाम रखा गया हो ।

विशेष—इन तारों को ग्रहों से भिन्न समझना चाहिए जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं और हमारे इस सौर जगत् के अंतर्गत हैं । ये तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं हैं । ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं—अर्थात् एक तारा दूसरे तारे से जिस ओर और जितनी दूर आज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा । इस प्रकार ऐसे दो चार पास पास रहनेवाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सब को दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं । पहचान के लिये यदि हम उन सब तारों के मिलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारक-पुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुबीता होगा । नक्षत्रों का विभाग इसी लिये और इसी प्रकार किया गया है ।

चंद्रमा २७-२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है । खगोल में यह भ्रमण-पथ इन्हीं तारों के बीच से होकर गया हुआ जान पड़ता है । इसी पथ में पड़नेवाले तारों के अलग अलग दल बाँध कर एक एक तारक-पुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है । इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में विभक्त होकर नक्षत्रचक्र कहलाता है । नीचे तारों की संख्या और आकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं—

होती है; रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा में ऐरावत; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में वृषभ; अश्विनी, रेवती और पूर्वाउत्तरा भाद्रपद में गोवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में जरद्गव वीथि, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला में मृगवीथि; हस्त, विशाखा और चित्रा में अजावीथि, तथा पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में दहनावीथि। इस प्रकार २७ नक्षत्रों में ६ वीथियाँ होने पर प्रत्येक वीथि तीन बार होती है। अतः इनमें तीन तीन वीथियाँ सूर्यमार्ग के उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं। फिर इनमें से भी प्रत्येक यथाक्रम उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं—जैसे, तीन नागवीथियाँ हैं, उनमें से प्रथम उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमार्गस्था हुई। इन वीथियों का विचार फलित में होता है—जैसे, शुक्र जिस समय उत्तरवीथि में होकर उदित वा अस्त होता है उस समय सुभिक्ष और मंगल होता है, मध्यवीथि में होने से मध्यफल और दक्षिण वीथि में होने से मंदफल होता है।

नक्षत्रवृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा टूटना। उल्कापात होना।

नक्षत्रव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह चक्र जिसमें यह दिखलाया जाता है कि किन किन पदार्थों और जातियों आदि का स्वामी कौन नक्षत्र है।

विशेष—बृहत्संहिता के १५ वें अध्याय में लिखा है सफेद फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, सूत्र की भाषा जाननेवाले, खान में काम करनेवाले, हज्जाम, द्विज, कुम्हार, पुरोहित और वर्षफल जाननेवाले कृत्तिका नक्षत्र के अधीन हैं। सुव्रत, पुण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गौ, बैल, जलचर, किसान और पर्वत रोहिणी के अधिकार में हैं। पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, पक्षी, मृग, यज्ञ में सोमपान करनेवाले, गंधर्व, कामी और पत्रवाहक मृगशिरा के अधिकार में हैं। वध, बंध, परदार हरण, शठता और भेद करानेवाले और मोहन, मारण, उच्चाटन आदि करनेवाले आर्द्रा के अधिकार में हैं। इसी प्रकार और भी भिन्न भिन्न पदार्थों आदि के संबंध में यह बतलाया गया है कि वे किस नक्षत्र के अधिकार में हैं।

नक्षत्रव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह व्रत जो किसी विशिष्ट नक्षत्र के उद्देश्य से किया जाता है। जिस नक्षत्र के उद्देश्य से व्रत किया जाता है, व्रत के दिन उस नक्षत्र के स्वामी देवता का पूजन भी किया जाता है।

नक्षत्रशूल–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में काल का वह वास जो किसी विशिष्ट दिशा में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने के कारण माना जाता है।

विशेष—यदि पूर्व दिशा में श्रवण या ज्येष्ठा, दक्षिण में अश्विनी या उत्तराभाद्रपद, पश्चिम में रोहिणी या पुष्य और उत्तर में उत्तर-फाल्गुनी या हस्त नक्षत्र हों तो उस दिशा में, यात्रा आदि के लिये, नक्षत्रशूल माना जाता है।

नक्षत्रसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा आदि ग्रहों का पूर्व नक्षत्र मास में से उत्तर नक्षत्र में संक्रमण।

नक्षत्रसत्र–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक विशेष प्रकार का यज्ञ जो नक्षत्रों के निमित्त किया जाता है। यह यज्ञ नक्षत्र-मास के अनुसार होता है।

नक्षत्रसाधक–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

नक्षत्रसाधन–संज्ञा पुं० [सं०] वह गणना जिसके अनुसार यह जाना जाता है कि किस नक्षत्र पर कौन सा ग्रह कितने समय तक रहता है।

नक्षत्रसूचक–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्योतिषी जो स्वयं भारी गणना आदि न कर सकता हो, केवल दूसरों के मत के अनुसार ज्योतिष संबंधी साधारण काम करता हो।'

नक्षत्रसूची–संज्ञा पुं० दे० "नक्षत्रसूचक"।

नक्षत्रामृत–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में यात्रा आदि कार्यों के लिये एक बहुत ही उत्तम योग जो किसी विशिष्ट दिन में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने पर माना जाता है। जैसे, रविवार को हस्त, पुष्य, रोहिणी, या मूल आदि नक्षत्रों का होना, सोमवार को श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, अश्विनी या हस्त आदि का होना, मंगलवार को रेवती, पुष्य, आश्लेषा कृत्तिका या स्वाती आदि का होना, आदि आदि। ऐसे योग में व्यतीपात आदि के दोषों का नाश हो जाता है।

नक्षत्रविद्–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता जिनका नक्षत्रों में रहना माना जाता है।

नक्षत्री–संज्ञा पुं० [नक्षत्रिन्] (१) चंद्रमा। (२) विष्णु।

वि० [सं० नक्षत्र + ई (प्रत्य०)] जिसका जन्म अच्छे नक्षत्र में हुआ हो। भाग्यवान्। खुशकिस्मत।

नक्षत्रेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

नक्षत्रेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

नक्षत्रेष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नक्षत्रों के उद्देश्य से किया जाय।

नख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ या पैर का नाखून।

विशेष—दे० "नाखून"।

पर्या०—पुनर्भव। कररुह। नखर। कामांकुश। करज। पाणिज। करामज। करकंटक। स्मरांकुश। रतिपद। करचंद्र। कामांकुश।

(२) एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जो सीप या घोंघे आदि की जाति के एक प्रकार के जानवर के मुँह का ऊपरी आवरण या ढकना होता है। इसका आकार नाखून के समान चंद्राकार या कभी कभी बिलकुल गोल भी होता है। यह

घात, मंत्रसाधन, वेताल, बंध, वध, और भेद संबंधी कार्य्य सिद्ध होते हैं। पूर्वाषाढा, पूर्वफाल्गुणी, पूर्वभाद्रपद, भरणी और मघा ये पाँचों नक्षत्र उग्रगण कहलाते हैं, उजाड़ने, नष्ट करने, शठता करने, बंधन, विष, दहन और शस्त्राघात आदि की सिद्धि के लिये इस गण के नक्षत्र बहुत उपयुक्त हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य के समूह को लघु गण कहते हैं, इस में पुण्य, रति, ज्ञान, भूषण, कला, शिल्प आदि के कार्य की सिद्धि होती है। अनुराधा, चित्रा, मृगशिरा और रेवती को मृदुगण कहते हैं और ये वस्त्र, भूषण, मंगल, गीत और मित्र आदि के संबंध में हितकारी और उपयुक्त है। विशाखा और कृत्तिका को मृदुतीक्ष्ण गण कहते हैं, इनका फल मृदु और तीक्ष्ण गणों के फल का मिश्रण होता है। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति ये पाँचों "चरगण" कहलाते हैं, और इनमें चरकर्म्म हितकारी होता है।

नक्षत्रचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तांत्रिकों के अनेक चक्रों में से एक जिसके अनुसार दीक्षा के समय नक्षत्रों आदि के विचार से गुरु यह निश्चय करता है कि शिष्य को कौन सा मंत्र दिया जाय। (२) राशि-चक्र।

नक्षत्रचिंतामणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कल्पित रत्न जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उससे जो कुछ माँगा जाय वह मिलता है।

नक्षत्रदर्श–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो नक्षत्र देखता हो। (२) ज्योतिषी।

नक्षत्रदान–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न पदार्थों का दान। जैसे, रोहिणी नक्षत्र में घी, दूध और रत्न, मृगशिरा नक्षत्र में बछड़े सहित गौ, आर्द्रा में खिचड़ी, हस्ता में हाथी और रथ, अनुराधा में उत्तरीय सहित वस्त्र, पूर्वाषाढा में बरतन समेत दही और साना हुआ सत्तू, रेवती में काँसा, उत्तरा भाद्रपद में मांस आदि। इस प्रकार के दान से बहुत अधिक पुण्य होता और स्वर्ग मिलता है।

नक्षत्रनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

विशेष—पुराणानुसार दक्ष की अश्विनी आदि सत्ताईस (नक्षत्रों) कन्याओं का विवाह चंद्रमा के साथ हुआ था, इसी लिये चंद्रमा को नक्षत्रनाथ कहते हैं।

नक्षत्रप–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

नक्षत्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

नक्षत्रपथ–संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों के चलने का मार्ग।

नक्षत्रपदयोग–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार का योग जो उस समय होता है जब कि सूर्य्य जन्म-राशि से छठे स्थान में अथवा मेष राशि में हो और चंद्रमा वृष राशि में हो। कहते हैं कि इस योग में यदि राजा युद्ध के लिये यात्रा करे तो वह अपने शत्रु को उसी प्रकार परास्त कर सकता है जिस प्रकार हवा बादलों को उड़ा देती है।

नक्षत्रपुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पुरुष जिसकी कल्पना भिन्न भिन्न नक्षत्रों को उसके भिन्न भिन्न अंग मानकर की जाती है। बृहत्संहिता में लिखा है कि मूल नक्षत्र को नक्षत्रपुरुष के पाँव, रोहिणी और अश्विनी को जाँघ, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा को ऊरु, उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी को गुह्य, कृत्तिका को कमर, उत्तरा-भाद्रपदा और पूर्वा-भाद्रपदा को पार्श्व, रेवती को कोख, अनुराधा को छाती, धनिष्ठा को पीठ, विशाखा को बाँह, हस्त को कर, पुनर्वसु को उँगलियाँ, अश्लेषा को नाखून, ज्येष्ठा को गरदन, श्रवण को कान, पुष्य को मुख, स्वाति को दाँत, शतभिषा को हास्य, मघा को नाक, मृगशिरा को आँख, चित्रा को ललाट, भरणी को सिर और आर्द्रा को बाल मान कर नक्षत्र पुरुष की कल्पना करनी चाहिए। वामन पुराण के अनुसार इसका व्रत सुंदरता प्राप्त करने के उद्देश्य से चैत के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को जब चंद्रमा मूल-नक्षत्र-युक्त हो, किया जाता है। व्रत के दिन विष्णु और नक्षत्रों की पूजा करके दिन भर उपवास करना चाहिए। नक्षत्र पुरुष के पैरों वाले नक्षत्र से आरंभ करके प्रति मास हर एक अंग के नक्षत्र के नाम से भी व्रत करने का विधान है।

नक्षत्रमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह हार जिसमें सत्ताइस मोती हों।

नक्षत्रयाजक–संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो ग्रहों और नक्षत्रों आदि के दोषों की शांति कराता हो। महाभारत के अनुसार ऐसा ब्राह्मण निकृष्ट और प्रायः चांडाल के समान होता है।

नक्षत्रयोग–संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों के साथ ग्रहों का योग।

नक्षत्रयोनि–संज्ञा पुं० [स०] वह नक्षत्र जो विवाह के लिये निषिद्ध हो।

नक्षत्रराज–संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों के स्वामी, चंद्रमा।

नक्षत्रलोक–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह लोक जिसमें नक्षत्र हैं। यह लोक चंद्रलोक से ऊपर माना जाता है। काशीखंड में लिखा है कि जब दक्ष-कन्या नक्षत्रों ने महादेव के लिये कठिन तपस्या की थी तब उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें ज्योतिष चक्र में चंद्रलोक से ऊपर एक स्वतंत्र लोक में रहने का वर दिया था।

नक्षत्रवीथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों के बीच का कल्पित मार्ग।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों में एक वीथि होती है। स्वाति, भरणी, और कृत्तिका में नागवीथि

नखरौट-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नख+हिं॰ खरोट] नाखून की खरौट। शरीर पर का वह निशान जो नाखून चुभाने से होता है।

नखविंदु-संज्ञा पु॰ [सं॰] वह गोल या चंद्राकार चिह्न जो स्त्रियाँ नाखून के ऊपर मेंहदी या महावर से बनाती हैं। उ॰—जागत अनेक तामैं जावक को विंदु औ अनेक नख-विंदुन की कला सरसत है।—चरण।

नखविष-संज्ञा पु॰ [सं॰] वह जिसके नाखूनों में विष हो। जैसे, मनुष्य, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मगर, मेंढक, गोह, छिपकली आदि।

नखविष्किर-संज्ञा पु॰ [सं॰] वह जानवर जो अपने शिकार को नाखून से फाड़कर खाता हो। जैसे, शेर, बाज आदि। धर्म-शास्त्र के अनुसार ऐसे जानवरों का मांस नहीं खाना चाहिए।

नखवृक्ष-संज्ञा पु॰ [सं॰] नील का पेड़।

नखशंख-संज्ञा पु॰ [सं॰] छोटा शंख।

नखशस्त्र-संज्ञा पु॰ [सं॰] नहरनी।

नखशिख-संज्ञा पु॰ [सं॰] नख से लेकर शिख तक के सब अंग।

मुहा॰—नखशिख से=सिर से पैर तक। ऊपर से नीचे तक। जैसे, वह नख शिख से दुरुस्त है।

(२) सब अंगों का वर्णन।

नखशूल-संज्ञा पु॰ [सं॰] नाखून का वह रोग जिसमें उसके आस पास या जड़ में पीड़ा होती है।

नखहरणी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नहरनी। (हिं॰)

नखांक-संज्ञा पु॰ [सं॰] (१) व्याघ्रनखी। व्याघ्रनख। विशेष—दे॰ "नख"। (२) नाखून गड़ने का चिह्न।

नखांग-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) नख नामक गंधद्रव्य। (२) नलिका या नली नामक गंधद्रव्य।

नखायुध-संज्ञा पु॰ [सं॰] (१) शेर। (२) चीता। (३) कुत्ता।

नखारि-संज्ञा पु॰ [सं॰] शिव के एक अनुचर का नाम।

नखालि-संज्ञा पु॰ [सं॰] छोटा शंख।

नखालु-संज्ञा पु॰ [सं॰] नील वृक्ष। नील का पेड़।

नखाशी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ नखाशिन्] उल्लू।

वि॰ जो नाखूनों की सहायता से खाता हो।

नख़ास-संज्ञा पु॰ [अ॰ नख्खास] (१) वह बाजार जिसमें पशु विशेषतः घोड़े बिकते हैं। (२) साधारणतः कोई बाजार।

मुहा॰—नख़ास पर भेजना या चढ़ाना=बेचने के लिये बाजार भेजना। नख़ास की घोड़ी या नख़ासवाली=कसब कमानेवाली स्त्री। खानगी। (बाजारू)

नखियाना*†-क्रि॰ स॰ [सं॰ नख+इयाना (प्रत्य॰)] नाखून गड़ाना या नाखून से खरोचना।

नखी-संज्ञा पु॰ [सं॰ नखिन्] (१) शेर। (२) चीता। (३) वह जानवर जो नाखून से किसी पदार्थ को चीर या फाड़ सकता हो।

संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नख नामक गंध द्रव्य।

नखोटना*†-क्रि॰ स॰ [सं॰ नख+ओटना (प्रत्य॰)] नाखून से खरोचना या नोचना। उ॰—कान्ह बलि जाउँ ऐसी आरि न कीजै। × × × × × × बरजत बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिं अकुलाने। धरत धरणि पर लोटे। माता को चीर नखोटे। अंग आभूषण सब तोरे। लवनी दधि भाजन फोरे।—सूर।

नख्खास-संज्ञा पु॰ दे॰ "नख़ास"।

नग-वि॰ [सं॰] (१) न गमन करनेवाला। न चलने फिरनेवाला। अचल। स्थिर।

संज्ञा पु॰ (१) पर्वत। पहाड़। (२) पेड़। वृक्ष। (३) सात संख्या। (४) सर्प। साँप। (५) सूर्य्य।

संज्ञा पु॰ [फ़ा॰ नगीना, सं॰ नग] (१) शीशे या पत्थर आदि का रंगीन बढ़िया टुकड़ा जो प्रायः अँगूठियों आदि में जड़ा जाता है। नगीना।

मुहा॰—नग बैठाना=नग जड़ना।

(२) अदद। संख्या। जैसे, पाँच नग लोटा।

नगचाना‡-क्रि॰ अ॰ दे॰ "नगिचाना"।

नगज-संज्ञा पुं॰ [सं॰] हाथी।

वि॰ जो पहाड़ से उत्पन्न हो।

नगजा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) पार्वती। (२) पाषाणभेदा लता। पखानभेद।

नगण-संज्ञा पु॰ [सं॰] पिंगल शास्त्र में तीन लघु अक्षरों का एक गण (।।।) जैसे, कमल, मदन, चरण, शरण, समर नयन, आदि। इस गण से छंद का आरंभ करना शुभ माना जाता है।

नगणा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मालकँगनी।

नगण्य-वि॰ [सं॰] जो गणना करने के योग्य न हो। बहुत ही साधारण या गया बीता। तुच्छ। जैसे, इस विषय पर केवल एक ही पुस्तक मिली; परंतु वह भी नगण्य ही है।

नगदंती-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] विभीषण की स्त्री का नाम। उ॰—नगदंती केहरि मुख जाई। सो बल्लभा विभीषण पाई।—विश्राम।

नगद-संज्ञा पु॰ दे॰ "नकद"।

संज्ञा पु॰ [सं॰ नागदमनी] नागदमनी।

नगदी-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "नकदी"।

नगधर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पर्वत के धारण करनेवाले, श्रीकृष्णचंद्र। गिरिधर।

नगधरन*-संज्ञा पुं॰ दे॰ "नगधर"।

छोटा, बड़ा, सफेद, नीला कई प्रकार और रंग का होता है; जिनमें से छोटा और सफेद रंग का अच्छा माना जाता है। छोटे को वैद्यक ग्रंथों में क्षुद्रनखी और बड़े को शंखनखी, व्याघ्रनखी, बृहन्नखी कहते हैं। किसी किसी का आकार घोड़े के सुम या हाथी के कान के समान भी होता है। इसे जलाने से बदबू निकलती, है पर तेल में डालने से खुशबू निकलती है। इसका व्यवहार दवा के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह हलका, गरम, स्वादिष्ट, शुक्रवर्द्धक और व्रण, विष, श्लेष्मा, वात, ज्वर, कुष्ट और मुख की दुर्गंध दूर करनेवाला है। (३) खंड। टुकड़ा।

संज्ञा स्त्री० [फा० नख] (१) एक प्रकार का बटा हुआ महीन रेशमी तागा जिससे गुड्डी उड़ाते और कपड़ा सीते हैं। (२) गुड्डी उड़ाने के लिये वह पतला तागा जिस पर माँझा दिया जाता है। डोर।

नखकर्त्तनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाखून काटने का औजार। नहरनी।

नखकुट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] हज्जाम। नाई।

नखक्षत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह दाग या चिह्न जो नाखून के गड़ने के कारण बना हो। (२) स्त्री के शरीर पर का, विशेषतः स्तन आदि पर का, वह चिह्न जो पुरुष के मर्द्दन आदि के कारण उसके नाखूनों से बन जाता है।

नखखादी-संज्ञा पुं० [सं० नखखादिन्] वह जो दाँतों से अपने नाखून कुतरता हो। मनु के अनुसार ऐसे मनुष्य का बहुत जल्दी नाश हो जाता है।

नखगुच्छफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सेम।

नखचारी-संज्ञा पुं० [सं० नखचारिन्] पंजे के बल चलनेवाला जीव।

नखच्छत*†-संज्ञा पुं० दे० "नखक्षत"।

नखछोलिया*†-संज्ञा पुं० दे० "नखक्षत"।

नखजाह-संज्ञा पुं० [सं०] नाखून का अगला भाग।

नखत*†-संज्ञा पुं० दे० "नक्षत्र"।

नखतर*†-संज्ञा पुं० दे० "नक्षत्र"।

नखतराज*-संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रराज] चंद्रमा।

नखतराय-संज्ञा पुं० दे० "नखतराज"।

नखता-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो भारत के सिवा और कहीं नहीं होती। यह बरसात के आरंभ में दिन भर उड़ा करती है और भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न स्थानों पर रहती है। यह कीड़े-मकोड़े और फल आदि खाती है और पाली भी जा सकती है।

नखना-क्रि० अ० [हिं० नाखना] उल्लंघन होना। डांका जाना। क्रि० स० उल्लंघन करना। पार करना। उ०—मानहि मान ते मानिन केशव मानस ते कुछ मान टरैगो। मान है री सु जु माने नहीं परिमान नखे अभिमान भरैगो।—केशव।

क्रि० स० [सं० नष्ट] नष्ट करना। उ०—जौ लौं इह तन प्रान पठान न रक्खिहैं। मऊ फरुक्काबाद खोदि कै नक्खिहैं। —सूदन।

नखदारण-संज्ञा पुं० [सं०] नहरनी।

नखनिष्पाव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सेम।

नखपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिछुवा घास।

नखपुंजफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद सेम।

नखपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृक्का या असवरग नाम का गंधद्रव्य।

नखपूर्विका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरी सेम।

नखमुच-संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़।

नखरंजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नहरनी।

नखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नख। नाखून। (२) प्राचीन काल का एक अस्त्र।

नखरा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह चुलबुलापन, चेष्टा या चंचलता आदि जो जवानी की उमंग में अथवा प्रिय को रिझाने के लिये की जाती है। चोचला। नाज़। हाव-भाव। जैसे, उसे बहुत नखरा आता है।

यौ०—नखरातिल्ला। नखरेबाज़।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।—निकालना।

मुहा०—नखरा बघारना = नखरा करना।

(२) साधारण चंचलता या चुलबुलापन। बनावटी चेष्टा। (३) बनावटी इनकार। जैसे, (क) जब कहीं चलने का काम होता है तब तुम एक न एक नखरा निकाल बैठते हो। (ख) ये सब इनके नखरे हैं, ये करेंगे वही जो तुम कहोगे।

नखरा-तिल्ला-संज्ञा पुं० [फा० नखरा + हिं० तिल्ला (अनु०)] नखरा। चोचला। नाज़।

नखरायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शेर। (२) चीता। (३) कुत्ता।

नखराह्व-संज्ञा० पुं० [सं०] कनेर का पेड़।

नखरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नख नाम का गंधद्रव्य।

नखरीला†-वि० [फा० नखरा + ईला (प्रत्य०)] चोचलेबाज। नखरा करनेवाला।

नखरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नखक्षत। नाखून का दाग। (२) कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो बादलों की माता थी। उ०—दारा ते तृणवृक्ष जौन लागत पर काजै। नखरेखा सुत मेघ कोटि छप्पन उपराजै।—विश्राम।

नखरेबाज़-वि० [फा०] जो बहुत नखरा करता हो। नखरा करनेवाला।

नखरेबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फा०] नखरा करने की क्रिया या भाव।

सूरदास स्वामी रति नागर नागरि देखि गई नगराई।
—सूर।

नगरादि सन्निवेश–संज्ञा पुं० [सं०] नगर का स्थापन और निर्माण। शहर बनाना या बसाना।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि शहर बसाने के लिये राजा को पहले एक या आधा योजन लंबा सुंदर स्थान चुनना चाहिए और बाजार आदि बनवाने चाहिएँ। नगर में अग्निकोण में सुनारों आदि के लिये, दक्षिण में नाचने गानेवालों और वेश्याओं आदि के लिये, नैर्ऋत्य में नटों और कैवर्तों आदि के लिये, पश्चिम में रथ और शस्त्र आदि बनानेवालों के लिये, वायुकोण में नौकर-चाकरों और दासों आदि के लिये, उत्तर में ब्राह्मणों, यति और सिद्धों आदि के लिये, ईशान कोण में फल फलहरी और अन्न आदि बेचनेवालों के लिये और पूर्व में योद्धाओं आदि के रहने के लिये स्थान बनवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पूर्व में क्षत्रियों के लिये, दक्षिण में वैश्यों के लिये और पश्चिम में शूद्रों के लिये स्थान बनाना चाहिए और नगर के चारों ओर सेना रखनी चाहिए। दक्षिण में श्मशान, पश्चिम में गौओं आदि के रहने और चरने आदि के लिये परती जमीन और उत्तर में खेत होने चाहिएँ। नगर में स्थान स्थान पर देवमंदिर होने चाहिएँ।

नगराध्यक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] नगर का स्वामी या रक्षक। वह जिस पर नगर की रक्षा आदि का पूरा पूरा भार हो।

विशेष—महाभारत से पता चलता है कि प्राचीन काल में राजा की ओर से शासन और न्याय आदि के कामों के लिये जो अधिकारी नियुक्त किया जाता था वह नगराध्यक्ष कहलाता था।

नगरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर। शहर।

संज्ञा पुं० [सं० नगरिन्] शहर में रहनेवाला मनुष्य। नागरिक। शहराती।

नगरीकाक–संज्ञा पुं० [सं०] बगला।

नगरोत्था–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

नगरौषधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] केला।

नगवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

नगस्वरूपिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु होता है। इसे प्रमाणी और प्रमाणिका भी कहते हैं। उ०—जरा लगाव चित्त ही। भजो तु नंदनंद ही। प्रमाणिका हिये गहो। तु पार भी लगा चाहो।

नगाटन–संज्ञा पुं० [सं०] बंदर। कपि।

वि० पहाड़ पर विचरण करनेवाला।

नगाड़ा–संज्ञा पुं० दे० "नगारा"।

नगाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिमालय पर्वत। (२) सुमेरु पर्वत।

नगारा–संज्ञा पुं० [फा०] डुगडुगी या बाएँ की तरह का एक प्रकार का बहुत बड़ा और प्रसिद्ध बाजा जिसमें एक बहुत बड़ी कूँड़ी के ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। कभी कभी इसके साथ इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा भी होता है। इन दोनों को आमने सामने रखकर लकड़ी के दो डंडों से जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं। नगाड़ा। डंका। धौंसा। मुहावरों के लिये दे० "नक्कारा"।

नगारि–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र, पुराणानुसार जिन्हों ने पर्वतों के पर काटे थे।

नगावास–संज्ञा पुं० [सं०] मोर।

नगाश्रय–संज्ञा पुं० [सं०] हाथीकंद।

नगी–संज्ञा स्त्री० [सं० नग=पर्वत+ई (प्रत्य०)] (१) रत्न। मणि। नगीना। नग। उ०—कंचन की मार रूप डबीन में खोळ धरी मानो नील नगी है।—सुंदरीसर्वस्व। (२) पर्वत की कन्या, पार्वती। उ०—नगी किधौं पन्नग की जाई। कमला किधौं देह धरि आई।—सबल। (३) पर्वत पर रहनेवाली स्त्री। पहाड़ी स्त्री। उ०—पन्नगी नगी कुमारि आसुरी निहारि डारौं वारि किन्नरी नरी गन्धारि नारिका।—केशव।

नगीच–क्रि० वि० दे० "नजदीक"।

नगीना–संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० नग] (१) पत्थर आदि का वह रंगीन चमकीला टुकड़ा जो शोभा के लिये अँगूठी आदि में जड़ा जाता है। रत्न। मणि।

मुहा०—नगीना सा=बहुत छोटा और सुंदर।

(२) एक प्रकार का चारखानेदार देशी कपड़ा।

नगीनासाज़–संज्ञा पुं० [फा०] वह जो नगीना बनाता या जड़ता हो। नगीना बनाने या जड़ने का काम करनेवाला।

नगीनागर–संज्ञा पुं० दे० "नगीनासाज़"।

नगेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतराज, हिमालय।

नगेश–संज्ञा पुं० दे० "नगेंद्र"।

नगेसरि*†–संज्ञा पुं० [सं० नगकेशर] नागकेशर।

नगौक–संज्ञा पुं० [सं० नगौकस्] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) सिंह। शेर। (३) कौआ।

नग्न–वि० [सं०] (१) जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। (२) जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के दिगंबर जैन जो कौपीन और कषाय वस्त्र पहनते हैं। ये पाँच प्रकार के होते हैं—द्विकच्छ, कच्छशेष, मुक्तकच्छ, एकवासा और अवासा। (२) पुराणानुसार वह जिसे शास्त्रों आदि का ज्ञान न हो और जिसके कुल में किसी ने वेद न पढ़ा हो। ऐसे आदमियों का अन्न ग्रहण करना वर्जित है। (३) वह जो गृह-

नगनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती जो हिमालय की कन्या मानी जाती है।

नगन*†—वि० [सं० नग्न] (१) जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। (२) जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो।

नगनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी जो किसी पहाड़ से निकली हो।

नगना—संज्ञा स्त्री० दे० "नग्ना"।

नगनिका—संज्ञा स्त्री० [?] (१) संकीर्ण राग का एक भेद। (संगीत)। (२) क्रीड़ा नामक वृत्त का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक यगण और एक गुरु होता है। उ०—भगै चारो। हरी तारो। करौ क्रीड़ा। रखौ व्रीड़ा।

नगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नग्ना] (१) वह कन्या जो रजोधर्म को प्राप्त न हुई हो। वह कन्या जिसके स्तन न उठे हों और जो अपना ऊपरी शरीर खोले घूम फिर सकती हो। (२) कन्या। पुत्री। बेटी। उ०—ऋषि तनया कह्यो मोहि विवाहि। कच कह्यो तू गुरु नगनी आहि।—सूर। (३) नंगी स्त्री।

नगन्निका छंद—संज्ञा पुं० दे० "नगनिका"।

नगपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिमालय पर्वत। (२) चंद्रमा। (३) कैलाश के स्वामी, शिव। (४) सुमेरु। उ०—चतुरानन बल सँभारि मेघनाद आयो। मानो घन पावस में नगपति है छायो।—सूर।

नगभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पखानभेद लता। (२) प्राचीन काल का पत्थर तोड़ने का एक प्रकार का अस्त्र। (३) इंद्र। (पुराणानुसार इंद्र ने पहाड़ों के पर काटे थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा।)

नगभू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी पखानभेद लता। (२) पहाड़ी जमीन।

वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हुआ हो।

नगरंध्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय का एक नाम।

नगर—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो गाँव या कस्बे आदि से बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशों के लोग रहते हों। शहर।

विशेष—हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस स्थान पर बहुत सी जातियों के अनेक व्यापारी और कारीगर रहते हों और प्रधान न्यायालय हो, उसे नगर कहते हैं। युक्तिकल्पतरु नामक ग्रंथ में लिखा है कि राजा को शुभ मुहूर्त में लंबा, चौकोर, तिकोना या गोल नगर बसाना चाहिए। इसमें से तिकोना और गोल नगर बुरा समझा जाता है। लंबा नगर बहुत ही शुभ और स्थायी तथा चौकोर नगर चारों प्रकार के फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का देनेवाला माना जाता है।

पर्या०—पुर। पुरी। नगरी। पत्तन। पट्टन। पटभेदन। निगम। कटक। स्थानीय। पट्ट।

यौ०—राजनगर। नगर-बसेरा। नगर-नारि। नगर-कीर्त्तन, आदि।

नगरकीर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] वह गाना-बजाना या कीर्त्तन, विशेषतः ईश्वर के नाम का भजन या कीर्त्तन, जिसे नगर की गलियों और सड़कों में घूम घूम कर कुछ लोग करें।

नगरघात—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

नगरतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात प्रांत का एक प्राचीन तीर्थ जहाँ किसी समय शिव का निवास माना जाता था।

नगरनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नगर + नायिका] वेश्या। रंडी।

नगरनारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रंडी। वेश्या।

नगरपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका काम सब प्रकार के उपद्रवों आदि से नगर की रक्षा करना हो।

नगरमर्दी—संज्ञा पुं० [सं० नगरमर्दिन्] मस्त हाथी।

नगरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] शहर में का बड़ा और चौड़ा रास्ता। राजमार्ग।

नगरमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

नगरवा—संज्ञा पुं० [देश०] ईख की एक प्रकार की बोआई जो मध्य प्रदेश के वन प्रांतों में होती है जहाँ की मिट्टी काली या करैली होती है। इसमें खेतों के सींचने की आवश्यकता नहीं होती; बल्कि बरसात के बाद जब ईख के अंकुर फूटते हैं तब जमीन पर इसलिये पत्तियाँ बिछा देते हैं जिसमें उसमें का पानी भाप बनकर उड़ न जाय। पलवार।

नगरवासी—संज्ञा पुं० [सं०] नागरिक। शहर में रहनेवाला। पुरवासी।

नगरविवाद—संज्ञा पुं० [सं० नगर + विवाद] दुनिया के झगड़े बखेड़े। उ०—धनमद जोवनमद राजमद भूल्यो नगरविवादि।—स्वामी हरिदास।

नगरहा—संज्ञा पुं० [हिं० नगर + हा (प्रत्य०)] शहर में रहनेवाला। नागरिक।

नगरहार—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन भारत का एक नगर जो किसी समय वर्तमान जलालाबाद के निकट बसा था। चीनी यात्री हुएनसांग ने अपनी यात्रा में इसका वर्णन किया है। उस समय यह नगर कपिश राज्य के अधीन था। किसी समय इस नाम का एक राज्य भी था जो उत्तर में काबुल नदी और दक्षिण में सफेद कोह तक था।

नगराई*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नगर + आई (प्रत्य०)] (१) नागरिकता। शहरातीपन। (२) चतुराई। चालाकी। उ०—

वि० निकट का ।
संज्ञा पु० निकट का संबंधी ।

नज़म–संज्ञा स्त्री० [अ० नज़्म] कविता । पद्य । छंद ।

नज़र–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दृष्टि । निगाह । चितवन ।

मुहा०—नजर आना = दिखाई देना । दिखाई पड़ना । दृष्टि-गोचर होना । उ०—नजर आता है कोई अपना न पराया मुझको ।—अमानत । नजर करना = देखना । उ०—जब मैंने उधर नजर की तब देखा कि आप खड़े हैं । नजर पर चढ़ना = पसंद आ जाना । भा जाना । भला मालूम होना । नजर पड़ना = दिखाई देना । देखने में आना । जैसे, कई दिन से तुम नजर नहीं पड़े । नजर फिसलना = चमक या चका-चौंध के कारण किसी वस्तु पर दृष्टि का अच्छी तरह न जमना । नजर फेंकना = (१) दूर तक देखना । दृष्टि डालना । (२) सरसरी नजर से देखना । नजर में आना = दिखलाई पड़ना । दिखाई देना । नजर में तौलना = देख कर किसी के गुण और दोष आदि की परीक्षा करना । नजर बाँधना = जादू या मंत्र आदि के जोर से किसी की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न कर देना । कुछ का कुछ कर दिखाना । (प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि जादू के जोर से दृष्टि में भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है । आज कल भी कुछ लोग इस बात को मानते हैं ।)

(२) कृपादृष्टि । मेहरबानी से देखना । जैसे, आप की नजर रहेगी तो सब कुछ हो जायगा ।

मुहा०—नजर रखना = कृपादृष्टि रखना । मेहरबानी रखना ।

(३) निगरानी । देखरेख । जैसे, जरा आप भी इस काम पर नजर रखा करें ।

क्रि० प्र०—रखना ।

(४) ध्यान । खयाल । (५) परख । पहचान । शिनाख्त । जैसे, इन्हें भी जवाहिरात की बहुत कुछ नजर है । (६) दृष्टि का वह कल्पित प्रभाव जो किसी सुंदर मनुष्य या अच्छे पदार्थ आदि पर पड़ कर उसे खराब कर देनेवाला माना जाता है ।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था और अब भी बहुत से लोगों का विश्वास है कि किसी किसी मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव होता है कि जिस पर उसकी दृष्टि पड़ती है उसमें कोई न कोई दोष या खराबी पैदा हो जाती है । यदि ऐसी दृष्टि किसी खाद्य पदार्थ पर पड़े तो वह खानेवाले को नहीं पचता और भविष्य में उस पदार्थ पर से खानेवाले की रुचि भी हट जाती है । यह भी माना जाता है कि यदि किसी सुंदर बालक पर ऐसी दृष्टि पड़े तो वह बीमार हो जाता है । अच्छे पदार्थों आदि के संबंध में माना जाता है कि यदि उन पर ऐसी दृष्टि पड़े तो उसमें कोई न कोई दोष या विकार उत्पन्न हो जाता है । किसी विशिष्ट अवसर पर केवल किसी विशिष्ट मनुष्य की दृष्टि में ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव माना जाता है ।

मुहा०—नजर उतारना = बुरी दृष्टि के प्रभाव को किसी मंत्र या युक्ति से हटा देना । नजर खाना या खा जाना = बुरी दृष्टि से प्रभावित हो जाना । नजर जलाना = दे० "नजर झाड़ना" । नजर झाड़ना = बुरी दृष्टि के प्रभाव को हटाना । नजर लगना = बुरी दृष्टि का प्रभाव पड़ना । नजर लगाना = बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना । नजर होना या हो जाना = दे० "नजर लगना" ।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) भेंट । उपहार । जैसे (क) सौदागर ने अकबर शाह को एक सौ घोड़े नजर किए । (ख) अगर यह किताब आपको इतनी ही पसंद है तो लीजिए यह आपको नजर है । (ग) भरि भरि काँवरी सुधर कहारा । तिमि भरि शकटन ऊँट अपारा । शतानंद अरु सचिव जिवाई । कोशलपालहिं नजर कराई ।—रघुराज ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

(२) अधीनता सूचित करने की एक रसम जिसमें राजाओं, महाराजों और जमींदारों आदि के सामने प्रजावर्ग के या दूसरे अधीनस्थ और छोटे लोग दरबार या त्योहार आदि के समय अथवा किसी अन्य विशिष्ट अवसर पर नगद रुपया या अशरफी आदि हथेली में रख कर सामने लाते हैं । यह धन कभी तो ग्रहण कर लिया जाता है और कभी केवल छूकर छोड़ दिया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—गुजारना ।—देना ।

नजरना[*]–क्रि० अ० [अ० नजर + ना (प्रत्य०)] (१) देखना । उ०—(क) कारीगरी में करी बहुतै नजरी गई तौ कछुवै न भलाई ।—बेनी प्रवीन । (ख) नजरेई सब रहत हैं एक नजरिया ओर । इतने ही में चोर ही चित वित तुव दगचोर ।—रसनिधि । (ग) न जरै जो नजरै रहै प्रीतम तुव मुख चंद ।—रसनिधि । (२) नजर लगाना । दे० "नजर (६)" ।

नजरबंद–वि० [अ० नजर + फा० बंद] जो किसी ऐसे स्थान पर कड़ी निगरानी में रखा जाय जहाँ से वह कहीं आ जा न सके । जिसे नजरबंदी की सजा दी जाय । उ०—भूले लोभी नैन सों छवि रस आए चाख । दग तारे दैके इन्हें नजरबंद कर राख ।—रसनिधि ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

संज्ञा पु० जादू या इंद्रजाल आदि का वह खेल जिसके विषय में लोगों का यह विश्वास रहता है कि वह लोगों की नजर बाँध कर किया जाता है । लोगों की दृष्टि में भ्रम

स्थाश्रम के उपरांत विना वानप्रस्थ ग्रहण किए ही संन्यासी हो गया हो। पुराणानुसार ऐसा आदमी पातकी समझा जाता है।

नग्नक–संज्ञा पुं० दे० "नग्न"।

नग्नक्षपणक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध संन्यासी या भिक्षु।

नग्नजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गांधार के एक बहुत पुराने राजा का नाम जिसका उल्लेख शतपथ-ब्राह्मण में है। (२) पुराणानुसार कोशल के एक राजा का नाम जिसकी सत्या या नाग्नजिती नामक कन्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ था।

नग्नता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नंगे होने का भाव। नंगापन। वस्त्र-विहीनता।

नग्नपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम।

नग्नाठ–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सदा नंगा रहता हो।

नग्र*†–संज्ञा पुं० दे० "नगर"।

नग्रोध–संज्ञा पुं० [सं० न्यग्रोध] वटवृक्ष। बड़ का पेड़।

नघना–क्रि० स० [सं० लंघन] नाँघना। लाँघना। डाँकना। पार करना। उ०—भीमसेन अर्जुन दोउ धाए। हेरत हेरत पुर नघि आए।—रघुराज।

नघाना–क्रि० स० [सं० लंघन] लँघाना। उल्लंघन कराना। डँका देना। उ०—बोले वचन पुकारि कै विपिन जो देइ नघाय। द्वै सै मुद्रा ताहि हम देहैं तुरत गहाय।—रघुराज।

नचना*†–क्रि० अ० [हिं० नाचना] नाचना। नृत्य करना। उ०—(क) सजनी सज नीरद निरखि हरखि नचत इत मोर।—केशव। (ख) काली की फनाली पै नचत वनमाली है।—पद्माकर।

वि० (१) जो नाचता हो। नाचनेवाला। (२) जो बराबर इधर उधर घूमता रहता हो, एक स्थान पर न रहता हो।

नचनि*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाचना] नाच। नृत्य।

नचनिया†–संज्ञा पुं० [हिं० नाचना + इया (प्रत्य०)] नाचनेवाला। नृत्य करनेवाला।

नचनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाचना] करघे की वे दोनों लकड़ियाँ जो बेसर के कुलवाँसे से लटकती होती हैं। इन्हीं के नीचे चकडोर से दोनों राछें बँधी रहती हैं। इन्हीं की सहायता से राछें ऊपर नीचे जाती और आती हैं। इन्हें चक या कलहरा भी कहते हैं।

वि० स्त्री० [हिं० नाचना] (१) नाचनेवाली। जो नाचती हो। (२) बराबर इधर उधर घूमती रहनेवाली स्त्री। (क्वि०)

नचवैया–संज्ञा पुं० [हिं० नाचना + वैया (प्रत्य०)] नाचनेवाला। जो नाचता हो।

नचाना–क्रि० स० [हिं० नाचना का प्रे०] (१) दूसरे को नाचने में प्रवृत्त करना। नाचने का काम दूसरे से कराना। नृत्य कराना। जैसे, रंडी नचाना, बंदर नचाना। (२) किसी को बार बार उठने बैठने या और कोई काम करने के लिये विवश करके तंग करना। अनेक व्यापार कराना। हैरान करना। उ०—(क) जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे। भृकुटि विलास नचावै ताही। अस प्रभु छाँड़ि भजिय कहु काही।—तुलसी। (ख) देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही।—तुलसी।

मुहा०—नाच नचाना = घूमने फिरने या और कोई काम करने के लिये विवश करके तंग करना। हैरान करना। उ०—कबिरा बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावै नाच।—कबीर।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।

(३) किसी चीज को बार बार इधर उधर घुमाना या हिलाना। चक्कर देना। भ्रमण कराना। जैसे, हाथ में छड़ी या ताली लेकर नचाना। लट्टू नचाना।

मुहा०—आँखें (या नैन) नचाना = चंचलतापूर्वक आँखों की पुतलियों को इधर उधर घुमाना। उ०—(क) नैन नचाय कही मुसकाय लला फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर। (ख) कछु नैन नचाय नचावति भौंह नचैं कर दोऊ औ आप नचै।

(४) इधर उधर दौड़ाना। हैरान या परेशान करना।

नचिकेता–संज्ञा पुं० [सं० नाचिकेतस्] (१) वाजश्रवा ऋषि का पुत्र जिसने मृत्यु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। वाजश्रवा ने एक बार दक्षिणा में अपना सर्वस्व दे डाला था। उस समय इसने पिता से कई बार पूछा था कि मुझे किसको प्रदान करते हैं। पिता ने खिजला कर कह दिया कि मैं तुमको मृत्यु को अर्पित करता हूँ। इस पर वह मृत्यु के पास चला गया था और वहाँ तीन दिन तक निराहार रहकर उससे इसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। (२) अग्नि।

नचौहाँ*†–वि० [हिं० नाचना + औहाँ (प्रत्य०)] जो सदा नाचता या इधर उधर घूमता रहे। चंचल। अस्थिर। उ०—देत रचौंहैं चित कहैं नेह नचौहैं नैन।—बिहारी।

नछत्र–संज्ञा पुं० दे० "नक्षत्र"।

नछत्री–*† वि० [सं० नक्षत्र + ई (प्रत्य०)] भाग्यवान्। भाग्यशाली। जिसका जन्म अच्छे नक्षत्र में हुआ हो। उ०—परम नछत्री ख्यात जात छत्रीवर बलधर।—गोपाल।

नजदीक–वि० [फ़ा०] [संज्ञा नजदीकी] निकट। पास। करीब। समीप।

नजदीकी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पास या नजदीक होने का भाव। सामीप्य।

मनुष्य। वह जो नाट्य करता हो। नाट्यकला में प्रवीण पुरुष। (२) प्राचीन काल की एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शौंडिकी स्त्री और शौंडिक पुरुष से मानी गई है और जिसका काम गाना बजाना बतलाया गया है। (३) मनु के अनुसार क्षत्रियों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति व्रात्य क्षत्रियों से मानी जाती है। (४) पुराणानुसार एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति मालाकार पिता और शूद्रा माता से मानी जाती है। (५) एक नीच जाति जो प्रायः गा बजाकर और तरह तरह के खेल तमाशे आदि करके अपना निर्वाह करती है। युक्त प्रांत में इस जाति के जो लोग पाए जाते हैं वे बाँसों पर तरह तरह की कसरतें करते और रस्सों पर अनेक प्रकार से चलते हैं। बंगाल में इस जाति के लोग प्रायः गाने बजाने का पेशा करते हैं। उ०—दीठि बरत बाँधी अटनि चढ़ि धावत न डरात। इत उत तें मन दुहुन के नट लौं आवत जात।—बिहारी। (६) एक नाग का नाम जिसे भट नामक एक और दूसरे नाग के साथ मथुरा के निकट उरुमुंड नामक पर्वत पर बुद्धदेव ने बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इसने तथा भट ने उस स्थान पर दो विहार भी बनवाए थे। (७) संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कुछ आचार्य इसे मालकोश राग का और कुछ श्रीराग का पुत्र मानते हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह बागीश्वरी, मधुमाध और पूरिया के मेल से बना हुआ और किसी के मत से कुकुम, पूरबी, केदारा और बिलावल के मेल से बना हुआ संकर राग है। रागमाला में इसे राग नहीं बल्कि रागिनी माना है। एक और शास्त्रकार ने इसे दीपक राग की रागिनी बतलाया है। उनके मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसके गाने का समय तीसरा पहर और संध्या है। भिन्न भिन्न रागों के साथ इसे मिलाने से अनेक संकर राग भी बनते हैं। जैसे, केदारनट, छायानट, कामोदनट आदि। (८) अशोक वृक्ष। (९) श्योनाक वृक्ष।

नटई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) गला। गरदन। (२) गले की घंटी। घाँटी।

नटखट—वि० [हिं० नट+अनु० खट] (१) जो सदा कुछ न कुछ उपद्रव करता रहे। ऊधमी। उपद्रवी। चंचल। शरीर। (२) चालाक। चालबाज। धूर्त। मक्कार।

नटखटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नटखट] बदमाशी। शरारत। पाजीपन।

नटचर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिनय।

नटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नट का भाव। (२) नट का काम।

नटना—क्रि० अ० [सं० नट] (१) नाट्य करना। उ०—कहूँ नटत नट कोटि, भाँट वर गावत गुण गनि।—गुमान। (२) नाचना। नृत्य करना। (३) इनकार करना। कह कर बदल जाना। मुकरना। उ०—(क) भौंहन त्रासति मुख नटति आँखिनि सों लपटाति।—बिहारी। (ख) कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।—बिहारी।

क्रि० स० [सं० नष्ट] नष्ट करना। उ०—नटै लोक दोऊ हटी एक ऐसे।—केशव।

क्रि० अ० नष्ट होना।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाँस की बनी छलनी जिससे रस छाना जाता है। (२) मछली पकड़ने का वह बड़ा टोकरा जिसका पेंदा कटा होता है। टाप।

नटनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो हनुमत के मत से मेघ राग का तीसरा पुत्र और भरत के मत से दीपक राग का पुत्र है। लेकिन सोमेश्वर और कल्लिनाथ के मत से यह छः रागों में से एक है और कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी और नट्ट हंबीरा ये छः इसकी रागिनियाँ हैं। यह संपूर्ण जाति का राग है, इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह हेमंत ऋतु में रात के समय २१ दंड से २६ दंड तक गाया जाता है। कुछ लोग इसे मधुमाध, बिलावल और शंकराभरण के मेल से बना हुआ और कुछ लोग कल्याण, शंकराभरण, नट और बिलावल के मेल से बना हुआ संकर राग भी मानते हैं। एक और शास्त्रकार के मत से यह षाड़व जाति का राग है। इसमें निषाद वर्जित है और यह बरसात में तीसरे पहर गाया जाता है। उसके अनुसार बिलावल, कामोदी, सावेरी, सुहवी और सोरठ इसकी रागिनियाँ और शुद्धनट, हम्मीरनट, सारंगनट, छायानट, कामोदनट, केदारनट, मेघनट, गौड़नट, भूपालनट, जयजयनट, शंकरनट, हीरनट, श्यामनट, बराड़ीनट, विभासनट, विहागनट, और शंकराभरणनट इसके पुत्र हैं। पर वास्तव में ये सब संकर राग हैं जो नट तथा भिन्न भिन्न रागों के मेल से बनते हैं।

नटनि*†—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्त्तन] नृत्य। नाच।

संज्ञा स्त्री० [हिं० नटना] इनकार। अस्वीकृति। उ०—सनमुख हिये रिनखिन नटनि अनप बढ़ावत लाज।—बिहारी।

नटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नट+नी (प्रत्य०)] (१) नट की स्त्री। (२) नट जाति की स्त्री। उ०—नटनी डोमिन ढारिनि सहनायन परकार। निरतत नाद विनोद सों विहँसत खेलत नार।—जायसी।

नटपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भंटा।

नटभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

नटमंडन—संज्ञा पुं० [सं० नटमण्डन] हरताल। (डिं०)

नटमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

उत्पन्न करके किया जानेवाला खेल। जैसे, वह मदारी नजरबंद के बहुत अच्छे अच्छे खेल करता है।

नजरबंदी–संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० बंदी] (१) राज्य की ओर से वह दंड जिसमें दंडित व्यक्ति किसी सुरक्षित या नियत स्थान पर रखा जाता है और उस पर कड़ी निगरानी रहती है। जिसे यह दंड मिलता है उसे कहीं आने जाने या किसी से मिलने जुलने की आज्ञा नहीं होती । (२) नज़रबंद होने की दशा। (३) लोगों की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करने की क्रिया। जादूगरी। बाजीगरी।

नजरबाग–संज्ञा पुं० [अ०] वह बाग जो महलों या बड़े बड़े मकानों आदि के सामने या चारों ओर उनके अहाते के अंदर ही रहता है।

नजरसानी–संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी किए हुए कार्य्य या लिखे हुए लेख आदि को, उसमें सुधार या परिवर्त्तन करने के लिये, फिर से देखना। पुनर्विचार या पुनरावृत्ति।

नजरहाया–वि० [अ० नजर + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० नजरहाई] जो नजर लगावे। जिसकी नजर पड़ते ही कोई दोष उत्पन्न हो। नजर लगानेवाला।

नजरानना†*–क्रि० स० [हिं० नजर + आनना (प्रत्य०)] (१) भेंट में देना। उपहार स्वरूप देना। (२) नजर लगाना। दे० "नजर (६)"।

नजराना–क्रि० अ० [हिं० नजर] नजर लग जाना । बुरी दृष्टि के प्रभाव में आना। जैसे, मालूम होता है कि यह लड़का कहीं नजरा गया है।

क्रि० स० नज़र लगाना।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) भेंट। उपहार। (२) जो वस्तु भेंट में दी जाय।

नजरि*– संज्ञा स्त्री० दे० "नजर"।

नज़ला–संज्ञा पुं० [अ०] (१) यूनानी हिकमत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें गरमी के कारण सिर का विकार-युक्त पानी ढल कर भिन्न भिन्न अंगों की ओर प्रवृत्त होता और जिस अंग की ओर ढलता है उसे खराब कर देता है। कहते हैं कि यदि नजले का पानी सिर में ही रह जाय तो बाल सफेद हो जाते हैं। आंखों पर उतर आवे तो दृष्टि कम हो जाती है, कान पर उतरे तो आदमी बहरा हो जाता है, नाक पर उतरे तो ज़ुकाम होता है, गले में उतरे तो खाँसी होती है और अंडकोश में उतरे तो उसकी वृद्धि हो जाती है।

क्रि० प्र०—उतरना।—गिरना।

(२) ज़ुकाम। सरदी।

नज़लाबंद–संज्ञा पुं० [अ० नजला + फा० बंद] अफीम और चूने आदि का वह फाहा जो नजले को गिरने से रोकने के लिये दोनों कनपटियों पर लगाया जाता है।

नज़ाकत–संज्ञा स्त्री० [फा०] नाज़ुक होने का भाव। सुकुमारता। कोमलता।

नजात–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मुक्ति। मोक्ष । (२) छुटकारा। रिहाई।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

नज़ामत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नाज़िम का पद। (२) नाज़िम का महकमा या विभाग।

नज़ारत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नाज़िर का पद। (२) नाज़िर का मुहकमा। (३) नाज़िर का दफ्तर, जहाँ बैठकर नाज़िर काम करता हो।

नज़ारा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) दृश्य। (२) दृष्टि। नज़र। (३) स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को लालसा या प्रेम की दृष्टि से देखना। (बाजारू)

क्रि० प्र०—लड़ना।—लड़ाना।—मारना।

नज़ारेबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [अ० नज़ारा + फा० बाजी] स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को प्रेम या लालसा की दृष्टि से देखना। (बाजारू)

नजिकाना*†–क्रि० स० [हिं० नजीक (नजदीक) + आना (प्रत्य०)] निकट पहुँचना। नज़दीक पहुँचना। पास पहुँचना। उ०—(क) जोर करि ज्यौं ज्यौं मृग बन नजिकात त्यौं त्यौं मोह तें महीपति को मन नजिकात है।—रसकुसुमाकर। (ख) सकल सुयोग सहित सो सुदिवस आइ जबहिं नजिकाना।—रघुराज। (ग) वन पुर पट्टन गरजत नजिकाने निधि तीर।—हनुमान। (घ) मरण अवस्था जब नजिकाई। ईश सखा के मन यह आई।—सूर।

नजीक†*–क्रि० वि० [फा० नजदीक] निकट। पास। समीप। उ०—(क) है नजीक वहाँ जहाँ छिति में विभूषित हैं खरे।—गुमान। (ख) कौन की सीख धरी मन में चलि कै बलि काहे नजीक न जाति है।—प्रताप।

नज़ीर–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) उदाहरण। दृष्टांत। मिसाल। (२) किसी मुकदमे का वह फैसला जो उसी प्रकार के किसी दूसरे मुकदमे में वैसे ही फ़ैसले के लिये उपस्थित किया जाय।

क्रि० प्र०—दिखलाना।—देना।

नजूम–संज्ञा पुं० [अ०] ज्योतिष विद्या।

नजूमी–संज्ञा पुं० [अ०] ज्योतिषी।

नज़ूल–संज्ञा पुं० [अ०] (१) सरकारी ज़मीन। शहर की वह जमीन जो सरकार के अधिकार में हो। (२) दे० "नज़ला"।

नट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दृश्य-काव्य का अभिनय करनेवाला

नतांश—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका केंद्र भूकेंद्र पर होता है और जो विषुवत् रेखा पर लंब होता है। यह वृत्त ग्रहों आदि की स्थिति निश्चित करने में काम आता है।

नताउल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट पर्वत पर बहुत होता है। इसकी लकड़ी नरम होती है जिससे मेज़ कुरसी आदि बनती है। इसके रेशे मजबूत होते हैं जिनसे रस्से बनाते हैं। इसके पेड़ से एक प्रकार की जहरीली राल निकलती है जिसे तीरों में लगा कर उन्हें जहरीला बनाते हैं। इसे असूंद भी कहते हैं।

नति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुकाव। उतार। (२) नमस्कार। प्रणाम। (३) विनय, विनती। (४) नम्रता। खाकसारी। (५) ज्योतिष में एक प्रकार की गणना।

नतिनी—† संज्ञा स्त्री० [हिं० नाती का स्त्री० रूप] लड़की की लड़की। नातिन।

नतीजा—संज्ञा पुं० [फा०] परिणाम। फल। उ०—तुम्हें देखि पावै, सुख पावै बहु भाँति, ताहि दीजै नेकु निरखि, नतीजा नेह नाधे को।—कालिदास।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—पाना।—मिलना।

नतु—क्रि० वि० [हिं० न+तो] नहीं तो। अन्यथा। उ०—कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद।—केशव।

नतैत†—संज्ञा पुं० [हिं० नाता+ऐत (प्रत्य०)] संबंधी। रिश्तेदार। नातेदार। उ०—नाते हाते लिखि कै ननैतन ते आय गुरु लोगन देखाय कै करम केते दर के।—रघुनाथ।

नत्थी†—संज्ञा स्त्री० दे० "नथ"।

नत्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ (आभूषण) या नाथना] (१) कागज या कपड़े आदि के कई टुकड़ों को एक साथ मिला कर और आर पार छेद करके सब को डोरे या आलपीन आदि से एक ही में बाँधना या फँसाना। (२) इस प्रकार एक ही में नाथे हुए कई कागज आदि जो प्रायः एक ही विषय से संबंध रखते हैं। मिस्ल।

नत्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पक्षी।

नथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाथना=नाथ का आला भग] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं। यह बिलकुल वृत्ताकार बाली की तरह का होता है और सोने आदि का तार खींच कर बनाया जाता है। इस में प्रायः गूँज के साथ चंदक, बुलाक या मोतियों की जोड़ी पहनाई रहती है। छोटी नथ को बेसर कहते हैं। हिंदुओं में नथ सौभाग्य का चिह्न समझी जाती है। उ०—(क) सहजै नथ नाक ते खोलि धरी कापो कौन धौं फंद या सेसरि को।—कमलापति। (ख) इहि द्वै ही मोती सुगथ तू नथ गरब निसाँक। जिहिं पहिरे जग दग ग्रसति हँसति लसत सी नाँक।—बिहारी।

नथना—संज्ञा पुं० [सं० नस्त] (१) नाक का अगला भाग। नाक का वह चमड़ा जो छेदों के परदे का काम देता है।

मुहा०—नथना फुलाना=क्रोध करना। गुस्सा दिखलाना। नथना फूलना=क्रोध आना।

(२) नाक का छेद।

क्रि० अ० [हिं० नाथना का अ० रूप] (१) किसी के साथ नत्थी होना। नाथा जाना। एक सूत्र में बँधना। (२) छिदना। छेदा जाना। जैसे, मेरे पैर काँटों से नथ गए हैं।

नथनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ] (१) नाक में पहनने की छोटी नथ। (२) बुलाक। (३) तलवार की मूठ पर लगा हुआ छल्ला। (४) नथ के आकार की कोई चीज़।

संज्ञा स्त्री० [हिं० नथना=नाथा जाना] बैल की नाक में नाथी हुई रस्सी। नाथ।

नथिया†—संज्ञा स्त्री० दे० "नथ"।

नथुना†—संज्ञा पुं० दे० "नथना"।

नथुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ] नाक में पहनने की नथ। उ०—बैनन मैन को बैन धजै यह नासिका रासथली नथुनी की।—गुमान।

मुहा०—नथुनी उतारना=कुमारी का कौमार नष्ट करना। कुमारी के साथ प्रथम समागम करना। चीरा उतारना। सिर ढँकाई करना। (इस मुहावरे का प्रयोग केवल वेश्याओं की लड़कियों के संबंध में होता है।)

नद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ी नदी अथवा ऐसी नदी जिसका नाम पुंल्लिंग वाची हो, जैसे सोन, दामोदर, ब्रह्मपुत्र। उ०—सिक्यो महानद सोन सुहावन।—तुलसी। (२) एक ऋषि का नाम।

नदन—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द करना। आवाज़ करना।

नदनदीपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र।

नदना*†—क्रि० अ० [सं० नदन=शब्द करना] (१) पशुओं का शब्द करना। रँभाना। बँबाना। उ०—महिषी सुरभि पूर पय धारणि वृषभ नदत सानंदा।—रघुराज। (२) बजना। शब्द करना। उ०—(क) एक ओर जलद के भावे घहारे मंजु एक ओर नाकन के नदत नगारे हैं।—रघुराज। (ख) नदत दुंदुभि डंका बदत मारू हंका, चलत लागत धंका कहत आगे।—सूदन।

नदनु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) सिंह। शेर। (३) शब्द। आवाज़।

नदम—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास।

नदर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नद या नदी के आस पास का प्रदेश। (२) जिसे किसी प्रकार का भय न हो। निडर।

नदराज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नटमल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग।

नटमल्लार–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह नट और मल्लार के योग से बनता है।

नटवना*–क्रि० स० [सं० नट] नाट्य करना। अभिनय करना। स्वाँग भरना। उ०—माधोजू सुनिये व्रज व्यौहार।........ एक ग्वालि नटवति बहु लीला एक कर्म गुन गावति।—सूर।

नटवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रधान नट। नाट्य कला में बहुत प्रवीण मनुष्य। (२) श्रीकृष्ण जो नाट्य कला और नाटक शास्त्र के आचार्य थे।

वि० बहुत चतुर। चालाक।

नटवा*–संज्ञा पुं० [हिं० नाटा] [स्त्री० नटिया] छोटे कद का या कम उमर का बैल।

संज्ञा पुं० [सं० नट] नट।

नटवा सरसों–संज्ञा पुं० [हिं० नाटा = छोटा] साधारण सरसों। विशेष—दे० "सरसों"।

नटसंज्ञक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोदंती हरताल। (२) नट।

नटसार, नटसारा–*† संज्ञा स्त्री० दे० "नाट्यशाला"।

नटसाल–संज्ञा स्त्री० [?] (१) काँटे का वह भाग जो निकाल लिए जाने पर भी टूट कर शरीर के भीतर रह जाता है। उ०—लगत जो हिये दुसार करि तऊ रहत नटसाल।—बिहारी। (२) बाण की गाँसी जो शरीर के भीतर रह जाय। (३) फाँस जो बहुत छोटी होने के कारण नहीं निकाली जा सकती। उ०—सालति है नटसाल सी क्यों हूँ निकसति नाहिं।—बिहारी। (४) कसक। पीड़ा। ऐसी मानसिक व्यथा जो सदा तो न रहे पर समय समय पर किसी बात या मनुष्य के स्मरण से होती हो। उ०—उठै सदा नटसाल लौं सौतिन के उर सालि।—बिहारी।

नटांतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा। शरम। (लज्जा होने से नाट्य नहीं हो सकता, इसलिये इसे "नटांतिका" कहते हैं।)

नटाई–संज्ञा स्त्री० [देश०] जोलाहों का वह औजार जिससे किनारे का ताना ताना जाता है।

नटिन–संज्ञा स्त्री० [सं० या हिं० नट] नट की स्त्री। (२) नट जाति की स्त्री।

नटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नट जाति की स्त्री। (२) नाचनेवाली स्त्री। नर्त्तकी। (३) अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री। (४) अभिनय करनेवाले नट की स्त्री। (५) वेश्या। (६) नखी नामक गंध द्रव्य।

नटुआ, नटुवा–† संज्ञा पुं० (१) दे० "नट"। (२) "नटई"।

नटेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नट्ट–संज्ञा पुं० दे० "नट"।

नट्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक प्रकार की रागिनी जो प्रायः नट के समान होती है।

नठना–*† क्रि० अ० [सं० नष्ट] नष्ट होना।

क्रि० स० नष्ट करना। उ०—नठैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे।—केशव।

नड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरसल। नरकट। (२) एक गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम। (३) एक जाति जिसका पेशा शीशे की चूड़ियाँ बनाना है।

नड़मीन–संज्ञा पुं० [सं०] झिंगा मछली।

नड़िनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी जिसमें सरपत अधिक हो।

नड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० नली ?] एक प्रकार की आतिशबाजी।

नड़्वल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरपत की चटाई। (२) वह प्रदेश जहाँ पर सरपत बहुत अधिक हो। (३) एक वैदिक देवता का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार वैराज मनु की स्त्री का नाम।

नढ़ना†–क्रि० स० [हिं० नाथना] (१) गूँथना। पिरोना। (२) बाँधना। कसना। उ०—छोटउ जन बैकुंठ जात को लागे परिकर नढ़न।—देव।

नतइत–†संज्ञा पुं० दे० "नतैत"।

नतकुर–†संज्ञा पुं० [हिं० नाती] बेटी का बेटा। बेटी की संतान। नवासा। नाती।

नतगुल्ला–† संज्ञा पुं० [देश०] घोंघा।

नतद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालवृक्ष जिसे लताशाल कहते हैं।

नतपाल–संज्ञा पुं० [सं० नत + पालक] प्रणाम करनेवाले का पालन करनेवाला। प्रणतपाल। शरणपाल। उ०—कान्ह कृपाल बड़े नतपाल गये खल खेचर खीस खलाई।—तुलसी।

नतम–वि० [सं० नत = टेढ़ा] बाँका। (डिं०)

नतमी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो आसाम प्रदेश में बहुत होता है। इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और लाल रंग की होती है, और उससे मेज, कुरसियाँ और नावें आदि बनाई जाती हैं।

नतर–*† क्रि० वि० दे० "नतरु"।

नतरक*–क्रि० वि० [हिं० न + तो] नहीं तो। उ०—कहत सबै कवि कमल से मो मत नैन पखान। नतरक कत इन बिय लगत उपजत बिरह कृशान।—बिहारी।

नतरु–*† क्रि० वि० [हिं० न + तो] नहीं तो। अन्यथा। उ०—(क) नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू।—तुलसी। (ख) नतरु लखन सिय राम वियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा।—तुलसी।

नतांगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। औरत।

चावल कड़ुवा होता है। बोरो। वैद्यक में यह कड़ुवा, कसैला, भारी, रूखा, वात और कफ उत्पन्न करनेवाला और विष दोष नाशक माना गया है।

नदीपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) वरुण।

नदीभल्लातक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भिलावाँ जो जल के किनारे होता है, पत्ते गूमा के पत्तों के समान होते हैं, और फल लाल रंग का होता है। वैद्यक में यह कड़ुवा, कसैला, मधुर, ठंढा, माही, वातकारक और कफपित्त, रक्तपित्त तथा व्रणनाशक माना जाता है। नदी भिलावाँ।

नदीभव–संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

वि० जो नदी में उत्पन्न हुआ हो।

नदीभायक–संज्ञा पुं० [सं०] मानकंद या मानकच्चू नामक कंद।

नदीमातृक–संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जहाँ की खेती-बारी का सारा काम केवल नदी के जल से होता हो और जहाँ वर्षा के जल की कोई आवश्यकता न हो, जैसे, मिस्र देश।

नदीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ समुद्र में नदी गिरती हो। नदी का मुहाना।

नदीवट–संज्ञा पुं० [सं०] वट या बड़ का पेड़।

नदीश–संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नदीसर्ज–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष।

नदेया–संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमि जंबू। छोटी जामुन।

नदोला†–संज्ञा पुं० [हिं० नाँद+ओला (प्रत्य०)] मिट्टी की छोटी नाँद।

नद्दना*†–क्रि० अ० दे० "नदना"।

नद्दो*†–संज्ञा स्त्री० दे० "नदी"।

नद्ध–वि० [सं०] बँधा हुआ। बद्ध। जड़ा हुआ। नधा हुआ।

नद्ध्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े की डोरी। ताँत।

नधाम्र–संज्ञा पुं० [सं०] समष्ठिला। केकुआ का पौधा।

नधावर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में यात्रा के लिये एक शुभ योग जो उस समय होता है जब कि बुध अपनी राशि पर हो और बृहस्पति या शुक्र लग्न में हों अथवा मंगल अवस्थित हो और शनि कुंभ राशि में हो। कहते हैं कि इस योग में यात्रा करने से सब प्रकार के शत्रुओं का बहुत सहज में नाश हो जाता है। इसे नंद्यावर्त्तक भी कहते हैं।

नद्युत्सृष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो नदी के हट जाने से निकल आया हो। चर। गंगबरार।

नधना–क्रि० अ० [सं० नद्ध+ना (प्रत्य०)] (१) रस्सी या तस्मे के द्वारा बैल घोड़े आदि का उस वस्तु के साथ जुड़ना या बँधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना हो। जुतना। जैसे, बैल का गाड़ी या हल में नधना।

मुहा०—काम में नधना = काम में लगना। जैसे, तुम तो दिन रात काम में नधे रहते हो।

(२) जुड़ना। संबद्ध होना। (३) किसी कार्य का अनुष्ठित होना। काम का ठनना। जैसे, जब यह काम नध गया है तब इसे पूरा ही कर डालना चाहिए।

नधाव–संज्ञा पुं० [हिं० नधना] सिंचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाने में ऊपर उलीचने के लिये जो कई गड्ढे बनाने पड़ते हैं उनमें सबसे नीचे का गड्ढा।

ननंद–संज्ञा स्त्री० [सं०] ननद। पति की बहन।

ननका‡–संज्ञा पुं० दे० "नन्हा"।

ननकारना*†–क्रि० अ० [हिं० न+करना] इनकार करना। अस्वीकार करना। मंजूर न करना।

ननंद, ननद–संज्ञा स्त्री० [सं० ननंद] पति की बहिन।

ननदी‡–संज्ञा स्त्री० दे० "ननद"।

ननदोई–संज्ञा पुं० [हिं० ननद+ओई (प्रत्य०)] ननद का पति। पति का बहनोई।

ननसार–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाना+शाला] ननिहाल। नाना का घर। उ०—रामचंद्र लछमण सहित घर राखे दशरत्थ। बिदा कियो ननसार को सँग शत्रुघ्न भरत्थ।—केशव।

नना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता। (२) कन्या। लड़की। (३) वाक्य।

ननिअउरा, ननिआउर‡–संज्ञा पुं० दे० "ननिहाल"।

ननिया ससुर–संज्ञा पुं० [हिं० नाना+इया (प्रत्य०)+हिं० ससुर] स्त्री या पति का नाना।

ननिया सास–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाना+इया (प्रत्य०)+हिं० सास] स्त्री या पति की नानी।

ननिहारी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईंट।

ननिहाल–संज्ञा पुं० [हिं० नाना+आलय] नाना का घर। ननसार।

ननु–अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका व्यवहार कुछ पूछने, संदेह प्रकट करने अथवा वाक्य के आरंभ में किया जाता है। (क्व०)

ननोई–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली धान जो बिना जोते बोए वर्षा में जलाशयों में स्वयं पैदा होता है। पसही। तिन्नी।

नन्ना†–संज्ञा पुं० दे० "नाना"।

वि० दे० "नन्हा"।

नन्यौरा†–संज्ञा पुं० दे० "ननिहाल"।

नन्हा–वि० [सं० न्यंच या न्यून] [स्त्री० नन्ही] छोटा।

मुहा०—नन्हा सा = बहुत छोटा। जैसे, नन्हा सा बच्चा, नन्हा सा हाथ।

नन्हाई*–संज्ञा स्त्री० [हिं० नन्हा+ई (प्रत्य०)] (१) छोटा-पन। छोटाई। (२) अप्रतिष्ठा। बदनामी। हेठी। उ०—(क) वृद्ध वयस सुत भयो कन्हाई। नंदमहर की करै

नदान*†–वि० [फा० नादान] (१) वेसमझ। बुद्धिहीन। उ०—दान दे रे जिय को नदान, निर्दई कान्ह, बसी सब रैन मोहिं अब घर जान दे।—देव। (२) छोटी उम्र का। इतनी छोटी उम्र का जो संसार का व्यवहार बिलकुल न समझ सकता हो। उ०—जो जसुमति तें जाय पुकारैं। लखि नदान तहँ हम ही हारैं।—रघुनाथ।

नदारत†–वि० दे० "नदारद"।

नदारद–वि० [फा०] गायब। अप्रस्तुत। जो मौजूद न हो। लुप्त। जैसे, जब बक्स खोला तब उसमें रुपया पैसा सब नदारद था।

नदि–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुति।

नदिया–संज्ञा पुं० [सं० नवद्वीप] बंगाल प्रांत का एक प्रसिद्ध नगर जो न्यायशास्त्र का विद्यापीठ माना जाता है।

*† संज्ञा स्त्री० दे० "नदी"।

नदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल का वह प्राकृतिक और भारी प्रवाह जो किसी बड़े पर्वत या जलाशय आदि से निकल कर किसी निश्चित मार्ग से होता हुआ प्रायः बारहों महीने बहता रहता हो। दरिया।

विशेष—(क) पहाड़ों पर बरफ के गलने या वर्षा होने के कारण जो पानी एकत्र होता है वह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार नीचे की ओर ढलता और मैदानों में से होता हुआ प्रायः समुद्र तक पहुँचता है। कभी यह पानी अपनी स्वतंत्र धारा में समुद्र तक पहुँचता है और कभी समुद्र तक जानेवाली किसी दूसरी बड़ी धारा में मिल जाता है। जो धारा सीधी समुद्र तक पहुँचती है वह भौगोलिक परिभाषा में मुख्य नदी कहलाती है और जो दूसरी धारा में मिल जाती है वह सहायक नदी कहलाती है। ऐसा भी होता है कि नदी या तो जाकर किसी झील में मिल जाती है और या किसी रेतीले मैदान आदि में लुप्त हो जाती है। जिस स्थान से नदी का आरंभ होता है उसे उस का उद्गम कहते हैं, जिस स्थान पर वह किसी दूसरी नदी से मिलती है उसे संगम कहते हैं और जिस स्थान पर वह समुद्र से मिलती है उसे मुहाना कहते हैं। नदी जिस मार्ग से बहती है वह मार्ग गति कहलाता है और उसके बहाव के कारण ज़मीन में जो गड्ढा बन जाता है वह गर्भ कहलाता है। साधारणतः नदियाँ बारहों महीने बहती रहती हैं, पर छोटी नदियाँ गरमी के दिनों में बिलकुल सूख जाती हैं। वर्षा में प्रायः सभी नदियों का जल बहुत अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उन दिनों आस पास के प्रांत का वर्षा का जल भी आकर उनमें मिल जाता है। इससे उसका पानी बहुत अधिक मटमैला भी होता है। (ख) "नदी" वाचक शब्द में ईश, नाथ, प, पति, वर इत्यादि 'पति' वाची शब्द या प्रत्यय लगाने से 'समुद्र' वाची शब्द हो जाता है। जैसे, नदीश, सरित्पति, आपगानाथ, तटिनीवर इत्यादि।

पर्या०—सरि। सरिता। आपगा। तरंगिणी। शैवलिनी। तटिनी। ह्रदिनी। धुनी। स्रोतस्वती। स्रवंती। निम्नगा। निर्झरिणी। सरस्वती। समुद्रगा। कूलवती। कूलंकषा। कल्लोलिनी। स्रोतस्विनी। ऋषिकुल्या। स्रोतोवहा।

यौ०—नदीश = समुद्र।

मुहा०—नदी नाव संयोग = ऐसा संयोग जो बार बार न हो, कभी एक बार इत्तिफ़ाक़ से हो जाय।

(२) किसी तरल पदार्थ का बड़ा प्रवाह। जैसे, रक्त की नदी बह निकली।

नदीकदंब–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी गोरखमुंडी।

नदीकांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) समुद्रफल। (३) सिंधुवार नामक वृक्ष।

नदीकांता–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जामुन का पेड़। (२) काकजंघा।

नदीकूलप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

नदीकूर्कंठ–संज्ञा पुं० [सं०] नैपाली बौद्धों का एक तीर्थ। कहते हैं कि एक विशिष्ट योग में यहाँ स्नान करने से ऐश्वर्य की वृद्धि और शत्रुओं का नाश होता है।

नदीगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] नदी के दोनों किनारों के बीच का स्थान। वह गड्ढा जिसमें से होकर नदी का पानी बहता है।

नदीगूलर–संज्ञा पुं० [?] लिसोड़ा।

नदीज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला सुरमा। (२) सेंधा नमक। (३) अर्जुन वृक्ष। (४) समुद्रफल। (५) महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम जो गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

वि० जो नदी से उत्पन्न हुआ हो।

नदीजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निमंथ वृक्ष। अरणी का पेड़।

नदीजामुन–संज्ञा स्त्री० [सं० नदी + हिं० जामुन] छोटा जामुन।

नदीतर स्थान–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से नदी पार की जाय। घाट।

नदीदत्त–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम।

नदीदोह–संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो नदी पार करने के बदले में दिया जाय। नदी पार होने का महसूल।

नदीधर–संज्ञा पुं० [सं०] गंगा को मस्तक पर धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

नदीन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) वरुण देवता। (३) *वरुण या बरना नामक जंगली पेड़ जो पलाश की तरह का होता है।*

नदीनिष्पाव–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसका

मुहा०—नब्ज़ चलना=नाड़ी में गति होना। नब्ज़ न रहना=नाड़ी की गति का अंत हो जाना। नाड़ी में गति न रह जाना। प्राण न रहना। नब्ज़ छूटना=दे० "नब्ज़ न रहना"।

नब्बे-वि० [सं० नवति] जो गिनती में पचास और चालीस हो। सौ से दस कम।

संज्ञा पुं० [सं० नवति] चालीस और पचास की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९०।

नभःकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

नभःक्रांती-संज्ञा पुं० [सं० नभःक्रांतिन्] सिंह।

नभःपांथ-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

नभःप्रभेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम जो विरूप के वंशज थे। ऋग्वेद में इनके कई मंत्र मिलते हैं।

नभःप्राण-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

नभःसद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) आकाश में विचरनेवाले पक्षी आदि।

नभःसरित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

नभःसुत-संज्ञा पुं० [सं०] पवन। हवा।

नभ-संज्ञा पुं० [सं० नभस्] (१) पंच तत्त्व में से एक। आकाश। आसमान।

पर्य्या०—आकाश। गगन। व्योम।

(२) शून्यस्थान। आकाश। (३) शून्य। सुन्ना। सिफर। (४) श्रावण मास। सावन का महीना। (५) भादों का महीना। उ०—नभसित हरित करो नरेश।—रघुनाथ। (६) आश्रय। आधार। (७) पास। निकट। नज़दीक। उ०—नभ आश्रय नभ भाद्रपद नभ श्रावण को नाम। नभ आकाश नभ निकट ही घट घट रमा निवास।—नंददास। (८) राजा नल के एक पुत्र का नाम। (९) हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के वंश के एक राजा का नाम। (१०) हरिवंश के अनुसार चाक्षुप मुनि के एक पुत्र का नाम। (११) चाक्षुप मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम। (१२) शिव। महादेव। (१३) अभ्रक। (१४) जल। (१५) जन्मकुंडली में लग्न स्थान से दसवाँ स्थान। (१६) मेघ। बादल। (१७) वर्षा। (१८) मृणाल सूत्र। (१९) विसतंतु।

वि० [सं०] हिंसक।

नभग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। (२) हवा। (३) बादल। (४) भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

वि० [सं०] (१) आकाशगामी। आकाश में विचरनेवाला। (२) भाग्यहीन। अभागा।

नभगनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

नभगामी-संज्ञा पुं० [सं० नभोगामिन्] (१) चंद्रमा। (हिं०)। (२) पक्षी (३) देवता। (४) सूर्य्य। (५) तारा।

नभगेश-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

नभचर-संज्ञा पुं० दे० "नभश्चर"।

नभधुज-संज्ञा पुं० [सं० नभध्वज] मेघ। बादल।

नभध्वज-संज्ञा पुं० दे० "नभोध्वज"।

नभनीरप-संज्ञा पुं० [सं० नभोनीरप] चातक। पपीहा।

नभश्चक्षु-संज्ञा पुं० [सं० नभश्चक्षुस्] सूर्य्य।

नभश्चमस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) इंद्रजाल।

नभश्चर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। (२) बादल। (३) हवा। (४) देवता, गंधर्व और ग्रह आदि।

वि० आकाश में चलनेवाला।

नभसंगम-संज्ञा पुं० [सं०] चिड़िया। पक्षी।

नभस-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार दसवें मन्वंतर के महर्षियों में से एक का नाम।

नभस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) शिव।

नभस्थित-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

वि० [सं०] जो आकाश में हो। आकाश में ठहरा हुआ।

नभस्मय-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

नभस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भादों का महीना। (२) हरिवंश के अनुसार स्वारोचिष मनु के एक पुत्र का नाम।

नभस्वान्-संज्ञा पुं० [सं० नभस्वत्] वायु। हवा।

नभाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अँधेरा। अंधकार। (२) राहु। (३) एक ऋषि का नाम।

नभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिया। चक्र।

नभोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश में चलनेवाले, पक्षी, देवता, ग्रह आदि। (२) जन्मकुंडली में लग्नस्थान से दसवाँ स्थान। (३) दसवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम।

नभोगति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो आकाश में चलता हो। जैसे, पक्षी, देवता, ग्रह आदि।

नभोद-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक विश्वदेव का नाम।

नभोदुह-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

नभोद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] बादल।

नभोध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] बादल।

नभोनदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

नभोमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

नभोयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नभोरूप-वि० [सं०] नीले रंग का। जिसका रंग नीला हो।

नभोरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] कुहरा। कुहासा।

नभोलय-संज्ञा पुं० [सं०] धूआँ।

नन्हाई।—सूर। (ख) ब्रज परगन सरदार महर तू तिनकी करत नन्हाई।—सूर।

नन्हिया†–संज्ञा पुं० [हिं० नन्हा] (१) एक प्रकार का धान। (२) इस धान का चावल।

नन्हैया*†–वि० दे० "नन्हा"। उ०—चुटकी देहि नचावै सुत जानि नन्हैया।—सूर।

नपत†–संज्ञा स्त्री० दे० "नपाई"।

नपता–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसके डैनों पर काली या लाल चित्तियाँ होती हैं।

नपरका–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और पेट लाल, और पैर तथा चोंच पीली होती है।

नपराजित–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नपाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाप+आई (प्रत्य०)] (१) नापने का काम। (२) नापने का भाव। (३) नापने की मजदूरी।

नपाक–*†वि० [फ़ा० नापाक] अपवित्र। अशुद्ध।

नपात–संज्ञा पुं० [सं०] देवयान पथ।

नपुंसक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार वह पुरुष जिसमें कामेच्छा बिलकुल न हो अथवा बहुत ही कम हो और किसी विशेष उपाय से जाग्रत हो। नपुंसक पाँच प्रकार के माने गए हैं। आसेव्य, सुगंधी, कुंभीक, ईर्षक और षंड। (२) वह जो न पुरुष हो और न स्त्री। षंड। क्लीव। हिजड़ा। नामर्द।

विशेष—मनुष्यों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो न तो पूरे पुरुष कहे जा सकते हैं और न स्त्री। उनमें मूत्र की कोई इंद्रिय स्पष्ट नहीं होती और न मूछ-दाढ़ी या पुरुषत्व ही होता है। वैद्यक के अनुसार जब कि पिता का वीर्य्य और माता का रज दोनों समान होते हैं तब संतान नपुंसक होती है।

(३) कायर। डरपोक। (क्व०)

नपुंसकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नपुंसक होने का भाव। हिजड़ापन। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का वीर्य्य बिलकुल नष्ट हो जाता है और वह स्त्री-संभोग के योग्य नहीं रह जाता। नामर्दी।

नपुंसकत्व–संज्ञा पुं० [सं०] नामर्दी। नपुंसकता।

नपुंसक मंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह मंत्र जिस के अंत में 'नमः' हो।

नपुंसक वेद–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का मोहनीय कर्म्म जिसके उदय से स्त्री के साथ भी संभोग करने की इच्छा होती है और बालक या पुरुष के साथ भी।

नपुआ†–संज्ञा पुं० [हिं० नाप+उआ (प्रत्य०)] नापने का पात्र। वह बरतन जिसमें रखकर कोई चीज नापी जाय। मान।

नपुत्री*†–वि० दे० "निपुत्री"।

नप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० नप्तृ] [स्त्री० नप्त्री] लड़की या लड़के की संतान। नाती या पोता।

नप्तृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस हलका ठंढा, मीठा, कसैला और दोषनाशक माना जाता है।

नफर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दास। सेवक। जैसे, नौकर के आगे चाकर, चाकर के आगे नफर। उ०—कबिरा भूलि बिगारिया करि करि मैला चित्त। साहब गरुआ चाहिये नफर बिगारो नित्त।—कबीर। (२) व्यक्ति। जैसे, दस नफर मजदूर।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार केवल बहुत छोटा काम करनेवालों की संख्या आदि प्रकट करने के लिये होता है।

नफरत–संज्ञा स्त्री० [अ०] घिन। घृणा।

नफरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक मजदूर की एक दिन की मजदूरी। (२) एक मजदूर का एक दिन का काम। (३) मजदूरी का दिन। जैसे, दो नफरी में वह चौकी तैयार हो जायगी।

नफसानफसी–संज्ञा स्त्री० [अ० नफ़्स] (१) वह विवाद या झगड़ा जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का ध्यान रखकर किया जाय। खींचतान। (२) चलाचली। वैमनस्य। लड़ाई।

नफ़ा–संज्ञा पुं० [अ०] लाभ। फायदा। उ०—(क) अजा मोल लै नीचन देई। चर्म नफा पर अपना लेई।—रघुनाथ। (ख) धनहित श्रम किहिस अपारा। होय नफा नहिं घटा निहारा।—रघुनाथ।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।

नफासत–संज्ञा स्त्री० [अ०] नफीस होने का भाव। उम्दापन।

नफ़ीरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तुरही। शहनाई।

नफ़ीस–वि० [अ०] (१) उत्तम। उमदा। बढ़िया। (२) साफ़। स्वच्छ। (३) जिसकी बनावट बहुत अच्छी हो। सुंदर।

नबी–संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर का दूत। पैगंबर। रसूल।

नबेड़ना–क्रि० स० [सं० निवारण, हिं० निपटाना] (१) निपटाना। तै करना। (झगड़ा आदि) समाप्त करना। जैसे, तुम्हें दूसरे की क्या पड़ी है, तुम अपनी नबेड़ो। (२) अपने मतलब की चीज ले लेना और बाकी छोड़ देना। चुनना। (क्व०)। दे० 'निबेरना"।

नबेड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० नबेड़ना] फैसला। न्याय। निपटारा।

नबेरना†–क्रि० स० दे० "नबेड़ना"।

नबेरा†–संज्ञा पुं० दे० "नबेड़ा"।

नब्दीगर†–संज्ञा पुं० [फ़ा० नमदगर] चारजामा बनानेवाला आदमी।

नब्ज़–संज्ञा स्त्री० [अ०] हाथ की वह रक्तवहा नाली जिसकी चाल से रोग की पहचान की जाती है। नाड़ी।

क्रि० प्र०—देखना।—दिखाना।

नमत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रभु । स्वामी । (२) नट । (३) धूआँ
वि० नम्र । जो झुके ।

नमदा– संज्ञा पुं० [फा०] जमाया हुआ ऊनी कंबल या कपड़ा ।
मुहा०—दुम में नमदा बाँधना = दे० "दुम" के मुहा० ।

नमन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नमनीय, नमित] (१) प्रणाम । नमस्कार । (२) झुकाव ।

नमना–*† क्रि० अ० [सं० नमन] (१) झुकना । (२) प्रणाम करना । नमस्कार करना ।

नमनीय–वि० [सं०] (१) नमस्कार करने योग्य । आदरणीय । पूजनीय । माननीय । जिसे नमस्कार किया जाय । उ०—किन्नरी नरी सुनारि पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरीन हू निहारि नमनीय है ।—केशव । (२) जो झुक सके या झुकाया जा सके ।

नमस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) झुकना । नमन । (२) प्रणाम । नमस्कार । (३) त्याग । छोड़ देना । (४) यज्ञ । (५) अन्न । (६) वज्र । (७) स्तोत्र ।

नमसित–वि० [सं०] जिसे नमस्कार किया गया हो । पूजित ।

नमस्कार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) झुककर अभिवादन करना । प्रणाम । (२) एक प्रकार का विष ।

नमस्कारी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लज्जावंती । लजालू । (२) वराहक्रांता । (३) खदिरी या खदरिका नामक क्षुप ।

नमस्कार्य–वि० [सं०] (१) जो नमस्कार करने योग्य हो । पूज्य । वंदनीय । (२) जिसे नमस्कार किया जाय ।

नमस्क्रिया– संज्ञा स्त्री० दे० "नमस्कार" ।

नमस्ते– [सं०] एक वाक्य जिसका अर्थ है—आपको नमस्कार है ।

नमस्य–संज्ञा पुं० [सं०] नमस्कार करने के योग्य । पूज्य । आदरणीय ।

नमाज़–संज्ञा स्त्री० [फा० मि० सं० नमन] मुसलमानों की ईश्वर-प्रार्थना जो नित्य पाँच बार होती है ।
विशेष—दैनिक पाँच बार की नमाज़ के अतिरिक्त सूर्य्य या चंद्रग्रहण के समय, अनावृष्टि के समय, ईद के दिन, किसी के मरने पर तथा इसी प्रकार के और अवसरों पर भी नमाज़ पढ़ी जाती है ।
क्रि० प्र०—अदा करना ।—गुजारना ।—पढ़ना ।
मुहा०—नमाज़ क़ज़ा होना = नियत समय पर नमाज़ न पढ़ा जा सकना ।

नमाज़गाह–संज्ञा स्त्री० [फा०] मसजिद में वह जगह जहाँ नमाज़ पढ़ी जाती है ।

नमाज़बंद–संज्ञा पुं० [फा०] कुश्ती का एक प्रकार का पेच ।

नमाज़ी–संज्ञा पुं० [फा०] (१) नमाज़ पढ़नेवाला । (२) वह वस्त्र जिसपर खड़े होकर नमाज़ पढ़ी जाती है ।

नमाना*†–क्रि० स० [सं० नमन] (१) झुकाना । (२) दबाकर अपने अधीन करना । पस्त करना । काबू में करना ।

नमित–वि० [सं०] झुका हुआ ।

नमिश–संज्ञा स्त्री० [फा० नमिश्क] एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ दूध का फेन जो जाड़े में खाया जाता है ।
विशेष—पहले दूध को उबाल लेते हैं तब उसमें चीनी या मिसरी, इलायची, केसर आदि मिलाकर रात भर उसे ओस में रखते और बहुत सबेरे उसे मथानी से मथते हैं जिससे फेन निकलता है ।

नमी–संज्ञा स्त्री० [फा०] गीलापन । आर्द्रता । तरी । जैसे, इस ज़मीन में बहुत नमी है ।

नमुचि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम । (२) एक दानव का नाम जो विप्रचित्ति नामक दानव का पुत्र था । यह पहले इंद्र का सखा था । इंद्र ने इससे प्रतिज्ञा की थी कि मैं न तो तुम्हें दिन में मारूँगा और न रात में, न सूखे अस्त्र से मारूँगा न गीले अस्त्र से । पर पीछे इसने उनका बल हरणकर लिया था । इंद्र ने सरस्वती और अश्विनीकुमारों से समुद्र की झाग के समान एक वज्रास्त्र लेकर उससे इसे मारा था । (३) पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो शुंभ और निशुंभ का छोटा भाई था । (४) कामदेव ।

नमुचिसूदन–संज्ञा पुं० [सं०] नमुचि को मारनेवाले इंद्र ।

नमूदार–वि० [फा०] जो उदित हुआ हो । प्रकट । दृग्गोचर ।

नमूना–संज्ञा पुं० [फा०] (१) किसी बड़े या अधिक पदार्थ में से निकाला हुआ वह छोटा या थोड़ा अंश जिसका उपयोग उस मूल पदार्थ के गुण और स्वरूप आदि का ज्ञान कराने के लिये होता है । बानगी । जैसे, कपड़े का नमूना, चावल का नमूना । (२) वह जिससे उसके सदृश दूसरी वस्तुओं के स्वरूप और गुण आदि का ज्ञान हो जाय । जैसे, नमूने का थान, नमूने की टोपी । (३) वह जिसके अनुकरण पर वैसी ही और वस्तुएँ बनाई जाँय । (४) ढाँचा । ठाठ । खाका ।

नमेरु, नमेरू–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्राक्ष का पेड़ । (२) एक प्रकार का पुन्नाग ।

नम्र–वि० [सं०] (१) विनीत । जिसमें नम्रता हो (२) झुका हुआ ।

नम्रक–संज्ञा पुं० [सं०] बेंत ।

नम्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्र होने का भाव ।

नय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीति । (२) नम्रता । (३) एक प्रकार का जूआ । (४) विष्णु । (५) जैन दर्शन में प्रमाणों द्वारा निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति जो

वि० [सं०] जो आकाश में लीन हो जाय।

नभोवट–संज्ञा पुं० [सं०] आकाशमंडल।

नभ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहिए के बीच का भाग। (२) धुरी। अक्ष। (३) वह तेल या चिकनाई जो पहिए में दी जाय।

नभ्राज–संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।

नम–वि० [फा०] [संज्ञा नमी] गीला। तर। भीगा हुआ। आर्द्र। संज्ञा पुं० [सं० नमस्] (१) नमस्कार। (२) त्याग। (३) अन्न। (४) वज्र। (५) यज्ञ। (६) स्तोत्र।

नमक—संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रसिद्ध क्षार पदार्थ जिसका व्यवहार भोज्य पदार्थों में एक प्रकार का स्वाद उत्पन्न करने के लिये थोड़े मान में होता है। लवण। नोन।

विशेष—नमक संसार के प्रायः सभी भागों में दो रूपों में पाया जाता है—एक तो जमीन में, चट्टानों या स्तरों के रूप में और दूसरा समुद्रों, झीलों और तालावों आदि के खारे जल में। भारत में पंजाब, कोहाट, तथा कांगड़े की मंडी नामक रियासत में नमक की खानें हैं जिनमें से बहुत प्राचीन काल से नमक निकाला जाता है। सिंध भी नमन के लिये प्रसिद्ध था इसी से वहाँ के नमक को सैंधव (सेंधा) कहते थे। पंजाब की खान का नमक भी सेंधा कहलाता है। यह प्रायः साफ और सफेद रंग का होता है और इसमें किसी प्रकार की गंध नहीं होती। इसके अतिरिक्त समुद्र या झीलों के खारे पानी आदि को सुखाकर भी कई प्रकार के नमक निकाले जाते हैं। इस प्रकार का नमक करकच कहलाता है। कहीं कहीं रेह या मिट्टी में से भी एक प्रकार का नमक निकाला जाता है जो खारी कहलाता है। एक और प्रकार का नमक होता है जो काला नमक कहलाता है। यह साधारण नमक को हड़, बहेड़े और सज्जी के साथ गलाकर बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त औषधि और रसायन आदि के काम के लिये और भी अनेक वनस्पतियों तथा दूसरे पदार्थों को जलाकर खार या नमक तैयार करते हैं। वैद्यक में सैंधव (सेंधा), शाकंभरी (साँभर) समुद्रलवण (करकच), विडलवण, सौवर्चल (काला नमक, सोंचर), काचलवण (नोनी मिट्टी से बनाया हुआ कचिया नमक) औद्भिद, औषर, रोमक और द्रोणी आदि कई प्रकार के लवण गिनाए गए हैं जिनमें से सेंधा नमक सबसे अच्छा माना गया है।

मुहा०—नमक अदा करना = अपने पालक या स्वामी के उपकार का बदला चुकाना। मालिक के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना। (किसी का) नमक खाना = (किसी के द्वारा) पालित होना। (किसी का) दिया खाना। जैसे, आपने पाँच बरस तक उनका नमक खाया है, आज अगर उन्होंने आपको दो बातें कह ही दीं तो क्या हो गया? नमक मिर्च मिलाना या लगाना = किसी बात को अधिक रोचक या प्रभावशाली बनाने के लिये उसमें अपनी ओर से भी कुछ बढ़ा देना। किसी बात को बढ़ा कर कहना। जैसे, उन्होंने यहाँ का सारा हाल तो कह ही दिया, साथ ही अपनी तरफ से भी कुछ नमक मिर्च लगा दिया। नमक फूट कर निकलना = नमकहरामी की सजा मिलना। कृतघ्नता का दंड मिलना। नमक से या नमक पानी से अदा होना = दे० "नमक अदा करना"। कटे पर नमक छिड़कना = किसी दुखी को और भी दुःख देना, पीड़ित को और भी पीड़ित करना। नमक का सहारा = थोड़ा सहारा। थोड़ी सहायता।

यौ०—नमकखवार। नमकहराम। नमकहरामी। नमकहलाल। नमकहलाली।

(२) कुछ विशेष प्रकार का सौंदर्य्य जो अधिक मनोहर या प्रिय हो। लावण्य। सलोनापन।

नमकख्वार–वि० [फा०] नमक खानेवाला। पालित होनेवाला। जिसका किसी दूसरे के द्वारा पालन पोषण या जीविका-निर्वाह हो।

नमकदान–संज्ञा पुं० [हिं० नमक + दान (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प० नमकदानी] पिसा हुआ नमक रखने का पात्र।

नमकसार–संज्ञा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ नमक निकलता या बनता हो।

नमकहराम—संज्ञा पुं० [फा० नमक + अ० हराम] वह जो किसी का दिया हुआ अन्न खाकर उसी का द्रोह करे। अपने अन्नदाता को ही हानि पहुँचानेवाला मनुष्य। कृतघ्न।

नमकहरामी–संज्ञा स्त्री० [फा० नमक + अ० हराम + ई (प्रत्य०)] नमकहरामपन। कृतघ्नता।

नमकहलाल–संज्ञा पुं० [फा० नमक + अ० हलाल] वह जो अपने स्वामी वा अन्नदाता का कार्य धर्मपूर्वक करे। सदा अपने मालिक की भलाई करनेवाला मनुष्य। स्वामिनिष्ठ। स्वामिभक्त।

नमकहलाली–संज्ञा स्त्री० [फा० नमक + अ० हलाल + ई (प्रत्य०)] नमक हलाल होने का भाव। स्वामिनिष्ठा। स्वामिभक्ति।

नमकीन–वि० [फा०] (१) जिसमें नमक का सा स्वाद हो। जैसे, चने का साग नमकीन होता है। (२) जिसमें नमक पड़ा हो। जैसे, नमकीन बुँदिया, नमकीन खुरमा। (३) जिसके चेहरे पर नमक हो। सुंदर। खूबसूरत। सलोना। संज्ञा पुं० वह पकवान आदि जिसमें नमक पड़ा हो। जैसे, समोसा, सेव, पापड़, दालमोठ आदि।

नमगीरा–संज्ञा पुं० [फा०] वह कपड़ा जिसे ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में तान देते हैं। (२) पाल या तिरपाल आदि जिसे धूप और वर्षा से रक्षित रखने के लिये किसी स्थान के ऊपर तानते हैं।

राक्षस के पुत्र का नाम। (११) सुद्युति के पुत्र का नाम। (१२) भवन्मन्य के पुत्र का नाम। (१३) दोहे का एक भेद जिसमें १५ गुरु और १८ लघु होते हैं। जैसे विश्वंभर नामै नहीं, महि विच में नाहिं। दुइ मँह झूठी कौन है, यह संशय जिय माहिं। (१४) छप्पय का एक भेद जिसमें १० गुरु और १३ लघु होते हैं।

वि० जो (प्राणी) पुरुष जाति का हो। मादा का उलटा।

संज्ञा पु० [हिं० नल] नल जिसमें से होकर पानी जाता है। उ०—नर की अरु नर नीर की एकै गति करि जोइ। जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होइ।—बिहारी।

संज्ञा पुं० दे० "नरकट"।

नरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) गेहूँ की बाल का डंठल। (२) किसी घास का डंठल जो अंदर से पोला हो। (३) एक प्रकार की घास जो प्रायः जलाशयों के पास होती है।

नरकंत*—संज्ञा पु० [सं० नरकांत] राजा। नृप।

नरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणों और धर्मशास्त्रों आदि के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा पाप का फल भोगने के लिये भेजी जाती है। वह स्थान जहाँ दुष्कर्म करनेवालों की आत्मा दंड देने के लिये रखी जाती है। दोज़ख़। जहन्नुम।

विशेष—अनेक पुराणों और धर्मशास्त्रों में नरक के संबंध में अनेक बातें मिलती हैं। परंतु इनसे अधिक प्राचीन ग्रंथों में नरक का उल्लेख नहीं है। जान पड़ता है कि वैदिक काल में लोगों में इस प्रकार की नरक की भावना नहीं थी। मनुस्मृति में नरकों की संख्या २१ बतलाई गई है जिनके नाम ये हैं—तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, नरक, महानरक, कालसूत्र, संजीवन, महावीचि, तपन, प्रतापन, संहात, काकोल, कुड्मल, प्रतिमूर्त्तिक, लोहशंकु, ऋजीष, शाल्मली, वैतरणी, असिपत्रवन और लोहदारक। इसी प्रकार भागवत में भी २१ नरकों का वर्णन है जिनके नाम इस प्रकार हैं—तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीची और अयःपान। इसके अतिरिक्त क्षारमर्दन, रक्षोगण भोजन, शूल-प्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्त्तन और सूचीमुख ये सात नरक और भी माने गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पुराणों में और भी अनेक नरककुंड माने गए हैं, जैसे—वसाकुंड, तप्तकुंड सर्पकुंड, चक्रकुंड। कहते हैं कि भिन्न भिन्न पाप करने के कारण मनुष्य की आत्मा को भिन्न भिन्न नरकों में सहस्रों वर्ष तक रहना पड़ता है जहाँ उन्हें बहुत अधिक पीड़ा दी जाती है। मुसलमानों और ईसाइयों में भी नरक की कल्पना है परंतु उनमें नरक के इस प्रकार के भेद नहीं हैं। उनके विश्वास के अनुसार नरक में सदा भीषण आग जलती रहती है। वे स्वर्ग को ऊपर और नरक को नीचे (पाताल में) मानते हैं।

मुहा०—नरक होना = नरक में भेजा जाना। नरक भोगने का दंड होना।

क्रि० प्र०—भोगना।

(२) बहुत ही गंदा स्थान। (३) वह स्थान जहाँ बहुत अधिक पीड़ा या कष्ट हो। (४) पुराणानुसार कलि के पौत्र का नाम जो कलि के पुत्र भय और कलि की पुत्री मृत्यु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जिसने अपनी बहन यातना के साथ विवाह किया था। (५) विप्रचित्ति दानव के एक पुत्र का नाम। (६) निकृत के गर्भ से उत्पन्न अनृत के एक पुत्र का नाम। (७) दे० "नरकासुर"।

नरकगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार वह कर्म जिसके करने से मनुष्य को नरक में जाना पड़े।

नरकगामी—वि० [सं०] नरक में जानेवाला।

नरकचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी जिस दिन घर का सारा कूड़ा कतवार निकाल कर फेंका जाता है।

नरकच्चूर—संज्ञा पु० दे० "कचूर"।

नरकट—संज्ञा पु० [सं० नल] बेंत की तरह का एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों की तरह पतली और लंबी होती हैं। इसके डंठल लंबे मजबूत और बीच से पोले होते हैं और कलमें तथा चटाइयाँ आदि बनाने के काम में आते हैं। इसके अतिरिक्त इसके डंठलों का उपयोग हुक्के की निगालियाँ, दौरियाँ और बैठने के लिये मोढ़े आदि बनाने और छतें पाटने में भी होता है। कहीं कहीं इसके रेशों से रस्से भी बनाए जाते हैं।

नरकभूमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरक लोक। (जैन)

नरकल—संज्ञा पु० दे० "नरकट"।

नरकस—संज्ञा पुं० दे० "नरकट"।

नरकस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नदी।

नरकांतक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

नरकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध असुर। कहते हैं कि जिस समय भगवान ने वाराह का अवतार लिया था उस समय उन्होंने पृथ्वी के साथ गमन किया था जिससे उसे गर्भ रह गया था। जब देवताओं को मालूम हुआ कि इस गर्भ में एक बड़ा उग्र और बली असुर है तब उन्होंने पृथ्वी का प्रसव रोक दिया। इस पर पृथ्वी ने भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने वर दिया कि त्रेता में जब रामचंद्र के हाथ से रावण का वध होगा तब तुम्हारे गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा और इस बीच में तुम्हें कोई कष्ट

सात प्रकार की होती है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु-सूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ।

*संज्ञा स्त्री० [सं० नद] नदी । उ०—इक भीजें चहले पड़े बूड़े बहे हजार । केते औगुन जग करत नय वय चढ़ती बार ।—बिहारी ।

नयऋति–संज्ञा पुं० दे० "नैऋ त" ।

नयकारी*–संज्ञा पुं० [सं० नृत्यकारी] (१) नर्त्तकों के दल का नायक । नाचनेवालों का मुखिया । उ०—कितनी बार हुआ मैं तेरा नृत्य खेल दल नयकारी ।—श्रीधर पाठक । (२) नाचनेवाला । नचनिया । उ०—निज शिशुगण को मोद चक्र में साथ नचावे नैकारी ।—श्रीधर पाठक ।

नयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चक्षु । नेत्र । आँख ।

यौ०—नयनगोचर ।

विशेष—"नयन" के मुहाविरों के लिये देखो "आँख" के मुहाविरे ।

(२) ले जाना ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

नयनगोचर–वि० [सं०] दिखाई पड़नेवाला । जो आँखों के सामने हो । समक्ष ।

नयनपट–संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलक । उ०—छवि समुद्र हरि रूप विलोकी । एकटक रहे नयन पट रोकी ।—तुलसी ।

नयना*†–क्रि० अ० [सं० नमन] (१) नम्र होना । (२) झुकना । लटकना ।

‡ संज्ञा पुं० [सं० नयन] आँख । नेत्र । चक्षु ।

नयनागर–वि० [सं०] नीतिज्ञ । नीति-निपुण ।

नयनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली ।

वि० स्त्री० आँखवाली ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्द के अंत में होता है । जैसे, मृगनयनी, कमलनयनी ।

नयनू–संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] (१) मक्खन । (२) एक प्रकार की मलमल जिस पर सफेद सूत की बूटियाँ बनी होती हैं ।

नयनैपध–संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प कसीस । पीला कसीस ।

नयर*–संज्ञा पुं० [सं० नगर] शहर । पुर । नगर । (डिं०)

नयशील–वि० [सं०] (१) नीतिज्ञ । (२) विनीत । उ०—तुम कपीस अंगद नलनीला । जामवंत मारुति नयसीला ।—तुलसी ।

नया–वि० [सं० नव । मि० फा० नौ](१) जिसका संगठन, सृजन, आविष्कार या आविर्भाव बहुत हाल में हुआ हो । जो थोड़े समय से बना, चला या निकला हो । नवीन । नूतन । ताज़ा । हाल का । पुराना का उलटा । जैसे, नया कपड़ा, नया पान, नए विचार, नई (हाल की बनी या छपी हुई) किताब ।

मुहा०—नया करना=(१) कोई नया फल या अनाज, मौसिम में पहले पहल खाना । मौसिम की नई चीज पहले पहल खाना । (२) कपड़ा आदि फाड़ या जला देना । (इस मुहाविरे का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः अशुभ बात मुँह से निकालने से बचने के लिये करती हैं ।) जैसे, इसे जो कपड़ा पहनाओ वही नया कर के रख देता है । नया पुराना करना =(१) पुराना हिसाब साफ करके नया हिसाब चलाना । (महाजनी) । (२) पुराने को हटा कर उसके स्थान पर नया करना या रखना ।

यौ०—नया नवेला=नवयुवक । नौजवान ।

(२) जिसका अस्तित्व तो पहले से हो परंतु परिचय हाल में मिला हो । जो थोड़े समय से मालूम हुआ हो या सामने आया हो । जैसे, (क) कोलंबस ने एक नए महाद्वीप का पता लगाया था । (ख) अशोक का एक नया शिला-लेख मिला है । (ग) नए आदमी को देख कर यह लड़का घबरा जाता है । (३) पहलेवाले से भिन्न । जो पहले था उसके स्थान पर आनेवाला दूसरा । जैसे, (क) मैंने कल एक नया घोड़ा खरीदा है । (ख) बंगाल में नए लाट आए हैं । (४) जो पहले किसी के व्यवहार में न आया हो । जिससे पहले किसी ने काम न लिया हो । जैसे, पहली किताब इसने खो दी थी, यह तो इसे नई लेकर दी गई है । (५) जिसका आरंभ पहले पहल अथवा फिर से, परंतु बहुत हाल में हुआ हो । जैसे, नई जिंदगी पाना, नए सिर से कोई काम करना, नया चाँद देखना । (६) जिसका नामकरण किसी पुराने नाम पर हुआ हो । जिसका नाम किसी पुराने (स्थान आदि) के नाम पर रखा गया हो । जैसे, नया गोदाम, नई बस्ती, नया बाजार आदि ।

नयापन–संज्ञा पुं० [सं० नव, हिं० नया+पन प्रत्य०)] नया होने का भाव । नवीनता । नूतनत्व ।

नयाम–संज्ञा पुं० [फा०] तलवार की म्यान । तलवार की खोल ।

नरंग–संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी का पेड़ ।

नर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) शिव । महादेव । (३) अर्जुन । (४) धर्मराज और दक्षप्रजापति की एक कन्या से उत्पन्न एक पौराणिक ऋषि जो ईश्वर के अंशावतार माने जाते थे । ये और नारायण दोनों भाई थे । विशेष—दे० "नर-नारायण" । (५) एक देव-योनि । (६) पुरुष । मर्द । आदमी । (७) एक प्रकार का क्षुप जिसे रायकपूर, रोहिस, सेंधिया और गंधेल भी कहते हैं । विशेष—दे० "गंधेल" । (८) वह खूँटी जो छाया आदि जानने के लिये खड़े बल गाड़ी जाती है । शंकु । लंब । (९) सेवक । (१०) गय

ऋषि और विष्णु के अवतार माने जाते हैं। कहते हैं कि ये दोनों भाई थे और नारायण इनमें से बड़े थे। महाभारत में लिखा है कि एक बार नर और नारायण गंधमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। उस समय दक्ष का यज्ञ हो रहा था। उस यज्ञ में दक्ष ने रुद्र के भाग की कल्पना नहीं की थी जिससे क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिये रुद्र ने एक शूल फेंका था। वह शूल यज्ञ नष्ट करने के उपरांत आकर बड़े जोर से नारायण के वक्षस्थल पर गिरा और उसी समय नारायण के हुंकार से पराजित और आहत होकर फिर शंकर के हाथ में जा पहुँचा। इस पर रुद्र क्रोध करके नर-नारायण पर चढ़ दौड़े। नारायण ने तो रुद्र का गला पकड़ लिया और नर ने उन्हें मारने के लिये एक सींक उठाई जो बड़ा भारी परशु बन गई। नारायण और रुद्र में भीषण युद्ध होने लगा। उसमें पृथ्वी तथा आकाश में अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे। जब ब्रह्मा ने आकर रुद्र को समझाया कि ये स्वयं नारायण के अवतार हैं और किसी समय तुम्हारी भी सृष्टि इन्हीं के क्रोध से हुई थी तब रुद्र ने प्रार्थना करके नारायण को प्रसन्न किया। इसके उपरांत रुद्र के साथ नर-नारायण की घनिष्ट मित्रता हो गई। महाभारत के नारायणीयाख्यान में यह भी लिखा है कि परब्रह्म के अवतार नर और नारायण नामक दो ऋषियों ने नारायणी अर्थात् भागवत धर्म का प्रचार किया था और उनके कहने से जब नारद ऋषि श्वेतद्वीप गए थे तब स्वयं भगवान् ने उनको इस धर्म का उपदेश किया था। देवी भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र धर्म ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया था जिनके गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से हरि और कृष्ण तो योगाभ्यास करते थे और नर-नारायण हिमालय पर कठिन तपस्या करते थे। उस समय इंद्र ने डरकर इनकी तपस्या भंग करने के लिये काम, क्रोध और लोभ की सृष्टि की और इन तीनों को नर-नारायण के सामने भेजा, परंतु नर-नारायण की तपस्या भंग नहीं हुई। तब इंद्र ने कामदेव की शरण ली। कामदेव अपने साथ वसंत और रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को लेकर नर-नारायण के पास पहुँचे। उस समय अप्सराओं के गाने आदि से नर-नारायण की आँखें खुलीं। उन्होंने सब बातें समझ लीं और इंद्र को लज्जित करने के लिये तुरंत अपनी जाँघ से एक बहुत सुंदर अप्सरा उत्पन्न की जिसका नाम उर्वशी पड़ा। इसके उपरांत उन्होंने इंद्र की भेजी हुई हजारों अप्सराओं की सेवा करने के लिये उनसे भी अधिक सुंदर हजारों दासियाँ उत्पन्न कीं। इसपर सब अप्सराएँ नर-नारायण की स्तुति करने लगीं। इन अप्सराओं ने नारायण से यह भी वर माँगा था कि आप हम लोगों के पति हों। इस पर उन्होंने कहा था कि द्वापर में जब हम अवतार लेंगे तब तुम लोग राजकुल में जन्म लोगी। उस समय तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तदनुसार नारायण तो श्रीकृष्ण और नर अर्जुन हुए थे। कालिकापुराण में लिखा है कि महादेव ने जब शरभ पक्षी का रूप धारण करके अपने दाँतों की चोट से नरसिंह के दो टुकड़े कर दिए थे तब नरसिंह के नररूपी आधे शरीर से नर तथा सिंह रूपी आधे शरीर से नारायण की उत्पत्ति हुई थी।

नरनारि–संज्ञा स्त्री० [सं०] नर (अर्जुन) की स्त्री, द्रौपदी। पांचाली। उ०—विपुल भूपति सदसि महँ नरनारि कह्यो प्रभु पाहि। *सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि।* —तुलसी।

नरनाहु[ए]–संज्ञा पुं० [सं० नरनाथ] राजा। नृप। नृपाल।

नरनाहर–संज्ञा पुं० [सं० नर + हिं० नाहर] नृसिंह भगवान।

नरनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

नरपति–संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृपति। नृपाल। भूप।

नरपद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर। (२) देश।

नरपशु–संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

नरपाल–संज्ञा पुं० [सं० नृपाल] नृप। राजा। भूपाल। भूपति।

नरपालि–संज्ञा पुं० [सं०] छोटा शंख।

नरपिशाच–संज्ञा पुं० [सं०] जो मनुष्य होकर भी पिशाचों का सा काम करे। बड़ा भारी दुष्ट और नीच मनुष्य।

नरपुर–संज्ञा पुं० [सं०] भूलोक। मनुष्यलोक।

नरप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] नील का पेड़।

नरबदा–संज्ञा स्त्री० दे० "नर्मदा"।

नरभक्षी–संज्ञा पुं० [सं० नरभक्षिन्] मनुष्यों को खानेवाला, राक्षस। दैत्य।

नरभू, नरभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष।

नरमट–संज्ञा स्त्री० [हिं० नरम] वह जमीन जहाँ की मिट्टी मुलायम हो।

नरमदा–संज्ञा स्त्री० दे० "नर्मदा"।

नरम रोआँ–संज्ञा पुं० [हिं० नरम + रोआँ] बुनाई के लिये लाल या सफेद रंग का रोआँ जो सदा बहुत मुलायम होता है।

नरम लोहा–संज्ञा पुं० [हिं० नरम + लोहा] अग्नि में लाल करके हवा में ठंढा किया हुआ लोहा जो मुलायम हो जाता है।

नरमा–संज्ञा स्त्री० [हिं० नरम] (१) एक प्रकार की कपास जिसे मनवा, देवकपास या रामकपास भी कहते हैं। (२) सेमर की रुई। (३) कान के नीचे का भाग। लोल।

नरमाई[ए]†–संज्ञा स्त्री० दे० "नरमी"।

नरमाना–क्रि० स० [हिं० नरम + आना (प्रत्य०)] (१) नरम करना। मुलायम करना। (२) शांत करना। धीमा करना।

न होगा। जिस समय रावण मारा गया उस समय पृथ्वी के गर्भ से उसी स्थान पर इस असुर का जन्म हुआ जिस स्थान पर सीता का जन्म हुआ था। पृथ्वी के इस बालक को राजा जनक ने १६ वर्ष की आयु तक अपने यहाँ रख कर पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया था। जब नरक सोलह वर्ष का हो गया तब पृथ्वी उसे जनक के यहाँ से ले आई। उस समय पृथ्वी ने अपने पुत्र को उसके जन्म के संबंध की सारी कथा सुनाई और विष्णु का स्मरण किया। विष्णु नरक को लेकर प्राग्ज्योतिषपुर गए और उन्होंने उसे वहाँ का राजा बना दिया। उसी समय विदर्भ की राजकुमारी माया के साथ नरक का विवाह भी हो गया। उस समय विष्णु ने उसे समझा दिया था कि तुम ब्राह्मणों और देवताओं आदि के साथ कभी विरोध न करना, उन्होंने उसे एक दुर्भेद्य रथ दिया था। नरक कुछ दिनों तक तो बहुत अच्छी तरह राज्य करता रहा पर जब बाणासुर घूमता फिरता प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचा तब नरक भी उसके संसर्ग के कारण दुष्ट हो गया और देवताओं आदि को कष्ट देने लगा। इसी अवसर पर एक बार वशिष्ट कामाख्या देवी का दर्शन करने के लिये वहाँ गए थे लेकिन नरक ने उन्हें नगर में घुसने तक नहीं दिया। इस पर वशिष्ट ने बहुत नाराज होकर शाप दिया था कि शीघ्र ही तुम्हारे पिता के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी। इस पर बाणासुर की सम्मति से नरक तपस्या करने लगा जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि तुम्हें देवता, असुर, राक्षस आदि में से कोई न मार सकेगा और तुम्हारा राज्य सदा बना रहेगा। इसके बाद उसे भगदत्त, महाशीर्ष, मदवान और सुमाली नामक चार पुत्र हुए। तब उसने हयग्रीव, मुरु, सुंद और उपसुंद आदि असुरों की सहायता से इंद्र को जीता और बहुत ही अत्याचार करना आरंभ किया। अंत में श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की और विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से नरक का सिर काट डाला। कहते हैं कि इसके भांडार में जितना धन आदि था उतना कुबेर के भांडार में भी नहीं था। वह सब धन रत्न आदि श्रीकृष्ण अपने साथ द्वारका ले गए थे।

नरकी—वि० दे० "नारकी"।

नरकुल—संज्ञा पुं० दे० "नरकट"।

नरकेशरी, नरकेसरी—संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

नरकेहरि—संज्ञा पुं० दे० "नरकेसरी"।

नरकौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] मदारी का खेल।

नरखड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] गला।

नरगण—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक गण जिसमें उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा नक्षत्र सम्मिलित हैं। इस गण में जन्म लेनेवाला सुशील और बुद्धिमान होता है। राक्षसगण के साथ इस गण का विरोध माना जाता है। इसे मनुष्यगण भी कहते हैं।

वि० दे० "गण (७)"।

नरगिस—संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक पौधा जो ठीक प्याज के पेड़ का सा होता है। इसकी जड़ भी प्याज की गाँठ सी होती है। इसमें कटोरी के आकार का सफेद रंग का फूल लगता है जिसमें गोल काला धब्बा होता है। नरगिस की सुगंध भी बड़ी मनोहर होती है। फारसी और उर्दू के कवि इस फूल के साथ आँख की उपमा देते हैं। इसके फूल का इत्र बहुत अच्छा बनता है। (२) इस पौधे का फूल।

नरगिसी—संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का कपड़ा जिस पर नरगिस की तरह के फूल बने होते हैं। (२) एक प्रकार का तला हुआ अंडा।

वि० नरगिस की तरह या रंग आदि का। नरगिस संबंधी।

नरचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पाट वा पटुआ।

नरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृपति। उ०—इमि अनेक उत्पात भए स्यामपुर जात तहँ। तिहि न गिन्यो नरनाल समर सूर विख्यात भुव।—गोपाल।

नरत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरपाल। राजा। (२) श्रीकृष्ण।

नरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नर होने का भाव। नरता।

नरद—संज्ञा स्त्री० [फा० नर्द] (१) चौसर खेलने की गोटी। उ०—तुरत डारिये मार नरद कच्ची करि दीजै।—गिरधर। (२) एक पौधा जिसके फूलों का अरक खींचा जाता है और जिसकी पत्तियाँ मसाले के काम में आती हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं० नर्द] शब्द। ध्वनि। नाद।

नरदन—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्दन = नाद] नाद करना। गरजना। उ०—दनपति सम नरदन अमित बल निसि मनिमाला गोर।—गोपाल।

नरदवाँ—संज्ञा पुं० [फा० नावदान] नल। पनाला।

नरदाँ—संज्ञा पुं० [फा० नावदान] मैला पानी बहने की नाली।

नरदारा—संज्ञा पुं० [सं० नर + सं० दारा] (१) ज़नाना। जनखा। हिजड़ा। नपुंसक। (२) जो पुरुष होकर भी स्त्रियों का काम करे। डरपोक। कायर। उ०—चेप भयानक लखि विकरारा। चहुँ दिसि भागि चले नरदारा।—सबल।

नरदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। नृपति। (२) ब्राह्मण।

नरदेवकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनकी कथा श्रीमद्भागवत में है।

नरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृपति। नृपाल।

नरनायक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृप। भूपति।

नरनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] नर और नारायण नाम के दो

प्रत्येक चरण में तगण, रगण, लघु और गुरु होता है। जैसे, तोरी लगै नराचिका। मोरी कटै भवाधिका।

नराज़–वि० दे० "नाराज़"।

नराज़ना॰–क्रि० स० [फा० नाराज] अप्रसन्न करना। नाराज करना। उ०—उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी। लहरि अकास लागि भुइँ बाजी।—जायसी।

क्रि० अ० अप्रसन्न होना। नाराज होना।

नराट*†–संज्ञा पु० [नरराट्] नरेंद्र। राजा। नृपाल। उ०—अभिवादन तब करत नराटा। मिले पार्थसुत द्रुपद विराटा।—सबल।

नराधिप–संज्ञा पुं० [स०] राजा। नरपति। नृपाल।

नरायन–संज्ञा पु० दे० "नारायण"।

नरिंद*†–संज्ञा पु० [सं० नरेंद्र] राजा। नराधिप। नरपति।

नरिअर†–संज्ञा पु० दे० "नारियल"।

नरिअरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नरियल] नारियल की खोपड़ी का आधा भाग।

नरियर†–संज्ञा पु० दे० "नारियल"।

नरिया†–संज्ञा पु० [हिं० नली] एक प्रकार का मिट्टी का खपड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम में आता है। यह अर्द्धवृत्ताकार और लंबा होता है और इसे "थपुआ" खपड़े की संधियों पर औंधाकर रख देते हैं जिससे उन संधियों में से पानी नीचे नहीं टपकने पाता।

नरियाना†–क्रि० अ० [सं० नर्दन] चिल्लाना। शोर मचाना। हल्ला करना।

नरी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बकरी या बकरे का रँगा हुआ चमड़ा। (२) लाल रंग का चमड़ा। (३) सिझाया हुआ चमड़ा। मुलायम चमड़ा। (४) नार। ढरकी के भीतर की नली जिस पर तार लपेटा रहता है। (जुलाहा)। (५) एक प्रकार की घास जो ताल या नदी के किनारे होती है।

† संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] (१) नली। नाली। छुच्छी। पुपली। (२) वह बाँस की नली जिससे सुनार लोग आग सुलगाते हैं। फुकनी।

*संज्ञा स्त्री० [सं० नर] स्त्री। नारी।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगुला।

नरु॰–संज्ञा पु० दे० "नर"।

नरई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नरी] छुच्छी। पुपली। छोटी नली।

नरुवा†–संज्ञा पु० [हिं० नरा] अनाज के पौधों की डंठी जो अंदर से पोली होती है।

नरेंद्र–संज्ञा पु० [सं०] (१) राजा। नृप। नरेश। (२) वह जो साँप-बिच्छू आदि के काटने का इलाज करे। विष-वैद्य। (३) श्योनाक वृक्ष। (४) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएं होती हैं, जिसमें सोलह मात्राओं पर विराम और अंत में दो गुरु होते हैं। इसे सार और ललित पद भी कहते हैं। जैसे, मीत चौतनी धरे सीस पै, पीतंबर मन माने। पीत यज्ञ उपवीत विराजत, मनो बसंती बाने।

नरेवी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसकी छाल से एक प्रकार का खाकी रंग का गोंद निकलता है जो शीघ्र सूख जाता है और चमकीला होता है। यह प्रायः शिवसागर और सिलहट (आसाम) में पाया जाता है।

नरेश–संज्ञा पु० [सं०] मनुष्यों का स्वामी। राजा। नृप।

नरेस–॰संज्ञा पु० [सं०] दे० "नरेश"।

नरों–‡संज्ञा स्त्री० [हिं०नरसों] परसों से पहले या बाद का एक दिन। अतरसों।

नरोत्तम–संज्ञा पु० [सं०] ईश्वर। भगवान।

नरोह–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) पिंडली की हड्डी। नली। (२) कोल्हू की वह नली जिसमें से रस गिरता है।

नर्क*–संज्ञा पु० दे० "नरक"।

नर्कट संज्ञा पु० दे० "नरकट"।

नर्कुटक–संज्ञा पु० [स०] नासिका। नाक। घ्राणेंद्रिय।

नर्गिस–संज्ञा पु० दे० "नरगिस"।

नर्गिसी–संज्ञा पु०, वि० दे० "नरगिसी"।

नर्त्त–संज्ञा पु० [सं०] नाचनेवाला। वह जो नाचता हो।

नर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नर्त्तकी] (१) नट। नाचनेवाला। नृत्य करनेवाला। (२) एक प्रकार का नरकट। (३) चारण। वंदीजन। (४) केलक। खड्ग की धार पर नाचनेवाला। (५) हाथी। (६) महादेव का एक नाम। (७) मयूर। (८) नरकट। (९) मडुआ। (१०) एक प्रकार की संकर जाति जिसकी उत्पत्ति धोबी पिता और वेश्या माता से मानी जाती है। (११) राजा।

नर्त्तकी–संज्ञा स्त्री० [स०] (१) नाचनेवाली, रंडी। वेश्या। नटी। (२) नालिका नामक सुगंध द्रव्य। नली।

नर्त्तन–संज्ञा पु० [सं०] नृत्य। नाच।

नर्त्तनशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पर नाच होता हो। नाचघर।

नर्द–संज्ञा स्त्री० [फा०] चौसर की गोटी।

नर्दकी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे कटील, निमरी और बगई भी कहते हैं।

नर्दन–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाद। गरज। भीषण ध्वनि।

नर्दवान–संज्ञा पु० [देश०] (१) काठ की सीढ़ी। (२) मार्ग। रास्ता। (लश०)

नर्दा–† संज्ञा पु० [देश०] मैला बहने की नाली।

नर्वदा–संज्ञा स्त्री० दे० "नर्मदा"।

नर्म–संज्ञा पुं० [सं० नर्मन्] (१) परिहास। हँसी। ठट्ठा। दिल्लगी। (२) सखाओं का एक भेद। हँसी ठट्ठा करनेवाला सखा।

क्रि० अ० (१) नरम होना। मुलायम होना। (२) शांत होना। ठंढा होना।

नरमावड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बन कपास।

नरमानिका-संज्ञा स्त्री० दे० "नरमानिनी"।

नरमानिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसे मूछ या दाढ़ी हो।

नरमी-संज्ञा स्त्री० [फा० नर्म] नरम होने का भाव। मुलायमियत। कोमलता। मृदुता।

नरमेध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें प्राचीन काल में मनुष्य के मांस की आहुति दी जाती थी। यह यज्ञ चैत्र शुक्ला दशमी से आरंभ होता था और चालीस दिन में समाप्त होता था।

नरयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य सिद्धांत के अनुसार एक प्रकार का शंकुयंत्र जिसका व्यवहार धूप में समय जानने के लिये होता था।

नरलोक-संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य लोक। मृत्यु लोक। संसार।

नरवरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति।

नरवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

नरवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "नराई"। उ०—बालि छाँड़ि कै सूर हमारे अब नरवाई को लुनै।—सूर।

नरवाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढोकर ले चले। जैसे, पालकी, तामजान इत्यादि।

नरवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढोकर ले चले। (२) कुबेर। (३) किन्नर।

नरव्याघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्यों में श्रेष्ठ। (२) जल में रहनेवाला एक प्रकार का जानवर जिसके शरीर के नीचे का भाग मनुष्य के आकार का और ऊपर का भाग बाघ के आकार का होता है।

नरशक्र-संज्ञा पुं० [सं०] नरेंद्र। राजा। नृप।

नरसल-संज्ञा पुं० दे० "नरकट"।

नरसार-संज्ञा पुं० [सं०] नौसादर।

नरसिंग-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का विलायती फूल।

नरसिंगा-संज्ञा पुं० दे० "नरसिंघा"।

नरसिंघ-संज्ञा पुं० दे० "नृसिंह"।

नरसिंघा-संज्ञा पुं० [हिं० नर=बड़ा+सिंघा=सींग का बना एक प्रकार का बाजा] तुरही की तरह का एक प्रकार का नल के आकार का तांबे का बड़ा बाजा जो फूँक कर बजाया जाता है। यह जिस स्थान से फूँक कर बजाया जाता है उस स्थान पर बहुत पतला होता है और उसके आगे का भाग बराबर चौड़ा होता जाता है। बीच में से इसके दो भाग भी कर लिए जाते हैं और बजाने के बाद पतला भाग अलग करके मोटे भाग के अंदर रख लिया जाता है। प्राचीन काल में इसका व्यवहार रणक्षेत्र में होता था और आज कल यह देहात में विवाह आदि के अवसर पर बजाया जाता है।



नरसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "नृसिंह"।

नरसिंहज्वर-संज्ञा पुं० वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो चौथिया या चातुर्थिक का उलटा है। यह ज्वर तीन दिन तक चढ़ा रहता है और चौथे दिन उतर जाता है, और फिर वही क्रम चलता है।

नरसिंहपुराण-संज्ञा पुं० दे० "नृसिंहपुराण"।

नरसेज-संज्ञा पुं० [देश०] तिधारा नामक थूहर जिसमें पत्ते नहीं होते। विशेष—दे० "अतिधारा"।

नरसों-क्रि० वि० दे० "अतरसों"।

नरहर-संज्ञा स्त्री० [देश०] पैर की वह हड्डी जो पिंडली के ऊपर होती है।

नरहरि-संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह भगवान जो दस अवतारों में से चौथे अवतार हैं। उ०—तब लै खड्ग खंभ में मारयो शब्द भयो अति भारी। प्रगट भए नर हरि वपु धरि कटकट करि उचारी।—सूर।

नरहरी-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक पद में १४ और ५ के विराम से १९ मात्राएँ और अंत में १ नगण और एक गुरु होता है। जैसे, हरि सुनत भक्त की बानी; दुख भरी। झट प्रगटे खंभा फारी, तिहि घरी। रिपु हन्यो दीन सुख भारी, दुखहरी। मन सदा भजौ चित लाई, नरहरी।

नरहीरा-संज्ञा० पुं० [हिं० नर=बड़ा+हिं० हीरा] वह आठ पहल या छः पहल का बड़ा हीरा जिसके किनारे खूब तेज हों। कहते हैं कि ऐसा हीरा जिसके पास होता है वह राजा हो जाता है और उसका वैभव बहुत अधिक बढ़ जाता है।

नरांतक-संज्ञा पुं० [सं०] रावण के एक पुत्र का नाम जो राम-रावण युद्ध में अंगद के हाथ से मारा गया था।

नरा-संज्ञा पुं० [हिं० नल या नरकट] नरकट की एक छोटी नली जिसके ऊपर सूत लपेटा रहता है। (जोलाहे)

नराच-संज्ञा पुं० [सं० नाराच] (१) तीर। बाण। शर। (२) पंच चामर या नागराज नामक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण जगण और अंत में एक गुरु होता है। जैसे, जु रोज रोज गोद लीय कृष्ण संग धावतीं। सुगीत नाथ पांव सों लगाय चित्त गावतीं।

नराचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वितान वृत्त का एक भेद जिसके

हुई अपने पति को ढूँढ़ती ढूँढ़ती और अनेक प्रकार के कष्ट उठाती अपने पिता के घर पहुँची । उधर नल भी अनेक कष्ट भोगते हुए अयोध्या पहुँचे और राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि हुए । बहुत पता लगाने पर दमयंती को सूत्र लगा कि ऋतुपर्ण के यहाँ बाहुक नामक जो सारथि है वह कदाचित् नल हो । भीम ने ऋतुपर्ण के यहाँ कहलाया कि कल हमारी कन्या का फिर से स्वयंवर होगा । उनके सारथि बाहुक (या नल) ने एक ही दिन में उन्हें विदर्भ पहुँचा दिया । वहाँ दमयंती ने नल को पहचाना और तीन वर्ष तक घोर कष्ट भोगने के उपरांत दंपति फिर मिले । इस समय तक कलि ने भी उनका पीछा छोड़ दिया था । इसके उपरांत ऋतुपर्ण ने नल से क्षमा माँगी । एक मास तक विदर्भ में रहने के उपरांत नल ने फिर पुष्कर के पास जाकर उससे जूआ खेला और फिर अपना राज्य जीत लिया । तब से दोनों फिर सुखपूर्वक रहने लगे । दमयंती का पातिव्रत आदर्श माना जाता है और घोर कष्ट भोगने के लिए नल-दमयंती प्रसिद्ध हैं । (४) राम की सेना का एक बंदर जो विश्वकर्मा का पुत्र माना जाता है । कहते हैं कि इसीने पत्थरों को पानी पर तैरा कर रामचंद्र की सेना के लिये लंका-विजय के समय समुद्र पर पुल बाँधा था । पुराणानुसार यह ऋतुध्वज ऋषि के शाप के कारण घृताची के गर्भ से बंदर के रूप में उत्पन्न हुआ था । (५) एक दानव का नाम जो विप्रचित्ति का चौथा पुत्र था और सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । (६) यदु के एक पुत्र का नाम । (७) एक नद का नाम । (८) प्राचीन काल का एक प्रकार का चमड़े से मढ़ा हुआ बाजा जो घोड़े की पीठ पर रखकर युद्ध के समय बजाया जाता था ।

संज्ञा पु० [सं० नाल] (१) डंडे के रूप में कुछ दूर तक गई हुई वस्तु जिसके भीतर का स्थान खाली हो । पोली लंबी चीज़ । (२) धातु, काठ या मिट्टी आदि का बना हुआ पोला गोल खंड जो कुछ लंबा होता है । और जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी, हवा, धुआँ, गैस आदि के ले जाने के काम में आता है । (३) इसी प्रकार का ईंट पत्थर आदि का बना हुआ वह मार्ग जो दूर तक चला गया हो और जिसमें से होकर गंदगी और मैला आदि बहता हो । पनाला । (४) पेड़ू के अंदर की वह नाली जिसमें होकर पेशाब नीचे उतरता है । नला ।

मुहा०—नल टलना = किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नाली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है ।

नलक—संज्ञा पु० [सं०] (१) वह गोलाकार हड्डी जिसके अंदर मज्जा हो । नली के आकार की हड्डी । (२) कालदेवल के भतीजे का नाम जिसे बुद्ध ने उपदेश दिया था ।

नलका—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] नली । नाल ।

नलकिनी—संज्ञा पु० [सं०] जंघा । जाँघ ।

नलकील—संज्ञा पु० [सं०] जानु । घुटना ।

नलकूबर—संज्ञा पु० [सं०] (१) कुबेर के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है । महाभारत में लिखा है कि एक बार यह अपने भाई मणिग्रीव के साथ खूब शराब पीकर कैलास पर्वत पर गंगा के किनारे एक उपवन में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था । उन दोनों को इस दुर्दशा में देख कर नारद ने शाप दिया था कि तुम अर्जुन वृक्ष हो जाओ । कहते हैं कि इसी शाप के अनुसार ये दोनों वृंदावन में यमलार्जुन हुए । वहाँ श्रीकृष्ण ने इन्हें स्पर्श करके शापमुक्त किया । रामायण में लिखा है कि एक बार जब रावण दिग्विजय करके लौट रहा था तब रास्ते में उसे नलकूबर के यहाँ जाती हुई रंभा नामक अप्सरा मिली । रावण उसे जबरदस्ती पकड़ कर अपने साथ ले गया । उसी समय रंभा ने उसे शाप दिया था कि यदि तुम किसी स्त्री के साथ बलात्कार करोगे तो तुरंत मर जाओगे । कहते हैं कि इसी भय से रावण ने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया था । (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार गुरु और चार लघु मात्राएँ होती हैं । (संगीत)

नलकोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बैल ।

नलदंबु—संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़ ।

नलद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्परस । मकरंद । (२) उशीर । खस । (३) जटामासी । बालछड़ । (४) लामज्जक नामक घास ।

नलदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी । बालछड़ ।

नलनी—संज्ञा स्त्री० दे० "नलिनी" ।

नलनीरुह—संज्ञा पु० [सं०] मृणाल । कमल की नाल ।

नलपुर—संज्ञा पु० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में है ।

नलमीन—संज्ञा पुं० [सं०] झींगा मछली ।

नलवा—संज्ञा पु० [हिं०] बाँस की टोंटी जिससे बैल को घी पिलाया जाता है । चोंगा ।

नलसेतु—संज्ञा पु० [सं०] रामेश्वर के निकट का समुद्र पर बँधा हुआ वह पुल जो रामचंद्र ने नल-नील आदि से बनवाया था ।

नला—संज्ञा पुं० [हिं० नल] (१) पेड़ू के अंदर की वह नाली जिस में से होकर पेशाब नीचे उतरता है ।

मुहा०—नला टलना = किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नाली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिस से बहुत पीड़ा होती है ।

(२) हाथ या पैर की नली के आकार की लंबी हड्डी ।

६०—नर्म सखन लै अपने संगा। आवैं करन फागु रस रंगा।
—रघुराज।

नर्मट—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

नर्मठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिल्लगीबाज। वह जो परिहास आदि में कुशल हो। (२) उपपति। स्त्री का यार। (३) ठोढ़ी। स्तन।

नर्मद—संज्ञा पुं० [सं०] दिल्लगीबाज। मसखरा। भाँड़।
वि० आनंद देनेवाला।

नर्मदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृक्का या असवर्ग नामक गंध-द्रव्य। (२) एक गंधर्व-स्त्री जो सुंदरी, केतुमती और वसुदा की माता थी। (३) मध्य प्रदेश की एक नदी जो अमरकंटक से निकल कर भड़ौंच के पास खंभात की खाड़ी में गिरती है।

नर्मदेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शिवलिंग जो नर्मदा नदी से निकलते हैं। ये प्रायः स्फटिक के या लाल अथवा काले रंग के पत्थर के और बिलकुल अंडाकार होते हैं। पहाड़ों पर से पत्थर के जो टुकड़े नदी में गिरते हैं वे ही जलपात के स्थान पर भँवर में पड़ कर अंडाकृति हो जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रकार के लिंगों के पूजन का बहुत माहात्म्य है।

नर्मसचिव—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो राजा के साथ उसे हँसाने के लिये रहता है। विदूषक।

नर्मसुहृद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० "नर्म सचिव"।

नर्मी—संज्ञा स्त्री० दे० "नरमी"।

नर्री—संज्ञा स्त्री [देश०] (१) एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में भी होती है। (२) एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में होता है।

नल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरकट। (२) पद्म। कमल। (३) निषध देश के चंद्रवंशी राजा वीरसेन के पुत्र का नाम जो बहुत ही सुंदर और बड़े गुणवान थे और विशेषतः घोड़ों आदि की परीक्षा और संचालन में बड़े दक्ष थे। ये विदर्भ देश के तत्कालीन राजा भीम की कन्या दमयंती के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर ही उस पर आसक्त हो गए थे। एक दिन जब ये बाग में दमयंती की चिंता में बैठे हुए थे तब कहीं से कुछ हंस उड़ते हुए आकर इनके सामने बैठ गए। नल ने उनमें से एक हंस को पकड़ लिया। उस हंस ने कहा—महाराज, आप मुझे छोड़ दें, मैं विदर्भ देश में जाकर दमयंती के सामने आपके रूप और गुणों की प्रशंसा करूँगा। इनके छोड़ देने पर हंस विदर्भ देश में गया और वहाँ दमयंती के बाग में जाकर इसने उसके सामने नल के रूप और गुण की खूब प्रशंसा की, जिसे सुनकर नल के प्रति उसका पहला अनुराग और भी बढ़ गया और उसने हंस से कह दिया कि मैं नल के साथ ही विवाह करूँगी, तुम यह बात जाकर उनसे कह देना। हंस ने वैसा ही किया। जब राजा भीम ने दमयंती का स्वयंवर रचा तब उसमें बहुत से राजाओं के अतिरिक्त अनेक देवता भी आए थे। जब इंद्र, यम, अग्नि और वरुण स्वयंवर में जा रहे थे तब उन्हें मार्ग में नल भी जाते हुए मिले। इन चारों देवताओं ने नल को आज्ञा दी कि तुम जाकर दमयंती से कहो कि हमलोग भी आ रहे हैं, हममें से ही किसी को तुम वरण करना। नल ने जब दमयंती से जाकर यह बात कही तब उसने कहा कि मैं तो तुम्हें ही पति बनाने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, यही बात देवताओं से तुम कह देना। नल ने उसे देवताओं की ओर से बहुत समझाया पर दमयंती ने नहीं माना और कहा कि देवता धर्म के रक्षक होते हैं उन्हें मेरे धर्म की रक्षा करनी चाहिए। नल ने ये सब बातें देवताओं से कह दीं। इस पर वे चारों देवता नल का रूप धर कर स्वयंवर में पहुँचे और नल के समीप ही बैठे। दमयंती पहले तो नल के समान पाँच मनुष्यों को देख कर घबराई, पर पीछे से उसने असली नल को पहचान कर उन्हीं के गले में जयमाल पहनाई। इस पर चारों देवताओं ने प्रसन्न होकर नल को आठ वर दिए। दमयंती के साथ नल का विवाह तो हो गया पर कलियुग और द्वापर ने असंतुष्ट होकर नल को कष्ट पहुँचाना चाहा। कलियुग सदा नल के शरीर में प्रवेश करने का अवसर ढूँढ़ा करता था। पर बारह वर्ष तक उसे अवसर ही न मिला। इस बीच में नल को इंद्रसेन नामक एक पुत्र और इंद्रसेना नामक एक कन्या भी हुई। एक दिन अवसर पाकर कलि ने स्वयं तो नल के शरीर में प्रवेश किया और उधर उनके भाई पुष्कर को उनके साथ जूआ खेल कर निषध देश जीत लेने के लिये उभाड़ा। तदनुसार जूए में नल अपना सर्वस्व हार गए। पुष्कर ने आज्ञा दे दी कि नल या उनके परिवार के लोगों को कोई आश्रय या भोजन आदि न दे। दमयंती ने अपने पुत्र और कन्या को पिता के घर भेज दिया। जब तीन दिन तक नल दमयंती को अन्न भी न मिला तब वे दोनों जंगल में निकल गए। वहाँ दंपति को बड़े बड़े कष्ट मिले। एक दिन नल ने सोने के रंग के कुछ पक्षी देखे और उन्हें पकड़ने के लिये उन पर अपना कपड़ा डाला। पर वे पक्षी उनका कपड़ा लेकर ही उड़ गए। बहुत दुखी होकर नल ने दमयंती से विदर्भ जाने के लिये कहा, पर उसने नहीं माना। उस समय उन दोनों के पास एक ही वस्त्र बच गया था। उसी को पहन कर दोनों चलने लगे। एक स्थान पर दमयंती थक कर जब सो गई तब नल उसका आधा वस्त्र फाड़ कर और उसे उसी दशा में छोड़ कर चले गए। जब दमयंती सोकर उठी तब बहुत विलाप करती

नौजवान औरत। (२) वह युवती जो हाल में पहले पहल रजस्वला हुई हो।

नवकुमारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ-रात्र में पूजनीय नौ कुमारियाँ जिनमें निम्नलिखित नौ देवियों की कल्पना की जाती है—कुमारिका, त्रिमूर्त्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चंडिका, शांभवी, दुर्गा और सुभद्रा। विशेष—दे० "नवरात्र"।

नवखंड-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि के नौ विभाग, यथा—भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

नवग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह। विशेष—दे० "ग्रह"।

नवछावरि*|-संज्ञा स्त्री० दे० "न्योछावर"। उ०—लेति बलाय करति नवछावरि बलि भुजदंड कनक अति भ्रामी। नानारी के नैन निरखि करि चातक तृषित चकोरी प्यासी। —सूर।

नवज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] आरंभिक ज्वर। चढ़ता बुखार। वह बुखार जिसका अभी आरंभ हुआ हो। विशेष—दे० "ज्वर"।

नवड़ा-संज्ञा पुं० [?] भरसा।

नवतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के एक लड़के का नाम।

नवतन—*| वि० [सं० नवीन] नवीन। नया। ताज़ा।

नवता-संज्ञा पुं० [सं० नमन] ढालुआँ जमीन। उतार। (कहार) संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीनता। नयापन।

नवति-वि० [सं०] अस्सी और दस। सौ से दस कम। नब्बे। संज्ञा स्त्री० [सं०] नब्बे की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—९०।

नवदंड-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं के तीन प्रकार के छत्रों में से एक प्रकार के छत्र का नाम।

नवदल-संज्ञा पुं० [सं०] कमल का वह पत्ता जो उसके केसर के पास होता है।

नवदीधिति-संज्ञा पुं० [सं०] मंगलग्रह।

नवदुर्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार नौ दुर्गाएँ जिनकी नवरात्र में नौ दिनों तक क्रमशः पूजा होती है। यथा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कुष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदा। विशेष—दे० "दुर्गा"।

नवद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में के नौ द्वार, यथा—दो आँखें, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक गुदा और एक लिंग या भग। प्राचीनों का विश्वास था और अब भी कुछ लोगों का विश्वास है कि जब मनुष्य मरने लगता है तब उसका प्राण इन्हीं नौ द्वारों में से एक द्वार से निकलता है।

नवद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध नगर और विद्यापीठ जो राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी था। यह नगर गंगा नदी के बीच में एक चर पर बसा हुआ है। कहते हैं कि यहाँ छोटे छोटे नौ गाँव हैं जिनके समूह को पहले नवद्वीप कहते थे। आधुनिक "नदिया" शब्द इसी का अपभ्रंश है। यह स्थान विशेषतः न्याय शास्त्र के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

नवधा अंग-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नौ अंग यथा—दो आँखें, दो कान, दो हाथ, दो पैर और एक नाक।

नवधा भक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ प्रकार की भक्ति। यथा—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन। विशेष—दे० "भक्ति"।

नवन*—संज्ञा पुं० दे० "नमन"।

नवना*|-क्रि० अ० [सं० नमन] (१) झुकना। (२) नम्र होना।

नवनि|*-संज्ञा स्त्री० [हिं० नवना] (१) झुकने की क्रिया या भाव। (२) नम्रता। दीनता। उ०—नवनि नीच की अति दुखदाई।—तुलसी।

नवनिधि-संज्ञा स्त्री० दे० "निधि"।

नवनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नवनीत। मक्खन।

नवनीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मक्खन। (२) श्रीकृष्ण।

नवनीतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत। घी। (२) मक्खन।

नवनीत गणप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक गणेश या गणपति का नाम।

नवनीतधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित गौ जिसकी कल्पना मक्खन के ढेर में की जाती है। कहते हैं कि इस गौ के दान से शिव सायुज्य प्राप्त होता है और विष्णुलोक में वास होता है। वराह पुराण में इसका विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

नवपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] केले, अनार, धान, हलदी, मानकच्चू, कचू, बेल, अशोक और जयंती इन नौ वृक्षों के पत्ते जिनका व्यवहार "नवदुर्गा" के पूजन में होता है।

नवपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मूर्त्ति जिसकी उपासना जैन लोग करते हैं।

नवपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपई या जयकरी छंद का एक नाम। विशेष—दे० "चौपई"।

नवप्राशन-संज्ञा पुं० [सं०] नया अन्न या फल आदि खाना।

नवफलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "नवकालिका"।

नवभक्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "नवधा भक्ति"।

नवम-वि० [सं०] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो। नवाँ।

नलाना—क्रि० स० [हिं० निराना] जिस खेत में फसल बोई गई हो उसमें की निरर्थक घास आदि दूर करना। निराना।

नलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नलाना] (१) नलाने या निराने का भाव। (२) नलाने की क्रिया। (३) नलाने की मजदूरी।

नलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नल के आकार की कोई वस्तु। चोंगा। नली। (२) मूँगे के आकार का एक प्रकार का गंध-द्रव्य जो वैद्यक में तीता, कड़ुआ, तीक्ष्ण, मधुर और कृमि, वात, अर्श और शूल रोग का नाशक तथा मलशोधक माना गया है।

पर्य्या०—विद्रुमलतिका। कपोलचरणा। नलिनी। रक्तदला। नर्त्तकी। नटी। प्रवाली।

(३) प्राचीन काल का एक अस्त्र जिसके विषय में कुछ लोगों का अनुमान है कि यह आजकल की बंदूक के समान होता था और इसके द्वारा लोहे की बहुत छोटी छोटी गोलियाँ या तीर छोड़े जाते थे। इसका उल्लेख रामायण और महाभारत के अतिरिक्त वेदों तक में पाया जाता है। शुक्रनीति में इसका अच्छा वर्णन है। इसे नालक और नाल भी कहते थे। (४) तरकश जिसमें तीर रखते हैं। (५) करेमू का साग। (६) पुदीना। (७) वैद्यक में एक प्रकार का प्राचीन यंत्र जिसकी सहायता से जलोदर के रोगी के पेट से पानी निकाला जाता था।

नलित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो नाड़िका साग भी कहलाता है। वैद्यक में यह तिक्त, पित्तनाशक और शुक्रवर्द्धक माना गया है।

नलिन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्प० नलिनी] (१) पद्म। कमल। (२) नीलिका। नील। (३) जल। पानी। (४) नीम। (५) सारस पक्षी। (६) करौंदा।

नलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमलिनी। कमल। (२) वह देश जहाँ कमल अधिकता से होते हों। (३) पुराणानुसार गंगा की एक धारा का नाम। (४) नारियल की शराब। (५) नलिनी नामक गंध-द्रव्य। (६) नाक का बाँया नथना। (७) नदी। (८) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में पाँच सगण होते हैं। इसे मनहरण और भ्रमरावली भी कहते हैं।

नलिनीनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के उपवन का नाम।

नलिनीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृणाल। कमल की नाल। (२) ब्रह्मा।

नलिनेशय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

नलियां—संज्ञा पुं० [?] बहेलिया।

नली—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मैनसिल। (२) नलिका नाम का गंधद्रव्य।

संज्ञा स्त्री० [हिं० नल का स्त्री० अल्प०] (१) छोटा या पतला नल। छोटा चोंगा। (२) नल के आकार की भीतर से पोली हड्डी जिसमें मज्जा भी होती है। (३) घुटने से नीचे का भाग। पैर की पिंडली। (४) बंदूक की नली जिसमें होकर गोली पहले गुजरती है। (५) जुलाहों की नाल। विशेष—दे० "नाल"। (६) दे० "नल"।

नलीमोज—संज्ञा पुं० [फा०] वह कबूतर जिसके पंजे तक पर होते हैं।

नलुआ—संज्ञा पुं० [हिं० नल=नला] (१) पशुओं का एक रोग जिसमें सूजन हो जाती है। (२) छोटा नल या चोंगा। (३) बाँस की पोर। बाँस की दो गाँठों के बीच का टुकड़ा।

नलोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] देवनल। बड़ा नरसल।

नल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० नली] दे० "नली" (२) एक प्रकार की घास जिसे पलवान भी कहते हैं। विशेष—दे० "पलवान"।

नल्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की जमीन की एक प्रकार की नाप या परिमाण जो किसी के मत से सौ हाथ का और किसी के मत से चार सौ हाथ का होता है।

नल्वण—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मान जो किसी के मत से सोलह सेर का और किसी के मत से बत्तीस सेर का होता है।

नल्ववर्त्मगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकजंघा।

नवंबर—संज्ञा पुं० [अं०] अंगरेजी ग्यारहवाँ महीना जो ३० दिनों का तथा अक्तूबर के बाद और दिसंबर से पहले होता है।

नव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तव। स्तोत्र। (२) लाल रंग की गदहपूरना। विशेष—दे० "पुनर्नवा"। (३) हरिवंश के अनुसार उशीनर नामक राजा के लड़के का नाम।

वि० [सं०] नया। नवीन। नूतन।

वि० [सं० नवन्] नौ। आठ और एक। दस से एक कम।

विशेष—"नव" शब्द से कहीं कहीं ग्रह और रत्न आदि इन पदार्थों का भी अभिप्राय लिया जाता है जो गिनती में नौ होते हैं। जैसे, सिर किरीट अति लसत जटित नव नव कनगूरे।—गिरधर।

नवक—वि० [सं०] दे० "नौ"।

संज्ञा पुं० [सं०] एक ही तरह की नौ चीजों का समूह। जैसे, (नौ) धातुओं का नवक, (नौ) दुर्गाओं का नवक, (नौ) रसों का नवक, (नौ) ग्रहों का नवक।

नवकार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक मंत्र।

नवकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नवोढ़ा स्त्री।

नवकार्षिं गूगल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जिसमें गूगल, त्रिफला और पिप्पली सब चीजें बराबर होती हैं। इसका व्यवहार शोथ, गुल्म, भगंदर और बवासीर आदि को दूर करने में होता है।

नवकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युवा स्त्री। नवयौवना।

नवलकिशोर–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

नवल वधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक।

नवला–संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीन स्त्री। तरुणी।

नवलेवा†–संज्ञा पुं० [सं० नव + हिं० लेवा = कीचड़ का लेप] वह कीचड़ जो बढ़ी हुई नदी के उतरने से किनारे पर रह जाती है। नदी के किनारे की दलदल।

नववर्ष–संज्ञा पुं० दे० "वर्ष" (पृथ्वी के विभाग का देश)।

नववल्लभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अगर जिसे दाह अगर कहते हैं और जिसकी गिनती गंध-द्रव्यों में होती है।

नव-वासुदेव–संज्ञा पुं० [सं०] तत्सारानुसार जैन लोगों के नव वासुदेव जिनके नाम ये हैं—त्रिपृष्ट, द्विपृष्ट, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, सिंहपुरुष, पुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण। कहते हैं कि ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थंकरों के समय में नरक गए थे।

नववास्तु–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक राजर्षि का नाम।

नवविंश–वि० [सं०] उंतीसवाँ। जो क्रम में अट्ठाइस के बाद हो।

नवविंशति–वि० [सं०] बीस और नौ। तीस से एक कम।
संज्ञा स्त्री० [सं०] बीस और नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—२९।

नवविष–संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ, हारिद्रक, सक्तुक, प्रदीपन सौराष्ट्रिक, शृंगक, कालकूट, हलाहल, और ब्रह्मपुत्र ये नौ विष।

नवशक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नंदिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिदा ये नौ शक्तियाँ।

नवशायक–संज्ञा पुं० [सं०] पराशर संहिता के अनुसार ग्वाला, माली, तेली, जोलाहा, हलवाई, बरई, कुम्हार, लोहार और हज्जाम ये नौ जातियाँ।
विशेष—उक्त संहिता के अनुसार ये नौ जातियाँ संकर हैं और शुद्ध शूद्र जाति के अंतर्गत हैं। बंगाल में नवशायकों के हाथ का जल ब्राह्मण लोग पीते और उनका दान ग्रहण करते हैं।

नवशिक्षित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने अभी हाल में कुछ पढ़ा या सीखा हो। नौसिखुआ। (२) वह जिसे आधुनिक ढंग की शिक्षा मिली हो।

नवशोम–संज्ञा पुं० [सं०] नई रोमावाला। तरुण। जवान। युवक।

नवसंगम–संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम समागम। नया मिलाप। पति से पत्नी की पहली भेंट।

नवसत*–संज्ञा पुं० [सं० नव + सत = सप्त] नव और सात, सोलह शृंगार।
वि० सोलह। षोडश। उ० -(क) नवसत साजि सिँगार युवति सब दधि मटुकी लिये आवत।—सूर। (ख) नवसत साजि भई सब ठाढ़ीं को छबि सकै बखानी।—सूर।

नवसप्त–संज्ञा पुं० [सं०] नौ और सात, सोलह शृंगार। उ०—(क) चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी। नवसप्त साजे सुंदरी सब मत्त-कुंजर-गामिनी।—तुलसी। (ख) जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नवसप्त सकल दुति दामिनि।—तुलसी।

नवसर–संज्ञा पुं० [हिं० नौ = सं० स्रक] नौ लड़ का हार। उ०—कंठसिरी दुलरी तिलरी को और हार एक नवसर। —सूर।
वि० [सं० नव + वत्सर] नवयवस्क। जिसकी नई उमर हो। उ०—सूरस्याम स्यामा नवसर मिलि रीझे नंदकुमार।—सूर।

नवससि*–संज्ञा पुं० [सं० नवशशि] द्वितीया का चंद्रमा। दूज का चाँद। नया चाँद।

नवसिखा–संज्ञा पुं० दे० "नौसिखुआ"।

नवाँ–वि० [सं० नवम] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो। आठवें के बाद और दसवें के पहले का। नौवाँ।

नवांग–संज्ञा–पुं० [सं०] सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, बहेड़ा, आँवला, चाब, चीता और वायविडंग ये नौ पदार्थ।

नवांगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी।

नवांश–संज्ञा पुं० [सं०] एक राशि का नवाँ भाग जिसका व्यवहार फलित ज्योतिष में किसी नवजात बालक के चरित्र, आकार और चिह्न आदि का विचार करने में होता है।

नवा†–वि० दे० "नया"।

नवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० नवना] विनीत होने का भाव। उ०—सूर नवाई नवखँड वहे। सात दीप दुनी सब नए।—जायसी।
†*वि० नया। नवीन। उ०—यह मति आप कहाँ धौं पाई। आजु सुनी यह बात नवाई।—सूर।

नवागत–वि० [सं०] नया आया हुआ। जो अभी आया हो।

नवाज–वि० [फा०] कृपा करनेवाला। दया दिखानेवाला।
विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, गरीब-नवाज बंदः नवाज।

नवाजना†*–क्रि० स० [फा० नवाज] कृपा करना। दया दिखलाना।

नवाजिश–संज्ञा स्त्री० [फा०] मेहरबानी। कृपा। दया।

नवाड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की नाव। उ०—लाशों से लोहू की नदी बह निकली, जिसमें भुजाएँ मगर मच्छ सी लगाती थीं, कटे हुए हाथियों के मस्तक घड़ियाल से डूबते

नवमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमेली। (२) नेवारी।

नवमांश-संज्ञा पुं० दे० "नवांश"।

नवमालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण और यगण (।।। ।ऽ। ऽ।। ।ऽऽ) होता है। इसे "नवमालिनी" भी कहते हैं। (२) नेवारी का फूल।

नवमालिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "नवमल्लिका (१)"।

नवमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चांद्र मास के किसी पक्ष की नवीं तिथि।

विशेष—धार्मिक कृत्यों के लिये अष्टमी-विद्धा नवमी ग्राह्य होती है। कुछ विशिष्ट मासों के विशिष्ट पक्ष की नवमी के अलग अलग नाम हैं। जैसे, माघ के शुक्ल-पक्ष की नवमी का नाम महानंदा, चैत्र शुक्ला नवमी का नाम रामनवमी।

नवयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नए अन्न के निमित्त किया जाय।

नवयुवक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नवयुवती] नौजवान। तरुण।

नवयुवा-संज्ञा पुं० [सं०] जवान। तरुण।

नवयोनिन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का न्यास।

नवयौवना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके यौवन का आरंभ हो। नौजवान औरत।

नवरंग-वि० [सं० नव + हिं० रंग] (१) सुंदर। रूपवान्। नई छटावाला। उ०—सूरदास युगभरि बीतत छिनु। हरि नव-रंग कुरंग पीव बिनु।—सूर। (२) नये ढंग का। नवेला। नई शोभायुक्त। उ०—आज बनी नवरंग किसोरी।—सूर।

नवरंगी-वि० [हिं० नवरंग + ई (प्रत्य०)] (१) नित्य नए आनंद करनेवाला। उ०—ऐसे हैं त्रभंगी नवरंगी सुख-दाई री। सूर स्याम बिन न रहौं ऐसी बनि आई री।—सूर। (२) रँगीली। हँसमुख। खुशमिजाज। उ०—नागति बोलहु महावर बेग। लाख टका अरु झूमक सारी देहु दाई को नेग।—सूर।

संज्ञा स्त्री० दे० "नारंगी"।

नवरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूँगा, लहसुनिया, पद्मराग और नीलम ये नौ रत्न या जवाहिर।

विशेष—पुराणानुसार ये नौ रत्न अलग अलग एक एक ग्रह के दोषों की शांति के लिये उपकारी हैं। जैसे, सूर्य के लिये लहसुनिया, चंद्रमा के लिये नीलम, मंगल के लिये मानिक, बुध के लिये पुखराज, बृहस्पति के लिये मोती, शुक्र के लिये हीरा, शनि के लिये नीलम, राहु के लिये गोमेद और केतु के लिये पन्ना।

(२) राजा विक्रमादित्य की एक कल्पित सभा के नौ पंडित जिनके नाम ये हैं—धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।

विशेष—ये सब पंडित एक ही समय में नहीं हुए हैं बल्कि भिन्न भिन्न समयों में हुए हैं। लोगों ने इन सब को एकत्र करके कल्पना कर ली है कि ये सब राजा विक्रमादित्य की सभा के नौरत्न थे।

(३) गले में पहनने का एक प्रकार का हार जिसमें नौ प्रकार के रत्न या जवाहिरात होते हैं।

नवरस-संज्ञा पुं० [सं०] काव्य के नौ रस, यथा शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत।

विशेष—दे० "रस"।

नवरा†-संज्ञा पुं० दे० "नेवला"।

नवराता†-संज्ञा पुं० दे० "नवरात्र"।

नवरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का नौ दिनों तक होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ। (२) चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक के नौ नौ दिन जिनमें लोग नवदुर्गा का व्रत, घटस्थापन तथा पूजन आदि करते हैं।

विशेष—हिंदुओं में यह नियम है कि वे नवरात्र के पहले दिन घटस्थापन करते हैं और देवी का आवाहन तथा पूजन करते हैं। यह पूजन बराबर नौ दिनों तक होता रहता है। नवें दिन भगवती का विसर्जन होता है। कुछ लोग नवरात्र में व्रत भी करते हैं। घट-स्थापन करनेवाले लोग अष्टमी या नवमी के दिन कुमारी-भोजन भी कराते हैं। कुमारी-भोजन में प्रायः नौ कुमारियाँ होती हैं जिनकी अवस्था दो और दस वर्ष के बीच की होती है। इन नौ कुमारियों के कल्पित नाम भी हैं। जैसे—कुमारिका, त्रिमूर्त्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चंडिका, शांभवी, दुर्गा और सुभद्रा। नवरात्र में नव दुर्गा में से नित्य क्रमशः एक एक दुर्गा के दर्शन करने का भी विधान है।

नवराष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश जिसे सहदेव ने दक्षिण की ओर दिग्विजय करते समय जीता था।

नवल-वि० [सं०] (१) नवीन। नूतन। नव्य। नया। (२) सुंदर। (३) जवान। युवा। नवयुवक। (४) उज्ज्वल। शुद्ध। साफ। स्वच्छ।

संज्ञा पुं० [अं० नेवल (जहाजी) ?] माल का किराया जो जहाजवालों को दिया जाता है। (लश०)

नवल-अनंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक।

विशेष—शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि एक प्रकार के विष हैं। इनके व्यवहार से शरीर में एक प्रकार की गरमी उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य का मस्तिष्क क्षुब्ध और उत्तेजित हो उठता है, तथा स्मृति (याद) या धारणा कम हो जाती है। इसी दशा को नशा कहते हैं। साधारणतः लोग मानसिक चिंताओं से छूटने या शारीरिक शिथिलता दूर करने के अभिप्राय से मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं। बहुत से लोग इन द्रव्यों के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे नित्य प्रति इनका व्यवहार करते हैं। साधारण नशे की अवस्था में चित्त में अनेक प्रकार की उमंगें उठती हैं, बहुत सी नई नई और विलक्षण बातें सूझती हैं और चित्त कुछ प्रसन्न रहता है। लेकिन जब नशा बहुत हो जाता है तब मनुष्य के करने लग जाता है अथवा बेहोश हो जाता है।

मुहा०—नशा उतरना = नशे का न रहना। मादक द्रव्य के प्रभाव का नष्ट हो जाना। नशा किरकिरा हो जाना = किसी अप्रिय बात के होने के कारण नशे का मजा बीच में बिगड़ जाना। नशे का बीच में ही उतर जाना। नशा चढ़ना = नशा होना। मादक द्रव्य का प्रभाव होना। (आँखों में) नशा छाना = नशा चढ़ना। मस्ती चढ़ना। नशा जमना = अच्छी तरह नशा होना। नशा टूटना = नशा उतरना। नशा हिरन होना = किसी असंभावित घटना आदि के कारण नशे का बिलकुल उतर जाना।

(२) वह चीज जिससे नशा हो। मादक द्रव्य। नशा चढ़ानेवाली चीज।

यौ०—नशा-पानी = मादक द्रव्य और उसकी सब सामग्री। नशे का सामान।

(३) धन विद्या, प्रभुत्व या रूप आदि का घमंड। अभिमान। मद। गर्व।

मुहा० नशा उतारना = घमंड दूर होना।

नशाखोर—संज्ञा पु० [फा०] वह जो किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। नशेबाज।

नशाना*—क्रि० स० [सं० नश] नष्ट करना। बरबाद करना। बिगाड़ डालना। नष्ट करना।

‡क्रि० अ० खो जाना।

नशावन*†—वि० [सं० नाश] नाश करना।

विशेष—समास में 'नष्ट करनेवाला' अर्थ भी होता है।

नशीन—वि० [फा०] बैठनेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, गद्दीनशीन। तख्तनशीन।

नशीनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] बैठने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे तख्तनशीनी, गद्दीनशीनी।

नशीला—वि० [फा० नशा + ईला (प्रत्य०)] (१) नशा उत्पन्न करनेवाला। नशा लानेवाला। मादक। (२) जिस पर नशे का प्रभाव हो।

मुहा०—नशीली आँखें = वे आँखें जिनमें मस्ती छाई हो। मदमत्त आँखें।

नशेबाज—संज्ञा पु० [फा०] वह जो बराबर किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। वह जिसे कोई नशा करने की आदत हो।

नशोहर्†—वि० [सं० नाश + ओहर] नाश करनेवाला। उ०—सुमति सृष्टि कर निपुन विधाता। विघन नशोहर विमल विधाता।—रघुराज।

नश्तर—संज्ञा पु० [फा०] एक प्रकार का बहुत तेज छोटा चाकू जिसका अगला भाग नुकीला और टेढ़ा होता है और प्रायः जिसके दोनों ओर धार रहती है। इसका व्यवहार फोड़े आदि चीरने और फसद खोलने में होता है।

मुहा०—नश्तर देना या लगाना = नश्तर से फोड़ा चीरना। नश्तर लगना = फोड़े का चीरा जाना।

नश्यप्रसूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका बच्चा मर गया हो। मृतपुत्रिका।

नश्वर—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला। जो नष्ट हो जाय या जो नष्ट हो जाने के योग्य हो। जो ज्यों का त्यों न रहे। जैसे, शरीर नश्वर होता है।

नश्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नश्वर होने का भाव।

नष*—संज्ञा पु० दे० "नख"।

नषत*—संज्ञा पु० दे० "नक्षत्र"।

नष-शिष*—संज्ञा पु० दे० "नख-शिख"।

नष्ट—वि० [सं०] (१) जो अदृश्य हो। जो दिखाई न दे। (२) जिसका नाश हो गया हो। जो बरबाद हो गया हो। जो बहुत दुर्दशा को पहुँच गया हो। जैसे, आग लगने के कारण सारा महल्ला नष्ट हो गया। (३) अधम। नीच। बहुत बड़ा दुराचारी या पापी। (४) निष्फल। व्यर्थ। (५) धनहीन। दरिद्र।

विशेष—यौगिक में यह शब्द पहले लगता है। जैसे नष्टवीर्य्य, नष्टबुद्धि।

नष्टचंद्र—संज्ञा पु० [सं०] भादों महीने के दोनों पक्षों की चतुर्थी को दिखाई पड़नेवाला चंद्रमा जिसका दर्शन पुराणानुसार निषिद्ध है। कहते हैं कि उस दिन चंद्रमा को देखने से कोई न कोई कलंक या अपवाद लगता है। कुछ लोग केवल भादों शुक्ल चतुर्थी के चंद्रमा को ही नष्ट चंद्रमा मानते हैं।

नष्टचित्त—वि० [सं०] उन्मत्त।

उछलते जाते थे। बीच बीच रथ बड़े नवाड़े से बढ़े जाते थे।—छत्रलाल।

नवाना—क्रि० स० [सं० नवन या नम] झुकाना। विनीत करना। जैसे, सिर नवाना।

नवान्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) फसल का नया आया हुआ अनाज। (२) एक प्रकार का श्राद्ध जो प्राचीन काल में नया अन्न तैयार होने पर पितरों के उद्देश्य से होता था। (३) ताजा पकाया या रींधा हुआ अन्न।

नवाब—संज्ञा पुं० [अ० नव्वाब] (१) बादशाह का प्रतिनिधि जो किसी बड़े प्रदेश के शासन के लिये नियुक्त हो। भारत में इसका प्रयोग पहले पहल मुगल सम्राटों के समय उनके प्रतिनिधियों के लिये हुआ था। जैसे, लखनऊ के नवाब, सूरत के नवाब। (२) एक उपाधि जो आज कल छोटे-मोटे मुसलमानी राज्यों के मालिक अपने नाम के साथ लगाते हैं। जैसे, रामपुर के नवाब। (३) एक उपाधि जो भारतीय मुसलमान अमीरों को अंगरेजी सरकार की ओर से मिलती है और जो प्रायः राजा की उपाधि के समान होती है।

वि० बहुत शान शौकत और अमीरी ढंग से रहने तथा खूब खर्च करनेवाला। जैसे, (क) जब से उनके बाप मर गए हैं तब से वे नवाब बन गए हैं। (ख) ऐसे नवाब मत बनो नहीं तो साल दो साल में भीख माँगने लगोगे।

नवाबज़ादा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) नवाब का पुत्र। नवाब का बेटा। (२) वह जो बहुत बड़ा शौकीन हो। (व्यंग्य)

नवाबपसंद—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का धान जो भादों के अंत या क्वार के आरंभ में तैयार होता है।

नवाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नवाब + ई (प्रत्य०)] (१) नवाब का पद। (२) नवाब का काम। (३) नवाब होने की दशा। (४) नवाबों का राजत्वकाल। जैसे, नवाबी में अवध की हालत कुछ और ही थी। (५) नवाबों की सी हुकूमत। जैसे, चुपचाप बैठो, यहाँ तुम्हारी नवाबी नहीं चलेगी। (६) बहुत अधिक अमीरी या अमीरों का सा अपव्यय। जैसे, अभी कहीं से सौ दो सौ रुपए उन्हें मिल जाँय, फिर देखिए उनकी नवाबी। (७) एक प्रकार का कपड़ा जिसे पहले अमीर लोग पहना करते थे।

नवारना—क्रि० अ० [?] (१) चलना। टहलना। (२) यात्रा करना। सफर करना।

नवारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी नाव।

नवारी—संज्ञा स्त्री० दे० "नेवारी"।

नवासा—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० नवासी] बेटी का बेटा। दौहित्र।

नवासी—वि० [सं० नवाशीति] नौ और अस्सी। एक कम नब्बे।

संज्ञा पुं० नौ और अस्सी की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८९।

नवाह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण का वह पाठ जो नौ दिन में समाप्त किया जाता है। (२) किसी सप्ताह, पक्ष, मास या वर्ष आदि का नया दिन।

नवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गाय के पैर में बछड़े का गला बाँधकर दूध दुहते हैं। नोई।

नवीन—वि० [सं०] (१) जो अभी का या थोड़े समय का हो। "प्राचीन" का उलटा। हाल का। ताजा। नया। नूतन। (२) विचित्र। अपूर्व। (३) [स्त्री० नवीना] नवयुवक। तरुण। जवान।

नवीनता—संज्ञा स्त्री० [सं० नवीनत्व] नूतनत्व। नूतनता। नवीन या नया होने का भाव।

नवीस—संज्ञा पुं० [फा०] लिखनेवाला। लेखक। कातिब।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, अरजीनवीस।

नवीसी—संज्ञा स्त्री० [फा०] लिखाई। लिखने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है। जैसे, अरजीनवीसी।

नवेद—संज्ञा स्त्री० [सं० निवेदन] (१) निमंत्रण। न्योता। (२) वह चिट्ठी जिसमें न्योता लिख कर भेजा जाय। निमंत्रणपत्र।

नवेला—वि० [सं० नवल] [स्त्री० नवेली] (१) नवीन। नया। (२) तरुण। जवान।

नवेली—वि० स्त्री० [सं० नवल] नई उमर की। तरुणी।

संज्ञा स्त्री० नई स्त्री। युवती। तरुणी।

नवोढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नव विवाहिता स्त्री। वधू। (२) नवयौवना। युवती स्त्री। (३) साहित्य में मुग्धा के अंतर्गत ज्ञातयौवना नायिका का एक भेद। वह नायिका जो लज्जा और भय के कारण नायक के पास न जाना चाहती हो।

नवोद्धृत—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन।

नव्य—वि० [सं०] (१) नया। नूतन। नवीन। ताजा। (२) स्तुति करने के योग्य।

संज्ञा पुं० [सं०] गदहपूर्ना। रक्त पुनर्नवा।

नव्वाब—संज्ञा पुं० दे० "नवाब"।

नव्वाबी—संज्ञा स्त्री० दे० "नवाबी"।

नशना*—क्रि० अ० [सं० नाश] नष्ट होना। बरबाद होना। बिगड़ जाना।

नशा—संज्ञा पुं० [फा० या अ० ?] (१) वह अवस्था जो शराब, भाँग, अफीम, या गाँजा आदि मादक द्रव्य खाने या पीने से होती है। मादक द्रव्य के व्यवहार से उत्पन्न होनेवाली दशा।

लिखने का वह ढंग जिसमें अक्षर खूब साफ और सुंदर होते हैं। 'घसीट' या 'शिकस्त' का उलटा। (२) वह जिसका रंग ढंग बहुत अच्छा और सुंदर हो।

नसना°†–क्रि० अ० [सं० नशन] (१) नष्ट होना। बरबाद होना। (२) बिगड़ जाना। खराब हो जाना।

क्रि० अ० [पं०, मि० हिं० नटना] भागना। दौड़ना।

नसफाड़–संज्ञा पुं० [हिं० नस + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके पैर सूज जाते हैं।

नसर–संज्ञा स्त्री० [अ०] गद्य। पद्य या नज़्म का उलटा।

नसरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की मधुमक्खी। (२) इस मक्खी के छत्ते का मोम। विशेष—दे० "कुतली"।

नसल–संज्ञा स्त्री० [अ०] वंश। खानदान।

नसवार–संज्ञा स्त्री० [हिं० नास + वार (प्रत्य०)] सूँघने के लिये तमाकू के पीसे हुए पत्ते। सुँघनी। नास।

नसहा†–संज्ञा पुं० [हिं० नस + हा (प्रत्य०)] जिसमें नसें हों।

नसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नासा। नाक।

† संज्ञा पुं० दे० "नशा"।

नसाना°†–क्रि० अ० [सं० नाश] (१) नाश को प्राप्त होना। नष्ट हो जाना। (२) बिगड़ जाना। खराब हो जाना।

नसावना‡–क्रि० अ० दे० "नसाना"।

नसी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुसी की नोक। हल के फार की नोक।

नसीठा–संज्ञा पुं० [देश०] बुरा शकुन। असगुन।

नसीनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। ज़ीना। निसेनी।

नसीपूजा–संज्ञा पुं० [हिं० नसी = कुसी का नोक + पूजा] हल की पूजा जो बोने के मौसिम के पीछे की जाती है। हल-पूजा।

नसीब–संज्ञा पुं० [अ०] भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। तकदीर।

मुहा०—किसी को नसीब होना = किसी को प्राप्त होना। जैसे, ऐसा मकान तुम्हें नसीब कहाँ है? ("नसीब" के बाकी मुहाविरों के लिये देखो "किस्मत" के मुहा०)

नसीबजला–वि० [अ० नसीब + हिं० जलना] जिसका भाग्य खराब हो। अभागा।

नसीबवर–वि० [अ०] भाग्यवान। सौभाग्यशाली। जिसका नसीब अच्छा हो।

नसीबा†–संज्ञा पुं० दे० "नसीब"।

नसीम–संज्ञा पुं० [अ] ठंढी, धीमी और बढ़िया हवा।

नसीला†–वि० [हिं० नस + ईला (प्रत्य०)] जिसमें नसें हों। नसदार।

† वि० दे० "नशीला"।

नसीहत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) उपदेश। शिक्षा। सीख। (२) अच्छी सम्मति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

नसोहा†–संज्ञा पुं० [देश०] मुलायम मिट्टी के जोतने के लिये हलका हल।

नसूड़िया†–वि० [हिं० नासूर + इया (प्रत्य०)] जिसके देखने, छूने अथवा किसी प्रकार के संबंध से कोई दोष या हानि हो। मनहूस। जैसे, तुम हर एक चीज में बिना अपना नसूड़िया हाथ लगाए नहीं मानते।

नसूर–संज्ञा पुं० दे० "नासूर"।

नस्त–संज्ञा पुं० [सं०] नाक।

नस्तकरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार भिषु लोग नाक में दवा डालने के लिये करते थे।

नस्तरन–संज्ञा पुं० [फा०] सफेद गुलाब। सेवती। (२) एक प्रकार का कपड़ा।

नस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुओं की नाक का छेद जिसमें रस्सी डाली जाती है।

नस्तित, नस्तोत–संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसकी नाक में छेद करके रस्सी डाली जाय। जैसे, बैल ऊँट आदि।

नस्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नास। सुँघनी। (२) बैलों की नाक की रस्सी। नाथ। (३) घी आदि में बनी हुई वह दवा या चूर्ण आदि जिसे नाक के रास्ते दिमाग में चढ़ाते हैं। यह दो प्रकार का होता है। दे० शिरोविरेचन और स्नेहन।

नस्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाक। (२) नाक का छेद।

नस्याधार–संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें सुँघनी रखी जाती है। नासदानी।

नस्योत–संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसकी नाक में रस्सी आदि डालने के लिये छेद किया गया हो।

नस्वर°†–वि० दे० "नश्वर"।

नहँ–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो संयुक्त प्रदेश में होता है।

‡ संज्ञा पुं० दे० "नाखून"।

नहछू–संज्ञा पुं० [सं० नखक्षौर] विवाह की एक रस्म जिसमें वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है।

नहट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० नहँ = नाखून] नाखून से की हुई खरोंच। नखक्षत।

नहन–संज्ञा पुं० [देश०] पुरवट खींचने की मोटी रस्सी। नार। उ०—चलनि कहनि विहँसनि रहनि गहनि सहनि सब ठाम। चहनि नेह की नहनि सों कियो जगत बस राम।—रघुराज।

नहना°† क्रि० [हिं० नाधना] नाधना। लगाना। जोतना। काम में तत्पर करना। उ०—पसु ज्यों पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत।—तुलसी।

नहन्नी†–संज्ञा स्त्री० दे० "नहरनी"।

नष्टचेतन–संज्ञा पुं० [सं०] अचेत । बेहोश । बेखबर ।

नष्टचेष्ट–वि० [सं०] जिसकी चेष्टा या गति नष्ट हो गई । जिसमें हिलने डोलने की शक्ति न रह गई हो ।

नष्टचेष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्च्छा । बेहोशी । (२) प्रलय । (३) एक प्रकार का सात्विक भाव ।

नष्टजन्मा–संज्ञा पुं० [सं० नष्टजन्मन्] जारज । वर्णसंकर । दोगला ।

नष्टजातक–संज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार की क्रिया या उपाय जिसके अनुसार ऐसे मनुष्य की जन्म-कुंडली आदि बनाई जाती है जिसके जन्म के समय और तिथि आदि का कुछ भी पता नहीं रहता ।

नष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नष्ट होने का भाव । (२) वाहियापन । दुराचारिता ।

नष्टदृष्टि–वि० [सं०] जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो । अंधा । दृष्टिहीन ।

नष्टप्रभ–वि० [सं०] तेजोहीन । कांतिरहित ।

नष्टबुद्धि–वि० [सं०] मूर्ख । मूढ़ । बेवकूफ । बुद्धिहीन ।

नष्ट भ्रष्ट–वि० [सं०] जो बिलकुल टूट फूट या नष्ट हो गया हो ।

नष्टराज्य–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम ।

नष्टरूपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुष्टुप् छंद के एक भेद का नाम ।

नष्टविष–वि० [सं०] (वह जहरीला जानवर) जिसका विष नष्ट हो गया हो ।

नष्टबीज–वि० [सं०] फसल या अन्न जो बोने पर न उगा हो ।

नष्टशुक्र–वि० [सं०] जिसका वीर्य्य नष्ट हो गया हो ।

नष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेश्या । रंडी । (२) व्यभिचारिणी । कुलटा ।

नष्टाग्नि–संज्ञा पुं० [सं०] वह साग्निक ब्राह्मण या द्विज जिसके यहाँ की अग्नि प्रमाद या आलस्य के कारण लुप्त हो गई हो ।

नष्टात्मा–वि० [सं०] दुष्ट । खल ।

नष्टाप्तिसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] खोई हुई चीजों का कुछ अंश मिलना जिससे बाकी चीजों का भी सूत्र मिले ।

नष्टार्थ–वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो । दरिद्र ।

नष्टाश्वदग्धरथन्याय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसका तात्पर्य है दो आदमियों का इस प्रकार मिलकर काम करना जिसमें दोनों एक दूसरे की चीजों का उपयोग करके अपना अपना उद्देश्य सिद्ध करें ।

विशेष—यह न्याय निम्नलिखित घटना अथवा कहानी के आधार पर है । दो आदमी अलग अलग रथ पर सवार होकर किसी वन में गए । वहाँ संयोगवश आग लगने के कारण एक आदमी का रथ जल गया और दूसरे का घोड़ा जल गया । कुछ समय के उपरांत जब दोनों मिले तब एक के पास केवल घोड़ा और दूसरे के पास केवल रथ था । उस समय दोनों ने मिलकर एक दूसरे की चीज का उपयोग किया । घोड़ा रथ में जोता गया और वे दोनों निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच गए ।

नष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश । विनाश । बरबादी ।

नसंक*†–वि० [सं० निःशंक] निर्भय । निडर । बेखौफ ।

नस–संज्ञा स्त्री० [सं० स्नायु] (१) शरीर के भीतर तंतुओं का वह बंध या लच्छा जो पेशियों के छोर पर उन्हें दूसरी पेशियों या अस्थि आदि कड़े स्थानों से जोड़ने के लिये होता है (जैसे, घोड़ानस) । साधारण बोल चाल में कोई शरीरतंतु या रक्तवाहिनी नली ।

विशेष—नसों के तंतु दृढ़ और चीमड़ होते हैं, लचीले नहीं होते । वे खींचने से बढ़ते नहीं । नसें शरीर की सबसे दृढ़ और मजबूत सामग्री हैं । कभी कभी वे ऐसे आघात से भी नहीं टूटतीं जिनसे हड्डियाँ टूट जाती और पेशियाँ कट जाती हैं ।

मुहा०—नस चढ़ना या नस पर नस चढ़ना = खिंचाव, दबाव या झटके आदि के कारण शरीर में किसी स्थान की विशेषतः पैर की पिंडली या बाँह की किसी नस का अपने स्थान से इधर उधर हो जाना या बल खा जाना जिसके कारण उस स्थान पर तनाव और पीड़ा होती है और कभी कभी सूजन भी हो जाती है । नसें ढीली होना = थकावट आना । शिथिलता होना । पस्त होना । नस नस में = सारे शरीर में । सर्वांग में । जैसे, उनकी नस नस में शरारत भरी पड़ी है । नस नस फड़क उठना = बहुत अधिक प्रसन्नता होना । अति आनंद होना । उमंग होना । जैसे, आपके चुटकुले सुनकर तो नस नस फड़क उठती है । नस भड़कना = (१) दे० "नस चढ़ना" । (२) पागल होना ।

यौ०—घोड़ानस = पैर की वह बड़ी नस जो पीछे की ओर पिंडली के नीचे होती है । इसके कट जाने से बहुत अधिक खून बहता है जिससे लोग कहते हैं कि आदमी मर जाता है ।

(२) लिंग । पुरुष की मूत्रेंद्रिय । (क्व०)

मुहा०—नस या नसें ढीली पड़ जाना = लिंगेंद्रिय का शिथिल हो जाना । पुंसत्व की कमी हो जाना ।

(३) पतले रेशे या तंतु जो पत्तों में बीच बीच में होते हैं ।

नसकटा–संज्ञा पुं० [हिं० नस = लिंग + कटना] नपुंसक । हिजड़ा ।

नसतरंग–संज्ञा पुं० [हिं० नस + तरंग] शहनाई के आकार का पीतल का एक प्रकार का बाजा जिसके पतले सिरे पर एक छोटा सा छेद होता है । इस छेद पर मकड़ी के अंडों के ऊपर सफेद छत्ता रखते हैं, फिर उस सिरे को गले की घंटी के पास की नसों पर रखकर गले से स्वर भरते हैं जिससे उस बाजे में शब्द उत्पन्न होता है । ऐसे दो बाजे गले की घंटी के दोनों ओर रखकर एक साथ ही बजाए जाते हैं ।

नसतालीक–संज्ञा पुं० [अ०] (१) फारसी या अरबी लिपि

नहार रहना=भूखे रहना। बिना अन्न के रहना। उपवास करना।

नहारी-संज्ञा स्त्री० [फा० नहार] (१) वह हलका भोजन जो सवेरे किया जाता है। जलपान। कलेवा। नाश्ता। (२) वह गुड़ या गुड़-मिला आटा जो घोड़े को सवेरे, अथवा आधा रास्ता पार कर लेने पर खिलाया जाता है। (एक्केवान)। (३) मुसलमानों के यहाँ बननेवाला एक प्रकार का शोरबेदार सालन जो रात भर पकता है और जिसके साथ सवेरे खमीरी रोटी खाई जाती है।

नहिं॰-अव्य० दे० "नहीं"।

नहिअन†-संज्ञा पुं० [हिं० नँह=नख] बिछिया की तरह का एक गहना जो पैर की छोटी उँगली में पहना जाता है।

नहियाँ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० नँह=नख] बिछिया की तरह का एक गहना जिसे नहिअन भी कहते हैं।

नहिरनी-संज्ञा स्त्री० दे० "नहरनी"।

नहीं-अव्य० [सं० नहि] एक अव्यय जिसका व्यवहार निषेध या अस्वीकृति प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, (क) उन्होंने हमारी बात नहीं मानी। (ख) प्रश्न—आप वहाँ जायँगे ? उत्तर—नहीं।

मुहा०—नहीं तो=उस दशा में जब कि यह बात न हो। इसके न होने की दशा में। जैसे, आप सवेरे ही मेरे पास पहुँच जाइएगा, नहीं तो मैं भी न आऊँगा। नहीं सही=यदि यह बात न हो तो कोई चिंता नहीं। यदि ऐसा न हो तो कोई परवा या हानि नहीं। जैसे, (क) अगर वे नहीं आते हैं तो नहीं सही। (ख) यदि आप न पढ़ें तो नहीं सही।

नहुष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अयोध्या के एक प्राचीन इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम जो अंबरीष का पुत्र और ययाति का पिता था। महाभारत में इसे चंद्रवंशी आयु राजा का पुत्र माना है। पुराणानुसार यह एक बड़ा प्रतापी राजा था। जब इंद्र ने वृत्रासुर को मारा था उस समय इंद्र को ब्रह्महत्या लगी थी। इसके भय से इंद्र १००० वर्ष तक कमलनाल में छिप कर रहा था। उस समय इंद्रासन शून्य देख गुरु बृहस्पति ने इसको योग्य जान कुछ दिनों के लिये इंद्र-पद दिया था। उस अवसर पर इंद्राणी पर मोहित होकर इसने उसे अपने पास बुलाना चाहा। तब बृहस्पति की सम्मति से इंद्राणी ने कहला दिया कि "पालकी पर बैठ कर सप्तर्षियों के कंधे पर हमारे यहाँ आओ तब हम तुम्हारे साथ चलें"। यह सुन राजा ने तदनुसार ही किया और घबराहट में आकर सप्तर्षियों से कहा—सर्प, सर्प, (जल्दी चलो)। इस पर अगस्त्य मुनि ने शाप दे दिया कि 'तू सर्प हो जा'। तब यह वहाँ से पतित होकर बहुत दिनों तक सर्प योनि में रहा। महाभारत में लिखा है कि पांडव लोग जब द्वैत वन में रहते थे तब एक बार भीम शिकार खेलने गए थे। उस समय उन्हें एक बहुत बड़े साँप ने पकड़ लिया। जब इनके लौटने में देर हुई तब युधिष्ठिर इन्हें ढूँढने निकले। एक स्थान पर इन्होंने देखा कि एक बड़ा साँप भीम को पकड़े हुए है। इनके पूछने पर साँप ने कहा कि मैं महाप्रतापी राजा नहुष हूँ; महर्षि, देवता, राक्षस और पन्नग आदि मुझे कर देते थे। महर्षि लोग मेरी पालकी उठा कर चला करते थे। एक बार अगस्त्य मुनि मेरी पालकी उठाए हुए थे, उस समय मेरा पैर उन्हें लग गया जिससे उन्होंने मुझे शाप दिया कि जाओ, तुम साँप हो जाओ। मेरे बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि इस योनि से राजा युधिष्ठिर तुम्हें मुक्त करेंगे। इसके बाद उसने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न भी किए थे जिनका इन्होंने यथेष्ट उत्तर दिया था। इसके उपरांत साँप ने भीम को छोड़ दिया और दिव्य शरीर धारण करके स्वर्ग को प्रस्थान किया। (२) एक नाग का नाम। (३) एक ऋषि का नाम जो मनु के पुत्र और ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्रष्टा माने जाते हैं। (४) पुराणानुसार कुशिकवंशी एक ब्राह्मण राजा का नाम। (५) एक राजर्षि का नाम जिनका उल्लेख ऋग्वेद में है। (६) हरिवंश के अनुसार एक मरुत् का नाम। (७) विष्णु का एक नाम। (८) मनुष्य। आदमी।

नहुषाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] तगर पुष्प।

नहूर-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भेड़ जो तिब्बत में होती है और कभी कभी नैपाल में भी आ जाती है। बहुत बर्फ पड़ने पर इसके झुंड पर्वत की चोटी से उतर कर सिंधु नदी के किनारे तक भी आ जाते हैं।

नहूसत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मनहूस होने का भाव। उदासीनता। खिन्नता। मनहूसी। जैसे, आपके चेहरे से नहूसत बरसती है।

क्रि० प्र०—टपकना।—बरसना।

(२) अशुभ लक्षण।

नाँउँ-संज्ञा पुं० दे० "नाम"।

नाँगा-वि० दे० "नंगा"।

संज्ञा पुं० [हिं० नंगा] एक प्रकार के साधु जो नंगे ही रहते हैं।

नाँगी-वि० स्त्री० "नंगी"। उ०—तुम यह बात असंभव भाषत नाँगी आवहु नारी।—सूर।

नाँघना†॰-क्रि० स० [सं० लंघन] लाँघना। इस पार से उस पार कूद कर जाना। उ०—जो नाँघइ सत जोजन सागर। करै सो राम काज मति आगर।—तुलसी।

नाँठना॰-क्रि० अ० [सं० नष्ट] नष्ट होना। बिगड़ जाना। उ०—मुनि अति बिकल मोह मति नाँठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।—तुलसी। विशेष—दे० "नाठना"।

नहर-संज्ञा स्त्री० [फा०] वह कृत्रिम नदी या जलमार्ग जो खेतों की सिंचाई या यात्रा आदि के लिये तैयार किया जाता है। जल बहाने के लिये खोद कर बनाया हुआ रास्ता। उ० -(क) राम प्ररु यादवन सुभट ताके हते रुधिर के नहर सरिता बहाई।—सूर। (ख) बाग तड़ाग सुहावन लागे। जल की नहर सकल महि भागे।—रघुराज।

मुहा०—नहर काटना या खोदना=नहर तैयार करना।

विशेष—साधारणतः एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी ले जाने, खेत सींचने आदि के लिये नदियों में जोड़ कर जल मार्ग तैयार किया जाता है। बड़ी बड़ी नहरें प्रायः साधारण नदियों के समान हुआ करती हैं और इनमें बड़ी बड़ी नावें चलती हैं। कहीं कहीं दो झीलों या बड़े जलाशयों का पानी मिलाने के लिये भी नहरें बनाई जाती हैं।

नहरनी-संज्ञा स्त्री० [सं नखहरणी] (१) हज्जामों का एक औजार जो लोहे का एक लंबा गोल टुकड़ा होता है और जिसका एक सिरा चपटा और धारदार होता है। इससे नाखून काटे जाते हैं। (२) इसी आकार का पोस्ते की ढोंढ़ी चीरने का एक औजार।

नहरम-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो भारतवर्ष की सब नदियों में पाई जाती है। पहाड़ी झरनों में यह अधिकता से होती है।

नहरी-संज्ञा स्त्री० [फा० नहर+ई (प्रत्य०)] वह जमीन जो नहर के पानी से सींची जाय।

†संज्ञा स्त्री० नेहर।

नहरुआ-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है। पानी के साथ एक विशेष प्रकार के कीड़े के शरीर में प्रविष्ट हो जाने के कारण यह रोग होता है। इसमें पहले किसी स्थान पर सूजन होती है। फिर छोटा सा घाव होता है और तब उस घाव में से डोरी की तरह का कीड़ा धीरे धीरे निकलने लगता है जो प्रायः गजों लंबा होता है। इस रोग से कभी कभी पैर आदि अंग बेकाम हो जाते हैं।

विशेष—दे० "नारू"।

नहरुवा, नहरू-संज्ञा पुं० दे० "नहरुआ"।

नहला-संज्ञा पुं० [हिं० नौ] ताश के खेल में वह पत्ता जिस पर नौ चिह्न या बूटियाँ हों।

संज्ञा पुं० [देश०] करनी की तरह का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

नहलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० नहलाना+ई (प्रत्य०)] (१) नहलाने की क्रिया या भाव। (२) वह धन जो नहलाने के बदले में दिया जाय।

नहलाना-क्रि० स० [हिं० नहना का स० रूप] दूसरे को स्नान में प्रवृत्त करना। स्नान कराना। नहवाना।

नहवाना-क्रि० स० दे० "नहलाना"।

नहसुत-संज्ञा पुं० [सं० नखक्षत] नख की रेखा। नाखून का निशान। उ० -नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै दृगद्वार अगोट।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० नख=एक पेड़] पलाश की तरह का एक पेड़ जिसे फरहद भी कहते हैं। दे० "फरहद"।

नहाँ-संज्ञा पुं० [देश०] (१) पहिए के ठीक बीच का सूराख जिसमें धुरी पहनाई जाती है। (२) † घर के आगे का आँगन।

†संज्ञा पुं० दे० "नाखून"।

नहान-संज्ञा पुं० [सं० स्नान] (१) नहाने की क्रिया। जैसे, कुंभ का नहान, छट्ठी का नहान। (२) स्नान का पर्व।

क्रि० प्र० —लगना।—होना।

नहाना-क्रि० अ० [सं० स्नान, प्रा० हाण्, बुंदे० हनाना] (१) पानी के स्रोत में, बहती हुई धार के नीचे या सिर पर से पानी ढाल कर शरीर को स्वच्छ करने या उसकी शिथिलता दूर करने के लिये उसे धोना। स्नान करना।

संयो० क्रि०—डालना।

मुहा०—दूधों नहाना पूतों फलना=धन और परिवार से पूर्ण होना। (आशीर्वाद)

विशेष—शरीर में जितने रोमकूप हैं, नहाने से उन सब का मुँह खुल और साफ हो जाता है और शरीर की थकावट दूर हो जाती है। भारत सरीखे गरम देशों में लोग नित्य सवेरे उठ कर शौच आदि से निवृत्त होकर नहाते हैं और कभी सवेरे और संध्या दोनों समय नहाते हैं। पर ठंढे देशों के लोग प्रायः नित्य नहीं नहाते, सप्ताह में एक या दो बार नहाते हैं।

(२) रजोधर्म से निवृत्त होने पर स्त्री का स्नान करना। (३) किसी तरल पदार्थ से सारे शरीर का आप्लुत हो जाना। शराबोर हो जाना। बिलकुल तर हो जाना। जैसे, पसीने से नहाना, खून से नहाना।

विशेष—इस अर्थ में "नहाना" शब्द के साथ प्रायः "उठना" या "जाना" संयोज्य क्रिया लगाई जाती है।

नहानी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० नहाना] (१) रजस्वला स्त्री। (२) स्त्री का रजस्वला होना।

नहार-वि० [फा०, मि० सं० निराहार] जिसने सवेरे से कुछ खाया न हो। जिसने जलपान आदि कुछ न किया हो। बासी-मुँह।

मुहा०—नहार तोड़ना=जलपान करना। सवेरे के समय हलका भोजन करना। नहार मुहँ=बिना जलपान आदि किए हुए।

भी बहुत कुछ साधन होता है तथा कपाल के भीतरी कोशों में इकट्ठा होनेवाला मल और आँख का आँसू भी निकलता है। जीव-विज्ञानियों का कहना है कि उठी हुई नाक मनुष्य की उन्नत जातियों का चिह्न है, हबशी आदि असभ्य जातियों की नाक बहुत चिपटी होती है।

यौ०—नाकघिसनी = विनती और गिड़गिड़ाहट। नाककटी या नाककटाई = अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। नाकबंद = घोड़े की पूजी।

मुहा०—नाक कटना = प्रतिष्ठा नष्ट होना। इज्जत जाना। नाक कटाना = प्रतिष्ठा नष्ट कराना। इज्जत बिगड़वाना। नाक काटना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगाड़ना। नाक काटकर चूतड़ों तले रख लेना = लोक लज्जा छोड़ देना। निर्लज्ज हो जाना। अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान छोड़ लज्जाजनक कार्य्य करना। बेहयाई करना। नाक कान काटना = कड़ा दंड देना। नाक का बाँसा = दोनों नथुनों के बीच का परदा। नाक का बाँसा फिर जाना = नाक का बाँसा टेढ़ा हो जाना जो मरने का लक्षण समझा जाता है। (किसी की) नाक का बाल = वह जिसका किसी पर बहुत अधिक प्रभाव हो। सदा साथ रहनेवाला घनिष्ठ मित्र या मंत्री। वह जिसकी सलाह से सब काम हो। नाक की सीध में = ठीक सामने। बिना इधर उधर मुड़े। नाक घिसना = दे० "नाक रगड़ना"। नाक चढ़ना = क्रोध आना। त्योरी चढ़ना। नाक चढ़ाना = (१) क्रोध से नथुने फुलाना। क्रोध की आकृति प्रगट करना। क्रोध करना। (२) घिन करना। घृणा प्रकट करना। अरुचि दिखाना। नापसंद करना। तुच्छ समझना। नाकों चने चबवाना = खूब तंग करना। हैरान करना। नाक चोटी काटकर हाथ देना = (१) कठिन दंड देना। (२) दुर्दशा करना। अपमान करना। नाक चोटी काटना = कड़ा दंड देना। नाक तक खाना = बहुत ठूँस कर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक तक भरना = (१) मुँह तक भरना (बरतन आदि को)। (२) खूब ठूँस कर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक न दी जाना = बहुत दुर्गंध आना। बहुत बदबू मालूम होना। नाक पर उँगली रखकर बात करना = औरतों की तरह बात करना। नाक पकड़ते दम निकलना = इतना दुर्बल होना कि छू जाने से भी मरने का डर हो। बहुत अशक्त होना। नाक पर गुस्सा होना = बात बात पर क्रोध आना। चिड़चिड़ा स्वभाव होना। (कोई वस्तु) नाक पर रख देना = तुरंत सामने रख देना। चट दे देना। (जब कोई अपने रुपए या और किसी वस्तु को कुछ बिगाड़ कर माँगता है तब उसके उत्तर में ताव के साथ लोग ऐसा कहते हैं)। नाक पर दीया बाल कर आना = सफलता प्राप्त करके आना। मुख उज्ज्वल करके आना। (व्यं०), चाहे इधर से नाक पकड़ो चाहे उधर से = चाहे जिस तरह कहो या करो बात एक ही है। नाक पर पहिया फिर जाना = नाक चिपटी होना। नाक इधर कि नाक उधर = हर तरह से एक ही मतलब। नाक पर मक्खी न बैठने देना = (१) बहुत ही खरी प्रकृति का होना। थोड़ा सा भी दोष या त्रुटि न सह सकना। (२) बहुत साफ रहना। जरा सा दाग न लगने देना। (३) किसी का थोड़ा निहोरा भी न लेना। जरा सा एहसान भी न उठाना। (किसी की) *नाक पर सुपारी तोड़ना = खूब तंग करना।* नाक फटने लगना = असह्य दुर्गंध आना। नाक बैठना = नाक का चिपटा हो जाना। नाक बहना = नाक में से कपाल कोशों का मल निकलना। नाक बींधना = नथनी आदि पहनाने के लिये नाक में छेद करना। नाक भौं चढ़ाना या नाक भौं सिकोड़ना = (१) अरुचि और अप्रसन्नता प्रकट करना। (२) घिनाना और चिढ़ना। नापसंद करना। नाक में दम करना या नाक में दम लाना = खूब तंग करना। बहुत हैरान करना। बहुत सताना। नाक मारना = घृणा प्रकट करना। घिन करना। नापसंद करना। नाक में तीर करना या नाक में तीर डालना = खूब तंग करना। बहुत सताना या हैरान करना। नाक में तीर होना = बहुत हैरान होना। बहुत सताया जाना। नाक रगड़ना = बहुत गिड़गिड़ाना और विनती करना। मिन्नत करना। नाक रगड़े का बच्चा = वह बच्चा जो देवताओं की बहुत मनौती पर हुआ हो। नाकों आना = हैरान हो जाना। बहुत तंग होना। उ०—नाक बनावत आयो हौं नाकहि नाही पिनाकिहि नेकु निहोरो।—तुलसी। नाक में बोलना = नासिका से स्वर निकालना। नकियाना। नाक लगा कर बैठना = बहुत प्रतिष्ठावाला बनकर बैठना। बड़ा इज्जतवाला बनना। नाक सिकोड़ना = अरुचि या घृणा प्रकट करना। घिनाना। उ०—सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।—तुलसी।

(२) कपाल के कोशों आदि का मल जो नाक से निकलता है। रेंट। नेटा।

क्रि० प्र०—आना।—बहना।

यौ०—*नाक सिनकना = जोर से हवा निकाल कर नाक का मल बाहर फेंकना।*

(३) चरखे में लगी हुई एक चिपटी लकड़ी जो अगले खूँटे के आगे निकले हुए बेलन के सिरे पर लगी रहती है और जिसे पकड़ कर चरखा घुमाते हैं। (४) लकड़ी का वह डंडा जिस पर चढ़ाकर बरतन खराद्रे जाते हैं। (५) प्रतिष्ठा की वस्तु। श्रेष्ठ या प्रधान वस्तु। शोभा की वस्तु। जैसे, वे ही तो इस शहर की नाक हैं। (६) प्रतिष्ठा। इज्जत। मान। उ०—नाक पिनाकहि संग सिधाई।—तुलसी।

नाँद–संज्ञा स्त्री० [सं० नंदक] मिट्टी का एक बड़ा और चौड़ा बरतन जिसमें पशुओं को चारा पानी आदि दिया जाता है। हौदी। (यह बरतन पीतल इत्यादि धातुओं का भी बनता है जिसमें गृहस्थ लोग पानी रखते हैं।)

नाँदना*–क्रि० अ० [सं० नाद] (१) शब्द करना। शोर करना। (२) छींकना।

क्रि० अ० [सं० नंदन] आनंदित होना। खुश होना। उ०—नेकु न जानी परति यों परयो विरह तन छाम। उठति दिया लौं नाँदि हरि लिए तुम्हारो नाम।—बिहारी।

नांदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अभ्युदय। समृद्धि। (२) वह आशीर्वादात्मक श्लोक या पद्य जिसका सूत्रधार नाटक आरंभ करने के पहले पाठ करता है। मंगलाचरण।

विशेष—संस्कृत नाटकों में विघ्नशांति के लिये इस प्रकार के मंगल पाठ की चाल है। साहित्यदर्पण के अनुसार नांदी आठ या बारह पदों की होनी चाहिए। किंतु भरत मुनि ने दस पदों की भी लिखी है। नांदीपाठ मध्यम स्वर में होना चाहिए।

नांदीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोरणस्तंभ। (२) नांदीमुख श्राद्ध।

नांदीपट–संज्ञा पुं० [सं०] कुएँ का ढकना।

नांदीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुएँ का ढकना। (२) एक आभ्युदयिक श्राद्ध जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है। वृद्धिश्राद्ध।

विशेष—निर्णयसिंधु में लिखा है कि पुत्र कन्या जन्म, विवाह, उपनयन, गर्भाधान, यज्ञ, पुंसवन, तड़ागादि प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, अन्नप्राशन इत्यादि में नांदीमुख श्राद्ध करना ही चाहिए। वृद्धि हुई हो तब तो यह श्राद्ध करना ही चाहिए, जिस कार्य से अभ्युदय या वृद्धि की संभावना हो उसमें भी इसे करना चाहिए। पहले माता का श्राद्ध करना चाहिए, फिर पिता का, उसके पीछे पितामह, मातामह आदि का। और श्राद्ध तो मध्याह्न में किए जाते हैं पर यह पूर्वाह्न में होता है। पुत्रजन्म में समय का नियम नहीं है।

नांदीमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। उ०—नित गहि दुइ पादै गुरू केर जाई। दशरथ सुत चारी लहे मोद पाई। हिय महँ धरि कै ध्यान शृंगी ऋषि को। मुदित मन कियो श्राद्ध नांदीमुखी को।

नाँयँ‡*–संज्ञा पुं० दे० "नाम"।

अव्य० दे० "नहीं"।

नाँवँ†–संज्ञा पुं० दे० "नाम"।

ना–अव्य० [सं०] एक शब्द जिसका प्रयोग अस्वीकृति या निषेध सूचित करने के लिये होता है। नहीं। न।

*संज्ञा पुं० [सं० नर] मनुष्य। (डिं०)

*संज्ञा पुं० [सं० नाभि] नाभि। (डिं०)

नाइक*–संज्ञा पुं० दे० "नायक"।

नाइत्तिफाकी–संज्ञा स्त्री० [फा०] मेल का अभाव। फूट। मतभेद। विरोध।

नाइन–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाई] (१) नाई जाति की स्त्री। (२) नाई की स्त्री।

नाइब*–संज्ञा पुं० दे० "नायब"।

नाईं–संज्ञा स्त्री० [सं० न्याय] समान दशा। एक सी गति।

वि० स्त्री० समान। तुल्य। उ०—समरथ को नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं।—तुलसी।

नाई–संज्ञा पुं० [सं० नापित] नाऊ। हज्जाम। नापित।

संज्ञा स्त्री० [देश०] नाकुली कंद।

नाउँ‡*–संज्ञा पुं० दे० "नाम"।

नाउ*‡–संज्ञा स्त्री० दे० "नाव"।

नाउत–संज्ञा पुं० [देश०] मंत्र यंत्र से भूत प्रेत झाड़नेवाला। सयाना। झाड़ फूँक करनेवाला। ओझा।

नाउन†–संज्ञा स्त्री० दे० "नाइन"।

नाउम्मेद–वि० [फा०] निराश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाउम्मेदी–संज्ञा स्त्री० [फा०] निराशा।

नाऊ†—संज्ञा पुं० दे० "नाई"।

नाकंद–वि० [फा० ना + कंदः] बिना निकाला हुआ (घोड़ा आदि)। अल्हड़। अशिक्षित। बिना सिखाया हुआ। उ०—(क) नाकंद बछेड़े कूद चुके अब और दुलत्ती मत छाँटो।—नजीर। (ख) सुरँग बछेरे नैन तुव यद्यपि हैं नाकंद। मन सौदागर ने कह्यो ये हैं बहुत पसंद।—रसनिधि।

नाक–संज्ञा स्त्री० [सं० नक्र, पा० नक्क] (१) मुखमंडल की मांसपेशियों और अस्थियों के उभार से बना हुआ नल के रूप का वह अवयव जिसके दोनों छेद मुख-विवर और फुप्फुस से मिले रहते हैं और जिससे घ्राण का अनुभव और श्वास प्रश्वास का व्यापार होता है। सूँघने और साँस लेने की इंद्रिय। नासा। नासिका।

विशेष—नाक का भीतरी अस्तर छिद्रमय मांस की झिल्ली का होता है जो बराबर कपालघट और नेत्र के गोलकों तक गई रहती हैं, इसी झिल्ली तक मस्तिष्क के वे संवेदनसूत्र आए रहते हैं जिनसे घ्राण का व्यापार अर्थात् गंध का अनुभव होता है। इसी से होकर वायु भीतर जाती है जिसमें गंधवाले अणु रहते हैं। इस झिल्ली का ऊपरवाला भाग ही गंधवाहक होता है, नीचे का नहीं। नीचे तक संवेदनसूत्र नहीं रहते। नासारंध्र का मुखविवर, नेत्रगोलक, कपालघट आदि से संबंध होने के कारण नाक से स्वर और स्वाद का

प्रकार का कर महसूल आदि वसूल करने के लिये तैनात हो।
वि० जिसमें नाका या छेद हो। जैसे, नाकेदार सूई।

नाकेबंदी-संज्ञा स्त्री० दे० "नाकाबंदी"।
संज्ञा पुं० दे० "नाकाबंदी"।

नाकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (स्वर्ग के अधिपति) इंद्र।

नाक्षत्र-वि० [सं०] नक्षत्र संबंधी। जैसे, नाक्षत्र दिन, नाक्षत्र मास, नाक्षत्र वर्ष।
विशेष—जितने काल में चंद्रमा २७ नक्षत्रों पर एक बार घूम जाता है उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। मास का प्रथम दिन वह समय माना जाता है जिसमें चंद्रमा अश्विनी नक्षत्र पर रहता है। अश्विनी नक्षत्र पर चंद्रमा ६० दंड, भरणी पर ६३ दंड, इसी प्रकार सब नक्षत्रों पर कुछ काल तक रहता है। फलित ज्योतिष में आयु गणना आदि के लिये नाक्षत्र दिन मास आदि निकाले जाते हैं।

नाक्षत्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] नाक्षत्र मास।

नाक्षत्रिकी-वि० स्त्री० [सं०] नक्षत्र संबंधिनी। जैसे, नाक्षत्रिकी दशा। दे० "दशा"।

नाख-संज्ञा स्त्री० [फा० नाशपती] नाशपाती नाम का फल

नाखना†-क्रि० स० [सं० नष्ट] (१) नाश करना। नष्ट कर देना। बिगाड़ देना। उ०—(क) जे नखचंद भजन खल नाखत रमा हृदय जेहि परसत।—सूर। (ख) जो हरि चरित ध्यान उर राखै। आनँद सदा दुरित दुख नाखै।—सूर। (२) फेंकना। गिराना। डालना। उ०—जो उर मारन की फाँसी मृदु मालती माल वहै मग नाखै।
क्रि० स० [हिं० नाकना] नाकना। उल्लंघन करना। उ०—(क) नील नल अंगद सहित जामवंत हनुमंत से अनंत जिन नीरनिधि नाख्यो है।—केशव। (ख) पाछे तें सीय हरी विधि मर्याद राखी। जो पै दशकंध बली रेखा क्यों न नाखी?—सूर।

नाखुना-संज्ञा पुं० [फा०] (१) आँख का एक रोग जिसमें एक लाल झिल्ली सी आँख की सफेदी में पैदा होती है और बढ़ कर पुतली को भी ढक लेती है। (२) मोटे लाल डोरे जो घोड़ों की आँख में पैदा हो जाते हैं। (३) चीरा बाँधने का नोकदार अंगुस्ताना।

नाखुर-संज्ञा पुं० दे० "नहँटू"।

नाखुश-वि० [फा०] अप्रसन्न। नाराज।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाखुशी-संज्ञा स्त्री० [फा०] अप्रसन्नता। नाराजी।

नाखून-संज्ञा पुं० [फा० नाखुन] (१) उँगलियों के छोर पर चिपटे किनारे या नोक की तरह निकली हुई कड़ी वस्तु। नख। नहँ।
विशेष—नाखून वास्तव में ठोस और कड़ा जमा हुआ ऊपरी त्वक् है। पशुओं के सींग, खुर आदि भी इसी प्रकार ऊपरी त्वक् की जमावट से बनते हैं।
मुहा०—नाखून लेना = नाखून काट कर अलग करना। नाखून नीले होना = मरने का लक्षण दिखाई पड़ना। मृत्यु के चिह्न प्रकट होना। ऐसे ऐसे नाखूनों में पड़े हैं = ऐसे ऐसे बहुत देखे भाले हैं। ऐसों की गिनती नहीं।
(२) चौपायों के टाप या खुर का बढ़ा हुआ किनारा।
मुहा०—नाखून लेना = (१) नाखून काटना। (२) घोड़े का ठोकर लेना।

नाखूना-संज्ञा पुं० [फा०] (१) दे० "नाखुना"। (२) गबरून की तरह का एक कपड़ा जिसका ताना सफेद होता है और बाने में अनेक रंग की धारियाँ होती हैं। यह आगरे में बहुत बनता है। (३) बढ़इयों की बहुत पतली रुखानी जिससे बारीक काम किया जाता है।

नाग-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नागिन] (१) सर्प। साँप।
मुहा०—नाग खेलाना = ऐसा कार्य करना जिसमें प्राण का भय हो। खतरे का काम करना।
(२) कद्रू से उत्पन्न कश्यप की संतान जिनका स्थान पाताल लिखा गया है।
विशेष—वराहपुराण में नागों की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा लिखी है। सृष्टि के आरंभ में कश्यप उत्पन्न हुए। उनकी पत्नी कद्रु से उन्हें ये पुत्र उत्पन्न हुए—अनंत, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक और अपराजित। कश्यप के ये सब पुत्र नाग कहलाए। इनके पुत्र पौत्र बहुत ही क्रूर और विषधर हुए। इनसे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी। प्रजा ने जाकर ब्रह्मा के यहाँ पुकार की, ब्रह्मा ने नागों को बुला कर कहा, जिस प्रकार तुम हमारी सृष्टि का नाश कर रहे हो उसी प्रकार माता के शाप से तुम्हारा भी नाश होगा। नागों ने डरते डरते कहा "महाराज! आप ही ने हमें कुटिल और विषधर बनाया, हमारा क्या अपराध है? अब हम लोगों के रहने के लिये कोई अलग स्थान बतलाइए जहाँ हम लोग सुख से पड़े रहें। ब्रह्मा ने उनके रहने के लिये पाताल, वितल और सुतल ये तीन स्थान या लोक बतला दिए।
एक बार कद्रु और विनता में विवाद हुआ कि सूर्य्य के घोड़े की पूँछ काली है या सफेद। विनता सफेद कहती थी और कद्रु काली। अंत में यह ठहरी कि जिसकी बात ठीक न निकले वह दूसरी की दासी होकर रहे। जब कद्रु ने अपने पुत्रों से यह बात कही तब उन्होंने कहा कि "पूँछ तो सफेद है अब क्या होगा?" अंत में जब सूर्य्य निकला तब सब के सब नाग उच्चैःश्रवा की पूँछ से लिपट गए जिससे वह काली दिखाई पड़ी। जिन नागों ने पूँछ को काला करना अस्वीकार किया उन्हें कद्रु ने नष्ट होने का शाप दिया

यौ०—नाकवाला = इज्जतवाला।
मुहा०—नाक रख लेना = प्रतिष्ठा की रक्षा कर लेना।
संज्ञा स्त्री० [सं० नक्र] मगर की जाति का एक जलजंतु।
विशेष—मगर से इसमें अंतर यह होता है कि यह उतनी लंबी नहीं होती, पर चौड़ी अधिक होती है। मुँह भी इसका अधिक चिपटा होता है और उस पर बड़ा या थूथन नहीं होता। पूँछ में काँटे स्पष्ट नहीं होते। यह जमीन पर मगर से अधिक दूर तक जाकर जानवरों को खींच ला सकती है। सरजू तथा उसमें मिलनेवाली और छोटी छोटी नदियों में यह बहुत पाई जाती है।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग।
यौ०—नाकनदी। नाकपति।
(२) अंतरिक्ष। आकाश। (३) अस्त्र का एक आघात।

नाकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + ड़ा (प्रत्य०)] नाक का एक रोग जिसमें नाक के बाँसे के भीतर जलन और सूजन होती है और नाक पक जाती है।

नाकनटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नर्त्तकी। अप्सरा।

नाकना†*—क्रि० स० [सं० लंघन, हिं० नाँघना] (१) लाँघना। उल्लंघन करना। पार करना। डाँकना। उ०—अति तनु धनु रेखा, नेक नाकी न जाकी।—केशव। (२) अतिक्रमण करना। पार करना। बढ जाना। मात कर देना। उ०—चैत्र रथ कामवन नंदन की नाकी छबि, कहैं रघुराज राम काम को समारा है।—रघुराज।

नाकपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

नाकबुद्धि—वि० [हिं० नाक + बुद्धि] जिसका विवेक नाक ही तक हो। जो नाक से सूँघ कर गंध द्वारा ही भक्ष्याभक्ष्य, भले बुरे आदि का विचार कर सके, बुद्धि द्वारा नहीं। तुच्छ बुद्धि। क्षुद्रबुद्धिवाला। ओछी समझ का। उ०—अपनो पेट दियो तैं उनको नाकबुद्धि तिय सबै कहै री। सूर श्याम ऐसे हैं, माई, उनको बिनु अभिमान लहै री।—सूर।
विशेष—स्त्रियों की निंदा में प्रायः लोग कहते हैं कि उनकी बुद्धि नाक ही तक होती है, अर्थात् यदि उन्हें नाक न हो तो वे भक्ष्याभक्ष्य सब खा जायँ।

नाकपेधक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

नाका—संज्ञा पुं० [हिं० नाकना] (१) किसी रास्ते आदि का वह छोर जिससे होकर लोग किसी ओर जाते, मुड़ते, निकलते या कहीं घुसते हैं। प्रवेशद्वार। मुहाना। (२) वह प्रधान स्थान जहाँ से किसी नगर बस्ती आदि में जाने के मार्ग का आरंभ होता है। गली या रास्ते का आरंभ स्थान। जैसे, नाके नाके पर सिपाही तैनात थे कि कोई जाने न पावे।
यौ०—नाकाबंदी। नाकेदार।
(३) नगर, दुर्ग आदि का प्रवेशद्वार। फाटक। निकलने पैठने का रास्ता। जैसे, शहर का नाका।
मुहा०—नाका छेंकना या बाँधना = आने जाने का मार्ग रोकना।
(४) वह प्रधान स्थान या चौकी जहाँ निगरानी रखने, या किसी प्रकार का महसूल आदि वसूल करने के लिये सिपाही तैनात हों। (५) सूई का छेद। (६) आठ गिरह लंबा जुलाहों का एक औजार जिसमें ताने के तागे बाँधे जाते हैं।
संज्ञा पुं० [सं० नक्र] मगर की जाति का एक जलजंतु। दे० "नाक"।

नाकाबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाका + फा० बंदी] (१) प्रवेशद्वार का अवरोध। किसी रास्ते से कहीं जाने या घुसने की रुकावट। (२) फाटक आदि का छेंका जाना।
संज्ञा पुं० (१) वह सिपाही जो फाटक या नाके पर पहरे के लिये खड़ा किया गया हो। (२) सिपाही। काँस्टिबिल। चौकीदार। पहरेदार।

नाकाबिल—वि० [फा० ना + अ० काबिल] अयोग्य।

नाकारा—वि० [फा०] निकम्मा। खराब। बुरा।

नाकिस—वि० [अ०] बुरा। खराब। निकम्मा।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाकी—संज्ञा पुं० [सं० नाकिन्] (नाक या स्वर्ग में रहनेवाला) देवता।

नाकु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीमक की मिट्टी का ढूह। बेमौट। वल्मीक। (२) भीटा। टीला। (३) पर्वत। पहाड़। (४) एक मुनि का नाम।

नाकुल—वि० [सं०] नेवले के ऐसा। नेवला संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) नकुल की संतति। (२) रास्ना। (३) सेमर का मूसला। (४) चव्य। (५) यवतिक्ता।

नाकुली—वि० [सं० नकुल] (१) नेवला संबंधी। (२) नकुल नामक पांडव का बनाया हुआ। जैसे, नाकुली शालिहोत्र।
संज्ञा स्त्री० [सं० नकुल] (१) एक प्रकार का कंद जो सब प्रकार के विषों, विशेष कर सर्प के विष को दूर करता है। नाकुली दो प्रकार का होता है। एक नाकुली दूसरी गंधनाकुली। गुण दोनों का एक सा है। गंधनाकुली कुछ अच्छी होती है।
पर्य्या०—नागसुगंधा। नकुलेष्टा। भुजंगाची। सर्पांगी। विषनाशिनी। रक्तपत्रिका। ईश्वरी। सुरसा।
(२) यवतिक्ता लता। (३) रास्ना। (४) चव्य। चविका। (५) श्वेत कंटकारी। सफेद भटकटैया।

नाकेदार—संज्ञा पुं० [हिं० नाका + फा० दार (प्रत्य०)] (१) नाके या फाटक पर रहनेवाले सिपाही। (२) वह अफसर या कर्मचारी जो आने जाने के प्रधान प्रधान स्थानों पर किसी

है जो बहुत कड़ी और मजबूत होती है। यह पानी में साखू से भी अधिक दिनों तक रह सकती है। इससे गाड़ी के पहिए नाव और अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। इसके बीजों का गाढ़ा तेल जलाने के काम में आता है।

नागदलोपम-संज्ञा पुं० [सं०] परुप फल। फालसा।

नागदुमा-वि० [सं० नाग+फा० दुम] (हाथी) जिसकी पूँछ का सिरा सर्प के फन की तरह का हो।

विशेष—ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

नागदौन-संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] (१) छोटे आकार का एक पहाड़ी पेड़ जो शिमले और हजारे में बहुत मिलता है। इसकी लकड़ी भीतर से सफेद और मुलायम होती है और विशेषतः छड़ियाँ बनाने के काम में आती है। लोगों का विश्वास है इस लकड़ी के पास साँप नहीं आते। (२) दे० "नागदौना"।

नागदौना-संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] (१) एक पौधा जिसमें डालियाँ और टहनियाँ नहीं होतीं। जड़ के ऊपर से ग्वारपाठे की सी पत्तियाँ चारों ओर निकलती हैं। ये पत्तियाँ हाथ हाथ भर लंबी और दो ढाई अंगुल चौड़ी होती हैं। ग्वारपाठे की पत्तियों की तरह इन पत्तियों के भीतर गूदा नहीं होता, इससे इनका दल बहुत मोटा नहीं होता। पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है पर बीच बीच में हलकी चित्तियाँ सी होती हैं। नागदौने की जड़ कंद के रूप में नीचे की ओर जाती है। वैद्यक में नागदौना चरपरा, कड़ुआ, हलका, त्रिदोषनाशक, कोठे को शुद्ध करनेवाला, विषनाशक तथा सूजन, प्रमेह और ज्वर को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—नागदमनी। बला। मोटा। विषापहा। नागपत्रा। महायोगेश्वरी। जांबवती। गूका। जांबती। मकश्री। दुर्द्धर्षा। दुःसहा। विफला। वनकुमारी। श्रीकंदा। कंदशालिनी।

(२) एक प्रकार का कड़ुवा और कटीला दौना जिसके पेड़ लंबे लंबे होते हैं। इसकी सूखी पत्तियाँ लोग कागजों और कपड़ों की तहों के बीच उन्हें कीड़ों से बचाने के लिये रखते हैं।

नागद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंहुड़। थूहर। (२) नागफनी।

नागद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार भारतवर्ष के नौ भागों में से एक।

नागधर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नागध्वनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो मलार और केदार या सूहा अथवा कान्हड़े और सारंग के योग से बनी है। इसका सरगम इस प्रकार है—नि सा ऋ ग म प ० ०० ००

नागनक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] अश्लेषा नक्षत्र।

नागनग*-संज्ञा पुं० [सं०] गजमुक्ता। उ०—निज गुण घटत न नागनग परखि न पहिरत कोल। तुलसी प्रभु भूषण किए गुंजा बढ़े न मोल।—तुलसी।

नागपंचमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सावन सुदी पंचमी।

विशेष—इस तिथि को नाग देवता की पूजा होती है। वराहपुराण में लिखा है कि इस पंचमी तिथि को ही नागों को ब्रह्मा ने शाप और वर दिया था इससे यह उन्हें अत्यंत प्रिय है। इस तिथि को नाग की पूजा भारत में स्त्रियाँ प्रायः सर्वत्र करती हैं।

नागपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों का राजा वासुकि। (२) हाथियों का राजा ऐरावत।

नागपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी।

नागपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मण नाम का कंद।

नागपर्णी-संज्ञा स्त्री [सं०] पान।

नागपाश-संज्ञा स्त्री० [सं०] वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बाँध लेते थे। शत्रु को बाँधने के लिये एक प्रकार का बंधन या फंदा।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में मेघनाद का इंद्र से इस अस्त्र को प्राप्त करना लिखा है। पुराणों में भी इसका उल्लेख है। तंत्र में लिखा है कि ढाई फेरे के बंधन को नागपाश कहते हैं।

नागपुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोगवती नाम की नगरी जो पाताल में मानी गई है। (२) हस्तिनापुर*। (३) अग्निपुराण के अनुसार एक स्थान।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि जब गंगा महादेवजी की जटा से निकल हेमकूट, हिमालय आदि को लाँघकर आईं तब स्वलील नामक एक दानव पर्वत के रूप में मार्ग रोकने के लिये खड़ा हो गया। भगीरथ ने कौशिक को प्रसन्न करके उनसे एक नागवाहन प्राप्त किया जिसने उस पर्वत रूपी दैत्य को विदीर्ण किया। जिस स्थान पर यह दैत्य विदीर्ण किया गया उसका नाम नागपुर रखा गया।

नागपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागकेसर। (२) पुन्नाग का पेड़। (३) चंपा।

नागपुष्पफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पेठा।

नागपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पीली जूही। (२) नागदौना।

नागपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदमनी। (२) मेढ़ासींगी।

नागपूत-संज्ञा पुं० [सं० नागपुत्र] कचनार की जाति की एक लता जो सिक्किम, बंगाल और बरमा में बहुत होती है।

नागफनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग+फन] (१) थूहर की जाति का एक पौधा जिसमें टहनियाँ नहीं होतीं। साँप के फन के आकार के गूदेदार मोटे दल एक दूसरे के ऊपर निकलते

जिसके अनुसार वे जनमेजय के सर्पयज्ञ में नष्ट हुए।

पुराणों में बहुत से नागों के नाम दिए हुए हैं। पर उनमें मुख्य आठ हैं—अनंत वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोटक और शंख। ये अष्टनाग और इनका कुल अष्टकुल कहलाता है।

(३) एक देश का नाम। (४) उस देश में बसनेवाली जाति।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार 'नाग' शक जाति की एक शाखा थी जो हिमालय के उस पार रहती थी। तिब्बत वाले अपने को नागवंशी और अपनी भाषा को नाग भाषा कहते हैं। जनमेजय की कथा से पुरुवंशियों और नागवंशियों के वैर का आभास मिलता है। यह वैर बहुत दिनों तक चलता रहा। जब सिकंदर भारत में आया तब पहले पहल उससे तक्षशिला का नागवंशी राजा मिला जो पंजाब के पौरव राजा से द्रोह रखता था। सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला के राजा के यहाँ बड़े बड़े साँप पले देखे थे जिनकी पूजा होती थी। विशेष—दे० "नागवंश"।

(५) एक पर्वत। (महाभारत)। (६) हाथी। हस्ति। (७) राँगा। (८) सीसा (धातु)।

विशेष—भाव प्रकाश में लिखा है कि वासुकि एक नागकन्या को देख मोहित हुए। उनके स्खलित वीर्य्य से इस धातु की उत्पत्ति हुई।

मुहा०—नाग फूँकना = धातु फूँकना।

(९) एक प्रकार की घास। (१०) नागकेसर। (११) पुन्नाग। (१२) मोथा। नागरमोथा। (१३) पान। तांबूल। (१४) नागवायु। (१५) ज्योतिष के करणों में से तीसरे करण का नाम। (१६) बादल। (१७) आठ की संख्या। (१८) दुष्ट या क्रूर मनुष्य। (१९) अश्लेषा नक्षत्र।

नागकंद—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद।

नागकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाग जाति की कन्या।

विशेष—पुराणों में नागकन्याएँ बहुत सुंदर बतलाई गई हैं।

नागकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का कान। (२) एरंड। अंडी का पेड़।

नागकिंजल्क—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

नागकुमारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुरुच। गिलोय। (२) मजीठ। मंजिष्ठा।

नागकेसर—संज्ञा स्त्री० [सं० नागकेशर] एक सीधा सदाबहार पेड़ जो देखने में बहुत सुंदर होता है। यह द्विदल अंकुर से उत्पन्न होता है। पत्तियाँ इसकी बहुत पतली और घनी होती हैं, जिससे इसके नीचे बहुत अच्छी छाया रहती है। इसमें चार दलों के बड़े और सफेद फूल गरमियों में लगते हैं जिनमें बहुत अच्छी महक होती है। लकड़ी इसकी इतनी कड़ी और मजबूत होती है कि काटने वाले की कुल्हाड़ियों की धारें मुड़ मुड़ जाती हैं। इसी से इसे वज्रकाठ भी कहते हैं। फलों में दो या तीन बीज निकलते हैं। हिमालय के पूरबी भाग, पूरबी बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, सिंहल आदि में इसके पेड़ बहुतायत से मिलते हैं। नागकेसर के सूखे फूल औषध, मसाले और रंग बनाने के काम में आते हैं। इनके रंग से प्रायः रेशम रँगा जाता है। सिंहल में बीजों से गाढ़ा पीला तेल निकालते हैं, जो दीया जलाने और दवा के काम में आता है। मदरास में इस तेल को बातरोग में भी मलते हैं। इसकी लकड़ी से अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। लकड़ी ऐसी अच्छी होती है कि केवल हाथ से रगड़ने से ही उसमें वारनिश की सी चमक आ जाती है। वैद्यक में नागकेसर कसैली, गरम, रूखी, हलकी, तथा ज्वर, खुजली, दुर्गंध, कोढ़, विष, प्यास, मतली और पसीने को दूर करनेवाली मानी जाती है। खूनी बवासीर में भी वैद्य लोग इसे देते हैं। इसे नागचंपा भी कहते हैं।

नागखंड—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जंबूद्वीप के अंतर्गत भारतवर्ष के नौ खंडों या भागों में से एक।

नागगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नकुलकंद।

नागगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी ग्रह की वह गति जो उस समय होती है जब वह अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्र में रहता है। (ज्योतिष)

नागगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

नागचंपा—संज्ञा पुं० [सं० नागचंपक] नागकेसर का पेड़।

नागचूड़—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

नागछत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

नागज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। (२) वंग।

नागजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल। (२) शारिवा।

नागजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

नागजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] वंग। फूँका हुआ राँगा।

नागझाग*—संज्ञा पुं० [हिं० नाग + झाग] अहिफेन। अफीम।

नागदंत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथीदाँत। (२) दीवार में गड़ी हुई खूँटी।

नागदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली का पौधा।

नागदंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] नखी नामक गंधद्रव्य।

नागदमन—संज्ञा पुं० [सं०] नागदौने का पौधा।

नागदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदौने का पौधा।

नागदला—संज्ञा पुं० [सं० नाग + दल] एक पेड़ जो बंगाल, आसाम, बरमा, मलाबार और सिंहल में होता है। बंगाल में इसे 'पोसुर' कहते हैं। सुंदरवन से इसकी लड़की आती

नागरमुस्ता—संज्ञा स्त्री०[सं०] नागरमोथा।

नागरमोथा—संज्ञा पुं० [सं० नागरमुस्ता] एक प्रकार का तृण या घास जिसमें इधर उधर फैली या निकली हुई टहनियाँ नहीं होतीं, जड़ के पास चारों ओर सीधी लंबी पत्तियाँ निकलती हैं जो शर या मूँज की पत्तियों की सी नोकदार और बहुत कम चौड़ाई की होती हैं। पत्तियों के बीचोबीच एक सीधी सींक निकलती है जिसके सिरे पर फूलों की ठोस मंजरी होती है। यह तृण हाथ भर तक ऊँचा होता है और तालों के किनारे प्रायः मिलता है। इसकी जड़ सूत में फँसी हुई गाँठों के रूप की और सुगंधित होती है। नागरमोथे की जड़ मसाले और औषध के काम में आती है। वैद्यक में नागरमोथा, चरपरा, कसैला, ठंढा तथा पित्त, ज्वर, अतिसार अरुचि, तृषा और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है। जितने प्रकार के मोथे होते हैं उनमें नागरमोथा उत्तम माना जाता है।

पर्य्या०—नागरमुस्ता। नादेयी। वृषध्वांक्षी। कच्छरुहा। चूडाला। पिंडमुस्ता। नागरोत्था। कलापिनी। चक्रांका। शिशिरा। उच्चटा।

नागराज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्पों में बड़ा सर्प। (२) शेषनाग। (३) हाथियों में बड़ा हाथी। (४) ऐरावत। (५) 'पंचामर' या 'नाराच' छंद का दूसरा नाम।

नागराह्व—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

नागरिक—वि० [सं०] नगर संबंधी। (१) नगर का। (२) नगर में रहनेवाला। शहराती। (३) चतुर। सभ्य।

संज्ञा पुं० नगरनिवासी। शहर का रहनेवाला आदमी।

नागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नगर की रहनेवाली स्त्री। शहर की औरत। (२) चतुर स्त्री। प्रवीण स्त्री। (३) स्नुही। थूहर। (४) भारतवर्ष की वह प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत और हिंदी लिखी जाती है। विशेष—दे० "देवनागरी"। (५) पत्थर की मोटाई की एक बड़ी माप। (६) पत्थर की बहुत मोटी पटिया। बड़ा मोट।

नागरीट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंपट। व्यभिचारी। (२) जार।

नागरुक—संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी।

नागरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

नागरोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

नागर्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागरिकता। शहरातीपन। (२) चतुराई। बुद्धिमानी।

नागल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) हल। (२) जूए की रस्सी जिससे बैल जोड़े जाते हैं।

नागलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की लता। पान।

नागलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल।

नागवंश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागों की कुलपरंपरा। (२) शक जाति की एक शाखा।

विशेष—प्राचीन काल में नागवंशियों का राज्य भारतवर्ष के कई स्थानों में तथा सिंहल में भी था। पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि सात नागवंशी राजा मथुरा भोग करेंगे, उसके पीछे गुप्त राजाओं का राज्य होगा। नौ नाग राजाओं के जो पुराने सिक्के मिले हैं उनपर बृहस्पति नाग, देव नाग, गणपति नाग इत्यादि नाम मिलते हैं; ये नागगण विक्रम संवत् १२० और २५० के बीच राज्य करते थे। इन नव नागों की राजधानी कहाँ थी इसका ठीक पता नहीं है पर अधिकांश विद्वानों का मत यही है कि उनकी राजधानी नरवर थी। मथुरा और भरतपुर से लेकर ग्वालियर और उज्जैन तक का भूभाग नागवंशियों के अधिकार में था। इतिहासों में यह बात प्रसिद्ध है कि महाप्रतापी गुप्तवंशी राजाओं ने शक या नागवंशियों को परास्त किया था। प्रयाग के किले के भीतर जो स्तंभ है उसमें स्पष्ट लिखा है कि महाराज समुद्रगुप्त ने गणपति नाग को पराजित किया था। इस गणपति नाग के सिक्के बहुत मिलते हैं।

महाभारत में भी कई स्थानों पर नागों का उल्लेख है। पांडवों ने नागों के हाथ से मगध राज्य छीना था। खांडव वन जलाते समय भी बहुत से नाग नष्ट हुए थे। जनमेजय के सर्प-यज्ञ का भी यही अभिप्राय मालूम होता है कि पुरुवंशी आर्य राजाओं से नागवंशी राजाओं का विरोध था। इस बात का समर्थन सिकंदर के समय के प्राप्त वृत्त से भी होता है। जिस समय सिकंदर भारतवर्ष में आया उससे पहले पहल तक्षशिला का नागवंशी राजा ही मिला। उस राजा ने सिकंदर का कई दिनों तक तक्षशिला में आतिथ्य किया और अपने शत्रु पौरव राजा के विरुद्ध चढ़ाई करने में सहायता पहुँचाई। सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला में राजा के यहाँ भारी भारी सर्प पले देखे थे जिनकी नित्य पूजा होती थी। यह शक या नाग जाति हिमालय के उस पार की थी।

अब तक तिब्बती अपनी भाषा को नागभाषा कहते हैं।

नागवंशी—वि० [सं० नागवंशिन्] नागों के वंश या कुल का।

नागवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

नागवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की बेल। पान। तांबूल।

नागवार—वि० [फा०] (१) असह्य। (२) जो अच्छा न लगे। अप्रिय।

क्रि० प्र०—होना।—गुजरना।

नागवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुक्र ग्रह की चाल में वह मार्ग जो स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रों में हो (बृहत्संहिता)

चले जाते हैं। ये दल कुछ नीलापन लिए हरे और काँटेदार होते हैं। काँटे बड़े विषैले होते हैं। इनके चुभने पर बड़ी पीड़ा होती है। दलों के सिरे पर पीले रंग के बड़े बड़े फूल लगते हैं। फूल का निचला भाग छोटी गुल्ली के रूप का होता है जिसमें लाल रंग का रस भरा रहता है। यही गुल्ली फूलों के झड़ जाने पर बढ़कर गोल फल के रूप में हो जाती है। ये फल खाने में खटमीठे होते हैं और दवा के काम आते हैं। अचार और तरकारी भी इन फलों की बनती है। नागफनी के पौधे किसी स्थान को घेरने के लिये बाड़ों में लगाए जाते हैं। काँटों के कारण इन्हें पार करना कठिन होता है। (२) सिंघे के आकार का एक बाजा जिसका प्रचार नैपाल में है। (३) कान में पहनने का एक गहना। उ०—विकट भृकुटि सुखमानिधि आनन, कल कपोल काननि नगफनियाँ।—तुलसी। (४) नागे साधुओं का कौपीन।

नागफल—संज्ञा पुं० [सं०] परवल।

नागफाँस—संज्ञा पुं० दे० "नागपाश"।

नागफेन—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम। अहिफेन।

नागबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का पेड़।

नागबल—संज्ञा पुं० [सं०] भीम का एक नाम।

विशेष—भीम को दस हजार हाथियों का बल था, इससे यह नाम पड़ा। यह बल उन्हें उस समय प्राप्त हुआ था जब दुर्योधन ने उन्हें विष देकर जल में फेंक दिया था और वे नागलोक में जा पहुँचे थे। नागलोक में गिरने पर नागों ने उन्हें खूब डसा जिससे स्थावर विष का प्रभाव उतर गया और वे स्वस्थ होकर उठ बैठे। वहाँ पर कुंती के पिता के मामा ने भीम को पहचाना। अंत में वासुकि की कृपा से उन्हें उस कुंड का रसपान करने को मिला जिसके पीने से हजारों हाथियों का बल हो जाता है।

नागबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गँगेरन। गुलसकरी।

नागबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागवल्ली] (१) पान की बेल। पान। (२) कोई सर्पाकार बेल जो किसी वस्तु पर बनाई जाय। (३) घोड़े की आड़ी तिरछी चाल।

नागभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वासुकि की बहिन जरत्कारु।

नागभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भारी सर्प।

नागमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

नागमरोड़—संज्ञा पुं० [हिं० नाग + मरोड़ना] कुश्ती का एक पेच जिसमें जोड़ को अपनी गर्दन के ऊपर से या कमर पर से एक हाथ से घसीटते हुए गिराते हैं।

विशेष—यह पेच धोबीपछाड़ ही के ऐसा होता है, अंतर इतना होता है कि धोबीपछाड़ में दोनों हाथों से जोड़ को पीठ पर से घसीटते हुए फेंकते हैं।

नागमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

नागमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागों की माता, कद्रु। (२) सुरसा।

विशेष—रामायण में लिखा है कि जिस समय हनुमान समुद्र लाँघ रहे थे देवताओं ने इनके बल की परीक्षा के लिये नागों की माता सुरसा को भेजा था।

(३) मनःशिला। मैनसिल। (४) मनसा देवी। (ब्रह्मवैवर्त्त पु०)।

नागमार—संज्ञा पुं० [सं०] केशराज। काला भँगरा। कुकुर भँगरा।

नागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

नागयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लकड़ी या पत्थर का वह खंभा जो पुष्करिणी या तालाब के बीचो बीच जल में खड़ा किया जाता है। लाट। लट्ठा।

विशेष—हयशीर्ष और बृहस्पति के अनुसार यह लाट बेल, पुन्नाग, नागकेसर, चंपा या बरने की लकड़ी की होनी चाहिए। लकड़ी सीधी और सुडौल हो। जलाशयोत्सर्गतत्त्व में लिखा है कि पहले आठों नागों के नाम अलग अलग पत्रों पर लिख कर जल से भरे कुंड में डाल देने चाहिएँ। फिर जल को खूब हिलाकर एक पत्र हाथ में उठा लेना चाहिए। जिस नाग का नाम उस पत्र पर हो वही बनवाए हुए जलाशय का अधिपति होगा। उस नाग की पायस, नैवेद्य से पूजा करके तब नागयष्टि की स्थापना करनी चाहिए।

नागरंग—संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी।

नागर—वि० [सं०] [स्त्री० नागरी] (१) नगर संबंधी। (२) नगर में रहनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) नगर में रहनेवाला मनुष्य। (२) चतुर आदमी। सभ्य, शिष्ट और निपुण व्यक्ति। (३) देवर। (४) सोंठ। (५) नागरमोथा। (६) नारंगी। (७) गुजरात में रहनेवाले ब्राह्मणों की एक जाति।

संज्ञा पुं० [सं० नाग = साँप] दीवार का टेढ़ापन जो जमीन की तंगी के कारण होता है।

नागरक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिल्पी। कारीगर। (२) चोर।

नागरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प या हाथी का रक्त। (२) सिंदूर।

नागरघन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोथा।

नागरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागरिकता। शहरातीपन। (२) नगर का रीति व्यवहार। सभ्यता। उ०—सबै हँसत करताल दै नागरता के नाँव। गयो गरब गुन को सबै बसे गँवारे गाँव।—बिहारी। (३) चतुराई।

नागरबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागवल्ली] पान की बेल। पान। तांबूल।

प्रकार जान सकते हैं। महात्मा को जान लेने पर माया दूर हो जाती है। माध्यमिक दर्शन का सिद्धांत यही है कि साधारण नीति-धर्म के पालन से ही प्राणी पुनर्जन्म से रहित नहीं हो सकता। निर्वाण प्राप्ति के लिये दान-शील, शांति, वीर्य्य, समाधि और प्रज्ञा इन गुणों के द्वारा आत्मा को पूर्णत्व को पहुँचाना चाहिए। ये कहते थे कि विष्णु, शिव, काली, तारा इत्यादि देवी देवताओं की उपासना सांसारिक उन्नति के लिये करनी चाहिए। नागार्जुन ने बौद्ध धर्म को जो रूप दिया वह "महायान" कहलाया और उसका प्रचार बहुत शीघ्र हुआ। नैपाल, तिब्बत, चीन, तातार, जापान इत्यादि देशों में इसी शाखा के अनुयायी हैं। तांत्रिक बौद्ध धर्म का प्रवर्त्तक कुछ लोग नागार्जुन ही को मानते हैं। काश्मीर में बौद्धों का जो चौथा संघ हुआ था वह इन्होंने किया था।

ये चिकित्सक भी बहुत अच्छे थे। चक्रपाणि पंडित (विक्रम संवत् १००० के लगभग) ने अपने चिकित्सा संग्रह में नागार्जुन कृत नागार्जुनांजन और नागार्जुनयोग नामक औषधों का उल्लेख किया है। चक्रपाणि ने लिखा है कि पाटलिपुत्र नगर में उन्हें ये दोनों नुसखे पत्थर पर खुदे मिले थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये पत्थरों पर इस प्रकार के नुसखे खुदवाकर उन्हें स्थान स्थान पर गड़वा देते थे।

कक्षपुट, कौतूहल-चिंतामणि, योगरत्नमाला, योगरत्नावली और नागार्जुनीय (चिकित्सा) ये और ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं।

नागार्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी। दुधिया घास।

नागालाबू—संज्ञा पुं० [सं०] गोल घीया। गोल कद्दू। गोल लौकी।

नागाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) मयूर। (३) सिंह।

नागाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद।

नागाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

नागाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मणा कंद।

नागिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग] (१) नाग की स्त्री। साँप की मादा।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि नागिन में बहुत विष होता है, इससे कुटिल और दुष्ट स्त्री के लिये इस शब्द का प्रयोग प्रायः करते हैं।

(२) रोएँ की लंबी भौंरी जो पीठ या गरदन पर होती है। (स्त्रियों में ऐसी भौंरी का होना कुलक्षण समझा जाता है।)

(३) बैल, घोड़े आदि चौपायों की पीठ पर रोयों की एक विशेष प्रकार की भौंरी जो अशुभ मानी जाती है

नागिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "नागिन"।

नागी—संज्ञा पुं० [सं० नागिन्] (नागवाले) शिव। महादेव।

नागी गायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] २४ वर्णों का एक वैदिक छंद जिसके प्रथम दो चरणों में नौ नौ वर्ण होते हैं और तीसरे चरण में केवल छ वर्ण।

नागुला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] (१) नेवला। (२) नाकुली नामक जड़ी।

नागेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा सर्प। (२) शेष, वासुकि आदि नाग। (३) बड़ा हाथी। (४) ऐरावत।

नागेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शेषनाग। (२) प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण, नागेश भट्ट।

नागेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शेषनाग। (२) ऐरावत। (३) नागकेसर।

नागेश्वर रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, सीसा, राँगा, मैनसिल, नौसादर, जवाखार, सज्जी, सोहागा, लोहा, ताँबा और अभ्रक इन सब को बराबर बराबर लेकर थूहर के दूध में मले। फिर चीते, अडूसे और दंती के क्वाथ में मलकर बेर की छाल के बराबर गोली बना डाले।

नागेसर*—संज्ञा पुं० दे० "नागकेसर"।

नागेसरी—वि० [हिं० नागेसर] नागकेसर के रंग का। पीला।

नागोद—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का वह तवा या बकतर जिसे अस्त्रों के आघात से बचाने के लिये छाती पर पहनते थे। सीनाबंद।

नागोदर—संज्ञा पुं० दे० "नागोद"।

नागौर—संज्ञा पुं० [हिं० नव+नगर] मारवाड़ के अंतर्गत एक नगर जो गायों और बैलों के लिये भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध है।

विशेष—ऐसी जनश्रुति है कि दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज ने कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ने की आज्ञा दी जो गोपोषण के लिये सब से अनुकूल हो। लोग चारों ओर छूटे। उनमें से एक ने एक जंगल में देखा कि तुरंत की ब्याई हुई गाय अपने बछड़े की रक्षा एक बाघ से कर रही है। बाघ बहुत जोर मारता है पर गाय उसे सींगों से मार मार कर हटा देती है। महाराज के यहाँ जब यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने उसी जंगल को पसंद किया और वहाँ नागौर या नवनगर नाम का नगर और गढ़ बनवाया।

वि० [हिं० नागौर] [स्त्री० नागौरी] नागौर का। अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा) आदि।

नागौरा—वि० [हिं० नागौर] [स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय बछड़ा आदि)।

नगौरी—वि० [हिं० नागौर] नागौर का अच्छी जाति का (बैल, बछड़ा आदि)।

वि० स्त्री० नागौर की। अच्छी जाति की (गाय)।

नाच—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य, प्रा० णच्च, नच वा सं० नाट्य] (१) वह उछल कूद जो चित्त की उमंग से हो। अंगों की वह गति जो हृदयोल्लास के कारण मनमानी अथवा

विशेष—तीन तीन नक्षत्रों में एक एक वीथी मानी गई है।

(२) कश्यप की एक पुत्री का नाम। (ब्रह्मवैवर्त्त)।

नागवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

नागशत-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

नागशुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] डंगरीफल। एक प्रकार की ककड़ी।

नागशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] नया घर बनवाने में नागों की स्थिति का विचार।

विशेष—फलित ज्योतिष के ग्रंथों में लिखा है कि भादों, कुआर और कातिक इन तीन महीनों में नागों का सिर पूरब की ओर, अगहन, पूस और माघ में दक्षिण की ओर, फागुन चैत और बैसाख में पच्छिम की ओर तथा जेठ असाढ़ और सावन में उत्तर की ओर रहता है। पहले पहल नींव डालते समय यदि नागों के मस्तक पर आघात पड़ा तो घर बनवानेवाले की मृत्यु, पीठ पर पड़ा तो स्त्री पुत्र की मृत्यु होती है। पेट पर आघात पड़ने से शुभ होता है।

नागसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। (२) एक प्रकार का मोती (जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वासुकि तक्षक आदि नागों के सिर में होता है)।

नागसाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

नागसुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्पसुगंधा। एक प्रकार की रास्ना। रायसन।

नागस्तोकक-संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ विष। अमृत विष।

नागस्फोता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) दंती।

नागहनु-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

नागहंत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंध्या कर्कोटकी। बाँझ ककोड़ा। बाँझ खखसा।

नागहाँ-क्रि० वि० [फा०] एकाएक। अचानक। अकस्मात्।

नागहानी-वि० स्त्री० [फा०] अकस्मात् आई हुई। जो एकाएक टूट पड़ी हो। जैसे, नागहानी आफत।

नागांचला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागयष्टि।

नागांजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागयष्टि।

नागांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) मयूर। (३) सिंह।

नागा-संज्ञा पुं० [सं० नग्न, हिं० नंगा] उस संप्रदाय का शैव साधु जिसमें लोग नंगे रहते हैं।

विशेष—नागे पहले किसी प्रकार का वस्त्र नहीं धारण करते थे, एकदम नंगे रहते थे। अब अंगरेजी राज्य में एक कौपीन लगाकर निकलते हैं जिसे नागफनी कहते हैं। ये सिर की जटाओं को रस्सी की तरह बटकर पगड़ी के आकार में लपेटे रहते हैं और शरीर में भस्म पोतते हैं। ये अपने पास भस्म का एक गोला रखते हैं जिसकी नित्य पूजा करते हैं। इनकी उद्दंडता और वीरता प्रसिद्ध है। अंगरेजी राज्य के पहले ये बड़ा उपद्रव भी करते थे। वैष्णव वैरागियों से इनकी लड़ाई प्रायः हुआ करती थी जिसमें बहुत से वैरागी मारे जाते थे। नागों के भी कई अखाड़े होते हैं जिनमें निरंजनी और निर्वाणी दो मुख्य हैं।

संज्ञा पुं० [सं० नाग] (१) आसाम के पूर्व की पहाड़ियों में बसनेवाली एक जंगली जाति। (२) आसाम में वह पहाड़ जिसके आस पास नागा जाति की बस्ती है।

संज्ञा पुं० [अ० नागः] किसी नित्य या निरंतर होनेवाली अथवा नियत समय पर बराबर होनेवाली बात का किसी दिन या किसी नियत अवसर पर न होना। चलती हुई कार्य्य-परंपरा का भंग। अंतर। बीच। जैसे, (क) रोज काम पर जाना, किसी दिन नागा न करना। (ख) तुम्हारे कई नागे हो चुके, तनख्वाह कटेगी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नागा देना = बीच डालना। अंतर डालना। जैसे, रोज न आओ, एक दिन नागा देकर आया करो।

नागाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

नागानन-संज्ञा पुं० [सं०] गजानन। गणेश।

नागाभिभू-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम।

नागाराति-संज्ञा पुं० [सं०] वंध्या कर्कोटकी। बाँझ ककोड़ा। बंझ खखसा।

नागार्जुन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन बौद्ध महात्मा या बोधिसत्व जो माध्यमिक शाखा के प्रवर्त्तक थे।

विशेष—ऐसा लिखा है कि ये विदर्भ देश के ब्राह्मण थे। किसी किसी के मत से ये ईसा से सौ वर्ष पूर्व और किसी किसी के मत से ईसा से १५०—२०० वर्ष पीछे हुए थे। पर तिब्बत में लामा के पुस्तकालय में एक प्राचीन ग्रंथ मिला है जिसके अनुसार पहला मत ही ठीक सिद्ध होता है। बौद्ध धर्म को दार्शनिक रूप पहले पहल नागार्जुन ही ने दिया, अतः इनके द्वारा सभ्य और पठित समाज में बौद्ध धर्म का जितना प्रचार हुआ उतना और किसी के द्वारा नहीं। इनके दर्शन ग्रंथ का नाम माध्यमिक सूत्र है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म संबंधी इन्होंने और भी कई ग्रंथ लिखे। इन्होंने सात वर्ष तक सारे भारतवर्ष में उपदेश और शास्त्रार्थ करके बहुत से लोगों को बौद्ध धर्म्म में दीक्षित किया। अंत में ये भोजभद्र नामक प्रधान राजा को दस हजार ब्राह्मणों के सहित बौद्ध धर्म में लाए। इनका दर्शन दो भागों में विभक्त है—एक संवृति-सत्य दूसरा परमार्थ-सत्य। संवृति-सत्य में इन्होंने माया का मूल तथ्य निरूपित किया है और परमार्थ-सत्य में यह प्रतिपादित किया है कि चिंतन और समाधि के द्वारा महात्मा को किस

क्यों नहीं, इधर उधर नाचते क्या हो? उ०—जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम। मन काँचे, नाचे वृथा साँचे राचे राम।—बिहारी। (५) थर्राना। काँपना। उ०—बाजा बान जाँघ जस नाचा। जिवना स्वर्ग परा सुईँ साँचा। —जायसी। (६) क्रोध में आकर उछलना कूदना। क्रोध से उद्विग्न और चंचल होना। बिगड़ना। जैसे, तुम सब को कहते हो, पर तुम्हें ज़रा भी कोई कुछ कहता है तो नाच उठते हो।

संयो० क्रि०—उठना।

नाच-महल–संज्ञा पुं० [हिं० नाच + महल] नाचघर। उ०—नाच महल महँ बैठो भीमा। दीप बुझाय क्रोध करि जी मा। —सबल।

नाच रंग–संज्ञा पुं० [हिं० नाच + रंग] आमोद प्रमोद। जलसा।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

नाचार–वि० [फा०] (१) विवश। लाचार। असहाय। (२) तुच्छ। व्यर्थ। उ०—इच्छायुत वैराग को करै जो चित्त विचार। सदाचार को वेद मत यह विचार नाचार।—केशव।

क्रि० वि० विवश होकर। हार कर। मजबूरन। उ०—सुलतान रुकनुद्दीन फीरोज़शाह इतनी शराब पीता था कि आखिर नाचार उसके अमीरों ने उसे कैद कर लिया।—शिवप्रसाद।

नाचारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० "लाचारी"।

नाचिकेता–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) नचिकेता नामक ऋषि।

नाचीज़–वि० [फा०] (१) तुच्छ। पोच। उ०—अब उनको नाचीज़ फौजी गोरे अपने बूटों से कुचलने लगे।—सरस्वती। (२) निकम्मा।

नाचीन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश जो दक्षिण में है। (२) इस देश का राजा (महाभारत)।

नाज–संज्ञा पुं० [हिं० अनाज] (१) अनाज। अन्न। उ०—सज्जन को योग जहाँ नाज ही में देखियत माफ करबे ही माहँ होत करनाशु है।—गुमान। (२) खाद्य द्रव्य। भोजन सामग्री। खाना। उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी। विशेष—दे० "अनाज"।

नाज़–संज्ञा पुं० [फा०] (१) ठसक। नख़रा। चोचला। हाव भाव। उ०—अदा में, नाज़ में चंचल अजब आलम दिखाती है। व सुमिरन मोतियों की उँगलियों में जब फिराती है।—नज़ीर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—नाज़ अदा, नाज़ नख़रा = (१) हाव भाव। (२) चटक मटक। बनाव सिंगार।

मुहा०—नाज़ उठाना = चोचला सहना। नाज़ से पालना = बड़े लाड़ प्यार से पालना।

(२) घमंड। गर्व।

क्रि० प्र०—करना। होना।

नाज़नीं–संज्ञा स्त्री० [फा०] सुंदरी स्त्री।

नाज़बू–संज्ञा स्त्री० [फा०] मरुवे का पौधा।

नाज़ाँ–वि० [फा०] घमंड करनेवाला। गर्वित।

क्रि० प्र०—होना।

नाजायज़–वि० [अ०] जो जायज़ न हो। जो नियमविरुद्ध हो। अनुचित।

नाज़िम–वि० [अ०] प्रबंधकर्त्ता।

संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी राज्यकाल में वह प्रधान कर्मचारी जिसके ऊपर किसी देश या राज्य के समस्त प्रबंध का भार रहता था। यह राजपुरुष उस देश का कर्त्ता धर्त्ता होता था और उसकी नियुक्ति सम्राट् की ओर से होती थी। उ०—हुमायूँ तख्त पर बैठा। उसका भाई कामराँ पहले से काबुल का नाज़िम था।—शिवप्रसाद।

नाज़िर–वि० [अ०] देखनेवाला। दर्शक।

संज्ञा पुं० (१) निरीक्षक। देखभाल करनेवाला। (२) लेखकों का अफसर। प्रधान लेखक। (३) ख्वाजा। महलसरा।

नाज़ुक–वि० [फा०] (१) कोमल। सुकुमार। उ०—गाड़े नुकीले लाल के नैन रहे दिन रैनि। तब नाज़ुक ठोढ़ीन में गाड़ परी मृदु बैन।—शृं० सत०।

यौ०—नाज़ुक बदन। नाज़ुक दिमाग।

(२) पतला। महीन। बारीक। (३) सूक्ष्म। गूढ़। जैसे, नाज़ुक ख्याल। (४) थोड़े ही आघात से नष्ट हो जानेवाला। ज़रा से झटके या धक्के से टूट फूट जानेवाला। थोड़ी असावधानी से भी जिसके टूटने का डर हो। जैसे, शीशे की चीज़ें नाज़ुक होती हैं, सँभाल कर लाना।

यौ०—नाज़ुक मिज़ाज = जो थोड़ा सा कष्ट भी न सह सके।

(५) जिसमें हानि या अनिष्ट की आशंका हो। जोखों का। जैसे, नाज़ुक वक्त, नाज़ुक हालत, नाज़ुक मामला।

नाज़ुक दिमाग–वि० [फा० + अ०] (१) जो रुचि के प्रतिकूल (जैसे दुर्गंध, कर्कश स्वर आदि) थोड़ी सी बात भी न सहन कर सके। जो ज़रा ज़रा सी बात पर नाक भौं सिकोड़े। (२) तुनक मिज़ाज। चिड़चिड़ा।

नाज़ुक बदन–वि० [फा०] (१) कोमल और सुकुमार शरीर का। (२) डोरिए की तरह का एक महीन कपड़ा। (३) एक प्रकार का गुललाला।

नाज़ुक मिज़ाज–वि० दे० "नाज़ुक दिमाग"।

संगीत के मेल में ताल स्वर के अनुसार और हावभाव युक्त हो।

विशेष—नाच की प्रथा सभ्य असभ्य सब जातियों में आदि से ही चली आ रही है, क्योंकि यह एक स्वाभाविक वृत्ति है। संगीत दामोदर में नृत्य का यह लक्षण है—देश की रुचि के अनुसार ताल मान और रस का आश्रित जो अंग-विक्षेप हो उसे नृत्य कहते हैं। नृत्य दो प्रकार का होता है—तांडव और लास्य। पुरुष के नाच को तांडव और स्त्री के नाच को लास्य कहते हैं। ये दोनों भी दो दो प्रकार के होते हैं। तांडव के दो भेद हैं—पेलवि और बहुरूप। अभिनय-शून्य अंग विक्षेप को पेलवि और अनेक प्रकार के हाव भाव वेश भूषा से युक्त अंग-गति को बहुरूप कहते हैं। लास्य के भी दो भेद हैं—छुरित और यौवत। नायक नायिका परस्पर आलिंगन, चुंबन आदि पूर्वक जो नृत्य करते हैं उसे छुरित कहते हैं। एक स्त्री लीला और हाव भाव के साथ जो नाच नाचती है उसे यौवत कहते हैं। इनके अतिरिक्त अंग प्रत्यंग की चेष्टा के अनुसार ग्रंथों में अनेक भेद किए गए हैं। भारतवर्ष में नाचने का पेशा करनेवाले पुरुषों को नट कहते थे। स्मृतियों में नट निकृष्ट जातियों में रखे गए हैं। पर प्राचीन काल में नृत्य विद्या राजकुमार भी सीखते थे। अर्जुन इस विद्या में निपुण थे। नाचना अनेक प्रकार के स्वाँगों के साथ भी होता है, जैसे, नाटक, रासलीला आदि में। विशेष—दे० "नाटक"। उ०—करि सिंगार मनमोहनि पातुर नाचहिं पाँच। बादशाह गढ़ छेंका, राजा भूला नाच।—जायसी।

क्रि० प्र०—करना।—नाचना।—होना।

यौ०—नाच कूद। नाच तमाशा। नाच रंग।

मुहा०—नाच काछना=नाचने के लिये तैयार होना। उ०—मैं अपनो मन हरि सों जोरयो।...... नाच कछयो घूँघट छोरयो तब लोकलाज सब फटकि पछोरयो।—सूर। नाच दिखाना=(१) किसी के सामने नाचना। (२) उछलना कूदना। हाथ पैर हिलाना। (३) विलक्षण आचरण करना। जैसे, रास्ते में उसने बड़े बड़े नाच दिखाए। नाच नचाना=(१) जैसा चाहना वैसा काम कराना। उ०—(क) कबिरा बैरी सबल है एक जीव रिपु पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावै नाच।—कबीर। (ख) जो कछु कुबजा के मन भावै सोई नाच नचावै।—सूर। (२) दिक करना। हैरान करना। तंग करना। उ०—जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं।—तुलसी।

(२) नाट्य। खेल। क्रीड़ा। उ०—टूटे नौ मन मोती फूटे मन दस काँच। लिया सिमेटि सब अभरन होइगा दुख कर नाच।—जायसी। (३) कृत्य। धंधा। कर्म। प्रयत्न। उ०—साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायो।—तुलसी।

नाच कूद—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाच+कूद] (१) नाच तमाशा। उ०—कतहूँ कथा कहै कछु कोई। कतहूँ नाच कूद भल होई।—जायसी। (२) आयोजन। प्रयत्न। (३) गुण, योग्यता, बड़ाई आदि प्रकट करने का उद्योग। डींग। (४) क्रोध से उछलना, पटकना।

नाचघर—संज्ञा पुं० [हिं० नाच+घर] वह स्थान जहाँ नाचना गाना आदि हो। नृत्यशाला।

नाचना—क्रि० अ० [हिं० नाच] (१) चित्त की उमंग से उछलना, कूदना, तथा इसी प्रकार की और चेष्टा करना। हृदय के उल्लास से अंगों को गति देना। हर्ष के मारे स्थिर न रहना। जैसे, इतना सुनते ही वह आनंद से नाच उठा। उ०—(क) आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़। आजु नाचि जिउ दीजै आजु आगि हमैं जूड़।—जायसी। (ख) सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हें बिरंचि हम साँचे।—तुलसी। (ग) लछिमन देखहु मोर गन नाचत वारिद पेखि।—तुलसी।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

(२) संगीत के मेल में ताल स्वर के अनुसार हाव भाव पूर्वक उछलना, कूदना, फिरना तथा इसी प्रकार की और चेष्टाएँ करना। थिरकना। नृत्य करना। उ०—(क) करि सिंगार मन मोहनि पातुर नाचहिं पाँच। बादशाह गढ़ छेंका राजा भूला नाच।—जायसी। (ख) कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।—तुलसी। (३) भ्रमण करना। चक्कर मारना। घूमना। जैसे, लट्टू का नाचना।

मुहा०—सिर पर नाचना=(१) घेरना। ग्रसना। आक्रांत करना। प्रभाव डालना। जैसे, सिर पर पाप, अदृष्ट, दुर्भाग्य आदि नाचना। (२) पास आना। निकट आना। जैसे, सिर पर काल या मृत्यु नाचना। उ०—(क) जेहि घर काल मजारी नाचा। पंखिहि नावँ जीव नहिं बाँचा।—जायसी। (ख) लखी नरेस बात सब साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची।—तुलसी। (इस मुहावरे का प्रयोग काल, मृत्यु, अदृष्ट, दुर्भाग्य, पाप, ऐसे कुछ शब्दों के साथ ही होता है) आँख के सामने नाचना=अंतःकरण में प्रत्यक्ष के समान प्रतीत होना। ध्यान में ज्यों का त्यों होना। जैसे, (क) उसमें ऐसा सुंदर वर्णन है कि दृश्य आँख के सामने नाचने लगता है। (ख) उसकी सूरत आँख के सामने नाच रही है।

(४) इधर से उधर फिरना। दौड़ना धूपना। उद्योग या प्रयत्न में घूमना। स्थिर न रहना। जैसे, एक जगह बैठते

जिनकी दूसरे वाक्य के साथ असंगति न हो। 'विंदु' कहलाता है। बीच में किसी व्यापक प्रसंग के वर्णन को पताका कहते हैं—जैसे उत्तरचरित में सुग्रीव का और अभिज्ञानशाकुंतल में विदूषक का चरित्रवर्णन। एक देशव्यापी चरित्र वर्णन को प्रकरी कहते हैं। आरंभ की हुई क्रिया की फलसिद्धि के लिये जो कुछ किया जाय उसे कार्य्य कहते हैं; जैसे, रामलीला में रावण का वध।

किसी एक विषय की चर्चा हो रही हो इसी बीच में कोई दूसरा विषय उपस्थित होकर पहले विषय के मेल में मालूम हो वहाँ पताका स्थान होता है, जैसे रामचरित में राम सीता से कह रहे हैं—"हे प्रिये! तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं, यदि असह्य है तो केवल तुम्हारा विरह", इसी बीच में प्रतिहारी आकर कहता है "देव! दुर्मुख उपस्थित"। यहाँ 'उपस्थित' शब्द से 'विरह उपस्थित' ऐसी प्रतीति होती है, और एक प्रकार का चमत्कार मालूम होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक संबंधी ऐसे ही अनेक कौशलों की उद्भावना की गई है और अनेक प्रकार के विभेद दिखाए गए हैं।

आजकल देशभाषाओं में जो नए नाटक लिखे जाते हैं उनमें संस्कृत नाटकों के सब नियमों का पालन या विषयों का समावेश अनावश्यक समझा जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखते हैं—"संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में उनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर नाटक लिखना व्यर्थ है; क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है।"

भारतवर्ष में नाटकों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र बहुत पुराना है। रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणिनि ने 'शिलाली' और 'कृशाश्व' नामक दो नटसूत्रकारों के नाम लिए हैं। शिलाली का नाम शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपद सूत्र में मिलता है। विद्वानों ने ज्योतिष की गणना के अनुसार शतपथ ब्राह्मण को ४००० वर्ष से ऊपर का बतलाया है। अतः कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह राय कि ग्रीस या यूनान में ही सबसे पहले नाटक का प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं है। हरिवंश में लिखा है कि जब प्रद्युम्न, सांब आदि यादव राजकुमार वज्रनाभ के पुर में गए थे तब वहाँ उन्होंने रामजन्म और रंगाभिसार नाटक खेले थे। पहले उन्होंने नेपथ्य बाँधा था जिसके भीतर से स्त्रियों ने मधुर स्वर से गान किया था। शूर नामक यादव रावण बना था, मनोवती नाम की स्त्री रंभा बनी थी, प्रद्युम्न नलकूबर और सांब विदूषक बने थे। विलसन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि हिंदुओं ने अपने यहाँ नाटक का प्रादुर्भाव अपने आप किया था। प्राचीन हिंदू राजा बड़ी बड़ी रंगशालाएँ बनवाते थे। मध्य भारत में सरगुजा एक पहाड़ी स्थान है; वहाँ एक गुफा के भीतर इस प्रकार की एक रंगशाला के चिह्न पाए गए हैं।

यह ठीक है कि यूनानियों के आने के पूर्व के संस्कृत नाटक आजकल नहीं मिलते हैं, पर इस बात से इनका अभाव, इतने प्रमाणों के रहते, नहीं माना जा सकता। संभव है कि कलासंपन्न यूनानी जाति से जब हिंदू जाति का मिलन हुआ हो तब जिस प्रकार कुछ और और बातें एक ने दूसरे की ग्रहण कीं इसी प्रकार नाटक के संबंध में कुछ बातें हिंदुओं ने भी अपने यहाँ ली हों। बाह्यपटी का 'जवनिका' नाम देख कुछ लोग यवन-संसर्ग सूचित करते हैं। श्रेष्ठों में जो 'दृश्य' संस्कृत नाटकों में आए हैं उनसे अनुमान होता है कि इन पटों पर चित्र बने रहते थे। अस्तु अधिक से अधिक इस विषय में यही कहा जा सकता है कि अत्यंत प्राचीन काल में जो अभिनय हुआ करते थे उनमें चित्रपट काम में नहीं लाए जाते थे। सिकंदर के आने के पीछे इनका प्रचार हुआ। अब भी रामलीला, रासलीला बिना परदों के होती ही हैं।

नाटकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर या स्थान जहाँ नाटक होता हो।

नाटका-देवदारु—संज्ञा पुं० [हिं० नाटक + देवदारु] एक छोटा पेड़ या झाड़ जो भारत के दक्षिण और लंका में मिलता है। इसकी लकड़ी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो नावों में लगाया जाता है। इस पेड़ के फल और पत्तियों में पाचन, स्वेदन और भेदन शक्तियाँ होती हैं। भारतवर्ष में इसकी पत्तियाँ और फल दुर्भिक्ष में खाए जाते हैं। नमक और मिर्च के साथ लोग पत्तियों का शाक बनाकर भी खाते हैं।

नाटकावतार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नाटक के अभिनय के बीच दूसरे नाटक का अभिनय। जैसा 'उत्तररामचरित' में एक दूसरे नाटक का अभिनय दिखाया गया है।

विशेष—शेक्सपियर के "हैमलेट" में भी इसी प्रकार अभिनय होना दिखाया गया है।

नाटकी—संज्ञा पुं० [हिं० नाटक] नाटक करनेवाला। नाटक करके जीविका करनेवाला। उ०—कहूँ नृत्यकारी नचि गावैं। कहूँ नाटकी स्वाँग दिखावैं।—सबल।

नाटकीय—वि० [सं०] नाटक संबंधी।

नाटना—क्रि० अ० [सं० नट = बहाना] किसी ऐसी बात को अस्वीकार कर जाना जिसके लिये वचन दिया हो। प्रतिज्ञा आदि पर स्थिर न रहना। इनकार करना। निकल जाना। क्रि० स० अस्वीकार करना। इनकार करना। उ०—जो कोउ धरी धरोहरि नाटै। अरु पच्छिन के पर जो काटै।—विश्राम।

नाजो-संज्ञा स्त्री० [फा० नाज़] (१) नाज करनेवाली स्त्री। चटक मटकवाली स्त्री। ठसकवाली स्त्री। (२) लाड़ली प्यारी स्त्री।

नाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नृत्य। नाच। (२) नकल। स्वाँग। उ०—पंथी इतनी कहियो बात। तुम बिनु यहाँ कुँवर वर मेरे होत जिते उतपात......गोपी गाइ सकल लघु दीरघ पीत बरन कृश गात। परम अनाथ देखियत तुम बिनु केहि अवलंबिये प्रात। कान्ह कान्ह के टेरत तब धौं अब कैसे जिय मानत। यह व्योहार आजु लौं है ब्रज कपट नाट छल ठानत।—सूर। (३) एक देश का नाम। यह देश कर्नाटक के पास था। (४) नाट देशवासी पुरुष। (५) एक राग का नाम। इसे कोई मेघ राग का और कोई दीपक राग का पुत्र मानते हैं। इस राग में वीर रस गाया जाता है।

नाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्य या अभिनय करनेवाला। नट। (२) रंगशाला में नटों की आकृति, हाव भाव, वेश और वचन आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन। वह दृश्य जिस में स्वाँग के द्वारा चरित्र दिखाए जायँ। अभिनय। (३) वह ग्रंथ या काव्य जिसमें स्वाँग के द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र हो। दृश्यकाव्य, अभिनयग्रंथ।

विशेष—नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गए हैं—श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। पर मुख्य रूप से इसका ग्रहण होने के कारण दृश्य काव्य मात्र को नाटक कहने लगे हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इस विषय का सब से प्राचीन ग्रंथ मिलता है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण है। उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्ण के दो भेद हैं—काव्य और अभिनेय। अग्निपुराण में दृश्य काव्य वा रूपक के २७ भेद कहे गए हैं—नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अंक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण। साहित्य दर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रूप से दिए हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य काव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य दो विभाग हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं—रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंकवीथी, और प्रहसन। उपरूपक के अठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिंपक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भाणिका। उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक रूपक का एक भेद मात्र है। पर साधारणतः लोग नाटक शब्द दृश्य काव्य मात्र के अर्थ में बोलते हैं। साहित्य दर्पण के अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) को लेकर लिखना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विलास, सुख, दुःख, तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिएँ। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिए। नाटक के प्रधान वा अंगी रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रूप से आते हैं। शांति, करुणा आदि जिस रूपक में प्रधान हों वह नाटक नहीं कहला सकता। संधिस्थल में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिए। उपसंहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। वियोगांत नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विरुद्ध है। अभिनय आरंभ होने के पहले जो क्रिया (मंगलाचरण नांदी) होती है, उसे पूर्वरंग कहते हैं। पूर्वरंग के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते है, आकर सभा की प्रशंसा करता है फिर नट, नटी, सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्त्तालाप करते हैं जिसमें खेले जानेवाले नाटक का प्रस्ताव, कविवंश वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे वस्तु कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है—आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे 'अधिकारी' कहते हैं। इस अधिकारी के संबंध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे 'आधिकारिक वस्तु' कहते हैं; जैसे, रामलीला में राम का चरित्र। इस अधिकारी के उपकार के लिये या रसपुष्टि के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आ जाता है उसे प्रासंगिक वस्तु कहते हैं; जैसे सुग्रीव, विभीषण आदि का चरित्र।

'सामने लाने' अर्थात् दृश्य सम्मुख उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। अतः अवस्थानुरूप अनुकरण वा स्वाँग का नाम ही अभिनय है। अभिनय चार प्रकार का होता है—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। अंगों की चेष्टा से जो अभिनय किया जाता है उसे आंगिक, वचनों से जो किया जाता है उसे वाचिक, भेस बनाकर जो किया जाता है उसे आहार्य्य तथा भावों के उद्रेक से कंप स्वेद आदि द्वारा जो होता है उसे सात्विक कहते हैं।

नाटक में बीज, विंदु, पताका, प्रकरी और कार्य्य इन पाँचों के द्वारा प्रयोजनसिद्धि होती है। जो बात मुँह से कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धि का प्रथम कारण हो उसे बीज कहते हैं, जैसे वेणीसंहार नाटक में भीम के क्रोध पर युधिष्ठिर का उत्साह वाक्य द्रौपदी के केशमोचन का कारण होने के कारण बीज है। कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्य से उसका संबंध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना

नाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० नाड़] (१) सूत की वह मोटी डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा या धोती बाँधती हैं। इजारबंद। नीवी।

मुहा०—(किसी का) नाड़ा खोलना=संभोग करने के लिये नीवी खोलना। संभोग करना। (मारवाड़ खि०)। नाड़ा छूट करना =पेशाब करना (मारवाड़ खि०)।

(२) लाल या पीला रँगा हुआ गंडेदार सूत जो देवताओं को चढ़ाया जाता है।

नाडिंधम—वि० [सं०] (१) नली को फूँकनेवाला। (२) नाड़ियों को हिलानेवाला। (३) श्वास को जल्दी जल्दी चलानेवाला। हँफानेवाला। (४) जिसे देखते ही नाड़ी हिल जाय। दहलानेवाला। भयंकर।

संज्ञा पुं० सोनार।

नाड़िक—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का साग जिसे पटुआ भी कहते हैं। (२) नाड़ी। (३) घटिका। दंड।

नाड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घड़ी का काल। घड़ी।

नाड़िकेल—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नाड़िया—संज्ञा पुं० [सं० नाड़ी] (नाड़ी पकड़नेवाला) वैद्य। चिकित्सक।

नाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नली। (२) साधारणतः शरीर के भीतर की वे नलियाँ जिनमें हो कर रक्त बहता है, विशेषतः वे जिनमें हृदय से शुद्ध रक्त क्षण क्षण पर जाता रहता है। धमनी।

विशेष—वे नलियाँ जिनसे शरीर भर में रक्त का प्रवाह होता है दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो शुद्ध रक्त को हृदय से लेकर और सब अंगों में पहुँचाती हैं, दूसरी वे जो सब अंगों से अशुद्ध रक्त को इकट्ठा करके उसको हृदय में आक्सिजन वायु द्वारा शुद्ध होने के लिये लौटा कर ले जाती हैं। पहले प्रकार की नलियाँ ही विशेषतः नाड़ियाँ कहलाती हैं। क्योंकि स्पंदन अधिकतर उन्हीं में होता है। अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचानेवाली नलियों या शिराओं में प्रायः स्पंदन नहीं होता। अशुद्ध-रक्तवाहिनी शिराओं के द्वारा अशुद्ध रक्त हृदय के दाहिने कोठे में पहुँचता है, वहाँ से फिर वह फुप्फुस में जाता है, फुप्फुस में वह शुद्ध होता है। शुद्ध होने पर वह फिर हृदय के बाएँ कोठे में पहुँचता है। हृदय का क्षण क्षण पर आकुंचन और प्रसारण होता रहता है—वह बराबर सिकुड़ता और फैलता रहता है। हृदय जिस क्षण सिकुड़ता है उसमें भरा हुआ रक्त बृहन्नाड़ी के खुले मुँह में दिस होता है और फिर बड़ी नाड़ी से उसकी शाखा प्रशाखाओं में पहुँचता है। सब से पतली नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना नहीं देखी जा सकतीं। नाड़ियाँ अधिकतर मांस और पीले तंतुओं की बनी हुई होती हैं। अतः इनमें लचीलापन होता है—ये खींचने से बढ़ जाती हैं। अधिक भर जाने अर्थात् भीतर से ज़ोर पड़ने पर ये फैल कर चौड़ी हो जाती हैं। और ज़ोर हटने पर फिर ज्यों की त्यों हो जाती हैं। हृदय का बायाँ कोठा सिकुड़ कर बड़े वेग के साथ १½ छटाँक रक्त बड़ी नाड़ी में ढकेलता है। नाड़ियों में तो हर समय रक्त भरा रहता है अतः जब बड़ी नाड़ी में यह डेढ़ छटाँक और रक्त पहुँचता है तब हृदय के समीप का भाग बढ़ कर फैल जाता है। फिर जब रक्त का दूसरा झोंका हृदय से आता है तब उसके आगे का भाग फैलता है। इसी आकुंचन प्रसारण के कारण नाड़ियों में स्पंदन वा गति होती है। यह स्पंदन बड़ी नाड़ियों में ही मालूम होता है, छोटी छोटी नलियों में नहीं क्योंकि अत्यंत सूक्ष्म नाड़ियों में पहुँचते पहुँचते लहरों का वेग बहुत कम हो जाता है—और फिर जब शिराओं में वही रक्त अशुद्ध होकर पलटता है तब लहर रह ही नहीं जाती। जब कोई नाड़ी कट जाती है तब उसमें से रक्त उछल उछल कर निकलता है; जब कोई अशुद्ध-रक्तवाहिनी शिरा कटती है तब उसमें से रक्त धीरे धीरे निकलता है। नाड़ियों के भीतर का रक्त लाल होता है पर अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के भीतर का रक्त कालापन लिए होता है।

नाड़ियों का स्पंदन या फड़क इन स्थानों में उँगली दबाने से मालूम हो सकती है—कनपटी में, ग्रीवा में के टेंटुवे के दहने और बाएँ, अक्षसंधि के बीच, पैर में अँगूठे की ओर के गट्टे के नीचे, शिश्न में ऊपर की तरफ, कलाई में, बाहु में (बगल की ओर वाले किनारे में)।

नाड़ी एक मिनट में उतनी ही बार फड़कती है जितनी बार हृदय धड़कता है। नाड़ी परीक्षा से हृदय और रक्तभ्रमण की दशा का ज्ञान होता है, उससे नाड़ियों और हृदय के तथा और भी कई अंगों के रोगों का पता लग जाता है।

आयुर्वेद के ग्रंथों में रक्तवाहिनी नलियों के स्पष्ट और ठीक विभाग नहीं किए गए हैं। सुश्रुत ने ७०० शिराएँ लिखी हैं जिनमें ४० मुख्य हैं—१० रक्तवाहिनी, १० कफवाहिनी, १० पित्तवाहिनी और १० वायुवाहिनी। इसके अतिरिक्त शुद्ध और अशुद्ध रक्त के विचार से कोई विभाग नहीं किया गया है। २४ धमनियों के जो ऊर्द्धवगामिनी, अधोगामिनी और तिर्यग्गामिनी ये तीन विभाग किए गए हैं, उनमें भी उपर्युक्त विभाग नहीं हैं। सुश्रुत ने शिराओं और धमनियों का मूल स्थान नाभि बतलाया है। आधुनिक प्रत्यक्ष शारीरक की दृष्टि से कुछ लोगों ने शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों का 'धमनी' नाम रख दिया है। यह नाम सुश्रुत आदि के अनुकूल न होने पर भी उपयुक्त है क्योंकि धात्वर्थ का यदि विचार किया जाय तो 'धम' कहते हैं 'धौंकने' या 'फूँकने' को। जिस

नाटवसंत–संज्ञा पुं० [सं०] एक राग।

नाटा–वि० [सं० नत = नीचा] [स्त्री० नाटी] जिसका डील ऊँचा न हो। छोटे डील का। छोटे कद का। (प्राणियों के लिये) जैसे, नाटा आदमी, नाटा बैल। उ०—नैपाल आदि उत्तरा खंड के देशों में लोग नाटे होते हैं।—शिवप्रसाद।

संज्ञा पुं० [स्त्री० नाटी] छोटे डील का बैल या गाय। उ०—सिगरोइ दूध पियो मेरे मोहन बलिहि देहु नहिं बाँटी। सूरदास नँद लेहु दोहनी दुहो लाल की नाटी।—सूर।

नाटा-करंज–संज्ञा पुं० [हिं० नाटा + करंज] एक प्रकार का करंज।

नाटाम्र–संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

नाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का दृश्य काव्य। यह एक प्रकार का नाटक ही है जिसमें चार अंक होते हैं। पर इसकी कथा कल्पित होती है। नायिका राज-कुलोद्भवा और नवानुरागिणी और नायक धीर ललित होता है। इसमें स्त्री पात्र अधिक होते हैं। (२) एक रागिनी। यह नटनारायण हम्मीर और अहीरी राग के योग से बनती है और संपूर्ण जाति की मानी जाती है। नारद के मत से यह कर्णाटकी और हनुमत के मत से दीपक की पत्नी है। इसका स्वरग्राम यह है—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा : :

नाटित–वि० [सं०] जिसका अभिनय किया गया हो। अभिनीत। संज्ञा पुं० अभिनय।

नाट्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नटों का काम। नृत्य गीत और वाद्य।

पर्या०—तौर्यत्रिक।

(२) स्वाँग के द्वारा चरित्र प्रदर्शन। अभिनय।

यौ०—नाट्यमंदिर। नाट्यकार। नाट्यशाला। नाट्यरासक। नाट्यशास्त्र।

(३) नकल। स्वाँग। चेष्टा के द्वारा प्रदर्शन।

क्रि० प्र०—करना।

(४) वह नक्षत्र जिनमें नाट्य का आरंभ किया जाता है। (अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती इन नक्षत्रों में नाटक आरंभ करना चाहिए।)

नाट्यकार–संज्ञा पुं० [सं०] नाटक करनेवाला। नट।

नाट्यप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (जिन्हें नाचना प्रिय है)।

नाट्यमंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशाला।

नाट्यरासक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उपरूपक दृश्य काव्य। इसमें केवल एक ही अंक होता है। नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, उपनायक पीठमर्द होते हैं। इसमें अनेक प्रकार के गान और नृत्य होते हैं।

नाट्यशाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पर अभिनय किया जाय। नाटक-घर।

नाट्यशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नृत्य, गीत और अभिनय की विद्या।

विशेष—इसका उपदेश आदि में शिव जी ने ब्रह्मा जी को किया था। ब्रह्मा जी ने इंद्र की प्रार्थना पर अनिरुद्धावतार ग्रहण करके नाट्यवेद नामक उपवेद की रचना की। इसी को गंधर्व वेद भी कहते हैं। इसमें नृत्य वाद्य गीतादि की शिक्षा थी। ब्रह्मा जी से भरत मुनि ने यह उपवेद पाकर संसार में इसका प्रचार किया।

(२) एक प्राचीन ग्रंथ जिसकी रचना भरत मुनि ने की थी।

नाट्यालंकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह विशेष अलंकार जिसके आने से नाटक का सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है। साहित्य-दर्पण में ऐसे अलंकारों की संख्या तैंतीस मानी गई है—आशीर्वाद, अक्रंद, कपट, अक्षमा, गर्व, उद्यम, आश्रय, उत्प्रासन, स्पृहा, क्षोभ, पश्चात्ताप, उपपत्ति, आशंसा, अध्यवसाय विसर्प उल्लेख, उत्तेजन, परीवाद, नीति, अर्थ विशेषण, प्रोत्साहन, सहाय्य, अभिमान, अनुवृत्ति, उत्कीर्तन, याँचा, परिहार, निवेदन, पवर्त्तन, आख्यान, युक्ति, प्रहर्ष और शिक्षा।

नाट्योक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वे विशेष विशेष संबोधन शब्द जो विशेष विशेष व्यक्तियों के लिये नाटकों में आते हैं—जैसे, ब्राह्मण के लिये आर्य्य, क्षत्रिय के लिये महाराज, पति के लिये आर्य्यपुत्र, राजा के साले के लिये राष्ट्रीय, राजा के लिये देव, वेश्या के लिये अज्जका, कुमार के लिये युवराज, विद्वान् के लिये भाव।

नाठ*–संज्ञा पुं० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] (१) नाश। ध्वंस। (२) अभाव। अनस्तित्व। (३) वह जायदाद जिसका कोई वारिस न हो।

मुहा०—नाठ पर बैठना = किसी लावारिस माल का अधिकारी होना।

नाठना*–क्रि० स० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] नष्ट करना। ध्वस्त करना। उ०—मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।—तुलसी।

क्रि० अ० नष्ट होना। ध्वस्त होना।

क्रि० अ० [हिं० नाटना] भागना। हटना। उ०—(क) कोटि पापी इक पासंग मेरे अजामिल कौन बेचारो। नाठ्यो धर्म नाम सुनि मेरो नरक दियो हठि तारो।—सूर। (ख) राम से साम किए नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे। आपनि सूझि कहौं पिय बूझिए जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे।—तुलसी।

नाठा–संज्ञा पुं० [सं० नष्ट] वह जिसके आगे पीछे कोई वारिस न हो।

नाड़–संज्ञा स्त्री० [सं० नाल, नाड़] ग्रीवा। गर्दन। दे० "नार"।

नक्षत्र को नाड़ी नक्षत्र या नाड़ी कहते हैं। जन्म नाड़ी को आद्य, दसवीं को कर्म, सोलहवीं को सांघातिक, अठारहवीं को समुदय, तेईसवीं को विनाश और पचीसवीं को मानस कहते हैं।

नाड़ीमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] विषुवद्रेखा।

नाड़ीयंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शस्त्रचिकित्सा या चीरफाड़ का एक औज़ार जो शरीर की नाड़ियों या स्रोतों में घुसी हुई चीज़ को बाहर निकालने के काम में आता था।

नाड़ीवलय–संज्ञा पुं० [सं०] काल या समय निश्चित करने का एक यंत्र। एक प्रकार की घड़ी। (सिद्धांतशिरोमणि)

नाड़ीव्रण–संज्ञा पुं० [सं०] वह घाव जिसमें भीतर ही भीतर नली की तरह छेद हो जाय और उसमें से बराबर मवाद निकला करे। नासूर।

नाड़ीशाक–संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ शाक।

नाड़ीहिंगु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वृक्ष जिसमें से एक प्रकार की हींग या गोंद निकलता है। यह गोंद औषध के काम में आता है। इस वृक्ष के पत्ते बरमोगरा के पत्तों के ऐसे होते हैं, फूल सफेद और फल पोस्ते के ढेंढ़ के समान होते हैं। (२) उक्त वृक्ष से निकली हींग या गोंद।

विशेष—वैद्यक में यह हींग चरपरी तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, तथा कफ वात और मोह को दूर करनेवाली मानी गई है।

पर्या०—पलाशाख्य। जंतुका। रामठी। वंशपत्री। पिंडाह्वा। सुवीर्या। वेणुपत्री। पिंडा। हिंगु। शिवाटिका।

नाडूदाना–संज्ञा पुं० [देश०] बैलों की एक जाति जो मैसूर में होती है। इस जाति के बैल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती और मज़बूत अधिक होते हैं।

नाणक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धातु।

यौ०—नाणकपरीक्षा।

(२) निष्क। (३) अंकित मुद्रा। सिक्का।

नात†–संज्ञा पुं० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति] (१) नातेदार। संबंधी। उ०—सब राजा भाखे तेहि पाहीं। बिना बुलाए नात न आहीं।—रघुराज। (२) नाता। संबंध।

नातरु–अव्य० [हिं० न+तो+अरु] और नहीं तो। अन्यथा। उ०—(क) भली भई जो गुरु मिले नातरु होती हानि। दीपक ज्योति पतंग ज्यों पड़ता आप निदान।—कबीर। (ख) कोऊ खवावै तौ कछु खाहीं। नातरु बैठे ही रहि जाहीं।—सूर। (ग) नातरु हां करिहीं बनवास। छोड़ो योग छाड़ि सब आस।—लल्लू।

नातवाँ–वि० [फा०] दुर्बल। क्षीण। निर्बल। अशक्त। उ०—नातवान तन पै सुनो एती ताकत है न। मन सुकाय मों सामुहे गज मतवारे नैन।—रसनिधि।

नाता–संज्ञा पुं० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, हिं० नात] (१) दो या कई मनुष्यों के बीच वह लगाव जो एक ही कुल में उत्पन्न होने या विवाह आदि के कारण होता है। कुटुंब की घनिष्ठता। ज्ञाति-संबंध। रिश्ता। उ०—यह विचार नहिं करहुँ हठ झूठ सनेह बढ़ाइ। मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ।—तुलसी।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—टूटना।—तोड़ना।—लगाना।

(२) संबंध। लगाव। उ०—(क) कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानहुँ एक भगति कर नाता।—तुलसी। (ख) सूरदास सिय राम लखन बन कहा अवध सों नाता।—सूर।

नाताकत–वि० [फा० ना+अ० ताक़त] जिसे ताक़त या बल न हो। निर्बल। अशक्त।

नातिन–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाती] लड़की की लड़की। बेटी की बेटी।

नाती–संज्ञा पुं० [सं० नप्तृ, प्रा० नत्ति] [स्त्री० नतिनी, नातिन] लड़की या लड़के का लड़का। बेटी या बेटे का बेटा। उ०—(क) नाती पूत कोटि दस अहा। रोवनहार न एकौ रहा।—जायसी। (ख) उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।—तुलसी।

नाते–क्रि० वि० [हिं० नाता] (१) संबंध से। उ०—सखि हमरे आरति अति ताते। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते।—तुलसी। (२) हेतु। वास्ते। लिये। उ०—दूध दही के नाते बनबन बातें बहुत गोपाल। गढ़ि गढ़ि छोलत कहा रावरे लूटत हौ व्रजबाल।—सूर।

नातेदार–वि० [हिं० नाता+दार] [संज्ञा नातेदारी] संबंधी। रिश्तेदार। सगा। उ०—है सुत है नहिं कुल को सामा। नातेदार सौरि तव भामा।—गोपाल।

नाथ–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

नाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रभु। स्वामी। अधिपति। मालिक। (२) पति। (३) वह रस्सी जिसे बैल, भैंसे आदि की नाक छेदकर उसमें इसलिये डाल देते हैं जिसमें वे वश में रहें। उ०—रंगनाथ हौं जाकर हाथ ओही के नाथ। गहे नाथ सो खींचे फेरत फिरै न माथ।—जायसी। (४) मत्स्येंद्रनाथ के अनुयायी योगियों की एक उपाधि। गोरखपंथी साधुओं की एक पदवी जो उनके नामों के साथ ही मिली रहती है। (५) एक प्रकार के मदारी जो साँप पालते और नचाते हैं।

†संज्ञा स्त्री० दे० "नथ"। उ०—परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।—जायसी।

नाथता–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभुता। स्वामित्व।

नाथत्व–संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुत्व। स्वामित्व।

नाथना–क्रि० स० [हिं० नाथ] (१) बैल, भैंस आदि की नाक छेदकर उसमें इसलिये रस्सी डालना जिसमें वे वश में रहें। नकेल डालना। नाक छेदना। उ०—(क) आजु सखे रावन

प्रकार धौंकनी फूलती और पचकती है उसी प्रकार शुद्ध रक्त-वाहिनी नाड़ियाँ भी। दे० 'शिरा', 'धमनी'।

नाड़ीपरीक्षा का विषय भी सुश्रुत में नहीं मिलता है, इधर के ही ग्रंथों में मिलता है। आर्ष ग्रंथों में न होने पर भी पीछे आयुर्वेद में नाड़ीपरीक्षा को बड़ी प्रधानता दी गई, यहाँ तक कि 'नाड़ी प्रकाश' नाम का स्वतंत्र ग्रंथ ही इस विषय पर लिखा गया।

मुहा०—नाड़ी चलना = कलाई की नाड़ी में स्पंदन वा गति होना। (विशेष—नाड़ी का उछलना प्राण रहने का चिह्न समझा जाता है और उसके अनुसार रोगी की दशा का भी पता लगाया जाता है।) नाड़ी छूट जाना = (१) नाड़ी का न चलना। दबाकर छूने से नाड़ी में गति न मालूम होना। (२) प्राण न रह जाना। मृत्यु हो जाना। (३) संज्ञा न रहना। मूर्च्छा आना। बेहोशी आना। नाड़ी देखना = कलाई की नाड़ी दबाकर रोगी की अवस्था का पता लगाना। नाड़ी परीक्षा करके रोग का निदान करना। नाड़ी धरना या पकड़ना = दे० नाड़ी देखना"। नाड़ी दिखाना या धराना = रोग के निदान के लिये वैद्य से नाड़ी परीक्षा कराना। नब्ज़ दिखाना। नाड़ी न बोलना = (१) नाड़ी न चलना। नाड़ी में गति न मालूम होना। (२) प्राण न रहना। (३) मूर्च्छा आना। बेहोशी आना।

(३) हठयोग के अनुसार ज्ञानवाहिनी, शक्तिवाहिनी और श्वास-प्रश्वास-वाहिनी नालियाँ।

विशेष—योगियों का कहना है कि मेरुदंड या रीढ़ के एक इस तरफ़ और एक उस तरफ़ ऐसी दो नालियाँ हैं। इनमें जो बाईं ओर है उसे इला वा इड़ा और जो दाहिनी ओर है उसे पिंगला कहते हैं। इन दोनों के बीच में सुषुम्ना नाम की नाड़ी है। स्वरोदय तथा तंत्र के अनुसार बाएँ नथुने से जो साँस आती जाती है वह इड़ा नाड़ी से होकर और दहिने नथुने से जो निकलती है वह पिंगला से होकर। यदि श्वास कुछ क्षण बाएँ और कुछ क्षण दहने नथुने से निकले तो समझना चाहिए कि वह सुषुम्ना नाड़ी से आ रहा है। श्वास की गति के अनुसार स्वरोदय में शुभाशुभ फल भी कहे गए हैं। इड़ा नाड़ी में चंद्र की अवस्थिति रहती है और पिंगला में सूर्य की। अतः इड़ा का गुण शीत और पिंगला का उष्ण है। सुषुम्ना नाड़ी त्रिगुणमयी और चंद्रसूर्याग्नि स्वरूपा है। यह नाड़ी ब्रह्मस्वरूपा है इसी में जगत् प्रतिष्ठित है। बिना इन नाड़ियों के ज्ञान के योगाभ्यास में सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। जो योगाभ्यास करना चाहते हैं वे पहले इड़ा, फिर पिंगला और फिर सुषुम्ना को लेकर चलते हैं। सुषुम्ना के सब के नीचे के भाग को योगी कुंडलिनी मानते हैं जिसे जगाने का यत्न वे करते हैं। सच पूछिए तो उसी को जगाने के लिये ही योग का अभ्यास किया जाता है। जाग्रत होने पर कुंडलिनी चंचल होकर सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भीतर सिर की ओर चढ़ने लगती है और बारह चक्रों को पार करती हुई ब्रह्मरंध्र तक चली जाती है। जैसे जैसे वह ऊपर की ओर चढ़ती जाती है योगी के सांसारिक बंधन ढीले पड़ते जाते हैं और अलौकिक शक्तियाँ उसे प्राप्त होती जाती हैं, यहाँ तक कि मन और शरीर से उसका संबंध छूट जाता है और वह परमानंद में मग्न होकर परमात्मा का शुद्ध रूप देखने लगता है।

निरुत्तर तंत्र में दस नाड़ियाँ लिखी हैं जिनमें ऊपर लिखी तीन मुख्य हैं। घेरंडसंहिता आदि योग के ग्रंथों को देखने से पता लगता है कि अँतड़ियाँ भी नाड़ियों के अंतर्गत मानी गई हैं। प्रक्षालन क्रिया में शक्तिवाहिनी नाड़ी को निकाल कर उसके भीतर के मल को धोने का विधान है।

(४) व्रणरंध्र। नासूर का छेद। (५) बंदूक की नली।

यौ०—नाड़ीव्रण।

(६) काल का एक मान जो ६ क्षण का होता है। (७) गंडदूर्वा। (८) वंशपत्री। (९) किसी तृण का पोला डंठल। (१०) छद्म। कपट। मक्कारी। (११) वर-वधू की गणना बैठाने में कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्र समूह। दे० "नाड़ी-नक्षत्र"।

नाड़ीक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग। पटुआ साग।

नाड़ीकलापक—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पाक्षी। भिड़नी नाम की घास।

नाड़ीकूट—संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी-नक्षत्र।

नाड़ीकेल—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नाड़ीच—संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ साग।

नाड़ीचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हठयोग के अनुसार नाभि देश में कल्पित एक अंडाकार गाँठ जिससे निकलकर सब नाड़ियाँ फैली हैं। (२) फलित ज्योतिष में नक्षत्रों के उन भेदों को सूचित करनेवाला कोष्ठ या चक्र जिन्हें नाड़ी कहते हैं। दे० "नाड़ी-नक्षत्र"।

नाड़ीचरण—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

नाड़ीजंघ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काक। कौआ। (२) एक मुनि का नाम। (३) महाभारत के अनुसार एक बगला जो कश्यप का पुत्र, ब्रह्मा का अत्यंत प्रियपात्र और दीर्घजीवी था।

नाड़ीतरंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काकोल। (२) हिंडक।

नाड़ीतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] नेपाली नीम। नेपाल निंब।

नाड़ीदेह—वि० [सं०] अत्यंत दुबला पतला।

संज्ञा पुं० शिव के एक द्वारपाल का नाम।

नाड़ी-नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वर-वधू की गणना बैठाने के लिये कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्र। (फलित ज्योतिष)

विशेष—जिस नक्षत्र में मनुष्य का जन्म होता है उसे तथा उससे दसवें, सोलहवें, अठारहवें, तेईसवें और पचीसवें

होलदिल तथा दिल धड़कने की बीमारी अच्छी हो जाती है। कुछ लोगों का विश्वास है कि बिजली का असर भी जहाँ यह पत्थर रहता है वहाँ नहीं होता।

नादान–वि० [फा०] [संज्ञा नादानी] नासमझ। अनजान। मूर्ख। उ०—कबीर मारी अल्लाह की ताको कहत हराम। हलाल कहै अपनी मारी यह नादान कलाम।—कबीर।

नादानी–संज्ञा स्त्री० [फा०] अज्ञान। नासमझी।

नादार–वि० [फा०] (१) जो अपने पास कुछ न रखता हो जिसके पास कुछ न हो। अकिंचन। निर्धन। कंगाल। (२) गंजीफे के खेल में बिना रंग या मीर की बाजी।

नादारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] गरीबी। निर्धनता। उ०—ख्रो को नादारी में जाँचिए।—लल्लू।

नादित–वि० [सं०] शब्द करता हुआ। बजाया हुआ।

नादिम–वि० [अ०] लज्जित।

क्रि० प्र०—करना।—होना

नादिया—संज्ञा पुं० [सं० नंदी] (१) नंदी। (२) वह बैल जिसे जोगी लेकर भीख माँगते हैं।

विशेष—ऐसे बैलों को कोई न कोई अंग अधिक (जैसे टाँग) रहता है जिससे लोगों को कुतूहल होता है।

नादिर–वि० [फा०] अद्भुत। अनोखा। उ०—औरंगजेब बादशाह के कोका फिदाई खाँ का बाग बहुत नादिर बना है।—शिवप्रसाद।

नादिरशाह–संज्ञा पुं० [फा०] फारस का एक क्रूर और प्रतापी बादशाह जिसने सन् १७३८ में दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह पर चढ़ाई की और १७३९ में दिल्ली नगरवासियों की हत्या कराई। प्रातः काल से सूर्यास्त तक हत्याकांड जारी रहा जिसमें लाखों मनुष्य मारे गए।

नादिरशाही–संज्ञा स्त्री० [फा०] ऐसा अंधेर जैसा नादिरशाह ने दिल्ली में मचाया था। भारी अंधेर या अत्याचार।

वि० नादिरशाह के ऐसा। बहुत ही कठोर और उग्र। जैसे, नादिरशाही हुक्म।

नादिरी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक प्रकार की सदरी या बंडी जो मुगल बादशाहों के समय में पहनी जाती थी। इसके किनारे पर कुछ काम होता था। इसे कभी कभी खिलअत में दिया करते थे। (२) गंजीफे का वह पत्ता जो खेल के समय निकाल कर अलग रख दिया जाता है।

मुहा०—नादिरी चढ़ाना=बेतरह मात करना।

नादिहंद–वि० [फा०] न देनेवाला। जिससे रकम वसूल न हो।

नादिहंदी–संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी को कुछ न देने की प्रवृत्ति। श्रदातव्यता।

नादी–वि० [सं० नदिन्] [स्त्री० नदिनी] (१) शब्द करनेवाला। (२) बजनेवाला।

नादेय–वि० [सं०] [स्त्री० नादेयी] (१) नदी संबंधी। नदी का। (२) नदी में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) सेंधा नमक। (२) सुरमा। (३) काँस नाम की घास। (४) जलबेत। अंबुवेतस।

नादेयी–वि० स्त्री० [सं०] (१) नदी संबंधिनी। नदी की। (२) नदी में होनेवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) अंबुवेतस। जलबेंत। (२) भूमिजंबुक। भुईंजामुन। (३) वैजयंतिका। वैजयंती। (४) नारंगी। (५) जवा। अड़हुल। (६) अग्निमंथ वृक्ष। अँगेयू।

नादेहंद–वि० दे० "नादिहंद"।

नाधन–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाधना] चरखे के तकले में तागे की रोक के लिये लगी हुई एक गोल टिकिया।

विशेष—यह टिकिया पिसी हुई मेथी में रुई आदि डालकर बनाते हैं और लिपटे हुए तागे के आगे छेदकर पहना देते हैं।

नाधना–क्रि० स० [सं० नद्ध=बँधा या जुड़ा हुआ] (१) रस्सी या तस्मे के द्वारा बैल, घोड़े आदि को उस वस्तु के साथ जोड़ना या बाँधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना होता है। जोतना। जैसे, बैल को गाड़ी या हल में नाधना। उ०—(क) खसम बिनु तेली के बैल भयो। बैठत नाहिं साधु की संगति नाधे जनम गयो।—कबीर। (ख) बहुत वृषभ बहलन महँ नाधे।—रघुराज।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—काम में नाधना=काम में लगाना।

(२) जोड़ना। संबद्ध करना। उ०—तुम्हैं देरि पावै, सुख बहु भाँति ताहि दीजै नेकु निरखि नतीजा नेह नाधे को।—कालिदास। (३) गूँथना। गुहना। उ०— देव जगामग जोतिन की, जर मोतिन की लरकीन सों नाधी।—देव। (४) (किसी काम को) ठानना। अनुष्ठित करना। आरंभ करना, जैसे, काम नाधना, उपद्रव नाधना। उ०—(क) मेरी कही न मानत राधे। ये अपनी मति समुझत नाहीं कुमति कहा पन नाधे।—सूर। (ख) याही को कहायो ब्रजराज दिन चार ही में करिहै उजियारी ब्रज ऐसी रीति नाधी है।—मतिराम।

नाधा–संज्ञा पुं० [सं० नाधना] वह रस्सी या चमड़े की पट्टी जिससे हल या कोल्हू की हरिस जुए में बाँधी जाती है। नारी।

संज्ञा पुं०[सं० नाँद] वह स्थान जहाँ पर पानी कूएँ, जलाशय आदि से निकालकर फेंका जाता है और जहाँ से नालियों में होता हुआ वह सिंचाई के लिये खेतों में जाता है।

नान–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) रोटी। चपाती। (२) एक प्रकार की मोटी खमीरी रोटी जो तंदूर में पकाई जाती है।

यौ०—नानखताई। नानबाई। नानपाव।

नानक–संज्ञा पुं० पंजाब के एक प्रसिद्ध महात्मा जो सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे।

दस माथा। आजु कान्ह कारे फन नाथा।—जायसी। (ख) काली नाग नाथि हरि लाए सुरभी ग्वाल जिवाए।—सूर। (ग) सात बैल नाथन के कारन आप अयोध्या आए।—सूर।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—नाक पकड़ कर नाथना = बलपूर्वक वश में करना। (२) किसी वस्तु को छेदकर उसमें रस्सी या तागा डालना। (३) कई वस्तुओं या किसी वस्तु के कई भागों को छेदकर रस्सी या तागे के द्वारा एक में जोड़ना। नत्थी करना। जैसे, इन सब कागजों को एक में नाथ कर रख दो। (४) लड़ी के रूप में जोड़ना।

नाथद्वारा—संज्ञा पुं० [सं० नाथद्वार] उदयपुर राज्य के अंतर्गत वल्लभ संप्रदाय के वैष्णवों का एक प्रसिद्ध स्थान जहाँ श्रीनाथजी की मूर्त्ति स्थापित है।

विशेष—औरंगजेब ने जब मथुरा की सब कृष्णमूर्त्तियों को तोड़ने का विचार किया तब सन् १६७१ में उदयपुर के महाराणा राजसिंह श्रीनाथजी की मूर्त्ति को मथुरा से उदयपुर की ओर लेकर धूमधाम के साथ चले। इस स्थान पर जब रथ पहुँचा तब पहिया कीचड़ में धँस गया। लोगों ने कहा कि श्रीनाथ जी की इच्छा इसी स्थान पर रहने की है। महाराणा ने भारी मंदिर बनवाकर मूर्त्ति वहीं स्थापित कर दी।

नाथहरि—संज्ञा पुं० [सं०] पशु।

नाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। ध्वनि। आवाज। (२) वर्णों का अव्यक्त मूल रूप।

विशेष—संगीत के आचार्यों के अनुसार आकाशस्थ अग्नि और मरुत् के संयोग से नाद की उत्पत्ति हुई है। जहाँ प्राण (वायु) की स्थिति रहती है उसे ब्रह्मग्रंथि कहते हैं। संगीत-दर्पण में लिखा है कि आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर चित्त देहज अग्नि पर आघात करता है और अग्नि ब्रह्मग्रंथिगत प्राण को प्रेरित करती है। अग्नि द्वारा प्रेरित प्राण फिर ऊपर चढ़ने लगता है। नाभि में पहुँचकर वह अति सूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म, गलदेश में पुष्ट, शीर्ष में अपुष्ट और मुख में कृत्रिम नाद उत्पन्न करता है। संगीत दामोदर में नाद तीन प्रकार का माना गया है—प्राणिभव, अप्राणिभव, और उभय-संभव। जो मुख आदि अंगों से उत्पन्न किया जाता है वह प्राणिभव, जो वीणा आदि से निकलता है वह अप्राणिभव और जो बाँसुरी से निकाला जाता है वह उभय-संभव है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग आदि कुछ भी संभव नहीं। ज्ञान भी उसके बिना नहीं हो सकता। अतः नाद परज्योति वा ब्रह्मरूप है और सारा जगत् नादात्मक है। इस दृष्टि से नाद दो प्रकार का है—आहत और अनाहत। अनाहत नाद को केवल योगी ही सुन सकते हैं। हठयोग दीपिका में लिखा है कि जिन मूढ़ों को तत्त्वबोध न हो सके वे नादोपासना करें। अंतःस्थ नाद सुनने के लिये चाहिए कि एकाग्रचित्त होकर शांतिपूर्वक आसन जमाकर बैठे। आँख, कान, नाक, मुँह सब का व्यापार बंद कर दे। अभ्यास की अवस्था में पहले तो मेघगर्जन, भेरी आदि की सी गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ेगी, फिर अभ्यास बढ़ जाने पर क्रमशः वह सूक्ष्म होती जायगी। इन नाना प्रकार की ध्वनियों में से जिसमें चित्त सब से अधिक रमे उसी में रमावे। इस प्रकार करते करते नादरूपी ब्रह्म में चित्त लीन हो जायगा।

(३) वर्णों के उच्चारण में एक प्रयत्न जिसमें कंठ को न तो बहुत अधिक फैलाकर न संकुचित करके वायु निकालनी पड़ती है। (४) अनुस्वार के समान उच्चारित होनेवाला वर्ण। सानुनासिक स्वर। अर्द्धचंद्र।

पर्या०—अर्द्धेंदु। अर्द्धमात्रा। कलाराशि। सदाशिव। अनुच्चार्या। तुरीया। परा। विश्वमातृकला।

(५) संगीत।

यौ०—नादविद्या = संगीत शास्त्र।

नादना*—क्रि० स० [सं० नदन वा हिं० नाद] बजाना। उ०—(क) काहू बीन गहा कर काहू नाद मृदंग। सब दिन अनँद बधावा रहस कूद इक संग।—जायसी। (ख) इन ही के आए ते बधाए ब्रज नित नये नादत बढ़त सब सब सुख जियो है।—तुलसी।

क्रि० अ० (१) बजना। शब्द करना। उ०—शून्यज्ञान सुषुप्ति होय। अकुलाहट सेना ही सोय।—कबीर। (२) चिल्लाना। गरजना। उ०—मनु करि दल लखि वृंद हरि नादि उठ्यो कंदर निकर।—गोपाल।

क्रि० अ० [सं० नंदन] लहकना। लहलहाना। प्रफुल्लित होना। उ०—नैकु न जानी परति यों परयो विरह तन छाम। उठति दिया लौं नादि हरि लिये तिहारो नाम।—बिहारी।

नादमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें दहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर अँगूठे को ऊपर की ओर उठाए रहना पड़ता है।

नादली—संज्ञा स्त्री० [अ० नाद अली] संग यशब नामक पत्थर की चौकोर टिकिया जिसपर कुरान की एक विशेष आयत खुदी रहती है और जिसे रोग-बाधा दूर करने के लिये यंत्र की तरह पहनते हैं। हौलदिली।

विशेष—आयत का आरंभ 'नाद अलियन' इस वाक्य से होता है इसीसे यंत्र को नादली कहते हैं। हकीमों का कथन है कि उक्त पत्थर में कलेजे की धड़क आदि दूर करने का विशेष गुण है। छाती पर उसका संसर्ग रहने से

†क्रि० स० [सं० नमन] (१) झुकाना। नम्र करना। उ०—(क) बुद्धि जो गई आव बौराई। गरब गए तरहीं सिर नाई।—जायसी। (ख) इंद्र डरै नित नावहि माथा।—सूर। (२) नीचा करना। (३) डालना। फेंकना। (४) घुसाना। प्रविष्ट करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

संज्ञा पुं० [फ०] पुदीना।

यौ०—अर्कनाना=सिरके के साथ भभके में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

नानाकंद-संज्ञा पुं० [सं०] पिंडालू।

नानिहाल-संज्ञा पुं० [हिं० नानी+आल (आलय)] नानी का घर। नाना नानी के रहने का स्थान।

नानी-संज्ञा स्त्री० [देश०] माँ की माँ। माता की माता। मातामही।

विशेष—इस शब्द के आगे 'इया' प्रत्यय लगा कर संबंध सूचक विशेषण भी बनाते हैं, जैसे, ननिया सास।

मुहा०—नानी मर जाना=होश ठिकाने हो जाना। प्राण सूख जाना। आपत्ति सी आ जाना। संकट या दुःख सा पड़ जाना। उ०—हरमोहन की नानी तो थानेवालों को देखते ही मर गई थी। ...... —अयोध्या०। नानी याद आना=दे० "नानी मर जाना"।

नानुकर-संज्ञा पुं० [हिं० न+करना] नाहीं। इनकार।

क्रि० प्र०—करना।

नान्हा†-वि० [सं० न्यञ्च=नत, छोटा। वा न्यून] (१) छोटा। लघु। नन्हा। (२) नीच। क्षुद्र। उ०—कहै कबीर सुनो हो बाबा। नान्ह जाति ञतियाए बाबा।—कबीर। (३) पतला। बारीक। महीन।

मुहा०—नान्ह कातना=(१) बहुत बारीक काम करना। (२) कठिन या दुष्कर कार्य करना। उ०—अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी कब कान्ह?। तुलसी लोग रिझाइबो करहि कातिबो नान्ह।—तुलसी।

नान्हक-संज्ञा पुं० दे० "नानक"।

नान्हरिया†*-वि० [हिं० नन्ह] छोटा। नन्हा। उ०—मेरो नान्हरिया गोपाल बेगि बड़ो किन होहि। यहि मुख मधुरे बचन हँसि कबहूँ जननि कहोगे मोहिं।—सूर।

नान्हा†*-वि० [सं० न्यच=नत, छोटा। वा न्यून] [स्त्री० नन्हीं] (१) छोटा। लघु। नन्हा। उ०—सबंस में पहले ही दीनो नान्ही नान्ही दतुली दू पर।—सूर। (२) पतला। बारीक। महीन। उ०—मन मनसा को मारि के नान्हा करिके पीस। तब सुख पावै सुंदरी पदम झलक्कै सीस।—कबीर। (३) नीच। क्षुद्र। उ०—सेवत सुलभ रहे मन भीतर। नान्हे लोग तनक धन ईतर।—सूर।

संज्ञा पुं० छोटा बच्चा। लड़का।

यौ०—नान्हा बारा=छोटा बालक। उ०—कालो सी की छोहरी संई नान्ही बारि।—देवस्वामी।

नाप-संज्ञा स्त्री० [सं० मापन, हिं० माप] (१) किसी वस्तु का विस्तार जिसका निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि वह एक निर्दिष्ट विस्तार का कितना गुना है। किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई जिसकी छोटाई बड़ाई (या न्यूनता अधिकता) का निश्चय किसी निर्दिष्ट लंबाई के साथ मिलाने से किया जाय। परिमाण। माप। जैसे, यह धोती नाप में पाँच गज है। (२) विस्तार का निर्धारण। किसी वस्तु की लंबाई चौड़ाई आदि कितनी है इसको ठीक ठीक स्थिर करने के लिये की जानेवाली क्रिया। नापने का काम। जैसे, जमीन की नाप हो रही है।

यौ०—नाप तौल।

(३) वह निर्दिष्ट लंबाई जिसे एक मान कर किसी वस्तु का विस्तार कितना है यह स्थिर किया जाता है। मान। जैसे, यहाँ की नाप कुछ छोटी है इसीसे कपड़ा घटा। (४) निर्दिष्ट लंबाई की वह वस्तु जिसका व्यवहार करके स्थिर किया जाय कि कोई वस्तु कितनी लंबी, चौड़ी आदि है। नापने की वस्तु। मानदंड। नपना। पैमाना।

नाप जोख-संज्ञा स्त्री० दे० "नाप तौल"।

नाप तौल-संज्ञा स्त्री० [हिं० नाप+तौल] (१) नापने और तौलने की क्रिया। (२) परिमाण या मात्रा जो नाप या तौल कर स्थिर की जाय।

क्रि० प्र०—करना—होना।

नापदान†-संज्ञा पुं० दे० "नाबदान"।

नापना-क्रि० स० [सं० मापन] (१) किसी वस्तु का विस्तार इस प्रकार निर्धारित करना कि वह एक नियत विस्तार का कितना गुना है। किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई कितनी है यह निश्चित करना। लंबाई, चौड़ाई आदि की परीक्षा करना। मापना। आयत परिमाण निर्दिष्ट करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—सिर नापना=सिर काटना।

(२) अंदाज करना। कोई वस्तु कितनी है इसका पता लगाना। जैसे, दूध नापना, शराब नापना।

नापसंद-वि० [फा०] (१) जो पसंद न हो। जो अच्छा न लगे। अनसुहाता। जैसे, चीज नापसंद हो तो दाम वापस। (२) अप्रिय। अरुचिकर। जो न जचे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नापाक-वि० [फा०] (१) अशुद्ध। अशुचि। अपवित्र। भ्रष्ट। (२) मैला कुचैला।

क्रि० प्र०—करना।—होना

विशेष—इनका जन्म रावी नदी के किनारे तिलौंडी नामक गाँव में (आधुनिक रायपुर) संवत् १५२६ में कार्त्तिकी पूर्णिमा को एक खत्रीकुल में हुआ था। इनके पिता का नाम कालू था। लड़कपन ही से ये सांसारिक विषयों से उदासीन रहा करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि पिता ने एक बार इन्हें ४०) नमक खरीदने के लिये दिए। ये नमक खरीदने चले पर बीच में कुछ भूखे साधु मिले और इन्होंने सब रुपयों का अन्न लेकर उन्हें खिला दिया। इन्हें काम काज के योग्य न देख पिता ने इन्हें इनकी बहिन के पास सुलतानपुर (कपूरथले में) नामक स्थान में भेज दिया। वहाँ का नवाब उस समय दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी का संबंधी दौलत खाँ नामक पठान था। उसके यहाँ ये मोदीखाने में नौकर हुए। वहाँ भी इन्होंने साधुओं को खिलाना आरंभ किया जिससे इनपर रुपया खाने का अपराध लगाया गया। पर जब हिसाब लिया गया तब सब ठीक उतरा। इनका विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में गुरुदासपुर जिले के अंतर्गत लालोकी नामक स्थान के रहनेवाले मूला की कन्या सुलक्ष्मी से हुआ था। जिस समय ये दौलत खाँ के यहाँ थे उसी समय ३२ वर्ष की अवस्था में इनके प्रथम पुत्र हरीचंद का जन्म हुआ। चार वर्ष पीछे दूसरे पुत्र लखमी दास का जन्म हुआ। दोनों लड़कों के जन्म के उपरांत नानक ने घरबार छोड़ दिया और मरदाना, लहना, बाला और रामदास इन चार साथियों को लेकर वे भ्रमण के लिये निकल पड़े। ये चारों ओर घूमकर उपदेश करने लगे। इनके उपदेश का सार यही होता था कि ईश्वर एक है उसकी उपासना हिंदू मुसलमान दोनों के लिये है। मूर्त्तिपूजा, बहुदेवोपासना को ये अनावश्यक कहते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों पर इनके मत का प्रभाव पड़ता था। धीरे धीरे इनके बहुत से शिष्य हो गए। लोगों ने तत्कालीन बादशाह इब्राहीम लोदी से इनकी शिकायत की और ये बहुत दिनों तक कैद रहे। अंत में पानीपत की लड़ाई में जब इब्राहीम हारा और बाबर के हाथ में राज्य गया तब इनका छुटकारा हुआ। पिछले दिनों में इनकी ख्याति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में भी परिवर्त्तन हुआ। स्वयं विरक्त होकर ये अपने परिवार वर्ग के साथ रहने लगे और दान पुण्य भंडारा आदि करने लगे। जलंधर जिले में इन्होंने कर्त्तारपुर नामक एक नगर बसाया और एक बड़ी धर्मशाला उसमें बनवाई। इसी स्थान पर आश्विन कृष्ण १० संवत् १५९७ को इनका परलोकवास हुआ। यह सिखों का एक पवित्र स्थान है।

नानकपंथी—संज्ञा पुं० [हिं० नानक+पंथ] गुरु नानक का अनुयायी। सिख। नानकशाही।

नानकशाही—वि० [हिं० नानकशाह] (१) गुरु नानक से संबंध रखनेवाला। जैसे, नानकशाही मत। (२) नानकशाह का शिष्य या अनुयायी। जैसे, नानकशाही साधु।

नानकार—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की माफी जिसके अनुसार जमींदार को कुछ जमीन की मालगुजारी नहीं देनी पड़ती।

विशेष—इस प्रकार की माफी अवध के नवाबों के समय से चली आ रही है। नानकार दो तरह का होता है—नानकार देही और नानकार इस्मी। यदि किसी गाँव में कुछ जमीन की या किसी तअल्लुके में कुछ गाँवों की मालगुजारी माफ है और वह माफी उस गाँव या तअल्लुके के साथ लगी हुई है तो वह नानकार देही कहलाती है। इस प्रकार की माफी में गाँव के हर एक हिस्सेदार का हक होता है। यदि माफी किसी खास आदमी के नाम से होती है तो उसे नानकार इस्मी कहते हैं। इसमें हिस्सेदारों का हक नहीं होता पर व्यवहार में यह बहुत कम माना जाता है।

नानकीन—संज्ञा पुं० [चीनी नानकिङ] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो चीन देश से बाहर को जाता था। यह कपड़ा मटमैले रंग का होता था। पहले पहल इसका बुनना चीन के नानकिङ नामक नगर में प्रारंभ हुआ था। आजकल इस प्रकार का कपड़ा युरोप आदि अनेक देशों में बनता है और इसी नाम से पुकारा जाता है।

नानखताई—संज्ञा स्त्री० [फा०] टिकिया के आकार की एक सोंधी खस्ता मिठाई।

विशेष—घी और चीनी के साथ घुले हुए चावल के आटे की टिकिया (बताशे के आकार की) लोहे की एक चद्दर पर रखते हैं। फिर चद्दर को दहकते अंगारों से भरे हुए दो थालों के बीच इस प्रकार रखते हैं कि आँच ऊपर और नीचे दोनों ओर से लगे। जब टिकियाँ पक जाती हैं और उनमें से सोंधाहट आने लगती है तब चद्दर निकाल ली जाती है।

नानपेरिल—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा टाइप।

नानबाई—संज्ञा पुं० [फा० नानबा, नानबाफ़] रोटियाँ पकाकर बेचनेवाला।

नानस—संज्ञा स्त्री० [ननिया सास का संक्षिप्त रूप] सास की माँ। ननिया सास। (क्वि०)

नानसरा—संज्ञा पुं० [ननिया ससुर का संक्षिप्त रूप] ननिया ससुर। पति या स्त्री का नाना। (क्वि०)

नाना—वि० [सं०] (१) अनेक प्रकार के। बहुत तरह के। विविध। (२) अनेक। बहुत।

संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० नानी] माता का पिता। माँ का बाप। मातामह। उ०—सो लंका तव नाना केरी। बसे आप मम पितहि खदेरी।—विश्राम।

ने पिता की बात न मानी। पिता पुत्र में युद्ध छिड़ गया। परिव्राट् मुनि ने युद्ध शांत किया। नाभाग वैश्य कन्या का पाणिग्रहण करके वैश्यत्व को प्राप्त हुए। प्रमति मुनि ने नल को व्यवस्था दी थी कि यदि कोई क्षत्रिय उन की कन्या को बलपूर्वक विवाह लेगा तो उनका वैश्यत्व छूट जायगा। अंत में नाभाग भी इसी रीति से फिर क्षत्रिय हो गए।

नाभागारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वैवस्वत मनु के एक पुत्र। (हरिवंश)

नाभारत—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभ्यावर्त्त] वह भौंरी जो घोड़े की नाभि के नीचे हो। यह दूषित मानी जाती है।

नाभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चक्रमध्य। पहिये का मध्य-भाग। नाह। (२) जरायुज जंतुओं के पेट के बीचो बीच वह चिह्न या गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायुनाल जुड़ा रहता है। ढोंढी। धुन्नी। तुन्नी। तुंदी। तुंदिका। तुंदकूपी। (३) कस्तूरी।

संज्ञा पुं० (१) प्रधान राजा। (२) प्रधान व्यक्ति या वस्तु। (३) गोत्र। (४) क्षत्रिय। (५) महादेव। (६) प्रियव्रत राजा के पौत्र। (ब्रह्मांड पुराण)। (७) भागवत के अनुसार आग्नीध्र राजा के पुत्र जिनकी पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव की उत्पत्ति हुई थी। इनकी कथा इस प्रकार है। नाभि ने पत्नी के सहित पुत्र की कामना से बड़ा भारी यज्ञ किया। इस यज्ञ में प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् साक्षात् प्रकट हुए। नाभि ने वर माँगा कि मेरे तुम्हारे ही ऐसा पुत्र हो। भगवान् ने कहा मेरे ऐसा दूसरा कौन है? अतः मैं ही पुत्र होकर जन्म लूँगा। कुछ काल के पीछे मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव उत्पन्न हुए जो विष्णु के २४ अवतारों में माने जाते हैं। जैनों के आदि तीर्थंकर भी ऋषभदेव माने जाते हैं।

नाभिकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] निकली हुई तुंदी या ढोंढी।

नाभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी वृक्ष।

नाभिगुडक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का आवर्त्त। तुंदी का उभरा अंश।

नाभिगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियव्रत राजा के पुत्र जिनके नाम पर कुश द्वीप के बीच एक वर्ष हुआ।

नाभिगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का आवर्त्त। तुंदी का उभरा अंश।

नाभिछेदन—संज्ञा पुं० [सं०] तुरत के जन्मे हुए बच्चे के नाल काटने की क्रिया।

नाभिज—संज्ञा पुं० [सं०] (विष्णु की नाभि से उत्पन्न) ब्रह्मा।

नाभिनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाड़ी जो गर्भकाल में माता की रसवहा नाड़ी से जुड़ी रहती है।

नाभिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें नाभि में घाव हो जाता और वह पक जाती है।

नाभिल—वि० [सं०] उभरी हुई नाभिवाला। निकली हुई तुंदीवाला।

नाभिवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] नाभिछेदन। नाल काटने की क्रिया।

नाभिवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के नौ वर्षों में से एक। भारतवर्ष।

विशेष—आग्नीध्र राजा ने अपने नौ पुत्रों को जंबूद्वीप के नौ खंड दिए। नाभि को जो खंड मिला उसका नाम नाभिवर्ष हुआ। पीछे नाभि के पौत्र भरत के नाम पर वह भारतवर्ष कहा जाने लगा।

नाभिसंबंध—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रसंबंध।

नाभी—संज्ञा स्त्री० दे० "नाभि"।

नाभील—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्रियों की कटि के नीचे का भाग। ऊरुसंधि। (२) नाभि की गहराई। नाभि का गड्ढा। (३) कृच्छ्र। कष्ट।

नाभ्य—वि० [सं०] नाभिसंबंधी।

संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

नामंजूर—वि० [फा० + अ०] जो मंजूर न हो। जो माना न गया हो। जो कबूल न किया गया हो। अस्वीकृत। जैसे, अरजी नामंजूर होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाम—संज्ञा पुं० [सं० नामन्] [वि० नामी] (१) वह शब्द जिससे किसी वस्तु, व्यक्ति या समूह का बोध हो। किसी वस्तु या व्यक्ति का निर्देश करनेवाला शब्द। संज्ञा। आख्या। अभिख्या। आह्वा। जैसे, इस आदमी का नाम रामप्रसाद है, इस पेड़ का नाम अशोक है।

मुहा०—नाम उछलना = बदनामी होना। अपकीर्त्ति फैलना। निंदा होना। नाम उछालना = बदनामी कराना। अपकीर्त्ति फैलाना। चारों ओर निंदा कराना। जैसे, क्यों ऐसा काम करके अपने बाप दादों का नाम उछाल रहे हो? नाम उठ जाना = नाम न रह जाना। चिह्न मिट जाना या चर्चा बंद हो जाना। लोक में स्मरण भी न रह जाना। जैसे, उसका तो नाम ही संसार से उठ जायगा। नाम करना = नाम रखना। पुकारने के लिये नाम निश्चित करना। किसी दूसरे का नाम करना = दूसरे का नाम लगाना। दूसरे पर दोष लगाना। दूसरे के सिर दोष मढ़ना। जैसे, आप चुराकर दूसरे का नाम करता है। (किसी बात का) नाम करना = कोई बात पूरी तरह से न करना, कहने भर के लिये थोड़ा सा करना। दिखाने या उलाहना छुड़ाने भर के लिये थोड़ा सा करना। जैसे, पढ़ते क्या हैं नाम करते हैं। नाम का = (१) नामधारी। जैसे, इस नाम का कोई आदमी यहाँ नहीं। (२) कहने सुनने भर को, उपयोग के लिये नहीं, काम के लिये नहीं। जैसे वे नाम के मंत्री हैं, काम तो और ही करते हैं। (किसी के) नाम का कुत्ता न

नापाकी–संज्ञा स्त्री० [फा०] अपवित्रता । अशुद्धता ।

नापायदार–वि० [फा०] (१) जो अधिक ठहरने या चलने-वाला न हो । जो टिकाऊ न हो । क्षणभंगुर । (२) जो दृढ़ या मजबूत न हो ।

नापायदारी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अस्थायित्व । क्षणभंगुरता । (२) अदृढ़ता ।

नापित–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सिर के बाल मूँड़ने (या काटने), और नाखून आदि काटने का काम करता हो । नाई । नाऊ । हज्जाम ।

विशेष—धर्मशास्त्र में नापित की गणना अच्छे शूद्रों में है । स्मृतियों में नापित संकर जाति के अंतर्गत माने गए हैं । पराशर स्मृति में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न सांतान का यदि ब्राह्मण द्वारा संस्कार न हुआ हो तो वह नापित कहलाता है । पर परशुराम के अनुसार कुबेरी पुरुष और पट्टिकारी स्त्री के संयोग से नापितों की उत्पत्ति हुई है । मनु ने नापितों की गिनती भोज्यान्न शूद्रों में की है ।

पर्य्या०—क्षुरी । मुंडी । दिवाकीर्त्ति । अंत्यावसायी । क्षुरी । नखकुट्ट । ग्रामणी । चंद्रिल । भांडपुट ।

नाफरमाँ–संज्ञा पुं० [फा०] गुलेलाला का एक भेद जो कुछ नीलापन लिए होता है ।

नाफा–संज्ञा पुं० [फा०] मृगमद कोश । कस्तूरी की थैली जो कस्तूरी मृगों की नाभि में होती है ।

नाबदान–संज्ञा पुं० [फा० नाव=नाली] वह नाली जिससे होकर घर का गलीज मैला पानी आदि बाहर बहकर जाता है । पनाला । नरदा ।

मुहा०—नाबदान में मुहँ मारना=घृणित कर्म करना । बुरा और घिनौना काम करना ।

नाबालिग–वि० [अ० + फा०] जिसका लड़कपन अभी दूर न हुआ हो । जो अपनी पूरी अवस्था को न पहुँचा हो । जो पूरा जवान न हुआ हो । अप्राप्तवयस्क ।

विशेष—कानून में कुछ बातों के लिये २१ वर्ष और कुछ के लिये १८ वर्ष से कम अवस्था का मनुष्य नाबालिग समझा जाता है ।

नाबालिगी–संज्ञा स्त्री० [फा०] नाबालिग रहने की अवस्था ।

नाबूद–वि० [फा०] जिसका अस्तित्व न रहा हो । नष्ट । ध्वस्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाभ–संज्ञा स्त्री० [सं० नाभि का समासांत रूप] (१) नाभि । ढोंढी । धुनी । (२) शिव का एक नाम । (३) एक सूर्यवंशी राजा जो भगीरथ के पुत्र थे । (भागवत) । (४) अस्त्रों का एक संहार ।

नाभक–संज्ञा पुं० [सं०] हरीतकी । हड़ ।

नाभा–संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध भक्त जिनका नाम नारायणदास था । कहते हैं कि ये जाति के डोम थे और दक्षिण देश में उत्पन्न हुए थे । भक्तमाल के कुछ टीकाकारों ने लिखा है कि इनका जन्म हनुमानवंश में हुआ था । मारवाड़ी भाषा में डोम शब्द का अर्थ हनुमान है । शायद इसी लिये इन टीकाकरों ने इन्हें हनुमानवंशीय लिखा है । पर गद्य भक्त-माल में लिखा है कि तैलंग देश में गोदावरी के समीप उत्तर राम भद्राचल पर्वत पर रामदास नामक एक ब्राह्मण हनुमान जी के अंशावतार रहते थे । इन्हीं के पुत्र नाभा थे । पर कई कारणों से इनका नीच कुल में उत्पन्न होना ही ठीक प्रतीत होता है । ये जन्मांध कहे जाते हैं । बचपन में ही इनके पिता मर गए । जब ये पाँच वर्ष के थे तब इनके देश में घोर अकाल पड़ा । माता इन्हें पाल न सकी, वन में छोड़ कर चली गई । कील्हजी अपने शिष्य अग्रदास के साथ उस वन से हो कर जा रहे थे । उन्होंने बच्चे को उठा लिया और जयपुर के पास गलता नामक स्थान में ले गए । वहाँ महात्माओं की कृपा से और साधुओं का प्रसाद खाते खाते इनकी आँख भी अच्छी हो गई और बुद्धि भी निर्मल हो गई । अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से इन्होंने 'भक्त-माल' लिखा जिसमें अनेक नए पुराने भक्तों के चरित्र वर्णित हैं । अनुमान से भक्तमाल ग्रंथ संवत् १६४२ और संवत् १६८० के बीच में बनाया गया क्योंकि भक्तमाल में गोसाईं गिरिधर जी के विषय में लिखा है कि "विट्ठलेश नंदन सुभग जग कोऊ नहिं ता समान । श्री वल्लभ जू के वंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान" । यह बात निश्चित है कि संवत् १६४२ में श्री विट्ठल नाथ गोसाईं का परलोक हुआ और उनके पुत्र गद्दी पर बैठे । इस पद से गोस्वामी तुलसीदास जी का भी भक्तमाल बनने के समय वर्तमान रहना पाया जाता है—"रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी ।" वसंत् १६८० गोस्वामी जी का मृत्युकाल प्रसिद्ध ही है ।

नाभाग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाल्मीकि के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो ययाति के पुत्र थे । नाभाग के पुत्र अज और अज के दशरथ हुए । रामायण की वंशावली के अनुसार राजा अंबरीष नाभाग के प्रपितामह थे, पर भागवत में अंब-रीष को नाभाग का पुत्र लिखा है । (२) मार्कंडेय पुराण के अनुसार कारुष वंश के एक राजा जो दिष्ट के पुत्र थे । इनकी कथा उक्त पुराण में इस प्रकार है । जब ये युवा-वस्था को प्राप्त हुए तब एक वैश्य की कन्या को देख मोहित हो गए और उस कन्या के पिता द्वारा अपने पिता से विवाह की आज्ञा माँगी । ऋषियों की सम्मति से पिता ने आज्ञा दी कि "पहले एक क्षत्रिय कन्या से विवाह कर के तब वैश्य कन्या से विवाह करो तो कोई दोष नहीं ।" नाभाग

किसी के प्रेम में खपना। प्रेम के आवेश में अपने हानिलाभ या कष्ट की ओर कुछ भी ध्यान न देना। **(किसी के) नाम पर जूता न लगाना**=किसी को अत्यंत तुच्छ समझना। **(किसी के) नाम पर बैठना**=(१) किसी के भरोसे संतोष करके स्थिर रहना। किसी के ऊपर यह विश्वास करके धैर्य धारण करना या उद्योग छोड़ देना कि जो कुछ उसे करना होगा करेगा। जैसे, अब तो ईश्वर के नाम पर बैठ रहते हैं जो कुछ होना होगा सो होगा। (२) किसी के आसरे में या किसी के ख्याल से कोई ऐसा काम न करना जिसका करना स्वाभाविक या आवश्यक हो। जैसे, (क) यह स्त्री कब तक अपने पति के नाम पर बैठी रहेगी और दूसरा विवाह न करेगी? (ख) कब तक अपने मित्र के नाम पर बैठे रहोगे, उठो तैयारी करो। **नाम पुकारना**=ध्यान आकर्षित करने या बुलाने के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाना। **(किसी का) नाम बद करना**=बदनामी करना। कलंक लगाना। दोष लगाना। **नाम बदनाम करना**=कलंक लगाना। ऐब लगाना। बदनामी करना। **(किसी का) नाम बद होना**=किसी बुरी बात के लिये किसी का नाम प्रसिद्ध हो जाना। नाम निकल जाना। **नाम बाकी रहना**=(१) मरने या कहीं चले जाने पर भी कीर्त्ति का बना रहना। लोगों में स्मरण बना रहना। (२) केवल नाम ही नाम रह जाना और कुछ न रहना। पुरानी बातों के कारण प्रसिद्धि मात्र रह जाना पर उन बातों का न रहना। जैसे, सिर्फ नाम बाकी रह गया है कुछ जायदाद अब उनके पास नहीं है। **नाम बिकना**=नाम प्रसिद्ध हो जाने के कारण किसी की वस्तु का आदर होना। नाम मशहूर होने से कदर होना। **नाम बिगाड़ना**=(१) कोई बुरा काम करके बदनामी कराना। (२) बदनामी करना। कलंक लगाना। **नाम मिटना**=(१) नाम जाता रहना। नाम न रहना। स्मारक या कीर्त्ति का लोप होना। (२) नाम तक शेष न रहना। कोई चिह्न न रह जाना। एकदम अभाव हो जाना। **नाम मात्र**=नाम लेने भर को। बहुत थोड़ा। अत्यंत अल्प। **(कोई) नाम रखना**=नाम निश्चित करना। नामकरण करना। **(किसी का) नाम रखना**=(१) नाम निश्चित करना। नामकरण करना। (२) कीर्त्ति सुरक्षित रखना। अच्छा या बड़ा काम करके यश को स्थिर रखना। नाम डूबने न देना। जैसे, यह लड़का अपने बाप का नाम रखेगा। (३) बदनामी करना। निंदा करना। बुरा कहना। दे० "नाम धरना"। **(किसी को) नाम रखना**=(१) बदनाम करना। बुरा कहना। दोष लगाना। (२) दोष निकालना। नुक्स निकालना। ऐब बताना। दे० "नाम धरना"। **नाम लगना**=किसी दोष या अपराध के संबंध में नाम लिया जाना। दोष लगना। कलंक मढ़ा जाना। जैसे, किया किसी ने और नाम लगा हमारा। **नाम लगाना**=किसी दोष या अपराध के संबंध में नाम लेना। दोष मढ़ना। अपराध लगाना। कलंक लगाना। जैसे, खुद तुम्हीं ने यह काम किया और अब दूसरे का नाम लगाते हो। **(किसी का) नाम लिखना**=किसी कार्य या विषय में सम्मिलित करने के लिये रजिस्टर बही आदि में नाम लिखना। किसी मंडली, संस्था, कार्यालय आदि में सम्मिलित करना। जैसे, इस लड़के का नाम अभी स्कूल में नहीं लिखा है। **(किसी के) नाम लिखना**=किसी के नाम के आगे लिखना। किसी के जिम्मे लिखना या टाँकना। जैसे, इसका दाम हमारे नाम लिख लो। **नाम लिखाना**=किसी विषय या कार्य में सम्मिलित होने के लिये रजिस्टर बही आदि में नाम लिखाना। किसी मंडली संस्था या कार्यालय आदि में सम्मिलित होना। जैसे, इसका नाम स्कूल में जल्दी लिखाओ। **(किसी का) नाम लेकर**=(१) किसी प्रसिद्ध या बड़े आदमी के नाम से लोगों का ध्यान आकर्षित करके। नाम के प्रभाव से। जैसे, यह अपने बाप का नाम लेकर भीख माँगेगा और क्या करेगा? (२) (किसी देवता या पूज्य पुरुष का) स्मरण करके। जैसे, अब तो भगवान का नाम लेकर इस काम को कर चलते हैं। **नाम लेना**=(१) नाम का उच्चारण करना। नाम कहना। (२) फलप्राप्ति के लिये या भक्तिवश ईश्वर या देवता के नाम का बार बार उच्चारण करना। नाम जपना। नाम स्मरण करना। (३) गुणों का वर्णन करना। गुण गाना। प्रशंसा करना। यश बखानना। कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना। जैसे, इस उपकार के लिये वे सदा आपका नाम लेते रहेंगे। (४) चर्चा करना। जिक्र करना। जैसे, फिर वहाँ जाने का नाम लेते हो! (५) नाम बदनाम करना। दोष लगाना। जैसे, क्यों व्यर्थ किसी का नाम लेते हो, न जाने किसने यह काम किया है। **नाम व निशान**=ऐसा चिह्न या लक्षण जिससे किसी वस्तु के होने का प्रमाण मिले। पता। खोज। जैसे, यहाँ बस्ती का तो कहीं नाम व निशान नहीं है। **नाम व निशान मिट जाना**=पता न रह जाना। एकदम नाश हो जाना। **नाम व निशान न होना**=एकदम अभाव होना। बिलकुल न होना। एक भी या लेशमात्र न होना। **(किसी) नाम से**=शब्द द्वारा निर्दिष्ट होकर या करके। जैसे, किसी नाम से पुकारना। **(किसी के) नाम से**=(१) चर्चा से। जिक्र से। जैसे, मुझे तो उसके नाम से चिढ़ है। (२) (किसी का) संबंध बताकर। नाम लेकर। यह प्रकट करके कि कोई बात किसी की ओर से है। (किसी की) जिम्मेदारी बताकर। जैसे, जितना रुपया चाहना मेरे नाम से ले लेना। (३) (किसी को) हकदार या मालिक बनाकर। (किसी की) उपयोग या भोग के लिये। जैसे, वह लड़के के नाम से जायदाद खरीद रहा है। (४) नाम के प्रभाव से। नाम लेकर। ध्यान आकर्षित करके। जैसे, अपने बड़ों के नाम से भीख माँग खाओगे। (५) नाम

पालना = किसी से इतना बुरा मानना या घृणा करना कि उसका नाम लेना या सुनना भी नापसंद करना। नाम से चिढ़ना। **नाम के लिये** = (१) कहने सुनने भर के लिये। थोड़ा सा। अणु मात्र। (२) उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। **नाम को** = (१) कहने सुनने भर को। ऐसा नहीं जिससे काम चल सके। (२) केवल इतना जितने से यह कहा जा सके कि एकदम अभाव नहीं है। बहुत थोड़ा। अत्यंत अल्प। **नाम को नहीं** = जरा सा भी नहीं। अणु मात्र भी नहीं। कहने सुनने को भी नहीं। एक भी नहीं। जैसे, (क) **उस मैदान में नाम को भी पेड़ नहीं है।** (ख) **घर में नाम को भी नमक नहीं है।** (ग) **उसने नामको भी जीवजंतु न छोड़ा।** **नाम चढ़ना** = किसी नामावली में नाम लिखा जाना। नाम दर्ज होना। **नाम चढ़ाना** = किसी नामावली में नाम लिखाना। नाम दर्ज कराना। **नाम चमकना** = चारों ओर अच्छा नाम होना। कीर्त्ति फैलना। यश फैलना। प्रसिद्ध होना। **नाम चलना** = लोगों में नाम का स्मरण बना रहना। यादगार बनी रहना। जैसे, **संतान से नाम चलता है।** **नामचार को** = (१) नामोचार भर के लिये। नाम को। कहने सुनने भर को। पूरे तौर से या मन से नहीं। जैसे, **नामचार को वह यहाँ आता है, कुछ काम तो करता नहीं।** (२) बहुत थोड़ा। किंचिन्मात्र। **नाम जगाना** = नाम की याद कराते रहना। स्मारक बनाए रखना। ऐसा काम करना कि लोगों में स्मरण बना रहे। **नाम जपना** = (१) बार बार नाम लेना। बार बार नाम का उच्चारण करना। नाम रटना। (२) भक्ति वा प्रेम से ईश्वर या देवता का नाम (माला फेरते हुए या यों ही) बार बार लेना। नाम स्मरण करना। ईश्वर या देवता का स्मरण करना। **नाम देना** = (१) नाम रखना। नामकरण करना। (२) किसी देवता के नाम का मंत्र देना। सांप्रदायिक मंत्र का उपदेश देना। **नामधरता** = नाम रखनेवाला। नामकरण करनेवाला। पिता। बाप। **(किसी का) नाम धरना** = (१) नाम स्थिर करना। नाम रखना। नामकरण करना। (२) बदनामी करना। बुरा कहना। दोष लगाना। जैसे, **ऐसा काम क्यों करो जिससे दस आदमी नाम धरें।** (३) अपनी वस्तु का मोल माँगना। अपनी चीज का दाम कहना। जैसे, **पहले तुम अपनी चीज का नाम धरो, जो ऊँचेगा मैं भी कहूँगा।** **(किसी को) नाम धरना** = (१) बदनाम करना। बुरा कहना। दोष लगाना। (२) दोष निकालना। नुक्स निकालना। ऐब बताना। जैसे, **हमारी पसंद की हुई चीज को तुम नाम नहीं धर सकते।** **नाम धरवाना** = दे० "नाम धरावना"। **नाम धराना** = (१) नामकरण कराना। (२) बदनामी कराना। निंदा कराना। उ०—(क) **फिरत धरावत मेरो नामा। मातु न देति होयगी धामा।** (ख) **डारि दियो गुरु लोगन को डर, गाँव चवाव में नाँव धरायो।**—मतिराम। **नाम न लेना** = अरुचि, घृणा, भय आदि के कारण चर्चा तक न करना। दूर रहना। बचना। संकल्प या विचार तक न करना। जैसे, (क) **इसने मुझे बहुत दिक किया अब इसका कभी नाम न लूँगा।** (ख) **उसका स्वाद इतना बुरा है कि एक बार खाओगे तो फिर कभी नाम न लोगे।** (ग) **अब वह यहाँ आने का नाम तक नहीं लेता।** **......तो मेरा नाम नहीं** = तो मैं कुछ भी नहीं। तो मुझे तुच्छ समझना। जैसे, **यदि सवेरे मैं इसे न लाऊँ तो मेरा नाम नहीं।** **नाम निकल जाना** = किसी (भली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध हो जाना। किसी विषय में ख्याति हो जाना। किसी बात के लिये मशहूर या बदनाम हो जाना। जैसे, **जिसका नाम निकल जाता है वह अगर कुछ न करे तो भी लोग उसी को कहते हैं।** **नाम निकलना** = (१) किसी बात के लिये नाम प्रसिद्ध होना। (२) तंत्र आदि की युक्ति से किसी वस्तु को चुरानेवाले का नाम प्रकट होना। (३) नाम का कहीं प्रकट या प्रकाशित होना। जैसे, **गजट में नाम निकलना।** **नाम निकलवाना** = (१) बदनामी कराना। नाम में कलंक लगवाना। (२) मंत्र, तंत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट कराना। (३) किसी नामावली में से नाम कटवाना। किसी विषय से किसी को अलग कराना। **नाम निकालना** = (१) (भली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध करना। यश फैलाना या बदनामी करना। (२) मंत्र, तंत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट करना। (३) किसी नामावली से नाम काटना। किसी विषय से अलग करना। **नाम पड़ना** = नाम रखा जाना। नामकरण होना। नाम निश्चित होना। **किसी के नाम** = (१) किसी के लिये। किसी के पक्ष में। किसी के व्यवहार या उपयोग के लिये। किसी के अधिकार में। किसी को कानून द्वारा प्राप्त। जैसे, (क) **उसकी सब जायदाद स्त्री के नाम है।** (ख) **उसने अपनी संपत्ति भतीजे के नाम कर दी।** (२) किसी को लक्ष्य करके। किसी के संबंध में। जैसे, **उसके नाम वारंट निकला है।** (३) किसी के प्रति। किसी को संबोधन करके। किसी के हाथ में पड़ने के लिये। किसी को दिए जाने के लिये। जैसे, **किसी के नाम चिट्ठी आना, समन जारी होना इत्यादि।** **किसी के नाम पर** = किसी को अर्पित करके। किसी के निमित्त। किसी के स्मारक या तुष्टि के लिये। किसी का नाम चलाने या किसी के प्रति आदर भक्ति प्रकट करने के लिये। जैसे, (क) **ईश्वर के नाम पर कुछ दो।** (ख) **उसने अपने बाप के नाम पर यह धर्मशाला बनवाई है।** **किसी के नाम पड़ना** = किसी के नाम के आगे लिखा जाना। ज़िम्मेदार रखा जाना। **किसी के नाम डालना** = किसी के नाम के आगे लिखना। किसी के ज़िम्मे रखना। जैसे, **अगर उनसे रुपया वसूल न हो तो मेरे नाम डाल देना।** **(किसी के) नाम पर मरना या मिटना** = किसी के प्रेम में लीन होना।

नामदेव ने मूर्त्ति के आगे दूध रखा और पीने की प्रार्थना की। जब मूर्त्ति ने दूध न पिया तब नामदेव आत्महत्या करने पर उद्यत हुए। इस पर कृष्ण भगवान् ने प्रकट होकर दूध पिया। नामदेव जब लौटकर आए तब उन्हें यह व्यापार देख बड़ा आश्चर्य हुआ। धीरे धीरे यह बात बादशाह के कानों तक पहुँची। उसने नामदेव से बुलाकर करामात दिखाने के लिये कहा। नामदेव ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन संयोगवश एक गाय का बछड़ा मर गया और वह उसके शोक में बहुत व्याकुल हुई। नामदेव ने बछड़े को जिला दिया। (२) महाराष्ट्र देश के एक प्रसिद्ध कवि जो सन् १३०० के लगभग वर्त्तमान थे।

नामद्वादशी–संज्ञा स्त्री [सं०] एक व्रत जिसमें अगहन सुदी तीज को गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कांति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इन बारह देवियों की पूजा होती है। (देवीपुराण)

नामधन–संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो मल्लार, शंकराभरण, बिलावल सूहे और केदारे के योग से बना माना जाता है।

नामधराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० नाम+धराना] बदनामी। निंदा। अपकीर्त्ति।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

नामधाम–संज्ञा पुं० [हिं० नाम+धाम] नाम और पता। नाम ग्राम। पता ठिकाना।

नामधारक–वि० [सं०] केवल किसी नाम को धारण करनेवाला, उस नाम के अनुसार कर्म न करनेवाला। नाम मात्र का।

विशेष—जो ब्राह्मण वेदपाठ आदि कर्म न करते हों उन्हें पराशर स्मृति में नामधारक कहा गया है।

नामधारी–वि० [सं०] नामधारण करनेवाला। नामवाला। नामक।

नामधेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाम। निर्देशक शब्द। (२) नामकरण।

वि० नामवाला। नाम का।

नामनिक्षेप–संज्ञा पुं० [सं०] नामस्मरण (जैन)।

नामनिशान–संज्ञा पुं० [फा०] चिह्न। पता। ठिकाना। जैसे, इस मैदान में बस्ती का नामनिशान भी नहीं है।

नामबोला–संज्ञा पुं० [हिं० नाम+बोलना] नाम लेनेवाला। जपनेवाला। विनय और भक्तिपूर्वक नाम स्मरण करनेवाला।

नामयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] जो यज्ञ केवल नाम या धूमधाम के लिये किया जाय।

नामरूप–संज्ञा पुं० [सं०] सब के आधार-स्वरूप अगोचर वस्तु-तत्त्व के परिवर्तनशील नाना रूप या आकार जो इंद्रियों को जान पड़ते हैं तथा उनके भिन्न भिन्न नाम जो भेदज्ञान के अनुसार रखे जाते हैं।

विशेष—वेदांत के अनुसार एक ही अगोचर नित्य तत्त्व है। जो अनेक भेद दिखाई पड़ते हैं वे वास्तविक नहीं हैं। ये केवल रूपों या आकारों के कारण हैं जो इंद्रियों तथा मन के संस्कार मात्र है। समुद्र और तरंग अथवा सोना और गहना दो भिन्न भिन्न नाम हैं। एकीकरण द्वारा आत्मा सोने और गहने में अथवा समुद्र और तरंग में सामान्य गुणवाला एक ही पदार्थ देखती है। सोना एक पदार्थ है पर भिन्न भिन्न अवसरों पर बदलनेवाले आकारों के जो संस्कार इंद्रियों द्वारा मन पर होते हैं उनके कारण सोने को ही कभी कड़ा, कभी कंगन, कभी अँगूठी इत्यादि कहते हैं। इसी प्रकार जगत् के यावत् दृश्य हैं सब केवल नाम रूपात्मक हैं। उनके भीतर वस्तुसत्ता छिपी हुई है। वेदांत में सदा बदलते रहनेवाले नामरूपात्मकरूप दृश्य जगत् को 'मिथ्या' और 'नाशवान्' और नित्य वस्तुतत्त्व को सत्य या अमृत कहते हैं।

नामर्द–वि० [फा०] (१) जिसमें पुरुष की शक्ति विशेष न हो। नपुंसक। क्लीव। (२) भीरु। डरपोक। कायर।

नामर्दा–वि० दे० "नामर्द"।

नामर्दी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) नपुंसकता। क्लीवता। (२) कायरपन। भीरुता। साहस का अभाव।

नामलेवा–संज्ञा पुं० [हिं० नाम+लेना] (१) नाम लेनेवाला। नाम स्मरण करनेवाला। (२) उत्तराधिकारी। संतति। वारिस। जैसे, नामलेवा रहा न पानी-देवा।

नामवर–वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो। नामी। प्रसिद्ध। मशहूर।

नामवरी–संज्ञा स्त्री० [फा०] कीर्त्ति। प्रसिद्धि। शुहरत।

नामशेष–वि० [सं०] (१) जिसका केवल नाम बाकी रह गया हो। जो न रह गया हो। नष्ट। ध्वस्त। (२) मृत। गत। मरा हुआ।

नामसत्य–संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति या वस्तु का ठीक ठीक नाम-कथन चाहे वह नाम उसकी अवस्था या गुण के अनुकूल न हो। जैसे, लक्ष्मीपति यदि दरिद्र है तो भी उसे लोग लक्ष्मीपति ही कहेंगे। (जैन)।

नामांकित–वि० [सं०] जिसपर नाम लिखा या खुदा हो।

नामा–वि० [सं०] नामवाला। नामधारी।

संज्ञा पुं० नामदेव भक्त।

नामाकूल–वि० [फा० ना+अ० माकूल] (१) अयोग्य। नालायक। (२) अयुक्त। अनुचित।

नामालूम–वि० [फा० ना+अ० मलूम] जो मालूम न हो। अज्ञात।

नामावली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नामों की पंक्ति। नामों की सूची। (२) वह कपड़ा जिसपर चारों ओर भगवान् का नाम छपा होता है और जिसे भक्त लोग ओढ़ते हैं। रामनामी।

लेते ही। नाम का उच्चारण होते ही। जैसे, उसके नाम से वह काँपता है। नाम से काँपना = नाम सुनते ही डर जाना। बहुत भय मानना। नाम होना = (१) नाम लगना। दोष मढ़ा जाना। कलंक लगना। जैसे, बुराई कोई करे, नाम हो हमारा। (२) नाम प्रसिद्ध होना। जैसे, काम तो दूसरे करते हैं, नाम उसका होता है।

(२) अच्छा नाम। सुनाम। प्रसिद्धि। ख्याति। यश। कीर्त्ति। जैसे, इधर उनका बड़ा नाम है।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—नाम कमाना = प्रसिद्धि प्राप्त करना। कीर्त्ति लाभ करना। मशहूर होना। नाम करना = कीर्त्ति लाभ करना। प्रख्यात होना। जैसे, उसने लड़ाई में बड़ा नाम किया। नाम को धब्बा लगाना = दे० "नाम पर धब्बा लगना"। नाम को मरना = सुयश के लिये प्रयत्न करना। अच्छा नाम पाने के लिये उद्योग करना। कीर्त्ति के लिये जी तोड़ परिश्रम करना। नाम चलना = यश स्थिर रहना। कीर्त्ति का बहुत दिनों तक बना रहना। नाम जगना = नाम चमकना। कीर्त्ति फैलना। ख्याति होना। नाम जगाना = नाम चमकाना। उज्ज्वल कीर्त्ति फैलाना। नाम डुबाना = नाम को कलंकित करना। यश और कीर्त्ति का नाश करना। मान और प्रतिष्ठा खोना। नाम डूबना = (१) नाम कलंकित होना। यश और कीर्त्ति का नाश होना। (२) नाम न चलना। कीर्त्ति का लुप्त होना। स्मारक न रहना। नाम पर धब्बा लगाना = नाम को कलंकित करना। यश पर लांछन लगाना। बदनामी करना। जैसे, क्यों ऐसा काम करके बड़ों के नाम पर धब्बा लगाते हो ? नाम पाना = प्रसिद्धि प्राप्त करना। मशहूर होना। नाम रह जाना = लोगों में स्मरण बना रहना। कीर्त्ति की चर्चा रहना। यश बना रहना। जैसे, मरने के पीछे नाम ही रह जाता है। नाम से पुजना = नाम प्रसिद्ध होने के कारण आदर पाना। नाम से बिकना = नाम प्रसिद्ध हो जाने से आदर पाना। नाम ही नाम रह जाना = पुरानी बातों के कारण लोगों में प्रसिद्ध मात्र रह जाना, पर उन बातों का न रहना। जैसे, नाम ही नाम रह गया है, उनके पास अब कुछ है नहीं।

नामक—वि० [सं०] नाम से प्रसिद्ध। नाम धारण करनेवाला। जैसे, बिहार में पटना नामक एक नगर है।

नामकरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाम रखने का काम। पहचान के लिये नाम निश्चित करने की क्रिया। (२) हिंदुओं के सोलह संस्कारों में से एक जिसमें बच्चे का नाम रखा जाता है।

विशेष—यह पाँचवाँ संस्कार है। जन्म से ग्यारहवें या बारहवें दिन बच्चे का नामकरण संस्कार होना चाहिए। ग्यारहवाँ दिन इसके लिये बहुत अच्छा है, यदि ग्यारहवें दिन न हो सके तो बारहवें दिन होना चाहिए। गोभिल गृह्यसूत्र में ऐसी ही व्यवस्था है। स्मृतियों में वर्ण के अनुसार व्यवस्था मिलती है, जैसे, क्षत्रिय के लिये तेरहवें दिन, वैश्य के लिये सोलहवें दिन और शूद्र के लिये बाईसवें दिन।

गोभिल गृह्यसूत्र में नामकरण का विधान इस प्रकार है। बच्चे को अच्छे कपड़े पहनाकर माता वाम भाग में बैठे हुए पिता की गोद में दे। फिर उसकी पीठ की ओर से परिक्रमा करती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो। इसके अनंतर पति वेदमंत्र का पाठ करके बच्चे को फिर अपनी पत्नी की गोद में दे दे। फिर होम आदि करके नाम रखा जाय।

नामकरणपद्धति में यह विधान इस रूप में हो गया है। नामकरण के दिन पिता गौरी, षोडश मातृका आदि का पूजन और वृद्धिश्राद्ध करके अपनी पत्नी को वाम भाग में बैठावे, फिर पत्थर की पटरी पर दो रेखाएँ खींचे, फिर दीपक जलाकर यदि लड़का हो तो उसके दहिने कान के पास "अमुक देव शर्म्मा" इत्यादि और लड़की हो तो "अमुकी देवी" इत्यादि कहकर नामकरण करे। नाम के अंत में यदि ब्राह्मण हो तो शर्म्मा और देव, क्षत्रिय हो तो वर्म्मा या त्राता, वैश्य हो तो भूति या गुप्त, और शूद्र हो तो दास होना चाहिए। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार पुरुष का नाम तद्धितांत न होना चाहिए, पर स्त्री का नाम यदि तद्धितांत हो तो उतना दोष नहीं, जैसे, गांधारी, कैकेयी।

नामकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नामकरण संस्कार। (२) जैन शास्त्रानुसार कर्म का वह भेद जिससे जीव गति और जाति आदि पर्यायों का अनुभव करता है। नामकर्म ३४ प्रकार के माने गए हैं—जैसे, नरक गति, तिर्यक गति, द्वींद्रिय जाति, चतुरिंद्रिय जाति, अस्थिर, शुभ, अशुभ, स्थावर, सूक्ष्म इत्यादि।

नामकीर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर के नाम का जप या उच्चारण। भगवान का भजन।

नामग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] नाम और पता।

नामज़द—वि० [फा०] (१) जिसका नाम किसी बात के लिये निश्चित कर लिया गया हो या चुन लिया गया हो। जैसे, वे इस साल तहसीलदारी के लिये नामज़द हो गए हैं। (२) प्रसिद्ध। मशहूर।

नामदार—वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो। नामी। प्रसिद्ध।

नामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक भक्त जिनकी कथा भक्तमाल में इस प्रकार लिखी है। नामदेव वामदेव जी के नाती (दौहित्र) थे। नामदेव कृष्ण के उपासक थे इससे नामदेव में भी बाल्यावस्था से ही कृष्ण में सच्ची भक्ति थी। वामदेव कुछ दिनों के लिये बाहर गए और अपने दौहित्र नामदेव से कृष्ण की प्रतिमा को प्रति दिन दूध चढ़ाने के लिये कहते गए।

या गणिका कहते हैं। वयःक्रमानुसार स्वकीया तीन प्रकार की मानी गई हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। कामचेष्टा-रहित अंकुरितयौवना को मुग्धा कहते हैं जो दो प्रकार की कही गई हैं—अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना। ज्ञातयौवना के भी दो भेद किए गए हैं—नवोढा जो लज्जा और भय से पतिसमागम की इच्छा न करे और विश्रब्ध नवोढा जिसे कुछ अनुराग और विश्वास पति पर हो। अवस्था के कारण जिस नायिका में लज्जा और कामवासना समान हो उसे मध्या कहते हैं। कामकला में पूर्ण रूप से कुशल स्त्री को प्रौढ़ा कहते हैं। इनमें से मध्या और मुग्धा भेद केवल स्वकीया में ही माने गए हैं, फिर मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन भेद किए गए हैं। प्रिय में पर-स्त्री-समागम के चिह्न देख धैर्य सहित सादर कोप प्रकट करनेवाली स्त्री को धीरा, प्रत्यक्ष कोप करनेवाली स्त्री को अधीरा तथा कुछ गुप्त और कुछ प्रकट कोप करनेवाली स्त्री को धीराधीरा कहते हैं।

परकीया के प्रथम दो भेद किए गए हैं ऊढा और अनूढा। विवाहिता स्त्री यदि पर पुरुष में अनुरक्त हो तो उसे ऊढा या परोढा और अविवाहिता स्त्री यदि हो तो उसे अनूढा या कन्यका कहते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापार भेद से कई भेद किए गए हैं जैसे, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता इत्यादि। नायिकाओं के अट्ठाईस अलंकार कहे गए हैं। इनमें हाव भाव और हेला ये तीन अंगज कहलाते हैं। शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य्य ये सात अयत्नसिद्ध; लीला, विलास, विच्छित्ति, बिब्बोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विकृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अठारह स्वभावज कहलाते हैं।

नारंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारंगी। (२) गाजर। (३) पिप्पलीरस। (४) यमज प्राणी।

नारंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० नागरंग, अ० नारंज] (१) नीबू की जाति का एक मझोला पेड़ जिसमें मीठे सुगंधित और रसीले फल लगते हैं।

विशेष—पेड़ इसका नीबू ही का सा होता है। फल में विशेषता होती है। नारंगी का छिलका मुलायम और पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है और गूदे से अधिक लगा न रहने के कारण बहुत सहज में अलग हो जाता है। भीतर पतली झिल्ली से मढ़ी हुई फाँकें होती हैं जिनमें रस से भरे हुए गूदे के रवे होते हैं। एक एक फाँक के भीतर दो या तीन बीज होते हैं। नारंगी गरम देशों में होती है। एशिया के अतिरिक्त युरोप के दक्षिण भाग, अफ्रिका के उत्तर भाग और अमेरिका के कई भागों में इसके पेड़ बगीचों में लगाए जाते हैं और फल चारों ओर भेजे जाते हैं। भारत में जो मीठी नारंगियाँ होती हैं वे और कई फलों के समान अधिकतर आसाम होकर चीन से आई हैं ऐसा लोगों का मत है। भारतवर्ष में नारंगियों के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं सिलहट, नागपुर, सिक्किम, नैपाल, गढ़वाल, कमाऊँ, दिल्ली, पूना और कुर्ग। नारंगी के प्रधान चार भेद कहे जाते हैं—संतरा, कँवला, माल्टा और चीनी। इनमें संतरा सबसे उत्तम जाति है। संतरे भी देशभेद से कई प्रकार के होते हैं।

चीन और भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों में नारंगी का उल्लेख मिलता है। संस्कृत में इसे नागरंग कहते हैं। 'नाग' का अर्थ है सिंदूर। छिलके के लाल रंग के कारण यह नाम दिया गया। सुश्रुत में नागरंग का नाम आया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि युरोप में यह फल अरबवालों के द्वारा गया।

(२) नारंगी के छिलके का सा रंग। पीलापन लिए हुए लाल रंग।

वि० पीलापन लिए हुए लाल रंग का।

नार-संज्ञा स्त्री० [सं० नाल, नाड] (१) गला। गरदन। ग्रीवा।

मुहा०—नार नवाना=(१) गरदन झुकाना। सिर नीचे की ओर करना। (२) लज्जा, चिंता, संकोच, मान आदि के कारण सामने न ताकना। दृष्टि नीची करना। लज्जित होने, चिंता करने या रूठने का भाव प्रकट करना। उ०—समुझि निज अपराध करनी नार नावति नीचि। बहुत दिन तें बरति हैं कै आँखि दीजै सींचि।—सूर। नार नीची करना=दे० "नार नवाना"। उ०—मान मनायो राधा प्यारी।......... कत ह्वै रही नार नीची करि देखत लोचन फूले।—सूर।

(२) जुलाहों की ढरकी। नाल।

† संज्ञा पुं० (१) उल्व नाल। आँवल नाल। दे० "नाल"।

यौ०—नार बेवार।

(२) नाला। (३) बहुत मोटा रस्सा। (४) सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोती की चुनन बाँधती हैं। नारा। नाला। (५) जुआ जोड़ने की रस्सी या तस्मा। (६) चरने के लिये जानेवाले चौपायों का झुंड।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० "नारी"।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरसमूह। मनुष्यों की भीड़। (२) तुरत का जनमा हुआ गाय का बछड़ा। (३) जल। पानी। (४) सोंठ। सुंठी।

वि० (१) नर संबंधी। मनुष्य संबंधी। (२) परमात्मा संबंधी।

नारक-संज्ञा पुं० (१) [सं०] नरक। (२) नरकस्थ प्राणी। नरक में रहनेवाला व्यक्ति।

नामिक-वि० [सं०] (१) नाम संबंधी। (२) संज्ञा संबंधी।

नामित-वि० [सं०] झुकाया हुआ।

नामी-वि० [हिं० नाम + ई (प्रत्य०) अथवा सं० नामिन्] (१) नामधारी। नामवाला। जैसे, रामप्रसाद नामी एक मनुष्य। (२) जिसका बड़ा नाम हो। प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर। जैसे, नामी आदमी।

यौ०—नामी गिरामी।

नामी गिरामी-वि० [फा० मि० सं० नामग्राम] जिसका बड़ा नाम हो। प्रसिद्ध। विख्यात।

नामुनासिब-वि० [फा०] अनुचित। अयोग्य। गैरवाजिब।

नामुमकिन-वि० [फा० ना + अ० मुमकिन] जो कभी न हो सके। असंभव।

नामूसी-संज्ञा स्त्री० [अ० नामूस = इज्जत] बेइज़्ज़ती। अप्रतिष्ठा। बदनामी। निंदा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नामेहरबान-वि० [फा०] जो मेहरबान न हो। अकृपालु।

नाम्ना-वि० [सं०] [स्त्री० नाम्नी] नामवाला। नामधारी।

नाम्य-वि० [सं०] झुकाने योग्य।

नायँ-†* संज्ञा पुं० दे० "नाम"।

अव्य० दे० "नहीं," "नाहीं"।

नाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नय। नीति। (२) उपाय। युक्ति। (३) नेता। अगुआ।

नायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नायिका] (१) जनता को किसी ओर प्रवृत्त करने का अधिकार या प्रभाव रखनेवाला पुरुष। लोगों को अपने कहे पर चलानेवाला आदमी। नेता। अगुआ। सरदार। जैसे, सेना का नायक। (२) अधिपति। स्वामी। मालिक। जैसे, गणनायक। (३) श्रेष्ठ पुरुष। जननायक। (४) साहित्य में शृंगार का आलंबन या साधक रूपयौवनसंपन्न पुरुष अथवा वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो।

विशेष—साहित्यदर्पण में लिखा है कि दानशील, कृती, सुश्री, रूपवान, युवक, कार्यकुशल, लोकरंजक, तेजस्वी, पंडित और सुशील ऐसे पुरुष को नायक कहते हैं। नायक चार प्रकार के होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशांत। जो आत्मश्लाघारहित, क्षमाशील, गंभीर, महाबलशाली, स्थिर और विनयसंपन्न हो उसे धीरोदात्त कहते हैं। जैसे राम, युधिष्ठिर। मायावी, प्रचंड, अहंकार और आत्मश्लाघायुक्त नायक को धीरोद्धत कहते हैं। जैसे भीमसेन। निश्चिंत, मृदु और नृत्य-गीतादि-प्रिय नायक को धीरललित कहते हैं। त्यागी और कृती नायक धीरप्रशांत कहलाता है। इन चारों प्रकार के नायकों के फिर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ ये चार भेद किए गए हैं।

शृंगार रस में पहले नायक के तीन भेद किए गए हैं—पति, उपपति और वैशिक (वेश्यानुरक्त)। पति चार प्रकार के कहे गए हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ। एक ही विवाहिता स्त्री पर अनुरक्त पति को अनुकूल, अनेक स्त्रियों पर समान प्रीति रखनेवाले को दक्षिण, स्त्री के प्रति अपराधी होकर बार बार अपमानित होने पर भी निर्लज्जतापूर्वक विनय करनेवाले को धृष्ट और छलपूर्वक अपराध छिपाने में चतुर पति को शठ कहते हैं। उपपति दो प्रकार के कहे गए हैं—वचनचतुर और क्रियाचतुर।

(५) हार के मध्य का मणि। माला के बीच का नग। (६) संगीत कला में निपुण पुरुष। कलावंत। (७) एक वर्णवृत्त का नाम। (८) एक राग जो दीपक राग का पुत्र माना जाता है।

नायका-संज्ञा स्त्री० [सं० नायिका] * (१) दे० "नायिका"। (२) वेश्या की मा। (३) कुटनी। दूती।

नायकी-संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम।

नायकी कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [?] एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

नायकी मल्लार-संज्ञा पुं० [सं० नायक + मल्लार] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

नायत-संज्ञा पुं० [डिं०] वैद्य।

नायन-संज्ञा स्त्री० [हिं० नाई] [स्त्री० नाइन] नाई की स्त्री। नापित का काम करनेवाली स्त्री।

नायब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी की ओर से काम करनेवाला। किसी के काम की देख-रेख रखनेवाला। मुनीब। मुख्तार। (२) काम में मदद देनेवाला छोटा अफसर। सहायक। सहकारी। जैसे, नायब दीवान, नायब तहसीलदार।

नायबी-संज्ञा स्त्री० [अ० नायब + ई (प्रत्य०)] (१) नायब का काम। (२) नायब का पद।

नायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपगुण-संपन्न स्त्री। वह स्त्री जो शृंगार रस का आलंबन हो अथवा किसी काव्य, नाटक आदि में जिसके चरित्र का वर्णन हो।

विशेष—शृंगार में प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद बतलाए गए हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। प्रिय के अहितकारी होने पर भी हितकारिणी स्त्री को उत्तमा, प्रिय के हित या अहित करने पर हित या अहित करनेवाली स्त्री को मध्यमा और प्रिय के हितकारी होने पर भी अहितकारिणी स्त्री को अधमा कहते हैं। धर्मानुसार तीन भेद हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री को स्वीया या स्वकीया, परपुरुष से प्रेम रखनेवाली स्त्री को परकीया या अन्या और धन के लिये प्रेम करनेवाली स्त्री को सामान्या, साधारण

रगण होते हैं। इसे 'महामालिनी' और तारका भी कहते हैं। (४) २४ मात्राओं का एक छंद। उ०—सवै ससैन काल बीत याह तीर जाय कै।

नाराचघृत-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक घृत जो घी में चीते की जड़, त्रिफला, भटकटैया, बायबिडंग आदि पका कर बनाया जाता है और उदर रोग में दिया जाता है।

नाराची-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा तराजू जिसमें बहुत छोटी चीज़ें तौली जाती हैं। सुनारों का काँटा।

नाराज़-वि० [फा०] अप्रसन्न। रुष्ट। नाखुश। खफा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाराजगी-संज्ञा स्त्री० [फा०] अप्रसन्नता।

नाराजी-संज्ञा स्त्री० [फा०] अप्रसन्नता। अकृपा। कोप।

नारायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। भगवान्। ईश्वर।

विशेष—इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रंथों में कई प्रकार से बतलाई गई है। मनुस्मृति में लिखा है कि 'नर' परमात्मा का नाम है। परमात्मा से सब से पहले उत्पन्न होने के कारण जल को नारा कहते हैं। जल जिसका प्रथम अयन वा अधिष्ठान है उस परमात्मा का नाम हुआ "नारायण"। महाभारत के एक श्लोक के भाष्य में कहा गया है कि नर नाम है आत्मा या परमात्मा का। आकाश आदि सबसे पहले परमात्मा से उत्पन्न हुए इससे उन्हें नारा कहते हैं। यह 'नारा' कारण स्वरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है इससे परमात्मा का नाम नारायण हुआ। कई जगह ऐसा भी लिखा है कि किसी मन्वंतर में विष्णु 'नर' नामक ऋषि के पुत्र हुए थे इससे उनका नाम नारायण पड़ा। ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणों में और भी कई प्रकार की व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में नारायण की गायत्री है जो इस प्रकार है —नारायण विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। यजुर्वेद के पुरुष सूक्त और उत्तर नारायण सूक्त तथा शतपथ ब्राह्मण (१३। ६। २। १) और शांख्यायन श्रौत सूत्र (१६। १३। १) में नारायण शब्द विष्णु या प्रथम पुरुष के अर्थ में आया है। जैन लोग नारायण को ९ वासुदेवों में से आठवाँ वासुदेव कहते हैं।

(२) पूस का महीना। (३) 'अ' अक्षर का नाम। (४) कृष्ण यजुर्वेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। (५) धर्मपुत्र एक ऋषि। (६) एक अस्त्र का नाम।

नारायणक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गंगा के प्रवाह से चार हाथ तक की भूमि। (वृहद्धर्म पुराण)

नारायणतैल-संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल।

विशेष—तिल के तेल में असगंध, भटकटैया, बेल की जड़ की छाल, देवदार, जटामासी, इत्यादि बहुत सी दवाएँ पकाकर इस तेल को तैयार करते हैं।

नारायणप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सहदेव।

नारायणबलि-संज्ञा पुं० [सं०] आत्मघात आदि द्वारा बुरी तरह से मरनेवाले पतित मृतक के प्रायश्चित्त के लिये एक बलि जो नारायण आदि पाँच देवताओं के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष—आत्महत्या करनेवाले की और्द्ध्वदैहिक क्रिया नियमानुसार समय पर नहीं की जाती। मृत्यु से एक वर्ष पर नारायण बलि और पर्णनरदाह (कुश के पुतले का दाह) करके तब श्राद्धादिक किए जाते हैं। आत्मघाती का जो दाह आदि करता है उसे भी प्रायश्चित्त करना चाहिए।

नारायणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) लक्ष्मी। (३) गंगा। (४) सतावर। (५) मुद्गल मुनि की स्त्री का नाम। (६) श्रीकृष्ण की सेना का नाम जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन की सहायता के लिये दिया था।

संज्ञा पुं० विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारायणीय-वि० [सं०] नारायण संबंधी।

संज्ञा पुं० महाभारत का एक उपाख्यान जिसमें नारद और नारायण ऋषि की कथा है। यह शांति पर्व में है।

नाराशंस-वि० [सं०] प्रशंसासंबंधी। जिसमें मनुष्यों की प्रशंसा हो। स्तुतिसंबंधी।

संज्ञा पुं० (१) वेदों के वे मंत्र जिनमें कुछ विशेष मनुष्यों, जैसे, राजाओं आदि की प्रशंसा होती है। प्रशस्ति। दानस्तुति आदि। (२) वह चमचा जिसमें पितरों को सोमपान दिया जाता है। (३) पितरों के लिये चमचे में रखा हुआ सोम। (४) पितर।

नाराशंसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मनुष्यों की प्रशंसा। (२) वेद में मंत्रों का वह भाग जिनमें राजाओं के दान आदि की प्रशंसा है।

नारि*-संज्ञा स्त्री० दे० "नारी"

नारिक-वि० [सं०] (१) जलीय। जल का। जलसंबंधी। (२) आत्मसंबंधी। आध्यात्मिक।

नारिकेर-संज्ञा पुं० दे० "नारिकेल"।

नारिकेल-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नारिकेलक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल की गिरी की बनी हुई एक प्रकार की खीर या मिठाई।

विशेष—गिरी के महीन महीन टुकड़ों को घी और चीनी के साथ गाय के दूध में पकाते हैं, गाढ़ा होने पर उतार लेते हैं।

नारिकेलखंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जो नारियल की गिरी से बनती है।

विशेष—नारियल की गिरी को पीस कर घी में मिलावे और फिर चीनी मिले हुए नारियल के पानी में उसे डाल कर पका डाले। पक जाने पर उसमें धनिये, पीपल, वंशलोचन, इला-

नारकी–वि० [सं० नारकिन्] नरक भोगनेवाला या नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला। पापी।

नारकीट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कीड़ा। अश्म-कीट। (२) किसी को आशा देकर निराश करनेवाला अधम मनुष्य।

नारद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये देवर्षि माने गए हैं।

विशेष—वेदों में ऋग्वेद मंडल ८ और ९ के कुछ मंत्रों के कर्त्ता एक नारद का नाम मिलता है जो कहीं कण्व और कहीं कश्यप वंशी लिखे गए हैं। इतिहास और पुराणों में नारद देवर्षि कहे गए हैं जो नाना लोकों में विचरते रहते हैं और इस लोक का संवाद उस लोक में दिया करते हैं। हरिवंश में लिखा है कि नारद ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। ब्रह्मा ने प्रजा-सृष्टि की अभिलाषा करके पहले मरीचि, अत्रि आदि को उत्पन्न किया, फिर सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, स्कंद, नारद और रुद्रदेव उत्पन्न हुए (हरिवंश १ अ०)। विष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने अपने सब पुत्रों को प्रजा-सृष्टि करने में लगाया पर नारद ने कुछ बाधा की, इस पर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि "तुम सदा सब लोकों में घूमा करोगे; एक स्थान पर स्थिर होकर न रहोगे।" महाभारत में इनका ब्रह्मा से संगीत की शिक्षा लाभ करना लिखा है। भागवत ब्रह्मवैवर्त्त आदि पीछे के पुराणों में नारद के संबंध में बड़ी लंबी चौड़ी कथाएँ मिलती हैं। जैसे, ब्रह्मवैवर्त्त में इन्हें ब्रह्मा के कंठ से उत्पन्न बताया है और लिखा है कि जब इन्होंने प्रजा की सृष्टि करना अस्वीकार किया तब ब्रह्मा ने इन्हें शाप दिया और ये गंधमादन पर्वत पर उपबर्हण नामक गंधर्व हुए। एक दिन इंद्र की सभा में रंभा का नाच देखते देखते ये काम मोहित हो गए। इस पर ब्रह्मा ने फिर शाप दिया कि "तुम मनुष्य हो"। द्रुमिल नामक गोप की स्त्री कलावती पति की आज्ञा से ब्रह्मवीर्य की प्राप्ति के लिये निकली और उसने काश्यप नारद से प्रार्थना की। अंत में काश्यप नारद के वीर्यभक्षण से उसे गर्भ रहा। उसी गर्भ से गंधर्व-देह त्याग नारद उत्पन्न हुए। पुराणों में नारद बड़े भारी हरिभक्त प्रसिद्ध हैं। ये सदा भगवान का यश वीणा बजा कर गाया करते हैं। इनका स्वभाव कलह-प्रिय भी कहा गया है इसी से इधर की उधर लगानेवाले को लोग "नारद" कह दिया करते हैं।

(२) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)। (३) एक प्रजापति का नाम। (४) कश्यपमुनि की स्त्री से उत्पन्न एक गंधर्व। (५) चौबीस बुद्धों में से एक। (६) शाक द्वीप का एक पर्वत। (मत्स्य पु०)।

नारदपुराण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अठारह महापुराणों में से एक। इसमें सनकादिक ने नारद को संबोधन करके कथा कही है और उपदेश दिया है। इसमें कथाओं के अतिरिक्त तीर्थों और व्रतों के माहात्म्य बहुत अधिक दिए हैं। (२) बृहन्नारदीय नामक एक उपपुराण।

नारदी–संज्ञा पुं० [सं० नारदिन्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारदीय–वि० [सं०] नारद का। नारद संबंधी। जैसे, नारदीय पुराण।

नारना–क्रि० स० [सं० ज्ञान, प्रा० णाण + हिं० ना] थाह लगाना। पता लगाना। भाँपना। ताड़ना। उ०—राधा मन में यहै विचारति।......मोहू तें ये चतुर कहावति ये मन ही मन मोको नारति। ऐसे वचन कहूँगी इन पै चतुराई इनकी मैं झारति।—सूर।

नारफ़िक–संज्ञा पुं० [अं०] विलायती घोड़ों की एक जाति जो नारफ़ाक प्रदेश में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े डील डौल में बड़े, सुंदर और मजबूत होते हैं।

नार बेवार–संज्ञा पुं० [हिं० नार + सं० विवार = फैलाव] आँवल नाल। नाल और खेड़ी आदि। नारापेटी। उ०—नार बेवार समेत उठावा। लै वसुदेव चले तम छावा।—विश्राम।

नारमन–संज्ञा पुं० [अं०] (१) फ्रांस के नारमंडी प्रदेश का निवासी। (२) जहाज का रस्सा बाँधने का खूँटा।

नारसिंह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नरसिंह रूपधारी विष्णु।

विशेष—तैत्तिरीय आरण्यक में नारसिंह की गायत्री मिलती है।

(२) एक तंत्र का नाम। (३) एक उपपुराण जिसमें नरसिंह अवतार की कथा है।

नारसिंही–वि० [सं० नारसिंह + ई (प्रत्य०)] नारसिंह संबंधी।

यौ०—नारसिंही टोना = बड़ा गहरा टोना।

नारांतक–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जो रावण के पुत्रों में कहा गया है।

नारा–संज्ञा पुं० [सं० नाल, हिं० नार] (१) सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोती की चुनन बाँधती हैं। इजारबंद। नीवी। उ०—नारा बंधन सूथन जंघन।—सूर। दे० "नाड़ा"। (२) लाल रँगा हुआ सूत जो पूजन में देवताओं को चढ़ाया जाता है। मौली। कुसुंभ सूत्र। (३) हल के जुवे में बँधी हुई रस्सी। † (४) बरसाती पानी बहने का प्राकृतिक मार्ग। छोटी नदी।

नाराइन*–संज्ञा पुं० दे० "नारायण"।

नाराच–संज्ञा पुं०[सं०] (१) लोहे का बाण। वह तीर जो सारा लोहे का हो।

विशेष—शर में चार पंख लगे रहते हैं और नाराच में पाँच। इसका चलाना बहुत कठिन है।

(२) दुर्दिन। ऐसा दिन जिसमें बादल घिरा हो, अंधड़ चले तथा इसी प्रकार के और उपद्रव हों। (३) एक वर्ण-वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और चार

नारीतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जहाँ पाँच अप्सराएँ ब्राह्मण के शाप से जलजंतु हो गई थीं। अर्जुन ने इनका शाप से उद्धार किया था। (महाभारत)

नारीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार कूर्म विभाग से नैऋत की ओर एक देश।

नारीष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका। चमेली।

नारुंतुद–वि० [सं०] जिसके शरीर पर किसी प्रकार का आघात न लग सके। अनाहत।

नारू–संज्ञा पुं० [दे०] (१) जूँ। ढील। (२) एक रोग जिसमें शरीर पर विशेषतः कटि के नीचे जंघा टाँग आदि में फुंसियाँ सी हो जाती हैं, और उन फुंसियों में से सूत सा निकलता है। यह सूत वास्तव में कीड़ा होता है जो बढ़ते बढ़ते कई हाथ की लंबाई का हो जाता है। ये कीड़े जब त्वचा के तनुजाल में होते हैं तब नारू या नहरुवा होता है, जब रक्त की नलियों में होते हैं तब श्लीपद या फील पाव रोग होता है। नारू का रोग प्रायः गरम देशों में ही होता है।

ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं। अधिकतर तो जीवधारियों के शरीर के भीतर रहते हैं पर कुछ तालों और समुद्र के जल में भी पाए जाते हैं। सिरके का कीड़ा इसी जाति का होता है। ये कीट यद्यपि पेट के केंचुए से सूक्ष्म होते हैं पर इनकी शरीर-रचना केंचुओं की अपेक्षा अधिक पूर्ण रहती है। इन्हें मुँह होता है, अलग अँतड़ी होती है; इनमें स्त्री० पुं० भेद होता है।

†संज्ञा पुं० [हिं० नारा, पू० हिं० नारी] वह बोआई जो क्यारियों में होती है।

नार्पत्य–वि० [सं०] नृपसंबंधी। राजा से संबंध रखनेवाला।

नार्मद–वि० [सं०] नर्मदा संबंधी। नर्मदा नदी का।

संज्ञा पुं० शिवलिंग जो नर्मदा में पाया जाता है।

नार्मर–संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे इंद्र ने मारा था। (ऋग्वेद)

नार्य्यंग–संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी।

नार्य्यतिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

नालंदा–संज्ञा पुं० बौद्धों का एक प्राचीन क्षेत्र और विद्यापीठ जो मगध में पटने से तीस कोस दक्खिन और बड़गाँव से ग्यारह कोस पश्चिम था। किसी किसी का मत है कि यह स्थान वहाँ था जहाँ आजकल तेलाड़ा है।

विशेष—बौद्ध यात्रियों के विवरण से जाना जाता है कि पहले पहल महाराज अशोक ने नालंदा में एक मठ स्थापित किया। चीनी यात्री ह्वएनसांग ने लिखा है कि पीछे शंकर और मुद्गलगोमी नामक दो ब्राह्मणों ने इस मठ को फिर से बड़े विशाल आकार में बनवाया। इसकी दीवारें जो इधर उधर खड़ी मिलती हैं उनमें से कई तीस बत्तीस हाथ ऊँची हैं। कहते हैं कि इस विद्यापीठ में रह कर नागार्जुन ने कुछ दिनों तक एक शंकर नामक ब्राह्मण से शास्त्र पढ़ा था। सन् ६३७ ईसवी में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वएनसांग ने इस विद्यापीठ में जाकर प्रज्ञाभद्र नामक एक आचार्य से विद्याध्ययन किया था। उस समय इतना बड़ा मठ और इतना बड़ा विद्यापीठ भारत में और कहीं नहीं था। यहाँ सैकड़ों आचार्य और दस हजार के ऊपर ऊपर याजक और शिष्य निवास करते थे। जिस समय काशी में बुद्धपक्ष नामक राजा राज्य करते थे उस समय इस मठ में आग लगी और बहुत सी पुस्तकें जल गईं।

नाल–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमल, कुमुद आदि फूलों की पोली लंबी डंडी। डाँड़ी। (२) पौधे का डंठल। कांड। (३) गेहूँ, जौ आदि की पतली लंबी डंडी जिसमें बाल लगती है। (४) नली। नल। (५) बंदूक की नली। बंदूक के आगे निकला हुआ पोला डंडा। (६) सुनारों की फुकनी। (७) जुलाहों की नली जिसमें वे सूत लपेट कर रखते हैं। छूँछा। कैंडा। छुच्छा। (८) वह रेशा जो कलम बनाते समय छीलने पर निकलता है।

विशेष—डंठल या डंडी के अर्थ में पूरब में पुं० बोलते हैं। पुरानी कविताओं में भी पुं० प्रायः मिलता है।

संज्ञा पुं० (१) रक्त की नलियों तथा एक प्रकार के मज्जातंतु से बनी हुई रस्सी के आकार की वस्तु जो एक ओर तो गर्भस्थ बच्चे की नाभि से और दूसरी ओर गोल थाली के आकार में फैल कर गर्भाशय की दीवार से मिली होती है। आँवल नाल। उल्वनाल। नारा।

विशेष—इसी नाल के द्वारा गर्भस्थ शिशु माता के गर्भ से जुड़ा रहता है। गर्भाशय की दीवार से लगा हुआ जो उभरा हुआ थाली की तरह का गोल छत्ता होता है उसमें बहुत सी रक्तवाहिनी नसें होती हैं जो चारों ओर से अनेक शाखा प्रशाखाओं में आकर छत्ते के केंद्र पर मिलती हैं जहाँ से नाल शिशु की नाभि की ओर गया रहता है। इस छत्ते और नाल के द्वारा माता के रक्त के पोषक द्रव्य शिशु के शरीर में आते जाते रहते हैं, जिससे शिशु के शरीर में रक्त संचार, श्वास प्रश्वास और पोषण की क्रिया का साधन होता है। यह नाल पिंडज जीवों ही में होता है इसी से वे जरायुज कहलाते हैं। मनुष्यों में बच्चा उत्पन्न होने पर यह नाल काटकर अलग कर दिया जाता है।

क्रि० प्र०—काटना।

मुहा०—क्या किसी का नाल काटा है ?=क्या किसी की दाई है। क्या किसी को जाननेवाली है। क्या किसी की बड़ी बूढ़ी है। जैसे, क्या तूने ही नाल काटा है ? (स्त्रि०)। कहीं पर

यची, नागकेसर, जीरे, और तेजपत्ते का चूर्ण डाल कर मिला दे। इसके सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, क्षयरोग, रक्तपित्त और शूल दूर होता है तथा पुरुषत्व की वृद्धि होती है।

नारियल—संज्ञा पुं [सं० नारिकेल] (१) खजूर की जाति का एक पेड़ जो खंभे के रूप में पचास साठ हाथ तक ऊपर की ओर जाता है। इसके पत्ते खजूर ही के से होते हैं। नारियल गरम देशों में ही समुद्र का किनारा लिए हुए होता है। भारत के आस-पास के टापुओं में यह बहुत होता है। भारतवर्ष में समुद्र तट से अधिक से अधिक सौ कोस तक नारियल अच्छी तरह होता है, उसके आगे यदि लगाया भी जाता है तो किसी काम का फल नहीं लगता। फूल इसके सफेद होते हैं जो पतली पतली सींकों में मंजरी के रूप में लगते हैं। फल गुच्छों में लगते हैं जो बारह चौदह अंगुल तक लंबे और छ सात अंगुल तक चौड़े होते हैं। फल देखने में लंबोतरे और तिपहले दिखाई पड़ते हैं। उनके ऊपर एक बहुत कड़ा रेशेदार छिलका होता है जिसके नीचे कड़ी गुठली और सफेद गिरी होती है जो खाने में मीठी होती है। नारियल के पेड़ लगाने की रीति यह है कि पके हुए फलों को लेकर एक या डेढ़ महीने घर में रख छोड़े। फिर बरसात में हाथ डेढ़ हाथ गड्ढे खोद कर उनमें उन्हें गाड़ दे और राख और और खार ऊपर से डाल दे। थोड़ेही दिनों में कल्ले फूटेंगे और पौधे निकल आवेंगे। फिर छ महीने या एक वर्ष में इन पौधों को खोदकर जहाँ लगाना हो लगा दे। भारतवर्ष में नारियल बंगाल मदरास और बंबई प्रांत में लगाए जाते हैं। नारियल कई प्रकार के होते हैं। विशेष भेद फलों के रंग और आकार में होता है। कोई बिलकुल लाल होते हैं, कोई हरे होते हैं और कोई मिले जुले रंग के होते हैं। फलों के भीतर पानी या रस भरा रहता है जो पीने में मीठा होता है। नारियल बहुत से कामों में आता है। इसके पत्तों की चटाई बनती है जो घरों में लगती है। पत्तों की सींकों के झाड़ू बनते हैं। फलों के ऊपर जो मोटा छिलका होता है उससे बहुत मजबूत रस्से तैयार होते हैं। खोपड़े या गिरी के ऊपर के कड़े कोश को चिकना और चमकीला करके प्याले और हुक्के बनाते हैं। गिरी मेवों में गिनी जाती है। गिरी से एक मीठा गाढ़ा जमनेवाला तेल निकलता है जिसे लोग खाते भी हैं और लगाते भी। पूरी लकड़ी का घर की छाजन में बरेरा लगता है। बंबई प्रांत में नारियल से एक प्रकार का मद्य या ताड़ी बनाते हैं।

वैद्यक में नारियल का फल, शीतल, दुर्जर, वृष्य, तथा पित्त और दाह नाशक माना जाता है। ताजे फल का पानी शीतल, हृदय को हितकारी, दीपक और वीर्यवर्द्धक माना जाता है। एशिया में रूम और मडागास्कर द्वीप से लेकर पूर्व की ओर

अमेरिका के तट तक नारियल के जो नाम प्रचलित हैं वे प्रायः सं० नारिकेल शब्द ही के विकृत रूप हैं। यह बात प्रायः सर्वसम्मत है कि नारियल का आदि स्थान भारत और बरमा के दक्षिण के द्वीप (मालद्वीप, लकाद्वीप, सिंहल, अंडमान, सुमात्रा, जवा इत्यादि) ही हैं। नारिकेल का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में तो नहीं मिलता पर महाभारत, सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। कथासरित्सागर में "नारिकेल द्वीप" का उल्लेख है।

पर्य्या०—नारिकेल। लांगली। सदापुष्प। शिरःफल। रसफल। सुतुंग। कूर्चशेखर। दृढ़नील। नीलतरु। मंगल्य। तृणराज। स्कंधतरु। दाक्षिणात्य। त्र्यंबकफल। दृढ़फल। तुंग। सदाफल। कौशिकफल। फलमुंड। विश्वामित्र-प्रिय।

यौ०—नारियल का खोपड़ा = नारियल की कड़ी गुठली जिसके भीतर गिरी की तह रहती है।

मुहा०—नारियल तोड़ना = मुसलमानों की एक रीति जो गर्भ रहने पर की जाती है। नारियल तोड़कर उससे लड़का या लड़की पैदा होने का शकुन निकालते हैं।

(२) नारियल का हुक्का।

नारियलपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण देश (बंबई प्रांत) का एक त्योहार जिसमें लोग नारियल ले लेकर समुद्र में फेंकते हैं।

नारियली—संज्ञा स्त्री० [हिं० नारियल] (१) नारियल का खोपड़ा। (२) नारियल का हुक्का। (३) नारियल की ताड़ी।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। औरत। (२) तीन गुरु वर्णों की एक वृत्ति। उ०—माधो ने। दी तारी। गोपों की। हैं नारी।

संज्ञा स्त्री० [सं० आड़ि] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर ललाई लिए भूरे होते हैं। पीठ और पूँछ भी भूरी होती है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० नार] वह रस्सी जिससे जुए में हल बाँधते हैं। नार।

संज्ञा स्त्री० दे० "नाड़ी"।

संज्ञा स्त्री० दे० "नाली"।

नारीकवच—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशीय मूलक राजा। यह अश्मक का पुत्र और सौदास का पौत्र था। जब परशुराम क्षत्रियों का नाश कर रहे थे तब इन्हें स्त्रियों ने घेर कर बचा लिया था इसी से यह नाम पड़ा। इन्हीं से क्षत्रियों का फिर वंशविस्तार हुआ, इससे इन्हें मूलक कहते हैं।

नारीकेल—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नारीच—संज्ञा पुं० [सं०] नालिता शाक।

नारीतरंगक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के चित्त को चंचल करनेवाला पुरुष। जार। व्यभिचारी।

पीछे होते हैं। (३) हाथियों की कनछेदनी। (४) घड़ी। घटीयंत्र। (५) कमल।

नालीक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का छोटा बाण जो नली में रखकर चलाया जाता था। सुरंग। (२) पद्म समूह।

नालीव्रण–संज्ञा पुं० [सं०] नासूर।

नालुक–संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधद्रव्य।

वि० कृश। दुबला।

नालौट–वि० [हिं० लौटना ?] बात कहकर पलट जानेवाला। वादा करके हट जानेवाला। मुकर जानेवाला। इनकार करनेवाला।

मुहा०—नालौट हो जाना = मुकर जाना। साफ इनकार कर जाना। बात से पलट जाना।

नावँ–† संज्ञा पुं० दे० "नाम"।

नाव–संज्ञा स्त्री० [सं० नौ का बहु०। फा०] लकड़ी लोहे आदि की बनी हुई जल के ऊपर तैरने या चलनेवाली सवारी। जलयान। नौका। किश्ती।

विशेष—नावें बहुत प्राचीन काल से बनती आई हैं। भारतवर्ष, मिस्र, चीन, इत्यादि देशों के निवासी व्यापार के लिये समुद्रयात्रा करते थे। ऋग्वेद में समुद्र में चलनेवाली नावों का उल्लेख है। प्राचीन हिंदू सुमात्रा, जावा, चीन आदि की ओर बराबर अपने जहाज लेकर जाते थे। ईसा से तीन सौ वर्ष पहले कलिंग देश से लगा हुआ ताम्रलिप्त नगर भारत के प्रसिद्ध बंदरगाहों में था। वहीं जहाज पर चढ़ सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था। ईसा की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान बौद्ध ग्रंथों की नकल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज पर बैठ सिंहल गया था। पश्चिम में फिनीशिया के निवासियों ने बहुत पहले समुद्रयात्रा आरंभ की थी। टायर, कार्थेज आदि उनके स्थापित बड़े प्रसिद्ध बंदरगाह थे जहाँ ईसा से हजारों वर्ष पहले युरोप तथा उत्तरी अफ्रिका से व्यापार होता था। उनके पीछे यूनान और रोमवालों का जलयात्रा में नाम हुआ। पूर्वीय और पश्चिमी देशों के बीच का व्यापार बहुत दिनों तक अरबवालों के हाथ में भी रहा है।

भारतवर्ष में यान दो प्रकार के कहे जाते थे—स्थलयान और जलयान। जलयान को निष्पद यान भी कहते थे। युक्तिकल्पतरु नामक ग्रंथ में नौका बनाने की युक्ति का वर्णन है। सब से पहले लकड़ी का विचार किया गया है। काठ की भी चार जातियाँ स्थिर की गई हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जो लकड़ी हलकी मुलायम और गढ़ने योग्य हो उसे ब्राह्मण, जो कड़ी, हलकी और न गढ़ने योग्य हो उसे क्षत्रिय, जो मुलायम और भारी हो उसे वैश्य तथा जो कड़ी और भारी हो उसे शूद्र कहा है। इनमें तीन द्विजाति काष्ठ ही नौका के लिये अच्छे कहे गए हैं। सामान्य छोटी नाव दस प्रकार की कही गई हैं—क्षुद्रा, मध्यमा, भीमा, चपला, पटला, अभया, दीर्घा, पत्रपुटा, गर्भरा और मंथरा। इसी प्रकार जहाज या बड़ी नाव भी दस प्रकार की बतलाई गई हैं—दीर्घिका, तरणि, लोला, गत्वरा, गामिनी, तरि, जंघला, प्लाविनी, धारणी, और वेगिनी। जिन नावों पर समुद्रयात्रा होती थी उन्हें प्राचीन भारतवासी साधारणतः 'यानपात्र' कहते थे।

पर्या०—नौ। तरिका। तरणि। तरी। तरंडी। तरंड। पादालिंद। उडुप। होड़। यावेंट। वहित्र। पोत। वहन।

क्रि० प्र०—खेना।—चलाना।

मुहा०—सूखे में नाव नहीं चलती = बिना कुछ खर्च किए नाम नहीं होता। उदारता के बिना प्रसिद्धि नहीं होती। नाव में धूल उड़ाना = (१) बिना सिर पैर की बात कहना। सरासर झूठ कहना। (२) झूठा अपराध लगाना। व्यर्थ कलंक लगाना।

नावक–संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का छोटा बाण। एक खास तरह का तीर। उ०—(क) नावक सर सें लाय कै तिलक तरुनि इत ताकि। पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि।—बिहारी। (ख) सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर। देखत में छोटे लगैं बेधैं सकल सरीर। (२) मधुमक्खी का डंक।

संज्ञा पुं० [सं० नाविक] केवट। माँझी। मल्लाह। उ०—पुनि गौतमघरनी जानत है नावक शबरी जान।—सूर।

नावघाट–संज्ञा पुं० [हिं०] नावों के ठहरने का घाट। नदी, झील, आदि के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें ठहरती हों।

नावना†–क्रि० स० [सं० नमन] (१) झुकाना। नवाना। उ०—असुपतीक सिरमौर कहावइ। गजपतीक आँकुस गज नावइ।—जायसी। (२) डालना। फेंकना। गिराना। उ०—माखन तनक आपने कर लै तनक बदन में नावत।—सूर। (३) प्रविष्ट करना। घुसाना।

नावर*†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नव] (१) नाव। नौका। उ०—को करि सकै सहाय बहै करिया बिनु नावर।—गिरिधर। (२) नाव की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीच में लेजाकर चक्कर देते हैं। उ०—बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं जल माहीं।—तुलसी।

नावरा–संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण में होनेवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत साफ, चिकनी और मजबूत होती है। मेज कुरसी आदि सजावट के सामान इसके बहुत अच्छे बनते हैं।

नावरि†–संज्ञा स्त्री० दे० "नावर"।

नाल गड़ना=(१) कोई स्थान जन्मस्थान के समान प्रिय होना। किसी स्थान से बहुत प्रेम होना। किसी स्थान पर सदा बना रहना, जल्दी न हटना। (२) किसी स्थान पर अधिकार होना। दावा होना। जैसे, यहाँ क्या तेरा नाल गड़ा है ? नाल छीनना=नाल काटना।

(२) लिंग। (३) हरताल। (४) जल बहने का स्थान। (५) जल में होनेवाला एक पौधा। (६) एक प्रकार का बाँस जो हिमालय के पूर्वभाग, आसाम और बरमा आदि में होता है। टोली। फफोल।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) लोहे का वह अर्द्धचंद्राकार खंड जिसे घोड़ों की टाप के नीचे या जूतों की एड़ी के नीचे रगड़ से बचाने के लिये जड़ते हैं।

क्रि० प्र०—जड़ना।—बाँधना।

(२) तलवार आदि के म्यान की साम जो नोक पर मढ़ी होती है।

(३) कुंडलाकार गढ़ा हुआ पत्थर का भारी टुकड़ा जिसके बीचोबीच पकड़ कर उठाने के लिये एक दस्ता रहता है। इसे बलपरीक्षा या अभ्यास के लिये कसरत करनेवाले उठाते हैं।

क्रि० प्र०—उठाना।

(४) लकड़ी का वह चक्कर जिसे नीचे डाल कर कूएँ की जोड़ाई की जाती है। (५) वह रुपया जिसे जुआरी जुए का अड्डा रखनेवाले को देता है। (६) जुए का अड्डा।

क्रि० प्र०—रखना।

नालकटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाल+कटाई] (१) तुरत के जनमे हुए बच्चे की नाभि में लगे हुए नाल को काटने का काम। (२) नाल काटने की मजदूरी।

नालकी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल=डंडा] इधर उधर से खुली पालकी जिस पर एक मिहराबदार छाजन होती है। व्याह में इस पर दूलहा बैठ कर जाता है। उ०—चढ़ि नालकी नरेश तहँ संयुत चारि कुमार। रंगमहल गवनत भए संग सचिव सरदार।

नालबंद—संज्ञा पुं० [अ०+फा०] जूते की एड़ी या घोड़े की टाप में नाल जड़नेवाला आदमी।

नालबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ०] नाल जड़ने का कर्म।

नालबाँस—संज्ञा पुं० [सं० नल+हिं० बाँस] एक प्रकार का बाँस जो हिमालय के अंचल में जमुना के किनारे से लेकर पूरबी बंगाल और आसाम तक होता है। यह सीधा, मजबूत और कड़ा होने के कारण बहुत अच्छा समझा जाता है।

नालवंश—संज्ञा पुं० [सं०] नल। नरसल। नरकट।

नालशतीरी—संज्ञा पुं० [अ० नाल+फा० शहतीर] लकड़ी की एक प्रकार की मेहराब जिसमें कई छोटी मेहराबें कटी होती हैं।

नालशाक—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन की नाल जिसकी तरकारी बनाकर लोग खाते हैं।

नाला—संज्ञा पुं० [सं० नाल] [स्त्री० अल्प० नाली] (१) पृथ्वी पर लकीर के रूप में दूर तक गया हुआ गड्ढा जिससे होकर बरसाती पानी किसी नदी आदि में जाता है। जलप्रणाली। (२) उक्त मार्ग से बहता हुआ जल। जलप्रवाह।

क्रि० प्र०—बहना।

(३) रंगीन गंडेदार सूत। दे० "नाड़ा"।

नालायक—वि० [फा०+अ०] अयोग्य। निकम्मा। मूर्ख।

नालिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) भैंसा। (३) एक अस्त्र का नाम जिसकी नली में कुछ भरकर चलाते थे।

नालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी नाल या डंठल। (२) नाली। (३) जुलाहों की नली जिसमें वे लपेटा हुआ सूत रखते हैं। (४) नालिता शाक। पटुआ साग। (५) एक प्रकार का गंध द्रव्य।

नालिकेर—संज्ञा पुं० [सं०] नारिकेल। नारियल।

नालिकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक।

नालिजंघ—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोण काक। डोम कौवा।

नालिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पटुवा जिसके कोमल पत्तों का साग होता है।

नालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक के एक छेद अर्थात् नथने का तांत्रिक नाम।

नालिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) किसी के द्वारा पहुँचे हुए दुःख या हानि का ऐसे मनुष्य के निकट निवेदन जो उसका प्रतिकार कर सकता हो। किसी के विरुद्ध अभियोग। फरियाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नालिश दागना=नालिश करना।

नाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाला] (१) जल बहने का पतला मार्ग। लकीर के रूप में दूर तक गया हुआ पतला गड्ढा जिससे होकर पानी बहता हो। जल-प्रवाह-पथ। (२) गलीज आदि बहने का मार्ग। मोरी। (३) वह गहरी लकीर जो तलवार के बीचो बीच पूरी लंबाई तक गई होती है। (४) डँड करने का गड्ढा जिसमें से होकर छाती निकल जाय।

मुहा०—नाली के डँड=वह डँड जो नाली में से बदन निकाल कर किया जाय। नाली के डँड पेलना=स्त्रीसंभोग करना। (बाजारू)

(५) कुम्हार के आँवे का वह नीचे की ओर गया हुआ छेद जिससे आग डालते हैं। (६) घोड़े की पीठ का गड्ढा। (७) बैल आदि चौपायों को दवा पिलाने का चोंगा। ढरका।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाड़ी। धमनी। रक्त आदि बहने की नली। (२) करेमू का साग जिसके डंठल नली की तरह

साथ कफ मिलकर नाक के छेद को बंद कर देना है। प्रतिनाह। प्रतीनाह।

नासापरिशोष—संज्ञा पुं० [सं०] नासाशोष रोग।

नासापाक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक में बहुत सी फुंसियाँ निकलने के कारण नाक पक जाती है।

नासापुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह चमड़ा जो छेदों के किनारे परदे का काम देता है। नथना।

नासावेध—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह छेद जिसमें नथ आदि पहनी जाती है।

नासायोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह नपुंसक जिसे घ्राण करने पर उद्दीपन हो। सौगंधिक नपुंसक।

नासारोग—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में होनेवाले रोग जिनकी संख्या सुश्रुत के अनुसार ३१ और भावप्रकाश के मत से ३४ है।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार नाम—अपीनस (पीनस), पूतिनस्य, नासापाक, रक्तपित्त, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्ति, प्रतिनाह, परिस्राव, नासाशोष, ४ प्रकार के अर्श, ४ प्रकार के शोथ, ७ प्रकार के अर्बुद और ५ प्रकार के प्रतिश्याय। भावप्रकाश ने इसमें इतनी विशेषता की है कि एक रक्तपित्त के स्थान पर चार प्रकार के रक्तपित्त लिख दिए हैं।

नासालु—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल।

नासावंश—संज्ञा पुं० [सं०] नाक के ऊपर बीचो बीच गई हुई पतली हड्डी। नाक का बाँसा।

नासाशोष—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में कफ सूख जाने का रोग।

नासासंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] कांडवेल। चिरचिटा। चिचड़ी।

नासास्राव—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक से सफेद और पीला मवाद निकला करता है।

नासिक—संज्ञा स्त्री० [सं० नासिक्य] महाराष्ट्र देश में एक तीर्थ जो उस स्थान के निकट है जहाँ से गोदावरी निकलती है। इसी के पास वह पंचवटी वन है जहाँ वनवास के समय रामचंद्र ने कुछ काल निवास किया था और लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक कान काटे थे।

नासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक। नासा।

वि० श्रेष्ठ। प्रधान।

नासिक्य—वि० [सं०] नासिका से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) नासिका। (२) अश्विनीकुमार। (३) दक्षिण का एक देश। नासिक। (बृहत्संहिता)

नासी[*]—वि० दे० "नाशी"।

नासीर—संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक के आगे चलनेवाला दल जो जयनाद उच्चारण करता चलता था।

नासूर—संज्ञा पुं० [अ०] घाव, फोड़े आदि के भीतर दूर तक गया हुआ नली का सा छेद जिसमें बराबर मवाद निकला करता है और जिसके कारण घाव जल्दी अच्छा नहीं होता। नाड़ीव्रण।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—नासूर डालना = नासूर पैदा करना। घाव करना। छाती में नासूर डालना = बहुत कुढ़ाना। बहुत तंग करना। नासूर भरना = नासूर का घाव अच्छा हो जाना।

नास्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ईश्वर, परलोक, आदि को न माने। ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करनेवाला।

विशेष—जो हेतुशास्त्र अर्थात् तर्क का आश्रय लेकर वेद को अस्वीकार करे, उसका प्रमाण न माने, हिंदू शास्त्र में उसको भी नास्तिक कहा है। हिंदूशास्त्रकारों के अनुसार, चार्वाक बौद्ध और जैन ये तीनों नास्तिक मत हैं। इन मतों में सृष्टि को उत्पन्न करने और चलानेवाला कोई नित्य और स्थिर चेतन नहीं माना गया है। नास्तिकों को बार्हस्पत्य, चार्वाक और लोकायतिक भी कहते हैं।

नास्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नास्तिक होने का भाव। ईश्वर, परलोक आदि को न मानने की बुद्धि।

नास्तिक दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकों का दर्शन। दे० "दर्शन"।

नास्तिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकता। ईश्वर परलोक आदि में अविश्वास।

नास्तितद—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

नास्तिद—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

नास्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकों का तर्क।

नास्य—वि० [सं०] (१) नासिका संबंधी। नाक का। (२) नासिका से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० बैल की नाक में लगी हुई रस्सी। नाथ।

नाह[*]—संज्ञा पुं० [सं० नाथ] (१) नाथ। स्वामी। मालिक। (२) स्त्री का पति।

संज्ञा पुं० [सं० नाभ] पहिये का छेद। नाभि।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन। (२) हिरन फँसाने का फंदा।

नाहक—क्रि० वि० [फा० ना + अ० हक] वृथा। व्यर्थ। बेफायदा। बेमतलब। निष्प्रयोजन।

नाहटा—वि० [देश०] बुरा। नटखट।

नाहनूह—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाहीं] नहीं नहीं शब्द। इनकार।

नाहर—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] (१) सिंह। शेर। (२) बाघ।

संज्ञा पुं० [?] टेसू का फूल।

नाहरसाँस—संज्ञा पुं० [हिं० नाहर + साँस] घोड़ों की एक बीमारी जिसमें उनका दम फूलता है।

नाहरू—संज्ञा पुं० [देश०] नारू नाम का रोग। नहरुवा।

संज्ञा पुं० दे० "नाहर"।

नाहिनै[*]—वाक्य [हिं० नाहीं] नहीं है।

नावाँ–संज्ञा पुं० [सं० नामन्] वह रकम जो किसी के नाम लिखी हो।

नावाकिफ–वि० [फा० + अ०] अनजान। अनभिज्ञ।

नाविक–संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह। माझी। केवट।

नावेल–संज्ञा पुं० [अं०] उपन्यास।

नाश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) न रह जाना। लोप। ध्वंस। बरबादी।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
विशेष—सांख्यवाले कारण में लय होने को ही नाश कहते हैं क्योंकि जो वस्तु है उसका अभाव नहीं हो सकता। कारण में लय हो जाने से सूक्ष्मता के कारण वस्तु का बोध नहीं होता। जब कोई कार्य कारण में इस प्रकार लीन हो जाता है कि वह फिर कार्यरूप में नहीं आ सकता तब आत्यंतिक नाश होता है। नैयायिक नाश को ध्वंसाभाव मानते हैं।
(२) गायब होना। अदर्शन। (३) पलायन।

नाशक–वि० [सं०] (१) नाश करनेवाला। ध्वंस करनेवाला। बरबाद करनेवाला। (२) मारनेवाला। वध करनेवाला। (३) दूर करनेवाला। न रहने देनेवाला। जैसे, रोगनाशक।

नाशकारी–वि० [सं० नाशकारिन्] [स्त्री० नाशकारिणी] नाश करनेवाला।

नाशना*–क्रि० स० दे० "नासना"।

नाशपाती–संज्ञा स्त्री० [तु०] मझोले डील डौल का एक पेड़ जिसके फल मेवों में गिने जाते हैं। इसकी पत्तियाँ अमरूद की पत्तियों के इतनी बड़ी पर चिकनी और चमकीली होती हैं। फूल सफेद होते हैं पर फूलों के केसर हलके बैंगनी होते हैं। फल गोल और उनके गूदे की बनावट कुछ दानेदार होती है। बीज गूदे के भीतर बीचो बीच चार छोटे कोशों में रहते हैं। फल का विशेष अंश सफेद कड़ा गूदा ही होता है इससे इसके कटे हुए टुकड़े मिस्री के टुकड़ों के समान जान पड़ते हैं। काश्मीर में नाशपाती के पेड़ जंगली मिलते हैं। काश्मीर के अतिरिक्त हिमालय के किनारे सर्वत्र, दक्षिण में नीलगिरि बंगलौर आदि में तथा भारतवर्ष में थोड़े बहुत सब स्थानों में इसके पेड़ लगाए जाते हैं। कलम और पैवंद से भी इसके पेड़ लगते हैं जो डील डौल में छोटे होते हैं। काश्मीर की नाशपाती अच्छी होती है और नाख या नाक के नाम से प्रसिद्ध है। नाशपाती युरोप और अमेरिका के प्रायः उन सब स्थानों में होती है जहाँ सरदी अधिक नहीं पड़ती। युरोप में नाशपाती की लकड़ी पर नक्काशी होती है और उसके हलके सामान बनते हैं। आयुर्वेद में नाशपाती का नाम अमृत फल (इससे इसे कहीं कहीं अमरूद भी कहते हैं) है ? जो धातुवर्द्धक, मधुर, भारी, रोचक तथा अम्लवात नाशक माना गया है। सेब और नाशपाती एक ही जाति के पेड़ हैं।

नाशवान्–वि० [सं०] नाश को प्राप्त होनेवाला। नश्वर। अनित्य।

नाशित–वि० [सं०] जिसका नाश किया गया हो।

नाशी–वि० [सं० नाशिन्] [स्त्री० नाशिनी] (१) नाश करनेवाला। नाशक। (२) नष्ट होनेवाला। नश्वर।

नाशुक–वि० [सं०] नष्ट होनेवाला। नश्वर।

नाश्ता–संज्ञा पुं० [फा०] कलेवा। जलपान। प्रातःकाल का अल्पाहार। पनपियाव।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाश्य–वि० [सं०] नाश के योग्य। ध्वंसनीय।

नाष्टिक–वि० [सं०] जिसकी वस्तु नष्ट हुई हो। (स्मृति)

नास–संज्ञा स्त्री० [सं० नासा] (१) वह द्रव्य जो नाक में डाला जाय। वह औषध जो नाक से सुरकी या सूँघी जाय।
क्रि० प्र०—लेना।
(२) सुँघनी।

नासदान–संज्ञा पुं० [हिं० नास + दान (सं० आधान)] सुँघनी की डिबिया।

नासत्य–संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमार।

नासत्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र।

नासना*–क्रि० स० [सं० नाशन्] (१) नष्ट करना। बरबाद करना। (२) मार डालना। बध करना।

नासपाल–संज्ञा पुं० [फा०] (१) कच्चे अनार का छिलका जो रंग निकालने के काम में आता है। (२) कच्चा अनार। (३) एक प्रकार की आतिशबाजी।

नासपाली–वि० [फा०] नासपाल के रंग का। कच्चे अनार के छिलके के रंग का।

नासमझ–वि० [हिं० ना + समझ] जिसे समझ न हो। जो समझदार न हो। जिसे बुद्धि न हो। निर्बुद्धि। बेवकूफ।

नासमझी–संज्ञा स्त्री० [हिं० नासमझ] मूर्खता। बेवकूफी।

नासा–संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० नास्य] (१) नासिका। नाक। (२) नासारंध्र। नाक का छेद। नथना। (३) द्वार के ऊपर लगी हुई लकड़ी। भरेटा। (४) अड़ूसा।

नासाग्र–संज्ञा पुं० [सं०] नाक का अगला भाग। नाक की नोक।

नासाज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो नाक के भीतर प्याज की गाँठ की तरह का फोड़ा होने से होता है। इस ज्वर में सिर और रीढ़ में बड़ा दर्द होता है।

नासानाह–संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें वायु के

निःशब्द–वि० [सं०] शब्द रहित। जहाँ शब्द न हो या जो शब्द न करे।

निःशलाक–वि० [सं०] निर्जन। एकांत। सुनसान। निराला।

विशेष—मनु ने लिखा है कि मंत्रणा निःशलाक स्थान में करनी चाहिए।

निःशल्य–वि० [सं०] (१) शल्यरहित। (२) खटकनेवाली चीज से मुक्त। प्रतिबंधरहित। निष्कंटक।

निःशूक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

निःशेष–वि० [सं०] (१) जिसमें कुछ शेष न हो। जिसका कोई अंश रह न गया हो। समूचा। सब। (२) समाप्त। पूरा। खतम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निःश्रयणी, निःश्रयिणी–संज्ञा स्त्री० दे० "निःश्रेणी"।

निःश्रेणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ या बाँस आदि की सीढ़ी।

निःश्रेयस–वि० [सं०] (१) मोक्ष। मुक्ति। (२) मंगल। कल्याण। (३) भक्ति। (४) विज्ञान।

निःश्वास–संज्ञा पुं० [सं०] प्राणवायु का नाक से निकलना या नाक से निकाली हुई वायु। साँस।

निःसंधि–वि० [सं०] (१) संधिशून्य। जिसमें कहीं से छेद आदि न हो। (२) दृढ़। मजबूत।

निःसंकल्प–वि० [सं०] इच्छारहित।

निःसंकोच–क्रि० वि० [सं०] बिना संकोच के। बेधड़क। जैसे, आप निःसंकोच चले आइए।

निःसंग–वि० [सं०] (१) बिना मेल या लगाव का। जो मेल या लगाव न रखता हो। (२) निर्लिप्त। (३) जिसमें अपने मतलब का कुछ लगाव न हो।

निःसंतान–वि० [सं०] जिसके संतान न हो। निपूता या निपूती। लावल्द।

निःसंदेह–वि० [सं०] संदेह रहित। जिसे या जिसमें कुछ संदेह न हो। जैसे, किसी आदमी का निःसंदेह होना, किसी बात का निःसंदेह होना।

अव्य० (१) बिना किसी संदेह के। (२) इसमें कोई संदेह नहीं। ठीक है। बेशक।

निःसंधि–वि० [सं०] (१) जिसमें कहीं से दरार या छेद न हो। (२) दृढ़। मजबूत। (३) कसा हुआ। गठा हुआ।

निःसंपात–वि० [सं०] (१) गमनागमनशून्य। जहाँ या जिसमें आना जाना न हो। जहाँ या जिसमें आमदरफ्त न हो। जैसे, निःसंपात मार्ग। (२) रात।

निःसंशय–वि० [सं०] संदेहरहित। शंकारहित।

निःसत्व–वि० [सं०] (१) जिसकी कुछ सत्ता न हो। जिसमें कुछ असलीयत न हो। (२) जिसमें कुछ तत्व या सार न हो। बिना सत का।

निःसरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निकलना। (२) निकलने का रास्ता। निकास। (३) कठिनाई से निकलने का रास्ता। उपाय। (४) निर्वाण। (५) मरण।

निःसार–वि० [सं०] (१) जिसमें कुछ सार न हो। जिसमें कुछ तत्व न हो। (२) जिसमें कुछ असलियत न हो। (३) जिसमें प्रयोजन या महत्व की कोई बात न हो।

संज्ञा पुं० (१) शाखोट वृक्ष। सहोरे का पेड़। (२) श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा।

निःसारण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निःसारित] (१) निकालना। (२) निकास। निकलने का द्वार या मार्ग।

निःसाल–संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक।

निःसीम–वि० [सं०] (१) जिसकी सीमा न हो। बेहद। (२) बहुत बड़ा या बहुत अधिक।

निःसुकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गेहूँ जिसके दाने छोटे होते हैं और जिसकी बाल में टूँड़ या सीगुर नहीं होते। (भावप्रकाश)

निःसृत–वि० [सं०] निकला हुआ।

निःस्नेहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीसी। अलसी।

निःस्पंद–वि० [सं०] जिसमें स्पंद न होता हो। जो हिलता डोलता न हो। निश्चल। स्थिर।

निःस्पृह–वि० [सं०] (१) इच्छा रहित। जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो। (२) जिसे प्राप्ति की इच्छा न हो। निर्लोभ।

निःस्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निकास। (२) अवशेष। बचत। निकासी। (याज्ञवल्क्य०)

निःस्व–संज्ञा पुं० [सं०] जिसका अपना कुछ न हो। जिसके पास कुछ न हो। धनहीन। दरिद्र।

निःस्वार्थ–वि० [सं०] (१) जो अपना अर्थ साधन करनेवाला न हो। जो अपना मतलब निकालनेवाला न हो। जो अपने लाभ, सुख या सुभीते का ध्यान न रखता हो। (२) (कोई बात) जो अपने अर्थ साधन के निमित्त न हो। जो अपना मतलब निकालने के लिये न हो। जैसे, निःस्वार्थ सेवा।

नि–अव्य [सं०] एक उपसर्ग जिसके लगने से शब्दों में इन अर्थों की विशेषता होती है—(१) संघ या समूह, जैसे, निकर; (२) अधोभाव, जैसे, निपतित (३) भृश, अत्यंत, जैसे, निगृहीत; (४) आदेश, जैसे, निदेश; (५) नित्य; (६) कौशल; (७) बंधन; (८) अंतर्भाव; (९) समीप; (१०) दर्शन; (११) उपरम; (१२) आश्रय। उ०—निविशिष्ट, निपुण, निबंध, निपीत, निकट, निदर्शन, निवृत्त, निलय। मेदिनी कोश में ये अर्थ और बतलाए गए हैं—(१३) संशय; (१४) क्षेप; (१५) दान; (१६) मोक्ष; (१७) विन्यास; (१८) निषेध।

नाहीं–अव्य० दे० "नहीं"।

नाहुप–संज्ञा पुं० [सं०] नहुप के पुत्र ययाति।

निंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मटर।

निंत*–क्रि० वि० दे० "नित्य"।

निंद*–वि० दे० "निंद्य"।

निंदक–संज्ञा पुं० [सं०] निंदा करनेवाला। दूसरों के दोष या बुराई कहनेवाला।

निंदन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निंदनीय, निंदित, निंद्य] निंदा करने का काम।

निंदना–†* क्रि० स० [सं० निंदन] निंदा करना। बदनाम करना। बुरा कहना। उ०—(क) पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ शुक्र संभव यह देही।—तुलसी। (ख) हरि सब के मन यह उपजाई। सुरपति निंदत गिरिहिँ बड़ाई।—सूर।

निंदनीय–वि० [सं०] (१) निंदा करने योग्य। बुरा कहने योग्य। (२) बुरा। गर्ह्य।

निँदरना–क्रि० स० [सं० निंदा] निंदा करना। बदनाम करना। बुरा कहना।

निँदरिया–†* संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] नींद। निद्रा। उ०—मेरे लाल को आव निँदरिया काहे न आय सुआवै।—सूर

निंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) (किसी व्यक्ति या वस्तु का) दोपकथन। बुराई का वर्णन। ऐसी बात का कहना जिससे किसी का दुर्गुण, दोप, तुच्छता इत्यादि प्रकट हो। अपवाद। जुगुप्सा। कुत्सा। बदगोई। (२) अपकीर्त्ति। बदनामी। कुख्याति। जैसे, ऐसी बात से लोक में निंदा होती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—यद्यपि निंदा दोप के कथन मात्र को कह सकते हैं चाहे कथन यथार्थ हो चाहे अयथार्थ पर मनुस्मृति में ऐसे दोप के कथन को निंदा कहा है जो यथार्थ में न हो। जो दोप वास्तव में हो उसके कथन को परीवाद कहा है। कुल्लूक ने अपनी व्याख्या में कहा है कि विद्यमान दोप के अभिधान को परीवाद और अविद्यमान दोप के अभिधान को निंदा कहते हैं।

निँदाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० निराई] (१) खेत के पौधों के पास की घास, तृण आदि को उखाड़ कर या काटकर अलग करने का काम। (२) निराने की मजदूरी।

निँदाना–क्रि० स० दे० "निराना"।

निँदासा–वि० [हिं० नींद + आसा (प्रत्य०)] जिसे नींद आ रही हो। उनींदा।

निंदास्तुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा के बहाने स्तुति। व्याज-स्तुति।

निंदित–वि० [सं०] जो बुरा कहा गया हो। जिसे लोग बुरा कहते हों। दूषित। बुरा।

निँदिया–†‡ संज्ञा स्त्री० [हिं० नींद] नींद। ऊँघ। जैसे, आव री निँदिया आव (बच्चों को सुलाने का वाक्य)। उ०—सोओ सुख निँदिया प्यारे ललन।—हरिश्चंद्र।

निंद्य–वि० [सं०] (१) निंदा करने योग्य। निंदनीय। (२) दूषित। बुरा।

निंब–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीम का पेड़।

यौ०–पंचनिंब। महानिंब।

निँबरिया–† संज्ञा स्त्री० [हिं० नीम + बारी] वह बारी या कुंज जिसमें सब पेड़ नीम के ही हों।

निंबादित्य–संज्ञा पुं० [सं०] निंबार्क संप्रदाय के आदि आचार्य। इनका दूसरा नाम 'अरुणि' भी था। ये श्रीराधिका जी के कंकण के अवतार माने जाते हैं।

विशेष—वृंदावन के पास ध्रुव नामक पहाड़ी पर ये रहते थे। वहीं पर इनके शिष्यों ने इनकी गद्दी स्थापित की। कहते हैं इनके पिता का नाम जगन्नाथ था। बाल्यावस्था में इनका नाम भास्कराचार्य था। बहुत से लोग इन्हें सूर्य के अंश से उत्पन्न कहते थे। ये कृष्ण के बड़े भारी भक्त थे। इनके नाम के कारण इनके संबंध में एक विलक्षण कथा भक्तमाल में लिखी है। एक संन्यासी वा जैन यति इनसे दिन भर शास्त्रार्थ करता रहा। सूर्यास्त हो रहा था इन्होंने उससे भोजन के लिये कहा। सूर्यास्त के उपरांत भोजन करने का नियम उसका नहीं था। इस पर निंबार्क ने सूर्य को रोक रखा। जब तक संन्यासी ने भोजन नहीं कर लिया तब तक सूर्य देवता एक नीम के पेड़ पर बैठे रहे।

निंबार्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निंबादित्य। (२) निंबादित्य का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय।

निंबू–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीबू।

निः–अव्य [सं० निस्] एक उपसर्ग। दे० "निस्"

निःकपट–वि० दे० "निष्कपट"।

निःकाम–वि० दे० "निष्काम"।

निःकारण–वि० दे० "निष्कारण"।

निःकासन–संज्ञा पुं० दे० "निष्कासन"।

निःक्षत्र–वि० [सं०] क्षत्रिय रहित। क्षत्रिय शून्य (देश आदि)।

निःक्षोभ–वि० [सं०] क्षोभ-हीन। जिसको क्षोभ न हो।

निःछल–वि० दे० "निश्छल"।

निःपक्ष–वि० दे० "निष्पक्ष"।

निःपाप–वि० दे० "निष्पाप"।

निःप्रयोजन–वि० दे० "निष्प्रयोजन"।

निःफल–वि० दे० "निष्फल"।

निःशंक–वि० [सं०] (१) भयहीन। निडर। निर्भय। जिसे डर न हो। (२) जिसे किसी प्रकार का खटका या हिचक न हो।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

(३) पार होना। एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। अति क्रमण करना। जैसे, इस छेद में से गेंद नहीं निकलेगा।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

मुहा०—निकल चलना = वित्त से बाहर काम करना। इतराना। अति करना।

(४) किसी श्रेणी आदि के पार होना। उत्तीर्ण होना। जैसे, इस बार परीक्षा में तुम निकल जाओगे।

संयो० क्रि०—जाना।

(५) गमन करना। जाना। गुजरना। जैसे, (क) वह रोज इसी रास्ते से निकलता है। (ख) बरात बड़ी धूम से निकली।

संयो० क्रि०—जाना।

(६) उदय होना। जैसे, चंद्रमा निकलना, सूर्य निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

(७) प्रादुर्भूत होना। उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे, इतने चिउँटे कहाँ से निकल पड़े। (८) उपस्थित होना। दिखाई पड़ना। (९) किसी ओर को बढ़ा हुआ होना। जैसे, (क) घर का एक कोना पच्छिम ओर निकला हुआ है। (ख) कील की नोक नहीं निकली है।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

(१०) निश्चित होना। ठहराया जाना। उद्भावित होना। जैसे, रास्ता निकलना, दोष निकलना, परिणाम निकलना, उपाय निकलना।

संयो० क्रि०—आना।—पड़ना।

(११) खुलना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। जैसे, वाक्य का अर्थ निकलना, धोने पर कपड़े का रंग निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

(१२) मेल में से अलग होना। पृथक् होना। जैसे, गेहूँ में से बहुत कँकड़ी निकली हैं।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

(१३) छिड़ना। आरंभ होना। जैसे, बात निकलना, चर्चा निकलना। (१४) प्राप्त होना। सिद्ध होना। सरना। जैसे, काम निकलना, मतलब निकलना।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

(१५) हल होना। किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर प्राप्त होना। जैसे, इतना सीधा सवाल तुमसे नहीं निकलता? (१६) लगातार दूर तक जानेवाली किसी वस्तु का आरंभ होना। जैसे, यह नदी कहाँ से निकली है। (१७) लकीर के रूप में दूर तक जानेवाली वस्तु का विधान होना। फैलाव होना। जारी होना। जैसे, नहर निकलना, सड़क निकलना। (१८) प्रचलित होना। जारी होना। जैसे, कानून निकलना, कायदा निकलना, रीति निकलना, चाल निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

(१९) फँसा, बँधा या जुड़ा न रहना। छूटना। मुक्त होना। अलग होना। जैसे, गले से फंदा निकलना, बंधन से निकलना, बटन निकलना।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

(२०) नई बात का प्रकट होना। आविष्कृत होना। ईजाद होना। जैसे, कोई नई युक्ति निकलना, कल निकलना। (२१) शरीर के ऊपर उत्पन्न होना। जैसे, फोड़े फुंसी निकलना, चेचक निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

(२२) प्रमाणित होना। सिद्ध होना। साबित होना। जैसे, (क) वह नौकर तो चोर निकला। (ख) उनकी कही हुई बात ठीक निकली। (२३) लगाव न रखना। किनारे हो जाना। अलग हो जाना। जैसे, दूसरों को इस काम में फँसा कर तुम तो निकल जाओगे।

संयो० क्रि०—जाना।—भागना।

(२४) अपने को बचा जाना। बच जाना। जैसे, कोई आधी बात कहकर निकल तो जाय।

संयो० क्रि०—जाना।—भागना।

(२५) अपनी कही हुई बात से अपना संबंध न बताना। कहकर नहीं करना। मुकरना। नटना। जैसे, बात कहकर अब निकले जाते हो।

संयो० क्रि०—जाना।

(२६) खपना। बिकना। जैसे, जितनी पुस्तकें छपाई थीं सब निकल गईं।

संयो० क्रि०—जाना।

(२७) प्रस्तुत होकर सर्वसाधारण के सामने आना। प्रकाशित होना। जैसे, उस प्रेस से अच्छी पुस्तकें निकली हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

(२८) हिसाब किताब होने पर कोई रकम जिम्मे ठहरना। चाहता होना। जैसे, तुम्हारा जो कुछ निकलता हो हमसे लो। (२९) फटकर अलग होना। उचड़ना। जैसे, कुरता मोढ़े पर से निकल गया।

संयो० क्रि०—जाना।

(३०) प्राप्त होना। पाया जाना। मिलना। जैसे, (क) हमारा रुपया किसी प्रकार निकल आता तो बड़ी बात होती। (ख) उसके पास चोरी का माल निकला है।

संयो० क्रि०—आना।

(३१) जाता रहना। दूर होना। हट जाना। मिट जाना। न रह जाना। जैसे, (क) दवा लगाते ही सब पीड़ा निकल गई। (ख) एक चाँटा देंगे तुम्हारी सब बदमाशी निकल जायगी।

संज्ञा पुं० निपाद स्वर का संकेत।

निअर–†* अव्य० [सं० निकट, प्रा० निअड] निकट। पास। समीप।

वि० समान। तुल्य।

निअराना–†*क्रि० स० [हिं० निअर] निकट जाना। समीप पहुँचना। उ०—जाइ नगर निअरानि बरात बजावत।—तुलसी।

क्रि० अ० निकट आना। पास होना। दूर न रह जाना। उ०—आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया।—तुलसी।

निआउ‡*–संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।

निआन–*संज्ञा० पुं० [सं० निदान] अंत। परिणाम।

अव्य० अंत में। आखिर।

निआमत–संज्ञा स्त्री० [अ०] अच्छा और बहुमूल्य पदार्थ। अलभ्य पदार्थ।

निआरा–†वि० दे० "न्यारा"।

निकंटक*–वि० दे० निष्कंटक'।

निकंदन–संज्ञा पुं० [सं० नि + कंदन = नाश, वध] नाश। विनाश।

निकंद रोग–संज्ञा पुं० [सं०] एक योनिरोग। दे० "योनि-कंद"।

निकट–वि० [सं०] (१) पास का। समीप का। जो दूर न हो। (२) संबंध में जिससे विशेष अंतर न हो। जैसे, निकट संबंधी।

क्रि० वि० पास। समीप। नजदीक।

मुहा०—किसी के निकट = (१) किसी के प्रति। किसी से। जैसे, किसी के निकट कुछ माँगना। (२) किसी के लेखे में। किसी की समझ में। जैसे, तुम्हारे निकट तो यह काम कुछ भी नहीं है।

निकटता–संज्ञा स्त्री० [सं०] समीपता। सामीप्य।

निकटपना–संज्ञा पुं० [सं० निकट + पना (प्रत्य०)] निकटता। सामीप्य।

निकटवर्त्ती–वि० [सं० निकटवर्त्तिन्] [स्त्री० निकटवर्त्तिनी] पास-वाला। समीपस्थ। नज़दीक का।

निकटस्थ–वि० [सं०] (१) जो निकट हो। पास का। (२) संबंध में जिससे बहुत अंतर न हो। जैसे, निकटस्थ संबंधी।

निकती–संज्ञा स्त्री० [सं० निष्क + मिति] छोटा तराजू। काँटा।

निकम्मा–वि० [सं० निष्कर्म्म, प्रा० निकम्म] [स्त्री० निकम्मी] (१) जो कोई काम धंधा न करे। जिससे कुछ करते धरते न बने। जैसे, निकम्मा आदमी। (२) जो किसी काम का न हो। जो किसी काम में न आ सके। बेमसरफ। बुरा। जैसे, निकम्मी चीज।

निकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। झुंड। (२) राशि। ढेर। (३) न्याय देय धन। (४) निधि।

निकरना†*–क्रि० अ० दे० "निकलना"।

निकर्मा–वि० [सं० निष्कर्मा] जो काम न करे। आलसी। जो कुछ उद्योग धंधा न करे।

निकलंक–वि० [सं० निष्कलंक] दोपरहित। निर्दोष। बेदाग। उ०—बुरो बुराई जो तजै तो मन खरो सकात। ज्यौं निकलंक मयंक लखि गनै लोक उतपात।—बिहारी।

निकलंकी–संज्ञा पुं० [सं० निष्कलंक] विष्णु का दसवाँ अवतार जो कलि के अंत में होगा। कल्कि अवतार। उ०—द्वादश ये युग-लक्षण गायो। निकलंकी अवतार बतायो।—रघुनाथ।

निकल–संज्ञा स्त्री० [अं०] एक धातु जो सुरमे, कोयले, गंधक, संखिया आदि के साथ मिली हुई खानों में मिलती है। साफ होने पर यह चाँदी की तरह चमकती है। यह बहुत कड़ी होती है और जल्दी गलती नहीं तथा लोहे की तरह चुंबक शक्ति को ग्रहण करती है। सन् १७५१ में एक जरमन ने इसका पता लगाया। इसका साफ करना बहुत कठिन काम है। ताँबे के साथ मिलाने से यह विलायती चाँदी के रूप में हो जाती है। अलुमीनम के साथ इसे मिला देने से इसमें अधिक कड़ापन आजाता है। यह धातु कंधार, राजपूताना, तथा सिंहल द्वीप में थोड़ी बहुत मिलती है। कम मिलने के कारण इसका मूल्य कुछ अधिक होता है, इससे छोटे सिक्के बनाने के काम में यह लाई जाने लगी है।

निकलना–क्रि० अ० [हिं० निकालना] (१) बाहर होना। भीतर से बाहर आना। निर्गत होना। जैसे, घर से निकलना, संदूक से निकलना, अंकुर निकलना, आँसू निकलना।

संयो० क्रि०—आना।—चलना।—जाना।—पड़ना।—भागना।

मुहा०—निकल जाना = (१) चला जाना। आगे बढ़ जाना। जैसे, अब तो वे बहुत दूर निकल गए होंगे। (२) न रह जाना। खो जाना। नष्ट हो जाना। ले लिया जाना। जैसे, हाथ से चीज काम या अवसर निकल जाना। (३) घट जाना। कम हो जाना। जैसे, पाँच में से तीन निकल गए, दो बचे। (४) न पकड़ा जाना। भाग जाना। जैसे, चोर निकल गया। (स्त्री का) निकल जाना = किसी पुरुष के साथ अनुचित संबंध करके घर छोड़ कर चला जाना।

(२) व्याप्त या ओतप्रोत वस्तु का अलग होना। मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज का अलग होना। जैसे, बीज से तेल निकलना, पत्ती से रस निकलना, फल का छिलका निकलना।

मत निकालो, लड़के देखेंगे तो रोने लगेंगे। (११) मेल या मिले जुले समूह में से अलग करना। पृथक् करना। जैसे, (क) इनमें से जो आम सड़े हों उन्हें निकाल दो। (ख) इनमें से जो तुम्हारे काम की चीजें हों उन्हें निकाल लो।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(१२) घटाना। कम करना। जैसे, पाँच में से तीन निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

(१३) फँसा, बँधा, जुड़ा या लगा न रहने देना। अलग करना। छुड़ाना। मुक्त करना। जैसे, गले से फंदा निकालना, कोट से बटन निकालना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(१४) काम से अलग करना। नौकरी से छुड़ाना। बरखास्त करना। जैसे, इस नौकर को निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

(१५) पास न रखना। दूर करना। हटाना। जैसे, इस घोड़े को अब हम निकाल देंगे।

संयो० क्रि०—देना।

(१६) बेचना। खपाना। जैसे, माल निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

(१७) सिद्ध करना। फलीभूत करना। प्राप्त करना। जैसे, अपना काम निकालने में वह बड़ा पक्का है।

संयो० क्रि०—लेना।

(१८) निर्वाह करना। चलाना। जैसे, किसी प्रकार काम निकालने के लिये यह अच्छा है।

संयो० क्रि०—लेना।

(१९) किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर निश्चित करना। हल करना। जैसे, यह सवाल तुम नहीं निकाल सकते। (२०) लकीर की तरह दूर तक जानेवाली वस्तु का विधान करना। जारी करना। फैलाना। जैसे, नहर निकालना, सड़क निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

(२१) प्रचलित करना। जारी करना। जैसे, कानून निकालना, कायदा निकालना, रीति निकालना।

(२२) नई बात प्रकट करना। आविष्कृत करना। ईजाद करना। जैसे, नई तरकीब निकालना, कल निकालना। (२३) संकट, कठिनाई आदि से छुटकारा करना। बचाव करना। निस्तार करना। उद्धार करना। जैसे, इस संकट से हमें निकालो। (२४) प्रस्तुत करके सर्वसाधारण के सामने लाना। प्रचारित करना। प्रकाशित करना। जैसे, (क) उस प्रकाशक ने अच्छी पुस्तकें निकाली हैं। (ख) अखबार निकालना। (२५) रकम जिम्मे ठहराना। ऊपर ऋण या देना निश्चित करना। जैसे, उसने सौ रुपए हमारे जिम्मे निकाले हैं। (२६) प्राप्त करना। ढूँढकर पाना। बरामद करना। जैसे, पुलिस ने उसके यहाँ चोरी का माल निकाला है। (२७) दूसरे के यहाँ से अपनी वस्तु ले लेना। जैसे, बंक से रुपया निकालना।

संयो० क्रि०—लेना।

(२८) दूर करना। हटाना। न रहने देना। जैसे (क) यह दवा सब दर्द निकाल देगी। (ख) तुम्हारी सब बदमाशी निकाल देंगे।

संयो० क्रि०—देना।

(२९) घोड़े बैल आदि को सवारी लेकर चलना या गाड़ी आदि खींचना सिखाना। शिक्षा देना। जैसे, (क) यह सवार घोड़ा निकालता है। (ख) यह घोड़ा अभी गाड़ी में नहीं निकाला गया है। (३०) सुई से बेल बूटे बनाना।

निकाला-संज्ञा पुं० [हिं० निकालना] (१) निकालने का काम। (२) किसी स्थान से निकाले जाने का दंड। बहिष्कार। निष्कासन।

क्रि० प्र०—मिलना।—होना।

यौ०—देश-निकाला। नगर निकाला।

निकास-संज्ञा पुं० [हिं० निकसना, निकासना] (१) निकलने की क्रिया या भाव। (२) निकालने की क्रिया या भाव। (३) वह स्थान जिससे होकर कुछ निकले। निकलने के लिये खुला स्थान या छेद। जैसे, बरसाती पानी का निकास। (४) द्वार। दरवाजा। जैसे, घर का निकास दक्खिन ओर मत रखो। (५) बाहर का खुला स्थान। मैदान। उ०—(क) खेलत बनै घोष निकास।—सूर। (ख) खेलन चले कुँवर कन्हाई। कहत घोष निकास जइए तहाँ खेलैं धाइ।—सूर। (६) दूर तक जाने या फैलनेवाली चीज का आरंभस्थान। उद्गम। मूलस्थान। जैसे, नदी का निकास। (७) वंश का मूल। (८) संकट या कठिनाई से निकलने की युक्ति। बचाव का रास्ता। रक्षा का उपाय। छुटकारे की तदबीर। जैसे, अब तो इस मामले में फँस गए हो, कोई निकास सोचो।

क्रि० प्र०—निकालना।

(९) निर्वाह का ढंग। दर्रा। वसीला। सिलसिला। जैसे, इस समय तो तुम्हारे लिये कोई काम नहीं है, पर कोई निकास निकालेंगे। (१०) लाभ या आय का सूत्र। प्राप्ति का ढंग। आमदनी का रास्ता। (११) आय। आमदनी। निकासी।

निकासना†-क्रि० स० दे० "निकालना"।

निकासपत्र-संज्ञा पुं० [हिं० निकास + पत्र] वह कागज जिसमें जमाखर्च और बचत का हिसाब समझाया गया हो।

निकासी-संज्ञा स्त्री० [हिं० निकास] (१) निकलने की क्रिया या

संयो० क्रि०—जाना।

(३२) व्यतीत होना। बीतना। गुजरना। जैसे, इसी झंझट में सारा दिन निकल गया।

संयो० क्रि०—जाना।

(३३) घोड़े बैल आदि का सवारी लेकर चलना आदि सीखना। शिक्षित होना। जैसे, यह घोड़ा अभी निकला नहीं है।

निकलवाना–क्रि० स० [हिं० निकालना का प्रे०] निकालने का काम दूसरे से कराना।

निकलाना † क्रि० स० दे० "निकलवाना"।

निकष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसौटी। (२) कसौटी पर चढ़ाने का काम। (३) हथियारों पर सान चढ़ाने का पत्थर।

निकषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कसौटी पर चढ़ाने का काम। (२) सान पर चढ़ाने का काम। (३) घिसने वा रगड़ने का काम।

निकषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमालि की कन्या और विश्रवा की पत्नी एक राक्षसी जिसके गर्भ से रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए थे।

निकसना†–क्रि० अ० दे० "निकलना"।

निकाई*–संज्ञा पुं० दे० "निकाय"।

संज्ञा स्त्री० [फा० नेक] (१) भलाई। अच्छापन। बन्दगी। (२) खूबसूरती। सौंदर्य। सुंदरता। उ०—गज मनि-माल बीच भ्राजत, कहि जाति न पदक निकाई।—तुलसी।

निकाज–वि० [हिं० नि+काज] बेकाम। निकम्मा।

निकाना–क्रि० स० दे० "निराना"।

निकाम–वि० [हिं० नि+काम] (१) निकम्मा। (२) बुरा। खराब।

क्रि० वि० व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल।

वि० [सं०] (१) इष्ट। अभिलाषित। (२) यथेष्ट। पर्याप्त। काफी। (३) बहुत। अतिशय।

निकाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। झुंड। (२) एक ही मेल की वस्तुओं का ढेर। राशि। (३) निलय। वासस्थान। घर। (४) परमात्मा।

निकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पराभव। हार। (२) अपकार। (३) अपमान। अवमानना। मानहानि। (४) तिरस्कार।

संज्ञा पुं० [हिं० निकारना] (१) निकालने का काम। निष्कासन। (२) निकलने का द्वार। निकास। (३) ईख का रस पकाने का कड़ाहा।

निकारण–संज्ञा पुं० [सं०] मारण। वध।

निकारना–†* क्रि० स० दे० "निकालना"।

निकाल–संज्ञा पुं० [हिं० निकालना] (१) निकास। (२) पेंच का काट। वह युक्ति जिससे कुश्ती में प्रतिपक्षी की घात से बच जायँ। तोड़। (३) कुश्ती का एक पेच जिसमें अपना दहना हाथ जोड़ की बाईं ओर से उसकी गरदन पर पहुँचा कर अपने बाएँ हाथ से उसके दहने हाथ को ऊपर उठाते हैं और फिर फुरती के साथ उसके दहने भाग पर झुक कर अपनी छाती उसकी दहनी पसलियों से भिड़ाते तथा अपना बायाँ हाथ उसकी दहनी जाँघ में बाहर की ओर से डाल कर उसे चित कर देते हैं।

निकालना–क्रि० सं० [सं० निष्कासन, हिं० निकासना] (१) बाहर करना। भीतर से बाहर लाना। निर्गत करना। जैसे, घर से निकालना, बरतन में से निकालना। चुभा हुआ काँटा निकालना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।—ले जाना।

मुहा०—(स्त्री को) निकाल लाना या ले जाना = स्त्री से अनुचित संबंध करके उसे उसके घर से अपने यहाँ लाना या लेकर कहीं चला जाना।

(२) व्याप्त या ओतप्रोत वस्तु को पृथक् करना। मिली हुई, लगी हुई, या पैवस्त चीज को अलग करना। जैसे, बीज से तेल निकालना, पत्ती से रस निकालना, फल से छिलका निकालना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

(३) पार करना। एक ओर से दूसरी ओर ले जाना या बढ़ाना। अतिक्रमण कराना। जैसे, दीवार के छेद में से इसे उस पार निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।—ले जाना।

(४) गमन कराना। ले जाना। गुजर कराना। जैसे, (क) वे बारात इसी सड़क से निकालेंगे। (ख) हम उसे इसी ओर से निकाल ले जायँगे।

संयो० क्रि०—ले चलना।—ले जाना।

(५) किसी ओर को बढ़ा हुआ करना। जैसे, चबूतरे का एक कोना उधर निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

(६) निश्चित करना। ठहराना। उद्भावित करना। जैसे उपाय निकालना, रास्ता निकालना, दोष निकालना, परिणाम निकालना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(७) प्रादुर्भूत करना। उपस्थित करना। मौजूद करना। (८) खोलना। व्यक्त करना। स्पष्ट करना। प्रकट करना। जैसे, वाक्य का अर्थ निकालना। (९) छेड़ना। आरंभ करना। चलाना। जैसे, बात निकालना, चर्चा निकालना। (१०) सबके सामने लाना। देख में करना। जैसे, अभी

निक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फेंकने या डालने की क्रिया या भाव। (२) चलाने की क्रिया या भाव। (३) छोड़ने की क्रिया या भाव। त्याग। (४) पोंछने की क्रिया या भाव। (५) धरोहर। अमानत। थाती। किसी के विश्वास पर उसके यहाँ कोई वस्तु छोड़ने या रखने का कार्य अथवा इस प्रकार छोड़ी या रखी हुई वस्तु।

निक्षेपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निक्षिप्त, निक्षेप्य] (१) फेंकना। डालना। (२) छोड़ना। चलाना। (३) त्यागना।

निक्षेपी-वि० [सं० निक्षेपिन्] (१) फेंकनेवाला। छोड़नेवाला। (२) धरोहर रखनेवाला।

निक्षेप्ता-संज्ञा पुं० [सं० निक्षेप्तृ] (१) फेंकनेवाला। छोड़नेवाला। (२) धरोहर रखनेवाला।

निक्षेप्य-वि० [सं०] फेंकने योग्य। छोड़ने योग्य।

निखंग*-संज्ञा पुं० दे० "निषंग"।

निखंगी-वि० दे० "निषंगी"।

निखंड-वि० [सं० निस् + खंड] मध्य। न थोड़ा इधर न उधर। सटीक। ठीक। जैसे, निखंड आधी रात, निखंड बेला।

निखद्दर†-वि० [हिं० नि + कद्दर = कड़ा] (१) कड़े दिल का। कठोर चित्त का। (२) निष्ठुर। निर्दय।

निखट्टू-वि० [हिं० उप० नि = नहीं + खटाना = टिकना, ठहरना] (१) अपनी कुचाल के कारण कहीं न टिकनेवाला। जिसका कहीं ठिकाना न लगे। इधर उधर मारा मारा फिरनेवाला। (२) जमकर कोई काम धंधा न करनेवाला। जिससे कोई काम काज न हो सके। निकम्मा। आलसी।

निखनन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खनना। खोदना। (२) मृत्तिका। मिट्टी। (३) गाड़ना।

निखरना-क्रि० अ० [सं० निक्षरण = छँटना] (१) मैल छँट कर साफ होना। निर्मल और स्वच्छ होना। धुल कर झक होना। (२) रंगत का खुलता होना।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

निखरवाना-क्रि० स० [हिं० निखारना] साफ कराना। धुलवाना।

निखरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० निखरना] पक्की। घी की पकी हुई रसोई। घृतपक्व। सखरी का उलटा।

विशेष—खान-पान के आचार में घी दूध आदि के साथ पकाया हुआ अन्न (जैसे खीर पूरी) उच्च वर्णों के लोग बहुत से लोगों के हाथ का खा सकते हैं, पर केवल पानी के संयोग से आग पर पकाई चीजें (जैसे रोटी, दाल आदि) बहुत कम लोगों के हाथ की खा सकते हैं।

निखर्व-वि० [सं०] दस हजार करोड़। दस सहस्र कोटि।

संज्ञा पुं० दस हजार करोड़ की संख्या।

वि० [सं०] बहुत मोटे डील का। वामन। बौना। नाटा।

निखवख-वि० [सं० न्यक्ष = सारा, सब] बिलकुल। सब। और कुछ नहीं। उ०—तेहि अर्थ लगायो पेरति बहायो निखवख रामै राम लिख्यो।—विश्राम।

निखाद-संज्ञा पुं० दे० "निषाद"।

निखार-संज्ञा पुं० [हिं० निखरना] (१) निर्मलपन। स्वच्छता। सफाई। (२) सजाव। शृंगार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निखारना-क्रि० स० [हिं० निखरना] (१) स्वच्छ करना। साफ करना। माँजना। (२) पवित्र करना। पापरहित करना।

निखारा-संज्ञा पुं० [हिं० निखारना] शक्कर बनाने का कड़ाह जिसमें डालकर रस उबाला जाता है।

निखालिस‡-वि० [हिं० नि + अ० खालिस] विशुद्ध। जिसमें और किसी चीज का मेल न हो।

निखिल-वि० [सं०] संपूर्ण। सब। सारा।

निखेध*-संज्ञा पुं० दे० "निषेध"।

निखेधना*-[सं० निषेध] निषेध करना। मना करना। वारण करना।

निखोट-वि० [हिं० उप० नि + खोट] (१) जिसमें कोई खोटाई या दोष न हो। निर्दोष। उ०—नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल ओट बिनु मोट पाइ भयो ना निहाल को ?—तुलसी। (२) साफ। जिसमें कुछ लगाव फँसाव न हो। स्पष्ट खुला हुआ। जैसे, निखोट बात।

क्रि० वि० बिना संकोच के। बेधड़क। खुल्लमखुल्ला। खुल कर। उ०—(क) कियो सूर प्रणाम निखोट अली चख चंचल अंचल सों ढँपि कै।—कमलापति। (ख) चखी कटारी वाम यह कियो प्रणाम निखोट। लागि किरन ते ढगन की कर-सरोज करि ओट।—मतिराम।

निखोड़ा†-वि० [देश०] [स्त्री० निखोड़ी] कठोर चित्त का। निर्दय।

निखोरना†-क्रि० स० [हिं० उप० नि + खोदना] नाखून से नोचना। उखाड़ना।

निगंद-संज्ञा पुं० [सं० निर्गंध ?] एक बूटी जो दवा के काम में आती है और रक्तशोधक समझी जाती है।

विशेष—इसके संबंध में यह प्रवाद है कि साँप जब केंचली से भर जाने के कारण व्याकुल हो जाता है तब इसे चाट लेता है जिससे केंचली उतर जाती है।

निगंदना-क्रि० स० [फा० निगंदः = बखिया, सीवन] रजाई, दुलाई आदि रूई भरे कपड़ों में तागा डालना।

निगंध*-वि० [सं० निर्गंध] गंधहीन। जिसमें कोई गंध न हो।

निगड़-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी के पैर बाँधने की जंजीर।

भाव। किसी स्थान से बाहर जाने का काम। प्रस्थान। रवानगी। जैसे, बरात की निकासी। (२) वह धन जो सरकारी मालगुजारी आदि देकर जमींदार को बचे। मुनाफा। (३) प्राप्ति। आय। आमदनी। लाभ। जैसे, जहाँ चार पैसे की निकासी होती है वहीं सब जाना चाहते हैं। (४) बिक्री के लिये माल की रवानगी। लदाई। भरती। (५) बिक्री। खपत (६) चुंगी। (७) रवन्ना।

निकाह–संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी पद्धति के अनुसार किया हुआ विवाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—निकाह पढ़ाना = विवाह करना।

निकियाई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० निकियाना] निकियाने की मजदूरी। जैसे, दमड़ी की मुरगी, नौ टका निकियाई।

निकियाना–क्रि० स० [देश०] (१) नोचकर धज्जी धज्जी अलग करना। (२) चमड़े पर से पंख या बाल नोच कर अलग करना।

निकिष्ट†–वि० दे० "निकृष्ट"।

निकुंचक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक परिमाण वा तौल जो आधी अंजली के बराबर और किसी किसी के मत से ८ तोले के बराबर होती है। कुड़व का चतुर्थांश। (२) जलबेंत। अंबुवेतस।

निकुंचित–वि० [सं०] संकुचित।

निकुंज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लता-गृह। ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओं से घिरा हो। (२) लताओं से आच्छादित मंडप।

निकुंजिकाम्ला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंज के वृक्ष का एक भेद। कुंचिका। कुंजिका।

निकुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंभकर्ण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने मारा था। यह रावण का मंत्री था। (२) प्रह्लाद के एक पुत्र का नाम। (३) शतपुर का एक असुर राजा जो कृष्ण के हाथों मारा गया। इसने कृष्ण के मित्र ब्रह्मदत्त की कन्याओं का हरण किया था। (४) हर्यश्व राजा का पुत्र (हरिवंश)। (५) एक विश्वदेव। (६) कौरव सेनापतियों में से एक राजा। (७) कुमार का एक गण। (८) महादेव का एक गण। (९) दंती वृक्ष। (१०) जमालगोटा।

निकुंभाख्यबीज–संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

निकुंभिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लंका के पच्छिम एक गुफा। (२) उस गुफा की देवी जिसके सामने यज्ञ और पूजन करके मेघनाद युद्ध की यात्रा करता था।

निकुंभी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दंती वृक्ष। (२) कुंभकर्ण की कन्या।

निकुही–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

निकूल–संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जिसके उद्देश्य से नरमेध यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ में छठे यूप में पशु-हनन होता था। (शुक्ल यजुर्वेद)

निकृंतन–संज्ञा पुं० [सं०] छेदन। खंडन।

निकृत–वि० [सं०] (१) निकाला हुआ। बहिष्कृत। (२) बदनाम। लांछित। (३) तिरस्कृत। (४) नीच। शठ। (५) वंचित। जो ठगा गया हो।

निकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिरस्कार। भर्त्सना। (२) अपकार। (३) दैन्य। (४) शठता। नीचता। (५) पृथ्वी। (६) साध्या से उत्पन्न धर्मपुत्र, एक वसु।

निकृती–वि० [सं० निकृतिन्] नीच। शठ। दुष्ट।

निकृत्त–वि० [सं०] मूल से छिन्न। जड़ से कटा हुआ। खंडित।

निकृष्ट–वि० [सं०] बुरा। अधम। नीच। तुच्छ।

निकृष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बुराई। अधमता। नीचता। मंदता।

निकृष्टत्व–संज्ञा पुं० [सं०] बुराई। नीचता। मंदता।

निकेत–संज्ञा पुं० [सं०] घर। मकान। स्थान। जगह।

निकेतन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वासस्थान। घर। मकान। (२) पलांडु। प्याज।

निकोचक–संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। ढेरा।

निकोचन–संज्ञा पुं० [सं०] संकुचन।

निकोठक–संज्ञा पुं० [सं०] ढेरा। अंकोल।

निकोश्य–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपशु के पेट की एक नाड़ी।

निकोसना†–क्रि० स० [सं० निस् + कोष (१) दाँत निकालना। (२) दाँत पीसना। कटकटाना। किचकिचाना।

निकौनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० निकाना] (१) निराई। निराने का काम। (२) निराने की मजदूरी।

निक्का†–वि० [सं० न्यक = नत, नीचा] [स्त्री० निक्की] छोटा। नन्हा। (जावी)

निक्रीड़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौतुक। क्रीड़ा। तमाशा। (२) सामभेद।

निक्वण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीणाध्वनि। बीन की झनकार। (२) किन्नरों का शब्द।

निक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] चुंबन।

निक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जूँ का अंडा। लीख।

निक्षिप्त–वि० [सं०] (१) फेंका हुआ। घाला हुआ। (२) डाला हुआ। छोड़ा हुआ। त्यक्त। (३) किसी के यहाँ उसके विश्वास पर छोड़ा हुआ (द्रव्य संपत्ति आदि)। धरोहर रखा हुआ। अमानत रखा हुआ।

निक्षुभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्राह्मणी। (२) सूर्य की एक पत्नी। (भविष्य पुराण)

हिमालय में पैदा होता है। इसे रिँगाल भी कहते हैं। (२) घोड़े की गरदन।

निगालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण और लघु गुरु होते हैं। इसे 'प्रमाणिका' और 'नागस्वरूपिणी' भी कहते हैं। जैसे, प्रमात भो, सुहात भो। हली चली जगे बली। तिहीं घरी उठे हरी। न देरहू कछू करी।

निगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० निगाल] (१) निगाल। बाँस की बनी हुई नली। (२) हुक्के की नली जिसे मुहँ में रखकर धूआँ खींचते हैं।

निगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दृष्टि। नजर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) देखने की क्रिया या ढंग। चितवन। तकाई।

मुहा०—दे० 'दृष्टि', 'नजर', 'आँख'।

(३) कृपादृष्टि। मेहरबानी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

(४) ध्यान। विचार। समझ। (५) परख। पहचान।

क्रि० प्र०—होना।

निगिम*—वि० [सं० निगुह्य] अत्यंत गोपनीय। जिसका बहुत छोम हो। बहुत प्यारी। उ०—निगिम वस्तु जो होय विहारी। सोइ सवति मम होय सुधारी।—रघुराज।

निगुंफ—संज्ञा पुं० [सं०] समूह। गुच्छा।

निगुण*—वि० दे० "निर्गुण"।

निगुनी*—वि० [हिं० उप० नि+गुनी] जो गुणी न हो। गुण रहित। उ०—गुनी गुनी सब कोइ कहत निगुनी गुनी न होत। सुन्यो कहूँ तरु अर्क ते अर्क समान उदोत।—विहारी।

निगुरा—वि० [हिं० उप० नि+गुरु] जिसने गुरु न किया हो। जिसने गुरु से मंत्र न लिया हो। अदीक्षित।

निगूढ़—वि० [सं०] अत्यंत गुप्त। उ०—माया विवश भये मुनि मूढ़ा। समुझि नहीं हरि गिरा निगूढ़ा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० वनमुद्ग। मोठ।

निगूढ़ार्थ—वि० [सं०] जिसका अर्थ छिपा हो।

विशेष—न्यायसभा में उपस्थित दोनों पक्षवालों के जो उत्तर उत्तराभास (जो उत्तर ठीक न हो) कहे गए हैं उनमें निगूढ़ार्थ भी है। जैसे यदि प्रतिपक्षी से पूछा जाय कि क्या सौ रुपये तुम्हारे ऊपर आते हैं और वह उत्तर दे कि 'क्या मेरे ऊपर इसके रुपए आते हैं'। इस उत्तर से यह ध्वनि निकलती है कि दूसरे किसी के ऊपर आते हैं।

निगूहन—संज्ञा पुं० [सं०] गोपन। छिपाव।

निगृहीत—वि० [सं०] (१) घरा हुआ। पकड़ा हुआ। घेरा हुआ। (२) आक्रमित। आक्रांत। जिसपर आक्रमण किया गया हो। (३) पीड़ित। (४) दंडित।

निगेटिव—संज्ञा पुं० [अं०] वह प्लेट जिसपर फोटो लिया जाता और जिसपर प्रकाश और छाया की छाप उलटी पड़ती है, अर्थात् जहाँ खुलता और सफेद होना चाहिए वहाँ काला और गहरा होता है और जहाँ गहरा और काला होना चाहिए वहाँ खुलता और सफेद होता है। कागज पर (पाजिटिव) सीधा छाप लेने से फिर पदार्थों का चित्र यथातथ्य उतर आता है।

निगोड़ा—वि० [हिं० निगुरा] [स्त्री० निगोड़ी] (१) जिसके ऊपर कोई बड़ा न हो। (२) जिसके आगे पीछे कोई न हो। जिसके प्राणी न हों। अभागा।

या०—निगोड़ा नाठा=जिसके आगे पीछे कोई न हो। बिना प्राणी का। लावारिस।

(३) दुष्ट। बुरा। नीच। कमीना। (गाली स्त्रि०)।

निग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। अवरोध। (२) दमन। (३) चिकित्सा। रोकने का उपाय। (४) दंड। (५) पीड़न। सताना। (६) बंधन। (७) भर्त्सना। डाँट। फटकार। (८) सीमा। हद। (९) विष्णु। (१०) शिव।

निग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोकने का कार्य। थामने का कार्य। (२) दंड देने का कार्य।

निग्रहना*—क्रि० स० [सं० निग्रहण] (१) पकड़ना। थामना। उ०—कंस केश निग्रहौं भूमि को भार उतारौं।—सूर। (२) रोकना। (३) दंड देना।

निग्रहस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वाद विवाद या शास्त्रार्थ में वह अवसर जहाँ दो शास्त्रार्थ करनेवालों में से कोई उलटी पुलटी या नासमझी की बात कहने लगे और उसे चुप करके शास्त्रार्थ बंद कर देना पड़े। यह पराजय का स्थान है।

विशेष—न्याय में जहाँ विप्रतिपत्ति (उलटा पुलटा ज्ञान) या अप्रतिपत्ति (अज्ञान) किसी ओर से हो वहाँ निग्रहस्थान होता है। जैसे, वादी कहे—आग गरम नहीं होती। प्रतिवादी कहे कि स्पर्श द्वारा गरम होना प्रमाणित होता है, इस पर वादी यदि बगल झाँकने लगे और कहे कि मैं यह नहीं कहता कि आग गरम नहीं होती इत्यादि तो उसे चुप कर देना चाहिए या मूर्ख कहकर निकाल देना चाहिए। निग्रहस्थान २२ कहे गए हैं—प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञांतर, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञासंन्यास, हेत्वंतर, अर्थांतर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्योपेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग, अपसिद्धांत और हेत्वाभास।

(१) प्रतिज्ञाहानि वहाँ होती है जहाँ कोई प्रतिदृष्टांत के धर्म को अपने दृष्टांत में मानकर अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ता है—जैसे,

एक कहता है—शब्द अनित्य है।

श्राद्। उ०—लाज की निगड़ गड़दार अड़दार चहूँ चौंकि चितवनि चरखीन चमकोरे हैं।......लोचन अचल ये मतंग मतवारे हैं।—देव। (२) बेड़ी।

निगद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाषण। कथन। (२) ऊँचे स्वर से किया हुआ जप।

निगदित-वि० [सं०] कथित। कहा हुआ।

निगम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्ग। पथ। (२) वेद। (३) वणिक्पथ। वनियों की फेरी का स्थान। हाट। बाजार। (४) मेला। (५) माल का आना जाना। व्यापार। (६) निश्चय। (७) कायस्थों का एक भेद।

निगमन-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में अनुमान के पाँच अवयवों में से एक। हेतु, उदाहरण और उपनय के उपरांत प्रतिज्ञा को सिद्ध सूचित करने के लिये उसका फिर से कथन। साबित की जानेवाली बात साबित हो गई यह जताने के लिये दलील वगैरह के पीछे उस बात को फिर कहना। नतीजा। जैसे, "यहाँ पर आग है" (प्रतिज्ञा)। "क्योंकि यहाँ पर धूआँ है" (हेतु)। "जहाँ धूआँ रहता है वहाँ आग रहती है, जैसे, रसोई घर में" (उदाहरण)। "यहाँ पर धूआँ है" (उपनय)। इसलिए "यहाँ पर आग है" (निगमन)।

विशेष—प्रशस्तपाद के भाष्य में 'निगमन' को प्रत्याम्नाय भी कहा है।

निगमनिवासी-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। नारायण।

निगमबोध-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीराज रासो के अनुसार दिल्ली के पास जमुना नदी के किनारे एक पवित्र स्थान।

विशेष—रासो में लिखा है कि दानवराज ढुंढु शाप छुड़ाने के लिये विमान पर चढ़कर काशी जा रहे थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी और वे योगिनीपुर (दिल्ली) जल पीने के लिये उतरे जहाँ इन्हें एक ऋषि मिले। ऋषि ने उन्हें जमुना के किनारे निगमबोध नाम की गुफा में नारायण की तपस्या करने के लिये कहा। दानवराज तपस्या करने लगे। एक दिन पांडुवंशीय (?) राजा अनंगपाल की कन्या सखियों सहित स्नान करने के लिये जमुना के किनारे आई और पानी बरसने के कारण उस गुफा में उसने आश्रय लिया। तपस्वी को देख उसने उसे स्तुति से प्रसन्न किया और यह वर माँगा कि "हम लोग वीरपत्नी हों और सदा एक साथ रहें।" दानवराज ने अनंगपाल की कन्या को वर दिया कि तुम्हारा एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और दूसरा पुत्र बड़ा भारी वक्ता होगा। इसके उपरांत दानवराज ने काशी जाकर अपना शरीर १०८ खंडों में काटकर गंगा में डाल दिया। उसके जिह्वांश से एक प्रसिद्ध भाट और २० खंडों से २० क्षत्रिय वीर अजमेर में उत्पन्न हुए। इन बीस क्षत्रियों में सोमेश्वर प्रधान थे जिनके पुत्र पृथ्वीराज हुए।

निगमागम—संज्ञा पुं० [सं०] वेद शास्त्र।

निगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन। (२) एक धरण की तौल में २५ मोती चढ़ें तो उन मोतियों के समूह का नाम निगर है।

वि० [सं० निकर] सब। सारे। उ०—निगर नगारे नगर के बाजे एकहि बार।—केशव।

संज्ञा पुं० दे० "निकर"।

निगरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भक्षण। निगलना। (२) गला। (३) होमधेनु।

निगराँ—संज्ञा पुं० [फा०] निगरानी रखनेवाला। निरीक्षक। (२) रक्षक।

निगरा—वि० [हिं० उप० नि = नहीं + सं० गरण = गीला वा पनीला करना] (ईख का रस) जो जल मिलाकर पतला न किया गया हो। जिसमें जल न मिलाया गया हो। खालिस। जैसे, निगरा रस।

निगराना†—क्रि० स० [सं० नय + करण] (१) निर्णय करना। निबटाना। (२) छाँटकर अलग अलग करना। पृथक् करना। (३) स्पष्ट करना।

क्रि० अ० (१) अलग होना। (२) स्पष्ट करना।

निगरानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] देख रेख। निरीक्षण।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—में रहना।

निगरु*—वि० [सं० नि + गुरु] हलका। जो भारी वा वजनी न हो। उ०—निगरु देखो भये गिरि गण जलधि में ज्यौं पान।—केशव।

निगलना—क्रि० स० [सं० निगरण, निगलन] (१) लील जाना। गले के नीचे उतार देना। घोंट जाना। गटक जाना। (२) खा जाना। (३) रुपया या धन पचा जाना। दूसरे का धन या कोई वस्तु मार बैठना।

संयो० क्रि०—जाना।

निगह—संज्ञा स्त्री० [फा०] निगाह। दृष्टि। नजर।

यौ०—निगहवान।

निगहवान—संज्ञा पुं० [फा०] रक्षक।

निगहवानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] रक्षा। देखरेख। रखवाली। चौकसी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निगाद—वि० [सं० निगादिन्] कथन। भाषण।

निगादी—वि० [सं० निगादिन्] वक्ता।

निगार—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) चित्र। बेलबूटा। नक्काशी।

यौ०—नक्श-निगार।

(२) एक फारसी राग। (मुकाम)

निगाल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो

(१८) जहाँ प्रतिवादी के दिए हुए दोष को अपने पक्ष में अंगीकार कर के वादी बिना उस दोष का उद्धार किए प्रतिवादी से कहे कि 'तुम्हारे कथन में भी तो यह दोष है' वहाँ मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१९) जहाँ निग्रहस्थान में प्राप्त हो जानेवाले का निग्रह न किया जाय वहाँ पर्य्यनुयोज्योपेक्षण होता है।

(२०) जो निग्रहस्थान में न प्राप्त होनेवाले को निग्रह स्थान में प्राप्त कहे उसे निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रहस्थान में गया समझना चाहिए।

(२१) जहाँ कोई एक सिद्धांत को मान कर विवाद के समय उसके विरुद्ध कहता है वहाँ अपसिद्धांत नामक निग्रहस्थान होता है।

(२२) दे० "हेत्वाभास"।

निग्रही–वि० [सं० निग्रहिन्] (१) रोकनेवाला। दबानेवाला। (२) दमन करनेवाला। दंड देनेवाला।

निग्राह–संज्ञा पुं० [सं०] आक्रोश। शाप।

निग्रोध–संज्ञा पुं० [सं० न्यग्रोध] राजा अशोक के एक भतीजे का नाम।

निघंटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कंद। गुलंच।

निघंटु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक शब्दों का संग्रह। वैदिक कोश।

विशेष—यास्क ने निघंटु की जो व्याख्या लिखी है वह निरुक्त के नाम से प्रसिद्ध है। यह निघंटु अत्यंत प्राचीन है क्योंकि यास्क के पहले भी शाकपूर्णि और स्थौलष्ठीवी नामक इसके दो व्याख्याकार या निरुक्तकार हो चुके थे। महाभारत में कश्यप को निघंटु का कर्त्ता लिखा है।

(२) शब्द-संग्रह मात्र। जैसे, वैद्यक का निघंटु।

निघटना*–क्रि० अ० दे० "घटना"। उ०—संदेसन क्यों निघटत दिन राति।—सूर।

निघरघट–वि० [हिं० नि=नहीं+घरघाट] (१) जिसका कहीं घर घाट न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जो घूम फिर कर फिर वहीं आवे जहाँ से दुतकारा या हटाया जाय। (२) निर्लज्ज। बेहया।

मुहा०—निघरघट देना=लज्जित किए जाने पर झूठी बातें बनाना कि मैं यहाँ था, वहाँ था। बेहयाई से झूठी सफाई देना। उ०—दुरै न निघरघटौ दिए ये रावरी कुचाल। विष सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल।—बिहारी।

निघरा–वि० [हिं० नि+घर] जिसके घर बार न हो। निगोड़ा (गाली)। उ०—मेरी भई यह आनि दशा निघरे विधि तोहि अरे यह पीर न।—गुमान।

निघर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] घर्षण। घिसना। रगड़ना।

निघात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आहनन। प्रहार। (२) अनुदात्त स्वर।

निघाति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोह दंड। (२) वह लोहे के खंड जिस पर हथौड़े आदि का आघात पड़े। निहाई।

निघाती–वि० [सं० निघातिन्] [स्त्री० निघातिनी] (१) मारनेवाला। प्रहार करनेवाला। (२) वध करनेवाला।

निघ्न–वि० [सं०] (१) अधीन। आयत। वशीभूत। (२) निर्भर। अवलंबित। (३) गुणित। गुणा किया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य्यवंशीय राजा अनरण्य का पुत्र। (हरिवंश)। (२) एक राजा जो अनमित्र का पुत्र था। (हरिवंश)।

निचंद्र–संज्ञा पु० [सं०] एक दानव का नाम।

निचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर के एक राजा जो असीमकृष्ण के पुत्र थे। हस्तिनापुर को जब गंगा बहा ले गई तब इन्होंने कौशांबी में राजधानी बसाई।

निचमन–संज्ञा पु० [सं०] थोड़ा थोड़ा पीना।

निचय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। (२) निश्चय। (३) संचय।

निचल*–वि० दे० "निश्चल"।

निचला–वि० [हिं० नीचे+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० निचली] नीचे का। नीचेवाला। जैसे, निचला भाग।

वि० [सं० निश्चल] (१) अचल। जो हिलता डोलता न हो। (२) स्थिर। शांत। जो चंचल न हो। अचपल।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

मुहा०—निचला बैठना=(१) स्थिर होकर बैठना। शांतभाव से बैठना। चंचलता न करना। (२) शिष्टतापूर्वक बैठना।

निचाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीच] (१) नीचा होने का भाव। नीचापन। जैसे, ऊँचाई निचाई। (२) नीचे की ओर दूरी या विस्तार। (३) नीच होने का भाव। नीचता। ओछापन। कमीनापन। उ०—(क) भले भलाई पै लहहिं लहहिं निचाई नीच।—तुलसी। (ख) नीच निचाई नहिं तजै जो पावैं सतसंग।

निचान–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीचा] (१) नीचापन। (२) ढाल। ढालुवाँपन। झुकाव।

निचिंत–वि० [सं० निश्चिंत] चिंतारहित। बेफिक्र। सुचित।

निचि–संज्ञा पुं० [सं०] कानों के सहित गाय का सिर।

निचिकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छी गाय।

निचित–वि० [सं०] (१) संचित। इकट्ठा। (२) पूरित। व्याप्त। (३) तैयार। निर्मित। (४) संकीर्ण।

निचिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (महाभारत)

निचुड़ना–क्रि० अ० [सं० उप० नि+च्यवन=चूना] (१) रस से भरी या गीली चीज़ का इस प्रकार दबना कि रस या पानी टपक कर निकल जाय। दबकर पानी या रस छोड़ना। गरना। जैसे, धोती निचुड़ना, नीबू निचुड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

क्योंकि वह इंद्रियविषय है
जो कुछ इंद्रियविषय हो वह घट की तरह अनित्य है
शब्द इंद्रियविषय है
अतः शब्द अनित्य है।

दूसरा कहता है—जाति (जैसे घटत्व) इंद्रियविषय होने पर भी नित्य है इसी प्रकार शब्द भी क्यों नहीं।

इस पर पहला कहता है—जो कुछ इंद्रियविषय हो वह घट की तरह नित्य है। उसके इस कथन से प्रतिज्ञा की हानि हुई।

(२) प्रतिज्ञांतर वहाँ होता है जहाँ प्रतिज्ञा का विरोध होने पर कोई अपने दृष्टांत और प्रतिदृष्टांत में विकल्प से एक और नए धर्म का आरोप करता है।

एक आदमी कहता है—शब्द अनित्य है।
क्योंकि वह घट के समान इंद्रियों का विषय है।
दूसरा कहता है—शब्द नित्य है।
क्योंकि कि वह जाति के समान इंद्रियविषय है।

इस पर पहला कहता है पात्र और जाति दोनों इंद्रियविषय हैं। पर जाति सर्वगत है और घट सर्वगत नहीं। अतः शब्द सर्वगत न होने से घट के समान अनित्य है। यहाँ शब्द अनित्य है यह पहली प्रतिज्ञा थी; शब्द सर्वगत नहीं यह दूसरी प्रतिज्ञा हुई। एक प्रतिज्ञा की साधक दूसरी प्रतिज्ञा नहीं हो सकती, प्रतिज्ञा के साधक हेतु और दृष्टांत होते हैं।

(३) जहाँ प्रतिज्ञा और हेतु का विरोध हो वहाँ प्रतिज्ञाविरोध होता है। जैसे, किसी ने कहा—द्रव्य गुण से भिन्न है (प्रतिज्ञा), क्योंकि उसकी उपलब्धि रूपादिक से भिन्न नहीं होती। यहाँ प्रतिज्ञा और हेतु में विरोध है क्योंकि यदि द्रव्य गुण से भिन्न है तो वह रूप से भी भिन्न हुआ।

(४) जहाँ पक्ष का निषेध होने पर माना हुआ अर्थ छोड़ दिया जाय वहाँ प्रतिज्ञासंन्यास होता है। जैसे किसी ने कहा "इंद्रियविषय होने से शब्द अनित्य है।" दूसरा कहता है जाति इंद्रिय-विषय है पर अनित्य नहीं, इसी प्रकार शब्द भी समझिए। इस प्रकार पक्ष के निषेध होने पर यदि पलहा कहने लगे कि कौन कहता है कि 'शब्द अनित्य है' तो उसका यह कथन प्रतिज्ञासंन्यास नामक निग्रहस्थान के अंतर्गत हुआ।

(५) जहाँ अविशेष रूप से कहे हुए हेतु के निषेध होने पर उसमें विशेषत्व दिखाने की चेष्टा की जाती है वहाँ हेत्वंतर नाम का निग्रहस्थान होता है। जैसे किसी ने कहा—'शब्द अनित्य है' क्योंकि वह इंद्रियविषय है। दूसरा कहता है कि इंद्रियविषय होने से ही शब्द अनित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि जाति (जैसे घटत्व) भी तो इंद्रियविषय है पर वह अनित्य नहीं। इस पर पहला कहता है कि इंद्रियविषय होगा जो हेतु मैंने दिया है उसे इस प्रकार का इंद्रिय-विषय समझना चाहिए जो जाति के अंतर्गत लाया जा सकता हो। जैसे, 'शब्द' जाति के अंतर्गत लाया जा सकता है (जैसे, शब्दत्व) पर जाति (जैसे घटत्व) फिर जाति के अंतर्गत नहीं लाई जा सकती। हेतु का यह टालना हेत्वंतर कहलाता है।

(६) जहाँ प्रकृत विषय या अर्थ से संबंध रखनेवाला विषय उपस्थित किया जाता है वहाँ अर्थांतर होता है, जैसे, कोई कहे कि शब्द अनित्य है, क्योंकि वह अस्पृश्य है। विरोध होने पर यदि वह इधर उधर की फजूल बातें बकने लगे जैसे हेतु शब्द 'हिं' धातु से बना है इत्यादि तो उसे अर्थांतर नामक निग्रहस्थान में आया हुआ समझना चाहिए।

(७) जहाँ वर्णों की बिना अर्थ की योजना की जाय वहाँ निरर्थक होता है। जैसे कोई कहे क ख ग नित्य है ज ब ग ड से।

(८) जब पक्ष का विरोध होने पर अपने बचाव के लिये कोई ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगे जो अर्थप्रसिद्ध न होने के कारण जल्दी समझ में न आवें अथवा बहुत जल्दी जल्दी और अस्पष्ट स्वर में बोलने लगे तब अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान होता है।

(९) जहाँ अनेक पदों या वाक्यों का पूर्वापर क्रम से अन्वय न हो, पद और वाक्य असंबद्ध हों, वहाँ अपार्थक होता है।

(१०) प्रतिज्ञा हेतु आदि अवयव क्रम से न कहे जायँ, आगे पीछे उलट पुलट कर कहे जायँ वहाँ अप्राप्तकाल होता है।

(११) प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों में से जहाँ कथन में कोई अवयव कम हो वहाँ न्यून नामक निग्रहस्थान होता है।

(१२) हेतु और उदाहरण जहाँ आवश्यकता से अधिक हो जायँ वहाँ अधिक नामक निग्रहस्थान होता है क्योंकि जब एक हेतु और उदाहरण से अर्थ सिद्ध हो गया तब दूसरा हेतु और उदाहरण व्यर्थ है। पर यह बात पहले से नियम के मान लेने पर है।

(१३) जहाँ व्यर्थ पुनः कथन हो वहाँ पुनरुक्त होता है।

(१४) चुप रह जाने को अननुभाषण कहते हैं। जहाँ वादी अपना अर्थ साफ साफ तीन बार कहे और प्रतिवादी सुन और समझ कर भी कोई उत्तर न दे वहाँ अननुभाषण नामक निग्रहस्थान होता है।

(१५) जिस बात को सभासद समझ गए हों उसी को तीन बार समझाने पर भी यदि प्रतिवादी न समझे तो अज्ञान नामक निग्रहस्थान होता है।

(१६) जहाँ पर पक्ष का खंडन अर्थात् उत्तर न बने वहाँ अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१७) जहाँ प्रतिवादी इस प्रकार टालटूल कर दे कि 'मुझे इस समय काम है, फिर कहूँगा' वहाँ विक्षेप होता है।

निछावरि†-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "निछावर"।
निछोह-वि॰ [हिं॰ उप॰ नि+छोह] (१) जिसे छोह या प्रेम न हो। (२) निर्दय। निष्ठुर।
निछोही-वि॰ [हिं॰ नि+छोह] (१) जिसे प्रेम या छोह न हो। (२) निर्दय। निष्ठुर।
निज-वि॰ [सं॰] (१) अपना। स्वीय। स्वकीय। पराया नहीं।
विशेष—आज काल इस शब्द का प्रयोग प्रायः 'का' विभक्ति के साथ होता है, जैसे, निज का काम। कर्म की विभक्ति भी इसके साथ लगती है जैसे, निज को, निजहिं। कविता में और विभक्तियाँ भी दिखाई देती हैं पर कम।
मुहा॰—निज का=खास अपना। अपने शरीर या जन कुटुंब से संबंध रखनेवाला।
(२) खास। मुख्य। प्रधान। उ॰—(क) परम चतुर निज दास श्याम के संतत निकट रहत हो। जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हौ।—सूर। (ख) कह मारुतसुत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार निज दास।—तुलसी। (३) ठीक। सही। वास्तविक। सच्चा। यथार्थ। उ॰—(क) अब विनती मम सुनहु शिव जो मोपर निज नेह।—तुलसी। (ख) मन मेरो मानै सिख मेरी। जो निज भक्ति चहै हरि केरी।—तुलसी।
अव्य॰ (१) निश्चय। ठीक ठीक। सही सही। सटीक।
मुहा॰—निज करके=बीस बिस्वे। निश्चय। अवश्य। जरूर।
(२) खासकर। विशेष करके। मुख्यतः। उ॰—देखु विचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो।—तुलसी।
निजकाना†-क्रि॰ अ॰ [फा॰ नजदीक] निकट पहुँचना। समीप आना। उ॰—आने आने हनूमान अंगद सयाने रहो, आने निजकाने दिन रावण मरण के।—हनुमान।
निजकारि-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ निज+कर] (१) बँटाई की फसल। (२) वह जमीन जिसके लगान में उससे उत्पन्न वस्तु ही ली जाय।
निजघास-संज्ञा पु॰ [सं॰] पार्वती के क्रोध से उत्पन्न गणों में से एक।
निज़ा-संज्ञा पु॰ [अ॰] झगड़ा। विवाद।
निज़ाम-संज्ञा पुं॰ [अ॰] (१) बंदोबस्त। इंतजाम। (२) हैदराबाद के नव्वाबों का पदवीसूचक नाम।
निजि-वि॰ [स॰] शुद्ध। जो शुद्धि के सहित हो।
निजु-वि॰ दे॰ "निज"।
निजू†-वि॰ [हिं॰ निज] निज का। खास अपना।
निजोर†*-वि॰ [हिं॰ उप॰ नि+फा॰ जोर] निर्बल।
निझरना-क्रि॰ अ॰ [हिं॰ उप॰ नि+झरना] (१) अच्छी तरह झड़ जाना। लगा या अँटका न रहना। जैसे, पेड़ से फलों का निझरना।
संयो॰ क्रि॰—जाना।
(२) लगी हुई वस्तु के झड़ जाने से खाली हो जाना। जैसे, पेड़ का निझरना। (३) सार वस्तु से रहित हो जाना। खुल हो जाना। (४) हाथ झाड़कर निकल जाना। दोष से मुक्त बनना। अपने को निर्दोष प्रमाणित करना। सफाई देना। उ॰—सदा चतुराई फबती नाहीं अतिही निझरि रही हो। सूर "श्याम धौं कहा रहत हैं" यह कहि कहि जो सही है।—सूर।
निझाना†-क्रि॰ अ॰ [देश॰] ताक झाँक करना। झाँक मूँक करना। आड़ में छिपकर देखना।
निझोटना†-क्रि॰ स॰ [हिं॰ उप॰ नि+झपटना] खींच कर छीनना। झपटना।
निझोल-संज्ञा पु॰ [हिं॰ उप॰ नि+झोल] हाथी का एक नाम।
निटर†-वि॰ [देश॰] जिसमें कुछ दम न हो। जिसका जोर मर गया हो। मरा हुआ। जो उपजाऊ न रह गया हो। (खेत या जमीन के लिये)।
निटल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] कपाल। मस्तक।
निटोल-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ उप॰ नि+टोला] टोला। मुहल्ला। पुरा। बस्ती। उ॰—अब न कौनो चूक करिहैं यह हमारे बोल। किंकरिनि की लाज धरि ब्रज सुबस करौ निटोल।—सूर।
निट्ठि*-क्रि॰ वि॰ दे॰ "नीठि"।
निठल्ला-वि॰ [हिं॰ उप॰ नि=नहीं+टहल=काम] (१) जिसके पास कोई काम धंधा न हो। खाली। (२) बे-रोजगार। बेकार। (३) जो कोई काम धंधा न करे। निकम्मा।
निठल्लू-वि॰ दे॰ "निठल्ला (३)"।
निठाला-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ उप॰ नि+टहल=काम](१) ऐसा समय जब कोई काम धंधा न हो। खाली वक्त। (२) वह समय जिसमें हाथ में कोई काम धंधा या रोजगार न हो। वह वक्त या हालत जिसमें कुछ आमदनी न हो। जीविका का अभाव। जैसे, ऐसे निठाले में तुम भी माँगने आए।
निठुर-वि॰ [सं॰ निष्ठुर] कठोर हृदय। जिसे दूसरे की पीड़ा का अनुभव न हो। जो पराया कष्ट न समझे। निर्दय। क्रूर।
निठुरई*-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "निठुराई"।
निठुरता*-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निष्ठुरता] निर्दयता। क्रूरता। हृदय की कठोरता।
निठुराई-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ निठुर] निर्दयता। हृदय की कठोरता। क्रूरता।
निठुराव†-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ निठुर+आव (प्रत्य॰)] निठुराई। निर्दयता।

(२) भरे या समाए हुए जल आदि का दाब पाकर अलग होना या टपकना। छूट कर चूना। गारना। जैसे, गीली धोती का पानी निचुड़ना, नीबू का रस निचुड़ना। उ०—कहे देत रँग रात को रँग निचुरत से नैन।—विहारी।
संयो० क्रि०—जाना।
(३) रस या सार हीन होना। (४) शरीर का रस या सार निकल जाने से दुबला होना। तेज और शक्ति से रहित होना।
संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

निचुल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेंत। (२) हिज्जल वृक्ष। ईंजड़ का पेड़।

निचै*–संज्ञा पुं० दे० "निचय"।

निचोड़–संज्ञा पुं० [हिं० निचोड़ना] (१) वह वस्तु जो निचोड़ने से निकले। निचोड़ने से निकला हुआ जल रस आदि। (२) सार वस्तु। सार। सत। (३) कथन का सारांश। मुख्य तात्पर्य। खुलासा। जैसे, सब बातों का निचोड़।

निचोड़ना–क्रि० स० [हिं० निचुड़ना] (१) गीली या रसभरी वस्तु को दबाकर या ऐंठकर उसका पानी या रस टपकाना। दबाकर पानी या रस निकालना। गारना। जैसे, गीली धोती निचोड़ना, नीबू निचोड़ना, धोती का पानी निचोड़ना, नीबू का रस निचोड़ना।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।
(२) किसी वस्तु का सार भाग निकाल लेना। (३) सब कुछ ले लेना। सर्वस्व हरण कर लेना। निर्धन कर देना। जैसे, उनके पास अब कुछ नहीं रह गया लोगों ने उन्हें निचोड़ लिया।
संयो० क्रि०—लेना।

निचोना†*–क्रि० स० [सं० नि + च्यवन] निचोड़ना। उ०—(क) तृषावंत सुरसरि विहाय सठ फिरि फिरि विकल अकास निचोयो।—तुलसी। (ख) मुसुकानि भरी वलि वोलनि तें श्रुति मांहि पियूष निचोती रही।—द्विजदेव।

निचोर*†–संज्ञा पुं० दे० "निचोड़"।

निचोरना*†–क्रि० स० दे० "निचोड़ना"।

निचोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन वस्त्र। ऊपर से शरीर ढाँकने का कपड़ा। (२) स्त्रियों की ओढ़नी। घूँघट का कपड़ा। (३) उत्तरीय वस्त्र। (४) घाघरा। लहँगा। (५) वस्त्र। कपड़ा।

निचोलक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोल। कंचुक। अंगा। (२) सन्नाह। बक्तर।

निचोवना*†–क्रि० स० दे० "निचोना"।

निचौहाँ–वि० [हिं० नीचा + हिं० औहाँ (प्रत्य०) (सं० आवाह)] [स्त्री० निचौहीं] नीचे की ओर किया हुआ या झुका हुआ। नमित। उ०—(क) सखिन मध्य करि दीठि निचौंही राधा सकुच मरी।—सूर। (ख) विछुरे जिये सकोच यह मुख ते कहत न बैन। दोऊ दौरि लगे हिये किये निचौहैं नैन।—विहारी।

निचौहैं–क्रि० वि० [हिं० निचौहाँ] नीचे की ओर।

निच्छवि–संज्ञा स्त्री० [सं०] तीरभुक्ति देश। तिरहुत।

निच्छवि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के व्रात्य क्षत्रिय। सवर्णा स्त्री से उत्पन्न व्रात्य क्षत्रिय की संतान। (मनु०)

निछक्का–संज्ञा पुं० [सं० निस् + चक्र = मंडली] वह समय वा स्थान जिसमें कोई दूसरा न हो। निराला। एकांत। निर्जन।
मुहा०—निछक्के में = एकांत में।

निछत्र–वि० [सं० निश्छत्र] (१) जिसके सिर पर छत्र न हो। छत्रहीन। बिना छत्र का। (२) विना राजचिह्न का। बिना राज्य का।
वि० [सं० निःक्षत्र] क्षत्रियों से हीन। बिना क्षत्रिय का। क्षत्रियों से रहित। उ०—मारयो मुनि विनही अपराधहिं कामधेनु लै आऊ। इकइस बार निछत्र तब कीन्हीं तहाँ न देखे हाऊ।—सूर।

निछनियाँ‡–क्रि० वि० दे० "निछान"। उ०—यशुमति दौरि लये हरि कनियाँ। आजु गयो मेरो गाय चरावन हौं बलि गई निछनियाँ।—सूर।

निछल*–वि० [सं० निश्छल] कपटरहित। छलहीन।

निछला†–वि० [?] बिना मिलावट का। बिलकुल। एक मात्र।

निछान†–वि० [हिं० उप० नि = नहीं + छान = जो छानने से निकले] (१) खालिस। विशुद्ध। जिसमें मेल न हो। बिना मिलावट का। (२) बिलकुल। निछला। निखवख। एक मात्र। केवल।
क्रि० वि० एकदम। बिलकुल।

निछावर–संज्ञा स्त्री० [सं० न्यास + आवर्त = न्यासावर्त मि० अ० निसार] (१) एक उपचार या टोटका जिसमें किसी की रक्षा के लिये कुछ द्रव्य या कोई वस्तु उसके सिर या सारे अंगों के ऊपर से घुमा कर दान कर देते या डाल देते हैं। उत्सर्ग। वारा फेरा। उतारा। वछेर। (इस का अभिप्राय यह होता है कि जो देवता शरीर को कष्ट देनेवाले हों वे शरीर और अंगों के बदले में द्रव्य आदि पाकर संतुष्ट हो जायँ।)
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—निछावर करना = उत्सर्ग करना। छोड़ देना। त्यागना। दे डालना। निछावर होना = दे दिया जाना। त्याग दिया जाना। (किसी का) किसी पर निछावर होना = किसी के लिये मर जाना। किसी के लिये प्राण त्यागना।
(२) वह द्रव्य या वस्तु जो ऊपर घुमाकर दान की जाय या छोड़ दी जाय। (३) इनाम। नेग।

नित्यसम–संज्ञा पु० [सं०] न्याय में जो २४ जाति अर्थात् केवल साधर्म्य और वैधर्म्य से अयुक्त खंडन कहे गए हैं उनमें से एक। वह अयुक्त खंडन जो इस प्रकार किया जाय कि अनित्य वस्तुओं में भी अनित्यता नित्य है अतः धर्म के नित्य होने से धर्मी भी नित्य हुआ। जैसे, किसी ने कहा *शब्द अनित्य है क्योंकि वह घट के समान उत्पत्ति-धर्मवाला* है। इसका यदि कोई इस प्रकार खंडन करे कि यदि शब्द का अनित्यत्व नित्य है तो शब्द भी नित्य हुआ और यदि अनित्यत्व अनित्य है तो भी अनित्यत्व के अभाव से शब्द नित्य हुआ। इस प्रकार का दूषित खंडन नित्यसम कहलाता है।

नित्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) मनसा देवी। (३) एक शक्ति का नाम।

नित्यानध्याय–संज्ञा पु० [सं०] ऐसा अवसर चाहे वह जिस बार या जिस तिथि को पड़ जाय जिसमें वेद के अध्ययन अध्यापन का निषेध हो।

विशेष—जब पानी बरसता, बादल गरजता और बिजली चमकती हो या आँधी के कारण धूल आकाश में छाई हो या उल्कापात होता हो तब अनध्याय रखना चाहिए। (मनु०)

नित्याभियुक्त–वि० [सं०] (योगी) जो केवल इतना ही भोजन करके रहे जितने से देहरक्षा होती रहे और सब त्याग करके योग साधन करे।

निथंभ*–संज्ञा पु० [सं० उप० नि + स्तम्भ] खंभा। स्तंभ। उ०—रची विरंचि बास सी निथंभ राजिका भली।—केशव।

निथरना–क्रि० अ० [हिं० उप० नि + थिर + ना (प्रत्य०)] (१) पानी या और किसी पतली चीज़ का स्थिर होना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय। थिर कर साफ होना। (२) घुली हुई चीज़ के नीचे बैठ जाने से जल का अलग हो जाना। पानी छन जाना।

निथार–संज्ञा पु० [हिं० निथारना] (१) घुली हुई चीज़ के बैठ जाने से अलग हुआ साफ पानी। (२) पानी के स्थिर होने से उसके तल में बैठी हुई चीज़।

निथारना–क्रि० स० [हिं० नियरना] (१) पानी या और किसी पतली चीज़ को स्थिर करना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय। थिरा कर साफ करना। (२) घुली हुई चीज़ को नीचे बैठाकर खाली पानी अलग करना। पानी छानना। पानी छानकर अलग करना।

निथालना–क्रि० स० दे० "निथारना"।

निदई°–वि० दे० "निर्दयी"।

निदरना*–क्रि० स० [सं० निरादर] (१) निरादर करना। अपमान करना। अप्रतिष्ठा करना। बेइज्जती करना। उ०—मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे।—तुलसी। (२) तिरस्कार करना। त्याग करना। (३) मात करना। बढ़ जाना। बढ़कर निकलना। तुच्छ ठहराना। उ०—(क) नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने।—तुलसी। (ख) एक एक जीतहिं संसारा। उनहिं निदरि पावत को पारा।—सबल।

निदर्शन–संज्ञा पु० [सं०] (१) दिखाने का कार्य्य। प्रदर्शित करने का कार्य्य। प्रकट करने का कार्य्य। (२) उदाहरण। दृष्टांत।

निदर्शना–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें एक बात किसी दूसरी बात को ठीक ठीक कर दिखाती हुई कही जाती है। उ०—(क) सरिसंगम हित चले ठेलते नाले पत्थर। दिखलाते पयरोध प्रेमियों का अति दुष्कर। (ख) जात चंद्रिका चंद्र सह विद्युत् घन सह जाय। पिय सहगमन जो तियन को जड़ हू देत दिखाय। (ग) कहाँ सूर्य्य को वंश अरु कहाँ मोरि मति छुद्र। मैं डूढ़े सों मोहवश चाहत तर्‌यो समुद्र। (घ) जंगजीत जे चहत हैं तो सों बैर बढ़ाय। जीबे की इच्छा करत कालकूट ते खाय। (च) उदय होत दिन नाथ इत अथवत उत निशिराज। द्वय घंटा युत द्विरद की छवि धारत गिरि आज। (छ) लघु उच्चत पद प्राप्त है तुरतहि लहत निपात। गिरि तें काँकर बात बस गिरत कहत यह बात।

विशेष—इस अलंकार के भिन्न-भिन्न लक्षण आचार्यों ने लिखे हैं।

जहाँ होता हुआ वस्तुसंबंध और न होता हुआ वस्तुसंबंध दोनों बिंबानुबिंब भाव से दिखाए जाते हैं वहाँ निदर्शना होती है। उ०—संपदयुत चिर थिर रहत नहिं कोउ जनहि जताय। चरमाचल चलि भानु यह सब कहँ इदे जनाय। (साहित्य दर्पण)।

न होता हुआ वस्तुसंबंध जहाँ उपमा की कल्पना करे। (प्रथम निदर्शना) अथवा जहाँ क्रिया से ही अपने और अपने हेतु के संबंध की उक्ति हो वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। (दूसरी निदर्शना) दे० उ०—"(छ)" (काव्यप्रकाश कारिका) दंडी का यह लक्षण है—अर्थांतर में प्रवृत्त कर्त्ता द्वारा अर्थांतर के सदृश जो सत् या असत् फल दिखाया जाता है वह निदर्शना है।

चंद्रालोककार का लक्षण—सदृश वाक्यार्थों की एकता का आरोप निदर्शना है।

हिंदी के कवि प्रायः चंद्रालोककार का ही लक्षण ग्रहण करके चले हैं। जैसे,—सरिस वाक्य युग के अरथ करिए एक अरोप। भूषण ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दै ओप।—भूषण। प्रथम निदर्शना—जो सो, जे ते, पदन करि असम वाक्य सम कीन। उ०—सुनु खगेश हरि भक्ति बिहाई। जे सुख चाहहिं

निठौर-संज्ञा पुं० [हिं० नि + ठौर] (१) बुरी जगह। कुठाँव। (२) बुरा दाँव। बुरी दशा।

मुहा०—निठौर पड़ना = कुदाँव में पड़ना। बुरी दशा में पड़ना। उ०—बहुरि बन बोलन लागे मोर।...जिनको पिय परदेस सिधारो सो तिय परी निठौर।—सूर।

निडर-वि० [हिं० उप० नि + डर] (१) जिसे डर न हो। जो न डरे। निःशंक। निर्भय। (२) साहसी। हिम्मतवाला। (३) ढीठ। धृष्ट।

निडरपन, निडरपना-संज्ञा पुं० [हिं० निडर + पन (प्रत्य०)] निडर होने का भाव। निर्भीकता। निर्भयता।

निढाल-वि० [हिं० उप० नि + ढाल = गिरा हुआ] (१) गिरा हुआ। पस्त। शिथिल। थका माँदा। अशक्त। सुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जी निढाल होना = जी डूबना। मूर्च्छा आना। बेहोशी आना।

(२) सुस्त। मरा हुआ। उत्साहहीन।

निढिल*-वि० [हिं० नि + ढीला] (१) जो ढीला न हो। कसा या तना हुआ। (२) कड़ा। उ०—गाढे गाढे कुच निढिल पिय हिय को ठहराय। उकसौंहै ही तो हिये सबै दई उसकाय।—बिहारी।

नितंत-क्रि० वि० दे० "नितांत"।

नितंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटिपश्चाद्भाग। कमर का पिछला उभरा हुआ भाग। चूतड़। (विशेषतः स्त्रियों का)। (२) स्कंध। कंधा। (३) तीर। तट। (४) पर्वत का ढालुवाँ किनारा।

नितंबिनी-वि० स्त्री० [सं०] सुंदर नितंबवाली।

संज्ञा स्त्री० सुंदर नितंबवाली स्त्री। सुंदरी।

नित-अव्य० [सं०] (१) प्रति दिन। रोज। जैसे, वह यहाँ नित आता है।

यौ०—नित नित = प्रति दिन। रोज रोज। नित नया = सब दिन नया रहनेवाला। कभी पुराना न पड़नेवाला। सदा ताजा रहनेवाला।

(२) सदा। सर्वदा। हमेशा।

नितराम्-अव्य० [सं०] सदा। हमेशा। सर्वदा।

नितल-संज्ञा पुं० [सं०] सात पातालों में से एक।

नितांत-वि० [सं०] (१) अतिशय। बहुत अधिक। (२) बिल्कुल। सर्वथा। एकदम। निरा। निपट।

निति*-अव्य० दे० "नित"।

नित्य-वि० [सं०] (१) जो सब दिन रहे। जिसका कभी नाश न हो। शाश्वत। अविनाशी। त्रिकालव्यापी। उत्पत्ति और विनाश-रहित। जैसे, ईश्वर नित्य है।

विशेष—न्याय मत से परमाणु नित्य हैं। सांख्य मत से पुरुष और प्रकृति दोनों नित्य हैं। वेदांत इन सब का खंडन करके केवल ब्रह्म को नित्य कहता है।

(२) प्रति दिन का। रोज का। जैसे, नित्य कर्म।

अव्य० (१) प्रति दिन। रोज रोज। जैसे, वह नित्य यहाँ आता है। (२) सदा। सर्वदा। अनवरत। हमेशा।

नित्यकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रति दिन का काम। रोज का काम। (२) वह धर्म संबंधी कर्म जिसका प्रति दिन करना आवश्यक ठहराया गया हो। नित्य की क्रिया। जैसे, संध्या, अग्निहोत्र।

विशेष—मीमांसा में प्रधान वा अर्थ कर्म तीन प्रकार के कहे गए हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्यकर्म वह है जिसका प्रति दिन करना कर्त्तव्य हो और जिसे न करने से पाप होता हो। दे० "कर्म"।

नित्यक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] नित्यकर्म। जैसे, स्नान, संध्या आदि।

नित्यगति-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

नित्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] नित्य होने का भाव। अनश्वरता।

नित्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] नित्यता।

नित्यदा-अव्य० [सं०] सर्वदा। हमेशा।

नित्यनर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

नित्यनियम-संज्ञा पुं० [सं०] प्रति दिन का बँधा हुआ व्यापार। रोज का कायदा।

नित्यनैमित्तिककर्म-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि कर्म।

विशेष—पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि अवश्य कर्त्तव्य हैं और किसी निमित्त (जैसे पापक्षय) से भी किए जाते हैं इससे नित्य और नैमित्तिक दोनों हुए।

नित्यप्रति-अव्य० [सं०] प्रति दिन। हर रोज।

नित्यप्रलय-संज्ञा पुं० [सं०] नित्य होनेवाला प्रलय।

विशेष—वेदांत परिभाषा में चार प्रकार के प्रलय कहे गए हैं—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और आत्यंतिक। इन में से सुषुप्ति को नित्यप्रलय कहते हैं। जिस प्रकार प्रलय काल में किसी कार्य का बोध नहीं होता उसी प्रकार इस सुषुप्ति की अवस्था में भी नहीं होता। यह अवस्था प्रति दिन होती है।

नित्ययज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] प्रति दिन का कर्त्तव्य यज्ञ। जैसे, अग्निहोत्र।

नित्ययौवना-वि० स्त्री० [सं०] जिसका यौवन बराबर या बहुत काल तक स्थिर रहे।

संज्ञा स्त्री० द्रौपदी।

नित्यशः-अव्य० [सं०] (१) प्रति दिन। रोज। (२) सदा। सर्वदा।

ज्ञानतंतुओं के घटकों (Cells) के संयोग तोड़ने से आती है। संवेदन सूत्र अनेक सूक्ष्म घटकों के योग से बने होते हैं और मस्तिष्क रूपी केंद्र में जाकर मिलते हैं। जाग्रत वा सचेष्ट अवस्था में ये सब घटक अत्यंत सूक्ष्म सूत की सी उँगलियाँ निकालकर एक दूसरे से जुड़े हुए मस्तिष्कघटकों के साथ संबंध जोड़े रहते हैं। जब घटक श्रांत हो जाते हैं तब उँगलियाँ भीतर सिमट जाती हैं और मस्तिष्क का संबंध संवेदन सूत्रों से टूट जाता है जिससे तंद्रा या निद्रा आती है। एक और दूसरे वैज्ञानिक का यह कहना है कि मस्तिष्क के घटक दिन के समय जितना अधिक और जितनी जल्दी जल्दी प्राणदवायु (आक्सिजन) खर्च करते हैं उतनी उन्हें फेफड़ों से मिल नहीं सकती। अतः जब प्राणदवायु का अभाव एक विशेष मात्रा तक पहुँच जाता है तब मस्तिष्क-घटक शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाते हैं। सोने की दशा में आमदनी की अपेक्षा प्राणदवायु का खर्च बहुत कम हो जाता है जिससे उसकी कमी पूरी हो जाती है अर्थात् चेतना के लिये जितनी प्राणदवायु की जरूरत होती है उतनी या उससे अधिक फिर हो जाती है और मनुष्य जाग पड़ता है। इतना तो सर्वसम्मत है कि निद्रा की अवस्था में शरीर पोषण करनेवाली क्रियाएँ क्षय करनेवाली क्रियाओं की अपेक्षा अधिक होती हैं।

निद्रा के संबंध में यह ठीक ठीक नहीं ज्ञात होता कि विकाश की किस श्रेणी के जीवों से नियमपूर्वक सोने की आदत शुरू होती है। स्तनपायी अण्डज जीवों तथा पक्षियों से नीचे की कोटि के जीवों के यथार्थ रीति से सोने का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। मछली, साँप, कछुए आदि ठंढे रक्त के जीवों की आँखों पर हिलनेवाली पलकें तो होती नहीं कि उनके आँख मूदने से उनके सोने का अनुमान कर सकें। मछलियाँ घंटों निश्चेष्ट अवस्था में पड़ी पाई गई हैं पर उनकी यह अवस्था नियमित रूप से हुआ करती है यह नहीं कहा जा सकता।

पातंजल योगदर्शन के अनुसार निद्रा भी एक मनोवृत्ति है, जिसका आलंबन अभावप्रत्यय अर्थात् तमोगुण है। अभाव से तात्पर्य शेष वृत्तियों का अभाव है, जिसका प्रत्यय वा कारण हुआ तमोगुण। सारांश यह कि तमोगुण की अधिकता से सब विषयों को छोड़कर जो वृत्ति रहती है वह निद्रा है। निद्रा मन की एक क्रिया या वृत्ति है इसके प्रमाण में भोजवृत्ति में यह लिखा है कि "मैं खूब सुख से सोया"। ऐसी स्मृति लोगों को जागने पर होती है और स्मृति उसी बात की होगी जिसका अनुभव हुआ होगा।

निद्रायमान–वि० [सं०] जो नींद में हो। सोता हुआ।

निद्रालु–वि० [सं०] निद्राशील। सोनेवाला।

संज्ञा स्त्री० (१) बैंगन। भंटा। (२) वनरी। ममरी। वनतुलसी। (३) नली नामक गंधद्रव्य।

निद्रासंजन–संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा। कफ। (कफ की वृद्धि से निद्रा आती है)

निद्रित–वि० [सं०] सुप्त। सोया हुआ।

निधड़क–क्रि० वि० [हिं० नि = नहीं + धड़क] (१) बेरोक। बिना किसी रुकावट के। (२) बिना संकोच के। बिना हिचक के। बिना आगा पीछा किए। (३) निश्शंक। बेखटके। बिना किसी भय या चिंता के।

निधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश। (२) मरण। (३) फलित ज्योतिष में लग्न से आठवाँ स्थान।

विशेष—इस स्थान से अत्यंत संकट, आयु, शत्रु आदि का विचार किया जाता है। यदि लग्न से चौथे स्थान पर सूर्य हो और ग्रह पर शनि की दृष्टि हो तो जिस दिन निधन स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि होगी उसी दिन मृत्यु होगी।

(४) जन्मनक्षत्र से सातवाँ, सोलहवाँ और तेईसवाँ नक्षत्र। (५) कुल। खानदान। (६) कुल का अधिपति। (७) विष्णु। (८) पाँच अवयव या सात अवयव युक्त साम का अंतिम अवयव।

वि० धनहीन। निर्धन। दरिद्र।

निधनपति–संज्ञा पुं० [सं०] प्रलयकर्त्ता। शिव।

निधनी–वि० [हिं० नि + धनी] निर्धन। धनहीन। दरिद्र। उ०—जैसे निधनी धनहिं पाए हरख दिन अरु राति।—सूर।

निधरका–क्रि० वि० दे० "निधड़क"।

निधातव्य–वि० [सं०] स्थापनीय।

निधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधार। आश्रय। (२) निधि। (३) लयस्थान। वह स्थान जहाँ जाकर कोई वस्तु लीन हो जाय। (४) स्थापन।

निधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गड़ा हुआ खजाना। खजाना।

विशेष—पृथ्वी में गड़ा हुआ धन यदि राजा को मिले तो उसे आधा ब्राह्मणादि को देकर आधा ले लेना चाहिए। विद्वान् ब्राह्मण यदि पावे तो उसे सब ले लेना चाहिए। यदि अपंडित ब्राह्मण वा क्षत्रिय आदि पावें तो राजा को उन्हें छठाँ भाग देकर शेष ले लेना चाहिए। यदि कोई निधि पाकर राजा को संवाद न दे तो राजा को उसे दंड देना चाहिए और सारा खजाना ले लेना चाहिए। (मिताक्षरा)

(२) कुबेर के नौ प्रकार के रत्न। ये नौ रत्न ये हैं—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व।

विशेष—ये सब निधियाँ लक्ष्मी की आश्रित हैं। जिन्हें ये प्राप्त होती हैं उन्हें भिन्न भिन्न रूपों में धनागम आदि होता है।

आन उपाई। ते सठ महा सिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहत जड़करनी।—तुलसी। दूसरी निदर्शना—थापिय गुन उपमान के उपमेयहि के श्रंग। उ०—जब कर गहत कमान सर देत अरिन को भीति। भाउसिंह में पाइए सब अरजुन की रीति। तीसरी निदर्शना—थापिय गुण उपमेय को उपमानहि के श्रंग। उ०—तुव वचनन की मधुरता रही सुधा महँ छाय। चारु चमक चल नैन की मीनन लई छिनाय।

निदलन*—संज्ञा पुं० दे० "निर्दलन"।

निदहना*—क्रि० स० [सं० निदहन] जलाना।

निदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरमी। ताप। (२) धूप। घाम। (३) ग्रीष्मकाल। गरमी। (४) पुलस्त्य ऋषि का एक पुत्र। (विष्णुपुराण)

निदाघकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) मदार। आक।

निदान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आदि कारण। (२) कारण। (३) रोगनिर्णय। रोगलक्षण। रोग की पहचान।

विशेष—सुश्रुत के पूछने पर धन्वंतरि जी ने कहा है कि वायु ही प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का मूल है। यह शरीर के दोषों का स्वामी और रोगों का राजा है। वायु पाँच हैं—प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान। ये ही पाँचों वायु शरीर की रक्षा करती हैं। जिस वायु का मुख में संचरण होता है उसे प्राणवायु कहते हैं। इससे शरीर की रक्षा, प्राणधारण और खाया हुआ अन्न जठर में जाता है। इसके दूषित होने से हिचकी, दमा, आदि रोग होते हैं। जो वायु ऊपर की ओर चलती है उसे उदान वायु कहते हैं। इसके कुपित होने से कंधे के ऊपर के रोग होते हैं। समान वायु आमाशय और पक्वाशय में काम करती है। इसके बिगड़ने से गुल्म, मंदाग्नि, अतीसार आदि रोग होते हैं। व्यानवायु सारे शरीर में घूमती है और रसों को सर्वत्र पहुँचाती है। इसी से पसीना और रक्त आदि निकलता है। इसके बिगड़ने से शरीर भर में होनेवाले रोग हो सकते हैं। अपान वायु का स्थान पक्वाशय है। इसके द्वारा मल, मूत्र, शुक्र, आर्त्तव, गर्भ, समय पर खिंच कर बाहर होता है। इस वायु के कुपित होने से वस्ति और गुप्त स्थानों के रोग होते हैं। व्यान और अपान दोनों के कुपित होने से प्रमेह आदि शुक्र रोग होते हैं। (सुश्रुत)

(४) अंत। अवसान। (५) तप के फल की चाह। (६) शुद्धि। (७) बछड़े का बंधन।

अव्य० अंत में। आखिर। उ०—जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।—तुलसी।

वि० अंतिम वा निम्न श्रेणी का। निकृष्ट। बहुत ही गया बीता। हद दरजे का। उ०—उत्तम खेती मध्यम बान। निरघिन सेवा भीख निदान। (कहावत)

निदारुण—वि० [सं०] (१) कठिन। घोर। भयानक। (२) दुःसह। (३) निर्दय। कठोर।

निदिग्ध—वि० [सं०] छोपा हुआ। लेप किया हुआ।

निदिग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

निदिग्धिका—संज्ञा स्त्री० दे० "निदिग्धा"।

निदिध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] फिर फिर स्मरण। बार बार ध्यान में लाना।

विशेष—श्रुतियों में दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन आत्मज्ञान के लिये आवश्यक बतलाया गया है।

निदेश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शासन। (२) आज्ञा। हुक्म। (३) कथन। (४) पास। सामीप्य।

निदेशी—वि० [सं० निदेशिन्] आज्ञा करनेवाला।

निदेस*—संज्ञा पुं० दे० "निदेश"।

निदोष*—वि० दे० "निर्दोष"।

निद्धि—संज्ञा स्त्री० दे० "निधि"।

निद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपसंहारक अस्त्र। उ०—जोतिष पावक निद्र दैत्यमंथन रति लेख्यो।—पद्माकर।

निद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सचेष्ट अवस्था के बीच बीच में होनेवाली प्राणियों की वह निश्चेष्ट अवस्था जिसमें उनकी चेतन वृत्तियाँ (और कुछ अचेतन वृत्तियाँ भी) रुकी रहती हैं। नींद। स्वप्न। सुप्ति।

विशेष—गहरी निद्रा की अवस्था में मनुष्य की पेशियाँ ढीली हो जाती हैं, नाड़ी की गति कुछ मंद हो जाती है, साँस कुछ गहरी हो जाती है और कुछ अधिक अंतर देकर आती जाती है, साधारण संपर्क से ज्ञानेंद्रियों में संवेदन और कर्मेंद्रियों में प्रतिक्रिया नहीं होती; तथा आँतों के जिस प्रवाहवत् चलनेवाले आकुंचन से उनके भीतर का द्रव्य आगे खिसकता है उसकी चाल भी धीमी हो जाती है। निद्रा के समय मस्तिष्क वा अंतःकरण विश्राम करता है जिससे प्राणी निःसंज्ञ वा अचेतन अवस्था में रहता है।

निद्रा के संबंध में सब से अधिक माना जानेवाला वैज्ञानिक मत यह है कि निद्रा मस्तिष्क में कम रक्त पहुँचने के कारण आती है। निद्रा के समय मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है यह बात तो देखी गई है। बहुत छोटे बच्चों के सिर के बीच जो पुलपुला भाग होता है वह उनके सो जाने पर कुछ अधिक धँसा मालूम होता है। यदि वह नाड़ी जो हृदय से मस्तिष्क में रुधिर पहुँचाती है दबाई जाय तो निद्रा या बेहोशी आवेगी। निद्रा की अवस्था में मस्तिष्क में रक्त की कमी का होना तो ठीक है पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस कमी के कारण निद्रा आती है या निद्रा (मस्तिष्क की निष्क्रियता) के कारण यह कमी होती है। हाल के दो वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि निद्रा संवेदन-सूत्रों वा

(२) उपज। उ०—निश्चय, निधी, मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर। निपजी में साझी घना बाँटनहार कबीर। —कबीर।

निपत्र-वि० [सं० निष्पत्र] पत्रहीन। ठूँठा। उ०—बिन गँठ वृच्छ निपत्र ज्यों ठाढ़ ठाढ़ पै सूख।—जायसी।

निपट-अव्य० [हिं० नि+पट ?] (१) निरा। विशुद्ध। खाली। और कुछ नहीं। केवल। एक मात्र। उ०—निपटहिं द्विज करि जानेसि मोही। मैं जस विप्र सुनावउँ तोही।—तुलसी। (२) सरासर। एकदम। बिलकुल। नितांत। बहुत अधिक। उ०—(क) आसे पासे जो फिरै निपट पिसावै सोय। कीला सों लागा रहै ताको विघ्न न होय।—कबीर। (ख) भानुबंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू। —तुलसी। (ग) बाम्हन हुत इक निपट भिखारी। सो पुनि चला चलत व्यापारी।—जायसी। (घ) मैं तेहि बारहि बार मनायो। सिर सों खेल निपट जिउ लायो।—जायसी।

निपटना-क्रि० अ० दे० "निबटना"।

निपटाना-क्रि० स० दे० "निबटाना"।

निपटारा-संज्ञा पु० दे० "निबटारा"।

निपटावा-संज्ञा पु० दे "निबटावा"

निपटेरा-संज्ञा पु० दे० निबटेरा"।

निपतन-संज्ञा पु० [सं०] [वि० निपतित] अधःपतन। गिरना। गिराव।

निपतित-वि० [सं०] गिरा हुआ। पतित। अधःपतित।

निपत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध की भूमि। (२) गीली चिकनी जमीन। ऐसी भूमि जिस पर पैर फिसले।

निपंगुर-वि० [हिं० नि+पंगु] (१) लँगड़ा। (२) अपाहिज। जिसके हाथ पैर न चलते हों।

निपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतन। गिराव। पात (२) अधः-पतन। (३) विनाश। उ०—और न कुछ देखें तन श्यामहि ताको करो निपातु। तू जो करै बात सोइ साँची कहा करौं तोहि मातु।—सूर। (४) मृत्यु। क्षय। नाश। उ०—बन-माला पहिरावत श्यामहिं बार बार अंकवारि भरी धरि। कंस निपात करहुगे तुमही हम जानी यह बात सही परि।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(५) शाब्दिकों के मत से वह शब्द जिसके बनने के नियम का पता न चले अर्थात् जो व्याकरण में दिए नियमों के अनुसार न बना हो।

निपातन-संज्ञा पु० [सं०] (१) गिराने का कार्य्य। (२) नाश। क्षय वा ध्वंस करने का कार्य्य। (३) मारने का काम। वध करने का कार्य्य।

निपातना-*क्रि० स० [हिं० निपातन] (१) गिराना। नीचे गिराना। उ०—(क) पिपर पात दुख झरे निपाते। सुख पलहा उपने हिय राते।—जायसी। (ख) व्याकुल राउ शिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।—तुलसी। (२) नष्ट करना। काटकर गिराना। उ०—कह लंकेस कहत किन बाता। केहि तव नासा कान निपाता।—तुलसी। (३) मारना। मार गिराना। वध करना। उ०—(क) चंदन बास निवारहु तुम कारण बन काटिया। जीवत जिय जनि मारहु मुए ते सबै निपातिया।—कबीर। (ख) तैसहि भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।—तुलसी। (ग) खोजत रह्यों तोहि सुनघाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी।

निपाती-वि० [सं० निपातिन्] (१) गिरानेवाला। फेंकनेवाला। चलानेवाला। उ०—सायक निपाती चतुरंग के सँघाती ऐसे सोहत मदाती अरिघाती उग्रसेन के।—गोपाल। (२) मारनेवाला। घातक।

संज्ञा पु० शिव। महादेव।

* वि० [हिं० नि+पाती] बिना पत्ते का। पत्रहीन। ठूँठा। उ०—सेहि दुख भए पलास निपाती। लोहू बूड़ उठी होइ राती।—जायसी।

निपान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालाब। गड्ढा। खत्ता। (२) कुएँ के पास दीवार घेर कर बनाया हुआ कुंड या खोदा हुआ गड्ढा जिसमें पशु पक्षियों आदि के पीने के लिये पानी इकट्ठा रहता है। (३) दूध दुहने का बरतन।

निपीड़क-वि० [सं०] (१) पीड़ा देनेवाला। दुःखदायक। (२) मलने दलनेवाला। (३) निचोड़नेवाला। (४) पेरनेवाला।

निपीड़न-संज्ञा पु० [सं०] (१) कष्ट पहुँचाने वा पीड़ित करने का कार्य्य। पीड़ित करना। तकलीफ देना। (२) मलना दलना। (३) पसाना। पसेव निकालना। (४) पेरना। पेर कर निकालना (जैसे तेल निकाला जाता है)।

निपीड़ना*-क्रि० स० [सं० निपीड़न] (१) दबाना। मलना दलना। उ०—भुजन भुजा भरि उरोजन उरहि मीड़ि कंठ कंठ सों निपीड़े रोप्यो हिय हियो है।—देव। (२) कष्ट पहुँचाना। पीड़ित करना।

निपीड़ित-वि० [सं०] (१) दबाया हुआ। (२) आक्रांत। (३) जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। (४) पेरा हुआ। निचोड़ा हुआ।

निपुड़ना-क्रि० अ० [सं० निष्पुट, प्रा० निप्पुड] (दाँत) खोलना। उघारना।

निपुण-वि० [सं०] दक्ष। कुशल। प्रवीण। चतुर। कार्य्य करने में पटु।

निपुणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षता। कुशलता।

निपुणाई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० निपुण+आई (प्रत्य०)] निपुणता।

जैसे, पद्मनिधि के प्रभाव से मनुष्य सोने चाँदी ताँबे आदि का खूब उपभोग और क्रय विक्रय करता है, महापद्मनिधि की प्राप्ति से रत्न, मोती, मूँगे आदि की अधिकता रहती है, इत्यादि।
(३) समुद्र। (४) आधार। घर। जैसे जलनिधि, गुणनिधि। (५) विष्णु। (६) शिव। (७) नौ की संख्या। (८) जीवक नाम की ओषधि। (९) नलिका नामक द्रव्य।

निधिगोप–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदवेदांग में पारंगत होकर गुरुकुल से आया हो। अनूचान।

निधिनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] निधियों के स्वामी, कुवेर।

निधिप–संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर।

निधिपति–संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर।

निधिपाल–संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर।

निधीश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर।

निधुवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैथुन। (२) नर्म। केलि। (३) हँसी ठट्ठा। (४) कंप।

निधेय–वि० [सं०] स्थापनीय। स्थापन करने योग्य।

निध्यान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्शन। देखना। (२) निदर्शन।

निध्रुव–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।

निध्वान–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द।

निनद–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज। घरघराहट।

निनय–संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। नौताई। आजजी।

निनयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निष्पादन। (२) प्रणीता के जल को कुश से यज्ञ की वेदी पर छिड़कने का कार्य।

निनरा–वि० [सं० निः + निकट, प्रा० निनिअड़] न्यारा। अलग। जुदा। दूर। उ०—मानहु विवर गए चलि कारे तजि केंचुरी भए निनरे री।—सूर।

निनाद–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज।

निनादित–वि० [सं०] शब्दित। ध्वनित।

निनादी–वि० [सं० निनादिन्] [स्त्री० निनादिनी] शब्द करनेवाला।

निनान*–संज्ञा पुं० [सं० निदान] (१) अंत। (२) लक्षण।
क्रि० वि० अंत में। आखिर।
वि० (१) परले सिरे का। बिल्कुल। एकदम। घोर। (२) बुरा। निकृष्ट। उ०—कबिरा नमन बहु अंतरा नमन बहुत निनान। ये तीनों बहुतै नवैं चीता, चोर, कमान।—कबीर।

निनाया†–संज्ञा पुं० [देश०] खटमल।

निनार–वि० दे० "निनारा"।

निनारा–वि० [सं० निः + निकट, प्रा० निनिअट, हिं० निनर] (१) अलग। जुदा। भिन्न। न्यारा। (२) दूर। हटा हुआ।

निनावाँ–संज्ञा पुं० [हिं० नन्हा ?] जीभ, मसूड़े तथा मुँह के भीतर के और भागों में निकलनेवाले महीन महीन लाल दाने जिनमें छुरछुराहट और पीड़ा होती है।

निनावाँ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नि = बुरा + नाम, नाँव] (१) बिना नाम की वस्तु। वह वस्तु जिसका नाम लेना अशुभ या बुरा समझा जाता हो। (२) चुड़ैल। भुतनी।

निनौना†–क्रि० स० [हिं० नवना = झुकना] नीचे करना। झुकाना। नवाना। उ०—नैन निने बहु नेकहू कमलनैन नव नाथ। बालनि के मन मोहिले वेचे मनमथ हाथ।—केशव।

निनौरा–संज्ञा पुं० [हिं० नानी + औरा (प्रत्य०)] नानी वा नानी का घर। वह स्थान जहाँ नाना-नानी रहते हों।

निनानवे–वि० [सं० नवनवति, प्रा० नवनवइ] नब्बे और नौ। जो संख्या में एक कम सौ हो।
संज्ञा पुं० नब्बे और नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—९९।

मुहा०—निन्नानवे के फेर में आना या पड़ना = रुपया बढ़ाने की धुन में होना। धन बढ़ाने की चिंता में पड़ना। (इस मुहावरे के संबंध में एक कहानी है। कोई मनुष्य बड़ा अपव्ययी था। एक दिन उसके एक मित्र ने उसे ९९) दिए। उसी दिन से वह १००) पूरे करने के फेर में पड़ गया। जब १००) पूरे हो गए तब १०१) करने की चिंता में हुआ। इस प्रकार वह दिन रात रुपए के फेर में रहने लगा और भारी कंजूस हो गया।)

निन्यारा*–वि० दे० "निनारा"।

निन्हियाना†–क्रि० अ० [अनु० नी नी] गिड़गिड़ाना। दीनता प्रकट करना। आजज़ी दिखाना।

निपंग*–वि० [सं० नि + पंगु] जिसके हाथ पैर टूटे हों वा काम न दे सकें। अपाहिज। निकम्मा। उ०—जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग। जो चाहै लेतो बनै तो करि डारु निपंग।—गिरधर।

निपजना*†–क्रि० अ० [सं० निष्पद्यते, प्रा० निपज्जइ] (१) उपजना। उत्पन्न होना। उगना। जमना। उ०—(क) राम नाम कर सुमिरन हँसि कर भावै खीज। उलटा सुलटा नीपजै ज्यों खेतन में बीज।—कबीर। (ख) अमिरित बरसै हीरा निपजै घटा परै टकसार। तहाँ कबीरा पारखी अनुभव उतरै पार।—कबीर। (२) बढ़ना। पुष्ट होना। पकना। उ०—भली बुद्धि तेरे जिय उपजी। ज्यों ज्यों दिनी भई त्यों त्यों निपजी।—सूर। (३) बनना। तैयार होना। उ०—सिख खाँड़ा गुरु मसकला चढ़ै शब्द खरसान। शब्द सहै सम्मुख रहै निपजै शिष्य सुजान।—कबीर।

निपजी*–संज्ञा स्त्री० [हिं० निपजना] (१) लाभ। मुनाफा।

निबटाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० निबटना] (१) निबटने की भावना या क्रिया। निबटेरा। (२) झगड़े का फैसला। फैसला। निर्णय।

निबटेरा—संज्ञा पुं० [हिं० निबटना] (१) निबटने का भाव या क्रिया। छुट्टी। (२) समाप्ति। (३) झगड़े का फैसला। निश्चय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निबड़ना*—क्रि० अ० दे० "निबटना"।

निबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा घड़ा।

निबद्ध—वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। (२) निरुद्ध। रुका हुआ। (३) ग्रथित। गुथा हुआ। (४) बैठाया हुआ। जड़ा हुआ। निवेशित।

संज्ञा पुं०—वह गीत जिसे गाते समय अक्षर, ताल मान, गमक, रस आदि के नियमों का विशेष ध्यान रखा जाय।

निबर—वि० दे० "निर्बल"।

निबरना—क्रि० अ० [सं० निवृत्त, प्रा० निविट्ठ] (१) बँधी, फँसी या लगी वस्तु का अलग होना। छूटना। (२) मुक्त होना। उद्धार पाना। बच निकलना। पार पाना। उ०—(क) पाय कै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहिं कालि काला कासीनाथ कहे निबरत हौं।—तुलसी। (ख) कब लौं, कहौ पूजि निबरैंगे बचिहैं बैर हमारे?—सूर। (ग) कैसे निबरैं निबल जन करि सबलन सों बैर।—सभाविलास। (३) छुट्टी पाना। अवकाश पाना। फुरसत पाना। खाली होना। निवृत्त होना। उ०—हरि छवि जल जब तें परे तब तें छिन निबरै न। भरत, ढरत, बूड़त तरत रहत घरी लौं नैन।—बिहारी। (४) (काम) पूरा होना। समाप्त होना। भुगतना। सरना। निबटना। चुकना। उ०—(क) सूरदास बिनती कहा बिनवै दोषनि देह भरी। आपन बिरद सँभारोगे तो यामें सब निबरी।—सूर। (ख) चितवत जितवत हित हिये किए तिरीछे नैन। भीजे तन दोऊ कँपै क्यों हूँ जप निबरै न।—बिहारी। (५) निर्णय होना। तै होना। फैसल होना। (६) एक में मिली जुली वस्तुओं का अलग होना। बिलग होना। छँटना। उ०—नैना भए पराए चेरे। नंदलाल के रंग गए रँगि अब नाहीं बस मेरे। जद्यपि जतन किए जुगवति हौं स्यामल शोभा घेरे। तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निबरत नाहिं निबेरे।—सूर। (७) उलझन दूर होना। सुलझना। फँसाव या अड़चन दूर होना।

संयो० क्रि०—जाना।

(८) जाता रहना। दूर होना। न रह जाना। खतम होना। उ०—अब नीके कै समुझि परी। जिन लगि हती बहुत उर आसा सोऊ बात निबरी।—सूर।

निबल*—वि० [सं० निर्बल] निर्बल। दुर्बल। उ०—कैसे निबहैं निबल जन करि सबलन सों बैर।—सभाविलास।

निबर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण। नष्ट करने की क्रिया या भाव।

निबह—संज्ञा पुं० दे० "निर्वह"।

निबहना—क्रि० अ० [हिं० निबाहना] (१) पार पाना। निकलना। बचना। छुट्टी पाना। छुटकारा पाना। उ०—(क) मेरे हठ क्यों निबहन पैहौ? अब तो रोकि सबनि को राख्यो कैसे कै तुम जैहौ?—सूर। (ख) स्याम गए देखैं जनि कोई। सखियन सों निबहन किमि पैहौं इन आगे राखौं रस गोई।—सूर। (ग) कैसे निबहैं निबल जन करि सबलन सों बैर।—सभाविलास। (२) निर्वाह होना। बराबर चला चलना। किसी स्थिति, संबंध आदि का लगातार बना रहना। पालन या रक्षा होना। जैसे, साथ निबहना, मित्रता निबहना, प्रीति निबहना। उ०—(क) महमद बाजिउ मीत मिलि भए जो एकहि चित्त। यहि जग साथ जो निबहा ओहि जग बिछुरहि कित्त।—जायसी। (ख) काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई। जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई।—तुलसी। (३) बराबर होता चलना। पूरा होना। सरना। जैसे, यहाँ का काम तुम से नहीं निबहेगा। (४) किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना। पालन होना। पूरा होना। चरितार्थ होना। जैसे, बचन निबहना, प्रतिज्ञा निबहना।

संयो० क्रि०—जाना।

निबाह—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] (१) निबाहने की क्रिया या भाव। रहन। रहायस। गुजारा। कालक्षेप। किसी स्थिति के बीच जीवन व्यतीत करने का कार्य। जैसे, यहाँ तुम्हारा निबाह नहीं हो सकता। उ०—(क) अबहिं अंत न होय निबाहू।—तुलसी। (ख) लोक लाहु परलोक निबाहू।—तुलसी। (२) लगातार साधन। (किसी बात को) चलाए चलने या जारी रखने का कार्य्य। किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार। संबंध या परंपरा की रक्षा। जैसे (क) प्रीति का निबाह, दोस्ती का निबाह। (ख) काम तो मैंने अपने ऊपर ले लिया पर निबाह तुम्हारे हाथ है। (३) चरितार्थ करने का कार्य्य। पूरा करने का कार्य्य। पालन। साधन और पूर्ति। जैसे, प्रतिज्ञा का निबाह। (४) छुटकारे का ढंग। बचाव का रास्ता। जैसे, बड़ी अड़चन में फँसे हैं, निबाह नहीं दिखाई देता।

निबाहक—वि० [सं० निर्वाहक] निबाह करनेवाला।

निबाहना—क्रि० स० [सं० निर्वहन] (१) निर्वाह करना। (किसी बात को) बराबर चलाए चलना। जारी रखना। बनाए रखना। संबंध या परंपरा की रक्षा करना। जैसे, नाता निबाहना, प्रीति निबाहना, मित्रता निबाहना, धर्म निबाहना। उ०—(क) पहिले सुख नेहहि जब जोरा। पुनि होय कठिन निबाहत ओरा।—जायसी। (ख) निबाहौ बाँह गहे की

दक्षता। कुशलता। चतुराई। उ०—पुर शोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु विरंचि निपुनाई।—तुलसी।

निपुत्री—वि० [हिं० नि+पुत्री] निपूता। निःसंतान। उ०—(क) वो निपुत्री के घर में क्या सुख कि जिस विना वह सदा अंधकार रहता है।—सदलमिश्र। (ख) जो नर ब्राह्मण हत्या कीन्हा। जन्म निपुत्री तेहि जग चीन्हा।—विश्राम।

निपुन*—वि० दे० "निपुण"।

निपुनई*—संज्ञा स्त्री० [सं० निपुण+ई (प्रत्य०)] निपुणता।

निपुनता*—संज्ञा स्त्री० दे० "निपुणता"।

निपुनाई*—संज्ञा स्त्री० दे० "निपुणाई"।

निपूत*† [हिं० नि+पूत] [स्त्री० निपूती] अपुत्र। पुत्रहीन। उ०—कीनो जिन रावण निपूतो यमहू ते यम कूते खेत मूँड़ आजहू ते न सिरात है।—हनुमान।

निपूता—वि० [सं० निष्पुत्र, प्रा० निपुत्त] [स्त्री० निपूती] जिसे पुत्र न हो। अपुत्र।

निपोड़ना‡—क्रि० स० [सं० निष्पुट, प्रा० निप्पुड+ना (प्रत्य०)] खोलना। उघारना। (दाँत के लिये)।

मुहा०—दाँत निपोड़ना=व्यर्थ हँसना।

निफन*—वि० [सं० निष्पन्न, पा० निप्फन्न] पूर्ण। पूरा। संपूर्ण। क्रि० वि० पूर्णरूप से। अच्छी तरह। उ०—जोते बिनु बोएँ बिनु निफन निराए बिनु सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे। मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम लघु लोगनि कौं करिगे।—तुलसी।

निफरना—क्रि० अ० [हिं० निफारना] चुभकर या धँसकर इस पार से उस पार होना। छिद कर आरपार होना। उ०—घायल सों घूमि रह्यो खड्गी घमंड भरो नेजा नोक लागी शीश कैकयी के नंद की। निफरि धँसी सो भूमि गोंडा गिरयो घूमि घूमि खासी रघुराज वाणी कढ़ी रघुचंद की।—रघुराज। क्रि० अ० [सं० नि+स्फुट] खुलना। उद्‌घाटित होना। स्पष्ट होना। साफ होना। प्रकट होना।

निफल*—वि० [सं० निष्फल, प्रा० निप्फल] निरर्थक। निष्फल। व्यर्थ। उ०—(क) नाचै पंडुक मोर परेवा। निफल न जाय काहि की सेवा।—जायसी। (ख) निफल होहिं रावण सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे।—तुलसी।

निफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता।

निफ़ाक़—संज्ञा पुं० [अ०] (१) विरोध। द्रोह। वैर। (२) फूट। भेद। बिगाड़। अनबन।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

निफारना—क्रि० स० [हिं० नि+फारना] (१) इस पार से उस पार तक छेद करना। आर पार करना। वेधना। (२) इस पार से उस पार निकालना।

क्रि० स० [सं० नि+स्फुट] खोलना। उद्‌घाटित करना। प्रकट करना। स्पष्ट करना। साफ करना।

निफालन—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि।

निफोट—वि० [सं० नि+स्फुट] स्पष्ट। साफ साफ। उ०—(क) कै मिलि कर मेरो कह्यो कै कर मेरो घात। पाछे वचन सँभारियो कहौं निफोटक बात।—हनुमान। (ख) सुन ले निफोट ओट वज्र की न बचै कोऊ लागे भेद चोट सावधान को अचानक।—हनुमान।

निबंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन। (२) वह व्याख्या जिसमें अनेक मतों का संग्रह हो। (३) लिखित प्रबंध। लेख। (४) गीत। (५) नीम का पेड़। (६) आनाह रोग। पेशाब बंद होने की बीमारी। करक। (७) वह वस्तु जिसे किसी को देने का वादा कर दिया गया हो।

निबंधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निबद्ध] (१) बंधन। उ०—तनु कंबु कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिए। अविनीत इंद्रिय निग्रही तिनके निबंधन जानिए।—केशव। (२) व्यवस्था। नियम। बंधेज। (३) कर्त्तव्य। बंधन। (४) हेतु। कारण। (५) गाँठ। (६) वीणा वा सितार की खूँटी। उपनाह। कान।

निबंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंधन। (२) बेड़ी।

निब—संज्ञा स्त्री० [अं०] लोहे की चद्दर की बनी हुई चोंच जो अँगरेजी कलमों की नोक का काम देती है। (यह ऊपर से खोंसी जाती है)।

निबकौरी—†संज्ञा स्त्री० [हिं० नीब, नीम+कौड़ी] (१) नीम का फल। निबौली। निबौरी। (२) नीम का बीज।

निबटना—क्रि० अ० [सं० निवर्त्तन, प्रा० निवट्टना] [संज्ञा निबटेरा, निबटाव] (१) निवृत्त होना। छुट्टी पाना। फ़ुरसत पाना। फारिग होना। खाली होना। जैसे, सब कामों से निबटना। (२) समाप्त होना। पूरा होना। किए जाने को बाकी न रहना। भुगतना। जैसे, काम निबटना। (३) निर्णीत होना। तै होना। अनिश्चित दशा में न रह जाना। जैसे, झगड़ा निबटना। (४) चुकना। खतम होना। न रह जाना। उ०—हे सुँदरी तेरो सुकृत मेरो ही सो हीन। फल सों जान्यो जात है मैं निरनै कर लीन। अधिक मनोहर अरुन नख उन अँगुरिन को पाय। गिरी फेर तू आय जब पुन्य गयो निबटाय।—लक्ष्मणसिंह। (५) शौच आदि से निवृत्त होना।

निबटाना—क्रि० स० [हिं० निबटना] (१) पूरा करना। समाप्त करना। खतम करना। करने को बाकी न छोड़ना। जैसे, काम निबटाना। (२) भुगताना। चुकाना। बेबाक करना। जैसे, कर्ज़ा निबटाना। (३) तै करना। निर्णीत करना। झंझट न रखना। जैसे, झगड़ा निबटाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

निभा वैसे ही थोड़े दिन और सही। (४) बराबर होता चलना। पूरा होना। सपरना। भुगतना। जैसे, यहाँ का काम तुमसे नहीं निभेगा। (५) किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना। पालन होना। पूरा होना। चरितार्थ होना। जैसे, वचन निभना, प्रतिज्ञा निभना। दे० "निबहना"।

संयो० क्रि०—जाना।

निभरम—वि० [सं० निर्भ्रम] भ्रमरहित। जिसे या जिसमें किसी प्रकार की शंका न हो। जिसे या जिसमें कोई खटका न हो।

क्रि० वि० निःशंक। बेखटके। बेधड़क।

निभरमा—वि० [सं० निर्भ्रम] जिसका परदा ढका न हो। जिसकी कलई खुल गई हो। जिसकी साख या मर्यादा न रह गई हो। जिसका विश्वास उठ गया हो।

निभरोस†—वि० [हिं० नि + भरोसा] [संज्ञा निभरोसा] जिसे भरोसा न हो। निराश। हताश।

निभरोसी†—वि० [हिं० नि = नहीं, भरोसा] (१) जिसे कोई भरोसा न रह गया हो। निराश। हताश। (२) जिसे किसी का आसरा भरोसा न हो। निराश्रय। निराधार। बिना सहारे का। हीन। उ०—कीन्हेसि कोइ निभरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार। छारहिं ते सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार।—जायसी।

निभागा—वि० [हिं० नि + भग, भाग्य] अभागा। बदकिस्मत।

निभाना—क्रि० स० [हिं० निबाहना] (१) निर्वाह करना। (किसी बात को) बराबर चलाए चलना। बनाए और जारी रखना। संबंध या परंपरा रक्षित रखना। जैसे, नाता निभाना, प्रीति निभाना, धर्म निभाना। (२) किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार करना। चरितार्थ करना। पूरा करना। पालन करना। जैसे, प्रतिज्ञा निभाना, वचन निभाना। उ०—सारंग वचन कह्यो करि हरि को सारंग वचन निभावति।—सूर। (३) निरंतर साधन करना। बराबर करते जाना। सपराना। चलाना। भुगताना। जैसे, अभी काम न छोड़ो, थोड़े दिन और निभा दो।

संयो० क्रि०—देना।

निभाव—संज्ञा पुं० दे० "निबाह"।

निभूत—वि० [सं०] भूत। व्यतीत। बीता हुआ।

निभृत—वि० [सं०] (१) धरा हुआ। रखा हुआ। धृत। (२) निश्चल। अटल। (३) गुप्त। छिपा हुआ। (४) बंद किया हुआ। (५) निश्चित। स्थिर। (६) नम्र। विनीत। (७) शांत। अनुद्विग्न। धीर। (८) निर्जन। एकांत। सूना। (९) भरा हुआ। पूर्ण। युक्त। (समास में)। (१०) अस्त होने के निकट (सूर्य्य या चंद्रमा)।

निभ्रांत—* वि० दे० "निर्भ्रांत"।

निमंत्रण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निमंत्रित] (१) किसी कार्य्य के लिये नियत समय पर आने के लिये ऐसा अनुरोध जिसका अकारण पालन न करने से दोष का भागी होना पड़ता है। बुलावा। आह्वान।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

(२) भोजन आदि के लिये नियत समय पर आने का अनुरोध। खाने का बुलावा। न्योता।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

विशेष—'आमंत्रण' और 'निमंत्रण' में यह भेद है कि निमंत्रण का पालन न करने पर दोष का भागी होना पड़ता है।

निमंत्रणपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा किसी पुरुष से भोज उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये अनुरोध किया गया हो।

निमंत्रना—*क्रि० स० [सं० निमंत्रण] न्योता देना। उ०—पुनि पुनि नृपहिं निमंत्रेउ मुनिवर। मान्यो नृप सब शासन मुनि कर।—रघुराज।

निमंत्रित—वि० [सं०] जो निमंत्रित किया गया हो। जिसे न्योता दिया गया हो। आहूत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निम—संज्ञा पुं० [सं०] शलाका। शंकु।

निमक‡—संज्ञा पुं० दे० "नमक"।

निमकी—संज्ञा स्त्री० [फा० नमक] (१) नीबू का अचार। (२) घी में तली हुई मैदे की मोयनदार नमकीन टिकिया।

निमकौड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "निबकौरी", "निबौली"।

निमग्न—वि० [सं०] [स्त्री० निमग्ना] (१) डूबा हुआ। मग्न। (२) तन्मय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निमछड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० छाँड़ना ?] ऐसा समय जिसमें कोई काम न हो। अवकाश। फुरसत। छुट्टी।

निमज्जक—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र आदि जलाशयों में डुब्बी लगानेवाला। गोते मारकर समुद्र आदि के नीचे की चीजों को निकाल कर जीविका करनेवाला।

निमज्जन—संज्ञा पुं० [सं०] डूब कर किया जानेवाला स्नान। अवगाहन।

निमज्जना*—क्रि० अ० [सं० निमज्जन] डूबना। गोता लगाना। अवगाहन करना। उ०—(क) सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।—तुलसी। (ख) देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे।—तुलसी।

निमज्जित—वि० [सं०] (१) डूबा हुआ। मग्न। (२) स्नात। नहाया हुआ।

निमटना—क्रि० अ० दे० "निबटना"।

लाज।—सूर। (२) पूरा करना। पालन करना। चरितार्थ करना। किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार करना। जैसे, वचन निबाहना। उ०—यह परतिज्ञा जो न निबाहौं। तौ तनु अपनो पावक दाहौं।—सूर। (३) निरंतर साधन करना। बराबर करते जाना। सपराना। जैसे, अभी काम न छोड़ो थोड़े दिन और निबाह दो।

संयो० क्रि०—देना।

निविड़–वि० दे० "निबिड़"।

निबुआ*–संज्ञा पुं० दे० "नीबू"।

निबुकना†*–क्रि० अ० [सं० निर्मुक्त, प्रा० निम्मुत्त] (१) छुटकारा पाना। छूटना। बंधन से निकलना। उ०—(क) निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निसाचर नारी।—तुलसी। (ख) सुग्रीवहु कै मुरछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती।—तुलसी। (ग) दीठि निसेनी चढ़ि चल्यो ललचि सुचित मुख गोर। चिबुक गड़ारे खेत मैं निबुकि गिरयो चित चोर।—श्रृं० सत०। (२) बंधन आदि का खिसकना।

संयो० क्रि०—जाना।

निबेड़ना–क्रि० स० [सं० निवृत्त, प्रा० निविड्ड] (१) (बंधन आदि) छुड़ाना। उन्मुक्त करना। बँधी, फँसी, या लगी वस्तु को अलग करना। (२) परस्पर मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। बिलगाना। छाँटना। चुनना। (३) उलझन दूर करना। सुलझाना। लगाव फँसाव दूर करना। (४) निबटाना। निर्णय करना। तै करना। फैसल करना। (५) छोड़ना। हटाना। दूर करना। अलग करना। (६) पूरा करना। निबटाना। सपराना। भुगताना।

निबेड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० निबेड़ना] (१) छुटकारा। मुक्ति। (२) बचाव। उद्धार। (३) एक में मिली जुली वस्तुओं के अलग होने की क्रिया या भाव। बिलगाव। छाँट। चुनाव। (४) सुलझाने की क्रिया या भाव। उलझन या फँसाव दूर होना। (५) त्याग। (६) निबटेरा। भुगतान। समाप्ति। चुकती। (७) निर्णय। फैसला।

निबेरना–क्रि० स० [सं० निवृत्त, प्रा० निविड्ड] (१) (बंधन आदि) छुड़ाना। उन्मुक्त करना। बँधी, फँसी या लगी वस्तु को अलग करना। उ०—औरन की तोहिं का परी अपनी आप निबेर।—कबीर। (२) एक में मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। बिलगाना। छाँटना। चुनना। उ०—(क) नैना भए पराए चेरे। नंदलाल के रंग गए रँगि अब नाहीं बस मेरे। यद्यपि जतन किए जुगवति हौं, स्यामल शोभा घेरे। तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निवरत नाहिं निबेरे।—सूर। (ख) आगे भए हनुमान पाछे नील जांबवान लंका के निसंक सूर मारे हैं निबेरि कै।—हनुमान। (३) उलझन दूर करना। सुलझाना। फँसाव या अड़चन दूर करना। (४) निर्णय करना। तै करना। फैसल करना। उ०—(क) जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो। तेहि कौतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो।—तुलसी। (ख) प्रण करि कै झूठो करि डारत सकल धरम तेहि केरो। जात रसातल तनु ते तुरतहि वेद पुरान निबेरो।—रघुराज। (५) छोड़ना। त्यागना। तजना। उ०—मारी मरै कुसंग की ज्यों केरे ढिग बेर। वह हालै वह जीरइ साकट संग निबेर।—कबीर। (६) दूर करना। हटाना। मिटाना। उ०—मिटै न बिपति भजे बिनु रघुपति श्रुति संदेह निबेरो।—तुलसी। (७) (काम) पूरा करना। निबटाना। सपराना। भुगताना। उ०—प्रमुदित मुनिहि भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी।—तुलसी।

निबेरा–संज्ञा पुं० [हिं० निबेरना] (१) छुटकारा। मुक्ति। उद्धार। बचाव। उ०—व्याकुल अति भवजाल बीच परि प्रभु के हाथ निबेरो।—सूर। (२) मिली जुली वस्तुओं के अलग अलग होने की क्रिया या भाव। बिलगाव। छाँट। चुनाव। (३) सुलझने की क्रिया या भाव। उलझन या फँसाव का दूर होना। (४) निर्णय। फैसला। निबटेरा। उ०—(क) जैसे बरत भवन तजि भजिए तैसहि गए फेरि नहिं हेरयो। सूर स्याम रस रसे रसीले पै को करै निबेरो।—सूर। (ख) ब्राह्मण नृपति युधिष्ठिर केरो। जानै सब गुन ज्ञान निबेरो।—सबल। (५) (काम का) निबटेरा। भुगतान। समाप्ति। पूर्ति।

निबेहना*–क्रि० स० दे० "निबेरना"

निबौरी–*†–संज्ञा स्त्री० दे० "निबौली"।

निबौली–संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब+वल्ल] निबकौरी। नीम का फल। उ०—(क) दाख छाँड़ि कै तजि कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै? गुणनिधान तजि सूर साँवरे को गुणहीन निबैहै। (ख) तो रस राच्यो आन बस कह्यो कुटिल मति कूर। जीभ निबौरी क्यों लगै बौरी चाख खजूर।—बिहारी।

निभ–संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश। प्रभा। चमक दमक।

वि० तुल्य। समान। उ०—छतज-नयन उर बाहु बिसाला। हिमिगिरि निभ तनु कछु एक लाला।—तुलसी।

निभना–क्रि० अ० [हिं० निबहना] (१) पार पाना। निकलना। ब[?]ना। छुट्टी पाना। छुटकारा पाना। (२) निर्वाह होना। बराबर चला चलना। जारी रहना। लगातार बना रहना। संबंध, परंपरा आदि की रक्षा होना। जैसे, (क) साथ निभना, प्रीति निभना, मित्रता निभना, नाता निभना। (ख) इनकी उनकी मित्रता कैसे निभेगी? (३) किसी स्थिति के अनुकूल जीवन व्यतीत होना। गुजारा होना। रहायस होना। जैसे, (क) तुम वहाँ निभ नहीं सकते। (ख) जैसे इतने दिन

निमीलन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलक मारना। निमेष। (२) मरण। (३) पलक मारने भर का समय। पल। क्षण।

निमीलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आँख की झपक। (२) व्याज। छल।

निमीलित–वि० [सं०] (१) बंद। ढका हुआ। (२) मृत। मरा हुआ।

निमुहाँ–वि० [हिं० नि = नहीं + मुहँ] [स्त्री० निमुहीं] जिसे बोलने को मुहँ न हो। न बोलनेवाला। कम बोलनेवाला। चुपका।

निमूल–वि० [सं०] (१) मूलरहित। (२) प्रकाशन।

निमेख–संज्ञा० पु० दे० "निमेष"।

निमेष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलक का गिरना। आँख का झपकना। उ०—(क) कहा करौं नीके करि हरि को रूप रेख नहिं पावति। संगहि संग फिरति निसि बासर नैन निमेष न लावति।—सूर। (ख) मो दर ते डरपै सुरराजहु सोवत नैन लगाय निमेषै।—हनुमान।

क्रि० प्र०—लगाना।

(२) पलक मारने भर का समय। पलक के स्वभावतः उठने और गिरने के बीच का काल। इतना वक्त जितना पलकों के उठकर फिर गिरने में लगता है। पल। क्षण। (३) आँख का एक रोग जिसमें आँखें फड़कती हैं। (४) एक यक्ष का नाम। (महाभारत)

निमेषक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलक। (२) खद्योत। जुगनू।

निमेषकृत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

निमेषण–संज्ञा पुं० [सं०] पलक गिरना। आँख मुँदना।

निमेषाची–संज्ञा स्त्री० [सं०] राक्षस विशेष।

निमोना–संज्ञा पुं० [सं० नवान्न] चने या मटर के पिसे हुए हरे दानों को हलदी मसाले के साथ घी में भून कर बनाया हुआ रसेदार व्यंजन। उ०—(क) ककरी, कचरी और कचनारयो। सरस निमोननि स्वाद सँवारयो।—सूर। (ख) बहुत मिरिच दै कियो निमोना। बेसन के दस बीसक दोना।—सूर।

निमौनी–संज्ञा स्त्री० [सं० नवान्न] वह दिन जब ईख पहले पहल काटी जाती है।

निम्न–वि० [सं०] नीचा।

निम्नग–संज्ञा पुं० [सं०] नीचे जानेवाला।

निम्नगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

निम्मन–वि० दे० "नीमन"।

निम्लोच–संज्ञा पु० [सं०] सूर्य का अस्त होना।

निम्लोचनी–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण की नगरी का नाम जो मानसोत्तर पर्वत के पश्चिम है।

निम्लोचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

नियंतव्य–वि० [सं०] नियमित होने के योग्य। प्रतिबद्ध होने योग्य। शासन योग्य।

नियंता–संज्ञा पुं० [सं० नियन्तृ] [स्त्री नियंत्री] (१) नियम बाँधनेवाला। व्यवस्था करनेवाला। कायदा बाँधनेवाला। (२) कार्य्य को चलानेवाला। विधायक। (३) शासक। नियम पर चलानेवाला। शासक। (४) घोड़ा फेरनेवाला। घोड़ा निकालनेवाला। (५) विष्णु।

नियंत्रित–वि० [सं०] नियम से बँधा हुआ। कायदे का पाबंद। जिसकी क्रिया सर्वथा स्वच्छंद न हो। जिस पर किसी प्रकार का प्रतिबंध हो। प्रतिबद्ध।

नियत–वि० [सं०] (१) नियम द्वारा स्थिर। बँधा हुआ। परिमित। संयत। बद्ध। पाबंद। (२) ठहराया हुआ। स्थिर। ठीक किया हुआ। निश्चित। मुकर्रर। जैसे, किसी काम के लिये कोई दिन नियत करना, वेतन नियत करना। (३) नियोजित। स्थापित। प्रतिष्ठित। मुकर्रर। तैनात। जैसे, किसी पद पर या काम पर नियत करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पु० महादेव। शिव।

संज्ञा स्त्री० दे० "नीयत"।

नियत व्यावहारिक काल–संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पुण्य, दान, व्रत, श्राद्ध, यात्रा, विवाह इत्यादि के लिये नियत समय।

विशेष—ज्योतिष में कालमान नौ प्रकार के माने गए हैं सौर, सावन, चांद्र, नाक्षत्र, पित्र्य, दिव्य, प्राजापत्य (मन्वंतर), ब्राह्म (कल्प), और बार्हस्पत्य। इनमें से ऊपर लिखी बातों के लिये तीन प्रकार के कालमान लिए जाते हैं—सौर चांद्र और सावन। संक्रांति, उत्तरायण, दक्षिणायन आदि पुण्य काल सौर काल के अनुसार नियत किए जाते हैं। तिथि, करण, विवाह और, व्रत, उपवास और यात्रा इत्यादि में चांद्र काल लिया जाता है। जन्म, मरण (सूतक), चांद्रायण आदि प्रायश्चित्त, यज्ञदिनाधिपति, मासाधिपति वर्षाधिपति और ग्रहों की मध्यगति आदि का निर्णय सावन काल द्वारा होता है।

नियतात्मा–वि० [सं० नियतात्मन्] अपने ऊपर प्रतिबंध रखनेवाला। अपने आपको वश में रखनेवाला। संयमी। जितेंद्रिय।

नियताप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में अन्य उपायों को छोड़ एक ही उपाय से फलप्राप्ति का निश्चय। जैसे, किसी का यह कहना कि अब तो ईश्वर को छोड़ और कोई उपाय नहीं है, वे अवश्य फल देंगे। (साहित्य दर्पण)

नियति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नियत होने का भाव। बंधेज। बद्ध होने का भाव। (२) ठहराव। स्थिरता। मुकर्ररी। (३) भाग्य। दैव। अदृष्ट। (४) बँधी हुई बात। अवश्य होने-

निमटाना–क्रि० स० दे० "निवटाना"।

निमटेरा–संज्ञा पुं० दे० "निवटेरा"।

निमता*–वि० [हिं० नि + माँता] जो माता न हो। जो उन्मत्त न हो। उ०—माँते निमते गरजहिँ बाँधे। निसि दिन रहैं महावत काँधे।—जायसी।

निमरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो मध्यभारत में होती है। बरही। बँगई।

निमाज़–संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों के मत के अनुसार ईश्वर की आराधना जो दिन रात में पाँच बार की जाती है। इसलाम मत के अनुसार ईश्वर-प्रार्थना।

क्रि० प्र०—गुजारना।—पढ़ना।

निमाजबंद–संज्ञा पुं० [फा०] कुश्ती का एक पेच जिसमें जोड़ के दाहिनी ओर बैठकर उसकी दाहिनी कलाई को अपने दाहिने साथ से खींचा जाता है और फिर अपना बायाँ पैर उसकी पीठ की ओर से लाकर उसकी दाहिनी भुजा को इस प्रकार बाँध लिया जाता है कि वह चूतड़ के बीचो बीच आ जाती है। इसके बाद उसके दाहिने अँगूठे को अपने दाहिने हाथ से खींचते हुए बाँए हाथ से उसकी जाँघिया पकड़कर उसे उलटकर चित कर देते हैं।

विशेष—इस पेच के विषय में प्रसिद्ध है कि इसके आविष्कर्त्ता इसलामी मल्लविद्या के आचार्य्य अली साहब हैं। एक बार किसी जंगल में एक दैत्य से उन्हें मल्लयुद्ध करना पड़ा। उसे नीचे तो वे ले आए, पर चित करने के लिये समय न था, क्योंकि नमाज का समय बीत रहा था। इसलिये उन्होंने उसे इस प्रकार बाँधा कि उसे उसी स्थिति में रखते हुए नमाज पढ़ सकें। जब वे खड़े होते तब उसे भी खड़ा होना और जब बैठते या झुकते तब बैठना या झुकना पड़ता। यही इसका निमाजबंद नाम पड़ने का कारण है।

निमाज़ी–वि० [फा० निमाज़] (१) जो नियमपूर्वक निमाज़ पढ़ता हो। (२) दीनदार। धार्मिक (मुसलमान)।

निमान*–संज्ञा पुं० [सं० निम्न = गड्ढा (वेद)] (१) नीचा स्थान। गड्ढा। (२) जलाशय। उ०—खोजहुँ दंडक जनस्थाना। सैल सिखर सर सरित निमाना।

निमाना–वि० [सं० निम्न] [स्त्री० निमानी] (१) नीचा। ढलुवाँ। नीचे की ओर गया हुआ। उ०—फिरत न पाछे नीर ज्यों भूमि निमानी जाय। सो गति मो मन की भई कीजै कौन उपाय।—लक्ष्मणसिंह। (२) नम्र। विनीत। सरल स्वभाव का। सीधा सादा। भोला भाला। (३) दब्बू।

निमि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक ऋषि जो दत्तात्रेय के पुत्र थे। (२) राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। इन्हीं से मिथिला का विदेह वंश चला। पुराणों में लिखा है कि एक बार महाराज निमि ने सहस्रवार्षिक यज्ञ कराने के लिये वसिष्ठ जी को बुलाया। वसिष्ठ जी ने कहा मुझे देवराज इंद्र पहले से ही पंचशत वार्षिक यज्ञ में वरण कर चुके हैं। उनका यज्ञ कराके मैं आपका यज्ञ करा सकूँगा। वसिष्ठ के चले जाने पर निमि ने गोतमादि ऋषियों को बुलाकर यज्ञ करना प्रारंभ किया। इंद्र का यज्ञ हो जाने पर जब वसिष्ठ जी देवलोक से आए तब उन्हें मालूम हुआ कि निमि गोतम को बुलाकर यज्ञ कर रहे हैं। वसिष्ठ जी ने निमि के यज्ञ मंडप में पहुँच कर राजा निमि को शाप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहेगा। वसिष्ठ के शाप देने पर राजा ने भी वसिष्ठ को शाप दिया कि आपका भी शरीर न रहेगा। दोनों का शरीर छूट गया। वसिष्ठ जी तो अपना शरीर छोड़ कर मित्रावरुण के वीर्य्य से उत्पन्न हुए। यज्ञ की समाप्ति पर देवताओं ने निमि को फिर उसी शरीर में रख कर अमर कर देना चाहा पर राजा निमि ने अपने छोड़े हुए शरीर में जाना नहीं चाहा और देवताओं से कहा कि शरीर के त्यागने में मुझे बड़ा दुःख हुआ है, मैं फिर शरीर नहीं चाहता। देवताओं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उनको मनुष्यों की आँखों की पलक पर जगह दी। उसी समय से निमि विदेह कहलाए और उनके वंशवाले भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। उ०—भये विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।—तुलसी। (३) आँखों का मिचना। निमेष।

निमिख–संज्ञा पुं० दे० "निमिष"।

निमित्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हेतु। कारण। (२) चिह्न। लक्षण। (३) शकुन। सगुन। (४) उद्देश्य। फल की ओर लक्ष्य। जैसे, पुत्र के निमित्त यज्ञ करना।

निमित्तक–वि० [सं०] किसी हेतु से होनेवाला। जनित। उत्पन्न। उ०—उदर निमित्तक बहुकृत वेषा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० चुंबन।

निमित्त कारण–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी सहायता या कर्त्तृत्व से कोई वस्तु बने। जैसे, घड़े के बनने के निमित्त कारण कुम्हार, चाक, दंड, सूत्र इत्यादि। (न्याय)। विशेष—दे० "कारण"।

निमिराज*–संज्ञा पुं० [सं०] निमिवंशी राजा जनक। उ०—दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात। बैठे सब वट बिटपतर मन मलीन कृशगात।—तुलसी। दे० "निमि"।

निमिष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँखों का ढँकना। पलकों का गिरना। आँख मिचना। निमेष। (२) उतना काल जितना पलक गिरने में लगता है। पलक मारने भर का समय। (३) सुश्रुत के अनुसार एक रोग जो पलक पर होता है।

निमिष-क्षेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] नैमिषारण्य।

निमिषित–वि० [सं०] निमीलित। मिचा हुआ।

वाला। नियम या कायदा बाँधनेवाला। (२) व्यवस्था करनेवाला। विधान करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। (३) मारनेवाला। (४) पोतवाह। माझी। मल्लाह।

नियामकगण-संज्ञा पुं० [सं०] रसायन में पारे को मारनेवाली ओषधियों का समूह।

विशेष—सर्पांक्षी, बनककड़ी, सतावर, शंखाहुली, सरफोंका, पुनर्नवा (गदहपूर्ना), मूसाकानी, मत्स्याक्षी, ब्रह्मदंडी, शिखंडिनी (घुँघची), अनंता, काकजंघा, काकमाची, पोतिक (पोई का साग), विष्णुक्रांता, पीली कटसरैया, सहदेइया, महाबला, बला, नागबला, मूर्वा, चकवँड़, करंज (कंजा), पाठा, नील, गोजिह्वा इत्यादि।

नियामत-संज्ञा स्त्री० [अ० नेअमत] (१) अलभ्य पदार्थ। दुर्लभ पदार्थ। (२) स्वादिष्ट भोजन। उत्तम व्यंजन। मजेदार खाना। (३) धन। दौलत। माल।

नियामिका-वि० स्त्री० [सं०] नियम करनेवाली। दे० "नियामक"।

नियार-संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा ?] जौहरी या सुनारों की दूकान का कूड़ा कतवार।

नियारा-†वि० [सं० निर्निकट, प्रा० निन्निअड़] अलग। जुदा। दूर। उ०—आज नेह सो होइ नियारा। आज प्रेम सँग चला पियारा।—जायसी।

संज्ञा पुं० सुनारों या जौहरियों के यहाँ का कूड़ा करकट।

नियारिया-संज्ञा पुं० [हिं० नियारा, न्यारा] (१) मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करनेवाला। (२) सुनारों या जौहरियों की राख, कूड़ा करकट आदि में से माल निकालनेवाला। (३) चतुर मनुष्य। चालाक आदमी।

नियारे*†-अव्य० दे० "न्यारे"।

नियाव†-संज्ञा पुं० दे० "न्याव", "न्याय"।

नियुक्त-वि० [सं०] (१) नियोजित। लगाया हुआ। (२) (किसी काम में) लगाया हुआ। जोता हुआ। तैनात। मुकर्रर। (३) तत्पर किया हुआ। प्रेरित। (४) स्थिर किया हुआ। ठहराया हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नियुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुकर्ररी। तैनाती।

नियुत्-संज्ञा पुं० [सं०] वायु का अश्व। (वैदिक)

नियुत-वि० [सं०] (१) एक लाख। लक्ष। (२) दस लाख।

नियुत्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

नियुद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] बाहुयुद्ध। हाथापाई। कुश्ती।

नियोक्तव्य-वि० [सं०] नियोजित करने योग्य।

नियोक्ता-संज्ञा पुं० [सं० नियोक्तृ] (१) नियोजित करनेवाला। लगानेवाला। (२) नियोग करनेवाला।

नियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नियोजित करने का कार्य्य। किसी काम में लगाना। तैनाती। मुकर्ररी। (२) प्रेरणा। (३) अवधारण। (४) प्राचीन आर्यों की एक प्रथा जिसके अनुसार यदि किसी स्त्री का पति न होता या उसे अपने पति से संतान न होती तो वह अपने देवर या पति के और किसी गोत्रज से संतान उत्पन्न करा लेती थी (मनु)। पर कलि में यह रीति वर्जित है। (५) आज्ञा। (६) निश्चय।

नियोगी-वि० [सं०] (१) जो नियोजित किया गया हो। जो लगाया या मुकर्रर किया गया हो। (२) जो किसी स्त्री के साथ नियोग करे।

नियोजक-संज्ञा पुं० [सं०] नियोजित करनेवाला। काम में लगानेवाला। मुकर्रर करनेवाला।

नियोजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नियोजित, नियोज्य, नियुक्त] किसी काम में लगाना। तैनात या मुकर्रर करना। प्रेरणा।

नियोजित-वि० [सं०] नियुक्त किया हुआ। लगाया हुआ। मुकर्रर। तैनात।

नियोद्धा-संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल योद्धा। कुश्ती लड़नेवाला। पहलवान।

निर्-अव्य० दे० "निस्"।

निरंकार*-संज्ञा पुं० दे० "निराकार"।

निरंकुश-वि० [सं०] जिसके लिये कोई अंकुश या प्रतिबंध न हो। जिस पर कोई दबाव न हो। जिसके लिये कोई रोक या बंधन न हो। बिना डर दाब का। बेकहा। स्वेच्छाचारी। उ०—निपट निरंकुश अबुध असंकू।—तुलसी।

निरंग-वि० [सं०] (१) अंगरहित। (२) केवल। खाली। जिसमें कुछ न हो। जैसे, यह दूध निरंग पानी है। (३) रूपक अलंकार का एक भेद।

विशेष—रूपक दो प्रकार का होता है—एक अभेद दूसरा तद्रूप्य। अभेद रूपक भी तीन प्रकार का होता है—सम, अधिक और न्यून। इनमें से 'सम अभेद रूपक' के तीन भेद हैं—संग वा सावयव, निरंग वा निरवयव और परंपरित। जहाँ उपमेय में उपमान का इस प्रकार आरोप होता है कि उपमान के और सब अंग नहीं आते वहाँ निरवयव या निरंग रूपक होता है—जैसे, रैनन नींद न चैन हिये छिनहूँ घर में कछु और न भावै। सींचन को अब प्रेमलता यहि के हिय काम प्रवेश लखावै। यहाँ प्रेम में केवल लता का आरोप है उसके और अंगों या सामग्रियों का कथन नहीं है। निरंग या निरवयव रूपक भी दो प्रकार का होता है—शुद्ध और मालाकार। ऊपर जो उदाहरण है वह शुद्ध निरवयव का है क्योंकि उसमें एक उपमेय में एक ही उपमान का (प्रेम में लता का) आरोप हुआ है। मालाकार निरवयव वह है जिसमें एक उपमेय में बहुत से उपमानों का आरोप हो। जैसे, भँवर सँदेह की अछेह आपरत यह, गेह त्यों अनम्रता

वाली बात। (५) पूर्वकृत कर्म का परिणाम जिसका होना निश्चित होता है। (६) जड़। प्रकृति। (जैन)

नियती–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। भगवती।

नियतेंद्रिय–वि० [सं०] इंद्रियों को वश में रखनेवाला। जितेंद्रिय।

नियम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधि वा निश्चय के अनुकूल प्रतिबंध। परिमिति। रोक। पाबंदी। नियंत्रण। जैसे, तुम कोई काम नियम से नहीं करते।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।

विशेष—जैनग्रंथों में चौदह वस्तुओं के परिमाण बाँधने को नियम कहा है— जैसे, द्रव्यनियम, विनयनियम, उपानह-नियम, तांबूलनियम, आहारनियम, वस्त्रनियम, पुष्पनियम, वाहननियम, शय्यानियम, इत्यादि।

(२) दबाव। शासन। (३) बँधा हुआ क्रम। चला आता हुआ विधान। परंपरा। दस्तूर। २ से, (क) यहाँ तक आने का उनका नित्य का नियम है। (ख) सबेरे उठने का नियम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(४) ठहराई हुई रीति। विधि। व्यवस्था। पद्धति। कायदा। कानून। जाब्ता। जैसे, ब्रह्मचर्य्य के नियम, व्यवहार के नियम, प्रकृति के नियम।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।—होना।

मुहा०—नियम का पालन=नियम के अनुकूल व्यवहार। क़ायदे की पाबंदी। नियम का भंग=नियम के प्रतिकूल आचरण।

(५) ऐसी बात का निर्धारण जिसके होने पर दूसरी बात का होना निर्भर किया गया हो। शर्त्त। जैसे, दानपत्र के नियम बहुत कड़े हैं।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

(६) किसी बात को बराबर करते रहने का संकल्प। प्रतिज्ञा। व्रत। जैसे, आज से यह नियम कर लो कि झूठ न बोलेंगे।

विशेष—योग के आठ अंगों में एक नियम भी है। शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है। शौच दो प्रकार का होता है—बाह्य और आभ्यंतर। जल, मिट्टी आदि से शरीर को साफ रखना बाह्य शौच है। करुणा, मैत्री, भक्ति आदि सात्विक वृत्तियों को धारण करना आभ्यंतर शौच है। आवश्यक से अधिक की इच्छा न करना ही संतोष है। तप से अभिप्राय है गरमी सरदी सहना, धर्मशास्त्रों में लिखे हुए 'कृच्छ्र चांद्रायण' आदि व्रतों का करना, सब कर्मों को ईश्वर के नाम पर (ईश्वरार्पण) करना ईश्वरप्रणिधान है। याज्ञवल्क्य स्मृति में दस नियम गिनाए गए हैं—स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेदपाठ, इंद्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अक्रोध और अप्रमाद।

जैन शास्त्र में गृहस्थधर्म के अंतर्गत १२ प्रकार के नियम कहे गए हैं—प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तदान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, दिग्व्रत, भोगोपभोग नियम, धनार्थ दंड निषेध, सामयिक शिक्षाव्रत, देशावकाशिक शिक्षाव्रत, औषध और अतिथि संविभाग।

(७) एक अर्थालंकार जिसमें किसी बात का एक ही स्थान पर नियम कर दिया जाय अर्थात् उसका होना एक ही स्थान पर बतलाया जाय। जैसे, है तुम ही कलिकाल में गुनगाहक नरराय। (८) विष्णु। (९) महादेव।

नियमतंत्र–वि० [सं०] नियमों से बँधा हुआ। नियमों के अधीन।

नियमन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नियमित, नियम्य] (१) नियमबद्ध करने का कार्य्य। कायदा बाँधना। (२) शासन।

नियमपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञापत्र। शर्त्तनामा।

नियमपर–वि० [सं०] नियमानुवर्त्ती। नियमाधीन।

नियमबद्ध–वि० [सं०] नियमों से बँधा हुआ। नियमों के अनुकूल। कायदे का पाबंद।

नियमस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या।

नियमित–वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। क्रमबद्ध। (२) नियमों के भीतर लाया हुआ। नियमबद्ध। बाकायदा। कायदे कानून के मुताबिक़।

नियमी–संज्ञा पुं० [सं०] नियम पालन करनेवाला।

नियम्य–वि० [सं०] (१) नियमित करने योग्य। नियमों से बाँधने योग्य। प्रतिबद्ध होने योग्य। (२) शासित होने योग्य। रोके या दबाए जाने योग्य।

नियर–†अव्य० [सं० निकट, प्रा० निअड] समीप। पास। नजदीक।

नियराई–†संज्ञा स्त्री० [हिं० नियर + आई (प्रत्य०)] निकटता। सामीप्य।

नियराना–†क्रि० अ० [हिं० नियर + आना (प्रत्य०)] निकट पहुँचना। पास होना। नजदीक आना या जाना। उ०—आगे चले बहुरि रघुराई। ऋष्यमूक पर्वत नियराई।—तुलसी।

नियरे–†अव्य० दे० "नियर"।

नियान–*संज्ञा पुं० [सं० निदान] अंत। परिणाम।

अव्य० अंत में। आखिर। उ०—(क) आगिनि उठै जरि बुझै नियाना। धुवाँ उठा उठि बीच बिलाना।—जायसी। (ख) कोउ काहू का नाहि नियाना। मया मोह बाँधा अरुझाना।—जायसी।

नियाम–संज्ञा पुं० [सं०] नियम।

नियामक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नियामिका] (१) नियम करने-

तो मैं निरचु हुई अब चलकर उस राजर्षि का वृत्तांत देखूँ।—लक्ष्मणसिंह।

निरच्छ‡–वि० [सं० निरक्षि] बिना आँख का। अंधा।

निरजल–वि० दे० "निर्जल"।

निरज़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] संगतराशों की महीन टाँकी जिससे संगमर्मर पर काम बनाया जाता है।

निरज़ोस–संज्ञा पुं० [सं० निर्यास] (१) निचोड़। (२) निर्णय।

निरज़ोसी–वि० [हिं० निरज़ोस] (१) निचोड़ निकालनेवाला। (२) निर्णय करनेवाला।

निरझर‡–संज्ञा पुं० दे० "निर्झर"।

निरझरनी‡–संज्ञा स्त्री० दे० "निर्झरिणी"।

निरझरी‡–संज्ञा स्त्री० पु० दे० "निर्झरी"।

निरत–वि० [सं०] किसी काम में लगा हुआ। तत्पर। लीन। मशगूल।

‡संज्ञा पुं० दे० "नृत्य"।

निरतना*–क्रि० स० [सं० नर्तन] नाचना। नृत्य करना।

निरति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अत्यंत रति। अधिक प्रीति। (२) लिप्त होने का भाव। लीन होने का भाव।

निरतिशय–वि० [सं०] जिससे और अतिशय न हो सके। हद दरजे का।

संज्ञा पुं० परमेश्वर।

निरदई–वि० दे० "निर्दय"।

निरदय*–वि० दे० "निर्दय"।

निरधातु–वि० [सं० निर्धातु] वीर्यहीन। शक्तिहीन। अशक्त। उ०—धातु कमाय सिखे तू जोगी। अब कस अस निरधातु वियोगी।—जायसी।

निरधार‡–संज्ञा पुं० [सं०] निश्चय करने या ठहराने का कार्य।

निरधारना–क्रि० स० [सं० निर्धारण] (१) निश्चय करना। ठहराना। स्थिर करना। (२) मन में धारण करना। समझना। उ०—एक एक अंग देखि अनेकन उडुगन वारिय। असत मनहु सिसुमार चक्र तन इमि निरधारिय।—गोपाल।

निरना–वि० दे० "निरन्ना"।

निरनुनासिक–वि० [सं०] जिसका उच्चारण नाक के संबंध से न हो। जैसे, निरनुनासिक वर्ण।

निरनुयोज्यानुयोग–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक निग्रहस्थान। दे० "निग्रहस्थान"।

निरनै‡–संज्ञा पुं० दे० "निर्णय"।

निरन्न–वि० [सं०] (१) अन्नरहित। बिना अन्न का। (२) निराहार। जो अन्न न खाए हो। जैसे, उस दिन वह निरन्न रह गया।

निरन्ना–वि० [सं० निरन्न] जो अन्न न खाए हो। निराहार।

मुहा०—निरन्ने मुँह=बिना मुँह में अन्न डाले। बिना कुछ खाए। बासी मुँह। जैसे, यह दवा निरन्ने मुँह पीनी चाहिए।

निरपना‡–वि० [सं० उप० निस्, निर+हिं० अपना] (१) जो अपना न हो। जो आत्मीय न हो। बिराना। गैर। बेगाना। उ०—जानकीजीवन ! मेरे रावरे बदन फेरे ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने ?—तुलसी।

निरपराध–वि० [सं०] अपराध रहित। बेकसूर। निर्दोष।

क्रि० वि० बिना अपराध के। बिना कोई कसूर किए। जैसे, तुमने उसे निरपराध मारा।

निरपराधी*–वि० दे० "निरपराध"।

निरपवर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें भाजक के द्वारा भाग लगे। (गणित)

निरपवाद–वि० [सं०] (१) अपवादशून्य। जिसकी कोई बुराई न की जाय। (२) निर्दोष। (३) जिसका कभी अन्यथा न हो। जैसे, निरपवाद नियम।

निरपाय–वि० [सं०] जिसका विनाश न हो।

निरपेक्ष–वि० [सं०] (१) जिसे किसी बात की अपेक्षा या चाह न हो। बेपरवा। (२) जो किसी पर अवलंबित न हो। जो किसी पर निर्भर न हो। (३) जिसे कुछ लगाव न हो। अलग। तटस्थ।

संज्ञा पुं० (१) अनादर। (२) अवहेलना।

निरपेक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अपेक्षा या चाह का अभाव। (२) लगाव का न होना। (३) अवज्ञा। परवा न होना। (४) निराशा।

निरपेक्षित–वि० [सं०] (१) जिसकी अपेक्षा या चाह न की गई हो। (२) जिसके साथ लगाव न रखा गया हो।

निरपेक्षी–वि० [सं० निरपेक्षिन्] (१) अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। (२) लगाव न रखनेवाला।

निरबंसी–वि० [सं० निर्वंश] जिसे वंश या संतान न हो।

निरबर्त्ती*–संज्ञा पुं० [सं० निवृत्त] विरागी। त्यागी।

निरबल‡–वि० दे० "निर्बल"।

निरबहना‡–क्रि० अ० [सं० निर्वहन] निभना। चला चलना। निर्वाह होना। उ०—ताते न तरनि ते, न सीरे सुधाकर हूँ ते सहज समाधि निरबही है।—तुलसी।

निरबान‡–संज्ञा पुं० दे० "निर्वाण"।

निरबिसी–संज्ञा स्त्री० दे० "निर्विषी"।

निरबेरा‡–संज्ञा पुं० दे० "निबेरा"।

निरभय‡–वि० दे० "निर्भय"।

निरभर‡–वि० दे० "निर्भर"।

निरभिमान–वि० [सं०] अहंकारशून्य। अभिमानरहित।

निरभिलाप–वि० [सं०] अभिलाषारहित। इच्छाशून्य।

की देह दुति हारी है। दोष की निधान, कोटि कपट प्रधान जामें, मान न विश्वास द्रुम ज्ञान की कुठारी है। कहै तोष हरि स्वर्गद्वार की विघन धार, नरक अपार की विचार अधिकारी है। भारी भयकारी यह पाप की पिटारी नारी क्यों करि विचारि याहि भाखैं सुख प्यारी है।

यहाँ एक स्त्री उपमेय में सँदेह का भँवर, अविनय का घर, इत्यादि बहुत से आरोप किए गए हैं।

वि० [हिं० उप० नि = नहीं + रंग] (१) बेरंग। बदरंग। विवर्ण। (२) फीका। उदास। बेरौनक। उ०—सो घनि पान चून भइ चोली। रंग रँगील, निरँग भइ डोली।—जायसी।

निरंजन–वि० [सं०] (१) अंजन रहित। बिना काजल का। जैसे निरंजन नेत्र। (२) कल्मषशून्य। दोषरहित। (३) माया से निर्लिप्त। (ईश्वर का एक विशेषण)

संज्ञा पुं० (१) परमात्मा। (२) महादेव।

निरंजना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूर्णिमा। (२) दुर्गा का एक नाम।

निरंजनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] साधुओं का एक संप्रदाय।

विशेष—कहते हैं कि इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक कोई निरानंद स्वामी थे। उन्होंने निरंजन, निराकार ईश्वर की उपासना चलाई थी, इससे उनके संप्रदाय को निरंजनी संप्रदाय कहने लगे। किंतु आजकल निरंजनी साधु रामानंद के मतानुसार साकार उपासना ग्रहण करके उदासी वैष्णवों में हो गए हैं। ये कौपीन पहनते तथा तिलक और कंठी धारण करते हैं। मारवाड़ में इनके अखाड़े बहुत हैं।

निरंतर–वि० [सं०] (१) अंतर रहित। जिसमें या जिसके बीच अंतर या फासला न हो। जो बराबर चला गया हो। अविच्छिन्न। (देश के संबंध में)। (२) निविड़। घना। गझिन। (३) जिसकी परंपरा खंडित न हो। अविच्छिन्न। लगातार होनेवाला। बराबर होनेवाला। जैसे, निरंतर प्रवाह। (काल के संबंध में)। (४) सदा रहनेवाला। बराबर बना रहनेवाला। अविचल। स्थायी। जैसे, निरंतर नियम, निरंतर प्रेम। (५) जिसमें भेद वा अंतर न हो। जो समान या एक ही हो। (६) जो अंतर्धान न हो। जो दृष्टि से ओझल न हो।

क्रि० वि० लगातार। बराबर। सदा। हमेशा। जैसे, उन्नति निरंतर होती आ रही है।

निरंध–वि० [सं० निरंध = जिससे बढ़कर अंधा न हो] (१) भारी अंधा। (२) महा मूर्ख। ज्ञानशून्य। उ०—जाका गुरु है आँधरा चेला खरा निरंध। अंधे को अंधा मिला परा काल के फंद।—कबीर। (३) बहुत अँधेरा। उ०—अंध ज्यों अंधनि साथ निरंध कुआँ परिहूँ न हिए पछितानो।—केशव।

वि० [सं० निरंधस्] बिना अन्न का। निरन्न।

निरंबु–वि० [सं०] (१) निर्जल। बिना पानी का। (२) जो जल न पिए। जो बिना पानी के रहे। (३) जिसमें बिना जल के रहना पड़े। जैसे, निरंबु व्रत।

निरंभ–वि० [सं० निरंभस्] (१) निर्जल। (२) जो पानी न पिए। बिना पानी पिए रह जानेवाला। उ०—प्रात अरंभ की खंभ लगी निरदंभ निरंभ सँभारे न सासुनि।—देव।

निरंश–वि० [सं०] (१) जिसे उसका भाग न मिला हो। उ०—शेष सहस फन नाथि ज्यों सुरपति करे निरंस। अग्निपान कियो साँवरे कहा बापुरो कंस।—सूर।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि पतित, क्लीव आदि निरंश हैं, इन्हें संपत्ति का भाग न मिलना चाहिए।

(२) बिना अक्षांश का।

संज्ञा पुं० राशि के भोगकाल का प्रथम और शेष दिन। संक्रांति।

निरकेवल–वि० [सं० निस् + केवल] (१) खाली। खालिस। बिना मेल का। (२) स्वच्छ। साफ।

निरक्षदेश–संज्ञा पुं० [सं०] भूमध्यरेखा के आसपास के देश जिनमें रात और दिन बराबर होते हैं।

विशेष—पूर्व में भद्राश्ववर्ष और यमकोटि, दक्षिण में भारतवर्ष और लंका, पश्चिम में केतुमालवर्ष, रोमक, उत्तर कुरु और सिद्धपुरी निरक्ष देश कहे गए हैं। (सूर्यसिद्धांत)

निरक्षन*–संज्ञा पुं० दे० "निरीक्षण"। उ०—होत विलक्षण यज्ञ विदेह की जात निरच्छन आपने अच्छन।—रघुराज।

निरक्षर–वि० [सं०] (१) अक्षरशून्य। (२) जिसने एक अक्षर भी न पढ़ा हो। अनपढ़। मूर्ख।

यौ०—निरक्षर भट्टाचार्य्य = पंडित बना हुआ मूर्ख।

निरक्ष-रेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ीमंडल। निरक्षवृत्त। क्रांतिवृत्त।

निरखना*–क्रि० स० [सं० निरीक्षण] देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन विमान।—तुलसी।

निरग*–संज्ञा पुं० दे० "नृग"।

निरगुन*–वि० दे० "निर्गुण"।

निरगुनिया–वि० दे० "निरगुनी"।

निरगुन–वि० [सं० निर्गुण वा हिं० प्रत्य० निर + गुणी] जिसमें गुण न हो या जो गुणी न हो। अनाड़ी।

निरग्नि–वि० [सं०] अग्निहोत्र न करनेवाला। जो श्रौत और स्मार्त्त विधि के अनुसार अग्निकर्म न करता हो।

निरच्चू–वि० [सं० निश्चिंत] निश्चिंत। खाली। जिसे फुरसत मिल गई हो। जिसने छुट्टी पाई हो। उ०—इस काम से

वाली वस्तु को हटाना। छेंकने या बाधा डालनेवाली वस्तु को दूर करना। उ०—आगे आगे लाल लता निरवारत, पाछे पाछे आवत नवल छाड़िली।—नंददास। (२) बंधन आदि खोलना। मुक्त करना। छुड़ाना। उ०—ये सुकुमार बहुत दुख पाए सुत कुबेर के तारौं। सूरदास प्रभु कहत मनहिं मन कर बंधन निरवारौं।—सूर। (३) छोड़ना। त्यागना। किनारे करना। उ०—राना देसपति जागै, आपकुल रती जाति, मानि लीजै बात बेगि संग निरवारिए।—प्रियादास। (४) गाँठ आदि छुड़ाना। सुलझाना। उ०—कबहूँ कान्ह आपने कर सों केसपास निरवारत।—सूर। (५) निब-टाना। निर्णय करना। तै करना।

निरवाह‡*–संज्ञा पुं० दे० "निर्वाह"।

निरशन–संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का न करना। न खाने का भाव। लंघन। उपवास।

वि० (१) भोजनरहित। जिसने खाया न हो या जो न खाय। (२) जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाय। जो बिना कुछ खाए किया जाय। जैसे, निरशन व्रत।

निरसंक*‡–वि० दे० "निःशंक"।

निरस–वि० [सं०] (१) जिसमें रस न हो। रसविहीन। (२) बिना स्वाद का। बदजायका। फीका। (३) असार। निस्तत्व। (४) रूखा। सूखा। (५) विरक्त। उ०—रे मन जग सो निरस ह्वै सरस राम सों होहि। भलो सिखावन देतु है निसि दिन तुलसी तोहि।—तुलसी।

निरसन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निरसनीय, निरस्य] (१) फेंकना। दूर करना। हटाना। (२) खारिज करना। रद करना। (३) निराकरण। परिहार। उ०—मांगनार्थ तहँ करत भे कुँवर चारि गोलच्छ। प्रतिग्रह फल निरसन हितै दीने द्विजन प्रतच्छ।—रघुराज। (४) निकालना। (५) थूकना। (६) नाश। (७) वध।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] निःश्रेणिका नाम की घास जो कोंकण देश में होती है।

निरस्त–वि० [सं०] (१) फेंका हुआ। छोड़ा हुआ (जैसे, शर)। (२) त्याग किया हुआ। अलग किया हुआ। निकाला हुआ। दूर किया हुआ। (३) खारिज किया हुआ। रद किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। निराकृत। (४) वर्जित। रहित। (५) थूका हुआ। उगला हुआ। (६) मुँह से अस्पष्ट रूप से जल्दी जल्दी बोला हुआ। शीघ्र उच्चारित (वाक्य आदि)।

निरस्त्र–वि० [सं०] अस्त्रहीन। बिना हथियार का।

निरस्य–वि० [सं०] निरसन के योग्य।

निरहंकार–वि० [सं०] अभिमानरहित।

निरहंकृत–वि० [सं०] अहंकारशून्य।

निरहम्–वि० [सं०] अहंभाव-शून्य। अहंकाररहित।

निरहेतु*–वि० दे० "निर्हेतु"।

निरहेलां–वि० [सं० हेय] अनादृत। तुच्छ। जिसकी कोई कदर न हो।

निरा–वि० [सं० निरालय, पु० हि० निराल] [स्त्री० निरी] (१) विशुद्ध। बिना मेल का। खालिस। (२) जिसके साथ और कुछ न हो। केवल। एकमात्र। जैसे, निरी बकवाद से काम नहीं चलेगा। (३) निपट। नितांत। सर्वतोभाव। एकदम। बिलकुल। जैसे, वह निरा बेवकूफ है।

निराई–संज्ञा स्त्री० [हिं० निराना] (१) निराने का काम। फसल के पौधों के आसपास उगनेवाले तृण, घास, आदि को दूर करने का काम। (२) निराने की मजदूरी।

निराकरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निराकरणीय, निराकृत] (१) छाँटना। अलग करना। (२) हटाना। दूर करना (३) मिटाना। रद करना।

(२) किसी बुराई को दूर करने का काम। शमन। निवारण। परिहार। (३) खंडन। युक्ति या दलील को काटने का काम। जैसे, किसी सिद्धांत का निराकरण।

निराकांक्ष–वि० [सं०] जिसे आकांक्षा न हो।

निराकांक्षी–वि० [सं० निराकांक्षिन्] [स्त्री० निराकांक्षिणी] निस्पृह। जिसे कुछ इच्छा न हो।

निराकार–वि० [सं०] जिसका कोई आकार न हो। जिसके आकार की भावना न हो।

संज्ञा पुं० (१) ब्रह्म। ईश्वर। (२) आकाश।

निराकुल–वि० [सं०] (१) जो आकुल न हो। जो क्षुब्ध या डाँवाडोल न हो। (२) जो घबराया न हो। अनुद्विग्न। (३) बहुत व्याकुल। बहुत घबराया हुआ। उ०—व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बलविक्रम लंकपती को।—केशव।

निराकृत—वि० [सं०] (१) मिटाई हुई। रद की हुई। (२) दूर की हुई। हटाई हुई। (३) खंडन की हुई।

निराकृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] निराकरण। परिहार।

वि० (१) आकृतिरहित। निराकार। (२) स्वाध्यायरहित। वेदपाठरहित। (३) पंचमहायज्ञ के अनुष्ठान से रहित। (मनु)

संज्ञा पुं० रोहित मनु के पुत्र। (हरिवंश)

निराक्रंद—वि० [सं०] (१) जहाँ कोई पुकार सुननेवाला न हो। जहाँ कोई रक्षा या सहायता करनेवाला न हो। (२) जो पुकार न सुने। जो रक्षा या सहायता न करे। (३) जिसकी पुकार न सुनी जाय। जिसकी कोई सहायता न करे।

निराखर–*‡वि० [सं० निरक्षर] (१) जिसमें अक्षर न हों। बिना अक्षर का। (२) बिना अक्षर या शब्द का। मौन। (३) जिसे अक्षर का बोध न हो। अपढ़।

निरभ्र–वि० [सं०] बिना बादल का। मेघशून्य। जैसे, निरभ्र आकाश।

निरमना*–क्रि० स० [सं० निर्माण] निर्माण करना। बनाना। उ०—रूपरासि मनु विधि निरमई।—जायसी।

निरमल*–वि० दे० "निर्मल"।

निरमली–संज्ञा स्त्री० दे० "निर्मली"।

निरमसोर–संज्ञा पुं० [देश०] एक ओषधि या जड़ी जिससे अफीम के विष का प्रभाव दूर हो जाता है। यह पंजाब में होती है।

निरमान*–संज्ञा पुं० दे० "निर्माण"।

निरमाना*–क्रि० स० [सं० निर्माण] बनाना। तैयार करना। रचना।

निरमायल*–संज्ञा पुं० दे० "निर्माल्य"।

निरमित्र–वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो।

संज्ञा पुं० (१) त्रिगर्त्तराज के एक पुत्र का नाम जो कुरुक्षेत्र की लड़ाई में मारा गया था। (२) चौथे पांडव नकुल के पुत्र का नाम।

निरमूल*–वि० दे० "निर्मूल"।

निरमूलना*–क्रि० स० [सं० निर्मूलन] (१) निर्मूल करना। उखाड़ना। (२) नष्ट करना।

निरमोल–वि० [सं० उप० निस्, निर+हिं० मोल] (१) जिसका मोल न हो। अनमोल। अमूल्य। (२) बहुत बढ़िया।

निरमोही*–वि० दे० "निर्मोही"।

निरय–संज्ञा पुं० [सं०] नरक। दोजख।

निरयण–संज्ञा पुं० [सं०] अयन रहित गणना। ज्योतिष में गणना की एक रीति।

विशेष—सूर्य्य राशिचक्र में निरंतर घूमता रहता है। उसके एक चक्कर पूरे होने को वर्ष कहते हैं। ज्योतिष की गणना के लिये यह आवश्यक है कि सूर्य्य के भ्रमण का आरंभ किसी स्थान से माना जाय। सूर्य्य के मार्ग में दो स्थान ऐसे पड़ते हैं जिन पर उसके आने पर रात और दिन बराबर होते हैं। इन दो स्थानों में से किसी स्थान से भ्रमण का आरंभ माना जा सकता है। पर विषुवरेखा (सूर्य्य के मार्ग) के जिस स्थान पर सूर्य्य के आने से दिनमान की वृद्धि होने लगती है उसे वासंतिक विषुवपद कहते हैं। इस स्थान से आरंभ करके सूर्य्यमार्ग को ३६० अंशों में विभक्त करते हैं। प्रथम ३० अंशों को मेष, द्वितीय को वृष इत्यादि मानकर राशि विभाग द्वारा जो लग्नस्फुट और ग्रहस्फुट गणना करते हैं उसे 'सायन' गणना कहते हैं।

पर गणना की एक दूसरी रीति भी है जो अधिक प्रचलित है। ज्योतिषगणना के आरंभकाल में मेषराशिस्थित अश्विनी नक्षत्र में आरंभ में दिन और रात्रिमान बराबर स्थिर हुआ था। पर नक्षत्र गण खसकता जाता है। अतः प्रति वर्ष अश्विनी नक्षत्र विषुवरेखा से जहाँ खसका रहेगा वहीं से राशिचक्र का आरंभ और वर्ष का प्रथम दिन मानकर जो लग्नस्फुट गणना की जाती है उसे "निरयण" गणना कहते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर पंचांग निरयण गणना के अनुसार बनाए जाते हैं। ज्योतिषियों में 'सायन' और 'निरयण' ये दो पक्ष बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। बहुत से विद्वानों की राय है कि सायन मत ही ठीक है।

निरर्थ–वि० [सं०] (१) अर्थहीन। (२) व्यर्थ। निष्फल।

निरर्थक–वि० [सं०] (१) अर्थशून्य। बेमानी।

विशेष—निरर्थक वाक्य काव्य का एक दोष माना गया है। (चंद्रालोक)

(२) न्याय में एक निग्रहस्थान। दे० "निग्रहस्थान"। (३) निष्प्रयोजन। व्यर्थ। बिना मतलब का। (४) निष्फल। जिससे कोई कार्य्यसिद्धि न हो। बेफायदा।

निरर्बुद–संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

निरवग्रह–वि० [सं०] (१) प्रतिबंध रहित। स्वतंत्र। स्वच्छंद। (२) जो दूसरे की इच्छा पर न हो। (३) बिना विघ्न या बाधा का।

निरवच्छिन्न–क्रि० वि० [सं०] (१) अनवच्छिन्न। जिसका सिलसिला न टूटे। (२) निरंतर। लगातार। (३) विशुद्ध। निर्मल।

निरवद्य–वि० [सं०] [स्त्री० निरवद्या] जिसे कोई बुरा न कहे। अनिंद्य। निर्दोष। जिसमें कोई ऐब या बुराई न हो।

निरवधि–वि० [सं०] (१) अपार। असीम। बेहद। (२) निरंतर। लगातार। बराबर। (३) सदा। सतत। हमेशा।

निरवयव–वि० [सं०] अंगों से रहित। निराकार।

निरवलंब–वि० [सं०] (१) अवलंबहीन। आधार-रहित। बिना सहारे (का)। (२) निराश्रय। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जिसका कोई सहायक न हो।

निरवसित–वि० [सं०] जो ऊँची जातियों से अलग हो। जिसके भोजन या स्पर्श से पात्र आदि अशुद्ध हो जायँ। (चांडाल आदि)

निरवस्कृत–वि० [सं०] परिष्कृत। साफ किया हुआ।

निरवहालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीर।

निरवाना–क्रि० स० [हिं० निराना का प्रे०] निराने का काम कराना।

निरवार–संज्ञा पुं० [हिं० निरवारना] (१) निस्तार। छुटकारा। बचाव।—उ० यही सोच सब परि रहे कहू नहीं निरवार। ब्रज भीतर नँद भवन में घर घर यहै विचार।—सूर। (२) छुड़ाने या सुलझाने का काम। (३) निबटेरा। फ़ैसला।

निरवारना*–क्रि० स० [सं० निवारण] (१) टालना। रोकने-

निराश-वि० [हिं० नि + आशा] आशाहीन। जिसे आशा न हो। नाउम्मीद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निराशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाउम्मेदी। आशा का अभाव।

निराशिष-वि० [सं०] (१) आशीर्वादशून्य। (२) तृष्णारहित।

निराशी*-वि० [सं० निराश] (१) हताश। नाउम्मीद। (२) आशा तृष्णा रहित। उदासीन। विरक्त। उ०—तनक नहीं तिय को सुख जानत संसृति विषय निरासी।—रघुराज।

निराश्रय-वि० [सं०] (१) आश्रयरहित। आधारहीन। बिना सहारे का। (२) जिसे कहीं ठिकाना न हो। असहाय। अशरण। (३) जिसे शरीर आदि पर ममता न हो। निर्लिप्त।

निरास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूर करना। निराकरण। (२) खंडन।

*वि० दे० "निराश"।

निरासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूर करना। निराकरण। (२) खंडन।

वि० आसनरहित।

निरासा*-संज्ञा स्त्री० दे० "निराशा"।

निरासी*-वि० (१) दे० "निराशी"। (२) उदास। बेरौनक। जहाँ वा जिसमें चित्त प्रसन्न न हो। उ०—सूर श्याम बिनु यह बन सूनो शशि बिनु रैन निरासी।—सूर।

निराहार-वि० [सं०] (१) आहाररहित। जो बिना भोजन के हो। जिसमें कुछ खाया न हो या जो कुछ न खाय। (२) जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाता हो। जैसे, निराहार व्रत।

निरिंग-वि० [सं०] निश्चल। अचल।

निरिंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चिक। झिलमिली। परदा।

निरिंद्रिय-वि० [सं०] (१) इंद्रियशून्य। जिसे कोई इंद्रिय न हो। (२) जिसके हाथ, पैर, आँख, कान आदि न हों या काम के न हों।

विशेष—मनु ने जन्मांध, क्लीव, पतित, जन्मबधिर, उन्मत्त, जड़, मूक इत्यादि को निरिंद्रिय कहा है और इन्हें पितृधन के अनधिकारी ठहराया है।

निरिच्छ-वि० [सं०] इच्छारहित। जिसे कोई इच्छा न हो।

निरिच्छना*-क्रि० स० [सं० निरीक्षण] देखना। उ०—मुनि कै प्रतच्छ बीस अच्छ बध रच्छ सनि, बैठो जो समच्छ अच्छ अच्छनि सों अच्छो है।............... ...पच्छवान सैल सों बिपच्छ पर पच्छिन पै, कंश को निरिच्छो छमा छोहरी जो रच्छो है।—रघुराज।

निरी-वि० स्त्री० दे० "निरा"।

निरीक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देखनेवाला। (२) देख रेख करनेवाला।

निरीक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निरीक्षित, निरीक्ष्य निरीक्ष्यमाण] (१) देखना। दर्शन। (२) देख रेख। निगरानी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) देखने की मुद्रा या ढंग। चितवन। (४) नेत्र। आँख।

निरीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देखना। दर्शन।

निरीक्षित-वि० [सं०] (१) देखा हुआ। (२) देखा भाला हुआ। जाँच किया हुआ।

निरीक्ष्य-वि० [सं०] (१) देखने योग्य। (२) जाँच के लायक। निगरानी के लायक।

निरीक्ष्यमाण-वि० [सं०] जिसको देखते हों। जो देखा जाता हो।

निरीति-वि० [सं०] ईतिरहित। अति वृष्टि आदि से रहित।

निरीश-वि० [सं०] (१) जिसे ईश या स्वामी न हो। बिना मालिक का। (२) जिसकी समझ में ईश्वर न हो। अनीश्वरवादी। नास्तिक।

संज्ञा पुं० हल का फाल।

निरीश्वरवाद-संज्ञा पुं० [सं०] यह सिद्धांत कि कोई ईश्वर नहीं है।

निरीश्वरवादी-संज्ञा पुं० [सं०] जो ईश्वर का अस्तित्व न माने।

निरीष-संज्ञा पुं० [सं०] हल का फाल।

निरीह-वि० [सं०] (१) चेष्टारहित। जो किसी बात के लिये प्रयत्न न करे। (२) जिसे किसी बात की चाह न हो। (३) उदासीन। विरक्त। जो सब बातों से किनारे रहे। (४) जो किसी बखेड़े में न पड़े। तटस्थ। (५) शांतिप्रिय।

निरीहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चेष्टा का अभाव। (२) चाह का न होना। विरक्ति।

निरुआर†-संज्ञा पुं० दे० "निरुवार"।

निरुआरना†-क्रि० स० दे० "निरुवारना"।

निरुक्त-वि० [सं०] (१) निश्चय रूप से कहा हुआ। व्याख्या किया हुआ। (२) नियुक्त। ठहराया हुआ।

संज्ञा पुं० छः वेदांगों में से एक। वेद का चौथा अंग।

विशेष—वैदिक शब्दों के निघंटु की जो व्याख्या यास्क मुनि ने की है उसे निरुक्त कहते हैं। इसमें वैदिक शब्दों के अर्थों का निर्णय किया गया है। वेद के शब्दों का अर्थ प्रकट करनेवाला प्राचीन आर्ष ग्रंथ यही है। यद्यपि यास्क ने शाकपूर्णि और स्थौलष्ठीवी आदि अपने से पहले के निरुक्तकारों का उल्लेख किया है पर उनके ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं। सायणाचार्य के अनुसार जिसमें एक शब्द के कई अर्थ या पर्य्याय कहे गए हों वह निरुक्त है। काशिकावृत्ति के अनुसार निरुक्त पाँच प्रकार का होता है—वर्णागम (अक्षर बढ़ाना), वर्णविपर्य्यय (अक्षरों को आगे पीछे करना), वर्ण-

निरागस्-वि० [सं०] पापरहित। निष्पाप।

निराचार-वि० [सं० निः + आचार] आचारहीन।

निराजी-संज्ञा स्त्री० [?] जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो हत्थे और तरौंछी को मिलाने के लिये दोनों के सिरों पर लगी रहती है।

निराट-वि० [हिं० निराल] जिसके साथ और कुछ न हो। अकेला। एकमात्र। निरा। बिल्कुल। निपट। उ०—(क) प्रथम एक जो है किया भया सो बारह बाट। कसत कसौटी ना टिका पीतर भया निराट।—कबीर। (ख) साधत देह प नेह निराट कहै मति कोई कहूँ अटकी सी।—देव।

निरातंक-वि० [सं०] (१) भयरहित। निर्भय। (२) रोग-शून्य। नीरोग।

निरातपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

निरादर-संज्ञा पुं० [सं०] आदर का अभाव। अपमान। बेइज़्ज़ती।

क्रि० प्र०—करना।

निरादान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आदान वा लेने का अभाव। (२) एक बुद्ध का नाम।

निरादेश-संज्ञा पुं० [सं०] भुगताना। अदा करने वा चुकाने का काम।

निराधार-वि० [सं०] (१) अवलंब वा आश्रय रहित। जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो। जैसे, वह निराधार ठहरा रहा। (२) जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। बे-जड़ बुनियाद का। अयुक्त। मिथ्या। झूठ। जैसे, निराधार कल्पना। (३) जिसे या जिसमें जीविका आदि का सहारा न हो। (४) जो बिना अन्न जल आदि के हो। जैसे, उसने दूध तक न पिया, निराधार रह गया।

निराधि-वि० [सं०] (१) रोगशून्य। नीरोग। (२) चिंता-रहित।

निरानंद-वि० [सं०] आनंदरहित। जिसे आनंद न हो।

संज्ञा पुं० (१) आनंद का अभाव। (२) दुःख।

निराना-क्रि० स० [सं० निराकरण] फसल के पौधों के आस पास उगी हुई घास को खोद कर दूर करना जिसमें पौधों की बाढ़ न रुके। नींदना। निकाना। उ०—कृषी निरावहिं चतुर किसाना।—तुलसी।

निरापद-वि० [सं०] (१) जिसे कोई आपदा न हो। जिसे कोई आफत या डर न हो। सुरक्षित। (२) जिससे किसी प्रकार विपत्ति की संभावना न हो। जिससे हानि वा अनर्थ की आशंका न हो। जैसे, निरापद उपाय, औषध। (३) जहाँ अनर्थ वा विपत्ति की आशंका न हो। जहाँ किसी बात का डर या खतरा न हो। जैसे, निरापद स्थान।

निरापन*-वि० [सं० उप० निः + हिं० अपना] जो अपना न हो। पराया। बेगाना। उ०—(क) ज्यों मुख मुकुर विलोकिए चित न रहै अनुहारि। त्यों सेवतहूँ निरापने ये मातु पिता सुत नारि।—तुलसी। (ख) सब दुख आपने निरापने सकल सुख जौ लौं जन भयो न वजाय राजा राम को।—तुलसी। (ग) ऐसन देह निरापन बौरे मुये छुवै नहिं कोई हो।—कबीर।

निरापुन*-वि० दे० "निरापन"। उ०—जउ लहि जिउ आपुन सब कोई। बिनु जिय सबइ निरापुन होई।—जायसी।

निरामय-वि० [सं०] जिसे रोग न हो। नीरोग। भला चंगा। तंदुरुस्त।

संज्ञा पुं० (१) जंगली बकरा। (२) सूअर। (३) कुशल।

निरामालु-संज्ञा पुं० [सं०] कैथ का पेड़। कपित्थ।

निरामिष-वि० [सं०] (१) मांसरहित। जिसमें मांस न मिला हो। उ०—निरामिष भोजन। (२) जो मांस न खाय। उ०—वायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।—तुलसी।

निरार†-वि० [हिं० निराल वा निआरा, न्यारा] अलग। पृथक्। जुदा। उ०—(क) नीर खीर छानै दरबारा। दूध पानि सब करै निरारा।—जायसी। (ख) बातहिं जानहुँ विषम पहारा। हिरदै मिला न होइ निरारा।—जायसी।

निरारा-वि० दे० "निरार"।

निरालंब-वि० [सं०] (१) बिना आलंब या सहारे का। निरा-धार। (२) निराश्रय। बिना ठिकाने का।

निरालंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी जटामासी।

निरालक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समुद्री मछली।

निरालस-वि० दे० "निरालस्य"।

निरालसी-संज्ञा पुं० [हिं० निरालस] जो आलसी न हो।

निरालस्य-वि० [सं०] जिसमें आलस्य न हो। तत्पर। फुरतीला। चुस्त।

संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव।

निराला-संज्ञा पुं० [सं० निरालय] [स्त्री० निराली] एकांत स्थान। ऐसा स्थान जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो। जैसे, (क) वहाँ निराला पड़ता है; चोर डाकू होंगे। (ख) चलो निराले में बात करें।

वि० (१) जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो। एकांत। निर्जन। (२) जिसके ऐसा दूसरा न हो। विलक्षण। सब से भिन्न। अद्भुत। अजीब। जैसे, निराला ढंग, निराली चाल। (३) जिसके जोड़ का दूसरा न हो। अनोखा। अनुपम। अनूठा। अपूर्व। बहुत बढ़िया।

निरावना†-क्रि० स० दे० "निराना"।

निरावलंब-वि० [सं०] बिना सहारे का। निराधार।

निरुपयोगी–वि० [सं०] जो उपयोग में न आ सके। व्यर्थ। निरर्थक।

निरुपाख्य–वि० [सं०] (१) जिसकी व्याख्या न हो सके। (२) जो बिलकुल मिथ्या हो और जिसके होने की कोई संभावना न हो।

संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म।

निरुपाधि–वि० [सं०] (१) उपाधिरहित। बाधारहित। (२) मायारहित।

संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म

विशेष—उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव को ब्रह्म का रूप प्राप्त हो जाता है।

निरुपाय–वि० [सं०] (१) जो कुछ उपाय न कर सके। (२) जिसका कोई उपाय न हो।

निरुपेक्ष–वि० [सं०] जिसमें उपेक्षा न हो। उपेक्षारहित।

निरुवरना[*][†]–क्रि० अ० [सं० निवारण] कठिनता आदि का दूर होना। सुलझना। उ०—अस संयोग ईश जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुवरई।—तुलसी।

निरुवार[†]–संज्ञा पुं० [सं० निवारण] (१) छुड़ाने का काम। मोचन। (२) छुटकारा। बचाव। (३) सुलझाने का काम। उलझन मिटाने का काम। (४) तै करने का काम। निबटाने का काम। (५) निर्णय। फैसला। उ०—कहौ जाय करैं युद्ध विचार। साँच झूठ होयहै निरुवार।—सूर।

निरुवारना[*]–क्रि० स० [हिं० निरुवार] (१) छुड़ाना। मुक्त करना। बंधन आदि खोलना। (२) सुलझाना। फँसी या गुथी हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। उलझन मिटाना। उ०—छ्य सोइ बुद्धि पाय उजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारा।—तुलसी। (३) तै करना। निबटाना। निर्णय करना। फैसला करना।

विशेष—दे० "निरवारना"।

निरूढ़–वि० [सं०] (१) उत्पन्न। (२) प्रसिद्ध। विख्यात। (३) अविवाहित। कुँआरा।

संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पशु-याग।

निरूढ़-लक्षणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लक्षणा जिसमें शब्द का गृहीत अर्थ रूढ़ हो गया हो अर्थात् वह केवल प्रसंग या प्रयोजनवश ही न ग्रहण किया गया हो। जैसे, कर्म-कुशल। कुशल शब्द का मुख्य अर्थ है कुश उखाड़ने में प्रवीण। पर यहाँ लक्षणा द्वारा यह साधारणतः दक्ष या प्रवीण के अर्थ में ग्रहण किया जाता है।

निरूढ़वस्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वस्ति या पिचकारी जिसमें रोगी की गुदा में एक विशेष प्रकार की नली के द्वारा कुछ ओषधियाँ पहुँचाई जाती हैं। यह क्रिया डाक्टरी एनिमा की क्रिया के समान ही होती है।

निरूढ़ा–संज्ञा स्त्री० दे० "निरूढ़-लक्षणा"।

वि० [सं०] अविवाहिता। कुँआरी।

निरूढ़ि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निरूढ़-लक्षणा। (२) प्रसिद्धि।

निरूप–वि० [हिं० नि+रूप] (१) रूपरहित। निराकार। उ०—मोहन माँग्यो अपनो रूप। यहि ब्रज बसत अँचै तुम बैठीं ता बिन वहाँ निरूप।—सूर। (२) कुरूप। बदशकल। उ०—मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो चंद बहुरूप अनुरूप कै विचारिये।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) देवता। (३) आकाश।

निरूपक–वि० [सं०] किसी विषय का निरूपण करनेवाला।

निरूपण–संज्ञा पु० [सं] (१) प्रकाश। (२) किसी विषय का विवेचनापूर्वक निर्णय। विचार। (३) निदर्शन।

निरूपना[*]–क्रि० अ० [सं० निरूपण] निर्णय करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०—(क) नेति नेति जेहि वेद निरूपा।—तुलसी। (ख) भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान।—तुलसी।

निरूपम–वि० दे० "निरुपम"।

निरूपित–वि० [सं०] निरूपण किया हुआ। जिसकी विस्तृत विवेचना हो चुकी हो। जिसका निर्णय हो चुका हो।

निरूप्य–वि० [सं०] जो निरूपण करने योग्य हो।

निरूहवस्ति–संज्ञा स्त्री० दे० "निरूढ़वस्ति"।

निर्ऋति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नैर्ऋत कोण की स्वामिनी। (२) राक्षसी। (३) मृत्यु। (४) दरिद्रता। (५) विपत्ति।

निरेखना[*]–क्रि० स० [सं० निरीक्षण] देखना। निरखना। उ०—(क) हनुमान भये इग औरई से गज की गति मंद निरेख्यो री।—हनुमान। (ख) न टरैं मन मोहनी चाहि रहैं सब सौतैं सकानी निरेखियो री।—हनुमान।

निरै[*]–संज्ञा पुं० [सं० निरय] नरक।

निरोग[†]–वि० [सं० नीरोग] रोगरहित। जिसे कोई रोग न हो। स्वस्थ।

निरोगी[†]–संज्ञा पुं० [सं० नीरोग] वह व्यक्ति जिसे कोई रोग न हो। स्वस्थ। तंदुरुस्त।

निरोठा[†]–वि० [देश०] बदसूरत। बदशकल। कुरूप।

निरोध–संज्ञा पु० [सं०] (१) रोक। अवरोध। रुकावट। बंधन। (२) घेरा। घेर लेना। उ०—तब रावण सुनि लंका निरोध। उपज्यो तन मन अति परम क्रोध।—केशव। (३) नाश। (४) योग में चित्त की समस्त वृत्तियों को रोकना जिसमें अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता होती है। चित्त-वृत्तियों के निरोध के उपरांत मनुष्य को निर्बीज समाधि प्राप्त होती है।

निरोधक–वि० [सं०] रोकनेवाला। जो रोकता हो।

निरोधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। (२) पारे का छठा संस्कार। (वैद्यक)

विकार (अक्षरों को बदलना), नाश (अक्षरों को छोड़ना) और धातु के किसी एक अर्थ को सिद्ध करना।

निरुक्त के १२ अध्याय हैं। प्रथम में व्याकरण और शब्द शास्त्र पर सूक्ष्म विचार हैं। इतने प्राचीन काल में शब्दशास्त्र पर ऐसा गूढ़ विचार और कहीं नहीं देखा जाता। शब्दशास्त्र पर दो मत प्रचलित थे इसका पता यास्क के निरुक्त से लगता है। कुछ लोगों का मत था कि सब शब्द धातुमूलक हैं और धातु क्रियापद मात्र हैं जिनमें प्रत्ययादि लगाकर भिन्न भिन्न शब्द बनते हैं। यास्क ने इसी मत का मंडन किया है। इस मत के विरोधियों का कहना था कि कुछ शब्द धातुरूप क्रियापदों से बनते हैं पर सब नहीं, क्योंकि यदि "अश" से अश्व माना जाय तो प्रत्येक चलने या आगे बढ़नेवाला पदार्थ अश्व कहलावेगा। यास्क मुनि ने इसके उत्तर में कहा है कि जब एक क्रिया से एक पदार्थ का नाम पड़ जाता है तब वही क्रिया करनेवाले और पदार्थ को वह नाम नहीं दिया जाता। दूसरे पक्ष का एक और विरोध यह था कि यदि नाम इसी प्रकार दिए गए हैं तो किसी पदार्थ में जितने गुण हों उतने ही उसके नाम भी होने चाहिएँ। यास्क इस पर कहते हैं कि एक पदार्थ किसी एक गुण या कर्म से एक नाम को धारण करता है। इसी प्रकार और भी समझिए।

दूसरे और तीसरे अध्याय में तीन निघंटुओं के शब्दों के अर्थ प्रायः व्याख्या सहित हैं, चौथे से छठें अध्याय तक चौथे निघंटु की व्याख्या हैं। सातवें से बारहवें तक पाँचवे निघंटु के वैदिक देवताओं की व्याख्या है।

निरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निरुक्त की रीति से निर्वचन। किसी पद या वाक्य की ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदि का पूरा कथन हो। (२) एक काव्यालंकार जिसमें किसी शब्द का मनमाना अर्थ किया जाय परंतु वह अर्थ सयुक्तिक हो। उ०—रूप आदि गुण सों भरी तजि कै व्रज वनितान उद्धव कुबजा बस भए, निर्गुण वहै निदान। तात्पर्य्य यह कि गुणवती व्रज वनिताओं को छोड़कर 'गुणरहित' कुब्जा के वश होने से कृष्ण अब सचमुच 'निर्गुण हो गए हैं।

निरुच्छ्वास—वि० [सं०] (१) (स्थान) जहाँ बहुत से लोग न अट सकें। सँकरा। संकीर्ण। (२) जहाँ ठसाठस लोग भरे हों। जहाँ खड़े होने तक की जगह न हो।

निरुज—* वि० दे० "नीरुज"।

निरुत्तर—वि० [सं०] (१) जिसका कुछ उत्तर न हो। लाजवाब। (२) जो उत्तर न दे सके। जो कायल हो जाय। उ०—वंधुबधूरत कहि कियो वचन निरुत्तर वालि।—तुलसी।

निरुत्साह—वि० [सं०] उत्साहहीन। जिसे उत्साह न हो।

निरुद्ध—वि० [सं०] रुका हुआ। बँधा हुआ।

संज्ञा पुं० योग में पाँच प्रकार की मनोवृत्तियों में से एक। चित्त की वह अवस्था जिसमें वह अपनी कारणीभूत प्रकृति को प्राप्त होकर निश्चेष्ट हो जाता है।

विशेष—मन की वृत्तियाँ योग में पाँच मानी गई हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त के डाँवाडोल रहने को क्षिप्तावस्था, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञानशून्य होने को मूढ़ावस्था, चंचलता के बीच बीच में चित्त की स्थिरता को विक्षिप्तावस्था, और एक वस्तु पर निश्चल रूप से स्थिर होने को एकाग्रावस्था कहते हैं। एकाग्र के उपरांत फिर निरुद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है जिसमें स्थिर होने के लिये किसी वस्तु के अवलंबन की आवश्यकता नहीं होती, चित्त अपनी प्रकृति में ही स्थिर हो जाता है।

निरुद्धगुद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मलद्वार बंद सा हो जाता है और मल बहुत थोड़ा थोड़ा और कष्ट से निकलता है।

निरुद्धप्रकाश—संज्ञा० पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्रद्वार बंद सा हो जाता है और पेशाब बहुत रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है।

निरुद्यम—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्यम न हो। उद्योग-रहित। बेकाम।

निरुद्यमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुद्यम होने की क्रिया या भाव। बेकारी।

निरुद्यमी संज्ञा पुं० [सं० निरुद्यमिन्] जो कोई उद्यम न करता हो। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योग वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्योग न हो। उद्योग-रहित। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योगी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्योगिन] जो कुछ उद्योग न करे। निकम्मा। बेकार।

निरुद्वेग—वि० [सं०] उद्वेग से रहित। निश्चिंत।

निरुपद्रव—वि० [सं०] जिसमें कोई उपद्रव न हो। जो उत्पात या उपद्रव न करता हो।

निरुपद्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुपद्रव होने की क्रिया या भाव।

निरुपद्रवी—संज्ञा पुं० [सं० निरुपद्रविन्] जो उपद्रव न करे। शांत।

निरुपधि—वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की उपाधि न हो। जो उपद्रव न करता हो।

निरुपपत्ति—वि० [सं०] जिसकी कोई उपपत्ति न हो।

निरुपभोग—वि० [सं०] जिसका कोई उपभोग न हो।

निरुपम—वि० [सं०] जिसकी उपमा न हो। उपमारहित। बेजोड़।

संज्ञा पुं० [सं] राष्ट्रकूट वंश के एक राजा का नाम।

निरुपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

परिणाम होते हैं। जिस समय निर्घात होता हो उस समय किसी प्रकार का मंगल कार्य्य करना निषिद्ध है।
(२) बिजली की कड़क। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र।

निर्घातन–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शल्यचिकित्सा की एक क्रिया का नाम।

निर्घृण–वि० [सं०] (१) जिसे घृणा न हो। जिसे गंदी और बुरी वस्तुओं से घिन न लगे। (२) जिसे बुरे कामों से घृणा या लज्जा न हो। (३) बिना घृणावाले मनुष्यों का। अति नीच। अयोग्य। निकम्मा। निंदित। उ०—ज्यों त्यों करके अपने निर्घृण जीवन को बिताने का मनसूबा मैंने ठान लिया।—सरस्वती। (४) निर्दय। बेरहम। दयाहीन। उ०—रावण क्यों न तजै तब ही इन। सीय हरी जबहीं वह निर्घृण।—केशव।

निर्घोष–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निर्घोषित] शब्द। आवाज़।
वि० [सं०] शब्द-रहित।

निर्चा–संज्ञा पुं० [?] चंचु नामक साग। विशेष—दे० "चंचु"।

निर्छल*–वि० [सं० निश्छल] जिसे किसी प्रकार का छल या कपट न आता हो। निष्कपट।

निर्जन–वि० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई मनुष्य न हो। सुनसान।

निर्जर–वि० [सं०] जिसे कभी बुढ़ापा न आवे। कभी बुड्ढा न होनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) देवता।
विशेष—देवता लोग जरा अर्थात् बुढ़ापे से सदा बचे हुए माने जाते हैं, इसी लिये वे "निर्जर" कहलाते हैं।
(२) सुधा। अमृत।

निर्जरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुडुच। गिलोय। (२) तालपर्णी। (३) संचित कर्म का तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना। (जैन०)

निर्जल–वि० [सं०] (१) बिना जल का। जल के संसर्ग से रहित। (२) जिसमें जल पीने का विधान न हो। जैसे, निर्जल व्रत।
संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ जल बिलकुल न हो।

निर्जल व्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत या उपवास जिसमें व्रती जल तक न पीए।

निर्जला एकादशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जेठ सुदी एकादशी तिथि, जिस दिन लोग निर्जल व्रत रखते हैं।

निर्जित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीता हुआ। जिसे जीत लिया हो। (२) जो वश में कर लिया गया हो।

निर्जीव–वि० [सं०] (१) जीवरहित। बेजान। मृतक। प्राणहीन। (२) अशक्त या उत्साहहीन।

निर्झर–संज्ञा पुं० [सं०] किसी ऊँचे स्थान अथवा पर्वत से निकला हुआ पानी का झरना। सोता। चश्मा।

निर्णय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार कर के किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना। किसी विषय में कोई सिद्धांत स्थिर करना। निश्चय। (२) वादी और प्रतिवादी की बातों को सुन कर उनके सत्य अथवा असत्य होने के संबंध में कोई विचार स्थिर करना। फैसला। निबटारा। (स्मृतियों में यह चतुष्पाद व्यवहार का अंतिम पाद है)। (३) मीमांसा में किसी स्थिर सिद्धांत से कोई परिणाम निकालना।

निर्णयोपमा–संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान के गुणों और दोषों की विवेचना की जाती है।

निर्णीत–वि० [सं०] निर्णय किया हुआ। जिसका निर्णय हो चुका हो।

निर्त†–संज्ञा पुं० [सं० नृत्य] नृत्य। नाच।

निर्तक†–संज्ञा पुं० [सं० नर्त्तक] (१) नाचनेवाला। नट। (२) भाँड़।

निर्तना†–क्रि० अ० [सं० नृत्य] नाचना। नृत्य करना।

निर्दंड–वि० [सं०] जिसे सब प्रकार के दंड दिए जा सकें।
संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र जिसे सब प्रकार के दंड दिए जा सकते हैं।

निर्दंभ–वि० [सं०] जिसे दंभ या अभिमान न हो। दंभहीन।

निर्दई†–वि० दे० "निर्दय"।

निर्दय–वि० [सं०] जिसे कुछ भी दया न हो। निष्ठुर। बेरहम।

निर्दयता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दय होने की क्रिया या भाव। बेरहमी। निष्ठुरता।

निर्दयी†–वि० दे० "निर्दय"।

निर्दहन–संज्ञा पुं० [सं०] भिलावें का पेड़।

निर्दहना*†–क्रि० स० [सं० दहन] जला देना। उ०—को न क्रोध निर्दह्यो काम बस केहि नहिं कीन्हो।—तुलसी।

निर्दहनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वालता। चुरनहार। मुर्रा। मरोड़फली।

निर्दिष्ट–वि० [सं०] (१) जिसका निर्देश हो चुका हो। (२) बतलाया या नियत किया हुआ। जिसके संबंध में पहले ही कुछ बतलाया या निश्चय कर दिया गया हो। ठहराया हुआ। जैसे, (क) सब लोग निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गए। (ख) आप निर्दिष्ट समय पर आ जाइएगा।

निर्दुपण†–वि० दे० "निर्दोष"।

निर्देश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ को बतलाना। (२) ठहराना या निश्चित करना। (३) आज्ञा। हुकुम। (४) कथन। (५) उल्लेख। जिक्र। (६) वर्णन। (७) नाम। संज्ञा।

निरोध-परिणाम–संज्ञा पुं० [सं०] योग शास्त्र के अनुसार चित्त-वृत्ति की वह अवस्था जो व्युत्थान और निरोध के मध्य में होती है।

विशेष—योगशास्त्र में चिस, मूढ, विक्षिप्त इन तीन राजसिक परिणामों को व्युत्थान कहते हैं और विशुद्ध सत्त्वगुण की प्रधानता होने पर जो अवस्था प्राप्त होती है उसे निरोध कहते हैं। जब व्युत्थान से उत्पन्न संस्कारों का अंत हो जाता है और निरोध का आरंभ होने को होता है तब चित्त का थोड़ा थोड़ा संबंध दोनों ओर रहता है। उस अवस्था को निरोध-परिणाम कहते हैं।

निरोधी–वि० [सं० निरोधिन्] निरोध करनेवाला। प्रतिबंध या रुकावट करनेवाला।

निर्ख–संज्ञा पुं० [फा०] भाव। दर।

यौ०—निर्ख-दारोगा। निर्खनामा। निर्खबंदी।

क्रि० प्र०—मुकर्रर करना।

निर्ख-दारोगा–संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानों के राजत्वकाल में बाजार का वह दारोगा जो चीज़ों के भाव या दर आदि की निगरानी करता था।

निर्खनामा–संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानों के राजत्वकाल की वह सूची जिसमें बाजार की प्रत्येक वस्तु का भाव लिखा रहता था।

निर्खबंदी–संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी चीज का भाव या दर निश्चित करने की क्रिया।

निर्गंध–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की गंध न हो। गंधहीन।

निर्गंधता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गंध होने की क्रिया या भाव।

निर्गंधपुष्पी–संज्ञा पुं० [सं०] सेमर का पेड़।

निर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] देश।

निर्गत–वि० पुं० [सं०] [स्त्री० निर्गता] निकला हुआ। बाहर आया हुआ।

निर्गम–संज्ञा पुं० [सं०] निकास।

निर्गमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निकलने का काम। निकलना। (२) द्वार जिसमें से होकर निकलते हैं।

निर्गमना–क्रि० अ० [सं० निर्गमन] निकलना। उ०—इक प्रविसहिं इक निर्गमहिं भीर भूप दरबार।—तुलसी।

निर्गर्व–वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार का गर्व या अभिमान न हो।

निर्गुंठी–संज्ञा स्त्री० दे० "निर्गुंडी"।

निर्गुंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसके प्रत्येक सींके में अरहर की पत्तियों के समान पाँच पाँच पत्तियाँ होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचे का भाग सफेद होता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं। किसी में काले और किसी में सफ़ेद फूल लगते हैं। फूल आम के मौर के समान मंजरी के रूप में लगते हैं और केसरिया रंग के होते हैं। वैद्यक में इसे स्मरण-शक्ति-वर्धक, गरम, रूखी, कसैली, चरपरी, हलकी, नेत्रों के लिये हितकारी तथा शूल, सूजन, आमवात, कृमि, प्रदर, कोढ़, अरुचि, कफ, और ज्वर को दूर करनेवाली माना है। औषधियों में इसकी जड़ का व्यवहार होता है। सँभालू। सम्हालू। सिंदुवार।

पर्य्या०—नीलिका। नीलनिर्गुंडी। सिंदुक। नीलसिंदुक। पीतसहा। भूतकेशी। इंद्राणी। कपिका। शेफालिका। शीतभीरु। नीलमंजरी। वनजा। मरुपत्री। कर्त्तरीपत्रा।

निर्गुंडीकल्प संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार निर्गुंडी और शहद को मिलाकर एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई औषध जो आँखों की ज्योति बढ़ानेवाली, और कोढ़, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदर आदि रोगों को दूर करनेवाली तथा बहुत ही पौष्टिक समझी जाती है।

निर्गुंडीतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ निर्गुंडी का तेल जो सब प्रकार के फोड़े, फुंसियों, अपची तथा कंठमाला आदि को अच्छा करनेवाला माना जाता है।

निर्गुण–संज्ञा पुं० [सं०] सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे। परमेश्वर।

वि० [सं०] (१) जो सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से परे हो। (२) जिसमें कोई अच्छा गुण न हो। बुरा। खराब।

निर्गुणता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुण होने की क्रिया या भाव।

निर्गुणिया–वि० [सं० निर्गुण + इया (प्रत्य०)] वह जो निर्गुण ब्रह्म की उपासना करता हो।

निर्गुणी–वि० [सं० निर्गुण] जिसमें कोई गुण न हो। गुणों से रहित। मूर्ख।

निर्गुन–वि० दे० निर्गुण"।

निर्गूढ़–संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष का कोटर।

वि० [सं०] जो बहुत ही गूढ़ हो।

निर्ग्रंथ– संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध क्षपणक। (२) दिगंबर। (३) एक प्राचीन मुनि का नाम।

वि० [सं०] (१) निर्धन। गरीब। (२) मूर्ख। बेवकूफ। (३) जिसे कोई सहायता देनेवाला न हो। निःसहाय।

निर्घंट–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द या ग्रंथ सूची। फ़िहरिस्त।

निर्घट–संज्ञा पुं० [सं०] वह हाट या बाजार जहाँ किसी प्रकार का राजकर न लगता हो।

निर्घात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शब्द जो हवा के बहुत तेज चलने से होता है।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार दिन के भिन्न भिन्न भागों में इस प्रकार के शब्द होने के भिन्न भिन्न शुभ और अशुभ

निर्मलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफाई । स्वच्छता । (२) निष्कलंकता । (३) शुद्धता । पवित्रता ।

निर्मला–संज्ञा पुं० [सं० निर्मल] (१) एक नानकपंथी संप्रदाय जिसके प्रवर्त्तक रामदास नामक एक महात्मा थे । इस संप्रदाय के लोग गेरुए वस्त्र पहनते और साधु-संन्यासियों की भाँति रहते हैं । (२) इस संप्रदाय का कोई व्यक्ति ।

निर्मली–संज्ञा स्त्री० [सं० निर्मल] (१) एक प्रकार का मझला सदाबहार वृक्ष जो बंगाल, मध्य भारत, दक्षिण भारत और बरमा में पाया जाता है । इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, कड़ी और मजबूत होती है और इमारत, खेती के औजार और गाड़ियाँ आदि बनाने के काम में आती है । चीरने के समय इसकी लकड़ी का रंग अंदर से सफेद निकलता है परंतु हवा लगते ही कुछ भूरा या काला हो जाता है । इस वृक्ष के, फल का गूदा खाया जाता है और इसके पके हुए बीजों का, जो कुचले की तरह के परंतु उससे बहुत छोटे होते हैं, आँखों, पेट तथा मूत्र-यंत्र के अनेक रोगों में व्यवहार होता है । गँदले पानी को साफ करने के लिये भी ये बीज उसमें घिसकर डाल दिए जाते हैं जिससे पानी में मिली हुई मिट्टी जल्दी बैठ जाती है । कतक । पाय पसारी । चाकसू । (२) रीठे का वृक्ष या फल ।

निर्मलोपम–संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक ।

निर्मल्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पृक्का । असबरग ।

निर्मांस–संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो भोजन के अभाव के कारण बहुत दुबला हो गया हो, जैसे, तपस्वी या दरिद्र भिखमंगा आदि ।

निर्माण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रचना । बनावट । (२) बनाने का काम ।

निर्माणविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमारत, नहर, पुल इत्यादि बनाने की विद्या । वास्तु-विद्या । इंजीनियरी ।

निर्माता–संज्ञा पुं० [सं०] निर्माण करनेवाला । बनानेवाला । जो बनावे ।

निर्मात्रिक–वि० [सं०] बिना मात्रा का । जिसमें मात्रा न हो ।

निर्माना*–क्रि० स० [सं० निर्माण] बनाना । रचना । उत्पन्न करना । उ०—ब्रह्मा ऋषि मरीचि निर्मायो । ऋषि मरीचि कश्यप उपजायो ।—सूर ।

निर्मायल*–संज्ञा पुं० दे० "निर्माल्य" ।

निर्माल्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो किसी देवता पर चढ़ चुका हो । देवता पर चढ़ चुकी हुई चीज । देवार्पित वस्तु ।

विशेष—(क) जो पुष्प, फल और मिष्टान्न आदि किसी देवता पर चढ़ाए जाते हैं वे विसर्जन से पहले "नैवेद्य" और विसर्जन के उपरांत "निर्माल्य" कहलाते हैं ।
(ख) शिव के अतिरिक्त और सब देवताओं के निर्माल्य पुष्प और मिष्टान्न आदि ग्रहण किए जाते हैं ।

निर्माल्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पृक्का । असबरग ।

निर्मित–वि० [सं०] बनाया हुआ । रचित ।

निर्मिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्माण । बनाने की क्रिया । (२) बनाने का भाव ।

निर्मुक्त–वि० [सं०] (१) जो मुक्त हो गया हो । जो छूट गया हो । (२) जिसके लिये किसी प्रकार का बंधन न हो ।
संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसने अभी हाल में केंचुली छोड़ी हो ।

निर्मुक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुक्ति । छुटकारा । (२) मोक्ष ।

निर्मूल–वि० [सं०] (१) जिसमें जड़ न हो । बिना जड़ का । (२) जिसकी जड़ न रह गई हो । जड़ से उखाड़ा हुआ । जैसे, निर्मूल करना । (३) जिसका कोई आधार, बुनियाद या असलियत न हो । बेजड़ । जैसे, निर्मूल बात । (४) जिसका मूल ही न रह गया हो । जो सर्वथा नष्ट हो गया हो । जैसे, रोग को निर्मूल करना ।

निर्मूलक–वि० दे० "निर्मूल" ।

निर्मूलन–संज्ञा पुं० [सं०] निर्मूल होना या करना । विनाश ।

निर्मोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप की केंचुली । (२) शरीर के ऊपर की खाल । (३) पुराणानुसार सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम । (४) तेरहवें मनु के सप्तर्षियों में से एक का नाम । (५) आकाश ।

निर्मोक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्ण मोक्ष जिसमें कुछ भी संस्कार बाकी न रह जाय । (२) त्याग ।

निर्मोल*†–वि० [सं० निः + हिं० मोल] जिसका मूल्य बहुत अधिक हो या जिसके मूल्य का अनुमान न हो सके । अमूल्य । उ०—नैना लोभहिं लोभ भरे ।...........ओइ देखें सोइ सोइ निर्मोल कर लै तहीं धरे ।—सूर ।

निर्मोह–वि० [सं०] जिसके मन में मोह या ममता न हो ।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) रैवत मनु के एक पुत्र का नाम । (२) सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम ।

निर्मोहिनी–वि० स्त्री० [हिं० निर्मोही + इनी (प्रत्य०)] निर्दय । जिसके चित्त में ममता या दया न हो । कठोर हृदय । उ०—या निर्मोहिनी रूप की राशि जो ऊपर के वर आनति है, है ।............आवत हैं नित मेरे लिये इतनो तो विशेष हू आनति हैहै ।—ठाकुर ।

निर्मोहिया†–वि० दे० "निर्मोही" ।

निर्मोही–वि० [सं० निर्मोह] जिसके हृदय में मोह या ममता न हो । निर्दय । कठोरहृदय ।

निर्याण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहर निकलना । (२) यात्रा ।

निर्दोष–वि० [सं०] (१) जिसमें कोई दोष न हो। बे-ऐब। बे-दाग। (२) जिसने कोई अपराध न किया हो। बेकसूर।

निर्दोषता–संज्ञा स्त्री० [सं० निर्दोष + ता (प्रत्य०)] निर्दोष होने की क्रिया या भाव। अकलंकता। शुद्धता। दोष-विहीनता।

निर्दोषी–वि० दे० "निर्दोष (२)"।

निर्द्वंद, निर्द्वंद्व–वि० [सं०] (१) जिसका कोई विरोध करनेवाला न हो। जिसका कोई द्वंद्वी न हो। (२) जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से रहित या परे हो। (३) स्वच्छंद। विना बाधा का।

निर्धन—वि० [सं०] जिसके पास धन न हो। धनहीन। गरीब। दरिद्र। कंगाल।

निर्धनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धन होने की क्रिया या भाव। गरीबी। कंगाली। दरिद्रता।

निर्धर्म्म–संज्ञा पुं० [सं०] जो धर्म से रहित हो।

निर्धार, निर्धारण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहराना या निश्चित करना। (२) निश्चय। निर्णय। उ०—करि राख्यो निराधार यह मैं लखि नारी ज्ञान। वहै वैद औषधि वहै वहै जु रोगनिदान।—विहारी। (३) न्याय के अनुसार किसी एक जाति के पदार्थों में से गुण वा कर्म आदि के विचार से कुछ को अलग करना। जैसे, काली गौएँ बहुत दूध देनेवाली होती हैं। यहाँ "गो" जाति में से अधिक दूध देनेवाली होने के कारण काली गौएँ पृथक् की गई हैं।

निर्धारना—क्रि० स० [सं० निर्धारण] निश्चित करना। निर्धारित करना। ठहराना।

निर्धारित–वि० [सं०] जिसका निर्धारण हो चुका हो। निश्चित किया हुआ। ठहराया हुआ।

निर्धूत–वि० [सं०] धोया हुआ। उ०—साधु पद सलिल निर्धूत कल्मष सकल स्वपच जवनादि कैवल्यभागी।—तुलसी।
वि० [सं०] (१) खंडित। टूटा हुआ। (२) जिसका त्याग कर दिया गया हो।

निर्निमित्त, निर्निमित्तक–वि० [सं०] अकारण। बिना वजह।

निर्निमेष क्रि० वि० [सं०] बिना पलक झपकाए। एकटक।
वि० (१) जो पलक न गिरावे। (२) जिसमें पलक न गिरे। जैसे, निर्निमेष दृष्टि।

निर्पक्ष*†वि० दे० "निष्पक्ष"।

निर्फल—वि० दे० "निष्फल"।

निर्बंध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुकावट। अड़चन। (२) ज़िद। हठ। (३) आग्रह।

निर्बल वि० [सं०] बलहीन। कमज़ोर।

निर्बलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] कमज़ोरी।

निर्बहना—क्रि० अ० [सं० निर्वहन] (१) पार होना। अलग होना। दूर होना। उ०—जे नाथ करि करुणा बिलोके त्रिविध दुख ते निर्बहे।—तुलसी। (२) क्रम का चलना। निभना। पालन होना। उ०—जासों बात राम की कही। प्रीति न काहू सों निर्बही।—कबीर।

निर्बाचन—संज्ञा पुं० दे० "निर्वाचन"।

निर्बाण–संज्ञा पुं० दे० "निर्वाण"।

निर्बुद्धि वि० [सं०] जिसे बुद्धि न हो। मूर्ख। बेवकूफ।

निर्बोध—वि० [सं०] जिसे कुछ भी बोध न हो। जिसे अच्छे बुरे का कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञान। अनजान।

निर्भय—वि० [सं०] (१) जिसे कोई डर न हो। निडर। बेखौफ।
संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम। (२) बढ़िया घोड़ा।

निर्भयता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निडरपन। निडर होने का भाव। (२) निडर होने की अवस्था।

निर्भर—वि० [सं०] (१) पूर्ण। भरा हुआ। उ०—सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर। कबहिं देखिबै नयन भरि राम लषन दोउ बीर।—तुलसी। (२) युक्त। मिला हुआ। (३) अवलंबित। आश्रित। मुनहसर।
संज्ञा पुं० [सं०] वह सेवक जिसे वेतन न दिया जाता हो। बेगार।

निर्भर्त्सन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भर्त्सन। डाँट डपट। तिरस्कार। (२) निंदा। (३) अलता।

निर्भर्त्सना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डाँट डपट। बुरा भला कहना। (२) निंदा। बदनामी।

निर्भीक–वि० [सं०] बेडर। निडर। जिसे डर न हो।

निर्भीकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्भीक होने की क्रिया या भाव।

निर्भीत–वि० [सं०] जिसे भय न हो। निडर।

निर्भूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंतर्धान होना। गायब होना

निर्भ्रम–वि० [सं०] भ्रमरहित। शंकारहित। जिसमें कोई संदेह न हो।
क्रि० वि० निधड़क। बेखटके। बिना संकोच के। स्वच्छंदता से। बेडर। उ०—स्यामा स्याम सुभग जमुना जल निर्भ्रम करत विहार।—सूर।

निर्भ्रांत–वि० [सं०] (१) भ्रमरहित। निश्चित। जिसमें कोई संदेह न हो। (२) जिसको कोई भ्रम न हो।

निर्मथ–संज्ञा पुं० [सं०] अरणी जिसे रगड़कर यज्ञों के लिये आग निकालते हैं।

निर्मथ्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] नालिका या नली नाम का गंध-द्रव्य।

निर्मना*†–क्रि० स० दे० "निर्माना"।

निर्मम–वि० [सं०] जिसे ममता न हो। जिसको कोई वासना न हो।

निर्मल–वि० [सं०] (१) मलरहित। साफ। स्वच्छ। (२) पापरहित। शुद्ध। पवित्र। (३) दोषरहित। निर्दोष। कलंकहीन।
संज्ञा पुं० (१) अभ्रक। (२) निर्मली।

उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि निर्वाण शब्द जिस शून्यता का बोधक है उससे चित्त का ग्राह्यग्राहक संबंध ही नहीं है। मैं भी मिथ्या, संसार भी मिथ्या। एक बात ध्यान देने की है कि बौद्ध दार्शनिक जीव या आत्मा की भी प्रकृत सत्ता नहीं मानते। वे एक महाशून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।

निर्वाणप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम।

निर्वाणी–संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक शासन-देवता।

निर्वात–वि० [सं०] (१) जहाँ हवा न हो। जहाँ हवा का झोंका न लग सके। (२) जो चंचल न हो। स्थिर।

निर्वाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपवाद। निंदा। (२) अवज्ञा। लापरवाई।

निर्वाप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान। (२) वह दान जो पितरों के उद्देश्य से किया जाय।

निर्वास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निर्वासन। निकाल देना। (२) प्रवास। विदेश-यात्रा।

निर्वासक–वि० [सं०] निर्वासन करनेवाला।

निर्वासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। वध। (२) गाँव, शहर या देश आदि से दंड-स्वरूप बाहर निकाल देना। देशनिकाला। (३) निकालना। (४) विसर्जन।

निर्वाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी क्रम या परंपरा का चला चलना। किसी बात का जारी रहना। निबाह। जैसे, प्रीति का निर्वाह, कार्य्य का निर्वाह। (२) किसी बात के अनुसार बराबर आचरण। पालन। जैसे, प्रतिज्ञा का निर्वाह, वचन का निर्वाह। (३) समाप्ति। पूरा होना।

निर्वाहक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी काम का निर्वाह करे।

निर्वाहना–क्रि० अ० [सं० निर्वाह + ना (हिं० प्रत्य)] निर्वाह करना।

उ०—दोष न कहू है तुम्हें नेह निर्वाहे को।—पद्माकर।

निर्विंध्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] विंध्याचल से निकली हुई एक छोटी नदी जिसका उल्लेख मेघदूत में है।

निर्विकल्प–वि० [सं०] (१) जो विकल्प, परिवर्त्तन या प्रभेदों आदि से रहित हो। (२) स्थिर। निश्चित।

संज्ञा स्त्री० दे० "निर्विकल्प समाधि"।

निर्विकल्पक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदांत के अनुसार वह अवस्था जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय में भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। (२) न्याय के अनुसार वह अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञान जो इंद्रियजन्य ज्ञान से बिलकुल भिन्न होता है। बौद्ध शास्त्रों के अनुसार केवल ऐसा ही ज्ञान प्रमाण माना जाता है।

निर्विकल्प समाधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि जिसमें ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता आदि का कोई भेद नहीं रह जाता और ज्ञानात्मक सच्चिदानंद ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता। इस समाधि की तुलना योग की सुषुप्ति अवस्था के साथ की जा सकती है।

निर्विकार–वि० [सं०] विकाररहित। जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्त्तन न हो।

निर्विघ्न–वि० [सं०] विघ्न-बाधारहित। जिसमें कोई विघ्न न हो।

क्रि० वि० बिना किसी प्रकार के विघ्न या बाधा के। जैसे, सब कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हो गया।

निर्विचार वि० [सं०] विचाररहित। जिसमें कोई विचार न हो।

संज्ञा पुं० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सबीज समाधि जो किसी सूक्ष्म आलंबन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और जिसमें उस आलंबन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है। ऐसी समाधि सबसे उत्तम समझी जाती है और उससे चित्त निर्मल होता है और बुद्धि सर्वप्रकाशक हो जाती है।

निर्वितर्क समाधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सबीज समाधि जो किसी स्थूल आलंबन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और जिसमें उस आलंबन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है।

निर्विद्य–वि० [सं०] विद्याहीन। जो पढ़ा-लिखा न हो।

निर्विवाद–वि० [सं०] जिसमें कोई विवाद न हो। बिना झगड़े का।

निर्विवेक–वि० [सं०] जो किसी बात की विवेचना न कर सकता हो। विवेकहीन।

निर्विवेकता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विवेक होने का भाव।

निर्विशेष–संज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म। परमात्मा।

निर्विष–वि० [सं०] विषहीन। जिसमें विष न हो।

निर्विषा–संज्ञा स्त्री० दे० "निर्विषी"।

निर्विषी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविष की जाति की एक घास जो पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर और मलयागिरि में अधिकता से होती है। इसकी जड़ अतीस के समान होती है जिसका व्यवहार साँप-बिच्छू आदि के विषों के अतिरिक्त शरीर के और भी अनेक प्रकार के विषों का नाश करने के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह जड़ कटु, शीतल, व्रण को भरनेवाली और कफ, वात, रुधिर-विकार, विष को नष्ट करनेवाली मानी जाती है। जदवार।

पर्य्या०—निर्विषा। अविषा। विविषा। विषहा। विषहंत्री। विषाभावा। अविषा। विषवैरिणी।

निर्विष्ट–वि० [सं०] (१) जो भोग कर चुका हो। (२) जो विवाह कर चुका हो। (३) जो अग्निहोत्र कर चुका हो। (४) जो मुक्त हो गया हो।

रवानगी। प्रस्थान। विशेषतः सेना का युद्ध-क्षेत्र की ओर अथवा पशुओं का चराई की ओर प्रस्थान। (३) वह सड़क जो किसी नगर के बाहर की ओर जाती हो। (४) अदृश्य होना। गायब होना। (५) शरीर से आत्मा का निकलना। मृत्यु। (६) मोक्ष। मुक्ति। (७) हाथी की आँख का बाहरी कोना। (८) पशुओं के पैरों में बाँधने की रस्सी।

निर्यातन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बदला चुकाना। (२) प्रतीकार। (३) मार डालना। (४) ऋण चुकाना।

निर्याम-संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

निर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्षों या पौधों में से आपसे आप, अथवा उनका तना आदि चीरने से निकलनेवाला रस। (२) गोंद। (३) बहना या झरना। क्षरण। (४) क्वाथ। काढ़ा।

निर्यूप-संज्ञा पुं० दे० "निर्यास"।

निर्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्वाथ। काढ़ा। (२) द्वार। दरवाजा। (३) सिर पर पहनी जानेवाली कोई चीज। जैसे, मुकुट आदि। (४) दीवार में लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय।

निर्लज्ज-वि० [सं०] लज्जाहीन। बेशर्म। बेहया।

निर्लज्जता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेशर्मी। बेहयाई। निर्लज्ज होने का भाव।

निर्लिप्त-वि० [सं०] (१) राग द्वेष आदि से मुक्त। जो किसी विषय में आसक्त न हो। (२) जो लिप्त न हो। जो कोई संबंध न रखता हो। बेलौस।

निर्लेखन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी चीज पर जमी हुई मैल आदि खुरचना। (२) वह चीज जिससे मैल खुरची जाय। (सुश्रुत)

निर्लेप-वि० [सं०] विषयों आदि से अलग रहनेवाला। निर्लिप्त।

निर्लोभ-वि० [सं०] जिसे लोभ न हो। लालच न करनेवाला।

निर्लोभी-वि० दे० "निर्लोभ"।

निर्वंश-वि० [सं०] जिसके आगे वंश चलानेवाला कोई न हो। जिसका वंश नष्ट हो गया हो।

निर्वंशता-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वंश होने का भाव।

निर्वर-वि० [सं] (१) निर्लज्ज। बेशरम। (२) निर्भय। निडर।

निर्वहण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निबाह। गुजर। निर्वाह। (२) समाप्ति।

निर्वहना-* † क्रि० अ० [सं० निर्वहन] गुजर करना या होना। निभना। चला चलना। परंपरा का पालन होना।

निर्वाक्-वि० [सं०] जिसके मुँह से बात न निकले। जो चुप हो।

निर्वाक्य-वि० [सं०] जो बोल न सकता हो। गूँगा।

निर्वाण-वि० [सं०] (१) बुझा हुआ (दीपक अग्नि आदि)। (२) अस्त। डूबा हुआ। (३) शांत। धीमा पड़ा हुआ। (४) मृत। मरा हुआ। (५) निश्चल। (६) शून्यता को प्राप्त। (७) बिना बाण का।

संज्ञा पुं० (१) बुझना। ठंढा होना। (२) समाप्ति। न रह जाना। (३) अस्त। गमन। डूबना। (४) शांति। (५) मुक्ति। मोक्ष।

विशेष—यद्यपि मुक्ति के अर्थ में निर्वाण शब्द का प्रयोग गीता, भागवत, रघुवंश, शारीरक भाष्य इत्यादि नए पुराने ग्रंथों में मिलता है पर यह शब्द बौद्धों का पारिभाषिक है। सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा (पूर्व) और वेदांत में क्रमशः मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति या स्वर्गप्राप्ति तथा कैवल्य शब्दों का व्यवहार हुआ है पर बौद्ध दर्शन में बराबर निर्वाण शब्द ही आया है और उसकी विशेष रूप से व्याख्या की गई है। बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ हैं हीनयान (या उत्तरीय) और महायान (या दक्षिणी)। इनमें से हीनयान शाखा के सब ग्रंथ पाली भाषा में हैं और बौद्ध धर्म के मूल रूप का प्रतिपादन करते हैं। महायान शाखा कुछ पीछे की है और उसके सब ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। महायान शाखा में ही अनेक आचार्यों द्वारा बौद्ध सिद्धांतों का निरूपण गूढ़ तर्क-प्रणाली द्वारा दार्शनिक दृष्टि से हुआ है। प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का जिन बौद्ध आचार्यों से शास्त्रार्थ होता था वे प्रायः महायान शाखा के थे। अतः निर्वाण शब्द से क्या अभिप्राय है इसका निर्णय उन्हीं के वचनों द्वारा हो सकता है।

बोधिसत्त्व नागार्जुन ने माध्यमिक सूत्र में लिखा है कि 'भवसंतति का उच्छेद ही निर्वाण है' अर्थात् अपने संस्कारों द्वारा हम बार बार जन्म के बंधन में पड़ते हैं इससे उनके उच्छेद द्वारा भवबंधन का नाश हो सकता है। रत्नकूट सूत्र में बुद्ध का यह वचन है—"राग, द्वेष और मोह के क्षय से निर्वाण होता है"। वज्रच्छेदिका में बुद्ध ने कहा है कि निर्वाण अनुपधि है उसमें कोई संस्कार नहीं रह जाता। माध्यमिक सूत्रकार चंद्रकीर्त्ति ने निर्वाण के संबंध में कहा है कि सर्वप्रपंचनिवर्त्तक शून्यता को ही निर्वाण कहते हैं। यह शून्यता वा निर्वाण क्या है? न इसे भाव कह सकते हैं, न अभाव। क्योंकि भाव और अभाव दोनों के ज्ञान के क्षय का ही नाम तो निर्वाण है, जो अस्ति और नास्ति दोनों भावों के परे और अनिर्वचनीय है। माधवाचार्य ने भी अपने सर्वदर्शनसंग्रह में शून्यता का यही अभिप्राय बतलाया है—"अस्ति, नास्ति, उभय और अनुभय इस चतुष्कोटि से विनिर्मुक्ति ही शून्यत्व है। माध्यमिक सूत्र में नागार्जुन ने कहा है कि अस्तित्व (है) और नास्तित्व (नहीं है) का अनुभव अल्पबुद्धि ही करते हैं। बुद्धिमान् लोग इन दोनों का उपशमरूप कल्याण प्राप्त करते हैं।

निवाई—वि० [सं० नव] (१) नवीन । नया । (२) अनोखा । विलक्षण । उ०—पुनि लक्ष्मी यों विनय सुनाई । हरी देखि यह रूप निवाई ।—सूर ।

निवाज—वि० [फा०] कृपा करनेवाला । अनुग्रह करनेवाला।
विशेष—इसका प्रयोग फारसी और अरबी आदि शब्दों के अंत में, यौगिक में, होता है । जैसे, गरीबनिवाज ।
† संज्ञा स्त्री० दे० "नमाज़" ।

निवाजना*†—क्रि० स० [फा० निवाज़] अनुग्रह करना । उ०—(क) नाम गरीब अनेक निवाजे । लोक वेद वर बिरद बिराजे ।—तुलसी । (ख) कायर कूर कपूतन की हद तेऊ गरीबनिवाज निवाजे ।—तुलसी ।

निवाजिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) कृपा । मेहरबानी । (२) दया ।

निवाड़—संज्ञा स्त्री० दे० "निवार" ।

निवाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) छोटी नाव । (२) नाव की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीच में ले जाकर चक्कर देते हैं । नावर ।
क्रि० प्र०—खेलना ।

निवाड़ी—संज्ञा स्त्री० दे० "निवारी" ।

निवात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान । घर । (२) वह वर्म जो शस्त्र के द्वारा छेदा न जा सके ।

निवान†—संज्ञा पुं० [सं० निम्न] (१) नीची जमीन जहाँ सीड़, कीचड़ या पानी भरा रहता हो । (२) जलाशय । झील । बड़ा तालाब ।

निवाना†—क्रि० स० [सं० नम्र] नीचे की तरफ करना । झुकाना ।

निवार—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि + आर] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुएँ की नींव में दिया जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है । जाखन । जमवट ।
संज्ञा स्त्री० [फा० नवार] बहुत मोटे सूत की बुनी हुई प्रायः तीन चार अंगुल चौड़ी पट्टी जिससे पलंग आदि बुने जाते हैं । निवाड़ । नेवार ।
संज्ञा पुं० [सं० नीवार] तिन्नी का धान । मुन्यन्न । पसही । उ०—कहूँ मूल फल दल मिलि कूटत । कहुँ कहुँ पके निवारनि जूटत ।—गुमान ।
संज्ञा पुं० देश० एक प्रकार की मूली जो बहुत मोटी और स्वाद में कुछ मीठी होती है, कड़ुई नहीं होती ।

निवारक—वि० [सं०] (१) रोकनेवाला । रोधक । (२) दूर करनेवाला । मिटानेवाला ।

निवारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोकने की क्रिया । (२) हटाने या दूर करने की क्रिया । (३) निवृत्ति । छुटकारा ।

निवारन—संज्ञा पुं० दे० "निवारण" ।

निवारना*—क्रि० स० [सं० निवारण] (१) रोकना । दूर करना । हटाना । उ०—(क) पोंछि रुमालन सों श्रमसीकर औंर की ओर निवारत ही रहे ।—हरिश्चंद्र । (ख) पलका पै पौढ़ि श्रम राति को निवारिए ।—मतिराम । (२) बचाना । रक्षा के साथ काटना या बिताना । उ०—(क) यह सुख ठाम को आराम को निहारो नेक, मेरे कहे घरिक निवारि लीजै घाम को । (ख) घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलि पुंज । जमुना तीर तमाल तरु मिलति मालती कुंज ।—बिहारी । (३) निषेध करना । मना करना ।—उ०—सैनहिं लखनहिं राम निवारे ।—तुलसी ।

निवार-बाफ—संज्ञा पुं० [फा० नवार + बाफ] निवार बुननेवाला ।

निवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली या नेमाली] (१) जूही की जाति का एक फैलनेवाला झाड़ या पौधा जो जूही के पौधों से बड़ा होता है । इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबोतरे होते हैं और बरसात में इसमें जूही की तरह के छोटे सफेद फूल लगते हैं । ये फूल आम के मौर की तरह गुच्छों में होते हैं और इनमें से भीनी मनोहर सुगंध निकलती है । वैद्यक में इसे चरपरी, कड़वी, शीतल, हलकी और त्रिदोष, नेत्ररोग, मुखरोग और कर्णरोग आदि को दूर करनेवाली माना है । (२) इस पौधे का फल ।

निवाला—संज्ञा पुं० [फा०] उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय । कौर । ग्रास । लुकमा ।

निवास—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने की क्रिया या भाव । (२) रहने का स्थान । (३) घर । मकान । (४) वस्त्र । कपड़ा ।

निवासस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान । वह स्थान जहाँ कोई रहता हो । (२) घर । मकान ।

निवासी—संज्ञा पुं० [सं० निवासिन्] [स्त्री० निवासिनी] रहनेवाला । बसनेवाला । वासी ।

निवास्य—वि० [सं०] रहने योग्य ।

निविड़—वि० [सं०] (१) घना । घन । घोर । (२) गहरा । (३) जिसकी नाक चिपटी या दबी हुई हो ।

निविड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशी या इसी प्रकार के किसी और बाजे के स्वर का गंभीर होना जो उसके पाँच गुणों में से एक गुण माना जाता है ।

निविधान—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो एक ही दिन में समाप्त हो जाय ।

निविष†—वि० दे० "निर्विष" ।

निविष्ट—वि० [सं०] (१) जिसका चित्त एकाग्र हो । (२) एकाग्र । (३) लपेटा हुआ । (४) घुसा या घुसाया हुआ । (५) बाँधा हुआ । (६) स्थित । ठहरा हुआ ।

निवीत—संज्ञा पुं० [सं०] ओढ़ने का कपड़ा । चादर ।

निवीर्य्य—वि० [सं०] वीर्य्यहीन । जिसमें वीर्य या पुरुषत्व न हो ।

निवृत्त—वि० [सं०] (१) छूटा हुआ । (२) जो अलग हो गया हो । विरक्त । (३) जो छुट्टी पा गया हो । खाली ।

निर्वीज-वि० [सं०] (१) बीजरहित। जिसमें बीज न हों। (२) जो कारण से रहित हो।

निर्वीज समाधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पातंजल के अनुसार समाधि की वह अवस्था जिसमें चित्त का निरोध करते करते उसका अवलंबन या बीज भी विलीन हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य को सुख दुःख आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता और उसका मोक्ष हो जाता है।

निर्वीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश नाम का मेवा।

निर्वीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति और पुत्र न हो।

निर्वीर्य्य-वि० [सं०] वीर्य्यहीन। बल वा तेजरहित। कमजोर। निस्तेज।

निर्वृत्त-वि० [सं०] जो पूरा हो गया हो। जिसकी निष्पत्ति हो गई हो।

निर्वृत्तात्मा-संज्ञा पुं० [सं० निर्वृत्तात्मन्] विष्णु।

निर्वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पत्ति।

निर्वेग-वि० [सं०] जिसमें वेग या गति न हो। स्थिर।

निर्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना अपमान। (२) वैराग्य। (३) खेद। दुःख। (४) अनुताप।

निर्वेधिम-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कान छेदने का एक औजार।

निर्वेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोग। (२) वेतन। तनखाह। (३) विवाह। व्याह। शादी। (४) मूर्च्छा। बेहोशी।

निर्वैर-वि० [सं०] जिसमें वैर न हो। द्वेष से रहित।

निर्व्यलीक-वि० [सं०] निष्कपट। छलरहित। उ०—शंकर हृद पुंडरीक निवसत हरि चंचरीक निर्व्यलीक मानस गृह संतत रहे छाई।—तुलसी।

निर्व्याज-वि० [सं०] (१) निष्कपट। छलरहित। उ०—पूजा यहै उर आनु। निर्व्याज धरिए ध्यानु।—केशव। (२) बाधारहित।

निर्व्याधि-वि० [सं०] व्याधि या रोग से मुक्त।

निर्हरण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निर्हारी] (१) शव को जलाने के लिये ले जाना। (२) जलाना। (३) नाश करना।

निर्हेतु-वि० [सं०] जिसमें कोई हेतु या कारण न हो।

निल-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो माली नामक राक्षस की वसुदा नामक की स्त्री से उत्पन्न हुआ था और जो विभीषण का मंत्री था।

निलज†-वि० दे० "निर्लज्ज"।

निलजई*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० निलज+ई (प्रत्य०)] निर्लज्जता। बेशर्मी। बेहयाई। उ०—खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु, रीझिबे लायक तुलसी की निलजई।—तुलसी।

निलजता*-संज्ञा स्त्री० [सं० निर्लज्जता] निर्लज्जता। बेशर्मी। बेहयाई। उ०—निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहिं छोरि।—तुलसी

निलजी*†-वि० स्त्री० [हिं० निलज] निर्लज्जा (स्त्री)। बेशर्म। बेहया।

निलज्ज-वि० दे० "निर्लज्ज"।

निलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकान। घर। (२) स्थान। जगह।

निलाम-संज्ञा पुं० दे० "नीलाम"।

निलीन-वि० [सं०] बहुत अधिक लीन।

निवक्ष-संज्ञा पुं० [सं० निवक्षस्] वह जीव या पशु जो यज्ञ आदि में उत्सर्ग किया जाय।

निवछावर†-संज्ञा स्त्री० दे० "निछावर"।

निवड़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव] एक प्रकार की नाव। दे० "निवाड़ा"।

निवपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पितरों आदि के उद्देश्य से कुछ दान करना। (२) वह जो कुछ पितरों आदि के उद्देश्य से दान किया जाय।

निवर-वि० [सं०] निवारण करनेवाला। निवारक।

निवरा-वि० स्त्री० [सं०] जिसके वर न हो। अविवाहिता। कुमारी।

निवर्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल में भूमि की एक नाप जो २१० हाथ लंबाई और २१० हाथ चौड़ाई की होती थी। (२) निवारण। (३) पीछे हटाना या लौटाना।

निवर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं० निवर्तिन्] (१) वह जो पीछे की ओर हट आया हो। (२) वह जो युद्ध में से भाग आया हो। (३) निर्लिप्त।

निवसथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाँव। (२) सीमा। हद। (डिं०)

निवसन-संज्ञा पुं० [सं० नि+वसन] (१) गाँव। (२) घर। (३) वस्त्र। (४) स्त्री का सामान्य अधोवस्त्र। (डिं०)

निवसना-क्रि० अ० [सं० निवसन या निवास] रहना। निवास करना। उ०—(क) यहि मिसि चित्रकूट की महिमा मुनिवर बहुत बखानि। सुनत राम हरखित तहँ निवसे पावन गिरि पहचानि।—देवस्वामी। (ख) बज बालक नंदराज समेता। मम गृह निवसहु कृपानिकेता।—गोपाल।

निवह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। यूथ। उ०—किंशुक बरन सुअंशुक सुखमा सुखन समेत। जनु विधु निवह रहे करि दामिन निकर निकेत।—तुलसी। (२) सात वायुओं में से एक वायु।

विशेष—फलित ज्योतिष में सात वायुएँ मानी गई हैं जिनमें से प्रत्येक वायु एक वर्ष तक बहती है। निवह वायु भी उन्हीं में से एक है। यह न तो बहुत तेज होती है और न बहुत धीमी। जिस वर्ष यह वायु चलती है, कहते हैं कि उस वर्ष कोई सुखी नहीं रहता।

निशाचरी–संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) राक्षसी। (२) कुलटा। (३) केशिनी नामक गंधद्रव्य। (४) अभिसारिका नायिका।

निशाचर्म–संज्ञा पुं॰ [सं॰] अंधकार। अँधेरा।

निशाचारी–संज्ञा पुं॰ [सं॰ निशाचारिन्] (१) शिव। (२) निशाचर।

निशाजल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हिम। पाला। (२) ओस।

निशाट–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) उल्लू। (२) निशाचर।

निशाटक–संज्ञा [सं॰] गूगल।

निशाटन–संज्ञा पुं॰ [सं॰] उल्लू।

वि॰ जो रात को विचरण करे। निशाचर।

निशातैल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो सेर भर कडुवे तेल, धतूरे के पत्तों के चार सेर रस, आठ तोले पीसी हुई हलदी और चार तोले गंधक के मेल से बनता है। यह तेल कान के रोगों के लिये विशेष उपकारी माना जाता है।

निशाद्य तैल–संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो भगंदर के लिये उपकारी माना जाता है और जो कडुवे तेल, पीसी हुई हलदी, सेंधा नमक, चितामूल और गुग्गुल आदि के मेल से बनाया जाता है।

निशाधीश–संज्ञा पुं॰ दे॰ "निशापति"।

निशान–संज्ञा पुं॰ [फा॰] (१) लक्षण जिससे कोई चीज़ पहचानी जाय। चिह्न। जैसे, (क) उस मकान का कोई निशान बता दो तो जल्दी पता लग जायगा। (ख) जहाँ तक पुस्तक पढ़ो उसके आगे कोई निशान रख दो। (२) किसी पदार्थ से अंकित किया हुआ अथवा और किसी प्रकार बना हुआ चिह्न। जैसे, पैर का निशान, अँगूठे का निशान, चोट का निशान, कपड़े पर बना हुआ धोबी का निशान, ध्वनियों की पहचान के लिये बनाए हुए निशान (अक्षर), किताब पर बनाए हुए निशान आदि।

क्रि॰ प्र॰—करना।—डालना।—लगाना।—बनाना।

(३) शरीर अथवा और किसी पदार्थ पर बना हुआ स्वाभाविक या और किसी प्रकार का चिह्न, दाग या धब्बा। जैसे, किसी पशु पर बना हुआ गुल का निशान, चेहरे पर बना हुआ गुम्मर का निशान। (४) किसी पदार्थ का परिचय कराने के लिये उसके स्थान पर बनाया हुआ कोई चिह्न। जैसे, ज्योतिष में ग्रहों आदि के बनाए हुए निशान, वनस्पति शास्त्र में वृक्ष, झाड़ी और नर या मादा पेड़ या फूल के लिये बनाए हुए निशान। (५) वह चिह्न जो अपढ़ आदमी अपने हस्ताक्षर के बदले में किसी कागज आदि पर बनाता है। (६) वह लक्षण या चिह्न जिससे किसी प्राचीन या पहले की घटना अथवा पदार्थ का परिचय मिले। जैसे, किसी पुराने नगर आदि का खंडहर।

यौ॰—नाम-निशान=(१) किसी प्रकार का चिह्न या लक्षण। (२) अस्तित्व का लेश। बचा हुआ थोड़ा अंश। जैसे, वहाँ अब किसी घर का नाम-निशान नहीं है।

(७) पता। ठिकाना।

मुहा॰—निशान देना=(१) पता बताना। (२) आसामी को सम्मन आदि तामिल करने के लिये पहचनवाना।

यौ॰—निशानदेही।

(८) वह चिह्न या संकेत जो किसी विशेष कार्य्य या पहचान के लिये नियत किया जाय। (९) समुद्र में या पहाड़ों आदि पर बना हुआ वह स्थान जहाँ लोगों को मार्ग आदि दिखाने के लिये कोई प्रयोग किया जाता हो। जैसे, मार्गदर्शक प्रकाशालय आदि। (लश॰)। (१०) दे॰ "लक्षण"। (११) दे॰ "निशाना"। (१२) दे॰ "निशानी"। (१३) ध्वजा। पताका। झंडा।

मुहा॰—किसी बात का निशान उठाना या खड़ा करना।=(१) किसी काम में अगुआ या नेता बन कर लोगों को अपना अनुयायी बनाना। जैसे, बगावत का निशान खड़ा करना। (२) आंदोलन करना।

निशानकोना–संज्ञा पुं॰ [सं॰ ईशान+हिं॰ कोना] उत्तर और पूर्व का कोण। (लश॰)

निशानची–संज्ञा पुं॰ [फा॰ निशान+ची (प्रत्य॰)] वह जो किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे झंडा लेकर चलता हो। निशानबरदार।

निशानदिही–संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "निशानदेही"।

निशानदेही–संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ निशान+हिं॰ देना या फा॰ देह=देना] आसामी को सम्मन आदि की तामील के लिये पहचनवाने की क्रिया। आसामी का पता बतलाने का काम।

निशानपट्टी–संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ निशान+हिं॰ पट्टी] चेहरे की बनावट आदि अथवा उसका वर्णन। हुलिया।

निशानबरदार–संज्ञा पुं॰ [फा॰] वह जो किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे आगे झंडा लेकर चलता हो। निशानची।

निशापति–संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) चंद्रमा। निशाकर। (२) कपूर। कपूर।

निशाना–संज्ञा पुं॰ [फा॰] (१) वह जिसपर ताक कर किसी अस्त्र या शस्त्र आदि का वार किया जाय। लक्ष्य।

मुहा॰—निशाना करना या बनाना=अस्त्र आदि के वार करने के लिये किसी को लक्ष्य बनाना। निशाना होना=निशाना बनना। लक्ष्य होना।

(२) किसी पदार्थ को लक्ष्य बना कर उसकी ओर किसी प्रकार का वार करना।

मुहा॰—निशाना बाँधना=वार करने के लिये अस्त्र आदि को इस प्रकार साधना जिसमें ठीक लक्ष्य पर वार हो। निशाना

निवृत्तसंतापनीय–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक रसायन जिसमें अठारह ओषधियाँ हैं। कहते हैं कि इस रसायन के सेवन से मनुष्य का शरीर युवा के समान और बल सिंह के समान हो जाता है और वह मनुष्य श्रुतिधर हो जाता है। ये सब ओषधियाँ सोमरस के समान वीर्य्ययुक्त मानी जाती है। इन के नाम ये हैं—अजगरी, श्वेतकपोती, कृष्णकपोती, गोनसी, वाराही, कन्या, छत्रा, अतिछत्रा, करेणु, अजा, चक्रका, आदित्यवर्णिनी, ब्रह्मसुवर्चला, श्रावणी, हाश्रावणी, गोलोभी, अजलोभी और महावेगवती।

निवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुक्ति। छुटकारा। प्रवृत्ति का उलटा। (२) बौद्धों के अनुसार मुक्ति या मोक्ष। (३) एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

निवेद*†–संज्ञा पुं० दे० "नैवेद्य"।

निवेदक–संज्ञा पुं० [सं०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

निवेदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनय। विनती। प्रार्थना। (२) समर्पण।

निवेदना*†–क्रि० स० [हिं० निवेदन] (१) विनती करना। प्रार्थना करना। (२) नजर करना। कुछ भोज्य पदार्थ आगे रखना। नैवेद्य चढ़ाना। अर्पित कर देना। उ०—सदा आपु को सोहि निवेदै। प्रेम शस्त्र ते ग्रंथिहिं छेदै।—रघुनाथ।

निवेदित–वि० [सं०] (१) चढ़ाया हुआ। अर्पित किया हुआ। दिया हुआ। (२) कहा हुआ। सुनाया हुआ। निवेदन किया हुआ।

निवेरना*† क्रि० स० [हिं० निवेड़ना] (१) निबटाना, फैसल करना। (२) खतम कर देना। उ०—अति बहु केलि गोपिकन केरी। संछेपै में कछुक निवेरी।—रघुनाथ। (३) छाँटना। चुन लेना। (४) छुड़ाना। दूर करना। हटाना। उ०—कुलवंत निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निवेरि गती।—तुलसी।

निवेरा*–वि० [हिं० निवेड़ना या निवेरना] (१) चुना हुआ। छाँटा हुआ। उ०—आजु भई कैसी गति तेरी ब्रज में चतुर निवेरी।—सूर। (२) नवीन। अनोखा। नया। उ०—(क) मैं कह आजु निवेरी आई? बहुतै आदर करति सबै मिलि पहुने की कीजै पहुनाई।—सूर।

निवेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवाह। (२) शिविर। डेरा। खेमा। (३) प्रवेश। (४) घर। मकान।

निवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कपड़ा जिसमें कोई चीज ढाँकी जाय। (२) सामवेद का मंत्रभेद।

निवेष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्याप्ति। (२) बरफ का पानी। (३) जलस्तंभ।

निव्याधी–संज्ञा पुं० [सं० निव्याधिन्] एक रुद्र का नाम।

निश्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) हल्दी।

निशंक–वि० [सं० निःशंक] जिसे किसी बात की शंका या भय न हो। निर्भय। निडर। बेखौफ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का नृत्य विशेष।

निशंग–संज्ञा पुं० दे० "निषंग"।

निश*†–संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] रात्रि। रजनी।

निशचर*†–संज्ञा पुं० दे० "निशाचर"।

निशठ–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बलदेव के एक पुत्र का नाम।

निशतर–संज्ञा पुं० दे० "नश्तर"।

निशमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्शन। देखना। (२) श्रवण। सुनना।

निशल्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] दंतीवृक्ष।

निशांत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात्रि का अंत। पिछली रात। रात का चौथा पहर। (२) प्रभात। तड़का। (३) घर। गृह।

वि० जो बहुत ही शांत हो।

निशांध–वि० [सं०] रात का अंधा। जिसे रात को न सूझे। जिसे रतौंधी होती हो।

संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग जो उस समय पड़ता है जब सिंहराशि में सूर्य्य हो। कहते हैं कि इस योग के पड़ने से मनुष्य को रतौंधी होती है।

निशांधी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतुका या पहाड़ी नामक लता जिनकी पत्तियाँ ओषधि के काम में आती हैं। (२) राजकन्या। राजकुमारी।

निशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रजनी। रात। (२) हरिद्रा। हलदी। (३) दारुहरिद्रा। (४) फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन आदि छः राशियाँ। दे० "राशि"।

निशाकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। शशि। चाँद। (२) कुक्कुट। मुरगा। (३) महादेव। (४) एक महर्षि का नाम। (५) कपूर।

निशाखातिर†–संज्ञा स्त्री० [अ० खातिर + फा० निशाँ (खातिर निशाँ)] तसल्ली। दिलजमई। प्रबोध।

निशाख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी।

निशाचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) शृगाल। गीदड़। (३) उल्लू। (४) सर्प। (५) चक्रवाक। (६) भूत। (७) चोर। (८) अंशिपर्ण का एक भेद। (९) महादेव। (१०) चोर नामक गंधद्रव्य। (११) बिल्ली। (१२) वह जो रात को चले। जैसे, कुलटा, पिशाच आदि।

निशाचरपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) रावण।

में से किसी के साथ विवाह करो पर दुर्गा ने कहला दिया कि रण में मुझे जो जीतेगा उसीसे मैं विवाह करूँगी। रण में दुर्गा ने पहले धूम्रलोचन, चंड, मुंड, रक्तबीज आदि असुरों तथा उनके साथियों को मारा। फिर शुंभ और निशुंभ ने युद्ध आरंभ किया। देवी ने पहले निशुंभ को और तब शुंभ को मारा जिससे असुरों का उत्पात शांत हुआ और इंद्र को फिर स्वर्ग का राज्य मिला।

निशुंभन-संज्ञा पुं० [सं०] वध। मार डालना।

निशुंभमर्दिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

निशुंभी-संज्ञा पुं० [सं० निशुम्भिन्] एक बुद्ध का नाम।

निशेश-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

निशैन-संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगुला।

निशोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। तड़का।

निश्कुला-वि० [सं०] अपने कुल से निकाली हुई (स्त्री)।

निश्चंद्र—वि० [सं०] (१) चंद्रमारहित। (२) जिसमें चमक न हो।

निश्चंद्र अभ्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वह अभ्रक जो दूध, ग्वारपाठ, आदमी के मूत्र, बकरी के दूध आदि कई पदार्थों में मिलाकर और सौ बार उनका पुट देकर तैयार किया जाता है। कहते हैं कि यह पद्मराग के समान हो जाता है। यह वीर्यवर्द्धक, रसायन और ज्वरनाशक माना जाता है।

निश्चय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसी धारणा जिसमें कोई संदेह न हो। निःसंशय ज्ञान। (२) विश्वास। यकीन। (३) निर्णय। जैसे, इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि यह वस्तु क्या है।

विशेष—निश्चय बुद्धि की वृत्ति है।

(४) पक्का विचार। दृढ़ संकल्प। पूरा इरादा। जैसे, मैंने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया है। (५) एक अर्थालंकार जिसमें अन्य विषय का निषेध होकर प्रकृत वा यथार्थ विषय का स्थापन होता है जैसे, नहिं सरोज यह वदन है नहिं इंदीवर नैन। मधुकर ! जनि धावै वृथा, मानि हमारे बैन ॥ यहाँ सरोज और इंदीवर का निषेध करके यथार्थ वस्तु मुख और नैन की स्थापना हुई है।

निश्चयात्मक-वि० [सं०] जो बिलकुल निश्चित हो। ठीक ठीक। असंदिग्ध।

निश्चयात्मकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चयात्मक होने का भाव। यथार्थता। असंदिग्धता।

निश्चर-संज्ञा पुं० दे० [सं०] एकादश मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

निश्चल-वि० [सं०] (१) जो अपने स्थान से न हटे। अचल। अटल। (२) जो ज़रा भी न हिले-डुले। स्थिर।

निश्चलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चल होने का भाव। स्थिरता। दृढ़ता।

निश्चलांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बगुला। (२) पर्वत आदि जो सदा निश्चल रहते हैं।

वि० जिसके अंग हिलते डोलते न हों।

निश्चला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) पृथ्वी। (३) मत्स्यपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

निश्चायक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी बात का निश्चय या निर्णय करता हो। निश्चयकर्त्ता। निर्णायक।

निश्चारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवाहिका नाम का रोग जो अतिसार का एक भेद है। यह बच्चों को प्रायः होता है और इसमें बहुत दस्त आते हैं। (२) वायु। हवा।

निश्चिंत-वि० [सं०] जिसे कोई चिंता या फिक्र न हो या जो चिंता से मुक्त हो गया हो। चिंतारहित। बे फ़िक्र। जैसे, (क) आप निश्चिंत रहें, मैं ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा। (ख) अब कहीं जाकर हम इस काम से निश्चिंत हुए हैं।

निश्चिंतई*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० निश्चिंत] निश्चिंत होने का भाव। बेफ़िक्री।

निश्चित-वि० [सं०] (१) जिसके संबंध में निश्चय हो चुका हो। तै किया हुआ। निर्णीत। जैसे, (क) हमारे वहाँ जाने की सब बातें निश्चित हो चुकी हैं। (ख) इस काम के लिये कोई दिन निश्चित कर लो। (२) जिसमें कोई परिवर्त्तन या फेर-बदल न हो सके। दृढ़। पक्का। जैसे, तुम कोई निश्चित बात तो कहते ही नहीं, नित्य नए बहाने निकालते हो।

निश्चिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय करना।

निश्चित्त-संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि।

निश्चिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

निश्चुक्कण-संज्ञा पुं० [सं०] मिस्सी।

निश्चेतन-वि० [सं०] (१) बेसुध। बेहोश। बदहवास। (२) जड़।

निश्चेष्ट-वि० [सं०] (१) बेहोश। अचेत। चेष्टारहित। (२) निश्चल। स्थिर।

निश्चेष्टाकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो मैनसिल से बनाई जाती है। (२) कामदेव के एक प्रकार के बाण का नाम।

निश्चै*-संज्ञा पुं० दे० "निश्चय"।

निश्च्यवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार वैवस्वत मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम। (२) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की अग्नि।

निश्छंद-वि० [सं० निश्छंदस्] जिसने वेद न पढ़ा हो।

निश्छल-वि० [सं०] छलरहित। सीधा। सरलचित्त। निष्कपट।

मारना या लगाना=ताक कर अस्त्र शस्त्र आदि का वार करना। निशाना साधना=(१) निशाना बाँधना। (२) निशाना लगाने का अभ्यास करना।

(३) मिट्टी आदि का वह ढेर या और कोई पदार्थ जिस पर निशाना साधा जाय। (४) वह जिस पर लक्ष्य करके कोई व्यंग्य या बात कही जाय।

निशानाथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

निशानी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) स्मृति के उद्देश्य से दिया अथवा रखा हुआ पदार्थ। वह जिससे किसी का स्मरण हो। यादगार। स्मृति-चिह्न। जैसे, (क) हमारे पास यही घड़ी उनकी निशानी है। (ख) चलते समय हमें अपनी कुछ निशानी तो दे जाओ। (ग) बस यही लड़का हमारे स्वर्गीय मित्र की निशानी है।

क्रि० प्र०—देना।—रखना।

(२) वह चिह्न जिससे कोई चीज़ पहचानी जाय। निशान। पहचान।

निशापुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र आदि आकाशीय पिंड।

निशापुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] कुमुदिनी। कोईं।

निशावल–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धन और मकर ये छः राशियाँ जो रात के समय अधिक बलवती मानी जाती हैं।

विशेष—फलित ज्योतिष में दो प्रकार की राशियाँ मानी जाती हैं—निशाबल और दिनबल। उक्त छः राशियाँ निशाबल और शेष दिनबल मानी जाती हैं। कहा जाता है कि जो काम दिन के समय करना हो वह दिनबल राशियों में और जो काम रात के समय करना हो वह रात्रिबल राशियों में करना चाहिए।

निशाभंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धपुच्छी नामक पौधा।

निशामणि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

निशामन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्शन। देखना। (२) आलोचन। (३) श्रवण। सुनना।

निशामय–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

निशामुख–संज्ञा पुं० [सं०] संध्याकाल। गोधूली का समय।

निशामृग–संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़।

निशारत्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

निशारुक–संज्ञा पुं० [सं०] सात प्रकार के रूपक तालों में से एक प्रकार का ताल जिसमें दो लघु और दो गुरु मात्राएँ होती हैं। इसका व्यवहार प्रायः हास्य रस के गीतों के साथ होता है।

वि० [सं०] बहुत अधिक हिंसा करनेवाला।

निशावन–संज्ञा पुं० [सं०] सन का पौधा।

निशावसान–संज्ञा पुं० [सं०] रात का अंतिम भाग। प्रभात। तड़का।

निशाविहार–संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

निशास्ता–संज्ञा पुं० [फा०] (१) गेहूँ को भिगोकर उसका निकाला और जमाया हुआ सत या गूदा। (२) माँड़ी। कलफ।

निशाह्स–संज्ञा पुं० [सं०] कुमोदनी।

निशाह्सा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका। सिंदुवार। निर्गुंडी।

निशाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) जतुका नाम की लता।

निशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। रात्रि। रजनी। (२) हलदी।

निशिकर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। शशि।

निशिचर–संज्ञा पुं० दे० "निशाचर"।

निशिचरराज*–संज्ञा पुं० [सं०] राक्षसों का राजा, विभीषण।

निशित–संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

वि० चोखा। तेज़। तीखा। जो सान पर चढ़ा हुआ हो।

निशिदिन–क्रि० वि० [सं०] रातदिन। सदा। सर्वदा।

निशिनाथ–संज्ञा पुं० दे० "निशानाथ"।

निशिनायक–संज्ञा पुं० दे० "निशानाथ"।

निशिपति–संज्ञा पुं० दे० "निशापति"।

निशिपाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में भगण जगण सगण, नगण और रगण होता है। उ०—भाजे सुनि राघव कवींद्र कुल की नई। काव्य रचना विपुल वित्त तिहीं दै दई। वार निशि-पाल हम से बुध कवी जनै। हो नृप चिरायु अखिलेश! कवि यों भनै।

निशिपालिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "निशिपाल"।

निशिपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी या शेफालिका नामक फूल का पेड़। सिंदुवार।

निशिपुष्पिका, निशिपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।

निशिवासर*–संज्ञा पुं० [सं०] रातदिन। सदा। सर्वदा। हमेशा।

निशीथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रात। (२) आधी रात। (३) भागवत के अनुसार रात्रि के एक कल्पित पुत्र का नाम।

निशीथिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

निशुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वध। (२) हिंसा। (३) पुराणानुसार एक असुर का नाम जिसका जन्म कश्यप ऋषि की स्त्री दनु के गर्भ से हुआ था और जो शुंभ तथा निमुचि का भाई था। निमुचि तो इंद्र के हाथ से मारा गया था पर शुंभ और निशुंभ ने देवताओं पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया था और स्वर्ग पर राज्य करना आरंभ कर दिया था। जब इन दोनों ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला तब निशुंभ ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्गा को मार डालूँगा। उस समय नर्मदा नदी से निकलकर चंड और मुंड नामक दो और राक्षस भी इन लोगों में मिल गए। पहले शुंभ और निशुंभ ने दुर्गा से कहलाया कि तुम हम

व्याकरण के अनुसार यह दंत्य है। संगीतदर्पण के अनुसार इस स्वर की उत्पत्ति असुर वंश में हुई है, इसकी जाति वैश्य, वर्ण विचित्र, जन्म पुष्कर द्वीप में, ऋषि तुंबरु, देवता सूर्य और छंद जगती है। यह संपूर्ण जाति का स्वर है और करुण रस के लिये विशेष उपयोगी है। इसकी कूट तान ५०४० हैं। इसका वार शनिवार और समय रात्रि के अंत की २ घड़ी ३४ पल है। इसका स्वरूप गणेश जी के समान माना जाता है।

निपादकर्प–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम।

निपादी–संज्ञा पुं० [सं० निषादिन्] हाथीवान। महावत।

निपिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य्य से उत्पन्न गर्भ।

निपिद्ध–वि० [सं०] (१) जिसका निषेध किया गया हो। जिसके लिये मनाही हो। जो न करने के योग्य हो। (२) खराब। बुरा। दूषित।

निपिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] निषेध। मनाही।

निपूदन–वि० [सं०] मारनेवाला। जैसे, अरिनिपूदन, केशिनिपूदन।

निषेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भाधान। (२) रेत। वीर्य। (३) चरण। चूना। टपकना।

निषेचन–क्रि० स० [सं०] सींचना। तर करना। भिगोना। आर्द्र करना।

निषेध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्जन। मनाही। न करने का आदेश। (२) बाधा। रुकावट।

निषेधक–संज्ञा पुं० [सं०] मना करनेवाला। रोकनेवाला।

निषेधन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निषेधित, निषिद्ध] निषेध करने का काम। निवारण। मना करना।

निषेधपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा किसी प्रकार का निषेध किया जाय।

निषेधविधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बात या आज्ञा जिसके द्वारा किसी बात का निषेध किया जाय।

निषेधित–संज्ञा पुं० [सं०] जिसके लिये निषेध किया गया हो। मना किया हुआ। वर्जित।

निषेवन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निषेवनीय, निषेवित, निषेव्य] सेवा। (२) सेवन। व्यवहार।

निषेव्य–वि० [सं०] सेवनीय। सेवा के योग्य।

निषेवी–संज्ञा पुं० [सं०] [निषेविन्] सेवा करनेवाला।

निष्कंटक–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की बाधा, आपत्ति या झंझट आदि न हो। बिना खटका। निर्विघ्न। जैसे, उन्होंने पचीस वर्ष तक निष्कंटक राज्य किया।

निष्कंठ–संज्ञा पुं० [सं०] वरुण या वरना नाम का पेड़।

निष्कंप–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का कंप न हो। स्थिर।

निष्कंभ–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

निष्कंभु–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवताओं के एक सेनापति का नाम।

निष्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल का एक प्रकार का सोने का सिक्का या मोहर जिसका भिन्न भिन्न समयों में जिसका मान भिन्न भिन्न था।

विशेष—प्राचीन काल में यज्ञों में राजा लोग ऋषियों और ब्राह्मणों को दक्षिणा में देने के लिये सोने के बराबर तौल के टुकड़े कटवा लिया करते थे जो "निष्क" कहलाते थे। सोने के इस प्रकार टुकड़े कराने का मुख्य हेतु यह होता था कि दक्षिणा में सब लोगों को बराबर सोना मिले, किसी के पास कम या ज्यादा न चला जाय। पीछे से सोने के इन टुकड़ों पर यज्ञस्तूप आदि के चिह्न और नाम आदि बनाए या खोदे जाने लगे। इन्हीं टुकड़ों ने आगे चलकर सिक्कों का रूप धारण कर लिया। उस समय कुछ लोग इन टुकड़ों को गूँथ कर और उनकी माला बनाकर गले में भी पहनते थे। भिन्न भिन्न समयों में निष्क का मान नीचे लिखे अनुसार था।

एक निष्क	=	एक कर्ष	(१६ माशे)
,, ,,	=	,, सुवर्ण	,,
,, ,,	=	,, दीनार	,,
,, ,,	=	,, पल (४ या ५ सुवर्ण)	
,, ,,	=	चार माशे	
,, ,,	=	१०८ अथवा १५० सुवर्ण	

(२) प्राचीन काल में चाँदी की एक प्रकार की तौल जो चार सुवर्ण के बराबर होती थी। (३) वैद्यक में चार माशे की तौल। टंक। (४) सुवर्ण। सोना। (५) सोने का बरतन। (६) हीरा।

निष्कपट–वि० [सं०] जो किसी प्रकार का छल या कपट न जानता हो। निश्छल। छलरहित। सीधा। सरल।

निष्कपटता–संज्ञा स्त्री० [सं] निष्कपट होने का भाव। निश्छलता। सरलता। सीधापन।

निष्कपटी–वि० दे० "निष्कपट"।

निष्कर–संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जिसका कर न देना पड़ता हो।

निष्करुण–वि० [सं०] जिसमें करुणा या दया न हो। करुणा-रहित। निष्ठुर। निर्दय। बेरहम।

निष्कर्म–वि० [सं० निष्कर्मन्] अकर्मा। जो कर्मों में लिप्त न हो। उ०—विष्णु नारायण कृष्ण जो वासुदेव ही ब्रह्म। परमेश्वर परमात्मा विश्वंभर निष्कर्म।—विश्राम।

निष्कर्मण्य–वि० [सं०] अकर्मण्य। अयोग्य। निकम्मा। जो कुछ काम न कर सके।

निष्कर्मा–वि० [सं०] [निष्कर्मन्] (१) जो कर्मों में लिप्त न हो। अकर्मा। (२) निकम्मा।

निष्कर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निश्चय। खुलासा। तत्व।

निश्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न दिया जा सके। अविभाज्य।

निश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य्य से न थकना अथवा न घबराना। अध्यवसाय।

निश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी।

निश्रीक—संज्ञा पुं० [सं०] सीढ़ी।

निश्रेणिका तृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जो रस-हीन और गरम होती और पशुओं को निर्बल कर देती है।

निश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीढ़ी। ज़ीना। (२) मुक्ति। (३) खजूर का पेड़।

निश्रेयस—संज्ञा पुं० [सं० निःश्रेयस] (१) मोक्ष। (२) दुःख का अत्यंत अभाव। (३) कल्याण।

निश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] नाक या मुँह के बाहर निकलनेवाला श्वास। प्राण वायु के नाक के बाहर निकलने का व्यापार।

निश्शंक—वि० [सं०] (१) निडर। निर्भय। बेखौफ। (२) संदेह रहित। जिसमें शंका न हो।

निश्शक्त—वि० [सं०] निर्बल। नाताकत। जिसमें शक्ति न हो।

निश्शील—वि० [सं०] बेमुरौवत। बदमिज़ाज। बुरे स्वभाववाला।

निश्शीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट स्वभाव। बदमिज़ाजी।

निश्शेष—वि० [सं०] जिसमें से कुछ भी बाकी न बचा हो। जिसका कुछ भी अवशिष्ट न हो।

निषंग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तूण। तूणीर। तरकश। (२) खड्ग। (३) प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता था।

निषंगथि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आलिंगन करनेवाला। (२) रथ। (३) कंधा। (४) तृण। (५) सारथी। (६) धनुस् धारण करनेवाला।

निषंगी—वि० [सं० निषंगिन्] (१) तीर चलानेवाला। धनुर्धारी। (२) खड्ग धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

निषकपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। निशाचर। असुर।

निषकर्षी—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरसाधन की एक प्रणाली जिसमें प्रत्येक स्वर को दो दो बार अलापना पड़ता है। जैसे, सा सा रे रे ग ग म म प प ध ध नि नि सा सा। सा सा नि नि ध ध प प म म ग ग रे रे सा सा।

निषक्त—संज्ञा पुं० [सं०] बाप। पिता। जनक।

निषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की दीक्षा।

निषद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) निषाद स्वर। (संगीत)। (२) एक राजा का नाम।

निषद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ कोई चीज बिकती हो। हाट। (२) छोटी खाट।

निषद्यापरीषत—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे स्थान में जहाँ स्त्री पंढ आदि का आगम हो न रहना और यदि इष्टानिष्ट का उपसर्ग हो तो भी अपने चित्त को चलायमान न करना। (जैन)

निषद्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कीचड़। चहला।

निषद्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

निषध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। कहते हैं कि यह पर्वत इलावृत्त के दक्षिण हरिवर्ष की सीमा पर है। (२) हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के प्रपौत्र और कुश के पौत्र का नाम। (३) महाराज जनमेजय के पुत्र का नाम। (४) पुराणानुसार एक देश का प्राचीन नाम जो विंध्याचल पर्वत पर था। किसी किसी के मत से यह वर्त्तमान कमाऊँ का एक भाग है और दमयंती-पति नल यहीं के राजा थे। (५) कुरु के एक लड़के का नाम। (६) संगीत के सात स्वरों में से अंतिम या सातवाँ स्वर। निषाद।

वि०—कठिन।

निषधावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो विंध्य पर्वत से निकलती है।

निषधाभास—संज्ञा पुं० [सं०] आक्षेप। अलंकार के ५ भेदों में से एक।

निषधाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] कुरु के एक लड़के का नाम।

निषसई—संज्ञा स्त्री० दे० "निखिसई"।

निषाद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बहुत पुरानी अनार्य्य जाति जो भारत में आर्य जाति के आने से पहले निवास करती थी। इस जाति के लोग शिकार खेलते, मछलियाँ मारते और डाका डालते थे।

विशेष—पुराणों में जिस प्रकार और अनेक अनार्य्य जातियों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ लिखी हुई हैं उसी प्रकार इस जाति की उत्पत्ति के संबंध में भी एक कथा है। अग्नि-पुराण में लिखा है कि जिस समय राजा वेणु की जाँघ मथी गई थी उस समय उसमें से काले रंग का एक छोटा सा आदमी निकला था। वही आदमी इस वंश का आदि-पुरुष था। लेकिन मनु के मत से इस जाति की सृष्टि ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से हुई है। मिताक्षरा में यह जाति क्रूर और पापी कही गई है।

(२) एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख महाभारत, रामायण तथा कई पुराणों में है। महाभारत के अनुसार यह एक छोटा राष्ट्र था जो विनशन के दक्षिण पश्चिम में था। संभवतः रामायणवाला शृंगवेरपुर इस राज्य का राजनगर था। (३) संगीत के सात स्वरों में अंतिम और सब से ऊँचा स्वर जिसका संक्षिप्त रूप "नि" है। इसकी दो श्रुतियाँ हैं—उग्रता और शोभिनी। नारद के अनुसार यह स्वर हाथी के स्वर के समान है और इसका उच्चारण स्थान ललाट है।

निष्क्लेश–वि० [सं०] (१) क्लेशरहित। सब प्रकार के कष्टों से मुक्त। (२) बौद्धों के अनुसार दसों प्रकार के क्लेशों से मुक्त।
निष्क्वाथ–संज्ञा पुं० [सं०] मांस आदि का रसा। शोरवा।
निष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री दिति का एक नाम।
निष्टिग्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम।
निष्ट्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चांडाल। (२) म्लेच्छों की एक जाति का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है।
निष्ठ–वि० [सं०] (१) स्थित। ठहरा हुआ। (२) तत्पर। लगा हुआ। जैसे, कर्त्तव्यनिष्ठ। (३) जिसमें किसी के प्रति श्रद्धा या भक्ति हो। जैसे, स्वामिनिष्ठ।
निष्ठांत–वि० [सं०] जिसका नाश अवश्य हो। जो अविनाशी न हो। नष्ट होनेवाला।
निष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिति। अवस्था। ठहराव। (२) निर्वाह। (३) मन की एकांत स्थिति। चित्त का जमना। (४) विश्वास। निश्चय। (५) धर्म्म, गुरु या बड़े आदि के प्रति श्रद्धा-भक्ति। पूज्य बुद्धि। (६) विष्णु जिनमें प्रलय के समय समस्त भूतों की स्थिति होगी। (७) इति। समाप्ति। (८) नाश। (९) सिद्धावस्था की अंतिम स्थिति। ज्ञान की वह चरमावस्था जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता हो जाती है।
निष्ठान, निष्ठानक–संज्ञा पुं० [सं०] चटनी आदि।
निष्ठावान्–वि० [सं० निष्ठावत्] जिसमें निष्ठा या श्रद्धा हो।
निष्ठित–वि० [सं०] (१) स्थित। दृढ़। ठहरा या जमा हुआ। (२) जिसमें निष्ठा हो। निष्ठायुक्त।
निष्ठीवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) थूक। (२) वैद्यक के अनुसार एक औषध जिसका व्यवहार गले या फेफड़े से कफ निकालने में किया जाता है। इसके सेवन से रोगी कफ थूकने लगता है।
निष्ठुर–वि० [सं०] [स्त्री० निष्ठुरा] (१) कठिन। कड़ा। सख्त। (२) जिसमें दया न हो। कठोर-हृदयवाला। क्रूर। बेरहम।
निष्ठुरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निष्ठुर होने का भाव। कड़ाई। सख्ती। कठोरता। (२) निर्दयता। क्रूरता। बेरहमी।
निष्ठुरिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
निष्ठेव, निष्ठेवन–संज्ञा पुं० [सं०] थूक।
निष्ण–वि० [सं०] कुशल। होशियार।
निष्णात–वि० [सं०] किसी विषय का बहुत अच्छा ज्ञाता या जानकार। किसी बात का पूरा पंडित। विज्ञ। निपुण।
निष्पंक–वि० [सं०] जिसमें कीचड़ आदि न लगा हो। स्वच्छ। निर्मल। साफ। सुथरा।
निष्पंद–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का कंप न हो।
निष्पक्ष–वि० [सं०] जो किसी के पक्ष में न हो। पक्षपातरहित।
निष्पक्षता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पक्ष होने का भाव। पक्षपात न करने का भाव।
निष्पताकध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार दंड जिसे राजा लोग अपने पास रखते थे। यह दंड ठीक पताका के दंड के समान होता था, अंतर केवल इतना ही होता था कि इसमें पताका नहीं होती थी।
निष्पत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समाप्ति। अंत। (२) सिद्धि। परिपाक। (३) हठ योग के अनुसार नाद की चार प्रकार की अवस्थाओं में से अंतिम अवस्था। (४) निर्वाह। (५) मीमांसा। (६) निश्चय। निर्धारण।
निष्पत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] करील का पेड़।
निष्पद–संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जिसमें पहिए आदि न हों। जैसे, नाव आदि।
निष्पन्न–वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो। जो समाप्त या पूरा हो चुका हो।
निष्परिग्रह–वि० [सं०] (१) जो दान आदि न ले। (२) जिसके स्त्री न हो। रँडुआ। (३) अविवाहित। कुँवारा।
निष्परुष–वि० [सं०] जो सुनने में कर्कश न हो। कोमल।
निष्पवन–संज्ञा पुं० [सं०] धान आदि की भूसी निकालना। कूटना छाँटना।
निष्पाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनाज की भूसी निकालने का काम। दाँवा। (२) बोड़ा नाम की तरकारी या फली। (३) मटर। (४) सेम।
निष्पादक–वि० [सं०] निष्पत्ति करनेवाला।
निष्पादन–संज्ञा पुं० [सं०] निष्पत्ति करना।
निष्पादी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बोड़ा नाम की तरकारी या फली। लोबिया।
निष्पाव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भूसी निकालना। कूट छाँट। (२) सूप की हवा। (३) सेम। लोबिया।
निष्पावक–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सेम।
निष्पीड़न–संज्ञा पुं० [सं०] निचोड़ना। गीले कपड़े को दबाकर उसमें से पानी निकालना।
निष्पुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रहीन। जिसके आगे पुत्र न हो।
निष्पुलाक–संज्ञा पुं० [सं०] आगामी उत्सर्पिणी के अनुसार १४ वें अर्हत का नाम। (जैन)
निष्प्रकंप–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार तेरहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम।
निष्प्रचार–संज्ञा पुं० [सं०] जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। जिसमें गति न हो। न चल सकने योग्य।

(२) निचोड़। सार। सारांश। (३) राजा का अपने लाभ या कर आदि के लिये प्रजा को दुःख देना। (४) निकालने की क्रिया।

निष्कर्षी–संज्ञा पुं० [सं० निष्कर्षिन्] एक प्रकार के मरुत्।

निष्कलंक–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का कलंक न हो। निर्दोष। बेऐब।

निष्कलंकतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम जिसमें स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

निष्कलंकित–वि० दे० "निष्कलंक"।

निष्कलंकी–वि० दे० "निष्कलंक"।

निष्कल–वि० [सं०] (१) जिसमें कला न हो। कला-रहित। (२) जिसका कोई अंग या भाग नष्ट हो गया हो। (३) जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो। वृद्ध। (४) नपुंसक। (५) पूरा समूचा।

संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म।

निष्कलत्व–संज्ञा पुं० [सं०] अविभाज्य होने की अवस्था। किसी पदार्थ की वह अवस्था जिसमें उसके और अधिक विभाग न हो सकें।

निष्कला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धा स्त्री। बुढ़िया।

निष्कली–संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिक अवस्थावाली वह स्त्री जिसका मासिक धर्म होना बंद हो गया हो।

निष्कषाय–संज्ञा० पुं० [सं०] (१) वह जिसके चित्त में किसी प्रकार का दोष न हो। वह जिसका चित्त स्वच्छ और पवित्र हो। (२) मुमुक्षु। (३) एक जिन का नाम। (जैन)

निष्काम–वि० [सं०] (१) (वह मनुष्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न हो। (२) (वह काम) जो बिना किसी प्रकार की कामना या इच्छा के किया जाय। (सांख्य और गीता आदि के मत से ऐसा काम करने से चित्त शुद्ध होता और मुक्ति मिलती है।)

निष्कामता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्काम होने की अवस्था या भाव।

निष्कामी–वि० [सं० निष्कामिन्] (वह मनुष्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना या आसक्ति न हो।

निष्कारण–वि० [सं०] (१) बिना कारण। बेसबब। (२) व्यर्थ। वृथा।

निष्कालक–संज्ञा पुं० [सं०] मूँड़े हुए बाल या रोएँ आदि।

निष्कालन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलाने की क्रिया। (२) मार डालने की क्रिया। मारण।

निष्काश–संज्ञा पुं० [सं०] प्रासाद आदि का बाहर निकला हुआ भाग। जैसे, बरामदा।

निष्काशन–संज्ञा पुं० [सं०] निकालना। बाहर करना।

निष्काशित–वि० [सं०] (१) बहिष्कृत। निकाला हुआ। (२) निंदित। जिसकी निंदा की गई हो।

निष्कास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निकालने की क्रिया या भाव। (२) मकान का बरामदा।

निष्कासन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निष्कासित] बाहर करना। निकालना।

निष्किंचन–वि० [सं०] अकिंचन। धनहीन। दरिद्र। जिसके पास कुछ न हो।

निष्कुंभ–संज्ञा पुं० [सं०] दंती वृक्ष।

निष्कुट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर के पास का बाग। नजर बाग। पाईं बाग। (२) क्षेत्र। खेत। (३) कपाट। किवाड़ा। (४) जनाना महल। स्त्रियों के रहने का घर। (५) एक पर्वत का नाम।

निष्कुटि, निष्कुटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

निष्कुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुमार की अनुचरी एक मातृका का नाम।

निष्कुह–संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ का खोंड़रा। कोटर।

निष्कृत–वि० [सं०] (१) मुक्त। छूटा हुआ। स्वतंत्र। (२) निश्चय किया हुआ। निश्चित।

निष्कृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निस्तार। छुटकारा। (२) प्रायश्चित्त।

निष्कृप–वि० [सं०] तेज। तीक्ष्ण। धारदार। चोखा।

निष्क्रम–वि० [सं०] (१) बिना क्रम या सिलसिले का। बेतरतीब।

संज्ञा पुं० (१) बाहर निकलना। (२) निष्क्रमण की रीति। (३) पतित होना। (४) मन की वृत्ति।

निष्क्रमण–संज्ञा पुं० [सं०][वि० निष्क्रांत](१) बाहर निकलना। (२) हिंदुओं में छोटे बच्चों का एक संस्कार जिसमें जब बालक चार महीने का होता है तब उसे घर से बाहर निकालकर सूर्य का दर्शन कराया जाता है।

निष्क्रमणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चार महीने के बालक को पहले पहल घर से निकालकर सूर्य्य के दर्शन कराना।

निष्क्रय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेतन। तनखाह। मज़दूरी। भाड़ा। (२) वह धन जो किसी पदार्थ के बदले में दिया जाय। (३) विनिमय। बदला। (४) बिक्री। बेचने की क्रिया। (५) सामर्थ्य। शक्ति। (६) पुरस्कार। इनाम।

निष्क्रिय–वि० [सं०] जिसमें कोई क्रिया या व्यापार न हो। सब प्रकार की क्रियाओं से रहित। निश्चेष्ट।

यौ०–निष्क्रिय प्रतिरोध=किसी कार्य या आज्ञा का वह विरोध जिसमें विरोध करनेवाला अपनी समझ से सत्य और उचित काम करता रहता है और इस बात की परवा नहीं करता कि इसके लिये मुझे दंड सहना पड़ेगा।

संज्ञा पुं० कर्मशून्य ब्रह्म।

निष्क्रियता–संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्क्रिय होने का भाव या अवस्था।

आज निसा भरि प्यारे निसा भरि कीजिये कान्हर केलि खुसी मैं।—ठाकुर।

⁰ संज्ञा स्त्री० दे० "निशा"।

‡ संज्ञा पुं० दे० "नशा"।

निसाकर–संज्ञा पुं० दे० "निशाकर"।

निसाचर–संज्ञा पुं० दे० "निशाचर"।

निसाद–संज्ञा पुं० [सं० निषाद] भंगी। मेहतर।

निसान–संज्ञा पुं० [फा० निशान] (१) दे० "निशान"। (२) नगाड़ा। धौंसा। उ०—बीस सहस घुमरहिं निसाना। गुल-कंचन फेरहिं असमाना।—जायसी।

निसानन⁰†–संज्ञा पुं० [सं० निशानन] संध्या का समय। प्रदोष काल।

निसाना–संज्ञा पुं० दे० "निशाना"।

निसानाथ*–संज्ञा पुं० दे० "निशानाथ"।

निसानी–संज्ञा स्त्री० दे० "निशानी"।

निसापति–संज्ञा पुं० दे० "निशापति"।

निसाफ*†–संज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] न्याय। इनसाफ।

निसार–संज्ञा पुं० [अ०] (१) निछावर। सदका। उतारा। (२) मुगलों के राजत्व काल का एक सिक्का जो चौथाई रुपए या चार आने मूल्य का होता था।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। (२) सहोरा या सोनापाठा नाम का वृक्ष।

*† वि० दे० "निस्सार"।

निसारक–संज्ञा पुं० [सं०] मालव राग का एक भेद।

निसारना†–क्रि० स० [सं० निःसरण] निकालना। बाहर करना।

निसारा–संज्ञा स्त्री० [सं० निःसारा] केले का पेड़।

निसावरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कबूतर।

निसास⁰–संज्ञा पुं० [सं० निःश्वास] गहरा या ठंढा साँस।

वि० [हिं० नि (प्रत्य०) + साँस] विगतश्वास। बेदम। उ०—गगन धरति जल बूड़ि गइ बूड़त होइ निसास। पिय पिय चातक जोहि री मरै सेवाति पियास।—जायसी।

निसासी⁰–वि० [सं० निःश्वास] जिसका साँस न चलता हो। बेदम। उ०—अब हूँ मरौं निसासी हिये न आवै साँस। रुगिया की को चलै बैदहि जहाँ उपास।—जायसी।

निसिंधु–संज्ञा पुं० [सं०] सम्हालू नाम का पेड़।

निसि–संज्ञा स्त्री० [सं० निशि] (१) दे० "निशि"। (२) एक वृत्त का नाम। इसके प्रत्येक चरण में एक मगण और एक लघु (ऽऽऽ—।) होता है।

निसिकर–संज्ञा पुं० दे० "निशिकर" या "निशाकर"।

निसिचर⁰†–संज्ञा पुं० दे० "निशाचर"।

निसिचारी⁰–संज्ञा पुं० [सं० निशिचारी] निशाचर। राक्षस।

निसिदिन⁰–क्रि० वि० [सं० निशिदिन] (१) रातदिन। आठो पहर। (२) सदा। सर्वदा। नित्य। हमेशा।

निसिनाथ⁰–संज्ञा पुं० दे० "निशिनाथ" या "निशानाथ"

निसिनाह⁰–संज्ञा पुं० [सं० निशिनाथ] चंद्रमा।

निसि निसि–संज्ञा स्त्री० [सं० निशि निशि] अर्द्ध रात्रि। निशीथ। आधी रात। उ०—निसि निसि निशिथ निशाह निशि होन लगी अधरात। कौन चलै सखि सोय रहु जैहौं उठि परभात।—नंददास।

निसिपति*–संज्ञा पुं० [सं० निशिपति] चंद्रमा।

निसिपाल*–संज्ञा पुं० [सं० निशिपाल] चंद्रमा।

निसिमनि⁰–संज्ञा पुं० [सं० निशामणि] चंद्रमा।

निसिमुख*–संज्ञा पुं० दे० "निशामुख"।

निसिवासर*–क्रि० वि० [सं० निशि + वासर] रातदिन। सदा। सर्वदा। नित्य।

निसीठी–वि० [सं० निः + हिं० सीठी] जिसमें कुछ तत्त्व न हो। निःसार। नीरस। थोथा। उ०—तुम बातैं निसीठी कहौ। रिस में मिसरी ते मीठी हमैं लागती हैं।—पद्माकर।

निसीथ*–संज्ञा पुं० दे० "निशीथ"।

निसुंधु–संज्ञा पुं० [सं०] प्रह्लाद के भाई ह्लाद के पुत्र का नाम।

निसुंभ–संज्ञा पुं० दे० "निशुंभ"।

निसु⁰†–संज्ञा स्त्री० दे० "निशा"।

निसूदक–वि० [सं०] हिंसा करनेवाला। हिंसक।

निसूदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसा करना। (२) वध करना।

निसृत–वि० दे० "निःसृत"।

निसृना–संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

निसृष्ट–वि० [सं०] (१) छोड़ा हुआ। जो छोड़ दिया गया हो। (२) मध्यस्थ। जो बीच में पड़कर कोई बात करे। (३) भेजा हुआ। प्रेरित। (४) दिया हुआ। दत्त। (५) अर्पित किया हुआ।

निसृष्टार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीन प्रकार के दूतों में से एक दूत। वह दूत जो दोनों पक्षों का अभिप्राय अच्छी तरह समझ कर स्वयं ही सब प्रश्नों का उत्तर दे देता और कार्य सिद्ध कर लेता है। (२) वह मनुष्य जो धन के आयव्यय और कृषि तथा वाणिज्य की देखरेख के लिये नियुक्त किया जाय। (३) वह मनुष्य जो धीर और शूर हो, अपने मालिक का काम तत्परता से करता रहे और अपना पौरुष प्रकट करे।

निसेनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। जीना। सोपान।

निसेष⁰–वि० दे० "निःशेष"।

निसेस⁰–संज्ञा पुं० [सं० निशेश] चंद्रमा।

निसैनी–संज्ञा स्त्री० दे० "निसेनी"।

निष्प्रभ–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की प्रभा या चमक न हो। प्रभाशून्य। तेजरहित।

निष्प्रयोजन–वि० [सं०] (१) प्रयोजन-रहित। जिसमें कोई मतलब न हो। स्वार्थशून्य। जैसे, निष्प्रयोजन प्रीति। (२) जिससे कुछ अर्थ सिद्ध न हो। (३) व्यर्थ। निरर्थक।

क्रि० वि० (१) विना अर्थ या मतलब के। (२) व्यर्थ। फ़ज़ूल।

निष्प्राण–वि० [सं०] प्राणरहित। मुरदा। मरा हुआ।

निष्प्रेही*–वि० [सं० निस्पृह] जिसको किसी वस्तु की चाह न हो। किसी बात की इच्छा न रखनेवाला। उ०—चतुराई हरि ना मिलै ये बातों की बात। निष्प्रेही निराधार को गाहक दीनानाथ।—कबीर।

निष्फल–वि० [सं०] (१) जिसका कोई फल न हो। व्यर्थ। निरर्थक। बेफायदा। (२) अंडकोश-रहित। जिसके अंडकोष न हो। उ०—हे दुर्मति तूने मेरा रूप लेकर इस अकार्य्य कर्म को किया इसलिये तैं निष्फल अर्थात् अंडकोश रहित हो जायगा।—गोपाल भट्ट (वाल्मीकि रामायण)। (३) धान का पयाल। पूला।

निष्फला–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका रजोधर्म्म होना बंद हो गया हो। वृद्धा स्त्री।

विशेष—जटाधर के मत से ५० वर्ष की अवस्था के उपरांत और सुश्रुत के मत से ५५ वर्ष की अवस्था के उपरांत स्त्रियाँ निष्फला हो जाती हैं।

निष्फलि–संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों के निष्फल करने का अस्त्र।

विशेष—वाल्मीकि के अनुसार जिस समय विश्वामित्र अपने साथ रामचंद्र को वन में ले गए थे उस समय उन्होंने रामचंद्र को और और अस्त्रों के साथ यह अस्त्र भी दिया था।

निसंक†–वि० दे० "निश्शंक"।

निसंस†*–वि० [सं० नृशंस] क्रूर। बेरहम। निर्दय।

निसंसना*–क्रि० अ० [सं० निःश्वास] हाँफना। निःश्वास लेना। उ०—खनहिं निसाँस बूड़ि जिउ जाई। खनहिं उठइ निसंसइ बउराई।—जायसी।

निस*†–संज्ञा स्त्री० दे० "निशा"।

निसक–वि० [सं० निःशक्त] अशक्त। कमजोर। दुर्बल। उ०—कहै यहै श्रुति सुमृत सो यहै सयाने लोग। तीन दबावत निसक ही राजा पातक रोग।—बिहारी।

निसकर†*–संज्ञा पुं० [सं० निशाकर] चंद्रमा। चाँद।

निसचय†*–संज्ञा पुं० दे० "निश्चय"।

निसत*‡–वि० [सं० निःसत्य] असत्य। मिथ्या।

निसतरना*†–क्रि० अ० [सं० निस्तार] निस्तार पाना। छुटकारा पाना। छुट्टी पाना।

निसतार–संज्ञा पुं० दे० "निस्तार"।

निसद्योस*†–क्रि० वि० [सं० निशि + दिवस] रात दिन। नित्य। सदा।

निसनेहा*–संज्ञा स्त्री० दे० "निःस्नेहा"।

निसबत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) संबंध। लगाव। ताल्लुक। जैसे, इन दोनों में कोई निसबत नहीं है। (२) मँगनी। विवाह संबंध की बात।

क्रि० प्र०—आना।—ठहरना।

(३) तुलना। अपेक्षा। मुकाबला। जैसे, (क) इसकी और उसकी क्या निसबत? (ख) यह चीज़ उसकी निसबत अच्छी है।

विशेष—उदाहरण 'ख' की कोटि के वाक्यों में "निसबत" शब्द के पहले प्रायः फ़ारसी का "ब" उपसर्ग लगा देते हैं। जैसे, इसकी बनिसबत वह कुछ बड़ा है।

मुहा०—निसबत देना = तुलना करना। मुकाबला करना।

निसरना*–क्रि० अ० [सं० निःसरण] निकलना। बाहर होना। उ०—नव दसन निसरत बदन मँह जो दसन कली समान तें।—सीताराम।

निसर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वभाव। प्रकृति। (२) रूप। आकृति। (३) दान। (४) सृष्टि।

निसर्गायु–संज्ञा स्त्री० [सं० निसर्गायुस्] फलित ज्योतिष में एक प्रकार की गणना जिससे किसी व्यक्ति की आयु का पता लगाया जाता है।

निसवादला‡*–वि० [सं० निःस्वाद] स्वाद-रहित। जिसमें कोई स्वाद न हो। उ०—जनक झूठ निसवादलो कौन बात परिजाइ। तियसुख रति आरंभ की नहिं झूठयहि मिठाइ।—बिहारी।

निसवासर*†–संज्ञा पुं० [सं० निशिवासर] रात और दिन।

क्रि० वि० नित्य। सदा। हमेशा।

निसस*†–वि० [सं० निःश्वास] श्वास-रहित। अचेत। बेहोश। उ०—निसस ऊभ भर लीन्हे साँसा। भइ अधार जीवन की आसा।—जायसी।

निसहाय–वि० दे० "निस्सहाय"।

निसाँक‡–वि० [सं० निःशंक] (१) बेखटके। निर्भय। बेख़ौफ। (२) बेफिक्र। निश्चिंत।

निसाँस*†–संज्ञा पुं० [सं० निःश्वास] ठंढी साँस। लंबी साँस। वि० बेदम। मृतकप्राय। उ०—खिनहीं साँस बूड़ि जिव आई। खिनहिं उठै निसरै बौराई।—जायसी।

निसा–संज्ञा स्त्री० [? निशाखातिर] संतोष। तृप्ति। उ०—है है तब निसा मेरे लोचन चकोरनि की जब वह अमोल आनन इंदु देखिहैं।—मतिराम।

मुहा०—निसा भर = जी भर के। खूब अच्छी तरह। उ०—

निस्तैल-वि० [सं०] तैलरहित। बिना तेल का। जिसमें तेल न हो।

निस्त्रप-वि० [सं०] निर्लज्ज। बेहया। बेशर्म।

निस्त्रिंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड्ग। (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र।

वि० [सं०] निर्दय। जिसमें दया न हो।

निस्त्रिंश पत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] थूहर।

निस्त्रुटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।

निस्त्रैगुण्य-वि० [सं०] जो सत, रज और तम इन तीनों गुणों से रहित या अलग हो।

निस्त्रैणपुष्पिक-संज्ञा पुं० [सं०] धतूरे का पेड़।

निस्नेह-वि० [सं०] (१) जिसमें प्रेम न हो। (२) जिसमें तेल न हो।

संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र।

निस्नेहफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया। कटेरी।

निस्पंद-वि० [सं०] जिसमें स्पंदन न हो। कंपरहित। स्थिर।

निस्पृह-वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार का लोभ न हो। लालच या कामना आदि से रहित।

निस्पृहता-संज्ञा स्त्री० [सं०] निस्पृह होने का भाव। लोभ या लालसा न होने का भाव।

निस्पृहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा या कलिहारी नामक पेड़।

निस्पृही-वि० दे० "निस्पृह"।

निस्फ़-वि० [अ०] अर्द्ध। आधा। दो बराबर भागों में से एक भाग।

निस्फल†-वि० दे० "निष्फल"।

निस्फीबँटाई-संज्ञा स्त्री० [अ० निस्फ़ + ई (प्रत्य०) + हिं० बँटाई] वह बँटाई जिसमें आधी उपज जमींदार और आधी असामी लेता है। अधिया।

निस्बत-संज्ञा स्त्री० दे० "निसबत"।

निस्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भात का माँड़। (२) वह जो बह या झड़ कर निकला हो।

निस्रव-संज्ञा पुं० [सं०] भात का माँड़। वह जो बह या झड़कर निकले। पसेव।

निस्व-वि० [सं०] दरिद्र। गरीब।

निस्वन-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज़।

निस्वान-संज्ञा पुं० दे० "निस्वन"।

निस्वास-संज्ञा पुं० दे० "निःश्वास"।

निस्संकोच-वि० [सं०] संकोचरहित। जिसमें संकोच या लज्जा न हो। बेधड़क।

निस्संतान-वि० [सं०] जिसे कोई संतान न हो। संतति-रहित।

निस्संदेह-क्रि० वि० [सं०] अवश्य। ज़रूर। बेशक। सचमुच।

वि० जिसमें संदेह न हो।

निस्सरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निकलने का मार्ग या स्थान। (२) निकलने का भाव या क्रिया। निकास।

निस्सार-वि० [सं०] (१) सार-रहित। जिसमें कुछ भी सार या गूदा न हो। (२) जिसमें कोई काम की वस्तु न हो। निस्तत्व।

निस्सारित-वि० [सं०] निकाला हुआ। बाहर किया हुआ।

निस्सीम-वि० [सं०] (१) जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। अपार। (२) बहुत अधिक।

निस्सृत-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ०—दोउ करत रंग प्रहार वारहिं वार बहुत प्रकार के। तिन को कहत मैं नाम जो हैं हाथ मुख्य हथ्यार के। उद्भ्रांत भ्रांत प्रवृद्ध आकर विकर भिन्न अमानुषै। आविद्ध निर्मर्याद कुल चितवहु निस्सृत रिपुन दुषै।—रघुराज।

निस्स्वादु-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई स्वाद न हो। (२) जिसका स्वाद बुरा हो।

निस्स्वार्थ-वि० [सं०] स्वार्थ से रहित। जिसमें स्वयं अपने लाभ या हित का कोई विचार न हो।

निहंग-वि० [सं० निःसंग] (१) एकाकी। अकेला। (२) विवाह आदि न करनेवाला या स्त्री आदि से संबंध न रखनेवाला (साधु)। (३) नंगा। (४) बेहया। बेशरम।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के वैष्णव साधु। (२) अकेले रहनेवाला साधु।

निहंगम-वि० दे० "निहंग"।

निहंग-लाडला-वि० [हिं० निहंग + लाडला] जो माता पिता के दुलार के कारण बहुत ही ढीठ और लापरवा हो गया हो।

निहंता-वि० [सं० निहंतृ] [स्त्री० निहंत्री] (१) विनाशक। नाश करनेवाला। (२) मारनेवाला। प्राण लेनेवाला।

निहकर्म*†-वि० दे० "निष्कर्म"।

निहकर्मी*†-वि० दे० "निष्कर्मी"।

निहकलंक*†-वि० दे० "निष्कलंक"।

निहकाम*†-वि० दे० "निष्काम"। उ०—नर नारी सब नर्क है जब लग देह सकाम। कहै कबीर सो राम को जो सुमिरै निहकाम।—कबीर।

निहकामी†-वि० दे० "निष्कामी"। उ०—सहकामी सुमिरन करै पावै उत्तम धाम। निहकामी सुमिरन करै पावै अविचल राम।—कबीर।

निहचक्र†-संज्ञा पुं० [सं० नेमि + चक्र] पहिए के आकार का काठ का गोल चक्कर जो कूएँ की नीवँ में दिया जाता है। निवार। जमवट। जाखिम।

निहचय*†-संज्ञा पुं० दे० "निश्चय"।

निहचल*†-वि० दे० "निश्चल"।

निसोग*†–वि० [सं० निःशोक] जिसे कोई शोक या चिंता न हो।

निसोच*–वि० [सं० निःशोच] चिंता-रहित। निश्चिंत। वेफिक्र।

निसोत–वि० [सं० निःसंयुक्त] जिसमें और किसी चीज का मेल न हो। शुद्ध। निरा। उ०—(क) तौ कत त्रिविध सूल निस वासर सहते विपति निसोती।—तुलसी। (ख) रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते।—तुलसी। (ग) कृपा सुधा जल दानि मानिबो कहा सो साँच निसोतो।—तुलसी।
संज्ञा स्त्री० दे० "निसोथ"।

निसोत्तर–संज्ञा पुं० दे० "निसोत"।

निसोथ–संज्ञा स्त्री० [सं० निसृता] एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत के जंगलों में और पहाड़ों पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं और इसमें गोल फल लगते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—सफेद, काली और लाल। सफेद निसोथ में सफेद रंग के, काली में कालापन लिए बैंगनी रंग के और लाल के फल कुछ लाल रंग के होते हैं। सफेद निसोथ के पत्ते और फल अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं और वैद्यक में वही अधिक गुणकारी भी मानी जाती है। भारत में बहुत प्राचीन काल से वैद्य लोग इसका व्यवहार करते आए हैं और इसका जुलाब सबसे अच्छा समझते हैं। औषध के काम के लिये बाजार में इसकी जड़ तथा डंठलों के कटे हुए टुकड़े मिलते हैं। वैद्यक में इसे गरम, चरपरी, रूखी, रेचक और कफ, सूजन तथा उदर-रोगों को दूर करनेवाली माना है।
पर्य्या०—त्रिवृत्। सुवहा। त्रिपुटा। त्रिभंडी। रेचनी। सरा। सहा। सरसा। रोचनी। मालविका। श्यामा। मसूरी। अर्द्धचंद्रा। विदला। सुषेणी। कालिंगिका। कालमेषी। काली। त्रिवेला। त्रिवृत्तिका। सारा। निसृता।

निसोधु†*–संज्ञा स्त्री० [हिं० सोध या सुध] (१) सुध। खबर। (२) सँदेसा। कहलाया हुआ समाचार।

निसोत†–संज्ञा स्त्री० दे० "निसोथ"।

निस्की–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसे निस्तरी भी कहते हैं।

निस्केवल–वि० [सं० निष्केवल] बेमेल। शुद्ध। निर्मल। खालिस। (बोलचाल)। उ०—उमा जोग जप दान तप नाना व्रत मख नेम। राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निस्केवल प्रेम।—तुलसी।

निस्संतु–वि० [सं०] जिसके कोई संतान न हो।

निस्तंद्र–वि० [सं०] (१) जिसमें आलस्य न हो। निरालस्य। (२) बलवान। मजबूत।

निस्तत्व–वि० [सं०] जिसमें कोई तत्व न हो। निस्सार।

निस्तब्ध–वि० [सं०] (१) जो गड़ या जम सा गया हो। जो हिलता डोलता न हो। जिसमें गति या व्यापार न हो। (२) जड़वत्। निश्चेष्ट।

निस्तब्धता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तब्ध होने का भाव। खामोशी। (२) जरा भी शब्द न होने का भाव। सन्नाटा।

निस्तरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निस्तार। छुटकारा। उद्धार। (२) पार जाने की क्रिया या भाव।

निस्तरना*†–क्रि० अ० [सं० निस्तार] निस्तार पाना। पार होना। मुक्त होना। छूट जाना। उ०—नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा।—तुलसी।

निस्तरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसका रेशम बंगाल के "देशी" कीड़ों के रेशम की अपेक्षा कुछ कम मुलायम और चमकीला होता है। इसके तीन भेद होते हैं—मदरासी, सोनामुखी और क्रूमि।

निस्तार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पार होने का भाव। (२) छुटकारा। मोक्ष। बचत। बचाव। उद्धार।

निस्तारक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० निस्तारिका] निस्तार करनेवाला। बचानेवाला। छुड़ानेवाला।

निस्तारण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निस्तार करना। बचाना। छुड़ाना। (२) पार करना। (३) जीतना।

निस्तारन*–वि० दे० "निस्तारण"।

निस्तारना†*–क्रि० स० [सं० निस्तर + ना (प्रत्य०)] छुड़ाना। मुक्त करना। उद्धार करना।

निस्तार बीज–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह उपाय या काम जिससे मनुष्य की इस संसार तथा जन्म मरण आदि से मुक्ति हो जाय। जैसे, भगवान के नाम का स्मरण, कीर्त्तन, अर्चन, पादसेवन, वंदन, चरणोदक-पान, विष्णु के मंत्र का जप आदि।
विशेष—पुराणों में लिखा है कि कलियुग में जब लोग तपोहीन हो जायँगे तब इन्हीं सब कामों से उनकी मुक्ति होगी।

निस्तारा*–संज्ञा पुं० दे० "निस्तार"।

निस्तिमिर–वि० [सं०] अंधकार से रहित या शून्य।

निस्तीर्ण–वि० [सं०] (१) पार गया हुआ। जो तै या पार कर चुका हो। (२) जिसका निस्तार हो चुका हो। छूटा हुआ। मुक्त।

निस्तुप–वि० [सं०] (१) बिना भूसी का। जिसमें भूसी न हो। (२) निर्मल।

निस्तुप रत्न–संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक मणि।

निस्तुप क्षीर–संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ।

निस्तेज–वि० [सं० निस्तेजस्] तेजरहित। जिसमें तेज न हो। अप्रभ। मलिन।

निहुड़ना†–क्रि० अ० दे० "निहुरना"।

निहुड़ाना†–क्रि० स० दे० "निहुराना"।

निहुरना†–क्रि० अ० [हिं० नि+होड़न] झुकना। नवना। उ०—(क) यक से पूजा जैान विचारा। यक से निहुरि निमाज गुजारा।—कबीर। (ख) कुच अग्र नखच्छत नाह दियो सिर नाय निहारति यों सजनी। ससि सेखर के सिरते सु मनों निहुरे ससि लेत कला अपनी।—पद्माकर।

निहुराना–क्रि० स० [हिं० निहुरना का प्रे०] झुकाना। नवाना। उ०—भर भोली सिर निहुराए क्या बैठी है।—इंशाअल्ला।

निहोर†–संज्ञा पुं० दे० "निहोरा"।

निहोरना–क्रि० स० [सं० मनोहार, हिं० मनुहार] प्रार्थना करना। विनय करना। उ०—(क) सुमिरि महेशहि कहइ निहोरी। विनती सुनहु सदाशिव मोरी।—तुलसी। (ख) पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु विनती मोरी।—तुलसी। (ग) तापस वेष गात जपत निरंतर मोहि। देखउँ वेगि सो जतन करु सखा निहोरहु तोहिं।—तुलसी। (२) मनाना। मनौती करना। उ०—(क) देवता निहोरि महामारिन सों कर जोरे, भोरानाथ भोरे अपनी सी कहि दई है।—तुलसी। (ख) ग्वालिन चली जमुना बहोरि। वाहि सब मिलि कहत आवहु कछु कहति निहोरि।—सूर। (ग) जोरहु हुँकर मोरे सो माय निहोरत प्यारे पिया बड़ भागी। (घ) है तो भली घर ही जो रहो तुम यों कहिके ननदी हूँ निहोरेउ। (४) कृतज्ञ होना। एहसान लेना। उ०—सोइ कृपाल केवटहि निहोरे। जेहि जग किय तिहु पग ते थोरे।—तुलसी।

निहोरा†–संज्ञा पुं० [सं० मनोहार, हिं० मनुहार] (१) अनुग्रह। एहसान। कृतज्ञता। उपकार। उ०—(क) क्या कासी क्या ऊसर मगहर हृदय राम बस मोरा। जो कासी तन तजै कबीरा रामहिं कौन निहोरा?—कबीर। (ख) सो कछु देव न मोहिं निहोरा। निज पन राखेहु जन मन चोरा।—तुलसी। (ग) कहा दाता जो द्रवै न दीनहिं देखि दुखित कलिकाल। सूर स्याम को कहा निहोरो चलत बेद की चाल।—सूर।

क्रि० प्र०—मानना।—लेना।

(२) विनती। प्रार्थना। उ०—(क) मैं आपनि दिसि कीन निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा।—तुलसी। (ख) चितै रघुनाथ वदन की ओर। रघुपति सों अब नेम हमारो विधि सों करति निहोर।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।

(३) भरोसा। आसरा। आश्रय। आधार। उ०—(क) रात दिवस निरभय जिय मोरे। लग्यों निहोर कंत जो तोरे।—जायसी। (ख) नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं नाहीं पिनाकहिं नेकु निहोरो।—तुलसी।

क्रि० प्र०—लगना।

क्रि० वि० (१) निहोरे से। कारण से। बदौलत। द्वारा। उ०—(क) तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे।—तुलसी। (ख) तजउँ प्राण रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।—तुलसी। (२) के लिये। वास्ते। निमित्त। उ०—तुम बसीठ राजा की ओरा। साख होहु यहि भीख निहोरा।—जायसी।

निह्नव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोपन। छिपाव। दुराव। (२) एक प्रकार का साम। (३) अविश्वास। (४) शुद्धि। पवित्रता।

निह्नुत–वि० [सं०] छिपाया हुआ।

निह्नुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपाव। दुराव। गोपन।

निह्राद–संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। ध्वनि।

नींद–संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा, प्रा० निद्दा] जीवन की एक नित्यप्रति होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और शरीर और अंतःकरण दोनों विश्राम करते हैं। निद्रा। स्वप्न। सोने की अवस्था। विशेष—दे० "निद्रा"। उ०—(क) कीन्हेसि बरन स्वेत औ स्यामा। कीन्हेसि भूँख नींद बिसरामा।—जायसी। (ख) जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई।—तुलसी।

क्रि० प्र०—आना।—टूटना।—जाना।—लगना।

मुहा०—नींद उचटना=नींद का दूर होना। नींद उचाटना=नींद दूर करना। सोने में बाधा डालना। नींद का दुखिया=बहुत सोनेवाला। सदा सोने का इच्छुक रहनेवाला। नींद का माता=नींद से व्याकुल। नींद से गिर गिर पड़नेवाला। नींद उचाट होना=नींद का खुलने पर फिर न आना। सोने में बाधा पड़ना। नींद टूटना=नींद का छूट जाना। जग पड़ना। नींद खराब करना=सोने का हर्ज करना। सोने में बाधा डालना। नींद खुलना=आँख खुलना। नींद टूटना। नींद खोना या गँवाना=सोने का हर्ज करना। निद्रा की दशा न रहना। नींद पड़ना=नींद आना। निद्रा की अवस्था होना। उ०—नींद न परै रैन जो आई।—जायसी। नींद भरना=नींद पूरी करना। सोना। नींद भर सोना=जितनी इच्छा हो उतना सोना। इच्छा भर सोना। उ०—बासत ही सब बीति निसा गई कबहुँ न नाथ नींद भर सोयो।—तुलसी। नींद मारना=सोना। नींद लेना=सोना। उ०—(क) नींद न लीन्ह रैन सब जागा। होत बिहान आय गड़ लागा।—जायसी। (ख) जब ते प्रीत स्याम सों कीन्हा। ता दिन ते नैननि नेकहु नींद न लीन्हा।—सूर। नींद संचरना=नींद आना। उ०—द्वादशि में जो पारण करहीं। और शयन जो नींद संचरहीं।—सबलसिंह। नींद हराम करना=सोना छुड़ा देना। सोने न देना। नींद हराम होना=सोना छूट जाना। सोने की नौबत न आना।

नींदड़ी†–संज्ञा स्त्री० दे० "नींद"। उ०—नैन न आवइ नींदड़ी

निहठा†-संज्ञा स्त्री० [सं० निष्ठा] लकड़ी का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बढ़ई गढ़ने की चीज़ों को बँसूले से गढ़ते हैं।

निहत-वि० [सं०] (१) फेंका हुआ। (२) नष्ट। (३) मारा हुआ। जो मार डाला गया हो।

निहत्था-वि० [हिं० नि + हाथ] (१) जिसके हाथ में कोई शस्त्र न हो। शस्त्रहीन। उ०—हमारे साथ कई मनुष्य पैदल और निहत्थे थे।—शिवप्रसाद। (२) जिसके हाथ में कुछ न हो। खाली हाथ। निर्धन। गरीब।

निहनना†*-क्रि० स० [सं० निहनन] मारना। मार डालना। उ०—तहँहिं कबंध दुहुन पर धायो। ताहि निहनि सुरलोक पठायो।—पद्माकर।

निहपाप*†-वि० दे० "निष्पाप"।

निहफल*†-वि० दे० "निष्फल"।

निहल†-संज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो नदी के पीछे हट जाने से निकल आई हो। गंगबरार। कछार।

निहलिस्ट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह पुरुष जिसका यह सिद्धांत हो कि वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि वस्तुओं की सत्ता ही नहीं है। ऐसे लोग वस्तुओं की वास्तविक सत्ता और इन वस्तुओं के सत्तात्मक ज्ञान का निषेध करते हैं। (२) रूस देश का एक दल। यह पहले एक सामाजिक दल था जो प्रचलित वैवाहिक प्रथा तथा रीति रवाज और पैतृक शासन का विरोधी था पर पीछे एक राजनैतिक दल हो गया और सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रित नियमों का ध्वंसक और नाशक बन गया। (३) इस दल का कोई आदमी।

निहाई-संज्ञा स्त्री० [सं० निघाति मि० फा० निहाली] सोनारों और लोहारों का एक औजार जिसपर वे धातु को रखकर हथौड़े से कूटते या पीटते हैं। यह लोहे का बना हुआ चौकोर होता है और नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। नीचे की ओर से निहाई को एक काठ के टुकड़े में जोड़ देते हैं जिससे यह कूटते या पीटते समय इधर उधर हिलती डोलती नहीं। यह छोटी बड़ी कई आकार और प्रकार की होती है।

यौ०—निहाई की थाली = वह थाली जो निहाई पर रखकर नकाशी गई हो।

निहाउ†*-संज्ञा पुं० [सं० निघाति] लोहे का घन। उ०—सुरजै कीन्ह सांग पर घाऊ। परा खरग जनु परा निहाऊ।—जायसी।

निहाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गोह नामक जंतु। (२) घड़ियाल।

निहानी-संज्ञा स्त्री० [सं० निखनित्री] (१) एक प्रकार की रुखानी जिसकी नोक अर्द्ध चंद्राकार होती है और जिससे बारीक खुदाई का काम होता है। कलम। (२) एक नोकदार औजार जिससे ठप्पे की लकीरों के बीच में भरा हुआ रंग खुरच कर साफ किया जाता है।

निहायत-वि० [अ०] अत्यंत। बहुत अधिक। जैसे, निहायत उम्दा चीज, निहायत बारीक काम।

निहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुहरा। पाला। उ०—दंड एक रथ देखि न परा। जनु निहार महँ दिनमनि दुरा।—तुलसी। (२) ओस। (३) हिम। बरफ। उ०—चारु चंदन मनहु मरकत शिखर लसत निहारु। रुचिर उर उपवीत राजत पदिक गजमनि हारु।—तुलसी।

निहारना-क्रि० स० [सं० निभालन = देखना] ध्यानपूर्वक देखना। देखना। ताकना। उ०—(क) भयो चकोर सो पंथ निहारे। समुंद सीप जस नैन पसारे।—जायसी। (ख) आँखड़िया झाँई परी पंथ निहारि निहारि। जीभड़िया छाला पर्यो, नाम पुकारि पुकारि।—कबीर। (ग) प्रभु सन्मुख कुछह न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं।—तुलसी। (घ) प्रथम पूतना कंस पठाई अति सुंदर वपु धार्यो। घँसि कै गरल लगाय उरोजन कपट न कोउ निहार्यो।—सूर।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

निहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का आकाशस्थ पदार्थ जो देखने में धुँधले रंग के धब्बे की तरह होता है। विशेष—दे० "नीहारिका"।

निहारुआ†-संज्ञा पुं० दे० "नहरुआ"।

निहाल-वि० [फा०] जो सब प्रकार से संतुष्ट और प्रसन्न हो गया हो। पूर्णकाम। उ०—(क) दास दुखी तो हरि दुखी आदि अंत तिहु काल। पलक एक में परगटै पल में करै निहाल।—कबीर। (ख) गए जो सरन आरत के लीन्हें। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें।—तुलसी।

निहालचा-संज्ञा पुं० [फा०] छोटी तोशक या गद्दी जो प्रायः बच्चों के नीचे बिछाई जाती है।

निहाल लोचन-संज्ञा पुं० [फा० निहाला + स० लोचन ?] वह घोड़ा जिसकी अयाल (केसर) दो भागों में बटी हो, आधी दहिनी ओर आधी बाईं ओर।

निहाली-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) गद्दा। तोशक। उ०—रेशम की नरम निहाली में सोना जो अदा से हँस हँस कर।—नजीर। (२) निहाई।

निहाव-संज्ञा पुं० [सं० निघाति] लोहे का घन।

निहिचय*†-संज्ञा पुं० दे० "निश्चय"।

निहिचिंत*†-वि० दे० "निश्चिंत"।

निहित-वि० [सं०] स्थापित। रखा हुआ।

निहीन-वि० [सं०] नीच। पामर।

निहुँकना†-क्रि० अ० [हिं० नि + झुकना] झुकना।

जो ऊपर से जमीन की ओर दूर तक आया हो। अधिक लटका हुआ। जैसे, नीचा अंगा, नीची धोती, नीची दाल। (४) जो ऊपर की ओर पूरा उठा न हो। झुका हुआ। नत। जैसे, सिर नीचा करना, झंडा नीचा करना, दृष्टि नीची करना, आँख नीची करना। उ०—(क) जाचक देहिं असीस सीस नीचो करि करि के।—गोपाल। (ख) रघुनाथ चितै हँसि ठाढ़ी रही पल घूँघट में दृग नीचो करै।—रघुनाथ। (ग) देवनंदन ने देखा इन बातों के कहते, लाज से उसकी आँखें नीची हो गईं।—अयोध्यासिंह। (५) जो चढ़ा हुआ न हो। जो तीव्र न हो। धीमा। मध्यम। जो जोर का न हो। जैसे, नीचा सुर, नीची आवाज। (६) जो जाति, पद, गुण इत्यादि में न्यून या घट कर हो। जो उत्तम और मध्यम कोटि का न हो। छोटा या ओछा। क्षुद्र। बुरा।

मुहा०—नीचा ऊँचा = (१) भला बुरा। (२) भलाई बुराई। गुण अवगुण अच्छा और बुरा परिणाम। हानि लाभ। (३) संपद विपद। सुख दुःख। बढ़ती घटती। सफलता असफलता। नीचा ऊँचा दिखाना या सुझाना = दे० "ऊँचा नीचा दिखाना"। नीचा ऊँचा सुनाना = दे० "ऊँचा नीचा सुनाना"। नीचा खाना = (१) तुच्छ बनना। अपमानित होना। हेठा बनना। (२) हारना। परास्त होना। (३) लज्जित होना। मिपना। उ०—चालाकी में अच्छे खासे पट्ठे, दस पंद्रह वर्ष मुंसिफ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा बहुत नीचा खाकर भी ...आठों गाँठ कुम्मेत हो चुके थे।—हिंदीप्रदीप। नीचा दिखाना = (१) तुच्छ बनाना। हेठा करना। अपमानित करना। (२) मानभंग करना। दर्प चूर्ण करना। शेखी झाड़ना। (३) परास्त करना। हराना। (४) मिपाना। लज्जित करना। नीचा देखना = दे० "नीचा खाना"। उ०—कहीं किसी ने देख सुन लिया तो भी वही बात हुई। जग में नीचा अलग देखना पड़ता है।—अयोध्यासिंह। नीची दृष्टि करना = सिर झुकाना। सामने न ताकना। (लज्जा संकोच आदि से)। नीची दृष्टि से देखना = तुच्छ या छोटा समझना। मान या प्रतिष्ठा न करना। कदर न करना।

नीचाशय-वि० [सं०] तुच्छ विचार का। क्षुद्र। ओछा।

नीचू†-वि० [हिं० नि + चूना] जो चुए न। जो टपकता न हो। जिस में पानी ऊपर से या बाहर से रसकर आता या टपकता न हो।

†-वि० दे० "नीचा"।

नीचे-क्रि० वि० [हिं० नीचा] (१) नीचे की ओर। अधोभाग में। ऊपर का उलटा। उ०—पानस को लिखें पानि नखैं तिमि सीस नवाय के नीचेहि आवै।—मतिराम।

विशेष—'ऊपर' 'यहाँ' 'वहाँ' आदि शब्दों के समान इस क्रि० वि० शब्द के साथ पंचमी और षष्ठी की 'से' 'तक' 'का' विभक्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीचे से, नीचे का।

मुहा०—नीचे ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा इस क्रम से। एक पर एक। तले ऊपर। जैसे, इन सब पुस्तकों को नीचे ऊपर रख दो। (२) ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। उथल पथल। अस्त व्यस्त। अव्यवस्थित। जैसे, इतने दिनों में पुस्तकें लगाकर रखी थीं तुमने उन्हें नीचे ऊपर कर दिया। नीचे गिरना = (१) प्रतिष्ठा खोना। मान मर्यादा गँवाना। (२) पतित होना। अवनत दशा को प्राप्त होना। (३) कुश्ती में पटका जाना। पछाड़ खाना। नीचे गिराना = (१) पतित करना। मान मर्यादा दूर करना। (२) कुश्ती में पटकना। पछाड़ना। नीचे डालना = (१) फेंकना। गिराना। (२) किसी बात में घट कर करना। पराजित करना। जीतना। नीचे लाना = गिराना। कुश्ती में पछाड़ना। ऊपर से नीचे तक = (१) सब भागों में। सर्वत्र। (२) सर्वांग में। सिर से पैर तक। जैसे, उसने मेरी ओर ऊपर से नीचे तक देखा।

(२) घटकर। कम। न्यून। जैसे, दरजे में वह सब से नीचे है। (३) अधीनता में। मातहती में। जैसे, उनके नीचे दस मुहर्रिर काम करते हैं।

नीजा†-संज्ञा पुं० [सं० रज्जु ?] रस्सी।

नीजन*-वि० [सं० निर्जन] निर्जन। जनशून्य। सुनसान। उ०—दौरयो दल साजि महाराज ऋतुराज जानि नीजन मवास, मानिनी जन गरीब से।—देव।

संज्ञा पुं० निर्जन स्थान। वह स्थान जहाँ कोई न हो। निराला। एकांत। उ०—मोहिं सकोच सखी जन को नहु नीजन है उन्हें बीजन ढोरौं।—देव।

नीजू†-संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी। पानी भरने की डोरी।

नीझर*-संज्ञा पुं० [सं० निर्झर] निर्झर। झरना। सोता। उ०—(क) तिस सरवर के तीर सो हंसा मोती चुनइ। पीवइ नीझर नीर सोई हंसा सो सुनइ।—दादू। (ख) सो हंसा सरनागत जाय। सुंदरि तहाँ पखारै पाय। पीवइ अमिरित नीझर नीर। बैठइ तहाँ जगत गुरु पीर।—दादू।

नीठ-क्रि० वि० दे० "नीठि"।

नीठि-संज्ञा स्त्री० [सं० अनिष्टि, प्रा० अनिट्ठि] अरुचि। अनिच्छा।

मुहा०—नीठि नीठि करके = (१) ज्यों त्यों करके। बहुत इधर उधर करके। किसी न किसी प्रकार। उ०—नीठि नीठि करि चित्रमंदिर लौं आई बाल चहूँ ओर चाहि कछु चेति कै भजै लगी।—बेनी। (२) कठिनता से। मुश्किल से। उ०—छूटी लट लटकति कटि तट लौं चितवति नीठि नीठि करि ठाढ़ी।—केशव।

क्रि० वि० (१) ज्यों त्यों करके। किसी न किसी प्रकार।

निस दिन तलफत जाय। दादू आतुर विरहिनी, क्यों करि रहन विहाय।—दादू।

नौंदना†—क्रि० स० [सं० निकंदन] निराना।

क्रि० स० दे० "नींदना"।

नौंदरी‡—संज्ञा स्त्री० दे० "नींद"। उ०—हौं जँभात अलसात तात तेरी बानि जाति मैं पाई। गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई।—तुलसी।

नीका†*—वि० [सं० निक्त=स्वच्छ, साफ। फा० नेक] [स्त्री० नीकि] अच्छा। सुंदर। भला। अनुकूल। उ०—(क) अब तुम कही नीक यह सोभा। पै फल सोई भँवर जेहि लोभा।—जायसी। (ख) गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—तुलसी।

मुहा०—नीक लगना=(१) रुचना। भाना। रुचि के अनुकूल जान पड़ना। (२) सजना। सुशोभित होना।

संज्ञा पुं० अच्छाई। उत्तमता। अच्छापन। उ०—जोई फल देखी सोई फीका। ताकर काह सराहे नीका।—जायसी।

नीका—वि० [सं० निक्त=साफ, स्वच्छ। फा० नेक] [स्त्री० नीकी] अच्छा। उत्तम। बढ़िया। भला। उ०—(क) प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागहि फीकी।—तुलसी। (ख) आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि विस्तार। होरी खेलन की विधि नीकी रचना रचे अपार।—सूर।

मुहा०—नीका लगना=(१) रुचना। भाना। सुहाना। अच्छा मालूम होना। (२) सुशोभित होना। सजना। सोहना।

नीकाश—वि० [सं०] तुल्य। समान।

नीके—क्रि० वि० [हिं० नीक] अच्छी तरह। भली भाँति। उ०—(क) नीके निरखि नयन भरि सोभा।—तुलसी। (ख) मातहि पितहिं उरिन भए नीके। गुरु रिन रहा सोच बड़ जी के।—तुलसी। (ग) सुनि कटु वचन गयो माता पै तब इन ज्ञान दृढ़ायो। हरि की भक्ति करो सुत नीके जो चाहो सुख पायो।—सूर।

नीको†—वि० दे० "नीका"।

नीग्रो संज्ञा पुं० [अं०] हबशी।

नीच—वि० [सं०] (१) जाति, गुण, कर्म या किसी और बात में घट कर वा न्यून। क्षुद्र। तुच्छ। अधम। हेठा। जैसे, नीच आदमी, नीच कुल।

यौ०—नीच ऊँच=छोटा बड़ा। बड़े घराने या छोटे घराने का। उ०—नीच ऊँच धन संपति हेरा।—जायसी।

(२) जो उत्तम और मध्यम कोटि से घट कर हो। अधम। बुरा। निकृष्ट।

यौ०—नीच ऊँच=(१) अच्छा बुरा। (२) बुराई भलाई। गुण अवगुण। (३) अच्छा और बुरा परिणाम। हानि लाभ। जैसे, नीच ऊँच समझकर काम करो। (४) संपद विपद। सुख दुःख। सफलता असफलता।

संज्ञा पुं० (१) नीच मनुष्य। क्षुद्र मनुष्य। ओछा आदमी। उ०—नीच निचाई नहिं तजै जो पावै सतसंग। (२) चोर नामक गंधद्रव्य। (३) फलित ज्योतिष में वह स्थान जो किसी ग्रह के उच्च स्थान से सातवाँ हो। (४) भ्रमण काल में किसी ग्रह के भ्रमणवृत्त का वह स्थान जो पृथ्वी से अधिक दूर हो। (५) दशार्ण देश के एक पर्वत का नाम।

नीचकदंब—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडी।

नीच कमाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीच+कमाई] (१) निंद्य व्यवसाय। तुच्छ काम। खोटा काम। (२) बुरे कामों से पैदा किया धन।

नीचका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रशस्त गौ। अच्छी गाय।

नीचकी—संज्ञा पुं० [सं० नीचकिन्] [स्त्री० नीचकिनी] (१) उच्च। श्रेष्ठ। (२) ऊँचा। (३) जिसके पास अच्छी गायें हों।

संज्ञा पुं० ऊपरी भाग।

नीचग—वि० [सं०] [स्त्री० नीचगा] (१) नीचे जानेवाला। (२) पामर। ओछा।

संज्ञा पुं० (१) पानी। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो अपने उच्च स्थान से सातवें पड़ा हो।

नीचगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। (२) नीचवर्णगामिनी स्त्री। नीच के साथ गमन करनेवाली स्त्री।

नीचगामी—वि० [सं० नीचगामिन्] [स्त्री० नीचगामिनी] (१) नीचे जानेवाला। (२) ओछा।

संज्ञा पुं० जल।

नीचगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो किसी ग्रह के उच्च स्थान वा राशि से गिनती में सातवाँ पड़े।

नीचट†—वि० [सं० निश्चय] दृढ़। पक्का।

नीचता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीच होने का भाव। (२) अधमता। खोटाई। तुच्छता। क्षुद्रता। कमीनापन।

नीचत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नीचता।

नीचवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रांत मणि।

नीचा—वि० [सं० नीच] [स्त्री० नीची] (१) जिसके तल से उसके आस पास का तल ऊँचा हो। जो कुछ उतार या गहराई पर हो। गहरा। ऊँचा का उलटा। निम्न। जैसे, नीची जमीन, नीचा रास्ता।

यौ०—नीचा ऊँचा=कहीं गहरा और कहीं उठा हुआ। जो समतल न हो। नाबराबर। ऊबड़ खाबड़। उतार चढ़ाव।

(२) ऊँचाई में सामान्य की अपेक्षा कम। जो ऊपर की ओर दूर तक न गया हो। जैसे, नीचा पेड़, नीचा मकान, नीची टोपी। (ऊँचाई निचाई का भाव सापेक्ष होता है)। (३)

निचला भाग। (६) एक देश का नाम। (बृहत्संहिता)। (७) एक राजा का नाम।

संज्ञा पुं० [अ० निप] दो चीज़ों को बाँधने या गाँठ देने के लिये रस्सी का फेरा या फंदा।

मुहा०—नीप लेना = रस्सी में बाँधने के लिये फंदा लगाना।

नीपर—संज्ञा पुं० [अ० निपर] (१) लंगर में बँधी हुई रस्सियों में से एक। (२) उक्त रस्सी के बंधन को कसने के लिये लगा हुआ डंडा। (लश०)

नीपातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि।

नीबा—संज्ञा पुं० दे० "नीम"।

नीबरा—वि० [निर्बल] दुर्बल। कमज़ोर।

नीबी—संज्ञा स्त्री० दे० "नीवी"।

नीबू—संज्ञा पुं० [सं० निम्बूक, अ० लीमूँ] मध्यम आकार का एक पेड़ या झाड़ जिसका फल खाया जाता है और जो पृथ्वी के गरम प्रदेशों में होता है। इसकी पत्तियाँ मोटे दल की और दोनों छोरों पर नुकीली होती हैं, तथा उनके ऊपर का रंग बहुत गहरा हरा और नीचे का हलका होता है। पत्तियों की लंबाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती। फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं जिनमें बहुत से पराग-केसर होते हैं। फल गोल या लंबोतरे तथा सुगंधयुक्त होते हैं। साधारण नीबू स्वाद में खट्टे होते हैं और खटाई के लिये ही खाए जाते हैं। मीठे नीबू भी कई प्रकार के होते हैं। इनमें से जिनका छिलका नरम होता है और बहुत जल्दी उतर आता है तथा जिनके रसकोश की फाँकें अलग हो जाती हैं वे नारंगी के अंतर्गत गिने जाते हैं। साधारणतः 'नीबू' शब्द से खट्टे नीबू का ही बोध होता है। उत्तरीय भारत में नीबू दो बार फलता है। बरसात के अंत में, और जाड़े (अगहन पूस) में। अचार के लिये जाड़े का नीबू ही अच्छा समझा जाता है क्योंकि वह बहुत दिनों तक रह सकता है। खट्टे नीबू के मुख्य भेद ये हैं—कागजी (पतले चिकने छिलके का गोल और लंबोतरा), जंबीरी (कड़े मोटे खुरदुरे छिलके का), बिजौरा (बड़े मोटे और ढीले छिलके का), चकोतरा (बहुत बड़ा खरबूजे सा, मोटे और कड़े छिलके का)। पैवंद द्वारा इनमें से कई के मीठे भेद भी उत्पन्न किए जाते हैं जैसे, कवँले या संतरे का पैवंद खट्टे चकोतरे पर लगाने से मीठा चकोतरा होता है।

विशेष—आजकल नीबू की अनेक जातियाँ चीन, भारत, फारस, अरब तथा योरप और अमेरिका के दक्षिणी भागों में लगाई जाती हैं। खट्टा नीबू हिंदुस्तान में कई जगह (कमाऊँ, चटगाँव आदि) जंगली भी होता है जिससे सिद्ध होता है कि यह भारतवर्ष से पहले पहल और देशों में फैला। मीठे नीबू या नारंगी का उत्पत्तिस्थान चीन बतलाया जाता है। चीन और भारत के प्राचीन ग्रंथों में नीबू का उल्लेख बराबर मिलता है। फारस और अरब के व्यापारियों द्वारा यह यूनान इटली आदि पश्चिम के देशों में गया। प्राचीन रोमन लोगों को यह फल बहुत दिनों तक बाहरी व्यापारियों से मिलता रहा और वे इसका व्यवहार सुगंध के लिये तथा कपड़ों को कीड़ों से बचाने के लिये करते थे। मीठे नीबू या नारंगियों का प्रचार तो योरप में और भी पीछे हुआ। पहले पहल ईसा की तेरहवीं शताब्दी में रोम नगर में नारंगी के लगाए जाने का उल्लेख मिलता है। पीछे पुर्तगाल आदि देशों में नारंगी की बहुत उन्नति हुई।

सुश्रुत में जंबीर, नारंग, ऐरावत और दंतशठ ये चार प्रकार के नीबू आए हैं। ऐरावत और दंतशठ दोनों अम्ल कहे गए हैं। जंबीर तो खट्टा है ही। राजनिघंटु में ऐरावत नारंग का पर्याय लिखा गया है जो सुश्रुत के अनुसार ठीक नहीं जान पड़ता, शायद नागरंग शब्द के कारण ऐसा हुआ है। "नाग" का अर्थ सिंदूर न लेकर हाथी लिया और ऐरावत को नागरंग का पर्याय मान लिया। तैलंग भाषा में चकोतरे को गजनिंबू कहते हैं अतः ऐरावत वही हो सकता है। भावप्रकाश में बीजपूर (बिजौरा), मधुकर्कटी (चकोतरा), जंबीर (खट्टा नीबू) और निंबूक (कागजी नीबू) ये चार प्रकार के नीबू कहे गए हैं। सुश्रुत में जंबीर और दंतशठ अलग है पर भावप्रकाश में ये एक दूसरे के पर्याय हैं। राजवल्लभ में लिंपाक और मधुकुक्कुटिका ये दो भेद जंबीरी के कहे गए हैं। इसी ग्रंथ में करुण या कर्ण नीबू का भी उल्लेख है। नीचे वैद्यक में आए हुए नीबुओं के नाम दिए जाते हैं—

(१) निंबूक (कागजी नीबू)। (२) जंबीर (जंबीरी नीबू, खट्टा नीबू या गलगल)—(क) बृहज्जंबीर, (ख) लिंपाक, (ग) मधुकुक्कुटिका (मीठा जंबीरी या शरबती नीबू)। (३) बीजपूर (बिजौरा)। पर्या०—मातुलुंग, रुचक, फलपूरक, अम्लकेशर, बीजपूर्ण, सुकेशर, बीजक, बीजफलक, जंतुघ्न, दंतुरच्छद, पूरक, रोचनफल। (क) मधुर मातुलुंग या मीठा बिजौरा। इसे संस्कृत में मधुकर्कटिका और हिंदी में चकोतरा कहते हैं। (४) करुण या कर्ण नीबू—इसे पहाड़ी नीबू भी कहते हैं। इसे अरबी में कलंबक कहते हैं।

निंबू या निंबूक शब्द सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में नहीं आया है इससे विद्वानों का अनुमान है कि यह अरबी लीमूँ शब्द का अपभ्रंश है। 'संतरा' शब्द के विषय में डा० हंटर का अनुमान है कि यह 'सिंट्रा' शब्द से बना है जो पुर्तगाल में एक स्थान का नाम है। पर बाबर ने अपनी पुस्तक में 'संगतरा' का उल्लेख किया है, इससे इस विषय में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

मुहा०—नीबू निचोड़ = थोड़ा सा कुछ देकर बहुत सी चीज में

उ०—आई संग आलिन के ननद पठाई नीठि सोहत सुहाई सूही ईंडुरी सुपट की। कहै पदमाकर गभीर जमुना के तीर लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।—पद्माकर। (२) मुश्किल से। कठिनता से। उ०—(क) चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास। तहँ शाख बैठो नीठि। तब पर्‍यो वानर दीठि।—केशव। (ख) ऐसी सोच सीठी सीठी चीठी अति दीठी, सुनै मीठी मीठी बातन जो नीके हू मैं नीठि है।—केशव। (ग) करके मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाय। सदा समीपिन सखिन हूँ नीठि पिछानी जाय।—बिहारी। (घ) चकी जकी सी ह्वै रही बूझे बोलति नीठि। कहूँ दीठि लागी लगी, कै काहू की दीठि।—बिहारी। (ङ) नेकु हँसौहीं बानि तज लख्यो परत मुख नीठि। चौका चमकनि चौंध में परति चौंधि सी दीठि।—बिहारी।

यौ०—नीठि नीठि = ज्यों त्यों करके। किसी न किसी प्रकार। जैसे तैसे। मुश्किल से। कठिनता से। उ०—(क) नीठि नीठि उठि बैठि हू पिय प्यारी परभात। दोऊ नींद भरे खरे गरे लागि गिरि जात।—बिहारी। (ख) भौंह ऊँचै आँचर उलटि मोरि मोरि मुँह मोरि। नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सों जोरि।—बिहारी।

नीठो-वि० [सं० अनिष्ट, प्रा० अनिट्ठ] अनिष्ट। अप्रिय। न सुहानेवाला। न भानेवाला। उ०—छेक उक्ति जहँ दुर्मिल सम जक का समुझावति नीठो ? मिसरी, सूर, न भावति घर की, चोरी को गुड़ मीठो।—सूर।

नीड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैठने या ठहरने का स्थान। (२) चिड़ियों के रहने का घोंसला। (३) रथ के भीतर का वह स्थान जिसमें रथी बैठता है। रथ में बैठने का मुख्य स्थान।

नीड़क-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

नीड़ज-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

नीत-वि० [सं०] (१) लाया हुआ। पहुँचाया हुआ। (२) स्थापित। (३) प्राप्त। (४) गृहीत। ग्रहण किया हुआ। उ०—किधौं मंद गरजनि जलधर, की पग नूपुर रव नीत।—सूर।

नीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ले जाने या ले चलने की क्रिया, भाव या ढंग। (२) व्यवहार की रीति। आचारपद्धति। जैसे, सुनीति, दुर्नीति। (३) व्यवहार की वह रीति जिससे अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे। वह चाल जिसे चलने से अपनी भलाई, प्रतिष्ठा, आदि हो और दूसरे की कोई बुराई न हो। जैसे, जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग। साईं तहाँ न बैठिए जहाँ कोउ देय उठाय।—गिरिधर। (४) लोक या समाज के कल्याण के लिये उचित ठहराया हुआ आचार व्यवहार। लोकमर्यादा के अनुसार व्यवहार। सदाचार। अच्छी चाल। नय। उ०—सुनि मुनीस कह वचन सप्रीती। कस न राम राखहु तुम नीती।—तुलसी। (५) राजा और प्रजा की रक्षा के लिये निर्धारित व्यवस्था। राज्य की रक्षा के लिये ठहराई हुई विधि। राजा का कर्त्तव्य। राजविद्या।

विशेष—महाभारत में भीष्म ने युधिष्ठिर को नीति शास्त्र की शिक्षा दी है जिसमें प्रजा के लिये कृषि वाणिज्य आदि की व्यवस्था, अपराधियों को दंड, अमात्य चर गुप्तचर सेना सेनापति इत्यादि की नियुक्ति, दुष्टों का दमन, राष्ट्र दुर्ग और कोश की रक्षा, धनिकों की देख रेख, दरिद्रों का भरण पोषण, युद्ध, शत्रुओं को वश में करने के साम, दाम, दंड, भेद ये चार उपाय, साधुओं की पूजा, विद्वानों का आदर, समाज और उत्सव, सभा, व्यवहार तथा इसी प्रकार की और बहुत सी बातें आई हैं।

नीति विषय पर कई प्राचीन पुस्तकें हैं। जैसे, उशना की शुक्र नीति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामंदकीय नीतिसार इत्यादि।

(६) राज्य की रक्षा के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति। राजाओं की चाल जो वे राज्य की प्राप्ति वा रक्षा के लिये चलते हैं। पालिसी। जैसे मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य और राक्षस की नीति। (७) किसी कार्य्य की सिद्धि के लिये चली जानेवाली चाल। युक्ति। उपाय। हिकमत।

नीतिज्ञ-वि० [सं०] नीति का जाननेवाला। नीतिकुशल।

नीतिमान्-वि० [सं० नीतिमत्] [स्त्री० नीतिमती] नीतिपरायण। सदाचारी।

नीतिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें देश, काल और पात्र के अनुसार बरतने के नियम हों। (२) वह शास्त्र जिसमें मनुष्य समाज के हित के लिये देश काल और पात्रानुसार आचार व्यवहार तथा प्रबंध और शासन का विधान हो।

नीदना*-क्रि० स० [सं० निंदन] निंदा करना। उ०—सोवत सपने स्यामघन हिलि मिलि हरत वियोग। तब ही टरि कितहूँ गई नीदौ नींदन योग।—बिहारी।

नीधना*-वि० [सं० निर्धन] धनहीन। दरिद्र। उ०—दादू सब जग नीधना धनवंता नहिं कोइ। सो धनवंता जानिए जाके राम पदारथ होइ।—दादू।

नीध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वलीक। छाजन की ओलती। (२) वन। (३) नेमि। पहिए का चक्कर। (४) चंद्रमा। (५) रेवती नक्षत्र।

नीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कदंब। (२) भूकदंब। (३) बंधूक। दुपहरिया। (४) नीलाशोक। अशोक। (५) पहाड़ का

हम किसी बुरी नीयत से नहीं कहते हैं। (ख) तुम्हारी नीयत खाने की नहीं मालूम होती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—बदनीयत।

मुहा०—नीयत डिगना=अच्छा या उचित संकल्प दृढ़ न रहना। मन में विकार उत्पन्न होना। बुरा संकल्प होना। नीयत बद होना=बुरा विचार होना। बुरी इच्छा या संकल्प होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। बेईमानी सूझना। नीयत बदल जाना=(१) संकल्प या विचार और का और होना। इरादा दूसरा हो जाना। (२) बुरा विचार होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। नीयत बाँधना=संकल्प करना। मन में ठानना। इरादा करना। नीयत बिगड़ना=दे० "नीयत बद होना"। नीयत भरना=जी भरना। मन तृप्त होना। इच्छा पूरी होना। नीयत में फर्क आना=बुरा संकल्प या विचार होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। बेईमानी या बुराई सूझना। नीयत लगी रहना=ध्यान बना रहना। इच्छा बनी रहना। जी ललचाया करना।

नीर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी। जल।

मुहा०—नीर ढलना=मरते समय आँख से आँसू बहना। किसी का नीर ढल जाना=किसी की लज्जा जाती रहना। निर्लज्ज या बेहया हो जाना।

(२) कोई द्रव पदार्थ या रस। (३) फफोले आदि के भीतर का चेप या रस। जैसे, शीतला का नीर। (४) सुगंधवाला।

नीरज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल में उत्पन्न वस्तु। (२) कमल। (३) मोती। मुक्ता। उ०—यश पूरन कै रमापति दान श्वेत अरोप। हीर नीरज चीर माणिक वर्षि वर्षा वेप।—केशव। (४) कुट। कूट। (५) एक प्रकार का तृण।

नीरद—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल देनेवाला। (२) बादल।

वि० [सं० निः+रद] बे-दाँत का। अदंत।

नीरधर—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।

नीरधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नीरना†—क्रि० स० [देश०] छिटकाना। छितराना। बिखेरना।

नीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नीरपति—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण देवता।

नीरम—संज्ञा पुं० [?] वह बोझ जो जहाज पर केवल उसकी स्थिति ठीक रखने के लिये रहता है। (लश०)

नीरस—वि० [सं०] (१) रसहीन। जिसमें रस या गीलापन न हो। (२) सूखा। शुष्क। (३) जिसमें कोई स्वाद या मजा न हो। फीका। जिसमें कोई आनंद न हो। जिससे मनोरंजन न हो। जैसे, नीरस काव्य।

नीरांजन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीपदान। आरती। देवता को दीपक दिखाने की विधि।

क्रि० प्र०—उतारना।—वारना।

(२) हथियारों को चमकाने या साफ करने का काम। (३) एक त्योहार जिसमें राजा लोग हथियारों की सफाई कराते थे। यह कुआर कातिक में होता था जब यात्रा की तैयारी होती थी।

नीराजना*—क्रि० अ० [सं० नीराजन] (१) आरती करना। दीपक दिखाना। (२) हथियारों को माँजना।

नीरिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] सिहोर का पेड़।

नीरे—क्रि० वि० दे० "नियरे"।

नीरोग—वि० [सं०] जिसे रोग न हो। स्वस्थ। चंगा। तंदुरुस्त।

नीलंगु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का कीड़ा। (२) गीदड़। (३) भँवरा। (४) फूल।

नील—वि० [सं०] नीले रंग का। गहरे आसमानी रंग का।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला रंग। गहरा आसमानी रंग। (२) एक पौधा जिससे नीला रंग निकाला जाता है।

विशेष—यह दो तीन हाथ ऊँचा होता है। पत्तियाँ चमेली की तरह टहनी के दोनों ओर पंक्ति में लगती हैं पर छोटी छोटी होती हैं। फूल मंजरियों में लगते हैं। लंबी लंबी बबूल की तरह फलियाँ लगती हैं। नील के पौधे की ३०० के लगभग जातियाँ होती हैं। पर जिनसे यहाँ रंग निकाला जाता है वे पौधे भारतवर्ष के हैं और अरब, मिस्र तथा अमेरिका में भी बोये जाते हैं। भारतवर्ष ही नील का आदि-स्थान है और यहीं सबसे पहले रंग निकाला जाता था। ८० ईसवी में सिंध के किनारे के एक नगर से नील का बाहर भेजा जाना एक प्राचीन यूनानी लेखक ने लिखा है। पीछे के बहुत से विदेशियों ने यहाँ नील के बोये जाने का उल्लेख किया है। ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में जब यहाँ से नील योरप के देशों में जाने लगा तब से वहाँ के निवासियों का ध्यान नील की ओर गया। सबसे पहले हालैंड-वालों ने नील का काम शुरू किया और कुछ दिनों तक वे नील की रँगाई के लिये योरप भर में निपुण समझे जाते थे। नील के कारण जब वहाँ कई वस्तुओं के वाणिज्य को धक्का पहुँचने लगा तब फ्रांस, जर्मनी आदि कानून द्वारा नील की आमद बंद करने पर विवश हुए। कुछ दिनों तक (सन् १६६० तक) इंगलैंड में भी लोग नील को विष कहते रहे जिससे इसका वहाँ जाना बंद रहा। पीछे बेलजियम से नील का रंग बनानेवाले बुलाए गए जिन्होंने नील का काम सिखाया।

पहले पहल गुजरात और उसके आस पास के देशों में से नील योरप जाता था, बिहार बंगाल आदि से नहीं।

साझा करनेवाला। थोड़ा सा संबंध जोड़ कर बहुत कुछ लाभ उठानेवाला।

विशेष—कहते हैं किसी सराय में एक मियाँ साहब रहते थे जो हर समय अपने पास नीबू और चाकू रखते थे। जब सराय में उतरा हुआ कोई भला आदमी खाना खाने बैठता तब आप चट जाकर उसकी दाल में नीबू निचोड़ देते थे जिससे वह भलमनसाहत के विचार से आपको खाने में शरीक कर लेता था।

नीम—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब] पत्ती झाड़नेवाला एक पेड़ जिसकी उत्पत्ति द्विदलांकुर से होती है और जिसकी पत्तियाँ डेढ़ दो बित्ते की पतली सींकों के दोनों ओर लगती हैं। ये पत्तियां चार पाँच अंगुल लंबी और अंगुल भर चौड़ी होती हैं। किनारे इनके आरी की तरह होते हैं। छोटे छोटे सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। फलियाँ भी गुच्छों में लगती हैं और निबौली कहलाती हैं। ये फलियाँ खिरनी की तरह लंबोतरी होती हैं और पकने पर चिपचिपे गूदे से भर जाती हैं। एक फली में एक बीज होता है। बीजों से तेल निकलता है जो कड़ुएपन के कारण केवल औषध के या जलाने के काम का होता है। नीम की तिताई या कड़ुवापन प्रसिद्ध है। इसका प्रत्येक भाग कड़ुआ होता है—क्या छाल, क्या पत्ती, क्या फूल, क्या फल। पुराने पेड़ों से कभी कभी एक प्रकार का पतला पानी रस रस कर निकलता है और महीनों बहा करता है। यह पानी कड़ुआ होता है और 'नीम का मद' कहलाता है। नीम की लकड़ी ललाई लिए और मज़बूत होती है तथा किवाड़, गाड़ी, नाव आदि बनाने के काम में आती है। पतली टहनियाँ, दातून के लिये बहुत तोड़ी जाती हैं। वैद्यक में नीम कड़ुई, शीतल तथा कफ, व्रण, कृमि, वमन, सूजन, पित्तदोष और हृदय के दाह को दूर करनेवाली मानी जाती है। दूषित रक्त को शुद्ध करने का गुण भी इसका प्रसिद्ध है।

पर्या०—निंब। नियमन। नेता। पिचुमंद। अरिष्ट। प्रभद्रक। पारिभद्रक। शुकप्रिय। शीर्षपर्ण। यवनेष्ट। वरत्वच। छर्दन। हिंगु। निर्यास। पीतसार। रविप्रिय। मालक। यूपारि। पूकमालक। कीटक। विबंध। कैटर्य्य। छर्दिघ्न। काकफल। कीरेष्ट। सुमना। विशीर्णपर्ण। शीत। राजभद्रक।

मुहा०—नीम की टहनी हिलाना = गरमी की बीमारी लेकर बैठना। उपदंश या फिरंगरोग ग्रस्त होना (जिसमें लोग नीम की टहनी लेकर घाव पर से मक्खियाँ उड़ाया करते हैं।)

वि० [फा० । मि० सं० नेम] आधा। अर्द्ध। जैसे, नीमटर, नीमहकीम।

नीमबर—संज्ञा पुं० [फा०] कुश्ती का एक पेच जो उस समय काम देता है जब जोड़ पीछे की ओर से कमर पकड़ कर बाईं ओर खड़ा होता है। इसमें अपना बायाँ घुटना जोड़ की दाहिनी जाँघ के नीचे ले जाते हैं, फिर बायें हाथ को उसकी टाँगों में से निकाल कर उसका बायाँ घुटना पकड़ते और दाहिने हाथ से उसकी मुट्ठी पकड़ कर भीतर की ओर खींचते हैं जिससे वह चित गिर पड़ता है।

नीमगिर्दा—संज्ञा पुं० [फा०] बढ़ई का एक औजार जो रुखानी या पेचकश की तरह का होता है। इसकी नोक सीधी न होकर अर्द्धचंद्राकार होती है। इससे बढ़ई खरादने के समय सुराही आदि की गर्दन छीलते हैं।

नीमच—संज्ञा पुं० [हिं० नदी + मच्छ] एक मछली जो बंगाल, उड़ीसा, पंजाब और सिंध की नदियों में होती है। इसका मांस खाने में अच्छा होता है।

नीमचा—संज्ञा पुं० [फा०] खाँड़ा।

नीमजाँ—वि० [फा०] अधमरा।

नीमटर—वि० [फा० नीम + हिं० टरटर] अधकचरा। जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो। जो किसी विषय को केवल थोड़ा बहुत जानता हो।

नीमन†—वि० [सं० निर्मल] (१) अच्छा। भला। नीरोग। चंगा। उ०—जानि लेहु हारि इतने ही में कहा करै नीमन को वैद।—सूर। (२) दुरुस्त। जो बिगड़ा हुआ न हो। जो जीर्ण न हुआ हो। (३) बढ़िया। अच्छा। सुंदर।

नीमर†—वि० [सं० निर्बल, हिं० नीबर] दुर्बल। बलहीन। शक्तिहीन।

नीम-रजा—वि० [फा०] (१) थोड़ी बहुत रजामंदी। (२) कुछ तोष या प्रसन्नता। उ०—परि पा करि विनती घनी नीम-रजा ही कीन।—शृंग० सत०।

नीमषारण्य, नीमषारन†—संज्ञा पुं० दे० "नैमिषारण्य"।

नीमस्तीन—संज्ञा स्त्री० दे० "नीमास्तीन"।

नीमा—संज्ञा पुं० [फा०] एक पहरावा जो जामे के नीचे पहना जाता है। यह जामे के आकार का होता है पर न तो यह जामे के इतना नीचा होता है और न इसके बंद बगल में होते हैं। यह घुटने के ऊपर तक नीचा होता है और इसके बंद सामने रहते हैं। आस्तीन इसकी पूरी नहीं होती, आधी होती है। इसके दोनों बगल सुराहियाँ होती हैं। उ०—केसरि को नीमा जामा जरी को फेंटा दुपटा जरी को तेजपुंज उमहतु है।—रघुनाथ।

नीमावत—संज्ञा पुं० [हिं० निंब] वैष्णवों का एक संप्रदाय। निंबार्काचार्य्य का अनुयायी वैष्णव।

नीमास्तीन—संज्ञा स्त्री० [फा० नीम + आस्तीन] एक प्रकार की फतुई या कुरती जिसकी आस्तीन आधी होती है।

नीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] भावना। भाव। आंतरिक लक्ष्य। उद्देश्य। आशय। संकल्प। इच्छा। मंशा। जैसे, (क)

यम का नाम। (१९) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सोलह वर्ण होते हैं—यथा, ढंकनि देत अतंकनि संकनि दूरि धरैं। गोमुख तूनि पूर चहूँ दिसि भीति भरैं। (२०) एक प्रकार का विजयसाल। (२१) मंजुश्री का एक नाम। (२२) एक संख्या जो दस हजार अरब की होती है। सौ अरब की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है १००००००००००००० ।

नीलकंठ—वि० [सं०] जिसका कंठ नीला हो।

संज्ञा पु० (१) मोर। मयूर। (२) एक चिड़िया जो एक बित्ते के लगभग लंबी होती है। इसका कंठ और डैने नीले होते हैं। शेष शरीर का रंग कुछ ललाई लिए बादामी होता है। चोंच कुछ मोटी होती है। यह कीड़े मकोड़े पकड़ कर खाता है, इससे वर्षा और शरद् ऋतु में उड़ता हुआ अधिक दिखाई पड़ता है। विजया दशमी के दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है। स्वर इसका कुछ कर्कश होता है। चाप पक्षी। (३) महादेव का एक नाम।

विशेष—कालकूट विष पान करके कंठ में धारण करने के कारण शिव का कंठ कुछ काला पड़ गया इससे यह नाम पड़ा। महाभारत में लिखा है कि अमृत निकलने पर भी जब देवताओं ने समुद्र का मथना बंद नहीं किया तब सधूम अग्नि के समान कालकूट विष निकला जिसकी गंध से ही तीनों लोक व्याकुल हो गए। अंत में ब्रह्मा ने शिव से प्रार्थना की और उन्होंने वह कालकूट पान करके कंठ में धारण कर लिया। पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ विस्तार के साथ है।

(४) गौरा पक्षी। चटक। (नर के कंठ पर काला दाग होता है)। (५) मूली। (६) पियासाल।

नीलकंठ रस—संज्ञा पु० [सं०] एक रसौषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा, विष, चीता, पद्मकाठ, दारचीनी, रेणुका, बायबिडंग, पिपरामूल, इलायची, नागकेसर, सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, आँवला, बहेड़ा और ताँबा सम भाग लेकर सबके दुगने पुराने गुड़ में मिलाकर चने के बराबर गोली बनावे। इसके सेवन से कास, श्वास, प्रमेह, हिचकी, विषमज्वर, ग्रहणी, शोथ, पांडु, मूत्रकृच्छ्र इत्यादि रोग दूर होते हैं।

नीलकंठाक्ष—संज्ञा पु० [सं०] रुद्राक्ष।

नीलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक छोटी चिड़िया। यह हिमालय पर पाई जाती है। इसका बोलना बहुत ही मधुर और सुरीला होता है। (२) एक प्रकार का छोटा पौधा जो शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ बहुत कडुवी होती हैं और पुराने ज्वर में दी जाती हैं।

नीलकंद—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसाकंद। महिषकंद। शुभ्रालु।

नीलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काच लवण। (२) वर्त्तलौह। बीदरी लोहा। (३) भटर। (४) भौंरा। (५) पियासाल। (६) बीजगणित में अव्यक्त राशि का एक भेद।

नीलकण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलम का टुकड़ा। (२) ठोढ़ी पर गोदे हुए गोदने का बिंदु।

नीलकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्याह जीरा। काला जीरा।

नीलकांत—संज्ञा पु० [सं०] (१) एक पहाड़ी चिड़िया जो हिमालय के अंचल में होती है। मसूरी में इसे नीलकांत और नैनीताल में दिगदल कहते हैं। इसका माथा, कंठ के नीचे का भाग और छाती काली होती है, सिर पर कुछ सफेदी भी होती है। पूँछ नीली होती है। कंठ में भी कुछ नीलेपन की झलक रहती है। (२) विष्णु। (३) एक मणि। नीलम।

नीलकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा।

नीलक्रांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुक्रांता लता जिसमें बड़े बड़े नीले फूल लगते हैं।

नीलक्रौंच—संज्ञा पु० [सं०] काला बगला। वह बगला जिसका पर कुछ कालापन लिए होता है।

नीलगाय—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + गाय] नीलापन लिए भूरे रंग का एक बड़ा हिरन जो गाय के बराबर होता है। इसके कान गाय के से और सींग टेढ़े और छोटे होते हैं। छोटे छोटे काले बालों का केसर (अयाल) भी होता है। गले के नीचे बड़े बालों का एक छोटा गुच्छा सा होता है। देखने में यह जंतु गाय और हिरन दोनों से मिलता जान पड़ता है और प्रायः जंगलों में ही झुंड बाँधकर रहता है। नीलगाय ऊँट की तरह चारों पैर मोड़ कर विश्राम करती है, गाय की तरह पार्श्व भाग भूमि पर रखकर नहीं। पालने से यह पाली जा सकती है। शिकारी चमड़े आदि के लिये इसका शिकार भी करते हैं। चमड़ा इसका बहुत मजबूत होता है। गले के चमड़े की ढालें बनती हैं। वैद्यक के अनुसार नीलगाय का मांस मधुर, बलकारक, उष्णवीर्य्य, स्निग्ध तथा कफ और पित्तवर्द्धक होता है।

पर्य्या०—गवय। नीलांगक। रोझ।

नीलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश का एक पर्वत।

नीलग्रीव—संज्ञा पु० [सं०] महादेव। शिव।

नीलचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जगन्नाथजी के मंदिर के शिखर पर माना जानेवाला चक्र। (२) ३० अक्षरों का एक दंडकवृत्त जो अशोक-पुष्प-मंजरी का एक भेद है। इसमें 'गुरु लघु' १५ बार क्रम से आते हैं। उ०—जानि कै समै भुवाल राम राज साज साजि सा समै अकाज काज कैकई जु कीन।

नीलचर्मा—वि० [सं० नीलचर्मन्] नीले चमड़े का।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब नील के काम की ओर ध्यान दिया तब बंगाल बिहार में नील की बहुत सी कोठियाँ खुल गईं और नील की खेती में बहुत उन्नति हुई।

भिन्न भिन्न स्थानों में नील की खेती भिन्न भिन्न ऋतुओं में और भिन्न भिन्न रीति से होती है। कहीं तो फसल तीन ही महीने तक खेत में रहती है और कहीं अठारह महीने तक। जहाँ पौधे बहुत दिनों तक खेत में रहते हैं वहाँ उनसे कई बार काट कर पत्तियाँ आदि ली जाती हैं। पर अब फसल को बहुत दिनों तक खेत में रखने की चाल उठती जाती है। बिहार में नील फागुन चैत के महीने में बोया जाता है। गरमी में तो फसल की बाढ़ रुकी रहती है पर पानी पड़ते ही जोर के साथ टहनियाँ पत्तियाँ निकलती और बढ़ती हैं। अतः आषाढ़ में पहला कलम हो जाता है और टहनियाँ आदि कारखाने भेज दी जाती हैं। खेत में खूँटियाँ रह जाती हैं। कलम के पीछे फिर खेत जोत दिया जाता है जिससे बरसात का पानी अच्छी तरह सोखता है और खूँटियाँ फिर बढ़कर पौधों के रूप में हो जाती हैं। दूसरी कटाई फिर कुवार में होती है।

नील से रंग दो प्रकार से निकाला जाता है—हरे पौधे से और सूखे पौधे से। कटे हुए हरे पौधों को गड़ी हुई नाँदों में दबा कर रख देते हैं और ऊपर से पानी भर देते हैं। बारह चौदह घंटे पानी में पड़े रहने से उसका रस पानी में उतर आता है और पानी का रंग धानी हो जाता है। इसके पीछे पानी दूसरी नाँद में जाता है जहाँ डेढ़ दो घंटे तक लकड़ी से हिलाया और मथा जाता है। मथने का यह काम मशीन के चक्कर से भी होता है। मथने के पीछे पानी थिराने के लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कुछ देर में माल नीचे बैठ जाता है। फिर नीचे बैठा हुआ यह नील साफ पानी में मिला कर उबाला जाता है। उबल जाने पर वह बाँस की फट्टियों के सहारे तान कर फैलाए हुए मोटे कपड़े (या कनवस) की चाँदनी पर ढाल दिया जाता है। चाँदनी छनने का काम करती है। पानी तो निथर कर बह जाता है और साफ नील लेई के रूप में लगा रह जाता है। यह गीला नील छोटे छोटे छिद्रों से युक्त एक संदूक में, जिस में गीला कपड़ा मढ़ा रहता है, रख कर खूब दबाया जाता है जिससे उसकी सात आठ अंगुल मोटी तह जम कर हो जाती है। इसके कतरे काटकर धीरे धीरे सूखने के लिये रख दिए जाते हैं। सूखने पर इन कतरों पर एक पपड़ी सी जम जाती है जिसे साफ कर देते हैं। ये ही कतरे नील के नाम से बिकते हैं। मिताक्षरा, विधान पारिजात आदि धर्मशास्त्र के कई ग्रंथों में ब्राह्मण के लिये नील में रँगा हुआ वस्त्र पहनने का निषेध है।

मुहा०—नील का टीका लगाना=कलंक लेना। बदनामी उठाना। उ०—नब में तो बल को विलास कहा बूझत हौ; नील से लरे ते टीको नील को न करिहैं।—हनुमान। नील का खेत=कलंक का स्थान। नील की सलाई फिरवा देना=आँखें फोड़वा डालना। अंधा कर देना। (कहते हैं कि पहले अपराधियों की आँख में नील की गरम सलाई डाल दी जाती थी जिससे वे अंधे हो जाते थे)। नील घोंटना=झगड़ा बखेड़ा मचाना। किसी बात को लेकर देर तक उलझना। नील जलाना=पानी बरसने के लिये नील जलाने का टोटका करना। नील बिगड़ना=(१) चाल चलन बिगड़ना। आचरण भ्रष्ट होना। (२) आकृति बिगड़ना। चेहरे का रंग उड़ना। (३) किसी बे-सिर पैर की बात का प्रसिद्ध होना। झूठी और असंगत बात फैलाना। (४) समझ पर पत्थर पड़ना। बुद्धि ठिकाने न रहना। (५) कुदिन आना। शामत आना। दुर्दशा होनेवाली होना। (६) भारी हानि या घाटा होना। दिवाला होना।

(३) चोट का नीले या काले रंग का दाग जो शरीर पर पड़ जाता है। जैसे, जहाँ जहाँ छड़ी बैठी है नील पड़ गया है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—*नील डालना*=*इतनी मार मारना कि शरीर पर नीले दाग पड़ जायँ। गहरी मार मारना।*

(४) लांछन। कलंक। (५) राम की सेना का एक बंदर। (६) इलावृत्त खंड का एक पर्वत जो रम्यक वर्ष की सीमा पर है। (भागवत)। (७) नव निधियों में से एक। (८) मंगल घोष। मंगल का शब्द। (९) वटवृक्ष। बरगद। (१०) इंद्रनील मणि। नीलम। (११) काच लवण। (१२) तालीसपत्र। (१३) विष। (१४) एक नाग का नाम। (१५) नीलनी से उत्पन्न अजमीढ़ राजा का एक पुत्र। (विष्णुपुराण)। (१६) माहिष्मती का एक राजा जिसकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है। नील राजा की एक अत्यंत सुंदरी कन्या थी जिस पर मोहित होकर अग्नि देवता ब्राह्मण के वेश में राजा से कन्या माँगने आए। कन्या पाकर अग्नि देवता ने राजा को वर दिया कि जो शत्रु तुम पर चढ़ाई करेगा वह भस्म हो जायगा। पांडवों के राजसूय यज्ञ के अवसर पर सहदेव ने माहिष्मती नगरी को घेरा। अपनी सेना को भस्म होते देख सहदेव ने अग्नि देवता की स्तुति की। अग्नि देव ने प्रकट होकर कहा कि नील के वंश में जब तक कोई रहेगा मैं बराबर इसी प्रकार रक्षा करूँगा। अंत में अग्नि की आज्ञा से नील ने सहदेव की पूजा की और सहदेव उससे इस प्रकार अधीनता स्वीकार करा कर चले गए। (१७) नृत्य के १०८ करणों में से एक। (१८) एक

का रंग लाल (लोहित), पूँछ, खुर और सिर शंख वर्ण हों उसे नीलवृष कहते हैं। ऐसे वृष के उत्सर्ग का बड़ा फल है।

नीलवृषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन।

नीलशिग्रु-संज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड़। शोभांजन।

नीलसंध्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णापराजिता।

नीलसार-संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़ (जिसका हीर काला आबनूस होता है)।

नीलसिर-संज्ञा पुं० [हिं० नील+सिर] एक प्रकार की बत्तख जिसका सिर नीला होता है। यह हाथ भर लंबी होती है और सिंध, पंजाब, काश्मीर आदि में पाई जाती है। अंडे यह गरमी में देती है।

नीलस्वरूप, नीलस्वरूपक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और दो गुरु अक्षर होते हैं। जैसे, शरद के सम है वह बाली। जीतति है द्युतिवंत जहाँ लौ। जो गिरि दुर्गनि माहँ बसै जू। जा भुज चंदन डार ग्रैसे जू।—गुमान।

नीलांग-वि० [सं०] नीले अंग का।

संज्ञा पुं० सारस पक्षी।

नीलांजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला सुरमा। (२) तूतिया। नीला थोथा।

नीलांजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। नीलांजनी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] काली कपास।

नीलांजसा-संज्ञा० स्त्री० [सं०] (१) बिजली। (२) एक अप्सरा। (३) एक नदी।

नीलांबर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला वस्त्र। नीले रंग का कपड़ा (विशेषतः रेशमी)। (२) तालीशपत्र।

वि० नीले कपड़ेवाला। नील वस्त्र धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) बलदेव। (२) शनैश्चर। (३) राक्षस।

नीलांबरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी।

नीलांबुज-संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल।

नीला-वि० [सं० नील] आकाश के रंग का। नील के रंग का।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नीला करना=मारते मारते शरीर पर नीले दाग डालना। बहुत मार मारना। नीला पड़ना=नीला हो जाना। नीला पीला होना=क्रोध दिखाना। क्रुद्ध होना। बिगड़ना। नीले हाथ पाँव हों=ठंढा हो जाय। मर जाय। (स्त्रि० शाप)। चेहरा नीला पड़ जाना=(१) चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। आकृति से भय, उद्विग्नता, लज्जा आदि प्रगट होना। (२) आकृति बिगड़ जाना। सजीवता के लक्षण नष्ट होना।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का कबूतर (२) नीलम।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली मक्खी। (२) नील पुनर्नवा। (३) नील का पौधा। (४) एक लता। (५) एक नदी। (महाभारत)। (६) मल्लार राग की एक भार्या।

नीलाक्ष-वि० [सं०] नीली आँख का।

संज्ञा पुं० राजहंस।

नीलाचल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलगिरि पर्वत। (२) जगन्नाथ जी के निकट की एक छोटी पहाड़ी।

नीलाथोथा-संज्ञा पुं० [सं० नीलतुत्थ] ताँबे की उपधातु। ताँबे का नीला क्षार या लवण। तूतिया।

विशेष—वैद्यक में लिखा है कि जिस धातु की जो उपधातु होती है उसमें उसी का सा गुण होता है पर बहुत हीन। ताँबे का यह नीला लवण खानों में भी मिलता है पर अधिकतर कारखानों में निकाला जाता है। ताँबे के चूर को यदि खुली हवा में रख कर तपावें या गलावें और उसमें थोड़ा सा गंधक का तेजाब डाल दें तो तेजाब का अम्लगुण नष्ट हो जायगा और उसके योग से तूतिया बन जायगा। नीलाथोथा रँगाई और दवा के काम में आता है। वैद्यक में यह क्षारसंयुक्त, कटु, कसैला, वमनकारक, लघु, लेखन गुणयुक्त, भेदक, शीतवीर्य्य, नेत्रों को हितकर तथा कफ, पित्त, विष, पथरी, कुष्ट और खाज को दूर करनेवाला माना गया है। तूतिया शोध कर अल्प मात्रा में दिया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। बिल्ली की विष्ठा में तूतिये को गूँध कर दशमांश सोहागा मिला कर धीमी आँच में पकावे। इसके पीछे मधु और सेंधे नमक का पुट दे। दूसरी विधि यह है कि तूतिये में आधा गंधक मिलाकर उसे चार दंड तक पकावे। शुद्ध होने से उसमें वमन आदि का दोष कम हो जाता है।

नीलाब्ज-संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल।

नीलाम-संज्ञा पुं० [पुर्त० लीलाम] बिक्री का एक ढंग जिसमें माल उस आदमी को दिया जाता है जो सब से अधिक दाम बोलता है। बोली बोलकर बेचना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—नीलामघर।

मुहा०—नीलाम पर चढ़ना=बोली बोलकर बेचा जाना। (माल) नीलाम पर चढ़ाना=बोली बोलकर बेचना।

नीलामघर-संज्ञा पुं० [हिं० नीलाम+घर] वह घर या स्थान जहाँ चीजें नीलाम की जाती हों।

नीलामी-वि० [हिं० नीलाम] नीलाम में मोल लिया हुआ।

नीलाम्लान-संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसमें सुंदर फूल लगते हैं। काला कोराठा। (मराठी)

नीलाम्ली-संज्ञा पुं० [सं०] नलउड़हुल।

नीलावती-संज्ञा स्त्री० [सं० नीलवती] एक प्रकार का चावल।

संज्ञा पुं० फानूस।

नीलच्छद-वि० [सं०] नीले पंख या आवरण का।

संज्ञा पुं० (१) गरुड़। (२) खजूर।

नीलज-संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्तलौह। बीदरी लोहा।

नीलजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील पर्वत से उत्पन्न वितस्ता (झेलम) नदी।

नीलझिंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली कठसरैया।

नीलतरा-संज्ञा स्त्री० [?] बौद्ध कथाओं के अनुसार गांधार देश की एक नदी जो उरुवेलारण्य से होकर बहती थी जहाँ जाकर बुद्ध देव ने उरुवेल काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन भाइयों का अभिमान दूर किया था।

नीलतरु-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नीलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीलापन। (२) कालापन। स्याही।

नीलताल-संज्ञा पुं० [सं०] स्यामतमाल। हिंताल।

नीलदूर्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरी दूब।

नीलध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] तमाल।

नीलनिर्यासक-संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल का पेड़।

नीलपंक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला कीचड़। (२) अंधकार।

नीलपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीलकमल। (२) गुंडतृण। गोनरा घास जिसकी जड़ कसेरू है। (३) अश्मंतक वृक्ष। (४) विजयसाल। (५) अनार।

नीलपत्रिका, नीलपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

नीलपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदार वृक्ष।

नीलपिच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी।

नीलपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला फूल। (२) नीली भँगरैया। (३) नीलाम्लान। काला कोराठा। (४) गठिवन।

नीलपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुक्रांता लता। अपराजिता।

नीलपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अलसी। (२) नील का पौधा।

नीलपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला बौना। नीली कोयल। (२) अलसी।

नीलपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

नीलफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जामुन। (२) बैंगन।

नीलबरी-संज्ञा स्त्री० [सं० नील + वटी] कच्चे नील की बट्टी।

नीलबिरई-संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + बिरई] सनाय का पौधा। सना।

नीलभृंगराज-संज्ञा पुं० [सं०] नीला भँगरा।

नीलम-संज्ञा पुं० [फा० । सं० नीलमणि] नीलमणि। नीले रंग का रत्न। इंद्रनील।

विशेष—नीलम वास्तव में एक प्रकार का कुरंड है जिसका नंबर कड़ाई में हीरे से दूसरा है। जो बहुत चोखा होता है उसका मोल भी हीरे से कम नहीं होता। नीलम हलके नीले से लेकर गहरे नीले रंग तक के होते हैं। अब भारतवर्ष में नीलम की खानें नहीं रह गई हैं। काश्मीर (वसकर) की खानें भी अब खाली हो चली हैं। बरमा में मानिक के साथ नीलम भी निकलता है। सिंहल द्वीप और श्याम से भी बहुत अच्छा नीलम आता है।

रत्नपरीक्षा संबंधी पुस्तकों में मानिक के समान नीलम भी तीन प्रकार के कहे गए हैं। उत्तम, महानील और साधारण। महानील के संबंध में लिखा है कि यदि वह सौगुने दूध में डाल दिया जाय तो सारा दूध नीला दिखाई पड़ेगा। सब से श्रेष्ठ इंद्रनील वह है जिसमें से इंद्रधनुष की सी आभा निकले। पर ऐसा नीलम जल्दी मिलता नहीं। नीलम में पाँच बातें देखी जाती हैं—गुरुत्व, स्निग्धत्व, वर्णाढ्यत्व, पार्श्ववर्त्तित्व और रंजकत्व। जिसमें स्निग्धत्व होता है उसमें से चिकनाई छूटती है। जिसमें वर्णाढ्यत्व होता है उसे प्रातःकाल सूर्य्य के सामने करने से उसमें नीली शिखा सी फूटती दिखाई पड़ती है। पार्श्ववर्त्तित्व गुण उस नीलम में माना जाता है जिसमें कहीं कहीं पर सोना, चाँदी, स्फटिक आदि दिखाई पड़े। जिसे जलपात्र आदि में रखने से सारा पात्र नीला दिखाई पड़ने लगे उसे रंजक समझना चाहिए। रत्न संबंधी पुरानी पोथियों में भिन्न भिन्न रत्नों के धारण करने के भिन्न भिन्न फल लिखे हुए हैं।

नीलमणि-संज्ञा पुं० [सं०] नीलम।

नीलमाष-संज्ञा पुं० [सं०] काला उरद। राजमाष।

नीलमृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पकसीस। काली मिट्टी।

नीलमोर-संज्ञा पुं० [हिं० नील + मोर] कुररी नामक पक्षी जो हिमालय पर पाया जाता है।

नीललोह-संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्तलौह। बीदरी लोहा।

नीललोहित-वि० [सं०] नीलापन लिए लाल। बैंगनी।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम (जिनका कंठ नीला और मस्तक लोहित वर्ण है)।

नीललोहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भूमि जंबू। एक प्रकार की छोटी जामुन। (२) पार्वती।

नीलवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] बंदाक। बाँदा। परगाछा।

नीलवसन-संज्ञा पुं० [सं०] नीला कपड़ा।

वि० नीला या काला वस्त्र धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) शनि ग्रह। (२) बलराम।

नीलबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल।

नीलवृक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलवृक्षा। नीलायोना नाम का पेड़।

नीलवृंत-संज्ञा पुं० [सं०] तूल। रुई।

नीलवृष-संज्ञा पुं० [सं०] विशेष प्रकार का साँड़ या बछवा।

विशेष—श्राद्ध में नीलवृष एक पारिभाषिक शब्द है। जिस वृष

गाँठ जिसे स्त्रियाँ पेट के नीचे सूत की डोरी से या यों ही बाँधती हैं। (२) सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ धोती की गाँठ बाँधती हैं। कटिवस्त्र-बंध। फुफुंदी। नारा। (३) लहँगे में पड़ी हुई वह डोरी जिससे लहँगा कमर में बाँधा जाता है। इजारबंद। (४) साड़ी। धोती।

नीवी-संज्ञा स्त्री० दे० "नीवि"।

नीशार-संज्ञा पु० [सं०] (१) सरदी, हवा आदि से बचाव के लिये परदा। कनात। (२) मसहरी।

नीसा†-संज्ञा पु० [देश०] सफेद धतूरा।

नीसान†*-संज्ञा पु० दे० "निशान"।

नीसानी-संज्ञा स्त्री० [?] तेईस मात्राओं का एक छंद जिसमें १३ वीं और १० वीं मात्रा पर विराम होता है। यह उपमान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। उ०—माई सूरज मल्ल से कहना यह माई। हम तुम बंदे साहि के तुम्हें न लराई।

नीसू-संज्ञा पु० [सं० निशा] जमीन में गड़ा हुआ काठ का कुंदा जिस पर रख कर चारा या गन्ना काटते हैं।

नीहं†-संज्ञा स्त्री० दे० "नींव"।

नीहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुहरा। (२) पाला। हिम। तुषार। बर्फ।

नीहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में धूएँ या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज जो अँधेरी रात में सफेद धब्बे की तरह कहीं कहीं दिखाई पड़ता है।

विशेष—नीहारिका के धब्बे हमारे सौर जगत् से बहुत दूर हैं। दूरबीन के द्वारा देखने से ऐसे बहुत से धब्बों का पता अब तक लग चुका है जो भिन्न भिन्न अवस्थाओं में हैं। कुछ धब्बे तो ऐसे हैं जो अच्छी से अच्छी दूरबीनों से देखने पर भी कुहरे या भाप के रूप के ही दिखाई पड़ते हैं, कुछ ऐसे हैं जिनमें स्थान स्थान पर कुहरे से आवृत कुछ घनीभूत पिंड से भी दिखाई पड़ते हैं और कुछ एक दम छोटे छोटे तारों से मिलकर बने पाए जाते हैं और वास्तव में तारकगुच्छ हैं। आकाशगंगा में इस प्रकार के तारकगुच्छ बहुत से हैं। इन तीनों में शुद्ध नीहारिका एक प्रकार के धब्बे ही हैं जो प्रारंभिक अवस्था में हैं। इनसे आती हुई किरणों की रश्मि-विश्लेषण यंत्र में परीक्षा करने से कुछ में कई प्रकार की आलोक-रेखाएँ पाई जाती हैं। इनमें से कई एक का तो निश्चय नहीं होता कि किस द्रव्य से आती हैं, तीन का पता लगता है कि वे हाइड्रोजिन (उद्‌जन) की रेखाएँ हैं।

ज्योतिर्विज्ञानियों का कथन है कि नीहारिका के धब्बे ग्रह-नक्षत्रों के उपादान हैं। इन्हीं के क्रमशः घनीभूत होकर जमते जमते नक्षत्रों और लोकपिंडों की सृष्टि होती है। इनमें अत्यंत अधिक मात्रा का ताप होता है। हमारा यह सूर्य्य अपने ग्रहों और उपग्रहों के साथ आरंभ में नीहारिका रूप में ही था।

नुकता-संज्ञा पुं० [अ० नुक़तः] बिंदु। बिंदी।

संज्ञा पु० [अ० नुक्तः] (१) चुटकुला। फबती। लगती हुई उक्ति।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

(२) ऐब। दोष।

क्रि० प्र०—निकालना।

यौ०—नुकताची। नुक्ताचीनी।

(३) कालर के रूप का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर इसलिये बाँधा जाता है जिसमें आँख में मक्खियाँ न लगें। तिलहारी।

नुकताचीन-वि० [फा०] ऐब ढूँढ़नेवाला या निकालनेवाला। दोष ढूँढ़ने या निकालनेवाला। छिद्रान्वेषी।

नुकताचीनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] छिद्रान्वेषण। दोष निकालने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नुकती-संज्ञा स्त्री० [फा० नुख़ुदी] एक प्रकार की मिठाई। बेसन की छोटी महीन बुँदिया।

नुकरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) चाँदी। (२) घोड़े का सफेद रंग। वि० सफेद रंग का (घोड़ा)।

नुकरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] जलाशयों के पास रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर सफेद और चोंच काली होती है।

नुकसान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कमी। घटी। ह्रास। छीन। जैसे, सीड़ में रखने से इतने काग़ज़ का नुकसान हो गया। (२) हानि। घाटा। फायदा का उलटा। जियान। क्षति। पास की वस्तु का जाता रहना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नुकसान उठाना = हानि सहना। पल्ले का खोना। क्षतिग्रस्त होना। नुकसान पहुँचना = नुकसान होना। नुकसान पहुँचाना = हानि करना। क्षतिग्रस्त करना। नुकसान भरना = हानि की पूर्ति करना। घाटा पूरा करना।

(३) बिगाड़। खराबी। दोष। अवगुण। विकार।

मुहा०—(किसीको) नुकसान करना = दोष उत्पन्न करना। अस्वस्थ करना। स्वास्थ्य के प्रतिकूल होना। जैसे, आलू हमें बहुत नुकसान करता है।

नुकाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] खुरपी से निराने का काम।

नुकीला-वि० [हिं० नोक + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० नुकीली] (१) नोकदार। जिसमें नोक निकली हो। जो छोर की ओर बराबर पतला होता गया हो। (२) नोक झोंक का। बाँका तिरछा। सुंदर ढब का। सजीला। जैसे, नुकीला जवान।

नुकीली-वि० स्त्री० दे० "नुकीला"।

उ०—नीलावती चाउर दिवि दुर्लभ । भात परोस्यो माता सुलभ ।—सूर ।

नीलाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।

नीलासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पियासाल का पेड़ । (२) एक रतिबंध ।

नीलाहट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीला + आहट (प्रत्य०)] नीलापन ।

नीलि–संज्ञा पुं० [सं०] एक जलजंतु का नाम ।

नीलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीलबरी । (२) नीली निर्गुंडी । नील सम्हालु वृक्ष । (३) आँख का एक रोग । तिमिर रोग के अंतर्गत लिंगनाश का एक भेद । आँख तिलमिलाने का रोग ।

विशेष—जिस तिमिर रोग में कभी कभी एकबारगी कुछ न दिखाई पड़े उसे लिंगनाश कहते हैं और जिसमें आकाश में सूर्य्य नक्षत्र बिजली आदि की सी चमक दिखाई पड़े उसे नीलिका कहते हैं । (सुश्रुत)

(४) मुख पर का एक रोग जिसमें सरसों के बराबर छोटे छोटे कड़े काले दाने निकलते हैं । झुला ।

नीलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नील का पेड़ । (२) नीला थोना ।

नीलिमा–संज्ञा स्त्री० [सं० नीलिमन्] (१) नीलापन । (२) श्यामता । स्याही ।

विशेष—सं० में यद्यपि पुं० है पर हिंदी में स्त्री० है ।

नीली–वि० स्त्री० [हिं० नीला] काले रंग की । नील के रंग की । काली । आसमानी ।

संज्ञा स्त्री० (१) नील का पौधा । (२) नीलिका रोग ।

नीली घोड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीली + घोड़ी] (१) काले अथवा सब्ज रंग की घोड़ी । (२) जामे के साथ सिली हुई कागज की घोड़ी जिसे पहन लेने से जान पड़ता है कि आदमी घोड़े पर सवार है । डफाली इसे पहन कर गाजी मियाँ के गीत गाते हुए भीख माँगने निकलते हैं ।

नीली चकरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीली + चकरी] एक प्रकार का पौधा ।

नीली चाय–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीली + चाय] अगिया घास या यज्ञकुश ।

नीलू–संज्ञा स्त्री० [हिं० नील] एक प्रकार की घास । पलवान ।

नीलोत्पल–संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

नीलोत्पली–संज्ञा पुं० [सं० नीलोत्पालिन्] (१) शिव के एक अंश । (२) बौद्ध महात्मा मंजुश्री का एक नाम ।

नीलोफ़र–संज्ञा पुं० [फा० । मि० सं० नीलोत्पल] (१) नील कमल । (२) कुईं । कुमुद ।

विशेष—हकीमी नुसखों में कुमुद या कुईं का ही व्यवहार यहाँ होता है ।

नीवँ–संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि, प्रा० नेइँ] (१) घर बनाने में गहरी नाली के रूप में खुदा हुआ गड्ढा जिसके भीतर से दीवार की जोड़ाई आरंभ होती है । दीवार उठाने के लिये गहरा किया हुआ स्थान ।

क्रि० प्र०—खोदना ।

मुहा०—नीवँ देना = (१) गड्ढा खोद कर दीवार खड़ी करने के लिये स्थान बनाना । दीवार की जड़ जमाने के लिये भूमि खोदना । (२) घर उठाने का आरंभ करना । (किसी बात की) नीवँ देना = कारण या आधार खड़ा करना । जड़ खड़ी करना । आरंभ करना । उपक्रम करना । सामान करना । जैसे, झगड़े की नींव देना । उ०—बाकी खाँ सो उठि छुता दई दुंद की नीवँ ।—लाल । नीवँ भरना = दीवार के लिये खुदे हुए गडढे में कंकड़, पत्थर आदि पाटना ।

(२) दीवार के लिये गहरे किए हुए स्थान में ईंट, पत्थर, मिट्टी आदि की जोड़ाई या जमावट जिसके ऊपर दीवार उठाते हैं । दीवार की जड़ या आधार । मूलभित्ति ।

क्रि० प्र०—धरना ।—रखना ।

मुहा०—नीवँ का पत्थर = वह पत्थर जो मकान बनाने के आरंभ में पहले पहल नीवँ में रखा जाता है । नीवँ जमाना या डालना या देना = दीवार उठाने के लिये नीवँ के गड्ढे में ईंट, पत्थर आदि जमा कर आधार खड़ा करना । दीवार की जड़ जमाना । (किसी बात की) नीवँ जमाना = (१) आधार दृढ़ करना । स्थिर करना । स्थापित करना । (२) गर्भ स्थित करना । पेट रखना । (किसी वस्तु या बात की) नींव डालना—देना = आधार खड़ा करना । जड़ जमाना । सूत्रपात करना । बुनियाद डालना । आरंभ करना । जैसे, क्लाइव ने अँगरेजी राज्य की नीवँ डाली । नीवँ पड़ना = (१) घर की दीवार का आधार खड़ा होना । घर बनने का लग्गा लगाना । उ०—ओक की नीवँ परी हरि-लोक विलोकत गंग तरंग तिहारे । (२) आरंभ होना । सूत्रपात होना । जड़ खड़ी होना या जमना । जैसे, झगड़े की नीवँ पड़ना, राज्य की नीवँ पड़ना ।

(३) जड़ । मूल । स्थिति । आधार ।

नीव–संज्ञा स्त्री० दे० "नीवँ" ।

नीवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिक्षु । परिव्राजक । (२) वाणिज्य । (३) कीचड़ । (४) जल ।

नीवानास–संज्ञा पुं० [हिं० नीवँ + नाश] जड़ मूल से नाश । सत्तानाश । बरबादी । ध्वंस ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

वि० चौपट । नष्ट । बरबाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—जाना ।—होना ।

नीवार–संज्ञा पुं० [सं०] पसही वा तिन्नी के चावल । मुन्यन्न ।

नीवि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमर में लपेटी हुई धोती की वह

इसका व्यवहार भारतवर्ष में कम पर जावा आदि द्वीपों में बहुत होता है।

† संज्ञा पुं० [सं० लवण, हिं० लोन] नमक।

मुहा०—नून तेल = गृहस्थी का सामान।

वि० दे० "न्यून"। उ०—प्रेमहि सज्जन हिये महँ होन देत नहिं नून।—रसनिधि।

नूनताई*—संज्ञा स्त्री० दे० "न्यूनता"।

नूनी—†संज्ञा स्त्री० [सं० न्यून, हिं० नून] लिंगेंद्रिय, विशेषतः बच्चों की।

नूपुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना। पैंजनी। घुँघरू। (२) नगण के पहले भेद का नाम। (३) इक्ष्वाकु-वंशीय एक राजा।

नूका—संज्ञा पु० [?] १४ मात्राओं का एक छंद जो कज्जल के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। उ०—खलभल परी दुग्ग मझार। दलबल हपट देखि अपार॥ कलबल करत नर अरु नार। छुलबल कोट ओट निहार॥

नूर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) ज्योति। प्रकाश। आभा। जैसे, खुदा का नूर।

मुहा०—नूर का तड़का = बहुत सवेरा। प्रातःकाल। नूर बरसना = प्रभा का अधिकता से प्रकट होना।

(२) श्री। कांति। शोभा। (३) ईश्वर का एक नाम। (सूफी)। (४) संगीत में बारह मुकामों में से एक।

नूरबाफ—संज्ञा पु० [अ० + फा०] जुलाहा। ताँती।

नूरा—संज्ञा पुं० [?] वह कुश्ती जो आपस में मिलकर लड़ी जाय अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरे के विरोधी न हों। (पहलवान)

‡ वि० [अ० नूर] नूरवाला। तेजस्वी। उ०—दधिकर्दम खेलत रघुवंसी नरनारी नव नूरे।—रघुराज।

नूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

नूह—संज्ञा पुं० [अ०] शामी या इबरानी (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) मतों के अनुसार एक पैगंबर का नाम जिनके समय में बड़ा भारी तूफान आया था। इस तूफान में सारी सृष्टि जलमग्न हो गई थी, केवल नूह का परिवार और कुछ पशु एक किश्ती पर बैठकर बचे थे। कहते हैं उन्हीं से फिर नए सिर से सृष्टि चली।

नृ—संज्ञा पुं० [सं०] नर। मनुष्य।

नृ-कपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य की खोपड़ी।

नृ-केशरी—संज्ञा पु० [सं० नृकेशरिन्] (१) नृसिंह अवतार। (२) मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी पुरुष। श्रेष्ठ पुरुष।

नृग—संज्ञा पु० [सं०] (१) एक राजा जिनकी कथा महाभारत में इस प्रकार है—राजा नृग बड़े दानी थे। उन्होंने न जाने कितने गोदान आदि किए थे। एक बार उनकी गायों के झुंड में किसी एक ब्राह्मण की गाय आ मिली। राजा ने एक बार एक ब्राह्मण को सहस्र गो दान में दीं जिनमें वह ब्राह्मणवाली गाय भी थी। ब्राह्मण ने जब अपनी गाय को पहचाना तब दोनों ब्राह्मण राजा नृग के पास आए। राजा नृग ने जिस ब्राह्मण को गाएँ दान में दी थीं उसे गाय बदल लेने के लिये बहुत समझाया पर उसने एक न मानी। अंत में वह दूसरा ब्राह्मण उदास होकर चला गया। जब राजा का परलोकवास हुआ तब उनसे यम ने कहा कि आपका पुण्यफल बहुत है पर ब्राह्मण की गाय हरने का पाप भी आपको लगा है। चाहे पाप का फल पहले भोगिए, चाहे पुण्य का। राजा ने पाप का ही फल पहले भोगना चाहा अतः वे सहस्र वर्ष के लिये गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे। अंत में श्रीकृष्ण के हाथों से उनका उद्धार हुआ। (२) मनु के एक पुत्र का नाम। (३) यौधेय वंश का आदि-पुरुष जो नृगा के गर्भ से उत्पन्न उशीनर का पुत्र था।

नृगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा उशीनर की पत्नी का नाम।

नृघ्न—वि० [सं०] नरघातक।

नृतक*—संज्ञा पु० दे० "नर्त्तक"।

नृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाच। नृत्य।

नृतु—संज्ञा पु० [सं०] नाचनेवाला। नर्त्तक।

नृतू—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नर्त्तक। (२) नरहिंसक।

नृत्तना*—क्रि० अ० [सं० नृत] नाचना। नृत्य करना।

नृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के ताल और गति के अनुसार हाथ पाँव हिलाने, उछलने कूदने आदि का व्यापार। नाच। नर्त्तन।

विशेष—इतिहास, पुराण, स्मृति इत्यादि सब में नृत्य का उल्लेख मिलता है। संगीत के ग्रंथों में नृत्य के दो भेद किए गए हैं—तांडव और लास्य। जिसमें उग्र और उद्धत चेष्टा हो उसे तांडव कहते हैं और जो सुकुमार अंगों से किया जाय तथा जिससे शृंगार आदि कोमल रसों का संचार हो उसे लास्य कहते हैं। संगीतनारायण में लिखा है कि पुरुष के नृत्य को तांडव और स्त्री के नृत्य को लास्य कहते हैं। संगीतदामोदर के मत से तांडव और लास्य भी दो दो प्रकार के होते हैं—पेलवि और बहुरूपक। अभिनय-शून्य अंग-विक्षेप को पेलवि कहते हैं। जिसमें छेद भेद तथा अनेक प्रकार के भावों के अभिनय हों उसे बहुरूपक कहते हैं। लास्य नृत्य दो प्रकार का होता है—छुरित और यौवत। अनेक प्रकार के भाव दिखाते हुए नायक नायिका एक दूसरे का चुंबन आलिंगन आदि करते हुए जो नृत्य करते हैं वह छुरित कहलाता है। जो नाच नाचनेवाली अकेले आप ही नाचे वह यौवत है। इसी प्रकार संगीत के ग्रंथों में हाव,

नुकड़–संज्ञा पुं० [हिं० नोक का अल्प] (१) नोक । पतला सिरा । (२) सिर । छोर । अंत । जैसे, गली के नुक्कड़ पर वह दूकान है । (३) कोना । निकला हुआ कोना ।

नुक्का–संज्ञा पुं० [हिं० नोक] (१) नोक ।

यौ०—नुक्का टोपी = पतली दोपलिया टोपी जो लखनऊ में दी जाती है ।

(२) गेंड़ी के खेल में एक लकड़ी ।

मुहा०—नुक्का मारना या लगाना = (१) गेंड़ी मारना । गेंड़ी के खेल में लकड़ी मारना । (२) कील ठोकना । बाधा पहुँचाना । कष्ट पहुँचाना ।

नुक्स–संज्ञा पुं० [अ०] (१) दोष । ऐब । खराबी । बुराई ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

(२) त्रुटि । कसर ।

नुखरना–क्रि० अ० [देश०] भालू का चित लेटना । (कलंदर)

नुखाट–संज्ञा स्त्री० [देश०] छड़ी की मार जो कलंदर भालू के मुँह पर मारते हैं । (कलंदर) ।

नुगदी–संज्ञा स्त्री० दे० "नुकती" ।

नुचना–क्रि० अ० [सं० लुंचन] (१) अंश या अंग से लगी हुई किसी वस्तु का झटके से खिंच कर अलग होना । खिंचकर उखड़ना । टूटना । जैसे, बाल नुचना । पत्ती नुचना । (२) खरोंचा जाना । नाखून आदि से छिलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

नुचवाना–क्रि० स० [हिं० नोचना का प्रे०] नोचने का काम कराना । नोचने में प्रवृत्त करना । नोचने देना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

नुजट–संज्ञा पुं० [?] संगीत में २४ शोभाओं में से एक ।

नुत–वि० [सं०] स्तुत । प्रशंसित । वंदित । जिसकी स्तुति वा प्रशंसा की गई हो ।

नुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तुति । वंदना । (२) पूजा ।

नुत्त–वि० [सं०] (१) चलाया हुआ । क्षिप्त । (२) प्रेरित ।

नुत्फा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) वीर्य्य । शुक्र ।

मुहा०—नुत्फा ठहरना = गर्भ रहना ।

यौ०—नुत्फाहराम ।

(२) संतति । औलाद ।

नुत्फाहराम–वि० [अ०] (१) जिसकी उत्पत्ति व्यभिचार से हो । वर्णसंकर । दोगला । (२) कमीना । बदमाश । (गाली)

नुनखरा–वि० [हिं० नून + खारा] स्वाद में नमक सा खारा । नमकीन ।

नुनखारा–वि० दे० "नुनखरा" ।

नुनना–क्रि० स० [सं० लवन, लून] लुनना । खेत काटना ।

नुनाई[*]†–संज्ञा स्त्री० [हिं० 'नून' से नोना, नोनो = सुंदर] लावण्य । सुंदरता । सलोनापन ।

नुनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का तूत जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर सिकिम तक तथा बरमा और दक्षिण भारत के पहाड़ों पर भी होता है ।

नुनेरा–संज्ञा पुं० [हिं० नून + एरा (प्रत्य०)] (१) नोनी मिट्टी आदि से नमक निकालनेवाला । नमक बनाने का रोजगार करनेवाला । (२) लोनिया । नोनिया । (इस जाति के लोग पहले नमक निकाला करते थे) ।

नुमाइश–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दिखावट । दिखावा । प्रदर्शन । दिखाने या प्रगट करने का भाव । (२) तड़क भड़क । ठाटबाट । सजधज । (३) नाना प्रकार की वस्तुओं का कुतूहल और परिचय के लिये एक स्थान पर दिखाया जाना ।

यौ०—नुमाइशगाह ।

(४) वह मेला जिसमें अनेक स्थानों से इकट्ठी की हुई उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ दिखाई जाती हैं ।

नुमाइशगाह–संज्ञा स्त्री० [फा०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार की उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ इकट्ठी करके दिखाई जायँ ।

नुमाइशी–वि० [फा० नुमाइश] (१) दिखाऊ । दिखौवा । जो केवल दिखावट के लिये हो, किसी प्रयोजन का न हो । जो देखने में भड़कीला और सुंदर हो, पर टिकाऊ या काम का न हो । (२) जिसमें ऊपरी तड़क भड़क हो, भीतर कुछ सार न हो ।

नुसखा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) लिखा हुआ कागज । (२) कागज का वह चिट जिस पर हकीम या वैद्य रोगी के लिये औषध और सेवन विधि आदि लिखते हैं । दवा का पुरजा ।

मुहा०—नुसखा बाँधना = हकीम या वैद्य के लिखे अनुसार दवाएँ देना । पंसारी या अत्तार का काम करना । नुसखा लिखना = रोगी को देख औषध की व्यवस्था करना । दवा लिखना ।

नुहरना†–क्रि० अ० दे० "निहुरना" ।

नूत–वि० [सं० नूतन] (१) नया । नूतन । उ०—अरुन नूत पल्लव धरे रँग भीजी ग्वालिनी ।—सूर । (२) अनोखा । अनूठा । उ०—मूलै मौला कहत हैं फलै अँबिया नाव । और तरुन में नूत यह तेरो धन्य सुभाव ।

नूतन–वि० [सं०] (१) नया । नवीन । (२) हाल का । ताजा । (३) अनोखा । अपूर्व । विलक्षण ।

नूतनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] नूतन का भाव । नवीनता । नयापन ।

नूतनत्व–संज्ञा पुं० [सं०] नयापन ।

नूद–संज्ञा पुं० [सं०] शहतूत ।

नूधा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तंबाकू ।

नून–संज्ञा पुं० [?] (१) आल । (२) आल की जाति की एक लता जो दक्षिण भारत तथा आसाम, बरमा आदि देशों में होती है । इससे भी एक प्रकार का लाल रंग निकलता है ।

भगवान् अत्यंत भीषण गर्जन करके दैत्य पर झपटे और उन्होंने उसका पेट नखों से फाड़ डाला।

भागवत और विष्णु पुराण में सब कथा तो यही है प्रह्लाद की भक्ति का प्रसंग अधिक है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकशिपु वर पाकर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीत कर राज्य करने लगा। इसके चार पुत्र थे जिन में प्रह्लाद विष्णु भगवान् का बड़ा भारी भक्त था। शुक्राचार्य्य का पुत्र दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाता था। एक दिन हिरण्यकशिपु ने परीक्षा के लिये सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिए कहा। प्रह्लाद विष्णु भगवान् की महिमा गाने लगा। इस पर दैत्यराज बहुत बिगड़ा क्योंकि वह विष्णु का घोर द्वेषी था। पर बिगड़ने का कुछ भी फल नहीं हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। पिता के द्वारा अनेक ताड़न और कष्ट सहकर भी प्रह्लाद भक्ति पर दृढ़ रहे। धीरे धीरे बहुत से सहपाठी बालकों का दल प्रह्लाद का अनुयायी हो गया। इस पर दैत्यराज ने कुपित हो कर प्रह्लाद से पूछा कि 'तू किसके बल पर इतना कूदता है?' प्रह्लाद ने कहा 'भगवान के, जिसके बल पर यह सारा संसार चल रहा है'। हिरण्यकशिपु ने पूछा "तेरा भगवान कहाँ है?" प्रह्लाद ने कहा "वह सदा सर्वत्र रहता है" दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा "क्या इस खंभे में भी है?" प्रह्लाद ने कहा "अवश्य"। हिरण्यकशिपु खड्ग लेकर बार बार खंभे की ओर देखने लगा। इतने में खंभे के भीतर से प्रलय के समान शब्द हुआ और नृसिंह ने निकल कर दैत्यराज का वध किया।

(२) श्रेष्ठ पुरुष। (३) एक रतिबंध।

नृसिंह चतुर्दशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस तिथि को नृसिंह जी का अवतार हुआ था इससे व्रत, पूजन, उत्सव आदि किए जाते हैं।

नृसिंह पुराण–संज्ञा पु० [सं०] एक उपपुराण।

नृसिंहपुरी–संज्ञा पु० [सं०] एक तीर्थ जो मुलतान में कहा जाता है।

नृसिंहवन–संज्ञा पुं० [सं०] कूर्मविभाग में पश्चिम-उत्तर स्थित एक देश। (बृहत्संहिता)

नृसोम–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मनुष्यों में चंद्रमा के सदृश हो। नरश्रेष्ठ।

नृहरि–संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

ने–प्रत्य० [सं० प्रत्य० टा = एण] सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्त्ता का चिह्न जो उसके आगे लगाया जाता है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्त्ता की विभक्ति। जैसे, राम ने रावण को मारा। उसने यह काम किया।

विशेष—हिंदी की भूतकालिक क्रियाएँ सं० कृदंतों से बनी हैं इसीसे कर्मवाच्य रूप में वाक्यों का प्रयोग आरंभ हुआ। क्रमशः इन वाक्यों का ग्रहण कर्तृवाच्य में भी होने लगा।

नेइँ†–संज्ञा स्त्री० दे० "नींव"।

नेउछावरि†–संज्ञा स्त्री० दे० "न्योछावर", "निछावर"।

नेउतना†–क्रि स० दे० "नेवतना", "न्योतना"।

नेउता†–संज्ञा पुं० दे० "नेवता", "न्योता"।

नेउला–संज्ञा पु० दे० "नेवला"।

नेक–वि० [फा०] (१) अच्छा। भला। उत्तम।

यौ०—नेकचलन। नेकनाम। नेकनीयत। नेकबख्त।

(२) शिष्ट। सज्जन। जैसे, नेक आदमी।

*† वि० [हिं० न+एक] थोड़ा। तनिक। जरा सा। किंचित्। कुछ।

क्रि० वि० थोड़ा। जरा। तनिक। उ०—नेक हँसौहीं बानि तजि लख्यौ परत मुख नीठि।—बिहारी।

नेकचलन–वि० [फा० नेक + हिं० चलन] अच्छे चाल चलन का। सदाचारी।

नेकचलनी—संज्ञा स्त्री० [फा० नेक + हिं० चलन] सुचाल। सदाचार। भलमनसाहत।

नेकनाम–वि० [फा०] जिसका अच्छा नाम हो। जो अच्छा प्रसिद्ध हो। यशस्वी।

नेकनामी–संज्ञा स्त्री० [फा०] नामवरी। सुख्याति। कीर्त्ति। सुयश।

नेकनीयत–वि० [फा० नेक + अ० नीयत] (१) अच्छे संकल्प का। शुभ संकल्पवाला। जिसका आशय या उद्देश्य अच्छा हो। उत्तम विचार का। उदाराशय। भलाई का विचार रखनेवाला।

नेकनीयती–संज्ञा स्त्री० [फा० नेकनीयत] (१) नेकनीयत होने का भाव। अच्छा संकल्प। भला विचार। (२) ईमानदारी।

नेकबख्त–वि० [फा०] (१) भाग्यवान्। खुशकिस्मत। (२) अच्छे स्वभाव का। सुशील।

नेकरी–संज्ञा स्त्री० [?] समुद्र की लहर का थपेड़ा जिससे जहाज़ किसी ओर को बढ़ता है। हाँक। (लश०)

नेकी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) भलाई। उत्तम व्यवहार। (२) सज्जनता। भलमनसाहत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—नेकी बदी = भलाई बुराई। पाप पुण्य। जैसे, नेकी बदी साथ जाती है।

(३) उपकार। हित। जैसे, उसने तुम्हारे साथ बड़ी नेकी की है।

यौ०—नेकी बदी = उपकार अपकार। हित अहित।

मुहा०—नेकी और पूछ पूछ = किसी का उपकार करने में उससे पूछने की क्या आवश्यकता है?

नेकु*†–वि०, क्रि० वि० दे० "नेक"।

पैर, मस्तक आदि की विविध गतियों के अनुसार अनेक भेद उपभेद किए गए हैं।

धर्मशास्त्रों में नृत्य से जीविका करनेवाले निंद्य कहे गए हैं।

नृत्यकी-संज्ञा स्त्री० दे० "नर्त्तकी"।

नृत्यप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव (जिन्हें तांडव नृत्य प्रिय है)। (२) कार्त्तिकेय का एक अनुचर।

नृत्यशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाचघर।

नृदुर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] सेना का चारों ओर का घेरा।

नृदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) ब्राह्मण।

नृपंजय-संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरुवंशीय राजा।

नृप-संज्ञा पुं० [सं०] नरपति। राजा।

नृपकंद-संज्ञा पुं० [सं०] लाल प्याज।

नृपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजापन। राजा का गुण या भाव।

नृपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) कुबेर।

नृपद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमिलतास। (२) खिरनी का पेड़।

नृपद्रोही-संज्ञा पुं० [सं० नृपद्रोहिन्] परशुराम।

नृपप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल प्याज। (२) रामशर। सरकंडा। (३) एक प्रकार का बाँस। (४) जड़हन धान। (५) आम का पेड़। (६) राजसुआ। पहाड़ी या पर्वती तोता।

नृपप्रियफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन।

नृपप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केतकी। (२) पिंड खजूर।

नृपमांगल्य-संज्ञा पुं० [सं०] तरवट का पेड़। आहुल।

नृपमान-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था।

नृपवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] राजाम्रवृक्ष।

नृपवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

नृपवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सोनालु का पेड़।

नृपसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजकन्या। राजकुमारी। (२) छछूंदर। छछुंदरी।

नृपात्मजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजकन्या। (२) कड़ुवा घीया। कड़ुई तूँबी।

नृपाध्वर-संज्ञा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ।

नृपान्न-संज्ञा पुं० [सं०] राजभोग धान।

नृपाभीर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था।

नृपामय-संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा। क्षयरोग।

नृपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (मनुष्यों का पालन करनेवाला) राजा।

नृपावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त्त। एक प्रकार का रत्न।

नृपासन-संज्ञा पुं० [सं०] भद्रासन। राजसिंहासन। तख्त।

नृपाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा कहलानेवाला। राजा नामधारी। (२) लाल प्याज।

नृपोचित-वि० [सं०] जो राजाओं के योग्य हो।

संज्ञा पुं० (१) राजमाष। काला बड़ा उरद। (२) लोबिया।

नृमणा-संज्ञा स्त्री [सं०] प्लक्षद्वीप की एक महानदी। (भागवत)

नृमणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पिशाच या भूत जो बच्चों को लग कर तंग किया करता है।

नृमर-संज्ञा पुं० [सं०] (मनुष्यों को मारनेवाला) राक्षस।

नृमिथुन-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-पुरुष का जोड़ा।

नृमेध-संज्ञा पुं० [सं०] नरमेध या पुरुषमेध यज्ञ।

नृयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] पंचयज्ञों में से एक जिसका करना गृहस्थ के लिये कर्त्तव्य है। अतिथिपूजा। अभ्यागत का सत्कार।

नृलोक-संज्ञा पुं० [सं०] नरलोक। मनुष्यलोक। मर्त्यलोक।

नृवराह-संज्ञा पुं० [सं०] वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु।

नृशंस-वि० [सं०] (१) लोगों को कष्ट या पीड़ा पहुँचानेवाला। क्रूर। निर्दय। (२) अनिष्टकारी। अपकारी। अत्याचारी। जालिम।

नृशंसता-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दयता। क्रूरता।

नृशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य की सींग के समान अनहोनी बात या वस्तु। अलीक पदार्थ।

नृसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंहरूपी भगवान् विष्णु। विष्णु का चौथा अवतार।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि सत्य युग में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने घोर तप करके ब्रह्मा से वर माँग लिया कि न मैं देव, असुर, गंधर्व, नाग राक्षस या मनुष्य के हाथ से मारा जा सकूँ, न अस्त्र शस्त्र, वृक्ष, शैल तथा सूखे या गीले पदार्थ से मरूँ; और न स्वर्ग मर्त्य आदि किसी लोक में या दिन रात किसी काल में मेरी मृत्यु हो सके। इस प्रकार का वर पाकर वह दैत्य अत्यंत प्रबल हो उठा और स्वर्ग आदि छीन कर देवताओं को बहुत सताने लगा। देवता लोग विष्णु भगवान् की शरण में गए। विष्णु ने उन्हें अभय दान देकर अत्यंत भीषण नृसिंह मूर्त्ति धारण की जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का था। जब यह नृसिंह मूर्त्ति हिरण्यकशिपु के पास पहुँची तब उसके पुत्र प्रह्लाद ने कहा—कि "यह मूर्त्ति दैवी है, इसके भीतर सारा चराचर जगत् दिखाई पड़ता है। जान पड़ता है कि अब दैत्य-कुल नष्ट होगा"। यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अपने दैत्यों से नृसिंह को मारने के लिये कहा। पर जितने दैत्य मारने गए सब नष्ट हुए। अंत में हिरण्यकशिपु आप उठकर युद्ध करने लगा। हिरण्यकशिपु के क्रुद्ध नेत्रों की ज्वाला से समुद्र का जल खलबला उठा, सारी पृथ्वी डाँवाडोल हुई और लोकों में हाहाकार मच गया। देवताओं का आर्त्तनाद सुन नृसिंह

लपेटी जाती है और जिसे खींचने से मथानी फिरती है और दूध या दही मथा जाता है।

नेती धोती—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र, हिं० नेता + सं० धौति] हठयोग की एक क्रिया जिसमें कपड़े की धज्जी पेट में डाल कर आँतें साफ करते हैं। दे० "धौति"।

नेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख। (२) मथानी की रस्सी। (३) एक प्रकार का वस्त्र। (४) वृक्षमूल। पेड़ की जड़। (५) रथ। (६) जटा। (७) नाड़ी। (८) वस्तिशलाका। बत्ती की सलाई। कटीरा। (९) दो की संख्या का सूचक शब्द।

नेत्रकनीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का तारा।

नेत्रज—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू।

नेत्रजल—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू।

नेत्रपर्य्यंत—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का कोना।

नेत्रपाक—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग।

नेत्रपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नेत्रगोलक। आँख का ढेला। (२) बिल्ली।

नेत्रपुष्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा नाम की लता।

नेत्रबंध—संज्ञा पुं० [सं०] आँखमिचौली का खेल। (महाभारत)

नेत्रबाला—संज्ञा पुं० [सं० बाला] सुगंधबाला। कचमोद। बालक।

विशेष—दे० "सुगंधबाला"।

नेत्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत या नृत्य में एक भाव जिसमें केवल आँखों की चेष्टा से सुख दुःख आदि का बोध कराया जाता है और कोई अंग नहीं हिलते डोलते। यह भाव बहुत कठिन समझा जाता है।

नेत्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का घेरा। आँख का ढेला।

नेत्रमल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का कीचड़। गिद्द।

नेत्रमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रगोलक से मस्तिष्क तक गया हुआ सूत्र जिसमें अंतःकरण में दृष्टिज्ञान होता है।

नेत्रमीलू—संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिक्ता लता (जिसके सेवन से आँखें बंद रहती हैं)।

नेत्रयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र (जिनके शरीर में गौतम के शाप से सहस्र योनिचिह्न हो गए थे जो पीछे नेत्र के आकार में हो गए।) (२) चंद्रमा (जो अत्रि की आँख से उत्पन्न हुए थे)।

नेत्ररंजन—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल। काजल।

नेत्ररोग—संज्ञा पुं० [सं०] आँख में होनेवाले रोग जो वैद्यक में ७६ माने गए हैं—इनमें से १० वायुजन्य, १३ कफजन्य, १६ रक्तजन्य, १० पित्तज, २५ सन्निपातज और २ बाहरी हैं। वायुजन्य रोगों में से हताधिमंथ, निमेषदृष्टिगत, गंभीरिका और वातहतवर्त्म असाध्य हैं और काचरोग, शुष्काक्षिपाक, अधिमंथ, अभिष्यंद और मारुत साध्य हैं। पित्तज रोगों में से ह्रस्वजात, जलस्राव, परिम्लायी और नीली असाध्य हैं और अम्लाध्युषित दृष्टि, शुक्तिका, विदग्ध दृष्टि, पोथकी और लगण साध्य हैं। श्लेष्मज रोगों में स्राव रोग और काच रोग साध्य होता है। पूयस्राव, नाकुलांध्य, अक्षिपाक और अलजी ये सब सर्वदोषज असाध्य हैं। सन्निपातज काच रोग और पक्ष्मकोपरोग साध्य हैं। ७६ नेत्र रोगों में से ९ संधिगत, २१ वर्त्मगत, ११ शुक्ल भागस्थित, ४ कृष्णभागस्थित, १७ सर्वत्रगत, १२ दृष्टिगत और २ बाह्य रोग हैं।

नेत्ररोगहा—संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिकाली वृक्ष।

नेत्ररोम—संज्ञा पुं० [सं० नेत्ररोमन्] आँख की बिरनी। बरौनी।

नेत्रवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी पिचकारी।

नेत्रविट्—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का कीचड़।

नेत्रविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दिव्य सर्प जिसकी आँख में विष होता है।

नेत्रसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का कोना।

नेत्रस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों का स्थिर हो जाना। अर्थात् उठना और गिरना बंद हो जाना।

नेत्रस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] आँखों से पानी बहना।

नेत्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] आँख के कोने और कान के बीच का भाग। कनपटी।

नेत्राभिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जो छूत से फैलता है। आँख आने का रोग।

विशेष—इस रोग में आँखें लाल हो जाती हैं और उनमें बड़ी पीड़ा होती है। यह वातज, पित्तज, रक्तज, और कफज चार प्रकार का होता है। वातज अभिष्यंद में सूई चुभने की सी पीड़ा होती है और ऐसा जान पड़ता है कि आँखों में किरकिरी पड़ी हो। इसमें ठंढा पानी बहता है और सिर दुखता है। पित्तज में आँखों में जलन होती है और बहुत पानी बहता है। ठंढी चीजें रखने से आराम मालूम होता है। कफज अभिष्यंद में आँखें भारी जान पड़ती हैं, सूजन अधिक होती है और बार बार गाढ़ा पानी बहता है। इसमें गरम चीजों से आराम मालूम होता है। रक्तज में आँखें बहुत लाल रहती हैं और सब लक्षण पित्तज अभिष्यंद के से होते हैं। अभिष्यंद रोग की चिकित्सा न होने से अधिमंथ रोग होने का डर रहता है। (भावप्रकाश)

नेत्रारि—संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। सेहुँड़।

नेत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की छोटी पिचकारी। (सुश्रुत)

नेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अपने पीछे ले चलनेवाली। अग्रगामिनी। अगुआ। सरदार। (२) राह बतानेवाली। सिखानेवाली। रास्ते पर ले चलनेवाली। शिक्षयित्री। (३) नाड़ी। (४) लक्ष्मी। (५) नदी।

नेत्रोपम फल—संज्ञा पुं० [सं०] बादाम। (भावप्रकाश)

नेग–संज्ञा पुं० [सं० नैयमिक, हिं० नेवग] (१) विवाह आदि शुभ अवसरों पर संबंधियों, आश्रितों तथा कार्य्य वा कृत्य में योग देनेवाले और लोगों को कुछ दिए जाने का नियम। देने, पाने का हक या दस्तूर। जैसे, नेग में उनको बहुत कुछ मिला।
यौ०—नेगचार। नेगजोग।
मुहा०—नेग करना = शुभ मुहूर्त्त में आरंभ करना। साइत करना।
(२) वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर संबंधियों, नौकरों चाकरों तथा नाई बारी आदि काम करनेवालों को उनकी प्रसन्नता के लिये नियमानुसार दिया जाता है। बँधा हुआ पुरस्कार। इनाम। बखशिश।
क्रि० प्र०—चुकाना।—देना।
मुहा०—नेग लगना = (१) पुरस्कार देना आवश्यक होना। रीति के अनुसार कुछ देना जरूरी होना। जैसे, यहाँ ५०) नेग लगेगा। (२) ठीक लगना। काम में आ जाना। सार्थक होना। सफल होना।

नेगचार–संज्ञा पुं० दे० "नेगजोग"।

नेगजोग–संज्ञा पुं० [हिं० नेग + जोग] (१) विवाह आदि मंगल अवसरों पर संबंधियों तथा काम करनेवालों को उनके प्रसन्नतार्थ कुछ दिए जाने का दस्तूर। देने पाने की रीति। इनाम बाँटने की रस्म। (२) वह धन जो मंगल अवसरों पर संबंधियों और नौकरों चाकरों आदि को बाँटा जाता है। इनाम।

नेगटी‡*–संज्ञा पुं० [हिं० नेग + टा (प्रत्य०)] नेग या रीति का पालन करनेवाला। दस्तूर पर चलनेवाला। उ०—जग प्रीति करि देखी नाहिं नेगटी कोऊ। छत्रपति रंक लौं देखे प्रकृति विरुद्ध न बन्यो कोऊ॥ दिन जु गए बहुत जनमनि के ऐसे जाहु जिन कोऊ। सुनि हरिदास मीत भलो पायो विहारी ऐसो पावो सब कोऊ।—स्वामी हरिदास।

नेगी–संज्ञा पुं० [हिं० नेग] नेग पानेवाला। नेग पाने का हकदार।

नेगीजोगी–संज्ञा पुं० [हिं० नेगजोग] नेग पानेवाले। विवाह आदि मंगल अवसरों पर इनाम पाने के अधिकारी, जैसे, नातेदार, नाई, बारी, नौकर, चाकर इत्यादि। खुशी का इनाम पाने का हकदार।

नेचरिया–संज्ञा पुं० [अं० नेचर] प्रकृति के अतिरिक्त ईश्वर आदि को न माननेवाला। लोकायतिक। नास्तिक।

नेचवा‡–संज्ञा पुं० [देश०] पलंग का पाया।

नेछावर‡–संज्ञा स्त्री० दे० "निछावर"।

नेजक–संज्ञा पुं० [सं०] रजक। धोबी।

नेजा–संज्ञा पुं० [फा०] (१) भाला। बरछा। (२) साँग। निशान।
मुहा०—नेजा हिलाना = बरछा या बल्लम फिराना।

नेजाबरदार–संज्ञा पुं० [फा०] भाला या राजाओं का निशान लेकर चलनेवाला।

नेजाल‡*–संज्ञा पुं० [फा० नेजा] भाला। बरछा।

नेटा‡–संज्ञा पुं० [हिं० नाक + टा] नाक से निकलनेवाला कफ या बलगम। नाक से निकलनेवाला कफ या मल।
क्रि० प्र०—बहना।
मुहा०—नेटा बहना = गंदा और मैला कुचैला रहना। चेहरा साफ़ सुथरा न रहना।

नेठना*–क्रि० अ० दे० "नाठना"।

नेड़े‡–क्रि० वि० [सं० निकट, प्रा० निअड़] निकट। पास। नजदीक।

नेत–संज्ञा पुं० [सं० नियति = ठहराव] (१) ठहराव। निर्धारण। किसी बात का स्थिर होना। उ०—अहैं ग्यारहें भौम मस भरत कुंडली नेत।—रघुराज। (२) निश्चय। ठहराव। ठान। संकल्प। इरादा। उ०—(क) आजु न जान देहुँ, री ग्वालिन ! बहुत दिनन को नेत।—सूर। (ख) चार चोर चामीकर हेतू। किय मारन जयदेवहि नेतू।—रघुराज। (३) व्यवस्था। प्रबंध। आयोजन। बंदिश। ढंग। उ०—(क) हाय हाय माच्यो विश्वधाम बीच भारी सुर काल काहे प्रभु बाँधे प्रलय नेत है।—रघुराज। (ख) नेत करन की है गति तोरी। जामें जाय बात नहिं मोरी।—रघुराज।
संज्ञा पुं० [सं० नेत्र] मथानी की रस्सी। नेवा। उ०—(क) को उठि प्रात होत लै माखन को कर नेत गहै ?—सूर। (ख) नोई नेत की करो चमोटी घूँघट में डरवावो।—सूर।
संज्ञा पुं० [देश०] एक गहना। उ०—कहुँ कंकन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ ताटंक कहुँ नेत।—सूर।
संज्ञा स्त्री० दे० "नेती"।
संज्ञा स्त्री० दे० "नीयत"।

नेतली–संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र = मथानी की डोरी] एक प्रकार की पतली डोरी। (लश०)

नेता–संज्ञा पुं० [सं० नेतृ] [स्त्री० नेत्री] (१) पीछे ले चलनेवाला। अगुआ। नायक। सरदार। (२) प्रभु। स्वामी। मालिक। (३) काम को चलानेवाला। निर्वाहक। प्रवर्त्तक। (४) नीम का पेड़। (५) विष्णु।
संज्ञा पुं० [सं० नेत्र] मथानी की रस्सी।

नेति–[सं०] एक संस्कृत वाक्य (न इति) जिसका अर्थ है "इति नहीं" अर्थात् "अंत नहीं है"। ब्रह्म या ईश्वर के संबंध में यह वाक्य उपनिषदों में अनंतता सूचित करने के लिये आया है। उ०—नेति नेति कहि वेद पुकारा।—तुलसी।

नेती–संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र, हिं० नेता] वह रस्सी जो मथानी में

नेवुआ—† संज्ञा पुं० दे० "नीबू"।

नेवू—† संज्ञा पु० दे० "नीबू"।

नेम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काल। समय। (२) अवधि। (३) खंड। टुकड़ा। (४) प्राकार। दीवार। (५) कैतव। छल। (५) अर्द्ध। आधा। (६) गर्त्त। गड्ढा। (७) अन्य। और। (८) सायंकाल। (९) मूल। जड़।

संज्ञा पुं० [सं० नियम] (१) नियम। कायदा। बंधेज। (२) बँधी हुई बात। ऐसी बात जो टलती न हो, बराबर होती हो। (३) रीति। दस्तूर। धर्म की दृष्टि से कुछ क्रियाओं का पालन जैसे व्रत उपवास आदि।

यौ०—नेम धरम = पूजा पाठ, व्रत उपवास आदि।

विशेष—दे० "नियम"।

नेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पहिये का घेरा या चक्कर। चक्र-परिधि। प्रधि। नेमी। (२) कुएँ के ऊपर चारों ओर बँधा हुआ ऊँचा स्थान या चबूतरा। कूएँ की जगत। (३) भूमि-स्थित कूपपट्ट। कूएँ की जमवट। (४) प्रांतभाग। किनारे का हिस्सा। (५) कूएँ के किनारे लकड़ी का वह ढाँचा जिस पर रस्सी रखते और जिसमें प्रायः घिरनी लगी रहती है।

संज्ञा पुं० (१) नेमिनाथ तीर्थंकर। (२) तिनिश वृक्ष। तिनास। तिनसुना। (३) एक दैत्य। (भागवत)। (४) वज्र।

नेमिचक्र—संज्ञा पु० [सं०] परीक्षित के वंश के एक राजा जो असीमकृष्ण के पुत्र थे। इन्होंने कौशांबी में अपनी राज-धानी बनाई थी। (भागवत)

नेमी—संज्ञा पु० [सं० नेमिन्] तिनिश वृक्ष।

* संज्ञा स्त्री० दे० "नेमि"।

वि० [सं० नियम] (१) नियम का पालन करनेवाला। (२) धर्म की दृष्टि से पूजा पाठ, व्रत उपवास आदि नियम पूर्वक करनेवाला।

यौ०—नेमी धरमी।

नेर—† क्रि० वि० दे० "नियर"।

नेरता—† संज्ञा स्त्री० [सं० नैर्ऋत] नैर्ऋत्य दिशा। पश्चिम दक्षिण का कोना।

नेरवाती—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीले रंग की एक पहाड़ी भेड़ जो भोटान से लद्दाख तक पाई जाती है। इसके ऊन के कंबल आदि बनते हैं।

नेराना†—क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "नियराना"।

नेरुवा†—संज्ञा पु० [सं० नल, हिं० नली, नारी] कोल्हू के नीचे बनी हुई तेल बहने की नाली।

नेरे—क्रि० वि० [हिं० नियर] निकट। पास। समीप।

नेव*—संज्ञा पुं० दे० "नेब"।

संज्ञा स्त्री० दे० "नींव"।

नेवग*—संज्ञा पुं० [हिं०] नेग।

नेवगी—संज्ञा पुं० [हिं०] नेगी।

नेवछावर†—संज्ञा स्त्री० दे० "निछावर"।

नेवज—संज्ञा पुं० [सं० नैवेद्य] देवता को अर्पित करने की वस्तु। खाने पीने की चीज जो देवता को चढ़ाई जाय। भोग। उ०—(क) गावत मंगलचार महर घर। नेवज करि करि धरति श्याम डर।—सूर। (ख) बहुत भाँति सब करे पकवानै। नेवज करि धरि साँझ बिहानै।—सूर। (ग) महरि सबै नेवज लै सैंतति। श्याम छुवै कहुँ ताको डरपति।—सूर।

नेवजा—संज्ञा पुं० [फा०] चिलगोजा।

नेवजी—संज्ञा स्त्री० [?] एक फूल का नाम।

नेवत†—संज्ञा पुं० दे० "नेवता", "न्योता"।

नेवतना†—क्रि० स० [सं० निमंत्रण] निमंत्रित करना। नेवता भेजना। उ०—सुर गंधर्व जे नेवति बुलाए। ते सब बधू सहित तँ आए।—सूर।

नेवतहरी—संज्ञा पुं० दे० "न्योतहरी"।

नेवता—संज्ञा पु० दे० "न्योता"।

नेवर—संज्ञा पु० [सं० नूपुर] पैर का एक गहना। नूपुर।

संज्ञा स्त्री० (१) घोड़े के पैर का वह घाव जो दूसरे पैर की ठोकर या रगड़ से हो जाता है।

क्रि० प्र०—लगना।

(२) घोड़ों के पैर से पैर की रगड़।

क्रि० प्र०—लगना।

† वि० [सं० न + वर = अच्छा] बुरा। खराब।

नेवरा—संज्ञा पु० [देश०] बाल कढ़े की मारी की खोली।

नेवल—संज्ञा पु० दे० "नेवर"।

नेवला—संज्ञा पु० [सं० नकुल, प्रा० नउल] चार पैरों से जमीन पर रेंगनेवाला हाथ सवा हाथ लंबा और ४—५ अंगुल चौड़ा मांसाहारी पिंडज जंतु जो देखने में गिलहरी के आकार का पर उससे बड़ा और भूरे रंग का होता है। पूछ इसकी बहुत लंबी और रोयों से फूली हुई होती है, मुँह इसका चूहे गिलहरी आदि की तरह आगे की ओर नुकीला होता है। दाँत इसके बहुत पैने होते हैं। टीलों, पुराने घरों, नदी के कगारों आदि में बिल खोद कर प्रायः नर मादा साथ रहते हैं। वसंत ऋतु में मादा दो या तीन बच्चे देती है जो बहुत दिनों तक उसके पीछे पीछे घूमा करते हैं। नेवला भारतवर्ष में ही पाया जाता है यद्यपि इसकी जाति के और दूसरे जंतु अफ्रिका अमेरिका आदि के गरम स्थानों में मिलते हैं।

नेवले प्रायः चूहों तथा और छोटे जंतुओं को खाकर रहते हैं। साँप को मारने में ये बहुत प्रसिद्ध हैं। बड़े से बड़े सर्प को ये अपनी फुरती से खंड खंड कर डालते

नेत्रोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नेत्रों का आनंद। देखने का मजा। (२) वह वस्तु जिसे देखने से नेत्रों को आनंद मिले। दर्शनीय वस्तु।

नेत्रौषध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख की दवा। (२) पुष्पकसीस।

नेत्रौषधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढासिंगी।

नेत्र्यगण-संज्ञा पुं० [सं०] रसौत, त्रिफला, लोध, ग्वारपाठा, वनकुलथी आदि नेत्ररोगों के लिये उपकारी ओषधियों का समूह।

नेदिष्ठ-वि० [सं०] (१) निकट का। पास का। (२) निपुण। संज्ञा पुं० अंकोट वृक्ष। ढेरे का पेड़।

नेदिष्ठी-वि० [सं०] समीप का। निकटस्थ। संज्ञा पुं० सहोदर भाई।

नेनुआ, नेनुवा-संज्ञा पुं० [सं०] एक भाजी या तरकारी। घियातोरई। घिवरा।

नेपच्यून-संज्ञा पुं० [फ़रासीसी] सूर्य्य की परिक्रमा करनेवाला एक ग्रह जिसका पता सन् १८४६ से पहले किसी को नहीं था। अब तक जितने ग्रह जाने गए हैं उनमें यह सबसे अधिक दूरी पर है। बड़ाई में यह तीसरे दरजे के ग्रहों में है। इस ग्रह का व्यास ३७००० मील है। सूर्य्य से इसकी दूरी २८०००००००० मील के लगभग है, इससे इसे सूर्य्य के चारों ओर घूमने में १६४ वर्ष लगते हैं अर्थात् नेपचून का एक वर्ष हमारे १६४ वर्षों का होता है। जिस प्रकार पृथ्वी का उपग्रह चंद्रमा है उसी प्रकार नेपचून का भी एक उपग्रह है। इसका पता भी सन् १८४६ (अक्तूबर) में ही लगा। वह नेपचून की परिक्रमा ५ दिन २१ घंटे ८ मिनट में करता है।

नेपथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेश। भूषण। सजावट। (२) वेशस्थान। नृत्य, अभिनय, नाटक आदि में परदे के भीतर का वह स्थान जिसमें नट नटी नाना प्रकार वेश सजते हैं। नाटक में परदे के पीछे का स्थान जिसमें नट लोग नाटक के पात्रों की नकल बनते हैं। (३) वह स्थान जहाँ नृत्य अभिनय आदि हो। नाच-रंग की जगह। रंगशाला। रंगभूमि।

नेपाल-संज्ञा पुं० [देश०] हिंदुस्तान के उत्तर में एक रूखा पहाड़ी देश जो हिमालय के तट पर है।

विशेष—नेपाल नाम के संबंध में कई प्रकार के अनुमान हैं। कुछ लोग कहते हैं कि तिब्बत तथा उसके आस पास की अनार्य्य जातियाँ अपनी भाषा में उस प्रदेश को जहाँ गोरखे बसते हैं 'पाल' कहती हैं। सिकिम भूटान आदि के लोग नेपाल के पूरबी भाग को "ने" कहते हैं। तिब्बती भाषा में पाल पशम या ऊन को भी कहते हैं। लेपचा, नेवार आदि जातियों की भाषा में 'ने' शब्द का अर्थ पहाड़ की गुफा लिया जाता है। तिब्बत और बरमा के बौद्ध 'ने' शब्द से पवित्र गुहा वा देवता द्वारा रक्षित स्थान का भाव लेते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि नेवार जाति ही से नेपाल नाम पड़ा। पंडित लोग शुद्ध शब्द 'नयपाल' मानकर 'न्याय का पालन करनेवाला' अर्थ करते हैं। रामायण महाभारत आदि में इस देश का नाम नहीं मिलता। पुराणों में स्कंद पुराण के रेवाखंड, नागरखंड, और सह्याद्रिखंड में, तथा गरुड़ पुराण में इस देश का थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता में भी नेपाल का नाम आया है। शक्तिसंगमतंत्र, बृहन्नीलतंत्र और वाराहीतंत्र आदि कई तंत्रों में नेपाल का वर्णन मिलता है। शक्तिसंगमतंत्र में जटेश्वर से लेकर योगेश्वर तक के देश को नेपाल कहा है और उसे बहुत सिद्धिदायक बतलाया है। जैनहरिवंश तथा हेमचंद्र की स्थविरावली में भी नेपाल का उल्लेख मिलता है। नैपाली बौद्धों के तंत्रों और पुराणों में नेपाल का माहात्म्य अलौकिक कथाओं के सहित पाया जाता है।

नेपालजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

नेपालनिंब-संज्ञा पुं० [सं०] नेपाल की नीम। एक प्रकार का चिरायता।

पर्य्या०—नैपाल। तृणनिंब। ज्वरांतक। नीडीतिक्त। अर्धतिक्त। निद्रारि। सन्निपातहा।

विशेष—वैद्यक में नेपाली नीम कुछ गरम, योगवाही, हलकी, कड़ुई तथा पित्त, कफ, सूजन, रुधिर रोग, प्यास और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है।

नेपालमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद के समान एक कंद।

नेपालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

नेपाली-वि० [हिं० नेपाल] (१) नेपाल का। नेपाल में रहने या होनेवाला। (२) नेपाल संबंधी।
संज्ञा पुं० नेपाल का रहनेवाला आदमी।
संज्ञा स्त्री० (१) मनःशिला। मैनसिल। (२) नेवारी का पौधा।

नेपुर ‡ संज्ञा पुं० दे० "नूपुर"।

नेफा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पायजामे या लहँगे के घेर में इजारबंद या नाड़ा पिरोने का स्थान।

नेव-* संज्ञा पुं० [फ़ा० नायब] सहायक। कार्य्य में सहायता देनेवाला। मंत्री। दीवान। उ०—(क) कद्रू विनतहिं दीन्ह दुख तुमहिं कौसिला देव। भरत बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेव।—तुलसी। (ख) अपि नृपसीस ठगौरी सी डारी। कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरेव न समुझि सुधारी। सिरस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी। पठए बिनहिं सहाय पयादहि केलि बान धनुधारी।—तुलसी। (ग) आए नँदनंदन के नेव। गोकुल माँझ जोग विस्तारयो भली तुम्हारी जेव।—सूर।

नैदाघिक-वि० [सं०] निदाघ संबंधी। ग्रीष्म का।

नैदाघीय-वि० [सं०] निदाघ संबंधी।

नैदानिक-वि० [सं०] रोगों का निदान जाननेवाला।

नैधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निधन। मरण। (२) लग्न से आठवाँ स्थान। (फलित ज्यो०)

नैधानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक। वह सीमा जिसका चिह्न गड़ा हुआ कोयला या तुष (भूसी) हो। (स्मृति)

नैन*-संज्ञा पुं० दे० "नयन"।

संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन।

नैनसुख-संज्ञा पुं० [हिं० नैन+सुख] एक प्रकार का चिकना सूती कपड़ा।

नैनू-संज्ञा पुं० [हिं० नैन=आँख] (१) एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें आँख की सी गोल उभरी हुई बूटियाँ बनी होती हैं। उभरे हुए बेलबूटे का सूती कपड़ा।

†संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन।

नैपाल-वि [सं०] (१) नेपाल-संबंधी। (२ नेपाल का। नेपाल में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) नेपाल निंब। (२) एक प्रकार की ईख।

संज्ञा पुं० दे० "नेपाल"।

नैपालिक-संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

नैपाली-वि० [हिं० नेपाल] (१) नैपाल देश का। (२) नैपाल में रहने या होनेवाला। जैसे, नैपाली सिपाही, नैपाली टाँगन।

संज्ञा पुं० नैपाल का रहनेवाला आदमी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नवमल्लिका। नेवाली। (२) मनः-शिला। मैनसिल। (३) नील का पौधा। (४) शेफालिका। एक प्रकार की निर्गुंडी।

नैपुण्य-संज्ञा पुं० [सं०] निपुणता। चतुराई। होशियारी। दक्षता। कमाल।

नैमय-संज्ञा पुं० [सं०] वणिक। व्यवसायी। रोजगारी।

नैमित्तिक-वि० [सं०] जो किसी निमित्त से किया जाय। जो निमित्त उपस्थित होने पर या किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिये हो। जैसे, नैमित्तिक कर्म्म, नैमित्तिक स्नान, नैमित्तिक दान।

विशेष—यज्ञ आदि कर्म जो किसी निमित्त से किए जाते हैं वे नैमित्तिक कहलाते हैं; जैसे, पुत्र-प्राप्ति के निमित्त पुत्रेष्टि यज्ञ। दे० "कर्म"। ग्रहण आदि उपस्थित होने पर जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान कहलाता है। इसी प्रकार दोष या पापशांति के लिये जो दान दिया जाता है वह नैमित्तिक दान कहलाता है।

नैमित्तिकलय-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ पुराण के अनुसार एक प्रलय जिसमें सौ वर्ष तक अनावृष्टि होती है, बारहों सूर्य्य उदित होकर तीनों लोकों का शोषण करते हैं, फिर बड़े भीषण मेघ सौ वर्ष तक लगातार बरस कर सृष्टि का नाश करते हैं।

नैमिश-संज्ञा पुं० दे० "नैमिष"।

नैमिष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नैमिषारण्य तीर्थ। (२) जमुना के दक्षिण तट पर बसनेवाली एक जाति जिसका उल्लेख महाभारत और पुराणों में है।

नैमिषारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वन जो आजकल हिंदुओं का एक तीर्थस्थान माना जाता है। यह आजकल नीमखार कहलाता है।

विशेष—यह स्थान अवध के सीतापुर जिले में है। पुराणों में इसके संबंध में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। वराह-पुराण में लिखा है कि इस स्थान पर गौरमुख नामक मुनि ने निमिष मात्र में असुरों की बड़ी भारी सेना भस्म कर दी थी इसी से इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा। देवी-भागवत में लिखा है कि ऋषि लोग जब कलिकाल के भय से बहुत घबराए तब ब्रह्मा ने उन्हें एक मनोमय चक्र देकर कहा कि तुम लोग इस चक्र के पीछे पीछे चलो, जहाँ इसकी नेमि (घेरा, चक्कर) विशीर्ण हो जाय उसे अत्यंत पवित्र स्थान समझना। वहाँ रहने से तुम्हें कलि का कोई भय नहीं रहेगा। कहते हैं कि सौति मुनि ने इस स्थान पर ऋषियों को एकत्र करके महाभारत की कथा कही थी। विष्णुपुराण में लिखा है इस क्षेत्र में गोमती में स्नान करने से सब पापों का क्षय हो जाता है।

नैमिषि-संज्ञा पुं० [सं०] नैमिषारण्यवासी।

नैमिषीय-वि० [सं०] निमिष संबंधी।

नैमिषेय-वि० [सं०] (१) नैमिष संबंधी। (२) नैमिषारण्य का।

नैमेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनिमय। वस्तुओं का बदला। (२) वाणिज्य।

नैयत्य-संज्ञा पुं० [सं०] नियतत्व। नियम होने का भाव।

नैया-*† संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव, नाय] नाव। किश्ती। उ०—नैया मेरी तनक सी बोझी पाथर भार।—गिरिधर।

नैयायिक-वि० [सं०] न्यायशास्त्र का जाननेवाला। न्यायवेत्ता।

नैरंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] गया के पास बहनेवाली फल्गु नदी का प्राचीन नाम।

विशेष—फल्गु की पश्चिम की ओर बहनेवाली शाखा को जो मोहानी नदी में जाकर मिल जाती है अब भी लीलांजन कहते हैं।

नैरंतर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] निरंतरत्व। निरंतर का भाव। अविच्छेद।

नैर*-संज्ञा पुं० [सं० नगर] शहर। देश। जनपद। उ०—मोरे कहे मेर करु, सिवाजी सों बैर, करि गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।—भूषण।

हैं। लोग इन्हें पालते भी हैं। पालने पर ये इतने परच जाते हैं कि पीछे पीछे दौड़ते हैं।

नेवा–संज्ञा पुं० [सं० नियम ?] (१) रीति। दस्तूर। रवाज। (२) कहावत। लोकोक्ति।
वि० [सं० न्याय] नाईं। समान।
वि० [?] चुप। मौन।

नेवाज–वि० दे० "निवाज"।

नेवाजना–क्रि० स० दे० "निवाजना"।

नेवाड़ा–संज्ञा पुं० दे० "निवाड़ा"।

नेवार–संज्ञा पुं० [देश०] नेपाल में वसनेवाली वहाँ की एक आदिम जाति।
संज्ञा पुं०, संज्ञा स्त्री० दे० "निवाड़", "निवार"।

नेवारना*–क्रि० स० दे० "निवारना"।

नेवारी–संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली] जूही या चमेली की जाति का एक पौधा जिसमें छोटे छोटे सफेद फूल लगते हैं। पत्तियाँ इसकी कुंद या जूही की सी होती हैं। यह बरसात में अधिक फूलता है। फूलों में बड़ी अच्छी भीनी महक होती है। इसे वनमल्लिका भी कहते हैं।

नेष्टा–संज्ञा पुं० [सं० नेष्ट] (१) एक ऋत्विक्। (२) त्वष्टा देवता।

नेस–संज्ञा पुं० [फा० नेश=डंक] जंगली जानवरों के लंबे नुकीले दाँत जिनसे वे काटते हैं।

नेसकुन–संज्ञा पुं० [देश०] बंदरों का जोड़ा खाना। (कलंदर)

नेसुक*†–वि० [हिं० नेकु, नेक] तनक। थोड़ा सा।
क्रि० वि० थोड़ा। जरा। टुक। तनक।

नेसुहा†–संज्ञा पुं० [सं० निशा] जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा जिस पर गन्ना या चारा काटते हैं।

नेस्त–वि० [फा०] जो न हो।
यौ०–नेस्त नाबूद=नष्ट भ्रष्ट। जो जड़मूल से न रह गया हो।

नेस्ती–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) न होना। अनस्तित्व। (२) आलस्य। (३) नाश। बर्बादी।
क्रि० प्र०—फैलाना।

नेह–संज्ञा पुं० [सं० स्नेह] (१) स्नेह। प्रेम। प्रीति। प्यार। मुहब्बत। उ०—तुम चाहो न चाहो हमैं चित सों हमैं नेह को नातो निबाहनो है। (२) चिकना। तेल या घी।

नेही*–वि० [हिं० नेह+ई (प्रत्य०)] स्नेह करनेवाला। प्रेमी।

नै–संज्ञा स्त्री० दे० "नय"।
संज्ञा स्त्री० [सं० नदी, प्रा० णई] नदी। उ०—कितो न औगुन जग करत नै वय चढती वार।—विहारी।
संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बाँस की नली। (२) हुक्के की निगाली। (३) बाँसुरी।

नैऋत*–वि० संज्ञा पुं० दे० नैर्ऋत्य।

नैक, नैकु–वि० दे० "नेक", "नेकु"।

नैकचर–वि० [सं०] जो अकेले न चलते हों, झुंड में चलते हों। जैसे सूअर, भेड़िया, हिरन इत्यादि।

नैकट्य–संज्ञा पुं० [सं०] निकटता। निकट होने का भाव।

नैकशृंग–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम। (विष्णुसहस्र नाम)
विशेष—भगवान् विष्णु के तीन पैर और चार सींग माने गए हैं।

नैकषेय–संज्ञा पुं० [सं०] (निकष के वंशज) राक्षस।

नैकृतिक–वि० [सं०] (१) दूसरे की हानि करके निष्ठुर जीविका करनेवाला। निष्ठुर। (२) कटुभाषी।

नैगम–वि० [सं०] (१) निगम संबंधी। (२) जिसमें ब्रह्म आदि का प्रतिपादन हो, जैसे, उपनिषद्।
संज्ञा पुं० (१) उपनिषद् भाग। (२) नय। नीति।

नैगमनय–संज्ञा पुं० [सं०] वह नय वा तर्क जो द्रव्य और पर्य्याय दोनों को सामान्यविशेषयुक्त मानता हो और कहता हो कि सामान्य के बिना विशेष, और विशेष के बिना सामान्य नहीं रह सकता। (जैन)

नैगमेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (२) नैगमेष नामक बालग्रह। (सुश्रुत)

नैगमेष–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में जो नौ बालग्रह कहे गए हैं उनमें नवाँ जिसके द्वारा पीड़ित होने से बच्चों के मुँह से फेन गिरता है, वे रोते हैं, बेचैन रहते हैं, उन्हें ज्वर होता है तथा उनकी दृष्टि ऊपर को टँगी रहती है और देह से चरबी की सी गंध आती है।

नैचा–संज्ञा पुं० [फा०] हुक्के की दोहरी नली जिसमें एक के सिरे पर चिलम रक्खी जाती है और दूसरे का छोर मुँह में रखकर धुआँ खींचते हैं।
यौ०—नैचाबंद।

नैचाबंद–संज्ञा पुं० [फा०] नैचा बनानेवाला।

नैचाबंदी–संज्ञा स्त्री० [फा०] नैचा बनाने का काम।

नैचिक–संज्ञा पुं० [सं०] गाय आदि चौपायों का माथा।

नैचिकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छी गाय।

नैची–संज्ञा स्त्री० [हिं० नीचा] पुर मोट वा चरसा खींचते समय बैलों के चलने के लिये बनी हुई ढालू राह। रपट। पैंड़ी।

नैचुल–वि० [सं०] निचुल संबंधी। हिज्जल वृक्ष संबंधी।
संज्ञा पुं० निचुल का फल या बीज।

नैटी†–संज्ञा स्त्री० [देश०] दुद्धी नाम की घास या जड़ी। दुधिया घास।

नैतिक–वि० [सं०] नीति-संबंधी। नीतियुक्त।

नैत्य–वि० [सं०] (१) नित्य का। (२) नित्य दिया जानेवाला।
संज्ञा पुं० नित्य का कर्म।

नैदाघ–वि० [सं०] निदाघ संबंधी। ग्रीष्म का।